शब्द-संख्या—२१९४८

मानक हिन्दी कोश

[हिन्दी भाषा का अद्यतन, अर्थ-प्रधान और सर्वांगपूर्ण शब्द-कोश]

पहला खंड

[अ—क]

प्रधान सम्पादक

रामचन्द्र वर्म्मा

सहायक सम्पादक

बदरीनाथ कपूर एम.ए.

तारिणीश झा व्याकरणवेदान्ताचार्य

गुरुनारायण पाण्डेय एम.ए.

जयशंकर त्रिपाठी साहित्याचार्य, एम.ए.

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रथम संस्करण
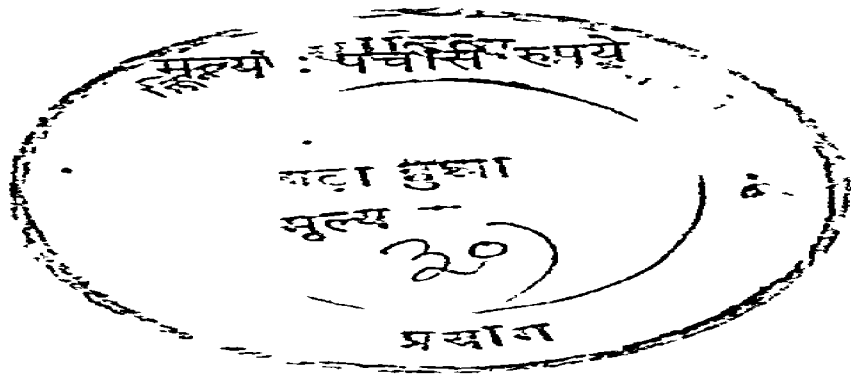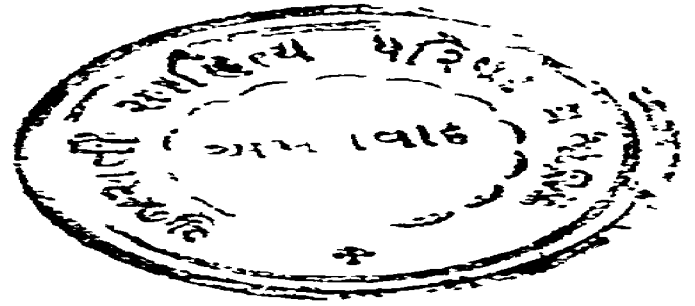
मुद्रक : सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

किसी भी भाषा के कोश-ग्रन्थ उस भाषा के ग्रन्थ-भाण्डार के बड़े ही अमूल्य अंश हैं। अतएव भाषा और साहित्य के प्रचार, प्रसार और अभिवृद्धि के लिए अच्छे कोशों की उपादेयता अनिवार्य तथा निर्विवाद है। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है और सिद्धान्त रूप से केन्द्रीय शासन तथा अनेक राज्य-शासनों की राजभाषा भी। यह सब होते हुए भी उसमें अच्छे कोशों का एक प्रकार से अभाव ही है। राजकाज में जो स्थान हिन्दी का होना चाहिए वह इस समय बहुत कुछ अंग्रेजी से आक्रान्त है। यदि हिन्दी को यह स्थान अल्पतम काल में ही प्राप्त करना है और अपने को इस महान् देश की राष्ट्रभाषा के अनुरूप बनाना है तो हमें उसका यह अभाव दूर करना ही होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस अभाव की पूर्ति की ओर सदा से रहा है। 'समाचार-पत्र शब्दकोश' का प्रकाशन इस दिशा में उसका सर्वप्रथम प्रयास था। यह स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले की बात थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त सम्मेलन ने ही सर्वप्रथम 'शासन-शब्दकोश' के नाम से शासन और विधि सम्बन्धी शब्दों का एक बृहद् और प्रामाणिक कोश हिन्दी-संसार के सामने प्रस्तुत किया। सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'प्रत्यक्ष-शारीर कोश', 'भूतत्त्व विज्ञान कोश', 'जीव-रसायन कोश' तथा 'चिकित्सा-विज्ञान कोश' उसके इसी दिशा में किये गये सतत प्रयास के फल हैं।

प्रस्तुत 'मानक हिन्दी कोश' श्री रामचन्द्र वर्म्मा ऐसे अनुभवी और लब्धप्रतिष्ठ कोशकार से सम्पादित कराकर इसी अभिप्राय से प्रकाशित किया जा रहा है कि हिन्दी में एक अच्छे और प्रामाणिक कोश का अभाव कुछ हद तक दूर हो सके। हिन्दी में उपयोगी कोशों का अभाव न रह जाय, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर सम्मेलन ने 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश' और 'संस्कृत-हिन्दी कोश' की भी योजनाएँ बनायीं और उन्हें कार्यान्वित करने में संलग्न है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिन्दी शब्द सागर' के प्रकाशन के बाद 'मानक हिन्दी कोश' का प्रकाशन इस प्रकार का सबसे प्रथम प्रयास है। 'हिन्दी शब्द सागर' अब पूर्णतया अप्राप्य है। दूसरे, जब वह बना था तब हिन्दी जहाँ थी वहाँ से अब वह बहुत आगे बढ़ चुकी है। इस बीच हिन्दी में न जाने कितने नये शब्द आ गये हैं और पुराने शब्दों ने नये भाव और नये अर्थ ग्रहण कर लिये हैं। इन सभी दृष्टियों से इस 'मानक हिन्दी कोश' का प्रकाशन उचित ही नहीं, आवश्यक भी था।

हमारे लिए यह दावा कर सकना असम्भव है कि हमारा यह कोश सर्वांगपूर्ण और सर्वथा निर्दोष है। किन्तु फिर भी इसमें कुछ विशेषताएँ अवश्य हैं। इन विशेषताओं का उल्लेख और निरूपण इस कोश के विद्वान् सम्पादक ने अपने 'आरम्भिक निवेदन' में विस्तार के साथ किया है। इसलिए इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहना अनावश्यक है।

सभी जीवित भाषाओं का शब्द-भाण्डार बराबर बढ़ता ही रहता है। फिर, हिन्दी तो करोड़ों भारतवासियों की मातृभाषा होने के अतिरिक्त हमारी राष्ट्रभाषा भी है और राजभाषा भी। अतएव इसका विपुल शब्द-भाण्डार निरन्तर वर्धिष्णु है। ऐसी भाषा के जितने अधिक समृद्ध और परिपूर्ण कहे जाने वाले कोश प्रकाशित होते जायंगे उतने ही वे अधूरे प्रतीत होंगे। प्रत्येक हिन्दी प्रेमी की कामना भी यही होगी कि यह स्थिति सदैव बनी रहे।

सम्मेलन की ओर से इस कोश का कार्य कई वर्ष पूर्व उठाया गया था और इसलिए इसे अबसे बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था, किन्तु जैसे सभी अच्छे कार्यों में विघ्न-बाधायें आये बिना नहीं रहतीं वैसे ही इस कोश के सम्बन्ध में भी हुआ है। इस कोश का प्रथम खण्ड प्रायः एक वर्ष पूर्व तत्कालीन राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को समर्पित हुआ था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अबतक प्रकाशित नहीं किया जा सका था। यह हमारा परम सौभाग्य है कि सभी विघ्न-बाधाओं को दूर करके हम अब इस कोश को हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहे हैं। हमें आशा है कि इसके द्वारा हिन्दी की कुछ न कुछ सेवा अवश्य होगी। यदि ऐसा हुआ तो हम सन्तोष ग्रहण करेंगे।

हम इस कोश के प्रधान सम्पादक, उनके सहयोगियों तथा अन्य ऐसे सभी लोगों के प्रति कृतज्ञ तो हैं ही, जिन्होंने इसके प्रकाशन में किसी न किसी रूप में सहायता की है; किन्तु हम सम्मेलन के भूतपूर्व आदाता श्री जगदीशस्वरूप जी के प्रति विशेष आभार प्रकट करना चाहते हैं; क्योंकि मानक हिन्दी कोश की योजना को जन्म देकर अग्रसर करने का श्रेय उन्हीं को है।

गोपालचन्द्र सिंह
सचिव, प्रथम शासन निकाय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

आरम्भिक निवेदन

कोई दस-बारह वर्ष पहले बर्लिन की भाषा-विज्ञान अकादमी में संसार भर के बड़े-बड़े भाषा-विज्ञानियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें भाषा तथा भाषा-विज्ञान के सभी अंगों और पक्षों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण विवेचन हुआ था। उस सम्मेलन में प्रो० जेनिश नामक एक विद्वान् ने "आदर्श भाषा" शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा था, जिसे निर्णायकों ने सर्व-श्रेष्ठ माना था। उस निबन्ध में आदर्श राष्ट्रीय भाषा के सम्बन्ध में बहुत-से बहुमूल्य विचार प्रकट किये गये थे और उसके स्वरूप तथा लक्षण बतलाये गये थे। प्रो० जेनिश ने कहा था कि जो भाषा राष्ट्र-भाषा (और फलतः राजभाषा) का स्थान ग्रहण करना चाहती हो, उसमें सभी प्रकार के विचार प्रकट करने के लिए अवकाश होना चाहिए, अर्थात् उसका शब्द-भांडार बहुत बड़ा तथा विपुल होना चाहिए। वह अधिकतम लोगों के लिए सुगम और सुबोध होनी चाहिए। उसका व्याकरण बहुत ही सरल होना चाहिए और उसके नियमों की तुलना में अपवादों की मात्रा बहुत कम होनी चाहिए, जिससे लोग सहज में वह भाषा सीख सकें। उसकी पाचन-शक्ति बहुत प्रबल होनी चाहिए, जिससे वह दूसरी भाषाओं से आवश्यक तथा उपयुक्त शब्द, प्रयोग, मुहावरे आदि सहज में ग्रहण कर सके। जिस आकर भाषा से वह जीवनी-शक्ति, प्रेरणा तथा शब्द ग्रहण करती हो, वह आकर भाषा भी इतनी उन्नत तथा सम्पन्न होनी चाहिए कि वह विचार-संचार के लिए उपयुक्त अभिव्यंजना-शक्ति विकसित कर सके। उसकी बहुत पुरानी परम्परा होनी चाहिए। साथ ही उसकी लिपि भी इतनी सुगम होनी चाहिए कि लोग उसे सहज में समझ लें।

उक्त विचारों की उपादेयता में किसी को कोई सन्देह न तो है और न हो सकता है। इसीलिए हमारी राष्ट्रभाषा (और अब राजभाषा) के निर्माता सेवकों को इन सभी बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। इस बात के सम्बन्ध में कोई मत-भेद नहीं है कि हिन्दी में सभी ज्ञान-विज्ञानों के तत्त्व, भाव तथा विचार प्रकट करनेवाले सरल और सुबोध शब्द निश्चित होने चाहिए। हर्ष का विषय है कि भारतीय शासन करोड़ों रुपये व्यय करके बहुत-से बड़े-बड़े विद्वानों की सहायता से शब्द-रचना का काम बहुत-कुछ सन्तोषजनक रूप में करा रहा है। परन्तु मेरी नम्र बुद्धि में इस कार्य का एक और बहुत बड़ा तथा महत्त्वपूर्ण अंग भी है, जिसकी ओर अभी तक लोगों का समुचित ध्यान नहीं गया है। मेरी समझ में भाषिक प्रौढ़ता, वैभव तथा समृद्धि के लिए यह भी बहुत आवश्यक है कि भाषा के प्रत्येक शब्द का अर्थ, आशय तथा भाव पूर्णरूप से निरूपित, निश्चित तथा मर्यादित होना चाहिए।

आजकल संसार में जो भाषाएँ आदर्श रूप में समुन्नत तथा समृद्ध मानी जाती हैं, उन सबकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनके शब्द-कोशों में प्रत्येक शब्द का बहुत ही वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप से सीमाबद्ध और स्पष्ट निरूपण होता है—ऐसा निरूपण होता है कि उसे एक बार अच्छी तरह देख लेने पर उसके अर्थ तथा प्रयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम या सन्देह के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। अर्थों के इस प्रकार के विवेचन से ही भाषा वास्तविक रूप में पुष्ट तथा प्रौढ़ होती है और उसका स्वरूप निखरता है और भाषा सचमुच उन्नत भाषाओं के वर्ग में परिगणित होने के योग्य हो जाती है। हम हिन्दीभाषियों का भी यह प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम हिन्दी शब्दों का ठीक और पूरा अर्थ-विवेचन करके उसे भी ऐसे उच्च स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न करें कि वह भी उन्नत भाषाओं के वर्ग में गिनी जाने लगे।

साधारणतः, लोक में यही समझा जाता है कि शब्द-कोश केवल अभिदेश ग्रन्थ होते हैं। और इसीलिए लोग उसका उपयोग किसी शब्द का अर्थ देखने भर के विचार से करते हैं। परन्तु बड़े-बड़े और प्रामाणिक कोशों का उपयोग इससे बहुत अधिक और आगे बढ़ा हुआ होता है। ऐसे शब्द-कोश बहुत-सी ज्ञातव्य बातों के भांडार होते हैं। जब कोई समझदार आदमी किसी अच्छे कोश में किसी शब्द का अर्थ देखने लगता है, तब उसे या तो उसका सारा विवेचन देखना पड़ता है या कुछ उद्दिष्ट अंश। पर इतने में ही उसे बहुत-सी ज्ञातव्य और नयी बातें मालूम हो जाती हैं। किसी शब्द के अनेक अर्थ और प्रयोग ध्यानपूर्वक देखने पर जिज्ञासु यह भी समझने लगता है कि शब्दों के अर्थों के कितने और कैसे

सूक्ष्म भेद होते हैं; और उन सूक्ष्म भेदों के आधार पर उसे उस शब्द के प्रयोग की भी अच्छी जानकारी हो जाती है, और शब्दों के अर्थ-भेद का स्वरूप भी उसके सामने आ जाता है। अच्छे व्याकरण की तरह अच्छा शब्द-कोश भी लोगों को भाषा की शिक्षा देने में बहुत अधिक सहायक होता है। मानक हिन्दी कोश में अधिकतर शब्दों का विवेचन इसीलिए उक्त तत्त्वों का ध्यान रखकर किया गया है कि यह जन-साधारण की ज्ञान-वृद्धि में अधिक से अधिक सहायक हो सके।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार के अर्थ-निरूपण का पहला प्रयत्न काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "हिन्दी शब्द सागर"[१] में हुआ था और उस अर्थ-निरूपण की रूप-रेखा प्रस्तुत करने का सारा श्रेय स्व० आदरणीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को था। प्रायः आदि से ठेठ अन्त तक उक्त शब्द-कोश के सहायक सम्पादकों में रहने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त था। मैं आरम्भ से ही शुक्ल जी की आर्थी विवेचना और व्याख्याओं के रचना-कौशल का बहुत सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने लगा था, और कुछ ही दिनों में उनकी प्रणाली अपनाने में बहुत-कुछ सफल भी हो गया था। जब आचार्य शुक्ल सभा का कोश-विभाग छोड़कर हिन्दू विश्व-विद्यालय में चले गये थे, तब कोश-विभाग का सारा उत्तरदायित्व तथा भार मेरे दुर्बल कन्धों पर आ पड़ा था। यों भी और इस कार्य-भार का निर्वाह तथा वहन करने के लिए भी मैं प्रायः प्रति सप्ताह शुक्ल जी से मिलता रहता था; और हम लोग बराबर कोश-सम्बन्धी कार्यों का पर्यालोचन करते रहते थे——उसकी त्रुटियों और दोषों की चर्चा करते रहते थे, और उसमें सुधार के प्रकार तथा स्वरूप सोचा तथा स्थिर किया करते थे। आचार्य शुक्ल के निधन के उपरान्त तो मानों कोश-रचना का विषय मेरा व्यसन-सा बन गया था; और मैं अनेक दूसरे कामों में लगे रहने पर भी शब्दों और मुहावरों के अर्थों और प्रयोगों पर यथासाध्य सूक्ष्म दृष्टि से विचार करता रहता था। जब कभी कहीं मुझे कोई नया शब्द, अर्थ या प्रयोग मिलता था, तब मैं उसे (प्रायः उदाहरण सहित) टाँक लिया करता था। इस प्रकार मेरे पास कोश सम्बन्धी प्रचुर सामग्री एकत्र हो गई थी, जिसके कुछ अंश का उपयोग मैंने "प्रामाणिक हिन्दी कोश"[२] के पहले और दूसरे संस्करणों में किया था, और जिसके आधार पर मैंने सं० २००९ में "कोश-कला"[३] नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें हिन्दी कोश-रचना से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों का विस्तृत विवेचन था।

हिन्दी शब्द सागर का सम्पादन समाप्त होने के समय आचार्य शुक्ल ने भी और मैंने भी उसके प्रधान सम्पादक तथा व्यवस्थापक स्व० डा० श्यामसुन्दर दास से इस बात का बहुत अधिक आग्रह किया था कि सभा का कोश-विभाग बन्द न किया जाय और शब्द-सागर के परिवर्धन, संशोधन आदि का काम बराबर चलता रहे। यदि उस समय हम लोगों का यह सुझाव मान लिया गया होता और कोश-कार्य के लिए एक स्थायी विभाग खुल गया होता तो अब तक कोश-रचना के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति तथा प्रगति हो चुकी होती।[४]

पर खेद है कि शब्द-सागर की वह परम्परा वहीं ठप हो गई, और न तो नागरी प्रचारिणी सभा ने ही इसे पुनरुज्जीवित करने की ओर ध्यान दिया न अन्य किसी संस्था ने ही। मैं अपनी अल्प योग्यता तथा शक्ति के अनुसार निजी रूप में इसका कुछ काम जैसे-तैसे चलाता चलता था। पर इसके लिए जिन साधनों तथा सुभीतों की आवश्यकता थी, उनका मेरे पास नितान्त अभाव था। तो भी मुझमें इस काम के प्रति स्व० आचार्य शुक्ल की कृपा से जो अनुराग, रुचि तथा लगन उत्पन्न हो चुकी थी, वह सम्भवतः मरते दम तक मेरा साथ देगी।

जब बहुत दिनों तक हिन्दी के कोश-कार्य का क्षेत्र उपेक्षित तथा सूना पड़ा रहा, तब प्रयाग के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कर्णधारों के मन में हिन्दी का एक नया बृहत् कोश प्रस्तुत करने का विचार उत्पन्न हुआ। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

---

[१] सन् १९२९ में प्रकाशित।

[२] दूसरा संस्करण साहित्यरत्नमाला कार्यालय, २० धर्मकूप, वाराणसी से प्रकाशित।

[३] साहित्यरत्नमालाकार्यालय, २० धर्मकूप, वाराणसी से प्रकाशित।

[४] अँगरेजी के सर्वश्रेष्ठ और प्रामाणिक कोशकार वेब्स्टर (सन् १७५८-१८४३) के कोश का पहला संस्करण सन् १८२८ में प्रकाशित हुआ था। उसका जो बृहत् और विशाल सर्व-मान्य तथा प्रामाणिक रूप अब देखने में आता है, उसका कारण यही है कि उसके लिए एक स्थायी विभाग ही बन गया है, जिसमें सैंकड़ों विद्वान् केवल कोश-रचना के सभी अंगों और उपांगों का गम्भीर अध्ययन करते रहते हैं और नित्य नये संशोधन तथा सुधार करते रहते हैं। इस विभाग ने कोश-रचना के सिवा पर्यायकी के क्षेत्र में जो बहुत बड़ा कार्य किया है वह सभी उन्नत भाषाओं के लिए आदर्श है।

के आदाता जी ने प्रयाग के कई प्रमुख हिन्दी-सेवी विद्वानों की एक परामर्श-समिति बना दी, जो समय-समय पर कोश-रचना तथा उसके स्वरूप के सम्बन्ध में सुझाव देती रहती थी। सम्मेलन ने इसके लिए एक विभाग भी खोल दिया। इस विभाग ने कुछ वर्षो में हिन्दी शब्द सागर और बृहत् हिन्दी कोश[1] के सब शब्द और उनके अर्थ परचियों पर उतार लिये और कुछ नवीन तथा प्राचीन ग्रन्थों से स्वतंत्र रूप से शब्द-संग्रह भी किया। इसके सिवा यह विभाग संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्तियों को संस्कृत व्याकरण के अनुसार धातु, प्रकृति, प्रत्ययों आदि से युक्त करके प्रस्तुत करता रहा। इन सब कामों के बहुत कुछ हो चुकने पर सन् १९५५ में सम्मेलन ने इस कोश के सम्पादन का भार मुझे सौंपा।

अभी शब्द-सागर के सम्पादन का काम पूरा भी न होने पाया था कि आचार्य शुक्ल को तथा मुझे बहुत से नये-नये सुधार और संशोधन करने की बातें सूझ रही थी। आचार्य शुक्ल तो कोश-रचना सम्बन्धी बहुत बड़ा ज्ञान अपने साथ ही ले गये, उन सुझावों के अनुसार कुछ करने का भार वे मुझ पर डाल गये। तब से मैंने एक ऐसा नया कोश बनाने का विचार कर लिया जो हिन्दी कोश-रचना के क्षेत्र में एक नया आदर्श तथा एक नयी परम्परा स्थापित कर सके। उसी का परिणाम "मानक हिन्दी कोश" है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अब भी इसमें बहुत कुछ संशोधन और सुधार की आवश्यकता है, तो भी मैं यह समझता हूँ कि मेरा मूल उद्देश्य बहुत कुछ सफल हुआ है। यह एक ऐसा भवन है जिसमें अनेक कुशल कारीगर बराबर लगे रहने चाहिए। मुझे आशा है कि मेरे छोटे भानजे चि० बदरीनाथ कपूर, जो प्रामाणिक हिन्दी कोश, शब्द-साधना[2] और मानक हिन्दी कोश में मेरे निरन्तर सहायक रहे हैं, और जिन्होंने मानक-हिन्दी कोश में सहायक के रूप में बहुत-सा काम किया है, इस कोश-रचना का कार्य इसी रूप में आगे चलाते रहेंगे।

मैं आरम्भ में ही यह बतला देना चाहता हूँ कि यद्यपि मानक हिन्दी कोश भी हिन्दी के सभी आधुनिक हिन्दी कोशों की तरह हिन्दी शब्द सागर की भित्ति पर आधारित है, तो भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातों तथा विवरणों में इसमें बहुत-से आमूल परिवर्तन किये गये हैं और उनका स्वरूप बदलकर बिलकुल नया कर दिया गया है। इसके द्वारा भारतीय साहित्यिक जगत् के सामने कोश-रचना का एक नया प्रतिमान रखने का प्रयत्न किया गया है। अँगरेजी के वेब्स्टर और आक्सफोर्ड सरीखे विशाल कोशों की बराबरी तो यह कोश नहीं कर सकता, फिर भी इसमें उन कोशों का पदानुसरण करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है। इस प्रयत्न में मुझे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, इसका निर्णय आनेवाली पीढ़ियाँ ही कर सकेंगी। मैं तो अपने सारे जीवन की कमाई इस कोश के रूप में मातृ-भाषा को अर्पित करके ही सन्तुष्ट और सुखी हो रहा हूँ।

इस कोश की विशेषताएँ

१—शब्दों के रूप और अक्षरी—हिन्दी के प्रायः सभी कोशों में एक ही शब्द अनेक भिन्न-भिन्न स्थानिक रूपों में तो लिये ही गये हैं परन्तु प्रायः सभी रूपों के साथ उनके अर्थ, क्रियाप्रयोग, मुहावरे आदि भी दे दिये गये हैं। इस प्रणाली में मुझे दो दोष दिखाई दिये। एक तो इससे कोश के कलेवर में व्यर्थ का विस्तार होता है, दूसरे जिज्ञासुओं को यह पता नहीं चलने पाता कि शब्द का अधिक प्रचलित, मानक और शिष्ट-सम्मत रूप कौन-सा है। इस कोश में यथासाध्य मानक और शिष्ट-सम्मत रूपों के साथ ही अर्थ, उदाहरण, मुहावरे, व्याख्याएँ आदि दी गयी है और शेष स्थानिक रूपों के आगे उनके मानक रूप का निर्देश मात्र कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, लोक में "भरता" और "भुरता" दोनों-रूप चलते हैं पर शिष्ट-सम्मत रूप "भरता" ही है, "भुरता" केवल स्थानिक रूप है। अतः सारा विवेचन "भरता" के अन्तर्गत है, और "भुरता" में "भरता" का निर्देश कर दिया गया है। इससे लोग शब्दों के मानक तथा शुद्ध रूप जान सकेंगे और आगे चलकर हिन्दी भाषा का मानक रूप स्थिर करने में विशेष सहायता मिलेगी। इसी के साथ-साथ बहुत-से शब्दों की अक्षरी भी ठीक की गयी है। शब्द-सागर में "कुआँ", "कुहरा", "धुआँ", "पांडुवा", "भौंतुवा" आदि रूप ठीक मानकर उन्हीं के आगे अर्थ और विवरण दिये गये हैं, जो उच्चारण के विचार से ठीक नहीं हैं। मानक कोश में इनके क्रमात् "कूआँ", "कोहरा", "धूआँ", "पांडूआ", "भौंतुआ" आदि रूप रखे गये हैं और उन्हीं के आगे अर्थ तथा विवरण दिये

---

[1] ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी से संवत् २००९ में प्रकाशित।

[2] साहित्यरत्नमाला कार्यालय, २० धर्मकूप, वाराणसी से २०१२ वि० में प्रकाशित।

गए हैं। शब्द-सागर में सारा विवेचन "पावँ" रूप में किया गया है पर मानक कोश में उसका मानक रूप "पाँव" रखा गया है, और उसी में सारा विवेचन रखा गया है।

२---**निरुक्ति या व्युत्पत्ति**---हिन्दी शब्दों की निरुक्ति या व्युत्पत्ति निश्चित करने का काम बहुत ही गम्भीर, जटिल तथा श्रमसाध्य है और उसके लिए स्वतंत्र रूप से बहुत अधिक छान-बीन करने की आवश्यकता है। एक तो मैं कई कारणों से अपने आपको इस काम के लिए पूर्ण योग्य तथा सक्षम नहीं समझता, दूसरे इसके लिए मेरे पास न तो उतना समय है और न अपेक्षित साधन। इस मानक-कोश में संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति मेरे सहायक श्री तारिणीश झा ने लिखी है। हिन्दी शब्द-सागर में इस क्षेत्र में जो काम हुआ था, वह बिलकुल नया होने के कारण भी तथा उस समय की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए भी बहुत-कुछ अधूरा तथा त्रुटिपूर्ण था। मुझे समय-समय पर इस सम्बन्ध की जो बातें मिलती या सूझती रही हैं वे सब ठीक करके यथास्थान ले ली गयी हैं। इनके सिवा अनेक विद्वानों के जो सुझाव मुझे जहाँ-तहाँ मिलते रहे हैं, उनका भी मैंने यथा-साध्य पूरा-पूरा उपयोग किया है और हजारों शब्दों की व्युत्पत्तियाँ ठीक की हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी का एक देहाती बहु-प्रचलित शब्द "बेहरी" है, जिसकी व्युत्पत्ति हिन्दी शब्द सागर में कुछ नहीं दी गयी है और कोष्ठक में केवल प्रश्नचिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है। मेरी समझ में यह शब्द सं० व्याहृति से व्युत्पन्न है, जिसका एक अर्थ (वि+आहरण) किसी से जबरदस्ती कुछ ले लेना भी है। 'जुकाम' अरबी का सीधा-साधा शब्द है, पर शब्द-सागर में उसकी व्युत्पत्ति 'जूड़ी+घाम' दी है, जो हास्यास्पद ही है। इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण "कोश-कला" में दिये जा चुके हैं; अतः यहाँ उनका उल्लेख करना व्यर्थ है। फिर भी हो सकता है कि अनेक स्थानों पर मैंने भूल की हो, जिसका सुधार आगे चलकर मैं भी कर सकता हूँ और दूसरे अन्वेषक विद्वान् भी मुझे सुझाव दे सकते हैं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि मानक हिन्दी-कोश में इस क्षेत्र में बहुत-सा नया काम किया गया है।

एक बात और है, अन्यान्य कोशों में प्रायः अरबी-फारसी शब्दों के हिन्दी रूप देकर उनके आगे कोष्ठक में अ० (अरबी) या फा० मात्र दे दिया गया है पर मानक कोश में अधिकतर अरबी-फारसी शब्दों के आगे कोष्ठक में उनके वास्तविक और शुद्ध रूप इस प्रकार दिये गये हैं कि पाठक उनका मूल उच्चारण भी जान लें। बहुत-से शब्दों के सामने अनेक भारतीय भाषाओं के मिलते-जुलते रूपोंवाले शब्द भी दे दिये गये हैं।

३---**शब्दों के अर्थ और विवेचन**---कोशों का मुख्य उपयोग शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ तथा आशय जानने के लिए ही होता है। अतः अर्थ और विवेचन ऐसे होने चाहिए जो जिज्ञासुओं का पूरी तरह से मनस्तोष कर सकें, उनकी शंकाओं का समाधान कर सकें और उन्हें शब्दों की आत्मा से परिचित कराकर यह बतला सकें कि उनका प्रयोग किन अवसरों या स्थलों पर अथवा कैसे होना चाहिए। हिन्दी में सबसे पहले यह काम "हिन्दी-शब्द-सागर" में हुआ था, जो उस समय की भाषिक परिस्थिति को देखते हुए बहुत था। परन्तु इधर ३०–४० वर्षों में हिन्दी भाषा ने बहुत अधिक उन्नति की है तथा भविष्य में उसकी उत्तरोत्तर उन्नति तथा प्रचार होने की बहुत बड़ी सम्भावना है। इन बातों का ध्यान रखते हुए मानक हिन्दी-कोश में शब्दों की आर्थी विवेचना पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है और अधिकतर महत्त्वपूर्ण शब्दों का तथा नित्य व्यवहार में आनेवाले "इधर" "इतना", "उधर", "और", "कुछ", "क्या" सरीखे बहुत ही छोटे तथा साधारण शब्दों का भी यथा-साध्य ऐसा सर्वांगपूर्ण विवेचन किया गया है जैसा कि किसी उन्नत भाषा के प्रथम श्रेणी के शब्द-कोश में होना चाहिए।

उदाहरण के लिए "अच्छा", "अधिकार", "आन", "उग्र" आदि शब्द देखे जा सकते हैं, जिनके "शब्द-सागर" में थोड़े-से पर्याय मात्र दिये गये हैं। परन्तु मानक कोश में इन शब्दों के प्रयोगों के आधार पर अलग-अलग अर्थ विस्तृत व्याख्याओं द्वारा स्पष्ट किये गये हैं, जिससे शब्दों का सारा स्वरूप अंग-प्रत्यंग के साथ सामने आ जाता है। ऐसा इसीलिए किया गया है कि पर्याय प्रायः भ्रामक होते हैं और व्याख्याएँ बहुधा निर्भ्रान्त तथा स्पष्ट होती हैं। यदि "अच्छा" का अर्थ 'उत्तम', 'भला', 'शुभ' या 'श्रेष्ठ' बतला दिया जाय और "उत्तम", "भला", "शुभ" या "श्रेष्ठ" का अर्थ 'अच्छा' बतला दिया जाय, तो इससे जिज्ञासुओं और विशेषतः अन्य भाषा-भाषी जिज्ञासुओं के पल्ले शायद कुछ भी न पड़ेगा। पर यदि कहा जाय (क) जो अपने वर्ग में उपकारिता, उप-योगिता, गुण, पूर्णता आदि के विचार से औरों से बढ़कर और फलतः प्रशंसा के योग्य हो, (ख). जो आकार-प्रकार, रचना, रूप आदि के विचार से देखने योग्य

या सुन्दर हो, (ग) जो प्रसन्न करनेवाला हो, (घ) जो कल्याण या मंगल करनेवाला हो, आदि आदि तो "अच्छा" के अर्थ तथा आशय समझने में लोगों को बहुत सुभीता होगा।

इस कोश में "उड़ना", "आग", "कड़ा", "कल", "कपट", "खड़ा", "खोलना", "जवान", "जान", "जी", "ज्ञान", "दान", "धाक", "ध्रुव", "नाम", "निकलना", "निरयण", "निरुक्ति", "निर्वाण", "निर्वेद", "पढ़ना", "पढ़ाना", 'पाप", "प्रकाश", "प्रति", "प्रतीक", "प्रबन्ध", "प्रमाण", "प्रशस्त", "बैठना", "भरना" सरीखे बहु-प्रचलित तथा महत्त्वपूर्ण हजारों शब्दों का विवेचन बिलकुल नये ढंग से और उक्त सिद्धान्तों का ध्यान रखकर किया गया है। यदि हिन्दी के अन्यान्य कोशों में दिये हुए ऐसे शब्दों के विवेचन से मानक कोश में किये हुए विवेचन का मिलान किया जायगा तो पाठकों को पता चलेगा कि यह कोश अन्यान्य सभी कोशों से कितना अधिक आगे बढ़ा हुआ है और इसमें कितना अधिक नया काम हुआ है।

४——**अर्थों का क्रम**——अधिकतर संस्कृत कोशों में भी और हिन्दी कोशों में भी बहुत-से शब्दों के बहुत-से अर्थ एकत्र करके रख तो दिये गये हैं पर उनका कोई युक्ति-संगत तथा व्यवस्थित क्रम नहीं लगाया गया है। मैंने इस कोश में बहुत से शब्दों के अर्थों का अनेक दृष्टियों से कुछ विशिष्ट तर्क-संगत क्रम लगाने और वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। अनेक शब्दों के अर्थों का क्रम लगाने के समय मैंने उनके अर्थों के विकास का भी ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ, "हिन्दी शब्द-सागर" में "आल्हा" शब्द के अन्तर्गत पहले वीर छन्दवाला अर्थ ही दिया गया है, और तब दूसरे अर्थ में महोबे के सुप्रसिद्ध वीर का उल्लेख किया गया है। पर यह अर्थ-क्रम इसलिए ठीक नहीं है कि "आल्हा" वस्तुतः महोबे के सुप्रसिद्ध वीर का ही नाम था। उस वीर की कृतियाँ अधिकतर वीर छन्द में वर्णित हुई थीं, इसलिए बाद में वीर छन्द को भी लोग "आल्हा" कहने लगे। हिन्दी शब्द-सागर में "परिमल" का पहला अर्थ 'सुगंध या सुवासवाला' दिया है, दूसरा 'सुगंधित उबटनों आदि से निकलनेवाली सुगंध' है, और तीसरा अर्थ दिया है——'मलने का कार्य या क्रिया' और तब तीन अतिरिक्त अर्थ दिये हैं। पर यह क्रम उलटा और गलत है। "परिमल" का पहला अर्थ है——'अच्छी तरह मलना', दूसरा अर्थ है——'शरीर में सुगंधित द्रव्य मलना', तीसरा अर्थ है——'ऐसे सुगंधित पदार्थों से निकलनेवाली सुगंध', और तब इससे विकसित होकर चौथा 'सुगंध या सुवासवाला' अर्थ बना है। इस कोश में "परिमल" के अर्थ इसी क्रम से दिये गये हैं। एक और उदाहरण प्रस्तुत "मानक कोश" में "रस" शब्द के अन्तर्गत मिलेगा। उसमें आरम्भ के सात अर्थ केवल तरल पदार्थों के सम्बन्ध के हैं, उसके बाद के चार अर्थ घन पदार्थोंवाले हैं और तब बारह अर्थ वे हैं जिनका सम्बन्ध या तो शारीरिक अनुभूतियों से है या मानसिक अनुभूतियों से। और मेरी नम्र बुद्धि से "रस" के अर्थों का विकास बहुत कुछ इसी क्रम से हुआ होगा। इस प्रकार अर्थ-क्रम लगाने का काम हजारों महत्त्वपूर्ण शब्दों में किया गया है।

५——**अर्थों का वर्गीकरण**——इस कोश में बहुत-से महत्त्वपूर्ण शब्दों के अर्थों का बिलकुल नये ढंग और नये सिरे से वर्गीकरण भी किया गया है। इस वर्गीकरण के फलस्वरूप अनेक शब्दों की अर्थ-संख्या पहले से बहुत-कुछ बढ़ गयी है। उदाहरणार्थ——

शब्द-सागर में "अभी" का १ अर्थ है, पर मानक में ५ अर्थ हैं।
शब्द-सागर में "बाकी" का १ अर्थ है, पर मानक में ५ अर्थ हैं।
शब्द-सागर में "जीवन" के १३ अर्थ हैं, पर मानक में २० अर्थ हैं।
शब्द-सागर में "पड़ना" के १९ अर्थ हैं, पर मानक में २७ अर्थ हैं।
शब्द-सागर में "प्रकृति" के ३ अर्थ हैं, पर मानक में ११ अर्थ हैं।

इस नये वर्गीकरण तथा विवेचन के फल-स्वरूप कुछ स्थानों पर शब्दों के अर्थों की संख्या शब्द-सागर की तुलना में कम भी हो गई है। उदाहरणार्थ——शब्द-सागर में "बात" के ३१ अर्थ हैं, पर मानक कोश में उनकी संख्या २२ ही रह गई है। जिज्ञासुओं को शब्दों के अर्थों की इस प्रकार की कमी-बेशी और भी बहुत-से शब्दों में मिलेगी।

६——**अर्थों के सूक्ष्म अन्तर**——इस कोश में अनेक स्थलों पर शब्दों के पारस्परिक अर्थों के सूक्ष्म अन्तर भी बतलाये गये हैं। उदाहरणार्थ——"ऊपर" के अन्तर्गत "पर" से उसका अन्तर बतलाया गया है, और यह दिखलाया गया है कि "ऊपर" का प्रयोग किन प्रसंगों में होता है और "पर" का किन प्रसंगों में। इसी प्रकार "चाव" और "चाह", "जोखना" और "नापना", "टोटका" और "टोना", "ठंढ" और "ठंढक", "नमूना" और "बानगी", "बहाना" और "मिस" तथा "हीला", "शंका", "सन्देह" और "संशय" आदि शब्दों के पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर तथा तत्सम्बन्धी प्रयोग बतलाये गये

हैं। परन्तु खेद है कि समय के अभाव के कारण वहुत-से आवश्यक और महत्त्वपूर्ण शब्दों में इस प्रकार के पारस्परिक अन्तर नहीं वतलाये जा सके। पर इस तरह का काम भी वहुत आवश्यक तथा उपयोगी होगा। यदि हो सका तो अगले संस्करण में आर्थी विवेचना का यह क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत किया जायगा।

७—मुहावरे—यों "हिन्दी शब्द-सागर" में मुहावरे वहुत-से एकत्र किये गये थे, और उनका अर्थ-विवेचन भी वहुत कुछ हुआ था। फिर भी उसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ रह गयी थीं। उस समय मुहावरों, पदों और कहावतों में कोई विशेष अन्तर नहीं समझा गया था, और सवको प्रायः एक वर्ग में रख दिया गया था। मानक कोश में ये तीनों अलग-अलग कर दिये गये हैं। वस्तुतः "आँख का काँटा", "भाड़े का टट्टू", "भानमती का पिटारा," "रंग में भंग" आदि वोल-चाल के पद हैं; और, जैसा कि मैं "अच्छी हिन्दी"[1] में वतला चुका हूँ, इनकी गणना मुहावरों में नहीं होनी चाहिए। इस कोश में पद शीर्षक से इनका एक अलग वर्ग रखा गया है।

वहुत-से मुहावरों के सम्वन्ध में यह वात विशेप विचारणीय होती है कि उन्हें किस शब्द के अन्तर्गत रखा जाय। उदाहरणार्थ "मुँह में पानी भर आना" मुहावरा "मुँह" के अन्तर्गत होना चाहिए, "पानी" के अन्तर्गत नहीं। मुहावरों के सम्वन्ध की इस तरह की जो वहुत-सी भूलें "शब्द-सागर" में हुई थीं, उन सव का इस कोश में सुधार किया गया है। साधारणतः जिस शब्द के कई अर्थ होते हैं, उनका हर एक मुहावरा उसी अर्थ के साथ रहना चाहिए जिससे वह सम्वद्ध हो। "शब्द-सागर" में अधिकतर अवसरों पर इस तत्त्व का ध्यान रखते हुए ऐसा ही किया था, फिर भी अनेक अवसरों पर भूल से इस नियम का पालन नहीं हो सका था। मानक-कोश में इस प्रकार की सव भूलें भी सुधार दी गयी हैं। "शब्द-सागर" में मुहावरों का जिस प्रकार का विवेचन हुआ है, उसमें एक और त्रुटि मेरे देखने में आई है। उदाहरण के लिए "शब्द-सागर" में का "आँख लगना" मुहावरा लीजिए। इसमें तीन अर्थ एक साथ दे दिये गये हैं। पर उन तीनों अर्थों में उनके प्रयोग का रूप स्पष्ट नहीं हुआ है। इसलिए मैंने मानक-कोश में यह मुहावरा इस रूप में रखा है—(किसी ओर) आँख लगना—प्रतीक्षा में, (किसी की) आँख लगना—सोने में, (किसी चीज़ पर) आँख लगना—प्राप्ति की चिन्ता में और (किसी से) आँख लगना—प्रेम या शृंगारिक क्षेत्र में। मानक-कोश में आदि से अन्त तक मुहावरों के सम्वन्ध में इस सिद्धान्त का पालन किया गया है, जिससे मुहावरों का प्रयोग और स्वरूप पहले से वहुत अधिक स्पष्ट हो गया है। एक और उदाहरण लीजिए। "शब्द-सागर" में सभी मुहावरे "पावँ" (शुद्ध रूप होना चाहिए पाँव) के अन्तर्गत दे दिये गये हैं और "पैर" में कोई मुहावरा नहीं दिया गया है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर मेरी समझ में यह वात आई कि कुछ पश्चिमी मुहावरे ऐसे हैं जो केवल "पैर" से सम्वद्ध हैं, और कुछ पूर्वी मुहावरे ऐसे हैं जो केवल "पाँव" से सम्वद्ध हैं। मैंने यथा-साध्य इस प्रकार के मुहावरे छाँटकर अलग किये हैं और उन्हें यथा-विधि "पैर" तथा "पाँव" में वाँट दिया है। पर कुछ मुहावरे ऐसे भी हैं जो "पाँव" तथा "पैर" दोनों के साथ चलते हैं। इसलिए उन्हें प्रयोग तथा प्रचार की दृष्टि से किसी एक शब्द में स्थान दिया गया है और दूसरे शब्द के अन्तर्गत उसका निर्देशमात्र कर दिया गया है। इसके सिवा, "शब्द-सागर" में वहुत-से मुहावरों के अर्थ-विवेचन या व्याख्या में जगह-जगह जो वहुत-सी त्रुटियाँ तथा भूलें रह गयी थीं, उन सवका भी इसमें सुधार किया गया है; और जहाँ तक हो सका है, उनका विलकुल ठीक अभिप्राय तथा आशय वतलाने का प्रयत्न किया गया है।

८—उदाहरण—"शब्द-सागर" में शब्द-संग्रह और अर्थ-विवेचन का तो वहुत वड़ा काम हुआ ही था, उसके साथ अधिकतर प्राचीन और कुछ तत्कालीन ग्रन्थों से भी शब्दों के उदाहरणों के संग्रह का भी वहुत वड़ा काम हुआ था। "शब्द-सागर" में वहुत-से शब्दों के साथ चार-चार और पाँच-पाँच तक उदाहरण दिये गये हैं। और कुछ "प्रामाणिक हिन्दी कोश" तैयार करने के समय मैंने स्वतन्त्र रूप से कुछ प्राचीन तथा नवीन ग्रन्थों से शब्द-संग्रह किया था और प्रामाणिक कोश में वही नये उदाहरण दिये थे। उसी समय मैंने सिद्धान्त वना लिया था कि जिस प्रकार मैं शब्दों का सारा विवेचन नया करूँगा, उसी प्रकार उदाहरण भी विलकुल नये ही दूँगा। हाँ, शब्द-सागर में जो कुछ उदाहरण गलत अर्थो के साथ अथवा गलत जगह पर दे दिये गये हैं, ऐसे सभी उदाहरण मैंने इस कोश में ठीक अर्थ के साथ या ठीक जगह पर दिये हैं। इस प्रकार के उदाहरणों के सिवा, वाकी जितने उदाहरण इस कोश में आये हैं, वे सव या तो मैंने

---

[1] इसका छठा संस्करण २००७ वि० में साहित्यरत्नमाला कार्यालय, २० धर्मकूप, वाराणसी से प्रकाशित।

स्वयं स्वतंत्र रूप में संगृहीत किये हैं या सम्मेलन के कोश-कार्यालय में मेरे सहायकों के एकत्र किये हुए हैं। इस दृष्टि से भी मानक-कोश में बहुत-कुछ नया और बड़ा काम हुआ है।

९—अन्यान्य संशोधन—इसके सिवा और भी बहुत-सी फुटकर बातों में इसमें जगह-जगह अनेक प्रकार के संशोधन तथा सुधार किये गये हैं। अन्यान्य कोशों में बहुत-सी अनेकानेक क्रियाओं और संज्ञाओं के अन्तर्गत अकर्मक-सकर्मक तथा स्त्रीलिंग-पुंलिंग सम्बन्धी जो बहुत बड़ी-बड़ी भूलें दृष्टि-दोष से हो गयी थीं, उनका भी इसमें पूरा संशोधन किया गया है। "धूप" शब्द हिन्दी में मुख्यतः दो अर्थों में प्रचलित है। एक तो 'देव-पूजन आदि में काम आनेवाला गन्ध-युक्त द्रव्य' और दूसरा 'सूर्य की किरणों का ताप-युक्त आतप'। पहले अर्थ में वह पुं० और दूसरे अर्थ में स्त्री० है। परन्तु 'शब्द-सागर' में दूसरा स्त्री० अर्थ भी पहले पुं० वाले अर्थ के साथ ही लगा रह गया है, जो अशुद्ध होने के सिवा बहुत भ्रामक भी है। "बौरा" कुछ अर्थों में विशेषण है और कुछ अर्थों में संज्ञा। पर "शब्द-सागर" में संज्ञावाले सब अर्थ भी विशेषण वाले वर्ग के साथ लगे रह गये हैं। "नकना" का 'लाँधना' वाला अर्थ सकर्मक और 'चलना' वाला अर्थ अकर्मक है। पर दूसरा अर्थ भी पहले वाले स० अर्थ के साथ रह गया है। 'दृगंचल' के अर्थ में "पलक" सं० 'पल+क' से व्युत्पन्न और स्त्री० है। पर कविताओं में यह शब्द पल+एक के योग से 'क्षण भर' के अर्थ में भी आया है और पुं० रूप में चलता है। पर "शब्द-सागर" में दोनों अर्थ एक ही व्युत्पत्ति के अन्तर्गत और स्त्री० हैं। "बहाना" में अकर्मक के अन्तर्गत १८ अर्थ दिये गये हैं। पर उनके १५, १६ और १७ संख्यक अर्थ अकर्मक नहीं बल्कि सकर्मक हैं और उनका अलग वर्ग होना चाहिए था। "व्यापना" के अकर्मक में ४ अर्थ हैं, पर उनमें का तीसरा अर्थ 'ग्रसना या घेरना' अकर्मक नहीं बल्कि सकर्मक है। इस प्रकार की सैकड़ों-हजारों भूलें मानक-कोश में सुधारी गई हैं।

१०—अँगरेजी पर्याय—प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले संस्करण में मैंने राष्ट्र-भाषा तथा देश की वर्तमान स्थिति तथा अन्य-भाषा-भाषियों की आवश्यकता तथा सुभीते का ध्यान रखते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी शब्दों के साथ उनके उपयुक्त अँगरेजी पर्याय देने की नई परिपाटी चलाई थी। इसकी उपयोगिता आगे चलकर तब सिद्ध हुई, जब प्रायः सभी परवर्ती हिन्दी कोशों में इसी परिपाटी का अनुसरण किया गया। मानक हिन्दी कोश में यह काम और भी अधिक विस्तृत रूप में हुआ है। इससे यह लाभ होगा कि अँगरेजी जाननेवाले अन्य-भाषा-भाषी सहज में यह समझ सकेंगे कि हिन्दी का कौन-सा शब्द अँगरेजी के किस शब्द के स्थान पर चलता है।

सारांश

सारांश यह है कि मानक हिन्दी कोश में कोश-रचना का सारा ढाँचा ही बदल दिया गया है और उसे बिलकुल नया, युक्तिसंगत, वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है। इसमें शब्दों का विवेचन करते समय केवल दूसरे कोशों का आश्रय नहीं लिया गया है, बल्कि स्वतंत्र रूप से उनके प्रयोगों का विचार करके उनका बिलकुल नया निरूपण तथा विवेचन किया गया है। हिन्दी शब्द सागर में तो शब्दों के बाह्य शरीर, उनके अंग-उपांगों तथा रूप-रंग आदि का ही विवेचन था; पर मानक-कोश में शब्दों की आत्मा तक पहुँचने का प्रयत्न किया गया है।

फिर भी मेरे दृष्टि-कोण से अभी इस दिशा में बहुत-सा काम होने को है, जिसे पूरा करने की ओर हिन्दीवालों का भी और शासन का भी ध्यान जाना चाहिए। हिन्दी में अब अनेक विषयों के बहुत-से नये ग्रन्थ निकलने लगे हैं, जिनमें बहुत-से नये तथा उपयोगी शब्द होते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसे लेख निकलते रहते हैं जिनमें या तो नये शब्द होते हैं या पुराने ग्रन्थों के जटिल शब्दों का विवेचन होता है। इस प्रकार के सभी नये और पुराने शब्दों के विवेचन के आधार पर निकलनेवाले नये तथ्यों तथा निष्कर्षों को मानक-कोश में स्थान मिलना चाहिए। यदि इसकी कोई समुचित व्यवस्था हो तो दस-बीस वर्षों में इसके आधार पर ऐसा प्रामाणिक और सर्व-मान्य कोश प्रस्तुत हो सकेगा जो भारत की राजभाषा के गौरव की दृष्टि से परम उपयुक्त भी होगा और अत्यन्त उपादेय भी। मैं तो कदाचित् वह दिन देखने के लिए बचा नहीं रहूँगा, फिर भी वह दिन होगा हिन्दी के लिए बहुत अधिक गौरवशाली ही।

पृष्ठ-संख्या के विचार से यह कोश "हिन्दी शब्द सागर" के लगभग बराबर ही होगा किन्तु विवेच्य विषय या सामग्री की दृष्टि से उसका सवाया या ड्योढ़ा ठहरेगा, क्योंकि इसके अक्षर भी अपेक्षया छोटे हैं और प्रति स्तम्भ पंक्तियों की संख्या भी अधिक है।

एक अन्तिम निवेदन और है। मेरी ये पंक्तियाँ पढ़कर कुछ लोग यह धारणा न बना लें कि मैं "हिन्दी शब्द सागर" की निन्दा करके और उसे तुच्छ ठहराकर अपना या मानक हिन्दी कोश का महत्त्व बढ़ाना चाहता हूँ। एक तो "शब्द-सागर" हिन्दी का पहला, प्रामाणिक और सर्वश्रेष्ठ शब्द-कोश है, दूसरे मैं भी उसके सम्पादकों में से बचा हुआ एक सम्पादक ही हूँ और उसकी रचना में मेरा भी बहुत-कुछ योग रहा है। मेरा उद्देश्य यही दिखलाना है कि वह आरंभिक कृति थी और उसमें ऐसी हजारों त्रुटियाँ हैं, जिनका संशोधन और सुधार होना परम आवश्यक था। मैंने अपनी अल्प योग्यता तथा शक्ति के अनुसार यह काम मानक-कोश में करने का प्रयत्न किया है। अब इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों उनका संशोधन तथा सुधार आनेवाली पीढ़ियाँ करेंगी।

४७. लाजपत नगर, वाराणसी

रामचन्द्र वर्म्मा

वसन्त पञ्चमी

२०१९ वि०

संकेताक्षरों का स्पष्टीकरण

अं०—अंगरेजी भाषा
अ०—(कोष्ठक में) अरबी भाषा
अ०—(कोष्ठक से पहले) अकर्मक क्रिया
अनु०—अनुकरण वाचक शब्द
अप०—अपभ्रंश
अर्द्ध-मा०—अर्द्ध-मागधी
अल्पा०—अल्पार्थक
अव्य०—अव्यय
इव०—इवरानी भाषा
उदा०—उदाहरण
उप०—उपसर्ग
उभय०—उभयलिंग
कबीर—कबीरदास
कश०—कश्मीरी भाषा
केशव—केशवदास
कोंक०—कोंकणी भाषा
क्रि०—क्रिया
क्रि० प्र०—क्रिया-प्रयोग
क्रि० वि०—क्रिया-विशेषण
क्व०—क्वचित्
गुज०—गुजराती भाषा
चन्द्र—चन्द्र बरदाई
जायसी—मलिक मुहम्मद जायसी
जावा०—जावा द्वीप की भाषा
ज्यो०—ज्योतिष
डिं०—डिंगल भाषा
ढो० मा०—ढोला मारू रा दूहा
त०—तमिल भाषा
तु०—तुर्की भाषा
तुलसी—गोस्वामी तुलसीदास
ते०—तेलगु भाषा
दादू—दादू दयाल
दिनकर—रामधारी सिंह
दीन दयालु—कवि दीन दयालु गिरि
दे०—देखें
देव—देव कवि
देश०—देशज
द्विवेदी—महावीर प्रसाद द्विवेदी
नपुं०—नपुंसक लिंग
नागरी—नागरीदास
निराला—सूर्यकान्त त्रिपाठी
ने०—नेपाली भाषा
पं०—पंजाबी भाषा
पन्त—सुमित्रानन्दन पन्त
पद्माकर—पद्माकर भट्ट
पर्या०—पर्याय
पा०—पाली भाषा
पु०—पुंलिंग
पु० हिं०—पुरानी हिन्दी
पुर्त०—पुर्तगाली भाषा
पू० हिं०—पूर्वी हिन्दी
पैशा०—पैशाची-भाषा
प्रत्य०—प्रत्यय
प्रसाद—जयशंकर प्रसाद
प्रा०—प्राकृत भाषा
प्रे०—प्रेरणार्थक क्रिया
फा०—फारसी भाषा
फ्रां०—फ्रांसीसी भाषा
बंग०—बंगाली भाषा
बर०—बरमी भाषा

बहु०—बहुवचन

बिहारी—कवि बिहारीलाल

बुं० खं०—बुंदेलखंडी बोली

भारतेन्दु—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भाव०—भाववाचक संज्ञा

भूषण—कवि भूषण त्रिपाठी

मतिराम—कवि मतिराम त्रिपाठी

मल०—मलयालम भाषा

मि०—मिलावें

मुहा०—मुहावरे

यू०—यूनानी भाषा

यौ०—यौगिक पद

रघुराज—महाराज रघुराजसिंह रीवाँ-नरेश

रसखान—सैयद इब्राहीम

रहीम—अब्दुर्रहीम खानखानाँ

लश०—लशकरी बोली अर्थात् हिन्दुस्तानी जहाजियों की बोली

लै०—लैटिन भाषा

वि०—विशेषण

वि० दे०—विशेष रूप से देखें।

विश्राम—विश्रामसागर

व्या०—व्याकरण

सं०—संस्कृत भाषा

संयो०—संयोजक अव्यय

संयो०क्रिया—संयोज्य क्रिया

स०—सकर्मक क्रिया

सर्व०—सर्वनाम

सिं०—सिंधी भाषा

सिंह०—सिंहली भाषा

सूर—सूरदास

स्त्री०—स्त्रीलिंग

स्पे०—स्पेनी भाषा

हिं०—हिन्दी भाषा

*यह चिह्न इस बात का सूचक है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त हुआ है।

† यह चिह्न इस बात का सूचक है कि इस शब्द का प्रयोग स्थानिक है।

संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति के संकेत

अत्या० स०—अत्यादि तत्पुरुष समास (प्रा० स० के अन्तर्गत)

अव्य० स०—अव्ययीभाव समास

उप० स०—उपपद समास

उपमि० स०—उपमित कर्मधारय समास

कर्म० स०—कर्मधारय समास

च० त०—चतुर्थी तत्पुरुष समास

तृ० त०—तृतीया तत्पुरुष समास

द्व० स०—द्वन्द्व समास

द्विगु स०—द्विगु समास

द्वि० त०—द्वितीया तत्पुरुष समास

न० त०—नञ्तत्पुरुष समास

न० व०—नञ्वहुव्रीहि समास

नि०—निपातनात् सिद्धि

पं० त०—पञ्चमी तत्पुरुष समास

पृपो०—पृषोदरादित्वात् सिद्धि

प्रा० व० स०—प्रादि वहुव्रीहि समास

प्रा० स०—प्रादितत्पुरुष समास

व० स०—वहुव्रीहि समास

वा०—वाहुलकात्

मयू० स०—मयूरव्यंसकादित्वात् समास

शक०—शकन्ध्वादित्वात् पररूप

ष० त०—षष्ठीतत्पुरुष समास

स० त०—सप्तमी तत्पुरुष समास

√—यह धातु का चिह्न है।

विशेष—पृपो०, नि० और वा० ये तीनों पाणिनीय व्याकरण के संकेत हैं। इनके अर्थ हैं, 'पृषोदर' आदि शब्दों की भाँति, 'निपातन' (विना किसी सूत्र-सिद्धान्त) से और 'वाहुलक' (जहाँ जैसी प्रवृत्ति देखी जाय वहाँ उस प्रकार) से। पाणिनि ने जिन शब्दों की सिद्धि अपने सूत्रों से नहीं देखी उनके लिए उपर्युक्त तीन मार्ग वना डाले। इन संकेतों से किसी शब्द को सिद्ध करने के लिए वर्णों का आगम, व्यत्यय, लोप आदि आवश्यकतानुसार किये जाते हैं।

मानक हिन्दी कोश

अ

अ—देव-नागरी वर्ण-माला का पहला अक्षर और पहला स्वर। संस्कृत व्याकरण और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार का होता है, जिसके अठारह अवांतर भेद हैं। उच्चारण की दृष्टि से यह अर्द्ध-विवृत मिश्र स्वर है। व्यंजनों का उच्चारण करते समय उनके अन्त में इसका उच्चारण आपसे आप हो जाता है। जब किसी व्यंजन का उच्चारण इसके बिना होता है तो वह हलन्त कहलाता है और नहीं तो स-स्वर होता है।

अव्य० एक संस्कृत अव्यय जो व्यंजनों से आरम्भ होनेवाली संज्ञाओं और विशेषणों के पहले उपसर्ग की तरह लगकर नीचे लिखे अर्थ देता है। (क) प्रतिकूल या विपरीत; जैसे—अधर्म्म, अनीति, असत्, अहित आदि। (ख) रहित, विहीन या शून्य; जैसे—अकच, अकाम, अदृश्य, अपर्ण, अलस, अशोक आदि। (ग) सामान्य आकार, रूप या स्थिति से भिन्न; जैसे—अपूर्व, अभारतीय (भारत से भिन्न देश का) आदि। (घ) निषेध या वारण; जैसे—अकथ्य, अपेय आदि। और (च) दूषित या बुरा; जैसे—अकर्म, अकाल आदि। प्रायः यह शब्द से पहले लगकर उसे नहिक रूप देता है। परन्तु कहीं-कहीं यह बहुत अधिकता का भी सूचक होता है। जैसे—अघोर, असेचन आदि। जब यह स्वर से आरम्भ होनेवाले संस्कृत शब्दों के पहले लगता है तब इसका रूप अन् (अँगरेजी और जरमनी की तरह) हो जाता है। जैसे—अंग से अनंग, अंत से अनंत, अर्थ से अनर्थ, आदि से अनादि, उपस्थित से अनुपस्थित आदि। हिन्दी में इसी सं० अन् का रूप अन हो जाता है। जैसे—अनगिनत, अनजान, अनपढ़, अनबोल आदि।

पुं० [सं०√अव् (रक्षा आदि)+ड] १. विष्णु। २. ब्रह्मा। ३. इंद्र। ४. वायु। ५. अग्नि। ६. कुबेर। ७. अमृत। ८. कीर्ति। ९. ललाट। १०. विश्व।

वि० १. उत्पन्न करनेवाला। २. रक्षक।

अंक—पुं० [सं०√अंक् (चिह्न करना)+अच्; लै० अंकस्; गु० अंक, आंक आकड़ों; सिं० अंगु, का० आँख; सिंह० अंक; मरा० अंक] [वि० अंकनीय, अंकित, अंक्य; भाव० अंकन] १. बैठे हुए मनुष्य का, सामने का कमर से घुटनों तक का उतना अंश, जितने में बच्चों आदि को बैठाया जाता है। क्रोड़। गोद।

मुहा०—अंक देना, भरना या लगाना=(क) बच्चे आदि को गोद में प्रेमपूर्वक बैठाना। (ख) गले लगाना, आलिंगन करना। अंक में नमाना या नमावना=अति प्रसन्न होना। फूले अंगों न समाना। उदा०—फूले फिरत अंक नहिं मावत।—सूर।

२. कटि-प्रदेश। कमर। ३. चिह्न, छाप या निशान। ४. लेख। लिखावट। ५. संख्या के सूचक चिह्न। (फिगर) जैसे—१, २, ३, ४ आदि। ६. खेल, परीक्षा आदि में योग्यता, सफलता आदि की सूचक इकाइयाँ। (नम्बर) जैसे—कबड्डी में सात अथवा गणित में दस अंक हमें मिले हैं। ७. अंश। भाग। उदा०—एकहु अंक न हरि भजे रे सठ सूर गँवार।—तुलसी। ८. भाग्य। प्रारब्ध। ९. धब्बा। दाग। १०. बच्चों को नजर लगने से बचाने के लिए उनके माथे पर लगाई जानेवाली काजल की बिंदी। ११. शरीर। देह। १२. नाटक का एक खंड या भाग जिसमें कई दृश्य होते हैं। १३. रूपक के दस भेदों में से एक। १४. नौ की संख्या। १५. पत्र-पत्रिकाओं आदि का कोई निश्चित समय पर या समय विशेष पर होनेवाला प्रकाशन (नम्बर)। १६. पर्वत। १७. दुःख। १८. पाप।

अंकक—वि० [सं०√अंक्+ण्वुल्—अक] [स्त्री० अंकिका] १. अंकों की गिनती करनेवाला। २. चिह्न, छाप या निशान लगानेवाला।

पुं० वह करण जिससे चिह्न या छाप लगाई जाती हो। मोहर। (स्टाम्प)

अंक-करण—पुं० [ष० त०]=अंकन।

अंक-कार—पुं० [सं० अंक√कृ (करना)+अण्] १. वह व्यक्ति जो खेलों (आज-कल विशेषतः गेंद-बल्ले आदि के खेलों) में खेलाड़ियों से नियम पालन कराने और विवादास्पद बातों का निर्णय करने के लिए नियुक्त होता है। (अम्पायर) २. वह जो अंक दे।

अंकखरी†—स्त्री०=कंकड़ी।

अंक-गणित—पुं० [ष० त०] गणित की वह शाखा जिसमें १, २, ३ आदि संख्याओं तथा जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि की सहायता से प्रश्नों के उत्तर निकाले जाते हैं। हिसाब। (एरिथमेटिक)

अंक-गत—भू० कृ० [द्वि० त०] १. जिसे गोद में लिया गया हो। गोद में लिया हुआ। २. पकड़ में आया हुआ।

अँकटा—पुं० [सं० इष्टका] कंकड़, पत्थर आदि का बहुत छोटा टुकड़ा।

अँकटी—स्त्री० [अँकटा का अल्पा० रूप] छोटी कंकड़ी।

अँकड़ा†—पुं०=अँकटा।

अँकड़ी—स्त्री० [सं० इष्टका] १. छोटी कंकड़ी। २. कँटिया। हुक। ३. मछली फँसानेवाला हुक। ४. टेढ़ा या मुड़ा हुआ फल। ५. फल तोड़ने का बाँस जिसके सिरे पर एक छोटी लकड़ी बँधी रहती है। लग्गी। ६. बेल। लता।

अंक-तंत्र—पुं० [ष० त०] १. अंक-गणित। २. बीज-गणित।

अंकति—पुं० [सं० √अञ्च् (जाना)+अति, कुत्व] १. अग्नि। २. वायु।

३.ब्रह्मा। ४.अग्निहोत्री।

अंक-धारण—पुं० (ष० त०) त्वचा पर गरम धातु से सांप्रदायिक चिह्न (चक्र, त्रिशूल, शंख आदि) छपवाना या दगवाना।

अंक-धारी (रिन्)—वि० [सं० अंक√धृ (धारण करना)+णिनि] [स्त्री० अंकधारिणी] जिसने अपनी त्वचा पर अंक या चिह्न छपवाये या दगवाये हों।

अंकन—पुं० [सं०√अंक्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अंकित] १.अंक या चिह्न बनाने की क्रिया या भाव। २. सांप्रदायिक चिह्न गरम धातु आदि से छपवाने की क्रिया या भाव। ३.कलम या कूची से चित्र बनाना। ४.लिखना। ५. गिनती करने की क्रिया या भाव। ६. अंक लगाना या देना। ७.श्रेणी विशेष में किसी की गिनती करना।

अंकन-पद्धति—स्त्री० [ष० त०] १.अंकित करने, चिह्न बनाने आदि का कोई ढंग या पद्धति। २.दे० 'अंकनी'।

अंकना—स० [सं० अंकन] १.अंक देना, बनाना या लगाना। २.अंकन या चित्रण करना। ३.मूल्य स्थिर या निर्धारित करना। ४.श्रेणी विशेष में किसी की गिनती करना।

अ० १.आँका या कूता जाना। २.अंकित किया या लिखा जाना।

अंकनी—स्त्री० [सं० अंकन+ङीप्] १.अंक, मान, संख्या आदि कुछ विशिष्ट प्रकार के चिह्नों के द्वारा अंकित करने या लिखने का ढंग या पद्धति अंकन पद्धति। (नोटेशन) जैसे—संगीत में किसी धुन, राग या लय। की अंकनी।

अंकनीय—वि० [सं०√अंक्+अनीयर्] १.अंकन या चित्रण किये जाने के योग्य। २.जिसका अंकन या चित्रण किया जाने को हो।

अंक-पत्र—पुं० [ष० त०] [भू० कृ० अंक-पत्रित] १.कागज का वह छोटा टुकड़ा जिसपर चिह्न, छाप आदि लगे हों। २. शासन द्वारा छापा हुआ कागज का वह टुकड़ा जो कुछ निश्चित मूल्य का तथा इस बात का सूचक होता है कि कर, शुल्क आदि की उतनी रकम चुकती कर दी गई है, जो उस पर अंकित होती है। टिकट। (स्टाम्प)

अंक-पत्रित—भू० कृ० [सं० अंकपत्र+इतच्] जिसपर अंक-पत्र चिपकाया या लगाया गया हो। (स्टाम्प्ड)।

अंक-परिवर्तन—पुं० [ष० त०] १.करवट लेना या बदलना। २.नाटक में एक अंक की समाप्ति पर दूसरे अंक का प्रारंभ होना।

अंक-पलई—स्त्री० [सं० अंक-पल्लव] लिखने का एक गोपनीय प्रकार जिसमें अक्षरों या वर्णों के स्थान पर अंकों का प्रयोग किया जाता है।

अंक-पाल—वि० [सं० अंक√पाल् (पालन करना)+णिच्+अच्] गोद में खेलानेवाला।

पुं० दास। सेवक।

अंक-पालि (का)—स्त्री० [सं० अंक√पाल्+णिच्+इन्, अंकपालि+कन् —टाप्] १.आलिंगन। २.गोद में खेलानेवाली स्त्री। दाई।

अंक-पाली—स्त्री० [अंक पालि—ङीष्] १.=अंक-पालि। २. एक गंध द्रव्य का नाम।

अंक-पाश—पुं० [कर्म० स०] बाहु-पाश।

अंक-माला—स्त्री० [ष० त०] १.बहुत से अंकों का समूह। जैसे—एक से सौ तक की अंक-माला। २. छोटी माला।

अंक-मालिका—स्त्री० [ष० त०]=अंक-माला।

अंक-मुख—पुं० [ष० त०] नाटक के आरंभ का भाग, जिसमें क अत्यंत संक्षेप में दिया जाता है।

अँकरा—पुं० [सं० अंकुर] १. अंकटा (कंकड़)। २. खेतों में ए एक प्रकार की घास जिसके दाने गरीब लोग खाते हैं।

अँकरास—पुं०=अकरास।

अँकरी—स्त्री० [अँकरा का अल्पा०] छोटी कंकड़ी।

अँक-रोरी—स्त्री०=अँक-रौरी।

अँक-रौरी—स्त्री० [हि० अँकरा, <सं० इष्टक+रोरी। <सं० कंकड़ी। उदा०—काँट गड़े न गड़े अँकरौरी।—जायसी।

अंक-लोप—पुं० [ष० त०] अंकों के घटने या घटाने की क्रिया या भाव

अँकवाई—स्त्री० [हि० आँकना+वाई (प्रत्य०)] १. अँकवाने की या भाव। २. अँकवाने का पारिश्रमिक।

अँकवाना—स० [हि० आँकना क्रिया का प्रे० रूप] १. अन्य व्य आँकने का काम करवाना। २. किसी से जाँच करवाना। ३. दूसरे से अंकन करवाना। ४. मूल्य या दर निश्चित करवाना।

अँकवार—स्त्री० [सं० अंकपालिका, प्रा० अँकवारिया] १. २. हृदय। ३. गोद।

मुहा०—अँकवार देना या भरना=गले लगाना।

यौ० भेंट-अँकवार=आलिंगन।

अँकवारना—स० [हि० अँकवार] गले लगाना। आलिंगन करना।

अँकवारि—स्त्री०=अँकवार।

अंक-शायिनी—स्त्री० [सं० अंक√शी (सोना)+णिनि—ङीप्] जो पुरुष के साथ शयन करती हो।

अंक-शायी (यिन्)—वि० [सं० अंक√शी+णिनि] बगल में वाला।

अंक-शास्त्र—पुं० [ष० त०] वह विद्या या शास्त्र जिसमें संबंधी तथ्यों का निरूपण, वर्गीकरण, संग्रह आदि किया ज त (स्टैटिस्ट्-इक्स्)।

अंकस—पुं० [सं०√अञ्च् (गति)+असुन्, कुत्व, अंकस्+ १. शरीर। २. चिह्न।

वि० चिह्न-युक्त।

अंकांक—पुं० [अंक—अंक, ब० स०] जल। पानी।

अंकाई—स्त्री० [सं० अंकन] १. आँकने की क्रिया या भाव। अ २. आँकने या अंकन करने का पारिश्रमिक। ३. फसल में से और काश्तकार के हिस्सों का ठहराव। दानाबंदी।

अँकाना—सं०=अँकवाना

अँकाव—स्त्री० [हि० आँकना] आँकने की क्रिया या भाव।

अंकावतार—पुं० [सं० अंक-अवतार, ष० त०] नाटक में एक अंक की पर पात्रों का संकेत से यह बतलाना कि अगले अंक में क्या क्या बातें

अंकित—भू० कृ० [सं०√अंक्+क्त] १. जिसका अंकन किया गय जैसे—अंकित-चित्र। २. जिसपर अंक या चिह्न बना हो। ३. हुआ। लिखित। ४. चित्र के रूप में बना हुआ। चित्रित। ५. जि अंकक या मोहर लगाई गई हो।

अंकितक—वि० [सं० अंकित+कन्] कागज का वह छोटा टुकड़ा जि किसी वस्तु, व्यक्ति आदि का नाम, पता, विवरण आदि लिखे

(लेवुल)।

अंकित-मूल्य—पुं० [कर्म० स०] किसी वस्तु का वह मूल्य जो उस पर अंकित होता है (आंतर मूल्य से भिन्न)। (फेस वैल्यू)

अंकिनी—स्त्री० [सं०√अंक+इनि—ङीप्] १. चिह्नों का समूह। २. चिह्नोंवाली स्त्री।

अंकिल—वि० [सं० अंक+इलच्] चिह्न या दागवाला।
पुं० दागा हुआ साँड़।

अंकी—स्त्री० [सं० अंक+अच्—ङीप्] छोटा नगाड़ा।

अँकुड़ा—पुं० [सं० अंकुरक] [स्त्री० अल्पा० अँकुड़ी] १. कोई चीज टाँगने, निकालने या फँसाने के लिए बना हुआ टेढ़ा काँटा। टेढ़ी कटिया। हुक। २. गाय, बैल के पेट में होनेवाला मरोड़। ऐंठन। ३. रेशमी कपड़ा बुननेवालों का एक औजार।

अंकुर—पुं० [सं०√अंक्+उरच्] १. गुठली, बीज आदि में से निकलनेवाला नया डंठल, जिसमें छोटी-छोटी पत्तियाँ लगी होती हैं। २. पौधों, वृक्षों आदि की जड़, डाल या तने में से उगनेवाला ऐसा नया पत्ता।
क्रि० प्र०—आना। जमना।—निकलना।—फूटना।
३. फूल का आरंभिक तथा अध-खिला रूप। कली। ४. घाव भरने के समय उसमें दिखाई देनेवाले मांस के छोटे-छोटे दाने जो घाव के ठीक तरह से भरे जाने के सूचक होते हैं। अंगूर। ५. आगे का नुकीला भाग। नोक। ६. ऐसे लक्षण जो किसी की भावी उन्नति, विकास आदि के सूचक होते हैं। ७. रहस्य-सम्प्रदाय में (क) अहंकार और (ख) उच्च कोटि के ज्ञान का आरंभिक रूप। ८. खून। रक्त। ९. शरीर का रोआँ। लोम। १०. जल। पानी। ११. बाल-बच्चे। संतान।

अंकुरक—पुं० [सं०√अञ्च् (जाना)+घुरच्, अंकुर+क] पशु-पक्षियों के रहने का स्थान।

अंकुरण—पुं० [सं० अंकुर+क्विप्+ल्युट्—अन?] [भू० कृ० अंकुरित] अंकुर के रूप में आने की क्रिया या भाव। बोये हुए बीज आदि का अँकुरित होना। (जरमिनेशन)

अँकुरना—अ० [सं० अंकुर] अंकुर निकलना या फूटना।

अँकुराना—स० [सं० अंकुरण] अंकुरित होने में प्रवृत्त करना। अंकुर उत्पन्न कराना।
अ०=अँकुरना।

अंकुरित—भू० कृ० [सं० अंकुर+इतच्] १. अंकुर के रूप में निकला या फूटा हुआ। २. उत्पन्न। उद्भूत। ३. (गुठली या बीज) जिसमें से अंकुर निकले हों।

अंकुरित-यौवना—स्त्री० [व० स०, टाप्] वह लड़की जिसका यौवनकाल आरंभ हो रहा हो।

अँकुरी—स्त्री० [हिं० अंकुर+ई (प्रत्य०)] १. अन्न के दाने जिनमें अंकुर या गाभ निकले हुए हों। २. इस प्रकार के अन्न की घुँघनी।

अंकुश—पुं० [सं०√अंक्+उशच्] (भू० कृ० अंकुशित) १. भाले की तरह का वह दो-मुहाँ अँकुड़ा या काँटा जिससे हाथी चलाया और वश में किया जाता है। गज-बाग। २. वह अधिकार, तत्त्व या शक्ति जिससे किसी को अधिकारपूर्वक किसी कार्य के लिए अग्रसर किया जा सके अथवा रोका जा सके। ३. नियंत्रण या वश में रखने की क्रिया या भाव। ४. दबाव, नियंत्रण या रोक।
क्रि० प्र०—मानना।—रखना।—लगाना।

अंकुश-ग्रह—पुं० [प० त०] महावत। हाथीवान।

अंकुश-दंता—पुं० [सं० अंकुश+हिं० दाँत] वह हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा झुका हुआ या टेढ़ा होता है।

अंकुश-धारी (रिन्)—पुं० [सं० अंकुश√धृ(धारण करना)+णिनि] १. वह जिसके हाथ में अंकुश हो। २. महावत। हाथीवान।

अंकुश-मुद्रा—स्त्री० [मध्य० स०] तंत्र में उँगलियों की अंकुश जैसी बनी हुई आकृति या मुद्रा।

अंकुशा—स्त्री० [सं० अंकुश+अच्—टाप्] चौबीस जैन देवियों में से एक।

अंकुशित—भू० कृ० [सं० अंकुश+इतच्] अंकुश द्वारा चलाया या बढ़ाया हुआ।

अंकुशी (शिन्)—वि० [सं० अंकुश+इनि] १. अंकुश-युक्त। अंकुशवाला। २. अंकुश की सहायता से वश में करनेवाला।
स्त्री०=अंकुशा।

अंकुस (ा)—पुं०=अंकुश।

अँकुसी—स्त्री० [सं० अंकुश] १. अंकुश के आकार की कोई छोटी चीज। २. कोई चीज टाँगने या फँसाने का छोटा अँकुड़ा या काँटा। ३. चूल्हे आदि में से कोयला या राख निकालने का छोटा टेढ़ा छड़। ४. पेड़ों से फल तोड़ने की लग्गी।

अँकूर*—पुं०=अंकुर।

अंकूष—पुं० [सं०√अंक् (चिह्न करना)+ऊषच्] १. अंकुश। २. नकुल। नेवला।

अंकेक्षक—पुं० [सं० अंक-ईक्षक, प० त०] १. वह जो लेखा लिखता हो। २. वही-खाते, लेखे-जोखे की जाँच करनेवाला व्यक्ति (आडिटर)

अंकेक्षण—पुं० [सं० अंक-ईक्षण, प० त०] १. लेखा तैयार करना। २. वही-खाते, लेखे-जोखे या हिसाब-किताब की आधिकारिक रूप से जाँच करना। (आडिट)

अंकोट (क)—पुं० [सं०√अंक् (चिह्न करना)+ओट, अंकोट+कन्] =अंकोल।

अँकोर—पुं० [सं० अंक] [स्त्री० अल्पा० अँकोरी] १. गले लगाने की क्रिया, भाव या मुद्रा। २. भेंट। नजर। ३. घूस। रिश्वत। उदा०—हाकिम होई की खाई अंकोर।—तुलसी। ४. खेत में काम करनेवाले को भेजा जानेवाला कलेवा। छाक।

अँकोरना—स० [हिं० अँकवार] झोली या गोद में लेना। उदा०—निज व्यजन पक्ष से तू अंकोर सुध खोती।—मैथिलीशरण गुप्त।

अंकोल—पुं० [सं०√अंक्+ओलच्] पहाड़ी क्षेत्रों में होनेवाला एक पेड़ जिसके पत्ते शरीफे के पेड़ के पत्तों-जैसे होते हैं और फल बेर के बराबर तथा काले होते हैं। इस पेड़ के फल तथा छाल कई रोगों के उपचार में काम आती है।

अंकोल-सार—पुं० [प० त०] अंकोल वृक्ष से निकला हुआ विष।

अंकोला—पुं०=अंकोल।

अंक्य—वि० [सं०√अंक्+ण्यत्] १. जिसका अंकन हो सकता हो। २. जिसका अंकन किया जाने को हो। ३. अंकित किये जाने के योग्य।
पुं० [सं० अंक+य] गोद में रखकर बजाये जानेवाले तबला, मृदंग आदि बाजे।

अँखड़ी†—स्त्री०=आँख।
अँखमिचनी—स्त्री०=आँख-मिचौनी।
अँखाना—अ०=अनखाना।
अँखिगर—वि० [सं० अक्षि+फा० गर] १. आँखवाला। २. दूरदर्शी।
अँखिया—स्त्री० [सं० अक्षि] १. आँख। २. नकाशी करने की कलम।
अँखुआ—पुं० [सं० अक्ष] [क्रि० अँखुआना] पौधे का नया कल्ला। अंकुर।
अँखुआना—अ० [हि० अँखुआ से] अँखुवा निकलना। अंकुरित होना।
अँखुवा—पुं०=अँखुआ।
अंग—पुं० [सं०√अम् (गति आदि)+गन्] १. शरीर के विभिन्न अवयव। जैसे—हाथ, पैर, मुँह आदि।

मुहा०—(किसी का) अंग छूना=(किसी की) शपथ खाने के लिए उसके शरीर पर हाथ रखना। **अंग लगाना**=छाती से लगाना। गले लगाना।

२. शरीर। देह।

मुहा०—**अंग उभरना**=जवानी आना। यौवन का प्रारम्भ होना। **अंग ऐंड़ा करना**=ऐंठ, वल या शेखी दिखाना। **अंग करना**=(क) ग्रहण या स्वीकार करना। (ख) अपना या आत्मीय वनाना। **(अंगों में) अंग चुराना**=लज्जा से संकुचित होना। **अंग टूटना**=थकावट, रोग आदि के कारण शरीर के विभिन्न अंगों में पीड़ा होना, जिसके फल-स्वरूप अँगड़ाई आती है। **अंग ढीले होना**=(क) थक जाना। (ख) वृद्ध हो जाना। **अंग तोड़ना**=(क) अँगड़ाई लेना। (ख) शारीरिक पीड़ा या कष्ट के कारण वार-वार अंग पटकना। छट-पटाना। **अंग देना**=थोड़ा आराम करना। **अंग में न माना (या मावना)**=अति प्रसन्न होना। उदा०—पुलकि न मावति अंग।—सूर। **अंग मुस्कराना**=(क) अति प्रसन्न दिखाई पड़ना। (ख) प्रसन्नता से रोमांचित हो जाना (ग) शारीरिक सौन्दर्य का खिलना। **अंग मोड़ना**=(क) शरीर के अंगों को लज्जावश छिपाना। (ख) भय या संकोच के कारण पीछे हटना। उदा०—खेलै फाग अंग नहिं मोड़ै सतगुरु से लपटानी।—कवीर। **(किसी के) अंग लगना**=(क) (किसी के) गले लगना। (ख) संभोग करना। **(खाद्य पदार्थों का) अंग लगना**=खाद्य पदार्थों के उपभोग से शरीर की पुष्टि या वृद्धि होना। **(रोगी के) अंग लगना**=वहुत दिनों से विस्तर पर पड़े रहने से शरीर में घाव या शय्या-व्रण होना। **अंग लगाना**=गले लगाना। **(कन्या को) अंग लगाना**=(कन्या को वर के) सुपुर्द करना, सौंपना या विवाह में देना। **फूले अंग न समाना**=वहुत ही प्रसन्न होना।

३. कार्य संपादन करने का उपाय या सावन। ४. व्यक्तित्व। उदा०—राउरें अंग जोग जग को है।—तुलसी। ५. वे अवयव, तत्त्व या सदस्य जिनके योग से किसी वस्तु, संस्था आदि का निर्माण होता है। अंश। जैसे—आप भी तो इस संस्था के अंग हैं। ६. संगीत में राग के स्वरूप या उसके प्रादेशिक प्रकार के विकार से होनेवाला विशिष्ट वर्ग या विभाग। जैसे—पूर्वी अंग का राग। ७. वड़ी तथा महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के उपविभाग, प्रखण्ड या प्रभाग। ८. व्याकरण में प्रत्यय युक्त शब्द का प्रत्यय रहित अंश या भाग। जैसे—रम्+घञ् (=राम) में रम् अंग है। ९. भागलपुर के समीपवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ की राजवानी चम्पानगरी (आधुनिक चम्पारन) थी। १०. अंग देश के निवासी। ११. नाटक में अंगी (नायक) के सहायक पात्र। १२. मध्य प्राची[illegible] में प्रेम या आपस-दारी का सूचक एक संवोधन। १३. छः की संख्या (छः वेदांग होते हैं) १४. ओर। तरफ। १५. पक्ष। पहलू।

वि० १. अंगों वाला। २. अप्रधान। गौण। ३. संलग्न। ४. उलटा

अँगऊँ†—पुं० दे० 'अँगौंगा'।
अंगक—पुं० [सं० अंग+कन्] शरीर का कोई छोटा अंग।
अंग-कद—पुं० [सं० अंग+फा० कद] चित्रकला में इस वात का [illegible] कि चित्रित आकृति के सव अंग उसके कद या ऊँचाई के अनुसार ठीक हों
अंग-कर्म (न्)—स्त्री०=अंग-क्रिया।
अंग-क्रिया—स्त्री० [ष० त०] १. यज्ञ में अपने किसी अंग का [illegible] देना। २. शरीर में उवटन आदि लगाना।
अंग-ग्रह—पुं० [ष० त०] १. आघात, रोग आदि के कारण अंगों में हो[illegible] वाली पीड़ा। २. लोहे या ताँवे का वह टुकड़ा जो दो पत्थरों को एक [illegible] जोड़ने के लिए उन पर जड़ा जाता है।
अंग-घात—पुं [व० स०] शरीर की वात नाड़ियों अथवा [illegible] के विकार के कारण होनेवाला एक रोग, जिसमें शरीर का कोई [illegible] अथवा कई अंग अक्रिय, अचेष्ट या सुन्न हो जाते हैं। (पैरालिसिस
अंगचारी (रिन्)—पुं० [सं० अंग√चर् (गति)+णिनि] सहचर सखा। उदा०—मेरे नाथ आप सुधि लीनी, कीन्ही निज अँगचारी—आनंदघन।
अंग-चालन—पुं० [ष० त०] अंगों को हिलाना-डुलाना या चलाना।
अंगच्छेद—पुं० [ष० त०] १. शरीर का कोई अंग काटने की क्रिया भाव। २. अपराधी को उक्त रूप में दिया जानेवाला दण्ड। ३. [illegible] के शरीर का कोई अंग काटकर अलग करने की क्रिया या भाव। (ऐम्प्यूटेशन)
अंगज—वि० [अंग√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जो अंग से उत्पन्न हु[illegible] हो। जैसे—पसीना, रोएँ आदि।

पुं० १. पुत्र। २. पसीना। ३. वाल। ४. काम, क्रोध आदि [illegible] विकार। ५. कामदेव। ६. रोग। ७. खून। ८. साहित्य में वर्णित [illegible] विकारों में से ये तीन—हाव, भाव और हेला।

अंगजा—स्त्री० [अंग√जन्+ड—टाप्] पुत्री। वेटी।
अंग-जाई—स्त्री०=अंगजा।
अंग-जात—वि०, पुं० [ष० त०] दे० 'अंगज'।
अंग-जाता—स्त्री० [अंगजात+टाप्] अंगजा।
अंग-जाया—पुं० [सं० अंगजात] [स्त्री० अंग-जाई] औरस पुत्र। लड़का
अंगड़-खंगड़—वि० [अनु०] १. टूटा-फूटा (सामान)। २. गिरा[illegible] अथवा इघर-उघर विखरा हुआ (सामान)। ३. वचा-खुचा [illegible] निरर्थक।

पुं० व्यर्थ की चीजें जो टूटी-फूटी या इघर-उघर विखरी पड़ी हों।

अंगड़ाई—स्त्री० [हि० अँगड़ाना] १. शरीर की एक स्वाभाविक [illegible] जो आलस्य, कमजोरी या थकावट के कारण होती है और जिसके [illegible] स्वरूप सारा शरीर कुछ पलों के लिए ऐंठ, तन या फैल जाता है। अँगड़ाने की क्रिया या भाव। २. हाव-भाव।

मुहा०—अँगड़ाई लेना=आलस्य आदि के कारण अंगों को [illegible]

तानना या फैलाना।

अँगड़ाना—अ० [सं० अंग] आलस्य, शिथिलता आदि के कारण शरीर के अंगों को तानने या फैलाने की क्रिया। अँगड़ाई लेना।

अंगण—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि।)+ल्युट्—अन—णत्व]=आँगन।

अंगणि—स्त्री० [सं० अंगना] औरत। स्त्री।

अंगति—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि)+अति] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. अग्निहोत्री। ४. अग्नि। ५. यान। सवारी।

अंग-त्राण—पुं० [ष० त०] १. अंगों की रक्षा करनेवाली चीज। जैसे—कवच, जिरह, बकतर आदि। २. अँगरखा, कुरता या ऐसा ही कोई पहनने का कपड़ा।

अंगद—पुं०[सं० अंग√दै (सोधना) या दा (दान)+क] [वि० अंगदीय] १. बाँह पर पहनने का बाजूबंद (गहना)। २. राम की सेना का एक बन्दर जो वालि का पुत्र था। ३. लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक।

अंग-दान—पुं० [प० त०] १. युद्ध में आत्म-समर्पण करना। २. (स्त्रियों का रतिकाल में) अपना शरीर पुरुष को समर्पित करना। ३. स्त्री से संभोग करना। ४. पीछे हटना। पीठ दिखलाना। भागना।

अंगदीय—वि० [सं० अंगद+छ-ईय] [स्त्री० अंगदीया] अंगद-संबंधी। अंगद का।

अंग-द्वार—पुं० [ष० त०] शरीर के छेद या द्वार जो इस प्रकार हैं—दोनों कान, दोनों आँखें, नाक के दोनों रन्ध्र, मुख, गुदा, लिंग और ब्रह्मांड।

विशेष—गीता के अनुसार शरीर में केवल नौ द्वार (ब्रह्मांड को छोड़ कर) हैं।

अंग-द्वीप—पुं० [प० त०] पुराणों के अनुसार छः द्वीपों में से एक द्वीप।

अंगधारी (रिन्)—पुं० [अंग√धृ (धारण)+णिनि] अंग अथवा शरीर धारण करनेवाला प्राणी।

अंगन—पुं० [√अंग् (गति)+ल्युट्—अन]=आँगन।

स्त्री०=अंगना।

अँगना†—पुं०=आँगन।

अंगना—स्त्री० [स०√अंग् (गति आदि)+न—टाप्] १. सुन्दर अंगों-वाली स्त्री। सुंदरी। जैसे—देवांगना, नृत्यांगना आदि। २. उत्तर दिशा के सार्वभौम दिग्गज की हथिनी का नाम। ३. रहस्य संप्रदाय में, अंतःकरण। हृदय।

स० [सं० अंग] अपने ऊपर लेना। अंगीकृत करना। उदा०—दो जग तो हम अंगिया, यह उर नाहीं मुज्झ।—कबीर।

अँगनाई—स्त्री०=आँगन।

अंगना-प्रिय—पुं० [ष० त०] अशोक का वृक्ष।

अँगनैत†—पुं० [हिं० आँगन+ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी या घर का मालिक। गृहपति।

अँगनैया—स्त्री०=आँगन।

अंग-न्यास—पुं० [प० त०] संध्या-पूजा आदि धार्मिक कृत्यों के समय मंत्रों का उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक विभिन्न अंगों को स्पर्श करना।

अंग-पाक—पुं० [प० त०] अंगों के पकने या सड़ने की क्रिया या रोग।

अंगपालिका—स्त्री० [अंग√पाल् (पालन करना)+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] धाय। दाई।

अंगपाली—स्त्री० [सं० अंग√पाल्+इ, अंगपालि+ङीष्] आलिंगन। गले लगाना।

अंगपोंछा†—पुं०=अँगोछा।

अंग-प्रत्यंग—पुं० [द्व० स०] शरीर के सभी बड़े और छोटे अंग।

अंग बीन—पुं० [फा० अंगवीं=शहद] एक प्रकार का बढ़िया आम और उसका वृक्ष।

अंग-भंग—पुं० [प० त०] १. शरीर के किसी अंग का भंग या खंडित होना। अंग का टूट जाना। २. दे० 'अंग भंगी'।

वि० [ब० स०] १. जिसका कोई अंग खंडित या टूटा हो। २. अपाहज।

अंग-भंगिमा (मन्)—स्त्री० [प० त०]=अंग-भंगी।

अंग-भंगी—स्त्री० [ष० त०] १. पुरुष या स्त्री की कोमल और मनोहर चेष्टाएँ। २. पुरुष को मोहित करने के लिए स्त्री का अपने विभिन्न अंगों (आँख, कमर, मुंह, हाथ आदि) को कौशलपूर्वक इस प्रकार हिलाना कि देखनेवाले प्रेमपूर्वक आकृष्ट हों। अदा। हाव-भाव।

अंग-भाव—पुं० [प० त०] नृत्य या संगीत में शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा मनोभाव प्रकट करने की क्रिया।

अंग-भू—वि० [अंग√भू (होना)+क्विप्] शरीर या अंग से उत्पन्न।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव।

अंग-भूत—भू० कृ० [पं० त०] १. जो शरीर या अंग से उत्पन्न हुआ हो। २. जो किसी के अंग के रूप में उसके अंतर्गत या अन्दर हो अथवा साथ लगा हो।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव।

अंग-मर्द—पुं० (प० त०) १. हड्डियों में दर्द होना। २. दे० 'अंगमर्दक'।

अंग-मर्दक—पुं० [प० त०] शरीर दबाने या उसमें मालिश करनेवाला।

अंग-मर्दन—पुं० [प० त०] १. अंगों को मलने का कार्य। मालिश करना। २. देह दबाना।

अंग-मर्ष—पुं० [ब० स०] गठिया नामक रोग।

अंग-रक्षक—पुं० [प० त०] वे सैनिक या सेवक जो बड़े शासकों आदि की रक्षा के निमित्त उनके साथ रहते हैं। (बाडीगार्ड)

अंग-रक्षा—पुं० [ष० त०] शरीर के अंगों की रक्षा या बचाव।

अंग-रक्षी (क्षिन्)—पुं० [प० त०] [स्त्री० अंग-रक्षिणी] १. अंग-रक्षक। २. कवच।

अँगरखा—पुं० [सं० अंग रक्षक] एक प्रकार का लंबा पहनावा जिसमें बाँधने के लिए बंद रहते हैं। अंगा। अचकन।

अंग-रस—पुं० [प० त०] किसी वनस्पति के फलों, फूलों, पत्तियों आदि को कूटकर तथा निचोड़कर निकाला हुआ रस।

अँगरा—पुं० [सं० अंगार] १. बैलों के पैर में होनेवाला एक रोग। २. दे० 'अंगारा'।

अँगराई—स्त्री०='अँगड़ाई'। उदा०—करुणा की नव अँगराई सी। —प्रसाद।

अँग-राग—पुं० [प० त०] १. उबटन, विशेषतः केसर, कपूर आदि सुगंधित द्रव्यों का। २. मेंहदी, महावर आदि सामग्री जिससे स्त्रियाँ अपने अंग विशेष रंगती हैं। ३. शरीर की सजावट की सामग्री। ४. स्त्रियों के पाँच अंगों की सजावट—मांग में सिंदूर, माथे पर रोली, गाल पर तिल, केसर का लेप और हाथ-पैर में महावर या मेंहदी लगाना।

अँखड़ी†—स्त्री०=आँख।
अँखमिचनी—स्त्री०=आँख-मिचौनी।
अँखाना—अ०=अनखाना।
अँखिगर—वि० [सं० अक्षि+फा० गर] १. आँखवाला। २. दूरदर्शी।
अँखिया—स्त्री० [सं० अक्षि] १. आँख। २. नकाशी करने की कलम।
अँखुआ—पुं० [सं० अक्ष] [क्रि० अँखुआना] पौधे का नया कल्ला। अंकुर।
अँखुआना—अ० [हिं० अँखुआ से] अँखुवा निकलना। अंकुरित होना।
अँखुवा—पुं०=अँखुआ।
अंग—पुं० [सं०√अम् (गति आदि)+गन्] १. शरीर के विभिन्न अवयव। जैसे—हाथ, पैर, मुंह आदि।

मुहा०—(किसी का) अंग छूना=(किसी की) शपथ खाने के लिए उसके शरीर पर हाथ रखना। *अंग लगाना*=छाती से लगाना। गले लगाना।

२. शरीर। देह।

मुहा०—*अंग उभरना*=जवानी आना। यौवन का प्रारम्भ होना। *अंग ऐंड़ा करना*=ऐंठ, वल या शेखी दिखाना। *अंग करना*=(क) ग्रहण या स्वीकार करना। (ख) अपना या आत्मीय वनाना। (अंगों में) *अंग चुराना*=लज्जा से संकुचित होना। *अंग टूटना*=थकावट, रोग आदि के कारण शरीर के विभिन्न अंगों में पीड़ा होना, जिसके फल-स्वरूप अँगड़ाई आती है। *अंग ढीले होना*=(क) थक जाना। (ख) वृद्ध हो जाना। *अंग तोड़ना*=(क) अँगड़ाई लेना। (ख) शारीरिक पीड़ा या कष्ट के कारण वार-वार अंग पटकना। छट-पटाना। *अंग देना*=थोड़ा आराम करना। *अंग में न माना (या मावना)*=अति प्रसन्न होना। उदा०—पुलकि न मावति अंग।—सूर। *अंग मुस्कराना*=(क) अति प्रसन्न दिखाई पड़ना। (ख) प्रसन्नता से रोमांचित हो जाना (ग) शारीरिक सौन्दर्य का खिलना। *अंग मोड़ना*=(क) शरीर के अंगों को लज्जावश छिपाना। (ख) भय या संकोच के कारण पीछे हटना। उदा०—खेलै फाग अंग नहिं मोड़ै सतगुरु से लपटानी।—कवीर। (किसी के) *अंग लगना*=(क) (किसी के) गले लगना। (ख) संभोग करना। (खाद्य पदार्थों का) *अंग लगना*=खाद्य पदार्थों के उपभोग से शरीर की पुष्टि या वृद्धि होना। (रोगी के) *अंग लगना*=बहुत दिनों से बिस्तर पर पड़े रहने से शरीर में घाव या शय्या-व्रण होना। *अंग लगाना*=गले लगाना। (कन्या को) *अंग लगाना*=(कन्या को वर के) सुपुर्द करना, सौंपना या विवाह में देना। *फूले अंग न समाना*=बहुत ही प्रसन्न होना।

३. कार्य संपादन करने का उपाय या साधन। ४. व्यक्तित्व। उदा०—राउरे अंग जोग जग को है।—तुलसी। ५. वे अवयव, तत्त्व या सदस्य जिनके योग से किसी वस्तु, संस्था आदि का निर्माण होता है। अंश। जैसे—आप भी तो इस संस्था के अंग हैं। ६. संगीत में राग के स्वरूप या उसके प्रादेशिक प्रकार के विकार से होनेवाला विशिष्ट वर्ग या विभाग। जैसे—पूर्वी अंग का राग। ७. वड़ी तथा महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के उपविभाग, प्रखण्ड या प्रभाग। ८. व्याकरण में प्रत्यय युक्त शब्द का प्रत्यय रहित अंग या भाग। जैसे—रम्+घञ् (=राम) में रम् अंग है। ९. भागलपुर के समीपवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ की राजधानी चम्पानगरी (आधुनिक चम्पारन) थी। १०. अंग देश के निवासी। ११. नाटक में अंगी (नायक) के सहायक पात्र। १२. मध्य प्राचीन-साहित्य में प्रेम या आपस-दारी का सूचक एक संबोधन। १३. छः की संख्या। (छः वेदांग होते हैं) १४. ओर। तरफ। १५. पक्ष। पहलू।

वि० १. अंगों वाला। २. अप्रधान। गौण। ३. संलग्न। ४. उलटा।

अँगऊँ†—पुं० दे० 'अँगौंगा'।
अंगक—पुं० [सं० अंग+कन्] शरीर का कोई छोटा अंग।
अंग-कद—पुं० [सं० अंग+फा० कद] चित्रकला में इस बात का विचार कि चित्रित आकृति के सब अंग उसके कद या ऊँचाई के अनुसार ठीक हों।
अंग-कर्म (न्)—स्त्री०=अंग-क्रिया।
अंग-क्रिया—स्त्री० [ष० त०] १. यज्ञ में अपने किसी अंग का बलिदान देना। २. शरीर में उवटन आदि लगाना।
अंग-ग्रह—पु० [ष० त०] १. आघात, रोग आदि के कारण अंगों में होने-वाली पीड़ा। २. लोहे या ताँबे का वह टुकड़ा जो दो पत्थरों को एक साथ जोड़ने के लिए उन पर जड़ा जाता है।
अंग-घात—पुं [व० स०] शरीर की वात नाड़ियों अथवा स्नायु-संस्थान के विकार के कारण होनेवाला एक रोग, जिसमें शरीर का कोई एक अथवा कई अंग अक्रिय, अचेष्ट या सुन्न हो जाते हैं। (पैरालिसिस)
अंगचारी (रिन्)—पुं० [सं० अंग√चर् (गति)+णिनि] सहचर। सखा। उदा०—मेरे नाथ आप सुधि लीनी, कीन्ही निज अँगचारी। —*आनंदघन*।
अंग-चालन—पुं० [प० त०] अंगों को हिलाना-डुलाना या चलाना।
अंगच्छेद—पुं० [ष० त०] १. शरीर का कोई अंग काटने की क्रिया या भाव। २. अपराधी को उक्त रूप में दिया जानेवाला दण्ड। ३. रोगी के शरीर का कोई अंग काटकर अलग करने की क्रिया या भाव। (ऐम्प्यूटेशन)
अंगज—वि० [अंग√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जो अंग से उत्पन्न हुआ हो। जैसे—पसीना, रोएँ आदि।

पुं० १. पुत्र। २. पसीना। ३. वाल। ४. काम, क्रोध आदि मनो-विकार। ५. कामदेव। ६. रोग। ७. खून। ८. साहित्य में वर्णित सात्त्विक विकारों में से ये तीन—हाव, भाव और हेला।

अंगजा—स्त्री० [अंग√जन्+ड—टाप्] पुत्री। वेटी।
अंग-जाई—स्त्री०=अंगजा।
अंग-जात—वि०, पुं० [ष० त०] दे० 'अंगज'।
अंग-जाता—स्त्री० [अंगजात : टाप्] अंगजा।
अंग-जाया—पुं० [सं० अंगजात] [स्त्री० अंग-जाई] औरस पुत्र। लड़का।
अंगड़-खंगड़—वि० [अनु०] १. टूटा-फूटा (सामान)। २. गिरा-पड़ा अथवा इधर-उधर विखरा हुआ (सामान)। ३. बचा-खुचा और निरर्थक।

पुं० व्यर्थ की चीजें जो टूटी-फूटी या इधर-उधर विखरी पड़ी हों।

अंगड़ाई—स्त्री० [हिं० अँगड़ाना] १. शरीर की एक स्वाभाविक क्रिया जो आलस्य, कमजोरी या थकावट के कारण होती है और जिसके फल-स्वरूप सारा शरीर कुछ पलों के लिए ऐंठ, तन या फैल जाता है। २. अँगड़ाने की क्रिया या भाव। २. हाव-भाव।

मुहा०—*अँगड़ाई लेना*=आलस्य आदि के कारण अंगों को ऐंठना,

तानना या फैलाना।

अँगड़ाना—अ० [सं० अंग] आलस्य, शिथिलता आदि के कारण शरीर के अंगों को तानने या फैलाने की क्रिया। अँगड़ाई लेना।

अंगण—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि।)+ल्युट्—अन—णत्व]=आँगन।

अंगणि—स्त्री० [सं० अंगना] औरत। स्त्री।

अंगति—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि)+अति] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. अग्निहोत्री। ४. अग्नि। ५. यान। सवारी।

अंग-त्राण—पुं० [ष० त०] १. अंगों की रक्षा करनेवाली चीज। जैसे—कवच, जिरह, बकतर आदि। २. अँगरखा, कुरता या ऐसा ही कोई पहनने का कपड़ा।

अंगद—पुं०[सं० अंग√दै (सोधना) या दा (दान)+क] [वि० अंगदीय] १. बाँह पर पहनने का बाजूबंद (गहना)। २. राम की सेना का एक बन्दर जो वालि का पुत्र था। ३. लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक।

अंग-दान—पुं० [ष० त०] १. युद्ध में आत्म-समर्पण करना। २. (स्त्रियों का रतिकाल में) अपना शरीर पुरुष को समर्पित करना। ३. स्त्री से संभोग करना। ४. पीछे हटना। पीठ दिखलाना। भागना।

अंगदीय—वि० [सं० अंगद+छ-ईय] [स्त्री० अंगदीया] अंगद-संबंधी। अंगद का।

अंग-द्वार—पुं० [ष० त०] शरीर के छेद या द्वार जो इस प्रकार हैं—दोनों कान, दोनों आँखें, नाक के दोनों रन्ध्र, मुख, गुदा, लिंग और ब्रह्मांड।

विशेष—गीता के अनुसार शरीर में केवल नौ द्वार (ब्रह्मांड को छोड़कर) हैं।

अंग-द्वीप—पुं० [ष० त०] पुराणों के अनुसार छः द्वीपों में से एक द्वीप।

अंगधारी (रिन्)—पुं० [अंग√धृ (धारण)+णिनि] अंग अथवा शरीर धारण करनेवाला प्राणी।

अंगन—पुं० [√अंग् (गति)+ल्युट्—अन]=आँगन।

स्त्री०=अंगना।

अंगना†—पुं०=आँगन।

अंगना—स्त्री० [सं०√अंग् (गति आदि)+न—टाप्] १. सुन्दर अंगों-वाली स्त्री। सुंदरी। जैसे—देवांगना, नृत्यांगना आदि। २. उत्तर दिशा के सार्वभौम दिग्गज की हथिनी का नाम। ३. रहस्य संप्रदाय में, अंतःकरण। हृदय।

स० [सं० अंग] अपने ऊपर लेना। अंगीकृत करना। उदा०—दो जग तो हम अंगिया, यह डर नाहीं मुज्झ।—कबीर।

अँगनाई—स्त्री०=आँगन।

अंगना-प्रिय—पुं० [ष० त०] अशोक का वृक्ष।

अँगनैत†—पुं० [हिं० आँगन+ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी या घर का मालिक। गृहपति।

अँगनैया—स्त्री०=आँगन।

अंग-न्यास—पुं० [ष० त०] संध्या-पूजा आदि धार्मिक कृत्यों के समय मंत्रों का उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक विभिन्न अंगों को स्पर्श करना।

अंग-पाक—पुं० [ष० त०] अंगों के पकने या सड़ने की क्रिया या रोग।

अंगपालिका—स्त्री० [अंग√पाल् (पालन करना)+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] गोद। दाई।

अंगपाली—स्त्री० [सं० अंग√पाल्+इ, अंगपालि+ङीप्] आलिंगन।

गले लगाना।

अंगपोंछा†—पुं०=अँगोछा।

अंग-प्रत्यंग—पुं० [द्व० स०] शरीर के सभी बड़े और छोटे अंग।

अंग बीन—पुं० [फा० अंगबीं=शहद] एक प्रकार का बढ़िया आम और उसका वृक्ष।

अंग-भंग—पुं० [ष० त०] १. शरीर के किसी अंग का भंग या खंडित होना। अंग का टूट जाना। २. दे० 'अंग भंगी'।

वि० [ब० स०] १. जिसका कोई अंग खंडित या टूटा हो। २. अपाहज।

अंग-भंगिमा (मन्)—स्त्री० [ष० त०]=अंग-भंगी।

अंग-भंगी—स्त्री० [ष० त०] १. पुरुष या स्त्री की कोमल और मनोहर चेष्टाएँ। २. पुरुष को मोहित करने के लिए स्त्री का अपने विभिन्न अंगों (आँख, कमर, मुंह, हाथ आदि) को कौशलपूर्वक इस प्रकार हिलाना कि देखनेवाले प्रेमपूर्वक आकृष्ट हों। अदा। हाव-भाव।

अंग-भाव—पुं० [ष० त०] नृत्य या संगीत में शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा मनोभाव प्रकट करने की क्रिया।

अंग-भू—वि० [अंग√भू (होना)+क्विप्] शरीर या अंग से उत्पन्न।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव।

अंग-भूत—भू० कृ० [पं० त०] १. जो शरीर या अंग से उत्पन्न हुआ हो। २. जो किसी के अंग के रूप में उसके अंतर्गत या अन्दर हो अथवा साथ लगा हो।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव।

अंग-मर्द—पुं० (ष० त०) १. हड्डियों में दर्द होना। २. दे० 'अंगमर्दक'।

अंग-मर्दक—पुं० [ष० त०] शरीर दबाने या उसमें मालिश करनेवाला।

अंग-मर्दन—पुं० [ष० त०] १. अंगों को मलने का कार्य। मालिश करना। २. देह दबाना।

अंग-मर्ष—पुं० [ब० स०] गठिया नामक रोग।

अंग-रक्षक—पुं० [ष० त०] वे सैनिक या सेवक जो बड़े शासकों आदि की रक्षा के निमित्त उनके साथ रहते हैं। (बॉडीगार्ड)

अंग-रक्षा—पुं० [ष० त०] शरीर के अंगों की रक्षा या बचाव।

अंग-रक्षी (क्षिन्)—पुं० [ष० त०] [स्त्री० अंग-रक्षिणी] १. अंग-रक्षक। २. कवच।

अँगरखा—पुं० [सं० अंग रक्षक] एक प्रकार का लंबा पहनावा जिसमें बाँधने के लिए बंद रहते हैं। अंगा। अचकन।

अंग-रस—पुं० [ष० त०] किसी वनस्पति के फलों, फूलों, पत्तियों आदि को कूटकर तथा निचोड़कर निकाला हुआ रस।

अँगरा—पुं० [सं० अंगार] १. बैलों के पैर में होनेवाला एक रोग। २. दे० 'अंगारा'।

अँगराई—स्त्री०='अँगड़ाई'। उदा०—कल्पना की नव अँगराई सी। —प्रसाद।

अंग-राग—पुं० [ष० त०] १. उबटन, विशेषतः केसर, कपूर आदि सुगंधित द्रव्यों का। २. मेंहदी, महावर आदि सामग्री जिनसे स्त्रियाँ अपने अंग विशेष रंगती हैं। ३. शरीर की सजावट की सामग्री। ४. स्त्रियों के पाँच अंगों की सजावट—माँग में सिंदूर, माथे पर रोली, गाल पर तिल, केसर का लेप और हाथ-पैर में महावर या मेंहदी लगाना।

५. सुगंधित बुकनी, जो मुँह तथा शरीर पर लगायी जाती है। (पाउडर)।

अंग-राज—पुं० [ष० त०, टच्] १. अंगदेश का राजा कर्ण। २. राजा दशरथ के सखा लोमपाद।

अँगराना—अ०=अँगड़ाना।

अँगरी—स्त्री० [सं० अंग+रक्ष या अंगुलीयक] १. कवच, जिरह, झिलम आदि। २. गोह के चमड़े का दस्ताना जो धनुष चलाते समय हाथ में पहना जाता था। उदा०—अँगरी पहिरि कूंड सिर धरहीं।—तुलसी।

अँगरेज—पुं० [पुर्त० इंग्लेज] इंगलैंड देश का निवासी।

अँगरेजियत—स्त्री० [दे० अँगरेज] अँगरेजी रंग-ढंग या चाल-ढाल। अँगरेजीपन।

अँगरेजी—वि० [दे० अँगरेज] १. अंगरेजों का या उनसे संबंध रखनेवाला। २. अंगरेजों जैसा।

स्त्री० १. अंगरेजों की भाषा। २. पुरानी चाल की एक प्रकार की तलवार।

अंगलेट—पुं० [सं० अंग] शरीर की गठन, ढाँचा या बनावट। (फिजीक)

अंग-लेप—पुं० [ष० त०] शरीर पर लगाने के सुगंधित द्रव्य या लेप।

अँगवना—सं० [सं० अंग] १. अंगीकार करना। ग्रहण करना। २. आलिंगन करना। गले लगाना। ३. सहना। बरदाश्त करना। ४. किसी प्रकार अपने ऊपर लेना।

अँगवनिहारा†—वि० [हिं० अँगवना+हारा (प्रत्य०)] १. अंगीकार या ग्रहण करनेवाला। २. अपने ऊपर लेने या सहनेवाला। (क्व०)

अँगवाना†—स० हि० 'अँगवना' का प्रे०।

अँगवारा†—पुं० [सं० अंग=अंश] १. ग्राम के किसी छोटे भाग का स्वामी। २. खेत की जोताई में एक दूसरे को दी जानेवाली सहायता।

अंग-विकृति—स्त्री० [ष० त०] १. शरीर या अंगों के रूप में विकार होना। २. मिरगी का रोग। अपस्मार।

अंग-विक्षेप—पुं० [ष० त०] १. हाव-भाव दिखलाना। चमकना-मटकना। २. नाच। नृत्य। ३. कलाबाजी।

अंग-विद्या—स्त्री०=सामुद्रिक।

अंग-विभ्रम—पुं० [ष० त०] एक रोग जिसमें रोगी अपने किसी या कई अंगों की सुधि भूल जाता है।

अंग-शुद्धि—स्त्री० [ष० त०] १. शरीर के अंगों की शुद्धि या सफाई। २. मंत्रों आदि के द्वारा की जानेवाली शरीर की शुद्धि।

अंग-शोष—पुं० [ष० त०] अंगों के सूखने का रोग। सुखंडी।

अंग-संग—पुं० [ष० त०] मैथुन। संभोग।

अंग-संगी (गिन्)—वि० [ष० त०] मैथुन या संभोग करनेवाला।

अंग-संचालन—पुं० [ष० त०] अंगों को संचालित करने या हिलाने-डुलाने की क्रिया।

अंग-संधि—स्त्री० [ष० त०]=संध्यंग।

अंग-संस्कार—पुं० [ष० त०] अंगों का शृंगार। शरीर की सजावट।

अंग-संस्थान—पुं० [ष० त०] दे० 'रूप-विधान'। (मारफालोजी)।

अंग-संहति—स्त्री० [ष० त०] अंगों की गठन या बनावट। अंगलेट।

अंग-सख्य—पुं० [ष० त०] गहरी या गाढ़ी मित्रता।

अंग-सिहरी†—स्त्री० [सं० अंग+दे० 'सिहरना'] १. अंगों का सिहरना। कँपकपी। २. जूड़ी बुखार।

अंग-सेवक—पुं० [ष० त०] १. शारीरिक सेवाएँ करनेवाला नौकर। २. निजी सेवक।

अंग-हानि—स्त्री० [ष० त०] १. अंग का कटकर अलग या नष्ट हो जाना। २. अंग की विकृति। ३. किसी प्रधान कार्य के किसी अंग विशेष को उचित ढंग से या बिलकुल न करना या न होना।

अंग-हार—पुं० [ष० त०] १. चमकना। मटकना। २. नाच। नृत्य।

अंग-हीन—वि० [तृ० त०] १. जिसके शरीर का कोई अंग खंडित हो। लुंज। २. जिसके शरीर का कोई अंग निष्क्रिय हो। लूला।

पुं० कामदेव।

अंगांगीभाव—पुं० [सं० अंगांगिभाव, अंग-अंगी, द्व० स०, अंगांगि-भाव, ष० त०] १. वह भाव या संबंध जो शरीर (अंगी) और अंग (शरीर के किसी अंग विशेष) से होता है। २. किसी प्रधान या बड़ी वस्तु आदि का उसके गौण या लघु भाग से होनेवाला संबंध। ३. संकर अलंकार का एक भेद, जहाँ एक ही छंद में कुछ अलंकार प्रधान रूप में और कुछ उसके आश्रित रूप में आते हैं।

अंगा—पुं० [सं० अंगक]='अँगरखा'।

अंगाकड़ी—स्त्री० [सं० अंगार+कड़ी (प्रत्य०)] अंगारों पर सेंककर बनाई हुई मोटी रोटी। बाटी।

अंगाधिप—पुं० [सं० अंग—अधिप, ष० त०] १. अंग देश का राजा, कर्ण। २. किसी लग्न का स्वामी ग्रह। (ज्योतिष)

अंगाधीश—पुं० [सं० अंग-अधीश, ष० त०]=अंगाधिप।

अँगाना*—स० [सं० अंग] अपने अंग में या अपने ऊपर लेना। उदा०—मनहुँ एक कौ रंग एक निज अंग अँगाए।—रत्ना०।

अंगार—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि)+आरन्] १. जलता हुआ कोयला या लकड़ी का टुकड़ा।

मुहा०—अंगार उगलना=उद्दण्डतापूर्वक बहुत कड़ी बात कहना। जली-कटी सुनाना।

२. चिनगारी। ३. मंगल ग्रह। ४. हितावली नामक पौधा। ५. लाल रंग।

वि० जलते हुए कोयले की तरह लाल।

अंगारक—पुं० [सं० अंगार+कन्] १. जलता या दहकता हुआ कोयला आदि। २. मंगल ग्रह। ३. भँगरैया नामक वनस्पति। ४. कटसरैया नामक पेड़। ५. एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अधातवीय तत्त्व, जिसका परमाण्वीय भार १२ और परमाण्वीय संख्या ६ है। (कार्बन)

अंगारकाम्ल—पुं० [सं० अंगारक+अम्ल, कर्म, स०] एक अम्ल जो आक्सीजन और कार्बन के मेल से बनता है।

अंगारकारी (रिन्)—पुं० [सं० अंगार√कृ (करना)+णिनि] बेचने के लिए कोयला बनानेवाला।

अंगारकित—भू० कृ० [सं० अंगारक+इतच्] १. आग से जलाया हुआ। २. अंगारों पर भूना हुआ।

अंगार-धानिका—स्त्री० [ष० त०] अँगीठी।

अंगार-धानी—स्त्री० [ष० त०] अँगीठी।

अंगार-पर्ण—पुं० [ब० स०,—अंगारपर्ण (=वन तथा उसका स्वामी)+अच्] चित्ररथ नामक गंधर्व का एक नाम।

अंगार-पाचित—पुं० [स० त०] अंगारों पर पकाया हुआ भोजन। जैसे—बिस्कुट, कबाब, नानखताई आदि।

भू० कृ० अंगारों पर पकाया हुआ।

अंगार-पुष्प—पुं० [ब० स०] हिंगोट का पेड़, जिसके फूल अंगारे की तरह लाल होते हैं।

अंगार-बल्ली—स्त्री०=अंगारवल्ली।

अंगार-मंजरी—स्त्री० [ब० स०] करौंदा।

अंगार-मणि—पुं० [मध्य० स०] मूँगा।

अंगार-मती—स्त्री० [सं० अंगार+मतुप्-ङीप्] १. कर्ण की स्त्री का नाम। २. हाथ की उँगलियों में होनेवाला 'गलका' नाम का रोग।

अंगार-वल्ली—स्त्री० [मध्य० स०] १. घुंघची की लता। २. करंज की लता।

अँगारा—पुं० [सं० अंगार, मरा० अंगार, गु० अंगारो, अंगिरा] जलता तथा दहकता हुआ कोयला या लकड़ी का टुकड़ा।

मुहा०—अँगारा बनना=आवेश तथा क्रोध के कारण लाल होना। अंगारा होना=अंगारा बनना। अंगारे उगलना=अप्रिय, जलीकटी या चुभती हुई बातें कहना। अंगारे फाँकना=ऐसा काम करना जिसका बुरा फल हो। अंगारे बरसना=(क) अत्यधिक गरमी पड़ना। (ख) धूप का बहुत तेज होना। (ग) तेज लू चलना। अंगारे सिरपर धरना=बहुत कष्ट सहना। अंगारों पर पैर रखना=जान-बूझकर अपने को विपत्ति में डालना। अंगारों पर लोटना=(क) अत्यधिक क्रोध से अभिभूत होना। (ख) अत्यधिक ईर्ष्या या आत्म-ग्लानि से जलना। पद—लाल अंगारा=बहुत अधिक लाल।

वि०गरम तथा तपा हुआ।

अंगारिका—स्त्री० [सं० अंगार+ठन्—इक्—टाप्] १. अंगीठी। २. ऊख या उसका टुकड़ा। ३. किंशुक की कली।

अंगारिणी—स्त्री० [सं० अंगार+इनि—ङीप्] १. अँगीठी। २. डूबते हुए सूर्य की लालिमा से रंजित दिशा।

अंगारित—भू० कृ० [सं० अंगार+क्विप्+क्त] जला हुआ। दग्ध।

पुं० पलाश की कली।

अंगारी—स्त्री० [सं० अंगार+ठन्—इक, पृषो०—ककलोप—ङीप्] १. छोटा अंगारा। २. चिनगारी। ३. अंगारों पर पकाई हुई छोटी रोटी। बाटी। ४. अँगीठी।

स्त्री० [सं० अंगारिका] १. गन्ने के कटे हुए छोटे टुकड़े। गँडेरी। २. गन्ने के सिरे पर की पत्तियाँ। गोंडी।

अंगारीय—वि० [सं० अंगार+छ—ईय] १. अंगार-संबंधी। २. कोयला बनाने के काम में आने योग्य (वृक्ष आदि)।

अंगिका—स्त्री० [सं०√अंग् (गति आदि)+इनि+कन्—टाप्] स्त्रियों की अँगिया। चोली।

अँगिया—स्त्री० [सं० अंगिका] १. कुरती के आकार का परन्तु उससे छोटा पहनावा, जिससे स्त्रियाँ अपने स्तन ढकती हैं। (बाडी) २. आटा छानने की चलनी।

अंगिरस—पुं० [सं० छान्दस प्रयोग] १. परशुराम के अवतार के समय का विष्णु का एक शत्रु। २. दे० 'अंगिरा'।

अंगिरा (रस्)—पुं० [सं०√अंग्+असि, इरुट्] १. एक ऋषि जिनकी गणना दस प्रजापतियों में होती है और जो अथर्ववेद के मंत्र-द्रष्टा माने जाते हैं। २. बृहस्पति। ३. साठ संवत्सरों में से छठा। ४. गुग्गुल नामक वृक्ष का गोंद।

अँगिराना†—अ० दे० 'अँगड़ाना'।

अंगी (गिन्)—पुं० [सं० अंग+इनि] १. अंग या शरीरवाला। देह-धारी। २. वह जिसके साथ और अंग भी लगे हुए हों। ३. समष्टि। ४. चौदह विद्याएँ। ५. नाटक का प्रधान नायक। ६. नाटक का प्रधान रस।

वि० जिसने शरीर धारण किया हो।

अंगीकरण—पुं० [सं० अंग+च्वि√कृ (करना)+ल्युट्—अन] [वि० अंगीकार्य, भू० कृ० अंगीकृत] अंगीकार करने की क्रिया या भाव।

अंगीकार—पुं० [सं० अंग+च्वि√कृ+घञ्] [वि० अंगीकार्य, भू० कृ० अंगीकृत] १. अपने अंग पर या अपने ऊपर लेने की क्रिया या भाव। ग्रहण करना। २. स्वीकार करना।

अंगीकार्य—वि० [सं० अंग+च्वि√कृ+ण्यत्] १. जो अंगीकार किये जाने के योग्य हो। २. जो अंगीकार किया जाने को हो।

अंगीकृत—भू० कृ० [सं० अंग+च्वि√कृ+क्त] १. जिसका अंगीकरण हुआ हो। ग्रहण किया हुआ। २. स्वीकृत किया हुआ। ३. अपने ऊपर लिया हुआ।

अंगीकृति—स्त्री० [सं० अंग+च्वि√कृ+क्तिन्]=अंगीकरण।

अँगीठ—पुं०=अँगीठा।

अँगीठा—पुं० [सं० अग्निष्ठ] बड़ी अँगीठी।

अँगीठी—स्त्री० [सं० अग्निष्ठिका] मिट्टी, लोहे आदि का वह प्रसिद्ध पात्र जिसमें आग सुलगाते हैं।

अंगीय—वि० [सं० अंग+छ—ईय] अंग-संबंधी। अंग का।

अँगुठी†—स्त्री० [सं० अंगुष्ठ]=अँगूठी।

अँगुर†—पुं०=अंगुल।

अँगुरि†—स्त्री०=अंगुलि।

अँगुरिया†—स्त्री०=उँगली।

अँगुरी†—स्त्री०=उँगली।

अंगुरीय—पुं० [सं० अंगुरि+छ—ईय] अँगूठी।

अंगुरीयक—पुं० [सं० अंगुरीय+कन्] अँगूठी।

अंगुल—पुं० [सं०√अंग् (गति आदि)+उल] १. उँगली। २. एक माप जो उँगली की चौड़ाई के बराबर होती है। ३. नक्षत्र का बारहवाँ भाग। (ज्यो०) ४. वात्स्यायन मुनि।

अंगुलि—स्त्री० [सं०√अंग्+उलि] १. उँगली। २. अंगुल की चौड़ाई के बराबर नाप। ३. हाथी के सूँड़ का अगला भाग जिससे वह उँगलियों का काम लेता है। ४. गजकर्णिका नामक वृक्ष।

अंगुलि-त्र—पुं० [सं०√त्रै (बचाना)+क, ष० त०] १. मिजराब आदि से बजाए जानेवाले सितार आदि बाजे। अंगुलि-त्राण।

अंगुलि-त्राण—पुं० [ष० त०] १. गोह के चमड़े का दस्ताना जो बाण चलाते समय पहना जाता था। २. दस्ताना।

अंगुलि-निर्देश—पुं० [तृ० त०] किसी की ओर उँगली से इशारा करने की क्रिया जो उसकी निंदा या बदनामी का सूचक होता है।

अंगुलि-पंचक—पुं० [ष० त०] हाथ की पाँचों उँगलियाँ।

अंगुलि-पर्व (न्)—पुं० [ष० त०] उँगलियों के पोर।

अंगुलि-प्रतिमुद्रा—स्त्री० [ष० त०] किसी व्यक्ति विशेषतः अपराधी आदि की पहचान के लिए ली जानेवाली उँगली के अगले भाग की छाप। (फिंगर-प्रिंट)

अंगुलि-मुद्रा—स्त्री० [ष० त०] १. ऐसी अंगूठी जिसपर नाम खुदा हो। २. नाम खोदी हुई अँगूठी जो मोहर लगाने के काम आती हो। ३. दे० 'अंगुलि-प्रतिमुद्रा'।

अंगुलि-वेष्टन—पुं० [ष० त०] दस्ताना।

अंगुलि-संदेश—पुं० (तृ० त०) उँगली की मुद्रा अथवा चुटकी बजाकर कोई बात कहना या संकेत करना।

अंगुलिका—स्त्री० [सं० अंगुलि+कन्—टाप्] १. उँगली। २. एक प्रकार की च्यूँटी।

अँगुली—स्त्री०=उँगली।

अंगुल्यादेश—पुं० [सं० अंगुलि-आदेश, तृ० त०] अंगुलि-निर्देश।

अंगुल्यानिर्देश—पुं० [सं० असमस्तपद] अंगुलि-निर्देश।

अंगुश्ताना—पुं० [फा०] १. सिलाई करते समय उँगली के बचाव के लिए उँगली पर पहनने की लोहे या पीतल की एक टोपी। २. तीर चलाते समय हाथ के अँगूठे की रक्षा के लिए पहनी जानेवाली सींग या हड्डी की बनी एक विशेष प्रकार की अँगूठी।

अंगुष्ठ—पु० [सं० अंगु√स्था (ठहरना)+क] (हाथ या पैर का) अँगूठा।

अँगुसा†—पु० [सं० अंकुश=टेढ़ी नोंक] अँखुआ। अंकुर।

अँगुसाना†—अ० [हि० अँगुसा] अंकुरित होना। अँखुआ निकलना। स० अंकुरित करना।

अँगुसी—स्त्री० [सं० अंकुश] १. हल का फाल। २. दे० 'अंकुसी'।

अँगूठना—स० दे० 'अगूठना' घेरना।

अँगूठा—पु० [स० अंगु+स्थ, अंगुष्ठ; प्रा० अंगुट्ठ; जन्द० अगुस्त; फा० अंगुस्त; सिंह० अंगुष्ट; सि० अँगूठी; पं० अगूठ; गु० अँगूठो; मरा० अंगठा] १. मनुष्य के हाथ की पाँच उँगलियों में से वह छोटी तथा मोटी उँगली जिसके दो पोर होते है (बाकी चारों उँगलियों के तीन तीन पोर होते है)।

मुहा०—**अँगूठा चूमना**=(क) चापलूसी करना। (ख) अत्यधिक विनम्रता दिखाना। (ग) पूर्णतः अधीन होना। **अंगूठा चूसना**=बड़े होकर भी बच्चों की सी नादानी करना। **अँगूठा दिखाना**=अभिमान-पूर्वक अस्वीकृति सूचित करना। (ख) किसी कार्य को करने से हट जाना। **(किसीको) अँगूठे पर मारना**=(किसी की) परवाह न करना।

पद—**अँगूठे का निशान या अँगूठे की छाप**=बाएँ हाथ के अँगूठे का वह निशान या छाप जो किसी व्यक्ति की ठीक पहचान के लिए लेख्यों आदि पर ली जाती है। (थम्ब इम्प्रेशन)

२. मनुष्य के पैर की सबसे मोटी उँगली।

अँगूठी—स्त्री० [दे० 'अँगूठा'+ई] १. उँगलियों में पहना जानेवाला धातु का एक गोलाकार गहना। मुँदरी। मुद्रा।

पद—**अंगूठी का नगीना**=बहुत महत्त्वपूर्ण पदार्थ या व्यक्ति।

२. पाई को राछ में जोड़ते समय उँगली में लपेटे हुए तागों का लच्छा।

स्त्री० [हिं० अँगूठना=घेरना] १. घेरने की क्रिया या भाव। २. घेरा। उदा०—जेहि कारन गढ़ कीन्ह अँगूठी।—जायसी।

अंगूर—पुं० [फा०] [वि० अंगूरी] १. कश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान आदि देशों में होनेवाली एक प्रसिद्ध लता जिसके मीठे छोटे फल खाये जाते है। किशमिश, दाख, मुनक्का इसी के भेद और रूप है। २. उक्त लता के फल।

मुहा०—**अंगूर खट्टे होना**=किसी अच्छी चीज का अपनी पहुँच के बाहर होना।

पद—**अंगूर की टट्टी**=पतली लकड़ियों की बनी हुई वह टट्टी या परदा जिसपर अंगूर की बेलें चढ़कर फैलती है।

पुं० [सं० अंकुर] घाव के भरने के समय उसमें दिखाई पड़नेवाले मांस के छोटे लाल दाने।

मुहा०—**अंगूर तड़कना या फटना**=भरते हुए घाव पर बंधी हुई मांस की झिल्ली का तड़क या फट जाना। **अँगूर बँधना**=घाव के ऊपर मांस की नई झिल्ली जमना।

अंगूरशेफा—पु० [फा०] एक प्रकार की जड़ी जो हिमालय पर होती है।

अँगूरिया—स्त्री०=अंगूरी।

अंगूरिया बेल—स्त्री०=अंगूरी बेल।

अंगूरी—वि० [फा० अंगूर+ई] १. अंगूर से बना हुआ। जैसे—अंगूरी शरबत। २. अंगूर के रंग का। जैसे—अंगूरी कपड़ा। ३. अंगूर की लता की तरह का। जैसे—कपड़ों पर बनी हुई अंगूरी बेल।

पद—**अंगूरी बेल**—कपड़ों आदि पर तागे से काढ़ी जाने या रंग से छापी जानेवाली बेल जो देखने मे अंगूर की बेल जैसी होती है।

अंगूरी शराब—स्त्री० [फा०] अंगूर के रस से बनाई हुई शराब।

अँगेजना†—स० [सं० अंग+?] १. अपने ऊपर लेना। २. ग्रहण या स्वीकार करना। ३. सहन करना। झेलना। उदा०—मै तो बाबा की दुलारी दरद कैसे अँगेजब हो।—ग्रामगीत।

अँगेट—स्त्री० [सं० अंग+?] अंग की या शरीर की शोभा या दीप्ति। उदा०—एड़ी तें सिखा लौ है अनूठिए अंगेट आछी रोम रोम नेह की निकाई में रही है सनी।—घनानंद।

अँगेठा—पुं० [स्त्री० अंगेठी]=अँगीठा।

अँगेरना—स०=अँगेजना।

अँगोछना—अ० [हिं० अंगोछा से] कपड़े या अँगोछे से शरीर पोंछना।

अँगोछा—पुं० [सं० अंगवस्त्र; गु० अंगुछो; हि० अंगोछा; सि० अगोचा; मरा०, अंगुचें; का० अंगोस] [स्त्री० अल्पा० 'अँगोछी'] शरीर पोंछने का एक प्रकार का छोटा कपड़ा। गमछा।

अँगोजना—स०=अँगेजना।

अँगोट†—स्त्री०=अंगेट।

अँगोरा†—पु० [सं० अंग+?] मच्छर।

अँगोरी—स्त्री०=अँगारी।

अँगौंगा—पुं० [सं० अग्र=अगला+अंग=भाग] अन्न आदि की राशि में किसी देवी या देवता के नाम पर दान-पुण्य के लिए निकाला हुआ अंश या उसके बदले में कुछ धन।

अंगौटी†—स्त्री०=अँगेट।

अँगौड़ा†—पुं०=अंगौंगा।

अँगौरिया†—पुं० [सं० अंग=भाग] वह हलवाहा जो मजदूरी के बदले में किसान से हल-बैल लेकर अपना खेत जोतता है।
अंग्य—वि० [सं० अंग+यत्] अंग-संबंधी। अंगों का।
अंग्रेज—पुं०=अंगरेज।
अँग्रेजी†—स्त्री०=अंगरेजी।
अँघड़ा—पुं० [सं० अंघ्रि] पैर के अँगूठे में पहनने का काँसे का छल्ला।
अंघराई—स्त्री० [देश०] पशुओं पर लगनेवाला एक प्रकार का कर।
अंघस्—पुं० [सं०√अंघ् (गति आदि)+असुन्] १. पाप। २. अपराध।
अंघिया—स्त्री०=अँगिया (चलनी)।
अंघ्रि—पुं० [सं०√अंघ्+क्रिन्] १. पाँव। पैर। २. पेड़ की जड़। मूल। ३. छंद का चरण।
अंचल—पुं० [सं०√अञ्च् (गति)+अलच्] १. सीमा के आस-पास का प्रदेश। २. किसी क्षेत्र का कोई पार्श्व। ३. किसी चीज के सिरे पर पड़नेवाला भाग। सिरा। ४. दे० 'आँचल'।
अँचला—पुं० [सं० अंचल] १. कमर में धोती के स्थान पर लपेटा जानेवाला कपड़े का टुकड़ा। (साधु) २. दे० 'आँचल'।
अंचलिक—वि० [सं० अंचल+ठन्—इक] अंचल-संबंधी। जैसे—अंचलिक उपन्यास।
अँचवना—अ० [सं० आचमन] १. आचमन करना। २. भोजन के बाद मुँह-हाथ धोना।
अँचवाना—स० अँचवना का प्रे० रूप।
अँचाना—स०=अँचवाना।
अ०=अँचवना।
अंचित—भू० कृ० [सं०√अञ्च्+क्त] १. जिसकी पूजा या आराधना की गई हो। २. गया हुआ। ३. सिकोड़ा हुआ। ४. गूंथा हुआ। ५. सिला हुआ। ६. व्यवस्थित। ७. कुटिल। टेढ़ा। वंक। ८. घुँघराले (बाल)। ९. सुंदर।
अंछ*—स्त्री० (सं० अक्षि)=आँख।
अंछर—पुं० [सं० अक्षर] १. अक्षर। २. टोना-टोटका या उसका मंत्र।
मुहा०—अंछर पढ़कर मारना=जादू टोना करना।
पुं० [?] एक रोग जिससे मुँह में काँटे निकल आते हैं।
अंछ्या—पुं० [सं० वाञ्छा] १. लोभ। लालच। २. कामना। लालसा। वासना।
अंज—पुं० [सं० अंबुज या अब्ज ?] कमल।
अंजन—पुं० [सं०√अञ्ज् (आँजना)+ल्युट्—अन] १. आँखों में लगाने का काजल या सुरमा। २. काजल या सुरमा लगाने की क्रिया या भाव। ३. हलके नीले रंग का एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जिससे सुरमा बनता है। (एण्टिमनी) ४. स्याही। ५. रात। ६. पश्चिम दिशा के दिग्गज का नाम। ७. व्यंजना वृत्ति। ८. बगले की एक जाति। ९. नीलगिरि पर्वत का एक नाम। १०. दीपक। दीआ। ११. वह कार्य या बात जो कोई दूसरी बात बतलाने या समझाने में सहायक हो। १२. दे० 'सिद्धांजन'।
वि० काला या सुरमई रंग का।
पुं० [अं० इंजन] इंजन।
अंजन-केश—पुं० [ष० त०] दीया। चिराग।
पुं० [ब० स०] अंजन के समान काले बालवाला व्यक्ति।
अंजन-केशी—स्त्री० [सं० अंजनकेश+ङीष्] १. नख नामक सुगंधित द्रव्य। २. अंजन के समान काले बालोंवाली स्त्री।
अंजन-गिरि—पुं० [मध्य० स०] नीलगिरि पर्वत का एक नाम।
अंजन-शलाका—स्त्री० [ष० त०] अंजन या सुरमा लगाने की सलाई। सुरमचू।
अंजन-सार—वि० [सं० अञ्जनसारण] (आँखें) जिनमें अंजन या सुरमा लगा हो। उदा०—एक तो नैना मद भरे, दूजे अंजनसार।
अंजनहारी—स्त्री० [सं० अञ्जनहार] १. बिलनी नाम का आँख का रोग। २. एक प्रकार का कीड़ा जिसे बिलनी या भृंगी भी कहते हैं।
अंजना—स्त्री० [सं० अंजन—टाप्] १. हनुमान की माता का नाम। २. आँख की पलक पर होनेवाली फुंसी। बिलनी। ३. स्त्री जिसने अंजन या सुरमा लगाया हो। ४. छिपकली। ५. व्यंजना वृत्ति।
पुं० पहाड़ी प्रदेश में उपजनेवाला एक प्रकार का मोटा धान।
स०=अंजन लगाना। आँजना। उदा०—यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। —तुलसी।
अंजना-नंदन—पुं० [ष० त०] अंजना के पुत्र, हनुमान।
अंजनाद्रि—पुं० [अंजन-आदि, मध्य० स०] पुराणानुसार पश्चिम दिशा का एक पर्वत।
अंजनावती—स्त्री० [सं० अंजन+मतुप्, वत्व, दीर्घ—ङीप्] १. उत्तर-पूर्व दिशा के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री का नाम। २. कालांजन नामका वृक्ष।
अंजनिका—स्त्री० [सं० अंजन+ठन्—इक—टाप्] १. एक प्रकार की छिपकली। २. चुहिया। ३. दे० 'अंजनावती'।
अंजनी—स्त्री० [सं०√अंज् (आँजना, गति आदि)+ल्युट्—अन—ङीप्] १. हनुमान की माता अंजना।
विशेष—इस शब्द के साथ पुत्र वाचक शब्द लगने पर उसका अर्थ हनुमान हो जाता है। जैसे—अंजनी-नंदन।
२. माया। ३. आँख पर की फुंसी। बिलनी। ४. कुटकी नामक ओषधि। ५. कालांजन का वृक्ष। ६. स्त्री, जिसने आँखों में अंजन लगाया हो या शरीर में चन्दन आदि का लेप किया हो।
अंजबार—पुं० [फा०] ओषधि के काम में आनेवाला एक प्रकार का पौधा।
अंजर—वि० [सं० उज्ज्वल] सफेद और स्वच्छ। उज्ज्वल।
अंजर-पंजर—पुं० [सं० पंजर का अनु० अंजर+सं० पंजर] १. शरीर की ठठरी और उसके अंग या जोड़।
मुहा०—अंजर-पंजर ढीले होना=झटके, श्रम आदि के कारण सब अंगों और जोड़ों का हिलकर शिथिल हो जाना।
२. किसी चीज का ढाँचा।
अंजरि—स्त्री०=अंजलि।
अंजल*—पुं० [अन्न+जल]=अन्न जल (दाना पानी)।
स्त्री०=अंजलि।
अंजलि—स्त्री० [सं०√अंज्+अलि; प्रा०, गुज० अंजली; मरा० ओंजल] १. हथेली का वह रूप जो उँगलियों को कुछ ऊपर उठाने से बनता है। २. दोनों हथेलियों को उक्त रूप में एक साथ मिलाने से बननेवाला

गड्ढा, जिसमें भरकर कुछ दिया या लिया जाता है।

अंजलि-गत—भू० कृ० [द्वि० त०] १. अंजलि में आया या रखा हुआ। २. प्राप्त या हस्तगत किया हुआ।

अंजलि-पुट—पुं० [ष० त०] दे० 'अंजलि २'।

अंजलि-बद्ध—वि० [ब० स०] जो हाथ जोड़े हुए हो। करबद्ध।

अंजली—स्त्री० [सं० अंजलि—ङीप्]=अंजलि।

अँजवाना—स० 'आँजना' का प्रे० रूप। आँख में काजल या सुरमा लगवाना।

अंजस—वि० [सं०√अंज्+असच्] १. सीधा। सरल। २. ईमानदार।

अंजहा†—वि० [हिं० अनाज+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० अंजही]=अनाजी।

अंजही—स्त्री० [हिं० अनाज] अनाज की मंडी।

अँजाना—स०=अँजवाना।

†वि० १. =अनजान। २. =अनजाना।

अंजाम—पुं० [फा०] १. परिणाम। फल। २. अंत। समाप्ति।

अंजित—भू० कृ० [सं०√अंज्+क्त] १. जिसमें अंजन लगाया गया हो। अंजनयुक्त। २. आराधित। पूजित।

अंजिष्ठ—पुं० [सं०√अंज्+इष्ठच्] सूर्य।

अंजिष्णु—पुं० [सं०√अंज्+इष्णुच्] सूर्य।

अंजी—स्त्री० [सं०√अंज्+इन्—ङीष्] १. आशीर्वाद। २. शुभकामना।

पुं० [?] एक प्रकार का बढ़िया चावल।

अंजीर—पुं० [सं०√अंज्+ईरन्] गूलर की जाति का एक प्रसिद्ध फल और उसका वृक्ष।

अंजुवार—पुं० [फा०] अंजवार (दे०)।

अंजुमन—पुं० [फा०] १. सभा। २. समाज।

अँजुरी*—स्त्री० =अंजलि।

अंजुल—स्त्री०=अंजलि।

अँजुली—स्त्री०=अंजलि।

अँजोर*—पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला।

अँजोरना—स० [हिं० अँजोरा] १. उजाला या प्रकाश करना। २. (दीया जलाकर) घर में प्रकाश करना। ३. उज्ज्वल या स्वच्छ करना।

स० [सं० अँजलि] १. अंजुली में भरना या लेना। २. निकाल या ले लेना। उदा०—पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि।—तुलसी।

अँजोरा†—पुं० [हिं० उजाला] प्रकाश। उजाला। रोशनी।

वि० प्रकाशमान।

अँजोरी*—स्त्री० [हिं० अँजोर+ई] १. चन्द्रमा की चाँदनी। २. चाँदनी रात। ३. उजाला। प्रकाश। ३. आभा। चमक। दीप्ति।

अंझा*—पुं० [सं० अनध्याय; पा० अनज्झा] १. बीच में पड़नेवाला अभावात्मक अन्तर। नागा। २. अवकाश। छुट्टी। ३. लोप।

अँटना—अ० [देश०] १. अन्दर आना। भरना या समाना। २. पूरा पड़ना। यथेष्ट होना। ३. उपयोग में आने के कारण समाप्त होना।

अ० दे० 'अटकना'।

अंटसंट—वि०=अंडबंड।

अंटा—पुं० [सं० अण्ड] [स्त्री० अल्पा० अँटिया, अंटी] १. बड़ी गोली। २. बड़ी कौड़ी। ३. सूत, रेशम आदि का लच्छा। ४. एक प्रकार का अँग्रेजी खेल। (बिलियर्ड)

अंटा-गुड़गुड़—वि० [हिं० अंटा+गुड़गुड़] नशे में चूर या बे-सुध।

अंटा-घर—पुं० [हिं० अंटा+घर] वह स्थान जहाँ लोग अंटा (बिलियर्ड) नामक खेल खेलते हैं।

अंटा-चित—भू० कृ० [हिं० अंटा+चित] १. पीठ के बल पड़ा या लेटा हुआ। २. पूरी तरह से हारा हुआ। पराजित। ३. स्तब्ध। स्तंभित। ४. नशे आदि के कारण अचेत या बेसुध पड़ा हुआ। ५. जो शक्ति आदि से रहित किसी योग्य न रह गया हो।

अँटाना—स० [हिं० अँटना का स०] १. अवकाश या स्थान निकालकर किसी को उसमें भारना, रखना या लेना। २. ऐसा काम करना कि कोई चीज यथेष्ट हो जाय।

अँटिया—स्त्री० [हिं० अंटी] १. किसी वस्तु की थोड़ी राशि जो एक में ठीक प्रकार से बँधी हो। जैसे—पुदीने या सूत की अँटिया। २. छोटा गट्ठर। गठरी।

अँटियाना—स० [हिं० अंटी] १. अंटी में रखना या लेना। २. छिपाना। गायब करना। ३. अँटिया (पूला, लच्छी आदि) बाँधना।

अंटी—स्त्री० [सं० अष्टि] १. दो उँगलियों के बीच की जगह।

मुहा०—अंटी मारना=(क) जूआ खेलते समय (बेईमानी से) उँगलियों में कौड़ी छिपा रखना। (ख) चालाकी से कोई चीज छिपा या दबा लेना।

२. वह मुद्रा जिसमें हाथ की एक उँगली पर दूसरी उँगली (विशेषतः तर्जनी पर मध्यमा) चढ़ी हो। ३. कमर पर पड़नेवाली धोती की लपेट जिसमें लोग रुपये पैसे आदि रखते हैं। ४. सूत आदि की लच्छी। अँटिया। ५. लकड़ी का वह चक्कर जिस पर सूत लपेटते हैं। अटेरन। ६. कान में पहनने की एक प्रकार की बाली। ७. मन में पड़नेवाली गाँठ। आँट। ८. कुश्ती का एक पेच।

मुहा०—अंटी देना या मारना=प्रतिद्वंदी को गिराना या हराना।

अंटी-बाज—वि० [हिं० अंटी+बाज] छल या धूर्त्तता से दूसरों का धन उड़ा लेनेवाला।

अँटौतल—पुं० [?] (कोल्हू के) बैलकी आँखों पर लगाया जानेवाला ढक्कन या बाँधी जानेवाली पट्टी।

अँठई†—स्त्री० [सं० अष्टपदी] चौपायों के शरीर पर चिपटनेवाले कीड़े जिनके आठ पैर होते हैं। चिचड़ी।

अँठली†—स्त्री०=अंठी।

अंठी—स्त्री० [स्त्री० अष्ठि=गुठली, गाँठ] १. किसी गीली चीज की बँधी हुई गाँठ या जमा हुआ थक्का। २. बीज। गुठली। ३. गिल्टी। ४. नवेली के निकलते हुए स्तन।

अँठुली—स्त्री०=अंठी।

अँठौतल—पुं० [?]=अँटौतल।

अंड—पुं० [सं०√अम् (गति)+ड] १. पक्षियों आदि का अंडा। डिंबा। २. अंडकोश। फोता। ३. वीर्य। ४. विश्व। ब्रह्मांड। उदा०—अंड अनेक अमल जसु छावा।—तुलसी। ५. मृग की नाभि जिसमें कस्तूरी रहती है। ६. कामदेव।

†पुं० दे० 'रेंड़' (पौधा)।

अंड-कटाह—पुं० [उपमित स०] सारा विश्व या ब्रह्माण्ड जो एक बड़े कड़ाहे के रूप में माना गया है।

अंड-कोश—पुं० [ष० त०] १. फोता। २. दूध पीकर पलनेवाले जीवों के नरों या पुरुषों की इन्द्रिय के नीचे की थैली जिसमें दो गुठलियाँ होती हैं। ३. सारा विश्व-ब्रह्माण्ड। अंड कटाह। ४. फल का ऊपरी छिलका।

अंडज—वि० [सं० अंड√जन् (उत्पत्ति)+ड] अंडे में से जन्म लेनेवाला। अंडे से उत्पन्न (जीव)।
पुं० वे जीव जो अंडे से उत्पन्न होते हैं।

अंडजा—स्त्री० [सं० अंडज—टाप्] कस्तूरी।

अँडना—अ०=अड़ना।

अंडबंड—[अनु०] १. असंवद्ध प्रलाप। अनाप-शनाप। २. गाली-गलौज।
वि० १. व्यर्थ का। बे सिर-पैर का। २. भद्दा और अनुचित। ३. इधर उधर का और अनावश्यक या अनुपयुक्त।

अँडरना†—अ० [सं० अवतरण] धान के पौधे में बाल निकलना।

अंड-वृद्धि—स्त्री० [ष० त०] एक रोग जिसमें अंड-कोश की थैली एक प्रकार के सौम्य या विकृत रस से भर जाती है। (हाइड्रोसील)

अंडस—स्त्री० [सं० अंतर=बीच में, दाव में] ऐसी कठिन परिस्थिति जिसमें से सहज में निकलना न हो सके।

अँड़सना†—अ० [सं० अंतरण=बीच में पड़कर दबना] बीच में इस प्रकार अटकना या फँसना कि चारों ओर से दबाव पड़ने के कारण सहज में न निकल सकें।

अंडसू—वि० [सं० अंड√सू (प्रसव)+क्विप्] अंडे से उत्पन्न होनेवाला। अंडज।

अंडा†—पुं० [सं० अंड] १. कुछ विशिष्ट मादा जीवों के गर्भाशय निकलनेवाला वह गोल या लम्बोतरा पिंड जिसमें से उनके बच्चे जन्म लेते हैं। जैसे—चिड़िया, मछली, मुर्गी या साँप का अंडा।
मुहा०—अंडा खटकना=अंडा फूटना। अंडा ढीला होना=काम करते-करते या चलते-चलते थकावट आना। अंडा सरकाना=हाथ पैर हिलाना। अंडा सेना=(क) पक्षियों का अपने अंडों पर बैठना। (ख) इस प्रकार बैठकर उसमें गरमी पहुँचाना ताकि वे जल्दी फूटें। (ग) घर में बैठे रहना। घर से बाहर न निकलना।
२. देह। शरीर। (क्व०)।

अंडाकर्षण—पुं० [सं० अंड आकर्षण, ष० त०] नर चौपाये को वधिया करना।

अंडाकार—वि० [सं० अंड-आकार, ब० स०] अंडे के आकार का। लम्बोतरा गोल। (ओवल)

अंडाकृति—स्त्री० [सं० अंड-आकृति, ष० त०] अंडे जैसी आकृति होने की अवस्था या भाव।
वि०=अंडाकार।

अंडालु—वि० [सं० अण्ड+आलुच्]=अंडज।

अंडाशय—पुं० [सं० अंड—आशय=घर, ष० त०] स्त्री-जाति के जीवों, पौधों आदि का वह अंग जिसमें अंड या डिंब पहुँचकर स्थित और विकसित होता है और उस वर्ग के नये जीवों, पौधों आदि का प्रजनन करता है। डिंबाशय। (ओवरी)

अंडिका—स्त्री० [सं० अंड+कन्—टाप्, इत्व] चार जौ की एक तौल।

अंडिनी—स्त्री० [सं० अंड+इनि—ङीप्] योनि में होनेवाला एक रोग।

अँड़िया†—पुं० [सं० अंड या अण्ठि] १. बाजरे की पकी हुई बाल। २. अटेरन जिसपर सूत लपेटते हैं।

अंडी—स्त्री० [सं० एरण्ड] १. रेंड़ का वृक्ष, फल या बीज। २. एक प्रकार का मोटा रेशम। ३. इस रेशम की बनी हुई चादर या कपड़ा।

अँड़आ—पुं०, वि०=आँड।

अँड़आना—स० [सं० अण्ड] नर चौपाये का वधिया करना।

अँड़आ बैल—पुं० [हि० अँड़आ+बैल] १. वह बैल जो वधिया न किया गया हो। साँड़। २. (लाक्षणिक) सुस्त आदमी।

अँडुवारी—स्त्री० [सं० अणु=छोटा टुकड़ा] एक प्रकार की छोटी मछली।

अंडैल—स्त्री० [हि० अंडा] मादा जन्तु, जिसके पेट में अंडे हों।

अंतः—अव्य०=अंतर्।

अंतःकरण—पुं० [ष० त०] १. अन्दर की इंद्रिय। २. मन की वह आंतरिक वृत्ति या शक्ति जिसके द्वारा हम भले-बुरे, सत्य-मिथ्या, सार-असार की पहचान करते हैं। विवेक (कान्शेन्स)। हमारे यहाँ मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चारों इसी के अंग माने गये हैं। ३. हृदय, जो इस शक्ति के रहने का स्थान माना गया है।

अंतःकलह—पुं० [ष० त०]=गृह-कलह।

अंतःकालीन—वि० [सं० अंतःकाल, मध्य० स०+ख—ईन] दो कालों या घटनाओं के बीच का और फलतः अस्थायी समय। (इन्टेरिम)।

अंतःकुटिल—वि० [स० त०] जिसके मन में कपट हो। कपटी। छली।

अंतःकोण—पुं० [ष० त०] अन्दर की ओर का कोना।

अंतःक्रिया—स्त्री० [ष० त०] १. अन्दर ही अन्दर होनेवाली क्रिया या व्यापार। २. मन को शुद्ध करनेवाला शुभ कर्म।

अंतःपटी—स्त्री० [ष० त०] १. चित्रपट पर बना हुआ प्राकृतिक दृश्य। २. रंगमंच पर का परदा।

अंतःपुर—पुं० [ष० त०] घर या महल का वह भीतरी भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। रनिवास। जनानखाना।

अंतःपुरिक—पुं० [सं० अंतःपुर+ठक—इक] अंतःपुर का रक्षक। कंचुकी।

अंतःपुष्प—पुं० [मध्य० स०] स्त्रियों का रज।

अंतःप्रकृति—स्त्री० [मध्य० स०] १. मूल स्वभाव। २. हृदय। ३. प्राचीन भारत में राजा का मंत्रिमंडल।

अंतःप्रज्ञ—पुं० [ब० स०] आत्मज्ञानी।

अंतःप्रवाह—पुं० [मध्य० स०] अन्दर ही अन्दर बहनेवाली धारा। भीतरी प्रवाह।

अंतःप्रांतीय—वि० [सं० अंतः प्रांत, मध्य० स०+छ—ईय] किसी प्रांत के भीतरी भाग या बातों से संबंध रखनेवाला।
वि० दे० 'अंतर-प्रांतीय'।

अंतःप्रादेशिक—वि० [सं० अंतः प्रदेश, मध्य० स०+ठञ्—इक]=अंतःप्रांतीय।
वि० दे० 'अंतर-प्रादेशिक'।

अंतःप्रेरणा—स्त्री० [ष० त०] मन में आपसे आप उत्पन्न होनेवाली या सहज प्रेरणा।

अंतःराष्ट्रीय—वि० [स० अंतः राष्ट्र, मध्य० स०+छ—ईय] किसी राष्ट्र के भीतरी भाग से संबंध रखने या उसमें होनेवाला।
वि० दे० 'अंतर-राष्ट्रीय'।

अंतःशरीर—पुं० [मध्य० स०]=लिंग शरीर।

अंतःशुद्धि—स्त्री० [प० त०[चित्त या अंतःकरण की पवित्रता और शुद्धि। मन को विकारों से अलग या दूर रखना।
अंतःसंज्ञ—पुं० [व० स०] वह जो अपने सुख-दुःख के अनुभव मन में ही रखे, दूसरों पर प्रकट न कर सके। जैसे—वृक्ष।
अंतःसत्त्व—वि० [व० स०] जिसके अंदर सत्त्व या शक्ति हो।
पुं० भिलावाँ (वृक्ष और फल)।
अंतःसत्त्वा—स्त्री० [व० स०, टाप्] गर्भवती।
अंतःसर(स्)—पुं० [कर्म० स०] १. हृदय रूपी सरोवर। उदा०—बढ़ी सभ्यता बहुत किन्तु अंतःसर अब तक सूखा है।—दिनकर। २. अंतःकरण में रहनेवाले दया, प्रेम आदि मानवोचित भाव।
अंतःसलिल—वि० (व० स०) जिसकी धारा अन्दर ही अन्दर बहती हो, ऊपर दिखाई न देती हो।
अंतःसलिला—स्त्री० [व०स०, टाप्] १. सरस्वती नदी। २. फल्गुनदी।
अंतःसार—पुं० [ष० त०] [वि० अंतः सारवान्] १ भीतरी तत्त्व। २. मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ३. अंतरात्मा।
वि० [व० स०] १. जिसमें तत्त्व या सार हो। २. पक्का। पुष्ट। ३. दृढ़, बलवान्।
अंतःस्थ—वि० [सं० अंतस्√स्था (ठहरना)+क] भीतर या बीच में स्थित। दे० 'अंतः स्थित'।
पुं० स्पर्श और ऊष्मा वर्णो के बीच में पड़नेवाले य, र, ल, व—ये चार वर्ण।
अंतःस्थराज्य—पुं० [कर्म० स०] दो बड़े राज्यों के बीच में या उनकी सीमाओं पर स्थित होनेवाला वह छोटा राज्य जो उन दोनों राज्यों में संघर्ष के अवसर न आने देता हो। (बफ़र-स्टेट)
अंतःस्थित—वि० [स० त०] १. अंतःकरण में स्थित। मन या हृदय में होनेवाला। २. अन्दर का। भीतरी।
अंतःस्वेद—वि० [व० स०] जिसके अन्दर स्वेद हो।
पुं० हाथी।
अंत—पुं० [सं०√अम् (गति आदि)+तन्] १. वह स्थान जहाँ किसी चीज या बात के अस्तित्व, विस्तार आदि का अवसान या समाप्ति होती हो। २. पूरे या समाप्त होने की अवस्था या भाव। समाप्ति। (एंड) ३. छोर। सिरा। ४. मरण। मृत्यु। ५. नाश। ६. परिणाम। फल। नतीजा। ७. प्रलय।
क्रि० वि० अंतिम अवस्था या दशा में। आखिरकार। उदा०—उघरेहिं अंत न होहि निबाहू।—तुलसी।
क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, पुं० हिं० अनत] वक्ता के स्थान से अलग या दूर। दूसरी जगह पर। उदा०—गोप सखन संग खेलत डोलौं, ब्रज तजि अंत न जैहों।—सूर।
पुं० [सं० अंतस्] १. अंतःकरण। हृदय। २. भेद। ३. रहस्य आदि की थाह।
मुहा०—किसी का अंत लेना=यह पता लगाना कि किसी के मन में क्या बात है या किसी विषय में उसकी कितनी जानकारी है।
स्त्री० [सं० अंत्र] आँत। अँतड़ी। उदा०—इक दंत गज गिद्धि उतरि लै अंत अलझ्झिअ।—चन्द वरदाई।
अंतक—वि० [सं०√अंत् (नाश करना)+णिच्+ण्वुल्—अक] १. अंत या नाश करनेवाला।
पुं० १. मृत्यु। मौत। २. यमराज। ३. शिव। ४. एक प्रकार का सन्निपात (रोग)।
अंतकर—वि० [सं० अंत√कृ (करना)+ट] अंत या नाश करनेवाला।
पुं० दे० 'अंतक'।
अंतकर्त्ता—[सं० अंत√कृ+तृच्]=अंतकर।
अंतकर्म (न्)—पुं० [ष० त०] १. मृत्यु। २. नाश। ३. दे० 'अंत्येष्टि'।
अंतकारी (रिन्)—[सं० अंत√कृ+णिनि]=अंतकर।
अंतकाल—पुं० [ष० त०] १. अंतिम समय। २. मृत्यु का समय।
अंतकृत्—पुं० [सं० अंत√कृ+क्विप्—तुक्] यमराज।
वि० अंत या नाश करनेवाला। अंतकर।
अंत-क्रिया—स्त्री० [ष० त०] दे० 'अंत्येष्टि'।
अंतग—वि० [सं० अंत√गम् (जाना)+ड] १. अंत तक जानेवाला। पारगामी। पारंगत।
अंत-गति—स्त्री० [ष० त०] मृत्यु। मौत।
अंतघाई—वि० [सं० अंत+घात] अंत में घात करने या धोखा देनेवाला। अंतघाती।
अंतघाती*—वि०=अंतघाई।
अंतचर—वि० [सं० अंत√चर् (गति)+ट] १. अंत तक पहुँचाने या सीमा पर जानेवाला। २. (कार्य) पूरा करनेवाला।
अंतछद्—पुं० [सं० अंत√छद् (ढाँकना)+घ] ऊपर से ढकनेवाली वस्तु। आच्छादन।
अंतज—वि० [सं० अंत√जन् (उत्पत्ति)+ड] सब के अंत या बाद में उत्पन्न होनेवाला।
अँतड़ी—स्त्री० [सं० अन्त्र] आँत।
मुहा०—(किसी की)—अँतड़ी टटोलना=भीतरी बातों की थाह लेने या पता लगाने का प्रयत्न करना। अँतड़ी जलना=भूख के मारे बुरा हाल होना। अँतड़ियों के बल खोलना=बहुत दिन बाद भोजन मिलने पर तृप्त होकर खाना।
अंततः—अव्य० [सं० अंत+तस्] १. सब उपाय कर चुकने पर। अन्त में। (लास्टली) २. और नहीं तो इतना ही सही। कम से कम (एटलीस्ट)। ३. भीतर।
अंततर—वि० [सं० अंत+तरप्] किसी काल विभाग के अंत या बादवाले अंश में होनेवाला। (लेटर)
अंततम—वि० [सं० अंत+तमप्] १. जो किसी क्रम या श्रृंखला में सब के अंत में हो। २. सब से बादवाला। बिलकुल हाल का। (लेटेस्ट)।
अंततोगत्वा—क्रि० वि० [सं० अन्ततः—गत्वा, व्यस्तपद] सब बातें हो जाने के उपरांत उनके अन्त में। (अल्टिमेटली)
अंत-दीपक—पुं० [ष० त०] एक प्रकार का काव्यालंकार जो दीपक अलंकार का एक भेद है।
अंत-पाल—पुं० [ष० त०] १. द्वारपाल। दरवान। २. सीमा प्रदेश का रक्षक अधिकारी।
अंतभव—वि० [सं० अंत√भू (होना)+अप्] जो अंत में उत्पन्न हुआ हो।
अंतरंग—वि० [अंतर्-अंग व० स०] १. जो अन्दर हो अथवा जिसका संबंध अन्दर से हो। भीतरी। 'बहिरंग' का विपर्याय। २. भीतरी या गुप्त

बातों को जानने या उनसे संबंध रखनेवाला। जैसे—अंतरंग सभा।

पुं० [मध्य० स०] १. शरीर के भीतरी अंग। जैसे—मन, मस्तिष्क आदि। २. आत्मीय। स्वजन। ३. बहुत घनिष्ठ मित्र।

अंतरंग-मंत्री (त्रिन्)—पुं० [कर्म० स०] किसी बहुत बड़े अधिकारी का निजी सचिव। (प्राइवेट सेक्रेटरी)।

अंतरंग-सभा—स्त्री० [कर्म० स०] १. किसी संस्था की भीतरी बातों की व्यवस्था करने और उसकी नीति आदि स्थिर करनेवाली सभा। २. कार्य-कारिणी या प्रबन्ध-कारिणी समिति।

अंतरंगी (गिन्)—वि० [सं० अंतरंग+इनि] १. भीतरी। २. दिली। हार्दिक।

पुं० घनिष्ठ मित्र। गहरा दोस्त।

अंतर्—अव्य० [सं०√अम् (गति)+अरन्, तुट्] १. भीतरी भाग में अन्दर। २. बीच में।

विशेष—(क) इसका प्रयोग केवल यौगिक पद बनाने के समय (उपसर्ग या विशेषण के रूप में) उनके आरम्भ में होता है। जैसे—अन्तर्ज्योति, अंतर्दशा, अंतर्वर्ग आदि। (ख) संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार कुछ अवस्थाओं में इसका रूप अंतः या अंतस् भी हो जाता है। जैसे—अंतःपुर, अंतस्सलिला आदि। (ग) कुछ लोग इसका प्रयोग भूल से उस 'अंतर' की तरह और उसी के अर्थ में कर जाते हैं, जो अँगरेजी 'इन्टर' के ध्वनि-साम्य के आधार पर इधर कुछ दिनों से हिन्दी में चल पड़ा है। जैसे—अंतर्जिला, अंतर्राष्ट्रीय, पर इनके अधिक संगत रूप अंतर-जिला और अंतर-राष्ट्रीय होने चाहिएं।

अंतर—पुं० [सं० अंत√रा (देना)+क] [क्रि० अँतराना] १. किसी वस्तु का भीतरी भाग। २. बीच। मध्य। ३. दो वस्तुओं के बीच की दूरी। ४. दो घटनाओं के बीच का समय। ५. दो वस्तुओं को आपस में पृथक् या भिन्न करनेवाला तत्त्व या बात। भेद। फरक। (डिफरेन्स) ६. दो वस्तुओं के बीच में रहनेवाला आवरण। आड़। ओट। ७. छिद्र। छेद। ८. आत्मा। ९. परमात्मा। १०. वस्त्र। कपड़ा।

अव्य० १. अंदर। भीतर। २. अलग। दूर।

वि० १. अंदर का। भीतरी। २. पास आया हुआ। आसन्न। ३. बाहरी। ४. दूसरा, भिन्न। (यौ० के अंत में) जैसे—देशांतर।

पुं० [सं० अंतस्] अंतःकरण। मन। हृदय।

वि० दे० 'अंतर्धान'।

उप० [अं० इन्टर से ध्वनि-साम्य के आधार पर] एक नया हिन्दी उपसर्ग जो कुछ यौगिक पदों के आरंभ में लगकर यह अर्थ देता है—एक ही प्रकार या वर्ग के दो या अधिक स्थानों आदि में समान रूप से होने या उनके पारस्परिक व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाला। जैसे—अंतर-प्रांतीय, अंतर-राष्ट्रीय आदि।

विशेष—कुछ लोग इसे भूल से सं० अव्यय अंतर् का ही रूप मानकर अंतर्जिला और अंतर्राष्ट्रीय आदि रूप भी बना लेते हैं, जो ठीक नहीं है। यह संस्कृत के अंतर (संज्ञा) से भी भिन्न है; पर प्रायः सं० अंतर (विशेषण) की तरह प्रयुक्त होता है। पर इसका मूल विदेशी ही है, भारतीय नहीं। (दे० 'अंतर्' और 'अंतर')।

अंतर-अयन—पुं० [कर्म० स०] १. किसी तीर्थ स्थान के भीतर पड़नेवाले मुख्य देव-स्थानों की यात्रा। २. किसी तीर्थ के चारों ओर की जानेवाली परिक्रमा। ३. एक प्राचीन देश का नाम।

अंतर-आणविक—वि० [कर्म० स०] (तत्त्व) जो दो या अधिक पदार्थों के अणुओं में समान रूप से पाया जाता हो। (इण्टर-मोलक्यूलर)

अंतरकालीन—वि० [सं० अंतर-काल, कर्म० स०+ख—ईन] दो काल विभागों या समयों के बीच में पड़नेवाले काल या समय से संबंध रखने अथवा उस बीचवाले काल या समय में होनेवाला। (प्रॉविजनल)

अंतरग्नि—स्त्री० [सं० अंतर्-अग्नि, ष० त०] पेट के अंदर की अग्नि। जठरानल।

अंतर-चक्र—पुं० [कर्म० स०] १. किसी दिशा और उसके पासवाली विदिशा के बीच के अंतर का चतुर्थांश। २. हठयोग के अनुसार शरीर के अंदर के मूलाधार आदि चक्र या कमल। विशेष—दे० 'षट्चक्र'। ३. आत्मीय या स्वजन लोगों का वर्ग। ४. भीतरी चक्र या मनुष्यों का वर्ग जो अंदर के सब काम करता हो और जो बाहरवालों या जन-साधारण से भिन्न हो। (इनर-सरकिल) ५. पशु-पक्षियों की बोली के आधार पर शुभाशुभ फल जानने की विद्या।

अंतर छाल—स्त्री० [सं० अंतर+हिं० छाल] छाल के भीतर की कोमल छाल या नरम भाग।

अंतर-जातीय—वि० [सं० अंतर-जाति, कर्म० स०+छ—ईय] दो या दो से अधिक जातियों से पारस्परिक संबंध रखनेवाला या उनमें होनेवाला।

अंतरजामी—पुं०=अंतर्यामी।

अंतरज्ञ—वि० [सं० अंतर√ज्ञा (जानना)+क] १. अंतर या हृदय की बात जाननेवाला। २. जिससे हृदय की बात कही गई हो। ३. भेद या रहस्य जाननेवाला।

अंतरण—पुं० [सं० अंतर+णिच्+ल्युट्—अन] (भू० कृ० अंतरित) १. किसी वस्तु या संपत्ति का दान, विक्रय आदि के द्वारा एक स्वामी के हाथ से निकलकर दूसरे स्वामी के हाथ में जाना। हस्तांतरण। २. किसी अधिकारी या कर्मचारी का एक विभाग या स्थान से दूसरे विभाग में या स्थान पर भेजा जाना। बदली। ३. धन या रकम का एक खाते या मद से दूसरे खाते या मद में जाना या लिखा जाना। (ट्रान्सफरेन्स, उक्त तीनों अर्थों में)

अंतरण-कर्ता (र्तृ)—पुं० दे० 'अंतरितक'।

अंतरण-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति, स्वत्व आदि दूसरे के हाथ सौंपता है।

अंतरतम—पुं० [सं० अंतर+तमप्] १. किसी वस्तु का सबसे भीतरी भाग। २. हृदय का भीतरी भाग। २. विशुद्ध अंतःकरण।

वि० १. बिलकुल या ठेठ अंदर का। २. आत्मीय।

अंतर-दिशा—स्त्री० [ष० त०] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा।

अंतर-देशीय—वि० [अंतर-देश, कर्म० स०+छ—ईय] दो या कई देशों के पारस्परिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला।

अंतर-धातुक—वि० [ब० स०, कप्] (तत्त्व) जो दो या अधिक धातुओं में समान रूप से पाया जाता हो। (इन्टर-मेटेलिक)

अंतर-पट—पुं० [ष० त०] १. आड़ करने का कपड़ा। परदा। २.

अंतर्द्वंद्व—पुं० [मध्य० स०] दो या कई विपरीत विचारों का मन में होने-वाला संघर्ष। मानसिक संघर्ष।

अंतर्द्वार—पुं० [मध्य० स०] भीतरी या गुप्तद्वार। चोर दरवाजा।

अंतर्धान—पुं० [सं० अंतर्√धा (धारण, पोषण)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अंतर्हित] अचानक आँखों से ओझल हो जाने की क्रिया या भाव। वि० जो अचानक आँखों से ओझल हो गया हो। लुप्त।

अंतर्धारा—स्त्री० [मध्य० स०] १. नदी, समुद्र आदि में पानी की ऊपरी सतह से नीचे बहनेवाली धारा। २. किसी वर्ग या समाज में अंदर ही अंदर फैली हुई ऐसी धारणा या विचार जिसका पता साधारणतः ऊपर से न चलता हो। (अन्डर करेन्ट, उक्त दोनों अर्थों में)

अंतर्धि—पुं० [सं० अंतर्√धा+कि] वह राज्य जो दो युद्ध-रत राज्यों के बीच में स्थित हो।

अंतर्नयन—पुं० [ष० त०] भीतरी आँख। ज्ञान चक्षु।

अंतर्नाद—पुं० [ष० त०] वह शब्द जो आत्मा से बराबर उत्पन्न होता रहता है और जो समाधि की अवस्था में सुनाई देता है। (रहस्य-संप्रदाय)

अंतर्निविष्ट—वि० [स० त०]=अंतर्निष्ठ।

अंतर्निष्ठ—वि० [ब० स०] जो किसी के अंदर दृढ़तापूर्वक, रक्षित रूप से वर्त्तमान या स्थित हो। (इन्हेरेन्ट) जैसे—शासन में सभी प्रकार के अधिकार अंतर्निष्ठ होते हैं।

अंतर्निहित—भू० कृ० [स० त०] किसी के अंदर छिपा हुआ।

अंतर्पट—पुं० [सं० अंतः-पट, मध्य० स०] १. आड़, ओट या परदा। २. ढकनेवाली चीज (आच्छादन, आवरण आदि)। ३. वह परदा जो दो व्यक्तियों (यथा वर और कन्या, गुरु और शिष्य) के बीच में कोई विशिष्ट कार्य (यथा विवाह या दीक्षा) सम्पन्न होने से कुछ पहले तक पड़ा रहता है।

अंतर्पत्रण—पुं० [सं० अंतःपत्रण, अंतर्-पत्र, मध्य० स०,+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अंतर्पत्रित] छपी या लिखी हुई पुस्तकों आदि में पृष्ठों के बीच-बीच में इसलिए सादे कागज के टुकड़े या पृष्ठ लगाना कि उन पर संशोधन, परिवर्त्तन, परिवर्द्धन आदि किए जा सकें। (इन्टरलीविंग)

अंतर्पत्रित—भू० कृ० [सं० अंतः-पत्र, मध्य० स०,+इतच्] (पुस्तक) जिसमें बीच-बीच में सादे कागज लगे हों। जिसमें अंतर्पत्रण हुआ हो। (इन्टरलीव्ड)

अंतर्बोध—पुं० [ष० त०] १. मन में होनेवाली आध्यात्मिक चेतना या ज्ञान। आत्मज्ञान। अंतर्ज्ञान। मन में होनेवाली वह अनुभूति या ज्ञान जिसके अनुसार हम सब बातों के प्रकार, रूप आदि समझकर अपना काम चलाते हैं।

अंतर्भवन—पुं० दे० 'अंतर्गृह'।

अंतर्भाव—पुं० [मध्य० स०] [भू० कृ० अंतर्भावित, अंतर्भुक्त, अंतर्भूत] १. किसी का किसी दूसरे में समा या आ जाना। सम्मिलित, समाविष्ट या अंतर्गत होना। (इन्क्लूजन) २. छिपाव। दुराव। ३. अभाव। ४. जैन दर्शन में कर्मों का क्षय जो मोक्ष का साधक होता है। ५. बात का आशय। मतलब।

अंतर्भावना—स्त्री० [मध्य० स०] [भू० कृ० अंतर्भावित] मन ही मन किया जानेवाला चिंतन या ध्यान।

अंतर्भावित—भू० कृ० [सं० अंतर्√भू (होना)+णिच्+क्त] १. जो अंदर मिलाया गया हो या मिल गया हो। २. विशिष्ट क्रिया से किसी के साथ दृढ़तापूर्वक मिलाया या लगाया हुआ।

अंतर्भुक्त—भू० कृ० [स० त०] १. जो किसी के अंदर जाकर उसमें मिल गया हो और अपना स्वतंत्र रूप या सत्ता छोड़कर उसमें पूरी तरह से समा गया हो।

अंतर्भूत—वि० [सं० अंतर्√भू+क्त] जो किसी दूसरी वस्तु में जाकर मिल गया हो, फिर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता या रूप रखता हो।
पुं० जीवात्मा। प्राण।

अंतर्भौम—वि० [सं० भूमि+अण्-भौम, अंतर्भौम, मध्य० स०] पृथ्वी के अंदर का। भूगर्भ का।

अंतर्भौमि—स्त्री० [सं० वि० अंतर्भौम] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्मना (नस्)—वि० [ब० स०] १. घबराया हुआ। २. उदास। ३. अपने विचारों में ही डूबा रहनेवाला।

अंतर्मल—पुं० [मध्य० स०] १. अंदर रहनेवाला मल या मैल। २. चित्त या मन में होनेवाला बुरा विचार या विकार।

अंतर्मुख—वि० [ब० स०] जिसका मुँह अंदर की ओर हो।
पुं० चीर-फाड़ में काम आनेवाली एक तरह की कैंची।
क्रि० वि० अंदर की ओर प्रवृत्त।

अंतर्मृत—पुं० [स० त०] (शिशु) जिसकी गर्भ में ही मृत्यु हो गई हो। मृतजन्मा।

अंतर्यामिता—स्त्री० [सं० अंतर्यामिन्+तल्—टाप्] अंतर्यामी होने की अवस्था या भाव।

अंतर्यामी (मिन्)—वि० [सं० अतर्√यम् (प्रेरित करना)+णिच्+णिनि] १. अंतःकरण या मन की बात जाननेवाला। २. मन पर अधि-कार रखनेवाला।
पुं० ईश्वर। परमात्मा।

अंतर्योग—पुं० [मध्य० स०] मानसिक आराधना या पूजा।

अंतर्रति—स्त्री० [मध्य० स०] मैथुन। संभोग। विशेष दे० 'रति' २।

अंतर्राष्ट्रीय—वि० [सं० अंतर्राष्ट्र मध्य० स०+छ-ईय] १. अपने राष्ट्र की भीतरी बातों से संबंध रखनेवाला। २. अपने राष्ट्र में होनेवाला। वि० दे० 'अंतर-राष्ट्रीय'।

अंतर्लंब—पुं० [मध्य स०] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके अंदर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका—स्त्री० [मध्य० स०] ऐसी पहेली जिसका उत्तर उसकी पद-योजना में ही निहित होता है। जैसे—एक नारि तरुवर से उतरी, सिर पर उसके पाउँ। ऐसी नारि कुनारि को मैं ना देखन जाउँ॥ का उत्तर 'मैना' (पक्षी) इसके दूसरे चरण की पद-योजना में आया है।

अंतर्लीन—वि० [स० त०] १. अंदर छिपा हुआ। २. डूबा हुआ। मग्न।

अंतर्वंश—पुं० [मध्य० स०] [वि० अंतर्वंशिक] अंतःपुर और उसमें रहने-वाली स्त्रियाँ।

अंतर्वंशिक—पुं० [सं० अंतर्वंश+ठन्—इक] अंतःपुर (महिला निवास) का निरीक्षक।
वि० अंतर्वंश से संबंध रखनेवाला।

अंतर्वर्ग—पुं० [मध्य० स०] किसी वर्ग या विभाग के अन्दर होनेवाला

कोई अन्य छोटा वर्ग या विभाग। (सब-ऑर्डर)

अंतर्वर्ण—पुं० [मध्य० स०] अंतिम या चतुर्थ वर्ण का, अर्थात् शूद्र।

अंतर्वर्ती (र्तिन्)—वि० [अंतर्√वृत् (बरतना)+णिनि] १. अंदर या भीतर रहनेवाला। २. जो अंतर्गत या अंतर्भूत हो। ३. दो तत्त्वों, बातों, वस्तुओं आदि के बीच में रहने या होनेवाला। (इण्टरमीडिएट)

अंतर्वस्तु—स्त्री० [मध्य० स०] १. किसी वस्तु के अंदर होने या रहनेवाली वस्तु। (कन्टेन्ट्स) जैसे—सागर के अंदर होने तथा रहनेवाली मछलियाँ, दवात के अन्दर रहनेवाली स्याही आदि।

अंतर्वस्त्र—पुं० [मध्य० स०] अंदर या अन्य कपड़ों के नीचे पहने जानेवाले वस्त्र। जैसे—कच्छा, पेटीकोट, बनियाइन, लंगोट आदि।

अंतर्वाणिज्य—पुं० [मध्य० स०] वाणिज्य या व्यापार जो किसी देश की सीमा के अंतर्गत, भीतरी भागों में होता है। (इन्टर्नल ट्रेड)

अंतर्वाणी (णि)—वि० [ब० स०] शास्त्र जाननेवाला।
पुं० विद्वान्। पंडित।

अंतर्वास (स्)—पुं० [मध्य० स०] दे० 'अंतर्वस्त्र'।

अंतर्वासक—पुं० [ब० स०, कप्] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्वासन—पुं०=अंतरायण।

अंतर्विकार—पुं० [मध्य० स०] १. मन में होनेवाला कोई विकार। २. भूख, प्यास आदि शारीरिक धर्म।

अंतर्वृत्त—पुं० [मध्य० स०] ज्यामिति में वह वृत्त जो किसी आकृति के बीच में इस प्रकार बनाया जाय कि उसकी आकृति की सभी भुजाओं या रेखाओं को कहीं न कहीं स्पर्श करता हो। (इन्-सर्किल, इन्सक्राइब्ड सर्किल)

अंतर्वेग—पुं० [मध्य० स०] १. मन में उत्पन्न होनेवाला कोई कष्टदायक विकार। जैसे—अशांति, चिंता आदि। २. एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर में जलन, तथा सिर में दर्द होता है और प्यास अधिक लगती है।

अंतर्वेद—पुं० [सं० अंतर्वेदि] १. यज्ञ की वेदियों से संपन्न देश। २. गंगा और यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम। ब्रह्मावर्त। ३. दो नदियों के मध्य का देश। दोआबा।

अंतर्वेदना—स्त्री० [ष० त०] मन के अन्दर छिपी हुई वेदना।

अंतर्वेदी—वि० [सं० अंतर्वेदि से] १. अंतर्वेद का निवासी। २. दोआबे में रहनेवाला।

अंतर्वेशन—पुं० [सं० अंतर्√विश् (प्रवेश)+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अंतर्वेशित] १. किसी वर्ग या समूह के बीच में उसी तरह की और कोई चीज बाहर से लाकर जमाना, बैठाना या लगाना। (इन्टरपोलेशन) जैसे—किसी कविता में किसी नई पंक्ति या किसी वाक्य में किसी नये शब्द या पद का अंतर्वेशन। २. वह अंश या वस्तु जो इस प्रकार कहीं बैठाई या लगाई जाय। (साहित्य में इसे क्षेपक कहते हैं।)

अंतर्वेशिक—पुं० [सं० अंतर्वेश+ठक्—इक] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्वेशित—भू० कृ० [सं० अतर्√विश्+णिच्+क्त] जिसका अंतर्वेशन हुआ हो।

अंतर्वेश्म (न्)—पुं० [मध्य० सं०] १. अंतःपुर। जनानखाना। २. मकान का कोई भीतरी कमरा। ३. तहखाना। तलघर।

अंतर्वेश्मिक—पुं० [सं० अन्तर्वेश्मन्+ठन्—इक] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्व्याधि—स्त्री० [मध्य० स०] भीतरी या गुप्त रोग।

अंतर्व्रण—पुं० [मध्य० स०] शरीर का भीतरी घाव या चोट।

अंतर्हस्तीन—वि० [सं० अन्तर्हस्त अव्य० स०,+ख—ईन] जिस तक हाथ की पहुँच हो या हो सके।

अंतर्हास—पुं० [मध्य० स०] मन ही मन मुस्कराने की क्रिया या भाव।

अंतर्हित—भू० कृ० [सं० अन्तर्√धा (धारण करना]+क्त, हि आदेश) जो अंतर्धान हो गया हो।

अंतर्हृदय—पुं० [मध्य० स०] हृदय का भीतरी भाग।

अंत-लघु—पुं० [ब० स०] १. वह चरण जिसके अंत में लघु वर्ण या मात्रा हो। २. वह शब्द जिसका अन्तिम वर्ण या मात्रा लघु हो।

अंत-वर्ण—पुं० [ष० त०] अन्तिम वर्ण का। शूद्र।

अंत-विदारण—पुं० [ब० स०] ग्रहण के दस प्रकार के मोक्षों में से एक।

अंत-वेला—स्त्री०=अंत-काल।

अंत-व्यापत्ति—स्त्री० [ष० त०] शब्द के अंतिम अक्षर में होनेवाला परिवर्त्तन।

अंत-शय्या—स्त्री० [ष० त०] १. मृत्युशय्या। २. मृत्यु। ३. श्मशान।

अंतश्चित्त—पुं० [मध्य० स०] अंतःकरण। मन।

अंतश्छद—पुं० [मध्य० स०] १. भीतरी तल। २. भीतर का आवरण।

अंत-सद्—पुं० [सं० अंत√सद् (प्राप्ति, बैठना)+क्विप्] शिष्य। चेला।

अंत-समय—पुं० [ष० त०] अंत या मृत्यु होने का समय।

अंतस्* —पुं०=अंतःकरण।

अंतस्तल—पुं० [ष० त०] १. हृदय या मन। २. अचेतन या सुप्त मन।

अंतस्ताप—पुं० [मध्य० स०] मन में होनेवाला दुःख, व्यथा आदि। मनस्ताप।

अंतस्थ—वि० [सं० अंत√स्था (ठहरना)+क] अंत या अंतिम अंश में रहने या होनेवाला। अंतिम। जैसे—अंतस्थ वर्ण। विशेष—दे० 'अंतःस्थ'।

अंतस्थ-वर्ण—पुं० [कर्म० स०] देवनागरी लिपि में य, र, ल और व ये चार वर्ण।

अंत-स्नान—पुं० [ष० त०] यज्ञ की समाप्ति पर किया जानेवाला स्नान।

अंतस्सलिला—स्त्री० [ब० स०]=अंतः सलिला।

अंतस्सार—वि० [ब० स०] १. भीतर से ठोस। पोढ़ा। २. बलवान।
पुं० [मध्य० स०] १. ठोसपन। २. अंतरात्मा। ३. मन, बुद्धि और अहंकार का समन्वित रूप।

अंतहपुर*—पुं०=अंतःपुर।

अंत-हीन—वि० [तृ० त०] [भाव० अंतहीनता] १. जिसका अन्त न हो। अनंत। २. जिसकी सीमा न हो। निस्सीम।

अंताराष्ट्रीय—वि०=अंतर-राष्ट्रीय।

अंतावरि (री)—स्त्री० [हिं० अंत+सं० आवली] अँतड़ी। आँत।

अंतावसायी (यिन्)—पुं० [सं० अन्त-अव√सो (अंत करना)+णिनि, युक्] १. नाई। नापित। हज्जाम। २. चांडाल।
वि० हिंसा करनेवाला। हिंसक।

अंतिक—वि० [सं०√अत् (बाँधना), घञ्+ठन्-इक] १. समीप या पड़ोस में होने या रहनेवाला। २. अंत तक जानेवाला।

हृदय पर पड़ा हुआ अज्ञान का परदा। ३. विवाह के समय वर और वधू के बीच में आड़ करनेवाला कपड़ा।

मुहा०-अंतर-पट साजना—छिपकर बैठना। ओट में रहना।

४. दुराव। छिपाव। भेद-भाव। ५. गीली मिट्टी से लपेटकर औषध आदि फूँकने या भस्म करने की क्रिया। कपड़-मिट्टी।

अंतर-पतित—वि० [स० त०] बीच में आने, पड़ने या होनेवाला।

अंतर-पतितआय—स्त्री० [अंतरपतित-आय, कर्म० स०] किसी व्यवहार या व्यापार के बीच में पड़नेवाले व्यक्ति को यों ही होनेवाली आय। (इन्टरमीडिअरी प्रॉफिट) जैसे—दलाली या दस्तूरी।

अंतर-पुरुष—पुं० [कर्म० स०] १. आत्मा। २. परमात्मा।

अंतरप्रभव—पुं० [सं० अंतर-प्र√भू (होना)+अच्] दोगला। वर्णसंकर।

अंतर-प्रश्न—पुं० [मध्य० स०] वह प्रश्न जो पहले कही हुई बात में ही निहित हो या उसके कारण उत्पन्न हो।

अंतर-प्रांतीय—वि० [अंतर-प्रांत, कर्म० स०,+छ—ईय] दो या अधिक प्रांतों के पारस्परिक व्यवहार से संबंध रखने या उनमें होनेवाला। (इन्टर प्रॉविन्शल)

वि० दे० 'अंतःप्रांतीय'।

अंतर-प्रादेशिक—वि०=अंतर-प्रांतीय।

अंतरय—पुं० [सं० अंतर्√इ (गति)+अच् वा अंतर√या (गति)+क]=अंतराय।

अंतरयण—पुं० [स० अंतर्-अयन, स० त०] १. अन्दर या नीचे जाने की क्रिया या भाव। २. अदृश्य या लुप्त होने की क्रिया या भाव।

अंतर-रति—स्त्री० [कर्म० स०] दे० 'अंतर्रति'।

अंतर-राष्ट्रीय—वि० [स० अंतर-राष्ट्र, कर्म० स० + छ—ईय] दो या अधिक राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार से संबंध रखने या उनमें होनेवाला। (इन्टरनेशनल)

अंतरशायी (यिन्)—पुं० [सं० अंतर√शी (सोना)+णिनि] जीवात्मा।

वि० अदर पड़ा रहने या सोनेवाला।

अंतरसंचारी (रिन्)—पुं० [सं० अंतर-सम्√चर् (गति)+णिनि] काव्य में रस की सिद्धि करनेवाले अस्थिर मनोविकार। संचारी भाव।

अंतरस्थ—वि० [सं० अंतर√स्था (ठहरना) +क] १. जो किसी के भीतरी भाग में स्थित हो। अंदर या बीच का। (इन्टर्नल) २. दे० 'आंतरिक'।

पुं० जीवात्मा।

अंतर-स्थित—वि० [स० त०]=अंतरस्थ।

अँतरा—पुं० [सं० अंतर] १. बीच का अवकाश। अंतर। २. अंतराल। ३. कोना।

पद—अँतरे-खोंतरे=(क) इधर-उधर या किसी कोने में। (ख) कभी-कभी।

४. एक-एक दिन के अंतर पर आनेवाला ज्वर। पारी का बुखार।

वि० बीच में एक छोड़कर दूसरा।

अंतरा—पुं० [सं० अंतर] किसी गीत के पहले पद या टेक को छोड़कर दूसरा पद या चरण। (पहला पद या चरण स्थायी कहलाता है)।

क्रि० वि० [सं० अन्तर्√इ (गति)+डा] १. बीच या मध्य में। २. निकट। पास। ३. अतिरिक्त। सिवा। ४. अलग। पृथक्। ५. विना। वगैर।

अंतराकाश—पुं० [सं० अंतर-आकाश, मध्य० स०] १. बीच में पड़नेवाला खाली स्थान। २. मनुष्य के हृदय में रहनेवाला ब्रह्म।

अंतरागम—पुं० [सं० अंतर्-आगम, स० त०] बाहर से अधिक मात्रा में आकर अन्दर भरना। (इनफ्लक्स)

अंतरागार—पुं० [सं० अन्तर्-आगार, मध्य० स०] किसी बड़े भवन का भीतरी भाग।

अंतराणुक—वि०=अंतर-आणविक।

अंतरात्मा (त्मन्)—स्त्री० [सं० अंतर्-आत्मन्, कर्म० स०] [वि० अंतरात्मिक] १. जीवात्मा। २. जान। प्राण। ३. अंतःकरण। ४. किसी बात या विषय का भीतरी या मूल तत्त्व। (स्पिरिट)

अँतराना*—स० [सं० अंतर] १. बीच में अंतर या अवकाश उपस्थित करना। बीच में खाली जगह छोड़ना। २. दूर या पृथक् करना। ३. ठीक अंदर की ओर ले जाना।

अंतराय—पुं० [सं० अंतर√अय् (गति)+अच्] १. बाधा। विघ्न। रुकावट। २. ज्ञान की प्राप्ति, योग की सिद्धि आदि में बाधक होनेवाली बात। ३. जैन दर्शन में नौ मूल कर्मों में से एक।

अंतरायण—पुं० [सं० अंतर√अय्+णिच्+ल्युट्—अन] १. युद्ध के समय युद्ध-रत देशों के सैनिकों, जहाजों आदि का तटस्थ देश की सीमा में जाने पर निरस्त्रीकरण करके रोक रखा जाना। २. राज्य या शासन द्वारा किसी व्यक्ति को उसके घर या किसी स्थान में पहरे-चौकी में इस प्रकार रखा जाना कि वह कहीं आ जा न सके। नजरबंदी। (इन्टर्नमेंट)

अंतराल—पुं० [सं० अंतर—आ√रा (दान)+क, लत्व] १. दो रेखाओं, बिंदुओं आदि के बीच में पड़नेवाला अवकाश, विस्तार या स्थान। बीच की जगह, समय आदि। २. एक सिरे पर मिली हुई दो रेखाओं के बीच का स्थान।

अंतराल-दिशा—स्त्री० [ष० त०] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा।

अंतरालन—पुं० [सं० अंतराल+णिच्+ल्युट्—अन] दो चिह्नों, वस्तुओं आदि के बीच में आवश्यक या उचित अंतर स्थापित करना। दो या कई चीजों के बीच में खाली जगह छोड़ना। (स्पेसिंग)

अंतराल-राज्य—पुं० [मध्य० स०]=अन्तःस्थ राज्य।

अंतरावरोधन—पुं० [सं० अंतर-अवरोधन, मध्य० स०] [वि० अंतरावरुद्ध, भू० कृ० अंतरावरोधित] एक जगह से दूसरी जगह जानेवाली चीज को बीच में पकड़कर रोक लेना। (इन्टरसेप्शन)

अंतरावरोधित—भू० कृ० [सं० अंतर—अवरोध, कर्म० स०,+णिच्+क्त] जो चलने या जाने के समय बीच में पकड़ या रोक लिया गया हो। (इन्टरसेप्टेड)

अंतरिंद्रिय—स्त्री० [सं० अंतर्-इंद्रिय, मध्य० स०] मन। अंतःकरण।

अंतरिक्ष—पुं० [सं० अंतर्√ईक्ष् (देखना)+घञ्—पृषो० ह्रस्व] १. पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों या लोकों के बीच का स्थान। आकाश। २. स्वर्ग। ३. तीन प्रकार के केतुओं में से एक।

वि० जो आड़ या ओट में हो गया हो। आँखों से ओझल।

अंतरिक्षचर—वि०,पुं० [सं० अंतरिक्ष√चर् (गति)+ट]=अंतरिक्ष-चारी।

अंतरिक्षचारी (रिन्)—वि० [सं० अंतरिक्ष√चर्+णिनि] आकाश में चलनेवाला।
पुं० पक्षी। चिड़िया।

अंतरिक्ष-विज्ञान—पुं० [ष० त०] वह विद्या या विज्ञान जो वातावरण-संबंधी गतियों, विक्षोभों आदि की विवेचना करके मौसम-संबंधी बातें पहले से बतलाता है। (मीटियोरॉलोजी)

अंतरिख—पुं०=अंतरिक्ष।

अंतरिच्छ—पुं० =अंतरिक्ष।

अंतरित—भू० कृ० [सं० अंतर+णिच्+क्त] १. जिसका अंतरण हुआ हो।'२. एक क्षेत्र या विभाग से दूसरे क्षेत्र या विभाग में गया या भेजा हुआ। संक्रमित। ३. अन्दर रखा, छिपाया, ढका या छिपा हुआ। ४. अन्दर किया या पहुँचाया हुआ।

अंतरितक—पुं० [सं० अंतरित+कन्] जो अपनी संपत्ति तथा उससे संबंधित अधिकार आदि दूसरे के हाथ अंतरित करे या दे। (ट्रान्सफरर)

अंतरिती (तिन्)—पुं० [सं० अंतरित+इनि] दूसरे की संपत्ति तथा उसके संबंध के अधिकार या स्वत्व आदि प्राप्त करनेवाला। वह जिसके पक्ष में अंतरण हो। (ट्रान्सफरी)

अंतरिम—वि० [सं० अंतर+डिमच्] १. दो विभिन्न कालों के बीच का। मध्यवर्ती। २. बीच के इतने समय में। इस बीच में। (इण्टेरिम)

अंतरिम-आज्ञा—स्त्री० [कर्म० सं०] मध्यवर्ती आदेश। बीच के समय के लिए आज्ञा। इस समय या इतने समय के लिए दी हुई आज्ञा। (इण्टेरिम आर्डर)

अँतरिया—पुं० [हिं०] अँतरा नामक ज्वर।

अंतरीक*—पुं० [सं० अन्तरिक्ष] अंतरिक्ष। (डिं०)

अंतरीक्ष—पुं० [सं० अन्तर्√ईक्ष् (देखना) घञ्]=अंतरिक्ष।

अंतरीख*—पुं०=अंतरिक्ष।

अंतरीप—पुं० [सं० अंतर्–आप, ब०,स०, अच्, ईत्व] १. द्वीप। टापू। २. भूमि का वह पतला सँकरा अंश या विस्तार जो समुद्र में दूर तक चला गया हो। रास। (केप)

अंतरीय—पुं० [सं० अन्तर्+छ–ईय] कमर पर से नीचे की ओर पहनने का कपड़ा। अधोवस्त्र (धोती आदि)।
वि० अन्दर या भीतर का। भीतरी।

अंतरेंद्रिय—स्त्री० [सं० अंतर—इंद्रिय, कर्म० स०] अंतःकरण।

अँतरौटा—पुं०[सं० अंतर्पट] कपड़े का वह छोटा टुकड़ा जो ब्रज में स्त्रियाँ प्रायः (चोली आदि के ऊपर) पेट और पेड़ू पर लपेटती हैं। उदा०—श्री भामिनि को लै अँतरौटा मोहन सीस ओढ़ायो।—गोविन्द स्वामी।

अंतर्कथा—स्त्री० [संस्कृत के ढंग पर गढ़ा हुआ असिद्ध शब्द] किसी बड़ी कथा के अंतर्गत आई हुई कोई छोटी कथा।

अंतर्गत—वि० [द्वि० त०] १. जो किसी के अंदर पहुँचकर उसमें मिल या समा गया हो और उसका अंग बन गया हो। २. जो किसी के साथ मिलकर एक हो गया हो। (इन्क्लूडेड) जैसे—फ्रान्सीसी बस्तियाँ अब भारतीय संघ के अंतर्गत हो गई हैं।

अंतर्गतक—भू० कृ० [सं० अंतर्गत+क] जो किसी के अंतर्गत हो गया हो। अंतर्गत होकर रहनेवाला।
पुं० दे० 'समावरण'।

अंतर्गति—स्त्री० [ष० त०] मन की वृत्ति या भावना।

अंतर्गर्भ—वि० [ब० स०] जिसे गर्भ हो। गर्भयुक्त।

अंतर्गांधार—पुं० [ब० स०] संगीत में एक विकृत स्वर जिसका आरंभ प्रसारिणी श्रुति से होता है।

अंतर्गिरि—स्त्री० [मध्य० स०] हिमालय का वह भीतरी भाग जिसमें १८–२० हजार फुट से अधिक ऊँची चोटियाँ (जैसे—गौरीशंकर, धवलगिरि, नंगा पर्वत आदि) हैं।

अंतर्गृह—पुं० [मध्य० स०] १. गृह का भीतरी भाग। २. [सं० अव्य स०] तहखाना।

अंतर्गृही—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] किसी नगर के भीतरी भागों में स्थित देव-स्थानों, तीर्थों आदि की विधिवत् की जानेवाली यात्रा।

अंतर्गेह—दे० 'अंतर्गृह'।

अंतर्ग्रस्त—वि० [स० त०] अपराध, संकट आदि में पड़ा, फँसा या लगा हुआ। (इन्वाल्वड)

अंतर्घट—पुं० [मध्य० स०] अंतःकरण। हृदय।

अंतर्चित—पुं० दे० 'अंतश्चित्त'।

अंतर्जात—वि० [स० त०] वह जो किसी वस्तु के अन्दर या भीतरी भाग से उत्पन्न हुआ या निकला हो। (एन्डोजेन) जैसे—वृक्ष की जड़ में निकलनेवाले रोएँ अंतर्जात होते हैं।

अंतर्जातीय—वि० दे० 'अंतर-जातीय'।

अंतर्जानु—क्रि० वि० [ब० स०] हाथों को घुटनों के बीच किए हुए।

अंतर्जामी—वि०=अंतर्यामी।

अंतर्ज्ञान—पुं० [ष० त० या मध्य० स०] १. मन में रहने या होनेवाला ज्ञान। २. मन में होनेवाला वह स्वाभाविक ज्ञान जो प्रकृति की ओर से जीवों को आत्म-रक्षा, जीवन-निर्वाह आदि के लिए प्राप्त होता है। अंतर्बोध। (इन्ट्यूशन)

अंतर्ज्योति—स्त्री० [मध्य० स०] भीतरी प्रकाश।
वि० [ब० स०] जिसके अंदर प्रकाश हो।

अंतर्ज्वाला—स्त्री० [मध्य० स०] १. भीतरी आग। २. संताप। ३. चिंता।

अंतर्दर्शी (र्शिन्)—वि० [सं० अंतर्√दृश् (देखना)+णिनि] १. अंदर या अंतःकरण की ओर देखनेवाला। २. हृदय की बात जाननेवाला।

अंतर्दशा—स्त्री० [मध्य० स०] फलित ज्योतिष में जन्मकुण्डली के अनुसार किसी एक ग्रह के भोग-काल के अंतर्गत पड़नेवाले अन्य ग्रहों के भोग-काल।

अंतर्दशाह—पुं० [अव्य० स०] मृत व्यक्ति की आत्मा की सद्गति के उद्देश्य से मृत्यु के बाद दस दिन तक किये जानेवाले कृत्य।

अंतर्दाह—पुं० [मध्य० स०] हृदय की दाह या जलन। घोर मानसिक कष्ट।

अंतर्दृष्टि—स्त्री० [मध्य० स०] कोई बात देखने या समझने की भीतरी दृष्टि या शक्ति।

अंतर्देशीय—वि० [अंतर्देश मध्य० स०,+छ–ईय] किसी देश के आंतरिक भागों में होने या उससे संबंध रखनेवाला। (इनलैंड) जैसे—अंतर्देशीय जल-मार्ग।

अंतर्द्धान—पुं०=अंतर्धान।

अंतर्द्वंद्व—पुं० [मध्य० स०] दो या कई विपरीत विचारों का मन में होनेवाला संघर्ष। मानसिक संघर्ष।

अंतर्द्वार—पुं० [मध्य० स०] भीतरी या गुप्तद्वार। चोर दरवाजा।

अंतर्धान—पुं० [सं० अंतर्√धा (धारण, पोषण)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अंतर्हित] अचानक आँखों से ओझल हो जाने की क्रिया या भाव। वि० जो अचानक आँखों से ओझल हो गया हो। लुप्त।

अंतर्धारा—स्त्री० [मध्य० स०] १. नदी, समुद्र आदि में पानी की ऊपरी सतह से नीचे बहनेवाली धारा। २. किसी वर्ग या समाज में अंदर ही अंदर फैली हुई ऐसी धारणा या विचार जिसका पता साधारणतः ऊपर से न चलता हो। (अन्डर करेन्ट, उक्त दोनों अर्थों में)

अंतर्धि—पुं० [सं० अंतर्√धा+कि] वह राज्य जो दो युद्ध-रत राज्यों के बीच में स्थित हो।

अंतर्नयन—पुं० [ष० त०] भीतरी आँख। ज्ञान चक्षु।

अंतर्नाद—पुं० [ष० त०] वह शब्द जो आत्मा से बराबर उत्पन्न होता रहता है और जो समाधि की अवस्था में सुनाई देता है। (रहस्य-संप्रदाय)

अंतर्निविष्ट—वि० [स० त०]=अंतर्निष्ठ।

अंतर्निष्ठ—वि० [ब० स०] जो किसी के अंदर दृढ़तापूर्वक, रक्षित रूप से वर्त्तमान या स्थित हो। (इन्हेरेन्ट) जैसे—शासन में सभी प्रकार के अधिकार अंतर्निष्ठ होते हैं।

अंतर्निहित—भू० कृ० [स० त०] किसी के अंदर छिपा हुआ।

अंतर्पट—पुं० [सं० अंतः—पट, मध्य० स०] १. आड़, ओट या परदा। २. ढकनेवाली चीज (आच्छादन, आवरण आदि)। ३. वह परदा जो दो व्यक्तियों (यथा वर और कन्या, गुरु और शिष्य) के बीच में कोई विशिष्ट कार्य (यथा विवाह या दीक्षा) सम्पन्न होने से कुछ पहले तक पड़ा रहता है।

अंतर्पत्रण—पुं० [सं० अंतःपत्रण, अंतर्-पत्र, मध्य० स०,+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अंतर्पत्रित] छपी या लिखी हुई पुस्तकों आदि में पृष्ठों के बीच-बीच में इसलिए सादे कागज के टुकड़े या पृष्ठ लगाना कि उन पर संशोधन, परिवर्त्तन, परिवर्द्धन आदि किए जा सकें। (इन्टरलीविंग)

अंतर्पत्रित—भू० कृ० [सं० अंतः—पत्र, मध्य० स०,+इतच्] (पुस्तक) जिसमें बीच-बीच में सादे कागज लगे हों। जिसमें अंतर्पत्रण हुआ हो। (इन्टरलीव्ड)

अंतर्बोध—पुं० [ष० त०] १. मन में होनेवाली आध्यात्मिक चेतना या ज्ञान। आत्मज्ञान। अंतर्ज्ञान। मन में होनेवाली वह अनुभूति या ज्ञान जिसके अनुसार हम सब बातों के प्रकार, रूप आदि समझकर अपना काम चलाते हैं।

अंतर्भवन—पुं० दे० 'अंतर्गृह'।

अंतर्भाव—पुं० [मध्य० स०] [भू० कृ० अंतर्भावित, अंतर्भुक्त, अंतर्भूत] १. किसी का किसी दूसरे में समा या आ जाना। सम्मिलित, समाविष्ट या अंतर्गत होना। (इन्क्लूजन) २. छिपाव। दुराव। ३. अभाव। ४. जैन दर्शन में कर्मों का क्षय जो मोक्ष का साधक होता है। ५. बात का आशय। मतलब।

अंतर्भावना—स्त्री० [मध्य० स०] [भू० कृ० अंतर्भावित] मन ही मन किया जानेवाला चिंतन या ध्यान।

अंतर्भावित—भू० कृ० [सं० अंतर्√भू (होना)+णिच्+क्त] १. जो अंदर मिलाया गया हो या मिल गया हो। २. विशिष्ट क्रिया से किसी के साथ दृढ़तापूर्वक मिलाया या लगाया हुआ।

अंतर्भुक्त—भू० कृ० [स० त०] १. जो किसी के अंदर जाकर उसमें मिल गया हो और अपना स्वतंत्र रूप या सत्ता छोड़कर उसमें पूरी तरह से समा गया हो।

अंतर्भूत—वि० [सं० अंतर्√भू+क्त] जो किसी दूसरी वस्तु में जाकर मिल गया हो, फिर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता या रूप रखता हो।
पुं० जीवात्मा। प्राण।

अंतर्भौम—वि० [सं० भूमि+अण्—भौम, अंतर्भौम, मध्य० स०] पृथ्वी के अंदर का। भूगर्भ का।

अंतर्भौमि—स्त्री० [सं० वि० अंतर्भौम] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्मना (नस्)—वि० [ब० स०] १. घबराया हुआ। २. उदास। ३. अपने विचारों में ही डूबा रहनेवाला।

अंतर्मल—पुं० [मध्य० स०] १. अंदर रहनेवाला मल या मैल। २. चित्त या मन में होनेवाला बुरा विचार या विकार।

अंतर्मुख—वि० [ब० स०] जिसका मुँह अंदर की ओर हो।
पुं० चीर-फाड़ में काम आनेवाली एक तरह की कैंची।
क्रि० वि० अंदर की ओर प्रवृत्त।

अंतर्मृत—पुं० [स० त०] (शिशु) जिसकी गर्भ में ही मृत्यु हो गई हो। मृतजन्मा।

अंतर्यामिता—स्त्री० [सं० अंतर्यामिन्+तल्—टाप्] अंतर्यामी होने की अवस्था या भाव।

अंतर्यामी (मिन्)—वि० [सं० अतर्√यम् (प्रेरित करना)+णिच्+णिनि] १. अंतःकरण या मन की बात जाननेवाला। २. मन पर अधिकार रखनेवाला।
पुं० ईश्वर। परमात्मा।

अंतर्योग—पुं० [मध्य० स०] मानसिक आराधना या पूजा।

अंतर्रति—स्त्री० [मध्य० स०] मैथुन। संभोग। विशेष दे० 'रति' २।

अंतर्राष्ट्रीय—वि० [सं० अंतर्राष्ट्र मध्य० स०+छ—ईय] १. अपने राष्ट्र की भीतरी बातों से संबंध रखनेवाला। २. अपने राष्ट्र में होनेवाला।
वि० दे० 'अंतर-राष्ट्रीय'।

अंतर्लंब—पुं० [मध्य स०] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके अंदर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका—स्त्री० [मध्य० स०] ऐसी पहेली जिसका उत्तर उसकी पद-योजना में ही निहित होता है। जैसे—एक नारि तरुवर से उतरी, सिर पर उसके पाउँ। ऐसी नारि कुनारि को मैं ना देखन जाउँ॥ का उत्तर 'मैना' (पक्षी) इसके दूसरे चरण की पद-योजना में आया है।

अंतर्लीन—वि० [स० त०] १. अंदर छिपा हुआ। २. डूबा हुआ। मग्न।

अंतर्वंश—पुं० [मध्य० स०] [वि० अंतर्वंशिक] अंतःपुर और उसमें रहनेवाली स्त्रियाँ।

अंतर्वंशिक—पुं० [सं० अंतर्वंश+ठन्—इक] अंतःपुर (महिला निवास) का निरीक्षक।
वि० अंतर्वंश से संबंध रखनेवाला।

अंतर्वर्ग—पुं० [मध्य० स०] किसी वर्ग या विभाग के अन्दर होनेवाला

कोई अन्य छोटा वर्ग या विभाग। (सब-आॅर्डर)

अंतर्वर्ण—पुं० [मध्य० स०] अंतिम या चतुर्थ वर्ण का, अर्थात् शूद्र।

अंतर्वर्ती (र्तिन्)—वि० [अंतर्√वृत् (वरतना)+णिनि] १. अंदर या भीतर रहनेवाला। २. जो अंतर्गत या अंतर्भूत हो। ३. दो तत्त्वों, वातों, वस्तुओं आदि के वीच में रहने या होनेवाला। (इण्टरमीडिएट)

अंतर्वस्तु—स्त्री० [मध्य० स०] १. किसी वस्तु के अंदर होने या रहनेवाली वस्तु। (कन्टेन्ट्स) जैसे—सागर के अंदर होने तथा रहनेवाली मछलियाँ, दवात के अन्दर रहनेवाली स्याही आदि।

अंतर्वस्त्र—पुं० [मध्य० स०] अंदर या अन्य कपड़ों के नीचे पहने जानेवाले वस्त्र। जैसे—कच्छा, पेटीकोट, वनियाइन, लंगोट आदि।

अंतर्वाणिज्य—पुं० [मध्य० स०] वाणिज्य या व्यापार जो किसी देश की सीमा के अंतर्गत, भीतरी भागों में होता है। (इन्टर्नल ट्रेड)

अंतर्वाणी (णि)—वि० [व० स०] शास्त्र जाननेवाला।
पुं० विद्वान्। पंडित।

अंतर्वास (स्)—पुं० [मध्य० स०] दे० 'अंतर्वस्त्र'।

अंतर्वासक—पुं० [व० स०, कप्] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्वासिन—पुं०=अंतरायण।

अंतर्विकार—पुं० [मध्य० स०] १. मन में होनेवाला कोई विकार। २. भूख, प्यास आदि शारीरिक धर्म।

अंतर्वृत्त—पुं० [मध्य० स०] ज्यामिति में वह वृत्त जो किसी आकृति के वीच में इस प्रकार वनाय। जाय कि उसकी आकृति की सभी भुजाओं या रेखाओं को कहीं न कहीं स्पर्श करता हो। (इन्-सर्किल, इन्सका-इब्ड सर्किल)

अंतर्वेग—पुं० [मध्य० स०] १. मन में उत्पन्न होनेवाला कोई कष्टदायक विकार। जैसे—अशांति, चिंता आदि। २. एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर में जलन, तथा सिर में दर्द होता है और प्यास अधिक लगती है।

अंतर्वेद—पुं० [सं० अंतर्वेदि] १. यज्ञ की वेदियों से संपन्न देश। २. गंगा और यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम। ब्रह्मावर्त। ३. दो नदियों के मध्य का देश। दोआवा।

अंतर्वेदना—स्त्री० [प० त०] मन के अन्दर छिपी हुई वेदना।

अंतर्वेदी—वि० [सं० अंतर्वेदि से] १. अंतर्वेद का निवासी। २. दोआवे में रहनेवाला।

अंतर्वेशन—पुं० [सं० अंतर्√विश् (प्रवेश)+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अंतर्वेशित] १. किसी वर्ग या समूह के वीच में उसी तरह की और कोई चीज वाहर से लाकर जमाना, वैठाना या लगाना। (इन्टरपोलेशन) जैसे—किसी कविता में किसी नई पंक्ति या किसी वाक्य में किसी नये शब्द या पद का अंतर्वेशन। २. वह अंश या वस्तु जो इस प्रकार कहीं वैठाई या लगाई जाय। (साहित्य में इसे क्षेपक कहते हैं।)

अंतर्वेशिक—पुं० [सं० अंतर्वेश+ठक्—इक] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्वेशित—भू० कृ० [सं० अंतर्√विश्+णिच्+क्त] जिसका अंतर्वेशन हुआ हो।

अंतर्वेश्म (न्)—पुं० [मध्य० सं०] १. अंतःपुर। जनानखाना। २. मकान का कोई भीतरी कमरा। ३. तहखाना। तलघर।

अंतर्वेश्मिक—पुं० [सं० अन्तर्वेश्मन्+ठन्—इक] दे० 'अंतर्वंशिक'।

अंतर्व्याधि—स्त्री० [मध्य० स०] भीतरी या गुप्त रोग।

अंतर्व्रण—पुं० [मध्य० स०] शरीर का भीतरी घाव या चोट।

अंतर्हस्तीन—वि० [सं० अन्तर्हस्त अव्य० स०,+ख—ईन] जिस तक हाथ की पहुँच हो या हो सके।

अंतर्हास—पुं० [मध्य० स०] मन ही मन मुस्कराने की क्रिया या भाव।

अंतर्हित—भू० कृ० [सं० अन्तर्√धा (धारण करना]+क्त, हि आदेश) जो अंतर्धान हो गया हो।

अंतर्हृदय—पुं० [मध्य० स०] हृदय का भीतरी भाग।

अंत-लघु—पुं० [व० स०] १. वह चरण जिसके अंत में लघु वर्ण या मात्रा हो। २. वह शब्द जिसका अन्तिम वर्ण या मात्रा लघु हो।

अंत-वर्ण—पुं० [प० त०] अन्तिम वर्ण का। शूद्र।

अंत-विदारण—पुं० [व० स०] ग्रहण के दस प्रकार के मोक्षों में से एक।

अंत-वेला—स्त्री०=अंत-काल।

अंत-व्यापत्ति—स्त्री० [प० त०] शब्द के अंतिम अक्षर में होनेवाला परिवर्त्तन।

अंत-शय्या—स्त्री० [प० त०] १. मृत्युशय्या। २. मृत्यु। ३. श्मशान।

अंतश्चित्त—पुं० [मध्य० स०] अंतःकरण। मन।

अंतश्छद—पुं० [मध्य० स०] १. भीतरी तल। २. भीतर का आवरण।

अंत-सद्—पुं० [सं० अंत√सद् (प्राप्ति, वैठना)+क्विप्] शिष्य। चेला।

अंत-समय—पुं० [प० त०] अंत या मृत्यु होने का समय।

अंतस्* —पुं०=अंतःकरण।

अंतस्तल—पुं० [प० त०] १. हृदय या मन। २. अचेतन या सुप्त मन।

अंतस्ताप—पुं० [मध्य० स०] मन में होनेवाला दुःख, व्यथा आदि। मनस्ताप।

अंतस्थ—वि० [सं० अंत√स्था (ठहरना)+क] अंत या अंतिम अंश में रहने या होनेवाला। अंतिम। जैसे—अंतस्थ वर्ण। विशेष—दे० 'अंतःस्थ'।

अंतस्थ-वर्ण—पुं० [कर्म० स०] देवनागरी लिपि में य, र, ल और व ये चार वर्ण।

अंत-स्नान—पुं० [प० त०] यज्ञ की समाप्ति पर किया जानेवाला स्नान।

अंतस्सलिला—स्त्री० [व० स०]=अंतः सलिला।

अंतस्सार—वि० [व० स०] १. भीतर से ठोस। पोढ़ा। २. वलवान।
पुं० [मध्य० स०] १. ठोसपन। २. अंतरात्मा। ३. मन, बुद्धि और अहंकार का समन्वित रूप।

अंतहपुर*—पुं०=अंतःपुर।

अंत-हीन—वि० [तृ० त०] [भाव० अंतहीनता] १. जिसका अन्त न हो। अनंत। २. जिसकी सीमा न हो। निस्सीम।

अंताराष्ट्रीय—वि०=अंतर-राष्ट्रीय।

अंतावरि (री)—स्त्री० [हिं० अंत+सं० आवली] अँतड़ी। आँत।

अंतावसायी (यिन्)—पुं० [सं० अन्त-अव√सो (अंत करना)+णिनि, युक्] १. नाई। नापित। हज्जाम। २. चांडाल।
वि० हिंसा करनेवाला। हिंसक।

अंतिक—वि० [सं०√अत् (वाँधना) घञ्+ठन्-इक] १. समीप या पड़ोस में होने या रहनेवाला। २. अंत तक जानेवाला।

पुं० वह जो समीप या पड़ोस में रहता हो या स्थित हो।

अंतिका—स्त्री० [सं०√अत्+इ, अति+क-टाप्] १. बड़ी बहन। २. चूल्हा। भट्ठी। ३. सातला नामक पौधा।

अंतिम—वि० [सं० अंत+डिमच्] १. एक ही वर्ग की घटनाओं, वस्तुओं आदि के क्रम में सब के अंत में रहने या होनेवाला। जिसके उपरांत या बाद में उस क्रम या वर्ग की ओर कोई घटना या बातें न हो। (लास्ट) जैसे—(क) किसी के जीवन का अन्तिम दिन। (ख) किसी का लिखा हुआ अंतिम पत्र या पुस्तक। २. हद दरजे का। परम।

अंतिम-यात्रा—स्त्री० [कर्म० स०] मृत्यु।

अंतिमेत्थम्—पुं० [अं०अल्टिमेटम के अनुकरण पर बना सं० रूप, अंतिम-इत्थम्, कर्म० स०] एक राज्य का दूसरे राज्य से यह कहना कि यदि हमारी इन अंतिम शर्तों को नहीं मानोगे तो तुम पर चढ़ाई कर देंगे।

अंती—स्त्री० [सं०√अन्त्+इ, अन्ति+ङीष्] चूल्हा।

अंते—अव्य० [सं० अंत=अलग, दूर] किसी और या दूसरी जगह। अन्यत्र।

अंतेउर, (वर)*—पुं० [सं० अंतःपुर] अंतःपुर। जनानखाना।

अंतेवासी (सिन्)—पुं० [सं० अंते√वस् (बसना)+णिनि] १. शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास या साथ रहनेवाला शिष्य। २. गाँव के बाहर रहनेवाला वर्ग या समाज। ३. चांडाल।

वि० पास या साथ रहनेवाला।

अंत्य—वि० [सं० अंत+यत्] सब के अंत में आने, रहने या होनेवाला। अंतिम।

पुं० १. पद्म की संख्या (१,००,००,००,००,००,००,०००)। २. मोथा नामक पौधा। ३. चांडाल। अंत्यज। ४. ज्योतिष में अंतिम नक्षत्र या लग्न।

अंत्यक—पुं० [सं० अंत्य+कन्]=अंत्यज।

अंत्य-कर्म (न्)—पुं० [कर्म० स०] अंत्येष्टि क्रिया।

अंत्य-क्रिया—स्त्री० [कर्म० स०]=अंत्येष्टि।

अंत्य-गमन—पुं० [तृ० त०] उच्च वर्ण की स्त्री का अंतिम वर्ण (शूद्र आदि) के पुरुष के साथ संभोग करना।

अंत्यज—वि० [सं० अंत्य√जन् (उत्पत्ति)+ड] [स्त्री० अन्त्यजा] १. जो अंतिम वर्ण से उत्पन्न हो। २. जिसका संबंध निम्न या अछूत जाति से हो।

पुं० १. छोटी या नीच जाति। २. अस्पृश्य जाति। ३. शूद्र या अछूत।

अंत्य-पद—पुं० [कर्म० स०] गणित में, वर्ग का सबसे बड़ा मूल।

अंत्य-भ—पुं० [कर्म० स०] १. अंतिम या रेवती नक्षत्र। २. मीन राशि।

अंत्य-मूल—पुं० [कर्म० स०]=अंत्य-पद।

अंत्य-युग—पुं० [कर्म० स०] अंतिम युग। कलियुग।

अंत्य-लोप—पुं० [प० त०] शब्द के अंतिम अक्षर के लोप होने की क्रिया या भाव। (व्या०)

अंत्य-वर्ण—पुं० [कर्म० स०] १. अंतिम वर्ण। शूद्र। २. वर्णमाला का अंतिम अक्षर 'ह'। ३. कविता के चरण या पद का अंतिम अक्षर।

अंत्य-विपुला—स्त्री०[ब० स०] आर्याछंद का एक भेद।

अंत्या—स्त्री० [सं० अंत्य-टाप्] अंत्यज जाति की स्त्री।

अंत्याक्षर—पुं० [सं० अंत्य-अक्षर, कर्म० स०] १. किसी शब्द या पद का अंतिम अक्षर। २. वर्ण-माला का अंतिम अक्षर 'ह'।

अंत्याक्षरी—स्त्री० [सं० अंत्याक्षर+अच्-ङीष्) किसी के द्वारा कहे हुए पद्य या श्लोक के अंतिम अक्षर या शब्द से प्रारम्भ किया हुआ नया पद्य या श्लोक।

अंत्यानुप्रास—पुं० [सं० अंत्य-अनुप्रास, कर्म० स०] अनुप्रास शब्दालंकार का एक भेद जिसके अनुसार किसी पद्य के चरणों के अंतिम अक्षर या अक्षरों में सादृश्य होता है।

अंत्यावसायी (यिन्)—वि० [सं० अंत्य-अव√सो (नष्ट करना)+णिनि] अत्यन्त छोटी या नीच जाति का (आदमी)।

अंत्याश्रम—पुं० [सं० अंत्य-आश्रम, कर्म० स०] वर्णाश्रम में अंतिम अर्थात् चौथा आश्रम। सन्यास आश्रम।

अंत्याश्रमी (मिन्)—वि० [सं० अंत्याश्रम+इनि] अंतिम आश्रम में रहनेवाला।

पुं० संन्यासी।

अंत्येष्टि—स्त्री० [सं० अंत्या-इष्टि, कर्म० स०] किसी की मृत्यु होने पर किए जानेवाले कर्म-कांड संबंधी धार्मिक कृत्य या संस्कार। जैसे—हिन्दुओं में दाह-कर्म या ईसाइयों, मुसलमानों आदि में मुरदा गाड़ना।

अंत्र—पुं० [सं०√अन्त् (बाँधना)+ष्ट्रन्] आँत। अँतड़ी।

*पुं० (सं० अंतर) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का समन्वित रूप। अंतःकरण। उदा०—रहेउ चारि को अंतर नैंसुक अंत्र।—जायसी।

अंत्र-कूज—पुं० [ष० त०] आँतों की गुड़गुड़ाहट।

अंत्र-कूजन—पुं०=अंत्र-कूज।

अंत्र-वृद्धि—स्त्री० [ष० त०] आँत उतरने का रोग।

अंत्रांडवृद्धि—स्त्री० [सं० अंड-वृद्धि, ष० त०, अंत्र-अंडवृद्धि, तृ० त०] अंडकोश या फोते में आँत का उतरना और इस कारण उसका फूल जाना। (रोग)

अंत्राद—पुं० [सं० अंत्र√अद् (खाना)+अण्] आँतों में उत्पन्न होनेवाले कीड़े।

अंत्री*—स्त्री० [सं० अंत्र] अँतड़ी। आँत।

अंथऊँ—पुं० [सं० अस्त] सूर्यास्त होने से कुछ पहले किया जानेवाला भोजन। (जैन)

अंथयना—अ० दे० 'अथना' (अस्त होना)।

अंदर—क्रि० वि० [सं० अन्तर, पा० अन्तो; प्रा० अन्त, आंत, फा० अन्तर; गु० अंतर, मरा० आँत, अन्तर] [वि० अंदरी=भीतरी] भीतरी भाग में। भीतर की ओर।

पुं० १. वह जो किसी में स्थित हो या रहे। २. मकान, प्रदेश, स्थान आदि का भीतरी भाग।

अंदरसा—पुं० [सं० इंद्राश ?] चौरेठे या पिसे हुए चावल से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई।

अंदरी—वि० [फा० अंदर+ई] १. अंदर या भीतर का। भीतरी। २. जिसका संबंध अंदर से हो।

अंदवार—पुं० दे० 'अंबड़'।

अंदाज—पुं० [फा०] १. अनुमान। अटकल। २. नाप-जोख। ३. ढब। ढंग। ४. हाव-भाव। कोमल चेष्टाएँ।

वि० फेंकनेवाला (संज्ञा के अंत में)। जैसे—तीरंदाज।

अंदाजन—अव्य० [फा०] १. अंदाज से। अटकल से। अनुमानतः। २. प्रायः। लगभग।

अंदाजपट्टी—स्त्री०=कनकूत।

अंदाजपीटी—स्त्री० [फा० अंदाज+हिं० पिटना] सदा बनाव-सिंगार में लगी रहनेवाली और अंदाज, नखरे दिखानेवाली स्त्री। (गाली)

अंदाजा—पुं० [फा०] १. अटकल। अनुमान। २. कूत।

अँदाना*—स० [सं० अदि=बाँधना, बंधन करना] संपर्क न होने देना। बचाना।

अंदिका—स्त्री० [सं०√अन्द् (बाँधना)+ण्वुल्-अक, टाप्, इत्व] १. चूल्हा। २. बड़ी बहन।

अंदुआ—पुं० [सं० अंदुक] हाथियों के पिछले पैर में डालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का काँटेदार चक्कर।

अंदु—पुं० [सं०√अन्द्+कु] दे० 'आँदू'।

अंदुक—पुं० [सं० अंदु+कन्] दे० 'आँदू'।

अंदू—पुं० [सं०√अन्द्+कू]=आँदू।

अंदूक—पुं० [सं० अंदू+कन्]=आँदू।

अंदेशा—पुं० [फा०]=खटका।

अँदेस†—पुं०=अंदेशा (खटका)।

अंदेह*—पुं० [हिं० अंदेशा] १. खटका। २. सन्देह। उदा०—सब कोई कहै तुम्हारी नारी मोको यही अंदेह रे।—कबीर।

अंदोर—पुं० [सं० आंदोलन] १. कोलाहल। हुल्लड़। २. हलचल।

अंदोरा—पुं०=अंदोर।

अंद्रसस्त्र†—पुं० [सं० इंद्रशस्त्र] वज्र। (डिं०)

अंध—वि० [सं०√अंध् (अंधा होना)+अच्] १. नयन ज्योति से रहित। २. विचार और विवेक से रहित। ३. अविवेकी। ४. जो आँख मूँदकर किया गया हो। आँख बंद करके किया हुआ। जैसे—अंध-अनुकरण, अंध-परंपरा। ५. जिसे आगा-पीछा या भला-बुरा कुछ भी दिखाई न दे। जो असमंजस में पड़ा हो। ६. मूर्ख। नासमझ।

पुं० १. वह जिसे दिखाई न दे। अंधा आदमी। २. अंधकार। अँधेरा। ३. उल्लू पक्षी। ४. चमगादड़। ५. जल। पानी। ६. एक प्रकार के परिव्राजक। ७. पिंगल या छंद शास्त्र के नियमों के विरुद्ध रचना करने का दोष।

अंधक—वि० [सं० अंध+कन्]—अंधा।

पुं० (सं०√अन्ध् (अंधा होना)+ण्वुल्-अक) १. अंधा आदमी। २. कश्यप का एक पुत्र जो शिव के हाथों मारा गया था। ३. बृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य का एक पुत्र। ४. बौद्ध-काल की एक प्राचीन भाषा।

अंधक-रिपु—पुं० [ष० त०] १. दे० 'अंधघाती'। २. अंधकार का शत्रु।

अंधकार—पुं० [अंध√कृ (करना)+अण्] १. प्रकाश, रोशनी का न होना। २. अज्ञान। ३. मोह। ४. उदासी।

अंधकार-युग—पुं० [ष० त०] किसी देश या विषय के इतिहास का वह समय जिस की विशेष बातें अभी अज्ञात हों। (डार्क एज)

अंधकारि—पुं० [सं० अंधक-अरि, ष० त०]=अंधक-रिपु।

अंधकारी—स्त्री० [सं० अंधकार+ङीप्] एक रागिनी जो कहीं-कहीं भैरव राग की रागिनियों में मानी गई है।

अंध-कूप—पुं० [कर्म० स०] १. ऐसा सूखा हुआ कूँआ जिसके अंदर अँधेरे के सिवा और कुछ भी दिखाई न देता हो। २. पुराणानुसार एक नरक का नाम। ३. घोर अंधकार। गहरा अँधेरा। ४. अज्ञान।

अंध-खोपड़ी—वि० [सं० अंध+हिं० खोपड़ी] जिसके मस्तिष्क में कुछ भी बुद्धि न हो। जिसे बुद्धि से मतलब न हो। मूर्ख। जड़।

अंधघाती (तिन्)—पुं० [सं० अंध√हन् (मारना)+णिनि] १. शिव। २. सूर्य। ३. चन्द्रमा। ४. अग्नि।

अंधड़—पुं०=आँधी।

अंध-तमस—पुं० [कर्म० स०, अच्] घोर अंधकार। गहरा अँधेरा।

अंधता—स्त्री० [सं० अंध+तल्—टाप्] १. अंधे होने की अवस्था या भाव। अंधापन। २. मूर्खता।

अंधतामस—पुं० [सं० तमस्+अण्, अंध-तामस, कर्म० स०] घोर अंधकार।

अंध-तामिस्र—पुं० [सं० तमिस्र+अण्, अंध-तामिस्र, कर्म० स०] १. घोर या निविड़ अंधकार। २. पुराणों के अनुसार एक नरक जिसमें घोर अंधकार है। ३. सांख्य दर्शन के अनुसार इच्छा के विघात या विपर्यय के पाँच भेदों में से एक। जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय। ४. योग के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक जिसमें मृत्यु का भय होता है।

अंधधुंध*—क्रि० वि०=अंधाधुंध।

अंध-परंपरा—स्त्री० [ष० त०] बिना सोचे-समझे पुरानी चाल का अनुकरण। भेड़िया-धँसान। बिना सोचे-समझे मानी जानेवाली पुरानी प्रथा या रूढ़ि। परंपरा या प्रथा का होनेवाला अंध-अनुकरण।

अंध-पूतना—स्त्री० [कर्म० स०] सुश्रुत के अनुसार एक बालग्रह (रोग)।

अंधबाई*—स्त्री०=आँधी।

अंधर*—पुं०=१. अंधड़। २. अंधेरा।

अँधरा*—पुं० [सं० अंध] [स्त्री० अँधरी] अंधा। नेत्र-हीन।

अंधला*—वि०=अंधा।

अंधवाह†—पुं०=आँधी।

अंध-विंदु—पुं० [कर्म० स०] आँख के भीतरी परदे का वह विंदु जहाँ किसी आंतरिक कारण से प्रकाश या बाहरी वस्तु का प्रतिबिंब न पहुँचता हो।

अंध-विश्वास—पुं० [ष० त०] बिना सोचे-समझे किया जानेवाला निश्चय अथवा स्थिर किया हुआ मत। विवेक-शून्य धारणा। जैसे—किसी परंपरागत रीतियों, किसी विशिष्ट धर्माचार्यों के उपदेशों, अथवा किसी राजनीतिक सिद्धांत के प्रति होनेवाला अंधविश्वास। (सुपर्सटिशन)

अंध-श्रद्धा—स्त्री० [ष० त०] बिना सोचे-समझे, केवल अंध-विश्वास के कारण की जानेवाली श्रद्धा।

अंधस्—पुं० [सं०√अद् (खाना)+असुन्, नुम्, ध] १. भात। २. खाद्य। ३. सोम नामक वनस्पति या उसका रस।

अंधा—पुं० [सं० अंध] वह जो आँख के दोष या विकार के कारण कुछ भी न देख सकता हो। दृष्टि-शक्ति से रहित प्राणी।

वि० १. जिसकी आँखों में देखने की शक्ति न हो। २. जिसके अंदर कुछ भी दिखाई न दे। जैसे—अंध कोठरी। ३. बिना सोचे-समझे काम करनेवाला। ४. जिसमें कोई विशिष्ट तत्त्व न हो, या न रह गया हो। जैसे—अंधा शीशा। अंधा दिया।

मुहा०—**अंधा बनना**=जानबूझकर किसी बात पर ध्यान न देना। **अंधा बनाना**=बुरी तरह से या मूर्ख बनाकर धोखा देना।

पद—**अंधा भैंसा**=लड़कों का एक खेल जिसमें वे आँखों पर पट्टी बाँधकर एक दूसरे को छूकर उसका नाम बताते और तब उसे भैंसा बनाकर उस पर सवारी करते हैं। ***अंधे की लकड़ी या लाठी***=असहाय का एकमात्र सहारा।

अंधा-कूआँ—पुं० [हिं० अंधा+कूआँ] १. वह गहरा कूआँ जिसमें का पानी सूख गया हो और जिसमें मिट्टी भर गई हो। २. बहुत गहरा और अंधेरा कूआँ। ३. उदर। पेट। (लाक्ष०)

अंधा-धुंध—स्त्री० [हिं० अंधा+धुंध] १. गहरा अँधेरा। घोर अंधकार। २. ऐसी अवस्था या व्यवस्था जिसमें क्रम, विचार, संगति आदि का नाम भी न हो। धींगा-धींगी। ३. अन्याय। अत्याचार। दुराचार।

वि० १. विचार, विवेक आदि से रहित। २. बहुत अधिक। जैसे—अंधाधुंध बिक्री।

क्रि० वि० १. बिना कुछ भी सोचे-समझे हुए। बेतहाशा। जैसे—अंधाधुंध दौड़ना। २. बहुत अधिकता से। जैसे—अंधाधुंध पानी बरसना।

अंधानुकरण—पुं० [सं० अंध-अनुकरण, ष० त०] बिना सोचे-समझे किया जानेवाला किसी का अनुकरण।

अंधार—पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार] १. अँधेरा। अंधकार।

वि० जिसमें या जहाँ अँधेरा हो। अंधकारपूर्ण।

पुं० (?) रस्सियों का वह जाल जिसमें घास, भूसे आदि के गट्ठर बाँधते हैं।

अंधारा†—पुं० [हिं० अँधेरा] १. अंधकार। अंधेरा। २. कृष्ण-पक्ष।

वि०=अंधेरा।

अंधारी—स्त्री० [हिं० अँधार+ई] १. आँधी। अंधड़। (डिं०) २. दे० 'अँधियारी'।

अंधाहुली—स्त्री० [सं० अधःपुष्पी] चोर पुष्पी नामक पौधा।

अंधिका—स्त्री० [सं०√अंध् (दृष्टि-नाश या प्रेरणा)+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] १. रात। रात्रि। २. एक प्रकार का खेल, कदाचित् आँखमिचौनी। ३. आँख का एक रोग। ४. स्त्रियों का एक भेद या वर्ग।

अँधियार—पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार] अँधेरा। अंधकार।

वि० अंधकारपूर्ण।

अँधियारा—पुं०=अँधेरा।

वि० १. अंधकारपूर्ण। २. धुंधला। ३. उदास और सुनसान।

अँधियारी—स्त्री०=अँधेरी।

अंधियाली—स्त्री०=अँधियारी।

अंधुल—पुं० [सं०√अंध्+उलच्] सिरिस का पेड़।

अंधेर—पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार] १. ऐसी व्यवस्था, स्थिति, या शासन जिसमें औचित्य, न्याय आदि का कुछ भी विचार न होता हो। २. अशांति या विप्लव की स्थिति।

अंधेर-खाता—पुं० [हिं० अंधेर+खाता] १. औचित्य, न्याय आदि के विचार का पूरा अभाव। २. मनमानी कार्रवाई या व्यवस्था।

अंधेर गरदी—स्त्री०=अंधेर-खाता।

अंधेर नगरी—स्त्री० [हिं० अंधेर=अन्याय+नगरी] ऐसा स्थान जहाँ नियम, न्याय, व्यवस्था आदि का पूरा अभाव हो। जहाँ अनीति, अव्यवस्था और कुप्रबन्ध हो।

अँधेरना*—स० [हिं० अंधेर] १. अंधकार फैलाना। अँधेरा करना। २. बहुत ही मन-माना व्यवहार या अंधेर करना।

अँधेरा—पुं० [सं० अंधकार, पा० अंधकारो, प्रा० अंधयार>अंधार, बं० आंधार, ओ० अधार, गु० अंधारू, अंधेरू, सिं० अंधारू, पं० अन्हेरा, मै० अन्हरिया, सिंह० अन्दुर] १. वह समय या स्थिति जिसमें प्रकाश या रोशनी न हो। अंधकार।

पद—**अंधेरा गुप्प** [घप्प]=ऐसा अंधकार जहाँ कुछ सूझता ही न हो। **अँधेरा पाख या पक्ष**=चांद्र मास का कृष्ण पक्ष। **अँधेरे घर का उजाला**=(क) वह जो अंधकार को दूर कर दे। (ख) कीर्ति बढ़ानेवाला। शुभ। (ग) ***अँधेरे उजले***=उपयुक्त-अनुपयुक्त समय में। समय-कुसमय। **अँधेरे मुँह या मुँह अँधेरे**=पौ फटते समय। बहुत तड़के।

२. धुंधलापन। ३. उदासी की स्थिति। ४. ऐसी अवस्था जिसमें मनुष्य हताश होकर यह न समझ सके कि अब क्या करना चाहिए।

वि० [स्त्री० अँधेरी] जिसमें प्रकाश न हो या बहुत कम हो।

अँधेरा-पक्ष—पुं० [हिं० अँधेरा+पक्ष] पूर्णिमा से अमावस्या तक के १५ दिन। चांद्र मास का कृष्ण पक्ष।

अँधेरिया—वि० [हिं० अँधेरा] जिसमें बहुत अँधेरा हो। जो अंधकार-पूर्ण हो।

स्त्री० १. अँधेरी रात। २. अँधेरा पक्ष। ३. अँधेरा। अंधकार।

अँधेरी—स्त्री० [हिं० अँधेरा+ई] १. अंधकार। तम। २. अँधेरी रात। ३. आँधी। अंधड़। ४. चौपायों, पक्षियों आदि की आँखों पर बाँधी जानेवाली पट्टी। ५. लोहे की वह जाली जो युद्ध-क्षेत्र में जानेवाले घोड़ों के मुँह पर लगाई जाती है। ६. वह पट्टी जो पशुओं की आँखों पर बाँधी जाती है।

मुहा०—**अँधेरी डालना या देना**=(क) किसी की आँखें बंद करके उसकी दुर्गति करना। (ख) धोखा देना।

अँधेरी कोठरी—स्त्री० [हिं०] १. पेट। २. ऐसा स्थान या स्थिति जिसमें अंदर की बातों का पता न चले। ३. स्त्रियों का गर्भाशय।

अंधौटा†—स्त्री० [सं० अन्ध+पट, प्रा० अंधवटी] [स्त्री० अँधौटी] घोड़ों, बैलों आदि की आँखों पर बाँधा जानेवाला कपड़ा।

अँधौरी†—स्त्री०=अम्हौरी (पित्ती)।

अंध्यार*—वि०=अँधेरा।

अंध्यारी—स्त्री०=अँधेरी।

अंध्र—पुं० [सं०√अंध्+रन्] १. बहेलिया। व्याध। २. शास्त्रों के अनुसार एक प्राचीन संकर जाति। ३. दक्षिण भारत का आंध्र राज्य। ४. मगध का एक प्राचीन राजवंश।

अंध्र-भृत्य—पुं० [ब० स०] एक प्राचीन राजवंश जिसने अंध्रवंश के पश्चात् मगध का शासन किया था।
अंबवर—पुं० [सं० अंबर+वर] अच्छा वस्त्र। (डिं०)
अंब—पुं० [सं० अंबर] आकाश। गगन। उदा०—उडीयण वरिज अंब हीर।—चंद।
पुं० [सं० आम्र] आम का वृक्ष और उसका फल।
स्त्री०=अंबा (माता)।
अंबक—पुं० [सं०√अम्ब् (जाना)+ण्वुल्—अक] १. आँख। नेत्र। २. ताँबा। ३. पिता।
अंबख*—पुं०=अंबक।
अंबर—पुं० [सं०√अव् (शब्द)+घञ्—अंब√रा (दान)+क] १. घेरा। परिधि। २. कपास। ३. कपड़ा। वस्त्र। ४. एक विशेष प्रकार का रेशमी कपड़ा। ५. आकाश।
मुहा०—अंबर के तारे डिगना=असंभव घटना घटित होना। उदा०—अंबर के तारे डिगैं जूआ लाडैं बैल।—कोई कवि।
६. बादल। मेघ। ७. ब्रह्मरंध्र। ८. अमृत। ९. अबरक। १०. उत्तर भारत के एक प्रदेश का पुराना नाम। ११. एक प्रसिद्ध सुगंधित द्रव्य जो ह्वेल मछली की आँतों में से निकाला जाता है।
अंबर-चर—वि० [सं० अंबर√चर् (गति)+ट] आकाश में चलनेवाला। पुं० १. पक्षी। चिड़िया। २. विद्याधर (देव-योनि)।
अंबर-चारी(रिन्)—पुं० [सं० अंबर√चर+णिनि] आकाश में चलनेवाले पक्षी आदि।
अंबर-डंबर—पुं० [सं० अंबर=आकाश] सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा में दिखाई पड़नेवाली लाली। उदा०—अंबर-डंबर साँझ के ज्यों बालू की भीत।—अज्ञात।
अंबर-द—पुं० [सं० अंबर√दा (देना)+क] कपास जिससे कपड़े बनते हैं।
अंबर-पुष्प—पुं० [ष० त०]=आकाश-कुसुम।
अंबर-बारी—स्त्री०=दारुहल्दी।
अंबरबेलि—स्त्री०=आकाश-बेल।
अंबर-मणि—पुं० [ष० त०] सूर्य।
अंबरसारी—पुं० [?] प्राचीन काल में घरों पर लगनेवाला एक प्रकार का कर या टैक्स।
अंबरांत—पुं० [सं० अंबर—अंत. ष० त०] क्षितिज।
अँबराई—स्त्री०=अमराई।
अँबराउँ—पुं०=अमराई।
अँबराव—पुं०=अमराई।
अँबरी—वि० [हिं० अंबर+ई (प्रत्य०)] जिसमें अंबर (एक सुगंधित द्रव्य) पड़ा या मिला हो। अंबर की सुगंधि से युक्त। जैसे—अंबरी बिरियानी।
अंबरीष—पुं० [सं०√अंब् (पाक)+अरिष, नि० दीर्घ] १. विष्णु। २. शिव। ३. सूर्य। ४. ग्यारह वर्ष की अवस्था का बालक। ५. युद्ध। लड़ाई। ६. आमड़े का वृक्ष और उसका फल। ७. पश्चात्ताप। ८. भाड़। भड़साईं। ९. मिट्टी का वह बरतन जिसमें अनाज के दाने (भाड़ में) भूने जाते हैं। १०. अयोध्या के एक प्रसिद्ध और प्राचीन सूर्यवंशी राजा जो इक्ष्वाकु से २८वीं पीढ़ी में हुए थे।
अंबरीलक*—पुं० [सं० अम्बरीष] भाड़। भड़साईं। (डिं०)
अंबरौक (स्)—पुं० [सं० अंबर—ओकस्, ब० स०] देवता।
अंबल†—वि०=अम्ल।
पुं०=अमल।
अँबली—पुं० [सं० अंबर] एक प्रकार की गुजराती कपास।
अंबष्ठ—पुं० [सं० अंब√स्था (ठहरना)+क] [स्त्री० अंबष्ठा] १. एक प्राचीन जनपद जो चनाव नदी के निचले भाग के दोनों ओर बसा था। २. उक्त प्रदेश का निवासी। ३. ब्राह्मण पिता और वैश्य माता से उत्पन्न एक जाति का पुराना नाम। ४. महावत। ५. कायस्थ जाति का एक वर्ग या शाखा।
अंबष्ठा—स्त्री० [सं० अंबष्ठ+टाप्] १. अंबष्ठ जाति की स्त्री। २. पाढ़ा नाम की लता। ३. जूही।
अंबष्ठिका—स्त्री० [सं० अंबष्ठ+कन्—टाप्, इत्व]=अंबष्ठा।
अँबहर—पुं० [सं० अंबर] आकाश।
पुं० दे० 'अमहर'।
अंबा—स्त्री० [सं०√अंब् (गति)+घञ्—टाप्] १. जननी। माता। २. पार्वती। ३. काशिराज इंद्रद्युम्न की सबसे बड़ी कन्या जिसे भीष्म हर ले गए थे। ४. यमुना नदी की एक शाखा। ५. पाढ़ा लता।
†पुं०=आम (वृक्ष और फल)।
अंबाझोर—वि० [हिं० अंबा=आम+झोरना] बहुत तेज हवा (जिससे पेड़ों के आम झड़ जायँ)।
अँबाड़ा—पुं०=आमड़ा।
अंबापोली—स्त्री० [सं० आम्र=आम, प्रा० अंब+सं० पोलि=रोटी] अमावट।
अंबार—पुं० [फा०] ढेर। राशि।
अंबारी—स्त्री० [अ० अमारी] १. एक प्रकार का छज्जेदार मंडपवाला हौदा। २. मकान के अगले या ऊपरी भाग में बना हुआ उक्त प्रकार का मंडप।
स्त्री० (?) पटसन। (दक्षिण)
अंबालिका—स्त्री० [सं० अंबा√ला (लेना)+क—टाप्, इत्व] १. माता। २. काशी के राजा इंद्रद्युम्न की छोटी कन्या जिसे भीष्म पितामह हर ले गए थे। ३. अंबष्ठा या पाढ़ा नाम की लता।
अंबिका—स्त्री० [सं० अंबा+कन्—टाप्, इत्व] १. माता। माँ। २. दुर्गा। ३. पार्वती। ४. जैनियों की एक देवी। ५. काशी के राजा इंद्रद्युम्न की कन्या जिसे भीष्म पितामह हर ले गए थे और जिसके गर्भ से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे। ६. कुटकी नाम का पौधा। ७. दे० 'अंबा'।
अंबिका-पति—पुं० [ष० त०] शिव।
अंबिका-वन—पुं० [ष० त०] पुराणों के अनुसार एक वन जहाँ पहुँचने पर पुरुष स्त्री बन जाता था।
अंबिकेय—पुं० [सं० अंबिका+ढ—एय] १. अंबिका के पुत्र—गणेश। २. कार्तिकेय। ३. धृतराष्ट्र।
अँबिया—स्त्री० [सं० आम्र, प्रा० अंब] छोटा कच्चा आम।
अँब्रिरया*—वि०=वृथा।

अंविली†—स्त्री०=इमली (का वृक्ष और उसका फल)।

अंबु—पुं० [सं०√अंब् (शब्द)+उ] १. जल। पानी। २. रक्त या खून में का जलीय अंश। ३. (जल को चौथा तत्त्व मानने के कारण) चार का अंक या संख्या। ४. जन्म-कुंडली में चौथा घर या स्थान। ५. सुगंधवाला।

अंबु-कंटक—पुं० [ष० त०] मगर नाम का जल-जंतु।

अंबु-कीश—पुं० [स० त०] सूँस नामक जल-जंतु।

अंबु-कूर्म—पुं० [स० त०] सूँस (जल-जंतु)।

अंबु-केशर—पुं० [स० त०] नीबू।

अंबु-घन—पुं० [ष० त०] ओला।

अंबु-चर—वि० [सं० अंबु√चर् (गति)+ट] जल में रहनेवाला। पुं० जल में रहने या विचरण करनेवाला जंतु या जीव।

अंबु-चत्वर—पुं० [ष० त०] झील।

अंबु-चामर—पुं० [स० त०]=सिवार।

अंबु-चारी (रिन्)—पुं० [सं० अंबु√चर्+णिनि]=अंबुचर।

अंबुज—वि० [सं० अंबु√जन् (उत्पन्न होना)+ड] [स्त्री० अंबुजा] जो जल से या जल में उत्पन्न हुआ हो। जैसे—कमल, कुमुदिनी आदि।
पुं० १. जल से उत्पन्न वस्तु। २. कमल। ३. ब्रह्मा। ४. चंद्रमा। ५. शंख। ६. वज्र। ७. पनिहा या हिज्जल नामक वृक्ष। ८. सारस पक्षी। ९. कपूर। १०. बेंत।

अंबुजा—स्त्री० [सं० अंबुज+टाप्] १. कुमुदिनी। २. कमलिनी। ३. संगीत में एक रागिनी।

अंबुजाक्ष—वि० [सं० अंबुज-अक्षि, ब० स०, अच्] जिसके नेत्र कमल के समान हों।
पुं० विष्णु।

अंबु-जात—वि०, पुं० [पं० त०]=अंबुज।

अंबुजासन—पुं० [सं० अंबुज-आसन, ब० स०] ब्रह्मा।

अंबु-ताल—पुं० [स० त०]=सिवार।

अंबुद—वि० [सं० अंबु√दा (दान)+क] जल देनेवाला।
पुं० १. बादल। मेघ। २. मोथा।

अंबु-धर—वि० [सं० अंबु√धृ (धारण करना)+अच्] जल धारण करनेवाला।
पुं० बादल। मेघ।

अंबु-धि—वि० [सं० अंबु√धा (धारण)+कि] जिसमें जल हो।
पुं० १. समुद्र। २. चार की संख्या। ३. जल रखने का पात्र या बरतन।

अंबु-नाथ—पुं० [ष० त०] १. समुद्र। २. वरुण।

अंबु-निधि—पुं० [ष० त०] सागर। समुद्र।

अंबु-प—वि० [सं० अंबु√पा (पीना या रक्षा)+क] पानी पीनेवाला।
पुं० १. समुद्र। २. वरुण। ३. शतभिषा नक्षत्र। ४. चक्रमर्दक या चकवँड़ नामक पौधा।

अंबु-पति—पुं० [ष० त०] १. समुद्र। २. वरुण।

अंबु-पत्रा—स्त्री० [ब० स०] एक प्रकार का पौधा। नागरमोथा।

अंबु-पालक—पुं० [ष० त०] [स्त्री० अंबुपालिका] पानी भरनेवाला सेवक। पनभरा।

अंबु-भव—पुं० [ब० स०] कमल।

अंबु-भृत्—पुं० [सं० अंबु√भृ (धारण-पोषण)+क्विप्] १. बादल। मेघ। २. नागरमोथा नामक पौधा। ३. समुद्र। ४. अभ्रक। अबरक।

अंबुमती—स्त्री० [सं० अंबु+मतुप्-ङीप्] एक प्राचीन नदी का नाम।

अंबु-राज—पुं० [ष० त०] १. समुद्र। २. वरुण।

अंबु-राशि—पुं० [ष० त०] जल की राशि। सागर।

अंबु-रुह—पुं० [सं० अंबु√रुह् (उत्पन्न होना)+क] कमल।

अंबु-वाची—पुं० [सं० अंबु√वच् (बोलना)+णिच्+अण्-ङीप्] १. आर्द्रा नक्षत्र का पहला चरण जिसमें पृथ्वी रजस्वला मानी जाती है। २. उक्त अवसर पर रखा जानेवाला एक प्रकार का व्रत।

अंबु-वासी (सिन्)—पुं० [सं० अंबु√वस् (निवास)+णिनि] पाटला नाम का पौधा।

अंबु-वाह—पुं० [सं० अंबु√वह् (बहना)+अण्] १. बादल। २. नागर-मोथा (पौधा)। ३. झील।

अंबु-वाही (हिन्)—वि० [सं० अंबु√वह् (ढोना)+णिनि] [स्त्री० अंबुवाहिनी] पानी लानेवाला।
पुं० १. बादल। मेघ। २. नागरमोथा (पौधा)।

अंबु-वेतस्—पुं० [मध्य० स०] पानी में होनेवाला एक प्रकार का बेंत। जलबेंत।

अंबु-शायी (यिन्)—पुं० [सं० अंबु√शी (सोना)+णिनि] समुद्र में शयन करनेवाले विष्णु।

अंबु-सर्पिणी—स्त्री० [सं० अंबु√सृप् (गति)+णिनि, ङीप्] जोंक।

अंबोधि—पुं०=अंबुधि।

अंबोह—पुं० [फा०] १. जनसमूह। २. भीड़।

अंब्रित*—पुं०=अमृत।

अंभःस्तंभ—पुं० [ष० त०] मंत्रों के बल से वर्षा या जल का प्रवाह रोकने की क्रिया या विद्या।

अंभ (स्)—पुं० [सं०√अंभ् (ध्वनि)+असुन्] १. जल। पानी। २. समुद्र। सागर। ३. देवता। ४. असुर। राक्षस। ५. पितृ। पितर। ६. पितृलोक। ७. सांख्य में चार प्रकार की आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक जिसमें मनुष्य यह समझकर संतोष करता है कि धीरे-धीरे प्रकृति से मुझे आप ही ज्ञान प्राप्त हो जायगा। ८. जन्म-कुंडली में चौथा स्थान। ९. चार की संख्या। १०. एक प्रकार का छंद या वृत्त।
†पुं० [सं० अभ्र] बादल। मेघ।

अंभ-थंभ—*पुं० दे० 'अंभःस्तंभ'।

अंभनिधि—पुं०=अंभोधि।

अंभसार—पुं० [सं० अंभःसार] मोती।

अंभसू*—पुं० [सं० अंभः सू] १. धुआँ। २. भाप। वाष्प।

अंभु—पुं०=अंबु।

अंभोज—वि० [सं० अंभस्√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जल में या जल से उत्पन्न होनेवाला।
पुं० १. कमल। २. कपूर। ३. शंख। ४. चन्द्रमा। ५. सारस पक्षी।

अंभोज-जन्मा (न्मन्)—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।
अंभोज-योनि—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।
अंभोजिनी—स्त्री० [सं० अंभोज+इनि-ङीप्] १. कमलिनी। २. कमलों का समूह।
अंभोद—वि० [सं० अंभस्√दा (देना)+क] पानी देनेवाला।
पुं० १. बादल। मेघ। २. नागरमोथा।
अंभोधर—पुं० [सं० अंभस्√धृ (धारण)+अच्] १. बादल। २ नागरमोथा।
अंभोधि—पुं० [सं० अंभस्√धा (धारण)+कि] समुद्र। सागर।
अंभोनिधि—पुं० [सं० अंभस्-निधि, ष० त०] समुद्र।
अंभोराशि—पुं० [सं० अंभस्-राशि, ष० त०] समुद्र।
अंभोरुह—पुं० [सं० अंभस्√रुह् (उत्पन्न होना)+क] १. कमल। २. सारस।
अंभौरी—स्त्री०=अम्हौरी।
अंमर*—पुं०=अंबर।
वि०=अमृत।
अंमि*—पुं०=अमृत।
स्त्री०=अँबिया (आमका छोटा फल)।
अँवदा—वि०= औंधा।
अँवरा—पुं०=आँवला।
अँवला!—वि० [सं० अवल] १. अस्वस्थ। २. व्यथापूर्ण। ३. दुःखी या पीड़ित। उदा०—काहाँरली वधाँमर्णा, काँही अवँलउ अंग।—ढोलामारू।
वि० [सं० अवर] १. उलटा। २. औंधा। ३. चक्करदार।
पुं०=आँवला।
अंश—पुं० [सं०√अंश् (बाँटना या विभक्त करना)+अच्] [वि० आंशिक, क्रि० वि० अंशतः] १. एक ही इकाई या वस्तु के कई अंगों या अवयवों में से हर अंग या अवयव। पूरे या समूचे का कोई खंड, टुकड़ा या भाग। (पार्ट) जैसे—रक्त भी हमारे शरीर का एक अंश है। २. धन, श्रम आदि की वह मात्रा जो व्यक्तिगत रूप से, अलग-अलग या मिलकर किसी कार्य के संपादन में लगाई जाती है। पत्ती। हिस्सा। (शेयर) जैसे—इस व्यापार में चारों भाइयों के समान अंश हैं। ३. उक्त व्यापार के फलस्वरूप प्राप्त या विभक्त होनेवाली हानि-लाभ आदि की मात्रा। ४. गणित में, पूरे एक या किसी इकाई के कई बराबर भाग। (फ्रैक्शन) ५. चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहों के प्रकाश, प्रखरता आदि के विचार से उनका सोलहवाँ भाग। कला। ६. माप-क्रम के लिए किये जानेवाले विभागों में से हर एक। जैसे—(क) ८० अंश का ताप-मान। (ख) भूमध्य रेखा से १३० अंश की दूरी आदि। (डिग्री) ७. ज्यामिति में, वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग। (डिग्री) ८. उत्तराधिकार। ९. जूए में दाँव पर लगाया जानेवाला धन। १०. एक आदित्य का नाम। ११. दिन। १२. कंधा।
अंशक—वि० [सं०√अंश्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० अंशिका] १. अंग, खंड, टुकड़े या विभाग करनेवाला। २. अंशधारी।
पुं० [सं० अंश+कन्] १. भाग। हिस्सा। २. दिन।
पुं० [√अंश्+ण्वुल्—अक] भागी। हिस्सेदार।
अंशतः—क्रि० वि० [सं० अंश+तस्] केवल कुछ अंशों या हिस्सों में। आंशिक रूप में। (पार्टली, इन्-पार्ट)
अंश-दाता (तृ)—पुं० [ष० त०] १. वह जो अंश या भाग दे। २. किसी सामूहिक या सार्वजनिक निधि या कोष में अपना अंश सहायता या दान रूप में देनेवाला। (कान्ट्रिब्यूटर)
अंश-दान—पुं० [ष० त०] अपने अंश या हिस्से के रूप में किसी को कुछ देना या किसी कार्य में योग देना। तन, धन या मन से सहायक होना। (कान्ट्रिब्यूशन)
अंशदानिक—वि० [सं० अंशदान+ठन्—इक] अंशदान या सहांश के रूप में होनेवाला। सहांशिक। (कॉन्ट्रिब्यूटरी)
अंशधर—पुं० [सं० अंश√धृ (धारण करना)+अच्]=अंशधारी।
अंशधारी (रिन्)—पुं० [सं० अंश√धृ+णिनि] १. अंशधारण करनेवाला। २. हिस्सेदार। (शेयर होल्डर)
अंशन—पुं० [सं√अंश्+ल्युट्—अन] १. अंश, भाग या हिस्से करना या लगाना। २. अंशों में चिह्न, मान आदि स्थिर करके उन्हें अंकित या चिह्नित करना। (कैलिब्रेशन)। ३. पूरी संख्या या इकाई के खंड, टुकड़े या विभाग करना। (फ्रैक्शनेशन)
अंश-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र जिसमें किसी व्यापार या संपत्ति के हिस्सेदारों के अधिकारों और हिस्सों का विवरण हो। हिस्सेदारी का दस्तावेज या लेख्य।
अंश-मापक—वि० [ष० त०] अंश, भाग आदि नापनेवाला।
अंश-मापन—पुं० [ष० त०] [वि० अंशमापक] किसी वस्तु या यंत्र के अंशों को नापने की क्रिया या भाव। जैसे—तापमापक यंत्र के अंश नापने का कार्य अंश-मापन कहलाता है।
अंशल—वि० [सं० अंश+लच्] हिस्सों का मालिक। हिस्सेदार।
पुं० चाणक्य का एक नाम।
अंश-सुता—स्त्री० [ष० त०] यमुना नदी।
अंशांकन—पुं० [सं० अंश-अंकन, ष० त०] [भू० अंशांकित] १. किसी संख्या, इकाई आदि के विभिन्न विभाग करके उनपर अलग-अलग सूचक चिह्न या रेखाएँ अंकित करना। २. उक्त प्रकार के विभाग स्थिर करके उनका ठीक-ठीक क्रम लगाना। (ग्रैजुएशन)
अंशांकित—भू० कृ० [सं० अंश-अंक, ष० त०,+इतच्] १. जिसका अंशांकन हुआ हो। २. जो किसी क्रम विशेष से लगाया गया हो। (ग्रैजुएटेड)
अंशापन—पुं० [सं०√अंश्+णिच्-पुक्+ल्युट्—अन] किसी चीज के अंश या विभाग करके उसके अलग-अलग अंश या विभाग निश्चित या स्थिर करना। अंशों का विभाजन करना। (अपोर्शनमेण्ट)
अंशावतार—पुं० [सं० अंश-अवतार, ष० त०] ईश्वर का वह अवतार जिसमें ईश्वरता के कुछ ही अंश हों, पूर्णता न हो।
अंशी (शिन्)—वि० [सं० अंश+इनि] [स्त्री० अंशिनी] १. अंश रखनेवाला। अंशधारी। २. जिसमें विशेष रूप से ईश्वर का अंश दिखाई दे। अवतारी।
पुं० १. किसी व्यापारिक संस्था या संपत्ति में अंश या हिस्सा रखनेवाला।

साझीदार। २. किसी अंश या हिस्से का स्वामी। ३. नाटक का नायक। ४. हिन्दू परिवार में संपत्ति या बँटवारे का लेख या दस्तावेज।

अंशु—पुं० [सं०√अंश्+कु] १. सूर्य। २. सूर्य की किरण। ३. डोरा। सूत। ४. एक प्राचीन ऋषि। ५. बहुत छोटा भाग या अंश।

अंशुक—पुं० [सं० अंशु+क] १. कपड़ा। वस्त्र। २. बहुत महीन कपड़ा। ३. रेशमी कपड़ा। ४. उपरना। दुपट्टा। ५. ओढ़ना। चादर। ६. तेजपत्ता।

अंशु-जाल—पुं० [ष० त०] किरणों का जाल या समूह।

अंशु-धर—पुं० [ष० त०] सूर्य।

अंशु-नाभि—स्त्री० [ष० त०] वह विंदु या स्थान जिसपर प्रकाश की रेखाएँ तिरछी होकर और मिलकर एक साथ गिरती हों।

अंशु-पति—पुं० [ष० त०] सूर्य।

अंशुमत—पुं०=अंशुमान्।

अंशु-मर्दन—पुं० [ष० त०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। विशेष—दे० 'ग्रहयुद्ध'।

अंशुमान् (मत्)—पुं० [सं० अंशु+मतुप्] १. सूर्य। २. अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा।

अंशु-माला—स्त्री० [ष० त०] सूर्य की किरणें या उनका जाल।

अंशुमाली (लिन्)—पुं० [सं० अंशु√मल् (धारण)+णिनि] सूर्य।

अंशुल—वि० [सं० अंशु√ला (आदान)+क] अंशु या चमकवाला। चमकीला।

पुं० चाणक्य का एक नाम।

अंषि*—स्त्री० [सं० अक्षि] आँख।

अंस।—पुं० [सं० अश्व] घोड़ा।

पुं० [सं० अंश] १. अंश। भाग। हिस्सा। २. तत्त्व। ३. सारभाग। ४. कंधा। उदा०—अंसनि धनु सर-कर कमलनि कटि कसे हैं निखंग बनाई।—तुलसी।

अंसु*—पुं०=अंशु (किरण)।

अँसुआ*—पुं०=आँसू।

अँसुआना*—अ० [सं० अश्रु] आँखों में आँसू भर आना। आँख डबडबा जाना।

अँसुवा—पुं०=आँसू।

अंह (स्)—पुं० [सं०√अम् (गति)+असुन्, हुक् आगम] १. पाप। २. कष्ट। ३. चिंता। ४. बाधा। विघ्न।

अँहठा—पुं० [देश०] जुलाहों का लकड़ी का गज जो दो हाथ लंबा होता है।

अँहड़ा।—पुं० [देश०] तौलने का बाट। बटखरा।

अंहड़ी—स्त्री० [?] एक प्रकार की लता जिसकी फलियों के बीज दवा के काम आते हैं।

अंहस्पति—पुं० [सं० ष० त०] क्षयमास।

अइना।—पुं०=आईना (दर्पण)।

अइया।—स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइसन।—वि०=ऐसा।

अइसा।—वि०=ऐसा।

अइहइ।—क्रि० वि०=ऐसे।

अउ*—अव्य०=और।

अउझक।—क्रि० वि०=औचक।

अउठा।—पुं० [?] जुलाहों का एक प्रकार का गज।

अउत*—वि० [सं० अयुक्त] जो युक्ति-संगत या ठीक न हो। अर्थात् अनुचित या अनुपयुक्त। उदा०—अउत होइ घड़ि छोड़ौ हो राम।—नरपति नाल्ह।

अउघू*—पुं०=अवधूत।

अउर*—अव्य०=और।

अउरौ।—पद [हिं० अउर=और] १. और भी। २. इसके अतिरिक्त या सिवा।

अउलगना।—अ० [सं० उल्लंघन] १. उल्लंघन करना। उलाँघना। २. प्रवास या यात्रा करना।

अउहेर।—स्त्री०=अवहेलना (अवज्ञा)।

अउहेरना।—अ० [सं० अवहेलन] अवज्ञा या अवहेलना करना।

अऊत—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत] [स्त्री० आऊती] जिसे पुत्र या संतान न हो। निःसंतान।

अऊलना*—अ०=औलना।

अएरना*—स० [सं० अङ्गीकरण, प्रा० अंगिअरण, हिं० अँगेरना] अङ्गीकार या ग्रहण करना।

स० दे० 'अटेरना'।

अकंटक—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें काँटे न हों। कंटक-रहित। २. विघ्न-बाधा आदि से रहित।

अकंप—वि० [सं० न० ब०] [भाव० अकंपत्व] जिसमें कंपन न हो। स्थिर।

अकंपन—पुं० [सं० न० त०] १. कंपन का अभाव। २. [न० ब०] रावण की सेना का एक राक्षस।

अकंपित—भू० कृ० [सं० न० त०] जिसमें कंपन न हुआ हो।

पुं० बौद्ध-गणाधिपों का एक भेद या वर्ग।

अकंप्य—वि० [सं० न० त०] जिसे कँपाया न जा सके। अटल।

अक—पुं० [सं० अ=नहीं—क=सुख, न० त०] १. सुख का अभाव। २. सुख का विरोधी भाव। कष्ट, दुःख, विपत्ति आदि।

।पुं० [सं० अघ] पाप। उदा०—बरबस करत विरोध हठि, होन चहत अक-हीन।—तुलसी।

।पुं०=आक (मदार)।

अकच—वि० [न० ब०] जिसके सिर पर कच या बाल न हों। गंजा।

पुं० केतु ग्रह का एक नाम।

अकचकाना—अ० [सं० चकित] आश्चर्य में आना। चकित होना।

अकच्छ—वि० [सं० अ=रहित+कच्छ वा कक्ष=काछा या धोती] १. जिसके शरीर पर कपड़ा न हो। नंगा। २. दुराचारी। लंपट।

अकटुक—वि० [न० त०] १. जो कटु अथवा कड़ुवा न हो। २. जो थका न हो। अक्लांत। ३. जो जल्दी थके नहीं।

अकड़—स्त्री० [सं० आ=अच्छी तरह+कड्ड=कड़ा होना] १. अकड़ने अथवा ऐंठने की क्रिया या भाव। तनाव। ऐंठ। २. अभिमान। शेखी। ३. धृष्टता। ढिठाई।

अकड़ना—अ० [हिं० अकड़+ना प्रत्य०] १. कड़े होने या सूखने

के कारण खिंचना या तनना। ऐंठना। २. अभिमान या घमंड दिखाना। इतराना। ३. अभिमान, मूर्खता आदि के कारण दुराग्रह या धृष्टता करना। ४. सरदी के कारण ठिठुरना या स्तब्ध होना।

अकड़-फों—पुं० [हिं० अकड़+फों (अनु०)] बहुत ही अभिमान भरा आचरण और व्यवहार।

अकड़वाई—स्त्री० [सं० कड्ड=कड़ापन+हिं० वाई=वात] एक वात रोग जिसमें नसें तन जाती हैं और शरीर में पीड़ा होने लगती है।

अकड़बाज—वि० [हिं० अकड़+फा० बाज] १. अकड़ अथवा ऐंठ दिखलानेवाला। घमंडी। २. लड़ाका।

पुं० वह जो अनुचित हठ या अभिमान करता हो। शेखीबाज।

अकड़बाजी—स्त्री० [हिं० अकड़+फा० बाजी] अकड़ने, ऐंठने या अभिमान दिखाने का भाव। शेखी।

अकड़म—पुं० [सं० अ क ड म+अच्] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र।

अकड़ा—पुं० [सं० कड्ड=कड़ापन] चौपायों को होनेवाला छूत का एक रोग।

अकड़ाव—पुं० [हिं० अकड़] अकड़ने की क्रिया या भाव। ऐंठन। तनाव।

अकड़ू†—पुं०=अकड़बाज।

अकड़ैत—वि०=अकड़बाज।

अकत—वि० [सं० अक्षत] १. पूरा। समूचा। २. बिलकुल। सब।

क्रि० वि० एकदम से। बिलकुल।

अकत्य*—वि०=अकथ्य।

अकथ*—वि० [सं० अकथ्य] १. जो कहा न जा सके। २. जो कहे जाने के योग्य न हो। ३. जिसका वर्णन करना बहुत कठिन या असंभव हो।

अकथनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो कहा न जा सके। २. जिसका वर्णन न हो सके।

अकथह—पुं० [सं० अ क थ ह+अच्] दे० 'अकड़म'।

अकथित—भू० कृ० [सं० न० त०] १. जो कहा न गया हो। अनुक्त। २. गौण (कर्म०)।

अकथ्य—वि० [सं० न० त०] १. जो कहे जाने के योग्य न हो। २. दे० 'अकथनीय'।

अकधक†—पुं० [अनु०] १. आगा-पीछा। सोच-विचार। २. आशंका। डर। भय। ३. शक। संदेह।

अकनना†—स० [सं० आकर्णन=सुनना] १. सुनना। २. ध्यान लगाकर सुनना। ३. कान लगाकर या चोरी से सुनना। ४. आहट या थाह लेना। उदा०—अवनिप अकनि राम पगु धारे।—तुलसी।

अकना†—अ० [सं० आकुल] १. उकताना। ऊबना। २. घबराना।

पुं० ज्वार की ऐसी बाल जिसके दाने निकाल लिये गये हों।

अकनिष्ठ—वि० [सं० न० त०] १. जो कनिष्ठ या छोटा न हो। २. सब से छोटा।

पुं० १. गौतम बुद्ध। २. बौद्ध देवताओं का एक वर्ग।

अकबक—पुं० [हिं० अक (बक का अनु०)+बकना का बक] १. इधर-उधर की और निरर्थक बात। असंबद्ध प्रलाप। २. घबराहट या विकलता की ऐसी स्थिति जिसमें मनुष्य उक्त प्रकार की असंबद्ध बातें करता है।

वि० असंबद्ध। बे-सिर-पैर का। उदा०—अकबक बोलत बैन कह्यौ हम तुम्हें बिकैहैं।—रत्नाकर।

अकबकाना—अ० [हिं० अकबक] १. अकबक या व्यर्थ की बातें करना। २. चकित या भौचक्का होना। ३. घबराना।

अकबर—वि० [अ०] बहुत बड़ा। महान्।

पुं० प्रसिद्ध मुगल सम्राट् जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का संक्षिप्त नाम। (सन् १५४२—१६०५)

अकबरी—वि० [अ०] अकबर नामक मुगल बादशाह से संबंध रखनेवाला। जैसे—अकबरी अशरफी।

स्त्री० १. एक प्रकार की मिठाई। २. लकड़ी पर की जानेवाली एक प्रकार की नक्काशी।

अकबाल—पुं० दे० 'इकबाल'।

अकर—वि० [सं० न० त०] १. जो करने योग्य न हो। अनुचित। बुरा। २. जो कुछ न कर रहा हो। अक्रिय। निष्क्रिय। ३. जिसके कर (हाथ) न हों। बिना हाथोंवाला। कर-विहीन। ४. जिसपर कर (शुल्क) न लगता हो या न लगा हो। कर-रहित।

अकरकरा—पुं० [अ० अक़रक़र्हः, सं० आकरकरभ] उत्तरी अफ्रीका का एक पौधा जिसकी जड़ दवा के काम आती है।

अकरखना*—स० [सं० आकर्षण] १. आकृष्ट करना। खींचना। २. तानना। ३. चढ़ाना (धनुष पर तीर)।

अकरण—वि० [सं० न० ब०] करण या इंद्रियों से रहित।

पुं० ईश्वर या परमात्मा का एक नाम।

वि० १. (कार्य) जो किये जाने के योग्य न हो। २. अनुचित। बुरा। ३. कठिन। दुष्कर।

पुं० [सं० न० त०] १. कुछ भी न करने की क्रिया या भाव। २. जो काम किया जाना चाहिए, वह न करना। कर्त्तव्य कर्म न करना। (ओमिशन) ३. किसी किये हुए काम को ऐसा रूप देना कि वह न किये हुए के समान हो जाय।

अकरणीय—वि० [सं० न० त०] (काम) जो किये जाने के योग्य न हो। अनुचित। बुरा।

अकरन*—वि०=अकारण। उदा०—कर-कुठार मैं अकरन कोही।—तुलसी।

वि० [सं० अकरण] १. न किये जाने के योग्य। अकरणीय। उदा०—रीतौ भरै, भरौ ढरकावै अकरन करन करै।—सूर। २. अनुचित। निन्दनीय। बुरा। ३. कठिन। दुष्कर।

अकरनीय*—वि०=अकरणीय।

अकरब—पुं० [अ०] १. बिच्छू। २. वृश्चिक राशि। ३. वह घोड़ा जिसके मुँह पर के सफेद रोओं के बीच में दूसरे रंग के रोएँ हों। (ऐसा घोड़ा दोषयुक्त या खराब माना जाता है।)

अकरा†—वि० [सं० अक्रय्य] १. जो महँगा अथवा अधिक मूल्य का होने से मोल लेने योग्य न हो। कीमती। २. अधिक मूल्य का। महँगा। ३. अच्छा। बढ़िया। श्रेष्ठ।

स्त्री० [सं०] आमलकी। आँवला।

अकराथ—वि०=अकारथ।

अकराम—पुं० [अ० करम (=कृपा) का बहु०] कृपा। अनुग्रह।

पद—इनाम-अकराम=पारितोषिक और अनेक प्रकार के अनुग्रह।

अकरार*—पुं० [हिं० अ+अ० करार=निश्चय, स्थिरता आदि] १. निश्चय या स्थिरता का अभाव।
वि० जिसका कोई निश्चित रूप या मर्यादा न हो। अनिश्चित या अ-स्थिर।
पुं० १. दे० 'इकरार'। २. दे० 'करार'।

अकराल—वि० [सं० न० त०] १. जो कराल या भयंकर न हो। सौम्य। २. सुंदर।
*वि०=कराल (भीषण)।

अकरावना†—वि० [?] १. डरावना। भयानक। २. मन में घृणा उत्पन्न करनेवाला।

अकरास—पुं० [सं० अकर?] १. आलस्य। सुस्ती। २. अँगड़ाई।

अकरासू†—वि० स्त्री० [हिं० अकरास] जिसे गर्भ हो। गर्भवती।

अकरी—स्त्री० [सं० आ=अच्छी तरह+किरण=बिखराना] १. बीज बोने के लिए लकड़ी का एक प्रकार का चोंगा जो हल में लगा रहता है। २. एक प्रकार का क्षुप या पौधा।
†वि०=अक्रिय।

अकरुण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें करुणा या दया न हो। करुणा-रहित। २. निर्दय। निष्ठुर।

अकरूर—पुं०=अक्रूर।

अकर्ण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके कान न हों। बिना कानोंवाला। २. जिसके कान छोटे हों। ३. बहरा। ४. (नाव) जिसमें पतवार न हो।
पुं० साँप।

अकर्तव्य—वि० [सं० न० त०] (काम) जो करने योग्य न हो। अनुचित। बुरा।
पुं० वह कार्य जिसे करना उचित न हो। अनुचित काम।

अकर्ता (र्तृ)—वि० [सं० न० त०] १. जो कर्ता (करनेवाला) न हो। २. जो किसी काम में लगा न हो। सब कर्मों से अलग और आलिप्त। जैसे—सांख्य में पुरुष अकर्ता माना गया है।

अकर्तृक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसका कोई कर्ता या रचयिता न हो। कर्ताविहीन। २. जो (किसी का) किया हुआ न हो।

अकर्तृत्व—पुं० [सं० न० त०] १. अकर्ता होने की अवस्था या भाव। २. कर्तृत्व (या उसके अभिमान) का अभाव।

अकर्म(र्मन्)—पुं० [सं० न० त०] १. कर्म का अभाव। काम न करने का भाव। २. कर्म या कार्य का न-होना। ३. न करने योग्य काम। अनुचित या बुरा काम।

अकर्मक-क्रिया—स्त्री० [सं० अकर्मक, न० ब०, कप् अकर्मिका-क्रिया, कर्म० स०] व्याकरण में, क्रिया के दो मुख्य भेदों में से एक, जिसके साथ कोई कर्म नहीं होता अथवा जिसमें कर्म की अपेक्षा नहीं होती। (इन्ट्रान्जिटिव वर्ब) जैसे—दौड़ना, भटकना, सोना आदि।

अकर्मण्य—वि० [सं० कर्मन्+यत्, न त०] [भाव० अकर्मण्यता] १. (व्यक्ति) जो कोई काम ठीक तरह से न कर सकता हो। निकम्मा। २. (पदार्थ) जो किसी काम का या उपयोगी न हो। व्यर्थ।

अकर्मण्यता—स्त्री० [सं० अकर्मण्य+तल्—टाप्] अकर्मण्य होने की अवस्था या भाव।

अकर्मा (र्मन्)—वि० [सं० न० ब०] १. दे० 'अकर्ता'। २. दे० 'अकर्मण्य'।

अकर्मी (र्मिन्)—पुं० [सं० कर्मन्+इन्, न० त०] [स्त्री० अकर्मिणी] १. अकर्म या बुरा कर्म करनेवाला। पापी। २. अपराधी। दोषी।

अकर्षण*—पुं०=आकर्षण।

अकलंक—वि० [सं० न० ब०] [भाव० अकलंकता] १. जिसमें कलंक अथवा दोष न हो। कलंक-रहित। २. सब तरह से निर्मल।
पुं० एक प्रकार के जैन।
†पुं० दे० 'कलंक'।

अकलंकता—स्त्री० [सं० अकलंक+तल्—टाप] कलंक अथवा दोष से युक्त न होने का भाव। निर्दोषता।

अकलंकित—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें कोई कलंक न लगा हो। २. निर्दोष और शुद्ध।

अकलंकी (किन्)—वि० [सं० न० त०] जिसमें कोई कलंक या दोष न हो। निष्कलंक।
वि० दे० 'कलंकी'।

अकल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कल (अवयव या अंग) न हों। २. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों। पूरा। समूचा। ३. उक्त कारणों से परमात्मा का एक विशेषण। ३. जिसमें कोई कला या विशेषता न हो। ५. बेचैन। विकल। व्याकुल।
†स्त्री०=अक्ल (बुद्धि)।

अकल-खुरा—वि० [हिं० अकेला+फा० खोर] अकेला खानेवाला अर्थात् स्वार्थी या मतलबी। जैसे—अकल खुरा, जग से बुरा।—कहा०।

अकलवीर—पुं० [सं० करवीर?] एक पौधा जिसकी जड़ रेशम रँगने के काम आती है।

अकला†—वि०=अकेला।

अकलीम—स्त्री० [अ० इकलीम] १. ऊपर के लोकों में से सातवाँ लोक। २. सातों लोक। उदा०—औ सातूँ अकलीम में चावोगढ़ चीतोड़।—बाँकीदास। ३. राज्य। ४. देश। प्रान्त।

अकलुष—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें कलुष न हो। कलुष से रहित। २. पवित्र। शुद्ध। ३. निर्मल। साफ।

अकल्प—वि० [सं० न० ब०] १. नियंत्रण या नियम को माननेवाला। २. जिसमें क्षमता न हो। अक्षम। ३. कमजोर। दुर्बल। ४. अतुलनीय।

अकल्पित—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पना से बाहर। २. जो कल्पित अथवा मन-गढ़ंत न हो, बल्कि जिसका कुछ आधार हो। वास्तविक। ३. पहले से जिसकी कल्पना या अनुमान न किया गया हो। अतर्कित।

अकल्मष—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कोई कल्मष न हो, निर्दोष। २. पवित्र। शुद्ध।
पुं० कल्मष (दोष आदि) का अभाव।

अकल्याण—पुं० [सं० न० त०] १. कल्याण का अभाव। अशुभ या अमंगलजनक स्थिति। २. अहित। खराबी। हानि।

वि० [सं० न० व०] कल्याण-रहित।

अकवन†—पुं० दे० 'मदार' (पौधा)।

अकस—पुं० [सं० आकर्ष] १. किसी के प्रति मन में होनेवाला ऐसा दुर्भाव जो उसे अलग या दूर रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। मन-मुटाव। २. वैर। शत्रुता। ३. ऐंठ। अकड़।

पुं० [अ० अक्स, मि० सं० आकर्ष] १. छाया। परछाँहीं। २. प्रतिविम्ब।

अकसना†—अ० [सं० आकर्ष, हिं० अकस] १. मन में दुर्भाव, द्वेष या वैर रखना। २. अकड़ या ऐंठ दिखाना। ३. विरोध, वैर या शत्रुता करना।

अकसर—वि० [हिं० अक=एक+सर (प्रत्य०)] जिसके साथ और कोई न हो। अकेला। उदा०—कौन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आएहु नाथ।—तुलसी।

क्रि० वि० विना किसी को अपने साथ लिए। अकेले।

अव्य० [अ० अक्सर] बीच-बीच में। अधिक अवसरों पर। प्रायः।

अकसीर—स्त्री० [अ० अक्सीर] वह रस या भस्म जो किसी निम्न कोटि की धातु को सोना या चाँदी के रूप में परिवर्तित कर दे। रसायन।

वि० निश्चित रूप से अपना गुण, प्रभाव या फल दिखानेवाला। अचूक। अव्यर्थ।

अकस्मात्—क्रि० वि० [सं० न–कस्मात्, अलुक् स०] १. एकदम से। अचानक। सहसा। २. दैव योग से और अतर्कित रूप में।

अकह—वि० १. दे० 'अकथ्य'। २. दे० 'अकथनीय'।

अकहुआ†—वि० दे० 'अकथनीय'।

†पुं०=आक (मदार)।

अकांड—वि० [सं० न० ब०] १. (वृक्ष) जिसमें कांड या शाखाएँ न हों। शाखाओं से रहित (वृक्ष)। २. अचानक या असमय में होनेवाला।

क्रि० वि० [सं० न० त०] अचानक। सहसा।

अकांड-तांडव—पुं० [स० त०] बहुत ही छोटी बात को बहुत बढ़ाकर उसके संबंध में व्यर्थ की जानेवाली उछल-कूद और हो-हल्ला।

अकाज—पुं० [सं० अकार्य] १. खराब या बुरा काम। २. किसी काम में होनेवाली देर, बाधा या हानि। हरज।

क्रि० वि० विना किसी फल या लाभ के। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। उदा०—बीते जाये है, बीते जाये है, जनम अकाज रे।—नानक।

अकाजना—अ० [हिं० अकाज] १. अकाज, हरज या हानि होना। २. निष्प्रयोजन या व्यर्थ हो जाना। किसी योग्य न रह जाना। उदा०—मानहुँ राज अकाजेउ आजू।—तुलसी।

स० अकाज (हरज या हानि) करना।

अ० [हिं० काल] मर जाना।

अकाजी—वि० [हिं० अकाज] [स्त्री० अकाजिनी] १. जिसे कोई काम न हो। २. अकाज या हरज करनेवाला। ३. कार्य में रोड़ा अटकानेवाला।

अकाट—वि० दे० 'अकाट्य'।

अकाट्य—वि० [हिं० अ+काटना, असिद्ध रूप] १. जो काटा न जा सके। २. तर्क, युक्ति आदि से जिसका खंडन न किया जा सके। जैसे—अकाट्य प्रमाण।

अकाथ—वि०=अकथनीय।

क्रि० वि० [सं० अकृत] निष्फल। व्यर्थ। उदा०—कर्म धर्म तीरथ विनु रावन, ह्वै गए सकल अकाथा।—सूर।

अकादमी—स्त्री० [यू० एकैडेमी] १. उच्च कोटि का विद्यालय। २. विद्वानों की वह संघटित संस्था जो किसी कला, विज्ञान, शास्त्र आदि की उन्नति, प्रचार और विवेचन के लिए बनी हो। (एकैडेमी) जैसे—साहित्य एकादमी, हिन्दुस्तानी एकादमी।

अकाम—वि० [सं० न० ब०] जिसे किसी प्रकार की कामना या वासना न हो। निष्काम।

*क्रि० वि० [हिं० अ+काम] विना किसी काम या प्रयोजन के। व्यर्थ।

पुं० अनुचित, बुरा या व्यर्थ का काम।

अकामतः(तस्)—क्रि० वि० [सं० अकाम+तस्] १. विना किसी कामना के। २. विना इच्छा या प्रयत्न के। अनजान में। यों ही।

अकामता—स्त्री० [सं० अकाम+तल्, टाप्] अकाम अथवा कामना से रहित होने का भाव।

अकामा—वि० [सं० न० ब०, टाप्] १. (किशोरी) जिसमें काम-वासना अभी उत्पन्न न हुई हो। २. (स्त्री) जिसमें काम-वासना न रह गई हो।

अकामिक—वि० [सं० अकाम से] जिसके लिए कामना या चेष्टा न की गई हो। आप से आप हो जानेवाला। उदा०—अति पुलकित तनु विहसि अकामिक।—विद्यापति।

अकामी (मिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसके मन में किसी प्रकार की कामना या वासना न हो। अकाम। २. जिसमें काम-वासना न हो या न रह गई हो।

अकाय—वि० [सं० न० ब०] १. जो विना काया या शरीर के हो। काया-रहित। २. जिसका कोई आकार या रूप न हो। निराकार।

अकार—पुं० [सं० अ+कार] 'अ' अक्षर और उसकी उच्चारण-ध्वनि।

*पुं० दे० 'आकार'।

*पुं०=आकाश। उदा०—दान मेरु बढ़ि लाग अकारा।—जायसी।

अकारज*—पुं०=अकाज।

अकारण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके मूल में कोई कारण न हो। जैसे—अकारण वैमनस्य। २. जो आपसे आप उत्पन्न हुआ हो। स्वयंभू।

क्रि० वि० विना किसी कारण या वजह के। आप से आप। यों ही।

अकारथ—वि० [सं० अकार्यार्थ] जिसका कोई अच्छा फल या परिणाम न हो। बे-फायदा। जैसे—सारा परिश्रम अकारथ गया।

क्रि० वि० विना किसी उपयोग या फल के। यों ही। व्यर्थ।

अकारन—वि०=अकारण।

अकारांत—वि० [सं० अकार–अंत, ब० स०] जिसके अंत में 'अ' हो।

अकारादि—वि० [सं० अकार–आदि, ब० स०] जिसके आदि या आरंभ में 'अ' या अकार हो।

अकारिय*—वि०=अकारथ। उदा०—गौर मुख्ख वपु स्याम गिरन सम नरुय अकारिय।—चन्दवरदाई।

अकार्य—वि० [सं० न० त०] १. (काम) जो किये जाने के योग्य न हो। अकर्तव्य। २. अनुचित। बुरा।
पुं०=अकर्म।

अकाल—पुं० [सं० न० त०] १. ऐसा काम या समय जो किसी विशिष्ट कार्य के लिए उपयुक्त न हो। कु-समय। २. ऐसा समय जिसमें अन्न बहुत कम और बहुत कठिनता से मिलता हो। दुर्भिक्ष। ३. किसी चीज की बहुत अधिक कमी या अभाव। जैसे—कपड़े या नमक का अकाल।
वि० [सं० न० ब०] १. जिसका काल न आ सके अथवा मृत्यु न हो सके। अविनाशी। २. जो उचित या उपयुक्त समय पर न हो। असामयिक। जैसे—अकाल मृत्यु, अकाल वृष्टि।

अकाल-कुसुम—पुं० [ष० त०] १. उपयुक्त अथवा नियत समय से बहुत पहले या पीछे किसी वृक्ष में लगनेवाला फूल जो उपद्रव, दुर्भिक्ष आदि का लक्षण माना जाता है। २. वह वस्तु जो अपने उपयुक्त समय से पहले या पीछे हो।

अकालज—पुं० [सं० अकाल√जन् (उत्पन्न होना)+ड] उचित समय से पहले या बाद (अकाल) में उत्पन्न होनेवाला।

अकाल-जलद—पुं० [ष० त०] वर्षा ऋतु से पहले या बाद (अकाल) में आनेवाला बादल।

अकाल-जात—वि० [स० त०]=अकालज।

अकाल-पक्व—वि० [स० त०] उचित समय से पहले या पीछे अर्थात् बिना मौसिम के पकनेवाला (फल)।

अकाल-पुरुष—पुं० [अकाल, न० ब०, अकाल-पुरुष, कर्म० स०] परमेश्वर।

अकाल-प्रसव—पुं० [ष० त०] स्त्री को निश्चित या ठीक समय से पहले या पीछे होनेवाला प्रसव।

अकाल-मृत्यु—स्त्री० [स० त०] १. बुरे समय में होनेवाली मृत्यु। २. असामयिक मृत्यु। साधारणतः उचित या नियत समय से पहले होनेवाली मृत्यु।

अकाल-वृद्ध—वि० [स० त०] जो उचित या नियत समय से पहले ही वृद्ध या बुड्ढा हो गया हो।

अकाल-वृष्टि—स्त्री० [ष० त०] उचित या नियत समय से पहले या पीछे होनेवाली वर्षा।

अकालिक—वि० [सं० कालिक, काल+ठन्, अकालिक, न० त०] अपने उचित या नियत समय से पहले या पीछे होनेवाला। असामयिक।

अकाली—पुं० [सं० अकाल+हिं० ई] १. सिक्खों का एक संप्रदाय विशेष। २. उक्त संप्रदाय का अनुयायी।
वि० जिसका संबंध उक्त सम्प्रदाय से हो।

अकावा—पुं० [सं० अर्क] आक। मदार।

अकाश-दीप—पुं० [सं० आकाश-दीप] १. प्राचीन काल में नदी या समुद्र के किनारे रात के समय ऊँचे बाँस में बाँधकर जलाया जानेवाला दीया जिसका उद्देश्य जल-पोतों का मार्ग-दर्शन करना होता था। २. बाँस में बाँधकर जलाया जानेवाला दीप।

अकास*—पुं०=आकाश।

अकासकृत—पुं० [सं० आकाशकृत] बिजली।

अकास-दीया—पुं०=अकाश-दीप।

अकास-नीम—पुं० [सं० आकाश निम्ब] एक प्रकार का पेड़।

अकासबानी—स्त्री०=आकाशवाणी।

अकासबेल—स्त्री० [सं० आकाशवेलि] अमर-बेल।

अकास बौर—पुं०=अकासबेल।

अकासी—वि० [सं० आकाश] १. आकाश-सम्बन्धी। २. आकाश में रहने या उड़नेवाला।
स्त्री० १. चील (पक्षी)। २. ताड़ का रस। ताड़ी।

अकिंचन—वि० [सं० मयू० स०] १. जिसके पास कुछ भी न हो। दरिद्र। २. जो अपने सब कर्मों का भोग पूरा कर चुका हो। ३. दे० 'अपरिग्रही'।
पुं० १. वह जिसके पास अपने निर्वाह के लिए कुछ भी धन न हो। परम दरिद्र। (पॉपर) २. वह जैन साधु जो परिग्रह, धन, पत्नी, बच्चे और ममता से रहित हो चुका हो।

अकिंचनता—स्त्री० [सं० अकिंचन+तल्-टाप्] १. अकिंचन होने की अवस्था या भाव। २. परम दरिद्रता या निर्धनता। ३. परिग्रह और ममता का त्याग। (जैन)

अकिंचित्कर—वि० [सं० किंचित्√कृ (करना)+ट, न० त०] १. जो कुछ न कर सके। अयोग्य। असमर्थ। २. तुच्छ। नगण्य। ३. जिसका कुछ भी फल न हो। व्यर्थ का। निरर्थक।

अकि*—अव्य० [हिं० कि] कि/या/अथवा। उदा०—आगि जरौं अकि पानि परौं कैसि करौं हिय का बिधि धीरौं।—घनानंद।

अकित्ती*—स्त्री०=अकीर्त्ति।

अकिल—स्त्री०=अक्ल।

अकिलदाढ़—स्त्री० [हिं० अकिल=बुद्धि+दाढ़] वह दाढ़ अथवा दाँत जो मनुष्यों की युवावस्था में निकलता है और उनमें समझदारी आने का सूचक होता है।

अकीक—पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का लाल पत्थर या रत्न।

अकीरति—स्त्री०=अकीर्त्ति।

कीर्ति—स्त्री० [सं० न० त०] बुरी कीर्ति। अपयश। निन्दा। बदनामी।

अकीर्तिकर—वि० [सं० अकीर्ति√कृ (करना)+ट] (ऐसी बात) जिससे कीर्ति या यश घटे या बदनामी हो।

अकुंठ—वि० [सं० न० ब०] १ जो कुंठित न हो। २ तीव्र। तेज। ३ तीखा। तीक्ष्ण। ४ अच्छा। बढ़िया। ५. खुला हुआ। ६. स्थिर। ७. जो विघ्न-बाधाओं के सामने न झुकता हो।

अकुंठित—वि० [सं० न० त०] दे० 'अकुंठ'।

अकुटिल—वि० [सं० न० त०] [भाव० अकुटिलता] १. जो टेढ़ा न हो। सीधा। २. जिसमें घुमाव न हो। ३. जिसमें कपट न हो। निष्कपट। भोला। सीधा।

अकुताना*—अ०=उकताना।

अकुल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई कुल या वंश न हो। २. जिसके कुल में कोई न रह गया हो। ३. निम्न या तुच्छ वंश का। अकुलीन
पुं० १. [सं० न० त०] बुरा, तुच्छ या नीच कुल। २. [सं० न० ब०] शिव का एक नाम।

अकुलाना—अ० [सं० आकुलन] १. आकुल होना। घबराना। २.

जल्दी मचाना। ३. ऊबना। उकताना।

अकुलाहट—स्त्री० [हिं० अकुलाना] आकुल या विकल होने की अवस्था या भाव।

अकुलिनी*—वि० [सं० अकुलीना] जो उत्तम कुल की न हो। जो निम्न कुल की हो।

स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री।

अकुलीन—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी उच्च कुल या परिवार का न हो। निम्न या नीच वंश का। २. पृथ्वी से संबंध न रखनेवाला। अपार्थिव।

अकुशल—वि० [सं० न० त०] १. जो कुशल न हो। २. गुणहीन। ३. आलसी। ४. अशुभ।

पुं० १. अमंगल। बुराई। २. अशुभ या बुरा शब्द।

अकूट—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कपट या छल न हो। २. जो अच्छे कुल या नसल का हो। ३. जो वास्तविक और विशुद्ध हो। (जेनुइन)।

अकूत—वि० [सं० अ+हिं० कूतना] १. जो कूता न जा सके। जिसका अनुमान न हो सके। २. जो मात्रा में अत्यधिक हो।

क्रि० वि० अकस्मात्। अचानक।

अकूपार—पुं० [सं० कूप√ऋ (गति)+अण्, न० त०] १. समुद्र। सागर। २. कच्छप। कछुआ। ३. वह महाकच्छप जिसपर पृथ्वी आश्रित मानी जाती है। ४. बड़ा और भारी पत्थर। चट्टान। ५. सूर्य।

वि० १. जिसका परिणाम अच्छा हो। २. अपार। असीम।

अकूर*—पुं०=अंकुर।

अकूल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कूल या किनारा न हो। कूल-रहित। २. जिसकी कोई सीमा न हो। सीमा-रहित।

अकूहल—वि० [हिं० अकूत ?] बहुत। अधिक।

अकृच्छ्र—पुं० [सं० न० त०] १. क्लेश का अभाव। २. सुगमता। आसानी।

वि० [न० ब०] १. कष्ट, दुःख आदि से रहित। २. सुगम। सहज।

अकृत—वि० [सं०√कृ (करना)+क्त, न० त०] १. जो किया न गया हो। (अन्डन) २. जो ठीक प्रकार से न किया गया हो। ३. जो किसी का बनाया न हो। स्वयंभू। ४. प्राकृतिक। ५. निकम्मा। व्यर्थ का। ६. जो अभी ठीक या पूरा न हुआ हो। ७. जिसका पूरा विकास न हुआ हो।

पुं० १. अधूरा काम। २. कारण। ३. मोक्ष। ४. स्वभाव।

अकृत-कार्य—वि० [सं० न० ब०] जिसे अपने कार्य में सफलता न हुई हो। विफल-मनोरथ।

अकृतज्ञ—वि० [सं० न० त०] [भाव० अकृतज्ञता] जो कृतज्ञ न हो। उपकार न माननेवाला।

अकृतज्ञता—स्त्री० [सं० अकृतज्ञ+तल्-टाप्] अकृतज्ञ होने की अवस्था या भाव।

अकृता—स्त्री० [सं०√कृ (करना)+क्त-टाप्, न० त०] ऐसी कन्या जिसे पिता ने पुत्रिका न बनाया हो।

वि० दे० 'पुत्रिका'।

अकृतात्मा (त्मन्)—वि० [सं० न-कृत-आत्मन्, न० ब०] १ अज्ञानी। २ (साधक) जिसे ईश्वर के दर्शन न हुए हों।

अकृति—वि०=अकृती।

अकृती (तिन्)—वि० [सं० न० त०] १. काम न करने योग्य। निकम्मा। २. जो दक्ष या पटु न हो। अनाड़ी। ३. जिसने कुछ भी न किया हो।

अकृत्य—वि० [सं० न० त०] जो करने के योग्य न हो।

पुं० दुष्कर्म। बुरा काम।

अकृत्यकारी (रिन्)—वि० [सं० अकृत्य√कृ+णिनि] बुरे काम करने-वाला। कुकर्मी।

अकृत्रिम—वि० [सं० न० त०] १ जो कृत्रिम या बनावटी न हो। असली। सच्चा। २. स्वाभाविक। ३. जिसमें छल-कपट या दिखावट न हो। जैसे—अकृत्रिम प्रेम।

अकृत्स्न—वि० [सं० न० त०] जो पूरा न हुआ हो। अधूरा या अपूर्ण।

अकृपा—स्त्री० [सं० न० त०] कृपा या अनुग्रह का न होना।

अकृषिक—वि० [सं० न० ब०, कप् ?] जिसका संबंध कृषि या खेती से न हो। (नॉन-एग्रिकल्चरल)

अकृषित—वि० [सं० अकृष्ट] (खेत) जो जोता-बोया न गया हो। (अन-कल्टिवेटेड)

अकृष्ट—वि० [सं० कृष्+क्त, न० त०] १. जो खींचा या खिंचा हुआ न हो। २. दे० 'अकृषित'।

अकृष्ण—वि० [सं० न० त०] १. जो कृष्ण या श्याम न हो। उज्ज्वल। २. निर्मल। शुद्ध।

अकेतन—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई ठिकाना या घर-बार न हो। २. जिसका घर नष्ट हो चुका हो। गृह-हीन।

अकेल*—वि०=अकेला।

अकेला—वि० [सं० एकाकिन्, गु० एकल एकलु, रा० एकला, पं० इकल्ला] १. जिसके साथ और कोई न हो। २. जिसे किसी का सहयोग या सहायता न प्राप्त होती हो। ३. जो ढंग, गुण, विशेषता आदि के विचार से सब से भिन्न हो। ४. जो वर्ग विशेष में सब से उत्तम हो। सर्वश्रेष्ठ। ५. बे जोड़। ६. खाली (मकान)।

पुं० एकान्त या निर्जन स्थान।

यौ० अकेला-दम=एक ही प्राणी। **अकेला-दुकेला**=जो या तो अकेला हो या जिसके साथ एकाध कोई और हो।

अकेले—क्रि० वि० [हिं० अकेला] १. बिना किसी साथी के। २. केवल। सिर्फ।

अकेहरा*—वि०=एकहरा।

अकैया—पुं० [सं० अक्ष=संग्रह करना] लादने के लिए सामान भरने का थैला या गोन।

अकोट*—वि० [सं० कोटि] करोड़ों। अगणित।

अकोतर सौ*—वि० [सं० एकोत्तरशत] सौ से एक अधिक। एक सौ एक।

अकोर*—पुं० [सं० उत्कोच ?] १. घूस। रिश्वत। २. भेंट। उपहार।

†पुं० दे० 'अँकोर'।

अकोला—पुं० [सं० अङ्कोल] अंकोल वृक्ष।

अकोविद—वि० [सं० न० त०] १. जो कोविद या जानकार न हो। २. मूर्ख।

अकोसना*—स० [सं० आक्रोशन] कोसना।

अकौआ†—पुं० [सं० अर्क] १. आक। मदार। २. गले के अन्दर का कौआ या घंटी। ललरी।

†पुं०=आक (मदार)।

अकौटा†—पुं० [सं० अक्ष=धुरा+अटन=घूमना] गड़ारी का डंडा। धुरा।

अकौता—पुं० दे० 'उकवत'।

अकौशल—पुं० [सं० न० त०] कौशल का अभाव। अयोग्यता।

अक्क—पुं०=आक (मदार)।

अक्कड़—पुं० [शामी] १. प्राचीन मैसोपोटामिया देश की एक प्रसिद्ध नगरी। २. उसके आस-पास का प्राचीन प्रदेश।

अक्कड़ी—वि० [शामी अक्कड़] १. अक्कड़ नगरी से संबंध रखनेवाला। २. अक्कड़ नगर या प्रदेश का रहनेवाला।

स्त्री० उक्त प्रदेश की पुरानी भाषा।

अक्का—स्त्री० [सं०√अक् (टेढ़ी चाल)+कल्, टाप्] माता। माँ।

अक्खड़—वि० [सं० अक्षर=न टलनेवाला, प्रा० अक्खड़] [भाव० अक्खड़पन] न मुड़नेवाला। शिष्टता और सौजन्य का ध्यान छोड़कर, मनमाना और अनियंत्रित आचरण करनेवाला। उद्धत और उद्दंड।

अक्खड़ता—स्त्री० 'अक्खड़-पन' के लिए भूल से प्रचलित असिद्ध रूप। (क्व०)

अक्खड़-पन—पुं० [हिं० अक्खड़+पन] अक्खड़ होने की अवस्था या भाव।

अक्खर*—पुं०=अक्षर।

अक्खा—पुं० दे० 'अकैया'।

अक्खो-मक्खो—पुं० [सं० अक्ष्+मुख] (नजर से बचाने के लिए) दीपक की लौ तक हाथ ले जाकर बच्चे के मुँह पर 'अक्खो-मक्खो' कहते हुए फेरना।

अक्त—वि० [सं० अंज् (मिलना, गति आदि)+क्त] १. जो किसी में मिला, साथ लगा या चिपका हो। २. पोता या रँगा हुआ।

अक्तूबर—पुं० [अं०] अँगरेजी साल का दसवाँ महीना।

अक्रम—वि० [सं० न० ब०] १. जो क्रम से न हो। २. जिसे क्रम से न रखा गया हो।

पुं० १. क्रम या सिलसिले का अभाव। क्रम-हीनता। २. अव्यवस्था।

*पुं०=अकर्म (या दुष्कर्म)।

अक्रम-संन्यास—पुं० [सं० कर्म० स०] बीच के आश्रमों का अतिक्रमण करके धारण किया जानेवाला संन्यास।

अक्रमातिशयोक्ति—स्त्री० [सं० अक्रम-अतिशयोक्ति, कर्म० स०] साहित्य में अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें कारण के आरंभ होते ही कार्य के पूरा हो जाने का उल्लेख होता है।

अक्रांत—वि० [सं० न० त०] १. जिसके आगे और कोई न निकला हो। सब से आगे बढ़ा हुआ। २. जो दबाया या हराया न गया हो।

अक्रांता—स्त्री० [सं० अक्रांत-टाप्] बृहती नामक पौधा। भटकटैया।

अक्रित*—वि० दे० 'अकृत'।

अक्रिय—वि० [सं० न० ब०] १. जो कुछ भी न कर रहा हो। क्रियाहीन। २. जो अभी अपना प्रभाव या फल न दिखा रहा हो। ३. सब प्रकार की चेष्टाओं से रहित। जड़।

अक्रिया—स्त्री० [सं० न० त०] अक्रिय होने की अवस्था या भाव। क्रियाहीनता।

अक्रियावाद—पुं० [सं० क्रियावाद, ष० त०, अक्रियावाद, न० त०] बौद्ध दर्शन का एक सिद्धान्त जिसमें यह माना जाता है कि मनुष्य की क्रियाओं का कोई अच्छा या बुरा फल नहीं होता।

अक्री*—वि०=अक्रिय।

अक्रूर—वि० [सं० न० त०] जो क्रूर या निर्दय न हो। दयालु स्वभाव-वाला।

पुं० एक यादव जो श्रीकृष्ण के चाचा थे।

अक्ल—स्त्री० [अ०] बुद्धि। समझ।

मुहा०—**अक्ल के घोड़े दौड़ाना**=अनेक प्रकार की बौद्धिक कल्पनाएँ करना। (व्यंग्य) **अक्ल के पीछे लट्ठ लिये फिरना**=हर समय मूर्खता के काम करते रहना। **अक्ल गुम होना**=बुद्धि का सहसा अभाव हो जाना। **अक्ल चकराना**=इतना चकित होना कि बुद्धि कुछ काम न करे। **अक्ल चरने जाना**=बुद्धि या समझदारी का अभाव होना। **अक्ल ठिकाने होना**=हानि आदि होने पर मूर्खता दूर होना। **अक्ल दौड़ाना या लड़ाना**=सोचने-समझने का प्रयत्न करना। **अक्ल पर पत्थर (या परदा) पड़ना**=सहसा ऐसी स्थिति होना कि बुद्धि कुछ भी काम न करे। **अक्ल मारी जाना**=बुद्धि नष्ट होना। हतबुद्धि होना। **अक्ल सठियाना**=बुद्धि भ्रष्ट होना।

पद—**अक्ल का दुश्मन**=मूर्ख। बेवकूफ। **अक्ल का पुतला**=बहुत बुद्धिमान्। **अक्ल का पूरा**=मूर्ख, जड़। (व्यंग्य) **अक्ल का मारा**=मूर्ख।

अक्लमंद—पुं० [अ०+फा०] बुद्धिमान्। समझदार।

अक्लमंदी—स्त्री० [अ०+फा०] बुद्धिमत्ता। समझदारी।

अक्लम—पुं० [सं० न० त०] क्लांति या थकावट का अभाव।

वि० [न० ब०] न थकनेवाला।

अक्षंतव्य—वि० [सं०√क्षम्+तव्यत्, न० त०]=अक्षम्य।

अक्ष—पुं० [सं० √अक्ष् (व्याप्ति)+अच् या घञ्] १. खेलने का पासा। २. चौसर नामक खेल। ३. वह कल्पित रेखा जिसके आधार पर वस्तुएँ परिभ्रमण अथवा अपने सब कार्यों का संचालन करती हुई मानी जाती हैं। जैसे—पृथ्वी के दोनों धुरों को मिलानेवाली कल्पित सीधी रेखा, जिसपर पृथ्वी घूमती हुई मानी जाती है। ४. किसी चीज का धुरा या धुरी। जैसे—गाड़ी का अक्ष। (ऐक्सिल, उक्त दोनों अर्थों में)। ५. गाड़ी। ६. अक्षांश के विचार से भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण में किसी स्थान का गोलीय अंतर। ७. तराजू की डंडी। ८. व्यवहार। लेन-देन। ९. मुकदमा। १०. कानून। ११. इंद्रिय। १२. तूतिया। १३. साँभर नमक। १४. सुहागा। १५. आँख। नेत्र। १६. बहेड़ा। १७. रुद्राक्ष। १८. साँप। १९. गरुड़। २०. आत्मा। २१. कर्ष नामक तौल जो १६ माशे की होती है। २२. दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षक—पुं० [सं० अक्ष√कै+क] तिनिश का पेड़।

अक्ष-कर्ण—पुं० [कर्म० स०] समकोण त्रिभुज की सबसे लंबी भुजा। (ज्यामिति)

अक्ष-कुमार—पुं० [मयू० स०] रावण का एक पुत्र।

अक्षकूट—पुं० [प० त०] आँख की पुतली।

अक्ष-क्रीड़ा—स्त्री० [प० त०] पासे या चौसर का खेल।

अक्षज—वि० [सं० अक्ष√जन् (उत्पन्न होना)+ड] अक्ष से उत्पन्न या बना हुआ।
पुं० १. विष्णु। २. हीरा। ३. वज्र। ४. प्रत्यक्ष ज्ञान।

अक्षत—वि० [सं०√क्षण् (हिंसा)+क्त, न० त०] १. जो क्षत या टूटा-फूटा न हो अर्थात् पूरा। २. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों। अखंडित। ३. क्षत या घाव से रहित।
पुं० १. कच्चा चावल जिसका उपयोग देव-पूजन में किया जाता है। २. धान का लावा। ३. जौ। ४. शिव का एक नाम। ५. नपुंसक। हिजड़ा।

अक्षत-योनि—वि० [व० स०] (कन्या या स्त्री) जिसका पुरुष से संबंध या मैथुन न हुआ हो। (वर्जिन)

अक्षत-वीर्य—वि० [न० व०] (पुरुष) जिसका वीर्य स्खलित न हुआ हो।
पुं० १. शिव। २. नपुंसक। (क्व०) ३. क्षय का अभाव।

अक्षता—वि० [सं०√क्षण्+क्त–टाप्, न० त०]=अक्षत योनि।
स्त्री० १. वह स्त्री जिसका पुनर्विवाह तक किसी पुरुष से संयोग न हुआ हो। २. काकड़ा सींगी।

अक्ष-दर्शक—पुं० [प० त०] १. न्यायाधीश। २. धर्माध्यक्ष। ३. जूएखाने का मालिक।

अक्ष-द्यूत—पुं० [प० त०] पासों से खेला जानेवाला जूआ।

अक्ष-धर—वि० [प० त०] धुरा धारण करनेवाला।
पुं० १. विष्णु। २. गाड़ी का पहिया। ३. शाखोट नामक वृक्ष।

अक्ष-धुर—पुं० [प० त०] पहिये की धुरी।

अक्ष-पटल—पुं० [प० त०] १. प्राचीन भारत के राज्य के आय-व्यय के लेखों का प्रधान विभाग। २. उस विभाग का प्रधान अधिकारी।

अक्षपद—पुं०=अक्षपाद।

अक्ष-पाद—पुं० [व० स०] १. न्यायशास्त्र के प्रवर्त्तक गोतम ऋषि। २. तर्क या न्याय शास्त्र का पंडित। तार्किक। नैयायिक।

अक्ष-बंध—पु० [सं० प० त०] नजर बाँधने की विद्या। नजरबंदी।

अक्षम—वि० [सं०√क्षम् (सहना)+अच्, न० त०] १. जिसमें क्षमता या शक्ति न हो। अशक्त। असमर्थ। २. जिसमें कार्य करने की योग्यता न हो। अयोग्य। ३. जो साधारण दोषों के लिए भी किसी को क्षमा न करे। जिसमें सहनशीलता न हो। असहिष्णु। ४. जो किसी का उत्कर्ष या सुख अच्छी दृष्टि से न देख सके। ईर्ष्या करनेवाला।

अक्षमता—स्त्री० [सं० अक्षम+तल्–टाप्] १. अक्षम होने की अवस्था या भाव। २. अशक्तता। असमर्थता। ३. ईर्ष्या। डाह।

अक्ष-मापक—पुं० [प० त०] ग्रह-नक्षत्र आदि देखने का एक यंत्र।

अक्ष-माला—स्त्री० [प० त०] १. वसिष्ठ की पत्नी अरुंधती। २. रुद्राक्ष की माला। ३. वर्णमाला।

अक्ष-माली (लिन्)—वि० [सं० अक्षमाला+इनि] रुद्राक्ष की माला धारण करनेवाला।
पुं० शिव।

अक्षम्य—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे क्षमा न किया जा सकता हो। २. (अपराध या दोष) जिसके लिए कर्ता को क्षमा न किया जा सकता हो।

अक्षय—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका क्षय या नाश न हो। अविनाशी। २. गरीब। निर्धन।
पुं० परमात्मा का एक नाम या विशेषण।

अक्षयकुमार*—पुं०=अक्षकुमार।

अक्षय-तृतीया—स्त्री० [कर्म० स०] वैशाख शुक्ल-तृतीया। आखातीज। (पर्व)

अक्षय-धाम (न्)—पुं० [कर्म० स०] १. वैकुंठ। २. मोक्ष।

अक्षय-नवमी—स्त्री० [कर्म० स०] कार्तिक शुक्ला नवमी। (पर्व)

अक्षय-पद—पुं० [कर्म० स०] मोक्ष।
वि० दे० 'परमपद'।

अक्षय-लोक—पुं० [कर्म० स०] स्वर्ग।

अक्षय-वट—पुं [कर्म० स०] प्रयाग और गया के प्रसिद्ध वटवृक्ष जो हजारों वर्ष पुराने कहे जाते हैं।

अक्षय-वृक्ष—पुं०=अक्षयवट।

अक्षया—स्त्री० [सं० अक्षय+टाप्] गणित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट ऐसी तिथियाँ जो कुछ विशिष्ट दिनों में पड़ती हों। जैसे—रविवार को होनेवाली सप्तमी, सोमवार को होनेवाली अमावस्या या मंगलवार को होनेवाली चौथ।

अक्षयिणी—स्त्री० [सं० क्षयिणी, क्षय+इनि–ङीप्, अक्षयिणी, न० त०] पार्वती।

अक्षयी (यिन्)—वि० [सं० क्षय+इनि, न० त०] [स्त्री० अक्षयिणी] जिसका क्षय या नाश न हो। अक्षय।

अक्षय्य—वि० [सं०√क्षि (क्षय)+यत् नि० न०
प्रकार क्षय न किया जा सके। प्रायः एक-सा ...

अक्षर—वि० [सं०√क्षर्+अच्, न० त०] १. जिसका क्षर ...
हो। अविनाशी। नित्य। २. अच्युत। ३. स्थिर।
पुं० १. ध्वनिगत लघुतम इकाई। वर्ण। (एलफाबेट) २. वह चि...
या संकेत जो उक्त ध्वनि का सूचक होता है। (लेटर)
मुहा०—अक्षर घोंटना=अक्षर लिखने का अभ्यास करना।
पद—विधना के अक्षर=भाग्य का लेख जो बदल या मिट नहीं सकता।
३. आत्मा। ४. परमात्मा या ब्रह्म का वह ...
आश्रय से उसने प्रकृति और पुरुष का रूप धारण
६. धर्म। ७. तपस्या। ८. मोक्ष। ९. जल। ...

अक्षर-क्रम—पुं० [प० त०] नामों, शब्दों आदि ...
उन्हें रखने या लगाने का वह क्रम जिसमें उनके ...
क्रम से रहते हैं जिस क्रम से वे वर्णमाला में होते ...
आर्डर)

अक्षर-गणित—पुं० [प० त०] बीजगणित।

अक्षरच्छंद—पुं० [तृ० त०]=वर्णवृत्त।

अक्षर-जीवक—पुं० [सं० अक्षर√ जीव्+ण्वुल्-अक] =अक्षर–

अक्षर-जीवी (विन्)—पुं० [अक्षर √ जीव्+णिनि,] ...

अकोविद—वि० [सं० न० त०] १. जो कोविद या जानकार न हो। २. मूर्ख।

अकोसना*—स० [सं० आक्रोशन] कोसना।

अकौआ†—पुं० [सं० अर्क] १. आक। मदार। २. गले के अन्दर का कौआ या घंटी। ललरी।

†पुं०=आक (मदार)।

अकौटा†—पुं० [सं० अक्ष=धुरा+अटन=घूमना] गड़ारी का डंडा। धुरा।

अकौता—पुं० दे० 'उकवत'।

अकौशल—पुं० [सं० न० त०] कौशल का अभाव। अयोग्यता।

अक्क—पुं०=आक (मदार)।

अक्कड़—पुं० [शामी] १. प्राचीन मैसोपोटामिया देश की एक प्रसिद्ध नगरी। २. उसके आस-पास का प्राचीन प्रदेश।

अक्कड़ी—वि० [शामी अक्कड़] १. अक्कड़ नगरी से संबंध रखनेवाला। २. अक्कड़ नगर या प्रदेश का रहनेवाला।

स्त्री० उक्त प्रदेश की पुरानी भाषा।

अक्का—स्त्री० [सं०√अक् (टेढ़ी चाल)+कल्, टाप्] माता। माँ।

अक्खड़—वि० [सं० अक्षर=न टलनेवाला, प्रा० अक्खड़] [भाव० अक्खड़पन] न मुड़नेवाला। शिष्टता और सौजन्य का ध्यान छोड़कर, मनमाना और अनियंत्रित आचरण करनेवाला। उद्धत और उद्दंड।

अक्खड़ता—स्त्री० 'अक्खड़-पन' के लिए भूल से प्रचलित असिद्ध रूप। (क्व०)

अक्खड़-पन—पुं० [हिं० अक्खड़+पन] अक्खड़ होने की अवस्था या भाव।

अक्खर*—पुं०=अक्षर।

अक्खा—पुं० दे० 'अकैया'।

अक्खो-मक्खो—पुं० [सं० अक्ष्+मुख] (नजर से बचाने के लिए) दीपक की लौ तक हाथ ले जाकर बच्चे के मुँह पर 'अक्खो-मक्खो' कहते हुए फेरना।

अक्त—वि० [सं० अंज् (मिलना, गति आदि)+क्त] १. जो किसी में मिला, साथ लगा या चिपका हो। २. पोता या रँगा हुआ।

अक्तूबर—पुं० [अं०] अँगरेजी साल का दसवाँ महीना।

अक्रम—वि० [सं० न० ब०] १. जो क्रम से न हो। २. जिसे क्रम से न रखा गया हो।

पुं० १. क्रम या सिलसिले का अभाव। क्रम-हीनता। २. अव्यवस्था।

*पुं०=अकर्म (या दुष्कर्म)।

अक्रम-संन्यास—पुं० [सं० कर्म० स०] बीच के आश्रमों का अतिक्रमण करके धारण किया जानेवाला संन्यास।

अक्रमातिशयोक्ति—स्त्री० [सं० अक्रम-अतिशयोक्ति, कर्म० स०] साहित्य में अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें कारण के आरंभ होते ही कार्य के पूरा हो जाने का उल्लेख होता है।

अक्रांत—वि० [सं० न० त०] १. जिसके आगे और कोई न निकला हो। सब से आगे बढ़ा हुआ। २. जो दबाया या हराया न गया हो।

अक्रांता—स्त्री० [सं० अक्रांत-टाप्] बृहती नामक पौधा। भटकटैया।

अक्रित*—वि० दे० 'अकृत'।

अक्रिय—वि० [सं० न० ब०] १. जो कुछ भी न कर रहा हो। क्रियाहीन। २. जो अभी अपना प्रभाव या फल न दिखा रहा हो। ३. सब प्रकार की चेष्टाओं से रहित। जड़।

अक्रिया—स्त्री० [सं० न० त०] अक्रिय होने की अवस्था या भाव। क्रियाहीनता।

अक्रियावाद—पुं० [सं० क्रियावाद, ष० त०, अक्रियावाद, न० त०] बौद्ध दर्शन का एक सिद्धान्त जिसमें यह माना जाता है कि मनुष्य की क्रियाओं का कोई अच्छा या बुरा फल नहीं होता।

अक्री*—वि०=अक्रिय।

अक्रूर—वि० [सं० न० त०] जो क्रूर या निर्दय न हो। दयालु स्वभाव-वाला।

पुं० एक यादव जो श्रीकृष्ण के चाचा थे।

अक्ल—स्त्री० [अ०] बुद्धि। समझ।

मुहा०—**अक्ल के घोड़े दौड़ाना**=अनेक प्रकार की बौद्धिक कल्पनाएँ करना। (व्यंग्य) **अक्ल के पीछे लट्ठ लिये फिरना**=हर समय मूर्खता के काम करते रहना। **अक्ल गुम होना**=बुद्धि का सहसा अभाव हो जाना। **अक्ल चकराना**=इतना चकित होना कि बुद्धि कुछ काम न करे। **अक्ल चरने जाना**=बुद्धि या समझदारी का अभाव होना। **अक्ल ठिकाने होना**=हानि आदि होने पर मूर्खता दूर होना। **अक्ल दौड़ाना या लड़ाना**=सोचने-समझने का प्रयत्न करना। **अक्ल पर पत्थर (या परदा) पड़ना**=सहसा ऐसी स्थिति होना कि बुद्धि कुछ भी काम न करे। **अक्ल मारी जाना**=बुद्धि नष्ट होना। हतबुद्धि होना। **अक्ल सठियाना**=बुद्धि भ्रष्ट होना।

पद—**अक्ल का दुश्मन**=मूर्ख। बेवकूफ। **अक्ल का पुतला**=बहुत बुद्धिमान्। **अक्ल का पूरा**=मूर्ख, जड़। (व्यंग्य) **अक्ल का मारा**=मूर्ख।

अक्लमंद—पुं० [अ०+फा०] बुद्धिमान्। समझदार।

अक्लमंदी—स्त्री० [अ०+फा०] बुद्धिमत्ता। समझदारी।

अक्लम—पुं० [सं० न० त०] क्लांति या थकावट का अभाव।

वि० [न० ब०] न थकनेवाला।

अक्षंतव्य—वि० [सं०√क्षम्+तव्यत्, न० त०] =अक्षम्य।

अक्ष—पुं० [सं० √अक्ष् (व्याप्ति)+अच् या घञ्] १. खेलने का पासा। २. चौसर नामक खेल। ३. वह कल्पित रेखा जिसके आधार पर वस्तुएँ परिभ्रमण अथवा अपने सब कार्यों का संचालन करती हुई मानी जाती है। जैसे—पृथ्वी के दोनों धुरों को मिलानेवाली कल्पित सीधी रेखा, जिसपर पृथ्वी घूमती हुई मानी जाती है। ४. किसी चीज का धुरा या धुरी। जैसे—गाड़ी का अक्ष। (ऐक्सिल, उक्त दोनों अर्थों में)। ५. गाड़ी। ६. अक्षांश के विचार से भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण में किसी स्थान का गोलीय अंतर। ७. तराजू की डंडी। ८. व्यवहार। लेन-देन। ९. मुकदमा। १०. कानून। ११. इंद्रिय। १२. तूतिया। १३. साँभर नमक। १४. सुहागा। १५. आँख। नेत्र। १६. बहेड़ा। १७. रुद्राक्ष। १८. साँप। १९. गरुड़। २०. आत्मा। २१. कर्ष नामक तोल जो १६ माशे की होती है। २२. दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षक—पुं० [सं० अक्ष√कै+क] तिनिश का पेड़।

अक्ष-कर्ण—पुं० [कर्म० स०] समकोण त्रिभुज की सबसे लंबी भुजा। (ज्यामिति)

अक्ष-कुमार—पुं० [मयू० स०] रावण का एक पुत्र।

अक्षकूट—पुं० [प० त०] आँख की पुतली।

अक्ष-क्रीड़ा—स्त्री० [प० त०] पासे या चौसर का खेल।

अक्षज—वि० [सं० अक्ष√जन् (उत्पन्न होना)+ड] अक्ष से उत्पन्न या बना हुआ।
पुं० १. विष्णु। २. हीरा। ३. वज्र। ४. प्रत्यक्ष ज्ञान।

अक्षत—वि० [सं०√क्षण् (हिंसा)+क्त, न० त०] १. जो क्षत या टूटा-फूटा न हो अर्थात् पूरा। २. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों। अखंडित। ३. क्षत या घाव से रहित।
पुं० १. कच्चा चावल जिसका उपयोग देव-पूजन में किया जाता है। २. धान का लावा। ३. जौ। ४. शिव का एक नाम। ५. नपुंसक। हिजड़ा।

अक्षत-योनि—वि० [ब० स०] (कन्या या स्त्री) जिसका पुरुष से संबंध या मैथुन न हुआ हो। (वर्जिन)

अक्षत-वीर्य—वि० [न० ब०] (पुरुष) जिसका वीर्य स्खलित न हुआ हो।
पुं० १. शिव। २. नपुंसक। (क्व०) ३. क्षय का अभाव।

अक्षता—वि० [सं०√क्षण्+क्त-टाप्, न० त०]=अक्षत योनि।
स्त्री० १. वह स्त्री जिसका पुनर्विवाह तक किसी पुरुष से संयोग न हुआ हो। २. काकड़ा सींगी।

अक्ष-दर्शक—पुं० [प० त०] १. न्यायाधीश। २. धर्माध्यक्ष। ३. जूएखाने का मालिक।

अक्ष-द्यूत—पुं० [प० त०] पासों से खेला जानेवाला जूआ।

अक्ष-धर—वि० [प० त०] धुरा धारण करनेवाला।
पुं० १. विष्णु। २. गाड़ी का पहिया। ३. शाखोट नामक वृक्ष।

अक्ष-धुर—पुं० [प० त०] पहिये की धुरी।

अक्ष-पटल—पुं० [प० त०] १. प्राचीन भारत के राज्य के आय-व्यय के लेखों का प्रधान विभाग। २. उस विभाग का प्रधान अधिकारी।

अक्षपद—पुं०=अक्षपाद।

अक्ष-पाद—पुं० [ब० स०] १. न्यायशास्त्र के प्रवर्त्तक गौतम ऋषि। २. तर्क या न्याय शास्त्र का पंडित। तार्किक। नैयायिक।

अक्ष-बंध—पु० [सं०.प० त०] नजर बाँधने की विद्या। नजरबंदी।

अक्षम—वि० [सं०√क्षम् (सहना)+अच्, न० त०] १. जिसमें क्षमता या शक्ति न हो। अशक्त। असमर्थ। २. जिसमें कार्य करने की योग्यता न हो। अयोग्य। ३. जो साधारण दोषों के लिए भी किसी को क्षमा न करे। जिसमें सहनशीलता न हो। असहिष्णु। ४. जो किसी का उत्कर्ष या सुख अच्छी दृष्टि से न देख सके। ईर्ष्या करनेवाला।

अक्षमता—स्त्री० [सं० अक्षम+तल्-टाप्] १. अक्षम होने की अवस्था या भाव। २. अशक्तता। असमर्थता। ३. ईर्ष्या। डाह।

अक्ष-मापक—पुं० [प० त०] ग्रह-नक्षत्र आदि देखने का एक यंत्र।

अक्ष-माला—स्त्री० [प० त०] १. वसिष्ठ की पत्नी अरुंधती। २. रुद्राक्ष की माला। ३. वर्णमाला।

अक्ष-माली (लिन्)—वि० [सं० अक्षमाला+इनि] रुद्राक्ष की माला धारण करनेवाला।
पुं० शिव।

अक्षम्य—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे क्षमा न किया जा सकता हो। २. (अपराध या दोष) जिसके लिए कर्ता को क्षमा न किया जा सकता हो।

अक्षय—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका क्षय या नाश न हो। अविनाशी। २. गरीब। निर्धन।
पुं० परमात्मा का एक नाम या विशेषण।

अक्षयकुमार*—पुं०=अक्षकुमार।

अक्षय-तृतीया—स्त्री० [कर्म० स०] वैशाख शुक्ल-तृतीया। आखातीज। (पर्व)

अक्षय-धाम (न्)—पुं० [कर्म० स०] १. वैकुंठ। २. मोक्ष।

अक्षय-नवमी—स्त्री० [कर्म० स०] कार्तिक शुक्ला नवमी। (पर्व)

अक्षय-पद—पुं० [कर्म० स०] मोक्ष।
वि० दे० 'परमपद'।

अक्षय-लोक—पुं० [कर्म० स०] स्वर्ग।

अक्षय-वट—पु [कर्म० स०] प्रयाग और गया के प्रसिद्ध वटवृक्ष जो हजारों वर्ष पुराने कहे जाते हैं।

अक्षय-वृक्ष—पुं०=अक्षयवट।

अक्षया—स्त्री० [सं० अक्षय+टाप्] गणित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट ऐसी तिथियाँ जो कुछ विशिष्ट दिनों में पड़ती हों। जैसे—रविवार को होनेवाली सप्तमी, सोमवार को होनेवाली अमावस्या या मंगलवार को होनेवाली चौथ।

अक्षयिणी—स्त्री० [सं० क्षयिणी, क्षय+इनि-ङीप्, अक्षयिणी, न० त०] पार्वती।

अक्षयी (यिन्)—वि० [सं० क्षय+इनि, न० त०] [स्त्री० अक्षयिणी] जिसका क्षय या नाश न हो। अक्षय।

अक्षय्य—वि० [स०√क्षि (क्षय)+यत् नि० न० त०] जिसका किसी प्रकार क्षय न किया जा सके। प्रायः एक-सा सदा बना रहनेवाला।

अक्षर—वि० [सं०√ क्षर्+अच्, न० त०] १. जिसका क्षर या नाश न हो। अविनाशी। नित्य। २. अच्युत। ३. स्थिर।
पुं० १. ध्वनिगत लघुतम इकाई। वर्ण। (एलफाबेट) २. वह चिह्न या संकेत जो उक्त ध्वनि का सूचक होता है। (लेटर)
मुहा०—अक्षर घोंटना=अक्षर लिखने का अभ्यास करना।
पद—विधना के अक्षर=भाग्य का लेख जो बदल या मिट नहीं सकता।
३. आत्मा। ४. परमात्मा या ब्रह्म का वह आध्यात्मिक स्वरूप जिसके आश्रय से उसने प्रकृति और पुरुष का रूप धारण किया है। ५. आकाश। ६. धर्म। ७. तपस्या। ८. मोक्ष। ९. जल। पानी। १०. चिचिड़ा।

अक्षर-क्रम—पुं० [प० त०] नामों, शब्दों आदि की सूची बनाते समय, उन्हें रखने या लगाने का वह क्रम जिसमें उनके आरंभिक अक्षर उसी क्रम से रहते हैं जिस क्रम से वे वर्णमाला में होते हैं। (एलफाबेटिकल आर्डर)

अक्षर-गणित—पुं० [प० त०] बीजगणित।

अक्षरच्छंद—पुं० [तृ० त०]=वर्णवृत्त।

अक्षर-जीवक—पुं० [सं० अक्षर√ जीव्+ण्वुल्-अक] =अक्षर-जीवी।

अक्षर-जीवी (विन्)—पुं० [अक्षर √ जीव्+णिनि,] पढ़ाई-लिखाई

के काम से जीविका चलानेवाला व्यक्ति।
अक्षर-ज्ञान—पुं० [ष० त०] अक्षरों के पढ़ने-लिखने का ज्ञान। साक्षरता।
अक्षर-धाम (न्)—पुं० [ष० त०] ब्रह्मलोक।
अक्षर-न्यास—पुं० [ष० त०] १. लिखावट। २. लेख। ३. तांत्रिक पूजन में वह क्रिया जिसमें मंत्र के एक-एक अक्षर का उच्चारण करते हुए शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का स्पर्श किया जाता है।
अक्षर-पंक्ति—स्त्री० [ष० त०] चार चरणों का एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २० वर्ण होते हैं।
अक्षर-बंध—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त।
अक्षर-माला—स्त्री० [ष० त०] वर्णमाला।
अक्षर-योजना—स्त्री० [ष० त०] किसी विशेष उद्देश्य से अथवा कोई विशेष रूप देने या विशेष अर्थ निकालने के लिए किसी विशेष क्रम से कुछ अक्षर बैठाना। जैसे—मुक्तक की अक्षर-योजना।
अक्षर-विन्यास—पुं० [ष० त०] १. लिखावट। २. शब्दों के वर्णों का विन्यास। अक्षरी। हिज्जे।
अक्षरशः(शस्)—क्रि० वि० [सं० अक्षर+शस्] (कथन या लेख के) एक-एक अक्षर का ध्यान रखते हुए अथवा उनका अनुकरण या पालन करते हुए। ठीक ज्यों का त्यों।
अक्षरा—स्त्री० [सं० अक्षर+अच्, टाप्] १. शब्द। २. भाषा।
अक्षराक्षर—पुं० [सं० अक्षर–अक्षर, ब० स०] योग में एक प्रकार की समाधि।
क्रि० वि० [अव्य० स०] =अक्षरशः।
अक्षरारंभ—पुं० [सं० अक्षर-आरंभ, ष० त०] (किसी को) पहले-पहल अक्षरों का ज्ञान या परिचय कराना। पढ़ाना आरंभ करना।
अक्षरार्थ—पुं० [सं० अक्षर–अर्थ, ष० त०] १. शब्द के प्रत्येक अक्षर का अर्थ। २. शब्दों का अर्थ। शब्दार्थ। (भावार्थ से भिन्न)
अक्षरावस्थान—पुं० दे० 'अपश्रुति'।
अक्षरी—स्त्री० [सं०√अश्+(व्याप्ति) सरन्, ङीष्] १. शब्दों के अक्षरों का उनके ठीक क्रम के अनुसार उच्चारण करना अथवा लिखना। वर्तनी। हिज्जे। २. वर्षा ऋतु।
अक्ष-रेखा—स्त्री० [ष० त०] वह सीधी रेखा जो किसी गोले के केन्द्र से उसके तल के किसी बिन्दु तक सीधी पहुँचती है। धुरी की रेखा।
अक्षरौटी—स्त्री० १. दे० 'अखरावट'। २. दे० 'अखरौटी'।
अक्षर्य—वि० [सं० अक्षर+यत्] अक्षर-संबंधी।
पुं० एक वैदिक साम का नाम।
अक्ष-वाट—पुं० [ष० त०] १. अखाड़ा। २. जूआखाना।
अक्ष-विद्या—स्त्री० [ष० त०] १. जुए से संबंध रखनेवाली सब बातों का ज्ञान। २. जूआ।
अक्ष-शाला—स्त्री० [ष० त०] प्राचीन भारतीय राज्यों का वह विभाग जिसके अधिकार में सोने, चाँदी, टकसाल आदि का प्रबन्ध रहता था।
अक्ष-सूत्र—पुं० [ष० त०] १. रुद्राक्ष की माला। २. जपमाला।
अक्ष-हीन—वि० [तृ० त०] जिसे आँखों से दिखाई न दे। अंधा।
अक्षांश—पुं० [सं० अक्ष–अंश, ष० त०] १. किसी चीज के बेड़े बल का या चौड़ाई की ओर का विस्तार या परिमाण। २. भूगोल में वह कल्पित रेखा जो याम्योत्तर वृत्त को ३६० अंशों या भागों में विभक्त करके उसमें के किसी अंश से भूमध्य रेखा के समानांतर खींची जाती है। ३. उक्त रेखा के आधार पर किसी स्थान की वह स्थिति या दूरी जो भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण होने के विचार से स्थिर की जाती और संख्या-सूचक अंशों में बतलाई जाती है। (लैटीच्यूड) ४. क्रांतिवृत्त के उत्तर या दक्षिण होने के विचार से किसी नक्षत्र का कोण बनानेवाला अंतर।
अक्षार—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें क्षार न हो। क्षार-रहित। २. जो स्वयं क्षार न हो। क्षार से भिन्न।
पुं०=अक्षार-लवण।
अक्षार-लवण—पुं० [सं० क्षार-लवण, कर्म० स०, न–क्षार लवण, न० त०] वह लवण (नमक) जिसमें खार न हो। प्राकृतिक नमक।
अक्षावाप—पुं० [सं० अक्ष–आ√वप् (फेंकना) + अण्] जुआरी।
अक्षि—स्त्री० [सं०√अश् (व्याप्ति) +क्सि] १. आँख। नेत्र। २. दो की संख्या।
अक्षिक—पुं० [सं० अक्ष+ठन्–इक] आल का पेड़।
अक्षि-कूट, (कूटक)—पुं० [ष० त०] आँख की पुतली।
अक्षि-गोलक—पुं० [ष० त०] आँख का डेला जिसके बीच में पुतली होती है। (आई-बाल)
अक्षित—वि० [सं० अक्षीण] १. जिसका क्षय न हुआ हो। २. न छीजनेवाला। ३. जिसे चोट न लगी हो।
पुं० १. जल। २. दस लाख की संख्या।
अक्षि-तारक—पुं० [ष० त०] आँख का तारा।
अक्षि-तारा—स्त्री० [ष० त०] =अक्षितारक।
अक्षिति—वि० [सं० न० ब०] जिसका क्षय या नाश न हो।
स्त्री० [√क्षि+क्तिन्, न० त०] नश्वरता।
अक्षि-पटल—पुं० [ष० त०] आँख का ऊपरी भाग या परदा।
अक्षि-लोम (मन्)—पुं० [ष० त०] बरौनी।
अक्षि-विक्षेप—पुं० [ष० त०] तिरछी नजर। कटाक्ष।
अक्षी—वि०=अक्षीय।
अक्षीण—वि० [सं० न० त०] १. जो क्षीण (या दुबला-पतला) न हो। २. मोटा। हृष्ट-पुष्ट। ३. जो किसी तरह घटा न हो।
अक्षीय—वि० [सं० अक्ष+छ–ईय] १. अक्ष से संबंध रखने या उसमें होनेवाला। (ऐक्सियल) २. किसी वस्तु के उदर या भीतरी भाग में होने या उससे संबंध रखनेवाला। (वेन्ट्रल)
अक्षीव—वि० [सं०√क्षीव्+क वा क्त, न० त०] जो मतवाला या मत्त न हो। अमत्त।
पुं० १. समुद्री नमक। २. सहिजन का पेड़।
अक्षुण—वि०=अक्षुण्ण।
अक्षुण्ण—वि० [सं० न० त०] १. जो क्षुण्ण, खंडित या टूटा-फूटा न हो। पूरा। समूचा। २. जो कम न हुआ हो। बिना घटा हुआ। ३. जो कुशल या चतुर न हो। अनाड़ी। ना-समझ। ४. जो हारा न हो। अपराजित।
अक्षुध्य—वि० [सं० न० त०] (पदार्थ) जिसे खाने से भूख न लगे

या बहुत कम लगे। भूख बन्द करनेवाला।

अक्षेत्र—वि० [सं० न० त०] १. जो क्षेत्र न हो। २. जो क्षेत्र बनने के लिए उपयुक्त न हो। जैसे—अक्षेत्र भूमि, अक्षेत्र छात्र आदि। ३. जिसे प्रकृति, शरीर आदि के स्वरूप का ज्ञान न हो, अर्थात् तत्त्व-ज्ञान से रहित या शून्य।
पुं० १. क्षेत्र का अभाव। २. ऐसी भूमि जिसमें खेती न हो सकती हो। ३. ज्यामिति में वह आकृति जो ठीक या शुद्ध न हो।

अक्षेत्री (त्रिन्)—वि० [सं० क्षेत्र+इनि, न० त०] जिसके पास खेत न हो।

अक्षेम—पुं० [सं० न० त०] १. क्षेम का अभाव। २. अशुभ, हानि-कारक आदि होने की अवस्था। अमंगल।

अक्षोट—पुं० [सं०√अक्ष्+ओट] अखरोट।

अक्षोनि*—स्त्री० =अक्षौहिणी।

अक्षोभ—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें क्षोभ या उद्वेग न हो। फलतः शान्त। २. गम्भीर और अधीर।
पुं० [सं० न० त०] १. क्षोभ या उद्वेग का अभाव। फलतः शांति। २. हाथी बाँधने का खूँटा।

अक्षोभ्य—वि० [सं०√क्षुभ् (विचलित होना)+णिच्+यत्, न० त०] १. जिसमें क्षोभ न उत्पन्न किया जा सके। २ जो कभी क्षुब्ध न होता हो। सदा धीर और शान्त बना रहनेवाला।
पुं० गौतम बुद्ध का एक नाम।

अक्षौहिणी—स्त्री० [सं० ऊह+इनि, अक्ष-ऊहिनी, ष० त०] प्राचीन काल की चतुरंगिणी सेना जिसमें १,०९,३५० पैदल, ६५,६१० घोड़े, २१,८७० रथ और २१,८७० हाथी होते थे।

अक्स—पुं० [अ०] [वि० अक्सी] १. छाया। परछाईं। २. प्रतिबिंब। ३. चित्र। तस्वीर। ४. मन में छिपा हुआ द्वेष या शत्रुता।

अक्सर—क्रि० वि० [अ०] अनेक अवसरों पर। प्रायः। बहुधा।
वि० दे० 'अकसर'।

अक्सी—वि० [अ०] १. अक्स या छाया से संबंध रखनेवाला। अक्स या प्रतिबिम्ब के रूप में पड़नेवाला। जैसे—अक्सी तसवीर=छाया-चित्र। ३. मनमें अक्स (अकस) या द्वेष रखनेवाला।

अक्सीर—वि० [अ०] निश्चित रूप से अपना गुण, प्रभाव या फल दिखाने-वाला।
पुं० वह 'कल्पित' रासायनिक पदार्थ जिसके योग से दूसरी धातुएँ चाँदी या सोना बन जाती हों। रसायन। कीमिया।

अखंग*—वि० [सं० अखंड] न खँगनेवाला। जो जल्दी क्षीण न हो।

अखंड—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों अथवा न हो सकते हों। फलतः पूरा या समूचा। जैसे—अखंड भारत। २. जिसका क्रम बीच में न टूटे। निरंतर चलता रहनेवाला। जैसे—अखंड पाठ। ३. जिसके बीच या मार्ग में कोई बाधा या विघ्न न हो। निर्विघ्न। बे-रोक-टोक। ४. जिसका खंडन न हो सके।

अखंड-द्वादशी—स्त्री० [कर्म० स०] अगहन-शुक्ल द्वादशी। (पर्व)

अखंडन—पुं० [सं० न० त०] १. खंडन का अभाव। खंडन न होना। २. स्वीकार। ३. परमात्मा। ४. काल।
वि० [सं० न० ब०] १. जिसका खंडन न हुआ हो। अखं-डित। २. जिसका खंडन न हो सके। अखंडनीय। ३. पूरा। समूचा।

अखंडनीय—वि० [सं० न० त०] १. (पदार्थ) जिसके खंड या टुकड़े न हो सकें। २. (मत या सिद्धान्त) जिसका खंडन न हो सके। जिसे अन्यथा सिद्ध न किया जा सके।

अखंडल*—वि० [सं० अखण्ड] १. अखंड। २. पूरा। समूच।
*पुं० [सं० अखंडल] इन्द्र।

अखंडित—वि० [सं० न० त०] १. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों। जो खंडित न हुआ हो। २. पूरा। समूचा। ३. जिसका क्रम बीच में न टूटा हो। लगातार चलता रहनेवाला।

अख—पुं० [?] बाग। बगीचा। (डिं०)

अखगरिया—पुं० [अ० अखगर=चिनगारी+इया प्रत्य०] वह घोड़ा जिसके शरीर से मलने के समय चिनगारियाँ निकलती हों।

अखज†—वि० [सं० अखाद्य] १. न खाने योग्य। अखाद्य। २. निकृष्ट। बुरा।

अखड़ा†—पुं० [सं० आखात] ताल के बीच का वह गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। चँदवा।

अखड़ैत—वि० [हिं० अखाड़ा+ऐत (प्रत्य०)] बलवान। (डिं०)
पुं० दे० 'अखाड़िया'।

अखती†—वि०=अखाद्य।
स्त्री०=अक्षय तृतीया।

अखतीज—स्त्री०=अक्षय तृतीया।

अखनी—स्त्री० [अ० अखनी] उबाले हुए मांस का रसा।

अखबार—पुं० [अ० खबर का बहु०] समाचार-पत्र।

अखबार-नवीस—पुं० दे० 'पत्रकार'।

अखबार-नवीसी—स्त्री० दे० 'पत्रकारिता'।

अखबारी—वि० [अ० अखबार] समाचार-पत्र से संबंध रखनेवाला। जैसे—अखबारी कागज।

अखय*—वि०=अक्षय।

अखर*—वि०, पुं०=अक्षर।

अखरताली†—स्त्री० [सं० अक्षर+तल] हस्ताक्षर। दस्तखत।

अखरना—अ० [सं० खर=तीव्र या कटु] अप्रिय या बुरा लगना। खलना। २. कष्टदायक या दुःखदायी जान पड़ना।

अखरा*—वि० [सं० अ+हिं० खरा=सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। झूठा या बनावटी।
*पुं०=अक्षर।
†पुं० [?] बिना छाना हुआ जौ का आटा।

अखरावट—स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन पा० अक्खरावट्टन] १. वर्ण-माला। २. लिखने का ढंग। लिखावट। ३. वह कविता जिसमें चरण या पद वर्ण-माला के अक्षरों के क्रम से आरंभ होते हों।

अखरावटी—स्त्री०=अखरावट।

अखरोट—पुं० [सं० अक्षोट] १. एक प्रसिद्ध वृक्ष जो भूटान से अफ-गानिस्तान तक होता है। २ उक्त वृक्ष का छोटा गोल फल जिसकी गिनती मेवों में होती है। (वॉलनट)

अखरौटी†—स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन] १ अखरावट। २ सितार आदि बाजों पर राग के बोल अलग-अलग और साफ निकालने की क्रिया।
अखर्व—वि० [न० त०] १. जो खर्व या छोटा न हो। बड़ा। २. लंबा।
अखस्त†—पुं०=अक्षत।
अखाँगना†—स० [हिं० खाँग ?] प्रहार करना। मारना।
अखा†—पुं०=आखा।
अखाड़†—वि० [सं० अखंड] बहुत अधिक।
अखाड़ा—पुं० [सं० अक्षवाट, प्रा० अक्खआडो] १. कुश्ती या कसरत करने का स्थान। व्यायामशाला।
मुहा०—**अखाड़े में आना या उतरना**—प्रतिद्वंद्विता करने या लड़ने के लिए सामने आना।
२. साधुओं की सांप्रदायिक मंडली। जमायत। ३. उक्त के रहने का विशिष्ट स्थान। ४. तमाशा दिखाने या गाने बजानेवालों की मंडली। जमायत। ५. नाचघर। नृत्यशाला। ६. रंगशाला। ७. आँगन। ८. विशिष्ट प्रकार के लोगों के इकट्ठे होने का स्थान।
अखाड़िया—वि० [हिं० अखाड़ा+इया (प्रत्य०)] १. अखाड़े में पहुँचकर कुश्ती लड़नेवाला। २. प्रतिद्वंद्विता में बड़े बड़ों का सामना करने और बहुतों को परास्त करनेवाला। दंगली।
पुं० पहलवान। मल्ल।
अखात—पुं० [सं० खन् (खोदना)+क्त, न० त०] १. समुद्र का वह भाग जो स्थल से तीन ओर से घिरा हो। खाड़ी। २. प्राकृतिक जलाशय।
अखाद*—वि०=अखाद्य।
अखाद्य—वि० [सं०√खद् (खाना) +ण्यत्, न० त०] १. (पदार्थ) जो खाये जाने के योग्य न हो या जिसे खाना उचित न हो। २. (पदार्थ) जो खाया न जा सके।
अखारना—स० दे० 'पखारना'।
अखारा*—पुं०=अखाड़ा।
अखित—वि०, पुं०=अक्षत।
अखियात—वि०, पुं०=आख्यात।
अखिल—वि० [सं०√खिल् (एक-एक कण लेना) +क, न० त०] १. पूरा। समूचा। सारा। २. सर्वांगपूर्ण। अखंड। ३. खेती-बारी के योग्य (भूमि)।
पुं० जगत्। संसार।
अखिलात्मा (त्मन्)—पुं० [सं० अखिल- आत्मा, ष० त०] सारे विश्व और उसके सब अंगों में व्याप्त रहनेवाली आत्मा। विश्वात्मा।
अखिलेश—पुं० [सं० अखिल-ईश, ष० त०] सब का स्वामी। परमेश्वर।
अखीन—वि०=अक्षीण।
अखीर—पुं० [अ० आखिर] १. अंत। समाप्ति। २. छोर। सिरा।
अखीरी—वि० [अ०] अन्त का। आखिरी अन्तिम।
अखुटना—अ० [?] १. समाप्त न होना। खतम न होना। २. लड़खड़ाना। उदा०- अखुटत परत, सुविह्वल भयो। -नंददास।
अखुटित*—भू० कृ० दे० 'अखूट'।
क्रि० वि० [हिं० अखुटना] निरंतर। लगातार। उदा०- अखुटित रटत सभीत, ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै। —सूर।
अखूट—वि० [हिं० अ=नहीं+खुटना=समाप्त होना] १. जो जल्दी खतम या समाप्त न हो। २. अखंड। अक्षुण्ण। उदा०—सावन भोग सजोग रज मंडन आउ अखूट। —चन्दवरदाई। ३. बहुत अधिक।
अखेट*—पुं०=आखेट।
अखेटक—पुं०=आखेटक।
अखेलत—वि० [हिं० अ+खेलना] १. जो खेलता हुआ न हो। २. जो चंचल न हो। शांत। स्थिर।
अखै*—वि०=अक्षय।
अखैतीज—स्त्री०=अक्षय तृतीया।
अखैवट—पुं०=अक्षयवट।
अखैबर—पुं०=अक्षयवट।
अखैवर—पुं०=अक्षयवट।
अखोटा—पुं [देश०] कान में पहनने का गहना। (राज०) उदा०—कान अखोट जान जुगत को, झूटणों।—मीराँ।
अखोर*—वि० [हिं० अ+खोर=खोट] १. जिसमें कोई खोर या दोष न हो। अच्छा। भला। २. भद्र। सज्जन। ३. सुन्दर।
वि० [फा० आखूर वा आखोर] १. खराब। बुरा। २. निकम्मा। रद्दी।
पुं० १. कूड़ा-करकट। २. निकम्मी और रद्दी चीज। ३. घास-पात।
अखोला—पुं०=अंकोल (वृक्ष)।
अखोह—पुं० [सं० क्षोभ=असमानता] ऊबड़-खाबड़ जमीन। असम भूमि।
अखौटा—पुं० [सं० अक्ष+हिं० औटा (प्रत्य०)] १. चक्की के बीच की खूँटी। २. कुएँ पर का वह डंडा जिसमें गराड़ी लगी रहती है।
अख्खाह—अव्य० [सं० अहह] प्रसन्नता और आश्चर्यसूचक शब्द।
अख्तावर—पुं० [फा० आख्ता] वह घोड़ा जिसके अंडकोश में कौड़ी या गाँठ न हो।
अख्तियार—पुं० [अ० इख्तियार] =अधिकार।
अख्यात—वि० [सं० न० त०] १. जो कहा न गया हो। २. जो ख्यात या प्रसिद्ध न हो।
*वि०, पुं०=आख्यात।
अख्यान*—पुं०=आख्यान।
अख्यायिका*—स्त्री०=आख्यायिका।
अगंज—वि० [सं० गज=गंजन] जिसे जीता न जा सके। अजेय। उदा०—आवन अवनि अगंज हुआ, जानि उल्कापात।—चन्दवरदाई।
अगंड—पुं० [सं० न० ब०] ऐसा धड़ जिसके हाथ-पैर कट गये हों।
अगंता (तृ)—वि० [सं०√गम् (जाना)+तृच्, न० त०] जो चलता न हो। न चलनेवाला।
†वि० [हिं० आगे] १. आगे चलने, रहने या होनेवाला।२. अग्रिम।
अग—वि० [सं०√गम्+ड, न० त०] १. जो चलता न हो। अचल। स्थावर। २. दे० 'अगम'।
पुं० १. वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़। ३. सूर्य। ४. साँप। ५. घड़ा। ६. सात की संख्या।
†वि०=अज्ञ।

†क्रि० वि०=आगे।

†पुं० [सं० अंग] अंग। शरीर। (डिं०)

†पुं० दे० 'अगोरा'।

अगई—पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फलों की तरकारी और लकड़ी से कोयला बनता है।

अगच्छ—वि० [सं०√गम्+श, न० त०] न चलनेवाला।

पुं० १. पर्वत। पहाड़। २. पेड़। वृक्ष।

अगज—वि० [सं० अग√जन् (उत्पन्न होना)+ड] [स्त्री० अगजा] १. पर्वत या वृक्ष से पैदा होनेवाला। २. पर्वत पर होनेवाला। पहाड़ी।

पुं० १. शिलाजीत। २. हाथी।

अगजग—वि०, पुं०=चराचर।

अगजा—स्त्री० [सं० अगज+टाप्] पार्वती।

अगट—पुं० [?] वह दूकान जहाँ मांस बिकता हो।

अगटना—अ० [सं० एकत्र, दे० 'इकट्ठा'] इकट्ठा या जमा होना।

अगड़—स्त्री०=अकड़।

अगड़त्त्ता—वि० [सं० अग्रोद्धत=बढा-चढ़ा] बहुत ऊँचा, बड़ा या भारी।

अगड़-बगड़—वि० [अनु० या स० अकटा-विकटा (देवियाँ)] १. बे-सिर पैर का। ऊलजलूल। २. जिसका कोई क्रम न हो। क्रम-विहीन। ३. निकम्मा। व्यर्थ का।

स्त्री० १. बे-सिर-पैर की बात। २. ऐसा काम जिसका कोई क्रम निर्धारित न हो। ३. व्यर्थ का प्रलाप या काम। अनुपयोगी कार्य।

अगड़म-बगड़म—वि०, पुं०=अगड़-बगड़।

अगड़ा†—पुं० [?] ज्वार-बाजरे की ऐसी बाल, जिसके दाने निकाल लिये गये हों। खुखड़ी।

पुं०=अगण (पिंगल का)।

अगण—पुं० [सं० न० त०] छंद-शास्त्र के ये चार निषिद्ध और बुरे गण—जगण तगण, रगण और सगण। (छंद के प्रारभ में इनका प्रयोग निषिद्ध माना गया है।)

अगणनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो गिना न जा सके। बहुत अधिक। २. दे० 'अगण्य'।

अगणित—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी गिनती न हो सके। असंख्य। बेशुमार। २. जो किसी गिनती में न हो। नगण्य। ३. उपेक्षणीय।

अगण्य—वि० [सं० न० त०] १. जो गिने जाने योग्य न हो। तुच्छ। नगण्य। २. दे० 'अगणनीय'।

अगत—वि० [सं० न० त०] १. जो गया न हो। २. जो बीता न हो।

स्त्री०=अगति।

पद—[सं० अग्रत; प्रा० अग्गतो] (हाथी के लिए, विधि-सूचक पद) आगे चलो। (महावतों की भाषा में।)

अगता—वि० [सं० अग्र, हिं० आगे] १. नियत समय से आगे या पहले होनेवाला। (अर्ली) जैसे—अगता अनाज या फल। २. अग्रिम। पेशगी।

पुं० [अ० आख्त.] वह घोड़ा जिसके अंड-कोश नष्ट कर दिये गये हों। आख्ता।

अगति—स्त्री० [सं० न० त०] १. गति का न होना। ठहरा या रुका हुआ न होना। स्थिरता। २. अंत्येष्टि, श्राद्ध आदि न होने के कारण मृतक की आत्मा की वह स्थिति जिसमें उसका मोक्ष नहीं होता और वह इधर-उधर भटकती फिरती है। ३. उचित दशा या स्थिति का अभाव। दुर्दशा।

वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें गति न हो। अचल। स्थिर। २. जिसके पास तक पहुँच न हो। ३. जिसके लिए कोई और गति या उपाय न रह गया हो। निरुपाय।

अगतिक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसकी कहीं गति या ठिकाना न हो। अशरण। निराश्रय। २. जिसके लिए कोई गति या उपाय न रहा गया हो। निरुपाय। ३. अंत्येष्टि, श्राद्ध आदि न होने के कारण जिसकी गति या मोक्ष न हुआ हो।

अगती—वि० [सं० अगति] १. मरने के बाद जिसकी गति (मोक्ष-प्राप्ति) न हुई हो। २. कुकर्मी, दुराचारी या पापी।

स्त्री० [हिं० अगता का स्त्री०] अग्रिम। पेशगी।

क्रि० वि० आगे या पहले से।

स्त्री० [?] चकवँड़ या चक्रमर्द नाम का पौधा।

अगत्तर†—वि० [सं० अग्रतर] आगे आनेवाला। भावी।

क्रि० वि० आगे या पहले से।

अगत्ती—पु० [सं० अग्रतर] उपद्रवी। नटखट।

अगत्या—क्रि० वि० [सं० अगति का तृतीयांत रूप] १. कोई गति या उपाय न रह जाने की दशा मे। लाचारी की हालत में। विवश होकर। २. सबके अंत में। ३. अकस्मात्। अचानक। सहसा। (क्व०)

अगद—वि० [सं० न० ब०] १. गद या रोग-रहित। नीरोग। २. कष्टों, बाधाओं आदि से रहित। निष्कंटक। उदा०—रीझि दियौ गुरु जाहि अगद वृन्दावन पद कौं।—सहचरिशरण।

पुं० [न० त०] १. ओषधि। दवा। २. आरोग्य। स्वास्थ्य।

अगद-तंत्र—पुं० [ष० त०] आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक जिसमें साँप, बिच्छू आदि के विष के प्रभाव दूर करने के उपायों का वर्णन है।

अगन—वि० [सं० अगण] १. न चलनेवाला। स्थावर। उदा०—अगन गगन-चर देखत तमासौ सब।—सेनापति। २. जो गण-रहित हो। ३. जिसकी गणना न हो सके। अगणित।

पु० दे० 'अगण'।

स्त्री०=अग्नि।

अगनइता*—पुं०=आग्नेय (कोण)।

अगनत*—वि०=अगणित।

अगनि†—स्त्री०=अग्नि।

अगनिउ*—पुं०=आग्नेय (कोण)।

अगनित*—वि०=अगणित।

अगनी†—वि०=स्त्री० [?] घोड़े के माथे पर के घूमे हुए बाल या भौंरी।

स्त्री०=अग्नि।

वि०=अगणित।

अगनू*—पु०=आग्नेय (कोण)।

अगनेउ*—पुं०=आग्नेय (कोण)।

अगनेत*—पुं० =आग्नेय (कोण)।
अगम—वि० [सं०√गम् (जाना)+अच्, न० त०] १. जो न चले। २. अचल। स्थावर।
पुं० १. पर्वत। पहाड़। २. पेड़। वृक्ष।
पुं०=आगम।
वि० [सं० अगम्य] [भाव० अगमता] १. जहाँ कोई पहुँच न सके। दुर्गम। उदा०—यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।—कबीर। २. जो जल्दी समझ में न आवे। कठिन दुर्बोध। ३. जो जल्दी प्राप्त न हो सके। दुर्लभ। ४. जिसकी थाह न मिले। अथाह। ५. विकट। ६. बहुत अधिक।
अगमति—वि० [सं० अगम और अति] १. बहुत अधिक विस्तृत। २. बहुत अधिक। उदा०—मोहन मूर्च्छन-वसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाऊँ।—सूर।
अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १. आगे। पहले। २. आगे से। पहले से। ३. आगे बढ़कर। उदा०—तद् अगमन ह्वै मोक्ष मिला।—जायसी।
अगमना*—अ० [सं० आगमन] आगमन होना। आना।
क्रि० वि०=अगमन।
अगमनीया—वि० स्त्री० [सं०√गम्+अनीयर्, न० त०] =अगम्या।
अगमानी—पुं० [सं० अग्रगामी] अगुआ। नायक। सरदार।
स्त्री० दे० 'अगवानी'।
अगमासी—स्त्री० दे० 'अगवाँसी'।
अगम्य—वि० [सं०√गम्+यत्, न० त०] [भाव० अगम्यता] १. जिसके अन्दर या पास न पहुँच सके। जहाँ जाना कठिन हो। पहुँच के बाहर। २. जिसका आशय, तत्त्व या रहस्य न समझा जा सके। अज्ञेय। ३. जिसके साथ गमन न किया जा सके। जैसे—स्त्री के लिए पर-पुरुष अगम्य है। ४. जो किसी प्रकार प्राप्त न किया जा सके। अप्राप्य। ५. जिसकी थाह या पता न लग सके। अथाह।
अगम्या—वि० स्त्री० [सं० अगम्य+टाप्] (वह स्त्री) जिसके साथ मैथुन करना विधिक या शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित हो। जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माँ आदि।
स्त्री० १. स्त्री जो गमन अथवा मैथुन के योग्य न हो। २. अंत्यजा।
अगम्या-गमन—पुं० [तृ० त०] १. शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित स्त्री के साथ किया जानेवाला गमन या संभोग जो महापातक माना गया है। २ अपने ही कुल या गोत्र की स्त्री के साथ किया जानेवाला गमन या संभोग। (इन्सेस्ट)
अगर—अव्य० [फा०] यदि। जो।
मुहा०—अगर-मगर करना=(क) बहस या तकरार करना। (ख) आगा-पीछा करना।
क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे।
पुं० [सं० अगरु, गुज० बँ० मरा० अगर] एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है। ऊद।
अगरई—वि० [सं० अगरु] अगर की लकड़ी की तरह कालापन लिये सुनहले रंग का।
अगरना*—अ० [सं० अग्र] १. आगे बढ़ना। २. आगे-आगे चलना।
अगरपार—पुं० [सं० अग्र] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा।
अगर-बगर—क्रि० वि० दे० 'अगल-बगल'।
अगरबत्ती—स्त्री० [सं० अगरुवर्त्तिका] वह बत्ती जो सुगंधि के निमित्त जलाई जाती है।
अगरवाला—पुं० [दे० 'अगरोहावाला' अथवा 'आगरेवाला'] वैश्यों का एक भेद। अग्रवाल।
अगरसार—पुं० [सं० अगरु] अगर नामक वृक्ष।
अगरा†—वि० [सं० अग्र] १. आगे या सामने का। आगेवाला। अगला। २. औरों से बढ़कर। अच्छा। बढ़िया। ३. अधिक। ज्यादा। जैसे—बैल लीजे कजरा। दाम दीजे अगरा।—कहा०। ४. कुशल। निपुण। ५. उग्र। विकट।
वि० [सं० अनर्गल] अनुचित और व्यर्थ का। उदा०—केलि परयौ रस को झगरौ, अरि ही अगरौ निवरै न चुकाएँ—घनानंद।
अगराना*—स० [सं० अंग] १. दुलार या प्यार से छूना। २. अधिक दुलार करके सिर चढ़ाना। ढीठ बनाना।
अ० दुलार के कारण बिगड़ कर धृष्टता करना।
स०=अंगड़ाना।
अगरी—स्त्री० [सं० अग्र] फूस की छाजन का एक ढंग।
स्त्री० [सं० अगिर=अवाच्य] १. अंड-बंड या बुरी बात। अनुचित बात। २. घमंड या धृष्टता से भरी बात। ३. घमंड या धृष्टता का व्यवहार। ढिठाई।
स्त्री० [सं० अर्गल] वह डंडा जो किवाड़ बन्द करके उसको खुलने से रोकने के लिए अन्दर की ओर लगाया जाता है। अर्गल।
स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का विष-नाशक पदार्थ। २. देवताड़ नामक वृक्ष। ३. एक प्रकार की घास।
अगरु—पुं० [सं०] अगर नामक वृक्ष और उसकी सुगंधित लकड़ी। ऊद।
अगरे†—क्रि० वि० [सं० अग्र=आगे] १. समक्ष। सामने। २. आगे। पहले।
अगरौ*—वि० [सं० अग्र]=अगरा (अगला या अच्छा)।
अगल-बगल—क्रि० वि० [अगल अनु०+फा० बगल] १. दाहने और बाएँ। दोनों तरफ २. इधर-उधर। ३. आस-पास।
अगलहिया—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।
अगला—वि० [सं० अग्र+ल; प्रा० अग्गल (?) अप-अग्गलउ; आगलो, गु० आगलू; सिं० आगरो; बं० आगलि, ओ० आगलि, मरा० अगला] १. जो सब से आगे या पहले हो। आगेवाला। जैसे—घर का अगला भाग। 'पिछला' का विपर्याय। २. पहले या पूर्व का। प्रथम। ३. पुराने जमाने का। जैसे—अगला जमाना, अगले लोग। ४. भविष्य में आने या होनेवाला। आगामी। ५. प्रस्तुत के बादवाला। जैसे—पहला मकान उनका और अगला हमारा है। ६. आगे चलकर या बाद में पड़नेवाला। किसी के उपरान्त आने या होनेवाला। ७. (व्यक्ति) अपर या दूसरा, जिससे काम पड़ा हो। (बोल-चाल) जैसे—(क) अगला अपना काम निकाल ही लेता है। (ख) अगला कहता है, तो चुपचाप सुन लो।
पुं० गाँव और उसकी सीमा के बीच में पड़नेवाले खेत या मैदान। माँझा।

अगवड़ा†—पुं०=अग्रिम (पेशगी)।

अगवना†—अ० [हिं० आगे+ना (प्रत्य०)] १. कोई काम करने के लिए आगे बढ़ना या उद्यत होना। २. किसी काम के स्वागत के लिए आगे बढ़ना। अगवानी करना।

स०=अँगवना।

अगवाई†—स्त्री० दे० 'अगवानी'।

पुं० दे० 'अगुआ'।

अगवाड़ा—पुं० [सं० अग्रवाट् अथवा अग्र+वार (प्रत्य०)] १. घर के आगे का भाग। २. घर के आगे की भूमि। 'पिछवाड़ा' का विपर्याय।

अगवान—पुं० [सं० अग्र-यान] १. आगे बढ़कर किसी का स्वागत करना। २. अगवानी। ३. वह जो अगवानी या स्वागत करता हो। ४. कन्या पक्ष के वे लोग जो आगे बढ़कर बरात का स्वागत करते हैं।

अगवानी—स्त्री० [सं० अग्र-यान] १. किसी आदरणीय अतिथि का अभिनंदन और स्वागत करने के लिए अपने स्थान से चलकर कुछ आगे पहुँचना। स्वागत। पेशवाई। २. विवाह में कन्या-पक्ष के लोगों का बरात के स्वागत के लिए उक्त प्रकार से आगे बढ़ना।

पु० अगुआ। नेता। सरदार।

अगवार†—पुं० [हिं० आगे+वार (प्रत्य०)] १. खेतों की उपज का वह अंश जो देवता, ब्राह्मण आदि के उद्देश्य से पहले ही निकालकर अलग रख दिया जाता है। २. अनाज का वह अंश जो ओसाने के समय भूसे के साथ चला जाता है।

पुं०=अगवाड़ा।

अगवासी—स्त्री० [सं० अग्रवासी] १. हल की लकड़ी का वह भाग जिसमें फाल लगा रहता है। २. दे० 'अगवार'।

अगसर—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] १. आगे या निश्चित समय से पहले। उदा०—अगसर खेती, अगसर मार।—घाघ। २. समक्ष। सामने।

अगसरना—अ० [सं० अग्रसर] अग्रसर होना। आगे बढ़ना।

अगसार*—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। सामने।

अगसारना†—स० [हिं० अगसरना] अग्रसर करना। आगे बढ़ाना।

अगस्त—पुं० [अं० ऑगस्ट] ईसवी सन् का आठवाँ महीना।

पुं० [सं० अगस्त्य] एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष जिसके फूलों की तरकारी और अचार बनते हैं।

अगस्ति—पुं०=अगस्त्य।

अगस्तिया—पुं० [सं० अगस्त्य] अगस्त्य नामक वृक्ष।

अगस्त्य—पुं० [सं० अग√स्त्यै (शब्द करना)+क] १. एक प्रसिद्ध ऋषि जो मित्र और वरुण के पुत्र (उर्वशी के गर्भ से) कहे गये हैं। कहते हैं कि एक बार इन्होंने सारा समुद्र पी डाला था। २. दक्षिणी आकाश का एक प्रसिद्ध और बहुत चमकीला तारा। ३. अगस्त नामक प्रसिद्ध वृक्ष। ४. शिव का एक नाम।

अगस्त्य-कूट—पुं० [ब० स०] दक्षिण भारत का एक पर्वत।

अगह*—वि० [सं० अग्राह्य] १. जिसे ग्रहण करना या पकड़ना कठिन हो। २. जिसे धारण करना, समझना या कहना कठिन हो। ३. कठिन। दुस्तर। ४. चंचल। ५. दे० 'अग्राह्य'।

अगहन—पुं० [सं० अग्रहायण] कार्तिक और पूस के बीच का महीना। मार्गशीर्ष।

अगहनिया—वि०=अगहनी।

अगहनी—वि० [सं० अग्रहायणी] अगहन महीने में होनेवाला। जैसे—अगहनी धान या फसल।

वि०=अगह।

अगहर†—क्रि० वि० [सं० अग्र, पा० अग्ग+हिं० हर (प्रत्य०)] १. आगे। २. पहले।

अगहाट†—वि० [सं० अग्र या हिं० आगे] १. बहुत दिनों का। पुराना। २. जो बहुत दिनों से किसी के अधिकार में चला आ रहा हो। जैसे—अगहाट खेत या भूमि।

अगहार†—वि०=अगहाट।

अगहुँड़*—वि० [सं० अग्र, पा० अग्ग+'हुँत' (प्रत्य०)] आगे चलने या होनेवाला।

क्रि० वि०—अगले भाग में। 'पिछहुँड़' का विपर्याय।

अगहु†—क्रि० वि०=आगे।

अगा†—पुं०=आगा (अगला भाग)।

क्रि० वि०=आगे।

अगाउनी*—क्रि० वि० दे० 'अगौनी'।

अगाऊँ†—वि०, क्रि० वि०=अगाऊ।

अगाऊ—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आऊ] आगे का। अगला।

क्रि० वि० आगे या पहले से।

पु० अग्रिम। पेशगी।

अगाड़†—पु० [हिं० आगे] १. आगे का भाग। आगा। २. ढेंकली के सिरे पर की छोटी, पतली लकड़ी। ३. हुक्के की नली।

क्रि० वि० १. आगे। सामने। २. पहले। पूर्व।

अगाड़ा†—पु० [हिं० आगा] १. वह सामान जो चलने से पहले वहाँ भेज दिया जाता है, जहाँ टिकना या पड़ाव करना होता है। २. कछार। तरी। ३. दे० 'आगा' (अगला भाग)।

अगाड़ी—स्त्री० [हिं० आगा+आड़ी (प्रत्य०)] १. आगे या सामने का भाग। 'पिछाड़ी' का विपर्याय। २. घोड़े की गरदन में बाँधी जानेवाली दो रस्सियाँ जो दोनों ओर खूँटों में बँधी रहती हैं।

क्रि० वि० १. आगे। सामने। २. आगे चलकर। भविष्य में।

अगाड़ी-पिछाड़ी—स्त्री० [हिं० आगा+पीछा] १. किसी चीज के आगे और पीछे के भाग। २. वे रस्सियाँ जिनमें एक ओर घोड़े की गरदन और दूसरी ओर उसके दोनों पिछले पैर बाँधे जाते हैं।

अगात्मजा—स्त्री० [सं० अग-आत्मजा, ष० त०] पार्वती।

अगाद—वि०=अगाध।

अगाध—वि० [सं० √गाध् (थाह लेना)+घञ्, न० ब०] १. जिसकी गहराई की थाह या पता न लग सके। अथाह। जैसे—अगाध समुद्र। २. जिसकी गंभीरता, गहनता, सीमा आदि का पता न चल सके। बहुत अधिक। जैसे—अगाध पांडित्य। ३. जिसे जानना या समझना बहुत ही कठिन या प्रायः असंभव हो।

पुं० बहुत बड़ा गड्ढा।

अगान†—वि०=अज्ञान।

अगामै—क्रि० वि० [सं० अग्रिम] आगे।

अगार*—क्रि० वि० [हिं० आगे] १. आगे। सामने। २. पहले।
पुं०=आगार।

अगारी—क्रि० वि०=अगाड़ी।
वि० [सं०] मकान का मालिक।

अगावां—पुं०=अगौरा।

अगास*—पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+आस (प्रत्य०)] घर के आगे का चबूतरा।
†पुं०=आकाश।

अगासी—स्त्री०=अकासी।

अगाह—वि० [फा० आगाह] जाना हुआ। ज्ञात। विदित। उदा०—तबहि कमल मन भएहु अगाहू।—जायसी।
क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे या पहले से।
वि०=अगाध।

अगाहू—वि० १.=अगाह। २.=अगाध।

अगिआह†—वि० [हिं० आग+इआह (प्रत्य०)] १. आग की तरह तपा हुआ। २. दूसरों का सुख देखकर जलनेवाला।

अगिदधा†—वि० [सं० अग्नि+दग्ध] १. आग से जला हुआ। दग्ध। २. बहुत अधिक संतप्त।

अगिदाह*—पुं०='अग्निदाह'।

अगिन*—स्त्री० [सं० अग्नि] १. आग। अग्नि (विशेष दे० 'अग्नि')। २. चंडूल की जाति का एक तरह का पक्षी। अगिया। ३. अगिया नामक घास।
वि०=[हिं० अ+गिनना] जो गिना न जा सके। संख्या में बहुत अधिक।
स्त्री० [स० अगारिका] ईख का ऊपरी भाग।

अगिन-गोला—पुं० [सं० अग्नि+हिं गोला] १. वह गोला जिसके फटने से आग लग जाती है। २. एक प्रकार का फूल और उसका पौधा।

अगिन-झाल—पुं० दे० 'जलपिप्पली'।

अगिनत—वि०=अनगिनत।

अगिन-बाव—पुं० [हिं० अगिन+बाव=वायु] चौपायों, विशेष कर घोड़ों को होनेवाला एक रोग।

अगिन-बोट—स्त्री० [सं० अग्नि+अं० बोट] भाप से चलनेवाली एक प्रकार की बहुत बड़ी नाव। (स्टीमर)

अगिनित*—वि०=अगणित।

अगिया—वि० [हिं० आग+इया (प्रत्य०)] १. आग की तरह जलता या चमकता हुआ। २. आग की सी जलन उत्पन्न करनेवाला। जैसे—अगिया कीड़ा, घास या ज्वर।
स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्नि] १. एक प्रकार की घास जो आस-पास के पौधों और वनस्पतियों को जलाकर सुखा देती है। २. नीली चाय। ३. एक पहाड़ी पौधा जिसके पत्तों में जहरीले रोएँ होते हैं। ४. अग्नि। आग।
पुं० [हिं० आग] १. एक जहरीला कीड़ा। २. एक रोग जिससे पैरों में छाले पड़ जाते हैं। ३. घोड़ों और बैलों को होनेवाला एक रोग।

अगिया कोइलिया—पुं० [हिं० आग+कोयला] लोक में उन दो बैतालों के कल्पित नाम जिनके संबंध में यह माना जाता है कि वे विक्रमादित्य के अनुचर थे।

अगियाना—अ० [हिं० आग] १. आग से जलने की-सी पीड़ा होना। जलन होना। २. बहुत अधिक क्रोध में आना या होना।
स० १. आग लगाना। २. आग के योग से जलाना, तपाना या पकाना। ३. जलन उत्पन्न करना। ४. बहुत अधिक क्रुद्ध करना। ५. धातु आदि के बरतन शुद्ध करने के लिए उनमें आग डालना।

अगिया बैताल—पुं० [हिं अगिया+बैताल] १. दे० 'अगिया कोइलिया'। २. वह कल्पित प्रेत या भूत जो मुँह से आग उगलता है। ३. क्रोधी व्यक्ति। ४. दे० 'छलावा'।

अगियार†—वि० [हिं० आग+इयार (प्रत्य०)] जो अधिक देर तक जलनेवाला हो या अधिक देर तक जल सके।

अगियारी†—स्त्री० [हिं० आग+इयारी (प्रत्य०)] १. दे० 'धूपदानी'। २. धूप आदि सुगंधित द्रव्य जलाने की क्रिया। ३. वह पात्र जिसमें उक्त वस्तुएँ डालकर जलाई जाती हैं। ४. पारसियों का मन्दिर जहाँ उनकी पवित्र अग्नि सदा जलती रहती है।

अगियासन—पुं० [हिं० आग+सन (पौधा)] एक पौधा जिसे छूने से शरीर में जलन होने लगती है।

अगिरी—स्त्री०=अगरी।

अगिला†—वि०=अगला।

अगि-लाई*—स्त्री० [हिं० आग+लाना (लगाना)] १. आग लगाने की क्रिया या भाव। २. दो पक्षों में झगड़ा कराने की क्रिया या भाव।
वि० आपस में लोगों में झगड़ा करानेवाला।

अगिहर†—पुं० [हिं० आग+हर (प्रत्य०)] शव जलाने की चिता। उदा०—मोहिं देहिं अगिहर साजि।—विद्यापति।

अगिहाना†—पुं० [सं० अग्निधान] आग रखने या जलाने का स्थान।

अगीठा—पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ (प्रत्य०)] मकान का अगला भाग।
पुं० [?] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ पान की तरह की पर उससे कुछ बड़ी होती हैं।

अगीत पछीत*—क्रि० वि० [सं० आग्रतः पश्चात्] १. आगे-पीछे। २. अगवाड़े-पिछवाड़े।
पुं० आगे और पीछे के भाग।

अगु—पुं० [सं० न० व०] १. राहु ग्रह। २. अंधकार। अँधेरा।

अगुआ—पुं० [सं० अग्रगुः] १. वह जो दूसरों के आगे चले। वह जिसके पीछे और लोग चलें। उदा०—अगुआ भयऊ शेख बुरहाना।—जायसी। २. दूसरों का पथ-प्रदर्शन करनेवाला। ३. वह जो सबसे आगे बढ़कर किसी काम में हाथ बँटाये। ४. वह जो औरों का प्रतिनिधायन करे। ५. नेता। सरदार।

अगुआई—स्त्री० [हिं० आगा+आई (प्रत्य०)] १. आगे होने या आगे चलने की क्रिया या भाव। २. पथ-प्रदर्शन करने की क्रिया या भाव।

अगुआड़—पुं० [सं० अग्र] अगवाड़ा।

अगुआना—स० [सं० अग्र] अगुआ बनाना या निश्चित करना।

अ० आगे होना या बढ़ना।

अगुआनी—स्त्री०=अगवानी।

अगुण—वि० [सं० नं० ब०]=निर्गुण।

पुं० [न० त०]=अवगुण।

अगुणज्ञ—वि० [सं० न० त०] जो गुणज्ञ न हो।

अगुणवादी (दिन्)—वि० [सं० अगुण√वद् (बोलना)+णिनि] जो दूसरों के अवगुण या दोष निकालता हो। छिद्रान्वेषी।

अगुणी (णिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो गुणों से रहित हो। २. मूर्ख।

अगुताना†—अ०=उकताना।

अगुन—वि०=निर्गुण।

पुं०=अवगुण।

अगुमन—क्रि० वि० दे० 'अगमन'।

अगुरु—वि० [सं० न० त०] जो गुरु अर्थात् भारी न हो। हल्का। २. जिसने गुरु से उपदेश या शिक्षा न पायी हो। ३. मात्रा या वर्ण जो गुरु न हो। लघु।

पुं० १. अगर वृक्ष। २. शीशम।

अगुवा—पुं०=अगुआ।

अगुसरना*—अ० [सं० अग्रसर+ना (प्रत्य०)] आगे बढ़ना। उदा०—एका परग न सो अगुसरई।—जायसी।

अगुसारना*—स० [सं० अग्रसर] आगे करना या बढ़ाना।

अगूठना†—स० [सं० आगुंठन] चारों ओर से घेरना। घेरा डालना।

अगूठी†—स्त्री० [हिं० अगूठना] अगूठने की क्रिया या भाव। चारों ओर से घेरने या घेरा डालने की क्रिया। उदा०—जेहि कारन गढ़ कीन्ह अगूठी।—जायसी।

अगूढ़—वि० [सं० न० त०] १. जो गूढ़ या छिपा न हो। प्रकट। २. जो समझने में कठिन न हो। सहज या स्पष्ट।

पुं० अलंकार में गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक।

अगूता*—पुं० [हिं० आगे] १. आगे। उदा०—बाजन बाजहिं होइ अगूता।—जायसी। २. सामने। समक्ष।

अगेथ—पुं० [सं० अग्निमन्थ] अरनी का पेड़।

अगेय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका गान या वर्णन न हो सके। २. जो गाये जाने या वर्णन किए जाने के योग्य न हो।

अगेर—क्रि० वि०=आगे।

अगेला—वि० [सं० अग्र] अगला।

पुं० मिट्टी या लाख की बनी हुई चूड़ियाँ।

अगेह—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई घर न हो। २. जिसका घर नष्ट हो चुका हो। ३. जिसने घर त्याग दिया हो।

अगोई—वि० स्त्री० हिं० 'अगोया' का स्त्री० रूप। दे० 'अगोया'।

अगोचर—वि० [सं० न० त०] १. जो इन्द्रियों के द्वारा न जाना जा सके। इन्द्रियातीत। जैसे—आत्मा, ईश्वर आदि। २. जो अस्तित्व में होने पर भी देखा, सुना या समझा न जा सके। (इम्पर्सेप्टिवुल्)

पुं० ब्रह्म।

अगोट*—स्त्री० [हिं० आगा+ओट] १. वह चीज जिसे आगे या सामने रखकर अथवा उसमें छिपकर रक्षा की जाय। आड़। रोक। उदा०—रहिहैं चंचल प्राण ए कहि कौन की अगोट।—विहारी।

पुं० हिंसक पशुओं के शिकार का वह प्रकार जो आड़ में रहकर या किसी स्थान पर छिपकर किया जाता है।

क्रि० वि० निश्चित रूप से। अवश्य। उदा०—जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।—रहीम।

अगोटना—स० [हिं० अगोट] १. आड़ करना। २. छिपाना। ३. चारों ओर से घेरना। ४. घेर या बंद करके रखना। ५. अधिकार या पहरे में रखना।

स० [सं० अंग+हिं० ओट] १. अंगीकार करना। स्वीकार करना। २. ग्रहण करना। लेना। ३. पसंद करना। चुनना।

अ० ठहरना। रुकना।

अगोढ़†—पुं०=अगाऊ (अग्रिम)।

अगोप्य*—वि० [सं० अ+गोपन] [स्त्री० अगोई] १. जो छिपाया न गया हो। २. प्रकट और स्पष्ट।

अगोरदार—पुं० [हिं० अगोरना+फा०-दार] [भाव० अगोरदारी] अगोरने या रक्षा करनेवाला।

अगोरना—स० [सं० आगूरण] १. रखवाली करना। पहरा देना। उदा०—जो मैं कोटि जतन करि राखति घूँघट ओट अगोरि।—सूर। २. प्रतीक्षा करना। (पूरब)

अगोरबाह—पुं०=अगोरदार।

अगोरा†—पुं० [हिं० अगोरना] कोई चीज (मुख्यतः खेत की फसल) अगोरनेवाला।

अगोराई*—स्त्री० [हिं० अगोरना] १. अगोरने की क्रिया या भाव। २. अगोरने के बदले में मिलनेवाला पारिश्रमिक।

अगोरिया†—पुं०=अगोरा।

अगोही†—पुं० [सं० अग्र] ऐसा बैल जिसके सींग आगे निकले हुए हों।

अगौनी*—क्रि० वि० [सं० अग्र० प्रा० अग्ग] १. आगे। सामने। २. आगे से। पहले।

स्त्री०=अगवानी।

अगौरा—पुं० [हिं० आगे=औरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अगौरी] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग। नई फसल में की पहली आँटी।

अगौली—स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ईख।

अगौहैं*—क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] १. आगे। सामने। २. आगे से। सामने से।

अग्ग—वि०= अगला।

क्रि० वि०=आगे।

अग्गई—स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ हाथ भर लंबी होती हैं।

अग्गर—पुं० [सं० आगार] घर। निवास स्थान।

वि० [सं० अग्रणी] १. जो सबसे आगे हो। २. उत्तम। श्रेष्ठ।

अग्गालि—पुं० [सं० अकाल] अकाल। उदा०—कँइ तू सींची सज्जणे कँइ तू बूठइ अग्गालि।—ढो० मारू।

अग्गैं—क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे। उदा०—पकरि लोह पव्वय गह्यौ, लहे को अग्गैं जान।—चन्दवरदाई।

अगनायी—स्त्री० [सं० अग्नि+ऐङ्–ङीष्] १. अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. त्रेता युग।

अग्नि—स्त्री० [सं०√अंग् (वक्रगति) +नि, नलोप] १. दे० 'आग'।

विशेष—कर्मकांड में गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपसनाग्नि छः प्रकार की अग्नियाँ मानी गई हैं।

२. शरीर का वह ताप जिससे शरीर के अंदर पाचन आदि क्रियाएँ होती हैं। जठराग्नि। वैद्यक में इसके तीन भेद हैं—भौम, दिव्य और जठर। ३. पूर्व और दक्षिण के बीच की दिशा या कोना। ४. कृत्तिका नक्षत्र। ५. क्षत्रियों का एक प्रसिद्ध वंश या कुल। ६. रहस्य संप्रदाय में (क) ज्ञान-प्राप्ति की प्रबल इच्छा या उसके लिए होनेवाली आकुलता; (ख) काम, क्रोध आदि मनोविकार; (ग) सुषुम्ना नाड़ी। ७. सोना। ८. चित्रक या चीता नामक वृक्ष। ९. भिलावाँ। १०. नीबू।

अग्निक—पुं० [सं० अग्नि√कै (शब्द)+क] १. बीरबहूटी नामक कीड़ा। २. एक प्रकार का पौधा। ३. एक प्रकार का साँप।

अग्नि-कण—पुं० [ष० त०] चिनगारी।

अग्नि-कर्म (न्)—पुं० [तृ० त० या स० त०] १. मृत व्यक्ति का जलाया जाना। अग्नि-दाह। २. हवन। ३. गरम लोहे से दागना।

अग्नि-कला—स्त्री० [ष० त०] अग्नि के ये दस अवयव या कलाएँ—धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, जलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला और हव्यकव्यवहा।

अग्नि-कवच—वि० [ष० त०]=अग्नि-सह।

अग्नि-कांड—पुं० [ष० त०] दूर तक फैलनेवाली ऐसी आग जो अत्यधिक नाशक हो। जैसे—गाँव, शहर या वन में लगनेवाली आग। (कॉन-फ्लेगरेशन)

अग्नि-कीट—पुं० [ष० त०] १. जुगनूँ (कीड़ा)। २. एक प्रकार का कल्पित कीड़ा जिसके संबंध में यह माना जाता है कि वह अग्नि में रहता है।

अग्नि-कुंड—पुं० [ष० त०] वह कुंड जिसमें आग जलाई जाय। हवन कुंड।

अग्नि-कुमार—पुं० [ष० त०] १. कार्तिकेय। षडानन। २. एक प्रकार का आयुर्वेदिक औषध जो मन्दाग्नि, श्वास आदि में लाभदायक माना जाता है।

अग्नि-कुल—पुं० [ष० त०] क्षत्रियों का एक वंश जिसकी उत्पत्ति अग्नि से मानी जाती है।

अग्नि-केतु—पुं० [ष० त०] १. शिव का एक नाम। २. रावण की सेना का एक राक्षस।

अग्नि-कोण—पुं० [ष० त०] पूर्व और दक्षिण दिशाओं के बीच का कोना।

अग्नि-क्रिया—स्त्री० [तृ० त०] मृतक का दाह-कर्म। मुरदा या शव जलाना।

अग्नि-क्रीड़ा—स्त्री० [तृ० त०] आतिशबाजी।

अग्नि-गर्भ—वि० [ब० स०] जिसके गर्भ या भीतरी भाग में अग्नि हो। जैसे—अग्नि पर्वत=ज्वालामुखी।

पुं० १. आतिशी शीशा। २. सूर्यकांत मणि। ३. शमी वृक्ष।

अग्नि-चक्र—पुं० [ष० त०] १. आग का चक्कर या गोला। २. हठ-योग में एक त्रिकोण चक्र जो पायु और उपस्थ के मध्य भाग में है। इसी में वह स्वयंभूलिंग है, जिससे कुंडलिनी साँप की तरह लिपटी रहती है।

अग्निज—वि० [सं० अग्नि√जन्+ड] १. जिसका जन्म आग से हुआ हो। २. पाचन-शक्ति बढ़ानेवाला। अग्नि-दीपक। ३. अग्नि या उसके ताप से बननेवाला। (इग्नियस)

अग्नि-जन्मा (न्मन्)—पुं० [ब० स०] =अग्निजात।

अग्नि-जात—वि० [पं० त०] अग्नि या आग से उत्पन्न।

पुं० १. अग्निजार वृक्ष। २. सुवर्ण। ३. कार्तिकेय। ४. विष्णु।

अग्नि-जिह्व—वि० [ब० स०] अग्नि ही जिसकी जीभ हो।

पुं० [ब० स०] १. देवता। २. वराह रूपधारी विष्णु।

अग्नि-जिह्वा—स्त्री० [ष० त०] १. आग की लपट। २. पुराणों के अनुसार अग्नि की सात जिह्वाएँ या ज्वालाएँ। यथा—काली, कराली मनोजवा, लोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूपी।

अग्निजीवी (विन्)—पुं० [सं० अग्नि√जीव् (जीना)+णिनि] वे व्यक्ति जिनकी जीविका अग्नि-संबंधी कार्यों से चलती है। जैसे—सुनार लोहार, रसोइया, शीशा बनानेवाला आदि।

अग्नि-दंड—पुं० [तृ० त०] १. अपराधी को आग में जलाने की क्रिया या भाव। २. इस प्रकार का दिया जानेवाला दंड या सजा।

अग्नि-दग्ध—वि० [तृ० त०] आग से जलाया हुआ।

पुं० पितरों का एक वर्ग।

अग्नि-दमनी—स्त्री० [ष० त०] १. एक प्रकार का क्षुप। २. मकोय।

अग्नि-दाता (तृ)—पुं० [ष० त०] मृतक का दाह-कर्म करनेवाला व्यक्ति। जैसे—पुत्र, भाई आदि।

अग्नि-दान—पुं० [ष० त०] मृतक को जलाने के लिए उसकी चिता में आग लगाना। दाह-संस्कार।

अग्नि-दिव्य—पुं० [तृ० त०]=अग्नि-परीक्षा।

अग्नि-दीपक—वि० [ष० त०] पाचन-शक्ति या भूख बढ़ानेवाला।

अग्नि-दीपन—पुं० [ष० त०] पाचन-शक्ति को बढ़ानेवाली ओषधि, उपचार या क्रिया।

अग्नि-दूत—पुं० [ब० स०] १. देवता। २. यज्ञ।

अग्नि-नेत्र—पुं० [ब० स०] देवता।

अग्नि-पक्व—वि० [स० त०] आग पर रखकर पकाया हुआ (खाद्य-पदार्थ)।

अग्नि-परिग्रह—पुं० [ष० त०] अग्निहोत्र का व्रत लेना।

अग्नि-परीक्षा—स्त्री० [तृ० त०] १. आग को हाथ में लेकर अथवा आग में से निकलकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की क्रिया या भाव। (सत्यासत्य की परीक्षा का एक पुराना प्रकार)। २. धातुओं को आग में तपाकर उनकी शुद्धता की जाँच करना। ३. बहुत ही कठिन तथा विकट परीक्षा।

अग्नि-पर्वत—पुं० [मध्य० स०] ज्वालामुखी पहाड़।

अग्नि-पुराण—पुं० [मध्य० स०] अठारह पुराणों में से एक जिसमें अग्नि और उसके देवता का माहात्म्य वर्णित है।

अग्नि-पूजक—पुं० [ष० त०] १. वह जो आग की पूजा करता हो। २. पारसी।

अग्नि-प्रतिष्ठा—स्त्री० [ष० त०] धार्मिक कृत्यों के आरम्भ में पूजा के लिए अग्नि की स्थापना करना।

अग्नि-प्रवेश—पुं० [स० त०] १. अग्नि-परीक्षा के लिए अग्नि में प्रवेश करने की क्रिया या भाव। जैसे—सीता जी का अग्नि-प्रवेश। २. स्त्री का मृत पति की चिता पर बैठना। सती होना।

अग्नि-प्रस्तर—पुं० [ष० त०] चकमक पत्थर।

अग्नि-बाण—पुं० [मध्य० स०]=अग्नि-वाण।

अग्नि वाव—पुं० [सं० अग्नि-वायु] १. घोड़ों तथा दूसरे चौपायों को होनेवाला एक रोग। २. जुड़-पित्ती नामक रोग।

अग्नि-बाहु—पुं० [ष० त०] १. धूआँ। धूम। २. [सं० ब० स०] मनु का एक पुत्र। स्वायंभुव।

अग्नि-बीज—पुं० [ष० त०] सोना। स्वर्ण।

अग्निभ—पुं० [सं० अग्नि√भा (दीप्ति)+क] १. सोना। स्वर्ण। २. कृत्तिका नक्षत्र।
वि० अग्नि की तरह लाल रंग का।

अग्निभू—पुं० [सं० अग्नि√भू (होना)+क्विप्] १. कार्तिकेय। २. जल। पानी। ३. सोना। स्वर्ण।

अग्निमंथ—पुं० [सं० अग्नि√मन्थ् (मथना)+घञ्] १. रगड़ से अग्नि उत्पन्न करने की क्रिया। २. अरणी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ियों को रगड़ कर आग जलाई जाती थी।

अग्निमंथन—पुं० [सं० अग्नि√मन्थ्+ल्युट्] दो चीजों को रगड़कर उनसे अग्नि उत्पन्न करना।

अग्नि-मणि—पुं० [मध्य० स०] १. सूर्यकांत मणि। २. चकमक पत्थर। ३. आतशी शीशा।

अग्नि-मथ्—पुं० [सं० अग्नि√मन्थ्+क्विप्] १. यज्ञ में वह व्यक्ति जो रगड़ से अग्नि उत्पन्न करता था। २. यज्ञ के लिए रगड़ से अग्नि उत्पन्न करते समय पढ़ा जानेवाला मंत्र। ३. अरणी नामक वृक्ष की लकड़ी जिसकी रगड़ से अग्नि उत्पन्न की जाती थी।

अग्नि-मांद्य—पुं० [ष० त०] भूख कम लगने का रोग। मंदाग्नि।

अग्नि-मित्र—पुं० [ष० त०] शुंग वंश का एक राजा जो पुष्यमित्र का पुत्र था।

अग्नि-मुख—पुं० [ब० स०] १. देवता। २. ब्राह्मण। ३. प्रेत। ४. भिलावाँ। ५. चित्रक वृक्ष। चीता। ६. जवाखार, सज्जी, चित्रक आदि से बनाया हुआ एक चूर्ण। (वैद्यक)

अग्नि-युग—पुं० [मध्य० स०] ज्योतिष-संबंधी पाँच वर्षों का एक युग। ज्योतिष में पाँच-पाँच वर्षों के बारह युगों में से एक।

अग्नि-रेता (तस्)—पुं० [ष० त०] सोना। स्वर्ण।

अग्नि-लिंग—पुं० [ष० त०] अग्नि की लपटें देखकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या।

अग्नि-लोक—पुं० [ष० त०] पुराणों के अनुसार सुमेरु पर्वत के आस-पास का प्रदेश।

अग्निवंश—पुं०=अग्नि कुल।

अग्नि-वधू—स्त्री० [ष० त०] अग्नि की पत्नी; स्वाहा।

अग्नि-वर्चस्—वि० [ब० स०] जिसमें आग जैसी चमक हो।
पुं० अग्नि का तेज।

अग्नि-वर्ण—वि० [ब० स०] आग के समान लाल वर्णवाला।

अग्नि-वर्त्त—पुं० [सं० अग्नि√वृत् (बरतना)+णिच्+घञ्] पुराणानुसार एक प्रकार का मेघ।

अग्नि-वर्द्धक—वि० [ष० त०] पाचन शक्ति बढ़ानेवाला।

अग्नि-वर्द्धन—पुं० [ष० त०] पाचन शक्ति बढ़ाने की क्रिया या भाव।

अग्नि-वर्षा—स्त्री० [ष० त०] १. आग या जलती हुई वस्तुएँ बरसाना। २. अत्यधिक गोलियाँ आदि चलना।

अग्निरोहिणी—स्त्री० [सं० अग्नि√रुह् (उत्पन्न होना)+ल्युट्-ङीप्] एक रोग जिसमें संधि स्थान में फफोले निकल आते हैं। (वैद्यक)।

अग्नि-वाण—पुं० [मध्य० स०] वाण जिसे चलाने पर आग बरसती हो।

अग्नि-वाह—वि० [अग्नि√वह्+अण्] अग्नि ले जानेवाला।
पुं० १. धुआँ। २. बकरा। ३. अग्नि को ले जानेवाली वस्तु।

अग्निविद्—पुं० [सं० अग्नि√विद् (लाभ)+क्विप्] अग्निहोत्री।

अग्नि-विद्या—स्त्री० [ष० त०] १. अग्निहोत्र। २. सूर्य, मेघ, पृथ्वी पुरुष और स्त्री-संबंधी बातों का ज्ञान या विद्या। (उपनिषद्)

अग्नि-बिन्दु—पुं० [ष० त०] चिनगारी। स्फुलिंग।

अग्नि-वीर्य—वि० [ब० स०] १. जिसमें अग्नि के समान तेज हो। २. शक्तिशाली।
पुं० [ष० त०] १. अग्नि की शक्ति या तेज। २. सोना। स्वर्ण।

अग्नि-शाला—स्त्री० [ष० त०] स्थान, जहाँ यज्ञ की अग्नि स्थापित की जाय।

अग्नि-शिख—पुं० [ब० स०] १. कुसुम का पौधा। २. केसर। ३. सोना। स्वर्ण। ४. दीपक। ५. तीर।

अग्नि-शिखा—स्त्री० [ष० त०] १. अग्नि की ज्वाला, लपट या लौ। २. कलियारी नामक पौधा।

अग्नि-शुद्धि—स्त्री० [तृ० त०] १. अग्नि के संयोग या स्पर्श आदि से किसी वस्तु को शुद्ध या पवित्र करना। २. दे० 'अग्नि-परीक्षा'।

अग्निष्टोम—पुं० [ब० स०] वह यज्ञ जो स्वर्ग की कामना से किया जाता है।

अग्नि-ष्वात्ता—पुं० [ब० स०] १. पितरों का एक वर्ग। २. वह जो अग्नि, विद्युत् आदि की विद्याएँ जानता हो।

अग्नि-संस्कार—पुं० [तृ० त०] १. मृत व्यक्ति का जलाया जाना। शव-दाह। २. परीक्षा या शुद्धि के लिए किसी वस्तु आदि का तपाया जाना।

अग्नि-सह—वि० [सं० अग्नि√सह् (सहन करना)+अच्] (पदार्थ) जो अग्नि में पड़ने पर भी न जलता हो अथवा जिसपर अग्नि का प्रभाव न पड़ता हो। (फायर प्रूफ)

अग्नि-साक्षिक—वि० [ब० स०, कप्] १. जिसका साक्षी अग्नि हो। २ (कार्य) जो अग्नि को साक्षी बनाकर किया गया हो।

अग्नि-सात्—वि० [सं० अग्नि+साति] जो आग से जलकर भस्म हुआ हो।

अग्नि-सेवन—पुं० [ष० त०] जाड़े से बचने के लिए आग के पास बैठना। आग तापना।

अग्नि-स्तंभ—पुं० [ष० त०] १. वह मंत्र या ओषधि जो अग्नि की दाहक-शक्ति को रोकती है। २. उक्त काम के लिए मंत्र आदि का किया जानेवाला प्रयोग।

अग्नि-स्फुलिंग—पुं० [ष० त०] आग की चिनगारी।

अग्नि-होत्र—पुं० [सं० होत्र,√हु (देना-लेना)+त्र, अग्नि-होत्र, च० त०] एक प्रकार का वैदिक होम जो नित्य सवेरे और संध्या किया जाता है तथा जिसकी अग्नि सदा जलती हुई रखी जाती है।

अग्निहोत्री (त्रिन्)—पुं० [सं० अग्निहोत्र+इनि] वह जो नियमित रूप से अग्नि-होत्र करता हो।

अग्नीध्र—पुं० [सं० अग्नि√धृ (धारण)+क, दीर्घ] १. यज्ञ में यज्ञाग्नि की रक्षा करनेवाला ऋत्विक्। २. होम। हवन। ३. ब्रह्मा। ४. स्वायंभुव मनु के एक पुत्र।

अग्नीय—वि० [सं० अग्नि+छ—ईय] अग्नि-संबंधी। अग्नि का।

अग्न्य—*वि०=अज्ञ।

अग्न्यगार—पुं०=अग्न्यागार।

अग्न्यस्त्र—पुं०=आग्नेय अस्त्र।

अग्न्यागार—पुं० [सं० अग्नि—आगार, ष० त०] यज्ञाग्नि रखने का स्थान।

अग्न्याधान—पुं० [सं० अग्नि—आधान, ष० त०] १. आग जलाना या सुलगाना। २. मंत्रों द्वारा यज्ञ की अग्नि का स्थापित किया जाना। ३. अग्नि-होत्र।

अग्न्याशय—पुं० [सं० अग्नि-आशय, ष० त०] पेट में जठराग्नि का स्थान। पेट के अन्दर का वह स्थान जिसमें भोजन पचानेवाली अग्नि रहती है। पक्वाशय। (पैनक्रियास)

अग्न्युत्पात—पुं० [सं० अग्नि—उत्पात, ष० त०] १. ऐसी आग लगाना जिससे बहुत उत्पात या हानि हो। अग्निकांड। २. आकाश से उल्काएँ गिरना।

अग्य*—वि०=अज्ञ।

अग्या*—स्त्री०=आज्ञा।

अग्यात*—वि०=अज्ञात।

अग्यान—पुं०=अज्ञान।

अग्यारी—स्त्री०=अगियारी।

अग्यौन—पुं० [सं० अग्र+दान]=अगुआ।

अग्र—वि० [सं०√अंग् (गति)+रक्, नत लोप] १. जो सबसे आगे हो। अगला। २. श्रेष्ठ। ३. प्रधान। मुख्य।

क्रि० वि० आगे। सामने।

पुं० १. आगे का भाग। २. सिरा। नोक। ३. आरंभ। ४. अपने वर्ग का सबसे उत्तम पदार्थ। ५. शिखर। चोटी। ६. उत्कर्ष। ७. लक्ष्य। ८. समूह।

अग्रग—वि०, पुं० [सं० अग्र√गम् (जाना)+ड]=अग्रगामी।

अग्र-गण्य—वि० [स० त०] १. (व्यक्ति) जो गिनती में सब से पहले हो। २. श्रेष्ठ। प्रधान।

अग्रगामी (मिन्)—वि० [सं० अग्र√गम् (जाना)+णिनि] [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला। जो सब से आगे हो।

पुं० १. वह जो सबसे आगे चलता हो। २. नेता।

अग्रगामी दल—पुं० [सं० व्यस्त पद] वह दल जिसकी विचारधारा अन्य दलों की अपेक्षा आगे बढ़ी हुई अर्थात् उग्र या तीव्र हो।

अग्रज—पुं० [सं० अग्र√जन् (जन्म लेना)+ड] [स्त्री० अग्रजा] १. बड़ा भाई। २. नायक। नेता। ३. ब्राह्मण। ४. विष्णु।

वि० १. जिसका जन्म अपने वर्ग के औरों से पहले हुआ हो। २. श्रेष्ठ।

अग्र-जन्मा (न्मन्)—पुं० [ब० स०]=अग्रज।

अग्रजा—स्त्री० [सं० अग्रज+टाप्] बड़ी बहन।

अग्रजात—वि० [स० त०]=अग्रज।

अग्रणी—वि० [सं० अग्र√नी (ले जाना)+क्विप्] १. सबसे आगे चलनेवाला। २. श्रेष्ठ।

पुं० १. प्रधान व्यक्ति। २. अगुआ।

अग्रतः—क्रि० वि० [सं० अग्र+तस्] १. आगे। पहले। २. आगे से: पहले से।

अग्र-दान—पुं० [स० त०] १. कोई चीज उचित या उपयुक्त समय से पहले देना। २. अग्रिम। पेशगी।

अग्र-दीप—पुं० [कर्म० स०] इंजनों, गाड़ियों आदि में सबसे आगे और ऊपर रहनेवाला दीप जो उसके मार्ग पर प्रकाश डालता है। (हेड लैम्प)

अग्र-दूत—पुं० [कर्म० स०] १. वह जो किसी से पहले आकर किसी के आने की सूचना दे। २. राजाओं के आगे चलनेवाला वह कर्मचारी जो सब को सचेत करता चलता है। (हेरल्ड)

अग्र-पश्चात्—पुं० [द्व० स०] आगा-पीछा। असमंजस। सोच-विचार।

अग्र-पूजा—स्त्री० [स० स०] किसी की वह पूजा जो औरों से पहले की जाय।

अग्र-बीज—पुं० [ब० स०] १. ऐसा वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाई जा सके २. कलम। (वृक्षों की)

अग्र-भाग—पुं० [कर्म० स०] १. किसी वस्तु का आगेवाला भाग या हिस्सा। २. सिरा। ३. श्राद्ध आदि में किसी उद्देश्य से सब से पहले निकाली या दी जानेवाली वस्तु।

अग्रभागी (गिन्)—वि० [सं० अग्रभाग+इनि] वह जो यज्ञ, श्राद्ध आदि में अग्रभाग पाने का अधिकारी हो।

अग्र-भू—पुं० [सं० अग्र√भू (होना)+क्विप्]=अग्रज।

अग्र-महिषी—स्त्री० [कर्म० स०] पटरानी।

अग्र-यान—पुं० [स० त०] १. सबसे आगे चलने की क्रिया या भाव। २. सेना का आगे बढ़कर पहले आक्रमण करना।

अग्र-लेख—पुं० [कर्म० स०] सामयिक पत्र का मुख्य संपादकीय लेख। (लीडर, लीडिंग आर्टिकल)

अग्रवर्ती (र्तिन्)—वि० [सं० अग्र√वृत् (वरतना)+णिनि] सबसे आगे रहने या होनेवाला। अगुआ।

पुं० नेता।

अग्रवाल—पुं० [हिं० अगरोहा या आगरा (स्थान)+वाला (प्रत्य०)] वैश्यों का एक प्रसिद्ध वर्ग।

अग्रशः—क्रि० वि० [सं० अग्र+शस्] आगे या पहले से।

अग्र-शोची (चिन्)—पुं० [सं० अग्र√शुच् (सोचना)+णिनि] वह जो

करने या होनेवाली बात पहले से ही सोचे या समझे।
अग्रसर—वि० [सं० अग्र√सृ (गति)+ट] १. आगे जानेवाला। अगुआ। २. किसी काम में औरों से आगे बढ़नेवाला। आरंभ करनेवाला।
पुं० १. आगे जाने या बढ़नेवाला व्यक्ति। २. नेता। प्रधान। ३. वह व्यक्ति जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विचारों तथा व्यवहारों में औरों से अधिक उदार तथा प्रगतिशील हो।
अग्रसारण—पुं० [सं०√सृ+णिच्+ल्युट्—अन, अग्र-सारण, स० त०] १. आगे की ओर बढ़ाने का कार्य। २. किसी के आवेदन-पत्र आदि को अपने से उच्च अधिकारी के पास विचारार्थ भेजना या आगे बढ़ाना। (फारवर्डिंग)
अग्रसारित—भू० कृ० [सं० सारित√सृ+णिच्+क्त, अग्र-सारित, स० त०] जो विचारार्थ आगे बढ़ाया गया हो।
अग्रह—पुं० [सं० न० त०] १. ग्रहण न करने का भाव या क्रिया। २. (न० ब०) गार्हस्थ्य-धर्म को स्वीकार न करनेवाला व्यक्ति। ३. वानप्रस्थ। ४. संन्यासी।
अग्र-हायण—पुं० [ब० स०] अगहन (महीना)। मार्गशीर्ष।
अग्रहार—पुं० [सं० अग्र√हृ (हरण करना)+घञ्] १. ब्राह्मण को जीविका निर्वाह के लिए राजा से मिली हुई भूमि। २. खेत की उपज का वह भाग जो ब्राह्मण, गुरु आदि के निमित्त पहले ही निकाल दिया जाता है।
अग्रांश—पुं० [सं० अग्र-अंश, कर्म० स०]=अग्रभाग।
अग्राशन—पुं० [सं० अग्र-अशन, कर्म० स०] देवता, ब्राह्मण आदि के निमित्त निकाला हुआ अन्न या भोजन का भाग।
अग्रासन—पुं० [सं० अग्र+आसन, कर्म० स०] सम्मान का आसन या स्थान।
अग्राह्य—वि० [सं० न० त०] (बात या वस्तु) जो ग्रहण या स्वीकृत किये जाने के योग्य न हो।
अग्राह्य-व्यक्ति—पुं० [कर्म० स०] किसी दूतावास का कोई ऐसा विदेशी व्यक्ति जिसे उस देश का शासन ग्रहण या मान्य न करे, जिसमें वह आकर रहता है। (परसना नान-ग्रैटा)
अग्रिम—वि० [सं० अग्र+डिमच्] १. (धन) जो कोई देन या पारिश्रमिक निश्चित होने पर उसके मद्धे पहले से बात पक्की करने के लिए दिया जाता है। पेशगी। (एडवान्स)। २. आगे चलकर या बाद में आनेवाला। ३. श्रेष्ठ। उत्तम। ४. सबसे बड़ा। ५. पहला। अगला।
अग्रे—क्रि० वि० [सं० अग्र का सप्तम्यन्त रूप] १. आगे। पहले। सामने। २. आगे से। पहले से।
अग्र्य—वि० [सं० अग्र+यत्] १. सबसे आगे रहनेवाला। २. प्रधान। ३. उत्तम।
अघ—वि० [सं०√अघ् (पाप करना)+अच्] १. अपवित्र। २. दूषित।
पुं० १. पाप। २. दुःख ३. व्यसन। ४. अघासुर।
अघ-कृच्छ्र—पुं० [मध्य० स०] दुष्कर्म के प्रायश्चित्त के लिए किया जानेवाला एक व्रत।
अघघ्न—वि० [अघ√हन् (हिंसा)+क] अघ या पाप नष्ट करनेवाला। पाप नाशक।
पुं० विष्णु।
अघट—वि० [सं० अ=नहीं+घट=होना] १. जो घटित न हो। न घटने या न होनेवाला २. सदा एक-सा रहनेवाला। ३. कठिन। ४. बेमेल। ५. अयोग्य।
वि० [हिं० अ+घटना। (=कम होना)] कम न होनेवाला। जो घटे नहीं।
अघटन—पुं० [सं०√घट् (चेष्टा)+ल्युट्—अन, न० त०] घटित न होने की क्रिया या भाव। घटित न होना।
अघटित—वि० [सं० न० त०] जो घटना के रूप में न हुआ हो या न हो सकता हो। जो घटित न हुआ हो या न हो।
अघन—वि० [सं० न० त०] १. जो घना या ठोस न हो। २. जो गाढ़ा न हो। पतला।
अघभोजी (जिन्)—वि० [अघ√भुज् (खाना)+णिनि] १. पाप कर्मों की कमाई खानेवाला। २. देवताओं, पितरों आदि को बिना उत्सर्ग किये भोजन करनेवाला।
अघ-मर्षण—वि० [प० त०] पाप नाशक (मंत्र)।
पुं० १. एक मंत्र जो संध्योपासना के समय पापों से छुटकारा पाने के लिए पढ़ा जाता है। २. पापों के नाश के लिए छिड़का जानेवाला जल।
अघमर्षण-कृच्छ्र—पुं० [सं० कर्म० स०] दे० 'अघ-कृच्छ्र'।
अघवाना—स० [सं० आघ्राण=नाक तक] १. अघाने में प्रवृत्त करना २. अघाने का काम किसी दूसरे से कराना।
अघाट—पुं० [देश०] १. वह घाट जो ठीक न हो। २. वह भूमि जिसे बेचने का अधिकार उसके स्वामी को न हो।
अघाड़ा—पुं० [?] एक प्रकार का विष नाशक पौधा।
अघात*—पुं०=आघात।
वि० [हिं० अघाना] १. पेट भर। २. बहुत अधिक।
अघाती (तिन्)—वि० [सं० घात+इनि, न० त०] घात या प्रहार न करनेवाला।
अघाना—अ० [सं० आघ्राण=नाक तक] १. भर-पेट भोजन करना। छकना।
मुहा०—अघाकर=खूब जी भरकर। उदा०—रहिमन मूलहिं सींचिबो फूलहि फलहिं अघाय।—रहीम। २. संतुष्ट या तृप्त होना। इच्छा पूरी होना। ३. जी भरना। ऊबना।
स० १. किसी को अघाने (पूरी तरह से तृप्ति या संतुष्ट होने में) प्रवृत्त करना। २. थकाना। (क्व०)।
अघारि—पुं० [सं० अघ-अरि, प० त०] १. पापका नाश करनेवाला। २. अघ नामक दैत्य को मारनेवाले, श्रीकृष्ण।
अघाव—पुं० [हिं० अघाना] १. अघाने (पूरी तरह से तृप्ति या संतुष्ट होने) की क्रिया या भाव। पूर्ण तृप्ति। २. किसी बात से जी भर जाने और फलतः उससे जी ऊबने का भाव।
अघासुर—पुं० [सं० अघ-असुर, मध्य० स०] कंस के सेनापति का नाम। अघ नामक दैत्य।
अघी (घिन्)—वि० [सं० अघ+इनि] अघ अथवा पाप करनेवाला। पातकी।

अघेरना—पुं० [देश०] जो का मोटा आटा।

अघोर—वि०[सं० न० त०] जो घोर या भयानक न हो। २. [न० ब०] घोर से भी बहुत अधिक घोर और बुरा। अत्यन्त घोर। पुं० १. शिव का एक रूप। २. इस रूप का उपासक एक पंथ या संप्रदाय। दे० 'अघोर पंथ'।

अघोर-नाथ—पुं० [प० त०] शिव।

अघोर-पंथ—पुं० [सं० अघोरपथ] शिव का उपासक एक संप्रदाय जो मद्य-मांस आदि का भी सेवन करता है।

अघोरपंथी—पुं० [हिं० अघोर पंथ] अघोरपंथ का अनुयायी। औघड़।

अघोरा—स्त्री० [सं० अघोर+अच्, टाप्] भाद्रकृष्ण चतुर्दशी।

अघोरी—पुं० [सं० अघोर+हिं० ई (प्रत्य०)] अघोर-पंथ का अनुयायी। औघड़।
वि० घृणित वस्तुओं का सेवन करनेवाला।

अघोष—वि० [सं० न० ब०] १. शब्दरहित। नीरव। २. जिसमें ध्वनि अल्प हो। ३. जहाँ अहीरों की बस्ती या अहीर न हो।
पुं० [न० त०] व्याकरण का वर्ण-समूह जिसमें क ख च छ ट ठ त थ प फ श स और ष हैं।

अघौघ—पुं० [सं० अघ-ओघ, प० त०] वह व्यक्ति जिसने अत्यधिक पाप किये हों।

अघ्न्य—पुं० [सं०√हन् (हिंसा) + यत् नि०, न० त०] ब्रह्मा।

अघ्रान*—पुं० दे० 'आघ्राण'।

अघ्रानना*—स० [सं० आघ्राण] सूँघना।

अघ्रेय—वि० [सं०√घ्रा (सूंघना) +यत्, न० त०] जो घ्रेय या सूँघने योग्य न हो।

अचंचल—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अचंचला, भाव० अचंचलता] जिसमें चंचलता न हो। फलतः गंभीर, धीर, शांत या स्थिर। उदा०—भये विलोचन चारु अचंचल।—तुलसी।

अचंड—वि० [सं० न० त०] जो उग्र या चंड न हो। फलतः शांत या सौम्य।

अचंभव*—पुं०=अचंभा।

अचंभा—क्रि० [सं० स्कम्भ, पा० चंभेति, गु० अचवो, मरा० अचंबा, हिं० अचंभव, अचंभो] [भू० कृ० अचंभित] अद्भुत। विलक्षण। (क्व०)
पुं० १. आश्चर्य। अचरज। २. आश्चर्यजनक बात।

अचंभित*—भू० कृ० [हिं० अचंभा] जिसे अचंभा हुआ हो। आश्चर्य-चकित।

अचंभो*—पुं०=अचंभा।

अचंभौ*—पुं०=अचंभा।

अचक—वि० [सं० चक्र=समूह, ढेर] १. अधिक से अधिक। २. बहुत अधिक। भरपूर। ३. जितना चाहिए उतना।
पुं० [सं० चक्=भ्रांत होना] आश्चर्य। विस्मय।

अचकन—पुं० [सं० कञ्चुक, प्रा० अंचुक] अंगे या अंगरखे की तरह का एक लंबा पहनावा।

अचकाँ*—क्रि० वि०=अचानक।

अचकित—वि० [सं० न० त०] जो चकित न हुआ हो।

अचक्का—पुं० [हिं० अ+चक] अचानक होने की स्थिति या भाव।
मुहा०—अचक्के में=औचक में। अचानक।

अचक्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें चक्र न हो। चक्र रहित।
२. जो हिले नहीं। फलतः स्थिर।

अचक्षु (स्)—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे चक्षु या आँखें न हों। नेत्र रहित। २. अंधा।

अचक्षुदर्शन—पुं० [सं० अचक्षुर्दर्शन] चक्षुओं या नेत्रों से भिन्न परंतु किसी और साधन या अन्य इंद्रियों के द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान।

अचक्षुविषय—वि० [सं० अचक्षुर्विषय] १. (विषय) जो चक्षुओं के द्वारा गृहीत न हो। २. जो दिखाई न देता हो या न दे रहा हो। अदृश्य।
पुं० ऐसा विषय जिसका ज्ञान चक्षुओं से न होता हो।

अचगर—वि० [सं० अत्याकार] [भाव० अचगरी] उत्पाती। नटखट।

अचगरी—स्त्री० [हिं० अचगरा] १. अचगर अर्थात् दुष्ट या पाजी होने की क्रिया या भाव। २. छेड़-छाड़। ३. दुष्टता। शरारत।

अचतुर—वि० [सं० न० त०] १. जो चतुर न हो। २. बुद्धू। मूर्ख। ३. सीधा या भला।

अचना*—स० दे० 'अचवना'।

अचपल—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें चपलता या चंचलता न हो। फलतः जो गम्भीर, धीर, शांत या स्थिर हो। २. कहना न माननेवाला। ३. जिद्दी। हठी।

अचपलता—स्त्री० [सं० अचपल+तल्—टाप्] १. चंचल या चपल न होने की अवस्था या भाव। २. =चपलता।

अचपली—स्त्री० [हिं० अचपलता+ई] =अचपला।

अचभौन*—पुं०=अचंभा।

अचमन*—पुं०=आचमन।

अचयना*—स०=अचवना।

अचर—वि० [सं० न० त०] [भाव० अचरता] १. जो चर न हो। न चलनेवाला। २. जो चल न सकता हो।
पुं० वह जो न चलता हो या न चल सकता हो।

अचरज—पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्चरिय] १. किसी बात या वस्तु के अप्रत्याशित रूप से या सहसा होने पर मन में होनेवाला कुतूहल-जनक भाव। आश्चर्य। २. चकित करनेवाली कोई विलक्षण बात या वस्तु।
वि० आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला। अनोखा। विलक्षण।

अ-चरम—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी चरम सीमा या पराकाष्ठा न हो। २. जिसका अंत न हो। अनंत।

अचरा—स्त्री० [सं० अंचल] कपड़े का आँचल। दे० 'आँचल'।
मुहा०—(किसी का) अचरा गहना=(किसी का) पल्ला पकड़ना। (दे०)

अचरित—भू० कृ० [सं०√चर् (गति) +क्त, न० त०] १. (क्षेत्र या भूमि) जिसपर कभी कोई चला न हो। २. सदा अपने स्थान पर बना रहनेवाला। अचर। अचल। ३. सदा बना रहनेवाला। शाश्वत। जैसे—आत्मा या ब्रह्म। ४. जिसका आचरण या व्यवहार न किया गया हो। ५. जो खाया न गया हो।

अचल—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अचला] १. जो चल न सकता हो

अथवा चलाया न जा सकता हो। २. जो अपने स्थान पर बना रहता हो, इधर-उधर न हटता हो। स्थावर। (इम्मूवेबुल) ३. सदा एक सा बना रहनेवाला। ४. अटूट। दृढ़। जैसे—अचल संबंध।
पुं० १. पर्वत। २. खूंटा। ३. सात की संख्या। ४. ब्रह्मा। ५. शिव। ६. आत्मा।

अचल-कीला—स्त्री० [सं० ब० स०] पृथ्वी।

अचलजा—स्त्री० [सं० अचल=पर्वत √जन् (उत्पत्ति) ड टाप्] पार्वती।

अचल-धृति—स्त्री० [कर्म० स०] एक वर्गवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पाँच नगण और अन्त में एक लघु होता है।

अचल-पति—पुं० [प० त०] पर्वतों का राजा अर्थात् हिमालय।

अचल-राज—पुं० [प० त०] पर्वतराज हिमालय।

अचल-व्यूह—पुं० [कर्म० स०] असंहत नामक सैनिक व्यूह का एक भेद।

अचल-संपत्ति—स्त्री० [कर्म० स०] वह संपत्ति जो अपने स्थान से हटाई-बढ़ाई या इधर-उधर न की जा सकती हो। (इम्मूवेबुल प्रापर्टी)

अचल-सुता—स्त्री० [प० त०] पार्वती।

अचला—स्त्री० [सं० अचल+टाप्] पृथ्वी।

अचलाधिप—पुं० [सं० अचल-अधिप, प० त०] पर्वतों का राजा हिमालय।

अचला सप्तमी—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] माघ शुक्ला सप्तमी।

अचवन—पुं० [सं० आचमन] १. आचमन। २. भोजन के उपरांत कुल्ला करने की क्रिया या भाव।

अचवना—स० [सं० आचमन] १. आचमन करना। पी जाना। उदा०—दावानल अचयो ब्रजराज।—सूर। २. भोजन के उपरांत हाथ-मुँह धोना और कुल्ला करना। ३. छोड़ना, त्यागना या दूर हटाना। ४. धोना। साफ करना। उदा०—रूप सरूप सिंगार सवाई। उप्सर कैसी रहि अचवाई।—जायसी।

अचवाना—स० [हिं० 'अचाना' का प्रे०] १. दूसरे को आचमन कराना। २. (भोजन किये हुए व्यक्ति का) हाथ-मुँह धुलाना तथा कुल्ला कराना।

अचांचक—क्रि० वि०=अचानक।

अचाक*—क्रि० वि०=अचानक।

अचाका—क्रि० वि०=अचानक।

अचाक्षुष—वि० [सं० न० त०] १. जो चक्षुओं का विषय न हो। २. जो आँखों से देखा न जा सके।

अचातुर्य—पुं० [सं० न०,त०] चतुर न होने की अवस्था या भाव।

अचान*—क्रि० वि०=अचानक।

अचानक—क्रि० वि० [सं० अज्ञानात्] १. विना पूर्व सूचना के। २. एकाएक या एकबारगी। सहसा।

अचापल—वि०=अचपल।

अचापल्य—पुं० [सं० न० त०] चपल न होने की अवस्था या भाव।

अचार—पुं० [फा०] वह खट्टा और चटपटा व्यंजन जो किसी कच्ची तरकारी या कच्चे फलों को कई प्रकार के मसालों तथा तेल या सिरके में मिलाकर तैयार किया जाता है। कचूमर। अथाना।
पुं० [सं०-चार] चिरौंजी का पेड़।
*पुं०=आचार।

अचारज—पुं०=आचार्य।

अचारी—वि० दे० 'आचारी'।
पुं० दे० 'आचारी'।
स्त्री० [फा० अचार] कच्चे तथा छिले हुए आम की फाँकों का अचार जो धूप में रखकर तैयार किया जाता है।

अचारु—वि० [सं० न० त०] जो चारु या सुंदर न हो। अर्थात् असुंदर या कुरूप।

अचालक—वि० [सं० न० त०] (पदार्थ) जिसमें विद्युत् का संचार न होता हो। (नान कन्डक्टर) जैसे—रबर, सूखी लकड़ी आदि।

अचालू—वि० [हिं० अ+चालू] १. जो चालू या प्रचलित न हो। २. (मुद्रा या चल-पत्र) जो अब चलन में न हो। ३. जो चलता न हो अथवा बहुत कम या बहुत धीरे चलता हो। जैसे—अचालू जहाज।

अचाह—वि० [हिं० अ+चाहना] जिसे चाह न हो। न चाहनेवाला।
स्त्री० इच्छा, कामना या चाह न होने का भाव।

अचाहा*—वि० [हिं० अचाह] [स्त्री० अचाही] १. (व्यक्ति, वस्तु या विषय) जिसे चाहा न गया हो। अनिच्छित। अवांछित। २. जिसके प्रति प्रेम, रुचि या लगन न हो।

अचाही*—वि० [हिं० अ+चाह] वह व्यक्ति जिसे किसी प्रकार की इच्छा या कामना न हो।

अचिंत—वि० [सं० न० ब०] १. (व्यक्ति) जिसे कोई चिंता न हो। फलतः निश्चिंत या बेफिक्र २. जिसका चिंतन न हो सके।

अचिंतनीय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका चिंतन या कल्पना न हो सके। फलतः अज्ञेय या दुर्बोध। २. जिसका अनुमान न हो सके या न किया गया हो।

अचिंतित—वि० [सं० न० त०] १. जो पहले से सोचा या विचारा न गया हो। २. (व्यक्ति) जो चिंतित न हो। निश्चिंत। ३. अप्रत्याशित। आकस्मिक। ४. उपेक्षित।

अचिंत्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका किसी प्रकार चिंतन हो ही न सके। जो चिंतन का विषय न हो सकता हो। जैसे—ईश्वर का स्वरूप हमारे लिए अचिंत्य है। (इन्कन्सीवेबुल) २. जिसका अनुमान न लगाया जा सके। अकूत।

अचिकित्स्य—वि० [सं० न० त०] (रोग या रोगी) जो चिकित्सा करने पर भी किसी तरह अच्छा न हो सके। असाध्य। (इन्क्योरेबुल)

अचिज्ज—पुं०=आश्चर्य।

अचित्—वि० [सं० न० ब०] चेतना-रहित। अचेतन। जड़।
पुं० [सं० न० त०] रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो अचेतन या जड़ और दृश्य तथा भोग्य माना गया है।

अचित्त—वि० [सं० न० ब०] १. बिना सोच-विचार के किया हुआ। २. जिसमें चेतना न हो। अचेतन। ३. जिसे ज्ञान न हो। ज्ञान रहित।

अचित्ति—स्त्री० [सं० न० त०] चित्ति अथवा ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अचित्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई चित्र या रूप न हो। २. जिसमें कोई चित्र न हो। चित्र-रहित।

अचिर—वि० [सं० न० त०] [भाव० अचिरता] १. जो पुराना न हो। अर्थात् नया। २. हाल का। ताजा। ३. जो तत्काल या तुरंत होने

को हो। ४. कुछ ही समय में होनेवाला। अल्प। थोड़ा। (केवल समय के संबंध में प्रयुक्त)

क्रि० वि० १. तुरंत। २. शीघ्र। जल्दी।

अचिर-द्युति—स्त्री० [सं० ब० स०] बिजली।

अचिर-प्रभा—स्त्री० [सं० ब० स०] बिजली।

अचिरांशु—पुं० [सं० अचिर-अंशु, ब० स०] बिजली।

अचिरात्—क्रि० वि० [सं० अचिर√अत् (गति)+क्विप्] १. बिना विलंब किये। तुरंत। २. इसी समय। तत्काल।

अचिराभा—स्त्री० [सं० अचिर-आभा, ब० स०] बिजली।

अचिरेण—क्रि० वि० [सं० चिर+एनप्, न० त०] १. बिना देर लगाये। जल्दी। तुरंत। २. इसी समय। तत्काल।

अचीता—वि० [सं० अचिंतित] १. जो पहले से सोचा या समझा न गया हो। २. जिसके संबंध में पहले से कोई अनुमान या कल्पना न की गई हो। ३. चिंतारहित। निश्चिंत।

वि०=अचेत।

अ-चीन्हा—वि० [हिं० अ+चीन्हना=पहचानना] जो चीन्हा (पहचाना) हुआ न हो। अपरिचित।

अचीर—वि० [सं० न० ब०] जिसके शरीर पर चीर या कपड़ा न हो। नंगा। वस्त्रहीन।

अचूक—वि० [सं० अच्युत] १. जिसमें कोई चूक, भूल या भ्रम न हो। २. जो बिना चूके अपना उद्देश्य सिद्ध करे या अपने लक्ष्य तक पहुँचे।

क्रि० वि० १. बिना चूक या भूल किये। २. निश्चित रूप से।

अचेत—वि० [सं० अचेतस्] १. जिसकी चेतना-शक्ति कुछ देर के लिए न रहे। चेतना रहित। मूर्च्छित। (अन्कॉन्शस) २. जिसका होश-हवास ठिकाने न हो। उदा०—अबहूँ चेत अचेत, अब अबचरा बचाइ ले। —तुलसी। ३. असावधान।

अचेतन—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें चेतना या ज्ञान न हो। २. जिसमें जीवन या जीवनी-शक्ति न हो।

पुं० [सं० न० त०] १. जड़ पदार्थ। २. मनोविज्ञान में मन का वह नीचे दबा हुआ सुप्त-प्राय अंश जिसमें ऐसी धारणाएँ, भाव, विचार, संस्कार आदि पड़े-पड़े अपना कार्य करते रहते हैं, जिनका पूरा, प्रत्यक्ष और स्पष्ट भान मनुष्य को नहीं होता। (सबकॉन्शेन्स)

विशेष—(क) वस्तुतः यह होता तो 'चेतन' (मन) का बहुत बड़ा अंग या अंश ही है परन्तु लोक व्यवहार में 'चेतन' का प्रयोग उसके उसी थोड़े से अंग या अंश के लिए होता है जिसका सब लोगों को सदा और सहज में अनुभव और परिज्ञान होता रहता है। शेष सारा अंश 'अचेतन' ही कहलाता है। (ख) इसका प्रयोग प्रायः 'मन' के पहले रूप में होता है।

अचेतनक—वि० [सं० अचेतन+क्विप्+ण्वुल्-अक] अचेत या बेहोश रहनेवाला। (एनीस्थेटिक)

अचेतना—स्त्री० [सं० न० त०] चेतना न होने या न रहने की अवस्था या भाव।

अचेतनीकरण—पुं० [सं० अचेतन√कृ+च्वि+ल्युट्—अन] चिकित्सा में, ओषधि से शरीर के किसी अंग या भाग को निश्चेष्ट या सुन्न करने की क्रिया या भाव। (एनीसथेसिस)

अचेता (तस्)—वि० [सं० न० ब०] १. चेतना अथवा चित्त से रहित। अचेतन। २. जड़। ३. निर्जीव।

अचेलपरीसह—पुं० [सं० अचैलपरिसह] शास्त्रों में बतलाये हुए वस्त्र पहनने तथा उनके दोषों पर ध्यान न देना। (जैन और बौद्ध)

अचेष्ट—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें किसी प्रकार की चेष्टा या गति न हो। चेष्टा से रहित या हीन। २. संज्ञा से रहित। बेहोश। ३. जिसमें कोई चेष्टा या क्रिया न की जाय।

अचेष्टित—वि० [सं० न० त०] (कार्य) जिसके लिए चेष्टा या प्रयत्न न किया गया हो।

अचैतन्य—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें चेतना-शक्ति न हो। २. जड़। ३. बेहोश या मूर्च्छित।

पुं० [सं० न० त०] १. चेतना का अभाव। २. बेहोशी। ३. जड़ पदार्थ।

अचैन—वि० [हिं० अ+चैन] जिसे चैन अथवा शांति न मिल रही हो। व्याकुल। बेचैन।

पुं० बेचैन, विकल या व्याकुल होने की अवस्था या भाव।

अचैना—पुं० [?] १. जमीन में गाड़ा हुआ लकड़ी का वह कुंदा जिस पर चारा काटा जाता है। २. लकड़ी का वह कुंदा जिस पर बढ़ई लकड़ियाँ गढ़ते और छीलते हैं।

अचोन—स०=अचवना।

अचोना—पुं० [सं० आचमन]=आचमन का पात्र।

अच्छ—वि० [सं०√छो (काटना)+क, न० त०] १. अच्छा। निर्मल। २. स्वच्छ।

स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। नेत्र।

पुं० १. दे० 'अक्ष'। २. स्वच्छ जल। ३. शिव का नेत्र, विशेषतः तीसरा नेत्र। ४. रावण का पुत्र, अक्षय कुमार।

अच्छत—वि०, पुं०=अक्षत।

क्रि० वि० निरंतर। लगातार।

अच्छय*—वि०=अक्षय।

अच्छर†—वि०, पुं०=अक्षर।

अच्छरा*—स्त्री०=अप्सरा।

अच्छरि—स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा।

अच्छरिज (य)—पुं० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य।

अच्छरी—स्त्री०=अप्सरा।

अच्छा—वि० [सं० अच्छ=स्वच्छ] [स्त्री० अच्छी, भाव० अच्छाई, अच्छापन] १. जो अपने वर्ग में उपकारिता, उपयोगिता, गुण, पूर्णता आदि के विचार से औरों से बढ़कर और फलतः प्रशंसा या स्तुति के योग्य हो। जैसे—अच्छा आचरण, अच्छा उपदेश, अच्छा लड़का, अच्छा स्वभाव आदि।

मुहा०—अच्छा लगना=भला या सुन्दर लगना।

पद०—अच्छा खासा=(क) बहुत अधिक। (ख) बढ़ा-चढ़ा।

२. आकार, रचना, प्रकार, रूप आदि के विचार से देखने योग्य या सुन्दर। जैसे—अच्छा कपड़ा, अच्छा चित्र, अच्छा मकान। ३. प्रामाणिकता,

स्थिति आदि के विचार से जो किसी मानक के अनुरूप या प्रशस्त स्तर पर हो। जिसमें कोई खोट या मेल न हो। खरा। जैसे—अच्छा दूध, अच्छा सोना। ४. प्रसन्न और संतुष्ट करनेवाला। प्रिय या संतोष जनक। जैसे—अच्छी खबर, अच्छा खेल, अच्छा दृश्य आदि। ५. कल्याण या मंगल करनेवाला। शुभ। जैसे—अच्छा लग्न, अच्छा दिन, अच्छा मुहूर्त आदि। ६. लाभदायक या श्रेयस्कर। जैसे—(क) अच्छा हो कि आप भी चलें। (ख) कोई अच्छी नौकरी मिल जाय तो इसे छोड़ दें। ७. जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा। ८. परिस्थितियों आदि के विचार से उपयुक्त। फबनेवाला। जैसे—इस रंग की साड़ी पर काली गोट अच्छी रहेगी। ९. त्रुटि, दोष आदि से रहित। जैसे—अच्छा स्वास्थ्य या अच्छी तरकारी। १० रोग-रहित। नीरोग। जैसे—रोगी का अच्छा होना।

मुहा०—(रोगी को) अच्छा करना=तंदुरुस्त या नीरोग करना। ११. जो उच्चकोटि का या उत्तम न होने पर भी संतोषजनक हो। जैसे—अच्छी फसल। अच्छी पुस्तक।

क्रि० वि० १. भली भाँति। उत्तम प्रकार से। २. ठीक या उपयुक्त अवसर पर।

मुहा०—अच्छे आना=(क) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना। (ख) ठीक प्रकार से होना या बनना।

३. यदि यही बात है तो। जैसे—अच्छा, हम भी उनसे समझ लेंगे।

अव्य० आश्चर्य, उपेक्षा, स्वीकृति आदि का सूचक अव्यय। जैसे—(क) अच्छा! वह भी चले गये। (ख) अच्छा! जाने दो। और (ग) अच्छा! ऐसा हो नहीं।

अच्छाई—स्त्री० [हिं० अच्छा] १. अच्छे होने की अवस्था या भाव। अच्छापन। २. विशेषता। खूबी। ३. सुन्दरता। ४. लाभ। फायदा।

अच्छापन—पुं० [हिं० अच्छा+पन (प्रत्य०)] अच्छे होने की अवस्था या भाव। अच्छाई। श्रेष्ठता।

अच्छा-दिच्छा—वि० [हिं० अच्छा] १. अच्छा समझ कर चुना या छाँटा हुआ। २. उत्तम। श्रेष्ठ। ३. चंगा। स्वस्थ।

अच्छावाक—पुं० [सं० अच्छ√वच् (बोलना)+घञ् नि० दीर्घ] सोम यज्ञ में होता का सहायक ऋत्विक्।

अच्छि*—स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। उदा०—अच्छिनि उचार ऊँचो करहु प्रतच्छ लच्छ, इति पसु पच्छिनि हूँ लाग है लगन में।—रत्नाकर।

अच्छिद्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें छेद या छिद्र न हो। २. जिसमें त्रुटि, दोष आदि न हों। निर्दोष। ३. जो भग्न न हो। अखंडित।

पुं० १. ऐसा कार्य जिसमें कोई त्रुटि या दोष न हो। २. एक सी-बनी रहने की दशा या स्थिति।

अच्छिन—अव्य० [सं० अस्मिन्‌क्षणे] १. शीघ्रता पूर्वक। २. अभी। उदा०—दरस हेत तिय लिखति पीय मियरावहु अच्छिन।—सेनापति।

अच्छिन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो छिन्न (काटा, तोड़ा, फोड़ा) न गया हो। २. जिसे विभक्त न किया गया हो। ३. जिसके टुकड़े न किये जा सकते हों। अवियोज्य। (इनसेप, रेबल) ४. जो किसी एक ठीक या निश्चित क्रम से चले। ५. अटूट।

अच्छिन्न-पत्र—पुं० [सं० न० ब०] १. वह वृक्ष जिसकी पत्तियाँ किसी ऋतु में झड़ती न हों। सदा-बहार पेड़। २. ऐसे पक्षी जिनके पर कटे न हों या काटे न गये हों।

अच्छिन्नपर्ण—पुं०=अच्छिन्न-पत्र।

अच्छिय—वि०=अच्छा।

अच्छिर—पुं० [सं० अक्षर] १. अक्षर। २. निमन्त्रण पत्र। उदा०—बचि विचारिय दाहिमा निमित्त अच्छिर नूत। —चन्द वरदाई।

अच्छुप्ता—स्त्री० [सं० अक्षुप्ता] १. सोलह जैन देवियों में से एक। २. निष्पाप या शुद्ध आचरणवाली स्त्री।

अच्छे—क्रि० वि० [हिं० अच्छा] १. अच्छी या ठीक तरह से। २. उपयुक्त या ठीक अवसर अथवा समय पर। जैसे—आप अच्छे आये, आप से भी सलाह ले लो।

अव्य० एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, उपेक्षा आदि सूचित करने के लिए होता है। जैसे—आप भी अच्छे मिले जो पुस्तक ही हड़प गये।

पुं० १. बड़े आदमी। श्रेष्ठ पुरुष। २. किसी के संबंध के विचार से श्रेष्ठ व्यक्ति या गुरु-जन। जैसे—तुम्हारी क्या गिनती है! मैं तो तुम्हारे अच्छों से रुपये वसूल कर लूँगा।

अच्छेदिक—वि० [सं० छेद+ठन्+इक, न० त०] =अच्छेद्य।

अच्छेद्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसे छेदा या भेदा न जा सके। २. जो छेदे या काटे जाने के उपयुक्त या योग्य न हो।

अच्छोत*—वि०=अक्षत।

अच्छोद—वि० [सं० अच्छ—उदक, ब० स०] स्वच्छ या निर्मल जलवाला।

पुं० हिमालय में कैलाश के पास का एक सरोवर। (कादंबरी)

अच्छोदा—स्त्री० [सं० अच्छोद+अच्—टाप्] एक नदी जो अच्छोद सरोवर से निकली हुई मानी जाती है।

अच्छोहिनी—स्त्री०=अक्षौहिणी।

अच्युत—वि० [सं० न० त०] १. अपने स्थान या स्थिति से न गिरने या हटनेवाला। अटल। २. जिसका नाश न हो। शाश्वत। ३. जिसने भूल या त्रुटि न की हो। जो पथ-भ्रष्ट न हुआ हो।

पुं० विष्णु और उनके अवतारों का नाम। २. जैनियों के एक देवता।

अच्युत कुल—पुं० [ष० त०] वैष्णवों का एक संप्रदाय।

अच्युत-गोत्र—पुं०=अच्युत कुल।

अच्युतज—पुं० [अच्युत√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जैन देवताओं का एक वर्ग।

अच्युत-पुत्र—पुं० [ष० त०] कामदेव।

अच्युत-मध्यम—पुं० [कर्म० स०] संगीत में मध्यम स्वर का एक विकृत रूप।

अच्युत-मूर्ति—पुं० [ब० स०] विष्णु।

अच्युत-वास—पुं० [ब० स०] १. वट वृक्ष। २. अश्वत्थ वृक्ष।

अच्युत-षड्ज—पुं० [कर्म० स०] संगीत में षड्ज स्वर का एक विकृत रूप।

अच्युतांगज—पुं० [अच्युत-अंगज, ष० त०] कामदेव।

अच्युतात्मज—पुं० [अच्युत-आत्मज, ष० त०] कामदेव।

अच्युतानंद—वि० [अच्युत-आनंद, ब० स०] जो सदा आनंदित या प्रसन्न रहे।

पुं० आनंद स्वरूप परमात्मा।

अच्युतावास—पुं० [सं० अच्युत-आवास, ब० स०] =अच्युतवास।

अछक*—वि० [हिं० अ+छकना=तृप्त होना] १. जिसने भर पेट भोजन न किया हो। भूखा। २. जो तृप्त न हुआ हो। अतृप्त।

अछकना*—अ० [हिं० अछक] तृप्त या संतुष्ट न होना। अभाव-ग्रस्त रहना।

अछग—वि०=अछक।

अछत—वि० [हिं० अ+छत (छतना)=होना] जो उपस्थित या वर्तमान न हो। उदा०—गनती गनबे तै रहे, छत हू अछत समान।—विहारी।

क्रि० वि० [हिं० अछना का कृदंत रूप] उपस्थित या विद्यमान रहते हुए। (किसी के) रहते या होते हुए। उदा०—तोर अछत दसकंधर मोर कि अस गति होइ।—तुलसी।

अछताना—अ० हिं० 'पछताना' का अनु०। जैसे—अछता-पछता कर चले आये।

अछन*—पुं० [सं० अ+क्षण] बहुत दिन। दीर्घकाल।

क्रि० वि० १. धीरे-धीरे। २. रुक-रुक कर।

अछना*—अ० [सं० अस्, प्रा० अच्छ=होना] उपस्थित या वर्तमान होना। मौजूद रहना।

अछप—वि० [हिं० अ+छिपना] १. जो छिप न सके। २ प्रकट। स्पष्ट।

अछमी*—पुं०=अचमा।

अछय—वि०=अक्षय।

अछयकुमार—पुं०=अक्षयकुमार।

अछरा*—स्त्री०=अप्सरा।

अछरी—स्त्री०=अप्सरा।

स्त्री०=अक्षरी।

अछरौटी—स्त्री० दे० 'अखरौटी'।

अछल—वि० [सं० अच्छल] १. जिसमे छल-कपट न हो। सीधा और सरल। २. भला। सुशील।

अछवाई—स्त्री०=अच्छापन।

अछवाना*—स० [सं० अच्छ=साफ] १. साफ या स्वच्छ करना। २. सँवारना तथा सजाना।

स० १. किसी से साफ या स्वच्छ कराना। २ सँवारने तथा सजाने का काम किसी से कराना।

अछवानी—स्त्री० [हिं० अछवाना या अजवायन] प्रसूता स्त्रियों को पिलाने के लिए तैयार किया हुआ एक प्रकार का शक्तिवर्धक तरल पदार्थ जिसमे अजवायन, सोंठ आदि मसाले पड़े रहते है।

अछाम—वि० [सं० अक्षाम्] जो दुबला-पतला या क्षीण-काय न हो। फलत: मोटा या स्थूल। काय।

अछिद्र—वि०=अच्छिद्र।

अछियार—वि० [हिं० अच्छा+इयार (प्रत्य०)] १. जो देखने मे अच्छा, भला या प्रिय लगे। २. अच्छे रूप-रंगवाला।

पुं० गजी या गाढे की तरह एक प्रकार का मोटा कपड़ा, जिसमे प्राय: लाल रंग का किनारा होता था।

अछूत—वि० [हिं० अ+छूत (छूना)] १. जो छुआ न जा सकता हो। २. जो छुए जाने के योग्य न माना जाता हो। जिसे स्पर्श करना वर्जित हो। ३ दे० 'अछूता'।

पुं० कोई ऐसी जाति (अथवा उस जाति का व्यक्ति) जिसे धार्मिक या सामाजिक मर्यादा के विचार से छूना या उससे संपर्क रखना निषिद्ध या वर्जित हो। (अन्-टचेबुल)

अछूता—वि० [सं० अ+छुप्त=छुआ हुआ] १. जिसे अभी तक छुआ न गया हो। २. जिसका अभी तक कोई उपयोग न हुआ हो। काम में न लाया हुआ। ३. जिसके सबंध मे अभी तक विचार न किया गया हो। जैसे—अछूता विषय। ४. पवित्र। शुद्ध।

अछूतोद्धार—पुं० [हिं० अछूत+सं० उद्धार] अछूतों या अस्पृश्य जातियों के उद्धार का काम, प्रयत्न या भाव।

अछेद—वि० [सं० अच्छेद्य] १. जिसमें छेद न हो। २. जिसमे त्रुटि, दोष या भूल न हो। ३. दे० 'अछेद्य'।

अछेद्य—वि० [सं० अच्छेद्य] १. जो छेदा या भेदा न जा सके। २. जो तोड़ा या खंडित न किया जा सके। अखंडनीय।

अछेरा—पुं० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य। (राज०) उदा०—ग्रहियो म्हें चीतोड गढ़, किसूँ अछेरा कथ्य।—बाँकीदास।

अछेव—वि० [सं० अच्छेद्य या अछिद्र] १. (वस्तु) जिसमें छिद्र या त्रुटि न हो। २. (व्यक्ति) जिसने दोष या अपराध न किया हो।

अछेह—वि० [सं० अछेद्य] बहुत अधिक। अत्यंत।

क्रि० वि० बिना किसी रुकावट या बाधा के। निरंतर। उदा०—आठों याम अछेह दृग जु बरत बरषत रहत।—विहारी।

अछोप—वि० [सं० अ+छुप्] १. जो ढाका न गया हो। २. आच्छादन रहित। ३. दीन। ४. नंगा। ५. निर्लज्ज।

अछोभ—वि०, पुं०=अक्षोभ।

अछोर—वि० [हिं० अ+छोर=किनारा] १. जिसका किनारा, छोर या सिरा न हो। असीम। २. अत्यधिक। बहुत अधिक। ३. बहुत लंबा-चौड़ा और विस्तृत।

अछोह—वि० [हिं० अ+छोह=प्रेम] १. जिसमे छोह (प्रेम या ममता) न हो। २. निर्दय। निष्ठुर।

पुं० १. छोह (प्रेम या ममता) का अभाव। २. उदासीनता।

अछोही वि०=अछोह।

अजंगम—पुं० [सं० न० त०] छप्पय नामक मात्रिक छंद का एक भेद।

अजंभ—वि० [सं० न० ब०] १. (बच्चा) जिसके दाँत न निकले हों। २. (व्यक्ति) जिसके दाँत न रह गये हो। दंत-रहित।

पुं० १ बच्चे की वह अवस्था जिसमे दाँत अभी नहीं निकले होते। २. सूर्य। ३. मेढक।

अज—वि० [न०√जन्+ड, न० त०] १. जो जन्मा न हो। २. जिसका अस्तित्व आदि-काल से बना हो। अनादि।

पुं० १. वह जिसका अस्तित्व आदि-काल से बना हो। जैसे—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कामदेव आदि। २. राजा दशरथ के पिता का नाम। ३. भेंड। ४. बकरा। ५. माया। ६. चंद्रमा। ७. मेष राशि। ८. एक प्रकार का धान्य। ९. अग्नि या सूर्य का रथ। १०. एक

नक्षत्र वीथी जिसमें तीन नक्षत्र होते हैं। (ज्यो०)
क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] १. इस समय। अब। २. अभी तक।
अज़—प्रत्य० [फा० से (विभक्ति)] जैसे—अज़-खुद=आप से आप। स्वतः।
अजक—पुं [सं० अज+कन्] राजा पुरुरवा का एक वंशज।
अज-कर्ण—पुं० [ब० स०] असन नामक वृक्ष।
अजकर्णक—पुं० [सं० अजकर्ण√कै (शब्द)+क] १. आँख का एक रोग। फूली (देखें)। २. साल वृक्ष।
अजका—स्त्री० [सं० अजक+टाप्] १. कम उमर की बकरी। २. अजागलस्तन। ३. आँख का एक रोग। फूली (देखें)।
वि० [हिं० अ+फा० ज़क=पराजय] उद्धत। उद्दंड। उदा०—देख सहेली नो वणो, अजकी वाग उठाया।—कविराज सूर्यमल।
अजकाव—पुं० [सं० अजका√वा (गति)+क] १. शिव का धनुष। २. बबूल का पेड़। ३. एक प्रकार का यज्ञपात्र। ४. फूली नामक नेत्र रोग।
अज-गंधा—स्त्री० [ब० सं०] अजमोदा।
अजग—पुं० [सं० अज√गम् (जाना)+ड] १. शिव का धनुष। २. विष्णु। ३. अग्नि का रथ। ४. सूर्य की किरण।
अजगर—पुं० [सं० अज=बकरी√गृ (निगलना)+अच्] एक प्रकार का बहुत मोटा और भारी साँप जो भेड़ बकरियों तक को निगल जाता है। (इसकी अनेक जातियाँ होती हैं।)
अजगरी—वि० [सं० अजगरीय] अजगर-संबंधी। जैसे—अजगरी वृत्ति।
स्त्री० अजगर की सी वृत्ति, जिसमें कोई काम-धंधा किये बिना आदमी चुपचाप खाता रहता है।
अजगव—पुं० [सं० अजग+व] शिव का धनुष। पिनाक।
अजगुत—वि० [सं० अयुक्त] १. जो युक्तिसंगत न हो। बेमेल। २. अद्भुत। विलक्षण। ३. अनुपम। बेजोड़।
अजगुतहाया—वि० [हिं० अजगुत+हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० अजगुतहायी] आश्चर्यजनक और अनोखा। विचित्र। विलक्षण।
अजगूता*—वि० दे० 'अजगुत'।
अजगैब*—क्रि० वि० [फा० अज़ (=से)+अ० ग़ैब=परोक्ष, आकाश] १. अलक्षित या परोक्ष स्थान से। २. आकाश से। ३. दैव की ओर से।
अजगैबी—वि० [फा०+अ०] १. आकाश से अथवा आकस्मिक रूप से आने या होनेवाला। २. दैवी। ३. आकस्मिक।
अजटा—स्त्री० [सं० न० ब०] भूम्या-आमलकी। भुँइ आँवला। (पौधा)
अजड़—वि० [सं० न० त०] जो जड़ न हो अर्थात् चेतन।
अजदहा—पुं० [फा०] अजगर नाम का मोटा और बड़ा साँप।
अज-देवता—पुं० [सं० ष० त०] १. पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र। २. अग्नि।
अजन—वि० [ब० स०] १. जनहीन। निर्जन (स्थान)। २. दे० 'अजन्मा'।
पुं० [न० त०] १. वह जो अच्छा आदमी न हो। बुरा या नीच आदमी। २. ब्रह्मा।
अजनबी—वि० [फा०] (ऐसा नया आदमी) जो स्थान आदि से परिचित न हो अथवा जिससे और लोग परिचित न हों।
अजन्म—वि० दे० 'अजन्मा'।

अजन्मा (न्मन्)—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका जन्म न हुआ हो। जिसने जन्म न लिया हो। २. बिना जन्म लिये ही जो अस्तित्व में आया हो। ३. जो जन्म के बंधन से मुक्त हो चुका हो। ४. जारज। दोगला।
अजन्य—वि० [सं० न० त०] १. जो उत्पादन के योग्य न हो। २. जो मानवता के लिए अहितकर या अशुभ हो।
अजप—पुं० [सं०√जप् (जपना)+अच्, न० त०] १. शास्त्र द्वारा प्रतिपादित रीति से न पढ़नेवाला। २. शास्त्र या धर्म-विरोधी ग्रंथों का पाठ करनेवाला।
वि० [न० ब०] जो जपा न जाय। दे० 'अजपा'।
अज-पति—पुं० [सं० ष० त०] मंगल ग्रह का एक नाम।
अजपह—पुं० [सं० अजपा] मन ही मन सोचना। उदा०—चिन तलपह अजपह मन कीनों।—चन्दबरदाई।
अजपा—वि० [सं० अ+हिं० जपना] १. जिसका जप न किया गया हो अथवा न किया जाय। २. जप न करनेवाला।
पुं० [सं०√जप्+अच्, टाप्, न० त०] मंत्र जपने का वह प्रकार जिसमें मन ही मन जप किया जाता है, मुँह से उच्चारण नहीं किया जाता।
अजपाल—पुं० [सं० अज√पाल्+अण्] १. बकरा पालनेवाला। गड़ेरिया। २. दशरथ के पिता का नाम।
अजब—वि० [अ०] अनोखा। विचित्र। विलक्षण।
अजम—पुं० [अ० अज्म] १. अरब के आस-पास के ईरान, तूरान आदि देशों का पुराना नाम। २. अरब जाति से भिन्न व्यक्ति।
अजमाइश—स्त्री०=आजमाइश।
अजमाना—स०=आज़माना।
अजमी—वि० [हिं० अजम (देश)] अजम देश का।
पुं० अजम का रहनेवाला। ईरानी या तूरानी।
स्त्री० अज्म या अजम देश की भाषा।
अज-मीढ—पुं० [सं० अजो मीढो यज्ञे सिक्तः यत्र, ब० स०] १. अजमेर का प्राचीन नाम। २. पुरुवंशीय हरित का बड़ा पुत्र। युधिष्ठिर।
अज-मुख—वि० [सं० ब० स०] जिसका मुँह बकरे का या बकरे-जैसा हो।
पुं० दक्ष प्रजापति का एक नाम।
अजमूदा—वि० दे० 'अजमोद'।
अजमोद—स्त्री० [सं० अजमोदा] अजवायन की तरह का एक पौधा जिसके बीज मसाले के काम आते हैं।
अज-मोदा—स्त्री० [सं० ब० स०] अजमोद नामक पौधा या उसके बीज।
अजय—पुं० [सं० न० त०] जय का विरोधी भाव या विपर्यय। पराजय। हार।
वि० [सं० न० ब०] जिसे जीत न सकें। अजेय।
पुं० १. विष्णु। २. अग्नि। ३. छप्पय नामक छंद का एक भाग।
अजयपाल—पुं० [सं० जय√पाल् (रक्षा करना)+अण्, न० त०] १. जमाल-गोटा। २. संगीत में एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना गया है।
अजया—स्त्री० [सं० न० ब०] १. भाँग। २. माया। ३. दुर्गा की एक सहचरी।

स्त्री०=अजा (बकरी)।

अजय्य*—वि० [सं०√जि (जीतना)+यत्, न० त०]=अजेय।

अजर—वि० [सं० न० ब०] जिसे जरा या बुढ़ापा न आवे। सदा एक-सा बना रहनेवाला।

पुं० १. परब्रह्म। २. देवता।

*वि० [सं० अ=नहीं+जृ=पचना] जो पचाया न जा सके।

अजरा—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] १. घृतकुमारी। घीकुआँर। (पौधा) २. विधारा। (पौधा) ३. छिपकली।

अजरायल*—वि० [सं० अजर] १. जो कभी जीर्ण या पुराना न हो। २. सदा एक-सा रहनेवाला। चिरस्थायी। ३. दृढ़। पक्का। ४. बलवान। शक्तिशाली।

वि० [सं० अ (=नहीं)+दर=डर] निर्भय। निःशंक।

अजराल—वि० [सं० अ=नहीं+जृ=पुराना पड़ना] बलवान। शक्तिशाली। (डिं०)

अजरावन—वि० [सं० अजर+हिं आवन (प्रत्य०)] अजर करने या सदा एक-सा बनाये रखनेवाला।

स्त्री० अजर होने की अवस्था या भाव। (पूरब)

अजरावर*—वि० [सं० अजर+अमर] १. जिसका नाश न हो। नष्ट न होनेवाला। २. दृढ़ या पक्का।

अजर्य—वि० [सं०√जृ (वयोहानि)+यत्, न० त०]=अजर।

अजल—वि० [सं० न० ब०] १. (पदार्थ) जिसकी रचना में जल का तत्त्व या जलीय अंश न हो। (एनहाइड्रस) जैसे—नमक या किसी चीज का रवा। २. जल-रहित। निर्जल।

क्रि० वि० बिना जल के। निर्जल।

अजल—स्त्री० [अ०] मृत्यु। मौत।

अज-लोमा—स्त्री० [सं० ब० स०] केवांच। कौंछ।

अज-वल्ली—स्त्री० [सं० मध्य० स०] मेढ़ासिंगी नामक ओषधि।

अजवाइन—स्त्री०=अजवायन।

अजवायन—स्त्री० [सं० यवानी, ब० यमानी, पं० अजवैन, मरा० ओवा] १. एक पौधा जिसके बीज ओषधि तथा मसाले के काम आते हैं। २. उक्त पौधे के बीज।

अज-वाह—पुं० [सं० ब० स०] कच्छ-काठियावाड़ का पुराना नाम।

अज-वीथी—स्त्री० [सं० मध्य० स०] आकाश का वह छायापथ जिसमें हमारा सौर जगत् है।

अज-शृंगी—स्त्री० [सं० ब० स०] मेढ़ासिंगी नामक पौधा।

अजस—पुं० [सं० अयश] यश या कीर्ति का अभाव। यश न होना।

पुं०=अपयश।

अजसी—वि० [हिं० अजस] जिसे अच्छा काम करने पर भी यश न मिलता हो।

अजस्र—वि० [सं०√जस् (हिंसा)+र, न० त०] [भाव० अजस्रता] बराबर या लगातार चलता रहनेवाला। जिसका क्रम न टूटे।

क्रि० वि० निरंतर। लगातार।

अजहति—स्त्री० दे० 'अजहत् लक्षण'।

अजहत्—वि० [सं०√हा (त्याग)+शतृ, न० त०] न त्यागनेवाला।

अजहत्-लक्षणा—स्त्री० [सं० न० ब०] लक्षण के तीन भेदों में से एक जिसमें लक्षण शब्द अपना वाच्यार्थ प्रकट करने के अतिरिक्त कुछ और आशय भी प्रकट करता है। जैसे—'तोपों के पहुँचते ही शत्रु भागने लगे।' में तोपों के साथ उन्हें चलानेवाले तोपचियों का भी भाव आ जाता है। अजहत्-स्वार्था।

अजहत्-स्वार्था—स्त्री०=अजहत् लक्षण।

अजहल्लिंग—पुं० [सं० न० ब०] (संस्कृत व्याकरण में) वह संज्ञा जो विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर भी अपने लिंग को न छोड़े।

अजहुँ (हूँ)—क्रि० वि० [सं० अद्यतन, अप० अजूहुँ, प्रा० अज्जउण, मरा० अजून] १. आज तक। २. अभी तक। इस समय तक।

अजा—वि [सं० अज+टाप्] जो पैदा न हुआ हो। जिसने जन्म न लिया हो।

स्त्री० १. बकरी। २. सांख्य के अनुसार प्रकृति या माया। ३. दुर्गा।

अजागर—वि० [सं० न० ब०] न जागनेवाला।

पुं० भृंगराज। भँगरैया।

अजा-गल-स्तन—पुं० [सं० ष० त०] १. बकरी के गले में थैली की तरह लटकनेवाला वह अंश जो देखने में स्तन के समान जान पड़ता है। २. (लाक्षणिक रूप में) ऐसी वस्तु जो देखने में उपयोगी जान पड़ने पर भी निरर्थक हो।

अजाचक—वि० [सं० अयाचक] जो माँगता न हो। जो याचक न हो। न माँगनेवाला।

अजाची—वि० [सं० अ-याचिन्] जिसने याचना न की हो। न माँगनेवाला।

अजात—वि० [सं० न० त०] १. जो उत्पन्न न हुआ हो। जिसने जन्म न लिया हो। जैसे—अजात-पक्ष=पक्षी जिसके पक्ष न निकले हों। २. जो जन्म के बंधन से मुक्त हो चुका हो।

वि० [हिं० अ+जात] १. जिसकी कोई जाति न हो। २. छोटी जाति का। ३. जो जाति से निकाल दिया गया हो।

अजात-रिपु—वि०=अजात-शत्रु।

अजात-शत्रु—वि० [सं० न० ब०] जिसका कोई विरोधी, वैरी या शत्रु न हो।

पुं० १. युधिष्ठिर। २. शिव। ३. मगध के राजा बिंबसार का पुत्र।

अजातारि—पुं० [सं० अजात-अरि, न० ब०] अजात-शत्रु।

अजाति—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी कोई जाति न हो। २. जिसका किसी जाति से संबंध न हो। ३. नीच जाति का। ४. जाति से निकाला हुआ।

अजाती—पुं० [सं० अ+जाति] वह जो अपनी जाति या बिरादरी से (किसी अपराध के कारण) निकाल दिया गया हो।

अजाद*—वि०=आजाद (स्वतंत्र)।

अजान—वि० [हिं० अ+जानना] १. न जाननेवाला अथवा जिसे कोई न जानता हो। २. (बालक) जिसे ज्ञान या बोध न हुआ हो। ३. (व्यक्ति) जिसे ज्ञान, बोध या समझ न हो। ४. (विषय या व्यक्ति) जिसके संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त न हुई हो।' उदा०—(क) आये आगे किसी अजाने दूर देश से चलकर।—निराला। (ख) मुस्कानों में उछल उछल मृदु बहती वह किस ओर अजान।—पन्त।

पुं०=अज्ञान

पुं० [?] १. एक पेड़ जिसके नीचे जाने पर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। २. एक प्रकार का धान।

अजान—स्त्री० [अ० अजान] मसजिद में से मुल्ला की वह पुकार जो मुसलमानों को नमाज पढ़ने के लिए आमंत्रित करती है।

अजानता*—स्त्री०=अजानपन।

अजानपन—पुं० [सं० अज्ञान प्रा० अन्जान+हिं० पन] ज्ञान न होने की अवस्था या भाव।

अजान-बीरो—पुं० [सं० अजान ?+बीरी=पौवा] एक प्रकार का पौधा।

अजानि—वि० [स० नास्ति जाया यस्य, न० ब० जाया-नि आदेश] १. जिसकी पत्नी न हो। २. जिसकी पत्नी मर गई हो। विधुर।

अजानिक—वि० [सं० अज-आन, ब० स०, अजान+ठन्-इक] बकरियों का व्यवसाय करनेवाला।

वि० १ दे० 'अजान'। २. दे० 'अजानि'।

अजाने—क्रि० वि० १. अनजान में। २. बिना जाने।

अजा-पालक—पुं० [सं० ष० त०] बकरियाँ पालनेवाला।

अजामिल—पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध पापी जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेने के कारण ही मोक्ष का अधिकारी हुआ था।

अजाय—वि० [अ=नहीं+फा० जाय=जगह] १. जो अपने उचित या ठीक स्थान पर न हो। न फबनेवाला। २. अनुचित या अनुपयुक्त। ३. ना-मुनासिब। बेजा।

अजायब—पुं० [अ०] 'अजब' का बहुवचन विलक्षण बातों या पदार्थों का वर्ग या समूह।

अजायबखाना—पुं०=अजायबघर।

अजायबघर—पुं० [अ० अजायब+घर] वह भवन या उसका भाग जिसमें पुराकालीन कला-कौशल संबंधी और विभिन्न प्रकार की अद्‌भुत तथा विलक्षण वस्तुएँ संगृहीत, परिरक्षित तथा प्रदर्शित की जाती हैं। (म्यूजियम)

अजायाँ—वि० [स्त्री० अजाई] दे० 'अजाय'।

अजार*—पुं० [फा० आजार] १. रोग। बीमारी। २. कष्ट। संकट।

अजारा—पुं० दे० 'इजारा'।

अजि—वि० [सं०√अज् (गति)+इन्] जानेवाला। गमन करनेवाला।

स्त्री० १. गति। २. गतिशीलता। ३. फेंकने की क्रिया या भाव।

अजिऔरा*—पुं० [सं० आर्या-दादी, प्रा० अज्जा+सं० पुर] आजी या दादी के पिता का घर।

अजित—वि० [सं० न० त०] १. जिसे जीता न जा सके। २. जिसपर किसी ने विजय न पाई हो।

पुं० १. विष्णु। २. शिव। ३. चतुर्दश मन्वंतर के देवताओं का एक वर्ग। ४. बुद्ध। ५. एक प्रकार का जहर-मोहरा। ६. एक विषैला चूहा।

अजित-नाथ—पुं० [कर्म० स०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम।

अजित-बला—स्त्री० [ब० स०] एक जैन देवी।

अजिता—स्त्री० [सं० अजित=टाप्] भादों बदी एकादशी।

अजितेन्द्रिय—वि० [सं० अजित-इंद्रिय, ब० स०] जिसने अपनी इंद्रियों को वश में न किया हो। फलतः असंयमी तथा इंद्रिय-लोलुप।

अजिन—पुं० [सं०√अज् (फेंकना)+इनच्] १. खाल। चर्म। २. चीते शेर, हिरण आदि का चमड़ा जो ओढ़ा या बिछाया जाता है। मृगछाला। ३. मृग (शेर, चीते, हिरण आदि पशु)। ४. चमड़े का थैला। ५. धौंकनी।

अजिया—वि० [हिं० आजा=दादा] जो संबंध के विचार से आजा के पद का हो। जैसे—अजिया ससुर, अजिया सास आदि।

अजिर—पुं० [सं०√अज्+किरन्] १. आँगन। सहन। २. खुली हुई जमीन या मैदान। ३. हवा। ४. शरीर। ५. मेढक। ६. छछूंदर।

वि० १. तीव्र। तेज। २. चंचल। चपल।

अजिरवती—स्त्री० [सं० अजिर+मतुप्-वत्व-ङीप्] वह नदी जिसके किनारे श्रावस्ती नगर बसा था, तथा जिसे आज-कल राप्ती कहते हैं।

अजिरा—स्त्री० [सं० अजिर=टाप्] १. अजिरवती। २. दुर्गा।

अजिरीय—वि० [सं० अजिर+छ-ईय] अजिर-संबंधी।

अजिह्व—वि० [सं० न० ब०] जिसे जीभ न हो। जैसे—मेढक।

अजी—अव्य० [सं० अयि या हिं० ऐ जी] संबोधन का शब्द। ऐ जी का संक्षिप्त रूप।

अजीगर्त—पुं० [सं० अजी (गमन)-गर्त, ब० स०] १. एक ऋषि जो शुनःशेफ के पिता थे। २. साँप।

अजीज—वि० [अ० अजीज] १. जिससे प्रेम हो। प्रिय। २. जो निज का या अपना हो। आत्मीय। ३. समीपी। निकट-संबंधी। रिश्तेदार।

अजीत—वि० दे० 'अजित'।

अजीब—वि० [अ०] १. जो अपनी सामान्य स्थिति से चकित कर दे। विलक्षण। २. जिसे देखकर आश्चर्य भी हो और प्रसन्नता भी। अद्‌भुत। ३. जो अनूठा या उत्कृष्ट हो।

पद—अजीब वो गरीब—(क) परम विलक्षण। (ख) अति उत्कृष्ट।

अजीम—वि० [अ०] [भाव० अजमत] १. बहुत बड़ा। विशालकाय। २ वृद्ध और पूज्य।

अजीरन—पुं०=अजीर्ण।

अजीर्ण—वि० [सं०√जॄ (वयोहानि)+क्त, न० त०] १. जो जीर्ण या पुराना न हो। फलतः जो नया या अच्छी हालत में हो। २. जो टूटा-फूटा न हो। अक्षुण्ण। ३. जो पचा न हो।

पुं० १. एक रोग जिसमें पाचन-शक्ति बिगड़ जाने के कारण भोजन नहीं पचता। अपच। बदहजमी। २. किसी बात या वस्तु की ऐसी अभिव्यक्ति जो उसके निरर्थक बाहुल्य की सूचक तथा हास्यास्पद हो। जैसे—धन या बुद्धि का अजीर्ण।

अजीव—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें जीवन या जीवनी-शक्ति न हो। निर्जीव। २. जिसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो गई हो। मृत। ३. जिसमें चेतना या चेतन-शक्ति न हो। अचेतन।

पुं० [सं० न० त०] १. जड़ पदार्थ। २. जैनों के अनुसार धर्म, नीति आदि तत्व।

अजु—अव्य० [?] और। जो। (डिं०)

अजुगति—स्त्री० [हिं० अजगुत] अज होने की अवस्था, गुण या भाव।

अजुगुत—वि० दे० 'अजगुत'।

अजू*—अव्य० दे० 'अजौं'। (ब्रज और बुन्देल०)

अजूजा*—पुं० [देश०] मुर्दे खानेवाला एक जानवर जो बिज्जू की तरह का होता है।

अजूबा—वि० [अ० अजूब] [स्त्री० अजूबी] अनोखा। विलक्षण।

अजूरा*—वि० [सं० अ+युज्=जोड़ना] १. जो जुड़ा हुआ न हो। अलग या पृथक्। २. जो प्राप्त न हुआ हो। अप्राप्त।
पुं० [अ०] १. मजदूरी। २. वेतन। ३ भाड़ा।

अजूह*—पुं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई। समर।

अजे—अव्य० [सं० अद्य] इस समय। अब। उदा०—सत्र सावतौ अजे लगि साथ।—प्रिथीराज।
पुं०=अजय।

अजेइ*—वि०=अजेय।

अजेतव्य—वि० [सं० न० त०]=अजेय।

अजेय—वि० [सं०√जि (जीतना)+यत्, न० त०] १. जो जीता न जा सकता हो। २. जो हारा न हो। अपराजित।

अजै—वि०=अजेय।
पुं०=अजय।

अजैकपाद—पुं० [सं० ब० स०] १. विष्णु। २. एक रुद्र का नाम।

अजैव—वि० [सं० जीव+अण्, न० त०] १. जिसमें जीवों के से अंग या अवयव न हों। २. रसायन में ऐसा तत्त्व या मिश्रण जो जीवोंवाली क्रियाओं या व्यापारों से रहित हो। जड़। जैसे—धातु, पत्थर आदि। ३. जो जीव-जन्तुओं से निकला या बना न हो। (इन-आर्गेनिक)

अजोग*—वि०=अयोग्य।
पुं० [सं० अ+योग] अनुपयुक्त, अशुभ या बुरा योग।

अजोता—पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] चैत्र की पूर्णिमा का दिन। (देहातों में इस दिन बैल नहीं जोते जाते।)

अजोधा—स्त्री०=अयोध्या।

अजोरना—स०=अँजोरना।

अजोरी—क्रि० वि० [फा० जोर, हिं० जोराजोरी] १. बलपूर्वक। जबरदस्ती। २. बरबस। अनायास। उदा०—टोना सो पढ़नावत सिर पर जो भावत सो लेत अजोरी।—सूर।

अजौं—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] इस समय तक। अब तक।

अज्ज—क्रि० वि०, पुं०=आज।

अज्ञ—वि० [सं०√ज्ञा (जानना)+क, न० त०] [भाव० अज्ञता] १. जिसे ज्ञान या समझ न हो। २. जो जानकार न हो। ३. अज्ञानी।

अज्ञा—स्त्री०=आज्ञा।

अज्ञात—वि० [सं० न० त०] १. जो जाना न गया हो। जिसके संबंध में कुछ ज्ञात न हो। जैसे—अज्ञात व्यक्ति। २. जिसे ज्ञान या भान न हो। जैसे—अज्ञात-यौवना। ३. जिसे कोई न जानता हो। (अन्-नोन)। ४. जो ऐसे रूप या वेष में हो कि उसे कोई पहचान न सके। ५. जो प्रकट या विदित न हो।
क्रि० वि० अनजान में। बिना जाने।

अज्ञातक—वि० [सं० अज्ञात+कन्] १. अज्ञात। २. अप्रसिद्ध। (क्व०)

अज्ञात-कुल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके कुल या वंश का ठीक ज्ञान या पता न हो। २. जो अपने अनिश्चित या अस्पष्ट गुण, रूप आदि के कारण किसी वर्ग में न रखा गया हो। (नॉन-डेस्क्रिप्ट)

अज्ञात-चर्या—स्त्री० [सं० कर्म० स०]=अज्ञातवास।

अज्ञात-नामा (मन्)—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका नाम विदित न हो। २. अप्रसिद्ध। अविख्यात।

अज्ञात-पितृक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसे अपने पिता या जनक का पता न हो। २. वेश्या का पुत्र।

अज्ञात-यौवना—स्त्री० [सं० न० ब०] साहित्य में वह मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन के आगमन का अभी तक ज्ञान या भान न हुआ हो।

अज्ञात-वास—पुं० [सं० कर्म० स०] समाज से बिलकुल अलग होकर ऐसे स्थान पर रहना जहाँ किसी को पता न लग सके। सब की दृष्टि से छिपकर रहना।

अज्ञाता—स्त्री० [सं० अज्ञात+टाप्, न० त०] =अज्ञात-यौवना।

अज्ञान—वि० [सं० न० त०] [भाव० अज्ञानता] १. जिसे ज्ञान न हो। २. मूर्ख।
पुं० [न० त०] १. सामान्य-ज्ञान न होने की अवस्था या भाव। २. किसी विषय-विशेष का ज्ञान न होने की अवस्था या भाव। ३. मिथ्या ज्ञान। ४. मूर्खता। जड़ता। ५. जीवात्मा को गुण और गुण के कार्यों से विभिन्न तथा पृथक् न समझने का अविवेक। (अध्यात्म) ६. न्याय में निग्रह का एक स्थान।

अज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० अज्ञान+तस्] १. अज्ञान के कारण। अज्ञता-वश (किया हुआ)। २. बिना जाने-बूझे या समझे।

अज्ञानता—स्त्री० [सं० अज्ञान+तल्—टाप्] १. ज्ञान न होने की अवस्था या भाव। २. किसी वस्तु का ज्ञान या परिचय न होने की अवस्था या भाव। ३. मिथ्या ज्ञान। ४. मूर्खता। ना-समझी।

अज्ञानपन—पुं०=अज्ञानता।

अज्ञानी (निन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसे ज्ञान न हो। ज्ञान-शून्य। २. मूर्ख। ना-समझ।

अज्ञेय—वि० [सं० न० त०] जिसे अथवा जिसके संबंध की बातें किसी प्रकार जानी ही न जा सकती हों। ज्ञानातीत। (अन्—नोएबल) जैसे—ब्रह्म का स्वरूप अज्ञेय है।

अज्ञेय-वाद—पुं० [ष० त०] वह सिद्धांत जिसके अनुसार यह माना जाता है कि इस दृश्य-जगत् से परे जो कुछ है वह अज्ञेय है।

अज्ञेयवादी (दिन्)—पुं० [सं० अज्ञेयवाद+इनि] उक्त सिद्धान्त का अनुयायी या समर्थक।

अज्यौं—क्रि० वि० दे० 'अजौं'।

अझर—वि० [सं० अ=नहीं+झर] १. न झरने या न गिरनेवाला। २. न बरसनेवाला (बादल)।

अझूना*—वि० [अ+सं० जीर्ण] १. जो जीर्ण या पुराना न हो। २. सदा एक दशा में या ज्यों का त्यों बना रहनेवाला। स्थायी। उदा०—तुम्हें बिन साँवरे ये नैन सूने। हियै मैं लै दियै बिरहा अझूनै।—घनानंद।

अझोरी—स्त्री०=झोली।

अटंबर—पुं० [सं० अट्ट=अधिक+फा० अंबार=ढेर] ढेर। राशि।

अट—स्त्री० [हिं० अटक] प्रतिबंध। शर्त।

अटक—स्त्री० [हिं० अटकना] १. अटकने की क्रिया या भाव। २. कोई ऐसी बात जिसके कारण रुक जाना पड़े। अड़चन। बाधा। रुकावट। ३. ऐसी स्थिति जिसमें आगे न बढ़ा जा सके। ४. उलझन। ५. संकोच। ६. परहेज। बचाव।

पद—अटक-भटक=भूल-भुलैयाँ।

अटकन*—स्त्री०=अटक।

पद—अटकन भटकन=भूल-भुलैयाँ।

अटकना—अ० [सं० आटङ्कन] १. चलते-चलते अथवा कोई काम करते रुकना या ठहरना। उदा०—यहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।—बिहारी। २. किसी कार्य, सोच-विचार, अभिदेश आदि के लिए रुकना। ३. किसी कठिनाई या बाधा के कारण किसी कार्य या क्रिया का रुकना। जैसे—उच्चारण या बात करते समय अटकना। ४. झगड़ा करना। उलझना।

अटकर*—स्त्री०=अटकल।

अटकल—स्त्री० [सं० अर्थ+कल् किंवा अन्तर्+कल्, गु० अठकल, सिं० अट्‌कल, मरा० अटकल] [भाव० अटकलबाजी] १. बिना किसी निश्चित परिकलन या माप के, कल्पना द्वारा बताई हुई लगभग ठीक गणना या मात्रा। २. गुण-दोष का अनुमान या कल्पना करने की शक्ति। पहचान। (गेस)

अटकलना—स० [हिं० अटकल] अटकल लगाना। अंदाज या अनुमान करना।

अटकल-पच्चू—वि० [हिं० अटकल+पच्चू ?] केवल कल्पना या अनुमान के आधार पर जाना या सोचा-समझा हुआ (फलतः ऊट-पटाँग या बिना सिर-पैर का)।

अटका—पुं० [उड़ि० आटिका=हाँड़ी] जगन्नाथ जी को भोग के रूप में चढ़ाया हुआ भात और उसकी दक्षिणा।

पुं० १. अटक। २. कमी।

अटकाना—स० [हिं० 'अटकना' का स०] १. किसी को जाने, बढ़ने या कोई काम न करने देना। रोकना। २. ठहराना। ३. अड़ंगा लगाना। बाधा पहुँचाना। ४. किसी के साथ अस्थायी रूप से लगाये रखने के लिए कुछ जोड़ना, बाँधना या लगाना।

अटकाव—पुं० [हिं० अटक] १. अटकने या अटकाने की क्रिया या भाव। २. रुकावट। रोक। ३. अड़चन। बाधा। ४. विघ्न।

अट-खट*—वि० १.=अट-पट। २.=अट्ट-सट्ट।

अटखेली—स्त्री०=अठखेली।

अटट*—अ० [?] कोरा। निरा। बिलकुल। जैसे—वह तो अटट गँवार है।

अटन—पुं० [सं०√अट् (गति)+ल्युट्-अन] १. घूमने-फिरने की क्रिया या भाव। २. भ्रमण। यात्रा। सफर।

अटना*—अ० [सं० आर्त्तः, पा० अट्टा ?] १. घूमना-फिरना। २. यात्रा करना। भ्रमण करना।

अ० [हिं० ओट] आड़ करना। ओट करना।

अ० [हिं० अँटना] १. पूरा पड़ना। २. भर जाना। ३. समाना।

अटनि—स्त्री० १.=अटन। २.=अटनी।

अटनी—स्त्री० [सं०√अट्+अनि, वा ङीप्] धनुष के आगे का वह भाग या सिरा जिसपर रस्सी बँधी होती है।

अट-पट—वि० [अनु०] १. बे-सिर-पैर का। २. बे-ढौल। बेढंगा। जैसे—अट-पट बात। ३. असंबद्ध। ४. विकट। ५. पाजीपन या शरारत से भरा हुआ (आचरण)।

अटपटा—वि० [स्त्री० अटपटी]=अटपट।

अटपटाना—अ० [हिं० अटपट] १. अटकना। २. लड़खड़ाना। ३. चूकना। ४. घबराना। ५. संकोच करना।

अटपटी†—स्त्री० [हिं० अटपट] १. नटखटपन। पाजीपन। शरारत। २. नियम या रीति के विरुद्ध आचरण या बात।

अटब्बर—पुं० [पं० टब्बर, राज० टाबर] घर के सब लोग। परिवार। *पुं०=आडंबर।

अटमबम—पुं० दे० 'अणुबम'।

अटरूष—पुं० [सं०√अट्+अच्-अट√रुष् (हिंसा) वा√रूष् (योग)+क] अड़ूसा नामक एक क्षुप।

अटल—वि० [सं० अ=नहीं+टल्=व्याकुल या चंचल होना] १. अपने स्थान से न टलनेवाला। २. जिसे बदला या हटाया न जा सके। दृढ़। पक्का। जैसे—अटल-विधान। ३. अवश्यंभावी।

अटवाटी-खटवाटी—स्त्री० [हिं० खाट] गृहस्थी का सामान। जैसे—खाट, बिस्तर आदि। बोरिया-बँधना।

अटविक—पुं०=आटविक।

अटवी—स्त्री० [सं०√अट्+अवि-ङीप्] १. जंगल। वन। २. मैदान।

अटवीबल—पुं० [सं० मध्य० स०] १. जंगल में रहनेवाली सेना। वन-सेना। २. जंगली लोगों की सेना।

अट-सट*—वि० [अनु०] इधर-उधर का अनावश्यक अथवा निरर्थक (कार्य, बात आदि)।

अटहर*—पुं० [सं० अट्ट=अटाला, ऊँचा ढेर] १. अटाला। ढेर। राशि। २. पगड़ी। ३. अटका। बाधा। रुकावट।

अटा—स्त्री० [सं०√अट्+अङ्, टाप्] १. भ्रमण। २. भ्रमण करने की क्रिया, भाव या वृत्ति।

स्त्री०=अटारी। जैसे—ठाढ़ी अटापै कटा करती हौ।—कोई कवि।

अटाउ—पुं०=अटाव।

अटाटूट—वि० [सं० अट्टट्ट] बहुत ऊँचा या भारी।

क्रि० वि० १. एकदम से। २. बिलकुल।

अटारी—स्त्री० [सं० अट्टाली=कोठा] १. घर के ऊपरवाला कमरा या कोठा। चौबारा। २. एक से अधिक खण्डोंवाला पक्का मकान।

अटाल—पुं० [सं० अट्टाल] धरहरा। मीनार। (डि०)

पुं०=अटाला।

अटाला—पुं० [सं० अट्टाल] १. ढेर। राशि। २. कसाइयों की बस्ती या मुहल्ला। ३. मुहल्ला।

अटाव—पुं० [सं० अट्ट] १. द्वेष। वैमनस्य। २. दुष्टता। पाजीपन।

पुं० [हिं० अँटना] अँटने या समाने की क्रिया या भाव। समाई।

अटित—वि० [सं० अटन] घुमावदार।

वि० [हिं० अटा] (नगर) जिसमें अटारियाँ अर्थात् कई खण्डोंवाले बहुत से मकान हों। उदा०—उन्नत अनिल अवास अटित

आकाम अटारी।—रत्ना०।

अटी—स्त्री० [सं० आडि] टिटिहरी की जाति की बहुत तेज उड़नेवाली एक चिड़िया।

अटूट—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० टूटना] १. जो टूटा न हो। २. जो टूट न सके। ३. जो तोड़ा या फोड़ा न जा सके। ४. जिसका क्रम बीच में न टूटे। ५. बहुत अधिक।

अटेरन—पुं० [सं० अति-ईरण] १. लकड़ी का एक चौखट जिसपर सूत लपेटकर उसकी आँटी या लच्छी बनाई जाती है। २. नये घोड़े को दौड़ाने का अभ्यास कराने के लिए उसे एक वृत्त में चक्कर खिलाना। कावा। ३. कुश्ती का एक दाँव।

अटेरना—स० [हिं० अटेरन] १. सूत की आँटी या लच्छी तैयार करने की क्रिया या भाव। २. अधिक शराब पीना। (व्यंग्य)

अटोक*—वि० [सं० अ-तर्क, पा० तक्क] १. जो बीच मे टोका या रोका न गया हो। २. जिसकी गति या प्रवाह में कोई बाधा न पड़ी हो। बराबर चला चलनेवाला।

अट्ट*—पुं० [सं० हट्ट=बाजार] हाट। बाजार। (डिं०)

पुं० [सं०√अट्ट (अतिक्रम)+घञ्] १. बड़ा भवन। महल। २. मकान का सब से ऊपरी भाग। अटारी। ३. धरहरा। बुर्ज। ४. खाद्य पदार्थ। ५. भात। ६. रेशमी वस्त्र। ७. वध। ८. किले का वह भाग जहाँ सेना रहती थी।

वि० १. ऊँचा। २. बहुत अधिक। ३. शुष्क। सूखा।

अट्टक—पुं० [सं० अट्ट+कन्] ऊँचा और बड़ा मकान। अटारी।

अट्टन—पुं० [सं०√अट्ट (वध)+ल्युट्-अन] १. एक प्रकार का हथियार जो पहिए के आकार का होता था। २. अपमान, उपेक्षा या बेइज्जती।

अट्ट सट्ट—वि० [अनु०] १. ऊटपटाँग। २. निरर्थक। व्यर्थ।

पुं० ऊल-जलूल या निरर्थक बात।

अट्टहास—पुं० [सं० तृ० त०, प्रा० अट्ट (ट्ठ) हास, अप-अट्टहास] [वि० अट्टहासक, अट्टहासी] खूब जोर की हँसी। ठहाका। (लॉफ्टर)

अट्ट हास्य—पुं०=अट्टहास।

अट्टा—पुं० [सं० अट्ट=बुर्ज] १. मकान का ऊपरी भाग। २. मचान।

पुं० [सं० अट्=घूमना] लपेटकर बनाया हुआ सूत का बड़ा लच्छा। बड़ी अट्टी।

अट्टाल—पुं० [सं० अट्ट√अल् (पर्याप्ति)+अच्] १ अटारी। २ धरहरा। बुर्ज। ३. महल।

अट्टालक—पुं० [सं० अट्टाल+कन्] अट्टाल।

अट्टालिका—स्त्री० [सं० अट्टाल+कन्-टाप्, इत्व अट्ट, अट्टाल, अट्टालिका; प्रा० अट्टालग, कान, अट्ट; तेल० अट्टालकमु, सिं० अटहली, आटहलो; गु० पं० अटारी] १. बड़ा और ऊँचा मकान। २. महल।

अट्टी—स्त्री० [सं० अट्=घूमना, बढ़ाना] अटेरन पर लपेटकर तैयार किया हुआ सूत या ऊन का लच्छा।

अट्ठा—पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ बूटियोंवाला ताश का पत्ता।

अट्ठाइसवाँ—वि० [हिं० अट्ठाईस] गिनती में जिसका स्थान सत्ताइसवें के बाद और उन्तीसवें के पहले हो।

अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति, पा० अट्ठावीसा, प्रा० अट्ठाईस, अप० अट्ठाइस] जो गिनती मे बीस और आठ हो।

पुं० १. सत्ताइस के बाद और उन्तीस के पहले पड़नेवाली संख्या। उक्त संख्या का सूचक अंक—। २८—।

अट्ठानवे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवइ] जो गिनती में ९० से ८ अधिक हो।

पुं० १. सत्तानवे के बाद और निन्यानवे के पहले पड़नेवाली संख्या। २. उक्त संख्या का सूचक अंक—। ९८।

अट्ठारह—वि०=अठारह।

अट्ठावन—वि० [सं० अष्टपंचाशत, प्रा० अट्ठावण्ण] जो गिनती में पचास और आठ हो।

पुं० १. सत्तावन के बाद तथा उनसठ के पहले पड़नेवाली संख्या। २.५८ का सूचक अंक या संख्या।

अट्ठावनवाँ—वि० [हिं० अट्ठावन] गिनती में ५८ के स्थान पर पड़नेवाला।

अट्ठासिवाँ—वि०=अठासिवाँ।

अट्ठासी—वि० दे० 'अठासी'।

अठंग—पुं० [सं० अष्टांग] १. वह जिसके आठ अंग हों। २. योग, जिसके आठ अंग माने गये हैं।

वि० १. आठ अंगोंवाला। २. अष्टांग योग से संबंध रखनेवाला।

अठ—वि० [सं० अष्ट प्रा० अट्ठ] 'आठ' का वह संक्षिप्त रूप जो उसे यौगिक शब्दों के आरम्भ मे लगाने पर प्राप्त होता है। जैसे—अठ-पहला, अठ-मासा आदि।

अठइसी—स्त्री० [हिं० अठाईस] फलों की गिनती का वह प्रकार जिसमें अठाईस गाहियों अर्थात् १४० का सैकड़ा माना जाता है।

अठई—स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि।

अठकरी—स्त्री० [हिं० अठ+कहार ?] वह पालकी जिसे आठ कहार ढोते हैं।

अठ-कौशल—पुं० [सं० अष्ट-कौशल] १. गोष्ठी। पंचायत। २. मंत्रणा। सलाह। ३. चतुरता। चालाकी।

अठ कौसल—पुं०=अठ कौशल।

अठखेला—वि० [हिं० अठखेली] १. अठखेलियाँ करनेवाला (अर्थात् चंचल या चुलबुला)। २. खेलवाड़ी। (क्व०)

अठखेलपन—पुं० [हिं० अठखेल-पन] १. हाव-भावपूर्ण चंचलता। चुलबुलापन। २. चोचला।

अठखेली—स्त्री० [सं० अष्टकेलि, प्रा० अट्ठाखग, अड्डखेल्ल] १. अल्हड़पन, मस्ती और विनोद से भरी चंचलता। चुलबुलापन। २. उक्त प्रकार की चंचलता के कारण दूसरों से की जानेवाली छेड़छाड़। चोचला।

अठत्तर—वि०=अठहत्तर।

अठन्नी—स्त्री० [हिं० आठ+आना] आठ आने मूल्य का छोटा सिक्का। अधेली।

अठपतिया—वि० [सं० अष्ट पत्रिका, पा० अट्ठपत्तिका, प्रा० अट्ठपत्तिका] आठ पत्तों या पत्तियोंवाला।

पुं० चित्रकारी और पत्थर की नक्काशी का वह प्रकार जिसमें आठ

पत्तोंवाले फूल बनाये जाते हैं।

अठपहला—वि० [सं० अष्ट पटल, पा० अट्ठपटल, अट्ठपअल] जिसके आठ पहल या पार्श्व हों।

अठ-पहिया—वि० [हिं० आठ+पहिया] (गाड़ी या यान) जो आठ पहियोंवाला हो। जिसके आठ पहिए हों। (एट-व्हीलर)

अठपाव—पुं० [सं० अष्टपाद, पा० अट्ठपाद, प्रा० अट्ठपाव] उपद्रव। पाजीपन। शरारत।

अठपेजी—वि० [दे० आठ+अं० पेज=पृष्ठ] जिसके आठ पन्ने या पृष्ठ हों। पुं० छापे में, पुस्तक के पृष्ठों का वह आकार जिसमें कागज का ताव इस प्रकार मोड़ा जाता है कि उसके आठ पृष्ठ बन जायँ। (ऑक्टेवो)

अठबन्ना—पुं० [सं० अट्=घूमना+बंधन] वह बाँस जिसपर करघे की लंबाई से बढ़ा हुआ ताने का सूत लपेटा जाता है। (जुलाहे)

अठमासा—वि० [सं० अष्टमास] १. जो आठ महीने का हो। २. (बच्चा) जो गर्भ से आठ महीने में उत्पन्न हुआ हो।
पुं० १. सीमान्त संस्कार जो गर्भाधान के आठवें महीने में होता है। २. ईख का खेत जिसमें आठ महीने (आषाढ़ से माघ तक) फसल रहती है।

अठमासी—वि० [सं० अष्टमाश] तौल में आठ माशे वजन का।
स्त्री० गिन्नी नाम का सोने का एक अँगरेजी सिक्का जो तौल में लगभग आठ माशे का होता है।

अठलाना—अ० [हिं० अठखेली] १. अठखेलियाँ करना। चोंचले दिखाना। २. इतराना। ३. उक्त प्रकार से जान-बूझकर अनजान बनना या खेलवाड़ करना। ४. ऐंठ या शेखी दिखाना।

अठवना—अ० [सं० स्थान, पा० ठान=ठहराव] १. आगे बढ़ना। २. इकट्ठा या जमा होना।
स० (झगड़ा, लड़ाई आदि) ठानना।

अठवाँस—पुं० [सं० अष्टपार्श्व] आठ पहलोंवाली या अठपहली कोई चीज।
वि० दे० 'अठ-पहला'।

अठवाँसा—वि०, पुं०=अठ-मासा।

अठवारा—पुं० [सं० अष्ट, पा० अट्ठ+सं० वार] १. आठ दिनों के बीच का सारा समय। २. सप्ताह। हफ्ता।

अठवारी—स्त्री० [सं० अष्टवार, पा० अट्ठवार] वह प्रथा जिसमें असामी को प्रति आठवें दिन अपना हल-बैल जमींदार को खेत जोतने के लिए देना पड़ता है। (क्व०)

अठवाली†—स्त्री० [हिं० आठ+वाली (प्रत्य०)] १. वह पालकी जिसे आठ कहार ढोते हों। अठकारी। २. वह मोटा मजबूत बाँस जो भारी पत्थर ढोने के समय सेंगरे के ऊपर बाँधा जाता है।

अठसिल्या*—स्त्री० [सं० अष्टशिला] राजा, देवता आदि का सिंहासन।

अठहत्तर—वि० [सं० अष्ट सप्तति, प्रा० अट्ठहत्तरि] जो गिनती मे सत्तर और आठ हो।
पु० उक्त की सूचक संख्या।–७८

अठहत्तरवाँ—वि० [हिं० अठहत्तर] क्रम या गिनती में ७८ के स्थान पर पड़नेवाला।

अठाई—वि० [हिं० अठान] १. अनुचित हठ ठाननेवाला। झगड़ा या तकरार करनेवाला। २. उपद्रवी। नटखट। पाजी।

अठान—पुं० [हिं० अ=अनुचित+ठानना में का 'ठान'] १. अनुचित हठ ठानने की क्रिया या भाव। दुराग्रह। २. बहुत ही कठिन या दुष्कर कार्य। ३. पाजीपन। शरारत। ४. झगड़ा। ५. वैर-विरोध। शत्रुता।

अठाना—अ० [हिं० आठ] आठ (प्रथाओं या बातों) से युक्त होना। उदा०—मामा पियै इनकी तरी माइको है हरि आठहूँ गाँठ अठाये। —केशव।
स० [हिं० आठ (से युक्त होना) या अठान=अनुचित हठ] १. अनुचित हठ ठानना। २. उपद्रव या शरारत करना। ३. तंग या परेशान करना। ४. पीड़ित करना। सताना। उदा०—आजु सुन्यौ अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठाए। —रघुनाथ वन्दीजन।
स० ठानना। मचाना। जैसे—युद्ध अठाना।

अठार—वि० पुं०=अठारह।

अठारह—वि० [सं० अष्टादशन्; प्रा० अट्ठदह, अट्ठारस; अप० अट्ठारह; पं० अठाराँ, उड़ि० अठर; गु० अठार, अडार; सि० अडहं; का० अर्दह; सिंह० अटकोस] जो गिनती में दस से आठ अधिक हो।
पुं० १. उक्त की सूचक संख्या। २. चौसर के पासे का एक दाँव, जिसके पड़ने पर गोटी अठारह घर चलती है।

अठारहवाँ—वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठारसम, अप० अट्ठारहम, हिं० अठारह] क्रम या गिनती में १८ के स्थान पर पड़नेवाला।

अठाव—पुं० दे० 'अठपाव'। (बुन्देल)

अठासिवाँ—वि० [हिं० अठासी] क्रम या गिनती में ८८ के स्थान पर पड़नेवाला।

अठासी—वि० [सं० अष्ट, सीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासि] जो गिनती में अस्सी से आठ अधिक हो।
पुं० उक्त की सूचक संख्या।–८८

अठिलाना†—अ०=इठलाना।

अठी—पुं० [हिं० हठी ?] योद्धा। सैनिक। (राज०)

अठेल—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० ठेलना] जो ठेला अर्थात् आगे बढ़ाया या हटाया न जा सके।
पुं० बलवान। शक्तिशाली। (डिं०)

अठोंगर—पुं० [सं० अष्ट-अंग-ईर=चलाना] १. ब्याह की एक रसम जिसमें वर तथा अन्य सात व्यक्ति एक साथ मूसल पकड़कर धान कूटते हैं। (मिथिला) उदा०—धरिअऊ मूसर सम्हारि अठोंगर विध भारी हे।–मैथिली लोक-गीत।

अठोठ*—पुं० [हिं० आठ+ओठ या हिं० ठाटी] आडंबर। पाखंड।

अठोतर सौ—वि० [सं० अष्टोत्तरशत, पा० अठुत्तरसत] जो सौ से आठ अधिक हो। एक सौ आठ।

अठोतरी—स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एक सौ आठ दानों की माला।

अठोड़ी—पुं० [सं० अष्टपदी] चौपायों के शरीर में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा जिसके आठ पैर होते हैं।

अठौरा—पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ+हिं० औरा (प्रत्य०)] एक

पत्ते में बँधे हुए पान के आठ बीड़े।

अडंग*—वि० दे० 'अडिग'।

अडंग-बडंग—वि० [अनु०] १. क्रम-रहित और बेढंगा। अंड-बंड। २. अनावश्यक तथा अनुचित। व्यर्थ।

अड़ंगा—पुं० [सं० अ=नहीं+सं० टिक्=चलना या डग] १. किसी को चलने से रोकने या गिराने के लिए उसकी टाँगों में फँसायी जानेवाली अपनी टाँग। २. उक्त क्रिया करके प्रतिद्वन्द्वी को गिराने के लिए कुश्ती का एक दाँव या पेच। ३. लाक्षणिक अर्थ में बाधा या रुकावट।

मुहा०—अड़ंगा डालना या लगाना=कार्य में अड़चन डालना। अड़ंगे पर चढ़ाना=चाल या दाँव से अपने अधिकार या वश में करना।

४. छत, खपरैल आदि को गिरने से रोकने के लिए उसके नीचे लगाई जानेवाली लकड़ी।

अड़ंगेबाज—पुं० [हि० अड़ंगा+फा० बाज] वह जो दूसरों के कामों में अड़ंगा लगाया करता हो।

अड़ंगेबाजी—स्त्री० [हि० अड़ंगा+फा० बाजी] दूसरों के कार्यों में अड़ंगे लगाने की क्रिया या भाव।

अडंड—वि० [सं० अ-दंड्य] १. जिसे दंड न दिया जा सकता हो। २. जिसे दंड देना उचित न हो। ३. जिसे दंड का भय न हो। फलतः निर्भीक या स्वच्छन्द।

अडंबर—पुं० [हि० अंबर-डंबर] सूर्योदय या सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणों के कारण बादलों में दिखाई देनेवाली लाली।

पुं० दे० 'आडंबर'।

अड़—स्त्री० [हि० अड़ना] १. अड़ने की क्रिया या भाव। रुकना। २. जिद। हठ।

मुहा०—अड़ पकड़ना=जिद या हठ करना।

३. अड़ या रुककर बैठने की जगह।

मुहा०—(किसी की) अड़ पकड़ना=किसी के आश्रय या शरण में जाकर रहना।

अड़काना†—स० १. दे० 'अड़ाना'। २. दे० 'अटकाना'।

अड़खीस†—स्त्री० [हि अड़=हठ+खीस?] वैर। शत्रुता।

अडग—वि० [हि० अ+डग] १. आगे कदम या डग न बढ़ानेवाला। २. अपने विचार या स्थान से न हटनेवाला। ३. दे० 'अडिग'।

अड़गड़ा—पुं० [हि० अड़ना+गड़ना?] १. बैल-गाड़ियों आदि के ठहरने का स्थान। २. घोड़ों, बैलों आदि की बिक्री का स्थान।

अड़गोड़ा—पुं० [हि० अड़=रोक+गोड़=पाँव] पशुओं आदि को भागने से रोकने के लिए उनके पैर या गले में बाँधी जानेवाली भारी लकड़ी।

अड़चन—स्त्री० [हि० अड़ना+चलना, पु० हि० अड़चल] ऐसी छोटी-मोटी कठिनाई या बाधा जो मार्ग में आकर विघ्न डालती हो। (हिन्डरेन्स)

अड़चल—स्त्री०=अड़चन।

अड़डंडा—पुं० [हि० अड़(=टिकाव)+डंडा] लकड़ी या बाँस का वह डंडा जिसके दोनों सिरों पर लट्टू रहते हैं और जिनकी सहायता से मस्तूल पर पाल बाँधे जाते हैं।

अड़पोपो—पुं० [अनु०] १. सामुद्रिक विद्या का ज्ञाता। सामुद्रिक शास्त्री। २. पाखण्डी। आडंबरी। ३. बकवादी।

अड़तल—स्त्री० [हि० आड़+तल (प्रत्य०)] १. आड़। ओट। २. बहाना। ३. शरण

मुहा०—(किसी की) अड़तल पकड़ना=किसी की शरण में जाकर रहना।

४. दे० 'अड़चन'।

स्त्री०=अड़ (हठ)।

अड़तालिस—वि० दे० 'अड़तालीस'।

अड़तालिसवाँ—वि० [हि० अड़तालीस] सैंतालीसवें के उपरांत पड़नेवाला या होनेवाला।

अड़तालीस—वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, पा० अट्ठच-तालीसं, अट्ठतालीस] जो गिनती में चालीस और आठ हो।

पुं० उक्त का सूचक अंक या संख्या।—४८

अड़तीस—वि० [सं० अष्टत्रिंशत्, प्रा० अट्ठातीस] जो गिनती में तीस और आठ हो।

पुं० उक्त की सूचक संख्या।—३८

अड़तीसवाँ—वि० [हि० अड़तीस] क्रम या संख्या में जिसका स्थान ३८ वाले अंक पर पड़े।

अड़दार—वि० [हि० अड़+फा० दार (प्रत्य०)] १. बीच में चलते-चलते रुक जानेवाला। अड़ियल। जैसे—अड़दार घोड़ा। २. हठी। ३. अभिमानी। घमंडी।

अड़न—स्त्री० [हि० अड़ना] १. अड़ने की क्रिया या भाव। २. जिद। हठ। ३. खड़े होने बैठने आदि की स्थिति। ठवन। मुद्रा।

अड़ना—अ० [सं० अलं=वारण करना या हि० हठ?] १. चलते-चलते किसी कारण से बीच में रुक जाना और आगे न बढ़ना। २. बीच में पड़कर फँसना या रुकना। ३. किसी बात के लिए जिद या हठ करना।

अड़पना†—स०=डपटना (डाँटना)।

अड़पायल—वि० [?] बलवान। बलिष्ठ। (डिं०)।

अड़बंग—वि० [हि० अड़+सं० वक्र] १. उलटा-सीधा या टेढ़ा-मेढ़ा। २. विचित्र। विलक्षण। ३. कठिन। विकट।

अड़बंगा—पुं० [हि० अड़बंग] बाधा। विघ्न।

वि०=अड़बंग।

अडर—वि० [सं० अ०+हि० डर] जिसे डर न हो। निडर। निर्भय।

अडराना—अ० [अनु०] १. जहाँ-तहाँ बातें करते फिरना। २. दर्प या अभिमान दिखाना। ३. व्यर्थ इधर-उधर घूमना।

अड़व—पुं०=ओड़व (संगीत)

अड़सठ—वि० [सं० अष्टषष्टि, प्रा० अट्ठसट्ठि] जो गिनती में साठ और आठ हों।

पुं० उक्त की सूचक संख्या।—६८

अड़सठवाँ—वि० [हि० अड़सठ] जो क्रम में सड़सठवें के उपरांत हो।

अड़हुल—पुं० [सं० ओण+फुल्ल, हि० ओणहुल्ल] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसमें लाल फूल लगते हैं। देवी पुष्प। जवा कुसुम।

अड़ा†—पुं० [हि० अड्डा] ठहरने, बैठने या रुकने का स्थान। उदा०—होइ

निचिंत बैठे तेहि अड़ा।—जायसी।

अड़ा-अड़ी—स्त्री० [हिं० अड़ना] आपस में एक दूसरों से आगे बढ़ने का प्रयत्न। होड़।

अड़ाड़—पुं०=अराड़।

अड़ान—पुं० [सं० अड्ड=समाधान] १. अड़ने की अवस्था या भाव। २. अड़ने, ठहरने या रुकने का स्थान। पड़ाव।

अड़ाना—स० [हिं० आड़] १. बीच में कोई चीज इस प्रकार फँसाना या लगाना कि किसी की गति या मार्ग रुक जाय। फँसाने या रोकने के लिए बीच में कुछ लगाना। २. बाधा या विघ्न उपस्थित करना। ३. उलझाना। ४. गिरती हुई चीज रोकने के लिए उसके नीचे टेक लगाना।

पुं० वह लकड़ी जो गिरती हुई छत या दीवार आदि को गिरने से बचाने के लिए उसके नीचे लगाई जाती है। चाँड। टेक।

पुं० [?] सम्पूर्ण जाति का एक राग जो आधी रात के समय गाया जाता है।

अड़ानी—स्त्री० [हिं० अड़ाना=अटकाना] १. वह चीज जो किसी क्रिया को रोकने के लिए उसके मार्ग में रखी या लगाई जाय। २. लकड़ी की वह गुल्ली जो खिड़कियों, दरवाजों आदि को बन्द होने से रोकने के लिए चौखट और पल्ले के बीच में लगाई जाती है। ३. कुश्ती का अड़ंगा नामक दाँव या पेच।

अड़ायता—वि० [हिं० अड़ाना या आड़] १. आड़ या ओट करनेवाला। २. शरण देनेवाला। रक्षक।

अड़ार—वि० [सं० अराल] टेढ़ा। तिरछा।

पुं० [सं० अट्टाल=बुर्ज, ऊँचा स्थान] १. समूह। ढेर। २. बिक्री के लिए रखा हुआ ईंधन का ढेर। ३. लकड़ी या ईंधन की दूकान।

अड़ारना*—स०=डालना।

अड़ाल—पुं० [सं०] एक प्रकार का नाच, जिसे मयूर नृत्य भी कहते हैं।

अडिग*—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डिगना] १. जो अपने से डिगे या हिले नहीं। अचल। २. अपनी प्रतिज्ञा या प्रण से पीछे न हटनेवाला।

अडिगरध*—वि० [?]=अडिग। (डिं०)

अड़ियल—वि० [हिं० अड़ना=रुकना] १. चलते समय बीच में रह-रहकर अड़ने या रुकनेवाला। जैसे—अड़ियल घोड़ा।

पद—अड़ियल टट्टू=ऐसा व्यक्ति जो काम करते समय बीच-बीच में रुक जाय और बिना प्रेरणा के आगे न बढ़े।

२. निकम्मा और सुस्त।

वि० [हिं० अड़=हठ] दुराग्रही। हठी।

अड़िया†—स्त्री० [हिं० अड़ना या आड़] १. साधुओं के टेककर बैठने का लकड़ी का चौखट। आधारी। २. वह बरतन जिसमें गारा, चूना आदि ढोकर राज-मजदूरों या मिस्तरियों तक पहुँचाया जाता है। अढ़िया। ३. वह रस्सी जिसमें जहाज का लंगर बँधा रहता है।

अड़िल्ल—पुं०=अरिल्ल।

अड़ी—स्त्री० [हिं० अड़ या अड़ना] १. ऐसी स्थिति जिसमें आगे बढ़ना कठिन हो।

पद—अड़ी-घड़ी—कठिन, चिन्ताजनक या संकट की स्थिति।

२. बाधा। रुकावट। ३. जिद। हठ।

अड़ी-खंभ*—वि० [हिं० अड़ी+खंभ] बलवान्। (डिं०)

अडीठ*—वि० [हिं० अ+डीठ] १. जो दिखाई न दे। अदृश्य। २. जिसे किसी ने देखा न हो। अदृष्ट। ३. छिपा हुआ। गुप्त।

अडूलना*—स० [सं० उत्=ऊँचा+इल=फेंकना] जल आदि उड़ेलना, गिराना या डालना।

अड़ूसा—पुं० [सं० अट्टरूप; प्रा० अट्टलुस; गु० अरडुसी, अडुसी; ल० आधातोदा] एक प्रकार का पौधा और उसका फल।

विशेष—वैद्यक में इस पौधे के पत्तों और फलों के रस को खाँसी और दमे के रोगियों के लिए बहुत उपयोगी बतलाया गया है।

अडैतो—वि० दे० 'अड़ायता'।

अडोर—पुं०=अँदोर (शोर-गुल)।

अडोल—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डोलना] १. न हिलनेवाला। स्थिर। २. जिसमें गति न हो। गतिहीन। ३. शान्त तथा स्तब्ध। ४. जिसे विचलित न किया जा सके। फलतः दृढ़ या पक्का।

अड़ोस-पड़ोस—पुं० [सं० पार्श्व=पड़ोस] आस-पास के घर, स्थान आदि।

अड्डन—पुं० [सं०] ढाल।

अड्डा—पुं० [सं० अट्टा=ऊँची जगह] १. टिकने, ठहरने या बैठने का स्थान। जैसे—बाज या बुलबुल का अड्डा। २. वह स्थान जहाँ कुछ लोग टिक कर बैठते और अपना काम करते हैं। जैसे—कई तरह के कारीगरों का अड्डा, जुलाहों या रेशम बटनेवालों का अड्डा आदि। २. किसी वर्ग के लोगों, सवारियों आदि के इकट्ठे होने का स्थान। जैसे—जुवारियों का अड्डा, बैलगाड़ियों या मोटरों का अड्डा। ४. कबूतरों की छतरी। ५. करधा। ६. एक प्रकार का औजार। ७. लकड़ी का चौकठा। ८. खँडसाल में काम आनेवाली बाँस की टट्टी। ९. एक प्रकार का मोटा गद्दा।

अड्डी—स्त्री० [हिं० अड्डा] १. एक प्रकार का बरमा। २. लकड़ी का एक प्रकार का चौखूटा ढाँचा। ३. एड़ी।

अढ़—स्त्री०=अड़।

अढ़उल—पुं०=अड़हुल।

अढ़तिया—पुं० [हिं० आढ़त+इया (प्रत्य०)] १. वह व्यापारी जो दूसरों का माल अपने यहाँ बिक्री के लिए अमानत के रूप में रखता और बिक जाने पर उसका दाम चुकाता हो। २. वह मध्यवर्ती व्यापारी जो माँग आने पर बाजार से माल खरीद कर बाहर भेजता हो।

अढ़न*—स्त्री० [?] १. महत्ता। श्रेष्ठता। २. मर्यादा। ३. धाक।

अढ़वना*—स० [सं आ+ज्ञा (बोध करना)—आज्ञापन, पा० अम्भापन, प्रा० आणवन] १. आज्ञा या आदेश देना। २. निर्देश करना। ३. नियुक्त करना।

अढ़वायक†—पुं० [हिं० अढ़वना] १. वह जो आज्ञा या आदेश दे। २. वह जो निर्देश करे। ३. वह जो दूसरों को काम पर नियुक्त करे।

अढ़वैया†—पुं०=अढ़वायक।

अढ़ाई—वि० [सं० अर्धतृतीय, मा० अड्ढाइज्ज; अर्धमा; पं० ढाई; सिं० अढ़ाई; बँ० अडाइ] जो संख्या में दो और आधा हो। ढाई।

अढ़ार*—वि० [सं० अ+हिं० ढरना=ढलना] १. जो किसी पर ढरे या ढले

नहीं। अनुरक्त, आकृष्ट या प्रवृत्त न होनेवाला। २. निर्दय।

अढ़ार टंकी*—पुं० [?] धनुष। (डिं०)

अढ़िया—स्त्री० [?] कड़ाही के आकार का वह बरतन जिसमें मजदूर गारा, चूना आदि ढोते हैं।

अढुक—पुं० [?] १. बाधा। रुकावट। २. बाधा पहुँचानेवाली बात या वस्तु।

अढुकना—अ० [सं० अ+हिं० ढुकना] १. घुस, पैठ या प्रवेश न कर सकना। २. अटकना। रुकना। ३. ठोकर खाना। ४. सहारा या टेक लगाकर बैठना। ५. लेटना। (पूरब)

अढ़ेकरी—वि० [?] निरपराध। निर्दोष।

अढ़ैया—पुं० [हिं० अढ़ाई] १. अढ़ाई सेर का बाट। २. अढ़ाई या अढ़ाई गुने का पहाड़ा।

अणंद—पुं० =आनन्द।

अणक*—वि० [सं०√अण् (शब्द)+अच्, अण+क] १. अधम। नीच। २. तुच्छ। निंदनीय।

पुं० वह जिसमें शब्द न हो।

अणकीय—वि० [सं० अणक+छ-ईय] १. सत्त्वहीन। निरर्थक। २. तुच्छ। हीन।

अणचूक—वि०=अचूक। उदा०—ऊँगा दन समै करै आधाड़ा, चौरंग भुवण हसत अणचूक।—पृथ्वीराज।

अणद*—पुं०=आनंद।

अणमण*—वि०=अनमना।

अणसंक*—वि० [सं० अन्=नहीं+शंका=डर] निःशंक। निडर। (डिं०)

अणास*—पुं० [हिं० अँडसना या अंडस] १. कठिनता। २. झंझट। परेशानी। (डिं०)

अणि—स्त्री० [सं०√अण् (शब्द)+इन्] १. सूई अथवा किसी भी नुकीली वस्तु का अगला भाग। नोंक। २. धार। ३. पहिये की धुरी की कील। ४. घर का कोना या भाग। ५. सीमा। ६. किनारा।

अणिमा (मन्)—स्त्री० [सं० अणु+इमनिच्] अष्ट सिद्धियों में से पहली सिद्धि, जिसे सिद्ध कर लेने पर योगी अति सूक्ष्म रूप धारण कर सकते हैं जिसमें उन्हें लोग देख न सकें।

अणिमादिक—स्त्री० [सं० अणिमा-आदि, ब० स०, कप्] योग की अष्ट सिद्धियाँ, यथा—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

अणियाला—वि० [सं० अणि+धार] [स्त्री० अणियाली] १. अणि से युक्त। २. अणि की तरह नुकीला। (डिं०) उदा०—अणियाला नयन वाण अणियाला।—पृथ्वीराज।

अणियाली*—स्त्री० [सं० अणि+धार] १. सूई। २. कटारी।

अणी*—स्त्री० [अणि+ङीष्]=अणि।

अव्य० स्त्रियों में प्रचलित संबोधन का शब्द। अरी।

अणीय (स्)—वि० [सं० अणु+ईयसुन्] १. तीक्ष्ण नोक या धारवाला। २. सूक्ष्म। ३. महीन या झीना (वस्त्र)।

अणु—पुं० [सं०√अण्+उन्] [भाव० अणुता] १. किसी तत्त्व या धातु आदि का वह बहुत छोटा टुकड़ा या अंश जिसमें उसके सभी संयोजक-अंश वर्तमान हों। (मोलेक्यूल)

विशेष—आजकल प्रायः भूल से इस शब्द का उपयोग 'परमाणु' के स्थान पर होने लगा है। विशेष दे० 'परमाणु'।

२. साठ परमाणुओं का एक प्राचीन मान। ३. धूल का छोटा टुकड़ा। रजकण। ४. अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा या वस्तु। ५. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश।

अणुक—वि० [सं० अणु+कन्] १. अणु-सम्बन्धी। २. सूक्ष्म। ३. क्षुद्र। ४. चतुर।

अणु-तरंग—स्त्री० [ष० त०] (विज्ञान में) बिजली या विद्युत् से निकलनेवाली एक प्रकार की बहुत छोटी तरंग या लहर। (माइक्रो-वेव)

अणु-दर्शन—पुं० [ष० त०] विद्या या शास्त्र जिसमें विभिन्न अणुओं, उनकी रचना, स्वरूप आदि के संबंध में विचार होता है।

अणुबम—पुं० [सं० अणु+अं० बाम्ब] एक प्रकार का बम (गोला) जिसमें रासायनिक क्रियाओं द्वारा अणु का विस्फोट होता है तथा जिसके फल-स्वरूप भीषण तथा व्यापक संहार होता है। (एटम-बाम्ब)

अणु-भा—स्त्री० [ब० स०] बिजली।

अणु-भाष्य—पुं० [कर्म० स०] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य का भाष्य।

अणु-रेणु—पुं० [कर्म० स०] अत्यंत सूक्ष्म कण। (जैसे सूर्यरश्मि में दिखाई देते हैं।)

अणु-वाद—पुं० [ष० त०] १=अणु-दर्शन। (देखें) २. वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो।' (रामानुज) ३. वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी (दिन्)—वि० [सं० अणुवाद+इनि] अणुवाद के सिद्धांत माननेवाला या उसका अनुयायी।

पुं० वल्लभाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

अणु-वीक्षण—पुं० [ष० त०] १. सूक्ष्म बातों या वस्तुओं को देखने या जानने की क्रिया या भाव। २. बाल की खाल निकालना। ३. छिद्रान्वेषण।

अणु-वीक्षण यंत्र—पुं० [सं० ष० त०]=सूक्ष्म-दर्शक यंत्र।

अणु-व्रत—पुं० [कर्म० स०] जैन शास्त्र के अनुसार गृहस्थ के ये पाँच धर्म या मूल-व्रत—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्त दान, अनुचित या निषिद्ध मैथुन और परिग्रह से बचना, जिन्हें योग शास्त्र में यम कहा गया है।

अणु-व्रीहि—पुं० [कर्म० स०] एक प्रकार का बढ़िया धान और उसका चावल।

अणोरणीयान्—वि० [सं० व्यस्त पद] १. सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यंत सूक्ष्म। २. छोटे से छोटा।

अतंक*—पुं०=आतंक।

अतंत†—वि०=अत्यंत।

अतंत्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसपर किसी का तंत्र, नियंत्रण या शासन न हो। २. जिसमें तंतु या रेशे न हों।

अतंद्र—वि० [सं० न० ब०] १. जो तंद्रा में न हो। तंद्रा से रहित। २. जागता हुआ और सचेष्ट। ३. जो थका हुआ या शिथिल न हो।

अतंद्रिक—वि० [सं० तंद्रा+ठन्—इक, न० त०]=अतंद्र।

अतंद्रित—वि० [सं० तंद्रा+इतच्, न० त०] १. जो तंद्रा या निद्रा में न हो। २. जागा हुआ।

अतंद्रिल—वि० [सं० तंद्रा+इलच्, न० त०]=अतंद्र।

अतंद्री (द्रिन्)—वि० [सं० तंद्रा+इनि, न० त०] १. जिसे तंद्रा या निद्रा न आती हो। २. बराबर जागता रहनेवाला।

अतः (तस्)—अव्य० [सं० इदम्+तसिल्] १. इससे। २. यहाँ से। ३. इस कारण से। इसलिए। (हेन्स)

अतःपरम्—क्रि० वि० [सं० व्यस्त पद] १. इससे आगे। २. इससे बढ़कर।

अतएव—अव्य० [सं० व्यस्त पद] इसी कारण से। इसी लिए।

अतगत—वि० [सं० अतिगत] अति तक पहुँचा हुआ। बहुत अधिक। उदा०—मैं तो करती हूँ बुगान से भलाई अतगत। वह करती है बंदी से बुराई अतगत।—रंगी।

क्रि० वि० अनावश्यक या अनुचित रूप से।

अतट—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका तट या कूल न हो। २. (पर्वत इत्यादि) जिसमें तट या ढालुआँ किनारा न हो।

पुं० १. पर्वत की चोटी। शिखर। २. ऐसी ऊँची भूमि जिसके इधर-उधर ढाल न हो। ३.=अतल।

अतत्पर—वि० [सं० न० त०] जो तत्पर न हो।

अतथ्य—वि० [सं० न० ब०] जिसमें तथ्य या सच्चाई न हो। अवास्तविक।

पुं० [न० त०] तथ्य का अभाव।

अतद्गुण—पुं० [सं० न० ब०] साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु या व्यक्ति का अपने पासवाली वस्तु या व्यक्ति के गुण न ग्रहण करने का उल्लेख होता है।

अतद्वत्—वि० [सं० न० त०] १. जो रूप, रंग, गुण आदि में किसी (अभिप्रेत) के समान न हो। २. जो उसके समान न हो। 'तद्वत्' का विपर्याय।

अतद्वान्—वि०=अतद्वत्।

अतन—वि०, पुं०=अतनु।

अतन-जतन—पुं०=यत्न (प्रयत्न)।

अतनु—वि० [सं० न० ब०] १. बिना शरीर का। शरीर-रहित। २. [सं० न० त०] जो दुबला-पतला न हो। फलतः स्थूल।

पुं० [सं० न० ब०] कामदेव।

अतप—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें ताप न हो। २. न तपनेवाला। ३. जो तप (तपस्या) न करता हो।

पुं० १. वह जो तपस्या की अवहेलना करता हो। २. वह जो तपस्वी न हो।

अतप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो तप्त या गरम न हो। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु—वि० [सं० न० ब०] १. जिसने घोर तपस्या न की हो। २. जिसके शरीर पर तप्त मुद्रा के चिह्न न बने हों। ३. जिसने शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि के चिह्न अपने शरीर पर न धारण किये हों। ४. बिना छाप का।

अतमस्—वि० [सं० न० ब०] बिना अंधेरे का। अंधकार-रहित।

अतमिस्र—वि० [सं० न० ब०] जो अंधकारपूर्ण न हो।

अतरंग—पुं० [देश०] जहाज या नाव के गिराये हुए लंगर को उठाने की क्रिया।

अतर—पुं० [अ० इत्र] वह सुगंधित तरल पदार्थ जो फूलों का आसवन करने से तैयार होता है। पुष्प-सार।

अतरक*—वि०=अतर्क्य।

अतरदान—पुं० [फा० इत्रदान] वह पात्र जिसमें अतर रखे जाते हैं। अतर रखने का पात्र।

अतरल—वि० [सं० न० त०] जो तरल या पतला न हो।

अतरवन—पुं० [सं० अन्तर] १. पत्थर की वह पटिया जिससे छज्जा पाटते हैं। २. एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के समय खपरैल के नीचे दी जाती है।

अतरसों—क्रि० वि० [सं० इतर+श्वः] बीते हुए परसों से एक दिन पहले का दिन। २. आनेवाले परसों से एक दिन बाद का दिन।

अतरिख*—पुं०=अंतरिक्ष।

अतरौटा—पुं० [हिं० अतर+औटा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० अतरौटी] अतर रखने की छोटी डिबिया।

पुं० दे० 'अँतरौटा'।

अतर्क—वि० [सं० न० ब०] जिसमें या जिसके संबंध में तर्क न हो। तर्क-रहित।

पुं० [सं० न० त०] तर्क का अभाव।

अतर्कित—वि० [सं० तर्क+इतच्, न० त०] १. तर्क, कल्पना या अनुमान के द्वारा पहले से जिसकी आशा या विचार न किया गया हो। अचानक आ पड़नेवाला। आकस्मिक।

अतर्क्य—वि० [सं०√तर्क् (ऊह करना)+ण्यत् न० त०] १. जिसके विषय में तर्क-वितर्क न हो सके। २. जो तर्क-वितर्क का विषय न हो। अचिंत्य।

अतल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका तल या पेंदा न हो। तल-रहित। २. जिसकी गहराई आदि की थाह न हो। अथाह।

पुं० पृथ्वी के नीचे माने हुए सात पातालों या लोकों में से पहला लोक।

अतलस—स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

अतलस्पर्शी (र्शिन्)—वि० [सं० तल√स्पृश् (छूना)+णिनि, न० त०] जिसके तल या गहराई तक पहुँचा न जा सके। बहुत गहरा। अथाह।

अतलांत—वि० [सं० अतल—अन्त, ब० स०] १. जिसका अंत अतल नामक लोक तक पहुँच कर होता हो। बहुत अधिक गहरा।

अतलांतक—पुं० [अं० एटलान्टिक के अनुरूप पर अथवा सं० अतलान्त+कन्] अफ्रीका और योरोप के पश्चिमी तटों से अमेरिका के पूर्वी तट तक विस्तृत महासमुद्र। (एटलांटिक)

अतवान*—वि० [सं० अतिवान्] बहुत अधिक। अत्यंत।

अतवार—पुं०=एतवार (रविवार)।

अतस—पुं० [सं०√अत्+ (गति)+असच्] १. वायु। २. आत्मा। ३. अतसी के रेशों से बना हुआ कपड़ा। ४. एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र। ५. क्षुप। पौधा।

अतसी—स्त्री० [सं० अतस+ङीप्] १. अलसी। तीसी। २. पटसन।

अता—स्त्री० [?] १. बड़ों की ओर से छोटों को मिलनेवाला दान। प्रदान। २. इस प्रकार प्रदान की हुई वस्तु। प्रदत्त वस्तु।

अताई—वि० [अ०] १. जो अपनी प्रतिभा से कोई काम सीख ले। बिना शिक्षक की सहायता से काम करनेवाला। २. जो बहुत जल्दी कोई काम सीख लेता हो।

अताना—पुं० [?] संगीत में एक रागिनी का नाम।

अता-नामा—पुं० [अ०+फा०] दानपत्र। बख्शिशनामा।

अता-पता—पुं० [हिं० पता और इसका अनु० अता] ऐसा चिह्न, पता या लक्षण जिससे कोई बात जानी जा सके या किसी तक पहुँचा जा सके।

अति—अव्य० [सं०√अत् (गति)+इ] १. चरम सीमा तक पहुँचा हुआ। बहुत अधिक।

विशेष—शब्दों के पहले उपसर्ग रूप में लगकर यह निम्नलिखित अर्थ देता है। (क) मात्रा, मान आदि के विचार से बहुत अधिक। जैसे—अति उत्पादन, अति शीतल; (ख) नियम, मर्यादा, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ, जैसे—अतिक्रमण, अति जीवन; (ग) साधारण से बहुत अधिक बढ़कर; जैसे—अतिकाय (मानव)।

२. बहुत अधिकता से। ३. कुछ भी। बिलकुल। उदा०—भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जग जाल।—तुलसी।

स्त्री० मर्यादा या सीमा का उल्लंघन करनेवाली अधिकता। बहुत ज्यादती। जैसे—अति किसी काम में अच्छी नहीं होती।

अतिउक्ति—स्त्री०=अत्युक्ति।

अतिउत्पादन—पुं० [सं० प्रा० स०] देश या समाज में जितने उत्पादन की खपत या उपयोग हो सकता हो, उससे बहुत अधिक उत्पादन होना। (ओवर-प्रोडक्शन)

अतिकंदक—पुं० [सं० ब० स०, कप्] हस्तिकंद नामक पौधा।

अतिकथ—वि० [सं० अत्या० स०] बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहा हुआ। पुं० १. बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात। २. वह जो जाति या समाज के नियम या बंधन न मानता हो।

अतिकथन—पुं० [सं० प्रा० स०]=अत्युक्ति।

अतिकथा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात। २. इधर-उधर की फालतू बात।

अतिकर—पुं० [सं० प्रा० स०] =अधि-कर।

अतिकांत—वि० [सं० प्रा० स०] बहुत अधिक सुंदर और प्रिय।

अतिकाय—वि० [सं० ब० स०] भारी डील-डौलवाला। विशालकाय। पुं० रावण का एक पुत्र जो लक्ष्मण के हाथों मारा गया था।

अतिकाल—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी कार्य के उपयुक्त या नियत समय के बीत जाने के बाद का समय।

अतिकृच्छ—वि० [सं० प्रा० स०] १. बहुत अधिक या विकट। २. बहुत अधिक कष्ट देनेवाला।

पुं० [सं० प्रा० स०] छः दिनों में पूरा होनेवाला एक प्रकार का व्रत।

अतिकृत—वि० [सं०अति√कृ (करना)+क्त] जिसे पूरा करने में मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो।

अतिकृति—स्त्री० [सं० अति√कृ+क्तिन्] १. मर्यादा का अतिक्रमण या उल्लंघन। २. पचीस वर्णों का एक वर्णवृत्त।

अतिक्रम—पुं० [सं० अति√क्रम् (गति)+घञ्] १. सीमा से आगे बढ़ना। २. किसी के ऊपर से पैर ले जाते हुए पार जाना। लाँघना। ३. सबसे आगे बढ़ना। ४. अतिक्रमण या उल्लंघन करना।

अतिक्रमण—पुं० [सं० अति√क्रम्+ल्युट्-अन] १. उचित मर्यादा या नियत सीमा से आगे बढ़ना। २. अपने अधिकार, कार्य-क्षेत्र आदि की सीमा पार करके ऐसी जगह पहुँचना जहाँ जाना या रहना अनुचित, मर्यादा-विरुद्ध या अवैध हो। सीमा का अनुचित उल्लंघन। (एन्क्रोचमेन्ट) ३. प्रबल आक्रमण। ४. समय का बीतना। ५. सबसे आगे निकलने या आगे बढ़ने की क्रिया या भाव।

अतिक्रांत—भू० कृ० [सं० अति√क्रम्+क्त] [भाव० अतिक्रांति] १. जिसका अतिक्रमण या उल्लंघन किया गया हो। २. बीता हुआ। अतीत। गत।

पुं० बीती हुई बात या घटना।

अतिक्रामक—पुं० [सं० अति√क्रम्+ण्वुल्-अक] १. अपने अधिकार, मर्यादा या सीमा का अतिक्रमण या उल्लंघन करनेवाला। २. दूसरे के अधिकारों या क्षेत्रों में हस्तक्षेप करनेवाला।

अतिक्षिप्त—वि० [सं० अति√क्षिप् (प्रेरणा)+क्त] बहुत दूर अर्थात् सीमा के बाहर फेंका हुआ।

पुं० शरीर की किसी नस के इधर-उधर हटने के कारण पड़नेवाली मोच।

अतिगंड—वि० [सं० अत्या० स०] जिसके कपोल या कपोल के ऊपरवाली हड्डी बड़ी हो।

पुं० १. सत्ताईस योगों में से छठा योग। २. एक तारा। ३. बड़ा कपोल। ४. वह जिसके बड़े-बड़े कपोल हों।

अतिगंध—वि० [सं० ब० स०] जिसकी गंध उग्र या तीव्र हो।

पुं० १. चंपा का पेड़ या फूल। २. गंधक।

अतिगत—वि० [सं० अति√गम् (जाना)+क्त] १. अति तक पहुँचा हुआ। २. बहुत अधिक।

अतिगति—स्त्री० [सं० अति√गम्+क्तिन्] १. उत्तम गति। २. मुक्ति। मोक्ष।

अतिगव—वि० [सं० अत्या० स०, अच्] १. बहुत बड़ा मूर्ख। २. जिसकी व्याख्या या प्रशंसा न की जा सके। वर्णनातीत।

अतिगुण—वि० [सं० ब० स०] बहुत अच्छे गुणोंवाला।

पुं० [सं० प्रा० स०] अच्छा गुण।

अतिगुरु—वि० [सं० प्रा० स०] बहुत भारी।

अतिघ—पुं० [सं० अति√हन् (हिंसा)+क] १. क्रोध। गुस्सा। २. एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र।

अतिघ्न—वि० [सं० अति√हन्+टक्] बहुत अधिक नाश करनेवाला।

अतिचरण—पुं० [सं० अति√चर् (गति)+ल्युट्-अन] १. दे० 'अतिचार'। २. दे० 'अतिक्रमण'।

अतिचार—पुं० [सं० अति√चर् (गति)+घञ्] १. औचित्य या सीमा का उल्लंघन करके इधर-उधर चलना या आगे बढ़ना। २. अपने अधिकार या अधिकृत सीमा के बाहर अनुचित रूप से अपने सुख-सुभीते के लिए इस प्रकार आगे बढ़ना कि दूसरे के अधिकार या सुख-

सुभीते में बाधा पहुँचे। (ट्रान्सग्रेशन) ३. बौद्ध भिक्षुओं का अपने नियमों और विधानों का पालन छोड़कर इधर-उधर की या अनुचित बातों में जाना या पड़ना।

अतिचारी (रिन्)—वि० [सं० अतिचार + इनि] १. अतिचार अथवा अतिक्रमण करनेवाला। २. सीमा का अनुचित रूप से उल्लंघन करनेवाला।

अतिच्छत्र—पुं० [सं० अत्या० स०] तालमखाना।

अतिच्छादन—पुं० [सं० अति√छद् (ढकना) + णिच्+ल्युट्–अन] [भू० कृ० अतिछादित] (विषय, सिद्धान्त आदि का) अपनी सीमा से इस प्रकार आगे बढ़ा हुआ होना कि आस-पास की मिलती-जुलती और बातें भी उसके क्षेत्र में आ जायें। (ओवरलैपिंग)

अतिजगती—स्त्री० [सं० अत्या० स०] तेरह वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—तारक, मंजुभाषिणी, माया आदि।

अतिजन—वि० [सं० प्रा० ब०] (स्थान) जहाँ मनुष्य न रहते हों। उजाड़। वीरान।

अतिजागर—वि० [सं०ब०स०] १. सदा जागते रहनेवाला। २. बहुत अधिक जागनेवाला। ३.=जागरूक।

पुं० एक प्रकार का काला बगला।

अतिजात—वि० [सं० ब० स०] अपने कुल या वंश में बहुत श्रेष्ठ।

अतिजीवन—पुं० [सं०प्रा०स०] साधारणतः अपने वर्ग के औरों का अंत हो जाने पर भी बना, बचा या जीवित रहना। (सरवाइवल)

अतिजीवित—भू० कृ० [सं०ब०स०] जिसने अति जीवन प्राप्त किया हो।

अतिजीवी (विन्)—पुं० [सं० अति√जीव् (जीना)+णिनि] वह जिसने अतिजीवन का भोग किया हो। साधारण वय से अधिक समय तक जीता रहनेवाला प्राणी।

अतितरण—पुं० [सं० अति√तृ (तैरना, पार करना) +ल्युट्–अन] १. पार करना। २. पराभूत करना। हराना।

अतितारी (रिन्)—वि० [सं० अति√तृ+णिनि] १. पार करनेवाला। २. विजयी।

अतिथि—पुं० [सं०√अत् (गति) +अथिन्][वि० आतिथेय, भाव०आतिथ्य] १. बिना पहले से तिथि, समय आदि की सूचना दिये हुए घर में ठहरने के लिए अचानक आ पहुँचनेवाला कोई प्रिय अथवा सत्कार योग्य व्यक्ति। २. किसी के यहाँ कुछ दिनों के लिए बाहर से आकर ठहरा हुआ व्यक्ति। अभ्यागत। मेहमान। पाहुन। (गेस्ट) ३. वह संन्यासी या साधु जो किसी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे। ४. अग्नि। ५. यज्ञ के लिए सोमलता लानेवाला व्यक्ति।

अतिथि क्रिया—स्त्री० [ष० त०]=आतिथ्य।

अतिथि-गृह—पुं०=अतिथिशाला।

अतिथिदेव—वि० [ब० स०] जिसके लिए अतिथि देवस्वरूप हो। जो अतिथि को देवतास्वरूप मानकर उसका सत्कार करे।

अतिथि-धर्म(न्)—पुं० [ष० त०] आवश्यक और उचित रूप से अतिथि की सेवा या सत्कार करने की क्रिया या भाव।

अतिथि-पूजा—स्त्री० [ष० त०] अतिथि का आदर-सत्कार। मेहमानदारी।

अतिथि-यज्ञ—पुं० [ष० त०] अतिथि का आदर-सत्कार जो पाँच महायज्ञों में से एक है। अतिथि-पूजा।

अतिथि-शाला—स्त्री० [ष० त०] वह भवन जो विशेष रूप से अतिथियों के ठहरने के लिए नियत हो। (गेस्ट हाउस)

अतिथि-सत्कार—पुं० [सं० ष० त०] अतिथि का स्वागत और सेवा।

अति-दंतुर—वि० [सं० प्रा० स०] जिसके दाँत बहुत बड़े हों। बड़े-बड़े दाँतोंवाला।

अतिदर्शी (शिन्)—वि० [सं० अति√दृश् (देखना)+णिनि]= दूरदर्शी।

अतिदिष्ट—भू० कृ० [सं० अति√दिश् (बताना)+क्त] १. जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो। २. अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ। ३. किसी और या दूसरे के स्थान पर रखा हुआ।

अतिदेव—पुं० [सं० अत्या० स०] वह जो सब देवताओं में श्रेष्ठ हो। जैसे—विष्णु, शिव आदि।

अतिदेश—पुं० [सं० अति√दिश् (बताना) +घञ्] [वि० अतिदेशिक, अतिदिष्ट] १. प्रस्तुत विषय का अतिक्रमण करके दूसरे विषय पर जाना। २. एक विषय की किसी बात, नियम या धर्म का दूसरे विषय में किया जानेवाला आरोप। ३. किसी कार्य या बात की सीमा या अवधि आगे बढ़ाने की क्रिया या भाव। विस्तारण। (एक्स्टेंशन) ४. कई भिन्न या विरोधी बातों या वस्तुओं में कुछ विशेष तत्त्वों की होनेवाली समानता। (एनॉलोजी)

अतिदेशन—पुं० [सं० अति√दिश्+ल्युट्-अन] अतिदेश करने की क्रिया या भाव।

अतिधन्वा (न्वन्)—पुं० [सं० प्रा० ब०] १. बहुत बड़ा योद्धा। २. एक वैदिक आचार्य।

अतिधृति—स्त्री० [सं० अत्या० स०] १. धृति छंद से अधिक अक्षर अर्थात् उन्नीस अक्षरवाला छंद—जैसे शार्दूल, विक्रीड़ित आदि छंद। २. १९ की संख्या।

अतिनाठ—पुं० [सं० प्रा० स०] संकीर्ण राग का एक भेद।

अतिनिर्वात—पुं० [सं० निर्वात, निरा० स०, अतिनिर्वात, प्रा० स०] वह स्थिति जब किसी आधान के अंदर कहीं नाम को भी वात या वायु का कोई अंश नही रह जाता। (हाई वैक्यूम)

अतिपत्ति—स्त्री० [सं० अति√पद् (गति) +क्तिन्] १. अतिक्रमण। २. समय का व्यतीत होना।

अतिपत्र—पुं० [सं० ब० स०] हस्तिकंद नामक पौधा।

अतिपद—वि० [सं० अत्या० स०] वह छंद जिसमें नियत चरणों या पदों से एक चरण या पद अधिक हो।

अतिपन्न—भू० कृ० [सं० अति√पद् (गति)+क्त] १. अतिक्रांत। २. बीता हुआ। ३. भूला या छूटा हुआ।

अतिपर—वि० [सं० अत्या० स०] जिसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली हो।

अतिपात—पुं०[सं० अति√पत्(गति)+घञ्] १. हिंसा, विशेषतः गृहस्थों द्वारा अनजान में नित्य होनेवाली जीव-हिंसा। २. अव्यवस्था। ३. विघ्न। ४. नियम या मर्यादा का उल्लंघन। ५. (समय का) बीत जाना। ६. घटना। ७. दुर्व्यवहार। ८. विरोध। ९. दुष्प्रयोग।

अतिपातक—पुं० [सं० अत्या० स०] धर्मशास्त्र में बताये नौ पातकों में सबसे बड़ा पातक।

अतिपाती (तिन्)—वि० [सं० अति√पत्+णिनि] अतिपात करनेवाला या आगे बढ़ जानेवाला।

अतिपात्य—वि० [सं० अति√पत्+णिच+यत्] स्थगित किए जाने के योग्य।

अतिपावन—वि० [सं० अति√पत् (गिरना)+ल्युट्–अन] बहुत अधिक पावन या पवित्र।

अतिपुरुष—पुं०=महापुरुष।

अतिप्रजन—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अतिप्रजनित] देश या स्थान में जितनी जनता का निवास-स्थान अच्छी तरह हो सकता हो, उससे कहीं अधिक जनता या जन-संख्या होना। (ओवर पापुलेशन)

अतिप्रभंजन—पुं० [सं० प्रा० स०] अत्यंत प्रचंड और तीव्र वायु।

अतिप्रश्न—पुं० [सं० प्रा० स०] १. ऐसा प्रश्न जिसके पूछने से मर्यादा का अतिक्रमण हो। २. अनावश्यक प्रश्न।

अति बरवै—पुं० [सं० अति+हिं० बरवै] वह छंद जिसके पहले और तीसरे चरणों में बारह-बारह तथा दूसरे और चौथे चरणों में नौ नौ मात्राएँ हों।

अतिबल—वि० [सं० ब० स०] अत्यधिक बलवाला।

अतिबला—स्त्री० [अतिबल+टाप्] १. एक प्राचीन अस्त्र विद्या। २. ककही नामक एक पौधा। ३ एक पीली लता। शीतपुष्पा।

अतिभव—पुं० [सं० अति√भू (होना)+अप्] १. वृद्धि। २. पराजय। हार।

अतिभार—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अत्यधिक भार या बोझ। २. अर्थ को दृष्टि से वाक्य के बोझिल होने की अवस्था या भाव।

अतिभारग—वि० [सं० अतिभार√गम् (जाना)+ड] बहुत अधिक बोझ ढोनेवाला।

पुं० खच्चर।

अतिभी—स्त्री० [सं० अति√भी (डरना)+क्विप्] कड़कड़ाती हुई बिजली।

अतिभू—वि० [सं अति√भू+क्विप्] सबसे आगे बढ़ जानेवाला।

पुं० विष्णु का एक नाम।

अतिभूमि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अधिकता। २. श्रेष्ठता।

स्त्री० [अव्य० स०] १. मर्यादा का उल्लंघन। २. सीमा का अतिक्रमण।

अतिभोग—पुं० [सं० प्रा० स०] १. उचित या नियत समय के उपरान्त भी किसी वस्तु या विषय का भोग करते चलना। २. बहुत दिनों तक किसी सम्पत्ति का इस रूप में भोग करना कि उसपर एक प्रकार का अधिकार या स्वत्व ही जाय। (प्रोस्क्रिप्शन)

अतिभोजन—पुं० [सं० प्रा० स०] आवश्यकता से बहुत अधिक भोजन करना।

अतिमत—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा मत, विचार या सिद्धान्त जो सब जगह आदरपूर्वक मान्य समझा जाता हो। (डॉग्मा)

अतिमति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. बहुत अधिक घमंड। अहंकार। २. हठ। जिद।

अतिमर्त्य—वि० [सं० अत्या० स०] १. मर्त्य-लोक से परे का। पारलौकिक। २. जो इस लोक में न होता हो। अलौकिक।

अतिमर्श—पुं० [सं० अति√मृश् (स्पर्श)+घञ्] बहुत ही निकट का संबंध। नजदीकी नाता।

अतिमा—स्त्री० [सं० अति से (कालिमा, महिमा आदि के अनुकरण पर)] १. अति अथवा चरम सीमा तक पहुँचे हुए होने की अवस्था, गुण या भाव। २. अलौकिक अथवा लोकोत्तर होने की ऐसी अवस्था जो आध्यात्मिक दृष्टि से आदर्श और सर्वोच्च हो तथा दैवी विभूतियों से युक्त हो।

अतिमात्र—वि० [सं० अत्या० स०] उचित मात्रा या परिमाण से अधिक। बहुत अधिक।

अतिमानव—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा कल्पित और आदर्श मनुष्य जिसमें साधारण मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक तथा अलौकिक गुण तथा शक्तियाँ हों। (सुपरमैन)

अतिमानुष—पुं०=अतिमानव।

अतिमाय—वि० [सं० अत्या० स०] माया से रहित। वीतराग।

अतिमित—वि० [सं० अति√मा (परिमाण)+क्त] १. जो नापा न जा सकता हो। २. आवश्यकता या उचित से अधिक नापा हुआ।

अतिमुक्त—वि० [सं० प्रा० स०] १. मुक्ति या निर्वाण को प्राप्त। जीवन्मुक्त। २. विषय-वासना से रहित।

पुं० [सं० अत्या० स०] १. माधवी लता। मोंगरा। २. मरुआ नामक पौधा। ३. तिनिश का वृक्ष।

अतिमुक्तक—पुं० [सं० अतिमुक्त+कन्] =अतिमुक्त।

अतिमुशल—पुं० [सं० प्रा० स०] एक वक्र योग जिसमें मंगल एक नक्षत्र में अस्त होकर सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र पर अनुवक्र होता है। (ज्योतिष)

अतिमृत्यु—पुं० [सं० प्रा० स०] १. महामारी। २. [सं० अत्या० स०] मुक्ति। मोक्ष।

अतिमूत्र—पुं० [सं० प्रा० स०] बहुमूत्र (रोग)।

अतियोग—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी मिश्रण में कोई चीज आवश्यक या नियत मात्रा से अधिक मिलाना।

अतिरंजन—पुं० [सं० अति√रञ्ज् (राग) +ल्युट्–अन] [भू० कृ० अतिरंजित] कोई बात बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहने की क्रिया या भाव।

अतिरंजना—स्त्री० [सं० अति√रञ्ज्+णिच्+युच्–अन–टाप्]= अतिरंजन।

अतिरंजित—भू० कृ० [सं० अति√रञ्ज् +णिच्+क्त] बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहा हुआ।

अतिरथ—पुं० [सं० अत्या० स०] बहुत बड़ा रथी या योद्धा।

अतिरात्र—पुं० [सं० प्रा० स०, अच्] १. ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग। २. वह यज्ञ जो एक ही रात्रि में किया जाय। ३. चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम।

अतिरिक्त—वि० [सं० अति√रिच् (अधिक होना) +क्त] १. साधारणतः जितना होता हो या होना चाहिए, उससे अधिक। २. जितना काम

में आता हो या आया हो उससे अधिक। (एक्स्ट्रा) ३. नियत, प्रचलित या साधारण से अधिक। जैसे—अतिरिक्त आय। (एक्सेस) ४. जो आवश्यकतावश बाद में जोड़ा या बढ़ाया गया हो। (एडिशनल) जैसे—अतिरिक्त कर। ५. अलग। भिन्न।

क्रि० वि० किसी को छोड़कर। उसके सिवा। अलावा। (एक्सेप्ट)

अतिरिक्त-पत्र—पुं० [सं० कर्म० स०] वह विज्ञापन, समाचार या सूचना आदि जो अलग छापकर किसी समाचार-पत्र के साथ बाँटी जाय। क्रोड़पत्र। (सप्लीमेन्ट)

अतिरिक्त-लाभ—पुं० [सं० कर्म० स०] वह लाभ जो साधारण या उचित लाभ से अतिरिक्त या अधिक हो। (एक्सेस प्राफिट)

अतिरूप—वि० [सं० व० स०] बहुत अधिक सुंदर रूपवाला। परम सुंदर।

अतिरेक—पुं० [सं० अति√रिच्+घञ्] १. आवश्यकता से अधिक होने की अवस्था, गुण या भाव। २. अनावश्यक, अनुपयुक्त या व्यर्थ की अधिकता। जैसे—बुद्धि का अतिरेक। ३. उग्रता, गंभीरता, विकटता आदि का आधिक्य या वृद्धि। (एग्रेवेशन) जैसे—औषध के प्रभाव के कारण रोग का होनेवाला अतिरेक।

अतिलंघन—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० अतिलंघी] सीमा या मर्यादा का बहुत अधिक अतिक्रमण। उल्लंघन।

अतिलंघी (घिन्)—वि० [सं० अति√लंघ् (लांघना)+णिनि] अतिलंघन करनेवाला।

अतिवक्रा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] बुध ग्रह की चार प्रकार की गतियों में से एक।

अतिवर्त्तन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. बहुत अधिक आगे बढ़ने की क्रिया या भाव। २. किसी चीज का बहुत अधिक होनेवाला वर्त्तन या व्यवहार।

अतिवर्ती (तिन्)—वि० [सं० अति√वृत् (बरतना)+णिनि] बहुत अधिक आगे बढ़ा हुआ।

अतिवात—पुं० [सं० प्रा० स०] वेगपूर्ण वायु (चण्डवात, तूफान और महावात) का सबसे अधिक उग्र, प्रचण्ड और सहायक रूप। (टेम्पेस्ट)

अतिवाद—पुं० [सं० अति√वद् (बोलना)+घञ्] [वि० अतिवादिक, अतिवादी] १. किसी विषय में औचित्य की सीमा या मर्यादा से बहुत आगे बढ़ जाने का अभ्यास या सिद्धांत जो आतुरता, उग्रता आदि का सूचक है। (एक्स्ट्रीमिज्म) २. राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में यह मत या सिद्धांत कि चाहे जैसे हो, सब प्रकार के दोष अभी दूर कर दिये जाने चाहिएँ। (रैडिकैलिज्म) ३. व्यर्थ की बकबक। ४. डींग।

अतिवादिक—वि० [सं० अतिवाद+ठन्–इक] अतिवाद-संबंधी। अतिवाद का।

अतिवादी (दिन्)—पुं० [सं० अतिवाद+इनि] वह जो अतिवाद के सिद्धांत मानता और उनके अनुसार चलता हो। (एक्स्ट्रीमिस्ट)

अतिवाह—पुं० [सं० अति√वह् (ढोना)+घञ्] १. आत्मा का एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाना। २. परलोकवास। ३. वह नल या नाली जो आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालने के लिए होती है। ४. किसी नहर या नदी के बाँध से आवश्यकता से अधिक पानी बाहर निकालने का मार्ग।

अतिवाहित—भू० कृ० [सं० अति√वह्+णिच्+क्त] बिताया हुआ।

अतिविष—वि० [सं० प्रा० ब०] जिसमें बहुत अधिक विष हो। बहुत जहरीला।

पुं०=अतिविषा।

अतिविषा—स्त्री० [सं० अतिविष+टाप्] जहरीली ओषधि। जैसे—वत्सनाग, अतीस आदि।

अतिवृष्टि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] इतनी अधिक वर्षा जो खेती-बारी या धन-जन के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हो।

अतिवेध—पुं० [सं० प्रा० स०] १. बहुत निकट का संबंध। २. एक ही दिन में दशमी और एकादशी दोनों होना।

अतिवेल—वि० [सं० अत्या० स०] जिसकी सीमा बहुत दूर हो। २. अपार। असीम।

अतिवेला—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अधिक विलंब। देर। २. अनुचित या अनुपयुक्त समय। कु-समय।

अतिव्याप्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी लक्षण या कथन के अन्तर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के आ जाने का दोष। (साहित्य और तर्क) जैसे—'सींगवाले पशु को गौ कहते हैं।' में इसलिए उक्त दोष है कि भेड़-बकरियों आदि को भी सींग होते हैं।

अतिशय—वि० [सं० अति√शी (सोना)+अच्] [भाव० अतिशयता, अतिशय्य] १. बहुत। ज्यादा। २. यथेष्ट। ३. आवश्यकता से बहुत अधिक। (एक्सेसिव)

पुं० एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर सम्भावना या असम्भावना दिखलाई जाती है।

अतिशयता—स्त्री० [सं० अतिशय+तल्–टाप्] 'अतिशय' होने की अवस्था या भाव। परम अधिकता।

अतिशयनी—स्त्री० [सं० अति√शी+ल्युट्–अन–ङीप्] एक प्रकार का छंद या वृत्त।

अतिशयी (यिन्)—वि० [सं० अति√शी+णिनि] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. अत्यधिक। बहुत ज्यादा।

अतिशयोक्ति—स्त्री० [सं० अतिशय–उक्ति, तृ० त०] १. बढ़ा-चढ़ाकर तथा अपनी ओर से बहुत कुछ मिलाकर कही हुई बात। (एग्जैजरेशन) २. एक अलंकार जिसमें किसी की निंदा, प्रशंसा आदि करते समय कोई बात साधारण से बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है। (हाइपरबोल) जैसे—आपके मुँह से जो कुछ निकलता था, वही ब्रह्म वाक्य हो जाता था। (इसके रूपकातिशयोक्ति आदि कई भेद हैं।)

अतिशयोपमा—स्त्री० [सं० अतिशय–उपमा, तृ० त०] उपमा अलंकार का वह प्रकार या भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक चीज को छोड़ कर और दूसरी किसी चीज से दी ही न जा सके।

अतिशर्करी—स्त्री० [सं० अत्या० स०] पंद्रह वर्णों के वृत्तों की संज्ञा।

अतिशीतन—पुं० [सं० अति-शीत, प्रा० स०, +णिच्+ल्युट्–अन] [भू० कृ० अतिशीतित] आवश्यकता से अधिक शीतल या ठंढा करना। (ओवरकूलिंग)

अतिशेष—वि० [सं० प्रा० स०] बहुत कम बचा हुआ।

अतिसंध—वि० [सं० अत्या० स०] १. प्रतिज्ञा या वचन भंग करनेवाला। २. आदेश, विधि आदि का उल्लंघन करनेवाला।

अतिसंधान—पुं० [सं० अति-सम्√धा (धारण करना) +ल्युट्-अन] [भू० कृ० अति-संधानित] जहाँ संधान करना, निशाना लगाना या वार करना हो, उससे अधिक या आगे बढ़ कर आघात या वार करना। (ओवर हीटिंग) २. अतिक्रमण। ३. छल। धोखा।

अतिसर—वि० [सं० अति√सृ (गति)+अच्] अपनी गति से अधिक तीव्र चलनेवाला।

पुं० प्रयत्न।

अतिसर्जन—पुं० [सं० अति√सृज् (सिरजना)+ल्युट्-अन] १. दान। २. त्याग। ३. विसर्जन। ४. वध। हत्या।

अतिसर्पण—पुं० [सं० अति√सृप् (गति)+ल्युट्-अन] १. तीव्र गति। तेज चलना। २. गर्भ में शिशु का जल्दी-जल्दी इधर-उधर हटना-बढ़ना।

अतिसर्व—वि० [सं० अत्या० स०]=अतिश्रेष्ठ।

पुं० ईश्वर।

अतिसांवत्सर—वि० [सं० अत्या० स०] एक वर्ष से अधिक दिनों का।

अतिसामान्य—वि० [सं० प्रा० स०] अत्यत साधारण। मामूली।

पुं० ऐसी बात जिसका भाव या अर्थ सामान्य से कुछ अधिक और भिन्न हो। वह उक्ति जो वक्ता के उद्दिष्ट अर्थ से कुछ बढ़-चढ़कर या बाहर हो। (न्याय)

अतिसार—पुं० [सं० अति√सृ (गति)+घञ्] एक रोग जिसमें भोजन न पचने के कारण पेट में दर्द होता और पतले-पतले दस्त आते हैं। (डायरिया)

अतिसारी (रिन्)—वि० [सं० अतिसार+इनि] १. जो अतिसार रोग से पीड़ित हो। २. अतिसार-संबंधी।

अतिसै—वि०=अतिशय।

अतिस्थूल—वि० [सं० प्रा० स०] १. बहुत मोटा। २. मोटी बुद्धिवाला।

पुं० शरीर में चरबी बढ़ने का रोग।

अतिस्पर्श—वि० [सं० अत्या० स०] १. कंजूस। २. नीच। कमीना।

पुं० (व्याकरण में) य, र, ल, व तथा स्वर वर्ण जिनका उच्चारण करते समय जीभ का तालु से बहुत कम स्पर्श होता है।

अतिहत—वि० [सं० प्रा० स०] १. जो पूर्ण रूप से नष्ट हुआ हो या नष्ट किया गया हो। २. अचल। स्थिर।

अतिहसित—पुं० [सं० अति√हस् (हँसना)+क्त] हास के छः भेदों में से एक। बहुत जोरों की हँसी।

अतिहायन—पुं० [सं० अति√हा (त्याग)+ल्युट्-अन, नि० सिद्धि] १. वृद्धावस्था के कारण होनेवाली ऐसी स्थिति जिसमें कुछ काम-धंधा न हो सके। २. बहुत अधिक पुराना और जीर्ण होना। ३. पतन या ह्रास होना। (सुपरएनुएशन)

अतींद्रिय—वि० [सं० अति-इंद्रिय, अत्या० स०] १. जिसका ज्ञान इंद्रियों से न हो सकता हो। जो इंद्रियों की पहुँच के बाहर हो। २. अलौकिक। पारलौकिक।

पुं० १. आत्मा। २. प्रकृति। ३. मन।

अती—अव्य०, वि० स्त्री०=अति।

अतीचार—पुं० [अति√चर् (गति)+घञ्, दीर्घ] मर्यादा या सीमा का उल्लंघन।

विशेष दे० 'अतिचार'।

अतीत—वि० [सं० अति√इ (गति)+क्त] [क्रि० अतीतना] १. समय के विचार से जो गत, बीत या समाप्त हो चुका हो। २. बीते हुए समय से संबंध रखनेवाला। जैसे—अतीत स्मृतियाँ। ३. जिसका अस्तित्व या सत्ता नष्ट हो चुकी हो। मृत। ४. माया-मोह आदि से रहित।

क्रि० वि० परे। बाहर। दूर।

पुं० [सं० अतिथि] १. एक प्रकार के साधु या त्यागी भिक्षुक। २. सभी साधु, संन्यासी, योगी आदि। ३. संगीत में वह स्थान जो सम से दो मात्राओं के उपरान्त आता है। ४. तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीतना—अ० [सं० अतीत] गुजरना। बीतना।

सं० १. व्यतीत करना। बिताना। २. छोड़ना। त्यागना।

अतीथ†—पुं० [सं० अतिथि] १. एक प्रकार के गोसाईं या साधु जो प्रायः गृहस्थ होते हैं। २. अतिथि। मेहमान।

अतीव—वि० [सं० अति-इव प्रा० स०] १. बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। २. बढ़ा-चढ़ा।

क्रि० वि० बहुत अधिकता से। अत्यंत।

अतीस—स्त्री० [सं० अतिविषा] एक पौधा जिसकी जड़ दवा के काम आती है।

अतीसार—पुं०=अतिसार।

अतुकांत—वि० [हिं० अ+तुकांत] (कविता) जिसके अंतिम चरणों का तुक या काफिया न मिलता हो। बिना तुक का।

पुं० आधुनिक कविता का लय तथा संगीत प्रधान एक रूप जिसमें न तो छंदशास्त्र के नियमों का ही पालन होता है और न अनुप्रास या तुक का ही। (ब्लैंक वर्स)

अतुरा†—वि०=आतुर।

अतुराई*—स्त्री० [सं० आतुर] १=आतुरता। २. घबराहट। ३. चंचलता।

अतुराना*—अ० [सं० आतुर] १. आतुर या उत्सुक होना। २. उतावला होना।

अतुरी—स्त्री०=आतुरता।

अतुल—वि० [सं० न० ब०] [भाव० अतुलता] १. जिसकी तौल या अन्दाज न हो सके। अमित। असीम। २. बहुत अधिक। ३. जिसकी तुलना, बराबरी या समानता किसी से न हो सके। पुं० १. तिलका पेड़। २. तिलपुष्पी। ३. कफ। बलगम।

अतुलनीय—वि० [सं०√तुल् (परिमाण) +अनीयर्, न० त०] १. जिसकी तुलना या समानता न की जा सके। बेजोड़। २. अपरिमित। बेहद।

अतुलित—वि० [सं०√तुल्+क्त, न० त०] १. बिना तौला हुआ। २. अपरिमित। ३. असंख्य। ४. अनुपम। बेजोड़।

अतुल्य—वि० [सं० न० त०] १. जो तुल्य न हो। असमान। २. जिसकी तुलना या उपमा न हो सके। (इन्कम्पेरेबुल्)

अतुल्य-योगिता—स्त्री० [सं० अतुल्य–योग, कर्म० स०, अतुल्ययोग+इनि, ततः तल्, टाप्] तुल्य-योगिता काव्यालंकार का एक भेद जिसमें उपमेय और उपमान के कई समान गुणों या धर्मों के रहते हुए भी किसी एक गुण या धर्म में असमानता या विरोध होने का वर्णन होता है।

अतुष—वि० [सं० न० ब०] जिसमें तुष (छिलका या भूसी) न हो। बिना छिल्के या भूसी का।

अतुहिन—वि० [सं० न० त०] जो ठंढा न हो। गर्म।

पुं० [सं० न० ब०] सूर्य।

अतूथ*—वि० [सं० अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] १. बहुत अधिक। २. अनुपम। बेजोड़।

अतूल*—वि०=अतुल।

अतृप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो तृप्त न हुआ हो। जिसका मन न भरा हो। २. जिसकी कामना या भूख अभी तक बनी हो।

अतृप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] अतृप्त होने की अवस्था या भाव।

अतृष्ण—वि० [सं० न० ब०] जिसमें तृष्णा न हो। तृष्णा से रहित।

अतें—वि० [सं० इयत्] १. इतना। २. बहुत अधिक। उदा०—अतें रूप मूरति परगटो। पूनिऊँ ससि सो खीन होइ घटी। –जायसी।

अतेज—वि० [सं० अतेजस्] १. जिसमें तेज (ताप या प्रकाश) न हो। २. जो तीक्ष्ण या तीखा न हो। जिसमें प्रखरता न हो। ३. जिसमें उग्रता, प्रचंडता न हो। ४. जिसकी श्री, प्रभा या शक्ति नष्ट हो चुकी हो।

अतोर*—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० तोड़] १. जो टूट न सके या तोड़ा न जा सके। २. घनिष्ट, पक्का या चिरस्थायी।

अतोल—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० तोल] १. जो तौला न गया हो। २. जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। ३. जिसकी तुलना या बराबरी का और कोई न हो। बेजोड़। ४. जो गिना न जा सके। बहुत अधिक।

अतौल—वि०=अतोल।

अत्क—पुं० [सं०√अत् (गति)+कन्] अचकन की तरह का एक पुराना पहनावा।

अत्त*†—वि० [सं० आप्त] प्राप्त। मिला हुआ।

स्त्री० [सं० अति] अति। अधिकता।

अत्तवार—पुं० [सं० आदित्यवार, पा० आदिच्चवार, प्रा० आइत्तवार] एतवार। रविवार।

अत्ता—पुं० [सं०√अद् (भक्षण)+तृच्] चराचर का ग्रहण करनेवाले ईश्वर का एक नाम।

स्त्री० [सं०√अत् (बंधन)+तक्–टाप्] १. माता। २. सास। ३. मौसी। ४. बड़ी बहन।

अत्तार—पुं० [अ०] १. इत्र या सुगंधित तेल आदि बनाने या बेचनेवाला। २. यूनानी दवाएँ बनाने और बेचनेवाला।

अत्ति—स्त्री० [सं०√अत्+क्तिन्] १. बड़ी बहन। २. माता।

स्त्री० दे० 'अत्ता'।

अत्तिका—स्त्री० [सं० अत्ति+कन्–टाप्] १. बड़ी बहन। २. माता।

अत्यि—स्त्री० [सं० अस्ति] अस्तित्व में आने की क्रिया, अवस्था या भाव। अस्ति। सत्ता।

अत्यंत—वि० [सं० अति–अन्त, अत्या० स०] १. जो उचित अंत या सीमा से बहुत आगे बढ़ा हो। (इन्टेन्स) २. जिसका अंत या सीमा न हो। ३. अत्यधिक। बहुत अधिक।

अव्य० बहुत अधिकता से।

अत्यंतग—वि० [सं० अत्यंत√गम् (जाना)+ड] बहुत तेज चलनेवाला।

अत्यंतगामी (मिन्)—वि० [सं० अत्यंत√गम्+णिनि] अंत या सीमा तक या उसके बाहर जानेवाला।

अत्यंतता—स्त्री० [सं० अत्यंत+तल्, टाप्] १. अत्यंत होने की अवस्था या भाव। २. उग्रता। प्रचंडता।

अत्यंत-भाव—पुं० [सं० कर्म० स०] ऐसा अस्तित्व या भाव जो सदा बना रहे। कभी नष्ट न होनेवाला, अस्तित्व।

अत्यंतवासी (सिन्)—पुं० [सं० अत्यंत√वस् (बसना)+णिनि] सदा आचार्य के पास या साथ रहनेवाला विद्यार्थी।

अत्यंतातिशयोक्ति—स्त्री० [सं० अत्यंत–अतिशयोक्ति, कर्म० स०] साहित्य में अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद, जिसमें कारण के आरंभ होने से पूर्व ही कार्य पूरा हो जाने का उल्लेख होता है। जैसे—अभी शिव का तीसरा नेत्र खुलने भी न पाया था कि उधर कामदेव जलकर भस्म हो गया।

अत्यंताभाव—पुं० [सं० अत्यंत–अभाव, कर्म० स०] १. (किसी बात या वस्तु में होनेवाला) ऐसा अभाव जो नित्य या स्थायी हो। जैसे—वायु या आकाश में रूप का अत्यंताभाव है। (तर्कशास्त्र में यह ५ प्रकार के अभावों में से एक है।) २. ऐसी बात जो कभी संभव न हो। जैसे—आकाश-कुसुम, वन्ध्यापुत्र। ३. बहुत अधिक कमी। जैसे—आजकल अन्न का अत्यंताभाव है।

अत्यंतिक—वि० [सं० अत्यंत+ठन्–इक] १. निकट का। समीपी। २. बहुत अधिक चलने या घूमनेवाला।

अत्यग्नि—वि० [सं० अति-अग्नि अत्या० स०] जिसमें या जिसका ताप अग्नि के ताप से भी अधिक हो।

स्त्री० [सं० प्रा० स०] बहुत अधिक तीव्र या प्रबल पाचन-शक्ति।

अत्यधिक—वि० [सं० अति–अधिक, प्रा० स०] बहुत अधिक। हद से ज्यादा। (एक्सेसिव)

क्रि० वि० बहुत अधिकता से। प्रचुरता से।

अत्यम्ल—वि० [सं० अति-अम्ल प्रा० स०] बहुत अधिक खट्टा।

पुं० [सं० ब० स०] १. इमली। २. बिजौरा नीबू।

अत्यय—पुं० [सं० अति√इ (गति)+अच्] १. मृत्यु। २. नाश। ३. अभाव। ४. अतिक्रमण। ५. मार्ग। रास्ता। ६. दण्ड। ७. कष्ट। ८. बुराई। ९. खतरा।

अत्ययिक—वि० दे० 'आत्ययिक'।

अत्ययी (यिन्)—वि० [सं० अत्यय+इनि] १. अत्यय करनेवाला। २. सबसे आगे निकल जानेवाला।

अत्यर्थ—वि० [सं० अति-अर्थ, अत्या० स०] उचित अर्थ, अर्घ या परिणाम से बहुत अधिक।

क्रि० वि० बहुत अधिक परिमाण में। बहुतायत से।

अत्यष्टि—स्त्री० [सं० अति-अष्टि अत्या० स०] १७ वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—शिखरिणी, पृथ्वी आदि।

अत्याकार—वि० [सं० अति–आकार, ब० स०] जो आकार में बहुत बड़ा या विशाल हो।

पुं० [सं० अति–आ√कृ (विक्षेप)+घञ्] १. अवज्ञा। २. अवक्षेप।

अत्याचार—पुं० [सं० अति-आचार प्रा० स०] १. आचार का अतिक्रमण। २. रीति, नीति, प्रथा आदि का उल्लंघन। ३. अधिकार का दुरुपयोग। ४. किसी के साथ किया जानेवाला अनुचित तथा अमानुषिक व्यवहार। ५. किसी के सताने या कष्ट देने के लिए किया जानेवाला व्यवहार। (टिरैनी)

अत्याचारी (रिन्)—वि० [सं० अत्याचार+इनि] १.अत्याचार करनेवाला। २. अपने अधिकार या बल के कारण दूसरों को बहुत कष्ट पहुँचानेवाला। जालिम। (टायरेण्ट) ३. पाखंडी।

अत्याज्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसको छोड़ना उचित न हो। २. जो त्यागा या छोड़ा न जा सके।

अत्यानंद—पुं० [सं० अति–आनंद, प्रा० स०] आनंद का वह चूड़ांत और परम उत्कृष्ट रूप जो आध्यात्मिक चिंतन, ईश्वर के ध्यान में मग्न या लीन होने पर प्राप्त होता है। परमानंद। (एक्सटेसी)

अत्यानंदा—स्त्री० [सं० अति–आनंद, प्रा० स०+अच्–टाप्] योनि का एक रोग जिससे स्त्रियाँ अत्यंत मैथुन-प्रिय हो जाती हैं।

अत्याय—पुं० [सं० अति√अय् (गति) +घञ्] १. सीमा का अतिक्रमण। मर्यादाभंग। २. अत्यधिक आय या लाभ।

अत्यारूढ़ि—स्त्री० [सं० अति–आ√रुह् (चढ़ना) +क्तिन्] १. अत्यंत ऊँचे पद पर पहुँचना। २. प्रसिद्धि।

अत्याहित—वि० [सं० अति–आ√धा (धारण, पोषण) +क्त] अरुचिकर।

पुं० १. अरुचि। अप्रियता। २. भय। खतरा। ३. दुःसाहसिक कार्य।

अत्यूक्त—वि० [सं० अति√वच् (बोलना)+क्त] जो बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया हो। अत्युक्ति के रूप में कहा हुआ।

अत्युक्ता—स्त्री० [सं० अत्युक्त+टाप्] एक प्रकार का छंद, जिसमें चार पद होते हैं और प्रत्येक पद के दो खंड होते हैं।

अत्युक्ति—स्त्री० [सं० अति–उक्ति, प्रा० स०] १. कोई बात बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहना। २. इस प्रकार बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई कोई बात (एग्जैजरेशन) ३. एक अलंकार जिसके अनुसार किसी के बल, उदारता, यश आदि का झूठ-मूठ या औचित्य से बहुत अधिक मात्रा में वर्णन किया जाता है। जैसे—हे राजन्! आपके दान से याचक भी कल्प-तरु हो गये।

अत्युक्था—स्त्री० [सं० अति-उक्थ अत्या० स०] एक प्रकार के वृत्त जिनमें दो वर्ण होते हैं। इनके चार भेद हैं—कामा, मही, सार और मधु।

अत्युग्र—वि० [सं० अति–उग्र, प्रा० स०] बहुत अधिक उग्र, तेज या विकट।

अत्युत्तम—वि० [सं० अति–उत्तम, प्रा० स०] १. सबसे उत्तम। २. बहुत ही उत्कृष्ट तथा सुंदर।

अत्युत्पादन—पुं० दे० 'अति-उत्पादन'।

अत्युपध—वि० [सं० अति–उपधा, अत्या० स०] १. परीक्षित। आजमाया हुआ। २. विश्वसनीय।

अत्यूह—पुं० [सं० अति√ऊह् (वितर्क) +अच्] १. बहुत अधिक होनेवाला ऊहा-पोह या तर्क-वितर्क। २. जोर-जोर से बोलनेवाला पक्षी। मोर। ३. हरसिंगार। ४. सेवती।

अत्र—अव्य० [सं० इदम् वा एतद् +त्रल्, अ आदेश] १. यहाँ से। इस स्थान से। २. इस अवस्था से।

पुं० १=अस्त्र। २.=अतर।

अत्रक—वि० [सं० अत्र+कन्] १. यहाँ का। २. इस लोक का। लौकिक।

अत्रभवान (वत्)—वि० [सं० अत्र (यहाँ प्रथमार्थ में त्रल् प्रत्यय) अत्र-भवत्, कर्म० स०] [स्त्री० अत्रभवती] बहुत अधिक महान् या श्रेष्ठ।

अत्रस्थ—वि० [सं० अत्र√स्था (ठहरना)+क] इस लोक में रहनेवाला।

अत्रि—पुं० [सं०√अद् (भक्षण) +त्रिन्] १. सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम। २. सप्तर्षि मंडल का एक तारा।

अत्रिगुण—वि० [सं० न–त्रिगुण, न० ब०] जो त्रिगुण (सत्, रज और तम) से रहित या परे हो। त्रिगुणातीत।

अत्रिज—पुं० [सं० अत्रि√जन् (उत्पत्ति) +ड] अत्रि के पुत्र—चन्द्रमा, दत्तात्रेय तथा दुर्वासा।

अत्रेय*—पुं० दे० 'आत्रेय'।

अत्रैगुण्य—पुं० [सं० न० त०] सत्, रज और तम इन तीन गुणों का अभाव।

अथ—अव्य० [सं०√अर्थ् (याचना) +ड, पृषो० रलोप] १. कथन, प्रश्न, लेख आदि के आरम्भ में आनेवाला एक मंगल सूचक अव्यय। २. आरंभ। शुरू। जैसे—अथ से इति तक, अर्थात् आदि से अंत तक।

अथऊं†—पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] सूर्य के अस्त होने से पहले किया जानेवाला भोजन। (जैन)

अथक—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० 'थकना'] १. जो कभी न थके। अश्रांत। २. जिसमें थकावट या रुकावट न आई हो। जैसे—अथक परिश्रम।

अथच—अव्य० [सं० द्व० स०] १. और। २. और भी।

अथना*—अ० [सं० अस्त+ना (प्रत्य०)] १. (सूर्य, चन्द्र आदि का) अस्त होना। डूबना। २. कम होना। घटना। ३. नष्ट या समाप्त हो जाना।

अथमना†— पुं० [सं० अस्तमन] 'उगमना' के सामने की दिशा। पश्चिम दिशा।

अथरा—पुं० [सं० स्थिता] [स्त्री० अल्पा० अथरी] मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का चौड़ा तथा खुले मुँह का बरतन। नाँद।

अथर्व (वेद)—पुं० [सं० अथ√ऋ (गति) +वनिप्, शक० पररूप, अथर्व–वेद, कर्म० स०] आर्यों या हिन्दुओं के चार वेदों में से अंतिम या चौथा वेद, जिसके मंत्रद्रष्टा या ऋषि लोग भृगु और अंगिरा गोत्र-वाले थे।

विशेष—कहा जाता है कि इसमें ऐसे मंत्रों का संग्रह है जिनसे रोगों और विपत्तियों का निवारण होता है।

अथर्वण—पुं० [सं० अथर्वन्+अच्] १. शिव। २. अथर्ववेद।

अथर्वणि—पुं [सं० अथर्वन्+इस् (बा०)] १. वह ब्राह्मण जो अथर्व वेद का ज्ञाता हो। २. यज्ञ करानेवाला पुरोहित।

अथर्वन्—पुं० [सं० अथ√ऋ+वनिप्, शक० पररूप] १. एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र और अग्नि को उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं। २. दे० 'अथर्व'।

अथर्वनी—पुं० [सं० अथर्वणि] यज्ञ करानेवाला आचार्य। पुरोहित।

अथल—पुं० [सं० स्थल] खेती करने के लिए लगान पर दी जानेवाली जमीन।

अथवना—अ० दे० 'अथना' (अस्त होना)।

अथवा—अव्य० [सं० अथ√वा (गति)+का] एक अनुकल्प वाचक अव्यय जो यह सूचित करता है कि कही हुई दो या दो से अधिक बातों, वस्तुओं आदि में से कोई एक ली जानी चाहिए। यदि यह नहीं तो वह सही। या। वा। जैसे—कोई कविता, कहानी अथवा लेख लिखकर लाओ।

अथाई—स्त्री० [सं० स्थायी=जगह, पा० ठानीय, प्रा० ठाइअँ] १. बैठने की जगह। चबूतरा। २. घर की बाहरी चौपाल। बैठक। ३. वह स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर पंचायत करते हैं। ४. मंडली। जमावड़ा। ५. दरबार।

अथाना—स० [सं० स्थान] १. थाह लेना। २. गहराई नापना। ३. ढूँढ़ना।

पुं० [सं० स्थालु] आम आदि फलों का अचार।

अथार—वि० [सं० अ+स्तर] इधर-उधर फैला या बिखरा हुआ।

अथावत—भू० कृ० [सं० अस्तवत्] जो अस्त हो चुका हो। डूबा हुआ।

अथाह—वि० [सं० अस्ताघ] १. जिसकी थाह या गहराई का पता न चल सके। जैसे—यहाँ अथाह जल है। २. गम्भीर। गूढ़। ३. जो जानने या समझने योग्य न हो।

पुं० १. गहराई। २. जलाशय। ३. समुद्र।

मुहा०—अथाह में पड़ना=कठिनाई, मुश्किल या परेशानी में पड़ना।

अथाही—स्त्री० [?] बाकी रुपये वसूल करना। उगाही। (बुंदेल०)

अथिर*—वि०=अस्थिर।

अथैया—स्त्री० दे० 'अथाई'।

अथोर*—वि० [सं० अ=नहीं+सं० स्तोक, पा० थोक, प्रा० थोअ=थोड़ा] [स्त्री० अथोरी] जो थोड़ा या कम न हो। बहुत अधिक।

अदंक*—पुं०=आतंक।

अदंड—वि० [सं० न० ब०] १. जो दंड दिये जाने के योग्य न हो। अदंडनीय। २. निडर। निर्भय। ३. (माल) जिस पर कर या महसूल न लगता हो। ४. (भूमि) जिसका राजस्व न देना पड़े। माफी।

अदंडनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो दंड पाने के योग्य न हो। अदंड्य। २. दंड से मुक्त।

अदंडमान*—वि० =अदंडनीय।

अदंड्य—वि० [सं० न० त०=अदंडनीय।

अदंत—वि० [सं० न० ब०] जिसे दाँत न हो। बिना दाँतोंवाला।

पुं० १. एक आदित्य का नाम। २. जोंक।

अदंत्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका संबंध दाँतों से न हो। २. जो दाँतों के योग्य न हो। ३. दाँतों के लिए हानिकारक।

अदंभ—वि० [सं० न० ब०] [भाव० अदंभता] १. दंभ रहित। फलतः निश्छल और सच्चा। २. जिसमें आडंबर न हो।

पुं० [सं० न० त०] १. दंभ का अभाव। फलतः सच्चापन या सच्चाई। २. शिव का एक नाम।

अदंष्ट्र—वि० [सं० न० ब०] जिसे दाँत न हों। दंतहीन।

पुं० वह साँप जिसका जहरीला दाँत न हो या निकाल दिया गया हो।

अदक्ष—वि० [सं० न० त०] १. जो दक्ष या कुशल न हो। २. कुरूप। भद्दा।

अदक्षिण—वि० [सं० न० त०] १. जो दक्षिण न हो। २. बायाँ। ३. प्रतिकूल। विरुद्ध। ४. अकुशल। अनाड़ी। ५. जिसमें या जिसके साथ दक्षिण न हो।

अदक्षिणीय—वि० [सं० दक्षिणा+छ—ईय, न० त०] जो दक्षिणा का अधिकारी न हो।

अदक्षिण्य—वि० [सं० दक्षिणा+यत्, न० त०] =अदक्षिणीय।

अदग—वि० [सं० अदग्ध, पा० अदग्ध] १. बेदाग। निष्कलंक। २. निरपराध। निर्दोष। ३. जिसे किसी का हाथ न लगा हो। अछूता।

अदग्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो दग्ध या जला हुआ न हो। २. (मृत शरीर) जिसका दाह संस्कार न हुआ हो।

अदत्त—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अदत्ता] १. जो दिया न गया हो। बिना दिया हुआ। २. जो नियम या विधि के अनुसार न दिया गया हो। ३. जो किसी तरह दिया न जा सकता हो और देने पर भी जिसे कोई पा या रख न सकता हो। ४. जिसका मूल्य आदि न चुकाया गया हो। (अनपेड) ५. कंजूस। कृपण।

अदत्त-दान—पुं० [सं० प० त०] अनुचित रूप से और बिना दी हुई वस्तु लेना। (जैन)

अदत्त-पूर्वा—स्त्री० [सं० दत्त-पूर्वा, सुप्सुपा समास, अदत्त-पूर्वा, न० त०] वह कन्या जिसकी मँगनी न हुई हो। कुँवारी कन्या।

अदत्ता—स्त्री० [सं० अदत्त+टाप्] वह कन्या जो अभी किसी को दी न गई हो। अविवाहिता या कुँवारी कन्या।

अदद—स्त्री० [अ०] १. संख्या। गिनती। २. संख्या-सूचक चिह्न या संकेत। ३. गिनती के काम के लिए कोई पृथक् और स्वतंत्र इकाई या मापक। (यूनिट) जैसे—दस अदद कपड़े।

अदन—पुं० [सं०√अद् (खाना)+ल्युट्—अन] [वि० अदनीय] भोजन करना। खाना। भक्षण।

पुं० [अ०] ईसाइयों, यहूदियों आदि के अनुसार स्वर्ग का उपवन या वाटिका जिसमें ईश्वर ने पहले-पहल आदम और हौआ को रखा था।

अदना—वि० [अ०] बहुत ही तुच्छ या सामान्य।

स० [सं० अधि+वद=कहना] दृढ़ता या निश्चय-पूर्वक कोई बात कहना।

मुहा०—अद-बदकर या अद-बदाकर=जान-बूझकर और दृढ़ता-पूर्वक। जैसे—अद-बदाकर किसी को चिढ़ाना या मारना।
पद०—अदा-बदा=(क) पहले से आपस में निश्चित किया हुआ। (ख) भाग्य में लिखा हुआ।
अदनीय—वि० [सं०√अद् (खाना)+अनीयर्] खाने योग्य। खाद्य।
अदब—पुं० [अ०] १. छोटों के द्वारा बड़ों का किया जानेवाला उचित आदर-सम्मान। जैसे—बड़ों का अदब और लिहाज करना सीखो। २. शिष्ट-सम्मत आचरण या व्यवहार। शिष्टाचार। ३. साहित्य और उससे सम्बन्ध रखनेवाला शास्त्र।
अदबुद*—वि०=अद्भुत।
अदब्ब—पुं० १. दे० 'अदब'। २. दे० 'आदाब'।
अदभ्र—वि० [सं० न० त०] १. अनंत। अपार। २. बहुत अधिक।
अदम—पुं० [अ०] १. अभाव। अनस्तित्व। जैसे—अदम तामील, अदम पैरवी आदि। २. अनुपस्थिति। ३. परलोक। स्वर्ग।
अदम-तामील—पुं० [अ०] (आज्ञा, समन आदि का) तामील या पालन न होना।
अदम-पैरवी—स्त्री० [फा०] किसी मुकदमें में आवश्यक कार्रवाई या पैरवी का न होना।
अदम-मौजूदगी—स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति।
अदम-सबूत—पुं० [सं०] सबूत या प्रमाण का अभाव।
अदम्य—वि० [सं०√दम् (दबाना)+यत्, न०त०] १. जिसका दमन न हो सके। २. न दबनेवाला। ३. उत्कट। प्रचंड।
अदय—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके मन में दया न हो। दया-रहित। २. निष्ठुर। कठोर-हृदय (व्यक्ति)।
अदरक—पुं० [सं० आर्द्रक, प्रा० अल्लय, अद्दअ, गु० आंदु, बं० आदा, मराठी अले] एक छोटा पौधा जिसकी जड़ तीक्ष्ण और चरपरी होती तथा मसाले की तरह खाद्य पदार्थों में डाली जाती है। आदी।
अदरकी—स्त्री० [सं० आर्द्रक] सोंठ और गुड़ का बना हुआ व्यंजन। सोंठौरा।
अदरख—पुं०=अदरक।
अदरस—वि० [सं० अदृश्य] जो दिखाई न दे। अदृश्य।
अदरा—स्त्री०=आर्द्रा (नक्षत्र)।
अदराना—अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने पर घमंड से भरा आचरण करना। इतराना।
वि० किसी का बहुत आदर या दुलार करके उसे इतराने में प्रवृत्त करना।
अदर्श—पुं० [सं० न० त०] १. वह दिन जिसकी रात में चंद्रमा दिखाई न दे। २. आदर्श। ३. दर्पण। शीशा।
अदर्शन—पुं० [सं० न० त०] १. (किसी वस्तु के) दर्शन का अभाव। दिखाई न देना। २. लोप। विनाश। ३. उपेक्षा।
वि० [न० ब०] अदृश्य। गुप्त।
अदर्शनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो दर्शन के योग्य न हो। न देखने लायक। २. अशुभ। बुरा। ३. कुरूप। भद्दा।
अदल—वि० [सं० न० ब०] [स्त्री० अदला] १. बिना दल या पत्ते का। २. जो किसी दल में न हो अथवा जिसका कोई दल न हो।
पुं० [सं०] हिज्जल नामक पौधा।
पुं० [अ०] न्याय। इन्साफ।
अदलतिहा†—वि० [हिं० अदालत] अदालत या कचहरी में जाकर प्रायः मुकदमें लड़नेवाला। मुकदमेबाज।
अदल-बदल—पुं० [हिं० बदलना+अनु० अदलना] १. एक के स्थान पर दूसरा करना, रखना या लाना। परिवर्त्तन। हेर-फेर। २. दे० 'अदला-बदली'।
अदला-बदली—स्त्री० [हिं० अदल-बदल] १. चीजों को हटाकर परस्पर एक दूसरे की जगह रखना। २. एक चीज लेने के लिए उसके बदले दूसरी चीज देना। (बार्टर)
अदली*—वि० [अ० अदल] न्यायशील। न्यायी।
वि० [सं० अदलिन्] जिसमें पत्ते न हों। बिना पत्तों का।
अदलीय—वि० [सं० दल+छ—ईय, न० त०] १. (व्यक्ति) जो किसी दल में सम्मिलित न हो। २. (विषय) जो किसी दल विशेष से संबंधित न हो।
अदवाइन†—स्त्री० दे० 'अदवान'।
अदवान—स्त्री० [सं० अवः=नीचे+दाम=रस्सी] चारपाई के पैताने बाँधी जानेवाली रस्सी। उनचन।
अदह—वि० [सं०अदाह्य] न जलनेवाला। अदाह्य।
पुं० १. एक प्रकार का अदाह्य रेशेदार खनिज पदार्थ जो बुना भी जाता है। २. उक्त खनिज पदार्थ से बुने हुए वस्त्र। (एस बेस्टस)
अदहन—पुं० [सं० आ दहन=खूब जलाना] दाल, चावल आदि पकाने के लिए आग पर चढ़ाकर गरम किया जानेवाला पानी।
क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।—रखना।
अदह्य—वि० [सं० अदाह्य] जो जल न सकता हो। न जलनेवाला। (इनकम्बश्यबुल)
अदाँत—वि० [सं० अदंत] बिना दाँत का। (प्रायः पशुओं के संबंध में)
अदांत—वि० [सं० न० त०] जिसने इंद्रियों का दमन न किया हो। अजितेंद्रिय।
अदाँव—पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० दाँव] १. बुरा दाँव या अनुचित चाल। २. कठिन या विकट स्थिति।
अदा—स्त्री० [अ०] १. (विशेषतः युवती स्त्रियों का) मोहित करने वाला हाव-भाव। मनोहर अंग-भंगी या चेष्टा। २. ढंग। तर्ज।
वि० १. (देन या धन) जो चुकाया या दे दिया गया हो। चुकता किया हुआ। २. प्रत्यक्ष कार्य अथवा क्रिया के रूप में पालित या संपन्न किया हुआ। कार्य रूप में करके दिखलाया हुआ। जैसे—फर्ज अदा करना=कर्त्तव्य पालन करना।
अदाई*—वि० [अ०] १. चतुर। चालाक। २. चालबाज। धूर्त।
अदाकार—पुं० [अ० अदा+फा० कार] १. अभिनेता। २. कलाकार।
अदाग*—वि० [सं० अ=नहीं+अ० दाग] १. जिसे या जिसमें दाग या कलंक न लगा हो। निष्कलंक। बेदाग। २. पवित्र। शुद्ध। ३. निर्मल। स्वच्छ।
अदागी*†—वि० दे० 'अदाग'।

अदाता (तृ) वि० [सं० न० त०] १. जो दाता न हो। न देनेवाला। २. कंजूस। कृपण।

अदान—पुं० [सं० न० त०] १. दान न देने की क्रिया या भाव। २. अनुचित या बुरा दान।
वि० [न० ब०] (हाथी) जिसका मद न निकल रहा हो।
*वि०=अज्ञान (अनजान)।

अदानी*—वि० [सं० न० त०] १. जो दानी न हो। २. कंजूस। कृपण।

अदाय—वि० [सं० न० ब०] जो दाय या सम्पत्ति का अंग पाने का अधिकारी न हो।

अदायगी—स्त्री०[अ० अदा से फा०] १. अदा करने की क्रिया या भाव। २. ऋण, देन, व्यय आदि चुकाने या धन आदि देने की क्रिया या भाव। (डिफ्रेइंग)

अदायाँ*—वि० [सं० +हि० दायाँ=दाहिना] १. प्रतिकूल। वाम। विरुद्ध। २. अशुभ। बुरा।

अदाया†—स्त्री० [हि० अ+दया] १. दया या कृपा का अभाव। २. अवकृपा। नाराजगी।

अदायाद—वि० [सं० न० त०] १. जो सपिंड या सगोत्र न हो। २. जो उक्त कारण से सपत्ति का उत्तराधिकारी न हो सके।

अदायिक—वि० [सं० दाय+ठन्-इक, न० त०] जिसका दाय या उत्तराधिकार से संबंध न हो।
वि० [सं० न० ब०] जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। ला-वारिस।

अदार—वि० [सं० न० ब०] दारा या पत्नी से रहित। अर्थात् अविवाहित या विधुर।

अदालत—स्त्री० [अ०] दे० 'न्यायालय'।

अदालती—वि० [अ० अदालत] १. न्यायालय-संबंधी। २. न्यायालय में या न्यायालय की ओर से होनेवाला। जैसे—अदालती कार्रवाई, अदालती फैसला।

अदावत—स्त्री० [अ०] १. दुश्मनी। वैर। शत्रुता। २. द्वेष।

अदावती—वि० [अ० अदावत] १. अदावत करने या रखनेवाला। वैरी। शत्रु। २. अदावत या द्वेष के कारण होनेवाला। ३. अदावत-संबंधी।

अदास—वि० [सं० न० त०] १. जो दास न हो। २. स्वतंत्र।

अदाह—वि० [सं० न० ब०] जिसमें दाह (जलन या ताप) न हो। दाह-रहित।
*स्त्री० [अ० अदा] स्त्रियों का हाव-भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उदा०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तैं आनि धरी क्यों?

अदाहक—वि० [सं० न० त०] जो दाहक न हो। न जलानेवाला।

अदाह्य—वि० [सं० √दह्+ण्यत्, न० त०] १. जो जलाया न जा सकता हो। २. जिसे जलाना उचित या संगत न हो।

अदिठा—वि० [सं० अदृष्ट]=अदीठा।

अदित*—पुं० [सं० आदित्य] १. दे० 'आदित्य'। २. दे० 'आदित्य-वार'।

अदिति—स्त्री० [सं० √दो (काटना)+क्तिच्, न० त०] १. असीम होने की अवस्था या भाव। असीमता। २. दक्ष प्रजापति की पुत्री और कश्यप ऋषि की पत्नी जो सूर्य आदि तैंतीस देवताओं की माता कही गई है। ३. माता। ४. प्रकृति। ५. पृथ्वी। ६. वाणी। ७. पुनर्वसु नक्षत्र। ८. गरीबी। निर्धनता। ९. स्वतंत्रता। १०. गाय।
पुं० १. प्रजापति। २. देवताओं का विश्वेदेवा नामक गण।

अदितिज—पुं० [सं० अदिति√जन् (जन्म लेना)+ड] अदिति से उत्पन्न, देवता।

अदिति-नंदन—पुं० [सं० ष० त०] देवता।

अदिति-सुत—पुं० [सं० ष० त०] १. देवता। २. सूर्य।

अदिन—पुं० [सं० न० त०] १. बुरा दिन। २. अशुभ समय।

अदिव्य—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अदिव्या] १. जो दिव्य न हो। लौकिक। साधारण। २. बुरा। ३. स्थूल। ४. जिसका दमन इंद्रियों द्वारा हो।
पुं० साहित्य में वह नायक जो दिव्य या देवता न हो, बल्कि लौकिक या मनुष्य हो।

अदिष्ट†—पुं०=अदृष्ट।

अदिष्टी*—वि० [सं० अ=नहीं+दृष्टि=विचार] १. जिसकी दृष्टि दूर तक न जाय अर्थात् जो दूर तक न सोच सके। २. मूर्ख। ३. दुष्ट।
वि० [सं० दिष्ट+इनि, न० त०] अभागा।

अदीक्षित—वि० [सं० न० त०] जिसने दीक्षा न ली हो। जो दीक्षित न हो।

अदीठ*—वि० [सं० अदृष्ट, प्रा० अदिट्ठ] १. बिना देखा हुआ। अदृष्ट। २. छिपा हुआ। गुप्त।

अदीठा—वि० [सं० अदृष्ट] जो देखा न गया हो।

अदीत†—पुं०=आदित्य।

अदीन—वि० [सं० न० त०] १. जो दीन न हो। दीनता-रहित। २. न झुकनेवाला। ३. प्रचंड। उग्र। ४. निडर। ५. उदार।

अदीनवृत्ति—वि० [सं० न० ब०] जिसकी आंतरिक वृत्ति कुंठित न हो। तेजस्वी।

अदीब—पुं० [अ०] विद्या और साहित्य का ज्ञाता।
वि० १. अदब करनेवाला। २. सुशील। नम्र।

अदीयमान—वि० [सं० न० त०] न दिया जानेवाला या न दिया जा सकनेवाला।

अदीह*—वि० [सं० अ=नहीं+दीर्घ, पा० दीघ, प्रा० दीह] जो दीर्घ या बड़ा न हो। छोटा।

अदुंद*—वि० [सं० अद्वन्द्व, प्रा० अदुंद] १. द्वंद्व-रहित। निर्द्वंद्व। २. शांत। निश्चिंत।
वि०=अद्वितीय। (बेजोड़)

अदुतीय*—वि०=अद्वितीय।

अदूजा*—वि० [सं० अद्वितीय]=अद्वितीय।

अदूर—क्रि० वि० [सं० न० त०] जो दूर न हो। समीप।
पुं० सामीप्य।

अदूर-दर्शी (शिन्)—वि० [सं० अदूर√दृश् (देखना)+णिनि] १. जो दूर तक की बात न सोच सके। २. अविचारी।

अदूषण—वि० [सं० न० ब०] दूषण-रहित। निर्दोष। बे ऐब।

अदूषित—वि० [सं० न० त०] जो दूषित न हो अर्थात् जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष।

अदृढ़—वि० [सं० न० त०] १. जो दृढ़ न हो। दृढ़ता-रहित। जैसे—अदृढ़ संबंध। २. जो स्थिर न हो। चंचल।

अदृप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो दृप्त न हो। २. दर्प या अभिमान से रहित। निरभिमान। ३. सरल। ४. सौम्य।

अदृश्य—वि० [सं० न० त०] १. जो कभी दिखाई न देता हो। अलक्ष्य। २. जो आवरण या ओट में होने के कारण दिखाई न दे। (इन्‌विजिबुल) ३. जो गायब हो गया हो। लुप्त।

अदृष्ट—वि० [सं० न० त०] १. जो देखा हुआ न हो। २. जो दिखाई न पड़ा हो। ३. गायब। लुप्त। ४. अवैध। ५. अमान्य या अस्वीकृत। पुं० १. प्रारब्ध। भाग्य। २. अग्नि, जल आदि का दैवी प्रकोप।

अदृष्ट-कर्मा (र्मन्)—वि० [ब० स०] १. जिसका कर्म या कार्य न देखा गया हो। २. कार्य के अभ्यास या अनुभव से रहित।

अदृष्ट-गति—वि० [ब० स०] १. जिसकी गति या चाल समझ में न आवे। २. चालबाज। कूटनीति परायण।

अदृष्ट-पूर्व—वि० [दृष्ट-पूर्व, सहसुपा स०, न० त०] १. जो पहले न देखा गया हो। २. अद्भुत। विलक्षण।

अदृष्ट-फल—वि० [ब० स०] जिसका फल अज्ञात हो।
पुं० [कर्म० स०] १. पुण्य-पाप का वह फल जो भविष्य में प्राप्त होने को हो। २. भाग्य।

अदृष्ट-वाद—पुं० [प० त०] वह वाद या सिद्धांत जिसमें पाप-पुण्य आदि का फल परलोक में मिलना माना जाता है।

अदृष्टाक्षर—पुं० [अदृष्ट-अक्षर, कर्म० स०] नीबू आदि के रस से लिखे जानेवाले वे अक्षर जो साधारण अवस्था में अदृश्य रहते हैं, परंतु आँच पर रखने अथवा किसी प्रकार की रासायनिक क्रिया करने पर पढ़ने योग्य हो जाते हैं।

अदृष्टार्थ—पुं० [अदृष्ट-अर्थ, ब० स०] न्याय-दर्शन के अनुसार एक प्रकार का शब्द प्रमाण।
वि० १. आध्यात्मिक या गूढ़ अर्थ रखनेवाला। २. जिसका ज्ञान इंद्रियों का विषय न हो।

अदृष्टि—वि० [सं० न० ब०] जिसे दृष्टि न हो। दृष्टि-हीन। अंधा।
स्त्री० [सं० न० त०] १. दिखाई न पड़ने की अवस्था। अंधता। २. क्रोध, दुर्भाव आदि से युक्त बुरी दृष्टि।

अदृष्टिका—स्त्री० [सं० अदृष्टि+कन्—टाप्]=अदृष्टि।

अदेख*—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० देखना] १. जो दिखाई न दे। २. जिसने न देखा हो अथवा जो न देख रहा हो। उदा०—देखति सो मानति है सूधो न्याव जानति है, ऊधो तुम देखिहूँ अदेख रहिबौ करौ।—रत्नाकर।

अदेखा—वि०[सं० अ+हिं० देखना] [स्त्री० अदेखी] जो अभी तक देखा न गया हो।

अदेय—वि० [सं० न० त०] १. जो नीति, न्याय, विधि आदि के अनुसार दिया न जा सकता हो। २. जो दिये जाने के योग्य न हो। देने के लिए अनुपयुक्त।

अदेव—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका संबंध देवता से न हो। २. देव-रहित। ३. अपवित्र। ४. अधार्मिक।
पुं० [न० त०] १. वह जो देवता न हो। २. राक्षस। ३. जैनों के अनुसार उनके देवताओं से भिन्न देवता।

अदेवक—वि० [सं० न० ब०] जो देवता के निमित्त न हो।

अदेवता—पुं० [सं० न० त०]=अदेव।

अदेश—पुं० [सं० न० त०] अनुपयुक्त, अयोग्य या बुरा देश।

अदेश्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका संबंध देश से न हो। २. जो निर्देश प्राप्त करने के योग्य न हो।

अदेस*—पुं० [सं० आदेश=आज्ञा, शिक्षा] १. आज्ञा। आदेश। २. शिक्षा। ३. प्रणाम। दंडवत। उदा०—औ महेश कहँ करौं अदेसू। जेहि यह पंथ कीन्ह उपदेसू।—जायसी।
पुं०=अँदेस (अंदेशा)।

अदेह—वि० [सं० न० ब०] बिना देह या शरीर का। विदेह।
पुं० कामदेव।

अदैन्य—वि० [सं० न० ब०] जिसमें दीनता न हो।
पुं० [सं० न० त०] दैन्य या दीनता का अभाव या विपरीत भाव।

अदैव—वि० [सं० न० त०] १. जिसका संबंध देवताओं या उनके कार्यो से न हो। २. देव-रहित। ३. अपवित्र। ४. अधार्मिक।
वि० [सं० न० ब०] दैव या भाग्य के द्वारा जिसका पहले से निर्धारण न हुआ हो।

अदोख*—वि०=अदोष।

अदोखिल*—वि०[सं० अदोष] निर्दोष। बे-ऐब।

अदोष*—वि० [सं० न० ब०] १. दोष-रहित। बे-ऐब। २. निरपराध।
पुं० [सं० न० त०] दोष का अभाव। दोष न होना।

अदोस*—वि०, पुं०=अदोष।

अदोह—वि० [सं० अदीर्घ] छोटा।
वि० [सं० न० ब०] (समय) जो (गौएँ आदि) दुहने के लिए उचित या उपयुक्त न हो।

अदौरी†—स्त्री० [सं० ऋद्ध, पा० उद्द, हिं० उर्द+सं० वटी, हिं० बरी] उर्द की सुखाई हुई बरी।

अद्ध*—वि०=अर्द्ध।

अद्धयना*—स० [सं० अध्ययन] अध्ययन करना। पढ़ना।

अद्धरज*—पुं०=अध्वर्यु।

अद्धा—पुं० [सं० अर्द्ध, प्रा० अद्ध=आधा] १. किसी वस्तु का आधा अंश, तौल या नाप। २. वह बोतल जो पूरी बोतल की आधी हो। ३. आधे घंटे पर बजनेवाला घंटा। ४. चार मात्राओं का एक ताल जो कौवाली का आधा होता है। ५. एक छोटी नाव। ६. रसीद आदि का आधा भाग जो देनेवाले के पास रह जाता है। मुसन्ना।
क्रि० वि० [सं० अत्√धा (धारण करना)+क्विप्] १. साक्षात्। प्रत्यक्ष। २. निश्चयपूर्वक। निस्संदेह।

अद्धी—स्त्री० [सं० अर्द्ध, प्रा० अद्ध+हिं० ई (प्रत्य०)] १. दमड़ी का आधा। पैसे का सोलहवाँ भाग। २. एक प्रकार की महीन, चिकनी और बढ़िया मलमल।

अद्भुत—वि० [सं० अत्√भा (दीप्ति)+डुतच्] जो अपनी अपूर्वता, विचित्रता या विलक्षणता से हमें मुग्ध और स्तब्ध कर दे। विचित्र।

अजीव। आश्चर्यजनक। (वन्डरफुल)
पुं० १. आश्चर्य। २. विस्मयकारक पदार्थ या घटना। ३. काव्य के नौ रसों में से एक जिसका स्थायी भाव विस्मय है।

अद्भुत-कर्मा (र्मन्)—वि० [ब० स०] आश्चर्यजनक कर्म करनेवाला।

अद्भुतता—स्त्री० [सं० अद्भुत+तल्–टाप्] अद्भुत होने की अवस्था गुण या भाव। अनोखापन। विलक्षणता।

अद्भुतत्व—पुं० [अद्भुत+त्व] अद्भुतता।

अद्भुत-दर्शन—वि० [ब० स०] जो देखने में अद्भुत हो। अनोखा लगनेवाला।

अद्भुत रस—पुं० [कर्म० स०] काव्य के नौ रसों में से एक। दे० 'अद्भुत' ३.।

अद्भुतालय—पुं० [अद्भुत–आलय, प० त०] वह स्थान जहाँ अद्भुत वस्तुओं का संग्रह हो। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—स्त्री० [अद्भुत-उपमा कर्म० स०] उपमा अलंकार का वह भेद जिसमें उपमान के ऐसे गुणों का उल्लेख होता है जिनका होना उपमेय में कभी संभव न हो।

अद्य—क्रि० वि० [सं० इदम् शब्द के सप्तम्यर्थ में नि० सिद्धि] इस समय। अब।
पुं० १. वह दिन जो वर्तमान हो या बीत रहा हो। आज का दिन। २. वर्तमान समय।

अद्यतन—वि० [सं० अद्य+ट्यु–अन, तुडागम]=अद्यावत्।
पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आगामी आधी रात तक का समय।

अद्य-पूर्व—अव्य० [सं० सुप्सुपा स०] अब या आज से पहले।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं० अद्य–अपि, द्व० स०] १. आज भी। २. अब भी। ३. आज तक। ४. अभी तक।

अद्यावत—क्रि० वि० [सं० अद्य-यावत्] इस समय तक। अब तक।
वि० १. आज के दिन का। आज से संबंध रखनेवाला। २. आज-कल की उपयोगिता, जानकारी, प्रचलन, रुचि आदि के विचार से जो ठीक या पूरा हो। दिनाप्त। (अप-टू-डेट)

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं० अद्य-अवधि, सुप्सुपा स०] १. इस समय तक। अभी तक। २. आज तक।

अद्यावधिक—वि० [सं० अद्य–अवधि, ब० स०, कप्]=अद्यावत।

अद्यैव—अव्य० [सं० अद्य–एव, द्व० स०] १. आज ही। २. इसी समय। अभी।

अद्रव्य—वि० [सं० न० त०] (पदार्थ) जो द्रव्य न हो, बल्कि उससे भिन्न हो। फलतः अवास्तविक, असत्य या असार।
वि० [सं० न० ब०] (व्यक्ति) जिसके पास धन-सम्पत्ति न हो। गरीब। दरिद्र।

अद्रा*—स्त्री०=आर्द्रा (नक्षत्र)।

अद्रि—पुं० [सं०√अद् (खाना, रक्षा करना आदि)+क्रिन्] १. पर्वत। पहाड़। २. पत्थर। ३. वृक्ष। पेड़। ४. सूर्य। ५. बिजली। ६. बादल। मेघ। ७. एक प्रकार की पुरानी नाप। ८. काव्य में, सात की संख्या का सूचक शब्द।

अद्रि-कन्या—स्त्री० [प० त०] पार्वती।

अद्रि-कर्णी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] अपराजिता का फूल।

अद्रि-कील—पुं० [प० त०] विष्कुंभ नामक पर्वत।

अद्रि-कीला—स्त्री० [ब० स०] पृथ्वी।

अद्रिज—वि० [सं० अद्रि√जन् (उत्पत्ति)+ड] पर्वत से उत्पन्न।
पुं० १. गेरू। २. शिलाजीत।

अद्रिजा—स्त्री० [सं० अद्रिज+टाप्] १. पार्वती। २. गंगा। ३. सिंहली पीपल।

अद्रि-तनया—स्त्री० [प० त०] १. पार्वती। २. गंगा। ३. तेईस वर्णों का एक वृत्त जिसे अश्वललित भी कहते हैं।

अद्रि-द्रोणी—स्त्री० [प० त०] १. पहाड़ की घाटी। २. नदी का उद्गम।

अद्रि-नंदिनी—स्त्री० [प० त०] पार्वती।

अद्रि-पति—पुं० [प० त०] पर्वतों का राजा, हिमालय।

अद्रि-भिद्—पुं० [सं० अद्रि√भिद् (तोड़ना)+क्विप्] इंद्र का एक नाम।

अद्रि-शृंग—पुं० [प० त०] पहाड़ की चोटी।

अद्रि-सानु—पुं० [प० त०] १. पहाड़ के ऊपर की चौरस भूमि। २ पहाड़ की चोटी।

अद्रि-सार—वि० [ब० स०] पर्वत की तरह अचल, कठोर या दृढ़।
पुं० [प० त०] १. लोहा। २. शिलाजीत।

अद्रि-सुता—स्त्री० [प० त०] पार्वती।

अद्रीश—पुं० [अद्रि–ईश, प० त०] पर्वतों का राजा, हिमालय।

अद्रोह—पुं० [सं० न० त०] द्रोह या द्वेष का अभाव।

अद्रोही (हिन्)—वि० [सं० अद्रोह+इनि] जो किसी से द्रोह या द्वेष न करता हो।

अद्वंद्व—वि० [सं० न० ब०] द्वंद्व (कलह, संघर्ष आदि) से रहित।
पुं० [सं० न० त०] द्वंद्व या विरोध का अभाव।

अद्वय—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके जोड़ या बराबरी का कोई न हो। अद्वितीय। अनुपम। २. विलक्षण। ३. प्रधान। मुख्य।
पुं० [सं० न० त०] द्वैत का अभाव। अद्वैत।
पुं० [सं० न० ब०] १. बुद्ध का एक नाम। २. पर-ब्रह्म।

अद्वय-वादी (दिन्)—वि० [सं० अद्वय√वद् (बोलना)+णिनि] अद्वैतवाद के सिद्धांत माननेवाला। अद्वैतवादी।

अद्वितीय—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके जोड़ या बराबरी का कोई न हो। अनुपम। (यूनीक) २. विलक्षण। ३. प्रधान। मुख्य।
पुं० [सं० न० त०] १. द्वैत का अभाव। अद्वैत। २. [न० ब०] बुद्ध का एक नाम। ३. पर-ब्रह्म।

अद्वेष—वि० [सं० न० ब०] १. द्वेष या वैर न करनेवाला। २. शांत। द्वेष-रहित।
पुं० [सं० न० त०] द्वेष का अभाव।

अद्वेषी (षिन्)—वि० [सं० न० त०] जिसे किसी से द्वेष न हो। द्वेष-रहित।

अद्वेष्टा (ष्टृ)—वि० [सं० न० त०] द्वेष या वैर न करनेवाला। द्वेष-रहित।

अद्वैत—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें द्वैत या भेद का अभाव हो। २. जीव और ब्रह्म या जड़ और चेतन की एकता का सिद्धांत। दे०
पुं० १. ब्रह्म। २. दे० 'अद्वैतवाद'

अद्वैत-वाद—पुं० [प० त०], [वि० अद्वैतवादी] वेदांत का वह सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा को एक माना जाता है और ब्रह्म के सिवा बाकी सब वस्तुओं या तत्त्वों की सत्ता अवास्तविक या असत्य मानी जाती है। (मॉनिज्म)

अद्वैतवादी (दिन्)—पुं० [सं० अद्वैतवाद+इनि] वह जो अद्वैतवाद का सिद्धांत मानता हो अथवा अद्वैतवाद का अनुयायी हो।

अद्वैत-सिद्धि—स्त्री० [प० त०] इस मत या सिद्धांत की सिद्धि कि ब्रह्म ही सब-कुछ है और उससे भिन्न जगत् की सत्ता नहीं है।

अद्वैती (तिन्)—पुं० [सं० अद्वैत+इनि]=अद्वैतवादी।

अद्वैध—वि० [सं० न० ब०] १. जो दो या कई भागों में बँटा न हो। २. जो अलग या वियुक्त न हो। ३. जिसमें असद्भावना न हो। अच्छा। ४. ठीक और साफ। खरा।

अधंतरी—स्त्री० [सं० अधः+अंतरी] मालखंभ की एक प्रकार की कसरत।

अधः (धस्)—अव्य० [सं० अधर+असि, अधादेश] नीचे। तले। उप० अपेक्षित, निम्नतर या निचाई का सूचक एक उपसर्ग। (सब) जैसे—अधोभूमि। (सब-सॉयल)

अधःकाय—पुं० [सं० एकदेशि स०] कमर के नीचे के अंग।

अधःक्रिया—स्त्री० [सं० प० त०] अपमान। तिरस्कार।

अधःपतन—पुं० [सं० स० त०] [भू० कृ० अधःपतित] १. नीचे की ओर गिरना। अवनति। २. दुर्गति। दुर्दशा। ३. क्षय। विनाश।

अधःपतित—भू० कृ० [सं० स० त०] १. जिसका अधःपतन हुआ हो। बहुत नीचे गिरा हुआ। २. दुर्दशा-ग्रस्त।

अधः पात—पुं० [सं० स० त०]=अधः पतन।

अधःपुष्पी—स्त्री० [सं० ब० स०] १. नीले फूलोंवाली एक जड़ी। २. अनंतमूल नामक ओषधि।

अधःशयन—पुं० [सं० स० त०] भूमि पर या नीचे सोना।

अधःस्वस्तिक—पुं० [सं० मध्य० स०] वह कल्पित बिंदु जो देखनेवालों के पैरों के ठीक नीचे माना जाता है। अधोबिंदु। 'ख-स्वस्तिक' का विपर्याय। (नेडर)

अध—वि० [सं० अर्द्ध] 'आधा' का वह संक्षिप्त रूप जो उसे यौगिक पदों के आरंभ में लगाने पर प्राप्त होता है। जैसे—अधखुला, अधमरा। अव्य० नीचे। तल।

अध-कचरा—वि० [हिं० अध=आधा+कचरना] १. आधा कूटा या पीसा हुआ। दरदरा। २. ज्ञान, योग्यता आदि के विचार से अधूरा या अपूर्ण। ३. अकुशल।

अध-कच्छा—पुं० [सं० अर्द्धकच्छ] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होती हुई नदी की सतह तक चली गई हो।

अध-कछार—पुं० [सं० अर्द्धकच्छ] पहाड़ की तराई की ढालुई भूमि।

अधकट—वि० [हिं० आधा+कटना] १. आधा कटा हुआ। २. जो साधारण या नियत दूरी या विस्तार से आधे मान का ही हो।

अध-कपारी—स्त्री० [सं० अर्द्ध=आधा+कपाल=सिर] आधे सिर का दर्द। आधा-सीसी नामक रोग। सूर्यावर्त्त।

अधकिरी—स्त्री० [सं० अर्द्ध-कर] मालगुजारी, महसूल या किराये की आधी किस्त।

अधकहा—वि० [हिं० अध+कहना] १. (कथन) जो आधा ही कहा गया हो। २. (बात) जिसका पूरा और स्पष्ट उच्चारण न हुआ हो।

अधखिला—वि० [हिं० अध+खिलना] (फूल) जो आधा ही खिला हो। पूरा न खिला हो। अर्द्ध-विकसित।

अधखुला—वि० [हिं० अध+खुलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। अर्वोन्मीलित। उदा०—चले अधखुले द्वार लौं, खुली अधखुली पीठि।—पद्माकर।

अधगति*—स्त्री०=अधोगति।

अध-गो—पुं० [सं० अधः=नीचे+गो=इंद्रिय] १. नीचे की इंद्रियाँ। जैसे—जननेन्द्रिय, मल-द्वार। २. मलद्वार से निकलनेवाली वायु। पाद।

अधगोरा—पुं० [हिं० अध+गोरा] [स्त्री० अधगोरी] वह व्यक्ति जो गोरे (अर्थात् योरोपीय) और काले (अर्थात् एशियाई या भारतीय) माता-पिता से उत्पन्न हो। (एंग्लो-इंडियन)

अध-गोहुआँ—पुं० [हिं० अध+सं० गोधूम] आधे गेहूँ और आधे जौ का मिश्रण। गोजई।

अध-घट*—वि० [हिं० अध=आधा+घटना=पूरा उतरना] १. जो पूरा न घटे। अधूरा। २. अटपट।

अध-चना†—पुं० [हिं० अध+चना] गेहूँ और चने का मिश्रित रूप।

अधचरा—वि० [हिं० अध+चरना] आधा चरा या खाया हुआ। जैसे—अध-चरा खेत।

अध-जर*—वि०=अध-जला।

अध-जल—वि० [हिं० अध+सं० जल] (बरतन) जो पानी से आधा ही भरा हो। जैसे—अध-जल गगरी छलकत जाय।—कहा०।

अध-जला—वि० [हिं० अध+जलना] जो अभी आधा ही जला हो। जो पूरी तरह से भस्म न हुआ हो।

अधड़ा—वि० [हिं० अध+ड़ा (प्रत्य०) या सं० अधर] [स्त्री० अधड़ी] १. जो अधर में या बिना किसी आधार के हो।
वि० [सं० अ+हिं० धड़] १. जिसका सिर-पैर न हो। २. असंबद्ध। ऊट-पटाँग।

अधन*—वि० [सं० अ+धन] निर्धन। धनहीन।

अधनियाँ—वि० [हिं० अध+आना+इया (प्रत्य०)] आधे आने का। जैसे—अधनियाँ टिकट (डाक का)।

अधन्ना—पुं० [हिं० अध+आना] आधे आने का ताँबे का पुराना सिक्का।

अधन्नी—स्त्री० [हिं० अधन्ना] आधे आने का निकिल धातु का छोटा चौकोर सिक्का।

अधन्य—वि० [सं० न० त०] १. जो धन्य न हो। २. अभागा। ३. निंदनीय। ४. जो धान्यादि से रहित हो।

अध-पई—स्त्री० [हिं० अध+सं०-पाद=चौथाई] आधा पाव का बटखरा या बाट।

अध-पका—वि० [हिं० अध+पकना] (फल या खाद्य पदार्थ) जो अभी आधा ही पका हो पूरी तरह से न पका हो। जैसे—अधपका आम, अधपका चावल आदि।

अध-फर*—पुं० [सं० अर्द्ध=आधा+फलक=तख्ता] १. आकाश और पृथ्वी के बीच का स्थान। अंतरिक्ष। अधर।

अध-बर*— पुं० [सं० अर्द्ध=आधा+बल=आधार] १. आधा रास्ता। २. बीच। मध्य। ३. अंतरिक्ष। उदा०—तुलसी अध-बर के भये ज्यों बघूर के पान।—तुलसी।

अध-बीच—पुं० [हिं० अध+बीच] १. किसी विस्तार का मध्य भाग या उसमें होने की अवस्था या भाव। २. मँझधार।

अध-बुध*—वि० [सं० अर्द्ध-बुध=बुद्धिमान्] १. जिसकी बुद्धि अभी आधी ही विकसित हुई हो। २. अर्द्ध-शिक्षित। अधकचरा।

अध-बैसू*—वि० [सं० अर्द्ध-वयस्=उम्र] जिसने अपने जीवन का आधा ही वयस पार किया हो। अधेड़।

अधम—वि० [सं० अव् (रक्षा आदि)+अम, ध आदेश] [भाव० अधमता] [स्त्री० अधमा] १. बिलकुल निकृष्ट या निम्न कोटि का। गया-बीता और बहुत बुरा। २. बहुत बड़ा दुराचारी, दुष्ट या पापी। ३. नीच।

पुं० ग्रहों का एक अनिष्टकारक योग। (ज्योतिष)

अधमई*—स्त्री०=अधमता।

अधमता—स्त्री० [सं० अधम+तल्-टाप्] अधम होने की अवस्था, गुण या भाव। नीचता।

अधम-रति—स्त्री० [सं० कर्म० स०] ऐसी रति या प्रीति जो विशुद्ध स्वार्थ की दृष्टि से की जाय।

अध-मरा—वि० [हिं० अध+मरना] जिसके प्राण निकल रहे हों, पर पूरी तरह से न निकले हों। अध मरा हुआ। मृतप्राय। जैसे—किसी को मारते-मारते अधमरा कर देना।

अधमर्ण—पुं० [सं० अधम–ऋण, ब० स०] वह जिसने किसी से ऋण लिया हो। कर्जदार।

अधमांग—पुं० [सं० अधम–अंग, कर्म० स०] १. शरीर का निचला भाग या नीचेवाला अंग। २. पाँव । पैर।

अधमा—वि० स्त्री० [सं० अधम+टाप्] अधम स्वभाव या आचरणवाली। दुष्ट प्रकृति की। जैसे—अधमा दूती, अधमा नायिका। (देखें) स्त्री० कर्कशा स्त्री।

अधमाई—स्त्री०=अधमता।

अधमा दूती—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] साहित्य में वह दूती जो कटु बातें कहकर या ताने देकर संदेश सुनावे।

अधमाधम—वि० [सं० अधम–अधम, स० त०] अधमों में भी परम अधम। महानीच।

अधमा नायिका—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] साहित्य में वह नायिका जो सज्जन नायक के साथ भी दुर्व्यवहार करती हो।

अधमारा—वि० [हिं० अध+मारना] जो आधा ही मारा गया हो। जो पूरी तरह से मार न डाला गया हो।

अधमार्द्ध—पुं० [सं० अधम–अर्द्ध, कर्म० स०] नाभि के नीचे का आधा भाग।

अध-मुआ—वि०=अध-मरा।

अध-मुख—क्रि० वि० [सं० अधोमुख] १. नीचे की ओर मुँह किए हुए। २. मुँह के बल। औंधे।

वि० उलटा। औंधा।

अधमोद्धारक—वि० [सं० अधम–उद्धारक, ष० त०] अधमों या पापियों का उद्धार करनेवाला।

अध-रंगा—पुं० [हिं० अध+सं० रंग] एक प्रकार का फूल।

अधर—वि० [हिं० अ+धृ=धारना] १. जिसे धरा या पकड़ा न जा सके। २. जिसे किसी ने धारण न किया हो। ३. जो किसी आधार पर न हो। जिसके नीचे आधार या आश्रय न हो। बिना आधार का। पु० आकाश और पृथ्वी के बीच का वह अंश जिसमें टिकने या ठहरने के लिए कोई आधार या आश्रय नहीं होता। अंतरिक्ष।

मुहा०—अधर में चलना=बहुत अधिक इतराना या इठलाना। **अधर में झूलना, पड़ना या लटकना**=अनिश्चय और प्रतीक्षा की अवस्था में रहना।

वि० [सं०√धृ (धरना)+अच्, न० ब०] १. जिसका निचले भाग से संबंध हो। नीचे का। २. जो नीचे झुका हो या जिसका झुकाव नीचे की ओर हो। ३. तुच्छ या हल्का। ४. दुष्ट। नीच।

पु० [सं० न० त०] १. नीचे का होंठ। २. होंठ (ऊपर या नीचे का)।

मुहा०—अधर चबाना=क्रोध के कारण होंठों को दाँतों से चबाना। (बहुत अधिक क्रोध प्रकट करने का लक्षण।)

३. योनि के दोनों पार्श्व। ४. पाताल। ५. शरीर का निचला भाग। ६. दक्षिण दिशा।

अधरज—पु० [सं० अधर-रज] १ होंठों की ललाई या सुर्खी। २. होंठों पर की पान या मिस्सी की धड़ी।

अधर-पान—पुं० [ष० त०] प्रिय के होंठ प्रेमपूर्वक अच्छी तरह चूमना और उनका रस लेना।

अधर-बिंब—पुं० [उपमि० स०] कुंदरू के पके फल की तरह के लाल होंठ।

अधरम*—पुं०=अधर्म।

अधरमकाय*—पुं० दे० 'अधर्मास्तिकाय'।

अधर-रस—पुं० [ष० त०] अधरों का रस जो प्रिय के होंठ चूमने पर प्राप्त होता है।

अधर-स्वस्तिक—पु० [कर्म० स०] दे० 'अधोबिंदु'।

अधरांग—पुं० [सं० अधर–अंग, कर्म० स०] कमर से नीचे के अंग या भाग।

अधरांग-घात—पुं० [स० त०] एक प्रकार का रोग जिसमें कमर से नीचे के अंग बिलकुल सुन्न और बे-काम हो जाते हैं। (पैराप्लेजिया)

अधरात—स्त्री० [हिं० आधी+रात] संध्या और सवेरे का मध्य भाग। आधी रात।

अधराधर—पुं० [अधर-अधर कर्म० स०] नीचे का होंठ।

अधरामृत—पुं० [अधर–अमृत ष० त०] अमृत का-सा वह रस या स्वाद जो प्रिया के अधर या होंठ चूमने या चूसने पर प्राप्त होता है।

अधरासव—पुं० [अधर–आसव, ष० त०] अधर-रस जिसका पान आसव या मदिरा के समान आनंददायक होता है।

अधरीण—वि० [सं० अधर+ख–ईन] १. नीच और तिरस्कृत। २. निंदित या निंदनीय।

अधरोत्तर—वि० [अधर–उत्तर, द्व० स०] १. ऊँचा-नीचा। ऊबड़-खाबड़। २. भला-बुरा। ३. न्यूनाधिक। कम-ज्यादा। थोड़ा-बहुत।

क्रि० वि० ऊँचे-नीचे।

अधरोष्ठ—पुं० [अधर–ओष्ठ, द्व० स०] नीचे और ऊपर के होंठ।

अधर्म—पुं० [सं० न० त०] १. धर्म के सिद्धांतों या धर्म-शास्त्र की आज्ञाओं के विरुद्ध आचरण या कार्य। पातक। पाप। २. निंदनीय और बुरा काम। ३. एक प्रजापति का नाम।

अधर्मास्तिकाय—पुं० [सं० अधर्म–अस्तिकाय, ष० त०] द्रव्य के छः भेदों में से एक जो अरूपी और नित्य माना गया है। (जैन)

अधर्मी (र्मिन्)—पुं० [सं० अधर्म+इनि] १. वह जो अधर्म करता हो। २. वह जो अपने धर्म के विरुद्ध आचरण करता हो। पापी।

अधर्म्य—वि० [सं० धर्म+यत्, न० त०] १. जो धर्म से युक्त न हो। २. जो धर्म की दृष्टि से उपयुक्त या न्याय-संगत न हो। जो धर्म-विरुद्ध हो। ३. अधर्मी। ४. अवैध। ५. अन्यायपूर्ण।

अधर्षणीय—वि० [सं०√धृष् (डाँटना, फटकारना)+अनीयर्, न० त०] १. जिसका धर्षण न किया जा सके। जो डरा-धमका कर डराया न जा सके। २. निडर। निर्भय।

अधवट—वि० [हिं० अध+औटना] (दूध) जो औटा या उबालकर आधा अर्थात् खूब गाढ़ा कर दिया गया हो।

अधवा—स्त्री० [सं० न० ब० टाप्] (स्त्री) जिसका पति न हो अथवा जीवित न हो। पति-रहित।

अधवाना†—पुं० [हिं० हिंदवाना] तरबूज।

अधवारी—स्त्री० [?] एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मकान और खेती-बारी के सामान बनाने के काम आती है।

अधश्चर—वि० [सं० अधस्√चर् (चलना) +ट] नीचे झुककर या रेंगकर चलनेवाला।

पुं० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला चोर। सेंधिया चोर।

अध-सेरा—पुं० [हिं० अध+सेर] आधे सेर का बटखरा।

अधस्तन—वि० [सं० अधस्+ट्यु–अन, तुट्] अधीन या नीचे रहने अथवा होनेवाला। अधीनस्थ। (लोअर) जैसे—अधस्तन न्यायालय।

अधस्तल—पुं० [सं० ष० त०] १. नीचे का तल या तह। २. भूमि के नीचे का कमरा या कोठरी। तहखाना।

अधस्थ—वि० [सं० अधःस्थ] १. किसी के नीचे रहकर काम करनेवाला। (सबॉर्डिनेट) २. किसी नियम या व्यवस्था आदि के अधीन। (अंडर)

अधस्स्वस्तिक—पुं० [सं० ष० त०] दे० 'अधोविंदु'।

अधाँगा—पुं० [सं० अर्द्धांग] खाकी रंग की एक चिड़िया।

अधातु—स्त्री० [सं० न० त०] १. वह जो धातु न हो। २. वह तत्त्व जिसमें धातु के गुण न हों। (नान-मैटल)

अधात्विक—वि० [सं० अधातविक] जो या जिसमें धात्विक तत्त्व न हों। (नान-मैटेलिक)

अधात्वीय—वि० [सं० अधातवीय]=अधात्विक।

अधाधुंध—क्रि० वि०=अंधाधुंध।

अधाना—पुं० [सं० अर्द्ध] संगीत में खयाल का एक भेद।

अधार—पुं०=आधार।

अधारा—वि० [हिं० अ+धार] (शस्त्र) जिसमें धार न हो। बिना धार का। अशित (जैसे—लाठी, छड़ी आदि)।

अधारिया†—पुं० [सं० आधार] बैल गाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का स्थान।

अधारी—स्त्री० [सं० आधार] १. आधार। आश्रय। २. काठ का वह ढाँचा जो साधु लोग बैठने के समय सहारे के लिए बाँह के नीचे रखते हैं। टेवकी। उदा०—ऊधो योग सिखावन आये, शृंगी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए।—सूर। ३. यात्रा के समय सामान रखने का झोला।

पुं [हिं० अ+धारना] वह बैल जो अभी गाड़ी या हल में जोतकर निकाला न गया हो।

अधार्मिक—वि० [सं० न० त०] १. जो धार्मिक न हो। धर्म से संबंध न रखनेवाला। २. पापी। दुराचारी। ३. धर्म-विरुद्ध।

अधावट—वि० =अधवट।

अधि—उप० [सं०√धा (धारण करना)+कि, न० त०] एक संस्कृत उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगाया जाता है और जिसके ये अर्थ होते हैं—(क) ऊपर, ऊँचा; जैसे—अधिराज, अधिकरण। (ख) प्रधान; जैसे—अधिनायक, अधिपति। (ग) अधिक; जैसे—अधिमास। (घ) संबंध में; जैसे—आध्यात्मिक। (च) साधारण अथवा मध्यम से अधिक; जैसे—अधिप्रचार। अब यह कुछ शब्दों के आरम्भ में अधिकार के वाचक और संक्षिप्त रूप की भाँति भी लगने लगा है। जैसे—अधिक्षेत्र=अधिकार क्षेत्र, अधिपत्र=अधिकार पत्र, अधिग्रहण=अधिकार पूर्वक ग्रहण आदि।

स्त्री० १. चिन्ता। २. वह स्त्री जिसका मासिक स्राव चल रहा हो।

अधिक—वि० [सं० अध्यारूढ़+कन्, आरूढ़ का लोप] १. बहुत। विशेष। २. औचित्य, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ। समधिक। (एक्सीडिंग) ३. बचा हुआ। फालतू। ४. असाधारण। ५. बाद का। ६. गौण।

पुं० साहित्य में एक अलंकार जिसमें आधार और आधेय में से किसी एक के बहुत बड़े होने पर भी दोनों का इस प्रकार उल्लेख होता है कि वे एक दूसरे के उपयुक्त और समान ठहरते हैं (एक्सीडिंग) जैसे—उदर उदधि बलि बलित अथाहा। जीव जंतु जहँ कोटि कटाहा। में शंकर का उदर (आधार) है तो छोटा ही, पर उसमें करोड़ों ब्रह्मांडों (आधेय) के होने का उल्लेख है।

अधिक-कोण—पुं० [कर्म० स०] भूमिति में वह कोण जो समकोण से बड़ा हो। (ऑबट्यूज एंगिल)

अधिकतम—वि० [सं० अधिक+तमप्] १. मात्रा, मान, संख्या आदि में सबसे अधिक। २. अधिक से अधिक जितना हो सकता हो। ३. दे० 'महत्तम'। (ग्रेटेस्ट)

अधिकतर—वि० [सं० अधिक+तमप्] १. किसी वस्तु या समूह में का आधे से अधिक (अंश या भाग)। जैसे—अधिकतर लोग उठकर चले गए। २. किसी की तुलना में अधिक। जैसे—उसका रोष अधिक से अधिकतर हो गया।

क्रि० वि० बहुत करके। जैसे—अधिकतर ऐसा ही होता है।

अधिकता—स्त्री० [सं० अधिक+तल्–टाप्] १. अधिक होने की अवस्था, गुण या भाव। बहुतायत। ज्यादती। २. बढ़ती। वृद्धि। ३. विशेषता।

अधिक-तिथि—स्त्री० [सं० कर्म० स०] हिन्दू पंचांग में वह तिथि जो एक दिन में पूरी न होकर दूसरे दिन भी चले और मानी जाय।

अधिक-मास—पुं० [सं० कर्म० स०] हिन्दू पंचांग में हर चौथे वर्ष बढ़नेवाला एक चांद्र मास जो दो संक्रांतियों के बीच में पड़ता है। लौंद का महीना। मल-मास।

अधि-कर—पुं० [सं० प्रा० स०] १. कोई ऐसा कर जो विशिष्ट अवस्था में किसी लगे हुए कर के साथ अतिरिक्त रूप से अथवा और अधिक जोड़ा या लगाया गया हो। (सरचार्ज) २. निश्चित मात्रा से अधिक आय होने पर लगनेवाला अतिरिक्त कर। (सुपरटैक्स) ३. दे० 'अधिशुल्क'।

अधिकरण—पुं० [सं० अधि√कृ (करना)+ल्युट्–अन] १. आधार। २. व्याकरण में क्रिया के आधार का बोधक संज्ञा-रूप जो सातवाँ कारक है। ३. प्रकरण। ४. न्यायालय। ५. किसी विशिष्ट उद्देश्य या कार्य के लिए नियुक्त किया हुआ कोई न्यायालय। (ट्रिब्यूनल) ६. दर्शन में आधार का विषय। ७. मीमांसा और वेदांत के अनुसार वह प्रकरण जिसमें विषय, संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय इन पाँच अवयवों की विवेचना की जाय।

अधिकरण-शुल्क—पुं० [प० त०] किसी न्यायालय में कोई प्रार्थना उपस्थित करते समय स्टाम्प या अंक-पत्रक के रूप में दिया जानेवाला शुल्क या फीस। (कोर्ट फी)

अधिकरण-सिद्धांत—पुं० [प० त०] न्याय शास्त्र में ऐसा सिद्धांत जिसके सिद्ध होने पर कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ आप से आप सिद्ध हो जाते हों।

अधिकरणिक—पुं० [सं० अधिकरण+ठन्–इक] १. न्यायाधीश। फैसला करनेवाला। २. अधिकारी।

अधिकरणी (णिन्)—वि० [सं० अधिकरण+इनि] निरीक्षण करनेवाला। पुं० १. अध्यक्ष। २ मालिक। स्वामी।

अधिकरण्य—पुं० [सं० अधिकरण] १. वह संस्था या समिति जिसे कोई कार्य करने का विशेष रूप से अधिकार प्राप्त हो। (आथॉरिटी)

अधिकर्त (न्)—पुं० [सं० प्रा० स०] १. निरीक्षण। २. [सं० ब० स०] निरीक्षक।

अधिकर्मिक—पुं० [सं० अधिकर्मन्+ठन्–इक] प्राचीन भारत में, व्यापारियों से चुंगी वसूल करनेवाला एक अधिकारी।

अधिकर्मी (र्मिन्)—पुं० [सं० अधिकर्मन्+इनि, टिलोप] कुछ लोगों के ऊपर रहकर उनके कार्यों की देख-भाल करनेवाला अधिकारी। (ओवरसियर)

अधिकांग—पुं० [सं० अधिक–अंग, कर्म० स०] नियत संख्या से विशेष अवयव। अतिरिक्त अंग।

वि० जिसके शरीर में कोई अंग साधारण से अधिक हो।

अधिकांश—पु० [सं० अधिक–अंश, कर्म स०] १. अधिक अंश या भाग। २. किसी वर्ग, समुदाय या समूह का आधे से अधिक या बड़ा अंश या भाग। (मेजॉरिटी) जैसे—खेतिहरों का अधिकांश दरिद्र और ऋण-ग्रस्त है।

क्रि० वि० १. विशेषकर। २. प्रायः।

अधिकाई—स्त्री० [सं० अधिक+हिं० आई (प्रत्य०)] १. अधिकता। ज्यादती। उदा०—लहहिं सकल सोभा अधिकाई।—तुलसी। २. विशेषता। ३. बड़प्पन। बड़ाई। उदा०—उमा न कछु कपि की अधिकाई।—तुलसी।

अधिकाधिक—वि० [सं० अधिक-अधिक पं० त०] अधिक से अधिक। बहुत ज्यादा।

अधिकाना*—अ० [सं० अधिक] अधिक होना। ज्यादा होना। बढ़ना। स० अधिकता उत्पन्न करना। बढ़ाना।

अधिकाभेदरूपक—पुं० [सं० अधिक–अभेद, कर्म० स०, अधिकाभेद–रूपक, प० त०] चंद्रालोक के अनुसार रूपक अलंकार के तीन भेदों में से एक जिसमें उपमान और उपमेय में अभेद बतला चुकने पर भी उपमेय में कुछ विशेषता बतलाई जाती है।

अधिकार—पुं० [सं० अधि√कृ (करना)+घञ्] १. वस्तु, संपत्ति आदि पर होनेवाला ऐसा स्वामित्व जो स्वामी को उस वस्तु या संपत्ति के संबंध में सब कुछ कर सकने में समर्थ बनाता है। आधिपत्य। (पजेशन) २. किसी वस्तु पर उक्त प्रकार का स्वत्व या स्वामित्व जताने की ऐसी क्रिया जिसके साथ उसकी प्राप्ति के प्रयत्न का भी भाव लगा रहता है। अभ्यर्थन। (क्लेम) जैसे—वास्तविक अधिकार। (राइटफुल-क्लेम) ३. वह योग्यता या सामर्थ्य जिसके अनुसार किसी में कोई विशिष्ट कार्य कर सकने का बल आता है। शक्ति। (पावर) जैसे—अब राज्यपाल को और कई नये अधिकार दिये गये हैं। ४. प्रभुत्व। (अथॉरिटी) ५. किसी कार्य, वस्तु या विषय में किसी व्यक्ति का ऐसा पूर्ण ज्ञान जिसके आधार पर उसका कथन या विचार प्रामाणिक या मान्य माना जाता है। पूरी जानकारी। (अथॉरिटी) ६. साहित्य में किसी ग्रंथ का कोई प्रकरण अथवा उसका शीर्षक। ७. नाट्य शास्त्र में किसी रूपक के अंतर्गत नायक या किसी और पात्र की वह विकसित स्थिति जिसमें वह प्रधान फल प्राप्त कर सकने के योग्य होता है। ८. पद। ९. प्रयत्न। १०. स्थान। ११. राज्य। १२. ज्ञान। १३. कर्म विशेष की पात्रता। १४. वह मुख्य नियम जिसका और नियमों पर भी प्रभाव हो। (व्या०)

अधिकार-क्षेत्र—पुं० [प० त०] १. वह या उतना क्षेत्र जिसमें या जितने में किसी विशिष्ट व्यक्ति या सत्ता का अधिकार चलता हो अथवा किसी क्रिया का परिणाम अथवा प्रतिफल होता हो। (डोमिनियन) २. दे० 'अधिक्षेत्र'।

अधिकार-त्याग—पुं० [प० त०] अपना अधिकार छोड़कर अलग हो जाना। (ऐबडिकेशन)

अधिकार-पत्र—पुं० [प० त०] १. वह पत्र जिसमें किसी को कोई काम करने के लिए दिये हुए अधिकार का उल्लेख हो। (आथॉरिटी लेटर) २. विधिक क्षेत्र में, राज्य या शासन की ओर से किसी संस्था या समाज को मिलनेवाले अधिकारों का सूचक पत्र। (बिल ऑफ राइट्स)

अधिकार-विधि—स्त्री० [प० त०] मीमांसा के अनुसार वह विधि जिससे किसी व्यक्ति को कर्म विशेष करने का अधिकार ज्ञात हो।

अधिकार-सीमा—स्त्री० [प० त०] दे० 'अधिकार-क्षेत्र'।

अधिकारा—वि० [सं० अधिक+हिं० आरा (प्रत्य०)] बहुत अधिक या बढ़ा हुआ। उदा०—चढ़े त्रिपुर मारग की सारे। हरि हर सहित देव अधिकारे।—तुलसी।

अधिकारिक—वि०=आधिकारिक।

अधिकारिकी—स्त्री०=आधिकारिकी।

अधिकारिता—स्त्री० [सं० अधिकारिन्+तल्–टाप्] अधिकार या अधिकारी होने की अवस्था, गुण या भाव।

अधिकारि-राज्य—पुं० [सं० प० त०] वह राज्य जिसकी शासन-व्यवस्था

मुख्य रूप से अधिकारियों की परंपरा पर आश्रित हो। (ब्यूरोक्रैसी)

अधिकारी (रिन्)—वि० [सं० अधिकार+इनि] १. अधिकार युक्त। जैसे—अधिकारी तौर पर इस बात का खंडन किया गया है। २. अधिकार-संबंधी। ३. जिसे अधिकार प्राप्त हो। अधिकार रखनेवाला। ४. जिसे कुछ पाने या करने का अधिकार हो। (एंटाइटिल्ड) जैसे—वे इसका निर्णय करने के अधिकारी हैं। ५. जो किसी बात का, औचित्य के विचार से उपयुक्त पात्र हो। जैसे—सम्मान का अधिकारी। ६. जो ठीक अवस्था में रहने के लिए किसी बात की अपेक्षा रखता हो। जैसे—ताड़ना का अधिकारी।

पुं० १. मालिक। स्वामी। २. वह व्यक्ति जिसे कोई स्वत्व प्राप्त हो। ३. वह जिसमें किसी विषय या कार्य की विशेष योग्यता या क्षमता हो। ४. वह कर्मचारी जो किसी पद पर रहकर कोई कार्य करता हो। (ऑफिसर) ५. साधारणतः कोई अधिकार प्राप्त व्यक्ति। (अथॉरिटी) ६. नाटक का वह पात्र जिसे प्रधान फल प्राप्त हो। ७. वेदांत का ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति।

अधिकार्थ—पुं० [सं० अधिक–अर्थ, ब० स०] ऐसा वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ में विशेषता आ जाय।

अधिकृत—वि० [सं० अधि√कृ (करना)+क्त] १. अधिकार में आया या किया हुआ। २. जो किसी के अधिकार में हो। ३. जिसको कोई काम करने का अधिकार दिया गया हो। (ऑथराइज्ड) ४. जिसको कोई काम करने का अधिकार हो।

अधिकृत-गणक—पुं० [कर्म० स०] सरकार द्वारा प्रमाणित वह व्यक्ति जो हिसाब-किताब की जाँच इत्यादि का काम भली-भाँति जानता हो। (चार्टर्ड अकाउटेंट)

अधिकृत-लेखपाल—पुं० [कर्म० स०] सरकार द्वारा प्रमाणित वह व्यक्ति जो हिसाब-किताब की जाँच इत्यादि का काम भली भाँति जानता हो। (चार्टर्ड अकाउंटेंट)

अधिकृति—स्त्री० [सं० अधि√कृ (करना)+क्तिन्] १. अधिकृत होने की अवस्था, गुण या भाव। २. अधिकार। स्वत्व।

अधिकोष—पुं० [सं० अधि√कुष् (निचोड़ना)+घञ्] दे० 'बंक'।

अधिकौहाँ—वि० [हिं० अधिक+औहा (प्रत्य०)] बराबर बढ़ता रहनेवाला। जो उत्तरोत्तर बढ़ रहा हो।

अधिक्रम—पुं० [सं० अधि√क्रम् (गति)+घञ्] १. आरोहण। २. चढ़ाई। आक्रमण।

अधिक्रमण—पुं० [सं० अधि√क्रम्+ल्युट–अन] १. अधिक्रम। २. किसी व्यक्ति या संस्था को दबा या हटा देना और उसके अधिकार अपने हाथ में ले लेना या किसी दूसरे को दे देना। (सुपरसेशन)

अधिक्रांत—वि० [सं० अधि√क्रम्+क्त] [भाव० अधिक्रांति] (संस्था या संघ) जिसे वरिष्ठ शक्ति या अधिकार के द्वारा हटा या दबाकर अपने अधिकार में ले लिया गया हो। (सुपरसीडेड) जैसे—अधिक्रांत नगरपालिका।

अधिक्रांति—स्त्री० [सं० अधि√क्रम्+क्तिन्] राज्य शासन आदि का अपनी विशिष्ट शक्ति या अधिकार के द्वारा किसी संस्था या संघ को हटा या दबाकर उसका कार्यभार अपने ऊपर ले लेना या किसी दूसरे को दे देना। (सुपरसेशन)

अधिक्षिप्त—भू० कृ० [सं० अधि√क्षिप् (फेंकना)+क्त] १. फेंका हुआ। २. भेजा हुआ। ३. नियत किया हुआ। ४. अपमानित।

अधि-क्षेत्र—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी के विधिक अधिकार या कार्य का क्षेत्र। (ज्यूरिस्डिक्शन) २. किसी प्रकार के कार्य, व्यवहार, प्रयोग आदि का क्षेत्र। (रेंज)

अधिक्षेप—पुं० [सं० अधि√क्षिप् (फेंकना)+घञ्] १. अलग करना। दूर हटाना। २. फेंकना। ३. तिरस्कार। ४. व्यंग्य।

अधिगंता (तृ)—वि० [सं० अधि√गम् (जाना)+तृच्] १. प्राप्त करनेवाला। २. सीखनेवाला।

अधिगणन—पुं० [सं० अधि√गण् (गिनना)+ल्युट्–अन] १. अच्छी तरह गिनना। २. किसी चीज का अधिक दाम लगाना। ३. किसी चीज या बात को अधिक महत्त्व देना।

अधिगत—भू० कृ० [सं० अधि√गम् (जाना)+क्त] १. हाथ में आया हुआ। प्राप्त। २. जाना हुआ। ज्ञात। ३. पढ़ा हुआ।

अधिगम—पुं० [अधि√गम्+अप्] १. आगे बढ़ना या ऊपर पहुँचना। २. प्राप्त करना। ३. अध्यवसाय आदि के द्वारा अथवा शिक्षा, आदि में कोई योग्यता या विशेषता अर्जित तथा प्राप्त करने की क्रिया। जैसे—विद्या या संपत्ति का अधिगम। ४. इस प्रकार प्राप्त की गई योग्यता, विद्या, सिद्धि आदि। (अटेन्मेंट) ५. विधिक क्षेत्रों में किसी अभियोग या वाद की पूरी सुनवाई हो चुकने पर न्यायालय या न्यायाधीश द्वारा निकाला हुआ निष्कर्ष। (फाइंडिंग) ६. दे० 'अधिग्रहण'।

अधिगमन—पुं० [सं० अधि√गम्+ल्युट्–अन] १. किसी वाक्य की पद-योजना के आधार पर की जानेवाली व्याख्या या व्याकृति। २. अध्ययन। ३. आविष्कार। ४. प्राप्ति।

अधिगम्य—वि० [सं० अधि√गम्+यत्] १. अधिगमन के योग्य। २. जिस तक अधिगम या पहुँच हो सके। ३. जो समझ में आ सके।

अधिगुण—वि० [सं० ब० स०] विशिष्ट गुण से युक्त। सुयोग्य। पुं० [सं० प्रा० स०] विशिष्ट गुण।

अधिगुप्त—वि० [सं० अधि√गुप् (छिपाना, रक्षा करना)+क्त] १. छिपाया हुआ। २. सुरक्षित।

अधिग्रहण—पुं० [सं० अधि√ग्रह् (पकड़ना, लेना)+ल्युट्–अन] अधिकार या अभियाचन द्वारा किसी की संपत्ति आदि लेना। (एक्वीजिशन)

अधिग्राहक—पुं० [सं० अधि√ग्रह्+ण्वुल्–अक] वह व्यक्ति जो किसी वैध उपाय से किसी पर अधिकार करता हो। (एक्वायरर)

अधिचरण—पुं० [सं० अधि√चर् (गति)+ल्युट्–अन] १. किसी के ऊपर या अंदर चलना। २. अपने अधिकार या सीमा से आगे बढ़कर चलना।

अधिज—वि० [सं० अधि√जन् (जन्म लेना)+ड] १. जनमा हुआ। २. उत्तम वंश में उत्पन्न।

अधिजिह्व—पुं० [सं० ब० स०] १. एक से अधिक जीभोंवाला जीव। जैसे—साँप आदि। २. एक रोग जिसमें रक्त से मिले हुए कफ के निकलने के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है।

अधिजिह्वा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] गले का कौआ। पुं०=अधिजिह्व।

अधित्यका—स्त्री० [सं० अधि+त्यकन्–टाप्] पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि। 'उपत्यका' का विपर्याय। (टेबुल लैंड).

अधिदंत—पुं० [सं० अत्या० स०] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दूसरा दाँत।

अधिदर्शक—पुं० [सं० अधि√दृश् (देखना)+णिच्+ण्वुल्–अक] एक प्रकार का यंत्र जिसमें इसलिए एक या अधिक ताल लगे होते हैं कि कोई छोटी चीज या उसके अंग बहुत बड़े दिखाई पड़े। (माइक्रोस्कोप)

अधिदिन—पुं० [सं० प्रा० स०]=अधिक तिथि।

अधिदीधिति—वि० [सं० ब० स०] बहुत अधिक प्रभा या किरणोंवाला।

अधिदेय—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह जो साधारण से अतिरिक्त या अधिक दिया जाने को हो। २. साधारणतः दिये जानेवाले वेतन या वृत्ति से भिन्न वह अतिरिक्त धन जो किसी को उत्साहित करने के लिए किसी काम के बदले में दिया जाय। ३. वह धन जो बीमा करानेवाला उसके बदले में बीमा मंडली को देता है। (प्रीमियम)

अधिदेव—पुं०[सं० प्रा० स०] १. इष्टदेव। २. कुलदेवता।

अधिदैव—वि० [सं० प्रा० स०] दैव योग से होनेवाला। दैविक। दैवी।

अधिदैवत—वि० [सं० प्रा० स०] देवता-संबंधी।
पुं० वह मंत्र या प्रकरण जिसमें अग्नि, वायु आदि देवताओं के नाम-कीर्तन से ब्रह्म विभूति अर्थात् सृष्टि का ज्ञान प्राप्त हो।

अधिधारण—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी वस्तु का बाहरी तत्त्वों, बातों आदि को आत्मसात् करके इस प्रकार धारण करना कि वे बाहर न निकल सकें। (आक्क्लूजन)

अधिनाथ—पुं० [सं० प्रा० स०] १. सब का स्वामी। २. प्रधान अधिकारी।

अधिनायक—पुं० [सं० प्रा० स०] [स्त्री० अधिनायिका] १. सरदार। मुखिया। २. विशेष अवस्थाओं या परिस्थितियों के लिए नियत किया हुआ सर्वप्रधान और पूर्ण अधिकार प्राप्त शासक या अधिकारी। (डिक्टेटर)

अधिनायक तंत्र—पुं० [प० त०] १. अधिनायक के अधीन चलनेवाला शासन प्रबंध। २. वह राज्य जिसके सब काम केवल अधिनायक की आज्ञा से होते हैं।

अधिनायकी—स्त्री० [सं० अधिनायक] अधिनायक का कार्य या पद।
वि० अधिनायक-संबंधी।

अधिनियम—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह नियम जो किसी प्रकार की व्यवस्था या प्रबंध के लिए बना हो। (रेगुलेशन) २. वह महत्त्वपूर्ण नियम जो किसी विधान के अधीन न बना हो, फिर भी उसकी परिभाषा में ही आता हो। (रेगुलेशन) ३. दे० 'विधान'।

अधिनियमन—पुं० [सं० प्रा० स०] अधिनियम या विधान बनाने का काम या भाव।

अधिनिर्णय—पुं० [सं० प्रा० स०] वह निर्णय जो पंच या न्यायाधीश बनकर किया गया हो। (एडजुडिकेशन)

अधिनिर्णयन—पुं० [सं० प्रा० स०, निर्√नी (ले जाना आदि)+ल्युट्–अन] किसी झगड़े या विवाद में पंच या निर्णायक बनकर उसका निर्णय या फैसला करना। (एडजुडिकेशन)

अधिनिष्कासन—पुं० [सं० प्रा० स०] विधि आदि के आधार पर किसी को भूमि, मकान आदि से बाहर निकालना या बेदखल करना। बेदखली। (इविक्शन)

अधिप—पुं० [सं० अधि√पा (रक्षा करना)+क] १. स्वामी। २. नायक। ३. राजा।

अधिपति—पुं० [सं० प्रा० स०] [भाव० आधिपत्य; स्त्री० अधिपत्नी] १. वह जो किसी भूखंड (खेत, मकान, देश आदि) का स्वामी हो। २. जमीन या भू-संपत्ति का मालिक। ३. किसी चीज का मालिक। स्वामी। ४. किसी कार्य, विभाग, विषय आदि का प्रधान अधिकारी। (मास्टर) ५. आजकल, न्यायालय आदि का प्रधान विचारक या कार्याधिकारी। (प्रिसाइडिंग ऑफिसर)

अधिपत्नी—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. स्वामिनी। २. शासिका।

अधिपत्र—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह पत्र जिसके द्वारा किसी को कोई काम करने का अधिकार या आज्ञा दी गई हो। २. किसी को पकड़ने या उसका माल जब्त करने की न्यायालय की लिखित आज्ञा। (वारेण्ट)

अधिपद—पुं० [सं० प्रा० स०] नियमावली, विधान आदि में का कोई स्वतंत्र पद या भाग। (आर्टिकल)

अधिपुरुष—पुं० [सं० प्रा० स०] १. परम पुरुष परमात्मा। २. कारखाने, संस्था आदि का मालिक या सर्वप्रधान अधिकारी। (बॉस)

अधिप्रचार—पुं० [सं० प्रा० स०] वह संघटित प्रयत्न या प्रचार जो किसी सिद्धांत, मत, विचार आदि के पोषण या प्रसार के निमित्त किया जाता है। (प्रोपैगैंडा)

अधिप्रचारक—पु० [सं० प्रा० स०] किसी मत, सिद्धांत या विचारों का संघटित रूप से प्रचार करनेवाला व्यक्ति। (प्रोपैगैंडिस्ट)

अधिप्रज—वि० [सं० ब० स०] बहुत अधिक बच्चे या संतान उत्पन्न करनेवाला (प्राणी)।

अधिबल—पुं० [सं० ब० स०] गर्भसंधि के तेरह भेदों में से एक जिसमें किसी वेश बदले हुए व्यक्ति को देखकर धोखा खाने का उल्लेख या प्रदर्शन होता है।

अधिभार—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी विशिष्ट कार्य के लिए या किसी विशेष परिस्थिति में अलग से अधिक लिया जानेवाला कर या शुल्क। (सरचार्ज)

अधिभू—पुं० [सं० अधि√भू (होना)+क्विप्] १. स्वामी। प्रभु। २. श्रेष्ठ व्यक्ति।

अधिभूत—वि० [सं० सहसुपा स०] भूत-संबंधी।
पुं० १. ब्रह्म। २. ब्रह्म का वह मूल सूक्ष्म रूप जो सभी तत्त्वों या भूतों और प्राणियों में समान रूप से और सर्वत्र व्याप्त है। ३. सभी प्रकार के भौतिक पदार्थ और जीव-जंतु।

अधिभूतिक—वि०=आधिभौतिक।

अधिभोजन—पुं० [सं० प्रा० स०] बहुत अधिक खाना। अतिभोजन।

अधिभौतिक—वि०=आधिभौतिक।

अधिमंथ—पुं० [सं० अधि√मन्थ् (मथना)+घञ्] १. अभिष्यंद नामक नेत्र रोग। २. दे० 'अधिमंथन'।

अधिमंथन—पुं० [सं० अधि√मन्थ्+ल्युट्–अन] यज्ञ-कुंड की अग्नि उत्पन्न करने के लिए अरणी की लकड़ियों को आपस में रगड़ना।

अधि-मत—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी विषय से संबंध रखनेवाला

ऐसा निश्चित मत या सिद्धांत जिसे सब लोग आदर-भाव या पूज्य बुद्धि से मानते हों। (कैनन) जैसे—धार्मिक या नैतिक अधिमत।

अधिमांस—पुं० [सं० ब० स०] एक रोग जिसमें मसूड़े के पृष्ठभाग में या आँख के श्वेत भाग में पीड़ा और सूजन होती है।

अधिमात्र—वि० [सं० ब० स०] उचित मात्रा या मान से अधिक। बहुत ज्यादा।

अधिमान—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० अधिमानिक, भू० कृ० अधिमानित] किसी वस्तु या व्यक्ति का वह आदर या मान जो औरों की अपेक्षा उसे अधिक अच्छा समझकर किया जाता है। किसी को औरों से अच्छा समझकर ग्रहण करना। वरीयता। (प्रिफरेंस)

अधिमानिक—वि० [सं० अधिमान] जिसे या जिसमें (किसी को) अधिमान दिया गया हो। (प्रिफरेन्शल)

अधिमानित—भू० कृ० [सं० अधिमान+इतच्] जो औरों से अच्छा समझकर लिया गया हो। जिसका अधिमान किया गया हो। (प्रिफर्ड)

अधिमान्य—वि० [सं० प्रा० स०] जो अधिमान के योग्य हो। जो औरों से अच्छा होने के कारण ग्रहण किया जा सके। वरीय। (प्रिफरेबुल)

अधिमान्यता—स्त्री० [सं० अधिमान्य+तल्—टाप्]=अधिमान।

अधिमास—पुं० [सं० प्रा० स०] दे० 'अधिकमास'।

अधिमित्र—वि० [सं० सहसुपा स०] ज्योतिष में दो परस्पर मित्र ग्रहों का योग।

अधिमुक्ति—स्त्री० [सं० अधि√मुच् (छोड़ना)+क्तिन्] १. प्रवृत्ति। झुकाव। २. विश्वास।

अधिमुक्तिक—पुं० [सं० ब० स० कप्] महाकाल। (बौद्ध०)

अधिमुद्रण—पुं० [सं० प्रा० स०] १ अधिक छापना। २ किसी ग्रंथ या सामयिक पत्र-पत्रिका में मुद्रित लेख या प्रकरण को किसी कार्य के लिए (केवल वही अंश, लेख या प्रकरण को) छापना। (ऑफ प्रिन्ट)

अधिमूल्य—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी वस्तु का साधारण से अधिक वह मूल्य आदि जो विशेष परिस्थितियों में लिया जाय। २. दे० 'अधिभार'।

अधियज्ञ—वि० [सं० प्रा० ब०] यज्ञ-संबंधी।

पुं० [प्रा० स०] प्रधान यज्ञ।

अधियल—वि० [हिं० आधा] आधी दमड़ी में मिलनेवाला अर्थात् निकम्मा और रद्दी।

अधिया—वि० [सं० अर्द्धिका] आधा।

पुं० १. आधा भाग या हिस्सा। २. गाँव में आधी पट्टी की हिस्सेदारी। ३. खेत जोतने-बोने की वह व्यवस्था जिसके अनुसार उपज का आधा भाग जमीन के मालिक को और आधा जोतने-बोनेवाले को मिलता है।

अधियाचक—वि० [सं० प्रा० स०] अधियाचन करनेवाला।

अधियाचन—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी से कोई चीज अधिकारपूर्वक माँगना। जैसे—सदस्यों द्वारा सभा का अधिवेशन करने के लिए अधियाचन करना। (रिक्विजिशन)

अधियान*—पुं० [सं० अर्धयाया] १. गोमुखी। जपनी। २. छोटी माला। सुमिरनी।

अधियाना—स० [हिं० आधा] आधा करना। दो बराबर हिस्सों में बाँटना।

अ० आधा बच या रह जाना। आधा होना।

अधियार—पुं० [हिं० आधा] [स्त्री० अधियारी] १. किसी संपत्ति का आधा हिस्सा। २. आधे हिस्से का मालिक। ३. वह जमींदार या असामी जो गाँव या जोत में आधे का हिस्सेदार हो।

अधियारिन†—स्त्री० [हिं० आधा+इयारिन (प्रत्य०)] १. आधे हिस्से की हकदार स्त्री। २. सपत्नी। सौत।

अधियारी—स्त्री० [हिं० अधियार] १. किसी अधिकार या संपत्ति में आधी हिस्सेदारी।

अधियुक्त—वि० [सं० अधि√युज (जोड़ना)+क्त] जो वेतन, मजदूरी आदि पर किसी काम में लगा हो। (एम्प्लॉयड)

पुं०=अधियुक्ती।

अधि-युक्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] वेतन, मजदूरी आदि पर या जीविका-निर्वाह के लिए किसी काम में लगे रहने की अवस्था या भाव। काम पर लगा होना। (एम्प्लॉयमेंट)

अधियुक्ती—पुं० [सं० अधियुक्त] वह जो किसी काम पर लगा हो और वेतन या पारिश्रमिक पाता हो। काम पर लगा हुआ। (एम्प्लॉई)

अधियोक्ता—(क्तृ)—पुं० [सं० अधि√युज्+तृच्] वह व्यक्ति जो वेतन या पारिश्रमिक देकर लोगों को अपने कार्यालय या कारखाने आदि में काम पर रखे। (एम्प्लायर)

अधियोग—पुं० [सं० प्रा० स०] यात्रा के लिए ग्रहों का एक शुभ योग।

अधियोजक—पुं० [सं० अधि√युज्+ण्वुल्—अक]=अधियोक्ता।

अधियोजन—पुं० [सं० अधि√युज्+ल्युट्—अन] १. वेतन, मजदूरी देकर किसी को किसी काम पर लगाना या लगवाना। २. वेतन आदि पर किसी काम पर लगा रहना। (एम्प्लॉयमेंट)

अधियोजनालय—पुं० [सं० अधियोजन—आलय, ष० त०] लोगों को काम या नौकरी दिलाने में सहायता करनेवाला दफ्तर। नियोजनालय। (एम्प्लायमेंट ब्यूरो)

अधिरक्षी (क्षित्)—पुं० [सं० प्रा० स०] वह आरक्षी या पुलिस विभाग का कर्मचारी जिसके अधीन कुछ सिपाही रहते हैं। (हेड कांस्टेबुल)

अधिरथ—वि० [सं० अत्या० स०] रथ पर चढ़ा या बैठा हुआ। रथ पर आरूढ़।

पुं० १. वह जो रथ हाँकता हो। सारथी। २. अंग देश का एक राजा जिसने कर्ण को अपने यहाँ रखकर पाला था।

अधिराज—पुं० [सं० प्रा० स० टच्] सम्राट्। बादशाह।

अधिराज्य—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अधिराज या महाराज होने की अवस्था या भाव। २. आजकल, वह बड़ा राज्य जिसके अधीन कुछ और ऐसे राज्य हों, जो उस बड़े राज्य की आज्ञा और शासन में रहते हों। साम्राज्य। ३. ऐसी प्रधान और बड़ी सत्ता जिसके अधीन और छोटी-छोटी सत्ताएँ हों। (सॉवरैनिटी)

अधिराट् (ज्)—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह जो किसी अधिराज्य का प्रधान शासक और स्वामी हो। २. वह जिसकी प्रमुख सत्ता औरों पर अधिष्ठित या विद्यमान हो। (सॉवरेन)

अधिरात*—स्त्री० [हिं० आधी+रात] आधी रात।

अधिरूढ़—वि० [सं० अधि√रुह् (चढ़ना, प्रादुर्भाव)+क्त] १. चढ़ा हुआ। २. बढ़ा हुआ।

अधिरूप—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी चीज या बात का वह रूप जो वास्तविक से बहुत अधिक बढ़ाकर प्रस्तुत किया गया हो।

अधिरूपण—पुं० [सं० अधि√रूप+णिक्+ल्युट्-अन] कृत्रिम उपाय से किसी चीज या बात का वास्तविक से बहुत-कुछ बढ़ा हुआ रूप प्रस्तुत करना। (मैग्निफिकेशन)

अधिरोप—पुं० [सं० अधि√रुह्+णिच्, पुक्+घञ्] किसी पर अपराध का आरोप। अभियोग या दोष लगाया जाना। (चार्ज)

अधिरोपण—पुं० [सं० अधि√रुह्+णिच्, पुक्+ल्युट्-अन] दे० 'अधिरोप'।

अधिरोपित—भू० कृ० [सं० अधि√रुह+णिच्,—पुक्+क्त] १. जिसपर अपराध आदि का अधिरोप हुआ हो। (चार्ज्ड) २. (अपराध) जिसका अधिरोप किया गया हो।

अधिरोह—पुं० [सं० अधि√रुह्+घञ्] १. हाथी, घोड़े आदि पर चढ़ना। २. ऊपर चढ़ना। ३. सीढ़ी।

अधिरोहण—पुं० [सं० अधि√रुह्+ल्युट्-अन] १. ऊपर चढ़ना। २. सवार होना। ३. धनुष पर प्रत्यंचा या चिल्ला चढ़ाना।

अधिरोहणी—स्त्री०=अधिरोहिणी।

अधिरोहिणी—स्त्री० [सं० अधिरोह+इनि, ङीप्] सीढ़ी। जीना।

अधिरोही (हिन्)—वि० [सं० अधिरोह+इनि] अधिरोहण करने या चढ़नेवाला।

अधिलंबन—पुं०[सं०अधि√लंब्+णिच्+ल्युट्-अन] [भू०कृ०अधिलंबित] १. कोई काम, चीज या बात आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ाना। २. जानबूझकर देर लगाने के उद्देश्य से किसी काम या बात में अनावश्यक रूप से अधिक समय लगाना। (प्रोट्रैक्शन)

अधिलाभ—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अतिरिक्त या विशिष्ट रूप से होनेवाला अधिक लाभ। २. उद्योग-धंधों या व्यापार में यथेष्ट लाभ होने पर, उस लाभ का वह अंश जो उसके हिस्सेदारों को उनके लाभांश के अतिरिक्त अथवा कर्मचारियों को वेतन आदि के अतिरिक्त (प्रसन्न या सन्तुष्ट करने के लिए) दिया जाता है। (बोनस)

अधिलाभांश—पुं० [सं० अधिलाभ-अंश, ष० त०] १. अधिलाभ का अंश जो दिया जाय या मिले। २. दे० 'अधिलाभ'।

अधिलोक—पुं० [सं० प्रा० स०] १. संसार। २. ब्रह्माण्ड।

अधिवक्ता (क्तृ)—पुं० [सं० अधि√वच् (बोलना)+तृच्] १. न्यायालय आदि में किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला। वकील। २. वक्ता। ३. अभिभाषक।

अधिवचन—पुं० [सं० अधि√वच्+ल्यट्-अन] १. बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई कोई बात। अत्युक्ति। २. किसी के पक्ष का समर्थन।

अधिवर्ष—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह चांद्र वर्ष जिसमें मलमास पड़ता हो। २. वह ईसवी सन् जिसमें फरवरी २९ दिन का हो। ३. वह सौर वर्ष जिसमें फाल्गुन ३१ दिन का हो। (लीप ईयर)

अधिवसित—भू० कृ० [सं० अध्युषित] आबाद। बसा हुआ।

अधिवाचन—पुं० [सं० अधि√वच्+णिच्+ल्युट्-अन] निर्वाचन। चुनाव।

अधिवास—पुं० [सं० अधि√वस् (बसना)+घञ्] १. रहने का स्थान। २. एक देश से चलकर दूसरे देश में इस प्रकार बस जाना कि उसकी नागरिकता के अधिकार प्राप्त हो जायँ। (डोमिसाइल) ३. सुगंध। ४. चादर या दुपट्टा। ५. विवाह के पहले तेल, हल्दी चढ़ाने की एक रीति। ६. सुगंधित उबटन। ७. दूसरे के घर जाकर रहना। ८. हठ। ९. यज्ञारंभ के पहले देवता का आवाहन, पूजन आदि। १०. लबादा। ११. निवासी। १२. पड़ोसी। १३. ऊपर रहनेवाला।

अधिवासन—पुं० [सं० अधि√वस्+णिच्+ल्युट्-अन] १. सुगंधित करना। २. यज्ञ के आरंभ में देवता का आवाहन-पूजन आदि करना। ३. मूर्ति में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करना। ४. धरना देना।

अधिवासित—भू० कृ० [सं० अधि√वस्+णिच्+क्त] १. सुगंधित किया हुआ। बसाया हुआ। २. (मूर्ति) जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी हो।

अधिवासी (सिन्)—वि० [सं० अधि√वस्+णिनि] १. निवासी। २. दूसरे देश में जाकर बसा हुआ। (डोमिसाइल्ड)

अधिविकर्ष—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी खाते में जितना धन जमा या प्राप्य हो उससे अधिक निकालना, माँगना या लेना। (ओवरड्राफ्ट)

अधिवृद्ध—वि० [सं० प्रा० स०] जो उचित मात्रा या सीमा से अनावश्यक रूप से आगे बढ़ या फैल गया हो। (आउट-ग्रोन)

अधिवृद्धि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] आवश्यक और उचित मात्रा या सीमा से आगे बढ़कर होनेवाली निष्प्रयोजन वृद्धि। (आउट-ग्रोथ)

अधिवेत्ता (त्तृ)—पुं० [सं० अधि√विद्+(लाभ)+तृच्] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला व्यक्ति।

अधिवेद—पुं० [सं० अधि√विद्+घञ्] दे० 'अधिवेदन'।

अधिवेदन—पुं० [सं० अधि√विद्+ल्युट्-अन] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करना।

अधिवेशन—पुं० [सं० अधि√विश् (घुसना, बैठना)+ल्युट्-अन] १. बहुत से लोगों का इकट्ठे होकर बैठना। २. किसी बड़ी सभा या महासभा की लगातार होनेवाली सब बैठकों का सामूहिक नाम। (सेशन) जैसे—राष्ट्रीय महासभा का अगला अधिवेशन कलकत्ते में होगा।

अधिशय—पुं० [सं० अधि√शी (सोना)+अच्] १. पीछे मिलाई या दी जानेवाली वस्तु। २. जोड़। योग। ३. लेटना या सोना।

अधिशयन—पुं० [सं० अधि√शी+ल्युट्-अन] लेटना या सोना।

अधिशयित—वि० [सं० अधि√शी+क्त] १. (किसी चीज पर) सोया या लेटा हुआ। २. लेटने या सोने के काम में आनेवाला।

अधिशस्त—वि०[सं० अधि√शंस् (कहना)+क्त] जिसकी कुख्याति हुई हो। बदनाम।

अधिशिक्षक—पुं० [सं० प्रा० स०] कुछ शिक्षण संस्थाओं में, उसका सर्व-प्रधान अधिकारी या मुख्य अधिष्ठाता। (रेक्टर)

अधिशुल्क—पुं० [सं० प्रा० स०] विशेष परिस्थिति में लिया जानेवाला अतिरिक्त शुल्क।

अधिशोषण—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अधिशोषित] घन पदार्थों का बाहरी गैसों या वातों को इतना अधिक सोख लेना कि उनके तलों पर उन गैसों के कण दानों के रूप में जम जाएँ।

अधिश्रय—पुं० [सं० अधि√श्रि (सेवा)+अच्] १. आधार। २. पात्र। ३. (चूल्हे आदि पर) चढ़ाने की क्रिया या भाव।

अधिश्रयण—पुं० [सं० अधि√श्रि+ल्युट्—अन] १. आग पर चढ़ाना या रखना। २. अँगीठी या चूल्हा।

अधिश्राम—पुं० [सं० अधि√श्रम्+घञ्] नियमित रूप से सबको (कुछ विशिष्ट अवसरों पर) मिलनेवाली ऐसी लंबी छुट्टी जिसमें सब काम बंद रहते हैं। (वैकेशन्) जैसे—गरमी के दिनों में न्यायालयों में एक महीने का (अथवा विद्यालयों में दो महीनों का) अधिश्राम होता है।

अधिश्रावक—पुं० [सं० अधि√श्रु (सुनना) +णिच्+ण्वुल्—अक] एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से साधारण या सूक्ष्म शब्द भी अधिक जोर से और दूर तक सुनाई पड़ते हैं। (माइक्रोफोन)

अधिश्रित—भू० कृ० [सं० अधि√श्रि+क्त] १. आग पर चढ़ाया या रखा हुआ। २. किसी पर चढ़ा हुआ। आरूढ़।

अधिष्ठाता (तृ)—पुं० [सं० अधि√स्था (ठहरना)+तृच्] १. किसी कार्य की देख-भाल करनेवाला व्यक्ति। २. मुखिया। ३. अध्यक्ष। मालिक। स्वामी। ४. ईश्वर।

अधिष्ठान—पुं० [सं० अधि√स्था+ल्युट्—अन] १. वास-स्थान। रहने का स्थान। २. नगर। ३. पड़ाव। ४. वह वस्तु जो किसी आरोपित तत्त्व या धर्म का आधार हो। जैसे—यदि रज्जु में सर्प का या सीपी में चाँदी का आरोप या भ्रम हो तो रज्ज या सीपी अधिष्ठान मानी जायगी। ५. संस्था। ६. किसी संस्था के अधिकारियों और कार्य-कर्त्ताओं का वर्ग या समूह। (एस्टैब्लिशमेन्ट) ७. शासन और उसके नियम, व्यवस्था आदि। ८. किसी वस्तु में स्वामित्व आदि का अधिकार प्राप्त होना अथवा ऐसा अधिकार किसी को दिया जाना। (वेस्टिंग) ९. लाभ के लिए व्यापार आदि में धन लगाना। (इन्वेस्टमेन्ट) १० गच, जिसपर खंभा या पाया आदि बनाया जाय। (वास्तु) ११. सांख्य में, भोक्ता और भोग (आत्मा, देह, इन्द्रिय-विषय) का संयोग।

अधिष्ठान-शरीर—पुं० [ष० त०] वह सूक्ष्म शरीर जो मरण के उपरांत जीव को मिलता है। प्रेत शरीर।

अधिष्ठापक—पुं० [सं० अधि√स्था+ण्वुल—अक, पुक्] १. वह जो शासन, व्यवस्था या प्रबंध करता हो। २. दे० 'अधिष्ठता'।

अधिष्ठित—भू० कृ० [सं० अधि√स्था+क्त] १. ठहरा हुआ। स्थित। २. स्थापित। ३. अधिकृत। ४. नियोजित। ५. (अधिकार या स्वत्व) जो किसी में स्थापित हो या किया गया हो। ६. (पूँजी या धन) जो व्यापार, संपत्ति आदि में लगा या लगाया गया हो। (वेस्टेड, अंतिम दोनों अर्थों के लिए)

अधिष्ठित-स्वार्थ—पुं० [सं० कर्म० स०] वह स्वार्थ जो कहीं धन व्यय करके या व्यापार आदि में लगाकर स्थापित किया जाय। (वेस्टेड इन्टरेस्ट)

अधिसंख्य—वि० [सं० प्रा० ब०] जो उचित, नियत, प्रख्यापित या विहित संख्या से अधिक और अतिरिक्त हो। (सुपर-न्यूमरेरी) जैसे—(क) हाथ की छठी उँगली अधिसंख्य होती है। (ख) शिक्षाविभाग में आजकल ३०० अधिसंख्य अधिकारी लगे हुए हैं।

अधिसूचन—पुं० [सं० अधि√सूच् (जताना) +णिच्+ल्युट्—अन] लेख, विज्ञापन आदि के द्वारा किसी काम या बात की ओर विशिष्ट रूप से लोगों का ध्यान आकृष्ट करना। विशेष रूप से सूचना देना। (नोटिफिकेशन)

अधिसूचना—स्त्री० [सं० अधि√सूच्+णिच्+युच्—अन—टाप्] किसी बात की ओर विशिष्ट रूप से ध्यान आकृष्ट करने के लिए किसी को दी जानेवाली सूचना। (नोटिफिकेशन)

अधिस्वर—पुं० [सं० प्रा० स०] बहुत अधिक या ऊँचा स्वर उत्पन्न करने की क्रिया या भाव। (ओवरटोन)

अधीक्षक—पुं० [सं० अधि√ईक्ष् (देखना)+ण्वुल्—अक] किसी कार्यालय या विभाग का वह प्रधान अधिकारी जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की निगरानी करे। (सुपरिंटेंडेंट)

अधीक्षण—पुं० [सं० अधि√ईक्ष्+ल्युट्-अन] अधीनस्थ कर्मचारियों के काम-काज की देख-भाल करना। (सुपरिंटेंडेंस)

अधीत—भू० कृ० [सं० अधि√इ (पढ़ना) +क्त] (ग्रन्थ, लेख या विषय) जिसका अध्ययन किया गया हो। जो अच्छी तरह पढ़ा हुआ हो।

अधीति—स्त्री० [सं० अधि√इ+क्तिन्] अध्ययन। पठन। पढ़ना।

अधीती (तिन्)—वि० [सं० अधीत+इनि] (वह) जिसने अच्छी तरह किसी विद्या या विषय का अध्ययन किया हो।

अधीन—वि० [सं० अधि—इन, अत्या० स०] १. जो किसी के अधिकार, शासन या वश में हो। वशीभूत। २. जिसे किसी बड़े अधिकारी की आज्ञा, आदेश, समादेश आदि के अनुसार चलना पड़ता हो। आज्ञाकारी। ३. जो किसी नियम, विधि आदि में बँधा या जकड़ा हो। विवश। ४. किसी पर अवलंबित या आश्रित।

पुं० दास। सेवक।

अधीन-अधिकारी—पुं० [सं० कर्म० स०] बड़े या मुख्य अधिकारी की अधीनता में काम करनेवाला अफसर। मातहत अफसर। (सबॉरडिनेट आफिसर)

अधीनता—स्त्री० [सं० अधीन+तल्—टाप्] १. किसी के अधीन या वश में होने की अवस्था, भाव या स्थिति। परवशता। २. विवशता। ३. दीनता।

अधीनना*—स० [सं० अधीन+हिं० ना (प्रत्य०)] अपने अधीन करना। अ० किसी के अधीन होना।

अधीनस्थ—वि० [सं० अधीन√स्था+क] जो किसी की अधीनता में हो। किसी के अधीन या नीचे रहनेवाला। (सबॉरडिनेट)

अधीनस्थ-न्यायालय—पुं० [सं० कर्म० स०] उच्च न्यायालय की दृष्टि से उससे छोटा और उसके अधीन रहनेवाला न्यायालय। (सबॉरडिनेट कोर्ट)

अधीनी—स्त्री०=अधीनता।

अधीनीकरण—पुं० [सं० अधीन+च्वि√कृ (करना) +ल्युट्—अन, ईत्व] किसी को अपने अधीन करना। अधिकार या वश में लाना। (सबजुगेशन)

अधीर—वि० [सं० न० त०] १. जो धीर या शांत न हो। अस्थिर चित्त। २. जिसका धैर्य छूट गया हो या न रह गया हो।

अधीरा—स्त्री० [सं० न० त०] १. वह नायिका जो नायक में नारी-विलास सूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे। २. बिजली।

अधीश—पुं० [सं० अधि—ईश, प्रा० स०] १. मालिक। स्वामी। २. राजा।

अधीश्वर—पुं० [सं० अधि–ईश्वर, प्रा० स०] [स्त्री० अधीश्वरी] दे० 'अधीश'।

अधीस*—पुं०=अधीश।

अधुना—क्रि० वि० [सं० इदम्+धुना, अ आदेश नि०] वर्तमान समय में। आजकल।

अधुनातन—वि० [सं० अधुना+ट्यु, अन, तुट्] आजकल का। आधुनिक।

अधुर—वि० [सं० न० ब० अच्] १. जिसपर कोई भार न हो। २. चिंता से रहित।

अधूत—वि० [सं०√धू (काँपना)+क्त, न० त०] १. जो हिलता-डुलता न हो। अकंपित। २. निर्भय। ३. ढीठ।

अधूरा—वि० [हिं० 'आधा' से 'पूरा' के अनु० पर] [स्त्री० अधूरी] १. जो अभी आधा या आंशिक रूप में ही हुआ हो। जो पूरा न बना हो। अपूर्ण। (इन्कम्प्लीट) २. जिसमें किसी अंग या बात की कमी हो। अपरिपूर्ण। (इम्परफेक्ट) ३. खंडित। ४. असमाप्त। ५. अस्पष्ट।

अधृत—भू० कृ० [सं० न० त०] [भाव० अधृति] १. जिसे धारण न किया गया हो। २. जो पकड़ में न आया हो। ३. जो नियंत्रण या वश में न आया हो।

अधेड़—वि० [सं० अर्द्ध+हिं० ऐर (प्रत्य०)] जिसकी जवानी ढल रही हो। जवानी और बुढ़ापे के बीच की अवस्थावाला।

अधेनु—स्त्री० [सं० न० त०] वह गौ जो दूध न दे रही हो। ठाँठ गाय।

अधेला—पुं० [हिं० अध+एला (प्रत्य०)] एक पैसे के आधे मूल्य का सिक्का। आधा पैसा।

अधेली†—स्त्री०=अठन्नी।

अधैर्य—पुं० [सं० न० त०] १. धैर्य न होने की अवस्था या भाव। २. उतावलापन।

अधो—अव्य०=अधः।

अधोक्षज—पुं० [सं० अक्ष√जन् (उत्पन्न होना)+ड, अक्षज=प्रत्यक्ष ज्ञान, अधः अक्षज, ब० स०] १. विष्णु का एक नाम। २. कृष्ण।

अधोगति—स्त्री० [सं० अधस्–गति, स० त०] १. नीचे जाना। २. महत्त्व, मान, प्रतिष्ठा आदि न रह जाने की स्थिति या भाव। ३. अवनति या पतन होना। ४. दुर्दशा या दुर्गति होना। ५. मृत्यु। ६. नरक में जाना।

अधोगमन—पुं० [सं० अधस्–गमन, स० त०]=अधोगति।

अधोगामी (मिन्)—वि० [सं० अधस्–√गम् (जाना)+णिनि] १. नीचे जानेवाला। २. जिसकी अवनति या पतन हो रहा हो।

अधोछज—पुं० दे० 'अधोक्षज'।

अधोतर—पुं० [सं० अधस्–उत्तर] दोहरी बुनावट का एक प्रकार का देशी कपड़ा।

अधोदेश—पुं० [सं० अधस्–देश, कर्म० स०] १. निम्न या निम्नतर स्थान। २. नीचे का भाग।

अधोद्वार—पुं० [सं० अधस्–द्वार, कर्म० स०] गुदा। मल-द्वार।

अधोभुवन—पुं० [सं० अधस्–भुवन, मध्य० स०] १. पाताल। २. नीचे का लोक।

अधोभूमि—स्त्री० [सं० अधस्–भूमि, मध्य० स०] १. नीची भूमि। २. पर्वत के नीचे की भूमि। ३. भूमि या जमीन के ऊपरी स्तर के नीचेवाला स्तर या भाग। (सब–सॉयल)

अधोमंडल—पुं० [सं० अधस् मंडल, कर्म० स०] पृथ्वी से साढ़े सात मील तक ऊँचा वायुमंडल। (बादल, बिजली, आँधी आदि इसी में होती है)

अधोमार्ग—पुं० [सं० अधस्–मार्ग, कर्म० स०] १. नीचे का रास्ता। २. सुरंग का मार्ग। ३. मल त्याग करने की इंद्रिय। गुदा।

अधोमुख—वि० [सं० अधस् मुख, ब० स०] १. लज्जा, संकोच आदि के कारण जिसका मुँह नीचे झुका हो। २. औंधा। उलटा।

क्रि० वि० मुँह के बल। मुँह लटकाये हुए। उदा०—अधोमुख रहति, उरध नहिं चितवति, सोचन जाति मरी।—सूर।

अधोमूल—वि० [सं० अधस्–मूल, ब० स०] जिसकी जड़ या मूल नीचे हो।

अधोरध—क्रि० वि० सं० [अधऊर्ध्व] नीचे–ऊपर।

अधोरेखन—पुं० [सं० अधोलेखन, स० त० 'ल' को 'र'] [भू० कृ० अधोरेखित] लेख आदि में किसी महत्त्वपूर्ण शब्द, पद या वाक्य के नीचे रेखा खींचना। (अण्डरलाइनिंग)

अधोरेखा—स्त्री० [सं० अधस्–रेखा, मध्य० स०] किसी शब्द या वाक्य के नीचे खींची जानेवाली रेखा, जो उस शब्द या वाक्य की ओर पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती है। (अण्डरलाइन)

अधोर्द्ध—क्रि० वि० [सं० अधस्–ऊर्ध्व, द्व० स०] नीचे-ऊपर। तले-ऊपर।

अधोलंब—पुं० [सं० अधस्–लंब, मध्य० स०] १. वह सीधी रेखा जो किसी दूसरी सीधी रेखा पर इस प्रकार गिरे कि उसके पार्श्ववर्ती दोनों कोण बराबर या समकोण हों। लंब। २. कारीगरों के काम में आने-वाला सूत में बँधा हुआ एक प्रकार का लोहे या पत्थर का गोला। साहुल।

अधोलोक—पुं० [सं० अधस्–लोक, मध्य० स०] १. नीचे की ओर का लोक। २. पाताल।

अधोवर्त्ती (र्तिन्)—वि० [सं० अधस्√वृत् (बरतना)+णिनि] १. नीचे की ओर रहने या होनेवाला। २. निम्नकोटि का। हलका। (इन्फीरियर)

अधोवस्त्र—पुं० [सं० अधस्–वस्त्र, कर्म० स०] धोती, लुंगी आदि वस्त्र जो कमर में पहने जाते हैं।

अधोवायु—पुं० [सं० अधस्–वायु, मध्य० स०] अपान वायु। पाद।

अधोविंदु—पुं० [सं० अधस्–बिन्दु, कर्म० स०] दे० 'अधः स्वस्तिक'।

अधोही—स्त्री० [हिं० आधा+ओही (प्रत्य०)] मरे हुए जानवर की खाल का वह आधा हिस्सा जो लाश ढोनेवाले चमारों को मिलता है।

अधौड़ी—स्त्री० [हिं० आधा+औड़ी (प्रत्य०)] १. पूरे चमड़े का सिझाया हुआ आधा टुकड़ा। २. मोटा चमड़ा।

स्त्री० [सं० अधोर्द्ध] १. शरीर का नीचेवाला आधा अंग। २. उदर। पेट।

मुहा०—**अधौड़ी तनना**=अच्छी तरह पेट भर जाना। **अधौड़ी तानना**=खूब पेट भर कर खाना।

अधौन—वि० [हिं० आधा+ऊन] किसी वस्तु का आधा अंश या भाग।

उदा०—सेर को दूध अवौन को पानी। घमर-घमर फिरे मथानी।—कहा०।

अवौरी—स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक प्रकार का वृक्ष। वकली। धौरा।

अध्मान—पुं० [सं० न० व०] पेट का अफरना या फूलना।

अध्यक्ष—पुं० [सं० अधि—अक्ष, अत्या० स०] १. स्वामी। मालिक। २. किसी संघ, संस्था, समिति आदि का वह प्रधान व्यक्ति जो निश्चित अवधि तक कार्य-संचालन के लिए उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित होता है। (प्रेज़ीडेण्ट) ३. दे० 'राष्ट्रपति'।

अध्यक्षता—स्त्री० [सं० अध्यक्ष+तल्—टाप्] १. अध्यक्ष होने की अवस्था या भाव। २. अध्यक्ष का आसन या पद।

अध्यक्षर—क्रि० वि० [सं० अधि—अक्षर, अव्य० स०] अक्षरशः। अक्षर-अक्षर।

पुं० ओम् मंत्र या शब्द।

अध्यच्छ*—पुं०=अध्यक्ष।

अध्ययन—पुं० [सं० अधि√इ (पढ़ना)+ल्युट्—अन] १. पढ़ने की क्रिया या भाव। पठन। पढ़ाई। (रीडिंग) २. किसी विषय के सब अंगों या गूढ़ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे देखना, समझना तथा पढ़ना। पठन-पाठन। पढ़ाई। (स्टडी) जैसे—दर्शन या विज्ञान का अध्ययन। ३. किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी विषय की सब बातों पर विचार करना। जैसे—समाज की आर्थिक स्थिति का अध्ययन।

अध्ययनावकाश—पुं० [सं० अध्ययन—अवकाश, च० त०] किसी विषय का विशेष रूप से अध्ययन करने के लिए किसी कर्मचारी या अधिकारी को मिलनेवाली छुट्टी। (स्टडी लीव)

अध्ययनीय—वि० [सं० अधि√इ+अनीयर्] १. (विषय) जो अध्ययन किये जाने के योग्य हो। २. जिसका अध्ययन होने को हो।

अध्यर्य—पुं० [सं० अधि—अर्थ, अत्या० स०] वह वस्तु जिसपर अधिकार जतलाया जाय। (क्लेम)

अध्यर्थन—पुं० [सं० अधि√अर्थ (माँगना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अध्यर्थित] अपने अधिकार या प्राप्य वस्तु से रहित या वंचित होने पर उसके संबंध में ऐसे व्यक्ति के सामने अपनी माँग रखना जो वह अधिकार या वस्तु दे अथवा दिला सकता हो। दावा। (क्लेम)

अध्यर्थित—भू० कृ० [सं० अधि√अर्थ+क्त] (अधिकार या वस्तु) जिसके संबंध में अध्यर्थन उपस्थित किया गया हो।

अध्यर्ध—वि० [सं० अधि अर्ध ब० स०] पूरा एक और उसका आधा।

पुं० वायु।

अध्यवसाय—पुं० [सं० अधि—अव√सो (अंत करना)+घञ्] १. कोई काम अच्छी तरह मन लगाकर तथा परिश्रमपूर्वक निरंतर करते रहने का गुण या योग्यता। २. उत्साह और प्रतीतिपूर्वक किसी काम में लगना। (परसीवीयरेंस)

अध्यवसायी (यिन्)—वि० [सं० अधि—अव√सो+णिनि] हर काम में अध्यवसायपूर्वक लगनेवाला।

अध्यवसित—वि० [सं० अधि—अव√सो+क्त] जिसने अध्यवसाय-पूर्वक किसी काम में लगने का संकल्प किया हो।

अध्यवसिति—स्त्री० [सं० अधि—अव√सो+क्तिन्] =अध्यवसाय।

अध्यशन—पुं० [सं० अधि—अशन, प्रा० स०] १. आवश्यकता से अधिक भोजन करना। २. अजीर्ण। अनपच।

अध्यस्त—वि० [सं० अधि√अस् (फेंकना)+क्त] १. ऊपर रखा या लगाया हुआ। आरोपित। २. भ्रमवश जिसकी अनुभूति हुई हो।

अध्यस्थि—स्त्री० [सं० अधि—अस्थि, अत्या० स०] हड्डी के ऊपर निकलनेवाली हड्डी।

अध्यात्म—पुं० [सं० अधि—आत्मन्,अव्य० स०] [वि० आध्यात्मिक] १. परमात्मा। २. आत्मा। ३. आत्मा तथा परमात्मा के गुणों और उनके पारस्परिक संबंधों के विषय में किया जानेवाला दार्शनिक चिंतन, निरूपण या विवेचन।

अध्यात्म-ज्ञान—पुं० [ष० त०] अध्यात्म अर्थात् परमात्मा तथा आत्मा से संबंध रखनेवाला ज्ञान।

अध्यात्मदर्शी (शिन्)—वि० [सं० अध्यात्म√दृश् (देखना)+णिनि] जिसे आत्मा तथा परमात्मा का सूक्ष्म दर्शन अर्थात् ज्ञान हुआ हो।

अध्यात्मवाद—पुं० [ष० त०] [वि० अध्यात्मवादी] १. दे० 'अध्यात्म-विद्या'। २. अध्यात्म संबंधी सिद्धांतों को मानना, उनका अनुकरण तथा प्रचार करना।

अध्यात्मवादिक—वि० [सं० अध्यात्मवाद+ठन्—इक] अध्यात्मवाद से संबंध रखनेवाला। (स्पिरिचुअलिस्टिक)

अध्यात्मवादी (दिन्)—पुं० [सं० अध्यात्मवाद+इनि] वह जो अध्यात्म-वाद का अनुयायी या ज्ञाता हो। (स्पिरिचुअलिस्ट)

अध्यात्म विद्या—स्त्री० [मध्य० स०] वह विद्या या शास्त्र जिसमें आत्मा तथा परमात्मा के गुणों, स्वरूपों, पारस्परिक संबंधों आदि का विचार, विवेचन तथा निरूपण होता है।

अध्यात्म शास्त्र—पुं० [मध्य० स०] दे० 'अध्यात्म विद्या'।

अध्यात्मिक*—वि० दे० 'आध्यात्मिक'।

अध्यादेश—पुं० [सं० अधि—आदेश, प्रा० स०] वह आधिकारिक आदेश जो किसी कार्य, व्यवस्था आदि के संबंध में राज्य के प्रधान शासक द्वारा दिया या निकाला गया हो। (आर्डिनेंस)

अध्यापक—पुं० [सं० अधि√इ (पढ़ना)+णिच्, पुक्+ण्वुल्—अक] [स्त्री० अध्यापिका] वह जो दूसरों, विशेषतः विद्यार्थियों को पढ़ाता हो।

अध्यापकी—स्त्री० [सं० अध्यापक+हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़ाने का काम।

अध्यापन—पुं० [सं अधि√इ+णिच्, पुक्+ल्युट्—अन] १. विद्यार्थियों को पढ़ाने की क्रिया या भाव। २. विद्यार्थियों को पढ़ाने की वृत्ति या पेशा।

अध्यापिका—स्त्री० [सं० अध्यापक+टाप्, इत्व] वह स्त्री जो पढ़ाने का कार्य करती हो।

अध्याय—पुं० [सं० अधि√इ+घञ्] ग्रन्थ या पुस्तक का खंड या विभाग जिसमें किसी विषय का अथवा विषय के विशेष अंग का स्वतंत्र विवेचन हो। प्रकरण। (चैप्टर)

अध्यायी (यिन्)—वि० [सं० अधि√इ+णिनि] अध्ययन करने या अच्छी तरह पढ़नेवाला।

पुं० विद्यार्थी।

अध्यारूढ़—वि० [सं० अधि—आ√रुह् (चढ़ना)+क्त] १. किसी पर चढ़ा हुआ। आरूढ़। २. आक्रांत। ३. बहुत अधिक। ४. किसी की तुलना में अच्छा या श्रेष्ठ।

अध्यारोप—पुं० [सं० अधि–आ√रुह्+णिच्, प आदेश,+घञ्] १. ऊपर उठाना। २. वेदांत में, कोई कल्पना, धारणा या सिद्धांत। ३. मिथ्या या निराधार कल्पना। ४. कोई चीज या बात दूसरी चीज या बात पर रखना या लादना। ५. ज्यामिति में, दो आकृतियों की समरूपता या समानता सिद्ध करने के लिए एक को दूसरी पर या उसके स्थान पर रखना। ६. समान आकृतिवाली वस्तुओं का, समानता-सिद्धि के विचार से, एक दूसरी पर रखा जाना या होना। (सुपरपोजीशन)

अध्यारोपण—पुं० [सं० अधि–आ√रुह्+णिच्, प आदेश,+ल्युट्–अन] १. भ्रमवश एक वस्तु का गुण-धर्म दूसरी वस्तु में लगाना या समझना। २. दोष या कलंक लगाना।

अध्यास—पुं० [सं० अधि√अस् (फेंकना) +घञ्] १. एक वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का होनेवाला आभास या मिथ्या ज्ञान। कुछ का कुछ दिखाई देना या जान पड़ना। भ्रम। धोखा। (इल्यूजन) २. मिथ्या या भ्रमपूर्ण ज्ञान।

अध्यासन—पुं० [सं० अधि√आस् (बैठना) +ल्युट्–अन] १. आसन। २. स्थान। ३. आसन ग्रहण करना। बैठना।

पुं० [सं० अधि–आ√अस् (फेंकना) +ल्युट्–अन] आरोपण।

अध्यासीन—वि० [सं० अधि√आस् (बैठना) +शानच्, ईत्व] किसी समाज या वर्ग में सब से ऊँचे स्थान पर बैठा हुआ। (प्रेसाइडिंग) जैसे—न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में अथवा सभा में सभापति के रूप में अध्यासीन होना।

अध्याहरण—पुं० [सं० अधि–आ√हृ (हरण करना) +ल्युट्–अन] [भू० कृ० अध्याहृत] १. किसी बात या विषय की छान-बीन या जाँच-पड़ताल करना। २. किसी कथन या लेख में का विवक्षित अर्थ या आशय जान या समझकर उसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालना या मत स्थिर करना। (इन्फरेन्स) विशेष दे० 'अध्याहार'।

अध्याहार—पुं० [सं० अधि–आ√हृ+घञ्] [भू० कृ० अध्याहृत] १. ऊहापोह। २. छान-बीन। ३. किसी वाक्य में ऐसे शब्दों का न होना या न रहना जो उसका आशय स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हों। ४. किसी वाक्य का कुछ ऐसा आशय ढूंढ़ निकालना जो उसके शब्दों से स्पष्ट न होता हो, फिर भी जो आशय साधारणतः उसमें निहित हो अथवा हो सकता हो। (इन्फरेन्स)

अध्याहृत—भू० कृ० [सं० अधि–आ√हृ+क्त] [भाव० अध्याहृति] १. (शब्द या पद) जो किसी वाक्य में न आया हो, फिर भी उस वाक्य की पूरी व्याख्या करने के लिए जिसकी आवश्यकता बनी रहे। (अण्डर-स्टुड) २. (आशय) जो किसी वाक्य से अनुमान की सहायता से (केवल शब्दों के आधार पर नहीं) निकाला गया हो। (इन्फर्ड)

अध्युषित—वि० [सं० अधि√वस् (बसना) +क्त] बसा हुआ। निवसित।

अध्युष्ट—वि० [सं० अधि√वस्+क्त] १. बसा हुआ। आबाद। २. साढ़े तीन।

अध्यूढ़—पुं० [सं० अधि√वह् (ढोना) +क्त] किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह से पहले ही उसके गर्भ में आया हो।

वि० १. उन्नत। २. समृद्ध। ३. उच्च। ४. अत्यधिक।

अध्यूढ़ा—स्त्री० [सं० अध्यूढ़+टाप्] १. वह स्त्री जिसे विवाह से पहले गर्भ हो गया हो। २. वह स्त्री जिसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया हो।

अध्येतव्य—वि० [सं० अधि√इ (पढ़ना) +तव्यत्] पढ़ने या अध्ययन करने के लिए उपयुक्त तथा योग्य।

अध्येता (तृ)—पुं० [सं० अधि√इ+तृच्] १. वह जो अध्ययन करता हो। २. विद्यार्थी।

अध्येन†—पुं० दे० 'अध्ययन'।

अध्येय—वि० [सं० अधि√इ+यत्] १. (विषय) जो अध्ययन किए जाने के योग्य हो। पढ़े जाने के योग्य। २. जिसका अध्ययन होने को हो।

अध्येषणा—स्त्री० [सं० अधि√इष् (प्रेरण) +युच्–अन–टाप्] १. निवेदन। २. प्रार्थना। याचना।

अध्रि—वि० [सं०√धृ (धारण करना)+कि, न० त०] १. जो निश्चित न हो। अनिश्चित। २. जो रोका न जा सके। अरोध्य।

अध्रियमाण—वि० [सं०√धृ+शानच्, यक्, मुक्, न० त०] १. जिसे धारण न किया जा सके। २. मृत। मरा हुआ।

अध्रुव—वि० [सं० न० त०] १. जो ध्रुव, निश्चित या स्थिर न हो। अनिश्चित या अस्थिर। २. जो नित्य या शाश्वत न हो। अनित्य। ३. संदिग्ध। ४. जो थक् किया जा सके।

अध्व (न्)—पुं० [सं० √अद् (खाना) +क्वनिप् धादेश] १. पथ। मार्ग। २. यात्रा। ३. दूरी। ४. काल। (बौद्ध) ५. साधन। ६. वेद की शाखा। ७. स्थान। ८. आक्रमण। ९. हवा। १०. तरीका।

अध्वग—पुं० [सं० अध्व√गम् (जाना) +ड] १. बटोही। पथिक। यात्री। २. ऊँट। ३. खच्चर। ४. सूर्य।

अध्वगा—स्त्री० [सं० अध्वग+टाप्] गंगा नदी।

अध्व-गामी (मिन्)—वि० [सं० अध्व√गम् (जाना) +णिनि] १. यात्रा करनेवाला। २. मार्ग पर चलनेवाला।

अध्व-पति—पुं० [प० त०] १. सूर्य। २. मार्गों का अधिकारी या निरीक्षक।

अध्वर—वि० [सं०√ध्वृ (टेढ़ा होना) +अच्, न० त०] १. सरल। सीधा। २. लगातार चलनेवाला। ३. अबाध। ४. सावधान। ५. ठीक और पुष्ट।

पुं० [सं० अध्वन्√रा (देना) +क] १. यज्ञ। २. आकाश। ३. वायु।

अध्वर्यु—पुं० [सं० अध्वर+क्यच्+युच्–अकारलोप] यजुर्वेद में बतलाये हुए कर्म करनेवाला ऋत्विक्।

अध्वर्युवेद—पुं० [प० त०] यजुर्वेद।

अध्वांत—पुं० [सं० न० त०] १. मंद अंधकार। २. छाया। ३. यात्रा का अंत। ४. मार्ग की सीमा।

अध्वाति—पुं० [सं० अध्वन्√अत् (सतत चलना) +इ] १. पथिक। यात्री। २. चतुर व्यक्ति।

अध्वाधिप—पुं० [सं० अध्व–अधिप, ष० त०] मार्गों का निरीक्षक या अधिकारी।

अध्वायन—पुं० [सं० अध्व–अयन, प० त०] यात्रा। सफर।

अध्वेश—पुं० [सं० अध्व–ईश, ष० त०] दे० 'अध्वाधिप'।

अनंग—वि० [सं० न–अंग, न० ब०] जिसका अंग या शरीर न हो। अशरीरी। देह-रहित।

पुं०-१. कामदेव। २. आकाश। ३. मन।

अनंगक—पुं० [सं० न० व०, कप्] चित्त। मन।

वि०=अनंग।

अनंग-क्रीड़ा—स्त्री० [सं० तृ० त०] १. काम-क्रीड़ा। रति। २. छंद शास्त्र में, मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदों में से एक।

अनंगद—वि० [सं० अनंग√दा (देना)+क] काम-वासना उत्पन्न करनेवाला।

अनंगना*—अ० [सं० अनंग=शरीर-रहित] शरीर की सुधि छोड़ना। सुध-बुध भूलना।

अनंगवती—स्त्री० [सं० अनंग+मतुप्, व.व, ङीप्] काम-वासना से युक्त स्त्री। कामवती। कामिनी।

अनंग-शत्रु—पुं० [प० त०] कामदेव के शत्रु; शिव।

अनंग-शेखर—पुं० [ब० स०] दंडक नामक वर्ण-वृत्त का एक भेद जिसमें ३२ वर्ण होते हैं।

अनंगारि—पुं० [सं० अनंग–अरि, ष० त०] कामदेव के शत्रु। शिव।

अनंगी (गिन्)—वि० [सं० अनंग+इनि] [स्त्री० अनंगिनी] बिना अंग, देह या शरीर का। अंग-रहित।

पुं० १. ईश्वर। २. कामदेव। ३. कामुक व्यक्ति। उदा०—सूरदास यह विरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी।—सूर।

अनंगीकरण—पुं० [सं० न–अंगीकरण, न० त०] [भू० कृ० अनंगीकृत] १. अंग-रहित या अनंगी करने की क्रिया या भाव। २. अंगीकार न करने की क्रिया या भाव। ३. उत्तरदायित्व न लेते हुए अग्राह्य करना। (रिप्यूडिएशन)

अनंगुरि—वि०=अनंगुलि।

अनंगुलि—वि० [सं० न–अंगुलि, न० व०] जिसे उँगलियाँ न हों।

अनंजन—वि० [सं० न–अंजन, न० व०] १. जिसे काजल, रंग या लेप न लगा हो। २ जिसे दाग या धब्बा न लगा हो।

पुं० १. विष्णु। २. परब्रह्म। ३. आकाश।

अनंत—वि० [सं० न–अंत, न० व०] १. जिसका कहीं अंत, छोर या सिरा न होता हो। (अन्-एंडिंग) जैसे—अनंत सागर। २. जिसका अंत या समाप्ति न हो। अंतहीन। (नेवर-एंडिंग) ३. जिसका कहीं आदि या अन्त न हो। सदा बना रहनेवाला। नित्य। शाश्वत। (इन्फाइनाइट) ४. जिसके मान, विस्तार आदि की कल्पना न की जा सके। ५. जिसका नाश न हो। अविनाशी। ६. बहुत अधिक।

पुं० १. विष्णु। २. कृष्ण। ३. शिव। ४. शेषनाग। ५. लक्ष्मण। ६. बलराम। ७. आकाश। ८. जैनों के एक तीर्थंकर का नाम। ९. अभ्रक। अबरक। १०. बाँह पर पहनने का एक गोलाकार आभूषण या गहना। ११. अनत चतुर्दशी के व्रत में पहनने का एक गंडा। १२. अनत चतुर्दशी का व्रत। १३. मोक्ष। १४. बादल। १५. श्रवण नक्षत्र।

अनंतक—वि० [सं० अनंत+कन्] १. सीमा-रहित। २. नित्य।

पुं० अनंतदेव। (जैन)

अनंत-काय—पुं० [ब० स०] १. जैन-मत के अनुसार ऐसी वनस्पतियाँ जिनका भक्षण या सेवन निषिद्ध हो।

वि० बहुत बड़ी काया या शरीरवाला।

अनंतग—वि० [सं० अनंत√गम् (जाना)+ड] अनंत काल तक चलने या विचरण करनेवाला।

अनंत-चतुर्दशी—स्त्री० [सं० मध्य० स०] भाद्र-शुक्ल चतुर्दशी, जिस दिन अनंत भगवान का व्रत और पूजन होता है।

अनंत-जित्—पुं० [सं० अनंत√जि (जीतना)+क्विप, तुक्] १. वासुदेव। २. चौदहवें जैन अर्हत्।

अनंत-टंक—पुं० [ब० स०] एक राग जो मेघराग का पुत्र माना गया है।

अनंतता—स्त्री० [सं० अनंत+तल्–टाप्] अनंत होने की अवस्था या भाव। असीमता।

अनंत-दर्शन—पुं० [ष० त०] सब बातों का पूरा ज्ञान या सम्यक् दर्शन। (जैन)

अनंत-दृष्टि—वि० [सं० ब० स०] जो बहुत दूर तक देखता हो। दूर-दर्शी।

पुं० १. इंद्र। २. शिव।

अनंत-देव—पुं० [कर्म० स०] १. शेषनाग। २. शेषशायी विष्णु।

अनंत-नाथ—पुं० [कर्म० स०] जैनों के चौदहवें तीर्थंकर।

अनंत-मूल—पुं० [ब० स०] सारिवा नामक एक रक्तशोधक ओषधि।

अनंतर—क्रि० वि० [सं० न० त०] १. उपरांत। पीछे। बाद। २. निरंतर। लगातार।

वि० [सं० न–अंतर, न० ब०] १. जिसके बीच में कोई अंतर न हो। अंतर-रहित। २. सटा या लगा हुआ। ३. पास या पड़ोस का। ४. अपने वर्ण से ठीक नीचे के वर्ण का।

पुं० [सं० न० त०] १. अंतर या भेद का अभाव। २. निकटता। सामीप्य। ३. [सं० न० ब०] ब्रह्म।

अनंतरज—पुं० [सं० अनंतर√जन् (उत्पन्न होना) +ड] १. वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता के वर्ण से एक दरजे ऊँचा हो। जैसे—माता शूद्रा और पिता वैश्य। २. ऐसे भाई-बहन जिनका जन्म ठीक एक दूसरे के आगे-पीछे हुआ हो।

अनंतर-जात—वि० [पं० त०] =अनंतरज।

अनंतरित—वि० [सं० अंतर+इतच्, न० त०] १. जिसमें अंतर या व्यवधान न पड़ा हो। २. जिनके बीच में कोई अंतर या व्यवधान न हो। ३. अखंडित। अटूट।

अनंतरीय—वि० [सं० अनंतर+छ–ईय] १. बाद का। २. जन्म, विकास आदि के क्रम में ठीक बाद का।

अनंत-रूप—वि० [ब० स०] जिसके अनंत रूप हों।

पुं० विष्णु।

अनंर्तहित—वि० [सं० न–अंतर्हित, न० त०] १. मिला, लगा या सटा हुआ। २. क्रमबद्ध। श्रृंखलाबद्ध। ३. अखंडित।

अनंतवान् (वत्)—वि० [सं० अनत+मतुप्, व आदेश] १. असीम। २. नित्य।

पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक।

अनंत-विजय—पुं० [ब० स०] युधिष्ठिर के शंख का नाम।

अनंत-वीर्य—वि० [ब० स०] बहुत अधिक बल या पराक्रमवाला।

पुं० जैनों के २३वें अर्हत् का नाम।

अनंत-व्रत—पुं० [प० त०] अनंत चतुर्दशी का व्रत जो भाद्रपद शुक्ल १४ को होता है।

अनंत-शक्ति—वि० [ब० स०] जिसकी शक्ति अनंत हो। सर्वशक्तिमान्।
पुं० परमेश्वर।
अनंतशीर्ष—पुं० [ब० स०] १. विष्णु। २. शेषनाग।
अनंत-शीर्षा—स्त्री० [सं० अनंतशीर्ष+टाप्] वासुकि नाग की पत्नी।
अनंत-श्री—वि० [ब० स०] असीम ऐश्वर्य या शोभावाला।
पुं० परमेश्वर।
अनंता—वि०, स्त्री० [सं० अनंत+टाप्] जिसका अंत या पारावार न हो।
स्त्री० १. पृथ्वी। २. पार्वती। ३. कलियारी नाम का पौधा। ४. अनंतमूल। ५. दूर्वा। दूब। ६. छोटी पीपल। ७. जवासा। ८. अरणी नाम का वृक्ष। ९. सूत का बना हुआ वह अनंत जो अनंत चतुर्दशी को पहना जाता है।
अनंतात्मा (त्मन्)—पुं० [सं० अनंत–आत्मन्, कर्म० स०] परमात्मा।
अनंतानुबंधी (धिन्)—पुं० [सं० अनंत–अनुबंधिन्, कर्म० स०] जैनमतानुसार ऐसा दोष या दुष्ट स्वभाव जो कभी न छूटे।
अनंताभिधेय—पुं० [सं० अनंत–अभिधेय, ब० स०] परमेश्वर।
वि० अनंत या असंख्य नामोंवाला।
अनंती—स्त्री० [सं० अनंत+हिं० ई (प्रत्यय)] १. अनंत या अंत-हीन होने की अवस्था, गुण या भाव। (इन्फिनिटी) २. छोटा या पतला अनंत। ३. बाँह पर बाँधने का गंडा।
अनंत्य—पु० [सं० अनंत+यत्] १. अनंत होने की अवस्था, गुण या भाव। नित्यता। २. हिरण्यगर्भ का चरण।
अनंद—वि० [सं० न० ब०] आनन्द-रहित। बिना प्रसन्नता का।
पुं० [सं० नन्द् (समृद्धि)+घञ्, न० त०] १. आनन्द या प्रसन्नता का अभाव। २. हरी नामक छंद का दूसरा नाम। ३. [सं० नन्द्+णिच्+अच्, न० त०] एक प्रेत लोक का नाम।
*पु०=आनंद।
अनंदना*—अ० [सं० आनन्द] आनंदित, खुश या प्रसन्न होना।
स० आनंदित या प्रसन्न करना।
अनंदी—पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।
*वि०=आनंदी।
अनंबर—वि० [सं० न–अंबर, न० ब०] १. अंबर-रहित। २. जिसके पास वस्त्र न हों। ३. जिसने वस्त्र धारण न किये हों। नंगा।
पु० एक तरह के जैन साधु जो नंगे रहते हैं।
अनंभ (स्)—वि० [सं० न–अम्भस्, न० त०] जल से रहित। बिना जल का।
वि० [सं० अन्=नहीं, अंभस्=पाप, विघ्न, बाधा] बाधा या विघ्न से रहित।
अनंश—वि० [सं० न–अंश, न० ब०] १. जिसका कोई अंश या भाग न हो। २. जो पैत्रिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो। ३. विष्णु और आकाश का विशेषण।
अन—उप० [सं० अन्] एक हिन्दी उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है—(क) अभाव; जैसे—अनधिकार, अनध्याय आदि। (ख) राहित्य या हीनता; जैसे—अन-छेद, अनगढ़, अन-देखा आदि। (ग) किसी क्रिया से अतीत या परे; जैसे—अन-गिनत, अन-मोल आदि। और (घ) अनुचित, विरुद्ध या विपरीत होने का भाव; जैसे—अन-ऋतु, अन-रीति आदि।
*क्रि० वि० बिना। वगैर। उदा०—कहि जु चली अनही चितै, ओठनिही में बात।—बिहारी।
*क्रि० वि०=अन्यत्र (और कहीं)।
*वि०=अन्य (और कोई)।
†पुं०=अन्न (अनाज)।
*पु० [सं० अनन] श्वास-प्रश्वास।
अन-अहिवात—पु० [हिं० अन+अहिवात] १. अहिवात या सौभाग्य का न होना। २. वैधव्य।
अनइत—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र] दूसरी जगह। उदा०—ओ ओ अनइते जाइ।—विद्यापति।
अनइस—पु० दे० 'अनैस'।
अनइसा—वि० दे० 'अनैसा'।
अन-ऋतु—स्त्री० [हिं० अन+सं० ऋतु] १. बे-मौसिम। २. ऋतु विपर्यय। ३. ऋतु विरुद्ध कार्य।
अनकंप*—वि० [सं० अकम्प] १. जिसमें कंपन न हो। कंपन-रहित। २. स्थिर। ३. दृढ़। पक्का।
पु० कंपन न होने की अवस्था। स्थिरता।
अनक—वि० [सं० अणक] तुच्छ। कमीना।
*पुं०=आनक।
अनकदुंदुभ—पुं० [सं०] कृष्ण के पितामह का नाम।
अनकना*—स० [सं० आकर्ण, प्रा० आकणन, हिं० अकनना] १. सुनना। २. चुपचाप या छिपकर सुनना।
अनक़रीब—क्रि० वि० [अ०] १. करीब-करीब। लगभग। २. जल्द। शीघ्र। ३. नजदीक। पास। ४. प्रायः।
अन-कल—वि० [हिं० अन+कल (कलन)] १. जिसका अनुमान या कल्पना न की जा सके। २. बहुत अधिक।
अनकस्मात्—अव्य० [सं० न–अकस्मात्, न० त०] जो अकस्मात अचानक, या अकारण न हो।
अनकहा—वि० [सं० अन्=नहीं+कथ्=कहना] १. (भाव या विचार) जो कहा न गया हो। बिना कहा हुआ। २. (व्यक्ति) जो कहना न मानता हो। बे-कहा।
अनकही—वि० [हिं० अनकहा] १. जो पहले कभी न कही गई हो।
मुहा०—अनकही देना=चुपचाप रहना।
२. (बात) न कहने योग्य। फलतः अनुचित या अश्लील।
अनका—पुं० दे० 'उनका'।
अनकाढ़ा—वि० [हिं० अन (उप०)+काढ़ना=निकालना] जो निकाला न गया हो।
अनक्ष—वि० [सं० न–अक्ष, न० ब०] १. अक्ष-रहित। २. अंधा। नेत्रहीन।
अनक्षर—वि० [सं० न–अक्षर, न० ब०] १. जो कहने योग्य न हो। २. जिसे अक्षरों का ज्ञान न हो। निरक्षर। ३. मूर्ख। ४. गूंगा।
पुं० गाली। दुर्वचन।

अनक्षिक—वि० [सं० न–अक्षि, न० व०, कप्] =अनक्ष।

अनख—वि० [सं० न० त०] जिसे नख या नाखून न हों।
स्त्री० [सं० अन्–अक्ष] १. मन में छिपा हुआ हलका क्रोध या गुस्सा। नाराजगी। २. खिन्नता के कारण होनेवाली उदासीनता। ३. ईर्ष्या। ४. झंझट। ५. डिठौना।

अनखना*—अ० [हिं० अनख] १. अप्रसन्न या रुष्ट होना। २. किसी पर क्रोध करना या बिगड़ना।

अनखा—पुं० [हिं० अनख] काजल की बिन्दी। डिठौना।

अनखाना*—स० [हिं० अनख] अप्रसन्न करना। नाराज करना।
*अ०=अनखना।

अनखाहट—स्त्री० [हिं० अनखना+आहट (प्रत्य०)] अनखने की क्रिया या भाव। अनख।

अनखी (खिन्)—वि० [सं० न० त०] जिसे नख या नाखून न हों।

अनखौं†—वि० [हिं० अनख] जल्दी अप्रसन्न या रुष्ट होने अथवा बिगड़नेवाला।

अन-खुला—वि० [हिं० अन (उप०)+खुलना] १. जो खुला न हो। बंद। जिसका कारण या रहस्य प्रकट न हो। फलतः गम्भीर या गहन।

अनखौहां*—वि० [हिं० अनख] [स्त्री० अनखौहीं] १. क्रोध से भरा हुआ। कुपित। २. जल्दी बिगड़ जानेवाला। गुस्सैल और चिड़चिड़ा। ३. अनुचित। बुरा। (क्व०)

अन-गढ़—वि० [सं० अन्=नहीं+हिं० गढ़ना] १. जो अभी अपने प्रकृत या मूल रूप में हो और गढ़ा, छीला या तराशा जाने को हो। बिना गढ़ा, छीला या तराशा हुआ। अ-संस्कृत या अ-परिष्कृत। (क्रूड) जैसे—अनगढ़ पत्थर या लकड़ी का कुंदा। २. बे-डौल और भद्दा। ३. बे-सिर-पैर का। बेतुका। ४. अक्खड़। उजड्ड।

अनगन*—वि० [सं० अन्+गणन] =अनगिनत।

अनगना*—अ० [सं० अन्+अगवना =आगे बढ़ना] जान-बूझकर या टालने के लिए किसी काम में देर लगाना। विलंब करना। उदा०—मुंह धोवति, एड़ी घसति हँसति अनगवति तीर।—विहारी।
स० [सं० अनग्न=ढका हुआ] टूटे या टपकते हुए खपरैल की मरम्मत करना। खपड़ा फेरना।
वि०=अनगिनत।
पुं० [?] गर्भ का आठवाँ महीना।

अनगनिया*—वि० [सं० अगणित] =अन-गिनत।

अनगवना†—अ०, स०=अनगाना।

अनगाना†—अ० [हिं० अन+अगवना=आगे बढ़ना] देर लगाना। विलंब करना।
स० १. टाल-मटोल करना। २. (केशादि) सँवारना या सुलझाना।

अनगार—वि० [सं० न–अगार, न० व०] १ जिसके पास घर न हो। गृहहीन। २. (साधु या संन्यासी) जो घर बनाकर न रहे। बराबर घूमता-फिरता रहनेवाला।

अनगारिका—स्त्री० [सं० अनगार+ठक्–इक, टाप्] १ अनगार (साधु या संन्यासी) होने की अवस्था या भाव।

अनगिन—वि०=अनगिनत।

अन-गिनत—वि० [हिं० अन+गिनना] जो इतना अधिक हो कि गिना न जा सके। बहुत अधिक।

अनगिना—वि० [हिं० अन+ गिनना] १. जो गिना न गया हो। २. अन-गिनत। बहुत अधिक।

अनगिनित—वि०=अनगिनत।

अनगुत्ते—क्रि० वि० [सं० अग्रोदित] सूर्य निकलने से पूर्व। तड़के।

अन-गुना*—वि० [हिं० अन+गुनना] १. जो सोचा, समझा या जाना न गया हो। २. जिसपर विचार न किया गया हो।
वि० [हिं० अन+सं० गुण] सब गुणों से रहित। निर्गुण।

अनगैरी*—वि० [अ० गैर] गैर। अपरिचित।

अनग्नि—वि० [सं० न–अग्नि, न० व०] १. जिसके पास या जिसमें अग्नि न हो। २. अग्निहोत्र न करनेवाला। ३. अग्निमांद्य नामक रोग से ग्रस्त। ४. अविवाहित।

अनघ—वि० [सं० न–अघ, न० व०] १. अघ से रहित। निष्पाप। निर्दोष। २. पवित्र। शुद्ध। ३. सुंदर। ४. निरापद। ५. शोकहीन।
पुं० [न० त०] १. वह जो पाप न हो। पुण्य। २. [न० व०] विष्णु। ३. शिव। ४. उजली सरसों।

अनघरी*—स्त्री० [हिं० अन=विरुद्ध+घरी=घड़ी] बुरी घड़ी या समय। कु-समय।

अनघेरी*—वि० [हिं० अन+घेरना] १. अपरिचित। २. जिसे बुलाया न गया हो। अनिमंत्रित। ३. जो बिना बुलाये कहीं पहुँचा हो। अनाहूत।

अनघोर—वि० [हिं० अन+सं० घोर] जो घोर न हो।
*पुं० [सं० घोर ?] १. अंधेर। २. अत्याचार। ज्यादती।

अनघोरी*—क्रि० वि० [?] १. चुपके से। चुपचाप। २. अचानक। अकस्मात्।

अनचहा*—वि० [हिं० अन+न चाहना]=अन-चाहा।

अन-चाखा*—वि० [हिं० अन+चखना] जिसे चखा न गया हो।

अन-चाहत*—वि० [हिं० अन=नहीं+चाहना] १. न चाहनेवाला। जो न चाहे। २. जिसे चाहा न गया हो।
स्त्री० चाह या प्रेम का न होना।

अन-चाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अवांछित।

अन-चीता—वि० [हिं० अन+चीतना=सोचना] १. जिसके संबंध में पहले से कुछ सोचा न गया हो। २. अचानक या सहसा होनेवाला। ३. अन-चाहा।

अन-चीन्ह*—वि०=अन-चीन्हा (अपरिचित)।

अनचीन्हा*—वि० [हिं० अन+चीन्हना=पहचानना] १. जिसे पहले से चीन्हते (पहचानते) न हों। अ-परिचित। २. जिसकी चीन्ह (पहचान) न हुई हो।

अन-चैन*—स्त्री० [हिं० अन=नहीं+चैन] १. चैन या शांति न होने की अवस्था या भाव। बेचैनी। २. घबराहट। विकलता।

अनच्छ—वि० [सं० न–अच्छ, न० त०] १. जो अच्छा या स्वच्छ न हो। मलिन। २. जो अच्छा न हो। ३ असुंदर।

अनच्छता*—स्त्री० [हिं० अनच्छ] अच्छा न होने की अवस्था या भाव।

अन-जन्मा—वि० [हिं० अन+सं० जन्म] जिसने जन्म न लिया हो।

जिसमें मनुष्य के लिए अधियुक्ति या जीविका निर्वाह का कोई साधन न हो। बेकारी (अन्-एम्प्लॉयमेंट)

अनधियोजन—पुं० [सं० न—अधियोजन, न० त०] =अनधियुक्ति।

अनधिष्ठित—वि० [सं० न—अधिष्ठित, न त०] १. जो किसी पद, स्थान आदि पर अधिष्ठित न हो। २. अनुपस्थित।

अनधीन—वि० [सं० न—अधीन, न० त०] जो किसी के अधीन न हो। स्वधीन।

पुं० वह स्वतंत्र बढ़ई जो अपनी इच्छानुसार कार्य करता हो।

अनध्यक्ष—वि० [सं० न—अध्यक्ष, न० त०] १. जो सामने न हो। अप्रत्यक्ष। २. जिसे इंद्रियों द्वारा जान न सकें। ३. जिसका कोई अध्यक्ष न हो। ४. जो अध्यक्ष न हो।

अनध्ययन—पुं० [सं० न—अध्ययन, न० त०] १. अध्ययन का अभाव। २. दे० 'अनध्याय'।

अनध्यवसाय—पुं० [सं० न—अध्यवसाय, न० त०] १. अध्यवसाय का अभाव। २. एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है।

अनध्याय—पुं० [सं० न—अध्याय, न० त०] वह दिन जो शास्त्रानुसार पढ़ने-पढ़ाने का न हो। पढ़ाई की दृष्टि से छुट्टी का दिन। यथा—अमावस्या, परिवा, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा।

अनध्यास—वि० [सं० न—अध्यास, न० ब०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन—पुं० [सं०√अन् (जीना) +ल्युट्—अन] साँस लेना। जीना।

अनना*—स० [सं० आनयन] =आनना (लाना)। उदा०—इहै ख्याल उर आनि है।—तुलसी।

अननुज्ञप्त—वि० [सं० न—अनुज्ञप्त, न० त०]=अननुज्ञात।

अननुज्ञात—वि० [सं० न—अनुज्ञात, न० त०] १. जो अनुज्ञात न हो। २. (व्यक्ति) जिसे अनुज्ञा न मिली हो। ३. (कार्य) जिसके लिए अनुज्ञा न मिली हो।

अननुज्ञापित—वि० [सं० न—अनुज्ञापित, न त०] =अननुज्ञात।

अननुभाषण—पुं० [सं० न—अनुभाषण, न० त०] न्याय में, वह स्थिति जब वादी के तीन बार कोई बात कहने पर भी प्रतिवादी उसका कोई उत्तर नहीं देता और इसी लिए उसकी हार मान ली जाती है।

अननुभूत—वि० [सं० न—अनुभूत, न० त०] १. जो अनुभूत न हो। २. जिसका पहले कभी अनुभव न हुआ हो।

अननुमत—वि० [सं० न—अनुमत, न० त०] १. जिसे अनुमति न मिली हो। २. जिसकी अनुमति न मिली हो। ३. जो रुचिकर न हो। ४. अयोग्य।

अननुरूप—वि० [सं० न—अनुरूप, न० त०] १. जो किसी के अनुरूप न हो। 'अनुरूप' का उलटा। २. जो किसी की मर्यादा के अनुरूप या उपयुक्त न हो।

अनन्नास—पुं० [पुर्त० अनानास] १. एक छोटा पौधा जिसके फल कटहल की तरह ऊपर से दानेदार और खाने में खट-मीठे होते हैं। (पाइन-एपुल्) २. उक्त का फल।

अनन्य—वि० [सं० न—अन्य, न० ब०] १. जिसका संबंध किसी और से न हो। २. एकनिष्ठ। ३. अद्वितीय। ४. एकाग्र।

पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्य-गति—वि० [सं० न—अन्य—गति, न० ब०] जिसके लिए कोई और सहारा या साधन न हो।

स्त्री० [न० त०] एक मात्र सहारा।

अनन्य-गतिक—वि० [न० ब०, कप्] =अनन्य-गति।

अनन्य-गुरु—वि० [सं० न—अन्य—गुरु, न० ब०] १. जिससे कोई बड़ा न हो। २. जिसके लिए एक को छोड़ कोई और गुरु न हो।

अनन्य-चित्त—वि० [सं० न—अन्य—चित्त, न० ब०] जिसका चित्त किसी एक में लगा हो। इधर-उधर न हो। एकाग्र चित्त। लीन।

अनन्य-चेता (तस्)—वि० [सं० न—अन्य—चेतस्, न० ब०] दे० 'अनन्य-चित्त'।

अनन्यज—वि० [सं० अनन्य√जन् (उत्पन्न होना)+ड] वह जो अन्य या दूसरे से उत्पन्न न हुआ हो।

पुं० कामदेव।

अनन्य-जन्मा (न्मन्)—पुं० [सं० न—अन्य—जन्मन्, न० ब०]= अनन्यज।

अनन्यता—स्त्री० [सं० अनन्य+तल्—टाप्] १. अनन्य होने (अर्थात् किसी और या दूसरे से संबंध या लगाव न होने) की अवस्था या भाव। २. एक ही में लीन रहने की अवस्था या भाव। एक-निष्ठता। लीनता।

अनन्य-दृष्टि—वि. [सं० न—अन्य—दृष्टि, न० ब०] जिसकी दृष्टि किसी और या दूसरे पर टिकी या लगी न हो।

स्त्री० [न० त०] निष्ठापूर्वक या एकाग्र चित्त होकर देखने की स्थिति या भाव।

अनन्य-देव—वि० [सं० न—अन्य—देव, न० ब०] जिसका कोई और या दूसरा देवता न हो।

पुं० परमेश्वर।

अनन्य-परता—स्त्री० [सं० न—अनन्यपर, न० ब०, अनन्यपर+तल्—टाप्] अनन्य-परायण। (दे०)

अनन्य-परायण—वि० [सं० अन्य—परायण, स० त०, न—अन्य-परायण, न० त०] जिसका किसी और या दूसरे से नाता, प्रेम, लगाव या संबंध न हो। अर्थात् एक में ही रत रहनेवाला।

अनन्य-पूर्वा—स्त्री० [सं० न—अन्य—पूर्व, न०ब०] १. वह स्त्री जिसका पहले किसी और से संबंध न रहा हो। निर्मल चरित्रवाली स्त्री। २. अविवाहिता। कुमारी।

अनन्य-भाव—पुं० [सं० अन्य—भाव, स० त०, न—अन्यभाव, न० त०] एक-निष्ठ भक्ति या साधना।

वि० जिसका भाव या भक्ति एक ही के प्रति हो, किसी दूसरे के प्रति न हो। एकनिष्ठ-भक्त।

अनन्य-मनस्क—वि० [सं० न—अन्य—मनस्, न० ब० कप्] दे० 'अनन्य-चित्त'।

अनन्यमना (नस्)—वि० [सं० न—अन्य—मनस्, न० ब०]= अनन्य-चित्त।

अनन्य-योग—वि० [सं० न—अन्य—योग, न० ब०] १. जिसका संबंध एक को छोड़कर और किसी से न हो। २. जो एक को छोड़ किसी दूसरे के काम में न आ सके।

अनन्य-वृत्ति—वि० [सं० न—अन्य—वृत्ति, न० ब०] १. जिसकी

मनोवृत्ति एकनिष्ठ हो। २. जिसकी कोई दूसरी वृत्ति या जीविका न हो।

अनन्य-साधारण—वि० [सं० अन्य–साधारण, स० त०, न–अन्य-साधारण, न० त०] १. एक को छोड़कर दूसरे में न मिलनेवाला। २. असाधारण।

अनन्याधिकार—पुं० [सं० अन्य–अधिकार, प० त०, न–अन्याधिकार, न० त०] =एकाधिकार।

अनन्याश्रित—वि० [सं० अन्य–आश्रित, प० त०, न–अन्याश्रित, न० त०] १. जो किसी अन्य या दूसरे के आश्रय में न रहता हो। २. स्वाधीन।
पुं० ऐसी संपत्ति जिसपर ऋण आदि न लिया गया हो।

अनन्वय—पुं० [सं० न–अन्वय, न० त०] १. अन्वय का अभाव। २. साहित्य में एक अलंकार जिसमें उपमेय को ही उपमान मान लिया जाता है। इसे अतिशयोपमा भी कहते हैं। उदा०— भरत भरत सम जान।—तुलसी।

अनन्वित—वि० [सं० न–अन्वित, न० त०] जिसका अन्वय न हुआ हो।

अनप—वि० [सं० न–आप, न० ब०] १. (स्थान) जहाँ जल न हो। २. विना जल का। जल-रहित।

अनपकरण—पुं० [सं० न–अपकरण, न० त०] १. अपकार या नुकसान न करना। २. ऋण या देन न चुकाना।

अनपकर्ष—पुं० [सं० न–अपकर्ष, न० त०] अपकर्ष या अवनति का अभाव।

अनपकार—पुं० [सं० न–अपकार, न० त०] १. अपकार या अहित का अभाव। २. निर्दोषिता।

अनपकारक—वि० [सं० न–अपकारक, न० त०] १. अपकार न करनेवाला। २. निरीह। निर्दोष।

अनपकारी (रिन्)—वि० [सं० न–अपकारिन्, न० त०] =अनपकारक।

अनपकृत—वि० [सं० न–अपकृत, न० त०] जिसका अपकार या अहित न किया गया हो।

अनपक्रम—पुं० [सं० न–अपक्रम, न० त०] १. अपक्रम का अभाव। २. दूर न जाना।

अनपक्रिया—स्त्री० [सं० न–अपक्रिया, न० त०] =अनपक्रम।

अनपघात—पुं० [सं० न–अपघात, न० त०] अपघात (आघात, क्षति आदि) का अभाव।

अन-पच—पुं० [हिं० अन=नहीं+पचना] भोजन न पचने की दशा या रोग। अजीर्ण। बद-हजमी।

अन-पढ़—वि० [हिं० अन+पढ़ना] जो कुछ पढ़ा-लिखा न हो। अशिक्षित।

अनपत्य—वि० [सं० न–अपत्य, न० ब०] [भाव० अनपत्यता, स्त्री० अनपत्या] १. जिसे अपत्य या संतान न हो। निस्संतान। २. जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। ३. जो संतान के अनुकूल न हो।

अनपत्यक—वि० [सं० न० ब०, कप्] =अनपत्य।

अनपत्य-दोष—पुं० [प० त०] स्त्री का बाँझपन।

अनपत्रप—वि० [सं० न–अपत्रपा, न० ब०] निर्लज्ज।

अनपभ्रंश—पुं० [सं० न–अपभ्रंश, न० त०] १. जो अपभ्रंश न हो। २. व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिसका रूप विकृत न हुआ हो। तत्सम या शुद्ध शब्द।

अनपर—वि० [सं० न–अपर, न० ब०] १. जिसकी बराबरी का और कोई न हो। अद्वितीय। २. जिसका कोई अनुयायी न हो। ३. अकेला। ४. एकमात्र।
पुं० ब्रह्म।

अनपराद्ध—वि० [सं० न–अपराद्ध, न० त०] १. (कार्य) जो अपराद्ध न हो। २. (व्यक्ति) जिसने अपराध न किया हो।

अनपराध—वि० [सं० न–अपराध, न० ब०] जिसने कोई अपराध न किया हो। निरपराध।
पुं० [न० त०] अपराध का अभाव। अपराधहीनता।

अनपराधी (धिन्)—वि० [सं० न–अपराधिन्, न० त०] जिसने अपराध न किया हो। बेकसूर।

अनपसर—वि० [सं० न–अपसर, न० ब०] जिसमें से या जिसके लिए निकलने का मार्ग न हो। २. अन्यायपूर्ण। ३. अक्षम्य।
पुं० [न० त०] निकलने या हटने के मार्ग का अभाव।

अनपाकरण—पुं० [सं० न–अपाकरण, न० त०] १. न देना। न सौंपना। २. ऋण या देन न चुकाना। ३. अलग न करना।
पु० देन आदि न चुकाने के संबंध में होनेवाला झगड़ा या विवाद।

अनपाकर्म (न्)—पु० [सं० न–अपाकर्मन्, न० त०]=अनपाकरण।

अनपाय—वि० [सं० न–अपाय, न० ब०] १. बाधा-रहित। २. जिसका नाश या क्षय न हो। अनश्वर।
पु० [न० त०] १. अनश्वरता। नित्यता। २. [न० ब०] शिव।

अनपायि-पद—पुं० [सं० कर्म० स०] परमपद। मोक्ष।

अनपायी (यिन्)—वि० [सं० न–अपायिन्, न० त०] १. अचल। ध्रुव। २. स्थिर। ३. जो कभी नष्ट न हो। ४. दुःखरहित।

अनपाश्रय—वि० [सं० न–अपाश्रय, न० ब०] १. जो किसी का आश्रित न हो। २. स्वतंत्र।

अन-पास—पुं० [हिं० अन=नहीं+सं० पाश] १. पाश या बंधन का अभाव। २. छुटकारा। मोक्ष।

अनपेक्ष—वि० [सं० न–अपेक्षा, न० ब०] १. जिसे किसी की अपेक्षा या आवश्यकता न हो। २. जिसे किसी की चिंता या परवाह न हो। ३. तटस्थ। ४. निष्पक्ष। ५. असंबद्ध। ६. स्वतंत्र।

अनपेक्षा—स्त्री० [सं० न–अपेक्षा, न० त०] १. अपेक्षा का अभाव। २. दे० 'उपेक्षा'।

अनपेक्षित—वि० [सं० न–अपेक्षित, न० त०] जिसकी अपेक्षा (आवश्यकता, चाह या परवाह) न हो।

अनपेक्ष्य—वि० [सं० न–अपेक्ष्य, न० त०] =अनपेक्षित।

अनपेत—वि० [सं० न–अपेत, न० त०] १. जो गया-बीता न हो। २. अपृथक्। युक्त। ३. विश्वास-पात्र।

अनफाँस—पुं० [हिं० अन+फाँस=पाश] पाश या बंधन का न होना। मोक्ष।

अनफा—पुं० [यूनानी] ज्योतिष में एक प्रकार का योग।

अन-बन—वि० [हिं० अन=नहीं+बनना] १. जो साथवाले के मेल का

न हो। अन-मेल। २. दूसरे प्रकार का। भिन्न। ३. अनेक प्रकार का। विविध। उदा०—कंदमूल, जल-फल रुह अगनित अनबन भाँति।—तुलसी। ४. भद्दा या बेढंगा।
स्त्री० दो पक्षों या व्यक्तियों में आपस में न बनने की अवस्था या भाव। बिगाड़।

अनवात—स्त्री० [हिं० अन=नहीं+वात] अनुचित या बुरी बात। उदा०—होत है भली न बात सुनि अनवात की।—सेनापति।

अनविध*—वि०=अनविधा।

अनविधा†—वि० [सं० अन्+विद्ध] बिना वेधा या छेदा हुआ। जैसे—अन-विधा मोती।

अनबीह—वि० [हिं० अन+सं० भय ?] निडर। निर्भय। उदा०—लोहाना अनबीह लीय बीरत्त समर्थ्थं।—चंदवरदाई।

अनबूझ†—वि० [हिं० अन+बूझना] १. जो समझ में न आ सके। २. जिसे समझ न हो। नादान। ना-समझ।

अनबूड़ा*—वि० [हिं० अन=नहीं+डूबना] १. जो बूड़ा या डूबा न हो। २. जो गहराई में न पैठा हुआ हो। उदा०—तंत्रीनाद, कवित्तरस, सरस रास रतिरंग। अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग।—बिहारी।

अनबेधा—वि०='अनविधा'।

अनबोल—वि० [हिं० अन=नहीं+बोलना] १. न बोलनेवाला। मौन। २. जो अपना सुख-दुःख न कह सके। ३. बे-जवान। गूँगा। ४. किसी का कहना न माननेवाला। बे-कहा।
पुं० १. न कहने योग्य या अनुचित बात। २. आपस में न बोलने की अवस्था या भाव। अनबोला।

अनबोलता—वि०=अनबोला।

अनबोला—वि० [हिं० अन+बोलना] १. जो न बोलता हो। चुप। मौन। २. जिसके विषय में कुछ कहा न जा सके। अनिर्वचनीय।
पुं० [हिं० अन+बोल] आपस के व्यवहार में लड़ाई-झगड़े आदि के कारण किसी से बोल-चाल या बात-चीत बंद हो जाना।

अनब्याहा—वि० [हिं० अन=नहीं+ब्याहा] जिसका ब्याह न हुआ हो। अविवाहित।

अनभल*—पुं० [हिं० अन=नहीं+भला] १. बुराई। २. हानि। ३. अहित।
मुहा०—(किसी का) अनभल ताकना=अहित या बुराई चाहना।

अनभला*—वि० [हिं० अन=नहीं+भला] जो भला न हो; अर्थात् निंदनीय या बुरा।
पुं० दे० 'अनभल'।

अनभवना*—अ० [सं० अनुभव] अनुभव करना। उदा०—वाकी गति जानै सोई जिहि अनभई है।—घ्रुवदास।

अनभाय (या)—वि० [हिं० अन+भावना=अच्छा न लगना] न भानेवाला। अप्रिय। अरुचिकर।
पुं० [हिं० अन+सं० भाव] [स्त्री० अनभाई] आपस का वैर, विरोध या द्वेष।

अनभावता*—वि० दे० 'अनभाय'।

अनभिग्रह—वि० [सं० न–अभिग्रह, न० ब०] जिसमें भेद-भाव न हो।
पुं० [न० त०] १. भेद-शून्यता। एकरूपता। २. जैन मतानुसार सब मतों को उत्तम और मोक्ष-प्रद मानने का गलत सिद्धांत।

अनभिज्ञ—वि० [सं० न–अभिज्ञ, न० त०] [स्त्री० अनभिज्ञा, भाव० अनभिज्ञता] १. जिसे किसी विशिष्ट बात या विषय की जानकारी न हो। (अन्-एक्वेन्टेड) २. अज्ञ। अनजान। नावाकिफ।

अनभिज्ञता—स्त्री० [सं० अनभिज्ञ+तल्–टाप्] अनभिज्ञ होने की अवस्था या भाव।

अनभिप्रेत—वि० [सं० न–अभिप्रेत, न० त०] जो अभिप्रेत न हो। अवांछित।

अनभिभूत—वि० [सं० न–अभिभूत, न० त०] जो अभिभूत न हुआ हो।

अनभिमत—वि० [सं० न–अभिमत, न० त०] १. मत के विरुद्ध। असम्मत। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। २. जो अभीष्ट न हो। अवांछित।
पुं० अभिमत का अभाव या विपर्याय।

अनभिरूप—वि० [सं० न–अभिरूप, न० ब०] १. जिसका रूप एक-सा न हो। २. बे-डौल। बे-रूप। असुंदर।

अनभिलषित—वि० [सं० न–अभिलषित, न० त०] जो अभिलषित या वांछित न हो।

अनभिलाष—वि० [सं० न–अभिलाष, न० ब०] जिसे कोई अभिलाषा न हो।
पुं० [न० त०] १. अभिलाषा या इच्छा का अभाव। २. रस या स्वाद का अभाव।

अनभिवाद्य—वि० [सं० अभि√वद् (बोलना)+ण्यत्, न० त०] १. जो अभिवादन का अधिकारी या पात्र न हो। २. जिसका अभिवादन अभी न हुआ हो।

अनभिव्यक्त—वि० [सं० न–अभिव्यक्त, न० त०] जो प्रकट या व्यक्त न हो। गुप्त। २. जिसकी अभिव्यक्ति न हो। ३. अस्पष्ट।

अनभिसंधि—स्त्री० [सं० न–अभिसंधि, न० त०] १. अभिसंधि का अभाव या विपर्याय। २. अभिप्राय या प्रयोजन का अभाव।

अनभिहित—वि० [सं० न-अभिहित, न० त०] १. जो अभिहित या उक्त न हो। २. जिसका नाम न लिया गया हो या जो कहा न गया हो। ३. जो बँधा न हो। मुक्त।

अनभीष्ट—वि० [सं० न-अभीष्ट, न० त०] जो अभीष्ट न हो।

अनभेदी*—वि० [सं० अभेदिन्] १. जो भेद या रहस्य न जाने। २. पराया।

अनभै*—पुं०, वि०=अनभो।

अनभो—वि० [हिं० अन+भवा=हुआ] १. अपूर्व। अलौकिक। २ अद्भुत। विलक्षण।
*पुं० १. अचंभा। अचरज। २. अद्भुत, अप्राकृतिक या अनहोनी बात।

अनभोरी*—स्त्री० [सं० भ्रम] भुलावा। चकमा।
क्रि० प्र०—देना।

अनभौ*—वि० पुं०, दे० 'अनभो'।

अनभ्यसित—वि०='अनभ्यस्त'।

अनभ्यस्त—वि० [सं० न–अभ्यस्त, न० त०] १. जिसने अभ्यास न किया हो। अपरिपक्व। २. जिसका अभ्यास न किया गया हो।

अनभ्यास—पुं० [सं० न–अभ्यास, न० त०] १. अभ्यास का अभाव। २. आदत का न होना।

अनभ्यासी (सिन्)—वि० [सं० न–अभ्यासिन्, न० त०] १. अभ्यास न करनेवाला। २. जिसने अभ्यास न किया हो।

अनभ्र—वि० [सं० न–अभ्र, न० ब०] (आकाश) जो अभ्र या मेघ से रहित हो। स्वच्छ।

अनभ्रवृष्टि—स्त्री० [सं० अनभ्र–वृष्टि, कर्म० स०] १. विना वादल के अचानक होनेवाली वर्षा। २. ऐसा लाभ या प्राप्ति जिसकी आशा या अनुमान पहले से न हो।

अनम*—वि० [सं० अनम्र] १. न झुकनेवाला। अनम्र। २. उद्धत। पुं० ब्राह्मण (जो दूसरे को नमस्कार न करे)।

अनमद*—वि० [हिं० अन+सं० मद] जिसे मद या घमंड न हो।

अनमन—वि०=‘अनमना’।

पुं० [न० त०] न झुकना।

अनमना—वि० [सं० अन्यमनस्क] [स्त्री० अनमनी] १. जिसका मन ठीक तरह से किसी काम में न लग रहा हो। अन्यमनस्क। २. वीमार। अस्वस्थ।

अनमनापन—पुं० [हिं० अनमना+पन (प्रत्य०)] १. अनमने होने की अवस्था या भाव। २. उदासी। खिन्नता। ३. वात-चीत या व्यवहार में होनेवाला रूखापन।

अनमाँगा—वि० [हिं० अन=नहीं+माँगना] विना माँगा हुआ। अयाचित।

अनमापा*—वि० [हिं० अन=नहीं+मापना] जिसे मापा न गया हो।

अन-माया*—वि० [हिं० अन+माय (माप)] १. जो नापा न जा सके। जिसकी थाह न हो। २. जिसकी सीमा न हो। असीम। वेहद। उदा०—भेंटी मातु भरत भरतानुज क्यों कहीं प्रेम अमित अन-मायो।—तुलसी।

अनमारग*—पुं० [हिं० अन=बुरा+मारग] १. अनुचित या बुरा मार्ग। २. अनुचित या बुरा आचरण या व्यवहार।

अनमिख—क्रि० वि० [सं० अनिमेष] १. विना पलक गिराये। एक-टक। २. निरंतर। लगातार।

अनमित्र—वि० [सं० न–अमित्र, न० ब०] जिसका कोई अमित्र (विरोधी या शत्रु) न हो।

पुं० वह अवस्था जिसमें कोई अमित्र (विरोधी या शत्रु) न हो।

अनमिल*—वि० [हिं० अन=नहीं+मिल=मिलना] १. स्वभावतः जो किसी से मिल न सकता हो। २. बे-मेल। जिसका किसी से जोड़ या मेल न बैठता हो। ३. जिससे मेल-जोल न हो। ४. पराया।

अनमिलत*—वि० [हिं० अनमिल]=अनमिल।

अनमिलता*—वि० [हिं० अन=नहीं+मिलना] १. जो कहीं मिल ही न सकता हो। अप्राप्य। २. जो सहज में न मिलता हो। दुष्प्राप्य। ३. दे० ‘अनमेल’।

अनमी—वि० [सं० अनम्र] १. न झुकनेवाला। २. (ल० अ०) अपने मान, प्रतिष्ठा आदि के विचार से किसीसे न दवनेवाला। स्वाभिमानी ३. जिद्दी। हठी।

अन-मीच*—स्त्री० [हिं० अन+मीच=मृत्यु] आकस्मिक या असमय में होनेवाली मृत्यु।

अनमीलना*—अ० [सं० उन्मीलन] १. (आँखें) खुलना। २. (कलियों आदि का) खिलना या विकसित होना। ३. प्रफुल्लित या प्रसन्न होना।

अनमेल—वि० [हिं० अन+मेल] १. जिसका किसी से मेल या जोड़ न बैठे। बेमेल। वेजोड़। २. जिसमें मिलावट न हो। विशुद्ध। ३. जिसके मेल या बराबरी का और कोई न हो।

अनमेली—स्त्री० [हिं० अन+मेल] एक प्रकार की असंगत और निरर्थक कविता जिसे ‘ढकोसला’ भी कहते हैं। विशेष दे० ‘ढकोसला’।

अनमोल—वि० [हिं० अन+मोल] १. जिसका मूल्य इतना अधिक हो कि उसकी कल्पना न हो सके। २. बहुमूल्य। ३. सुन्दर। ४. उत्तम। क्रि० वि० विना मोल लिये। विना दाम दिये। मुफ्त में।

अनम्र—वि० [न० त०] १. जो झुका न हो। २. जो नम्र न हो। अविनीत। ३. उद्दंड। उद्धत।

अनय—पुं० [न० त०] १. नय या नीति का अभाव। अनीति। अन्याय। २. अनम्रता ३. विपत्ति। ४. कुप्रबंध। ५. अनुचित या निंदनीय आचरण।

अनयन—वि० [न० ब०] नेत्रहीन। अंधा।

अनयस*—पुं० दे० ‘अनैस’।

अनयास*—क्रि० वि०=अनायास।

अनरंग—वि० [हिं० अन+सं० रंग] दूसरे रंग या प्रकार का। उदा०—कारी अपनी रंग न छाँड़ै अनरँग कबहुँ न होई।—सूर।

अनरथ*—पुं०=अनर्थ।

अनरना*—स० [सं० अनादर] अनादर या अपमान करना।

अनरस—पुं० [हिं० अन+रस] १. रस का अभाव। रसहीनता। शुष्कता। २. रुखाई। ३. मनोमालिन्य। मनमुटाव। ४. निरानंद। दुःख। ५. रसविहीन काव्य।

वि० जिसमें कोई रस (आनंद या स्वाद) न हो।

अनरसना*—अ० [हिं० अन=नहीं+सं० रस] १. उदास होना २. खिन्न या अप्रसन्न होना।

अनरसा*—वि० [हिं अन+सं० रस] १. विना रस का। २. अनमना। अन्यमनस्क। ३. माँदा। वीमार। रोगी।

पुं० दे० ‘अँदरसा’।

अनरसों*—क्रि० वि० दे० ‘अतरसों’।

अनराजकता—स्त्री०=अराजकता।

अनराता*—वि० [हिं० अन=नहीं+राता] १. जो रंगा हुआ न हो। २. जो लाल रंग का न हो। ३. जिसमें अनुराग या प्रेम न उत्पन्न हुआ हो।

अन-रितु—स्त्री० [हिं० अन+रितु (ऋतु) या सं० अनृतु] प्राकृतिक कारणों से वातावरण का ऐसा विपर्यय जिसमें किसी ऋतु में किसी दूसरी ऋतु की स्थिति का भान हो। जैसे—जाड़े में बहुत पानी बरसना या गरमी में अधिक सरदी पड़ना।

वि० जो अपनी उपयुक्त ऋतु में न होकर उससे पहले या पीछे हो। जैसे—अन-रितु फल या अन-रितु वर्षा।

अनरीता—वि० [हिं० अन+रीता=रिक्त] जो भरा हुआ न हो। खाली। रिक्त। उदा०—रीते अनरीते करे भरे बिगारत दीठ।—रहीम।

अनरीति—स्त्री० [हिं० अन+सं० रीति] १. रीति या नियम-विरुद्ध आचरण या व्यवहार। अनीति। २. बुरी रीति या प्रथा। कुप्रथा।

अनरुच*—वि० [हिं० अन+रुचना] जो रुचता न हो। अच्छा न लगनेवाला।

अनरुचि*—स्त्री० [हिं० अन+सं० रुचि] १. रुचि या प्रवृत्ति का अभाव। अरुचि। अनिच्छा। २. मन्दाग्नि नामक रोग में वह अवस्था जब भोजन करना अच्छा नहीं लगता।

अनरूप*—वि० [हिं० अन=बुरा+सं० रूप] १. जिसका कोई रूप न हो। अरूप। २. जिसका रूप अच्छा न हो। कुरूप। ३. जो किसी के रूप के अनुरूप या समान न हो। असमान। असदृश।

अनर्गल—वि० [सं० न—अर्गल, न० ब०] [भाव० अनर्गलता] १. जिसमें अर्गल या रुकावट न हो। २. जिसमें किसी प्रकार की बाधा न हो। ३. अनियंत्रित। मन-माना। ४. अंड-बंड। ऊटपटांग। बे-सिर पैर का।

अनर्घ—वि० [सं० न—अर्घ, न० ब०] १. जिसका अर्घ या मूल्य न हो। २. बहु-मूल्य। ३. उचित या नियत दर या भाव से कम या अधिक। जैसे—अनर्घ क्रय या विक्रय।

अनर्घ्य—वि० [सं० न—अर्घ्य, न० त०] १. जो अर्घ्य प्राप्त करने अर्थात् पूजे जाने के योग्य न हो। २. जिसका मूल्य न लगाया जा सके। बहु-मूल्य। ३. [न० ब०] सबसे अधिक पूजनीय।

अनर्जित—वि० [सं० न—अर्जित, न० त०] जो अर्जित न किया गया हो। (अन-अर्न्ड) जैसे—अनर्जित आय या धन।

अनर्थ—पुं० [सं० न—अर्थ, न० त०] १. अर्थ का अभाव। २. अनुचित, या विपरीत अर्थ। ३. अनुचित काम या अशुभ घटना। ४. विपत्ति। ५. अधर्म से प्राप्त, किया हुआ धन। ६. [न० ब०] विष्णु का एक नाम।

वि० १. जिसका कुछ अर्थ न हो। अर्थ-हीन। २. जिससे कुछ अर्थ या प्रयोजन न निकले। निरर्थक। व्यर्थ का। ३. भिन्न अर्थवाला।

अनर्थक—वि० [सं० न—अर्थ, न० ब०, कप्] १. अनर्थ या खराबी करनेवाला। २. अर्थरहित। निरर्थक। व्यर्थ। ३. बेफायदा।

अनर्थ-कर—वि० [ष० त०] =अनर्थकारी।

अनर्थकारी (रिन्)—वि० [सं० अनर्थ√कृ (करना)+णिनि] १. उलटा या विपरीत अर्थ करनेवाला। २. अनर्थ या परम अनुचित काम करनेवाला। ३. बहुत बड़ी हानि या खराबी करनेवाला। जैसे—अनर्थकारी भूकंप।

अनर्थदर्शी (र्शिन्)—वि० [सं० अनर्थ√दृश् (देखना)+णिनि] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] १. अनर्थ की ओर दृष्टि रखनेवाला। २. अहित करने या सोचनेवाला।

अनर्थनाशी (शिन्)—पुं० [अनर्थ√नश् (अदर्शन)+णिच्+णिनि] शिव।

अनर्थ-भाव—वि० [ब० स०] जिसका भाव दुष्ट हो। बुरे भाव या स्वभाववाला।

पुं० [कर्म० स०] दुष्ट भाव।

अनर्थ-लुप्त—वि० [ब० स०] जिसमें अनर्थक या व्यर्थ के तत्त्वों या बातों का अभाव हो।

अनर्थ-संशय—पुं० [ब० स०] महान् अनर्थ या अनिष्ट होने की आशंका या उससे युक्त कोई कार्य।

अनर्थानुबंध—पुं० [सं० अनर्थ—अनुबंध, ष० त०] ऐसी स्थिति जिसमें शत्रु का कुछ नाश होने पर भी उसके द्वारा अनर्थ होने की संभावना हो।

अनर्थापद—पुं० [सं० अनर्थ—आपद्, ष० त०] अनर्थ होने की आशंका या संभावना।

अनर्थार्थसंशय—पुं० [सं० अनर्थ—अर्थसंशय, द्व० स०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थसिद्धि की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनर्थार्थानुबंध—पुं० [सं० अनर्थ—अर्थानुबंध, द्व० स०] अपने लाभ के लिए उपद्रव खड़ा करने के उद्देश्य से शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य से की जानेवाली सहायता।

अनर्थ्य—वि० [सं० अनर्थ+यत्]=अनर्थक।

अनर्ह—वि० [सं० न—अर्ह, न० त०] [भाव० अनर्हता] १. जो दंड या पुरस्कार का पात्र न हो। २. अपात्र। अयोग्य। ३. अपर्याप्त। अनुपयुक्त।

अनर्हता—स्त्री० [सं० अनर्ह+तल्—टाप्] अनर्ह (अनुपयुक्त, अपर्याप्त, अपात्र या अयोग्य) होने का भाव।

अनर्हीकरण—पुं० [सं० अनर्ह+च्वि√कृ (करना)+ल्युट्—अन] १. किसी कार्य के संचालन अथवा किसी पद के लिए किसी को अनुपयुक्त या अपात्र ठहराना। २. अपर्याप्त या अयोग्य सिद्ध करना।

अनल—पुं० [सं०√अन् (जीवन)+कलच्] १. अग्नि। आग। २. जठराग्नि। ३. पवन। हवा। ४. आठ वसुओं में से पाँचवाँ वसु। ५. एक पितृदेव। ६. परमेश्वर। ७. जीव। ८. विष्णु। ९. वासुदेव। १०. कृत्तिका नक्षत्र। ११. ५०वाँ संवत्सर। १२. तीन की संख्या। १३. माली नामक राक्षस का पुत्र जो विभीषण का मंत्री था। १४. चीता नामक वृक्ष। १५. भिलावें का पेड़।

अनल-चूर्ण—पुं० [ष० त०] बारूद।

अनलद—वि० [सं० अनल√दा (देना)+क] १. अग्नि उत्पन्न करने या देनेवाला। २. आग बुझानेवाला (पानी)।

अनल-पंख—पुं० दे० 'अनल-पक्ष'।

अनल-पक्ष—पुं० [ब० स०] एक कल्पित चिड़िया जिसके संबंध में कहा जाता है कि यह सदा आकाश में ही उड़ती रहती और वहीं अंडे देती है।

अनल-परवचार*—पुं० [सं० अनलपक्ष-चर] हाथी। (डिं०)

अनल-प्रिया—स्त्री० [ष० त०] अग्नि की स्त्री, स्वाहा।

अनल-मुख—वि० [ब० स०] १. जिसके मुख में से अग्नि निकलती हो। २. जो अग्नि के द्वारा सब पदार्थों को ग्रहण करे।

पुं० १. देवता। २. ब्राह्मण। ३. चीता नामक पौधा। ५. भिलावें का पेड़।

अनलस—वि० [सं० न—अलस, न० त०] १. आलस्यरहित, फलतः फुर्तीला। २. चैतन्य। ३. [न अलसो यस्मात्, न० ब०] जिससे बढ़कर कोई आलसी न हो।

अनलसित—वि० [सं० न—अलसित, न० त०] आलस्यरहित।

वि० [हिं० अन+लसना] १. जो लसित न हो। २. शोभा न देनेवाला। अशोभन।

अनलहक—पुं० [अ०] एक अरबी पद जो 'अहं ब्रह्मास्मि' का वाचक है और जिसका अर्थ है—मैं ही वह ब्रह्म या ईश्वर हूँ।

अनला—स्त्री० [सं० अनल—टाप्] १. दक्ष प्रजापति की एक कन्या जिसका विवाह कश्यप ऋषि से हुआ था। २. माल्यवान नामक राक्षस की एक पुत्री।

अनलायक*—वि० [हिं० अन=नहीं+अ० लायक] १. जो लायक (योग्य) न हो। अयोग्य। नालायक। २. अनुपयुक्त।

अनलि—पुं० [सं०√अन् (जीना)+अच्, अन—अलि, ब० स०, पररूप] बक नामक वृक्ष।

अनलेख*—वि० [हिं० अन=नहीं+सं० लक्ष्य=देखने योग्य] १. जो दिखाई न दे। अलक्ष्य। अदृश्य। २. अगोचर।

अनलेखा*—वि० [हिं० अन=नहीं+ लेखा] १. जिसका लेखा या हिसाब न हो सके। २. अनगिनत। असंख्य। उदा०—साधनपुंज परे अनलेखे, मैं हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ।—घनानंद।

अनल्प—वि० [सं० न—अल्प, न० त०] १. जो अल्प या थोड़ा न हो। अधिक। बहुत। २. यथेष्ट।

अनवकांक्षा—स्त्री० [सं० न—अवकांक्षा, न० त०] १. इच्छा का अभाव। अनिच्छा। २. किसी परिणाम के लिए आतुर न होना। (जैन०)

अनवकाश—पुं० [सं० न—अवकाश, न० त०] अवकाश का अभाव। फुरसत न होना।

वि० [न० ब०] जिसे अवकाश या फुरसत न हो।

अनवकाशिक—पुं० [सं० न—अवकाश, न० त० अनवकाश+ठन्—इक] वह ऋषि जो एक पैर पर खड़ा होकर तप करे।

अनवगत—वि० [सं० न—अवगत, न० त०] जो अवगत न हो। न जाना हुआ।

अनवगाह—वि० [सं० न—अवगाह, न० ब०] १. जो इतना गहरा हो कि थाह न लगे। अथाह। २. गंभीर। गहन।

पुं० [न० त०] अवगाह या स्नान का अभाव।

अनवगाही (हिन्)—वि० [सं० अवगाह+इनि, न० त०] १. जो गहराई में न जाता हो। २. विशेष अध्ययन न करनेवाला।

अनवगाह्य—वि० [सं० न—अवगाह्य, न० त०] जिसका या जिसमें अवगाहन न हो सके।

अनवगीत—वि० [सं० न—अवगीत, न० त०] जिसका अवगीत (निंदा) न हुआ हो।

अनवग्रह—वि० [सं० न—अवग्रह, न० ब०] १. जिसमें या जिसके लिए कोई रुकावट न हो। २. जो किसी को न रोके।

अनवच्छिन्न—वि० [सं० न—अवच्छिन्न, न० त०] १. जो विच्छिन्न (अर्थात् किसी से अलग या बीच में टूटा) न हो। २. जिसका पृथक् या स्वतंत्र स्वरूप निश्चित न हो। ३. जिसका क्रम बीच में न टूटे। जैसे— अनवच्छिन्न ह्रास। ४. बहुत अधिक।

अनवट—पुं० [सं० अन्ववट, मि० मुखपट=मुखौटा] बैलों की आँखों पर बाँधा जानेवाला कपड़ा या पट्टी।

†स्त्री० [?] पैर के अँगूठे में पहनने का एक प्रकार का छल्ला।

अनवद्य—वि० [सं० न—अवद्य, न० त०] जिसमें कोई दोष न निकाला जा सके। निर्दोष। जैसे—अनवद्य अंगोंवाली सुंदरी।

अनवधान—पुं० [सं० न—अवधान, न० त०] १. अवधान का अभाव। असावधानी। २. लापरवाही।

वि० [न० ब०] असावधान। लापरवाह।

अनवधानता—स्त्री० [सं० अनवधान+तल्—टाप्] अवधान का अभाव। असावधानता।

अनवधि—वि० [सं० न—अवधि, न० ब०] जिसकी अवधि न हो। अवधि-रहित।

क्रि० वि० निरंतर। सदैव। हमेशा।

अनवना*—अ०=अँगवना (धारण करना)।

अनवभ्र—वि० [सं० अव√भ्रंश (अधःपतन)+ड, न० त०] १. जिसका नाश न हो। २. अक्षुण्ण।

अनवम—वि० [सं० न—अवम, न० त०] जो झुका हुआ या नीचे न हो (फलतः ऊँचा, बड़ा या श्रेष्ठ)।

अनवय*—पुं० [सं० अन्वय] १. वंश। कुल। २. दे० 'अन्वय'।

अनवर—वि० [सं० न—अवर, न० त०] १. जो छोटा न हो। २. जो कम न हो।

वि० [अ०] १. चमकीला। २. शोभायमान।

अनवरत—क्रि० वि० [सं० अव√रम्+क्त, न० त०] निरंतर। लगातार। सतत।

अनवरोध—पुं० [सं० न—अवरोध, न० त०] अवरोध का अभाव।

अनवलंब—वि० [सं० न—अवलंब, न० ब०] जिसे कोई सहारा न हो। अवलंबहीन।

अनवलंबन—पुं० [सं० न—अवलंबन न० त०] अवलंब या सहारा न लेना या न होना।

अनवलंबित—वि० [सं० न—अवलंबित, न० त०] १. जो किसी पर अवलंबित न हो। २. निराधार। बे-सहारा।

अनवलोभन—पुं० [सं० अव√लुप् (छेदन)+ल्युट्, पृषो० मत्व, न० त०] गर्भ के तीसरे मास में होनेवाला एक संस्कार।

अनवसर—पुं० [सं० न—अवसर, न० त०] १. ऐसा अवसर जो किसी विशिष्ट कार्य के लिए उपयुक्त न हो। कुसमय। बे-मौका। २. एक काव्यालंकार जिसमें किसी कार्य के अनवसर होने या करने का वर्णन किया जाय।

वि० [न० ब०] जिसे अवसर या अवकाश न हो। व्यस्त।

अनवसान—वि० [सं० न—अवसान, न० ब०] १. जिसका अंत या अवसान न हुआ हो। २. जिसका अंत या समाप्ति न होती हो।

अनवसित—वि० [सं० न—अवसित, न० त०] १. न ठहरने या रुकनेवाला। २. लगातार चलता रहनेवाला। ३. अस्त न होनेवाला।

अनवसित-संधि—स्त्री० [कर्म० स०] ऐसी संधि जो किसी जंगल या ऊसर जमीन को आबाद या उपजाऊ बनाने अथवा कोई देश बसाने के लिए की गई हो। औपनिवेशिक संधि।

अनवसिता—स्त्री० [सं० अनवसित+टाप्] एक प्रकार का वैदिक छंद।

अनवस्कर—वि० [सं० न=अवस्कर, न० ब०] १. मल-रहित। २. स्वच्छ।

अनवस्थ—वि० [सं० न—अवस्था, न० ब०] १. अस्थिर। चंचल। २. अव्यवस्थित। ३. डाँवाडोल।

अनवस्था—स्त्री० [सं० न—अवस्था, न० त०] १. ठीक और यथोचित अवस्था या स्थिति न होना। २. अव्यवस्था। ३. आतुरता। अधीरता। ४. तर्क में ऐसी अवस्था जिसमें एक स्थिति पर न ठहरकर बराबर हर कारण का पूर्व कारण पूछा जाय और ऐसी धारा चलती रहने से कोई निर्णय न हो सके। यह एक प्रकार का दोष माना गया है।

अनवस्थान—पुं० [सं० न—अवस्थान, न० त०] १. स्थिरता या निश्चय का अभाव। २. आचरण-भ्रष्टता।

अनवस्थायी (यिन्)—वि० [सं० न—अवस्थायिन्, न० त०] १. अस्थायी। २. अस्थिर।

अनवस्थित—वि० [सं० न—अवस्थित, न० त०] १. अस्थिर। २. चंचल। ३. अधीर। ४. क्षुब्ध। ५. अशांत। ६. अव्यवस्थित। ७. निराधार।

अनवस्थिति—स्त्री० [सं० न—अवस्थिति, न० त०] १. अस्थिरता। २. चंचलता। ३. अधीरता। ४. आधारहीनता। अवलंबशून्यता। ५. योग में, समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का स्थिर न होना।

अनवहित—वि० [सं० न—अवहित, न० त०] १. असावधान। बे-खबर। २. ला-परवाह।

अनवाँसना—स० [सं० नव+हिं० बासन] नये कपड़े, बरतन आदि का पहले-पहल प्रयोग या व्यवहार में लाना।

अनवाँसा—पुं० [सं० अण्वंश] १. कटी हुई फसल का पूला। औंसा। २. पहले-पहल जोती-बोई जानेवाली जमीन की पहली फसल।

अनवाँसी—स्त्री० [सं० अण्वंश] बिस्वाँसी का बीसवाँ भाग। (भूमि की एक नाप)

अनवाद*—पुं० [हिं० अन=बुरा+सं० वाद] १. व्यर्थ का वाद-विवाद। फालतू बातचीत। उदा०—रंग रहै सो करियै लालन भलो न अति अनवाद।—आनंदघन। २. बुरा वचन। कटु या कठोर बात।

अनवाप्त—वि० [सं० न—अवाप्त, न० त०] जो प्राप्त न हुआ हो। अप्राप्त।

अनवाप्ति—स्त्री० [सं० न—अवाप्ति, न० त०] अप्राप्ति। (दे०)

अनवेक्ष—वि० [सं० न—अवेक्षा, न० ब०] १. (विषय आदि) ध्यान न देने योग्य। २. (व्यक्ति) असावधान। लापरवाह। ३. उदासीन।

अनवेक्षक—वि० [सं० अव√ईक्ष् (देखना)+ण्वुल्—अक, न० त०] =अनवेक्ष।

अनवेक्षण—पुं० [सं० अव√ईक्ष्+ल्युट्—अन, न० त०] १. ध्यान न देने का भाव। असावधानता। लापरवाही। २. उदासीनता। ३. निरीक्षण का अभाव।

अनवेक्षणीय—वि० [सं० अव√ईक्ष्+अनीयर्, न० त०] (ऐसा सामान्य अपराध) जिसपर ध्यान देना कर्त्तव्य न हो। (नॉनकागनिजेबुल)

अनवेक्षा—स्त्री० [सं० अव√ईक्ष्+अङ—टाप्, न० त०] [वि० अनवेक्षित, अनवेक्षणीय] ऐसे सामान्य अपराध या अनुचित बात पर ध्यान न देना जिसपर विधि के अनुसार ध्यान दिया जा सकता हो। (नॉनकागनिजेन्स)

अनशन—पुं० [सं० न—अशन, न० त०] १. भोजन न करना। निराहार रहना। उपवास। २. मोक्ष-प्राप्ति के निमित्त मरने से कुछ दिन पूर्व आहार का त्याग।

अनश्वर—वि० [न० त०] जो नश्वर न हो।

अन-सखरा—वि० [हिं० अन+सखरा] (भोजन) जो सखरा न हो। पक्का। जैसे—**अन-सखरी रसोई**=पूरी-तरकारी आदि पकवान (दाल, भात, रोटी आदि से भिन्न)।

अनसत्त*—वि० [हिं० अन+सं० सत्य] १. जो सत्य न हो। २. असत्य बोलनेवाला।

वि० [हिं० अन+सं० सत्त्व] जिसमें सत्त्व या सार न हो।

अनसमझ*—वि०=नासमझ।

अनसमझा*—वि० [हिं० अन+समझना] १. जो कुछ समझता-बूझता न हो। नासमझ। २. (विषय) जो जाना या समझा हुआ न हो।

अनसमझे—क्रि० वि० [हिं० अनसमझा] बिना समझे हुए।

अनसहत*—वि० [हिं० अन+सहना] १. जो सहा न जा सके। असह्य। २. जो सह न सके। असहनशील।

अन-सहन—वि० [हिं० अन+सहना] १. जो सहा न जा सके। २. जो सहनशील न हो।

स्त्री० १. सहनशीलता का अभाव। २. असह्य होने की अवस्था या भाव।

अनसाना*—अ० [हिं० अनख या अनिष्ट?] १. अप्रसन्न या रुष्ट होना। २. चिढ़ना।

स० १. किसी को अप्रसन्न या नाराज करना। २. चिढ़ाना।

अन-सिखा—वि० [सं० अशिक्षित] [स्त्री० अन-सिखी] १. जिसने कुछ सीखा न हो। २. अशिक्षित।

अन-सुना—वि० [हिं० अन+सुनना] [स्त्री० अन-सुनी] १. जो कहा जाने पर सुना न गया हो या जिस पर ध्यान न दिया गया हो।

मुहा०—**अन-सुनी करना**=(क) सुनकर भी न सुनने के समान करना। (ख) आज्ञा या आदेश की उपेक्षा करना।

२. जो या जैसा आज तक कभी सुना न गया हो। अभूत-पूर्व।

अनसूय—वि० [सं० न—असूया, न० ब०] १. दूसरों के दोषों की ओर ध्यान न देनेवाला। २. असूया या ईर्ष्या-द्वेष से रहित।

अनसूयक—वि० [सं० न—असूयक, न० त०]=अनसूय।

अनसूया—स्त्री० [सं० न—असूया, न० त०] १. दूसरों के अवगुणों की ओर ध्यान न देना। २. ईर्ष्या या द्वेष न रखना। ३. अत्रि मुनि की पत्नी। ४. शकुंतला की एक सखी।

अनसूयु—वि० [सं० न—असूयु, न० त०]=अनसूय।

अनस्तमित—वि० [सं० न—अस्तमित, न० त०] १. जो अस्त न हुआ हो। २. जिसका पतन या ह्रास न हुआ हो।

अनस्तित्व—पुं० [सं० न—अस्तित्व, न० त०] अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता।

अनस्थ—वि० [सं० न—अस्थि, न० ब०, अच्] जिसमें हड्डी न हो।

अनस्थिक—वि० [सं० न—अस्थि, न० ब०, कप्]=अनस्थ।

अनहंकार—वि० [सं० न—अहंकार, न० ब०] अहंकार से रहित।

पुं० [न० त०] अहंकार का अभाव।

अनहंकृत—वि० [सं० न—अहंकृत, न० त०] जिसे अहंकार न हो।

अनहंकृति—स्त्री० [सं० न—अहंकृति, न० त०] अहंकार का अभाव।

अनह (न्)—पुं० [सं० न—अहन्, न० त०] १. कुदिन। बुरा दिन।

२. दिन का अभाव।

अनहद—पुं० दे० 'अनाहत'।

वि० दे० 'बे-हद'।

अनहदनाद—पुं० दे० 'अनाहत-नाद'।

अनहित*—वि० [हिं० अन+सं० हित] १. अहितकारी। २. शत्रु।

पुं० १. हित का अभाव। २. अशुभ कामना।

अनहितू—वि० [हिं० अन+हितू] अनहित चाहनेवाला। अशुभ-चिंतक।

अन-होता—वि० [हिं० अन=नहीं+होना] १. जो कभी होता हुआ दिखाई न दे। अनोखा। २. जिसके पास कुछ न हो। निर्धन।

अन-होना—वि० [हिं० अन+होना] [स्त्री० अन-होनी] १. जो जल्दी न तो हुआ हो और न हो सकता हो। सहसा न होनेवाला। २. अलौकिक।

अन-होनी—स्त्री० [हिं० अन+होना] १. सहसा न होनेवाली और प्रायः असंभव बात। अलौकिक घटना। २. अस्तित्व का अभाव। उदा०—होनि सों मढ़ी पै, अनहोनि जाकें बीच भरी, जामें चली जायबे बनाई रहि ठानी है।—घनआनंद।

अनाई-पठाई†—स्त्री० [सं० आनयन+प्रस्थान, प्रा० पट्ठान] १. बुलवाने (या मँगाने) और भेजने की क्रिया। २. वधू का ससुराल से बाप के घर आना और फिर ससुराल जाना।

अनाकनी*—स्त्री० दे० 'आनाकानी'।

अनाकर्ण—वि० [सं० न–आकर्ण, न० ब०] जो कभी सुना न गया हो। अश्रुत। उदा०—अनाकर्ण चैतन्य कछू न चितवै सावन तन।—नंददास।

पुं० [न० त०] सुनने का अभाव।

अनाकानी—स्त्री०=आनाकानी।

अनाकार—वि० [सं० न–आकार, न० ब०] १. जिसका आकार, आकृति या रूप न हो। निराकार। २. ईश्वर का एक विशेषण।

अनाकाल—पुं० [सं० अकाल] अकाल। दुर्भिक्ष। भुख-मरी।

वि० दे० 'अन-रितु'।

अनाकाश—वि० [सं० न–आकाश, न० ब०] जो पारदर्शक न हो।

पुं० [न० त०] आकाश का अभाव।

अनाकुल—वि० [सं० न–आकुल, न० त०] जो आकुल या व्यग्र न हो, अर्थात् शांत। स्थिर। २. जो संगत न हो। असंगत। ३. एकाग्रचित्त।

अनाकृत—वि० [सं० न–आकृत, सहसुपा सं० न–आकृत, न० त०] १. जो पुनः प्राप्त करने योग्य न हो अथवा पुनः प्राप्त न किया गया हो। २. जो रोका न गया हो। अनिवारित। ३. जिसके विषय में सावधानी न बरती गई हो।

अनाक्रमण—पुं० [सं० न–आक्रमण, न० त०] आक्रमण का अभाव। आक्रमण न करना। जैसे—अनाक्रमण की संधि।

अनाक्रांत—वि० [सं० न–आक्रांत, न० त०] जो आक्रांत न हुआ हो।

अनाक्रांता—स्त्री० [सं० अनाक्रांत+टाप्] १. कंटकारि या भटकटैया नामक पौधा।

अनाखर†—वि० [सं० अनक्षर, प्रा० अनक्खर] १. जो पढ़ा-लिखा न हो। २. असभ्य। ३. बे-डौल। भद्दा।

अनागत—वि० [सं० न–आगत, न० त०] १. जो अभी पास या सामने न आया हो। अनुपस्थित। अप्रस्तुत। २. भावी। होनहार। ३. अ-परिचित। अज्ञात। ४. अनादि। ५. अद्भुत। विलक्षण।

क्रि० वि० अचानक। सहसा।

पुं० १. संगीत शास्त्र के अनुसार एक ताल। २. आगे आनेवाला समय। भविष्यत्‌काल।

अनागत-वक्ता(क्तृ)—पुं० [प० त०] भविष्य की बात कहनेवाला। भविष्यद्-वक्ता।

अनागति—स्त्री० [सं० न–आगति, न० त०] १. आगमन न होना। न आना। २. न पाना। अप्राप्ति। ३. गति या पहुँच न होना।

अनागम—पुं० [सं० न–आगम, न० त०] १. आगमन न होना। न आना। २. न पाना। अप्राप्ति। ३. संपत्ति आदि जिसपर चिरकाल से अधिकार हो किंतु जिसका कोई लेख्य प्रमाण न हो।

अनागम्य—वि० [सं० न–आगम्य, न० त०]=अगम्य।

अनागर—पुं० [न० त०] वह जो नागर न हो।

अनागामी (मिन्)—पुं० [न–आगामिन्, न० त०] वह जो न आये या न लौटे।

वि० जिसका कुछ भी आगम (भविष्य) न हो।

अनागार—वि० [सं० न–आगार, न० ब०] जिसका घर-द्वार न हो।

पुं० संन्यासी।

अनाघात—पुं० [सं० न–आघात, न० त०] १. आघात का अभाव। २. संगीत में एक प्रकार का ताल।

अनाघ्रात—वि० [सं० न–आघ्रात, न० त०] जिसे किसी ने सूँघा न हो।

अनाचरण—पुं० [सं० न–आचरण, न० त०] १. किसी कार्य का आचरण न करना। २. जो करने को हो वह न करना। करने का काम छोड़ देना। (ओमिशन) ३. दे० 'अनाचार'।

अनाचार—पुं० [सं० न–आचार, न० त०] १. धर्म और नीति के विरुद्ध निंदनीय आचरण। खराब या बुरा चाल-चलन। कदाचार। (इम्मॉरैलिटी) २. दुराचार। भ्रष्टाचार। कुरीति। कुचाल।

वि० [न० ब०] १. विचित्र। २. अभद्र।

अनाचारिता—स्त्री० [सं० अनाचारिन्+तल्–टाप्] १. निंदनीय आचरण। २. कुरीति।

अनाचारी (रिन्)—वि० [सं० अनाचार+इनि] १. कुत्सित या निंदनीय आचरणवाला। २. भ्रष्टाचारी।

अनाज—पुं० [सं० अन्नाद्य] गेहूँ, चावल, दाल आदि अन्न। धान्य। गल्ला। (ग्रेन)

पद—**अनाज का दुश्मन**=बहुत अधिक खानेवाला। पेटू।

अनाजी—वि० [हिं० अनाज] जो अनाज से बना हो अथवा जिसमें अनाज का अंश हो। 'फलाहारी' का विपर्याय।

पुं० अनाज या अन्न से तैयार किया हुआ भोजन।

अनाज्ञप्त—वि० [सं० न–आज्ञप्त, न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे आज्ञा न मिली हो। २. (कार्य) जिसके लिए आज्ञा न दी गई हो।

अनाज्ञाकारिता—स्त्री० [सं० अनाज्ञाकारिन्+तल्–टाप्] १. आज्ञा का पालन न करना। आज्ञाकारी न होना। २. आदेश न मानना या उसका उल्लंघन करना।

अनाज्ञाकारी (रिन्)—पुं० [सं० न–आज्ञाकारिन्, न० त०] वह जो आज्ञा या आदेश का पालन न करता हो।

अनाड़ी—वि०, पुं० [सं० अनार्य, पा० अनरिय, सं० अज्ञानी, प्रा० अण्णाणी] १. नासमझ। नादान। २. जो निपुण न हो। अ-कुशल। अ-दक्ष। ३. गँवार।

अनाढ्य—वि० [सं० न–आढ्य, न० त०] दरिद्र। निर्धन।

अनातप—वि० [न–आतप, न० ब०] १. धूप-रहित। २. छायादार। ३. जो तपता न हो, फलतः शीतल या ठंढा।

पुं० [न० त०] १. धूप का अभाव। २. छाया। ३. शीतलता।

अनातुर—वि० [सं० न–आतुर, न० त०] १. जो आतुर न हो। २. रोग से मुक्त। नीरोग।

अनात्म (न्)—वि० [सं० न–आत्मन्, न० ब०] १. जिसमें आत्मा न हो। २. आत्मा या अध्यात्म से भिन्न; अर्थात् भौतिक, शारीरिक आदि। ३. जो अपना न हो। ४. अपने आप पर नियंत्रण न रखनेवाला।

पुं० [न० त०] आत्मा से भिन्न पदार्थ। जैसे—शरीर आदि।

अनात्मक—वि० [सं० न–आत्मन्, न० ब०, कप्] १. जिसका संबंध आत्मा से न हो। २. क्षणिक। ३. अयथार्थ। ४. जिसका संबंध अपने से न हो।

अनात्मक-दुःख—पुं० [कर्म० स०] अज्ञान से उत्पन्न दुःख। सांसारिक आधि-व्याधि।

अनात्मज्ञ—वि० [सं० अनात्मन्√ज्ञा (जानना) +क] १. जिसे आत्मीय या आत्मा का ज्ञान न हो। २. अज्ञानी।

अनात्म-धर्म—पुं० [प० त०] शरीर का धर्म और व्यापार।

अनात्म-वाद—पुं० [प० त०] वह सिद्धांत जिसमें आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाता।

अनात्मवान् (वत्)—वि० [सं० आत्मन्+मतुप्, वत्व, न० त०] असंयमी।

अनात्म्य—वि० [सं० आत्मन्+यत्, न० त०] १. जिसका संबंध आत्म या आत्मा से न हो। २. जो अपने परिवार के लोगों अथवा मित्रों से स्नेह न रखता हो।

अनात्यंतिक—वि० [सं० न–आत्यंतिक, न० त०] जो आत्यंतिक न हो।

अनाथ—वि० [न० ब०] [स्त्री० अनाथा, अनाथिनी] १. जिसका कोई नाथ या स्वामी न हो। विना मालिक का। २. जिसका कोई पालन-पोषण करनेवाला न हो। ३. असहाय। अशरण। ४. दीन। दुःखी।

अनाथानुसारी (रिन्)—वि० [सं० अनाथ–अनुसारिन्, प० त०] अनाथों का सहायक।

अनाथालय—पुं० [सं० अनाथ–आलय, प० त०] वह स्थान जहाँ असहाय, दीन-दुखियों, विधवाओं या माता-पिता हीन बच्चों आदि का पालन-पोषण होता है। (ऑरफनेज)

अनाथाश्रम—पुं० [सं० अनाथ–आश्रम, प० त०] =अनाथालय।

अनाद—पुं० [सं० ?] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में मगण, यगण, गुरु और लघु होता है। इसे 'वाणी' भी कहते हैं।

अनादर—पुं० [सं० न–आदर न० त०] [वि० अनादृत, अनादरणीय] १. आदर न होना। निरादर। अपमान। अप्रतिष्ठा। वेइज्जती। २. साहित्य में एक अलंकार जिसमें कोई दूसरी वस्तु प्राप्त करने की आशा से किसी प्राप्त वस्तु के अनादर का उल्लेख होता है।

वि० [न० ब०] जिसका आदर न हुआ हो।

अनादरण—पुं० [सं० आ√दृ (आदर) +ल्युट्। अन० त०] [भूत० कृ० अनादृत] १. अनादर या अपमान करने की क्रिया या भाव। २. बंकों आदि में किसी देयक या प्राप्यक का इसलिए अस्वीकृत होना और उसका धन न चुकाया जाना कि उस पर हस्ताक्षर करनेवाले के खाते में उसका इतना धन जमा नहीं। (डिस्-ऑनरिंग)

अनादरणीय—वि० [सं० न–आदरणीय, न० त०] १. जो आदर का अधिकारी या पात्र न हो। २. तिरस्कार या अवहेलना के योग्य।

अनादरित—वि० [सं० अनादर+इतच्] १. जिसका आदर न किया गया हो। २. जिसका अनादर किया गया हो।

अनादि—वि० [सं० न–आदि, न० ब०] १. जिसका आदि या आरंभ न हो। २. जो सदा से बना चला आ रहा हो। ३. परमात्मा का एक विशेषण।

अनादित्व—पुं० [सं० अनादि+त्व] १. अनादि होने की अवस्था या भाव। २. नित्यता।

अनादि-निधन—वि० [सं० आदि–निधन, द्व० स०, न–आदि निधन, न० ब०] १. जिसका आदि-अंत न हो। २. नित्य। ३. परमेश्वर का एक विशेषण।

अनादिष्ट—वि० [सं० न–आदिष्ट, न० त०] १. जिसे आदेश या आज्ञा न मिली हो। २. जिसके लिए आदेश या आज्ञा न दी गई हो।

अनादि-सिद्ध—वि० [पं० त०] जो अनादि काल से चला आरहा हो।

अनादृत—वि० [सं० न–आदृत, न० त०] १. जिसका अनादर या अपमान हुआ हो। २. जिसका आदर या सम्मान न किया गया हो।

अनादेय—वि० [सं० न–आदेय, न० त०] (पदार्थ) जो ग्रहण करने या लिये जाने के योग्य न हो। अग्राह्य।

अनादेश—पुं० [सं० न–आदेश, न० त०] आदेश या आज्ञा का अभाव।

अनादेश-कर—वि० [सं० न–आदेश न० ब०, अनादेश–कर, ष० त०] १. विना आज्ञा के करनेवाला। २. ऐसा काम करनेवाला जिसके लिए आज्ञा न मिली हो।

अनाद्यंत—वि० [सं० आदि–अंत, द्व० स०, न–आद्यंत, न० ब०] जिसका न तो आरंभ या आदि हो और न अंत। सदा से चला आने और सदा बना रहनेवाला।

पुं० शिव।

अनाद्य—वि० [सं० न–आद्य, न० त०] १. अनादि। २. अभक्ष्य।

अनाद्यनंत—वि० [सं० अनादि–अनंत, द्व० स०] =अनाद्यंत।

अनाधार—वि० [सं० न–आधार, न० ब०] १. जिसका कोई आधार न हो। जैसे—अनाधार कथन। २. जिसे किसी का सहारा न हो।

अनाधि—वि० [सं० न–आधि, न० ब०] आधि (मानसिक चिंताओं आदि) से युक्त या रहित।

अनाधृष्ट—वि० [सं० आ√धृष् (दबाना) +क्त, न० त०] १. जिस पर नियंत्रण न हो। २. जो नष्ट या क्षीण न किया गया हो। ३. पूर्ण।

अनाना*—स० [सं० आनयनम्] हिं० 'आनना' का प्रेरणार्थक रूप। (किसी से कुछ) मँगाना।

अनानास—पुं०=अनन्नास।
अनापद्—स्त्री० [सं० न–आपद्, न० त०] आपद् या विपत्ति का अभाव।
वि० [न० ब०] जिसमें आपद् या विपत्ति की संभावना न हो।
अनाप-शनाप—पुं० [सं० अनाप्त–अन्] असंबद्ध प्रलाप। बेतुकी बकवाद। आँय-बाँय।
वि० ऊटपटांग।
अनापा*—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० नापना] १. जो नापा न गया हो। २. अपरिमित। ३. असीम।
अनाप्त—वि० [सं० न–आप्त, न० त०] १. जो प्राप्त न हुआ हो। अप्राप्त। २. जो सामने उपस्थित या घटित न हुआ हो। ३ अविश्वस्त। ४. असत्य। ५. अ-कुशल। अनाड़ी। ६. अनात्मीय।
अनाम (न्)—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई नाम न हो। बिना नाम का। २. जो प्रसिद्ध न हुआ हो। अप्रसिद्ध।
पुं० मलमास।
अनामक—वि० [सं० न० ब०, कप्] दे० 'अनाम'।
पुं० १. मलमास। २. बवासीर नामक रोग।
अनामय—वि० [सं० न–आमय, न० ब०] १. आमय या रोग से रहित। नीरोग। २. दोष-रहित। निर्दोष। ३. अच्छा। उत्तम।
पुं० [न० त०] १. तंदुरुस्ती। स्वास्थ्य। २. कुशल-क्षेम। ३. [न० ब०] विष्णु। ४. शिव।
अनामा—वि० =अनाम।
स्त्री० [सं० अनामन्+डाप्]=अनामिका।
अनामिका—स्त्री० [सं० अनामा+कन्–टाप्, इत्व] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली।
अनामिष—वि० [सं० न० ब०] १. आमिष से रहित। निरामिष। मांस-रहित। २. प्रलोभन-रहित। ३. लाभ-रहित।
अनामृत—वि० [सं० अमृत] जिसकी मृत्यु न हो। अमर।
अनामेल—पुं० दे० 'एनामेल'।
अनायक—वि० [न० ब०] १. जिसका कोई नायक न हो। २. जो (स्वयं) नायक न हो। ३. अव्यवस्थित।
अनायत—वि० [सं० न–आयत, न० त०] १. जो बँधा हुआ और फलतः दृढ़ न हो। २. जो अलग न हो। मिला हुआ। ३. जो लंबा न हो।
स्त्री०=इनायत (कृपा)।
अनायत्त—वि० [सं० न–आयत्त, न० त०] १. जो अधीन या वश में न हो। २. स्वतंत्र। स्वाधीन।
अनायास—क्रि० वि० [सं० न–आयास, न० ब०] १. बिना प्रयास किए। २. अचानक। सहसा।
अनायुध—वि० [सं० न–आयुध, न० ब०] जिसके पास हथियार या अस्त्र न हों। शस्त्र-विहीन।
अनायुष्य—वि० [सं० न–आयुष्य, न० ब०] १. जो आयुवर्धक न हो। २. जो दीर्घ जीवन के लिए घातक हो।
अनारंभ—वि० [सं० न–आरंभ न० ब०] आरंभ-रहित।
पुं० [न० त०] आरंभ का अभाव।
अनार—पुं० [फा०] १. एक प्रसिद्ध पेड़ और उसका फल। दाड़िम। २. उक्त फल के आकार की एक प्रकार की छोटी आतिशबाजी। ३. दो छप्परों को बाँधनेवाली रस्सी।
पद—अनार-दाना। (दे०)
अनारत—वि० [सं० आ√रम् (क्रीड़ा)+क्त, न० त०] जो नित्य या सतत रहे। नित्य। सतत।
अव्य० सदा। हमेशा।
पु० अविच्छिन्नता।
अनार-दाना—पुं० [फा०] १. खट्टे अनार का सुखाया हुआ दाना। २. राम-दाना। ३. एक प्रकार की मिठाई। ४. एक प्रकार की लाल रंग की छींट जिसे स्त्रियाँ पहनती हैं।
अनारम्य—वि० [सं० न–आरम्य, न० त०] जो आरंभ किए जाने के योग्य न हो।
अनारस—पुं०=अनन्नास।
अनारी—वि० [फा०] १. अनार-संबंधी। अनार का। २. अनार के छिलके या दाने की तरह का। लाल। (टार्टन गोल्ड)
पु० १. अनार के छिलके उबालकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का लाल रंग। (टार्टन गोल्ड) २. लाल आँखोंवाला कबूतर। ३. समोसे की तरह का एक प्रकार का पकवान।
†वि०=अनाड़ी।
अनारोग्य—वि० [सं० न–आरोग्य, न० ब०] १. अस्वस्थ। २. स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद।
पुं० [न० त०] आरोग्य का अभाव। अस्वस्थता।
अनार्जव—वि० [सं० न–आर्जव, न० ब०] १. जो ऋजु या सीधा न हो। २. कुटिल। ३. बेईमान।
पु० [न० त०] १. आर्जव या ऋजुता का अभाव। २. बेईमानी। (डिस्-आनेस्टी) ३. कुटिलता। ४. रोग।
अनार्तव—वि० [सं० न–आर्तव, न० त०] =अन-रितु।
पुं० स्त्रियों के ऋतुधर्म या रजोधर्म की रुकावट।
अनार्तवा—स्त्री० [सं० अनार्तव+टाप्] (स्त्री) जो ऋतुमती न हो। अरजस्वला।
अनार्य—वि० [सं० न–आर्य, न० त०] १. जो आर्य न हो। २. अश्रेष्ठ और फलतः उपेक्ष्य।
पु० म्लेच्छ, शूद्र आदि जो आर्यों से भिन्न हैं।
अनार्यक—पुं० [सं० न–आर्य, न० ब०, अनार्य+कन्] अगर नामक वृक्ष की लकड़ी।
अनार्य-कर्मा (र्मन्)—वि० [सं० अनार्य–कर्मन्, ष० त० +इनि] अनार्यों के-से कर्म करनेवाला।
अनार्यज—वि० [सं० अनार्य√जन् (उत्पत्ति)+ड] १. जिसका जन्म अनार्य से हुआ हो। २. अनार्य देश में उत्पन्न।
पुं० अगरु वृक्ष।
अनार्यता—स्त्री० [सं० अनार्य+तल्–टाप्] १. अनार्य होने की अवस्था या भाव। २. अशिष्टता। असभ्यता।
अनार्य-तिक्त—पुं० [मध्य० स०] चिरायता (पौधा)।
अनार्यत्व—पुं० [सं० अनार्य+त्व] =अनार्यता।
अनार्ष—वि० [सं० न–आर्ष, न० त०] जो आर्ष न हो।

अनार्षेय—वि० [सं० न–आर्षेय, न० त०]=अनार्ष।

अनालंब—वि० [सं० न–आलंब, न० ब०] जिसका कोई आलंब या सहारा न हो। निराश्रित।

पुं० [न० त०] आलंब या सहारे का अभाव।

अनालंबन—पुं० [सं० न–आलंबन, न० ब०]=अनालंब।

अनालंबी—स्त्री० [सं० अनालंब–ङीप्] शिव की वीणा।

वि० [सं० अनालंबिन्] जिसका कोई आलंब या सहारा न हो।

अनालाप—वि० [सं० न–आलाप, न० ब०] १. मौन। २. मितभाषी।

पुं० [न० त०] १. मौनावलंबन। २. अधिक न बोलना। ३. किसी से बात-चीत न करना। असंभाषण।

अनालोचित—वि० [सं० न–आलोचित, न० त०] १. जिसकी आलोचना, विवेचना या समीक्षा न की गई हो। २. जो देखा न गया हो। अदृष्ट।

अनावरण—पुं० [सं० न–आवरण, न० त०] [वि० अनावृत] १. किसी चीज पर पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना। २. कोई ऐसा सार्वजनिक कृत्य या समारोह जिसमें किसी महापुरुष के चित्र, मूर्ति आदि के सामने पड़ा हुआ परदा हटाकर उसे सर्वसाधारण के लिए दर्शनीय किया जाता है। उद्‌घाटन। (अनवीलिंग्)

अनावरित—भू० कृ०=अनावृत।

अनावर्त्तक—वि० [सं० न–आवर्तक, न० त०] १. जो आवर्त्तक न हो। २. जो एक ही बार होकर रह जाय। बार बार न हो। (नान-रेकरिंग) जैसे—अनावर्तक दान या व्यय।

अनावर्त्तन—पुं० [सं०न–आवर्तन, न० त०] १. न लौटना। २. फिर इस संसार में जन्म न लेना।

अनावर्षण—पुं० [सं० न–आवर्षण, न० त०] वर्षा का अभाव। अवर्षण। सूखा।

अनावश्यक—वि० [सं० न–आवश्यक, न० त०] १. जो आवश्यक न हो। २. जो उपयोग में न आवे। ३. व्यर्थ। फालतू।

अनावश्यकता—स्त्री० [सं० अनावश्यक+तल्–टाप्] आवश्यकता का अभाव। जरूरत का न होना।

अनावासिक—वि० [सं० आवास+ठन्–इक, न० त०] जो स्थायी निवासी या आवासिक न हो। बल्कि किसी दूसरे देश में आकर अस्थायी रूप से बसा हो। (नॉनरेजिडेण्ट)

अनाविद्ध—वि० [सं० न–आविद्ध, न० त०] १. जिसमें वेध या छेद न हुआ हो। अनबिंधा। २. जिसपर चोट न लगी हो।

अनाविल—वि० [सं० न–आविल, न० त०] १. जो गँदला या गंदा न हो। २. स्वच्छ। निर्मल। ३. स्वास्थ्यप्रद (देश या स्थान)।

अनावृत—भू० कृ० [सं० न–आवृत, न० त०] १. जिसके ऊपर या आगे पड़ा हुआ परदा हटा दिया गया हो। २. (चित्र या मूर्ति) जिसका अनावरण संबंधी समारोह हुआ हो। (अनवील्ड) ३. चारों तरफ से घिरा हुआ।

अनावृतन—पुं० [सं० अनावरण] १. अनावृत या नंगा करना। ऊपर का आवरण उतारना या हटाना। २. जल-प्रवाह, वर्षा, वायु, सूर्य ताप आदि के कारण भूमि के ऊपरी भाग की मिट्टी आदि का निकलकर दूर हटते जाना जिससे नीचे का चट्टानी या पथरीला अंश ऊपर निकल आता है। (डिन्यूडेशन)

अनावृत्ति—स्त्री० [सं० न–आवृत्ति, न० त०]=अनावर्तन।

अनावृष्टि—स्त्री० [सं० न–आवृष्टि, न० त०] वृष्टि न होना। अनावर्षण। सूखा।

अनावेदित—वि० [सं० न–आवेदित, न० त०] १. जो आवेदित न हुआ हो या न किया गया हो। २. जो मालूम या विदित न कराया गया हो।

अनाश—वि० [सं० न–आशा, न० ब०] १. जिसे आशा न हो। २. जिसका नाश न हुआ हो।

पुं० [सं० न–नाश, न० त०] नाश का अभाव।

अनाशक—वि० [न० त०] जो नाशक न हो।

वि० [सं० आ√अश् (खाना)+घञ्, न० ब० कप्] आमरण अनशन करनेवाला।

अनाशकायन—पुं० [सं० अनाशक (=आत्मा)–अयन (=प्राप्त्युपाय) ष० त०] उपवास युक्त ब्रह्मचर्य व्रत।

अनाशस्त—वि० [सं० आ√शंस् (स्तुति)+क्त, न० त०] जिसकी आशंसा या प्रशंसा न की गई हो।

अनाशा—स्त्री० [सं० न–आशा, न० त०] आशा का अभाव। नैराश्य।

अनाशी (शिन्)—वि० [सं०√नश् (नष्ट होना)+णिनि, न० त०] नाश से रहित। अनश्वर। (आत्मा, ब्रह्म आदि)

अनाशु—वि० [सं०√नश्+उण्, न० त०] १. नाशरहित। २. [√अश् (व्याप्ति)+उण्, न० त०] जो व्यापक न हो। ३. जो तेज न हो। मंद। सुस्त।

अनाश्य—वि० [सं०√नश्+ण्यत्, न० त०]=अविनश्वर।

अनाश्रमी (मिन्)—वि० [सं० न– आश्रमिन्, न० त०] १. जिसका कोई आश्रम न हो। २. गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमों से रहित या अलग। ३. वर्णाश्रम धर्म से भ्रष्ट। पतित।

अनाश्रय—वि० [सं० न– आश्रय, न० ब०] आश्रयहीन। बे-सहारा।

पुं० [न० त०] आश्रय का अभाव।

अनाश्रित—वि० [सं० न–आश्रित, न० त०] १. जिसे किसी का आश्रय न हो। आश्रय-रहित। बे-सहारा। २. जो दूसरे पर आश्रित न हो। स्वाधीन। ३. जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों से वंचित हो।

अनास—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे नाक न हो। बिना नाकवाला। २. नकटा।

अनासक्त—वि० [सं० न–आसक्त, न० त०] १. जो आसक्त न हो। २. अलग या दूर रहनेवाला। निर्लिप्त। (डिटैच्ड)

अनासक्ति—स्त्री० [सं० न– आसक्ति, न० त०] १. आसक्ति या अनुराग न होना। २. दूर, अलग या उदासीन रहना। अलगाव। (डिटैचमेण्ट)

अनासती*—स्त्री० [?] कु-समय। कु-अवसर। (डिं०)

अनासिक—वि० [सं० न–नासिक, न० ब०] १. बिना नाक का। २. नकटा।

अनासीन—वि० [सं० न–आसीन, न० त०] १. जो आसीन या बैठा हुआ न हो। अपने आसन, स्थान, आदि से हटा हुआ। २. अपने

पद या आधिकारिक स्थान से हटाया हुआ। (अन-सीटेड)

अनास्था—स्त्री० [सं० न–आस्था, न० त०]. १. आस्था या श्रद्धा न होना। २. विश्वास न होना। ३. अनादर। ४. उदासीनता।

अनास्वाद—वि० [सं० न–आस्वाद, न० ब०] बिना स्वाद का। विरस। पुं० [न० त०] स्वाद का न होना।

अनास्वादित—भू० कृ० [सं० न–आस्वादित, न० त०] जिसका स्वाद न लिया गया हो।

अनाह—पुं० [सं०√नह् (बंधन)+घञ्, न० त०] पेट फूलने का रोग। अफरा।
*वि०=अनाथ।

अनाहक*—क्रि० वि० [फा० ना+अ० हक] व्यर्थ। बेफ़ायदा। उदा०—चौरासी लख जीव जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक।—सूर।

अनाहत—वि० [सं० न–आहत, न० त०] १. जो आहत न हो। २. जिसपर आघात न हुआ हो। ३. जिसकी उत्पत्ति आघात से न हुई हो। ४. (गणित में) जिसका गुणन न हुआ हो।
पुं० १. दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कान बंद करने पर सुनाई पड़नेवाला एक प्रकार का शब्द। अनहद नाद। २. हठयोग में शरीर के अंदर हृदय के पास का वह चक्र या स्थान जहाँ से उक्त शब्द निकलता है। (हार्ट प्लेक्सस) ३. नया कपड़ा जो अभी पहना न गया हो।

अनाहतनाद—पुं० [कर्म० स०] वह ध्वनि या शब्द जो योगियों को अपने अंदर सुनाई पड़ता है। (दे० 'अनाहत' २.)

अनाहतशब्द—पुं० [कर्म० स०]=अनाहत नाद।

अनाहदवाणी—स्त्री० [सं० अनाहत-वाणी] आकाश-वाणी। देव-वाणी।

अनाहार—पुं० [सं० न–आहार, न० त०] [वि० अनाहारी] आहार या भोजन का अभाव या त्याग।
वि० [न० ब०] जिसने कुछ खाया न हो। निराहार।

अनाहार-मार्गणा—स्त्री० [प० त०] जैनों का एक प्रकार का व्रत।

अनाहार्य—वि० [सं० न–आहार्य, न० त०] १. (पदार्थ) जो आहार्य या खाये जाने के योग्य न हो। २. जिसे पकड़ा न जा सके। ३. जिसे उत्पन्न न किया जा सके।

अनाहिताग्नि—पुं० [सं० न–आहिताग्नि, न० त०] वह जिसने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो। अग्निहोत्र न करनेवाला।

अनाहूत—वि० [सं० न–आहूत, न० त०] १. जो आहूत न हो। जिसे बुलाया न गया हो। अनिमंत्रित। २. (कथन या बात) जो अवसर या प्रयोजन न होने पर भी अनावश्यक रूप से कही गई हो। (अन्-कॉल्ड-फॉर)

अनिंद*—वि०=अनिंदनीय।

अनिंदनीय—वि० [न० त०] १. जिसकी निंदा न की जा सकती हो। २. जिसकी निंदा करना उचित न हो। ३. निर्दोष। ४. उत्तम। अच्छा।

अनिंदित—वि० [न० त०] जिसकी निंदा न हुई हो।

अनिंद्य—वि० [न० त०] जिसकी निंदा न की जा सकती हो अर्थात् श्रेष्ठ।

अनि*—अव्य० [सं० अन्य] अन्य। दूसरा। उदा०—अनि सूरबीर नरवर सकल, चुड़ी येह घर उप्परी।—चंदवरदाई।
स्त्री० [सं० अनीक] सेना।

अनिआई*—वि०=अन्यायी।

अनिक*—वि०=अनेक।

अनिकेत—वि० [न० ब०] जिसका कोई निकेतन (घर-बार) न हो। बे-घर-बारवाला।
पुं० १. संन्यासी। २. वह जो जगह-जगह घूमकर जीवन निर्वाह करता हो। यायावर। ख़ानाबदोश।

अनिग्रह—पुं० [न० त०] १. निग्रह, रोक या बंधन का अभाव। २. दंड, पीड़न आदि का अभाव।
वि० [न० ब०] १. बंधन-रहित। बे-रोक। २. असीम। बहुत अधिक। ३. कष्ट, पीड़ा, रोग आदि से रहित। ४. जिसे कोई दंड या सजा न मिली हो। ५. जो दंडित होने के योग्य न हो। अदंड्य।

अनिच्छ—वि० [सं० न–इच्छा, न० ब०] १. जिसे किसी बात की इच्छा या चाह न हो। इच्छा-रहित। २. जो चाहा न गया हो। ३. जो इच्छा के विरुद्ध हो।
क्रि० वि० बिना इच्छा के।

अनिच्छक—वि० [सं० न० ब० कप्] अनिच्छ।

अनिच्छा—स्त्री० [सं० न–इच्छा, न० त०] १. इच्छा न होने की दशा या भाव। २. प्रवृत्ति, रुचि आदि का अभाव।

अनिच्छित—वि० [सं० इच्छा+इतच्, न० त०] १. (वस्तु) जिसकी इच्छा या चाह न की गई हो। अन-चाहा। २. जो रुचिकर न हो। अच्छा न लगनेवाला।

अनिच्छु—वि० [सं० न–इच्छु, न० त०]=अनिच्छ।

अनिच्छुक—वि० [सं० न–इच्छुक, न० त०]=अनिच्छ।

अनिजक—वि० [सं० निज+कन्, न० त०] १. जो निज का या अपना न हो। २. दूसरे से संबंध रखनेवाला। दूसरे का। पराया।

अनित*—वि०=अनित्य।

अनित्य—वि० [न० त०] [भाव० अनित्यता] १. जो नित्य या सदा न बना रहे, बल्कि कुछ समय बाद नष्ट हो जाय। अस्थायी। जैसे—संसार और उसकी सब वस्तुएँ अनित्य हैं। २. कभी न कभी नष्ट हो जानेवाला। नश्वर। (मॉर्टल) ३. अनिश्चित। ४. जो स्वयं कार्य-रूप हो और जिसका कोई कारण हो। ५. असत्य। झूठा।

अनित्यकर्म (न्)—पुं० [कर्म० स०] ऐसा धार्मिक कृत्य जो नित्य नियमित रूप से नहीं बल्कि कुछ विशिष्ट अवसरों पर किया जाता है।

अनित्यक्रिया—स्त्री० [कर्म० स०]=अनित्यकर्म।

अनित्यता—स्त्री० [सं० अनित्य+तल्–टाप्] १. अनित्य होने की अवस्था, गुण या भाव। २. नश्वरता।

अनित्यदत्त—पुं० [तृ० त०] ऐसा बालक जो किसी को स्थायी रूप से दत्तक बनाने के लिए दिया गया हो।

अनित्यदत्तक—पुं० [सं० अनित्यदत्त+कन्]=अनित्यदत्त।

अनित्यभाव—पुं० [कर्म० स०] क्षण-भंगुरता। नश्वरता।

अनित्यसम—पुं० [तृ० त०] तर्क में ऐसा दूषित और अमान्य उत्तर या कथन जिसमें किसी विशिष्ट धर्म या अपवाद-स्वरूप तथ्य के

आधार पर ऐसी बातों का भी अंतर्भाव हो जाय, जिनका अंतर्भाव न हो सकता हो।

अनिदान—वि० [न० ब०] १. जिसका निदान न हो सके। २. कारण-रहित।
पुं० [न० त०] १. निदान का अभाव। २. कारण का अभाव।

अनिद्र—वि० [सं० न–निद्रा, न० ब०] १. जिसे नींद न आती हो। २. जागता हुआ।
पुं० उन्निद्र नामक रोग, जिसमें नींद बिलकुल नहीं आती।

अनिद्रा—स्त्री० [न० त०] १. नींद न आने की अवस्था या भाव। २. नींद न आने का रोग। उन्निद्र।

अनिद्रित—वि० [न० त०] जो सोया हुआ न हो। फलतः जागता हुआ।

अनिप*—पुं० [सं० अनीक, हिं० अनी=सेना+प=पति] सेनापति। सेनाध्यक्ष।

अनिपात—पुं० [न० त०] १. निपात का अभाव। न गिरना। २. जीवन का बना रहना।

अनिभृत-संधि—स्त्री० [सं० अनिभृत, न०, त०, अनिभृत-संधि, कर्म० स०] किसी की इच्छित भूमि उसे देकर उससे की जानेवाली संधि या मेल।

अनिभ्य—वि० [सं० न–इभ्य, न० त०] धनहीन। दरिद्र।

अनिमक—पुं० [सं०√अन्+इमन्–अनिम√कै (प्रकाश)+क] १. कोयला। २. भौंरा। ३. मेढ़क। ४. पद्मकेशर। ५. मधु-मक्खी। ६. महुए का वृक्ष।

अनिमा*—स्त्री०=अणिमा।

अनिमादिक*—स्त्री० [सं० अणिमा+आदि] अणिमा, महिमा आदि आठों सिद्धियाँ।

अनिमित्त—वि० [न० ब०] बिना हेतु का। जिसका कोई निमित्त या हेतु न रहा हो। कारण-रहित।
क्रि० वि० बिना किसी कारण, प्रयोजन या हेतु के।

अनिमित्तक—वि० [न० ब०, कप्] =अनिमित्त।

अनिमिष—क्रि० वि० [न० ब०] १. बिना पलक गिराए। एक-टक। २. निरंतर। लगातार।
वि० जिसकी पलकें न गिर रही हों। टक लगाकर देखनेवाला।
पुं० [वि० अनिमिषीय] देवता।

अनिमिष-दृष्टि—वि० [ब० स०] बिना पलक गिराये देखनेवाला।

अनिमिष-नयन—वि० [ब० स०] =अनिमिषदृष्टि।

अनिमेष—क्रि० वि० [न० ब०] दे० 'अनिमिष'।
पुं० देवता।

अनियंत्रित—वि० [न० त०] १. जिसपर किसी का या किसी प्रकार का नियंत्रण न हो। बिना रोक-टोक का। (अनकण्ट्रोल्ड) २. जो कोई प्रतिबंध न माने। मनमानी करनेवाला।

अनियंत्रित शासन—पुं० [कर्म० स०] दे० 'निरंकुश शासन'।

अनियत—वि० [न० त०] १. जो नियत या निश्चित न हो। २. अनियमित। ३. अस्थिर। ४. अपरिमित। असीम। ५. असाधारण।

अनियतात्मा (त्मन्)—पुं० [सं० अनियत–आत्मन्, न० ब०] १. वह जिसकी बुद्धि या मन स्थिर न हो। २. वह जिसका मन उसके वश में न हो।

अनियम—पुं० [न० त०] [वि० अ-नियमित] नियम का अभाव। अव्यवस्था।

अनियमित—वि० [न० त०] [भाव० अ-नियमितता] १. जो नियमित न हो। नियम-रहित। अव्यवस्थित। २. जिसमें नियमों का ठीक तरह से या पूरा-पूरा पालन न हुआ हो। बेकायदा। (इर्रेगुलर) ३. अ-निश्चित। अस्थिर।

अनियाउ*—पुं०=अन्याय।

अनियारा*—वि० [हिं० अनी=नोंक+हिं० आर (प्रत्य०)] [स्त्री० अनियारी] १. नुकीला। २. पैना। तीक्ष्ण। ३. काट करनेवाला। कटीला। उदा०—बदन मदन की सोभा चितवन अनियारी।—मीराँ।

अनियोग—पुं० [न० त०] १. नियोग का अभाव। २. ऐसा नियोग जो उचित, उपयुक्त या ठीक न हो।

अनिरा—पुं० [सं० अ=नहीं+निकट, प्रा० निअर, निअड़] बहका हुआ या इधर-उधर घूमनेवाला पशु।

अनिरुक्त—वि० [न० त०] १. जिसका निर्वचन (व्युत्पत्ति आदि से युक्त व्याख्या) न हुआ हो। २. जो स्पष्ट रूप से न कहा गया हो।

अनिरुद्ध—वि० [न० त०] १. जो निरुद्ध या रुका हुआ न हो। २. जिसमें कोई रुकावट न हो। ३. स्वेच्छाचारी।
पुं० १. श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र जिन्हें ऊषा व्याही थी। २. शिव। ३. गुप्तचर। जासूस। ४. विष्णु।

अनिर्णय—पुं० [न० त०] निर्णय का न होना। अनिश्चय।

अनिर्णीत—वि० [न० त०] जिसका या जिसके संबंध में कोई निर्णय न हुआ हो।

अनिर्दश—वि० [न० ब०] जिसके अशौच के दस दिन अभी न बीते हों। (धर्मशास्त्र)

अनिर्दिष्ट—वि० [न० त०] जो निर्दिष्ट या निश्चित न हो।

अनिर्दिष्ट भोग—पुं० [कर्म० स०] बिना आज्ञा लिए दूसरे की वस्तु काम में लाना।

अनिर्देश—पुं० [न० त०] आदेश या निर्देश का अभाव।

अनिर्देश्य—वि० [न० त०] १. जिसका निर्देश न हो सकता हो। २. जिसकी व्याख्या न हो सकती हो।

अनिर्धारित—वि० [न० त०] जो निर्धारित या निश्चित न हो।

अनिर्धार्य—वि० [न० त०] १. जिसका निर्धारण न हो सके। २. जिसका लक्षण स्थिर न किया जा सके।

अनिर्बंध—वि० [न० ब०] १. जिसमें कोई निर्बंध या बंधन न हो। बंधन-रहित। २. जो बंधन से रहित हो, अर्थात् स्वतंत्र।

अनिर्भर—वि [न० त०] १. जो निर्भर न हो। २. थोड़ा। ३. हलका।

अनिर्वच—वि०=अनिर्वचनीय।

अनिर्वचनीय—वि० [न० त०] [भाव० अनिर्वचनीयता] १. जो वचन या वाणी द्वारा कहा न जा सकता हो। अकथ्य। २. जिसका वर्णन या विवेचन न हो सकता हो।

अनिर्वाच्य—वि० [न० त०] १. जिसका कथन या निर्वचन न हो सके। जो कहकर बतलाया न जा सके। २. जिसका निर्वाचन या चुनाव न हो सकता हो।

अनिर्वाप्य—वि० [न० त०] १. जो बुझाया न जा सके। जैसे—अनिर्वाप्य ज्वाला। २. जिसका निर्वापण या शमन न हो सके। जैसे—अनिर्वाप्य वैमनस्य।

अनिर्वाह—पुं० [न० त०] १. निर्वाह का अभाव। गुजर न होना। २. पूरा न होना।

अनिर्वाह्य—वि० [न० त०] १. जिसका निर्वाह न हो सकता हो। २. जिसका निर्वहण (यातायात) न हो सके।

अनिर्वाह्य-पण्य—पुं० [कर्म० स०] वह माल जिसके आने-जाने पर रोक लगी हो। (कौ०)

अनिल—पुं० [सं०√अन् (जीना)+इलच्] १. वायु। पवन। २. पवन के प्रकारों के आधार पर ४९ की संख्या। ३. वात रोग। ४. पक्षाघात। ५. विष्णु। ६. स्वाति नक्षत्र। ७. आठ वसुओं में से एक। ८. सागवान का वृक्ष।

अनिल-कुमार—पुं० [ष० त०] १. हनुमान। २. भीम। ३. देवताओं का एक भेद। (जैन)

अनिल-प्रकृति—वि० [ब० स०] वायु-स्वभाववाला। वात प्रकृतिक। पुं० शनि ग्रह।

अनिल-वाह—वि० [सं० अनिल√वह् (ढोना)+अण्] हवा की तरह बहनेवाला। उदा०—इस अनिल-वाह के पार प्रखर।—निराला।

अनिल-व्याधि—स्त्री० [ष० त०] वात रोग।

अनिल-सख—पुं० [ब० स०] अग्नि।

अनिल-सारथि—पुं० [ब० स०] अग्नि।

अनिलहा (हन्)—वि० [सं० अनिल√हन् (हिंसा)+क्विप्] वातजन्य विकार दूर करनेवाला।

अनिलात्मज—पुं० [सं० अनिल-आत्मज, ष० त०] १. हनुमान। २. भीम।

अनिलाशन—वि० =अनिलाशी।

अनिलाशी (शिन्)—वि० [सं० अनिल√अश् (भोजन)+णिनि] वायु पीकर जीने या रहनेवाला।
पुं० साँप।

अनिवर्त्तन—पुं० [न० त०] निवर्त्तन का अभाव।

अनिवर्ती (र्तिन्)—वि० [सं० नि√वृत् (बरतना)+णिनि, न० त०] १. न लौटनेवाला। २. पीछे न हटनेवाला। पीठ न दिखलानेवाला। ३. तत्पर। मुस्तैद।

अनिवार—वि० [न० ब०] १. जिसे बीच में कोई रोकनेवाला न हो। उदा०—अनिवार कामना नित अबाध अमना बहती।—पंत। २. दे० 'अनिवार्य'।

अनिवारित—वि० [न० त०] १. जिसका निवारण न हुआ हो। २. नियंत्रण-रहित। निरंकुश।

अनिवार्य—वि० [न० त०] १. जिसका निवारण न हो सकता हो। अवश्यंभावी। २. जिससे बचा न जा सके। (अनएवायडेबुल)

अनिवार्य भर्ती—स्त्री० [सं० अनिवार्य+हिं० भर्ती] सैनिक सेवाओं के लिए लोगों को अनिवार्य रूप से या अधिकार-पूर्वक भर्ती करने की प्रथा या स्थिति। (कान्स्क्रिप्शन)

अनिश—क्रि० वि० [सं० नि√शी (सोना)+डमु, न० त०] निरंतर। लगातार।

अनिश्चय—पुं० [न० त०] १. निश्चय का अभाव या न होना। २. किसी अज्ञात बात या अनिर्णीत विषय में विचार या सिद्धांत का निश्चय न होना। (अन्सर्टेण्टी)

अनिश्चित—वि० [न० त०] [भाव० अनिश्चितता, अनिश्चय] १. जो निश्चित न हो या न हुआ हो। २. जिसके आने या घटित होने का कोई निश्चय या ठीक-ठिकाना न हो।

अनिषिद्ध—वि० [न० त०] जो निषिद्ध न हो।

अनिष्कासिनी—स्त्री० [न० त०] घर से बाहर न निकलनेवाली पर्दानशीन औरत।

अनिष्ट—वि० [सं० न-इष्ट, न० त०] १. जो इष्ट या वांछित न हो। जैसे—अनिष्ट प्रसंग या फल। २. जो अशुभ, अहितकर, अमंगलकारी या हानिकर हो। ३. बहुत ही अनुचित या बुरा। ४. नाश करनेवाला।
पुं० १. अमंगल। अहित। २. हानि। ३. विपत्ति। ४. नाश।

अनिष्टकर—वि० [ष० त०] अनिष्ट करनेवाला।

अनिष्टकारी (रिन्)—वि० [सं० अनिष्ट√कृ (करना)+णिनि] अनिष्टकर।

अनिष्ट-प्रदर्शन—पुं० [ष० त०] दे० 'असंगति प्रदर्शन'।

अनिष्ट-प्रवृत्तिक—वि० [ब० स०, कप्] अनिष्ट करने की प्रवृत्ति रखनेवाला।

अनिष्ट-प्रसंग—पुं० [ष० त०] १. अनुचित या अवांछित प्रसंग। २ बुरा विषय। ३. अवांछित या बुरा तर्क।

अनिष्ट-फल—पुं० [कर्म० स०] अवांछित या बुरा फल।

अनिष्ट-शंका—स्त्री० [ष० त०] अमंगल या दुर्भाग्य की आशंका या भय।

अनिष्ट-हेतु—पुं० [कर्म० स०] बुरा लक्षण। असगुन।

अनिष्टाप्ति—स्त्री० [सं० अनिष्ट-आप्ति, ष० त०] १. अनिष्ट बात का घटित होना। २. अनिष्ट फल या वस्तु प्राप्त होना।

अनिष्टाशंसी (सिन्)—वि० [सं० अनिष्ट-आ√शंस् (कहना)+णिनि] जो अमंगल या अशुभ का सूचक हो अथवा उसकी सूचना दे।

अनिष्पत्ति—स्त्री० [न० त०] १. निष्पन्नता या पूर्णता का अभाव। २. पूरा या सिद्ध न होने की दशा या भाव। अपूर्णता।

अनिष्पन्न—वि० [न० त०] (कार्य) जो निष्पन्न न हुआ हो अथवा न किया गया हो।

अनिसृष्ट—वि० [न० त०] १. जिसे आज्ञा या अधिकार न मिला हो। २. जिसका उपयोग बिना आज्ञा लिये किया गया हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता (क्तृ)—पुं० [सं० अनिसृष्ट-उपभोक्तृ, ष० त०] वह जो स्वामी की आज्ञा लिये बिना धरोहर का उपयोग करे।

अनिस्तीर्ण—वि० [न० त०] १. जो पार न किया गया हो। २. जो अलग न किया गया हो। ३. जिससे छुटकारा न मिला हो। ४. जिसका प्रतिवाद या उत्तर न दिया गया हो।

अनिस्तीर्णाभियोग—वि० [सं० न-निस्तीर्ण-अभियोग, न० ब०] जो अभियोग या आरोप से बरी या मुक्त न हुआ हो।

अनी—स्त्री० [सं० अणि=अग्रभाग, नोंक] १. किसी चीज का अगला नुकीला सिरा। २. आगे निकली हुई नोंक। ३. नाव या जहाज — —ला सिरा जो नुकीला होता है।

अनुकलन—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० अनुकलित] दूसरे की कोई बात लेकर और उसे अपने अनुकूल बनाकर ग्रहण करना। (एडाप्टेशन)

अनुकल्प—पुं० [सं० प्रा० स०] १. आवश्यकता, उपयोगिता आदि के विचार से अथवा विवश होने पर दो वस्तुओं या बातों में से कोई एक बात या वस्तु चुनने का अधिकार, अवस्था या भाव। दो वस्तुओं या बातों में से कोई ऐसी वस्तु या बात जो चुनी जाने या गृहीत होने को हो। जैसे—गेहूँ और चावल में से कोई एक पसंद कर लेने की स्थिति या स्वतंत्रता। २. वह बात या वस्तु जो किसी दूसरी बात या वस्तु के अभाव में उसके स्थान पर काम दे सके। (आल्टर्नेटिव)

अनुकांक्षा—स्त्री० [सं० अनु√कांक्ष् (चाहना)+अ–टाप्]=आकांक्षा।

अनुकांक्षित—भू० कृ० [सं० अनु√कांक्ष्+क्त] जिसकी अनुकांक्षा या आकांक्षा की गई हो। इच्छित।

अनुकांक्षी (क्षिन्)—वि० [सं० अनु√कांक्ष+णिनि] अनुकांक्षा करने या चाहनेवाला। इच्छुक।

अनुकाम—वि० [सं० अत्या० स०] १. जो इच्छा के अनुकूल हो। रुचिकर। २. कामना करने या चाहनेवाला। ३. आसक्त। कामी। पुं० [प्रा० स०] सदिच्छा।

अनुकामी(मिन्)—वि० [सं० अनु√कम् (चाहना)+णिनि] १. स्वेच्छा से कार्य करनेवाला। २. कामी।

अनुकार—पुं० [सं० अनु√कृ (करना)+घञ्]=अनुकरण।

अनुकारक—वि० [सं० अनु√कृ+ण्वुल्–अक] ज्यों की त्यों किसी की नकल करनेवाला। नकलची। (इमीटेटर)

अनुकारी (रिन्)—वि० [सं० अनु√कृ+णिनि] १. अनुकरण करनेवाला। २. नकल करनेवाला। ३. आज्ञाकारी। ४. भक्त।

अनुकार्य—वि० [सं० अनु√कृ+ण्यत्] जिसका अनुकरण किया जा सकता हो या किया जाने को हो।

अनुकाल—वि० [सं० अत्या० स०] जो समय के अनुसार उचित या ठीक हो। सामयिक।

अनुकीर्तन—पुं० [सं० अनु√कृत् (जोर से शब्द करना) +ल्युट्-अन] १. कथन। २. वर्णन।

अनुकूल—वि० [सं० अत्या० स०] १. (व्यक्ति या परिस्थिति) जो इच्छा, रुचि या समय के अनुरूप या उपयुक्त हो। जैसे—अनुकूल वातावरण। २. किसी प्रकार की कार्य-सिद्धि या उद्देश्य में सहायक होनेवाला। ३. उत्साहवर्धक। ४. लाभदायी।

पुं० १. साहित्य में वह नायक जो एक ही विवाहिता स्त्री से संबंध और प्रेम रखता हो। २. एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल बात से अनुकूल बात की सिद्धि का उल्लेख होता है। ३. विष्णु।

क्रि० वि० ओर। तरफ।

अनुकूलता—स्त्री० [सं० अनुकूल+तल्–टाप्] अनुकूल होने की अवस्था या भाव।

अनुकूलन—पुं० [सं० अनुकूल+क्विप्+ल्युट्–अन] १. किसी को अपने अनुकूल करना या बनाना। २. अपने आपको किसी के अनुकूल करना।

अनुकूलना*—स० [सं० अनुकूलन] अनुकूल और फलतः पक्ष में करना। प्रसन्न करना। उदा०—फिर फूले नव वृत्तों पर अनुकूलें अलि अनुकूलें। –निराला।

अ० किसी के अनुकूल होना।

अनुकूला—स्त्री० [सं० अनुकूल+टाप्] १. मौक्तिक-माला नामक छंद का दूसरा नाम। २. दंती नामक वृक्ष।

अनुकृत—वि० [सं० अनु√कृ (करना)+क्त] [भाव० अनुकृति] १. जो किसी के अनुकरण पर बनाया गया हो। २. नकल किया हुआ। ३. नकल।

अनुकृति—स्त्री० [सं० अनु√कृ+क्तिन्] १. दूसरे को देखकर उसके अनुकरण पर वैसा ही किया हुआ काम। नकल। २. किसी की कोई चीज देखकर ज्यों की त्यों वैसी ही बनाई हुई चीज। (इमिटेशन) ३. साहित्य में एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी दूसरे के कारण से किसी अन्य वस्तु के अनुसार होने का वर्णन होता है।

अनुकृष्ट—वि० [सं० अनु√कृष् (खींचना)+क्त] १. खिंचा हुआ। आकृष्ट। २ आसक्त।

अनुक्त—वि० [सं० न–उक्त, न० त०] [स्त्री० अनुक्ता] जो उक्त अर्थात् कहा हुआ न हो। बिना कहा हुआ।

अनुक्त-निमित्त—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० अनुक्त–निमित्ता] जिसके निमित्त या कारण का उल्लेख न हुआ हो। जैसे—अनुक्त-निमित्ता विभावना।

अनुक्ति—स्त्री० [सं० न–उक्ति, न० त०] १. अनुक्त होने या न कहने की क्रिया या भाव। २. अनुचित या बुरी उक्ति या कथन।

अनुक्रम—पुं० [सं० अनु√क्रम् (गति)+घञ्] [वि० अनुक्रमिक], १. ठीक और नियमित रूप से चलनेवाला क्रम। सिलसिला। २. लगातार एक के बाद एक होने की क्रिया या भाव। ३. लगातार एक के बाद दूसरे के आने का क्रम। (सीक्वेन्स)

अनुक्रमण—पुं० [सं० अनु√क्रम्+ल्युट्–अन] १. सिलसिला बाँधकर चलना। २. किसी के पीछे चलना। ३. पीछे की ओर चलना।

अनुक्रमणिका—स्त्री० [सं० अनुक्रमण–ङीप्+कन्, ह्रस्व, टाप्] १ अनुक्रम। सिलसिला। २. किसी ग्रंथ या पुस्तक में आये हुए विषयों अथवा मुख्य शब्दों की वह सूची जो उसके अंत में अक्षर-क्रम से दी जाती है। (इन्डेक्स)

अनुक्रांत—भू० कृ० [सं० अनु√क्रम्+क्त] १. उल्लंघन किया हुआ। २. क्रमपूर्वक किया हुआ। ३. उल्लेख किया हुआ।

अनुक्रिया—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १.=अनुकृति। २. किसी कार्य या क्रिया के बाद अथवा उसके फलस्वरूप होनेवाली क्रिया। (रिऐक्शन)

अनुक्रोश—पुं० [सं० अनु√क्रुश् (आह्वान, रोदन)+घञ्] कृपा। दया।

अनुक्षण—क्रि० वि० [सं० अव्य० स०] १. हर क्षण में। प्रतिक्षण। २. निरंतर। लगातार। सतत।

अनुख्याता (तृ)—वि० [सं० अनु√ख्या (कहना)+तृच्] १. पता लगानेवाला। २. भेद या रहस्य जानने या प्रकट करनेवाला।

अनुख्याति—स्त्री० [सं० अनु√ख्या+क्तिन्] १. पता लगाने का काम या भाव। २. रहस्य या भेद का उद्घाटन या प्रकाशन।

अनुख्यान—पुं० [सं० अनु√ख्या+ल्युट्–अन] १. पता लगाना। २. भेद या रहस्य प्रकट करना।

अनुगंता (तृ)—पुं० [सं० अनु√गम् (जाना)+तृच्]=अनुगामी।

अनुग—वि०=अनुगत।

अनुगणन—पुं० [सं० अनु√गण् (गिनना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ०

स्त्री० [सं० अनीक=समूह] १. समूह। झुंड। २. सेना।

स्त्री० [हिं० आन=मर्यादा] १. ग्लानि, द्वेष या लज्जा के कारण मन में होनेवाली कसक।

मुहा०—अनी पर कनी चाटना=ग्लानि के कारण कनी चाटकर आत्म-हत्या करना।

अव्य० [सं० अपि] स्त्रियों के पारस्परिक संबोधन में प्रयुक्त होनेवाला शब्द। अरी। री।

अनीक—पुं० [सं०√अन् (जीना)+ईकन्] १. सेना। २. युद्ध। ३. समूह। झुंड। ४. किनारा। तट। ५. पंक्ति।

वि० [हिं० अ+नीक=अच्छा] जो अच्छा न हो, फलतः त्याज्य या बुरा।

अनीकिनी—स्त्री० [सं० अनीक+इनि+ङीप्] १. अक्षौहिणी का दसवाँ अंश या भाग जिसमें २१८७ हाथी, ५६६१ घोड़े और १०९३५ पैदल होते थे। २. सेना। ३. कमलिनी। ४. समूह। झुंड।

अनीठ*—वि० [सं० अनिष्ट] खराब। बुरा।

अनीठि*—स्त्री० [सं० अनिष्टि] १. बुराई। २. क्रोध। (क्व०)

अनीड—वि० [न० ब०] १. (पक्षी) जिसका घोंसला न हो। २. (व्यक्ति) जिसका घर-बार या रहने का ठिकाना न हो। निराश्रय। ३. बिना शरीर का। अशरीरी।

अनीत*—स्त्री०=अनीति।

अनीति—स्त्री० [न० त०] १. नीति का अभाव। २. अनुचित और नीति-विरुद्ध व्यवहार। ३. दुष्टता। पाजीपन। ४. अत्याचार। जुल्म।

अनीतिमान् (मत्)—वि० [सं० अनीति+मतुप्] अनीति-पूर्ण आचरण करनेवाला।

अनीदार—वि० [हिं० अनी+फा० दार] तेज नोकवाला।

अनीप्सित—वि० [सं० न–ईप्सित, न० त०] जिसकी ईप्सा या चाह न की गई हो। अन-चाहा।

अनीश—वि० [सं० न–ईश, न० ब०] १. ईश्वर-रहित। २. जिसका कोई ईश या स्वामी न हो, फलतः अनाथ या दीन। ३. जो ईश्वर को न मानता हो, फलतः नास्तिक। ४. जो किसी के नियंत्रण या वश में न हो। ५. [न० त०] अशक्त। शक्तिहीन। निर्बल। ६. असमर्थ।

पुं० [न० ब०] विष्णु का एक नाम।

अनीश्वर—वि० [न०ब०] १. ईश्वर को न माननेवाला। नास्तिक। जैसे—अनीश्वरवाद। २. दे० 'अनीश'।

अनीश्वरवाद—पुं० [ष० त०] [वि० अनीश्वरवादी] वह मत या वाद जिसमें ईश्वर का अस्तित्व न माना गया हो। जैसे—मीमांसा-दर्शन।

अनीश्वरवादी (दिन्)—वि० [सं० अनीश्वर√वद् (बोलना)+णिनि] ईश्वर का अस्तित्व न माननेवाला। नास्तिक।

अनीस—*वि०=अनीश।

पुं० [अ०] सहायक और साथी। मित्र। स्नेही।

अनीसून—पुं० [यू०] एक प्रकार की सौंफ।

अनीह—वि० [सं० न–ईहा, न० ब०] १. जिसे ईहा (इच्छा या चाह) न हो। निस्पृह। २. मोह-माया से रहित। निर्लिप्त। ३. असावधान। ४. किसी बात की चिंता या ध्यान न रखनेवाला। ला-परवाह।

अनीहा—स्त्री० [सं० न- ईहा, न० त०] १. ईहा (इच्छा या वासना) का अभाव। २. उदासीनता। निरपेक्षता।

अनु—उप० [सं०√अन् (जीना)+उ] एक उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है। (क) पीछे। बाद में। जैसे—अनुचर, अनुगत, अनुगमन, अनुगायन आदि। (ख) साथ में लगा हुआ या पास। साथ-साथ। जैसे—अनुतट, अनुपथ आदि। (ग) प्रत्येक या हर एक। जैसे—अनुक्षण, अनुदिन आदि। (घ) कई बार या बार-बार। जैसे—अनुयाचन, अनुशीलन आदि। (च) तुल्य, सदृश या समान। जैसे—अनुरूप। (छ) ठीक या नियमित। जैसे—अनुक्रम।

अव्य० १. स्वीकृतिसूचक अव्यय। हाँ। २. इसके बाद या आगे। अब। ३. पीछे। उदा०—रहे फिर तब से अनु अनु देवि।—दिनकर। ४. अथवा। या। उदा०—देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं।—तुलसी।

*पुं०=अणु।

अनुकंपा—स्त्री० [सं० अनु√कंप्+अङ्–टाप्] १. दूसरों का कष्ट या दुःख देखकर उनके प्रति मन में उत्पन्न होनेवाली दया। (पिटी) २. सहानुभूति।

पुं०=अण्ड।

अनुकंपित—भू० कृ० [सं० अनु√कंप्+क्त] जिसपर अनुकंपा की गई हो।

अनुकंप्य—वि० [सं० अनु√कंप्+ण्यत्] जिसपर अनुकंपा की जा सकती हो या की जाने को हो।

अनुक—वि० [सं० अनु+कन्] १. सहायक। २. आश्रित। ३. कामी। कामुक।

अनुकथन—पुं० [सं० अनु√कथ् (कहना)+ल्युट्–अन] १. किसी के कथन के बाद या साथ किया जानेवाला कथन। २. क्रम-बद्ध वर्णन या व्याख्या। ३. बात-चीत। वार्तालाप।

अनुकरण—पुं० [सं० अनु√कृ (करना)+ल्युट्–अन] १. किसी को अगुआ या नेता मानकर उसके पीछे-पीछे चलना। अनुसरण करना। २. किसी को कुछ करते हुए देखकर वैसा ही काम करना। ३. किसी का कोई काम या चीज देखकर उसी की तरह किया जानेवाला काम या बनाई जानेवाली चीज। नकल। (इमिटेशन)

अनुकरणीय—वि० [सं० अनु√कृ+अनीयर्] १. जिसका अनुकरण करना उचित हो। २. (आदर्श या चरित्र) जो अनुकरण के योग्य हो।

अनुकर्त्ता (र्तृ)—वि० [सं० अनु√कृ+तृच्] १. अनुकरण करनेवाला। अनुयायी। २. आदर्श पर चलनेवाला। ३. किसी की आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। आज्ञाकारी।

अनुकर्म (न्)—पुं० [सं० प्रा० स०]=अनुकरण।

अनुकर्ष—पुं० [सं० अनु√कृष् (खींचना)+घञ्] १. खिंचाव। २. आकर्षण। ३. देवता का आवाहन। ४. कर्तव्य के पालन में होनेवाला विलंब। ५. रथ के नीचे का भाग।

अनुकर्षण—पुं० [सं० अनु√कृष्+ल्युट्–अन] १. आकर्षण। खिंचाव। २. आवाहन।

अनुकलन—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० अनुकलित] दूसरे की कोई बात लेकर और उसे अपने अनुकूल बनाकर ग्रहण करना। (एडाप्टेशन)

अनुकल्प—पुं० [सं० प्रा० स०] १. आवश्यकता, उपयोगिता आदि के विचार से अथवा विवश होने पर दो वस्तुओं या बातों में से कोई एक बात या वस्तु चुनने का अधिकार, अवस्था या भाव। दो वस्तुओं या बातों में से कोई ऐसी वस्तु या बात जो चुनी जाने या गृहीत होने को हो। जैसे—गेहूँ और चावल में से कोई एक पसंद कर लेने की स्थिति या स्वतंत्रता। २. वह बात या वस्तु जो किसी दूसरी बात या वस्तु के अभाव में उसके स्थान पर काम दे सके। (आल्टर्नेटिव)

अनुकांक्षा—स्त्री० [सं० अनु√कांक्ष् (चाहना)+अ—टाप्]=आकांक्षा।

अनुकांक्षित—भू० कृ० [सं० अनु√कांक्ष्+क्त] जिसकी अनुकांक्षा या आकांक्षा की गई हो। इच्छित।

अनुकांक्षी (क्षिन्)—वि० [सं० अनु√कांक्ष+णिनि] अनुकांक्षा करने या चाहनेवाला। इच्छुक।

अनुकाम—वि० [सं० अव्य० स०] १. जो इच्छा के अनुकूल हो। रुचिकर। २. कामना करने या चाहनेवाला। ३. आसक्त। कामी। पुं० [प्रा० स०] यदिच्छा।

अनुकामी(मिन्)—वि० [सं० अनु√कम् (चाहना)+णिनि] १. स्वेच्छा से कार्य करनेवाला। २. कामी।

अनुकार—पुं० [सं० अनु√कृ (करना)+घञ्]=अनुकरण।

अनुकारक—वि० [सं० अनु√कृ+ण्वुल्—अक] ज्यों की त्यों किसी की नकल करनेवाला। नकलची। (इमीटेटर)

अनुकारी (रिन्)—वि० [सं० अनु√कृ+णिनि] १. अनुकरण करने-वाला। २. नकल करनेवाला। ३. आज्ञाकारी। ४. भक्त।

अनुकार्य—वि० [सं० अनु√कृ+ण्यत्] जिसका अनुकरण किया जा सकता हो या किया जाने को हो।

अनुकाल—वि० [सं० अव्य० स०] जो समय के अनुसार उचित या ठीक हो। सामयिक।

अनुकीर्तन—पुं० [सं० अनु√कृत् (जोर से शब्द करना)+ल्युट्-अन] १. कथन। २. वर्णन।

अनुकूल—वि० [सं० अव्य० स०] १. (व्यक्ति या परिस्थिति) जो इच्छा, रुचि या समय के अनुरूप या उपयुक्त हो। जैसे—अनुकूल वाता-वरण। २. किसी प्रकार की कार्य-सिद्धि या उद्देश्य में सहायक होनेवाला। ३. उत्साहवर्धक। ४. लाभदायी।

पु० १. साहित्य में वह नायक जो एक ही विवाहिता स्त्री से संबंध और प्रेम रखता हो। २. एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल बात से अनुकूल बात की सिद्धि का उल्लेख होता है। ३. विष्णु।

क्रि० वि० ओर। तरफ।

अनुकूलता—स्त्री० [सं० अनुकूल+तल्—टाप्] अनुकूल होने की अवस्था या भाव।

अनुकूलन—पुं० [सं० अनुकूल+णिच्+ल्युट्—अन] १. किसी को अपने अनुकूल करना या बनाना। २. अपने आपको किसी के अनुकूल करना।

अनुकूलना*—स० [सं० अनुकूलन] अनुकूल और फलतः पक्ष में करना। प्रसन्न करना। उदा०—फिर फूले नव वृत्तों पर अनुकूलें अलि अनुकूलें। —निराला।

अ० किसी के अनुकूल होना।

अनुकूला—स्त्री० [सं० अनुकूल+टाप्] १. मौक्तिक-माला नामक छंद का दूसरा नाम। २. दंती नामक वृक्ष।

अनुकृत—वि० [सं० अनु√कृ (करना)+क्त] [भाव० अनुकृति] १. जो किसी के अनुकरण पर बनाया गया हो। २. नकल किया हुआ। ३. नकली।

अनुकृति—स्त्री० [सं० अनु√कृ+क्तिन्] १. दूसरे को देखकर उसके अनुकरण पर वैसा ही किया हुआ काम। नकल। २. किसी की कोई चीज देखकर ज्यों की त्यों वैसी ही बनाई हुई चीज। (इमिटेशन) ३. साहित्य में एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी दूसरे के कारण से किसी अन्य वस्तु के अनुसार होने का वर्णन होता है।

अनुकृष्ट—वि० [सं० अनु√कृष् (खींचना)+क्त] १. खिंचा हुआ। आकृष्ट। २ आसक्त।

अनुक्त—वि० [सं० न—उक्त, न० त०] [स्त्री० अनुक्ता] जो उक्त अर्थात् कहा हुआ न हो। बिना कहा हुआ।

अनुक्त-निमित्त—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० अनुक्त—निमित्ता] जिसके निमित्त या कारण का उल्लेख न हुआ हो। जैसे—अनुक्त-निमित्ता विभावना।

अनुचित—स्त्री० [सं० न—उक्ति, न० त०] १. अनुक्त होने या न कहने की क्रिया या भाव। २. अनुचित या बुरी उक्ति या कथन।

अनुक्रम—पु० [सं० अनु√क्रम् (गति)+घञ्] [वि० अनुक्रमिक]. १. ठीक और नियमित रूप से चलनेवाला क्रम। सिलसिला। २ लगातार एक के बाद एक होने की क्रिया या भाव। ३. लगातार एक के बाद दूसरे के आने का क्रम। (सीक्वेन्स)

अनुक्रमण—पुं० [सं० अनु√क्रम्+ल्युट्—अन] १. सिलसिला बाँधकर चलना। २. किसी के पीछे चलना। ३. पीछे की ओर चलना।

अनुक्रमणिका—स्त्री० [सं० अनुक्रमण—ङीप्+कन्, ह्रस्व, टाप्] १ अनुक्रम। सिलसिला। २. किसी ग्रंथ या पुस्तक में आये हुए विषयों अथवा मुख्य शब्दों की वह सूची जो उसके अंत में अक्षर-क्रम से दी जाती है। (इन्डेक्स)

अनुक्रांत—भू० कृ० [सं० अनु√क्रम्+क्त] १. उल्लंघन किया हुआ। २. क्रमपूर्वक किया हुआ। ३. उल्लेख किया हुआ।

अनुक्रिया—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १.=अनुकृति। २. किसी कार्य या क्रिया के बाद अथवा उसके फलस्वरूप होनेवाली क्रिया। (रिऐक्शन)

अनुक्रोश—पुं० [सं० अनु√क्रुश् (आह्वान, रोदन)+घञ्] कृपा। दया।

अनुक्षण—क्रि० वि० [सं० अव्य० स०] १. हर क्षण में। प्रतिक्षण। २. निरंतर। लगातार। सतत।

अनुख्याता (तृ)—वि० [सं० अनु√ख्या (कहना)+तृच्] १. पता लगानेवाला। २. भेद या रहस्य जानने या प्रकट करनेवाला।

अनुख्याति—स्त्री० [सं० अनु√ख्या+क्तिन्] १. पता लगाने का काम या भाव। २. रहस्य या भेद का उद्घाटन या प्रकाशन।

अनुख्यान—पुं० [सं० अनु√ख्या+ल्युट्—अन] १. पता लगाना। २. भेद या रहस्य प्रकट करना।

अनुगंता (तृ)—पु० [सं० अनु√गम् (जाना)+तृच्]=अनुगामी।

अनुग—वि०=अनुगत।

अनुगणन—पुं० [सं०. अनु√गण् (गिनना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ०

अनुख्याति—स्त्री० [सं० अनु√ख्या+क्तिन्] १. पता लगाने का काम या भाव। २. रहस्य या भेद का उद्घाटन या प्रकाशन।

अनुख्यान—पुं० [सं० अनु√ख्या+ल्युट्—अन] १. पता लगाना। २. भेद या रहस्य प्रकट करना।

अनुगंता (तृ)—पुं० [सं० अनु√गम् (जाना)+तृच्]=अनुगामी।

अनुग—वि०=अनुगत।

अनुगणन—पुं० [सं० अनु√गण् (गिनना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुगणित] १. मन ही मन अथवा मुँह-जबानी किया या लगाया जानेवाला हिसाब। २. लाक्षणिक रूप में, हानि-लाभ आदि का मन में किया जानेवाला अनुमान। (रेकनिंग)

अनुगत—वि० [सं० अनु√गम् (जाना)+क्त] [स्त्री० अनुगता, भाव० अनुगति, अनुगत्य] १. पीछे चलनेवाला। अनुगामी। २. किसी सिद्धांत को माननेवाला। अनुयायी। ३. अनुकूल।

पुं० अनुचर। सेवक।

अनुगतार्थ—वि० [सं० अनुगत—अर्थ, ब० स०] प्रायः मिलते-जुलते, अनुकूल या संगत अर्थवाला।

अनुगति—स्त्री० [सं० अनु√गम् (जाना)+क्तिन्] १. किसी के पीछे-पीछे चलना। अनुगमन। २. अनुकरण। ३. मृत्यु। मौत।

अनुगम—पुं० [सं० अनु√गम्+घञ्] तर्क-शास्त्र में कोई बात सिद्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न तथ्यों या तत्त्वों के आधार पर स्थिर किया जानेवाला परिणाम। (इन्डक्शन)

अनुगमन—पुं० [सं० अनु√गम्+ल्युट्—अन] १. किसी के पीछे चलना। अनुसरण। २. अनुकरण। ३. नकल। ४. मृत पति के शव के साथ विधवा का जल मरना। सहमरण। ५. स्त्री के साथ होनेवाला संभोग या सहवास। ६. अर्थ का ठीक ज्ञान या बोध।

अनुगांग—वि० [सं० अत्या० स०] गंगा के किनारे का (देश या प्रांत)।

अनुगामिता—स्त्री० [सं० अनुगामिन्+तल्—टाप्] १. अनुगामी होने की अवस्था या भाव। २. अनुगमन।

अनुगामी (मिन्)—वि० [सं० अनु√गम्+णिनि] [स्त्री० अनुगामिनी, भाव० अनुगामिता] १. अनुगमन करने या किसी के पीछे चलनेवाला। २. किसी का आचरण देखकर उसके अनुसार चलनेवाला। ३. अनुयायी। ४. आज्ञाकारी।

अनुगामुक—वि० [सं० अनु√गम्+उकञ्]=अनुगामी।

अनुगायक—वि० [सं० प्रा० स०] अनुगायन करनेवाला।

अनुगायन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी अच्छे गानेवाले के साथ-साथ या पीछे-पीछे उसकी तरह गाना। गाने में संगत करना। २. किसी के गीत का गीत के रूप में ही अनुवाद या उल्था करना।

अनुगीत—पुं० [सं० प्रा० स०] एक प्रकार का छंद।

अनुगीति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] एक प्रकार का मात्रिक छंद।

अनुगुण—पुं० [सं० ब० स०] साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी अच्छी वस्तु के सामीप्य से किसी दूसरी वस्तु के गुण और भी बढ़ जाने का उल्लेख होता है। जैसे—चन्द्रमुखी नायिका के गले में पड़कर सोने का हार और भी अधिक चमकने लगा। वि० १. समान गुणवाला। २. सटीक। ३. अनुकूल। ४. अनुगत।

अनुगुप्त—भू० कृ० [सं० अनु√गुप् (रक्षा)+क्त] १. गुप्त किया या छिपाया हुआ। २. आश्रय या रक्षा में रखा हुआ।

अनुगूंज—स्त्री०=गूंज (प्रतिध्वनि)

अनुगृहीत—वि० [सं० अनु√ग्रह (ग्रहण)+क्त] [स्त्री० अनुगृहीता] १. जिसपर अनुग्रह हुआ हो। २. किसी के द्वारा जिसका कुछ उपकार हुआ हो। उपकृत। (ओबलाइज्ड) ३. उपकार माननेवाला।

अनुग्रह—पुं० [सं० अनु√ग्रह् +अप्] [कर्ता अनुग्राहक, वि० अनुगृहीत, अनुग्राह्य] १. छोटों पर प्रसन्न होकर उनका किया जानेवाला उपकार, भलाई या हिमायत। २. दया अथवा पक्षपातपूर्वक किसी को उन्नत, प्रसन्न या सुखी करने की प्रवृत्ति या भावना। (फेवर)

अनुग्रही (हिन्)—वि० [सं० अनुग्रह+इनि] १. कार्य करने में कुशल। २. ऐंद्रजालिक।

अनुग्रहीत—वि०=अनुगृहीत।

अनुग्राहक—वि० [सं० अनु√ग्रह्+ण्वुल्—अक] [स्त्री० अनुग्राहिका] १. अनुग्रह करनेवाला। कृपालु। २. समय पर दूसरों के काम आनेवाला या उनकी सहायता करनेवाला। (ओब्लाइजिंग)

अनुग्राही (हिन्)—वि० [अनु√ग्रह्+णिनि]=अनुग्राहक।

अनुग्राह्य—वि० [सं० अनु√ग्रह्+ण्यत्] १. जो अनुग्रह का पात्र हो। २. जिसपर अनुग्रह होने को हो।

अनुघटन—पुं० [सं० अनु√घट् (चेष्टा आदि)+ल्युट्—अन] १. संबंध स्थापित करना। २. परस्पर मिलाना।

अनुघात—पुं० [सं० प्रा० स०] नाश।

अनुच—वि०=अनुच्च।

अनुचर—वि० [सं०अनु√चर् (गति आदि)+ट] [स्त्री० अनुचरी, भाव० अनुचरण] १. किसी के पीछे चलनेवाला। २. सेवा करनेवाला।

पुं० सहचर। साथी।

अनुचार—पुं० [सं० अनु√चर्+घञ्] १. किसी के अधीन रहकर उसके पीछे-पीछे चलना। २. किसी आदरणीय, पूज्य या सेव्य का अनुचर बनकर और उसके प्रति निष्ठा रखते हुए किया जानेवाला अनुकूल आचरण या व्यवहार। (एलीजिएन्स)।

अनुचारक—वि० [सं० अनु√चर्+ण्वुल्—अक]=अनुचर।

अनुचारी (रिन्)—पुं० [सं० अनु√चर्+णिनि] १. वह जो किसी का अनुचर हो। २. सेवक। दास।

अनुचिंतन—पुं० [सं० अनु√चिन्त् (स्मरण)+ल्युट्—अन] १. सोच-विचार। २. बीती या भूली हुई बात फिर से स्मरण करना। ३. चिंता।

अनुचिंता—स्त्री० [सं० अनु√चिन्त्+अ—टाप्]=अनुचिंतन।

अनुचित—वि० [सं० न—उचित, न० त०] [भाव० अनौचित्य] १. जो उचित न हो। ना-मुनासिब। २. बुरा। खराब। ३. जो ठीक या वाजिब न हो। औचित्य की सीमा के बाहर। गैर-वाजिब। (अन्ड्यू)

अनुच्च—वि० [सं० न—उच्च, न० त०] जो उच्च या ऊँचा न हो फलतः नीचा। 'उच्च' का विपर्याय।

अनुच्चरित—वि० [सं० न—उच्चरित, न० त०] १. जिसका उच्चारण न हुआ हो। २. (व्यंजन या स्वर) जिसका उच्चारण बोलने में न होता हो। (साइलेण्ट) ३. न बोलने या उत्तर न देनेवाला।

अनुच्छित्ति—स्त्री० [सं० न—उच्छित्ति, न० त०]=अनुच्छेद।

अनुच्छिष्ट—वि० [सं० न—उच्छिष्ट, न० त०] १. जो उच्छिष्ट या

जूठा न हो। २. जो अभी तक किसी और के उपयोग, प्रयोग या व्यवहार में न आया हो, फलतः बिलकुल नया।

अनुच्छेद—पुं० [सं० न—उच्छेद, न० त०] १. कट जाने पर भी अलग या नष्ट न होना। २. किसी साहित्यिक रचना, पुस्तक आदि के किसी प्रकरण के अंतर्गत वह विशिष्ट विभाग जिसमें किसी एक विषय या उसके किसी अंग की मीमांसा या विवेचना होती है। (पैराग्राफ)

अनुछन*—अव्य०=अनुक्षण।

अनुज—वि० [सं० अनु√जन् (उत्पन्न होना)+ड] [स्त्री० अनुजा] पीछे या बाद में उत्पन्न होनेवाला।

पुं० १. छोटा भाई। २. स्थल-कमल।

अनु-जन्मा (न्मन्)—पुं० [सं० ब० स०]=अनुज।

अनुजा—स्त्री० [सं० अनुज—टाप्] छोटी बहन।

अनुजात—वि० [सं० अनु√जन्+क्त]='अनुज।

अनुजीवी (विन्)—वि० [सं० अनु√जीव् (जीना)+णिनि] [स्त्री० अनुजीविनी] १. दूसरे के सहारे जीनेवाला। २ आश्रित। ३. अनुयायी।

पुं० नौकर। सेवक।

अनुज्ञप्त—भू० कृ० [सं० अनु√ज्ञप् (बताना)+क्त] १. (कार्य) जिसके लिए अनुज्ञा या स्वीकृति मिल चुकी हो। २. (व्यक्ति) जिसे अनुज्ञा मिल चुकी हो। (एलाउड)

अनुज्ञप्ति—स्त्री० [सं० अनु√ज्ञप्+क्तिन्] [भू० कृ० अनुज्ञप्त] १. कोई काम करने की आज्ञा या स्वीकृति देने की क्रिया या भाव। अनुज्ञापन। (सैंक्शन) २. वह पत्र जिसमें कोई अनुज्ञा लिखी हो।

अनुज्ञा—स्त्री० [सं० अनु√ज्ञा (जानना)+अङ—टाप्] [वि० अनुज्ञप्त, अनुज्ञात] १. आज्ञा। हुकुम। २. वह अनुमति या स्वीकृति जो किसी बड़े अधिकारी द्वारा किसी को कोई इष्ट कार्य करने के लिए दी जाती है। इजाजत। (सैंक्शन, परमिशन) ३. बिना आपत्ति किये किसी को कोई काम करने देना। (एलाऊ) ४. साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी बुरी चीज या बात में कोई गुण या विशेषता देखकर उसे पाने का उल्लेख होता है। जैसे—रावण चाहता था कि मैं राम के हाथों मरकर मोक्ष प्राप्त करूँ।

अनुज्ञात—भू० कृ० [सं० अनु√ज्ञा+क्त] १. (कार्य) जिसके संबंध में अनुज्ञा मिल चुकी हो। २. (व्यक्ति) जिसे अनुज्ञा मिली हो।

अनुज्ञान—पुं० [सं० अनु√ज्ञा+ल्युट्-अन]=अनुज्ञा।

अनुज्ञापक—वि० [सं० अनु√ज्ञा+णिच्, पुक्+ण्वुल्-अक] १. अनुज्ञापन करने या अनुज्ञा देनेवाला। २. जिसके लिए अनुज्ञा मिल चुकी हो। अनुज्ञा के अनुसार होनेवाला। (पर्मिसिव) जैसे—अनुज्ञापक कानून।

अनुज्ञा-पत्र—पुं० [सं० प० त०] वह पत्र जिसमें किसी को किसी अधिकारी से कोई इष्ट कार्य करने अथवा कुछ लेने की अनुज्ञा मिली हो। (परमिट)

अनुज्ञापन—पुं० [सं० अनु√ज्ञा+णिच्, पुक्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुज्ञापित, अनुज्ञप्त] १. अनुज्ञा देने की क्रिया या भाव। अनुज्ञा देना। २. बतलाना। ३. क्षमा करना।

अनुज्ञापित—भू० कृ० [अनु√ज्ञा+णिच्, पुक्+क्त]=अनुज्ञप्त।

अनुज्ञेय—वि० [सं० अनु√ज्ञा+यत्] जिसके संबंध में अनुज्ञा दी जा सकती हो अर्थात् जिसके होने से कोई विशेष हानि न हो। (परमिसिव)

अनु-ज्येष्ठ—वि० [सं० अत्या० स०] सबसे बड़े अर्थात् ज्येष्ठ से छोटा या तुरंत बादवाला।

अनुतप्त—वि० [सं० अनु√तप् (तपना)+क्त] १. जिसे अनुताप या पश्चात्ताप हुआ हो। २. जिसे बहुत ताप या कष्ट पहुँचा हो। बहुत दुःखी।

अनुताप—पुं० [सं० अनु√तप्+घञ्] [वि० अनुतप्त] १. दाह। जलन। २. मानसिक दुःख। ३. पछतावा। पश्चात्ताप।

अनुतापन—वि० [सं० अनु√तप्+णिच्+ल्युट्-अन] १. अनुताप या खेद उत्पन्न करनेवाला। २. ताप या जलन पैदा करनेवाला।

पुं० अनुताप या पश्चात्ताप करने की क्रिया या भाव।

अनुतोष—पुं० [सं० अनु√तुष् (प्रीति)+घञ्] [भू० कृ० अनुतुष्ट] १. किसी काम से होनेवाला संतोष। २. वह पुरस्कार या धन जो किसी को तुष्ट या प्रसन्न करने के लिए दिया जाय। आनुतोषिक। (ग्रेटिफिकेशन)

अनुतोषण—पुं० [सं० अनु√तुष्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुतोषित] १. किसी काम से संतुष्ट होने की क्रिया या भाव। २. किसी को कुछ देकर अपने अनुकूल करना। (ग्रेटिफिकेशन)

अनुत्तम—वि० [सं० न—उत्तम, न० त०] १. जो उत्तम न हो। २. [न० ब०] सबसे अच्छा।

पु० १. विष्णु। २. शिव।

अनुत्तर—वि० [सं० न—उत्तर, न० ब०] १. जो उत्तर न दे। निरुत्तर। २. सर्वोत्तम। ३. स्थिर। ४. तुच्छ। ५. दक्षिणी।

पु० [वि० अनुत्तरित] १. उत्तर या जवाब न मिलना। २. जैनों के एक प्रकार के देवता।

अनुत्तर दायी (यिन्)—पु० [सं० न—उत्तरदायिन्, न० त०] १. वह जो अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह न करे अथवा ध्यान न रखे। गैर-जिम्मेदार। (इर्रेस्पॉन्सिबुल) २ वह जो किसी काम के लिए उत्तरदायी न हो।

अनुत्तरित—वि० [सं० न—उत्तरित, न० त०] (पत्र आदि) जिसका उत्तर या जवाब न दिया गया हो।

अनुत्तान—वि० [सं० न—उत्तान, न० त०] जो उत्तान या ऊपर की ओर मुँह किये हुए न हो। पट। 'चित' का उल्टा।

अनुत्ताप—पुं० [सं० न—उत्ताप, न० त०] मन में होनेवाला ताप या क्लेश, जो दस क्लेशों में से एक माना गया है। (बौद्ध)

अनुत्तीर्ण—वि० [सं० न—उत्तीर्ण, न० त०] जो उत्तीर्ण या पारित न हुआ हो।

अनुत्थान—पुं० [सं० न—उत्थान, न० त०] उत्थान का न होना। उत्थान का अभाव।

अनुत्पत्ति—स्त्री० [सं० न—उत्पत्ति, न० त०] १. उत्पत्ति का अभाव। २. विफलता।

अनुत्पत्तिक—वि० [सं० न—उत्पत्ति, न० ब०, कप्] जो अभी तक उत्पन्न न हुआ हो।

अनुत्पन्न—वि० [सं० न—उत्पन्न, न० त०] १. जो पैदा न हुआ हो। २. जो पूरा न हुआ हो।

अनुत्पाद—पुं० [सं० न—उत्पाद, न० त०] उत्पत्ति या उत्पादन का अभाव।

अनुत्पादक—वि० [सं० न—उत्पादक, न० त०] जो उत्पादक न हो। उत्पन्न न करनेवाला।

अनुत्पादन—पुं० [सं० न—उत्पादन, न० त०] १. उत्पन्न न करना या न होना। २. वस्तुओं आदि का उत्पादन न करना।

अनुत्साह—पुं० [सं० न—उत्साह, न० त०] [वि० अनुत्साही] १. उत्साह या उमंग का न होना। २. संकल्प का अभाव।
वि० [न० ब०] जिसमें उत्साह न हो। उत्साह-रहित।

अनुत्सुक—वि० [सं० न—उत्सुक, न० त०] १. जो उत्सुक न हो। २. कामना-रहित।

अनुत्सेक—पुं० [सं० न—उत्सेक, न० त०] दर्प या घमंड न होना।

अनुदक—वि० [सं० न—उदक, न० ब०] १. (स्थान) जहाँ जल न हो। २. जहाँ थोड़ा जल हो।
क्रि० वि० बिना जल के।

अनुदग्र—वि० [सं० न—उद्—अग्र, न० ब०] १. जो उदग्र या ऊँचा न हो। २. कोमल। ३. दुर्बल। ४. तेज या कांति से रहित।

अनुदत्त—भू० कृ० [सं० अनु√दा (देना)+क्त] १. धन या वस्तु जो अनुदान के रूप में किसी को दी गई हो। २. लौटाया हुआ।

अनुदर—वि० [सं० न—उदर, न० ब०] १. पतली या छोटी कमर-वाला। २. दुबला-पतला।

अनुदर्शन—पुं० [सं० अनु√दृश् (देखना)+ल्युट्—अन] निरीक्षण।

अनुदात्त—वि० [सं० न—उदात्त, न० त०] १. जो उदात्त या उच्च न हो अर्थात् छोटा। २. नीचा या उतरा हुआ (स्वर)। ३. उच्चारण के विचार से लघु।
पुं० उच्चारण के विचार से तीन प्रकार के स्वरों में से वह जो उदात्त या ऊँचा नहीं, बल्कि कुछ नीचा होता है।

अनुदान—पुं० [सं० अनु√दा+ल्युट्—अन] [वि० आनुदानिक, भू० कृ० अनुदत्त] वह आर्थिक सहायता जो राज्य, शासन, आधिकारिक संस्था आदि की ओर से किसी विशेष कार्य के लिए किसी व्यक्ति या संस्था को दी जाती है। (ग्रान्ट)

अनुदार—वि० [सं० न—उदार, न० त०] १. जो उदार न हो। २. कृपण। कंजूस।
पुं० [सं० अनु—दारा, ब० स०] वह जिसकी पत्नी आज्ञाकारिणी हो।

अनुदित—वि० [सं० न—उदित, न० त०] १. न कहा हुआ। २. न कहने योग्य। ३. जिसका उदय न हुआ हो।

अनुदिन—क्रि० वि० [सं० अव्य० स०] प्रतिदिन। हर रोज।

अनुदिवस—क्रि० वि० [अव्य० स०]=अनुदिन।

अनुदिष्ट—भू० कृ० [सं० अनु√दिश् (बताना)+क्त] १. जिसे या जिसकी ओर अनुदेश किया गया हो। २. जिसे यह बतलाया गया हो कि अमुक कार्य इस प्रकार होना चाहिए।

अनुदृष्टि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी वस्तु का ऐसा दृश्य या रूप जिसमें दूर से देखने पर उसके सब अंग अपने ठीक अनुपात में और एक दूसरे से उचित दूरी पर दिखाई दें। (पर्स्पेक्टिव)

अनुदेश—पुं० [सं० अनु√दिश् (बताना)+घञ्] १. किसी दिशा, बात या व्यक्ति की ओर संकेत करना। २. बड़ों का छोटों को यह बतलाना या समझाना कि अमुक काम या बात किस ढंग या प्रकार से की जानी चाहिए। (इन्स्ट्रक्शन)

अनुदेशन—पुं० [सं० अनु√दिश्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुदिष्ट] अनुदेश करने की क्रिया या भाव। (इन्स्ट्रक्शन)

अनुद्धत—वि० [सं० न—उद्धत, न० त०] जो उद्धत या उच्छृंखल न हो फलतः विनीत।

अनुद्धरण—पुं० [सं० न—उद्धरण, न० त०] १. न हटाना। २. प्रमाणित या सिद्ध न करना। ३. उद्धरण के रूप में न लेना।

अनुद्धर्ष—पुं० [सं० न—उद्धर्ष, न० त०] उद्वेग का अभाव।

अनुद्धार—पुं० [सं० न—उद्धार, न० त०] १. उद्धार न होना। २. विभाजन या विभाग न करना। ३. अंश, भाग या हिस्सा न लेना।

अनुद्धृत—भू०कृ० [सं० न—उद्धृत, न० त०] १. जो उद्धृत न किया गया हो। २. जो क्षत-विक्षत न किया गया हो। ३. जो प्रमाणित या सिद्ध न किया गया हो।

अनुद्भट—वि० [सं० न—उद्भट, न० त०] जो उद्भट न हो, फलतः सौम्य।

अनुद्भूत—वि० [सं० न—उद्भूत, न० त०] १. जो अभी उद्भूत न हुआ हो। २. जो अन्दर दबा हुआ तो हो, पर अभी सामने आकर सक्रिय न हुआ हो। सुप्त। (डॉर्मेन्ट)

अनुद्यत—वि० [सं० न—उद्यत, न० त०] जो किसी काम या बात के लिए उद्यत या तत्पर न हो।

अनुद्यम—पुं० [सं० न—उद्यम, न० त०] उद्यम या उद्योग का अभाव।
वि० [न० ब०] उद्योग या प्रयास न करनेवाला।

अनुद्यमी (मिन्)—वि० [सं० न—उद्यमिन्, न० त०] १. जो कोई उद्यम या काम न करता हो। अकर्म्मण्य। २. आलसी। सुस्त।

अनुद्योग—पुं० [न—उद्योग, न० त०] उद्योग या प्रयत्न का अभाव।
वि० दे० 'अनुद्यम'।

अनुद्योगी (गिन्)—वि० [सं० न—उद्योगिन्, न० त०] उद्योग या प्रयत्न न करनेवाला।

अनुद्रुत—पुं० [सं० अनु√द्रु (गति)+क्त] संगीत में लय का एक भेद; जिसमें द्रुत से कुछ अधिक समय लगता है।

अनुद्वाह—पुं० [सं० न—उद्वाह, न० त०] उद्वाह या विवाह का न होना।

अनुद्विग्न—वि० [सं० न—उद्विग्न, न० त०] १. जो उद्विग्न न हो अर्थात् शांत। २. निर्भय। निःशंक।

अनुद्वेग—पुं० [सं० न—उद्वेग, न० त०] उद्वेग का अभाव।

अनुधर्मक—वि० [सं० ब० स०, कप्] जो आकृति, धर्म, स्वरूप आदि के विचार से किसी के सदृश या समान हो। (एनैलोगस)

अनुधर्मता—स्त्री० [सं० अनु-धर्म, ब० स०+तल्—टाप्] आकृति, धर्म, रूप आदि के विचार से किसी के समान होने की अवस्था या भाव।

अनुधर्मी (र्मिन्)—वि० [सं० अनु-धर्म, प्रा० स०,+इनि]=अनुधर्मक।

अनुधावन—पुं० [सं० अनु√धाव् (गति)+ल्युट्—अन] १. किसी के पीछे चलना या दौड़ना। अनुसरण। २. अनुकरण। नकल। ३. किसी बात या विषय का अनुसंधान। खोज। ४. सोच-विचार या चिंतन करना।

अनुध्यान—पुं० [सं० अनु√ध्यै (चिंता)+ल्युट्—अन] बार-बार ध्यान, स्मरण या चिंतन करना।

अनुपयोगी (गिन्)—वि० [सं० न—उपयोगिन्, न० त०] १. जो किसी उपयोग या काम में न आ सकता हो। व्यर्थ का। निरर्थक। २. हानिकारक।

अनुपलक्षित—वि० [सं० न—उपलक्षित, न० त०] १. जिसका ज्ञान या परिचय न मिला हो। २. जिसका अनुसंधान या खोज न हुई हो। ३. बे-निशान।

अनुपलब्ध—वि० [सं० न—उपलब्ध, न० त०] १. जो लब्ध या प्राप्त न हुआ हो। न मिला हुआ। २. अज्ञात।

अनुपलब्धि—स्त्री० [सं० न—उपलब्धि, न० त०] १. उपलब्धि या प्राप्ति न होना। न मिलना। २. किसी विषय का ज्ञान या जानकारी न होना।

अनुपवीती (तिन्)—वि० [सं० न—उपवीतिन्, न० त०] जिसका यज्ञोपवीत-संस्कार न हुआ हो।

अनुपशय—पुं० [सं० न-उपशय, न० त०] ऐसी चीज या बात जिससे रोग और बढ़े।

अनुपस्कृत—वि० [सं० न—उपस्कृत, न० त०] १. जिसका उपस्करण, परिष्करण या संस्कार न हुआ हो। २. जो अपने वास्तविक या शुद्ध रूप में हो। ३. न पकाया हुआ। ४. निर्दोष।

अनुपस्थान—वि० [सं० न—उपस्थान, न० त०]=अनुपस्थित।

अनुपस्थित—वि० [सं० न—उपस्थित, न० त०] [भाव० अनुपस्थिति] जो उपस्थित, मौजूद या सामने न हो। अविद्यमान। गैर-हाजिर। (ऐबसेन्ट)

अनुपस्थिति—स्त्री० [सं० न—उपस्थिति, न० त०] उपस्थित, वर्तमान या सामने न होने का भाव। उपस्थित या सामने न होना। गैर-मौजूदगी। (ऐबसेन्स)

अनुपहत—वि० [सं० न—उपहत, न० त०] १. जिसपर आघात न हुआ हो। २. जो पहले उपयोग या व्यवहार में न आया हो। कोरा। नया।

अनुपाख्य—वि० [सं० न—उपाख्या, न० ब०] जिसकी उपाख्या न हो सके। जो स्पष्ट रूप से कहे जाने या समझने के योग्य न हो।

अनुपात—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० आनुपातिक, क्रि० वि० अनुपाततः] १. एक के बाद दूसरे का आना या गिरना। २. दो मानों, मूल्यों या संख्याओं के मान का वह पारस्परिक संबंध जो इस विचार से स्थिर किया जाता है कि एक से दूसरे का कितनी बार गुणा या भाग हो सकता है। (रेशियो) जैसे—२ और ५ में वही अनुपात है जो ८ और २० में या १६ और ४० में है।

अनुपातक—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा अपराध या पाप जो महापातक के समान हो। जैसे—चोरी, पर-स्त्री-गमन।

अनुपातन—पुं० [सं० अनुपात+णिच्+ल्युट्—अन] वस्तुओं को उनके अनुपात, आकार, महत्त्व आदि के विचार से क्रमशः लगाते हुए उनके वर्ग निश्चित करना। कोटि-बंधन। (ग्रेडिंग)

अनुपातिक—वि०=आनुपातिक।

अनुपाती (तिन्)—वि० [सं०-अनु√पत् (गिरना)+णिनि]=आनुपातिक।

अनुपान—पुं० [सं० अनु√पा (पीना)+ल्युट्—अन] वह पदार्थ जो किसी औषध के अंग-रूप में (उसे ठीक, गुणकारी या प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से) उसके साथ या बाद खाया या पीया जाय। जैसे—यदि कोई औषध शहद के साथ खाएँ तो शहद उसका अनुपान होगा।

अनुपाय—वि० [सं० न—उपाय, न० ब०] १. (कार्य) जिसका कोई उपाय न हो। २. (व्यक्ति) जिसके लिए कोई उपाय या मार्ग न रह गया हो।

अनुपालन—पुं० [सं० अनु√पाल (पालन)+णिच्+ल्युट्—अन] १. आज्ञा या आदेश का ठीक रूप से पालन या कार्यान्वित करना। २. किसी पत्र या आज्ञा को उसके ठीक स्थान तक पहुँचाने का काम। तामील, (सरविस) ३. पालन और रक्षा।

अनुपाश्रया भूमि—स्त्री० [सं० न—उपाश्रय, न० ब०, अनुपाश्रया भूमि, व्यस्तपद] ऐसी भूमि जो और अधिक लोगों को आश्रय या रहने का स्थान न दे सके।

अनुपासन—पुं० [सं० उप√आस् (बैठना)+ल्युट्—अन, न० त०] उपासन या ध्यान का अभाव।

अनुपुरुष—पुं० [सं० प्रा० स०] १. व्यक्ति; जिसका उल्लेख पहले हो चुका हो। २. किसी के पीछे-पीछे चलनेवाला। अनुगामी।

अनुपूरक—वि० [सं० अनु√पूर् (पूर्ति)+ण्वुल्—अक] अभाव, कमी या त्रुटि आदि की पूर्ति के लिए बाद में जोड़ा, बढ़ाया या लगाया हुआ। (सप्लिमेन्टरी)

पुं० उक्त प्रकार से जोड़ा या बढ़ाया हुआ अंश।

अनुपूरण—पुं० [सं० अनु√पूर्+ल्युट्—अन] अभाव, कमी, त्रुटि आदि की पूर्ति करने के लिए बाद में कुछ और बढ़ाना या लगाना। (सप्लिमेन्टेशन)

अनुपूरित—भू० कृ० [सं० अनु√पूर्+क्त] जिसका या जिसमें अनुपूरण हुआ हो।

अनुपूर्ति—स्त्री० [सं० अनु√पूर्+क्तिन्] अनुपूरण करने की क्रिया या भाव।

अनुपूर्व—वि० [सं० अत्या० स०] १. जो किसी क्रम से होता हो। २. क्रम-क्रम से बराबर होता रहनेवाला। सिलसिलेवार। ३. जो नियत क्रम से चला आ रहा हो। नियमित। ४. जिसके सब अंग उपयुक्त नाप-तौल के हों। सुडौल।

अनुपूर्व गात्र—वि० [ब० स०] जिसके अंग बे-डौल न हों।

अनुपूर्वतः—क्रि० वि० [सं० अनुपूर्व+तस्] नियमित क्रम या सिलसिले से। क्रमशः। (सक्सेसिवली)

अनुपूर्ववत्सा—स्त्री० [ब० स०] नियमित रूप से बच्चा देनेवाली गाय।

अनुपूर्व्य—वि० [सं० अनुपूर्व+यत्] १. क्रमबद्ध। २. नियमित।

अनुपेत—वि० [सं० न—उपेत, न० त०] १. (शिक्षा के लिए) जो गुरु या शिक्षक के सामने न आया हो। २. अप्राप्त।

अनुप्त—वि० [सं०√वप (बोना)+क्त, संप्रसारण, न० त०] जो बोया न गया हो।

अनुप्रदान—पुं० [सं० अनु—प्र√दा (देना)+ल्युट्—अन] १. दान। (बौद्ध) २. वृद्धि। अभिवृद्धि।

अनुप्रपन्न—वि० [सं० प्रा० स०] पीछे पड़ा हुआ।

अनुप्रयुक्त—भू० कृ० [अनु—प्र√युज (योग)+क्त] जिसका अनुप्रयोग या अनुप्रयोजन हुआ हो या किया गया हो। (एप्लायड)

अनुप्रयोग—पुं० [सं० अनु-प्र√युज्+घञ्] कोई चीज, बात या सिद्धांत कहीं से लाकर किसी अवस्था या विषय में उसका प्रयोग करना। कहीं से लाकर किसी नये काम या नई जगह में लगाना। (एप्लिकेशन)

अनुप्रयोजन—पुं० [सं० अनु-प्र√युज्+ल्युट्—अन] अनुप्रयोग करने की क्रिया या भाव। (एप्लिकेशन)

अनुप्रयोज्य—वि० [सं० अनु-प्र√युज्+ण्यत्] जिसका अनुप्रयोग या अनुप्रयोजन हो सके, किया जा सके अथवा होने को हो। (एप्लिकेबुल्)

अनुप्रवेश—पुं० [सं० अनु-प्र√विश् (घुसना)+घञ्] किसी के साथ, उसके पीछे या बाद में प्रवेश करना।

अनुप्रश्न—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी भाषण, व्याख्यान आदि की समाप्ति पर वक्ता से किया जानेवाला प्रश्न।

अनुप्रसक्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] घनिष्ठ संबंध।

अनुप्रसम—वि० [सं० प्रा० स०] जो प्रसम (अर्थात अपनी संगत और साधारण अवस्था, स्थिति आदि) से कुछ घटकर या नीचे हो। प्रसम से कम या नीचा। (सबनॉर्मल) विशेष दे० 'प्रसम'।

अनुप्रसमतः—क्रि० वि० [सं० अनुप्रसम+तस्] अनुप्रसम दशा या रूप में। (सब-नॉर्मली)

अनुप्रस्थ—वि० [सं० अत्या० स०] जो चौड़ाई के बल हो। आड़े बल में। आड़ा। तिर्यक्। (ट्रान्सवर्स)

अनुप्राणन—पुं० [सं० अनु—प्र√अन् (जीना)+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुप्राणित] १. जीवन डालना या प्राण-संचार करना। २. उत्साह या प्रेरणा देना। ३. स्फुरण।

अनुप्राणित—भू० कृ० [सं० अनु—प्र√अन्+णिच्+क्त] १. जिसमें प्राणों या जीवन का संचार किया गया हो। २. उत्साहित या प्रेरित।

अनुप्रापण—पुं० [सं० अनु—प्र√आप् (व्याप्ति)+ल्युट्—अन] [वि० अनुप्राप्य, अनुप्राप्त] (कर, दंड आदि के रूप में) प्राप्तव्य धन इकट्ठा करना या उगाहना। वसूली करने की क्रिया या भाव। वसूली। (कलेक्शन)

अनुप्राप्त—भू० कृ० [सं० अनु—प्र√आप्+क्त] १. जो बाद में प्राप्त हुआ हो। २. (कर, दंड आदि के रूप में) उगाहा, वसूला या इकट्ठा किया हुआ (धन)।

अनुप्राप्ति—स्त्री० [सं० अनु—प्र√आप्+क्तिन्] [वि० अनुप्राप्त] (कर, दंड आदि के रूप में) प्राप्तव्य धन इकट्ठा करने की क्रिया या भाव। वसूली।

अनुप्राप्य—वि० [सं० अनु—प्र√आप्+ण्यत्] जो प्राप्त होने को हो या किया जा सके। उगाहने योग्य।

अनुप्राशन—पुं० [सं० अनु—प्र√अश् (खाना)+ल्युट्—अन] खाना। भोजन।

अनुप्रास—पुं० [सं० अत्या० स०] वह शब्दालंकार जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर या वर्ण अथवा स्वर-सहित अक्षर या वर्ण कई बार आते हैं। वर्ण-वृत्ति। वर्ण-मैत्री। (एलिटरेशन) उदा०—मणि, मणीन्द्र, माणिक्य, मेघमणि, मौक्तिक माला; तोरण-वन्दनवार-विभूषित नगरी वाला। —आनंदकुमार।

विशेष—इसके छेक, वृत्य, श्रुत्य, लाट, अन्त्य और पुनरुक्त वदाभास ये छः भेद हैं।

अनुप्रास-हीन—वि० [सं० तृ० त०] (पाश्चात्य ढंग की नये प्रकार की कविता) जिसके अंत में अनुप्रास या तुक मिलाने का ध्यान न रखा गया हो। (ब्लैंकवर्स)

अनुप्रेक्षा—स्त्री० [सं० अनु—प्र√ईक्ष (देखना)+अ—टाप्] १. आँखें गड़ाकर देखना। ध्यान से देखना। २. चिंतन। मनन।

अनुबंध—पुं० [सं० अनु√बंध् (बाँधना)+घञ्] [वि० अनुबद्ध] १. आपस में या एक दूसरे के साथ बाँधनेवाला तत्त्व या संबंध। बन्धन। २. अंगों, जीवों, वस्तुओं आदि में आवश्यक और अनिवार्य रूप से होनेवाला घनिष्ठ पारस्परिक संबंध। (को-रिलेशन) ३. किसी प्रकार का आपसी ठहराव, संविदा या समझौता। (एग्रिमेन्ट) ४. लिखित समझौता। संविदा। ५. परिणाम। फल। ६. अपत्य। संतान। ७. उद्देश्य। ८. प्रवृत्ति। ९. किसी बड़े या विकट रोग के साथ होनेवाले दूसरे गौण कष्ट या विकार। १०. आरंभ। ११. मार्ग। १२. ग्रंथ का प्रकरण या परिच्छेद। १३. पाणिनीय व्याकरण में गुण, वृद्धि आदि के लिए उपयोगी एक सांकेतिक वर्ण, जो प्रत्यय में रहता है। १४. वैद्यक में वात, पित्त और कफ में से वह तत्त्व जो समय विशेष में अप्रधान हो।

अनुबंधक—वि० [सं० अनु√बंध्+ण्वुल्—अक] अनुबंध करनेवाला।

अनुबंध-चतुष्टय—पुं० [प० त०] विषय, प्रयोजन, अधिकारी और संबंध, इन चारों का समुदाय।

अनुबंधन—पुं० [सं० अनु√बंध्+ल्युट्—अन] १. अनुबंध करने या होने का भाव। २. क्रम। सिलसिला।

अनुबंध-पत्र—पुं० [प० त०] वह पत्र जिसमें किसी अनुबंध की शर्तें लिखी हों। इकरारनामा। (एग्रिमेन्ट)

अनुबंधी (धिन्)—वि० [सं० अनुबन्ध+इनि] १. संबंध या लगाव रखनेवाला। २. (व्यक्ति या विषय) जिसका संबंध अनुबंध से हो। ३. परिणाम या फल के रूप में होनेवाला।

स्त्री० १. प्यास। २. हिचकी।

अनुबद्ध—वि० [सं० अनु√बंध्+क्त] १. किसी के साथ बँधा हुआ। २. जिसके संबंध में कोई अनुबंध या समझौता हुआ हो। (एग्रीड) ३. लगाव रखनेवाला। संबद्ध।

अनुबल—पुं० [सं० अत्या० स०] १. मुख्य बल या शक्ति की सहायता करनेवाला गौण बल या शक्ति। २. सहायता के लिए आई हुई सेना।

अनुबोध—पुं० [सं० प्रा० स०] १. बाद में या पीछे होनेवाला बोध अथवा स्मरण। २. [अनु√बुध् (जानना)+णिच्+घञ्] जिसका गुण, तेज या विशेषता कम हो गई हो, उसे फिर से ठीक करना।

अनुबोधक—पुं० [सं० अनु√बुध्+ण्वुल्, या णिच्+ण्वुल्—अक] १. अनुबोध करने या करानेवाला। २. आलोक-पत्र।

अनुबोधन—पुं० [सं० अनु√बुध्+ल्युट्, या णिच्+ल्युट्—अन] विषय या बात स्मरण होने या कराने की क्रिया या भाव।

अनुब्राह्मण—पुं० [सं० अत्या० स०] ब्राह्मणों का-सा आचरण या कर्म। वि० ब्राह्मणों का-सा। ब्राह्मणों जैसा।

अनुभक्त—भू० कृ० [सं० अनु√भञ्ज् (विभक्त करना)+क्त] १. जिसका अनुभाजन हुआ हो। २. जो अनुभाजन के अनुसार यथा अंश-प्राप्त हुआ हो। (रैशन्ड)

अनुभक्तक—पुं० [सं० अनुभक्त+कन्] वह अंश या भाग जो लोगों को

उनको आवश्यकता का ध्यान रखते हुए दिया जाय। (रैशन)

अनुभव—पुं० [सं० अनु√भू (होना)+अप्] [वि० अनुभाव्य, अनुभवी, भू० कृ० अनुभूत] १. कष्ट, सुख आदि के रूप में होनेवाला ज्ञान। अनुभूति। जैसे—ताप या शीत का अनुभव। २. बहुत से काम, प्रयोग आदि करते रहने और देखने-सुनने आदि से प्राप्त ज्ञान-पुंज, जो (उनकी स्मृतियों से भिन्न) होता है। तजरुबा। (एक्सपीरिएन्स) जैसे—उन्हें चिकित्सा (या व्यापार) का अच्छा अनुभव है।

अनुभवना*—स० [सं० अनुभव] १. अनुभव प्राप्त करना। २. अनुभूति से युक्त होना। अनुभूति प्राप्त करना।

अनुभविता (तृ)—पुं० [सं० अनु√भू+तृच्] वह जो अनुभव करता हो। अनुभव करनेवाला। जैसे—मन अनुभविता और अनुभाव्य दोनों है।

अनुभवी (विन्)—वि० [सं० अनुभव+इनि] १. जिसे कोई या किसी प्रकार का अनुभव हो। २. जिसने किसी काम या विषय का अच्छा अनुभव प्राप्त किया हो।

अनुभाजन—पुं० [सं० अनु√भाज् (पृथक् करना)+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुभाजित] वह व्यवस्था जिसमें लोगों को आवश्यकता का ध्यान रखते हुए कोई वस्तु समान रूप से निश्चित मात्रा में तथा अंश या हिस्से के रूप में उन्हें दी जाती है। (रैशनिंग)

अनुभाव—पुं० [सं अनु√भू (होना)+णिच्+घञ्] १. महिमा। बड़ाई। २. प्रभाव। ३. दृढ़ विश्वास। ४. दृढ़ निश्चय या संकल्प। ५. साहित्य में, वे विशिष्ट मानसिक और शारीरिक व्यापार जो मन में कोई भाव उत्पन्न होने, विशेषतः किसी रस की अनुभूति होने पर होते है। (एन्सुएन्ट)

विशेष—साहित्यकारों ने नौ सात्त्विक अनुभाव (स्तंभ, स्वेद, स्वर-भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, रोमांच, प्रलय और जृंभा) और बारह कायिक तथा मानसिक अनुभाव या हाव (लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित्, ललित, मोट्टायित, विब्बोक, विहृत, कुट्टमित, हेला और बोधक) माने हैं।

६. किसी व्यक्ति, वस्तु, वर्ग आदि में विशेष रूप से पाये जानेवाले गुण या लक्षण। (कैरेक्टरिस्टिक्स)

अनुभावक—वि० [सं० अनु√भू+णिच्+ण्वुल्—अक] सोचने-विचारने में प्रवृत्त करनेवाला।

अनुभावन—पुं० [सं० अनु√भू+णिच्+ल्युट्—अन) अंगभंगी द्वारा मन के भाव व्यक्त करना।

अनुभावी (विन्)—वि० [सं० अनु√भू+णिनि] [स्त्री० अनुभाविनी] १. जिसमें अनुभव करने की शक्ति या संवेदन हो। २. वह साक्षी जिसने सारी घटना स्वयं देखी हो। (आई विटनेस) ३. मृतक के वे संबंधी जिन्हें अशौच या सूतक लगता हो।

अनुभाव्य—वि० [सं० अनुभव से] जिसका अनुभव किया जा सकता हो या किया जाने को हो। अनुभव के योग्य।

वि० [सं० अनु√भू+णिच्+यत्] १. प्रशंसा या बड़ाई के योग्य। २. (गुण या लक्षण) जो किसी में विशेष रूप से पाया जा सकता हो।

अनुभाषण—पुं० [सं० अनु√भाष् (बोलना)+ल्युट्—अन] १. किसी की कही हुई बात को फिर या दुबारा कहना। २. कथोपकथन। वार्तालाप।

अनुभूत—भू० कृ० [संअनु√भू+क्त] १. जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २. (पदार्थ) परीक्षा, प्रयोग आदि के द्वारा जिसकी उपयोगिता या वास्तविकता जान ली गई हो। जो अनुभव से ठीक सिद्ध हो चुका हो। परीक्षित।

अनुभूति—स्त्री० [सं० अनु√भू+क्तिन्] १. वह ज्ञान जो अनुमिति, उपमिति, प्रत्यक्ष या शब्द-बोध के आधार पर प्राप्त हुआ हो। (स्मृति के आधार पर प्राप्त किये हुए ज्ञान से भिन्न) २. कल्पना। ३. भावना।

अनु-भूमिका—स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी बड़े ग्रंथ के किसी विभाग या प्रकरण से पहले दी जानेवाली छोटी भूमिका।

अनुभोग—पुं० [सं० प्रा० स०] १. उपभोग। २. दे० 'भोग'।

अनु-भ्राता (तृ)—पुं० [सं० अत्या० स०] छोटा भाई।

अनुमत—वि० [सं० अनु√मन् (मानना)+क्त] १. जिसे या जिसके लिए आज्ञा, आदेश, अनुमति या स्वीकृति मिल चुकी हो। २. प्रिय। रुचिर। पुं० १. आज्ञा। २. अनुमति। ३. सहमति। ४. प्रेम।

अनुमति—स्त्री० [सं० अनु√मन् +क्तिन्] १. आज्ञा। हुकुम। २. कोई काम करने से पहले उसके संबंध में अधिकारी से मिलने या ली जानेवाली स्वीकृति जो बहुत-कुछ आज्ञा के रूप में होती है। अनुज्ञा। (परमिशन) ३. कोई काम करते समय या कर चुकने पर किसी बड़े या उच्चाधिकारी के द्वारा होनेवाला उसका अनुमोदन या समर्थन। स्वीकृति। (एसेन्ट) ४. चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा।

अनुमति-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र या लेख जिस पर अनुमति या स्वीकृति लिखी हो।

अनुमरण—पुं० [सं० अनु√मृ (मरना)+ल्युट्-अन] स्त्री का पति के शव के साथ सती होना।

अनुमा—स्त्री० [सं० अनु√मा (मान)+अङ्—टाप्]=अनुमान।

अनुमाता (तृ)—वि० [सं० अनु√मा+तृच्] अनुमान करनेवाला।

अनुमान—पुं० [सं० अनु√मि, या√मा+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुमित वि० अनुमेय, आनुमानिक, अनुमानित] १. अपने मन से यह समझना कि ऐसा हो सकता है या होगा। अटकल। अंदाज। (गेस) २. मोटा हिसाब लगाकर अंदाज से यह समझना कि यह ऐसा या इतना होगा। (एस्टिमेट) ३. न्याय में, प्रमाण के चार भेदों में से वह भेद जिससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना या सिद्धि होती है। ४. साहित्य में एक अलंकार जिसमें साध्य के संबंध में साधन के द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान कुछ विलक्षण या चमत्कारपूर्ण ढंग से वर्णित होता है। (इन्फिएरेन्स) ५. भावना। विचार।

अनुमानतः—क्रि० वि० [सं० अनुमान+तस्] अनुमान के आधार पर। अन्दाज से। अटकल से।

अनुमानना*—स० [सं० अनुमान] अनुमान करना।

अनुमानित—भू० कृ० [सं० अनुमान+क्विप्+क्त] अनुमान से समझा हुआ। अनुमित।

अनुमानोक्ति—स्त्री० [सं० अनुमान—उक्ति, तृ० त०] १. अनुमान के आधार पर कही हुई बात। २. मन में किया जानेवाला ऊहापोह या तर्क-वितर्क।

अनुमापक—वि० [सं० अनु√मा+णिच्+ण्वुल्—अक] अनुमान करानेवाला।

पुं० [हिं० अनुमापन] अनुमापन करने या करानेवाला व्यक्ति।

अनुमापन—पुं० [सं० अनु√मा+णिच्, पुक्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुमापित] रासायनिक प्रक्रिया से यह पता लगाना कि किसी घोल या मिश्रण में कोई विशिष्ट तत्त्व या पदार्थ कितनी मात्रा में है। (टाइट्रेशन)

अनुमापना—स० [सं० अनुमापन से] अनुमान या कल्पना करना। समझना। उदा०—दुरजन हमर दुःख न अनुमापव। —विद्यापति।

अनुमित—भू० कृ० [सं० अनु√मा+क्त] १. जो अनुमान से जाना, सोचा या समझा गया हो। (गेस्ड) २. जो अनुमान से या मोटा हिसाब लगाकर ठहराया गया हो। (एस्टिमेटेड)

अनुमिति—स्त्री० [सं० अनु√मा (मान)+क्तिन्] १. अनुमित होने की अवस्था या भाव। २. तर्क में, सामने आई हुई बात या बातों के आधार पर निकाला हुआ निष्कर्ष, जो अनुभूति के चार भेदों में से एक माना गया है। (इन्फेरेन्स)

अनुमृता—स्त्री० [सं० अनु√मृ (मरना)+क्त] १. वह स्त्री जिसकी मृत्यु उसके पति की मृत्यु के उपरान्त हुई हो। २. पति के शव के साथ सती होनेवाली स्त्री।

अनुमेय—वि० [सं० अनु√मा+यत्] जिसे अनुमान से जान सकें। अनुमान में आने योग्य।

अनुमोद—पुं० [सं० अनु√मुद् (प्रीति)+घञ्, या णिच्+घञ्]=अनुमोदन।

अनुमोदन—पुं० [सं० अनु√मुद्+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुमोदित, वि० अनुमोद्य] १. प्रसन्नता प्रकट करना। २. किसी को प्रसन्न करने के लिए आप भी प्रसन्न होना। ३. किसी के किये हुए काम या सामने रक्खे हुए सुझाव को ठीक मानकर अपनी स्वीकृति देना या उसका समर्थन करना। (एप्रूवल)

अनुमोदित—भू० कृ० [सं० अनु√मुद्+णिच्+क्त] १. (बात या विचार) जिसका किसी ने अनुमोदन किया हो। २. (बात या विचार) जिसे किसी उच्च अधिकारी ने ठीक मान लिया हो और जिसके अनुसार कार्य करने की स्वीकृति दे दी हो।

अनुमोद्य—वि० [सं० अनु√मुद्+णिच्+यत्] जिसका अनुमोदन किया जा सकता हो या किया जाने को हो।

अनुयाचक—पुं० [सं० अनु√याच् (माँगना)+ण्वुल्—अक] अनुयाचन करनेवाला व्यक्ति। (कैन्वेसर)

अनुयाचन—पुं० [सं० अनु√याच् (माँगना) +ल्युट्—अन] [कर्त्ता अनुयाचक, अनुयाची, भू० कृ० अनुयाचित] किसी को अनुरोध-पूर्वक समझा-बुझाकर अपने अनुकूल करते हुए उससे कोई काम करने के लिए कहना। (कैन्वेसिंग) जैसे—मत या वोट के लिए अथवा किसी के हाथ अपना माल बेचने के लिए अनुयाचन करना।

अनुयाचित—भू० कृ० [सं० अनु√याच्+क्त] जिसका या जिसके लिए अनुयाचन किया गया हो।

अनुयाची (चिन्)—पुं० [अनु√याच्+णिनि]=अनुयाचक।

अनुयाता (तृ)—पुं० [सं० अनु√या (जाना)+तृच्] अनुगामी या अनुयायी।

अनुयात्रिक—वि० [सं० अनुयात्रा+ठन्—इक]=अनुयाता।

अनुयान—पुं० [सं० अनु√या+ल्युट्—अन] किसी के पीछे चलना। अनुगमन।

अनुयायिता—स्त्री० [सं० अनुयायिन्+तल्—टाप्] अनुयायी होने की अवस्था या भाव।

अनुयायी (यिन्)—वि० [सं० अनु√या (जाना)+णिनि] [स्त्री० अनुयायिनी; भाव० अनुयायिता] १. किसी के पीछे-पीछे चलनेवाला। अनुगामी। २. अनुकरण करनेवाला। ३. किसी के उपदेश या सिद्धांत मानने और उसके अनुसार चलनेवाला। (फॉलोअर)
पुं० अनुचर। सेवक। दास।

अनुयुक्त—वि० [सं० अनु√युज् (योग)+क्त] १. जिसके विषय में अनुयोग (पूछ-ताछ) किया गया हो। २. परीक्षित। ३. निंदित।

अनुयुग—पुं० [सं० अत्या० स०] १. किसी युग का कोई छोटा और विशिष्ट भाग जिसमें निरंतर कुछ विशिष्ट प्रकार की घटनाएँ हुई हों। (इपॉक) जैसे—पुराशास्त्र की दृष्टि से प्रस्तर-युग कई अनुयुगों में विभक्त है। २. कोई ऐसा विशिष्ट काल या समय जिसमें विशिष्ट महत्त्व की घटनाएँ या परिवर्तन हुए हों। शक। (इपॉक)

अनुयोक्ता (क्तृ)—पुं० [सं० अनु√युज्+तृच्] [स्त्री० अनुयोक्त्री] १. अनुयोग या पूछ-ताछ करनेवाला। २. वेतन लेकर विद्यार्थियों को शिक्षा देनेवाला। (ट्यूटर)

अनुयोग—पुं० [सं० अनु√युज्+घञ्] १. प्रश्न करना। पूछना। २. संदेह दूर करने या सत्यता के संबंध में शंका होने पर किया जानेवाला प्रश्न। पूछ-ताछ। (क्वेरी) ३. वेतन लेकर विद्यार्थियों को पढ़ाने का काम। (ट्यूशन)

अनुयोग-चिह्न—पुं० [सं० ष० त०] छापे और लिखावट में एक प्रकार का चिह्न जो अनुयोग (जिज्ञासा) या शंका सूचित करता है; और जिसका रूप यह है—'?'।

अनुयोगी (गिन्)—वि० [सं० अनु√युज्+घिनुण्] १. अनुयोग करनेवाला। २. दे० 'अनुयोक्ता'।

अनुयोजन—पुं० [सं० अनु√युज्+ल्युट्—अन] १. प्रश्न। २. प्रश्न करने की क्रिया या भाव। अनुयोग।

अनुयोजित—भू० कृ० [सं० अनु√युज्+णिच्+क्त] जिसके विषय में अनुयोग या पूछ-ताछ की गई हो। अनुयुक्त।

अनुयोज्य—वि० [सं० अनु√युज्+ण्यत्] जिसके विषय में पूछ-ताछ की जा सकती हो या की जाने को हो।

अनुरंजक—पुं० [सं० अनु√रञ्ज् (राग)+ण्वुल्—अक] अनुरंजन, प्रसन्न या संतुष्ट करनेवाला।

अनुरंजन—पुं० [सं० अनु√रञ्ज्+ल्युट्—अन] १. रंग से युक्त करना। रँगना। २. प्रसन्न या संतुष्ट करना। ३. अनुराग। प्रीति। ४. आसक्ति। मन-बहलाव।

अनुरंजित—भू० कृ० [सं० अनु√रञ्ज्+णिच्+क्त] जिसका अनुरंजन किया गया हो।

अनुरक्त—भू० कृ० [सं० अनु√रञ्ज्+क्त] [भाव० अनुरक्ति] १. जिसके मन में किसी के प्रति अनुराग हुआ हो। २. किसी की ओर झुका हुआ। आसक्त। ३. रँगा हुआ। ४. रक्तवर्ण का। लाल।

अनुरक्त-प्रकृति—वि० [ब० स०] १. (वह राजा) जिसकी प्रजा उसमें

अनुरक्त हो। २. जिसने साम, दाम आदि के द्वारा प्रजावर्ग को संतुष्ट कर लिया हो।

अनुरक्ति—स्त्री० [सं० अनु√रञ्ज्+क्तिन्] [वि० अनुरक्त] १. अनुरक्त होने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. किसी के प्रति भक्ति, श्रद्धा या सद्भाव होना। अनुराग। प्रेम। (एफेक्शन)

अनुरणन—पुं० [सं० अनु√रण् (शब्द)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुरणित] १. गूँज। २. व्यंजना। ३. संगीत शास्त्र में, स्वर का वह मुख्य स्वरूप जो नाद या शब्द की लहरों के क्रम से उत्पन्न होकर कुछ देर में लीन या समाप्त हो जाता है।

अनुरत—वि०=अनुरक्त।

अनुरति—स्त्री० [सं० अनु√रम्+क्तिन्] १. अनुराग। २. आसक्ति।

अनुरथ्या—स्त्री० [सं० अत्या० स०] सड़क के दोनों ओर का छोटा रास्ता। पटरी।

अनुरस—पुं० [सं० अत्या० स०] १. साहित्य में, किसी रस के साथ रहकर उसमें सहायक होनेवाला रस। २. प्रतिध्वनि।

अनुरसित—वि० [सं० अनु√रस् (शब्द)+क्त] प्रतिध्वनित। पुं० प्रतिध्वनि।

अनुरहस—पुं० [सं० अत्या० स०, अच्] एकांत स्थान। निराला।

अनुराग—पुं० [सं० अनु√रञ्ज्+घञ्] [भू० कृ० अनुरक्त] १. किसी से प्रसन्न होकर शुद्ध भाव से उसकी ओर प्रवृत्त होना या मन लगाना। २. शृंगारिक क्षेत्र में, वह आरंभिक और हलका प्रेम या स्नेह जो मिलन अथवा विशेष सम्पर्क स्थापित होने से पहले उत्पन्न होता है। (एफेक्शन) ३. दे० 'अनुरक्ति'।

अनुरागना*—स० [सं० अनुराग] १. अनुराग या प्रीति करना। प्रेम करना। २. आसक्त होना।
अ० अनुराग या प्रेम से युक्त होना।

अनुरागी (गिन्)—वि० [सं० अनुराग+इनि] [स्त्री० अनुरागिनी] १. अनुराग रखनेवाला। प्रेमी। २. भक्त।

अनुरात्र—अव्य० [सं० अनु—रात्रि, अव्य० स०, अच्] १. हर रात। २. रात में।

अनुराव—पुं० [सं० अनु√राध् (सिद्धि)+घञ्] १. विनती। विनय। २. प्रार्थना। याचना।

अनुराधन—पुं० [सं० अनु√राध्+ल्युट्—अन] १. अंत या समाप्ति की ओर ले जाना। २. पूरा करना।

अनुराधना*—स० [सं० अनुराध] विनय करना। प्रार्थना या विनती करना।

अनुराधपुर—पुं० [सं० ष० त०] लंका की पुरानी राजधानी।

अनुराधा—स्त्री० [सं० अत्या० स०] सत्ताइस नक्षत्रों में से सत्रहवाँ नक्षत्र।

अनुरूप—वि० [सं० अत्या० स० या अव्य० स०, अच् प्रत्यय] १. जिसका रूप किसी के तुल्य, समान या सदृश हो। ठीक वैसा। २. अनुकूल। ३. उपयुक्त। योग्य।

अनुरूपक—पुं० [सं० अनु√रूप् (साकार करना)+अच्+कन्] १. वह जो किसी के अनुरूप हो या अनुकरण पर बना हो। २. प्रतिमा। मूर्ति। ३. समान वस्तु। मिलती-जुलती चीज। उदा०—गति, आनन, लोचन, पांयन के अनुरूपक से मन मानि लिए।—केशव।

अनुरूपण—पुं० [सं० अनु√रूप्+णिच्+ल्युट्—अन] किसी को किसी के अनुरूप बनाने की अवस्था, क्रिया या भाव।

अनुरूपता—स्त्री० [सं० अनुरूप+तल्—टाप्] १. किसी के अनुरूप होने की क्रिया या भाव। जैसा कोई और हो, वैसा ही उसके समान होना। २. अनुकूलता। ३. समानता। सादृश्य। ४. उपयुक्तता।

अनुरूपना—स० [सं० अनुरूप] अपने अनुरूप या समान बनाना।
अ० किसी के अनुरूप बनना या होना।

अनुरूपा सिद्धि—स्त्री० [सं० व्यस्तपद] भाई, बंधु आदि को साम, दाम आदि के द्वारा अनुकूल करना। (कौ०)

अनुरेखन—पुं० [सं० अनुलेखन] [भू० कृ० अनुरेखित] १. रेखाओं, रेखा-चित्रों आदि की अनुकृति प्रस्तुत करना। २. किसी चित्र या अंकन के ऊपर पतला या पारदर्शक कागज रखकर उसकी रेखाएँ आदि लेते हुए उसकी नकल तैयार करना। (ट्रेसिंग)

अनुरेखित—भू० कृ० [सं० अनुरेखा, प्रा० स०,+इतच्] जिसका अनुरेखन हुआ हो।

अनुरोदन—पुं० [सं० अनु√रुद् (रोना)+ल्युट्—अन] १. किसी के साथ (संवेदना जतलाते हुए) रोना। २. संवेदना प्रकट करना।

अनुरोध—पुं० [सं० अनु√रुध् (रोकना)+घञ्] १. बाधा। रुकावट। २. विनयपूर्वक किसी बात के लिए किया जानेवाला हठ। ३. उत्तेजना या प्रेरणा।

अनुरोधक—वि० [सं० अनु√रुध्+ण्वुल्—अक] अनुरोध करनेवाला।

अनुरोधी (धिन्)—वि० [सं० अनुरोध+इनि]=अनुरोधक।

अनुर्वर—वि० [सं० न—उर्वर, न० त०] [स्त्री० अनुर्वरा] (भूमि) जो उर्वर या उपजाऊ न हो, फलतः बंजर।
पुं० बंजर भूमि।

अनुलंब—पुं० [सं० अनु√लम्ब् (लटकना)+घञ्] मानसिक अनिश्चितता की ऐसी अवस्था जिसमें चिंता अथवा भय के कारण कोई निश्चय न हुआ हो परन्तु निश्चय पर पहुँचने की इच्छा बनी हो। (सस्पेन्स)

अनुलंब खाता—पुं० [सं० अनुलंब×हिं० खाता] ऐसा खाता जिसमें अस्थायी रूप से तब तक के लिए रकमें लिखी जाती हैं जब तक उनका ठीक स्थान निश्चित नहीं हो जाता। (सस्पेन्स एकाउन्ट)

अनुलंबन—पुं० [सं० अनु√लम्ब् (लटकना, सहारा लेना) +ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुलंबित] १. अस्थायी रूप से किसी को कोई कार्य करने से रोकना। २. किसी कर्मचारी के दोष या अपराध की सूचना मिलने पर उसकी जाँच तक के लिए अस्थायी रूप से उसको अपने पद से हटाया जाना। मुअत्तल करना। (सस्पेन्शन)

अनुलंबित—भू० कृ० [सं० अनु√लम्ब्+क्त] १. जिसका अनुलंबन हुआ हो। २. जो अस्थायी रूप से हटाया गया हो। (सस्पेंडेड)

अनुलग्न—वि० [प्रा० स०] १. किसी के साथ जुड़ा, मिला या लगा हुआ। (अटैच्ड, या एन्क्लोज्ड) २. दे० 'समावृत'।

अनुलग्नक—पुं० [सं० अनुलग्न+कन्] वह पत्र या कागज जो किसी दूसरे पत्र के साथ लगा, जुड़ा या नत्थी किया गया हो। (एन्क्लोजर)

अनुलाप—पुं० [सं० अनु√लप् (बोलना)+घञ्] १. कही हुई बात फिर से कहना या दोहराना। पुनरुक्ति। (रिपीटीशन) २. एक ही बात घुमा-फिरा कर बार-बार कहना।

अनुलास—पुं० [सं० प्रा० ब०स०] मोर।

अनुलिखित—भू० कृ० [सं० अनु√लिख् (लिखना)+क्त] अनुलेख के रूप में लाया हुआ। नकल किया हुआ।

अनु-लिपि—स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी खुदी या लिखी हुई आकृति या लेख पर से उसकी ज्यों की त्यों उतारी या छापकर तैयार की हुई नकल। (फैक्सिमिली) जैसे—किसी शिलालेख की अनुलिपि।

अनुलेख—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अनुलिखित]=प्रतिलिपि।

अनुलेखन—पुं० [सं० अनु√लिख् (लिखना)+ल्युट्—अन] [कर्त्ता—अनुलेखक, वि० अनुलेख्य] १.घटना या कार्य का लेखा आदि लिखना। जैसे—वायु की गति या भूकंप के धक्के का अनुलेखन। २. अनुलेख के रूप में कुछ लिखने की क्रिया। प्रतिलिपि करना।

अनुलेप—पुं० [सं० अनु√लिप् (लीपना)+घञ्] १. सुगंधित लेप, उबटन आदि। २. उक्त वस्तुओं का शरीर पर होनेवाला लेप।

अनुलेपक—वि० [सं० अनु√लिप्+ण्वुल्—अक] अनुलेपन करनेवाला।

अनुलेपन—पुं० [सं० अनु√लिप्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अनुलिप्त] १. किसी के ऊपर लेप लगाना या चढ़ाना। २. शरीर में सुगंधित पदार्थ लगाना। ३. पोतना। लीपना।

अनुलोम—पुं० [सं० अव्य० स०, अच्] १. ऊँचे से नीचे की ओर या बड़े से छोटे की ओर आने का क्रम। उतार। २. संगीत में, ऊँचे स्वर से क्रमशः नीचे स्वरों का उच्चारण। अवरोह।

अनुलोमज—वि० [सं० अनुलोम√जन् (उत्पन्न होना)+ड], अनुलोम-विवाह से उत्पन्न (संतान)।

अनुलोम-जन्मा (न्मन्)—वि० [ब० स०]=अनुलोमज।

अनुलोमतः—अव्य० [सं० अनुलोम+तस्] अनुलोमवाले क्रम से या ऐसे क्रम के विचार से।

अनुलोमन—पुं० [सं० अनुलोम+क्विप्+ल्युट्—अन] १. पेट का मल बाहर निकालने के लिए उपाय या प्रयत्न करना। २. ऐसी ओषधि जिससे पेट का मल बाहर निकले।

अनुलोम-विवाह—पुं० [सं० तृ० त०] ऐसा विवाह जो ऊँचे वर्ण के पुरुष तथा नीचे वर्ण की स्त्री में हो। जैसे—वैश्य और शूद्रा का विवाह।

अनुलोमा—स्त्री० [सं० अनुलोम+अच्—टाप्] वह स्त्री जो अपने पति से नीची जाति की हो।

अनुलोमा सिद्धि—स्त्री० [सं० व्यस्तपद] नगरवासियों, देशवासियों तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना। (कौ०)

अनुल्लंघन—पुं० [सं० न—उल्लंघन, न० त०] उल्लंघन न करना।

अनुल्लंघ्य—वि० [सं० उद्√लंघ् (लाँघना)+ण्यत्, न-उल्लंघ्य, न० त०] १. जिसका उल्लंघन न हो सकता हो। २. जिसका उल्लंघन करना उचित न हो।

अनुवंश—पुं० [सं० अत्या० स०] १. किसी वंश का इतिहास। वंशवृत्त। २. वंश-वृक्ष।

अनुवक्ता (क्तृ)—पुं० [सं० अनु√वच् (बोलना)+तृच्] १. पीछे या बाद में बोलनेवाला। २. किसी की कही हुई बात दोहरानेवाला। ३. उत्तर देनेवाला।

अनुवचन—पुं० [सं० अनु√वच्+ल्युट्—अन] [कर्त्ता—अनुवक्ता] १. किसी की कही हुई बात फिर से कहना या दोहराना। २. किसी बात का अर्थ या आशय स्पष्ट करना। अर्थापन। व्याख्या। (इन्टरप्रिटेशन) ३. प्रकरण। अध्याय। ४. भाग। खंड। हिस्सा। ५. शिक्षण। ६. पाठ। ७. भाषण।

अनुवत्सर—पुं० [सं० प्रा० स०] पाँच वर्षोंवाले युग का चौथा वर्ष। (ज्यो०)

क्रि० वि० प्रति वर्ष। हर साल।

अनुवर्त्तक—वि० [सं० अनु√वृत् (बरतना)+ण्वुल्—अक]=अनुवर्ती।

अनुवर्त्तन—पुं० [सं० अनु√वृत्+ल्युट्—अन] १. किसी की इच्छा के अनुसार आचरण या व्यवहार करना। २. अनुगमन। अनुसरण। ३. पुराने नियम या सिद्धांत का प्रयोग करना अथवा उसके अनुसार कोई काम करना। ४. प्रसन्न या संतुष्ट करना। ५. परिणाम। फल।

अनुवर्त्ती (र्त्तिन्)—वि० [सं० अनु√वृत्+णिनि] १. अनुसरण या अनुगमन करनेवाला। २. प्रसन्न या संतुष्ट करनेवाला। ३. किसी के उपरांत उसके परिणामस्वरूप होनेवाला। (कान्सिक्वेन्ट) ४. किसी के बाद आने या रखा जानेवाला।

अनुवंश—वि० [सं० अत्या० स०] १. दूसरे की इच्छा के अनुसार चलनेवाला। २. आज्ञाकारी। ३. वशीभूत।

पुं० [प्रा० स०]=अनुवंशता।

अनुवशता—स्त्री० [सं० अनुवश+तल्—टाप्] किसी के वश (या आज्ञा) में रहने की अवस्था या भाव।

अनुवसित—भू० कृ० [सं० अनु√वस् (आच्छादन)+क्त] १. जिसने वस्त्र धारण किया हो। २. कपड़े से घेरा या ढका हुआ।

अनुवह—पुं० [सं० अनु√वह् (ढोना)+अच्] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

अनुवा—पुं० [सं० अनूप=जलयुक्त] १. कुएँ की जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खींचते हैं। २. पानी निकालने के लिए जमीन में खोदा जानेवाला गड्ढा। चोआ।

†पुं० [सं० एनस्] व्यभिचार। छिनाला।

अनुवाक—पुं० [सं० अनु√वच् (बोलना)+घञ्, कुत्व] किसी ग्रंथ का, विशेषतः वेदों का कोई अध्याय या प्रकरण।

अनुवाचन—पुं० [सं० अनु√वच्+णिच्+ल्युट्—अन] १. यज्ञों में विधि के अनुसार मंत्रों का पाठ करना या कराना। २. अध्वर्यु के आदेशानुसार होता द्वारा ऋग्वेद के मंत्रों का पाठ। ३. किसी प्रकार के वाचन के उपरान्त होनेवाली उसकी उद्धरणी।

अनुवाद—पुं० [सं० अनु√वद् (बोलना)+घञ्] [कर्त्ता—अनुवादक, वि० अनुवाद्य, भू० कृ० अनुवादित, अनूदित] १. किसी की कही हुई बात फिर से कहना। दोहराना। २. तर्कशास्त्र में ऐसी बात बार-बार या कई रूपों में कहना जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बिलकुल ठीक हो। ३. एक भाषा में लिखी हुई चीज या कही हुई बात के दूसरी भाषा में कहने या लिखने की क्रिया या प्रक्रिया। भाषांतर। उल्था। तर्जुमा। (ट्रांसलेशन)

अनुवादक—पुं० [सं० अनु√वद्+ण्वुल्—अक] [स्त्री० अनुवादिका] अनुवाद या भावांतर करनेवाला। एक भाषा से दूसरी भाषा में लिखने या कहनेवाला व्यक्ति। (ट्रांस्लेटर)

अनुवादित—भू० कृ० [सं० अनुवाद+क्विप्+क्त] १. जिसका अनुवाद

हो चुका हो। २. (ग्रंथ या लेख) जो अनुवाद के रूप में हो। अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी (दिन्)—पुं० [सं० अनु√वद्+णिनि] १. दे० 'अनुवादक'। २. संगीत में वह स्वर जो किसी राग के वादी स्वर के अनुरूप हो और उस राग का सौंदर्य बढ़ाने में सहायता देता हो।

अनुवाद्य—वि० [सं० अनु√वद्+ण्यत्] १. अनुवाद किये जाने के योग्य। २. जिसका अनुवाद होने को हो या हो रहा हो। ३. जिसका अनुवाद हो सकता हो।

अनुवास—पुं० [सं० अनु√वास् (सुगंधित करना)+घञ्] १. सुगंधित करना (विशेषतः वस्त्र)। २. [अनु√वस् (निवास)+घञ्] निकट, समीप या साथ रहना। ३. किसी तरल ओषधि (भेषज अथवा शक्तिवर्धक) को पिचकारी द्वारा गुदा-मार्ग से शरीर के अन्दर पहुँचाना। (एनिमा)

अनुवासन—पुं० [सं० अनु√वास्+ल्युट्—अन] अनुवास करने की क्रिया या भाव।

अनुवासन-वस्ति—स्त्री० [प० त०] १. प्राचीन भारत में, शरीर के अन्दर औषध पहुँचाने की पिचकारी। २. पदार्थों को सुगंधित करने के लिए बना हुआ यंत्र।

अनुवासित—भू० कृ० [सं० अनु√वास्+क्त] १. जिसका अनुवासन हुआ हो। २. सुगंधित किया हुआ।

अनुवासी (सिन्)—वि० [सं० अनु√वास्+णिनि] १. अनुवास करनेवाला। २. सुगंधित करनेवाला। ३. [अनु√वस्+णिनि] पास या पड़ोस में रहनेवाला।

अनुवित्त—वि० [सं० अनु√विद् (पाना)+क्त] मिला हुआ। प्राप्त।

अनुवित्ति—स्त्री० [सं० अनु√विद्+क्तिन्] प्राप्ति।

अनुविद्ध—भू० कृ० [सं० अनु√व्यध् (वेधना)+क्त] १. बिधा या वेधा हुआ। २. गूँथा या पिरोया हुआ। ३. मिला हुआ। युक्त। ४. फैला हुआ। व्याप्त। ५. सजाया हुआ। अलंकृत।

अनुविधान—पुं० [सं० प्रा० स०] १. आज्ञा, आदेश, विधान के अनुरूप काम करने की क्रिया या भाव। आज्ञाकारिता। २. किसी के कहे या बतलाये हुए ढंग से कोई काम करने की क्रिया या भाव।

अनुविष्ट—भू० कृ० [सं० अनु√विश् (बैठना या पैठना)+क्त] [भाव० अनुविष्टि, अनुवेश] जो अपने स्थान विशेष पर लिख लिया गया हो। चढ़ा, चढ़ाया या टाँका हुआ। (एन्टर्ड)

अनुविष्टि—स्त्री० [सं० अनु√विश्+क्तिन्]=अनुवेश।

अनुवृत्त—वि० [सं० अनु√वृत् (बरतना)+क्त] १. जिसका अनुकरण या अनुसरण किया गया हो। २. दोहराया या दोबारा कहा या पढ़ा हुआ। ३. (पद) जो अनुवृत्ति के रूप में ग्रहण किया जाय। विशेष दे० 'अनुवृत्ति'। ४. अतीत-संबंधी। ५. सच्चरित्र।

पुं० वह व्यक्ति जिसे कोई अनुवृत्ति मिलती हो। अनुवृत्ति पानेवाला। (पेन्शनर)

अनुवृत्ति—स्त्री० [सं० अनु√वृत्+क्तिन्] १. एक बार कही या पढ़ी हुई चीज या बात फिर से कहना या दोहराना। २. व्याकरण में, किसी कथन में आया हुआ कोई अंश या पद परवर्ती कथन में फिर से ग्रहण करना या मानना। जैसे—'राम भी आया है और माधव भी।' में 'माधव भी' के साथ 'आया है' माना जाता है। ३. [प्रा० स०] वृत्ति या वेतन का वह प्रकार या रूप जिसमें किसी कर्मचारी को बहुत दिनों तक काम करने पर, उसकी वृद्धावस्था में अथवा उसकी किसी अन्य प्रकार की सेवा, योग्यता आदि के विचार से भरण-पोषण के लिए कुछ धन दिया जाता है या मिलता है। (पेन्शन)

अनुवृत्तिक—वि० [सं० आनुवृत्तिक] १. अनुवृत्ति-संबंधी। अनुवृत्ति का। २. (पद या सेवा) जिसके संबंध में अनुवृत्ति मिल सकती हो। (पेंशनेबुल)

अनुवृत्तिधारी (रिन्)—पुं० [सं० अनुवृत्ति√धृ (धारण करना)+णिनि] वह जिसे अनुवृत्ति मिलती हो। अनुवृत्ति पानेवाला। (पेन्शनर)

अनुवृत्ती—पुं० [सं० अनुवृत्ति से]=अनुवृत्तिधारी।

अनुवेतन—पुं० [सं० प्रा० स०] दे० 'अनुवृत्ति' ३.।

अनुवेश—पुं० [सं० अनु√विश् (प्रवेश करना)+घञ्] १. किसी के पीछे या साथ-साथ प्रवेश करना। २. प्रवेश। ३. छोटे भाई का बड़े भाई से पहले विवाह होना। ४. (खाते, पंजी आदि में धन या नाम) यथा स्थान लिखा या चढ़ाया जाना। (एन्टरी)

अनुवेशन—पुं० [सं० अनु√विश्+ल्युट्—अन] अनुवेश करने की क्रिया या भाव।

अनुवेश-पत्र—पुं० [प० त०]=अनुवेशिका।

अनुवेश-लेख—पुं० [प० त०]=अनुवेशिका।

अनुवेशिका—स्त्री० [सं० अनु√विश्+णिच्+ण्वुल्—अक+टाप्, इत्व] पार-पत्र की पीठ पर लिखा हुआ इस आशय का प्रमाण-लेख कि अमुक समय और स्थान पर यह जाँचा गया है और इसे लेकर यात्री आगे जा सकता है। (वीजा)

अनुवेश्य—वि० [सं० अनुवेश+यत्] १. एक के अंतर पर स्थित। दूसरा। २. पड़ोसी के एक घर के अंतर पर रहनेवाला।

अनुव्याख्या—पुं० [सं० प्रा० स०] अर्थ को और अधिक स्पष्ट करनेवाली व्याख्या।

अनुव्याख्यान—पुं० [सं० प्रा० स०] अर्थ स्पष्ट करने के लिए और अधिक व्याख्या करना।

अनुव्याहरण—पुं० [सं० प्रा० स०]=अनुव्याहार।

अनुव्याहार—पुं० [सं० प्रा० स०] १. पुनरुक्ति। २. शाप।

अनुव्रजन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी को विदा करते समय उसके साथ कुछ दूर जाना। २. आज्ञा-पालन।

अनुव्रज्या—स्त्री० [सं० प्रा० स०] दे० 'अनुव्रजन'।

अनुव्रत—वि० [सं० अत्या० स०] १. श्रद्धा करनेवाला। २. विश्वास-भाजन।

पुं० एक तरह का जैन साधु।

अनुशंसा—स्त्री० [सं० अनु√शंस् (स्तुति)+अ—टाप्] [भू० कृ० अनुशंसित] किसी व्यक्ति या प्रार्थना आदि के संबंध में यह कहना कि यह अच्छा, उपयुक्त, ग्राह्य अथवा मान्य है। सिफारिश। (रेकमेंडेशन)

अनुशंसित—भू० कृ० [सं० अनु√शंस्+क्त] जिसकी अनुशंसा या सिफारिश की गई हो। (रेकमेंडेड)

अनुशतिक—पुं० [सं० शत+ठन्—इक, अनु-शतिक, प्रा० स०] सौ से अधिक सैनिकों का अध्यक्ष।

अनुशय—पुं० [सं० अनु√शी (सोना)+अच्] १. पुराना वैर। २. झगड़ा। विवाद। ३. दान-संबंधी विवाद या उसका निर्णय। ४. काम में मिलनेवाला अवकाश। छुट्टी। ५. पश्चात्ताप। उदा०—लघुता मत देखो वक्ष चीर। जिसमें अनुशय बन घुसा तीर।—प्रसाद। ६. किसी की दी हुई आज्ञा या किये हुए कार्य को नहीं के समान करना। रद्द करना। (रिवोकेशन)

अनुशयान—वि० [सं० अनु√शी+शानच्] [स्त्री० अनुशयाना] पश्चात्ताप करनेवाला।

अनुशयाना—स्त्री० [सं० अनुशयान+टाप्] साहित्य में, वह परकीया नायिका जो अपने प्रिय के मिलने के स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी हो।

अनुशयी (यिन्)—वि० [सं० अनुशय+इनि] १. वैर या द्वेष करनेवाला। २. झगड़ालू। ३. पश्चात्ताप करनेवाला। ४. चरण छूकर प्रणाम करनेवाला। ५. अनुरक्त। आसक्त।

पुं० १. प्राचीन काल में वह राजकीय अधिकारी जो दान-संबंधी झगड़ों का निर्णय करता था। (अर्थशास्त्र) २. पेट में होनेवाली एक प्रकार की फुंसी।

अनुशर—पुं० [सं० अनु√शॄ (हिंसा)+अच्] राक्षस।

अनुशासक—पुं० [सं० अनु√शास् (शासन करना)+ण्वुल्—अक] १. अनुशासन या नियंत्रण करनेवाला। २. उपदेश या शिक्षा देनेवाला। ३. शासक। ४. विश्वविद्यालय का कार्याध्यक्ष। (प्रोक्टर)

अनुशासन—पुं० [सं० अनु√शास्+ल्युट्—अन] १. शासन करना। विशेषतः अपने ऊपर शासन करना। अपने को वश में रखना। २. दूसरों को प्रशिक्षित करना। शिक्षा देना। ३. वह विधान जो किसी संस्था या वर्ग के सब सदस्यों को ठीक तरह से कार्य या आचरण करने के लिए बाध्य करे। (डिसिप्लिन) ४. विवरण।

अनुशासनिक—वि० [सं० अनुशासन+ठन्—इक] १. अनुशासन-संबंधी। २. जो अनुशासन के रूप में हो। (डिसिप्लिनरी)

अनुशासनीय—वि० [सं० अनु√शास्+अनीयर्] जिस पर या जिसके प्रति अनुशासन किया जा सके या किया जाने को हो।

अनुशासित—भू० कृ० [सं० अनु√शास्+क्त] १. जिसका या जिसके प्रति अनुशासन किया गया हो। २. जो अनुशासन में रखा या लाया गया हो।

अनुशासी (सिन्)—पुं० [सं० अनु√शास्+णिनि]=अनुशासक।

अनुशास्ता—पुं० [सं० अनु√शास्+तृच्]=अनुशासक।

अनुशिष्ट—भू० कृ० [सं० अनु√शास्+क्त]=अनुशासित।

अनुशिष्टि—स्त्री० [सं० अनु√शास्+क्तिन्]=अनुशासन।

अनुशीलन—पुं० [सं० अनु√शील् (समाधि)+ल्युट्—अन] [वि० अनुशीलित, कर्त्ता—अनुशीलक] १. चिंतन। मनन। २. बार-बार किया जानेवाला अध्ययन या अभ्यास। ३. किसी ग्रंथ, तथ्य या विषय के सब अंगों तथा उपांगों पर बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना और उनसे परिचित होना। (स्टडी)

अनुशीलनीय—वि० [सं० अनु√शील्+अनीयर्] जिसका अनुशीलन, चिंतन या मनन हो सकता हो या होने को हो।

अनुशीलित—भू० कृ० [सं० अनु√शील्+क्त] जिसका अनुशीलन किया गया हो।

अनुशोक—पुं० [सं० अनु√शुच् (सोचना)+घञ्] १. मानसिक दुःख। २. पश्चात्ताप।

अनुशोचक—वि० [सं० अनु√शुच्+ण्वुल्—अक] १. (व्यक्ति) पश्चात्ताप करनेवाला। २. (विषय) खेदजनक।

अनुशोचन—पुं० [सं० अनु√शुच्+ल्युट्—अन] पश्चात्ताप करने की क्रिया या भाव।

अनुशोची (चिन्)—पुं० [सं० अनु√शुच्+णिनि] वह जो पश्चात्ताप कर रहा हो।

अनुशोधन—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अनुशोधित] १. किसी चीज या बात में इस दृष्टि से शोधन या सुधार करना कि उसके सब दोष तो दूर हो जायँ, पर रूप ज्यों का त्यों बना रहे। (मॉडिफिकेशन) २. इस प्रकार किया हुआ शोधन या सुधार।

अनुश्रव—पुं० [सं० अनु√श्रु (सुनना)+अप्] १. वैदिक परंपरा। २. अनुश्रुति।

अनुश्राविक—वि० [सं० श्रव+ठञ्—इक, अनु-श्राविक प्रा० स०] परंपरा से श्रुति द्वारा प्राप्त परलोक-संबंधी (ज्ञान)। जैसे—स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का।

अनुश्रुत—वि० [सं० अनु√श्रु+क्त] (कथा, ज्ञान या बात) जिसे लोग बहुत दिनों से एक ही रूप में सुनते चले आये हों। (लीजेंडरी)

अनुश्रुति—स्त्री० [सं० अनु√श्रु+क्तिन्] वह कथा, ज्ञान या बात जिसे लोग चिरकाल से एक ही रूप में अपने पूर्वजों से सुनते आ रहे हों। अनुश्रव। ऐतिह्य। (लीजेंड)

अनुषंग—पुं० [सं० अनु√सञ्ज् (मिलना)+घञ्] [वि० आनुषंगिक, अनुषंगी] १. करुणा। दया। २. संबंध। लगाव। ३. एक के बाद दूसरी बात आप से आप होना। (इंसिडेंस) ४. प्रसंग के अनुसार एक बात से उसके साथ होनेवाली दूसरी बात भी मान या समझ लेना।

अनुषंगी (गिन्)—वि० [सं० अनु√सञ्ज्+घिनुण्] १. संबंधी। २. अनिवार्य परिणाम के रूप में आने या होनेवाला। ३. सामान्य रूप से प्रयुक्त होनेवाला। ४. आसक्त। ५. किसी कार्य, विषय या तथ्य के बाद सहायक या संबद्ध रूप में आप से आप होनेवाला। (एक्सेसरी आफ्टर दि फैक्ट)। ६. सहायक।

अनुषक्त—वि० [सं० अनु√सञ्ज्+क्त] १. संबद्ध। २. साथ लगा हुआ। संलग्न।

अनुषक्ति—स्त्री० [सं० अनु√सञ्ज्+क्तिन्] १. अपने शासक या राज्य के प्रति जन-साधारण का होनेवाला कर्त्तव्य। राज्यभक्ति। (एलिजिएन्स) २. आसक्ति। ३. संबद्धता।

अनुषेक—पुं० [सं० अनु√सिच् (सींचना)+घञ्] १. (खेत आदि में) जल सींचना। २. बार-बार जल छिड़कना या छिड़काव करना।

अनुषेचन—पुं० [सं० अनु√सिच्+ल्युट्—अन]=अनुषेक।

अनुष्टुप्—पुं० [सं० अनु√स्तुम्भ् (रोकना)+क्विप्, षत्व] आठ-आठ अक्षरों के चार चरणों का एक संस्कृत छंद।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं० अनु√स्था (ठहरना)+तव्यत्]=अनुष्ठेय।

अनुष्ठाता (तृ)—वि० [सं० अनु√स्था+तृच्] १. अनुष्ठान करनेवाला। २. कार्य आरंभ करनेवाला।

अनुष्ठान—पुं० [सं० अनु√स्था+ल्युट्—अन] [वि० अनुष्ठित]

१. कार्य आरंभ करने की क्रिया या भाव। २. नियम-पूर्वक कोई काम करना। ३. शास्त्र-विहित कर्म करना। ४. फल के निमित्त किसी देवता का किया जानेवाला आराधन। प्रयोग। पुरश्चरण।

अनुष्ठान-शरीर—पुं० [ष० त०] सूक्ष्म और स्थूल शरीर के बीच का शरीर। (सांख्य०)

अनुष्ठापन—पुं० [सं० अनु√स्था+णिच्+ल्युट्—अन, पुक् आगम] किसी को कार्य करने में प्रवृत्त करना।

अनुष्ठायी (यिन्)—वि० [सं० अनु√स्था+णिनि] अनुष्ठान करनेवाला।

अनुष्ठित—भू० कृ० [सं० अनु√स्था+क्त] विधि-पूर्वक अनुष्ठान के रूप में चलाया या ठाना हुआ (काम)।

अनुष्ठेय—वि० [सं० अनु√स्था+यत्] अनुष्ठान के रूप में किये जाने के योग्य।

अनुष्ण—वि० [सं० न—उष्ण, न० त०] १. जो उष्ण या गर्म न हो, अर्थात् ठंढा। २. सुस्त। आलसी।
पुं० नीला कमल।

अनुसंधान—पुं० [सं० अनु—सम्√धा (धारण)+ल्युट्—अन] १. किसी व्यक्ति, विषय या बात के पीछे लगकर उसका संधान करना, ढूँढ़ना या पता लगाना। २. किसी विषय से संबंध रखनेवाली सभी बातों का अच्छी तरह तथा ब्योरेवार पता लगाना। जाँच-पड़ताल। (इन्वेस्टिगेशन)

अनुसंधानना—स० [सं० अनुसन्धान] १. अनुसंधान करना। २. खोजना। ढूँढ़ना। ३. मन में विचार करना। सोचना।

अनुसंधानी (निन्)—पुं० [सं० अनुसंधान+इनि] १. अनुसंधान, जाँच-पड़ताल या खोज करनेवाला व्यक्ति। २. वह जो योजना बनाने में कुशल हो।

अनुसंधायक—पुं० [सं० अनु√सम्—धा+ण्वुल्—अक] वह जो अनुसंधान या खोज करे। अनुसंधानकारी।

अनुसंधायी (यिन्)—पुं० [सं० अनु—सम्√धा+णिनि]=अनुसंधानी।

अनुसंधि—स्त्री० [अनु-सम्√धा+कि] १. अनुसंधान। तलाश। २. काव्य, नाटक आदि की रचना में कवि का सभी पात्रों के कार्यों, क्रिया-कलापों आदि की संगतता का पूरा और यथोचित ध्यान रखना। ३. दे० 'अभिसंधि'।

अनुसंधित्सु—वि० [सं० अनु-सम्√धा+सन्+उ] अनुसंधान करने की इच्छा रखने या प्रयत्न करनेवाला।

अनुसंयान—पुं० [सं० अनु-सम्√या (जाना)+ल्युट्—अन] प्राचीन भारतीय राजतंत्र में वह व्यवस्था जिसके अनुसार प्रति तीसरे या पाँचवें वर्ष किसी राज्य के महामात्यों का समस्त वर्ग बदल दिया जाता था।

अनुसंहित—वि० [सं० अनु-सम्√धा (धारण करना)+क्त] १. जिसकी खोज या जाँच-पड़ताल की गई हो। २. (किसी के) अनुसार या अनुरूप।

अनुसमर्थन—पुं० [प्रा० स०]=अनुमोदन।

अनुसयाना—स्त्री०=अनुशयाना (नायिका)।

अनुसर—वि० [सं० अनु√सृ (गति)+ट] अनुसरण करनेवाला।
पुं० १. अनुचर। २. साथी।
*क्रि० वि०=अनुसार।

अनुसरण—पुं० [सं० अनु√सृ+ल्युट्—अन] १. किसी के पीछे या बाद में आना। किसी के पीछे उसी दिशा में चलना। २. किसी के आदेश, आज्ञा आदि के अनुसार चलना। ३. अनुकरण। ४. अनुकूल आचरण। ५. प्रथा। ६. अभ्यास।

अनुसरता—पुं० [सं० अनुसर्त्तृ, हिं० अनुसरण] १. वह जो किसी का अनुसरण करे या उसके पीछे-पीछे चले। अनुगामी। २. सेवक, दास या नौकर। उदा०—बहुत पतित उद्धार किये तुम, हौं तिनको अनुसरतो।—सूर।

अनुसरना—अ० [हिं० अनुसरण] १. किसी के पीछे-पीछे चलना। अनुगमन करना। उदा०—जिमि पुरुषहिं अनुसर परछाँहीं।—तुलसी। २. कोई बात मानकर उसके अनुसार काम करना। ३. नियम या निश्चय के अनुसार चलना।

अनुसर्प—पुं० [सं० अत्या० स०] साँप की तरह के जीव या प्राणी।

अनुसार—वि० [सं० अत्या० स०] १. जो किसी के अनुसरण पर हो। २. किसी के ढंग या रूप से मिलता हुआ। अनुरूप।
क्रि० वि० [अव्य० स०] १. किसी की तरह पर। वैसे ही, जैसे कोई प्रस्तुत या सामने हो। २. किसी के कथन, मत आदि के रूप में। जैसे—आपके अनुसार तो यह पुस्तक किसी काम की नहीं है।
पुं० [अनु√सृ (गति)+घञ्] १. अनुसरण। २. प्रथा। ३. प्रकृति या प्राकृतिक अवस्था। ४. चलन। ५. परिणाम।

अनुसारक—वि० [सं० अनु√सृ+ण्वुल्–अक] अनुसरण करनेवाला।

अनुसारणा—स्त्री० [सं० अनु√सृ+णिच्+युच्—अन+टाप्] १. अनुसरण करना। २. पीछा करना।

अनुसारतः—क्रि० वि० [सं० अनुसार+तस्] किसी के अनुसार। वैसे ही। (एकार्डिंग्ली)

अनुसारता—स्त्री० [सं० अनुसार+तल्—टाप्] अनुसार होने की अवस्था या भाव। (एकार्डेन्स)

अनुसारना—स० [हिं० अनुसार] १. कोई काम पूरा करना। २. कोई काम या बात छेड़ना। आरंभ करना। उदा०—तातें कछुक बात अनुसारी।—तुलसी। ३. (कोई काम) करना।

अनुसारिता—स्त्री० [सं० अनुसारिन्+तल्—टाप्] अनुसारी होने की अवस्था या भाव।

अनुसारी (रिन्)—वि० [सं० अनु√सृ+णिनि] १. किसी का अनुसरण करनेवाला। २. सेवक। ३. (बात) जिसका अनुसरण या पालन करना आवश्यक हो। (एवाइडिंग)

अनुसाल*—स्त्री० [सं० अनु+हिं० सालना] हृदय में होनेवाली कसक या पीड़ा।

अनुसासन*—पुं०=अनुशासन।

अनुसीमा—स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी क्षेत्र या सीमा-रेखा के आस-पास या इधर-उधर पड़नेवाला क्षेत्र या भूमि। (एबट्‌ल्स)

अनुसूचित—भू० कृ० [सं० अनु√सूच् (सूचित करना)+क्त] १. अनुसूची के रूप में लाया हुआ। २. जिसे अनुसूची में स्थान मिला हो। जैसे—अनुसूचित-क्षेत्र या अनुसूचित जन-जाति।

अनुसूची—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी लेख या विवरणात्मक ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट के रूप में लगी हुई ऐसी सूची जिसमें कोष्ठकों, स्तंभों आदि के रूप में कोई ऐसी सूचना रहती है जिसका उस लेख या ग्रंथ में साधारण उल्लेख मात्र रहता है।

अनुसृत—वि० [सं० अनु√सृ (गति)+क्त] जिसका अनुसरण किया गया हो।

अनुसृति—स्त्री० [सं० अनु√सृ+क्तिन्] १. अनुसरण। २. कुलटा स्त्री।

अनुसेवी (विन्)—वि० [सं० अनु√सेव् (सेवा करना)+णिनि] अभ्यास या आसंग वश कोई काम करनेवाला।

अनुस्नान—पुं० [सं० प्रा० स०] शिव पर चढ़ा हुआ निर्माल्य धारण करना।

अनुस्मरण—पुं० [सं० प्रा० स०] पुरानी और भूली हुई बातें फिर से प्रयत्न-पूर्वक याद करना। स्मृति। (रि-कलेक्शन)

अनुस्मारक—पुं० [सं० प्रा० स०] वह जो स्मरण कराये या दिलाये। (रिमाइंडर)

अनुस्मृति—स्त्री० [सं० अनु√स्मृ (स्मरण करना)+क्तिन्]=अनुस्मरण।

अनुस्यूत—वि० [सं० अनु√सिव् (सीना)+क्त] १. सिला हुआ। २. गूँथा या पिरोया हुआ। ३. क्रम-बद्ध।

अनुस्वार—पुं० [सं० अनु√स्वृ (शब्द)+घञ्] १. स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण, जिसका चिह्न (ं) है। २. देवनागरी लिपि में, अक्षर के ऊपर की बिंदी, जो उक्त वर्ण की सूचक होती है।

अनुहरण—पुं० [सं० अनु√हृ (हरण करना)+ल्युट्—अन] १. अनुकरण। नकल। २. समानता। ३. अनुकूल होना।

अनुहरना*—स० [सं० अनुहरण] १. अनुसरण करना। उदा०—स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार।—तुलसी। २. नकल करना। ३. अनुकूल करना। उदा०—तन अनुहरत सुचंदन खोरी।—तुलसी।

अनुहरिया*—वि० [सं० अनुहार] किसी के अनुहार पर होनेवाला। समान रूपवाला।

स्त्री०=अनुहार।

अनुहार—वि० [सं० अत्या० स०] १. सदृश। तुल्य। समान। २. अनुसार। अनुकूल।

क्रि० वि० किसी के समान या सदृश।

स्त्री० [अनु√हृ (हरण करना)+घञ्] १. भेद। प्रकार। २. चेहरे की बनावट। मुखारी। ३. सादृश्य। ४. किसी चीज की ज्यों की त्यों नकल। प्रतिकृति। ५. रचना। बनावट।

अनुहारक—पुं० [सं० अनु√हृ+ण्वुल्—अक] वह जो अनुकरण या नकल करे।

अनुहारना*—स० [सं० अनुहारण] तुल्य, समान या सदृश करना।

अनुहारी (रिन्)—पुं० [सं० अनु√हृ+णिनि] [स्त्री० अनुहारिणी] १. वह जो अनुकरण करे। नकल करनेवाला। २. वह जो किसी के अनुरूप या अनुकरण पर बना हो।

अनुहार्य—वि० [सं० अनु√हृ+ण्यत्] जिसका अनुकरण या अनुहार होने को हो या हो सकता हो।

अनूअर*—अव्य०=अनवरत।

अनूक—पुं० [सं० अनु√उच् (समूह)+क, नि० कुत्व] १. पूर्व जन्म। २. कुल। वंश। ३. शील। स्वभाव। ४. पीठ में की रीढ़। ५. मेहराब के बीच का पत्थर।

अनूक्त—भू० कृ० [सं० अनु—उक्त, प्रा० स०] १. जिसका उच्चारण पीछे या बाद में हुआ हो। पीछे या बाद में कहा हुआ। २. पढ़ा हुआ।

अनूक्ति—स्त्री० [सं० अनु-उक्ति, प्रा० स०] किसी की कही हुई बात के बाद कही जानेवाली बात।

अनूचान—पुं० [सं० अनु√वच् (बोलना)+कानच्, नि०] १. वह स्नातक जो वेद-वेदांग में पारंगत होकर गुरुकुल से निकला हो। २. पंडित। विद्वान्। ३. सच्चरित्र। सुशील।

अनूजरा*—वि० [सं० अन्-उज्ज्वल] जो उजला या स्वच्छ न हो अर्थात् मैला।

अनूठा—वि० [सं० अनुच्छिष्ट] [स्त्री० अनूठी, भाव० अनूठापन] १. जो अपनी विलक्षणता, विशिष्टता आदि के कारण हमें चकित और प्रसन्न कर दे। अनोखा। (सिंग्युलर) २. अच्छा। बढ़िया। ३. असाधारण प्रकार का।

अनूठापन—पुं० [हिं० अनूठा+पन (प्रत्य०)] अनूठे होने की अवस्था या भाव।

अनूढ़—वि० [सं० अनु√वह् (ढोना)+क्त] जो वहन न किया गया हो।

अनूढ़ा—स्त्री० [सं० अनूढ़+टाप्] साहित्य में, वह नायिका जिसका अभी विवाह न हुआ हो परन्तु जो किसी पुरुष से प्रेम करती हो तथा उससे विवाह करना चाहती हो। यथा—देहि जौ व्याह, उछाह सो मोहनै। मात पिताहू के सो मन कीजै। सुंदर साँवरो नंदकुमार, वसै उर जो वर सो वर दीजै।

अनूतर*—वि०=अनुत्तर।

अनूदन—पुं० [सं० अनुवदन] [भू० कृ० अनूदित] १. किसी की कही हुई बात फिर से कहना या दोहराना। २. अनुवाद या उल्था करना। तर्जुमा करना। ३. किसी विचार या भावना को क्रियात्मक या मूर्त्त रूप देना। (ट्रान्सलेशन) जैसे—जीवन की स्फूर्त्ति का कला या काव्य में अनूदन।

अनूदित—भू० कृ० [सं० अनु√वद् (बोलना)+क्त] १. किसी के बाद या उसके अनुरूप कहा हुआ। २. अनुवाद के रूप में किया या लाया हुआ। भाषांतरित। ३. जिससे अनुवाद किया गया हो।

अनून—वि० [सं० न-ऊन, न० त०] १. जो न्यून या कम न हो। २. जो किसी से घट कर न हो। ३. अखंड। पूरा। सारा।

अनूप—वि० [सं० अनुपम] १. जिसकी कोई उपमा न हो सकती हो। उपमा-रहित। २. अद्वितीय। निराला। ३. अति सुंदर।

वि० [सं० अनु-आप, प्रा० ब०, अच्, ऊत्व] १. जल के पास या निकटवाला। २. जिसमें जल की अधिकता हो। ३. दलदलवाला।

पुं० १. वह स्थान जहाँ जल अधिक हो। जल-प्राय देश। २. तालाव। ३. दलदल। ४. मेढक। ५. किनारा। ६. तीतर की जाति का पक्षी। ७ हाथी। ८. भैंस। ९. नर्मदा की घाटी का पुराना नाम।

अनूप नराच—पुं० [सं०] पंच-चामर (छंद) का एक भेद या रूप, जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है।

अनूपम*—वि०=अनुपम।

अनूपान—पुं०=अनुपान।

अनूरु—वि० [सं० न-ऊरु, न० ब०] जिसे उरु या जाँघ न हो। बिना जाँघ का।

पुं० १. अरुणोदय। २. सूर्य का सारथी, अरुण।

अनूर्जित—वि० [सं० न-ऊर्जित, न० त०] १. जो ऊर्जित अर्थात् बली या शक्ति-संपन्न न हो, फलतः अशक्त या कमजोर। २. जिसे अभिमान या अहंकार न हो।

अनूर्ध्व—वि० [सं० न-ऊर्ध्व, न० त०] जो ऊर्ध्व या ऊँचा न हो, फलतः नीचा।

अनूर्मि—वि० [सं० न-ऊर्मि, न० ब०] १. जिसमें ऊर्मि या तरंग न उठती हो। ऊर्मि-रहित। २. जिसका उल्लंघन न किया जा सके।

अनूह—वि० [सं० न-ऊह, न० ब०] जिसके संबंध में तर्क-वितर्क या विचार न हुआ हो या न हो सके। असावधान।

अनृजु—वि० [सं० न-ऋजु, न० त०] १. जो ऋजु या सीधा न हो। टेढ़ा। २. चिड़चिड़ा। ३. बेईमान।

अनृण—वि० [सं० न-ऋण, न० ब०] जो ऋण-ग्रस्त न हो।

अनृणी (णिन्)—वि० [सं० न-ऋणिन्, न० त०]=अनृण।

अनृत—वि० [सं० न—ऋत, न० त०] १. जो ऋत या सत्य न हो। फलतः झूठा या मिथ्या। २. अन्यथा। विपरीत।

पुं० असत्य। झूठ।

अनृतक—पुं० [सं० अनृत+कन्] १. असत्य या झूठ बोलनेवाला व्यक्ति। २. ठग। ३. बेईमान।

अनृतवादी (दिन्)—पुं० [सं० अनृत√वद् (बोलना)+णिनि] वह जो झूठ बोलता हो। मिथ्यावादी।

अनृती (तिन्)—पुं० [सं० अनृत+इनि]=अनृतक।

अनृतु—स्त्री० [सं० न-ऋतु, न० त०] १. उचित या उपयुक्त ऋतु का अभाव। २. स्त्री में ऋतु (या रजोधर्म) का न होना। ३. किसी काम के लिए उपयुक्त समय का अभाव।

वि० १. जिसके लिए ऋतु उपयुक्त न हो। २. जो अपनी उपयुक्त ऋतु या समय में न होकर उससे पहले या पीछे होता हो। अनरितु।

अनेऊ*—वि० [सं० अनिष्ट] बुरा। खराब।

अनेक—वि० [सं० न-एक, न० त०] १. (संख्या में) एक नहीं बल्कि उससे अधिक। कई। जैसे—आपको पहले भी अनेक बार समझाया गया है। २. (संख्या में) बहुत। जैसे—आकाश में अनेक तारागण या नक्षत्र समूह हैं।

पद—अनेकानेक=बहुत अधिक।

अनेक-चर—वि० [सं० अनेक√चर् (गति, भक्षण)+ट] झुंड बनाकर या समूह में रहनेवाला (जीव या जंतु)।

अनेक-चित्त—वि० [ब० स०] १. जिसका मन किसी एक स्थान, मत, विचार आदि पर न टिकता हो। चंचल चित्तवाला। २. अनेक मनोरथ। बहु-संकल्प।

अनेकज—वि० [सं० अनेक√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जिसका कई बार जन्म हुआ हो।

पुं० पक्षी।

अनेकत्र—अव्य० [सं० अनेक+त्रल्] कई स्थानों पर। कई जगह।

अनेकप—पुं० [सं० अनेक√पा (पीना)+क] हाथी।

अनेक-भार्य—पुं० [ब० स०] वह जिसकी कई भार्याएँ (पत्नियाँ) हों।

अनेक-मुख—पुं० [ब० स०] १. वह जिसके कई मुख हों। २. वह जिसके मुख या प्रवृत्तियाँ कई ओर हों।

अनेक-रूप—पुं० [ब० स०] वह जिसके कई आकार, प्रकार, भेद या रूप हों। अनेक रूप धारण करनेवाला, परमेश्वर।

वि० १. परिवर्तनशील। २. अस्थिर।

अनेक-लोचन—पुं० [ब० स०] १. वह जिसके कई नेत्र हों। जैसे—इंद्र, शिव। २. विराट् पुरुष।

अनेक-वचन—पुं० [कर्म० स०] बहुवचन। (व्या०)

अनेक-वर्ण—वि० [ब० स०] जिसमें कई रंग या वर्ण हों।

पुं० बीजगणित में अनेक ऐसे वर्णों या अक्षरों का वर्ग जो अज्ञात राशियों के सूचक हों। जैसे—क+ख−ग=घ।

अनेक-विध—वि० [ब० स०] जिसमें या जिसके कई प्रकार हों। कई तरह का।

अनेक-साधारण—वि० [स० त०] जो कइयों या बहुतों में समान या साधारण रूप में पाया जाय।

अनेकांगी (गिन्)—पुं० [सं० अनेक—अंग, कर्म० स०+इनि] वह जिसके कई या बहुत से अंग, खंड या भाग हों।

अनेकांत—वि० [सं० न—एकान्त, न० ब०] (स्थान) जहाँ एकांत न हो। 'एकांत' का विपर्याय।

वि० [सं० अनेक—अन्त, ब० स०] १. जिसके अंत में अनेक हों। अनेक अंतोंवाला। २. जिसका अंत अनेक रूपों में हो। ३. अस्थिर। चंचल।

अनेकांत-वाद—पुं० [सं० ष० त०] [वि०, कर्त्ता अनेकांतवादी] जैनदर्शन में स्याद्वाद।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक-आकार, ब० स०] जिसके कई रूप हों।

अनेकाकी (किन्)—वि० [सं० न-एकाकी, न० त०] जो अकेला न हो। अनेकों से युक्त।

अनेकाक्षर—वि० [सं० अनेक-अक्षर, ब० स०] कई अक्षरोंवाला (शब्द)।

अनेकाग्र—वि० [सं० न-एकाग्र, न० त०] कई कामों में लगा हुआ।

अनेकार्थ—वि० [सं० अनेक-अर्थ, ब० स०] जिसके अनेक अर्थ हों। अनेक अर्थोंवाला (शब्द या वाक्य)।

अनेकार्थक—वि० [सं० अनेक-अर्थ, ब० स०, कप्]=अनेकार्थ।

अनेकाश्रय—वि० [सं० अनेक-आश्रय, ब० स०] कइयों के आश्रय में रहनेवाला।

अनेग*—वि०=अनेक।

अनेड—वि० [सं० न-एड, न० त०] १. मूर्ख। २. बुरा। खराब।

उदा०—पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़। —कबीर।

वि० [सं० अनृत] १. असत्य। मिथ्या। २. मिथ्याभाषी।

अनेता—पुं० [देश०] मालती नामक लता।

अनेरा—वि० [सं० अनृत] [स्त्री० अनेरी] १. झूठ। २. झूठा। मिथ्या-भाषी। ३. यों ही। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उदा०—चरन सरोज बिसारि तुम्हारो, निशदिन फिरत अनेरो।—तुलसी। ४. निकम्मा। ५. अन्यायी। अत्याचारी। ६. दुष्ट। पाजी।
क्रि० वि० व्यर्थ। फजूल।

अनेला—वि०=अलबेला।

अनेस*—वि० [सं० अनिष्ट]=अनेक। उदा०—मीरां के प्रभु राम मिलण कूं जीवनि जनम अनेस।—मीरां।
पुं० [फा० अन्देश:] आशंका। डर।

अनेह*—पुं० [सं० अ+स्नेह] [वि० अनेही] १. स्नेह या प्रेम का अभाव। २. विरक्ति।
पुं० [सं० अनेहस्] समय। उदा०—अमावसि सावन मास अनेह। मच्यो इम बुंदिय खग्गन मेह।—कविराजा सूर्यमल।

अनेहा (हस्)—पुं० [सं० √हन् (हिंसा)+असि, इहादेश, न० त०] काल। समय।

अनेही—वि० [हिं० अनेह] स्नेह न करनेवाला।

अनै*—स्त्री० [सं० अ—नय] १. नीति-विरुद्ध आचरण या बात। २. उपद्रव। उत्पात। उदा०—जा कारन सुन सुत सुंदर वर कीन्हीं इतीं अनैहो।—सूर।
वि० [सं० अन्य] अन्य। दूसरा। उदा०—त्रिया अनै प्रेम आतुरी।—प्रिथीराज।

अनैकांतिकहेतु—पुं० [सं० एकान्त+ठक्—इक, वृद्धि, न० त०, अनै-कांतिक–हेतु, कर्म० स०] न्याय के पाँच हेत्वाभासों में से वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधन भूत न हो।

अनैक्य—पुं० [सं० न—ऐक्य, न० त०] १. एकता या एका न होना। २. मत-भेद। फूट।

अनैच्छिक—वि० [सं० न-ऐच्छिक, न० त०] जो इच्छापूर्वक या जान-बूझकर न किया गया हो, बल्कि दूसरे की इच्छा से या परिस्थितियों आदि से विवश होने पर किया गया हो। (अन-वालेन्टरी)

अनैठा—पुं० [सं० अन्=नहीं+पण्यस्थ, पा० पञ्ञट्ठ, हिं० पैठ] बाजार न लगने का दिन। वह दिन जिसमें पैंठ या बाजार न लगता हो।

अनैतिक—वि० [सं० न० त०] जो नीति-संगत न हो। नीति-विरुद्ध।

अनैतिकता—स्त्री० [सं० अनैतिक+तल्—टाप्] नैतिकता, सदाचार आदि का अभाव। अनाचार। (इम्मॉरैलिटी)

अनैतिहासिक—वि० [सं० न-ऐतिहासिक, न० त०] जो इतिहास से सिद्ध न हो अथवा उसके अनुरूप न हो या उसमें न आया हो।

अनैश्वर्य—पुं० [सं० न-ऐश्वर्य, न० त०] १. ऐश्वर्य या बड़प्पन का अभाव। अप्रभुत्व। २. संपत्ति का न होना। ३. योग में, ऐश्वर्य आदि सिद्धियाँ प्राप्त न होना।

अनैस—वि० [स्त्री० अनैसी]=अनेस।

अनैसना—अ० [हिं० अनैस] १. बुरा मानना। २. रूठना।

अनैसर्गिक—वि० [सं० न० त०] १. निसर्ग या प्रकृति के विरुद्ध या उससे अलग। अप्राकृतिक। २. प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध। अस्वाभाविक। (अननैचुरल)

अनैसा*—वि०=अनेस।
पुं०=अंदेशा।

अनैसी*—स्त्री० [हिं० अनैस] अनिष्ट या बुरा होने की अवस्था या भाव।

अनैसे—क्रि० वि० [हिं० अनैस] १. बुरे भाव या विचार से। २. बुरी तरह से।

अनैहा*—पुं० [हिं० अनैस] १. उत्पात। उपद्रव। २. दुष्टता।

अनोखा—वि० [सं० अन्+ईक्ष्=देखना] [स्त्री० अनोखी] १. जिसे पहले कभी देखा न हो। २. जो सहसा देखने में न आता हो। ३. जो अपनी विलक्षणता या अप्रसमता के कारण आश्चर्य-चकित करे। ४. अज्ञात। अपरिचित। ५. विशिष्ट।

अनोखापन—पुं० [हिं० अनोखा+पन (प्रत्य०)] अनोखे होने की अवस्था या भाव। अनूठापन। विचित्रता। विलक्षणता।

अनोय—पुं० [सं० अन्वेषण] खोज।

अनोसर*—पुं० [हिं० अन+सं० अवसर] वैष्णव-मंदिरों में, देव-मूर्त्ति के शयन के समय की वह स्थिति जब मूर्ति के सामने परदा गिरा या द्वार बंद रहता है। २. देव-मूर्त्ति के दर्शनों के लिए अनुपयुक्त समय।

अनौचित्य—पुं० [सं० न-औचित्य, न० त०] अनुचित होने का भाव। नामुनासिब होना।

अनौट—स्त्री०=अनवट।

अनौद्धत्य—पुं० [सं० न-औद्धत्य, न० त०] उद्धत न होने की अवस्था या भाव।

अनौधि*—अव्य० [हिं० अन+सं० अवधि] बिना विलंब किए। तुरंत। शीघ्र।

अनौपचारिक—वि० [सं० न-औपचारिक, न० त०] [भाव० अनौप-चारिकता] जो उपचार के रूप में या औपचारिक न हो। 'औपचारिक' का विपर्याय। (इन-फारमल)

अनौपम्य—वि० [सं० न-औपम्य, न० ब०] जिसकी उपमा न दी जा सके। अनुपम।
पुं० अनुपम होने की दशा या भाव।

अनौरस—वि० [सं० न—औरस, न० त०] १. जो औरस (विवाहिता पत्नी) से उत्पन्न न हुआ हो। २. अवैध या गोद लिया हुआ (पुत्र)।

अन्न—पुं० [सं० √अन् (जीना)+नन् या√अद् (खाना)+क्त] १. कुछ पौधों के वे विशिष्ट दाने जो मनुष्य के भोजन के काम आते हैं। (ग्रेन) जैसे—गेहूँ, चावल, दाल आदि। २. पकाया हुआ अन्न। ३. भात। ४. सूर्य। ५. विष्णु। ६. प्राण। ७. पृथ्वी। ८. जल।
वि० [सं० अन्य] १. अन्य। दूसरा। २. विरुद्ध।

अन्न-कूट—पुं० [ष० त०] १. अन्न का ढेर या राशि। २. कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को होनेवाला एक पर्व जिसमें अनेक प्रकार के पकवान और भोजन बनाकर देवता के सामने राशियों के रूप में रखे जाते हैं।
विशेष—यह पर्व कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक किसी दिन मनाया जा सकता है।

अन्न-कोष्ठ—पुं० [ष० त०] १. अन्न रखने का स्थान या कोठरी। धान्यागार। २. कोठिला। बखार। ३. गंज। गोला।

अन्न-गंधि—स्त्री० [ब० स०] अतिसार (रोग)।

अन्न-चोर—पुं० [ष० त०] वह व्यक्ति जो अन्न छिपाकर रखता हो, तथा चोर-बाजार में मँहगे भाव बेचता हो।

अन्न-छेत्र—पुं० दे० 'अन्न-सत्र'।

अन्न-जल—पुं० [द्व० स०] १. खाने-पीने की सामग्री। २. जीविका। ३. कहीं रहकर वहाँ खाने-पीने की स्थिति।

मुहा०—अन्न-जल उठना=एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाना। जैसे—हमारा यहाँ से अन्न-जल उठ गया है। **अन्न-जल छोड़ना या त्यागना**=उपवास करना।

अन्न-जीवी (विन्)—पुं० [सं० अन्न√जीव् (जीना)+णिनि] वह जो केवल अन्न खाकर जीवन-निर्वाह करता हो।

अन्नथा†—अव्य०=अन्यथा।

अन्नद—वि० [सं० अन्न√दा (देना)+क] अन्न देनेवाला।

अन्नदा—स्त्री० [सं० अन्नद+टाप्] १. अन्न देनेवाली स्त्री। २. अन्नपूर्णा। ३. दुर्गा।

अन्न-दाता (तृ)—पुं० [ष० त०] १. अन्नदान करनेवाला। २. अन्न देकर पालने-पोसनेवाला।

अन्न-दास—पुं० [मध्य० स०] भोजन-मात्र लेकर काम करनेवाला नौकर।

अन्न-दोष—पुं० [ष० त०] १. अन्न का सेवन करने से उत्पन्न होनेवाला शारीरिक विकार। २. वह दोष या दुर्गुण जो निषिद्ध स्थान या व्यक्ति का अन्न खाने से होता है।

अन्न-द्वेष—पुं० [तृ० त०] १. अन्न से अरुचि होना। २. भूख न लगना।

अन्न-पति—पुं० [ष० त०] १. अन्न का स्वामी। २. सूर्य। ३. अग्नि। ४. शिव।

अन्न-पाक—पुं० [ष० त०] १. अन्न पकाने की क्रिया या भाव। २. पेट में अन्न-पाचन होने की क्रिया या भाव।

अन्न-पूर्णा—स्त्री० [तृ० त०] शिव की पत्नी जो सबको भोजन देनेवाली मानी जाती है।

अन्नपूर्णेश्वरी—स्त्री० [अन्नपूर्णा-ईश्वरी, कर्म० स०] १. अन्नपूर्णा। २. एक भैरवी का नाम। (तंत्र)

अन्न-प्राशन—पुं० [ष० त०] वह संस्कार जिसमें छोटे बच्चों के मुँह अन्न पहले-पहल लगाया जाता है।

अन्नमयकोश—पुं० [सं० अन्नमय, अन्न+मयट्, अन्नमय-कोश, कर्म० स०] वेदांत में, आत्मा को आवृत करनेवाले पाँच कोशों में से एक जो स्थूल शरीर के रूप में माना गया है।

विशेष—स्थूल शरीर माता-पिता के खाये हुए अन्न और उससे बने रज-वीर्य से बनता है।

अन्न-मेल—पुं० [ष० त०] १. विष्ठा। २. यव आदि अन्नों से बनी हुई मदिरा। शराब।

अन्न-वस्त्र—पुं० [द्व० स०] खाने-पीने, कपड़े पहनने और रहने-सहने की सामग्री अथवा व्यय। रोटी-कपड़ा।

अन्न-शाला—स्त्री० [ष० त०] १. अनाज रखने का स्थान। अन्न का भंडार। २. किसी देश का वह क्षेत्र जिसमें बहुत अधिक अनाज होता हो और जहाँ से दूसरे स्थानों को भेजा जाता हो। (ग्रैनरी)

अन्न-शेष—पुं० [ष० त०] १. जूठन। २. भूसी, चोकर आदि।

अन्न-सत्र—पुं० [ष० त०] वह स्थान जहाँ दरिद्रों को पका हुआ भोजन खिलाया या दिया जाता है।

अन्ना—स्त्री० [सं० अग्नि] वह अँगीठी जिसमें चाँदी, सोना आदि धातुएँ तपाई जाती हैं।

स्त्री० [सं० अम्ब] दाई। धाय।

अन्नाद—पुं० [सं० अन्न√अद् (खाना)+अण्] १. वह जो सबको ग्रहण करे, ईश्वर। २. विष्णु।

वि० अन्न खानेवाला। अन्न-भोजी।

अन्नियाय*—वि०=अन्याय।

अन्नोदक—पुं० [सं० अन्न-उदक, द्व० स०]=अन्न-जल।

अन्य—वि० [सं०√अन् (जीना)+य] १. उद्दिष्ट या प्रस्तुत को छोड़कर और कोई। दूसरा। इतर। भिन्न। २. बादवाला। ३. अवशिष्ट। बचा हुआ।

अन्यग—पुं० [सं० अन्य√गम् (जाना)+ड] [स्त्री० अन्यगा] अन्य स्त्री के पास जाने या उससे संबंध रखनेवाला व्यक्ति। व्यभिचारी।

अन्यगामी (मिन्)—पुं० [सं० अन्य√गम् (जाना)+णिनि] [स्त्री० अन्यगामिनी] दे० 'अन्यग'।

अन्य-चित्त—वि० [ब० स०]=अन्यमनस्क।

अन्यच्च—अव्य० [सं० अन्यत्—च, द्व० स०] १. और भी। २. इसके सिवा।

अन्य-जात—वि० [ष० त०] (वस्तु) जो खो या नष्ट हो चुकी हो।

अन्यतः—क्रि० वि० [सं० अन्य+तस्] १. किसी और के द्वारा। दूसरे से। २. किसी और स्थान से।

अन्यतम—वि० [सं० अन्य+तमप्] जो किसी की तुलना में अन्य या दूसरा न ठहरे, अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ। पहला और श्रेष्ठ।

अन्यतर—वि० [सं० अन्य+तरप्] १. दो में से कोई एक। २. दूसरा। ३. अलग। भिन्न।

अन्यत्र—अव्य० [सं० अन्य+त्रल्] किसी और स्थान पर। किसी दूसरी जगह।

अन्यत्व—पुं० [सं० अन्य+त्व] अन्य या दूसरा होने की अवस्था या भाव।

अन्यत्व-भावना—स्त्री० [ष० त०] जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझना। (जैन)

अन्यथा—अव्य० [सं० अन्य+थाच्] दूसरी या विपरीत अवस्था में। नहीं तो। (अदरवाइज)

वि० १. विपरीत। उलटा। २. सत्य या वास्तविक से विपरीत। मिथ्या। झूठ।

मुहा०—अन्यथा करना=पहले की आज्ञा या निश्चय रद करना या उलटना। (सेट एसाइड)।

अन्यथा-भाव—पुं० [तृ० त०] अन्य, दूसरे या भिन्न रूप में होना।

अन्यथा-सिद्धि—स्त्री० [तृ० त०] न्याय या तर्क में, किसी अ-यथार्थ या अ-प्रत्यक्ष कारण के आधार पर कोई बात सिद्ध करना, जो दोष माना गया है।

अन्यदीय—वि० [सं० अन्य+छ—ईय, दुक्] अन्य या दूसरे का। पराया।

अन्य-पुरुष—पुं० [कर्म० स०] व्याकरण में (वक्ता और श्रोता से भिन्न) वह व्यक्ति या वस्तु जिसके विषय में कुछ कहा जाय। (थर्ड परसन)

अन्य-पुष्ट—वि० [तृ० त०] जिसका पोषण किसी और के द्वारा हुआ हो। पुं० कोकिल। कोयल।

अन्य-पूर्वा—स्त्री० [ब० स०, टाप्] १. एक को ब्याही जाकर या वाग्दत्त

होकर फिर दूसरे से ब्याही जानेवाली कन्या। २. पुनर्विवाह करनेवाली स्त्री। पुनर्भू।

अन्यबीजज—पुं० [अन्य—बीज, ष० त० अन्यबीज√जन् (उत्पन्न होना)+ड] दत्तक पुत्र।

अन्य-भृत्—वि० [सं० अन्य√भृ (पोषण करना)+क्विप्] दूसरे का पालन करनेवाला।
पुं० काक। कौआ।

अन्यमनस्क—वि० [ब० स०, कप्] जिसका ध्यान या मन किसी दूसरी तरफ हो। अन-मना।

अन्य-मना (नस्)—वि०=अन्यमनस्क।

अन्यमातृज—वि० [अन्य-मातृ, कर्म० स०, अन्यमातृ√जन् (उत्पन्न होना)+ड] दूसरी या सौतेली माता से उत्पन्न।

अन्य-मानस—वि०=अन्यमनस्क।

अन्यवादी (दिन्)—वि० [सं० अन्य√वद् (बोलना)+णिनि] झूठी गवाही देनेवाला।
पुं० प्रतिवादी।

अन्य-वाप—पुं० [ब० स०] कोयल।

अन्य-संगम—पुं० [तृ० त०] अपनी पत्नी या पति को छोड़कर किसी दूसरे के साथ होनेवाला अवैध लैंगिक संबंध।

अन्य-संभोग-दुःखिता—स्त्री० [सं० अन्य-संभोग, तृ० त०, अन्य संभोग-दुःखिता, तृ० त०] साहित्य में, वह नायिका जो किसी दूसरी स्त्री के लक्षणों से यह जान ले कि इसने मेरे पति के साथ संभोग किया है और इस कारण से दुःखी हो।

अन्यस—अव्य०=अन्य को। उदा०—भजिए कान मूँदकर अन्यस।—निराला।

अन्य-साधारण—वि० [स० त०] बहुतों में होने या पाया जानेवाला।

अन्य-सुरति-दुःखिता—स्त्री० [अन्य-सुरति, तृ० त०, अन्य-सुरति-दुःखिता, तृ० त०] दे० 'अन्य-संभोग-दुःखिता'।

अन्याई*—वि०=अन्यायी। उदा०—बहुत करी अन्याई।—सूर।
स्त्री०=अन्याय।

अन्यापदेश—पुं० [अन्य-अपदेश, ष० त०] दे० 'अन्योक्ति' (अलंकार)।

अन्याय—पुं० [सं० न० त०] १. न्याय न करने या होने की क्रिया या भाव। २. ऐसा आचरण या कार्य जो न्याय-संगत न हो। ३. दूसरे के साथ किया जानेवाला अति अनुचित व्यवहार।

अन्यायी (यिन्)—वि० [सं० अन्याय+इनि] १. जो न्याय न करता हो। अन्याय करनेवाला। २. दूसरों के प्रति अनुचित व्यवहार करनेवाला।

अन्याय्य—वि० [सं० न० त०] जो न्याय-संगत न हो। न्याय-विरुद्ध।

अन्यारा*—वि० [हिं० अ=नहीं+न्यारा] १. जो न्यारा या अलग न हो। मिला हुआ। २. अनोखा। विलक्षण।
वि० [स्त्री० अन्यारी] दे० 'अनियारा'।
क्रि० वि० [१] बहुत। अधिक। उदा०—बढ़े बंस जग मँह अन्यारा। छत्र धर्मपुर को रखवारा।

अन्यार्थ—वि० [सं० अन्य+अर्थ, ब० स०] उद्दिष्ट अर्थ से भिन्न अर्थ भी प्रकट करने वाला। जिसका अर्थ कुछ और हो।
पुं० उद्दिष्ट से भिन्न अर्थ।

अन्याश्रित—वि० [सं० अन्य-आश्रित, ष० त०] दूसरे पर आश्रित या अवलंबित।

अन्यास*—अव्य०=अनायास।

अन्यासाधारण—वि० [अन्य—असाधारण, स० त०] १. जो बहुतों में न हो। असाधारण। २. विचित्र।

अन्यून—वि० [सं० न० त०] जो न्यून या कम न हो, फलतः यथेष्ट।

अन्योक्ति—स्त्री० [अन्य—उक्ति, च० त०] ऐसी व्यंग्यपूर्ण उक्ति जो कही तो किसी और के संबंध में जाय, पर इस ढंग से कही जाय कि किसी दूसरे पर भी वह ठीक-ठीक घट जाय। अ-प्रत्यक्ष कथन। जैसे—(किसी दुष्ट वाचाल को सुनाकर) तोते से यह कहना कि तुम हरदम टें-टें करते रहते हो, कभी 'राम' का नाम नहीं लेते।

अन्योदर्य—वि० [सं० अन्य—उदर, कर्म० स०, अन्योदर+यत्] दूसरे के पेट से उत्पन्न। 'सहोदर' का विपर्याय।

अन्योन्य—वि० [सं० अन्य, द्वित्व, 'सु' का आगम, रुत्व, उत्व, गुण] [भाव० अन्योन्यता] आपस में या एक दूसरे के साथ दिया-लिया जानेवाला। (रेसिप्रोकल)
पुं० साहित्य में, एक अलंकार जिसमें दो कार्यों, वस्तुओं आदि में एक-दूसरे के कारण कार्य का संबंध बतलाया जाता है अथवा दोनों के एक-दूसरे के प्रति समान रूप से कार्य करने का उल्लेख होता है। जैसे (क) बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है। (ख) चंद्रमा के बिना रात और रात के बिना चंद्रमा की शोभा नहीं होती।

अन्योन्यता—स्त्री० [सं० अन्योन्य+तल्—टाप्] अन्योन्य होने या आपस में एक-दूसरे के साथ किए या लिये-दिये जाने की अवस्था या भाव। (रेसिप्रोसिटी)

अन्योन्य-प्रजनन—पुं० [ब० स०] विभिन्न जाति के पशुओं या पौधों के पारस्परिक संसर्ग द्वारा उत्पन्न पशु या पौधे। (क्रास-ब्रीडिंग)

अन्योन्य-विभाग—पुं० [स० त०] पैतृक संपत्ति का बँटवारा करने की क्रिया या भाव।

अन्योन्याभाव—पुं० [अन्योन्य—अभाव, ष० त०] तर्कशास्त्र में, इस बात की सूचक स्थिति कि जो कुछ एक वस्तु है वह दूसरी वस्तु नहीं हो सकती।

अन्योन्याश्रय—पुं० [अन्योन्य—आश्रय, ष० त०] १. दो वस्तुओं का आपस में या एक दूसरे पर आश्रित होना। २. न्याय में, एक वस्तु के ज्ञान से दूसरी वस्तु का होनेवाला ज्ञान। सापेक्ष ज्ञान।

अन्योन्याश्रयी (यिन्)—वि० [सं० अन्योन्याश्रय+इनि] आपस में एक दूसरे पर अवलंबित।

अन्योन्याश्रित—वि० [अन्योन्य—आश्रित, ष० त०] दे० 'अन्योन्याश्रयी'।

अन्वक्ष—वि० [सं० अनु—अक्ष, गति० स०, अच्] १. दृश्य। प्रत्यक्ष। २. अनुभवगम्य। ३. बाद का। पीछेवाला।
क्रि० वि० [अव्य० स०] १. सामने। २. उपरांत। पीछे। बाद।

अन्वय—पुं० [सं० अनु√इ (गति)+अच्] [भू० कृ० अन्वित] १. दो वस्तुओं के आपस का संबंध या उनमें होनेवाली अनुरूपता। २. पद्य या कविता की वाक्य-रचना को गद्य की वाक्य-रचना के अनुसार बैठाने या ठीक करने की क्रिया। ३. किसी वाक्य की शब्दावली के अनुसार उसका ठीक और संगत अर्थ लगाना। ४. कार्य और कारण

का पारस्परिक संबंध। ५. एक बात सिद्ध करने के लिए दूसरी बात की सिद्धि या उससे संबंध स्थापित करना। ६. अवकाश। ७. कुल। ८. वाक्य के शब्दों का पारस्परिक संबंध। (व्याकरण)

अन्वय-व्यतिरेक—पुं० [द्व० स०] १. नियम और अपवाद। २. संगति और असंगति।

अन्वय-व्याप्ति—स्त्री० [तृ० त०] निश्चयात्मक या स्वीकारात्मक तर्क।

अन्वयागत—वि० [अन्वय-आगत, पं० त०] जो वंश-परंपरा से चला आ रहा हो। वंशानुक्रमिक।

अन्वयार्थ—पुं० [अन्वय-अर्थ, मध्य० स०] (पद या वाक्य का) अन्वय से निकलनेवाला अर्थ।

अन्वयी (यिन्)—वि० [सं० अन्वय+इनि] १. अन्वययुक्त। संबद्ध। २. (वे कई) जो एक ही वंश से उत्पन्न हों।

अन्वर्थ—वि० [सं० अनु+अर्थ, अत्या० स०] १. (शब्द या पद) जो अर्थ का अनुगमन या अनुसरण करता हो। ठीक अर्थ में प्रयुक्त होने वाला। यथार्थ और स्पष्ट। २. सार्थक।

अन्वर्थता—स्त्री० [सं० अन्वर्थ+तल्-टाप्] अन्वर्थ होने की अवस्था या भाव।

अन्वष्टका—स्त्री० [सं० अनु-अष्टका, अत्या० स०] एक मातृक श्राद्ध जो अष्टका के अनंतर पूस, माघ, और फागुन की कृष्ण नवमी को किया जाता है।

अन्वाख्यान—पुं० [सं० अनु-आ√ख्या (प्रकथन)+ल्युट्-अन] १. मूल के अनुसार की हुई व्याख्या। २. सूक्ष्म लेखा। ३. पर्व। ४. अध्याय।

अन्वादिष्ट—वि० [सं० अनु-आ√दिश् (बताना)+क्त] जिसमें पहले के किसी नियम की ओर संकेत किया गया हो।

अन्वादेश—पुं० [सं० अनु-आ√दिश्+घञ्] पहले के किसी नियम की ओर संकेत करना।

अन्वाधान—पुं० [सं० अनु-आ√धा (धारण)+ल्युट्-अन्] अग्निहोत्र की अग्नि की स्थापना के बाद उसे बनाए रखने के लिए उसमें ईंधन डालना।

अन्वाधेय—पुं० [सं० अनु-आ√धा+यत्] वह धन जो विवाह के पश्चात् नव वधू को उसके पति के घर से मिला हो।

अन्वाय—पुं० [सं० अनु√ अय् (गति)+घञ्] सेना के किसी एक अंग की अधिकता। (अर्थशास्त्र)

अन्वायन—पुं० [सं० अनु आ√अय्+ल्युट्—अन] =अन्वाधेय।

अन्वारोहण—पुं० [सं० अनु-आ√रुह (चढ़ना)+ल्युट्-अन] १. किसी के पीछे चलना या चढ़ना। २. पति की मृत्यु के बाद उसके मृत शरीर के साथ चिता पर चढ़ना।

अन्वासन—पुं० [सं० अनु√आस् (बैठना)+ल्युट्-अन] १. किसी के पीछे आसन ग्रहण करना। पीछे बैठना। २. आराधना या सेवा करने का भाव। ३. धार्मिक कार्यों में रत या लगे रहना।

अन्वाहार्य—पुं० [सं० अनु-आ√हृ (हरण करना)+ ण्यत्] १. यज्ञ में पुरोहित को दी जानेवाली दक्षिणा या भोजन। २. मासिक श्राद्ध।

अन्वाहार्य-श्राद्ध—पुं० [कर्म० स०] वह सपिंड श्राद्ध जो अमावास्या के लगभग किया जाता है। मासिक श्राद्ध।

अन्वाहिक—वि० [सं० आन्वाहिक] दैनिक।

अन्वाहित—वि० [सं० अनु-आ√धा (धारण करना)+क्त] वह द्रव्य जो उसके मालिक को देने के लिए दूसरे को सौंपा गया हो।

अन्वित—वि० [सं० अनु√इ (गति)+क्त] [भाव० अन्विति] १. जिसका अन्वय हुआ हो। २. मिला हुआ। युक्त। ३. किसी के साथ जुड़ा या पीछे लगा हुआ। ४. किसी तत्त्व या भाव से भरा या दबा हुआ अथवा अभिभूत। जैसे—विस्मयान्वित।

अन्वितार्थ—पुं० [अन्वित-अर्थ, कर्म० स०] १. अन्वय करने पर निकलनेवाला अर्थ। २. अन्दर छिपा हुआ अर्थ। गूढ़ आशय।

अन्विति—स्त्री० [सं० अनु√ इ+क्तिन्] १. अन्वित होने की अवस्था या भाव। २. किसी प्रकार की कृति, प्रभाव, फल आदि के रूप में दिखाई पड़नेवाली वह एकता, जिसके कारण वह खंडित या विकलांग न जान पड़े। ३. नाटक रचना की शैली का एक सिद्धांत, जिसके अनुसार नाटक का स्वरूप ऐसा समन्वित रखा जाता है कि वह कहीं से बेढंगा, बोदा या भद्दा न जान पड़े। (यूनिटी)

विशेष—अरस्तू ने नाटकों के लिए कथा-वस्तु, काल और देश की तीन अन्वितियाँ बतलाई हैं। इनका आशय यह है कि सारे नाटक की कथा-वस्तु ऐसी एक घटना जान पड़े जो एक ही काल और एक ही देश में घटित हुई हो।

अन्विष्ट—वि० [सं० अनु√इष् (इच्छा) +क्त] १. चाहा हुआ। इच्छित। २. जिसकी खोज हुई हो।

अन्वीकृत—वि० ='अन्वित'।

अन्वीक्षण—पुं० [सं० अनु√ईक्ष् (देखना)+ल्युट्-अन] [कर्त्ता-अन्वीक्षक] १. भली-भाँति देखना या सोचना-समझना। २. किसी विषय या वस्तु के संबंध में होनेवाली खोज। तलाश।

अन्वीक्षा—पुं० [सं० अनु√ईक्ष्+अङ-टाप्]= अन्वीक्षण।

अन्वीक्ष्य—वि० [सं० अनु√ईक्ष्+ण्यत्] १. जिसका अन्वीक्षण होने को हो या हो रहा हो। २. अन्वीक्षा किये जाने के योग्य।

अन्वेष—पुं० [सं० अनु√इष् (इच्छा)+घञ्] दे० 'अन्वेषण'।

अन्वेषक—वि० [सं० अनु√इष्+ण्वुल्-अक] अनुसंधान, अन्वेषण या छानबीन करनेवाला।

अन्वेषक-प्रकाश—पुं० [सं०] दे० 'विचयन प्रकाश'। (सर्चलाइट)

अन्वेषण—पुं० [सं० अनु√इष्+ल्युट्-अन] [कर्त्ता—अन्वेषक, अन्वेषी] १. खोजना। ढूँढ़ना। २. ऐसी अज्ञात अथवा दूर की बातों, वस्तुओं, स्थानों आदि का पता लगाना जो अबतक सामने न आई हों। (एक्सप्लोरेशन) ३. दे० 'अनुसंधान'।

अन्वेषणा—स्त्री० [सं० अनु√ इष्+युच्, अन-टाप्]=अन्वेषण।

अन्वेषित—भू० कृ० [सं० अनु√इष्+णिच्+क्त] जिसका अन्वेषण हुआ हो।

अन्वेषी (षिन्)—वि० [सं० अनु√इष्+णिनि] अन्वेषण करनेवाला। अन्वेषक।

अन्वेष्टव्य—वि० [सं० अनु√इष्+तव्यत्] जिसका अन्वेषण होने को हो या किया जा सकता हो।

अन्वेष्टा (ष्टृ)—वि० [सं० अनु√इष्+तृच्] =अन्वेषक।

अन्वेष्य—वि० [सं० अनु√इष् +ण्यत्] = अन्वेष्टव्य।

अन्हरा—वि० [सं० अंध] अंधा। नेत्रहीन।

पुं० = अँधेरा (अंधकार)।

अन्हवाना*—स० = नहलाना।

अन्हाना†—अ० = नहाना।

अन्हियारी—स्त्री० = अँधियारी।

अपंकिल—वि० [सं० न० त०] १. जो पंकिल या गंदा न हो। २. निर्मल। साफ।

अपंग—वि० दे० 'अपांग'।

अप—उप० [सं०√पा (रक्षण)+ड,न० त०] एक उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है—(क) अलग या दूर; जैसे अपक्षेप, अपगमन। (ख) अनुचित, निदंनीय या बुरा; जैसे—, अपजात, अपव्यय। (ग) नीचे या पीछे; जैसे—अपकर्ष, अपभ्रंश। (घ) रहित या हीन; जैसे अपकरुण, अपभय। (च) आकस्मिक; जैसे—अपमृत्यु। (छ) गुप्त, छिपा या दबा हुआ; जैसे—अपद्वार। (ज) दिशा, प्रकार आदि का उल्लेख या निर्देश; जैसे अपदेश।
*पुं० [सं० आप] जल। पानी।
+वि० हिं० 'आप' या 'अपना' का वह संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक शब्दों के आरंभ में आने पर होता है। जैसे—अप-काजी, अप-स्वार्थी आदि।

अपक—पुं० [सं० अप् = जल] पानी। (डिं०)

अपकरण—पुं० [सं० अप√कृ (करना)+ल्युट्—अन] १. अपकार करने की क्रिया या भाव। २. खराबी या बुराई करना।

अपकरुण—वि० [सं० ब० स०] जिसमें करुणा न हो अर्थात् निर्दय।

अपकर्ता (र्तृ)—पुं० [सं० अप√कृ (करना)+तृच्] १. अपकार करने या हानि पहुँचानेवाला। २. दुष्कर्म करनेवाला। दुष्कर्मी।

अपकर्म (न्)—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित या बुरा काम। २. पाप।

अपकर्मा (र्मन्)—वि० [सं० ब० स०] १. बुरे कर्मोवाला। आचरण-भ्रष्ट। २. दूसरे की बुराई करनेवाला।

अपकर्ष—पुं० [सं० अप√कृष् (खींचना) +घञ्] १. नीचे या पीछे की ओर खींचना। २. घटाव या उतार होना। ३. पद, महत्त्व, मान-मर्यादा आदि में कमी होना। (डेरोगेशन) ४. पतन होना।

अपकर्षक—वि० [सं० अप√कृष्+ण्वुल्-अक] १. अपकर्ष करनेवाला। २. जिससे अपकर्ष होता हो।

अपकर्षण—पुं० [सं० अप √कृष्+ल्युट्-अन] १. अपकर्ष करने या होने की क्रिया या भाव। २. नीचे या पीछे की ओर खींचा जाना। ३. कमी या ह्रास करना। घटाना।

अपकर्षित—भू० कृ०=अपकृष्ट।

अपकलंक—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा कलंक जो मिट न सके।

अपकल्मष—वि० [सं० ब० स०] १. पापरहित। २. निष्कलंक।

अपकषाय—दे० 'अपकल्मष।'

अपकाजी—वि० [हिं० आप+काज] मुख्य रूप से अपने ही काम का ध्यान रखनेवाला। स्वार्थी।

अपकार—पुं० [सं० अप√कृ (करना)+घञ्] १. अहित करने या हानि पहुँचानेवाला कार्य या बात। 'उपकार' का विपर्याय। २ अनुचित आचरण या व्यवहार।

अपकारक—वि० [सं० अप√कृ+ण्वुल्-अक] [स्त्री० अपकारिका] अपकार करनेवाला।

अपकारिता—स्त्री० [सं० अपकारिन्+तल्-टाप्] १. अपकारी होने की अवस्था या भाव। २. अपकार।

अपकारी (रिन्)—वि० [सं० अपकार+इनि] [स्त्री० अपकारिनी] अपकार (खराबी या बुराई) करनेवाला।

अपकीरति—स्त्री० = अपकीर्त्ति।

अपकीर्ण—वि० = अवकीर्ण।

अपकीर्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] कोई अनुचित काम करने पर होने-वाला ऐसा अपयश या बदनामी जो पहले की अर्जित कीर्ति या यश के लिए घातक हो। अपयश। बदनामी। (इन्फेमी)

अपकृत—भू० कृ० [सं०अप√कृ (करना)+क्त] जिसका अपकार हुआ हो। 'उपकृत' का उलटा।

अपकृति—स्त्री० [सं० अप√कृ+क्तिन्] १. =अपकीर्त्ति। २. =अपकार।

अपकृत्य—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित या बुरा काम। २. अपकार।

अपकृष्ट—वि० [सं० अप√कृष् (खींचना) +क्त] १.जिसका अपकर्षण हुआ हो। २. जिसका महत्त्व या मान घट गया हो। ३. अवम। नीच। ४. घृणित। ५. बुरा।
पुं० कौआ।

अपकृष्टता—स्त्री० [सं० अपकृष्ट+तल्—टाप्] १. अपकृष्ट अथवा पतित होने का भाव या गुण। २. अवमता। नीचता। ३. दोष। बुराई।

अपकेंद्री (द्रिन्)—वि० [सं० अप-केंद्र, प्रा० स०,+इनि] १. केंद्र से निकलकर अलग होने या दूर हटनेवाला। २. जिसकी क्रिया या शक्ति अपने केंद्र या मूल से हटकर बाहर या किसी विपरीत दिशा की ओर प्रवृत्त हो। (सेन्ट्रीफ्यूगल)

अपक्रम—पुं० [सं० अप√क्रम् (गति)+घञ्] १. बदला, बिगड़ा या उलटा क्रम। २ उचित, उपयुक्त या ठीक क्रम का अभाव।
वि० [प्रा० ब०] जिसका क्रम बिगड़ा हुआ हो।

अपक्रमण—पुं० [सं० अप√क्रम्+ल्युट्—अन] १. अपक्रम करने की क्रिया या भाव। २. अपना असंतोष, रोष या विरोध प्रकट करते हुए सभा, समिति आदि का बहिष्कार करना। (वाक आउट)

अपक्रमी (मिन्)—वि० [सं० अप√क्रम्+णिनि] १. अपक्रमण करने-वाला। २. पीछे लौटनेवाला। ३. भाग जानेवाला। भगोड़ा।

अपक्रिया—स्त्री० [सं० अप√कृ+श-इयङ्-टाप्] १. दूषित या बुरी क्रिया या कर्म। २. अनुचित या हानिकर व्यवहार। ३. ऋण-परिशोध।

अपक्रोश—पुं० [सं० अप√क्रुश् (बुलाना,रोना)+ घञ्] १. बहुत अधिक चीखना-चिल्लाना। २. कटु वचन कहना। ३. गाली देना। ४. निंदा करना।

अपक्व—वि० [सं० न० त०] १. (अनाज, फल आदि) जो पका या पकाया न हो। कच्चा। २. जिसके पकने, पूरे या ठीक होने में अभी कुछ कसर या विलंब हो। (इम्मेच्योर) ३. जिसका पूर्ण विकास न हुआ हो। जैसे—अपक्व बुद्धि ४. अकुशल।

अपक्व-कलुष—पुं० [सं० कर्म० स०] १. शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो भेदों में से एक। २. [ब० स०] ऐसा बद्धजीव जो संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करता है।

अपक्वता—स्त्री० [सं० अपक्व+तल्-टाप्] अपक्व होने की अवस्था या भाव। कच्चापन।

अपक्ष—वि० [सं० न० द०] १. जो किसी के पक्ष या दल में न हो। जो समाज में औरों के साथ मिलकर न रहता हो। २. जिसके पक्ष (पंख या पर) न हों।

अपक्षपात—पुं० [सं० न० त०] पक्षपात न करने का भाव। निष्पक्षता।

अपक्षपाती (तिन्)—वि० [सं० न० त०] पक्षपात न करनेवाला। निष्पक्ष।

अपक्षय—पुं० [सं० अप√क्षि (क्षय)+अच्] १. छीजना। ह्रास। २. नाश।

अपक्षिप्त—वि० [सं० अप√क्षिप् (फेंकना)+क्त] १. गिराया, फेंका या पलटा हुआ। २. अवक्षिप्त।

अपक्षेप—पुं० [अप√क्षिप्+घञ्] १ गिराना, दूर हटाना या फेंकना। २. पीछे हटाना। पलटना।

अपक्षेपण—पुं० [सं० अप√क्षिप्+ल्युट्-अन] आक्षेप करने की क्रिया या भाव।

अपखंड—पुं० [सं० प्रा० स०] = विखंड।

अपखोरा—पुं० [फा० आवखोरा] पुरानी चाल का एक प्रकार का गोड़े-वाला गिलास।

अपगंड—वि० [सं०प्रा०स०] दे० 'अपोगंड'।

अपग—वि० [सं० अप√गम् (जाना)+ड] [स्त्री० अपगा] १. दूर हटनेवाला। २. नीचे या पीछे जानेवाला। ३. बुरे मार्ग पर जानेवाला। वि० [सं०अ+पग] जिसके पग या पैर न हों।

अपगत—वि० [सं० अप√गम्+क्त] १. जो अपने ठीक मार्ग से इधर-उधर हो गया हो। २. दूर हटा हुआ। ३. आँखों से ओझल। ४. मरा हुआ। मृत। ५. नष्ट।

अपगति—स्त्री० [सं० अप√गम्+क्तिन्] १. निकृष्ट या बुरी गति। दुर्गति। २. नीचे की ओर अर्थात् अनुचित या बुरे मार्ग पर होना। ३. पतन। ४. दूर भागना या हटना। ५. नाश।

अपगम—पुं० [सं० अप√गम्+घञ्]=अपगमन।

अपगमन—पुं० [अप√गम्+ल्युट्—अन] १. नीचे की ओर या बुरे मार्ग पर जाना। २. छिप या भाग जाना। ३. अलग होना। ४. प्रस्थान।

अपगर—वि० [सं०√गृ (शब्द)+अप्] १. निंदा या शिकायत करनेवाला। २. गाली देनेवाला।

अपगर्जित—वि० [सं० अप√गर्ज् (शब्द)+क्त] न गरजनेवाला। गर्जन-रहित (बादल)।

अपगा—स्त्री० [सं० अप√गम् (जाना)+ड—टाप्]=आपगा (नदी)।

अप-गुण—पुं० [सं० प्रा० स०] बुरे गुण।

अप-घन—वि० [सं० प्रा० ब०] आकाश, जिसमें घन या बादल न हों। मेघरहित।

पुं० [सं० अप√हन् (हिंसा, गति)+अप्—घ आदेश] १. शरीर का कोई अंग। जैसे—हाथ-पैर इत्यादि। २. शरीर।

अपघात—पुं० [सं० अप√हन्+घञ्] १. अनुचित या बुरा आघात। २. हत्या। हिंसा। ३. विश्वासघात। ४. आत्महत्या।

अपघातक—वि० [सं० अप√हन्+ण्वुल्—अक] अपघात करनेवाला।

अपघाती (तिन्)—वि० [अप√हन्+णिनि]=अपघातक।

अपच—वि० [सं०√पच् (पाक)+अच्, न० त०] न पचनेवाला।

पुं० १. अन्न के न पचने की दशा या भाव। २. भोजन न पचने का रोग। (इनडाइजेशन)

अपचय—पुं० [सं० अप√चि (इकट्ठा करना)+अच्] १. कमी, क्षति, क्षय, घाटा, हानि या ह्रास होने की क्रिया या भाव। २. लेन या प्राप्य के संबंध में होनेवाली रिआयत या कमी। छूट। (अबेटमेन्ट) ३. व्यय। ४. विफलता।

पुं० [सं० अपचाय] आदर। सम्मान।

अपचरण—पुं० [अप√चर् (गति)+ल्युट्—अन]=अपचार।

अपचरित—भू० कृ० [सं० अप√चर्+क्त] जिसके प्रति अपचरण हुआ हो।

अपचायित—वि० [सं० अप√चाय् (पूजा)+क्त] पूजित। सम्मानित।

अपचार—पुं०[सं० अप√चर्+घञ्] १. अनुचित, बुरा या निकृष्ट आचरण। दुर्व्यवहार। २. अनिष्ट। बुराई। ३. अनादर। ४. निंदा। ५. अपयश। ६. स्वास्थ्यनाशक व्यवहार। कुपथ्य। ७. अभावहीनता। ८. भूल। ९. दोष। १०. भ्रम। ११. अपने अधि-क्षेत्र या सीमा से बाहर जाने अथवा दूसरे के अधिक्षेत्र या सीमा में अनधिकार प्रवेश करने की क्रिया या भाव। (ट्रेसपास)

अपचारक—वि० [सं० अप√चर्+ण्वुल्—अक] अपचार करनेवाला।

अपचारित—वि० [सं० अप√चर्+णिच्+क्त] दूसरों के प्रति किया हुआ अनुचित व्यवहार।

अपचारी (रिन्)—वि० [सं० अप√चर्+घिनुण्] अपचार करनेवाला।

अपचाल*—पुं० [सं० अप+हिं० चाल] १. अनुचित आचरण। बुरी चाल। २. अनुचित या बुरा बरताव या व्यवहार।

अपचित—वि० [सं० अप√चाय् (पूजा) या चि(इकट्ठा करना)+क्त] १. जिसका अपचय हुआ हो। २. सम्मानित। ३. दुर्बल। ४. व्यय किया हुआ।

अपचिति—स्त्री० [सं० अप√चि या√चाय्+क्तिन्] १. हानि। २. नाश। ३. व्यय। ४. प्रायश्चित्त। ५. अलगाव। ६. सम्मान।

अपची—स्त्री० [सं०√पच् (पाक)+अच्—ङीप्, न० त०] कंठमाला या गंडमाला नामक रोग।

अपचेता (तृ)—वि० [सं० अप√चि+तृच्] १. किसी का बुरा सोचनेवाला। २. कंजूस।

अपच्छाय—वि० [सं० ब० स०] १. छाया रहित। २. बुरी छायावाला। ३. कांति या प्रभा-रहित। ४. धुँधला।

पुं० देवता।

अपच्छाया—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. बुरी छाया। २. प्रेत।

अपच्छी*—पुं०=अपक्षी।

अपच्छेद—पुं० [सं० अप√छिद् (काटना)+घञ्] १. काटकर अलग करना। २. हानि। ३. विघ्न-बाधा।

अपच्छेदन—पुं० [सं० अप√छिद्+ल्युट्—अन] अपच्छेद करने की क्रिया या भाव।

अपच्युत—वि० [सं० अप√च्यु (ह्रास, सहन)+क्त] १. गिरा हुआ। २. गया हुआ। ३. मृत। ४. पिघलकर बहा हुआ। ५. नष्टप्राय।

अपछरा*—स्त्री० [सं० अप्सरा, पा० अच्छरा] १. अप्सरा। २. परम सुंदरी स्त्री।

अपजय—स्त्री० [सं० अप√जि (जीतना)+अच्] पराजय। हार।

अपथ—पुं॰ [सं॰ न॰ त॰] १. वह मार्ग जो चलने के योग्य न हो। बीहड़ या विकट मार्ग। २. अनुचित या बुरा मार्ग। कुमार्ग।

अपथगामी (मिन्)—वि॰ [सं॰ अपथ√गम् (जाना)+णिनि] १. अनुचित या बुरे रास्ते पर चलनेवाला। २. चरित्र-हीन।

अपथ्य—वि॰ [सं॰ न॰ त॰] १. जो पथ्य न हो। स्वास्थ्य-नाशक। २. दे॰ 'कुपथ्य'।

अपद—वि॰ [सं॰ न॰ व॰] १. जिसके पैर न हों। बिना पैर का। जैसे—मछली, साँप आदि। २. जो किसी पद या ओहदे पर न हो।

पुं॰ [न॰ त॰] १. अनुचित या अनुपयुक्त पद या स्थान। २. अनुपयुक्त समय।

अप-दव—वि॰ [प्रा॰ व॰] (वन) जिसमें आग न लगी हो। दावाग्नि से रहित।

अपदस्थ—वि॰ [सं॰ पद√स्था (ठहरना)+क, न॰ त॰] जो अपने पद, स्थान या सेवा से हटा दिया गया हो। पदच्युत।

अपदांतर—वि॰ [सं॰ न॰ व॰] १. संयुक्त। मिला-जुला। २. अति निकट। समीप। ३. समान। बराबर।

क्रि॰ वि॰ शीघ्र। तत्क्षण।

अपदान—पुं॰ [सं॰ अप√देप् (शोधन)+ल्युट्—अन; पा॰ अवदान] १. अच्छा और प्रशंसनीय कार्य। २. वह कथानक जिसमें लोगों के पूर्व और भावी जन्मों के अच्छे और बुरे कर्मों का उल्लेख हो।

अपदार्थ—वि॰ [सं॰ न॰ त॰] १. जो पदार्थ न हो। (नॉन-मैटर) २. जिसमें तत्त्व या सार न हो। ३. तुच्छ। नगण्य।

पुं॰ तुच्छ वस्तु।

अपदिष्ट—वि॰ [सं॰ अप√दिश् (बताना)+क्त] १. अपदेश के रूप में किया या कराया हुआ। २. कहा हुआ। ३. प्रयुक्त।

अपदेखा*—वि॰ [हिं॰ अप=अपने को+देखा=देखनेवाला] १. अपने को अधिक या बड़ा माननेवाला। घमंडी। २. स्वार्थी। मतलबी।

अप-देवता—पुं॰ [सं॰, प्रा॰ स॰] १. बुरे देवता। २. असुर। राक्षस। ३. भूत-प्रेत।

अपदेश—पुं॰ [सं॰ अप√दिश्+घञ्] १. कोई कार्य करने की आज्ञा देना अथवा ढंग, प्रकार, स्वरूप या विधि बतलाना। निर्देश। २. लक्ष्य। उद्देश्य। ३. बुरा देश या स्थान। ४. कारण या हेतु। ५. बहाना। ६ प्रसिद्धि। ७. छिपाना। ८. इनकार।

अप-द्रव्य—पुं॰ [सं॰ प्रा॰ स॰] अनुचित, निकृष्ट, या बुरा द्रव्य या धन।

अप-द्वार—पुं॰ [सं॰ प्रा॰ स॰] चोर-दरवाजा।

अप-धावन—पुं॰ [सं॰ प्रा॰ स॰] १. वाक्छल। २. वक्रोक्ति।

अप-धूम—वि॰ [सं॰ ब॰ स॰] जिसमें धुँआ न हो। धूम-रहित।

अप-ध्यान—पुं॰ [सं॰ प्रा॰ स॰] अनिष्ट, बुरा चिंतन।

अपध्वंस—पुं॰ [सं॰ अप√ध्वंस् (नष्ट करना)+घञ्] १. नीचे की ओर गिरना। अधःपतन। २. नाश। ३. अपमान। ४. हार।

अपध्वंसी (सिन्)—वि॰ [सं॰ अप√ध्वंस्+णिनि] अपध्वंस करनेवाला।

अपध्वस्त—भू॰ कृ॰ [सं॰ अप√ध्वंस्+क्त] १. जिसका अपध्वंस हुआ हो। विनष्ट। २. निंदित। ३. अपमानित।

अप-ध्वांत—वि॰ [सं॰ प्रा॰ स॰] (स्वर) जो सुनने में मधुर न हो। कर्कश।

पुं॰ कर्कश या बे-सुरा शब्द या स्वर।

अपन*—सर्व॰ १. दे॰ 'अपना'। २. दे॰ 'हम'। (मुहा॰)

अपनपौ—पुं॰ [हिं॰ अपना+पौ या पा (प्रत्य॰)] १. अपनापन। निजत्व।

मुहा॰—**अपनपौ हारना**=किसी के लिए अपना सब-कुछ छोड़ना या निछावर करना। उदा॰—धन सुत दारी काम न आवें जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ।—सूर।

२. आत्मस्वरूप। ३. ज्ञान। सुध। होश। ४. अहंकार। गर्व। ५. ममता।

अपनय—पुं॰ [सं॰ अप√नी (ले जाना)+अच्] १. अनीति। २. संधि आदि उचित रीति से न करना जिससे विपत्ति की संभावना होती है। (कौ॰) ३. दे॰ 'अपनयन'।

अपनयन—पुं॰ [सं॰ अप√नी (ले जाना)+ल्युट्—अन] [भू॰ कृ॰ अपनीत, कर्त्ता अपनेता] १. अलग, जुदा या दूर करना। हटाना। २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना या पहुँचाना। जैसे—गणित में किसी अंक या परिमाण का अपनयन। ३. किसी स्त्री या बालक को उसके पति या पिता के घर से छिपा या बहकाकर कहीं और ले जाना। अभिहरण। ४. खंडन। ५. ऋण चुकाना।

अपना—सर्व॰ [सं॰ आत्मन्, प्रा॰ अप्पण, पुं॰ हिं॰ अप्पना] एक संबंध-वाचक सर्वनाम जिसका प्रयोग (प्रायः विशेषण रूप में) निम्नलिखित आशय सूचित करने के लिए होता है। (क) (वक्ता की दृष्टि से) शरीर, मन या अधिक्षेत्र से संबंध रखनेवाला, जैसे—अपना हाथ, अपना विचार या अपना काम। (ख) हरएक की दृष्टि से उसका। जैसे—आप लोग अपना अपना मत प्रकट करें। (ग) (विधिक दृष्टि से) जिस पर किसी का अधिकार, प्रभुत्व या स्वामित्व हो। जैसे—यह उनका अपना मकान है (अर्थात् किराये या मँगनी का नहीं है)। और (घ) सामाजिक दृष्टि से) जिसका संबंध किसी वर्ग या समाज के सब लोगों से हो। जैसे—अपना देश, अपनी भाषा, अपना शासन।

मुहा॰—**अपना अपना राग अलापना**=हर किसी का अपने अपने मतलब की बातें कहना। **अपना उल्लू सीधा करना**=अपना मतलब निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। **(किसी को) अपना करना**=आत्मीय या परम मित्र बनाना। **(कोई पदार्थ) अपना करना**=अपने अधिकार या वश में करना। **अपना समझना**=(क) आत्मीय समझकर स्नेहपूर्ण व्यवहार करना। (ख) अपने आपको किसी बात या वस्तु का अधिकारी या स्वामी समझना। **अपना सा मुँह लेकर रह जाना**=पराजित, विफल या लज्जित होने पर निराश होकर रह जाना। **अपनी अपनी पड़ना**=अपनी अपनी चिंता या रक्षा के लिए प्रयत्नशील होना। **अपनी खाल में मस्त होना**=सब ओर से उदासीन तथा निश्चिंत होकर अपनी वर्त्तमान स्थिति में प्रसन्न रहना। **अपनी तरफ देखना**=अपनी प्रतिष्ठा या मर्यादा का ध्यान रखना। **अपनी नींद सोना**=चिंता या परवशता छोड़कर अपनी इच्छानुसार कार्य करना। **अपनी-पराई ठोकरें खाना**=इधर-उधर मारे फिरना। **अपनी बात का एक या पक्का**=अपने कथन, वचन आदि पर दृढ़ रहनेवाला। **अपनी बात पर आना**=(क) अपनी प्रकृति या प्रवृत्ति पर अड़ना या दृढ़ रहना। (ख) अपने कथन, वचन आदि का पालन करना। **अपने ऊपर लेना**=किसी बात के लिए उत्तरदायी या जिम्मेदार बनना। **अपने किये का फल पाना**=अपने दुष्कर्म, भूल आदि का फल भोगना। **अपने को कुछ समझना, मानना या लगाना**=अपने को औरों

से बड़ा या सशक्त समझना। (कोई बात) **अपने तक रखना**=किसी दूसरे से न कहना। **अपने पन पर आना**=अपनी प्रवृत्ति या स्वभाव के अनुसार काम करना। **अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना**=अपना अपकार या हानि स्वयं करना। **अपने मुँह आप मियाँ मिट्ठू बनना**=अपनी प्रशंसा स्वयं करना। **अपने से ज्यादा करना**=अपने बल या बूते से अधिक काम करना।

पद—अपनी गौं का यार=मतलबी। स्वार्थी। **अपने आप**=बिना किसी की प्रेरणा के। खुद। स्वयं।

पुं० आत्मीय। स्वजन।

अपनाइयत—स्त्री०=अपनायत।

अपनाना—स० [हिं० अपना] १. अपना बनाना। अपना कर लेना। २. ग्रहण या स्वीकार करना। ३. अपने अधिकार या वश में करना। ४. किसी को अपनी शरण में लेना। ५. गले लगाना।

अपनापन—पुं० [हिं० अपना] १. अपना होने की स्थिति या भाव। आत्मीयता। २. आत्माभिमान।

अपनापा—पुं० [हिं० अपना+आपा (प्रत्य०)] अपनापन।

अपनाम (न्)—पुं० [सं० प्रा० स०] नाम या प्रसिद्धि में लगनेवाला कलंक। बदनामी।

अपनायत—स्त्री० [हिं० अपना+यत (प्रत्य०)] १. अपना होने का भाव। आत्मीयता। २. आपसदारी का संबंध। बहुत पास का वैसा व्यवहार या संबंध जैसा सगे-संबंधियों से होता है।

अपनाव—पुं० [हिं० अपना] अपनाने की क्रिया या भाव।

अपनाश*—पुं० [हिं० आप+नाश] अपना नाश स्वयं करने की क्रिया या भाव।

अपनीत—भू० कृ० [सं० अप√नी (ले जाना)+क्त] १. दूर किया या हटाया हुआ। २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया हुआ। ३. जिसे कोई भगा या हर ले गया हो। (एब्डक्टेड)

विशेष दे० 'अपनयन'

अपनेता—वि० [सं० अप√नी+तृच्] अपनयन करने, किसी को भगाने या हरनेवाला। (ऐबडक्टर)

अपनोद—पुं० [सं० अप√नुद् (प्रेरणा)+घञ्] १. दूर करना। हटाना। २. प्रायश्चित्त करना।

अपनोदन—पुं० [सं० अप√नुद्+ल्युट्—अन]=अपनोद।

अपन्हव—पुं० दे० 'अपह्नव'।

अपन्हुति—स्त्री० दे० 'अपह्नुति'।

अपपाठ—पुं० [सं० प्रा० स०] १. ग्रंथ या लेख का अशुद्ध पाठ। २. पढ़ने में होनेवाली अशुद्धि।

अपपात्र—पुं० [सं० ब० स०] १. अनधिकारी या अनुपयुक्त पात्र। २. नीच या निम्न जाति का व्यक्ति।

अपप्रजाता—स्त्री० [सं० अप-प्र√जन् (उत्पत्ति)+क्त, टाप्] वह स्त्री जिसका गर्भ गिर गया हो।

अपप्रदान—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित रूप से धन देना। २. वह धन या पदार्थ जो अनुचित रूप से किसी को दिया गया हो। घूस। रिश्वत।

अपबरग*—पुं० दे० 'अपवर्ग'।

अपबस*—वि० [हिं० आप+वश] १. जो अपने वश में हो। २. स्वतंत्र। ३. स्वेच्छाचारी।

अपबाहुक—पुं० [सं० ब० स०, कप्] एक वातजन्य रोग जिसमें बाहु की नसें सूखकर बेकाम हो जाती हैं। भुजस्तंभ रोग।

अपभय—वि० [सं० ब० स०] १. जो भयरहित हो। निर्भय। निडर। २. बहादुर। वीर।

पुं० [प्रा० स०] अकारण, अनुचित या व्यर्थ का भय।

अपभाषण—पुं० [सं० प्रा० स०] १. ऐसी अश्लील और गंदी बातें कहना जो शिष्ट समाज के लिए अनुचित हों। २. गालियाँ देना या दुर्वचन कहना। (स्कॅरिलिटी)

अपभाषा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित या बुरी भाषा। २. अश्लील या गंदी बातें या भाषा।

अपभुक्त—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] (धन या पदार्थ) जिसका अपभोग हुआ हो।

अपभोग—पुं० [सं० प्रा० स०] किसी विषय या वस्तु का बुरी तरह या अनुचित रूप से किया जानेवाला भोग या उससे उठाया जानेवाला लाभ।

अपभ्रंश—पुं० [सं० अप√भ्रंश् (अधःपतन)+घञ्] १. नीचे की ओर गिरना। पतन। २. बिगाड़। विकृति। ३. किसी शब्द का बिगड़ा हुआ वह रूप जो उसे इसलिए प्राप्त होता है कि लोग उसका मूल उच्चारण ठीक तरह से और शुद्ध रूप से नहीं कर सकते।

स्त्री० प्राचीन मध्यदेश की वह भाषा जो प्राकृत भाषाओं के उपरांत प्रचलित हुई थी और जिससे आधुनिक देश-भाषाओं का विकास हुआ है।

अपभ्रंशित—भू० कृ० [सं० अपभ्रंश+इतच्] १. गिरा हुआ। २. पतित। ३. बिगड़ा हुआ। विकृत।

अपभ्रष्ट—वि० [सं० अप√भ्रंश्+क्त] १. गिरा हुआ। पतित। २. बिगड़ा हुआ। विकृत। ३. (शब्द) जो किसी तत्सम शब्द से निकलकर अपने विकृत रूप में प्रचलित हो।

अपमर्द—पुं० [सं० अप√मृद् (कुचलना)+घञ्] गर्द। धूल।

अपमर्दन—पुं० [सं० अप√मृद्+ल्युट्-अन] बुरी तरह से कुचलना या रौंदना।

अपमर्श—पुं० [सं० अप√मृश् (छूना)+घञ्] १. निंदा। २. स्पर्श। ३. अपहरण। ४. चरना (पशुओं का)।

अपमान—पुं० [सं० अप√मा (शब्द, मान)+ल्युट्—अन] १. अभिमान और उद्दंडतापूर्वक किया जानेवाला वह काम या कही जानेवाली वह बात जिससे अपनी या किसी की प्रतिष्ठा या सम्मान कम होता हो अथवा वह उपेक्ष्य या तुच्छ ठहरता हो। किसी का आदर या इज्जत घटानेवाला काम या बात। (डिसग्रेस, इंसल्ट) २. तिरस्कार। ३. दुत्कार।

अपमानकारी (रिन्)—वि० [सं० अपमान√कृ (करना)+णिनि] जिससे अपमान हो। अपमान करनेवाला।

अपमानजनक—वि० [सं० प० त०] (काम या बात) जिसके फलस्वरूप अपमान होता हो।

अपमानना*—स० [सं० अपमान] किसी का अपमान करना।

अपमान-लेख—पुं० [प० त०] ऐसा लेख या वक्तव्य जिससे किसी का अपमान होता हो। (लाइबल्)

अपमानिक—वि० [सं० अपमान+ठन्—इक] अपमान-सूचक (शब्द या बात)।

अपमानित—भू० कृ० [सं० अपमान+इतच्] जिसका अपमान किया गया हो।

अपमानी (निन्)—वि० [सं० अप√मन् (जानना)+णिनि] अपमान करनेवाला।

अपमान्य—वि० [सं० प्रा० स०] १. जिसका अपमान किया जा सकता हो या करना उचित हो। अपमानित होने के योग्य। २. निंदनीय।

अपमार्ग—पुं० [सं० प्रा० स०] बुरा मार्ग। कुपथ।

अपमार्गी (गिन्)—वि० [सं० अपमार्ग+इनि] बुरे मार्ग या रास्ते पर चलनेवाला। कुमार्गी।

अपमार्जन—पुं० [सं० अप√मार्ज् (शुद्धि) ल्युट्—अन, वृद्धि] [भू० कृ० अपमार्जित] १. शुद्धि, संशोधन या सफाई करने की क्रिया या भाव। २. रद्द करने, मिटा देने या निकाल देने की क्रिया या भाव।

अपमार्जित—भू० कृ० [सं० अप√मार्ज्+क्त] जिसका अपमार्जन किया गया हो।

अपमिश्रण—पुं० [अप√मिश्र (मिलाना+ल्युट्—अन] किसी अच्छी या बढ़िया चीज में बुरी या घटिया चीज मिलाने की क्रिया या भाव।

अपमुख—वि० [सं० ब० स०] टेढ़े मुँहवाला।

अपमृत्यु—पुं० [सं० प्रा० स०] असामयिक या आकस्मिक मृत्यु। अकाल मृत्यु।

अपमृषित—वि० [सं० अप√मृष् (तितिक्षा)]+क्त (कथन या वाक्य) जो स्पष्ट या समझने-योग्य न हो।

अपयश (स्)—पुं० [सं० प्रा० स०] कोई अनुचित या बुरा काम करने पर होनेवाला यश का नाश। अपकीर्ति। बदनामी। (इग्नामिनी)

अपयशस्कर—वि० [सं० अपयशस्√कृ (करना)+ट)] (ऐसा कार्य या बात) जिससे कर्ता का अपयश हो।

अपयान—पुं० [सं० अप√या (जाना)+ल्युट्—अन] १. चले जाना या हट जाना। २. भाग जाना। पलायन।

अपयोग—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित या बुरा समय। २. बुरा योग। ३. नियमित मात्रा से अधिक या न्यून औषध पदार्थों का योग। ४. दे० 'अपयोजन'।

अपयोजन—पुं० [सं० अप√युज् (जोड़ना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अपयोजित] किसी का धन या संपत्ति अनुचित रूप से अपने उपयोग या काम में लाना। (मिसएप्रोप्रियेशन)

अपरंच—अव्य० [सं० द्व० स०] १. और भी। २. फिर भी। ३. इसके पीछे या बाद। उपरांत।

अपरंपार*—वि० [सं० अपर=दूसरा+हिं० पार=छोर] १. जिसका पारावार या कूल-किनारा न हो। अपार। २. बहुत अधिक। बेहद। असीम।

अपर—वि० [सं०√पृ (पूर्ण करना)+अप्, न० त०] [स्त्री० अपरा, भाव० अपरत्व] १. जो पर या बाद का न हो। पहला। २. जिसके बाद या उपरांत कुछ या कोई न हो। ३. जिससे बढ़कर और कोई न हो। ४. प्रस्तुत से भिन्न। और कोई। दूसरा। ५. क्रम, श्रेष्ठता आदि के विचार से किसी के उपरांत या बाद में पड़नेवाला। परवर्त्ती। ६. जितना हो या हो चुका हो, उससे और अधिक या आगे का। (फर्दर) जैसे—अपर उपगम। ७. पीछे की ओर का। पिछला। जैसे—अपर काय=शरीर का पिछला भाग। ८. किसी दूसरी जाति या वर्ग का। विजातीय। ९. अधम। नीच।

पुं० १. हाथी का पिछला आधा भाग। २. वैरी। शत्रु।

अपरक्त—वि० [सं० अप√रञ्ज (राग)+क्त] अपरक्ति या अपराग से युक्त। २. जिसमें कोई रंग या रंगत न हो। ३. असंतुष्ट और खिन्न। ४. जिसमें रक्त न हो। रक्तहीन।

अपरक्ति—स्त्री० [सं० अप√रञ्ज्+क्तिन्] १. अपरक्त होने की अवस्था या भाव। अपराग। २. अनुराग, प्रेम, सद्भावना आदि का अभाव। (डिस-एफेक्शन)

अपरछन—वि० [सं० अप्रच्छन्न] जो प्रच्छन्न (छिपा या ढका हुआ) न हो। खुला हुआ। स्पष्ट।

*वि०=प्रच्छन्न।

अपरज—वि० [अपर√जन् (उत्पत्ति)+ड] जो बाद में उत्पन्न हुआ हो।

पुं० प्रलयाग्नि।

अ-परतंत्र—वि० [सं० न० त०] १. जो परतंत्र न हो। २. जो किसी के वश या शासन में न हो। स्वाधीन।

अप-रत (ा)†—वि० [हिं० आप+रत] १. जो अपने ही आप में रत या लीन हो। २. मतलबी। स्वार्थी।

अपरता—स्त्री० [सं० अपर+तल्—टाप्] अपर होने की अवस्था या भाव। परायापन।

स्त्री० [सं० अ=नहीं+परता=परायापन] भेद-भाव—शून्यता। अपनापन।

अपरति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अनुराग, प्रेम या रति का अभाव। २. असंतोष। ३. अलगाव। विच्छेद।

अपरती*—स्त्री० [हिं० आप+सं० रति=लीनता] केवल अपना ध्यान रखना। स्वार्थ।

अपरत्र—अव्य० [सं० अपर+त्रल्] और कहीं। अन्यत्र।

अपरत्व—पुं० [सं० अपर+त्व] १. 'अपर' होने का भाव। २. न्याय-शास्त्रानुसार चौबीस गुणों में से एक।

अपर-दक्षिण—पुं० [अव्य० स०] दक्षिण और पश्चिम का कोना। नैर्ऋत्य कोण।

अपर-दिशा—स्त्री० [कर्म० स०] पश्चिम दिशा।

अपरना*—स्त्री० [सं० अ=नहीं+पर्ण=पत्ता] पार्वती का एक नाम।

अपर-पक्ष—पुं० [कर्म० स०] १. सौर मास का कृष्ण पक्ष। २. प्रतिवादी। मुद्दालेह।

अपर-पुरुष—पुं० [कर्म० स०] वंशज।

अपर-प्रणेय—वि० [तृ० त०] सहज में दूसरों से प्रभावित होनेवाला।

अपर बल†—वि० [सं० प्रबल] १. बलवान। २. उद्धत। ३. बहुत अधिक।

अपर-भाव—पुं० [कर्म० स०] १. भिन्न होने का भाव। २. अंतर। भेद।

अपरमपार*—वि०=अपरंपार।

अपर-रात्र—पुं० [एकदेशि त० स०] रात का अंतिम या पिछला पहर। तड़का। प्रभात

अपररूप—पुं० [कर्म० स०] [भाव० अपर-रूपता] रसायन शास्त्र में किसी तत्त्व का कोई ऐसा दूसरा रूप जो कुछ दूसरे विशिष्ट गुणों से युक्त हो या कुछ भिन्न प्रकार का हो। (एलोट्रोप) जैसे—कार्बन नामक तत्त्व काजल, कोयले, सीसे और हीरे में रहता तो है, पर अपने अपर रूपों में रहता है।

अपररूपता—स्त्री० [सं० अपररूप+तल्—टाप्] अपररूप होने की अवस्था, गुण या भाव। (एल्लोट्रोपी)

अपर-लोक—पुं० [कर्म० स०] १. अन्य या दूसरा लोक। २. स्वर्ग।

अप रव—पुं० [सं० प्रा० स०] धन या संपत्ति के संबंध में होनेवाला झगड़ा या विवाद।

अपर-वक्त्र—पुं० [सं० व० स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके विषम चरणों में दो नगण, एक रगण और लघु गुरु तथा सम चरणों में एक नगण, दो जगण और रगण होता है।

अपरवश—वि० [सं० न० त०] जो परवश न हो।

अपरस—वि० [सं० अ+हिं० परस=स्पर्श] १. जिसे किसी ने छुआ न हो। २. अस्पृश्य। ३. अनासक्त।
पुं० हथेली या तलुए में होनेवाला एक चर्म रोग।

अपरांग—पुं० [सं० अपर-अंग, ष० त०] गुणीभूत व्यंग्य का एक भेद। (साहित्य)

अपरांत—पुं० [सं० अपरा-अंत, ष० त०] पश्चिम का देश या प्रांत।

अपरांतक—पुं० [सं० अपरांत+कन्] पश्चिम दिशा में स्थित एक पर्वत। (पुरा०)

अपरांतिका—स्त्री० [सं० अपरांत+कन्—टाप्, इत्व] वैताल छंद का वह भेद जिसमें चौथी और पाँचवी मात्राएँ मिलकर दीर्घ अक्षर बन जाती हैं।

अपरा—स्त्री० [सं० अपर+टाप्] १. अध्यात्म या ब्रह्मविद्या को छोड़कर अन्य विद्या। २. लौकिक या पदार्थ-विद्या। ३. पश्चिम दिशा। ४. ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

अपराग—पुं० [सं० अप√रञ्ज्+घञ्] १. प्रेम या राग का विरोधी भाव। २. वैर। शत्रुता। ३. अरुचि। ४. दे० 'अपरक्ति'।

अपराग्नि—स्त्री० [सं० अपर-अग्नि, कर्म० स०] १. गार्हपत्य अग्नि। २. चिता की आग।

अपराजित—वि० [सं० न० त०] जो पराजित न हुआ हो।
पुं० १. विष्णु। २. शिव।

अपराजिता—स्त्री० [सं० अपराजित+टाप्] १. विष्णुक्रांता लता। कौवाठोंठी। २. कोयल। ३. दुर्गा। ४. शंखिनी आदि पौधे। ५. अयोध्या का एक नाम। ६. उत्तर-पूर्व विदिशा। ७. एक योगिनी। ८. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक रगण, एक सगण, एक लघु और एक गुरु होता है।

अपराजेय—वि० [सं० न० त०] जो पराजित न किया जा सके।
स्त्री० =पराजित न होने का भाव। अपराजय।

अपराद्ध—वि० [सं० अप√राध् (सिद्धि) +क्त] १. (व्यक्ति) जिसने अपराध किया हो। २. (कार्य) जिसका आचरण कानून की दृष्टि में अपराध माना जाय।

अपराध—पुं० [सं० अप√राध्+घञ्] १. ऐसा अनुचित कार्य जिससे किसी का अपमान या हानि हो। (आफेन्स) २. कोई ऐसा अनुचित फलतः दंडनीय काम जो किसी विधि या विधान के विरुद्ध हो। ३. कोई अनुचित या बुरा काम। ४. दोष। ५. पाप। ६. भूल-चूक।

अपराध-विज्ञान—पुं० [ष० त०] वह विज्ञान जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि लोग अपराध क्यों करते हैं और उनकी यह प्रवृत्ति कैसे ठीक हो सकती है। (क्रिमिनालजी)

अपराधशील—वि० [व० स०] (व्यक्ति) जो प्रायः और स्वभावतः अपराध करता रहता हो। (क्रिमिनल)

अपराध-स्वीकरण—पुं० [ष० त०] न्यायाधीश अथवा किसी उच्च अधिकारी के सामने अपना किया हुआ अपराध स्वीकार करना। (कन्फेशन)

अपराधिक—वि० दे० 'आपराधिक'।

अपराधि-साक्षी (क्षिन्)—पुं० [सं० कर्म० स०] दे० 'भेद-साक्षी'।

अपराधी (धिन्)—वि०, पुं० [सं० अप√राध्+णिनि] १. वह जिसने अपराध किया हो। २. कानून की दृष्टि में ऐसा व्यक्ति जिसने अपराध किया हो।

अपरामृष्ट—वि० [सं० न० त०] १. जिसको किसी ने छुआ न हो। अछूता। २. अव्यवहृत। कोरा।

अपरार्क—वि० [सं० अपर-अर्क, कर्म० स०] सूर्य के समान तेजस्वी।

अपरार्द्ध—पुं० [सं० अपर-अर्द्ध, कर्म० स०] दूसरा या बादवाला आधा अंश। उत्तरार्द्ध।

अपरावर्त्ती (र्तिन्)—वि० [सं० परा√वृत् (बरतना)+णिनि, न० त०] १. न लौटनेवाला। २. पीछे न हटनेवाला। ३. किसी काम से मुँह न मोड़नेवाला। मुस्तैद।

अपराह्ण—पुं० [सं० अपर-अहन्, एकदेशि त० स०] १. दिन का वह भाग जो दोपहर या मध्याह्न के बाद आरंभ होता है। (पी० एम०) २. साधारण बोलचाल में तीसरा पहर।

अपराह्न—पुं०=अपराह्ण।

अपरिक्रम—वि० [सं० न० व०] १. जो चल न सके। २. जिसमें परिक्रम का अभाव हो। उद्योगहीन। ३. कार्य अथवा परिश्रम करने में असमर्थ।

अपरिगत—वि० [सं० न० त०] १. जो पहचाना हुआ न हो। अपरिचित। २. जो जाना हुआ न हो। अज्ञात।

अपरिगृहीत—वि० [सं० न० त०] १. जिसका परिग्रहण न हुआ हो। २. जो गृहीत न हुआ हो। ३. अस्वीकृत। ४. त्यक्त।

अपरिगृहीतागमन—पुं० [सं० अपरिगृहीता, न० त०, अपरिगृहीता-गमन, तृ० त०] जैन शास्त्रानुसार कुमारी या विधवा के साथ गमन करना जो अतिचार माना गया है।

अपरिग्रह—पुं० [सं० न० त०] १. दान न लेना। २. जीवन निर्वाह के लिए जो अति आवश्यक हो उसे छोड़कर और कुछ ग्रहण न करना। ३. मोह, राग-द्वेष, हिंसा आदि का त्याग। ४. योगशास्त्र में पाँचवाँ यम। संगत्याग। ५. ब्रह्मचर्य।

अपरिग्राह्य—वि० [सं० न० त०] जो ग्रहण या स्वीकृत किये जाने के योग्य न हो।

अपरिचय—पुं० [सं० न० त०] [वि० अपरिचित] परिचय का अभाव। जान-पहिचान न होना।

अपरिचयिता—स्त्री० [सं० अपरिचयिन्+तल्—टाप्] अपरिचित होने की अवस्था या भाव।

अपरिचयी (यिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसका परिचय औरों से न हो। २. जो अधिक लोगों से परिचय या मेल-जोल न रखता हो।

अपरिचित—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिससे परिचय न हो। २. (विषय) जिसका पहले से परिज्ञान न हो।

अपरिच्छद—वि० [सं० न० व०] १. आच्छादन या आवरण से रहित। खुला हुआ। २. नंगा। नग्न। ३. दरिद्र। (क्व०)

अपरिच्छन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो ढका न हो। आवरण-रहित। २. जिसका विभाग न हो सके। अभेद्य। ३. मिला हुआ। ४. असीम। ५. सर्वव्यापक।

अपरिच्छेद—पुं० [सं० न० त०] १. विलगाव, भेद, विभाग आदि का अभाव। २. निर्णय, न्याय या विवेक का अभाव।

अपरिणत—वि० [सं० न० त०] १. जो परिणित न हुआ हो। २. जिसमें कोई परिवर्त्तन या विकार न हुआ हो। ज्यों का त्यों।

अपरिणय—पुं० [सं० न० त०] १. परिणय न होने का भाव। २. विवाहित न होने की अवस्था। जैसे—कौमार्य, ब्रह्मचर्य आदि।

अपरिणामी (मिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें परिणाम या विकार न हो। २. जिसकी दशा में कोई परिवर्त्तन न हो, फलतः एक रूप या एकरस।

अपरिणीत—वि० [सं० न० त०] जिसका परिणय या विवाह न हुआ हो। अविवाहित।

अपरिपक्व—वि० [सं० न० त०] १. जो परिपक्व न हो। कच्चा। २. जो अच्छी तरह पका या पूरा न हुआ हो। अध-कचरा। अधूरा।

अपरिपणित संधि—स्त्री० [सं० परि√पण् (व्यवहार करना)+क्त, न० त०, अपरिपणित-संधि, कर्म० स०] दूसरे को धोखा देने के लिए की जानेवाली कपट-संधि।

अपरिमाण—वि० [सं० न० व०] जिसका परिमाण या माप न हो। अपरिमित।

पुं० परिमाण का अभाव।

अपरिमित—वि० [सं० न० त०] १. जो परिमित न हो। २. जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। बेहद। (अनलिमिटेड) ३. असंख्य। अनगिनत।

अपरिमेय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका परिमाण जाना न जा सके। जिसकी नाप-जोख न हो सके। २. जो कूता न जा सके। ३. बहुत अधिक।

अपरिवर्त—वि० [सं० परि√वृत्+घञ्, न-परिवर्त, न० व०] जिसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन या फेर-बदल न हो सकता हो या न होता हो।

अपरिवर्तनीय—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें परिवर्त्तन न हो सके। जो बदला न जा सके। २. जो बदले में न दिया जा सके। ३. जिसमें परिवर्त्तन न होता हो। सदा एक-रस रहनेवाला। नित्य।

अपरिवर्तित—वि० [सं० न० त०] जिसमें कोई परिवर्त्तन या फेर-बदल न हुआ हो। ज्यों का त्यों।

अपरिवृत—वि० [सं० न० त०] जो ढका या घिरा न हो, अपरिच्छन्न।

अपरिशेष—वि० [सं० न० व०] जिसका परिशेष न होता हो। अविनाशी। नित्य।

अपरिष्कृत—वि० [सं० न० त०] १. जिसका परिष्करण या संस्कार न हुआ हो। असंस्कृत। २. जो ठीक या साफ न किया गया हो। ३. मैला-कुचैला या गंदा। ४. अनगढ़। बेडौल।

अपरिसर—वि० [सं० न० व०] १. जो निकट न हो। दूर। २. जिसमें विस्तार का अभाव हो। विस्तार-रहित। ३. अप्रशस्त।

पुं० [न० त०] विस्तार का अभाव।

अपरिहरणीय—वि० [सं० न० त०] जिसका परिहरण करना अनुचित या निषिद्ध हो।

अपरिहार—वि० [न० व०]=अपरिहार्य।

पुं० [न० त०] दूर करने के उपाय का अभाव।

अपरिहारित—भू० कृ० [सं० न० त०] जिसका परिहार न किया गया हो।

अपरिहार्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका परिहार या त्याग न हो सके। अत्याज्य। २. जिसके बिना काम न चल सके। अनिवार्य। ३. न छीनने योग्य।

अपरीक्षित—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी परीक्षा न की गई हो अथवा न ली गई हो। २. जिसके रूप, गुण, वर्ण आदि का अनुसंधान न हुआ हो। ३. अप्रमाणित।

अपरुष—वि० [सं० न० त०] जो परुष या कठोर न हो। कोमल। मृदुल।

अपरूप—वि० [सं० ब० स०] १. बुरे रूपवाला। कुरूप। बदशकल। २ भद्दा।

वि० [सं० आत्म-रूप] परम सुंदर। (बँगला से गृहीत) उदा०—मनु निरखने लगे ज्यों ज्यों कामिनी का रूप, वह अनंत प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप।—प्रसाद।

अपरेण—क्रि० वि० [सं० अपर शब्द का तृतीयांत रूप] किसी की आड़ में या पीछे। किसी ओर हटकर।

पुं० १. गणित ज्योतिष में, किसी आकाशस्थ पिंड का (पृथ्वी की गति और प्रकाश-किरण के विचलन के कारण) अपने स्थान से कुछ हटा हुआ या इधर-उधर दिखाई देना। २. नियत मार्ग या स्थान से इधर-उधर हो.:.। (एबरेशन)

अपरोक्ष—वि० [सं० न० त०] १. जो परोक्ष न हो। प्रत्यक्ष। २. जिसे अपने सामने देख, समझ या सुन सकें।

अपरोध—पुं० [सं० अप√रुध् (रोकना)+घञ्] १. रुकावट। २. मनाही। वर्जन।

अपरोप—पुं० [सं० अप√रुह् (जनमना)+णिच्+घञ्] १. उन्मूलन। २. विध्वंस। ३. राज्यच्युति।

अपर्ण—वि० [सं० न० व०] (वृक्ष) जिसमें पर्ण या पत्ते न हों।

अपर्णा—स्त्री० [सं० अपर्ण+टाप्] १. पार्वती जी का उस समय का नाम जब शिव के लिए तपस्या करते समय उन्होंने पत्ते तक खाना छोड़ दिया था। २. दुर्गा।

अपर्तु—वि० [सं० अप-ऋतु, प्रा० व०] १. उचित समय पर न होनेवाला। बे-मौसिम। २. (स्त्री) जिसकी ऋतु का समय बीत चुका हो।

अपर्यंत—वि० [सं० न० व०] जिसका पर्यंत (सीमा) न हो। असीम।

अपर्याप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो पर्याप्त (पूरा या यथेष्ट) न हो। २. [न० व०] असीम।

अपर्याप्त-कर्म (न्)—पुं० [कर्म० स०] जैन-शास्त्रानुसार वह पाप-कर्म जिसके उदय से जीव के पूर्णता प्राप्त करने में बाधा होती है।

अपर्याप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. अपर्याप्त होने की अवस्था या भाव। २. पूर्णता का अभाव। कमी। त्रुटि। ३. अक्षमता। अयोग्यता।

अपर्याय—वि० [सं० न० ब०] जिसमें या जिसका कोई क्रम न हो। क्रम-हीन।

अपर्व (न्)—पुं० [सं० न० ब०] वह दिन जिसमें कोई पर्व न हो। वि० जिसमें पर्व या संधि न हो।

अपर्वक—वि० [सं० न० ब०, कप्] जिसके वीच में पर्व (जोड़ या संधि) न हो।

अपल—वि० [सं० न० ब०] १. पल-रहित। २. मांस-रहित। निरामिष। वि० दे० 'अपलक'।

पुं० [अप√ला (लेना)+क] अर्गल।

अपलक—वि० [सं० अ=नहीं+पलक] जिसकी पलकें न गिरें। जो टक लगाकर देख रहा हो।

क्रि० वि० विना पलकें गिराये या झपकाये। एकटक।

अपलक्षण—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अशुभ या बुरा लक्षण या चिह्न। २. दोष। ३. साहित्य में, किसी चीज का वतलाया जानेवाला ऐसा लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष हो। दूषित या त्रुटिपूर्ण लक्षण।

अपलाप—पुं० [सं० अप√लप् (कहना)+घञ्] १. व्यर्थ की वकवक। वकवाद। २. प्रसंग टालने के लिए इधर-उधर की वातें कहना। वात वनाना। ३. जान-बूझकर कोई वात न कहना। वात का छिपाव या दुराव।

अपलापिका—स्त्री० [सं० अप√लप् (इच्छा)+ण्वुच्-अक] [वि० अपलापी, अपलापुक] १. वहुत अधिक तृष्णा या लालसा। २. पिपासा। प्यास।

अपलापी (पिन्)—वि० [सं० अप√लप्+णिनि] १. अपलाप करनेवाला। २. वकवादी। वक्की।

अपलाभ—पुं० [सं० प्रा० स०] अनुचित या अनैतिक रूप से प्राप्त किया हुआ अत्यधिक लाभ। (प्रॉफिटियरिंग)

अपलाभन—पुं० [सं० अपलाभ+णिच्+ल्युट्-अन] अपलाभ प्राप्त करने की क्रिया या भाव।

अपलेखन—पुं० [सं० अप√लिख् (लिखना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अपलिखित] पावने की ऐसी रकम रद्द करना जो वसूल न हो सकती हो। वट्टेखाते लिखना।

अपलोक—पुं० [सं० प्रा० स०] लोक में होनेवाली निंदा या वदनामी। उदा०—लोक में लोक वड़ो अपलोक सुकेशव दास जु होउ सो होऊ।—केशव।

अपवचन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अपशब्द। गाली। २. निंदा।

अपवन—वि० [सं० अ-पवन, न० ब०] (ऐसा स्थान) जहाँ वायु का प्रवेश न हो।

पुं० [सं० अप-वन, प्रा० स०] १. छोटा वन। २. उद्यान। वगीचा।

पुं० [न० त०] पवन का अभाव।

अपवरक—पुं० [सं० अप√वृ (आच्छादन)+ण्वुल्-अक] १. अंतःपुर। २. सोने की जगह। शयनागार। ३. झरोखा।

अपवरण—पुं० [सं० अप√वृ+ल्युट्-अन] आवरण दूर करना। परदा हटाना।

अपवर्ग—पुं० [सं० अप√वृज् (वर्जन)+घञ्] १. सव प्रकार के दुःखों से होनेवाला छुटकारा। २. मोक्ष। ३. त्याग। ४. दान। ५. कार्य की समाप्ति या सिद्धि। ६. किये हुए कर्मों का फल।

अपवर्जन—पुं० [सं० अप√वृज्+ल्युट्-अन] १. त्यागने की क्रिया या भाव। २. मुक्त करने या होने की अवस्था या भाव।

अपवर्जित—भू० कृ० [सं० अप√वृज् (त्याग)+णिच्+क्त] १. जिसका अपवर्जन हुआ हो। २. छूटा हुआ। मुक्त।

अपवर्त्त—पुं० [सं० अप√वृत् (वरतना)+णिच्+घञ्] १. अलग या दूर करना। हटाना। २. दे० 'समापवर्त्तक'।

अपवर्त्तक—वि० [अप√वृत् +णिच्+ण्वुल्-अक] अपवर्त्तन करनेवाला।

पुं० गणित में, ऐसी राशि या राशियाँ जिनसे किसी वड़ी राशि को भाग देने पर शेष कुछ न वचे। सामान्य विभाजक। (फैक्टर) जैसे—१२ को २, ३, ४ या ६ से भाग देने पर शेष कुछ नहीं वचता। अतः २, ३, ४ और ६ सभी १२ के अपवर्त्तक हैं।

अपवर्त्तन—पुं० [सं० अप√वृत्+णिच्+ल्युट्-अन] १. किसी में से कुछ निकाल या ले लेना। २. कहीं से हटाना। अलग या दूर करना। ३. न होने के समान करना। रद्द करना। ४. गणित में, राशियों या संख्याओं का अपवर्त्त या समापवर्त्तक निकालना। जैसे —$\frac{२४}{३६}$ में के ३६ और २४ दोनों को १२ से भाग देकर $\frac{२}{३}$ रूप में लाना। (कैन्सलेशन ऑफ कॉमन फैक्टर)

अपवर्त्तित—भू० कृ० [सं० अप√वृत्+णिच् +क्त] १. जिसका अपवर्तन हुआ हो या किया गया हो। २ अंदर की ओर घूमा, वढ़ा या मुड़ा हुआ। (इन्वर्टेड)

अपवर्त्य—वि० [सं० अप√वृत्+ण्यत्] जिसका अपवर्त्तन हो सकता हो या होने को हो।

पुं० गणित में, वह राशि जो किसी एक संख्या को दूसरी संख्या से गुणा करने पर प्राप्त हो। (मल्टिपुल) जैसे— ६×६=३६ होता है। अतः ६ का ३६ अपवर्त्य है।

अपवश*—वि० [हिं० अप=अपना+सं० वश] अपने वश या अधिकार में लाया हुआ। जो अपने अधीन कर लिया गया हो।

अपवहन—पुं० [सं० अप√वह् (वहना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अपवहित] किसी चलती या जाती हुई चीज का अपने उचित या नियत स्थान पर न पहुँचकर इधर-उधर चला जाना। (मिसकैरिज)

अपवहित—भू० कृ० [सं० अपवहन] जिसका अपवहन हुआ हो।

अपवाचा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित कथन या वात। २. गाली। ३. निंदा। अपवाद।

अपवाद—पुं० [सं० अप√वद् (वोलना)+घञ्] १. किसी वात के विरुद्ध कही हुई वात। विरोध या खंडन। २. ऐसी लोक-निंदा जिससे किसी के सम्मान को आघात पहुँचे। वदनामी। (ऑब्लोकी) ३. दोष। बुराई। ४. वह वात जो किसी व्यापक या सामान्य नियम के अंतर्गत आकर उसके विरुद्ध या उसके अतिरिक्त पड़ती हो। ५. राय। विचार। ६. विश्वास। प्रणय। ७. मिथ्या वात। ८. आदेश। आज्ञा। ९. वेदांत शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु में सर्प का ज्ञान यह अध्यारोप है, रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ वह अपवाद है।

अपवादक—पुं० [सं० अप√वद्+णिच्+ण्वुल्-अक] वह जो दूसरों का अपवाद या वदनामी करे। पर-निंदक।

वि० १. अपवाद रूप में होनेवाला। २. विरोधी। ३. बाधक।

अपवादिक—वि० [सं० आपवादिक] १. अपवाद संबंधी। २. सामान्य नियम के विरुद्ध अथवा अपवाद के रूप में होनेवाला। (एक्सेप्शनल) ३. दे० 'अपवादक'।

अपवादित—भू० कृ० [सं० अप√वद्+णिच्+क्त] १. जिसका विरोध किया गया हो। २. निंदित।

अपवादी (दिन्)—वि० [सं० अप√वद्+णिच्+णिनि] दे० 'अपवादक'।

अपवारण—पुं० [सं० अप√वृ (आच्छादन)+णिच्+ल्युट्–अन] १. दूर करना। हटाना। २. आड़। व्यवधान।

अपवारित—भू० कृ० [सं० अप√वृ+णिच्+क्त] जिसका अपवारण किया गया हो।

अपवाह—पुं० [सं० अप√वह् (बहना, पहुँचाना)+घञ्] १. पानी बहने की नाली। २. एक प्रकार का छंद। ३. कम करना। घटाना। ४. किसी प्रकार के प्रभाव में पड़कर किसी ओर चलना या बढ़ना। ५. किसी उद्देश्य से नियत मार्ग से हटकर इधर-उधर होना। (ड्रिफ्ट) ६. दे० 'अपवाहन'।

अपवाहक—वि० [सं० अप√वह्+णिच्+ण्वुल्–अक] अपवाहन करनेवाला।

अपवाहन—पुं० [अप√वह्+णिच्+ल्युट्–अन] किसी चीज को उचित या नियत स्थान पर न ले जाकर भूल से कहीं इधर-उधर ले जाना या पहुँचाना। (मिसकैरी)

अपवाहित—भू० कृ० [सं० अप√वह्+णिच्+क्त] जिसका अपवाहन हुआ हो। (मिसकैरिड)

अप विघ्न—वि० [सं० ब० स०] बाधा या विघ्न से रहित।

अपवित्र—वि० [सं० न० त०] [भाव० अपवित्रता] जो पवित्र न हो, फलतः न छूने योग्य या मलिन।

अपविद्ध—वि० [सं० अप√व्यध् (वेधना)+क्त] १. छोड़ा या त्यागा हुआ। २. वेधा हुआ। विद्ध।

पुं० वह पुत्र जिसको उसके माता-पिता ने त्याग दिया हो और किसी दूसरे ने पाला हो।

अपविद्या—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. ऐसी खराब या निषिद्ध विद्या जिसका अध्ययन करना उचित न हो। २. दे० 'अविद्या'।

अपविष—वि० [सं० ब० स०] जिसमें विष न हो, विष-रहित।

अपविषा—स्त्री० [सं० अपविष+टाप्] निर्विषी नामक पौधा।

अपवृक्त—वि० [अप√वृज् (त्याग)+क्त] पूरा या समाप्त किया हुआ।

अपवृति—स्त्री० [सं० अप√वृ (छेदन)+क्तिन्] १. छेद। सूराख। २. त्रुटि। दोष।

अपवृत्त—वि० [सं० अप√वृत् (बरतना)+क्त] १. क्रम, संबंध, स्थिति आदि के विचार से जो उलटा या विपरीत हो। २. अंदर की ओर उलटा, घूमा या मुड़ा हुआ। (इन्वर्टेड)

अपवृत्ति—स्त्री० [सं० अप√वृत्+क्तिन्] १. अपवृत होने की अवस्था या भाव। २. अंत। समाप्ति।

अपवेध—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा वेध जो उचित या उपयुक्त स्थान पर न हुआ हो।

अपव्यय—पुं० [सं० प्रा० स०] १. धन का आवश्यकता या उचित मात्रा से अधिक व्यय करना। २. व्यर्थ किया जानेवाला व्यय। ३. बुरे कामों में होनेवाला व्यय।

अपव्ययी (यिन्)—वि० [सं० अपव्यय+इनि] अपव्यय करनेवाला। व्यर्थ अधिक खर्च करनेवाला।

अपव्रत—वि० [सं० ब० स०] १. व्रत का पालन न करनेवाला। २. आज्ञा न माननेवाला।

पुं० [प्रा० स०] अनुचित या निंदनीय व्रत।

अपशंक—वि० [सं० ब० स०] १. शंकारहित। २. निर्भीक। निडर।

अपशकुन—पुं० [सं० प्रा० स०] अशुभ या बुरा शकुन अथवा लक्षण। असगुन।

अपशद—पुं० [सं० अप√शद् (तीक्ष्ण करना)+अच्] दे० 'अपसद'।

अपशब्द—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनर्गल, अशुद्ध, या निरर्थक। २. गाली। दुर्वचन।

अपशम—पुं० [सं० अप√शम् (शान्ति)+घञ्] १. अंत। समाप्ति। २. ठहराव। विराम।

अपशु—वि० [सं० न० त०] १. जो पशु न हो। २. [न० ब०] जिसके पास पशु न हों।

पुं० [न० त०] बुरा पशु।

अपशोक—वि० [सं० ब० स०] शोक-रहित।

पुं० अशोक वृक्ष।

अपश्चिम—वि० [सं० न० त०] १. जो पश्चिम या बाद में न हो। २. जिसके पश्चिम या बाद में और कोई न हो।

अपश्वास—पुं० [सं० अप० स०] अपानवायु।

अपश्रय—पुं० [सं० अप√श्रि (सेवा)+अच्] तकिया।

अपश्री—वि० [सं० प्रा० ब०] जिसकी श्री नष्ट हो चुकी हो। शोभा, सौंदर्य आदि से रहित।

अपश्रुति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] भाषा विज्ञान में, एक ही धातु से बने शब्दों में दिखाई देनेवाला वह विकार जो व्यंजनों के प्रायः ज्यों के त्यों बने रहने पर भी केवल उनके स्वरों के स्थान परिवर्त्तन से होता है। अक्षरावस्थान। जैसे—बढ़ना से बढ़ाव और बढ़िया रूप अपश्रुति के उदाहरण हैं।

अपष्ठु—वि० [सं० अप√स्था (ठहरना)+कु] उलटा। विपरीत।

अपसंचय—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अपसंचित] अनियमित रूप से और अधिक मूल्य पर बेचने के उद्देश्य से माल इकट्ठा करके और छिपाकर अपने पास रखना। (होर्डिंग)

अपसगुन—पुं० दे० 'अपशकुन'।

अपसद—पुं० [सं० अप√सद् (विशीर्ण होना)+अच्] उच्च जाति के पुरुष और नीच जाति की स्त्री से उत्पन्न संतान।

अपसना—अ० [सं० अपसरण =खिसकना] १. दूर हटना। सरकना। २. भाग जाना। ३. पहुँचना। प्राप्त होना।

अपसर—पुं० [सं० अप√सृ (गति)+अच्] १. पीछे हटना। अपसरण। २. प्रस्थान ३. पलायन। भागना। ४. उचित कारण। ५. अंतर। दूरी। (ज्या०) ६. वाष्प-कण।

अपसरक—वि० [सं० अपसारक] १. भाग जानेवाला। २. जो अपना उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य, पद आदि छोड़कर भाग गया हो। (डिजर्टर)

अपसरण—पुं० [सं० अप√सृ (गति+ल्युट्–अन] १. दूर होना। हटना।

२. अपने-केंद्र अथवा ठीक मार्ग से हटकर दूर जाना या इधर-उधर होना। ३. अपने प्रसम या मानक से हटकर आगे-पीछे या इधर-उधर होना। ४. उचित स्थिति से भिन्न या विपरीत होना। (डाइवर्जेन्स, उक्त सभी अर्थों के लिए) ५. उत्तरदायित्व, कार्य, पद आदि छोड़कर अलग होना या भाग जाना। (डिजर्शन) ६. तरल पदार्थ का गाढ़ापन या घनत्व कम होना। ७. उक्त प्रकारों से दूर होने या हटने का मार्ग।

अपसर्जक—वि० [सं० अप √सृज् (सिरजना)+ण्वुल्–अक] अपसर्जन करनेवाला।

अपसर्जन—पुं० [सं० अप√सृज्+ल्युट्–अन] १. छोड़ना। त्याग। २. मोक्ष। ३. अपने आश्रित (कार्य, पद, व्यक्ति आदि) को इस प्रकार छोड़ देना कि फिर उसकी चिंता न रहे। (एबैन्डनिंग)

अपसर्प—पुं० [सं० अप√सृप् (गति)+अच्] गुप्तचर। जासूस।

अपसर्पक—पुं० [सं० अपसर्प+कन्] दे० 'अपसर्प'।

अपसर्पण—पुं० [सं० अप√सृप्+ल्युट्–अन] १. पीछे हटना या खिसकना। २. पलायन। भागना। ३. गुप्तचर का काम। जासूसी।

अपसर्पित—वि० [सं० अप√सृप्+क्त] पीछे की ओर हटा हुआ।

अपसवना*—अ० [सं० अपस्रवण] खिसक, भाग या हट जाना।

अपसव्य—वि० [सं० प्रा० स०] १. 'सव्य' का उलटा। दाहिना। २. उलटा। विपरीत। ३. जिसने पितृ-कर्म करने के लिए जनेऊ अपने दाहिने कंधे पर रखा हो।

अपसव्य ग्रहण—पुं० [कर्म० स०] ग्रहण का वह प्रकार जिसमें राहु अथवा सूर्य दाहिनी ओर से आकर छाया डालता है। दाहिनी ओर से लगनेवाला ग्रहण।

अपसव्य तीर्थ—पुं० [कर्म० स०]=पितृ तीर्थ।

अपसव्य परिक्रमा—स्त्री० [कर्म० स०] देवता आदि की परिक्रमा का वह प्रकार जिसमें देवता को दाहिनी ओर रखकर उसके चारों ओर घूमते हैं। दक्षिणावर्त परिक्रमा।

अपसार—पुं० [सं० अप्सार] १. पानी का छींटा। २. [सं० अप√सृ (गति) √घञ्] दूर हटने या निकल भागने की क्रिया।

अपसारक—वि० [अप√सृ+णिच्+ण्वुल्-अक] भगा ले जानेवाला।

अपसारण—पुं० [सं० अप√सृ+णिच्+ण्वुल्–अक] १. दूर करना। २. अंदर से निकालकर बाहर करना या दूर हटाना। (इंजेक्शन) ३. किसी पद या स्थान से निकाल देना। (एक्सपल्शन) ४. देश निकाला।

अपसारित—वि० [सं० अप√सृ+णिच्+क्त] १. दूर हटाया हुआ। २. भगाया हुआ।

अपसारी (रिन्)—वि० [सं० अप√सृ+णिच्+णिनि] अपसारण करने–(दूर करने या हटाने) वाला।

अपसिद्धांत—पुं० [सं० प्रा० स०] १. वह विचार जो निश्चित सिद्धांत के विरुद्ध हो, अयुक्त सिद्धांत। २. न्यायमें वह निग्रह स्थान जहाँ पहले कोई सिद्धांत मान कर फिर उसके विरुद्ध कुछ कहा जाय।

अपसृत—वि० [सं० अप√सृ+क्त] १. जो अपना अधिकार, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य अथवा पद छोड़ कर चला गया हो। २. जिसे बलपूर्वक किसी पद या स्थान से हटा दिया गया हो। (एक्सपैल्ड) ३. जिसे किसी ने छोड़ दिया हो। परित्यक्त। (डिजर्टेड)

अपसृति—स्त्री० [सं० अप√सृ+क्तिन्] दे० 'अपसरण'।

अपसोस*—पुं० [फा० अफसोस] १. चिंता। २. दुःख। ३. पश्चात्ताप। पछतावा।

अपसोसना*—अ० [हिं० अपसोस] १. अफसोस करना। पछताना। २. चिंतित और दुःखी होना।

अपसौन*—पुं० [सं० अपसगुन] असगुन। बुरा सगुन।

अपसौना†—अ० [?] १. कहीं जाना या पहुँचना। २. प्राप्त होना। मिलना। उदा०—जीव काढ़ि लै तुम अपसई। वह भा कया जीव तुम भई। —जायसी।

अपस्कर—पुं० [सं० अप√कृ (करना) +अप्, नि० सुट्] १. गाड़ी का कोई हिस्सा। जैसे—पहिया, धुरी, जुआ आदि। २. विष्ठा। ३. योनि ४. गुदा।

अपस्कार—पुं० [सं० अप√कृ+घञ्, नि० सुट्] घुटनों के नीचे का भाग।

अपस्तंब—पुं० [सं० अप√स्था (ठहरना)+अम्ब, पृषो० सिद्धि] छाती के पास की वह नस जिसमें प्राण-वायु का निवास माना गया है।

अपस्तंभ—पुं० [सं० अप√स्तम्भ् (रोकना)+अच्] दे० 'अपस्तंब'।

अपस्तुति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. निंदा। २. शिकायत।

अपस्नात—वि० [सं० अप√स्ना (स्नान करना)+क्त] जिसने अपस्नान किया हो।

अपस्नान—पुं० [सं० प्रा० स०] वह स्नान जो कुटुंबी या संबंधी के मरने पर उदक क्रिया के समय किया जाता है।

अपस्पर्श—वि० [सं० अत्या० स०] स्पर्श की अनुभूति न करनेवाला अर्थात् संज्ञा-शून्य।

अपस्फीति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] = विस्फीति।

अपस्मार—पुं० [अप√स्मृ (स्मरण करना)+णिच्+अच्] १. एक रोग जिसमें रोगी का कलेजा धड़कता है और वह बेहोश होकर गिर पड़ता है। मिरगी। (एपाल्लेकसी) २. साहित्य में प्रेमी या प्रेमिका की वह अवस्था जिसमें विरह का बहुत कष्ट सहने के कारण वह मिरगी के रोगियों की तरह काँपकर या मूर्छित होकर गिर पड़े। (इसकी गणना संचारी भावों में है)।

अपस्मारी (रिन्)—वि० [सं० अपस्मार+इनि] जो अपस्मार रोग से पीड़ित हो।

अपस्मृति—वि० [सं० ब० स०] १. क्षीण स्मृतिवाला। भुलक्कड़। २. घबराया हुआ।

अपस्वर—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनुचित, बुरा, बेसुरा या गलत स्वर। (संगीत) २. तीव्र अथवा कर्णकटु स्वर। उदा०-आओ मेरे स्वर में गाओ जीवन के कर्कश अपस्वर। —पंत।

अपस्वार्थी—वि० [हिं० अप अपना+सं० स्वार्थी] स्वार्थी। मतलबी। वि० [सं० अप–स्वार्थ, प्रा० स०,+इनि] निकृष्ट स्वार्थवाला।

अपह—वि० [सं० अप√हन् (मारना)+ड] नाश करनेवाला। नाशक।

अपहत—वि० [सं० अप√हन्+क्त] १. नष्ट किया हुआ। मारा हुआ। २. दूर किया या हटाया हुआ।

अपहरण—पुं० [सं० अप√हृ (हरण करना)+ल्युट् अन] १. किसी की कोई चीज बलपूर्वक छीनकर ले जाना। २. रुपये वसूल करने या कोई स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को बल-पूर्वक कहीं

वि० १. अपवाद रूप में होनेवाला। २. विरोधी। ३. बाधक।

अपवादिक—वि० [सं० आपवादिक] १. अपवाद संबंधी। २. सामान्य नियम के विरुद्ध अथवा अपवाद के रूप में होनेवाला। (एक्सेप्शनल) ३. दे० 'अपवादक'।

अपवादित—भू० कृ० [सं० अप√वद्+णिच्+क्त] १. जिसका विरोध किया गया हो। २. निंदित।

अपवादी (दिन्)—वि० [सं० अप√वद्+णिच्+णिनि] दे० 'अपवादक'।

अपवारण—पुं० [सं० अप√वृ (आच्छादन)+णिच्+ल्युट्–अन] १. दूर करना। हटाना। २. आड़। व्यवधान।

अपवारित—भू० कृ० [सं० अप√वृ+णिच्+क्त] जिसका अपवारण किया गया हो।

अपवाह—पुं० [सं० अप√वह् (वहना, पहुँचाना)+घञ्] १. पानी बहने की नाली। २. एक प्रकार का छंद। ३. कम करना। घटाना। ४. किसी प्रकार के प्रभाव में पड़कर किसी ओर चलना या बढ़ना। ५. किसी उद्देश्य से नियत मार्ग से हटकर इधर-उधर होना। (ड्रिफ़्ट) ६. दे० 'अपवाहन'।

अपवाहक—वि० [सं० अप√वह्+णिच्+ण्वुल्–अक] अपवाहन करनेवाला।

अपवाहन—पुं० [अप√वह्+णिच्+ल्युट्–अन] किसी चीज़ को उचित या नियत स्थान पर न ले जाकर भूल से कहीं इधर-उधर ले जाना या पहुँचाना। (मिसकैरी)

अपवाहित—भू० कृ० [सं० अप√वह्+णिच्+क्त] जिसका अपवाहन हुआ हो। (मिसकैरिड)

अप विघ्न—वि० [सं० ब० स०] बाधा या विघ्न से रहित।

अपवित्र—वि० [सं० न० त०] [भाव० अपवित्रता] जो पवित्र न हो, फलतः न छूने योग्य या मलिन।

अपविद्ध—वि० [सं० अप√व्यध् (वेधना)+क्त] १. छोड़ा या त्यागा हुआ। २. वेधा हुआ। विद्ध।

पुं० वह पुत्र जिसको उसके माता-पिता ने त्याग दिया हो और किसी दूसरे ने पाला हो।

अपविद्या—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. ऐसी खराब या निषिद्ध विद्या जिसका अध्ययन करना उचित न हो। २. दे० 'अविद्या'।

अपविष—वि० [सं० ब० स०] जिसमें विष न हो, विष-रहित।

अपविषा—स्त्री० [सं० अपविष+टाप्] निर्विषी नामक पौधा।

अपवृक्त—वि० [अप√वृज् (त्याग)+क्त] पूरा या समाप्त किया हुआ।

अपवृति—स्त्री० [सं० अप√वृ (छेदन)+क्तिन्] १. छेद। सूराख। २. त्रुटि। दोष।

अपवृत्त—वि० [सं० अप√वृत् (बरतना)+क्त] १. क्रम, संबंध, स्थिति आदि के विचार से जो उलटा या विपरीत हो। २. अंदर की ओर उलटा, घूमा या मुड़ा हुआ। (इन्वर्टेड)

अपवृत्ति—स्त्री० [सं० अप√वृत्+क्तिन्] १. अपवृत होने की अवस्था या भाव। २. अंत। समाप्ति।

अपवेध—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा वेध जो उचित या उपयुक्त स्थान पर न हुआ हो।

अपव्यय—पुं० [सं० प्रा० स०] १. धन का आवश्यकता या उचित मात्रा से अधिक व्यय करना। २. व्यर्थ किया जानेवाला व्यय। ३. बुरे कामों में होनेवाला व्यय।

अपव्ययी (यिन्)—वि० [सं० अपव्यय+इनि] अपव्यय करनेवाला। व्यर्थ अधिक खर्च करनेवाला।

अपव्रत—वि० [सं० ब० स०] १. व्रत का पालन न करनेवाला। २. आज्ञा न माननेवाला।

पुं० [प्रा० स०] अनुचित या निंदनीय व्रत।

अपशंक—वि० [सं० ब० स०] १. शंकारहित। २. निर्भीक। निडर।

अपशकुन—पुं० [सं० प्रा० स०] अशुभ या बुरा शकुन अथवा लक्षण। असगुन।

अपशद—पुं० [सं० अप√शद् (तीक्ष्ण करना)+अच्] दे० 'अपसद'।

अपशब्द—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अनर्गल, अशुद्ध, या निरर्थक। २. गाली। दुर्वचन।

अपशम—पुं० [सं० अप√शम् (शान्ति)+घञ्] १. अंत। समाप्ति। २. ठहराव। विराम।

अपशु—वि० [सं० न० त०] १. जो पशु न हो। २. [न० ब०] जिनके पास पशु न हों।

पुं० [न० त०] बुरा पशु।

अपशोक—वि० [सं० ब० स०] शोक-रहित।

पुं० अशोक वृक्ष।

अपश्चिम—वि० [सं० न० त०] १. जो पश्चिम या बाद में न हो। २. जिसके पश्चिम या बाद में और कोई न हो।

अपश्वास—पुं० [सं० अप० स०] अपानवायु।

अपश्रय—पुं० [सं० अप√श्रि (सेवा)+अच्] तकिया।

अपश्री—वि० [सं० प्रा० ब०] जिसकी श्री नष्ट हो चुकी हो। शोभा, सौंदर्य आदि से रहित।

अपश्रुति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] भाषा विज्ञान में, एक ही धातु से बने शब्दों में दिखाई देनेवाला वह विकार जो व्यंजनों के प्रायः ज्यों के त्यों बने रहने पर भी केवल उनके स्वरों के स्थान परिवर्तन से होता है। अक्षरावस्थान। जैसे—बढ़ना से बढ़ाव और बढ़िया रूप अपश्रुति के उदाहरण हैं।

अपष्ठु—वि० [सं० अप√स्था (ठहरना)+कु] उलटा। विपरीत।

अपसंचय—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अपसंचित] अनियमित रूप से और अधिक मूल्य पर बेचने के उद्देश्य से माल इकट्ठा करके और छिपाकर अपने पास रखना। (होर्डिंग)

अपसगुन—पुं० दे० 'अपशकुन'।

अपसद—पुं० [सं० अप√सद् (विशीर्ण होना)+अच्] उच्च जाति के पुरुष और नीच जाति की स्त्री से उत्पन्न संतान।

अपसना—अ० [सं० अपसरण=खिसकना] १. दूर हटना। सरकना। २. भाग जाना। ३. पहुँचना। प्राप्त होना।

अपसर—पुं० [सं० अप√सृ (गति)+अच्] १. पीछे हटना। अपसरण। २. प्रस्थान ३. पलायन। भागना। ४. उचित कारण। ५. अंतर। दूरी। (ज्या०) ६. वाष्प-कण।

अपसरक—वि० [सं० अपसारक] १. भाग जानेवाला। २. जो अपना उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य, पद आदि छोड़कर भाग गया हो। (डिज़र्टर)

अपसरण—पुं० [सं० अप√सृ (गति+ल्युट्–अन] १. दूर होना। हटना।

से उठा ले जाना। (किडनैपिंग) ३. छिपाव। दुराव। ४. चुंगी, महसूल आदि बचाने के लिए छिपाकर माल ले जाना। (को०)

अपहरणीय—वि० [सं० अप√हृ+अनीयर्] १. (वस्तु या व्यक्ति) जिसका अपहरण किया जा सकता हो अथवा जिसका अपहरण होने को हो। २. गोपनीय।

अपहरना*—स० [सं० अपहरण] १. अपहरण करना। छीनना। २. लूटना। ३. चुराना। ४. कम करना। घटाना। ५. दूर या नष्ट करना।

अपहर्त्ता (र्तृ)—वि० [सं० अप√हृ+तृच्] अपहरण करने या छीनने या हर लेनेवाला। २. लूटनेवाला। ३. छिपानेवाला।

अपहसित—वि० [सं० अप√हस् (हँसना)+क्त] १. अकारण हँसनेवाला। २. जिसका अपहास या उपहास हुआ हो।

अपहस्त—पुं० [सं० प्रा० स०] १. दूर फेंकना। २. हटाना। ३. लूटना। ४. अर्द्धचंद्र।

अपहस्तित—वि० [सं० अपहस्त+णिच्+क्त] १. गर्दन में हाथ देकर निकाला हुआ। अर्द्धचंद्रित। २. फेंका हुआ। ३. परित्यक्त।

अपहान—पुं० [सं० अप√हा (त्याग)+क्त] १. परित्याग। २. कम होना। ३. गायब होना।

अपहानि—स्त्री० [अप√हा+क्तिन्] दे० 'अपहान'।

अपहार—पुं० [सं० अप√ हृ (हरण करना)+घञ्] [कर्त्ता, अपहारक, भू० कृ० अपहृत] १. दूसरे की चीज छीनना। अपहरण करना। २. विधिक क्षेत्र में, धोखे या बेईमानी से किसी के धन या संपत्ति पर अधिकार करना और उसे भोगना। (एम्बेजल्मेंट) ३. छिपाव। दुराव।

अपहारक—वि० [सं० अप√हृ+ण्वुल्—अक] अपहरण करने, छीनने या लूटनेवाला।

पुं० १. चोर। २. डाकू। ३ लुटेरा।

अपहारित—भू० कृ० [सं० अप√हृ+णिच्+क्त]=अपहृत।

अपहारी (रिन्)—पुं० [सं० अप√हृ+णिनि] १. अपहरण करने या छीननेवाला। २. नाश करनेवाला।

अपहार्य—वि० [सं० अप√हृ+ण्यत्] १. (पदार्थ) जिसका अपहरण हो सके। जो छीना या लूटा जा सके। २. (व्यक्ति) जिसकी चीज छीनी या लूटी जा सके।

अपहास—पुं० [अप√हस् (हँसना) +घञ्] १. अनुचित रूप से या अनुपयुक्त समय पर होनेवाला हास्य। २. अनुचित या बुरी हँसी। उपहास।

अपहृत—भू० कृ० [अप√हृ+क्त] १. (पदार्थ) जो छीना अथवा जिस पर जबरदस्ती अधिकार किया गया हो। २. (व्यक्ति) जिसकी चीज छीनी या लूटी गई हो।

अपहेला—पुं० [सं० प्रा० स०] १. तिरस्कार। २. डाँट-फटकार। ३. घुड़की और झिड़की।

अपह्नव—पुं० [सं० अप√ह्नु (हटाना)+अप्] १. कोई बात किसी से छिपाना। २. सच बात छिपाना। ३. टाल-मटोल। बहाना। ४. तृप्त या संतुष्ट करना। ५. प्रेम। ६. दे० 'अपह्नुति'।

अपह्नुति—स्त्री० [सं० अप√ह्नु+क्तिन्] १. दुराव। छिपाव। २. टाल-मटोल। बहानेबाजी। ३. एक काव्यालंकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। (कन्सीलमेंट) जैसे—(क) यह मुख नहीं चंद्रमा ही है। (ख) इन्हें मनुष्य मत समझो यह साक्षात् देवता ही हैं। इसके हेत्वापह्नुति, कैतवापह्नुति, परिहासापह्नुति, छेकापह्नुति, भ्रांतापह्नुति, पर्यस्तापह्नुति आदि अनेक भेद हैं।

अपांक्त—वि० [सं० न० त०] (व्यक्ति) जो बिरादरी या समाज की पंक्ति में बैठकर सबके साथ खान-पान का अधिकारी न हो। जाति-बहिष्कृत।

अपांग—पुं० [सं० अप√अंग् (गति)+घञ्] १. आँख का कोना। २. तिरछी नजर। कटाक्ष। ३. संप्रदायसूचक तिलक। ४. कामदेव। ५. अपामार्ग।

वि० [सं० अप-अंग, ब० स०] १. शरीर रहित। अशरीरी। २. जिसे कोई अंग न हो अथवा टूटा-फूटा या बेकाम हो। ३. अपाहिज। पंगु।

अपांनाथ—पुं० [सं० ष० त०] १. समुद्र। २. वरुण ३. विष्णु।

अपांनिधि—पुं० [सं० ष० त०] = अपांनाथ।

अपांपति—पुं० [सं० ष० त०] =अपांनाथ।

अपांवत्स—पुं० [सं० ष० त०] चित्रा नक्षत्र से पाँच अंश उत्तर का एक तारा।

अपांशुला—वि०, स्त्री० [सं० पांशु+ लच्-टाप् + न०त०] पतिव्रता।

अपा*—स्त्री० [हिं० आपा] अभिमान।

अपाइ—स्त्री० [हिं० अपाय] १. अनरीति। २. अत्याचार। उदा०-तजि कै अपाइ तीर बसैं सुख पाइ गंगा।—सेनापति।

अपाउ*—पुं०= अपाय। उदा०—जोगवत अनट अपाउ।—तुलसी।

वि० [हिं० अ+पाँव] बिना पैर का।

अपाक—वि० [सं० न० ब०] जो अभी अच्छी तरह या पूरा पका न हो। अपक्व। कच्चा।

पुं० [न० त०] १. कच्चे होने की अवस्था या भाव। कच्चापन। २. अजीर्ण रोग।

वि० नापाक।

अपाकरण—पुं० [सं० अप-आ√कृ (करना) +ल्युट्—अन] १. दूर करना २. हटाना। ३. ऋण, देन आदि चुकाना। (लिक्विडेशन ऑफ डेट)

अपाकर्म (न्)—पुं० [सं० अप-आ√कृ (करना) + मनिन्] १. ऋण आदि का परिशोधन। अदायगी। २. वह कार्य जिसमें किसी व्यापारिक संस्था का देना-पावना चुकाकर उसका सारा व्यापार अधिकार में लिया जाता है या बंद किया जाता है। (लिक्विडेशन ऑफ कम्पनी)

अपाकृति—स्त्री० [अप-आ√कृ+ क्तिन्] =अपाकरण।

अपाची—स्त्री० [सं० अप√अञ्च् (गति) + क्विप्-ङीप्] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या पश्चिम की दिशा।

अपाच्य—वि० [सं० अपच् (पकाना)+ण्यत् न० त०] १. जो पकाया न जा सके। २. जो पचता न हो अथवा जो पच न सके। ३. [अपाची+यत्] दक्षिणी या पश्चिमी दिशा का।

अपाटव—पुं० [सं० न० त०] १. पटुता न होने का भाव। फूहड़पन। अनाड़ीपन। २. भद्दापन। ३. कुरूपता। ४. बीमारी। रोग। ५. मद्य। शराब।

वि० [न० ब०] १. अपटु। अनाड़ी। २. मंद। सुस्त ३. कुरूप। भद्दा। ४. रोग-ग्रस्त। बीमार।

अपाठ्य—वि० [सं० न० त०] १. जो पढ़ने योग्य न हो। २. जो पढ़ा न जा सके।

अपात्र—वि० [सं० न० त०] जो ठीक या उपयुक्त पात्र अथवा अधिकारी न हो।

पुं० अनुपयुक्त या बुरा पात्र।

अपात्रीकरण—पुं० [सं० अपात्र+च्वि√कृ+ल्युट्—अन] १. अशोभनीय कार्य करना। २. वह कर्म जिसे करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है।

अपादक—वि० [सं० न० ब०,कप्] जिसमें या जिसे पद न हों। पद-हीन।

अपादान—पुं० [सं० अप-आ√दा+ल्युट्-अन] १. किसी चीज में से कुछ निकालना, लेना या हटाना। २. अलग करना। ३. वह चीज जिसमें से कोई दूसरी चीज निकाली या हटाई जाय। ४. व्याकरण में, एक कारक। विशेष—दे० 'अपादान कारक'।

अपादान कारक—पुं० [सं० ष० त०] व्याकरण में, छः कारकों में से पाँचवाँ कारक जो वाक्य में उस स्थिति का सूचक होता है, जिससे किसी वस्तु का कल्पित या वास्तविक विश्लेष होता अथवा किसी क्रिया के आरंभ होने का अधिष्ठान या आधार सूचित होता है। इसका चिह्न 'से' विभक्ति है (एब्लेटिव केस) जैसे-'घर से चलना' में 'घर' अपादान-कारक में है।

अपान—पुं० [सं०अप-आ√नी (ले जाना)+ड] १. पाँच प्राणों में से एक जिसकी गति नीचे की ओर होती है। २. गुदा के ऊपरी भाग में स्थित वह वायु जो मल-मूत्र बाहर निकालती है। ३. गुदा-मार्ग से बाहर निकलनेवाली वायु। पाद। ४. गुदा।

वि० दुःख दूर करनेवाला।

पुं० ईश्वर।

पुं० [हिं० अपना] १. अपनापन। आत्मभाव। २. आत्म-ज्ञान। सुधि। उदा०-जनक समान अपान बिसारे।—तुलसी। ३. आत्म-गौरव।

†सर्व० =अपना।

अपान-द्वार—पुं० [ष० त०] गुदा।

अपानन—पुं० [सं० अप√अन् (साँस लेना)+ल्युट्—अन] १. प्राण-वायु को अंदर ले जाना। साँस खींचना। २. मल-मूत्र आदि का त्याग।

वि० [सं० अप+आनन, ब० स०] जिसका आनन या मुँह न हो। मुख-रहित।

अपान-वायु—पुं० [ष० त०] गुदा में से निकलनेवाली वायु जो शरीर की पाँच वायुओं में से एक कही गई है। पाद।

अपाना†—सर्व०=अपना।

अपानृत—वि० [सं० अप-अनृत, ब० स०] अनृत या मिथ्या से भिन्न; अर्थात् सत्य।

अपाप—वि० [न० ब०] [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पाप-रहित।

पुं० [सं० न० त०] वह जो पाप न हो अर्थात् पुण्य।

अपामार्ग—पुं० [सं०अप√मृज् (शुद्धि)+घञ्] चिचड़ा। लटजीरा।

अपामार्जन—पुं० [सं० अप—आ√मृज्+णिच्+ल्युट्-अन] १. सफाई। शुद्धि। २. दूर करना (रोग आदि)।

अपामृत्यु—स्त्री०=अपमृत्यु।

अपाय—पुं० [सं० अप√इ (गति)+अच्] १. दूर या पीछे हटना। अपगमन। २. अलगाव। पार्थक्य। ३. नाश। ४. नीति-विरुद्ध आचरण। ५. किसी के प्रति किया जानेवाला अनुचित या हानिकारक कार्य। ६. उत्पात। उपद्रव। ७. अंत। ८. लोप। ९. विपत्ति या भय की आशंका।

वि० [सं० अ=नहीं+पाद, प्रा० पाय=पैर] बिना पैर का। लँगड़ा।

वि० [सं० अनुपाय] जिसके पास कोई उपाय न रह गया हो। निरुपाय।

अपायी (यिन्)—वि० [सं० अप√इ+णिनि] [स्त्री० अपायिनी] १. नष्ट होनेवाला। नश्वर। २. अस्थिर। अनित्य। ३. अलग रहने या होनेवाला। ४. हानिकारक।

अपार—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका पार न हो। सीमा-रहित। अनंत। २. बहुत अधिक। ३. उग्र। तीव्र। प्रचंड।

पुं० १. समुद्र। सागर। १. नदी का सामनेवाला किनारा। ३. असहमति। ४. सांख्य के अनुसार वह तुष्टि जो अपमान, परिश्रम आदि से बचने पर होती है।

अपारग—वि० [सं० न० त०] १. जो पार जानेवाला न हो। २. अयोग्य। ३. असमर्थ।

अपारदर्शक—वि० = अपार-दर्शी।

अपारदर्शिता—स्त्री० [सं० अपारदर्शिन्+तल्-टाप्] अपारदर्शी होने की अवस्था, गुण या भाव। (ओपैसिटी)

अपारदर्शी (शिन्)—वि० [सं०न० त०] जो पारदर्शी न हो। जिसके उस पार की चीज दिखाई न दे।(ओपेक)

अपारा—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] धरती या पृथ्वी, जिसका कहीं पार नहीं है।

अपार्थ—वि० [सं० अप—अर्थ, ब० स०] १. अर्थ से रहित या हीन, फलतः निरर्थक। व्यर्थ। २. अनुचित, अशुद्ध या दूषित अर्थवाला। ३. जिसका कोई उद्देश्य, प्रभाव या फल न हो। निष्फल। ४. विनष्ट।

पुं० साहित्य में, पद या वाक्य का अर्थ स्पष्ट न होने का दोष।

अपार्थक—पुं० [सं० अपार्थ+कन्] न्याय में एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के प्रयोग से होता है जिनमें पूर्वापर का विचार या संबंध न हो।

वि०=अपार्थ।

अपालंक—पुं० [सं०] पालक नाम का साग।

अपाल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई पालक अथवा रक्षक न हो। २. जिसकी रक्षा न की गई हो। अरक्षित। ३. जो सुरक्षित न हो। असुरक्षित।

अपाव*—पुं० [सं० अपाय=नाश] १. अन्याय। २. उत्पात। उपद्रव। ३. खराबी। बुराई।

अपावन—वि० [सं० न० त०] जो पावन या पवित्र न हो। अपवित्र।

अपावरण—पुं० [सं० अप—आ√वृ (ढँकना)+ल्युट्—अन] १. आवरण हटाना। २. फिर से प्रकाश में या सामने लाना।

अपावर्त्तन—पुं० [सं० अप—आ√वृत् (बरतना)+ल्युट्—अन] १. पीछे की ओर आना या हटना। २. कथन, वचन आदि का पालन न करना या उसके पालन से पीछे हटना। (रिट्रीट) ३. लौटना। वापस आना। ४. भागना। ५. चक्कर लगाना। घूमना।

अपावृत—वि० [सं० अप—आ√वृ (आच्छादन)+क्त] १. जिस पर से आवरण हटा दिया गया हो। २. जो फिर से प्रकाश में लाया गया हो। ३. जो नियंत्रण में न हो। अनियंत्रित।

अपावृति—स्त्री० [सं० अप-आ√वृ+क्तिन्] १. अपावर्त्तन । २. छिपने का स्थान।

अपावृत्त—भू० कृ [सं० अप-आ√वृत् (वरतना) +क्त] १. लौटाया या पीछे हटाया हुआ। २. तिरस्कार-पूर्वक अस्वीकृत किया हुआ।

अपाश्रय—वि० [सं० अप-आ√श्रि (सेवा)+अच्] जिसे कोई आश्रय या सहारा न हो। निराश्रय।
पुं० १. आँगन के बीच का मंडप। २. शामियाना। ३. विस्तर या पलंग का सिरहाना। ४. वह जिसका आश्रय लिया जाय।

अपाश्रित—वि० [सं० अप-आ√श्रि (सेवा)+क्त] १. जो एक ही आश्रय या स्थान में रहकर समय विताता हो। एकांत-सेवी। २. संसार-त्यागी। विरक्त।

अपासरण—पुं० [सं० अप-आ√सृ (गति) +ल्युट्-अन] १. दूर हटने या हटाने की क्रिया या भाव। २. भागना।

अपाहज—वि० [सं० अपार्थेय=जो चल न सके, प्रा० अपाहेज्ज] १. अंग-हीन। २. लूला-लँगड़ा। ३. काम करने के अयोग्य। ४. आलसी।

अपाहिज—वि० =अपाहज।

अपिंडी (डिन्)—वि० [सं० पिण्ड+इनि, न० त०] पिंड-रहित। विना शरीर का।

अपि—अव्य० [सं०√पि (जाना)+क्विप्, न० त०] १. भी। २. ही। ३. निश्चित रूप से। अवश्य।

अपिच—अव्य० [द्व० स०] १. और भी। पुनश्च। २. बल्कि। वरन्।

अपितृक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसका पिता न हो। २. दे० 'अपैतृक'।

अपितु—अव्य० [द्व० स०] १. किंतु। लेकिन। २. बल्कि। ३. तो भी। तथापि।

अ-पित्र्य—वि० [न० त०]=अपैतृक।

अपिधान—पुं० [सं० अपि√धा (धारण)+ल्युट्-अन] १. ढकनेवाली चीज। ढक्कन। २. ढकने की क्रिया या भाव।

अपिहित—भू० कृ० [सं० अपि√धा+क्त] [स्त्री० अपिहिता] आच्छादित। आवृत्त। ढका हुआ।

अपीच*—वि० [सं० अपीच्य] १. सुंदर। मनोहर । २. अच्छा। बढ़िया। उदा०—फहर गई धौं कवे रंग के फुहारन में, कैधों तराबोर भई अतर-अपीच में।—पद्माकर।

अपीच्य—वि० [सं० अपि√च्यु (गति)+ड, दीर्घ] १. अति सुंदर। २. गुप्त। ३. छिपा हुआ।

अपीत—वि० [सं० न० त०] १. जो पीले वर्ण का न हो। २. (पदार्थ) जो पिया न गया हो। ३. (व्यक्ति) जिसने पिया न हो।

अपीति—स्त्री० [सं० अपि√इ (गति) +क्तिन्] १. प्रवेश करना या पहुँचना। २. मृत्यु। ३. प्रलय।

अपीनस—पुं०=पीनस (रोग)।

अपील—स्त्री० [अं०] १ विचार, स्वीकृति, न्याय या सहायता के लिए विनय-पूर्वक किसी से की जानेवाली प्रार्थना या निवेदन । २. छोटे न्यायालय का निर्णय बदलवाने अथवा उसपर फिर से विचार करने के लिए उससे बड़े न्यायालय के सामने उपस्थित किया जानेवाला आवेदन या प्रार्थना।

अपीली—वि० [अं० अपील] अपील-संबंधी। जैसे—अपीली काररवाई।

अपीव*—वि०=अपेय।

अपीह—अव्य० [सं० अपि+इह] यह भी।

अपु—अव्य० [हिं० अपना<सं० आत्मनः] १. आप। स्वयं। २. आपस में। उदा०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु में भैया-भैया। —सत्य-नारायण।
पुं०*—दे० 'आपस'।

अपुट्ठना—अ० [सं० आपृष्ठ] पीछे लौटना। वापस आना।

अपुण्य—वि० [सं० न० त०] १. जो पुण्य या पवित्र न हो। अपवित्र। २. बुरा।
पुं० १. पुण्य का अभाव या विरोधी भाव। २. पाप।

अपुत्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे पुत्र न हो। निःसंतान। *२.=कुपुत्र।

अपुत्रक—वि० [न० ब०, कप्] [स्त्री० अपुत्री]=अपुत्र ।

अपुत्रिक—पुं० [सं० न० ब०, कप्, ह्रस्व ?] वह व्यक्ति जिसे पुत्र न हो, केवल ऐसी पुत्री हो जिसको लड़का न हो।
विशेष—धर्म-शास्त्र के अनुसार ऐसी लड़की इसी लिए पुत्र के स्थान पर ग्रहण नहीं की जा सकती है। (दे० 'पुत्रिका')

अपुत्रिका—स्त्री० [सं० न० ब०, कप्-टाप्, इत्व] अपुत्रक पिता की ऐसी पुत्री जिसके आगे लड़का न हो और इसी लिए जो पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी न हो सकती हो।

अपुनपौ*—पुं०= अपनपौ।

अपुव्व*—वि०=अपूर्व।

अपुराण—वि [सं० न० त०] जो पुराना न हो, फलतः आधुनिक या नया।

अपुरुष—वि० [सं० न० त०] १. जो पुरुष न हो। २. (कार्य या बात) जो मानव धर्म के अनुरूप या उपयुक्त न हो । ३. अमानुषिक।

अपुवै—अव्य० [हिं० अपु+वै (प्रत्य०)] १. आप ही। स्वयं। २. आप ही आप। स्वतः।

अपुष्कल—वि० [सं० न० त०] १. जो पुष्कल या बहुत न हो। थोड़ा। २. जो श्रेष्ठ न हो। ३. नीचा। निम्न।

अपुष्ट—वि० [न० त०] १. जो पुष्ट न हो। २. जिसका पालन-पोषण अच्छी तरह से न हुआ हो। ३. मंद (स्वर)। ४. (कथन या तथ्य) जिसकी पुष्टि न हुई हो।

अपुष्पफल—वि० [सं० अपुष्प, न० ब०, अपुष्प-फल, ब० स०] (वृक्ष) जो विना फूले ही फल देता हो। जैसे—कटहल, गूलर आदि।
पुं० उक्त प्रकार का वृक्ष या उसका फल।

अपूजा—स्त्री० [सं० न० त०] १. आदर, भक्ति, श्रद्धा आदि का अभाव। २. अनादर या अपमान करने की क्रिया या भाव।

अपूठना*—स० [सं० आपोथन] १. नष्ट या वरबाद करना। २. चीरना-फाड़ना। ३. उलटना-पलटना।

अपूठा—वि० [सं० अपुष्ट, प्रा० अपुठ] १. जो पुष्ट या प्रौढ़ न हो। कच्चा २. जिसे ठीक और पूरा ज्ञान न हो। ३. जो पूर्णता तक न पहुँचा हो। ४. जिसमें अभी कुछ काम करना बाकी हो। अधूरा। उदा०—रावन हति लै चलौं साथ ही लंका धरौं अपूठी।—सूर। ५. अद्भुत । विलक्षण। ६. उलटा। विपरीत।

क्रि० वि० [सं० आ+पृष्ठ] पीछे की ओर। उलटी दिशा में। उदा०—सजि अपूठा वाहुड़उ, मालवणी मुई।—ढोला मारू।
वि० [सं० अस्फुट] १. जो विकसित न हुआ हो। २. जो खिला न हो।
अपूत—वि० [सं० न० त०] १. जो पूत या पवित्र न हो। अपवित्र। २. जो परिष्कृत या स्वच्छ न हो, फलतः गंदा या मैला।
वि० [हिं० अ+पूत=पुत्र] जिसे पुत्र या बेटा न हो। निस्संतान। पुं० दे० 'कपूत'।
अपूता†—वि० [सं० अपुत्रक] जिसे कोई लड़का-लड़की न हो। निस्संतान।
अपूप—पुं० [सं० √पू (फटकना)+प, न० त०] १. गेहूँ। २. पूआ या मालपूआ (पकवान)। ३. शहद का छत्ता।
अपूब*—वि०=अपूर्व।
अपूर*—वि० [सं० आपूर्ण] १. अच्छी तरह भरा हुआ। भर-पूर। २. पूर्ण। पूरा। ३. बहुत अधिक।
वि०=अपूर्ण।
अपूरना†—स० [सं० आपूर्णन] १. पूर्ण करना। भरना। २. (फूँक कर बजाया जानेवाला बाजा) फूँकना। बजाना। जैसे—शंख अपूरना।
अपूरब*—वि०=अपूर्व।
अपूरा*—वि० [सं० आ+पूर्ण] [स्त्री० अपूरी] १. भरा हुआ। २. फैला हुआ। व्याप्त।
वि० १. अपूर्ण। २. अधूरा।
अपूर्ण—वि० [सं० न० त०] १. जो पूर्ण या भरा हुआ न हो। खाली। रिक्त। २. जिसमें किसी प्रकार की कमी, त्रुटि या दोष हो। (इम्परफेक्ट) ३. (कार्य या वस्तु) जो अभी पूर्ण या समाप्त न हुई हो। जिसका कुछ अंश या भाग अभी पूरा होने को हो। अधूरा। (इन्कम्प्लीट) ४. जिसमें किसी बात की अपेक्षा हो। ५. अयथेष्ट।
अपूर्णता—स्त्री० [सं० अपूर्ण+तल्—टाप्] अपूर्ण होने की अवस्था, गुण या भाव।
अपूर्णभूत—पुं० [सं० न० त०] क्रिया का वह भूतकालिक रूप जिसमें क्रिया की समाप्ति न सूचित होती हो। जैसे—वह खाता था। (व्या०)
अपूर्व—वि० [सं० न० त०] १. जैसा पहले कभी न रहा हो या न हुआ हो। २. बिलकुल नये ढंग का। नवीन ३. अद्वितीय। अनुपम। ४. अद्भुत। विलक्षण।
पुं० ऐसी चीज जिसकी सत्ता अनुमान, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध न हो।
अपूर्वता—स्त्री० [सं० अपूर्व+तल्—टाप्] अपूर्व होने की अवस्था, गुण या भाव।
अपूर्व रूप—पुं० [सं० न० ब०] एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें पूर्व गुण की प्राप्ति न होने का उल्लेख होता है। (पूर्व-रूप नामक अलंकार का विपरीत रूप)
अपूर्व वाद—पुं० [मध्य० स०] ब्रह्म अथवा तत्त्व ज्ञान के संबंध में होनेवाला वाद-विवाद। तर्क-वितर्क।
अपूर्व-विधि—स्त्री० [सं० स० त०] ऐसी वस्तु या स्थिति प्राप्त करने का आशा-मूलक विधान जिसकी सत्ता अनुमान, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध न हो सके। जैसे—मोक्ष या स्वर्ग की प्राप्ति के लिए आराधना या यज्ञ करना चाहिए।
अपृक्त—वि० [सं० √पृच् (संपर्क)+क्त, न० त०] १. जिसका किसी से संपर्क या संबंध न हो। असंबद्ध। २. जिसमें कोई मिलावट न हो। खालिस। विशुद्ध।
पुं० पाणिनि के अनुसार एक अक्षरवाला प्रत्यय।
अपेक्षक—वि० [सं० अप√ईक्ष् (देखना)+ण्वुल्—अक] १. अपेक्षण करने या देखनेवाला। २. किसी की अपेक्षा करने या रखनेवाला।
अपेक्षण—पुं० [सं० अप√ईक्ष्+ल्युट्—अन] १. चारों ओर देखना। २. किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए कुछ आकांक्षा करना। चाहना। ३. आसरा देखना। प्रतीक्षा करना। ४. पालन-पोषण, रक्षा आदि करना। ५. दे० 'अपेक्षा'।
अपेक्षणीय—वि० [सं० अप√ईक्ष्+अनीयर्] जिसकी अपेक्षा की जा सके या करना आवश्यक हो। चाहा हुआ। वांछनीय।
अपेक्षया—क्रि० वि० [सं० तृ० विभक्ति का रूप] किसी की अपेक्षा या तुलना में। अपेक्षाकृत।
अपेक्षा—स्त्री० [सं० अप√ईक्ष्+अ—टाप्] [वि० आपेक्षिक] १. इधर-उधर या चारों ओर देखना। २. कुछ पाने के लिए उस पर दृष्टि रखना। ३. अस्तित्व, क्रम, विकास, स्थिति आदि के विचार से बातों या वस्तुओं में रहनेवाला आवश्यक या स्वाभाविक संबंध। जैसे—ऐसी थोथी बात तो वही मानेगा जिसमें अपेक्षा-बुद्धि न होगी। ४. किसी बात की कमी की सूचक ऐसी स्थिति जिसमें उस बात के हुए बिना पूर्णता न आती हो। (रिक्वायरमेंट) जैसे—(क) इस संसार में आने के लिए जीव को भौतिक शरीर की अपेक्षा होती है। (ख) अभी इस पुस्तक में थोड़े विशद विवेचन और कुछ उदाहरणों की अपेक्षा है। ५. आवश्यकता। जरूरत। ६. आसरा। प्रतीक्षा। जैसे—वहाँ कुछ लोग आपकी अपेक्षा में खड़े हैं। ७. दे० 'अपेक्षण'।
अपेक्षाकृत—क्रि० वि० [तृ० त०] (किसी की) तुलना या मुकाबले में। अपेक्षा का ध्यान रखते हुए। अपेक्षया।
अपेक्षा-बुद्धि—स्त्री० [मध्य० स०] कार्य-कारण का संबंध, पारस्परिक घटना-क्रम आदि ठीक तरह से समझने की मानसिक शक्ति।
अपेक्षित—वि० [सं० अप√ईक्ष्+क्त] जिसकी अपेक्षा (आकांक्षा या आवश्यकता) हो।
अपेक्षी (क्षिन्)—वि० [सं० अपेक्षा+इनि] किसी की अपेक्षा करने या रखनेवाला। जिसे किसी की अपेक्षा हो।
अपेक्ष्य—वि० [सं० अप√ईक्ष्+ण्यत्]=अपेक्षणीय।
अपेख†—स्त्री० [सं० अपेक्षा] १. आवश्यकता। अपेक्षा। २. आकांक्षा। चाह। उदा०—स्याम-सुंदर संग मिलि खेलन को आवत हिये अपेखैं।—कुंभनदास।
वि० [हिं० अ+पेखना=देखना] जो देखा न गया हो।
अपेच्छा*—स्त्री०=अपेक्षा।
अपेत—वि० [सं० अप√इ (गति)+क्त] १. दूर गया या हटा हुआ। २. भागा हुआ। ३. ठगा हुआ। वंचित। ४. खुला हुआ। मुक्त।
अपेय—वि० [सं० न० त०] १. (तरल पदार्थ) जो पेय या पिये जाने के योग्य न हो या जिसे पीना उचित न हो। जैसे—भले आदमियों के लिए मदिरा अपेय है। २. जो पिया न जा सकता हो।

अपेल*—वि० [हिं० अ=नहीं+पेलना=दबाना] १. जिसे टाल, ठेल या हटा न सकें। २. जिसका खंडन या विरोध न किया जा सके। ३. अटल। सुनिश्चित।

अपैठ*—वि० [सं० अप्रविष्ट, पा० अपविट्ठ, प्रा० अपइट्ठ] १. (स्थान) जहाँ तक पहुँचा न जा सके। अगम्य। २. जिसकी पहुँच न हो सके।

अपैतृक—वि० [सं० न० त०] जो पैतृक न हो। जो पूर्वजों से प्राप्त न हुआ हो।

अपोगंड—वि० [सं० न० त०] १. जो पोगंड न हो, अर्थात् १६ वर्ष से अधिक अवस्थावाला। २. वयस्क। बालिग। ३. [अपस्-गंड स० त०] लँगड़ा। लुंजा। ४. डरपोक।

अपोढ—वि० [सं० अप√वह् (ढोना)+क्त] जो कहीं और ले जाया गया हो। उठाया या हटाया-बढ़ाया हुआ।

वि० [सं० अ+हिं० पोढ़ा=प्रौढ़] जो प्रौढ़ या पुष्ट न हो।

अपोह—पुं० [सं० अप√ऊह् (गति आदि)+क] १. दूर करना। हटाना। २. कोई बात अच्छी तरह समझ-बूझकर अपना सन्देह दूर करना। ३. तर्क-वितर्क समझने-बूझने की शक्ति। ४. किसी तर्क का खंडन करने के लिए उसके विपरीत तर्क करना, जो बुद्धि का एक गुण माना गया है। 'ऊह' का विपर्याय। ५. बौद्ध तर्क और दर्शन में, जो कुछ अपना या अपने काम का हो, उसके अतिरिक्त अन्य सब चीजों या बातों का त्याग।

अपौतिक—वि० [सं० न० त०] (घाव या फोड़ा) जिसमें अभी विपाक्त कीटाणुओं का प्रवेश या सृष्टि न हुई हो। जिसमें सड़ायँध न आई हो। 'पौतिक' का विपर्याय। (ए-सेप्टिक)

अपौरुष—पुं० [सं० न० त०] १. पौरुष अर्थात् मनुष्यता या वीरता आदि का अभाव। २. ऐसा लोकोत्तर गुण या शक्ति जो साधारण मनुष्यों में न होती हो।

वि० [न० ब०] १. जो मनुष्यों का-सा न हो। २. लोकोत्तर गुणों से युक्त।

अपौरुषेय—वि० [सं० न० त०] [भाव० अपौरुषेयता] १. जो पौरुषेय या मनुष्य का बनाया हुआ न हो, बल्कि ईश्वर या देवताओं का बनाया हुआ हो। २. (कार्य) जो मनुष्य की शक्ति के बाहर हो।

अप्प*—सर्व० [सं० आत्मन्] १. आत्म। अपना। २. आप। स्वयं।

*वि०=अल्प।

अप्पन—सर्व० [सं० आत्मन्] अपना।

†सर्व० बहु० हम लोग। (महाराष्ट्र)

*पुं०=अर्पण।

अप्पना—स० [सं० अर्पण] १. अर्पण करना। २. देना। उदा०—कहे मुज्झ गुन तँ भले मो अप्पो उपदेस।—चंदवरदाई।

सर्व०=अपना।

अप्यय—पुं० [सं० अपि√इ+अच्] १. अपगमन। २. प्रस्थान। रवानगी। ३. नाश। ४. शरीर के अंगों का जोड़।

अप्ययन—पुं० [सं० अपि√इ+ल्युट्-अन] १. संभोग। २. दे० 'अप्यय'।

अप्रकंप—वि० [सं० न० ब०] १. कंप-हीन। २. जिसे हिलाया न जा सके। अचल। स्थिर। ३. टिकाऊ। मजबूत। ४. जिसका उत्तर न दिया गया हो। ५. जिसका खंडन न किया गया हो।

अप्रकट—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रकट या स्पष्ट न हो। २. छिपा हुआ। गुप्त।

अप्रकर—वि० [सं० प्र√कृ (करना)+अप्, न० त०] जो अच्छी तरह काम करना न जानता हो। अपटु।

अप्रकाश—पुं० [सं० न० त०] प्रकाश का अभाव। अंधकार।

अप्रकाशित—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रकाश में न आया हो या न लाया गया हो। छिपा हुआ। गुप्त। २. जिसमें प्रकाश न हो। अँधेरा। अंधकारपूर्ण। ३. (पुस्तक या लेख) जिसका प्रकाशन न हुआ हो। जो छपकर (या और किसी प्रकार से) सबके सामने न आया हो।

अप्रकाश्य—वि० [सं० न० त०] जो प्रकाश में लाने या प्रकट करने के योग्य न हो अथवा जिसे किसी प्रकार प्रकाश में लाया न जा सकता हो।

अप्रकृत—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रकृत या स्वाभाविक न हो। (अन्-नैचुरल) २. जो ठीक या वास्तविक न हो। ३. गढ़ा या बनाया हुआ। ४. नकली। ५. आनुषंगिक या गौण। अप्रधान। ६. आकस्मिक। ७. दे० 'अप्रसम'।

अप्रकृत-आश्रित-श्लेष—पुं० [कर्म० स०] श्लेष शब्दालंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों में श्लेष होता है।

अप्रकृति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रकृति का अभाव। २. सांख्य में वह जो कार्य-कारण से परे हो, अर्थात् पुरुष (प्रकृति से भिन्न)। ३. आत्मा।

वि० [न० ब०] जो प्रकृति या स्वभाव से भिन्न या विपरीत हो।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं० प्रकृति√स्था (ठहरना)+क, न० त०] १. जो प्राकृतिक, प्रसम या सामान्य स्थिति में न हो। २. अस्वस्थ। ३. विकल। व्याकुल।

अप्रकृष्ट—वि० [सं० न० त०] नीच। बुरा।

पुं० काक। कौआ।

अप्रकेत—वि० [सं० न० ब०] १. अविवेकी। २. अव्यवस्थित।

पुं० [सं० न० त०] १. प्रकेत या ज्ञान का विरोधी भाव। अज्ञान। अविवेक। २. बिगड़ा हुआ क्रम। अव्यवस्था।

अप्रगल्भ—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रगल्भ न हो, फलतः विनीत और सहनशील। २. अपरिपक्व या अप्रौढ़। ३. उत्साह-हीन। ४. मंद। सुस्त।

अप्रचारित—वि० [सं० प्र√चर् (गति)+क्त, न० त०] जिसका प्रचार न हो या न हुआ हो।

अप्रचलित—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रचलित या चलनसार न हो। २. जो प्रयोग या व्यवहार में न आता या न होता हो। (अन्-करेंट)

अप्रचारित—वि० [सं० प्र√चर्+णिच्+क्त, न० त०] जिसका प्रचार न किया गया हो।

अप्रच्छन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रच्छन्न न हो। अनावृत। २. खुला हुआ। स्पष्ट।

अप्रज—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे संतान न हो। २. बाँझ (स्त्री)। ३. जिसने जन्म न लिया हो। ४. (स्थान) जहाँ कोई निवास न करता हो। उजाड़।

अप्रति—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी तुलना, बराबरी या मुकाबले का कोई न हो। २. जिसे रोका न जा सके।

अप्रतिकर—वि० [सं० न० ब०] १. विश्वास-पात्र। २. विश्रंभी।

अप्रतिकार—पुं० [सं० न० ब०] प्रतिकार का अभाव।
वि० १. जिसका प्रतिकार या बदला न हो सके। २. जिसका कोई प्रतिकार या उपाय न हो सके।

अप्रतिकारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रतिकार न करे। बदला न लेनेवाला। २. किसी के विरुद्ध उपाय या प्रयत्न न करनेवाला।

अप्रतिघ—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे रोका या पकड़ा न जा सके। २. जिसे जीता न जा सके।

अप्रतिदेय—वि० [सं० न० त०] (ऐसा ऋण या दान) जो सदा के लिए दे दिया गया हो और लौटाया जाने को न हो। जैसे—अप्रतिदेय ऋण (परमानेन्ट एडवांस)

अप्रतिपत्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रकृत अर्थ समझने की योग्यता का अभाव। २ कर्तव्य-संबंधी निश्चय का अभाव।

अप्रतिपन्न—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे अपने कर्तव्य का ज्ञान न हो। २. (बात या विषय) जो ज्ञात या निश्चित न हो।

अप्रतिबंध—वि० [सं० न० ब०] १. जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबंध या रोक न हो या न लगाई गई हो। प्रतिबंध-हीन। २. स्वतंत्र। ३. पूर्ण। परम। (एब्सोल्यूट)
पुं० [न० त०] प्रतिबंध का अभाव।

अप्रतिबद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबंध या रोक-टोक न हो। २. स्वच्छंद। ३. मन-माना।

अप्रतिबल—वि० [सं० न० ब०] बल या शक्ति के विचार से जिसकी बराबरी का दूसरा न हो अर्थात् बहुत प्रबल या बलवान्।

अप्रतिभ—वि० [सं० न-प्रतिभा, न० ब०] १. जिसमें प्रतिभा न हो, फलतः चेष्टा, बुद्धि, स्फूर्ति आदि से रहित। २. जो लज्जित करनेवाली घटना या बात के कारण उदास या निरुत्तर हो गया हो। ३. विनम्र। ४. लज्जाशील।

अप्रतिभा—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रतिभा का अभाव। २. न्याय में एक निग्रह-स्थान जिसमें किसी पक्ष या बात का खंडन नहीं किया जा सकता। ३. लज्जा। ४. कायरता।

अप्रतिभाव्य—वि० [सं० प्रति√भू (होना)+णिच्+यत्, न० त०] १. जो प्रतिभाव्य न हो। २. (अपराध) जिसमें जमानत न ली जा सकती हो। (नॉन-बेलेबुल)

अप्रतिम—वि० [सं० न-प्रतिमा, न० ब०] जिसकी तुलना या बराबरी का दूसरा न हो। बेजोड़। अनुपम।

अप्रतिमान—वि० [सं० न० ब०] =अप्रतिम।

अप्रतिरथ—वि० [सं० न० ब०] वीरता में, जिसकी बराबरी या मुकाबले का कोई न हो।

अप्रतिरूप—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई प्रतिरूप न हो। २. जो अनुरूप या सटीक न हो। ३. अरुचिकर।

अप्रतिवार्य—वि० [सं० प्रति√वृ+णिच्+यत्, न० त०] जिसका प्रतिवारण न हो सके।

अप्रतिष्ठ—वि० [सं० न-प्रतिष्ठा, न० ब०] १. जिसकी प्रतिष्ठा न हो। २. तिरस्कृत।

अप्रतिष्ठा—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अप्रतिष्ठित] १. प्रतिष्ठा या सम्मान का अभाव। २. अनादर। अपमान। ३. अपयश। अपकीर्ति।

अप्रतिष्ठित—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रतिष्ठित या सम्मानित न हो। २. [अप्रतिष्ठा+इतच्] जिसकी अप्रतिष्ठा या अपमान किया गया हो।

अप्रतिसंबद्ध—वि० [सं० न० त०] जिनका परस्पर कोई लगाव या संबंध न हो।

अप्रतिहत—वि० [सं० न० त०] १. जिसे आघात या ठोकर न लगी हो। जो प्रतिहत न हो। २. जो हारा न हो। ३. जिसके लिए कोई रोक-टोक न हो। ४. जिसके बीच में बाधा या विघ्न न पड़ा हो। जैसे—अप्रतिहत गति।
पुं० अंकुश।

अप्रतिहार्य—वि० [सं० न० त०] जो प्रतिहार्य के योग्य न हो। जिसका प्रतिहार न हो सके।

अप्रतीकार—पुं० [सं० न० त०] =अप्रतिकार।

अप्रतीत—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी प्रतीति न हो सके। जिस तक पहुँचा न जा सके। २. जिसे प्रतीति न हुई हो। ३. असामान्य। ४. अस्पष्ट।

अप्रतुल—वि० [सं० प्र-तुला, प्रा० स०, न-प्रतुला, न० ब०] १. जिसकी तुलना या मान न हो सके। बेहद। २. अनुपम। बेजोड़।

अप्रत्त—वि०=अप्रदत्त।

अप्रत्ता—स्त्री० [सं० अप्रत्त-टाप्]=अप्रदत्ता।

अप्रत्यक्ष—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रत्यक्ष न हो। (दे० 'प्रत्यक्ष') २. जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सीधा मार्ग न अपनाये। ३. उलटा या टेढ़ा (उपाय या मार्ग)। ४. अप्रकट या गुप्त (उद्देश्य या लक्ष्य)।

अप्रत्यक्ष-कर—पुं० [सं० कर्म० स०] वह कर जो उपभोक्ताओं या जनता से प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से तथा किसी दूसरे माध्यम (जैसे—कारखानों आदि) के द्वारा लिया जाता हो। (इनडाइरेक्ट टैक्स) जैसे—कपड़े या चीनी पर का उत्पादन कर।

अप्रत्यनीक—पुं० [सं० न० त०] एक काव्यालंकार जिसमें शत्रु को जीतने की सामर्थ्य के कारण उससे संबंध रखनेवाली वस्तुओं का तिरस्कार न करने का वर्णन होता है।

अप्रत्यय—वि० [सं० न० ब०] १. बिना विभक्ति या प्रत्यय का। विभक्ति-रहित। २. विश्वासरहित। ३. अनभिज्ञ।
पुं० [न० त०] १. प्रत्यय या विश्वास का अभाव। २. प्रतीति या ज्ञान का अभाव।

अप्रत्याशित—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रत्याशित न हो। जिसकी प्रत्याशा न की गई हो। २. असंभावित। ३. आकस्मिक या अचानक होनेवाला।

अप्रदत्त—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अप्रदत्ता] जो दिया न गया हो।

अप्रदत्ता—स्त्री० [सं० न० त०] वह कन्या जो अभी तक किसी को दी या ब्याही न गई हो।

अप्रधान—वि० [सं० न० त०] जो प्रधान न हो, फलतः गौण या साधारण।
पुं० प्रधान न होने का भाव।

अप्रभ—वि० [सं० न-प्रभा, न० ब०] १. जिसमें प्रभा का अभाव हो। प्रभा-रहित। २. धुंधला। ३. आलसी। ४. जिसमें तत्त्व या सत्त्व न हो। तुच्छ। ५. जिसकी प्रभा नष्ट हो चुकी हो। हत-प्रभ।

अप्रभूति—स्त्री० [सं० न० त०] प्रभूत न होने की अवस्था, गुण या भाव।
अप्रमा—स्त्री० [सं० न० ब०] ऐसा नियम जो आवारिक न हो।
स्त्री० [सं० न० त०] भ्रममूलक ज्ञान। गलत जानकारी।
अप्रमाण—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रमाण या प्रमाणित न हो। २. जो आधिकारिक न हो। ३. [न० ब०] बिना सबूत का। ४. अनधिकृत। ५. असीम। अपरिमित।
अप्रमाद—वि० [सं० न० ब०] जिसे प्रमाद न हो।
पुं० [सं० न० त०] प्रमाद का अभाव।
अप्रमित—वि० [सं० न० त०] १. जो मापा न गया हो। २. विस्तृत। असीम। ३. जो सिद्ध या आधिकारिक न हो।
अप्रमेय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका माप या नाप न हो सकता हो। असीम। अनंत। २. जो प्रमाणित या सिद्ध न किया जा सके। ३ जो जाना या समझा न जा सके। अज्ञेय।
अप्रयुक्त—वि० [सं० न० त०] १. (वस्तु आदि) जिसका प्रयोग न हुआ हो अथवा जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। २. (व्यक्ति) जिसकी नियुक्ति न हुई हो।
अप्रयुक्तत्व—पुं० [सं० अप्रयुक्त+त्व] काव्य में एक पद-दोष जो ऐसे शब्द के प्रयोग से होता है जो शुद्ध होने पर भी कवियों द्वारा कभी प्रयुक्त न हुआ हो।
अप्रलंब—वि० [सं० न० ब०] देर न लगानेवाला। फुरतीला।
पुं० [न० त०] प्रलंब का अभाव। शीघ्रता। फुरती।
अप्रवर्तक—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रवर्त्तक न हो। २. उत्साह-हीन या निष्क्रिय।
अप्रवर्त्ती (र्तिन्)—वि० [सं० न० त०] जो क्रियमाण या प्रवर्त्ती न हो। (इन्आपरेटिव)
अप्रवृत्त—वि० [सं० न० त०] जो प्रवृत्त न हो। काम में न लगा हुआ।
अप्रवृत्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रवृत्ति या मन का झुकाव न होना। २. किसी पद, वाक्य या सिद्धांत का आशय समझ में न आना।
अप्रशंसनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रशंसा के योग्य न हो। २. जिसकी प्रशंसा न हो सकती हो।
अप्रशस्त—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रशस्त न हो। २. जो सभ्य समाज में चलने या प्रयुक्त होने योग्य न हो।
अप्रशिक्षित—वि० [सं० न० त०] जिसे कोई विशेष प्रकार की प्रशिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो। (अन्ट्रेंड)
अप्रसंग—वि० [सं० न० ब०] जो अवसर या समय के उपयुक्त न हो। अप्रासंगिक।
पुं० [सं० न० त०] संबंध या लगाव का अभाव।
अप्रसक्ति—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अप्रसक्त] १. लगाव या संबंध का अभाव। २. अनासक्ति।
अप्रसन्न—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्रसन्नता] १. जो प्रसन्न न हो। असंतुष्ट। नाराज। २. उदास। खिन्न। दुःखी। ३. नाराज।
अप्रसम—वि० [सं० न० त०]जो प्रसम न हो, बल्कि उससे कुछ आगे बढ़ा या ऊपर उठा हो। (एबनॉर्मल) विशेष दे० 'प्रसम'।
अप्रसमतः—क्रि० वि० [सं० अप्रसम+तस्] अप्रसम रूप में। (एबनॉर्मली)
अप्रसूता—स्त्री० [सं० न० त०] वह स्त्री जिसे प्रसव न होता हो। वंध्या। बाँझ।
अप्रस्तुत—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रस्तुत या सामने न हो। अनुपस्थित। २. जो उद्यत या तैयार न हो। ३. जिसका वर्तमान या वर्ण्य विषय से कोई प्रत्यक्ष संबंध न हो। ४. अप्रासंगिक।
पुं० साहित्य में कोई अलग या दूर का ऐसा विषय या व्यक्ति जिसकी चर्चा किसी प्रस्तुत मुख्य वर्ण्य-विषय या व्यक्ति की चर्चा के समय उपमा, तुलना आदि के रूप में अथवा यों ही प्रसंग-वश या गौण रूप से होती हो। 'प्रस्तुत' का विपर्याय।
अप्रस्तुत-प्रशंसा—स्त्री० [ष० त०] साहित्य में, एक अलंकार जिसमें कोई उद्देश्य सिद्ध करने या किसी की प्रशंसा आदि करने के लिए प्रस्तुत की चर्चा न करके केवल अप्रस्तुत की चर्चा की जाती है और उसी से प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाता है। (इन्डाइरेक्ट डिस्क्रिप्शन) जैसे—(क) उसके मुख के सामने चंद्रमा पानी भरता है। (ख) यह कहना कि कमलों से कोमलता, चंद्रमा से प्रकाश, सोने से रंग और अमृत से माधुर्य लेकर यह मुख बनाया गया है। (साहित्यकारों ने इसके पाँच भेद माने हैं।) यथा कारण-निबंधना; कार्य-निबंधना; विशेष-निबंधना; सामान्य-निबंधना और सारूप्य-निबंधना।
अप्रहत—वि० [सं० न० त०] १. जिसे चोट न लगी हो। २. (वस्त्र) जो अभी तक पहना न गया हो। कोरा। ३. (भूमि) जिसपर अभी तक हल न चला हो। ४. बंजर (भूमि)।
अप्राकरणिक—वि० [सं० न० त०] जिसका प्रकरण या विषय से संबंध न हो। प्रकरण से भिन्न या विरुद्ध।
अप्राकृत—वि० [सं० न० त०] १. जो प्राकृतिक न हो। २. जो मौलिक न हो। ३. विशिष्ट। ४. असाधारण।
अप्राकृतिक—वि० [सं० न० त०] १. जो मनुष्य या पशु की भाँति प्रकृति से भिन्न हो। २. जो प्रकृति के प्रायिक क्रमक से भिन्न हो। ३. जो प्राकृतिक न हो। (अन्नैचुरल)
अप्राज्ञ—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें प्रज्ञा न हो। २. जो विज्ञ या विद्वान न हो, फलतः अनभिज्ञ। ३. अशिक्षित।
अप्राचीन—वि० [सं० न० त०] १. जो पुराना या प्राचीन न हो, फलतः नया या आधुनिक। २. अर्वाचीन। ३. जो पूर्वीय न हो। पश्चिमीय।
अप्राण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें जीवन, जीवनी-शक्ति या प्राण न हो, फलतः निर्जीव। २. मृत। ३. संज्ञा-हीन।
पुं० १. वह जिसमें जीवनी-शक्ति न हो। २. ईश्वर।
अप्राप्त—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्राप्ति] १. (पदार्थ) जो प्राप्त या हस्तगत न हुआ हो। २. (व्यक्ति) जिसे कोई विशिष्ट चीज प्राप्त न हुई हो। जैसे—अप्राप्त-यौवना, अप्राप्त-वयस्क। ३. जो उपस्थित या प्रस्तुत न हो। ४. जो सामने न आया हो।
अप्राप्त-काल—पुं० [कर्म० स०] १. आनेवाला काल या समय। भविष्य। २. उपयुक्त समय से पहले का समय।
अप्राप्तयौवना—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] साहित्य में वह नायिका जिसे यौवन की प्राप्ति अभी न हुई हो।
अप्राप्तवय (स्)—वि० [न० ब०] कम उम्र का। अल्प-वयस्क। नाबालिग।

अप्राप्तव्यवहार—वि० [सं० न० ब०] ऐसा बालक जिसकी अवस्था सोलह वर्ष से कम हो तथा जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार पैतृक-संपत्ति पर पूरा अधिकार प्राप्त न हुआ हो।

अप्राप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्राप्त न होने की अवस्था या भाव। २. मुनाफा या लाभ का न होना। (विशेष दे० 'प्राप्ति')

अप्राप्तिसम—पुं० [सं० प्राप्ति-सम,तृ० त०, न-प्राप्तिसम न० त०] तर्क में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक।

अप्राप्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी प्राप्ति न हो सके। जो मिल न सके। २. जो मिल न सका हो। बाकी।

अप्रामाणिक—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्रामाणिकता] १. जो प्रामाणिक या प्रमाण से सिद्ध न हो, फलतः ऊट-पटाँग या अविश्वसनीय। २. जो आधिकारिक या प्राधिकृत न हो। ३. जो मानने योग्य न हो।

अप्रामाण्य—पुं० [सं० न० त०] प्रमाण का अभाव।

अप्रायिक—वि० [सं० न० त०] जो प्रायिक न हो। (अनयूज़ुअल)

अप्रावृत—वि० [सं० न० त०] जो ढका न हो; फलतः अनावृत।

अप्राशन—पुं० [सं० न० त०] १. भोजन न करना। २. अनशन।

अप्रासंगिक—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रासंगिक (प्रसंग के अनुकूल या अनुसार) न हो। २. जिसका प्रस्तुत विषय या बात से कोई सीधा संबंध न हो। दूर का या विभिन्न।

अप्रिय—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रिय न हो। जिसके प्रति अनुराग या चाह न हो। २. जो न रुचे। अरुचिकर। ३. कुत्सित या बुरा। जैसे—अप्रिय-वचन।

पुं० १. वैरी। शत्रु। २. बेंत।

अप्रीति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रीति का अभाव। २. अरुचि। ३. वैर-विरोध। शत्रुता।

अप्रेत—वि० [सं० प्र√इ (गति)+क्त, न० त०] १. जो मरकर प्रेत न हुआ हो। २. जो कहीं गया या भेजा न गया हो।

अप्रैल—पुं० [अं० एप्रिल] पाश्चात्य पंचांग का चौथा महीना।

अप्रौढ़—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रौढ़ या पुष्ट न हो। अशक्त या कमजोर। २. जो (अवस्था के विचार से) प्रौढ़ या वयस्क न हो। नाबालिग। ३. जिसमें पूर्णता या परिपक्वता न आई हो। जैसे—अप्रौढ़ विचार। ४. (व्यक्ति) जो मुलझे हुए मस्तिष्क का न हो।

अप्रौढ़ा—स्त्री० [सं० न० त०] १. कुमारी कन्या। २. वह कन्या जिसका हाल में ही विवाह हुआ हो, पर जो अभी रजस्वला न हुई हो।

अप्लव—वि० [सं० न० ब०] १. जो तैरता न हो या तैर न सकता हो। २. जिसके पास तैरने का साधन (नाव आदि) न हो।

अप्सर*—पुं० [सं० अप्√सृ (गति)+अच्] जल में रहनेवाला प्राणी। जलचर।

†स्त्री०=अप्सरा।

अप्सरा—स्त्री० [सं० अप्स=रूप+र-टाप्] १. उन कल्पित चिर-यौवना सुंदरियों में से हर एक जो स्वर्ग की गायिकाएँ और वेश्याएँ मानी गई हैं। परी। २. परम सुंदरी स्त्री। ३. जल का कण।

अप्सरी*—स्त्री०=अप्सरा।

अप्सु—वि० [सं० न-प्सु=रूप, न० ब०] जिसका रूप न हो। रूप-रहित।

अप्सुचर—वि०=जलचर।

अप्सु-प्रवेशन—पुं० [सं० अलुक् स०] प्राचीन भारत में, अपराधी को जल में डुबाकर उसके प्राण लेने की क्रिया या प्रणाली। (कौ०)

अफ़गन—वि० [फा०] मार गिरानेवाला। जैसे—शेर-अफ़गन।

अफ़ग़ान—पुं० [अ०] अफ़गानिस्तान का रहनेवाला। पठान।

अफ़ग़ानिस्तान—पुं० [अ०+फा०] पाकिस्तान की पश्चिमोत्तर सीमा पर का एक प्रदेश।

अफ़ज़ल—वि० [अ०] उत्तम। श्रेष्ठ।

अफ़तरा—वि० [अ० अफ्तर] १. दुर्दशा-ग्रस्त। २. उद्दंड और दुष्ट। पाजी और बिगड़ैल। उदा०—अफतर फेरे सो आगे ते।—कबीर।

अफ़ताब—पुं०=आफ़ताब (सूर्य०)।

अफ़ताबी†—स्त्री० आफ़ताबी।

अफ़तार—पुं० [अ० इफ़तार] दिन भर रोजा रखने के बाद संध्या को कुछ खाकर उसकी समाप्ति करना।

अफ़तालो—पुं० [?] वह अधिकारी जो राजाओं की यात्रा के समय पहले से पड़ाव पर पहुँचकर उनके ठहरने की व्यवस्था करता था। (बुंदे०)

अफनाना—अ०=उफनाना।

अफ़यून—स्त्री०=अफ़ीम।

अफ़यूनी—पुं०=अफ़ीमची।

अफरन—स्त्री० [हि० अफरना] १. पेट अफरने या फूलने की क्रिया या भाव। २. पेट फूलने का रोग।

अफरना—अ० [सं० स्फार] १. इतना अधिक भोजन करना कि पेट फूल जाय। २. अघाना। तृप्त होना। ३. वायु आदि के प्रकोप के कारण पेट फूलना। ४ किसी बात की अधिकता से ऊबना। ५. बहुत अभिमानी, संपन्न या हृष्ट-पुष्ट होना। (व्यंग्य)

अफरा—पुं० [हि० अफरना] १. अफरने की क्रिया या भाव। २. एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से पेट फूल जाता है और जी व्याकुल होने लगता है।

अफ़रा-तफ़री—स्त्री० [अ० अफराद तफरीत] १. क्रम, व्यवस्था आदि का उलट-फेर। गड़बड़ी। २. जल्दी, व्याकुलता आदि के कारण होनेवाली अव्यवस्था।

अफराना*—अ०=अफरना।

स० किसी को अफरने में प्रवृत्त करना।

अफराव—पुं० [हि० अफरना] १. अफरने या पेट फूलने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. एक रोग जिसमें पेट बहुत अधिक फूल जाता है।

अफ़रीदी—पुं० [अ०] पठानों की एक जाति।

अफल—वि० [सं० न० ब०] १. (वृक्ष) जिसमें फल न लगता हो या न लगा हो। फलहीन। २. (कार्य या प्रयत्न) जिसका कोई फल या परिणाम न हो। निष्फल।

पुं० झाऊ का वृक्ष।

अप्रसूति—स्त्री० [सं० न० त०] प्रसूत न होने की अवस्था, गुण या भाव।

अप्रमा—स्त्री० [सं० न० ब०] ऐसा नियम जो व्यावहारिक न हो।

स्त्री० [सं० न० त०] भ्रममूलक ज्ञान। गलत जानकारी।

अप्रमाण—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रमाण या प्रमाणित न हो। २. जो आधिकारिक न हो। ३. [न० ब०] बिना सबूत का। ४. अनधिकृत। ५. असीम। अपरिमित।

अप्रमाद—वि० [सं० न० ब०] जिसे प्रमाद न हो।

पुं० [सं० न० त०] प्रमाद का अभाव।

अप्रमित—वि० [सं० न० त०] १. जो मापा न गया हो। २. विस्तृत। असीम। ३. जो सिद्ध या आधिकारिक न हो।

अप्रमेय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका माप या नाप न हो सकता हो। असीम। अनंत। २. जो प्रमाणित या सिद्ध न किया जा सके। ३. जो जाना या समझा न जा सके। अभेद।

अप्रयुक्त—वि० [सं० न० त०] १. (वस्तु आदि) जिसका प्रयोग न हुआ हो अथवा जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। २. (व्यक्ति) जिसकी नियुक्ति न हुई हो।

अप्रयुक्तत्व—पुं० [सं० अप्रयुक्त+त्व] काव्य में एक पद-दोष जो ऐसे शब्द के प्रयोग से होता है जो शुद्ध होने पर भी कवियों द्वारा कभी प्रयुक्त न हुआ हो।

अप्रलंब—वि० [सं० न० ब०] देर न लगानेवाला। फुरतीला।

पुं० [न० त०] प्रलंब का अभाव। शीघ्रता। फुरती।

अप्रवर्तक—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रवर्तक न हो। २. उत्साह-हीन या निष्क्रिय।

अप्रवर्ती (र्तिन्)—वि० [सं० न० त०] जो क्रियमाण या प्रवर्ती न हो। (इन्आपरेटिव)

अप्रवृत्त—वि० [सं० न० त०] जो प्रवृत्त न हो। काम में न लगा हुआ।

अप्रवृत्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रवृत्ति या मन का झुकाव न होना। २. किसी पद, वाक्य या सिद्धांत का आशय समझ में न आना।

अप्रशंसनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रशंसा के योग्य न हो। २. जिसकी प्रशंसा न हो सकती हो।

अप्रशस्त—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रशस्त न हो। २. जो सभ्य समाज में चलने या प्रयुक्त होने योग्य न हो।

अप्रशिक्षित—वि० [सं० न० त०] जिसे कोई विशेष प्रकार की प्रशिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो। (अन्ट्रेंड)

अप्रसंग—वि० [सं० न० ब०] जो अवसर या समय के उपयुक्त न हो। अप्रासंगिक।

पुं० [सं० न० त०] संबंध या लगाव का अभाव।

अप्रसक्ति—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अप्रसक्त] १. लगाव या संबंध का अभाव। २. अनासक्ति।

अप्रसन्न—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्रसन्नता] १. जो प्रसन्न न हो। असंतुष्ट। नाराज। २. उदास। खिन्न। दुःखी। ३. नाराज।

अप्रसम—वि० [सं० न० त०] जो प्रसम न हो, बल्कि उससे कुछ आगे बढ़ा या ऊपर उठा हो। (एबनॉर्मल) विशेष दे० 'प्रसम'।

अप्रसमतः—क्रि० वि० [सं० अप्रसम+तस्] अप्रसम रूप में। (एबनॉर्मली)

अप्रसूता—स्त्री० [सं० न० त०] वह स्त्री जिसे प्रसव न होता हो। वंध्या। बाँझ।

अप्रस्तुत—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रस्तुत या सामने न हो। अनुपस्थित। २. जो उद्यत या तैयार न हो। ३. जिसका वर्तमान या वर्ण्य विषय से कोई प्रत्यक्ष संबंध न हो। ४. अप्रासंगिक।

पुं० साहित्य में कोई अलग या दूर का ऐसा विषय या व्यक्ति जिसकी चर्चा किसी प्रस्तुत मुख्य वर्ण्य-विषय या व्यक्ति की चर्चा के समय उसकी तुलना आदि के रूप में अथवा यों ही प्रसंग-वश या गौण रूप से होती हो। 'प्रस्तुत' का विपर्याय।

अप्रस्तुत-प्रशंसा—स्त्री० [ष० त०] साहित्य में, एक अलंकार जिसमें कोई उद्देश्य सिद्ध करने या किसी की प्रशंसा आदि करने के लिए प्रस्तुत की चर्चा न करके केवल अप्रस्तुत की चर्चा की जाती है और उसी से प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाता है। (इन्डाइरेक्ट डिस्क्रिप्शन) जैसे—(क) उसके मुख के सामने चंद्रमा पानी भरता है। (ख) यह कहना कि कमलों से कोमलता, चंद्रमा से प्रकाश, सोने से रंग और अमृत से माधुर्य लेकर यह मुख बनाया गया है। (साहित्यकारों ने इसके पाँच भेद माने हैं।) यथा कारण-निबंधना; कार्य-निबंधना; विशेष-निबंधना; सामान्य-निबंधना और सारूप्य-निबंधना।

अप्रहत—वि० [सं० न० त०] १. जिसे चोट न लगी हो। २. (वस्त्र) जो अभी तक पहना न गया हो। कोरा। ३. (भूमि) जिसपर अभी तक हल न चला हो। ४. बंजर (भूमि)।

अप्राकरणिक—वि० [सं० न० त०] जिसका प्रकरण या विषय से संबंध न हो। प्रकरण से भिन्न या विरुद्ध।

अप्राकृत—वि० [सं० न० त०] १. जो प्राकृतिक न हो। २. जो मौलिक न हो। ३. विशिष्ट। ४. असाधारण।

अप्राकृतिक—वि० [सं० न० त०] १. जो मनुष्य या पशु की मौलिक प्रकृति से भिन्न हो। २. जो प्रकृति के प्राथमिक क्रम से भिन्न हो। ३. जो प्राकृतिक न हो। (अन्नैचुरल)

अप्राज्ञ—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें प्रज्ञा न हो। २. जो विज्ञ या विद्वान न हो, फलतः अनभिज्ञ। ३. अशिक्षित।

अप्राचीन—वि० [सं० न० त०] १. जो पुराना या प्राचीन न हो, फलतः नया या आधुनिक। २. अर्वाचीन। ३. जो पूर्वीय न हो। पश्चिमीय।

अप्राण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें जीवन, जीवनी-शक्ति या प्राण न हो, फलतः निर्जीव। २. मृत। ३. संज्ञा-हीन।

पुं० १. वह जिसमें जीवनी-शक्ति न हो। २. ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्राप्ति] १. (पदार्थ) जो प्राप्त या हस्तगत न हुआ हो। २. (व्यक्ति) जिसे कोई विशिष्ट चीज प्राप्त न हुई हो। जैसे—अप्राप्त-यौवन, अप्राप्त-वयस्क। ३. जो उपस्थित या प्रस्तुत न हो। ४. जो सामने न आया हो।

अप्राप्त-काल—पुं० [कर्म० स०] १. आनेवाला काल या समय। भविष्य। २. उपयुक्त समय से पहले का समय।

अप्राप्तयौवना—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] साहित्य में वह नायिका जिसे यौवन की प्राप्ति अभी न हुई हो।

अप्राप्तवय (स्)—वि० [न० ब०] कम उम्र का। अल्प-वयस्क। नाबालिग।

अप्राप्तव्यवहार—वि० [सं० न० ब०] ऐसा बालक जिसकी अवस्था सोलह वर्ष से कम हो तथा जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार पैतृक-संपत्ति पर पूरा अधिकार प्राप्त न हुआ हो।

अप्राप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्राप्त न होने की अवस्था या भाव। २. मुनाफा या लाभ का न होना। (विशेष दे० 'प्राप्ति')

अप्राप्तिसम—पुं० [सं० प्राप्ति-सम, तृ० त०, न-प्राप्तिसम न० त०] तर्क में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक।

अप्राप्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी प्राप्ति न हो सके। जो मिल न सके। २. जो मिल न सका हो। बाकी।

अप्रामाणिक—वि० [सं० न० त०] [भाव० अप्रामाणिकता] १. जो प्रामाणिक या प्रमाण से सिद्ध न हो, फलतः ऊट-पटांग या अविश्वसनीय। २. जो आधिकारिक या प्राधिकृत न हो। ३. जो मानने योग्य न हो।

अप्रामाण्य—पुं० [सं० न० त०] प्रमाण का अभाव।

अप्रायिक—वि० [सं० न० त०] जो प्रायिक न हो। (अनयूजुअल)

अप्रावृत—वि० [सं० न० त०] जो ढका न हो; फलतः अनावृत।

अप्राशन—पुं० [सं० न० त०] १. भोजन न करना। २. अनशन।

अप्रासंगिक—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रासंगिक (प्रसंग के अनुकूल या अनुसार) न हो। २. जिसका प्रस्तुत विषय या कार्य से कोई सीधा संबंध न हो। दूर का या विभिन्न।

अप्रिय—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रिय न हो। जिसके प्रति अनुराग या चाह न हो। २. जो न रुचे। अरुचिकर। ३. दूषित या बुरा। जैसे—अप्रिय-वचन।

पुं० १. वैरी। शत्रु। २. बेंत।

अप्रीति—स्त्री० [सं० न० त०] १. प्रीति का अभाव। २. अरुचि। ३. वैर-विरोध। शत्रुता।

अप्रेत—वि० [सं० प्र√इ (गति)+क्त, न० त०] १. जो मरकर प्रेत न हुआ हो। २. जो कहीं गया या भेजा न गया हो।

अप्रैल—पुं० [अं० एप्रिल] पाश्चात्य पंचांग का चौथा महीना।

अप्रौढ़—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रौढ़ या पुष्ट न हो। अशक्त या कमजोर। २. जो (अवस्था के विचार से) प्रौढ़ या वयस्क न हो। नाबालिग। ३. जिसमें पूर्णता या परिपक्वता न आई हो। जैसे—अप्रौढ़ विचार। ४. (व्यक्ति) जो सुलझे हुए मस्तिष्क का न हो।

अप्रौढ़ा—स्त्री० [सं० न० त०] १. कुमारी कन्या। २. वह कन्या जिसका हाल में ही विवाह हुआ हो, पर जो अभी रजस्वला न हुई हो।

अप्लव—वि० [सं० न० ब०] १. जो तैरता न हो या तैर न सकता हो। २. जिसके पास तैरने का साधन (नाव आदि) न हो।

अप्सर*—पुं० [सं० अप्√सृ (गति)+अच्] जल में रहनेवाला प्राणी। जलचर।

†स्त्री०=अप्सरा।

अप्सरा—स्त्री० [सं० अप्स=रूप+र-टाप्] १. उन कल्पित चिर-यौवना सुंदरियों में से हर एक जो स्वर्ग की गायिकाएँ और वेश्याएँ मानी गई हैं। परी। २. परम सुंदरी स्त्री। ३. जल का कण।

अप्सरी*—स्त्री०=अप्सरा।

अप्सु—वि० [सं० न-प्सु=रूप, न० ब०] जिसका रूप, न हो। रूप-रहित।

अप्सुचर—वि०=जलचर।

अप्सु-प्रवेशन—पुं० [सं० अलुक् स०] प्राचीन भारत में, अपराधी को जल में डुबाकर उसके प्राण लेने की क्रिया या प्रणाली। (को०)

अफ़गन—वि० [फा०] मार गिरानेवाला। जैसे—शेर-अफ़गन।

अफ़गान—पुं० [अ०] अफगानिस्तान का रहनेवाला। पठान।

अफगानिस्तान—पुं० [अ०+फा०] पाकिस्तान की पश्चिमोत्तर सीमा पर का एक प्रदेश।

अफ़जल—वि० [अ०] उत्तम। श्रेष्ठ।

अफतर†—वि० [अ० अब्तर] १. दुर्दशा-ग्रस्त। २. उद्दंड और दुष्ट। पाजी और बिगड़ैल। उदा०—अफतर फेरै मो वागी रे।—कबीर।

अफताब—पुं०=आफताब (सूर्य०)।

अफताबी†—स्त्री=आफ़ताबी।

अफ़तार—पुं० [अ० इफ्तार] दिन भर रोजा रखने के बाद संध्या को कुछ खाकर उसकी समाप्ति करना।

अफताली—पुं० [?] वह अधिकारी जो राजाओं की यात्रा के समय पहले से पड़ाव पर पहुँचकर उनके ठहरने की व्यवस्था करता था। (बुंदे०)

अफनाना—अ०=उफनाना।

अफ़यून—स्त्री० =अफीम।

अफ़यूनी—पुं०=अफीमची।

अफरन—स्त्री० [हिं० अफरना] १. पेट अफरने या फूलने की क्रिया या भाव। २. पेट फूलने का रोग।

अफरना—अ० [सं० आस्फार] १. इतना अधिक भोजन करना कि पेट फूल जाय। २. अघाना। तृप्त होना। ३. वायु आदि के प्रकोप के कारण पेट फूलना। ४. किसी बात की अधिकता से ऊबना। ५. बहुत अभिमानी, संपन्न या हृष्ट-पुष्ट होना। (व्यंग्य)

अफरा—पुं० [हिं० अफरना] १. अफरने की क्रिया या भाव। २. एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से पेट फूल जाता है और जी व्याकुल होने लगता है।

अफ़रा-तफ़री—स्त्री० [अ० अफरात तफरीत] १. क्रम, व्यवस्था आदि का उलट-फेर। गड़बड़ी। २. जल्दी, व्याकुलता आदि के कारण होनेवाली अव्यवस्था।

अफराना*—अ०=अफरना।

स० किसी को अफरने में प्रवृत्त करना।

अफराव—पुं० [हिं० अफरना] १. अफरने या पेट फूलने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. एक रोग जिसमें पेट बहुत अधिक फूल जाता है।

अफ़रीदी—पुं० [अ०] पठानों की एक जाति।

अफल—वि० [सं० न० ब०] १. (वृक्ष) जिसमें फल न लगता हो या न लगा हो। फलहीन। २. (कार्य या प्रयत्न) जिसका कोई फल या परिणाम न हो। निष्फल।

पुं० झाऊ का वृक्ष।

अफला—स्त्री० [सं० अफल+टाप्] १. वह स्त्री जिसे संतान न होती हो। बाँझ। २. भुईं-आँवला। ३. घृत-कुमारी। घी-क्वार।

अफलातून—पुं० [यू० प्लेटो से अ०] १. प्राचीन यूनान का प्लेटो नामक एक प्रमुख विद्वान् तथा दार्शनिक का अरबी नाम। २. वह जो अपने आपको औरों से बहुत बड़ा समझता हो।

अफलित—वि० [सं० न० त०] १. (वृक्ष) जिसमें फल न लगे हों। २. (कार्य) जिसका कोई परिणाम या फल न हुआ हो।

अफवा—स्त्री०=अफवाह।

अफवाज—पुं० [अ० फौज का बहु०] सेनाएँ। उदा०—तूं जूनो परणे नवी, असुरारी अफवाज।—बाँकीदास।

अफ़वाह—स्त्री० [अ०] किसी घटना का ऐसा समाचार जो प्रामाणिक न होने पर भी जन-साधारण में फैल गया हो। उड़ती हुई खबर। किंवदंती।

क्रि० प्र०—उड़ना।—फैलना।

अफशाँ—स्त्री० [फा०] १. जल-कण। २. सोने-चाँदी के पत्तरों का वह चूर्ण या चमकी, बादले आदि के कटे हुए बहुत छोटे टुकड़े जो स्त्रियाँ अपने चेहरे पर शोभा बढ़ाने के लिए छिड़कती हैं।

अफसंतीन—पुं० [यू०] एक प्रकार का काश्मीरी पौधा और उसके फल।

अफसर—पुं० [अं० आफिसर] १. वह प्रधान अधिकारी जिसके अधीन अनेक अधिकारी या कर्मचारी काम करते हों। २. प्रधान। मुखिया। सरदार।

अफसरी—स्त्री० [अं० अफसर] १. अफसर होने की अवस्था या भाव। २. अफसर का पद। ३. अफसरों की तरह का अधिकारपूर्ण शासन। वि० अफसरों जैसा। जैसे—अफसरी शान।

अफ़साना—पुं० [फा०] १. घटना। २. आख्यायिका। कहानी। किस्सा।

अफसूँ—पुं० [फा०] मंत्र आदि पढ़कर किया जानेवाला टोना-टोटका।

अफसोस—पुं० [फा० अफ़्सोस] मन में होनेवाला खेदयुक्त पश्चात्ताप।

अफीम—स्त्री० [यू० ओपियन, अ० अफयून] पोस्ते के डंठलों से निकाला जानेवाला एक प्रसिद्ध मादक पदार्थ जो काले रंग का और कड़ुआ होता है। (ओपियम)

अफीमची—पुं० [अ० अफयून+ची (प्रत्य०)] वह जो नशे के लिए नियमित रूप से अफीम खाता हो और प्रायः पिनक लेता रहता हो।

अफीमी—वि० [हिं० अफीम] अफीम-संबंधी। अफीम का। जैसे—अफीमी नशा।

पुं०=अफीमची।

अफुल्ल—वि० [सं० न० त०] (फूल या वृक्ष) जो खिला या फूला न हो।

अफ़ू—स्त्री०=अफीम।

अफेन—वि० [सं० न० ब०] जिसमें फेन न हो।

पुं० अफीम।

अप्फन*—पुं०=अर्पण।

अफ्फना—स०[सं० अर्पण, राज० अप्पना=देना] अर्पित करना। देना। उदा०—पुत्तीय-पुत्त अफ्फऊँ पुहुमि, इमि च्यंतनु मन महकरिय।—चंद बरदाई।

अबंध—वि० [सं० न० ब०] १. जो बँधा न हो। बंधन-रहित। खुला हुआ। २. जो किसी के अधिकार या शासन में न हो। स्वच्छंद। ३. मनमाना आचरण करनेवाला। निरंकुश।

अबंधु—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई बंधु या इष्ट-मित्र न हो। २. अकेला।

अबंध्य—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अबंध्या] १. जो बाँधा न जा सके अथवा जो बाँधने योग्य न हो। २. निश्चित रूप से फल देनेवाला। अव्यर्थ।

अब—अव्य० [सं० अद्य, अथ, प्रा० अदो, इव्ता, इन्जा; वि० अद्, भोज० और मार० अबर, मग० अबरी, इबरी] १. प्रस्तुत या वर्तमान क्षण में। इस समय। जैसे—(क) अब तैयार हो जाओ। (ख) अब ऐसा नहीं हो सकता।

मुहा०—अब-तब करना=कोई काम करने के संबंध में यह कहते चलना कि अब कर दिया जायगा। टाल-मटोल करना। जैसे—अब तब करते-करते वह महीनों से टाल रहा है पर रुपये नहीं देता। **अब-तब लगना या होना**=रोगी का मृत्यु के बहुत पास पहुँचना। ऐसा जान पड़ना कि यह अब मर जायगा या थोड़ी देर से अधिक न बचेगा।

२. इस अवसर पर या इस स्थिति में। जैसे—अब यह काम पूरा हुआ है।

पद—अबका=वर्तमान काल का। आज-कल का। आधुनिक। जैसे—अब के लड़के किसी की बात नहीं सुनते। **अब की या अबके**=(क) इस बार। जैसे—अब की (या अबके) तुम्हें दिल्ली जाना पड़ेगा। (ख) आगे चलकर। भविष्य में। जैसे—अब की (या अबके) फसल अच्छी होगी। **अब जाकर**=इतने दिनों या समय के बाद। अब। जैसे—अब जाकर वह ठीक रास्ते पर आया है। **अब से**=आगे से। भविष्य में। जैसे—अब से कभी ऐसा मत करना।

३. किसी निर्दिष्ट या विशिष्ट समय में। जैसे—अब युद्ध पूर्णतया बंद हो चुका था। ४. इस समय के उपरांत। फिर कभी या भविष्य में। जैसे—अब ऐसा न करूँगा। ५. निर्दिष्ट तथ्यों या बातों का ध्यान रखते हुए। जैसे—मुझे जो कुछ कहना था वह कह दिया, अब आप निर्णय कर सकते हैं।

अबका—पुं० [सं० अबका=सेवार] एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल या रेशों से रस्सियाँ बनती हैं।

अबखरा—पुं० [अब्खरः] भाप। वाष्प।

पुं० दे० 'आबखोरा'।

अबखोरा† पुं०=आबखोरा।

अबगत*—स्त्री०=अवगति।

वि० १. अविगत। २. अवगत।

अबट—वि० [?] १. अभेद्य। २. अगम। उदा०—नर जेथ निमाण निलजी नारी, अकबर गाहक बट अबट।—पृथीराज।

अबटन† पुं०=उबटन।

अबड़-धबड़—वि० [अनु०] १. बेजोड़ या बेमेल। असंगत। २. भद्दा। भोंड़ा। ३. जल्दी समझ में न आनेवाला।

अबतर—वि० [अ० अब्तर] १. गिरने, बिगड़ने आदि के कारण जिसकी दशा बुरी हो गई हो। खराब। निकृष्ट। २. जिसका क्रम या व्यवस्था बिगड़ गई हो। अस्त-व्यस्त। जैसे—दफ्तर की हालत बहुत अबतर हो गई है। ३. चौपट। विनष्ट। जैसे—यह बाजी तो अबतर हो गई।

अबतरी—स्त्री० [अ०अब्तरी] १. अवतर होने की अवस्था या भाव। २. अध:पतन। अवनति। ३. अव्यवस्था। गड़बड़ी।

अबद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो बँधा न हो अथवा बाँधा न गया हो। बंधन-रहित। २. जिसका क्रम या व्यवस्था ठीक न हो। ३. मनमाना आचरण करनेवाला। निरंकुश। ४. दे० 'असंबद्ध'।

अबद्ध-मुख—वि० [ब० स०] बिना सोचे-समझे बकनेवाला। बड़-बड़िया।

अबद्ध-मूल—वि० [ब० स०] जिसका मूल या जड़ मजबूत न हो।

अबध—वि० [सं० अबाध्य] १. जो बँधा न हो। अबद्ध। २. जो रोका न जा सके। अबाध्य। ३. स्वतंत्र रूप से चलनेवाला। उदा०—भरे भाग अनुराग लोग कहें राम अबध चितवनि चितई है।—तुलसी।

अबधू*—वि० [सं० अबोध, पुं० हिं० अबोधु] अज्ञानी। मूर्ख।
पुं० =अवधूत।

अबधूत—पुं०=अवधूत।

अबध्य—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अबध्या, भाव० अबध्यता] १. जिसका वध या हत्या न की जा सकती हो। जो मारा न जा सके। २. जिसका वध करना या जिसे मार डालना अनुचित हो। जैसे—शास्त्रों में बालक, ब्राह्मण, स्त्रियाँ आदि अबध्य कहीं गई है।

अबर*—वि० [सं० अबल] [भाव० अबराई] १. निर्बल। शक्ति-हीन। २. दुर्बल। कमजोर।
वि०=अपर (दूसरा)।
†क्रि०वि० इस बार।
पु० [फा० अब्र] बादल। मेघ।

अबरक—पुं० [सं० अभ्रक] पत्तरों या वरकों के रूप में पाई जानेवाली एक प्रसिद्ध चमकीली, भुरभुरी सफेद धातु। भोडल। (माइका)

अबरख—पुं०=अबरक।

अबरखी—वि० [हिं० अबरक] १. अबरख के रंग का। २. अबरख का बना हुआ।
स्त्री० अबरक का वह चूर्ण जो चित्रकार चित्रों पर चाँदी का रंग दिखाने के लिए छिड़कते हैं।

अबरन—वि० [सं० अ+वर्ण] १. जिसका कोई वर्ण या रूप न हो। वर्ण-रहित। २. जो आस-पास के रंगों से भिन्न रंग या प्रकार का हो।
पुं० १. दे० 'आभरण'। २. दे० 'आवरण'।
वि० [सं० अवर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके।

अबरवान—वि० [सं० अपर+हिं० बानि?] १. आवारा। २. मूर्ख।

अबरस—पुं० [फा०] १. घोड़े का एक रंग जो सब्ज से कुछ खुलता हुआ और अधिक सफेद रंग का होता है। २. इस रंग का घोड़ा।

अबरा—वि०=अबर।
वि० [हिं० अ+बराना=बचाना] १. जो बचाया न जा सके। २. जिसे बचा या छोड़ न सके। उदा०—हारे अबरे का एतबार।—भड्डर।
पु० [फा०] १. ओढ़ने या पहनने के दोहरे कपड़ों में, ऊपर का कपड़ा या पल्ला। उपल्ला २. विकट समस्या। उलझन।

अबरी—वि० [फा० अब्र=बादल मि० सं० अभ्र] १. जिसमें बादल की तरह कई रंगों की धारियाँ हों।
स्त्री० १. एक प्रकार का कागज जिसपर उक्त प्रकार की धारियाँ होती हैं। २. कपड़ों की एक प्रकार की रँगाई जिसमें उक्त ढंग की धारियाँ होती हैं। ३. पीले रंग का एक पत्थर जो पच्चीकारी के काम में आता है।
स्त्री० [सं० अ+वारि?] जलाशय का किनारा।
क्रि० वि० [हिं० अब] इस बार। अब की दफा। उदा०—अबरी क कहलिया मोर एतना कर लीहिन।—लोकगीत।

अबरू—स्त्री० [फा० अब्रू मि० सं० भ्रू] भौंह।

अबर्त*—पुं०=आवर्त।

अबर्न्य*—वि० [सं० अ+वर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके। अवर्णनीय।

अबल—वि० [सं० न० ब०] [स्त्री० अबला] १. जिसमें बल न हो। अशक्त। बलहीन। २. कमजोर। दुर्बल। ३. नपुंसक। पुंस्त्वहीन।
स्त्री० [सं० अवलि] पंक्ति। कतार। उदा०—अंतर नीलंबर अबल आभरण।—प्रिथीराज।

अबलक—वि० [अ० अब्लक] १. जिसमें दो रंग एक साथ दिखाई दें। जैसे—काला और लाल, या लाल और सफेद। २. कई रंगों से युक्त। चितकबरा।
पुं० ऐसा घोड़ा जिसके शरीर का कुछ अंश काला और कुछ सफेद हो।
वि० [सं० अवलक्ष] अद्भुत। विलक्षण। जैसे—वाही कन्हैया जाके अबलक बाल।—गीत।

अबलका—स्त्री० [हिं० अबलक] मैना की तरह की एक काले रंग की चिड़िया जिसकी छाती सफेद रंग की होती है।

अबलख—वि०=अबलक।

अबलखा—स्त्री० दे० 'अबलका' (पक्षी)।

अबला—वि०, स्त्री० [सं० अबल+टाप्] [भाव० अबलात्व] जिसमें कुछ भी बल या शक्ति न हो।
स्त्री० औरत। स्त्री। (जो अबला या अशक्त मानी जाती है)।

अबल्य—पुं० [सं० बल+यत्, न० त०] १. अबलता। कमजोरी। निर्बलता। २. अस्वस्थता।

अबवाब—पुं० [फा० बाब का बहु०] कुछ विशिष्ट प्रकार के कर जो किसानों आदि पर लगते हैं। (सेस)

अबस—वि० [अ०] निरर्थक। बे-फायदा।
क्रि० वि० नाहक। व्यर्थ।
वि०=अवश।

अबाँह*—वि० [हिं० अ+बाँह] १. जिसे बाँह या हाथ न हो। २. जिसका कोई सहारा, सहायक या रक्षक न हो। असहाय। उदा०—चाह अलबाल औ अबाँह के कलपतरु, कीरति-मयंक प्रेम सागर अपार है।—आनंदघन। ३. अकेला। (क्व०)

अबा—पुं० [अ०] एक प्रकार का मुसलमानी पहिनावा जो अंगे से कुछ अधिक लंबा होता है।

अबाट—पुं० [हिं० अ+बाट=मार्ग] कुपथ। कुमार्ग।

अबाती*—वि० [सं० अ=नहीं+वात=वायु] १. जिसमें वायु का अभाव हो। २. जिसमें वायु का प्रवेश या संचार न हो सके। ३. जो वायु से काँप न रहा हो। स्थिर।
वि० [हिं० अ+बाती=बत्ती] (दीपक) जिसमें बत्ती न हो।

अबाद—*वि० [सं० अवाद] जो वादशून्य हो। निर्विवाद।
†वि०=आबाद।

अबादान—वि० [अ० आबाद] [भाव० अबादानी] १. बसा हुआ। आबाद। (स्थान) २. भरा हुआ। पूर्ण। ३. समृद्ध। संपन्न।

अबादानी—स्त्री० [हिं० अबादान] अबाद (बसे, भरे हुए या संपन्न) होने की अवस्था या भाव।

अबाध—वि० [सं० न-बाधा, न० ब०] १. जिसके लिए या जिसमें कोई बाधा, विघ्न या रोक-टोक न हो। बेरोक। निर्विघ्न। २. मनमाना। स्वच्छंद। ३. अपार। असीम। ४. पूर्ण। परम। (एब्सोल्यूट)

अबाध-व्यापार—पुं० [कर्म० स०] दे० 'मुक्त व्यापार'।

अबाधा—वि० दे० 'अबाध'।

स्त्री० [सं० न० त०] बाधा का अभाव।

अबाधित—वि० [सं० न० त०] १. जिसके करने में कोई बाधा अथवा रोक-टोक न हो। बाधा-रहित। २. मनमाना। स्वच्छंद। ३. निरंकुश।

अबाध्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० अबाध्यता] १. जो रोका न जा सके। बे-रोक। २. जिसपर किसी का अधिकार या नियंत्रण न हो। ३. अनिवार्य।

अबान—वि० [अ=नहीं+हिं० बान=बाण] जिसके हाथ में बाण (या अस्त्र-शस्त्र) न हो। निहत्था।

अबाबील—स्त्री० [फा०] काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया।

अबार*—स्त्री० [सं० अ=बुरा+वेला=हिं० बेर=समय] अधिक या बहुत देर। विलंब।

अबाल—वि० [सं० न० त०] १. जो बालक न हो। जवान। २. पूरा। पूर्ण।

पुं० [देश०] चरखे की पंखुड़ियों में बाँधकर तानी जानेवाली रस्सी।

अबाली—स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। बैंगनकुटी।

अबास*—पुं० दे० 'आवास'।

अबाह—वि० [सं० अवध्य] १. जो मारा न जा सके। २. जिसे मारना उचित या संगत न हो।

अबिंधन—पुं० [सं० अप्-इन्धन, ब० स०] १. बड़वानल। २. समुद्र।

अबिचार—पुं०=अविचार।

अबिचारी—वि०=अविचारी।

अबिछीन*—वि०=अविच्छिन्न।

अबिद्ध—वि०=अविद्ध।

अबिध—वि० [सं० अ=नहीं+विध्=नियम] १. जो नियम या विधि से न हो। अव्यवस्थित। २. नियम-विरुद्ध।

क्रि० वि० नियम या विधि का ठीक तरह से बिना पालन किए। अनियमित रूप से।

अबिनासी*—वि०=अविनाशी (अविनश्वर)।

अबिरथा*—क्रि० वि० [सं० वृथा]=वृथा या व्यर्थ (पु० हिं०)।

अबिरल—वि०=अविरल।

अबिहड़—वि० [सं० अविरल] १. जो कटा या टूटा न हो। अखंड। साबूत। उदा०—अबिहड़ अजर-अमर पद गहौ।—गोरखनाथ। २. मिला या सटा हुआ। ३. जो परमात्मा में लीन हो चुका हो। (रहस्य-संप्रदाय)

अबीज—वि० [सं० न० ब०] १. बीज-रहित। २. नपुंसक।

अबीर—पुं० [अ०] [वि० अबीरी] १. अबरक का चूरा जो कई रंगों का, मुख्यतः गुलाबी रंग का होता है। बुक्का। २. अबरक का चूरा या रंगीन बुकनी जिसे लोग होली में इष्ट-मित्रों पर डालते हैं।

अबीरी—वि० [हिं० अबीर] अबीर के रंग का गुलाबी। कुछ कालापन लिये लाल।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

अबीह*—वि० [सं० अभय] निडर। निर्भय। उदा०—हाथल रा बल सूं हुवौ, औ मृगराज अबीह।—बाँकीदास।

अबुझ*—वि०=अबूझ।

अबुद्ध—वि० [सं० न० त०] =अबुध।

अबुद्धि—वि० [न० ब०] जिसे बुद्धि न हो। बुद्धि-हीन। मूर्ख।

स्त्री० [सं० न० त०] बुद्धि का अभाव। नासमझी।

अबुध—वि० [सं० न० त०] १. जिसे बुद्धि या बोध न हो। मूर्ख। २. जिसे किसी बात का ज्ञान या परिचय न हो। अनभिज्ञ।

अबुहाना—अ०=अभुआना।

अबूझ*—वि० [हिं० अ+बूझना] १. जिसे जाना, बूझा या समझा न जा सके। अज्ञेय। २. जिसे बुद्धि या बोध न हो। अबोध। ना-समझ। उदा०—अजहुँ न बूझ अबूझ।—तुलसी।

अबूत—वि० [हिं० अबुध] अबोध। अज्ञानी।

क्रि० वि० व्यर्थ। वृथा। उदा०—नाम सुमिरि निर्भय भया जप तप गया अबूत।—कबीर।

वि०=अपूत (निस्संतान)।

अबे—अव्य० [सं० अयि] अरे। हे। (बहुत छोटे या हीन व्यक्ति के लिए तिरस्कारसूचक संबोधन)

मुहा०—अबे-तबे करना=निरादरसूचक बातें करना।

अबेध*—वि० [सं० अविद्ध] जो बेधा न गया हो अथवा बेधा न जा सकता हो।

अबेर*—स्त्री० [सं० अवेला] विलंब। देर।

क्रि० वि० [हिं० अ+बेर=देर] बिना देर लगाए। जल्दी। शीघ्र।

अबेस*—वि० [फा० बेश=अधिक] अधिक। बहुत।

वि० [हिं० अ+फा० बेश] १. थोड़ा। कम। २. मंद। धीमा।

अबै*—वि० [सं० अ+व्यय] जो या जिसमें से व्यय न हुआ हो।

क्रि० वि० [हिं० अब] इसी समय। अभी। (व्रज०)

अबैन*—वि० [हिं० अ+बैन=वचन] जो बोल न रहा हो। चुप। मौन।

पुं० अनुचित या न कहने योग्य बात। अवाच्य।

अबोध—पुं० [सं० न० ब०] १. जिसे बोध या ज्ञान न हुआ हो। ना-समझ। मूर्ख। २. छोटी अवस्था के कारण जिसे सांसारिक बातों का ज्ञान न हुआ हो।

अबोध्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० अबोध्यता] १. (रूप, विषय, व्यक्ति आदि) जो बोध्य या समझ में आने के योग्य न हो। २. जिसे समझा न जा सके। (इन्कॉम्प्रिहेन्सिबुल)

अबोल*—वि० [हिं० अ+बोलना] १. चुप। मौन। २. जिसके विषय में कुछ बोल या कह न सकें। अनिर्वचनीय।

पुं० १. न बोलने या चुप रहने की अवस्था या भाव। चुप्पी। २. अनुचित या न कहने योग्य बात। ३. अनुचित वचन। गाली।

अबोला—वि० [हि० अ+बोला] १. जो बोला या कहा न गया हो। २. न बोलनेवाला।
पुं० किसी से खिन्न या दुःखी होने के कारण उससे न बोलना। रूठने के कारण होनेवाला मौन।

अब्ज—पुं० [सं० अप्√जन् (उत्पत्ति)+ड] १. जल में उत्पन्न वस्तु। २. कमल। ३. शंख। ४. चंद्रमा। ५. धन्वंतरि। ६. कपूर। ७. सौ करोड़ या एक अरब की संख्या।

अब्जज*—पुं० [सं० अब्ज√जन्+ड] १. ब्रह्मा। २. यात्रा के विचार से एक योग। (ज्यो०)

अब्जद—पुं० [अ०] १. अरबी-फारसी आदि की वर्ण-माला जो पहले अलिफ, बे, जीम और दाल से आरंभ होती थी। २. किसी विषय का आरंभिक ज्ञान। ३. अरबी-फारसी आदि के साहित्य में वर्ण-माला के अक्षरों से कुछ निश्चित अंक या संख्याएँ सूचित करने की एक प्रणाली।

अब्ज-बांधव—पुं० [ष० त०]=सूर्य।

अब्ज-भव—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।

अब्ज-योनि—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।

अब्ज-वाहन—पुं० [ब० स०] शिव।

अब्ज-वाहना—स्त्री० [ब० स०] लक्ष्मी।

अब्ज-हस्त—पुं० [ब० स०] सूर्य।

अब्जा—स्त्री० [सं० अब्ज+टाप्] लक्ष्मी।

अब्जाद—पुं० [सं० अब्ज√अद् (खाना)+अण्] हंस।

अब्जासन—पुं० [अब्ज-आसन, ब० स०] ब्रह्मा।

अब्जिनी—स्त्री० [सं० अब्ज+इनि-ङीप्] १. कमलवन। २. कमलों का समूह। ३. कमल का पौधा।

अब्जिनी-पति—पुं० [ष० त०] सूर्य।

अब्द—पुं० [सं० √आप् (पाना)+दन्, ह्रस्व] वर्ष। साल। [अप√दा (देना)+क] १. बादल। मेघ। २. नागर-मोथा। ३. कपूर। ४. आकाश।
पुं० [अ०] १. गुलाम। दास। जैसे—अब्दुल्ला=ईश्वर का दास। २. अनुचर। सेवक।

अब्द-कोश—पुं० दे० 'वर्ष-कोष'।

अब्द-वाहन—पुं० [ब० स०] इंद्र।

अब्द-सार—पुं० [ष० त०] कपूर।

अब्दुर्ग—पुं० [सं० मध्य० स०] वह किला या गढ़ जो खाई या झील से घिरा हो।

अब्धि—पुं० [सं० अप्√धा (धारण)+कि] १. तालाब। सरोवर। २. झील। ३. समुद्र। ४. सात की संख्या।

अब्धिज—पुं० [सं० अब्धि√जन् (उत्पत्ति)+ड] १. समुद्र से उत्पन्न वस्तु। २. शंख। ३. चंद्रमा। ४. अश्विनीकुमार।

अब्धिजा—स्त्री० [सं० अब्धिज+टाप्] १. लक्ष्मी। २. वारुणी।

अब्धि-शयन—पुं० [ब० स०] विष्णु।

अब्धि-सार—पुं० [ष० त०] रत्न।

अब्ध्यग्नि—स्त्री० [सं० अब्धि-अग्नि, ष० त०] बड़वानल।

अब्बर*—वि० [सं० अबल] जिसमें बल न हो। कमजोर या दुर्बल।

अब्बा—पुं० [फा० बाबा का अनु०] पिता या दादा का वाचक शब्द। (मुसलमान)

पद—अब्बाजान=पिता या दादा के लिए आदर सूचक संबोधन।

अब्बास—पुं० [अ०] १. शेर। सिंह। २. एक प्रकार का पौधा जो दो-तीन फुट ऊँचा होता है। ३. उक्त पौधे के फूल।
वि० रूखे स्वभाववाला।

अब्बासी—वि० [अ०] धूएँ की तरह नीले काले रंग का। (स्मोक ब्लू)
पुं० धूएँ की तरह का नीला काला रंग। (स्मोक ब्लू)
स्त्री० [अ०] एक प्रकार की बढ़िया कपास।

अब्बू—पुं०=बाबू।

अब्र—पुं० [फा० मि० सं० अभ्र] बादल। मेघ।

अब्रह्मण्य—वि० [सं० ब्रह्मन्+यत्, न० त०] १. (कार्य) जो ब्राह्मणों के करने योग्य न हो। जैसे—चोरी, हिंसा आदि। २. इतना अनुचित और निंदनीय कि शिष्ट-समाज के लिए परम अनुपयुक्त हो। ३. ब्राह्मणों, वेदों आदि पर विश्वास या श्रद्धा न रखनेवाला।
पुं० चोरी, मिथ्या भाषण, हिंसा आदि निंदनीय कर्म जो ब्राह्मणों (अर्थात् सभ्यों) के लिए अशोभन हैं।

अब्राह्मण—वि० [सं० न० त०] जो ब्राह्मण न हो।
पुं० [न० त०] ब्राह्मण से भिन्न जाति का व्यक्ति।

अब्राह्मण्य—पुं० [सं० ब्राह्मण+ष्यञ् न० त०] ब्राह्मण के कर्तव्यों का उल्लंघन।

अभंग—वि० [सं० न० ब०] १. जो भंग या भग्न न हुआ हो। २. जिसका नाश न हो। ३. जिसका क्रम न टूटे। लगातार।
पुं० १. संगीत में, एक ताल जिसमें एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। २. एक प्रकार का मराठी पद या भजन।

अभंग-पद—पुं० [कर्म० स०] श्लेष कथन के दो भेदों में से एक जिसमें किसी के कहे हुए पद का बिना उसके शब्दों के टुकड़े किये कुछ और ही अर्थ लगाया जाता है।

अभंगी (गिन्)*—वि० [सं० न० त०] जो किसी प्रकार भंग न हो सके अथवा जिसका भंग करना उचित न हो।

अभंगुर—वि० [सं० न० त०] [भाव० अभंगुरता] १. जो कभी नष्ट न हो। अविनश्वर। २. जो भंगुर न हो। साधारण आघात से न टूटनेवाला। (इन्फ्रैन्जिबुल्)

अभंगुरता—स्त्री० [सं० अभंगुर+तल्—टाप्] अभंगुर होने की अवस्था, गुण या भाव।

अभंजन—वि० [सं० न० ब०] जिसका भंजन न हो सके। जैसे—तरल या द्रव पदार्थ।

अभअंत*—पुं०, क्रि० वि०=अभ्यंतर।

अभक्त—वि० [सं० न० त०] १. जो भक्त (विभक्त) या बँटा हुआ न हो अथवा जो विभक्त न हो सकता हो। २. जिसमें ईश्वर के प्रति भक्ति न हो। 'भक्त' का विरुद्धार्थक।

अभक्ष—वि० [सं०√भक्ष् (खाना)+घञ्, न-भक्ष, न० ब०] भक्षण न करनेवाला।

अभक्ष्य—वि० [सं० न० त०] १. (पदार्थ) जो खाये जाने के उपयुक्त या योग्य न हो। २. जिसे खाने का धर्मशास्त्र में निषेध हो। ३. जो खाया न जा सकता हो।

अभग—वि० [सं० न० ब०] अभागा। भाग्यहीन।

वि०=अभंग।

अभगत*—वि० [सं० अभक्त] जो भगवान का भक्त न हो।

अभग्ग—वि० [सं० अभक्त] १. जिसके विभाग न हुए हों। २. जो कटा या टूटा-फूटा न हो। उदा०—तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग। —चंदवरदाई।

अभग्न—वि० [सं० न० त०] १. जो भग्न या टूटा-फूटा न हो। २. पूरा। समूचा।

अभद्र—वि० [सं० न० त०] १. जो भद्र (शिष्ट या सभ्य) न हो। २. जो भद्रों (शिष्टों या सभ्यों) के लिए उपयुक्त या शोभन न हो, फलतः अनुचित या अशिष्ट। ३. जो कल्याण या मंगल में बाधक हो। अमांगलिक। ४. अशुभ।

पुं० १. बुराई। २. शोक। ३. पाप।

अभद्रता—स्त्री० [सं० अभद्र+तल्–टाप्] १. अभद्र होने की अवस्था या भाव। २. दूसरे के प्रति किया जानेवाला अनुचित या अशिष्ट व्यवहार।

अभय—वि० [सं० न० ब०] [स्त्री० अभया] १. जिसे भय न हो।

मुहा०—अभय देना=यह आश्वासन देना कि अब तुम्हारे लिए भय की कोई बात नहीं है।

२. न डरनेवाला। निर्भीक।

पुं० १. परमात्मा। २. ज्ञान। ३. शिव। ४. उशीर। खस।

पुं० [सं० न० त०] १. भय से मिलनेवाली रक्षा। २. निर्भयता।

अभय-कर—वि० [ष० त०] अभय या निर्भय करनेवाला। उदा०—रजत स्वर्ण ज्वालों के सुंदर, कर में धरे त्रिशूल अभयकर।—पंत।

अभयचारी (रिन्)—वि० [सं० अभय√चर् (गति)+णिनि] १. अभय या निर्भय होकर घूमने या विचरण करनेवाला। २. स्वच्छंद।

पुं० ऐसे पशु जो पकड़े या मारे न जा सकते हों और इसी लिए निर्भय होकर विचरते हों।

अभय-दान—पुं० [सं० ष० त०] १. यह कहना कि तुम भय मत करो; तुम्हारी कोई हानि न होगी। २. सुरक्षा का आश्वासन या वचन देना।

अभय-पत्र—पुं० [ष० त०] १. लिखित लेख या पत्र जिसमें अभयदान का आश्वासन या वचन दिया गया हो। २. वह पत्र जिसे दिखाकर कोई व्यक्ति किसी संकट की स्थिति से निरापद पार हो सकता है।

अभयप्रद—वि० [सं० अभय-प्र√दा (देना)+क] अभय देनेवाला।

अभय-मुद्रा—स्त्री० [ष० त०] शरीर की वह मुद्रा जो किसी को अभय या-पूर्ण आश्वासन देने की सूचक होती है, इसमें दाहिने हाथ की हथेली सामने की ओर रखते हुए कुछ ऊपर उठाकर दिखाई जाती है।

अभय-वचन—पुं० [ष० त०] इस बात का आश्वासन या वचन कि तुम्हें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं।

अभय-वन—पुं० [कर्म० स०] १. वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन। २. ऐसा वन जिसमें यात्रियों को किसी प्रकार का भय न हो।

अभया—वि० [सं० अभय-टाप्] जिसे भय न हो। निडर।

स्त्री० १. एक विशेष प्रकार की हरीतकी या हड़ जिसमें पाँच रेखाएँ होती है। २. दुर्गा का एक रूप।

अभर*—वि० [सं० अ=नहीं+भार=बोझा] (ऐसा भार) जो ढोया न जा सके। बहुत भारी। दुर्वह।

अभरन—वि० [हिं० अ+भरना] १. खाली। रिक्त। उदा०—छुछरिय बान छकि छंछाटिय, भरिय पत्र अभरन भरिय—चंदवरदाई। २. जिसकी प्रतिष्ठा या मान नष्ट कर दिया गया हो। अपमानित।

*पुं०=आभरण।

अभरम*—वि० [सं० अ=नहीं+भ्रम] १. (बात) जिसमें कोई भ्रम या संदेह न हो। २. (व्यक्ति) जिसे भ्रम या संदेह न हो। भ्रम-रहित। ३. निडर। निर्भय। ४. अचूक।

क्रि० वि० १. बिना कोई भूल किए। अचूक। २. बिना किसी भ्रम या संदेह के।

अभर्तृका—वि० [सं० न० ब०, कप्] जिसका पति न हो। कुमारी या विधवा (स्त्री)।

अभल*—वि० [सं० अ+हिं० भला] जो भला न हो। बुरा या खराब।

मुहा०—*(किसी का) अभल ताकना=किसी के संबंध में अशुभ कामना करना।

पुं० १. भलाई या मंगल का अभाव। २. अशुभ कामना।

अभव—पुं० [सं० न० त०] १. भव या अस्तित्व का अभाव। अनस्तित्व। २. नाश। ३. प्रलय।

वि० [न० ब०] १. अमांगलिक। अशुभ। २. अद्भुत। विलक्षण। ३. भद्दा। भोंडा। ४. अशिष्ट। असभ्य।

अभव्य—वि० [सं० न० त०] १. न होने योग्य। २. जो भव्य या विशाल न हो।

पुं० वह जीव जो मोक्ष का अधिकारी न हो। (जैन)

अभाउ*—वि० [सं० अ=नहीं+भाव] १. जो मन को न भावे। अच्छा न लगनेवाला। २. अशोभन।

वि० [अ+भावुक] १. जो भावुक या रसिक न हो। शुष्क-हृदय। अरसिक। २. अशिष्ट। उजड्ड।

पुं०=अभाव।

अभाग—वि० [सं० न० ब०] जिसके खंड या भाग न हो सकते हों।

वि०=अभागा।

पुं०=अभाग्य।

अभागा—वि० [सं० अभाग्य] [स्त्री० अभागिनी] १. जिसका भाग्य अनुकूल न हो। २. जिसने बहुत ठोकरें खाई हों अथवा कष्ट सहे हो। (अन्फारचुनेट)

अभागी (गिन्)—वि० [सं० भाग+इनि, न० त०] १. जिसका किसी व्यापार या संपत्ति में अंश या हिस्सा न हो। २. जिसे उसका भाग न मिला हो। ३. भाग न लेनेवाला। शरीक या शामिल न होनेवाला।

अभाग्य—पुं० [सं० न० त०] अच्छे भाग्य का अभाव। बुरा भाग्य। बदकिस्मती।

अभाजन—वि० [सं० न० त०] १. जो उपयुक्त भाजन या पात्र न हो। कुपात्र। २. खराब। बुरा।

अभाजै—वि० [सं० अविभाजित] अविभक्त। संपूर्ण। समूचा। उदा०—अभाजै सी रोटली कागा लै जाइला।—गोरखनाथ।

वि०=अविभाज्य।

अभार—वि० [हिं० अ+भारी] इतना भारी कि ढोया न जा सके। दुर्वह। पुं० [सं० न० त०] १. भार का अभाव। २. अनुचित या बुरा भार।

अभाव—पुं० [सं० न० त०] १. अस्तित्व में न होने की अवस्था या भाव। २. उपस्थित या विद्यमान न होने की अवस्था या भाव। ३. गुण, वस्तु आदि की अत्यधिक कमी होना। ४. न मिलने की अवस्था या भाव। ५. अच्छे या सद्भाव की कमी।*६. वैर-विरोध का भाव।

अभावक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. भाव या सत्ता से रहित। २. अभाव उत्पन्न या सूचित करनेवाला। ३. दे० 'नहिक'।

अभावन*—वि० [सं० √भू+णिच्+ल्यु–अन] १. सुंदर। २. रुचिकर। वि० न भानेवाला। अप्रिय।

अभावना—स्त्री० [सं० न० त०] १. भावना का न होना। २. ध्यान की कमी। ध्यान-शून्यता।

*वि० [हिं० अ=नहीं+भाना=अच्छा लगना] जो अच्छा न लगे। अप्रिय।

अभावनीय—वि० [सं० न० त०] जो भावना में न आ सके। जिसके विषय में कुछ सोचा-समझा न जा सके। (इन-कान्सीविबुल)

अभाव-पदार्थ—पुं० [सं० अभाव–न० ब०, अभाव–पदार्थ कर्म० स०] वह पदार्थ जो भाव अर्थात् सत्ता-शून्य हो। असत् पदार्थ। (दर्शन)

अभाव-प्रमाण—पुं० [सं० कर्म० स०] कारण का अभाव होने पर भी कोई कार्य होने पर दिया जानेवाला प्रमाण। (न्याय)

अभावात्मक—वि० [सं० अभाव+आत्मन्, ब० स०, कप्] १. जो अभाव के रूप में हो या अभाव का सूचक हो। २. दे० 'नहिक'।

अभावित—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी भावना न की गई हो। जो पहले से सोचा-समझा न गया हो। २. जिसमें किसी दूसरी चीज की भावना (पुट) न हो।

अभावी (विन्)—वि० [सं०√भू (सत्ता)+णिनि, न० त०] जिसकी सत्ता या स्थिति न हो सके। न होनेवाला।

अभाव्य—वि० [सं० न० त०] १. न होनेवाला। २. जिसकी भावना न की जा सके।

अभाषण—पुं० [सं० न० त०] न बोलना। मौन धारण करना।

अभाषित—वि० [सं० न० त०] जो न कहा गया हो। अनुक्त।

अभास*—पुं०=आभास।

अभि—उप० [सं०√भा (दीप्ति)+कि, न० स०] एक उपसर्ग जो कुछ शब्दों के आरंभ में लगकर निम्नलिखित अर्थ सूचित करता है।—(क) आगे या सामने की ओर; जैसे—अभिमुख। (ख) मात्रा या मान की अधिकता; जैसे—अभिकांक्षा, अभिनिवेश, अभिमान। (ग) अच्छी तरह से। भली भाँति। जैसे—अभिरंजन, अभ्युदय। (घ) किसी प्रकार की विशेषता या श्रेष्ठता का सूचक; जैसे—अभिनव (बिलकुल नया), अभिभाषण (विवेचनापूर्ण भाषण), अभिरूप (विदग्धतापूर्ण रूप)।

अभिअंतर*—क्रि० वि० पुं०=अभ्यंतर।

अभिउ*—वि०=अभय।

पुं०=अभय।

अभिक—वि० [सं० अभि+कन्] लंपट।

अभिकथन—पुं० [सं० अभि√कथ् (कहना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० अभिकथित] किसी पक्ष या व्यक्ति द्वारा किसी पर लगाया हुआ ऐसा आरोप या अभियोग जो अभी तक प्रमाणित न किया गया हो। (एलिगेशन)

अभिकरण—पुं० [सं० अभि√कृ (करना)+ल्युट्–अन] किसी बड़ी संस्था की ओर से किसी नियत क्षेत्र में काम करनेवाली कोई अधीनस्थ छोटी संस्था। (एजेंसी)

अभिकर्त्ता (र्तृ)—पुं० [सं० अभि√कृ+तृच्] १. वह जो किसी व्यक्ति या संस्था की ओर से उसके प्रतिनिधि के रूप में कुछ काम करने के लिए नियत हो। (एजेन्ट) २. वह जिसे किसी की ओर से संपत्ति आदि की व्यवस्था और विधिक कार्य करने का अधिकार मिला हो। मुख्तार।

अभिकर्त्ता-पत्र—पुं० [सं० अभिकर्तृ–पत्र] वह पत्र जिसके अनुसार कोई किसी का अभिकर्त्ता नियत हुआ हो। मुख्तारनामा।

अभिकर्तृत्व—पुं० [सं० अभिकर्तृ+त्व] १. अभिकर्त्ता होने की अवस्था या भाव। २. दे० 'अभिकरण'।

अभिकलन—पुं० [सं० अभि√कल् (गिनना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० अभिकलित] परिकलन का वह गंभीर प्रकार या रूप जिसमें अनुभवों, बाहरी घटनाओं, निश्चित सिद्धान्तों आदि से भी सहायता ली जाती है। (कम्प्यूटेशन) जैसे—ज्योतिष में, औषधियों, भूकम्पों आदि की भविष्यद् वाणी अभिकलन के ही आधार पर होती है।

अभिकल्प—पुं० [सं० अभि√कृप् (सामर्थ्य)+घञ्, गुण, र काल आदेश] [भाव० अभिकल्पन भू० कृ० अभिकल्पित] किसी पदार्थ, विशेषतः यंत्र आदि को जाँचकर ठीक करने या कल-पुरजों को अलग-अलग करना और तब उन्हें यथास्थान बैठाना। (ओवरहॉलिंग)

अभिकल्पन—पुं० [सं० अभि√कृप्+ल्युट्–अन] अभिकल्प करने की क्रिया या भाव। (ओवरहॉलिंग)

अभिकल्पना—स्त्री० [सं० अभि√कृप्+णिच्+युच्—अन] १. ऐसी कल्पना या कल्पित बात जो किसी तर्क आदि का आधार मान ली गई हो। (एजम्पशन) २.=अभिकल्पन।

अभिकांक्षा—स्त्री० [सं० अभि√कांक्ष् (चाहना)+अ–टाप्] अभिलाषा। इच्छा।

अभिकाम—वि० [सं० अभि√कम् (चाहना)+णिच्+अच्] १. चाहनेवाला। इच्छुक। २. स्नेही। ३. कामुक।

पुं० [अभि√कम्+घञ्] १. इच्छा। २. कामना। ३ अनुराग। प्रेम।

अभिक्रम—पुं० [सं० अभि√क्रम् (विक्षेप)+घञ्] आगे की ओर बढ़ना।

अभिख्यान—पुं० [सं० अभि√ख्या+ल्युट्—अन] १. नाम २. प्रसिद्धि। ३. यश।

अभिगम—पुं० [सं० अभि√गम् (जाना)+घञ्] अभिगमन।

अभिगमन—पुं० [सं० अभि√गम् (जाना)+ल्युट्—अन] १. किसी के पास जाना। २. संभोग। सहवास। ३. उपासना का वह प्रकार जिसमें भक्त देव-मंदिर में पहुँचकर उसे स्वच्छ करता और सजाता है।

अभिगामी (मिन्)—वि० [सं० अभि√गम्+णिनि] अभिगमन करने-वाला।

अभिगुप्ति—स्त्री० [सं० अभि√गुप् (रक्षा)+क्तिन्] छिपा या बचाकर रखने की क्रिया या भाव।

अभिगृहीत—भू० कृ० [सं० अभि√ग्रह् (ग्रहण करना)+क्त] जिसका अभिग्रहण हुआ हो। चुन या छाँट कर अथवा अच्छा समझकर अपनाया या ग्रहण किया हुआ। (एडॉप्टेड)

अभिगोप्ता (प्तृ)—वि० [सं० अभि०√गुप् (रक्षा)+तृच्] बचाने या रक्षा करनेवाला।

अभिग्रस्त—वि० [सं० अभि√ग्रस् (खाना)+क्त] शत्रु द्वारा दबाया या जीता हुआ। आक्रांत।

अभिग्रह—पुं०=अभिग्रहण।

अभिग्रहण—पुं० [सं० अभि√ग्रह्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिगृहीत] १. चुन या छाँटकर लेना। पसंद करके लेना। २. दूसरों की कोई चीज या बात अच्छी समझकर अपनाना। (एडाप्शन) ३. बलपूर्वक किसी की कोई वस्तु उठा लेना। ४. आक्रमण।

अभिघट—पुं० [सं० अत्या० स०] घड़े के आकार का एक प्राचीन बाजा।

अभिघात—पुं० [सं० अभि√हन् (हिंसा)+घञ्] [वि० अभिघातक, कर्त्ता अभिघाती] १. चोट पहुँचाने, प्रहार करने या मारने की क्रिया या भाव। २. आघात। ३. दो वस्तुओं में होनेवाली टक्कर या रगड़। ४. विनाश। ५. पुरुष के बाएँ अंग में या स्त्री के दाहिने अंग में होनेवाला मसा जो घातक माना जाता है।

अभिघाती (तिन्)—वि० [सं० अभि√हन्+णिनि] १. अभिघात करने अथवा चोट पहुँचानेवाला।

पुं० शत्रु।

अभिघार—पुं० [सं० अभि√घृ (क्षरण)+णिच्+घञ्] १. सींचना। छिड़कना। २. घी की आहुति। ३. छौंकना। बघार। ४. घी।

अभिचर—पुं० [सं० अभि√चर् (गति)+ट] दास। नौकर।

अभिचार—पुं० [सं० अभि√चर+घञ्] [कर्त्ता, अभिचारी] १. तंत्र-मंत्र द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि द्वारा किये जानेवाले अनुचित कर्म। २. दे० 'पुरश्चरण'।

अभिचारक—पुं० [सं० अभिचार+कन्] यंत्र-मंत्र द्वारा मारण-उच्चाटन आदि अभिचार करनेवाला।

अभिचारी (रिन्)—वि० [सं० अभि√चर्+णिनि] दे० 'अभिचारक'।

अभिजन—पुं० [सं० अभि√जन् (उत्पत्ति)+घञ्, अवृद्धि] १. कुल। वंश। २. परिवार। ३. पूर्वजों के रहने का देश (निवास या अपने रहने के स्थान से भिन्न)। ४. घर का मालिक। गृह-स्वामी। ५. उच्चकुल में उत्पन्न होने की अवस्था या भाव। ६. पूर्वज। ७. दे० 'परिजन'।

अभिजय—स्त्री० [सं० प्रा० स०] विजय। जीत।

अभिजागर—पुं० [सं० अभि+जागर] वह व्यक्ति जो परीक्षा में बैठे हुए विद्यार्थियों की चौकसी या देख-रेख करता हो। (इनविजी-लेटर)

अभिजात—वि० [सं० ब० स०] १. अच्छे और उच्च कुल में उत्पन्न। कुलीन। २. बुद्धिमान्। समझदार। ३. पंडित। विद्वान्। ४. पूज्य। मान्य। ५. मनोहर। सुंदर। ६. उपयुक्त। योग्य।

अभिजात-तंत्र—पुं० [सं० ष० त०] वह शासन प्रणाली जिसमें राज्य करने का सारा प्रबंध थोड़े से उच्च कुल के तथा संपन्न लोगों के हाथ में रहता है। कुल-तंत्र। (एरिस्ट्रोक्रेसी)

अभिजाति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] अच्छे या उच्च वंश में जन्म होना। कुलीनता।

अभिजित—वि० [सं० अभि√जि (जीतना)+क्त] [भाव० अभि-जिति] जिसे जीत लिया गया हो। विजित।

पुं० १ दिन का आठवाँ (मध्याह्न में पड़नेवाला) मुहूर्त्त जो श्राद्ध आदि करने के लिए शुभ माना गया है। २. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर सिंघाड़े के आकार के होते हैं। ३. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अंतिम १५ दंड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दंड। ४. एक प्रकार का सोमयज्ञ।

अभिजिति—स्त्री० [सं० अभि√जि+क्तिन्] [वि० अभिजित] युद्ध में शत्रु को जीतने की क्रिया या भाव। जीत। विजय। (कॉन्क्वेस्ट)

अभिज्ञ—वि० [सं० अभि√ज्ञा (जानना)+क] [भाव० अभिज्ञता] १. किसी बात या विषय का ज्ञान रखनेवाला। जानकार। ज्ञाता। २. कुशल। निपुण।

अभिज्ञा—स्त्री० [सं० अभि√ज्ञा+अङ्—टाप्] १. ज्ञान प्राप्त करना। परिचित होना। जानना। २. पहले देखी हुई चीज फिर से देखकर पहचानना। ३. पुरानी बात फिर से याद या स्मरण करना। ४. बौद्धों के अनुसार, गौतम बुद्ध की वह अलौकिक शक्ति जिससे वे मनमाना रूप या शरीर धारण कर सकते थे तथा भूत, भविष्य और वर्तमान की सब बातें जान लेते थे और पास तथा दूर के सब लोगों के मन की बातें समझ लेते थे।

अभिज्ञात—भू० कृ० [सं० अभि√ज्ञा+क्त] १. जिसका अभिज्ञान हुआ हो। २. जाना-पहचाना या समझा-बूझा हुआ।

शाल्मली द्वीप के सात खंडों में से एक।

अभिज्ञातार्थ—पुं० [सं० अभिज्ञात+अर्थ, ब० स०] वादी के अप्रसिद्ध या श्लिष्ट अर्थोंवाले शब्दों के प्रयोग करने पर प्रतिवादी का कुछ न समझना और फल-स्वरूप विवाद रुक जाना। जो न्याय-शास्त्र में एक निग्रह स्थान माना गया है।

अभिज्ञान—पुं० [सं० अभि√ज्ञा+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिज्ञात] १. स्मृति। याद। २. निशानी। पहचान। ३. वह वस्तु या बात जिससे कोई पुरानी बात फिर से याद आ जाय। अनुस्मरण। ४. पहचान कर बतलाना कि यह वही व्यक्ति है। (आइडेन्टिफिकेशन) ५. लक्षण।

अभिज्ञापक—वि० [सं० अभि√ज्ञा+णिच्+ण्वुल्—अक, पुक्] १. अभि-ज्ञान या पहचान करानेवाला। २. अभिज्ञापन करनेवाला। (एना-उन्सर)

अभिज्ञापन—पुं० [सं० अभि√ज्ञा+णिच्+ल्युट्—अन, पुक्] सार्वजनिक रूप से प्रथम बार लोगों को ऐसी बात की जानकारी कराना जिससे उनके हानि-लाभ का संबंध हो, अथवा जिसकी वे उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हों। जैसे—किसी आविष्कार का अभिज्ञापन, प्रतियोगिता में विजयी का अभिज्ञापन अथवा निर्वाचित पदाधिकारी का अभिज्ञापन। (एनाउन्समेंट)

अभितः—अव्य० [सं० अभि+तस्] १. चारों ओर से। सर्वतः। २. २. पूरी तरह से। पूर्णतः।

अभिताप—पुं० [सं० अभि√तप् (जलना)+घञ्] १. मानसिक या शारीरिक जलन, दुःख या ताप। २. व्याकुलता। ३. क्षोभ।

अभित्यक्त—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] जिसका अभित्याग हुआ हो।

अभित्याग—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अभित्यक्त] १. कोई चीज या बात छोड़ने की क्रिया या भाव। २. अपराध, अभियोग, दंड आदि से मुक्त करने की क्रिया या भाव। वरी होना। (रिलीज)

अभिद*—वि०=अभेद्य।

अभिदत्त—वि० [सं० प्रा० स०]=प्रदत्त।

अभिदर्शन—पुं० [सं० अभि√दृश् (देखना)+ल्युट्—अन] १. सामने आकर दिखाई देना। २. सामने पहुँचकर देखना।

अभिदान—पुं० [सं० प्रा० स०] [वि० अभिदत्त] १. देने की क्रिया या भाव। दान। २. राज्य या शासन की ओर से उद्योग-धंधों की अभिवृद्धि के लिए उनके कर्त्ताओं या संचालकों को दी जानेवाली आर्थिक सहायता। (वाउन्टी)

अभिदिशा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] वह दिशा जिधर (क) किसी कार्य की गति हो, अथवा (ख) किसी व्यक्ति का मन या विचार अग्रसर या प्रवृत्त हो। (डाइरेक्शन)

अभिदिष्ट—भू० कृ० [सं० अभि√दिश् (वताना)+क्त] जिसका अभिदेश हुआ हो। अभिदेश के रूप में आया हुआ।

अभिदेश—पुं० [सं० अभि√दिश्+घञ्] [कर्त्ता अभिदेशक, वि० अभिदेशिक, भू० कृ० अभिदिष्ट] १. किसी वात, वस्तु या व्यक्ति की ओर किसी उद्देश्य से देखना या संकेत करना। २. किसी उल्लिखित घटना, आदि की ऐसी चर्चा जो किसी मत के खंडन या पुष्टि के लिए प्रमाण, संकेत, साक्षी आदि के रूप में हो। ३. किसी विवादास्पद विषय के संबंध में किसी का मत जानने या उसका स्पष्टीकरण करने के लिए अथवा उस संबंध में आधिकारिक आदेश या निर्णय प्राप्त करने के लिए उसे उपयुक्त अधिकारी के पास भेजना। (रेफरेन्स, अंतिम दोनों अर्थों के लिए) ४. दे० 'अभिदेश-ग्रंथ'।

अभिदेशक—वि० [सं० अभि√दिश् (बताना)+ण्वुल्—अक] अभिदेश करनेवाला।

अभिदेश-ग्रंथ—पुं० [सं० ष० त०] वह ग्रंथ जिसका उपयोग समय-समय पर किसी विशिष्ट विषय का ठीक और पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया जाता है। संदर्भ-ग्रंथ। (रेफरेन्स वुक)

अभिदेशना—स्त्री० [सं० अभि√दिश्+णिच्+युच्—टाप्] १. विधान-मंडल द्वारा पारित अथवा प्रस्तावित कोई विधेयक या प्रस्ताव मतदाताओं की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति जानने के लिए उन्हें अभिदिष्ट करना। २. उक्त रूप में कोई वात अभिदिष्ट करने का कार्य या सिद्धांत। (रेफरेन्डम)

अभिदेशिकी—पुं० [सं० अभिदेश] वह आधिकारिक व्यक्ति जिसे कोई विषय या झगड़े की कोई बात उसके निर्णय के लिए अभिदिष्ट की जाय। (रेफरी)

अभिद्रोह—पुं० [सं० अभि√द्रुह् (मारने की इच्छा)+घञ्] १. किसी के अनिष्ट, अपकार आदि की वह प्रबल भावना जो द्वेष, वैर आदि के कारण उत्पन्न होती है और उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न कराती है। २. निंदा। ३. हानि। ४. निष्ठुरता।

अभिधमन—पुं० [सं० अभि√ध्मा (धौंकना)+ल्युट्—अन] किसी प्रक्रिया से वहुत जोर की या तेज हवा पहुँचाना। धौंकना। (ब्लॅस्टिंग)

अभिधर्म—पुं० [सं० प्रा० स०] १. श्रेष्ठ धर्म। २. ध्रुव सत्य का निरूपण करनेवाला धर्म या मत। (बौद्ध)

अभिधा—स्त्री० [सं० अभि√धा (धारणा)+अङ—टाप्] [वि० अभिहित] १. कहने, पुकारने, उल्लेख आदि करने की क्रिया या भाव। २. नाम। संज्ञा। ३. शब्द। ४. साहित्य में, शब्दों की वह शक्ति जिससे उनके वाच्यार्थ अर्थात् नियत, प्रचलित और मुख्य अर्थ का ज्ञान या वोध होता है। (कोई शब्द सुनते ही उसके अर्थ का जो बोध होता है, वह इसी शक्ति के द्वारा होता है)।

अभिधान—पुं० [सं० अभि√धा+ल्युट—अन्] १. नाम। २. उपाधि। ३. उक्ति। कथन। ४. किसी पद का विशेष नाम या संज्ञा। (डेजिगनेशन) जैसे—मंत्री, सचिव, निरीक्षक, आचार्य आदि। ५. दे० 'नाम कोश'।

अभिधानमाला—स्त्री० [ष० त०]=नाम कोश।

अभिधायक—वि० [सं० अभि√धा+ण्वुल्—अक, युक्] १. अभिधा निश्चित करने या नाम रखनेवाला। २. कहने, वताने या समझानेवाला। ३. परिचायक। सूचक।

अभिधावक—वि० [सं० अभि—धाव् (गति)+ण्वुल्—अक] धावा या आक्रमण करनेवाला। आक्रामक। (एग्रेसर)

अभिधावन—पुं० [सं० अभि√धाव्+ल्युट्—अन] १. आक्रमण या धावा करने के लिए आगे बढ़ना। चढ़ दौड़ना। २. जान-बूझकर कोई ऐसा काम करना जिससे किसी निर्दोष या अनाक्रामक को कोई कष्ट पहुँचे या उसकी कोई हानि हो। (एग्रेशन)

अभिधेय—वि० [सं० अभि√धा+यत्] १. जिसकी कोई अभिधा या कुछ नाम हो। नामवाला। २. जो कहा या पुकारा जा सके। ३. जिसका वोध नाम लेने से ही हो जाय। ४. जिसका प्रतिपादन या विवेचना हो सके या होने को हो।

पुं० अभिधा। नाम।

अभिनंदन—पुं० [सं० अभि√नन्द् (प्रशंसा)+ल्युट्—अन] १. आनंद। २. संतोष। ३. प्रशंसा। ४. प्रोत्साहन। ५. निवेदन। प्रार्थना। ६. आम नामक वृक्ष या उसका फल। ७. जैनों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८. आज-कल विशेष रूप से प्रचलित अर्थ में, किसी को धन्य या पूज्य मानकर उसके प्रति शुभकामना और श्रद्धा प्रकट करना।

अभिनंदन-ग्रंथ—पुं० [ष० त०] वह ग्रंथ जो किसी पूज्य तथा मान्य व्यक्ति का सम्मान करने और उसकी सेवाओं की स्मृति स्थायी रूप से बनाये रखने के लिए उसके नाम पर प्रस्तुत कर के सार्वजनिक रूप में उसे भेंट किया जाता है। (कॉमेमोरेशन वॉल्यूम)

अभिनंदन-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र जिसमें किसी धन्य, पूज्य या प्रतिष्ठित व्यक्ति की सेवाओं का प्रशंसापूर्वक तथा श्रद्धापूर्वक उल्लेख होता है और जो सार्वजनिक रूप से उसे भेंट किया जाता है। (एड्रेस)

अभिनंदना*—अ० [हिं० अभिनंदन] अभिनंदन (आदर-सत्कार या सम्मान) करना।

अभिनंदनीय—वि० [सं० अभि√नन्द्+अनीयर्] १. अभिनंदन का अधिकारी या पात्र। २. प्रशंसनीय।

अभिनंदित—भू० कृ० [सं० अभि√नन्द्+क्त] [स्त्री० अभिनंदिता] जिसका अभिनंदन किया गया हो।

अभिनंदी (दिन्)—वि० [सं० अभि√नन्द्+णिनि] किसी का अभिनंदन अथवा प्रशंसा करनेवाला।

अभिनय—पुं० [सं० अभि√नी (ले जाना)+अच्] १. खेल, नाटक आदि में आंगिक चेष्टाएँ या हाव-भाव कलात्मक ढंग से प्रदर्शित करना। २. केवल दिखलाने के लिए अथवा किसी के अनुकरण पर की जानेवाली आंगिक चेष्टा। ३. नाटक।

अभिनव—वि० [सं० अभि√नु (स्तुति)+अप्] [भाव० अभिनवता] १. बिलकुल नया। नवीन। २. जो आधुनिक युग की विशेषताओं से युक्त हो। आधुनिक ढंग का। (न्यूफैशन्ड)

अभिनिधन—पुं० [सं० अत्या० स०] निधन या नाश के पास पहुँचना।

अभिनियोग—पुं० [सं० प्रा० स०] १. साथ लगाना या सटाना। जोड़ना। २. परस्पर संबंध स्थापित करना। ३. दत्त-चित्त या तत्पर होना।

अभिनिर्णय—पुं० [सं० प्रा० स०] १. किसी विवादास्पद विषय में निर्णायक का किया हुआ निर्णय। (वर्डिक्ट) २. किसी के दोषी या निर्दोष होने के संबंध में अभिनिर्णायक (ज्यूरी) का दिया हुआ मत या निर्णय। (वर्डिक्ट ऑफ ज्यूरी)

अभिनिर्णायक—पुं० [सं० प्रा० स०] वे लोग जो जज के साथ बैठकर विवादास्पद विषयों पर अपना निर्णय या मत देते हैं। (ज्यूरी)

अभिनिर्देश—पुं० [सं० अभि-निर्√दिश् (बताना)+घञ्] दे० 'अभिदेश'।

अभिनिर्याण—पुं० [सं० अभि-निर्√या (जाना)+ल्युट्-अन] आक्रमणकारी का अभियान।

अभिनिविष्ट—भू० कृ० [सं० अभि-नि-विश् (प्रवेश)+क्त] [भाव० अभिनिविष्टता] जिसका अभिनिवेश हुआ हो।

अभिनिवेश—पुं० [सं० अभि-नि√विश्+घञ्] १. किसी में धँसे, पैठे या लगे होने की अवस्था या भाव। २. किसी कार्य या विषय में मन या विचारों की लीनता। मनोयोग। ३. किसी बात या विषय में होनेवाली गति या पैठ। ४. सब ओर से ध्यान हटा कर किसी एक विषय का होनेवाला चिंतन या मनन। ५. तत्परता। ६. दृढ़ संकल्प। ७. मृत्यु के भय से होनेवाला कष्ट या क्लेश, जो योग-शास्त्रों में पाँच क्लेशों में से एक माना गया है।

अभिनिवेशित—भू० कृ०=अभिनिविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—पुं० [सं० अभि-निस्√क्रम् (पाद-गति)+ल्युट्-अन] १. घर से बाहर निकलने की क्रिया या भाव। २. संसार से विरक्त होने के उद्देश्य से घर-बार छोड़ कर निकल जाना।

अभिनीत—भू० कृ० [सं० अभि√नी (ले जाना)+क्त] १. निकट या समीप लाया हुआ। २. पूर्णता को पहुँचा या पहुँचाया हुआ। ३. सजाया हुआ। सज्जित। ४. उचित। वाजिब। ५. ज्ञाता। विज्ञ। ६. नाटक, जिसका अभिनय हुआ हो। खेला हुआ।

अभिनेतव्य—वि० [सं० अभि√नी+तव्यत्] जिसका अभिनय हो सके या होने को हो।

अभिनेता (तृ)—पुं० [सं० अभि√नी+तृच्] [स्त्री० अभिनेत्री] वह जो रंग-मंच पर अभिनय या नाटक करता हो। नट। (ऐक्टर)

अभिनेत्री—स्त्री० [सं० अभिनेतृ+ङीप] रंग-मंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। नटी। (ऐक्ट्रेस)

अभिनेय—वि० [सं० अभि√नी+यत्] (नाटक) जिसका अभिनय होने को हो या हो सकता हो।

अभिनै*—पुं०=अभिनय।

अभिन्न—वि० [सं० न० त०] [भाव० अभिन्नता] १. जो भिन्न न हो। एकमय। २. किसी से मिला, लगा या सटा हुआ। संबद्ध। ३. जिससे कोई अंतर या भेद-भाव न रखा जाय। अंतरंग। घनिष्ठ। जैसे—अभिन्न-हृदय मित्र।

अभिन्नता—स्त्री० [सं० अभिन्न+तल्-टाप्] १. अभिन्न होने की अवस्था या भाव। २. एकरूपता। ३. घनिष्ठ संबंध।

अभिन्न-पद—पुं० [ब० स०] श्लेष अलंकार का एक भेद।

अभिन्न-हृदय—वि० [ब० स०] (ऐसे दो या कई व्यक्ति) जिनमें भावों विचारों आदि की पूर्ण एकता या समानता हो।

अभिन्यस्त—भू० कृ० [सं० अभि-नि√अस् (फेंकना)+क्त] १. अभिन्यास के रूप में रखा या लाया हुआ। २ किसी मद या विभाग में रखा या डाला हुआ। जमा किया हुआ। (डिपॉजिटेड)

अभिन्यास—पुं० [सं० अभि-नि√अस्+घञ्] [कर्त्ता अभिन्यासक, भू० कृ० अभिन्यस्त] १. किसी मद या विभाग में रखना। जमा करना। २. पूर्व योजना, परिकल्पना आदि के अनुसार किया जानेवाला निर्माण या रचना। (ले-आउट) ३. एक प्रकार का सान्निपातिक ज्वर, जिसमें नींद न आना, देह काँपना आदि क्रियाएँ दृष्टिगत होने लगती हैं।

अभिपतन—पुं० [सं० अभि√पत् (गिरना)+ल्युट्-अन] १. पूर्ण रूप से गिरना। पूरा पतन। २. प्रस्थान। ३. आक्रमण। चढ़ाई।

अभिपत्ति—स्त्री० [सं० अभि√पद् (गति)+क्तिन्] १. पास जाना या पहुँचना। २. किसी विषय में होनेवाली गति। ३. पहुँच। पैठ। ४ अंत। समाप्ति। ५. पूर्ति।

अभिपत्र—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा लेख जिसमें किसी गूढ़ विषय की विशिष्ट जानकारी की बातें हों और जो मुख्यतः विद्वानों के सामने विचारार्थ उपस्थित किया या पढ़ा जाय। (पेपर)

अभिपन्न—वि० [सं० अभि√पद्+क्त] १. विपत्ति या संकट में पड़ा हुआ, अथवा ऐसी स्थिति में रक्षा और सहायता के लिए किसी के पास जानेवाला। २. भाग्यहीन। अभागा। ३. हारा हुआ। पराजित। ४. अपराधी। दोषी। ५. भागा हुआ। ६. मरा हुआ। मृत।

अभिपद—पुं० [सं० प्रा० स०] ऐसा निश्चय, मत, विचार या सिद्धांत जो किसी समष्टि का पूरा और स्वतंत्र अंग हो। (आर्टिकिल)

अभिपीड़न—पुं० [सं० अभि√पीड् (कष्ट देना+ल्युट्-अन] [भू०

कृ० अभिपीड़ित] बहुत अधिक कष्ट या दुःख देना। बहुत पीड़ित करना।

अभिपुष्ट—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] १. जिसका अभिपोषण हो चुका हो। (रैटिफाइड) २. अच्छी तरह से पुष्ट या पक्का हुआ।

अभिपुष्टि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अभिपुष्ट होने की अवस्था या भाव। २. अभिपोषण।

अभिपूर्ण—वि० [सं० प्रा० स०] १. अच्छी तरह भरा हुआ। २. संतुष्ट।

अभिपूर्त्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अभिपूर्त्त] १. अभिपूर्ण करने की क्रिया या भाव। २. अपने ऊपर लिये हुए उत्तरदायित्व का निर्वाह या दिये हुए वचन का पालन करना। (इंप्लिमेन्टेशन)

अभिपोषण—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अच्छी तरह की जानेवाली पुष्टि। २. किसी की कही हुई बात या किये हुए कार्य, निर्णय आदि का आधिकारिक रूप से किया हुआ समर्थन अथवा स्वीकरण। अभिपुष्टि। (कनफर्मेशन) ३. राज्यकीय क्षेत्र में, अपने प्रतिनिधि के निर्णय का उच्च अधिकारियों द्वारा ठीक मान लिया जाना। (रैटिफिकेशन)

अभिपोषणीय—वि० [सं० अभि√पुष् (पुष्टि)+अनीयर्] जिसका अभिपोषण होना उचित हो अथवा होने को हो।

अभिपोषित—भू० कृ० [सं० अभि√पुष् (पुष्टि)+णिच्+क्त] जिसका अभिपोषण हुआ हो अथवा किया गया हो।

अभिप्रमाणन—पुं० [सं० अभि-प्रमाण प्रा० स०,+क्विप्+ल्युट्—अन, भू० कृ० अभिप्रमाणित] किसी आधिकारिक व्यक्ति, या संस्था का साक्षी के रूप में होकर किसी बात के संबंध में यह कहना कि यह ठीक है। (एटेस्टेशन)

अभिप्राणन—पुं० [सं० अभि–प्र√अन्+ल्युट्–अन] साँस बाहर निकालने की क्रिया।

अभिप्राय—पुं० [सं० अभि–प्र√इ (गति)+अच्] [वि० अभिप्रेत] १. किसी के पास जाना या पहुँचना। (मूल अर्थ) २. वह उद्देश्य या विचार जो हमें कोई काम करने में प्रवृत्त करता है। इरादा। (इन्टेन्ट) जैसे—किसी को धोखा देने के अभिप्राय से झूठ बोलना। ३. वह उद्देश्य या ध्येय जिसकी पूर्त्ति या सिद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक कोई काम किया जाता है। नीयत। (पर्पज) ४. आशय। तात्पर्य। ५. चित्र-कला, मूर्त्ति-कला आदि में (क) वह काल्पनिक अथवा प्राकृतिक भाव जो उसमें मुख्य रूप से झलकता हो, अथवा (ख) वह आशय, भाव या विचार जो अलंकारों, परिरूपों आदि में अधिकतर या मुख्य रूप से सब जगह स्पष्ट दिखाई देता हो। (मोटिफ) ६. रूप। ७. संबंध। ८. विष्णु।

अभिप्रेत—वि० [सं० अभि–प्र√इ+क्त] १. जो अभिप्राय का विषय बना हो। २. चाहा हुआ। इष्ट। (इन्टेन्डेड) ३. प्रिय या रुचिकर।

अभिप्लव—पुं० [सं० अभि√प्लु (गति)+अप्] १. उपद्रव। उत्पात। फसाद। २. नदियों आदि की बाढ़। ३. गवामयन यज्ञ का एक अंग जो छः दिनों में होता है। ४. प्राजापत्य। आदित्य।

अभिभव—पुं० [सं० अभि√भू (सत्ता)+अप्] १. पराजय। हार। २. तिरस्कार। ३. अनहोनी या विलक्षण बात अथवा घटना। ४. किसी को बलपूर्वक दबाकर कहीं रोक रखना या किसी ओर ले जाना। (कॉन्स्ट्रेन्ट)

अभिभावक—वि० [सं० अभि√भू+णिच्+ण्वुल्–अक्] १. अभिभूत, पराजित या वशीभूत करनेवाला। २. बहुत अधिक प्रबल या श्रेष्ठ। पुं० वह जो किसी अल्प-वयस्क बालक अथवा अनाथ स्त्री और उसकी सब बातों की देख-रेख या रक्षा करता हो। (गार्जियन)

अभिभावन—पुं० [सं० अभि√भू+णिच्+ल्युट्–अन] अभिभव करने या होने की अवस्था या भाव।

अभिभावित—भू० कृ० [सं० अभि√भू+णिच्+क्त] १. जिसका अभिभव हुआ हो। पराजित। २. किसी के नीचे दबा हुआ। अधीन। ३. तिरस्कृत।

अभिभावी (विन्)—वि० [सं० अभि√भू√णिच्+णिनि] १. अभिभावन करनेवाला। २. पूरी शक्ति से क्रियाशील होकर प्रभाव, फल आदि उत्पन्न करनेवाला। ३. बहुत बढ़कर। उत्कृष्ट।

अभिभाषक—पुं० [सं० अभि√भाष् (बोलना)+ण्वुल्–अक] १. किसी की तरफ से बोलनेवाला। २. शास्त्रार्थ करनेवाला। ३. वह जो किसी मुकदमें में किसी पक्ष की तरफ से न्यायालय में बहस तथा उसका समर्थन करे। (एडवोकेट)

अभिभाषण—पुं० [सं० अभि√भाष्+ल्युट्–अन] १. विचार, विद्वत्ता तथा विवेचनापूर्ण भाषण। वक्तृता। (एड्रेस) २. न्यायालय में अभिभावक या किसी विधिज्ञ द्वारा दिया हुआ भाषण या वक्तव्य। (एड्रेस ऑफ एडवोकेट)

अभिभू—वि० [अभि√भू+क्विप्] १. दूसरों से अधिक आगे बढ़ा हुआ। २. उत्कृष्ट। श्रेष्ठ।

अभिभूत—वि० [सं० अभि√भू+क्त] १. जिसका अभिभव हुआ हो। २. पराजित या वशीभूत किया हुआ। ३. पीड़ित। ४. चकित या स्तब्ध। ५. विकल। व्याकुल। ६. किंकर्तव्यविमूढ़।

अभिभूति—स्त्री० [सं० अभि√भू+क्तिन्] अभिभूत होने की अवस्था या भाव। अभिभव।

अभिमंडन—पुं० [सं० अभि√मण्ड् (भूषण)+ल्युट्–अन] १. भूषित करना। सजाना। २. पक्ष या मत का पोषण और समर्थन।

अभिमंता (तृ)—वि० [सं० अभि√मन् (मानना)+तृच्]=अभिमानी।

अभिमंत्रण—पुं० [सं० अभि√मन्त्र् (गुप्त भाषण)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० अभिमंत्रित] १. मंत्र पढ़कर पवित्र या शुद्ध करना। २. मंत्रों द्वारा किसी को वशीभूत करना। जादू करना।

अभिमंत्रित—भू० कृ० [सं० अभि√मन्त्र+क्त] मंत्र द्वारा पवित्र या शुद्ध किया हुआ।

अभिमंथ—पुं० [सं० अभि√मन्थ् (विलोड़न)+अच्] आँख का एक रोग।

अभिमत—वि० [सं० अभि√मन् (जानना)+क्त] १. जो किसी के मत या राय के अनुकूल हो। सम्मत। उदा०—अभिमतदातार कौन, दुख दरिद्र दारै।—तुलसी। २ मन चाहा। वांछित।
पुं० किसी प्रश्न या विषय के संबंध में अच्छी तरह सोच-समझ कर स्थिर किया हुआ निजी या व्यक्तिगत मत। (ओपीनियन)

अभिमति—स्त्री० [सं० अभि√मन्+क्तिन्] १. दे० 'अभिमान'। २. दे० 'अभिमत'।

अभिमन्यु—पुं० [सं०] सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न, अर्जुन का एक पुत्र जिसने

कौरवों का चक्र-व्यूह भेदकर कर्ण, दुर्योधन और द्रोण से भीषण युद्ध किया था। यह अंत में इसी युद्ध में मारा गया था।

अभिमर—पुं० [सं० अभि√मृ (मरना)+अप्] १. युद्ध। लड़ाई। २. युद्ध क्षेत्र। ३. सेना में, अपने ही पक्ष द्वारा होनेवाला विश्वासघात। ४. भय। डर। ५. नाश। ६. वह जो अपने प्राणों की आशा छोड़ शेर या हाथी से लड़ने चले।

अभिमर्दन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. बुरी तरह से कुचलना, मसलना या रौंदना। २. चूर-चूर करना। ३. कष्ट देना। सताना। ४. रगड़। ५. संघर्ष। ६. युद्ध।

अभिमर्श—पुं० [सं० अभि√मृश् (स्पर्श)+घञ्]=अभिमर्षण।

अभिमर्षक—वि० [सं० अभि√मृश् (स्पर्श)+ण्वुल्—अक] अभिमर्षण करनेवाला।

अभिमर्षण—पुं० [सं० अभि√मृश्+ल्युट्—अन] १. स्पर्श करना। २. आक्रमण। ३. रगड़ना या संघर्ष करना। ४. संभोग। ५. पराजय। हार।

अभिमाद—पुं० [सं० अभि√मद् (हर्ष)+घञ्] १. मद। नशा। २. खुमार।

अभिमान—पुं० [सं० अभि√मन् (जानना, मानना)+घञ्] [वि० अभिमानी] १. अपनी प्रतिष्ठा या मर्यादा, सत्ता आदि की कल्पना या ज्ञान। २. अपनी प्रतिष्ठा, मान, योग्यता आदि के संबंध में अपने मन में होनेवाली अतिरिक्त और प्रायः अनुचित धारणा। अहंकार। घमंड। (प्राइड)

विशेष—यद्यपि अभिमान का मूल अर्थ सद्‌भाव से ही युक्त था। पर आजकल व्यवहार में यह प्रायः असद् भाव का ही सूचक माना जाता है।

अभिमानी (निन्)—वि० [सं० अभि√मन्+णिनि] [स्त्री० अभिमानिनी] जिसे अभिमान हो। अभिमान करनेवाला।

अभिमुक्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी कर्त्तव्य, कार्य-भार या पद से मुक्त होने अथवा बचे रहने की अवस्था या भाव। (इम्यूनिटी)

अभिमुख—अव्य० [सं० प्रा० स०] १. किसी की ओर मुँह किये या फेरे हुए। २. सम्मुख। सामने।

अभिमृष्ट—भू० कृ० [सं० अभि√मृश्+क्त] १. जो स्पर्श किया गया हो। २. हारा हुआ। पराभूत। ३. मिला हुआ। संसृष्ट। ४. आक्रांत।

अभियंता (तृ)—पुं० [सं० अभि√यम् (नियंत्रण करना)+तृच्] १. वह जो लोक वास्तु संबंधी चीजें परिरूपित और निर्मित करता हो। (इंजीनियर) २. उक्त प्रकार के कार्यों की किसी विशिष्ट शाखा का विशेषज्ञ। जैसे—विद्युत् अभियंता।

अभियंत्रण—पुं० [सं० अभि√यन्त्र् (नियमन)+ल्युट्—अन] १. अभियंता या इंजीनियर का कार्य। २. यंत्र आदि बनाने और सुधारने की कला या विद्या। (इंजीनियरिंग)

अभियाचा—स्त्री०=अभियाचना।

अभियाचन—पुं० [सं० अभि√याच् (माँगना)+ल्युट्—अन]=अभियाचना।

अभियाचना—स्त्री० [सं० अभि√याच् (माँगना)+णिच् × युच्+अन—टाप्] १. बार-बार तथा दीनतापूर्वक याचना करना। माँगना। २. नम्रता पूर्वक किसी से कोई काम करने के लिए अनुरोध करना।

अभियाचित—भू० कृ० [सं० अभि√याच्+क्त] जिसके लिए अभियाचना की गई हो। माँगा हुआ।

अभियान—पुं० [सं० अभि√या (जाना)+ल्युट्—अन] [कर्त्ता अभियानी] १. किसी के सामने जाना या पहुँचना। २. किसी विशिष्ट कार्य या निश्चित उद्देश्य की सिद्धि के लिए दल-बल सहित और सैनिक ढंग से चलकर कहीं जाना। (एक्सपेडिशन) ३. सैनिक-आक्रमण। चढ़ाई।

अभियानिक—वि० [सं० आभियानिक] १. अभियान-संबंधी। अभियान का। २. अभियान के रूप में होनेवाला।

अभियानी (निन्)—पुं० [सं० अभियान+इनि] उद्देश्य, सिद्धि, विजय आदि की कामना से अभियान करनेवाला व्यक्ति। उदा०—जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभियानी।—दिनकर।

अभियुक्त—वि० [सं० अभि√युज् (जोड़ना)+क्त] १. जुड़ा, लगा या या सटा हुआ। संलग्न। २. किसी काम में लगा या लगाया हुआ। नियुक्त। ३. उक्त। कहा हुआ। ४. अध्यवसायी। ५. आक्रांत। ६. अच्छा ज्ञाता। सुविज्ञ।

पुं० वह जिसपर न्यायालय में कोई अभियोग (अपराध या दोष) लगाया गया हो। मुलजिम। (एक्यूज्ड)

अभियुक्ति—स्त्री० [सं० अभि√युज्+क्तिन्] १. अभियुक्त होने की अवस्था या भाव। २. दे० 'अभियोग'।

अभियोक्ता (क्तृ)—वि० [सं० अभि√युज्+तृच्]=अभियोगी।

अभियोग—पुं० [सं० अभि√युज्+घञ्] १. कोई काम पूरा करने के लिए मन लगाकर प्रयत्न करना। २. किसी काम या बात में होनेवाला मनोयोग। लगन। ३. आक्रमण। चढ़ाई। ४. किसी पर दोष लगाना या दोषारोपण करना। ५. किसी के अपराध आदि का विचारार्थ न्यायालय में उपस्थित किया जाना। दंड दिलाने के लिए की जानेवाली फरियाद। (एक्यूजेशन) ६. दे० 'अभियोजन'।

अभियोग-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र जिसमें किसी अभियोग का उल्लेख और उसकी जाँच की प्रार्थना या अनुरोध हो।

अभियोगी (गिन्)—वि० [सं० अभि√युज्+घिनुण्] किसी काम या बात में अनुरक्त होने या मन लगानेवाला।

पुं० वह जिसने किसी पर विचारार्थ कोई दोष लगाया या अभियोग उपस्थित किया हो। मुकदमा चलानेवाला व्यक्ति। अभियोक्ता। फरियादी। (कॉम्प्लेनेन्ट)

अभियोजक—वि० [सं० अभि√युज्+ण्वुल्—अक] अभियोजन करनेवाला। अभियोगी।

अभियोजन—पुं० [सं० अभि√युज्+ल्युट्—अन] [वि० अभियोज्य] १. अच्छी तरह जोड़ना या लगाना। २. किसी पर कोई अभियोग या दोष लगाना। यह कहना कि इसने अमुक अनुचित या दंडनीय अपराध या कार्य किया है। (एक्यूजेशन)

अभियोज्य—वि० [सं० अभि√युज्+ण्यत्] (कार्य या व्यक्ति) जिसके संबंध में या जिसपर अभियोग चलाया या लगाया जा सके। (एक्यूजेबुल)

अभिरंजन—पुं० [सं० अभि√रञ्ज् (रंगना)+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिरंजित] १. अच्छी तरह रँगना। २. अनुरक्त करना या होना।

अभिरंजित—भू० कृ० [सं० अभि√रञ्ज्+णिच्+क्त] १. अच्छी तरह रँगा हुआ। २. किसी के अनुराग या प्रेम में पड़ा हुआ।

अभिरक्षक—पुं० [सं० प्रा० स०] न्यायालय या शासन की ओर से नियुक्त वह अधिकारी जो किसी व्यक्ति अथवा संपत्ति को सुरक्षा के विचार से अपने संरक्षण में रखता हो। (कस्टोडियन)

अभिरक्षण—पुं० [सं० प्रा० स०] =अभिरक्षा।

अभिरक्षा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अभिरक्षित] १. अच्छी तरह की जानेवाली देख-रेख और रक्षा। २. किसी वस्तु या संपत्ति की देख-रेख करना अथवा किसी व्यक्ति को भागने आदि से रोकने के लिए उसे अपने अधिकार या वश में रखना। (कस्टडी)

अभिरक्षित—भू० कृ० [सं० अभि√रक्ष् (रक्षा करना)+क्त] जिसकी अभिरक्षा की गई हो या की जाती हो।

अभिरत—वि० [सं० प्रा० स०] [भाव० अभिरति] १. किसी कार्य या बात में लगा हुआ। लीन। २. मिला हुआ। युक्त। ३. अनुरक्त।

अभिरति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. अभिरत होने की अवस्था या भाव। २. अनुराग। प्रेम। ३. लगन। ४. प्रसन्नता। हर्ष। ५. संतोष।

अभिरना*—अ० [सं० अभि (=सामने)+रण (=युद्ध) या हिं० भिड़ना] १. भिड़ना। लड़ना। २. सहारा लेना। टेकना।

स० १. भिड़ाना। २. मिलाना।

अभिरमण—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अच्छी तरह रमण करना। खूब रमना। २. आनंद। प्रसन्नता।

अभिराद्ध—वि० [सं० अभि√राध् (सिद्धि)+क्त] प्रसन्न या संतुष्ट किया हुआ।

अभिराधन—पुं० [सं० अभि√राध् (सिद्धि)+ल्युट्—अन] अनुकूल करने के लिए, कुछ दबकर प्रसन्न या संतुष्ट करना। (एपीजमेन्ट)

अभिराम—वि० [सं० अभि√रम् (क्रीड़ा)+णिच्+अच्] [स्त्री० अभिरामा, भाव० अभिरामता] १. अपनी उत्कृष्टता तथा सुंदरता के कारण मन रमानेवाला। आनंद देनेवाला। २. प्रिय, मधुर या रुचिकर।

पु० [अभि√रम्+घञ्] १. आनंद। प्रसन्नता। २. आराम। सुख।

अभिरामी (मिन्)—वि० [सं० अभि√रम्+णिनि] १. रमण करनेवाला। २. संचरण करने या व्याप्त होनेवाला।

अभिरुचि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी क्षेत्र, विषय या व्यक्ति में विशेष रूप से होनेवाली रुचि। (इन्ट्रेस्ट)

अभिरुत—वि० [सं० अभि√रु (शब्द)+क्त] १. जो मधुर शब्द कर रहा हो। २. गूँजनेवाला। ३. जिसमें गुंजन होता हो। गुंजित। कूकता हुआ। कूजित।

पुं० आवाज। शब्द।

अभिरुता—स्त्री० [सं० अभिरुत+टाप्] संगीत में एक मूर्च्छना।

अभिरूप—वि० [सं० ब० स०] १. उत्कृष्ट, मधुर या सुंदर रूपवाला। २. किसी से मिलता-जुलता। सदृश। समान। ३. प्रचुर या यथेष्ट।

पु० १. शिव। २. विष्णु। ३. कामदेव। ४. चंद्रमा। ५. पंडित।

अभिरोग—पुं० [सं० प्रा० स०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनकी जीभ में घाव हो जाता है।

अभिरोपण—पुं० [सं० प्रा० स०] कुछ पौधों आदि का एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाया जाना। (सप्लांटिंग)

अभिलंघन—पुं० [सं० अभि√लंघ् (लांघना)+ल्युट्—अन] १. उछल या कूद कर लांघना। २. अपने अधिकार, क्षेत्र या सीमा का जानबूझ कर उल्लंघन करना।

अभिलंब—वि० [सं० अभि√लम्ब् (लटकना)+अच्] १. जो क्षैतिज तल से सीधा इस प्रकार ऊपर (शीर्ष बिंदु की ओर) गया हो कि उसके दोनों ओर दो समकोण बनते हों। २. दे० 'लंब'।

अभिलक्षित—भू० कृ० [सं० अभि√लक्ष् (देखना, अंकित करना)+क्त] १. लक्षित अथवा चिह्नित किया हुआ। अंकित। २. जिसे दृष्टि में रखकर कोई काम किया गया हो। ३. जिसकी ओर लक्ष या संकेत किया गया हो।

अभिलक्ष्य—वि० [सं० अभि√लक्ष्+ण्यत्] जो लक्ष्य या निशाना बनाया जा सके या बनाया जाय।

अभिलपण—पुं० [सं० अभि√लप् (चाहना)+ल्युट्—अन] १. अभिलाषा करना। चाहना। २. ललचना।

अभिलपित—भू० कृ० [सं० अभि√लप्+क्त] जिसकी अभिलाषा की गई हो। चाहा हुआ।

अभिलाख†—स्त्री० [क्रि० अभिलाखना]=अभिलाषा। उदा०—मनवा में इहे अभिलाख, इहे एक साध, इहे एक सधिया नु हो।—ग्राम्य गीत।

अभिलाखना—स० [सं० अभिलाषण] अभिलाषा या इच्छा करना। चाहना।

अभिलाखा—स्त्री०=अभिलाषा।

अभिलाखी—वि० दे० 'अभिलाषी'।

अभिलाप—पुं० [सं० अभि√लप् (कहना)+घञ्] १. मन के किसी संकल्प का कथन या उच्चारण। संकल्प वाक्य। २. कथन। ३. बातचीत।

अभिलाष—पुं० [सं० अभि√लष् (चाहना)+घञ्]=अभिलाषा।

अभिलाषक—वि० [सं० अभि√लष्+ण्वुल्—अक] अभिलाषा करनेवाला।

अभिलाषा—स्त्री० [सं० अभिलाष] १. मन का यह भाव कि अमुक काम या बात इस रूप में हो जाय अथवा अमुक वस्तु हमें प्राप्त हो जाय। आकांक्षा। इच्छा। कामना। २. साहित्य में, पूर्व-राग की दस दशाओं में से एक, जिसमें प्रिय से मिलने की चाह होती है।

अभिलाषी (षिन्)—वि० [सं० अभि√लष्+णिनि] [स्त्री० अभिलाषिणी] अभिलाषा करनेवाला। (एस्पायरेन्ट)

अभिलाषुक—वि० [सं० अभि√लष्+उकञ्]=अभिलाषी।

अभिलास*—पुं०=अभिलाषा।

अभिलासा—स्त्री० दे० 'अभिलाषा'।

अभिलिखित—भू० कृ० [सं० अभि√लिख् (लिखना)+क्त] जिसका अभिलेखन हुआ हो। (दे० 'अभिलेखन')

अभि-लीन—वि० [सं० प्रा० स०] १. जो अच्छी तरह किसी में लीन हो। २. अनुरक्त। आसक्त। ३. चिपका या लगा हुआ। ४. पसंद किया हुआ।

अभिलेख—पुं० [सं० अभि√लिख् (लिखना)+घञ्] १. किसी घटना, विषय, व्यक्ति आदि से संबंध रखनेवाली बातें जो लिखित हों और

उसकी प्रमाण हों। २. अभिदेश, निर्देश, स्मृति आदि के लिए लिखकर रखी हुई बातें। ३. न्यायालयों आदि की उक्त प्रकार से लिखकर रखी हुई सब कारखाइयाँ। (रेकार्ड; उक्त सभी अर्थों के लिए)

अभिलेख-अधिकरण—पुं० [ष० त०] शासन का वह अधिकरण (न्यायालय का सा अधिकार रखनेवाला विभाग) जिसे अभिलेखों की लिपि या प्रतिलिपि संबंधी त्रुटियाँ और भूलें सुधारने का अधिकार होता है। (कोर्ट ऑफ रेकार्ड्स)

अभिलेखन—पुं० [सं० अभि√लिख्+ल्युट्—अन] [वि० अभिलिखित] १. लिखने अथवा उकेरने (किसी चीज पर कुछ खोदने) का काम। २. अभिदेश, स्मृति आदि के विचार से किसी विषय की सब मुख्य-मुख्य बातें लिखना या किसी रूप में अंकित करना। (रेकार्डिंग)

अभिलेखन-यंत्र—पुं० [ष० त०] वह यंत्र जो कही हुई बातों का अभिलेख सुरक्षित रखने के लिए तैयार करता है। (रिकार्डिंग मशीन)

अभिलेख-न्यायालय—पुं०=अभिलेख-अधिकरण।

अभिलेख-पाल—पुं० [ष० त०] किसी न्यायालय, कार्यालय आदि के अभिलेखों की देख-भाल करने और उन्हें यथा-स्थान रखनेवाला कर्मचारी। (रेकार्ड कीपर)

अभिलेखालय—पुं० [अभिलेख-आलय, ष० त०] ऐसा भवन या स्थान जहां अभिलेख प्रस्तुत किये जाते हैं अथवा सुरक्षित रखे जाते हैं। (रेकार्ड रूम)

अभिलेखित—भू० कृ० [सं० अभिलेख+इतच्]=अभिलिखित।

अभिलोपन—पुं० [सं० अभिलोप+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिलुप्त] १. लेख आदि इस प्रकार काटना या मिटाना कि पढ़ा न जा सके। २. इस प्रकार नष्ट करना कि कोई चिह्न बाकी न रहे। (आब्लिटरेशन)

अभिवंचन—पुं० [सं० अभि√वञ्च् (ठगना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिवंचित] १. वंचित या रहित करना। २. ठगना।

अभिवंदन—पुं० [सं० अभि√वन्द् (स्तुति)+ल्युट्—अन] [वि० अभिवंदनीय, भू० कृ० अभिवंदित] १. प्रणाम। नमस्कार। २. प्रशंसा। स्तुति।

अभिवंदना—स्त्री० [सं० अभि√वन्द+युच्—अन—टाप्] १. अच्छी तरह की जानेवाली वंदना। २. नमस्कार। प्रणाम। ३. प्रशंसा। स्तुति।

अभिवंदनीय—वि० [सं० अभि√वन्द्+अनीयर्] जिसका अभिवंदन करना उचित हो।

अभिवंदित—भू० कृ० [सं० अभि√वन्द्+क्त] १. जिसकी अभिवंदना की गई हो। २. प्रशंसित। स्तुत।

अभिवंद्य—वि० [अभि√वन्द्+ण्यत्]=अभिवंदनीय।

अभिवक्ता (क्तृ)—पुं० [सं०अभि√वच्(बोलना)+तृच्] वह जो न्यायालय में किसी पक्ष की ओर से उसके विधिक अथवा व्यावहारिक पक्ष का समर्थन करे। वकील। (प्लीडर)

अभिवचन—पुं० [सं० अभि√वच्+ल्युट्—अन] १. प्रतिज्ञा। इकरार। २. विधिक-प्रतिनिधि अथवा अधिवक्ता द्वारा न्यायालय के समक्ष वे कथन जो वह अपने नियोजक की ओर से कहता है। (प्लीडिंग)

अभिवर्तन—पुं० [सं० अभि√वृत् (बरतना)+ल्युट्—अन] १. किसी ओर या आगे बढ़ना। २. आक्रमण। चढ़ाई।

अभिवर्धन—पुं० [सं० अभि√वृध्+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिवर्धित] १. बढ़ानेकी क्रिया या भाव। २. अधिक उपयोगी या फलप्रद बनाने के उद्देश्य से किसी छोटे या साधारण रूप को बड़े या विकसित रूप में लाना। (डेवेलपमेंट)

अभिवर्धित—भू० कृ० [सं०अभि√वृध्+णिच्+क्त] जिसका अभिवर्धन हुआ हो।

अभिवांछा—स्त्री० [सं० अभि√वाञ्छ् (चाहना)+अ—टाप्] अभिलाषा। आकांक्षा।

अभिवांछित—वि० [सं० अभि√वाञ्छ्+क्त] चाहा हुआ। इच्छित।

अभिवाद—पुं० [सं० अभि√वद् (बोलना)+घञ्] १. प्रणाम। वंदना। २. प्रशंसा। स्तुति। ३. दे० 'अभिवादन'।

अभिवादक—वि० [सं० अभि√वद्+णिच्+ण्वुल्—अक] अभिवादन करनेवाला।

अभिवादन—पुं० [सं० अभि√वद्+णिच्+ल्युट्—अन] १. श्रद्धापूर्वक किया जानेवाला नमस्कार या प्रणाम। २. प्रशंसा। स्तुति। (क्व०)

अभिवादित—भू० कृ० [सं० अभि√वद्+णिच्+क्त] जिसका अभिवादन किया गया हो।

अभिवाद्य—वि० [सं० अभि√वद्+णिच्+यत्] जिसका अभिवादन करना उचित या आवश्यक हो। अभिवादन का अधिकारी या पात्र।

अभिवास—पुं० [सं० अभि√वस् (आच्छादन)+णिच्+घञ्] १ ढकने का परदा। आवरण। २. ओढ़ने का कपड़ा। चादर।

अभिवासन—पुं० [सं० अभि√वस् +णिच्+ल्युट्—अन] ओढ़ने या ढकने की क्रिया या भाव।

अभिवृद्धि—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. बहुत अधिक उन्नति या समृद्धि। २.=अभिवर्द्धन।

अभिव्यंजक—वि० [सं० प्रा० स०] अभिव्यंजन करनेवाला। (एक्सप्रेसिव)

पुं० चित्रों, मूर्तियों आदि में वे चिह्न, रेखाएँ आदि जो किसी विशिष्ट भाव आदि की द्योतक हों।

अभिव्यंजन—पुं० [सं० प्रा० स०] [भू० कृ० अभिव्यंजित, अभिव्यक्त] १. विचारों या भावों को शब्दों या संकेतों द्वारा ठीक तरह से तथा स्पष्ट रूप से प्रकट करने की क्रिया या भाव। २. भाषिक क्षेत्र में, कोई बात शब्दों द्वारा बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त करना। (एक्सप्रेशन, उक्त दोनों अर्थों के लिए)

अभिव्यंजना—स्त्री० [सं० प्रा० स०] वह बात जो अभिव्यंजन के रूप में प्रकट की गई हो।

अभिव्यंजना-वाद—पुं० [ष० त०] कला और साहित्य में वह वाद या सिद्धांत जिसमें मनोगत भाव नग्न रूप में व्यक्त करना ही मुख्य उद्देश्य माना जाता है। (एक्सप्रेशनिज्म)

अभिव्यंजित—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] जिसका अभिव्यंजन हो चुका हो या किया गया हो। अभिव्यंजना के द्वारा प्रकट किया हुआ। (एक्सप्रेस्ड)

अभिव्यक्त—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] [भाव० अभिव्यक्ति] १. जिसकी अभिव्यक्ति की गई हो। २. सामने आया या लाया हुआ।

अभिव्यक्ति—स्त्री० [सं० अभि-वि√अञ्ज् (स्पष्ट करना)+क्तिन्] १. प्रकट, प्रकाशित या स्पष्ट करने की क्रिया या भाव। (मैनिफेस्टेशन)

२. न्याय शास्त्र में, किसी अप्रत्यक्ष या सूक्ष्म कारण से प्रत्यक्ष या स्थूल कार्य या वस्तु का होनेवाला आविर्भाव। ३. दे० 'अभिव्यंजना'।

अभिव्यापक—वि० [सं० प्रा० स०] अच्छी तरह व्याप्त होने या करनेवाला।

पुं० १ ईश्वर। २. ऐसा आधार जिसके हर अंग या अंश में आधेय वर्तमान हो। जैसे—तिल, जिसके हर अंश में तेल रहता है।

अभिव्याप्त—वि० [सं० प्रा० स०] जो अच्छी तरह व्याप्त (प्रचलित या फैला हुआ) हो।

अभिव्याप्ति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] अभिव्याप्त होने की अवस्था या भाव।

अभिशंसन—पुं० [सं० अभि√शंस्√(कहना)+ल्युट्-अन] =अभिशंसा।

अभिशंसा—स्त्री० [अभि√शंस्+अ-टाप्] १. विधिक दृष्टि से किसी अभियोग या अपराध की पुष्टि होना। २. न्यायालय द्वारा उक्त प्रकार से अपराध की घोषणा करने की क्रिया या भाव।

अभिशंसित—भू० कृ० [सं० अभि√शंस्+णिच्+क्त] विधिक दृष्टि से जिस पर अपराध सिद्ध या प्रमाणित हुआ हो। (कन्विक्टेड)

अभिशपन—पुं० [सं० अभि√शप् (कोसना)+ल्युट्-अन] १. किसी पर झूठा दोषारोप करना। २. दे० 'अभिशाप'।

अभिशप्त—भू० कृ० [सं० अभि√शप्+क्त] १. जिस पर मिथ्या आरोप किया गया हो। २ जिसे शाप दिया गया हो। शापित।

अभिशस्त—वि० [सं० अभि√शंस्+क्त] भू० कृ०=अभिशंसित।

अभिशस्ति—स्त्री० [सं० अभि√शंस्+क्तिन्] १. अभिशाप। २. निन्दा। बदनामी। ३. प्रार्थना। ४. हिंसा। ५. विपत्ति।

अभिशाप—पुं० [सं० अभि√शप्+घञ्] [भू० कृ० अभिशप्त] १. बहुत बड़ा शाप। २. झूठा अभियोग या मिथ्या दोषारोपण।

अभिशापन—पुं० [सं० अभि√शप्+णिच्+ल्युट्—अन] अभिशाप देने की क्रिया या भाव।

अभिशापित—भू० कृ० [सं० अभि√ शप्+णिच्+क्त]=अभिशप्त।

अभिशासक—पुं० [सं० अभि√शास् (शासन करना)+ण्वुल्—अक] अच्छी तरह शासन करनेवाला अधिकारी।

अभिशासन—पुं० [सं० अभि√शास्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अभिशासित] अच्छी तरह और पूरा नियंत्रण रखते हुए प्रबंध, व्यवस्था या शासन करने की क्रिया या भाव। (गवर्नेंस)

अभिशासित—वि० [सं० अभि√शास्+णिच्+क्त] जिसका अभिशासन हुआ हो या हो रहा हो।

अभिशून्यन—पुं० [सं० अभिशून्य, प्रा० स०,+णिच्+ल्युट्-अन] १. शून्य करना। २. निरर्थक, रद्द या व्यर्थ करना।

अभिषंग—पुं० [सं० अभि√सञ्ज् (सटना या मिलना)+घञ्] १. किसी काम या बात में किसी का संग या साथ होना। २. कोसना। ३. झूठा अभियोग या दोषारोपण। ४. गले लगाना। आलिंगन। ५. शपथ। कसम। ६. भूत-प्रेत का आविर्भाव या आवेश। ७. पराजय। हार।

अभिषंगी (गिन्)—पुं० [सं० अभि√सञ्ज्+णिनि] वह जो किसी बुरे या अनुचित काम में किसी का साथ दे।

वि० साथ लगा रहनेवाला।

अभिषद्—स्त्री० [सं० अभि√सद् (गति आदि)+क्विप्] किसी विशिष्ट वर्ग के सब दलों, प्रतिनिधियों आदि की वह संस्था या निकाय जो उन सब के सम्मिलित उद्देश्य की सिद्धि तथा माँगों की पूर्ति के लिए संघटित किया जाय। (सिंडिकेट) जैसे—व्यापारिक या साहित्यिक अभिषद्।

अभिषव—पुं० [सं० अभि√सु (स्नापन)+अप्] १. यज्ञ। २. यज्ञ के समय होनेवाला स्नान। ३. सोम का रस निकलवाना। ४. शराब चुआना। आसवन। ५. काँजी।

अभिषावक—पुं० [सं० अभि√सु+ण्वुल्—अक] यज्ञ-कार्य के लिए सोम-रस निचोड़नेवाला पुरोहित।

अभिषिक्त—भू० कृ० [सं० अभि√सिच् (सींचना)+क्त] १. जिसका या जिस पर अभिषेक हुआ हो। २. सिंचा या सींचा हुआ।

अभिषेक—पुं० [सं० अभि√सिच्+घञ्] [वि० अभिषिक्त] १. जल छिड़कना। २. ऊपर से जल डालकर किया जानेवाला स्नान। ३. बाधा-शांति या मंगल के लिए मंत्र पढ़कर जल छिड़कना। मार्जन। ४. विधि-पूर्वक मंत्र से जल छिड़क कर राज-गद्दी पर बैठना। ५. यज्ञादि के पीछे शांति के लिए किया जानेवाला स्नान। ६. शिवलिंग के ऊपर छेदवाला घड़ा लटकाकर धीरे-धीरे पानी टपकाना।

अभिषेक्ता (क्तृ)—पुं० [सं० अभि√सिच्+तृच्] १. अभिषेक का कृत्य करनेवाला व्यक्ति। २. राज्य-गुरु।

अभिषेक्य—वि० [सं० अभि√सिच्+ण्यत्] १. अभिषेक का अधिकारी या पात्र। २. जिसका अभिषेक होने को हो।

अभिषेचन—पुं० [सं० अभि√सिच्+ल्युट्—अन] अभिषेक करने की क्रिया या भाव।

अभिषेचनीय—वि० [सं० अभि√सिच्+अनीयर्]=अभिषेक्य।

अभिषेच्य—वि० = अभिषेक्य।

अभिषोता (तृ)—पुं० [सं० अभि√सु+तृच्] दे० 'अभिषावक'।

अभिष्यंद—पुं० [सं० अभि√स्यन्द् (बहना)+घञ्] १. बहने की क्रिया या भाव। स्राव। २. एक रोग जिसमें आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें से पानी बहता है।

अभिष्यंदी (दिन्)—वि० [सं० अभि√स्यन्द्+णिनि] १. चूने या रसनेवाला। २. दस्त लानेवाला। रेचक।

अभिसंवोह—पुं० [सं०प्रा० स०] १. अदला-बदला। परिवर्तन। २. पुरुष की जननेंद्रिय। लिंग।

अभिसंध—पुं० [सं० अभि-सम्√धा (धारण करना)+क] १. धोखा देनेवाला। २. ईर्ष्या करनेवाला। ३. निंदक।

अभिसंधक—वि० [सं० अभिसंधायक] अभिसंधि करनेवाला।

अभिसंधान—पुं० [सं० अभि-सम्√धा+ल्युट्-अन] १. धोखा। जाल। २. प्रयत्न का उद्देश्य या लक्ष्य।

अभिसंधि—स्त्री० [सं० अभि-सम्√धा+कि] [वि० अभिसंधित] १. कई बातों या वस्तुओं का एक स्थान पर आकर मिलना। २. किसी को कष्ट पहुँचाने, धोखा देने, उपद्रव खड़ा करने आदि के लिए कई व्यक्तियों का आपस में परामर्श करके कोई कुचक्र रचना या योजना बनाना। दुरभिसंधि। षड्यंत्र। (कॉन्सपिरेसी)

अभिसंधिता—स्त्री० [सं० अभिसंधि+णिच्+क्त-टाप्]=कलहांतरिता नायिका।

अभिसंपात—पुं० [सं० अभि-सम्√पत् (गिरना)+घञ्] १. लड़ाई-झगड़ा। संघर्ष। २. पतन।

अभिसंयोग—पुं० [सं० अभि-सम्√युज् (जोड़ना)+घञ्] बहुत निकट का संबंध या लगाव।

अभिसंस्कार—पुं० [सं० अभि-सम्√कृ (करना)+घञ्] १. अभि-वृद्धि २. विचार या भावना। (बौद्ध)

अभिसक्त—वि० [सं० अभि—षक्त] १. जिसके सब अंग आपस में इतनी दृढ़ता से मिले हों कि सहसा या सहज में अलग न किये जा सकते हों। २. जो किसी से चिमट या सट जाने पर छुड़ाया न जा सके। (टेनेशस)

अभिसक्ति—स्त्री० [सं० अभि+षक्ति] अभिसक्त होने की अवस्था या भाव। (टेनेसिटी)

अभिसमय—पुं० [सं० अभि-सम्√इ (गति)+अच्] [वि० अभिसामयिक] १. आपस में होनेवाला किसी प्रकार का निश्चय या समझौता। २. बौद्ध दर्शन में धर्म के प्रति रुचि और उसका ज्ञान। ३. दो या दो से अधिक राष्ट्रों या राज्यों के पारस्परिक समान हित या व्यवहार से संबंध रखने-वाले विषयों पर उनमें आपस में होनेवाला वह समझौता, जिसका पालन उन सबके लिए समान रूप से विधि या विधान के रूप में आवश्यक होता है। जैसे—डाक विभाग या युद्ध-संचालन संबंधी अभिसमय। ४. परस्पर युद्ध करनेवाले राष्ट्रों के सैनिक अधिकारियों का युद्ध-स्थगित करने अथवा इसी प्रकार की दूसरी बातों के संबंध में होनेवाला समझौता जिसका पालन सभी पक्षों के लिए आवश्यक होता है। ५. किसी प्रथा या परिपाटी के मूल में रहनेवाला सब लोगों का वह समझौता या सहमति जिसे मानक रूप में मानना सब के लिए आवश्यक होता है। जैसे—कला, काव्य या संविधान संबंधी अभिसमय। ६. उक्त प्रकार की बातें निश्चित करने के लिए आधिकारिक रूप से होनेवाला कोई सम्मेलन या सभा (कन्वेन्शन, उक्त सभी अर्थों के लिए) ७. दे० 'रूढ़ि'।

अभिसम्मत—वि० [सं० प्रा० स०] प्रतिष्ठित। संमानित।

अभिसर—पुं० [सं० अभि√सृ (गति)+ट] १. सखा या सहचर। २. सहायक। ३. अनुचर। दास।

अभिसरण—पुं० [सं० अभि√सृ+ल्युट्-अन] १. किसी बिंदु या स्थान की ओर आगे बढ़ना या उस तक पहुँचना। (कानवर्जेंस) २. किसी से मिलने के लिए उसकी ओर आगे बढ़ना या उसके पास जाना। ३. शरण। ४. सहारा।

अभिसरना—अ० [सं० अभिसरण] १. कहीं पहुँचने के लिए आगे बढ़ना या चलना। २. नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिए संकेत स्थल की ओर जाना।

अभिसर्ग—पुं० [सं० अभि√सृज् (रचना) +घञ्] १. निर्माण। रचना। २. सृष्टि।

अभिसर्जन—पुं० [सं० अभि√सृज्+ल्युट्-अन] १. दान। २. वध।

अभिसर्ता (र्तृ)—पुं० [सं० अभि√सृ (गति)+तृच्] आक्रमण करने-वाला। आक्रामक।

अभिसाधक—पुं० दे० 'अभिकर्त्ता'।

अभिसाधन—पुं० दे० 'अभिकरण'।

अभिसामयिक—वि० [सं० आभिसमयिक] १. अभिसमय या समझौते से संबंध रखनेवाला। २. जो किसी चली आई हुई प्रथा या परिपाटी के अनुसार ठीक और मानक माना जाता हो। रूढ़। (कन्वेन्शनल)

अभिसार—पुं० [सं० अभि√सृ (गति)+घञ्] १. किसी ओर आगे बढ़ना। २. किसी से मिलने के लिए उसकी ओर जाना। अभिसरण। ३. साहित्य में, वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका गुप्त रूप से पहुँचकर मिलते हैं। ४. मेल। मिलाप। उदा०—मुखरित था कलरव, गीतों में स्वर लय का होता अभिसार।—प्रसाद। ५. आक्रमण। ६. युद्ध। ७. अनुचर। अनुयायी। ८. सहारा। ९. बल। शक्ति। १०. आधुनिक पुंछ और रजौड़ी के आसपास के प्रदेश का पुराना नाम।

अभिसारक—वि० [सं० अभि√सृ+ण्वुल्–अक] [स्त्री० अभिसारिका] मिलने के उद्देश्य से किसी के पास जानेवाला।

पुं० नायिका से मिलने के लिए गुप्त रूप से संकेत-स्थल पर जानेवाला नायक।

अभिसारना*—अ०=अभिसरना।

स० किसी को कहीं भेजना।

अभिसारिका—स्त्री० [अभि√सृ+णिच्+ण्वुल्–अक–टाप्, इत्व] नायक से मिलने के लिए गुप्त रूप से संकेत-स्थल की ओर जानेवाली नायिका। (साहित्य)

अभिसारिणी—स्त्री० [सं० अभि√सृ+णिच+णिनि-ङीप्] १. अभिसरण करनेवाली स्त्री। अभिसारिका। २. साथ रहनेवाली स्त्री। ३. अनुचरी। दासी।

अभिसारी (रिन्)—वि० [सं० अभि√सृ+णिनि] [स्त्री० अभिसारिणी] १. किसी बिंदु या स्थान की ओर बढ़ने या उस तक पहुँचनेवाला। अभि-सरण करनेवाला। (कानवर्जिंग) २. किसी से मिलने के लिए उसकी ओर जानेवाला या उसके पास पहुँचनेवाला। ३. कार्य में सहायता देनेवाला। सहायक।

पुं० वह नायक जो नायिका से मिलने के लिए संकेत स्थल की ओर जा रहा हो।

अभिसूचन—स्त्री० [सं० अभि√सूच्+णिच्+ल्युट्–अन] १. कोई कार्य करने के लिए विशेष रूप से दी जानेवाली सूचना या आदेश। (एडवाइस) २. दे० 'अधिसूचन'।

अभिसेख—पुं० = अभिषेक।

अभिस्ताव—पुं० [सं० अभि√स्तु (स्तुति करना)+घञ्] १. प्रशंसा। स्तुति। २. किसी विषय के औचित्य का समर्थन या किसी व्यक्ति की कुछ प्रशंसा इस उद्देश्य से करना कि अन्य कोई उसे ठीक मानकर उसका उचित उपयोग कर सके। (रिकमेन्डेशन)

अभिस्थगित—भू० कृ० [सं० प्रा० स०] जो किसी विशिष्ट कारण या विचार से या कोई शर्त्त पूरी होने तक के लिए रोक रखा गया हो। (डेफर्ड)

अभिस्रावण—पुं० [सं० अभि√स्रु (बहना)+णिच्+ल्युट्–अन] दे० 'आसवन'।

अभिस्रावणी—स्त्री० [सं० अभिस्रावण+ङीप्] दे० = आसवनी।

अभिहत—वि० [सं० अभि√हन् (हिंसा)+क्त] १. जिसका अभिघात हुआ हो या किया गया हो। २. मारा-पीटा या दबाया हुआ। ३. गुणन किया हुआ। गुणित।

अभिहति—स्त्री० [सं० अभि√हन्+क्तिन्] १. निशाना लगाना। २. मारना। ३. गुणन क्रिया। ४. गुणनफल।

अभिहर—वि० [सं० अभि√हृ (हरण करना)+अच्] उठा या चुरा ले जानेवाला।
पुं० दे० 'अभिहरण'।

अभिहरण—पुं० [सं० अभि√हृ+ल्युट्–अन] १. उठा या छीन ले जाना। २. लूटना। ३. दे० 'अपनयन'।

अभिहर्ता (र्तृ)—पुं० [सं० अभि√हृ+तृच्] अभिहरण करनेवाला।

अभिहस्तांकन—पुं० [सं० अभि-हस्त, प्रा० स०, अभिहस्त-अंकन, तृ० त०] दे० 'अभ्यर्पण'।

अभिहार—पुं० [सं० अभि√हृ+घञ्] १. उठाने. हटाने या चुराने की क्रिया या भाव। २. अपनयन।

अभिहास—पुं० [सं० अभि√हस् (हँसना)+घञ्] जोर की या बहुत अधिक हँसी। अट्टहास।

अभिहित—वि० [सं० अभि√ धा (धारण, पोषण)+क्त] १. अभिधा, उल्लेख, कथन आदि के रूप में आया या लाया हुआ। २. उल्लिखित। कथित। ३. किसी विशिष्ट नाम से प्रसिद्ध या संबोधित। ४ जो वास्तविक नहीं, बल्कि कहने भर को हो। नाम मात्र का। (नॉमिनल) जैसे—अभिहित पूँजी, अभिहित भाड़ा।
पुं० १. नाम। २. शब्द।

अभिहित-संधि—स्त्री० [सं० कर्म० स०] ऐसी संधि जिसकी लिखा-पढ़ी न हुई हो। मौखिक निश्चय या संधि। (कौटिल्य)।

अभिहिति—स्त्री० [सं० अभि√धा+क्तिन्]—अभिहित होने की अवस्था या भाव।

अभिहूति—स्त्री० [सं० अभि√ह्वे (शब्द)+क्तिन्] १. आवाहन करने, बुलाने अथवा पुकारने की क्रिया या भाव। २. पूजन।

अभिहोम—पुं० [सं० प्रा० स०] यज्ञ में आहुति देना। होम करना।

अभी—अव्य० [हिं० अब+ही] एक काल वाचक अव्यय जिसका प्रयोग वर्तमान-कालिक प्रसंगों के सिवा कभी-कभी भूतकालिक और भविष्यत्कालिक प्रसंगों में भी नीचे लिखे अर्थों में होता है—१. ठीक इस या वर्तमान क्षण में। इसी समय। इसी वक्त। तुरंत। जैसे—(क) अभी चले जाओ। (ख) अभी पत्र लिखो। २. प्रस्तुत क्षणों या समय में। इस समय। इस वक्त। जैसे-(क) अभी १२ बजे हैं। (ख) अभी धैर्य से काम लो। ३. प्रस्तुत या वर्तमान दिनों में। जो समय बीत रहा है उसमें। आज-कल। इन दिनों। जैसे (क) अभी वही पुराना नियम चल रहा है। (ख) अभी गरमी के दिन हैं। ४. किसी बीते हुए समय में या उसके किसी उद्दिष्ट अथवा कथित अंश में। इस समय। जैसे—अभी वह सोकर ही उठा था कि उसके कुछ मित्र आ पहुँचे। ५. बीते हुए काल-मान या समय के संबंध में अल्पता सूचित करने के लिए, अधिक नहीं। जैसे—(क) अभी वह चार ही वर्ष का था कि उसके पिता का देहान्त हो गया (ख) यह तो अभी कल (अर्थात् बहुत थोड़े दिनों) की बात है। ६. प्रस्तुत या वर्त्तमान समय से आरम्भ करते हुए। इस समय से लेकर, भविष्य में। जैसे—(क) अभी इस काम में दो महीने और लगेंगे। (ख) अभी भोजन में आध घंटे की देर है। ७. किसी भावी घटना या बात के संबंध में केवल जोर देने के लिए। जैसे—(क) अभी परसों वे फिर आने को हैं। (ख) ग्रहण अभी माघ में लगेगा।

अभीक—वि० [सं० अभि+कन्, दीर्घ] १. इच्छुक या उत्सुक। २. कामातुर या कामुक। ३. निर्भय। निर्भीक। ४ भयानक।
पुं० [अभि+कन्] १. मालिक। स्वामी। २. प्रेमी। ३. कवि।

अभीत—वि० [सं० न० त०] १. जो भीत या डरा हुआ न हो। २. निडर। निर्भय।

अभीति—वि० [सं० न० ब०] निर्भीक।
स्त्री० [सं० न० त०] डर, भय या भीति न होने की अवस्था या भाव। निर्भीकता।

अभीप्सक—वि० [सं० अभि√आप्+सन्+ण्वुल्–अक] अभीप्सा करनेवाला।

अभीप्सा—स्त्री० [सं० अभि√आप् (प्राप्ति)+सन्+अ-टाप्] कुछ प्राप्त करने, किसी अवस्था में पहुँचने अथवा किसी से संपर्क स्थापित करने की उत्कृष्ट तथा प्रबल इच्छा। (एमबीशन)

अभीप्सित—भू० कृ० [सं० अभि√आप्+सन्+क्त] जिसकी अभीप्सा की गई हो। चाहा हुआ।
पुं० = अभीप्सा।

अभीप्सी (प्सिन्)—वि० [सं० अभीप्सा+इनि] अभीप्सा (अभिलाषा) या इच्छा करनेवाला। चाहनेवाला।

अभीप्सु—वि० [सं० अभि√आप्+सन्+उ] =अभीप्सी।

अभीर—पुं० [सं० अभि√ईर् (प्रेरणा)+अच्] १. अहीर। ग्वाला। २. एक प्रकार का छंद जिसमें चार चरण और प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण (ISI) होता है।

अभीरी—स्त्री० [सं० अभीर+ङीप्] अहीरों की बोली।

अभीरु—वि० [सं० न० त०] १. जो भीरु या डरपोक न हो। २ निर्भय। निर्भीक।
पुं० १. शिव। २. भैरव। ३. युद्धभूमि।

अभील—पुं० [सं० अभि√ईर् (गति)+अच्, र को ल] १. कठिनता। २. कष्ट। संकट। ३. भयावना दृश्य।

अभीष्ट—वि० [सं० अभि√इष् (चाहना)+क्त] १. जो विशेष रूप से इष्ट हो। २. जो इष्ट होने के योग्य हो। जिसकी इच्छा या कामना की जाय। प्रिय या रुचिकर। जैसे—इस समय उनका यहाँ आना किसी को अभीष्ट नहीं है।
पुं० १. वह (कार्य या पदार्थ) जो चाहा गया हो। २. एक अलंकार, जिसमें अपने इष्ट की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा होने का उल्लेख होता है।

अभीष्ट-सिद्धि—स्त्री० [ष० त०] इष्ट की प्राप्ति होना या मन-चाही बात पूरी होना।

अभीष्टा—स्त्री० [सं० अभीष्ट+टाप्] १. प्रेमिका। २. गृह-स्वामिनी। ३. तांबूल। पान।

अभीष्टि—स्त्री० [सं० अभि√इष्+क्तिन्] अभीष्ट पदार्थ, बात या विचार।

अभुआना†—अ० [हिं० अभू अभू से अनु०] हाऊ-हाऊ करते हुए बार-बार हाथ-पैर पटकना तथा सिर हिलाना, जिससे सिर पर भूत आना समझा जाता है।

अभुक्त—वि० [सं० न० त०] १. जो खाया न गया हो। २. जो भोगा न गया हो। ३. जो प्रयोग या व्यवहार में न लाया गया हो। ४. जो (चेक या देयादेश) भुनाया न गया हो।

अभुक्त-पूर्व—वि० [सं० भुक्त-पूर्व, सहसुपा समास, न-भुक्तपूर्व, न० त०] जिसका पहले कभी भोग, उपयोग या व्यहार न किया गया हो।

अभुक्त-मूल—पुं० [सं० कर्म० स०] ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की दो घड़ियाँ और मूल नक्षत्र के आदि की दो घड़ियाँ जिन्हें गंडात भी कहते हैं। (ज्यो०)

अभुग्न—वि० [सं० न० त०] १. जो झुका हुआ न हो। सीधा। २. नीरोग। स्वस्थ।

अभुज—वि० [सं० न० ब०] जिसकी भुजाएँ न हों। भुज-रहित।

अभू—क्रि० वि० [हिं० अब+हू=भी] =अभी।

अभूखन*—पुं० = आभूषण।

अभूत—वि० [सं०न०त०] १.जो अस्तित्व में न आया हो। २. जो घटित न हुआ हो। ३. वर्त्तमान। ४. अपूर्व। उदा०-निज सपूत की अति-अभूत करतूति निहारत।—रत्ना०।

अभूत-दोष—वि० [सं० न० ब०] जिसमें कभी कोई दोष उत्पन्न न हुआ हो। सर्वथा निर्दोष।

अभूतपूर्व—वि० [सं० भूत-पूर्व सुप्सुपा समास, न-भूतपूर्व, न० त०] १. जो या जैसा पहले कभी न हुआ हो। अपूर्व। २. अद्‌भुत। अनोखा।

अभूताहरण—पुं० [सं० अभूत-आहरण, ष० त०] १. ऐसी बात कहना जो कभी हुई ही न हो। २. धोखा देने या छकाने के लिए झूठी बात कहना। ३. नाटक में कपट भरी और व्यंग्यपूर्ण बात कहना।

अभूति—स्त्री० [सं० न० त०] १. अस्तित्व में न आने अथवा घटित न होने की अवस्था या भाव। २. धन या शक्ति का भाव। ३. विपत्ति। संकट।

अभूतोपमा—स्त्री० [सं० अभूता-उपमा, कर्म० स०] उपमा अलंकार के दस भेदों में से एक, जिसमें चरम उत्कर्ष सिद्ध करने के लिए कहा जाता है कि इसका कोई उपमान ही नहीं मिलता।

अभूमि—स्त्री० [सं० न० त०] १. वह जो भूमि से भिन्न हो। २. अनुचित या अनुपयुक्त स्थान। ३. भूमि या स्थान का अभाव।

अभूष—वि० [सं० न० ब०]=अभूषित।

अभूषित—वि० [सं० न० त०] १. जो भूषित या सजाया हुआ न हो। अनलंकृत। २. जिसके पास भूषण न हों। भूषणों से रहित।

अभृत—वि० =अभृतक।

अभृतक—वि० [सं० भृत+कन्, न० त०] १. जिसका भरण-पोषण किया गया हो। २. जिसका भाड़ा, वेतन, व्यय आदि न चुकाया गया हो। (अन्-पेड)

पुं० १. वह जो भृत या दास न हो। २. जिसके पास भृत या नौकर न हो।

अभृश—वि० [सं० न० त०] जो अधिक या बहुत न हो, फलतः कम या थोड़ा।

अभेड़ा—पुं० दे० 'अभेरा'।

अभेद—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कोई भेद न हो। २. जिसके भेद या विभाग न हुए हों। ३. जिसका आकार या रूप किसी के अनुरूप, समान या मिलता-जुलता हो।

पुं० [न० त०] १. भेद का न होना। भेद का अभाव। अभिन्नता। २. अनुरूपता। एकरूपता। समानता। ३. साहित्य में, रूपक अलंकार का एक भेद जिसमें उपमेय में उपमान का ज्यों का त्यों और बिना कुछ घटाये-बढ़ाये आरोप किया जाता है।

वि० दे० 'अभेद्य'।

अभेदनीय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका भेदन या छेदन न हो सके। २. जिसके विभाग न हो सकें। ३. (भेद या रहस्य) जिसका जल्दी पता न चल सके।

अभेदवादी (दिन्)—वि० [सं० अभेद√वद् (बोलना)+णिनि] वह जो जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद न मानता हो। अद्वैतवादी।

अभेद्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका भेदन, छेदन या विभाग न हो सके। २. जिसका भेदन, छेदन या विभाग करना उचित या उपयुक्त न हो।

अभेय*—पुं० = अभेरा।

अभेर—पुं० = अभेरा।

अभेरना—स० [सं० अभेद] १. भेद दूर करना। २. मिश्रित करना। मिलाना। ३. अनुरक्त या प्रवृत्त करना। उदा०-जपहु बुद्धि के पुइसन फेरहु। दही चूर अस दिया अभेरहु।—जायसी।

अभेरा—पुं० [हिं० अ+सं० भिद या अनु० भड] १. आघात। धक्का। उदा०-मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुःख झकझोरा।—तुलसी। २. टक्कर। भिडंत। मुठ-भेड़।

अभेव*—पुं० [सं० अभेद] अभेद। अभिन्नता। एकता।

वि० भेद-रहित। अभिन्न। एक।

अभै*—वि०, पुं० दे० 'अभय'।

अभैदिक—वि० [सं० न० त०] = अभेद्य।

अभैर—पुं० [?] वह लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर करघे की कंघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। दढ़ेरी।

अभोक्ता (क्तृ)—वि० [सं० न० त०] उपभोग या उपयोग न करनेवाला।

अभोखण*—पुं० = आभूषण।

अभोग—वि० [सं० न० ब०] १. बिना भोगा हुआ। जो प्रयोग या व्यवहार में न लाया गया हो। २. अछूता।

वि० = अभोग्य।

अभोगी (गिन्)—वि० [सं० न० त०] १. भोग अर्थात् उपभोग या उपयोग न करनेवाला। प्रयोग या व्यवहार न करनेवाला। २. सांसारिक वस्तुओं या सुखों का भोग न करनेवाला। उदासीन। विरक्त।

अभोग्य—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अभोग्या] १. (वस्तु)-जो भोग करने के उपयुक्त या योग्य न हो। २. जिसे भोगना अनुचित या वर्जित हो।

अभोज*—वि० [सं० अभोज्य] न खाने योग्य। अभक्ष्य।

अभोजन—पुं० [सं० न० त०] १. भोजन का अभाव। २. भोजन न करने अर्थात् भूखे रहने का भाव।

अभोजन-ग्राही (हिन्)—वि० [सं० भोजन√ग्रह (ग्रहण करना)+णिनि, न० त०] जो भोजन न ग्रहण करता हो, अथवा जिसे भोजन देकर न रखा जाता हो। 'भोजन-ग्राही' का विपर्याय। (नान-डाइटेड)

विशेष दे० 'भोजन-ग्राही'।

अभोज्य—वि० [सं० न० त०] १. (पदार्थ) जो खाने के उपयुक्त या योग्य न हो। २. जिसे खाना निषिद्ध या वर्जित हो।

अभौतिक—वि० [सं० न० त०] जो भौतिक न हो।

अभौम—वि० [सं० न० त०] जो भूमि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव।

अभ्यंग—पुं० [सं० अभि√अञ्ज् (मिलाना)+घञ्, कुत्व] [वि० अभ्यक्त, अभ्यंजनीय] १. पोतना या लेपना। २. सारे शरीर में तेल की मालिश करना।

अभ्यंजन—पुं० [सं० अभि√अञ्ज्+ल्युट्-अन] १. अंगों को सँवारने-सजाने का काम। २. अंगों को सजाने की सामग्री। प्रसाधन सामग्री। (टॉयलेट)

अभ्यंजनीय—वि० [सं० अभि√अञ्ज्+ अनीयर्] १. पोतने या लगाने योग्य। २. तेल या उबटन लगाये जाने के योग्य।

अभ्यंतर—पुं० [सं० अभि-अन्तर, प्रा० स०] [वि० आभ्यंतरिक] १. अंदर या बीच का स्थान। २. मध्य। बीच। ३. हृदय। अव्य० अंदर। भीतर।

अभ्यंतरक—पुं० [सं० अत्या० स०,+कन्] घनिष्ठ मित्र।

अभ्यंश—पुं० = यथांश।

अभ्यक्त—वि० [सं० अभि√अञ्ज्+क्त] १. (तेल आदि) पोते या लगाए हुए। २. सजा हुआ। अलंकृत। सुसज्जित।

अभ्यधीन—वि० [सं० अभि-अधीन, प्रा० स०] १. जो किसी की अधीनता, नियंत्रण या प्रभाव में हो। २. जो किसी नियम, आदि से बँधा हुआ हो। ३. दे० 'अधीन'।

अभ्यमन—पुं० [सं० अभि√अम् (गति आदि)+ल्युट्-अन] १. आक्रमण। २. आघात। चोट। ३. रोग।

अभ्यर्चन—पुं० [सं० अभि√अर्च् (पूजा)+ल्युट्-अन] आराधन या पूजन करने की क्रिया या भाव।

अभ्यर्चना—स्त्री० [सं० अभि√अर्च्+युच्-अन-टाप्] =अभ्यर्चन।

अभ्यर्थन—पुं० [सं० अभि√अर्थ् (याचना) +ल्युट्-अन] १. अपनी आवश्यकता, अधिकार या स्वत्व जतलाते हुए किसी से कुछ माँगना या किसी काम के लिए जोर देकर कहना। माँग। (डिमांड) २. किसी से अपना प्राप्य धन या पदार्थ माँगना। ३. दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—स्त्री० [सं० अभि√अर्थ् (याचना)+णिच्+युच्-अन-टाप्] [वि० अभ्यर्थनीय, अभ्यर्थित] १. किसी के संमुख दीनता तथा विनय-पूर्वक की जानेवाली प्रार्थना। २. आगे बढ़कर सम्मानपूर्वक किसी का स्वागत करना।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं० अभि√अर्थ्+अनीयर्] १. (व्यक्ति) जिसकी अभ्यर्थना करने योग्य हो। २. आगे बढ़कर लेने योग्य। स्वागत करने योग्य। ३. (विषय) जिसके लिए अभ्यर्थन (या माँग) की जा सके या की जाने को हो।

अभ्यर्थित—भू० कृ० [सं० अभि√अर्थ्+णिच्+क्त] १. (व्यक्ति) जिससे अभ्यर्थना की गई हो। २. (पदार्थ) जिसके लिए अभ्यर्थन किया गया हो।

अभ्यर्थी (र्थिन्)—वि० [सं० अभि√अर्थ+णिनि] १. अभ्यर्थन करने-वाला। २. अभ्यर्थना करनेवाला। (केन्डीडेट)

अभ्यर्दन—पुं० [सं० अभि√अर्द् (हिंसा)+णिच्+ल्युट्-अन] कष्ट देने या पीड़ा पहुँचाने की क्रिया या भाव। सताना।

अभ्यर्दित—भू० कृ० [सं० अभि√अर्द्+णिच्+क्त] जिसे कष्ट दिया गया हो। सताया हुआ। उत्पीड़ित।

अभ्यर्पक—वि० [सं० अभि√ऋ (गति)+णिच्, पुक्+ण्वुल्—अक] अभ्यर्पण करने अर्थात् अपना स्वामित्व अथवा अधिकार किसी दूसरे को देने या सौंपनेवाला। (असाइनर)

अभ्यर्पण—पुं० [सं० अभि√ऋ+णिच्, पुक्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अभ्यर्पित, कर्त्ता अभ्यर्पक] अपना स्वामित्व अथवा अधिकार किसी को देने या सौंपने की क्रिया या भाव। (असाइनमेन्ट)

अभ्यर्पणग्राही (हिन्)—पुं० [सं० अभ्यर्पण√ग्रह्+णिनि] दे० 'अभ्यर्पिती'।

अभ्यर्पित—भू० कृ० [सं० अभि√ऋ+णिच्+पुक्+क्त] (अधिकार या स्वामित्व) जो किसी को दिया या सौंपा गया हो। (असाइन्ड)

अभ्यर्पिती (तिन्)—पुं० [सं० अभ्यर्पित+इनि] वह जिसे अधिकार या स्वामित्व दे या सौंप दिया गया हो। (एसाइनी)

अभ्यसन—पुं० [सं० अभि√अस् (क्षेप)+ल्युट्-अन] अभ्यास, अनुशीलन या चिंतन करना।

अभ्यसनीय—वि० [सं० अभि√अस्+अनीयर्] अभ्यास, चिंतन या मनन किये जाने के योग्य (विषय)।

अभ्यसित—वि० [सं० अभ्यस्त] १. जिसने भली प्रकार अभ्यास किया हो। अभ्यस्त। २ (विषय) जिसका अच्छी तरह अभ्यास किया गया हो।

अभ्यस्त—वि० [सं० अभि√अस् (क्षेप)+क्त] १. जिसने किसी काम या बात का अच्छा अभ्यास किया हो। दक्ष। निपुण। २ (विषय) जिसका अभ्यास किया गया हो।

अभ्यांत—वि० [सं० अभि√अम् (रोग) +क्त] १. रुग्ण या रोगी। २. जिसे कोई कष्ट पहुँचा हो। ३. जिसकी कोई हानि हुई हो।

अभ्याकर्ष—पुं० [सं० अभि-आ√कृष् (खींचना)+घञ्] ताल ठोंककर (मल्ल-युद्ध या लड़ने के लिए) किसी को ललकारना।

अभ्याख्यान—पुं० [सं० अभि-आ√ख्या (कहना)+ल्युट्–अन] झूठा या निराधार अभियोग।

अभ्यागत—वि० [सं० अभि-आ√गम् (जाना)+क्त] १. सामने आया हुआ। पुं० १. वह जो कहीं से चलकर आया हो। २. अतिथि। ३. साधु, संन्यासी आदि।

अभ्यागम—पुं० [सं० अभि-आ√गम्+अप्] १. सामने आना। उपस्थिति। २. समीपता। ३. सामना। मुकाबिला। ४. मुठ-भेड़। ५. युद्ध। ६. विरोध। ७. खड़े होकर की जानेवाली अगवानी। अभ्युत्थान।

अभ्यागारिक—वि० [सं० अभ्यागार+ठन्–इक] बाल-बच्चों का पालन-पोषण तथा घर-बार की देख-रेख करनेवाला।

अभ्याघात—पुं० [सं० अभि-आ√हन् (हिंसा)+घञ्] १ आक्रमण या चढ़ाई करना। २. अवरोध। रुकावट। ३. बाधा। विघ्न।

अभ्याधान—पुं० [सं अभि-आ√धा (धारण करना)+ल्युट्–अन] आरंभ या स्थापना करने की क्रिया या भाव।

अभ्यापात—पुं० [सं० अभि-आ√पत् (गिरना)+घञ्] १. आपद्। विपत्ति। २. दुर्भाग्य।

अभ्यास—पुं० [सं० अभि√अस् (क्षेप)+घञ्] १. कोई काम स्वभाव-वश निरंतर करते रहने की क्रिया या भाव। आदत। बान। २. किसी कार्य में दक्ष अथवा किसी विषय के विशेषज्ञ होने के लिए उसकार्य या विषय में दत्त-चित्त होकर बार-बार लगे रहना या उसे बार-बार करते रहना।

(प्रैक्टिस) ३. किसी कार्य के पूरे होने अथवा उसे पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने से पहले उसकी कीजानेवाली आवृत्ति। (प्रैक्टिस) ४. एक प्राचीन काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर वात को सिद्ध करनेवाले कार्य का उल्लेख होता है।

अभ्यास-कला—स्त्री० [ष० त०] योग की चार कलाओं में से एक जो विविध योगांगों के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यास-योग—पुं० [तृ० त०] किसी आत्मा या देवता का बार-बार चिंतन करना या अभ्यास करना जो एक प्रकार का योग माना गया है।

अभ्यासी (सिन्)—वि० [सं० अभ्यास+इनि] [स्त्री० अभ्यासिनी] निरंतर अभ्यास करनेवाला।

अभ्याहत—वि० [सं० अभि-आ√हन् (हिंसा)+क्त] जिसे आघात या चोट लगी हो, फलतः आहत। घायल।

अभ्याहार—पुं० [सं० अभि-आ√हृ (हरण करना)+घञ्] १. समीप या संमुख लाने की क्रिया या भाव। २. उठाकर ले जाना। चोरी करना।

अभ्युक्त—भू० कृ० [सं० अभि-उक्त, प्रा० स०] १. कहा हुआ। उच्चरित। २. अभ्युक्ति के रूप में लाया हुआ। ३. घोषित किया हुआ।

अभ्युक्ति—स्त्री० [सं० अभि-उक्ति, प्रा० स०] किसी व्यवहार या मुकदमे में वादी का प्रतिवादी पर मौखिक या लिखित रूप से अभियोग या दोष लगाना अथवा अपना पक्ष या तर्क उपस्थित करना। (स्टेटमेन्ट)

अभ्युचित—वि० [सं० अभि-उचित, प्रा० स०] १. नियमतः अथवा प्रायः होनेवाला। २. व्यावहारिक या प्रचलित। ३. लौकिक।

अभ्युच्चय—पुं० [सं० अभि-उद्√चि (इकट्ठा करना)+अच्] उत्कर्ष। उन्नति।

अभ्युच्छेदन—पुं० [सं० अभि-उर्दा√छिद् (काटना)+ल्युट्—अन] शल्य-क्रिया द्वारा शरीर का कोई अंग काटकर अलग या पृथक् करना। अंगच्छेद। (एम्प्युटेशन)

अभ्युत्थान—पुं० [सं० अभि-उद्√स्था (ठहरना)+ल्युट्—अन] १. किसी का स्वागत करने के लिए नम्रतापूर्वक अपने स्थान से उठना। २. ऊँचे पद या सत्ता की प्राप्ति होना। ३. उन्नति, वढ़ती या समृद्धि होना। ४. शासन या सत्ता वदलने के लिए होनेवाला विद्रोह।

अभ्युत्थायी (यिन्)—वि० [सं० अभि-उद्√स्था+णिनि] १. आदर अथवा स्वागत करने के लिए उठकर खड़ा होनेवाला। २. उन्नति करने या आगे बढ़नेवाला। ३. विद्रोही।

अभ्युत्थित—भू० कृ० [सं० अभि-उद्√स्था+क्त] १. जो आदर के लिए उठकर खड़ा हुआ हो। २. उन्नत। वढ़ा हुआ। ३. समृद्ध।

अभ्युत्थेय—वि० [सं० अभि-उद्√स्था+यत्] १. जिसका अभ्युत्थान होने को हो। २. जो अभ्युत्थान का अधिकारी या पात्र हो। ३. जिसके आदर के लिए उठकर खड़े होना उचित हो।

अभ्युदय—पुं० [सं० अभि-उद्√इ (गति)+अच्] [वि० आभ्युदयिक] १. ऊपर की ओर उठना या चढ़ना। २. चंद्र, सूर्य आदि ग्रहों का निकलकर अपने मार्ग पर आगे बढ़ना। ग्रहों आदि का उदय। ३. अस्तित्व में आना या घटित होना। आविर्भाव। उत्पत्ति। ४. कल्याण, सुख, सौभाग्य आदि में होनेवाली वृद्धि। समृद्धि। ५. नये सिरे से होनेवाली उन्नति। ६. मनोरथ की प्राप्ति या सिद्धि। ७. कोई मांगलिक अवसर या उत्सव। ८. घर में संतान उत्पन्न होने पर किया जानेवाला श्राद्ध।

अभ्युदाहरण—पुं० [सं० अभि-उद्-आ√हृ (हरण करना)+ल्युट्-अन] किसी घटना या तथ्य की विपरीत बात के आधार पर दिया जानेवाला उदाहरण या दृष्टांत।

अभ्युदित—भू० कृ० [सं० अभि-उद्√इ+क्त] १. उगा या निकला हुआ। २. उत्पन्न। प्रादुर्भूत। ३. उन्नत। ४. संपन्न। ५. समृद्ध। ६. कहा हुआ। कथित।

पुं० १. सूर्योदय। २. उद्गम। ३. वह जो बहुत दिन चढ़े तक सोया रहता हो।

अभ्युपगत—भू० कृ० [सं० अभि-उप√गम् (जाना)+क्त] १. निकट आया या पहुँचा हुआ। प्राप्त। २. अंगीकृत या स्वीकृत किया हुआ।

अभ्युपगम—पुं० [सं० अभि-उप√गम्+अप्] १. सामने आना। उपस्थित होना। २. प्राप्त करना। ३. स्वीकृत करना या स्वीकृति देना। ४. सहमत होना। ५. तर्क में पहले कोई सिद्ध या असिद्ध वात मानकर तब उसकी सत्यता की जाँच करना और उससे निष्कर्ष या परिणाम निकालना। (डिडक्शन)

अभ्युपपत्ति—स्त्री० [सं० अभि-उप√पद् (गति)+क्तिन] १. किसी की रक्षा, सहायता या सुरक्षा के लिए उसके पास जाना। २. कृपा। अनुग्रह। ३. स्वीकृति। सहमति। ४. विश्वास। ५. नियम।

अभ्यूष—पुं० [सं० अभि√उष (दाह)+घञ्] अग्नि में जलने की क्रिया या भाव।

अभ्यूह—पुं० [सं० अभि√ऊह (वितर्क)+घञ्] १. तर्क-वितर्क। २. निष्कर्ष या फल।

अभ्रंकष—वि० [सं० अभ्र√कष् (हिंसा)+खच्, मुम्] आकाश को छूनेवाला। गगन-चुंबी। उदा०—अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे।—मैथिली शरण।

पुं० १. वह अट्टालिका या भवन जो आकाश को छूता हुआ जान पड़े। (स्काई स्क्रेपर) २. पहाड़। ३. वायु।

अभ्रंलिह—वि० [सं० अभ्र√लिह् (स्वाद लेना)+खश्, मुम्] आकाश को छूनेवाला, अर्थात् बहुत ऊँचा।

पुं० वायु।

अभ्र—पुं० [सं०√अभ्र् (गति)+अच्; प्रा० अब्भ, गु० आभ, हिं० अभाल, सिं० अभु; का० अवुर; सिंह० अप; मराठी० आभ] १. मेघ। वादल। २. आकाश। ३. अवरक। ४. सोना। ५. शून्य। (गणित) ६. कपूर। ७. नागरमोथा।

अभ्रक—पुं० [सं०√अभ्र्+क्वुन्-अक] १. राहु ग्रह। २. दे० 'अबरक' (धातु)।

अभ्र-गंगा—स्त्री० [ष० त०] आकाश-गंगा।

अभ्रनाग—पुं० [ष० त०] ऐरावत।

अभ्रपटी—स्त्री० [ष० त०, ङीप्] आकाश। आसमान।

अभ्र-पिशाच—पुं० [स० त०] राहु।

अभ्र-पुष्प—पुं० [ष० त०] १. एक प्रकार का बेंत। २. पानी। ३. अनहोनी या असंभव वात।

अभ्रभेदी (दिन्)—वि० [सं० अभ्र√भिद् (विदारण)+णिनि] इतना ऊँचा कि आकाश तक पहुँचता हो। गगन-चुंबी।

अभ्रम—वि० [सं० न० ब०] जिसे भ्रम न हो।

पुं० [सं० न० त०] भ्रम का अभाव।
अभ्र-मांसी—स्त्री० [ष० स०, ङीप्] जटामासी।
अभ्र-मातंग—पुं० [ष० त०] ऐरावत।
अभ्रमु—स्त्री० [सं०] १. पूर्व के दिग्गज की पत्नी। २. इंद्र के हाथी ऐरावत की पत्नी।
अभ्ररोह—पुं० [सं० अभ्र√रुह् (उत्पन्न होना)+अच्] वैदूर्यमणि।
अभ्रांत—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे किसी प्रकार की भ्रांति न हो। २. (बात) जिसमें या जिसके संबंध में किसी प्रकार की भ्रांति या भ्रम न हो।
अभ्रांति—स्त्री० [सं० न० त०] भ्रांति न होने की अवस्था या भाव। भ्रम-हीनता।
अभ्रातृव्य—वि० [सं० न० ब०] जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी या प्रतिस्पर्धी न हो।
अभ्रावकाशिक—वि० [सं० अभ्रावकाश, कर्म० स०, ठन्-इक] जिसका आवरण केवल आकाश हो, अर्थात् दिगंबर।
अभ्रावकाशी (शिन्)—वि० [सं० अभ्रावकाश+इनि]=अभ्रावकाशिक।
अभ्रित—वि० [सं० अभ्र+इतच्] अभ्र या बादलों से घिरा हुआ। मेघाच्छन्न।
अभ्रिय—वि० [सं० अभ्र+घ-इय] बादलों में या बादलों से होनेवाला। अभ्र-संबंधी।
पुं० बिजली।
अभ्रोत्थ—पुं० [सं० अभ्र-उद्√स्था (ठहरना)+क] वज्र।
अमंगल—वि० [सं० न० त०] जो मंगलकारक या शुभ न हो। जो कल्याण करनेवाला न हो।
पुं० मंगल या कल्याण का अभाव। अहित। खराबी।
अमंगल्य—पुं० [सं० न० त०]=अमंगल।
अमंड—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें माँड़ न हो। २. जिसका मंडन न हुआ हो। बिना सजाया हुआ।
पुं० एरंड का वृक्ष।
अमंत—वि०=अमित। उदा०—राजन रक्खिय सब्ब इह, बाढिय प्रीत अमंत।—चंदवरदाई।
अमंत्र—वि० [सं० न० ब०] १. जो वैदिक मंत्रों का जाननेवाला या ज्ञाता न हो। २. वैदिक मंत्रों की उपेक्षा करनेवाला।
पुं० १. मंत्र का अभाव। २. ऐसे कर्म जिनमें मंत्र आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती।
अमंत्रक—वि०=अमंत्र।
अमंद—वि० [सं० न० त०] १. जो मंद, धीमा या सुस्त न हो। २. उत्तम। श्रेष्ठ। ३. अच्छा। भला। ४. सुंदर। ५. उद्योगी। प्रयत्नशील। ६ प्रकाशवान्।
पुं० पेड़। वृक्ष।
अम—पुं० [सं०√अम् (रोग)+घञ्] १. बीमारी का कारण। २. बीमारी। रोग।
अमका—वि०=अमुक।
अमग—पुं० [सं० अमार्ग] अनुचित या बुरा रास्ता। कुमार्ग।
अमगी*—वि० [सं० अमार्गी] अनुचित या बुरे मार्ग पर चलनेवाला।
अमचूर—पुं० [हिं० आम+चूर] कच्चे आम के टुकड़ों को सुखाकर तथा उन्हें पीसकर बनाया हुआ चूर्ण जो दाल, तरकारी आदि में डाला जाता है।
अमज्जक—वि० [सं० न० ब०, कप्] जिसमें मज्जा (अर्थात् हड्डी के अंदर का गूदा) न हो।
अमड़ा—पुं० [सं० आम्रात; पा० अंबाड़] १. एक पेड़ जिसके छोटे किंतु खट्टे फल चटनी और अचार के काम आते हैं। २. उक्त वृक्ष का फल।
अमत—वि० [सं० न० त०] १. जिसका अनुभव न हो सके या न हुआ हो। अननुभूत। २. अमान्य। ३. अस्वीकृत। ४. अज्ञात।
पुं० मत या सहमति न होना।
पुं० [√अम्+अतच्] १. रोग। २. मृत्यु। ३. धूलि-कण। ४. काल। समय।
अमति—स्त्री० [सं० न० त०] १. मति अर्थात् ज्ञान का अभाव। अज्ञानता। २. सहमत न होना। असंमति। ३. चमक। दीप्ति।
अमत्त—वि० [सं० न० त०] १. जो मत्त अथवा नशे में न हो। मद-रहित। २. जिसे मद या घमंड न हो। ३. सावधान।
पुं० [सं० अ-मात्रिक] ऐसी कविता या वाक्य-रचना जिसमें मात्राओं का प्रयोग न किया जाय। जैसे—अमल कमल वर वदन सदन जस हरन मद मदन-दहन हर।
अमद—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे मद या अभिमान न हो। मद-रहित। २. जो प्रसन्न न हो। दुःखी। ३. विकल। बेचैन। ४. गंभीर।
पुं० [अ०] संकल्प। विचार।
अमन—वि० [सं० अमनस्] १. जिसे अनुभूति, ज्ञान अथवा बुद्धि न हो। २. जिसका मन किसी काम में न लगे।
पुं० [अ०] १. सुख और शांति।
पद—अमन-अमान=देश और समाज की ऐसी सुव्यवस्था जिसमें सब लोग सुख और शांति से रहते हों।
२. आराम। चैन।
पद—अमन-चैन=वैयक्तिक जीवन में होनेवाला सुख और निश्चिंतता।
३. बचाव। रक्षा।
अमनस्क—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. मन की चंचलता या इच्छा से रहित। उदासीन। २. अनमना। उदास। ३. अन्यमनस्क।
अमना (नस्)—वि० [सं० न० ब०] १. बिना मन का। मन-रहित। उदा०—अनिवार कामना, नित अवचा अमना बहती।—पंत। २. जिसका अपने मन पर नियंत्रण न हो। ३. अन्यमनस्क। अनमना। ४. लापरवाह। ५. उदास। ६. स्नेह-हीन। ७. ना-समझ। मूर्ख।
अमनाक्—वि० [सं० न० त०] जो मनाक् या थोड़ा न हो। अधिक।
क्रि० वि० अधिकता से।
अमनियाँ*—वि० [सं० अ+मल, अथवा कमनीय] १. खाने-पीने की ऐसी चीजें जिनमें कोई छूत न मानी जाती हो। पक्का (भोजन)। २. पवित्र। शुद्ध।
स्त्री० भोजन या रसोई बनाने की क्रिया।
अमनैक—पुं० [सं० आम्नायिक] १. नायक या सरदार। २. अधिकारी। या पात्र। ३. साहसी। ४. ढीठ। ५. वह जो मन-माने काम करता हो। उदा०—दीरि दवि दान काम ऐसो अमनैक तहाँ, आली बनमाली आइ बहियाँ गहत हैं।—पद्माकर। ६. ऐसे काश्तकार जिन्हें किसी कुल-विशेष के होने के कारण लगान में कुछ छूट दी जाती थी।

अमनैकी—स्त्री० [हिं० अमनैक] १. मनमाना आचरण या व्यवहार। २. स्वेच्छाचार।

अमम—वि० [सं० न० ब०] जिसमें ममता न हो; अर्थात् इच्छा, माया, मोह, वासना आदि आसक्तियों से रहित। निर्लिप्त।

पुं० जैनों के भावी बारहवें तीर्थंकर।

अमर—वि० [सं०√मृ (मरना)+अच्, न० त०] १. जो कभी मरे नहीं। न मरनेवाला। २. जिसका कभी अंत, क्षय या नाश न हो। सदा जीवित रहनेवाला। शाश्वत। ३. चिरस्थायी।

पुं० १. देवता। २. पारा। ३. सोना। स्वर्ण। ४. उनचास पवनों में से एक। ५. ज्योतिष में, नक्षत्रों का एक गण या वर्ग जिसका विचार विवाह के समय वर और कन्या का राशि-वर्ग मिलाने के लिए होता है। ६. एक प्रकार का देवदारु (वृक्ष)।

अमर-कंटक—पुं० [सं० आम्रकूट ?] विंध्य पर्वतश्रेणी का एक भाग जहाँ से सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं।

अमरख*—पुं० [हिं० अमरखी]=अमर्ष।

अमरज—पुं० [सं० अमर√जन् (उत्पन्न होना)+ड] एक प्रकार का खैर (वृक्ष)।

अमरण—वि० [सं० न० ब०] जो मरे नहीं। अमर।

पुं० [न० त०] न मरने की अवस्था या भाव। मरण या मृत्यु न होना। अमरता।

अमर-तटिनी—स्त्री० [ष० त०] गंगा।

अमरता—स्त्री० [सं० अमर+तल्-टाप्] अमर होने की अवस्था या भाव। न मरना या नष्ट न होना।

अमरत्व—पुं० [सं० अमर+त्व] १. अमर होने की अवस्था, भाव या पद। अमरता। २. देवत्व।

अमर-दारु—पुं० [मध्य० स०] देवदारु का वृक्ष।

अमर-धाम—पुं० [ष० त०] देव-लोक। स्वर्ग।

अमर-नाथ—पुं० [ष० त०] १. देवताओं के स्वामी, इंद्र। २. काश्मीर में स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ।

अमरपक्षी (क्षिन्)—पुं० [सं० मध्य० स०] एक प्रकार की कल्पित चिड़िया जिसके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि यह अरब के रेगिस्तान में अपनी चिता आप बनाकर और उसपर बैठकर गाती है, जिससे चिता जल उठती है और यह जल मरती है। फिर उसी की राख से इस तरह की और नई चिड़ियाँ पैदा होती हैं। कुकनुस। (फीनिक्स)

अमर-पक्ष—पुं०=पितृ-पक्ष।

अमर-पति—पुं० [ष० त०]=इंद्र।

अमर-पद—पुं० [ष० त०] १. देवताओं का पद या स्थिति। २. मुक्ति। मोक्ष।

अमर-पुर—पुं० [ष० त०] १. देवताओं का नगर। अमरावती। २. स्वर्ग।

अमर-पुरी—स्त्री० [ष० त०] इंद्रपुरी। अमरावती।

अमर-पुष्प—पुं० [ब० स०] १. कल्पवृक्ष। २. केतकी। ३. आम। ४. काँस नामक घास।

अमर-पुष्पक—पुं० [ब० स०, कप्] १. कल्प वृक्ष। २. ताल-मखाना। ३. काँस। ४. गोखरू।

अमर-बेल—स्त्री० [सं०+हिं०] १. आकाशबेल नाम की लता। २. हठ-योग में सहस्रार का वह रूप जब (कुंडलिनी शक्ति के ब्रह्म-रंध्र में पहुँच जाने पर) उसमें से अमृत का प्रवाहित होना माना जाता है।

अमर-रत्न—पुं० [मध्य० स०] बिल्लौर या स्फटिक जो देवताओं का रत्न माना गया है।

अमर-राज—पुं० [ष० त०] इंद्र।

अमर-लोक—पुं० [ष० त०] देव-लोक। स्वर्ग।

अमर-वर—पुं० [स० त०] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र।

अमर-वल्ली—स्त्री० [कर्म० स०] दे० 'आकाश-बेल'।

अमरस—पुं० [हिं० आम+रस] १. पके आम का निचोड़ा हुआ रस। २. = अमावट।

अमरसी—वि० [हिं० आमरस] आम के रस के रंग का-सा। हलका पीला।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

अमरा—स्त्री० [सं० अमर+टाप्] १. दूब। २. गुर्च। गिलोय। ३. सेंहुँड़। थूहर। ४. नील का पेड़। ५. चमड़े की झिल्ली जिसमें गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है। जरायु। ६. नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है। ७. इंद्रायण। ८. बरगद की एक छोटी जंगली जाति। बरियारा। ९. घीक्वार। १०. इंद्रपुरी।

† पुं० दे० 'अमड़ा'।

अमराई†—स्त्री० [सं० आम्रराजि] वह स्थान जहाँ आम के बहुत से वृक्ष हों। आमों का बगीचा या बारी।

अमराउ*—पुं० [सं० आम्रराजि] आम का बगीचा। अमराई।

अमराचार्य—पुं० [सं० अमर-आचार्य, ष० त०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति।

अमराद्रि—पुं० [सं० अमर-अद्रि, ष० त०] देवताओं का पर्वत, सुमेरु।

अमराधिप—पुं० [सं० अमर-अधिप, ष० त०] देवताओं के स्वामी, इंद्र।

अमरापगा—स्त्री० [सं० अमर-आपगा, ष० त०] देवताओं की नदी, स्वर्गंगा।

अमरारि—पुं० [सं० अमर-अरि, ष० त०] देवताओं के शत्रु, असुर या राक्षस।

अमरालय—पुं० [सं० अमर-आलय, ष०त०] १. इंद्र-लोक। २. स्वर्ग।

अमराव—पुं० दे० 'अमराई'।

अमरावती—स्त्री० [सं० अमर+मतुप्, वकार, दीर्घ] देवताओं की पुरी। इंद्रपुरी।

अमरिख—पुं० = अंबर।

अमरी—स्त्री० [सं० अमर+ङीप्] १. देव की पत्नी। २. प्रियामाल नामक वृक्ष।

स्त्री० [सं० अमर] हठ योगियों की एक विशिष्ट क्रिया। उदा०— वजरी करतां अमरी रापैं।—गोरखनाथ।

अमरीकन—वि०, पुं० = अमेरिकन।

अमरीका—पुं० = अमेरिका (देश)।

अमरीकी—वि० [अं० अमेरिकन] १. अमेरिका में होने या उससे संबंध रखनेवाला। २ अमेरिका का निवासी।

स्त्री० अमेरिका की भाषा।

अमरू—पुं० [सं० अंबर] एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा।

अमरूत—पुं० [सं० अमृत (फल)] १. एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके फल खाये जाते हैं। २. इस पेड़ का फल, जो आकार में छोटा, गोल तथा पीले रंग का होता है।

अमरूद—पुं० = अमरूत।

अमरेश—पुं० [सं० अमर-ईश, प० त०] देवताओं का राजा, इंद्र।

अमरेश्वर—पुं० [सं० अमर-ईश्वर, प० त०] इंद्र।

अमरैया†—स्त्री० = अमराई।

अमरौली—स्त्री० [सं० अमर] हठ-योगियों की अमरी नाम की क्रिया।

अमर्त्य—वि० [सं० न० त०] १. न मरनेवाला। अमर। २. जो मर्त्य-लोक का न हो अर्थात् दिव्य या स्वर्गीय।
पुं० देवता।

अमर्याद—वि० [सं० न० ब०] १. मर्यादा से रहित। जिसकी कोई सीमा न हो। २. नियम या व्यवस्था से बाहर। ३. अप्रतिष्ठित। ४. (कार्य) जिसमें मर्यादा का ध्यान न रखा गया हो। ५. व्यक्ति जो मर्यादा का उचित ध्यान न रखता हो। (इम्माडरेट, उक्त दोनों अर्थों में)

अमर्यादा—स्त्री० [न० त०] १. मर्यादा या सीमा का अभाव। २. मर्यादा या प्रतिष्ठा का अभाव। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती।

अमर्ष—पुं० [सं० √मृष् (सहना)+घञ्, न० त०] [वि० अमर्षित, अमर्षी] १. किसी को दबा न सकने के कारण मन में होनेवाला रोष। (रिजेन्ट-मेंट) २. क्रोध। गुस्सा। ३. असहिष्णुता। ४. साहित्य में, वह क्रोध जो किसी अभिमानी का अभिमान देखकर उत्पन्न होता तथा उस क्रुद्ध व्यक्ति का अभिमान नष्ट करने में प्रवृत्त करता है। (इसकी गिनती संचारी भावों में होती है)

अमर्षण—पुं० [सं० √मृष्+ल्युट्-अन, न० त०] १. क्रोध। गुस्सा। २. असहिष्णुता। ३. असहनशीलता।

अमर्षी (षिन्)—वि० [सं० √मृष्+णिनि, न० त०] [स्त्री० अमर्षिणी] १. मन में अमर्ष रखनेवाला। क्रोधी। २. जो सहनशील न हो। असहनशील।

अमल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें मल न हो। मल-रहित। निर्मल। २. पवित्र। शुद्ध। ३. साफ। स्वच्छ। ४. निष्पाप।
पुं० [न० त०] १. मल का अभाव। २. स्वच्छता। सफाई। ३. [न० ब०] अबरक। ४. पर-ब्रह्म।

अमल—पुं० [अ०] १. कार्य या क्रिया के रूप में आना या होना। प्रयोग। व्यवहार।
मुहा०—अमल में आना=किसी आज्ञा, आदेश, निश्चय आदि का व्यवहार में आना।
२. कार्य। ३. आचरण। ४. संधान। ५. अधिकार। ६. शासन। ७. शासन-काल। ८. नशा लानेवाली वस्तु। ९. प्रभाव।

अमल-कोची—स्त्री० [देश०] कंजे की जाति का एक जंगली वृक्ष। कुंती।

अमलता—स्त्री० [सं० अमल+तल्-टाप्] १. अमल अर्थात् निर्मल, पवित्र या शुद्ध होने की अवस्था या भाव। २. निर्दोषता।

अमलतास—पुं० [सं० अम्ल] [वि० अमलतासी] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लंबोतरी बड़ी फलियों का गूदा दवा के काम आता है। धनबहेड़ा। किरवरा। २. इस पौधे की फली या फूल।

अमलतासी—पुं० [हिं० अमलतास] एक प्रकार का हलका पीला रंग जो अमलतास के फूलों के रंग जैसा होता है। (किंग्स येलो)
वि० उक्त प्रकार के रंग का।

अमल-दखल—पुं० [अ०] संपत्ति पर होनेवाला अधिकार, भोग और शासन।

अमलदारी—स्त्री० [अ० अमल+फा० दारी] १. शासन। हुकूमत। २. शासन-काल।

अमल-पट्टा—पुं० [अ० अमल+हिं० पट्टा] वह अधिकार-पत्र जो किसी अभिकर्त्ता या कारिंदे का किसी का कार्य विशेषतः भूमि की व्यवस्था के संबंध में दिया जाता है।

अमल-पानी—पुं० [अ०+हिं०] नशे के लिए कोई चीज घोलकर पीना। जैसे—अफीम, भाँग आदि का सेवन।

अमलबेत—पुं० [सं० अम्लवेतस्] एक पेड़ जिसके फल की खटाई बहुत तीक्ष्ण होती है।

अमल-मणि—पुं० [सं० कर्म० स०] बिल्लौर। स्फटिक।

अमलाँ—स्त्री० [अ० अमल = नशा] १. नशा। २. अफीम, भाँग आदि नशीले पदार्थ। उदा०—अमलाँ खोवा बाजियाँ मचे भंड़ा मनुवार। —बाँकीदास।

अमला—स्त्री० [सं० अमल+टाप्] १. लक्ष्मी। २. शीतला। ३. भू-आँवला। ४. दे० 'आँवला'।
पुं० [अ०] कचहरी या दफ्तर में काम करनेवाला व्यक्ति या कर्मचारी।
पद—अमला-फैला = कचहरी के कर्मचारी। (उपेक्षा-सूचक)
वि० [सं० अमल] [स्त्री० अमली] १. जिसमें मल या दोष न हो। मल-रहित या निर्दोष। २. जिसमें कोई बनावट या छल-कपट न हो। सीधा-सादा। उदा०—अमली-समली आरती।—नरपति नाल्ह।

अमलातक—पुं० [सं० अमल√अत् (गति)+अच्+कन्] अमलबेत।

अमलारा—वि० [अ० अमल] १. अमल या नशा करनेवाला। २. नशे में मस्त या चूर।

अमलिन—वि० [सं० न० त०] जो मलिन न हो। निर्मल। स्वच्छ।

अमली—वि० [अ०] १. अमल में आने या लाया जानेवाला। व्यावहारिक। २. अमल करनेवाला। व्यवहार में लानेवाला। ३. अमल या नशा करनेवाला। नशेबाज।
स्त्री० = अमला।
†स्त्री० = इमली।

अमलूक—पुं० [सं० अम्ल] १. उत्तर-पश्चिमी हिमालय में होनेवाला एक पेड़। २. इस पेड़ के काले छोटे फल।

अमलोनी—स्त्री० [सं० अम्ललोणी] एक प्रकार की घास जिसका साग खाया जाता है। नोनियाँ घास। नोनी।

अमल्लक—वि० [अ० मुतलक] १. पूरा-पूरा। समूचा। २. ज्यों का त्यों।

अमस—वि० [सं० √अम् (गति, रोग आदि)+असच्] १. जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। २. मूर्ख।
पुं० १. एक प्रकार का रोग। २. समय।

अमसूल—पुं० [देश०] कोंकण, कनारा और कुर्ग के जंगलों में होनेवाला एक वृक्ष।

अमहर—स्त्री० [हिं० आम] कच्चे आम की कटी, सूखी हुई फाँकें।

अमहल—पुं० [सं० अ=नहीं+अ० महल] १. जिसका कोई घर या रहने का स्थान न हो। २. इधर-उधर घूमता रहनेवाला साधु। ३. वह जो सब जगह व्याप्त हो।

अमहा†—पुं० [?] एक प्रकार का बैल जो खेती के लिए अनुपयुक्त या निकम्मा माना जाता है।

अमाँ—अव्य० [हिं० ए+अ० मियाँ] ऐ मियाँ। (संबोधन, मुसल०)

अमांस—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके शरीर में मांस की मात्रा बहुत कम हो। दुबला-पतला। २. जिसमें मांस बिलकुल न हो। मांस-रहित।
पुं० [न० त०] वह जो मांस न हो।

अमा—स्त्री० [सं०√मा (मान)+का, न० त०] १. अमावस्या। २. चंद्रमा की सोलहवीं कला। ३. घर। मकान। ४. मर्त्य-लोक।
†स्त्री० [?] चौपायों की आँख में होनेवाली बतौरी।

अमाघौत—पुं० [?] एक प्रकार का धान।

अमातना*—स० [सं० आमंत्रण] १. आमंत्रित करना। बुलाना। २. निमंत्रण या न्योता देना।

अमातृक—वि० [सं० न० ब०, कप्] जिसकी माँ न हो। बिना माँ का।

अमात्य—पुं० [सं० अमा+त्यक्] १. राजा का सहचर। २. हिन्दू राज्य-तंत्र में राजा को परामर्श देनेवाला मंत्री।

अमात्र—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी कोई मात्रा न हो। २. सीमा-रहित। निस्सीम।

अमान—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका मान निश्चित या नियत न हो। २. जिसका मान न हुआ हो। अप्रतिष्ठित। ३. जिसे मान न हो।
पुं० [न० त०] मान का अभाव।
वि० [हिं० अ+मानना] न माननेवाला।
पुं० [अ०] १. बचाव। रक्षा।
मुहा०-अमान माँगना—=जीवन आदि की रक्षा के लिए दीनतापूर्वक प्रार्थना करना।
२. शरण।
पुं०*=ईमान।

अमानत—स्त्री० [अ०] १. कुछ समय या निश्चित अवधि तक के लिए अपनी वस्तु किसी दूसरे के पास रखना। २. उक्त प्रकार से रखी हुई चीज। धरोहर। उपनिधि। ३. अमीन का कार्य या पद।

अमानत-खाता—पुं० [अ०+हिं०] पंजी, बही आदि में वह खाता या विभाग जिसमें अमानत की रकमें जमा की जाती हों।

अमानत-खाना—पुं० [अ०+फा०] वह स्थान जहाँ चीजें अमानत में रखी जायँ।

अमानतदार—पुं० [अ०+फा०] जिसके पास कोई चीज धरोहर रखी जाती हो या रखी जाय।

अमानत-नामा—पुं० [अ० अमानत+फा० नामा] किसी के पास कुछ अमानत रखने के समय उसके प्रमाण-स्वरूप लिखा जानेवाला पत्र।

अमाना—अ० [सं० आ=पूरा पूरा+मान=माप] १. किसी चीज के अंदर पूरा पूरा समाना। अँटना। २. अभिमान से युक्त होना। इतराना। फूलना।
स० किसी चीज के अंदर पूरी तरह से भरना। अँटाना।
†पुं० [सं० अयन?] अन्न रखने की कोठरी का द्वार। बखार का मुँह।

अमानित—भू० कृ० [सं० √मन् (मानना)+णिच्+क्त, न० त०] १. जिसका मान या सम्मान न हुआ हो। २. माना न गया हुआ।

अमानिता—स्त्री० [सं० √मन्+णिनि, न० त०, अमानिन्+तल्-टाप्] मान या अभिमान का अभाव, अर्थात् नम्रता।
स्त्री० = अमान्यता।

अमानिया—पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन।

अमानी (निन्)—वि० [सं०√मन् (जानना)+णिनि, न० त०] १. मान या अभिमान न करनेवाला। २. न माननेवाला।
स्त्री० [सं० आत्मीय] १. भूमि, जिसका प्रबंध ठेके पर न देकर स्वयं किया जाय। २. भूमि, जो शासन के अधिकार में चली गई हो।
स्त्री० [हिं० अ+मान] १. मनमानी कारवाई। २. देन, लगान आदि में होनेवाली ऐसी छूट जो केवल अंदाज से या कूत के आधार पर की जाय। ३. मजदूरों के काम करने का वह ढंग जिसमें केवल दैनिक मजदूरी मिलती है, काम का कोई मान निश्चित नहीं होता।

अमानुष—पुं० [सं० न० त०] वह जो मनुष्य न हो, बल्कि मनुष्य से भिन्न हो। जैसे—अलौकिक या देव पुरुष।
वि० =.अमानुषी।

अमानुषिक—वि० = अ-मानुषी।

अमानुषी—वि० [सं० अमानुषीय] १. ऐसा निंदित या पाशविक आचरण या व्यवहार जो सभ्य मानव के स्वभाव के प्रतिकूल या विपरीत हो। जैसे-अमानुषी शासन। २. मनुष्य के अधिकार या शक्ति से बाहर का। ३. मनुष्य-रहित। मनुष्यों से शून्य। उदा०-अमानुषी भूमि अवानरी करौं—केशव।

अमान्य—वि० [सं० न० त०] १. (बात) जो मानी जाने के योग्य न हो। जो माना न जा सके। २. जो मान अथवा आदर के योग्य न हो।

अमाप—वि० [सं० न० ब०] १. जो मापा न जा सके या जिसका माप न हो सके। २. जिसके परिमाण का अंदाजा न हो सके। अपरिमित। ३. असीम। बेहद। ४. बहुत अधिक।

अमापनीय—वि० [सं० न० त०] जो मापा न जा सकता हो। (इममेजरेबुल)

अमापित—वि० [सं० न० त०] जो मापा न गया हो। (अनमेजर्ड)

अमाप्य—वि० [सं० न० त०] = अमापनीय।

अमामसी—स्त्री० [सं० ब० स०, ङीप्] अमावस्या।

अमामा—पुं० [अ० अम्मामः] एक विशिष्ट प्रकार की बड़ी और भारी पगड़ी।

अमाय*—वि० =अमाया।

अमाया—वि० [सं० अमाय] १. माया से रहित। २. छल-कपट, स्वार्थ आदि से रहित। ३. सांसारिक प्रेम, मोह आदि से रहित। निर्लिप्त।
स्त्री० [सं०] माया का अभाव।

अमायिक—वि० [सं० न० त०] १. जो माया (छल-कपट, धोखे) आदि से रहित हो। २. जिसमें माया (अनुराग, प्रेम, मोह) आदि न हो। ३. स्वार्थ आदि के भावों से रहित।

अमायी (यिन्)—वि० [सं० न० त०] = अमायिक।

अमार*—पुं० [फा० अंबार] अन्न रखने का खत्ता। बखार।

*पुं० = अमड़ा।

अमारग*—पुं० = अमार्ग।

अमारी—स्त्री० [सं० अमात] १. आमड़ा नामक वृक्ष। २. आमड़े का फल।

†स्त्री० = अंबारी (हाथी पर की हौदी)।

अमार्ग—पुं० [सं० न० त०] १. अनुचित, निंदनीय या बुरा मार्ग। कु-मार्ग। २. निंदनीय आचरण। बुरा चाल-चलन।

अमार्जित—वि० [सं० न० त०] १. जिसका मार्जन अर्थात् सुधार या संस्कार न हुआ हो। गंदा, भद्दा या अनगढ़। २. (व्यक्ति) जिसने मार्जन न किया हो।

अमार्ज्य—वि० [सं०√मृज् (शुद्धि)+ण्यत्, न० त०] १. जिसका मार्जन न हो सके। २. जिसका मार्जन करना उचित न हो।

अमाल—पुं० [अ० अमल] अमल रखनेवाला व्यक्ति। हाकिम। शासक।

†पुं० दे० 'आमाल'।

अमालनामा—पुं० = आमालनामा।

अमावट—स्त्री० [सं० आम, हिं० आम्र+सं० आवर्त, प्रा० आवह] पके आम को निचोड़कर निकाले हुए रस की जमाई हुई परत या तह।

स्त्री० [?] पहिना जाति की एक प्रकार की मछली।

अमावना*—अ०, स० = अमाना।

अमावस—स्त्री० [देश०] अमावस्या।

अमावस्या—स्त्री० [सं० अमा√वस् (बसना)+ण्यत्-नि० ह्रस्व; प्रा० आवोस; गु० अमास; सिं० उमासु; मरा० अवशी, अवस; हिं० अमावस] १. चांद्र मास के कृष्ण पक्ष का अंतिम दिन जिसमें रात को चंद्रमा की एक भी कला नहीं दिखाई देती। २. हठ योग में ध्यान की वह अवस्था जिसमें ईड़ा (चंद्रमा) और पिंगला (सूर्य) दोनों नाड़ियों का लय हो जाता है।

अमावास्य—वि० [सं० अमावास्या+अण्] जो अमावास्या के दिन (या रात को) पैदा हुआ या बना हो।

अमाह—पुं० [सं० अमांस] एक प्रकार का नेत्र-रोग। नाखूना।

अमाही—वि० [हिं० अमाह] १. अमाह-रोग-संबंधी। २. जिसे अमाह (रोग) हुआ हो।

अमिख—पुं० दे० 'आमिष'।

अमिट*—वि० [सं० अ+हिं० मिटना] १. जो मिटने या नष्ट होनेवाला न हो। स्थायी। २. निश्चित रूप से घटित होनेवाला। अटल। अवश्यं-भावी। जैसे-अमिट भाग्य-विधान।

अमित—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अमिता] १. जिसका मित या परिमाण न हो। असीम। बेहद। २. बहुत अधिक। ३. जो किसी निश्चित सीमाओं में न रखा गया हो। (इनआरडिनेट)

पुं० साहित्य में, एक अर्थालंकार जिसमें यह कहा जाता है कि साधन ने ही साधक की सिद्धि का फल भोग लिया। जैसे—दूती संदेश लेकर नायक के पास गई और वहाँ वही उसका सुख भोग आई।

अमिताई*—स्त्री० [हिं० अमित] अमित होने की अवस्था या भाव। अमितता।

वि० =अमित। उदा०—उमि रज्जे रणरंग, सूर नूर अंग अमिताई। —चंदवरदाई।

अमिताभ—वि० [सं० अमित-आभा, ब० स०] जिसमें अत्यधिक आभा हो।

पुं० १. आठवें मन्वंतर के कुछ देवताओं के नाम। २. गौतम बुद्ध का वह संभोग-कार्य जिसे वे दूसरों के कल्याण के लिए बोधिसत्त्व के रूप में तब तक धारण करते हैं, जब तक उनका निर्वाण नहीं होता।

अमिताशन—वि० [सं० अमित-अशन, ब० स०] सब प्रकार की वस्तुओं को खानेवाला। सर्वभक्षी।

पुं० अग्नि।

अमिति—स्त्री० [सं० न० त०] अमित होने की अवस्था या भाव। असीमता।

अमितौजा (जस्)—वि० [सं० अमित-ओजस्, ब० स०] १. असीम शक्तिवाला। २. सर्वशक्तिमान्।

अमित्र—वि० [सं० न० त०] १. जो मित्र न हो। २. वैरी। शत्रु।

वि० [न० ब०] जिसका कोई मित्र न हो। मित्र-हीन।

पुं० मित्र न होने का भाव।

अमित्रखाद—पुं० [सं० अमित्र√खाद् (खाना)+अण्] इंद्र।

अमित्रघाती (तिन्)—वि० [सं० अमित्र√हन् (हिंसा) +णिनि] वैरी या शत्रु का नाश करनेवाला।

अमित्राक्षर—पुं० [सं० अमित्र-अक्षर, ब० स०] ऐसा छंद जिसमें मात्राओं की गणना पर विचार न होता हो।

अमित्री—वि० [सं० अमित्र्य] १. जो मित्रों जैसा न हो। जैसे—अमित्री व्यवहार। २. शत्रुतापूर्ण। ३. विरोधी।

अमिय*—पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ] अमृत। उदा०—रहिमन मोहिं न सुहाय, अमिय पियावत मान बिनु। —रहीम।

अमिय-मूरि—स्त्री० [सं० अमृत-मूरि] अमृत-बूटी। संजीवनी जड़ी।

अमियेन—अव्य० [हिं० अमिय] अमृत के लिए। उदा०—रब्ब-रियं रम मंद, क्यू पुज्जति साध अमियेन। —चंदवरदाई।

अमिरती—स्त्री० = इमरती (मिठाई)।

अमिल*—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० मिलना] [भाव० अमिलता, अमिलताई] १. न मिलने अर्थात् न प्राप्त होनेवाला। २. (व्यक्ति) जो दूसरों के साथ मिलता-जुलता न हो। ३. (वस्तु) जो दूसरे के साथ मेल न खाय या न मिले। ४. ऊँचा-नीचा। ऊबड़-खाबड़।

अमिलता*—स्त्री० [हिं० अमिल+ता (प्रत्य०)] 'अमिल' होने का भाव। बिलकुल अलग या बे-मेल होने की अवस्था या भाव।

स्त्री० दे० 'अम्लता'।

अमिलताई*—स्त्री० = अमिलता।

अमिलतास—पुं० = अमलतास।

अमिल-पट्टी—स्त्री० [हिं० अमिल+पट्टी=जोड़] मिलाई में, एक प्रकार की चौड़ी तुरपन।

अमिलित*—वि० [सं० न० त०] जो मिला हुआ न हो; अर्थात् अलग या पृथक्।

अमिलिया—पुं० [हिं० इमली] इमली के रंग का एक प्रकार का पटसन।

अमिली—स्त्री० [सं० अ=नहीं+मिलना] किसी के साथ आपसदारी या मेल-मिलाप न होने की अवस्था या भाव। उदा०—जहँ अमिली पार्क हिय माँहाँ। तहँ न भाव नौरंग कै छाहाँ।—जायसी।

†स्त्री० = इमली।

अमिश्र—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी के साथ मिला न हो। २. जिसमें कुछ मिलावट न हो। खालिस। शुद्ध।

अमिश्रण—पुं० [सं० न० त०] मिश्रित न होने का भाव।

अमिश्रराशि—स्त्री० [सं० मिश्र राशि, कर्म० स०, न-मिश्रराशि, न० त०] इकाई (अर्थात् १ से ९ तक) से सूचित होनेवाली राशि, अर्थात् १ से ९ तक की प्रत्येक संख्या।

अमिश्रित—वि० [सं० न० त०] १. जो मिला या मिलाया न गया हो। २. जिसमें किसी दूसरी चीज का पुट या मेल न हो।

अमिष—पुं० [सं० न० त०] छल अथवा बहाने का अभाव।
वि० [सं० न० ब०] जिसमें छल-कपट या बहाना न हो।
†पुं० = आमिष।

अमी—वि० [सं० √अम् (रोग)+इनि] बीमार। रुग्ण।
*पुं० = अमिय (अमृत)।

अमीकर—पुं० [सं० अमृतकर] चंद्रमा।

अमी-कला*—पुं० = चंद्रमा।

अमीत*—वि० [सं० अमित्र, प्रा० अमित्त] जो मीत अर्थात् मित्र न हो, फलतः वैरी या शत्रु।

अमीन—पुं० [अ०] [भाव० अमीनी] माल-विभाग का वह कर्मचारी जो जमीन की नाप-जोख, बँटवारे आदि का प्रबंध करता है।

अमी-निधि—पुं० [हिं० अमी+सं० निधि] १. अमृत का समुद्र। २. चंद्रमा।

अमीमांसा—स्त्री० [सं० न० त०] १. मीमांसा का अभाव। २. दूषित विवेचन।

अमीर—पुं० [अ०] [भाव० अमीरी] १. धनवान। संपन्न। २. उदार। जैसे—दिल का अमीर। ३. नेता। सरदार। ४. अफगानिस्तान के राजाओं की उपाधि।

अमीरजादा—पुं० [अ०+फा०] [स्त्री० अमीरजादी] १. राजकुमार। शाहजादा। २. बहुत बड़े अमीर या धनवान का पुत्र।

अमीराना—वि० [अ० अमीर से फा०] अमीरों का-सा। अमीरों जैसा।

अमीरी—स्त्री० [अ०] १. अमीर अथवा धनी होने की अवस्था या भाव। दौलतमंदी। संपन्नता। २. उदारता।
वि० १. अमीरों से संबंध रखनेवाला। २. अमीरों की तरह का। जैसे—अमीरी ठाठ।

अमीव—पुं० [सं० √अम्+वन्. नि० ई] १. पाप। २. कष्ट। दुःख। ३. बीमारी। रोग।

अमुक—वि० [सं० अदस्+अकच्, उत्व, मत्व] [भाव० अमुकता] किसी ऐसे अज्ञात, अभिदिष्ट अथवा कल्पित व्यक्ति या बात के लिए प्रयोग में आनेवाला शब्द, जिसका नाम न लिया गया हो या न लिया जाने को हो। कोई अनिश्चित (वस्तु या व्यक्ति)।
वि० [हिं० अ+ मुकना] न मुकने या न समाप्त होनेवाला।

अमुकता—वि० [हिं० अ+मुकना = समाप्त होना] जो जल्दी न मुके; अर्थात् बहुत अधिक।
स्त्री० [सं० अमुक+तल्-टाप्] 'अमुक' होने की अवस्था या भाव।

अमुक्त—वि० [सं० न० त०] १. जो मुक्त न हो। २. बंधन में पड़ा हुआ। ३. (ग्रह) जिसका ग्रहण में मोक्ष न हुआ हो। ४. (शस्त्र) जो हाथ में पकड़ कर ही चलाया जाय, फेंका या दूर से मारा न जाय। (जैसे—तलवार, कटार आदि)

अमुख—वि० [सं० न० ब०] जिसे मुख न हो। बिना मुँह का।

अमुख्य—वि० [सं० न० त०] जो मुख्य या प्रधान न हो।

अमुग्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो मुग्ध अथवा मोहित न हो। २. चतुर। होशियार। ३. जितेंद्रिय।

अमुत्र—पुं० [सं० अदस्+त्रल्, उत्व, मत्व] १. जन्मांतर। २. पर-लोक।

अमुरख—वि० = मूर्ख। उदा०—सो अमुरुख बाउर औ अंधा।—जायसी।

अमूक—वि० [सं० न० त०] १. जो मूक अथवा गूँगा न हो। २. बहुत बोलनेवाला। वाचाल। ३. चतुर। होशियार।

अमूढ़—वि० [सं० न० त०] १. जो मूढ़ या मूर्ख न हो; अर्थात् चतुर या विद्वान्।

अमूमन्—अव्य० [अ० उमूमन्] प्रायः। साधारणतः।

अमूर्त्त—वि० [सं० न० त०] १. जिसका मूर्त्त या साकार रूप न हो। (एब्सट्रैक्ट) २. अप्रत्यक्ष।
पुं० १. परमेश्वर। २. आत्मा। ३. जीव। ४. काल। समय। ५. दिशा। ६. वायु। ७. आकाश।

अमूर्त्तिमान् (मत्)—वि० [सं० न० त०] १. जो मूर्त्तिमान् न हो। आकार-रहित। निराकार २. अगोचर। अप्रत्यक्ष।

अमूल—वि० [सं० न० ब०] = अमूलक।
पुं० सांख्य के अनुसार प्रकृति।

अमूलक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसका कोई मूल या जड़ न हो। निर्मूल। २. जिसका कोई आधार न हो। निराधार। ३. झूठ। मिथ्या।

अमूला—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] अग्निशिखा नाम का पौधा।

अमूल्य—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका मूल्य आँका या लगाया न जा सके। अनमोल। २. बहुत अधिक मूल्य का। बहुमूल्य। ३. जिसके लिए कोई मूल्य न चुकाना पड़े। मुफ्त का।

अमृत—वि० [सं० न० त०] १. जो मृत या मरा हुआ न हो; अर्थात् जीवित। २. [न० ब०] कभी न मरनेवाला। सदा जीवित रहने वाला। अमर। ३. अविनाशी। ४. परम प्रिय और सुंदर।
पुं० १. एक प्रसिद्ध कल्पित पदार्थ जिसके संबंध में यह कहा जाता है कि इसे खाने (या पीने) पर प्राणी सदा के लिए अमर हो जाता है। पीयूष। सुधा। (नेक्टर)
विशेष—हमारे यहाँ के पुराणों के अनुसार यह समुद्र-मंथन के समय उसमें से निकला था।
२. परम स्वादिष्ट अथवा बहुत अधिक गुणकारी पदार्थ। ३. स्वर्ग। ४. सोम का रस। ५. जल। पानी। ६. दूध। ७. घी। ८. अनाज। अन्न। ९. यज्ञ की बची हुई सामग्री। १०. मुक्ति। मोक्ष। ११. औषध। दवा। १२. जहर। विष। १३. पारद। पारा। १४. धन-संपत्ति। १५. सोना। स्वर्ण। १६. रहस्य संप्रदाय में, (क) ईश्वर या परमात्मा; (ख) ईश्वर के प्रति होनेवाला अनुराग या प्रेम; (ग) गुरु का सद्-पदेश; और (घ) तालु-मूल में स्थित चंद्रमा से निकलनेवाला रस जो योगी जीभ उलटकर पीता है। १७. देवता। १८. शिव। १९. विष्णु। २०. धन्वंतरि।

अमृत-कर—पुं० [ब० स०] अमृत के समान किरणोंवाला अर्थात् चंद्रमा।
अमृत-कुंड—पुं० [ष० त०] दे० 'मानसरोवर'। (हठ-योग का)
अमृत-कुंडली—स्त्री० [कर्म० स० ?] १. एक प्रकार का छंद। २. स्वर-मंडल की तरह का एक बाजा जिसका आकार कुंडली मारे हुए सर्प की तरह होता है।
अमृत-गति—स्त्री० [कर्म० स० ?] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में नगण जगण, नगण और अंत में गुरु होता है।
अमृत-गर्भ—पुं० [ब० स०] १. ब्रह्म। ईश्वर। २. जीवात्मा।
अमृत-जटा—स्त्री० [ब० स०] जटामासी।
अमृत-तरंगिणी—स्त्री० [ष० त०] चंद्रमा की चाँदनी। चंद्रिका।
अमृतत्व—पुं० [सं० अमृत+त्व] १. अमृत या अमर होने की अवस्था या भाव। अमरता। न मरना। २. मोक्ष।
अमृतदान—पुं० [सं० अमृत-आधान] कटोरदान नामक बरतन।
अमृत-द्युति—स्त्री० [ब० स०] चंद्रमा।
अमृत-द्रव—पुं० [ष० त०] चंद्रमा की किरण।
अमृत-धारा—स्त्री० [ष० त०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रथम चरण में २०, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं।
अमृत धुनि—स्त्री० = अमृत-ध्वनि।
अमृत-ध्वनि—स्त्री० [सं० ब० स०] कहने या पढने के ढंग के विचार से 'कुंडलिया' नामक छंद का एक विशिष्ट प्रकार या रूप। इसमें दोहा तो अपने सामान्य रूप में रहता है, पर 'रोला' के प्रत्येक चरण की आठ-आठ मात्राओं के ऐसे तीन टुकड़े होते हैं जिनमें यमक और द्वित्व वर्णों की प्रचुरता रहती है। अपनी उक्त विशेषताओं और पढ़े जाने के ढंग के कारण ही यह वीर रस के लिए बहुत उपयुक्त होता है।
अमृतप—वि० [सं० अमृत√पा (पीना)+क] अमृत पान करनेवाला। पुं० १. देवता। २. विष्णु।
अमृत-फल—पुं० [उपमि० स०] १. नाशपाती। २. परवल। पुं० [सं०] रहस्य संप्रदाय में, परमात्मा या मोक्ष की प्राप्ति।
अमृत-फला—स्त्री० [ब० स०] १. आँवला। २. अंगूर। ३. मुनक्का।
अमृत-बंधु—पुं० [ष० त०] १. देवता। २. चंद्रमा।
अमृतबान—पुं० [मर्त्तबान, बरमा का एक नगर] लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का एक प्रकार का ढक्कनदार बरतन जिसमें अचार, घी आदि रखते हैं। २. एक प्रकार का केला। मर्त्तबान।
अमृतमहल—स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत की एक प्रकार की भैंस।
अमृतमान—पुं० = अमृतबान।
अमृत-मूरि—स्त्री० [सं० अमृतमूल] संजीवनी बूटी।
अमृत-योग—पुं० [मध्य० स०] फलित ज्योतिष का एक शुभ योग।
अमृत-रश्मि—पुं० [ब० स०] चंद्रमा।
अमृत-लता—स्त्री० [कर्म० स०] गुर्च। गिलोय।
अमृत-लोक—पुं० [ष० त०] स्वर्ग।
अमृत-वपु (स्)—पुं० [ब० स०] १. चंद्रमा। २. विष्णु। ३. शिव।
अमृत-बिंदु—पुं० [ष० त०] एक उपनिषद् का नाम।
अमृत-संजीवनी—स्त्री० [कर्म० स०] = संजीवनी बूटी।
अमृत-सार—पुं० [ष० त०] मक्खन।
अमृतसू—पुं० [सं० अमृत+सू (प्रसव)+क्विप्] चंद्रमा।
अमृतांधस्—पुं० [अमृत-अंधस् ब० स०] देवता।
अमृतांशु—पुं० [अमृत-अंशु, ब० स०] चंद्रमा।
अमृता—स्त्री० [सं० अमृत+टाप्] १. गुर्च। २. इंद्रायण। ३. मालकँगनी। ४. अतीस। ५. हड़। ६. लाल निसोत। ७. आँवला। ८. दूब। ९. तुलसी। १०. पीपल। ११. मदिरा। १२. फिटकिरी। १३. खरबूजा।
अमृताक्षर—वि० [अमृत-अक्षर, कर्म० स०] १. जो कभी मरे नहीं। अमर। २. जिसका कभी नाश न हो। अजर। पुं० अमृत के से गुणवाले अक्षर या शब्द। उदा०—फूटा नव अमृताक्षर-निर्झर।—निराला।
अमृताश—पुं० [सं० अमृत√अश् (भोजन)+अण्] विष्णु।
अमृताशन—पुं० [सं अमृत√अश्+ल्यु—अन] देवता।
अमृताशी (शिन्)—पुं० [सं० अमृत√अश्+णिनि] देवता।
अमृताहरण—पुं० [सं० अमृत-आ√हृ (हरण करना)+ल्यु—अन] गरुड़।
अमृतेश—पुं० [अमृत-ईश ष० त०] देवता।
अमृतेशय—पुं० [सं०√शी (सोना)+अच्—शय, अमृतेशय, अलुक् स०] विष्णु।
अमृतेश्वर—पुं० [अमृत-ईश्वर, ष० त०] = अमृतेश।
अमृत्यु—वि० = अमर।
अमृष्ट—भू० कृ० [सं० न० त०] १. बिना मला हुआ। २ जिसे रगड़ कर साफ न किया गया हो। अस्वच्छ।
अमे—सर्व० [सं० अस्मद्] १. हम। २. हमें। (गुज०) उदा०-सनि मनि भाषंत श्री गोरष जोगी अमे तौ रहिना रंगै।—गोरखनाथ।
अमेजना—स० [फा० आमेजन] किसी में कुछ मिलाना या मिलावट करना। मिश्रण करना।
अमेठना—स० = उमेठना।
अमेत—वि० [सं० अमित] असंख्य। उदा०—अति विचित्र पंडित गुअ कथत जु कथा अमेत।—चंदबरदाई।
अमेदस्क—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसमें चरबी न हो या चरबी की कमी हो। २. दुबला-पतला।
अमेधा (धस्)—वि० [सं० न० ब०] जिसमें मेधा-शक्ति या बुद्धि न हो; अर्थात् मूर्ख।
अमेध्य—वि० [सं० न० त०] १. (जीव या पदार्थ) जिसका यज्ञ में बलि के रूप में उपयोग न हो सकता हो। जैसे—कुत्ता, गधा, उरद या मसूर की दाल आदि। २. (व्यक्ति) जो यज्ञ कराने के योग्य न हो ३. अपवित्र। अशुद्ध। पुं० एक प्रकार के प्रेत।
अमेय—वि० [सं० न० त०] १. जो नापा या मापा न जा सके। २. असीम। निस्सीम। ३. जो जाना या समझा न जा सके।
अमेयात्मा (त्मन्)—पुं० [सं० अमेय-आत्मन्, कर्म० स०] विष्णु।
अमेरिकन—वि० [अं०] १. जिसकी उत्पत्ति, जन्म या निर्माण अमेरिका में हुआ हो। २. जो अमेरिका से संबंधित हो। पुं० अमेरिका देश का निवासी।
अमेरिका—पुं० [अं०] १. पश्चिमी गोलार्द्ध का एकमात्र महादेश जो उत्तरी और दक्षिणी दो भागों में बँटा है। २. उत्तरी अमेरिका के पचास प्रमुख प्रदेशों का बना हुआ एक संघ राज्य। संयुक्त राज्य।

अमेरिकी—वि० = अमेरिकन।

अमेल—वि० [हिं० अ+मेल] [स्त्री० अमेली] १. जिसका किसी मे ठीक मेल न बैठना हो। जो किसी से मेल न खाता हो। २. असंबद्ध। ३. अन-मेल।

अमेव*—वि० दे० 'अमेय'।

अमेह—पुं० [सं० न० त०] एक रोग जिसके कारण पेशाब नहीं उतरता या रुक-रुक कर उतरता है।

अमेंड*—वि० [हिं० अ+मेंड] मर्यादा या बंधन न माननेवाला।

अमेठना*—स० दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष—वि० [सं० न० ब०] १. जो मुक्त न हुआ हो। २. जिसे मुक्ति न मिली हो।

पुं० [सं० न० त०] मोक्ष का अभाव।

अमोघ—वि० [सं० न० त०] १. जो निष्फल, निरर्थक या व्यर्थ न हो। २. अपने उद्देश्य या लक्ष्य तक ठीक पहुँचनेवाला। अचूक।

पुं० १. व्यर्थ न जाने का भाव। २. शिव। ३. विष्णु।

अमोघ-किरण—स्त्री० [कर्म० स०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरणें।

अमोघ-दृष्टि—वि० [ब० स०] जिसकी दृष्टि कभी विफल न होती हो।

अमोघ-वाक्—वि० [ब० स०] जिसका वचन कभी व्यर्थ न होता हो।

अमोघ-विक्रम—पुं० [ब० स०] शिव।

अमोघा—स्त्री० [सं० अमोघ+टाप्] १. कश्यप ऋषि की एक स्त्री। २. हरीतकी। हर्रे। ३. वायविडंग। ४. पाढर का पौधा और फूल।

अमोचन—पुं० [सं० न० त०] छुटकारा न होने की क्रिया, दशा या भाव। वि० १. [न० ब०] जिसका मोचन न हो सके। २. न छूट सकनेवाला।

अमोद*—पुं० = आमोद।

अमोनिया—पुं० [अं० एमोनिया] नौसादर।

अमोरी—स्त्री० [हिं० आम+औरी (प्रत्य०)] १. आम का कच्चा छोटा फल। अँबिया। २. अमड़ा। आम्रातक।

अमोल*—वि० [सं० अमूल्य] जिसका मूल्य न लग सके। बहुत अधिक मूल्यवाला। कीमती।

अमोलक*—वि० [हिं० अमोल+क (प्रत्य०)] १. बहुत अधिक मूल्यवाला। बहुमूल्य। २. अमूल्य।

अमोला—पुं० [हिं० आम] आम का नया निकलता हुआ अंकुर या कल्ला। वि० [हिं० अमोल] अमूल्य। बहुमूल्य। जैसे—है उस परी का सबसे अमोला इजारबंद।—कोई शायर।

अमोही (हिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसे किसी से मोह न हो। विरक्त। २. जिसे किसी से ममता न हो। निर्मोही।

अमौआ—पुं० [हिं० आम+औआ (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का रंग जो पके हुए आम के रस के समान पीला होता है। अमरसी। २. उक्त रंग का एक प्रकार का कपड़ा।

वि० जिसका रंग आम के रस के समान अर्थात् हलका पीला हो।

अमौन—पुं० [सं० न० त०] १. मुनि न होने की अवस्था या भाव। २. मुनि के अनुरूप आचरण न करने की दशा। ३. आत्मज्ञान।

अमौलिक—वि० [सं० न० त०] १. जो मौलिक न हो। २. जिसकी कोई जड़ न हो। निर्मूल। ३. जिसका संबंध मूल से न हो।

अम्माँ—स्त्री० [सं० अंबा] माँ। माता। जननी।

अम्मामा—पुं० [अ० अम्माम] सिर पर बाँधी जानेवाली एक प्रकार की भारी पगड़ी। (मुसलमानी पहनावा)

अम्मारी—स्त्री० दे० 'अंबारी'।

अम्रात—पुं० [सं० अम्ल√अत् (सतत गमन)+अण्] १. आमड़ा नामक पेड़। २. उक्त पेड़ का फल।

अम्रातक—पुं० [सं० अम्रात+कन्] अमड़ा (वृक्ष और फल)।

अम्रियमाण—वि० [सं०√मृ+यक्+शानच्, न० त०] =अमर।

अम्ल—पुं० [सं०=अम् (गति)+क्ल] [वि० अम्लीय] [भाव० अम्लता] १. खाद्य पदार्थों के छः रसों में से एक रस। खटाई। २. कोई ऐसा तत्त्व या रासायनिक द्रव्य जिसमें खटाईवाले तत्त्वों के अतिरिक्त क्षारों का गुण नष्ट करने की भी शक्ति हो। तेजाब। (ऐसिड)

वि० [अम्ल+अच्] खट्टा। तुर्श। इमली आदि के स्वाद का।

अम्लक—पुं० [सं० अम्ल+कन्] बड़हर।

अम्ल-केशर—पुं० [ब० स०], बिजौरा नीबू।

अम्लजन—पुं० दे० 'आक्सीजन।

अम्लता—स्त्री० [सं० अम्ल+तल्-टाप्] 'अम्ल' का भाव। खट्टापन। खटाई। (एसिडिटी)

अम्ल-पंचक—पुं० [ष० त०] (वैद्यक में) जंबीरी नीबू, खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अम्लवेत नामक पाँच खट्टे फल।

अम्ल-पनस—पुं० [कर्म० स०] बड़हर।

अम्ल-पित्त—पुं० [च० त०] पित्त के खराब होने पर, किये हुए भोजन के खट्टे हो जाने का रोग। (एसिडिटी)

अम्ल-फल—पुं० [ब० स०] इमली।

अम्ल-मिति—स्त्री० [ष० त०] वह रासायनिक प्रक्रिया जिससे यह जाना जाता है कि किसी द्रव्य या पदार्थ में अम्ल का अंश कितना है। (एसिडिमेट्री)

अम्ल-मेह—पुं० [कर्म० स०] मूत्र-संबंधी एक रोग।

अम्ललोणिका—स्त्री० [सं० अम्ल√ला (आदान)+क, अम्लल√ऊन् (कम होना)+ण्वुल्-अक-टाप,इत्व] अमलोनी नामक खट्टा साग।

अम्ल-वृक्ष—पुं० [ष० त०] इमली का पेड़।

अम्लसार—पुं० [ब० स०] १. अमलवेत। २. चुक। ३. काँजी। ४. हिंताल। ५. आमलासार गंधक।

अम्ल-हरिद्रा—स्त्री० [कर्म० स०] आँबा हलदी।

अम्लांकुश—पुं० [अम्ल-अंकुश, कर्म० स०] एक तरह का खट्टा साग।

अम्लाध्युषित—पुं० [अम्ल-अध्युषित, तृ० त०] अधिक खटाई खाने के फलस्वरूप होनेवाला एक नेत्र-रोग।

अम्लान—वि० [सं० न० त०] १. जो उदास, मलिन या म्लान न हो। २. खिला हुआ। प्रसन्न। ३. निर्मल। स्वच्छ।

पुं० १. बाणपुष्प नामक पौधा। २. कटसरैया। गुल-दुपहरिया।

अम्लानी (निन्)—वि० [सं० म्लान+इनि, न० त०] साफ। स्वच्छ।

अम्लिका—स्त्री० [सं० अम्ल+कन्-टाप्, इत्व] १. इमली। २. खट्टी डकार।

अम्लिमा (मन्)—स्त्री० [सं० अम्ल+इमनिच्] खट्टापन।

अम्लीकरण—पुं० [सं० अम्ल+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्—अन]

[भू० कृ० अम्लीकृत] वह क्रिया जिससे किसी वस्तु या द्रव्य में अम्लता आवे। (एसिडीफिकेशन)

अम्लीय—वि० [सं०] १. अम्ल-संबंधी। अम्ल का। २. जिसमें अम्लता या खटास हो। (एसिडिक)

अम्लोटक—पुं० [अम्ल-उटक, ब० स०] अश्मंतक नामक पौधा।

अम्लोद्गार—पुं० [अम्ल-उद्गार, ष० त०] खट्टी डकार।

अम्हाँ—वि० [सं० अस्माकं] हमारे। मेरे। उदा०- अम्हाँ वासना वसी इमी । -प्रिथीराज।

अम्हीणा—सर्व० [सं० आत्मानकं, प्रा० अम्हाअं] हमारा।

अम्हीणो—सर्व० [सं० अहम्] मेरा। हमारा। उदा०—आयी कहि कहि नाम अम्हीणौ। -प्रिथीराज।

अम्हौरी—स्त्री० =पित्ती (शरीर में होनेवाली)।

अयं—सर्व० [सं० इदम् शब्द के पुंलिंग में प्रथमा विभक्ति के एकवचन का रूप] यह।

अयंत्र—वि० [सं० न० ब०] १. जो नियंत्रण में न हो। २. [न० त०] जो यंत्र न हो।

पु० १. नियंत्रण का अभाव। २. यंत्रों का न होना।

अयंत्रित—वि० [सं० न० त०] १. जो नियंत्रण में न हो। २. मनमानी करनेवाला।

अयःपान—पुं० [सं० ब० स०] एक नरक का नाम।

अयःशंकु—पुं० [सं० ष० त०] १. भाला। २. कील।

अयःशूल—पुं० [सं० ष० त०] १. भाला। २. तीव्र पीड़ा।

अय—पुं० [सं० अयस्] १. लोहा। २. हथियार। ३. अग्नि। ४. सोना। अव्य० [सं० अयि] संबोधन का शब्द। ऐ! हे!

अयक्ष्म—वि० [सं० न० ब०] १. जो रोग-ग्रस्त न हो। निरोग। २. उपद्रव, बाधा आदि से रहित।

अयजनीय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका यजन (आदर या पूजन) न किया जा सकता हो। २. निंदनीय।

अयज्ञ—वि० [सं० न० ब०] यज्ञ न करनेवाला।

पुं० [न० त०] यज्ञ का अभाव।

अयज्ञक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. यज्ञ न करनेवाला। २. जो यज्ञ के योग्य न हो।

अयज्ञिय—वि० [सं० न० त०] १. जिसका उपयोग यज्ञ में न किया जा सके। २. यज्ञ में न देने योग्य। ३. यज्ञ करने के अयोग्य।

अयत—वि० [सं० न० त०] १. असंयमी। २. जो नियंत्रण में न हो।

अयती (तिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो यती न हो। २. जिसने इंद्रियों को वश में न किया हो।

अयतेंद्रिय—वि० [सं० अयत-इंद्रिय ब० स०] १. जिसने अपनी इंद्रियों का संयमन न किया हो। २. ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट। ३. इंद्रियलोलुप।

अयत्न—वि० [सं० न० ब०] यत्न न करनेवाला।

पुं० [सं० न० त०] १. यत्न या चेष्टा का अभाव। २. उद्योगहीनता।

अयत्न-कृत—वि० [सं० तृ० त०] (कार्य या परिणाम) जिसकी पूर्णता, प्राप्ति या सिद्धि बिना यत्न किये हुई हो।

अयथा—वि० [सं० न० ब०] १. जो ठीक या सत्य न हो। मिथ्या। झूठ। २. अनुपयुक्त। अयोग्य।

पुं० [न० त०] १. विधि के अनुसार काम न करना। २. अनुचित काम।

अयथातथ—वि० [सं० न० त०] १. जैसा चाहिए, वैसा नहीं। २. अयथार्थ। ३. विपरीत।

अयथापूर्व—वि० [सं० न० त०] जो पूर्व या पहले जैसा न हो।

अयथार्थ—वि० [सं० न० त०] १. जो यथार्थ या वास्तविक न हो। २. असत्य। मिथ्या। जैसे—अयथार्थ ज्ञान।

अयथेष्ट—वि० [सं० न० त०] जो यथेष्ट या पर्याप्त न हो; फलतः कम या थोड़ा।

अयथोचित—वि० [सं० न० त०] १. जैसा या जितना उचित हो, वैसा या उतना नहीं। २. अयोग्य।

अयन—पु० [सं० √अय् (गति)+ल्युट्—अन] १. मार्ग। रास्ता। २. गति। चाल। ३. राशि-चक्र की गति या मार्ग। ४. सूर्य की मकर रेखा से कर्क रेखा अथवा कर्क रेखा से मकर रेखा की ओर की गति या मार्ग, जिसे क्रमात् उत्तरायण या दक्षिणायन कहते हैं। ५. उत्तरायण और दक्षिणायन के आरंभ में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। ६. ज्योतिष की वह प्रक्रिया जिससे आकाशस्थ पिंडों की गति और मार्ग का ज्ञान होता है। ७. प्राचीन भारत में व्यूह तोड़ने के लिए उसमें प्रवेश करने का एक सैनिक ढंग। ८. गौ-भैंस आदि के स्तन का वह ऊपरी भाग जिसमें दूध भरा रहता है। ९. आश्रम। १०. घर। मकान। ११. जगह। स्थान। १२. काल। समय। १३. अंग। भाग।

अयनक—पुं० [अ० ऐनक] चश्मा। ऐनक।

अयन-काल—पुं० [ष० त०] सूर्य के एक अयन में रहने का काल या समय जो ६ महीनों का होता है।

अयन-वृत्त—पुं० [ष० त०] १. वह वृत्त जो किसी प्रकार की गति या उसके मार्ग से बनता हो। २. सूर्य की गति या मार्ग से बननेवाला वृत्त।

अयन-संक्रम—स्त्री० [तृ० त०] १. प्रत्येक संक्रांति से २० दिन पहले का समय। २. दे० 'अयन संक्रांति'।

अयन-संक्रांति—स्त्री० [तृ० त०] मकर और कर्क राशियोंवाली संक्रांतियाँ।

अयन-संपात—पुं० [ष० त०] अयनांशों का योग।

अयनांत—पुं० [अयन-अंत ष० त०] १. किसी अयन या गति का अंत या समाप्ति। २. ज्योतिष में, एक अयन की समाप्ति के बाद का और दूसरे अयन के प्रारंभ होने से पहले का काल।

अयनांश—पुं० [अयन-अंश ष० त०] १. अयन का अंश या भाग। २. सूर्य की मकर से कर्क रेखा अथवा कर्क से मकर रेखा की ओर की गति का अंश या भाग।

अयमदिन—पुं० [सं० न० त०] चांद्रमास के विचार से ऐसा दिन (और रात) जिसमें दो तिथियाँ बीत जायँ।

अयमित—वि० [सं० न० त०] १. जो काटा-छाँटा या सुधारा न गया हो। २. बिना बाधा, रोक या रुकावट के बढ़नेवाला। ३. अनियंत्रित।

अयरापति—पु० = ऐरावत। उदा०—अयरापति चढि चाल्यो राय।—नरपतिनाल्ह।

अयव—वि० [सं० न० ब०] १. यव से रहित। जिसमें यव न हो। २. जो पूरा न हो या जिसमें किसी प्रकार का अभाव हो।

पुं० [सं० न० त०] १. पितृ-कर्म जिसमें यव या जो काम में नहीं लाया जाता। २. वीर्य। शुक्र। ३. कृष्ण पक्ष। ४. दुश्मन। शत्रु। ५. मल में होनेवाला एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

अयश (स्)—पुं० [सं० न० त०] १. यश का अभाव। २. अपयश या बदनामी।

अयशस्कर—वि० [सं० अयशस्√कृ (करना)+ट] (कार्य) जिससे या तो यश न मिले अथवा अयश या बदनामी हो।

अयशस्य—वि० [सं० न० त०]= अयशस्कर।

अयशस्वी (स्विन्)—वि० [सं० यशस्+विनि, न० त०] १. जिसे किसी काम में यश न मिला हो। २. जिसे कभी किसी काम में यश न मिलता हो।

अयशी—वि० = अयशस्वी।

अयस्—पुं० [सं०√इ (गति)+असुन्] १. लोहा। २. हथियार। ३. धातु। ४. सोना। ५. अगुरु नामक वृक्ष। ६. चुंबक।

अयस्क—पुं० [सं०] धातुओं का वह मूल या प्राकृतिक रूप जिसमें वे खान से निकलती हैं। बिना साफ की हुई धातु। (ओर)

अयस्कांत—पुं० [सं० न० त०] चुंबक।

अयस्कार—पुं० [अयस्√कृ (करना)+अण्] १. लोहार। २. जाँघ का ऊपर का हिस्सा।

अयस्कीट—पुं० [ष० त०] मोरचा। जंग।

अयस्कुशा—स्त्री० [मध्य० स०] लोहे के मेल से या लोहे का बना हुआ रस्सा।

अयाँ—वि० [अ०] १. प्रकट। व्यक्त। २. खुला हुआ। स्पष्ट।

अयाचक—वि० [सं० न० त०] १. जो याचक न हो। न माँगनेवाला। २. जिसे किसी काम या बात की आवश्यकता या कामना न रह गई हो। ३. पूर्ण-काम। संतुष्ट।

अयाचित—वि० [सं० न० त०] जिसके लिए याचना न की गई हो। जो माँगा न गया हो।

अयाची (चिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी से याचना न करता हो। २. जिसे किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता न हो। ३. संतुष्ट।

अयाच्य—वि० [सं०√याच् (माँगना)+ण्यत्, न० त०] १. (व्यक्ति) जिसे याचना करने या माँगने की आवश्यकता न हो। पूर्णकाम। २. (पदार्थ) जो माँगे जाने के योग्य न हो (अर्थात् अनावश्यक या तुच्छ)।

अयाज्य—वि० [सं० न० त०] १. जो यज्ञ कराने योग्य न हो। जिसे यज्ञ करने का अधिकार न हो। २. पतित।

पुं० चांडाल।

अयाज्य-याजन—पुं० [ष० त०] ऐसे व्यक्ति से यज्ञ कराना जो यज्ञ कराने का अधिकारी न हो।

अयात—वि० [सं० न० त०] जो गया न हो।

अयात-याम—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे हुए पहर भर (अधिक समय) न बीता हो। २. तुरंत का बना हुआ। ताजा। ३. दोष-रहित (पवित्र या शुद्ध)।

अयाथार्थिक—वि० [सं०] = अयथार्थ।

अयान—पुं० [सं० न० त०] १. न जाना। २. ठहराव। स्थिरता।

पुं० [न० ब०] प्रकृत। स्वभाव।

वि० जिसके पास यान या सवारी न हो।

*वि० =अयाना।

अयानत—स्त्री० [अ०] मदद। सहायता।

अयानता*—स्त्री० = अज्ञानता।

अयानप*—पुं० [हिं० अजान+पन] १. अयाने या अज्ञान होने की अवस्था या भाव। अज्ञानता। अनजानपन। २. भोलापन। सरलता। सिधाई।

अयाना*—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाना] [स्त्री० अयानी] १. अज्ञान। बुद्धि-हीन। २. ना-समझ।

पुं० बालक या शिशु।

अयाम—पुं० [सं० न० त०] १. याम या समय का अभाव। २. दिन का कोई भाग। ३. जो पथ या रास्ता न हो।

अयाल—पुं० [फा०] घोड़े, सिंह आदि की गर्दन पर के बाल। केसर।

पुं० [अ०] बाल-बच्चे। संतान।

अयालदार—पुं० [अ०+फा०] बाल-बच्चोंवाला व्यक्ति। गृहस्थ।

अयास—क्रि० वि० == अनायास।

अयास्य—वि० [सं०√यस् (फेंकना) +णिच्+यत्, न० त०] १. जो फेंका या हटाया न जा सके। अटल। २. निश्चल। शांत।

पुं० १. शत्रु। विरोधी। २. प्राण-वायु। ३. अंगिरा ऋषि का एक नाम।

अयि—अव्य० [सं०√इ (गति))+इन्] संबोधन का शब्द। अरे! हे!

अयुक्छद—पुं० [सं० ब० स०] = अयुग्मच्छद।

अयुक्त—वि० [सं०√युज् (जोड़ना)+क्त, न० त०] [भाव० अयुक्ति] १. (पशु) जो जोता न गया हो। २. जो किसी से युक्त न हो। न मिला हुआ; अर्थात् अलग या पृथक्। ३. जो संबंध के विचार से ठीक न हो। असंबद्ध। जो युक्ति-संगत न हो। ५. जो प्रयोग या व्यवहार में न लाया गया हो। ६. अधार्मिक। ७. अनमना। अन्यमनस्क। ८. अविवाहित।

अयुक्ति—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अयुक्त] १. युक्ति का अभाव। कारण बतलाने या दलील देने में असमर्थता। २. एकरूपता का अभाव। ३. असंबद्धता। गड़बड़ी। ४. किसी काम में युक्त न होने की अवस्था या भाव। योग न देना। ५. बंशी बजाने के समय उसके छेदों पर उँगलियाँ रखना।

अयुक्शक्ति—पुं० [सं० ब० स०] शिव।

अयुक्शर—पुं० [सं० ब० स०] कामदेव।

अयुग—वि० [सं० न० त०] १. जो युग या जोड़ा न हो। अकेला। २. (संख्या) जो सम न हो। विषम। ३. जो मिला या सटा न हो।

अयुगक्ष—पुं० [सं० ब० स०] शिव।

अयुगल—वि० [सं० न० त०] १. जो युगल न हो। २. दे० 'अयुग्म'।

अयुगू—वि० [सं०√इ+उन्, अयु√गै (शब्द) +कू] १. जिसका कोई साथी न हो। २. (लड़की) जिसकी कोई बहन न हो।

स्त्री० वह स्त्री जिसे एक ही संतान होकर रह जाय, फिर कोई संतान न हो। काक-वंध्या।

अयुग्बाण—पुं० [सं० ब० स०] कामदेव।

अयुग्म—वि० [सं० न० त०] १. जो युग्म या जोड़ा न हो। अकेला। २. (संख्या) जो सम न हो। विषम। ३. जो किसी से जुड़ा या मिला न हो।

अयुग्मच्छद—पुं० [सं० ब० स०] १. पौधा या ऐसा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ

युग्म न हों, बल्कि अयुग्म हों। जैसे—अरहर, बेल आदि की। २. सप्त-पर्ण वृक्ष। छतिवन।

अयुग्म-नयन (नेत्र)—पुं० [ब० स०] अयुग्म नेत्रोंवाले, शिव।

अयुग्म-बाण—पुं० [ब० स०] कामदेव।

अयुग्म-वाह—वि० [ब० स०] जिसके अश्वों की संख्या विषम हो।
पुं० सूर्य।

अयुग्म-शर—पुं० [ब० स०] कामदेव।

अयुज्—वि० [सं०√यूज् (जोड़ना)+क्विन्, न० त०] १. जिसका कोई साथी न हो। अकेला। २. जो किसी के साथ जुड़ा मिला या लगा न हो।

अयुत—वि० [हिं० अ+युत] जो युत या मिला हुआ न हो। अलग।
पुं० [सं० न० त०] १. गिनती में दस हजार की संख्या का स्थान। २. उक्त स्थान पर पड़नेवाली संख्या।

अयुध—पुं० दे० 'आयुध'।

अयुध्य—वि० [सं० अयोध्य] १. जो युद्ध करने या लड़ने योग्य न हो। २. जिससे युद्ध न किया जा सकता हो। ३. आयुधीय।

अयुष—स्त्री० दे० 'आयुष'।

अये—अव्य० [सं०√इ (गति)+एच्] [स्त्री० अयि] १. संबोधन सूचक शब्द। हे! २. क्रोध, विषाद, भयादि द्योतक अव्यय।

अयोग—वि० [न० ब०] १. अयोग्य। २. अनुपयुक्त।
पुं० [सं० न० त०] १. योग का अभाव। अलग या पृथक् होना। २. बिछुड़ना। वियोग होना। ३. एक-रूपता का अभाव। ४. प्राप्ति का अभाव। ५. बुरा योग। कुसमय। ६. कठिनता। संकट। ७. वह वाक्य जिसका अर्थ कठिनाई से बैठाया जाता है। कूट। ८. दुष्ट ग्रह, नक्षत्र आदि से युक्त काल।

अयोगव—पुं० [सं० ब० स०, नि० अच्] शूद्र जाति के पुरुष और वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

अयोगवाह—पुं० [सं० अयोग न० ब०, √वह्+णिच्+अच्] स्वरों और व्यंजनों के बीच के वर्णों—अनुस्वार, विसर्ग, उपध्मानीय तथा जिह्वा-मूलीय की संज्ञा।

अयोग्य—वि० [सं० न० त०] १. जो योग्य या विद्या-संपन्न न हो। २. जो सक्षम या समर्थ न हो। ३. जो अधिकारी या पात्र न हो। ४. जो उपयुक्त, संगत या सटीक न हो।

अयोग्यता—स्त्री० [सं० अयोग्य+तल्, टाप्] अयोग्य होने की अवस्था या भाव।

अयोगी (गिन्)—पुं० [सं० न० त०] वह जिसने योगांगों का अनुष्ठान न किया हो अर्थात् जो योगी न हो।
*वि० = अयोग्य।

अयोघन—पुं० [सं० अयस्√हन् (हिंसा, गति) +अप्, घ आदेश] हथौड़ा।

अयोजाल—पुं० [सं० ष० त०] लोहे का जाल या जाली।

अयोद्धा (द्धृ)—पुं० [सं० न० त०] १. वह जो योद्धा न हो। २. वह जो अच्छा योद्धा न हो।

अयोध्य—वि० [सं० न० त०] १. जो युद्ध करने योग्य न हो। २. जिसके साथ युद्ध न किया जा सकता हो। ३. अजेय।

अयोध्या—स्त्री० [सं० अयोध्य+टाप्] आधुनिक फैजाबाद के आस-पास के क्षेत्र का पुराना नाम, जहाँ सूर्य-वंशी राजाओं की राजधानी थी। साकेत।

अयोनि—वि० [सं० न० ब०] १. जो योनि से उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा। २. नित्य। ३. मौलिक। ४. अवैध रूप से उत्पन्न।
पुं० १. योनि का अभाव। २. ब्रह्मा। ३. शिव।

अयोनिज—वि० [सं० अयोनि √जन् (उत्पत्ति)+ड] जिसकी उत्पत्ति योनि या माता-पिता के लैंगिक संबंध से न हुई हो। जैसे—उद्भिज, देवता आदि।

अयोनिजा—स्त्री० [सं० अयोनिज+टाप्] जानकी। सीता।

अयोमय—वि० [सं० अयस्+मयट्] १. लोहे से युक्त। २. लोहे का बना हुआ।

अयोमल—पुं० [सं० ष० त०] जंग। मोरचा।

अयोमार्ग—पुं० [सं० ष० त०] लोहे की पटरियों का बना हुआ वह मार्ग जिस पर रेलें चलती हैं। रेल-मार्ग। (रेलवे)

अयोमुख—वि० [सं० ब० स०] जिसके मुँह, सिर या सिरे पर लोहा लगा हो।

अयौगिक—वि० [सं० न० त०] १. जो यौगिक न हो। २. जिसका योग से संबंध न हो। ३. (शब्द) जो अनियमित रूप से व्युत्पन्न होने पर भी चल पड़ा हो। रूढ़।

अयौन—वि० [सं० न० त०] दे० 'अलैंगिक'।

अरंग—पुं० [हिं० अ+रंग] १. बुरा या खराब रंग-ढंग। २. दुर्दशा। उदा०—व्याधि के अरंग ऐसे व्यापि रह्यो आधो अंग।-सेनापति।
पुं० [सं० रंग ?] महक। सुगंध। उदा०—रूप के तरंगन के अंगन ते सोंधे के अरंग लै तरंग उठै पौन की। —देव।

अरंगी (गिन्)—वि० [सं० न० त०] १. रंग-रहित। २. राग-रहित।

अरंड—पुं०= एरंड (रेंड)।

अरंधन—पुं० [सं० न० त०] सिंह संक्रांति तथा कन्या संक्रांति को किया जानेवाला एक व्रत।

अरंभ*—पुं० = आरंभ।
पुं० [सं० रंभ] १. हलचल। २. नाद। शब्द। ३. शोर। हल्ला।

अरंभना*—अ० [सं० आ√रम्भ् = शब्द करना] १. बोलना। नाद करना। २. रंभाना।
स० [सं० आरम्भ] आरंभ या शुरू करना।
अ० आरंभ या शुरू होना।

अर—पुं० [सं०√ऋ (गति)+अच्] १. पहिये की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी। आरी। २. कोना। कोण। ३. सेवार। ४. चकवा पक्षी। ५. पित्तपापड़ा।
वि० १. तेज। २. थोड़ा।
अव्य० जल्दी से। शीघ्रता से।
†स्त्री= अड़ (जिद या हठ)।

अरइल—पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।
†वि० = अड़ियल।

अरई—स्त्री० [सं० ऋ=जाना] बैल हाँकने की वह छड़ी जिसके सिरे पर नुकीला लोहा लगा रहता है।

अरक—पुं० [अ० अरक़] वनस्पति आदि का वह सत्त्व या सार जो भभके से खींच कर निकाला जाता है। २. निचोड़कर या पकाकर बनाया हुआ रस। ३. पसीना। स्वेद।
*पुं० [सं०अर+ कन्] १. सूर्य। २. मदार नामक पौधा। ३. पानी में होनेवाली सेवार नामक घास।

अरकगीर—पुं० [अ० अरक़ =पसीना+फा० गीर (प्रत्य०)] घोड़े की पीठ पर चारजामे के नीचे रखा जानेवाला नमदा।

अरकटी—पुं० [हिं० आर+काटना] नाव की पतवार सँभालनेवाला। माँझी।

अरकना*—अ० [अनु०] १. अरराकर गिरना। २. टकराना। ३. फटना। ४. जोर से बोलना।
पद-अरकना-बरकना= (क) व्यर्थ की तथा अत्यधिक बातें करना। (ख) इधर-उधर करना। टाल-मटोल करना। (ग) खींचातानी करना।

अरक नाना—पुं० [अ० अरक़+नअनअ=पुदीना] सिरके में मिलाकर तैयार किया हुआ पुदीने का अरक या रस।

अरकला—पुं० [सं० अर्गल=अगरी या बेंडा] १. रोक। रुकावट। २. मर्यादा।
वि० रोकने या रुकावट करनेवाला।

अरकसी—स्त्री० [सं० आलस्य] आलस्य। सुस्ती।
वि० [हिं० आलसी या आलकसी] आलस्य दिखाने या सुस्ती करनेवाला। सुस्त। उदा०—बीती बरख सी आप पाती हू कौं अरकसी।—सेनापति।

अरकाटी—पुं० [अरकाट (दक्षिण भारत का एक नगर)] वह ठेकेदार जो विदेशों में कुली, मजदूर आदि भेजने का काम करता हो।

अरकान—पुं० [अ० रुक्न का बहु०] १. राज्य का प्रमुख अधिकारी। मंत्री। २. कारिंदा। गुमाश्ता। ३. उर्दू छंदों के मात्रा-रूप अक्षर। ४. वैभव। संपत्ति।

अरकासार—[?] १. तालाब। २. बावली। (डिं०)

अरकोल—पुं० [सं० कौलीरा] हिमालय में होनेवाला लाखर नामक वृक्ष।

अरक्षित—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी रक्षा न की जाती हो अथवा न की गई हो। २. (वस्तु या व्यक्ति) जिसकी रक्षा करनेवाला कोई न हो। ३. (स्थान) जिसकी सामरिक रक्षा का प्रबंध न हो।

अरग—पुं० दे० 'अर्घ'। २. दे० 'अरगजा'।
*अव्य०=अलग।

अरगजा—पुं० [?] कपूर, केसर, चंदन आदि द्रव्यों के मेल से बनाया जानेवाला एक विशिष्ट सुगंधित द्रव्य।

अरगजी—वि० [हिं० अरगजा] १. जिसका रंग अरगजे का-सा हो। २. जिसकी सुगंध अरगजे जैसी हो।
पुं० एक प्रकार का गहरा पीला रंग। (कैडमियम)

अरगट*—वि० [हिं० अलगट] १. पृथक्। अलग। २. भिन्न। ३. निराला।

अरगन—पुं० [अं० आर्गन] धौंकनी से बजनेवाला एक विलायती बाजा।

अरगनी—स्त्री० दे० 'अलगनी'।

अरगल—पुं० =अर्गला।

अरग़वान—पुं० [फा० अर्ग़वान] गहरे लाल या रक्त वर्ण का एक फूल और उसका वृक्ष।

अरग़वानी—वि० [फा० अर्ग़वानी] जिसका रंग गहरा लाल या रक्त हो।

अरगाना*—अ० [हिं० अलगाना] १. अलग होना। पृथक् होना। २. किसी झगड़े से अलग होकर चुप रहना। उदा०—अस कहि राम रहे अरगाई।—तुलसी।
स० १. अलग या पृथक् करना। २. छाँटना।

अरघ*—पुं०=अर्घ।

अरघट्ट—पुं० [सं० अर√घट्ट (चलना)+अच्] १. रहट। २. कूआँ।

अरघा—पुं० [सं० अर्घ] १. एक प्रसिद्ध लंबोतरा पात्र जिसमें जल रखकर अर्घ दिया जाता है। २. उक्त पात्र के आकार की वह रचना जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३. उक्त आकार की वह नाली जिसमें से होकर कुएँ की जगत का पानी नीचे गिरता है।

अरघान*—स्त्री० [सं० आघ्राण=सूँघना] गंध। महक।

अरघानी—स्त्री० [हिं० अरघान]=अरघान (सुगंध)। उदा०—विसहर लुरहिं लेहिं अरघानी।—जायसी।

अरचन*—पुं०=अर्चन।

अरचना*—स० [सं० अर्चन] अर्चन या पूजा करना।

अरचल*—स्त्री०=अड़चन।

अरचा—स्त्री०=अर्चा।

अरचि*—स्त्री० [सं० अर्चि] १. ज्योति। २. चमक। दीप्ति।

अरचित—भू० कृ०=अर्चित।

अरज—पुं० [अ० अर्ज़] चौड़ाई। पनहा। जैसे—कपड़े का अरज।
स्त्री० [फा० अर्ज़] नम्रतापूर्वक किसी से की हुई प्रार्थना। निवेदन।
पद—अरज गरज=आवश्यकता और उसके संबंध में की जानेवाली प्रार्थना।

अरजना*—स० [सं० अर्जन] अर्जन या प्राप्त करना।
स० [फा० अर्ज] अरज (निवेदन या प्रार्थना) करना।

अरजम—पुं० [देश०] कुंबी नामक वृक्ष।

अरजल—पुं० [अ० अर्ज़ल] १. वह घोड़ा जिसका एक अगला (दाहिना) और दोनों पिछले पाँव एक रंग के हों। और अगला बायाँ पैर किसी और रंग का हो। ऐसा घोड़ा खराब माना जाता है। २. तुच्छ व्यक्ति। कमीना। नीच। ३. वर्ण-संकर।

अरजस्क—वि० [न० ब०, कप्] १. जिसमें रज या धूल न हो। २. स्वच्छ।

अरजाँ—वि० [फा० अर्ज़ाँ] [भाव० अर्ज़ानी] कम या थोड़े मूल्य का। सस्ता।

अरजी—स्त्री० [अ० अर्ज़ी] वह पत्र जिसमें किसी अधिकारी से विनयपूर्वक प्रार्थना की गई हो। आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।
वि० अरज (निवेदन या प्रार्थना) करनेवाला। प्रार्थी।

अरजुन—पुं०=अर्जुन।

अरझना—अ०=उलझना।

अरझा—पुं० [देश०] घटिया जाति का सन। सनई।
†पुं० [हिं० अरुझना] १. उलझन। झमेला। २. झगड़ा। ३. झंझट। बखेड़ा।

अरडींग—वि० [?] बलवान्। (डिं०)

अरणि—स्त्री० [सं०√ऋ+अनि] =अरणी।

अरणी—पुं० [सं० अरणी+ङीप्] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. अग्नि-मंथ नामक वृक्ष जिसकी लकड़ियों की रगड़ से आग जलाई जाती थी। ४. चीता नामक वृक्ष। ५. श्योनाक। सोना-पाढ़ा। ६. चकमक पत्थर।

अरणी-सुत—पुं० [सं० ष० त०] शुकदेव।

अरण्य—पुं० [सं०√ऋ (गति)+अन्य] १. वह विस्तृत भू-भाग जो वृक्षों और झाड़ियों से भरा हो। जंगल। वन। २. दशनामी संन्यासियों के दस भेदों में से एक। ३. कायफल।

अरण्यक—पुं० [सं० अरण्य+कन्] १. जंगल। वन। २. जंगल में रहनेवाला समाज।

अरण्य-गान—पुं० [सं० त०] १. वन में एकान्त स्थान पर गाया जानेवाला गीत। २. लाक्षणिक अर्थ में, वह सुंदर काम या बात जिसे देखने-सुनने या समझनेवाला कोई न हो।

अरण्य-चंद्रिका—स्त्री० [सं० त०] ऐसी चंद्रिका (शृंगार या शोभा) जिसे देखने या समझनेवाला कोई न हो।

अरण्य-पंडित—पुं० [सं० त०] वह जो वन (अर्थात् निर्जन स्थान) में ही अपना गुण या पांडित्य प्रकट कर सके।

अरण्य-पति—पुं० [प० त०] सिंह।

अरण्य-मक्षिका—स्त्री० [प० त०] डाँस। मच्छर।

अरण्य-यान—पुं० [सं० त०] १. जंगल की ओर प्रस्थान करना। २. वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना।

अरण्य-राज—पुं० [प० त०] सिंह।

अरण्य-रोदन—पुं० [स० त०] ऐसी चिल्लाहट, पुकार या व्यथा-निवेदन जिसकी ओर कोई ध्यान देनेवाला न हो।

अरण्य-विलाप—पुं० [स० त०] =अरण्य-रोदन।

अरण्य-षष्ठी—स्त्री० [मध्य० स०] एक व्रत जो ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी को किया जाता है।

अरण्यानी—स्त्री० [सं० अरण्य+ङीप्, आनुक्] १. बहुत बड़ा वन। २. मरुस्थल। रेगिस्तान। ३. वन की देवी।

अरण्यीय—वि० [सं० अरण्य+छ–ईय] १. जंगलवाला। २. जो जंगल के निकट, पास या समीप स्थित हो।
पुं० वह भू-भाग जिसमें वन हो।

अरत—वि० [न० त०] १. जो किसी काम में रत या लगा हुआ न हो। २. जो अनुरक्त न हो। ३. विरक्त।

अरति—स्त्री० [सं० न० त०] १. रत न होने की अवस्था या भाव। २. (किसी से) अनुराग या प्रीति न होना। (एपथी) ३. विरक्ति। ४. असंतोष। ५. आलस्य। सुस्ती। ६. व्यथा। ७. वह कर्म जिसका उदय होने पर किसी काम में मन न लगे। (जैन)

अरत्नि—पुं० [सं०√ऋ (गति) + कत्नि, न० त०] १. बाहु। बाँह। २. कोहनी। ३. हाथ की बँधी हुई मुट्ठी। ४. कोहनी से लेकर कनिष्ठा के सिरे तक की नाप।

अरथ*—पुं० =अर्थ।

अरथाना*—स० [सं० अर्थ] १. अर्थ या माने लगाना। २. विस्तार-पूर्वक अर्थ या आशय बतलाना। पूरी व्याख्या करना। समझाना।

अरथी—पुं० [सं० अरथिन्] जो रथ पर सवार न हो अर्थात् पैदल।
पुं० [सं० रथ] वह तख्ता या सीढ़ी जिस पर मृत शरीर अंत्येष्टि क्रिया के लिए श्मशान ले जाया जाता है। रत्थी। रथी।
वि०=अर्थी।

अरदंड—पुं० [देश०] एक प्रकार का करील (वृक्ष)।

अरद—वि० [सं० न० ब०] जिसके दाँत न हों। बिना दाँतोंवाला।

अरदन—वि० [सं०] बिना दाँत का।
पुं०=अर्दन।

अरदना*—स० [सं० अर्दन] १. कष्ट पहुँचाना। २. नष्ट करना।

अरदल—पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

अरदली—पुं० [अं० ऑर्डली] वह चपरासी जो किसी बड़े अधिकारी के आगे या पीछे चलता हो और उसकी छोटी-मोटी आज्ञाओं का पालन करता हो।
मुहा०—(किसी के) अरदली में चलना या रहना—किसी के आगे या पीछे अनुचर बनकर चलना या रहना।

अरदाना*—स० [सं० अर्दन] कुचलने का काम किसी दूसरे से कराना।
†अ० कुचला जाना।

अरदावा—पुं० [सं० अर्द से फा० आर्द] १. दला या कूटा हुआ अन्न। २. किसी चीज का कुचला हुआ और नष्ट-भ्रष्ट रूप। ३. भर्त्ता या भुरता नाम का सालन। चोखा।

अरदास—स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १. निवेदन। प्रार्थना। उदा०—किय अरदासि ततांर तुच्छव रोज अज्ज रहो गेहे।—चंदबरदाई। २. कोई शुभकार्य आरंभ करते समय किसी देवता से की जानेवाली मंगल-कामना।

अरधंग*—पुं० =अर्द्धांग।

अरधंगी—स्त्री० =अर्द्धांगी।

अरधंत—अव्य० [सं० अधस्] नीचे। उदा०—अरधंत कवल उरधंत मध्ये प्राण पुरिस का वासा।—गोरखनाथ।

अरध*—अव्य० [सं० अधः] १. अंदर। भीतर। २. नीचे। तले।
वि०=अर्ध।

अरधाली*—स्त्री०=अर्द्धाली।

अरन—पुं० [हि० अड़न या अंगरेजी आयरन=लोहा?] एक तरह की निहाई जिसके एक या दोनों ओर नोक निकली होती है।
*पुं०=अरण्य।
*स्त्री०=अड़न।

अरना—पुं० [सं० अरण्य] भैंसे की तरह का एक वन्य पशु।
अ०=अड़ना।

अरनी—स्त्री० दे० 'अरणी'।

अरन्य*—पुं०=अरण्य।

अरपन*—पुं०=अर्पण।

अरपना*—स० [स० अर्पण] १. अर्पण करना। सौंपना। २. भेंट करना। देना।
अ० [?] आरूढ़ होना। चढ़ना। उदा०—फनी फनन पर अरपे टरपे नहिन नैकु तव।—नंददास।

अरपा—पुं० [देश०] एक प्रकार का मसाला।

अरपित*—भू० कृ०=अर्पित।

अरब—पुं० [सं० अर्बुद] सौ करोड़ की सूचक संख्या।
वि० जो गिनती में सौ करोड़ हो।
पुं० [अ०] १. पश्चिमी एशिया का एक प्रसिद्ध रेगिस्तानी देश। २. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश का घोड़ा जो बहुत अच्छा और तेज होता है।
पुं० [सं० अर्वन्] १. घोड़ा। २. इंद्र।
अरबर*—वि० [अनु०] १. ऊँचा-नीचा या टेढ़ा-मेढ़ा। बेढंगा। २. असंबद्ध। ऊट-पटाँग। ३. कठिन। विकट।
स्त्री० व्यर्थ की, ऊट-पटाँग या धृष्टतापूर्ण बात।
अरबरना†—अ०=अरबराना।
अरबरा†—वि०[अ०] १. इधर-उधर हिलता हुआ। २. चंचल। ३. घबराया हुआ। विकल। ४. टक लगाकर या स्थिर दृष्टि से देखनेवाला। ५. प्रेम में मग्न या विह्वल। उदा०—(क) ताकौं निरखि नैन अरबरे। (ख) बहुत सरद ससि माँहि अरबरे ह्वै चकोर ज्यों।—नंददास।
अरबराना—अ० [अनु०] [भाव० अरबरी] १. व्याकुल होना। घबराना। २. चलने में लड़खड़ाना। ३. प्रेम-मग्न या विह्वल होना। ४. तड़पना। ५. व्यर्थ की या उद्दंडतापूर्ण बातें करना। बड़बड़ाना। ६. जल्दी मचाना। हड़बड़ी करना।
अरबरी*—स्त्री० [अनु०] १. घबराहट। २. बेचैनी। विकलता। ३. विह्वलता। ४. जल्दी। ५. भगदड़।
अरबिस्तान—पुं० [फा०] अरब देश।
अरबी—वि० [फा०] अरब देश में होनेवाला। अरब-संबंधी।
पुं० १. अरब देश का घोड़ा जो बहुत अच्छा माना जाता है। २. ताशा नामक वाद्य-वृंद।
स्त्री० १. अरब देश की भाषा। २. वह लिपि जिसमें उक्त भाषा लिखी जाती है।
स्त्री०=अरवी।
अरबीला*—वि० [अनु०] १. तेज-पूर्ण। २. आन-बानवाला। ३. हठ करने या अड़नेवाला। हठी।
अरब्बी*—वि०=अरबी।
अरभक*—पुं०=अर्भक।
अरमण—वि० [सं० न० ब०] १. जो रमण (मन-बहलाव) न कर सके। जिसमें मन न लगे, फलतः अरुचिकर, असंतोषजनक या कुरूप। २. जिसमें रमण न किया जा सके; फलतः बुरा।
अरमनी—वि० [फा० अर्मनी] आरमेनिया देश का या वहाँ होनेवाला।
पुं० आरमेनिया देश का निवासी।
स्त्री० आरमेनिया देश की भाषा।
अरमाण—वि० [न० त०] =अरमण।
अरमान—पुं० [तु० अर्मान] १. मन में दबी हुई चाह या लालसा। मुहा०—अरमान निकलना=लालसा पूरी होना।
२. पछतावा। पश्चात्ताप।
अरर—अव्य० [अनु०] विस्मय, विकलता, व्यग्रता आदि का सूचक अव्यय।
पुं० [सं०] १. कपाट। किवाड़। २. ढक्कन। ३. युद्ध। लड़ाई। ४. उल्लू पक्षी। ५. मैनफल।

अररना†—स० [अनु०] १. कुचलना, दलना या पीसना। २. बुरी तरह से नष्ट करना।
अरराना—अ० [अनु०] अरर शब्द करते हुए सहसा गिरना या टूटना।
अररु—पुं० [सं०√ऋ+अरु] १. शत्रु। २. एक प्रकार का शस्त्र।
अरलु—पुं० [सं० अर√ला (लेना) +कु] १. श्योनाक वृक्ष। सोना-पाढ़ा। २. कड़ुवी लौकी। अलाबू।
अ-रव—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें रव या शब्द न हो। बिना रव या शब्द का। २. जो शब्द न करता हो अर्थात् चुप, मौन या शांत।
पुं० रव या शब्द का अभाव।
अरवन—पुं० [सं० अ+हिं० लवना=फसल काटना] पहले-पहल या कच्ची काटी जानेवाली फसल।
अरवल†—पुं० [देश०] घोड़े के कान के पास होनेवाली एक भौंरी।
अरवा—पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० लावना=जलाना, भूनना] धान को यों ही कूटकर, बिना उबाले निकाला हुआ चावल। 'भुजिया' का विरुद्धार्थक।
पुं० [सं० आलय=स्थान] आला। ताखा।
अरवाती*—स्त्री० =ओलती (छाजन की)।
अरवाह—स्त्री० [फा०] लड़ाई। झगड़ा।
स्त्री० [अ० 'अर्वाह, रूह' का बहुवचन] १. आत्माएँ। २. अप्सराएँ, देवदूत, भूत-प्रेत आदि।
अरवाही—वि० [फा०] झगड़ालू। लड़ाका।
अरविंद—पुं० [सं० अर√विद् (लाभ) +श] १. कमल। २. ताँबा। ३. सारस (पक्षी)।
अरविंद-नयन—वि०, पुं०=कमल-नयन।
अरविंद-नाभ—पुं० [ब० स०, अच्] विष्णु।
अरविंद-बंधु—पुं० [ष० त०] सूर्य।
अरविंद-योनि—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।
अरविंद-लोचन—वि०, पुं०=कमल-नयन।
अरविंदाक्ष—पुं० [अरविंद-अक्षि, ब० स०] विष्णु।
अरविंदिनी—स्त्री० [सं० अरविन्द+इनि-ङीप्] १. कमलों का समुदाय। २. कमलिनी।
अरवी—स्त्री० [सं० आलु] १. पान के पत्ते के आकार के बड़े-बड़े पत्तोंवाला एक कंद। २. उक्त कंद के लंबोतरे फल जिनकी तरकारी बनाई जाती है। अरुई।
अरस—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें रस न हो। बिना रस का। नीरस। २. बिना स्वाद का। फीका। ३. अनाड़ी। गँवार।
पुं० रस का न होना। रस का अभाव।
पुं० [सं० अलस] आलस्य। उदा०—पुनि सिंगार करि अरस नेवारी।—जायसी।
†पुं० [अ० अर्श=आकाश] १. आकाश। उदा०—सेनापति जीवन अधार निरधार तुम, जहाँ कौ ढरत तहाँ टूटत अरस तें।—सेनापति। २. स्वर्ग। ३. बहुत ऊँचा भवन। जैसे—धरहरा या महल। ४. कमरे की छत या पाटन।
अरसथ†—पुं० [देश०] वह बही जिसमें मासिक आय-व्यय का लेखा लिखा जाता है।

अरसन-परसन—पुं०=अरस-परस।

अरसना*—अ० [सं० अलस] १. आलस्य से युक्त होना। २. ढीला, मंद या शिथिल होना।

अरसना-परसना*—स० [सं० स्पर्शन] १. स्पर्श करना। छूना। २. गले लगाना। आलिंगन करना। ३. अच्छी तरह देखना-भालना। (क्व०)

अरस-परस—पुं० [सं० दर्शन+स्पर्शन] १. हाथ से छूना। स्पर्श करना। २. दर्शन और अंगस्पर्श। ३. व्रज में लड़कों का एक खेल (कदाचित् आँखमिचौनी)।

अरसा—पुं० [अ० अर्सः] १. काल। समय। जैसे—इसी अरसे में वह भी आ पहुँचा। २. अधिक समय। बहुत दिन। जैसे—अरसे से आपका खत नहीं आया। ३. देर। विलंब। ४. शतरंज की बिसात।

अरसात—पुं० [सं० अलस=आलस्य] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक रगण होता है।

अरसाना*—अ० [सं० अलस] १. आलस्य से युक्त होना। २. आलस या सुस्ती करना। अलसाना।

अरसिक—वि० [सं० न० त०] १. जो रसिक (प्रेम का मर्मज्ञ) न हो। रूखा। २. जिसे किसी विशिष्ट विषय, विशेषतः काव्य, शृंगार, संगीत आदि में रस न मिलता हो। रूखे स्वभाववाला।

अरसी*—स्त्री० १=अलसी। २. =आरसी।

अरसीला*—वि० [सं० अलस] [स्त्री० अरसीली] आलस्यपूर्ण। आलस्य से भरा हुआ। जैसे—अरसीली मुद्रा।
वि० [हिं० अ+रसीला] १. जिसमें रस या स्वाद न हो। २.=अरसिक।

अरसौंहा—वि० [हिं० अरस=आलस्य+औंहाँ (प्रत्य०)] आलस्य से भरा हुआ। जैसे—अरसौंहें नैन।

अरस्तू—पुं० [अ०] यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक (३८४-३२२ ई० पू०)। (अरिस्टाटल)

अरहंत*—पुं० दे० 'अर्हंत'।

अरहट—पुं०=रहट (कुएँ से पानी निकालने का)।

अरहन—पुं० [सं० रन्धन] तरकारी, साग आदि पकाते समय उसमें डाला या मिलाया जानेवाला आटा या बेसन।
पुं० दे० 'निहाई'।

अरहना*—स० [सं० अर्हण] आराधन करना। पूजा करना।
स्त्री० [सं० अर्हण] पूजा।

अरहर—स्त्री० [सं० आढकी, पा० अड्ढकी] १. एक प्रसिद्ध पौधा जिसके दाने चने की दाल जैसे होते हैं। तुअर। २. उक्त पौधे के दाने जिनकी दाल बनाई जाती है।

अरहस्—पुं० [सं० न० त०] रहस्य या गुप्त भेद का अभाव।

अरहित—वि० [सं० न० त०] १. 'रहित' का विपर्याय। २. भरा-पूरा। ३. संपन्न।

अरहेड़*—स्त्री० [सं० हेड़] चौपायों का झुंड। (डिं०)

अरा—स्त्री० [सं० अर+टाप्] गाड़ी के पहियों की वह चौड़ी पटरी जो पहियों की गड़ारी और पुट्ठी के बीच में जड़ी रहती है। उदा०—नवरस भरी अराएँ अविरल चक्रवाल को चकित चूमती।—प्रसाद।
†पुं०=आरा (लकड़ी चीरने का)।

अराअरी*—स्त्री० [हिं० अड़ना] १. एक दूसरे के सामने अड़े रहना। २. अड़। जिद। हठ। ३. लाग-डाँट। होड़।

अराक—पुं०=इराक।

अराकान—पुं० [सं० अरि=राक्षस+सं० ग्राम, बरमी० कान=देश] बरमा देश का एक प्रांत जो भारतीय सीमा के पास पड़ता है।

अराकी—वि०=इराकी।

अराग—पुं० [न० त०] राग का अभाव। अ-रति।
वि० [सं० न० ब०] राग से रहित।

अरागी (गिन्)—वि० [सं० न० त०] जिसमे राग (प्रेम, रग, मनोविकार आदि) का अभाव हो।

अराज—वि० [सं० न० ब०] १. बिना राजा का (देश)। २. क्षत्रियों से रहित। ३. दे० 'अराजकता'।

अराजक—वि० [सं० न० ब०, कप्] [भाव० अराजकता] १. शासक या शासन-हीन (राज्य या राष्ट्र)। २. जो शासक या शासन की सत्ता न मानता हो अथवा उसका उल्लंघन या विरोध करता हो। ३. विद्रोही या षड़यंत्रकारी। (अनार्किस्ट)

अराजकता—स्त्री० [सं० अराजक+तल्, टाप्] १. देश में राजा या शासक का न होना या न रह जाना। २. समाज की वह अवस्था जिसमें किसी प्रकार का तंत्र, विधि, व्यवस्था या शासन न रह गया हो। (अनार्की)

अराजकता-वाद—पुं० [ष० त०] वह सिद्धांत या मतवाद जो यह प्रतिपादित करता है कि शासन अभिशाप या पाप है; क्योंकि यह व्यक्तियों की स्वतंत्रता को कम करता है और उन पर तरह-तरह के बंधन लगाता है। (अनार्किज्म)

अराजकतावादी (दिन्)—वि० [सं० अराजकता√वद् (बोलना)+णिनि] अराजकतावाद का अनुयायी, प्रतिपादक या समर्थक।

अराजन्य—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जो राजन्य या क्षत्रिय न हो। २. [न० ब०] (राज्य) जिसमें क्षत्रिय न हों।

अराजी—स्त्री० [अ० अर्ज़ का बहु०] १. धरती। भूमि। २. खेती-बारी के काम में आनेवाली जमीन।

अराड़—पुं० [सं० अट्टाल] १. ढेर। राशि। २. काठ-कबाड़ अर्थात् टूटे-फूटे सामान का बहुत बड़ा और ऊँचा ढेर। ३. वह दूकान या स्थान जहाँ जलाने की लकड़ी बिकती है।

अराड़ना—अ० [?] गर्भपात या गर्भ-स्राव होना। (पशुओं के लिए प्रयुक्त)

अरात*—पुं० [सं० अराति] शत्रु। दुश्मन। उदा०—नहिं राती है प्रीति सौ है अरात पै रात।—रसनिधि।

अराति—पुं० [सं०√रा (दान)+क्तिच्, न० त०] १. दुश्मन। शत्रु। २. शास्त्रों में, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर ये छः मनोविकार जो मनुष्य के सद्गुण और सुख नष्ट कर देते हैं। ३. उक्त के आधार पर छः की संख्या। ४. ज्योतिष में, जन्म-लग्न से छठा स्थान। विशेष दे० 'अरि' ४.।

अराद्धि—स्त्री० [सं०√राध् (सम्यक् सिद्धि) + क्तिन्, न० त०] १. दुर्भाग्य। २. विफलता। ३. अपराध। दोष। ४. पाप।

अराधन*—पुं०=आराधन।

अराधना*—स० [सं० आराधन] १. आराधना या उपासना करना। २. अर्चन, पूजा आदि करना। ३. मन में किसी का ध्यान करके कुछ मनाना।
स्त्री० दे० 'आराधना'।

अराधी*—पुं०=आराधक।

अराना†—पुं०=अड़ाना।

अरावा—पुं० [अ० अरावः] १. पुरानी चाल की गाड़ी या रथ। २. तोप लादने की गाड़ी। तोप-गाड़ी। (गन कैरज)

अराम*—पुं०=आराम।

अरारूट—पुं० [अं० एरोरूट] १. एक प्रसिद्ध पौधा जिसके कंद को कूटकर सत्त निकाला जाता है। २. उक्त पौधे का सफेद सत्त जो छोटे दानों के रूप में होता और रोगियों के लिए पथ्य का काम देता है।

अरारोट—पुं०=अरारूट।

अराल—वि० [सं०√ऋ+विच्–अर्–आ√ला+क] [स्त्री० अराला] १. टेढ़ा, तिरछा या वक्र। २. घुँघराला (जैसे—बाल)। ३. अपवित्र।
पुं० १. मतवाला या मस्त हाथी। २. राल। ३. सिर के बाल। केश।

अरावल—पुं०=हरावल।

अरावली—स्त्री० [सं०] राजस्थान की एक प्रसिद्ध पहाड़ी।

अरिंज—पुं० [देश०] एक प्रकार का सफेद बबूल।

अरिंद—पुं० [सं० अरि-इंद्र] वैरी या शत्रु।

अरिंदम—वि० [सं० अरि√दम् (दमन करना) +खच्, मुम्] वैरी या शत्रु का नाश करनेवाला।

अरि—पुं० [सं० √ऋ (गति) +इन्] [भाव० अरिता] १. वह जो किसी को आघात या पीड़ा पहुँचावे, फलतः विरोधी या वैरी। २. शास्त्रों के अनुसार काम, क्रोध, मत्सर, मद, मोह और लोभ जो मनुष्य का परम अहित करते हैं। ३. उक्त छः दोषों के आधार पर छः की संख्या। ४. जन्म-कुंडली में लग्न से छठा स्थान, जहाँ से शत्रुभाव का विचार होता है। ५. वायु। ६. मालिक। स्वामी। ७. चक्र। ८. दुर्गंध खैर। विट्‌खदिर।

अरि-केशी—पुं० [ब० स०] केशी के शत्रु, कृष्ण।

अरिघ्न—वि० [सं० अरि√हन् (हिंसा) +क] शत्रुओं का नाश करनेवाला।
पुं० शत्रुघ्न।

अरिता—स्त्री० [सं० अरि+तल्—टाप्] शत्रुता। दुश्मनी।

अरित्र—पुं० [सं० √ऋ (गति) +इत्र, न० त०] १. नाव खेने का डाँड़ा। २. वह डोरी जिससे जल की गहराई नापते हैं। ३. जहाज या नाव का लंगर।
वि० शत्रु से रक्षा करनेवाला।

अरि-दमन—वि० [प० त०] शत्रु का दमन या नाश करनेवाला।
पुं० शत्रुघ्न का एक नाम।

अरिमर्दन—वि० [सं० अरि√मृद् (मर्दन करना)+ल्युट्, उप० स०]=अरि-दमन।

अरि-मेद—पुं० [ब० स०] १. विट् खदिर। दुर्गंध खैर। २. गँधिया नाम का बदबूदार कीड़ा।

अरिया†—स्त्री० [देश०] मछली खानेवाली एक छोटी चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है। ताक।

अरियाना*—स० [सं० अरे] अरे कहकर (अर्थात् तिरस्कारपूर्वक) बातें करना।

अरिल्ल—पुं० [सं० अरिला] सोलह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो लघु होते हैं।

अरिवन—पुं० [देश०] रस्सी का वह फंदा जिसमें घड़ा आदि फँसाया जाता है।

अरिष्ट—पुं० [सं०√रिष् (हिंसा) +क्त, न० त०] १. कष्ट। क्लेश। २. आपत्ति। विपत्ति। ३. अपशकुन। अशुभ लक्षण। ४. कोई प्राकृतिक उत्पात। जैसे—अग्नि-कांड, भूकंप आदि। ५. दुर्भाग्य। ६. लंका के एक पर्वत का नाम। ७. एक राक्षस जो श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था। वृषभासुर। ८. बलि के पुत्र एक दैत्य का नाम। ९. रीठा। १०. लहसुन। ११. नीम। १२. कौआ। १३. गिद्ध। १४. दही का मट्ठा। १५. सूतिका गृह। सौरी। १६. वैद्यक में एक प्रकार का पौष्टिक मद्य या मादक पेय पदार्थ। १७. ज्योतिष में, दुष्ट ग्रहों का एक योग जो मृत्युकारक माना गया है। १८. प्राचीन भारत की एक प्रकार की सैनिक व्यूह-रचना। (क्व०)
वि० १. दृढ़। पक्का। २. अविनाशी। ३. अशुभ।

अरिष्टक—पुं० [सं० अरिष्ट+कन्] १. रीठा। २. निर्मली।

अरिष्ट-गृह—पुं० [ष० त०] प्रसव-गृह। सौरी।

अरिष्टनेमि—पुं० [सं०] १. सोलहवें प्रजापति का नाम। २. राजा सगर के श्वसुर का नाम। ३. कश्यप का एक पुत्र। ४. जैनों के बाइसवें तीर्थंकर का नाम।

अरिष्टमथन—पुं० [सं० अरिष्ट√मन्थ् (मथना) +णिच्+ल्यु—अन] १. शिव। २. विष्णु।

अरिष्टसूदन—पुं० [सं० अरिष्ट√सूद् (मारना) + णिच्+ल्यु—अन] विष्णु।

अरिष्टा—स्त्री० [सं० अरिष्ट+टाप्] दक्ष प्रजापति की एक पुत्री जिसका विवाह कश्यप ऋषि से हुआ था।

अरिष्टिका—स्त्री० [सं० अरिष्ट+कन्, टाप्, इत्व] १. रीठा। २. कुटकी।

अरिसूदन—वि० [सं० अरि√सूद (मारना)+णिच्+ल्यु—अन] शत्रुओं का नाश करनेवाला।

अरिहन*—पुं० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न।
वि० शत्रु का नाश करनेवाला।
पुं० [सं० अर्हत्] १. जैनों के जिन देव। २. दे० 'अरहन'।

अरिहा—वि० [सं० अरि√हन् (हिंसा) + विच्] शत्रुनाशक।
पुं० शत्रुघ्न।
*पुं०=अहित।

अरी—अव्य० [हिं० अरे का स्त्री०] स्त्रियों के लिए संबोधन सूचक अव्यय। जैसे—अरी, तू कहाँ गई थी?

अरीठा—पुं० [सं० अरिष्ट, प्रा० अरिट्ठा] रीठा।

अरीत—स्त्री० [हिं० अ+रीति] रीति के विरुद्ध होनेवाला आचरण। अनुचित या बुरा काम।

अरीतिक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जो नियम, रीति आदि के अनुसार

न हो या न हुआ हो। २. जो औपचारिक न हो। शिष्टाचार-रहित। ३. आपसी तौर पर होनेवाला। (इन्-फॉर्मल; उक्त सभी अर्थों के लिए)

अरुंतुद—वि० [सं० अरु√तुद्+खश्, मुम्] १. मर्मस्थान पर आघात करनेवाला। २. मन को दुःखी करनेवाला। ३. काटने, छेदने या घाव करनेवाला।
पुं० वैरी। शत्रु।

अरुंधती—स्त्री० [सं० न० त०] १. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २. दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को व्याही गई थी। ३. सप्तर्षि मंडल का एक छोटा तारा। ४. तंत्र शास्त्र में, जिह्वा। जीभ।

अरुंषिका—स्त्री० [सं० अरुष्+ठन्, पृषो० मुम्] रक्त के विकार से होनेवाला एक रोग जिसके कारण माथे और मुँह पर फोड़े निकल आते हैं।

अरु—अव्य० [सं० अपर] और।
पुं० [सं०√ऋ (गति) +उन्] १. लाल खैर। २. अर्क वृक्ष। ३. सूर्य। ४. जख्म। घाव। ५. कोमल अंग। ६. नेत्र। आँख।

अरुआ—पुं० [सं० आलु] १. एक प्रकार का कंद जिसकी तरकारी बनती है। २. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी ढोल, तलवार की म्यान आदि बनाने के काम आती है।

अरुई†—स्त्री०=अरवी।

अरुगाना—[सं० अनुगायन] अच्छी तरह समझाकर कोई बात कहना। उदा०—समौ पाय कहियो अरुगाई।—नंददास।

अरुग्ण—वि० [सं० न० त०] जो रुग्ण न हो। नीरोग। तंदुरुस्त।

अरुचि—स्त्री० [सं० न० त०] १. रुचि या प्रवृत्ति का अभाव। अनिच्छा। २. अग्निमांद्य नामक रोग। ३. दिलचस्पी न होना। रस न लेना। घृणा।

अरुचि-कर—वि० [सं० प० त०] जो रुचिकर न हो।

अरुच्य—वि० [सं० न० त०] =अरुचि-कर।

अरुज—वि० [सं० न० व०] जिसे कोई रोग न हो। नीरोग।
पुं० १. अमलतास। २. केसर। ३. सिंदूर।

अरुझना*—अ०=उलझना।

अरुझाना*—स०=उलझाना।

अरुझाव†—पुं०=उलझन।

अरुझेरा†—पुं० [हिं० अरुझना] उलझन। उदा०—नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै, जनम जनम अरुझेरा।—कबीर।

अरुट्ठ—वि०=रुष्ट।

अरुण—वि० [सं०√ऋ (गति) +उनन्] [स्त्री० अरुणा, भाव० अरुणता, अरुणिमा] लाल रंग का। रक्त वर्ण का। सुर्ख।
पुं० [सं०] १. गहरा लाल रंग। २. सूर्य। ३. बारह आदित्यों में से एक जिसका प्रकाश माघ महीने में रहता है। ४. सूर्य का सारथी। ५. संध्या के समय पश्चिम में दिखाई देनेवाली लाली। ६. कुंकुम। ७. सिंदूर। ८. उद्दालक ऋषि के पिता का नाम। ९. एक झील जो मंदार पर्वत पर मानी गई है। १०. एक प्रकार के पुच्छल तारे जिनकी चोटियाँ चँवर की तरह की होती हैं। ११. एक प्रकार का कुष्ठ रोग जिसमें शरीर का चमड़ा लाल हो जाता है। १२. पुन्नाग नामक वृक्ष।

अरुण-कर—पुं० [व० स०] सूर्य।

अरुण-किरण—पुं० [व० स०] सूर्य।

अरुण-चूड़—पुं० [व० स०] १. वह जिसकी चोटी या शिखा लाल हो। २. मुर्गा।

अरुण-ज्योति (स्)—पुं० [व० स०] शिव।

अरुणता—स्त्री० [सं० अरुण+तल्—टाप्] १. अरुण होने की अवस्था या भाव। २. ललाई। लाली।

अरुण-नेत्र—पुं० [व० स०] १. कबूतर। २. कोयल।

अरुण-प्रिया—स्त्री० [प० त०] १. सूर्य की स्त्रियाँ—छाया और संज्ञा। २. एक अप्सरा का नाम।

अरुण-मल्लार—पुं० [कर्म० स०] मल्लार राग का एक भेद जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

अरुण-शिखा—पुं० [व० स०] मुर्गा, जिसकी चोटी लाल होती है।

अरुणा—स्त्री० [सं० अरुण+अच्, टाप्] १. प्रातः काल की पूर्व दिशा की लाली। २. उषा। ३. लाल रंग की गौ। ४. मंजीठ। ५. अतिविषा। ७. गोरखमुंडी। ८. निसोथ। ९. इंद्रायन। १०. घुंघची। ११. एक प्राचीन नदी।

अरुणाई*—स्त्री०=अरुणता (लाली)।

अरुणाग्रज—पुं० [अरुण—अग्रज व० स०] गरुड़।

अरुणात्मज—पुं० [अरुण—आत्मज प० त०] अरुण के पुत्र। जैसे—कर्ण, जटायु, यम, शनि, सुग्रीव आदि।

अरुणात्मजा—स्त्री० [सं० अरुणात्मज+टाप्] १. सूर्य की पुत्री। यमुना नदी। २. ताप्ती नदी।

अरुणानुज—पुं० [अरुण—अनुज प० त०] गरुड़।

अरुणाभ—वि० [अरुण—आभा व० स०] जो लाल आभा से युक्त हो। लाली लिये हुए।

अरुणाभा—स्त्री० [अरुण—आभा कर्म० सं०] सूर्योदय अथवा सूर्यास्त होने के समय का सूर्य का मद्धिम प्रकाश। (ट्वाइलाइट)

अरुणार—वि०=अरुनारा।

अरुणाश्व—पुं० [अरुण—अश्व व० स०] मरुत्। वायु।

अरुणित—भू० कृ० [सं० अरुण+इतच्] १. जिसे लाल किया या बनाया गया हो। २. जिसमें लाली आ गई हो।

अरुणिमा—स्त्री० [सं० अरुण+इमनिच्] अरुण होने का गुण या भाव। ललाई। लाली।

अरुणोद—पुं० [व० स० अरुण—उदक, उद आदेश] १. जैनियों के अनुसार एक समुद्र जो पृथ्वी को आवेष्ठित किए है। २. लाल सागर।

अरुणोदक—पुं० [अरुण—उदक, व० स०]=अरुणोद।

अरुणोदधि—पुं० [अरुण—उदधि, कर्म० स०] अरब और मिस्र के बीच का सागर। लाल सागर।

अरुणोदय—पुं० [अरुण-उदय, व० स०] दिन निकलने से कुछ पहले का समय जब सूर्य की लाली दिखाई देने लगती है। उषाकाल। भोर। तड़का।

अरुणोदय-सप्तमी—स्त्री० [मध्य० स०] माघ-शुक्ला सप्तमी।

अरुणोपल—पुं० [अरुण-उपल, कर्म० स०] पद्मराग मणि। लाल नामक रत्न।

अरुन*—वि० =अरुण
अरुनई*—स्त्री०=अरुणाई।
अरुन चूड़*—पुं०=अरुण चूड़।
अरुनता*—स्त्री०=अरुणता
अरुनशिखा*—पुं०=अरुणशिखा।
अरुनाई*—स्त्री०=अरुणाई।
अरुनाना*—अ० [सं० अरुण] अरुण या लाल होना। स० अरुण या लाल करना।
अरुनारा—वि० [सं० अरुण] जिसका रंग लाल हो। लाल रंगवाला।
अरुनोदय*—पुं०=अरुणोदय।
अरुरना*—अ० [?] संकुचित होना। सिकुड़ना। उदा०—नीकी दीठ तूख सी, पतूख सी अरुरि अंग ऊख सी मसरि मुख लागति महूख सी।—देव।
अरुराना*—स० [?] १. ऐंठना। मरोड़ना। २. सिकोड़ना।
अ०=अरुरना।
अरुवा—पुं० [सं० अरु] १. एक लता जिसके पत्ते पान की लता के पत्तों के सदृश्य होते हैं। २. दे० 'अरुआ'।
पुं० [हिं० रुरुआ] उल्लू पक्षी।
अरुपी—स्त्री० [सं० √रुप् (क्रोध) + क, न० व०, ङीष्] १. उषा। २. ज्वाला। ३. भृगु ऋषि की पत्नी का नाम।
अरुष्क—पुं० [सं० अरुस्√कै (पीड़ा) +क] १. भिलावाँ। २. अड़ूसा।
अरुष्कर—वि० [सं० अरुस्√कृ (करना)+ट] घात या हानि करनेवाला।
अरुहा—पुं० [सं०√रुह् (उत्पत्ति)+क—टाप्, न० त०] भुईं-आँवला।
अरुक्ष—वि०[सं०न०त०] जो रुक्ष या रूखा न हो, फलतः कोमल या स्निग्ध।
अरुक्षना*—अ०=उलझना।
अरूढ़*—वि०=आरूढ़।
अरूप—वि० [न० व०] १. जिसका कोई रूप या आकार न हो। निराकार। २. कुरूप। भद्दा। ३. असमान।
पुं० १. [न० त०] १. रूप का अभाव। २. बुरी आकृति। ३. [न० व०] वेदांत में ब्रह्म की एक संज्ञा।
अरूपक—वि० [सं० न० व०, कप्] १. जिसका कोई आकार या रूप न हो। २. रूपक अलंकार से रहित।
पुं० योग की एक अवस्था जिसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं।
अरूपावचर—पुं० [अरूप-अवचर, व० स०] वह चित्तवृत्ति जिसमें अरूप लोक का ज्ञान प्राप्त होता है। (बौद्ध)
अरूरना*—अ० [सं० अरुस्=घाव] दुःखी या पीड़ित होना।
स० दुःखी या पीड़ित करना।
अ० दे० 'अरुरना'।
अरूलना*—अ० [सं० अरूस्=क्षत, घाव] १. छिलना। २. छिदना। ३. क्षत-विक्षत होना। उदा०—छत आजु को देखि कहौगी कहा, छतिया नित ऐसे अरूलति है।—देव।
अरूस—पुं० दे० 'अड़ूसा'।
अरूसा—पुं०=अड़ूसा।
अरे—अव्य० [सं० √ऋ (गति)+ ए] [स्त्री० अरी] १. संबोधन का शब्द। ए! ओ! २. आश्चर्यसूचक अव्यय।
अरेणु—वि० [सं० न० व०] १. जिसमें धूलि न हो। २. जिसे धूलि न लगी हो।
स्त्री० [न० त०] धूलि का अभाव।
अरेरना*—स० [सं० ऋ=जाना] रगड़ना।
अरेहना*—स० [हिं० रेहना] १. रगड़ना। २. दे० 'रेहना'।
अरैली—स्त्री० [?] एक प्रकार की झाड़ी, जिसकी पत्तियों से कागज बनाया जाता है।
अरोक—वि० [सं० अ + हिं० रोक] १. जिस पर रोक या नियंत्रण न लगा हो। २. जिसके आगे कोई रुकावट न हो। ३. जो रुकता न हो।
अरोग—वि० [सं० न० व०] रोग-रहित। नीरोग।
पुं० [न० त०] रोग का अभाव। आरोग्य।
अरोगना*—अ०=आरोगना।
अरोगी—वि० [सं० न० त०] जो रोगी न हो। नीरोग। तंदुरुस्त।
अरोच*—स्त्री०=अरुचि।
वि०=अरुचिकर।
अरोचक—पुं० [सं० न० त०] अग्निमांद्य रोग, जिसमें मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है।
वि० जो रोचक या रुचिकर न हो।
अरोचकी (किन्)—वि० [सं० अरोचक+इनि] अग्निमांद्य रोग से पीड़ित (व्यक्ति)।
अरोड़*—वि० [सं० आरूढ़] शूरवीर। बहादुर। (डिं०)
अरोड़ा—पुं० [सं० अरट्ट] खत्रियों की एक उप-जाति।
अरोध्य—वि० [सं० न० त०] १. जो रोके जाने के योग्य न हो। जिसे रोका न जा सके। २. जिसे रोकना उचित न हो।
अरोहन*—पुं०=आरोहण।
अरोहना*—अ० [सं० आरोहण] १. सवार होना। २. ऊपर चढ़ना।
अरोही*—वि०=आरोही।
अरौद्र—वि० [सं० न० त०] जो रौद्र न हो।
अर्क—पुं० [अर्च् (पूजा) + घञ्, कुत्व] १. सूर्य। २. बारह आदित्यों या सूर्यों के आधार पर १२ की संख्या। ३. सूर्य का दिन या वार। रविवार। ४. सूर्य की किरण। ५. विष्णु। ६. इंद्र। ७. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ८. पंडित। विद्वान्। ९. बड़ा भाई। १०. बिल्लौर। स्फटिक। ११. ताँबा। १२. आक या मदार नामक पौधा। १३. एक प्राचीन धार्मिक कृत्य।
वि० १. आदरणीय या पूज्य। २. गुणों का गान करनेवाला। प्रशंसक।
पुं० [अ० अरक़] १. भभके से खींचा हुआ किसी चीज का रस। २. दे० 'अरक'।
अर्क-कर—पुं० [ष० त०] सूर्य की किरण।
अर्क-कांता—स्त्री० [ष० त०] अड़हुल।
अर्क-क्षेत्र—पुं० [ष० त०] सिंह राशि।
अर्क-चंदन—पुं० [मध्य० स०] लाल चंदन।
अर्कज—पुं० [सं० अर्क√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. सूर्य के पुत्र, यम। २. शनि। ३. अश्विनीकुमार। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण।

वि० सूर्य से उत्पन्न होने, निकलने या बननेवाला।
अर्कजा—स्त्री० [सं० अर्कज+टाप्] १. सूर्य की पुत्री, यमुना। २. ताप्ती नदी।
अर्क-तूल—पुं० [प० त०] मदार या सेमल की रूई।
अर्क-दिन—पुं० [प० त०] सौर दिन। रविवार।
अर्क-नंदन—पुं० [प० त०] १. शनि-ग्रह। २. कर्ण। ३. यम।
अर्क-नयन—पुं० [व० स०] विराट् पुरुष जिसके नेत्र सूर्य और चंद्रमा हैं।
अर्कनाना—पुं० [?] सिरके के साथ मिलाकर उतारा हुआ पुदीने का अर्क।
अर्क-पत्र—पुं० [प० त०] आक या मदार के पत्ते।
अर्क-पत्रा—स्त्री० [व० स०, टाप्] १. सुनंदा। २. एक लता जो विष की नाशक कही गई है। अर्कमूल।
अर्क-पर्ण—पुं० [व०स०] १. मंदार का वृक्ष। २. [प०त०] मंदार का पत्ता।
अर्क-पुत्र—पुं०=अर्कनंदन।
अर्क-पुष्पी—स्त्री० [व० स०, ङीप्] सूर्यमुखी पौधा।
अर्क-प्रिया—स्त्री० [प० त०] अड़हुल। जवा।
अर्क-बंधु—पुं० [प० त०] १. गौतम बुद्ध का एक नाम। २. पद्म।
अर्क-वल्लभा—स्त्री० [प० त०] गुड़हर (पौधा)।
अर्क-बादियान—पुं० [अ०+फा०] सौंफ का अर्क।
अर्कभ—पुं० [मध्य० स०] १. वह तारापुंज जो सूर्य से प्रभावित हो। २. सिंह राशि। ३. उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र।
अर्क-मूल—पुं० [व० स०] ईसरमूल नाम की लता। अहिगंध।
अर्क-व्रत—पुं० [मध्य० स०] १. माघ शुक्ला सप्तमी के दिन किया जानेवाला एक व्रत।. २. राजा का प्रजा से उसकी उन्नति और समृद्धि के लिए कर लेना।
अर्क-सुत—पुं०=अर्कनंदन।
अर्कांश—पुं० [अर्क-अंश, प० त०] अर्क (सूर्य) का अंश या कला।
अर्काश्मा (श्मन्)—पुं० [अर्क-अश्मन्, मध्य० स०] १. एक प्रकार का छोटा नगीना। चुन्नी। अरुणोपल। २. सूर्यकांत मणि।
अर्की (किन्)—पुं० [सं० अर्क+इनि] मोर (पक्षी)।
अर्कोपल—पुं० [अर्क-उपल, मध्य०, स०] सूर्यकांत मणि।
अर्गजा—पुं० दे० 'अरगजा'।
अर्गल—पुं० [सं० √ अर्ज् (प्रयत्न) + कलच्, वं० अगड़, पं० अग्गल, क० अगली, गु० अगली, आगले, सिंध० अगुल, मराठी० अगला—अगल] १. लकड़ी का वह डंडा जो किवाड़े बंद करके, उन्हें खुलने से रोकने के लिए अंदर की ओर लगाया जाता है। अगरी। परिघ। २. लाक्षणिक रूप से वह अवरोधक तत्त्व जो किसी काम या बात को अच्छी तरह रोक रखने में समर्थ हो। (क्लॉग, उक्त दोनों अर्थों में) ३. किवाड़। ४. कल्लोल। लहर। ५. मांस। ६. एक नरक का नाम। ७. सूर्योदय के समय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई देनेवाले रंग-बिरंगे बादल।
अर्गला—स्त्री० [सं० अर्गल+टाप्] १. दे० 'अर्गल'। २. अवरोध। रुकावट। ३. किवाड़ बंद करने की कील या सिटकिनी। ४. हाथी के पैर में बाँधा जानेवाला सिक्कड़। ५. दुर्गा सप्तशती के पाठ से पहले पढ़ा जानेवाला मत्स्य सूक्त नामक स्तोत्र।
अर्गलिका—स्त्री० [सं० अर्गला+कन्—टाप्, ह्रस्व, इत्व] छोटी अर्गला, अगरी।
अर्गलित—भू० कृ० [सं० अर्गला+इतच्] १. (दरवाजा) जिसमें अर्गल लगा हो या जो अर्गल से बंद किया गया हो। २. जिसके आगे कोई अवरोध या रुकावट लगाई गई हो।
अर्गली—स्त्री० [सं० अर्गल+ङीप्] दे० 'अर्गला'।
स्त्री० [?] एक प्रकार की भेड़ जो पश्चिमी एशिया में होती है।
अर्गवानी—वि०, पुं० दे० 'आतशी' (रंग)।
अर्घ—पुं० [सं०√अर्ह् (पूजा) +घञ्, कुत्व] १. कुशाग्र, जव, तंडुल, दही, दूध और सरसों मिला हुआ जल, जो देवताओं को अर्पित किया जाता है। २. किसी देवी-देवता के सामने पूज्य भाव से जल गिराना या अँजुली में भरकर जल देना। ३. अतिथि को हाथ-पैर धोने के लिए दिया जानेवाला जल। ४. मधु। शहद। ५. घोड़ा। ६. भेंट। ७. [√अर्घ् (मूल्य) + घञ्] दाम। मूल्य। ८. किसी वस्तु की उपयोगिता या महत्त्व का सूचक वह तत्त्व जो स्वयं उस वस्तु में निहित और उससे दृढ़तापूर्वक संबद्ध होता है और जो उसके दाम या मूल्य से भिन्न होता है। (वर्थ) जैसे-तोले भर सोने के सिक्के का अर्घ सदा वही रहेगा, जो बाजार में सोने का भाव होगा।
अर्घट—पुं० [सं०√अर्घ+अटन्] राख।
अर्घ-दान—पुं० [प० त०] देवता, अतिथि आदि को अर्घ देना।
अर्घ-पतन—पुं० [प० त०] किसी वस्तु का अर्घ (भाव या मूल्य) कम होना या घटना। भाव उतरना। (डिप्रिसिएशन)
अर्घ-पात्र—पुं० [प० त०] वह पात्र जिससे अर्घ दिया जाता है। अरघा।
अर्घा—स्त्री० [सं० अर्घ+टाप्] ऐसे बीस मोतियों का लच्छा जिसकी तौल २० रत्ती हो।
अर्घापचय—पुं० [अर्घ-अपचय, प० त०]=अर्घ-पतन।
अर्घार्ह—वि० [सं० अर्घ√अर्ह (पूजा)+अच्] अर्घ (आदर या सम्मान) का पात्र। श्रेष्ठ।
अर्घेश्वर—पुं० [अर्घ-ईश्वर, प० त०] शिव।
अर्घ्य—वि० [सं० अर्घ+यत्] १. जिसका अर्घ बहुत अधिक हो। बहुमूल्य। २. जिसे अर्घ दिया जाने को हो अथवा देना उचित हो। ३. जो आदर, पूजा, भेंट या सत्कार का पात्र हो। ४. पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)।
अर्चक—वि० [सं०√अर्च् (पूजा)+ण्वुल्-अक] अर्चन करनेवाला। पूजक।
अर्चन—पुं० [सं०√अर्च्+ल्युट्-अन] [वि० अर्चित, कर्त्ता अर्चक] १. किसी की महत्ता मानते हुए श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करने की क्रिया या भाव। २. आदर। सत्कार।
अर्चना—स्त्री० [सं०√अर्च्+णिच्+युच्—अन, टाप्] =अर्चन। स० अर्चन करना।
अर्चनीय—वि० [सं०√अर्च+अनीयर] जिसकी अर्चना की जाने को हो अथवा जो अर्चना किये जाने के योग्य हो।
अर्चमान—वि० [सं० अर्च्यमान]=अर्चनीय।
अर्चा—स्त्री० [सं०√अर्च्+अ—टाप्] १. अर्चन। पूजा। २. वह प्रतिमा या मूर्त्ति जिसकी अर्चना की जाती हो।
अर्चि—स्त्री० [सं०√अर्च्+इन्] १. अग्नि की शिखा। लपट। लौ। २. सूर्योदय अथवा सूर्यास्त होते समय की किरणें। ३. दीप्ति। तेज।

अर्चित—भू० कृ० [सं० √अर्च्+क्त] जिसकी अर्चना की गई हो।

अर्चिती (तिन्)—वि० [सं० अर्चित+इनि] अर्चना करनेवाला।

अर्चिमान (न्)—वि० [सं० अर्चि+मतुप्] जिसमें चमक या प्रकाश हो। पुं० १. अग्नि। २. सूर्य। ३. विष्णु। ४. एक उपदेव।

अर्चिमाल्य—पुं० [सं०] महर्षि मरीचि के पुत्र का नाम।

अर्चिष्मती—स्त्री० [सं० अर्चिस्+मतुप्, ङीप्] १. अग्निपुरी या अग्नि-लोक। २. बौद्धों के १० लोकों में से एक लोक।

अर्चिष्मान्—वि० [सं० अर्चिस्+मतुप्] प्रकाशमान।
पुं० १. सूर्य। २. अग्नि। ३. देवताओं का एक भेद। ४. दे० 'अर्चिमाल्य'।

अर्च्य—वि० [सं०√अर्च्+ण्यत्]=अर्चनीय।

अर्ज—पुं० [अ०] १. पृथ्वी। २. जमीन। भूमि। ३. बेड़े बल का विस्तार। चौड़ाई। पनहा।
स्त्री० [अ०] निवेदन। प्रार्थना। विनती।
पुं० [फा०] १. दाम। मूल्य। २. प्रतिष्ठा। सम्मान। ३. बड़प्पन। महत्त्व।

अर्जक—वि० [सं०√अर्ज (अरजना) + ण्वुल्-अक] १. अर्जन करके अपने अधिकार में लानेवाला। २. प्राप्त करनेवाला।
पुं० १. सितपर्णास। २. वनतुलसी। बबई।

अर्जदाश्त—पुं० [अ०] प्रार्थना-पत्र। अर्जी।

अर्जन—पुं० [सं०√अर्ज्+ ल्युट्—अन] [वि० अर्जनीय] १. अधिकार में लाने, कमाने, प्राप्त करने या हस्तगत करने की क्रिया या भाव। २. संग्रह करना।

अर्जनीय—वि० [सं०√अर्ज्+अनीयर्] १. जिसका अर्जन किया जाने को हो, अथवा जो इस योग्य हो कि उसका अर्जन किया जाय। २. संग्रह करने योग्य।

अर्जमा*—पुं०=अर्यमा।

अर्जित—भू० कृ० [सं०√अर्ज्+क्त] १. जिसका अर्जन किया गया हो। कमाया हुआ। (अर्न्ड) २. संगृहीत।

अर्जित छुट्टी—स्त्री० [सं०+हिं०] नियत समय तक कार्य या सेवा कर चुकने के उपरांत आधिकारिक रूप से मिलनेवाली छुट्टी।

अर्जी—स्त्री० [अ०] प्रार्थना-पत्र।

अर्जीदावा—स्त्री० [अ०] वादी का वह पहला निवेदन-पत्र जिसे वह न्यायालय में अपना वाद उपस्थित करने के समय देता है। (प्लेन्ट)

अर्जीनवीस—पुं० [अ०+फा०] वह व्यक्ति जो लोगों के विधिक प्रार्थना-पत्र या अर्जीदावे आदि लिखने का काम करता हो।

अर्जीनालिश—पुं० दे० 'अर्जीदावा'।

अर्जुन—पुं० [सं०√ अर्ज्+उनन] १. पाँच पांडव भाइयों में से मँझले भाई जो कुंती के गर्भ से उत्पन्न और श्रीकृष्ण के परम सखा थे। २. भारत के अधिकतर प्रदेशों में होनेवाला एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसमें बिना फूल के ही फल लगते हैं। ३. हैहय-वंशी एक सहस्रार्जुन। ४. सफेद कनेर। ५. मोर। ६. एक नेत्र रोग। ७. इकलौता बेटा। ८. इंद्र। ९. सफेद रंग। १०. चांदी। ११. सोना। १२. दूब।
वि० १. उज्ज्वल। सफेद। २. साफ। स्वच्छ। ३. चमकीला।

अर्जुन-ध्वज—पुं० [प० त०] हनुमान।

अर्जुन-ध्वजा—स्त्री० [सं० अर्जुनध्वज] वह पताका जिस पर हनुमान जी का चित्र अंकित होता है।

अर्जुन-सखा—पुं० [प० त०] अर्जुन के मित्र अर्थात् श्रीकृष्ण।

अर्जुनायन—पुं० [सं० अर्जुन+फक्—आयन] वराहमिहिर के अनुसार, उत्तर भारत का एक प्रदेश।

अर्जुनी—स्त्री० [सं० अर्जुन+ङीप्] १. करतोया नदी। २. सफेद गाय। ३. कुटनी। ४. उषा। ५. एक प्रकार का साँप। ६. अनिरुद्ध की पत्नी।

अर्जुनोपम—पुं० [सं० अर्जुन—उपमा, ब० स०] सागौन का पेड़।

अर्ण—पुं० [सं०√ऋ (गति) +न] १. वर्ण। अक्षर। २. जल। ३. एक प्रकार का दंडक वृत्त। ४. सागौन नामक वृक्ष। ५. शोर-गुल। हो-हल्ला।

अर्णव—वि० [सं० अर्णस्+व, सलोप] १. उत्तेजित। २. फेनयुक्त। ३. विकल।
पुं० [सं०] १. समुद्र। २. सूर्य। ३. इंद्र। ४. अंतरिक्ष। ५. रत्न। मणि। ६. चार की संख्या। ७. दंडक वृत्त का वह भेद जिसके हर चरण में २ नगण और ९ रगण होते हैं।

अर्णवज—पुं० [सं० अर्णव√जन् (उत्पन्न होना)+ड] समुद्र की झाग या फेन।

अर्णव-नेमि—स्त्री० [ष० त०] पृथ्वी।

अर्णव-पति—पुं० [ष० त०] महासागर।

अर्णव-पोत—पुं० [मध्य० स०] जल-पोत। जलयान। जहाज।

अर्णव-मंदिर—पुं० [ब० स०] वरुण।

अर्णव-मल—पुं० दे० 'अर्णवज'।

अर्णव-यान—पुं० [मध्य० स०] जलयान। जहाज।

अर्णवोद्भव—पुं० [सं० अर्णव—उद्भव, ब० स०] १. अग्निजार नामक पौधा। २. चंद्रमा। ३. अमृत।
वि० जो अर्णव या समुद्र से निकला या बना हो।

अर्णवोद्भवा—स्त्री० [सं० अर्णवोद्भव+टाप्] लक्ष्मी।

अर्णस—वि० [सं० अर्णस् + अच्] १. उत्तेजित या विकल। २. फेन-युक्त।

अर्णस्वान् (स्वत्)—वि० [सं० अर्णस्+मतुप्, व आदेश] अधिक जल-वाला (सागर)।

अर्णा—स्त्री० [सं० अर्ण+अच्—टाप्] नदी।

अर्णोद—पुं० [सं० अर्णस्√दा (दान) +क] १. बादल। मेघ। २. मुस्तक नामक पौधा। नागरमोथा।

अर्णोनिधि—पुं० [सं० अर्णस्—निधि, ष० त०] समुद्र।

अर्तगल—पुं० [सं० आर्त√गल् (पिघलना)+अच्, पृषो०] दे० 'आर्तगल'।

अर्तन—पुं० [सं० √ऋत् (गति) +ल्युट्—अन] निंदा।

अर्ति—स्त्री० [सं०√अर्द् (हिंसा) +क्तिन्] १. पीड़ा। २. धनुष के दोनों सिरे।

अर्तिका—स्त्री० [सं०√ऋत् +ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] बड़ी बहन।

अर्थ—पुं० [सं०√अर्थ् (याचन आदि) + अच्] १. अभिप्राय, उद्देश्य या लक्ष्य। २. वह अभिप्राय, भाव या वस्तु जिसका बोध पाठक या श्रोता को कोई शब्द, पद या वाक्य पढ़ने या सुनने पर अथवा कोई भाव-भंगी या संकेत देखने पर होता है। माने। (मीनिंग) ३. धन-संपत्ति।

४. जन्म-कुंडली में लग्न से दूसरा घर। ५. पाँचों इंद्रियों के ये पाँच विषय—गंध, रस, रूप, शब्द और स्पर्श।

वि० सामाजिक क्षेत्र में, लोगों के स्वकीय अधिकारों और उपचारों से संबंध रखनेवाला, (आपराधिक, राजनीतिक आदि से भिन्न। (सिविल) जैसे—अर्थ-व्यवहार। (सिविल केस)

अव्य० लिए। वास्ते। जैसे—यह संपत्ति देव-कार्य के अर्थ समर्पित है।

अर्थक—वि० [सं० आर्थिक] १. अर्थ या धन से संबंध रखनेवाला। आर्थिक। २. अर्थ या मतलब से संबंध रखनेवाला। ३. अर्थ या धन उपार्जित करने-करानेवाला।

अर्थ-कर—वि० [सं० अर्थ√कृ (करना) +ट] [स्त्री० अर्थकरी] १. जिसका कुछ अर्थ हो। २. अर्थ या धन के विचार से उपयोगी या लाभदायक। जैसे—अर्थ-कर व्यवसाय या अर्थकरी विद्या आदि।

अर्थ-काम—वि० [सं० अर्थ√कम् (चाहना)+अण्] १. धन की कामना या इच्छा करनेवाला। २. किसी प्रकार के स्वकीय उपयोग या हित पर दृष्टि रखनेवाला।

अर्थ-किल्विषी (षिन्)—वि० [सं० अर्थ-किल्विष, ष० त०, अर्थकिल्विष+इनि] लेने-देने में सच्चा व्यवहार न करनेवाला। बेईमान।

अर्थ-कृच्छ्र—पुं० [ष० त०] १. धन का अभाव या कमी। २. आय से व्यय अधिक करने पर होनेवाली धन की कमी।

अर्थ-गत—वि० [द्वि० त०] अर्थ के क्षेत्र में आने या उससे संबंध रखनेवाला।

अर्थ-गर्भित—वि० [तृ० त०] (कथन, वाक्य या शब्द) जिसमें एक या कई अर्थ हों या हो सकते हों। (पिथी)

अर्थ-गृह—पुं० [ष० त०] धन रखने का स्थान। कोष। खजाना।

अर्थ-गौरव—पुं० [ष० त०] पद या वाक्य में होनेवाली अर्थ की उत्कृष्टता और गंभीरता।

अर्थघ्न—वि० [सं० अर्थ√हन् (हिंसा) +ट] १. अर्थ का नाश करनेवाला। २. धन का अपव्यय करनेवाला। फजूल-खर्च।

अर्थचर—पुं० [सं० अर्थ√चर् (गति)+ट] राज्य या शासन का सेवक। सरकारी नौकर।

अर्थ-चिंतक—वि० [ष० त०] १. अर्थ (माने) का चिंतन करनेवाला। २. धन या लाभ की चिंता या विचार करनेवाला।

अर्थ-चिंतन—पुं० [ष० त०] १. अर्थ अथवा धन पैदा करने का उपाय सोचना। २. अर्थ या आशय के संबंध में होनेवाला चिंतन या विचार। ३. धन या लाभ के संबंध में होनेवाली चिंता या चिंतन।

अर्थ-चिंता—स्त्री०=अर्थचिंतन।

अर्थ-जात—वि० [अर्थ-जात ष० त०,+अच्] १. अर्थ या आशय से युक्त। २. जिसके पास बहुत धन हो। धनी।

अर्थतः—अव्य० [सं० अर्थ+तस्] आशय, भाव आदि के विचार से। २. वास्तव में। सचमुच।

अर्थ-तत्त्व—पुं० [ष० त०] भाषा-विज्ञान के विचार से वह शब्द जिसमें कोई अर्थ निहित होता है अथवा जो किसी पदार्थ, भाव या विचार का वाचक होता है। (सेमेन्टीम)

विशेष—भाषा में दो प्रकार के शब्द होते हैं। कुछ शब्द तो पदार्थों, भावों आदि के सूचक होते हैं। और कुछ ऐसे शब्द होते हैं जो उक्त शब्दों को केवल जोड़ते हैं, परन्तु जिनका कुछ आशय नहीं होता। पहले प्रकार के शब्दों को अर्थ तत्त्व और दूसरे प्रकार के शब्दों को संबंध तत्त्व कहा जाता है। जैसे—'समाज का स्वरूप' पद में 'समाज' और 'स्वरूप' शब्द तो अर्थ-तत्त्व हैं, क्योंकि ये कुछ विचारों का उद्बोध कराते हैं। और 'का' संबंध-तत्त्व है क्योंकि यह अर्थ तत्त्वों द्वारा अभिव्यक्त विचारों के परस्पर संबंध का सूचक है।

अर्थ-दंड—पुं० [ष० त०] १. अधिकारी या शासन के द्वारा किसी अपराधी या दोषी को मिलनेवाला वह दंड जिसके फलस्वरूप उसे कुछ अर्थ या धन चुकाना पड़ता है। जुरमाना। २. उक्त प्रकार से दंड के रूप में दी जानेवाली धन-राशि या रकम। जुरमाना। (फाइन) ३. किसी प्रकार की क्षति, छीज, व्यय आदि के बदले में दिया या लिया जानेवाला धन। (कास्ट्स)

अर्थद—वि० [सं० अर्थ√दा (देना)+क] १. अर्थ या धन देनेवाला। २. उपयोगी या लाभकारी।

पुं० १. कुबेर। २. गुरु को धन देकर उसके बदले में पढ़नेवाला शिष्य।

अर्थ-दर्शक—पुं० [ष० त०] धन-संबंधी व्यवहारों को देखने या उन पर विचार करनेवाला अधिकारी।

अर्थ-दूषण—पुं० [ष० त०] १. अनुचित रूप से या व्यर्थ धन खर्च करना। अपव्यय। २. अनुचित रूप से किसी का धन या संपत्ति छीन लेना। ३. पदों, वाक्यों, शब्दों आदि में अर्थ संबंधी दोष निकालना।

अर्थन—पुं० [सं० अर्थ् (माँगना) +ल्युट्-अन] माँगने या याचने की क्रिया या भाव।

अर्थना—स० [सं०√अर्थ्+णिच्+युच्-अन-टाप्] याचना करना। माँगना।

अर्थनीय—वि० [सं०√अर्थ् (याचना) + अनीयर्] (पदार्थ) जो माँगे जाने के योग्य हो या माँगा जा सके।

अर्थ-न्यायालय—पुं० [ष० त०] वह न्यायालय जिसमें अर्थ या धन या संपत्ति संबंधी विवादों या व्यवहारों की सुनवाई होती है। दीवानी कचहरी। (सिविल कोर्ट)

अर्थ-पति—पुं० [ष० त०] १. कुबेर। २. राजा। ३. धनवान। अमीर।

अर्थ-पिशाच—पुं० [ष० त०] वह जिसे धन-संग्रह का बहुत अधिक लोभ हो। बहुत बड़ा कंजूस और धन-लोलुप।

अर्थ-प्रकृति—स्त्री० [ष० त०] नाटक में वह चमत्कारपूर्ण बात जो कथावस्तु को कार्य की ओर बढ़ाने में सहायक होती है। यह पाँच प्रकार की कही गई है—बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य।

अर्थ-प्रक्रिया—स्त्री० [ष० त०] किसी विवाद के संबंध में होनेवाली कारर्वाई या प्रक्रिया। (सिविल प्रोसिड्योर)

अर्थ-प्रसर—पुं० [ष० त०] अर्थ-न्यायालय का वह आदेश-पत्र या प्रसर जिसमें किसी व्यक्ति के नाम कोई लेख्य या वस्तु न्यायालय के सामने उपस्थित करने की आज्ञा होती है। (सिविल प्रोसेस)

अर्थ-बंध—पुं० [ष० त०] १. छंदों, पदों, वाक्यों, आदि की सार्थक रचना। २. आज-कल, किसी विशिष्ट काम या बात के लिए होनेवाला आर्थिक आयोजन या व्यवस्था, मुख्यतः राष्ट्रों, व्यापारियों, राज्यों आदि में पारस्परिक हित के विचार से होनेवाला आर्थिक समझौता। (डील)

अर्थ-बुद्धि—वि० [ब० स०] जो अपने ही अर्थ (स्वार्थ या हित) पर ध्यान रखता हो। मतलबी। स्वार्थी।

अर्थ-भृत्—पुं० [तृ० त०] वेतन लेकर काम करनेवाला नौकर।

अर्थ-मंत्री (त्रिन्)—पुं० [ष० त०] किसी राज्य, संघ या संस्था का (निर्वाचित अथवा मनोनीत) वह मंत्री जो उसके अर्थ-संबंधी कार्यों की व्यवस्था और संचालन करता हो। (फाइनेंस सेक्रेटरी या मिनिस्टर)

अर्थ-वक्रोक्ति—स्त्री० [ष० त०] दे० 'वक्रोक्ति'

अर्थवत्ता—स्त्री० [सं० अर्थ+मतुप्, वत्व, अर्थवत्+तल्-टाप्] १. अर्थवान या धनसंपन्न होने की अवस्था या भाव। संपन्नता। २. पदों, वाक्यों, शब्दों आदि की वह अवस्था जिसमें वे विशिष्ट अर्थ या आशय से युक्त होते हैं।

अर्थ-वाद—पुं० [ष० त०] १. न्याय में, तीन प्रकार के वाक्यों में से एक, जिसमें कोई काम करने का विधान किया जाता है या कुछ करने-कराने का उल्लेख होता है। इसके परकृति, पुराकल्प, निंदा और स्तुति ये चार भेद कहे गये हैं। २. नियमावली, विधान आदि के आरंभ की वे बातें जिनसे उस नियमावली या विधान का अर्थ (उद्देश्य या प्रयोजन) प्रकट तथा स्पष्ट होता है। (प्रिएम्बुल)

अर्थवान् (वत्)—वि० [सं० अर्थ+मतुप् वत्व] [भाव० अर्थवत्ता] १. (वाक्य या शब्द) जो अर्थ (माने) से युक्त हो। विशिष्ट अर्थ या मतलबवाला। २. धनवान। अमीर।

अर्थ-विकार—पुं० [ष० त०] भाषा-विज्ञान और व्याकरण में, शब्दों के अर्थों में होनेवाला परिवर्त्तन या विकार। (सेमैन्टिक चेंज)

अर्थ-विचार—पुं० [ष० त०] शब्दार्थिकी।

अर्थ-विज्ञान—पुं० [ष० त०] १. दे० 'अर्थ-शास्त्र'। २. दे० 'अर्थ-विधान'।

अर्थ-विधान—पुं० [ष० त०] भाषा-विज्ञान और व्याकरण का वह अंग या शास्त्र जिसमें इस बात का विचार होता है कि शब्दों में अर्थ किस प्रकार लगते, हटते, बदलते और विकसित होते हैं। (सेमैन्टिक्स) वि० दे० 'शब्दार्थिकी'।

अर्थ-विधि—स्त्री० [ष० त०] राज्य की ओर से जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए बनाया हुआ कानून या विधि। (सिविल-लॉ)

अर्थ-व्यवहार—पुं० [ष० त०] दीवानी मुकदमा।

अर्थ-शास्त्र—पुं० [ष० त०] वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि समाज बनाकर रहनेवाले लोगों की आर्थिक क्रियाएँ और व्यवहार किस प्रकार चलते हैं और वे उपयोगी पदार्थों का उत्पादन उपभोग, वितरण और विनिमय किस प्रकार करते हैं, अथवा उन्हें किस प्रकार व्यवस्थित रूप से ये सब काम करने चाहिए। (एकनॉमिक्स)

अर्थशास्त्री (स्त्रिन्)—पुं० [सं० अर्थशास्त्र+इनि] वह जो अर्थ-शास्त्र का ज्ञाता हो तथा उसके नियमों और सिद्धांतों का अध्ययन, प्रतिपादन या विवेचन करता हो। (इकनॉमिस्ट)

अर्थ-श्लेष—पुं० [स० त०] साहित्य में, श्लेष अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें किसी वाक्य का एक ही अर्थ एक से अधिक पक्षों में घटित होता है और उन पक्षों के वाचक मुख्य शब्दों के पर्याय रख देने पर भी श्लेष में कोई बाधा नहीं होती। जैसे—सुखदा, सिखदा, अर्थदा, जसदा, रस-दातारि। रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरुनारि, में यदि 'मुद्रिका' और 'गुरु-नारि' शब्दों के पर्याय रख दिये जायँ तो भी श्लेष ज्यों का त्यों बना रहेगा।

अर्थ-सचिव—पुं० [ष० त०] दे० 'अर्थमंत्री'।

अर्थ-सिद्धि—स्त्री० [ष० त०] अभीष्ट अथवा उद्देश्य सिद्ध होना। कार्य या प्रयत्न ठीक और पूरा उतरना।

अर्थ-हीन—वि० [तृ० त०] १. (शब्द या पद) जिसमें कोई अर्थ न हो अथवा जिसका कोई अर्थ न हो। २. सार या सत्त्व से रहित (पदार्थ)। ३. धनहीन। निर्धन (व्यक्ति)।

अर्थांतर—पुं० [सं० अर्थ-अन्तर, मयू० स०] प्रस्तुत, सिद्ध या स्पष्ट अर्थ के अतिरिक्त कोई और या दूसरा अर्थ।

अर्थांतर-न्यास—पुं० [ब० स०] १. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें वैधर्म्य या साधर्म्य दिखलाते हुए सामान्य कथन की विशेष कथन के द्वारा और विशेष कथन की सामान्य कथन के द्वारा अभिपुष्टि की जाती है। २. न्याय में, एक प्रकार का निग्रह-स्थान।

अर्थागम—पुं० [अर्थ-आगम, ष० त०] १. आय,धन, सम्पत्ति आदि की प्राप्ति होना। २. किसी विभाग या व्यापार में कर, बिक्री आदि से होनेवाली आय। (प्रोसीड्स) ३. किसी शब्द में कोई और या नया अर्थ, आशय या भाव आकर लगना।

अर्थातिक्रम—पुं० [अर्थ-अतिक्रम, ष० त०] हाथ में आई या मिली अच्छी चीज छोड़ देना।

अर्थातिशय—पुं० [अर्थ-अतिशय, ष० त०] दे० 'अर्थविधान'।

अर्थात्—अव्य० [सं० अर्थ+आत्] १. (इस पद या शब्द का) अर्थ या माने होता है कि। अर्थ यह है कि। जैसे—सं० अश्व, फा० अस्प; अर्थात् घोड़ा। २. (जो कहा गया है उसका) अभिप्राय या आशय है कि। मतलब यह कि। जैसे—अर्थात् अब आप उनसे नहीं मिलेंगे।

अर्थाधिकरण—पुं० [अर्थ-अधिकरण, ष० त०] दे० 'अर्थ-न्यायालय'।

अर्थाधिकारी (रिन्)—पुं० [अर्थ-अधिकारी, ष० त०] १. वह जिसके अधिकार में कोष (खजाना) हो। कोष की देख-रेख करनेवाला। खजानची। २. आर्थिक विषयों का आधिकारिक ज्ञाता। ३. अर्थ-मंत्री।

अर्थानर्थापद—पुं० [अर्थ-अनर्थ, द्व० स०, अर्थानर्थ- आपद, ष० त०] कौटिल्य के अनुसार राज्य की वह स्थिति जिसमें एक ओर तो लाभ हो सकता हो और दूसरी ओर राज्य के नष्ट हो जाने या दूसरे के हाथ में चले जाने की संभावना हो।

अर्थाना*—स० [सं० अर्थ] १. पद या वाक्य का अर्थ लगाना। २. ब्योरे की सब बातें अच्छी तरह समझाकर कहना।

अर्थानुबंध—पुं० [अर्थ-अनुबंध, ष० त०] आर्थिक दृष्टि से कुछ लोगों, समुदायों या राष्ट्रों में होनेवाला समझौता। अर्थ-बंध।

अर्थानुवाद—पुं० [अर्थ—अनुवाद, ष० त०] न्याय में, बार-बार ऐसी बात कहना जिसका विधान पहले से विधि ने ही कर रखा हो।

अर्थानुसंधान—पुं० [अर्थ-अनुसंधान, ष० त०] शब्द या पदों के अर्थों को ढूँढ़ने तथा समझने का प्रयत्न करना। अनुवचन।

अर्थान्वित—वि० [अर्थ-अन्वित, तृ० त०] १. अर्थ या आशय से युक्त। २. महत्त्वपूर्ण। ३. धनवान्। सम्पन्न।

अर्थापत्ति—पुं० [अर्थ-आपत्ति ष० त०] १. मीमांसा में ऐसा प्रमाण

जिससे एक बात कहने पर दूसरी बात आप से आप सिद्ध हो जाय। २. साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी बात या तथ्य के आधार पर एक दूसरी ही बात या तथ्य स्थिर हो जाता हो। जैसे—'सारा मकान जल गया' से दूसरा अर्थ स्थिर होगा उसमें का सब सामान जल गया। ३. लोक-व्यवहार में, किसी घटना या बात से निकलनेवाला ऐसा निष्कर्ष जो बहुत-कुछ ठीक और संभावित जान पड़ता हो। यह मान लिया जाना कि इसका यही अर्थ या आशय हो सकता है। (प्रिजम्पशन, उक्त सभी अर्थों के लिए)

अर्थापत्ति-सम—पुं० [तृ० त०] न्याय में, वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो तुम्हें दोष लगेगा। (यह जाति या दोषों के २४ भेदों में से एक है।)

अर्थापदेश—पुं० [अर्थ-अपदेश, ष० त०] शब्दों के मूल अर्थ छूटने और उनमें नये अर्थ लगने की क्रिया या भाव।

अर्थापन—पुं० [सं० √अर्थ्+णिच्, पुक्+ल्युट्-अन] पदों या शब्दों के अर्थ लगाने, बतलाने अथवा उनकी व्याख्या करने की क्रिया या भाव। (इन्टरप्रेटेशन)

अर्थार्थी (र्थिन्)—पुं० [अर्थ-अर्थी, ष० त०] १. वह जो किसी प्रकार के अर्थ या उद्देश्य सिद्धि की कामना करता हो। २. वह जो धन लेना चाहता हो या माँगता हो। ३. चार प्रकार के भक्तों में से एक जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए भगवान की भक्ति करता है। (ऐसा भक्त निकृष्ट माना गया है।)

अर्थालंकार—पुं० [अर्थ-अलंकार, स० त०] साहित्य में, (शब्दालंकार से भिन्न) ऐसा अलंकार जिसमें अर्थ-संबंधी अनूठापन या चमत्कार हो। विशेष—यह भारतीय साहित्य शास्त्र में अलंकारों के दो प्रमुख विभागों में से एक है। इसके अंतर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सैकड़ों अलंकार हैं।

अर्थिक—वि० [सं० अर्थिन्+कन्] १. जिसके मन में कोई अर्थ (कामना या चाह) हो। २. धन की कामना करनेवाला। ३. दे० 'अभ्यर्थी'।

अर्थित—भू० कृ० [सं० √अर्थ् (याचना) + क्त] १. चाहा या माँगा हुआ। २. प्रार्थित। ३. जिसका अर्थ (माने) किया या लगाया गया हो।

अर्थिता—स्त्री० [सं० अर्थित+टाप्] किसी से कुछ माँगने की अवस्था या भाव।

अर्थी (र्थिन्)—वि० [सं० अर्थ+इनि] १. चाहने या माँगनेवाला। २. जो किसी इष्ट की प्राप्ति में संलग्न हो अथवा उद्देश्य या प्रयोजन से युक्त हो (यौ० के अंत में)। जैसे—अधिकारार्थी, कार्य्यार्थी आदि। ३. अर्थ-न्यायालय में वाद उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दई। ४. धनी।

पुं० नौकर। सेवक।

स्त्री० दे० 'अरथी' (रथी)।

अर्थोपचार—पुं० [अर्थ-उपचार, ष० त०] किसी प्रकार की क्षति या हानि के बदले मे अर्थ-न्यायालय द्वारा होनेवाला उपचार या कराई जानेवाली क्षति-पूर्ति। (सिविल रमेडी)

अर्थ्य—वि० [सं०√अर्थ्+यत्] १. जिसकी चाह या कामना की गई हो अथवा की जा सके। २. उचित या उपयुक्त। ३. बुद्धिमान। ४. धनी।

पुं० शिलाजीत।

अर्थ्यक—पुं० [सं० अर्थ्य+कन्] दे० 'प्राप्यक'।

अर्दन—पुं० [सं० √अर्द् (पीड़ा) + ल्युट्-अन] १ कष्ट पहुँचाने या पीड़ित करने की क्रिया या भाव। दुःख देना। २. दूर करना या हटाना। ३. चलने या गमन करने की क्रिया या भाव। ४. चाहना या माँगना।

अर्दना[+]—अ० [सं० अर्दन=पीड़न] कष्ट या दुःख देना। पीडित करना। स० दूर करना। हटाना।

अर्दली—पुं०=अरदली।

अर्दित—भू० कृ० [सं० √अर्द्+क्त] १. जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित। २. गया हुआ। गत। ३. चाहा या माँगा हुआ।

पुं० एक वात रोग जिसमें मुँह, गरदन और आँखें टेढ़ी हो जाती है।

अर्द्ध—वि०=अर्ध। (अर्द्ध के यौ० के लिए दे० 'अर्ध' के यौ०)

अर्धंग—पुं० दे० 'अर्धांग'।

अर्धंगी—पुं०=अर्धांगी।

अर्ध—वि० [सं०√ऋध् (वृद्धि)+णिच्+अच्] १. किसी वस्तु के दो बराबर या एक जैसे भागों में से हर एक आधा। (हाफ) जैसे—अर्धवृत्त। २. जो अभी अधूरा, आधे के लगभग या अपूर्ण हो। आंशिक। (सेमी) जैसे—अर्ध सभ्य। ३. जो तुलनात्मक दृष्टि से पूरा न होने पर भी थोड़ा-बहुत हो। जैसे—अर्ध-बर्बर, अर्ध-सरकारी आदि। ४. किसी निश्चित काल या मान के दो समान भागों में से हर भाग में होनेवाला। (सेमी) जैसे—अर्ध वार्षिक।

अर्धक—वि० [सं० अर्ध+कन्] १. आधा। २. अधूरा।

अर्ध-काल—पुं० [ब० स०] शिव।

अर्ध-कूट—पुं० [ब० स०] शिव।

अर्ध-गंगा—स्त्री० [एकदेशि त० स०] दक्षिण भारत की कावेरी नदी।

अर्ध-गुच्छ—पुं० [कर्म० स०] चौबीस लड़ियों का हार या माला।

अर्ध-गोल—पुं० [एकदेशि त० स०] दे० 'गोलार्द्ध'।

वि० १. गोले का आधा। २. जो आधा गोल हो।

अर्ध-चंद्र—पुं० [एकदेशित० स०] १. अष्टमी का चंद्रमा जो आधा होता है। २. मोर-पंख पर की आँख या चंद्रिका जो देखने में आधे चंद्रमा के समान होती है। ३. नखक्षत। ४. अर्द्ध चंद्राकार नोकवाला बाण। ५. सानुनासिक ध्वनि का चिह्न। चंद्रबिंदु। ँ। ६. एक प्रकार का त्रिपुंड। ७. किसी को धक्का देकर निकालने के लिए उसकी गरदन पकड़ने की मुद्रा। गरदनियाँ। (व्यंग्य)

अर्ध-चंद्रिका—स्त्री० [एकदेशि त० स०] कन-फोड़ा या तिवारा नाम की लता।

अर्घ-जल—पुं० [ब० स०] दे० 'अर्धोदक'।

अर्ध-ज्योतिका—स्त्री० [एकदेशि त० स०] संगीत में चौदह मात्राओं का एक ताल।

अर्ध-तिक्त—पुं० [कर्म० स०] नेपाल में होनेवाली एक प्रकार का नीम (वृक्ष)।

अर्ध-तूर—पुं० [कर्म० स०] एक प्रकार का पुराना बाजा।

अर्ध-नयन—पुं० [कर्म० स०] देवताओं का तीसरा नयन या नेत्र जो मस्तक या ललाट पर होता है।

अर्ध-नराच—पुं० [सं० अर्धनाराच] १. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण और लघु, गुरु होता है। इसे प्रमाणिका भी कहते हैं। २. एक प्रकार का तीर या बाण।

अर्ध-नाराच—पुं० [कर्म० स०]=अर्ध नराच।
अर्ध-नारायण—पुं० [कर्म० स०] विष्णु का एक रूप।
अर्ध-नारीश—पुं० [अर्ध=अर्धाङ्ग–नारी, स० त०, अर्धनारी–ईश, ष० त०] =अर्ध-नारीश्वर।
अर्ध-नारीश्वर—पुं० [सं० अर्ध-नारी, स० त०, अर्धनारी-ईश्वर, ष० त०] १. शिव का एक रूप जिसमें उनके शरीर के आधे भाग में स्वयं उनका तथा शेष आधे भाग में पार्वती का रूप होता है। २. वैद्यक में, एक प्रकार का अंजन जो ज्वर उतारने के लिए आँखों में लगाया जाता है।
अर्ध-पारावत—पुं० [तृ० त०] तीतर।
अर्ध-पोहल—पुं० [देश०] मोटी पत्तियोंवाला एक पौधा।
अर्ध-भाक्—वि० [सं० अर्ध√भज् (सेवा) +ण्वि]=अर्ध भागिक।
अर्ध-भागिक—वि० [सं० अर्ध–भाग, कर्म० स०, अर्धभाग+ठन्–इक] १. जो आधे भाग या हिस्से का अधिकारी हो। २. जिसने किसी कार्य विशेष में आधा काम किया हो।
अर्ध-भास्कर—पुं० [कर्म० स०] दोपहर या मध्याह्न का सूर्य।
अर्ध-भुजंगी—पुं० [कर्म० स०] 'रसावल' नामक छंद का दूसरा नाम।
अर्ध-मागधी—स्त्री० [कर्म० स०] मागधी और शौरसेनी प्राकृतों का वह मिश्रित रूप जो कौशल में प्रचलित था।
विशेष—महावीर और बुद्ध के समय में यही कोशल की लोक-भाषा थी, अतः इसी में उनके धर्मोपदेश भी हुए थे; और अशोक के पूर्वी शिलालेख भी अंकित हुए थे। आज-कल की पूर्वी हिंदी अर्थात् अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियाँ इसी से निकली हैं। (विशेष दे० 'प्राच्या' और 'मागधी')
अर्ध-मात्रा—स्त्री० [कर्म० स०] १. आधी मात्रा। २. व्यंजन वर्ण। ३. चतुर्दश मात्रा नामक ताल का एक भेद। (संगीत)
अर्ध-विसर्ग—पुं० [कर्म० सं०] विसर्ग की तरह का या उसका आधा वह उच्चारण जो क, ख, प, या फ से पहले होता है।
विशेष—इसका चिह्न विसर्ग के चिह्न (:) का आधा अर्थात्=होता है।
अर्ध-वृत्त—पुं० [एकदेशि त० स०] वृत्त का आधा भाग जो उसकी आधी परिधि तथा व्यास से घिरा हुआ हो। आधा गोल या वृत्त। (सेमी सर्किल)
अर्ध-वृद्ध—वि० [कर्म० स०] युवावस्था और वृद्धावस्था के बीच का। अधेड़।
अर्ध-वैनाशिक—पुं० [कर्म० स०] प्राचीन भारत में कणाद के अनुयायियों की संज्ञा।
अर्ध-व्यास—पुं० [कर्म० स०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक की दूरी। आधा व्यास।
पुं०=त्रिज्या।
अर्ध-शफर—पुं० [कर्म० स०] एक प्रकार की मछली।
अर्ध-शब्द—वि० [ब० स०] जिसका शब्द जोर का नहीं; बल्कि आधा या कुछ धीमा होता हो।
अर्ध-शेष—वि० [ब० स०] जिसका आधा ही शेष रह गया हो, आधा नष्ट हो चुका हो।
अर्ध-सम—वि० [तृ० त०] (छंद या वृत्त) जिसके पहले तथा तीसरे और दूसरे तथा चौथे चरणों में बराबर-बराबर मात्राएँ या वर्ण हों। जैसे—दोहा, सोरठा आदि।
अर्धसमवृत्त—पुं० [अर्धसम, तृ० त०, अर्धसमवृत्त, कर्म० स०]=अर्द्धसम।
अर्ध-हार—पुं० [कर्म० स०] ६४ या ४० लड़ियों का हार।
अर्धह्रस्व—पुं० [एकदेशि त० स०] (स्वर) जो लघु या ह्रस्व का भी आधा हो।
अर्धाङ्ग—पुं० [सं० अर्ध–अंग, कर्म० स०] १. आधा अंग या आधा शरीर। २. शिव का एक नाम। ३. दे० 'अर्धाङ्ग घात'।
अर्धाङ्ग-घात—पुं० [स० त०] अंगघात रोग का एक प्रकार जिसमें शरीर के दाहिने या बाएँ सब अंग बिलकुल अचेष्ट, अक्रिय तथा सुन्न हो जाते हैं। (हेमिप्लेगिया)
अर्धाङ्गिनी—स्त्री० [सं० अर्धाङ्ग+इनि–ङीप्] विवाहिता स्त्री या पत्नी जो पुरुष के आधे अंग के रूप में मानी जाती है।
अर्धाङ्गी (गिन्)—पुं० [सं० अर्धाङ्ग+इनि] १. शिव। २. वह जो अर्धांग रोग से पीड़ित हो।
अर्धांशी (शिन्)—वि० [सं० अर्ध-अंश, एकदेशित० स०, अर्धांश+इनि] आधे अंश, भाग या हिस्से का अधिकारी या पात्र।
अर्धार्ध—वि० [सं० अर्ध-अर्ध एकदेशि त० स०] आधे का भी आधा। एक चौथाई।
अर्धाली—स्त्री० [सं० अर्ध-अलि] चौपाई (छंद) का आधा भाग जिसमें दो चरण होते हैं।
अर्धावभेदक—पुं० [सं० अर्ध–अवभेदक, कर्म० स०] अध-कपारी या आधासीसी नामक रोग।
अर्धाशन—पुं० [अर्ध–अशन, कर्म० स०] ऐसा भोजन या भोजन की वह मात्रा जिससे आधा ही पेट भरे।
अर्धासन—पुं० [सं० अर्ध–आसन, एकदेशि त० स०] किसी को अपनी बराबरी का समझकर उसका सम्मान करने के लिए उसे अपने साथ अपने ही आसन पर बैठाना अथवा अपने आसन का आधा अंश उसे देना।
अर्धिक—पुं० [सं० अर्ध+टिठन्–इक] १. अधकपारी या आधासीसी नामक रोग। २. ब्राह्मण पिता और वैश्या माता से उत्पन्न संतान।
अर्धीकरण—पुं० [सं० अर्ध√कृ+च्वि, ईत्व+ल्युट्–अन] १. दो तुल्य या समान भागों में बाँटने की क्रिया या भाव। २. दो चीजें एक साथ या एक धरातल में बैठाने के लिए दोनों के आधे-आधे भाग छाँट या निकाल देना।
अर्धुक—वि० [सं०√ऋध् (वृद्धि) +उकञ्] उन्नत, समृद्ध या संपन्न।
अर्धेंदु—पुं० [अर्ध-इंदु, एकदेशि त० स०] अर्द्ध चंद्र।
अर्धेंदुमौलि—पुं० [ब० स०] शिव।
अर्धोत्तोलित—भू० कृ० [अर्ध–उत्तोलित, कर्म० स०] जो आधा (उचित या ठीक ऊँचाई से कम) उठाया गया हो। जैसे—अर्द्धोत्तोलित ध्वज।
अर्धोदक—पुं० [अर्ध–उदक, मध्य० स०] हिंदुओं की एक धार्मिक प्रथा जिसे मरणासन्न अथवा मृत व्यक्ति को दाह-संस्कार करने से पहले किसी जलाशय या नदी में इस प्रकार रख देते हैं कि उसका आधा शरीर जल के अंदर और आधा शरीर बाहर रहे।
अर्धोदय—पुं० [अर्ध–उदय, ब० स०] एक पर्व जो माघ की उस अमा-

वास्या को होता है जो रविवार, व्यतीपात योग तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है।
अर्वोरुक—पुं० [सं० अर्ध–उरु, एकदेशि त० स०, अर्वोरु√काश् (दीप्ति) +ड] जाँघिया जिससे आधे उरु या जाँघें ढकी रहती हैं।
अर्न*—पुं० [सं० अर्णस्] जल। पानी।
अर्पक—वि० [सं०√ऋ (गति) +णिच्, पुक्+ण्वुल्–अक] किसी को कुछ अर्पण करने या नम्रतापूर्वक देनेवाला।
अर्पण—पुं० [सं०√ऋ+णिच्, पुक्+ल्युट्–अन] [कर्त्ता अर्पक, भू० कृ० अर्पित] १. किसी को आदरपूर्वक कुछ देना या सौंपना। नम्रतापूर्वक भेंट करना। २. विधिक क्षेत्र में, किसी वस्तु पर से अपना अधिकार या स्वत्त्व हटाकर उसे पूरी तरह से सदा के लिए किसी को देना या सौंपना। (ऑफरिंग) ३. स्थापित करना। रखना। जैसे—पदार्पण।
अर्पणनामा—पुं०=अर्पण-पत्र।
अर्पण-पत्र—पुं० [ष० त०] वह पत्र जिसमें यह लिखा हो कि अमुक वस्तु या संपत्ति अमुक व्यक्ति को सदा के लिए अर्पित कर दी गई। (गिफ्ट डीड या डीड ऑफ गिफ्ट)
अर्पण-प्रतिभू—पुं० [ष० त०] वह प्रतिभू या जमानतदार जो ऋणी के ऋण परिशोधन करने पर स्वयं उसका ऋण चुकाने को तैयार हो।
अर्पना—स०=अरपना (अर्पित करना)।
अर्पित—भू० कृ० [सं०√ऋ+णिच्, पुक्+क्त] जो नम्रतापूर्वक किसी को अर्पण किया या दे दिया गया हो। अर्पण करके दिया हुआ।
अर्पिस—पुं० [सं०√ऋ+णिच्, पुक्+इसन्] १. हृदय का मांस। २. हृदय।
अर्ब-दर्ब—पुं० [सं० द्रव्य] धन-संपत्ति। दौलत।
अर्बुद—पुं० [सं०√अर्ब् (गति) + विच्, उद्√इ√प्र (गति) + ड] १. गणित में, इकाई-दहाई के नवें स्थान की संख्या। दस करोड़। २. शरीर में गाँठ के रूप में होनेवाला रोग। (ट्यूमर) ३. गर्भ का वह रूप जो उसे दो महीने होने पर प्राप्त होता है। ४. राजस्थान का एक पर्वत। ५. बादल। मेघ। ६. एक नरक का नाम। ७. कद्रु के पुत्र, एक सर्प का नाम। ८. एक असुर का नाम।
अर्बुदि—पुं० [सं० अर्बुद+णिच् (ना० धा०) + इन्] १. सर्वव्यापक ईश्वर। २. एक राक्षस का नाम।
अर्बुदी (दिन्)—वि० [सं० अर्बुद+इनि] जिसे अर्बुद रोग हुआ हो।
अर्भ—पुं० [सं०√ऋ (गति) + भ] १. शिशु। बालक। २. शिशिर ऋतु। ३. छत्र। ४. सागपात। ५. कुश। ६. नेत्रबाला नामक ओषधि।
वि० १. मलिन। २. तुच्छ। ३. धुँधला।
अर्भक—वि० [सं० अर्भ+कन्] १. मात्रा के विचार से, अल्प, कम या थोड़ा। २. आकार के विचार से, क्षीण या दुबला-पतला। ३. मान के विचार से, छोटा, सूक्ष्म या हलका। ४. वय के विचार से बच्चा या शिशु। ५. बुद्धि के विचार से, अनजान या मूर्ख। ६ सदृश। समान। ७. नेत्रों से युक्त। आँखोंवाला।
पुं० १. बालक। २. पशुओं का बच्चा। छौना। ३. कुश।
अर्म—पुं० [सं०√ऋ+मन्] १. आँख का फूली नामक रोग। ढेंढर। २. खँडहर।

अर्मनी—पुं०=अरमनी।
अर्य—वि० [सं०√ऋ+यत्] १. उत्तम। श्रेष्ठ। २. प्रिय। ३. आदरणीय।
पुं० १. मालिक। स्वामी। २. ईश्वर। ३. वैश्य।
अर्यमा (मन्)—पुं० [सं० अर्य√मा (मान) + कनिन्] १. सूर्य। २. बारह आदित्यों में से एक। ३. पितरों का एक गण या वर्ग। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५. आक। मदार।
अर्या—स्त्री० [सं० अर्य + टाप्] १. वैश्य जाति की स्त्री। २. गृहिणी। ३. रखी हुई स्त्री। रखेली।
अर्रबर्र—पुं० [अनु०] झूठ-मूठ या व्यर्थ की बातें। बक-बक। बकवाद।
अर्रा—पुं० [?] १. एक जंगली वृक्ष जिसकी लकड़ी छत आदि पाटने के काम आती है। २. अरहर।
अर्राना†—अ० [अनु०] १. चिल्लाना। २. जोर से पुकारना। ३. *व्यर्थ की बातें करना।*
अर्वट—पुं० [सं०√अर्व् (हिंसा) + अटन्] भस्म। राख।
अर्वाक् (च्)—अव्य० [सं० अवर√अञ्च् (गति)+क्विन्, पृषो० अर्व आदेश] १. इस ओर। इधर। जैसे—अर्वाक्कालिक=इधर हाल का। २. किसी निश्चित मान या बिंदु से कम अथवा पहले। जैसे—अर्वाक्शत् या अर्वाक् सहस्र (अर्थात् सौ या हजार से कम)। ३. नीचे की ओर। जैसे—अर्वाक्-स्रोत=नीचे की ओर चलनेवाला।
अर्वाक्-स्रोता (तस्)—वि० [ब० स०] जिसका वीर्य प्रायः स्खलित होता रहता हो। 'ऊर्ध्वरेता' का विपर्याय।
अर्वाचीन—वि० [सं० अर्वाच्+ख+ईन] [भाव० अर्वाचीनता] १. जो वर्त्तमान समय में बना या निर्मित हुआ हो। प्रस्तुत समय से संबंध रखनेवाला। आधुनिक। २. जो वर्त्तमान समय की विशेषताओं से युक्त हो अर्थात् अद्यतन, अनूठा तथा अपूर्व हो। (माडर्न) ३. जो दिनातीत या पुराना न हो। जैसे—अर्वाचीन कला या काव्य, अर्वाचीन चिकित्सा प्रणाली आदि।
अर्श—पुं० [सं०√ऋश् (गति) + अच्] बवासीर नामक रोग। (पाइल्स)
पुं० [अ०] १. आकाश।
मुहा०—(किसी को) अर्श पर चढ़ाना=प्रशंसा आदि के द्वारा बहुत बड़ा या श्रेष्ठ ठहराना। दिमाग या मिजाज अर्श पर होना=बहुत अधिक अभिमान होना।
२. स्वर्ग। ३. छत। पाटन। ४. बहुत ऊँचा आसन।
अर्श-वर्त्म—पुं० [ष० त०] बवासीर रोग का एक उग्र प्रकार या भेद।
अर्शस—पुं० [सं० अर्शस्+अच्] =अर्शी।
अर्शोहर—पुं० [सं० अर्श√हृ (हरण करना) + अच्] अर्श या बवासीर नामक रोग में लाभ करनेवाली वस्तुएँ। जैसे—ओल या सूरन नामक कंद, तेजबल, भिलावाँ, सफेद सरसों आदि।
अर्शी (शिन्)—पुं० [सं० अर्श+इनि] बवासीर का रोगी।
अर्शोघ्न—पुं० [सं० अर्शस्√हन् (हिंसा) + ट]=अर्शोहर।
अर्शोहित—पुं० [सं० अर्शस्–हित, स० त०]=अर्शोहर।
अर्हत—वि० [सं० अर्ह् (पूजा) + श (बा०)–अन्त] सुयोग्य।
पुं० बुद्ध।

पुं० जैनियों के एक जिनदेव।

अर्ह—वि० [सं०√अर्ह्+अच्] १. आदरणीय। पूज्य। २. उपयुक्त। योग्य। ३. अधिकारी या पात्र।

पुं० १. ईश्वर। २. विष्णु। ३. इंद्र। ४. सोना। स्वर्ण। ५. पूजा। ६. गति। चाल। ७. योग्यता।

अर्हण—पुं० [सं०√अर्ह्+ल्युट्—अन] आदर-सत्कार या पूजा करना।

अर्हणा—स्त्री० [सं० अर्ह्+युच्—अन, टाप्] =अर्हण।

अर्हणीय—वि० [सं√अर्ह्+अनीयर्] जिसका आदर—सत्कार या पूजा होने को हो अथवा जो उसका पात्र हो। आदरणीय। पूज्य।

अर्हत्—वि० [सं०√अर्ह्+शतृ] पूज्य।

पुं० जिनदेव (जैनियों के देवता)।

अर्हा—स्त्री० [सं०√अर्ह्+अङ्-टाप्]=अर्हण।

अर्हित—भू० कृ० [सं०√अर्ह्+क्त] जिसका आदर-सत्कार या पूजा हुई हो। पूजित।

अर्ह्य—वि० [सं०√अर्ह्+ण्यत्]=अर्हणीय।

अलं—अव्य० दे० 'अलम्'।

अलंकरण—पुं० [सं० अलम्√कृ (करना) + ल्युट्—अन] [भू० कृ० अलंकृत] १. अलंकारों से युक्त करने की क्रिया या भाव। गहनों आदि से सजाना। २. किसी सुंदर वस्तु या व्यक्ति के सौंदर्य में और अधिक अभिवृद्धि करना। सजावट। सज्जा। ३. अलंकार। आभूषण।

अलंकार—पुं० [सं० अलम्√कृ+घञ्] १. वह वस्तु या सामग्री जिसके योग से किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के सौंदर्य में अभिवृद्धि होती हो। २. शरीर पर धारण किया जानेवाला आभूषण। गहना। ३. साहित्य में, शब्दों और उनके अर्थों में अनियमित रूप से रहनेवाला वह तत्त्व या धर्म जिसके कारण, किसी व्यंग्यार्थ की प्रतीति के विना भी, शब्दों की अनोखी विन्यास-शैली से ही, किसी कथन के व्यंग्यार्थ में कुछ विशेष चमत्कार, रमणीयता या शोभा आ जाती है। प्रभावशाली तथा रोचकतापूर्ण रूप में किसी वात का वर्णन करने का ढंग या रीति। (फिगर ऑफ स्पीच)

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है—शब्दालंकार, अर्थालंकार, और उभयालंकार। इनमें से अर्थालंकार ही प्रधान हैं, जिनकी संख्या प्रायः सौ से ऊपर पहुँचती है। कुछ साहित्यकारों ने अर्थ के विचार से अलंकारों के कई वर्ग भी वनाये हैं। जैसे—(क) विरोधगर्भ (अतिशयोक्ति, असंगति, विरोध, विशेषोक्ति, सम आदि); (ख) वाक्यन्यायमूल (अर्थापत्ति, पर्याय, परिवृत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि आदि); (ग) लोकन्यायमूल (अतद्गुण, तद्गुण, प्रतीप, प्रत्यनीक, सामान्य आदि); (घ) गूढ़ार्थप्रतीतिमूल (वक्रोक्ति, व्याजोक्ति, सूक्ष्म, स्वभावोक्ति आदि)।

अलंकार-शास्त्र—पुं० [प० त०] वह विद्या या शास्त्र जिसमें साहित्यिक अलंकारों की परिभाषा, विवेचन तथा वर्गीकरण किया जाता है।

अलंकित—वि०=अलंकृत।

अलंकृत—भू० कृ० [सं० अलम्√कृ+क्त] [स्त्री० अलंकृता, भाव० अलंकृति] १. (वस्तु या व्यक्ति) जिसका अलंकरण हुआ हो अथवा किया गया हो। २. सजाया हुआ। अलंकारों से युक्त (कविता)।

अलंकृति—स्त्री० [अलम्√कृ+क्तिन्] अलंकृत होने की अवस्था या भाव।

अलंग—पुं० [सं० अल=पूर्ण, वड़ा+अंग=प्रदेश] १. ओर। तरफ। दिशा।

मुहा०—अलंग पर आना या होना=घोड़ी का मस्त होकर गर्भ धारण करने के योग्य होना।

२. मकान के किसी खंड का किसी ओर का भाग या विभाग।

अलंघनीय—वि० [सं० न० त०] १. (वस्तु) जिसे लाँघा न जा सके या जिसे लाँघना उचित न हो। २. (आज्ञा या नियम) जिसका पालन आवश्यक हो।

अलंघ्य—वि० [सं० न० त०] = अलंघनीय।

अलंजर—पुं० [सं० अलम्√जॄ (जीर्ण होना) + अच्] मिट्टी का छोटा घड़ा।

अलंब*—पुं० दे० 'आलंब'।

अलंबुष—स्त्री० [सं० अलम्√पुष् (पुष्टि) + क, पृषो० ब आदेश] १. वमन। कै। २. एक राक्षस जिसे घटोत्कच ने मारा था।

अलंबुषा—स्त्री० [सं० अलम्बुष×टाप्] १. छूई-मूई। लजालू लता। २. एक अप्सरा का नाम। ३. किसी का मार्ग रोकने के लिए खींची हुई रेखा। ४. हठ-योग में, कान के पास की एक नाड़ी जो आँख के भीतरी भाग तक जाती है।

अल—पुं० [सं०√अल् (भूषण, पर्याप्ति, वारण)+अच्] १. गहना। आभूषण। २. मनाही। वारण।

पुं० [सं० अलं] १. विच्छू का डंक। २. जहर। विष।

अलइक-पलवा†—पुं० [सं० अलीक प्रलाप] १. व्यर्थ की, झूठी या विना सिर-पैर की वात। वक-वक। २. गप।

अलई—स्त्री०=ऐल (कँटीली लता)।

अलक—स्त्री० [सं० √अल्+क्वुन्—अक] १. मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए वाल। २. घुँघराले या छल्लेदार वाल। ३. हरताल। ४. सफेद आक। ५. पागल कुत्ता। ६. महावर। ७. आठ से दस वर्ष तक की कन्या की संज्ञा।

अलकत—वि० [अ० अल्क़त] १. (लेख) जो काटकर रद्द कर दिया गया हो। २. जो निकम्मा या निरर्थक ठहराया गया हो। रद्दी।

पुं० [सं० अलक] महावर। उदा०—झाँई नाहिं जिनकी धरत अलकत हैं।—सेनापति।

अलकतरा—पुं० [अ० अल्‌कतरः] एक गाढ़ा तरल पदार्थ, जो पत्थर के कोयले को विशेष रासायनिक क्रिया द्वारा गलाने से वनता है।

अलकनंदा—स्त्री० [सं० नन्द्+अच्, टाप्, अलक—नन्दा, कर्म० स०] १. एक नदी जो हिमालय से निकलकर गंगोत्री के पास गंगा में मिलती है। २. आठ से दस वर्ष के वीच की वालिका।

अलक-प्रभा—स्त्री० [सं० व० स०] कुवेर की राजधानी, अलकापुरी।

अलक-रचना—स्त्री० [सं० प० त०] वालों को सँवारना तथा उनकी सुंदर लटें वनाना या उन्हें घूँघरदार या छल्लेदार वनाना।

अलक-लड़ैता—वि० [सं० अलक=वाल+हिं० लाड़=दुलार] [स्त्री० अलकलड़ैती] दुलारा। लाड़ला (लड़का)।

अलक-संहति—स्त्री० [प० त०] सँवारे हुए घुँघराले वालों की पंक्तियाँ।

अलकसलोना*—वि० [सं० अलक=वाल+हिं० सलोना=अच्छा] दुलारा। लाड़ला।

अलका—स्त्री० [सं० अलक+टाप्] १. आठ और दस वर्ष के बीच की बालिका। २. कुबेर की नगरी, अलकापुरी। ३. कुसुम-विचित्रा नामक छंद।

अलकाउरि—स्त्री०=अलकावलि। उदा०—अलकाउरि मुरि मुरि गौ मोरी।—जायसी।

अलकाधिप—पुं० [सं० अलका-अधिप, ष० त०]=अलकापति।

अलका-पति—पुं० [सं० ष० त०] अलकापुरी का राजा, कुबेर।

अलकाब—पुं० [अ० 'लकब' का बहु०] वे आदरसूचक पद या शब्द जिनका प्रयोग संबोधन-रूप में होता है।

अलकावलि—स्त्री० [सं० अलक-अवलि, ष० त०] १. सँवारे हुए बालों की पंक्तियाँ। २. घुंघराले या छल्लेदार बाल।

अलकेश—पुं० [सं० अलका-ईश, ष० त०] १. इंद्र। २. कुबेर।

अलक्त—पुं० [सं० न-रक्त, न० ब०, लत्व] १. कुछ वृक्षों से निकलनेवाला एक प्रकार का लाल रस जो उसकी डालों या तने पर जम जाता है। लाख, लाही, चपरा आदि इसके विभिन्न प्रकार या रूप है। २. उक्त लाख से तैयार किया हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। महावर।

अलक्तक—पुं० [सं० अलक्त+कन्] =अलक्त।

अलक्त-राग—पुं० [ष० त०] महावर का लाल रंग।

अलक्षण—पुं० [सं० न० त०] [स्त्री० अलक्षणा] १. लक्षण अथवा चिह्न का अभाव। चिह्न या संकेत न मिलना। २. अशुभ या बुरा लक्षण। वि० [न० ब०] (पदार्थ या व्यक्ति) जिसमें अशुभ या बुरे लक्षण हों।

अलक्षणा—वि० [सं० अलक्षण-टाप्] [स्त्री० अलक्षणी] अशुभ या बुरे लक्षणवाला।

अलक्षित—भू० कृ० [सं० न० त०] १. जो लक्ष्य या ध्यान में न आया हो। २. जिसकी ओर लक्ष्य या ध्यान न गया हो। (अन्-आब्जर्व्ड) ३. जो दिखाई न दिया हो। ४. जिसका चिह्न या संकेत न मिला हो।

अलक्ष्मी—स्त्री० [सं० न० त०] १. लक्ष्मी का अभाव। दरिद्रता। गरीबी। २. दुर्भाग्य। ३. ऐसी स्त्री जिसमें अनेक अशुभ लक्षण हों।

अलक्ष्य—वि० [सं० न० त०] जिसपर लक्ष्य या ध्यान न दिया गया हो, अथवा न दिया जा सकता हो।

अलक्ष्य-गति—पुं० [ब० स०] १. वह जो अदृश्य रूप धारण करके चलता हो। २. वह जिसकी गति का कुछ पता न चलता हो।

अलख—वि० [सं० अलक्ष्य] १. जिसका आकार या रूप दिखाई न पड़ता हो। अदृश्य। २. जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा न हो सकता हो। अगोचर। उदा०—तुलसी अलखै का लखै, राम नाम भजु नीच।
—तुलसी।

पुं०—वह जो दिखाई न पड़े अर्थात् ईश्वर।

मुहा०—अलख जगाना=(क)—'अलख', 'अलख' पुकार कर अलक्ष्य (ईश्वर) को स्मरण करना और दूसरों को भी उसे स्मरण करते रहने के लिए प्रेरित करना। (ख) अलक्ष्य (ईश्वर) के नाम पर भिक्षा माँगना।

अलखधारी—पुं०=अलखनामी।

अलखनामी—पुं० [सं० अलक्ष्य+नाम] गोरखनाथ के अनुयायी साधुओं का एक संप्रदाय। अलखधारी। अलखिया। (ऐसे साधु गलियों-बाजारों में 'अलख', 'अलख' पुकारते फिरते हैं)

अलख-निरंजन—पुं० [हिं०+सं०] ईश्वर। परमात्मा।

अलख पुरुष—पुं० [हिं०+सं०] ईश्वर। परमात्मा।

अलखित*—वि०=अलक्षित।

अलखिया—पुं०=अलखनामी (संप्रदाय)।

अलगंट†—क्रि० वि० [हिं० अलग] बिना दूसरों से कोई संबंध रखे। वि० १. अकेला। २. निराला। बेजोड़।

अलग—वि० [सं० अलग्न, प्रा० अलंग] १. जो किसी के साथ जुड़ा, मिला, लगा या सटा न हो। पृथक्। जैसे—उँगली कटकर अलग हो गई। २. गुण, प्रकार, रूप आदि के विचार से औरों से भिन्न। विशिष्ट। जैसे—आपकी राय तो सदा सबसे अलग होती है। ३. जिसका संपर्क या संबंध न हो या न रह गया हो। दूर हटा हुआ। जैसे—घर से अलग; झगड़ों से अलग; नौकरी से अलग आदि। ४. राशि, समूह आदि में से निकालकर एक ओर रखा या लाया हुआ। जैसे—(क) अपनी पुस्तकें अलग कर लो। (ख) सौ रुपये अलग रखे हैं।

अलगगीर—पुं० दे० 'अरकगीर'।

अलगनी—स्त्री० [सं० आलग्न] दोनों सिरों पर बँधी हुई वह आड़ी रस्सी या बाँस जिस पर कपड़े आदि लटकाये जाते हैं।

अलगरज—क्रि० वि० [अ० अलगरज] गरज (तात्पर्य या सारांश) यह कि।
वि० दे० 'अलगरजी'।

अलगरजी†—वि० [अ०] १. जिसे गरज या परवाह न रह गई हो। बेपरवाह। २. जो स्वभावतः किसी की परवाह न करता हो। लापरवाह। ३. अपने स्वार्थ साधन में पक्का। परम स्वार्थी।
स्त्री० १. बेपरवाही। २. लापरवाही। ३. स्वार्थपरता।

अलगर्द—पुं० [√लग् (संग)+क्विप्√अर्द (हिंसा)+अच्, न० त०] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप।

अलगाउ—वि० [हिं० अलगाना] अलग करने या रखनेवाला।

अलगा-गुजारी—स्त्री० [हिं० अलग+फा० गुजारी] १. अलग-अलग करने या होने की क्रिया या भाव। २. परिवार के सदस्यों, मित्रों या हिस्सेदारों में मत-भेद, लड़ाई-झगड़ा आदि होने के कारण सबके अंश अलग-अलग होने की क्रिया या भाव।

अलगाना—स० [हिं० अलग] अलग या पृथक् करना।

अलगाव—पुं० [हिं० अलग] अलग होने की अवस्था, क्रिया या भाव।

अलगोजा—पुं० [अ०] एक प्रकार की बाँसुरी।

अलगौझा†—पुं०=अलगा-गुजारी।

अलघु—वि० [सं० न० त०] जो लघु (छोटा, धीमा या हल्का) न हो। विशेष दे० 'लघु'।

अलच्छ*—वि०=अलक्ष्य।
वि०, पुं०=अलक्षण।

अलछ†—वि०=अलक्षण।

अलज*—वि०=अलज्ज।

अलजी—स्त्री० [सं० अल√जन् (उत्पन्न होना)+ड-ङीप्] एक प्रकार की फुंसी जिसमें कुछ कालापन लिये लाली होती है।

अलज्ज—वि० [सं० न० त०] [भाव० अलज्जता] १. जिसे लज्जा न हो। २. निर्लज्ज। बेशर्म।

अलतई—वि० [हिं० अलता] अलते या महावर के रंग का। महावरी। लाखी।
पुं० उक्त प्रकार का रंग। (डीप कॉरमाइन)

अलता—पुं० [सं० आरक्त√रञ्ज्, अलक्तक; प्रा० अलत्त; गु० अलतो; क० ओलतु; मराठी अलिता] १. लाख से बना हुआ वह लाल रंग जो स्त्रियाँ, शोभा के लिए पैरों में लगाती हैं। महावर। २. कसाइयों की परिभाषा में, काटे या जबह किये हुए पशु का अंडकोष।

अलत्ता—पुं० [सं० अलक्तक] अलता।

अलप*—वि०=अल्प।

अलपहति*—वि० [सं० अल्प-अति] बहुत अल्प (कम या थोड़ा)।

अलपाका—पुं० [स्पे० एलपका] १. दक्षिणी अमेरिका में होनेवाला एक प्रकार का ऊँट। २. उक्त ऊँट के बालों से बना हुआ एक प्रकार का कपड़ा।

अलफ—पुं० [अ० अल्फ़] १. चौपायों के खाने का चारा। १. घोड़े की वह स्थिति जिसमें वह अपने दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो जाता है। २. ३. कष्ट। विपत्ति। संकट। उदा०—न जाने आगे कोई अलफ है या नहीं।—वृंदावनलाल।

अलफा—पुं० [अ०] [स्त्री० अल्पा, अलफी] मुसलमानी फकीरों के पहनने का, कुरते के आकार का एक प्रकार का ढीला-ढाला लंबा और बिना बाँहों का पहनावा।

अलबत्ता—अव्य० [अ० अल्बत्त:] १. बिना शंका या संदेह के। निस्संदेह। बे-शक। २. परंतु। लेकिन। ३. हाँ। यह मान लिया। (क्व०)

अलबम—दे० 'चित्राधार'।

अलबिलल—वि० [अनु०]=ऊल-जलूल। ऊट-पटाँग।
क्रि० वि० व्यर्थ। बे-फायदा।

अलबी-तलबी—स्त्री० [हिं० अरबी (भाषा) का विकृत रूप+उसका अनु०] ऐसी ऊट-पटाँग, अस्पष्ट या विकट बात या बोली जो जल्दी सबकी समझ में न आवे।

अलबेला—वि० [सं० अलभ्य+हिं० ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अलबेली] १. अनूठा। अनोखा। २. बना-ठना। सुंदर।
पुं० १. वह जो बना-ठना हो। २. बहुत ही मनमौजी और बे-परवाह व्यक्ति ३. नारियल का बना हुआ हुक्का।

अलबेलापन—पुं० [हिं० 'अलबेला'+पन (प्रत्य०)] 'अलबेला' होने की अवस्था, गुण या भाव।

अलब्ध—वि० [सं० न० त०] जो लब्ध या प्राप्त न हुआ हो। जो मिला या हाथ में आया न हो।

अलब्धभूमिकत्व—पुं० [सं० अलब्धभूमिक, न० ब०+त्व] योग में, वह स्थिति जिसमें समाधि ठीक तरह से न लगती हो।

अलभ—वि०=अलभ्य।

अलभ्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० अलभ्यता] जो लभ्य न हो। जो न मिलता हो; अथवा न मिल सके फलतः दुर्लभ या बहुमूल्य।

अलम्—अव्य० [सं०√अल् (पर्याप्ति, भूषण)+अमु (बा०)] १. पर्याप्त। यथेष्ट। २. बस, इतना ही। बहुत हो चुका। ३. योग्य सक्षम।

अलम—पुं० [अ०] १. कष्ट। दुःख। २. मानसिक पीड़ा या व्यथा।
पुं० [अ० अलम] १. सेना का चिह्न और पताका। २. पर्वत। पहाड़।

अलमर—पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

अलमस्त—वि० [फा०] [भाव० अलमस्ती] अपनी प्रस्तुत स्थिति में सदा मस्त रहने और कभी किसी बात की चिंता न करनेवाला। सदा निश्चिंत और प्रसन्न रहनेवाला।

अलमस्ती—स्त्री० [फा०] अलमस्त होने की अवस्था या भाव।

अलमारी—स्त्री० [पुर्त्त० अलमारियों] १. काठ, लोहे आदि का एक प्रकार का ऊँचा या लंबा आधान, जिसमें चीजें रखने के लिए खाने या घर बने होते हैं। २. इसी के अनुकरण पर दीवारों में बनाया हुआ आधान।

अलमास—पुं० [फा०] हीरा।

अलमिति—अव्य० [सं० अलम् और इति] १. बस यहीं अंत है या होता है। बस, इतना ही। २. बस, बहुत हो चुका।

अलय—वि० [सं० न० त०] जिसमें लय न हो। बिना लय का।
पुं० [न० त०] १. लय का अभाव। २. नित्यता।

अलर्क—पुं० [सं० अल√अर्क् (स्तुति) + अच् वा√अर्च् (पूजा) + घञ्, पररूप] १. पागल कुत्ता। २. सफेद मदार।

अलल—वि० [अं० आला] सुंदर। बढ़िया। उदा०—आलूदा ठाकूर अलल।—प्रिथीराज।

अलल-टप्पू—वि० [अनु०] १. जो यों ही बिना सोचे-समझे मान या स्थिर कर लिया गया हो। अटकल-पच्चू। (हेपहेजर्ड) २. अंड-बंड। बे-ठिकाने का। ऊट-पटाँग।

अलल-बछेड़ा—पुं० [हिं० अल्हड़+बछेड़ा] १. घोड़े का जवान बच्चा। २. अनुभव-शून्य या अल्हड़ व्यक्ति।

अललहिसाब—क्रि० वि० [अ०] बिना हिसाब किये।
वि० [अ०] बाद में हिसाब लेने के लिए दिया जानेवाला (धन)। उचित।

अललाना†—अ० [सं० अट्=बोलना] १. बहुत जोर से चिल्लाना। २. गला फाड़कर पुकारना।

अलल्ल—पुं०=अलल्लाँ (घोड़ा)।

अलल्लाँ—पुं० [?] घोड़ा। (डिं०)

अलवाँती—स्त्री० [सं० बालवती] वह स्त्री जिसे अभी हाल में बच्चा हुआ हो। प्रसूता। जच्चा।

अलवाई—स्त्री० [सं० बालवती] गाय या भैंस जिसे बच्चा हुए एक या दो महीने हुए हों।

अलवान—पुं० [अ०] ऊनी या पशमीने की बढ़िया चादर।

अलवाल—पुं०=आलवाल।

अलविदा—अव्य० [अ०] विदाई के समय कहा जानेवाला एक पद जिसका अर्थ है—अच्छा अब विदा होते हैं।
स्त्री० रमजान मास का अंतिम शुक्रवार।

अलस—वि० [सं०√लस् (क्रीड़ा आदि) + अच्, न० त०] [भाव० अलसता] १. आलस्य से भरा हुआ। २. आलस्य उत्पन्न करनेवाला। उदा०—वही वेदना सजग पलक में भरकर अलस सवेरा।—प्रसाद। ३. जिसमें शक्ति या सामर्थ्य न रह गया हो। ४. थका हुआ। क्लांत। शिथिल।

पुं० १. एक प्रकार का छोटा विषैला जंतु। २. पैरों की उँगलियों में होनेवाली खुजली, पीड़ा, सड़न और सूजन। कँदरी। खरवात।

अलसक—पुं० [सं०√लस्+वुन-अक, न० त०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसना—अ० [सं० आलस्य] आलस्य से युक्त होना। अलसाना।

अलसा—स्त्री० [सं० अलस+टाप्] हंसपदी लता।

अलसान*—स्त्री०=आलस्य। उदा०—आँखिन में अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।—मतिराम।

अलसाना—अ० [सं० आलस्य] १. आलस्य का अनुभव करना या आलस्य से युक्त होना। २. उक्त के फल-स्वरूप शिथिल होकर कर्त्तव्य-पालन से दूर रहना, बचना या हटना। ३. उदासीन, खिन्न या विरक्त होना। उदा०—अब मोसौं अलसात जात हौ अधम उधारन हारे।—सूर।

अलसी—स्त्री० [सं० अतसी; गु० अलसी, इलसी; सिं० एलिसी, अलिसी; कं० अलिश; मराठी अळशी] १ एक प्रसिद्ध पौधा जिसके छोटे-छोटे दानों या बीजों को पेरकर तेल निकाला जाता है। २. उक्त पौधे के दाने या बीज। तीसी।

अलसेठ—स्त्री० [सं० अलस] १. व्यर्थ की ढिलाई या शिथिलता। २. जान-बूझकर खड़ा किया जानेवाला व्यर्थ का झगड़ा या तकरार। ३. झंझट। बखेड़ा। ४. अड़चन। बाधा।

अलसेठिया*—वि० [हिं० 'अलसेठ'] अलसेठ या व्यर्थ का झगड़ा खड़ा करनेवाला।

अलसौहाँ*—वि० [सं० अलस] [स्त्री० अलसौहीं] १. आलस्य में पड़ा हुआ। अलसाया हुआ। २. खुमारी या नींद से भरा हुआ (नेत्र)।

अलह*—वि० दे० 'अलभ्य'।

पुं० दे० 'अल्लाह'।

अलहदगी—स्त्री० [अ०] अलहदा अर्थात् पृथक् होने की अवस्था या भाव। पार्थक्य।

अलहदा—वि० [अ० अलहद:] १. जुदा। पृथक्। २. अलग। भिन्न।

अलहदी—पुं० दे० 'अहदी'।

अलहन—पुं० [सं० अ+लहन=प्राप्ति] १. प्राप्ति या लाभ का अभाव। न मिलना। अप्राप्ति। २. आपत्ति। संकट। ३. बुरे दिन। कुसमय।

अलहनियाँ*—स्त्री०=अलहन।

वि०=अलहदी अर्थात् अहदी।

अलहिया—स्त्री० [हिं० आल्हा] संगीत में एक प्रकार की रागिनी।

अलहेरी—पुं० [अ०] एक प्रकार का कूबड़वाला ऊँट जो बहुत तेज चलता है।

अलाई*—वि० [हिं० आलस्य] [स्त्री० अलाइन] आलसी और सुस्त।

*स्त्री० घोड़ों की एक जाति।

*स्त्री० [?] लक्ष्मी।

वि० [अ० अलाउद्दीन] अलाउद्दीन का। उदा०—परा बाँध चहुँ ओर अलाई।—जायसी।

अलागलाग—पुं० [हिं० लाग=लगाव] नृत्य या नाच का एक ढंग या प्रकार।

अलात—पुं० [सं०√ला (आदान)+क्त, न० त०] १. जलता हुआ कोयला। अंगारा। २. जलती हुई लकड़ी। लुआठा। ३. वह बनैठी जो दोनों सिरों पर जलाकर चलाई जाती है।

अलात-चक्र—पुं० [सं० ष० त०] १. प्रकाश का वह चक्र या मंडल जो जलती हुई लकड़ी या बनैठी को जोरों से घुमाने पर बनता है। २. किसी प्रकार का मंडलाकार प्रकाश। उदा०—मनु फिर रहे अलात-चक्र में उस घन तम में।—प्रसाद। ३. गति-भेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच।

अलान—पुं० [सं० आलान] १. हाथी बाँधने का खूँटा। २. वह मोटा सिक्कड़, जिससे हाथी बाँधा जाता है। ३. बेड़ी। ४. बेल या लता चढ़ाने के लिए गाड़ी हुई लकड़ी।

अलानिया—क्रि० वि० [अ० अलानिय:] बिलकुल प्रकाश में और स्पष्ट रूप में। सब के सामने और खुलकर।

अलाप—पुं०=आलाप।

अलापना—स० [सं० आलापन] १. गाने के समय लंबा स्वर खींचना। तान लगाना या लेना। २. शास्त्रीय पद्धति से गीत गाना।

मुहा०—अपना-अपना राग अलापना=सब लोगों का अपने-अपने स्वार्थ या हित की बात कहना।

*अ० आलाप या बात-चीत करना।

अलापी*—वि० [सं० आलापी] १. संगीत में, आलाप करने अथवा तान लगानेवाला। २. गाने या बोलनेवाला।

अलाबू—स्त्री० [सं०√लम्ब् (लम्बा होना)+उ, णित्, नलोप, वृद्धि, न० त०] १. कद्दू। लौकी। २. तूंबा।

अलाभ—पुं० [सं० न० त०] १. लाभ का अभाव। २. घाटा। हानि।

अलाभकर—वि० [सं० न० त०] १. जिससे कोई लाभ न हो। बेफायदा। व्यर्थ। २. जो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक न हो।

अलाम*—वि० [अ० अल्लामा=चतुर] १. बातें बनानेवाला। २. मिथ्यावादी। झूठा।

अलामत—पुं० [अ०] चिह्न या निशान, जिससे कोई चीज पहचानी जाय। लक्षण।

अलायक*—पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] जो लायक या योग्य न हो। अयोग्य।

अलाय बलाय—स्त्री० [फा० बला=संकट] ऐसी विपत्ति या संकट जो परोक्ष से आता हो।

अलायी—वि० [हिं० आलसी] १. आलसी। २. अलहदी।

अलार—पुं० [सं०√ऋ (गति)+यङ्, लुक्+अच्, ल] किवाड़।

पुं० [सं० अलात] आग का ढेर। अलाव।

अलारम—पुं० [अं० एलार्म] १. वह चिह्न, संकेत या ध्वनि जो खतरे की सूचक हो। २. घड़ी में लगा हुआ ऐसा यंत्र या उपकरण जो अभीष्ट या नियत समय पर सचेत करने के लिए घंटी बजती है।

अलाल—वि० [सं० अलस] १. आलसी। सुस्त। २. निकम्मा।

अलाव*—पुं० [सं० अलात=अंगार] १. आग का ढेर। २. तापने के लिए जलाई हुई आग। कौड़ा। ३. वह स्थान जहाँ सब लोगों के तापने के लिए आग जलाई जाती है।

अलावज—पुं० [?] एक प्रकार का पुराना बाजा।

अलावनी—स्त्री० [?] एक प्रकार का पुराना बाजा।

अलावा—अव्य० [अ० इलावा] इसे छोड़कर। अतिरिक्त। सिवाय।
अलास—पुं० [सं०√लस् (अलग करना) + घञ्, न० त०] एक रोग जिसमें जीभ के नीचे का भाग सूजकर पक जाता है।
अलास्य—वि० [सं० न० ब०] नृत्य न करनेवाला।
अलाहनी—स्त्री० [?] पंजाब में मृतक के शोक में होनेवाला एक प्रकार का पद्यमय विलाप।
अलिंग—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कोई लिंग (स्त्री-पुरुष का चिह्न अथवा किसी प्रकार का लक्षण) न हो। २. (शब्द) जिसमें लिंग का सूचक तत्त्व न हो और इसी लिए जो सब लिंगों में समान रूप से प्रयुक्त होता हो। जैसे—तुम, वह, हम, आदि।
पुं० [न० त०] लिंग का अभाव।
अलिंजर—पुं० [√अल् (भूषण आदि)+इन्, अलि√जॄ (जीर्ण होना)+अच्, पृषो० मुम्] पानी रखने का मिट्टी का बरतन। जैसे—घड़ा, झंझर आदि।
अलिंद—पुं० [सं०√अल्+किन्दच्] १. बाहरी दरवाजे के सामने का चबूतरा या छज्जा। २. किसी उद्देश्य से निर्मित किया हुआ उच्च समतल स्थल। (प्लेटफार्म) ३. एक प्राचीन जनपद। ४. प्राचीन भारत में राजद्वार के भीतरी रास्ते के दोनों ओर के कमरे जिनमें लोगों का स्वागत-सत्कार होता था। ५. शरीर-विज्ञान में, हृदय के ऊपर के वे दोनों छिद्र जिनमें फेफड़ों और शिराओं से रक्त आता है। (ऑरिकल्) ६. कान की तरह बाहर निकला हुआ कोई अंग।
*पुं० [सं० अलि] भौंरा।
अलि—पुं० [सं०√अल्+इन्] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। २. कोयल। ३. कौआ। ४. बिच्छू। ५. वृश्चिक राशि। ६. कुत्ता। ७. मदिरा। शराब।
स्त्री० [?] आँख की पुतली।
स्त्री० दे० 'अली'।
अलिक—पुं० [सं०√अल्+इकन्] ललाट। माथा।
पु० दे० 'अलि'।
अलिखित—वि० [सं० न० त०] १. जो लिखा हुआ न हो। बिना लिखा। २. जो लिखा तो न हो, फिर भी प्रायः लिखे हुए के समान हो। जैसे—अलिखित विधान।
अलिगर्द्ध—पुं० [सं० अलि√गृध् (चाहना) + अच्] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप।
अलि-जिह्वा—स्त्री० [सं० उपमि० स०] [वि० अलिजिह्वीय] गले के अंदर ऊपरी भाग में लटकनेवाला मांस का टुकड़ा। कौआ। घाँटी। (यूव्यूला)।
अलि-जिह्विका—स्त्री० दे० 'अलिजिह्वा'।
अलि-जिह्वीय—वि० [सं० अलिजिह्वा+छ-ईय] अलि-जिह्वा संबंधी। (यूव्यूलर)
अलिपक—पुं० [सं० √लिप्+वुन्-अक, न० त०] १. भौंरा। २. कोयल। ३. कुत्ता।
अलि-पत्रिका—स्त्री० [सं० ब० स०] १. वृश्चिकपत्र नामक वृक्ष। २. बिछुआ नाम की घास।
अलिपर्णी—स्त्री०=अलिपत्रिका।
अलिप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो लिप्त न हो। २. अलग। पृथक्।
अलि-प्रिय—पुं० [सं० ब० स०] लाल कमल।
अलिमक—पुं० [सं० अलि√मक्क्+अच्, पृषो० कलोप] १. कोयल। २. मेंढक। ३. कमल के तंतु या रेशे।
अलिमोदा—स्त्री० [सं० अलि√मुद् (हर्ष) + णिच् + अण्-टाप्] गनियारी नाम का पौधा।
अलियल—पुं० [सं० अलि] भ्रमर। भौंरा। उदा०—सौरभ अकबर साह, अलियल आभडियो नहीं।—प्रिथीराज।
अलिया†—स्त्री० [सं० आलय] १. एक प्रकार की तौल। २. वह गड्ढा जिसमें कोई चीज ढककर रखी जाती है।
अलिया-बलिया—वि० [हिं० अलाय-बलाय] झगड़ा-बखेड़ा करनेवाला। प्रपंची। उदा०—च्यंद्रा कहै मैं अलिया बलिया, ब्रह्मा विष्णु महादेव छलिया।—गोरखनाथ।
स्त्री०=अलाय-बलाय।
अलि-वृत्ति—स्त्री० [सं० ष० त०] १. भौंरों की तरह जगह-जगह घूमकर रस लेने की वृत्ति। २. कई घरों से पका हुआ भोजन माँग कर पेट भरना। मधुकरी (वृत्ति)। उदा०—उदर भरै अलिवृत्ति सों, छाँड़ि स्वान मृग भूप।—भगवतरसिक।
अली—स्त्री० [सं० आलि] सखी। सहेली।
स्त्री० [सं० आलि] पंक्ति। कतार।
स्त्री० [हिं० अलाय-बलाय] दैवी विपत्ति। संकट।
पुं० [अ०] मुहम्मद साहब के दामाद का नाम और इमाम हुसैन के पिता का नाम।
अलीक—वि० [सं०√अल् (वारण) + ईकन्] [भाव० अलीकता] १. बे-सिर-पैर का। २. मिथ्या। झूठ। ३. मर्यादा-रहित। ४. जो रुचिकर न हो। ५. अल्प। थोड़ा। ६. सारहीन।
स्त्री० [हिं० लीक=लकीर] १. प्रतिष्ठा। २. मर्यादा।
अलीगर्द—पुं०=अलिगर्द्ध।
अलीजा*—वि० [अ० अलीजाह] बहुत अधिक। प्रचुर।
अलीन—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी में लीन न हो। २. जो उपयुक्त या ठीक न हो। ३. अनुचित।
पुं० [सं० अलीन=मिला हुआ] १. दरवाजे के चौखट की खड़ी लंबी लकड़ी जिसमें पल्ला या किवाड़ जड़ा जाता है। साह। बाजू। २. वह आधा खंभा जो किनारे पर दीवार में सटाकर बनाया जाता है।
अलीपित*—वि०=अलिप्त।
अली-बंद—पुं० [अ०+फा०] एक तरह का बाजूबंद।
अलील—वि० [अ०] जिसे कोई रोग हुआ हो। बीमार। रुग्ण।
अलीह—वि० [सं० अलीक] १. मिथ्या। झूठ। २. अनुचित। ३. असंभव।
अलुक्—पुं० [सं० न० ब०] १. व्याकरण में, समास का एक भेद जिसमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—मनसिज, सरसिज आदि। २. आलू-बुखारा नामक फल।
अलुझना*—अ०=उलझना।
अलुटना*—अ० [सं० लुट=लोटना, लड़खड़ाना] डगमगाना। लड़खड़ाना।

अलूना—वि० [स्त्री० अलूनी]=अलोना।

अलूप[1]—वि०=लुप्त।
पुं०=लोप।

अलूला†—पुं० [हिं० बुलबुला ?] १. पानी का बुलबुला। बुद्बुद। २. आग की लपट।

अलेख—वि० [सं० न० ब०] १. जो सहज में समझ में न आवे। दुर्बोध। २. जो जाना न जा सके। अज्ञेय।
वि० [हिं० अ+लेखा] जिसका लेखा, नाप-जोख या अंदाज न हो सके। बहुत अधिक।
वि० [सं० अलक्ष्य] १. जो दिखाई न दे। २. जिसपर किसी का लक्ष्य या ध्यान न गया हो।

अलेखा—वि०=अलेख।

अलेखी*—वि० [सं० अलेख] जिसका कोई लेखा या हिसाब न हो; अर्थात् बहुत अधिक।
वि० [सं० अलक्ष्य] १. जो दिखाई न दे। २. जो या जैसा पहले कभी देखने में न आया हो। अभूत-पूर्व।

अलेपक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. किसी से लेप (लगाव या संपर्क) न रखनेवाला। अलिप्त।
पुं०=परमात्मा।

अलेल—पुं० [हिं० कुलेल ?] क्रीड़ा। कलोल। उदा०—घन आनंद खेल-अलेल दसैं, बिलसैं सुलसैं लट झूमि झुली।—घन आनंद।

अलेलह†—क्रि० वि० [प्रा० अलिलह=व्यर्थ] बहुत अधिक। प्रचुर।

अलैंगिक—वि० [सं० लिंग+ठञ्—इक, न० त०] (जीव या वनस्पति) जिसमें स्त्री या पुरुष में से किसी का लिंग अथवा चिह्न वर्तमान न हो। (अनसेक्सुअल)

अलैया—स्त्री०=अलहिया (रागिनी)।

अलोक—वि० [सं० न० ब०] १. जो देखने में न आवे। अदृश्य। छिपा हुआ। २. जहाँ लोक (मनुष्य) न रहते हों। ३. निर्जन। एकांत।
पुं० १. परलोक। २. कलंक। ३. जैन शास्त्रों में, वह स्थान जहाँ आकाश के सिवा और कुछ न हो और जिसमें मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। ४. [न० त०] इस लोक या संसार का विनाश।
*पुं०=आलोक।

अलोकना—स० [सं० आलोक] प्रकाशित या प्रकाश से युक्त करना। आलोकित करना।
अ० आलोक या प्रकाश से युक्त होना।
स० [सं० अवलोकन] अवलोकन करना। देखना।

अलोक्य—वि० [सं० न० त०] १. (ऐसा कार्य) जिसे करने से स्वर्ग न प्राप्त हो सके। २. अलौकिक या असाधारण।

अलोचन—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे लोचन या नेत्र न हों। २. (घर या मकान) जिसमें खिड़कियाँ, झरोखे आदि न हों।

अलोना—वि० [सं० अ+लवणम्; प्रा० अलोण; बं० आलुणी; सि० अलूण; मराठी० अलणी] १. (खाद्य पदार्थ) जिसमें नमक न पड़ा हो। २. जिसमें कोई रस या स्वाद न हो। फीका। ३. जिसमें लावण्य या सौंदर्य न हो। असुंदर।

अलोना-सलोना—पुं० [हिं०] दाल-मोठ की तरह का एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो प्रायः सूखे मेवों (किशमिश, बादाम, चिरौंजी आदि) से बनता है।

अलोप—पुं०=लोप।

अलोपना*—अ० [सं० लोप] लुप्त होना।
स० लुप्त या गायब करना।

अलोपा—पुं० [सं० अलोप] वह वृक्ष जो सदा हरा रहे। सदा-बहार वनस्पति।

अलोल†—वि० [सं० न० त०] १. जो लोल अथवा चंचल न हो; फलतः शांत या स्थिर। २. अ-सुंदर।

अलोलक—वि० [सं० अलौकिक] विलक्षण। विचित्र। उदा०—एक अलोलक मैं सुनी, मेरे रावलिया, कानी काजर दे, भली मेरे रावलिया।—राज० कहा०।

अलोलिक*—वि०=अलोल।

अलोहित—पुं० [सं० न० त०] लाल कमल।
वि० १. जो लोहित अथवा लाल न हो। लाल रंग से भिन्न रंगवाला। २. रक्त से भरा हुआ।

अलोही*—वि०=अलोहित।

अलौकिक—वि० [सं० न० त०] [भाव० अलौकिकता] जो इस लोक में न होता हो या न दिखाई देता हो; फलतः अपूर्व, अमानुषी या लोकोत्तर।

अलौलिक—वि० [सं० लौल्य+ठक्—इक, न० त०] १. जो युवा अवस्था की उमंग के कारण ठीक तरह से आचरण या कार्य न कर सकता हो। २. अल्हड़पन से भरा हुआ। उदा०—लाल अलौलिक लरकई, लखि लखि सखी सिहाँति। बिहारी।

अलौहिक—वि० [सं० लौह+ठक्—इक, न० त०] १. जो लौहिक न हो। २. जिसमें लोहे का अंश या तत्त्व न हो। (नॉन-फेरस)

अल्क—पुं० [सं०√अल्+क] १. एक प्रकार का वृक्ष। २. शरीर का अवयव। अंग।

अल्टिमेटम—पुं० दे० 'अंतिमेत्थम्'।

अल्प—वि० [सं०√अल् (भूषण, पर्याप्ति, वारण)+प] [भाव० अल्पता, अल्पत्व] १. जो मान, मात्रा आदि के विचार से प्रथम स्तर से कम या थोड़ा हो। जैसे—अल्प-मत, अल्प-वयस्क, अल्प-संख्यक आदि। २. छोटा। ३. तुच्छ। ४. मरणशील। ५. विरक्त।
पुं० साहित्य में एक अलंकार जिसमें आधेय की अपेक्षा आधार को अल्प या सूक्ष्म बतलाया जाता है। जैसे—अँगुरी की मुदरी हुती, भुज में करत बिहार।

अल्पक—वि० [सं० अल्प+कन्] १ जो बहुत ही छोटा या अति सूक्ष्म हो। २. कम से कम जितना आवश्यक हो, उतना। (मिनिमम्)
पुं० १. वह अक्षर या शब्द जो किसी वस्तु के छोटे रूप का वाचक हो। अल्पार्थक। (डिम्यूनिटिव) जैसे—'खाट' का अल्पक 'खटिया' और 'लोटा' का अल्पक 'लुटिया' होता है। २. जवागा।

अल्पकालिक—वि० [सं० अल्प काल, कर्म० स०,+ठन्—इक] १. जिसका अस्तित्व अल्प काल या थोड़े समय हो अथवा जो थोड़े समय तक रहे। थोड़े दिनों तक रहनेवाला। (शार्ट-लिव्ड) २. (अनुबंध या निश्चय) जो थोड़े दिनों के लिए हो या थोड़े दिन चले। जैसे—अल्प-कालिक ऋण या सहायता।

अल्पकालीन—वि० [सं० अल्पकाल+ख–ईन्] अल्पकालिक ।

अल्पजीवी (विन्)—वि० [सं० अल्प√जीव् (जीना) + णिनि] सामान्यत: बहुत थोड़े दिनों तक जीवित रहनेवाला । अल्पायु। (शार्ट-लिव्ड)

अल्पज्ञ—वि० [सं० अल्प√ज्ञा (जानना) + क] [भाव० अल्पज्ञता] १. जिसे बहुत कम या थोड़ा ज्ञान हो। २. जो अच्छा जानकार न हो। ३. कम-समझ।

अल्पज्ञता—स्त्री० [अल्पज्ञ+तल्–टाप्] अल्पज्ञ होने की अवस्था या भाव। जानकारी की कमी।

अल्प-तंत्र—पुं० [प० त०] १. ऐसा तंत्र या शासन जो समाज के थोड़े से लोगों के द्वारा संचालित होता हो। 'लोक-तंत्र' का विपरीत शासन। २. दे० 'कुल-तंत्र' (शासन-प्रणाली)।

अल्प-तनु—वि० [ब० स०] जो आकार, परिमाण, स्वरूप आदि की दृष्टि से अल्प, छोटा या दुबला-पतला हो ।
पुं० ठिगना या नाटा व्यक्ति ।

अल्पतम—वि० [सं० अल्प+तमप्] जो अंश, परिमाण, मान, मात्रा आदि के विचार से सबसे अल्प, कम या थोड़ा हो। (मिनिमम्)

अल्पता—स्त्री० [सं० अल्प+तल्–टाप्] १. कमी। अल्प होने की अवस्था या भाव। २. न्यूनता। कमी। ३. छोटाई। लघुता।

अल्पत्व—पुं० [सं० अल्प+त्व]=अल्पता।

अल्प-दर्शन—पुं० [कर्म० स०] १. बहुत छोटे या निम्न स्तर के विचार रखना। अधिक दूर का परिणाम या फल न देखना।

अल्प-दृष्टि—पुं० [ब० स०] १. वह जिसके विचार बहुत ही संकीर्ण या संकुचित हों। २. अदूरदर्शी।

अल्प-धी—वि० [ब० स०] १. जिसे बहुत कम बुद्धि या विवेक हो। २. मूर्ख।

अल्प-पद्म—पुं० [कर्म० स०] लाल कमल।

अल्प-प्राण—पुं० [ब० स०] १. वह वर्ण जिसके उच्चारण में प्राणवायु का अल्प संचार हो। महाप्राण का विपर्याय। नागरी वर्णमाला में व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग का पहला, तीसरा तथा पाँचवाँ अक्षर और य, र, ल, तथा व अक्षर अल्पप्राण हैं।
वि० १. जिसमें प्राण या जीवनी शक्ति बहुत कम हो। २. अल्पजीवी।

अल्प-भाषी (षिन्)—वि० [सं० अल्प√भाष् (बोलना) + णिनि] १. कम बोलनेवाला। २. आवश्यकता से अधिक न बोलनेवाला। ३. बहुत-थोड़े शब्दों में अपनी बात कहनेवाला।

अल्प-मत—पुं० [प० त०] १. वह मत जिसके अनुयायी या समर्थक बहुत कम हों। २. बहुत कम लोगों द्वारा प्रकट किया हुआ मत। 'बहु-मत' का विपर्याय।

अल्प-मेधा (धस्)—वि० [ब० स०]=अल्प-धी।

अल्प-वयस्क—वि० [ब० स०, कप्] १. जिसकी अवस्था अभी कम या थोड़ी हो। थोड़ी उम्र का। २. जो अभी वयस्क न हुआ हो। अवयस्क।

अल्प-विराम—पुं० [कर्म० स०] एक विराम चिह्न, जो वाक्य के पदों में पार्थक्य दिखलाने के लिए अथवा बोलने में कुछ विराम सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। (कॉमा) इसका रूप यह है—,।

अल्पशः—क्रि० वि० [अल्प+शस्] १. थोड़ा-थोड़ा करके। २. क्रम-क्रम से। क्रमशः। ३. धीरे-धीरे।

अल्प-संख्यक—वि० [ब० स०, कप्] जो गिनती या संख्या में कम या थोड़े हों।
पुं० १. वह दल, पक्ष या समाज जिसके अनुयायियों की संख्या अन्य दलों, पक्षों या समाजों की तुलना में कम हो। २. उक्त दल या पक्ष का अनुयायी अथवा प्रतिनिधि।

अल्प-संधि—स्त्री० [कर्म० स०]=विराम-संधि।

अल्पांश—पुं० [सं० अल्प-अंश, कर्म० स०] १. किसी वस्तु का बहुत कम या थोड़ा-सा अंश। अल्प भाग। २. किसी वर्ग, समुदाय, समूह या समाज का कुछ या आधे से बहुत कम अंश या भाग। (माइनॉरिटी) जैसे—आज-कल समाज का कदाचित् अल्पांश ही संतुष्ट,संपन्न या सुखी होगा।

अल्पाक्षरिक—वि० [सं० अल्प–अक्षर, कर्म० स०, अल्पाक्षर+ठन्–इक] १. जिसमें बहुत कम या थोड़े-से अक्षर हों। २. (कथन या वाक्य) जो इतने थोड़े शब्दों में कहा गया हो कि उसका ठीक और पूरा आशय सहज में न समझा जा सके। (लैकोनिक)

अल्पायु (स्)—[अल्प–आयुस्, ब० स०] जिसकी आयु बहुत कम हो। बहुत थोड़े दिनों तक जीवित रहनेवाला। (शार्ट लिव्ड)
पुं० बकरा।

अल्पारंभ—पुं० [अल्प–आरंभ, कर्म० स०] किसी बड़े कार्य का ऐसा आरंभ जो छोटे रूप में हो।
वि० [ब० स०] (काम) जो आरंभ में बहुत छोटे या हलके रूप में छेड़ा गया हो।

अल्पार्थक—पुं० [अल्प–अर्थ, ब० स०, कप्] दे० 'अल्पक'।

अल्पाहार—पुं० [अल्प–आहार, कर्म० स०] उचित या साधारण से बहुत कम खाना। थोड़ा भोजन।

अल्पाहारी (रिन्)—वि० [सं० अल्पाहार+इनि] कम, थोड़ा या संयत आहार अथवा भोजन करनेवाला।

अल्पित—भू० कृ० [सं० अल्प+णिच्+क्त] जिसे कम, थोड़ा या छोटा किया गया हो। अल्प रूप में लाया या घटाया हुआ।

अल्पिष्ठ—वि० [सं० अल्प+इष्ठन्] १. जितना थोड़ा हो सकता हो, उतना ही। कम से कम। २. बहुत ही कम।

अल्पीकरण—पुं० [सं० अल्प+च्वि, ईत्व√कृ (करना) +ल्युट्–अन] कम करने या घटाने की क्रिया या भाव।

अल्ल—पुं० [अ० आल] वंश, गोत्र, जाति आदि का विशिष्ट नाम, जो बराबर हर पीढ़ी में चलता रहता हो। जैसे—मिश्र, कपूर, श्रीवास्तव आदि।

अल्ल-बल्ल†—वि० [अनु०] बिलकुल निरर्थक और व्यर्थ का। आँय-बाँय।

अल्लम-गल्लम—पुं० [अनु०] जिसका कुछ ठीक-ठिकाना या सिर-पैर न हो। इधर-उधर का और प्रायः निरर्थक या फालतू।

अल्ला—स्त्री० [सं०√अल् (भूषण आदि)+क्विप्, अल्√ला (लेना) +क–टाप्] १. माता। २. पराशक्ति।
पुं०=अल्लाह (ईश्वर)।

अल्लाई—स्त्री० [देश०] चौपायों के गले में होनेवाली एक तरह की बीमारी।

अल्लाना†—अ० [सं० अर्=बोलना] १. ऊँचे स्वर में पुकारना या बोलना। २. जोर का शब्द करना। चिल्लाना।

अल्लामा†—पुं० [अ० अल्लाम.] बहुत बड़ा बुद्धिमान् या विद्वान्।

अल्लाह—पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर।

पद—अल्लाह मियाँ की गाय=बहुत ही भोला-भाला या सीधा आदमी।

अल्लाहताला—पद [अ०] परमेश्वर, जो सबसे बढ़कर है।

अल्लाह बेली—पद [अ०] ईश्वर तुम्हारा मित्र और रक्षक है।

अल्लाहो अकबर—पद [अ०] अल्लाह अर्थात् ईश्वर महान् है।

अल्हड़—वि० [प्रा० ओलेहड़=प्रमत्त, गाफिल] [भाव० अल्हड़पन] १. कम अवस्था या उम्र का। २. जो अपने लड़कपनवाले स्वभाव के कारण व्यवहार में कुशल या दक्ष न हो। ३. उद्धत और मन-मौजी। ४. गँवार।

पुं० १. वह बछड़ा जिसके दाँत अभी न निकले हों। २. ऐसा बैल या बछड़ा जो अभी तक गाड़ी या हल में न जोता गया हो।

अल्हड़पन—पुं० [हिं० अल्हड़+पन (प्रत्य०)] अल्हड़ होने की अवस्था या भाव।

अवंति—स्त्री० [सं०√अव् (रक्षण आदि) + झि=अन्त]=अवंती।

अवंतिका—स्त्री० [सं० अवंति+कन्—टाप्] =अवंती।

अवंती—स्त्री० [सं० अवंति+ङीप्] १. नर्मदा के उत्तरी प्रदेश (आधुनिक मालवा) का पुराना नाम। मालव जनपद। २. उक्त प्रदेश की राजधानी। ३. एक प्रसिद्ध नगरी जो शिप्रा नदी के तट पर थी और जिसकी गिनती सात मुख्य पुरियों या तीर्थों में होती है। उज्जयिनी। (आधुनिक उज्जैन)

अवंश—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके वंश में कोई न बचा हो। २. जिसे संतान न हो।

पुं० [न० त०] छोटा या नीच कुल या वंश।

अव—उप० [सं०√अव्+अच्] एक उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है। (क) अनुचित, दूषित, या बुरा। जैसे—अवगुण, अवभाषण, अवमान आदि। (ख) नीचे की ओर। जैसे—अवक्रमण, अवरोहण आदि। (ग) कमी, घटाव या ह्रास। जैसे—अवकरण, अवमूल्यन आदि। (घ) अभाव होना। जैसे—अवचेतना। (च) विशेष रूप से। जैसे—अवधारण, अवक्षय आदि।

अव्य०* [सं० अपि, प्रा० अवि] और।

अवकरण—पुं० [सं० अव√कृ (करना) + ल्युट्—अन] १. कम करने की क्रिया या भाव। घटाव। २. गणित में, बाकी या शेष निकालना। (रिडक्शन)

अवकर्तन—पुं० [सं० अव√कृत् (काटना) + ल्युट्—अन] खंड, टुकड़े या विभाग करना। काटना।

अवकर्षण—पुं० [सं० अव√कृष् (खींचना) + ल्युट्—अन] १. जोर से खींचना या बाहर निकालना। २. नीचे की ओर खींच ले जाना।

अवकलन—पुं० [सं० अव√कल् (गिनना) + ल्युट्—अन] [भू० कृ० अवकलित] १. इकट्ठा या एक साथ करना अथवा एक में मिलाना। २. देखकर जानना या समझना। ३. ग्रहण करना। लेना।

अवकलना—अ० [सं० अवकलन=ज्ञात होना] १. ज्ञान या बोध होना। २. (बात या विषय) समझ में आना।

स० १. इकट्ठा करना। २. देखना। ३. ग्रहण करना।

अवकलित—भू० कृ० [सं० अव√कल् (गिनना या समझना) +क्त] १. जिसका अवकलन हुआ हो या किया गया हो। २. जाना, देखा या समझा हुआ। ३. लिया हुआ। गृहीत।

अव-कल्पना—स्त्री० [सं० प्रा० स०] किसी ऐसी बात के संबंध में किया जानेवाला अनुमान या कल्पना, जिसके लिए कोई निश्चित आधार या प्रमाण न मिलता हो। (सर्माइज)

अवका—स्त्री० [सं०√अव् (रक्षण आदि) + क्वुन्—अक—टाप्] शैवाल। सेवार।

अवकाश—पुं० [सं० अव√काश् (दीप्ति) + घञ्] १. रिक्त या शून्य स्थान। खाली जगह। २. दो पदार्थों, रेखाओं, बिंदुओं आदि के बीच की जगह या विस्तार। ३. अंतरिक्ष। आकाश। (स्पेस; उक्त तीनों अर्थों के लिए) ४. दो काल-बिंदुओं, घटनाओं आदि के बीच का ऐसा समय जो किसी काम के लिए निकलता हो या निकाला जाय। जैसे—अब आपको भी यह काम पूरा करने के लिए कुछ अवकाश मिल जायगा। ५. किसी के आने, बैठने, रहने आदि के लिए या कोई चीज रखने के लिए ऐसा स्थान जो निकल सके या निकाला जा सके। जैसे—आपके लिए भी कोई अवकाश निकालने का प्रयत्न करूँगा। ६. कामों के बीच में खाली रहने या छुट्टी मिलने का समय। छुट्टी या फुरसत का समय। जैसे—अवकाश मिलने पर यहाँ भी आ जाया कीजिए। ७. निरंतर काम करते रहने पर नियमित या निश्चित रूप से मिलनेवाली छुट्टी। (लीव) जैसे—वे एक महीने का अवकाश लेकर घर गये हैं। ८. किसी कार्यभार, पद आदि से सदा के लिए विशेषतः शेष समय निश्चित होकर और शांतिपूर्वक बिताने के लिए मिलने या ली जानेवाली छुट्टी। जैसे—अब तो उन्होंने राजनीति (या राजकीय सेवा) से अवकाश ले लिया है।

अवकाश-ग्रहण—पुं० [प० त०] जीवन का शेष समय निश्चित होकर तथा शांतिपूर्वक बिताने के लिए किसी सार्वजनिक कार्य, पद या सेवा से अलग होना। (रिटायरमेन्ट)

अवकाश-प्राप्त—वि० [ब० स०] (वह व्यक्ति) जो किसी कार्य या पद पर निश्चित काल तक कार्य कर चुकने पर अथवा किसी अन्य कारण से उस कार्य या पद से अलग हो चुका हो। (रिटायर्ड)

अवकाश-लेखा—पुं० [प० त०] कर्मचारियों या कार्यकर्त्ताओं को मिलने या दी जानेवाली छुट्टियों का लेखा या हिसाब। (लीव एकाउन्ट)

अवकाश-संख्यान—पुं०=अवकाश-लेखा।

अवकिरण—पुं० [सं० अव√कृ (बिखेरना) + ल्युट्—अन] छितराने, बिखेरने या फैलाने की क्रिया या भाव।

अवकीर्ण—भू० कृ० [सं० अव्√कृ+क्त] १. छितराया, बिखेरा या फैलाया हुआ। २. तोड़-फोड़ कर नष्ट किया हुआ। ३. जिसका कौमार्य या ब्रह्मचर्य नष्ट हो चुका हो।

अवकीर्णन—पुं० [सं० अवकीर्ण +णिच्+ल्युट्—अन] चारों ओर छितराना, फैलाना या बिखेरना।

अवकुंचन—पुं० [सं० अव्√कुञ्च् (कुटिलता) + ल्युट्—अन] बटोरने, समेटने या सिकोड़ने की क्रिया या भाव।

अवकुंठन—पुं० [सं० अव√कुंठ् (वेष्टन)+ल्युट्—अन] दे० 'अवगुंठन'।

अव-कृपा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] कृपा-भाव (अनुग्रह, आदर, स्नेह आदि) का न रह जाना, जिसके फलस्वरूप कुछ अपकार या हानि हो सकती या होती हो।

अवकृष्ट—भू० कृ० [सं० अव√कृष्, (खींचना) + क्त] १. खींचकर नीचे की ओर लाया हुआ। २. हटाया या दूर किया हुआ। ३. गले के नीचे उतारा या निगला हुआ। ४. छोटी या नीच जाति का। ५. जाति से निकाला हुआ। ६. तुच्छ। हीन।

अव-केश—वि० [सं० व० स०] १. जिसके बाल झड़ चुके हों या झड़ रहे हों। २. जिसके बाल लटक रहे हों या लटके हुए हों।

अवकेशी (शिन्)—वि० [सं० अव-क व० स० √ईश् (ऐश्वर्य) +णिनि] १. (लता या वृक्ष) जिसमें फल न लगते हों। २. बाँझ। वंध्या। ३. छोटे बालोंवाला।

अवखन*—पुं०=अवेक्षण (देखना)।

अवक्तव्य—वि० [सं० न० त०] १. न कहने योग्य। २. निषिद्ध या अश्लील (बात)। ३. जिसकी व्याख्या या स्पष्टीकरण न हो सके।

अवक्त्र—वि० [सं० न० व०] १. जिसका या जिसमें मुँह (ऊपर की ओर खुला अंश) न हो। २. जिसका मुँह अंदर या नीचे की ओर हो। औंधा।

अवक्रंदन—पुं० [सं० अव√क्रन्द् (चिल्लाना) + ल्युट्—अन] ऊँचे स्वर में अथवा जोर-जोर से रोना या विलाप करना।

अवक्रम—पुं० [सं० अव√क्रम् (चलना) + घञ्] १. नीचे की ओर आना या उतरना। २. अव्यवस्थित या दूषित क्रम।

अवक्रमण—पुं० [सं० अव√क्रम्+ल्युट्—अन] १. नीचे की ओर आने या उतरने की क्रिया या भाव। २. जैन तथा बौद्ध धर्म के अनुसार गर्भ में आना।

अवक्रय—पुं० [सं० अव√क्री (खरीदना या बेचना) + अच्] १. दे० 'निष्क्रय'। २. दे० 'क्षति-पूर्ति'।

अवक्रांत—भू० कृ० [सं० अव√क्रम्+क्त] १. जिसके ऊपर कोई दूसरा (प्रधान या मुख्य) हो। अधीनस्थ। २. जिसे किसी ने दबाकर पूरी तरह से अपने अधिकार या वश में कर लिया हो।

अवक्रांति—स्त्री० [सं० अव√क्रम्+क्तिन्] १. अवक्रमण। २. पूरी-तरह से अधिकार या वश में करने या होने की अवस्था या भाव।

अवक्रीतक—भू० कृ० [सं० अव√क्री (खरीदना) + क्त+कन्] माँग कर या उधार लिया हुआ। मँगनी का।

अवक्रोश—पुं० [सं० अव√क्रुश् (चिल्लाना)+घञ्] १. कर्कश ध्वनि, शब्द या स्वर। २. गाली। दुर्वचन। ३. अभिशाप। शाप।

अवक्लिन्न—वि० [सं० अव√क्लिद् (गीला करना) +क्त] भींगा हुआ। गीला।

अवक्लेद—पुं० [सं० अव√क्लिद्+घञ्] जल या तरल पदार्थ का बहना, टपकना या रसना।

अवक्षय—पुं० [सं० अव√क्षि (नाश) +अच्] क्षय। नाश।

अवक्षिप्त—भू० कृ० [सं० अव√क्षिप् (फेंकना)+क्त] जिसका अवक्षेपन हुआ हो। (प्रेसिपिटेटेड)

अवक्षेप—पुं० [सं० अव√क्षिप्+घञ्] १. आपत्ति। उज्र। २. किसी के संबंध में यह कहना कि इसने अमक अनुचित काम किया है; अथवा अमुक अपराध या दोष का दायित्व उस पर है। (ब्लेम) ३. दे० 'अवक्षेपण'।

अवक्षेपण—पुं० [सं० अव√क्षिप्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० अवक्षिप्त] १. जोर से किसी ओर गिराना, फेंकना या हटाना। २. बहुत तेजी से या जल्दी से कोई काम करना। ३. रसायन शास्त्र में आग या बिजली की सहायता अथवा रासायनिक प्रक्रिया से किसी घोल में मिला हुआ कोई द्रव्य जमा कर या नीचे बैठाकर अलग करना। (प्रेसिपिटेशन) ४. डाँटना-डपटना ५. झूठा आरोप या कलंक लगाना।

अवक्षेपणी—स्त्री० [सं० अवक्षेपण+ङीप्] बागडोर। लगाम।

अवखंडन—पुं० [सं० अव√खंड् (टुकड़ा करना) + ल्युट्—अन] १. तोड़ना-फोड़ना। नष्ट करना। २. खंड, टुकड़े या विभाग करना।

अव-खात—पुं० [सं० प्रा० स०] गहरा गड्ढा। खाई।

अव-खाद—वि० [सं० व० स०] १. बहुत अधिक या निकृष्ट चीजें खानेवाला। २. नष्ट करनेवाला।

पुं० [प्रा० स०] १. निकृष्ट या बुरा भोजन। २. पशुओं के खाने योग्य खाद्य पदार्थ।

अवगंड—पुं० [सं० अव√गम् (जाना) + ड] चेहरे पर होनेवाली फुंसी या फुड़िया। मुँहासा।

अवगण—वि० [सं० व० स०] १. जिसका कोई गण न हो, अथवा जो किसी गण में न हो। २. एकाकी। अकेला।

अवगणन—पुं० [सं० अव√गण् (गिनना) + ल्युट्—अन] १. गिनती करते समय किसी को छोड़ देना। २. तुच्छ समझना। कुछ न गिनना। ३. जान-बूझकर किसी की मर्यादा, महत्त्व आदि की ओर ध्यान न देना अथवा आवश्यकता से कम ध्यान देना। ४. उपेक्षा करना। (इग्नोरिंग)

अवगणना—स्त्री० [सं० अव√गण्+णिच्+युच्—अन—टाप्]=अवगणन।

अवगणित—भू० कृ० [सं० अव√गण्+क्त] १. जिसका अवगणन हुआ हो। (इग्नोर्ड) २. जिसका महत्त्व या मान न आँका गया हो। ३. अपमानित, उपेक्षित या तिरस्कृत। ४. हारा हुआ। पराजित।

अवगत—वि० [सं० अव√गम् (जाना) + क्त] १. जाना, समझा या धारित किया हुआ। २. नीचे गया या गिरा हुआ।

†वि० [सं० अवगति] निरर्थक। व्यर्थ।

मुहा०—अवगत जाना=व्यर्थ नष्ट होना।

*वि०=अविगत।

अवगतना—अ० [सं० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०)] १. अवगत होना। २. विचारना, समझना या सोचना।

स० किसी पर कोई बात प्रकट करना। अवगत कराना। जतलाना।

अवगति—स्त्री० [सं० अव√गम्+क्तिन्] १. 'अवगत' होने की अवस्था या भाव। २. धारणा शक्ति। ३. बुद्धि। समझ।

स्त्री० [सं० अव+गति] बुरी गति या दशा। दुर्दशा।

अवगन*—पुं०=आवागमन।

अवगम—पुं० [सं० अव√गम्+घञ्]=अवगमन।

अवगमन—पुं० [सं० अव√गम्+ल्युट्—अन] [वि० अवगत] १. विदित होने की क्रिया या भाव। २. निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करना।

पुं० [सं० अव+गमन] अनुचित, गलत या बुरे रास्ते पर जाना।

अवघोषक—वि० [सं० अव√घुष् (शब्द) + ण्वुल्–अक] अनुचित या मिथ्या घोषणा करनेवाला।

अवघोषणा—स्त्री० [सं० अव√घुष्+ल्युट्–अन] अनुचित या बुरी घोषणा।

अवचट—क्रि० वि०, पुं०=औचट।

अवचन—पुं० [सं० न० त०] १. वचन का अभाव २. मुँह से वचन न निकलना। चुप्पी। मौन। ३. अनुचित, दूषित या बुरा वचन।

अवचनीय—वि० [सं० न० त०] १. (उक्ति, कथन या बात) जो किसी से कहने के योग्य न हो। २. जिसका वर्णन शब्दों द्वारा न किया जा सके। ३. अश्लील। फूहड़।

अवचय—पुं० [सं० अव√चि (इकट्ठा करना)+अच्] १. चयन या संग्रह करना। चुनकर इकट्ठा करना। २. फूल चुनना।

अवचयन—पुं० [सं० अव√चि+ल्युट्–अन]=अवचय।

अवचार—पुं० [सं० अव√चर् (गति)+घञ्] १. नीचे की ओर जानेवाला मार्ग या रास्ता। २. मार्ग। रास्ता। ३. कार्य-क्षेत्र।

अवचित—भू० कृ० [सं० अव√चि (चयन करना) + क्त] जिसका अव-चयन हुआ हो। चुनकर इकट्ठा किया हुआ।

अव-चूड़—पुं० [सं० ब० स०, ड=ल] ध्वजा के ऊपरी भाग पर बँधा रहनेवाला कपड़ा।

अवचूरी—स्त्री० [सं० अव√चूर् (दाह)+क, ङीप्] संक्षिप्त टीका या व्याख्या।

अवचूर्णित—भू० कृ० [सं० अव√चूर्ण् (पीसना) + क्त] १. पीसकर चूर्ण के रूप में लाया हुआ। २. जिसके कठिन शब्दों और पदों के अर्थ या भाव सरल रूप में समझाये गये हों।

अवचेतन—वि० [सं० ब० स०] [भाव० अवचेतना] जिसमें चेतना न हो या जिसकी चेतना नष्ट हो गई हो। विशेष दे० 'अचेतन'।

अवच्छद—पुं० [सं० अव√छद् (ढकना) + घ] ढकना। ढक्कन।

अवच्छिन्न—वि० [सं० अव√छिद् (काटना) + क्त] १. जिसका अव-च्छेदन हुआ हो। २. शस्त्र या हथियार से काटकर अलग किया हुआ। ३. अलग किया हुआ। ४. किसी विशिष्टता से युक्त किया हुआ। विशेषित। ५. निश्चित सीमा के अंदर लाया हुआ। सीमित।

अवच्छेद—पुं० [सं० अव√छिद् +घञ्] [वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न; कर्त्ता अवच्छेदक] १. अवच्छेदन। २. खंड। टुकड़ा। ३. सीमा। हद। ४. छान-बीन। ५. पुस्तक का परिच्छेद। प्रकरण। ६. मृदंग का एक प्रकार का प्रबंध।

अवच्छेदक—वि० [सं० अव√छिद्+ण्वुल्–अक] १. अवछेदन करने-वाला। २. छेदनेवाला। छेदक। ३. सीमा निश्चित करनेवाला। ४. निश्चय करानेवाला।

पुं० विशेषण। (व्या०)

अवच्छेदकता—स्त्री० [सं० अवच्छेदक+तल्–टाप्] १. अवच्छेदक होने की अवस्था या भाव। २. हद या सीमा बाँधने का भाव। परिमिति।

अवच्छेदन—पुं० [सं० अव√छिद्+ल्युट्–अन] १. शस्त्र या हथियार से काटकर अलग करने की क्रिया या भाव। २. खंड, टुकड़े या विभाग करना। ३. सीमा निर्धारित करना। ४. किसी प्रकार अलग या पृथक् करना।

अवच्छेद्य—वि० [सं० अव√छिद्+ण्यत्] जिसका अवच्छेदन होने को हो या हो सकता हो।

अवच्छेपणी*—पुं०=अवक्षेपणी।

अवछंग*—पुं० दे० 'उछंग'।

अवजय—स्त्री० [सं० अव√जि (जीतना) + अच्] पराजय। हार।

अवजित—वि० [सं० अव√जि+क्त] १. हारा हुआ। पराजित। २. तिरस्कृत।

अवज्जना†—स० [सं० आवर्जन या फा० आवाज ?] पुकारना। बुलाना।

अ० जोर का शब्द करना। गरजना। उदा०—ढलकि ढाल वद्दल मिलिय पुव्व झड़ाड अवज्जि।—चंदवरदाई।

अवज्ञा—स्त्री० [सं० अव√ज्ञा (जानना) + अङ्–टाप्] १. किसी अधि-कारी द्वारा दी हुई आज्ञा या आदेश पर जान-बूझकर ध्यान न देना, उसे न मानना या उसका उल्लंघन करना। (डिस-ओबीडिएन्स) २. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें एक वस्तु के गुण या दोष का दूसरी वस्तु पर प्रभाव न पड़ने का वर्णन होता है। ३. पराजय। हार।

अवज्ञात—भू० कृ० [सं० अव√ज्ञा+क्त] १. जिसकी अवज्ञा की गई हो, फलतः अपमानित या तिरस्कृत। २. हारा हुआ। पराजित।

अवज्ञान—पुं० [सं० अव√ज्ञा+ल्युट्–अन] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १. अपमान। अनादर। २. आज्ञा का उल्लंघन। ३. पराजय। हार।

अवज्ञेय—वि० [सं० अव√ज्ञा+यत्] १. (अधिकारी या आदेश) जिसकी अवज्ञा की जा सकती हो। २. जिसकी अवज्ञा करना उचित हो।

अवझेरा †—पुं०=उलझन।

अवट—पुं० [सं०√अव् (रक्षण आदि)+अटन्] १. छिद्र। छेद। २. गड्ढा। ३. तृण आदि से ढका हुआ एक प्रकार का गड्ढा जो जंगली पशुओं, विशेषतः हाथियों को फँसाने के लिए बनाया जाता है। ४. कूँआ। ५. एक नरक का नाम। ६. शरीर का कोई निचला या कमजोर भाग। ७. जादूगर। बाजीगर।

अवट-कच्छप—पुं० [सं० मध्य० स०] १. गड्ढे में छिपा हुआ कच्छप या कछुआ। . लाक्षणिक रूप में, ऐसा व्यक्ति जिसे संसार का कोई अनुभव या ज्ञान न हो।

अवटना—अ० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन] १. व्यर्थ घूमना या मारे-मारे फिरना। २. आग पर चढ़ाकर औटाया, गलाया या पिघलाया जाना। उदा०—कनक सोहग न बीछुरैं, अवटि मिलैं जो एक। —जायसी। स० १. आग पर चढ़ाकर गलाना या पकाना। औटना। उदा०—चूना कीन्ह अवटि गज मोती। —जायसी। २. मथना।

अवटी—स्त्री० [सं० अव्+अटि–ङीप्] १. छिद्र। छेद। २. गड्ढा। ३. कूँआ।

अवटीट—वि० [सं० अव-नासा, ब० स०, नासा को टीट आदेश] जिसकी नाक चिपटी हो। चिपटी नाकवाला।

अवटु—वि० [सं० न० त०] १. जो वटु (बालक) न हो। २. जो ब्राह्मण न हो। पुं० [सं० अव√टीक् (गति) + डु] १. गड्ढा। २. कूँआ। ३. माँद। ४. गरदन का पिछला भाग।

अवटुका-ग्रंथि—स्त्री० [सं० अवटुका, अवटु+कन्-टाप्, अवटुका-ग्रंथि प०

त०] शरीर के अंदर श्वास नली और स्वर यंत्र के पास की कुछ विशिष्ट ग्रंथियाँ या उनका समूह। (थॉइरॉयड ग्लैंड)

अवडीन—पुं० [सं० अव√डी (उड़ना)+क्त] १. पक्षियों की उड़ान। २. पक्षियों का उड़ते हुए नीचे की ओर आना।

अवडेर—पुं० [हिं० अव+रार या राड़?] [क्रि० अवडेरना] १. चक्कर। फेर। २. झंझट-बखेड़ा। ३. रंग या सुख-भोग में होनेवाली बाधा। रंग में भंग।

अवडेरना*†—स० [हिं० अव+डेरा?] १. किसी का डेरा या निवास-स्थान इस प्रकार उजाड़ना कि उसे भागकर दूर जाना पड़े। उदा०—भोरानाथ भोरेही सरोप होत थोरे दोष पोषि तोषि थापि आपेन न अवडेरिये। —तुलसी। २. तंग कर के भगाना। ३. चक्कर या झंझट में डालना। ४. प्रेरित करना। उकसाना। ५. अपमानित करना।

अवडेरा—वि० [हिं० अवडेर] १. झंझट में डालने या फँसानेवाला। २. जो चक्करदार हो। पेंचीला। ३. बेढब। ४. विलक्षण। ५. विकट।

अवढर—वि० [हिं० अव+ढलना] अकारण ही ढलने (प्रसन्न या अनुरक्त होने) वाला। मनमाने ढंग से उदारता, कृपा आदि दिखलानेवाला।

अवण†—स्त्री०=अवनि (पृथ्वी)।

अवतंस—पुं० [सं० अव√तंस् (अलंकृत करना)+घञ्] [वि० अवतंसित] १. माला। हार। २. वलयाकार आभूषण या गहना। जैसे-कंगन, कड़ा, चूड़ी आदि। ३. सिर पर पहनने का टीका या मुकुट। ४. कान में पहिनने की वाली या फूल। ५. भाई का लड़का। भतीजा। ६. दूल्हा। वर। ७. श्रेष्ठ व्यक्ति। उत्तम पुरुष।

अवतंसक—पुं० [सं० अवतंस +कन्] =अवतंस।

अवतंसित—भू० कृ० [सं० अव√तंस्+क्त] १. जिसके पास माला या हार हो अथवा जिसने माला या हार पहना हो। २. जिसने भूषण धारण किये हों। ३. सजा हुआ। अलंकृत।

अवतत—वि० [सं० अव√तन् (विस्तार) +क्त] १. जिसका विस्तार नीचे की ओर हो। २. विस्तृत। ३. फैला या फैलाया हुआ।

अव-तमस—पुं० [सं० प्रा० स०, अच्] १. हलका अंधकार। २. गूढ़ता।

अवतरण—पुं० [सं० अव√तृ (उतरना)+ल्युट्-अन] [वि० अवतीर्ण] १. ऊपर से नीचे आना। नीचे उतरने की क्रिया या भाव। २. नीचे उतरने की सीढ़ी या घाट। ३. तैर कर पार होना। ४. शरीर धारण करना। जन्म लेना। ५. प्रतिकृति नकल। ६. प्रादुर्भाव। ७. लेख, वचन आदि का उद्धृत अंश। उद्धरण। (कोटेशन) ८. भूमिका। ९. अनुवाद। १०. एकाएक अन्तर्ध्यान होना या छिप जाना। ११. स्नान करने के लिए जल में उतरना। १२. पार होना।

अवतरण-चिह्न—पुं० [प० त०] उलटे हुए अल्प विराम चिह्न जिनके बीच में किसी का कथन उद्धृत किया जाता है। जैसे—“.........”।

अवतरणच्छत्र—पुं० [प० त०] वह छतरी या छाता जिसकी सहायता से वायुयान पर से सैनिक नीचे उतरते हैं। (पैराशूट)

अवतरण-पथ—पुं० [प० त०] वह पथ जिसपर से होकर वायुयान उतरने के समय नीचे भूमि पर आते और फिर ऊपर जाते हैं। (एयरस्ट्रिम)

अवतरण-भूमि—स्त्री० [प०त०] वह खुला मैदान जहाँ वायुयान आकर उतरते या ठहरते हैं। (लैंडिंग ग्राउंड)

अवतरणिका—स्त्री० [सं० अवतरण-ङीप्+कन्, टाप-ह्रस्व] १. किसी पुस्तक का परिचायक आरंभिक अंश। भूमिका। २. परिपाटी। रीति। ३. दे० ‘अवतरण’।

अवतरणी—स्त्री० [सं० अवतरण+ङीप्]=अवतरणिका।

अवतरना*—अ० [सं० अवतरण] १. ऊपर से नीचे आना। उतरना। २ उपजना या जन्मना। ३. अवतार या शरीर धारण करना। ४. प्रकट होना। प्रादुर्भाव होना।

अवतरित—भू० कृ० [सं० अवतीर्ण] १. ऊपर से नीचे आया या उतरा हुआ। २. जिसने अवतार धारण किया हो। ३. किसी दूसरे स्थान से लिया या उद्धृत किया हुआ (लेख या वचन)।

अव-तल—वि० [सं० ब० स०] [भाव० अवतलता] जिसका तल बीच में कुछ नीचे दबा हो। नतोदर। (कॉन्केव)

अवतापी (पिन्)—वि० [सं० अव√तप् (तपना)+णिच्+णिनि] १. बहुत तपानेवाला। २ (स्थान) जहाँ सूर्य का ताप बहुत अधिक होता हो। ३. कष्ट या ताप पहुँचानेवाला।

अवतार—पुं० [सं० अव√तृ+घञ्] १. ऊपर से नीचे की ओर आना। उतरने की क्रिया या भाव। २. शरीर धारण करना। जन्म लेना। ३. पौराणिक क्षेत्र में, ईश्वर (परमात्मा) का भौतिक या मानव रूप धारण करके इस संसार में आना। ४. उक्त प्रकार से धारण किया हुआ शरीर। जैसे—कृष्ण, राम या वाराह का अवतार। ५. वह व्यक्ति जिसके संबंध में यह माना जाता हो कि ईश्वर का अंश और प्रतिनिधि है। ६. अनुवाद। ७. भूमिका। ८. तीर्थ।

अवतारण—पुं० [सं० अव√तृ+णिच्+ल्युट्-अन] =अवतारणा।

अवतारणा—स्त्री० [सं० अव√तृ+णिच्+युच्-अन-टाप्] १. ऊपर से नीचे लाने की क्रिया या भाव। उतारना। २. किसी अमूर्त्त या अदृश्य बात या तत्त्व को मूर्त्त, दृश्य, श्रव्य आदि रूपों में लाने की क्रिया या भाव। इंद्रिय-गोचर कराने की क्रिया या भाव। जैसे—(क) चित्रपट पर सीता-हरण की अवतारणा। (ख) सितार पर ललित राग की अवतारणा। ३. अनुकरण या नकल करना। ४. अवतरण या उद्धरण के रूप में ग्रहण करना।

अवतारना—स० [सं० अवतारण] १. ऊपर से नीचे लाना। उतारना। २. जन्म देना। ३. प्रस्तुत करना, बनाना या रचना।

अवतारवाद—पुं० [सं० प० त०] यह मत या सिद्धांत कि धर्म की हानि होने पर उस की फिर से स्थापना करने के लिए भगवान जन्म लेकर (या शरीर धारण करके) इस संसार में आते हैं।

अवतारी (रिन्)—वि० [सं० अव√तृ + णिनि] १. नीचे आने या उतरनेवाला। २. अवतार धारण करने या लेनेवाला। ३. ईश्वर के अवतार के रूप में माना जानेवाला और अलौकिक गुणों से युक्त (व्यक्ति)। जैसे—महात्मा बुद्ध अवतारी पुरुष माने जाते हैं। पुं० २४ मात्राओं के छंदों की संज्ञा।

अवतीर्ण—वि० [सं० अव√तृ+क्त] १. ऊपर से नीचे आया या उतरा हुआ। २. जिसने अवतार धारण किया हो। अवतरित। ३. उत्तीर्ण।

अव-तोका—वि० [सं० ब० स०] (जीव या प्राणी) जिसका गर्भपात हुआ हो।

अवदंश—पुं० [सं० अव√दंश् (काट खाना)+घञ्] चटपटी वस्तुएँ जो मद्यपान के समय खाई जाती हैं। गजक। चाट।

अवदमन—पुं० [सं० अव√दम् (दबाना)+ल्युट्-अन] १. अच्छी तरह दबाना और वश में लाना। २. अधिकारी या शासक का कठोरतापूर्वक विद्रोहियों का दमन करना।

अवदरण—पुं० [सं० अवदारण] १. तोड़ना-फोड़ना या चीरना-फाड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट करना। ३. कुचलना या पीसना।

अवदशा—स्त्री० [सं० प्रा० स०] बुरी या हीन दशा। गिरी हुई हालत।

अवदाघ—पुं० [सं० अव√दह् (जलाना)+घञ्, ह को घ] १. जलन या ताप। २. ग्रीष्म ऋतु। गरमी का मौसम।

अवदात—वि० [सं० अव√दा(शोधन)+क्त] १. जो अच्छी तरह साफ किया गया हो, फलतः स्वच्छ। २. उज्ज्वल। शुभ्र। ३. पवित्र और शुद्ध। ४. सत्य। सच्चा। ५. गौर वर्ण का। गोरा। ६. पीला।

अवदान—पुं० [सं० अव√दो (खंडन)+ल्युट्-अन] १. बहुत बड़ा या महत्त्वपूर्ण कार्य। २. विजय। ३. सफलता। ४. बल। शक्ति। ५. अतिक्रमण। उल्लंघन।

अवदान्य—वि० [सं० न० त०] १. जो वदान्य या उदार न हो। संकीर्ण हृदय। २. नियम, सीमा, आदि का उल्लंघन करनेवाला।

अवदारक—वि० [सं० अव√दृ+णिच्+ण्वुल्-अक]अवदारण करनेवाला। पुं० १. मिट्टी आदि खोदने की खंती या फरसा। २. तोड़ने-फोड़ने आदि की कोई चीज।

अवदारण—पुं० [सं० अव√द+णिच् +ल्युट्-अन। १. तोड़ने-फोड़ने की क्रिया या भाव। २. विदारण करना। चीरना या फाड़ना। ३. अलग करना। ४. नष्ट करना।

अवदारित—भू० कृ० [सं० अव√दृ+णिच्+क्त] १. तोड़ा-फोड़ा या चीरा-फाड़ा हुआ। २. नष्ट-भ्रष्ट किया हुआ।

अवदाह—पुं० [सं० प्रा० स०] १. अधिक या बड़े क्षेत्र में आग लगना और उससे चीजों का जलना। (कॉन्फ्लेगरेशन) २. अत्यधिक गरमी या ताप। ३. [ब० स०] वीरणमूल। खस।

अवदीर्ण—वि० [सं० अव√दृ+क्त] १. जो टूटा-फूटा या नष्ट-भ्रष्ट हो। २. विभक्त। ३. चिंतित या दुःखी। ४. घबराया हुआ। विकल।

अवदोह—पुं० [सं० अव√दुह् (दुहना)+घञ्] १. दूध दुहने की क्रिया या भाव। २. दूध।

अवद्य—वि० [सं० वद् (बोलना) +यत्, न० त०] [भाव० अवद्यता] १. (कथन या शब्द) जो अनुचित होने के कारण कहने या मुँह से निकालने योग्य न हो। २. निकृष्ट। बुरा। ३. गर्हित। निंदनीय।

अवध—पुं० [सं० अयोध्या] १. अयोध्या नगरी। २. उक्त नगरी के आस-पास का प्रदेश। (प्राचीन कोशल)
*स्त्री०=अवधि।

अवध—वि०=अवध्य।

अवधा—स्त्री० [सं० अव√धा (धारण करना)+अङ्-टाप्] ज्यामिति में वृत्त का खंड या भाग।

अवधातव्य—वि० [सं० अव√धा+तव्यत्] जिस पर अवधान दिया जाने को हो अथवा जो अवधान के योग्य हो।

अवधाता (तृ)—पुं० [सं० अव√धा+तृच्] [स्त्री० अवधात्री] १. किसी वाद, विषय या व्यक्ति का अवधान या ध्यान रखनेवाला। (केयर-टेकर) २. कोई कार्य ठीक प्रकार से संचालित करनेवाला।

अवधात्री सरकार—स्त्री० [सं० अवधात्री, अवधातृ+ङीप्, फा० सरकार] वह सरकार जो नई तथा स्थायी सरकार संघटित होने से पहले कुछ समय तक शासन की देख-रेख करती हो। (केयर-टेकर गवर्नमेन्ट)

अवधान—पुं० [सं० अव√धा+ल्युट्=अन] १. एकाग्र या सावधान होने की अवस्था या भाव। २. सावधानतापूर्वक देख-रेख करना। (केयर) ३. सावधानतापूर्वक कार्य का संचालन या उसका भार। (चार्ज)
*पुं० [सं० आधान] गर्भ।

अवधानी (निन्)—वि० [सं० अवधान+इनि] =अवधाता।

अवधायक—पुं० [सं० अव√धा+ण्वुल्-अक] वह अधिकारी जिसकी अधीनता या देख-रेख में कोई काम होता हो। किसी काम का कर्त्ता-धर्त्ता। (इंचार्ज)

अवधायक सरकार—स्त्री० =अवधात्री सरकार।

अवधार—पुं० [सं० अव√धृ (धारण)+णिच्+अच्] =अवधारण।

अवधारक—वि० [सं० अव√धृ+णिच्+ण्वुल्-अक] अवधारण करनेवाला।

अवधारण—पुं० [सं० अव√धृ+णिच्+ल्युट्-अन] १. अच्छी तरह सोच-समझ कर कोई धारणा या निश्चय करना। २. किसी परिणाम तक पहुँचना या परिणाम निकालना। ३. किसी कार्य के संबंध में दृढ़तापूर्वक किया जानेवाला निश्चय। (डिटर्मिनेशन)

अवधारणा—स्त्री० [सं० अव√धृ+णिच्+युच्-अन-टाप्] =अवधारण।

अवधारणीय—वि० [सं० अव धृ+णिच्+अनीयर] १. जिसका अवधारण हो सके अथवा जो अवधारण किये जाने के योग्य हो। २. जिसका अवधारण होने को हो। ३. ग्रहण या धारण किये जाने के योग्य।

अवधारना—स० [सं० अवधारण] ग्रहण या धारण करना।
अ० सोच-समझकर निश्चय करना।

अवधारित—भू० कृ० [सं० अव√धृ+णिच् +क्त] जिसका या जो अवधारण किया गया हो।

अवधार्य्य—वि० [सं० अव√धृ+णिच्+यत्] जिसका अवधारण होने को हो या हो सकता हो।

अवधावन—पुं० [सं० अव√धाव् (गति)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवधावित] १. किसी को पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ना। पीछा करना। २. अच्छी तरह धोकर निर्मल या स्वच्छ करना।

अवधावित—भू० कृ० [सं० अव√धाव्+क्त] १. जिसका पीछा किया गया हो। २. साफ किया हुआ।

अवधि—स्त्री० [सं० अव√धा+कि] १. नियत, निश्चित या सीमित समय। २. कोई काम पूरा करने या होने का निश्चित किया हुआ समय। मुहा०—*अवधि बदना*=कोई काम पूरा करने के लिए समय निश्चित करना। जैसे—अवधि बदि सैयाँ अजहूँ न आय। (गीत) ३. समय का निश्चित भोगकाल। (टर्म) जैसे—किसी अधिकारी की अवधि पूरी होना। ४. सीमा। हद।
*अव्य० तक। पर्यंत।

अवधि-ज्ञान—पुं० [ष० त०] वह शक्ति जिसमें गड़ी, छिपी या दबी हुई चीजों का ज्ञान होता या पता चलता है। (जैन)

अवधि-दर्शन—पुं० [ष० त०] गड़ी, छिपी या दबी हुई चीजें दिखाई देना। (जैन)

अवधि-बाधित—भू० कृ० [व० स०] (अधिकार, कार्य या व्यवहार) जिसकी अवधि बीत चुकी हो और इसी लिए जिसका अब उपयोग, प्रयोग या विचार न हो सकता हो। (बार्ड बाई लिमिटेशन)

अवधिमान—पुं० [सं० अवधिमत्] सागर। समुद्र।

अवधी—वि० [सं० अयोध्या] १. अवध-संबंधी। अवध का। स्त्री० अवध प्रांत की बोली जो पूर्वी हिन्दी की एक शाखा है। पुं० अवध का निवासी।

*स्त्री०=अवधि।

अवधीरण—पुं० [सं० अव√धीर् (अवज्ञा)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवधीरित] किसी का महत्त्व या मान कम समझकर या कम आँककर उसके साथ ओछा व्यवहार करना। (स्लाइट)

अवधीरणा—स्त्री० [सं० अव√धीर्+णिच्+युच्-अन-टाप्]=अवधीरण।

अवधीरित—भू० कृ० [सं० अव√धीर्+क्त] १. जिसका अवधीरण (उपेक्षा या तिरस्कार) हुआ हो। २. जिसके साथ अनुचित व्यवहार किया गया हो।

अवधू—पुं०=अवधूत।

अवधूक—वि० [स० न० ब० कप्] जिसकी पत्नी न हो (फलतः कुँआरा या विधुर)।

अवधूत—वि० [सं० अव√धू (काँपना)+क्त] १. कँपाया या हिलाया हुआ। २. जिसे हानि या क्षति पहुँची हो। ३. उपेक्षित। अपमानित। ४. अस्वीकृत। ५. पराजित। हारा हुआ। ६. सांसारिक मोह-माया से मुक्त।

पुं० [सं० अवधूतः] [स्त्री० अवधूतिन, अवधूती, वि० अवधूती] १. वह जो सांसारिक बंधनों से अलग हो चुका हो। त्यागी। विरक्त। २. वह साधक जिसने सहजावस्था प्राप्त कर ली हो। ३. नाथ-पंथी सिद्ध योगी। ४. साधकों की भाषा में, मन।

अवधूत-वेश—वि० [ब० स०] १. गंदे या मैले-कुचैले वस्त्र पहननेवाला। २. नग्न। नंगा।

अवधूती—वि० [हिं० अवधूत] अवधूत-संबंधी। जैसे—अवधूती वृत्ति। स्त्री० अवधूत होने की अवस्था या भाव।

अवधूपित—वि० [सं० अव√धूप् (ताप या धूप करना)+क्त] सुगंधित द्रव्य जलाकर उसके धुएँ से सुगंधित किया हुआ। जैसे—अवधूपित केश।

अवधूलन—पुं० [सं० अवधूलि+णिच्+ल्युट्-अन] धूल या चूर्ण की तरह की चीज छिड़कना। (डस्टिंग)

अवधृत—भू० कृ० [सं० अव√धृ (धारण)+क्त]=अवधारित।

अवधेय—वि० [सं० अव√धा+यत्] १. जिस पर अवधान या ध्यान दिया जाने को हो या दिया जा सकता हो। २. जानने योग्य। ३. जिसका आदर किया जा सके। ४. श्रद्धेय।

पुं० अभिधान। नाम।

अवधेश—पुं० [सं० अवध-ईश ष० त०] १. अवध का राजा या स्वामी। २. अवध के राजा, दशरथ।

अवध्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका वध न हो सकता हो। २. जिसका वध करना उचित न हो।

अवध्वंस—पुं० [सं० अव√ध्वंस् (अधःपतन)+घञ्] १. त्यागना या दूर हटाना। २. अनादर, अपमान या उपेक्षा करना। ३. बुरी तरह से किया हुआ ध्वंस या नाश।

अवध्वस्त—भू० कृ० [सं० अव√ध्वंस्+क्त] १. त्यागा या दूर हटाया हुआ। २. निंदित। ३. तिरस्कृत। ४. विनष्ट।

अवन—पुं० [सं०√अव (रक्षण आदि)+ल्युट्-अन] १. प्रसन्न या संतुष्ट करना। २. प्रीति। प्रेम। ३. रक्षा करना। बचाना।

*स्त्री० [सं० अवनि] १. पृथ्वी। २. जमीन। भूमि। ३. मार्ग। रास्ता।

अवनत—वि० [सं० अव√नम् (झुकना)+क्त] [भाव० अवनति] १. झुका हुआ। नत। २ नम्र। ३. नीचे की ओर गिरा हुआ। पतित। ४. दुर्दशा की ओर बढ़ा हुआ। दुर्दशा-ग्रस्त। 'उन्नत' का विपर्याय।

अवनति—स्त्री० [सं० अव√नम्+क्तिन्] [वि० अवनत, कर्त्ता अवनायक] १. नीचे की ओर जाना या झुकना। झुकाव। २. नम्रता। ३. दुर्दशा या दीन दशा में जाना। पतन। ४. कमी। घटाव। ह्रास।

अवनद्ध—भू० कृ० [सं० अव√नह् (बाँधना)+क्त] १. किसी के साथ नत्थी किया या बँधा हुआ। २. जड़ा या बैठाया हुआ। ३. ढका हुआ। पुं० ढोल या मृदंग की तरह का एक बाजा।

अवनमन—पुं० [सं० अव√नम्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवनमित] १. नीचे की ओर आने या झुकने की क्रिया या भाव। नत होना। २. गुण, बल, महत्त्व या मान घटना या कम होना। उतार। ३. ग्रह, नक्षत्र आदि का क्षितिज से नीचे की ओर जाना या होना। ४ किसी तल या स्तर का नीचे की ओर का झुकाव या बढ़ाव। (डिप्रेशन) जैसे-मेघों का अवनमन।

अवनयन—पुं० [सं० अव√नी (ले जाना)+ल्युट्-अन] नीचे की ओर लाना या ले जाना।

अवना*—अ० [हिं० आना का पुराना रूप] १. अस्तित्व में आना, बनना या घटित होना। २. दे० 'आना'।

अवनाम—पुं० [सं० अव√नम् +घञ्]=अवनमन।

अवनामक—वि० [सं० अव√नम्+णिच्+ण्वुल्-अक] १. नीचे गिराने या झुकानेवाला। २. हतोत्साह करनेवाला।

अवनायक—वि० [सं० अव√नी (पहुँचना)+ण्वुल्-अक] १. अवनति करने या गिरानेवाला। 'उन्नायक' का विपर्याय। २. जो अवनति, पतन या ह्रास की ओर प्रवृत्त हो। ३. नीचे की ओर गिरनेवाला। (फॉलिंग) जैसे—अवनायक मूल्य।

अवनासिक—वि० [सं० ब० स०] झुकी हुई या चिपटी नाकवाला।

अवनाह—पुं० [सं० अव√नह् (बाँधना) +घञ्] १. कसकर बाँधना। २. बंधन। ३. ढकना।

अवनि—स्त्री० [सं०√अव् (रक्षण आदि)+अनि] १. वह समस्त विस्तृत तल जिस पर मनुष्य रहता और कार्य करता है। २. पृथ्वी। ३. उँगली। ४. एक प्रकार की लता।

अवनिचर—वि० [सं० अवनि√चर् (गति)+ट] जगह-जगह घूमता रहनेवाला। घुमक्कड़।

अवनिज—पुं० [सं० अवनि√जन् (उत्पन्न होना) +ड] मंगल-ग्रह।

अवनि-तल—पुं० [ष० त०] जमीन की सतह। धरातल।

अवनिध्र—पुं० [सं० अवनि√धृ (धारण करना)+ट] पर्वत। पहाड़।

अवनिप—पुं० [सं० अवनि√पा (रक्षण)+क] राजा।
अवनि-पति—पुं० [ष० त०] राजा।
अवनि-पाल—पुं० [ष० त०] राजा।
अवनि-पालक—पुं० [ष० त०] १. राजा। २. पहाड़। पर्वत।
अवनि-सुत—पुं० [ष० त०] मंगल ग्रह।
अवनि-सुता—स्त्री० [ष० त०] जानकी। सीता।
अवनींद्र—पुं० [अवनि-इन्द्र, ष० त०] राजा।
अवनी—स्त्री० [सं० अवनि+ङीप्] दे० 'अवनि'।
अवनीप—पुं० [सं० अवनी√पा (रक्षा)+क] राजा।
अवनीश—पुं० [अवनी-ईश, ष० त०] राजा।
अवनीश्वर—पुं० [अवनी-ईश्वर, ष० त०] =अवनीश।
अवनेजन—पुं० [सं० अव√निज् (पवित्र करना)+ल्युट्-अन] १. प्रक्षालन्। धोना। २. आचमन। ३. श्राद्ध में वेदी पर कुश से जल छिड़कना।
अवनिय*—स्त्री०=अवनि।
अवपाक—वि० [सं० ब० स०] जो अच्छी तरह पका या पकाया न हो। पुं० वह जो अच्छी तरह पकाना न जानता हो।
अवपाटिका—स्त्री० [सं० अव√पट् (गति) +णिच्+ण्वुल्-अक-टाप्] पुरुष की जननेंद्रिय में होनेवाला एक रोग।
अवपात—पुं० [सं० अव√पत् (गिरना)+घञ्] १. नीचे आना, उतरना या गिरना। २. गड्ढा। ३. वह गड्ढा जिसमें हाथी फँसाये जाते हैं। खाँड़ा। ४. नाटक में किसी अंक की समाप्ति में लोगों के घबराकर भागने का दृश्य।
अवपातन—पुं० [सं० अव√पत्+णिच्+ल्युट्-अन] नीचे उतारने या गिराने की क्रिया या भाव।
अव-पात्र—वि० [सं० प्रा० स०] अयोग्य या निकृष्ट पात्र।
अव-बाहुक—पुं० [सं० ब० स० कप्] भुजस्तंभ नामक वायु-रोग जिसमें हाथ बे-काम हो जाता है।
अवबोध—पुं० [सं० अव√बुध् (जानना)+घञ] १. जागने की क्रिया या भाव। २. जानना। ३. ज्ञान। बोध।
अवबोधक—वि० [सं० अव√बुध+णिच्+ण्वुल्-अक] १. अवबोध या ज्ञान करानेवाला। २. जगानेवाला।
पुं० १. चारण या बंदी जिसका काम गीत गाकर राजा को जगाना होता था। २. चौकीदार। पहरुआ। ३. सूर्य।
अवबोधन—पुं० [सं० अव√बुध्+णिच् + ल्युट्-अन] १. ज्ञान या बोध कराने की क्रिया या भाव। २. सूचना या शिक्षा देना। ३. चेतावनी देना। चेताना। ४. वह मानसिक शक्ति जिससे किसी बात का ठीक स्वरूप जल्दी या सहज में समझ लिया जाता है। (पर्सेप्शन)
अवभंग—पुं० [सं० अव√भञ्ज् (भंग करना)+घञ्] १. नीचा दिखाना। २. पराजित करना। हराना।
अवभास—पुं० [सं० अव√भास् (चमकना)+घञ्] १. ज्ञान या उसका प्रकाश। २. केवल आभास के रूप में होनेवाला मिथ्या ज्ञान।
अवभासक—वि० [सं० अव√भास्+णिच्+ण्वुल्-अक] अवभास या बोध करानेवाला।
अवभासन*—पुं० [सं० अव√भास्+ल्युट्-अन] [वि० अवभासनीय, भू० कृ०—अवभासित] १. प्रकाशन। चमकना। २. ज्ञान। बोध। ३. प्रकट होना। खुलना।

अवभासित—भू० कृ० [सं० अव√भास्√णिच्+क्त] १. जो अवभास के रूप में ज्ञात हुआ हो। प्रतीत या लक्षित। २. चमकता या चमकाया हुआ।
अवभासिनी—स्त्री० [सं० अव√भास्+णिनि—ङीप्] शरीर के ऊपर की चमड़े की पतली झिल्ली।
अवभृथ—पुं० [सं० अव√भृ (भरण-पोषण)+क्थन्] यज्ञ की समाप्ति के समय का अंतिम कृत्य और स्नान।
अवभृथ-स्नान—पुं० [कर्म० स०] वह स्नान जो यज्ञ की समाप्ति पर किया जाता है।
अवमंता (तृ)—वि० [सं० अव√मन् (जानना)+तृच्] अपमान करनेवाला।
अवमंथ—पुं० [सं० अव√मन्थ् (मथना)+अच्] लिंगेन्द्रिय का एक रोग।
अवम—वि० [सं०√अव् (रक्षण आदि)+अमच्] १. जो सबसे नीचे हो। निचला। २. अवम। नीच। ३. अंतिम। आखिरी। ४. रक्षक। पुं० १. पितरों का एक गण या वर्ग। २. अधिक मास। मलमास।
अवमत—वि० [सं० अव√मन् (जानना)+क्त] अपमानित। तिरस्कृत। निंदित।
पुं० [सं० अव-मत प्रा० स०] अनुचित या बुरा मत।
अवमति—स्त्री० [सं० अव√मन्+क्तिन्] १. अरुचि। २. अपमान। निंदा।
स्त्री० [सं० अव-मति, प्रा० स०] अनुचित या बुरी मति (बुद्धि या परामर्श)।
अवम-तिथि—स्त्री० [कर्म० स०] चांद्र मास की वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो।
अवमर्द (ग्रहण)—पुं० [सं० अव√मृद् (चूर्ण करना)+घञ्] ऐसा ग्रहण जिसमें चंद्रमा या सूर्य का मंडल अधिक समय तक और पूरी तरह से छिपा या ढका रहे।
अवमर्दन—पुं० [सं० अव√मृद्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवमर्दित] १. कष्ट या दुःख देना, २. पैरों से कुचलना, दलना या रौंदना।
अवमर्दित—भू० कृ० [सं० अव√मृद्+क्त] १. जिसका अवमर्दन हुआ हो। २. कुचला, दला या रौंदा हुआ।
अवमर्श—पुं० [सं० अव√मृश् (छूना)+घञ्] १. छूना या स्पर्श करना। २. संबंध स्थापित करना।
अवमर्श-संधि—स्त्री० [ष० त०] नाट्य शास्त्र में, पाँच प्रकार की संधियों में से एक।
अवमर्ष—पुं० [अव√मृष् (सहना)+घञ्]=अवमर्षण।
अवमर्षण—पुं० [सं० अव√मृष्+ल्युट्—अन] १. स्पर्श करना। छूना। २. दूर करना। हटाना। ३. नष्ट करना। मिटाना। ४. मान्य या सहन न करना।
अवमान—पुं० [सं० अव√मन् (मानना)+घञ्] [भू० कृ० अवमानित] १. किसी के मान का पूरा ध्यान न रखना। जितना चाहिए, उतना आदर या मान न करना। (डिसरिगार्ड) विशेष दे०, 'अवज्ञा'। २. महत्त्व, मान या मूल्य ठीक प्रकार से न आँकना।
अवमानन—पुं० [सं० अव√मन्+णिच्+ल्युट्-अन] अवमान या अपमान करना।

अवमानना—स० [सं० अवमान] अवमान करना।

अवमानित—भू० कृ० [सं० अव√मन्+णिच्+क्त] १. जिसका अवमान हुआ हो। २. दे० 'अपमानित'।

अवमानी (निन्)—वि० [सं० अव√मन्+णिच्+णिनि] अपमान या अवमान करनेवाला। उदा०—सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी।-तुलसी।

अवमूल्यन—पुं० [सं० अवमूल्य+णिच्+ल्युट्-अन] १. किसी वस्तु के मूल्य के कम होने या घटने की अवस्था या भाव। २. आधुनिक अर्थ-शास्त्र में विनिमय के काम के लिए मुद्रा या सिक्कों का मूल्य कम करने की क्रिया या भाव। (डीवैल्यूएशन)

अवमोचन—पुं० [सं० अव√मुच् (छोड़ना)+ल्युट्-अन] बंधन से मुक्त करने की क्रिया या भाव।

अवयव—पुं० [सं० अव√यु (मिलाना) + अच्] [वि० अवयवी] १. शरीर का कोई अंग या भाग। २. वह अंश जो वस्तु की पूर्ति में सहायक हो। भाग। हिस्सा। ३. न्याय शास्त्र में, वाक्य के इन पाँच अंगों में से हर एक—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन।

अवयव-रूपक—पुं० [प० त०] साहित्य में, एक तरह का रूपक अलंकार जिसमें अंगों के गुणों का ही सारूप्य वर्णित होता है।

अवयवार्थ—पुं० [अवयव-अर्थ, प०त०] शब्द के अवयवों (प्रकृति और प्रत्यय) से निकलनेवाला अर्थ।

अवयवी (विन्)—वि० [सं० अवयव+इनि] १. जिसके अनेक अवयव या अंग हों। २. कुल। पूरा। समूचा।

पुं० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अवयव या अंग हों। २. देह। शरीर।

अवयस्क—वि० [सं० न० त०] जो वयस्क न हो। नाबालिग। (माइनर)

अवयान—पुं० [सं० अव√या (गति)+ल्युट्-अन] १. नीचे की ओर आना। २. किसी को प्रसन्न करने के लिए उसके पास झुक या दबकर जाना। ३. प्रायश्चित्त।

अवर—वि० [सं०√वृ (आवरण)+अप् (बा०) न० त०] १. जो 'वर' अर्थात् श्रेष्ठ न हो, फलतः अवम, तुच्छ, नीच या हीन। २. नीचा। ३. कम। न्यून। ४. पीछे या बाद में आने या होनेवाला। ५. गुण, मर्यादा आदि के विचार से किसी के अधीन या नीचे रहने या होनेवाला। (इन्फीरियर)

पुं० १. बीता हुआ समय। अतीत काल। २. हाथी का पिछला भाग।

*अव्य० [सं० अपर] और.कोई। अन्य। दूसरा।

अवरज—पुं० [सं० अवर√जन् (उत्पत्ति)+ड] [स्त्री० अवरजा] १. छोटा भाई। २. नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति। ३. शूद्र।

अवरण*—वि०=अवर्ण।

पुं०=आवरण।

अवरत—वि० [सं० अव√रम् (क्रीड़ा)+क्त] १. जो रत न हो। विरत। २. ठहरा हुआ। स्थिर। ३. अलग। पृथक्।

पुं०=आवर्त्त।

अवरति—स्त्री० [सं० अव√रम्+क्तिन्] १. अवरत होने की अवस्था या भाव। २. विराम। ठहराव। ३. निवृत्ति। छुटकारा।

अवर-शैल—पुं० [कर्म०स०] पुराणानुसार पश्चिम का वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना माना जाता है।

अवर-सेवक—पुं० [कर्म० स०] वह कर्मचारी जिसकी गिनती ऊँचे या बड़े सेवकों में न होती हो। (इन्फीरियर सर्वेन्ट)

अवर-सेवा—स्त्री० [कर्म० स०] राजकीय अथवा लोक-सेवा का वह अंग जिसमें निम्न कोटि के कर्मचारी होते हैं। (इन्फीरियर सर्विस)

अवरा—स्त्री० [सं० अवर+टाप्] १. दुर्गा। २. दिशा।

अवरागार—पुं० [सं० अवर-आगार, कर्म० स०] दे० 'लोकसभा'।

अवराधक—वि० [सं० अव√राध् (सिद्ध करना)+ण्वुल्-अक]=आराधक।

अवराधन*—पुं० [सं० अव√राध्+ल्युट्-अन]=आराधन।

अवराधना*—स० [सं० अवराधन]=आराधना।

अवराधी (धिन्)—वि० [सं० अव√राध्+णिनि]=आराधक।

अवरार्ध—पुं० [अवर-अर्ध, कर्म० स०] १. नीचे या पीछे का आधा भाग। २. उत्तरार्ध।

अवरावर—वि० [अवर-अवर, पं० त०] सबसे बुरा या खराब। निकृष्टतम।

अवरिय—वि० दे० 'आवृत्त'।

अवरु—अव्य०, वि०=और।

अवरुद्ध—वि० [सं० अव√रुध् रोक)+क्त १. रुँधा या रूँधा हुआ। २. जिसके आगे का मार्ग रुका हो या रोका गया हो। ३. छाया या ढका हुआ। आच्छादित। ४. छिपा हुआ। गुप्त।

अवरुद्धा—स्त्री० [सं० अवरुद्ध+टाप्] १. अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई पुरुष अपने घर में रख ले। २. रखी हुई स्त्री। रखेली।

अवरू—अव्य० =अवर (और)।

अवरूढ़—वि० [सं० अव√रुह (ऊपर चढ़ना)+क्त] १. नीचे उतरा या उतारा हुआ। 'आरूढ' का विपर्याय। २. जो दृढ़ या तत्पर न हो।

अव-रूप—वि० [सं० ब० स०] दूषित या मलिन रूपवाला।

पुं० बुरा या भद्दा रूप।

अवरेखना—स० [सं० अवलेखन] १. चित्र आदि अंकित करना या बनाना। उरेहना। २. ध्यानपूर्वक देखना या समझना। ३. अनुमान या कल्पना करना। ४. अनुभव करना। जानना। ५. महत्त्व, मान या मूल्य समझना।

अवरेब—पुं० [सं० अव=विरुद्ध+रेव=गति] १. तिरछी चाल। २. पहनने के कपड़े की तिरछी काट। ३. टेढ़ी या पेचीली उक्ति अथवा बात। ४. उलझन या संकट की स्थिति। ५. झगड़ा। विवाद। ६. खराबी। दोष। बुराई।

अवरेबदार—वि० [हिं०+फा०] १. तिरछी काट का (कपड़ा)। २. पेचीला (कथन या वाक्य)।

अवरोक्त—वि० [सं० अवर-उक्त स० त०] १. बाद में कहा हुआ। २. जिसका उल्लेख अंत या बाद में हुआ हो।

अवरोचक—पुं० [सं० अव√रुच् (दीप्ति)+ णिच्+ण्वुल्-अक] एक रोग जिसमें भूख बहुत कम हो जाती है।

अवरोध—पुं० [सं० अव√रुध् (रोक)+घञ्] १. वह तत्त्व या पदार्थ जो किसी उद्देश्य की पूर्ति या कार्य की सिद्धि में बाधक हो। वह तत्त्व या वस्तु जो बीच में या सामने आकर आगे बढ़ने से रोकती हो। २. चारों ओर से घेरने की क्रिया या भाव। ३. घेरा। ४. मार्ग या रास्ता बंद करना। ५. अंतःपुर।

अवरोधक—वि० [सं० अव√रुध्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० अवरोधिका] अवरोध करनेवाला।

अवरोधन—पुं० [सं० अव√रुध्+ल्युट्-अन] [वि० अवरोधक, अवरुद्ध, अवरोधित] १. अवरोध करने की क्रिया या भाव। २. अंतःपुर।

अवरोधना—स० [सं० अवरोधन] [वि० अवरोधक] १. अवरोध करना। २. मार्ग छेकना अथवा आगे बढ़ने से रोकना। ३. चारों ओर से घेरना। घेरा डालना।

अवरोधिक—पुं० [सं० अवरोध+ठन्–इक] अंतःपुर का प्रहरी।
वि०=अवरोधक।

अवरोधित—भू० कृ० [सं० अव√रुध्+णिच्+क्त] १. जिसका अवरोध किया गया हो। २. जिसका मार्ग रोका गया हो। ३. जिसे चारों ओर से घेरा गया हो।

अवरोधी (धिन्)—वि० [सं० अव√रुध्+णिनि] [स्त्री० अवरोधिनी] =अवरोधक।

अवरोपण—पुं० [सं० अव√रुह्+णिच्, पुक्,+ल्युट्-अन] १. उखाड़ना। 'रोपण' का विपर्याय। २. न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति को अभियोग से मुक्त करना, जिस पर अभियोग सिद्ध न होता हो। (डिस्चार्ज)

अवरोपणीय—वि० [सं० अव√रुह्+णिच् पुक्+अनीयर्] १. जिसका अवरोपण होने को हो। २. जिसका अवरोपण हो सकता हो।

अवरोपित—भू० कृ० [सं० अव√रुह्+णिच्-पुक्+क्त] १. जिसका अवरोपण हुआ हो। उखाड़ा हुआ। २. जो अभियोग आदि से मुक्त किया गया हो।

अवरोह—पुं० [सं० अव√रुह्+घञ्] १. ऊपर या ऊँचाई से नीचे आना या उतरना। जैसे—संगीत में स्वरों का अवरोह। २. अवनति। पतन। ३. मूल से शाखाएँ निकलना। ४. लता का वृक्ष के चारों ओर लिपटना। ५. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें किसी प्रकार के उतार का उल्लेख होता है। (वर्द्धमान नामक अलंकार का विपरीत रूप)

अवरोहक—वि० [सं० अव√रुह्+ण्वुल्-अक] ऊपर या ऊँचाई से नीचे की ओर आने या उतरनेवाला।
पुं० अश्वगंध। असगंध।

अवरोहण—पुं० [सं० अव√रुह्+ल्युट्-अन] ऊपर या ऊँचाई से नीचे उतरने की क्रिया या भाव। उतार।

अवरोहना—अ० [सं० अवरोहण] ऊपर या ऊँचाई से नीचे आना या उतरना।
स० [सं० अवरोधन] रोकना।
स० दे० 'उरेहना'।

अवरोहशाखी (खिन्)—पुं० [सं० अवरोह-शाखा, कर्म० स० +इनि] वट-वृक्ष।

अवरोहिका—स्त्री० [सं० अव√रुह्+ण्वुल्-अक-टाप्, इत्व] अश्वगंध (ओषधि)।

अवरोहिणी—स्त्री० [सं० अव√रुह्+णिनि णिनि-ङीप] फलित ज्योतिष में, एक अनिष्ट दशा जो नक्षत्रों के कुछ विशिष्ट स्थानों में पहुँचने से उत्पन्न होती है।

अवरोहित—भू० कृ० [सं० अवरोह+इतच्] १. जिसने अवरोह किया हो या जिसका अवरोह हुआ हो। नीचे आया या उतरा हुआ। २. अवनत। पतित।

अवरोही (हिन्)—वि० [सं० अव√रुह+णिनि] १. ऊपर से नीचे की ओर आनेवाला। २. जो क्रम के विचार से ऊँचे से नीचे की ओर हो। (डिसेन्डिंग) जैसे-अवरोही स्वर।
पुं० १. संगीत में आलाप, स्वर-साधन आदि का वह प्रकार या रूप जिसमें क्रमशः ऊँचे स्वरों के उपरांत नीचे स्वरों का उच्चारण होता है। 'आरोही' का विपर्याय। २. वटवृक्ष।

अवर्ग—वि० [सं० न० ब०] जो किसी वर्ग में न हो अथवा जिसका कोई वर्ग न हो।
पुं० [प० त०] स्वर वर्ण।

अवर्गित—वि० [सं० वर्ग+इतच्, न० त०] १. जो किसी वर्ग में न रखा गया हो। २. जिसके वर्ग न बनाये गये हों।

अवर्ण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई वर्ण या रंग न हो। रंग-हीन। २. बिगड़े हुए अथवा भद्दे रंगवाला। ३. जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि में से किसी वर्ण का न हो।
पुं० [कर्म० स०] अकार अक्षर। अ।

अवर्ण्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका वर्णन न हुआ हो अथवा न हो सकता हो। वर्णनातीत। २. जो वर्ण्य या उपमेय न हो अर्थात् उपमान।

अवर्त्त—पुं० [सं०√वृत् (बरतना)+घञ्, न० त०] १. अपारदर्शी वस्तु। २. पानी की भँवर। आवर्त्त। ३. घुमाव। चक्कर। फेर।

अवर्त्तन—पुं० [सं० √वृत्+ल्युट्-अन, न० त०] १. जीविका या वृत्ति का अभाव। २. पारस्परिक बरताव या व्यवहार का अभाव। दे० *'आवर्त्तन'।

अवर्त्तमान—वि० [सं० न० त०] १. जो वर्त्तमान या प्रस्तुत न हो। अविद्यमान। २. जो उपस्थित न हो। अनुपस्थित।
पुं० वर्त्तमान न होने की अवस्था या भाव।

अवर्धमान—वि० [सं० न० त०] जो वर्धमान न हो अर्थात् न बढ़नेवाला।

अवर्षण—पुं० [सं० न० त०] वर्षा या वृष्टि का अभाव। अनावृष्टि। सूखा।

अवलंघन—पुं० [सं० अव√लङ्घ् (लाँघना)+ल्युट्-अन]=उल्लंघन।

अवलंघना—स० [सं० अवलंघन] १. उल्लंघन करना। २. लाँघना।

अवलंब—पुं० [सं० अव√लम्ब् (सहारा लेना)+घञ्] १. वह जिस पर कोई चीज या बात आश्रित, स्थित या ठहरी हुई हो। जिसपर कुछ टिका या ठहरा हो। आश्रय। सहारा। जैसे—हमारा तो ईश्वर के सिवा और कोई अवलंब नहीं है। २. किसी के सहारे लटकनेवाली वस्तु।

अवलंबक—पुं० [सं० अव√लम्ब्+ण्वुल्-अक] एक प्रकार का छंद या वृत्त।

अवलंबन—पुं० [सं० अव√लम्ब्+ल्युट्-अन] १. किसी के सहारे टिकने या ठहरने की क्रिया या भाव। किसी को आधार बनाकर या मानकर उस पर आश्रित होना। २. अंगीकार, ग्रहण या धारण करना। ३. अनुकरण। अनुसरण। ४. छड़ी, जिसके सहारे चलते हैं।

अवलंबना*—स० [सं० अवलंबन] १. किसी को अवलंब बना या मानकर उसके सहारे टिकना या ठहरना। किसी को आधार मानकर उस पर आश्रित होना। २. ग्रहण या धारण करना।

अवलंबित—भू० कृ० [सं० अव√लम्ब् + क्त] किसी के सहारे पर टिका या ठहरा हुआ। आश्रित। जैसे—यह बात तो आप पर ही अवलंबित है।

अवलंबी (विन्)—वि० [सं० अव√लम्ब्+णिनि] [स्त्री० अवलंबिनी] १.जो किसी आधार पर ठहरा या टिका हो। अवलंब ग्रहण करनेवाला। २. ग्रहण या धारण करनेवाला।

अवलक्ष—पुं० [सं० अव√लक्ष् (देखना)+घञ्] सफ़ेद रंग।
वि० [अवलक्ष+अच्] सफेद रंग का।

अवलग्न—वि० [सं० अव√लग् (संग)+क्त] १. किसी के साथ लगा, मिला या सटा हुआ। २. संबंध रखनेवाला। लगा हुआ।
पुं० शरीर का मध्य भाग जिसमें ऊपर और नीचे के भाग लगे होते हैं। धड़।

अवलच्छना—स० [सं० अव+लक्ष] देखना।
वि० स्त्री० [सं० अव√लक्षण] बुरेलक्षणोंवाली। अलक्षणी।

अवलि—स्त्री० = अवली।

अवलिप्त—वि० [सं० अव√लिप (लीपना)+क्त] १. लिपा या पुता हुआ। २. किसी काम, बात या विषय में अच्छी तरह डूबा या लगा हुआ। लीन। ३. अपने आप में किसी गुण का अवलेप करनेवाला। अपने आपको कुछ लगाने या समझनेवाला अर्थात् अभिमानी। (प्रिजम्पट्युअस)

अवलिप्ति—स्त्री० [सं० अव√लिप्+क्तिन्] १. अवलिप्त होने की अवस्था या भाव। २. अपने आप को कुछ लगाना या बड़ा समझना। अवलेप। (प्रिजम्पट्यूअसनेस)

अवलिया—पुं० दे० 'औलिया'।

अवली—स्त्री० [सं० अवलि] १. कुछ या कई वस्तुओं या व्यक्तियों के एक सीध में रहने या होने की अवस्था। पंक्ति। कतार। २. झुंड। समूह। ३. उपज या फसल का वह अंश जो पहले-पहले काटा जाय। ४. भेड़ों आदि पर से एक बार में काटा हुआ ऊन।

अवलीक—वि० [सं० अव्यलीक] १. पाप-रहित। निष्पाप। २. दोष-रहित। निर्दोष।

अवलीढ़—भू० कृ० [सं० अव√लिह् (आस्वादन)+क्त] १. खाया हुआ। भक्षित। २. चाटा हुआ।

अवलीला—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. क्रीड़ा या खेल। २. अनादर या अपमान।

अवलुंचन—पुं० [सं० अव√लुन्च् (काटना, हटाना) + ल्युट्-अन] १. काटना, छेदना या फाड़ना। २. उखाड़ना। ३. खोलना। ४. हटाना।

अवलुंचित—भू० कृ० [सं० अव√लुन्च्+क्त] १. जिसका अवलुंचन हुआ हो। २. खुला हुआ।

अवलुंठन—पुं० [सं० अव√लुण्ठ् (चुराना)+ल्युट्-अन] १. जमीन पर लोटना। २. किसी का धन लूटना।

अवलुंठित—भू० कृ० [सं० अव√लुण्ठ् +क्त] १. जमीन पर लुढ़का या लोटा हुआ। २. जिसका सब कुछ लूट लिया गया हो।

अवलेखन—पुं० [सं० अव√लिख्+ल्युट्-अन] १. खुरचना, खोदना या चिह्न लगाना। २. कंघी आदि से सिर के बाल झाड़ना।

अवलेखना—स० [सं० अवलेखन] १. खोदना या खुरचना। २. चित्र या मूर्ति अंकित करना। उकेरना। ३. चिह्न या निशान लगाना।

अवलेखनी—स्त्री० [सं० अवलेखन+ङीप्] १. वह करण या वस्तु जिससे कुछ अंकित किया जाय। जैसे—कलम, कूंची आदि। २. कंघी।

अवलेखा—स्त्री० [सं० अव√लिख्+अ-टाप्]=अवलेखनी।

अवलेप—पुं० [सं० अव√लिप् (लीपना)+घञ्] १. उबटन, लेप आदि चिकने तथा सुगंधित तरल पदार्थ जो शरीर पर मले या लगाये जाते हैं। २. मलहम। ३. अपने आप में ऐसे गुणों या विशेषताओं का आरोप करना जो वास्तव में अपने में न हों अथवा बहुत कम हों। अपनी योग्यता के संबंध में आवश्यकता से अधिक होनेवाला भान। (प्रिजम्पशन) ४. अभिमान। ५. आक्रमण। चढ़ाई। ६. हिंसा। ७. संबंध।

अवलेपक—वि० [सं० अव√लिप्+ण्वुल्-अक] अपने आप में किसी बात का झूठा अवलेप करनेवाला। अपने आपको कुछ लगाने या बड़ा समझनेवाला। (प्रिजम्पट्यूअस)

अवलेपकता—स्त्री० [सं० अवलेपक+तल्-टाप्] अवलेपक होने की अवस्था, गुण या भाव।

अवलेपन—पुं० [सं० अव√लिप्+ल्युट्-अन] १. उबटन, लेप आदि सुगंधित पदार्थ शरीर पर लगाने की क्रिया या भाव। २. मलहम लगाना। ३. अपने आप में ऐसे गुणों या विशेषताओं का आरोप करना जो वास्तव में न हों। ४. लगाव। संबंध। ५. ऐब। दोष। ६. चंदन का वृक्ष।

अवलेपना— अ० [सं० अवलेप] १. अपने आपको दूसरों से बहुत बढ़ा-चढ़ा समझना। अपने में ऐसे गुणों का आरोप करना जो वास्तव में न हों। २. किसी पर कोई आरोप करना। दोष लगाना। उदा०—विद्यापति इह सुन वर नारि। पहु अव लेपिस दोष विचारि।—विद्यापति।

अवलेह—पुं० [सं० अव√लिह् (चाटना) +घञ्] [वि० अवलेह्य] १. गाढ़ी लेई। २. चाटने की वस्तु। जैसे—चटनी, शहद आदि। ३. ऐसी ओषधि या वस्तु जो चाटी जाय। ४. फलों आदि का वह गूदा और रस जो पकाकर गाढ़ा कर लिया गया हो। (जेली)

अवलेहन—पुं० [सं० अव√लिह्+ल्युट्-अन] जीभ से चाटने की क्रिया या भाव।

अवलेह्य—वि० [सं० अव√लिह्+ण्यत्] (ओषधि, चटनी आदि) जो चाटी जाने को हो अथवा चाटे जाने के योग्य हो।

अवलोक—पुं० [सं० अव√लुक् या लोक (देखना)+घञ्] १. दृष्टिपात। २. उद्देश्य विशेष से ध्यानपूर्वक देखना।
पुं०=आलोक (प्रकाश)।

अवलोकक—वि० [सं० अव√लोक्+ण्वुल्-अक] १. अवलोकन या दृष्टिपात करनेवाला। २. उद्देश्य विशेष से ध्यानपूर्वक देखनेवाला।

अवलोकन—पुं० [सं० अव√लोक्+ल्युट्-अन] १. किसी उद्देश्य से ध्यान पूर्वक देखने की क्रिया या भाव। २. दृष्टिपात करना। देखना। (आदर-सूचक)

अवलोकना—स० [सं० अवलोकन] १. ध्यानपूर्वक देखना। २. इस विचार से देखना कि इसमें कोई दोष तो नहीं है।

अवलोकनीय—वि० [सं० अव√लोक्+अनीयर] [स्त्री० अवलोकनीया] १. अवलोकन किये जाने के योग्य। २. बहुत सुंदर या अच्छा। दर्शनीय।

अवलोकित—भू० कृ० [सं० अव√लोक्+क्त] जिसका अवलोकन किया गया हो।
पुं० एक बुद्ध का नाम।

अवलोकितेश्वर—पुं० [सं० अवलोकित-ईश्वर, कर्म० स० या ष० स०] एक बोधिसत्त्व का नाम।

अवलोक्य—वि० [सं० अव√लोक्+ण्यत्] १. जिसका अवलोकन होने को हो। २. दे० 'अवलोकनीय'।

अवलोचना*—स० [सं० आलोचन] आँखों से दूर हटाना। सामने से दूर करना। उदा०—कोचै तकै इह चाँदनी ते अलि, याहि निवाहि व्यथा अवलोचै।—पद्माकर।

अवलोप—पुं० [सं० अव√लुप् (काटना)+घञ्] १. काटना। २. बल-पूर्वक छीनना या ले लेना। ३. आक्रमण करना।

अवलोम—वि० [सं० ब० स०] १. अनुकूल। २. उपयुक्त।

अववदन—पुं० [सं० अव√वद् (बोलना)+ल्युट्-अन] १. अनुचित वचन कहना। २. निंदा करना।

अववर्त्त—वि० [सं० अव√वृत् (बरतना)+घञ्] जितना अपेक्षित, आवश्यक या उचित हो, उससे कम या थोड़ा। (डिफिसिट)

पुं० आय या पावने से अधिक व्यय या देना होना। जैसे—अववर्त्त आय-व्ययिक=ऐसा आय-व्ययिक जिसमें आय से अधिक व्यय अथवा पावने से अधिक देना दिखलाया गया हो। (डेफिसिट बजट)

अववाद—पुं० [सं० अव√वद्+घञ्]=अपवाद।

अवश—वि० [सं० न० ब०] १. जो अधिकार या वश में न हो। २. जो अपने वश में न होकर किसी दूसरे के वश में हो।

पुं० [न० त०] वश में न होने अथवा वश न चलने की अवस्था या भाव।

अवशता—स्त्री० [सं० अवश+तल्-टाप्] 'अवश' होने की अवस्था या भाव। बेबसी। लाचारी।

अवशप्त—वि० [सं० अव√शप् (शापदेना)+क्त]=अभिशप्त।

अवशिष्ट—वि० [सं० अव√शिष् (बचना)+क्त] (कार्य, धन, पावना आदि) जो अभी बाकी या शेष बचा हो।

अवशीर्ण—वि० [सं० अव√शॄ (हिंसा)+क्त] १. कटा या टूटा हुआ। छिन्न-भिन्न। २. छितराया हुआ।

अवशीर्ष—वि० [सं० ब० स०] १. जिसका सिर नीचे की ओर झुक गया हो। २. जिसका ऊपरी भाग नीचे हो गया हो। औंधा। ३. नत-मस्तक।

पुं० एक प्रकार का नेत्र रोग।

अवशेष—पुं० [सं० अव√शिष्+घञ्] १. वह जो कुछ उपभोग, नाश, विश्लेषण व्यय आदि के उपरांत बचा हो। २. वह धन या संपत्ति जो किसी के मरने के उपरांत बची हो। ३. अंत। समाप्ति।

अवशेषित—भू० कृ० [सं० अवशिष्ट] १. जिसका अवशेष या अंत किया गया हो। २. अवशिष्ट।

अवशोषण—पुं० [सं० अव√शुष् (सोखना)+णिच् +ल्युट—अन] [वि० अवशोषक, अवशोषी] किसी पदार्थ विशेषतः तरल पदार्थ को खींचकर इस प्रकार अपने आप में मिला लेना कि जल्दी उसका पता न चले। सोखना। (एब्जार्पशन)

अवश्यंभावी (विन्)—वि० [सं० अवश्यम्√भू (होना)+णिनि] जिसका घटित होना बिलकुल निश्चित हो। जो अवश्य होने को हो। (इनेविटेबुल)

अवश्य—अव्य० [सं० अवश्यम्] १. निश्चित रूप से। २. बिना कोई अंतर हुए।

वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अवश्या] १. जिस पर कोई वश न हो। २. जो वश में न किया जा सके।

अवश्यमेव—अव्य० [सं० अवश्यम्-एव, द्व० स०] हर परिस्थिति में अवश्य और निश्चित रूप से।

अवश्या—स्त्री० [सं० अव√श्यै (गति)+क-टाप् या न-वश्या न० त०] १. मन-माना आचरण करनेवाली स्त्री। स्वैरिणी। २. कुलटा या दुश्चरित्रा स्त्री। ३. कोहरा। पाला।

अवश्याय—पुं० [सं० अव√श्यै+ण] १. तुषार। पाला। २. ओस। ३. वर्षा की झींसी या फुहार। ४. हिम-कण। ५. अभिमान।

अवष्टंभ—पुं० [सं० अव√स्तम्भ् (रोकना)+घञ्] १. सहारा। आश्रय। २. स्तंभ। खंभा। ३. सोना। स्वर्ण ४. नम्रता का अभाव। उद्दंडता। ५. अभिमान। ६. पूरी तरह से ठहरना या रुकना। ७. साहस। हिम्मत। ८. श्रेष्ठता। ९. पक्षाघात नामक रोग।

अवष्टंभन—पुं० [सं० अव√स्तम्भ्+ल्युट्-अन] १. सहारा देने या लेने की क्रिया या भाव। २. रुकाव। स्तंभन।

अवष्टब्ध—भू० कृ० [सं० अव√स्तम्भ्+क्त] १. जिसने कोई सहारा लिया हो। २. रोका हुआ।

अवसंजन—पुं० [सं० अव√सञ्ज् (चिपकना)+ल्युट्-अन] गले लगाना। आलिंगन।

अवस—क्रि० वि०=अवश्य।

वि०=अवश।

अवसक्त—भू० कृ० [सं० अव√सञ्ज्+क्त] चिपका, सटा या लगा हुआ।

अवसक्थिका—स्त्री० [सं० ब० स० कप्-टाप्] १. बैठने की वह मुद्रा जिसमें पीठ और घुटने कपड़े से बाँध लिए जाते हैं। २. उक्त अंगों को बाँधनेवाला कपड़ा। ३. खाट की उनचन।

अवसथ—पुं० [सं० अव√सो (अंत करना)+कथन] १. रहने का स्थान। निवास स्थान। २. घर। मकान। ३. विद्यार्थियों के रहने का स्थान। (बोर्डिंग, होस्टल)

अवसन्न—वि० [सं० अव√सद् (उदास या दुःखी होना) +क्त] [भाव० अवसन्नता] १. जिसे विषाद हो। दुःखी। २. नाश की ओर बढ़नेवाला। ३. उत्साह या तत्परता से रहित। सुस्त। ४. दबा या धँसा हुआ। ५. जो सुन्न या स्तब्ध हो गया हो।

अवसन्नता—स्त्री० [सं० अवसन्न+तल्-टाप्] १. अवसन्न होने की अवस्था या भाव। २. विषाद। दुःख। ३. विनाश। बरबादी। ४. आलस्य। सुस्ती।

अवसर—पुं० [सं० अव√सृ (गति)+अच्] १. नियत या निश्चित परिस्थिति या समय। जैसे—इसका अवसर एक वर्ष बाद आयेगा। २. ऐसी अनुकूल या वांछनीय परिस्थिति जिसमें अपनी रुचि के अनुसार कार्य किया जा सके। जैसे—ऐसा अवसर भाग्य से ही मिलता है।

मुहा०—**अवसर चूकना**=किसी अनुकूल या इष्ट परिस्थिति का हाथ से निकल जाना। **अवसर ताकना**=अनुकूल या इष्ट परिस्थिति की प्रतीक्षा में रहना। **अवसर लेना**=उपयुक्त समय देखकर किसी से बदला चुकाना।

३. दे० 'अवकाश'।

अवसर-ग्रहण—पुं० [ष० त०] दे० 'अवकाशग्रहण'।

अवसर-प्राप्त—वि० [सं० ब० स०] = अवकाश-प्राप्त।

अवसरवाद—पुं० [ष० त०] एक पाश्चात्य दार्शनिक सिद्धांत जिसके

अनुसार ईश्वर ही कर्त्ता और ज्ञाता माना जाता है और जीव उसका निमित्त मात्र समझा जाता है। २. यह सिद्धांत कि जब जैसा अवसर आवे तब वैसा काम करके अपना मतलब निकालना चाहिए। (अपारच्युनिज्म)

अवसरवादी (दिन्)—वि० [सं० अवसरवाद+इनि] अपने लाभ या अपने स्वार्थ के लिए सदा उपयुक्त अवसर की ताक या तलाश में रहने और उससे लाभ उठानेवाला।

अवसरिक—वि० [सं० अवसर+ठन्-इक] बीच-बीच में या कुछ विशिष्ट अवसरों पर होता रहनेवाला। (अकेजनल)

अवसर्ग—पुं० [सं० अव√सृज् (त्यागना) +घञ्] १. मुक्ति। छुटकारा। २. शिथिलता। ३. देन अथवा दंड आदि में होनेवाली कमी या छूट। (रेमिशन)

अवसर्जन—पुं० [सं० अव√सृज्+ल्युट्-अन] १. छोड़ना। त्यागना। २. मुक्त या स्वतंत्र करना।

अवसर्प—पुं० [सं० अव√सृप् (गति)+घञ्] भेदिया। जासूस।

अवसर्पण—पुं० [सं० अव√सृप्+ल्युट्-अन] १. ऊपर से नीचे आना या उतरना। २.अधःपतन।

अवसर्पिणी—स्त्री० [सं० अव√सृप्+णिनि-ङीप्] जैन शास्त्रानुसार पतन का वह काल विभाग जिसमें रूप आदि का क्रमशः ह्रास होता है। अवरोह। विरोह। विवर्त्त।

अवसर्पी (र्पिन्)—वि० [सं० अव√सृप्+णिनि] नीचे आने या उतरनेवाला।

अवसव्य—वि० =अपसव्य।

अवसाद—पुं० [सं० अव √सद् (खिन्न होना) +घञ्] [वि० अवसन्न, भू० कृ० अवसादित, कर्त्ता अवसादक] १. आशा, उत्साह, शक्ति आदि का अभाव। २. विषाद। रंज। ३. मन या शरीर की ऐसी थकावट या शिथिलता जिसमें कुछ भी करने को जी न चाहे। (लैस्सिट्यूड) ४. पराजय। हार। ५. दुर्बलता। कमजोरी। ६. अन्त। समाप्ति।

अवसादक—वि० [सं० अव√सद+णिच्+ण्वुल्-अक] १. थकाने या सुस्ती लानेवाला। २. अंत या समाप्त करनेवाला।

अवसादन—पुं० [सं० अव√सद्+णिच्+ल्युट्-अन] १. शिथिल या हतोत्साह होने की अवस्था या भाव। थकावट। २. विनाश। ३. विरक्ति। ४. घाव की मरहम-पट्टी। (ड्रेसिंग)

अवसादना*—अ० [सं० अवसाद] १. अवसाद या विषाद से युक्त होना। दुःखी होना। २. निराश होना।

स० १. किसी को अवसाद से युक्त या पूर्ण करना। २. नष्ट करना।

अवसादी (दिन्)—वि० [सं० अवसाद+इनि] १. अवसाद उत्पन्न करनेवाला। २. अवसाद से युक्त फलतः शिथिल या हतोत्साह।

अवसान—पुं० [सं० अव√सो (नष्ट करना) + ल्युट्-अन] १. ठहरने या रुकने की क्रिया या भाव। ठहराव। विराम। २. वह विन्दु या स्थान जहाँ किसी प्रकार के विकास, विस्तार, वृद्धि आदि का अंत, पूर्ति या समाप्ति होती हो। (टर्मिनेशन) उदा० –(क) नहिं तव आदि मध्य अवसाना। –तुलसी। (ख) दिवस का अवसान समीप था। –हरिऔध। ३. अंत। समाप्ति। ४. सीमा। हद। ५. मरण। मृत्यु। ६. कविता या छंद का अंतिम चरण। ७. पतन।

पुं० [फा० औसान] १. चेतना। ज्ञान। २. संज्ञा। होश। उदा०—वद्दारी वर कहि वीर अवसान संभारिय। –चंदवरदाई।

पुं०=एहसान।

अवसानक—वि० [सं० अवसान + णिच्+ण्वुल्-अक] १. अवसान करनेवाला। २. जो अंत या सीमा तक पहुँच रहा हो।

पुं० वह विंदु या स्थान जहाँ पहुँचने पर किसी क्रिया, रेखा आदि का अवसान होता हो (टर्मिनस)

अवसानिक—वि० [सं० आवसानिक] अवसान (अंत या समाप्ति) से संबंध रखने या उसमें होनेवाला।

अवसाय—पुं० [सं० अव√सो+घञ्] १. अंत या समाप्ति। २. नाश। ३. निष्कर्ष। ४. निश्चय।

अवसायिता—स्त्री० [सं० अवसित=ऋद्ध]=ऋद्धि (डिं०)।

अवसायी (यिन्)—वि० [सं० अव√सो+णिनि] रहनेवाला। निवासी।

अवसि—क्रि० वि०=अवश्य।

अवसिक्त—वि० [सं० अव √सिच् (सींचना) +क्त] सींचा हुआ।

अवसित—वि० [सं० अव√सो+क्त] १. रहनेवाला। निवासी। २. जो पूर्ण या समाप्त हुआ हो। ३. अच्छी तरह पका हुआ। परिपक्व। ४. निश्चित। ५. लगा या सटा हुआ। संबद्ध। ६. किसी में वर्त्तमान या स्थित। ७. परिवर्त्तित।

अवसी—स्त्री० [सं० आवसित प्रा० आवसिअ=पका धान्य] नवान्न आदि के लिए काटा जानेवाला धान्य या उसका पूला।

वि० [सं० अव√स्वप् (सोना)+क्त] सोया हुआ।

अवसृष्ट—भू० कृ० [सं० अव√सृज् (त्यागना)√क्त] १. त्यागा हुआ। त्यक्त। २. दिया हुआ। दत्त। ३. निकाला हुआ।

अवसेक—पुं० [सं० अव√सिच्+घञ्] १. सींचना। सिंचन। २. एक प्रकार का नेत्र-रोग।

अवसेख—*वि० पुं०=अवशेष।

अवसेचन—पुं० [सं० अव√सिच्+ल्युट्-अन] १. पानी से सींचना। २. पसीजना। ३. औषध आदि के द्वारा रोगी के शरीर से पसीना निकालना। ४. शरीर का विकृत रक्त निकालना (जैसे-जोंक या सींगी लगाकर या फसद खोलकर)।

अवसेर*— स्त्री० [सं० अवसेरु=बाधक] १. उलझन। झंझट। २. देर। विलम्ब। ३. बेचैनी। विकलता। ४. चिंता। व्यग्रता।

अवसेरना—स० दे० 'अवसेर'।

अ० विलंब करना। देर लगाना।

अवसेष†—वि० =अवशेष।

वि०=विशेष। उदा०—महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष। —रहीम।

अवसेषित*—वि०=अवशिष्ट।

अवस्कंद—पुं० [सं० अव√स्कन्द् (गति) घञ्] १. नीचे आना या उतरना। २. वह स्थान जहाँ अस्थायी रूप से तंबू आदि लगाकर सेना ठहरी हो। ३. तंबू। ४. आक्रमण। ५. बरात के ठहरने का स्थान। जनवासा।

अवस्कंदक—वि० [सं० अव√स्कन्द्+ण्वुल्-अक] १. नीचे उतरनेवाला। २. आक्रमण करनेवाला। ३. किसी के ऊपर कूदनेवाला।

अवस्कंदित—भू० कृ० [सं० अव√स्कन्द् + क्त] १. जिस पर आक्रमण

किया गया हो। आक्रांत। २. नीचे आया या उतरा हुआ। ३. अमान्य किया हुआ। ४. नहाया हुआ। स्नात।

अवस्कर—पुं० [सं० अव√कृ (विक्षेप)+अप्, सुट्] १. मल। विष्ठा। २. गोवर। ३. कूड़ा-कर्कट। ४. वह स्थान जहाँ मल-मूत्र, विष्ठा आदि फेंका जाता है। कतवारखाना।

अवस्करक—पुं० [सं० अवस्कर+कन्] १. कूड़ा-कर्कट, गोवर, मलमूत्र, विष्ठा आदि उठानेवाला। २. गंदे या मलिन स्थान में रहनेवाला। जैसे-गोवरैला। ३. झाड़ू।

अवस्तार—पुं० [सं० अव√स्तृ (आच्छादन)+घञ्] १. परदा। यवनिका। २. वह परदा जो खेमे के चारों ओर लगाया जाता है। कनात। ३. वैठने की वस्तु। जैसे—आसन, चटाई आदि।

अवस्तु—वि० [सं० न० त०] १. जो वस्तु न हो। २. तुच्छ। नगण्य। हीन।

पुं० १. वस्तु का अभाव। २. तुच्छ, नगण्य अथवा हीन वस्तु।

अवस्थांतर—पुं० [सं० अवस्था-अंतर, मयू० स०] एक अवस्था से वदली हुई दूसरी अवस्था। परिवर्तित दशा या स्थिति।

अवस्था—स्त्री० [सं० अव√स्था (ठहरना)+अङ-टाप्] १. किसी विशिष्ट और स्वतंत्र रूप में अस्तित्व में (वर्त्तमान या स्थित) होने का तत्त्व, भाव या स्वरूप। दशा। स्थिति। हालत। (कन्डिशन) जैसे-(क) कौमार्य या वाल्यावस्था; (ख) रोगी की अवस्था; (ग) युद्ध या शांति की अवस्था आदि।

विशेष—(क) तात्त्विक दृष्टि से 'अवस्था' किसी वात या वस्तु का वह वर्त्तमान रूप है जिससे वह स्थित दिखाई देती है और जिसमें समयानुसार परिवर्त्तन भी होता रहता है। यह बहुत कुछ वातावरण या परिस्थितियों पर भी आश्रित रहती है। (ख) वेदांत में इसी आधार पर मनुष्य की चार (जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) तथा निरुक्त के अनुसार पदार्थों की छः (जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणयन, अपक्षय और नाश) अवस्थाएँ मानी गई हैं। (ग) काम-शास्त्र और साहित्य में इसी को 'दशा' कहते हैं, जो गिनती में दस कही गई हैं। (विशेष दे० 'दशा')

२. आयु का उतना भाग जितना कथित समय तक वीत चुका हो। उमर। वय। जैसे—दस वर्ष की अवस्था में ही वे घर से निकल पड़े थे। ३. किसी प्रकार की दृश्य आकृति या स्वरूप। जैसे—उनकी अवस्था दिन पर दिन विगड़ती जा रही है। ४. भग। योनि।

अवस्थान—पुं० [सं० अव√स्था+ल्युट्-अन] १. आकर ठहरने या रुकने या कोई काम होने का स्थान। (स्टेशन) जैसे—रेलवे अवस्थान (रेलवे स्टेशन), आरक्षी अवस्थान (पुलिस स्टेशन) आदि। २. निवास-स्थान। ३. कोई अमूर्त्त परन्तु निश्चित या विशिष्ट स्थान या स्थिति। (स्टेज) ४. वह केंद्र विंदु जिसपर और सब वातें या वस्तुएँ आश्रित या स्थित हों। ५. संपत्ति आदि पर रहने या होनेवाला किसी का अधिकार या स्वत्व।

अवस्थापन—पुं० [सं० अव√स्था+णिच्, पुक्,+ल्युट्-अन] १. निश्चित या तै करना। २ निवास-स्थान।

अवस्थित—भू० कृ० [सं० अव√स्था+क्त] १. किसी विशिष्ट अवस्था में आया हुआ। २. किसी विशिष्ट स्थान में ठहरा हुआ।

अवस्थिति—स्त्री० [सं० अव√स्था+क्तिन्] १. स्थित होने की अवस्था या भाव। २. वर्त्तमान होने की अवस्था या भाव। वर्त्तमानता।

अवस्फूर्ज—पुं० [सं० अव√स्फूर्ज् (वज्र का शब्द)+घञ्] वादलों की गड़गड़ाहट या गरज।

अवस्यंदन—पुं० [सं० अव√स्यन्द् (वहना) +ल्युट्-अन] १. टपकना या चूना। २. रसना।

अवह—वि० [सं० √वह् (ढोना)+अच्, न० व०] जिसका वहन न हो सके। जो ढोया न जा सके।

पुं० १. वह प्रदेश जिसमें नदी-नाले न वहते हों। २. आकाश के तृतीय स्कंध पर पाई जानेवाली वायु।

अवहनन—पुं० [सं० अव√हन् (हिंसा) +ल्युट्-अन] १. पीटना। २. पटकना। ३. पछोड़ना। फटकना।

अवहरण—पुं० [सं० अव√हृ (चुराना)+ल्युट्-अन] १. चुरा, छीन या लूट लेना। २. दूर हटाना। ३. सेना का पीछे हटकर (विश्राम के लिए) कहीं ठहरना।

अवहस्त—पुं० [सं० एकदेशि त० स०] हथेली का पिछला भाग।

अवहार—पुं० [अव√हृ (हरण)+ण] १. युद्ध रत दलों का कुछ नियत समय के लिए युद्ध वंद करना। अस्थायी रूप से युद्ध वंद होना। (आर्मिस्टिक) २. दोनों दलों में उक्त निश्चय संवंधी होनेवाली संधि। ३. सूंस। ४. घड़ियाल। ५. निमंत्रण।

अवहारक—पुं० [सं० अव√हृ+ण्वुल्+अक] १. वह जो कुछ समय के लिए झगड़ा या लड़ाई रोक दे। २. सूंस नामक जल-जंतु।

अवहार्य—वि० [सं० अव√हृ +ण्यत्] १. जिसका वहन हो सकता हो अथवा जो वहन किये जाने के योग्य हो। २. दंडनीय। ३. जिसे फिर से प्राप्त किया जा सकता हो।

अवहास—पुं० [सं० अव√हस् (हँसना)+घञ्] १ वहुत धीरे से हँसना। मुस्काना। २. उपहास करना। दिल्लगी उड़ाना।

अवहित—वि० [सं० अव√धा (धारण)+क्त] १. किसी में गिरा या पड़ा हुआ। जैसे-जल में अवहित। २. किसी में रखा या समाया हुआ। ३. सावधान।

अवहित्थ—पुं० [सं० वहिस्√स्था (ठहरना)+क पृपो० सिद्धि न० त०] साहित्य में चतुरतापूर्वक मन का कोई भाव छिपाना। (यह एक संचारी भाव माना गया है)।

अवहित्था—स्त्री०=अवहित्थ।

अवही—पुं० [सं० अवह] १. वह प्रदेश जहाँ नदी-नाले न हों। २. एक प्रकार का ववूल।

अवहृत—भू० कृ० [सं० अव√हृ +क्त] १. एक ओर हटाया हुआ। २. हरण किया हुआ। ३. दंडित।

अवहेलन—स्त्री० [सं० अव√हेड् (अनादर)+ल्युट्, अन, लत्व] [भू० कृ० अवहेलित] १. अवज्ञा। तिरस्कार। २. किसी आज्ञा, आदेश या व्यक्ति की ओर जान-वूझकर उचित ध्यान न देना। उपेक्षा (डिस्रिगार्ड) ३. लापरवाही।

अवहेलना—स्त्री० [सं० अव√हेड्+युच्-अन, लत्व]=अवहेलन।

अवहेला—स्त्री० [सं० अव√हेड्+अ-टाप्, ड के स्थान में ल]=अवहेलन।

अवहेलित—भू० कृ० [सं० अव√हेड्+क्त, लत्व] १. (आदेश या व्यक्ति) जिसकी अवहेलना हुई हो। २. तिरस्कृत।

अवाँ—पुं० =आवाँ।
अवांग—वि० [सं० अवङ्] नीचे की ओर झुका हुआ। नत।
अवांगना*—स० [सं० अवाङ्] नीचे की ओर मोड़ना या झुकाना। उदा०—लीन्हेंसो नवाइ डीठि पगनि अवाँगी रो। -पद्माकर।
अवांछनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो वांछनीय (अभिलषित) या इष्ट) न हों। २. वांछना के लिए अनधिकारी या अपात्र। (अन्डिजायरेबुल)
अवांछित—वि० [सं० न० त०] १. जो वांछित न हो। २. जिसकी वांछा न की गई हो।
अवांतर—वि० [सं० अव-अंतर, अत्या० स०] १. जो दो छोरों, वस्तुओं या, विन्दुओं के बीच में स्थित हो। जैसे-अवांतर दिशा, अवांतर देश आदि। २. जो किसी प्रकार भेद या वर्ग के अंतर्गत हो अथवा किसी में उप-भेद आदि के रूप में मिला हो। जैसे-घोड़ों, तलवारों आदि के अनेक अवांतर भेद होते हैं। ३. गौण। ४. अतिरिक्त।
पुं० १. बीच। मध्य। २. भीतरी भाग या स्थान।
अवाँसना—स० [सं० वासन] नये कपड़े, बरतन आदि पहले पहल प्रयोग में लाना।
अवाँसी—स्त्री० [सं० अवासित] नवान्न के लिए फसल में से पहले-पहल काटकर लाया हुआ बोझ। ददरी।
अवा—पुं० =आँवाँ।
अवाई—स्त्री० [हिं० आना=आगमन] १. आने की क्रिया या भाव। आगमन। उदा०—कहुँ कोउ ठठकि अवाइ लखत विनु पलक गिराए। रत्ना०। २. खेत की गहरी जोताई। 'सेव' का विपर्याय।
अवाक् (च्)—वि० [सं० न० व०] १. जिसके मुँह से वचन न निकल रहा हो। चुप। मौन। २. जो चकित या स्तंभित होने के कारण कुछ बोल न सके। ३. गूँगा।
अवाक्-पुष्पी—स्त्री० [व० स०]. १. वह पौधा जिसके फूल नीचे की ओर झुके हों। २. अधः पुष्पी। ३. सौंफ। ४. सोआ नामक साग।
अवाक्-शाख—पुं० [व० स०] अश्वत्थ। पीपल।
अवाक् श्रुति—वि० [वाक्-श्रुति, द्व० स०, न-वाक्श्रुति, न० व०] जिसे वाक् या श्रवण शक्ति न हो। वहिरा।
अवागी*—वि० [सं० अवाक्] १. जो बोलता न हो। २. चुप। मौन।
अवाङ—वि० [सं० अव√अञ्च (गति)+क्विन्] नीचे की ओर झुका हुआ जैसे-अवाङ्मुख।
अवाङनिरय—पुं० [अवाक्-निरय कर्म० स०] यह पृथ्वी जो नीचे के लोकों में सबसे नीची और निकृष्ट तथा नरक-तुल्य मानी गई है।
अवाच—वि० [सं० अवाच्य] जिसका उच्चारण या वाचन न हो सकता हो।
अवाची—स्त्री० [सं० अवाच्+ङीप्] दक्षिण दिशा।
अवाचीन—वि० [सं० अवाच्+ख-ईन] १. जो मुँह लटकाए या झुकाए हुए हो। अधोमुख। २ लज्जित।
अवाच्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका उच्चारण या वाचन करना उचित न हो। न कहने योग्य। २. जिससे बात करना उचित न हो। ३. दक्षिण दिशा का। दक्षिणी।
पुं० १. अनुचित या बुरी बात। गाली। २. न कहने योग्य बात।
अवाजा—पुं० [फा० आवाज़ः] १. आवाज। शब्द। २. ख्याति। प्रसिद्धि। उदा०—'साँचे विरदसूर के तारत लोकिनि लोक अवाज।-सूर।
अवाजी*—वि० [हिं० आवाज] १. आवाज या शब्द करनेवाला। २. वहुत जोर से चिल्लाने या बोलने वाला।
अवाड़ू—वि० [?] विपरीत। विमुख। (राज०) उदा०—'पाँखडियाँ ईकिउँ नहीं, दैव अवाड़ू ज्यांह। —ढोल। मारू।
अवात—वि० [सं० न० व०] जिसमें वात न हो। वातरहित। निर्वात।
अवादा*—पुं० दे० 'वादा'।
अवादी (दिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो वादी न हो। २. न बोलनेवाला। अवक्ता।
अवान—वि० [सं० अव√अन् (जीवित रहना)+अच्] सूखा हुआ। शुष्क।
अवापन—पुं० [सं० अव√आप् (पाना) + ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवाप्त] १. प्राप्त करना। पाना। २. आधिकारिक रूप से आदाय, कर, शुल्क आदि लगाना या स्थिर करना। (लेवी)
अवापित—भू० कृ० [सं० वप् (बोना)+णिच्+क्त, न० त०] १. (अन्न) जो बोया न गया हो, फलतः रोपा हुआ। २. न काटा हुआ। (अनाज या उपज) ३. दे० 'अवाप्त'।
अवाप्त—भू० कृ० [सं० अव√आप् (लाभ) + क्त] १. प्राप्त किया हुआ। २. जिस पर विधिक दृष्टि से या अधिकारपूर्वक ऐसा देन लगाया गया हो जो उचित प्राप्य के रूप में उगाहा जा सके। (लेवीड)
अवाप्ति—स्त्री० [सं० अव√आप्+क्तिन्] १. प्राप्ति। २. आधिकारिक रूप से या अधिकारपूर्वक आदाय, कर, शुल्क आदि के रूप में उगाहना, लगाना या लेना। ३. आधिकारिक रूप से लोगों को बुलाकर उन्हें शस्त्रित करना अथवा उनकी सेना खड़ी करना। (लेवी)
अवाप्य—वि० [सं० अव√आप्+ण्यत्] १. जिसे प्राप्त किया जा सके। २. जो प्राप्त किये जाने के योग्य हो अथवा जिसे प्राप्त करना उचित और आवश्यक हो। ३. जिस पर कर, शुल्क आदि लगाया जा सकता हो।
अवाय*—वि० [सं० अवार्य] १. जो रोका न जा सकता हो। अनिवार्य। २. उच्छृंखल। उद्धत।
पुं० [सं० अव√इ (गति) + घञ्] हाथ में पहनने का भूषण। कड़ा।
अवार—पुं० [सं०√वृ (वरण)+घञ्, न० त०] १. नदी के इस ओर का किनारा। 'पार' का विपर्याय। २. इस ओर, पार्श्व या सिरेवाला पक्ष।
अवारजा—पुं० [फा० अवार्ज, कदाचित् सं० आवर्ज्य से व्यु०] १. वह वही जिसमें असामी की जोत आदि का लेखा रहता है। २. दैनिक आय-व्यय आदि लिखने की वही। ३. दोहराने या मिलान करने की क्रिया या भाव। मुहा०—अवारजा करना=वही में लिखना। उदा०—अरि अवारजा प्रेम प्रीति को, असल तहाँ खतियावै। -सूर।
३. संक्षिप्त लेखा या विवरण।
अवारण—वि० [सं० न० व०] १. जिसका वारण या निषेध न हो सके। सुनिश्चित। २. दे० 'अनिवार्य'।
अवारणीय—वि० [सं० न० त०] जिसका वारण न किया जा सकता हो, फलतः अनिवार्य या असाध्य। जैसे—अवारणीय रोग।
अवारना*—स० [सं० वारण] १. रोकना। २ मना करना।
स०=वारना (निछावर करना)।

अवारपार—पुं० [सं० अवार-पार, द्व० स०,+अच्] समुद्र।
अव्य०=आर-पार।

अवारा—वि० दे० 'आवारा'।

अवारिका—स्त्री० [सं० न-वारि, न० ब०, कप्-टाप्] धनिया।

अवारिजा—पुं० दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [सं० न० त०] १. जो वारित न हुआ हो; अर्थात् जिसके संबंध में कोई बाधा या रुकावट न हो। २. जो अवरुद्ध या बंद न हो। जैसे-अवारित द्वार।

अवारी†—स्त्री० [सं० अवार] १. किनारा। सिरा। २. मोड़। ३. छेद। ४. मुँह।
स्त्री० [सं० वारण] लगाम।

अवार्य—वि० [सं० न० त०] =अवारणीय।

अवावट—पुं० [सं०] स्त्री के दूसरे सवर्ण पति या उपपति से उत्पन्न पुत्र। जैसे-कुंड और गोलक।

अवास*—पुं०=आवास।

अवासाँ*—पुं० [सं० आवास]=आवास। उदा०—सब रानिन्ह के आदि अवासाँ।—जायसी।

अवासा—वि० [सं० अवासस] जो वस्त्र न पहने हो। नंगा।
पुं० दिगंबर जैन साधुओं का एक संप्रदाय।

अवास्तव—वि० [सं० न० ब०] जो वास्तविक या सच्चा न हो फलतः निराधार या मिथ्या।

अवाहन—वि० [सं० न० ब०] १. जिसके पास वाहन या सवारी न हो। २. जो वाहन पर न बैठा हो।

अवि—पुं० [सं० √अव् (रक्षणआदि)+इन्] १. सूर्य। २. आक। मदार। ३. भेड़ा (पशु)। ४. बकरा। ५. ऊन। ६. पर्वत। ७. दीवार।
स्त्री० [सं०] १. लज्जा। २. ऋतुमती स्त्री।

अविक—पुं० [सं० अवि+कन्] १. भेड़। २. हीरा (रत्न)।

अविकच—वि० [सं० न० त०] जो खिला न हो, फलतः बन्द (फूल)।

अविकचित—वि० [सं० न० त०] = अविकच।

अविकट—पुं० [अवि+कटच्] भेड़ों का झुंड।

अविकत्थ—वि० [सं० वि√कत्थ् (श्लाघा)+अच्, न० त०] जो अपने संबंध में बढ़ा-चढ़ाकर बातें न करता हो। श्लाघाशून्य।

अविकल—वि० [सं० न० त०] १. जो विकल न हो अर्थात् शांत। २. ज्यों का त्यों। जैसे—अविकल अनुवाद। ३. पूरा। संपूर्ण। ४. क्रमित। व्यवस्थित। ५. निश्चित।

अविकल्प—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें या जिसका कोई विकल्प न हो। २. सदा निश्चित रूप से एक-सा रहनेवाला। ३. संदेह-रहित। असंदिग्ध।

अविका—स्त्री० [सं० अवि+क-टाप्] भेड़।

अविकार—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें विकार न हो। विकाररहित। २. जिसके आकार या रूप में परिवर्त्तन न होता हो।
पुं० [सं० न० त०] विकार का अभाव। परिवर्त्तन न होना।

अविकारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें विकार न हुआ हो या न हो सकता हो। विकारशून्य। २. जिसमें कोई विकार या परिवर्त्तन न हुआ हो। जो विकृत न हुआ हो।
पुं० व्याकरण में अव्यय शब्द जिसके रूप में कभी विकार नहीं होता। जैसे—अतः, परंतु, प्रायः बहुधा आदि।

अविकार्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें विकार उत्पन्न न किया जा सके या न होता हो। २. नित्य।

अविकाशी (शिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो विकाशी न हो। २. जिसका या जिसमें विकास न हो। ३. जिसमें चमक न हो। ४. जो खिला, फूला या बढ़ा न हो।

अविकृत—वि० [सं० न० त०] जो विकृत अर्थात् बिगड़ा हुआ न हो; फलतः ज्यों का त्यों।

अविकृति—स्त्री० [सं० न० त०] विकृत न होने की अवस्था या भाव। अविकार।

अविक्रम—वि० [सं० न० ब०] जो विक्रमशाली अर्थात् वीर न हो, फलतः अशक्त या कमजोर।
पुं० [न० त०] १. कमजोरी। दुर्बलता। २. कायरता।

अविक्रय—पुं० [सं० न० त०] विक्रय अर्थात् बिक्री न होना। (नान-सेल)

अविक्रांत—वि० [सं० न० त०] १. जो विक्रांत न हो। २. अतुलनीय। अनुपम। ३. कमजोर। दुर्बल।

अविक्रिय—वि० [सं० न० ब०] जिसमें किसी प्रकार का विकार न हुआ हो अथवा विकार उत्पन्न न किया जा सकता हो।

अविक्रेय—वि० [सं० न० त०] १. जो विक्रेय (बेचे जाने के योग्य) न हो। २. जो न बेचा जा सके। (अन्-सेलेबुल)

अविक्षत—वि० [सं० न० त०] जो विक्षत (टूटा-फूटा) न हो, फलतः पूरा या समूचा। २. जिसकी कोई क्षति या हानि न हुई हो। ३. जिसे आघात या चोट न लगी हो।

अविक्षिप्त—वि० [सं० न० त०] १. जो क्षिप्त (फेंका हुआ) न हो। २. जो विक्षिप्त (पागल या घबराया हुआ) न हो; फलतः धीर, शांत या समझदार।

अविगंधा-(गंधिका)—स्त्री० [सं० ब० स०] अजगंधा नामक पौधा।

अविगत—वि० [सं० न० त०] १. जो जाना न गया हो। अज्ञात। २. अज्ञेय। ३. अनिर्वचनीय। ४. अनश्वर। नित्य। ५. ईश्वर या ब्रह्म का एक विशेषण। उदा०—अविगत गोतीता, चरित पुनीता, माया रहित मुकुन्दा। —तुलसी।

अविगति—वि० [सं० न० ब०] जिसकी गति-विधि का कुछ पता न चले।
स्त्री० [न० त०] अविगत होने की अवस्था या भाव।

अविगान—पुं० [सं० न० त०] १. असामंजस्य या विरोध का अभाव। २. एकता। सादृश्य।

अविगीत—वि० [सं० न० त०] १. जो विगीत (कुत्सित या निंदित) न हो। २. जिसमें परस्पर असामंजस्य या विरोध न हो।

अविग्रह—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका विग्रह (रूप या शरीर) न हो। अशरीरी और निरवयव। २. जो अच्छी तरह जाना न गया हो। अविज्ञात। ३. निर्विवाद। निश्चित।

अविघात—पुं० [सं० न० त०] विघात का अभाव। बाधा या विघ्न न होना।

अविचल—वि० [सं० न० त०] १. न चलनेवाला। अचल। स्थिर। २. जो विचलित न हो। दृढ़ संकल्पवाला। ३. धीर। शांत।

अविचार—पुं० [सं० न० त०] [कर्त्ता अविचारी]-१. विचार (विशेषतः आवश्यक या उचित विचार) का अभाव। २. अज्ञान। अविवेक। ३. अनुचित या बुरा विचार। ४. अत्याचार या अन्याय।

अविचारित—वि० [सं० न० त०] १. जिसके संबंध में अभी कोई विचार न हुआ हो। २ बिना समझे-बूझे किया हुआ।

अविचारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें विचार करने की शक्ति न हो। जो विचार न कर सके। ना-समझ। २. जो औचित्य, न्याय, संगति आदि का विचार न करता हो। ३. (विषय) जिसमें आवश्यक या उचित विचार से काम न लिया गया हो। (क्व०)

अविचार्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका विचार न हो सकता हो। २. (इतना असंभव या निकृष्ट) जिसका ध्यान तक न किया जा सकता हो। (अनथिंकेबुल)

अविचालित—वि० [सं०न० त०] १. अटल। स्थिर। २. एकाग्रचित्त।

अविच्छिन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो विच्छिन्न (बीच में कटा या टूटा हुआ) न हो। २. निरंतर या लगातार चलता रहनेवाला। जैसे—अविच्छिन्न गति या प्रवाह।

अविच्छेद—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका या जिसमें विच्छेद न हुआ हो।
पुं० [न० त०] विच्छेद का अभाव।

अविच्युत—वि० [सं० न० त०] १. जो विच्युत या अपने स्थान से भ्रष्ट न हुआ हो। २. नित्य। शाश्वत।

अविजन—पुं० [सं० अभिजन] कुल । वंश।

अविजेय—वि०=अजेय।

अविज्ञ—वि० [सं० न० त०] [भाव० अविज्ञता] जो विज्ञ न हो; अर्थात् अनजान।

अविज्ञता—स्त्री० [सं० अविज्ञ+तल्-टाप] १. अविज्ञ होने की अवस्था या भाव। २. अज्ञान।

अविज्ञात—वि० [सं० न० त०] १. जिसके संबंध में कोई जानकारी न हो। २. अज्ञात। ३. नासमझ। ४. अस्पष्ट या संदिग्ध।

अविज्ञात-क्रय—पुं० [सं० कर्म० स०] कोई चीज (चोरी से) इस प्रकार खरीदना कि मालिक को पता न चलने पावे।

अविज्ञाता (तृ)—वि० [सं० न० त०] जो जाननेवाला न हो।
पुं० [न० ब०] जिससे बढ़कर जाननेवाला और कोई न हो अर्थात् परमेश्वर।

अविज्ञेय—वि० [सं० न० त०] १. जिसे जान न सके अथवा जो जाना न जा सके। २. जिसे जानना उचित न हो।

अवितत्—वि० [सं० वि√तन् (विस्तार)+क्विप्, न० त०] उलटा; विपरीत या विरुद्ध।

अवितत्-करण—पुं० [सं० कर्म० स०] १. पाशुपत दर्शन के अनुसार ऐसे कर्म करना जो अन्य मतवालों के विचार से गर्हित या निंदनीय हों। २. जैन शास्त्रों में, विवेक-रहित होकर निंदनीय कार्य करना। ३. कोई अनुचित काम करना।

अवितथ—वि० [सं० न० त०] १. जो मिथ्या न हो अर्थात् सत्य। २. इतना ठीक और वास्तविक कि उससे कुछ भी भूल या भ्रम न हो। (प्रिसाइज)
पुं० सचाई। सत्यता।

अवितद्भाषण—पुं० [सं० अवितत्-भाषण, कर्म० स०] ऐसी बात कहना जो सामान्यतः उपयुक्त, ठीक या वास्तविक न हो।

अवितर्कित—वि० [सं० न० त०] १. जिसके संबंध में तर्क न किया गया हो। २. जिसमें तर्क के लिए न हो। असंदिग्ध।

अवित्त—वि० [सं० न० त०] १. वित्त-रहित। दरिद्र। धन-हीन। २. अविख्यात। ३. अपरिचित।

अवित्ति—स्त्री० [सं० न० त०] वित्त (धन) न होने की अवस्था या भाव । गरीबी। निर्धनता।
वि०=अवित्त।

अवित्यज—वि० [सं०√त्यज् (छोड़ना)+क (बा०) न० त०] जो छोड़ा या त्यागा न जा सके। अनिवार्य और आवश्यक। जैसे—रसायन बनाने के लिए पारा अवित्यज है।

अविद—वि० [सं०√विद् (ज्ञान)+क, न० त०] जो विद् अर्थात् जानकार न हो। अनजान।

अविदग्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो अच्छी तरह जला न हो। २. जो पका न हो। ३. जो पचा न हो। ४. जो अच्छी तरह पूर्णता को न पहुँचा हो; अर्थात् अनुभवहीन या नौसिखुआ।

अविदित—वि० [सं० न० त०] १. जो विदित न हो। अज्ञात। २. गुप्त। ३. अविख्यात।

अविद्ध—वि० [सं० न० त०] जो बेधा या छेदा न गया हो।

अविद्धकर्णा (र्णी)—स्त्री० [न० ब०, टाप्] पाढा लता।

अविद्य—वि० [सं० न-विद्या, न० ब०] १. जो पढ़ा-लिखा या शिक्षित न हो। २. जिसका संबंध विद्या या ज्ञान से न हो। ३. दे० 'अविद्यमान'।

अविद्यमान—वि० [सं० न० त०] १. जो विद्यमान न हो। २. जिसकी कोई सत्ता या अवस्थिति न हो फलतः असत्। ३. झूठ। मिथ्या। ४. जिसका अस्तित्व महत्त्वपूर्ण, वास्तविक या स्थायी न हो। उदा०—अर्थ अविद्यमान जानिय ससृति नहिं जाइ गुसाईं।—तुलसी।

अविद्या—स्त्री० [सं० न० त०] १. विद्या का अभाव। २. दार्शनिक क्षेत्रों में, संसारिक मोह-माया में फँसानेवाला ऐसा मिथ्या या विपरीत ज्ञान, जो इंद्रियों या संस्कारों के दोष से उत्पन्न हो और जो आत्मिक कल्याण की दृष्टि से घातक सिद्ध हो। जैसे—अनित्य को नित्य, अनात्मा को आत्मा या झूठे सुख को सच्चा सुख मानना या समझना। सांख्य में इसे प्रकृति का गुण माना गया है।

अविद्वत्ता—स्त्री० [सं०न०त०] १. विद्वत्ता का अभाव। २. अज्ञान। मूर्खता।

अविद्वान्—वि० [सं०न०त०] जो विद्वान न हो; फलतः अज्ञानी या मूर्ख।

अविधवा—वि० [सं० न० त०] (स्त्री०) जो विधवा न हो।

अविधान—पुं० [सं० न० त०] विधान का अभाव।
वि० [सं० न० ब०] १. जो विधान या विधि के अनुसार ठीक न हो अथवा उसके विरुद्ध हो। २. उलटा। विपरीत।
* पुं०=अभिधान।

अविधि—वि० [सं० न० ब०] जो विधि-विरुद्ध हो।
स्त्री० विधि का अभाव।

अविधिक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जो विधिक न हो। २. जो विधि की दृष्टि से निषिद्ध हो। (इल्लीगल)

अविनय—पुं० [सं० न० त०] विनय (नम्रता, नियम-पालन, शिष्टता आदि) का अभाव, फलतः उद्दंडता, धृष्टता आदि। (इम्माडेस्टी)

अविनश्वर—वि० [सं० न० त०] जो नश्वर या नाशवान् न हो। अविनाशी। (इम्पेरिशेबुल)

अविनाभाव—पुं० [सं० विना-भाव, तृ० त०, न-विनाभाव, न० त०] दो वस्तुओं में होनेवाला ऐसा पारस्परिक अनिवार्य संबंध जो कभी टूटता न हो, अर्थात् जिसमें एक के विना दूसरा होता ही न हो। जैसे-आग और धूएँ में अविनाभाव संबंध होता है।

अविनाश—पुं० [सं० न० त०] विनाश का अभाव। सदा बना रहना।

अविनाशी (शिन्)—वि० [सं० न० त०] जिसका कभी विनाश न हो सकता हो, फलतः नित्य या शाश्वत।

पुं० ईश्वर।

अविनासी*—वि०, पुं०=अविनाशी।

अविनीत—वि० [सं० न० त०] जिसमें विनय न हो। जो विनीत न हो अर्थात् उद्दंड या धृष्ट। (इम्माडेस्ट)

अविनीता—स्त्री० [सं० अविनीत+टाप्] १. वह स्त्री जिसमें विनय न हो। २. कुलटा या बदचलन स्त्री।

अविपक्व—वि० [सं० न० त०] १ (अन्न, फल आदि) जो पका हुआ न हो। २. जो किसी विषय में परिपक्व या प्रौढ़ न हो। अधकचरा।

अविपट—पुं० [सं० अवि+पटच्] ऊनी वस्त्र।

अविपद्—स्त्री० [सं० न० त०] विपद् (कष्ट, दुःख आदि) का अभाव।

अविपन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो विपन्न न हो, अर्थात् नीरोग या स्वस्थ। २. जिसे आघात या चोट न लगी हो। ३. जिसे क्षति न पहुँची हो। ४. पवित्र। विशुद्ध।

अविपर्यय—पुं० [सं० न० त०] विपर्यय या विचार का अभाव।

अविपाक—पुं० [सं० न० त०] अजीर्ण रोग।

वि० [सं० न० ब०] जिसे अजीर्ण हुआ हो।

अविपाल—पुं० [सं० ष० त०] भेड़-बकरियाँ पालनेवाला व्यक्ति। गड़ेरिया।

अविबुध—वि० [सं० न० त०] १. जो विबुध या समझदार न हो; अर्थात् अज्ञानी या मूर्ख।

पुं० असुर। राक्षस।

अविभक्त—वि० [सं० न० त०] १. जो विभक्त (कटा, टूटा या बँटा) न हो अर्थात् पूरा या संपूर्ण। २. जिसका विभाजन या बँटवारा न हुआ हो, फलतः संयुक्त। जैसे—अविभक्त भारत, अविभक्त संपत्ति आदि। ३. अपने मूल (शरीर) के साथ लगा या सटा हुआ। अभिन्न। ४. जो सर्वत्र एक ही रूप में व्याप्त हो। जैसे—अविभक्त आत्मा।

अविभाज्य—वि० [सं० न० त०] जिसका विभाजन या बँटवारा न हो सके।

पुं० गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सकता हो। अविच्छेद्य।

अविभावन—पुं० [सं० न० त०] १. विभावन या पहचान का अभाव। पहचाना न जाना। २. निर्णय या विभेद का अभाव।

अविमुक्त—वि० [सं० न० त०] जो मुक्त न हो। बद्ध।

पुं० [न० त०] १. कन-पटी। २. काशीपुरी का एक नाम।

अवियुक्त—वि० [सं० न० त०] जो वियुक्त या अलग न हो; फलतः मिला, लगा या सटा हुआ।

अवियोग—पुं० [सं० न० त०] १. वियोग का अभाव। २. वियोग का विपर्यय; संयोग।

अवियोग-व्रत—पुं० [च० त०] पुराणों के अनुसार अगहन शुक्ल तृतीया को होनेवाला एक व्रत।

अवियोज्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका वियोजन या अलगाव न हो सके। २. जिसका वियोजन करना उचित न हो।

अविरत—वि० [सं० न० त०] [भाव० अविरति] १. जिसके बीच में विराम या ठहराव न हो। निरंतर चलता या होता रहनेवाला। (कॉन्स्टेन्ट) २. लगा या सटा हुआ।

अ० य० निरंतर। लगातार।

पुं० विराम का अभाव। निरंतरता।

अविरति—स्त्री० [सं० न० त०] १. विरत न होने की दशा या भाव। २. आसक्ति। लीनता। ३. अशांति। ४. व्यभिचार। ५. ऐसा आवरण जो धर्मशास्त्रों के अनुरूप न हो। (जैन)

अविरथा*—क्रि० वि०=वृथा।

अविरल—वि० [सं० न० त०] १. जो विरल अर्थात् दूर-दूर पर स्थित न हो, फलतः साथ सटा या लगा हुआ। २. घना। सघन। ३. निरंतर दिखाई देने, मिलने या होनेवाला।

अविराम—वि० [सं० न० ब०] जिसके बीच में विराम या ठहराव न हो।

क्रि० वि० १. बिना बीच में ठहरे या रुके हुए। २. निरंतर। लगातार।

पुं० [न० त०] विराम का अभाव।

अविरुद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो विरुद्ध (प्रतिकूल या विपरीत) न हो। २. अनुकूल।

अविरेचन—पुं० [सं० न० ब०] ऐसी वस्तु जो विरेचन में बाधक हो। कोष्ठबद्धता उत्पन्न करनेवाली चीज।

अविरोध—पुं० [सं० न० त०] १. विरोध का अभाव। अनुकूलता। २. समानता। साधर्म्य। ३. मेल। संगति।

अविरोधी (धिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो विरोधी न हो। २. अनुकूल।

अविलंब—क्रि० वि० [सं० न० त०] बिना विलंब किए। तुरंत। तत्काल। फौरन।

अविलक्ष्य—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई लक्ष्य या उद्देश्य न हो। २. असाध्य (रोग या रोगी)।

अविला—स्त्री० [सं० √अव्+इलच्—टाप्] भेड़।

अविलिख—वि० [सं० वि√लिख्+क (बा०), न० त०] १. जो लिखनेवाला न हो अथवा जो लिखना न जानता हो। २. अनुचित या हानिकारक बात लिखनेवाला।

अविलोकना—स० दे० 'अवलोकना'।

अविवक्षित—वि० [सं० न० त०] १. जो अभिप्रेत या उद्दिष्ट न हो। २. जो कहे जाने के योग्य न हो।

अविवर्त्य—वि० [सं० न० त०] जिसमें किसी प्रकार का विवर्त्तन या उलट-फेर न हो सके। (अन्-ऑल्टरेबुल)

अविवाद—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें विवाद न हो। विवाद-रहित। २. निर्विवाद।

पुं० [न० त०] विवाद का अभाव।

अविवाहित—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० अविवाहिता] जिसका विवाह न हुआ हो। कुवाँरा।

अविविक्त—वि० [सं० न० त०] १. जो विवेचन के द्वारा स्पष्ट न हुआ हो। २. जो अच्छी तरह विचारा या सोचा न गया हो। ३. अच्छी तरह न सोचनेवाला। अविवेकी।

अविवेक—पुं० [सं० न० त०] १. विवेक का अभाव। अविचार। २. नादानी। नासमझी। ३. दर्शन-शास्त्र में किसी विशिष्ट ज्ञान का अभाव या मिथ्या ज्ञान। ४. न्याय का अभाव। अन्याय।

अविवेकता—स्त्री० [सं० अविवेक+तल्-टाप्] विवेकशील न होने की अवस्था या भाव। विचार-हीनता।

अविवेकी (किन्)—वि० [सं० न० त०] (व्यक्ति) जिसमें विवेक या विचारशीलता न हो, अर्थात् अन्यायी या मूर्ख।

अविशंक—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे शंका या संदेह न हो। २. जिसे डर या भय न हो। निर्भय।

अविशुद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो विशुद्ध न हो; फलतः गन्दा या मिलावटवाला।

अविशुद्धि—स्त्री० [सं० न० त०] १. विशुद्ध न होने की अवस्था या भाव। २. मलिनता। ३. अपवित्रता।

अविशेष—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कोई विशेषता न हो। विशेषता से रहित। २. एक जैसा। एक रूप।

पुं० १. तर्क-शास्त्र में, भेद उत्पन्न करनेवाले गुण या धर्म का अभाव। एकता। २. सांख्य के अनुसार एक विशिष्ट सूक्ष्म भूत जो धीरता, गूढ़ता आदि से रहित माना गया है।

अविशेष-सम—पुं० [तृ० त०] जाति के चौबीस भेदों में से एक। (न्या०)

अविश्रंभ—पुं० [सं० न० त०] विश्वास का अभाव। अविश्वास।

अविश्रांत—वि० [सं० न० त०] १. विश्राम न करनेवाला। २. न ठहरने या न रुकनेवाला। ३. निरंतर चलने या होनेवाला। न थकनेवाला।

क्रि० वि० १. बिना ठहरे या रुके हुए। २. बिना थके।

अविश्वसनीय—वि० [सं० न० त०] जो विश्वास का अधिकारी या पात्र न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके।

अविश्वस्त—वि० [सं० न० त०] १. जिसका विश्वास न किया गया हो। २. जिसका विश्वास न किया जा सकता हो। अविश्वासनीय।

अविश्वास—पुं० [सं० न० त०] १. विश्वास या निश्चित धारणा का अभाव। एतबार न होना। २. निश्चय का अभाव। ३. शंका। संदेह।

अविश्वास-पात्र—वि० [ष० त०] जिस पर विश्वास न किया जा सके। अविश्वसनीय।

अविश्वास-प्रस्ताव—पुं० [ष० त०] लोक-तंत्री संस्थाओं में, किसी अधिकारी या सदस्य के संबंध में उपस्थित किया जानेवाला इस आशय का प्रस्ताव कि उस अधिकारी पर सदस्यों का विश्वास नहीं रह गया है; अतः वह अपने स्थान से हट जाय। (मोशन ऑफ नो कॉन्फिडेन्स)

अविश्वासी (सिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी का विश्वास न करे। २. अविश्वसनीय।

अविष—वि० [सं० न० ब०] १. जो विष न हो। २. जिसमें विष न हो। विषहीन। ३. विष का प्रभाव दूर करनेवाला। विषहारक।

पुं० [सं०√अव् (वृद्धि, रक्षण आदि)+टिषच्] १. समुद्र। २. राजा। ३. आकाश। ४. रक्षक।

अविषय—वि० [सं० न० त०] १. जो कथन, तर्क, विचार आदि का विषय न हो। २. जो इंद्रियों द्वारा ग्रहण न किया जा सके। अगोचर।

वि० [न० ब०] जिसमें या जिसका कोई विषय न हो। विषय-रहित।

अविषा—स्त्री० [सं० अविष+टाप्] साँप, बिच्छू आदि के विष का प्रभाव दूर करनेवाली जदवार नाम की जड़ी या बूटी।

अविषी—स्त्री० [सं० अविष+ङीप्] १. पृथ्वी। २. आकाश। ३. ३. नदी।

अविसर्गी (गिन्)—वि० [सं० न० त०] जो बीच में ठहरता या रुकता न हो।

पुं० ऐसा ज्वर जो बीच में उतरता न हो। बराबर बना रहनेवाला ज्वर।

अविस्तर—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका विस्तार अधिक न हो। २. जिसका क्षेत्र सीमित हो। ३. जो अधिक लंबा-चौड़ा न हो।

अविस्तीर्ण—वि० [सं० न० त०] जो विस्तीर्ण अर्थात् फैला हुआ न हो या कम फैला हो।

अविस्तृत—वि० [सं० न० त०] जो विस्तृत न हो। कम या थोड़े विस्तार-वाला।

अविहड़*—वि० [सं० अ+विघट] जो खंडित न हो। अखंड। अविनाशी।

वि० दे० 'बीहड़'।

अविहित—वि० [सं० न० त०] १. जो विहित (उचित या ठीक) न हो। २. न करने योग्य। अनुचित। ३. जिसका शास्त्रों में विधान न हो या निषेध हो। जैसे—अविहित कर्म।

अवी—स्त्री० [सं० √अव् (रक्षण आदि)+ई] १. ऋतुमती स्त्री। २. वन-तुलसी।

अवीचि—वि० [सं० न० ब०] जिसमें वीचि या लहरें न हों।

पुं० एक नरक का नाम।

अवीजा—स्त्री० [सं० न० ब०, टाप्] किशमिश।

अवीरा—वि० [सं० न० ब०, टाप्] १. (स्त्री) जिसका न पति हो और न पुत्र हो। २. मनमाना आचरण करनेवाली।

अवीह*—वि० [सं० अव्रीड़] जो डरे नहीं। निडर। (डिं०)

अवृत—वि० [सं० न० त०] १. जो रोका न गया हो या जिसमें कोई रुकावट न हो। २. जो चुना न गया हो। ३. जो ढका न हो। ४. जो रक्षित न हो। ५. जो किसी के अधीन या वश में न हो।

अवृत्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. वृत्ति या जीविका का अभाव। २. स्थिति का अभाव। ३. अवृत होने की अवस्था या भाव।

अवृथा—वि० [सं० न० त०] जो वृथा या व्यर्थ न हो।

वि०, क्रि० वि०=वृथा।

अवृद्धिक—पुं० [सं० न० ब०, कप्] ऐसा धन जिस पर व्याज न मिलता या न लगता हो।

वि० न बढ़नेवाला।

अवृष्टि—स्त्री० [सं० न० त०] वृष्टि या वर्षा का अभाव। सूखा।

अवेक्षण—पुं० [सं० अव√ईक्ष् (देखना+ल्युट्-अन] [भू० कृ० अवेक्षित वि० अवेक्षणीय] १. अवलोकन। देखना। २. किसी अभिप्राय या उद्देश्य से किसी चीज या बात को ध्यानपूर्वक देखना। निरीक्षण। ३. जाँच-पड़ताल।

अवेक्षणीय—वि० [सं० अव√ईक्ष्+अनीयर्] १. जिसका अवेक्षण होने को हो या होना उचित हो। २. अवेक्षण के योग्य। ३. अति सुन्दर। दर्शनीय। जैसे—अवेक्षणीय दृश्य। ४. (अपराध) जिस पर विधि के अनुसार अधिकारियों को ध्यान देना आवश्यक हो। (कागनिजिबुल्)

अवेक्षा—स्त्री० [सं० अव√ईक्ष्+अङ्-टाप्] १. दे० 'अवेक्षण'। २. न्यायालय या अधिकारी द्वारा किसी अपराध या दोष की ओर (उचित कार्रवाई या प्रतिकार करने के उद्देश्य से) ध्यान देना। (कॉग्निजेन्स)

अवेक्षित—भू० कृ० [सं० अव√ईक्ष्+ क्त] जिसकी या जिसके संबंध में अवेक्षा हुई हो।

अवेज—पु० [अ० एवज] १. प्रतिकार। बदला। २. प्रति-फल।

अवेत—वि० [सं० अव√इ (गति) +क्त] १ .बीता हुआ। समाप्त। २. पाया हुआ। प्राप्त। ३. मिला हुआ। संयुक्त।

अवेद्य—वि० [सं० न० त०] १. जो (वेदन के द्वारा) जाना न जा सके अथवा जो जानने योग्य न हो। २. जो प्राप्त न हो सके अथवा जिसे प्राप्त करना उचित न हो।

पु० १. बछड़ा। २. छोटा बच्चा।

अवेद्या—वि० [सं० अवेद्य+टाप्] १. (स्त्री) जिसके साथ विवाह न किया जा सकता हो। २. (स्त्री) जो विवाह के योग्य न हो।

अवेल—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी कोई सीमा न हो। २. अकालिक। असामयिक।

पु० गोपन। छिपाव। दुराव।

अवेला—स्त्री० [सं० न० त०] १. अनुचित या अनुपयुक्त समय। २. विलंब। देर।

अवेश—वि० [सं० न० ब०] जिसका कोई वेश न हो। वेश-रहित।

†पु०=आवेश।

†पु० दे० 'भूतावेश'।

अवेस्ता—स्त्री० [पह०] ईरान के पूर्वी जन-समाज की प्राचीन भाषा जो संस्कृत से बहुत कुछ मिलती-जुलती तथा उसी के प्राचीन रूप की एक शाखा थी। (पारसियों का धर्म-ग्रंथ 'जन्द' इसी भाषा में है)।

अवैज्ञानिक—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जो वैज्ञानिक (विज्ञान का ज्ञाता) न हो। २. (विषय) जिसका संबंध विज्ञान से न हो। ३. (विषय) जिसका वैज्ञानिक रीति से प्रतिपादन न हुआ हो। (अन्-साइन्टिफिक)

अवैतनिक—वि० [सं० न० त०] बिना वेतन लिये काम करनेवाला। (आनरेरी)

अवैदिक—वि० [सं० न० त०] १. जो वैदिक न हो। २. जो वेदों के अनुकूल न हो। वेद-विरुद्ध।

अवैद्य—वि० [सं० न० त०] १. जो वैद्य (वैद्यक शास्त्र का ज्ञाता) न हो। २. नादान। नासमझ।

अवैध—वि० [सं० न० त०] जो वैध न हो अर्थात् जो विधि या विधान के अनुकूल न हो। (प्रतिकूल या विपरीत हो)। (इल्लीगल)

अवैधाचरण—पुं० [सं० अवैध-आचरण, कर्म० स०] ऐसा आचरण या व्यवहार जो विधि या विधान के विरुद्ध हो। (इल्लीगल प्रैक्टिस)

अवैधानिक—वि० [सं० न० त०] जो विधान या संविधान के नियमों के अनुरूप न हो या उनके विरुद्ध हो। (अन्-कॉन्टिट्यूशनल)

अवैमत्य—पुं० [सं० न० त०] वैमत्य या मतभेद का अभाव। ऐकमत्य। वि० जिसमें वैमत्य या मत-भेद न हो।

अव्यंग—वि० [सं० न-वि-अंग, न० ब०] जो व्यंग या टेढ़ा न हो। सीधा।

अव्यगांग—वि० [सं० अव्यंग-अंग, ब० स०] जिसका कोई अंग टेढ़ा न हो। समरूप या सुडौल।

अव्यंगा—स्त्री० [सं० अव्यंग+टाप्] केंवाच। कौंछ।

अव्यंजन—वि० [सं० न० त०] १. जो व्यंजन न हो। २. [न० ब०] चिह्न, लक्षण आदि से रहित। ३. अच्छे लक्षणों से रहित। ४. (पशु) जिसे सींग न हो।

अव्यक्त—वि० [सं० न० त०] [भाव० अव्यक्तता, अव्यक्ति] १. जो व्यक्त अर्थात् प्रकट, प्रत्यक्ष या स्पष्ट न हो। छिपा हुआ। अज्ञात। २. जो अगम्य या अगोचर हो। ३. जिसकी अभिव्यक्ति न हुई हो। ४. अनिर्वचनीय। ५. बीज-गणित में, (राशि) जिसका मान अज्ञात हो।

पुं० १. ईश्वर या ब्रह्म। २. जीव का सूक्ष्म शरीर। ३. विष्णु। ४. शिव। ५. कामदेव। ६. प्रकृति। (सांख्य)

अव्यक्त-गणित—पुं० [सं० कर्म० स०] बीज-गणित।

अव्यक्त-गति—वि० [ब० स०] जिसकी गति ऐसी हो कि सामने दिखाई न दे।

अव्यक्त-पद—पुं० [कर्म० स०] ऐसा पद (या शब्द) जिसका मनुष्यों के कंठ, जीभ आदि से स्पष्ट उच्चारण न हो सके। जैसे—चिड़ियों या जानवरों की बोली या अनेक प्रकार के आघातों से उत्पन्न होनेवाले शब्द।

अव्यक्त-राशि—स्त्री० [कर्म० स०] बीज-गणित में वह राशि जिसका मान ज्ञात या निश्चित न हो।

अव्यक्त-लक्षण—पुं० [ब० स०] शिव।

अव्यक्त-लिंग—पुं० [ब० स०] १. सांख्य के अनुसार महत्तत्त्व आदि। २. संन्यासी।

वि० १. जिसके लिंग, स्वरूप आदि का पता न चले। २. जिसके चिह्न या लक्षण अदृश्य या अप्रकट हों।

अव्यक्त-साम्य—पुं० [प० त०] बीजगणित में, अव्यक्त राशि का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—पुं० [सं० अव्यक्त-अनुकरण, ष० त०] अव्यक्त पद या शब्द का ऐसा उच्चारण जो उसके अनुकरण पर तथा उससे मिलता-जुलता हो। जैसे—पशु-पक्षियों की बोली का मनुष्यों के द्वारा होनेवाला अनुकरण।

अव्यक्तिक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जो व्यक्तिक या व्यक्तिगत न हो। जिसका संबंध किसी व्यक्ति या व्यक्तित्व से न हो। (इम्पर्सनल) २. राग-द्वेष आदि से रहित। निर्लिप्त।

अव्यग्र—वि० [सं० न० त०] जो व्यग्र न हो; फलतः धीर या शांत।

अव्यथ—वि० [सं० न० ब०] किसी को कष्ट या पीड़ा न देनेवाला; फलतः दयावान् या दयालु।
पुं० साँप।

अव्यथा—स्त्री० [सं० न० त०] १. व्यथा (कष्ट या पीड़ा) का अभाव। २. [अव्यथ+टाप्] हरीतकी (हड़)। ३. सोंठ। ४. स्थल कमल। ५. गोरखमुंडी। ६. आँवला।

अव्यथिष—पुं० [सं०√व्यथ्+टिषच्, न० त०] १. सूर्य। २. समुद्र।

अव्यथी (थिन्)—वि० [सं०√व्यथ्+इन्, न० त०] १. जो व्यथित न हो। २. किसी को व्यथित न करनेवाला। ३. निडर। निर्भय।

अव्यथ्य—वि० [√व्यथ्+यत् नि०, न० त०]=अव्यथी।

अव्यध—वि० [सं०√व्यध् (वेधना)+अच्, न० त०] जो वेधा या छेदा न गया हो। अनविधा।

अव्यपदेश्य—वि० [सं० वि–अप√दिश् (बताना)+ण्यत्, न० त०] १. जो व्यपदेश्य न हो। २. जिसका शब्दों में वर्णन न हो सके। अनिर्वचनीय। जैसे—ब्रह्म अव्यपदेश्य है। ३. जिसका किसी प्रकार का उलट-फेर या विकल्प न हो। निश्चित। जैसे—अव्यपदेश्य ज्ञान=निर्विकल्प ज्ञान। ४. जिसे कोई निर्देश न दिया जा सके।

अव्यपेत—पुं० [सं० न० त०] यमकानुप्रास के दो भेदों में से एक, जिसमें यमकात्मक अक्षरों या पदों के बीच में कोई और अक्षर या पद नहीं आता।

अव्यभिचारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो व्यभिचारीत न हो। २. जो उचित या सत् मार्ग से इधर-उधर हटाया न जा सके। सदा ठीक और सच्चे रास्ते पर चलनेवाला; फलतः भला या पुण्यात्मा। ३. जो व्यभिचार (अर्थात् परस्त्री-गमन) न करे। सदाचारी।
पुं० न्याय में, ऐसा हेतु जो साध्य और साधक दोनों से युक्त हो।

अव्यय—वि० [सं० वि√इ (गति)+अच्, न० त०] १. जिसमें कभी कोई व्यय या विकार न होता हो। सदा एक-सा रहनेवाला। विकार-शून्य और नित्य। २. जिसका न आदि हो और न अंत। ३. जिसका प्रवाह सदा चलता रहे। ४. जो परिणाम से रहित हो।
पुं० १. व्यय न होना। २. व्याकरण में, वह शब्द जिसका प्रयोग सभी लिंगों, विभक्तियों और वचनों में सदा एक ही रूप में होता हो। वह शब्द जिसके रूप में परिवर्त्तन न होता हो। जैसे—कुछ, कोई, किंतु, परंतु, सदा आदि। २. पर-ब्रह्म। ३. विष्णु। ४. शिव।

अव्ययीभाव—पुं० [सं० अव्यय+च्वि√भू (होना)+घञ्] व्याकरण में, समास का वह प्रकार जिसमें अव्यय के साथ उत्तर पद समस्त होता है। जैसे—अतिकाल, अनुरूप, प्रतिरूप आदि।

अव्यर्थ—वि० [सं० न० त०] [भाव० अव्यर्थता] जो कभी व्यर्थ न होता हो। सदा ठीक और पूरा फल देनेवाला। अचूक। जैसे—अव्यर्थ उपाय, अव्यर्थ महौषध आदि।

अव्यवधान—पुं० [सं० न० त०] १. व्यवधान (ओट, परदे) का अभाव। २. दूरी, बाधा आदि का अभाव।

अव्यवसाय—वि० [सं० न० ब०] जो कोई व्यवसाय या उद्यम न कर रहा हो। जिसके हाथ में कोई काम-धंधा न हो।
पुं० [सं० न० त०] १. व्यवसाय या उद्यम का अभाव। २. निश्चय का अभाव।

अव्यवसायी (यिन्)—वि० [सं० न० त०] १. व्यवसाय या उद्यम न करनेवाला। २. आलसी और पुरुषार्थ-हीन।

अव्यवस्था—स्त्री० [सं० न० ब०] [वि० अव्यवस्थित] १. व्यवस्था (क्रम, नियम, मर्यादा आदि) का अभाव। २. ऐसी व्यवस्था जो शास्त्रों आदि के विरुद्ध हो। ३. प्रबंध आदि में होनेवाली गड़बड़ी। कु-व्यवस्था।

अव्यवस्थित—वि० [सं० न० त०] १. जो व्यवस्थित न हो। जो क्रम के विचार से ठीक न हो। २. जो विधानों, शास्त्रों आदि की व्यवस्था या मर्यादा से रहित हो या उनके विपरीत हो। ३. जिसमें उचित व्यवस्था या प्रबंध का अभाव हो। ४. जो उचित या मानक अवस्था या स्थिति में न रहता हो; फलतः अस्थिर या चंचल। जैसे—अव्यवस्थित चित्तवाला व्यक्ति।

अव्यवहार्य—वि० [सं० न० त०] १. जो व्यवहार या काम में न लाया जा सके। जो व्यवहार के योग्य न हो। २. जिसके साथ किसी प्रकार का व्यवहार न किया या न रखा जा सके। ३. पतित।

अव्यवहित—वि० [सं० न० त०] जिसमें कोई व्यवधान न हो। प्रकट या स्पष्ट।

अव्यवहृत—वि० [सं० न० त०] १. जो व्यवहार मे न आता हो। २. जिसका व्यवहार या प्रचलन न हो। ३. जिसका अभी तक व्यवहार या प्रयोग न किया गया हो।

अव्यसन—वि० [सं० न० ब०] जिसे कोई बुरा व्यसन या लत न लगी हो। व्यसनहीन।
पुं० [न० त०] कोई व्यसन न होना।

अव्याकृत—वि० [सं० न० त०] १. जो व्याकृत न हो। २. जिसमें कोई विकार न हुआ हो या न उत्पन्न किया गया हो। ३. जो प्रकट या स्पष्ट न हो। ४. जो कारण के रूप में न हो।
पुं० १. वह मूल तत्त्व जिससे सब वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। २. प्रकृति। (सांख्य)

अव्याकृत-धर्म—पुं० [सं० कर्म० स०] ऐसा स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म किये जा सकें। (बौद्ध)

अव्याख्येय—वि० [सं० न० त०] १. जिसकी व्याख्या या स्पष्टीकरण न हो सकती हो। २. ऐसी असाधारण और विलक्षण बात या वस्तु जिसका कारण या मूल समझ में न आवे। (इन्एक्सप्लिकेबुल)

अव्याघात—वि० [सं० न० ब०] १. जो व्याघात-रहित हो। बेरोक-टोक। २. जो बीच में टूटा-फूटा या रुका न हो।
पु० व्याघात का अभाव।

अव्याज—वि० [सं० न० ब०] १. (व्यक्ति) जो कपटी या छली न हो। २. (कार्य) जो छलपूर्ण न हो।
पुं० [न० त०] छल-कपट का अभाव।

अव्यापार—वि० [सं० न० ब०] व्यापार-रहित। खाली।
पुं० [न० त०] व्यापार या उद्यम का अभाव।

अव्यापारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. जो कोई व्यापार (क्रिया) न करता हो। २. सांख्य के अनुसार स्वभावतः अकर्त्ता और क्रिया-शून्य। ३. जो व्यापारी या रोजगारी न हो।

अव्यापी (पिन्)—वि० [सं० वि—आप् (व्याप्त होना)+णिनि, न० त०] १. जो व्यापी न हो। २. जो हर जगह न पाया जाय।

पुं० न्याय में, ऐसे देश या स्थान की चर्चा करना जिसका पता न चले। (यह एक प्रकार का उत्तराभास नामक दोष माना गया है।)
अव्याप्त—वि० [सं० न० त०] जो व्याप्त या फैला हुआ न हो।
अव्याप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अव्याप्त] १. व्याप्ति का अभाव। व्याप्त न होने की अवस्था या भाव। २. साहित्य और तर्क शास्त्र में, कथन, व्याख्या आदि का ऐसा रूप या स्थिति जिसमें कही हुई बात, बतलाया हुआ लक्षण या दिया हुआ विवरण सारे अभिप्रेत तत्त्व या लक्ष्य पर पूरी तरह से या सब जगह समान रूप से न घटे। (यह दोष माना गया है)
अव्याप्य—वि० [सं० न० त०] १. जो पूरे विस्तार पर छाया हुआ न हो। जो सब परिस्थितियों या स्थितियों में समान रूप से फैला हुआ न हो। २. जिसका कार्यक्षेत्र सीमित हो। जैसे—अव्याप्य-वृत्ति।
अव्यावृत—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें कोई उलट-फेर या परिवर्त्तन न हुआ हो। ज्यों का त्यों। २. जिसका क्रम बीच में टूटा या रुका न हो।
अव्याहत—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें कोई बाधा या विघ्न न हो। २. जो टूटा-फूटा न हो। जिसे क्षति न पहुँची हो। ३. बिलकुल ठीक पूरा, या सच्चा।
अव्युत्पन्न—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी से व्युत्पन्न न हो। जिसकी किसी से व्युत्पत्ति न हुई हो। २. (व्याकरण में ऐसा शब्द) जिसकी व्युत्पत्ति शास्त्रीय रूप से सिद्ध न की जा सके। ३. (व्यक्ति) जिसे अच्छा अनुभव या ज्ञान न हो।
अव्रण—वि० [सं० न० ब०] जिसे घाव या व्रण न लगा हो।
पुं० [न० त०] १. व्रण का अभाव। २. आँख का एक रोग।
अव्रत—वि० [सं० न० ब०] १. जिसने कोई व्रत न लिया हो अथवा किसी व्रत का पालन न किया हो। २. जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। ३. नियम-रहित।
पुं० [न० त०] १. व्रत का अभाव। २. व्रत का परित्याग।
अव्रत्य—वि० [सं० व्रत+यत्, न० त०] जो व्रत के लिए उपयुक्त न हो।
पुं० व्रत के समय मिथ्या बोलना आदि अविहित कार्य।
अव्वल—वि०=औवल (प्रथम)।
अशंक—वि० [सं० न० त०] १. जिसे शंका या संदेह न हो। २. निडर। निर्भय।
अशंकनीय—वि० [सं० न० त०] जिसके विषय में किसी प्रकार की शंका की ही न जा सके। (अन्क्वेश्चनेबुल)
अशंकित—भू० कृ० [सं० न० त०] १. जो शंकित न हुआ हो। २. अशंक।
अशंभु—वि० [सं० न० त०] १. जो शंभु या कल्याणकारी न हो। अमांगलिक। २. अशुभ या अहितकर।
अशकुंभी—स्त्री० [सं०√अश् (व्याप्त होना) + अच्, अश√स्कुम्भ् (रोकना) + ट, पृषो० सलोप, ङीप्] जल में होनेवाला एक प्रकार का पौधा।
अशकुन—पुं० [सं० न० त०] १. शकुन का अभाव। २. अनुचित या बुरा शकुन। अशुभ लक्षण।
अशक्त—वि० [सं० न० त०] [भाव० अशक्तता, अशक्ति] जो शक्त न हो; फलतः निर्बल या दुर्बल।
अशक्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. शक्ति न होना। कमजोरी। दुर्बलता। २. सांख्य के अनुसार इंद्रियों अथवा बुद्धि का कुछ काम करने योग्य न रह जाना।
अशक्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० अ-शक्यता] १. (काम) जो हो न सकता हो या किया न जा सकता हो; फलतः अव्यवहारिक, असंभव या असाध्य। २. दे० 'अशक्त'।
पुं० साहित्य में एक अलंकार जिसमें अड़चन या बाधा के कारण किसी काम के न हो सकने का उल्लेख होता है।
अशक्यता—स्त्री० [सं० अशक्य+तल्–टाप्] अशक्त या अशक्य होने की अवस्था या भाव।
अशत्रु—वि० [सं० न० ब०] १. जिसका कोई शत्रु न हो। २. [न० त०] जो शत्रु न हो।
पुं० चंद्रमा।
अशन—पुं० [सं०√अश् (भोजन) + ल्युट्–अन] १. खाने की क्रिया या भाव। २. खाई जानेवाली चीज। आहार। भोजन। ३. किसी के अंदर प्रविष्ट या व्याप्त होना। ४. चित्रक या चीता नामक वृक्ष। ५. भिलावाँ।
वि० [√अश्+ल्यु–अन] [स्त्री० अशना] १. खानेवाला। २. भोग करनेवाला (यौ० के अंत में)।
अशन-पर्णी—स्त्री० [ब० स०] पटसन।
अशनाया—स्त्री० [सं० अश+क्यच्+अ–टाप्] भोजन करने की इच्छा। भूख।
अशनि—पुं० [सं०√अश् (मारना) + अनि] बिजली। वज्र।
अशनि-पात—पुं० =वज्रपात।
अशनीय—वि० [सं० अश्+अनीयर्] १. (पदार्थ) जो खाया जा सके अथवा जो खाये जाने के योग्य हो। २. जो खाया जाने को हो।
अशब्द—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें शब्द या ध्वनि न हो। जो शब्द न करता हो। २. जो शब्दों में व्यक्त न हुआ हो। ३. अवैदिक।
पुं० [न० त०] १. शब्द का अभाव। २. [न० ब०] ब्रह्म।
अशरण—वि० [सं० न० ब०] १. जिसे आश्रय या शरण न मिली हो। २. असहाय
अशरण-शरण—वि० [ष० त०] जिसे कहीं शरण न मिली हो उसे शरण देनेवाला।
पुं० ईश्वर।
अशरत—पुं० [अ० इशरत] आनंद और सुख-भोग।
अशरफ़—वि० [फ़ा०] १. बहुत बड़ा शरीफ़ या सज्जन। २. परम श्रेष्ठ।
अशरफी—स्त्री० [फ़ा०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का सोने का बड़ा सिक्का। मोहर। २. इस सिक्के की तरह दिखाई देनेवाला एक प्रकार का फूल। ३. उक्त फूल की अंकित की हुई आकृति। ४. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें से फूल निकलते हैं।
अशरा—पुं० [अ० अशरः] १. हर मास का दसवाँ दिन। २. मुहर्रम का दसवाँ दिन।

अशराफ़—पुं० [अ० शरीफ़ का वहु०] १. भले लोग। सज्जन समाज। २. भला आदमी। सज्जन। (वस्तुतः वहुवचन होने पर भी भूल से एक वचन में प्रयुक्त)

अशरीर—वि० [सं० न० व०] जिसकी काया, देह या शरीर न हो। पुं० १. परमात्मा। २. कामदेव। ३. संन्यासी।

अशरीरी (रिन्)—पुं० [सं० न० त०] १. वह जो शरीरधारी न हो। २. जिसका आकार, रूप या स्वरूप दृष्टिगोचर न होता हो। ३. अलौकिक आत्मा। ४. ब्रह्म। ५. देवता।

अशर्म (न्)—वि० [सं० न० व०] १. दुःखी। २. विकल। वेचैन। ३. विना घर-वार वाला।

पुं० [सं० न० त०] सुख या प्रसन्नता का अभाव अर्थात् कष्ट या दुःख।

अशस्त्र—वि० [सं० न० व०] १. जो शस्त्र धारण न करता हो। २. जिसके पास शस्त्र न हो। ३. जिसका शस्त्रों से संवंध न हो। जिसमें शस्त्रों का प्रयोग न हो। जैसे—अशस्त्र युद्ध।

पुं० [न० त०] शस्त्रों का अभाव।

अशांत—वि० [सं० न० त०] [भाव० अशांति] १. (व्यक्ति) जो शांत न हो; फलतः चंचल या व्यग्र। २. (परिस्थिति या वातावरण) जिसमें शांति का अभाव हो; फलतः कोलाहलपूर्ण या क्षोभयुक्त।

अशांति—स्त्री० [सं० न० त०] १. शांति का अभाव; फलतः अस्थिरता या चंचलता। २. असंतोष। ३. क्षोभ।

अशाखा—स्त्री० [सं० न० व०] एक प्रकार की घास। शूली तृण।

अशाम्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका शमन न हो सके। २. जिसे शांत या संतुष्ट न किया जा सके। ३. जिसे शांत या संतुष्ट करना उचित न हो।

अशालीन—वि० [सं० न० त०] जो शालीन, नम्र और सुशील न हो, फलतः उद्दंड या धृष्ट।

अशालीनता—स्त्री० [सं० अशालीन+तल्-टाप्] अशालीन होने की अवस्था या भाव।

अशासन—वि० [सं० न० व०] १. जो किसी के शासन में न हो। २. शासनहीन।

पुं० [न० त०] १. शासन का अभाव। २. अराजकता, अव्यवस्था आदि की स्थिति।

अशास्त्रीय—वि० [सं० न० त०] जो शास्त्र या शास्त्रों के विचार से ठीक न हो; अथवा उनके विपरीत हो।

अशिक्षित—वि० [सं० न० त०] जिसे शिक्षा न मिली हो। जो पढ़ा-लिखा या सीखा हुआ न हो। (अन्-एजुकेटेड)

अशित—वि० [सं०√अश् (खाना)+क्त] खाया हुआ। भुक्त।

वि० [सं०] (हथियार) जो धारदार या नुकीला न हो। विना धार या नोक का। जैसे—लाठी, डंडा आदि।

अशित्र—पुं० [सं०√अश् (संघात) + इत्र] चोर।

अशिर—पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति, संघात) + इरच्] १. अग्नि। आग। २. सूर्य। ३. राक्षस। ४. हीरा।

अशिव—पुं० [सं० न० त०] जो शिव अर्थात् कल्याणकारी, मांगलिक या शुभ न हो।

अशिशु—वि० [सं० न० त०] १. जो शिशु न हो। २. [न० व०] जिसके आगे शिशु अर्थात् संतान न हो।

पुं० [न० त०] शिशुत्व का अभाव। तारुण्य।

अशिश्विका, अशिश्वी—स्त्री० [सं० शिशु-ङीप्+कन्-टाप्, ह्रस्व, न० त०] [शिशु+ङीप्, न० त०] १. वह स्त्री जिसके वाल-वच्चे न हुए हों। संतानहीन स्त्री। २. विना वच्चे की गाय।

अशिष्ट—वि० [सं० न० त०] [भाव० अशिष्टता] जो शिष्ट (भला आदमी या सज्जन) न हो। फलतः उजड्ड या उद्दंड।

अशिष्टता—स्त्री० [सं० अशिष्ट+तल्-टाप्] १. अशिष्ट होने की अवस्था या भाव। २. उजड्डपन। वेहूदगी। ३. ऐसा आचरण या व्यवहार जिसमें शिष्टता या भलमनसात न हो।

अशीत—वि० [सं० न० त०] जो शीत या ठंढा न हो; फलतः गरम।

अशीत-कर—पुं० [व० स०] सूर्य।

अशीति—स्त्री० [सं० दश के अवयव=दशति, अष्टगुणित दशति, मध्य० स०, नि०अशी आदेश] गिनती में अस्सी की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८०।

अशुचि—वि० [सं० न० त०] १. जो शुचि या पवित्र न हो; फलतः अपवित्र। २. गंदा या मैला।

अशुद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो शुद्ध न हो। २. जिसमें पवित्रता आदि का अभाव हो। अपवित्र। ३. (भाषण या लेख) जिसमें नियम, विधि आदि का पूरा पालन न होने के कारण भूल रह गई हो। जो अपने मानक रूप से भिन्न और हीन प्रकार का हो। जैसे—अशुद्ध उच्चारण, अशुद्ध प्रतिलिपि, अशुद्ध प्रयोग आदि। ३. जिसका शोधन या संस्कार न हुआ हो।

अशुद्धता—स्त्री० [सं० अशुद्ध+तल्-टाप्] अशुद्ध होने की अवस्था या भाव। अशुद्धि।

अशुद्धि—स्त्री० [सं० न० त०] शुद्ध न होने की अवस्था या भाव। अशुद्धता। (मिस्टेक)

अशुन*—स्त्री० =अश्विनी (नक्षत्र)।

अशुभ—वि० [न० त०] जो शुभ (भला या हितकर) न हो। अमांगलिक या वुरा।

पुं० १. अमंगल। अहित। २. अपराध, दोष या पाप।

अशून्य—वि० [सं० न० त०] १. (पात्र या स्थान) जो रिक्त या शून्य न हो। २. जो व्यर्थ न हो।

अशेष—वि० [सं० न० व०] १. जिसमें से कुछ शेष या वाकी न वचा हो। २. जो पूरा हो चुका हो। खतम। समाप्त। ३. जिसका कहीं शेष या अंत न हो। अपार।

अशोक—वि० [सं० न० व०] जिसे या जिसमें शोक न हो। शोक-रहित।

पुं० १. एक प्रकार का प्रसिद्ध वड़ा पेड़ जिसकी पत्तियाँ धार्मिक और मांगलिक अवसरों पर काम में आती हैं। २. पारा। ३. विष्णु।

अशोक-पूर्णिमा—स्त्री० [कर्म० स०] फाल्गुन की पूर्णिमा।

अशोक-वनिका-न्याय—पुं० [प० त०] लोक-व्यवहार में, एक न्याय या दृष्टांत जिसका प्रयोग ऐसे अवसरों पर होता है, जव किसी वात का, उसी प्रकार कारण नहीं वताया जा सकता, जिस प्रकार यह नहीं वतलाया जा सकता कि रावण ने सीता को अशोक-वाटिका में ही क्यों रखा, किसी और जगह क्यों नहीं रखा।

अशोक-वाटिका—स्त्री० [प० त०] १. वह स्थान जहाँ अशोक के बहुत से वृक्ष हों। २. लंका में उक्त प्रकार की वह वाटिका जिसमें रावण ने सीता को ले जाकर रखा था।
अशोक-षष्ठी—स्त्री० [कर्म० स०] चैत्र शुक्ला षष्ठी।
अशोका—स्त्री० [सं० अशोक+टाप्] कुटकी।
अशोकारि—पुं० [सं० अशोक√ऋ (गति) + इन्] कदंब (वृक्ष)।
अशोकाष्टमी—स्त्री० [सं० अशोक–अष्टमी, कर्म० स०] चैत्र शुक्ला अष्टमी।
अशोच्य—वि० [सं० न० त०] जिसके संबंध में शोच या चिंता करना उचित न हो।
अशोधित—भू० कृ० [सं० न० त०] जिसका शोधन न हुआ हो। बिना साफ किया हुआ।
अशोभन—वि० [सं० न० त०] =अशोभनीय।
अशोभनीय—वि० [सं० न० त०] १. जो शोभनीय न हो। जो देखने में भला या सुंदर न लगे। २. अनुचित, अनुपयुक्त या भद्दा। जैसे—अशोभनीय व्यवहार।
अशौच—पुं० [सं० न० त०] १. अशुचि (या अपवित्र) होने की अवस्था या भाव। अपवित्रता। २. हिंदू धर्मशास्त्र के अनुसार घर के लोगों की वह स्थिति जो घर में किसी के जन्म लेने या मरने पर कुछ निश्चित दिनों तक रहती है और जिसमें न तो औरों को छू सकते हैं और न कोई शुभ या धर्म-कार्य कर सकते हैं।
अश्मंत—पुं० [सं० अश्मन्–अन्त, प० त०, शक० पररूप] १. चूल्हा। २. मृत्यु। ३. अमंगल। ४. खेत।
अश्मंतक—पुं० [सं० अश्मन्√अन्त् (बाँधना) + णिच्+ण्वुल्–अक, शक० पररूप] १. एक प्रकार की घास जिसे बटकर प्राचीन काल में मेखला बनाई जाती थी। २. आच्छादन। छाजन। ३. दीयट। ४. एक प्रकार का पत्थर। ५. कचनार। ६. लिसोड़ा।
अश्म (न्)—पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति) + मनिन्] १. पहाड़। पर्वत। २. पत्थर। ३. बादल। मेघ। ४. लोहा। ५. चकमक। ६. सोना-मक्खी।
अश्मक—पुं० [सं० अश्मन्+कन्] आधुनिक त्रिवांकुर या ट्रावन्कोर के आस-पास के प्रदेश का पुराना नाम।
अश्म-कदली—स्त्री० [उपमि० स०] काष्ठकदली। कठ-केला।
अश्मकुट्ट—पुं० [सं० अश्मन्√कुट्ट् (छेदन)+अण्] केवल पत्थर से कूटा हुआ अन्न खानेवाला वानप्रस्थी साधु।
अश्म-गर्भ—पुं० [ब० स०] मरकत या पन्ना नामक रत्न।
अश्मगर्भज—पुं० [सं० अश्मगर्भ√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. लोटा। २. गेरू। ३. शिलाजतु। शिलाजीत।
अश्मज—पुं० [सं० अश्मन्√जन्+ड] एक प्रकार का काला लसीला खनिज पदार्थ जो नलों आदि के जोड़ पर इसलिए लगाया जाता है कि उनमें का जल चू न सके। यह सड़कों पर अलकतरे की तरह बिछाने के भी काम आता है। (एस्फाल्ट)
*वि० =ऊष्मज।
अश्मजतु—पुं० [सं० अश्मन्√जन+तुन्, डित्] शिलाजीत।
अश्म-योनि—पुं० [ब० स०] मरकत। पन्ना।

अश्मर—वि० [सं० अश्मन्+र] पथरीला।
अश्मरी—स्त्री० [सं० अश्मन्√रा (दान) + क–ङीप्] पथरी नामक मूत्र-रोग (स्टोन)।
अश्मरीघ्न—पुं० [सं० अश्मरी√हन् (हिंसा, गति) + ट] वरुण वृक्ष। बरना का पेड़।
अश्म-सार—पुं० [प० त०] लोहा।
अश्मीर—पुं० [सं० अश्मन्+ईरन्]=अश्मरी।
अश्मोत्थ—पुं० [सं० अश्मन्–उद्√स्था (ठहरना) + क] शिलाजीत।
अश्र—पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति) + रक्] १. आँसू। २. रक्त।
अश्रद्ध—वि० [सं० न० ब०] जिसमें श्रद्धा या विश्वास का अभाव हो। श्रद्धा न करने या न रखनेवाला।
अश्रद्धा—स्त्री० [सं० न० त०] किसी (विशिष्ट) के प्रति श्रद्धा या पूज्य भाव न होने की अवस्था। श्रद्धाहीनता।
अश्रद्धेय—वि० [सं० न० त०] जो श्रद्धेय न हो। जिसके प्रति श्रद्धा न हो सकती हो।
अश्रप—पुं० [सं० अश्र√पा (पीना) + क] राक्षस।
वि० अश्र या रक्त पीनेवाला। रक्तपायी।
अश्रय—पुं० [सं०√श्रि (सेवा) + अच्, न० त०] राक्षस।
अश्रवण—वि० [सं० न० ब०] जिसे सुनाई न पड़ता हो। बहरा।
पुं० १. [न० त०] बहरापन। २. [न० ब०] साँप।
अश्रांत—वि० [सं० न० त०] १. जो श्रांत या थका हुआ न हो। २. काम के बीच में विश्राम न करनेवाला। ३. (काम) जिसके बीच में विश्राम या विराम न हो।
अश्राव्य—वि० [सं० न० त०] १. जो किसी के सुनने के योग्य न हो। २. जो किसी को सुनाने योग्य न हो।
पुं० दे० 'स्वगत कथन'।
अश्रि—स्त्री० [सं०√अश् (संघात) + क्रि] १. घर का कोना। २. अस्त्र या शस्त्र की नोक।
अश्रीक—वि० [सं० न० ब०, कप्] १. जिसकी या जिसमें श्री न हो या न रह गई हो। श्री-हीन। २. भाग्यहीन। अभागा।
अश्रु—पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति) + क्रुन्] १. आँखों से बहनेवाला तरल पदार्थ, आँसू। २. साहित्य में, हर्ष, शोक, क्रोध, भय आदि के समय आँखों से आँसू बहना जो सात्त्विक अनुभावों के अंतर्गत माना गया है।
अश्रु-गैस—स्त्री० [सं० अश्रु+अं० गैस] शरीर के अंदर माथे के पास की वे ग्रंथियाँ जो अश्रु या आँसू उत्पन्न करती हैं। (लैक्रिमल ग्लैंड)
अश्रु-ग्रंथि—स्त्री० [प० त०] रासायनिक क्रिया से तैयार की जाने वाली एक गैस जिससे आँखों में जलन उत्पन्न होती है तथा अत्यधिक आँसू निकलने लगते हैं। (टीयर गैस)
अश्रु-जल—पुं० [प० त०] आँसू।
अश्रुत—वि० [सं० न० त०] १. (कथन) जो पहले सुनने में न आया हो। २. जिसने सुना न हो।
अश्रुत-पूर्व—वि० [सं० श्रुत-पूर्व, सुप्सुपा स०, अश्रुतपूर्व, न० त०] १. जो पहले कभी न सुना गया हो। २. विचित्र। अनोखा।
अश्रुति—वि० [सं० न० ब०] १. न सुननेवाला। २. जिसकी श्रवणेन्द्रियाँ न हों।

स्त्री० [न० त०] १. न सुनना। २. भूल जाना। विस्मृति।
अश्रुतिधर—वि० [न० त०] १. वेदों को न जाननेवाला। २. ध्यानपूर्वक न सुननेवाला। ३. स्मरण न रखनेवाला।
अश्रु-पात—पुं० [प० त०] आँखों से आँसू गिरना या बहना। रोना।
अश्रु-मुख—वि० [ब० स०] जिसके मुख पर आँसू बहते हों।
पुं० मंगल का अपने उदय नक्षत्र से १०वें, ११वें और १२वें स्थान पर टेढ़ा चलना। (ज्यो०)
अश्रेय (स्)—वि० [सं० न० ब०] जो श्रेय न हो; फलतः हीन।
पुं० [न० त०] १. श्रेय अर्थात् कल्याण का अभाव। अकल्याण। २. दुःख। ३. बुराई।
अश्रौत—वि० [सं० न० त०] जो श्रुति (वेदों आदि) में न हो या उसके विपरीत हो।
अश्लाघ्य—वि० [सं० न० त०] जो श्लाघ्य अर्थात प्रशंसनीय न हो। निंद्य; फलतः दूषित या निंदनीय।
अश्लिष्ट—वि० [सं० न० त०] (शब्द) जो श्लिष्ट न हो। जिसमें श्लेष का अभाव हो।
अश्लील—वि० [सं० श्री√ला (लेना) + क, लत्व, न० त०] [भाव० अश्लीलता] जो नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों से च्युत हो। जो संस्कृत या सभ्य पुरुषों की रुचि के प्रतिकूल हो। गंदा और भद्दा। फूहड़। जैसे—अश्लील साहित्य।
अश्लीलता—स्त्री० [सं० अश्लील+तल्—टाप्] अश्लील होने की अवस्था, गुण या भाव। फूहड़पन। भद्दापन।
अश्लेषा—स्त्री० [सं० अश्लेष+टाप्] राशि चक्र के २७ नक्षत्रों में से नवाँ नक्षत्र।
अश्लेषा-भव—पुं० [सं० अश्लेषा√भू (होना) + अप्] केतु ग्रह।
अश्वंत—वि० [सं० अश्व—अन्त, ब० स०, शक० पररूप] १. अभागा। २. अशुभ। ३. असीम।
पुं० १. मृत्यु। २. क्षेत्र। ३. आग रखने की जगह। ४. समाप्ति।
अश्व—पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति) + क्वन्] [वि० आश्व] १. घोड़ा। २. लाक्षणिक रूप में, इंद्रियाँ जो शरीर और मन को खींचकर इधर-उधर ले जाती हैं। ३. २७ की संख्या का सूचक शब्द।
अश्व-कंदा—स्त्री० [ब० स०]=अश्वगंधा।
अश्वक—पुं० [सं० अश्व+कन्] १. छोटा घोड़ा। २. लावारिस घोड़ा। ३. एक प्राचीन जाति का नाम। ४. गौरैया पक्षी। चटक।
अश्व-कर्ण—पुं० [ब० स०] १. घोड़े का कान। २. एक प्रकार का शाल वृक्ष। लताशाल।
अश्वकिनी—स्त्री० [सं० अश्व-क, प० त०,+इनि—ङीप्] अश्विनी नक्षत्र।
अश्व-कुटी—स्त्री० [प० त०] घुड़साल।
अश्व-कुशल—पुं० [मध्य० स०] वह जो घोड़ों को ठीक तरह से चलना या तरह-तरह के काम करना सिखलाता हो।
अश्व-क्रांता—स्त्री० [ब० स०] संगीत में एक मूर्च्छना।
अश्व-खुर—पुं० [ब० स०] नख नामक गंध द्रव्य।
अश्व-गंधा—स्त्री० [ब० स०] असगंध नामक पौधा।
अश्व-गति—स्त्री० [प० त०] १. घोड़े की चाल। २. एक प्रकार का छंद या वृत्त। ३. चित्रकाव्य का वह प्रकार जिसमें कोई छंद इस प्रकार लिखा जाता है कि उससे घोड़े की आकृति बन जाती है।

२८

अश्वगोष्ठ—पुं० [सं० अश्व+गोष्ठच्] अस्तबल। घुड़साल।
अश्व-ग्रीव—पुं० [ब० स०]=हयग्रीव।
अश्वघ्न—पुं० [सं० अश्व√हन् (हिंसा) + ट] कनेर का वृक्ष और उसका फूल।
अश्व-चक्र—पुं० [प० त०] १. घोड़ों का समूह। २. घोड़ों के पद-चिह्नों से शुभाशुभ का विचार करने का एक चक्र या ढंग।
अश्व-चिकित्सा—स्त्री० [प० त०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों, बैलों, हाथियों आदि के रोगों और उनकी चिकित्सा का वर्णन होता है।
अश्वतर—पुं० [सं० अश्व+तरप्] १. खच्चर। २. एक सर्पराज। नागराज। ३. एक प्रकार के गंधर्व।
अश्वत्थ—पुं० [सं० श्वस्√स्था (ठहरना) + क, पृषो० सिद्धि, न० त०] १. पीपल का पेड़। २. सूर्य। ३. अश्विनी नक्षत्र।
अश्वत्था—स्त्री० [सं० अश्वत्थ+अच्—टाप्] आश्विन की पूर्णिमा।
अश्वत्थाम (न्)—वि० [सं० अश्व√स्था+क, पृषो० सिद्धि] घोड़े की सी शक्तिवाला।
पुं० सुप्रसिद्ध वीर द्रोणाचार्य के पुत्र जो महाभारत के युद्ध में मारे गये थे।
अश्वत्थी—स्त्री० [सं० अश्वत्थ+ङीप्] १. छोटा पीपल। २. पीपल की तरह का एक छोटा पेड़।
अश्व-दंष्ट्रा—स्त्री० [प० त०] गोखरू।
अश्वनाय—पुं० [सं० अश्व√नी (ले जाना)+अण्] घोड़े चरानेवाला।
अश्व-निबंधिक—पुं० [सं० अश्व-निबंध, प० त०,+ठन्-इक] साईस।
अश्व-पति—पुं० [प० त०] १. घोड़ों का मालिक। २. घुड़सवार। ३. घुड़सवारों का नायक या सरदार। ४. भरत के मामा का नाम।
अश्वपाल—पुं० [सं० अश्व√पाल् (पालन करना)+णिच्+अण्] साईस।
अश्व-पुच्छी—स्त्री० [ब० स०] माषपर्णी नाम का पौधा।
अश्व-बंध—पुं० [सं० अश्व√बन्ध् (बाँधना)+अण्] १. साईस। २. [ब० स०] एक प्रकार का चित्रकाव्य, जिसमें कोई कविता इस प्रकार लिखी जाती है कि उससे घोड़े की आकृति बन जाती है।
अश्व-बल—पुं० = अश्वशक्ति।
अश्व-बाल—पुं० [प० त०] काँस नामक तृण।
अश्व-भा—स्त्री० [प० त०] बिजली।
अश्व-मार—पुं० [सं० अश्व√मृ (मरना)+णिच्+अण्] कनेर नामक पौधा जिसकी जड़ घोड़ों के लिए घातक होती है।
अश्व-मारक—पुं० [प० त०] = अश्वमार।
अश्व-मुख—पुं० [ब० स०] किन्नर, गंधर्व आदि जिनका मुँह घोड़ों की तरह का कहा गया है।
अश्व-मेध—पुं० [सं० √मेध् (हिंसा)+घञ्, अश्व—मेध प० त०] १. यज्ञ में घोड़े की बलि देना। २. एक प्रसिद्ध बड़ा यज्ञ जिसमें घोड़े के सिर पर जय-पत्र बाँध कर उसे चारों ओर घूमने के लिए छोड़ देते थे; और यदि कोई उसे पकड़ लेता था, तो उसे मार या जीतकर वह घोड़ा छुड़ा लेते थे; और तब उसी घोड़े की बलि चढ़ाकर यज्ञ करते थे। (ऐसा यज्ञ करना दिग्विजयी सम्राट् होने का लक्षण माना जाता था)। ३. संगीत में, एक प्रकार की तान जिसमें षड्ज को छोड़कर बाकी सब स्वर लगते हैं।
अश्व-मेधिक—वि० [अश्व-मेध+ठन्-इक] अश्वमेध से संबंध रखनेवाला।
पुं० अश्वमेध के योग्य अथवा अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा।

अश्वमेधीय—वि० [सं० अश्वमेध√+छ-ईय]=अश्वमेधिक।

अश्वयु (ज्)—पुं० [सं० अश्व√युच् (जोड़ना)+क्विप्] अश्विनी नक्षत्र।

अश्व-यूप—पुं० [मध्य० स० वा ष० त०] अश्वमेघ यज्ञ में घोड़ा बाँधने का खूँटा।

अश्वरक्ष—पुं० [सं० अश्व√रक्ष् (रक्षा करना)+अण्] साईस।

अश्वरोधक—पुं० [सं० अश्व√रुध् (रोकना)+ण्वुल्-अक] कनेर वृक्ष।

अश्वल—पुं० [सं० अश्व√ला (लेना) + क] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

अश्व-लक्षण—पुं० [ष० त०] घोड़े के अच्छे-बुरे या शुभ-अशुभ लक्षणों का विचार।

अश्व-ललित—पु० [ष० त०] अद्रि तनया (वर्णवृत्त) का दूसरा नाम।

अश्व-लाला—स्त्री० [ष० त०] एक प्रकार का साँप।

अश्व-वक्त्र—पुं० [व० स०] किन्नर, गंधर्व आदि जिनके मुँह घोड़ों की तरह के माने गये हैं।

अश्व-वदन—पुं० [व० स०+अच्] एक प्राचीन देश का नाम।

अश्ववह—पुं० [सं० अश्व√वह् (ढोना)+अप्] घुड़सवार।

अश्ववार—पु० [सं० अश्व√वृ (सेवा)+अण्] १. घुड़सवार। २. साईस।

अश्ववारक—पु० [सं० अश्व√वृ+ण्वुल्-अक] = अश्ववार।

अश्ववाह—पुं० [सं० अश्व√वह्+णिच्+अण्] घुड़सवार।

अश्ववाहक—पु० [सं० अश्व√वह्+णिच्+ण्वुल्-अक] घुड़सवार।

अश्व-विद्—पु० [सं० अश्व√विद् (जनाना)+क्विप्] घोड़ों के शुभ और अशुभ लक्षणों आदि का ज्ञाता।

अश्व-व्यूह—पुं०[ष० त०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी घोड़े सामने और साधारण घोड़े अगल-बगल रखे जाते थे।

अश्व-शंकु—पुं० [ष० त०] घोड़ा बाँधने का खूँटा।

अश्व-शक—पु० [ष० त०] घोड़े का मल या लीद।

अश्व-शक्ति—स्त्री० [ष० त०] आधुनिक विज्ञान में, उतनी शक्ति जितनी ५५० पौंड (=६।।। मन) का भार एक फुट ऊपर उठाने के लिए आवश्यक होती है। (हॉर्सपावर)

अश्व-शाला—स्त्री०[ष० त०] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते हैं। अस्तबल। घुड़साल।

अश्व-शास्त्र—पु० [ष० त०] = शालिहोत्र।

अश्वसाद—पु० [सं० अश्व√सद् (गति)+णिच्+अण्] घुड़सवार।

अश्वस्तन—वि० [सं० न० त०] केवल आज के दिन से संबंध रखनेवाला। पु० वह गृहस्थ जिसके पास केवल एक दिन का अनाज हो, या इतना ही अनाज अपने पास रखता हो।

अश्वस्तनिक—वि० [सं० न० त०] जो आज सब खर्च कर दे, कल के लिए कुछ बचाकर न रखे।

अश्व-स्तर—पु० [ष० त०] घोड़े की पीठ पर रखने का कपड़ा।

अश्व-हृदय—पु० [ष० त०] १. घोड़ों की चिकित्सा का शास्त्र। २. घुड़सवारी।

अश्वांतक—पु० [अश्व-अन्तक, ष० त०] कनेर।

अश्वाक्ष—पुं० [अश्व-अक्षि, ष० त० अच्]१. घोड़े की आँख। २. देवसर्षप नामक पौधा।

अश्वाध्यक्ष—पुं० [सं० अश्व-अध्यक्ष, ष० त०]. अश्वारोही सेना का अध्यक्ष या नायक।

अश्वानीक—स्त्री० [अश्व-अनीक, ष० त०] घुड़सवार सेना। रिसाला।

अश्वायुर्वेद—पुं० [अश्व-आयुर्वेद, ष० त०] आयुर्वेद या चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें घोड़ों तथा अन्य पशुओं की चिकित्सा का वर्णन होता है। शालिहोत्र।

अश्वारि—पु० [अश्व-अरि, ष० त०] १. भैंसा। २. कनेर।

अश्वारूढ़—पुं० [अश्व-आरूढ़, स० त०] घुड़सवार।

अश्वारोहक—पुं० [सं० अश्व-आ√रुह् (उत्पन्न होना) +ण्वुल्-अक] असगंध नामक पौधा।

अश्वारोहण—पुं० [अश्व-आरोहण, स० त०] [वि० अश्वारोही] घोड़े पर चढ़ने की क्रिया या भाव। घुड़सवारी।

अश्वारोही (हिन्)—वि० [सं० अश्व-आ√रुह् + णिनि] १. घोड़े की सवारी करने वाला। जो घोड़े पर सवार हो।
पुं० सवार।

अश्वावतारी (रिन्)—पुं० [सं० अश्व-अव√तॄ (तैरना)+णिनि] ३१ मात्राओं के छंदों की संज्ञा।

अश्विनी—स्त्री० [सं० अश्व+इनि-ङीप्] १. घोड़ी। २. सूर्य की पत्नी जिसने घोड़ी का रूप धर कर अपने को छिपा रखा था। ३. सत्ताइस नक्षत्रों में पहला नक्षत्र जो तीन तारों का है। ४. जटामासी। बालछड़।

अश्विनी-कुमार—पुं० [ष० त०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र जो देवताओं के वैद्य माने जाते है।

अश्वि-युग—पुं० [ष० त०] ज्योतिष में एक युग अर्थात् ५ वर्षों का काल जिसमें क्रम से डिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति नामक संवत्सर होते है।

अश्वि-युगल—पुं० [ष० त०] दो कल्पित देवता जिन्हे कुछ लोग अश्विनीकुमार भी मानते है।

अश्वीय—वि० [सं० अश्व+छ-ईय] १. घोड़े में होने या पाया जानेवाला। अश्व संबंधी। जैसे-अश्वीय रोग। २. घोड़ों के हित से संबंध रखनेवाला।
पुं० घोड़ों का समूह।

अषाढ़*—पुं० [सं० आषाढ़ी+अण्, ई का लोप, ह्रस्व]=आषाढ़ (मास)।

अषाढ़क—पुं० [सं० अषाढ़+कन्] आषाढ़ का महीना।

अषारना—स० [?] क्रोधपूर्वक ललकारना।

अष्टंगी*—वि० = अष्टांगी।

अष्ट (न्)—वि० [सं० √अश् (व्याप्ति)+कनिन्, तुट्] १. आठ। २. आठ अंगोंवाला। जैसे-अष्टपाद।
पुं० आठ की संख्या।

अष्टक—पुं० [सं० अष्टन्+कन्] १. आठ वस्तुओं का वर्ग या संग्रह। जैसे—हिंग्वष्टक। २. आठ छंदों, श्लोकों आदि का समूह। ३. आठ अध्यायोंवाला ग्रंथ। ४. मनु के अनुसार पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य इन आठ अवगुणो का समूह। ५. पाणिनिकृत व्याकरण। अष्टाध्यायी। ६. आठ ऋषियों का एक गण। ७. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

अष्ट-कमल—पुं० [सं० कर्म० स०] हठयोग में, शरीर के अन्दर मूलाधार

से ललाट तक माने जानेवाले आठ चक्र या कमल, जिन्हें हृच्चक्र भी कहते हैं। यथा—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद), आज्ञा चक्र, सहस्रार चक्र और सुरतिकमल। (दे० 'चक्र')

अष्ट-कर्ण—पुं० [ब० स०] आठ कानोंवाले, ब्रह्मा।

अष्टका—स्त्री० [सं० √अश्+तकन्-टाप्] १. अष्टमी। २. अगहन, पूस, माघ और फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की अष्टमी। ३. अष्टमी के दिन किये जानेवाले धार्मिक कृत्य।

अष्ट-कुल—पुं० [कर्म० स०] पुराणों में वर्णित सर्पो के ये आठ कुल—शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक।

अष्टकुली (लिन्)—वि० [सं० अष्टकुल +इनि] जो साँपों के आठ कुलों में से किसी एक में उत्पन्न हो।

अष्ट-कृष्ण—पुं० [कर्म० स०] वल्लभकुल के मतानुसार ये आठ कृष्ण-श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मथुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचंद्रमा और मदनमोहन।

अष्ट-कोण—पुं० [ब० स०] १. आठ कोणोंवाला क्षेत्र। २. तंत्र में एक प्रकार का यंत्र।

वि० जिसके या जिसमें आठ कोने हों। अठ-कोना।

अष्ट-गंध—पुं० [कर्म० स०] आठ सुगंधित द्रव्यों का समूह। दे० 'गंधाष्टक'।

अष्टछाप—पुं० [सं० अष्ट+हिं० छाप] गोसाईं विट्ठलनाथ जी का निश्चित किया हुआ आठ सर्वोत्तम पुष्टिमार्गी कवियों का एक वर्ग (इन के नाम इस प्रकार है—सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास तथा नंददास)।

अष्ट-ताल—पुं० [कर्म० स०] संगीत में ये आठ ताल—आड़, रोज, ज्योति, चंद्रशेखर, गंजन, पंचताल, रूपल, और समताल।

अष्ट-दल—पुं० [ब० स०] आठ दलोंवाला कमल।

वि० जिसमें आठ दल (कोने या पहल) हों।

अष्ट-द्रव्य—पुं० [कर्म० स०] कर्मकांड में काम आनेवाले ये आठ द्रव्य—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसों, दूध और घी।

अष्टधाती—वि० [सं० अष्टधातु] १. आठ धातुओं से बना हुआ। २. दृढ़। पक्का। मजबूत।

पुं० १. दुश्चरित्रा स्त्री की संतान। २. बहुत दुष्ट या पाजी आदमी।

अष्ट-धातु—स्त्री० [कर्म० स०] ये प्रसिद्ध और मुख्य आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँवा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा।

अष्ट-पद—पुं० [ब० स०] दे० 'अष्ट पाद'।

अष्टपदी—स्त्री० [सं० अष्टपद+ङीप्] १. आठ छंदों या पदों का समूह। २. एक प्रकार का गीत जिसमें आठ पद होते है। ३. एक प्रकार की चमेली।

अष्ट-पाद—वि० [ब० स०] आठ पैरों या चरणोंवाला।

पुं० १. कपड़ों आदि की झालर। २. एक प्रकार का भीषण समुद्री जलजंतु, जिसके आठ लंबे-लंबे अंग, पैरों की तरह सब ओर निकले रहते हैं। (आक्टोपस) ३. मकड़ी।

अष्ट-प्रकृति—स्त्री० [कर्म० स०] १. भारतीय राजतंत्र में राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि। (शुक्र०) २. राज्य के आठ अंग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, बल (सेना), कोप, सामंत और प्रजा। (नी० शा०)

अष्ट-फलक—वि० [ब० स०] (घन पदार्थ) जिसमें आठ समतल पार्श्व हों। (ऑक्टहेड्रल)

पुं० उक्त प्रकार का कोई घन पदार्थ या पिंड। (ऑक्टहेड्रन)

अष्ट-भुज—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० अष्टभुजा] आठ भुजाओंवाला।

पुं० ज्यामिति में, वह क्षेत्र जिसकी या जिसमें आठ भुजाएँ या पार्श्व हों। (ऑक्टेगन)

अष्टभुजा—स्त्री० [सं० अष्टभुज+टाप्] दुर्गा का एक विशिष्ट रूप जिनकी आठ भुजाएँ मानी गई हैं।

अष्ट-भुजी—स्त्री० [सं० अष्टभुज+ङीप्] = अष्टभुजा।

अष्ट-मंगल—पुं० [कर्म० स०] १. ये आठ मांगलिक पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलस, पंखा, वैजयंती, भेरी और दीपक। २. वैद्यक में, एक प्रकार का घृत जो आठ ओषधियों के योग से बनाया जाता है।

अष्टम—वि० पुं० [सं० अष्टन्+डट्, मट्] आठवाँ।

अष्ट-मान—पुं० [ब० स०] आठ मुट्ठी का एक मान या परिमाण।

अष्टमिका—स्त्री० [सं० अष्टमी+कन्-टाप्, ह्रस्व] = अष्टमी।

अष्टमी—स्त्री० [सं० अष्टम+ङीप्] १. शुक्ल या कृष्ण पक्ष की आठवीं तिथि। २. क्षीरकाकोली। पयस्वा।

अष्ट-मूर्ति—पुं० [ब० स०] १. शिव। २. शिव की ये आठ मूर्त्तियाँ—क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, सूर्य, और चंद्रमा।

अष्ट-लोह—पुं० [कर्म० स०] दे० 'अष्टधातु'।

अष्ट-वर्ग—पुं० [कर्म० स०] १. इन आठ ओषधियों का समूह—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि। २. हिन्दू राज्यतंत्र में, राज्य के ये आठ अंग या वर्ग—ऋषि, वस्ती (गाँव, नगर आदि), दुर्ग, सेतु, हस्ति-बंधन, खान, कर-ग्रहण और सैन्य संस्थापन।

अष्ट-श्रवण—पुं० [ब० स०] आठ कानोंवाले, ब्रह्मा।

अष्ट-श्रवा (स्)—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।

अष्ट-सिद्धि—स्त्री० [कर्म० स०] योग के द्वारा प्राप्त होनेवाली ये आठ सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

अष्टांग—पुं० [अष्ट-अंग, कर्म० स०] १. योग साधन के ये आठ भेद—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। २. वैद्यक में, चिकित्सा के ये आठ विभाग—शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूत विद्या, कौमार-भृत्य. अगद तंत्र, रसायन तंत्र और वाजीकरण। ३. शरीर के ये आठ अंग—जाँघ, पैर, हाथ, उर, सिर, वचन, दृष्टि और बुद्धि। ४. सूर्य को दिया जानेवाला वह अर्घ्य जिसमें जल, दूध, घी, शहद, दही, लाल चंदन, कनेर और कुशा ये आठ पदार्थ होते हैं।

वि० आठ अंगों या अवयवोंवाला। २. अठ-पहला।

अष्टांग-मार्ग—पुं० [कर्म० स०] महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित ये आठ मार्ग जो सब दुःखों का नाश करनेवाले कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाक, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक्समाधि।

अष्टांग-योग—पुं० [कर्म० स०] दे० 'अष्टांग' १.।

अष्टांगायुर्वेद—पुं० [अष्टांग-आयुर्वेद, कर्म० स०] दे० 'अष्टांग' २.।

अष्टांगी (गिन्)—वि० [सं० अष्टांग+इनि] आठ अंगोंवाला।

अष्टाकपाल—पुं० [सं० अष्ट-कपाल+कर्म० स०, आत्व अण्-लुक्] १. वह पुरोडाश जो मिट्टी के आठ वरतनों में पकाया जाता था। २. उक्त पुरोडाश से किया जानेवाला यज्ञ।

अष्टाक्षर—पुं० [अष्ट-अक्षर व० स०] १. आठ अक्षरोंवाला मंत्र। जैसे विष्णुका 'ओं नमो नारायणाय' नामक मंत्र, या वल्लभ संप्रदाय का 'श्री कृष्णः शरणं मम' नामक मंत्र।

*वि० जिसमें आठ अक्षर हों। आठ अक्षरोंवाला।

अष्टादश (न्)—वि० [अष्ट-दश, द्व० स०, आत्व] अट्ठारह।

अष्टापद—पुं० [अष्ट-पद, व० स०, आत्व] १. सोना। स्वर्ण। २. धतूरा। ३. मकड़ी। ४. कृमि। कीड़ा। ५. कैलाश।

अष्टावक्र—पुं० [स० त०, आत्व] १. वह मनुष्य जिसके हाथ, पैर आदि अंग कई जगहों से टेढ़े-मेढ़े हों। २. एक प्राचीन ऋषि जिनके अंग टेढ़े थे।

अष्टि—स्त्री० [सं० अस् (फेंकना) + क्तिन्, पृषो० षत्व] सोलह वर्णो का एक वृत्त जिसके कई भेद हैं।

अष्टी—स्त्री० [सं० अष्टि+ङीष्] दीपक राग की एक रागिनी।

अष्ठि—स्त्री० [सं०=अष्टि, पृषो० सिद्धि] [वि० अष्ठिल] १. पत्थर या उसका टुकड़ा। २. कठोर खनिज पदार्थ का ढेला। ढोंका। ३. फलों के अंदर का वहुत कड़ा वीज। (स्टोन)

अष्ठिल—वि० [सं० अष्ठि+इलच्-] १. जो अष्ठि या पत्थर के रूप में हो। २. पत्थर की तरह कठोर। ३. जिसमें पत्थर लगे हों। ४. पत्थरों से युक्त। पथरीला।

अष्ठीला—स्त्री० [सं० अष्ठि√रा(देना)+, क, लत्व, दीर्घ] १. मूत्राशय का एक रोग जिसमें अंदर गाँठ पड़ने के कारण मूत्र रुकने लगता है। २. गोलाकार वस्तु। ३. विल्लौर।

अष्ठीला-ग्रंथि—स्त्री० [ष० त०] पेडू के अंदर मूत्राशय के पास होने-वाली एक ग्रंथि या ग्रंथि-समूह जो पुरुषों में जनन-शक्ति संबंधी रस उत्पन्न करता है। (प्रॉस्टेटग्लैंड)

अष्ठीलिका—स्त्री० [सं० अष्ठि√रा+क, ल, दीर्घ=अष्ठील+कन्-टाप् इत्व] १. एक प्रकार का फोड़ा या व्रण। २. पत्थर का छोटा टुकड़ा। कंकड़।

अष्षी—स्त्री०=अक्षि (आँख)।

असंक*—वि०=अशंक।

असंका—स्त्री०=आशंका।

असंक्रांत—वि० [सं० न० त०] जिसका या जिसमें संक्रमण न हुआ हो। पुं० मलमास। अधिक मास।

असंख*—वि० = असंख्य।

असंख्य—वि० [सं० न० व०] [भाव० असंख्यता] १. जो गिनती में वहुत अधिक हो। २. जिसकी गिनती न हो सके। बहुत अधिक। (नम्बरलेस)

असंख्येय—वि० [सं० न० त०] इतना अधिक जिसकी गिनती हो ही न सकती हो। असंख्य। (इन्न्यूमरेबुल)

पुं० १. शिव। २. विष्णु। ३. बहुत वड़ी संख्या।

असंग—वि० [सं० न० व०] १. जिसके संग या साथ कोई न हो। २. जिसका कोई मित्र या संगी न हो। ३. जो किसी से मिला, लगा या सटा न हो। ४. माया रहित।

पुं० १. संग या साथ न होना। २. मन की वह वृत्ति जिसमें मनुष्य सांसारिक भोग-विलास की ओर ध्यान नहीं देता। ३. पुरुष। ४. आत्मा। (सांख्य)

असंगचारी (रिन्)—वि० [सं० असंग√चर (गति)+णिनि] अवाधित रूप से और अकेला विचरण करनेवाला।

असंगत—वि० [सं० न० त०] [भाव० असंगति] १. जो किसी से मिला, लगा या सटा न हो। २. जिसकी किसी से संगति या मेल न वैठता हो। ३. जो प्रस्तुत विषय के विचार से उचित, उपयुक्त अथवा समीचीन न हो। जैसे—ये सब असंगत बातें हैं।

असंगति—स्त्री० [सं० न० त०] १. असंगत होने की अवस्था या भाव। संगति का न होना। २. प्रस्तुत प्रसंग या विषय के अनुरूप, उपयुक्त या सटीक न होने की अवस्था या भाव। (इनकॉन्सिस्टेन्सी) ३. साहित्य में एक अलंकार जिसमें कार्य और कारण का ऐसे विलक्षण रूप से उल्लेख होता है कि दोनों में संगति नहीं वैठती; अर्थात् कारण एक जगह का या एक प्रकार का होता है और कार्य किसी दूसरी जगह का या दूसरे प्रकार का वताया जाता है। जैसे—दृग उरझत टूटत कुटुंम, जुरति चतुर संग प्रीति। परति गाँठ दुर्जन हिये दई नई यह रीति।—विहारी।

असंगति-प्रदर्शन—पुं० [सं० ष० त०] तर्क करते समय अंत में कोई ऐसी वात प्रमाणित या सिद्ध कर जाना जो इष्ट या संगत न हो और फलतः जो अनुचित या दूषित हो। अनिष्ट-प्रदर्शन।

असंगम—वि० [न० व०] जो किसी से मिला या लगा न हो। अलग। पृथक्।

पुं० [सं० न० त०] १. संगति या मेल का अभाव। २. मिला न होना।

असंगी (गिन्)—वि० [न० त०] १. जिसका किसी से संग या संबंध न हो। उदा०—गुरु करना वनवास वहयर आपु असंगी।—सहचरि शरण। २. किसी के संग या साथ में न रहनेवाला।

असंचय—पुं० [न० त०] संचय का अभाव।

वि० [न० व०]=असंचयी।

असंचयिक, असंचयी (यिन्)—वि० [सं० न० त०] संचय न करनेवाला। जो कुछ मिले, वह सब खर्च कर देनेवाला।

असंचर—वि० [सं० न० व०] (मार्ग) जिसमें संचार न हो सकता हो। अगम्य।

असंज्ञ—वि० [सं० न० व०] १. जिसकी कोई संज्ञा या नाम न हो। वे-नाम। २. जिसे चेतना न हो। संज्ञा-शून्य।

असंज्ञा—स्त्री० [सं० न० त०] १. संज्ञा का अभाव। २. सामंजस्य का अभाव।

असंज्वर—वि० [सं० न० व०] संज्वर (कष्ट, द्वेष, रोग आदि) से रहित।

असंत—वि० [सं० अ+हिं० संत] १. जो ईश्वर-भक्त, संत या साधु न हो। २. जो सज्जन या भला न हो; अर्थात् दुष्ट या बुरा।

असंतति, असंतान—वि० [सं० न० व०] जिसे संतान या औलाद न हो। जिसके आगे वाल-बच्चे न हों।

असंतुष्ट—वि० [सं० न० त०] १. जो संतुष्ट न हो। अप्रसन्न या रुष्ट। २. जिसे किसी कार्य, वात आदि से संतोष न हुआ हो।

असंतुष्टि—स्त्री० [सं० न० त०] असंतुष्ट होने की अवस्था या भाव। असंतोष।

असंतोष—पुं० [सं० न० त०] [वि० असंतुष्ट, असंतोषी] १. संतोष

का अभाव। २. वह स्थिति जिसमें किसी काम, चीज या वात से मनुष्य का मन नहीं भरता; अथवा काम या वात यथेष्ट नहीं जान पड़ती; और इसी लिए वह खिन्न या रुष्ट हो जाता है। (डिस्सैटिस्फैक्शन)

असंतोषी (षिन्)—वि० [सं० न० त०] जिसको कभी संतोष न होता हो। सदा कुछ और की कामना रखनेवाला।

असंदिग्ध—वि० [सं० न० त०] जिसके संवंध में कोई संदेह न हो अथवा न हो सकता हो। संदेह-रहित।

असंध—वि० [सं० अ+संधि] १. जिसमें संधि या जोड़ न हो। २. जो मिला हुआ न हो। ३. जिसके टुकड़े न हुए हों। उदा०—तरवारि तेज नारेण हनि, धर असंध दुहिग धरह। —चंदवरदाई।

असंधना—स० [हिं० असंध] अलग, जुदा या पृथक् करना। उदा०—अनि पँखि वंधे चक्रवाक असंधे। प्रिथीराज।

अ० अलग या जुदा होना।

असंधि—वि० [सं० न० व०] (व्याकरण में ऐसे शव्द) जिनमें परस्पर संधि न हुई हो। संधि-रहित।

स्त्री० [न० त०] १. संधि का अभाव। २. संपर्क या संवंध का अभाव।

असंपर्क—पुं० [सं० न० त०] संपर्क या संवंध न होना या न रह जाना।

असंपृक्त—भू० कृ० [सं० न० त०] जो किसी के साथ मिला, लगा या सटा न हो। जिसका किसी से संपर्क न हो।

असंप्रज्ञात—वि० [सं० न० त०] जो अच्छी तरह से जाना हुआ न हो।

असंप्रज्ञात-समाधि—स्त्री० [कर्म० स०] योग में निर्विकल्पसमाधि, जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का भेद मिट जाता है।

असंवंध—पुं० [सं० न० त०] संवंध (लगाव) का अभाव।

वि०=[न० व०] असंवद्ध।

असंवंधातिशयोक्ति—स्त्री० [सं० असंवंध-अतिशयोक्ति, कर्म० स०] साहित्य में अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें किसी के विषय में उसके परम योग्य या समर्थ होने पर भी इस वात का उल्लेख होता है कि वह अमुक विषय में अथवा अमुक व्यक्ति की तुलना में असमर्थ, अयोग्य या हीन सिद्ध हुआ है। जैसे—अमुक राजा की दानशीलता को देखकर कल्पतरु और कामधेनु को भी दंग रह जाना पड़ा।

असंवद्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो प्रस्तुत विषय से संवद्ध न हो। अलग। पृथक्। २. जिसका किसी तथ्य से संवंध न हो। जैसे—असंवद्ध प्रलाप।

असंवाध—वि० [सं० न० व०] १. जो वंधन में न हो। २. जो संकीर्ण न हो; फलतः चौड़ा या विस्तृत। ३. कष्ट-रहित। ४. सुनसान। ५. विना वाधा का। अवाध।

असंबाधा—स्त्री० [सं० असंवाध-टाप्] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, सगण, और दो गुरु होते हैं।

असंभव—वि० [सं० न० व०] [भाव० असंभवता] जो कभी घटित न हो सकता हो। जो कभी हो ही न सकता हो।

पुं० एक काव्यालंकार जिसमें यह कहा जाता है कि जो वात हो गई, उसका होना असंभव था।

असंभव्य—वि०=असंभव।

असंभार—वि० [सं० न० व०] १. जो सँभाला न जा सके। २. वहुत वड़ा या भारी।

पुं० [सं० न० त०] संभार या देख-रेख का अभाव।

असंभावना—स्त्री० [सं० न० त०] संभावना न होना। हो सकने की आशा न होना।

असंभावनीय—वि० [सं० न० त०] =असंभाव्य।

असंभावित—वि० [सं० न० त०] जिसके घटित होने की कोई संभावना (अनुमान, कल्पना आदि) न हो।

असंभावी (विन्)—वि० [सं० न० त०] जो भविष्य में घटने या होने को न हो। आगे चलकर न होनेवाला।

असंभाव्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसके घटित होने की कोई संभावना (आशा या कल्पना) न हो सकती हो। २. जो घटित न हो सकता हो। (इम्प्रोवेवुल)

असंभाष्य—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिससे वात करना उचित न हो, फलतः वहुत ही तुच्छ या हीन। २. (वचन या शव्द) जो कहे जाने के उपयुक्त या योग्य न हो।

पुं० अनुचित या वुरी वात।

असंभूति—स्त्री० [सं० न० त०] १. संभूति या अस्तित्व का अभाव। अनस्तित्व। २. वार वार जन्म न लेना। ३. संभावना का अभाव। ४. अनहोनी वात। ५. अव्याकृत प्रकृति।

असंभोज्य—वि० [सं० न० त०] जिसके साथ वैठकर भोजन करना उचित न हो अथवा वर्जित हो।

असंयत—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसके विचार संयत न हों। २. (कार्य या व्यवहार) जो संयत न हो या जिसमें संयम का अभाव हो।

असंयम—पुं० [सं० न० त०] संयम का अभाव। इंद्रियों, आवेगों आदि को अपने वश में न रखना।

असंयुक्त—वि० [सं० न० त०] जो सयुक्त या मिला हुआ न हो।

पुं० विष्णु।

असंयोग—पुं० [सं० न० त०] १. संयोग या सुयोग का अभाव। २. मेल या योग का अभाव।

असंवृत—वि० [सं० न० त०] जो संवृत या ढका हुआ न हो। खुला हुआ।

पुं० एक नरक का नाम।

असंशय—वि० [सं० न० त०] १. जिसके मन में संशय न हो। २. जिसके विषय में संशय न हो।

क्रि० वि० निस्संदेह। वेशक।

पुं० [न० त०] संशय का अभाव।

असंसक्ति—स्त्री० [सं० न० त०] १. संसक्ति या लगाव न होना। २. सांसारिक विषय-वासनाओं से अलग और निर्लिप्त रहना।

असंसारी (रिन्)—वि० [सं० न० त०] १. संसार की सव वातों से अलग रहनेवाला। विरक्त। २. जो इस संसार में न होता हो; अर्थात् अलौकिक या स्वर्गीय।

असंस्कृत—वि० [सं० न० त०] १. जिसका संस्कार या सुधार न हुआ हो। अपरिमार्जित। २. हिंदूधर्म-शास्त्र के अनुसार जिसके संस्कार (मुंडन, यज्ञोपवीत आदि) न हुए हों। व्रात्य। ३. असभ्य। अशिष्ट।

असंस्थान—पुं० [सं० न० त०] १. संस्थान या अच्छी स्थिति न होना। २. अव्यवस्था। ३. क्रम या सिलसिले का अभाव। ४. न्यूनता। कमी।

असंस्थित—वि० [सं० न० त०] १. जो संस्थान से युक्त (व्यवस्थित या क्रमवद्ध) न हो। क्रम-रहित। २. जो एक स्थान पर न रहकर वरा-

वर घूमता रहता हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो। फैला या विखरा हुआ। ४. जो पूरा-पूरा न हुआ हो। अधूरा। अपूर्ण।

असंस्थिति—स्त्री० [सं० न० त०] =असंस्थान।

असंहत—वि० [सं० न० त०] १. जो संहत (जुड़ा या मिला हुआ) न हो। असंयुक्त। २. किसी प्रकार का संबंध या परिचय न रखनेवाला। ३. एक में मिलकर न रहनेवाला। ४. विखरा हुआ।

पुं० १. पुरुष या आत्मा। (सांख्य) २. एक प्रकार की व्यूह-रचना जिसमें सैनिकों की टुकड़ियाँ अलग-अलग रखी जाती हैं।

अस*—वि० [सं० एष=यह, अथवा ईदृश] [स्त्री० असि] १. इस प्रकार का। इस जैसा। ऐसा। २. तुल्य। समान। उदा०—जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु वचन सँभारे।—तुलसी।

पुं०=अश्व (घोड़ा)। उदा०—अस वेगि वहै रथ वहै अंतरीवा।—पृथीराज।

असइ—वि० [सं० अ+सती] कुलटा। दुश्चरित्रा। उदा०—वाणित्राँ वधू गोवाछ असइ विट।—प्रिथीराज।

असकंदर—पुं०=सिकंदर।

असक—वि० [सं० असक्त] १. अशक्त। कमजोर। दुर्वल। २. अस्वस्थ। बीमार।

असकताना—अ० [हिं० आसकत] आसकत या आलस्य में पड़ना या उसका अनुभव करना।

असकन्ना—पुं० [सं० असि=तलवार+करण=करना] एक प्रकार की रेती जिससे तलवार की म्यान का भीतरी भाग साफ किया जाता है।

असक्त—वि० [सं० न० त०] जिसमें किसी के प्रति आसक्ति न हो। उदासीन या विरक्त।

वि०=अशक्त (शक्ति-हीन)।

असक्तारंभ—पुं० [सं० असक्त-आरंभ, व० स०] १. वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े श्रम या साधारण वर्षा से अन्न पैदा होता हो। २. उक्त भूमि में होनेवाली उपज या पैदावार।

असगंध—पु० [सं० अश्वगंधा] एक प्रकार की सीधी झाड़ी जिसमें छोटे गोल फल लगते हैं। (इसके फलों और जड़ की गिनती शक्ति-वर्धक ओषधियों में होती है)।

असगर—वि० [अ० अस्गर] बहुत छोटा।

† क्रि० वि० [हिं० अकसर=अकेला] विना संगी-साथी के। अकेला।

असगुन—पुं० [सं० अशकुन] खराब या बुरा समझा जानेवाला शकुन या आरंभिक लक्षण।

असगुनियाँ†—वि० [हिं० असकुन+इया (प्रत्य०)] १. (व्यक्ति) जिसे देखना अशकुन या अशुभ समझा जाता हो। २. अशकुन उपस्थित करनेवाला।

असज्जन—वि० [सं० न० त०] जो सज्जन न हो, फलतः दुष्ट या नीच (जन)।

पुं० दुष्ट व्यक्ति।

असढ़िया—पु० [सं० आषाढ़] एक प्रकार का लंबा साँप।

वि० १. आषाढ़ संबंधी। आषाढ़ मास का। २. आषाढ़ में होनेवाला।

असण*—पुं० [सं० आपनन] गड्ढा। (डिं०)

असत्—वि० [सं० न० त०] १. जिसका अस्तित्व या सत्ता न हो, फलतः अवास्तविक। २. जो सत्य न हो, फलतः झूठा या मिथ्या।

असती—वि० [सं० असत्+ङीप्] जो सती या पतिव्रता न हो; अर्थात् कुलटा या दुश्चरित्रा (स्त्री)।

असतुति*—स्त्री०=स्तुति।

असत्कार—पुं० [सं० न० त०] १. सत्कार या उचित आदर का अभाव। २. तिरस्कार।

असत्कृत—भू० कृ० [सं० न० त०] जिसका असत्कार हुआ हो। अपमानित।

असत्कृत्य—वि० [असत्-कृत्य, व० स०] अनुचित या बुरे कार्य या कृत्य करनेवाला।

पुं० [कर्म० स०] अनुचित या बुरा काम।

असत्ता—स्त्री० [सं० न० त०] सत्ता का अभाव। अस्तित्व में या विद्यमान न होना। अविद्यमानता।

असत्त्व—वि० [सं० न० व०] १. जिसमें सत्त्व या सार न हो। सार-हीन। २. जो सच्चा या वास्तविक न हो।

असत्परिग्रह—पुं० [कर्म० स०] अनुपयुक्त वस्तु या अनुपयुक्त व्यक्ति की वस्तु ग्रहण करना। (धर्म-शास्त्र)

असत्य—वि० [सं० न० त०] जो सत्य या उसके अनुरूप न हो, फलतः झूठ या मिथ्या। जैसे—असत्य कथन।

पुं० १. झूठापन। झुठाई। २. झूठ बोलनेवाला व्यक्ति।

असत्यता—स्त्री० [सं० असत्य+तल्-टाप्] असत्य होने की अवस्था या भाव। सच्चाई न होना। मिथ्यात्व।

असत्यवाद—पुं० [ष० त०] असत्य या झूठ बोलना। मिथ्या भाषण।

असत्यवादी (दिन्)—वि० [असत्य√वद् (बोलना)+णिनि] असत्य बोलनेवाला। झूठा।

असत्यशील—वि० [व० स०] जो अपने आचरण, भाषण आदि में सत्यता का पालन न करता हो। प्रायः झूठ बोलने या झूठा आचरण-व्यवहार करनेवाला।

असत्यसंध—वि० [न० त०] १. सत्य का ध्यान न रखने या पालन न करनेवाला। २. प्रायः धोखा देनेवाला। कपटी। छली।

असथन*—पुं० [?] जायफल। (डिं०)

असथिर*—वि०=अस्थिर।

† वि०=स्थिर।

असद्—वि०=असत्।

असद—वि०=असत्।

असदागम—पुं० [सं० असद्-आगम, कर्म० स०] १. अनुचित उपायों या साधनों से होनेवाली आय। २. ऐसे शास्त्र जो वेदविरुद्ध हों और इसीलिए असद् माने जाते हों।

असद्बुद्धि—वि० [सं० व० स०] जिसकी बुद्धि सत् न हो। सदा खराब या बुरी बातों की ओर ध्यान रखनेवाला।

असद्भाव—पुं० [सं० न० त०] १. अस्तित्व या सत्ता का अभाव। २. २. अनुचित या बुरी भावना या विचार। ३. अनुचित या बुरा स्वभाव।

असद्वाद—पुं० [ष० त०] ऐसा शास्त्रीय मत या सिद्धांत जिसमें संसार की सब चीजें असत् या मिथ्या मानी जाती हों।

असद्वृत्ति—वि० [सं० न० व०] १. जिसकी वृत्ति या व्यवसाय निम्न-कोटि का हो। २. जो स्वभावतः बुरे या अनुचित काम करता हो दुराचारी और दुष्ट।

स्त्री० [न० त०] अनुचित और दूषित वृत्ति।

असन—पुं० [सं० अस् (फेंकना) + ल्युट्—अन] १. वाण, शस्त्र आदि फेंकना या चलाना। २. एक प्रकार का वृक्ष।

पुं० [सं० अशन] भोजन। आहार। खाना। उदा०—भीख असन, कम्मल वसन, रखिहौ दूर निवास।—भारतेंदु।

असन-पर्णी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] सातल नामक वृक्ष।

असना—पुं० [सं० अशना] पीतशाल नामक वृक्ष।

*अ०=आसना (होना)।

असनान*—पुं०=स्नान।

असनी*—स्त्री०=अश्विनी (नक्षत्र)।

असन्निधि—स्त्री० [सं० न० त०] १. सन्निधि या समीपता का अभाव। २. संग-साथ या घनिष्ठता न होना।

असन्निहित—वि० [सं० न० त०] १. जो निकट, पास या समीप न हो, फलतः दूरवर्त्ती या दूरस्थित। २. जो ठीक क्रम या ढंग से न रखा गया हो।

असपति —पुं०=अश्वपति।

असपत्त—पुं० [सं० अश्वपति] १. अश्वपति। २. बहुत बड़ा राजा या बादशाह। उदा०—गढ़ नूं म्हे बांध्यो गलै, आवो सौ असपत्त।—बाँकीदास।

असपत्न—वि० [सं० न० ब०] १. (स्त्री) जिसकी सौत न हो। २. (व्यक्ति) जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या शत्रु न हो।

असपिंड—वि० [सं० न० त०] जो संबंध के विचार से सपिंड न हो। अर्थात् जो किसी दूसरे कुल के पितरों को पिंड देता हो। भिन्न या दूसरे वंश का।

असप्पति*—पुं० [सं० अश्वपति] १. घोड़ों का स्वामी। २. राजा। उदा०—जाँणों धरती काज असप्पति आहुड़इ।—ढोला मारू।

असफल—वि० [सं० न० त०] जो अपने काम या प्रयत्न में सफल न हुआ हो। विफल।

असफलता—स्त्री० [सं० असफल+तल्—टाप्] असफल होने की अवस्था या भाव। विफलता।

असबर्ग—पुं० [फा०] पीले या सुनहले पत्तोंवाली एक प्रकार की घास जिसका व्यवहार औषधों में होता है।

असबाब—पुं० [अ० सबब का बहु०] घर-गृहस्थी में नित्य काम आनेवाली चीजें या सामान। गृहस्थी की सामग्री। जैसे—कपड़े, बरतन आदि।

असभई—स्त्री०=असभ्यता।

असभ्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० असभ्यता] १. जो भले आदमियों की सभा या समाज के लिए उपयुक्त या योग्य न हो। जैसे—असभ्य आचरण। २. जो सभ्य न हो। अशिष्ट या गँवार।

असभ्यता—स्त्री० [सं० असभ्य+तल्—टाप्] असभ्य होने की अवस्था या भाव। अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस—स्त्री० [सं० असामंजस्य] कुछ करने, कहने आदि से पहले की वह मानसिक स्थिति जिसमें कर्त्तव्य अभी निश्चित या स्थिर न हो सका हो। दुविधा। (हेसिटेशन)

असमंत*—पुं० [सं० अश्मंत] चूल्हा।

असम—वि० [सं० न० त०] १. जिसका तल सम या एक-जैसा न हो। ऊबड़-खाबड़। ऊँचा-नीचा। २. जो किसी के अनुरूप, तुल्य या सदृश न हो। ३. दे० 'विषम'।

पुं० १. एक काव्यालंकार जिसमें उपमान का मिल सकना असंभव बतलाया जाता है। २. पूर्वी भारत का एक सीमा-प्रदेश जिसे आज-कल भूल से आसाम कहा जाता है।

असमत—स्त्री० [अ० इस्मत] १. पवित्रता। २. स्त्री का सतीत्व।

असमता—स्त्री० [सं० असम+तल्—टाप्] असम होने की अवस्था या भाव। समता का अभाव। (इनीक्वैलिटी)

असमन—वि० [सं०] १. विभिन्न मार्गों या दिशाओं में जानेवाला। २. भिन्न जाति या वर्ण का। ३. साथ मिलकर न रहनेवाला। ४. जिसे अपने साथ रखना अनुचित हो। ५. ऊबड़-खाबड़ (मार्ग आदि)।

असमनयन—पुं० [ब० स०] तीन आँखोंवाले अर्थात् शिव।

असम-नेत्र—पुं० [ब० स०] शिव।

असम-बाण—पुं० [ब० स०] कामदेव।

असमय—पुं० [सं० न० त०] १. खराब या बुरा समय। दुर्दिन। २. अनुपयुक्त समय या स्थिति। ३. उपयुक्त समय से पहले या बाद का समय। बे-वक्त।

क्रि० वि० १. अनुपयुक्त समय में। २. समय से पहले या बाद में।

असमर्थ—वि० [सं० न० त०] १. जो समर्थ न हो। जिसमें सामर्थ्य या शक्ति न हो। अशक्त। जैसे—वृद्धावस्था के कारण वे बहुत असमर्थ हो गये हैं। २. जो किसी विशिष्ट काम को कर सकने के योग्य न हो। जैसे—हम यह झगड़ा निपटाने में असमर्थ हैं।

असमर्थता—स्त्री० [सं० असमर्थ+तल्—टाप्] असमर्थ होने की अवस्था या भाव।

असमर्थ-पद—पुं० [कर्म० स०] वह पद या शब्द जो अभीष्ट अर्थ या भाव ठीक तरह से व्यक्त न कर सके।

असमर्थ-समास—पुं० [कर्म० स०] व्याकरण में, ऐसा समास जिसमें अन्वय संबंधी दोष हो। जैसे—'अश्राद्धभोजी' या 'असूर्यपश्या', में 'अ' का समास इसलिए अन्वय दोष से युक्त है कि उसका वास्तविक संबंध क्रमात् 'श्राद्ध' या 'सूर्य' से नहीं बल्कि 'भोजी' और 'पश्या' के साथ है।

असम-लोचन—पुं० [ब० स०] शिव।

असमवायि-कारण—पुं० [सं० कर्म० स०] वैशेषिक के अनुसार ऐसा कारण जिसका कार्य से नित्य संबंध न हो, केवल आकस्मिक संबंध हो। (ऐसा कारण सदा कर्म या गुण ही होता है; द्रव्य नहीं होता।) जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना, असमवायि कारण से होता है।

असमवायी (यिन्)—वि० [सं० सम्—अव√इ (गति) + णिनि, न० त०] जो समवायी न हो; अर्थात् जिसका किसी से नित्य संबंध न हो। आनुषंगिक।

असम-वृत्त—पुं० [कर्म० स०] वह वर्णवृत्त जिसके सब चरणों में समान गण न हों। (दे० 'विषमवृत्त')

असम-शर—पुं० [ब० स०] कामदेव।

असम-शरण—पुं०=असमशर।

असमस्त—वि० [सं० न० त०] १. जो समस्त या संपूर्ण न हो, फलतः आंशिक या अपूर्ण। ३. जिसमें व्याकरणवाला समास न होता हो। समास-रहित (शब्द, वाक्य या भाषा)।

असमान—वि० [सं० न० त०] [भाव० असमानता] जो किसी के समान या तुल्य न हो। समानता से रहित।

वर घूमता रहता हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो। फैला या बिखरा हुआ। ४. जो पूरा-पूरा न हुआ हो। अधूरा। अपूर्ण।

असंस्थिति—स्त्री० [सं० न० त०] =असंस्थान।

असंहत—वि० [सं० न० त०] १. जो संहत (जुड़ा या मिला हुआ) न हो। असंयुक्त। २. किसी प्रकार का संबंध या परिचय न रखनेवाला। ३. एक में मिलकर न रहनेवाला। ४. बिखरा हुआ।

पुं० १. पुरुष या आत्मा। (सांख्य) २. एक प्रकार की व्यूह-रचना जिसमें सैनिकों की टुकड़ियाँ अलग-अलग रखी जाती हैं।

अस*—वि० [सं० एष=यह, अथवा ईदृश] [स्त्री० असि] १. इस प्रकार का। इस जैसा। ऐसा। २. तुल्य। समान। उदा०—जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचन सँभारे।—तुलसी।

पुं०=अश्व (घोड़ा)। उदा०—अस बेगि वहै रथ वहै अंतरीवा।—पृथीराज।

असइ—वि० [सं० अ+सती] कुलटा। दुश्चरित्रा। उदा०—वाणित्राँ वधू गोवाछ असइ विट।—प्रिथीराज।

असकंदर—पुं०=सिकंदर।

असक—वि० [सं० असक्त] १. अशक्त। कमजोर। दुर्बल। २. अस्वस्थ। बीमार।

असकताना—अ० [हिं० आसकत] आसकत या आलस्य में पड़ना या उसका अनुभव करना।

असकन्ना—पुं० [सं० असि=तलवार+करण=करना] एक प्रकार की रेती जिससे तलवार की म्यान का भीतरी भाग साफ किया जाता है।

असक्त—वि० [सं० न० त०] जिसमें किसी के प्रति आसक्ति न हो। उदासीन या विरक्त।

वि०=अशक्त (शक्ति-हीन)।

असक्तारंभ—पुं० [सं० असक्त–आरंभ, ब० स०] १. वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े श्रम या साधारण वर्षा से अन्न पैदा होता हो। २. उक्त भूमि में होनेवाली उपज या पैदावार।

असगंध—पु० [सं० अश्वगंधा] एक प्रकार की सीधी झाड़ी जिसमें छोटे गोल फल लगते हैं। (इसके फलों और जड़ की गिनती शक्ति-वर्धक ओषधियों में होती है)।

असगर—वि० [अ० अस्‌गर] बहुत छोटा।

† क्रि० वि० [हिं० अकसर=अकेला] बिना संगी-साथी के। अकेला।

असगुन—पुं० [सं० अशकुन] खराब या बुरा समझा जानेवाला शकुन या आरंभिक लक्षण।

असगुनियाँ†—वि० [हिं० असकुन+इया (प्रत्य०)] १. (व्यक्ति) जिसे देखना अशकुन या अशुभ समझा जाता हो। २. अशकुन उपस्थित करनेवाला।

असज्जन—वि० [सं० न० त०] जो सज्जन न हो, फलतः दुष्ट या नीच (जन)।

पुं० दुष्ट व्यक्ति।

असढ़िया—पुं० [सं० आषाढ़] एक प्रकार का लंबा साँप।

वि० १. आषाढ़ संबंधी। आषाढ़ मास का। २. आषाढ़ में होनेवाला।

असण*—पुं० [सं० आपनन] गड्ढा। (डिं०)

असत्—वि० [सं० न० त०] १. जिसका अस्तित्व या सत्ता न हो, फलतः अवास्तविक। २. जो सत्य न हो, फलतः झूठा या मिथ्या।

असती—वि० [सं० असत्+ङीप्] जो सती या पतिव्रता न हो; अर्थात् कुलटा या दुश्चरित्रा (स्त्री)।

असतुति*—स्त्री०=स्तुति।

असत्कार—पुं० [सं० न० त०] १. सत्कार या उचित आदर का अभाव। २. तिरस्कार।

असत्कृत—भू० कृ० [सं० न० त०] जिसका असत्कार हुआ हो। अपमानित।

असत्कृत्य—वि० [असत्–कृत्य, ब० स०] अनुचित या बुरे कार्य या कृत्य करनेवाला।

पुं० [कर्म० स०] अनुचित या बुरा काम।

असत्ता—स्त्री० [सं० न० त०] सत्ता का अभाव। अस्तित्व में या विद्यमान न होना। अविद्यमानता।

असत्त्व—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें सत्त्व या सार न हो। सार-हीन। २. जो सच्चा या वास्तविक न हो।

असत्परिग्रह—पुं० [कर्म० स०] अनुपयुक्त वस्तु या अनुपयुक्त व्यक्ति की वस्तु ग्रहण करना। (धर्म-शास्त्र)

असत्य—वि० [सं० न० त०] जो सत्य या उसके अनुरूप न हो, फलतः झूठ या मिथ्या। जैसे—असत्य कथन।

पुं० १. झूठापन। झुठाई। २. झूठ बोलनेवाला व्यक्ति।

असत्यता—स्त्री० [सं० असत्य+तल्–टाप्] असत्य होने की अवस्था या भाव। सच्चाई न होना। मिथ्यात्व।

असत्यवाद—पुं० [प० त०] असत्य या झूठ बोलना। मिथ्या भाषण।

असत्यवादी (दिन्)—वि० [असत्य√वद् (बोलना) +णिनि] असत्य बोलनेवाला। झूठा।

असत्यशील—वि० [ब० स०] जो अपने आचरण, भाषण आदि में सत्यता का पालन न करता हो। प्रायः झूठ बोलने या झूठा आचरण-व्यवहार करनेवाला।

असत्यसंध—वि० [न० त०] १. सत्य का ध्यान न रखने या पालन न करनेवाला। २. प्रायः धोखा देनेवाला। कपटी। छली।

असथन*—पुं० [?] जायफल। (डिं०)

असथिर*—वि०=अस्थिर।

† वि०=स्थिर।

असद्—वि०=असत्।

असद—वि०=असत्।

असदागम—पुं० [सं० असद्–आगम, कर्म० स०] १. अनुचित उपायों या साधनों से होनेवाली आय। २. ऐसे शास्त्र जो वेदविरुद्ध हों और इसीलिए असद् माने जाते हों।

असद्बुद्धि—वि० [सं० ब० स०] जिसकी बुद्धि सत् न हो। सदा खराब या बुरी बातों की ओर ध्यान रखनेवाला।

असद्भाव—पुं० [सं० न० त०] १. अस्तित्व या सत्ता का अभाव। २. २. अनुचित या बुरी भावना या विचार। ३. अनुचित या बुरा स्वभाव।

असद्वाद—पुं० [प० त०] ऐसा शास्त्रीय मत या सिद्धांत जिसमें संसार की सब चीजें असत् या मिथ्या मानी जाती हों।

असद्वृत्ति—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी वृत्ति या व्यवसाय निम्न-कोटि का हो। २. जो स्वभावतः बुरे या अनुचित काम करता हो दुराचारी और दुष्ट।

स्त्री० [न० त०] अनुचित और दूषित वृत्ति।

असन—पुं० [सं० अस् (फेंकना) + ल्युट्–अन] १. वाण, शस्त्र आदि फेंकना या चलाना। २. एक प्रकार का वृक्ष।

पु० [सं० अशन] भोजन। आहार। खाना। उदा०—भीख असन, कम्मल वसन, रखिहौं दूर निवास।—भारतेंदु।

असन-पर्णी—स्त्री० [ब० स०, ङीष्] सातल नामक वृक्ष।

असना—पुं० [सं० अशना] पीतशाल नामक वृक्ष।

*अ०=आसना (होना)।

असनान*—पुं०=स्नान।

असनी*—स्त्री०=अश्विनी (नक्षत्र)।

असन्निधि—स्त्री० [सं० न० त०] १. सन्निधि या समीपता का अभाव। २. संग-साथ या घनिष्ठता न होना।

असन्निहित—वि० [सं० न० त०] १. जो निकट, पास या समीप न हो, फलतः दूरवर्त्ती या दूरस्थित। २. जो ठीक क्रम या ढंग से न रखा गया हो।

असपति—पुं०=अश्वपति।

असपत्त—पुं० [स० अश्वपति] १. अश्वपति। २. वहुत वड़ा राजा या बादशाह। उदा०—गढ़ नूं म्हे वांध्यो गलै, आवो सो असपत्त।—बाँकीदास।

असपत्न—वि० [सं० न० ब०] १. (स्त्री) जिसकी सौत न हो। २. (व्यक्ति) जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या शत्रु न हो।

असपिंड—वि० [सं० न० त०] जो संबंध के विचार से सपिंड न हो। अर्थात् जो किसी दूसरे कुल के पितरों को पिंड देता हो। भिन्न या दूसरे वंश का।

असप्पति*—पुं० [सं० अश्वपति] १. घोड़ों का स्वामी। २. राजा। उदा०—जाँणों धरती काज असप्पति आहुड़इ।—ढोला मारू।

असफल—वि० [सं० न० त०] जो अपने काम या प्रयत्न में सफल न हुआ हो। विफल।

असफलता—स्त्री० [सं० असफल+तल्–टाप्] असफल होने की अवस्था या भाव। विफलता।

असबर्ग—पु० [फा०] पीले या सुनहले पत्तोंवाली एक प्रकार की घास जिसका व्यवहार औषधों में होता है।

असबाब—पुं० [अ० सबब का बहु०] घर-गृहस्थी में नित्य काम आनेवाली चीजें या सामान। गृहस्थी की सामग्री। जैसे—कपड़े, बरतन आदि।

असभई—स्त्री०=असभ्यता।

असभ्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० असभ्यता] १. जो भले आदमियों की सभा या समाज के लिए उपयुक्त या योग्य न हो। जैसे—असभ्य आचरण। २. जो सभ्य न हो। अशिष्ट या गँवार।

असभ्यता—स्त्री० [सं० असभ्य+तल्–टाप्] असभ्य होने की अवस्था या भाव। अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस—स्त्री० [सं० असामंजस्य] कुछ करने, कहने आदि से पहले की वह मानसिक स्थिति जिसमें कर्त्तव्य अभी निश्चित या स्थिर न हो सका हो। दुविधा। (हेसिटेशन)

असमंत*—पुं० [सं० अश्मंत] चूल्हा।

असम—वि० [सं० न० त०] १. जिसका तल सम या एक-जैसा न हो। ऊवड़-खावड़। ऊँचा-नीचा। २. जो किसी के अनुरूप, तुल्य या सदृश न हो। ३. दे० 'विषम'।

पुं० १. एक काव्यालंकार जिसमें उपमान का मिल सकना असंभव बतलाया जाता है। २. पूर्वी भारत का एक सीमा-प्रदेश जिसे आज-कल भूल से आसाम कहा जाता है।

असमत—स्त्री० [अ० इस्मत] १. पवित्रता। २. स्त्री का सतीत्व।

असमता—स्त्री० [सं० असम+तल्–टाप्] असम होने की अवस्था या भाव। समता का अभाव। (इनीक्वैलिटी)

असमन—वि० [सं०] १. विभिन्न मार्गों या दिशाओं में जानेवाला। २. भिन्न जाति या वर्ण का। ३. साथ मिलकर न रहनेवाला। ४. जिसे अपने साथ रखना अनुचित हो। ५. ऊबड़-खाबड़ (मार्ग आदि)।

असमनयन—पुं० [ब० स०] तीन आँखोंवाले अर्थात् शिव।

असम-नेत्र—पुं० [ब० स०] शिव।

असम-बाण—पुं० [ब० स०] कामदेव।

असमय—पुं० [सं० न० त०] १. खराब या बुरा समय। दुर्दिन। २. अनुपयुक्त समय या स्थिति। ३. उपयुक्त समय से पहले या बाद का समय। बे-वक्त।

क्रि० वि० १. अनुपयुक्त समय में। २. समय से पहले या बाद में।

असमर्थ—वि० [सं० न० त०] १. जो समर्थ न हो। जिसमें सामर्थ्य या शक्ति न हो। अशक्त। जैसे—वृद्धावस्था के कारण वे बहुत असमर्थ हो गये हैं। २. जो किसी विशिष्ट काम को कर सकने के योग्य न हो। जैसे—हम यह झगड़ा निपटाने मे असमर्थ हैं।

असमर्थता—स्त्री० [सं० असमर्थ+तल्–टाप्] असमर्थ होने की अवस्था या भाव।

असमर्थ-पद—पुं० [कर्म० स०] वह पद या शब्द जो अभीष्ट अर्थ या भाव ठीक तरह से व्यक्त न कर सके।

असमर्थ-समास—पुं० [कर्म० स०] व्याकरण मे, ऐसा समास जिसमें अन्वय संबंधी दोष हो। जैसे—'अश्राद्धभोजी' या 'असूर्यपश्या, में 'अ' का समास इसलिए अन्वय दोष से युक्त है कि उसका वास्तविक संबंध क्रमात् 'श्राद्ध' या 'सूर्य' से नहीं बल्कि 'भोजी' और 'पश्या के साथ है।

असम-लोचन—पुं० [ब० स०] शिव।

असमवायि-कारण—पुं० [सं० कर्म० स०] वैशेषिक के अनुसार ऐसा कारण जिसका कार्य से नित्य संबंध न हो, केवल आकस्मिक संबंध हो। (ऐसा कारण सदा कर्म या गुण ही होता है; द्रव्य नही होता।) जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना, असमवायि कारण से होता है।

असमवायी (यिन्)—वि० [सं० सम्–अव√इ (गति) + णिनि, न० त०] जो समवायी न हो; अर्थात् जिसका किसी से नित्य संबंध न हो। आनुषंगिक।

असम-वृत्त—पुं० [कर्म० स०] वह वर्णवृत्त जिसके सब चरणों में समान गण न हों। (दे० 'विषमवृत्त')

असम-शर—पुं० [ब० स०] कामदेव।

असम-शरण—पुं०=असमशर।

असमस्त—वि० [सं० न० त०] १. जो समस्त या संपूर्ण न हो, फलतः आंशिक या अपूर्ण। ३. जिसमें व्याकरणवाला समास न होता हो। समास-रहित (शब्द, वाक्य या भाषा)।

असमान—वि० [सं० न० त०] [भाव० असमानता] जो किसी के समान या तुल्य न हो। समानता से रहित।

†पुं०=आसमान (आकाश)।

असमानता—स्त्री० [सं० असमान+तल्-टाप्] असमान होने की अवस्था या भाव। (डिस-पैरिटी)

असमाप्त—वि० [सं० न० त०] जो अभी समाप्त न हुआ हो। जो अभी पूरा होने को हो।

असमाप्ति—स्त्री० [सं० न० त०] समाप्त न होने की अवस्था या भाव।

असमावर्तक—वि० [सं० न० त०] (विद्यार्थी) जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो।

असमावृत्त—वि० [सं० न० त०] =असमावर्तक।

असमिया—स्त्री०, वि०=असमी।

असमी—वि० [सं० असम (देश)] १. असम देश-संबंधी। २. असम प्रदेश में होनेवाला।

स्त्री० १. असम देश की भाषा। २. बँगला लिपि से मिलती-जुलती वह लिपि जिसमें उक्त भाषा लिखी जाती है।

पुं० असम देश का निवासी।

असमूचा—वि० [सं०अ+समुच्चय] जो समूचा या पूरा न हो। अधूरा।

असमेध*—पुं०=अश्वमेध।

असम्मत—वि० [सं० न० त०] [भाव० असम्मति] १. जो राजी न हो। २. (व्यक्ति) जो सम्मत या सहमत न हो। ३. (विषय) जो किसी की सम्मति के अनुरूप न हो।

पुं० १. वह जो विरुद्ध सम्मति रखता हो। २. दुश्मन। शत्रु।

असम्मति—स्त्री० [सं० न० त०] १. सम्मति न होने की अवस्था या भाव। सहमति या स्वीकृति का अभाव। २. अनुचित सम्मति। खराब या बुरी राय।

असम्मर*—पुं० [सं० असि] तलवार। (डिं०)

अ-सम्मित—वि० [सं० न० त०] १. जो सम्मित न हो। २. जिसके सब अंग ठीक अनुपात से या उचित स्थान पर न हों। (अन-सिम्मेट्रिकल)

असयाना*—वि० [हिं० अ+सयाना] १. जो सयाना या वयस्क न हो। २. जो चतुर या होशियार न हो। भोला-भाला। ३. अनाड़ी। मूर्ख।

असर—पुं० [अ०] प्रभाव।

असरा—पुं० [हिं० असाढ़] असम देश में होनेवाला एक प्रकार का चावल।

असरार*—क्रि० वि० [अनु०?] निरंतर। लगातार। उदा०—नैनन नीर वहै असरार।—सूर।

असल—वि० [अ० अस्ल] १. जो प्राकृतिक, वास्तविक या स्वाभाविक हो; कृत्रिम या बनावटी न हो। वास्तविक। जैसे—असल सोना। २. जैसा नियमित रूप से या सदा से होता आया हो, वैसा। ३. जिसमें बनावट या मिलावट न हो। जैसे—असल घी या तेल। ४ जिसकी उत्पत्ति, मूल आदि में संकरता न हो। जैसे—असल ब्राह्मण या वैश्य।

पुं० १. जड़। बुनियाद। मूल। २. मूलधन, जिसपर सूद चढ़ता या लाभ मिलता हो।

पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड़।

असलियत—स्त्री० [अ० अस्लियत] १. 'असल' होने की अवस्था या भाव। वास्तविकता। २. उत्पत्ति या उद्गम अथवा उसका साधन। किसी बात की जड़ या मूल। ३. मूल तत्त्व। सार।

असली—वि० [अ० अस्ल]=असल।

असलेऊ*—वि०=असह्य।

असलेखन*—पुं०=श्लेष्मा (कफ)।

असलेखा (षा)—स्त्री०=अश्लेषा (नक्षत्र)।

असवर्ण—वि० [सं० न० त०] १. जो परस्पर सवर्ण अर्थात् एक ही या समान वर्ण के न हों। भिन्न जाति या वर्ण के। २. जो एक ही या समान प्रकार के न हों।

असवर्ण-विवाह—पुं० [सं० कर्म० स०] ऐसा विवाह जिसमें वर एक वर्ण का तथा कन्या दूसरे वर्ण की हो। (एक्सोगैमी) जैसे—क्षत्रिय और वैश्य अथवा वैश्य अथवा ब्राह्मण में होनेवाला विवाह।

असवार—पुं०=सवार।

असवारी†—स्त्री० =सवारी।

असह*—वि०=असह्य।

पुं० शत्रु। दुश्मन।

असहकार—पुं० [सं० न० त०] सहकार या सहयोग का अभाव। औरों के साथ मिलकर काम न करना।

असहन—वि० [सं०√सह् (सहना)+ल्युट्-अन, न० त०] सहन न करनेवाला। असहिष्णु।

वि०=असह्य। उदा०—ज्योति-सिंधु ज्वाल असहन।—निराला।

पुं० शत्रु। दुश्मन।

असहनशील—वि० [सं० न० त०] व्यावहारिक दृष्टि से, जो सहनशील न हो। बरदाश्त न करनेवाला। असहिष्णु।

असहनीय—वि० [न० त०]=असह्य।

असहयोग—पुं० [सं० न० त०] [वि० असहयोगी] १. औरों के साथ मिलकर काम न करने की क्रिया या भाव। २. सहयोग का अभाव। विशेषतः शासन से असंतुष्ट होकर अपना विरोध दिखलाने के लिए उसके साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं में सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धान्त। (नॉन-कोआपरेशन)

असहाय—वि० [सं० न० ब०] जिसकी सहायता करनेवाला कोई न हो। फलतः अनाथ और विवश (हेल्पलेस)

असहिष्णु—वि० [सं० न० त०] [भाव० असहिष्णुता] सामाजिक व्यवहारों में जो सहिष्णु या सहनशील न हो। असहनशील।

असहिष्णुता—स्त्री० [सं० असहिष्णु+तल्-टाप्] असहिष्णु होने की अवस्था या भाव।

असही*—वि० १. =असहिष्णु। २. =असह्य।

स्त्री० [?] कंघी नामक पौधा।

असहेज*—वि०=असह्य। उदा०-समुद्र तेज असहेज, हरण तम रोर समागम।—चंदवरदाई।

असह्य—वि० [सं० न० त०] (कोई ऐसा तत्त्व, बात या व्यवहार) जो सहन-शक्ति की मर्यादा या सीमा के परे हो, जो सहा न जा सके, फलतः बहुत उग्र, तीव्र या विकट। जैसे—असह्य अत्याचार, असह्य ताप, असह्य व्यवहार आदि।

पुं० [?] हृदय। (डिं०)

असांच—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] जो साँच अर्थात् सत्य न हो, फलतः झूठा या मिथ्या।

असांप्रदायिक—वि० [सं० न० त०] (व्यक्ति, मत या सिद्धांत) जिसका किसी संप्रदाय से संबंध न हो।

असांसद—वि० [सं०संसद्+अण्, न० त०] (कथन या व्यवहार) जो संसद या उसके सदस्यों की मर्यादा के अनुकूल न हो। (अन-पार्लियामेन्टरी)

असा—पुं० [अ०] १. डंडा या सोटा, विशेषतः जिस पर चाँदी-सोने के पत्तर चढ़े हों। (सवारी के आगे शोभा के लिए)। २. दे० 'आसा'।
* वि०=ऐसा।

असाई—वि० [सं० अशास्त्रीय] १. अशास्त्रीय। शास्त्र-विरुद्ध। २. जिसे शास्त्र आदि का अथवा किसी अच्छी बात का कुछ भी ज्ञान न हो (उपेक्षा-सूचक)। उदा०—बोला गंधुबसने रिसाई कस जोगी कस भाँट असाई। —जायसी।

असाक्षिक—वि० [सं० न० ब० कप्] १. जिसकी साक्षी या गवाही देनेवाला कोई न हो। बिना गवाह का। २. जिसे सत्यापित या सिद्ध करनेवाला कोई न हो।

असाक्षी (क्षिन्)—पुं० [सं० न० त०] १. जो साक्षी अर्थात् प्रत्यक्ष-दर्शी न हो। २. वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्म-शास्त्र या विधि के अनुसार मान्य न हो। जैसे—चोर, पागल, शराबी आदि।

असाक्ष्य—पुं० [सं० न० त०] १. साक्ष्य या गवाही का अभाव। २. कोई गवाह न मिलना या न होना।

असाढ़—पुं० = आषाढ़ (मास)।

असाढ़ा—पुं० [देश०] १. महीन बटे हुए रेशम का तागा। २. कच्ची चीनी। खाँड।

असाढ़ी—वि० [सं० अषाढ़] आषाढ़ मास में होने या उससे संबंध रखनेवाला।
स्त्री० १. आषाढ़ मास की पूर्णिमा। २. असाढ़ महीने में बोई जानेवाली फसल। खरीफ।

असाढ़ू—पुं० [देश०] वास्तु में, एक प्रकार का मोटा, बड़ा और भारी पत्थर।

असात्म्य—पुं० [सं० सह-आत्मन्, ब० स०, स आदेश, सात्मन्+ष्यञ्, न० त०] १. जो आरोग्यजनक या स्वास्थ्यकर न हो। २. जो व्यक्ति की प्रकृति या स्वभाव के अनुकूल न हो।

असाध*—वि० = असाध्य।
पुं०=असाधु।

असाधन—वि० [सं० न० ब०] जिसके पास साधन न हो।
पुं० १. साधनों का अभाव। २. अनुचित या अनुपयुक्त साधन।

असाधारण—वि० [सं० न० त०] [भाव० असाधारणता] १. जो साधारण न हो। जिसमें साधारण (गुण आदि) की अपेक्षा कुछ विशेषता हो, अर्थात् विशेष। (एक्स्ट्रा-आर्डिनरी)। २. दे० 'असामान्य'।

असाधारण-धर्म—पुं० [कर्म० स०] १. साधारण धर्म को छोड़ने पर अन्त में बच रहनेवाला धर्म। २. वस्तु का मुख्य धर्म। विशेषता।

असाधि*—वि० = असाध्य।

असाधित—वि० [सं० न० त०] जिसकी साधना न की गई हो। बिना साधा हुआ (काम)।

असाधु—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जो साधु या भला (आदमी) न हो, फलतः दुष्ट या बुरा। २. (प्रयोग या शब्द) जो अनुचित या अप्रामाणिक या अस्वीकृत होने के कारण शिष्ट-सम्मत न हो।

असाधुता—स्त्री० [सं० असाधु+तल्-टाप्] असाधु होने की अवस्था या भाव।

असाध्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० असाध्यता] १. जो साध्य अर्थात् करने योग्य न हो। जिसका साधन न हो सके। जिसकी प्राप्ति या सिद्धि न हो सके। न हो सकनेवाला। (इन्सर्माउन्टेबुल) २. (रोग) जिसका चिकित्सा द्वारा निवारण न हो सके। अ-चिकित्स्य। ३. (रोगी) जिसे चिकित्सा से अच्छा न किया जा सके। (इनक्योरेबुल) ४. जिसपर अधिकार या विजय पाना संभव न हो।

असाध्य-साधन—पुं० [सं०] ऐसा काम करना जो साधारणतः असाध्य समझा जाता हो।

असाध्वी—वि० [सं० न० त०] १. (स्त्री) जो साध्वी या सच्चरित्रा न हो, अर्थात् कुलटा या दुराचारिणी। २. (स्त्री) जो भद्र न हो। अर्थात् दुष्ट।

असा-बरदार—पुं० [अ०+फा०] राजा महाराजाओं के आगे या बरात के साथ असा लेकर चलनेवाला नौकर।

असामयिक—वि० [सं० न० त०] जो सामयिक अर्थात् प्रस्तुत समय के अनुकूल या उपयुक्त न हो। (अन-टाइमली)

असामर्थ्य—स्त्री० [सं० न० त०] सामर्थ्य या शक्ति का अभाव।
वि०=असमर्थ।

असामान्य—वि० [सं० न० त०] जो सामान्य से भिन्न हो। जिसमें सामान्य की अपेक्षा कुछ विशिष्ट गुण आदि हों। (अन-कॉमन)

असामी—पुं० [अ०] १. आदमी। मनुष्य। २. वह जिसके साथ किसी प्रकार के लेन-देन का व्यवहार होता हो। ३. जिससे किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होता हो या प्रायः कुछ स्वार्थ सिद्ध होता रहता हो। जैसे—उन्हें तो प्रायः कोई न कोई असामी मिल ही जाता है। ४. वह जिसके जिम्में कुछ रकम बाकी हो; अथवा जिससे कुछ प्राप्य हो। देनदार। ५ पुरानी जमींदारी प्रथा में, वह छोटा काश्तकार जो लगान देकर जमींदार का खेत जोतता-बोता था। (टेनेन्ट) ६. पुलिस और न्यायालय की परिभाषा मे अपराधी या अभियुक्त। जैसे—असामी हिरासत से भाग गया।
स्त्री० १. जगह या पद जिसपर काम करनेवाले को वेतन मिलता हो। जैसे—दफ्तर में एक असामी खाली है। २. नौकरी। ३. रखेली। (क्व०)

असार—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें कोई सार या तत्त्व न हो। २. शून्य। खाली। ३. तुच्छ। ४. पोला। ५. निरर्थक। निकम्मा। ६. बेदम।
पुं० १. सार या तत्त्व से रहित पदार्थ। २. रेंड़ का वृक्ष। ३. अगरु चंदन।
† पुं०=असवार (सवार)।

असारता—स्त्री० [सं० असार+तल्-टाप्] १. असार या साररहित होने की अवस्था या भाव। सारहीनता। २. तुच्छता।

असालत—स्त्री० [अ०] १. 'असल' होने की अवस्था या भाव। असलियत। वास्तविकता। २. उद्गम, मूल आदि के विचार से होनेवाली प्रामाणिकता। ३. कुलीनता।

असालतन—क्रि० वि० [अ०] १. व्यक्तिगत रूप से। स्वयं। खुद। जैसे—अदालत में असालतन हाजिर होना। २. असल या वास्तविक दृष्टि अथवा विचार से।

असाला—स्त्री० [सं० अशालिका] चंसुर नामक पौधा।

असावधान—वि० [सं० न० त०] जो सावधान न हो। लापरवाह।

असावधानता—स्त्री० [सं० असावधान+तल्-टाप्] असावधान होने की अवस्था या भाव। बेपरवाही। (इन्एडवर्टेन्स)

असावधानी—स्त्री० [सं० असावधानीत्व]=असावधानता।

असावरी—स्त्री० =आसावरी (रागिनी)।

असासा—पुं० [अ० असासः] १. घर-गृहस्थी में काम आनेवाली सब चीजें। २. माल-असबाब। ३. सारी संपत्ति।

असि—स्त्री० [सं० √अस् (फेंकना)+इन्] १. तलवार। २. खड्ग। ३. भुजाली। ४. श्वास। ५. दे० 'असी'।

अ० हिं० 'असना' (होना) क्रिया का पूर्वकालिक रूप। (उदा० दे० 'हसि' में, जो इसका स्थानिक रूप है।)

असिक—पुं० [सं० असि+कन्] १. होठ और ठुड्डी के बीच का गहरा भाग। चिबुक। २. एक प्राचीन देश का नाम।

असिक्नी—स्त्री० [सं० असित+ङीप्, क्न आदेश] १. पंजाब की चिनाव नदी का पुराना नाम। २. वीरण प्रजापति की कन्या। ३. अंतःपुर में रहनेवाली युवा दासी।

असिजीवी (विन्)—वि० [सं० असि√जीव् (जीना)+णिनि] जिसकी जीविका असि या तलवार से चलती हो अर्थात् सिपाही या सैनिक।

असित—वि० [सं० न० त०] [स्त्री० असिता] १. जो सित या सफेद न हो। काला। २. दुष्ट। बुरा। ३. टेढ़ा। कुटिल। ४. नीला।

पुं० १. देवल नामक ऋषि का एक नाम। २. राजा भरत का एक पुत्र। ३. शनि। ४. पिंगला नामक नाड़ी। ५. धौ का पेड़। ६. काला या नीला रंग। ७. कृष्णपक्ष।

असित-गिरि—पुं० [कर्म० स०] नीलगिरि नामक पर्वत।

असित-ग्रीव—पुं० [ब० स०] अग्नि।

असितांग—वि० [असित-अंग, ब० स०] १. काले अंगोंवाला। २. काले रंग का।

पुं० शिव का एक रूप।

असिता—स्त्री० [सं० असित+टाप्] १. यमुना नदी। २. नीली नामक पौधा।

असितोत्पल—पुं० [सं० असित-उत्पल, कर्म० स०] नील कमल।

असितोपल—पुं० [सं० असित-उपल, कर्म० स०] नीलम।

असि-दंत—पुं० [सं० ब० स०] मगर। घड़ियाल।

असिद्ध—वि० [सं० न० त०] [भाव० असिद्धि] १. जो नियम, प्रमाण, सिद्धांत आदि से ठीक या पूरा सिद्ध न होता हो। जैसे—शब्द का असिद्ध रूप। ३. जिसने अभी तक सिद्धि न प्राप्त की हो। ४. (अन्न या फल) जो अभी आग पर न पका हो। कच्चा। ५. अपूर्ण। अधूरा। ६. व्यर्थ।

पुं० एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है।

असिद्धि—स्त्री० [सं० न० त०] १. असिद्ध होने की अवस्था या भाव अर्थात् कच्चापन। कचाई। २. अपूर्णता।

असिधाराव्रत—पुं० [सं० असि-धारा, ष० त०, असिधारा-व्रत, मध्य० स०] १. ऐसा कठोर व्रत जो तलवार की धार पर चलने के समान हो। २. एक प्राचीन प्रथा या व्रत जिसमें पति और पत्नी इसलिए बीच में नंगी तलवार रखकर सोते थे, कि रात में भूल से भी परस्पर अंग-स्पर्श न होने पावे।

असि-धेनु—स्त्री० [ब० स०] छूरा। छुरी।

असि-पत्र—पुं० [ब० स०] १. ईख। २. तलवार की म्यान। ३. दे० 'असिपत्र-वन'।

असिपत्र-वन—पुं० [ष० त०] पुराणानुसार एक नरक जहाँ के पेड़ों के पत्ते तलवार जैसे हैं।

असि-पथ—पुं० [ष० त०] शरीर के अंदर का साँस लेने का मार्ग।

असि-पुत्री—स्त्री० [ष० त०] छुरी।

असिव*—वि० = अशिव (अशुभ)। उदा०—ऐसे असिव असवार अग्गोल गोल, भिरे भूप जेते सुतत्ते अमोलं।—चंद बरदाई।

असीन—पुं० [देश०] सज नामक वृक्ष।

असीम—वि० [सं० न० ब०] १. जिसकी कोई सीमा न हो। सीमा-रहित। (लिमिटलेस) २. जिसे सीमा में बाँधा न जा सकता हो। ३. बहुत अधिक। अपार। ४. अनंत और परम। (एब्सोल्यूट)

असीमित—वि० [सं० न० त०] १. जो सीमित न हो अर्थात् असीम। २. जिसकी सीमा निर्धारित न की गई हो। (अन-लिमिटेड)

असीम्य—वि० [सं० सीमा+यत्, न० त०] जिसकी सीमा निर्धारित या निश्चित न की जा सकती हो। (इल्लिमिटेबुल)

असीर—पुं० [फा०] वह जो कैद में हो। बंदी। कैदी।

असील—वि० [अ०] १. अच्छे और ऊँचे परिवार या वंश का। कुलीन। २. उत्तम और शांत स्वभाव का। सुशील।

असीस—स्त्री० [सं० आशिष] किसी पूज्य या बड़े व्यक्ति से वर के रूप में प्राप्त होनेवाली शुभ कामना। आशीर्वाद। उदा०—दै असीस सुरसा चली, हरषि चले हनुमान।—तुलसी।

असीसना—स० [हिं० असीस] असीस या आशीर्वाद देना।

असुंदर—वि० [सं० न० त०] १. जो सुंदर न हो। कुरूप या भद्दा। २. जो उपयुक्त या ठीक न जान पड़ता हो। अशोभन।

असु—पुं० [सं०√अस् (फेंकना)+उन्] [वि० भाव० आसव] १. प्राणवायु। २. प्राण। ३. उतना समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। ४. एक पल का छठा भाग। ५. हृदय। ६. मन में उठनेवाला विचार। ७. जल। पानी। ८. गरमी। ताप।

†पुं० [सं० अश्व] घोड़ा। उदा०—असु-दल गज-दल दूनौ साजैं। औ घन तबल जुझाऊ बाजे।—जायसी।

* क्रि० वि० [सं० आशु] जल्दी। शीघ्र।

असुख—पुं० [सं० न० त०] १. सुख का अभाव। २. कष्ट। दुःख।

वि० [सं० न० ब०] १. कष्ट या दुःख उत्पन्न करनेवाला। २. परिश्रम-साध्य। कठिन।

असुग*—वि०=आशुग।

असुचि*—वि० = अशुचि।

असुत्त—वि० [सं० असुप्त] जो सोया न हो।

*स्त्री० [सं० शुक्ति] सीपी।

असुन*—पुं० [सं० असु] अंतःकरण। हृदय। उदा०—असुन तरवत अड़ि आसना पिंड झरोखे नूर।—कबीर।
असुनी—स्त्री० = अश्विनी (नक्षत्र)।
असुपति—पुं० = अश्वपति।
असुभ*—वि०=अशुभ।
असुभृत्—पुं० [असु√भृ (धारण)+क्विप्] जीवधारी। प्राणी।
असुमान (मत्)—पुं० [सं० असु+मतुप्] जीवधारी। प्राणी।
असुमेध—पुं०=अश्वमेध।
असुर—पुं० [सं०√अस् (दीप्ति)+उर] १. वैदिक काल में वह जो सुर या देवता न हो, बल्कि उनसे भिन्न और उनका विरोधी हो। २. प्राचीन पौराणिक कथाओं के अनुसार दैत्य या राक्षस। ३. इतिहास और पुरातत्त्व से, आधुनिक असीरिया देश के उन प्राचीन निवासियों की संज्ञा, जिन्हें उन दिनों 'असर' कहते थे और जिनके देश का नाम पहले असुरिय आधुनिक असीरिया था। ४. नीच वृत्तिवाला और असंस्कृत पुरुष। ५. एक प्रकार का उन्माद जिसमें रोगी गुरु, देवता, ब्राह्मण आदि की निंदा करता और उन्हें बुरा-भला कहने लगता है। ६. राहु। ७. रात्रि। रात। ८. बादल। मेघ। ९. पृथ्वी। १०. सूर्य। ११. समुद्री नमक। १२. देवदार नामक वृक्ष।
वि० १. अपार्थिव। अलौकिक। २. जीवित। ३. ब्रह्म और वरुण का एक विशेषण।
असुर-कुमार—पुं० [ष० त०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता।
असुर-गुरु—पुं० [ष० त०] शुक्राचार्य।
असुर-राज—पुं० [ष०त०] राजा बलि।
असुर-रिपु—पुं० [ष० त०] विष्णु।
असुर-विद्या—स्त्री० [ष० त०] वह विद्या या शास्त्र जिसमें भिन्न-भिन्न देशों की अनुश्रुतियों के आधार पर असुरों या राक्षसों और उनके कार्यों आदि का अध्ययन या विवेचन होता है। (डेमनालोजी)
असुर-सूदन—पुं० [ष० त०] विष्णु।
असुरा—स्त्री० [सं० असुर+टाप्] १. रात्रि। २. राशि। ३. वेश्या।
असुराई*—स्त्री० [सं० असुर] १. असुरों का सा क्रूर आचरण, व्यवहार या स्वभाव। २. परले सिरे की दुष्टता और राक्षसी निर्दयता।
असुराचार्य—पुं० [सं० असुर-आचार्य, ष० त०] १. शुक्राचार्य। २. शुक्र ग्रह।
असुराधिप—पुं० [सं० असुर-अधिप, ष० त०] राजा बलि।
असुरारि—पुं० [सं० असुर-अरि, ष० त०] १. विष्णु। २. देवता।
असुरी—स्त्री० [सं० असुर+ङीप्] १. राक्षसी। २. राई।
असुविधा—स्त्री० [सं० न० त०] १. सुविधा या सुभीता न होना। सुविधा का अभाव। २. किसी काम में होनेवाली अड़चन या बाधा। कठिनाई। दिक्कत।
असु-विलास—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का छंद या वृत्त।
असुस्थ—वि० [सं० सु√स्था (ठहरना) +क, न० त०] = अस्वस्थ।
असुहाता—वि० स्त्री० [अ=नहीं+सुहाना] [स्त्री० असुहाती] न सुहाने या अच्छा न लगनेवाला अर्थात् अप्रिय, कटु या बुरा।
असूझ—वि० [हिं० अ=नहीं+सूझना] १. जो, जहाँ या जिसमें कुछ भी न सूझे या न दिखाई दे। २. (विस्तार) जिसका आर-पार दिखाई न दे। अपार। ३. (कार्य) जिसे पूरा करने का उपाय न दिखाई दे। बहुत कठिन या दुष्कर। ४. (बात या विषय) जिसकी ओर जल्दी किसी का ध्यान न जाय। ५. (व्यक्ति) जिसे दिखाई न देता हो। अंधा। ६. मूर्ख।
पुं० १. सूझ का अभाव। २. अंधकार। अँधेरा।
असूत*—वि० [सं० अस्यूत] १. विपरीत। विरुद्ध। २. असंबद्ध। असंगत।
असूतिका—वि० स्त्री० [सं० न० त०] १. जिसने बच्चा न जना हो। २. वंध्या। बाँझ।
असूयक—वि० [सं०√असू (बुराई करना)+यक्+ण्वुल् -अक] १. जो दूसरों से असूया करता हो। २. जिसे दूसरों के दोष ही दिखाई देते हों। ३. प्रायः ईर्ष्या, निंदा आदि करनेवाला। (स्पाइटफुल)
असूया—स्त्री० [सं० असू+यक्+अ-टाप्] १. मन की वह वृत्ति जिससे दूसरों के दोष दिखाई देते हों और गुण, सुख आदि सहन न किये जा सकते हों। (स्पाइट) २. ईर्ष्या। जलन। (जेलसी) ३. क्रोध। रोष। ४. साहित्य में एक संचारी भाव जिसमें किसी के सुख को न सहकर उसे हानि पहुँचाने का विचार होता है।
असूयिता (तृ)—वि० [सं० √असू+यक्+तृच] = असूयक।
असूर्यपश्य—वि० [सं०मूर्य√दृश् (देखना) + खश्, मुम्, न० त०] [स्त्री० असूर्यपश्या] जिसने कभी सूर्य तक को न देखा हो। (प्रायः अपने स्त्री रूप में बहुत अधिक परदे में रहनेवाली स्त्रियों के लिये प्रयुक्त)
असूर्यपश्या—स्त्री० [सं० असूर्यपश्य + टाप्] १. बहुत बड़े राजा की (कड़े परदे में रहनेवाली) रानी। २. पतिव्रता स्त्री।
असूल—पुं० [अ० उसूल] पक्का नियम या सिद्धांत जिसका पालन आवश्यक हो।
†वि० = वसूल।
असूयु—वि० [सं०√असू+यक्+उन्] =असूयक।
असृक् (ज्)—पुं० [सं०√सृज् (त्याग) +क्विन्, न० त०] १. खून। रक्त। २. केसर। ३. मंगल ग्रह। ४. ज्योतिष में एक योग।
असृक्-पात—पुं० = रक्तपात।
असृक्-स्राव—पु० [ष० त०] = रक्त-स्राव।
असृग्-ग्रह—पुं० [कर्म० स०] मंगलग्रह।
असृग्वहा—स्त्री० [सं० अस्सृज्√वह (ढोना)+अच्—टाप्] रक्तवाहिनी नाड़ी।
असेग*—वि०=असहाय।
असेचन—वि० [सं० √सिच् (तृप्ति)+ल्युट्-अन, न० ब०] १. जिसे देखने से तृप्ति न हो; अर्थात् परम सुंदर।
पुं० [न० त०] सेचन का अभाव।
असेचनक—वि० [सं० असेचन+कन्] = असेचन।
असेचनीय—वि० [सं० √सिच्+अनीयर्, न० त०] १. जो सींचा जाने को न हो। २. जिसे सींचना उचित न हो।
असेत—वि० [हिं० अ + सेत=श्वेत] १. जो श्वेत या सफेद न हो। सफेद से भिन्न। २. काला। कृष्ण।
असेवन—वि० [सं० न० ब०] १. सेवा न करनेवाला। २. उपासना या आराधना न करनेवाला। ३. अभ्यास न करके परित्याग करनेवाला।

पुं० [न० त०] सेवन का अभाव। व्यवहार में न लाना। त्याग।

असेवा—स्त्री० [सं० न० त०] (रोगी आदि की) सेवा-शुश्रूषा का उपेक्षा-जन्य अभाव।

असेवित—भू० कृ० [सं० न० त०] १. (पदार्थ) जिसका सेवन किया गया हो या न किया गया हो। २. जो व्यवहार में न लाया गया हो। ३. जिसकी ओर ध्यान न दिया गया हो। उपेक्षित। ४. जिसकी सेवा-शुश्रूषा न की गई हो।

असेस*—वि० = अशेष।

असेसर—पुं० [अं०] १. वह व्यक्ति जो फौजदारी मुकदमा सुनकर उसके संबंध में जज को अपना मत बतलाने के लिए चुना जाता है। २. वह जो वही-खाता जाँचकर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है। ३. वह जो जमीन का या उपज का मूल्य आँककर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है।

असेसह*—वि० = अशेष।

असै—स्त्री० [सं० अ+सती] असाध्वी स्त्री। कुलटा।
*क्रि० वि०=ऐसे।

असैनिक—वि० [सं० न० त०] १. जो सिपाही या सैनिक न हो। २. जिसका संबंध सेना से न हो। ३. जो सैनिक से भिन्न हो।

असैनिकीकरण—स्त्री० [सं० सैनिक+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्—अन, न० त०] किसी क्षेत्र या देश को सेनाओं या सैनिक-बल से रहित करना। (डिमिलिटराइज़ेशन)

असैला†—वि० [सं० अ+शैली=रीति] [स्त्री० असैली] १. नीति, रीति आदि का पालन न करनेवाला अथवा उनका उल्लंघन करनेवाला। २. अनुचित या बुरे मार्ग पर चलनेवाला। कु-मार्गी। ३. जो प्रचलित परिपाटी या शैली के विरुद्ध हो। ४. अनुचित।

असों†—क्रि० वि० [सं० अस्मिन्] इस वर्ष में। इस साल में।

असोक—वि०, पुं० = अशोक।

असोकी*—वि०=अशोक (जिसे शोक न हो)।

असोच—वि० [सं० अ+शोच] जिसे किसी प्रकार की सोच या चिंता न हो, फलतः निश्चिंत या बेफिक्र।
पुं० चिंता या सोच का न होना।
वि० [सं० अशुचि] अपवित्र। अशुद्ध। उदा०—हौं असोच अकृत, अपराधी संमुख होत लजाऊँ।—सूर।

असोज*—पुं० [सं० अश्वयुज] आश्विन या क्वार नाम का महीना।

असोढ़—वि० [सं०√सह् (सहना)+क्त, न० त०] १. असह्य। २. उद्दंड। उद्धत।

असोरा*—पुं० = ओसारा। (मिथिला)

असोस†—वि० [सं० अ+शोष] १. जो सोखा न जा सके। २. जल्दी न सूखनेवाला।

असौंध—पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० सौंध=सुगंध] १. सौंध या गंध का अभाव। २. दुर्गंध। बदबू।

असौच—पुं०=अशौच।

असौंधा†—वि० [हिं० असौंध] बदबूदार।

असौम्य—वि० [सं० न० त०] १. जिसका संबंध सोम या उसके रस से न हो। २. जो सौम्य (नम्र या सुशील) न हो। क्रूर स्वभाववाला। ३. अप्रिय। ४. कुरूप। भद्दा।

अस्का†—पुं० [देश०] नाक में पहनने की बुलाक। (नैनीताल)

अस्कन्न—वि० [सं०√स्कन्द् (गति)+क्त, न० त०] १. जो टूटा-फूटा या फटा न हो। २. जो उँड़ेला न गया हो। ३. जिसपर आवरण न पड़ा हो। ४. अधिक समय तक ठहरनेवाला। टिकाऊ।

अस्खल—पुं० [सं०√स्खल् (संचलन)+अच्, न० त०] अग्नि।

अस्खलित—वि० [सं० न० त०] १. जो स्खलित न हुआ हो या न होता हो। फलतः अपनी ठीक जगह पर स्थिर रहने या होनेवाला। २. ठीक मार्ग पर चलनेवाला। ३. जो क्षुब्ध या व्याकुल न हुआ हो। ४. (उच्चारण) जिसमें तनिक भी भूल-चूक या अंतर न हो।

अस्तंगत—वि० [सं० द्वि० त०] १. जो अस्त हो चुका हो। जैसे—अस्तंगत सूर्य। २. जो अवनत होकर प्रायः नष्ट हो चुका हो।

अस्त—भू० कृ० [सं०√अस् (फेंकना)+क्त] १. जिसकी अवनति, पतन या ह्रास हो चुका हो। २. जो अदृश्य, ओझल या तिरोहित हो गया हो। ३. (तारा, नक्षत्र या कोई आकाशस्थ पिंड) जो दृष्टि-पथ के बाहर चला गया हो।
पुं० १. अवनति, पतन या ह्रास। २. अंत, समाप्ति या नाश। ३. आँखों से ओझल या तिरोहित होना। ४. कुंडली में लग्न से सातवाँ स्थान।

अस्त-काल—पुं० [प० त०] [वि० अस्तकालीन] १. किसी ग्रह या नक्षत्र के विचार से वह समय जब वह दृष्टि-पथ के बाहर हो जाता हो। २. किसी बात, वस्तु या व्यक्ति के विचार से, वह समय जब कि उसके प्रताप, महत्त्व, वैभव आदि की समाप्ति या अंत होता हो।

अस्त-गमन—पुं० [स० त०] १. अवनति या ह्रास की ओर चलना। २. आँखों से ओझल होना। ३. मृत्यु। ४. अंत या नाश।

अस्त-गिरि—पुं० [ष० त०] पश्चिम का वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना माना जाता है।

अस्तन*—पुं० =स्तन।

अस्तनी—स्त्री० [सं० न० ब०, ङीष्] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत छोटे-छोटे हों।

अस्तबल—पुं० [अ० अस्तब्ल] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते हैं। घुड़साल। तवेला। (स्टेबल)

अस्तब्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो स्तब्ध न हुआ हो, फलतः अस्थिर, चंचल या विकल। २. विनय-शील। विनयी।

अस्त-भवन—पुं० [प० त०] ज्योतिष में, उदय के लग्न से सातवाँ लग्न।

अस्तमती—स्त्री० [सं० अस्तम्√अत् (निरंतर गति)+ अच्-ङीप्] शालपर्णी।

अस्तमन—पुं० [सं० अस्तम्√अन् (जीना)+अप्] [भू० कृ० अस्तमित] १. ग्रहों आदि का अस्त होना। २. प्रताप, वैभव आदि का अंत होना।

अस्तमन-नक्षत्र—पुं० [प० त०] वह नक्षत्र जिसके पास तक पहुँचकर कोई ग्रह अस्त होता है।

अस्त-मस्तक—पुं० [प० त०] अस्ताचल का शिखर।

अस्तमित—भू० कृ० [सं० अस्तम्-इत, द्वि० त०] १. (ग्रह या नक्षत्र) जो अस्त हो चुका हो। २. जो आँखों से ओझल हो गया हो। ३. नष्ट। ४. मरा हुआ। मृत।

अस्तर—पुं० [सं० स्तर] १. किसी दोहरी चीज में, नीचेवाली या पहली तह। नीचे का वह आधार जिसके ऊपर कोई दूसरी चीज बनाई,

रखी या लगाई जाय। भितल्ला। जैसे—(क) दोहरे कपड़े में, नीचेवाला कपड़ा या पल्ला, (ख) दोहरे चमड़े में नीचेवाला चमड़ा; या (ग) दो बार किये जानेवाले रंगों में नीचेवाला या पहला रंग अस्तर कहलाता है। २. महीन साड़ियों आदि के साथ पहना जानेवाला वह मोटा कपड़ा जो कमर से पैरों तक रहता है। अँतरौटा। ३. वह पहला तेल जिसमें दूसरे सुगंधित पदार्थों का योग करके कोई दूसरा तेल बनाया जाता है। जमीन। जैसे—बढ़िया तेलों में चंदन के तेल का और घटिया तेलों में मिट्टी के तेल का अस्तर रहता है। ४. किसी प्रकार की भीतरी तह या स्तर।

अस्तरकारी—स्त्री० [हिं० अस्तर+फा० कारी] १. दीवारों की ईंटों पर मसाले का स्तर बनाना। पलस्तर करना। २. दीवारों पर चूना या सफेदी लगाना; अथवा किसी प्रकार का रंग करना। (क्व०)

अस्तरवट्टी—स्त्री० [हिं०] तसवीर की जमीन या पहला स्तर घोंटने की पत्थर की वट्टी।

अस्तरी*—स्त्री० १.स्त्री। २.इस्तरी।

अस्त-व्यस्त—वि० [सं० द्व० स०] १. इधर-उधर बिखरा हुआ। तितर-बितर। २. जिसका क्रम या व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी हो।

अस्ताचल—पुं० [सं० अस्त-अचल, कर्म० स०] पुराणानुसार, पश्चिम दिशा में स्थित वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना माना गया है।

अस्ताद्रि—पुं० [सं० अस्त-अद्रि कर्म० स०] = अस्ताचल।

अस्ति—स्त्री० [सं०√अस् (सत्ता) + श्तिप्] [भाव० अस्तित्व] १. वर्त्तमान होने की अवस्था या भाव। विद्यमानता। सता। २. कंस को व्याही गई जरासंध की कन्या का नाम।

मुहा०—अस्ति अस्ति कहना=वाह वाह कहना। साधुवाद कहना। अस्ति-नास्ति कहना=हाँ या नहीं कहकर निराकरण करना।

अस्ति-काय—पुं० [सं० ब० स०] सत्व-विद्या संबंधी अर्थात् दार्शनिक धारणा जिसके पाँच प्रमुख अंग हैं—जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अर्धास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और आकाशास्तिकाय। (जैन०)

अस्तित्व—पुं० [सं० अस्ति+त्व] १. समय या अवकाश में स्थित होने की अवस्था या स्थिति। २. होने का भाव। विद्यमानता। सत्ता। (एग्जिस्टेन्स)

अस्ति-नास्ति—पद स्त्री० [सं० क्रिया रूप अथवा तिङन्तप्रतिरूपक अव्यय] ऐसी स्थिति जिसमें यह निश्चय करना आवश्यक हो कि अमुक बात वास्तव में ठीक है या नहीं, अथवा अमुक काम होगा या नहीं। 'हाँ' या 'नहीं' करना अथवा कहना।

अस्तिमंत—पुं० = अस्तिमान्।

अस्तिमान् (मत्)—वि० [सं० अस्ति+मतुप्] धनवान। मालदार। संपन्न।

अस्तिरूप—वि० = अहिक (या भाव-रूप)।

अस्तीन—स्त्री०=आस्तीन।

अस्तु—अव्य० [सं० √अस् (दीप्ति)+तुन्] १. जो हो। चाहे जो हो। २. ऐसा ही सही। खैर। भला ३. ऐसा ही हो।

अस्तुति*—स्त्री० [सं० न० त०] १. स्तुति का अभाव या विरोधी भाव। २ अपकीर्त्ति। निंदा।

*स्त्री०=स्तुति।

अस्तुरा—पुं० दे० 'उस्तरा'।

अस्तेय—पुं० [सं० न० त०] १. स्तेय या चोरी न करना। २. चोरी न करने की प्रतिज्ञा या व्रत जो सदाचार के मुख्य नियमों या सिद्धांतों में से एक है। ३. योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग के अंतर्गत एक व्रत।

अस्तेय-व्रत—पुं० [प० त०] आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ अपने पास न रखने या उनका उपयोग न करने का व्रत जो यह समझकर धारण किया जाता है कि आवश्यकता से अधिक संग्रह करना भी एक प्रकार की चोरी ही है।

अस्त्र—पुं० [सं० √अस् (फेंकना)+ष्ट्रन्] १. ऐसे हथियार जो शत्रु पर फेंके या फेंककर चलाये जाते हैं। (शस्त्र से भिन्न) जैसे—भाला, बाण, बम आदि। २. वह उपकरण जिससे कोई चीज फेंकी जाय। जैसे—धनुष, तोप, बंदूक आदि। ३. वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो। जैसे—ढाल। ४. वह हथियार जो मंत्र द्वारा चलाया जाय। जैसे—जूंभास्त्र।

अस्त्र-कंटक—पुं० [उपमि० स०] बाण।

अस्त्रकार—पुं० [सं० अस्त्र√कृ (करना)+अण्] वह कारीगर जो अस्त्र या हथियार बनाता हो।

अस्त्रघला—वि० [सं० अस्त्र+हिं० घालना=फेंकना] अस्त्र चलानेवाला। (डिं०)

अस्त्र-चिकित्सक—पुं० [प० त०] शल्यकार।

अस्त्र-चिकित्सा—स्त्री० [तृ० त०] = शल्य-चिकित्सा।

अस्त्रजीवी (विन्)—पुं० [सं० अस्त्र√जीव् (जीना)+णिनि] वह जिसकी जीविका अस्त्र से चलती हो। जैसे- अस्त्रकार, सैनिक आदि।

अस्त्रधारी (रिन्)—पुं० [सं० अस्त्र√धृ (धारण करना)+णिनि] अस्त्र-धारण करनेवाला अर्थात् सैनिक।

अस्त्र-बंध—पुं० [तृ० त०] अस्त्रों की अविराम या निरन्तर वर्षा।

अस्त्र-लाघव—पुं० [स० त०] अच्छी तरह अस्त्र चलाने का कौशल या योग्यता।

अस्त्र-विद्या—स्त्री० [प० त०] १. अच्छी तरह अस्त्र चलाने की कला या विद्या। २. वह शास्त्र जिसमें अस्त्रों के प्रयोग आदि का विवेचन होता है।

अस्त्र-वेद—पुं० [प० त०] धनुर्वेद, जिसमें अस्त्र बनाने और चलाने की विद्या का विवेचन है।

अस्त्र-शस्त्र—पुं० [द्व० स०] अस्त्र और शस्त्र दोनों।

अस्त्र-शाला—स्त्री० [ष० त०] १. वह स्थान जहाँ अस्त्र रखे जायँ। अस्त्रागार। २. वह स्थान जहाँ अस्त्र बनते हों।

अस्त्र-शिक्षा—स्त्री० [प० त०] अस्त्र आदि चलाने या उनका प्रयोग करने की शिक्षा।

अस्त्रागार—पुं० [अस्त्र-आगार प० त०] अस्त्र रखने का स्थान। अस्त्रशाला।

अस्त्री (स्त्रिन्)—पुं० [सं० अस्त्र+इनि]=अस्त्रधारी।

अस्त्रीक—वि० [सं० न० ब० कप्] (पुरुष) जिसकी स्त्री न हो। स्त्री से रहित। बिना स्त्री का। जैसे—कुँआरा या रँडुआ।

अस्त्रीकरण—पुं० [सं० अस्त्र+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्—अन]

[वि० अस्त्रीकृत] किसी देश की सेना तथा नागरिकों को किसी भावी युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित करने की क्रिया या भाव। (मिलिटराइ जशन)

अस्त्रौत्र*—पुं०=स्तोत्र।

अस्थल—पुं०=स्थल।

अस्थान*—पुं०=स्थान।

अस्थामा*—पुं०=अश्वत्थामा।

अस्थायी (यिन्)—वि० [सं० न० त०] [भाव० अस्थायित्व] १. जो स्थायी अर्थात् सदा बना रहनेवाला न हो। जिसकी स्थिति कुछ समय के लिए ही हो। (अन्स्टैबल) २. (व्यक्ति) जो किसी पद या स्थान पर थोड़े समय के लिए तथा तात्कालिक आवश्यकता के विचार से नियुक्त किया जाय। (टेम्परेरी)

अस्थायी*—स्त्री० [सं० स्थायी] गीत का पहला चरण या पद जो प्रत्येक चरण या पद के बाद दोहराकर गाया जाता है।

वि०=स्थायी।

अस्थायीसंधि—स्त्री० [सं० व्यस्त पद अथवा अस्थायि-संधि] दे० 'अवहार'।

अस्थावर—वि० [सं० न० त०] जो स्थावर न हो अर्थात् चल या जंगम।

अस्थि—स्त्री० [सं०√अस् (फेंकना)+क्थिन्] रीढ़वाले जीवों के शरीर के वे विशिष्ट कड़े अंश जो सम्मिलित रूप से कंकाल या ढाँचा खड़ा करते हैं। हड्डी। (बोन)

अस्थि-कुंड—पुं० [ष० त०] पुराणों के अनुसार एक नरक का नाम जो हड्डियों से भरा हुआ है।

अस्थिज—वि० [सं० अस्थि√जन् (पैदा होना)+ड] अस्थियों या हड्डियों से निकलने या बननेवाला।

अस्थिति—स्त्री० [सं० न० त०] १. स्थिति या ठहराव का अभाव। २. अस्थिरता। ३. चंचलता।

*स्त्री०=स्थिति।

अस्थि-तुंड—पुं० [ब० स०] चिड़िया। पक्षी।

अस्थि-तेज (स्)—पुं० [ष० त०] हड्डियों के अंदर का गूदा। मज्जा।

अस्थि-तैल—पुं० [ष० त०] एक प्रकार का बदबूदार तेल जो हड्डियों को उबाल कर तैयार किया जाता है। (बोन-ऑयल)

अस्थि-धन्वा (न्वन्)—पुं० [ब० स०] शिव।

अस्थि-पंजर—पुं० [ष० त०] शरीर की हड्डियों का ढाँचा। कंकाल।

अस्थि-प्रक्षेप—पुं० [ष० त०] = अस्थि-प्रवाह।

अस्थि-प्रवाह—पुं० [ष० त०] किसी मृत व्यक्ति का शव जलाने पर उसकी बची हुई अस्थियाँ किसी पवित्र नदी या जलाशय में डालना।

अस्थि-भंग—पुं० [ष० त०] अस्थि या हड्डी टूटना। (फ्रैक्चर)

अस्थिभक्ष—वि० [सं० अस्थि√भक्ष् (खाना)+अण्] हड्डी खानेवाला। पुं० कुत्ता।

अस्थिभुक (ज्)—पुं० [अस्थि√भुज् (खाना)+क्विप्] कुत्ता।

अस्थि-भेद—पुं० [ष० त०] दे० =अस्थिभंग।

अस्थि-मज्जा—स्त्री० [ष० त०] १. हड्डियों के अंदर रहनेवाली मज्जा। २. वज्र।

अस्थिमाली (लिन्)—पुं० [अस्थि-माला, ष० त०+इनि] शिव।

अस्थिर—वि० [सं० न० त०] १. जिसमें स्थिरता न हो। जो स्थिर न हो। गतिमान या चंचल। २. किसी एक या निश्चित स्थान या सिद्धांत पर न टिकनेवाला।

*वि०=स्थिर।

अस्थिरता—स्त्री० [सं० अस्थिर+तल्-टाप्] अस्थिर होने की अवस्था या भाव। (अन्स्टैबिलिटी)

अस्थि-विग्रह—वि० [ब० स०] बहुत दुबला। पुं० शिव का भृंगी नामक गण।

अस्थि-शेष—वि० [ब० स०] जिसके शरीर में केवल हड्डियाँ रह गई हों। मांस या रक्त समाप्तप्राय हो। कंकाल।

अस्थि-संचय—पुं० [ष० त०] शव के जल चुकने पर बची-खुची हड्डियों को चुनने तथा उनको संग्रहीत करने का एक कृत्य।

अस्थि-संभव—पुं० [ब० स०] १. मज्जा। २. वज्र।

अस्थि-समर्पण—पुं०=अस्थि-प्रवाह।

अस्थि-सार—पुं० [ष० त०] मज्जा।

अस्थूल—वि० [न० त०] जो स्थूल न हो; फलतः महीन या सूक्ष्म।

*वि०=स्थूल।

अस्थैर्य—पुं० [न० त०] स्थिरता का अभाव। अस्थिरता।

अस्नान*—पुं०=स्नान।

अस्निग्ध—वि० [सं० न० त०] १. जो स्निग्ध अर्थात् चिकना न हो। २. कठोर और शुष्क। ३. दे० 'अरसिक'।

अस्निग्ध-दारू—पुं० [कर्म० स०] देवदारू का एक भेद।

अस्पंज—पुं० [यु० इस्फंज] मुरदा बादल। स्पंज।

अस्पंद—वि० [सं० न० त०] जिसमें स्पंदन या कंपन न हो। स्पंदन-हीन।

अस्पताल—पुं० [अं० हास्पिटल] वह स्थान जहाँ रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था होती हो। चिकित्सालय।

अस्पष्ट—वि० [सं० न० त०] जो स्पष्ट या साफ न हो। जिसका ठीक और पूरा रूप देखने या समझने में कठिनता हो। (इन्डिस्टिंक्ट)

*वि०=स्पष्ट।

अस्पृश्य—वि० [सं० न० त०] [भाव० अस्पृश्यता] १. जिसे स्पर्श करना उचित न हो। २. जो नीच जाति का, निम्न वर्ण का हो; और इसी लिए जिसे छुआ न जा सके। ३. इंद्रियातीत।

पुं० दे० 'अंत्यज'।

अस्पृश्यता—स्त्री० [सं० अस्पृश्य+तल्-टाप्] १. अस्पृश्य होने की अवस्था या भाव। २. यह मत या सिद्धांत कि अमुक प्रकार के प्राणी, वस्तुएँ या व्यक्ति अस्पृश्य हैं और उन्हें नहीं छूना चाहिए। (अन्टचेबिलिटी)

अस्पृष्ट—भू० कृ० [सं० न० त०] १. जिसका या जिससे स्पर्श न हुआ हो। बिना छुआ हुआ। २. दे० 'अछूता'।

अस्पृह—वि० [सं० न० त०] (व्यक्ति) जिसमें स्पृहा (इच्छा या कामना) न हो। स्पृहा-रहित।

अस्फुट—वि० [सं० न० ब०] १. (फूल) जो खिला न हो। २. (विषय) जो स्पष्ट न हो अर्थात् गूढ़ या जटिल।

अस्म*—पुं०=अश्म (पत्थर)।

अस्मत—स्त्री० [अ० इस्मत] १. पापों से अपने आप को बचाना। २. स्त्री का पातिव्रत।

अस्मद्—सर्व० [सं० √अस् (सत्ता)+मदिक] मैं। (अहम् आदि का प्रातिपदिक रूप)

पुं० जीवात्मा।

अस्मदादि—सर्व० [सं० अस्मद्-आदि, ब० स०] हम लोग।

अस्मदादिक—सर्व० [सं० अस्मद्-आदि ब० स० कप्] हम लोग।

अस्मदीय—वि० [सं० अस्मद्+छ-ईय्] मेरा या हमारा।

अस्मय*—वि० [सं० अश्मय] १. जो पत्थर का बना हो अथवा जिसमें पत्थर लगा हो। २. पत्थर के रूप में आया हुआ। उदा०—अस्मय तन गौतम तिया कौ साप नसावै।—सूर।

अस्मार्त्त—वि० [सं० न० त०] १. जो स्मार्त्त अर्थात् स्मृतियों का अनुयायी न हो। २. स्मृतियों आदि के आदर्शों और सिद्धांतों का विरोधी।

अस्मिता—स्त्री० [सं० अस्मि+तल्-टाप्] १. मन का यह भाव या मनोवृत्ति कि मेरी एक पृथक् और विशिष्ट सत्ता है; अर्थात् मैं हूँ। अहंभाव। (इगोइज्म) २. अभिमान। अहंकार। घमंड।

विशेष—सांख्य में इसे मोह और वेदांत में हृदय-ग्रंथि कहा गया है। योग शास्त्र के अनुसार यह पाँच क्लेशों में एक है।

अस्र—पुं० [सं० √अस् (फेंकना)+रन्] १. कोना। २. रक्त। रुधिर। ३. जल। ४. आँसू। ५. केसर। ६. बाल।

पुं० [अ०] १. काल। समय। २. युग। ३. दिन का चौथा पहर। संध्या काल।

अस्र-कंठ—पुं० [ब० स०] बाण।

अस्रज—पुं० [सं० अस्र√जन् (पैदा होना)+ड] रक्त या रुधिर से उत्पन्न होनेवाला मांस।

अस्रप—वि० [सं० अस्र√पा (पीना)+क] रक्त पीनेवाला।

पुं० १. राक्षस। २. मूल नक्षत्र।

अस्रपा—स्त्री० [सं० अस्रप+टाप्] १. जलौका। जोंक। २. जादू-टोना करनेवाली, डाइन।

अस्र-पित्त—पुं० [मध्य० स०] मुँह, नाक आदि से खून गिरने का रोग।

अस्र-फला—स्त्री० [ब० स०] सलई का पेड़।

अस्रु—पुं० [सं० √अस् (फेंकना)+रु] अश्रु (आँसू)।

अस्ल—वि० दे० 'असल'।

अस्लियत—स्त्री० दे० 'असलियत'।

अस्ली—वि० दे० 'असली'।

अस्लीयत—स्त्री० [अ०] दे० 'असलियत'।

अस्वंत—पुं० [सं० असु-अंत, ब० स०] १. मृत्यु। २. दे० 'अश्मंत।

अस्व—वि० [सं० न० ब०] दरिद्र। धनहीन।

अस्वतंत्र—वि० [सं० न० त०] जो स्वतंत्र न हो अर्थात् पराधीन।

अस्वप्न—वि० [सं० न० त०] निद्रा-रहित।

पुं० [न० त०] १. निद्रा का अभाव। २. देवता, जो कभी सोते नहीं।

अस्वभाव—वि० [सं० न० ब०] भिन्न या विपरीत स्वभाववाला।

पुं० [न० त०] भिन्न या अस्वाभाविक लक्षण।

अस्वर—वि० [सं० न० ब०] १. अनुचित, अस्पष्ट, बुरे या भद्दे स्वरवाला। २. मंद (स्वर)।

पुं० [न० त०] १. स्वर का अभाव। २. मंद स्वर। ३. व्यंजन वर्ण।

अस्वस्थ—वि० [सं० न० त०] [भाव० अस्वस्थता] १. जो स्वस्थ न हो। २. जो हर तरह से ठीक, पूरा या मान्य न हो। दूषित। बुरा। जैसे—अस्वस्थ विचार या स्थिति। (विशेष दे० 'स्वस्थ')। ३. बीमार। रोगी।

अस्वाधीन—वि० [सं० न० त०] जो स्वाधीन न हो; अर्थात् परतंत्र या पराधीन।

अस्वाभाविक—वि० [सं० न० त०] [भाव० अस्वाभाविकता] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध। २. कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक—वि० [सं० न० ब०, कप्] [भाव० अस्वामिकता] जिसका कोई स्वामी न हो। बिना मालिक का। लावारिस।

पुं० वह धन या संपत्ति जिसका कोई मालिक न हो या न दिखाई दे। जैसे—अस्वामिक धन।

अस्वामिकता—स्त्री० [सं० अस्वामिक+तल्-टाप्] वह स्थिति जिसमें कोई वस्तु मिलने पर उसका कोई स्वामी न दिखाई देता हो। (बोना वैकोन्शिआ) जैसे—जमीन खोदने पर मिलनेवाला खजाना।

विशेष—ऐसी अवस्था में मिलनेवाली वस्तु पर राज्य का अधिकार हो जाता है।

अस्वामि-विक्रय—पुं० [मध्य० स०] कोई चीज जबरदस्ती छीनकर अथवा कहीं पड़ी पाकर उसके स्वामी की आज्ञा या इच्छा न होने पर भी बेच डालना।

अस्वामि-विक्रीत—भू० कृ० [तृ० त०] (संपत्ति आदि) मालिक की चोरी से या उसके अभाव में अनुचित रूप से बेचा हुआ।

अस्वामी (मिन्)—वि० [सं० न० त०] १. (व्यक्ति) जिसका स्वत्व न हो। २. (पदार्थ) जिसका अध्यर्यन करनेवाला कोई न हो।

अस्वार्थ—वि० [सं० न० ब०] १. (व्यक्ति) जो स्वार्थी न हो। २. (कार्य या बात) जो स्वार्थ-रहित हो। जिसमें अपना स्वार्थ न हो। ३. उदासीन।

पुं० [न० त०] स्वार्थ का अभाव।

अस्वास्थ्य—पुं० [सं० न० त०] स्वास्थ्य का अच्छा या ठीक न होना। अर्थात् बीमारी या रोग।

अस्वीकरण—पुं० [सं० न० त०] कोई बात या सुझाव न मानने की क्रिया या भाव। अस्वीकार या नामंजूर करना। (रिजेक्शन)

अस्वीकार—पुं० [सं० न० त०] [वि० अस्वीकृत] अनुरोध, आग्रह या प्रार्थना स्वीकार न करना। मान्य न करना। न मानना।

अस्वीकृत—भू० कृ० [सं० न० त०] [भाव० अस्वीकार, अस्वीकृति] जो मान्य या स्वीकृत न हुआ हो। ना-मंजूर। (रिजेक्टेड)

अस्वीकृति—स्त्री० [सं० न० त०] स्वीकार या मान्य न करने या होने (अर्थात् अस्वीकृत होने) की दशा या भाव।

अस्स*—पुं० = अश्व (घोड़ा)।

अस्सी—वि० [सं० अशीति; प्रा० असीइ; गु० एंशी, पं० अस्सी; सिं० असी, बँ० आशी; उ० अशी; सिंह० असू आख; मरा० ऐंशी] जो गिनती में ७० से १० अधिक हो।

पुं० उक्त की सूचक संख्या—८०।

अस्सु—पुं० = अश्व (घोड़ा)।

अहं—सर्व० [सं० अस्मद् का सिद्ध रूप] मैं।

पुं० [सं० √अह् (व्याप्ति) + अमु] १. मनुष्य में होनेवाला यह ज्ञान या धारणा कि मैं हूँ या औरों से मेरी पृथक् और स्वतंत्र सत्ता है। अपने अस्तित्त्व की कल्पना या भान। (ईगो) २. अहंकार। अभिमान।

अहंकार—पुं० [सं० अहम्√कृ (करना)+घञ्] १. अंतःकरण की वह स्वार्थपूर्ण वृत्ति जिससे मनुष्य समझता है कि मैं कुछ हूँ या कुछ करता हूँ। मन में रहनेवाला 'मैं' और 'मेरा' का भान। अहं-भाव। (इगोइज़्म) **विशेष**—सांख्य के अनुसार यह महत्तत्त्व से उत्पन्न एक द्रव्य है और वेदांत में इसे अंतःकरण का वह भेद माना है, जिसका विषय अभिमान या गर्व है।

२. अभिमान। गर्व। शेखी। (इगोटिज़्म)

अहंकारी (रिन्)—वि० [सं० अहम्√कृ+णिनि] [स्त्री० अहंकारिणी] जिसे अहंकार या अभिमान हो। अहंकार करनेवाला। अभिमानी।

अहंकार्य—पुं० [सं० अहम्√कृ+ण्यत्] (ऐसा उद्देश्य या कार्य) जो स्वयं या अपने द्वारा सिद्ध किया जाने को हो।

अहंकृत—वि० [सं० अहम्√कृ+क्त] १. जिसे अपनी सत्ता का भान हो। २. अभिमानी। घमंडी।

अहंकृति—स्त्री० [सं० अहम्√कृ+क्तिन्] अहंकार। अभिमान। घमंड। उदा० – अहंकृति में झंकृति जीवन। –निराला।

अहंतंत्र—पु० [सं० प० त०] १. ऐसी शासन-प्रणाली जिसमें एक ही राजा या शासक सब कार्य अपनी इच्छा या मन से करता हो। २. आज-कल मुख्यतः ऐसा राज्यतंत्र जिसमें कोई देश आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो और दूसरे देशों से बहुत कुछ पृथक् रहकर अपने सब काम चलाता हो। (ऑटार्की)

अहंता—स्त्री० [सं० अहम्+तल्-टाप्] अहंकार। घमंड।

अहंपद—पुं० [सं० प० त०] अहंकार। अभिमान।

अहंपूर्व—वि० [सं० व० स०] १. जो (होड़ आदि में) सबसे पहले या आगे रहना चाहता हो। २. अपने आपको सबसे आगे या प्रधान रखने का इच्छुक।

अहंपूर्विका—स्त्री० [सं० अहंपूर्व+कन्-टाप्, इत्व] १. 'अहंपूर्व' का भाव या विचार। अपने आपको सब से आगे या प्रधान रखने की इच्छा या कामना। २. प्रतिद्वन्द्विता। होड़।

अहंप्रत्यय—पु० [सं० मध्य० स०] अभिमान। अहंकार।

अहंभद्र—पुं० [सं० मयू० स०] १. अपने अपको आवश्यकता से बहुत बड़ा समझना। २. वह जो अपने आपको सबसे बढ़कर समझता हो।

अहंभाव—पुं० [सं० प० त०] १ अहं। २ अहंकार।

अहंमन्य—वि० [सं० अहम्√मन् (मानना)+खश्] १. अपने आपको औरों से बहुत बढ़कर या बहुत-कुछ माननेवाला। २. अभिमानी। घमंडी।

अहंमन्यता—वि० [सं० अहम्मन्य+तल्-टाप्] अपने आपको सबसे बढ़कर या बहुत कुछ समझना और अपने संबंध में बढ़-बढ़कर बातें करना। (इगोटिज़्म)

अहंवाद—पुं० [सं० प० त०] १. अपने आपको सबसे बढ़कर समझना और अपनी बड़ाई करना। २. डींग मारना। शेखी हाँकना।

अहंवादी (दिन्)—पुं० [सं० अहम्√वद् (बोलना) +णिनि]=अहंमन्य।

अहंश्रेयस—पुं० [सं० मयू० स०] अपने को बड़ा या श्रेष्ठ मानना या समझना।

अहःपति—पुं० [सं० ष० त० अहन् पति,] =अहर्पति।

अहःशेष—पुं० [सं० अहन्-शेष, ष० त०] दिन का पिछला पहर। संध्या। सायंकाल।

अह—पुं० [सं० अहन्] १. दिन। दिवस। २. विष्णु। ३. सूर्य। ४. दिन का अभिमानी देवता।

अव्य० [सं० अहह] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश आदि का सूचक होता है।

†अ० अवधी बोली में, 'अहना' क्रिया का वर्त्तमान-कालिक रूप है।

अहक—स्त्री० [सं० ईहा] मन में दबी रहनेवाली तीव्र कामना या लालसा।

अहकना*—स० [हिं० अहक+ना (प्रत्य०)] कामना या लालसा करना।

अहकाम—पुं० [अ०, हुक्म का बहु०] १. आज्ञाएँ। २. नियम या विधान संबंधी बातें।

अहटना*—अ० दे० 'अहुटना'।

अहटाना*—अ० [हिं० आहट] आहट लेना। पता चलाना।

अ० [सं० आहत] दुखना। दर्द करना।

अहत—वि० [सं० न० त०] १. जो हत न हुआ हो। २. जो मारा या पीटा न गया हो। ३. (कपड़ा) जो धुला न हो। ४. बिलकुल ताजा या नया। बे-दाग।

पु० नया कपड़ा।

अहथिर—वि० १. दे० 'अस्थिर'। २. दे० 'स्थिर'।

अहद—पुं० [अ०] १. पक्का निश्चय। दृढ़ संकल्प। प्रतिज्ञा।

मुहा०—**अहद टूटना**=प्रतिज्ञा भंग होना। **अहद तोड़ना**=(क) प्रतिज्ञा भंग करना। (ख) वादा पूरा न करना।

२. इरादा। विचार। ३. किसी के भोग, राज्य या शासन का काल। जैसे—अकबर के अहद में कई अकाल पड़े थे।

अहददार—पुं० [फा०] मुसलमानी शासन-काल में, वह अधिकारी जिसे कर उगाहने का ठीका मिलता था।

अहदनामा—पुं० [फा०] १. इकरारनामा। प्रतिज्ञापत्र। २. संधिपत्र।

अहदी—वि० [अ०] बहुत बड़ा आलसी और कोई काम न करनेवाला।

पुं० [अ०] १. अकबर के समय के वे सिपाही जिन्हें साधारणतः कुछ काम नहीं करना पड़ता था पर जो विकट अवसरों पर वीरता दिखाते थे। २. दूत या सिपाही। उदा०—घेरयौ आइ कुटुम-लसकर, जन अहदी पठयौ।—सूर।

अहदीखाना—पुं० [फा०] अहदियों के रहने का स्थान।

अहन्—पुं० [सं०√हा (त्याग)+कनिन्, न० त०] दिन।

अहना*—अ० [सं० अस्ति] वर्त्तमान रहना। होना। (अवधी) उदा०—अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं। —जायसी।

अहनिसि*—क्रि० वि० [सं० अहर्निश] रात-दिन। उदा०—मुयों मुयों अहनिसि चिल्लाई। —जायसी।

अहप्पति—पुं० = अहिपति (शेषनाग)।

अहम्—सर्व०, पुं०=अहं।

अहमक—पुं० [अ०] [भाव० हिमाकत] मूर्ख। बेवकूफ।

अहमद—वि० [अ०] बहुत प्रशंसनीय।

पुं० हज़रत मुहम्मद का नाम।

अहमदी—स्त्री० [अ०] मुसलमानों में एक संप्रदाय।

अहमहमिका—स्त्री० [सं० अहम् अहम् (वीप्सा में द्वित्व)+ठन-इक-टाप्] १. दो दलों या पक्षों का आपस में एक दूसरे को तुच्छ और अपने आपको दूसरे से वढ़कर समझना। २. चढ़ा-ऊपरी। होड़।

अहमिका—स्त्री० [सं० अहम्] अभिमान। अहंकार। घमंड।

अहमिति*—स्त्री० [सं० अहम्मति] यह विचार कि मैं ही सव कुछ हूँ। उदा०—तोड़कर वाधा वंधन भेद भूल जा अहमिति का यह स्वार्थ। —प्रसाद।

अहमित्व—पुं० [सं० अहंत्व] १. अपने अस्तित्व का ज्ञान । अहंभाव। आपा। २. दे० 'अहंमन्यता'।

अहमेव—पुं० [सं० अहम्√एव व्यस्त पद] १. यह समझना कि मैं ही सव कुछ हूँ। २. अभिमान। अहंकार।

अहम्-मति—स्त्री० [सं० मध्य० स०] १. गर्व। घमंड। २. ममता। ३. अविद्या।

अहम्मन्य—वि० [सं० अहम√मन् (मानना)+खश] [भाव० अहम्मन्यता] =अहंमन्य।

अहम्मन्यता—स्त्री० [सं० अहम्मन्य+तल्-टाप्]=अहंमन्यता।

अहम्मय—वि० [सं० अहम्+मयट्] अहंभाव या अहंकार से भरा हुआ। वहुत वड़ा अभिमानी।

अहर—पुं० [देश०] मिट्टी का वह वरतन जिसमें छीपी रंग रखते हैं। पुं० =अधर। उदा०—अहर, पयोहर, दुइ नयण, मीठा जेहा मख्ख। —ढो० मा० दू०।

अहरन—स्त्री० [सं० आ+धरण=रखना] लोहारों, सुनारों आदि की निहाई।

अहरना—स०[सं० आहरणम्=निकालना] लकड़ी को छीलकर साफ या सुडौल करना।

अहरह (स्)—क्रि० वि० [सं० अहन् शब्द को वीप्सा में द्वित्व] १. प्रतिदिन । २. नित्य। सदा। ३. लगातार। निरंतर।

अहरा—पुं० [सं० आहरण=इकट्ठा करना] १. कोई चीज पकाने के लिए वनाया हुआ कंडों का ढेर। २. कंडे जलाकर तैयार की हुई आग। ३. मनुष्यों के ठहरने का स्थान। ४. दे० 'आहर'।

अहरात*—पुं०=अहोरात्र (दिन-रात)।

अहरिमन—पुं० [पह०] पारसी धर्म में पाप और अंधकार का अधिष्ठाता देवता। शैतान।

अहरी—स्त्री० [सं० आहरण=इकट्ठा होना] १. वह स्थान जहाँ लोगों को पानी पिलाने का प्रवंध रहता है। पौसरा। प्याऊ। २. जानवरों के पानी पीने के लिए कुएँ के पास वनाया जानेवाला हौज। ३. पानी से भरा हुआ हौज।

अहर्गण—पुं० [सं० अहर्-गण, ष० त०] १. दिनों का समूह। २. सृष्टि के आरंभ से इष्ट अर्थात् किसी विशिष्ट दिन के वीच का समय।

अहर्दल—पुं० [सं०अहन्-दल, ष० त०] मध्याह्न। दोपहर।

अहर्निश—क्रि० वि० [सं० अहन्-निश, द्व० स०] २. रात-दिन। २. नित्य। सदा। ३. निरंतर। लगातार।

अहर्पति—पुं० [सं० अहन्-पति, ष० त०] सूर्य।

अहर्मणि—पुं० [सं० अहन्-मणि, स० त०] सूर्य।

अहर्मुख—पुं० [सं० अहन्-मुख, ष० त०] उषःकाल। सवेरा। दिन का आरंभिक भाग। तड़का।

अहल—वि० [अ० अह्ल] योग्य। लायक।
प्रत्य०=वाला।
पुं० १. लोग। २. परिवार के या संग-साथ के लोग। ३. मालिक। स्वामी।

अहलकार—पुं० [अ०+फा०] १. कर्मचारी, मुख्यतः कचहरी, कार्यालय आदि का। २. कारिंदा।

अहलना—अ० [सं० आहलनम्] १. वार-वार हिलना। काँपना। २. डर से काँपना। थर्राना।

अहलमद—पुं० [फा०] न्यायालय आदि का वह कर्मचारी जो सव प्रकार की मिसिलें क्रम से रखता है।

अहला*—पुं० दे० 'अहिला'।
†क्रि० वि० [?] व्यर्थ। वे-फायदे। (राज०) उदा०—त्रीछड़ियाँ कोई भी भयो ए दिन अहला जाय।—मीराँ।

अहलाद*—पुं०= आह्लाद।

अहलादी*—वि० =आह्लादी।

अहले गहले—क्रि० वि० [अनु०] १. हलके हृदय से। प्रसन्न होकर । २. मंदगति से और मस्त होकर (चलना या कोई काम करना)।

अहल्या—वि० [सं० हल+यत-टाप्, न० त०] धरती जिसमें हल न चल सके या जो जोती न जा सके।
स्त्री० गौतम ऋषि की पत्नी, जो शाप के कारण पत्थर की हो गई थी और जिसका उद्धार भगवान् रामचंद्र ने किया था।

अहवान*—पुं० =आह्वान (वुलाना)।
†पुं० =हैवान।

अहवाल—पुं० [अ० हाल का वहुवचन] १. समाचार। वृत्तांत। २. दशा। परिस्थिति।

अहश्चर—वि० [सं० अहन्√चर् (गति) + ट] दिन के समय या दिन भर भ्रमण करनेवाला।

अहसान—पुं०=एहसान।

अहस्कर—पुं० [सं० अहन्√कृ (करना)+ट] सूर्य।

अहस्त—वि० [सं० न० व०] जिसे हाथ न हो। विना हाथ का।

अहह—अव्य०[सं० अहम्√हा (त्याग) +क पृषो० सिद्धि] आश्चर्य, खेद, थकावट, प्रसन्नता, शोक, आदि का सूचक अव्यय।

अहा—अव्य०[सं०अहह]आनंद, आह्लाद, प्रसन्नता आदि का सूचक अव्यय।
*अ० अवधी और पूर्वी हिंदी में 'होना' क्रिया का भूतकालिक रूप था।

अहाता—पुं० [अ० इहातः] १. चारों ओर से घिरा हुआ मैदान या स्थान। हाता। २. चारदीवारी।

अहान*—पुं०[सं० आह्वान] पुकार। चिल्लाहट।
†पुं० [सं० अहन्] दिन।

अहार*—पुं० [सं० आहार; सिं० आहरु; मराठी० अहार] १. खाने की चीजें। खाद्य पदार्थ। २. भोजन करने की क्रिया या भाव। खाना।

अहारना—स० [सं० आहरणम्=(खाना)] १. आहार या भोजन करना। २. लेई लगाकर लसना। चिपकाना। ३. कपड़े में माँड़ी देना। ४. दे० 'अहरना'।

अहारी*—वि०=आहारी।

अहार्य—वि० [सं०√हृ (हरण करना) +ण्यत्, न० त०] १. जो हरण

किया या चुराया न जा सके। २. जिसका हरण करना उचित न हो। ३. जिसे धन आदि के द्वारा वश में न किया जा सके।

अहाहा*—अव्य० [सं० अहह] प्रसन्नता या हर्ष-सूचक एक अव्यय।

अहिंसक—वि० [सं० न० त०] १. जो हिंसक न हो। हिंसा न करनेवाला। २. अहिंसावादी।

अहिंसा—स्त्री० [सं० न० त०] [वि० अहिंसक] १. (जीवों या प्राणियों) में हिंसा (वध या हत्या) न करने की वृत्ति या भावना। २. धर्म-शास्त्रों के अनुसार मन, वचन या कर्म से किसी को तनिक भी कष्ट न पहुँचाने की क्रिया या भावना। किसी को कभी किसी तरह से पीड़ित न करना। (भारतीय हिंदू, जैन, बौद्ध आदि धर्मों का एक मुख्य विधान) ३. कंटक पाली या हंस नामकी घास।

अहिंसावाद—पुं० [ष० त०] १. वह वाद या सिद्धांत जिसके अनुसार सभी जीवों या प्राणियों में ईश्वर की सत्ता मानी जाती है। और इसी लिए उनका वध नहीं किया जाता। २. किसी को कुछ भी कष्ट न पहुँचाने का सिद्धान्त।

अहिंसावादी (दिन्)—वि० [सं० अहिंसा√वद् (बोलना) +णिनि] अहिंसा संबंधी सिद्धांतों को मानने तथा उसके अनुरूप कार्य करनेवाला।

अहिंस्र—वि० [सं० न०त०] १. जो हिंसा न करे। अहिंसक। २. जिससे किसी को कुछ भी कष्ट या पीड़ा न पहुँचे।

अहि—पुं० [सं० आ√हन् (हिंसा)+डिन्, टिलोप, ह्रस्व] १. साँप। २. राहु। ३. वृत्रासुर। ४. ठग। वंचक। ५. अश्लेषा नक्षत्र। ६. पृथिवी। ७. सूर्य। ८. पथिक। ९. सीसा। १०. बादल। ११. नाभि। १२. जल। १३. एक वर्ण वृत्त जिसमें पहले छः भगण और तब एक मगण होता है।

अहिक—वि० कुछ दिनों तक स्थित रहनेवाला (संख्या सूचक शब्द के अंत में। जैसे—दशाहिक)।

पुं० [सं० अहि+कन्] १. ध्रुवतारा। २. अंधा साँप।

अहि-कोष—पुं० [ष० त०] १. साँप की केंचुली। निर्मोक। २. एक प्रकार का छंद या वृत्त।

अहि-क्षेत्र—पुं० [ष० त०] १. कंपिल और चंबल नदियों के बीच का पांचाल देश। २. प्राचीन दक्षिण पांचाल की राजधानी का नाम।

अहिगण—पुं० [ष० त०] पाँच मात्राओं के गण अर्थात् ठगण का एक भेद जिसमें पहले एक गुरु और तब तीन लघु होते हैं।

अहिघुट्टना—स० [सं० अभिघट्टनं] अभिघटित करना (बनाना)। उदा०—हीर कीर अरु बिम्ब, मोती नखसिख अहिघुट्टिय। —चंदबरदाई।

अहिच्छत्र—पुं० [ष० त०] १. मेढ़ासींगी। २. दे० 'अहिक्षेत्र'।

अहिच्छत्रा—स्त्री० [सं० अहिच्छत्र+टाप्] = अहिच्छत्र।

अहिजित्—पुं० [सं० अहि√जि (जीतना)+क्विप्] श्रीकृष्ण।

अहिजिन—पुं० [सं० अहिजित्] १. इंद्र। २. श्रीकृष्ण।

अहि-जिह्वा—स्त्री० [ष० त०] नागफनी।

अहिटा—पुं० [देश०] जमींदार द्वारा नियुक्त वह कर्मचारी जो असामी को खड़ी फसल तब तक काटने नहीं देता था जब तक कि वह अपना पिछला लगान चुकता न कर दे।

अहित—पुं० [सं० न० त०] १. हित का अभाव। २. हित का विपरीत भाव। अपकार। हानि। ३. वह जो हित (आत्मीय तथा शुभचिंतक) न हो अर्थात् विरोधी, वैरी या शत्रु।

अहितकर—वि० [सं० अहित√कृ (करना)+ट] जिससे अहित होता हो। अहित करनेवाला। 'हितकर' का विपर्याय।

अहितकारी (रिन्)—वि० [सं० अहित√कृ (करना)+णिनि]=अहितकर।

अहिद्विष्—पुं० [सं० अहि√द्विष् (अप्रीति)+क्विप्] १. गरुड़। २. नेवला। ३. मोर। ४. इन्द्र।

अहि-नकुलिका—स्त्री० [सं० अहि-नकुल, द्व० स०+वुन्-अक-टाप्, इत्व] साँप और नेवले में होनेवाला अथवा इस प्रकार का सहज और स्वाभाविक वैर।

अहिनाथ—पुं० [ष० त०] सर्पों के राजा शेषनाग।

अहिनाह*—पुं०=अहिनाथ।

अहिप—पुं० [सं० अहि√पा (पालन करना)+क] १. साँपों के राजा, शेषनाग। २. बहुत बड़ा साँप।

अहि-पताक—पुं० [सं० अहि-पताका, स० त०+अच्] एक प्रकार का साँप।

अहि-पति—पुं० [ष० त०] १. वासुकिनाग। २. बहुत बड़ा साँप।

अहिपुत्रक—पुं० [सं० अहि-पुत्र, ष० त०√कै (भासित होना)+क] एक प्रकार की नाव जो सर्प के आकार की होती थी।

अहि-पूतना—स्त्री० [सं०] बच्चों की पीठ में होनेवाले घाव या फोड़े और उनके साथ होनेवाले पतले दस्त, जो पूतना के उत्पात माने जाते हैं।

अहि-फेन—पुं० [ष० त०] १. साँप के मुँह से निकलनेवाला फेन या लार। २. अफीम।

अहि-बुध्न—पुं० [ब० स०] १. शिव। २. एक रुद्र का नाम।

अहिबेल*—स्त्री० [सं० अहिवल्ली, प्रा० अहिवेली] पान की लता। नाग-बेल।

अहिभुक (ज्)—पुं० [सं० अहि√भुज् (खाना)+क्विप्] १. गरुड़। २. मोर। ३. नेवला।

अहिभृत्—पुं० [सं० अहि√भृ (धारण करना)+क्विप्] शिव।

अहिम—वि० [सं० न० त०] जो हिम (बहुत ठंढा या शीतल) न हो, फलतः गरम।

अहिम-कर—पुं० [ब० स०] सूर्य। उदा०—मकरध्वज वाहणि चढ्यौ अहिमकर। —प्रिथीराज।

अहिम-द्युति—पुं० [ब० स०] सूर्य।

अहिम-रश्मि—पुं० [ब० स०] सूर्य।

अहिमांशु—पुं० [अहिम-अंशु, ब० स०] सूर्य।

अहि-मात—पुं० [सं० अहि=गति+मत्=युक्त] कुम्हार के चाक में वह गड्ढा जिसमें कीली रहती है और जिसके सहारे वह घूमता है।

अहिमाली (लिन्)—पुं० [सं० अहि, माला ष० त०, +इनि] साँपों की माला पहननेवाले, शिव।

अहि-मेध—पुं० [ष० त०] सर्प-यज्ञ।

अहिर—पुं०=अहीर।

अहिरख*—पुं० [हिं० अ+हिरख=हर्ष] १. हर्ष या प्रसन्नता का अभाव। २. खेद। दुःख। उदा०—अहिरख बायु न कीजे रे मन। —कबीर।

अहिर्बुध्न—पुं० [सं०] १. ग्यारह रुद्रों में से एक। २. उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिर्बुध्न हैं।

अहिलता—स्त्री० [मध्य० स०] = नागवल्ली (पान)।

अहिला*—पुं० [सं० अभिप्लव; प्रा० अहिल्लों; हिं० हील, चहला=कीचड़] १. पानी की बाढ़। २. उपद्रव। झगड़ा। फसाद।

अहि-लोचन—पुं० [ब० स०] शिव के एक सर्प का नाम।
अहिल्या—स्त्री० = अहल्या।
अहिवन—पुं० [सं० अहिवत्] सर्प। उदा०—वाम धाम गावत धमारि, मनहु अहिवन मनि लिद्धिय। —चंदवरदाई।
अहिवर—पुं० [?] दोहे का एक भेद जिसमें ५ गुरु और ३८ लघु होते हैं।
अहि-वल्ली—स्त्री० [मध्य० स०] नागवल्ली। पान।
अहिवात—पुं० [सं० अविधवात्व; प्रा० अहिवात्त, अहिवाद] [वि० अहिवाती] स्त्री की वह अवस्था जिसमें उसका पति जीवित हो। सधवा होने की अवस्था या भाव। सुहाग।
अहिवातिन—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सधवा या सौभाग्यवती स्त्री। सुहागिन।
अहिवाती—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सधवा।
अहिसाव*—पुं० [सं० अहिशावक] साँप का बच्चा। सँपोला।
अहीक—पुं० [सं०] दस क्लेशों में से एक। (बौद्ध०)
अहीन—वि० [सं० न० त०] १. जो हीन या तुच्छ न हो। २. जिसमें कोई कमी, त्रुटि या बुराई न हो। ३. जो किसी की तुलना में कम न हो।
पुं० १. हीन न होना। २. वासुकि। ३. [अहन्+ख—ईन] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ।
अहीनगु—पुं० [सं०] एक सूर्यवंशी राजा जो देवानीक का पुत्र था।
अहीनवादी (दिन्)—पुं० [सं० हीन-वादी, कर्म० स०, न—हीनवादी, न० त०] वह जो गवाही देने के योग्य न हो।
वि० [सं० न० त०] जो वाद में निरुत्तर न हुआ हो; और इस लिए हारा न हो।
अहीर—पु० [सं० अभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक प्रसिद्ध जाति जो गौएँ, भैंसें आदि पालती और उनके दूध, दही के व्यवसाय से जीविका निर्वाह करती है।
अहीरणि—पुं० [सं० अहि√ईर् (दूर करना)+अनि] दो-मुँहा साँप।
अहीरी—वि० [हिं० अहीर] १. अहीर-संबंधी। २. अहीरों का-सा।
स्त्री० अहीर जाति की स्त्री।
स्त्री०=आभीरी (रागिनी)।
अहीश—पुं० [सं० अहि-ईश, ष० त०] १. साँपों के राजा। शेषनाग। २. शेष के अवतार लक्ष्मण, बलराम आदि।
अहुँठ*—वि० [सं० अध्युष्ठ, अद्धुड्ढ; अर्द्ध मा० अड्ढुड्ढ] तीन और आधा। साढ़ेतीन।
अहुँठा*—पुं० [हिं० अहुँठ] गणित में, साढ़ेतीन का पहाड़ा।
अहुजी†—स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मीठा पलाव जिसमें कद्दू के छोटे-छोटे टुकड़े मिले रहते हैं।
अहुटना*—अ० [सं० हठ, हिं० दे० 'हटना'] १. अलग, पृथक् या दूर होना। २. पीछे हटना।
अहुटाना*—स० [सं० हठ, दे० 'हटाना'] १. अलग, पृथक् या दूर करना। २. पीछे हटाना।
अहुत—पुं० [सं० न० ब०] वह वेद-पाठ जिसमें आहुति नहीं दी जाती। ब्रह्मयज्ञ।
अहुरमज्द—पुं० [पह०] पारसियों में, धर्म और प्रकाश का अधिष्ठाता देवता।
अहूँठा—पुं० [सं० अध्युष्ठ] साढ़े तीन का पहाड़ा।
अहूठन—पुं० [सं० स्थूण] लकड़ी का कुंदा जिसपर चारा रख कर काटा जाता है।
अहे—पुं० [देश०] एक पेड़ तथा उसकी लकड़ी।
अव्य० [सं० हे] १. संबोधन-सूचक अव्यय। हे। २. आश्चर्य-सूचक अव्यय। अहा।
अहेड़—पुं०=अहेर (आखेट)।
अहेतु—वि० [सं० न० ब०] १. जिसमें या जिसका कोई उद्देश्य, कारण या हेतु न हो। २. व्यर्थ। फजूल।
पुं० [न० त०] १. हेतु का अभाव। २. एक काव्यालंकार जिसमें कारणों के इकट्ठे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाता है।
अहेतुक—पुं० [सं० आखेट] शिकार।
अहेर—पुं० [सं० आखेट] [वि० अहेरी] १. शिकार। मृगया। २. वह जंतु जिसका शिकार किया जाय।
अहेरी—पुं० [हिं० अहेर] १. वह जो शिकार करता हो। शिकारी। २. व्याध।
अहै*—अ० [सं० अस्] पुरानी हिंदी और ब्रजभाषा में 'होना' क्रिया का सामान्य वर्त्तमानकालिक रूप है।
अहैतुक—वि० [सं० हेतु+ठञ्—क, न० त०] जिसमें या जिसका कोई हेतु या कारण न हो।
अहो—अव्य० [सं०√हा (त्याग, गति)+डो, न० त०] १. विस्मय, हर्ष, खेद आदि सूचक एक अव्यय। २. हे। ओ। (संबोधन)
अहोई—स्त्री० [हिं० अ+होना] दीपावली के आठ दिन पहले होनेवाली एक पूजा जिसमें स्त्रियाँ संतान की प्राप्ति और रक्षा के लिए व्रत करती हैं।
†वि०=अनहोनी।
अहोनस—पुं० [सं० अहर्निश] रात-दिन। सदा। उदा०—प्रसणा सोण अहोनस पालत पग सावरत रहै पूमांण। —प्रिथीराज।
अहोनिस*—क्रि० वि० [सं० अहर्निश] १. रात दिन। सदा। २. निरंतर। लगातार।
अहोरत्न—पुं० [सं० अहन्-रत्न, ष० त०] सूर्य।
अहोरात्र—पुं० [सं० अहन्-रात्रि, द्व० स०, टच्] दिन और रात दोनों।
क्रि० वि० दिन-रात। सदा।
अहोरा-बहोरा—पुं० [सं० अहः=दिन+हिं० दे० 'बहुरना'] विवाह होने पर दुलहिन का पहली बार ससुराल जाना और फिर उसी समय मायके लौटना। हेरा-फेरी।
क्रि० वि०—बार-बार। रह-रहकर। उदा०—सरद चंद महँ खंजन जोरी। फिरि-फिरि लरहिं अहोर-बहोरी। —जायसी।
अहोरिन—स्त्री० [?] एक प्रकार की चिड़िया।
अह्निज—वि० [सं० अलुक्] दिन में होनेवाला।
अह्नीक—वि० [सं० न० ब०, कप्] निर्लज्ज।
पुं० बौद्ध भिक्षु।
अह्ल—वि० [अ०] योग्य अधिकारी। पात्र।
विशेष—कुछ शब्दों के पहले उपसर्ग के रूप में लगकर यह 'जानकार', 'वाला' आदि अर्थ भी देता है। जैसे—अह्ले-जबान=भाषाविद्। अह्ले-खाना=घरवाले लोग आदि। (दे० 'अहल')।
अह्लकार—पुं०=अहलकार।
अह्लमद—पुं०=अहलमद।

आ

देवनागरी वर्णमाला के स्वरों में दूसरा स्वर जो अ का दीर्घ रूप है और जिसका उच्चारण कंठ से होता है। संस्कृत में इसका प्रयोग अव्यय के रूप में भी और उपसर्ग के रूप में भी होता है। अव्यय के रूप में यह नीचे लिखे अर्थ देता है—(क) तक या पर्यंत; जैसे—आ-जानु=घुटनों तक या आ-समुद्र=समुद्र तक; (ख) आदि से अंत तक या अंदर सब जगह व्याप्त; जैसे—आ-जीवन=जीवन भर या आ-पाताल=पाताल के अंदर तक; (ग) कुछ या थोड़ा; जैसे—आ-पिंगल=कुछ कुछ या हलका पीला और (घ) किसी अवधि या सीमा के आगे-पीछे या बाहर भी; जैसे—आ-कालिक=नियत काल से पहले या पीछे भी; अर्थात् विना मौसिम का। उपसर्ग के रूप में यह क्रियार्थक संज्ञाओं के पहले लगकर कई प्रकार की विशेषताएँ (अतिरिक्त, लगभग, वस्तुतः आदि के भाव) सूचित करता है; जैसे—आकंपन, आरोहण आदि। प्रायः संस्कृत विशेषणों और संज्ञाओं के अंत में प्रत्यय के रूप में लगकर यह उन्हें स्त्रीलिंग रूप देता है। जैसे—कोमल से कोमला, शिष्य से शिष्या आदि। हिंदी में यह कभी कभी कुछ शब्दों के अंत में प्रत्यय के रूप में लगकर 'युक्त' या 'वाला' का अर्थ देता है। जैसे—चौमंजिला, दो-मुँहा, पँच-रंगा आदि।

पुं० [सं० आप् (व्याप्त होना)+क्विप्, पृषो० पलोप] १. दादा। पितामह। २. शिव।

स्त्री० लक्ष्मी।

सर्व० १. यह। २. वह। (गुज०, राज० आदि)

आँ—अव्य० [अनु०] ऐं! हैं! (आश्चर्य-सूचक)

पुं० बच्चों के रोने का शब्द। जैसे—लगे बच्चों की तरह आँ आँ करने!

आँक—पुं० [सं० अंक] १. संख्या का सूचक अंक। उदा०—कहत सबै वेंदी दिए आँक दस गुनों होत।—विहारी। २ चिह्न। लक्षण। ३. अक्षर। वर्ण। उदा०—गुण पै अपार साधु कहै आँक चारिही में अर्थ विस्तारि कविराज टकसार हैं।—प्रिया। ४. दृढ़ निश्चय। उदा०—एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं।—तुलसी। ५. अंश। भाग। हिस्सा। ६. अँकवार। गोद। उदा०—पीछे ते गहि लाँकरी गही आँकरी फेरि।—शृं० सत०। ७. वैलगाड़ी की वल्लियों के नीचे का ढाँचा जिसमें पहिए की धुरी लगी रहती है। ८. नौ मात्राओंवाले छंदों की संज्ञा। ९. लकीर। १०. किसी चीज पर संकेत के रूप में लिखा हुआ उसका मूल्य या पहचान।

स्त्री० [हिं० आँकना] १. आँकने की क्रिया या वात। २. मन-गढ़ंत वात।

आँकड़ा—पुं० [सं० अंक, हिं० आँक+डा (प्रत्य०)] १. अंक। अदद। २. पाश। फंदा। ३. पशुओं का एक रोग।

पुं० [अ=नहीं+कण=दाना] विना दाने की ज्वार की वाल की खुखड़ी।

आँकड़े—पुं० [हिं० आँकड़ा] गणित से किसी विषय या विभाग के संबंध में स्थिर किये हुए अंक जो उस विषय या विभाग का कोई पक्ष या स्थिति सूचित करते हैं। (स्टैटिस्टिक्स) जैसे—आँकड़ों के आधार पर जन्म और मृत्यु की संख्या का अनुपात स्थिर करना।

आँकना—स० [सं० अंकन] १. अंक या चिह्न लगाना। निशान लगाना। २. चित्र, रूप-रेखा आदि अंकित करना। ३. मान, मूल्य आदि का अनुमान करना। अंदाज लगाना। कूतना। ४. महत्त्व, स्थिति या ऐसी ही किसी और वात का अनुमान करना या अंदाज लगाना।

*स० [सं० अंक] गले लगाना। आलिंगन करना। उदा०—सनमुख होइ करि ताहि को आँकौं भरि...। —सूरदास मदनमोहन।

आँकर—वि० [सं० आकर=खान] १. गहरा। २. बहुत अधिक।

स्त्री० खेत की गहरी जोताई। 'सेव' (उथली जोताई) का विपर्याय।

वि० [सं० अक्रय्य]=अकरा (महँगा)।

आँकरा†—वि०=आँकर (बहुत अधिक)।

पुं० १.=आँकड़ा। २.=अंकुर।

आँकल*—पुं० [सं० अंक, हिं० आँक] दागा हुआ साँड़। (डिं०)

आँकुड़ा—पुं०=अँकुड़ा।

आँकुशिक—पुं० [सं० अंकुश+ठक्—इक] अंकुश से हाथी चलानेवाला महावत।

आँकुस*—पुं०=अंकुश।

आँकू—वि०, पुं० [हिं० आँक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूतनेवाला।

आँख—स्त्री० [सं० अक्षिन्, प्रा० अक्खि, गु० आंख, सिं० अख, पं० अक्ख, का० अछ, वँ० आँखि, सिंह० अक्] १. (क) प्राणियों की वह इंद्रिय जिससे उन्हें दूसरे जीवों और पदार्थों के आकार-प्रकार, आयत-विस्तार, रूप-रंग, भेद-विभेद, पारस्परिक दूरी आदि का ज्ञान होता है। देखने की इंद्रिय। चक्षु। नयन। नेत्र। (ख) उक्त इंद्रिय का कार्य और उसके द्वारा होनेवाला परिज्ञान जिसमें चीजें दिखाई देती हैं। देखने की क्रिया, भाव या शक्ति। दृष्टि। निगाह। (ग) लाक्षणिक रूप में, मनोभाव व्यक्त या सूचित करनेवाली भंगिमा, रंग-ढंग, संचालन आदि के विचार से, उक्त इंद्रिय या उसके द्वारा होनेवाला कार्य या व्यापार।

विशेष—(क) स्तनपायी जीवों में सिर के सामनेवाले भाग में माथे या ललाट के नीचे और नाक के ऊपर दोनों ओर कुछ लंबोतरी दो आँखें होती है। वीच का सारा काला भाग और उसके चारों ओर का सफेद भाग दोनों मिलकर गोलक या डेला कहलाते हैं। वड़े काले भाग को पुतली और उसके ठीक वीच की विन्दी को तारा या तिल कहते हैं। प्रकाश की सहायता से तारे और पुतली पर वाहरी पदार्थों का जो प्रतिविंव पड़ता है उसका परिज्ञान अंदर के संवेदन सूत्रों के द्वारा मस्तिष्क को होता है। इसी को (चीज) 'दिखाई देना' कहते हैं। डेले के ऊपर और नीचे चमड़े के जो आवरण या परतें होती हैं उन्हें पलकें कहते हैं और उन पलकों के आगेवाले वालों की पंक्ति वरौनी कहलाती है। निम्न कोटि के जीवों में आँखों की संख्या ४, ६ या ८ तक भी होती है। उनमें इनकी ऊपरी वनावट भी कुछ भिन्न प्रकार की होती है और वे शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित होती हैं। (ख) प्रयोग के क्षेत्र में, कुछ अवस्थाओं में इस शब्द का केवल एकवचन में, कुछ अवस्थाओं में केवल वहुवचन में और कुछ अवस्थाओं में विकल्प से दोनों में से किसी वचन में व्यवहार होता है।

मुहा०—**आँख आना**=एक रोग जिसमें आँखें लाल होती, सूजती और दुखती हैं। **आँख उठना या उठने आना**=दे० ऊपर 'आँख आना' (रोग)। **(किसी ओर) आँख या आँखें उठना**=दृष्टि या निगाह पड़ना। जैसे—जिधर आँख उठेगी, उधर चल पड़ेंगे। **आँख उठाना**=जिस समय आँखें वंद हों या नीचे की ओर झुकी हों, उस समय देखने के लिए आँखें खोलना या ऊपर करना। जैसे—दिन भर वाद अव वच्चे ने आँख उठाई है। **(किसी चीज की ओर) आँख उठाना** = प्राप्ति की इच्छा या लोभ-भरी दृष्टि से देखना। जैसे—यह लड़का दूसरों की खाने-पीने की चीजों की तरफ कभी

आँख नहीं उठाता। (किसी व्यक्ति की ओर) आँख उठाना या उठाकर देखना=किसी को हानि पहुँचाने के उद्देश्य या विचार से उसकी ओर देखना। जैसे—हमारे रहते कोई तुम्हारी तरफ आँख उठाकर नहीं देख सकता। (किसी व्यक्ति के सामने) आँख या आँखें उठाना=साहसपूर्वक किसी की ओर देखना। निगाह मिलाना। सामना करना। जैसे—उनकी मजाल नहीं है कि मेरे सामने आँख उठावें। आँख या आँखें उलटना=बेहोश होने पर या मरने के समय आँखों की पुतलियों का कुछ ऊपर चढ़ जाना। (किसी के सामने) आँख या आँखें ऊँची करना=दे० ऊपर (किसी के सामने) 'आँख उठाना'। आँख या आँखें कड़ आना=अधिक जागने, धुआँ लगने या लगातार टक लगाकर देखते रहने से आँखों में जलन, थकावट और दर्द होना। (किसी की) आँख या आँखों का काँटा बनना या होना=किसी की दृष्टि में बहुत ही अप्रिय और अवांछित होना। ('आँखों में खटकना या गड़ना' की अपेक्षा बहुत उग्र विरक्ति का सूचक) आँख या आँखों का काजल चुराना=ऐसी चालाकी या सफाई से तथा चोरी चोरी अपना काम निकालना कि किसी को पता न चले। (अपनी) आँख या आँखों का तेल निकालना=निरंतर कोई ऐसा बारीक काम करते रहना कि आँखों से पानी निकलने लगे। आँख या आँखों का पानी ढलना=किसी की मर्यादा का ध्यान या लज्जाशीलता न रह जाना। निर्लज्ज हो जाना। जैसे—जब आँख का पानी ढल गया, तब नंगे होकर नाच भी सकते हो। आँख किरकिराना=आँख में बालू आदि का कण पड़ने से उसमें कसक या खटक होना। आँख या आँखों के आगे अँधेरा छाना=आघात, निराशा, भय, शोक आदि के कारण आँखों और बुद्धि का ठीक तरह से काम न करना। सामने अँधेरा दिखाई देना। आँख या आँखों के आगे या सामने नाचना=मन में ध्यान बना रहने के कारण किसी व्यक्ति की आकृति या घटना का दृश्य रह-रहकर काल्पनिक रूप से सामने आना। आँख खटकना=आँख में कोई चीज पड़ने पर उसमें खटक होना। आँख किरकिराना। उदा०—देखो लला मोरी आँखन खटकै, कौने तरह से रंग फेंकत हो री। (होली) आँख या आँखें खुलना=(क) नींद टूटना। जागना। (ख) लाक्षणिक रूप में, अज्ञान, भ्रम, मोह आदि दूर होना और उसके फलस्वरूप वास्तविक रूप या स्थिति का ज्ञान होना। जैसे—उनकी आज की बातों से तो मेरी आँखें खुल गईं। (किसी की) आँख या आँखें खोलना=ऐसा काम करना जिससे किसी का अज्ञान, भ्रम या मोह दूर हो और उसे वास्तविकता का ज्ञान हो। आँख गड़ना=आँख में कोई चीज पड़ने या पलक में फुंसी, सूजन आदि होने पर हलकी खटक, चुनचुनाहट या पीड़ा होना। (किसी ओर या किसी चीज पर) आँख गड़ना=(क) ध्यानपूर्वक देखने के समय निगाह जमना। (ग) कोई चीज पाने के लिए उस पर ध्यान लगा रहना। जैसे—तुम्हारी कलम पर हमारी आँख गड़ी है। आँख या आँखें चमकाना, नचाना या मटकाना=स्त्रियों का (या स्त्रियों की तरह) भाव-भंगी प्रकट करने के लिए पलकें और पुतलियाँ चलाना या हिलाना। (किसी से) आँख या आँखें चुराना या छिपाना=लज्जा, संकोच आदि के कारण किसी का सामना करने से बचना या हिचकना। आँख चूकना=दृष्टि या ध्यान का कुछ समय के लिए नियत स्थान से हटकर इधर-उधर होना। जैसे—जरा-सा आँख चूकते ही वह पुस्तक उठा ले गया। (किसी से) आँख या आँखें छिपाना=दे० ऊपर 'आँख या आँखें चुराना'। (किसी चीज पर) आँख या आँखें जमना=ध्यानपूर्वक देखने के समय निगाह जमाना। दृष्टि स्थिर होना। (किसी की) आँख जाना=आँख में देखने की शक्ति न रह जाना। जैसे—एक आँख तो गई ही; अब दूसरी तो बचाओ। (किसी चीज या बात की ओर) आँख जाना=दृष्टि या निगाह पड़ना। आँख झपकना=(क) आँख पर की पलक गिरना। जैसे—आँख झपकते ही उसने कलम उठा ली। (ख) थोड़े समय के लिए नींद आना। झपकी आना। जैसे—आज रात भर आँख नहीं झपकी। आँख या आँखें झेपना=दोषी या लज्जित होने के कारण निगाह नीची करना या सामने न देखना। आँख या आँखें टोरना=लज्जा से आँखें या निगाह नीची करना। आँख या आँखें टँगना=दे० ऊपर 'आँख या आँखें उलटना'। (किसी ओर या किसी चीज पर) आँख डालना=दृष्टिपात करना। देखना। आँख या आँखें तरेरना=आँखें इस प्रकार कुछ तिरछी करना कि उनसे क्रोध या रोष सूचित हो। आँख तले आना=(क) दिखाई देना। जैसे—अभी तक तो ऐसी पुस्तक हमारी आँख तले नहीं आई। (ख) देखने में अच्छा लगना। जँचना। उदा०—अब न आँख तर आवत कोऊ।—तुलसी। (किसी को) आँख या आँखें दिखाना=क्रोध के आवेश में होकर या डराने-धमकाने के लिए किसी की ओर उग्र दृष्टि से देखना। उदा०—बहुत भाँति तिन्ह आँख देखाए। —तुलसी। आँख या आँखें दुखने आना=दे० ऊपर 'आँख आना या उठना'। (किसी बड़े की) आँख या आँखें देखे हुए होना=संगति या सामना करने का अनुभव या सौभाग्य होना। जैसे—हम भी बड़े-बड़े उस्तादों की आँखें देखे हुए हैं। आँख या आँखें दौड़ाना=कुछ ढूंढ़ने या देखने के लिए दूर तक दृष्टि या ध्यान ले जाना। जैसे—चारों ओर आँखें दौड़ाने पर भी कोई दिखाई न दिया। आँख न उठाना=दे० नीचे 'आँख न खोलना'। आँख या आँखें न खोलना=रोगजन्य शिथिलता के कारण आँखें बंद करके तंद्रा में पड़े रहना। जैसे—आज दिन भर बच्चे ने आँख नहीं खोली। आँख या आँखें नचाना=दे० ऊपर 'आँख या आँखें चमकाना'। (किसी पर) आँख न ठहरना=तीव्र गति, दीप्ति, विशेष शोभा आदि के कारण किसी चीज पर निगाह न जमना। (किसी की) आँख या आँखें निकालना=दंड-स्वरूप अंधा करने के लिए किसी की आँखों के गोलक या ढेले काटकर अलग करना। (किसी के सामने) आँख या आँखें निकालना=क्रोधपूर्वक आँखें तरेरकर या लाल-पीले होकर देखना। उदा०—आँखें निकालिएगा जरा देखभाल कर।—कोई शायर। (किसी के सामने) आँख या आँखें नीची होना=लज्जा, संकोच आदि के कारण ऐसी स्थिति में होना कि सिर न उठ सके। जैसे—तुमने उनसे रुपए उधार लेकर सदा के लिए उनके सामने मेरी आँख नीची कर दी। आँख पटपटाना=आँख या देखने की शक्ति नष्ट होना। (किसी पर) आँख पड़ना=दृष्टि या निगाह पड़ना। दिखाई देना। आँख या आँखें पथराना=(क) मरने के समय आँखों की चमक और पारदर्शिता नष्ट होने के कारण उनका कठोर और निश्चल होना। (ग) प्रतीक्षा आदि में टक लगाकर देखते रहने के कारण आँखें कठोर और निश्चल होना। आँख या आँखों पर पट्टी बँधना या परदा पड़ना=भ्रम, मोह आदि के कारण भले-बुरे या हानि-लाभ का ठीक-ठीक ज्ञान न हो सकना। जैसे—उस समय मेरी आँखों पर पट्टी बँधी थी (या परदा पड़ा था) जिससे मैंने तुम्हारे सद्भाव का तिरस्कार किया था। आँख या आँखें पसीजना=अनुराग, दया आदि के कारण आँखों में कुछ जल भर आना। आँखें आर्द्र होना।

आँख फड़कना=पलक या भौंह के कुछ अंश का कुछ देर तक रह-रहकर फड़क उठना या हिलना जो उक्त अंग की एक क्षणिक प्राकृतिक क्रिया और सामुद्रिक के अनुसार शुभ या अशुभ फल की सूचक है। **(किसी की ओर से) आँख या आँखें फिरना या फिर जाना**=पहले का-सा अनुराग, कृपा या सद्व्यवहार न रह जाना। **आँख फूटना**=आघात, रोग आदि के कारण आँख इस प्रकार बिगड़ जाना कि देखने की शक्ति नष्ट हो जाय। **आँख पसारना या फैलाना**=अच्छी तरह ध्यानपूर्वक देखना या देखने का प्रयत्न करना। जैसे—आँख पसारकर देखो, घड़ी मेज पर ही है। **(किसी की ओर से) आँख या आँखें फेरना या मोड़ना**=पहले का-सा अनुराग, ध्यान या व्यवहार न रखना। उदासीनता, उपेक्षा आदि दिखाने लगना। **(किसी काम में अपनी) आँख या आँखें फोड़ना**=बहुत देर तक या लगातार ऐसा बारीक या परिश्रम-साध्य काम करते रहना, जिसमें आँखों को बहुत कष्ट हो या उनपर बहुत जोर पड़े। जैसे—कसीदा काढ़ने या लेखों का संशोधन करने में आँख फोड़ना। **(किसी की) आँख या आँखें फोड़ना**=दंड देने के लिए आँखों पर आघात करके किसी को अंधा करना। **आँख या आँखें बंद करके कुछ करना**=बिना कुछ भी ध्यान दिये या सोचे-समझे कोई काम करना। **(किसी ओर या बात से) आँखें बंद करना या मूँदना**=अभिमान, अरुचि, संकोच आदि के कारण जान-बूझकर किसी होते हुए काम या बात पर ध्यान न देना। जान-बूझकर अनजान बनना। **(किसी की) आँख या आँखें बंद होना**=जीवन का अंत या मृत्यु होना। जैसे—पिता की आँखें बंद होते ही लड़कों में मुकदमेबाजी होने लगी। **(किसी की) आँख बचाकर कुछ करना**=इस प्रकार चोरी से कोई काम करना कि किसी उद्दिष्ट व्यक्ति का ध्यान उधर न जाने पावे। **(किसी से) आँख बचाना**=ऐसे प्रयत्न में रहना कि किसी उद्दिष्ट व्यक्ति का सामना न हो। **(किसी की) आँख बदलना**=पहले का-सा अनुराग या सद्भाव न रह जाना। उदा०—चीन्हत नाहीं बदल गये नैना।—गीत। **(किसी से) आँख या आँखें बदलना**= कुछ क्रोध से या शील-संकोच छोड़कर किसी की ओर देखना। जैसे—अपना रुपया लीजिए, आँखें क्या बदलते हैं। **आँख बनना**=शल्यक्रिया के द्वारा मोतियाबिन्द, संबलबाई आदि रोगों की ऐसी चिकित्सा होना कि आँखें ठीक तरह से काम देने लगें। **आँख बनवाना**=शल्यकर्म द्वारा मोतियाबिंद या इसी प्रकार का आँख का कोई और रोग अच्छा कराना। **आँख बनाना**=उक्त 'आँख बनना' का सकर्मक रूप। **(किसी से) आँख या आँखें बराबर करना या मिलाना**=सामना होने पर अच्छी तरह किसी की ओर देखना। दृष्टि या निगाह मिलाना। **आँख बिगड़ना**=रोग या उसकी अनुपयुक्त चिकित्सा के कारण आँख का ऐसी स्थिति में होना कि वह ठीक या पूरा काम न दे सके। जैसे—चेचक होने (या तेजाब पड़ने) से उसकी आँख बिगड़ गई। **(किसी के आगे) आँखें बिछाना**=आगत व्यक्ति का बहुत अधिक आदर-सत्कार करना। **आँख बैठना**=रोग आदि के कारण देखने की शक्ति नष्ट हो जाना। **आँख भरकर देखना**=अच्छी तरह दृष्टि जमाकर या ध्यान से देखना। **आँख भर देखना**=कुछ समय तक अच्छी तरह ध्यान से इस प्रकार देखना कि मन को तृप्ति या शांति हो। जैसे—हम उन्हें आँख भर देखने भी न पाये और वे चले गये। **आँख या आँखें मटकाना**=दे० ऊपर 'आँख या आँखें चमकाना'। **आँख मारना या मिचकाना**=पलक और पुतली हिलाकर कुछ संकेत करना। **आँख या आँखें मूँदना**= (क) आँखें बंद करना, जिसमें कुछ दिखाई न पड़े। उदा०—मूँदहु आँख कतहुँ कछु नाहीं।—तुलसी।—(ख) मर जाना। मृत्यु होना। जैसे—जहाँ उन्होंने आँखें मूँदीं, सब चौपट हो जायगा। **(किसी ओर या बात से) आँख या आँखें मूँदना**=दे० ऊपर **(किसी ओर या बात से) 'आँखें बंद करना'**। **आँख या आँखों में खटकना या गड़ना**=अनुराग के अभाव, दोष, द्वेष आदि के कारण अनुचित, अप्रिय या अवांछित जान पड़ना। ('आँखों का काँटा होना' या 'आँखों में चुभना' की अपेक्षा कुछ हलकी विरक्ति का सूचक) जैसे—अब तो उनकी हर बात हमारी आँखों में खटकने लगी है। **आँख या आँखों में खून उतरना या उतर आना**=(क) बहुत अधिक क्रोध के कारण आँखें बहुत लाल हो जाना (दूसरों के संबंध में) जैसे—उस समय उनकी आँखों में खून उतर आया। (ख) बहुत अधिक क्रोध या रोष होना (स्वयं वक्ता के पक्ष में) जैसे—उसकी पाशविकता देखकर मेरी आँखों में खून उतर आया। **आँख या आँखों में घर करना**=बहुत ही प्रिय या सुन्दर होने के कारण बराबर अकाल्पनिक रूप से आँखों के सामने या ध्यान में बना रहना। **आँख या आँखों में चरबी छाना**=इतना अभिमान होना कि सब चीजें या लोग तुच्छ या हीन जान पड़ें। **आँखों में टेसू या सरसों फूलना**=स्वयं प्रसन्न या सुखी रहने के कारण दूसरों के कष्ट या दुःख से बिलकुल अनभिज्ञ या उदासीन रहना। **(किसी की) आँख या आँखों में धूल झोंकना**=स्वार्थ-साधन के लिए किसी को बहुत बड़ा धोखा देना या भ्रम में डालना। जैसे—आँखों में धूल झोंककर वह दस रुपए की चीज के बीस रुपए ले गया। **आँख या आँखों में फिरना**=सामने न होने पर भी प्रायः प्रत्यक्ष-सा दिखाई देता रहना। जैसे—आँखों में फिरती है सूरत किसी की। —कोई शायर। **आँख या आँखों में बसना**=दे० ऊपर **'आँखों में घर करना'**। उदा०—बसो मेरे नैनन में नँदलाल।—गीत। **आँखों में सरसों फूलना**=दे० ऊपर **'आँखों में टेसू फूलना।'** **(किसी व्यक्ति पर) आँख रखना**=किसी व्यक्ति की गति-विधि पर सतर्क रहकर दृष्टि या ध्यान रखना। **(किसी ओर) आँख या आँखें लगना**=किसी की ओर दृष्टि या ध्यान जमना या स्थिर होना। जैसे—किसी की प्रतीक्षा में दरवाजे पर आँख लगना। **(किसी की) आँख लगना**=(क) थोड़े समय के लिए हलकी नींद आना। झपकी लगना। जैसे—दो दिन बाद आज भइया की जरा आँख लगी है। **(किसी चीज पर) आँख लगना**=दे० ऊपर **(किसी चीज पर) 'आँख गड़ना'**। **(किसी व्यक्ति से) आँख लगना**=शृंगारिक प्रसंग में, काम-वासना की तृप्ति के लिए किसी से प्रायः अनुरागपूर्ण देखा-देखी या सम्पर्क होना। **(किसी से) आँख लड़ना**=(क) अचानक या संयोग से देखा-देखी होना। जैसे—आँख लड़ते ही वह घूमकर गली में घुस गये। (ख) दे० ऊपर **(किसी व्यक्ति से) 'आँख लगना'**। **(किसी से) आँख या आँखें लड़ाना**=शृंगारिक प्रसंग में, प्रायः रह-रहकर कुछ देर तक अनुरागपूर्वक एक दूसरे को देखते रहना। **आँख या आँखें लाल करना**=क्रोध से भरकर इस प्रकार आँखें गड़ाकर देखना कि उनमें खून आया या भरा जान पड़े। **आँख या आँखें सफेद होने को आना**=इतनी अधिक प्रतीक्षा करना कि आँखें ज्योतिहीन हो जायँ और उनमें देखने की शक्ति न रह जाय। **आँख या आँखें सेंकना**=तृप्त होने या लालसा पूरी करने के लिए सुंदर रूप की ओर रह-रहकर देखना। **आँख या आँखों से खून टपकना**=(क) दे० ऊपर **'आँखों में खून उतरना'**।

(ख) बहुत अधिक दुःख के कारण इस प्रकार आँसू निकलना कि मानों कलेजा फटने के कारण उनमें से खून टपक रहा हो। खून के आँसू रोना। **(किसी की) आँख से गिरना**=किसी की दृष्टि में पहले सा सम्मान न रह जाना। **आँख या आँखों से चिनगारियाँ छूटना**=आँखों से बहुत अधिक क्रोध या रोष के लक्षण प्रकट होना। **आँख या आँखों से नीर (या नील) ढलना**=मरने के समय आँखों से अंतिम बार जल निकलना। **आँख या आँखों से लगाना**=कोई चीज मिलने पर उसके प्रति आदर या स्नेह दिखाने के लिए उसे आँखों से स्पर्श कराना। **आँख होना**=(क) कोई चीज पहचानने या कोई बात समझने की योग्यता या शक्ति होना। उदा०—भई तब आँखें दुख सागर को चाखें, अब वही हमें राखें, भाखें वारों धन माल हो।—प्रिया। (ख) किसी बात का अनुभव या परख होना। **आँखें घुलाना**=एक-दूसरे को रह-रहकर प्रेमपूर्वक बराबर देखते रहना। **आँखें चढ़ना**=(क) नशे के कारण आँखें लाल और भारी होना। (ख) अप्रसन्नता, क्रोध आदि के कारण भौंहें तनना। त्योरी चढ़ना। **आँखें चार करना**=किसी की दृष्टि से दृष्टि मिलाना। आमने-सामने होकर एक दूसरे को देखना। **आँखें चार होना**=किसी से देखा-देखी और सामना होना। **आँखें ठंढी होना**=किसी को देखने से परम प्रसन्नता या संतोष होना। **आँखें डबडबाना**=दुःख के कारण आँखों में आँसू भर आना। **आँखें तरसना**=किसी को देखने की अत्यंत अभिलाषा और उत्कंठा होना। **आँखें फाड़कर देखना**=अविश्वास अथवा आश्चर्य होने की दशा में अथवा कुछ ढूँढ़ने के लिए देखने की सारी शक्ति एकाग्र करके देखना। **(किसी के लिए) आँखें बिछाना**=बहुत अधिक आदर और प्रेमपूर्वक स्वागत करना। **आँखें भर आना**=दे० ऊपर 'आँखें डबडबाना'। **आँखों की सूइयाँ निकालना**=किसी बहुत कठिन और बड़े काम का अंतिम और सहज अंश पूरा करके सारे काम का यश और श्रेय प्राप्त करना। (एक प्रसिद्ध कहानी के आधार पर) जैसे—अब सारा काम हो चुका; तब आप आँखों की सूइयाँ निकालने आये हैं। **(किसी की) आँखों में आँखें डालना**=जो इस ओर देख रहा हो, उसकी आँखों की ओर सारी शक्ति लगाकर प्रेमपूर्वक देखना। **(किसी को) आँखों में पालना या रखना**=सदा अपने साथ रखकर परम प्रेम से और बहुत ही यत्नपूर्वक पालन-पोषण करना। **आँखों में रात काटना या बिताना**=सारी रात जागकर बिताना। **(किसी की) आँखों में सलाई फेरना**=दंडस्वरूप अंधा करने के लिए लोहे की सलाई गरम करके उसे सुरमे की सलाई की तरह आँखों में लगाकर उन्हें जलाना। **(किसी को) आँखों पर बैठाना**=आये हुए व्यक्ति का बहुत अधिक आदर-सत्कार करना। **फूटी आँख या आँखों न सुहाना**=किसी अवस्था में भी अच्छा न लगना। बहुत ही अप्रिय जान पड़ना।

पद—**आँख का अंधा**=वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। परम मूढ़। **आँख का तारा या तिल**=आँख की पुतली के बीच में दिखाई देनेवाली बिंदी जिस पर सामने की चीज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। कनीनिका। **आँख या आँखों का तारा**=परम प्रिय व्यक्ति। **आँख की किरकिरी**=आँख या दृष्टि में खटकनेवाली चीज। **आँख की पुतली**=आँख का वह सारा काला भाग जिसके बीच में तारा या तिल होता है। **आँखों के डोरे**=आँखों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक दिखाई देनेवाली लाल धारियाँ जो सौंदर्य बढ़ानेवाली होती हैं। **आँखें चरने गई हैं**=आँखें या दृष्टि कुछ भी काम नहीं कर रही हैं! (आश्चर्य-सूचक अथवा व्यंग्यात्मक) जैसे—तुम्हारी आँखें तो चरने गई हैं; सामने रखी हुई चीज तुम्हें कैसे दिखाई दे। **आँख वाला**=(क) चतुर। होशियार। (ख) गुणग्राहक। पारखी।

२. वह शक्ति जिससे मनुष्य अच्छी बातें समझकर उन्हें ग्रहण करता है। धारणा और विचार की शक्ति। जैसे—हिये की आँख। ३. किसी के संबंध में मन में होनेवाली धारणा, मत या विचार। दृष्टि। निगाह। जैसे—जनता की आँख या आँखों में अब वे बहुत गिर गये हैं। ४. गुण-दोष आदि परखने की शक्ति। निगाह। परख। पहचान। जैसे—उन्हें कपड़े (या जवाहरात) की अच्छी आँख है। ५. वस्तु व्यक्ति आदि पर रखा जानेवाला ठीक और पूरा ध्यान। सतर्कतापूर्ण दृष्टि। निगाह। जैसे—(क) इस लड़के पर आँख रखना; कुछ लेकर भाग न जाय। (ख) आज-कल उनपर पुलिस की आँख है। ६. प्राप्ति की इच्छा से होनेवाली लोभपूर्ण दृष्टि। जैसे—गठरी या बक्स पर चोर की आँख होना। ७. कृपापूर्ण दृष्टि। दयाभाव। जैसे—जब इन पर आपकी आँख है, तो यह भी कुछ हो जायँगे। ८. आकार, रूप, स्थिति आदि के विचार से आँखों से मिलती-जुलती कोई चीज या बनावट। जैसे—अनन्नास, आलू, या ऊख की आँख, मोर-पंख पर की आँख आदि। ९. आँख के आकार का कोई ऐसा छोटा छेद जिसमें कोई दूसरी चीज डाली या पहनाई जाती हो। जैसे—सूई की आँख (छेद या नाका)। (आई, उक्त सभी अर्थों के लिए)

आँखड़ी†—पुं०=आँख।

आँख-फोड़ टिड्डा—पुं० [सं० आक=मदार+हिं० फोड़ना] १. हरे रंग का एक फतिंगा जो प्रायः मदार के पौधों पर रहता है। २. वह जो दूसरों का अपकार या हानि करता फिरता हो।

आँख-मिचौनी—स्त्री०=आँख-मिचौली।

आँख-मिचौनी (मिचौली)—स्त्री० [हिं० आँख+मीचना] बच्चों का एक खेल, जिसमें एक लड़का किसी दूसरे लड़के की आँख मूँदता है। इस बीच और लड़के छिप जाते हैं तब आँख मुँदानेवाले की आँखें खोल दी जाती हैं और वह लड़कों को ढूँढ़कर छूता है।

आँख-मीचली†—स्त्री०=आँख-मिचौनी (खेल)। उदा०—कहूँ खेलत मिलि ग्वाल-मंडली आँख-मीचली खेल।—सूर।

आँख-मुँदाई—स्त्री०=आँख-मिचौनी।

आँखा—पुं०, वि०=आखा।

आँग*—पुं० [सं० अङ्ग] १. अंग। २. प्रति चौपाये के हिसाब से ली जानेवाली चराई।

आंगक—वि० [सं० अंग+वुञ्—अक] अंग देश से संबंध रखनेवाला। अंग देश का।

आँगन—पुं० [सं० अंगण√अञ्ज्; प्रा० मरा० अंगण; गु० आंगुणु; आँगनियु; सिं० अङ्णुं; बँ० उ० पं० अं (आं) गन] १. घर के अंदर या सामने का वह खुला चौकोर स्थान जो ऊपर से छाया न हो। चौक। सहन। २. रहस्य संप्रदाय में, अंतःकरण।

आँगरी*—स्त्री०=उँगली।

आंगारिक—वि० [सं० अंगार+ठक्—इक] १. अंगार-संबंधी। २. अंगारों पर पकने या बननेवाला (खाद्य पदार्थ)।

आंगिक—वि० [सं० अंग+ठक्-इक] १. अंग या अंगों से संबंध रखनेवाला। २. शारीरिक क्रियाओं, चेष्टाओं या संकेतों द्वारा अभिव्यक्त होनेवाला। जैसे—आंगिक अनुभाव, आंगिक अभिनय आदि। ३. दे० 'कायिक'।

पुं० वह जो मृदंग बजाता हो। पखावजी।

आंगिक-अभिनय--पुं० [सं० कर्म० स०] ऐसा अभिनय जिसमें नट या नर्तक अपनी शारीरिक क्रियाओं, चेष्टाओं, संकेतों आदि से ही अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति करता अथवा कोई स्थिति दिखाता हो। अभिनय के चार भेदों में से एक (शेष तीन अंग है--आहार्य, वाचिक और सात्त्विक)।

आंगिरस--पुं० [सं० अंगिरस्+अण] १. अंगिरा ऋषि के तीन पुत्र--बृहस्पति, उतथ्य तथा संवर्त्त। २. अंगिरा के गोत्र का व्यक्ति।

वि० अंगिरा संबंधी। अंगिरा का।

आँगी*--स्त्री०=अँगिया।

आँगुर†--स्त्री०=उँगली।

आँगुरी*--स्त्री०=उँगली।

आँगुल--पुं० [सं० अंगुल+अण्] दे० 'अंगुल'।

आँघी--स्त्री० [सं० घृ=क्षरण, झरना] मैदा आदि चालने की चलनी।

आँच--स्त्री० [सं० अर्चिस्-ष् (आग की लपट); प्रा० अच्चा; सिं० गु० बँ० आच; कान, इचु] १. अग्नि। आग। जैसे--चूल्हे आँच, न घड़े पानी।--कहा०। २. आग की लपट। ३. आग से निकलनेवाली गरमी या ताप। ४. आग पर पकाये जाने की क्रिया। जैसे--अभी इसमें एक आँच की कसर है।

मुहा०--आँच खाना=(क) किसी चीज का आग पर चढ़कर उसका ताप सहना। आँच दिखाना। (ख) गरम करने के लिए आँच के पास रखना।

५. किसी प्रकार का कष्ट या हानि। उदा०--इन पाँचन को बस करै, ताहि न आवै आँच।--कबीर। ६. कोई कष्टदायक या घातक चीज या बात। जैसे--तलवार की आँच। ७. किसी मनोवेग की उग्र या तीव्र अनुभूति। जैसे--काम-वासना या ममता की आँच। ८. विपत्ति। संकट।

मुहा०--आँच आना=अपकार या हानि होना। संकट में पड़ना।

९. प्रेम। मुहब्बत। १०. काम-वासना।

आंचन--पुं० [सं० अञ्चन+अण्] [√आञ्छ्(ठीक करना)+ल्युट्--अन] १. हड्डी के टूटने अथवा किसी अंग में मोच पड़ने पर उसे जोड़ना अथवा ठीक करना। २. शरीर में धँसी हुई कोई चीज, विशेषतः काँटा, बाण आदि निकालना।

आँचना*--स० [हिं० आँच] १. आँच पर रख कर गरम करना या तपाना। २. कष्ट या ताप पहुँचाना।

अ० १. गरम होना। तपना। २. ताप से पीड़ित होना।

आँचर*--पुं०=आँचल।

आँचल--पुं० [सं० अञ्चल] १. मनुष्य (विशेषतः स्त्री) द्वारा पहने हुए वस्त्र (जैसे--धोती, साड़ी या दुपट्टा) का वह छोर या सिरा जो प्रायः छाती या वक्षस्थल पर पड़ता है। पल्ला।

मुहा०--(किसी के आगे) आँचल ओड़ना या पसारना=किसी से कुछ माँगने के लिए दीनतापूर्वक उसके आगे कपड़े का पल्ला फैलाना। आँचल देना=(क) स्त्री का बच्चे को दूध पिलाना। (ख) आँचल से हवा करना। (ग) किसी स्त्री को यों ही घर में पत्नी के रूप में रख लेना। (मुसल०) (कोई बात) आँचल में बाँधना=अच्छी तरह और सदा के लिए याद रखना। जैसे--हमारी यह बात आँचल में बाँध रखो। आँचल लेना=(क) घर में आई हुई बड़ी स्त्री का आँचल छूकर उसका सत्कार तथा स्वागत करना। (स्त्रियाँ) (ख) स्त्रियों का आँचल से अपना वक्षस्थल ढकना।

२. कपड़े का कोई छोर या सिरा।

पद--आँचल पल्लू=धोती, साड़ी आदि पर टाँका हुआ ठप्पेदार चौड़ा पट्टा।

३. कपड़े का छोटा टुकड़ा। उदा०--सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो।--तुलसी। ४. दे० 'अंचल'।

आंचलिक--वि० [सं० अंचल+ठक्--इक] १. अंचल संबंधी। अंचल का। २. किसी अंचल (प्रदेश या प्रांत) में होने या उससे संबंध रखनेवाला।

आँचू--पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली झाड़ी जिसमें शरीफे के आकार के फल लगते हैं।

आँजन--=अंजन।

आँजना--स० [सं० अञ्जन] आँखों में अंजन लगाना।

आंजनी--स्त्री० [सं० अंजन+अण्--ङीप्] आँखों में लगाने का अंजन।

आंजनेय--पुं० [सं० अंजना+ढक्--एय] अंजना के पुत्र। हनुमान।

आँजू--पुं० [देश०] फसल की बाढ़ रोकनेवाली एक घास।

आँट--पुं० [हिं० अंटी] १. तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान। घाई। २. दाँव। पेच।

मुहा०--आँट पर चढ़ना=दाँव लगाना।

३. वैर-विरोध। लाग-डाँट।

मुहा०--आँट पड़ना=मन-मुटाव होना।

४. गाँठ। गिरह। ५. गट्ठा। पूला। ६. ऐंठन।

स्त्री० दे० 'अंटी' और 'आँटी'।

स्त्री० [सं० आनद्ध] सोना को परखने के लिए कसौटी पर उससे लगाया हुआ निशान। कस।

आँट-साँट--पुं० [हिं० आँट+साँटना] १. षड्यंत्र। २. मेल-जोल।

वि०=अंट-संट।

आँटना*--अ०=अँटना (समाना)।

स० [हिं० अंटी] १. अंटी बनाना। अँटियाना। २. (किसी को) अपने अधिकार या पक्ष में करना।

आँटी--स्त्री० [सं० ऋत > प्रा० अट्ट > आँट, आँटी] परंपरा। रीति। उदा०--देवन्ह चलि आई असि आँटी। सुजन कँचन दुर्जन भा माँटी॥--जायसी।

स्त्री० [सं० अण्ड] १. घास-पात का छोटा गट्ठा। पूला। २. सूत आदि की लच्छी। ३. लड़कों के खेलने की गुल्ली। ४. दे० 'अंटी'। ५. कुश्ती का एक दाँव जिससे पहलवान अपने विपक्षी की टाँग में टाँग अड़ाकर उसे चित पटकते हैं। ६. दे० 'अंटी'।

आँठी--स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा० अट्ठि] १. दही, मलाई आदि का लच्छा। २. गाँठ। गिरह। ३. गुठली। ४. गुठली की तरह की कोई कड़ी और गोल चीज। ५. नवोढ़ा के स्तन।

आँड़--पुं० [सं० अण्डम्; प्रा० गु० मरा० अंड; पं० का० आंड; सिं० आनो; उ० बं० आंडा] १. अंडकोश। २. हिरण्यगर्भ।

आंडज--वि० [सं० आंड√जन् (उत्पन्न होना)+ड]=अंडज।

आँड़ी--स्त्री० [सं० अण्ड] १. अंटी। गाँठ। २. गाँठ के रूप में होनेवाला

कंद। जैसे—प्याज या लहसुन की आँड़ी। ३. कोल्हू की जाठ का गोल सिरा। ४. पहिये की सामी या हाल। बंद।

आँड़ू—वि० [सं० अण्ड=अण्डकोश] (पशु) जो वधिया न किया गया हो। जिसके अंडकोश वर्त्तमान हों। (अन्-कैस्ट्रेटेड)

आँत—स्त्री० [सं० अन्त्र; प्रा० गु० अंतर; सिं० अंदरु; पं० आँदराँ] आमाशय के अंदर की वह लंबी नली जो प्राणियों की नाभि से गुदा तक गई है तथा जिससे होकर मल बाहर निकलता है। अँतड़ी। लाद। (इन्टेस्टाइन्स)

मुहा०—आँत उतरना=एक रोग जिसमें आँत ढीली होकर अंडकोश में उतर आती और बहुत कष्ट देती है। आँतें कुलकुलाना=बहुत भूख लगने के कारण व्याकुल होना। आँतें गले में आना=कष्ट या विपत्ति से बहुत अधिक दुःखी तथा व्यग्र होना। आँतें मुँह में आना=संकट में पड़ने के कारण बहुत अधिक कष्ट होना। आँतें समेटना=बहुत भूख लगने पर भी उसे दबाये रखना। आँतों का बल खुलना=बहुत समय तक भूखे रहने के बाद जी भर कर भोजन करना। आँतों में बल पड़ना=पेट में दर्द होना। उदा०—हँसते-हँसते आँतों में बल पड़ने लगा।

आँत कट्टू—पुं० पशुओं का एक रोग, जिसमें उन्हें पतले दस्त आते हैं।

आँतरा—पुं० [सं० अन्तर=भीतर] १. अंतर। भेद। २. दूरी। ३. खेत का वह भाग जो किसी निश्चित समय में या एक बार में जोता जाय। ४. पान के भीटे में, क्यारियों के बीच का रास्ता। ५. कपड़े के ताने में दोनों सिरों की खूँटियों के बीच साँथी अलग करने के लिए थोड़ी थोड़ी दूर पर गाड़ी जानेवाली लकड़ियाँ। (जुलाहे)

आंतर—वि० [सं० अंतर्+अण्] १. अंदर का। भीतरी। २. किसी क्षेत्र या सीमा के अंदर होने या उससे संबंध रखनेवाला। ३. किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के निजी गुण, महत्त्व, विशेषता आदि से संबंध रखनेवाला। (इंट्रिंजिक) जैसे—आंतर मूल्य (अंकित मूल्य से भिन्न)। (इंट्रिंजिक वैल्यू)

आंतरागारिक—वि० [सं० अन्तरागार+ठक्—इक] घर के भीतरी भाग, विशेषतः अंतःपुर से संबंध रखनेवाला।
पु० १. भंडारी। २. कोषाध्यक्ष।

आंतरिक—वि० [सं० अंतर्+ठक्—इक] १. अंदर का। भीतरी। २. किसी देश की घरेलू या भीतरी बातों से संबंध रखनेवाला। जैसे—आंतरिक नीति या आंतरिक व्यवस्था। (इन्टर्नल) ३. किसी निश्चित क्षेत्र या सीमा में होनेवाला। ४. अंतःकरण से होनेवाला। सच्चा। वास्तविक। जैसे—आंतरिक वेदना।

आंतरिक्ष—वि० [सं० अन्तरिक्ष+अण्] अंतरिक्ष संबंधी।

आंतर्गेहिक—वि० [सं० अन्तर्गेह+ठक्—इक]=आंतरागारिक।

आंतर्वेश्मिक—वि० [सं० अन्तर्वेश्म+ठक्—इक]=आंतरागारिक।

आंतिक—वि० [सं० अंत+ठक्—इक] [भाव० आंतिकता, आंतिक्य] जो किसी के अंत में या समाप्ति पर हो तथा उसकी पूर्णता, विस्तार या वृद्धि की सीमा का सूचक हो। (टरमिनल) जैसे—आंतिक कर; आंतिक परीक्षा आदि।

आंतिक-हेतु—पुं० [सं० कर्म० स०] यह दार्शनिक सिद्धांत कि सृष्टि की रचना एक विशिष्ट उद्देश्य से और पूरी योजना के अनुसार हुई है।

आंतिका—स्त्री० [सं० अन्तिका+अण्—टाप्] बड़ी बहन।

आंतिक्य—पुं० [हिं० आंतिक+ष्यञ्] आंतिक होने की अवस्था, गुण या भाव। आंतिकता।

आंत्र—वि० [सं० अन्त्र+अण्] आँत-संबंधी।
पुं०=आँत।

आंत्रिक—वि० [सं० अन्त्र+ठञ्—इक] आँतों में होनेवाला। आँत-संबंधी। जैसे—आंत्रिक रोग।

आंत्रिक-ज्वर—पुं० [सं० कर्म० स०] एक प्रकार का विकट और प्रायः घातक ज्वर जो आँतों में विकार होने से उत्पन्न होता है और प्रायः तीन-चार सप्ताह तक निरंतर बना रहता है। (टाइफॉयड)

आंदू—पुं० [सं० अन्दू=बेड़ी] १. बेड़ी। २. साँकल। ३. हाथी के पाँव मे बाँधने का सीकड़। उदा०—पगन लाज आँदू परी, चढ़्यौ महावत नेह। मतिराम।

आंदोल—पुं० [सं०√आन्दोल् (बार-बार चलाना)+घञ्]=आंदोलन।

आंदोलक—वि० [सं०√आन्दोल्+ण्वुल्—अक] १. झूलने या झुलानेवाला। २. आंदोलन करने या हलचल मचानेवाला।
पुं० झूला।

आंदोलन—पुं० [सं०√आन्दोल्+ल्युट्—अन] १. इधर-उधर झूलना, लहराना या हिलना। २. कंपन होना। ३. लोगों को उत्तेजित करने के लिए, अथवा कोई आवेगपूर्ण या अशांत परिस्थिति बनाने के लिए किया जानेवाला कार्य या प्रयास। (एजीटेशन)

आंदोलनकारी (रिन्)—पुं० [सं० आन्दोलन√कृ (करना)+णिनि] वह जो आंदोलन करता या हलचल मचाता हो।

आंदोलित—भू० कृ० [सं०√आन्दोल्+क्त] १. जो खूब हिलाया या झुलाया गया हो। २. आवेगपूर्ण। उत्तेजित या हलचल से भरा हुआ।

आँध—स्त्री० [सं० अन्ध] १. अँधेरा। २. रतौंधी।
वि०=अंधा।

आँधना*—अ० [हिं० आँधी] अकस्मात् तथा वेग से आक्रमण या धावा करना। आँधी की तरह किसी पर टूट पड़ना।

आँधर, आँधरा—वि० [सं० अन्ध] [स्त्री० आँधरी] अंधा। नेत्र-हीन।

आंधसिक—पुं० [सं० अन्धस्+ठक्-इक] रसोइया।

आँधारंभ*—पुं० [सं० अन्ध=अंधकार, अंधेर+आरम्भ] बिना समझे-बूझे कोई कार्य करना।

आँधी—स्त्री० [सं० अन्ध=अँधेरा] १. हवा का वह वेगपूर्ण रूप जो धूल, मिट्टी आदि से युक्त होता है तथा जिससे चारों ओर प्रायः अंधकार-सा छा जाता है। अंधड़। (विंड-स्टार्म)

मुहा०—आँधी उठाना=आंदोलन करना या हलचल मचाना। आँधी होना=बहुत तेज चलना। आँधी के आम=(क) बिना परिश्रम किये, मुफ्त में या सस्ते में मिली हुई कोई वस्तु। (ख) जिसका अस्तित्व कुछ ही दिनों तक हो।

२. वह जिसमें आँधी जैसी तेजी हो। बहुत ही जल्दी में या आवेग-में काम करनेवाला।

आँधै—स्त्री०=आँधी।

आंध्य—पुं० [सं० अन्ध+ष्यञ्] १. अंधे होने की अवस्था या भाव। अंधापन। २. अंधकार। अँधेरा।

आंध्र—पुं० [सं० आ√अन्ध् (अंधा होना)+रन्] १ स्वतंत्र भारत का

एक राज्य जो दक्षिण में स्थित है तथा जहाँ तेलगू भाषा बोली जाती है। २. उक्त प्रदेश का निवासी। ३. दक्षिण भारत की एक प्राचीन जाति, जो बाद में आर्यों में मिल गई थी।

वि० उक्त देश में होने या उससे संबंध रखनेवाला।

आंब—पुं०='आम' (वृक्ष और फल)।

आंबष्ठ—वि० [सं० अम्बष्ठ+अण्] अंबष्ठ देश में होने या उनसे संबंध रखनेवाला।

पुं० अंबष्ठ देश का निवासी।

आंबा हलदी—स्त्री० [सं० आम्र-हरिद्रा, प्रा० अवंहलद्दा, मरा० अंबहलद] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ हलदी की तरह होती और दवा के काम में आती है।

आंबिकेय—पुं० [सं० अंबिका+ढक्—एय] =अंबिकेय।

आंय-बांय—पुं० [अनु०] =आँय-बाँय-शाँय।

आंय बांय शांय—वि० [सं० अतिपात, शान्ति या विशुद्ध अनु०] व्यर्थ का। बिना सिर-पैर का और असंबद्ध (कथन या प्रलाप)।

आंव—पुं० [सं० आम्र या आमय; मरा० आव, आँव; सिं० अमु; का० ओम] १. अधपके या कच्चे अन्न या फल के पेट में न पचे होने की स्थिति अथवा उक्त के फलस्वरूप होनेवाला रोग जिसमें पेट में ऐंठन और पीड़ा होती है तथा थोड़ा-थोड़ा करके लसीला मल निकलता है। २. उक्त रोग में पेट से निकलनेवाला लसीला मल।

आंवठ—पुं० [सं० ओष्ठ, हिं० ओठ] १. किनारा। तट। २. किसी चीज की कुछ ऊँची उठी हुई बाढ़। ३. कपड़े आदि का किनारा या हाशिया।

आंवड़ना*—अ०=उमड़ना।

आंवड़ा*†—वि० [सं० अव-गर्त्त] गहरा।

आंवन—पुं० [सं० आनन=मुँह] १. पहिये में लोहे की वह सामी जिसके अंदर से धुरी जाती है। २. लोहारों का वह औजार जिससे वे लोहे में का छेद बड़ा करते हैं।

आंवरा—पुं०=आँवला।

आंवल—पुं० [सं० उल्वम्=जरायु] वह झिल्ली जिसमें गर्भ में बच्चे लिपटे रहते हैं। खेड़ी। जेरी।

आंवलगट्टा—पुं० [हिं० आँवला+गट्टा या गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल। सूखा आँवला।

आंवल-नाल—स्त्री०=आँवला।

आंवला—पुं० [सं० आमलक; प्रा० आमलग; बँ० आम्ला; गु० आंवला; सिं० आंविरो; का० ओम (म्); मरा० अवला] १. इमली की तरह की छोटी पत्तियोंवाला एक वृक्ष, जिसमें गोल छोटे फल लगते हैं। २. उक्त फल जो स्वाद में खट्टे और खाने तथा दवा के काम आते हैं। ३. कुश्ती का एक दाँव या पेंच।

आंवलापत्ती—स्त्री० [हिं० आँवला+पत्ती] सिलाई का एक प्रकार जिसमें सीयन के दोनों ओर पत्ती जैसे तिरछे टाँके लगते हैं।

आंवलासार गंधक—स्त्री० [हिं० आँवला+ सं० सारगंधक] साफ की हुई गंधक जो औषध आदि के काम में आती है।

आंवां—पुं० [सं० आपाक] विशेष प्रकार से बनाया हुआ वह गड्ढा जिसमें मिट्टी की कच्ची ईंटें, बरतन आदि पकाये जाते हैं।

मुहा०—**आँवाँ बिगड़ना**=किसी वर्ग या विषय की सभी बातें खराब हो जाना।

आंशिक—वि० [सं० अंश+ठक्-इक] १. अंश या भाग से संबंध रखनेवाला। २. केवल अंश या भाग के रूप में होना। कुछ या थोड़ा। (पार्शिअल)

आंशुक-जल—पुं० [सं० अंशुक+अण्, आंशुक-जल, कर्म० स०] ताँबे के बरतन में रखा हुआ वह जल जो दिन भर धूप में और रात भर चाँदनी में पड़ा रहा हो।

आंश्य—वि० [सं० अंश+ष्यञ्] =आंशिक।

आंषु*—[सं० आखु] चूहा। मूसा। उदा०—आँषु घरन हित दुष्ट मँजारी।—नंददास।

आंस†—स्त्री० [हिं० गाँस] हलकी पीड़ा या वेदना। कसक।

स्त्री० [?] १. डोरी। रस्सी। २. रेशा। ३. मूँछों के निकलने के समय का आरंभिक रूप। रेख। (बुन्देल०)

पुं० १. =अंश। २. आँसू।

आंसना—अ० [हिं० आँस] कष्टदायी सिद्ध होना। खटकना। गड़ना। उदा०—लगान थोड़ा होने पर भी आँसता था।—वृन्दावनलाल वर्मा।

स० कष्ट देना।

आंसला—वि० [हिं० आँसू] जिसकी आँखों में आँसू भरे हों।

वि० [हिं० आँस] जिसके हृदय में वेदना हो। उदा०—पटक्योई परै यह अंकुर आंसली, ऐसी कछु रस रीति घुरी।—घनानंद।

आंसी*—स्त्री० [सं० अंश=भाग] बैने या भेंट के रूप में किसी को दिया जानेवाला अंश या भाग। उदा०—काम किलोलनि में 'मतिराम' लगे मनो बाँटन मोद की आँसी।

आंसू—पुं० [सं० अश्रु; पा० अस्सु; प्रा० गु० आंजु, आंसु; ने० आँसु; सि० इंज; पं० अंझू; का० ओश; सिंह० अस; मरा० अँसू] आँखों की अश्रुग्रंथि में से स्रवित होनेवाली जल की बूँदें।

विशेष—आँसू प्रायः दुःख के आवेग या क्षोभ और कभी-कभी विशेष हर्ष के कारण भी निकलते हैं।

मुहा०—**आँसू गिराना**= रोना। **आँसू डबडबाना**= आँखों में आँसू भर आना। **आँसू ढालना**=रोना। **आँसू पीकर रह जाना**=कष्टपूर्ण आवेग मन में ही रोक रखना और प्रकट न होने देना। (किसी के) **आँसू पोंछना**=(क) आश्वासन देना। ढाढ़स बँधाना। (ख) ऐसा काम करना, जिससे किसी का दुःख या पश्चात्ताप कम हो। जैसे—सौ रुपये देकर उनके भी आँसू पोंछ दो। **आँसुओं का तार बँधना**=रोने का क्रम निरंतर चलता रहना। **आँसुओं से मुँह धोना**=इतना अधिक रोना कि सारे चेहरे पर आँसू फैल जायँ।

आंसूढाल—पुं० [हिं० आँसू+ढालना] चौपायों का एक रोग जिसमें उनकी आँखों से प्रायः आँसू या जल बहता रहता है।

आंहड़—पुं० [सं० आ+भांड] १ मिट्टी का बरतन। २. पात्र। बरतन।

आंहां—अव्य० [अनु०] १. निषेधसूचक शब्द। ऐसा मत करो। २. अस्वीकृतिसूचक शब्द। यह या ऐसी बात नहीं है।

आइंदा—वि० [फा० आइन्दः] आनेवाला। भावी। जैसे—आइंदा साल।

अव्य० आनेवाले समय में। आगे चलकर। भविष्य में।

आइ*—अ० [हिं० आहि] 'होना' क्रिया का पुराना भूतकालिक रूप।

उदा०--खान-पान, सय्या-सयन, जासु भरोसे आइ।--पद्‌माकर।
*स्त्री०=आयु (जीवन-काल)।
आइना†--पुं०=आईना।
आइस†--पुं०=आयसु (आज्ञा या आदेश)।
स्त्री०=आयु।
आई--स्त्री० [हिं० आना] मृत्यु। मौत।
स्त्री०=आयु।
† स्त्री०=माता (माँ)।
आईन--पुं० [फा०] [वि० आईनी] १. कायदा। नियम। २. कानून। विधि।
आईना--पुं० [फा०आईनः] १. दर्पण। शीशा।
मुहा०--(कोई बात) आईना होना=बिलकुल साफ या स्पष्ट होना।
२. किवाड़ के पल्ले में का दिलहा।
आईनी--वि० [फा०] आईन या कानून से संबंध रखनेवाला। विधिक।
आउंकार*--पुं०=ओंकार।
आउंस--पुं० [सं०] एक पाश्चात्य मान जो (क) तौल में सवा तोले के बराबर और (ख) नाप में सोलह ड्राम या ९६० बूँदों का होता है।
आउ*--स्त्री०=आयु।
आउज--पुं०=आवज (ताशा नाम का वाजा)।
आउध--पुं० १.=आयुध। २. युद्ध।
आउबाउ†--वि०=आँय-बाँय।
आउस--पुं० [सं० आशु, बंग० आउश] एक प्रकार का धान। ओसहन।
आऊ--प्रत्य० [?] एक प्रत्यय जो धातुओं के अंत में लगकर उनके कर्त्ता का अर्थ देता है। जैसे-(क) उड़ाऊ=उड़ानेवाला; (ख) खाऊ=खानेवाला आदि।
*स्त्री०=आयु।
आकंपन--पुं० [सं० आ√कम्प् (काँपना) +ल्युट्--अन] [भू० कृ० आकंपित] १. कंपन होना। काँपना। २. हिलना-डुलना।
आकंपित--भू० कृ० [सं० आ√कम्प्+क्त] जो कँपाया या हिलाया गया हो।
आक--पुं० [सं० अर्क, पा० अक्क] मदार का पौधा।
पद--आक की बुढ़िया= (क) आक या मदार के भीतर का बहुत हल्का और मुलायम पदार्थ। (ख) ऐसी वृद्धा स्त्री जिसमें कुछ भी दम न हो।
आकड़ा†--पुं०=आक (मदार)।
आकन--पुं० [सं० आखनन=खोदना] १. खेत में से व्यर्थ की घास आदि निकाल कर बाहर फेंकना। चिखुरी। २. इस प्रकार निकाली हुई घास आदि।
आकबत--स्त्री० [अ०आक़िबत] १. मृत्यु होने के पश्चात् की अवस्था। २. अंत। ३. परलोक।
मुहा०--आकबत में दिया दिखाना=परलोक में काम आना। जैसे--कुछ गरीबों को भी दिया करो, यही आकबत में दिया दिखाएगा।
आकबती लंगर--पुं० [अ० आक़िबत+हिं० लंगर] जहाज में एक प्रकार का लंगर, जो विशेष संकट के समय गिराया या डाला जाता है।
आकबाक--वि० [सं० वाक्य] अंडबंड या ऊटपटांग।
आकर--पुं० [सं० आ√कृ (करना) +घ] १. खान। २. वह स्थान जहाँ किसी वस्तु की बहुतायत हो। आधान। ३. खजाना। जैसे--गुणाकर, रत्नाकर। ४. उत्पत्ति का स्थान। ५. तलवार चलाने का एक ढंग।
वि० १. श्रेष्ठ। २. बहुत अधिक या यथेष्ट। ३. खान में से निकलने या प्राप्त होनेवाला।
†पुं०=आक (मदार)।
आकरकरहा--पुं० [अ०] दे० 'अकरकरा'।
आकरखना*--स० [सं० आकर्षण] अपनी ओर आकृष्ट करना। खीचना।
आकर-भाषा--स्त्री० [ष० त०] वह मूल-भाषा जो किसी दूसरी भाषा की जननी हो तथा जो उसे अपने शब्दभांडार से निरंतर पुष्ट तथा संवर्द्धित करती हो। जैसे--गुजराती, बंगला, हिन्दी आदि की आकर-भाषा संस्कृत है।
आकरसना*--स० [सं० आकर्षण] अपनी ओर आकृष्ट करना। खीचना।
आकरिक--वि० [सं० आकर+ठञ्--इक] १. खान में काम करनेवाला। २. सुरंग बनाने या खोदनेवाला।
आकरी (रिन्)--वि० [सं० आकर+इनि] १. खान से निकाला हुआ (खनिज पदार्थ)। २. अच्छी जाति या नस्ल का।
स्त्री० [सं० आकर] १. खान खोदकर उसमें से चीजे निकालने का काम या व्यवसाय। २. सुरंग बनाने का काम।
*स्त्री०=आकुलता।
पुं० दे० 'आकरिक'।
आकर्ण--अव्य० [सं० अव्य० स०] कान तक।
वि० कानों में पहुँचा या सुना हुआ।
आकर्णित--भू० कृ० [सं० आ√कर्ण् (सुनना) +क्त] सुना हुआ।
आकर्ष--पुं० [सं० आ√कृष् (खीचना) + घञ्] १. अपनी ओर खीचना। २. पासे से खेला जानेवाला जुआ। ३. ऐसे खेल की बिसात। ४. इंद्रिय। ५. धनुष चलाने का अभ्यास। ६. कसौटी। ७. चुंबक पत्थर।
आकर्षक--वि० [सं० आ√कृष्+ण्वुल्--अक] १. आकर्षण करने या खींचने वाला। २. प्रभावित या मोहित करके अपनी ओर ध्यान खीचनेवाला। (एट्रैक्टिव)
आकर्षण--पुं० [सं० आ+कृष्+ल्युट्--अन] [वि० आकर्षक, भू० कृ० आकर्षित, आकृष्ट] १. अपने बल या शक्ति की सहायता से किसी को अपनी ओर ले आना। खींचना। २. अपने गुण, विशेपता आदि के बल पर किसी का ध्यान अपनी ओर ले आना। ३. वह व्यापार जो किसी का ध्यान या मन अपनी ओर खींचने या अपने पास बुलाने के लिए किया जाता है। (एट्रैक्शन)
आकर्षण-शक्ति--स्त्री० [सं० ष० त०] १. ऐसी शक्ति, जो किसी को अपनी ओर खीचे। २. वह गुण, विशेषता या शक्ति जो किसी को प्रभावित तथा मोहित करे या अपनी ओर अनुरक्त या प्रवृत्त करे।
आकर्षणी--स्त्री० [सं० आकर्षण+ङीप्] १. एक प्रकार का पुराना सिक्का। २. अँकुसी।
आकर्पन*--पुं०=आकर्षण।
आकर्पना*--स० [सं० आकर्षण] १. अपनी ओर खींचना। २. प्रभावित या मोहित करके अपनी ओर ध्यान खींचना।

आकर्षित--भू० कृ० [सं० आकृष्ट] १. खिंचा हुआ। २. जो किसी से प्रभावित होकर उसकी ओर अनुरक्त या प्रवृत्त हुआ हो।

आकर्षी (र्षिन्)--वि० [सं० आ√कृष्+णिनि] =आकर्षक

आकलन--पुं० [सं० आ+कल् (गिनना)+ल्युट्--अन] [भू० कृ० आकलित, वि०आकल्य] १. किसी को साथ बाँधना, मिलाना या लगाना। २. इच्छा। कामना। ३. संग्रह। ४. हिसाब लगाना। गणना करना ५. आज-कल गणना का वह प्रकार जिसमें संभावनाओं का ध्यान रखते हुए भावी कार्य के संबंध में अनुमान या कल्पना की सहायता से कोई विचार या व्यय स्थिर किया जाता है। अंदाज। (एस्टिमेशन) जैसे--मकान बनाने से पहले उसके व्यय का आकलन।

आकलनीय--वि० [सं० आ√कल्+अनीयर्] १. जिसका आकलन होने को हो। २. जिसका आकलन करना उचित हो।

आकलित--भू० कृ० [सं० आ√कल्+क्त] जिसका आकलन हुआ हो या किया गया हो।

आकली†--स्त्री० [सं० आकुल+ई (प्रत्य०)] व्याकुलता। बेचैनी। स्त्री० [?] गौरैया पक्षी।

आकल्प--पुं० [सं० आ√कृप् (सामर्थ्य)+णिच्+घञ्] १. वेश-भूषा। २. सज्जित होने या सज्जित करने की क्रिया या भाव। ३. अस्वस्थता।

आकल्पक--पुं० [सं० आ√कृप्+णिच्+ण्वुल्--अक] १. अंधकार। २. मोह। ३. उत्कंठा। ४. हर्ष। ५. मूर्च्छा। ६. गाँठ। ७. दुःखमय स्मृति।

आकल्य--पुं० [सं० आकल+यत्] बीमारी। रोग।

आकल्लक--पुं० [सं०] अकरकरा नामक पौधा।

आकष--पुं० [सं० आ√कष् (कसना) + अच्] कसौटी।

आकमात्†--अव्य०=अकस्मात्।

आकस्मिक--वि० [सं० अकस्मात्+ष्ठक्--इक] अकस्मात् अर्थात् अप्रत्याशित रूप से या एकाएक घटित होनेवाला। अचानक सामने आने या होनेवाला।

आकस्मिक-छुट्टी--स्त्री० [सं०+हिं०] वह छुट्टी जो यों ही या अचानक कोई काम आ पड़ने पर ली जाय। (कैजुअल लीव)

आकस्मिकता--स्त्री० [सं० आकस्मिक+तल्--टाप्] आकस्मिक रूप से या अचानक घटित होने का भाव।

आकस्मिकतावाद--पुं० [सं० प० त०] दर्शन शास्त्र का एक सिद्धान्त जो यह प्रतिपादित करता है कि संसार में जो कुछ होता है वह सब अप्रत्याशित रूप से, अचानक तथा आप से आप होता है। (ऐक्सीडेन्टलिज्म)

आकस्मिक-निधि--स्त्री० [कर्म० स०] किसी संस्था या राज्य की वह सुरक्षित निधि जो किसी भावी आकस्मिक विपत्ति या संकट की स्थिति के निवारण के लिए बचाकर रखी गई हो।

आकस्मिकी--स्त्री० [सं० आकस्मिक+ङीप्] अचानक घटित होनेवाली घटना या बात। (कैजुएलिटी)

आकांक्षक--वि० [सं० आ√काङ्क्ष् (चाहना)+ण्वुल्--अक] आकांक्षा करने या चाहनेवाला।

आकांक्षित--भू० कृ० [सं० आ√ काङ्क्ष्+क्त] (बात या विषय) जिसके लिए आकांक्षा की गई हो।

आकांक्षी (क्षिन्)--वि० [सं० आ√काङ्क्ष्+णिनि] [स्त्री० आकांक्षिणी] जिसे किसी बात की आकांक्षा हो। आकांक्षा करने या रखनेवाला।

आका†--पुं० [सं० आकाय] १. कौड़ा। अलाव। २. भट्ठी। ३. आँवाँ। पंजावा।

पुं० [तु० आक़ा] मालिक। स्वामी।

आकाय--पुं० [सं० आ√चि (चयन करना)+घञ्, कुत्व] १. चिता की आग। २. चिता। ३. निवासस्थान।

आकार--पुं० [सं० आ√कृ (करना)+घञ्] १. पुकारना। बुलाना। २. बाहरी रेखाओं का वह विन्यास जिससे किसी पदार्थ, विषय या व्यक्ति के रूप का ज्ञान या परिचय होता है। आकृति। शकल।

मुहा०--**आकार दिखाना**=चित्रकला में, रेखन के द्वारा पदार्थों या मनुष्यों का आकार मात्र दिखानेवाली रेखाएँ अंकित करना। ३. आकृति या चेहरे का ऐसा रंग-ढंग जिससे मन का कोई भाव या विचार प्रकट होता हो। जैसे--आकार-गुप्ति=मन के भाव छिपाना। ४. आजकल मुख्य रूप से किसी वस्तु या व्यक्ति की लंबाई-चौड़ाई, ऊँचाई आदि जो उसके छोटे, बड़े, मँझोले आदि होने की सूचक होती हैं। (साइज) जैसे--इस बार यह पुस्तक बड़े आकार में छपेगी। ५. [आ+कार] 'आ' की मात्रा या वर्ण।

आकारक--पुं० [सं० आ√कृ+णिच्+ण्वुल्--अक] न्यायालय का वह पत्र जिसमें किसी को साक्षी आदि देने के लिए न्यायालय में उपस्थित होने के लिए कहा जाता है। (सम्मन, साइटेशन)

आकारण--पुं० [सं० आ√कृ+णिच्+ल्युट--अन] किसी को अपने पास बुलाना।

आकार-पत्र--पुं० [सं० प० त०] दे० 'रूपक'। (फार्म)

आकार-रेखन--पुं० [सं० आकार-लेखन] चित्रों आदि में पदार्थों या मनुष्यों का आकार मात्र दिखाने के लिए रेखाएँ बनाना। (स्केचिंग)

आकार-रेखा--स्त्री० [प० त०] दे० 'रूप-रेखा'।

आकारवान् (वत्)--वि० [सं० आकार+मतुप्, वत्व] १. जिसका कोई आकार या रूप हो। साकार। २. अच्छे या बड़े आकार या डीलडौल वाला।

आकारांत--वि० [सं० आकार-अन्त, ब० स०] (शब्द) जिसके अंत में 'आ' हो।

आकारिका--स्त्री० [सं० आ√ कृ +ण्वुल्--अक--टाप्, इत्व] दे० 'रूप-विधान'।

आकारित--भू० कृ० [सं० आ√कृ+णिच्+क्त] जिसे कोई आकार या रूप दिया गया हो। किसी आकार में लाया हुआ।

आकारी *--वि० [सं० आकारण=आह्वान] [स्त्री० आकारिणी] आह्वान करनेवाला। बुलानेवाला।

वि० [सं० आकार+हिं० ई (प्रत्य०)] आकारवाला। आकृति या शक्लवाला।

आकारीठ--पुं० [सं० आकारण=बुलाना] लड़ाई। युद्ध। (डिं०)

आकाल--पुं० [सं० प्रा० स०] १ उपयुक्त या ठीक समय। २. [अकाल+ +अण्] अनुपयुक्त या बुरा समय।

आकालिक--वि० [सं० अकाल+ठञ्--इक] अपने ठीक समय से पहले या पीछे होनेवाला।

आकालिकी--स्त्री० [सं० आकालिक+ङीप्] बिजली।

आकाश--पुं० [सं० आ√काश् (चमकना) +घञ्] १. शब्द गुण से युक्त वह शून्य अनंत अवकाश, जिसमें विश्व के सभी पदार्थ (सूर्य, चंद्र, ग्रह, उपग्रह आदि) स्थित हैं और जो सब पदार्थों में व्याप्त है। २. खुले स्थान में ऊपर की ओर दिखाई देनेवाला नीला अपार स्थान। अंतरिक्ष। आसमान।

मुहा०--**आकाश खुलना**=आकाश से बादलों का हटना। **आकाश छूना या चूमना**=(क) बहुत ऊँचा या लंबा होना। (ख) बहुत लंबी-चौड़ी बातें करना। **आकाश पाताल एक करना**=पूरी शक्ति से कोई काम करना। कोई बात उठा न रखना। **आकाश बांधना**=असंभव तथा अनहोनी बातें कहना। **आकाश से बातें करना**=बहुत ऊँचा होना। जैसे--उनका महल आकाश से बातें करता था।

पद--**आकाश कुसुम**=(क) ऐसी बात या वस्तु जिसका कुछ भी अस्तित्व न हो। (ख) ऐसी वस्तु जिसकी प्राप्ति असंभव हो। **आकाश पाताल का अंतर**=बहुत बड़ा अंतर। **आकाश-पुष्प**=आकाश-कुसुम। ३. एक लचीला पारदर्शी तत्त्व जो उक्त खाली स्थान में व्याप्त माना जाता है और जिसमें से होकर सूर्य की किरणों, विद्युत-तरंगों आदि का संचार होता है। व्योम। (ईथर) ४. ऐसा शून्य स्थान जिसमें वायु के अतिरिक्त और कुछ न हो। ५. छिद्र। ६. ब्रह्म। ७. अभ्रक। ८. रहस्य संप्रदाय में (क) अंतःकरण; (ख) आत्मा; (ग) परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग।

आकाश-कक्षा--स्त्री० [ष० त०] आकाश का उतना क्षेत्र, भाग या स्थान जहाँ तक सूर्य के प्रकाश की व्याप्ति होती है।

आकाश-गंगा--स्त्री० [मध्य० स०] १. ब्रह्मांड में फैले हुए बहुत से छायापथों में से वह जो हमें रात के समय आकाश में उत्तर-दक्षिण फैला हुआ चमकीली चौड़ी पट्टी या सड़क के रूप में दिखाई देता है। हाथी की डहर। (मिल्की वे) २. पुराणों के अनुसार स्वर्ग की नदी। मंदाकिनी।

आकाशचारी (रिन्)--वि० [सं० आकाश√चर् (गति) +णिनि] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश में गमन करने या विचरने वाला। आकाशगामी।

पुं० १. सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि जो आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं। २. वायु। ३. पक्षी। ४. देवता। ५. भूत-प्रेत, राक्षस आदि।

आकाश-चोटी--स्त्री० [सं० आकाश+हिं० चोटी] =शीर्षबिंदु।

आकाश-जल--पुं० [मध्य०, स०] १. आकाश से बरसनेवाला जल। वर्षा का पानी। २. ओस।

आकाश-दीआ--पुं०=आकाश-दीप।

आकाश-दीप--पुं० [मध्य० स०] १. बहुत अधिक ऊँचाई पर जलने वाला दीआ। २. कार्तिक मास में विष्णु और देवताओं के उद्देश्य से जलाया जानेवाला वह दीआ, जो ऊँचे बांस के ऊपरी सिरे पर बँधा रहता है।

आकाश-धुरी--स्त्री० [सं० आकाश-धुरी] =आकाश ध्रुव।

आकाश-ध्रुव--पुं० [मध्य० स०] ज्योतिष में खगोल का ध्रुव।

आकाश-नदी--स्त्री० [मध्य० स०]=आकाश गंगा।

आकाश नीम--स्त्री० [सं० आकाश+हिं० नीम] नीम के पेड़ पर होने वाली एक प्रकार की वनस्पति। नीम का बाँदा।

आकाश-फल--पुं० [ष० त०] संतान। संतति।

आकाश-बेल--स्त्री० [सं० आकाश+हिं० बेल] दे० 'अमर-बेल।'

आकाश-भाषित--पुं० [स० त०] नाटक के अभिनय में, किसी पात्र का आकाश की ओर देखकर इस प्रकार कोई बात कहना कि मानों वह ऊपर के किसी प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का उत्तर दे रहा हो।

आकाश-मंडल--पुं० [सं० ष० त०] हठ-योग में सहस्रार चक्र का एक नाम।

आकाश-मुखी--वि० [सं० आकाश-मुख] जिसका मुँह आकाश की ओर हो।

पुं० एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तपस्या करते हैं।

आकाश-मूली--स्त्री० [सं० आकाश-मूल, ब० स०, ङीप्] =जलकुंभी।

आकाश-यान--पुं० [मध्य० स०] वायुयान (दे०)।

आकाश-लोचन--पुं० [स० त०] =वेधशाला (दे०)।

आकाश-वाणी--स्त्री० [मध्य० स०] १. वह कथन या बात जो किसी देवता या ईश्वर की ओर से कही हुई तथा आकाश से सुनाई पड़नेवाली मानी जाती है। २. रेडियो-यंत्र की सहायता से विद्युत-तरंगों के द्वारा दूर-दूर तक प्रसारित की जानेवाली ध्वनियाँ (संगीत, समाचार, वार्त्ताएँ आदि)। ३. वह भवन या स्थान जहाँ से विद्युत्-तरंगों द्वारा संगीत, समाचार, वार्ताएँ आदि प्रसारित की जाती हैं। प्रसारण गृह। (ब्राडकास्टिंग हाउस) जैसे--आकाश-वाणी पटना या लखनऊ।

आकाश-वृत्ति--स्त्री० [मध्य० स०] ऐसी वृत्ति या जीविका, जिसका कुछ भी निश्चय या ठिकाना न हो। अनिश्चित वृत्ति। जैसे--दान, भिक्षा आदि।

आकाश-वृत्तिक--पुं० [ब० स०, कप्] वह जो केवल आकाश-वृत्ति के सहारे जीवन बिताता हो।

आकाश-स्फटिक--पुं० [मध्य० स०] १. एक प्रकार का पत्थर जो आकाश में निर्मित माना जाता है। २. ओला।

आकाशी--स्त्री० [सं० आकाश+ई (प्रत्य०)] १. धूप आदि से बचने के लिए ताना जानेवाला चँदोआ। २. ताड़ी।

वि०=आकाशीय।

आकाशीय--वि० [सं० आकाश+छ--ईय] १. आकाश में होनेवाला। आकाश-संबंधी। २. जो आकाश में स्थित हो। ३. दैवी।

आकिल--वि० [अ० आक़िल]=अक्लमंद (बुद्धिमान्)।

आकिलखानी--पुं० [आकिलखाँ (नाम)] कालापन लिये हुए एक प्रकार का लालरंग। कत्थई रंग।

आकीर्ण--वि० [सं० आ√कृ (छितराना)+क्त] १. छितराया या बिखेरा हुआ। २. भरा हुआ। व्याप्त।

पुं० भीड़।

आकुंचन--पुं० [सं० आ√कुञ्च् (सिकुड़ना)+ल्युट्--अन] [भू० कृ० आकुंचित] १. विस्तार में कमी होना। सिकुड़ना। सिमटना। (कन्ट्रैक्शन) २. सिकुड़ने से विस्तार में होनेवाली कमी। (श्रिंकेज) ३. वैशेषिक मत के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में से एक कर्म।

आकुंचित--भू० कृ० [सं० आ√कुञ्च्+क्त] १. सिकुड़ा हुआ। २. जिसमें सिकुड़न पड़ी हो।

आकुंठन--पुं० [सं० आ √कुण्ठ् (कुंद होना) +ल्युट्--अन] १. कुंद होने की अवस्था या भाव। २. लज्जा।

आकुंठित--भू० कृ० [सं० आ√कुण्ठ+क्त] १. जो तीखा या धारदार न हो। २. जो तेज न हो। मंद। जैसे-आकुंठित बुद्धि। ३. लज्जित।

आकुल--वि० [सं० आ√कुल् (बाँधना, इकट्ठा होना)+क] [भाव० आकुलता] १. जो किसी काम या बात के लिए बहुत ही उत्सुक, चिंतित या व्यग्र हो। उद्विग्न। २. विह्वल। कातर। ३. अव्यवस्थित। ४. भरा हुआ। व्याप्त। ५. अस्पष्ट और संदिग्ध।
पुं० १. खच्चर। २. बस्ती।

आकुलता--स्त्री० [सं० आकुल+तल्--टाप्] [भू० कृ० आकुलित] १. आकुल होने की अवस्था या भाव। घबराहट। २. व्याप्ति।

आकुलि--पुं० [सं० आ√कुल्+इन्] असुरों का एक प्रसिद्ध पुरोहित।

आकुलित--भू० कृ० [सं० आ√कुल+क्त] १ जो आकुल हुआ हो या किया गया हो। २. घबराया हुआ। ३. बेचैन। विकल। ४. व्याप्त।

आकूजन--पुं०]सं० आ√कूज् (शब्द)+ल्युट्--अन] १. पक्षियों का कूजना। २. गुनगुनाना।

आकूत--पुं० [सं० आ√कू (शब्द) +क्त] १. इच्छा। चाह। २. उद्देश्य। ३. प्रयोजन। ४. उत्तेजना। बढ़ावा।
पुं० [सं० आकूति] उत्साह।

आकूति--पुं०[सं० आ√कू+क्तिन्] १. इच्छा। २. उद्देश्य। ३. प्रयोजन। ४. उत्साह। ५. सदाचार। ६. स्वायंभुव मनु की एक कन्या जो रुचि नामक प्रजापति को ब्याही गई थी।

आकूवारी--पुं०=अकूपार समुद्र।

आकृत--भू० कृ०[सं० आ√कृ (करना)+क्तिन्]। १. जिसे कोई आकृति (आकार या रूप) दी गई हो या मिली हो। बना हुआ। २. क्रम से लगा या लगाया हुआ। व्यवस्थित।

आकृति--स्त्री० [सं० आ√कृ+क्तिन्] १. किसी वस्तु, व्यक्ति या ढाँचे का निश्चित, स्पष्ट तथा स्थिर रूप जिससे उसकी पहचान होती है। २. उक्त के अनुसार किसी वस्तु या व्यक्ति का अंकित या चित्रित किया हुआ रूप। ३. ज्यामिति में केवल रेखाओं की सहायता से क्षेत्रों आदि के बनाये जानेवाले रूप। । (फिगर, उक्त सभी अर्थों में) ४. भाव-भंगी प्रकट करनेवाली मुद्रा। ५. सवैया नामक छंद का एक प्रकार जिसके मद्रक, मंदारमाला, मदिरा, हंसी आदि कई भेद हैं।

आकृति-विज्ञान--पुं० [ष० त०] मनुष्य की आकृति (उसके अंगों की गठन तथा मुद्रा) के आधार पर उसकी प्रवृत्ति, स्वभाव, गुण-दोष आदि बतलाने की विद्या। (फिसियोग्नॉमी)

आकृष्ट--भू० कृ० [सं० आ√कृष् (खींचना)+क्त] १. खिचा या खींचा हुआ। २. जो किसी के गुण,रूप आदि पर मुग्ध या मोहित हुआ हो।

आकृष्टि--स्त्री० [सं० आ√कृष्+क्तिन्] १. आकृष्ट करने या अपनी ओर खींचने की क्रिया या भाव। ३. मुग्ध या मोहित होने का भाव।

आकोप--पुं० [प्रा० स०] थोड़ा या हलका कोप या क्रोध।

आक्रंद--पुं० [सं० आ√कंद् (रोना) +घञ्] १. जोर से पुकारना या बुलाना। २. जोर का शब्द। घोष। ३. शोर। हल्ला। ४. विलाप करना। रोना। ५. इष्ट-मित्र और भाई-बन्धु। ६. घोर युद्ध। ७. ज्योतिष में, एक ग्रह का दूसरे ग्रह से प्रबल होना। ८. प्राचीन भारतीय राजनीति में गुप्त रूप से प्रधान शत्रु की सहायता करनेवाला देश या राज्य।

आक्रंदन--पुं० [सं० आ√क्रंद+ल्युट्--अन] १. जोर से पुकारने, बुलाने या चिल्लाने की क्रिया या भाव। २. रुदन। रोना।

आक्रंदी (दिन्)--वि० [सं० आ√क्रन्द+णिनि] १. रो-रो कर प्रार्थना करनेवाला। २. चीखने-चिल्लानेवाला।

आक्रम*--पुं० [सं० आ√क्रम (चरण-क्षेप)+घञ्] १. किसी की ओर जाना या पहुँचना। २. ऊपर की ओर जाना। ३. धावा करना। ४. अधिक भार लादना। ५. पराक्रम। वीरता।

आक्रमण--पुं० [सं० आ√क्रम+ल्युट्--अन] [वि० आक्रमणीय, आक्रांत] १. किसी की ओर जाने अथवा किसी की सीमा का उल्लंघन करने की क्रिया या भाव। २. विपक्षी या शत्रु पर शस्त्रास्त्रों से किया जाने वाला प्रहार। ३. एक राज्य का दूसरे राज्य को दबाने या हड़पने के लिए उसकी सीमा का बलपूर्वक उल्लंघन। ४. किसी के आचरण, कार्य, विचार या सिद्धांत पर किया जानेवाला निंदात्मक आक्षेप। (अटैक, अंतिम तीनों अर्थों के लिए)

आक्रमित--भू० कृ० [सं० आक्रांत] [स्त्री० आक्रमिता] जिस पर आक्रमण किया गया हो या हुआ हो। आक्रांत।

आक्रमिता--स्त्री० [सं० आक्रांता] साहित्य में केशव के अनुसार प्रौढ़ा नायिका जो मन, वचन और कर्म से अपने पति या प्रेमी को अपने वश में करने का प्रयत्न करती है। (देव ने इसी को आक्रांता कहा है)

आक्रय--पुं० [सं० आ√क्री (खरीदना)+अच्] क्रय करना। खरीदना।

आक्रस्स†--पुं०=आक्रोश।

आक्रांत--भू० कृ० [सं० आ√क्रम+क्त] १. जिसपर आक्रमण हुआ हो। २. जो किसी की अधीनता में हो। वशीभूत। ३. व्याप्त।

आक्रांता--स्त्री० दे० 'आक्रमिता'।

आक्रांति--स्त्री०[सं० आ√क्रम्+क्तिन्] १. आक्रांत करने या होने की अवस्था या भाव। २. किसी को दबाकर उसे अपने अधीन करना। ३. ऊपर चढ़ना। आरोहण।

आक्रामक--वि० [सं० आ√क्रम+ण्वुल्--अक] आक्रमण करनेवाला।

आक्रीड़--पुं० [सं० आ√क्रीड् (खेल करना)+घञ्] खेलने का मैदान। क्रीड़ा-स्थल। २. विहार-स्थल। ३. बगीचा।
वि० क्रीड़ा करनेवाला। खेलाड़ी।

आक्रीडन--पुं० [सं० आ√क्रीड्+ल्युट्--अन] क्रीड़ा करना। खेलना।

आक्रीडी (डिन्)--वि० [सं० आ√क्रीड़+घिनुण्] [स्त्री० आक्रीडिनी] १. क्रीड़ा करनेवाला। २. खेलाड़ी।

आक्रुष्ट--भू० कृ० [सं० आ√क्रुश+(कोसना)+क्त] =आक्रोशित।

आक्रोश--पुं० [सं० आ√क्रुश् + घञ्] १. क्रोध पूर्वक कठोर या कर्कश स्वर में की जानेवाली भर्त्सना। २. गालियाँ देते हुए कोसना, बुरा-भला कहना या शाप देना। ३. चीख-पुकार। चिल्लाहट। ४. कसम। शपथ।

आक्रोशक--वि० [सं० आ√क्रुश्+ण्वुल--अक] आक्रोश करने या बिगड़ कर बुरा-भला कहनेवाला।

आक्रोशन--पुं० [सं० आ√क्रुश+ल्युट्--अन] आक्रोश करने (कोसने या शाप देने) की क्रिया या भाव।

आक्रोशित--भू० कृ० [सं० आक्रोश+इतच्] जिसपर आक्रोश किया गया हो। जिसे गालियाँ या शाप मिला हो।

आक्रोष्टा (ष्टृ)--वि० [सं० आ√क्रुश+तृच्] = आक्रोशक।

आक्लांत--वि० [सं० आ√क्लम(ग्लानि)+क्त] १. भींगा हुआ। तर। २. लथ-पथ। सना हुआ। जैसे--रुधिराक्लांत।

आक्लिन्न--वि० [सं० आ√क्लिद्(भींगना)+क्त] १. भींगा हुआ। तर। २. कोमल। मुलायम। ३. दयावान्।

आक्लेद--पुं० [सं० आ√क्लिद्+घञ्] तर या नम होना। भीगना।

आक्ष--वि० [सं० अक्ष+अण्] अक्ष-संबंधी (सभी अर्थों में)।

आक्षपाद--वि० [सं० अक्षपाद+अण्] अक्षपाद संबंधी। अक्षपाद का।
पुं० १. न्याय-शास्त्र। २. न्याय-शास्त्र का ज्ञाता। नैयायिक।

आक्षिक--वि० [सं० अक्ष+ठक्-इक] १. अक्ष-संबंधी। आक्ष। २. पासा या शतरंज खेलनेवाला।
पुं० १. जुए में लगाया जानेवाला दाँव या धन। २. आल का वृक्ष।

आक्षिप्त--भू० कृ० [सं० आ√क्षिप् (फेंकना)+क्त] १. जिसका आक्षेपण हुआ हो। फेंका या हटाया हुआ। २. जिसपर आक्षेप किया गया हो। ३. घबराया हुआ। व्याकुल। ४. लगा हुआ। युक्त।

आक्षीरी (रिन्)--वि० [सं० आ-क्षीर, प्रा० स०, +इनि] (पेड़ या पौधा) जिसके डंठल, तने या पत्ते में से दूध जैसा गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता हो। (लैटिसिफेरस)।

आक्षेप--पुं० [सं० आ√क्षिप्+घञ्] [कर्त्ता आक्षेपक]। १. दूर हटाना या फेंकना। २. किसी के ऊपर कुछ गिरना या गिराना। ३. किसी के आचरण, कथन या कार्य के संबंध में कही जानेवाली कोई ऐसी अप्रिय, कटु या कठोर बात जिससे वह कुछ दोषी सिद्ध हो या मन में लज्जित हो। व्यंग्यपूर्ण दोषारोपण। ४. साहित्य में, एक अर्थालंकार जिसमें पहले कोई बात कहकर फिर अपवाद रूप में उसका प्रतिषेध किया जाता है। (पैरालैप्सिस) जैसे--(क) जदपि कवित रस एकौ नाँहीं। राम-प्रताप प्रकट एहि मांहीं। (ख) उपकार तो दुर्जनों का भी करना चाहिए; पर होता है वह ऊसर में बीज बोने के ही समान। ५. एक वात-रोग जिसमें हाथ पैर रह-रहकर ऐंठते और काँपते हैं। (कन्वलशन)

आक्षेपक--वि० [सं० आ√क्षिप्+ण्वुल्--अक] १ गिराने, फेंकने या दूर हटानेवाला। २. आक्षेप या व्यंग्यपूर्ण आपत्ति करनेवाला।
पुं० आक्षेप नामक वात रोग।

आक्षेपण--पुं० [सं० आ√क्षिप्+ल्युट्--अन] [भू० कृ० आक्षिप्त] १. गिराना, दूर हटाना या फेंकना। २, व्यंग्यपूर्ण आपत्ति या आक्षेप करना।

आक्षेपी (पिन्)--वि० [सं० आ√क्षिप्+णिनि] = आक्षेपक।

आक्षोट--पुं० [सं० आ√अक्ष् (व्याप्ति)+ओट] अखरोट (पेड़ और फल)।

आखंडल--पुं० [सं० आ√खण्ड (भेदन करना)+डलच्] इंद्र।

आखंडलीय--वि० [सं० आखंडल+छ-ईय] इंद्र-संबंधी। इंद्र का।

आखत†--पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] १. मांगलिक अवसरों पर पूजा आदि के काम में आनेवाला कच्चा चावल जिसमें प्रायः दही या गीली रोली मिली रहती है। २. शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों को दिया जानेवाला निमंत्रण जिसमें प्रायः उक्त चावल से उन्हें तिलक लगाया जाता है। ३. उक्त अवसरों पर नाइयों, भाटों, बाजेवालों आदि को दिया जानेवाला निमंत्रण और विदाई।

आखता--वि० [फा० आख्तः] (पशु) जिसका अंडकोश निकाल दिया गया हो। बधिया किया हुआ।

आख-थू-पद [अनु०] १. खखार या खाँसकर मुँह से कफ थूकने का शब्द। २. किसी को धिक्कारते हुए उसे परम निंदनीय सिद्ध करने के लिए कहा जानेवाला पद।

आखन--अव्य० [सं० आ+क्षण] प्रतिक्षण। हर समय।

आखना--स० [सं० आख्यान, पा० अक्खान, पं० आखना] १. किसी से कोई बात कहना। उदा०--तोहिं सेवा बिछुरन नहिं आखौं। पीजर हिए घालि तोंहि राखौं।--जायसी।
अ० [सं० आकांक्षा] इच्छा करना। चाहना।
स० [हिं० आँख] देखना।

आखनिक--वि० [सं० आ√खन् (खोदना)+इकन्] खोदनेवाला।
पुं० १. वह व्यक्ति जो खोदता हो। जैसे--खान में काम करनेवाला व्यक्ति। २. चूहा, सूअर आदि पशु जो जमीन खोदते रहते हैं। ३. खोदने के औजार या करण।

आखर--पुं० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर] १. अक्षर। वर्ण। उदा०--एको आखर पढ़यौ नाहिं।--कबीर। २. शब्द। ३. वचन।
मुहा०--आखर देना = वचन देना। वादा करना।
पुं० [सं० आखनिक] कुदाली।
पुं० [?] अस्तबल।

आखा†--वि० [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय] १. समूचा। सारा। २. कुल। समस्त।
पुं० दे० 'खुरजी'।

आखात--पुं० [सं० आ√खन्+क्त] १. जमीन आदि खोदना। खनन। २. जमीन खोदने का कोई औजार या करण। जैसे--कुदाल या खंता। ३. समुद्र की खाड़ी। (गल्फ)

आखातीज--स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया, प्रा० अक्खयतइज्ज; गु० अखत्रीज; का० अखित्रद] वैशाख सुदी तीज। अक्षय तृतीया।

आखा नवमी--स्त्री० = अक्षय नवमी।

आखिर--वि० [फा० आखिर] १. बाद में या पीछे होनेवाला। २. अंत में होनेवाला। अंतिम।
पुं० १. अंत। २. नतीजा। परिणाम। फल।
अव्य० अंत में। अंततोगत्वा।

आखिरकार--अ० भ० [फा०] अंत में। अंततोगत्वा।

आखिरी--वि० [फा० आखिरी] सब के अंत में होनेवाला। अंतिम।

आखीर--पुं० [फा० आखिर] अंत। समाप्ति।

आखु--पुं० [सं० आ√खन्+डु] १. चूहा। २. जंगली चूहा। ३. चोर। ४. सूअर। ५. देवदार वृक्ष।
वि० १. खोदनेवाला। २. कृपण। कंजूस।

आखु-कर्णी--स्त्री० [ब० स०, ङीप्] मूसाकरणी नामक लता।

आखेट--पुं० [सं० आ√खिट (भय)+घञ्][कर्त्ता आखेटक] पशु-पक्षियों को पकड़ने अथवा मारने के उद्देश्य से उनका पीछा करना। मृगया। शिकार।

आखेटक--पुं० [सं० आखेट+कन्] १. आखेट। शिकार। २. [आ√खिट्+ण्वुल्-अक] आखेट या शिकार करनेवाला। अहेरी। शिकारी।

आखेटिक--वि० [सं० आखेट+ठक्-इक] १. (पशु या व्यक्ति) जो शिकार करने में दक्ष हो। २. भयंकर। भीषण।

पुं० १. निपुण या सिद्धहस्त शिकारी। २. शिकारी कुत्ता।
आखेटी (टिन्)--वि० [सं० आखेट+इनि] [स्त्री० आखेटिनी] = आखेटक।
आखोट--पुं० [सं० अक्षोट] अखरोट का वृक्ष और उसका फल।
आखोर--पुं० [तु० आखुर] १. वह चारा जो जानवर के खा चुकने के बाद बच रहता है। २. निकम्मी, रद्दी या सड़ी-गली चीजें। कूड़ा-करकट। वि० १. गला-सड़ा। २. निकम्मा और रद्दी। ३. गंदा।
पद--**आखोर की भरती**=(क) निकम्मी या रद्दी चीजों का ढेर। (ख) व्यर्थ के लोगों का जमावड़ा।
आख्ता--वि० [फा० आख्त:] (पशु) जिसके अंड-कोश काट या निकाल दिए गये हों। बधिया।
आख्या--स्त्री० [सं० आ√ख्या (कहना)+अङ्-टाप्] [वि० आख्यात] १. नाम। संज्ञा। २. कीर्ति। यश। ३. किसी को सूचित करने के लिए किसी कार्य या घटना का विवरण लिखाना या लिखना।
आख्यात--वि० [सं० आ√ख्या (कथन)+क्त] १. कहा या जतलाया हुआ। २. बहुत अधिक प्रसिद्ध।
पुं० व्याकरण में क्रिया पद।
आख्यातव्य--वि० [सं० आ√ख्या+तव्यत्] जो कहे जाने, वर्णन किए जाने अथवा सूचित किये जाने के योग्य हो अथवा किया जाने को हो।
आख्याता (तृ)--वि० [सं० आ√ख्या+तृच्] १. कहनेवाला। २. सूचना देने या विवरण बतलानेवाला।
आख्याति--स्त्री० [सं० आ√ख्या+क्तिन्] १. किसी से कुछ कहने अथवा उसे सूचित करने की क्रिया या भाव। २. ख्याति। प्रसिद्धि।
आख्यातिक--पुं० [सं० आख्यात+टक्--इक्] वह ग्रंथ जिसमें क्रियाओं का विवेचन किया गया हो।
आख्यान--पुं० [सं० आ√ख्या+ल्युट्--अन] १. कहने अथवा सूचित करने की क्रिया का भाव। २. वह जो कुछ कहा जाय। वर्णन। वृतांत। ३. नाटक में किसी पात्र का पिछली या पुरानी घटनाओं से लोगों को अवगत कराना। ४. पिछली या पुरानी घटना का किया हुआ वर्णन या लिखा हुआ विवरण। कथा। ५. उपन्यास का एक प्रकार जिसमें उपन्यासकार पात्रों से कुछ न कहलवाकर स्वयं सब बातें कहता चलता है।
आख्यानक--पुं० [सं० आख्यान+कन्] छोटा आख्यान।
आख्यानकी--स्त्री० [सं० आख्यानक+ङीप्] दंडक वृत्त का एक भेद, जिसके विषम चरणों में त, त, ज, तथा दो गुरु और सम चरणों में ज, त, ज, तथा दो गुरु होते हैं। यह इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के योग से बनती है।
आख्यान-पट--पुं० [सं० प० त०] चित्र-कला में, वह पट या लंबा खर्रा जिस पर किसी कथा आदि की भिन्न-भिन्न घटनाएँ क्रम से अंकित होती हैं। (पेन्टेड स्क्रोल)
आख्यापक--पुं० [सं० आ√ख्या+णिच्, पुक्+ण्वुल्--अक] [स्त्री० आख्यापिकी] १. वह जो कोई बात घोषित अथवा सूचित करे। २. संदेशवाहक। दूत।
आख्यापन--पुं० [सं० आ√ख्या (कहना)+णिच्, पुक, ल्युट्--अन] १. कोई कथा, घटना या विवरण दूसरों से कहना। २. घोषित करना।
आख्यायिका--स्त्री० [सं० आ√ख्या+ण्वुल्--अक+टाप्] १. शिक्षाप्रद कल्पित लघु कथा। २. एक प्रकार का लघु आख्यान जिसमें पात्र कुछ-कुछ या कहीं-कहीं अपना चरित्र अपने मुँह से भी कहते हैं।
आख्येय--वि० [सं० आ√ख्या+यत्] जो कहे जाने अथवा सूचित किए जाने के योग्य हो अथवा किया जाने को हो।
आगंतव्य--वि० [सं० आ√गम् (जाना)+तव्यत्] १. जो आने को हो। २. जिसके आने की संभावना हो।
आगंता-(तृ)--वि० [सं० आ√गम् (जाना)+तृच्] आनेवाला।
आगंतु--वि० [सं० आ√गम्+तुन्] =आगंतुक।
आगंतुक--वि० [सं० आगन्तु+कन्] १. जो कहीं से आया हो। आया हुआ। २. अचानक या यों ही कहीं इधर-उधर से या भूल-भटककर आ जानेवाला। जिसके घूमने का कोई निश्चित उद्देश्य या निश्चित दिशा न हो। जैसे--आगंतुक पक्षी या पशु। ३. कहीं से अनावश्यक रूप से आकर बीच में मिल जानेवाला। प्रक्षिप्त। ४. (रोग) जो शरीर के किसी भीतरी दोष के कारण नहीं, बल्कि ऊपरी या बाहरी कारणों से उत्पन्न हुआ हो। जैसे--आगंतुक ज्वर या व्रण (देखें)।
पुं० अतिथि। पाहुना।
आगंतुक-ज्वर--पुं० [कर्म० स०] १. वह ज्वर जो चोट, परिश्रम, भूत-प्रेत आदि की बाधा के कारण आता हो। । २. वह ज्वर जो शरीर में हुए किसी दूसरे रोग के फलस्वरूप आता हो। (सिम्पैथेटिक फीवर)
आगंतुक-व्रण--पुं० [कर्म० स०] वह फोड़ा या व्रण जो केवल आघात या चोट लगने के कारण हुआ हो, शरीर के भीतरी विकार के कारण न हुआ हो।
आग--स्त्री० [सं० अग्नि; प्रा० अग्गि; अग्गी, गु० मरा० आग, मैं० सिं० आगि, का० ओगुन; पं० अग्ग; बँ० आगुन्; सिंह० अग] १. ताप और तेज का वह पुंज जो किसी चीज (कपड़ा, कोयला, लकड़ी आदि) के जलने के समय अंगारे या लपट के रूप में दिखाई देता है और जिसमें से प्रायः कुछ धुआँ तथा प्रकाश निकलता रहता है। किसी चीज के जलते रहने की दशा।
विशेष--हमारे यहाँ इसकी गिनती पाँच तत्त्वों या भूतों में हुई है; पर पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे शक्ति मात्र मानते हैं; तत्त्व या भूत नहीं मानते; क्योंकि यह कोई द्रव्य या पदार्थ नहीं है।
मुहा०--**आग कँजियाना**=आग झवाना (दे०)। **आग गाड़ना**=अंगारों या जलते हुए कोयलों को राख में दबाना, जिससे वे अधिक समय तक जलते रहें। **आग जलाना**=ऐसी क्रिया करना जिससे आग उत्पन्न हो। **आग जिलाना**=बुझती हुई आग फिर से तेज करना या सुलगाना। **आग जोड़ना** = आग जलाना। **आग झवाँना**=दहकते हुए कोयलों का धीरे धीरे ठंढा पड़ना या बुझने को होना। **आग झाड़ना**=चकमक या पत्थर की रगड़ से चिनगारियाँ उत्पन्न करना। **आग दिखाना**= (क) गरम करने, सुखाने आदि के लिए कोई चीज आग के पास ले जाना। (ख) दे० 'आग देना'। **आग देना**=किसी चीज को जलाने के लिए आग से उसका संयोग कराना। जैसे--आतिशबाजी, चिता या तोप में आग देना। **आग धोना**=अंगारों या जलते हुए कोयलों पर चढ़ी हुई राख इस लिए हटाना कि वे फिर से दहकने लगें। **आग लगाना**=(क) किसी चीज को जलाने के लिए उसपर या उसमें आग रखना। (ख) भारी उपद्रव खड़ा करना। **आग लेने आना**=बहुत ही थोड़ी

देर के लिए आना या आते ही इतनी जल्दी लौट जाना मानो आग की चिनगारी ही लेने आये हों, और कोई काम न हो। (स्त्रियों का व्यंग्य-वाक्य) **आग सुलगाना**=आग जलाना और हवा की सहायता से उसे तेज करना। अग्नि प्रज्वलित करना।

पद--आग का वाग=(क) सुनारों की अँगीठी। (ख) आतिशवाजी।

२. इमारतों, जंगलों आदि का इस प्रकार जलना कि वे नष्ट हो जायँ। जैसे--इस सप्ताह नगर में तीन जगह आग लगी। ३. किसी पदार्थ में रहनेवाली या कहीं से निकलनेवाली किसी प्रकार की बहुत अधिक गरमी या ताप।

मुहा०--आग फूँकना=किसी पदार्थ का शरीर पर लगकर या उसके अंदर पहुँचकर बहुत अधिक गरमी या ताप उत्पन्न करना। जैसे--इस कंवल (या दवा की पुड़िया) ने तो शरीर में आग फूँक दी। **आग वरसना**=प्राकृतिक रूप से बहुत अधिक गरमी पड़ना। जैसे- जेठ में तो यहाँ आग वरसती है।

४. लाक्षणिक रूप में, मनोविकारों, विचारों आदि की अथवा स्वभाव की ऐसी उग्रता, तीव्रता या विकटता जो घातक, नाशक या हानिकारक परिणाम उत्पन्न करनेवाली हो।

मुहा०--आग खाना और अंगारे उगलना=पहले तो बहुत अधिक अनुचित कार्य करके दुर्भाव या द्वेष वढ़ाना और तव ऐसी वातें करना कि विगाड़ या विरोध और भी वढ़े। **आग फाँकना**= अपने आप में दुर्भाव, दुर्विचार आदि भरते रहना। **आग ववूला या भभूका होना**=बहुत अधिक क्रोध के आवेश में होना। **आग वोना**=ऐसा अनुचित काम करना जिससे आगे चलकर बहुत अधिक कष्ट, संताप या हानि हो। जैसे--तुमने भी उसकी चुगली खाकर अच्छी आग वोई है। **आग में कूदना**=जान-वूझकर किसी विपत्ति या संकटपूर्ण स्थिति में पड़ना या सम्मिलित होना। **(किसी को) आग में झोंकना**=विपत्ति या संकटपूर्ण स्थिति में डालना। जैसे - विना सोचे-समझे संवंध करके उन्होंने लड़की को आग में झोंक दिया। **आग में मूतना**=ऐंठ या शेखी के कारण ऐसा निंदनीय काम करना जिससे हर हालत में खरावी ही खरावी हो। **(चीज या वात में) आग लगना**=(क) बहुत वुरी तरह से नष्ट होना। जैसे - आज कल हमारे रोजगार में तो आग लग गई है। (ख) बहुत दुर्लभ या महँगा होना। जैसे - आज कल तो अनाज में आग लगी हुई है। **आग लगाना**=पारस्परिक व्यवहार के क्षेत्र में, ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जिससे बहुत अधिक वैर-विरोध वढ़े या विनाश हो। **(किसी चीज या वात में) आग लगाना**=(क) बहुत वुरी तरह से नष्ट करना। जैसे--दो ही वर्षों में उन्होने लाखों की संपत्ति में आग लगा दी। (ख) उपेक्षा या तिरस्कारपूर्वक दूर हटाना। (स्त्रियाँ) जैसे--आग लगाओ ऐसे मेल-जोल (या धन-दौलत) को। **पानी में आग लगाना**=जहाँ किसी तरह की खरावी या वुराई न हो सकती हो, वहाँ भी बहुत वड़ी खरावी या वुराई खड़ी कर देना। **आग लगाकर पानी के लिए दौड़ना**= पहले तो कोई अनिष्ट स्थिति खड़ी करना और तव उसके शमन या शांति का उपाय अथवा प्रयत्न करना। **आग लगने पर कूआँ खोदना**= जव कोई विकट स्थिति सामने आकर बहुत उग्र रूप धारण कर ले तव उसके शमन या शांति का प्रयत्न करना।

पद--आग का पुतला=बहुत ही उग्र और क्रोधी स्वभाव का आदमी। **आग के मोल**=बहुत अधिक महँगा। जैसे - आज कल अनाज तो आग के मोल हो रहा है।

५. आवश्यकता, ईर्ष्या, क्रोध, प्रेम, विरह आदि के प्रवल आवेग के कारण होनेवाला ऐसा मानसिक या शारीरिक कष्ट, जिसका शमन तत्काल अपेक्षित हो।

मुहा०--आग पर लोटना= उक्त कारणों में से किसी के फल-स्वरूप बहुत अधिक मानसिक कष्ट या संताप भोगना या सहना। **(मन की) आग वुझाना**=ऐसा काम करना जिससे मानसिक कष्ट या संताप दूर हो। जैसे--उसने भी खूब गालियाँ देकर मन की आग वुझा ली। **आग भड़कना**=(क) मन में दवा हुआ कष्ट, क्षोभ, वेदना या वैमनस्य फिर से प्रवल होना। जैसे--इस छोटी सी घटना के कारण दोनों भाइयों में फिर से आग भड़की है। (ख) उक्त कारणों से कोई भारी उत्पात या उपद्रव खड़ा होना। जैसे - आज-कल एशिया के कई देशों में परतंत्रता के विरुद्ध खूब आग भड़की है। **(शरीर में) आग लगना**=बहुत ही उत्तेजक, कष्टदायक या घातक मनोविकार उत्पन्न होना। जैसे - उसे देखते ही हमें तो आग लग जाती है। **आग होना** =दे० 'आग ववूला होना।'

पद--पेट की आग=(क) क्षुधा। भूख। (ख) संतान के प्रति होनेवाली ममता या स्नेह।

६. आग्नेय अस्त्रों आदि के द्वारा विकट रूप से होनेवाला निरंतर प्रहार।

मुहा०--आग वरसना=युद्ध क्षेत्र में, बहुत अधिक गोले गोलियाँ वरसना। जैसे--सन्ध्या होते ही युद्ध-क्षेत्र में आग वरसने लगी।

वि० १. आग की तरह बहुत गरम। अति उष्ण। जैसे--तुम्हारी हथेली तो आग हो रही है। २. गरमी या ताप उत्पन्न करनेवाला।

पुं० [सं० अग्र] १. ऊख का ऊपरी भाग जिसमें पत्तियाँ होती हैं। अगौरी। २. हल के अगले भाग के वे गड्ढे जिनमें रस्सी फँसा कर जुए में वाँधते हैं।

† पुं० = आगा (अगला भाग)।

आगड़ा--पुं० [?] गेहूँ, ज्वार आदि की वह वाल जिसके दाने रोग आदि के कारण नष्ट हो गये हों।

आगण--पुं० [सं० आग्रहायण] अगहन। मार्गशीर्ष। (डिं०)।

आगणन--पुं० [सं० आ√गण् (गिनना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आगणित] १. =परिगणन २. =आकलन।

आगत--भू० कृ० [सं० आ√गम् (जाना)+क्त] [स्त्री० आगता] १. (वस्तु या व्यक्ति) किसी अन्य स्थान से आया हुआ। २. प्राप्त। ३. घटित।

पुं० १. अतिथि। मेहमान। २. दे० 'आयात'।

आगत-पतिका--स्त्री० [व० स०, कप्-टाप्] साहित्य में, वह नायिका जिसका पति परदेश से लौट आया हो।

आगत-स्वागत--पुं० [प० त०] घर आये हुए अतिथि का किया जानेवाला आदर-सत्कार या आव-भगत।

आगति--स्त्री० [सं० आ√गम् (जाना)+क्तिन्] कहीं आने या पहुँचने की क्रिया या भाव। अवाई। आगमन।

आगपीछा*--पुं०=आगा-पीछा।

आगवाण*--पुं०=अग्नि-बाण।

आगम--पुं० [सं० आ√गम् (जाना)+घञ्] [वि० आगमिक] १. किसी वस्तु या व्यक्ति के कहीं से आने, उपस्थित होने, पहुँचने आदि की क्रिया या भाव। अवाई। आगमन। जैसे--अर्थागम। उदा०--सच्या कौ आगम भयो।--सूर। २. किसी प्रकार का आविर्भाव, उद्भव या उत्पत्ति। ३. मिलन। समागम। ४. स्त्री-प्रसंग। संभोग। ५. आनेवाला समय। भविष्य। ६. भविष्य में होनेवाली घटना या उत्पन्न होनेवाली स्थिति।

मुहा०--आगम जताना=भविष्य में होनेवाली घटना की सूचना देकर उसके संबंध में सचेत करना।

७. भावी कार्य, घटना आदि के संबंध में पहले से किया जानेवाला प्रबंध या व्यवस्था। उपक्रम।

मुहा०--आगम करना या बाँधना=पहले से किसी काम या बात का प्रबंध या व्यवस्था करना।

८. भविष्य में होनेवाली बातों का सचेत करनेवाला उल्लेख, चर्चा या वर्णन। ९. धन आदि की होनेवाली आमदनी। आय। १०. राज्य को प्राप्त होनेवाला कर या राजस्व। ११. भारतीय हिंदुओं के वेद, शास्त्र आदि प्रामाणिक और मान्य धर्म-ग्रंथ। १२. किसी धर्म के वे सब प्रामाणिक और मान्य ग्रंथ जिनके अनुसार उस धर्म के अनुयायी अपना आचरण और व्यवहार करते हों। (स्क्रिपचर्स) १३. धार्मिक आचार-व्यवहार में माने जानेवाले शब्द-प्रमाण। १४. व्याकरण में, कोई ऐसा अक्षर या वर्ण जो शब्द का कोई विशिष्ट रूप बनाने के लिए ऊपर या बाहर से आया हो अथवा लाया जाय। (ऑगमेण्ट) १५. तंत्र-शास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं के पूजन, सिद्धि पुरश्चरण आदि का वर्णन होता है। १६. आधुनिक विधिक क्षेत्र में, वह अधिकार या अधिकार-पत्र जिसके आधार पर कोई व्यक्ति किसी वस्तु या संपत्ति का उत्तराधिकारी अथवा स्वामी होता है। (टाइटिल)
वि० आगे चलकर आने या होनेवाला। भावी।

आगमजानी--वि० [सं० आगमज्ञानी] जो भविष्य में होनेवाली घटनाएँ पहले से जानता हो।

आगमज्ञानी (निन्)--वि० [सं० आगम-ज्ञान, ष० त०,+इनि] जिसे आगम या भविष्य की सब बातों का ज्ञान हो।

आगमन--पुं० [सं० आ√गम् (जाना)+ल्युट्-अन] १. कहीं से चलकर आने या पहुँचने की क्रिया या भाव। अवाई। आगति। २. किसी कार्य या बात के नये सिरे से सामने आने या होने की क्रिया या भाव। (एडवेण्ट) ३. प्राप्ति। लाभ।

आगमना*--अ० [सं० आगमन] आना या आकर पहुँचना।

आगम पतिका--स्त्री०=आगत-पतिका।

आगम-वक्ता (क्तृ)--वि० [ष० त०] भविष्य की बातें कहने या बतलानेवाला।
पुं० ज्योतिषी।

आगम-वाणी--स्त्री० [ष० त०] भविष्य वाणी (दे०)।

आगम-विद्या--स्त्री० [ष० त०] वेद-विद्या।

आगम-वृद्ध--वि० [स० त०] जिसे वेद-शास्त्रों या धर्म-ग्रंथों का बहुत अधिक ज्ञान हो।

आगम-सोची--वि० [सं० आगम+हिं० सोचना] आगे या भविष्य में होनेवाली बातों का पहले से ही विचार करनेवाला। दूरदर्शी।

आगमित--भू० कृ० [सं० आ√गम् (ज्ञान)+णिच्+क्त] (ग्रन्थ या विषय) जिसका अच्छी तरह अध्ययन किया गया हो। अधीत।

आगमी (मिन्)--पुं० [सं० आगम+इनि] वह जो आगम या भविष्य की बातें जानता या बतलाता हो। जैसे--ज्योतिषी या भविष्यवक्ता।

आगर--पुं० [सं०-आकर=खान] [स्त्री० आगरी] १. खान। २. वह जिसमें कोई गुण या विशेषता बहुत अधिक मात्रा में हो। भंडार। उदा०--एहन सुंदरि गुन क आगरि।--विद्यापति। ३. रहने की जगह। जैसे--घर, झोपड़ी, मकान आदि। ४. कोष। खजाना। ५. वह गड्ढा जिसमें खारा पानी भरकर नमक जमाया जाता है।
वि० [सं० आकर=श्रेष्ठ] १. उत्तम। श्रेष्ठ। २. कुशल। दक्ष। ३. चतुर। होशियार।
अव्य० १. बहुत अधिक। २. बहुत बढ़कर या आगे। ३. आगे। सामने।
*स्त्री०=अगरी (अर्गल)।

आगरा*--वि० [हिं० आगे] [स्त्री० आगरी] १. किसी की तुलना में बहुत अधिक आगे बढ़ा हुआ। बढ़ा-चढ़ा। उदा०--सील-सिंगार गुन सबनितें आगरी। --हितहरिवंश। २. बहुत। अधिक।

आगरी--पुं० [सं० आकर] १. खान में काम करनेवाला मजदूर। २. वह जो नमक बनाने का काम करता हो। नोनिया। लोनिया।

आगल--वि० [हिं० अगला] १. सबसे आगे जानेवाला। २. बढ़ा चढ़ा।
अव्य० आगे। सामने।
पुं०=अर्गल।

आगला*--वि०=अगला।

आगलित--भू० कृ० [सं० आ√गल् (क्षरित होना)+क्त] १. डूबता हुआ। २. उदास। खिन्न। ३. मुरझाया हुआ। म्लान। ४. नीचे की ओर गया हुआ।

आगवन*--पुं०=आगमन।

आगवाह*--पुं० [सं० अग्निवाह=धूम] धूआँ। (डिं०)

आगस्ती--वि० [सं० अगस्त्य+अण्+ङीप्, यलोप] =आगस्त्य।
स्त्री० दक्षिण दिशा।

आगस्त्य--वि० [सं० अगस्त्य+यञ्, यलोप] १. अगस्त्य मुनि से संबंध रखनेवाला। २. दक्षिण दिशा-संबंधी। ३. अगस्त्य नामक पेड़ से उत्पन्न।
पुं० १. एक प्रसिद्ध मुनि। २. उक्त मुनि के वंशज। ३. दक्षिण दिशा। ४. एक वृक्ष का नाम।

आगा--पुं० [सं० अग्र, पा० अग्ग] १. किसी चीज के आगे या सामने का भाग। जैसे--कुरते, मकान या सेना का आगा।
मुहा०--(स्त्री का) आगा भारी होना=गर्भवती होना।
पद--आगा-पीछा (दे०)।
२. आगे रहकर चलने या बढ़नेवाला अंश। जैसे--आक्रमण करनेवालों का आगा।
मुहा०--आगा सँभालना=आगे होकर आरंभिक कठिनाइयों आदि का सामना करना।

३. भविष्य में आनेवाला समय या उसमें होनेवाले कार्य। जैसे—हमें तो आगा अँधेरा दिखाई देता है।

मुहा०—(किसी का) आगा मारना=आगे बढ़कर कार्य, गति, वृद्धि आदि में पूरी तरह से बाधक होना।

४. आगे बढ़कर किया जानेवाला स्वागत।

मुहा०—आगा-तागा लेना=आदर-सत्कार करना।

पुं० [तु० आग़ा] १. मालिक। सरदार। २. काबुली। अफगान।

आगाता (तृ)—वि० [सं० आ√गै (गाना)+तृच्] कुछ गाकर कार्य-सिद्धि या प्राप्ति करनेवाला।

आगाध—वि० [सं० अगाध+अण्] १. बहुत अधिक गहरा। २. जिसका क्षेत्र या विस्तार बहुत अधिक हो। जैसे—आगाध विषय।

आगान—पुं० [सं० आ-गान=बात] १. गाकर कही जानेवाली बात। २. वृत्तांत। हाल।

आगा-पीछा—पुं० [हिं० आगा+पीछा] १. आगे और पीछे का अंश या भाग। २. इस बात का विचार कि किसी काम में आगे बढ़ने पर क्या होगा और पीछे रहने या हटने में क्या होगा। ३. उक्त स्थिति में मन में होने-वाला असमंजस। दुविधा।

आगामिक—वि० [सं० आगामिन्+क] १. आनेवाला। २. आनेवाले समय या भविष्य से संबंध रखनेवाला। भावी।

आगामी (मिन्)—वि० [सं०आ√गम्+णिनि] [स्त्री० आगामिनी] १. आने या पँहुचनेवाला। २. आगे चलकर या भविष्य में होनेवाला। ३. वर्त्तमान के तत्काल उपरांत या बाद में आने या होनेवाला। जैसे—आगामी वर्ष या सप्ताह।

आगामुक—वि० [सं० आ√गम् (जाना)+उकञ्] =आगामिक।

आगार—पुं० [सं०√अग् (टेढ़ी चाल)+घञ्, आग√ऋ (गति)+अण्] [वि० आगारिक] १. रहने का स्थान। घर। मकान। २. किसी विशेष कार्य के लिए नियत घर का कोई भाग। कमरा। कोठरी। जैसे—भोजना-गार, शयनागार आदि। ३. ऐसा स्थान जहाँ चीजे इकट्ठी करके रखी जाती हों। जैसे—अस्त्रागार। ४. भवन। मंदिर। ५. कोश। खजाना।

आगाह—वि० [फा०] [भाव० आगाही] १. जिसे सचेत रहने के लिए पहले से किसी बात की सूचना मिल चुकी हो। २. जिसे सूचित कर दिया गया हो। ३. परिचित।

अव्य० [हिं० आगे] आगे या पहले से। उदा०—चाँद गहन आगाह जनावा। —जायसी।

आगाही—स्त्री० [फा०] १. पहले से मिलनेवाली जानकारी या सूचना। २. जानकारी। सूचना।

आगि*—स्त्री०=आग।

आगिआ*—स्त्री०=आज्ञा।

आगिल*—वि० [हिं० आगे] १. आगे का। अगला। २. भविष्य में होनेवाला। भावी।

आगिला*—वि०=अगला।

आगिवर्त्त*—पुं०=अग्निवर्त्त (मेघ का एक भेद)।

आगी—स्त्री०=आग।

आगुआ—पुं० [हिं० आगे] औजारों, शस्त्रों आदि की मूठ के सिरे का गोल भाग।

आगू—पुं०=आगा।

अव्य०=आगे।

आगृहीत—भू० कृ० [सं० आ√ग्रह् (ग्रहण करना)+क्त, संप्रसारण] १. निकाला हुआ। २. कही जमा किए हुए धन में से निकाला या लिया हुआ (धन)। (ड्रान)

आगृहीती (तिन्)—वि० [सं० आगृहीत+इनि] १. जमा किए हुए धन में से कुछ निकालने या लेने वाला। (ड्रॉयर) २. दे० 'आग्राहक'।

आगे—अव्य० [सं० अग्रे, प्रा०, पं० अग्गे, गुज० अगवो, सिं० अगिआँ, अगी; बँ० आगे; का० आगे, ओग्] १. जिस ओर मुँह या अगला भाग हो, उस ओर, सामनेवाले भाग की ओर। समक्ष। संमुख। सामने। जैसे—(क) आगे देखकर चला करो। (ख) बड़ों के आगे इस तरह बढ़-बढ़कर बोलना ठीक नही।

मुहा०—(किसी चीज या बात का) आगे आना=(क) उपस्थित या घटित होना। जैसे—जो कुछ मैंने कहा था, वही सब आगे आया। (ख) किसी बात के परिणाम या फल के रूप में उपस्थित या घटित होना। बदला मिलना। जैसे—जैसा करोगे, वैसा तुम्हारे आगे आवेगा। **(किसी के) आगे आना**=मुकाबला या सामना करने के लिए आकर उपस्थित होना। जैसे—देखें, कौन उनके आगे आता है। **(किसी को) आगे करना**=(क) आगे की ओर चलाना या बढ़ाना। (ख) अगुआ, नेता या मुखिया बनाना। जैसे—जब कोई बात होगी, तब तुम्हीं को आगे कर देंगे। **आगे का पैर पीछे पड़ना**=घबराहट, चिंता, भय आदि के कारण आगे बढ़ने का साहस न होना। **(किसी के) आगे डालना, देना, या रखना**=किसी को खिलाने, देने आदि के लिए उसके सामने उपस्थित करना। जैसे—उसने अपना सारा भोजन उस भिखमंगे के आगे डाल (दे या रख) दिया। **(किसी के) आगे निकलना**=प्रतियोगिता या होड़ में किसी से आगे बढ जाना। श्रेष्ठ सिद्ध होना। जैसे—दरजे में तुम्हीं सब के आगे निकलोगे। **आगे बढ़कर (किसी को) लेना**=कुछ दूर आगे बढ़कर आगंतुक का स्वागत करना। **आगे बढ़ना या होना**=औरों की तुलना में सबसे पहले किसी काम या बात में सम्मिलित या सहायक होना। जैसे—उस संकट की स्थिति में वही सबसे आगे बढा था। **(किसी के) आगे (कुछ) होना**=बाल-बच्चा या संतान होना। जैसे—कौन कहे, तुम्हारे आगे दो-चार बाल-बच्चे है।

पद—आगे का कपड़ा=(क) आँचल। (ख) घूँघट। (स्त्रियाँ)

२. किसी की उपस्थिति में या सामने। जैसे—तुम सब के आगे मेरी निंदा करते फिरते हो। ३. जीवित रहने या वर्त्तमान होने की दशा में। जैसे—तुम्हारे आगे जो कुछ होगा, वही हो जायगा; नही तो बाद में कोई कुछ न करेगा। ४. इसके अनंतर, उपरांत या बाद। जैसे—अब आगे कै सुनो हवाल।—आल्हा। ५. आनेवाले समय में। भविष्य में। जैसे— आगे जो होगा, वह देखा जायगा।

पद—आगे-आगे=भविष्य में। जैसे—आगे-आगे देखिए होता है क्या?

मुहा०—आगे को=कुछ दिनों बाद। भविष्य में। जैसे—समझ लो, आगे को ऐसा न होने पावे। **आगे चलकर**=भविष्य में। जैसे—कौन जाने आगे चलकर क्या होगा।

६. इससे पहले। पूर्व में। जैसे—आगे हमारी बात सुन लो, तब अपनी

कहना। ७. कुछ दूर और बढ़ने पर। जैसे--आगे एक तालाब मिलेगा।
पद--आगे-पीछे (देखें)।

आगे-पीछे--अव्य० [हिं० आगे+पीछे] १. कभी आगे की ओर कभी पीछे की ओर। जैसे--जब देखो तब तुम उन्हीं के आगे-पीछे लगे रहते हो। २. आगे भी और पीछे भी। जैसे--दस-पाँच आदमी सदा उनके आगे-पीछे चलते हैं। ३. एक के बाद एक। निश्चित क्रम से। जैसे--सब लड़के आगे-पीछे होकर चले। ४. आस-पास। इधर-उधर। जैसे--अच्छी तरह देखो; पुस्तक वहीं कहीं आगे-पीछे होगी। ५. कभी (अथवा कहीं) पहले और कभी (अथवा कहीं) बाद में। जैसे--आगे-पीछे सभी को यहाँ से चलना है। ६. अव्यवस्थित क्रम में। इधर-उधर। तितर-बितर। जैसे--लड़के ने सब कागज आगे-पीछे कर दिये हैं। ७. अवकाश या फुरसत मिलने पर। जैसे--पहले अपना पाठ याद करो और काम आगे-पीछे होते रहेंगे। ८. पारिवारिक संबंध के विचार से। नाते-रिश्ते में। जैसे--जब तुम्हारे आगे-पीछे कोई है ही नहीं तब क्यों व्यर्थ इतना परिश्रम करते हो?

आगो*--पुं० १.=आगा। २.=अगवानी।

आगौं*--अव्य० [सं० अग्र] १. आगे या सामने। २. आगे बढ़कर।

आगौन*--पुं०=आगमन।

आगौल--पुं० [हिं० आगा=अगला भाग] सेना का अगला भाग।

आग्नीध्र--पुं० [सं० अग्नि√इन्ध् (दीप्ति)+क्विप्, अग्नीत्-शरण ष० त०,+रण्, भ आदेश] १. यज्ञ की अग्नि जलाने का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना। ३. अग्निहोत्र करनेवाला यजमान। ४. स्वायंभुवमनु के बारह लड़कों में से एक।

आग्नेय--वि० [सं० अग्नि+ढक्-एय] [स्त्री० आग्नेयी] १. अग्नि-संबंधी। आग का। २. जिसका देवता अग्नि हो। ३. अग्नि से उत्पन्न। ४. जिसमें से आग निकती हो। जैसे--आग्नेय अस्त्र, आग्नेय पर्वत आदि। ५. आग भड़काने या ज्वाला उत्पन्न करनेवाला।

पुं० १. अग्नि के पुत्र, कार्तिकेय। २. ब्राह्मण, जिनकी उत्पत्ति अग्नि से मानी गई है। ३. पूर्व और दक्षिण के बीच की दिशा। अग्निकोण। ४. किष्किंधा के पास का एक पुराना देश जिसकी राजधानी माहिष्मती थी। ५. ज्वालामुखी पर्वत। ६. अग्नि का दीपन करनेवाली ओषधि या औषध। ७. भाषा-विज्ञान के अनुसार भारत के दक्षिण-पूर्व में बोली जानेवाली भाषाओं का एक वर्ग, जिसमें इंडोनेशिया और उसके आस-पास के द्वीपों में बोली जानेवाली भाषाएँ सम्मिलित हैं। ८. खून या रक्त, जिसकी उत्पत्ति शरीर की अग्नि या ताप से मानी गई है। ९. कोई ऐसा कीड़ा जिसके काटने से शरीर में जलन होती हो। १०. अग्नि पुराण का एक नाम। ११. कृत्तिका नक्षत्र। १२. सोना। स्वर्ण १३. चांद्र मास के पक्ष की पहली तिथि। प्रतिपदा।

आग्नेय अस्त्र--पुं० [कर्म० स०] वे अस्त्र जो किसी प्रकार की अग्नि या ताप के संयोग से चलते या चलाये जाते हैं। (फायर आर्म्स) जैसे--तोप, बन्दूक आदि।

आग्नेय-स्नान--पुं० [सं० कर्म० स०] सारे शरीर पर भस्म या राख पोतना।

आग्नेयास्त्र--पुं० [आग्नेय-अस्त्र, कर्म० स०] ऐसा अस्त्र जो अग्नि की सहायता से चलता हो। जैसे--तोप, बंदूक आदि। (फायर आर्म्स)

आग्नेयी--स्त्री० [सं० आग्नेय+ङीप्] पूर्व और दक्षिण के बीच की दिशा। अग्नि-कोण।

आग्रह--पुं० [आ√ग्रह् (ग्रहण करना)+अप्] १. किसी से विनय पूर्वक तथा बार-बार यह कहना कि आप अमुक काम इस रूप में करें। २. किसी बात पर जोर देते हुए तथा अड़ते हुए यह कहना कि यह बात ऐसी ही है अथवा इसी रूप में होनी चाहिए। हठ।

आग्रहण--पुं० [सं० आ√ग्रह्+ल्युट्-अन] [कर्त्ता आग्राहक, भू० कृ० आगृहीत] जमा किए हुए धन में से रुपए निकालना या लेना। (ड्रॉ)

आग्रहायण--पुं० [सं० अग्रहायण+अण्-ङीप्, आग्रहायणी+अण्] १. अगहन मास। मार्गशीर्ष। २. मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रही (हिन्)--वि० [सं० आग्रह+इनि] आग्रह करनेवाला।

आग्राहक--वि० [सं० आ√ग्रह्+ण्वुल्-अक] जमा किए हुए धन में से कुछ या सब धन निकालनेवाला। (ड्रॉअर)

आघ*--पुं० [सं० अर्घ, पा० अग्घ=मूल्य] १. आदर। सम्मान। उदा०--जनमु जलधि पानिपु विमल भौ जग आघ अपारु।--विहारी। २. महत्त्व या मूल्य। ३. अपना अस्तित्व। आपा। उदा०--चीते तिंदुए बाघ भभरि निज आघ भुलाए।--रत्ना०।

†पुं० [सं० आघ्रा, प्रा० अग्घा] सूँघने की क्रिया या भाव। उदा०--राघौ आघौ होत जौ कत आछत जिय साध।--जायसी।

आघना*--अ०=अघाना।

आघर्षण--पुं० [सं० आ√घृष् (रगड़ना)+ल्युट्-अन] घर्षण। रगड़।

आघात--पुं० [सं० आ√हन् (मारना)+घञ्] १. अचानक लगनेवाली ठोकर या धक्का। २. चोट पहुँचाने के लिए किसी चीज से मारना। प्रहार। ३. उक्त के फल-स्वरूप लगनेवाली चोट। (इंजरी) ४. किसी दुर्घटना के कारण होनेवाला मानसिक कष्ट या व्यथा। ५. वध। हत्या। ६. पशु-वध करने का स्थान। बूचड़खाना।

आघातक--वि० [सं० आ√हन्+ण्वुल्-अक] आघात करनेवाला।

पुं० १. यंत्र में वह अंग या पुरजा जो किसी दूसरे अंग या पुरजे पर आघात करके उसे कोई काम करने के लिए प्रवृत्त करता है। २. तोप, बंदूक आदि का वह खटका जिसके गिरने से बारूद में विस्फोट होता है। (स्ट्राइकर)

आघातन--पुं० [सं० आ√हन्+णिच्+ल्युट्-अन] १. आघात करने की क्रिया या भाव। २. वध-स्थान।

आघार--पुं० [सं० आ√घृ (क्षरण)+घञ्] हवन, यज्ञ आदि के समय घी से दी जानेवाली आहुति।

आघारना--स० [सं० आघार] १. आहुति देना। २. छिड़कना।

आघी†--स्त्री० [सं० अर्घ, पा० अग्घ=मूल्य] १. देहातों में लेन-देन का वह प्रकार जिसमें कर्ज लेनेवाला महाजन को अनाज के रूप में ब्याज चुकाता है। २. उक्त प्रकार से दिया जानेवाला अन्न।

आघु*--स्त्री०=आघ।

आघूर्णन--पुं० [सं० आ√घूर्ण (घूमना)+ल्युट्-अन] अच्छी तरह चक्कर खाना या घूमना।

आघोष--पुं० [सं० आ√घुष् (शब्द करना)+घञ्] १. जोर से किया जानेवाला घोष या शब्द। २. गर्वपूर्ण उक्ति।

आघ्राण--पुं० [सं० आ√घ्रा (सूँघना)+ल्युट्-अन] १. सूँघने की क्रिया या भाव। २. तृप्त या संतुष्ट होना।

आघ्रात--भू० कृ० [सं० आ√घ्रा+क्त] सूंघा या सुंघाया हुआ।
पुं०[सं०] ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें चंद्रमंडल या सूर्यमंडल एक ही ओर कुछ मलिन दिखाई देता है।

आघ्रेय--वि० [सं० आ√घ्रा+यत्] जो सूंघे जाने के योग्य हो या सूंघा जाने को हो।

आच*--पुं० [सं० सच=संधान करना] हाथ। (डिं०)

आचमन--पुं० [सं० आ√चम् (पान)+ल्युट्-अन] [वि० आचमनीय, भू० कृ० आचमित] १. जल पीना। पान करना। २. हिन्दुओं में धार्मिक कृत्य आरम्भ करने के समय दाहिने हाथ की हथेली में थोड़ा जल लेकर मंत्र पढ़ते हुए उसे पीना। ३. नेत्र-वाला नामक ओषधि।

आचमनक--पुं० [सं० आचमन+कन्] १. वह जल जो आचमन के लिए हाथ में लिया जाता है। २. [व० स०] उगालदान।

आचमनी--स्त्री० [सं० आचमन+ङीप्] कलछी के आकार का बहुत छोटा चम्मच जिससे आचमन करते तथा चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय--वि० [सं० आ√चम्+अनीयर्] आचमन के योग्य (जल)।

आचमित--भू० कृ० [सं० आचान्त] आचमन किया हुआ। पिया हुआ।

आचय--पुं० [सं० आ√चि (चयन)+अच्] १. चयन। २. संचय।

आचयक--वि० [सं० आचायक] १. चयन करने या चुननेवाला। २. संकलन, संचय या संग्रह करनेवाला।

आचरज*--पुं०=अचरज।

आचरजित*--भू० कृ०=आश्चर्यित।

आचरण--पुं० [सं० आ√चर् (गति) +ल्युट्-अन] [भू० कृ० आचरित] १. चलना या चलकर कहीं पहुँचना। २. कोई कार्य आरंभ करके चलाना या आगे बढ़ाना। अनुष्ठान। ३. जीवन-यात्रा में किये जानेवाले वे सभी कार्य या व्यापार जिनका संबंध और लोगों से भी होता है और जो लोक में नैतिक दृष्टि से आँके जाते हैं। चाल-चलन। (कॉन्डक्ट) जैसे—(क) तुम्हारा यह आचरण ठीक नहीं है। (ख) आपको अपने विद्यार्थियों के आचरण पर ध्यान रखना चाहिए। ४. गाड़ी, छकड़ा रथ या ऐसी ही कोई सवारी।

आचरण-पंजी--स्त्री० [सं० ष० त०] वह पुस्तिका जिसमें कर्मचारी के आचरण, चाल-चलन, व्यवहार आदि से संबंधित बातें लिखी जाती है। (कैरेक्टर बुक)

आचरण-पुस्तिका--स्त्री०=आचरण-पंजी।

आचरणीय--वि० [सं० आ√चर्+अनीयर्] (कार्य या व्यवहार) जिसका आचरण किया जा सकता हो या करना उचित हो।

आचरन*--पुं०=आचरण।

आचरना*--स० [सं० आचरण] कार्य या व्यवहार के रूप में लाना। आचरण करना।

आचरित--भू० कृ० [सं० आ√चर्+क्त] १. आचरण या व्यवहार के रूप में लाया हुआ।
२. वि० नियमित और निर्दिष्ट।
पुं० १. प्राचीन भारत में दिया हुआ ऋण वसूल करने की वह परिपाटी, जिसमें या तो ऋणी के दरवाजे पर बैठकर धरना दिया जाता था या उसकी स्त्री, पुत्र आदि ले लिये जाते थे। २. दे० 'जीवक' (केरियर)

आचर्य--वि० [सं० आ√चर्+यत्] =आचरणीय।

आचान--अव्य०=अचान।

आचानक--अव्य०=अचानक।

आचाम--पुं० [सं० आ√चम्+घञ्] १. पका हुआ चावल। भात। २. माँड़। ३. आचमन।

आचार--पुं० [सं० आ√चर्+घञ्] [वि० आचारिक] १. आचरण। २. आचरण या व्यवहार का वह परिष्कृत नैतिक रूप जो कुछ नियमों, रूढ़ियों, सिद्धांतों आदि के आधार पर स्थित होता है और जिसका अनुसरण या पालन लोक में आवश्यक समझा जाता है। ३. उक्त के आधार पर लोक में प्रचलित रीति, व्यवहार आदि। जैसे—लोकाचार, शास्त्रोक्त आचार आदि। ४. उत्तम चरित्र, शील और स्वभाव। ५. बहुत दिनों से चली आई परिपाटी, प्रथा या रीति। रूढ़ व्यवहार। ६. एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने की क्रिया या इसी प्रकार का और कोई अन्योन्याश्रित या पारस्परिक व्यवहार। जैसे पत्राचार=पत्र-व्यवहार।

आचारज--पुं०=आचार्य।

आचारजी--स्त्री० [सं० आचार्य] १. आचार्य होने की अवस्था या भाव। २. आचार्य का कार्य या पद। ३. पुरोहित का कर्म या व्यवसाय। पुरोहिताई।

आचार-तंत्र--पुं० [ष० त०] बौद्धों के चार तंत्रों में से एक।

आचार-दीप--पुं० [ष० त०] आरती का दीया।

आचारवान्--वि० [सं० आचार+मतुप्, वत्व] [स्त्री० आचारवती] १. जो अच्छे और शुद्ध आचार का पालन करता हो। २. अच्छे तथा शुद्ध आचरणवाला।

आचार-विचार--पुं० [द्वंद्व सं०] लौकिक क्षेत्र में किये जानेवाले आचरण और उनसे संबंध रखनेवाले विचार।

आचार-वेदी--स्त्री० [ष० त०] १. पुण्य भूमि। २. आर्यावर्त्त।

आचार-शास्त्र--पुं० [ष० त०] नीति शास्त्र (देखें)।

आचार-हीन--वि० [तृ० त०] १. शास्त्रों में बतलाए हुए आचार न करनेवाला। २. आचरण-भ्रष्ट।

आचारिक--वि० [सं० आचार+ठक्-इक] १. आचार-संबंधी। २. (प्रथा या रीति) जो किसी कुल, समाज आदि में बहुत दिनों से आचार के रूप में चली आ रही हो। (कस्टमरी)

आचारी (रिन्)--वि० [सं० आचार+इनि] [स्त्री० आचारिणी] अच्छे आचरण और शुद्ध आचार-विचारवाला।
पुं० रामानुज संप्रदाय का वैष्णव आचार्य।

आचार्य--पुं० [सं० आ√चर्+ण्यत्] [स्त्री० आचार्यानी] १. वह जो आचार (नियमों, सिद्धांतों आदि) का अच्छा ज्ञाता हो और दूसरों को उसकी शिक्षा देता हो। २. वह जो कर्मकांड का अच्छा ज्ञाता हो और यज्ञों आदि में मुख्य पुरोहित का काम करता हो। ३. यज्ञोपवीत संस्कार के समय गायत्री मंत्र का उपदेश करनेवाला। ४. प्राचीन भारत में, वेद-शास्त्रों आदि का बहुत बड़ा ज्ञाता या पंडित। जैसे—शंकराचार्य, वल्लभाचार्य आदि। ५. आज-कल किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक। (प्रिंसिपल) ६. किसी विषय का बहुत बड़ा ज्ञाता या पंडित। जैसे—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि।

आचार्या--स्त्री० [सं० आचार्य+टाप्] १. स्त्री आचार्य या गुरु। २. पूजनीय तथा विदुषी स्त्री। ३. स्त्री।

आचार्यानी--स्त्री० [सं० आचार्य+ङीप्, आनुक्] आचार्य की पत्नी।

आचिंत्य--वि० [सं० आ√चिन्त् (स्मृति)+यत्] १. सब प्रकार से चिंतन करने योग्य। २. अचिंत्य।

पुं० परमेश्वर।

आचिज्ज--पुं०=आश्चर्य।

आचित--वि० [सं० आ√चि (चयन)+क्त] व्याप्त।

आचूषण--पुं० [सं० आ√चूस् (चूसना)+ल्युट्-अन] १. अच्छी तरह चूसना। २. शरीर के किसी अंग में तुंबी लगाकर उसमें का दूषित रक्त चूसना।

आच्छन्न--भू० कृ० [सं० आ√छद् (ढकना)+क्त] १. जिस पर आवरण पड़ा हो। ढका हुआ। आवृत। २. ऊपर से छाया हुआ। ३. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादक--वि० [सं० आ√छद्+णिच्+ण्वुल्-अक] आच्छादन करने या ऊपर से ढकनेवाला।

पुं० वह वस्तु, जिससे ढका जाय।

आच्छादन--पुं० [सं० आ√छद्+णिच्+ल्युट्-अन] १. ढकने की क्रिया या भाव। २. ढकने की वस्तु। आवरण। ३. वस्त्र। कपड़ा। ४. छाजन।

आच्छादित--भू० कृ० [सं० आ√छद्+णिच्+क्त] १. ढका हुआ। आवृत। २. छाया हुआ।

आच्छादी (दिन्)--पुं० [सं० आ√छद्+णिच्+णिनि] =आच्छादक।

आच्छिप्त--वि०=आक्षिप्त।

आच्छेद--पुं० [सं० आ√छिद् (काटना)+घञ्] १. काटना। २. काट-छाँट।

आच्छेदन--पुं० [सं० आ√छिद्+ल्युट्-अन] काटना या छेदना।

आच्छोटन--पुं० [सं० आ√स्फुट् (बजाना)+ल्युट्-अन, पृषो० सिद्धि] १. चुटकी बजाना। २. उँगली चटकाना।

आच्छोदन--पुं० [सं० आ√छिद्+ल्युट्-अन, पृषो० ओ आदेश] १. पीछा करना। २. आखेट करना। शिकार खेलना।

आछत--अव्य० [हिं० 'आछना' का कृदंत रूप] उपस्थिति या विद्यमानता में। रहते हुए।

आछना*--अ० [सं० अस्ति] १. उपस्थित या विद्यमान होना। रहना। २. होना।

आछरि--स्त्री०=अप्सरा। उदा०--आछरि छपीं छपीं गोपीता। --जायसी।

आछा*--वि० [स्त्री० आछी] =अच्छा।

आछिप्त--वि०=आक्षिप्त।

आछी*--वि०=आशी (खानेवाला)।

आछे*--अव्य० [हिं० अच्छा] अच्छी तरह। भलीभाँति। उदा०--तिनके लच्छन लच्छ अव, आछे कहीं वखानि।--मतिराम।

*अ०=है।

आछेप*--पुं०=आक्षेप।

आछो*--वि०=अच्छा।

आछोटन*--पुं० [सं० आच्छोदन] मृगया। शिकार।

आज--अव्य० [सं० अद्य; प्रा० अज्ज, अज्जु; उ० आजि; गु० अज, आजे; पं० अज्ज; का० अजि, आजि; मरा० आज] १. जो दिन इस समय चल रहा है, उस दिन। वर्त्तमान दिन में। २. इन दिनों में। इस काल में।

पुं० प्रस्तुत या वर्त्तमान दिन।

आज-कल--अव्य० [हिं० आज+कल] १. प्रस्तुत या वर्त्तमान दिनों में। २. एक-दो दिन में।

मुहा०--**आज-कल करना**=टाल-मटोल करना। हीला-हवाला करना। **आज-कल लगना**=मरण काल निकट आना।

पद--**आज-कल में**=कुछ ही दिनों में।

३. वर्त्तमान काल या युग में। इन दिनों।

आजगर--वि० [सं० अजगर+अण्] १. अजगर संबंधी। २. अजगरों की तरह का। अजगरों जैसा।

आजगव--पुं० [सं० अजगव+अण्] शिव का धनुष।

आजन्म--अव्य० [सं० अव्य० स०] १. जन्म से लेकर अब तक। २. जीवन पर्यंत। जीवन भर।

आजमाइश--स्त्री० [फा०] जाँच। परीक्षण।

आजमाइशी--वि० [फा०] जो आजमाइश या परीक्षण के रूप में हो।

आजमाना--स० [फा० आज़माइश=परीक्षा] [वि० आज़मूदा] परीक्षण या परीक्षा करना। जाँचना। परखना।

आजमीढ़--वि० [सं० अजमीढ़+अण्] १. अजमीढ़ राजा के वंश का। २. अजमीढ़ देश का।

आजमूदा--वि० [फा० आजमूदः] आजमाया या परखा हुआ। परीक्षित।

आजा--पुं० [सं० आर्य; प्रा० अज्ज] [स्त्री० आजी; वि० अजिया] पिता का पिता। पितामह। दादा।

आजाद--वि० [फा० आजाद] [संज्ञा० आजादी, आजादगी] १. खुला हुआ। मुक्त। २. स्वच्छंद। ३. स्वतंत्र। ४. मन-मौजी।

पुं० एक प्रकार के मुसलमान सूफी फकीर जो इस्लाम धर्म के अधिकतर बंधनों से मुक्त और स्वतंत्र रहते हैं।

आजादगी--स्त्री० [फा०]=आजादी।

आजादी--स्त्री० [फा०] १. आजाद होने की अवस्था या भाव। २. मुक्ति। ३. स्वतंत्रता। ४. स्वच्छंदता।

आजान--पुं० [सं० √जन् (उत्पन्न होना)+घञ्, आ-जान, अव्य० स०] १. जन्म। २. उत्पत्ति। ३. जन्म या उत्पत्ति का स्थान।

आजान-देव--पुं० [आ-जान, अव्य० स०, आजान-देव, कर्म० स०] वह देवता जो सृष्टि के आदि में देव-रूप में उत्पन्न हुआ हो। जन्मजात देवता।

आजानि--स्त्री० [सं० आ√जन्+इण्] १. उच्च कुल या उत्तम वंश में जन्म लेना। २. जन्म देनेवाली माता।

आ-जानु--वि० [सं० अव्य० स०] घुटनों तक लंबा या लटकता हुआ।

आजानु-बाहु--पुं० [सं० ब० स०] वह जिसके हाथ इतने लंबे हों कि लटकाने पर नीचे घुटनों तक पहुँचते हों। (बहुत बड़े कर्मठों या वीरों का लक्षण)

आजाने--अव्य०=अनजाने।

आज़ार--पुं० [फा०] १. बीमारी। रोग। व्याधि। २. कष्ट। दुःख।

आजिज़--वि० [अ०] [भाव० आजिजी] १. विनीत। दीन। २. तंग। परेशान। ३. लाचार। विवश।

आजिज़ी--स्त्री० [अ०] १. विनय। दीनता। २. लाचारी। विवशता।

आजीव--पुं० [सं० आ√जीव् (जीना)+घञ्] १. उचित आय या लाभ। २. जीवन निर्वाह के लिए प्राप्त होनेवाली आय या मिलनेवाला धन। ३. जीविका। पेशा।

आजीवक--वि० [सं० आ√जीव्+ण्वुल्-अक] जीवन-निर्वाह में कुछ निश्चित नियमों का पालन करनेवाला।
पुं० जैन साधु।

आ-जीवन--अव्य० [सं० अव्य० स०] पूरे या सारे जीवन में। जीवन भर। (लाइफ-लांग)

आजीविका--स्त्री० [सं० आ√जीव्+णिच्+ण्वुल्-अक+टाप्, इत्व] ऐसा कार्य या व्यवसाय जिसकी आय से जीवन निर्वाह होता हो। रोजी।

आजीव्य--वि० [सं० आ√जीव्+ण्यत्] (कार्य या व्यवसाय) जिससे जीवन-निर्वाह होता हो।
पुं० जीवन-निर्वाह के साधन।

आजु*--अव्य० =आज।
पुं०=आज।

आजुल*--पुं०=आजा। दादा। उदा०-साग की क्यारी हमरे आजुल ने लगाई। -लोकगीत।

आजू--पुं० [सं० आ√जु (गति) +क्विप्] बेगार।
अव्य०=आज।

आज्ञप्त--भू० कृ० [सं० आ√ज्ञा (जानना)+णिच्, पुक्, ह्रस्व+क्त] १. जिसे आज्ञा दी गई हो। २. जो आज्ञा के रूप में प्राप्त हुआ हो।

आज्ञप्ति--स्त्री० [सं० आ√ज्ञा+णिच्+पुक्, ह्रस्व+क्तिन्] १. कानून या विधि के आधार पर दी जानेवाली आधिकारिक आज्ञा या होनेवाला निर्णय। २. न्यायालय या न्यायाधीश का लिखित निर्णय। (डिक्री, उक्त दोनों अर्थों में)

आज्ञा--स्त्री० [सं० आ√कर्म+अङ्-टाप्] १. किसी अधीनस्थ कर्मचारी या व्यक्ति से मौखिक रूप से कहा हुआ अथवा लिखित रूप से दिया हुआ ऐसा निर्देश जिसका पालन करना अनिवार्य हो। हुकुम। (आर्डर) २. किसी कार्य या बात के लिए मिलनेवाली अनुमति। ३. दे० 'आज्ञा-चक्र'।

आज्ञाकारिता--स्त्री० [सं० आज्ञाकारिन्+तल्-टाप्] आज्ञाकारी होने की अवस्था या भाव।

आज्ञाकारी (रिन्)--वि० [सं० आज्ञा√कृ (करना)+णिनि] [स्त्री० आज्ञाकारिणी] किसी की आज्ञा का अनुसरण या पालन करनेवाला।
पुं० १. दास। २. सेवक।

आज्ञा-चक्र--पुं० [सं० मध्य० स०] हठयोग में, शरीर के अंदर के आठ चक्रों में से छठा चक्र जो दो दलों का, श्वेत वर्ण का और दोनों भौंहों के बीच में स्थित माना गया है। कहते हैं कि इसके साधन से वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है।

आज्ञाता (तृ)--पुं० [सं० आज्ञापयिता] वह जो दूसरों को आज्ञा दे। आज्ञा देनेवाला।

आज्ञान--पुं० [सं० आ√ज्ञा+ल्युट्-अन] देखने या समझने की क्रिया, भाव या शक्ति।

आज्ञापक--वि० [सं० आ√ज्ञा+णिच्, पुक्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० आज्ञापिका] आज्ञा देनेवाला। आज्ञाता।
पुं० प्रभु। स्वामी।

आज्ञा-पत्र--पुं० [सं० प० त०] वह पत्र जिसमें कोई आज्ञा लिखकर दी गई हो। हुकुमनामा।

आज्ञापन--पुं० [सं० आ√ज्ञा+णिच्, पुक्+ल्युट्-अन्] [भू० कृ० आज्ञापित] आज्ञा देने की क्रिया या भाव।

आज्ञा-पालक--वि० [सं० प० त०] [स्त्री० आज्ञापालिका] आज्ञा पालन करनेवाला। आज्ञाकारी।
पुं० १. दास। २. सेवक।

आज्ञा-पालन--पुं० [सं० प० त०] [वि० आज्ञापालक] किसी की दी हुई आज्ञा के अनुसार कार्य करना।

आज्ञापित--भू० कृ० [सं० आज्ञप्त] १. (व्यक्ति) जिसे आज्ञा दी गई हो। २. (कार्य) जिसके संबंध में आज्ञा दी गई हो।

आज्ञा फलक--पुं० [सं० प० त०] वह पत्र जिसमें किसी विषय या व्यवहार संबंधी आज्ञा लिखी हो। (आर्डर शीट)

आज्ञा-भंग--पुं० [सं० प० त०] आज्ञा न मानना अथवा उसके विरुद्ध आचरण करना। (डिस्ओबीडिएन्स)

आज्ञायी (यिन्)--वि० [सं० आ√ज्ञा+णिनि, युक् आगम] १. जानने या समझनेवाला। २. अनुभव करनेवाला।

आज्ञार्थक--पुं० [सं० आज्ञा-अर्थ, ब० स०, कप्] व्याकरण में, क्रिया पद का वह रूप जिसमें किसी को कोई काम करने का आदेश दिया जाता है। विधि। (इम्परेटिव मूड) जैसे--आओ, बैठो।

आज्य--पुं० [सं० आ√अंज् (दीप्ति)+क्यप्] १. वह घी जिससे आहुति दी जाय। २. दूध या तेल, जो घी के स्थान पर आहुति में दिया जाय। ३. यज्ञ में दी जानेवाली हवि। ४. प्रातःकालीन यज्ञ का एक स्तोत्र।

आज्यपा--पुं० [सं० आज्य√पा (पीना)+क्विप्] सात प्रकार के पितरों में से एक जो पुलस्त्य के पुत्र वैश्यों के पितर हैं।

आज्य-भाग--पुं० [सं० प० त०] यज्ञ में अग्नि और सोमदेव को दी जाने वाली घृत की दो आहुतियाँ।

आज्य-भुक्--पुं० [सं० आज्य√भुज् (खाना) +क्विप्] १. अग्नि। २. देवता।

आज्य-स्थाली--स्त्री० [सं० प० त०] वह यज्ञ-पात्र जिसमें हवन के लिए घी रखा जाता है।

आटना--स० [सं० अट्ट] ऊपर से इतना अधिक रखना या लादना कि नीचे की चीज छिप जाय।

आटरूप--पुं० [सं० अटरूप+अण्] अड़से का पेड़। वासक वृक्ष।

आटा--पुं० [सं० आर्द=दबाना?; कन्न० अट्टसु; गु० सिं० आटो; बँ० आटा; कश्मी० ओटु; फा० आर्द; मरा० आट, आटवल] १. गेहूँ जौ, मकई आदि को पीसकर तैयार किया हुआ चूर्ण, जिससे पूरियाँ, रोटियाँ आदि बनाई जाती हैं। पिसान।

मुहा०—आटे-दाल का भाव मालूम होना =यह पता चलना या इस बात की शिक्षा मिलना कि (क) जीविका का निर्वाह या (ख) सांसारिक व्यवहार किस प्रकार करना चाहिए या करना होता है। **गरीबी में आटा गीला होना**= (क) पैसे की तंगी के समय पास से कुछ और चला जाना। (ख) और अधिक संकट आना।

पद—**आटे की आया**=भोली-भाली स्त्री। **आटे दाल की फिक्र**= जीविका-निर्वाह की चिंता।

२. आटे की तरह भुरभुरी वस्तु।

क्रि० प्र०—होना।

आटी†—स्त्री० [हिं० अटक] १. पच्चड़। २. डाट। ३. अवरोध। रुकावट।

आटोप—पुं० [सं० आ√तुप् (वध करना)+घञ्, पृषो० टत्व] १. ऊपर से ढकनेवाली चीज। आच्छादन। २. बहुत अधिक फूलना या फैलना। ३. पेट में होनेवाली गड़गड़ाहट। ४. अभिमान। घमंड। ५. आज-कल ऐसा आडंबर या तड़क-भड़क जो दूसरों को अपना बल और वैभव बहुत बढ़ाकर दिखलाने के लिए की जाय। (पाम्प)

आठ—वि० [सं० अष्टौ; प्रा० अट्ठ, अढ; गु० मरा० आठ; सिं० अठ्; पं० अठ्ठ; का० ओठ्] जो गिनती में सात से एक अधिक हो। छः और दो।

मुहा०—**आठ-आठ आँसू रोना**=भीषण कष्ट, दुःख या शोक के कारण बहुत अधिक रोना।

पद—**आठों गाँठ**—हर तरह से। पूरा। पक्का। **आठों गाँठ कुम्मैत**= बहुत बड़ा चतुर। पक्का धूर्त। **आठों पहर**= दिन-रात। हर समय।

आठक*—वि० [सं० अष्ट; पा० अट्ठ+हिं० एक] आठ के लगभग। प्रायः आठ।

आठवं†—वि०=आठवाँ।

आठवाँ—वि० [हिं० आठ+वाँ (प्रत्य०)] गिनती या क्रम के विचार से आठ के स्थान पर पड़नेवाला। अष्टम।

आठें, आठैं, आठों—स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी (तिथि)।

आडँग—पुं० [सं० आगम ?] लक्षण। चिह्न। उदा०—जो गिणि आवी आडँग जाणे।—पृथीराज।

आडंबर—पुं० [सं० आ√डम्ब् (फेंकना)+अरन्] [वि० आडंबरी] १. एक प्रकार का ढोल या नगाड़ा। २. ढोल या नगाड़े से होनेवाला शब्द। ३. हाथी की चिंघाड़। ४. शरीर में की जानेवाली मालिश। ५. खेमा। तंबू। ६. उच्च स्वर या घोर नाद। ७. बहुत अधिक या अनावश्यक रूप से बोलना अथवा निरर्थक बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करना। ८. अपना वास्तविक रूप छिपाकर लोगों को बड़प्पन दिखलाने या धोखे में रखकर अपना काम निकालने के लिए बनाया हुआ बाहरी कृत्रिम भव्य रूप। दिखावटी ठाठ-बाट। (आस्टेन्टेशन)

आडंबरी (रिन्)—वि० [सं० आडम्बर+इनि] १. जिसमें आडंबर हो। आडंबर से युक्त। २. आडंबर करने या रखनेवाला।

आड़—स्त्री० [सं० आटि, आति; सिं० आटी; मरा० आडप्थी, आड़ी] १. वह चीज जिसके पीछे छिपा जाय। ओट। परदा। २. रक्षा का स्थान।

मुहा०—**आड़ देना**=आश्रय या शरण देना। **आड़ लेना**=किसी की शरण में जाना।

३. टेक। थूनी। ४. बाधा। रोक। ५. वह बिंदी, जो स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं। उदा०—केसरि आड़ ललाटनि लसैं।—नंददास।

मुहा०—**आड़ चितरना**=माथे और मुख पर कई प्रकार की बिंदियाँ लगाकर बेल-बूटे आदि बनाना।

६. माथे पर पहनने का एक प्रकार का गहना। टीका। ७. एक प्रकार का बड़ा कलछा।

स्त्री० [सं० अल=डंक] बर्रे, बिच्छू, मधु-मक्खी आदि का डंक।

आड़गीर—पुं० [हिं० आड़+फा० गीर] १. आड़ करने के लिए लगाया जानेवाला परदा या खड़ी की जानेवाली दीवार। २. खेत के किनारे की घास।

आड़न—स्त्री० [हिं० आड़ना=रोकना] १. आड़। ओट। २. ढाल, जो तलवार का वार रोकती है। (डिं०)

आड़ना—स० [सं० अल्=वारण करना] १. बीच में आड़ या रोक खड़ी करना। २. बीच में आकर रुकावट डालना या बाधक होना। रोकना। ३. कोई चीज गिरवी (बंधक या रेहन) रखना। ४. मना करना। ५. बाँधना।

स० [हिं० आड़] स्त्रियों का शोभा के लिए अपने मुख पर विशेष ढंग से बिंदियाँ लगाना। आड़ चितरना।

आड़बंद—पुं० [हिं० आड=फा० बंद] फकीरों, पहलवानों आदि के पहनने का एक प्रकार का लँगोट।

आड़ा—वि० [सं० अल्=रोकना या हिं० आड़] १. आँखों के समानांतर दाहिने से बाएँ अथवा बाएँ से दाहिने गया हुआ अथवा इस बल में रखा हुआ। क्षैतिज। (हॉरिजेन्टल) २. जो नीचेवाले कोने से सामने के ऊपरवाले कोने की तरफ उठता हुआ गया हो। तिरछा। तिर्यक्। जैसे—कपड़े की आड़ी काट।

मुहा०—**आड़ा या आड़े आना या होना**=सामने आकर बाधा या रुकावट खड़ी करना। उदा०—मर्यादा आड़ी भई, आगे दियो न पाँव।—लक्ष्मण सिंह। **आड़े-तिरछे होना**=नाराज होकर झगड़ा बढ़ानेवाली बातें करना।

३. उग्र या कठोर। विकट। जैसे—आड़ा समय। उदा०—पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट।—मीराँ।

मुहा०—**(किसी के) आड़े आना**=संकट में पड़े हुए व्यक्ति के पास जाकर उसके कष्ट निवारण में सहायक होना। जैसे—यों मित्र तो सभी थे पर उस विपत्ति के समय आप ही हमारे आड़े आये। **(किसी को) आड़े हाथों लेना**=खरी-खोटी सुनाकर निरुत्तर और लज्जित करना।

४. जिसका क्रम या गति बिलकुल सीधी न हो, बल्कि बीच में नियत से कुछ इधर-उधर हो जाता हो। जैसे—आड़ा खेमटा, आड़ा चौताल। ५. जो कहीं से बीच में आ पड़ा हो। उदा०—त्रिणि दीह लगन वेला आड़ा तै।—पृथीराज।

पुं० [सं० आलि=देखा] १. एक प्रकार का कपड़ा जिसपर आड़ी-तिरछी धारियाँ होती हैं। २. जुलाहों का लकड़ी का वह ढाँचा जिस पर सूत फैलाये जाते हैं। ३. जहाज या नाव का लट्ठा या शहतीर।

आड़ा खेमटा—पुं० [हिं० आड़ा+खेमटा] संगीत में साढ़े तेरह मात्राओं का एक ताल।

आड़ा-चौताला—पुं० [हिं० आड़ा+चौताल] संगीत में सात मात्राओं का एक ताल।

आड़ा पँच-ताल--पुं० [हिं० आड़ा+पंच+ताल] संगीत में ५ आघातों और ९ मात्राओं का एक ताल।

आड़ा-लोट--वि० [हिं० आड़ा+लोटना] डगमगा कर एक ओर गिरता हुआ।

मुहा०--**आड़ा-लोट मारना**=जहाज का लहरों में पड़कर उलटने लगना।

आड़ी--स्त्री० [हिं० आड़] १. खेल में वक्ता के पक्ष का खेलाड़ी या साथी। २. छुट्टी या विश्राम का दिन। (चमार)

†अव्य० ओर। तरफ।

आड़ू--पु० [संभवतः किसी ईरानी शब्द का अप०] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसमें छोटे खट-मीठे फल लगते हैं। २. उक्त वृक्ष का फल। शफ़तालू।

आढ--स्त्री० [?] एक प्रकार की मछली।

वि० [सं० आढ्यक] कुशल। दक्ष।

स्त्री० [हिं० आड़ ?] १. बीच में पड़नेवाला अंतर या विस्तार। २. टाल-मटोल। बहाने-बाजी। ३. दे० 'आड़'।

पु०=आढ़क।

आढक--पुं० [सं० आ√ढौक (देखना)+घञ्, पृषो० सिद्धि] १. चार सेर की एक तौल। २. नापने का काठ का वह पात्र जिसमें चार सेर अनाज आता है। ३. अरहर। ४. गोपी चंदन।

आढकी--स्त्री० [सं० आ√ढौक्+अच् पृषो० अकार आदेश, ङीप्] १. अरहर। २. गोपी चंदन।

आढ़त--स्त्री० [सं० अट्ट; प्रा० आड़हृति; पा० आड़हइ; पं० बँ० मरा० आड़त; तेल० अड़िति] १. व्यवसाय की वह प्रथा जिसमें व्यवसायी दूसरों का माल अपने यहाँ थोक बिक्री के लिए रखता और उनकी बिक्री होने पर कुछ नियत धन अपने लिये लेता है। २. वह धन जो उक्त व्यवसाय में व्यवसायी को पारिश्रमिक या लाभ के रूप में मिलता है। ३. वह स्थान जहाँ बैठकर कोई व्यक्ति उक्त प्रकार का व्यवसाय करता है। ४. किसी कुटनी का वह स्थान जहाँ दुश्चरित्रा स्त्रियाँ चोरी से पहुँचकर धन के लोभ से व्यभिचार कराती हैं।

आढ़तदार--पुं० [हिं० आढ़त+फा० दार (प्रत्य०)]=आढ़तिया।

आढ़तिया--पु० [हिं० आढ़त +इया (प्रत्य०)] वह जो आढ़त का काम करता हो।

आढ्यंकर--वि० [सं० आढ्य√कृ (करना)+ट, मुम्] गरीब को धन देकर धनी बनानेवाला।

आढ्य--वि० [सं० आ√ध्यै (चिंतन करना)+क, पृषो० सिद्धि] १. किसी चीज या बात से पूरी तरह से युक्त। जैसे--धनाढ्य, गुणाढ्य आदि। २. धनी। संपन्न।

आढ्यक--पुं० [सं० आढ्य] धन-राशि।

आणंद--पुं०=आनंद।

आणक--पुं० [सं० अणक+अण्] १. एक रुपए का सोलहवाँ भाग। आना। २. काम-शास्त्र में संभोग का एक आसन।

वि० १. अधम। नीच। २. निंदनीय।

आणना*--स०=आनना (लाना या ले आना)।

आणव--पुं० [सं० अणु+अण्] 'अणु' का भाव। अणुता।

वि०=आणविक।

आणविक--वि० [सं० अणु+ठक्-इक] अणुओं के रूप में होने या उनसे संबंध रखनेवाला। अणु-संबंधी। (मोलक्यूलर)

आणां--वि०=अन्य।

अव्य०=अन्यत्र। (राज०)

आणुक--वि०=आणविक।

आतंक--पुं० [सं० आ√तङ्क (अस्वस्थ होना)+घञ्] [भू० कृ० आतंकित] १. पीड़ा, रोग आदि शारीरिक कष्ट। २. बेचैनी। विकलता। ३. भारी अत्याचार, संकट के समय उसके भय से उत्पन्न वह विकलतापूर्ण मानसिक स्थिति जिसमें मनुष्य कुछ सोचने-समझने या करने-धरने में प्रायः असमर्थ हो जाता है। (टेरर) ४. किसी का प्रभाव, प्रभुत्व, शक्तिमत्ता आदि देखने पर उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली विकलतापूर्ण मानसिक स्थिति। ५. किसी बात या वस्तु का वह विकट प्रभाव जो भयभीत करके प्रायः रोग या मानसिक विकार उत्पन्न कर देता है। (फोबिया) जैसे--जलातंक।

क्रि० प्र०--जमना।--छाना।

आतंक-युद्ध--पुं० [तृ० त०] पारस्परिक वैमनस्य या शत्रुता के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली वह स्थिति जिसमें दोनों पक्ष बिना लड़े-भिड़े केवल एक दूसरे के मन में भारी आतंक उत्पन्न करके उसे दबाने या हटाने का प्रयत्न करते हैं। (वार ऑफ नर्व्ज)

आतंकवाद--पु० [प० त०] लोगों को डरा-धमकाकर अपना उद्देश्य सिद्ध करने का सिद्धांत। (टेररिज्म)

आतंकवादी (दिन्)--वि० [सं० आतंक√वद् (बोलना)+णिनि] १. आतंकवाद से संबंध रखनेवाला। २. आंतकवाद का सिद्धांत मानने और उसके अनुसार काम करनेवाला। (टेररिस्ट)

आतंकित--भू० कृ० [सं० आतंक+इतच्] जिसपर किसी प्रकार का आतंक छाया हो। आतंक से प्रभावित।

आतंचन--पुं० [सं० आ√तञ्च् (वेग)+ल्युट्-अन] १. दूध जमाने की क्रिया या भाव। २. दूध जमाने का जामन।

आतत--भू० कृ० [सं० आ√तन् (विस्तार)+क्त, नलोप] १. फैला या फैलाया हुआ। २. खिंचा या खींचा हुआ। ३. तना या ताना हुआ।

आतताई--पुं०=आततायी।

आततायी (यिन्)--पुं० [सं० आतत√अय् (गति) +णिनि] [स्त्री० आततायिनी] १. वह जिसने किसी की जान लेने के लिए धनुष पर तीर चढ़ाया हो। २. वह जो आग लगाकर, विष देकर अथवा हत्या करके लोगों को लूटता और सताता हो। ३. बहुत बड़ा उपद्रवी और दुष्ट।

आतनन--पुं० [सं० आ√तन्+ल्युट्-अन] खींचने, तानने या फैलाने की क्रिया या भाव।

आतनिक--वि० [सं०] १. जिसमें किसी प्रकार का खिंचाव या तनाव हो। तनाव से युक्त। २. (स्थिति) जिसमें किसी प्रकारकी आशंका, उत्तेजना, विकलता आदि हो। (टेन्स, उक्त दोनों अर्थों में)।

आतप--पुं० [सं० आ√तप् (तपना या तपाना)+घ] [वि० आतपी; भू० कृ० आतप्त; भाव० आतपता] १. सूर्य का प्रकाश। धूप। घाम। २. गरमी। ताप। ३. ज्वर। बुखार।

वि० दुःख या पीड़ा देनेवाला।

आतपत्र--पुं० [सं० आतप√त्रै (रक्षा करना)+क] १. राजा का छत्र।

२. धूप से बचने के लिए पत्तों या रेशम का बनाया हुआ छोटा छाता। (पैरासोल)

आतपन--पुं० [सं० आ√तप्+ल्युट्–अन] १. तपाना। २. कष्ट देना। ३. [आ√तप्+ल्यु–अन] शिव का एक नाम।

आतप-स्नान--पुं० [सं० तृ० त०] स्वास्थ्य ठीक रखने के विचार से धूप में इस प्रकार बैठना या लेटना कि सारे शरीर पर उसका प्रभाव पड़े। (सन्-बाथ)

अतपी (पिन्)--पुं० [सं० आतप+इनि] सूर्य।
वि० १. आतप या धूप से संबंध रखनेवाला। २. कष्ट या दुःख देने वाला। ३. मन ही मन जलनेवाला। ईर्ष्यालु।

आतपीय--वि० [सं० आतप+छ–ईय] आतप-संबंधी। आतप का।

आतपोदक--पुं० [सं० आतप-उदक, मध्य० स०] मृग-तृष्णा।

आतम*--वि०=आत्म।
पुं० १. आत्मा। २. ब्रह्म।

आतमहन*--पुं० दे० 'आत्मघाती'।

आतमा--स्त्री०=आत्मा।

आतर--पुं० [सं० आ√तृ (तैरना) +अप्] १. नाव आदि से पार उतरने का भाड़ा। उतराई। खेवा। २. मार्ग या यात्रा संबंधी शुल्क।

आतर्पण--पु० [सं० आ√तृप् (तृप्ति)+णिच्+ल्युट्–अन] तृप्त या प्रसन्न करना।

आतश--स्त्री०=आतिश। (आतश के यौ० के लिए दे० 'आतिश' के यौ०)

आतशक--पुं० [फा०] [वि० आतशकी] दुष्ट मैथुन से जननेंद्रिय में होनेवाला एक रोग। गरमी या फिरंग नाम का रोग।

आतस*--स्त्री०=आतिश (आग)।

आतापि--पुं० [सं० आ√तप्+इणि] एक राक्षस जिसे अगस्त्य मुनि ने चबा डाला था।

आतापी (पिन्)--पु० [सं० आ√तप्+णिनि] १. चील पक्षी। २. आतापि नामक राक्षस।

आति--स्त्री० [सं०√अत्+इण्] एक प्रकार का पक्षी।

आतियेय--पु० [सं० अतिथि+ढक–एय] १. अतिथि-सत्कार की सामग्री। २. वह जो अच्छी तरह से अतिथियों का स्वागत करता हो। ३. अतिथि के रूप मे किसी को अपने यहाँ ठहरानेवाला। मेजवान। (होस्ट)
वि० [सं०] १. अतिथि-संबंधी। २. अतिथियों के लिए उपयुक्त या योग्य।

आतिथ्य--पु० [सं० अतिथि+ञ्य] १. अतिथि होने की अवस्था या भाव। २. अतिथि का होनेवाला स्वागत और सत्कार। मेहमानदारी।

आतिथ्य-सत्कार--पुं० [सं० कर्म० स०] घर आये हुए अतिथि का स्वागत तथा उसकी सेवा तथा सत्कार करना।

आतिदेशिक--वि० [सं० अतिदेश+ठक्–इक] अतिदेश-संबंधी।

आतिपात्य--वि० [सं० अतिपात+ष्यञ्] अतिपात या हिंसा से संबंध रखनेवाला।

आतिपात्य-शांति--स्त्री० [सं० ष० त०] वह धार्मिक कृत्य जो अनजान में नित्य होनेवाली हिंसा या अतिपात के पापों से छूटने के लिए किया जाता है।

आतिवाहिक--वि० [सं० अतिवाह+ठक्–इक] १. अतिवाह-संबंधी। २. आत्मा के एक शरीर से निकलने पर उसे दूसरे शरीर में ले जाने वाला (माध्यम)।
पुं० १. मृत्यु के बाद प्राप्त होनेवाला वह लिंग-शरीर जिसे धारणकर जीव दूसरे लोक में जाता है। २. उपनिषदों के अनुसार वे देवता जो आत्मा को एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँचाते हैं। ३. पाताल का निवासी।

आतिश--स्त्री० [फा०] १. अग्नि। आग। २. बहुत अधिक गरमी या ताप।
पद--आतिश का परकाला=वह जो बहुत बड़े और विकट काम बहुत सहज में और चतुरता से कर लेता हो।
३. कोप। क्रोध। गुस्सा।
वि० १. बहुत गरम। २. बहुत उग्र या तीव्र।

आतिशखाना--पुं० [फा०] १. कमरे में वह स्थान जहाँ उसे गरम करने के लिए आग रखी जाती है। २. पारसियों का अग्नि-मंदिर।

आतिशदान--पुं० [फा०] १. आग रखने का पात्र। अँगीठी। २. दे० 'अतिशखाना'।

आतिशपरस्त--पुं० [फा०] १. अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति। २. पारसी।

आतिशबाज--पुं० [फा०] आतशबाजी बनाने तथा छोड़नेवाला।

आतिशबाजी--स्त्री० [फा०] बारूद, गंधक, शोरे आदि के योग से बनी हुई चीजें जिनके जलने पर रंग-बिरंगी चिनगारियाँ निकलती हैं। अग्निक्रीड़ा।

आतिशयिक--वि० [सं० अतिशय+ठक्–इक] १. अतिशय-संबंधी। २. बहुत अधिक। अतिशय।

आतिशय्य--पुं० [सं० अतिशय+ष्यञ्] अतिशय होने की अवस्था या भाव।

आतिशी--वि० [फा० आतशीं] १. आतश या आग से संबंध रखनेवाला। अग्नि संबंधी। २. आग की लपट जैसा लाल। जैसे--आतिशी रंग। ३. अग्नि उत्पन्न करनेवाला। जैसे--आतिशी शीशा। ४. जो आग में रखने पर भी न टूटे या न जले।
पुं० कुछ बादामी रंगत लिये हुए एक प्रकार का लाल रंग। (फायररेड)

आतिशी शीशा--पुं० [फा०] एक प्रकार का शीशा जिसमें से सूर्य की किरणें किसी एक बिंदु से होकर निकलती तथा अग्नि उत्पन्न करती है।

आती--स्त्री०=आति।

आतीत*--वि० पुं०=अतीत। उदा०--अजपा जाप जपंता गोरष आतीत अनूपम ग्यानं।--गोरखनाथ।

आतीपाती--स्त्री० [दे० पाती=पत्ती] लड़कों का एक खेल, जिसमें एक लड़के को चोर बनाकर उसे किसी पेड़ की पत्ती लेने भेजते हैं और आप छिप जाते हैं। पत्ती लेकर लौटने पर वह लड़का जिसे छू लेता है वही लड़का चोर माना जाता है।

आतुर--वि० [सं० आ√अत् (सतत गमन)+उरच्] १. जिसे घाव या चोट लगी हो। घायल। २. उत्कट आकांक्षा या इच्छावाला। ३. जो किसी कार्य या फल की विकलता-पूर्वक प्रतीक्षा करता हो और बहुत जल्दी उसकी सिद्धि या प्राप्ति चाहता हो। उतावला। ४. (कार्य) जो बिना अच्छी तरह सोचे-समझे केवल विकलता की दशा में जल्दी

जल्दी कर लिया जाय। जैसे—आतुर-संन्यास। ५. बेचैन। विकल। अव्य० बहुत जल्दी और घबराहट में।

पुं० १. बीमारी। रोग। २. बीमार। रोगी।

आतुरता—स्त्री० [सं० आतुर+तल्–टाप्] १. आतुर होने की अवस्था या भाव। २. उतावलापन। जल्दी। ३. बीमारी। रोग।

आतुरताई—स्त्री०=आतुरता।

आतुर-शाला—स्त्री० [सं० ष० त०] चिकित्सा के लिए रोगियों के रहने का स्थान। चिकित्सालय।

आतुर-संन्यास—पुं० [सं० प० त०] ऐसा संन्यास जो रुग्ण अथवा सांसारिक जीवन से दुखी और निराश होने की दशा में केवल घबराहट और जल्दी में ग्रहण किया जाय।

आतुराना—अ० [सं० आतुर] किसी काम या बात के लिए बहुत अधिक आतुर या उतावला होना।

स० किसी को आतुर या उतावला करना।

आतुरालय—पुं० [सं० आतुर-आलय, प० त०] आतुरशाला। चिकित्सालय।

आतुरी—स्त्री० [सं० आतुर्य+ङीप्, यलोप] =आतुरता।

आतुर्य—पुं० [सं० आतुर+ष्यञ्] =आतुरता।

आतृप्त—वि० [सं० आ√तृप्+क्त] जो अच्छी तरह हुआ हो।

अव्य० [सं०] अच्छी तरह से तृप्त होकर। उदा०—पै पीवो आतृप्त ठिकाने मुनि तेहि ल्यावै।—रत्ना०।

आतोद्य—पुं० [सं० आ√तुद् (पीड़ित करना) +ण्यत्] पुरानी चाल का एक प्रकार का बाजा।

आत्त—भू० कृ० [सं० आ√दा (दान)+क्त] १. अपने ऊपर लिया हुआ। अंगीकृत। २. लिया हुआ। गृहीत। जैसे—आत्त प्रतिदान=ली हुई चीज लौटाना। ३. माना हुआ। स्वीकृत। ४. खिंचा या खींचा हुआ। आकृष्ट। ५. दूर किया, निकाला या हटाया हुआ। ६. चूर या भंग किया हुआ। जैसे—आत्तगर्व =जिसका गर्व चूर्ण किया गया हो। ७. अपमानित। तिरस्कृत। ८. हराया या हारा हुआ। पराजित।

आत्मंभरि—पुं० [सं० आत्मन्√भृ (भरण-पोषण)+इन्, नि० मुम्] १. जो केवल अपना पेट पालन करना जानता हो। उदरंभरि। २. स्वार्थी।

आत्म—वि० [सं० आत्मन्] १. स्वयं अपने व्यक्तित्व या अपनी आत्मा के चेतन स्वरूप या मन से संबंध रखनेवाला। जैसे—आत्म-जिज्ञासा, आत्म-दर्शन आदि। २. अपना। निज का। जैसे—आत्म-कथा, आत्म-परिचय आदि।

पुं० व्यक्ति का निजी चेतन तत्त्व या सत्ता जो समस्त बाह्य पदार्थों से अलग और भिन्न है। (सेल्फ) जैसे—आत्म-चेतना, आत्म-पुरुष आदि।

आत्मक—वि० [सं० आत्मन् से] [स्त्री० आत्मिका] १. आत्म से संबंध रखनेवाला। आत्मा-संबंधी। २. मय। युक्त। (यौगिक शब्दों के अंत में) जैसे—ध्वंसात्मक, व्यंग्यात्मक, हास्यात्मक आदि।

आत्म-कथा—स्त्री० [सं० प० त०] १. अपने संबंध में स्वयं कही या लिखी हुई बातें। २. साहित्य में ऐसी पुस्तक जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने जीवन की सभी मुख्य-मुख्य बातों का वर्णन किया हो। आत्म-चरित। (आटोबायोग्राफी)

आत्म-कहानी—स्त्री०=आत्म-कथा।

आत्म-काम—वि० [सं० आत्मन्√कम् (चाहना)+णिङ्+अण्] [स्त्री० आत्म कामा] १. अपने संबंध में अथवा आत्मा के संबंध में सब बातें जानने की कामना करनेवाला। २. स्वार्थी। मतलबी।

आत्मकीय—वि० [सं० आत्मन्+क+छ–ईय] आत्म या आत्मा के प्रति अनुराग रखनेवाला। २. जिसपर अपना अधिकार हो। अपना। निजी। ३. दे० 'आत्म'।

आत्म-गत—वि० [सं० द्वि० त०] १. जो अपने (व्यक्तित्व) में आया या हुआ हो या अपने (आत्मा) से संबंध रखता हो। अपनी आत्मा में आया या मिला हुआ। २. अपने आप में होनेवाला। ३. अध्यात्म और दर्शन में, जो कर्त्ता या विचारक के आत्म (चेतना या मन) में ही उत्पन्न हुआ हो अथवा उससे संबंध रखता हो; बाह्य तत्त्वों या भौतिक पदार्थों से संबद्ध न हो। 'पर-गत' का विपर्याय। (सब्जेक्टिव) ४. कला और साहित्य में (अभिव्यंजना या कृति) जो किसी के आत्म (चेतना या मन) से ही उद्भूत हुई हो और उसकी अनुभूतियों तथा विचारों पर ही आश्रित रहकर उन्हें प्रदर्शित करती हो, बाह्य पदार्थों पर आश्रित न हो। 'पर-गत' का विपर्याय। (सब्जेक्टिव)।

पुं० दे० 'स्वगत-कथन'।

आत्म-गुप्ता—स्त्री० [सं० तृ० त०] १. केवाँच। कौंछ। २. शतावर।

आत्म-गौरव—पुं० [सं० स० त०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का ध्यान। आत्म-संमान। स्वाभिमान। (सेल्फ-रेस्पेक्ट)

आत्म-घात—पुं० [सं० प० त०] [वि० आत्मघाती] १. स्वयं अपनी हत्या करना। आत्म-हत्या। २. स्वयं कोई ऐसा काम करना, जिससे अपनी ही बहुत अधिक हानि हो।

आत्म-घाती (तिन्)—वि० [सं० आत्मन्√हन् (हिंसा)+णिनि] १. अपने प्राण आप देने या अपनी हत्या करनेवाला। २. स्वयं अपनी ही बहुत बड़ी हानि करनेवाला।

आत्म-घोष—वि० [सं० आत्मन्√घुष् (शब्द करना)+णिच्+अच्] अपनी प्रशंसा आप करनेवाला।

पुं० [प० त०] १. अपने संबंध में बढ़-बढ़कर बातें करना। २. कौआ। ३. मुरगा।

आत्म-चक्र—पुं० [प० त०] दे० 'आत्मायन'।

आत्म-चरित—पुं० [प० त०] किसी का वह जीवन-चरित जो उसने स्वयं लिखा हो। (ऑटोबायोग्राफी)

आत्म-चेतना—स्त्री० [प० त०] दर्शन और मनोविज्ञान में वह स्थिति जिसमें किसी प्रकार की अनुभूति होनेपर उसके साथ ही इस बात की भी चेतना या ज्ञान होता है कि हमें यह अनुभूति हो रही है।

आत्मज—वि० [सं० आत्मन्√जन् (उत्पन्न होना) +ड] अपने से या अपने द्वारा उत्पन्न।

पुं० १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. कामदेव । ३. खून। रक्त।

आत्म-जात—वि० [पं० त०] =आत्मज।

आत्म-जिज्ञासा—स्त्री० [प० त०] [वि० आत्मजिज्ञासु] स्वयं अपने या अपनी आत्मा के संबंध में सब बातें जानने की इच्छा।

आत्मज्ञ—पुं० [सं० आत्मन्√ज्ञा (जानना)+क] अपने आपको अथवा अपनी आत्मा को जाननेवाला व्यक्ति।

आत्म-ज्ञान--पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में अथवा आत्मा के संबंध में होनेवाला ज्ञान। २. जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान। ३. ब्रह्म का साक्षात्कार।

आत्म-ज्ञानी (निन्)--पुं० [आत्म-ज्ञान+इनि] वह व्यक्ति जिसे आत्मज्ञान हुआ हो। आत्मा का स्वरूप जाननेवाला।

आत्म-तुष्टि--स्त्री० [ष० त०] १. अपने मन को होनेवाली तुष्टि और प्रसन्नता। २. आत्मज्ञान होने पर मिलनेवाला आनंद।

आत्म-त्याग--पुं० [ष० त०] परोपकार के लिए अपने स्वार्थ या हित का विचार बिलकुल छोड़ देना।

आत्म-दर्श--पुं० [ब० स०] दर्पण। शीशा।

आत्म-द्रोह--पुं० [ष० त०] स्वयं अपने साथ किया जानेवाला द्रोह या शत्रुता।

आत्म-द्रोही (हिन्)--पुं० [सं० आत्मद्रोह+इनि] [स्त्री० आत्म-द्रोहिणी] स्वयं अपने साथ द्रोह या शत्रुता (अपनी हानि) करनेवाला व्यक्ति।

आत्म-निर्णय--पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में स्वयं सब बातों का निर्णय या निश्चय करना। २. किसी देश के लोगों का अपनी राजकीय और राजनीतिक व्यवस्था स्वयं निश्चित करना। (सेल्फ डिटर्मिनेशन)

आत्म-निवेदन--पुं० [ष० त०] १. अपने आपको किसी के हाथ नम्रतापूर्वक सौंपना। आत्म-समर्पण। २. नवधा भक्तियों में से एक जिसमें भक्त अपने आपको पूरी तरह से इष्टदेव के चरणों में समर्पित कर देता है।

आत्म-निष्ठा--स्त्री० [ष० त०] =आत्मविश्वास।

आत्मनीन--पुं० [सं० आत्मन्+ख-ईन] पुत्र। बेटा।

आत्मनेपद--पुं० [अलुक् स०] १. संस्कृत व्याकरण में धातु में लगनेवाला एक प्रत्यय। २. क्रिया का वह रूप जो उसे उक्त प्रत्यय लगने पर प्राप्त होता है।

आत्म-पद--पुं० [ष० त०] १. वह अवस्था जिसमें आत्मा ब्रह्म के साथ मिलकर उसमें लीन हो जाती है। २. मोक्ष।

आत्म-पीड़न--पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में ऐसी प्रवृत्ति या रुचि जिसमे अपने आपको पीड़ित करके अथवा किसी के द्वारा पीड़ित कराके ही मनुष्य तृप्त या संतुष्ट होता है।

आत्म-प्रक्षेपण--पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में मानस की वह स्थिति जिसमें वह अपनी भावनाओं, वासनाओं, विचारों आदि का अनजाने में ही दूसरों पर आरोप करने लगता है अथवा दूसरों में उनका विकास, स्थिति आदि पाकर संतुष्ट और सुखी होता है।

आत्म-प्रत्यक्ष--पुं० [ष० त०] दर्शन और धर्म के क्षेत्र में, आत्मा के स्वरूप आदि का होनेवाला ज्ञान या परिचय।

आत्म-प्रलंबन--पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में, आत्मप्रक्षेपण का ही अधिक उन्नत या उदात्त रूप।

आत्म-प्रशंसा--स्त्री० [ष० त०] अपने मुँह से की जानेवाली अपनी प्रशंसा या बड़ाई।

आत्म-बल--पुं० [ष० त०] १. अपना या निजी बल। २. आत्मा में निहित बल या शक्ति। आत्मिक शक्ति।

आत्म-बोध--पुं० [ष० त०] अपने आप या अपनी आत्मा के संबंध में होनेवाला ज्ञान या बोध।

आत्म-भरित--वि० [तृ० त०] १. जो स्वयं भरा हुआ हो। २. जिसकी सब आवश्यकताएँ अपने भीतरी अंगों से ही पूरी हो जाती हों और जिसे बाहर से कुछ लेना न पड़ता हो। (सेल्फ कन्टेन्ड)

आत्म-भू--वि० [सं० आत्मन्√भू (होना)+क्विप्] १. जो अपनी देह या शरीर से उत्पन्न किया गया हो। २. जो आप ही या स्वतः उत्पन्न हुआ हो। आप से आप उत्पन्न होनेवाला।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव। ३. ब्रह्मा, विष्णु और शिव, जिनके संबंध में यह माना जाता है कि ये आप से आप उत्पन्न हुए थे।

आत्म-योनि--पुं० [ब० स०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। ४. कामदेव।

वि०=आत्मभू।

आत्म-रक्षक--वि० [ष० त०] [स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा आप करनेवाला।

आत्म-रक्षण--पुं० [ष० त०] अपनी रक्षा आप या स्वयं करना।

आत्म-रक्षा--स्त्री० [ष० त०] स्वयं की जानेवाली अपनी रक्षा।

आत्म-रत--वि० [स० त०] [भाव० आत्मरति] १. जो सदा अपने आप में लीन रहता हो; फलतः ब्रह्मज्ञानी। २. सदा अपना ही ध्यान रखनेवाला।

पुं० बड़ी इंद्रायन।

आत्म-रति--स्त्री० [स० त०] १. अपने आप में रत या लीन रहने की अवस्था या भाव। २. ऐसा आत्म-ज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) जो और किसी ओर ध्यान न जाने दे।

आत्म-वंचक--वि० [ष० त०] अपने आप को धोखा देनेवाला।

आत्मवाद--पुं० [ष० त०] दार्शनिक क्षेत्र की दो मुख्य धाराओं या भेदों में से एक जिसमें आत्मा की वास्तविक सत्ता मानी जाती है अथवा उसे अजर, अमर, अविकारी चेतन और सब बातों का साक्षी समझते हैं।

आत्मवादी (दिन्)--वि० [आत्मन्√वद् (बोलना)+णिनि] आत्मवाद-संबंधी। आत्मवाद का।

पुं० वह जो आत्मवाद का अनुयायी, पोषक या समर्थक हो।

आत्म-विक्रय--पुं० [ष० त०] [वि० आत्म-विक्रयी] १. स्वयं ही अपने आप को बेच डालना। २. धन लेकर अपने आप को पूरी तरह से किसी का अनुयायी या दास बनाना। ३. आत्म-सम्मान त्यागकर किसी के अधीन होना।

आत्मविक्रयी (यिन्)--वि० [सं० आत्म-विक्रय+इनि] १. अपने आप को स्वयं बेचनेवाला। २. धन लेकर दूसरों का अनुयायी या दास बननेवाला।

आत्म-विघटन--पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में मनुष्य की वह मानसिक स्थिति जिसमें वह किसी प्रकार के मानसिक द्वंद्व या संघर्ष के समय अपने अहं को अपने से भिन्न और स्वतंत्र वस्तु मानकर उसका अध्ययन, आलोचन, निरीक्षण या विश्लेषण करता है।

आत्म-विचय--पुं० [ष० त०] अपनी तलाशी या नंगा-झोली स्वयं देना।

आत्म-विचार--पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में अपने मन में कुछ सोचना। २. यह सोचना कि हमारा शरीर या आत्मा क्या है और परमात्मा से हमारा कैसा संबंध है।

आत्म-विद्--पुं० [सं० आत्म√विद् (जानना)+क्विप्] वह जो आत्मा और परमात्मा का स्वरूप पहचानता हो। ब्रह्मज्ञानी।

आत्म-विद्या--स्त्री० [ष० त०] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान करानेवाली विद्या। अध्यात्मविद्या। ब्रह्मविद्या।

आत्म-विश्वास--पुं० [स० त०] अपने कार्य, मत, शक्ति, सिद्धांत आदि की उपयुक्तता या सत्यता के संबंध में होनेवाला दृढ़ निश्चय। अपने पर भरोसा होना। (सेल्फ-कॉन्फिडेन्स)

आत्म-विस्मृत--वि० [ब० स०] [भाव० आत्म-विस्मृति] जो किसी मनोविकार की प्रबलता के कारण अपने आपको भूल गया हो।

आत्म-विस्मृति--स्त्री० [ष० त०] किसी ध्यान में मग्न या लीन रहने के कारण अपने आपको बिलकुल भूल जाना। आत्म-विस्मृत होने की अवस्था या भाव।

आत्म-श्लाघा--स्त्री० [ष० त०] [वि० आत्मश्लाघी] अपने मुँह से की जानेवाली अपनी प्रशंसा। आत्म-प्रशंसा। (सेल्फ-प्रेज़)

आत्मश्लाघी (घिन्)--पुं० [सं० आत्म-श्लाघा+इनि] वह जो अपनी प्रशंसा स्वयं करे। आत्म-प्रशंसक।

आत्म-संभव--वि० [ब० स०] [स्त्री० आत्मसंभवा] १. अपने शरीर से उत्पन्न। २. दे० 'आत्मभू'।

पुं० पुत्र। बेटा।

आत्म-संयम--पुं० [ष० त०] अपनी अनुचित इच्छाओं, वासनाओं आदि को दबाकर ठीक मार्ग पर चलना और नीति-संगत आचरण करना।

आत्म-संवेदन--पुं० [ष० त०] अपनी आत्मा का अनुभव या ज्ञान। आत्म-बोध।

आत्म-संस्कार--पुं० [ष० त०] स्वयं किया जानेवाला अपना संस्कार या सुधार।

आत्म-समर्पण--पुं० [ष० त०] १. अपने आपको किसी के हाथ सौंपना। पूरी तरह से किसी के अधीन या वश में हो जाना। २. अपने आपको किसी काम में, अपनी सारी शक्तियों सहित लगा देना। ३. युद्ध, विवाद आदि अपनी ओर से बंद करके अपने आपको प्रतिपक्षी या शत्रु के हाथ में सौंपना। (सरेन्डर)

आत्म-सम्मान--पुं० [ष० त०] निजी या व्यक्तिगत सम्मान।

आत्म-साक्षी (क्षिन्)--पुं० [ष० त०] जीवों का ब्रह्म।

आत्मसात्--वि० [सं० आत्मन्+साति] जो पूरी तरह से अपने अंतर्गत कर लिया गया हो। अपने आप में लीन किया, मिलाया या समाया हुआ।

आत्म-सिद्ध--वि० [तृ० त०] १. (बात) जो आप ही सिद्ध हो। जिसे सिद्ध करने की आवश्यकता न हो। २. (कार्य) जिसे किसी ने स्वयं सिद्ध किया हो।

आत्म-सिद्धि--स्त्री० [ष० त०] १. आत्मा तथा परमात्मा का ठीक और पूरा ज्ञान। २. मोक्ष।

आत्म-स्तुति--स्त्री० [ष० त०]=आत्म-प्रशंसा।

आत्म-हत्या--स्त्री० [ष० त०] १. अपने आपको स्वयं मार डालना। अपने प्राण जान-बूझकर अपने हाथों नष्ट करना। आत्म-घात। (सूइसाइड)

आत्महन्--पुं० [सं० आत्मन्√हन्+क्विप्] वह जो अपनी हत्या स्वयं करे।

आत्म-हिंसा--स्त्री०=आत्महत्या।

आत्मा--स्त्री० [सं०√अत् (सततगमन)+मनिण्] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १. एक अविनाशी अतींद्रिय और अभौतिक शक्ति जो काया या शरीर में रहने पर उसे जीवित रखती और उससे सब काम करवाती है और जिसके शरीर में न रहने पर वह अचेष्ट, निष्क्रिय तथा मृत हो जाता है। (सोल)

मुहा०--**आत्मा ठंढी होना**=इच्छा पूरी होने पर पूर्ण तृप्ति या संतोष होना।

२. किसी वस्तु आदि का गूढ़, मूल तथा सार भाग। (स्पिरिट) जैसे--काव्य की आत्मा, शब्द की आत्मा। ३. चित्त। ४. बुद्धि। ५. मन। ६. अहंकार। ७. ब्रह्म। ८. सूर्य। ९. अग्नि। १०. पवन। वायु। हवा। ११. वस्तु या व्यक्ति का धर्म या स्वभाव।

आत्माधिक--वि० [सं० आत्म-अधिक, पं० त०] १. जो अपने आप (या शरीर) से भी बढ़कर प्रिय हो। २. वक्ता के व्यक्तित्व से भी बढ़कर होनेवाला।

आत्माधीन--वि० [सं० आत्म-अधीन, ष० त०] जो स्वयं अपने वश में हो।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. विदूषक। मसखरा।

आत्मानंद--पुं० [सं० आत्म-आनंद, ष० त०] वह आनंद या सुख जो अपनी आत्मा का ज्ञान और उसमें लीन होने पर प्राप्त होता है। परमानंद।

आत्मानुभव--पुं० [सं० आत्म-अनुभव, ष० त०] १. स्वयं प्राप्त किया हुआ अनुभव। २. अपनी आत्मा के अस्तित्व तथा स्वरूप के संबंध में होनेवाला अनुभव या ज्ञान।

आत्मानुभूति--स्त्री० [सं० आत्म-अनुभूति, ष० त०] १. आत्मा के स्वरूप आदि के संबंध में होनेवाला अनुभव या ज्ञान। २. अपने आपको होनेवाली अनुभूति।

आत्मानुरूप--पुं० [सं० आत्म-अनुरूप, ष० त०] जो गुण, जाति आदि के विचार से अपने अनुरूप या अपने जैसा हो।

आत्माभिमान--पुं० [सं० आत्म-अभिमान, ष० त०] [वि० आत्माभिमानी] अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान या विचार। अपने मान-अपमान का ध्यान।

आत्माभिमानी (निन्)--पुं० [सं० आत्म-अभिमानी, ष० त०] [स्त्री० आत्माभिमानिनी] वह जिसे अपनी प्रतिष्ठा और उसकी रक्षा का सदा पूरा ध्यान रहता हो।

आत्माभिमुख--वि० [सं० आत्म-अभिमुख, ष० त०] जो आत्मा की ओर अभिमुख हो। अंतर्मुख।

आत्मायन--पुं० [सं० आत्म-अयन, ष० त०] १. आत्माओं के आने-जाने का मार्ग। २. प्रेतात्मवादियों की वह बैठक या चक्र जिसमें परलोक-गत आत्माओं से संपर्क स्थापित करके प्रेतात्मवाद के रहस्य जाने जाते हैं। आत्म-चक्र। (सिएंस)

आत्माराम--पुं० [सं० आत्म-आराम, ब० स०] १. अपनी आत्मा में रमण करने या उसमें लीन रहनेवाला अथवा आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २. आत्मा या जीव रूपी व्यक्ति। ३. स्वयं अपनी आत्मा या व्यक्तित्व के संबंध में प्रयुक्त होनेवाली संज्ञा। जैसे--हमारे आत्माराम तो यह बात नहीं मानते। ४. तोते का लोक-प्रचलित नाम।

आत्मार्थी (र्थिन्)--वि० [सं० आत्म-अर्थिन्, ष० त०] [स्त्री० आत्मार्थिनी] १. अपना ही भला चाहनेवाला। २. स्वार्थी।

आत्म-ज्ञान—पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में अथवा आत्मा के संबंध में होनेवाला ज्ञान। २. जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान। ३. ब्रह्म का साक्षात्कार।

आत्म-ज्ञानी (निन्)—पुं० [आत्म-ज्ञान+इनि] वह व्यक्ति जिसे आत्मज्ञान हुआ हो। आत्मा का स्वरूप जाननेवाला।

आत्म-तुष्टि—स्त्री० [ष० त०] १. अपने मन को होनेवाली तुष्टि और प्रसन्नता। २. आत्मज्ञान होने पर मिलनेवाला आनंद।

आत्म-त्याग—पुं० [ष० त०] परोपकार के लिए अपने स्वार्थ या हित का विचार बिलकुल छोड़ देना।

आत्म-दर्श—पुं० [ब० स०] दर्पण। शीशा।

आत्म-द्रोह—पुं० [ष० त०] स्वयं अपने साथ किया जानेवाला द्रोह या शत्रुता।

आत्म-द्रोही (हिन्)—पुं० [सं० आत्मद्रोह+इनि] [स्त्री० आत्म-द्रोहिणी] स्वयं अपने साथ द्रोह या शत्रुता (अपनी हानि) करनेवाला व्यक्ति।

आत्म-निर्णय—पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में स्वयं सब बातों का निर्णय या निश्चय करना। २. किसी देश के लोगों का अपनी राजकीय और राजनीतिक व्यवस्था स्वयं निश्चित करना। (सेल्फ डिटर्मिनेशन)

आत्म-निवेदन—पुं० [ष० त०] १. अपने आपको किसी के हाथ नम्रतापूर्वक सौंपना। आत्म-समर्पण। २. नवधा भक्तियों में से एक जिसमें भक्त अपने आपको पूरी तरह से इष्टदेव के चरणों में समर्पित कर देता है।

आत्म-निष्ठा—स्त्री० [ष० त०] =आत्मविश्वास।

आत्मनीन—पुं० [सं० आत्मन्+ख–ईन] पुत्र। बेटा।

आत्मनेपद—पुं० [अलुक् स०] १. संस्कृत व्याकरण में धातु में लगनेवाला एक प्रत्यय। २. क्रिया का वह रूप जो उसे उक्त प्रत्यय लगने पर प्राप्त होता है।

आत्म-पद—पुं० [ष० त०] १. वह अवस्था जिसमें आत्मा ब्रह्म के साथ मिलकर उसमें लीन हो जाती है। २. मोक्ष।

आत्म-पीड़न—पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में ऐसी प्रवृत्ति या रुचि जिसमें अपने आपको पीड़ित करके अथवा किसी के द्वारा पीड़ित कराके ही मनुष्य तृप्त या संतुष्ट होता है।

आत्म-प्रक्षेपण—पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में मानस की वह स्थिति जिसमें वह अपनी भावनाओं, वासनाओं, विचारों आदि का अनजाने में ही दूसरों पर आरोप करने लगता है अथवा दूसरों में उनका विकास, स्थिति आदि पाकर संतुष्ट और सुखी होता है।

आत्म-प्रत्यक्ष—पुं० [ष० त०] दर्शन और धर्म के क्षेत्र में, आत्मा के स्वरूप आदि का होनेवाला ज्ञान या परिचय।

आत्म-प्रलंयन—पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में, आत्मप्रक्षेपण का ही अधिक उन्नत या उदात्त रूप।

आत्म-प्रशंसा—स्त्री० [ष० त०] अपने मुँह से की जानेवाली अपनी प्रशंसा या बड़ाई।

आत्म-बल—पुं० [ष० त०] १. अपना या निजी बल। २. आत्मा में निहित बल या शक्ति। आत्मिक शक्ति।

आत्म-बोध—पुं० [ष० त०] अपने आप या अपनी आत्मा के संबंध में होनेवाला ज्ञान या बोध।

आत्म-भरित—वि० [तृ० त०] १. जो स्वयं भरा हुआ हो। २. जिसकी सब आवश्यकताएँ अपने भीतरी अंगों से ही पूरी हो जाती हों और जिसे बाहर से कुछ लेना न पड़ता हो। (सेल्फ कन्टेन्ड)

आत्म-भू—वि० [सं० आत्मन्√भू (होना)+क्विप्] १. जो अपनी देह या शरीर से उत्पन्न किया गया हो। २. जो आप ही या स्वतः उत्पन्न हुआ हो। आप से आप उत्पन्न होनेवाला।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव। ३. ब्रह्मा, विष्णु और शिव, जिनके संबंध में यह माना जाता है कि ये आप से आप उत्पन्न हुए थे।

आत्म-योनि—पुं० [ब० स०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। ४. कामदेव।

वि०=आत्मभू।

आत्म-रक्षक—वि० [ष० त०] [स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा आप करनेवाला।

आत्म-रक्षण—पुं० [ष० त०] अपनी रक्षा आप या स्वयं करना।

आत्म-रक्षा—स्त्री० [ष० त०] स्वयं की जानेवाली अपनी रक्षा।

आत्म-रत—वि० [स० त०] [भाव० आत्मरति] १. जो सदा अपने आप में लीन रहता हो; फलतः ब्रह्मज्ञानी। २. सदा अपना ही ध्यान रखनेवाला।

पुं० बड़ी इंद्रायन।

आत्म-रति—स्त्री० [स० त०] १. अपने आप में रत या लीन रहने की अवस्था या भाव। २. ऐसा आत्म-ज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) जो और किसी ओर ध्यान न जाने दे।

आत्म-वंचक—वि० [ष० त०] अपने आप को धोखा देनेवाला।

आत्मवाद—पुं० [ष० त०] दार्शनिक क्षेत्र की दो मुख्य धाराओं या भेदों में से एक जिसमें आत्मा की वास्तविक सत्ता मानी जाती है अथवा उसे अजर, अमर, अविकारी चेतन और सब बातों का साक्षी समझते हैं।

आत्मवादी (दिन्)—वि० [आत्मन्√वद् (बोलना)+णिनि] आत्मवाद-संबंधी। आत्मवाद का।

पुं० वह जो आत्मवाद का अनुयायी, पोषक या समर्थक हो।

आत्म-विक्रय—पुं० [ष० त०] [वि० आत्म-विक्रयी] १. स्वयं ही अपने आप को बेच डालना। २. धन लेकर अपने आप को पूरी तरह से किसी का अनुयायी या दास बनाना। ३. आत्म-सम्मान त्यागकर किसी के अधीन होना।

आत्मविक्रयी (यिन्)—वि० [सं० आत्म-विक्रय+इनि] १. अपने आप को स्वयं बेचनेवाला। २. धन लेकर दूसरों का अनुयायी या दास बननेवाला।

आत्म-विघटन—पुं० [ष० त०] आधुनिक मनोविज्ञान में मनुष्य की वह मानसिक स्थिति जिसमें वह किसी प्रकार के मानसिक द्वंद्व या संघर्ष के समय अपने अहं को अपने से भिन्न और स्वतंत्र वस्तु मानकर उसका अध्ययन, आलोचन, निरीक्षण या विश्लेषण करता है।

आत्म-विचय—पुं० [ष० त०] अपनी तलाशी या नंगा-झोली स्वयं देना।

आत्म-विचार—पुं० [ष० त०] १. अपने संबंध में अपने मन में कुछ सोचना। २. यह सोचना कि हमारा शरीर या आत्मा क्या है और परमात्मा से हमारा कैसा संबंध है।

आत्म-विद्—पुं० [सं० आत्म√विद् (जानना)+क्विप्] वह जो आत्मा और परमात्मा का स्वरूप पहचानता हो। ब्रह्मज्ञानी।

आत्म-विद्या--स्त्री० [ष० त०] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान करानेवाली विद्या। अध्यात्मविद्या। ब्रह्मविद्या।

आत्म-विश्वास--पुं० [ष० त०] अपने कार्य, मत, शक्ति, सिद्धांत आदि की उपयुक्तता या सत्यता के संबंध में होनेवाला दृढ़ निश्चय। अपने पर भरोसा होना। (सेल्फ-कॉन्फिडेन्स)

आत्म-विस्मृत--वि० [ब० स०] [भाव० आत्म-विस्मृति] जो किसी मनोविकार की प्रबलता के कारण अपने आपको भूल गया हो।

आत्म-विस्मृति--स्त्री० [ष० त०] किसी ध्यान में मग्न या लीन रहने के कारण अपने आपको बिलकुल भूल जाना। आत्म-विस्मृत होने की अवस्था या भाव।

आत्म-श्लाघा--स्त्री० [ष० त०] [वि० आत्मश्लाघी] अपने मुँह से की जानेवाली अपनी प्रशंसा। आत्म-प्रशंसा। (सेल्फ-प्रेज)

आत्मश्लाघी (घिन्)--पुं० [सं० आत्म-श्लाघा+इनि] वह जो अपनी प्रशंसा स्वयं करे। आत्म-प्रशंसक।

आत्म-संभव--वि० [ब० स०] [स्त्री० आत्मसंभवा] १. अपने शरीर से उत्पन्न। २. दे० 'आत्मभू'।

पुं० पुत्र। बेटा।

आत्म-संयम--पुं० [ष० त०] अपनी अनुचित इच्छाओं, वासनाओं आदि को दबाकर ठीक मार्ग पर चलना और नीति-संगत आचरण करना।

आत्म-संवेदन--पुं० [ष० त०] अपनी आत्मा का अनुभव या ज्ञान। आत्म-बोध।

आत्म-संस्कार--पुं० [ष० त०] स्वयं किया जानेवाला अपना संस्कार या सुधार।

आत्म-समर्पण--पुं० [ष० त०] १. अपने आपको किसी के हाथ सौंपना। पूरी तरह से किसी के अधीन या वश में हो जाना। २. अपने आपको किसी काम में, अपनी सारी शक्तियों सहित लगा देना। ३. युद्ध, विवाद आदि अपनी ओर से बंद करके अपने आपको प्रतिपक्षी या शत्रु के हाथ में सौंपना। (सरेन्डर)

आत्म-सम्मान--पुं० [ष० त०] निजी या व्यक्तिगत सम्मान।

आत्म-साक्षी (क्षिन्)--पुं० [ष० त०] जीवों का ब्रह्म।

आत्मसात्--वि० [सं० आत्मन्+साति] जो पूरी तरह से अपने अंतर्गत कर लिया गया हो। अपने आप में लीन किया, मिलाया या समाया हुआ।

आत्म-सिद्ध--वि० [तृ० त०] १. (बात) जो आप ही सिद्ध हो। जिसे सिद्ध करने की आवश्यकता न हो। २. (कार्य) जिसे किसी ने स्वयं सिद्ध किया हो।

आत्म-सिद्धि--स्त्री० [ष० त०] १. आत्मा तथा परमात्मा का ठीक और पूरा ज्ञान। २. मोक्ष।

आत्म-स्तुति--स्त्री० [ष० त०]=आत्म-प्रशंसा।

आत्म-हत्या--स्त्री० [ष० त०] १. अपने आपको स्वयं मार डालना। अपने प्राण जान-बूझकर अपने हाथों नष्ट करना। आत्म-घात। (सूइसाइड)

आत्महन्--पुं० [सं० आत्मन्√हन्+क्विप्] वह जो अपनी हत्या स्वयं करे।

आत्म-हिंसा--स्त्री०=आत्महत्या।

आत्मा--स्त्री० [सं०√अत् (सततगमन)+मनिण्] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १. एक अविनाशी अतींद्रिय और अभौतिक शक्ति जो काया या शरीर में रहने पर उसे जीवित रखती और उससे सब काम करवाती है और जिसके शरीर में न रहने पर वह अचेष्ट, निष्क्रिय तथा मृत हो जाता है। (सोल)

मुहा०--**आत्मा ठंढी होना**=इच्छा पूरी होने पर पूर्ण तृप्ति या संतोष होना।

२. किसी वस्तु आदि का गूढ़, मूल तथा सार भाग। (स्पिरिट) जैसे--काव्य की आत्मा, शब्द की आत्मा। ३. चित्त। ४. बुद्धि। ५. मन। ६. अहंकार। ७. ब्रह्म। ८. सूर्य। ९. अग्नि। १०. पवन। वायु। हवा। ११. वस्तु या व्यक्ति का धर्म या स्वभाव।

आत्माधिक--वि० [सं० आत्म-अधिक, पं० त०] १. जो अपने आप (या शरीर) से भी बढ़कर प्रिय हो। २. वक्ता के व्यक्तित्व से भी बढ़कर होनेवाला।

आत्माधीन--वि० [सं० आत्म-अधीन, ष० त०] जो स्वयं अपने वश में हो।

पुं० १. पुत्र। बेटा। २. विदूषक। मसखरा।

आत्मानंद--पुं० [सं० आत्म-आनंद, ष० त०] वह आनंद या सुख जो अपनी आत्मा का ज्ञान और उसमें लीन होने पर प्राप्त होता है। परमानंद।

आत्मानुभव--पुं० [सं० आत्म-अनुभव, ष० त०] १. स्वयं प्राप्त किया हुआ अनुभव। २. अपनी आत्मा के अस्तित्व तथा स्वरूप के संबंध में होनेवाला अनुभव या ज्ञान।

आत्मानुभूति--स्त्री० [सं० आत्म-अनुभूति, ष० त०] १. आत्मा के स्वरूप आदि के संबंध में होनेवाला अनुभव या ज्ञान। २. अपने आपको होनेवाली अनुभूति।

आत्मानुरूप--पुं० [सं० आत्म-अनुरूप, ष० त०] जो गुण, जाति आदि के विचार से अपने अनुरूप या अपने जैसा हो।

आत्माभिमान--पुं० [सं० आत्म-अभिमान, ष० त०] [वि० आत्माभिमानी] अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान या विचार। अपने मान-अपमान का ध्यान।

आत्माभिमानी (निन्)--पुं० [सं० आत्म-अभिमानी, ष० त०] [स्त्री० आत्माभिमानिनी] वह जिसे अपनी प्रतिष्ठा और उसकी रक्षा का सदा पूरा ध्यान रहता हो।

आत्माभिमुख--वि० [सं० आत्म-अभिमुख, ष० त०] जो आत्मा की ओर अभिमुख हो। अंतर्मुख।

आत्मायन--पुं० [सं० आत्म-अयन, ष० त०] १. आत्माओं के आने-जाने का मार्ग। २. प्रेतात्मवादियों की वह बैठक या चक्र जिसमें परलोक-गत आत्माओं से संपर्क स्थापित करके प्रेतात्मवाद के रहस्य जाने जाते हैं। आत्म-चक्र। (सिएंस)

आत्माराम--पुं० [सं० आत्म-आराम, ब० स०] १. अपनी आत्मा में रमण करने या उसमें लीन रहनेवाला अथवा आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २. आत्मा या जीव रूपी व्यक्ति। ३. स्वयं अपनी आत्मा या व्यक्तित्व के संबंध में प्रयुक्त होनेवाली संज्ञा। जैसे--हमारे आत्माराम तो यह बात नहीं मानते। ४. तोते का लोक-प्रचलित नाम।

आत्मार्थी (र्थिन्)--वि० [सं० आत्म-अर्थिन्, ष० त०] [स्त्री० आत्मार्थिनी] १. अपना ही भला चाहनेवाला। २. स्वार्थी।

आत्मार्पण—पुं० [सं० आत्म-अर्पण, च० त०] १. दे० 'आत्म-निवेदन'। २. दे० 'आत्म-समर्पण'।

आत्मावलंबन—पुं० [सं० आत्म-अवलंबन, ष० त०] [वि० आत्मावलंबी] दूसरे के आसरे न रहकर सदा अपने-आप पर पूरा भरोसा रखने की क्रिया या भाव।

आत्मावलंबी (बिन्)—पुं० [सं० आत्म-अवलंब, ष० त०,+इनि] आत्मावलंबन करने अर्थात् अपने भरोसे सब काम करनेवाला व्यक्ति।

आत्माश्रय—पुं० [आत्म-आश्रय, ष० त०] अपनी बुद्धि, योग्यता या शक्ति पर अथवा अपनी आत्मा का ही आसरा या भरोसा होना।

आत्मिक—वि० [सं० आत्मन्+ठञ्—इक] [स्त्री० आत्मिका] १. आत्मा-संबंधी। आत्मा का। २. अपना। निजी। ३. मानसिक। ४. बहुत आत्मीय या समीपी। (इन्टिमेट)

आत्मिकता—स्त्री० [आत्मिक+तल्—टाप्] १. आत्मिक होने की अवस्था या भाव। २. दे० 'आत्मीयता'।

आत्मिकी—स्त्री० [सं० आत्मा से] वह विद्या या शास्त्र जिसमें आत्माओं के क्रिया-कलापों, उनके संदेशों आदि का अध्ययन होता है। (साइकिक)

आत्मिकीय—वि० [हिं० आत्मिकी] आत्मिकी से संबंधित। आत्मिकी का।

आत्मीकृत—भू० कृ० [सं० आत्मन्+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+क्त] अपनाया हुआ। अंगीकृत।

आत्मीभाव—पुं० [सं० आत्मन्+च्वि, ईत्व√भू (होना)+घञ्] आत्मा का परमात्मा में विलीन होना।

आत्मीय—वि० [सं० आत्मन् +ईय] [स्त्री० आत्मीया] १. आत्म या निज का। अपना। २. आंतरिक। घनिष्ठ। आत्मिक। (इन्टिमेट)

पुं० इष्ट-मित्र और बहुत पास के संबंधी जिनके साथ अपनायत का व्यवहार होता हो।

आत्मीयता—स्त्री० [सं० आत्मीय+तल्—टाप्] अपनापन। स्नेह-संबंध। आत्मीय होने की अवस्था या भाव। (इन्टिमेसी)

आत्मोक्ति—स्त्री० [सं० आत्म-उक्ति, स० त०] अभिनय आदि के समय किसी पात्र का आपसे आप, बिना किसी को उद्दिष्ट किये, कोई बात कहना। स्वगत कथन। (मॉनोलोग)

आत्मोत्सर्ग—पुं० [सं० आत्म-उत्सर्ग, ष० त०] दूसरे के हित के लिए अपने आपको पूरी तरह से लगा देना। आत्मबलिदान।

आत्मोदय—पुं० [सं० आत्म-उदय, ष० त०] अपना अभ्युदय या उत्थान।

आत्मोद्धार—पुं० [सं० आत्म-उद्धार, ष० त०] १. अपनी आत्मा को संसार के बंधनों से मुक्त करके मोक्ष का अधिकारी बनना। २. स्वयं किया जानेवाला अपना उद्धार या छुटकारा।

आत्मोद्भव—पुं० [सं० आत्म-उद्भव, ब० स०] १. पुत्र। २. कामदेव। वि०=आत्मभू।

आत्मोन्नति—स्त्री० [सं० आत्म-उन्नति, ष० त०] १. आत्मा की उन्नति। २. स्वयं की जानेवाली अपनी भौतिक उन्नति।

आत्मोपजीवी (विन्)—पुं० [सं० आत्मन्-उप√जीव् (जीना)+णिनि] वह जो अपने परिश्रम से जीविका उपार्जित करता हो।

आत्मोपम—वि० [सं० आत्म-उपमा, ब० स०] अपने जैसा। अपने समान। जैसे—सबको आत्मोपम समझना ही बुद्धिमानों का काम है।

पुं० पुत्र।

आत्मौपम्य—पुं० [सं० आत्म-औपम्य, ष० त०] १. आत्मोपम का भाव। २. सबको अपने जैसा मानना।

आत्यंतिक—वि० [सं० अत्यंत+ठञ्—इक] [स्त्री० आत्यंतिकी] १. अत्यंत संबंधी। २. अत्यंत या बहुत अधिक मात्रा में होनेवाला। हद दरजे का। ३. अत्यंत या चरम सीमा तक पहुँचा हुआ। ४. अनंत। असीम। ५. सार्वकालिक।

आत्ययिक—वि० [सं० अत्यय+ठक्—इक] १. अत्यय संबंधी या अत्यय के रूप में होनेवाला। २. हानिकारक। ३. अशुभ। ४. दे० 'आपातिक'। (एमर्जेन्ट)

आत्रेय—वि० [सं० अत्रि+ढक्—एय] १. अत्रि-संबंधी। २. अत्रि ऋषि के गोत्र का।

पुं० १. अत्रि ऋषि का वंशज। २. अत्रि के पुत्र दत्त, दुर्वासा और चंद्रमा। ३. आत्रेयी नदी के आस-पास का प्रदेश (आधुनिक दीनाजपुर)।

आत्रेयायण—पुं० [सं० आत्रेय+फक्—आयन] आत्रेय का वंशज।

आत्रेयी—स्त्री० [सं० आत्रेय+ङीप्] १. अत्रि वंश की एक तपस्विनी स्त्री जो वेदांत की अच्छी ज्ञाता थी। २. एक प्राचीन नदी जो आज-कल के दीनाजपुर में है। ३. ऋतुमती या रजस्वला स्त्री।

आय*—पुं० [सं० अर्थ] १. अर्थ। मतलब। माने। २. अभिप्राय। आशय। ३. गूढ़ अर्थवाली बात। उदा०—गीता-वेद भागवत में प्रभु, यों बोले हैं आय।—सूर।

अव्य० लिए। वास्ते।

आयन—पुं० [सं० अस्तमन] अस्त होने की क्रिया या भाव।

आयना*—अ० [सं० अस्=होना, सं० अस्ति, प्रा० अत्थि] अस्तित्व से युक्त या वर्त्तमान होना। उदा०—यह जग कहा जो अथहि न आथी।—जायसी।

अ० [सं० अस्तमन] अस्त होना। डूबना। उदा०—गहथा आथा गहयो ऊगै।—भड्डरी।

आयर्वण—पुं० [सं० अथर्वन्+अण्] १. अथर्व वेद का ज्ञाता ब्राह्मण। २. अथर्व वेद में बतलाये हुए कर्म या कृत्य। ३. अथर्वा ऋषि का वंशज या उनके गोत्र का व्यक्ति। ४. पुरोहित।

आथि—स्त्री० [सं० अस्ति, प्रा० अत्थि, आथि] अस्तित्व। उदा०—एहि जग काह जो आथि बिआथी।—जायसी।

आथी—स्त्री० [सं० स्थातृ, हिं० थाती] १. पूँजी। थाती। उदा०—साथी आथि निजाथि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी। २. धन-संपत्ति। ३. धन-संपन्नता।

स्त्री० [सं० अस्ति] स्थिरता।

*अ०=है।

आदंश—पुं० [सं० आ√दंश् (डसना)+घञ्] १. दाँत से काटना। २. दाँत से काटने पर होनेवाला घाव।

आद—वि० [सं० आ√दा (दान)+क] १. ग्रहण या प्राप्त करनेवाला। २. समस्त पदों के अंत में, प्रत्यय के रूप में खाने या खा जानेवाला। जैसे—व्यालाद=गरुड़।

†स्त्री०=याद। (राज०)

स्त्री०=आदी (अदरक)।

आदत—स्त्री० [अ०] १. अभ्यास। २. टेव। बान। ३. प्रकृति। स्वभाव।

आदत्त--वि० [सं० आ√दा+क्त] १. ग्रहण किया या लिया हुआ। गृहीत। २. दे० 'आत्त'।

आदम--पुं० [अ०] १. ईसाइयों, मुसलमानों, यहूदियों आदि के अनुसार वह पहला व्यक्ति (हिन्दुओं के मनु का सम-कक्ष) जिससे सारी मानव जाति उत्पन्न हुई है। सृष्टि का आदि मनुष्य या व्यक्ति। २. आदम की संतान, अर्थात् आदमी, मनुष्य।

आदम-क़द--पुं० [अ०+फा०] जो ऊँचाई में साधारणतः मनुष्य की ऊँचाई के बराबर हो। जैसे—आदम-कद पेड़, आदम-कद शीशा आदि।

आदम-खोर--वि० [अ०+फा०] आदमी या मनुष्य को अथवा उसका मास खानेवाला। नर-भक्षी।

आदमजाद--पुं० [अ०+फा०] आदम की संतान। आदमी। मनुष्य।

आदमियत--स्त्री०=आदमीयत।

आदमी--पुं० [अ०] [भाव० आदमीयत] १. आदम के वंशज या संतान। मनुष्य। मानव। जैसे—सड़क पर हजारों आदमी इकट्ठे हो गये। २. प्रौढ या वयस्क मनुष्य (बालक और स्त्री से भिन्न)। जैसे—अभी तक इस संबंध में तीन आदमी पकड़े गये हैं। ३. समझदार और होशियार व्यक्ति। जैसे—अब लड़कपन छोड़कर आदमी की तरह बातें करना सीखो। ४. किसी विशिष्ट कार्य के लिए नियुक्त किया हुआ व्यक्ति। जैसे—(क) उनका आदमी आकर यह पुस्तक ले जायगा। (ख) काम जल्दी कराना हो तो चार आदमी और रख लो। ५. विवाहिता स्त्री के विचार से, उसका पति। स्वामी। जैसे—मजदूरनी तो आ गई पर उसका आदमी अभी नहीं आया।

आदमीयत--स्त्री० [अ०] १. आदमी होने की अवस्था या भाव। मनुष्यत्व। २. भले आदमियों का-सा आचरण और व्यवहार। शिष्टता। सभ्यता।

आदर--पुं० [सं० आ√दृ (सम्मान करना)+अप्] १. किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा या सम्मान का वह पूज्य भाव जो दूसरों के मन मे रहता है। २. उक्त के विचार से किया जानेवाला सत्कार। ३. किसी के प्रति अनुराग होने के कारण किया जानेवाला उसका सत्कार और सम्मान। ४. बच्चो के साथ किया जानेवाला दुलार। (पूरब)

†पुं०=आर्द्रा (नक्षत्र)।

†वि०=आर्द्र (गीला या तर)।

आदरण--पु० [सं० आ√दृ+ल्युट्—अन] अनुराग, श्रद्धा आदि के कारण किसी का आदर या सत्कार करना।

आदरणीय--वि० [सं० आ√दृ+अनीयर] [स्त्री० आदरणीया] जो आदर प्राप्त करने का अधिकारी हो। आदर किये जाने के योग्य।

आदरना*--स० [सं० आदरण] १. आदर या सत्कार करना। २. इज्जत या सम्मान करना।

आदर-भाव--पु० [सं० आदर-भाव, ष० त०] किसी का किया जानेवाला आदर और सत्कार। आव-भगत।

आदरस--पुं०=आदर्श।

आदर्य--वि० [सं० आ√दृ (आदर करना)+यत्]=आदरणीय।

आदर्श--पुं० [सं० आ√दृश् (देखना)+घञ्] १. अवलोकन करना। देखना। २. दर्पण। शीशा। ३. टीका या व्याख्या। ४. प्रतिलिपि। ५. मानचित्र। नक्शा। ६. किसी बात या वस्तु की वह काल्पनिक श्रेष्ठतम अवस्था, रूप या स्थिति जिसका हम अनुकरण करना चाहते हों, अथवा जिसके पास तक पहुँचना चाहते हों। जैसे—राम-राज्य का आदर्श। ७. वह श्रेष्ठतम वस्तु (या व्यक्ति) जिसके अनुकरण पर वैसी ही और वस्तु (या व्यक्ति) बनने-बनाने की भावना उत्पन्न होती है। नमूना। प्रतिमान। (आइडियल, अंतिम दोनों अर्थों के लिए)

आदर्शक--वि० [सं० आ√दृश्+णिच्+ण्वुल् वा√दृश्+ण्वुल्—अक] १. दिखलाने या देखनेवाला। २. आदर्श-संबंधी।

पुं० [आदर्श+कन्] दर्पण। शीशा।

आदर्शन--पुं० [सं० आ√दृश्+ल्युट्—अन] १. देखना या दिखलाना। २. दृश्य। ३. दर्पण। शीशा। ४. आदर्श प्रस्तुत करना या बनाना।

आदर्श-मंदिर--पुं० [सं० ष० त०] शीशे का बना हुआ अथवा ऐसा घर जिसमें बहुत से शीशे लगे हों। शीश-महल।

आदर्शवाद--पु० [ष० त०] [वि० आदर्शवादी] १. यह सिद्धान्त कि मनुष्य को सदा आदर्श (अच्छी से अच्छी बातें) अपने सामने रखकर उनकी सिद्धि या प्राप्ति के लिए सब कार्य करने चाहिएँ। २. दार्शनिक क्षेत्र में यह सिद्धांत कि संसार के सभी दृश्य पदार्थ मनुष्य की कल्पना या मन से ही संभूत हैं और यह नही कहा जा सकता कि मन से पृथक् या भिन्न कोई वास्तविकता है। ३. कला और साहित्य में, कल्पनागत बात या विषय को आदर्श रूप देने की प्रणाली या शैली। 'यथार्थवाद' का विपर्याय। (आइडियलिज्म)

आदर्शवादी (दिन्)--वि० [सं० आदर्शवाद+इनि] आदर्शवाद संबंधी।

पु० १. आदर्शवाद को मानने और उसके अनुसार चलनेवाला व्यक्ति। २. ऐसा कलाकार या लेखक जो काल्पनिक आदर्श को अपनी कृति का विषय बनाता हो। (आइडियलिस्ट, दोनों अर्थों में)

आदर्श-विज्ञान--पुं० [सं० ष० त०] विज्ञान की दो शाखाओं में से एक, जिसमें वे विज्ञान आते है जो कल्पना आदि के आधार पर आदर्शों का विवेचन करते है। (नॉरमेटिव साइंस) जैसे—नीति-विज्ञान। (दूसरी शाखा तात्त्विक विज्ञान है)

आदर्शित--भू० कृ० [सं० आ√दृश्+णिच्+क्त] १. दिखलाया हुआ। प्रदर्शित। २. निर्देश किया हुआ। निर्दिष्ट।

आदर्शीकरण--पुं० [सं० आदर्श+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्—अन] किसी वस्तु, कार्य आदि को आदर्श रूप देने की क्रिया या भाव। (आइडियलाइजेशन)

आदहन--पुं० [सं० आ√दह् (जलाना)+ल्युट्—अन] १. अच्छी तरह जलना या जलाना। २. जलन। दाह। ३. ईर्ष्या। डाह। ४. श्मशान।

आदा†--पु०=अदरक (आदी)।

आदाता (तृ)--वि० [सं० आ√दा (दान)+तृच्] १. पानेवाला। २. प्रापक। (रिसीवर)

पु० १. किसी विवाद-ग्रस्त संपत्ति का अथवा दिवालिया संस्था का वह व्यवस्थापक जो न्यायालय द्वारा नियुक्त हो। (रिसीवर) २. =आग्राहक। ३.=प्रतिग्राहक।

आदान--पुं० [सं० आ√दा+ल्युट्—अन] १. ग्रहण, प्राप्त या स्वीकार करना। लेना। २. लक्षण। चिह्न। ३. निदान। ४. बंधन। ५. वह धन जो कर, शुल्क आदि के रूप में लिया जाने को हो या प्राप्य हो।

आदान-प्रदान--पुं० [सं० द्वन्द्व स०] किसी से कुछ लेना और उसे कुछ देना। जैसे—वस्तुओं या विचारों का आदान-प्रदान।

आदाब--पुं० [अ० अदब का बहु०] १. आचरण, व्यवहार आदि के नियम। २. नमस्कार। प्रणाम।

आदाय--वि० [सं० आदेय] १. जो किसी से लेने, ग्रहण करने या प्राप्त करने के योग्य हो। प्राप्य। २. प्राप्त किया हुआ।
पुं० १. किसी से कुछ लेने या ग्रहण करने की क्रिया या भाव। २. वह धन या लेन जो किसी से अधिकारपूर्वक लिया जा सकता हो।

आदायी (यिन्)--पुं० [सं० आ√दा+णिनि, युक् आगम]=आदाता।

आदि--पुं० [सं० आ√दा+कि] १. मूल कारण। २. आरंभ। शुरू। ३. परमात्मा।
वि० १. पहला। जैसे--आदि कवि। २. आरंभ का।
अव्य० एक अव्यय जिसका अर्थ होता है--इसी प्रकार और या बाकी सब भी; और जिसका प्रयोग कुछ चीजें गिनाने या बातें बताने के बाद यह सूचित करता है कि इस प्रकार की और सब चीजें या बातें भी इसी वर्ग में समझ ली जानी चाहिएँ। इत्यादि। वगैरह। (एट-सेट्रा) जैसे--(क) गौ, घोड़ा, हाथी आदि; (ख) कपड़े, गहने, बरतन आदि।

आदिक--अव्य० [सं० आदि+क] आदि। वगैरह। (इस बात का सूचक कि ऐसे ही और भी समझें) जैसे--धर्म-गुरु, पुरोहित आदिक।
वि० किसी काम के आरंभ में होनेवाला। (इनीशियल) जैसे--(क) झगड़े का आदिक कारण। (ख) उत्सव का आदिक व्यय।

आदि-कल्प--पुं० [सं० कर्म०-स०] भू-विज्ञान के अनुसार पाँच मुख्य कल्पों में पहला कल्प जिसमें प्रायः सारे पृथ्वीतल पर ज्वाला मुखियों का विस्फोट होता रहा था। अनुमान है कि यह कल्प आज से दो अरब वर्ष पहले हुआ था। (आर्कियाजोइक एरा)

आदि-कवि--पुं० [सं० कर्म० स०] १. वाल्मीकि। २. शुक्राचार्य।

आदि-कारण--पुं० [सं० कर्म० स०] सृष्टि का पहला उपादान या मूल कारण।
विशेष--सांख्य के मत से प्रकृति, वैशेषिक के मत से परमाणु और वेदांत के मत से ब्रह्म इस सृष्टि के आदि कारण माने गये हैं।

आदित*--पुं०=आदित्य (सूर्य)।

आदितेय--पु० [सं० अदिति+ढक्-एय] अदिति के पुत्र, सूर्य।

आदित्य--पु० [सं० अदिति+ण्य] १. अदिति के पुत्र, धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। २. सूर्य। ३. देवता। ४. इंद्र। ५. वसु। ६. विश्वेदेव। ७. वामन अवतार। ८. मदार का पौधा। आक। ९. बारह मात्राओं के छंदों (तोमर, लीला आदि) की संज्ञा।

आदित्य-केतु--पुं० [प० त०] सूर्य का सारथि, अरुण।

आदित्य-पर्णी--स्त्री० [ब० स०, ङीष्] १. सूरजमुखी नाम का पौधा और उसका फूल। २. एक प्रकार की बूटी जिसमें लाल फूल लगते हैं।

आदित्य-पुराण--पुं०=सूर्य-पुराण।

आदित्य-मंडल--पुं० [प० त०] १. सूर्य के चारों ओर का प्रभा-मंडल। २. वह वृत्त जिस पर सूर्य भ्रमण करता है।

आदित्य-वार--पुं० [प० त०] रविवार। एतवार।

आदि-देव--पुं० [कर्म० स०] विष्णु। नारायण।

आदि-नाथ--पुं० [कर्म० स०] शिव। महादेव।

आदि-पुराण--पुं० [कर्म० स०]=ब्रह्म पुराण।

आदि-पुरुष--पुं० [कर्म० स०] १. परमेश्वर। विष्णु। २. वह जिससे किसी वंश का आरंभ हुआ हो। मूल-पुरुष।

आदिम--वि० [सं० आदि+डिमच्] १. सबके आदि में होनेवाला। प्रथम। पहला। २. जो बहुत पुराना, आरंभिक, अविकसित और बिलकुल सीधे-सादे ढंग का हो। (प्रिमिटिव)

आदिम-जाति--स्त्री० [कर्म० स०] किसी देश में रहनेवाली सबसे पहली और पुरानी मनुष्य जाति। (प्रिमिटिव रेस)

आदिम-निवासी (सिन्)--पुं० [कर्म० स०] दे० 'आदि-वासी'।

आदि-मान--पुं० [सं० कर्म० स०] १. वह आदर या मान जो किसी व्यक्ति, वस्तु या कार्य को औरों से पहले दिया जाता है। २. किसी विशेष अवस्था में किसी मान्य व्यक्ति को दिया जानेवाला कोई विशिष्ट अधिकार। विशेषाधिकार। (प्रेरोगेटिव)

आदि-रस--पुं० [सं० कर्म० स०] साहित्य में शृंगार रस।

आदि-रूप--पुं० [सं० ब० स०] ईश्वर। परमात्मा।

आदिल--वि० [अ०] सदा अदल (न्याय) करनेवाला। न्यायशील।

आदिलशाही--पुं० [आदिलशाह (एक बादशाह का नाम)] पुरानी चाल का एक प्रकार का कागज जो दक्षिण भारत में बनता था।

आदि-वासी (सिन्)--पुं० [सं० कर्म० स०] १. किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आये हों और जिनके बाद और लोग भी वहाँ आकर बसे हों। आदिम निवासी। २. आधुनिक भारत में, उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश आदि में रहनेवाली ओराँव, खरिया, पहड़िया, मुंडा, संथाल आदि पुरानी वन-जातियाँ।

आदि-विपुला--पुं० [सं० त०] आर्या छंद का एक रूप या भेद।

आदि-विपुला-जघन-चपला--पुं० [जघन-चपला तृ० त०, आदि विपुला-जघन-चपला द्वं० स०] आर्या छंद का एक भेद, जिसके पहले चरण के तीन गणों में पाद अपूर्ण होता और दूसरे दल में दूसरा और चौथा गण जगण होता है।

आदि-शक्ति--स्त्री० [सं० कर्म० स०] दुर्गा। महामाया।

आदिश्यमान--वि० [सं० आ√दिश् (बताना)+यक्+शानच्] जो आदेश के रूप में हुआ हो। आदिष्ट।

आदिष्ट--वि० [सं० आ√दिश्+क्त] १. (व्यक्ति) जिसे कोई आदेश दिया गया या मिला हो। २. (विषय) जिसके संबंध में कोई आदेश दिया गया हो या मिला हो।

आदी*--स्त्री० [सं० आर्द्रक] अदरक।
अव्य० [सं० आदि] १. आदि या आरंभ में ही। २. जरा भी। बिलकुल। उदा०--मातु न जानसि बालक आदी।--जायसी।
†वि० [अ०] जिसे किसी बात की आदत पड़ी हो। अभ्यस्त।

आदीचक--पुं० [हिं० आदी] आदी या अदरक की तरह का एक प्रकार का कंद जिसकी तरकारी बनती है।

आदीपन--पुं० [सं० आ√दीप् (दीप्ति)+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आदीपित, आदीप्त] १. दीपक जलाना। २. आग जलाना या सुलगाना। ३. उत्तेजित करना। उकसाना। ४. स्वच्छ या चमकीला करना। चमकाना।

आदृत--भू० कृ० [सं० आ√दृ (आदर करना)+क्त] जिसका आदर या सम्मान किया गया हो।

आदेय--वि० [सं० आ√दा (देना)+यत्] १. किसी से प्राप्त करने या लेने योग्य। जो लिया जा सके। २. जिसपर कर, शुल्क आदि लिया या लगाया जा सके। ३. जिसपर कर, शुल्क आदि लगाया गया हो। (लेवीड)

आदेश--पुं० [सं० आ√दिश् (बताना)+घञ्] [कर्त्ता आदेशक, भू० कृ० आदिष्ट] १. अधिकारपूर्वक यह कहना कि ऐसा करो या ऐसा मत करो। आज्ञा। हुकुम। (आर्डर) २. नमस्कार। प्रणाम। उदा०—विद्या है तो करहिंगे सब कोऊ आदेस (आदेश)।—वृन्द। ३. ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का फल। ४. व्याकरण में किसी नियम के अनुसार एक वर्ण के स्थान पर दूसरे वर्ण का आ लगना।

आदेशक--वि० [सं० आ√दिश्+ण्वुल्-अक] आदेश करने या देनेवाला। (दे० 'आदेश')

आदेशन--पुं० [सं० आ√दिश्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आदिष्ट] आदेश देने की क्रिया या भाव।

आदेश-लेख--पुं० [ष० त०] न्यायालय की वह लिखित आज्ञा जिसमें कोई काम करने या न करने के लिए कहा गया हो। (रिट)

आदेशवाद--पुं० [ष० त०] [वि० आदेशवादी] १. विचार किये हुए किसी के आदेश मानने का सिद्धांत। २. वह दार्शनिक प्रणाली जिसमें ऐसे तत्त्व या सिद्धांत ठीक मान लिये जाते हैं, जो परीक्षा द्वारा अभी तक ठीक सिद्ध नहीं हुए हैं। (डॉगमैटिज्म)

आदेशी (शिन्)--पुं० [सं० आ√दिश्+णिनि] १. वह जो आदेश दे। २. शासक। ३. ज्योतिषी।

आदेष्टा (ष्टृ)--पुं० [सं० आ√दिश्+तृच्]=आदेशक।

आदेस*--पुं०=आदेश।

आदौ--अव्य० [सं० आदि से] १. आदि या आरंभ से। शुरू से। २. आदि या आरंभ में। पहले।

आद्यंत--अव्य० [सं० आदि-अंत, अव्य० स०] आदि से अंत तक। पुं० किसी चीज या बात का आरंभ और अंत।

आद्य--वि० [सं० आदि+यत्] १. आदि या आरंभ में रहने या होनेवाला। २. आरंभिक। ३. प्रधान। मुख्य। ४. जो खाया जा सके।

आद्यक्षिक--पुं० [सं० अध्यक्ष+ठञ्-इक] वह नास्तिक जो केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता हो। (तार्किक से भिन्न)।

आद्य-शेष--पुं० [सं० व० स०] हिसाब में वह धन जो पहले रोकड़-बाकी के रूप में रहा हो और अब नये खाते या पृष्ठ में गया हो। (ओपनिंग बैलेंस)

आद्या--स्त्री० [सं० आद्य+टाप्] १. दुर्गा। २. काली। ३. दस महाविद्याओं में से पहली महाविद्या। ४. भूमि। जमीन।

आद्याक्षर--पुं० [सं० आद्य-अक्षर, कर्म० स०] कई पदोंवाले नाम के प्रत्येक पद का आरंभिक अक्षर जिसका प्रयोग प्रायः संक्षिप्त रूप में नाम बताने, हस्ताक्षर करने आदि के समय होता है। (इनीशियल) जैसे—महावीर प्रसाद द्विवेदी के आद्याक्षर हैं—म० प्र० द्वि०।

आद्याक्षरित--भू० कृ० [सं० आद्याक्षर+णिच्+क्त] जिसपर हस्ताक्षर की जगह नाम के केवल आद्याक्षर लिखे गये हों। (इनीशियल्ड)

आद्योत--पुं० [सं० आ√द्युत् (दीप्ति)+घञ्] १. कांति। चमक। २. प्रकाश।

से अंत तक।

आद्योपांत--अव्य० [सं० आद्य-उपांत, अव्य० स०] आदि या आरंभ से अंत तक।

आद्रा--स्त्री०=आर्द्रा।

आध--वि० [हिं० आधा] दे० 'आधा'।

पद--एक-आध=बहुत ही थोड़ा या कम। कदाचित् एक या दो।

आधमर्ण्य--पुं० [सं० अधमर्ण+ष्यञ्] अधमर्ण या ऋणी होने की अवस्था या भाव।

आधर्मिक--वि० [सं० अधर्म+ठञ्-इक] १. जो धार्मिक न हो। २. जो धर्म-संगत आचरण न करता हो। जैसे—अन्यायी, असाधु आदि।

आधर्षण--पुं० [सं० आ√धृष् (पीड़न)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आधर्षित] न्यायालय द्वारा अभियुक्त को अपराधी ठहराना और दंड देना। (कन्विक्शन)

आधर्षित--भू० कृ० [सं० आ√धृष्+क्त] १. न्यायालय द्वारा अपराधी या दोषी ठहराया हुआ हो। २. दंडित। (कन्विक्टेड)

आधा--वि० [सं० अर्ध; प्रा० अड्ढ; पा० अद्ध; गु० आड; का० मरा० सिंह० अड] १. किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से हर एक।

पद--आधो-आध—दो बराबर भागों में कटा या बँटा हुआ।

२. जो पूरा न हो, बल्कि आधे के लगभग हो। जैसे—आधा पेट खाकर रहना। ३. बहुत ही कम या थोड़ा। कुछ। जैसे—हमारे रहते तुम्हें कोई आधी बात नहीं कह सकता।

पद--आधा तीतर आधा बटेर--*जो आदि से अंत तक एक ही तरह का न हो, बल्कि कुछ किसी प्रकार का और कुछ और प्रकार का हो।*

आधाझारा--पुं० [सं० आघाट] अपामार्ग या चिचड़ा नाम का पौधा।

आधाता (तृ)--वि० [सं० आ√धा (धारण करना)+तृच्] कहीं से कोई चीज लाकर रखने या स्थापित करनेवाला। आधान करनेवाला। पुं० १. अध्यापक। शिक्षक। २. वह जो कोई चीज किसी के पास गिरवी या बंधक रखे।

आधा-तीहा--वि० [हिं० आधा+तिहाई] आधे या तिहाई के लगभग। आधे से कुछ कम या तिहाई से कुछ अधिक।

आधान--पुं० [सं० आ√धा+ल्युट्-अन] १. बैठाने, रखने या स्थापित करने की क्रिया या भाव। जैसे—अग्नि या गर्भ का आधान। २. गर्भ। उदा०—कितिक दिवस अंतरह रहिय आधान राखि उर।—चंद-बरदाई। ३. गर्भाधान से पहले होनेवाला एक संस्कार। ४. ग्रहण करना। लेना। ५. वह अवकाश, पात्र या स्थान जिसमें कोई चीज रखी जाय या रखी जा सके। पात्र। (रिसेप्टेकल) ६. घेरा। ७. प्रयत्न। ८. कोई चीज किसी के पास बंधक या रेहन रखना।

आधानवती--वि० स्त्री० [सं० आधान+मतुप्, वत्व-ङीप्] गर्भवती।

आधानिक--पुं० [सं० आधान+ठञ्-इक] गर्भाधान से पहले होनेवाला एक संस्कार।

आधायक--वि० [सं० आ√धा+ण्वुल्-अक] १. आधान करने (लाकर रखने, बैठाने या स्थापित करने) वाला। जैसे—दोषाधायक=दोष से युक्त करनेवाला। २. प्रभावित करनेवाला। ३. देनेवाला।

आधार--पुं० [सं० आ√धृ (धारण)+घञ्] १. नीचे की वह वस्तु जिसके ऊपर कोई दूसरी वस्तु टिकी, ठहरी या रखी हो। जैसे—इस जल का आधार यह घड़ा (या लोटा) है। २. वह जो किसी को किसी प्रकार का

आश्रय या सहारा देता हो। जैसे—जीवन का आधार भोजन है। ३. वह जिसके बल पर कोई काम या बात चलती या होती हो। अवलंब। भरोसा। सहारा। जैसे—(क) जल-पान कर लिया; इससे दिन भर के लिए कुछ आधार हो गया। (ख) यहाँ तो बस भगवान का ही आधार है। ४. जड़। नींव। बुनियाद। ५. आधान। पात्र। ६. वृक्ष का थाँवला। थाला। आल-वाल। ७. व्याकरण में अधिकरण कारक। ८. योगशास्त्र में शरीर के अंदर के छः चक्रों में से एक जिसका स्थान गुदा का ऊपरी भाग कहा गया है। यह लाल रंग का और चार दलोंवाला माना गया है और इसके देवता गणेश कहे गये हैं। ९. ज्यामिति में वह रेखा या तल जिस पर कोई आकृति या घनपिंड ठहरा हुआ या स्थित माना जाता है। (बेस)

आधारक—पुं० [सं० आधार+कन्] १. वह जिसके ऊपर कोई ढाँचा खड़ा हो। आधार। २. नींव।

आधारण—पुं० [सं० आ√धृ+णिच्+ल्युट्—अन] धारण करने या अपने ऊपर लेने की क्रिया या भाव।

आधार-रूपा—स्त्री० [सं० ब० स०, टाप्] गले का एक आभूषण।

आधार-शक्ति—स्त्री० [प० त०] १. सृष्टि उत्पन्न करनेवाली मूल प्रकृति। २. माया।

आधार-शिला—स्त्री० [प० त०] वह पहला पत्थर जो नींव में रखा जाता है और जिसके ऊपर इमारत या भवन बनता है। (फाउन्डेशन स्टोन)

आधार-स्तंभ—पुं० [प० त०] वह जिसके ऊपर किसी का सारा ढाँचा या अस्तित्व आश्रित हो।

आधाराधेयभाव—पुं० [सं० आधार-आधेय द्वं० स०, आधाराधेय-भाव प० त०] परस्पर उस प्रकार का भाव या संबंध, जैसा आधार और आधेय में होता है।

आधारिक—वि० [सं० आधार+ठक्—इक] १. आधार-संबंधी। २. जो किसी काम या बात के लिए आधारस्वरूप हो। (बेसिक) जैसे—आधारिक भाषा, आधारिक शिक्षा आदि।

आधारिक-भाषा—स्त्री० [कर्म० स०] किसी भाषा का वह बहुत हलका और सब के समझने योग्य रूप जिसमें थोड़े-से परम प्रचलित शब्दों से ही सब काम चलाये जाते हैं। (बेसिक लैंग्वेज)

विशेष—ऐसी भाषा का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि अन्य भाषा-भाषियों में सहज में उसका यथेष्ट प्रचार हो सके।

आधारित—वि० [सं० आधार+णिच्+क्त] जो किसी के आधार पर टिका या ठहरा हो। किसी को आधार बनाकर उस पर आश्रित रहनेवाला। आधृत।

आधारी (रिन्)—पुं० [सं० आधार+इनि] [स्त्री० आधारिणी] १. वह जो किसी आधार पर ठहरा या टिका हो। २. लकड़ी का वह ढाँचा जिसके सहारे साधु लोग बैठते हैं। टेवकी।

आधा-सीसी—स्त्री० [हिं० आधा+सीस (शीर्ष)=सिर] आधे सिर का दर्द। अध-कपारी।

आधि—स्त्री० [सं० आ√धा (धारण करना)+कि] १. मानसिक कष्ट या चिंता। २. धरोहर या बंधक के रूप में रखी हुई चीज। ३. आशा। ४. लक्षण। ५. रहने की जगह। आवास।

आधिक*—वि० [हिं० आधा+एक] १. आधे के लगभग। आधे से कुछ ही कम या अधिक। २. अल्प। थोड़ा।

अव्य० प्रायः। लगभग।

आधिकरणिक—वि० [सं० अधिकरण+ठक्—इक] अधिकरण-संबंधी। जैसे—आधिकरणिक-विक्रय। (कोर्ट सेल)

पुं० अधिकरण का अधिकारी। (कोर्ट ऑफिसर)

आधि-कर्त्ता (र्तृ)—पुं० [सं० प० त०] किसी के पास कोई चीज गिरवी या बंधक रखनेवाला व्यक्ति।

आधिकारिक—वि० [सं० अधिकार+ठक्—इक] १. अधिकार-संबंधी। २. किसी अधिकारी के द्वारा या अधिकारपूर्वक किया या कहा हुआ। (ऑथॉरिटेटिव) ३. सरकारी। (ऑफिशल)

पुं० १. वह जिसे कोई विशेष अधिकार प्राप्त हो और वह उस अधिकार का प्रयोग करता हो। अधिकारी। (ऑथॉरिटी)। २. परमात्मा। ३. दृश्य-काव्य में मूल कथा-वस्तु।

आधिकारिकी—स्त्री० [सं० आधिकारिक से] व्यक्तियों का वह वर्ग या समूह जो किसी कार्य या विषय से संबंध रखनेवाली सब बातों का नियंत्रण और संचालन करता हो। (ऑथॉरिटी)

आधिक्य—पुं० [सं० अधिक+ष्यञ्] मान, मात्रा आदि में अधिक होने की अवस्था या भाव। अधिकता।

आधिदैविक—वि० [सं० अधिदेव+ठञ्—इक] १. दैव, प्रकृति आदि के द्वारा प्राप्त होनेवाला (दुःख, ताप या कष्ट)। देवता-कृत। २. जो साधारणतः प्राकृतिक या लोक-गत न हो, बल्कि उससे बहुत बढ़-चढ़कर हो। (सुपर-नेचुरल)

आधि-वर्त्ता (र्तृ)—पुं० [प० त०] वह जिसके पास कोई चीज गिरवी या रेहन रखी जाय।

आधिपत्य—पुं० [सं० अधिपति+ष्यञ्] १. अधिपति होने की अवस्था या भाव। २. किसी वस्तु पर प्राप्त होनेवाला ऐसा अधिकार जो किसी को उस वस्तु के संबंध में सब कुछ करने में समर्थ करता है। (पजेशन)

आधि-भोग—पुं० [प० त०] धरोहर या बंधक रखी हुई वस्तु का उपभोग या उपयोग।

आधिभौतिक—वि० [सं० अधिभूत+ठञ्—इक] आधिभूतों अर्थात् भौतिक पदार्थों और जीव-जंतुओं आदि के कारण या उनके द्वारा उत्पन्न होनेवाला। जैसे—आधिभौतिक ताप=भौतिक पदार्थों या जीव-जंतुओं के कारण मनुष्य को होनेवाला कष्ट या रोग।

आधिराज्य—पुं० [सं० अधिराज+ष्यञ्] अधिराज होने की अवस्था या भाव।

आधि-व्याधि—स्त्री० [द्व० स०] मानसिक कष्ट या चिंता और शारीरिक पीड़ा। दुःख और वेदना।

आधीन*—वि०=अधीन।

आधीनता*—स्त्री०=अधीनता।

आधुनिक—वि० [सं० अधुना+ठञ्—इक] १. जो इधर थोड़े समय से ही चला, निकला या अस्तित्व में आया हो। हाल का। जैसे—आधुनिक युग, आधुनिक साहित्य। २. जिसपर वर्त्तमानकाल की बातों या विशेषताओं की पूरी छाप पड़ी हो। सांप्रतिक। (माडर्न) जैसे—आधुनिक पहनावा, आधुनिक शिष्टाचार।

आधुनिका--स्त्री० [सं० आधुनिक+टाप्] आधुनिक सभ्यता के अनुसार रहने और आचरण करनेवाली स्त्री।

आधूत--वि० [सं० आ√धू (काँपना)+क्त] १. काँपता हुआ। कंपित। २. विकल। व्याकुल।
पुं० पागल। विक्षिप्त।

आधूपन--पुं० [सं० आ√धूप् (तपाना)+ल्युट्–अन] धूएँ से ढँकना या आवृत करना।

आधूमित--भू० कृ० [सं० आ–धूम, प्रा० स०,+इतच्] धूएँ से आवृत या ढका हुआ।

आधूम्र--वि० [सं० प्रा० स०] जिसका रंग धूएँ जैसा काला हो।

आधृत--वि० अव्य० [सं० आ√धृ (धारण)+क्त]=आधारित।

आधेक--[हिं० आधा+एक] आधे के लगभग। प्रायः आधा।

आधेय--पुं० [सं० आ√धा (धारण करना)+यत्] वह जो किसी आधार पर ठहरा, बना या रहता हो।
वि० १. ठहराने या स्थापित किये जाने के योग्य। २. रखने योग्य। ३. रेहन रखे जाने के योग्य।

आधोफर--पुं० [?] छज्जा। (डिं०)

आधोरण--पुं [सं० आ√धोर्+ल्यु—अन] महावत। हाथीवान्।

आध्मान--पुं० [सं० आ√ध्मा (शब्द करना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० आध्मात] १. पेट फूलने का रोग। अफरा। २. जलोदर रोग।

आध्यात्मिक--वि० [सं० अध्यात्म+ठञ्–इक] [भाव० आध्यात्मिकता] जिसमें आत्मा और ब्रह्म के संबंध तथा स्वरूप का विचार या विवेचन हो। अध्यात्म से संबंध रखनेवाला। भौतिक, लौकिक आदि से भिन्न। (स्पिरिचुअल)

आध्यात्मिकी--स्त्री० [सं० आध्यात्म से] वह विद्या जिसमें हर वस्तु के आध्यात्मिक स्वरूप पर विचार किया जाता है। (स्प्रिचुअलिज्म)

आध्यापक--पुं० [सं० अध्यापक +अण्]=अध्यापक।

आध्यायिक--पुं० [सं० अध्याय+ठञ्–इक] १. वह जो वेदों का अध्ययन करता हो। २. वह जो बराबर अध्ययन करता रहता हो।
वि० अध्ययन संबंधी।

आध्यासिक--वि० [सं० अध्यास+ठक्–इक] धोखे या भूल से आरोपित किया या माना हुआ। अयथार्थ और कल्पित। जैसे--रस्सी को साँप समझना आध्यासिक भ्रम है।

आनंतर्य--पुं० [सं० अनन्तर+ष्यञ्] 'अनंतर' होने की अवस्था या भाव।

आनंत्य--पुं० [सं० अनन्त +ष्यञ्] अनंत होने की अवस्था या भाव। अनंतता।

आनंद--पुं० [सं० आ√नन्द् (समृद्धि)+घञ्] [वि० आनंदित, आनंदी] १. मन में होनेवाली ऐसी अनुकूल तथा प्रिय अनुभूति जो अभीष्ट तथा सुखद परिस्थितियों में होती है तथा जिसमें अभाव, कष्ट, चिंता आदि नाम को भी नहीं होते। (हैपिनेस)
पद--**आनंद-बधाई, आनंद-मंगल** (दे०)।
२. मद्य। शराब। ३. ब्रह्म। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. एक प्रकार का छंद।
वि० [आनंद+अच्] आनंदपूर्ण। प्रसन्न और सुखी। (क्व०)

आनंदक--वि० [सं० आ√नन्द्+ण्वुल्–अक] आनंद करने या मनानेवाला।

आनंद-कोश--पुं० [प० त०]=आनंदमय कोश।

आनंदन--पुं० [सं० आ√नन्द्+णिच्+ल्युट्–अन] आनंदित करने की क्रिया या भाव।
वि०=आनंददायक।

आनंदना--अ० [सं० आनन्द] आनंदित या प्रसन्न होना।
स० आनंदित या प्रसन्न करना।

आनंद-बधाई--स्त्री० [सं० आनन्द+हिं० बधाई] शुभ अवसर पर या मांगलिक उत्सव के समय (क) दी जानेवाली बधाई और (ख) होनेवाला राग-रंग।

आनंद-बधावा--पुं०=आनंद-बधाई।

आनंद-भैरव--पुं० [कर्म० स०] १. शिव का एक रूप। २ आयुर्वेद में एक रस।

आनंद-भैरवी--स्त्री० [कर्म० स०] भैरव राग की एक रागिनी।

आनंद-मंगल--पुं० [द्व० स०] १. शुभ तथा सुखद अवसर पर मनाया जानेवाला आनंद और होनेवाला राग रंग। २. सुख और चैन।

आनंद-मत्ता--स्त्री० [तृ० त०]=आनंद सम्मोहिता (नायिका)

आनंदमय कोश--पुं० [सं० आनंद+मयट्, आनंदमय-कोश, कर्म-स०] आत्मा को आवृत करनेवाले पाँच कोशों में से अंतिम जो कारण शरीर या सुषुप्ति के रूप में माना गया है। (वेदांत)

आनंद-सम्मोहिता--स्त्री० [तृ० त०] साहित्य में वह नायिका जो संभोग के आनंद में मग्न और मुग्ध हो रही हो।

आनंदातिरेक--पुं० [सं० आनंद-अतिरेक, प० त०] =अत्यानंद।

आनंदाश्रु--पुं० [सं० आनंद-अश्रु, मध्य० स०] बहुत अधिक आनंद के समय आँखों से निकलनेवाले आँसू या भर आनेवाला जल।

आनंदित--भू० कृ० [सं० आ√नन्द्+क्त] जिसे आनंद हुआ हो। हर्षित। प्रसन्न।

आनंदी (दिन्)--पुं० [सं० आ√नन्द्+णिनि] वह जो सदा आनंद मनाता रहता हो।

आन--स्त्री० [फा० या सं० आणि=मर्यादा] १. परंपरा, प्रतिज्ञा, संकल्प, सिद्धांत आदि के निर्वाह या पालन की वह दृढ़ भावना जिसके मूल में अपनी या अपनी जाति, वर्ग, समाज आदि की प्रतिष्ठा या मर्यादा की रक्षा का विचार प्रधान होता है। जैसे--(क) वीर लोग अपनी आन पर प्राण देते हैं। (ख) वह आनवाला रोजगारी है; सहज में नहीं दबेगा। २. किसी की उक्त भावना या गौरव के आधार पर या उसका स्मरण कराते हुए दी जानेवाली दुहाई या मचनेवाली पुकार।
मुहा०--**आन फिरना**=(क) दुहाई फिरना। (ख) पुकार मचना। उदा०--मेरे जान जनकपुर फिरिहैं, रामचंद्र की आन।--सूर। **आन फेरना**=चारों ओर अपने प्रभुत्व, विजय आदि की डुग्गी या ढिंढोरा पिटवाना। उदा०--आन आन फेरी मदन, करी मान तजि मान।--विक्रम सतसई।
३. उक्त के आधार पर दी जानेवाली शपथ या सौगंध। जैसे--तुम्हें भगवान की आन है, वहाँ मत जाना। ४. प्रतिष्ठा। मर्यादा। सम्मान। ५. जिद। टेक। हठ। ६. अकड़। ऐंठ।
स्त्री० [सं० आणि=मर्म-स्थान] किसी काम या बात का ऐसा ढंग, प्रकार या स्वरूप जो अनोखा या निराला होने के सिवा आकर्षक तथा

हृदयग्राही हो। लुभावनी अंग-भंगी या मनोहर हाव-भाव। जैसे—उसने ऐसी आन से ठुमरी गाई कि सब लोग वाह-वाह करने लगे।

स्त्री० [अ० मि० सं० आन=साँस] १. बहुत ही थोड़ा समय। क्षण। पल।

पद—आन की आन में=बहुत थोड़े समय में। बात की बात में। पलक मारते। जैसे—उस भूकंप ने आन की आन में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया।

२. काल। समय। उदा०—मिलिकैं बिछुरन मरन की आना।—जायसी

स्त्री० [सं० आज्ञा, प्रा० अज्जा, आणा, कन्न०तेल० आन, गुज० मरा०। सिं० आण] आज्ञा। हुक्म।

वि० [सं० अन्यत् प्रा० अण्ण, गुज० आण, आन, अने; मरा० आणि, आणखी, सिं ० अनुम, आनिक] और कोई। अन्य। दूसरा। (पूरब)

पद—आन की आन या आन का तान=जो हो, उसके स्थान पर उससे भिन्न। और का और।

स्त्री० [हिं० आन=दूसरा] निषिद्ध चीजों या बातों से बचने का ध्यान या विचार। उदा०—ठंढियाँ निकली हैं बच्चे के, पड़ा फिरता है। कुछ किसी बात की भी आन है गोइयाँ तुमको।—कोई शायर।

प्रत्य० [?] एक प्रत्यय जो कुछ धातुओं के अंत में लगकर उन्हें भाववाचक संज्ञाओं का रूप देता है। जैसे—उठ से उठान, मिल से मिलान। कभी कभी यह विशेषणों में लगता है। जैसे—ऊँचा से ऊँचान, चौड़ा से चौड़ान।

आनक—पुं० [सं० आ√अन् (जीना)+णिच्+ण्वुल्-अक] १. एक प्रकार का बहुत बड़ा सैनिक नगाड़ा। २. गरजता हुआ बादल।

आनक-दुंदुभि—पुं० [कर्म० स०] १. बहुत बड़ा नगाड़ा। २. [ब० स०] कृष्ण के पिता वसुदेव।

आनत—वि० [सं० आ√नम् (झुकना)+क्त] १. जो झुका हुआ या नत हुआ हो। २. जो किसी को नम्रतापूर्वक प्रणाम करने के लिए झुका हो। ३. नम्र। सुशील। ४. जिसका झुकाव या प्रवृत्ति किसी ओर हो।

पुं०—एक जैन देवता।

आन-तान—स्त्री० [हिं० आन+तान=खिंचाव] १. आन या प्रतिष्ठा और तान या खिंचाव का भाव या विचार। ठसक। २. टेक। हठ। ३. अभिमान-पूर्ण और बेतुका आचरण या व्यवहार।

आनति—स्त्री० [सं० आ√नम्+क्तिन्] १. आनत होने की अवस्था या भाव। २. झुकाव। नति। ३. प्रणाम।

आनद्ध—भू० कृ० [सं० आ√नह् (बाँधना)+क्त] १. बँधा हुआ। बाधा आदि के कारण रुका हुआ। ३. किसी चीज से ढका या मढ़ा हुआ। ४. सजाया हुआ।

पुं० १. कोई ऐसा बाजा जो चमड़े से मढ़ा हुआ हो। जैसे—ढोल, मृदंग आदि। २. सजावट।

आनन—पुं० [सं० आ√अन्+ल्युट्-अन] १. मुख। मुँह। २. मुख की आकृति या बनावट। ३. चेहरा। मुखड़ा।

पुं० [सं० आनक] दुंदुभी। उदा०—कर पद पत्र धनुख्ख ढाल आनन सुचक्क रक।—चंदवरदाई।

आनन फानन—अव्य० [अ०] १. बात की बात में। २. अतिशीघ्र। तुरंत।

आनना*—स० [सं० आनयन; प्रा० आणणे सिं० आणणुं; का० अनुन्; मरा० आइणणो] कहीं से (वस्तु आदि) ले आना। लाना।

आनबान—स्त्री० [हिं० आन+अनु० बान] १. ठाट-बाट। सजधज। २. ठसक।

आनमन—पुं० [सं० आ√नम्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आनमित] १. झुकने या नत होने की क्रिया या भाव। २. नम्रतापूर्वक किसी के आगे सिर झुकाना।

आनम्य—वि० [सं० आ√नम्+यत् वा णिच्+यत्] [भाव० आनम्यता] १. झुकनेवाला। २. जो झुक सके या झुकाया जा सके। (प्लाइएबुल)। ३. जो आवश्यकता होने पर हर नई स्थिति के अनुकूल बनाया जा सके। (फ्लेक्सिबुल) जैसे—आनम्य-संविधान।

आनयन—पुं० [सं० आ√नी (पहुँचना)+ल्युट्-अन] १. ले आना। लाना। २. उपनयन संस्कार।

आनरेरी—वि० [अं०] १. केवल कर्त्तव्य के विचार से अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए बिना वेतन लिये काम करनेवाला (व्यक्ति) २. उक्त प्रकार से होनेवाला (कार्य या पद)।

आनर्त—पुं० [सं० आ√नृत् (नाचना)+घञ्] [वि० आनर्त्तक] १. आधुनिक सौराष्ट्र देश का पुराना नाम। २. उक्त देश का निवासी। ३. नृत्यशाला। नाच-घर। ४. युद्ध। ५. जल।

आनर्तक—वि० [सं० आनर्त+वुञ्-अक] १. आनर्त-संबंधी। २. [आ√नृत्+ण्वुल्-अक] नर्त्तक।

आनर्तन—पुं० [सं० आ√नृत्+ल्युट्-अन] नाचना। नर्तन।

आनर्त्त-नगरी—स्त्री० [सं० मध्य० स०] द्वारकापुरी।

आनर्थक्य—पुं० [सं० अनर्थक+ष्यञ्] अनर्थक या निरर्थक होने की अवस्था या भाव।

आना—अ० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन, आवना] १. किसी चीज का कहीं से चलकर इस ओर (अर्थात् वक्ता की ओर) उपस्थित, प्राप्य या वर्त्तमान होना। आगमन होना। जैसे—अतिथि आना, बरसात आना, हवा आना आदि।

मुहा०—आ धमकना=अचानक या सहसा आ पहुँचना। **आ पड़ना**=(क) सहसा आ पहुँचना। (ख) सहसा गिर पड़ना। **आ पड़ना**=(क) टूट पड़ना। (ख) विपत्ति या संकट आना। **आ बनना**=(क) घटना के रूप में उपस्थित होना। घटित होना। उदा०—आइ बना भल सकल समाजू।—तुलसी। (ख) लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। **आ लगना**=किसी स्थान या ठिकाने पर पहुँचना। **आ लेना**=(क) पकड़ लेना। (ख) पास पहुँचना।

पद—आता-जाता=इधर या इस ओर आने तथा उधर या उस ओर जानेवाला। **आना-जाना**=(क) जन्म-मृत्यु। (ख) मिलना-जुलना। **आया-गया**=(क) वह जो किसी काम से आवे और चला जाय। (ख) अतिथि। २. उत्पन्न होकर सामने उपस्थित होना। घटित होना। जैसे-पौधे में फल या फूल आना। ३. गुण, योग्यता आदि की अभिवृद्धि या विकास होना। जैसे—जवानी आना। ४. ज्ञान या जानकारी होना। जैसे—अँगरेजी या हिंदी आना। ५. अनुभूति होना। जैसे—यह नया विचार अभी मस्तिष्क में आया है। ६. किसी अवस्था या स्थिति में पहुँचना या होना। जैसे—गाड़ी के नीचे आना। किसी निश्चय पर आना।

पुं० [सं० आणक] १. रुपये का सोलहवाँ अंश या भाग। २. किसी चीज का सोलहवाँ अंश या भाग। जैसे—व्यापार में चार आने का हिस्सा।

प्रत्य० [फा० आन:] होनेवाला। अवधि पर होनेवाला। जैसे—रोजाना, सालाना।

आनाकानी—स्त्री० [सं० अनाकर्णन] १. कोई बात सुनकर भी न सुनी हुई के समान करना। २. टाल-मटोल या हीला-हवाला।
† स्त्री०=काना-फूसी।

आनाथ्य—पुं० [सं० अनाथ+ष्यञ्] अनाथ होने की अवस्था या भाव। अनाथता।

आनाय—पुं० [सं० आ√नी+घञ्] जाल। फंदा।

आनाह—पुं० [सं० आ√नह् (बाँधना)+घञ्] [वि० आनाहिक] १. बाँधना। २. मलावरोध से पेट फूलने का एक रोग। कब्जियत। ३. (कपड़े आदि की) लंबाई।

आनि—स्त्री०=आन।

आनिल—वि० [सं० अनिल+अण्] अनिल या (वायु) से संबंध रखनेवाला।
पुं० १. हनुमान। २. भीम। ३. स्वाति नक्षत्र।

आनीत—भू० कृ० [सं० आ√नी+क्त] [भाव० आनीति] जिसका आनयन हुआ हो। लाया हुआ।

आनुकूलित—वि० [सं० अनुकूल+ठक्–इक]=अनुकूल।

आनुकूल्य—पुं० [सं० अनुकूल+ष्यञ्] अनुकूल होने का भाव। अनुकूलता।

आनुक्रमिक—वि० [सं० अनुक्रम+ठक्–इक] १. किसी अनुक्रम के अनुसार होनेवाला। २. अनुक्रम से लगा या लगाया हुआ।

आनुगतिक—वि० [सं० अनुगत+ठक्–इक] अनुगत या अनुगति से संबंध रखनेवाला।

आनुगत्य—पुं० [सं० अनुगत +ष्यञ्] १. अनुगत होने की अवस्था या भाव। २. अनुगमन। ३. घनिष्ठ परिचय।

आनुग्रहिक—वि० [सं० अनुग्रह+ठक्–इक] १. अनुग्रह संबंधी। २. अनुग्रह (कृपा, दया आदि) के रूप में होनेवाला।

आनुतोषिक—पुं० [सं० अनुतोष+ठक्–इक] वह धन जो किसी को किसी कार्य या सेवा के बदले में उसे संतुष्ट या प्रसन्न करने के लिए (उसके वेतन आदि के अतिरिक्त) विशेष रूप से दिया जाय। (ग्रैचुइटी)

आनुदानिक—वि० [सं० अनुदान+ठक्–इक] अनुदान से संबंध रखने अथवा अनुदान के रूप में मिलने या होनेवाला।

आनुपातिक—वि० [सं० अनुपात+ठक्–इक] अनुपात के विचार या दृष्टि से होनेवाला। अनुपात-संबंधी। (प्रपोर्शनल) जैसे—आनुपातिक प्रतिनिधित्व।

आनुपूर्व—वि० [सं० अनुपूर्व+अण्] एक के बाद एक या क्रम से होनेवाला।

आनुपूर्वी—स्त्री० [सं० अनुपूर्व+ष्यञ्–ङीप, यलोप] आगे-पीछे के क्रम से होने की क्रिया या भाव। जैसे—वाक्य में शब्दों की आनुपूर्वी।

आनुभविक—वि० [सं० अनुभव+ठक्–इक] अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग आदि से प्राप्त होनेवाला। (एम्पिरिकल्) जैसे—आनुभविक ज्ञान।

आनुमानिक—वि० [सं० अनुमान+ठक्–इक] अनुमान से संबंध रखने या उसके आधार पर माना या समझा जाने वाला। जैसे—आनुमानिक व्यय।

आनुवंशिक—वि० [सं० अनुवंश+ठक्–इक] १. [भाव० आनुवंशिकता] वंश-परंपरा से प्राप्त। पुश्तैनी। २. जो किसी वंश में बराबर होता आया हो और जिसके आगे भी उस वंश में होते रहने की संभावना हो। वंशानुक्रमिक। (हेरिडेटरी) जैसे—आनुवंशिक हठ या आनुवंशिक रोग।

आनुवंशिकता—स्त्री० [सं० आनुवंशिक+तल्–टाप्] १. आनुवंशिक होने की अवस्था, परंपरा या भाव। २. जीव-विज्ञान में वे गुण या तत्त्व जो प्राकृतिक रूप से जीवों को अपने-अपने पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। (हेरेडिटी)

आनुवेश्य—पुं० [सं० अनुवेश+ष्यञ्] पड़ोसी। प्रतिवेशी।

आनुश्रविक—वि० [सं० अनुश्रव+ठक्–इक] जिसे परंपरा से सुनते चले आये हों।

आनुषंगिक—वि० [सं० अनुषंग+ठक्–इक] १. आप से आप या यों ही घटित होनेवाला। (एक्सीडेण्टल)। २. अनावश्यक रूप से अथवा गौण रूप से किसी के साथ या पीछे होनेवाला। (इनसीडेण्टल)

आनूप—वि० [सं० अनूप+अण्] १. अनूप देश में होने या उससे संबंध रखनेवाला। २. प्रायः जल में या उसके पास रहने या होनेवाला। जैसे—भैंसें, मछलियाँ आदि आनूप प्राणी है।
पुं० १. ऐसा देश या प्रदेश जिसमें जल की अधिकता हो। २. दलदल।

आनृत—वि० [सं० अनृत+अण्] १. सदा झूठ बोलनेवाला। २. झूठ से भरा हुआ। जैसे—आनृत कथन।

आनृशंस—वि० [सं० अनृशंस+अण्] [भाव० आनृशंस्य] जो नृशंस न हो (अर्थात् करुण या दयालु)।

आनृशंस्य—वि० [सं० अनृशंस+ष्यञ्] दे० 'आनृशंस'।

आनेता (तृ)—वि० [सं० आ√नी (ले जाना)+तृच्] आनयन करने अर्थात् लानेवाला।

आनैपुण—पुं० [सं० अनिपुण+अण्] अनिपुण होने की अवस्था या भाव।

आनैपुण्य—पुं० [सं० अनिपुण+ष्यञ्] दे० 'आनैपुण'।

आनैश्वर्य—पुं० [सं० अनीश्वर+ष्यञ्] ऐश्वर्य का अभाव।

आन्न—वि० [सं० अन्न+अण्] १. अन्न-संबंधी। अन्न का। २. जिसके पास अन्न हो। ३. जिसमें अन्न मिला हो। ४. अन्न से बना या बनाया हुआ।

आन्वयिक—वि० [सं० अन्वय+ठक्–इक] १. व्यवस्थित। २. कुलीन।

आन्वीक्षिकी—स्त्री० [सं० अन्वीक्षा+ठञ्–इक–ङीप्] १. आत्म विद्या। २. तर्कशास्त्र। न्याय।

आप—सर्व० [सं० आत्मन्, आत्म; प्रा० अप्प, अप्पणो (षष्ठी) अप० आपणउ, पुं० हिं० आपनो; गुज० आप, आपणा; मरा० आपण; ने० आपु, आफनु; पं० आप, आप्पाँ; बँ० आपाँ, आपनि, उ० आपे, आपण; सिं० पाण, पाणु; कन्न० पान; सिंह० अपि] १. अपने शरीर से। स्वयं। स्वतः। खुद। (तीनों पुरुषों में) जैसे—तुम आप चले जाओ।
मुहा०—**आप की आप पड़ना**=अपनी अपनी रक्षा या लाभ का ध्यान रहना। **अपने आपको जनाना**=दे० 'आपको जनाना'। **अपने आपको भूलना** (क) किसी मनोवेग के कारण बेसुध होना। (ख) घमंड चूर होना। **आपको जनाना**=अपना अस्तित्व, महत्त्व आदि प्रकट, सूचित या स्थापित करना। उदा०—जहाँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ।—सूर। **आप से आप या आप ही आप**=(क) स्वयं। खुद। मन ही मन। स्वगत। **आप से आप**=बिना किसी चेष्टा या प्रयास के।
२. एक आदर-सूचक प्रयोग, 'तुम' या 'वे' के स्थान पर प्रयुक्त सर्वनाम। जैसे—आप ही चले जायँ।
पुं० [सं० आपः=जल] १. जल। २. आकाश ३. प्राप्ति। ४. एक वसु।

आपक—वि० [सं०√आप् (पाना)+ण्वुल्-अक] पाने या प्राप्त करनेवाला।

आपकाज—पुं० [हिं० आप+काज=कार्य] [वि० आपकाजी] १. अपना या निजी काम। २. स्वार्थ।

आपकाजी—वि० [हिं० आपकाज] मतलबी। स्वार्थी।

आपक्व—वि० [सं० प्रा० स०] १. जो अच्छी तरह पका न हो। २. कम, थोड़ा या हीन।

आपगा—स्त्री० [सं० आप्√गम् (जाना)+ड] नदी।

आपगेय—वि० [सं० आपगा+ढक्—एय] आपगा या नदी से संबंध रखनेवाला।
पुं० भीष्म।

आपचारी*—स्त्री० [हिं० आप+आचरण] अपनी इच्छानुसार मनमाना काम करने की क्रिया या भाव। स्वेच्छाचार।
वि० मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

आपजात्य—पुं० [सं० अपजात+ष्यञ्] [वि० अपजात] १. अपजाति होने की अवस्था या भाव। २. गुण आदि के विचार से अपने जनक, उत्पादक या मूल से घटकर तथा हीन होना। (डीजेनरेशन)

आपण—पुं० [सं० आ√पण् (सौदा करना)+घ] १. हाट। बाजार। २. दुकान। ३. हाट या बाजार में उगाहा जानेवाला कर।
† सर्व० १=अपना। २. =हम।

आपणिक—वि० [सं० आपण+ठक्—इक] बाजार में होनेवाले क्रय-विक्रय से संबंध रखनेवाला। (मरकेन्टाइल) जैसे—आपणिक लेख या विधि।

आपत्—स्त्री० [सं० अ√पद् (गति)+क्विप्]=आपद्।

आ-पतन—पुं० [सं० प्रा० स०] १. कहीं पर आना या पहुँचना। २. घटित होना। ३. ऊपर से आकर किसी पर गिरना या पड़ना। ४. अचानक या संयोग से संपर्क या संबंध में आना। ५. विज्ञान में, किसी प्रकार की रेखा या किसी तल पर आकर पड़ना। (इन्सिडेन्स)

आपत्काल—पुं० [सं० प० त०] [वि० आपत्कालिक] १. आपत्ति या विपत्ति का समय। २. बुरा दिन या समय। कुसमय।

आपत्कृत-ऋण—पुं० [सं० आपत्-कृत, स० त०, आपत्कृत-ऋण, कर्म० स०] आपत्ति काल में लिया जानेवाला ऋण।

आपत्ति—स्त्री० [सं० आ√पद्+क्तिन्] १. कष्ट। क्लेश। दुःख। २. अचानक आकर उपस्थित होनेवाली ऐसी स्थिति जिसमें बहुत-कुछ मानसिक कष्ट या चिंता और आर्थिक, शारीरिक आदि हानियाँ हों या हो सकती हों। आफत। मुसीबत। ३. किसी काम या बात के अनुचित, अव्यावहारिक, नीति-विरुद्ध या हानिकारक जान पड़ने पर उसे रोकने के उद्देश्य से कही जानेवाली विरोधी बात। (ऑब्जेक्शन) ४. सार्वजनिक भाषणों आदि के समय वक्ता की उक्त प्रकार की अथवा कोई अनुचित या संदिग्ध बात सामने आने पर श्रोताओं की ओर से कहा जानेवाला 'आपत्ति' शब्द जो इस बात का सूचक होता है कि हमें इस कथन या बात के ठीक होने में संदेह है। (क्वेश्चन)

आपत्ति-पत्र—पुं० [प० त०] वह पत्र जिसमें किसी कार्य या विषय के संबंध में अपनी आपत्ति और मत-भेद लिखा हो। (पेटिशन आफ आब्जेक्शन)

आपत्य—वि० [सं० अपत्य+अण्] अपत्य-संबंधी।
पुं० अपत्य या संतान होने की अवस्था या भाव। संतानत्व।

आपद्—स्त्री० [सं० आ√पद्+क्विप्] कष्ट और संकट की स्थिति। आपत्ति।

आपद—स्त्री० =आपद्।

आपदर्थ—पुं० [सं० आपद्-अर्थ, च० त०] ऐसी संपत्ति जिसे प्राप्त करने पर अपना अनिष्ट होता हो।

आपदा—स्त्री० [सं० आपद्+टाप्] १. क्लेश। दुःख। २. विपत्ति। आफत। ३. कष्ट या विपत्ति का समय।

आपद्धर्म—पुं० [सं० आपद्-धर्म, मध्य० स०] १. ऐसा दूषित, निंदनीय या वर्जित आचरण या व्यवहार जो आपत्ति-काल में विवशता-पूर्वक ग्रहण किया जा सकता हो और इसी लिए दूषित न माना जाता हो। २. किसी वर्ण के लिए वह व्यवसाय या काम जो दूसरा कोई जीवनोपाय न होने की ही दशा में ग्रहण किया जा सकता हो। जैसे—ब्राह्मण के लिए वाणिज्य। (स्मृति)

आपधाय—स्त्री०=आपा-धापी।

आपन*—पुं० [हिं० आप] अपना अस्तित्व या स्वरूप।
सर्व०=अपना।
अव्य० अपने आप। आप से आप।

आपनपौ—पुं० = अपनपै।

आपना—†सर्व० = अपना।

आपनिक—पुं० [सं० आपर्णिक] पन्ना नामक रत्न।

आप-निधि—पुं० [सं० आपः=जल+निधि] समुद्र। सागर।

आपनो*†—सर्व० = अपना।

आपन्न—वि० [सं० आ√पद्+क्त] १. जो कष्ट में पड़ा हो। विपत्ति-ग्रस्त। २. किसी के चक्कर या फेर में पड़ा हुआ। ग्रस्त। जैसे—संकटापन्न।

आपपर—पद [हिं० आप=स्वयं+पर=दूसरा] अपने और दूसरे के बीच परस्पर। उदा०—पुणँ सुणँ जण आपपर।—प्रिथीराज।

आप-बीती—स्त्री० [हिं०] स्वयं अपने ऊपर बीती हुई घटना या उसका उल्लेख।

आपया*—स्त्री० =आपगा (नदी)।

आपराह्णिक—वि० [सं० अपराह्ण+ठञ्-इक] अपराह्ण में या दिन के तीसरे पहर होनेवाला। अपराह्ण-संबंधी।

आपराधिक—वि० [सं० अपराध+ठक्-इक] १. ऐसे कार्यों या बातों से संबंध रखनेवाला जिनकी गणना अपराधों में हो और जिनके लिए न्यायालय से दंड मिल सकता हो। (क्रिमिनल) जैसे—आपराधिक प्रक्रिया। (क्रिमिनल प्रोसीजर) २. ऐसी बातों से संबंध रखनेवाला जिनमें अपराध का विचार, भाव या ईप्सा हो। (कल्पेबुल) जैसे—आपराधिक बल-प्रयोग, आपराधिक अपचार, आपराधिक प्रमाद। ३. दे० 'आपराधशील'।
पुं० ऐसा कार्य जो धर्म या विधि की दृष्टि में अपराध हो।

आप-रूप—वि० [हिं० आप+सं० रूप] अपने रूप से युक्त। मूर्तिमान।
सर्व० स्वयं आप (व्यंग्यात्मक)। जैसे—यह सब आपरूप की करतूत है।

आपर्तुक—वि० [सं० अप-ऋतु, प्रा० स०,+कन्] १. अप-ऋतु (अपनी वास्तविक ऋतु) से भिन्न ऋतु में होनेवाला। २. सभी कालों और ऋतुओं में होनेवाला।

आपवर्ग्य—वि० [सं० अपवर्ग+ष्यञ्] अपवर्ग या मोक्ष देने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।

आपस--अव्य० [हिं० आप+स (प्रत्य०)] पारस्परिक संबंध का सूचक एक अव्यय जिसका प्रयोग कुछ विभक्तियों के लगने पर, कहीं क्रिया विशेषण की तरह और कहीं विशेषण की तरह होता है।जैसे—**आपस का**=पारस्परिक या एक-दूसरे के साथ का। **आपस में**=परस्पर या-एक दूसरे के साथ। कहीं-कहीं यह आत्मीयता अथवा घनिष्ठ व्यवहार का भी सूचक होता है। जैसे-आपस के लोग।

आपसदारी--स्त्री० [हिं० आपस+फा० दारी (प्रत्य०)] १. एक दूसरे के साथ होनेवाली आत्मीयता अथवा घनिष्ठ व्यवहार या संबंध। जैसे—यहाँ तो आपसदारी की बात है। २. ऐसे लोगों का वर्ग या समूह जिनसे उक्त प्रकार का संबंध हो। जैसे—आपसदारी में तो हर काम में आना-जाना पड़ता ही है।

आपसी--वि० [हिं० आपस] आपस का। आपस में होनेवाला। पारस्परिक। जैसे—आपसी मतभेद।

आपस्तंब--पुं० [सं०] [वि० आपस्तंबीय] एक प्राचीन ऋषि जिनके बनाये हुए कल्प, गृह्य और धर्म नामक तीन सूत्र-ग्रंथ माने जाते हैं।

आपा--पुं० [हिं० आप=स्वयं] १. अपना अस्तित्व या सत्ता। निजत्व। २. अपनी सत्ता के संबंध में होनेवाला ज्ञान या भान। अहंभाव। **मुहा०--आपा खोना, डालना, तजना या मिटाना**=अपनी सत्ता का ध्यान या विचार छोड़ देना। मन में अहंभाव या अहंमन्यता न रहने देना। निरभिमान होना। (त्याग, निस्पृहता, विरक्ति आदि का लक्षण) **आपा सँभालना**=वयस्क या सयाने होकर अपना भला-बुरा समझने के योग्य होना।

३. अपने पद, मर्यादा, योग्यता आदि का ध्यान या विचार। **मुहा०--आपा खोना**=दे० 'आपे से बाहर होना'। **आपे में आना**=क्षणिक आवेश या मनोविकार के प्रभाव से निकलकर साधारण स्थिति में आना। होश-हवास ठिकाने रखना। जैसे-बहुत बहक चुके; अब जरा आपे में आओ। **आपे से बाहर होना**=क्रोध के वश में अपने पद, मर्यादा आदि का ध्यान छोड़कर उग्र रूप धारण करना।

आपात--पुं०[सं० आ√पत् (गिरना) +घञ्] [वि० आपातिक] १. ऊपर या बाहर से आकर गिरना। २. गिरना। पतन। ३. घटना का अचानक घटित होना। ४. वह घटना या बात जो अचानक ऐसे रूप में सामने आ जाय जिसकी पहले से कोई आशा, कल्पना या संभावना न हो। (एमर्जेन्सी)

आपाततः--अव्य० [सं० आपात+तस] १. अकस्मात्। अचानक। २. अंत में। आखिरकार।

आपातलिका--स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छन्द जो वैताली छंद के विषम चरणों में ६ और सम चरणों में ८ मात्राओं के उपरांत एक भगण और दो गुरु रखने से बनता है।

आपातिक--वि० [सं० आपात + ठक्-इक] १. नीचे उतरनेवाला। २. अचानक सामने आनेवाला। ३. इस प्रकार या ऐसे रूप में सामने आनेवाला जिसकी पहले से कल्पना या संभावना न हो। आत्ययिक। (एमर्जेन्ट)

आपाती (तिन्)--वि० [सं० आ√पत्+णिनि] १. नीचे आने, उतरने या गिरनेवाला। २. आक्रमण करने या ऊपर टूट पड़नेवाला। ३. बिना आशा या संभावना के अचानक घटित होनेवाला। (एमर्जेन्ट)

आपाद--अव्य० [सं० आ√पद् (गति)+घञ्] पैर या पैरों तक। पुं० १. वह जो प्राप्त या सिद्ध किया गया हो। २. पुरस्कार। ३. पारिश्रमिक।

आपाद-मस्तक--अव्य० [सं० पाद-मस्तक, द्वं० स०, आ—पादमस्तक, अव्य० स०] १. पैरों से सिर तक। २. आदि से अंत तक।

आपा-धापी--स्त्री० [हिं० आपा=धापी का अनुकरण+धापना] १. १. ऐसी स्थिति जिसमें सभी लोग अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहे हों और दूसरे के हानि-लाभ का ध्यान न रखते हों। २. खींच-तान। लाग-डाँट।

आपान--पुं० [सं० आ√पा (पीना)+ल्युट्-अन] १. कई आदमियों का साथ बैठकर मद्य या शराब पीना। २. उक्त प्रकार से बैठकर मद्य पीने का स्थान।

आपानक--पुं० [सं० आपान+कन्] १. मद्य-पान की गोष्ठी। २. मद्य पीने-वाला व्यक्ति। उदा०—*रजनी के आपानक का अब अंत है।*—प्रसाद

आपा-पद*--पुं० आत्म-पद (मोक्ष)।

आपायत*--वि० [सं० आप्यायित=वर्धित] प्रबल। बलवान। (डिं०)।

आपी*--पुं० [सं० आप्य] पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र। अव्य० आप ही। स्वतः। स्वयं। (बोल-चाल)

आपीड़--पुं० [सं० आ√पीड् (दबाना)+ अच्] १. ऊपर से दबाकर बैठाई या लगाकर रखी हुई चीज। २. सिर पर पहनने या बाँधने का कोई कपड़ा या गहना। जैसे—पगड़ी, मुकुट आदि। ३. वास्तु में, छाजन के बाहर पाख से निकली हुई बँड़ेरी का अंश। मँगौरी। २. एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके पहले चरण में ८, दूसरेमें १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं।

वि० १. दबानेवाला। २. कष्ट देनेवाला।

आपीडन--पुं० [सं० आ√पीड़+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आपीडित] १. कसकर या जोर से दबाना या बाँधना। २. कष्ट देना। पीड़ित करना।

आ-पीत--वि० [सं० प्रा० स०] सोनामाखी के रंग का। हलका पीला। पुं० सोनामक्खी। स्वर्णमाक्षिक।

आपु*--सर्व० दे० 'आप'।

*पुं०=आपा (अहंभाव)।

आपुन*--सर्व० दे० 'अपना'।

अव्य० आप। खुद। स्वयं। उदा०—(क) आपु न आवै ताहि पहँ, ताहि तहाँ लेइ जाइ।—तुलसी। (ख) आपुन अध अवगति चलंति।—केशव।

आपुनपौ*--पुं०=अपनपौ (अपनापन)।

आपुनो*--सर्व०=अपना।

आपुस*--अव्य०=आपस।

आपूर--पुं० [सं० आ√पूर् (पूर्णकरना)+ घञ्] १. पूरा या पूर्ण करना। भरना। २. वह जो बहुत अधिक भरा हो। ३. पानी की बाढ़।

आपूरण--पुं० [सं० आ√पूर्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आपूरित] अच्छी तरह या पूरी तरह से भरना।

आपूरना*--स० [सं० आपूरण] अच्छे तरह भरना।

आपूर्ति--स्त्री० [सं० आ√पूर्+क्तिन्] १. अच्छी तरह भरे होने की अवस्था या भाव। २. तृप्ति।

आपेक्षिक--वि० [सं० अपेक्षा+ठक्-इक] १. किसी प्रकार की या किसी दूसरे की अपेक्षा रखनेवाला। अपेक्षा से युक्त। २. जिसका अस्तित्व दूसरी वस्तु पर अवलंबित हो। निर्भर रहनेवाला। ३. किसी की तुलना में होनेवाला। तुलनात्मक। जैसे--आपेक्षिक गुरुत्व।

आपो*--पुं०=आपा।

आप्त--वि० [सं० आप् (पाना)+क्त] [भाव० आप्तता, आप्ति] १. आया पहुँचा या मिला हुआ। जैसे--आप्त-गर्भा=गर्भवती; आप्त गर्व=अभिमानी। २. विश्वास करने योग्य। ३. कुशल। दक्ष।
पुं० १. ऐसा व्यक्ति जिसपर विश्वास किया जा सकता हो। २. ऋषि। ३. योग में, ऐसा प्रमाण जो केवल कथन या शब्दों के आधार पर हो। शब्द-प्रमाण। ४. गणित में किसी संख्या को भाग देने पर प्राप्त होने वाला मान या संख्या। लब्धि।

आप्त-काम--पुं० [ब० स०] १. वह जिसकी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हों। २. वह जिसने सांसारिक बंधनों और वासनाओं से मुक्ति पा ली हो।

आप्तकारी (रिन्)--पुं० [सं० आप्त√कृ (करना)+णिनि] १. वह जो ठीक प्रकार से तथा विश्वस्त ढंग से काम करता हो। २. गुप्तचर।

आप्त-पुरुष--पुं० [कर्म० सं०] वह व्यक्ति जो तत्त्वों, वस्तुओं आदि के यथार्थ रूप अच्छी तरह जानता हो और जिसकी उपदेशपूर्ण बातें प्रामाणिक मानी जाती हों।

आप्त-वचन--पुं० [ष० त०] १. ऐसा कथन जिसमें कुछ भी प्रमाद या भूल न हो। बिलकुल ठीक और मानने योग्य बात। २. ऋषि-मुनियों के वचन जो श्रुतियों, स्मृतियों आदि में मिलते हैं।

आप्त-वर्ग--पुं० [ष० त०] आत्मीयों और बंधु-बांधवों का वर्ग या समूह।

आप्तागम--पुं० [आप्त-आगम, कर्म० स०] वेद, श्रुतियाँ, स्मृतियाँ आदि।

आप्ति--स्त्री० [सं० √आप्+क्तिन्] १. आप्त होने की अवस्था या भाव। २. प्राप्ति। लाभ।

आप्तोक्ति--स्त्री० [सं० आप्त-उक्ति, ष० त०] आप्त वचन के रूप में मानी जानेवाली उक्ति या कथन।

आप्य--वि० [सं०√आप्+ण्यत्] १. प्राप्त करने या लेने योग्य। २. जो प्राप्त किया जाने को हो।

आप्यायन--पुं० [सं० आ√प्याय् (वृद्धि) +ल्युट्-अन] १. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना। जैसे--दूध में खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना। २. तृप्त करना। ३. वैद्यक में, मारी हुई धातु को घी, शहद, सुहागे आदि से फिर से जीवित करना। ४. कर, विशेषतः जल-संबंधी वस्तुओं पर लगनेवाला कर।

आप्यायित--भू० कृ० [सं० आ√प्याय्+णिच्+क्त] १. जिसे तृप्त या संतुष्ट किया गया हो। २. आर्द्र। गीला। तर। ३. बढ़ा या बढ़ाया हुआ। परिवर्धित। ४. एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचाया या लाया हुआ। परिवर्तित।

आप्रच्छन्न--वि० [सं० आ+प्र√छद् (अपवारण)+क्त] १. गुप्त। रहस्य-पूर्ण। २. छिपा हुआ।

आप्लव--पुं [सं० आ√प्लु (गति)+अप्] १. पानी से तर करना। २. स्नान।

आप्लवन--पुं० [सं० आ√प्लु+ल्युट्-अन] अच्छी तरह पानी से भरना या तर करना।

आप्लवनव्रती (तिन्)--पुं० [सं० आप्लवन-व्रत, ष० त०+इनि] ब्रह्मचर्य समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाला स्नातक।

आप्लावन--पुं० [सं० आ√प्लु+णिच्+ल्युट्-अन] [वि० आप्लावित] अच्छी तरह पानी में डुबाना या पानी से भरना।

आप्लावित--भू० कृ० [सं० आ√प्लु+णिच्+क्त] १. अच्छी तरह डूबा या डुबाया हुआ। २. भीगा या भिगोया हुआ। ३. नहाया या नहलाया हुआ। स्नात।

आप्लुत--भू० कृ० [सं० आ√प्लु+क्त] अच्छी तरह भीगा हुआ। खूब तर या शराबोर।
पुं० वह स्नातक जो गुरुकुल की पढ़ाई अच्छी तरह समाप्त कर चुका हो।

आफत--स्त्री० [फा० मि० सं०, आपत्ति] आपत्ति। विपत्ति। संकट।
मुहा०--आफत उठाना=(क) कष्ट या विपत्ति सहना (ख) दे० 'आफत खड़ी करना'। **आफत खड़ी करना**=ऐसा काम करना जिससे दूसरों को कष्ट या विपत्ति में पड़ना पड़े। **आफत ढाना**=बहुत अधिक विपत्ति की अवस्था उत्पन्न करना। **आफत मचाना**=दे० 'आफत खड़ी करना'। **आफत मोल लेना**=जान-बूझकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जिसमें स्वयं को कष्ट या विपत्ति में पड़ना पड़े।
पद--आफत का परकाला=ऐसा व्यक्ति जो अपनी बहुत बढ़ी हुई चालाकी के कारण सभी प्रकार के विकट काम कर सके। **आफत का मारा**=जिसपर बहुत बड़ी विपत्ति या संकट पड़ा हो।

आफताप--पुं० आफताब (सूर्य)।

आफ-ताब--पुं० [फा०] [वि० आफताबी] १. सूर्य। २. कड़ी धूप।

आफ-ताबा--पुं० [फा०] एक तरह का गड़ुआ जिसके मुँह पर ढक्कन लगा रहता है।

आफ-ताबी--स्त्री० [फा०] १. गोल या पान के आकार का बना हुआ जरदोजी पंखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है और जो जलूसों आदि में झंडे के साथ आगे आगे चलता है। २. गोलबत्ती के आकार की एक प्रकार की आतिशबाजी जिसके जलने पर सूर्य का-सा सफेद प्रकाश होता है। ३. दरवाजे या खिड़की के सामने का छोटा छज्जा या सायबान जो धूप के बचाव के लिए लगाया जाता है। झांप।
वि० १. सूर्य-संबंधी। २. सूर्य के ताप या धूप में पकाया हुआ। जैसे--आफताबी गुलकंद। ३. गोलाकार। गोल।

आफरीन--अव्य० [फा० आफ़्रीं] बहुत अच्छा या बड़ा काम करने पर कहा जानेवाला शब्द, जिसका अर्थ है--वाह! बहुत अच्छा किया! धन्य हो! शाबाश! आदि।

आफियत--स्त्री० [अ०] कुशल-मंगल। खैरियत।

आफिस--पुं० [अं०] कार्यालय।

आफू†--स्त्री०=अफीम। उदा०--अमली मिसरी छाँड़ि कै आफू खात सराहि।--वृंद।

आबंध--पुं० [सं० आ√बन्ध् (बाँधना)+घञ्] [वि० आबंधक] १. वह जिससे बांधा जाय। बंधन। २. गाँठ। ३. प्रेम। स्नेह। ४. कोई बात निश्चित या पक्की करना। ४. कर, राजस्व आदि नियत या स्थिर करना।

आबंधक-अधिकारी (रिन्)--पुं० [सं० आ√बन्ध्+ण्वुल्-अक, आबंधक-

अधिकारी कर्म० स०] वह राजकीय अधिकारी जो भूमि का कर या राजस्व निश्चित करता है।

आबंधन—पुं० [आ०√वन्धु+ल्युट्–अन्] १. अच्छी तरह बांधने की क्रिया या भाव। २. दे० 'आबंध'।

आब—पु० [फा०] जल। पानी।

पद—आब-दाना=अन्न-जल।

मुहा०—आबदाना उठना =ऐसी स्थिति आना कि कहीं से उठकर दूसरी जगह चले जाना पड़े।

स्त्री० [सं० आभा] १. कांति। चमक। २. छवि। शोभा।

मुहा०—आब चढ़ाना=(क) शोभा से युक्त करना या चढाना। (ख) चमकाना।

पु० [सं० अभ्र] बादल। मेघ। उदा०—बिहरि मिले जनु मेघ धुरि, सावन भद्दव आब।—चदबरदाई।

आबकार—पुं० [फा०] वह जो शराब बनाता या बेचता हो। कलवार।

आबकारी—स्त्री० [फा०] १. वह स्थान जहां शराब चुआई या बेची जाती हो। शराबखाना या भट्ठी। २. मादक वस्तुओं से संबंध रखनेवाला सरकारी विभाग।

आबकारी शुल्क—पु० [फा०+सं०] वह शुल्क जो शराब, अफीम, भांग आदि मादक द्रव्यों के उत्पादन और बिक्री पर राज्य की ओर से लगाया जाता है। (एक्साइज ड्यूटी)

आबखोरा—पु० [फा० आबखोरः] वह पात्र जिसमें पानी पीते है। जैसे—कटोरा या गिलास।

आबगीना—पु० [फा० आबगीनः] १. शीशे की बड़े पेटवाली बोतल। २. दर्पण। शीशा। ३. स्फटिक। ४. हीरा।

आबगीर—पुं० [फा०] १. जुलाहों की कूची जिससे वे तानी पर पानी छिड़कते है। २. पानी का गड्ढा या तालाब।

आबजोश—पु० [फा०] १. लाल मुनक्का। २. शोरबा।

आबड़—स्त्री० [दे०] घेरा। (बुंदेल०)। जैसे—वह सपेरा! क्या डाकुओं की आबड़ में पड़ गया?—वृंदावनलाल वर्मा।

आबताब—स्त्री० [फा० आबोताफ] १. चमक। द्युति। २. कांति। शोभा।

आबदस्त—पुं० [फा०] मल-त्याग के उपरान्त गुदेंद्रिय को जल से धोना। पानी छूना।

क्रि० प्र०—लेना।

आबदानी—स्त्री०=आबादाना।

आबदार—वि० [फा०] [भाव० आबदारी] १ आब या चमकवाला। चमकीला। २. पानी पिलानेवाला।

पु० १. आत्माभिमानी। २. वह आदमी जो तोप में सुंबा और पानी का पुचारा देता है।

आबदारी—स्त्री० [फा०] १. आबदार होने की अवस्था या भाव। २. हाथीदांत की चित्रकारी में बालों, कपड़ों आदि की चमक दिखाने के लिए उन पर मसाले लगाने की क्रिया।

आबद्ध—भू० कृ० [सं० आ√वन्ध्+क्त] १. अच्छी तरह से जकड़ा या बंधा हुआ। २. बंधन में पड़ा हुआ। कैद।

आबनूस—पुं० [फा०अब्नूस] [वि० आबनूसी] एक प्रकार का वृक्ष जिसके हीर की लकड़ी बहुत काली होती है। तेंदू (एबनी)

पद—आबनूस का कुंदा-अत्यंत काले रंग का और कुरूप व्यक्ति।

आब-पाशी—स्त्री० [फा०] खेतों आदि की सिंचाई।

आब-रंग—पुं० [फा०] चित्र-कला में, एक प्रकार का रंग जो प्योड़ी, किरमिज और काजल के योग से बनता है। लिकटी।

आबरवाँ—पुं० [फा० आबेरवाँ] बहता हुआ पानी।

स्त्री० एक प्रकार की बढ़िया, महीन मलमल।

आबरू—स्त्री० [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—खोना।—गँवाना।—जाना।—बिगड़ना।—रखना।—रहना।

आबला—पुं० [फा० आबलः] छाला। फफोला।

आब-हवा—स्त्री० [फा० आबो हवा] जीव-जन्तुओं या मनुष्यों पर पड़नेवाले प्रभाव के विचार से किसी स्थान का जल और वायु। जल-वायु।

आबाद—वि० [फा०] १. (स्थान) जिसमें बस्ती हो। बसा हुआ। २. (भूमि) जो जोती-बोई गई हो या जाती हो। ३. (व्यक्ति) सब प्रकार से प्रसन्न और सुखी।

आबादकार—पुं० [फा०] ऐसा खेतिहर जो जंगल काटकर या पड़ती जमीन को ठीक करके उसे आबाद करने के उद्देश्य से उसमें बसा हो और वहाँ खेती-बारी करता हो।

आबादानी—स्त्री० [फा०] १. बसा हुआ और रमणीक स्थान। उदा०—भूखे को अन्न पियासे को पानी, जंगल जंगल आबादानी।—कहा०। २. ऐसी शोभापूर्ण स्थिति जो उन्नति, संस्कृति, संपन्नता, सौभाग्य आदि की सूचक हो।

आबादी—स्त्री० [फा०] १. आबाद अर्थात् बसे हुए होने की अवस्था या भाव। २. वह स्थान जहाँ लोग आबाद या बसे हुए हों। बस्ती। ३. वह भूमि जिसपर खेती होती हो। ४. किसी स्थान पर बसे हुए सब लोगों की संख्या। जन-संख्या। जैसे—बनारस की आबादी ५ लाख है।

आबाधा—स्त्री० [सं० आ√बाध् (विघ्न या हानि पहुँचाना)+आ–टाप्] चिंतित या विकल करनेवाली बात या बाधा। जैसे—कष्ट, हानि आदि।

आ-बाल—अव्य० १. बाल्यावस्था से। बचपन या लड़कपन से। २. [अव्य० स०] लड़के या लड़कों तक।

आबाल्य—पु० [सं० अव्य० स०] शैशव मे समाप्त होनेवाली अवस्था। अव्य० बाल्यावस्था तक।

आबिल—वि० [सं० आ√बिल् (फाड़ना) +क] १. कीचड़ में भरा हुआ। पंकिल। २. गंदा या मैला।

आबी—वि० [फा०] १. आब (अर्थात् जल) संबंधी। जल का। २. पानी के रंग का। हल्का नीला। ३. जल में रहने या होनेवाला। ४. जल के योग से बनाया जानेवाला। जैसे—आबी नमक=समुद्री नमक। ५. (भूमि) जिसमें खेती के लिए किसी प्रकार की सिंचाई होती हो। 'खाली' का विपर्याय।

स्त्री० १. जल के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और पैर हरे तथा सफेद होते हैं। १. ऐसी रोटी जिसमें पलेथन के स्थान पर पानी लगाया गया हो।

पुं० एक प्रकार का अंगूर।

आबेस*—पुं० [सं० आवेश] १. आवेश। जोश। २. आनंद या सुख का अतिरेक। ३. व्याप्ति। संचार।

आब्द—वि० [सं० अब्द+अण्] १. अब्द संबंधी। अब्द या वर्ष का। २. बादल से उत्पन्न या संबंधित।

आब्दिक—वि० [सं० अब्द+ठक्–इक] वर्ष संबंधी। प्रति वर्ष होनेवाला। वार्षिक।

आभंग—वि०=अभंग (बिना टूटा हुआ)। उदा०—अनल कुंड आभंग उपजि चहुआन अनिल-थल।—चंदवरदाई।

आभ*—स्त्री० [सं० आभा] आभा। कांति। शोभा।

†पुं० [सं० अभ्र] आकाश। (डिं०)। उदा०—(क) भला चीत भूर जालरा, आभ लगावा सींग।—बाँकीदास। (ख) बीजुलियाँ चहालवलि आगइ आभइ एक।—ढोला-मारू।

†पुं०=आब (जल)।

प्रत्य० [सं०] किसी चीज की आभा रखनेवाला। आभा से युक्त। (यौ० के अंत में) जैसे—रक्ताभ, स्वर्णाभ आदि।

आभरण—पुं० [सं० आ√भृ (भरण करना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० आभरित] १. आभूषण। गहना। २. भरण-पोषण।

आभरित—भू० कृ० [सं० आ√भृ+अप् आभर+इतच्] १. आभूषणों या गहनों से युक्त अलंकृत। २. जिसका भरण-पोषण हुआ हो। ३. पाला-पोसा हुआ।

आभा—स्त्री० [सं० आ√भा (दीप्ति)+अङ्–टाप्] १. हलकी कांति या चमक। २. रंगत, स्वाद आदि की साधारण से कुछ कम या हलकी छाया या प्रतीति। (टिंज) ३. किसी चीज की कुछ अस्थायी झलक या प्रतिबिंब। (शेड)

आभाणक—पुं० [सं० आ√भण् (बोलना)+ण्वुल्–अक] १. एक प्रकार के नास्तिक। २. कहावत। लोकोक्ति।

आभार—पुं० [सं० प्रा० स०] १ बोझा। भार। २. घर-गृहस्थी की देख-भाल और पालन-पोषण का भार। ३. किसी के उपकार के लिए प्रकट की जानेवाली कृतज्ञता। एहसान-मंदी। ४. उत्तरदायित्व। जिम्मेदारी। (ऑब्लिगेशन; अंतिम दोनों अर्थों के लिए) ५. चार चरणों का एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में आठ तगण होते हैं।

आभारी (रिन्)—पुं० [सं० आभार+इनि] आभार मानने या कृतज्ञता प्रकट करनेवाला। कृतज्ञ।

आभावन—पुं० [प्रा० स०] अनुमान। अंदाज।

आभाष—पुं० [सं० आ√भाष् (बोलना)+घञ्] १. कहना। बोलना। २. भूमिका। ३. संबोधन।

आभाषण—पुं० [सं० आ√भाष्+ल्युट्–अन] १. बात-चीत करना। बोलना। २. संबोधन।

आभास—पुं० [सं० आ√भास् (दीप्ति)+अच्] १. चमक। दीप्ति। द्युति। २ कांति। शोभा। ३. छाया। प्रतिबिम्ब। ४. ऐसी बाहरी आकृति या रूप-रंग जिसे देखने पर किसी और चीज का धोखा हो सकता हो। ५. उक्त प्रकार की आकृति या रूप-रंग के कारण होनेवाला धोखा या भ्रम। जैसे—रस्सी में सांप का या सीपी में चांदी का आभास होना। ६. किसी चीज के अनुकरण या ढंग पर बनी हुई कोई दूसरी ऐसी चीज जो ठीक, पूरी या शुद्ध न होने पर भी बहुत-कुछ मूल की छाया से युक्त हो और देखने में बहुत-कुछ वैसी ही जान पड़ती हो। जैसे—यह रस नहीं बल्कि रस का आभास (रसाभास) मात्र है। ७. किसी चीज या बात में दिखाई देनेवाली किसी दूसरी चीज या बात की ऐसी छाया या झलक जो उस दूसरी चीज या बात का कुछ अनुमान कराती हो। जैसे—उनकी बातों में ही इस बात का आभास था कि वे किसी तरह नहीं मानेंगे। ८. ऐसा तर्क या प्रतिपादन जो वास्तव में ठीक न होने पर भी ऊपर से देखने में अच्छा और ठीक जान पड़े। जैसे—हेतु और हेत्वाभास (हेतु का आभास) में बहुत अंतर है।

आभासन—पुं० [सं० आ√भास्+ल्युट्–अन] १. आभास या आलोक से युक्त करना। प्रकाश से युक्त करना। २. स्पष्ट करना। ३. किसी बात का आभास या झलक देना अथवा उसकी हलकी प्रतीति कराना।

आभासवाद—पुं० [सं० ष० त०] वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें यह माना जाता है कि जितनी अमूर्त्त धारणाएँ या भावनाएँ हैं, वे आभास मात्र या देखने भर की है, उनकी वास्तविक सत्ता नहीं हैं। (नॉमिनलिज्म)

आभासीन—वि० [सं० आभास से] १. आभास से युक्त। चमकीला। २. आभास रूप में अर्थात् बहुत हलके रूप में दिखाई देनेवाला।

आभास्वर—वि० [सं० आ√भास्+वरच्] जिसमें बहुत अधिक आभा या चमक हो। बहुत चमकीला।

पुं० एक देव-वर्ग।

आभिचारिक—वि० [सं० अभिचार+ठक्–इक] अभिचार संबंधी। तंत्रोक्त मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचारों से संबंध रखनेवाला।

पुं० उक्त अभिचारों के समय पढ़े जानेवाले मंत्र।

आभिजन—वि० [सं० अभिजन+अण्] जन्म या कुल से संबंध रखनेवाला।

पुं० कुलीनता।

आभिजात्य—पुं० [सं० अभिजात+ष्यञ्] अभिजात होने की अवस्था या भाव।

आभिजित—वि० [सं० अभिजित्+अण्] अभिजित् नक्षत्र में होने या उससे संबंध रखनेवाला।

आभिधा—स्त्री० [सं० अभिधा+अण्–टाप्] १. ध्वनि। शब्द। २. उल्लेख। ३. नाम।

आभिधानिक—वि० [सं० अभिधान+ठक्–इक] अभिधान अर्थात् शब्द-कोश में होनेवाला या उससे संबंध रखनेवाला। शब्द-कोश संबंधी।

पुं० वह जो अभिधान या शब्द-कोश की रचना करता हो। कोशकार।

आभिप्रायिक—वि० [सं० अभिप्राय+ठक्–इक] १. अभिप्राय संबंधी। २. अभिप्राय के रूप में होनेवाला।

आभिमुख्य—पुं० [सं० अभिमुख+ष्यञ्] अभिमुख या आमने-सामने होने की अवस्था या भाव।

आभिषेचनिक—वि० [सं० अभिषेचन+ठञ्–इक] अभिषेचन या राज-तिलक-संबंधी।

आभिहारिक—भू० कृ० [सं० अभिहार+ठञ्–इक] १. उपहार या भेंट के रूप में दिया हुआ। २. छीनकर या बलपूर्वक लिया हुआ।

पुं० उपहार। भेंट।

आभीर—पुं० [सं० आ-भी, प्रा० स०, आभी√रा (दान)+क] [स्त्री० आभीरी] १. अहीर। गोप। ग्वाला। २. एक प्राचीन जनपद या देश, जिसमें गोप जाति के लोग रहते थे। ३. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ और अंत में जगण होता है। ४. एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा गया है।

आभीरक—वि० [सं० आभीर+अण्+कन] अहीर या गोप संबंधी।
पुं० १. आभीर या गोप जाति। अहीर। २. इस जाति का कोई व्यक्ति। अहीर।

आभीरी—स्त्री० [सं० आभीर+ङीप्] १. अहीर की स्त्री। २. अहीर जाति की स्त्री। ३. प्राचीन आभीरों की एक बोली जो ईसवी आरंभिक शतियों में उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी और जो आगे चलकर अपभ्रंश बन गई थी। ४. संगीत में एक संकर रागिनी।

आभुक्ति—स्त्री० [सं० आ√भुज् (भोगना)+क्तिन्] १. आभोग करने की क्रिया या भाव। २. दे० 'आभोग'। (ईजमेण्ट)

आभूत—भू० कृ० [सं० आ√भू (होना)+क्त] जो उत्पन्न हो चुका हो अथवा अस्तित्व में आ चुका हो।

आभूषण—पुं० [सं० आ√भूष् (सजाना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० आभूषित] १. अलंकार। गहना। जेवर। २. वह चीज या बात जो किसी दूसरी चीज या बात की शोभा या सौंदर्य बढ़ाती हो। (ऑर्नामेण्ट)

आभूषन*—पुं०=आभूषण।

आभूषित—भू० कृ० [सं० आ√भूष्+क्त] १. गहनों आदि से सजाया हुआ। अलंकृत। २. किसी प्रकार सजाया हुआ।

आभृत—भू० कृ० [सं० आ√भृ (भरण करना)+क्त] १. अच्छी तरह से या पूरा भरा हुआ। २. जिसका भरण-पोषण किया गया हो। ३. पास लाया हुआ। ४. जकड़ा या बँधा हुआ।

आभोग—पुं० [सं० आ√भुज्+घञ्] १. किसी वस्तु का उपभोग करके उससे सुख प्राप्त करना। भोग। २. ऐसी सब बातें या लक्षण जिनसे किसी दूसरी बात या स्थिति अथवा उसके भोग का पता चले। जैसे—आभोग से पता चलता है कि किसी समय यह बहुत संपन्न नगर रहा होगा। ३. विधिक क्षेत्र में, किसी प्रकार के सुख या सुभीते का ऐसा भोग जो कुछ समय से होता आया हो; और इसी आधार पर आगे भी चल सकता हो। आभुक्ति। (ईजमेन्ट) ४. किसी पद्य में कवि के नाम का उल्लेख। ५. तक्षक या नाग का फन जो वरुण के सिर पर छत्र के रूप में रहता है। ६. साँप।

आभोगी (गिन्)—वि० [सं० आभोग+इनि] १. आभोग या भोग करनेवाला। २. खाने या भोजन करनेवाला।
पुं० १. वह जो बराबर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता आया हो। २. आराम-तलब।

आभोग्य—वि० [सं० आ√भुज्+ण्यत्] (पदार्थ) जिसका भोग होता हो या हो सकता हो।

आभोजी (जिन्)—वि० [सं० आ√भुज्+णिनि] खानेवाला। भोजी।

आभ्यंतर—वि० [सं० अभ्यंतर+अण्] १. अभ्यंतर में होनेवाला। अंदर का। भीतरी। २. देश, शरीर आदि के भीतरी भाग में होनेवाला। जैसे—आभ्यंतर कोप।

आभ्यंतरिक—वि० [सं० अभ्यंतर+ठञ्—इक] अभ्यंतर में या बिलकुल अंदर होनेवाला।

आभ्युदयिक—वि० [सं० अभ्युदय+ठञ्—इक] १ अभ्युदय-संबंधी। २. अभ्युदय या उन्नति करने या करानेवाला। ३. उत्तम। श्रेष्ठ।
पुं० नांदीमुख श्राद्ध, जो कर्त्ता का अभ्युदय करानेवाला माना गया है।

आमंत्रण—पुं० [सं० आ√मंत्र् (गुप्त भाषण)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० आमंत्रित] १. पुकारना। बुलाना। २. किसी को निमंत्रण या बुलावा भेजकर अपने यहाँ बुलाना। ३. अपने यहाँ बुलाने के लिए दिया जानेवाला निमंत्रण।

आमंत्रयिता (तृ)—पुं० [सं० आ√मंत्र्+णिच्+तृच्] वह जो किसी को अपने यहाँ आमंत्रित करे या बुलावे।

आमंत्रित—भू० कृ० [सं० आ√मंत्र्+क्त] १. जिसका आमंत्रण हुआ हो। पुकारा या बुलाया हुआ। २. (अतिथि) जिसे निमंत्रण देकर अपने यहाँ बुलाया गया हो।

आमंद—वि० [सं० आम√दो (खंडन करना)+ड, मुम्] जिसकी ध्वनि या स्वर कुछ गंभीर हो।
पुं० ऐसी ध्वनि या स्वर जो कुछ गंभीर या भारी हो।

आम—पुं० [सं० आम्र; प्रा० अम्ब; गु० आँबो; सिं० अंबु, आमो; का० पं० सिंह० अंब; बँ०, उ० आँब, आम; मरा० आँबा] १. एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो अपने मधुर और रसीले फलों के लिए प्रसिद्ध है। २. उक्त वृक्ष का फल।
पद०—**अमचूर, अमहर।**
कहा०—**आम के आम गुठली के दाम**=ऐसा काम, चीज या बात जिससे होनेवाले मुख्य लाभ के साथ कोई गौण लाभ भी होता हो। **आम खाने से काम या पेड़ गिनने से**=इस वस्तु से अपना काम निकालो; इसके विषय में निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन?
वि० [सं० आ√अम् (पकना)+घञ् (कर्म में)] १. थोड़ा पका हुआ। २. बिना पका हुआ। अपक्व। कच्चा।
पुं०=आँव (रोग)।
वि० [अ०] १. जो लोक में बहुत प्रचलित हो। २. जिसमें सब लोग सम्मिलित हो सकें। सार्वजनिक। जैसे—आम जलसा। ३. साधारण। सामान्य।
पुं० जन-साधारण। जनता।

आम खास—पुं० [अ०] राजमहल के भीतर का वह भाग जहाँ राजे-महाराजे बैठकर दरबार करते थे।

आम-गंधि (धिन्)—स्त्री० [ब० स०, इत्व] कच्ची और सड़ी हुई चीजों के जलने की गंध। बिसायँध।

आम-गर्भ—पुं० [कर्म० स०] भ्रूण।

आमड़ा—पुं० [सं० आम्रातक प्रा० आम्माडओ; अप अंबाडय, गु० अमेडा; मरा० अंबाडी] १. एक पेड़ जिसके छोटे गोल फल आम की तरह खट्टे होते हैं। २. इस पेड़ का फल जिसका अचार पड़ता और तरकारी बनती है।

आमण दूमण—वि० [सं० उन्मनाः+दुर्मनाः] १. अन्यमनस्क। २. अशांत और खिन्न। उदा०—अंतरि आमण दूमणा, किसउ ज खड़ड काज।—ढोलामारू।

आमद—स्त्री० [फा०] १. आने की क्रिया या भाव। आगमन। अवाई। आना। २. आमदनी। आय।

आमदनी—स्त्री० [फा०] १. बाहर से अंदर अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने की क्रिया या भाव। २. अपने देश में दूसरे देशों से चीज या माल का आना। ३. आने या प्राप्त होनेवाला धन। आय।

आमनी—स्त्री० [देश०] १. वह भूमि जिसमें एक वर्ष में एक ही फसल

उत्पन्न होती हो। २. जाड़े में होनेवाली धान की फसल। (बंगाल) ३. उक्त फसल में होनेवाला चावल।

आमन-सामन—अव्य०=आमने-सामने।

आमनस्य—पुं० [सं० अमनस्+ष्यञ्] अन्यमनस्क होने की अवस्था या भाव।

आमना†—अ०=आवना या आना।

पुं० ['सामना' के अनु० पर] इस ओर का पक्ष या भाग। 'सामना' का विपर्याय। (केवल 'आमना-सामना' या 'आमने-सामने' पदों में प्रयुक्त।)

आमनाय—पुं०=आम्नाय।

आमना-सामना—पुं० [हिं० आमना (अनु०)+सामना] १. परस्पर एक दूसरे के सामने होने की अवस्था या भाव। २. एक दूसरे के सामनेवाला अंश या भाग। ३. भेंट। साक्षात्कार।

आमनी—स्त्री० [देश०] १. वह भूमि जिसमें जाड़े का धान बोया जाता है। २. जाड़े में होनेवाला धान। (बंगाल)

आमने-सामने—अव्य० [हिं० सामने] १. एक दूसरे के सामने या मुकाबले में। २. इस ओर तथा उस ओर। इधर तथा उधर।

आमय—पुं० [सं० आम√या (जाना)+क] रोग। व्याधि। बीमारी।

आमरक्तातिसार—पुं० [सं० रक्त-अतिसार, ष० त०, आम-रक्तातिसार, कर्म० स०] एक रोग जिसमें शौच के समय आँव के साथ खून भी गिरता है।

आमरख*—पुं०=आमर्ष।

आमरखना—अ० [सं० आमर्षण] आमर्ष या क्रोध करना। गुस्सा होना। उदा०—उठे भूप आमरखि सगुन नहिं पायउ।—तुलसी।

आमरण—अव्य० [सं० अव्य० स०] मरते समय तक। मरण काल तक।

आमरष*—पुं०=आमर्ष (क्रोध)।

आमरषना†—अ०=आमरखना (क्रोध करना)।

आमरस—पुं०=अमरस।

आमर्दकी—स्त्री०=आमलकी।

आमर्दन—पुं० [सं० आ√मृद् (कुचलना)+ल्युट्—अन] अच्छी तरह कुचलने, पीसने, मसलने आदि की क्रिया या भाव।

आमर्ष—पुं० [सं० आ√मृष् (सहना)+घञ्] १. कोई अनुचित या अप्रिय बात न सह सकना। असहनशीलता।

विशेष—साहित्य में यह एक संचारी भाव माना गया है और इसका लक्षण यह बतलाया गया है कि इसमें दूसरे का गर्व न सह सकने के कारण उसे नष्ट करने की प्रवृत्ति होती है।

२. क्रोध। गुस्सा।

आमलक—पुं० [सं० आ√मल् (धारण करना)+क्वुन्—अक] [स्त्री०, अल्पा०, आमलकी] १. आँवला नामक वृक्ष और उसका फल। २. भारतीय वास्तु में, उक्त फल के आकार की वह बनावट जो शिखरों के ऊपरी भाग में होती है।

आमलकी—स्त्री० [सं० आमलक+ङीप्] १. छोटी जाति का आँवला। २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी।

आमला—पुं०=आँवला (वृक्ष और फल)।

आम-वात—पुं० [सं० कर्म० स०] एक रोग जिसमें पेट से आँव गिरता है और शरीर सूज तथा पीला पड़ जाता है।

आमाँ—पुं०=आँवाँ।

आमातिसार—पुं० [सं० आम-अतिसार, मध्य० स०] एक रोग जिसमें रह-रहकर आँव के दस्त आते हैं।

आमात्य—पुं० [सं० अमात्य+अण्]=अमात्य।

आमादा—वि० [फा० आमादः] जो कोई काम करने के लिए तैयार हो गया हो। उद्यत। जैसे—चलने या लड़ने के लिए आमादा होना।

आमानाह—पुं० [सं० आम-आनाह, मध्य० स०] आँव होने के कारण पेट फूलने का रोग।

आमान्न—पुं० [सं० आम-अन्न, कर्म० स०] कच्चा (अर्थात् बिना पका या पकाया हुआ) अन्न।

आमाल—पुं० [अ० अमल (कार्य) का बहु०] १. जीवन में अथवा किसी के किए हुए सब अच्छे और बुरे काम। २. अनुचित और निंदनीय कार्य। ३. करतूत। करनी। ४. जादू-टोना और जंतर-मंतर।

आमालक*—पुं० [देश०] पहाड़ के पास की भूमि।

आमालनामा—पुं० [अ०] १. मुसलमानी धर्म के अनुसार वह पुस्तक जिसमें लोगों के भले और बुरे कर्मों को कयामत में पेश करने के लिए नित्य दर्ज किया जाता है। २. वह लेख जिसमें किसी के (विशेषतः कर्मचारियों के) अच्छे और बुरे सभी प्रकार के कामों का उल्लेख या विवरण होता है।

आमावास्य—वि० [सं० अमावास्या+अण्] अमावास्या के दिन होने या उससे संबंध रखनेवाला।

आमाशय—पुं० [सं० आम+आशय, ष० त०] प्राणियों के पेट के अंदर की वह थैली जिसमें भोजन पचता है। मेदा। (स्टमक)

आमा हल्दी—स्त्री० [सं० आम्रहरिद्रा]=आँबा हलदी।

आमिख*—पुं०=आमिष।

आमिन—स्त्री० [हिं० आम (फल) का अल्पा० स्त्री० रूप] एक प्रकार का बहुत छोटा पर बहुत मीठा आम (फल)।

आमिर*—पुं०=आमिल।

आमिल—वि० [अ०] १. अमल या प्रयोग करनेवाला। २. ठीक तरह से काम, प्रयोग या व्यवहार करनेवाला।

पुं० १. ईश्वर तक पहुँचा हुआ फकीर। २. अमल या शासन चलाने अथवा आज्ञा देनेवाला; अर्थात् प्रधान अधिकारी। हाकिम। ३. कर्मचारी। ४. कार्यकर्ता। ५. ओझा। सयाना।

पुं० [हिं० आम] कच्चे आम को सुखाकर बनाई हुई एक प्रकार की खटाई।

आमिष—पुं० [सं० आ√मिष् (सींचना)+क] १. खाया जानेवाला मांस। गोश्त। २. वह जंतु या पशु जो मांस खाने के लिए मारा जाय। शिकार। ३. पशुओं का चारा। ४. घूस। रिश्वत। ५. भोग्य पदार्थ। ६. लालच। लोभ। ७. लोभ उत्पन्न करनेवाली वस्तु। ८. जँबीरी नीबू। ९. आकृति। शकल। १०. पत्र।

आमिषभोजी (जिन्)—पुं० [सं० आमिष√भुज् (खाना)+णिनि] वह जो गोश्त खाता हो। मांसाहारी। (नॉनवेजिटेरियन)

आमिषाशी (शिन्)—पुं० [सं० आमिष√अश् (खाना)+णिनि] [स्त्री० आमिषाशिनी]=आमिष-भोजी।

आमीं—अव्य० [अ० आमीन]=आमीन।

आमी--स्त्री० [हिं० आम (फल) का अल्पा० स्त्री रूप] छोटा आम। अँबिया।
स्त्री० [सं० आम्र] जौ आदि की भुनी हुई बाल।

आमीन--अव्य० [अ०] १. ईश्वर करे, ऐसा ही हो। एवमस्तु। तथास्तु। (आशीर्वाद के रूप में या प्रार्थना के अंत में) २. हाँ, आपका कहना ठीक है।

आमीलन--पुं० [सं० आ√मील् (बंद करना)+ल्युट्-अन] बंद करना। मूँदना। (मुख्यतः आँखों के संबंध में प्रयुक्त)

आमुख--पुं० [सं० प्रा० स०] १. आरंभ। २. नाटक की प्रस्तावना। ३. प्रस्तावना (पुस्तक की)।

आमुक्त--भू० कृ० [सं० आ√मुच् (छोड़ना)+क्त] १. मुक्त किया हुआ। २. छोड़ा या त्यागा हुआ।

आमुक्ति--स्त्री० [सं० आ√मुच्+क्तिन्] १. मुक्त होने की अवस्था, क्रिया या भाव। छुटकारा। मुक्ति। २. मोक्ष (धार्मिक क्षेत्र में, आत्मा के संबंध में)।

आमुख--पुं० [सं० आमुख+णिच्+अच्] १. आरंभ या शुरू होने की क्रिया या भाव। २. आरंभ या शुरू का अंश या भाग। ३. किसी पुस्तक, विशेषतः नाटक की प्रस्तावना या भूमिका। (प्रिफेस)

आमुष्मिक--वि० [सं० अमुष्मिन्+ठक्-इक, अलुक् स०] दूसरे लोक से संबंध रखनेवाला।
पुं० [स्त्री० आमुष्मिकी] दूसरे लोक का निवासी।

आमूल--अव्य० [सं० अव्य० स०] १. आरंभ या मूल तक। जैसे--आमूल परिवर्तन या सुधार। २. बिलकुल। सब।

आमेज--वि० [फा० आमेज़] १. मिलने या मिलाने वाला। २. मिला हुआ। मिश्रित।

आमेजना*--स० [फा० आमेजन] मिश्रित या सम्मिलित करना। मिलाना।

आमेजिश--स्त्री० [फा०] मिलाने की क्रिया या भाव। मिलावट।

आमोचन--पुं० [सं० आ√मुच् (छोड़ना)+ल्युट्-अन] मुक्त करने की क्रिया या भाव।

आमोद--पुं० [सं० आ√मुद् (हर्ष)+णिच्+अच्] १. मन बहलाने और प्रसन्नता प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जानेवाला काम। २. ऐसे कामों से होनेवाली प्रसन्नता। (एम्यूजमेण्ट) ३. महक। सुगंधि। ४. शतावर (कंद)।

आमोदन--पुं० [सं० आ√मुद्+णिच्+ल्युट्-अन] १. दूसरों को प्रसन्न या मुदित करना। २. अपना मन बहलाना। ३. सुगंधि से युक्त करना। सुवासित करना।

आमोद-प्रमोद--पुं० [सं० द्व० स०] भोग-विलास। सुख-चैन।
पुं० [सं०] १. ऐसे काम जो केवल मन-बहलाव या चित्त प्रसन्न करने के लिए होते या किये जाते हों। जैसे--खेल-तमाशे, संगीत, नृत्य, जादू के खेल आदि। (एन्टरटेन्मेण्ट) २. हँसी-ठट्ठा।

आमोदित--भू० कृ० [सं० आ√मुद्+णिच्+क्त] १. जिसका आमोदन (या मन-बहलाव) किया गया हो या हुआ हो। २. सुगंधि से युक्त या सुवासित किया हुआ।

आमोदी (दिन्)--पुं० [सं० आ√मुद्+णिच्+णिनि] वह जो स्वयं भी प्रसन्न रहे और दूसरों को भी प्रसन्न करता हो।

आमोष--पुं० [सं० आ√मुष्+घञ्] चुरा या छीन कर ले लेना। अपहरण। मूसना।

आमोषी (षिन्)--पुं० [सं० आ√मुष्+णिनि] चुराने, छीनने या मूसनेवाला व्यक्ति।

आम्नात--वि० [सं० आ√म्ना (अभ्यास)+क्त] १. किसी से कहा या उसे सिखलाया हुआ। २. जिसका अध्ययन, अभ्यास या विचार हुआ हो। ३. जिसका उल्लेख या चर्चा हुई हो। ४. जो पवित्र स्मृति के रूप में चला आ रहा हो। जैसे--वेद आदि।

आम्नाय--पुं० [सं० आ√म्ना+घञ्] १. पवित्र प्रथा या रीति। २. वेदों आदि का अध्ययन, अभ्यास और पाठ। ३. वेद। ४. अध्ययन के उद्देश्य से किया जानेवाला अभ्यास।

आम्र--पुं० [सं०√अम् (गति आदि)+रन्, दीर्घ] आम का पेड़ तथा उसका फल।

आम्र-कूट--पुं० [ब० स०] अमरकंटक पहाड़ का पुराना नाम।

आम्र-वन--पुं० [ष० त०] आमों का वन या उपवन। अमराई।

आम्रातक--पुं० [सं० आम्र√अत् (गति)+ण्वुल्-अक] आमड़ा (पेड़ और उसका फल)।

आम्ल--वि० [सं० अम्ल+अण्] १. अम्ल-संबंधी या अम्ल रस से युक्त। (एसिडिक)
पुं० १. खट्टापन। २. इमली।

आम्लिक--वि० [सं० अम्ल+ठक्-इक] =आम्ल।

आम्लिका--स्त्री० [सं० आम्ल+कन्-टाप्, इत्व] १. भोजन अच्छी तरह न पचने के कारण मुँह का स्वाद बिगड़ना और खट्टे डकार आना। २. इमली।

आयँता-पायँता--पुं० [सं० अंगस्थ+फा० पायताना] [स्त्री० आँयती-पाँयती] सोने के समय खाट बिछौने आदि का सिरहाना और पैताना।

आयदा--अव्य० =आइंदा।

आय--स्त्री० [सं०√अय् (गति)+घञ्] १. आगमन। आना। २. व्यक्ति, संस्था आदि को पारिश्रमिक, लाभ, ब्याज आदि के रूप में प्राप्त होनेवाला धन। आमदनी। (इन्कम) ३. जन्म-कुंडली में ग्यारहवाँ स्थान।
पुं० अंतःपुर का रक्षक।
†अ० [सं० अस्=होना] पूरबी हिंदी में 'आसना' या 'आहना' क्रिया की वाचक 'आदि' क्रिया का स्थानिक रूप है। जैसे--को आय?= कौन है?

आय-कर--पुं० [ष० त०] राज्य की ओर से लोगों की आय पर लगनेवाला कर। (इन्कम टैक्स)

आयत--वि० [सं० आ√यम् (उपरत होना)+क्त] १. विस्तृत। लंबा-चौड़ा। दीर्घ। विशाल। २. (लंबा और अपेक्षाकृत कम चौड़ा ऐसा क्षेत्र) जिसके चारों कोण समकोण हों।
पुं० चार भुजाओंवाला वह क्षेत्र जिसकी आमने-सामनेवाली भुजाएँ समानान्तर और चारों कोण समकोण हों। (रेक्टैंगिल)
स्त्री० [अ०] इंजील या कुरान का कोई वाक्य।

आयतन--पुं० [सं० आ√यत् (प्रयत्न करना)+ल्युट्-अन] [वि० आयतनीय] १. मकान। घर। २. ठहरने की जगह। ३. देवताओं की वंदना का स्थान। मंदिर। ४. कोई पदार्थ ग्रहण करने की पात्रता

विचार से किसी पात्र या खाली जगह के अंदर का स्थान या अवकाश। (कैपेसिटी)

आयतन-मिति--स्त्री० [प० त०] किसी वस्तु का आयतन नापने की विद्या। (वाल्यूमेट्री)

आयतनीय--वि० [सं० आ√यत्+अनीयर्] आयतन से संबंध रखनेवाला। (वाल्यूमेट्रिक)

आयताकार--वि० [सं० आयत-आकार, ब० स०] जिसका आकार आयत जैसा हो। जिसकी चार भुजाएँ और चार समकोण हों। (रेक्टैंग्यूलर)

आयति--स्त्री० [सं० आ√या (जाना)+डति] १. आयतन। विस्तार। २. वह सीमा जहाँ तक कोई चीज या बात पहुँचती या पहुँच सकती हो। (एक्सटेन्ट) ३. भविष्य में होनेवाली आय। (क्व०) ४. प्रेम। ५. सम्मान।

आयतिक--वि० [सं० आयत+ठक्–इक] भविष्य में होनेवाला।

आयत्त--वि० [सं० आ√यत् (प्रयत्न)+क्त] [भाव० आयत्ति] १. जो किसी के अधिकार या वश में हो। २. अधीन। जैसे—स्वायत्तशासन।

आयत्ति--स्त्री० [सं० आ√यत्+क्तिन्] १. 'आयत्त' की अवस्था का भाव। २. अधीनता। वशता।

आयद--वि० [अ०] १. (नियम, विचार या सिद्धांत जिसका कहीं आरोप या व्यवहार हो सकता हो। ठीक बैठने या लगनेवाला। २. (अपराध या अभियोग) जो किसी पर लग सकता हो या लगता हो। जैसे—किसी पर कोई जुर्म आयद होना।

आयमन--पुं० [सं० आ√यम् (नियमन)+ल्युट्–अन] १. तानने या फैलाने की क्रिया या भाव। २. तनाव या फैलाव। ३. लंबाई-चौड़ाई। विस्तार।

आय-व्यय--पुं० [सं० द्व० स०] आनेवाला और खर्च होनेवाला धन। आमदनी और खर्च।

आय-व्ययक--पुं० [सं० आय-व्यय से] १. वह आनुमानिक लेख जिसमें किसी निश्चित समय में संभावित रूप में होनेवाली आय तथा व्यय के संबंध की मदें, ब्योरे की बातें और धन-राशियाँ लिखी रहती हैं। (बजट) २. आमदनी और खर्च का का ब्योरा।

आयव्यय-फलक--पुं० [प० त०] देने-पावने आदि का लेखा जो प्रायः सारणी के रूप में होता है। (बैलेंसशीट)

आयव्ययिक--पुं० [सं० आयव्यय+ठञ्–इक] =आयव्ययक।

आयस--पुं० [सं० अयस्+अण्] [वि० आयसी] १. लोहा। २. लोहे का कवच। ३. अस्त्र-शस्त्र। हथियार। ४. मणि। रत्न। ५. अगर की लकड़ी।

*स्त्री०=आयसु (आज्ञा)।

आयसी--पुं० [सं० आयसीय] कवच। जिरहबख्तर।

वि० आयस अर्थात् लोहे का बना हुआ।

आयसीय--वि० [सं० अयस्+छण्-ईय[१. आयस या लोहे से संबंध रखनेवाला। २. लोहे का बना हुआ।

आयसु--स्त्री० [सं० आदेश] आज्ञा। हुक्म।

आया--अ० [सं० आगत; प्रा० आय; सिंह० आ, का० आव] हिंदी आना (क्रिया) का भूतकालिक रूप। जैसे—वह आया था।

पद--आया-गया=अकस्मात् आने और आकर चला जानेवाला कोई ऐसा व्यक्ति जिससे घनिष्ठ परिचय या संबंध न हो। ऐसा अजनबी, ऊपरी या बाहरी आदमी जो यों ही आवे और चला जाय।

मुहा०--आया-गया करना=किसी बात के हो जाने पर उसे उपेक्ष्य और तुच्छ समझकर उसका ध्यान छोड़ देना। जैसे—जो बात हो गई उसे आई-गई करो।

स्त्री० [पुर्त०] बच्चों को दूध पिलाने और उनकी देख-भाल करनेवाली स्त्री। दाई। धात्री। धाय।

अव्य० [फा०] अनुकल्पात्मक अवस्थाओं में प्रयुक्त होनेवाला एक प्रश्नवाचक अव्यय जो प्रायः 'क्या' का अर्थ देता है। जैसे—आया तुमने यह बात कही है या नहीं?

स्त्री० दे० 'आयु'।

आयाचन--पुं० [सं० आ√याच् (माँगना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० आयाचित] आग्रहपूर्वक कुछ कहना या माँगना।

आयात--पुं० [सं० आ√या (जाना)+क्त] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिए विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया जाय। (इम्पोर्ट)

वि० (माल) जो दूसरे स्थान या देश से आया हो। बाहर से आया या मँगाया हुआ। (इम्पोर्टेड)

आयातक--पुं० [सं० आयात से] वह जो दूसरे देश से किसी वस्तु का आयात करता हो।

आयात-शुल्क--पुं० [प० त०] विदेश से आनेवाले माल पर लगनेवाला शुल्क। (इम्पोर्ट ड्यूटी)

आयान--पुं० [सं० आ√या+ल्युट्–अन] १. आगमन। २. प्रकृति। स्वभाव।

आयाम--पुं० [सं० आ√यम् (उपरति)+घञ्] १. लंबाई। विस्तार। २. नियत या नियमित करने की क्रिया। नियमन।

अव्य० एक याम या पहर तक।

आयामन--पुं० [सं० आ√यम्+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आयामित] १. खींचना, तानना या फैलाना। आयाम या विस्तार बढ़ाना। २. नियम में बाँधना। ३. नियंत्रण में लाना।

आयामी (मिन्)--वि० [सं० आयाम+इनि] १. जिसका आयाम या विस्तार अधिक हो। लंबा-चौड़ा। २. नियम या नियंत्रण में रखनेवाला।

आयास--पुं० [सं० आ√यस् (उपक्षय)+घञ्] १. ऐसा काम जिसे पूरा करने में शरीर थक जाय। परिश्रम। (एग्जर्शन) २. उद्योग। प्रयत्न।

आयासी (सिन्)--वि० [सं० आ√यस्+णिनि] १. जो आयास कर के थक गया हो। २. आयास या प्रयत्न करनेवाला।

आयुःशेष--पुं० [प० त०] आयु का शेष भाग।

आयुःष्टोम--पुं० [प० त०] दीर्घ आयुकी प्राप्ति के लिए किया जानेवाला यज्ञ।

आयु (स्)--स्त्री० [सं० √इ (गति)+असि, वृद्धि] १. जीवन से मरण तक का सारा समय। जीवन-काल। (एज)

मुहा०--आयु खुटाना=आयु या जीवन समाप्त होना। मृत्यु पास आना। **आयु सरना**=(क) जीवन बीतना। (ख) जीवन समाप्त होना।

२. जीवन शक्ति। ३. आहार। ४. आयुष्टोम (यज्ञ)।

आयुक्त--पुं० [सं० आ√युज् (जोड़ना)+क्त] १. वह जो कोई काम करने के लिए नियुक्त किया गया हो। अभिकर्त्ता। कारिंदा। २. किसी आयोग का सदस्य। दे० 'आयोग'।
वि० किसी से लगा या सटा हुआ।

आयुतिक--पुं० [सं० अयुत+ठक्–इक] एक अयुत अर्थात् दस हजार सिपाहियों का नायक।

आयुध--पुं० [सं० आ√युध् (लड़ना)+क] १. शस्त्र। हथियार। २. ऐसा सोना जो आभूषण बनाने के काम आ सके।

आयुध जीवी (विन्)--पुं० [आयुध√जीव् (जीना)+णिनि] अस्त्रों के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला, सिपाही।

आयुध-पाल--पुं० [ष० त०] शस्त्रागार का अधिकारी।

आयुधभृत्--पुं० [आयुध√भृ (भरण करना)+क्विप्] योद्धा। सैनिक।

आयुध-विधान--पुं० [सं० ष० त०] वह विधान जो यह बतलाता है कि जनता किन नियमों के अनुसार अपने पास आयुध रख सकती और किन अवस्थाओं में उनका उपयोग कर सकती है। (आर्म्स एक्ट)

आयुध-शाला--स्त्री० [ष० त०] शस्त्रागार।

आयुधागार--पुं० [आयुध-आगार, ष० त०] अस्त्र-शस्त्र रखने का स्थान। शस्त्रागार।

आयुधिक--वि० [सं० आयुध+ठञ्–इक] आयुध-संबंधी।
पुं० योद्धा। सैनिक।

आयुधीय--वि० [सं० आयुध+छ-ईय] आयुधों से संबंध रखनेवाला। शस्त्रों का।
पुं० युद्ध में काम आनेवाले अस्त्र-शस्त्र और उनके सभी आवश्यक उपकरण। जैसे—गोला, बारूद, बंदूकें, तोपें आदि। (एम्युनिशन)

आयुर्दाय--पुं० [सं० आयुस्–दाय, ष० त०] १. फलित ज्योतिष में, जन्म-कुंडली के आधार पर आयु या जीवन-काल के संबंध में होनेवाला निर्णय या विचार। २. जीवन-काल। आयु। उमर।

आयुर्बल--पुं० [आयुस्-बल, ष० त०] आयु या उमर के रूप में माना जानेवाला बल। आयु का परिमाण।

आयुर्योग--पुं० [आयुस्-योग, मध्य० स०] फलित ज्योतिष में, ग्रहों का ऐसा योग जिसके आधार पर मनुष्य की आयु निश्चित की जाती है।

आयुर्वेद--पुं० [सं० आयुस√विद् (लाभ)+घञ्] वि० आयुर्वेदीय] भारतीय चिकित्सा-शास्त्र जो अथर्ववेद का उपभेद या उपांग माना गया है और जो नीचे लिखे आठ अंगों में विभक्त है—शल्य (चीर-फाड़), शालाक्य (सलाइयों आदि का प्रयोग), काय-चिकित्सा (औषधों से रोग दूर करना) भूत विद्या (झाड़-फूँक और टोना-टोटका), कौमार तंत्र (बच्चों के रोगों की चिकित्सा), अगद तंत्र (जहरीले जानवरों के काटने पर होनेवाली चिकित्सा), रसायन (भस्म आदि बनाने की क्रिया) और वाजीकरण। इसके मूल आचार्य अश्विनीकुमार कहे गये हैं।

आयुर्वेदिक--वि० [सं० आयुर्वेद+ठक्– इक] आयुर्वेद से संबंध रखने या उसमें होनेवाला। जैसे—आयुर्वेदिक चिकित्सा।

आयुर्वेदी (दिन्)--पुं० [सं० आयुर्वेद+इनि] आयुर्वेद का ज्ञाता। चिकित्सक। वैद्य।

आयुष--पुं० [सं० आयुस+अण्] =आयु।

आयुष्कर--वि० [सं० आयुस्√कृ (करना)+ट] आयु बढ़ानेवाला (कार्य या पदार्थ)।

आयुष्मान (ष्मत्)--वि० [सं० आयुस्+मतुप्] [स्त्री० आयुष्मती] चिरंजीवी। दीर्घजीवी।
पुं० १. फलित ज्योतिष में २७ योगों में से एक जिससे आयु का विचार होता है। २. प्राचीन नाटकों में राजकुमार, ऋषी, सूत आदि के लिए संबोधन वाचक शब्द।

आयुष्य--पुं० [सं० आयुस्+यत्] उम्र। आयु।

आयोग--पुं० [सं० आ+√युज (जोड़ना)+घञ्] १. कोई काम पूरा करने के लिए होनेवाली किसी की नियुक्ति। २. आज-कल, राज्य के सर्वप्रधान अधिकारी के द्वारा किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की होनेवाली वह नियुक्ति, जो कोई विशिष्ट कार्य संपन्न करने अथवा किसी विचारणीय विषय की छान-बीन या जाँच-पड़ताल करने के लिए होती है। (कमीशन) ३. साहित्य में विप्रलंभ के दो भेदों में से एक (दूसरा भेद विप्रयोग कहलाता है) जो अविवाहित अवस्था में होनेवाले प्रेम-जन्य विरह का सूचक है। ४. गाड़ी, हल आदि का जुआ। ५. अलंकरण। सजावट।

आयोगव--पुं० [सं० आयोगव+अण्] १. पुराणानुसार एक प्राचीन संकर जाति। २. बढ़ई।

आयोजक--पुं० [सं० आ√युज+णिच्–अक+ण्वुल] आयोजन करने-वाला व्यक्ति।

आयोजन--पुं० [सं० आ√युज+णिच्+ल्युट–अन] [स्त्री० आयोजना, कर्त्ता-आयोजक वि० आयोजित] १. किसी कार्य में लगाना। नियुक्ति। २. इंतजाम। प्रबंध। व्यवस्था। ३. उद्योग। प्रयत्न। ४. सामग्री। सामान।

आयोजित--भू० कृ० [सं० आ√युज्+णिच्+ क्त] जिसका या जिसके संबंध में आयोजन हुआ हो या किया गया हो।
पुं० १. युद्ध। लड़ाई। २. लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

आरंभ--पुं० [सं० आ√रभ् (शब्द)+घञ्, मुम्] १. किसी काम में हाथ लगाना। शुरू करना। (कमन्समेण्ट) २. वह अवस्था जिसमें कोई कार्य पहले या शुरू होने के समय रहता है। आदि का अंश या भाग। (बिगनिंग) ३. किसी चीज या बात की उत्पत्ति या उसका स्थान। ४. ठाठ-बाट। शान-शौकत। ५. परिश्रम। ६. व्यायाम।

आरंभक--वि० [सं० आ√रभ्+ण्वुल, -अक मुम्] आरंभ या शुरू करनेवाला।

आरंभण--पुं० [सं० आ√रभ्+ल्युट्-अन, मुम्] [भू० कृ० अरंभित आरब्ध] १. आरंभ करने या आरंभ होने की क्रिया या भाव। २. अपने अधिकार या कब्जे में करना।

आरंभतः--अव्य० [सं० आरंभ+तस्] १. आरंभ या शुरू से। २. बिलकुल नये सिरे से।

आरंभनाद--अ० [सं० आरंभण] आरंभ या शुरू होना।
स० कोई काम आरंभ या शुरू करना। काम में हाथ लगाना।

आरंभवाद--पुं० [सं० ष० त०] न्यायशास्त्र का एक सिद्धांत जिसके अनुसार सृष्टि का आरंभ और रचना ईश्वर की इच्छा से परमाणुओं के योग से हुई है।

आरंभ-शूर--पुं० [सं० त०] [भाव० आरंभ-शूरता] वह जो किसी कार्य के केवल आरंभ में बहुत अधिक उत्साह या तत्परता दिखलाता हो और कुछ समय बाद उदासीन या शिथिल हो जाता हो।

आरंभिक--वि० [सं० आरंभ+ठक्-इक] १. आरंभ से संबंध रखनेवाला। पहले का। २. कोई काम करने से पहले उसकी तैयारी, व्यवस्था आदि से संबंध रखनेवाला। ३. बिलकुल आरंभ की अवस्था में होनेवाला। (एलिमेन्टरी)

आरंभी (म्भिन्)--वि० [सं० आरंभ+इनि] १. आरंभ करनेवाला २. नये सिरे या ढंग से और विशेष उत्साहपूर्वक कोई जोखिम का नया काम करने या योजना चलानेवाला। (एन्टरप्राइजिंग)

आर--पुं० [सं० आ√ऋ<(गति)+घञ्] १. खान से निकाला हुआ वह लोहा जो अभी साफ या शुद्ध न किया गया हो। २. पीतल। ३. हरताल। ४. पहिए का आरा। ५. लोहे की पतली कील जो साँटे में लगी रहती है। ६. मुर्गे के पंजे के ऊपर का काँटा। ७. चमड़ा छेदने या सीने की सुतारी। ८. वह कलछी जिससे ईख का रस निकालते हैं।
पुं० [सं० अल=डंक] बरैं, बिच्छू आदि का डंक।
स्त्री० [अ०] १. लज्जा। शर्म। २. वैर। शत्रुता।
स्त्री० [हिं० आड़] जिद। हठ।
मुहा०--आर पड़ना=जिद या हठ करना।
पुं० [हिं० पार आ अनु०] १. इस ओर का किनारा। तट। जैसे--आर-पार। २. किनारा। सिरा।

आरकत--वि०=आरक्त।

आरक्त--वि० [सं० आ√रञ् (रँगना)+क्त] १. थोड़ा या हलका लाल। कुछ लाल। ३. लाल।
पुं० लाल चंदन।

आ-रक्तिम--वि० [सं० प्रा० स०] जो कुछ लाली लिये हुए हो। थोड़ा या हलका लाल।

आरक्ष--पुं० [सं० आ√रक्ष् (बचाना)+घञ्] १. सँभालकर रखना। २. रक्षा करना। ३. गजकुंभ-संधि।
वि० [आ√रक्ष्+अच्] सँभालकर या रक्षित रखे जाने के योग्य।

आरक्षक--वि० [सं० आ√रक्ष्+ण्वुल्-अक] १. रक्षा करनेवाला। बचानेवाला। २. अच्छी तरह सँभालकर रखनेवाला। ३. दे० 'आरक्षिक'।
पुं० १. पहरेदार। प्रहरी। २. आरक्षिक बल का कोई कर्मचारी या सदस्य। आरक्षी।

आरक्षा--स्त्री० [सं० आ√रक्ष्+अङ्-टाप्] अच्छी तरह की जानेवाली रक्षा।

आरक्षिक--वि० [सं० आरक्षा+ठक्-इक] आरक्षक या आरक्षा से संबंध रखने या उसके क्षेत्र में होनेवाला। जैसे--आरक्षिक बल, आरक्षिक कार्य आदि।
पुं०=आरक्षक।

आरक्षिक-कार्य--पुं० [प० त०] राजकीय व्यवस्था, शासन आदि के क्षेत्र में ऐसी कार्रवाई या कार्य जो अराजकता, अव्यवस्था, उपद्रव आदि शांत करने के उद्देश्य से (सैनिक बल की सहायता से) किये जायँ। (पुलिस एक्शन) जैसे--हैदराबाद राज्य में भारत सरकार को आरक्षिक कार्य करना पड़ा था।

आरक्षिक-कार्रवाई--स्त्री०=आरक्षिक कार्य।

आरक्षिक-बल--पुं०]सं० ष० त०] राज्य शासन की वह शक्ति जो स्वतंत्र विभाग के रूप में रहकर देश तथा समाज में नियम-पालन, शांति, स्थापन आदि की व्यवस्था करती और अपराधियों, अभियुक्तों आदि को विचारार्थ न्यायालय के सामने उपस्थित करती है। (पुलिस फोर्स)

आरक्षी (क्षिन्)--पुं० [सं० आरक्ष+इनि] =आरक्षिक।

आरखा--स्त्री०=आयुष्य। (राज०)

आरग्वध--पुं० [सं० आ√रग् (शंका)+क्विप, आरग्√हन् (हिंसा) +अच् वधादेश] अमलतास।

आरचित--भू० कृ० [सं० आ√रच् (रचना करना)+क्त] बनाया हुआ। रचित।

आरज*--पुं०=आर्य।

आरजा--पुं० [अ० आरिज:] बीमारी। रोग।

आरजी--वि० [अ० अराज़ी] १. जो वास्तविक या सैद्धांतिक न हो। आरोपित या कल्पित। २. अस्थायी।

आरजू--स्त्री० [फा० आरज़ू] १. अभिलाषा। कामना।
मुहा०--आरज़ू निकालना या मिटाना= इच्छा पूरी करना।
२. प्रार्थना। आरजू। विनती।

आरट--वि० [सं० आ√रट् (रटना)+अच्] चिल्लाने या शोर करनेवाला।
पुं० विदूषक।

आरट्ट--पुं० [सं० आ√रट्+ठच्] १. उत्तर-पूर्व पंजाब का एक प्राचीन जनपद। २. वहाँ का निवासी। ३. उक्त प्रदेश का घोड़ा।

आरण*--पुं०=अरण्य (जंगल)।

आरणि--पुं० [सं० आ√ऋ (गति)+अनि] १. आवर्त्त। भँवर।
† स्त्री० [सं० आर=लोह] लोहे का घन। उदा०--एकमइयों पेखि तपत आरणि रणि।--प्रिथीराज।

आरण्य--वि० [सं० अरण्य+ण] अरण्य या वन से संबंध रखने या उसमें होनेवाला। जंगली।

आरण्यक--वि० [सं० अरण्य+वुञ्-अक] १. अरण्य या वन से संबंध रखनेवाला। २. वन में उत्पन्न होने या रहने वाला। जंगली। वन्य।
पुं० १. वन का निवासी। २. वेदों का वह अंश या भाग जिसमें वानप्रस्थ आश्रम से संबंध रखनेवाली बातों का विवेचन है; और जिनका अध्ययन-अध्यापन वनों में ही होता था।

आरत--वि० [सं०] १. जिसका अंत हो चुका हो। २. शांत। ३. सुशील। ४. (मुद्रा या सिक्का) जिसपर ठप्पे से कोई चिह्न आदि अंकित हो, उसे चलानेवाले का नाम या समय अंकित न हो। (पंचमार्कड) वि०=आर्त्त।

आरति--स्त्री० [सं० आ=रम् (क्रीड़ा)+क्तिन्] विरक्ति।
स्त्री० १.=आरती। २. =आर्त्ति।

आरभट--वि०=आर्त्त (दुःखी)।

आरती--स्त्री० [सं० आरात्रिका] १. देव-पूजन अथवा परम आदरणीय या आराध्य व्यक्ति के स्वागत के समय घी का दीया, कपूर या धूप आदि जलाकर बार-बार घुमाते हुए सामने रखना। नीराजन।

मुहा०—आरती उतारना या करना=घी का दीआ, कपूर आदि जलाकर बार-बार देवता के मुख तथा अन्य अंगों के सामने भक्ति-पूर्वक घुमाना। **आरती लेना**=आरती कर चुकने के बाद उसकी लौ पर दोनों हथलियाँ रखकर फिर उनसे अपनी आँखें और मुँह छूना।

२. वह विशेष प्रकार का आधान या पात्र जिसमें उक्त क्रिया के लिए घी और रूई की बत्ती या बत्तियाँ रखी जाती हैं। ३. वह विशिष्ट स्तोत्र जो किसी देवता की आरती करने के समय पढ़ा जाता है।

आरथ—पुं० [सं० प्रा० स०] वह गाड़ी या रथ जिसमें एक घोड़ा या बैल जुतता हो।

आरन—पुं०=अरण्य। उदा०-कीन्हेंसि साउज आरन रहही। जायसी।

आर-पार—पुं० [सं० आर=किनारा या कोना+सं० पार] १. किसी दलदार या मोटी चीज का इस ओर का तल और दूसरी ओर का तल। जैसे—शीशे का आर-पार। २. किसी विस्तारवाली चीज का इधर का किनारा या सिरा और उधर या दूसरी तरफ का किनारा या सिरा। जैसे—झील या नदी का आर-पार।

अव्य० इधरवाले तल या सिरे से उधर वाले तल या सिरे तक। इस ओर से उस ओर तक। जैसे—शीशे के आर-पार दिखाई देना; तीर का शरीर के आर-पार होना आदि।

आरबला—स्त्री०=आयुर्बल।

आरब्ध—भू० कृ० [सं० आ√रभ् (उत्सुक होना)+क्त] जिसका आरंभ हो चुका हो या किया जा चुका हो। शुरू किया हुआ।

आरब्धि—स्त्री० [सं० आ√रभ्+क्तिन्] आरंभ। शुरू।

आरभट—पुं० [सं० आ√रभ्+अट] १. वह जो साहसपूर्वक जोखिम के काम करता हो। २. नाटक में वीरतापूर्ण और साहस के कामों का अभिनय। ३. साहस।

आरभटी—स्त्री० [सं० आ√रभ्+अटि-ङीष्] १. दृढ़ता, साहस आदि की मनोवृत्ति। २. दुःखात्मक मनोविकारों का तीव्र वेग। ३. बल-वैभव आदि का अभिमान या गर्वपूर्वक किया जानेवाला उनका प्रदर्शन। उदा०—झूठों मन, झूठी यह काया, झूठी आरभटी—सूर। ४. साहित्य में एक प्रकार की वृत्ति या शैली जिसमें यमक का अधिक प्रयोग होता है और जो भयानक, रौद्र, बीभत्स आदि रसों के लिए उपयुक्त कही गई है।

आरमण—पुं० [सं० आ√रम् (क्रीड़ा)+ल्युट्-अन] १. रमण करना। २. भोग से प्राप्त होनेवाला सुख। इंद्रिय-सुख। ३. आनन्द, मोद या सुख। ४. रमणीक स्थान।

आरव—पु० [सं० आ√रु (शब्द)+अप्] जोरों का शब्द। नाद।

आरषी—वि०=आर्ष।

आरस—पुं०=आलस्य।

स्त्री०=आरसी।

आरसा—पुं० [हिं० रस्सा] १. मोटा तथा लंबा रस्सा। २. रस्से या रस्सी में लगी हुई गांठ या मुद्धी।

आरसी—स्त्री० [सं० आदर्श, प्रा० आरिस] १. दर्पण। शीशा। आइना। २. हाथ के अँगूठे में पहनने की वह अँगूठी जिसमें शीशा जड़ा होता है।

आरस्य—पुं० [सं० अरस+ष्यञ्] अ-रस या रस-हीन होने की अवस्था या भाव। अ-रसता। नीरसता।

आरा—पुं० [सं० आ√ऋ (गति)+अच्-टाप्] [स्त्री० अल्प० आरी] १. लोहे की वह दाँतीदार पट्टी जिससे लकड़ी, लोहा आदि चीरते हैं। २. चमड़ा सीने का सूजा। ३. लकड़ी की वह पट्टियाँ जो पहिए की बीच की गड़ारी से उसके बाहरी चक्कर तक जड़ी होती हैं। ४. लकड़ी की कड़ी या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोड़िया या टोंटा बैठाते हैं। दीवार-दासा।

प्रत्य० [फा०] (यौगिक शब्दों के अंत में) जिसके रहने से किसी की शोभा बढ़े। सुशोभित करनेवाला। जैसे—जहाँ-आरा।

आराइश—स्त्री० [फा०] सजावट।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या सजावट के काम में आनेवाला।

आराकश—पुं० [फा०] वह जो आरे से लकड़ी, लोहा आदि चीरता हो। आरा चलानेवाला।

आराज*—पुं०=अराजकता।

आराजी—स्त्री० [अ०] १. भूमि। जमीन। २. कृषि के योग्य भूमि। खेत।

आराण—पुं० [सं० रण] युद्ध। (डिं०) उदा०—अरि देखें आराण में, तुग मुख मांझल त्याँह।—बाँकीदास।

आरात—अव्य [सं० आरात्] निकट। पास। उदा०—अंबिकालय नयर आरात।—प्रिथीराज।

आराति—पुं० [सं० आ√रा (देना)+क्तिच्] वैरी। शत्रु।

आरात्रिक—पुं० [सं० अरात्रि+ठञ्–इक] १. आरती करनेवाला व्यक्ति। २. आरती के लिए धूप, दीप आदि रखने का आधान या पात्र।

आराधक—वि० [सं० आ√राध् (उपासना करना)+णिच्+ण्वुल्–अक] [स्त्री० आराधिका] आराधना करनेवाला।

आराधन—पुं० [सं० आ√राध्+ल्युट्–अन्] [वि० आराधक, आराधित, आराधनीय, आराध्य] आराधना करने की क्रिया या भाव।

आराधना*—स्त्री० [सं० आ√राध+णिच+युच–अन्–टाप] देवी, देवता आदि को संतुष्ट तथा अपने अनुकूल करने के लिए की जानेवाली उनकी उपासना तथा पूजा।

आराधनीय—वि० [सं० आ√राध्+णिच्+अनीयर्] जिसकी आराधना करना इष्ट या उचित हो।

आराधित—भू० कृ० [सं० आ√राध्+णिच्+क्त] [स्त्री० आराधिता] जिसकी आराधना की गई हो।

आराध्य—वि० [सं० आ√राध्+णिच्+यत्] [स्त्री० आराध्या] जिसकी आराधना की जाती हो। पूजनीय। पूज्य।

आराम—पु० [सं० आ√रम् (क्रीड़ा)+घञ्] उपवन। वाटिका। बगीचा।

पु० [फा०] १. ऐसी स्थिति जिसमें शांति, संतोष तथा सुख हो। जैसे—हम यहाँ आराम से है।

मुहा०—आराम से=धीरे-धीरे। जैसे—यह काम आराम से होता रहेगा।

२. रोग में कमी होने या रोग दूर हो जाने की अवस्था। जैसे—आज-कल उन्हे पहले से आराम है।

वि० जिसका रोग कम हो गया हो या दूर हो गया हो। जैसे—वह जल्दी ही आराम हो जायँगे।

आराम-कुर्सी—स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें सहारा

लगाकर लेटने तथा दोनों ओर हाथ रखने के लिए लंबी पटरियाँ लगी होती हैं। सुखासन। (ईज़ी चेअर)

आराम-गाह--स्त्री० [फा०] सोने की जगह। शयनागार।

आराम-तलब--वि० [फा०] [भाव० आराम-तलबी] १. सुख चाहनेवाला। २. सुकुमार। ३. आलसी।

आराम-तलबी--स्त्री० [फा०] आराम-तलब होने की अवस्था या भाव।

आराम-दान--पुं० [फा० आराम+दान] १. पानदान। २. सिंगारदान।

आराम-पाई--स्त्री० [फा० आराम+हिं० पाय] एक प्रकार का हलका जूता।

आरालिक--पुं० [सं० अराल+ठक्-इक] [स्त्री० आरालिका] रसोई या भोजन पकानेवाला। पाचक। रसोइया।

आरास्ता--वि० [फा० आरास्त:] सजा या सजाया हुआ। सुसज्जित।

आरि†--स्त्री० [सं० अल् या आर? हिं० अड़ का पुराना रूप] जिद। टेक। हठ। उदा०--(क) कबहूँ ससि माँगत आरि करैं।--तुलसी। (ख) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै। (दे० 'आर')

†स्त्री० [?] झिल्ली या झींगुर नाम का कीड़ा।

आरित्रिक--वि० [सं० अरित्र+ष्ठञ्-इक] अरा से संबंध रखनेवाला। अरा-संबंधी।

आरिया--स्त्री० [सं० आरू=ककड़ी] ककड़ी की तरह का एक प्रकार का फल।

†पुं०=आर्य-समाजी।

आरी--स्त्री० [हिं० आरा का स्त्री० अल्पा०] १. लकड़ी, लोहा आदि चीरने का एक प्रसिद्ध दाँतीदार औजार। २. लोहे की वह कील जो बैल हाँकने के पैने की नोक में लगी रहती है। ३. चमड़ा सीने का सूजा। सुतारी।

स्त्री० [देश०] १. बबूल की जाति का एक पेड़। स्थूल-कंटक। २. दुर्गंध खैर। बबुरी।

स्त्री० [सं० आर=किनारा] १. ओर। तरफ। २. किनारा। सिरा। ३. खेत की मेंड़। उदा०--थोर जोताई, बहुत हेंगाई, ऊँचे बाँधै आरी।--घाघ।

वि० [अ०] १. दीन। २. लाचार।

आरुक--वि० [सं० आरु+कन्] हानिकारक।

पुं० १. हिमालय में होनेवाली 'आड़' नाम की जड़ी। २. आलू-बुखारा।

आरुण--वि० [सं० अरुण+अण्] अरुण-संबंधी।

आरुणि--पुं० [सं० अरुण+इञ्] १. अरुण के वंशज। २. सूर्य के यम आदि पुत्र। ३. उद्दालक ऋषि।

पुं० [सं० अरि] वैरी। शत्रु। उदा०--लौहानो अज्जान जित्त आरुणि जसुल्यन्नौ।--चंदबरदाई।

आरुण्य--पुं० [सं० अरुण+ष्यञ्] अरुणता। लाली।

आरूढ़--वि० [सं० आ√रुह् (उत्पन्न होना)+क्त] [भाव० आरूढ़ता] १. किसी के ऊपर चढ़ा हुआ। २. (घोड़े पर) चढ़ा हुआ। सवार। ३. (प्रतिज्ञा, वचन आदि पर) दृढ़ या स्थिर। ४. तत्पर। सन्नद्ध।

आरूढ़-यौवना--स्त्री० [ब० स०] साहित्य में चार प्रकार की मध्यमा नायिका में से एक जो पूर्ण रूप से युवती हो चुकी हो।

आरूढ़ि--स्त्री० [सं० आ√रुह्+क्तिन्] आरूढ़ होने की अवस्था, क्रिया या भाव।

आरेक--पुं० [सं० आ√रिच् (मिलाना, अलग करना)+घञ्] १. रिक्त या खाली करना। २. संदेह।

आरेचन--पुं० [सं० आ√रिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आरेचित] १. खाली करना या कराना। बाहर निकलना या निकालना। २. संकुचित करना या होना।

आरेस--स्त्री०=ईर्ष्या। उदा०--कबहुँ न कियहु सवति आरेसू।--तुलसी।

पुं०=आलस्य।

आरो*--पुं० [सं० आख] घोर शब्द। नाद।

आरोग--पुं०=आरोग्य।

आरोगना--स० [सं० आरोग्य] भोजन करना। खाना। (आदरार्थक)

आरोग्य--पुं० [सं० अरोग+ष्यञ्] अरोग होने की अवस्था या भाव।

आरोग्यता--स्त्री० [सं० आरोग्य से] अरोग होने की अवस्था या भाव।

आरोग्य-प्रमाणक--पुं० [ष० त०] किसी व्यक्ति के संबंध का वह प्रमाण-पत्र जो यह सूचित करता है कि अमुक व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से बिलकुल नीरोग और स्वस्थ है। (हेल्थ सर्टिफिकेट)

आरोग्य-शाला--स्त्री० [ष० त०] दे० 'स्वास्थ्य-निवास'।

आरोग्य-स्नान--पुं० [सं० मध्य० स०] वह स्नान जो बहुत दिनों का रोगी रोग से मुक्त और स्वस्थ होने पर पहले-पहल करता है।

आरोध--पुं० [सं० आ√रुध् (रोकना)+घञ्] १. अच्छी तरह से खड़ी की हुई बाधा या रुकावट। २. अवरोध। घेरा। ३. ऐसी आज्ञा या उसके अनुसार होनेवाली रुकावट जिससे कोई माल कहीं भेजा या कहीं से मँगाया न जा सके। (एम्बार्गो)

आरोधना*--स० [सं० आ+रुंधन=छेकना] १. बाधा या रुकावट खड़ी करना। २. काँटों की बाढ़ लगाना।

आरोप--पुं० [सं० आ√रुह् (बीज उत्पन्न होना)+णिच्, पुक्+घञ्] [भू० कृ० आरोपित, वि० आरोप्य कर्त्ता आरोपक] १. ऊपर से या कहीं से लाकर बैठाना या लगाना। जैसे--कहीं से कोई पेड़-पौधा लाकर उसका आरोप करना। २. साहित्य में, किसी वस्तु में दूसरी वस्तु का गुण या धर्म लाकर लगाना या उसकी कल्पना करना। ३. किसी के संबंध में यह कहना कि इसने अमुक अनुचित, दंडनीय या नियम-विरुद्ध कार्य किया है। (एलिगेशन)

मुहा०--(किसी पर कोई) आरोप लगाना=(क) साधारण रूप से यह कहना कि इसने अमुक अनुचित काम किया है। (ख) विधिक क्षेत्र में, आरंभिक जाँच, गवाही आदि के बाद न्यायालय का यह स्थिर करना कि अभियुक्त अमुक अपराध का कर्त्ता हो सकता है। दफा लगाना। ४. अधिकारपूर्वक किसी पर कोई कर या शुल्क नियत करना। (लेवी)

आरोपक--वि० [सं० आ√रुह्+णिच्, पुक्+ण्वुल्-अक] १. आरोप करनेवाला। २. अभियोग या दोष लगानेवाला।

आरोपण--पुं० [सं० आ√रुह+णिच्,+पुक्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आरोपित, वि० आरोप्य] आरोप करने की क्रिया या भाव।

आरोपना*--स० [सं० आरोपण] आरोप या आरोपण करना। लगाना।

आरोप-फलक--पुं० [ष० त०] वह फलक या लेख्य, जिसमें न्यायालय द्वारा

किसी पर लगाये हुए आरोपों आदि का विवरण लिखा होता है। (चार्ज शीट)

आरोपित--भू० कृ० [सं० आ√रुह्+णिच्, पुक्+क्त] १. जिसका आरोपण हुआ हो। स्थापित किया या लगाया हुआ। २. रोपा हुआ।

आरोपी (पिन्)--वि० [सं० आ√रुह्+णिच्, पुक्+णिनि]=आरोपक।

आरोप्य--वि० [सं० आ√रुह्+णिच्, पुक्+यत्] १. आरोप किये जाने के योग्य। जिसपर आरोप करना उचित या संगत हो। २. रोपे जाने के योग्य।

आरोप्यमाण--वि० [सं० आ√रुह्+णिच्, पुक्+यक्+शानच्] जिसमें किसी वस्तु या तत्त्व का आरोप किया जाय। जैसे--'दूध ही मेरा जीवन है' में 'दूध' आरोप्यमाण और 'जीवन' आरोप्य है।

आरोह--पुं० [सं० आ√रुह्+घञ्] १. किसी के ऊपर आरूढ़ होना या चढ़ना। सवार होना। २. नीचे से क्रमात् ऊपर की ओर जाना या बढ़ना। चढ़ाव। ३. वेदांत में, जीवात्मा की उत्तरोत्तर होनेवाली उन्नति या ऊर्ध्व गति। क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों की होनेवाली प्राप्ति। ४. दर्शन और विज्ञान में, कारण से कार्य का आविर्भाव होना या किसी पदार्थ का आरंभिक या हीन अवस्था से बढ़कर उन्नत और विकसित अवस्था में पहुँचना। जैसे--बीज से अंकुर या अंकुर से वृक्ष बनना; अथवा अल्प, चेतनावाले जीवों से क्रमात् उन्नत प्राणियों की सृष्टि होना। ५. संगीत में, पहले नीचेवाले स्वरों का उच्चारण करते हुए उत्तरोत्तर ऊँचे स्वरों का उच्चारण करना। जैसे--सा, रे, ग, म, प, ध, नि; अथवा रे, ग, प, नि, सा। ६. ऐसा मार्ग जो क्रमशः ऊँचा होता गया हो। चढ़ाई। (एस्सेन्ट, उक्त सभी अर्थों के लिए)। ७. फलित ज्योतिष में, ग्रहण लगने का एक विशिष्ट प्रकार या भेद। ८. प्राचीन भारत में, पशुओं के वे चमड़े जो ऊपर ओढ़े जाते थे। ९. चूतड़। नितंब।

आरोहक--वि० [सं० आ√रुह्+ण्वुल्–अक] आरोहण करने या चढ़नेवाला।

आरोहण--पुं० [सं० आ√रुह्+ल्युट्–अन] [कर्त्ता आरोहक, भू० कृ० आरोहित] १. ऊपर की ओर जाना या बढ़ना। २. किसी के ऊपर चढ़ना या सवार होना। ३. चढ़ाई का मार्ग या रास्ता। ४. सीढ़ी।

आरोहना--अ० [सं० आरोहण] ऊपर चढ़ना। आरोहण करना। उदा०--दरसन लागि लोग अदनि आरो हैं।--तुलसी।

आरोहित--भू० कृ० [सं० आरोह+इतच्] १. जिसने आरोहण किया हो। चढ़ा हुआ। २. ऊपर गया या ऊपर की ओर बढ़ा हुआ।

आरोही (हिन्)--पुं [सं० आ√रुह्+णिनि] [स्त्री० आरोहिणी] १. आरोहण करने या ऊपर चढ़नेवाला। (एसेंडिंग)। २. वह जो किसी के ऊपर चढ़ा हुआ हो। सवार। ३. संगीत में, स्वर-साधन का वह भेद जिसमें पहले नीचे के स्वरों का उच्चारण करते हुए क्रमशः ऊँचे स्वरों का उच्चारण किया जाता है। इसका विपर्याय 'अवरोही' है। जैसे--सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा।

आरौ*--पुं० आरव (घोर शब्द)। उदा०--घुरघुरात हय आरौ पाए।--तुलसी।

आर्क--वि० [सं० अर्क+अण्] अर्क (सूर्य, मदार आदि) से संबंध रखनेवाला। अर्क-संबंधी।

आर्कि--पुं० [सं० अर्क+इञ्] सूर्य के पुत्र; यथा--शनि, यम, कर्ण आदि।

आर्गल--पुं० [सं० अर्गल+अण्]=अर्गल।

आर्घा--स्त्री० [सं० आ√अर्घ् (मूल्य)+अच्–टाप्] पीले रंग की एक बड़ी मधु-मक्खी। सारंग।

आर्घ्य--पुं० [सं० आर्घा+यत्] १. आर्घा नामक मधु-मक्खियों का मधु। सारंग-मधु। २. एक प्रकार का महुआ जिसका गोंद सफेद होता है।

आर्जव--पुं० [सं० ऋजु+अण्] १. ऋजु होने की अवस्था, गुण या भाव। ऋजुता। सीधापन। २. सरलता। सुगमता। ३. व्यवहार आदि की सरलता या साधुता (स्ट्रेट-फार्वर्डनेस)

आर्जुनि--पुं० [सं० अर्जुन+इञ्] अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु।

आर्त्त--वि० [सं० आ√ऋ (गति)+क्त] [भाव० आर्त्ति, आर्त्तता] १. विपत्ति या संकट में पड़ा हुआ। २. जिसे आघात लगा या कष्ट पहुँचा हो। पीड़ित। ३. जो उक्त स्थिति में पड़कर विह्वल हो रहा हो और अपने छुटकारे के लिए सहायता चाहता हो। ४. जिससे विशेष दुःख या संकट प्रकट होता हो। जैसे--आर्त्त स्वर। ५. अस्वस्थ। रुग्ण। बीमार। ६. नश्वर।

पुं० चार प्रकार के भक्तों में से एक, जो संसार के कष्टों से परम दुःखी होकर पुकार मचाता हुआ भगवान की शरण में जाता है।

आर्त्तता--स्त्री० [सं० आर्त्त+तल्–टाप्] १. आर्त्त होने की अवस्था या भाव। २. कष्ट। दुःख।

आर्त्तध्वनि--स्त्री० [ष० त०] आर्त्त नाद।

आर्त्तनाद--पुं० [ष० त०] जोर का ऐसा नाद या शब्द जो घोर संकट में पड़े हुए व्यक्ति के मुँह से निकलता है। परम दुखिया की दर्द-भरी पुकार।

आर्त्तभक्ति--स्त्री० [ष० त०] गौणी भक्ति का भेद, जिसमें भक्त कष्ट में पड़कर तथा उसे दूर करने के लिए आर्त्त-भाव से उपासना और प्रार्थना करता है।

आर्त्तव--वि० [सं० ऋतु+अण्] [स्त्री० आर्त्तवी ऋतु+अण्] १. ऋतु या मौसिम से संबंध रखनेवाला। २. किसी विशिष्ट ऋतु में उत्पन्न होनेवाला। मौसिमी।

पुं० ऋतुमती स्त्रियों के मासिक धर्म के समय निकलनेवाला रज। पुष्प।

आर्त्तव-दोष--पुं० [कर्म० स०] स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी। ऋतु-दोष।

आर्त्तवेयी--स्त्री० [सं० ऋतु+ढक्–एय–ङीप्] ऋतुमती या रजस्वला स्त्री।

आर्त्ति--स्त्री० [सं० आ√ऋ+क्तिन्] १. आर्त्त होने की अवस्था या भाव। आर्त्तता। २. कष्ट। दुःख। ३. रुग्णता। बीमारी।

आर्त्विज--वि० [सं० ऋत्विज्+अण्] [स्त्री० आर्त्विजी] ऋत्विज-संबंधी।

आर्थ--वि० [सं० अर्थ+अण्] [स्त्री० आर्थी] १. जिसका कोई विशेष अर्थ या महत्त्व हो। २. शब्दों या वाक्यों के अर्थ से संबंध रखनेवाला। ३. साहित्य में, स्पष्ट कथन के अभाव में केवल अर्थ से निकलने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। 'शाब्द' से भिन्न और उसका विपर्याय। जैसे--आर्थी व्यंजना या विभावना। ४. दे० 'आर्थिक'।

आर्थिक--वि० [सं० अर्थ+ठक्–इक] १. अर्थ से संबंध रखनेवाला। अर्थ-संबंधी। २. राजनीति और समाज-शास्त्र में, धन-संपत्ति और इसके अर्जन, उत्पादन, विभाजन, व्यवस्था आदि से संबंध रखनेवाला। ग्रथा

पैसे, आय-व्यय आदि से संबंध रखने या इनके विचार से होनेवाला। (इकॉनामिक) जैसे—देश की आर्थिक उन्नति। ३. दे० 'आर्थी'।

आर्थिकी—स्त्री० [सं० अर्थ से] अर्थशास्त्र।

आर्थी—वि० [सं० आर्थ+ङीप्] शब्दों के अर्थ से संबंध रखनेवाला। जैसे—आर्थी व्यंजना।

आर्थी अपह्नुति—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] दे० 'कैतवापह्नुति'।

आर्थी व्यंजना—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] साहित्य में, व्यंजना (शब्द-शक्ति) का वह प्रकार या भेद जिसमें स्वयं शब्दों से नहीं, बल्कि उनके द्वारा निकलनेवाले अभिप्राय या आशय से अथवा शारीरिक चेष्टा, व्यंग्य, काकु, प्रसंग आदि के द्वारा कोई विशेष अर्थ या भाव व्यंजित होता है। जैसे—'बाल-मराल कि मंदर लेहीं।' से वक्ता यह बतलाना चाहता है कि रामचन्द्र धनुष नहीं उठा सकते।

आर्द्ध—वि० [सं० अर्द्ध+अण्] अर्ध-संबंधी। अर्ध का। यौ० शब्दों के आरंभ में। जैसे—आर्द्ध वार्षिक।

आर्द्र—वि० [सं०√अर्द् (गति)+रक्, दीर्घ] [भाव० आर्द्रता] १. गीला। तर। नम। २. पिघला हुआ। ३. किसीप्रकार के रस या तरल पदार्थ से युक्त। जैसे—आर्द्र काष्ठ, आर्द्र नेत्र आदि। ४. सना हुआ। लथ-पथ।

आर्द्रक—पुं० [सं० आर्द्र+कन्] अदरक। आदी।

आर्द्रता—स्त्री० [सं० आर्द्र+तल्—टाप्] आर्द्र होने की अवस्था या भाव। नमी।

आर्द्रा—स्त्री० [सं० आर्द्र+टाप्] १. एक नक्षत्र जो प्रायः आषाढ़ में पड़ता है और साधारणतः जिसमें वर्षा आरंभ होती है। २. एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं। ३. अदरक। आदी। ४. अतीस।

आर्नव*—पुं०=आर्णव (समुद्र)।

आर्य—पुं० [सं०√ऋ (गति)+ण्यत्] [भाव० आर्यत्व, स्त्री० आर्या] १. आदरणीय, प्रतिष्ठित या श्रेष्ठ व्यक्ति। २. वह जो अपने धर्म के प्रति पूरी निष्ठा और श्रद्धा रखता हो। ३. एक प्रसिद्ध प्राचीन उन्नत और सभ्य जाति, जो मध्य एशिया से आकर आर्यावर्त्त या भारत में बसी थी और जिसकी कुछ शाखाएँ युरोप आदि की ओर भी फैली थीं। ४. आचार्य, गुरु, पति आदि पूज्य व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होनेवाला एक पुराना संबोधन। ५. मनु सावर्ण का एक पुत्र। ६. एक बुद्ध।

वि० १. उत्तम। श्रेष्ठ। २. पूज्य। मान्य। ३. कुलीन। ४. उपयुक्त।

आर्य-घोटक—पुं० [सं० कर्म० स०] जलूस में निकाला जानेवाला बिना सवार का सजा हुआ घोड़ा। कोतल।

आर्यत्व—पुं० [सं० आर्य+त्व] 'आर्य' होने की अवस्था, गुण या भाव। आर्यपन।

आर्य-पुत्र—पुं० [प० त०] १. आर्यों की संतान। २. स्त्री की ओर से पति के प्रति प्रयुक्त होनेवाला एक प्राचीन संबोधन।

आर्यव—पुं० [सं० आर्य√वा (गति)+क] १. अच्छा और श्रेष्ठ आचरण। सदाचार। २. उचित और न्याय-संगत व्यवहार।

आर्य-वृत्त—पुं० [प० त०] धर्मात्मा और सदाचारी।

आर्य-सत्य—पुं० [प० त०] बौद्धों में माने जानेवाले चार मूल और परम उत्कृष्ट सत्य सिद्धांत जो बौद्ध धर्म के मूल आधार माने गये हैं।

आर्य-समाज—पुं० [प० त०] [वि० आर्य-समाजी] हिंदुओं के अंतर्गत एक आधुनिक संप्रदाय जिसे स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्थापित किया था और जो मूर्त्ति-पूजा, पुराणों आदि का खंडन तथा मूल वैदिक धर्म का पोषण करता है।

आर्य-समाजी (जिन्)—पुं० [सं० आर्यसमाज+इनि] वह जो आर्य-समाज के सिद्धांत मानता हो और उनका अनुयायी हो।

वि० १. आर्य-समाज-संबंधी। २. आर्य-समाजियों की तरह का।

आर्य्या—स्त्री० [सं० आर्य+टाप्] १. पार्वती। २. पितामही, सास आदि बड़ी-बूढ़ियों के लिए आदरसूचक संबोधन। ३. एक प्रकार का अर्ध-मात्रिक छंद।

आर्या-गीति—स्त्री० [सं० उपमि० स०] आर्या छंद का एक भेद जिसके सम चरणों में बीस और विषम चरणों में बारह मात्राएँ होती हैं।

आर्यावर्त्त—पुं० [सं० आर्य—आ√वृत् (रहना)+घञ्] भारतवर्ष का वह उत्तरी और मध्य भाग जिसमें आर्य जाति पहले-पहल आकर बसी थी।

आर्येतर—वि० [सं० आर्य-इतर, पं० त०] १. जो आर्य न हो, बल्कि उससे भिन्न हो।

आर्ष—वि० [सं० ऋषि+अण्] १. ऋषियों से संबंधित। ऋषियों का। २. ऋषियों का बनाया हुआ। ३. वैदिक रचनाओं या स्तोत्रों से संबंधित। ४. जो ऋषियों द्वारा प्रचलित होने के कारण ही मान्य हो। जैसे—आर्ष प्रयोग।

आर्ष-प्रयोग—पुं० [सं० कर्म० स०] भाषा के क्षेत्र में, किसी पद या शब्द का ऐसा प्रयोग जो व्याकरण के नियमों से ठीक सिद्ध न होने पर भी इसीलिए प्रचलित तथा मान्य हो कि प्राचीन ऋषि आदि ऐसा प्रयोग कर गये हैं।

आर्षभ—वि० [सं० ऋषभ+अण्] ऋषभ-संबंधी। ऋषभ का।

पुं० ऋषभ का वंशज।

आर्ष-विवाह—पुं० [सं० कर्म० स०] स्मृतियों के अनुसार आठ प्रकार के विवाहों में से तीसरा जिसमें कन्या का पिता वर से दो गौएँ या बैल शुल्क के रूप में लेकर उसे अपनी कन्या देता था।

आर्षेय—वि० [सं० ऋषि+ढक्—एय] १. ऋषियों से संबंध रखने या उनमें होनेवाला। २. पूज्य। मान्य। ३. उत्तम। श्रेष्ठ।

पुं० १. ऋषियों का गोत्र। २. मंत्र-द्रष्टा ऋषि। ३. यजन-याजन और अध्ययन-अध्यापन आदि जो ऋषियों के कार्य हैं।

आर्हत—वि० [सं० अर्हत्+अण्] अर्हत से या जैन-सिद्धांतों से संबंध रखनेवाला।

पुं० १. जैन-सिद्धांत। २. जैन-सिद्धांतों का अनुयायी।

आलंकारिक—वि० [सं० अलंकार+ठक्—इक] १. अलंकार-संबंधी। २. अलंकरण या सजावट के रूप में होनेवाला। (ऑर्नामेन्टल) जैसे—आलंकारिक चित्रण। ३. (कथन या रचना) जो अलंकारों से युक्त हो। (फिगरेटिव) जैसे—आलंकारिक भाषा। ४. साहित्य-सेवी। साहित्यिक। (प्राचीन शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द)

पुं० अलंकार शास्त्र का ज्ञाता या पंडित।

आलंग—पुं०=अलंग।

आलंब—पुं० [सं० आ√लंब् (आश्रित रहना)+घञ्] १. वह जिसके ऊपर या सहारे पर कोई खड़ा, टिका या ठहरा हो। सहारा। २. किसी पर रखा जानेवाला भरोसा या किया जानेवाला पूरा विश्वास। ३. नींव।

आलंबन--पुं० [सं० आ√लंव्+ल्युट्-अन] १. वह जिसपर कुछ ठहरा या टिका हो। आधार। सहारा। २. किसी पर आश्रित रहने अथवा टिके या ठहरे होने की अवस्था या भाव। आश्रय। ३. नींव। ४. साहित्य में वह (वस्तु या व्यक्ति) जिसके आधार पर मन में रस की अनुभूति या आविर्भाव होता है। विभाव। जैसे—शृंगार रस में नायक और नायिका, हास्य रस में विलक्षण उक्ति या रूप और वीभत्स रस में मांस, रक्त आदि घृणित पदार्थ आलंबन होते हैं। ५. वह मानसिक क्रिया या प्रयोग जो योगी लोग ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए करते हैं। ६. इंद्रियों के विषय (रूप, रस, गंध आदि) जिनके द्वारा या सहारे मानसिक ज्ञान प्राप्त होता है।

आलंबित--भू० कृ० [सं० आ√लंव्+क्त] किसी पर ठहरा या टिका हुआ। आश्रित।

आलंबी (बिन्)--पुं० [सं० आ√लंव्+णिनि] वह जो किसी पर ठहरा या टिका हो।

आलंभ--पुं० [सं० आ√लभ् (प्राप्ति)+घञ्, नुम्] १. स्पर्श करना। छूना। २. पकड़ना। ३. प्राप्ति। ४. हत्या।

आलंभन--पुं० [सं० आ√लभ्+ल्युट्-अन, नुम्] छूने, पकड़ने या प्राप्त करने की क्रिया।

आलंभी (भिन्)--वि० [सं० आ√लभ्+णिनि, नुम्] १. छूने, पकड़ने या प्राप्त करनेवाला। २. वध, हत्या या हिंसा करनेवाला।

आल--पुं० [सं० अल (=विच्छू का डंक)+अण्] १. जहरीले कीड़े या जानवरों के शरीर से निकलनेवाला कोई विषाक्त तरल पदार्थ या रस। २. हरताल।

पुं० [सं०√अल् (भूषित करना)+णिच्+अच्] १. एक प्रकार का पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिए की जाती थी। २. उक्त पौधे से निकाला हुआ लाल रंग। ३. एक प्रकार का कँटीला पौधा। ४. गाँव या वस्ती का भाग। ५. झंझट। बखेड़ा। ६. सरसों की फसल को हानि पहुँचाने वाला एक कीड़ा। माहो। ७. प्याज का हरा डंठल। ८. कद्दू। लौकी।

†वि० [सं० आर्द्र] गीला। तर।

†पुं० १. गीलापन। तरी। २. अश्रु। आँसू।

स्त्री० [अ०] १. वेटी की संतति। २. औलाद। संतान। ३. कुल। खानदान। परिवार।

आलकस--पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलकसी; अ० अलकसाना] आलस्य।

आल-जाल--वि० [हिं० आल=झंझट] व्यर्थ का। ऊटपटांग।

पुं० १. व्यर्थ की या वे-सिर-पैर की वात। २. फालतू या व्यर्थ की चीज।

आलथी-पालथी--स्त्री० [हिं० पालथी] बैठने की वह मुद्रा जिसमें दाहिनी एड़ी वाएँ जंघे पर और वाईं एड़ी दाहिने जँघे पर रहती है।

क्रि० प्र०—मारना। —लगाना।

आलन--पुं० [हिं० सालन का अनु०] १. वह घास, भूसा आदि जो चूल्हा, दीवार आदि बनाने की मिट्टी में मिलाया जाता है। २. वह आटा या वेसन जो पकौड़ियाँ आदि बनाने के साग या फलों के टुकड़ों में मिलाया जाता है।

आलना--पुं० [सं० आलय; मि० फा० लानः=मधु-मक्खियों का छत्ता] चिड़ियों का घोंसला। नीड़।

आलपाका--पुं० दे० 'अलपका' (कपड़ा)।

आलपीन--स्त्री० [पुर्त० आलफिनेट] सूई के आकार की बिना छेद की किंतु घुंडीदार लोहे की वह छोटी सलाई जिससे कागज आदि नत्थी किये जाते हैं। (पिन)

आलम--पुं० [अ०] १. जगत। दुनियाँ। संसार। २. संसार में रहनेवाले मनुष्य। ३. मनुष्यों की भीड़-भाड़। जन-समूह। ४. अवस्था। दशा। हालत। ५. दृश्य। ६. एक प्रकार का नृत्य।

आलमारी--स्त्री०=अलमारी।

आलय--पुं० [सं० आ√ली (समाना)+अच्] १. घर। मकान। २. जगह। स्थान। ३. किसी विशिष्ट कार्य के लिए बना हुआ भवन या स्थान। जैसे—चिकित्सालय, छात्रालय आदि।

आलवाल--पुं० [सं० आ-लव, प्रा० स०, आ√ला (लेना)+क] वृक्ष के नीचे का थाँवला। थाला।

आलस--पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलसी] आलस्य।

आलसी--वि० [हिं० आलस] हर काम में आलस्य करनेवाला। निकम्मा और सुस्त।

आलस्य--पुं० [सं० अलस+ष्यञ्] १. ऐसी मानसिक या शारीरिक शिथिलता जिसके कारण कोई काम करने में मन नहीं लगता। सुस्ती। २. वह उत्साह-हीनता और शिथिलता जो बहुत समय तक जागते रहने पर, बहुत अधिक परिश्रम करने पर अथवा इसी प्रकार के कुछ और कारणों से उत्पन्न होती है। साहित्य में यह एक संचारी भाव माना गया है।

आला--पुं० [सं० आलय; आलवाल; पा० आलक; कन्न० आलि; गु० आलियो; मरा० आलें] १. दीवार में थोड़ा-सा खाली छोड़ा हुआ वह स्थान जिसमें छोटी-मोटी चीजें रखी जाती हैं। ताक। ताखा।

पुं० [सं० अलात] कुम्हार का आँवाँ। पजावा।

वि० [सं० ओल=गीला] १. गीला। तर। नम। २. ताजा। ३. कच्चा और हरा। उदा०—आले ही वाँस के माँडव मनिगन पूरन हो। —तुलसी।

पुं० [अ० आलः] कारीगरों के काम करने के कोई उपकरण। औजार।

वि० [अ० अअ़्ला] ऊँचे दरजे का और बढ़िया। श्रेष्ठ।

आलाइश--स्त्री० [फा०] पेट के अंदर से या शरीर के किसी अंग में से निकलनेवाली गंदी चीजें। जैसे—पीव, मल, रक्त आदि।

आलात--पुं० [सं० अलात+अण्] ऐसी लकड़ी जिसका एक सिरा जल रहा हो। लुआठी। लुक।

पुं० [अ० आलः का बहु०] १. उपकरण। औजार। २. जहाज का रस्सा। (लश०)

आलात-चक्र--पुं० [ष० त०] जलती हुई लकड़ी को वेग से घुमाने पर उससे बननेवाला चमकीला मंडल।

आलान--पुं० [सं० आ√ली+ल्युट्-अन] १. वह खूँटा या खंभा जिससे हाथी बाँधा जाता है। २. हाथी बाँधने का रस्सा या सिक्कड़। ३ बाँधने की रस्सी आदि।

आलाप--पुं० [सं० आ√लप् (बोलना)+घञ्] १. कहना। बोलना। २. आपस में होनेवाली बात-चीत। जैसे—वार्त्तालाप। ३. चिड़ियों की चहचहाहट। ४. संगीत में राग-रागिनियों के गाने का वह विशिष्ट

आरंभिक अंग या प्रकार जिसमें तानयुक्त स्वरों में केवल धुन का प्रदर्शन होता है, गीत के बोलों का उच्चारण नहीं होता।

आलापक—वि० [सं० आ√लप्+ण्वुल्–अक] आलाप या बात-चीत करनेवाला। २. संगीत में स्वरों का आलाप करनेवाला।

आलापचारी—स्त्री० [सं० आलाप-चार] संगीत में, स्वरों का आलाप करने की क्रिया।

अलापन—पुं० [सं० आ√लप्+णिच्+ल्युट्–अन] आलाप करने की क्रिया या भाव।

आलापना—स०=अलापना।

आलापित—भू० कृ० [सं० आ√लप्+णिच्+क्त] १. कहा हुआ। कथित। २. संगीत में, आलाप के रूप में उच्चरित किया हुआ। ३. गाया हुआ।

आलापिनी—स्त्री० [सं० आलाप+इनि–ङीप्] बाँसुरी। वंसी।

आलापी (पिन्)—वि० [सं० आलाप+इनि वा आ√लप्+णिनि] [स्त्री० आलापिनी]=आलापक।

आलारासी—वि० [सं० आलस्य ?] १. आलसी। २. ला-परवाह।
स्त्री० ऐसी अव्यवस्थित स्थिति जिसमें कहीं किसी की चिंता या पूछ न हो।

आलावर्त्त—पुं० [सं० आल–आ√वृत् (बरतना)+णिच्+अच्] कपड़े का बना हुआ या कपड़े से मढ़ा हुआ पंखा।

आलिंग—पुं० [सं० आ√लिंग् (चित्रित करना)+घञ्] १. आलिंगन। २. पखावज की तरह का एक प्रकार का बाजा।

आलिंगन—पुं० [सं० आ√लिंग्+ल्युट्–अन] [वि० आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य] प्रेमपूर्वक किसी को गले या छाती से लगाने की क्रिया या भाव। परिरंभण।

आलिंगना— स० [सं० आलिंगन] आलिंगन करना। गले लगाना।

आलिंगित—भू० कृ० [आ√लिंग्+क्त] प्रेमपूर्वक गले या छाती से लगाया हुआ।

आलिंगी (गिन्)—पुं० [सं० आलिंग+इनि] [स्त्री० आलिंगिनी] वह जो किसी को गले या छाती से लगावे। आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य—वि० [सं० आ√लिंग्+ण्यत्] १. गले या छाती से लगाये जाने के योग्य। २. लाक्षणिक अर्थ में स्वीकार किये जाने के योग्य।
पुं० एक प्रकार का मृदंग।

आलिंद—पुं० [सं० अलिंद+अण्]=अलिंद।

आलि—स्त्री० [सं० आ√अल् (पर्याप्ति)+इन्] १. सखी। सहेली। २. बिच्छू। ३. भ्रमरी। भौंरी। ४. अवली। पंक्ति। ५. रेखा। लकीर। ६. पानी का बाँध।

आलिखित—भू० कृ० [सं० आ√लिख् (लिखना)+क्त] १. आलेख के रूप में अंकित किया हुआ। अंकित या चित्रित। २. लिखा हुआ। लिखित।

आलिप्त—भू० कृ० [सं० आ√लिप्+क्त] लिपा-पुता या लीपा-पोता हुआ।

आलिम—वि० [अ०] पंडित। विद्वान।

आली—स्त्री० [सं० आलि] सखी। सहेली।
वि० [हिं० आल] आल के रंग का। लाल।
वि० [अ०] १. उच्च। २. मान्य। श्रेष्ठ।
वि० स्त्री० [सं० आर्द्र] गीली। तर। नम।
स्त्री० [देश०] १. भूमि की एक नाप जो एक बिस्वे के बराबर होती है। २. खेतों, बगीचों आदि की क्यारी।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे स्थान पर बैठनेवाला। उच्च पदस्थ। (बहुत बड़े और मान्य व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त)

आलीढ़—भू० कृ० [सं० आ√लिह् (स्वाद लेना)+क्त] १. खाया हुआ। भक्षित। २. जीभ से चाटा हुआ।
पुं० बाण चलाने के समय की एक प्रकार की मुद्रा।

आलीन—वि० [सं० आ√ली (समाना)+क्त] १. किसी के पास आया हुआ। २. किसी स्थान में रहनेवाला। ३. झुका हुआ।
पुं० संपर्क।

आलीशान—वि० [अ०+फा०] बहुत बड़ा और भव्य। बहुत शानदार।

आलु—पुं० [सं० आ√ली+डु] १. आबनूस। २. एक प्रकार का कंद या मूल। ३. उल्लू। ४. नावों का बेड़ा।

आलुक—पुं० [सं० आ√ला (लेना)+डु+कन्] १. आलू नाम का कंद। २. शेषनाग।

आलुझना*—अ०=उलझना।

आलू—पुं० [सं० आ√लू (काटना)+क्विप्] एक प्रसिद्ध छोटा गोल कंद जिसकी तरकारी बनती है। (पोटैटो)
स्त्री० [सं० आलु] झारी या लुटिया नाम का छोटा जल-पात्र।

आलूचा—पुं० [फा० आलूचः] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल खाये जाते हैं। २. उक्त वृक्ष का छोटा, गोल, रसीला फल।

आलूदम—पुं० [हिं० आलू+फा० दम] दम देकर या भाप की सहायता से, कुछ विशिष्ट प्रकार से पकाया हुआ साबूत आलू।

आलूदा—वि० [फा० आलूदः] १. सना हुआ। २. अच्छी तरह सजा हुआ।
उदा०—आलूदा ठाकुर अल्ल।—प्रिथीराज।

आलूबालू—पुं० [देश०] आलूचे की जाति का एक पेड़।

आलूबुखारा—पुं० [फा०] सुखाया हुआ आलूचा नामक फल।

आलेख—पुं० [सं० आ√लिख् (लिखना)+घञ्] १. लिखना। २. लिखावट। लिपि। ३. वह जो कुछ लिखा हो। जैसे—चित्र, लेख आदि। ४. तवे के आकार का वह वैज्ञानिक उपकरण जिसमें वक्ता की आवाज भरी होती है, और जिसे ग्रामोफोन में रख कर बजाया जाता है। (रेकार्ड)

आलेखन—पुं० [सं० आ√लिख्+ल्युट्–अन] [वि० आलेखिक, आलिखित; कर्त्ता आलेखक] १. लिखने की क्रिया या भाव। २. चित्र अंकित करना।

आलेखनी—स्त्री० [सं० आलेखन+ङीप्] १. कलम। २. चित्र अंकित करने की कूँची।

आलेख-रूपक—पुं० [प० त०] आज-कल रेडियो पर होनेवाला ऐसा रूपक जिसमें पहले से तैयार किए हुए आलेखों (रेकार्ड) का अधिक व्यवहार किया जाता है।

आलेख्य—वि० [सं० आ√लिख्+ण्यत्] १. लिखे जाने के योग्य। २. जो लिखा जाने को हो।
पुं० १. वह जो कुछ लिखा गया हो। २. चित्र। तसवीर।

आलेख्य-कर्म (न्)—पुं० [प० त०] चित्र अंकित करने का काम। चित्रांकन। (पेंटिंग)

आलेख्य विद्या—स्त्री० [प० त०] चित्रकारी।

आलेप--पुं० [सं० आ√लिप् (लीपना)+घञ्]=लेप।

आलेपन--पुं० [सं० आ√लिप्+ल्युट्-अन] लेप लगाने या लेपने की क्रिया या भाव।

आलै*--पुं०=आलय (घर)।

आलेखिक--वि० [सं० आलेख+ठक्-इक] आलेख-संबंधी।
पुं० लिखनेवाला व्यक्ति।

आलोक--पुं० [सं० आ√लोक् (देखना)+घञ्] [वि० आलोक्य; भू० कृ० आलोकित] १. देखना। २. प्रकाश। रोशनी। ३. दर्शन। ४. प्रशंसा। ५. पुस्तक का अध्याय या प्रकरण। ६. किसी विषय पर लिखी हुई टिप्पणी या सूचना। (नोट)

आलोक-चित्रण--पुं० [सं० त०] एक वैज्ञानिक प्रक्रिया जिसमें प्रकाश में रखी हुई वस्तु की छाया या प्रतिबिंब इस प्रकार ग्रहण किया जाता है कि उस पर से उसका चित्र छप जाता है। (फोटोग्राफी)

आलोकन--पुं० [सं० आ√लोक्+ल्युट्-अन] [वि० आलोकनीय, भू० कृ० आलोकित] १. अच्छी तरह से देखना। अवलोकन। २. दिखलाना। ३. आलोक या प्रकाश से युक्त करना। ४. चमकाना।

आलोकनीय--वि० [सं० आ√लोक्+अनीयर्] आलोकन किये जाने के योग्य।

आलोक-पत्र--पुं० [सं० ष० त०] वह पत्र या लेख जो किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए स्मारक के रूप में लिखा गया हो। जैसे--किसी सभा, मंडली आदि के उद्देश्यों और व्यवस्था से संबंध रखनेवाला पत्र या पुस्तिका। (मेमोरैन्डम)

आलोकित--भू० कृ० [सं० आ√लोक्+क्त] १. देखा हुआ। २. जो आलोक या प्रकाश से युक्त किया गया हो। ३. चमकता हुआ।

आलोच--पुं० [सं० आ--लुञ्चन] वे दाने जो खेत काटने के समय जमीन पर गिर जाते हैं।। शीला।

आलोचक--पुं० [सं० आ√लोच् (देखना)+णिच्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० आलोचिका] १. देखनेवाला। २. गुण-दोष आदि की आलोचना या विवेचन करनेवाला। ३. समीक्षक।

आलोचण*--पुं०=आलोच।

आलोचन--पुं० [सं० आ√लोच्+णिच्+ल्युट्-अन] [वि० आलोच्य; भू० कृ० आलोचित] १. दर्शन करना। देखना। २. किसी चीज के गुण-दोष आदि की जाँच, परख या विवेचन। ३. जैनों के अनुसार, अपने किये हुए पापों का विवेचन और प्रकाशन।

आलोचना--स्त्री० [सं० आ√लोच्+णिच्+युच्-अन-टाप्] [वि० आलोचित] १. किसी कृति या रचना के गुण-दोषों का निरूपण या विवेचन करना। २. इस प्रकार किया हुआ विवेचन।

आलोचनीय--वि० [सं० आ√लोच्+अनीयर्]=आलोच्य।

आलोचित--भू० कृ० [सं० आ√लोच्+क्त] जिसकी आलोचना हुई हो या की गई हो।

आलोच्य--वि० [सं० आ√लोच्+ण्यत्] जिसकी आलोचना की जा सकती हो या की जाने को हो।

आलोज*--पुं० [सं० आलोचन] विवेचन। विचार। उदा०--अंतरजामी सूँ आलोज।--प्रिथीराज।

आलोड़न--पुं० [सं० आ√लोड् (उन्मत्त होना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आलोड़ित] १. मथना। बिलोना। २. मन में होनेवाला ऊहापोह या सोच-विचार। ३. क्षोभ।

आलोड़ना*--स० [सं० आलोड़न] १. अच्छी तरह से मथना। २. अच्छी तरह सोचना-विचारना। ऊहा-पोह करना।

आलोड़ित--भू० कृ० [सं० आ√लोड्+क्त] १. मथा या बिलोया हुआ। २. सभी दृष्टियों से अच्छी तरह सोचा हुआ। जिसपर खूब विचार हुआ हो।

आ-लोप--पुं० [सं० आ√लुप् (न दीखना)+घञ्] १. पद, स्थान आदि न रहने देना। लुप्त करना। २. पहले का आदेश या निश्चय रद्द करना।

आ-लोल--वि० [सं० प्रा० स०] १. हिलता-डोलता या लहराता हुआ। २. चंचल। ३. क्षुब्ध।

आलोलित--भू० कृ० [सं० आ√लुल् (चंचल होना)+णिच्+क्त] १. हिलाया हुआ। २. क्षुब्ध।

आल्हा--पुं० [व्यक्ति का नाम] १. महोबे (बुंदेलखंड) के एक प्रसिद्ध वीर योद्धा जो पृथ्वीराज के समकालीन थे और जिनकी वीरता के आख्यान तथा गाथाएँ अब तक बुंदेलखंड तथा उत्तर प्रदेश के वीर छंद में गाई जाती है। २. उक्त आधार पर 'वीर' नामक छंद का एक नाम। ३. किसी घटना या बात का व्यर्थ का लंबा-चौड़ा वर्णन या विस्तार।

आवंतिक--वि० [सं० अवंति+ठक्-इक] अवंती (नगरी) से संबंध रखनेवाला। अवंती का।
पुं० अवंति का निवासी।

आवंत्य--वि० [सं० अवंति+ञ्य]=आवंतिक।
पुं० अवंति का निवासी।

आव--प्रत्य० [हिं० आई (प्रत्य०) या सं० भाव०] एक हिंदी प्रत्यय जो क्रियाओं की धातुओं में लगकर उनमें स्थिति, भाव आदि के अर्थ सूचित करता है। जैसे--चढ़ना से चढ़ाव, बढ़ना से बढ़ाव आदि।
स्त्री० [सं० आयु] आयु। उदा०--तुच्छ आव कवि चंद की, सिर चहु आना भार।--चंदवरदाई।
स्त्री० [सं० आभा] आभा। चमक। उदा०--अति उछाह आनंद भरि, नृप मुख चढ्ढिय आव।--चंदवरदाई।

आवज--पुं० [सं० आवाद्य, पा० आवज्ज] ताशे की तरह का एक पुराना बाजा।

आवझ*--पुं०=आवज।

आवट--प्रत्य० [सं० आवृत्ति] एक स्त्री प्रत्यय जो कुछ धातुओं में उनके भाव-वाचक रूप बनाने के लिए लगाया जाता है। जैसे--बनाना से बनावट, मिलाना से मिलावट।

आवटना†--स० [सं० आवर्त्त; पा० आवट्ट] १. उलटना-पलटना। २. उथल-पुथल मचाना। ३. ऊहापोह या संकल्प-विकल्प करना।
अ०, स०=औटना या औटाना।

आवध--पुं०=आयुध। उदा०--चिंति दिस चहुआन, चढ्यौ हय सज्जि सु आवध।--चंदवरदाई।

आवधिक--वि० [सं० अवधि+ठञ्-इक] १. किसी अवधि या सीमा से संबंध रखनेवाला। २. किसी नियत अवधि में होनेवाला।

आवन*-- पुं० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन] आगमन। आना।
स्त्री०=अवनि।

आरंभिक अंश या प्रकार जिसमें तानयुक्त स्वरों में केवल धुन का प्रदर्शन होता है, गीत के बोलों का उच्चारण नहीं होता।

आलापक—वि० [सं० आ√लप्+ण्वुल्–अक] आलाप या बात-चीत करनेवाला। २. संगीत में स्वरों का आलाप करनेवाला।

आलापचारी—स्त्री० [सं० आलाप-चार] संगीत में, स्वरों का आलाप करने की क्रिया।

अलापन—पुं० [सं० आ√लप्+णिच्+ल्युट्–अन] आलाप करने की क्रिया या भाव।

आलापना—स०=अलापना।

आलापित—भू० कृ० [सं० आ√लप्+णिच्+क्त] १. कहा हुआ। कथित। २. संगीत में, आलाप के रूप में उच्चरित किया हुआ। ३. गाया हुआ।

आलापिनी—स्त्री० [सं० आलाप+इनि–ङीप्] बाँसुरी। वंसी।

आलापी (पिन्)—वि० [सं० आलाप+इनि वा आ√लप्+णिनि] [स्त्री० आलापिनी]=आलापक।

आलारासी—वि० [सं० आलस्य ?] १. आलसी। २. ला-परवाह। स्त्री० ऐसी अव्यवस्थित स्थिति जिसमें कहीं किसी की चिंता या पूछ न हो।

आलावर्त्त—पुं० [सं० आल–आ√वृत् (बरतना)+णिच्+अच्] कपड़े का बना हुआ या कपड़े से मढ़ा हुआ पंखा।

आलिंग—पुं० [सं० आ√लिंग् (चित्रित करना)+घञ्] १. आलिंगन। २. पखावज की तरह का एक प्रकार का बाजा।

आलिंगन—पुं० [सं० आ√लिंग्+ल्युट्–अन] [वि० आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य] प्रेमपूर्वक किसी को गले या छाती से लगाने की क्रिया या भाव। परिरंभण।

आलिंगना— स० [सं० आलिंगन] आलिंगन करना। गले लगाना।

आलिंगित—भू० कृ० [आ√लिंग्+क्त] प्रेमपूर्वक गले या छाती से लगाया हुआ।

आलिंगी (गिन्)—पुं० [सं० आलिंग+इनि] [स्त्री० आलिंगिनी] वह जो किसी को गले या छाती से लगावे। आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य—वि० [सं० आ√लिंग्+ण्यत्] १. गले या छाती से लगाये जाने के योग्य। २. लाक्षणिक अर्थ में स्वीकार किये जाने के योग्य। पु० एक प्रकार का मृदंग।

आलिंद—पु० [सं० अलिंद+अण्]=अलिंद।

आलि—स्त्री० [सं० आ√अल् (पर्याप्ति)+इन्] १. सखी। सहेली। २. विच्छू। ३. भ्रमरी। भौंरी। ४. अवली। पंक्ति। ५. रेखा। लकीर। ६. पानी का बाँध।

आलिखित—भू० कृ० [सं० आ√लिख् (लिखना)+क्त] १. आलेख के रूप में अंकित किया हुआ। अंकित या चित्रित। २. लिखा हुआ। लिखित।

आलिप्त—भू० कृ० [सं० आ√लिप्+क्त] लिपा-पुता या लीपा-पोता हुआ।

आलिम—वि० [अ०] पंडित। विद्वान।

आली—स्त्री० [सं० आलि] सखी। सहेली।
वि० [हिं० आल] आल के रंग का। लाल।
वि० [अ०] १. उच्च। २. मान्य। श्रेष्ठ।
वि० स्त्री० [सं० आर्द्र] गीली। तर। नम।
स्त्री० [देश०] १. भूमि की एक नाप जो एक विस्वे के बराबर होती है। २. खेतों, बगीचों आदि की क्यारी।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे स्थान पर बैठनेवाला। उच्च पदस्थ। (बहुत बड़े और मान्य व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त)

आलीढ़—भू० कृ० [सं० आ√लिह् (स्वाद लेना)+क्त] १. खाया हुआ। भक्षित। २. जीभ से चाटा हुआ।
पु० बाण चलाने के समय की एक प्रकार की मुद्रा।

आलीन—वि० [सं० आ√ली (समाना)+क्त] १. किसी के पास आया हुआ। २. किसी स्थान में रहनेवाला। ३. झुका हुआ।
पुं० संपर्क।

आलीशान—वि० [अ०+फा०] बहुत बड़ा और भव्य। बहुत शानदार।

आलु—पु० [सं० आ√ली+डु] १. आबनूस। २. एक प्रकार का कंद या मूल। ३. उल्लू। ४. नावों का बेड़ा।

आलुक—पुं० [सं० आ√ला (लेना)+डु+कन्] १. आलू नाम का कंद। २. शेषनाग।

आलुझना*—अ०=उलझना।

आलू—पुं० [सं० आ√लू (काटना)+क्विप्] एक प्रसिद्ध छोटा गोल कंद जिसकी तरकारी बनती है। (पोटैटो)
स्त्री० [सं० आलु] झारी या लुटिया नाम का छोटा जल-पात्र।

आलूचा—पुं० [फा० आलूचः] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल खाये जाते हैं। २. उक्त वृक्ष का छोटा, गोल, रसीला फल।

आलूदम—पुं० [हिं० आलू+फा० दम] दम देकर या भाप की सहायता से, कुछ विशिष्ट प्रकार से पकाया हुआ साबूत आलू।

आलूदा—वि० [फा० आलूदः] १. सना हुआ। २. अच्छी तरह सजा हुआ। उदा०—आलूदा ठाकुर अल्ल।—प्रिथीराज।

आलूबालू—पुं० [देश०] आलूचे की जाति का एक पेड़।

आलूबुखारा—पुं० [फा०] सुखाया हुआ आलूचा नामक फल।

आलेख—पुं० [सं० आ√लिख् (लिखना)+घञ्] १. लिखना। २. लिखावट। लिपि। ३. वह जो कुछ लिखा हो। जैसे—चित्र, लेख आदि। ४. तवे के आकार का वह वैज्ञानिक उपकरण जिसमें वक्ता की आवाज भरी होती है, और जिसे ग्रामोफोन में रख कर बजाया जाता है। (रेकार्ड)

आलेखन—पुं० [सं० आ√लिख्+ल्युट्–अन] [वि० आलेखिक, आलिखित; कर्त्ता आलेखक] १. लिखने की क्रिया या भाव। २. चित्र अंकित करना।

आलेखनी—स्त्री० [सं० आलेखन+ङीप्] १. कलम। २. चित्र अंकित करने की कूँची।

आलेख-रूपक—पुं० [ष० त०] आज-कल रेडियो पर होनेवाला ऐसा रूपक जिसमें पहले से तैयार किए हुए आलेखों (रेकार्ड) का अधिक व्यवहार किया जाता है।

आलेख्य—वि० [सं० आ√लिख्+ण्यत्] १. लिखे जाने के योग्य। २. जो लिखा जाने को हो।
पुं० १. वह जो कुछ लिखा गया हो। २. चित्र। तसवीर।

आलेख्य-कर्म (न्)—पुं० [ष० त०] चित्र अंकित करने का काम। चित्रांकन। (पेंटिंग)

आलेख्य विद्या—स्त्री० [ष० त०] चित्रकारी

आलेप--पुं० [सं० आ√लिप् (लीपना)+घञ्]=लेप।

आलेपन--पुं० [सं० आ√लिप्+ल्युट्–अन] लेप लगाने या लेपने की क्रिया या भाव।

आलै*--पुं०=आलय (घर)।

आलैखिक--वि० [सं० आलेख+ठक्–इक] आलेख-संबंधी।
पुं० लिखनेवाला व्यक्ति।

आलोक--पुं० [सं० आ√लोक् (देखना)+घञ्] [वि० आलोक्य; भू० कृ० आलोकित] १. देखना। २. प्रकाश। रोशनी। ३. दर्शन। ४. प्रशंसा। ५. पुस्तक का अध्याय या प्रकरण। ६. किसी विषय पर लिखी हुई टिप्पणी या सूचना। (नोट)

आलोक-चित्रण--पुं० [स० त०] एक वैज्ञानिक प्रक्रिया जिसमें प्रकाश में रखी हुई वस्तु की छाया या प्रतिबिंब इस प्रकार ग्रहण किया जाता है कि उस पर से उसका चित्र छप जाता है। (फोटोग्राफी)

आलोकन--पुं० [सं० आ√लोक्+ल्युट्–अन] [वि० आलोकनीय, भू० कृ० आलोकित] १. अच्छी तरह से देखना। अवलोकन। २. दिखलाना। ३. आलोक या प्रकाश से युक्त करना। ४. चमकाना।

आलोकनीय--वि० [सं० आ√लोक्+अनीयर्] आलोकन किये जाने के योग्य।

आलोक-पत्र--पुं० [सं० ष० त०] वह पत्र या लेख जो किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए स्मारक के रूप में लिखा गया हो। जैसे—किसी सभा, मंडली आदि के उद्देश्यों और व्यवस्था से संबंध रखनेवाला पत्र या पुस्तिका। (मेमोरेन्डम)

आलोकित--भू० कृ० [सं० आ√लोक्+क्त] १. देखा हुआ। २. जो आलोक या प्रकाश से युक्त किया गया हो। ३. चमकता हुआ।

आलोच--पुं० [सं० आ—लुञ्चन] वे दाने जो खेत काटने के समय जमीन पर गिर जाते हैं।। शीला।

आलोचक--पुं० [सं० आ√लोच् (देखना)+णिच्+ण्वुल्–अक] [स्त्री० आलोचिका] १. देखनेवाला। २. गुण-दोष आदि की आलोचना या विवेचन करनेवाला। ३. समीक्षक।

आलोचण*--पुं०=आलोच।

आलोचन--पुं० [सं० आ√लोच्+णिच्+ल्युट्–अन] [वि० आलोच्य; भू० कृ० आलोचित] १. दर्शन करना। देखना। २. किसी चीज के गुण-दोष आदि की जाँच, परख या विवेचन। ३. जैनों के अनुसार, अपने किये हुए पापों का विवेचन और प्रकाशन।

आलोचना--स्त्री० [सं० आ√लोच्+णिच्+युच्–अन–टाप्] [वि० आलोचित] १. किसी कृति या रचना के गुण-दोषों का निरूपण या विवेचन करना। २. इस प्रकार किया हुआ विवेचन।

आलोचनीय--वि० [सं० आ√लोच्+अनीयर्]=आलोच्य।

आलोचित--भू० कृ० [सं० आ√लोच्+क्त] जिसकी आलोचना हुई हो या की गई हो।

आलोच्य--वि०[सं०आ√लोच्+ण्यत्] जिसकी आलोचना की जा सकती हो या की जाने को हो।

आलोज*--पुं० [सं० आलोच] विवेचन। विचार। उदा०—अंतरजामी नूं आलोज।—प्रिथीराज।

आलोड़न--पुं० [सं० आ√लोड् (उन्मत्त होना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० आलोड़ित] १. मथना। बिलोना। २. मन में होनेवाला ऊहापोह या सोच-विचार। ३. क्षोभ।

आलोड़ना*--स० [सं० आलोड़न] १. अच्छी तरह से मथना। २. अच्छी तरह सोचना-विचारना। ऊहा-पोह करना।

आलोड़ित--भू० कृ० [सं० आ√लोड्+क्त] १. मथा या बिलोया हुआ। २. सभी दृष्टियों से अच्छी तरह सोचा हुआ। जिसपर खूब विचार हुआ हो।

आ-लोप--पुं० [सं० आ√लुप् (न दीखना)+घञ्] १. पद, स्थान आदि न रहने देना। लुप्त करना। २. पहले का आदेश या निश्चय रद्द करना।

आ-लोल--वि० [सं० प्रा० स०] १. हिलता-डोलता या लहराता हुआ। २. चंचल। ३. क्षुब्ध।

आलोलित--भू० कृ० [सं० आ√लुल् (चंचल होना)+णिच्+क्त] १. हिलाया हुआ। २. क्षुब्ध।

आल्हा--पुं० [व्यक्ति का नाम] १. महोबे (बुंदेलखंड) के एक प्रसिद्ध वीर योद्धा जो पृथ्वीराज के समकालीन थे और जिनकी वीरता के आख्यान तथा गाथाएँ अब तक बुंदेलखंड तथा उत्तर प्रदेश के वीर छंद में गाई जाती हैं। २. उक्त आधार पर 'वीर' नामक छंद का एक नाम। ३. किसी घटना या बात का व्यर्थ का लंबा-चौड़ा वर्णन या विस्तार।

आवंतिक--वि० [सं० अवंति+ठक्–इक] अवंती (नगरी) से संबंध रखनेवाला। अवंती का।
पुं० अवंति का निवासी।

आवंत्य--वि० [सं० अवंति+ञ्य]=आवंतिक।
पुं० अवंति का निवासी।

आव--प्रत्य० [हिं० आई (प्रत्य०) या सं० भाव०] एक हिंदी प्रत्यय जो क्रियाओं की धातुओं में लगकर उनमें स्थिति, भाव आदि के अर्थ सूचित करता है। जैसे—चढ़ना से चढ़ाव, बढ़ना से बढ़ाव आदि।
स्त्री० [सं० आयु] आयु। उदा०—तुच्छ आव कवि चंद की, सिर चह्नु आना भार।—चंदवरदाई।
स्त्री० [सं० आभा] आभा। चमक। उदा०—अति उछाह आनंद भरि, नृप मुख चढ़िय आव।—चंदवरदाई।

आवज--पुं० [सं० आवाद्य, पा० आवज्ज] ताशे की तरह का एक पुराना बाजा।

आवझ*--पुं०=आवज।

आवट--प्रत्य० [सं० आवृत्ति] एक स्त्री प्रत्यय जो कुछ धातुओं में उनके भाव-वाचक रूप बनाने के लिए लगाया जाता है। जैसे—बनाना से बनावट, मिलाना से मिलावट।

आवटना†--स० [सं० आवर्त्त; पा० आवट्ट] १. उलटना-पलटना। २. उथल-पुथल मचाना। ३. ऊहापोह या संकल्प-विकल्प करना।
अ०, स०=औटना या औटाना।

आवध--पुं०=आयुध। उदा०—चिनि ईस चहुआन, चढ़्यो हय सज्जि नु आवध।—चंदवरदाई।

आवधिक--वि० [सं० अवधि+ठञ्–इक] १. किसी अवधि या सीमा से संबंध रखनेवाला। २. किसी नियत अवधि में होनेवाला।

आवन*-- पुं० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन] आगमन। आना।
स्त्री०=अवनि।

आवनि-जावानी*--स्त्री०=आनी-जानी।

आवनेय--वि० [सं० अवनी+ढक्-एय] १. अवनि-संबंधी। २. अवनि से उत्पन्न होनेवाला।

पुं० मंगल ग्रह जो अवनि (अर्थात् इस पृथ्वी) का पुत्र कहा गया है।

आ-वपन--पुं० [सं० आ√वप् (बोना, काटना)+ल्युट्-अन] १. खेत में बीज बोना। वपन। बोआई। २. वृक्ष आदि रोपना या लगाना। ३. वृक्ष का थाला। ४. सारा सिर मूँड़ा जाना।

आव-भगत--स्त्री० [हिं० आवना=आना+सं० भक्ति] किसी के आने पर किया जानेवाला उसका आदर-सत्कार। खातिर-तवाजा।

आवभाव--पुं०=आव-भगत।

आवरक--वि० [सं० आ√वृ (वरण करना, छिपाना)+अप्+कन्] आवरण खड़ा करने या ढकनेवाला।

पुं० आवरण। परदा।

आवरण--पुं० [सं० आ√वृ+ल्युट्-अन] १. कोई चीज आड़ मे करने या छिपाने के लिए उसके ऊपर रखी या सामने खड़ी की जानेवाली कोई दूसरी चीज। परदा। २. ढकना। ढक्कन। ३. वह कपड़ा जिसमें कोई चीज लपेटी जाय। वेठन। ४. घेरा। ५. आघात या वार रोकनेवाली कोई चीज। जैसे--ढाल।

आवरण-पत्र--पुं० [ष० त०]=आवरण-पृष्ठ।

आवरण-पृष्ठ--पुं० [ष० त०] पुस्तक की जिल्द के ऊपर का कागज जो उसकी रक्षा के लिए लगा रहता है तथा जिस पर उस ग्रंथ तथा उसके ग्रंथकार, प्रकाशक आदि के नाम छपे रहते है। (कवर)

आवरना*--स० [सं० आवरण] १. आवरण से युक्त या आवृत्त करना। ढकना। २. घेरना। ३. छिपाना।

अ० १. आवृत्त होना। घिरना। २. ओट या परदे में होना। छिपना।

आवरा*--वि० [सं० अवर] [स्त्री० आवरी] १ विमुख। २. विपरीत। ३. मलिन। मैला। ४. विकल। व्याकुल। उदा०--घन आनंद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।--घनानद।

†पुं० [सं० आवरण] ओढ़ने की चादर।

आवरित--भू० कृ०=आवृत।

आवरी--स्त्री० [सं० अवर ?] व्याकुलता।

आवर्जक--वि० [सं० आ√वृज (वरण)+ण्वुल्-अक] आवर्जन करनेवाला।

आवर्जन--पुं० [सं० आ√वृज्+ल्युट्-अन] १. अपनी ओर आकृष्ट करना, खीचना या लाना। २. अपने अधिकार या वश मे करना। ३. पराजय। हार।

आवर्जना--स्त्री० [सं० आ√वृज्+णिच+युच्-अन-टाप्] १. आवर्जन। २. पराजय। हार। उदा०--बन आवर्जना मूर्ति दीना, अपनी अतृप्ति-सी संचित हो।--प्रसाद।

आवर्जित--भू० कृ० [सं० आ√वृज्+णिच्+क्त] १. किसी ओर खिंचा हुआ। आकृष्ट। २. किसी के अधिकार या वश में आया हुआ। ३. हारा हुआ। पराजित।

आवर्त--पुं० [सं० आ√वृत् (रहना)+घञ्] १. किसी ओर घूमना या मुड़ना। २. चारों ओर घूमना। चक्कर काटना या लगाना। जैसे--आकाशस्य पिंडों का आवर्त्त काल या आवर्त्त गति। ३. पानी, रोमावली आदि का चक्कर। भँवर। भौंरी। ४. किसी चिंता या विचार का रह-रह कर मन में आना। ५. यह जगत या संसार जिसमें जीवों को बार-बार और रह-रहकर आना पड़ता है। ६. घनी आबादी या बस्ती। ७. ऐसा बादल या मेघ जिससे अधिक पानी बरसे। ८. उक्त आधार पर मेघों के एक राजा का नाम। ९. लाजवर्द नामक रत्न। १०. सोना-माखी।

आवर्तक--वि० [सं० आ√वृत्+ण्वुल्-अक] १. चक्कर खाने या घूमनेवाला। २. जो बार-बार, रह-रहकर किसी निश्चित या अनिश्चित समय पर सामने आता या होता है। समय-समय पर जिसकी आवृत्ति होती रहती हो। (रेकरिंग) जैसे--आवर्त्तक अनुदान (सहायता के रूप मे दिया जानेवाला या मिलनेवाला धन)।

पुं० [आवर्त+कन्]=आवर्त।

आवर्तक-ज्वर--पुं० [सं० कर्म० स०] किलनी, जूँ आदि के काटने से होनेवाला एक प्रकार का विकट ज्वर जिसमें एक सप्ताह तक निरंतर ज्वर रहने के बाद उतर जाता और तब फिर आने लगता है। (रिलैप्सिंग फीवर)

आवर्तन--पुं० [सं० आ√वृत्+ल्युट्-अन] [वि० आवर्तनीय, आवर्तित] १. किसी की ओर या उसके चारों ओर घूमना। २. चक्कर खाना। ३. मंथन। विलोड़न। ४. धातु आदि गलाना। ५. तीसरे पहर का समय जब छाया पश्चिम से पूर्व की ओर मुड़ती है। ६. किसी बात का बार-बार होना। (रिपीटीशन)। ७. रोगी के कुछ अच्छे होने पर उसे फिर से वही रोग होना। (रिलैप्स)

आवर्तनीय--वि० [सं० आ√वृत्+णिच्+अनीयर्] जिसका आवर्तन होता हो या हो सकता हो।

आवर्त-विंदु--पुं० [सं० ष० त०] वह विंदु या स्थान जहाँ से किसी वस्तु की गति किसी ओर घूमती या मुड़ती हो। इधर-उधर मुड़ने या पीछे लौटने की जगह या विंदु। (टर्निंग प्वाइंट)

आवर्तित--भू० कृ० [सं० आ√वृत्+णिच्+क्त] १. आवर्तन के रूप में आया हुआ। २. घूमा या मुड़ा हुआ।

आवर्ती (र्तिन्)--पुं० [सं० आ√वृत्+णिनि] १. वह जो चारों ओर घूमता या चक्कर खाता हो। २. वह घोड़ा जिसके शरीर पर भौंरियाँ हों।

आवर्धन--पुं० [सं० आ√वृध् (बढ़ना)+णिच्+ल्युट्-अन] किसी पदार्थ का आकार, मान, शक्ति आदि बढ़ाने की क्रिया या भाव। (ऑग्मेन्टेशन)

आवलि--स्त्री० [सं० आ√वल् (संचरित होना)+इन्] पंक्ति। कतार। श्रेणी।

आवलित--भू० कृ० [सं० आ√वल्+क्त] बल खाया या मुड़ा हुआ।

आवली--स्त्री० [सं० आवलि+ङीष्] पंक्ति। कतार।

स्त्री० [?] एक प्रकार की कूत जिसमें बिस्वे की उपज का अंदाजा लगाया जाता है।

आवश्य--पुं० [सं० अवश्य+अण्]=आवश्यकता।

आवश्यक--वि० [सं० अवश्य+वुञ्-अक] १. जिसके बिना काम न चल सकता हो। जरूरी। जैसे--प्राणी मात्र के लिए भोजन आवश्यक है। २. जिसके बिना साधारणतः काम न चलता हो। प्रयोजनीय। जैसे--विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिए सुयोग्य गुरु का होना आवश्यक है। ३. जिसके संबंध में तुरंत और निश्चित रूप से कोई कार्रवाई होती हो या

होने को हो। जरूरी। जैसे—सरकार के लिए इस विषय में कुछ निर्णय करना आवश्यक हो गया है। (नेसेसरी, उक्त सभी अर्थों में)

आवश्यकता—स्त्री० [सं० आवश्यक+तल्—टाप्] १. आवश्यक होने की अवस्था या भाव। २. ऐसी स्थिति जिसमें विवश होकर कुछ करना पड़े अथवा किसी चीज या बात के बिना काम चल ही न सकता हो। जरूरत। (नेसेसिटी)

आवश्यकीय—वि० [सं० अवश्य+छण्—ईय, कुक्] जिसकी आवश्यकता पड़े। जिसके बिना प्रयोजन सिद्ध न हो। आवश्यक।

आवस[२]—स्त्री० दे० 'ओस'।

आवसति—स्त्री० [सं० प्रा० स०] १. रात के समय विश्राम करने का स्थान। बसेरा। २. रात्रि। रात।

आवसथ—पुं० [सं० आ√वस् (बसना)+अथच्] १. रहने की जगह। निवास-स्थान। २. आबादी। बस्ती।

आवसथ्य—वि० [सं० अवसथ+ञ्य] घर का। गृह-संबंधी।
स्त्री० भोजन पकाने आदि के काम आनेवाली अग्नि जो पंचाग्नियों में से एक है। लौकिकाग्नि।

आवसानिक—वि० [सं० अवसान+ठक्—इक] १. अवसान से संबंध रखने या अंत में होनेवाला। २. जो किसी रेखा, विस्तार आदि के अंत में पड़कर उसकी समाप्ति सूचित करता हो। (टर्मिनल)

आवसानिक-कर—पुं० [सं० कर्म० स०] वह कर जो किसी यात्रा की समाप्ति के स्थान पर वहाँ पहुँचनेवालों से लिया जाता है। (टर्मिनलटैक्स)

आवस्थिक—वि० [सं० अवस्था+ठञ्—इक] किसी अवस्था या स्थिति के अनुकूल या अनुरूप।

आवह—वि० [सं० आ√वह् (ढोना, बहना)+अच्] १. वहन करने या लानेवाला। २. उत्पन्न या आविर्भाव करनेवाला। जैसे—भयावह।
पुं० भारतीय ज्योतिष में पृथ्वी से बारह योजन ऊपर बहनेवाली वह हवा या वायु जिसमें बिजली चमकती है और जिसमें से ओले गिरते हैं।

आवहन—पुं० [सं० आ√वह्+ल्युट्—अन] (उठा या ढोकर अथवा और किसी प्रकार) निकट या पास लाना।

आवाँ—पुं० =आँवाँ।

आवागमन—पुं० [सं० आ-आ√गम् (जाना)+ल्युट्—अन, अवागमन+अण्] १. आना और जाना। २. बार-बार इस संसार में आने (जन्म लेने) और जाने (मरने) का चक्र।
मुहा०—आवागमन छूटना=जीवन और मरण के बंधन से मुक्त होना।

आवागवन—पुं० =आवागमन।

आवागौन—पुं० =आवागमन।

आवाज—स्त्री० [फा० आवाज, मिलाओ; सं० आवच; पा० आवज्ज] ३. किसी को बुलाने के लिए जोर से उच्चरित किया जानेवाला शब्द।
मुहा०—आवाज देना या लगाना=बहुत जोर से किसी का नाम लेकर उसे पुकारना।
४. फकीरों या सौदा बेचनेवालों की कुछ जोर से लगनेवाली पुकार।

आवाजा—पुं० [फा० आवाज़:] जोर से कही जानेवाली वह व्यंग्यपूर्ण बात जो परोक्ष रूप से किसी को सुनाने के लिए कही जाय।
मुहा०—आवाजा कसना या छोड़ना=व्यंग्यपूर्ण बात कहना।

आवाजा-कशी—स्त्री० [अ०+फा०] परोक्ष रूप से किसी को सुनाने के लिए जोर से कोई व्यंग्यपूर्ण बात कहना।

आवा-जानी—स्त्री० =आवागमन।

आवाजाही—स्त्री० [हिं० आना+जाना] बार-बार किसी जगह आना और वहाँ से चले जाना। जैसे—यहाँ तो दिन भर आवाजाही लगी रहती है।

आवाप—पुं० [सं० आ√वप् (बोना)+घञ्] १. चारों ओर छितराना या बिखेरना। २. बीज बोना। ३. वृक्ष का थाला। थावला। ४. हाथ में पहनने का कंकण। कंगन।

आवापन—पुं० [सं० आ√वप्+णिच्+ल्युट्—अन] १. छितराने, बिखेरने, बोने आदि की क्रिया। २. करघा।

आवाय—पुं० [सं० आ√वे (बुनना)+घञ्] सेना का वह अंश जो व्यूह-रचना के बाद बच रहा हो।

आवार—पुं० [सं० आ√वृ (रोकना)+अण्] १. रक्षा। बचाव। २. रक्षा का स्थान। शरण।

आवारगी—स्त्री० [फा०] आवारा होने की अवस्था या भाव।

आवारजा—पुं० [फा०] जमा-खर्च लिखने की बही। अवारजा।

आवारा—वि० [फा०] १. (व्यक्ति) जो इधर-उधर बिना मतलब घूमता-फिरता हो तथा जिसका जीवन अनिश्चित और आचरण अवांछनीय हो। २. जिसके रहने आदि का कोई ठौर-ठिकाना न हो। ३. दुष्ट, पाजी या लुच्चा।

आवारागर्द—वि० [फा०] [भाव० आवारागर्दी] व्यर्थ इधर-उधर घूमनेवाला।

आवाल—पुं० [सं० आ√वल् (छिपाना)+णिच्+अच्] वृक्ष का थाला।

आवास—पुं० [सं० आ√वस् (बसना)+घञ्; गुज० आवास; सिंह० अहस्, अवा; मरा० आवस] [वि० आवासिक] १. निवास-स्थान। रहने की जगह। (एबोड) २. वहाँ ठहरने या रहने का अस्थायी स्थान।

आवासन—पुं० [सं० आवास+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० आवासित] किसी दूसरे देश में जाकर स्थायी रूप से बसने की अवस्था, क्रिया या भाव। (इमिग्रेशन)

आवाहना*—स० [सं० आवाहन] आवाहन करना। बुलाना। उदा०—सुय सुखमा मुख-लहन-काज औरनि आवाहत।—रत्नाकर।

आविक—वि० [सं० अवि+ठक्—इक] १. भेड़-संबंधी। २. ऊनी।
पुं० ऊनी वस्त्र।

आविद्ध—भू० कृ० [सं० आ√व्यध् (वेधना)+क्त] १. भेदा या छेदा हुआ। जैसे—आविद्ध कर्ण। २. फेंका हुआ।

आविर्भाव—पु० [स० आविस्√भू (होना)+घञ्] [भू० कृ० आविर्भूत] १. अस्तित्व मे आकर प्रकट या प्रत्यक्ष होना। उत्पन्न होकर सामने आना या उपस्थित होना। जैसे—संसार में अवतार का या मन मे विचार का आविर्भाव होना। २. प्रकट होना।

आविर्भूत—भू० कृ० [स० आविस्√भू+क्त] [स्त्री० आविर्भूता] १. जिसका आविर्भाव हुआ हो। उत्पन्न। २. सामने आया हुआ। उपस्थित।

आविर्हित—भू० कृ० [सं० आविस्√धा (धारण करना)+क्त] १. प्रत्यक्ष किया हुआ। २. सामने आया हुआ।

आविल—वि० [स० आ√विल् (फैलाना)+क] गँदला। मलिन। उदा०—दुख मे आविल, सुख से पंकिल।—महादेवी।

आविष्करण—पु० [सं० आविस्√कृ (करना)+ल्युट्—अन] आविष्कार करना।

आविष्कर्त्ता—पुं० [सं० आविस्√कृ+तृच्] वह जो आविष्कार करे। (इन्वेंटर)

आविष्कार—पु० [सं० आविस्√कृ+अण्] [वि० आविष्कारक, आविष्कर्त्ता, आविष्कृत] १. प्राकट्य। प्रकाश। २. ऐसी नई चीज बनाना या नई बात निकालना जिसका ढंग या प्रकार पहले किसी को मालूम न रहा हो। नई तरह की चीज पहले-पहल निकालना। (इन्वेंशन) जैसे—भाप के इंजन या बिजली के पंखे का आविष्कार।

आविष्कारक—वि० [सं० आविस्√कृ+ण्वुल्—अक] आविष्कार करने वाला। आविष्कर्त्ता। (इन्वेंटर)

आविष्कृत—भू० कृ० [स० आविस्√कृ+क्त] जिसका आविष्करण या आविष्कार हुआ हो।

आविष्ट—भू० कृ० [सं० आ√विष् (फैलना)+क्त] १. किसी प्रकार के आवेश या सचार आदि से युक्त। जैसे—क्रोध या भूत के उपद्रव से आविष्ट। २. किसी उद्योग या काम में लगा हुआ। लीन। ३. ढका हुआ। आच्छादित।

आवृत—भू० कृ० [सं० आ√वृ (आच्छादन करना)+क्त] [स्त्री० आवृता] १. ढका हुआ। आच्छादित। २. घिरा या घेरा हुआ।

आवृत्ति—स्त्री० [स० आ√वृत् (बरतना)+क्तिन्] १. बार-बार होने की क्रिया या भाव। २. पुस्तक आदि का हर बार छपना। संस्करण। (एडिशन)

आवृत्ति-दीपक—पु० [तृ० त०] दीपक अलंकार का एक भेद।

आवृत्तिवाद—पु० [प० त०] आधुनिक समाज शास्त्र का यह मत या सिद्धांत कि कला, दर्शन, साहित्य आदि के क्षेत्रों में प्रतिभाशाली पुरुषों की कुछ विशिष्ट अवसरों पर अथवा कालक्रम से रह-रह कर आवृत्ति या आगमन होता रहता है।

आवेग—पु० [सं० आ√विज् (विचलित होना)+घञ्] १. मानसिक उत्तेजना या चित्त के क्षोभ के फलस्वरूप होनेवाली आकुलता या उत्कट भावना। जोश। २. सहसा मन में उत्पन्न होनेवाला वह विकार जो मनुष्य को बिना सोचे-समझे कुछ कर डालने में प्रवृत्त करता है। (इम्पल्स) ३. साहित्य में, मन की वह चंचल स्थिति जो अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट व्यक्ति अथवा घटना के सामने आकर उपस्थित होती है और जिसकी गिनती संचारी भावों में की गई है।

आवेदक—वि० [सं० आ√विद् (जानना)+णिच्+ण्वुल्—अक] आवेदन या प्रार्थना करनेवाला।

आवेदन—पु० [सं० आ√विद्+णिच्+ल्युट्—अन] [कर्त्ता आवेदक, आवेदी; वि० आवेदनीय, आवेद्य; भू० कृ० आवेदित] १. नम्रतापूर्वक किसी को कोई सूचना देना या कोई बात बतलाना। २. निवेदन। प्रार्थना।

आवेदन-पत्र—पुं० [सं० प० त०] १. किसी बड़े की सेवा में भेजा जानेवाला वह पत्र जिसमें अपनी कोई बात या प्रार्थना लिखकर सूचित की गई हो। २. प्रार्थना-पत्र। अरजी। (एप्लिकेशन)

आवेदनीय—वि० [सं० आ√विद्+णिच्+अनीयर्] (बात या सूचना) जो आवेदन के रूप में उपस्थित की जाने को हो अथवा जिससे किसी को परिचित कराना आवश्यक हो।

आवेदित—भू० कृ० [सं० आ√विद् णिच्+क्त] जो आवेदन के रूप में किसी के सामने उपस्थित किया गया हो।

आवेदी(दिन्)—पु०[सं०आ√विद्+णिच्+णिनि] वह जो आवेदन करे।

आवेद्य—वि० [सं० आ√विश्+णिच्+यत्]=आवेदनीय।

आवेश—पुं० [सं० आ√विश् (घुसना)+घञ्] [भू० कृ० आविष्ट] १. पैठ। प्रवेश। २. व्याप्ति। संचार। ३. मन में कोई उग्र मनोविकार उत्पन्न होने पर उसके फलस्वरूप होनेवाली वह स्थिति जिसमें मनुष्य बिना आगा-पीछा सोचे कुछ कर या कह चलता है। जोश। झोंक। ४. भूत-प्रेत आदि की बाधा जिसमें मनुष्य सुध-बुध भूलकर अंड-बंड बातें बकने और उलटे-सीधे काम करने लगता है। ५. मिरगी नामक रोग।

आवेशन—पुं० [सं० आ√विश्+ल्युट्—अन] १. प्रविष्ट होना। घुसना या पैठना। २. आवेश में आना या होना। ३. पकड़ना। ४. बैठने या रहने का स्थान। ५. सूर्य या चंद्रमा का परिवेश अथवा मंडल। ६. शिल्पशाला।

आवेशिक—वि० [सं० आवेश+ठञ्—इक] १. आवेश-संबंधी। २. अंदर छिपा या दबा हुआ। ३. असाधारण।
पु० १. अतिथि। अभ्यागत। २. आतिथ्य।

आवेष्टक—वि० [सं० आ√वेष्ट् (घेरना)+णिच्+ण्वुल्—अक] चारों ओर से घेरनेवाला।
पुं० १. घेरा। २. चार-दीवारी। परकोटा। ३. चिड़ियाँ, मछलियाँ आदि फँसाने का जाल।

आवेष्टन—पु० [सं० आ√वेष्ट्+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० आवेष्टित] १. चारों ओर से घेरने की क्रिया या भाव। २. चारों ओर से छिपाने, ढकने या लपेटनेवाली वस्तु।

आवेष्टित—भू० कृ० [सं० आ√वेष्ट्+णिच्+क्त] जिसका आवेष्टन हुआ हो। चारों ओर से घिरा या ढका हुआ।

आवेस्ता—स्त्री०=अवेस्ता (भाषा)।

आशंकनीय—वि० [सं० आ√शंक् (संदेह करना)+अनीयर्] जिसके संबंध में आशंका हो या की जा सकती हो।

आशंका--स्त्री० [सं० आ√शंक्+अ-टाप्] [वि० आशंकित] १. भय। डर। शंका। संदेह। २. वह चितापूर्ण मानसिक स्थिति जो वास्तविक या कल्पित अनिष्ट की संभावना होने पर उत्पन्न होती है और जिसमें मनुष्य भयभीत तथा विकल हो जाता है। खटका। खुटका। (एप्रिहेन्शन) जैसे--महामारी या युद्ध की आशंका।

आशंकित--भू० कृ० [सं० आ√शंक्+क्त] १. (व्यक्ति) जिसे किसी प्रकार की आशंका हुई हो। २. (विषय) जिसके संबंध में आशंका हुई हो। जैसे--आशंकित युद्ध पास आता हुआ दिखाई देता है।

आशंकी (किन्)--पुं० [सं० आ√शंक्+णिनि] १. वह जिसे किसी प्रकार की आशंका हो। २. वह जिसे आशंका करने का अभ्यास सा हो।

आशंसन--पुं० [सं० आ√शंस् (स्तुति)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आशंसित] १. इच्छा या कामना करना। २. कहना, बतलाना या घोषित करना। ३. तारीफ या प्रशंसा करना।

आशंसा--स्त्री० [सं० आ√शंस्+अ-टाप्] १. किसी चीज या बात की अपेक्षा या आवश्यकता। २. इच्छा। कामना। ३. आशा, विशेषतः ऐसी आशा जिसकी पूर्ति आवश्यकता, औचित्य आदि के विचार से बहुत-कुछ संभावित हो या जो जल्दी पूरी होती हुई जान पड़े। (एक्सपेक्टेशन) ४. उल्लेख, कथन या चर्चा। ५. संदेह। शक। ६. तारीफ। प्रशंसा। ७. आदर-सत्कार। अभ्यर्थन।

आशंसित--भू० कृ० [सं० आ√शंस्+क्त] १. जो अपेक्षित या अभिलषित हो। २. कहा या बतलाया हुआ। ३. जिसकी प्रशंसा या बड़ाई की गई हो।

आशंसी (सिन्)--वि० [सं० आ√शंस्+णिनि] १. इच्छा करनेवाला। २. घोषणा करनेवाला। ३. प्रशंसा करनेवाला।

आशंसु--वि० [सं० आ√शंस्+उ]=आशंसी।

आश--पुं० [सं०√अश् (खाना)+घञ्] आहार। भोजन। जैसे--प्रातराश=प्रातःकाल का भोजन।

*स्त्री०=आशा।

आशक--वि० [सं०√अश्+ण्वुल्-अक] १. खानेवाला। २. भोगनेवाला। भोक्ता।

पुं०=आशिक।

आशन--वि० [सं०√अश्+णिच्+ल्यु-अन] खिलानेवाला।

पुं० १. अशन नामक वृक्ष। २. वज्र।

आशना--वि० [फा०] [भाव० आशनाई] १. जिससे जान-पहचान या हो। २. जिससे परिचय प्रेम या प्रीति हो। ३. (पुरुष या स्त्री) जिससे अनुचित या अवैध प्रेम-संबंध हो।

आशय--पुं० [सं० आ√शी (शयन करना)+घञ्] १. ठहरने, रहने आदि का स्थान। २. शरीर के अंदर थैली के आकार का कोई ऐसा अंग या अवकाश जिसमें कोई विशिष्ट क्रिया करनेवाला तत्त्व या शक्ति रहती हो। (रिसैप्टेकल्) जैसे--आमाशय, गर्भाशय, पित्ताशय, मूत्राशय आदि। ३. मन। हृदय। ४. मन में रहनेवाला वह उद्देश्य,भाव या विचार जो कोई काम करने या बात कहने के लिए प्रवृत्त करता है। (इन्टेन्शन) जैसे--मैंने उसे मार डालने के आशय से उस पर प्रहार नहीं किया था। ५. उक्ति, कथन आदि से निकलनेवाला अर्थ या उसका सारांश। मतलब। जैसे--उनके अँगरेजी भाषण का आशय सब लोगों को सरल हिंदी में समझा दिया गया था। ६. धन-संपत्ति। वैभव। ७. अच्छा भाग्य। सौभाग्य। ८. कामना या वासना।

आशर--पुं० [सं० आ√शॄ (हिंसा)+अच्] १. राक्षस। २. अग्नि। ३. वायु। हवा।

आशव--पुं० [सं० आशु+अण्] १. 'आशु' का भाव। तेजी। वेग। २. दे० 'आसव'।

आशा--स्त्री० [सं० आ√अश् (व्याप्ति)+अच्-टाप्] १. किसी भावी अभीष्ट या प्रिय कार्य या बात के संबंध में मन में उत्पन्न होनेवाला वह भाव कि यह जल्दी ही पूरी हो जायगी या हो जानी चाहिए। उम्मेद। (होप) जैसे--आशा है कि अब आप जल्दी अच्छे हो जायँगे।

मुहा०--**आशा टूटना**=आशा न रह जाना। **आशा देना**=यह विश्वास कराना कि अमुक अभीष्ट, उद्देश्य या कार्य सिद्ध हो जायगा। **आशा पूरी होना**=आशा के अनुसार काम पूरा होना। **आशा बँधना**=आशा पूरी होने के कुछ लक्षण दिखाई देना या संभावना होना।

२. दिशा। ३. दक्ष की एक कन्या। ४. संगीत में एक प्रकार की रागिनी।

आशा-गज--पुं० [ष० त०] दिग्गज।

आशा-जनक--वि० [ष० त०] (ऐसे कार्य, बात या लक्षण) जिनसे किसी काम के पूरे हो जाने की आशा की जा सकती हो।

आशाढ़--पुं० =आषाढ़।

आशातीत--वि० [आशा-अतीत, द्वि० त०] आशा से अधिक या बढ़कर। बहुत अधिक।

आशापाल--पुं० [सं०आशा√पाल् (पालनकरना)+णिच्+अण्] दिक्पाल।

आशा-मुखी--वि० [सं० आशा-मुख] किसी आशा से किसी की ओर देखनेवाला।

आशा-वाद--पुं० [ष० त०] [वि० आशावादी] वह लौकिक सिद्धांत जिसमें यह माना जाता है कि इस संसार में अंत में सब दोषों और बुराइयों का नाश होगा और उनपर सद्गुणों और सद्भावों को विजय प्राप्त होगी। निराशावाद का विपर्याय। (अप्टिमिज़म)

आशावादिता--स्त्री० [सं० आशावादिन्+तल्-टाप्] १. आशावादी होने की अवस्था या भाव। २. दे० 'आशावाद'।

आशावादी (दिन्)--वि० [सं० आशावाद+इनि] १. आशावाद संबंधी। २. सदा अच्छी बातों की आशा करनेवाला। (ऑप्टिमिस्ट)

पुं० वह जो आशावाद का अनुयायी और माननेवाला हो। (अप्टिमिस्ट)

आशिंजन--पुं० [सं० आ√शिञ्ज् (अव्यक्त शब्द करना)+ल्युट्-अन] गहनों की झंकार।

आशिंजित--भू० कृ० [सं० आ√शिञ्ज्+क्त] झनकार करता हुआ (गहना)।

आशिक--वि० [अ० आशिक़, मि० सं० आसक्त] [भाव० आशिकी] १. इश्क या प्रेम करनेवाला। २. किसी के प्रेम मे पगा हुआ। अनुरक्त। आसक्त। ३. काम-वासना के वश में होकर किसी की ओर प्रवृत्त होनेवाला।

पुं० प्रेमी।

आशित--वि० [सं० आ√अश् (खाना)+क्त] १. (पदार्थ) जो खाया गया हो। २. (व्यक्ति) जो भोजन कर चुका हो। ३. बहुत खाने की इच्छा रखनेवाला। पेटू।

पुं० भोजन करना। खाना।

आशिमा (मन्)--स्त्री० [सं० आशु+इमनिच्] तीव्रता। तेजी

आशियाना--पुं० [फा० आश्यानः] १. चिड़ियों का घोंसला। नीड़। २. लाक्षणिक अर्थ में, रहने का स्थान।

आशिष् (श्)--स्त्री० [सं० आ√शास् (इच्छा)+क्विप्, इत्व] १. आशीर्वाद। असीस। २. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें किसी प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त करने की कामना का उल्लेख होता है।

आशिषाक्षेप--पुं० [सं० आशिश्-आक्षेप, प० त०] आचार्य केशव के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें दूसरे का हित दिखलाते हुए ऐसी बातों की शिक्षा दी जाय जिससे वास्तव में अपने ही दुःख की निवृत्ति हो।

आशी (शिन्)--वि० [सं० आश+इनि] [स्त्री० आशिनी] खानेवाला। भक्षक।

स्त्री० [सं० आ√शृ (हिंसा)+क्विप्, पृषो० सिद्धि] १. साँप का विषैला दाँत। २. वृद्धि नाम की ओषधि।

पुं०=आशीर्वाद। उदा०--मुझ अंचलवासी को तुमने शैशव में आशी दी तुमने।--पंत।

आशीर्वचन--पुं० [सं० आशिश्-वचन, प० त०] किसी के कल्याण की कामना करते हुए कहे जानेवाले शुभवचन। आशीर्वाद।

आशीर्वाद--पुं० [सं० आशिश्-वाद, प० त०] किसी की मंगल-कामना के लिए बड़ों की ओर से कहे हुए शुभ-वचन।

आशी-विष--पुं० [सं० ब० स०] सर्प। साँप।

आशीष--पुं० दे० 'आशिष्'।

आशु--पुं० [सं०√अश् (व्याप्ति)+उण्] १. सावन-भादों में होनेवाला एक प्रकार का धान। आउस। पाटल। साठी। २. घोड़ा।

अव्य० जल्दी। शीघ्र।

आशु-कवि--पुं० [मध्य० स०] तुरंत कविता बनाने में समर्थ कवि। वह कवि जो किसी दिए हुए विषय पर अथवा किसी विशेष स्थिति में तत्काल कविता की रचना करता हो।

आशुग--वि० [सं० आशु√गम् (जाना)+ड] १. बहुत तेज चलनेवाला। शीघ्रगामी। २. (पत्र, तार आदि) जो पानेवाले के पास बहुत जल्दी पहुँचाया जाने को हो। (एक्सप्रेस)

पुं० १. वायु। हवा। २. तीर। बाण।

आशुगामी (मिन्)--वि० [सं० आशु√गम्+णिनि] तेज चलनेवाला।

पु० सूर्य।

आशु-तोष--वि० [ब० स०] बहुत जल्दी या सहज में प्रसन्न हो जानेवाला।

पु० शिव।

आशु-पत्र--पुं० [मध्य० स०] वह पत्र जो भेजे जानेवाले (प्रेषिती) को बहुत जल्दी पहुँचाया जाय। (एक्सप्रेस लेटर)

आश्चर्य--पुं० [स० आ√चर् (गति)+यत्, सुट्] [वि० आश्चर्यित] मन का वह कुतूहलपूर्ण भाव या स्थिति जो कोई अद्भुत, अप्रत्याशित, असाधारण या विलक्षण बात या वस्तु सहसा देखने अथवा ऐसी घटना घटित होने पर इसलिए होती है कि उसका कारण, रहस्य या स्वरूप समझ मे नही आता। अचरज। अचंभा। ताज्जुब। विस्मय। (सर्प्राइज)

विशेष--हमारे यहाँ साहित्य में यह नौ स्थायी भावों में से एक माना गया है।

आश्चर्यित--वि० [सं० आश्चर्य+णिच्+क्त] जिसे आश्चर्य हुआ हो। चकित।

आश्ना--वि०=आशना।

आश्नाई--स्त्री०=आशनाई।

आश्म--वि० [सं० अश्मन्+अण्] १. अश्म (पत्थर) संबंधी। पत्थर का। २. पत्थर का या पत्थर से बना हुआ।

आश्मन--वि० [सं० अश्मन्+अण्]=आश्म।

पुं० सूर्य का सारथि अर्थात् अरुण।

आश्मरिक--वि० [सं० अश्मरी+ठञ्-इक] १. अश्मरी संबंधी। २. जिसे अश्मरी या पथरी का रोग हो।

पुं० पथरी नामक रोग।

आश्मिक--वि० [सं० अश्मन्+ठण्-इक] १. पत्थर संबंधी। पत्थर का। २. पत्थरों से युक्त। पथरीला। ३. पत्थर ढोनेवाला। ४. पत्थर से बना हुआ।

आश्रम--पुं० [सं० आ√श्रम् (तपस्या करना)+घञ्] [वि० आश्रमी] १. प्राचीन भारत में, वनों में वह स्थान जहाँ ऋषि-मुनि कुटी बनाकर रहते और तपस्या करते थे। *जैसे--कण्व ऋषि या भरद्वाज मुनि का आश्रम।* २. आज-कल साधु-संन्यासियों, त्यागियों, विरक्तों, धार्मिक यात्रियों के रहने का कोई ऐसा विशिष्ट स्थान या भवन, जिसमें लोग सांसारिक झंझटों से बचकर शांति-पूर्वक रह सकते हों। (एसाइलम) जैसे--श्री अरविंद आश्रम अथवा अनाथाश्रम, विधवाश्रम आदि। ३. स्मृतियों आदि में बतलाई हुई जीवन-यापन की वह व्यवस्था, जिसमें सौ वर्षों की पूरी आयु चार समान भागों में बाँटकर प्रत्येक के अलग-अलग कर्त्तव्य-कर्म और विधान बतलाये गये हैं। यथा--ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। ४. विष्णु का एक नाम।

आश्रम-धर्म--पुं० [प० त०] स्मृतियों में बतलाये हुए चारों आश्रमों (दे० 'आश्रम') में से प्रत्येक के लिए निश्चित अलग-अलग कर्त्तव्य कर्म।

आश्रमवासी (सिन्)--वि० [सं० आश्रम√वस (बसना)+णिनि] आश्रम में रहनेवाला।

पुं० वानप्रस्थ।

आश्रमिक--वि० [सं० आश्रम+ठन्-इक] १. आश्रम संबंधी। आश्रम का। २. आश्रम में रहनेवाला। ३. आश्रम धर्म का पालन करनेवाला।

आश्रमी (मिन्)--वि० [सं० आश्रम+इनि] १. आश्रम संबंधी। आश्रम का। २. किसी आश्रम (देखें) में रहनेवाला या उससे युक्त। जैसे--संन्यासाश्रमी।

आश्रय--पुं० [सं० आ√श्रि (सेवा करना)+अच्] [वि० आश्रयी] १. वह जिस पर कुछ टिका या ठहरा हो। आधार। २. वह जिसका सहारा लेकर या जिसके आसरे पर रहा जाय। अवलंब। सहारा। ३. ऐसा पदार्थ या व्यक्ति जो किसी को निश्चित, शांत और सुखी रखकर उसके अस्तित्व या निर्वाह में सहायक हो सके; अथवा जिसकी शरण में रहने पर संकटों आदि से रक्षा हो सके। शरण देनेवाला तत्त्व या स्थान। (शेल्टर) जैसे--(क) सब प्रकार के तापों से बचने के लिए ईश्वर का आश्रय लेना। (ख) किसी समय अमेरिका में सब प्रकार के राजनीतिक पीड़ितों को आश्रय मिलता था। ४. कोई ऐसा पदार्थ या व्यक्ति जिसमें किसी प्रकार के गुण या विशिष्टता का निवास हो या जिसके आधार पर वह गुण या विशेषता ठहरी हो। जैसे--साहित्य में

यदि नायक के मन में उत्पन्न होनेवाले प्रेम का वर्णन हो तो नायक उस प्रेम का आश्रय माना जायगा। (जिसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, उसे साहित्य में 'आलंवन' कहते हैं) ५. उक्त आधार पर बौद्ध दर्शन में पाँचों ज्ञानेंद्रियों और मन; जिनमें सुख-दुःख अथवा उनके आलंवनों आदि की अनुभूति, ज्ञान या परिचय होता है। ६. व्याकरण में, 'उद्देश्य' नामक तत्त्व जिसके संवंध में कुछ विधान किया जाता है अथवा जिसके आधार पर 'विधेय' स्थित रहता है। ७. ठहरने, रहने आदि का कोई सुरक्षित स्थान। ८. घर। मकान। ९. जड़। मूल। १०. लगाव। संपर्क। ११. वहाना। मिस। १२. निकटता। समीपता।

आश्रयण--पुं० [सं० आ√श्रि+ल्युट्-अन] किसी का आश्रय लेने या किसी को आश्रय देने की क्रिया या भाव। सहारा देना या लेना।

आश्रयासिद्ध--वि० [सं० आश्रय-असिद्ध व० स०] (कथन या तर्क) जिसका आश्रय या आधार असिद्ध अर्थात् गलत हो। फलतः मिथ्या और अमान्य।

आश्रयासिद्धि--स्त्री० [सं० आश्रय-असिद्धि, प० त०] न्यायशास्त्र में किसी वात के आश्रयासिद्ध होने की अवस्था या भाव। (इसकी गणना हेत्वाभास में हुई है।)

आश्रयी (यिन्)--वि० [सं० आ√श्रि+इनि] १. किसी का आश्रय या सहारा लेनेवाला। २. आश्रय में रहनेवाला।

आश्रव--पुं० [सं० आ√श्रु (सुनना, जाना)+अप्] १. किसी की कोई वात सुनकर उसके अनुसार काम करना। किसी के कहने पर चलना। २. अंगीकार या ग्रहण करना। ३. नदी की धारा या वहाव। ४. अपराध। दोष। ५. कष्ट। क्लेश। ६. जैन और बौद्ध दर्शनों में, कोई ऐसी वात जो जीव के वंधन का कारण हो अथवा उसके मोक्ष में वाधक हो। जैसे—जैनों में पापाश्रव और पुण्याश्रव अथवा वौद्धों में अविद्याश्रव, कायाश्रव आदि।

आश्रित--वि० [सं० आ√श्रि+क्त] १. किसी के सहारे टिका, ठहरा या रुका हुआ। २. किसी की देख-रेख या शरण में रहकर अपना निर्वाह या रक्षा करनेवाला। ३. अपने भरण-पोषण आदि के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के भरोसे रहनेवाला।

पुं० १. न्याय-दर्शन में अनित्य द्रव्यों की वह अवस्था जिसमें वे किसी न किसी रूप में एक दूसरे का आश्रय लेकर रहते और एक दूसरे के सहारे अपना काम करते हैं। २. दास। गुलाम। ३. नौकर। सेवक। ४. आज-कल वह व्यक्ति जो अपनी किसी शारीरिक असमर्थता, हीनता आदि के कारण किसी दूसरे की देख-रेख में रहता हो। (वार्ड) जैसे—आजकल उनके पास दो वालक (अथवा चार विधवाएँ) आश्रित हैं।

आश्रुत--भू० कृ० [सं० आ√श्रु+क्त] १. सुना हुआ। २. ग्रहण या स्वीकार किया हुआ। गृहीत या स्वीकृत। ३. जिसे या जिसके संवंध में कोई प्रतिज्ञा की गई हो या वचन दिया गया हो।

आश्रुति--स्त्री० [सं० आ√श्रु+क्तिन्] १. सुनने की क्रिया या भाव। २. ग्रहण या स्वीकार करना। ३. प्रतिज्ञा करना या वचन देना।

आश्लिष्ट--भू० कृ० [सं० आ√श्लिष् (आलिंगन करना)+क्त] १. गले से लगा या लगाया हुआ। २. लिपटा या सटा हुआ। साथ लगा हुआ।

आश्लेष--पुं० [सं० आ√श्लिष्+घञ्] १. गले लगाना। आलिंगन। २. लगाव। संपर्क।

आश्लेषण--पुं० [सं० आ√श्लिष्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० आश्लिष्ट, आश्लेषित] १. मिश्रित करना। मिलाना। २. मिश्रण। मिलावट। ३. गले लगाना। आलिंगन।

आश्लेषा--पुं० [सं० अश्लेषा]=श्लेषा (नक्षत्र)।

आश्लेषित--भू० कृ० [सं० आश्लेष+इतच्] १. मिलाया या लगाया हुआ। २. गले लगाया हुआ। आलिंगित।

आश्व--वि० [सं० अश्व+अण्] १. अश्व या घोड़े से संवंध रखनेवाला। २. घोड़ों द्वारा ढोया अथवा उनसे खींचा जानेवाला।

पुं० घोड़ों का समूह।

आश्वत्थ--वि० [सं० अश्वत्थ+अण्] १. अश्वत्थ (पीपल) से संवंध रखनेवाला। २. अश्वत्थ-संवंधी।

पुं० पीपल का फल।

आश्वमेधिक--वि० [सं० अश्वमेध+ठञ्-इक] अश्वमेध-यज्ञ से संवंध रखनेवाला।

आश्वयुज--पुं० [सं० अश्वयुज्+अण्-ङीप्, आश्वयुजी+अण्] आश्विन या क्वार नाम का महीना।

आश्वलक्षणिक--पुं० [सं० अश्वलक्षण+ठञ्-इक] घोड़ों के अच्छे-बुरे लक्षण पहचाननेवाला व्यक्ति। शालिहोत्री।

आश्वस्त--भू० कृ० [सं० आ√श्वस् (जीना)+क्त] जिसे आश्वासन मिला हो।

आश्वास--पुं० [सं० आ√श्वस्+घञ्] [भू० कृ० आश्वस्त, कर्त्ता आश्वासक] १. श्वास लेना। साँस खींचना। २. यह कहना कि तुम्हारे लिए घवराने या डरने की कोई वात नहीं है। ढारस। तसल्ली। सांत्वना। उदा०—तुम्हारी ही विधि पर विश्वास हमारा चिर आश्वास।—पंत। ३. कथा आदि का कोई भाग।

आश्वासक--वि० [सं० आ+श्वस्+णिच्+ण्वुल्-अक] आश्वासन देनेवाला।

पुं० कपड़ा। वस्त्र।

आश्वासन--पुं० [सं० आ√श्वस्+णिच्+ल्युट्-अन] [वि० आश्वसनीय, भू० कृ० आश्वासित, आश्वास्य] १. कष्ट में पड़े हुए व्यक्ति से कहना कि डरो मत, सव ठीक हो जायगा। दिलासा या धैर्य देना। २. किसी का कोई काम पूरा करने के लिए अथवा उस काम में सहायक होने के लिए दिया जानेवाला वचन। (एश्योरेन्स)

आश्वासनीय--वि० [सं० आ√श्वस्+णिच्+अनीयर्] १. (व्यक्ति) जिसे आश्वासन दिया जा सके। २. (विषय) जिसके लिए आश्वासन दिया जा सके।

आश्वासित--भू० कृ० [सं० आ√श्वस्+णिच्+क्त] सांत्वना पाया हुआ। दिलासा पाया हुआ। जिसे आश्वासन दिया गया हो या मिला हो।

आश्वासी (सिन्)--वि० [सं० आ√श्वस्+णिनि] आश्वासन देनेवाला। आश्वासक। २. अपने आप पर दृढ़ विश्वास रखनेवाला।

आश्वास्य--भू० कृ० [सं० आ√श्वस्+णिच्+यत्]=आश्वासनीय।

आश्विक--वि० [सं० अश्व+ठञ्-इक]=आश्व।

पुं०—अश्वारोही सैनिक। सवार।

आश्विन--पुं० [सं० अश्विनी+अण्-ङीप्, आश्विनी+अण्] भादों और कार्त्तिक के वीच में पड़नेवाला महीना। क्वार।

आश्विनेय—वि० [सं० अश्विनी+ढक्–एय] १. अश्विनी-संबंधी। अश्विनी का। २. अश्विनी से उत्पन्न।
पुं० १. अश्विनीकुमार। २. पाँचों पांडवों में के नकुल और सहदेव।

आषना*—स०=आखना (कहना)। उदा०—सत्य-सन्ध साँचे सदा जो आपर आषे।—तुलसी।

आषर*—पुं०=आखर (अक्षर)।

आषा—पुं० [सं० अक्षत] चावल। अक्षत।

आषाढ़—पुं० [सं० आषाढा+अण्–ङीप्, आषाढी+अण्] १. ज्येष्ठ के बाद और सावन से पहले पड़नेवाला महीना। असाढ़। २. बादल। मेघ। ३. ढाक। पलास। ४. पलास का वह दंड जो यज्ञोपवीत के समय धारण किया जाता है। ५. मलय पर्वत।

आषाढ़क—वि० [सं० आषाढ+वुञ्–अक] आषाढ़ में होनेवाला। आषाढ़-संबंधी।
पुं० [आषाढ+कन्]=आषाढ।

आषाढ़ा—स्त्री० [सं० आ√सह् (सहना)+क्त–टाप्] ज्योतिष के सत्ताइस नक्षत्रों में से बीसवें तथा इक्कीसवें नक्षत्रों का संयुक्त नाम। (पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा)
पु० [सं० आषाढ] दंड जो ब्रह्मचारी हाथ में रखते है।

आषाढ़ी—स्त्री० [सं० आषाढा+अण्+ङीप्] १. आषाढ महीने की पूर्णिमा। गुरुपूर्णिमा। २. उक्त दिन होनेवाले धार्मिक कृत्य।

आषाढ़ीय—वि० [सं० आषाढ+छ–ईय] १. आषाढ-संबंधी। असाढ़ महीने का। २. [आषाढा+छ–ईय] आषाढा नक्षत्र में होनेवाला।

आषु*—पुं०=आखु (चूहा)।

आसंग—पु० [सं० आ√संज् (मिलना)+घञ्] १. संग या साथ रहने की क्रिया या भाव। २. लगाव। संपर्क। ३. किसी काम, विशेषतः भोग-विलास के प्रति होनेवाली तीव्र प्रवृत्ति या लीनता। आसक्ति। लिप्तता। ४. यह समझना कि अमुक कार्य विशेष रूप से मैंने ही किया है। अपने कर्त्तृत्व का अभिमान। ५. मुलतानी मिट्टी। ६. सुगंधित मिट्टी। ७. दे० 'आसंजन'।
अव्य० निरंतर। बराबर। लगातार।

आसंगत्य—पुं० [सं० असंगत+ष्यञ्] १. असंगत होने की अवस्था या भाव। २. वियोग।

आसंगी (गिन्)—वि० [सं० आ√संज्+णिनि] आसंग (विशेष प्रवृत्ति या संपर्क) रखनेवाला।

आसंजन—पु० [सं० आ√संज्+ल्युट्–अन] [कर्त्ता-आसंजक, भू० कृ० आसंजित] १. किसी के साथ अच्छी तरह जोड़ना, बाँधना या लगाना २. धारण करना। पहनना। जैसे—वस्त्र आदि। ३. अधिक मात्रा में होनेवाला अनुराग या आसक्ति। ४. आज-कल न्यायालय की आज्ञा से किसी अपराधी या ऋणी की संपत्ति पर होनेवाला अधिकार। कुर्की। (एटैचमेन्ट)

आसंजित—भू० कृ० [सं० आ√संज्+णिच्+क्त] (संपत्ति) जिसका आसंजन न हुआ हो। कुर्क किया हुआ। (एटैच्ड)

आसंद—पुं० [सं० आ√सद् (बैठना)+घञ्, नुम्] विष्णु या वासुदेव।

आसंदी—स्त्री० [सं० आ√सद्+(नि०) अच्, नुम्–ङीप्] १. बैठने का कुछ ऊँचा छोटा आसन। जैसे—चौकी, मोढ़ा आदि। २. खटोला।

आस—पुं० [सं०√आस् (बैठना)+घञ्] १. कमान। धनुष। २. दिशा। ३. चूतड़। नितंब।
स्त्री० [सं० आशा] आशा। उम्मेद।
मुहा०—**आस टूटना**=आशा या उम्मेद न रह जाना। **आस पूजना**=आशा पूरी होना।
*अव्य०—१. भरोसे। सहारे। २. (किसी बात के) कारण। वजह से। मारे। उदा०—सचिव बैद गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस।—तुलसी।

आसक†—पु०=आशिक (प्रेमी)।

आसकत—स्त्री० [सं० अशक्ति] [वि० आसकती, क्रि० असकताना] कोई काम करने के समय होनेवाला आलस्य या सुस्ती।
वि०=आसक्त। उदा०—नैना निरखत हरखत आसकत हैं।—सेनापति

आसकती—वि० [हिं० आसकत] आलसी।

आसक्त—पुं० [सं० आ√संज्+क्त] [भाव० आसक्ति] १. किसी के साथ लगा या सटा हुआ। २. किसी के साथ बहुत अधिक अनुराग या प्रेम करनेवाला। जो किसी पर लुब्ध या मुग्ध हो। मोहित। (अटैच्ड) ३. लिप्त। लीन।

आसक्ति—स्त्री० [सं० आ√संज्+क्तिन्] [वि० आसक्त] १. आसक्त होने की अवस्था या भाव। २. किसी के प्रति विशेष रूप से और बहुत अधिक होनेवाला अनुराग या प्रेम। (अटैचमेन्ट) ३. लिप्तता। लीनता।

आसतीन—स्त्री०=आस्तीन।

आसते*—अव्य० [फा० आहिस्तः] पु० हिं० 'आछत' का स्थानिक रूप।
अव्य० [सं० अस्ति] (किसी के) रहते या होते हुए।

आसतोष*—पुं०=आशुतोष।

आसत्ति—स्त्री० [सं० आ√सद्+क्तिन्] १. समीपता। २. न्याय में, पास-पास रहनेवाले शब्दों का पारस्परिक संबंध।

आसथा*—स्त्री०=आस्था।

आसथान*—पुं०=आस्थान।

आसन—पुं० [सं० √आस्+ल्युट्–अन] १. बैठने की क्रिया या भाव। बैठक। २. बैठने का कोई विशिष्ट ढंग, प्रकार या मुद्रा।
क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।
मुहा०—**आसन उखड़ना**=(क) बैठने की निश्चित मुद्रा में हिलने-डोलने आदि के कारण बाधा होना। उठकर इधर-उधर या खड़ा होना। (ख) ऐसी स्थिति उत्पन्न होना कि रहने-बैठने आदि के स्थान से हटकर कहीं और जाना पड़े। **आसन जमना**=बैठने में स्थायित्व या स्थिरता आना। **आसन डिगना या डोलना**=(क) आसन उखड़ना। (ख) किसी प्रकार के आकर्षण, बाधा आदि के कारण चित्त या मन चंचल होना।
३. कपड़े, कुश आदि का बना हुआ वह चौकोर टुकड़ा जिसपर लोग बैठते हैं।
मुहा०—**(किसी को) आसन देना**=सत्कारार्थ बैठने के लिए कोई चीज सामने रखना या बतलाना।
४. साधु-संन्यासियों आदि के बैठने और रहने का स्थान। ५. योग-साधन के लिए बैठने की कोई विशिष्ट मुद्रा या स्थिति। जैसे—पद्मासन, वीरासन आदि।

मुहा०—आसन लगाना=उक्त प्रकार की किसी विशिष्ट मुद्रा में स्थित होना।
६. काम-शास्त्र में, संभोग की कोई विशिष्ट मुद्रा या स्थिति। बंध। ७. हाथी का कंधा, जिसपर बैठकर उसे चलाते हैं। ८. प्राचीन राजनीति में, शत्रु के आक्रमण, दाँव-पेंच आदि के सामने अच्छी तरह जमे या ठहरे रहने का भाव या स्थिति। किसी प्रकार अपनी मर्यादा, स्थान आदि से विचलित न होना।

आसना*—अ० [सं० अस्=होना] होना।
पुं० [सं० आसन, √आस्+ल्युट्] १. वृक्ष। २. जीव।
वि०=आसन्न।

आसनी—स्त्री० [सं० आसन का हिं० अल्पा०] बैठने का छोटा आसन (कपड़े, कुश आदि का)।

आसन्न—वि० [सं० आ√सद्+क्त] १. (मात्रा, समय, स्थान आदि के विचार से) किसी के पास या समीप आया या पहुँचा हुआ। निकटवर्ती। समीपस्थ। जैसे—आसन्न प्रसवा। आसन्न मृत्यु आदि। २. किसी के साथ सटा या लगा हुआ। संलग्न।

आसन्न-काल—पुं० [प० त०] मृत्यु होने का समय। मृत्युकाल।

आसन्न-कोण—पुं० [कर्म० स०] ज्यामिति में, उन दोनों कोणों में से हर एक जो एक सीधी रेखा के ऊपर खड़ी दूसरी रेखा के दोनों ओर बनते है। (एडैजसेंट एंगिल्)

आसन्नता—स्त्री० [सं० आसन्न+तल्-टाप्] आसन्न होने की अवस्था या भाव। निकटता। समीपता।

आसन्न-प्रसवा—स्त्री० [ब० स०] वह जिसे शीघ्र ही प्रसव होने को हो।

आसन्न-भूत—पु० [कर्म० स०] व्याकरण में भूत-काल का वह रूप जिससे सूचित होता है कि भूतिकालिक क्रिया या तो वर्तमान काल में पूरी हुई है (जैसे—मैं वहाँ हो आया हूँ) अथवा उसकी पूर्णता या स्थिति वर्तमानकाल में भी व्याप्त है (जैसे—(क) तुलसीदास ने राम का ही गुण गाया है; (ख) वह अभी तक वहाँ खड़ा है या खड़ा हुआ है)।

आसपास—अव्य० [सं० अश्र+पार्श्व, प्रा० अस्स पस्स; का०, गु०, मरा० आस पास; सिंह० आसि यासि, पं० आसे पासे] १. अलग-बगल। इर्द-गिर्द। जैसे—उस मकान के आसपास कई खेत (या पेड़) थे। २. किसी स्थान के समीप इस ओर, उस ओर या चारों तरफ। इधर-उधर।

आसबंद—पुं० [हिं० आस (आधार या आश्रय)] वह मोटा तागा जिसे पटुए अपने घुटने पर (गूँथा जानेवाला गहना अटकाने के लिए) बाँधे रहते हैं।

आसमाँ—पुं०=आसमान।

आसमान—पुं० [फा०, मिलाओ सं० आशा=दिशा या स्थान+मान] [वि० आसमानी] आकाश (दे०)।
मुहा०—**आसमान के तारे तोड़ना**=बहुत ही विकट और श्रम-साध्य काम भी पूरा कर दिखलाना। **आसमान ज़मीन के कुलावे मिलाना**=(क) खूब बढ़-चढ़कर बातें करना। लंबी चौड़ी हाँकना। (ख) असंभव अथवा बहुत विकट कार्य करने के मंसूबे बाँधना। **आसमान झाँकना या ताकना**=(क) अभिमानपूर्वक सिर ऊँचा करना या तानना। (ख) वास्तविकता का ध्यान छोड़कर असंभव बातों की ओर ध्यान देना। **(किसी पर या सिर पर) आसमान टूटना या टूट पड़ना**=सहसा विपत्तियों का पहाड़ ऊपर आ गिर पड़ना। **(किसी को) आसमान दिखाना**=(क) कुश्ती में, एक पहलवान का दूसरे को पछाड़कर चित गिराना। (ख) प्रतिपक्षी को पूरी तरह से हराना। **आसमान पर उड़ना**=(क) अभिमानपूर्ण आचरण करना। (ख) बढ़-चढ़कर बातें करना। लंबी चौड़ी हाँकना। **आसमान पर चढ़ना**=अपने आपको बहुत ऊँचा या बड़ा समझना। **(किसी को) आसमान पर चढ़ाना**=किसी की इतनी अत्यधिक प्रशंसा करना कि उसे अभिमान होने लगे। **आसमान पर थूकना**=किसी महान् व्यक्ति को तुच्छ ठहराने की चेष्टा करना, जिसके फलस्वरूप स्वयं ही तुच्छ और हास्यास्पद बनना पड़े। **आसमान में छेद करना या थिगली लगाना**=आसमान के तारे तोड़ना। **आसमान में छेद हो जाना**=बहुत अधिक वर्षा होना (व्यंग्य और हास्य)। **आसमान सिर पर उठाना**=बहुत अधिक उपद्रव, ऊधम या हलचल मचाना। **(कोई चीज) आसमान से गिरना**=(क) अकारण या असमय में प्रकट होना। (ख) अनायास प्राप्त होना। **(वस्तु रचना आदि का) आसमान से बातें करना**=बहुत अधिक ऊँचा या उन्नत होना। जैसे—वहाँ के महल (या पहाड़) आसमान से बातें करते थे। **(किसी का) दिमाग आसमान पर होना**=इतना अधिक अभिमान होना कि तथ्य या वास्तविकता की उपेक्षा होने लगे।

आसमान-खोंचा—वि० [फा० आसमान+हिं० खोंचा=खोंचने या चुभनेवाली चीज] १. इतना ऊँचा या लंबा जो ऊपर आसमान तक चला गया हो। गगन-चुंबी। जैसे—आसमान-खोंचा बरहरा, बाँस या लग्गा।
पु० बहुत लंबी नलीवाला एक प्रकार का हुक्का जो नीचे ज़मीन पर रखा रहता था और जो बहुत ऊँचे तख्त या कोठे पर बैठकर पीया जा सकता था।

आसमानी—वि० [फा०] १. आकाश-संबंधी। आसमान का। २. आकाशस्थ। जैसे—आसमानी तारे; आसमानी लोग। ३. ईश्वर की ओर से होनेवाला। दैवी। ४. आसमान के रंगवाला। हलका नीला। (स्काई-ब्लू)
स्त्री० १. ताड़ी। २. मिस्र देश की एक प्रकार की कपास। ३. कहारों की बोली में, रास्ते में पड़नेवाली पेड़ की डाल।
पु० एक प्रकार का रंग जो हलका नीला होता है।

आसय*—पुं०=आशय।

आसर*—पु०=आशर।

आसरना*—अ० [सं० आश्रय] १. आसरा या सहारा लेना। २. शरण लेना।

आसरा—पुं० [सं० आश्रय] १. वह जिसके आधार या सहारे पर कुछ टिका, ठहरा, रुका या लगा हो। अवलंब। आधार। जैसे—गिरनेवाली छत के नीचे खंभे का आसरा लगाना। २. वह जिसपर काल-यापन, जीवन-निर्वाह, भरण-पोषण, स्थिति आदि आश्रित हो। अवलंब। ३. रक्षा, शरण आदि का स्थान। ४. किसी आशा की पूर्ति या कार्य की सिद्धि के संबंध में मन में होनेवाली आशा या विश्वास। जैसे—हमें तो बस आपका ही आसरा है। ४. इंतजार। प्रतीक्षा।
मुहा०—**(किसी का) आसरा देखना**=प्रतीक्षा करना। रास्ता देखना।
*पु०=आशा।

आसरंत--वि० [हिं० आसरा से] किसी के आसरे या सहारे रहनेवाला। आश्रित।
स्त्री० वह स्त्री जो किसी पर-पुरुष का आश्रय लेकर उसके साथ पत्नी के रूप में रहती हो। रखेली।

आसव--पुं० [सं० आ√सु+अण्] १. फलों आदि के खमीर से बनाया हुआ एक प्रकार का मद्य जो भभके से बिना चुआये ही बनता है। (वाइन) २. वैद्यक में कुछ विशिष्ट प्रकार से बनाया हुआ वह मद्य जिसका प्रयोग पौष्टिक पेय के रूप में होता है। जैसे—द्राक्षासव। ३. कोई मधुर और मादक पदार्थ जो किसी रूप में पान किया जाता हो। जैसे—अधरासव। ४. कोई उत्तेजक या बलवर्धक चीज या बात। ५. वह पात्र जिसमें मद्य पीते है।

आसवक--पुं० [सं० आ√सु+ण्वुल्-अक] वह जो भभके आदि से अरक, शराब आदि चुआता हो। आसव बनानेवाला। (डिस्टिलर)

आसवन--पुं० [सं० आ√सु+ल्युट्—अन] [कर्त्ता आसवक, भू० कृ० आसवित, आसुत] १. किसी तरल पदार्थ को गरमकर उसे वाष्प के रूप में लाना और फिर उस वाष्प को ठंढा करके तरल रूप देना। २. भभके आदि की सहायता से अरक, शराब आदि चुआना या टपकाना। (डिस्टिलेशन)

आसवनी--स्त्री० [सं० आसवन से] १. वह स्थान जहाँ आसवन का काम होता हो। २. वे यंत्र आदि जिनकी सहायता से आसवन किया जाता है। (डिस्टिलरी)

आसवित--भू० कृ० [सं० आसवन] जिसका आसवन किया गया हो। आसव के रूप में तैयार किया हुआ। (डिस्टिल्ड) जैसे—आसवित जल।

आसवी (विन्)--पुं० [सं० आसव+ इनि] वह जो शराब पीता हो।
वि० आसव-संबंधी।

आसा--पुं० [अ० असा] सोने या चाँदी का डंडा जिसे सजावट के लिए राजा-महाराजा की सवारी, बरात आदि के आगे चोबदार लेकर चलते है।
स्त्री०=आशा।
*स्त्री०=दिशा।

आसाढ़*--पुं०=आषाढ़।

आसादन--पुं० [सं० आ√सद्+णिच्+ल्युट्] [भू० कृ० आसादित] १. नीचे रखना। २. आक्रमण करना। ३. प्राप्त या हस्तगत करना।

आसान--वि० [फा०] [भाव० आसानी] (काम) जो सहज में किया जा सकता हो। सरल। सुगम।

आसानी--स्त्री० [फा०] [वि० आसान] सरलता। सुगमता।

आसा-बरदार--पुं० [अ० असा+फा० बरदार] वह सेवक जो राजा की सवारी, जलूस, बरात आदि में शोभा के लिए आसा लेकर आगे-आगे चलता है।

आसा-बल्लभ--पुं० [हिं० आसा+बल्लभ=भाला] आसा या सोंटा और बल्लभ या भाला जो राजा की सवारी, बरात आदि में साथ-साथ आगे चलते हैं।

आसाम--पुं० [सं० असम] भारतीय गणराज्य का एक उत्तर-पूर्वी प्रदेश। असम-राज्य। प्राचीन कामरूप देश।

आसामी--वि० [हिं० आसाम] १. आसाम या असम देश का। २. आसाम या असम-संबंधी।
पुं० आसाम या असम देश का निवासी।
स्त्री० आसाम या असम देश की भाषा।

आसामुखी†--वि० [सं० आशा+मुख] अपनी आशा की पूर्ति के लिए दूसरों का मुँह देखनेवाला। उदा०—जो जाकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐसन मारै दुखी। —जायसी।

आसार--पुं० [सं० आ√सृ+घञ्] १. शत्रु को चारों ओर से घेरकर उस पर किया जानेवाला आक्रमण। २. मूसलाधार वृष्टि। ३. मेघ-माला। (डिं०)। ४. युद्ध आदि में मित्रों से मिलनेवाली सहायता। ५. खाने-पीने की सामग्री। रसद।
पुं० [अ०] १. चिह्न। निशान। २. किसी बात या व्यक्ति की भावी गति-विधि आदि के लक्षण। ३. इमारत की नींव। ४. दीवार की चौड़ाई।

आसावरी--स्त्री० [?] १. प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड के बीच में गाई जानेवाली श्रीराग की एक रागिनी। २. एक प्रकार का सूती कपड़ा।
पुं० एक प्रकार का कबूतर।

आसिक--पुं० [सं० असि+ठक्—इक] तलवार चलानेवाला योद्धा।
*वि०=आशिक।

आसिख--स्त्री०=आशिष (असीस)।

आसिद्ध--वि० [सं० आ√सिध्+क्त] १. (व्यक्ति) जिसपर किसी प्रकार का असेध, प्रतिबंध या रुकावट लगाई गई हो। २. (कार्य या बात) जिसके संबंध में आसेध या प्रतिबंध लगा हो। (रेस्ट्रिक्टेड)

आसिन--पुं०=आश्विन (महीना)।

आसिरवचन*--पुं०=आशीर्वाद।

आसिरवाद†--पुं०=आशीर्वाद।

आसिष*--स्त्री०=आशीष।

आसी*--वि०=आशी (खानेवाला)।

आसीन--वि० [सं० √आस्+शानच्, इत्व] [स्त्री० आसीना] १. जिसने आसन ग्रहण किया हो। बैठा हुआ। २. जो किसी पद पर नियुक्त होकर बैठा हो।

आसीविख--पुं० [सं० आशीविष:] वह साँप, जिसका जहर बहुत जल्दी चढ़ता हो।

आसीस--स्त्री०=आशिष (आशीर्वाद)।
पुं०=आसीसा।

आसीसा--पुं० [सं० आ+शीर्ष] तकिया।

आसु*--सर्व० [सं० अस्य] इसका।
पुं० [सं० आस] प्राण। जीवनी शक्ति।
अव्य०=आशु (जल्दी)। उदा०—जारहि भवन चारि दिसि आसू।—तुलसी।

आसुग*--वि०=आशुग।

आसुत--भू० कृ० [सं० आ√सु+क्त]=आसवित।

आसुति--स्त्री० [सं० आ√सु+क्तिन्] १. आसवन करने की क्रिया या भाव। २. प्रसव।

आसुर--वि० [सं० असुर+अण्] १. असुर-संबंधी। २. असुरों की तरह का। जैसे—आसुर-विवाह (देखें)।
पुं० सोंचर नमक। विड्लवण।
*पुं० [सं० असुर] असुर। राक्षस। उदा०—काहू कहूँ सुर असुर मार्‍यो।—केशव।

आसुर-विवाह--पुं० [सं०] आठ प्रकार के विवाहों में से एक जिसमें कन्या के माता-पिता को धन देकर उनसे कन्या ले ली जाती थी और तब पत्नी के रूप में अपने घर में रखी जाती थी।

आसुरी--वि० [सं० आसुर] १. असुर-संबंधी। असुरों का। जैसे—आसुरी-माया। २. असुरों की तरह का। जैसे—आसुरी विवाह। ३. असुरों के ढंग से (अर्थात् उग्रता, क्रूरता, निर्दयता आदि से) किया हुआ। जैसे—आसुरी चिकित्सा, आसुरी संपत् आदि।

स्त्री० [सं० असुर+अण्+ङीप्] १. असुर या राक्षस जाति की स्त्री। २. वैदिक छंदों का एक भेद। ३. राई। ४. सरसों। ५. एक प्रकार का सिरका।

आसुरी चिकित्सा--स्त्री० [सं० व्यस्त पद] १. ऐसी उग्र या क्रूरतापूर्ण चिकित्सा जिसमें रोगी के उन शारीरिक कष्टों का कुछ भी ध्यान न रखा जाय जो चिकित्सा के फलस्वरूप होते हैं। २. चीर-फाड़ आदि के रूप में होनेवाली चिकित्सा। शल्य-चिकित्सा।

आसुरी-विवाह--पुं०=आसुर-विवाह।

आसुरी संपत्--स्त्री० [सं० व्यस्त पद] असुरों की तरह अनीति, अन्याय या कुमार्ग से अर्जित अथवा प्राप्त किया हुआ धन या वैभव। बुरी कमाई।

आसूँ|--पुं० [सं० अश्वयुज] आश्विन का महीना।

आसू*--अव्य०=आशु (शीघ्र)।

पुं०=आसूँ (आश्विन महीना)।

आसूदगी--स्त्री० [फा०] १. धन-धान्य आदि की दृष्टि से निश्चितता और सुख से युक्त अवस्था या स्थिति। २. तृप्ति।

आसूदा--वि० [फा० आसूदः] १. धन-धान्य आदि के विचार से निश्चित और सुखी। २. तृप्त। संतुष्ट।

आसेक--पुं० [सं० आ√सिच्+घञ्] १. तर करना। भिगोना। २. खेत या पेड़-पौधे सींचना। सिंचाई। (इरिगेशन)

आसेचन--पुं० [सं० आ√सिच्+ल्युट्]=आसेक।

आसेध--पुं० [सं० आ√सिध्+घञ्] [भू० कृ० आसिद्ध] १. राज्य या राज्याधिकारी की दी हुई ऐसी आज्ञा जो किसी को कोई काम करने से रोकती हो। २. किसी प्रकार का प्रतिबंध। (रेस्ट्रिक्शन)

आसेधक--पुं० [सं० आ√सिध्+ण्वुल्—अक] आसेध करने या प्रतिबंध लगानेवाला।

आसेब--पुं० [फा०] १. भूत-प्रेत। २. उनके कारण होनेवाला कष्ट या बाधा। ३. कष्ट। विपत्ति।

आसेर*--पुं० [सं० आश्रय या फा० असीर (कैदी)?] किला। दुर्ग। (डिं०)

आसेवन--पुं० [सं० आ√सेव्+ल्युट्—] [भू० कृ० आसेवित, वि० आसेव्य, कर्त्ता आसेवी] १.अच्छी या पूरी तरह से किया जानेवाला सेवन। २. दे० 'आसेवा'।

आसेवा--स्त्री० [सं० प्रा० स०] अच्छी तरह की जानेवाली सेवा।

आसोज|--पुं० [सं० अश्वयुज्]=आश्विन (महीना)।

आसौ*--अव्य० [सं० अस्मिन्, प्रा० अस्सिं=इस+सम=वर्ष] इस वर्ष। इस साल।

*पुं०=आसव।

आस्तर--पुं० [सं० आ√स्तृ+अप्] १. आवरण। २. बिछाने की कोई चीज। जैसे—चटाई, चादर, गलीचा, आदि। ३. हाथी की झूल।

आस्तरण--पुं० [सं० आ√स्तृ+ल्युट्] १. बिछाने, फैलाने या ढकने की क्रिया या भाव। २. वह जो बिछाया जाय अथवा किसी के ऊपर डाला जाय। जैसे—चादर या झूल। ३. यज्ञ में वेदी पर फैलाये हुए कुश।

आस्तार पंक्ति--पुं० [सं०] ४० वर्णों का एक वैदिक छंद जिसके प्रथम और चतुर्थ चरणों में १२-१२ और द्वितीय तथा तृतीय चरणों में ८-८ वर्ण होते हैं।

आस्ति*--स्त्री०=अस्ति।

आस्तिक--पुं० [सं०अस्ति+ठक्—इक] [भाव० आस्तिकता] १. वह जिसका विश्वास ईश्वर, परलोक, पुनर्जन्म आदि में हो। २. वह जिसका विश्वास पुरानी प्रथाओं, रीतियों आदि में हो।

आस्तिकता--स्त्री० [सं० आस्तिक+तल्—टाप्] आस्तिक होने की अवस्था या भाव। ईश्वर, परलोक, पुनर्जन्म आदि में विश्वास होना। (थीइज्म)

आस्तिकपन--पुं०=आस्तिकता।

आस्तिक्य--पुं० [सं० आस्तिक+ष्यञ्]=आस्तिकता।

आस्तीक--पुं० [सं०] एक ऋषि जिन्होंने जनमेजय के नागयज्ञ में तक्षक के प्राण बचाये थे।

आस्तीन--स्त्री० [फा०] शरीर के मध्यभाग में पहने जानेवाले वस्त्र का कंधे से कलाई तक का भाग। बाँह।

पद—**आस्तीन का साँप**=वह व्यक्ति जो मित्र होकर धोखा दे।

मुहा०—**आस्तीन चढ़ाना**=(क) कोई काम करने के लिए तैयार होना। (ख) लड़ने के लिए उतारू होना। **आस्तीन में साँप पालना**=ऐसे व्यक्ति को अपने साथ रखना जो आगे चलकर बहुत बड़ा शत्रु सिद्ध हो।

आस्ते*--अव्य० [फा० आहिस्तः] धीरे।

पद—**आस्ते-आस्ते**=धीरे धीरे।

आस्त्र--वि० [सं० अस्त्र+अण्] अस्त्र-संबंधी। अस्त्रों का।

आस्थगन--पुं० [सं० आ√स्थग् (संवरण)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० आस्थगित] किसी काम या बात को किसी दूसरे समय के लिए रोक रखने की क्रिया या भाव। (डेफरमेंट)

आस्था--स्त्री० [सं० आ√स्था+अङ्] १. कहीं स्थित होने की अवस्था, साधन या स्थान। २. किसी महान् या पूज्य व्यक्ति या देवता में होनेवाली विश्वासपूर्ण भावना। ३. सभा का अधिवेशन। बैठक। ४. अवलंब। सहारा। ५. प्रयत्न। ६. वचन। वादा।

आस्थाता (तृ)--पुं० [सं० आ√स्था+तृच्] १. वह जो अच्छी तरह से या दृढ़तापूर्वक खड़ा हो। २. वह जो ऊपर चढ़ता हो या चढ़ा हो। आरोही।

आस्थान--पुं० [सं० आ√स्था+ल्युट्] १. स्थान। जगह। २. बैठने का स्थान। बैठक। ३. दरबार। सभा। ४. दे० 'आस्थान मंडप'।

आस्थान-मंडप--पुं० [प०त०] १. प्राचीन भारत में, राजकुल का वह भवन जिसमें राजा के सामने लोग उपस्थित होकर निवेदन करते थे। दरबारे आम। २. दे० 'आस्थानिका'।

आस्थानिका--स्त्री० [सं०] बैठने का कोई विशेष स्थान। (सीट)

आस्थानी--स्त्री० [सं० आ√स्था+ल्युट्—अन+ङीप्] १. किसी भवन का वह अंश या भाग जिसमें लोग कोई महत्त्व की बात सुनने के लिए एकत्र हों। (ऑडिटोरियम) २. दे० 'आस्थान मंडप'।

आस्थापन--पुं० [सं० आ√स्था+णिच्+पुक्+ल्युट्—अन] १. अच्छी

तरह से कोई चीज बैठाने, रखने या स्थापित करने की क्रिया या भाव। २. वैद्यक में स्नेह-वस्ति। ३. पौष्टिक औषध। ताकत की दवा।

आस्थित--भू० कृ० [सं० आ√स्था+क्त] १. जो किसी स्थान में रहता हो। २. ठहरा या टिका हुआ। ३. प्राप्त किया हुआ। ४. घेरा हुआ।

आस्थिति--स्त्री० [सं० आ√स्था+क्तिन्] १. स्थिति होने की अवस्था या भाव। स्थिति। २. स्थित होने या रहने का स्थान। निवास।

आस्पद--पुं० [सं० आ√पद्+घ, सुट्] १. जगह। स्थान। २. रहने की जगह। आवास। ३. आधान, आधार या पात्र। ४. वर्ण-व्यवस्था आदि की दृष्टि से सामाजिक स्थिति जो किसी के पद, मर्यादा आदि की सूचक होती हैं। ५. वंश-गत नाम। अल्ल। ६. जन्म-कुंडली में लग्न से दसवां स्थान।

आस्पर्धा--स्त्री० [सं० आ√स्पर्ध्+अ+टाप्] =स्पर्धा।

आस्पर्धी (र्धिन्)--पुं० [सं० आ√स्पर्ध्+णिनि] स्पर्धा रखनेवाला।

आस्फालन--पुं० [सं० आ√स्फल्+णिच्+ल्युट्] १. किसी को पीछे हटाने के लिए ढकेलना, दबाना या मारना। २. संघर्ष। ३. आत्मश्लाघा। डींग। ४. उछल-कूद।

आस्फोट--पुं० [सं० आ√स्फुट्+णिच्+अच्] १. शस्त्रों की खड़खड़ाहट या झंकार। २. ताल ठोंकने का शब्द। ३. अखरोट। ४. मदार का पौधा।

आस्फोटन--पुं० [सं० आ√स्फुट्+णिच्+ल्युट्—अन] १. प्रकट या व्यक्त करना। २. गात्र, पद आदि फड़फड़ाना। ३. ताल ठोंकना। ४. अनाज या फसल ओसाना। बरसाना।

आस्मान--पुं०=आसमान।

आस्मानी--वि०, पुं०, स्त्री०=आसमानी।

आस्मारक--पुं०=स्मारक।

आस्यंदन--पुं० [सं० आ√स्यंद्+ल्युट्—अन] १. प्रवाहित होना। बहना। २. क्षरण। रसना।

आस्य--पुं० [सं०√अस्+ण्यत्] १.चेहरा। मुख। २. मुँह। ३. मुँह का वह अंग जिससे शब्दों का उच्चारण होता है।

वि० मुँह या मुख-संबंधी।

आस्र--पुं० [सं० अस्र+अण्] खून। रक्त।

आस्रप--वि० [स० आस्र√पा+क] रक्त पीनेवाला।

पुं० १. राक्षस। २. मूल-नक्षत्र।

आस्रव--पुं० [सं० आ√स्रु+अप्] १. पकते हुए चावल की झाग या फेन। २. पनाला। उदा०—आस्रव इंद्रिय द्वार कहावै। जीवहिं विषयन ओर बहावै। ३. कष्ट। क्लेश। ४. मन के दोष, मल या विकार। (बौद्ध) ५. आत्मा की शुभ और अशुभ गतियाँ। (जैन)

आस्राव-- वि० [आ√स्रु+घञ्] बहता हुआ।

पुं० १. बहाव। २. थूक। ३. ऐसा घाव या फोड़ा जिसमें से कुछ बहता हो।

आस्वांत--वि० [सं० आ√स्वन्+क्त] ध्वनि या शब्द करता हुआ।

आस्वाद--पुं० [सं० आ√स्वद्+घञ्] कोई चीज खाने या पीने के समय मिलनेवाला उसका रस या जीभ को होनेवाली उसकी अनुभूति। स्वाद।

आस्वादन--पुं० [सं० आ√स्वद्+णिच्+ल्युट्] [वि० आस्वादनीय, आस्वाद्य, भू० कृ० आस्वादित] १. कोई चीज खा या चखकर यह देखना कि उसका स्वाद कैसा है। २. लाक्षणिक रूप में प्रयोग के द्वारा यह जानना या समझना कि किसी चीज या बात में कैसा रस होता है।

आस्वादनीय--वि० [सं० आ√स्वद्+णिच्+अनीयर्] जिसका आस्वादन किया जा सके या किया जाने को हो।

आस्वादित--भू० कृ० [सं० आ√स्वद्+णिच्+क्त] जिसका आस्वादन किया गया हो। चखकर देखा हुआ।

आह--अव्य० [सं० अहह] दुःख, पीड़ा, शोक, पश्चात्ताप आदि का सूचक एक अव्यय।

मुहा०--**आह करना या खींचना**=कष्ट या दुःख के कारण ठंडी साँस भरना या 'आह' शब्द कहना। **(किसी की) आह पड़ना**=जिसे बहुत कष्ट दिया गया हो, उसकी आह या वेदना का कुफल प्राप्त होना। **(किसी की) आह लेना**=ऐसा अनुचित काम करना कि किसी को बहुत कष्ट पहुँचे और वह 'आह आह' करे।

*अ०=आहि (है)।

पुं० दे० 'आहु'।

आहट--स्त्री० [हिं० आना+हट (प्रत्य०) ?] १. वह मंद ध्वनि या धीमा शब्द जो किसी के आने-जाने, बोलने-चालने, हिलने-डोलने आदि के कारण कुछ दूर बैठे हुए व्यक्ति तक पहुँचता है।

मुहा०--**आहट मिलना**=उक्त प्रकार के शब्द आदि से यह पता चलना कि कहीं कोई आया है या कोई बात हो रही है। **आहट लेना**=उक्त प्रकार का शब्द सुनाई पड़ने पर या संदेह, संभावना आदि होने पर धीरे से छिपकर यह जानने का प्रयत्न करना कि कौन आया है या क्या बात हो रही है। टोह या थाह लेना।

प्रत्य० एक हिंदी प्रत्यय जो कुछ क्रियाओं के अंत में लगकर उन्हें भाववाचक संज्ञा का रूप देता है। जैसे—घबराना से घबराहट, चिल्लाना से चिल्लाहट, बुलाना से बुलाहट आदि।

आहत--वि० [सं० आ√हन्+क्त] १. जिसपर आघात हुआ हो। २. जिसे चोट आदि लगने के कारण घाव हुआ हो। घायल। जख्मी।

पद--**हताहत**=मरे हुए तथा घायल लोग।

३. (व्याकरण में, ऐसा वाक्य) जिसमें परस्पर-विरोधी बातें आई हों। व्याघात नामक दोष से युक्त। ४. (गणित में, वह संख्या) जिसका गुणा किया गया हो। गुणित। ५. (कपड़ा) जो तुरंत पटक-पटक करके धोया और साफ किया गया हो। ६. पुराना। प्राचीन।

पुं० १. कपड़ा। वस्त्र। २. ढोल।

आहत-मुद्रा--स्त्री० [सं० कर्म० स०] आरंभिक काल की वह मुद्रा (सिक्का) जो चाँदी, ताँबे आदि के छड़ों के छोटे टुकड़ों के रूप में केवल काट-पीट कर बनाई जाती थी और जिसपर किसी प्रकार का अंक या चिह्न नहीं होता था। (बेन्टबार क्वायन)

आहति--स्त्री० [सं० आ√हन्+क्तिन्] १. आहत होने की अवस्था या भाव। २. आघात। चोट। मार। ३. गणित में, गुणा करने की क्रिया या भाव। गुणन।

आहन--पुं० [फा०] [वि० आहनी] लोहा।

* [सं० अह्न] दिन।

आहनन--पुं० [सं० आ√हन्+ल्युट्] १. किसी को जान से मार डालना। २. बहुत निर्दयतापूर्वक मारना-पीटना।

आहनी--वि० [फा०] लोहे का।

आहर--पुं० [सं० अहः] १. काल। वक्त। समय। २. दिन। दिवस।

पुं० [सं० आहव] [स्त्री० अल्पा० आहरी] १. छोटा तालाब। २. युद्ध।
*पुं०=आहार।

आहरण--पुं० [सं० आ√हृ+ल्युट्] [वि० आहरणीय, आहृत, कर्तृ०, आहर्ता] कुछ चुराकर या छीनकर कहीं ले जाना।
पुं०=आभरण (गहना)।

आहरणीय--वि० [सं० आ√हृ+अनीयर्] जिसे हरण किया जा सके। चुराये, छीने या हरे जाने के योग्य।

आहरन--पुं० [सं० आहनन] लोहारों, सुनारों आदि की निहाई। अहरन।

आहरी--स्त्री० [हिं० आहार का स्त्री० अल्पा०] १. पशुओं के पानी पीने के लिए बना हुआ छोटा हौज। २. थाला (दे०)।

आहर्ता--वि० [सं० आ√हृ+तृच्] १. आहरण करने (चुराने या छीनने) वाला। २. अनुष्ठान करनेवाला।

आहला--पुं० [सं० आ+हला=जल] नदियों आदि की बाढ़।

आहव--पुं० [सं० आ√ह्वे+अप्] १. चुनौती। ललकार। प्रचारण। २. युद्ध। संग्राम। ३. यज्ञ।

आहवन--पुं० [सं० आ√हु+ल्युट्] [वि० आहवनी] हवन करने की क्रिया या भाव।

आहवनीय--स्त्री० [सं० आ√हु+अनीयर्] तीन प्रकार की अग्नियों में तीसरी, जो हवन आदि के लिए होती है। (कर्मकांड)

आहाँ--स्त्री० [सं० आह्वान] १. हाँक। २. पुकार।
†अव्य० [अ=नहीं+हाँ] अस्वीकृति, वर्जन आदि का सूचक शब्द।

आहा--अव्य० [सं० अहह] १. उल्लास, हर्ष आदि का सूचक एक अव्यय। जैसे--आहा! कैसा आनंद आया! २. खेद, विस्मय आदि का सूचक एक अव्यय। जैसे--आहा! क्षमा कीजिए, आपको चोट लग गई।

आहार--पुं० [सं० आ√हृ+घञ्] १. भोजन करना। २. खाने की सामग्री या वस्तु। खाद्य पदार्थ। भोजन।

आहारक--वि० [सं० आ√हृ+ण्वुल्-अक] अपने पास लानेवाला।
पुं० जैन शास्त्रानुसार वह उपलब्धि जिसमें मुनिराज अपनी शंका के समाधान के लिए हस्त-मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकरों के पास उपस्थित होते है।

आहार-मंडप--पुं० [सं० ष० त०] किसी विशाल भवन का वह बड़ा कमरा जिसमें अतिथियों, मित्रों आदि को भोज दिये जाते हों। (बैन्क्वेटिंग हॉल)

आहार-विज्ञान--पुं० [सं० ष० त०] वह विज्ञान जिसमें खाद्य पदार्थों के गुण-दोष, पोषक तत्त्व आदि का विवेचन होता है। (डायटेटिक्स)

आहार-विहार--पुं० [सं० द्व० स०] नित्य-प्रति के शारीरिक कार्य या व्यापार और व्यवहार। जैसे--खाना-पीना, काम-करना, हँसना-बोलना सोना आदि।

आहारशास्त्र--पुं०=आहार-विज्ञान।

आहारिक--वि० [सं० आहार+ठक्-इक] आहार या भोजन-संबंधी।
पुं० जैनों में आत्मा के पाँच प्रकार के शरीरों में से वह जो मनुष्य के आहार-विहार आदि का कर्त्ता और भोक्ता है।

आहारी (रिन्)--वि० [सं० आहार+इनि] [स्त्री० आहारिणी] आहार (भोजन) करनेवाला। जैसे--मांसाहारी, शाकाहारी आदि।

आहार्य्य--वि० [सं० आ√हृ+ण्यत्] १. हरण किये जाने के योग्य। २. आहार (भोजन) किये जाने के योग्य। ३. बनावटी। कृत्रिम। ४. दिखौआ। ५. पूज्य।
पुं० १. अभिनय का वह विशिष्ट प्रकार जो विशेष प्रकार की वेष-भूषा धारण करके किया जाता है। २. साहित्य में चार प्रकार के अनुभावों में से एक जिसमें नायक और नायिका एक दूसरे का वेष धारण करके विहार करते हैं। ३. वैद्यक में, ऐसा रोग जिसे अच्छा करने के लिए चीर-फाड़ या शल्य-चिकित्सा की आवश्यकता हो।

आहार्य्याभिनय--पुं० [सं० आहार्य-अभिनय कर्म० स०] अभिनय का वह अंश जो रूप, वेश आदि पर आश्रित होता है। आहार्य्य।

आहि*--अ० [सं० अस्] पूर्वी हिंदी में, 'असना' या 'आसना' (होना) क्रिया का वर्त्तमानकालिक रूप। है।

आहित--भू० कृ० [सं० आ√धा+क्त] १. रखा या स्थापित किया हुआ। २. धरोहर, गिरों या रेहन के रूप में रखा हुआ। ३. किया हुआ।
पुं० प्राचीन भारत में, वह दास जो पहले अपने स्वामी से इकट्ठा धन लेकर और तब उसकी सेवा में रहकर वह धन चुकाता था।

आहिताग्नि--पुं० [सं० आहित-अग्निकर्म० स०] १. धार्मिक दृष्टि से स्थापित की हुई अग्नि। २. अग्निहोत्री।

आहिति--स्त्री० [सं० आ√धा+क्तिन्] आहित करने या होने की अवस्था या भाव।

आहिस्ता--अव्य० [फा० आहिस्तः] [भाव० आहिस्तगी] धीमे से। धीरे से।
पद--**आहिस्ता आहिस्ता**=(क) धीरे-धीरे। शनैः-शनैः। (ख) क्रम-क्रम से।

आहु*--पुं० [सं० आहव=ललकार] लड़ने आदि के लिए दी जानेवाली ललकार। चुनौती। प्रचारण उदा०--गह्यौ राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर समेत।--विहारी।

आहुटि--स्त्री०=आहट।

आहुड़*--पुं० [सं० आहव] युद्ध। संग्राम।

आहुति--स्त्री० [सं० आ√हु+क्तिन्] १. यज्ञ या हवन की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए उसमें बार-बार कोई जलनेवाली अच्छी चीज डालते रहना। जैसे--घी, जौ या तिल की आहुति। २. उक्त प्रकार से यज्ञ या हवन की अग्नि में डालने की सामग्री; अथवा हर बार डाली जानेवाली उसकी मात्रा। जैसे--रुद्र को ११ आहुतियाँ दी जाती हैं। ३. किसी उद्देश्य की सिद्धि या कर्त्तव्य-पालन के लिए उसमें लगकर पूरी तरह से व्यय या समाप्त हो जानेवाली चीज। जैसे--स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हजारों देश-प्रेमियों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

आहुती*--स्त्री०=आहुति।

आहू--पुं० [फा०] मृग। हिरन। उदा०--मनु कलिंद पर कल्पित कनक-मंडप आहू को।--रत्नाकर।

आहूत--भू० कृ० [सं० आ√ह्वे+क्त] १. जिसका आह्वान हुआ हो। जो बुलाया गया हो। २. आमंत्रित। निमंत्रित।

आहूति--स्त्री० [सं० आ√ह्वे+क्तिन्] आह्वान करना। बुलाना।
स्त्री०=आहुति।

आहृत--भू० कृ० [सं० आ+हृ+क्त] १. हरण किया या बल-पूर्वक लिया हुआ। २. कहीं से लाया हुआ।

आहे*--अ० [सं० अस्] 'आसना' क्रिया का वर्त्तमानकालिक रूप है।

आहो*--अ० 'होना' क्रिया के वर्त्तमानकालिक 'हूँ' का पुराना अवधी रूप।

आह्न--वि० [सं० अहन्+अञ्] प्रति दिन होनेवाला। दैनिक।

आह्निक--वि० [सं० अहन्+ठञ्] दैनिक। रोजाना।
पुं० १. एक दिन का काम या उसकी मजदूरी। २. नित्य प्रति किये जाने वाले धार्मिक कृत्य। जैसे--पाठ, पूजन, संध्या, वंदन आदि।

आह्लाद--पुं० [सं० आ√ह्लद्+घञ्] [वि० आह्लादक, आह्लादित] किसी अच्छी बात से होनेवाली अस्थायी या क्षणिक प्रसन्नता। (ग्लैडनेस)

आह्लादक--वि० [सं० आ√ह्लद्+णिच्+ण्वुल्] आह्लाद या प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला।

आह्लादित--वि० [सं० आ√ह्लद्+णिच्+क्त] जिसे आह्लाद हुआ हो। प्रसन्न। हर्षित।

आह्वय--पुं० [सं० आ√ह्वे+श] १. नाम। संज्ञा। २. तीतर, वटेर, मेढ़े आदि जीवों की लड़ाई की वाजी।

आह्वान--पुं० [सं० आ√ह्वे+ल्युट्] १. किसी से यह कहना कि यहाँ या हमारे पास अमुक काम के लिए आओ। पुकारना। वुलाना। २. पूजन, यज्ञ आदि के समय देवताओं से कहना कि आप यहाँ आकर अपना भाग और हमारी सेवा-पूजा ग्रहण करें। ३. आधिकारिक या विधिक रूप से किसी को आज्ञा देना कि यहाँ आओ। ४. वह पत्र जिसमें उक्त प्रकार का वुलावा लिखा हो। (समन)

आह्वायक--वि० [सं० आ√ह्वे+ण्वुल्-अक] आह्वान करने या वुलाने-वाला।

इ

इ--देवनागरी वर्णमाला का तीसरा अक्षर और तीसरा स्वर जिसका उच्चारण तालु से होता है। शिक्षा अर्थात् स्वर-विज्ञान की दृष्टि से इसके उच्चारण में विवृत नामक प्रयत्न होता है। इसका दीर्घ रूप ई होता है।
†सर्व०=यह।
†अव्य०=ही। उदा०--पहिलुँह जाइ लगन लै पुहतौ।--प्रिथीराज

इंकार--पुं०=इन्कार (अस्वीकृति)।

इंग--पुं० [सं० इङ्ग् (जाना)+घञ्] १. इशारा। संकेत २. चिह्न। निशान। ३. हाथी का दाँत।

इंगन--पु० [सं०√इङ्ग्+ल्युट्-अन] १. चलना-फिरना या हिलना-डुलना। २. इशारा या संकेत करना। ३. ज्ञान। जानकारी।

इंगनी--स्त्री० [अं० मैंगनीज़] एक प्रकार की धातु जिसका जंग या मोरचा कला, रसायन आदि के क्षेत्रों में प्रयुक्त होता है।

इंगला--स्त्री० [सं०] पिंगला (नाड़ी) के अनुकरण पर वना हुआ इड़ा (नाड़ी) का वह विकृत रूप जो रहस्य-संप्रदाय के योगियों, साधुओं आदि मे प्रचलित था। विशेष दे० 'इड़ा' (नाड़ी)।

इंगव†--पुं० [सं० इंग=हाथी का दाँत] १. दाँत। २. वाहर निकला हुआ किसी तरह का वड़ा दाँत या उसके आकार का अंग। जैसे--हाथी का दाँत, जंगली सूअर का खाँग आदि। उदा०--मानौ वियोग वराह हन्यों युग शैल संधिन इंगवै डारी।--केशव।

इंगार--पुं०=अंगार।

इंगालकर्म--पुं० [सं० अंगारकर्म] अग्नि के योग या सहायता से होनेवाले काम या व्यापार। जैसे--लोहारी, सुनारी आदि। (जैन)

इंगित--पुं० [सं०√इंग्+क्त] १. शरीर के किसी अंग या भाग की ऐसी चेष्टा, प्रयत्न या संचालन जिससे औरों को किसी अभिप्राय, उद्देश्य या भाव का वोध होता हो। इशारा। संकेत। २. कोई ऐसा कार्य या व्यापार जो किसी प्रवृत्ति या रुचि का परिचायक या सूचक हो।
वि० १. जिसकी ओर इशारा या संकेत किया गया हो। २. जिसका वोध किसी कार्य या लक्षण से होता हो।

इंगुद--पुं० [सं० इंगु√दो (काटना)+क]=इंगुदी।

इंगुदी--स्त्री० [सं० इङ्गुद+ङीष्] १. हिंगोट नाम का पेड़ या उसका फल। २. ज्योतिष्मती। मालकँगनी।

इंगुर*--पु०=ईंगुर।

इँगुरौटी--स्त्री० [हिं० ईंगुर+औटा (प्रत्य०)] ईंगुर या सिंदूर रखने की एक प्रकार की डिविया।

इँगुवा†--पुं० [सं० इङ्गुद] हिंगोट का पेड़ और उसका फल।

इंग्लिस्तान--पुं० [अं० इंगलिश+फा० स्तान=जगह] अंगरेजों का देश। इंग्लैंड।

इंग्लिस्तानी--वि० [हिं० इंग्लिस्तान] १. अंगरेजों के देश से संबंधित। अँगरेजी। २. अंगरेजों का।

इंग्लैंड--पुं० [अं०] युरोप के उत्तर-पश्चिम का एक प्रसिद्ध द्वीप जो अंगरेज जाति का मुख्य निवास-स्थान है। इंग्लिस्तान।

इंच--स्त्री० [अं०] एक प्रसिद्ध पाश्चात्य नाप जो एक फुट का वारहवाँ भाग है।

इँचना*--अ०=खिंचना।
स०=खींचना।

इंचार्ज--पुं० [अं०] वह जिसे किसी वड़े कार्य आदि का भार मुख्य रूप से सौंपा गया हो।

इंछ--स्त्री०=इच्छा। उदा० सो नग देखि इंछ भै भोरी।--जायसी।

इँछना--स० [सं० इच्छ्] इच्छा करना। उदा०--उद्धौ बुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सोरज इंछै।--नंददास।

इंजन--पुं० [अं० एंजिन] विजली, भाप आदि से चलनेवाला वह यंत्र जो मुख्यतः दूसरे वड़े-वड़े यंत्रों को चलाने का काम करता है। (एंजिन) जैसे--कल-कारखाने, मोटर या रेल का इंजन।

इंजर--पुं० दे० 'समुंदर फल'।

इंजीनियर--पुं० [अं० एंजीनियर] १. वह जो आधुनिक पाश्चात्य यंत्रों आदि के आविष्कार, कार्य-प्रणाली, रचना, सुधार आदि विषयों का अच्छा ज्ञाता हो। २. वह जो लोक वास्तु (भवन, पुल, सड़कें आदि) के परिरूप प्रस्तुत करके उनका निर्माण करता-कराता हो।

इंजीनियरी--स्त्री० [अं० इंजीनियरिंग] १. यंत्र आदि चलाने, वनाने, सुधारने आदि की कला या विद्या। २. इंजीनियर का कार्य, पद या व्यवसाय।

इंजील--स्त्री० [यू०] ईसाइयों या मसीही धर्म का मुख्य ग्रंथ।

इँटकोहरा--पुं० [हिं० ईंट+ओहरा (प्रत्य०)] १. ईंट का टूटा-फूटा टुकड़ा। २. ईंट की गिट्टी।

इँटाई†--स्त्री० [?] एक तरह का पंडुक (पक्षी)।

इँडहर--पुं० [?] उर्द की दाल से तैयार किया हुआ एक प्रकार का सालन।

इँडुआ--पुं० [सं० कुंडल] १. सिरपर रखी जानेवाली कपड़े की वनी हुई वह छोटी गोल गद्दी जो सिर पर भारी वोझ उठाने के समय उसके नीचे रख ली जाती है। इगेंडुरी। विड़ई।

इँडुरी—स्त्री० हिं० 'इँडुआ' का स्त्री, अल्पा० रूप।
इँडुवा*†—पुं०=इँडुआ।
इंतकाम—पुं० [अ०इंतिक़ाम] किसी के किये हुए अपकार का चुकाया-जानेवाला बदला।
इंतकाल—पुं० [अ० इंतिक़ाल] १. कोई चीज एक स्थान से दूसरे स्थान-पर ले जाना।२. किसी जायदाद या संपत्ति का एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में जाना। ३. इस लोक से निकलकर दूसरे लोक में जाना अर्थात् मृत्यु या मौत।
इंतखाव—पुं० [अ० इंतिखाव] १. चुनाव। निर्वाचन। २. पसंद। ३. पटवारी के खाते के अनुसार प्रस्तुत की हुई वह नकल या प्रतिलिपि जिसमें यह लिखा रहता है कि किस सन् में किस खेत का मालिक कौन था और उसे किसने जोता-बोया था।
इंतजाम—पुं० [अ०इंतिजाम] [वि० इंतजामी] प्रबंध। व्यवस्था।
इंतजार—पुं० [अ० इंतिज़ार] किसी का रास्ता देखना या वाट जोहना। प्रतीक्षा।
इंतहा—पुं० [अ० इंतिहा] १. अंत। समाप्ति। २. अंतिम सीमा। पराकाष्ठा।
इंदंवर—पुं० [सं० इन्द-अंवर, कर्म० स०] =इंदीवर।
इंद—पुं० १=इंदु। २. =इंद्र।
इंदर*—पुं०=इंद्र।
इंदराज—पुं० [फा०इंदिराज] लेखे, वही, पंजी आदि में लिखा या चढ़ाया जाना। निविष्टि। लेखी। (एन्ट्री)
इंदव—पुं० [सं० ऐन्दन] मत्तगयंद छंद का दूसरा नाम।
*पुं०=इंदु।
इंदव-भाल*—पुं० [हिं० इंदव+सं० भाल] मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले, शिवजी।
इँदारा—पुं०=इनारा (कुआँ)।
इँदायन—पुं०=इंद्रायन।
इंदिरा—स्त्री० [सं०√इन्द् (अत्यन्त ऐश्वर्य होना)+किरच्—टाप्] १. विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी। २. कांति। शोभा। उदा०—सती विधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप।—तुलसी। ३. कुआर महीने की कृष्णपक्ष की एकादशी।
इंदिरा-रमण—पुं० [प० त०] विष्णु।
इंदिरालय—पुं० [इंदिरा-आलय, प० त०] १. लक्ष्मी का निवास-स्थान। २. नीलकमल।
इंदी-वर—पुं० [सं० इंदी√इन्द्+इनि—ङीप्, इंदी-वर, प० त०] १. नील कमल। २. कमल।
इंदु—पुं० [सं०√उन्द् (आर्द्र करना)+उ, इत्व] १. चंद्रमा। २. कपूर। ३. एक की संख्या।
*पुं०=इंद्र।
इँदुआ—पुं०=इँडुआ।
इंदुक—पुं० [सं० इन्दु+कन्] अश्मंतक नाम का एक वृक्ष।
इंदु-कमल—पुं० [उपमि० स०] सफेद कमल।
इंदु-कर—पुं० [प० त०] चंद्रमा की किरण।
इंदु-कला—स्त्री० [पं० त०] १. चंद्रमा की कला। २. चन्द्रमाकी किरन। ३. गुडूची। गुर्च। ४. सोमलता।
इंदुजा—स्त्री० [सं० इन्दु√जन् (उत्पन्न होना)+ड—टाप्] नर्मदा नदी।
इंदु-पर्णी—स्त्री० [व० स०, ङीप्] पँजीरी नामक पौधा।
इंदु-भूषण—पुं० [व० स०] शिव।
इंदु-मणि—पुं० [मध्य० स०] चंद्रकान्त मणि।
इंदु-मती—स्त्री० [सं० इन्दु+मतुप्—ङीप्] १. पूर्णिमा। २. राजा अज की पत्नी।
इंदु-मौलि—पुं० [व० स०] शिव।
इंदुर—पुं० [सं० इन्दूर] चूहा।
इंदु-रत्न—पुं० [उपमि० स०] मोती।
इंदु-रेखा—स्त्री० [प० त०] १. चंद्रकला। २. गुडुची। ३. सोमलता।
इंदुलतलव—अ० [अ०] माँगने पर।
पद [अ०] एक अरबी पद जिसका प्रयोग ऋणपत्रों आदि में यह सूचित करने के लिए होता है कि ऋण (लिया हुआ धन) जब माँगा जायगा तभी लौटा दिया जायगा।
इंदु-लेखा—स्त्री०=इंदु-रेखा।
इंदु-लौह—पुं० [प० त०] चाँदी।
इंदुव—पुं० [सं० इंदीवर] नील कमल।
इंदु-वदना—स्त्री० [व० स०टाप्] १. एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भ, ज, स, न, ग ग होता है।
वि० चंद्रमुखी।
इंदु-वधू—स्त्री०=इंद्रवधू।
इंदु-वल्ली—स्त्री० [प० त०] सोम लता।
इंदु-वार—पुं० [प० त०] कुंडली के तीसरे, छठे या वारहवें घर में क्रूर ग्रहों का एक योग। (ज्यो०)
इंदु-शेखर—पुं० [व० स०] शिव।
इंदू—पुं० १=इंदु। २. =इंद्र।
इंदूर—पुं० [सं०=उन्दूर, पृषो० सिद्धि]=इंदुर
इंद्र—वि० [सं०√इन्द्+र] १. ऐश्वर्य या विभूतिवाला। वैभवशाली। २. प्रधान, मुख्य या श्रेष्ठ।
पुं० १. एक प्रसिद्ध वैदिक देवता जो वहुत तेजस्वी और शक्तिशाली तथा अंतरिक्ष या आकाश, पूर्व दिशा, ज्येष्ठा नक्षत्र और वर्षा के स्वामी माने गये हैं। परवर्त्ती काल में ये देवताओं और स्वर्ग के राजा भी मान लिये गये थे।
विशेष—कहते हैं कि देवताओं के शिल्पी त्वष्टा ने इन्हें 'वज्र' नाम का सोने का एक अस्त्र वनाकर दिया था जिसका प्रहार कभी व्यर्थ नहीं जाता था और जिससे इन्होंने वड़े-वड़े राक्षसों को परास्त किया था। विद्युल्लता भी इनका एक दूसरा शस्त्र कहा गया है। वैदिक काल में ही गंधर्वों के साथ इनका घनिष्ट संबंध माना जाता था, जिससे आगे चलकर पौराणिक युग में ये वहुत कामुक और विषय-भोगी माने जाने लगे थे और स्वर्ग के राजा माने जाने के कारण इनके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया था कि किसी को तप करते देखकर ये समझने लगते थे कि कहीं यह मेरा सिंहासन तो नहीं छीनना चाहता। श्रीकृष्ण से इनकी स्पर्धा प्रसिद्ध है, क्योंकि व्रज के जो गोप पहले इंद्र-याग किया करते थे, उन्हें कृष्ण ने ऐसा करने से रोका था। इसीलिए व्रज पर इंद्र का कोप हुआ था। पर वहाँ भी इन्हें कृष्ण से परास्त होना पड़ा था।
मुहा०—इंद्र का आसन डोलना या हिलना=इंद्र (अथवा किसी वहुत

वैभवशाली या शक्ति संपन्न व्यक्ति) के मन में यह आशंका या भय होना कि कहीं मेरा अधिकार या प्रभुत्व छिन तो नहीं जायगा।

पद--इंद्र का अखाड़ा=(क) इंद्र की राज-सभा जहाँ सदा अप्सराओं का जमघट रहता और नाच-रंग होता था। (ख) नाच-रंग का ऐसा स्थल जहाँ बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ एकत्र हों। **इंद्र की परी**=बहुत ही सुन्दरी स्त्री।

२. अधिपति। राजा। ३. बादल। मेघ। ४. बिजली। विद्युत्। ५. ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र माने गये हैं। ६. बारह आदित्यों में से एक आदित्य का नाम। ७ एक प्राचीन विद्वान् जो व्याकरण के पहले आचार्य माने गये हैं। ८. ज्योतिष में एक योग। ९. छप्पय नामक छंद का एक भेद। १०. रात। रात्रि। ११. दाहिनी आँख की पुतली। १२. एक प्रकार का वानस्पतिक विष। १३. कुटज नामका पौधा। १४. चौदह की संख्या।

इंद्रक--वि० इंद्र संबंधी।

पुं० [सं० ब० स०] सभा-भवन।

इंद्र-कील--पुं० [ष० त०] १. हिमालय पर्वत की एक चोटी जहाँ अर्जुन ने इंद्र से नये शस्त्रास्त्र प्राप्त करने के लिए तपस्या की थी। २. कुछ लोगों के मत से मंदर या मंदार पर्वत का दूसरा नाम।

इंद्र-कृष्ट--वि० [तृ० त०] (ऐसा प्रदेश) जिसमें खेती-बारी मुख्यतः वर्षा के सहारे होती हो।

इंद्र-गिरि--पुं० [मध्य० स०] महेन्द्र पर्वत।

इंद्र-गोप--पुं० [ब०-स०] वीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्र-चाप--पुं० [ष० त०] इंद्र धनुष।

इंद्र-जव--पुं०=इंद्र जौ।

इंद्र-जाल--पुं० [ष० त०] [वि० ऐंद्रजालिक] १. कोई ऐसा अद्भुत, आकर्षक तथा भ्रम में डालनेवाला काम जो वस्तुतः घटित न होने पर किसी दैवी शक्ति की सहायता से होता हुआ जान पड़े। २. जादूगरी के खेल-तमाशे। ३. अर्जुन का एक अस्त्र। ४. माया और मोह। उदा०--सो नर इंद्र जाल नहिं भूला।--तुलसी।

इंद्रजालिक--वि०=ऐंद्रजालिक।

इंद्रजाली (लिन्)--पुं० [सं० इंद्रजाल+इनि] इंद्रजाल संबंधी खेल तमाशे दिखलानेवाला व्यक्ति। उदा०--इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा।--तुलसी।

इंद्रजित्--पुं० [सं० इंद्र√जि (जीतना)+क्विप्] रावण का पुत्र मेघनाद जिसने इंद्र को युद्ध में जीता था।

इंद्रजीत--पुं०=इंद्रजित्।

इंद्र-जौ--पुं० [इंद्र यव] कुटज या कुरैया नाम का पौधा जिसके बीज दवा के काम आते हैं।

इंद्र-दमन--पुं० [ष० त०] १. इंद्र को जीतनेवाला। मेघनाद। २. बाणासुर के एक पुत्र का नाम। ३. नदियों आदि की बहुत अधिक बाढ़ का सूचक एक पर्व जो उस समय माना जाता है, जब पानी बढता-बढ़ता किसी निश्चित पीपल या बड़ की किसी शाखा अथवा किसी कुंड या ताल तक पहुँच जाता है।

इंद्र धनुष--पुं० [सं० इन्द्रधनुस्] प्रायः वर्षा ऋतु में आकाश में दिखाई पड़नेवाला सात रंगों का धनुष जैसा अर्द्धवृत्त जो सूर्य की किरणों के परावर्तित होने से बनता है। (रेनबो)

इंद्रधनुषी--वि० [हि० इंद्रधनुष+ई (प्रत्य०)] १. इन्द्रधनुष-संबंधी। २. इंद्र धनुष की तरह सात रंगोंवाला।

इंद्रधानी*--स्त्री०=इंद्रपुरी।

इंद्र-ध्वज--पुं० [ष० त०] १. इंद्र की ध्वजा या पताका। २. प्राचीन भारत का एक उत्सव जिसमें मुख्यतः नृत्य और गान होते थे। ३. वर्षा और खेती की वृद्धि के लिए भाद्र शुक्ल द्वादशी को मनाया जानेवाला एक पूजनोत्सव जिसमें राजा लोग इंद्र को ध्वजा चढ़ाते थे।

इंद्र-नील--पुं० [उपमि० स०] नीलम (रत्न)।

इंद्र-पुरी--स्त्री० [ष० त०] १. इंद्र की नगरी, अमरावती। २. बहुत सजा हुआ और सुन्दर स्थान।

इंद्र-प्रस्थ--पुं० [ष० त०] पांडवों की वह राजधानी जो उन्होंने खांडव वन जलाकर बनाई और बसाई थी। (आधुनिक दिल्ली के पास)

इंद्र-मंडल--पुं० [ष० त०] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रों का समूह।

इंद्र-यव--पुं० [ष० त०] कुटज या कुरैया नाम का पौधा।

इंद्र-लोक--पुं० [ष० त०] स्वर्ग।

इंद्र-वंशा--पुं० [उपमि० स०] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और एक रगण होते हैं।

इंद्र-वज्रा--स्त्री० [उपमि० स०] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं।

इंद्र-वधू--स्त्री० [ष० त०] वीर-बहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्र-वारुणी--स्त्री० [सं० इंद्र-वरुण, द्व० स०+अण्-ङीप्] इंद्रायन नाम का पौधा।

इंद्र-व्रत--पुं० [ब० स०] बहुत ही सत्यनिष्ठ और प्रजापालक (राजा)।

इंद्र-सभा--स्त्री० [ष० त०] १. स्वर्ग में इंद्र का दरबार, जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वहाँ परियाँ नाचती हैं। २. बहुत ही सुन्दर, सजा हुआ और भोग-विलास की सारी सामग्री से युक्त कोई भवन या स्थान।

इंद्र-सावर्णि--पुं० [कर्म० स०] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्र-सूनु--पु० [ष० त०] १. जयंत। २. अर्जुन। ३. बालि।

इंद्रा--स्त्री० [सं० इंद्र+टाप्] १. इंद्र की पत्नी, शची। २. इंद्रायन नामक पौधा।

इंद्राणी--स्त्री० [सं० इंद्र+ङीप्, आनुक्] १. इंद्र की पत्नी, शची। २. बड़ी इलायची। ३. इंद्रायन नामक पौधा। ४. दुर्गा देवी। ५. बाईं आँख की पुतली।

इंद्रायन--स्त्री० [सं० इन्द्राणी] तरबूज की तरह की एक लता जिसके फल देखने में बहुत सुन्दर पर अंदर से बहुत कड़ुए और विषाक्त होते हैं।

इंद्रायुध--पुं० [इंद्र-आयुध, ष० त०] १. इंद्र का अस्त्र, वज्र। २. इंद्र-धनुष।

इंद्रासनपुरी†--स्त्री०=अमरावती।

इंद्रिय--स्त्री० [सं० इन्द्र+घ-इय] १. शरीर के वे पांच अंग (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) जिनके द्वारा प्राणियों को बाह्य जगत या उसकी वस्तुओं आदि का ज्ञान होता है। २. उक्त के आधार पर पाँच की संख्या। ३. योनि और लिंग। जननेन्द्रिय। ४. वीर्य।

इंद्रियजित्--पुं० [सं० इंद्रिय√जि (जीतना)+क्विप्] वह, जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो अर्थात् उन्हें वश में कर लिया हो।

इंद्रिय-निग्रह--पुं० [ष० त०] इंद्रियों को इस प्रकार वश में करना कि वे मन को चंचल न कर सकें।

इंद्रिय-लोलुप--वि० [ष० त०] जिसे इंद्रियों के सुख-भोग की बहुत अधिक लालसा हो।

इंद्रियागोचर--वि० [इंद्रिय-अगोचर, ष० त०]=इंद्रियातीत।

इंद्रियातीत--वि० [इंद्रिय-अतीत, द्वि० त०] (पदार्थ या विषय) जो इंद्रियों की पकड़ या पहुँच में न आ सके। जिसे इंद्रियों से जाना न जा सके। जैसे--ईश्वर या ब्रह्म।

इंद्रियायतन--पुं० [इंद्रिय-आयतन, ष० त०] १. वह जिसमें इंद्रियाँ स्थित हों अर्थात् शरीर। २. वेदांत के मत से, सूक्ष्म शरीर।

इंद्रियाराम--वि० [इंद्रिय--आराम, ब० स०] विषय भोग में फँसा हुआ। विषयासक्त।

इंद्रियारामी*--वि०=इंद्रियाराम।

इंद्रियार्थ--पुं० [इंद्रिय-अर्थ ष० त०] वह जिसे इंद्रियाँ ग्रहण करें। इंद्रियों के भोग का विषय। जैसे--गंध, रस, रूप, शब्द तथा स्पर्श।

इंद्रियार्थवाद--पुं० [ष० त०] १. इंद्रियों के सुख भोगने की वृत्ति। २. वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसके अनुसार यह माना जाता है कि हमें सब प्रकार के ज्ञान इंद्रियों की अनुभूति से ही प्राप्त होते हैं। (सेन्सुअलिज्म)

इंद्रियासंग--पुं० [इंद्रिय-असंग, स० त०] अनासक्ति। वैराग्य।

इंद्री*--स्त्री०=इंद्रिय।

इंद्री-जुलाब--पुं० [सं० इन्द्रिय+फा० जुलाब) १. वे ओषधियाँ जो पेशाब अधिक कराती हैं। मूत्रवाही ओषधियाँ। २. उक्त प्रकार की दवा खाने से बार-बार पेशाब होना।

इंद्रोपल--स्त्री० [इंद्र-उपल, मध्य० स०] नीले रंग का हीरा।

इंधन--पुं० [सं०√इन्ध् (चमकना)+ल्युट्-अन] १. प्रज्वलित करना। जलाना। २. वह चीज जो जलाने के काम आती हो। ईंधन। जलावन।

इंबिली--स्त्री०=इमली।

इंसाफ--पुं० [अ०] विवादात्मक विषय में होनेवाला उचित निर्णय। न्याय।

इंस्पेक्टर--पुं० [अं०] निरीक्षण करनेवाला। निरीक्षक।

इउ--सर्व०=यह।

इकंक*--अव्य० [हिं० एक+अंक] निश्चित रूप से। निश्चय ही।

इकंग*--वि० [सं० एकाङ्ग] एक अंगवाला। एकांगी।
पुं० [सं० एकाङ्ग] शिव।

इकंत-- अव्य० [सं० एकांत] १. एकांत या निराले में। २. अच्छी तरह ध्यान देकर या टक लगाकर। एक-टक होकर। उदा०--मदन-लाज बस तिय-नयन देखत बनत इकंत।--पद्माकर।
†पुं०=एकांत।

इक*--वि०=एक।

इकइस*--वि०=इक्कीस।

इकटा--वि० [हिं० एक+टा प्रत्य०] [स्त्री० इकटी] १. पहला। २. इकहरा। उदा०--इकुटी बिकुटी त्रिकुटी संधि।--गोरखनाथ।

इकट्ठा--वि० [सं० एकस्थ, प्रा० एकट्ठो] [स्त्री० इकट्ठी] एक स्थान पर जमा किया या रखा हुआ। एकत्र किया हुआ। जैसे--घर में कूड़ा-करकट इकट्ठा करना।
अव्य० एक बार में। एक साथ। जैसे--सारा ऋण इकट्ठा चुकाना।

इकतर*--वि०=एकत्र।

इकतरा--पुं० [सं० एकांतर] एक एक दिन के अंतर पर आनेवाला ज्वर। अँतरिया। अँतरा।

इकता*--स्त्री०=एकता।

इकताई*--स्त्री० [सं० एकता] १. एकता। २. एकांत-प्रियता।

इकतान*--वि० [हिं० एक+तान] १. एक-सा। एक-रस। २. शांत और स्थिर।

इकतार--वि० [हिं० +तार] एक-रस। एक-समान। उदा०--हरिके केसन सों सटी लगतर इकतार।--व्यास।
अव्य० निरंतर। लगातार।

इकतारा--पुं० [हिं० एक+तार] [स्त्री० अल्पा० इकतारी] १. सितार की तरह का एक बाजा जिसमें एक ही तार रहता है। २. हाथ से बुना जानेवाला एक प्रकार का कपड़ा।

इकताला--पुं० [हिं० एक+ताल] संगीत में एक प्रकार का ताल।

इकतीस--वि० [सं० एकत्रिंशत्, पा० एकतीसा] जो गिनती में तीस और एक हो।
पुं० इकतीस का सूचक अंक। ३१।

इकत्र--अव्य०=एकत्र।

इकन्नी--स्त्री०=एकन्नी।

इकबारगी--अव्य०=एकबारगी।

इकबाल--पुं० [अ०] १. स्वीकार करने की क्रिया या भाव। कबूल करना। २. प्रताप। ३. भाग्य। ४. धन-संपत्ति। वैभव।

इकरदन--पुं०=एकरदन।

इकराम--पुं० [अ० करम (अनुग्रह) का बहु०] अनेक प्रकार के अनुग्रह या कृपाएं, विशेषत: प्रतिष्ठा या सम्मान की वृद्धि करनेवाले अनुग्रह।

इकरार--पुं० [अ०] १. किसी को कोई काम करने या किसी बात का वचन देना। २. इस प्रकार दिया हुआ वचन। प्रतिज्ञा। वादा। ३. कोई बात मान लेना। स्वीकृति।

इकरारनामा--पुं० [अ० इकरार+फा० नामः] अनुबंध-पत्र।

इकरारी--वि० [अं०] १. इकरार संबंधी। इकरार का। २. इकरार करने (मान लेने या वचन देने) वाला।

इकलंत*--वि०=अकेला।

इकला--वि०=अकेला।

इकलाई--स्त्री० [हिं० एक+लाई या लोई=परत] १. एक पाट का महीन और बढ़िया दुपट्टा। २. ऐसी चीज जो जोड़ी या जोड़े के रूप में नहीं, बल्कि अकेली या एक एक करके बनती और बिकती हो। जैसे--इकलाई की धोती या साड़ी। अकेलापन।

इकलोई--वि० [हिं० एक+लोई=पर्त] एक ही लोई (चादर या परत) से बना हुआ। जैसे--इकलोई कड़ाही।

इकलौता--वि० [हिं० इकला+ऊत (पूत)] [स्त्री० इकलौती] (वह लड़का) जो अपने माँ-बाप का एक ही हो; अर्थात् जिसके और कोई भाई या बहन न हो।

इकल्ला--वि० [हिं० एक+ला (प्रत्य०)] १. अकेला। २. इकहरा।

इकवाई--स्त्री० [हिं० एक+वाहु] एक तरह की निहाई।

स्त्री० [?] जो गिनती में तीन हो। तीन। (दलाल)

इकसा—स्त्री० [अ० अक्स] १. ईर्ष्या या द्वेष। २. लालसा। उदा०—मन री मन रै मांहि, अकवर रै रहगी इकस।—दुरसाजी।

इकसठ—वि० [सं० इकषष्टि, पा० एकसट्ठि] जो गिनती में साठ और एक हो।

पु० इकसठ का सूचक अंक। ६१।

इकसर*—वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला।

इकसरि—वि० स्त्री०=अक्सीर।

इकसूत*—वि० [सं० एकश्रुत=लगातार] एक में मिला हुआ। एक साथ।

क्रि० वि० निरंतर। लगातार।

इकहरा—वि० [हिं० एक+धरा (हरा) प्रत्य०] [स्त्री० इकहरी] एक ही परतवाला। एकहरा।

इकहाई*—क्रि० वि० [हिं० एक+हाई (प्रत्य०)] १. एक ही बार में। एक दम। एक बारगी। २. तत्काल। तुरंत। ३. अचानक। सहसा।

इकहाऊ*—अव्य०=इकहाई।

इकांत*—वि०=एकांत।

इकाई—स्त्री० [हिं० एक+आई (प्रत्य०)] १. गिनती या संख्या में एक होने की अवस्था या भाव। २. गणित में, पहला और सब से छोटा पूर्णांक जो 'एक' है। ३. संख्याएँ लिखने के क्रम में वह अंतिम स्थान जहाँ ९ या उससे कम के सूचक अंक लिखे जाते हैं। जैसे—यदि हम लिखें ५७२ तो इसमें का ५ सैकड़ेवाले स्थान पर, ७ दहाईवाले स्थान पर और २ इकाई-वाले स्थान पर लिखा हुआ कहलावेगा। ४. किसी पूरे मान, वर्ग या समूह का कोई ऐसा अंग या भाग जो विश्लेषण के काम के लिए किसी प्रकार अलग और स्वतंत्र माना या समझा जाता हो। जैसे—(क) हमारा समाज वास्तव में बहुत-से व्यक्तियों की इकाइयों से बना है। (ख) पैर, मुँह, हाथ अथवा खून, चमड़ा, हड्डी आदि हमारे शरीर की इकाइयाँ हैं। ५. कोई ऐसी मात्रा या मान जो किसी प्रकार की नाप-जोख के लिए मानक मान लिया गया हो और जिसका गुणा या विभाग करके उस वर्ग की शेष सभी मात्राएँ या मान सूचित अथवा स्थिर किये जाते हों। (यूनिट, उक्त सभी अर्थों के लिए) जैसे—यदि कोई कपड़ा १० गिरह लंबा हो तो 'गिरह' उसकी इकाई होगी और यदि कोई दीवार २० गज लंबी हो तो 'गज' उसकी इकाई कहलावेगा। अथवा जब हम कहेंगे—पचास अठन्नियाँ (या इकन्नियाँ) तब 'अठन्नी' (या इकन्नी) इकाई होगी।

इकार—पुं० [सं० इ+कार] देवनागरी वर्णमाला का तीसरा स्वर 'इ'।

इकारांत—वि० [इकार-अंत, ब० स०] (शब्द) जिसके अंत में 'इ' हो।

इकेला*—वि०=अकेला।

इकैठ*—वि० [सं० एकस्थ, पा० एकट्ठ] इकट्ठा।

इकोतर*—वि०=एकोत्तर।

वि० [सं० एकोत्तर] (नियत संख्या से) एक अधिक। जैसे—इकोतर सौ।

इकोतर सौ—पुं० [सं० एकोत्तर शत] वह जो गिनती में एक सौ से एक अधिक हो।

वि० एक सौ एक।

इकौंज—स्त्री० [सं० एक (इक)+वन्ध्या (हिं० बाँझ) अथवा एक+जा] वह स्त्री जो एक बार संतान प्रसव करने के उपरांत फिर और संतान का प्रसव न करे। काक वंध्या।

इकौंसा*—वि० [हिं० एक+वास] [स्त्री० इकौंसी] १. जहाँ कोई न हो। एकांत। २. जिसके साथ कोई न हो। अकेला। ३. अलग। पृथक्। उदा०—ह्वै रहे इकौंसे हौं न जानौं कौन हेत है।—सेनापति।

इकौना—पुं० [हिं० एक+वनना] बिना चुना या छाँटा हुआ अन्न।

*वि० [हिं० एक] [स्त्री० इकौनी] अनुपम। बेजोड़।

इकौसा*—वि०=इकौंसा।

इक्कट—पुं० [सं०√इ+क्विप्=इत्-कट (ब० स०) पृषो० त को क] सरकंडे की जाति की एक वनस्पति जिससे चटाइयाँ आदि बनती हैं।

इक्कबाल—पुं० [अ० इकबाल] ताजक ज्योतिष का एक ग्रहयोग जो प्रताप और वैभव बढ़ानेवाला कहा गया है।

इक्का—वि० [सं० एक] १. अकेला।

पद—इक्का-दुक्का=जो या तो अकेला हो या जिसके साथ कोई एक और हो। अकेला-दुकेला।

२. अनुपम। बे-जोड़।

पुं० १. एक प्रकार की छोटी सवारी जिसमें केवल एक घोड़ा जोता जाता है। २. ताश का वह पत्ता जिसमें केवल एक बूटी बनी होती है। ३. युद्ध में अकेला लड़नेवाला योद्धा। ४. ऐसा पशु जो अपने झुंड से छूटकर अलग हो गया या अकेला पड़ गया हो। ५. कान में पहनने की एक प्रकार की बाली।

इक्कावन—वि०, पुं०=इक्यावन।

इक्कासी—वि०, पुं०=इक्यासी।

इक्की—स्त्री० [सं० एक+ई (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिसमें केवल एक बूटी बनी हो। इक्का।

इक्कीस—वि० [सं० एकविंशत्, प्रा० एक्कवीस] १. जो गिनती में बीस और एक हो। २. (किसी की अपेक्षा) अधिक अच्छा। श्रेष्ठतर। उदा०—तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि इकीस सबै।—तुलसी।

पुं० बीस और एक की सूचक संख्या। २१।

इक्षु—पुं० [सं०√इष् (गति)+क्सु] [भाव० इक्षुता] १. ईख। गन्ना। २. कोकिला वृक्ष। ३. इच्छा।

इक्षु-कांड—पुं० [ष० त०] १. गन्ने का डंठल। २. काँस। ३. मूँज। ४. राम शर।

इक्षु-गंध—पुं० [ब० स०] १. छोटा गोखरू। २. काँस।

इक्षुगंधा—स्त्री० [सं० इक्षुगंध+टाप्] १. गोखरू। २. तालमखाना। ३. काँस। ४. सफेद विदारी-कंद। ५. सफेद-भूमि-कुष्मांड।

इक्षुज—वि० [सं० इक्षु√जन् (प्रादुर्भाव)+ड] (पदार्थ) जो गन्ने के रस से बना हो।

इक्षु-दंड—पुं० [ष० त०] १. ईख का डंठल। २. ईख। ऊख।

इक्षु-पाक—पुं० [ष० त०] गुड़ जो ईख का रस पकाने से बनता है।

इक्षु-प्रमेह—पुं० [मध्य० स०] मधुमेह। (दे०)

इक्षुमती—स्त्री० [स० इक्षु+मतुप्-ङीप्] (फर्रुखाबाद के पास की) ईखन नदी का पुराना नाम।

इक्षुमालिनी—स्त्री० [सं० इक्षुमाला+इनि-ङीप्] इंद्र पर्वत से निकलने-वाली एक नदी। (पुराण)

इटालियन--वि० [इटली देश] इटली नामक देश से संबंध रखने या उसमें होनेवाला।
पुं० १. इटली देश का नागरिक। २. एक प्रकार का चमकीला कपड़ा जो पहले-पहल इटली से आया था।
स्त्री० इटली देश की भाषा।

इठलाना--अ० [हिं० ऐंठ+लाना (प्रत्य०)] १. अभिमान के कारण ऐंठ, ठसक या बड़प्पन दिखलाना। अपने आपको कुछ विशिष्ट या श्रेष्ठ समझकर कुछ नखरे से ऐसी अंग-भंगी दिखलाना जिससे औरों का ध्यान आकृष्ट हो। जैसे—इठलाकर बातें करना, इठलाते हुए चलना आदि। २. किसी को छकाने, छेड़ने या तंग करने के लिए ऐसी चेष्टा या व्यवहार करना जिसमें औरों के प्रति कुछ अवज्ञा, अविनय या उद्दंडता का भी कुछ भाव मिला हो। खेलवाड़, मनोविनोद आदि के लिए ऐंठ या ठसक दिखाना। जैसे—(क) बच्चों का इठलाना भी कभी-कभी भला लगता है। (ख) बहुत इठलाओ मत, साफ-साफ बतलाओ कि वहाँ क्या हुआ था।
विशेष--'इतराना' से इसमें यह अंतर है कि 'इतराना' तो अभिमान से युक्त कुछ तुच्छतापूर्ण व्यवहार का सूचक है; पर 'इठलाना' मुख्यतः आत्म-प्रदर्शन या आत्म-प्रस्थापन के लिए होता है।
३. दे० 'इतराना'।
†अ० [?] अँगड़ाई लेना। (क्व०)

इठलाहट--स्त्री० [हिं० इठलाना] इठलाने की क्रिया या भाव।

इठलाहरा†--वि० [हिं० इठलाना] [स्त्री० इठलाहरी] इठलाने या इतरानेवाला।

इठाई--*स्त्री०=ईठि।

इड़ा--स्त्री० [सं०√इल् (प्रेरित करना)+क—टाप्] १. धरती। पृथ्वी। २. गाय। गौ। ३. वाणी। ४. बुद्धि। ५. स्वर्ग। ६. आक्रोश की अधिष्ठात्री देवी। ७. यज्ञ में दी जानेवाली एक विशिष्ट आहुति। ८. यज्ञ की सामग्री। हवि। ९. दुर्गा। १०. पार्वती। ११. वैवस्वत मनु की दूसरी पत्नी। १२. दक्ष की एक कन्या जो कश्यप ऋषि को ब्याही थी। १३. हठयोग में, एक नाड़ी जो पीठ की बाईं ओर से नाक तक मानी गई है। कहते हैं कि बाईं साँस इसी से चलती है और योगियों के लिए इसका साधन भी आवश्यक होता है।

इतः--अव्य० [सं० इदम्+तसिल्] १ इस जगह। यहाँ। २. इस ओर। इधर। ३. इसलिए। अतः।

इतः पर--अव्य० [ष० त०] इसके उपरांत। इसके बाद।

इत--अव्य० [सं० इतः] १. इस जगह। यहाँ। २. इस ओर। इधर। उदा०—इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक।—तुलसी।

इतक़ाद--पुं०=एतकाद।

इतना--वि० [सं० इयत्, व्रज० एता, एतो, पु० हिं० इत्ता, एत्ता+ना प्रत्य०] [स्त्री० इतनी] परिमाण, मात्रा या संख्या सूचित करनेवाला एक सार्वनामिक विशेषण जो मूलतः हिंदी 'इस' का विकारी रूप है और जो प्रसंग के अनुसार नीचे लिखे अर्थ देता है—
१. कहीं, निर्धारित की हुई अथवा प्रस्तुत मात्रा। जैसे—(क) इतना सुनते ही सब लोग उठकर खड़े हो गये। (ख) इतना तुम ले लो; बाकी हमें दे दो। (ग) इतनी पुस्तकें आ चुकी हैं। २. आश्चर्य, क्षोभ आदि के प्रसंगों में परिमाण, मात्रा या स्थिति की घनता, तीव्रता, प्रचुरता या विकटता। जैसे—(क) इतना अंधकार! (ख) इतनी निर्दयता! (ग) इतना वैभव! ३. तो, सा, ही आदि शब्दों से युक्त होने पर परिमाण, मात्रा, संख्या आदि की अल्पता, न्यूनता या सूक्ष्मता। जैसे—(क) इतना तो बतला दो कि वहाँ कौन-कौन लोग आये थे। (ख) इतनी-सी बात पर बिगड़ खड़े होना ठीक नहीं। (ग) मैंने इतना ही कहा था कि आप भी आ जाइयेगा। ४. कुछ अवस्थाओं में उक्त अर्थों में क्रिया-विशेषण की तरह प्रयुक्त। जैसे—(क) वह इतना डर गया था कि उसके मुँह से बात भी नहीं निकलती थी। (ख) इस गरमी में इतनी लंबी यात्रा तो हमसे न हो सकेगी। (ग) इतना मत चिल्लाओ कि दूसरों के काम में हर्ज हो। ५. कुछ अवस्थाओं में विशेष्य के अभाव में संज्ञा की तरह प्रयुक्त और अज्ञात या अनिश्चित परिमाण, मात्रा, राशि आदि का सूचक। जैसे—(क) इतना यथेष्ट है; इतने से हमारा काम चल जायगा। (ख) जब वह कहे कि हम इतना लेंगे, तब तुम कहना कि हम इतना नहीं, इतना देंगे।
मुहा०--**इतने में**=(क) इस बीचवाले समय में। इस अवधि में। इतनी देर में। जैसे—आप स्नान कर लें, इतने में भोजन तैयार हो जायगा। (ख) जब कोई काम या बात हो रही हो, ठीक उसी समय। उसी अवसर पर। जैसे—अभी ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में वह भी आ पहुँचा।

इतनो*†--वि०=इतना।

इतबार--पुं०=एतबार (विश्वास)।

इतमाम*--पु० [अ० एहतमाम=प्रबंध] प्रबंध। व्यवस्था।

इतमीनान--पुं० [अ०] [वि० इतमीनानी] १. किसी व्यक्ति या विषय के संबंध में मन में होनेवाला भरोसा या विश्वास। जैसे—हमारा इतमीनान करा दो तो हम रुपए दे दें। २. मन की शांति और स्थिरता। जैसे—ये बातें इतमीनान के वक्त होंगी।

इतर--वि० [सं० इत√रा (देना)+क] १. उपस्थित या प्रस्तुत से भिन्न। कोई और। अन्य। दूसरा। जैसे—हिंदीभाषियों को छोड़कर इतरभाषा-भाषी ऐसा नहीं करते। २. बाकी बचा हुआ। अवशिष्ट। शेष। ३. बहुत ही साधारण या हलका और इसीलिए तुच्छ अथवा नगण्य। ४. नीच। पतित। उदा०—जनु देत इतर नृप कर विभाग।—तुलसी।
पुं० [अ० इत्र] अतर या इत्र नामक सुगंधित द्रव्य।

इतरदान--पुं०=इत्रदान।

इतराज--पु०=एतराज (आपत्ति)। उदा०—देत कहा नृप काज पर, लेत कहा इतराज।—तुलसी।

इतराना--अ० [सं० इतर=तुच्छ या बहुत ही साधारण] १. किसी गुण, विशेषता, सफलता आदि के बल पर अपना आदर या महत्त्व दिखलाने के लिए ठसक या नखरे से भरा हुआ आचरण या व्यवहार करना। कुछ अभिमानपूर्वक या किसी से कुछ तनकर चोचला करना। उदा०—(क) बड़ो बड़ाई नहिं तजै, छोटो बहु इतराय।—रहीम। (ख) जिमि थोरे धन खल इतराई।—तुलसी। (ग) तू तो इतराति, उत राति बीती जाति है।—कोई कवि। २. दे० 'इठलाना'।

इतराहट*--स्त्री० [हिं० इतराना+आहट (प्रत्य०)] इतराने की क्रिया या भाव।

इतरेतर—अव्य० [इतर-इतर, द्व० स०] एक दूसरे के प्रति। आपस में। परस्पर।।
वि० आपस का। पारस्परिक।

इतरेतर-योग—पुं० [प० त०] १. पारस्परिक संबंध। २. संस्कृत व्याकरण में, द्वंद्व समास का एक भेद जिसमें समस्त पद के दोनों पक्षों या पदों का अलग-अलग विचार होता है। 'समाहार द्वंद्व' का विपर्याय।

इतरेतराभाव—पुं० [इतरेतर-अभाव, प० त०] न्याय में, वह स्थिति जब हर एक (वस्तु या व्यक्ति) के गुणों का दूसरे में अभाव होता है। अन्योन्याभाव। जैसे—गौ और घोड़े में इतरेतरा भाव है; क्योंकि इनमें से हर एक के गुण और धर्म दूसरे में नहीं है।

इतरेतराश्रय—पुं० [इतरेतर-आश्रय, प० त०] न्याय में, वह स्थिति जब ऐसी दो बातें कही जाती हैं जो आपस में एक दूसरी पर आश्रित होतीं हैं और इसी लिए दोनों में से कोई ठीक तरह से सिद्ध नहीं हो सकती। (यह तर्क का एक दोष माना गया है।)

इतरौंहाँ*—वि० [हिं० इतराना+औहा (प्रत्य०)] जो प्रायः इतराता रहता हो। इतराने की प्रवृत्ति रखनेवाला।

इतवरी—स्त्री०=इत्वरी।

इतवार—पुं० [सं० आदित्यवार]=एतवार (रविवार)।

इतस्ततः—अव्य० [इतस्-ततस्, द्व० स०] कुछ इधर और कुछ उधर। कुछ यहाँ, कुछ वहाँ। जैसे—सारी सामग्री इतस्ततः कर दी।

इता—वि०=इतना। उदा०—ओलांडे राजकुल इता।—प्रिथीराज।

इताअत—स्त्री० [अ०] किसी की आज्ञा का पालन करना। हुक्म मानना। आज्ञाकारिता।

इताति*—स्त्री०=इताअत। उदा०—निसि बासर ता कहँ भलो मानै राम इताति।—तुलसी।

इति—अव्य० [सं० इ (गति)+क्तिन्] १. परिमाण, विस्तार आदि का अंत या समाप्ति। खतम या पूरा होना।
स्त्री०=अंत (समाप्ति)।
क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसे। उदा०—इति वदति तुलसीदास संकर सेष मुनि मन रंजनं।—तुलसीदास।
पद—इति-श्री—एक पद जो किसी काम या बात के अंत या समाप्ति का सूचक है।

इति-कर्त्तव्य—पुं० [सुप्सुपा स०] [भाव० इति-कर्त्तव्यता] ऐसा काम जिसे पूरा करना उत्तरदायित्व, विधि-विधान आदि की दृष्टि से परम आवश्यक या कर्त्तव्य माना जाता हो।

इति-कृतं—पद [सुप्सुपा स०] एक पद जो इस भाव का सूचक होता है कि जो कुछ किया जाने को था, वह पूरा या समाप्त कर दिया गया। (क्यू० ई० एफ०)

इति-मात्र—अव्य० [सं० इति+मात्रच्] बस, इतना ही अर्थात् इससे अधिक नहीं।
वि० बहुत थोड़ा।

इति-वृत्त—पुं० [सं० सुप्सुपा स०] १. किसी बात या विषय की अब तक की सारी घटनाओं या बातों का काल-क्रम से किया या लिखा हुआ वर्णन। पूरा विवरण या हाल। (क्रॉनिकल) २. कथा, कहानी आदि के रूप में परंपरागत पुरानी बातों का वर्णन या विवरण। इतिहास।

इति-वृत्तक—पुं० [सं० इतिवृत्त+कन्] वह पत्र जिसपर किसी आदमी या चीज के संबंध में आदि से अब तक की सब बातें काल-क्रम से लिखी हों। २. वह पत्र या लेख जिसमें किसी दुर्वृत्त या दुश्चरित्र व्यक्ति के किये हुए अब तक के अपराधों और उसे मिले हुए दंडों आदि का विवरण लिखा हो। दुर्वृत्त-फलक। (हिस्टरीशीट)

इति-वृत्ती—पुं० [सं० इति-वृत्त से] ऐसा अपराधी या दुश्चरित्र व्यक्ति जिसके अपराधों और भोगे हुए दंडों का लेखा आरक्षी विभाग या राज-कर्मचारी रखते हों। (हिस्टरी-शीटर)

इति-सिद्धं—पद [सं० सुप्सुपा स०] एक पद जो इस भाव का सूचक है कि जो कुछ प्रमाणित या सिद्ध किया जाने को था, वह प्रमाणित या सिद्ध कर दिया गया। (क्यू० ई० डी०)

इतिहास—पुं० [सं० इतिह, द्व० स०, इतिहास, इतिह√आस् (बैठना) +घञ्] १. किसी व्यक्ति, समाज या देश की महत्त्वपूर्ण, विशिष्ट या सार्वजनिक क्षेत्र की घटनाओं, तथ्यों आदि का काल-क्रम से लिखा हुआ विवरण। २. किसी वस्तु या विषय की उत्पत्ति, विकास आदि का काल-क्रम के अनुसार होनेवाला विवेचन। (हिस्टरी, उक्त दोनों अर्थों के लिए)

इतिहासकार—पुं०=इतिहासज्ञ।

इतिहासज्ञ—पुं० [सं० इतिहास√ज्ञा (जानना)+क] वह जो इतिहास का अच्छा ज्ञाता हो। इतिहास-वेत्ता।

इतिहास-वेत्ता—पुं० [प० त०] =इतिहासज्ञ।

इतें—अव्य०=इतने। उदा०—इते घटे घटिहैं कहा जौ न घटै हरि नेह। —तुलसी।

इतेक—वि० [हिं० 'इतना' में का इत+एक] इतना या इतने के लगभग।

इतै*—अव्य०=इधर (इस ओर)।

इतो(ौ)*—वि० [सं० इयत=इतना] इतना।

इत्तफाक—पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] १. आपस में मिलकर एक होने या मिले हुए होने की अवस्था या भाव। एकता। २. मत, विचार आदि के क्षेत्र में होनेवाली एकता। मतैक्य। ३. अचानक या संयोग से उप-स्थित होनेवाला अवसर अथवा ऐसे अवसर पर घटित होनेवाली घटना या बात। संयोग।
पद—इत्तफाक से=संयोग-वश।

इत्तफ़ाकन—अव्य० [अ०] १. इत्तफ़ाक़ या संयोग से। २. अकस्मात्। अचानक।

इत्तफाकिया—वि० [अ०] १. इत्तफाक या संयोग से होनेवाला। संयोग-जन्य। २ आकस्मिक।

इत्तला—स्त्री० [अ० इत्तलाअ] किसी घटना के संबंध में किसी को दी जाने-वाली सूचना। जैसे—(क) थाने में मार-पीट की इत्तला लिखाना। (ख) अधिकारी के पास अपने आने की इत्तला भेजना।

इत्तलानामा—पुं० [अ०+फा०] किसी को भेजा जानेवाला वह पत्र जिसमें कोई इत्तला या सूचना लिखी हो।

इत्तहाद—पुं० [अ०] आपस में होनेवाली एकता या हर तरह का मेल-जोल।

इत्ता—वि०=इतना।

इत्तो—वि०=इतना।

इत्थं--अव्य० [सं० इदम्+थमु, इद् आदेश] इस तरह से। इस प्रकार। यों।

इत्थंभूत--वि० [सं० इत्थम्√भू (होना)+क्त] इस प्रकार का। ऐसा।

अव्य० ऐसी अवस्था में। ऐसा होने पर।

इत्थमेव--वि० [इत्थम्-एव, द्व० स०] इसी जैसा।

अव्य० इसी प्रकार से। इसी तरह।

इत्थें--अव्य०=यहाँ।

इत्यादि--पद [सं० इति-आदि, व० स०] एक पद जिसका अर्थ है--'जो चीजें या वातें अभी कही गई है, वे आदि में हैं।' और जिसका आशय है--इसी प्रकार की और चीजें या वातें भी आगे समझ लें। इसका प्रयोग अव्यय के रूप में यह सूचित करने के लिए होता है कि इस वर्ग की और चीजें या वातें भी हमारे कथन में सम्मिलित हैं या इसके अंतर्गत समझी जानी चाहिएँ। जैसे--(क) घोड़े, हाथी इत्यादि अर्थात् ऊँट, वकरी, वैल या ऐसे ही और पशु भी। (ख) कपड़े, गहने इत्यादि अर्थात् घर के वरतन और नित्य के व्यवहार की दूसरी चीजे भी।

इत्यादिक--पद [सं० व० स० कप्]=इत्यादि।

इत्र--पुं० [अ०] विशिष्ट प्रक्रिया से निकाला हुआ फूलों का सुगंधित सार या सत्त्व। अतर। इतर।

इत्रदान--पुं० [अ०+फा०] १. इत्र रखने का डिव्वा या पात्र। २. वह तश्तरी जिसमें इत्र रखकर लोगों के सामने ले जाते हैं।

इत्रफरोश--पुं० [अ०+फा०] [भाव० इत्रफरोशी] इतर वेचने-वाला व्यक्ति। अत्तार। गंधी।

इत्रसाज--पुं० [अ०+फा०] [भाव० इत्रसाजी] इतर वनाने-वाला व्यक्ति। गंधी।

इत्रीफल--पुं० [सं० त्रिफला का अ० रूप] एक औषध जो हड़, वहेड़े और आँवले को शहद में मिलाकर तैयार की जाती है।

इत्वर--वि० [सं०√इ (गति)+क्वरप्] १. तुच्छ प्रकृति का। कमीना। २. निर्दय। निष्ठुर।

पुं० १. नपुंसक। नामर्द। २. पथिक। मुसाफिर।

इत्वरी--स्त्री० [सं० इत्वर+ङीप्] चरित्रहीन स्त्री। कुलटा।

इदम्--सर्व० [सं०√इन्द् (परम ऐश्वर्य)+कमिन्] यह।

इदमित्थं--पद [इदम्-इत्थम्, द्व० स०] १. यह ऐसा ही है। २. वस, यही इतना और ठीक है।

इदा-वत्सर--पुं० [मघ्य० स०] १. ज्योतिष में ६० संवत्सरों के वारह समान विभागों में से प्रत्येक। २. पाँच-पाँच वर्षो के युग का प्रत्येक अंतिम वर्ष।

इद्दत--स्त्री० [अ०] मुसलमानों में पति की मृत्यु के वाद के ४० दिनों का वर्जित समय जिसमें विधवा स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती।

इधर--अव्य० [हिं० इत् या इह में का इ+धर (प्रत्य०) मि० अं० हिदर] १. दिशा के विचार से, जिस ओर वक्ता हो, उस ओर। इस जगह की की ओर। इस तरफ। जैसे--इधर आओ। २. विस्तार के विचार से उस स्थान पर और उसके आस-पास जहाँ वक्ता हो या रहता हो। आस-पास या पास-पड़ोस में। जैसे-इधर (हमारे यहाँ) तो ऐसा नहीं होता।

मुहा०--(चीज या चीजें) इधर-उधर करना=अस्त-व्यस्त, उलट-पुलट या तितर-वितर करना। जैसे--जव तुम अपनी चीज ढूँढ़ने लगते हो, तव कमरे (या घर) भर की चीजें इधर-उधर कर देते हो। **इधर-उधर की वातें करना या हाँकना**=अनावश्यक, महत्त्वहीन या व्यर्थ की वातें करना। **इधर-उधर में रहना**=कुछ काम न करके व्यर्थ समय नष्ट करना। जैसे--तुम कुछ पढ़ते-लिखते तो हो नहीं, दिन भर इधर-उधर में रहते हो। **(किसी वस्तु या व्यक्ति का) इधर-उधर हो** जाना=ऐसी अवस्था में होना कि पता न चले। अदृश्य या गुम हो जाना। जैसे--उस हो-हल्ले में कपड़ा (गहना या चोर) भी कही इधर-उधर हो गया।

पद--इधर-उधर का=(क) अज्ञात या अनिर्दिष्ट स्थान या स्थानो का और फलतः कम महत्त्व का या साधारण। जैसे--उनका आधा ग्रंथ तो वस इधर-उधर की वातों से ही भरा है। (ख) अनुपयुक्त, अप्रासंगिक या असंवद्ध। जैसे-देखो, इधर-उधर का कोई आदमी कमरे में न आने पावे। (ग) कुछ यहाँ का, कुछ वहाँ का। कई जगहों का थोड़ा थोड़ा। जैसे--उनके पत्र में इधर-उधर की भी कई अच्छी वातें थीं। **इधर-उधर से**=अज्ञात, अनिर्दिष्ट या अप्रामाणिक स्थान से। ऐसी जगह से, जिसका कुछ ठीक-ठिकाना न हो। जैसे--किसी जँची हुई दुकान से मिठाई लाना, इधर-उधर से मत उठा लाना।

३. उस दल या पक्ष की ओर, जिसकी चर्चा हो रही हो या जिससे वक्ता का संवंध हो।

मुहा०--इधर की उधर करना या लगाना=एक दल, पक्ष या व्यक्ति की वात दूसरे दल, पक्ष या व्यक्ति से इस प्रकार कहना कि दोनों में झगड़ा हो या वैमनस्य वढ़े। **इधर की दुनियाँ उधर होना**=अनहोनी या असंभव सी वात घटित होना। ऐसी वात होना जो सहसा ध्यान में न आ सकती हो। जैसे--चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर आप अपनी जिद (या हठ) न छोड़ेंगे। **(कोई काम या वात) इधर या उधर होना**=दो परस्पर विरोधी परंतु संभावित कामों या वातों में से कोई एक काम या वात घटित होना अथवा उनमें से किसी के संवंध में कुछ निश्चय होना। जैसे--यह सोच-विचार वहुत दिनों से यों ही चल रहा है; अव कुछ इधर या उधर हो जाना चाहिए (अर्थात् कुछ घटित या निश्चित हो जाना चाहिए)। **न इधर का रहना (या होना) न उधर का**=किसी ओर, दल या पक्ष में न रह जाना। कहीं का या किसी काम का न रह जाना। जैसे--तुम्हारे फेर में पड़कर हम न इधर के रहे, न उधर के।

४. काल या समय के विचार से, वर्त्तमान के लगभग। प्रस्तुत समय से कुछ पहले या कुछ वाद। जैसे--(क) इधर दस-वीस दिनों के अंदर कोई ऐसी घटना नहीं हुई है। (ख) इधर साल दो साल तो अणु वम चलने की कोई संभावना नहीं है।

मुहा०--(किसी काम या वात के संवंध में) इधर-उधर करना=प्रतिज्ञा या वचन पूरा न करके यह कहते रहना कि अव कर देंगे, तव कर देंगे। टाल-मटोल या हीला-हवाली करना। जैसे--आप तो वरसों से इधर-उधर करते आ रहे हैं; पर मेरी पुस्तकें (या रुपए) देने का नाम नहीं लेते।

इध्म--पुं० [सं०√इन्ध् (चमकना)+मक्] १. आग जलाने का सामान। ईंधन। २. हवन की सामग्री। समिधा।

इन--सर्व० [हिं०] 'इस' का वहुवचन। जैसे--इनका, इनको, इनमें आदि।

पुं० [सं०√इ (जाना)+नक्] १. सूर्य। २. प्रभु। मालिक। ३. राजा। ४. ईश्वर। ५. हस्त नक्षत्र।
इनकलाव--पुं० [अ०] क्रांति।
पद--**इनकलाव जिंदावाद**--क्रांति चिर-जीवी हो।
इनकार--पुं० [अ०] १. न मानने की क्रिया या भाव। २. न मानना। अस्वीकार करना। अपने वचन से पीछे हट जाना। अपनी कही हुई वात से मुकर जाना। जैसे--वे साफ इनकार कर गये।
इनकारी--स्त्री० [अ०] इनकार करने की क्रिया या भाव।
वि० इनकार या अस्वीकृत करनेवाला।
इनर--पुं०=इंद्र। उदा०--हाली हुलू वरसु इनर देवता।--लोकगीत।
इनसान--पुं० [अ०] आदमी। मनुष्य।
इनसानियत--स्त्री० [अ०] १. मानवोचित आचरण या शिष्टता। मनुष्यता। २. भल-मनसत। सौजन्य।
इनसानी--वि० [अ०] मानवी। मानुषिक।
इनाम--पुं० [अ० इनआम] १. पुरस्कार। २. पारितोषिक।
इनायत--स्त्री० [अ०] अनुग्रह। कृपा। दया।
इनारा--पुं० =इँदारा।
पुं० [?] कूआँ।
इनारुन--पुं० [सं०] =इनारू।
इनारू†--पुं० [सं०] इंद्रायन नाम की लता और उसका फल।
इने-गिने--वि० [अनु० इनना+हिं० गिनना] जो गिनती में वहुत कम हों। जैसे --इने-गिने लोग ही इस वर्षा में यहाँ आ सकेंगे।
इन्तकाम--पुं० [अ० इन्तिकाम] किसी के किये-हुए अनुचित काम का चुकाया जानेवाला वदला।
इन्तकाल--पुं० [अ० इन्तिकाल] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। स्थान-परिवर्तन। २. इस लोक से दूसरे लोक में जाना। मृत्यु।
इन्नर†--पुं० [?] पेउस (तुरंत की व्याई हुई गौ के दूध) का वह रूप जो उसे गुड़-सोंठ आदि पकाकर जमाने से वनता है।
इन्वका--पुं० [सं०√इन्द् (व्याप्त होना) +अच्, इन्व√कै (चमकना) +क] =इल्वला।
इन्हा†--सर्व० १. =इन। २. =इन्होंने।
इन्हें--सर्व०=इनको।
इफतरा--पुं० [अ० इफ़्तिरा] १. झूठा अभियोग या आरोप। तोहमत। २. व्यर्थ की और निस्सार वात। उदा०--वेद कतेव इफतरा भाई, दिल का फिकर न जाई।--कवीर।
इफ़रात--वि० [अ०] वहुत अधिक।
क्रि० वि० अधिकता से। वहुत अधिक मात्रा में।
इवा†--अव्य०=अव। (राज०)
इवरत--स्त्री० [अ०] शिक्षा। नसीहत।
इवरानी--पुं० [अ०] इव्राहीम नामक पैगम्वर के वंशज जो सामी जाति के हैं। यहूदी। (हिब्रू)
स्त्री० उक्त जाति की प्राचीन भाषा जो सामी वर्ग की है।
वि० यहूद या फिलस्तीन देश में होने या उससे संबंध रखनेवाला।
इवलीस--पुं० [अ०] शैतान।
इवा--स्त्री० [अ०] १. एक प्रकार का कम्वल। २. एक प्रकार का वड़ा चोगा।
इवादत--स्त्री० [अ०] आराधना। उपासना।
इवादत-खाना--पुं० [अ०+फा०] आराधना या उपासना करने का स्थान। प्रार्थना भवन।
इवारत--स्त्री० [अ०] [वि० इवारती] १. लेख। २. लिखावट। ३. लेखनशैली।
इवारती--वि० [फा०] लेख-शैली से संबंध रखनेवाला। इवारत-संबंधी।
इब्तिदा--स्त्री० [अ०] १. आरंभ। शुरू। २. आरंभ होने या निकलने का स्थान।
इब्तिदाई--वि० [अ० इब्तिदा से] १. प्रारंभिक। २. प्राथमिक।
इब्न--पुं० [अ०] वेटा। पुत्र। लड़का।
इव्राहीम--पुं० [अ०] यहूदियों के आदि पुरुष और पैगंवर का नाम।
इभ--पुं० [सं०√इ (गति) +भन्] १. दिग्गज। हाथी। २. आठ की संख्या। ३. नागकेसर।
अव्य० [सं० इव] इस प्रकार। ऐसे। (राज०)
इभानन--पुं० [इभ-आनन, व० स०] गणेश।
इम*--अव्य०=इमि (इस प्रकार)।
इमकान--पुं० [अ०] १. शक्ति। सामर्थ्य। २. कावू। वश।
इमकोस--पुं० [सं० कोश] तलवार की म्यान। (डिं०)
इमचार--पुं० [सं० चर] गुप्तचर। (डिं०)
इमदाद--स्त्री० [अ० मदद का वहु०] मदद। सहायता।
इमदादी--वि० [अ० इमदाद] १. इमदाद या सहायता के रूप में होने-वाला। २. जिसे सहायता मिलती हो।
इमरती--स्त्री० [सं० अमृत] जलेवी की तरह की मैंदे की प्रसिद्ध मिठाई।
इमरतीदार--वि० [हिं० इमरती+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर इमरती की तरह के छोटे छोटे गोल घेरे या वल पड़े हों। जैसे--इमरतीदार कड़ा।
इमली--स्त्री० [सं० अम्ल+हिं० ई (प्रत्य०)] १ एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसमें खट्टी फलियाँ लगती हैं। २. उक्त पेड़ की फलियाँ।
इमाम--पुं० [अ०] [भाव० इमामत] १. मुसलमानों में वह व्यक्ति जो धर्मशास्त्र का ज्ञाता तथा पंडित हो और मुसलमानों के धार्मिक कृत्य कराता हो। २. पथ-प्रदर्शक।
इमामदस्ता--पुं० [फा० हावन+दस्ता] लोहे या पीतल का खल और वट्टा जो दवा आदि कूटने के काम में आते हैं।
इमारत--स्त्री० [अ०] [वि० इमारती] १. भव्य तथा विशाल भवन। २. दे० 'वास्तु'।
इमारती--वि० [अ०] इमारत से संवंध रखने या वास्तु के काम आनेवाला। इमारत संवंधी। जैसे--इमारती लकड़ी, इमारती सामान।
इमारती लकड़ी--स्त्री० [अ० इमारती+हिं० लकड़ी] शीशम, सागवान, साखू आदि वृक्षों की वह पक्की लकड़ी जो इमारत (भवन) वनाने के काम में आती है। वास्तु-काष्ठ। (टिम्वर)
इमि*--क्रि० वि० [सं० एवम्] इस प्रकार। ऐसे।
इम्तहान--पुं० [अ०] परीक्षा।

इम्तियाज--पुं० [अ०] गुण-दोष या भले-बुरे के संबंध में होनेवाली पहचान या विवेक।

इम्दाद--स्त्री०=इमदाद।

इम्रित†--पुं० = अमृत।

इयत्--वि० [सं० इदम्+वतुप्, घ आदेश] इतने विस्तार या सीमा-वाला। इतना बड़ा।

इयत्ता--स्त्री०[सं० इयत्+तल--टाप्] १. सीमा। हद। २. सदस्यों की कम से कम वह नियत संख्या जो किसी सभा का कार्य संचालित करने के लिए आवश्यक हो। गण-पूर्ति। (कोरम)

इया†--सर्व० [सं० इदम्] इस प्रकार का। ऐसा।
†वि०=इयारा।

इयार†--पुं० =यार (दोस्त या मित्र)।

इयारा*--वि० [फा० यार=मित्र] मित्रों का-सा। आपसदारी का और प्रेमपूर्ण। उदा०—तौ क्यों बदन देखावतो कहि वचन इयारे।—तुलसी।

इरण--पुं० [सं०√ऋ (गति)+ अण्, पृषो० सिद्धि] मरुभूमि। रेगिस्तान

इरम्मद--पुं० [सं० इरा√मद् (प्रसन्न होना)+ खच्, ह्रस्व, मुम्] १. विजली। २. वज्राग्नि।

इरशाद--पुं० [अ० इर्शाद] १. किसी को ठीक मार्ग बतलाना। मार्ग-प्रदर्शन करना। २. किसी को यह बतलाना कि अमुक काम कैसे करना चाहिए। ३. आज्ञा। आदेश।

इरखा--स्त्री०=ईर्ष्या।

इरषाई*--स्त्री०=ईर्ष्या।

इरषित*--वि०=ईर्षित।

इरसाल--पुं० [अ० इर्साल] १. किसी के पास कोई चीज भेजना या रवाना करना। २. लगान या मालगुजारी की रकम सरकारी खजाने में भेजना।

इरसी--स्त्री० [?] पहिये की धुरी।

इरा--स्त्री०[सं० इ√रा(देना) +क-टाप्] १. बृहस्पति की माता का नाम। २. पृथिवी। भूमि। ३. वाणी। सरस्वती। ४. जल। ५. अन्न। ६. पेय पदार्थ (दूध आदि)। ७. आहार। ८. मदिरा। शराब।

इराक--पुं० [अ०] [वि० इराकी] पश्चिम एशिया का एक प्रसिद्ध देश। (मेसोपोटामिया)

इराकी--वि० [अ०] जिसका संबंध इराक देश से हो। इराक में होने-वाला।
पुं० १. इराक देश का निवासी। २. इराक देश का घोड़ा जो बहुत अच्छा माना जाता है।
स्त्री० इराक देश की भाषा।

इरादतन--अव्य० [अ०] इरादा या विचार करके। जान-बूझकर या इच्छापूर्वक।

इरादा--पुं० [अ०] कोई काम करने के लिए मन में होनेवाला विचार।

इरावत्--पुं० [सं० इरा+मतुप्, वत्व] १. एक पर्वत का नाम। २. एक सर्प का नाम। ३. नाग-कन्या उलूपी से उत्पन्न अर्जुन का एक पुत्र।

इरावती--स्त्री० [सं० इरावत्+ङीप्] १. ऐरावत की माता भद्रमदा, जो कश्यप की पत्नी थी। २. रावी नदी का पुराना नाम। ३. बरमा या ब्रह्मदेश की एक नदी।

इरेश--पुं० [इरा-ईश, ष० त०] १. विष्णु। २. गणेश। ३. वरुण। ४. सम्राट्। ५. ब्राह्मण।

इर्द-गिर्द--अव्य० [अनु० इर्द+फा० गिर्द] १. आस-पास। अगल-बगल। २. चारों ओर।

इर्षना*--स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा।

इल--पुं० [सं०√इल् (सोना) +क] वाह्लीक का राजा कर्दम जो प्रजापति का पुत्र कहा गया है।
स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी।

इलजाम--पुं० [अ० इल्ज़ाम] १. आरोप। २. अभियोग।

इलविला--स्त्री० [सं०] १. विश्वश्रवा की पत्नी और कुबेर की माता। २. पुलस्त्य की पत्नी।

इलहाम--पुं० [अ०] १. ईश्वर की वाणी। देववाणी। २. पैगंबरी मतों में ऐसी बात जो ईश्वर की ओर से कही हुई मानी जाय।

इला--स्त्री० [सं०√इल्+क-टाप्] १. पृथ्वी। २. पार्वती। ३. सरस्वती ४. बुद्धिमती स्त्री। ५. गाय। गौ। ६. वैवस्वत मनु की कन्या और पुरूरवा की माता।

इलाका--पुं० [अ०] १. प्रदेश। २. कोई ऐसा बड़ा भू-खंड जो किसी विचार से एक माना गया हो अथवा एक व्यक्ति के अधिकार में हो। ३. ताल्लुक। संबंध।

इलाचा--पुं० [?] रेशम और सूत मिलाकर बुना हुआ एक प्रकार का कपड़ा।

इलाज--पुं० [अ०] १. किसी प्रकार के प्रतिकार का उपाय या युक्ति। जैसे—इन व्यर्थ की बातों का इलाज मेरे पास नहीं है। २. चिकित्सा।

इलायचा--पुं० [हिं० इलायची] चित्र-कला में इलायची के आकार का अंकन।

इलायची--स्त्री० [सं० एला] १. एक प्रसिद्ध सदा-बहार क्षुप, जिसके छोटे-छोटे फल दानों से (बीजों से) भरे रहते हैं। २. उक्त फल जिसके बीज बहुत सुगंधित और स्वादिष्ट होने के कारण पान, मिठाई आदि में पड़ते हैं।

इलायची-दाना--पुं० [सं० एला+फा० दाना] १. इलायची नामक फल के बीज। २. एक तरह की मिठाई जो इलायची या पोस्ते के दाने को चीनी में पागकर तैयार की जाती है।

इलावर्त*--पुं०=इलावृत।

इलावृत--पुं० [सं० ब० स०] पुराणों के अनुसार जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक जो मध्य भाग में और सबसे ऊँचा था।

इलाही--पुं० [अ०] परमेश्वर। ईश्वर।
वि० ईश्वर-संबंधी। ईश्वरीय। दैवी।

इलाही गज--पुं० [अ०+फा०] इमारत आदि नापने का एक गज जो ४१ अंगुल (३३$\frac{3}{4}$ इंच) लंबा होता है।

इलाही सन्--पुं० [अ०] सम्राट् अकबर का चलाया हुआ एक सन् या संवत्।

इलिका--स्त्री० [सं०] इला+कन्-टाप्, इत्व] पृथ्वी।

इलिश--स्त्री० [सं०] हिलसा मछली।

इल्ज़ाम—पुं० [अ०]=इलजाम।

इल्तिजा—स्त्री० [अ०] प्रार्थना। विनय।

इल्म—पुं० [अ०] १. जानकारी। ज्ञान। २. शास्त्र। विज्ञान। ३. विद्या।

इल्म-शाही—स्त्री० [अ० इल्म+फा० शाही] कुछ स्थानों में आपाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को होनेवाला एक मेला, जिसमें कुछ ज्योतिषी पवन-परीक्षा भी करते हैं।

इल्लत—स्त्री० [अ०] [वि० इल्लती] १. कारण। सबब। २. रोग। बीमारी। ३. दुर्व्यसन।

मुहा०—**इल्लत पालना**=बुरी आदत लगा लेना।

४. अपराध। दोष। ५. त्रुटि। कमी। ६. व्यर्थ का काम या चीज।

इल्ला—पुं० [सं० कील?] शरीर के किसी अंग में उभरा हुआ मांस का छोटा दाना। मांस-कील।

इल्ली—स्त्री० [?] उड़नेवाले कीड़ों के अंडों से निकले हुऐ बच्चों का आरंभिक रूप।

इल्वल—पुं० [सं०√इल्+वल] १. एक दैत्य का नाम। २. ईल या बाम नाम की मछली।

इल्वला—पुं० [सं० इल्वल+टाप्] पाँच तारों का एक समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपरी भाग में स्थित है।

इव—अव्य० [सं० √इ (गति) +वन्] १. समान। नाईं। तरह। उदा०—कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।—तुलसी। २. इस प्रकार। ऐसे।

†वि० १. यह। २. ऐसा।

इशरत—स्त्री० [अ०] १. भोग-विलास या उसके कारण होनेवाला आनंद-मंगल। २. सुख-भोग का प्रचुर साधन। वैभव।

इशारा—पुं० [अ०] १. किसी प्रकार की शारीरिक क्रिया या अंग-संचालन से किसी का ध्यान दिलाने का कार्य। संकेत। सैन। २. गुप्त संकेत।

पद—**इशारेबाजी**—आपस में, दूसरों से छिपाकर इशारे करना।

३. सांकेतिक कथन। ४. कोई हलका आधार या सहारा।

इशिका, इशीका—स्त्री० =इषीका।

इश्क—पुं० [अ०] १. प्रेम का वह रूप जिसमें कोई किसी में लीन हो जाना चाहता हो। २. प्रेमी और प्रेमिका में, एक दूसरे के प्रति होनेवाली आसक्ति। ३. किसी के प्रति होनेवाली अनुरागमयी भावना। जैसे—उन्हें तो किताबों से इश्क है।

इश्क पेचाँ—पुं० [अ०] एक प्रकार की लता और उसके फूल।

इश्क बाज—पुं० [अ०+फा०] रसिक। प्रेमी।

इश्किया—वि० [अ० इश्कियः] १. इश्क या प्रेम-संबंधी। २. शृंगार रस-संबंधी। शृंगारिक।

इश्तहार—पुं० [अ०] १. सार्वजनिक रूपसे सब को दी जानेवाली सूचना। २. विज्ञापन।

इश्तियालक—स्त्री० [अ०] १. लकड़ी का वह छोटा टुकड़ा जिससे दीए की बाती ऊँची की जाती है। २. उत्तेजना। बढ़ावा।

इश्वर—पुं०=ईश्वर।

इषणा*—स्त्री० [सं०एषणा] उत्कट या प्रबल इच्छा। वासना।

इषना*—स्त्री०=इषणा।

इषित—वि० [सं०√इष्+क्त] १. चलाया हुआ। २. उत्तेजित या प्रेरित। ३. तीव्र। प्रचंड।

इषीका—स्त्री० [सं०√ईष् (गति, हिंसा)+ईकन्, ह्रस्व] १. घूआ। २. कूँची। ३. बाण। तीर। ४. हाथी की आँख का डेला।

इषु—पुं० [सं०√ईष्+उ, ह्रस्व] १. बाण। २. क्षेत्र-मिति में, वृत्त के अंदर जीवा के मध्य बिंदु से परिधि तक खींची हुई सीधी रेखा। ३. पाँच की संख्या।

इषु-धर—पुं० [ष० त०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर।

इष्ट—वि० [सं०√इष् (चाहना) +क्त] [स्त्री० इष्टा] (कार्य या पदार्थ) जिसकी सिद्धि या प्राप्ति की मन में उत्कट इच्छा हो। जिसकी बहुत चाह हो। वांछित।

पुं० १. कोई ऐसी अभिलषित बात या वस्तु जिसकी सिद्धि या प्राप्ति के लिए प्रयत्नपूर्वक आगे बढ़ा जाय। ध्येय। (गोल) २. किसी का वह देवता जिसकी उपासना सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति या सिद्धि के लिए की जाय। ३. ऐसे प्रिय और समीपी लोग जिनका संग-साथ करने को जी चाहता हो। जैसे—इष्ट-मित्र। ४. परमात्मा। ५. विष्णु। ६. स्त्री के विचार से उसका पति। ७. अग्निहोत्र आदि शुभ और श्रुति-संमत कर्म। ८. ईंट। ९. रेंड़ का पेड़।

इष्टका—स्त्री० [सं० इष्ट+कन्—टाप्] १. ईंट। २. यज्ञ कुंड या वेदी बनाने की ईंट।

इष्ट-काल—पुं० [कर्म० स०] ऐसा काल या समय जो कोई कार्य करने के उपयुक्त या शुभ माना गया हो।

इष्टता—स्त्री० [सं० इष्ट+तल्—टाप्] १. इष्ट होने की अवस्था या भाव। २. मित्रता। दोस्ती।

इष्टा—स्त्री० [सं० इष्ट+टाप्] प्रिया। प्रेमिका। उदा०—इष्टा को गुन सुमिरैं लागा।—नूर मोहम्मद।

इष्टापत्ति—स्त्री० [इष्ट—आपत्ति, ष० त०] वाद-विवाद आदि के समय होनेवाली ऐसी आपत्ति जो उस व्यक्ति की दृष्टि से इष्ट या लाभ-दायक हो, जिसके संबंध में वह आपत्ति की गई हो।

इष्टि—स्त्री० [सं० इष् (चाहना) +क्तिन्] १. ऐसा काम या बात जो इष्ट हो। २. टीका या भाष्य करनेवाले की ओर से होनेवाला ऐसा स्पष्टीकरण जिसका उल्लेख वार्तिक या सूत्र में तो न हो, फिर भी टीका या भाष्य करनेवाले की दृष्टि में जो मूल में इष्ट रहा हो। ३. अभिलाषा। इच्छा। ४. प्राप्ति, सिद्धि आदि के लिए होनेवाला प्रयत्न। ५. यज्ञ में दूध, फल आदि की हवि (पशुओं की बलि, सोम आदि की हवि से भिन्न)।

इष्य†—पुं० [सं० इषु] तीर। बाण।

पुं० [सं०√इष्+क्यप्] वसंतकाल। मौसम-बहार।

इस—सर्व० [सं० एष] हिंदी के 'यह' सर्वनाम का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है और जो (क) समय, स्थान आदि के विचार से समीपस्थ (ख) प्रसंग के विचार से प्रस्तुत अथवा (ग) उल्लेख के विचार से कुछ ही पहले कही या निर्दिष्ट की हुई बात अथवा वस्तु का वाचक होता है। जैसे—इसका, इसको, इसने आदि।

विशेष—जब इसका प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के रूप में होता है तब इसका प्रयोग ऐसे विशेष्य के पहले होता है जिसके आगे विभक्ति होती है। जैसे—(क) इस जगह का नाम हम नहीं जानते, (ख) इस आदमी को यहाँ से हटा दो।

इल्ज़ाम—पुं० [अ०]=इलजाम।

इल्तिजा—स्त्री० [अ०] प्रार्थना। विनय।

इल्म—पुं० [अ०] १. जानकारी। ज्ञान। २. शास्त्र। विज्ञान। ३. विद्या।

इल्म-शाही—स्त्री० [अ० इल्म+फा० शाही] कुछ स्थानों में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को होनेवाला एक मेला, जिसमें कुछ ज्योतिषी पवन-परीक्षा भी करते हैं।

इल्लत—स्त्री० [अ०] [वि० इल्लती] १. कारण। सबब। २. रोग। बीमारी। ३. दुर्व्यसन।

मुहा०—इल्लत पालना=बुरी आदत लगा लेना।

४. अपराध। दोष। ५. त्रुटि। कमी। ६. व्यर्थ का काम या चीज।

इल्ला—पुं० [सं० कील?] शरीर के किसी अंग में उभरा हुआ मांस का छोटा दाना। मांस-कील।

इल्ली—स्त्री० [?] उड़नेवाले कीड़ों के अंडों से निकले हुए बच्चों का आरंभिक रूप।

इल्वल—पुं० [सं०√इल्+वल] १. एक दैत्य का नाम। २. ईल या बाम नाम की मछली।

इल्वला—पुं० [सं० इल्वल+टाप्] पाँच तारों का एक समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपरी भाग में स्थित है।

इव—अव्य० [सं०√इ (गति)+वन्] १. समान। नाईं। तरह। उदा०—कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।—तुलसी। २. इस प्रकार। ऐसे।
†वि० १. यह। २. ऐसा।

इशरत—स्त्री० [अ०] १. भोग-विलास या उसके कारण होनेवाला आनंद-मंगल। २. सुख-भोग का प्रचुर साधन। वैभव।

इशारा—पुं० [अ०] १. किसी प्रकार की शारीरिक क्रिया या अंग-संचालन से किसी का ध्यान दिलाने का कार्य। संकेत। सैन। २. गुप्त संकेत।
पद—इशारेबाजी—आपस में, दूसरों से छिपाकर इशारे करना।
३. सांकेतिक कथन। ४. कोई हलका आधार या सहारा।

इशिका, इशीका—स्त्री० =इषीका।

इश्क—पुं० [अ०] १. प्रेम का वह रूप जिसमें कोई किसी में लीन हो जाना चाहता हो। २. प्रेमी और प्रेमिका में, एक दूसरे के प्रति होनेवाली आसक्ति। ३. किसी के प्रति होनेवाली अनुरागमयी भावना। जैसे—उन्हें तो किताबों से इश्क है।

इश्क पेचाँ—पुं० [अ०] एक प्रकार की लता और उसके फूल।

इश्क बाज—पुं० [अ०+फा०] रसिक। प्रेमी।

इश्किया—वि० [अ० इश्कियः] १. इश्क या प्रेम-संबंधी। २. शृंगार रस-संबंधी। शृंगारिक।

इश्तहार—पुं० [अ०] १. सार्वजनिक रूपसे सब को दी जानेवाली सूचना। २. विज्ञापन।

इश्तियालक—स्त्री० [अ०] १. लकड़ी का वह छोटा टुकड़ा जिससे दीए की बाती ऊँची की जाती है। २. उत्तेजना। बढ़ावा।

इश्व—पुं०=ईश्वर।

इषणा*—स्त्री० [सं०एषणा] उत्कट या प्रबल इच्छा। वासना।

इषना*—स्त्री०=इषणा।

इषित—वि० [सं०√इष्+क्त] १. चलाया हुआ। २. उत्तेजित या प्रेरित। ३. तीव्र। प्रचंड।

इषीका—स्त्री० [सं०√ईष् (गति, हिंसा)+ईकन्, ह्रस्व] १. घूआ। २. कूँची। ३. बाण। तीर। ४. हाथी की आँख का डेला।

इषु—पुं० [सं०√ईष्+उ, ह्रस्व] १. बाण। २. क्षेत्र-मिति में, वृत्त के अंदर जीवा के मध्य बिंदु से परिधि तक खींची हुई सीधी रेखा। ३. पाँच की संख्या।

इषु-धर—पुं० [ष० त०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर।

इष्ट—वि० [सं०√इष् (चाहना)+क्त] [स्त्री० इष्टा] (कार्य या पदार्थ) जिसकी सिद्धि या प्राप्ति की मन में उत्कट इच्छा हो। जिसकी बहुत चाह हो। वांछित।
पुं० १. कोई ऐसी अभिलषित बात या वस्तु जिसकी सिद्धि या प्राप्ति के लिए प्रयत्नपूर्वक आगे बढ़ा जाय। ध्येय। (गोल) २. किसी का वह देवता जिसकी उपासना सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति या सिद्धि के लिए की जाय। ३. ऐसे प्रिय और समीपी लोग जिनका संग-साथ करने को जी चाहता हो। जैसे—इष्ट-मित्र। ४. परमात्मा। ५. विष्णु। ६. स्त्री के विचार से उसका पति। ७. अग्निहोत्र आदि शुभ और श्रुति-संमत कर्म। ८. ईंट। ९. रेंड़ का पेड़।

इष्टका—स्त्री० [सं० इष्ट+कन्—टाप्] १. ईंट। २. यज्ञ कुंड या वेदी बनाने की ईंट।

इष्ट-काल—पुं० [कर्म० स०] ऐसा काल या समय जो कोई कार्य करने के उपयुक्त या शुभ माना गया हो।

इष्टता—स्त्री० [सं० इष्ट+तल्—टाप्] १. इष्ट होने की अवस्था या भाव। २. मित्रता। दोस्ती।

इष्टा—स्त्री० [सं० इष्ट+टाप्] प्रिया। प्रेमिका। उदा०—इष्टा को गुन सुमिरै लागा।—नूर मोहम्मद।

इष्टापत्ति—स्त्री० [इष्ट—आपत्ति, ष० त०] वाद-विवाद आदि के समय होनेवाली ऐसी आपत्ति जो उस व्यक्ति की दृष्टि से इष्ट या लाभ-दायक हो, जिसके संबंध में वह आपत्ति की गई हो।

इष्टि—स्त्री० [सं० इष् (चाहना)+क्तिन्] १. ऐसा काम या बात जो इष्ट हो। २. टीका या भाष्य करनेवाले की ओर से होनेवाला ऐसा स्पष्टीकरण जिसका उल्लेख वार्त्तिक या सूत्र में तो न हो, फिर भी टीका या भाष्य करनेवाले की दृष्टि में जो मूल में इष्ट रहा हो। ३. अभि-लाषा। इच्छा। ४. प्राप्ति, सिद्धि आदि के लिए होनेवाला प्रयत्न। ५. यज्ञ में दूध, फल आदि की हवि (पशुओं की बलि, सोम आदि की हवि से भिन्न)।

इष्या—पुं० [सं० इष्] तीर। बाण।
पुं० [सं०√इष्+क्यप्] वसंतकाल। मौसम-बहार।

इस—सर्व० [सं० एष] हिंदी के 'यह' सर्वनाम का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है और जो (क) समय, स्थान आदि के विचार से समीपस्थ (ख) प्रसंग के विचार से प्रस्तुत अथवा (ग) उल्लेख के विचार से कुछ ही पहले कही या निर्दिष्ट की हुई बात अथवा वस्तु का वाचक होता है। जैसे—इसका, इसको, इसने आदि।
विशेष—जब इसका प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के रूप में होता है, तब इसका प्रयोग ऐसे विशेष्य के पहले होता है जिसके आगे विभक्ति होती है। जैसे—(क) इस जगह का नाम हम नहीं जानते, (ख) इस आदमी को यहाँ से हटा दो।

इसक*--पुं०=इश्क।
इसपंज--पुं०=इस्पंज।
इसपात--पुं०=इस्पात।
इसबगोल--पुं०[फा० इस्बगोल] १. एक पौधा जिसके दाने या बीज प्रायः सफेद रंग के तथा बहुत छोटे-छोटे होते हैं और पेट का विकार दूर करने के लिए खाये जाते हैं। २. उक्त के दाने।
इसर*--पुं०=ईश्वर।
इसराज--पुं० [?] सारंगी की तरह का एक बाजा।
इसरार--पुं० [अ०] किसी काम या बात के लिए किया जानेवाला आग्रह। जिद। हठ।
पुं० [अ० असरार; अ० सर=भेद का बहु०] भेद। रहस्य।
इसरी*--वि०=ईश्वरीय।
इसलाम--पुं०=इस्लाम।
इसलाह--पुं०=इस्लाह।
इसाई--वि० दे० 'मसीही'।
इसान†--पुं०=ईशान।
इसी--सर्व० [हिं० इस+ई प्रत्य०] हिं० 'इस' का वह रूप जो उसपर पूरा जोर देने के लिए बनता है और जिसका अर्थ होता है--ठीक यही या बिलकुल यही। जैसे--(क) इसी आदमी ने इस लड़के को मारा था। (ख) मैं इसी लिए वहाँ नहीं गया था।
इसीका*--स्त्री० दे० 'इषीका'।
इसे--सर्व० [सं० एषः, हिं० इस] इस का कर्मकारक और संप्रदान कारक रूप, जिसका अर्थ होता है--इसको। जैसे--इसे मारो मत; बंद करके रख दो।
इसै--अव्य० [सं० ईदृग] इस प्रकार। ऐसे। उदा०--सुग्रीव सेन नै मेघ पुहुप समवेग वलाहक इसै वहंति।--प्रिथीराज।
इसौ†--वि० [हिं० ऐसा का राज० रूप] [स्त्री० इसी]=ऐसा (इस प्रकार का)। उदा०--आम्हाँ वासना वसी इसी।--प्रिथीराज।
इस्तक़बाल--पुं० [अ० इस्तिकबाल] १. स्वागत। २. व्याकरण में, भविष्यत् काल।
इस्तगासा--पुं० [अ०] १. न्याय के लिए की जानेवाली प्रार्थना। फरियाद। २. वह प्रार्थना-पत्र जो किसी पर फौजदारी का मुकदमा चलाने के लिए न्यायालय में दिया जाता है।
इस्तमरारी--वि० [अ०] १. स्थायी। जैसे--इस्तमरारी पट्टा, इस्तमरारी बंदोबस्त आदि। २. दे० 'दवामी'।
इस्तमरारी पट्टा--पुं० दे० 'दवामी पट्टा'।
इस्तमरारी बंदोबस्त--पुं० दे० 'दवामी पट्टा'।
इस्तरी--स्त्री० [सं० स्तरी=तह करनेवाली] १. गरम लोहे से नये धुले या सिले हुए कपड़ों की तह जमाने या बैठाने का काम। २. कपड़ों की तह बैठाने का एक प्रकार का उपकरण जो पान के आकार के डिब्बे के रूप में होता है।
स्त्री०=स्त्री।
इस्तिंगी--स्त्री० [अं० स्ट्रिंग] जहाजों की वह रस्सी जिससे उनके पाल के किनारे ताने जाते हैं।
इस्तिंजा--पुं० [अ०] पेशाब करने के उपरांत मिट्टी के ढेले से लिंगेंद्रिय को पोंछने की क्रिया जो मुसलमानों में प्रचलित है।
इस्तीफा--पुं० [अ०] त्याग-पत्र।
इस्तेमाल--पुं० [अ० इस्तऽमाल] किसी वस्तु आदि को काम में लाने का भाव। उपयोग। प्रयोग।
इस्त्री*--स्त्री० १.=इस्तरी। २. =स्त्री।
इस्पंज--पुं० [अं० स्पांज] कई प्रकार के समुद्री कीड़ों के उपनिवेश या बस्ती का वह ढाँचा जो उन कीड़ों के निकल जाने पर कोमल तंतुओं के पिंड के रूप में बना रहता है और जिसमें बहुत छोटे-छोटे छेद होते हैं। इसकी विशेषता यह है कि यह जल या दूसरे तरल पदार्थों पर पड़कर उन्हें सोख लेता है और जब इसे दबाया जाता है तब वह तरल पदार्थ इसमें से बाहर निकल जाता है। इसी लिए स्नान आदि के बाद इसका उपयोग जल सुखाने के लिए होता है।
इस्पात--पुं० [सं० अपस्पत्र, पुर्त्त० स्पेडा] [वि० इस्पाती] कुछ विशेष प्रक्रियाओं से साफ करके तैयार किया हुआ एक प्रकार का बढ़िया लोहा जो अपेक्षया अधिक कड़ा और कुछ लचीला होता है। (स्टील)
इस्पिरिट--स्त्री० [अं० स्पिरिट] एक प्रकार का रासायनिक तरल पदार्थ जो आग के सामीप्य या स्पर्श से ही भभककर जल उठता है।
इस्म--पुं० [अ०] १. नाम। २. संज्ञा।
इस्माइली--पुं० [इब] मुसलमानों का एक संप्रदाय।
इस्लाम--पुं० [अ०] मुहम्मद साहब का चलाया हुआ मुसलमानी धर्म।
इस्लाह--स्त्री० [अ०] किसी काम में होनेवाली त्रुटियों, भूलों आदि को दूर करना। सुधारना। जैसे--उर्दू के नौसिखुए कवि पहले अपनी रचनाएँ उस्ताद को दिखाकर उनसे इस्लाह लेते हैं।
इह--सर्व० [सं० इदम्+ह, इ आदेश] १. यह। जैसे--इह काल, इह लोक आदि। २. पुरानी हिंदी में 'यह' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। उदा०--दास तुलसी खेद खिन्न आपन्न इह, सोक संपन्न, अतिसै सभीतं।--तुलसी।
इहइ†--सर्व०=यही।
इह-काल--पुं० [कर्म० स०] इस लोक में प्राप्त होनेवाला जीवन।
इह-लीला--स्त्री० [सं०] इस लोक में बीतनेवाला जीवन या उनमें होने-वाले सब कार्य। जैसे--तीस ही वर्ष की आयु भोगकर उन्होंने अपनी इह-लीला समाप्त की।
इह-लोक--पुं० [कर्म० स०] (नरक, वैकुंठ, स्वर्ग आदि से भिन्न) वह जगत या लोक जिसमें हम सब लोग रहते हैं।
इह-लौकिक--वि० [सं० ऐहलौकिक] इस लोक से संबंध रखनेवाला।
इहवाँ†--क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।
इहवैं†--क्रि० वि०=यहीं (इसी जगह)।
इहाँ†--क्रि० वि०=यहाँ। उदा०--इहाँ प्रात जागे रघुराई।--तुलसी।
इहामृग--पुं०=ईहामृग।
इहि*--सर्व० [सं० इह] १. इसको। इसे। २. इसके। उदा०--...कहा प्रीति इहि लेखे?--तुलसी। ३. इस। उदा०--इहि आँगन विहरत मेरे बारे।--तुलसी।
इहे--सर्व० [?] =इहै।
इहै*--सर्व०=यही (यह ही)। उदा०--इहै हमार बड़ी सेवकाई।--तुलसी।

ई

ई--देव-नागरी वर्ण-माला का चौथा स्वर जो 'इ' का दीर्घ रूप है और जिसका उच्चारण तालु से होता है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह घोष तथा संवृत स्वर है।

हिंदी में यह नीचे लिखे कामों के लिए कुछ शब्दों के अंत में प्रत्यय के रूप में लगता है--१. पुंलिंग शब्दों के स्त्री-लिंग रूप बनाने के लिए। जैसे--ऊँचा से ऊँची, खड़ा से खड़ी, गधा से गधी आदि। २. संज्ञाओं से विशेषण बनाने के लिए। जैसे--नीलाम से नीलामी, पहाड़ से पहाड़ी, बनारस से बनारसी आदि। ३. संज्ञाओं से उनके कर्त्ता रूप बनाने के लिए। जैसे--क्रोध से क्रोधी, पाप से पापी, लोभ से लोभी आदि। ४. विशेषणों से उनकी भाववाचक संज्ञाएँ बनाने के लिए। जैसे--चौड़ा से चौड़ाई, मोटा से मोटाई, लंबा से लंबाई आदि। ५. कुछ क्रियाओं से उनकी भाववाचक संज्ञाएं तथा पारिश्रमिक आदि का भाव सूचित करने के लिए। जैसे--जोड़ना से जोड़ाई, रंगना से रंगाई, सीना या सिलाना से सिलाई आदि।

पुं० [सं० √ई+क्विप्] कामदेव।

स्त्री० १. लक्ष्मी। २. माया। ३. शांति।

†सर्व० [सं० इ=यह या वह] यह। जैसे--ई नाहीं हौ गज्जी क बेचब........।

†अव्य०=ही (जोर देने के लिए) उदा०--रावरी ई गति बल विभव-विहीन की।--तुलसी।

ईंगुर--पुं० [सं० हिंगुल, प्रा० इंगुल] लाल रंग का एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माथे पर और विशेषतः माँग में लगाती हैं। सिंदूर। (वरमीलियन)

ईंचना*--स० [सं० अञ्चन=खींचना] खींचना।

ईंचा-तानी--स्त्री० =खींचा-तानी।

ईंट--स्त्री० [सं० इष्टका, पा० इट्ठका] १. साँचे में ढालकर पकाया हुआ आयताकार मिट्टी का टुकड़ा जो दीवारें आदि बनाने के काम आता है।

मुहा०--**ईंट से ईंट बजना**=दोनों पक्षों में जमकर लड़ाई होना। **ईंट से ईंट बजाना**=बस्ती या घर पूरी तरह से ध्वस्त करना। **ईंटें चुनना**=दीवार बनाना।

पद--**डेढ़ (या) ढाई ईंट की मसजिद अलग बनाना**=किसी बात में अपनी राय दूसरों से बिलकुल अलग रखना।

२. उक्त आकार का सोने, चाँदी आदि का ढाला हुआ टुकड़ा। ३. ताश के पत्तों के चार रंगों में से एक जिसमें लाल रंग की चौकोर बूटियाँ बनी होती हैं।

ईंटा--पुं०=ईंट।

ईंडरी, ईंडुरी--स्त्री० [सं० कुंडली] गेंडुरी।

ईंढ--वि० [सं० ईदृश] १. इस तरह का। ऐसा। २. तुल्य। बराबर समान। (डिं०)

ईंधन--पुं० [सं० इंधन] १. रसोई पकाने, धातुएँ गलाने आदि के लिए चूल्हे या भट्ठी में जलाने की लकड़ी। जलावन। (फायर वुड, फ्युएल) २. किसी विनाशकारी अवस्था में नष्ट होने के लिए दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ। जैसे--तोप का ईंधन=(दे० 'तोप' के अंतर्गत पद) ३. ऐसी बात जो किसी क्रुद्ध व्यक्ति को और भी अधिक उत्तेजित करने या भड़काने में सहायक हो।

ईकार--पुं० [सं० ई+कार] 'ई' स्वर या उसका सूचक वर्ण।

ईकारांत--वि० [सं० ईकार-अंत, ब० स०] (शब्द) जिसके अंत में 'ई' हो।

ईक्षक--पुं० [सं०√ईक्ष् (देखना, विचार करना) +ण्वुल्-अक] १. देखनेवाला २. जाँच आदि करनेवाला।

ईक्षण--पुं० [सं०√ईक्ष्+ल्युट्-अन] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १. आँखों से देखने की क्रिया या भाव। देखना। २. आँख। ३. विवेचन। विचार। ४. जाँच-पड़ताल।

ईक्षणिक--पुं० [सं० ईक्षण+ठन्--इक] [स्त्री० ईक्षणिका] १. भविष्यद् वक्ता। २. हस्तरेखाओं का जानकार। सामुद्रिक का ज्ञाता।

ईक्षा--स्त्री० [सं०√ईक्ष्+अ--टाप्] १. दृष्टि। नजर। २. देखना। ३. विचारना।

ईक्षिका--स्त्री० [सं०√ईक्ष्+ण्वुल्--अक--टाप्] देखने की इंद्रिय। आँख।

ईक्षित--भू० कृ० [सं०√ईक्ष्+क्त] १. देखा हुआ। २. जाँचा हुआ।

ईख--स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रसिद्ध पौधा जिसके डंठलों या पोरों में मीठा रस भरा रहता है। इसी के रस से गुड़ और चीनी बनती है। ऊख। गन्ना।

ईखना*--स० [सं० ईक्षण, प्रा० इक्खन] देखना। (डिं०)

ईखराज--पुं० [हिं० ईख+राज] ईख की फसल बोने का पहला दिन, जो खेतिहारों का एक पर्व है।

ईछन--पुं० [सं० ईक्षण] १. देखने की क्रिया या भाव। दृष्टि-पात। देखना। उदा०--धीर समीर सुतीर तै तीछन, ईछन कैसहु जा सहती मैं।--पद्माकर। २. आँख। नयन। नेत्र।

ईछना*--स० [सं० इच्छा] इच्छा करना। चाहना।

स० [सं० ईक्षण] देखना।

ईछा*--स्त्री०=इच्छा। उदा०--बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा।--तुलसी।

ईजा--स्त्री० [अ०] कष्ट। क्लेश। दुःख।

ईजाद--स्त्री० [अ०] आविष्कार।

ईठ--पुं० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ] प्रिय व्यक्ति, मित्र और सखा। वि० प्रिय। उदा०--ज्यों क्यों हूँ न मिलै कहूं केशव दोऊ ईठ।

ईठना*--स० [सं० इष्ट] चाहना।

अ० इष्ट या वांछित होना।

ईठि--स्त्री० [सं० इष्टि, प्रा० इट्ठि] १. ईठ (अर्थात् इष्ट) होने की अवस्था या भाव। २. मित्रता। दोस्ती। उदा०--बोलिये न झूठ, ईठि मूढ़ पै न कीजिए।--केशव।

*क्रि० वि० [हिं० ईठि] इष्ट रूप में। अच्छी तरह। उदा०--ललन-चलनु सुनि चुप रही, बोली आपु न ईठि।--बिहारी।

†स्त्री० [?] छोटा भाला। बरछी।

ईडन--पुं० [सं०√ईड् (प्रशंसा करना) + ल्युट्--अन] [भू० कृ० ईडित] प्रशंसा या स्तुति करना।

ईड़री†--स्त्री० [सं० कुंडली] गेंडुरी।

ईडा--स्त्री० [सं०√ईड्+अ--टाप्] प्रशंसा। स्तुति।
ईडित--भू० कृ० [सं०√ईड् (स्तुति करना, प्रशंसा करना)+क्त] जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो। प्रशंसित।
ईड्य--वि० [सं०√ईड्+ण्यत्] १. जिसकी प्रशंसा करना उचित हो। प्रशंसनीय। २. जिसकी प्रशंसा की गई हो या की जा रही हो।
ईढ़*--स्त्री० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ] [वि० ईढ़ी] जिद। टेक। हठ।
ईत--स्त्री०=ईति।
ईतर*--वि० [सं० इतर] १. इतरानेवाला। २. तुच्छ। निकृष्ट। ३. ढीठ। गुस्ताख।
ईति--स्त्री० [सं०√ई (गति)+क्तिन्] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव या विपत्तियाँ जो छः प्रकार की कही गई है--अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियाँ, चूहे, पक्षी और विदेशी आक्रमण। उदा०--दशरथ राज न ईति भय, नहिं दुख दुरित दुकाल। २. बाधा। ३. कष्ट। दुःख। ४. झगड़ा-बखेड़ा।
ईथर--पुं० [अं०] १. एक लचीला पारदर्शी सूक्ष्म तत्त्व जो सारे आकाश में व्याप्त है और जिसमें से होकर प्रकाश की किरणें पृथ्वी पर आती हैं। आकाश। २. एक रासायनिक वर्णहीन द्रव पदार्थ जो गंधक के तेजाब और मद्यसार के योग से बनता है।
ईद--स्त्री० [अ०] १. मुसलमानों का एक प्रसिद्ध त्योहार जो रमजान मास के रोजे समाप्त होने पर चंद्रमा दिखाई देने के दूसरे दिन मनाया जाता है।
पद--**ईद का चाँद**=ऐसा प्रिय व्यक्ति जिससे जल्दी भेंट न हो सकती हो या बहुत दिनों बाद भेट हुई हो। (परिहास)
ईद-गाह--स्त्री० [अ०+फा०] वह मैदान जहाँ ईद के दिन बहुत से मुसलमान इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं।
ईदी--स्त्री० [अ० ईद+ई (प्रत्य०)] १. ईद के अवसर पर (क) मित्रों को दी जानेवाली सौगात अथवा (ख) नौकरों, बच्चों आदि को दिया जानेवाला पुरस्कार। २. ईद के अवसर पर लिखकर दी जानेवाली मंगल-कामना से युक्त कविता।
ईदृश--अव्य० [सं० इदम्√दृश् (देखना) +कञ्] [स्त्री० ईदृशी] इस प्रकार। ऐसे।
वि० इस प्रकार का। ऐसा।
ईप्सा--स्त्री० [सं०√आप् (पाना)+सन्+अ--टाप्] [वि० ईप्सित, ईप्सु] कोई वस्तु प्राप्त करने की इच्छा। अभिलाषा।
ईप्सित--भू० कृ० [सं०√आप्+सन्+क्त] (पदार्थ) जिसकी ईप्सा या इच्छा की गई हो। चाहा हुआ। अभिलषित।
ईप्सु--वि० [सं०√आप्+सन्+उ] ईप्सा या इच्छा करनेवाला। इच्छुक।
ईमन--पुं० [फा० यमन] संगीत में, एक रागिनी जो रात के पहले पहर में गाई जाती है।
ईमन कल्यान--पुं० [हिं० ईमन+सं० कल्याण] ईमन और कल्याण रागों के मेल से बना हुआ एक संकर राग।
ईमान--पुं० [अ०] १. शुद्ध हृदय से ईश्वर के अस्तित्व में होनेवाला विश्वास। आस्तिक बुद्धि। २. धर्म, न्याय, सत्य आदि के संबंध में होनेवाली पूरी और सच्ची निष्ठा।
मुहा०--**ईमान की कहना**=बिना किसी प्रकार के पक्षपात के ठीक और सच बात कहना। **ईमान से कहना**=ठीक और सच बात कहना।
३. धार्मिक विश्वास।
मुहा०--**ईमान देना**=अपने धर्म या धार्मिक विश्वास से पतित या भ्रष्ट होना।
ईमानदार--वि० [अ० ईमान+फा० दार] [भाव० ईमानदारी] १. धर्म में विश्वास रखनेवाला और उसीके अनुसार आचरण करनेवाला। २. धर्मात्मा और सत्यनिष्ठ। ३. सदा सचाई का व्यवहार करनेवाला। सत्यपरायण। (आँनेस्ट)
ईमानदारी--स्त्री० [अ०+फा०] १. ईमानदार होने की अवस्था या भाव। २. सत्यनिष्ठा और सत्यपरायणता। (आँनेस्टी)
ईरा†--स्त्री०=ईढ़।
ईरखा*--स्त्री०=ईर्ष्या।
ईरज--पुं० [सं० ईर√जन् (उत्पन्न होना)+ड] हनुमान।
ईरण--पुं० [सं० √ईर् (गति) +ल्यु--अन] वायु। हवा।
पुं० [सं० ईरणं] [भू० कृ० ईरित] १. किसी को आगे ढकेलने या बढ़ाने की क्रिया या भाव। २. उत्तेजना या प्रेरणा। ३. गमन। जाना। ४. घोषणा।
ईरमद*--स्त्री० [सं० इरम्मद] १. बिजली। २. बिजली में रहने या उसमें लगनेवाली आग। वज्राग्नि।
ईराकी--वि०, पुं०, स्त्री० दे० 'इराकी'।
ईरान--पुं० [फा० मि० सं० आर्य] [वि० ईरानी] पश्चिमी एशिया का एक प्रसिद्ध देश जिसमें बसनेवाले आर्य अब मुसलमान हो गये हैं। फारस।
ईरानी--वि० [फा०] ईरान का।
पुं० ईरान देश का निवासी।
स्त्री० ईरान देश की भाषा।
ईरित--भू० कृ० [सं०√ईर्+क्त] १. आगे ढकेला या बढ़ाया हुआ। २. प्रेरित या प्रोत्साहित। उदा०--ऊधौ बिधि-ईरित भई है भाग-कीरति.....।--घनानंद।
ईर्षणा*--स्त्री०=ईर्ष्या।
ईर्षा--स्त्री० [सं०√ईर्ष्य (डाह करना)+अ--टाप्, यलोप] =ईर्ष्या।
ईर्षालु--वि० [सं०√ईर्ष्य्+आलुच्, यलोप] =ईर्ष्यालु।
ईर्षित--भू० कृ० [सं० ईर्षा+इतच्] जिससे ईर्ष्या की गई हो। जिसके प्रति किसी को ईर्ष्या हो।
ईर्षु--वि० [सं० √ईर्ष्य्+उण्]=ईर्ष्यालु।
ईर्ष्य--वि० [सं०√ईर्ष्य्+अच्] जिससे ईर्ष्या या डाह की जा सकती हो।
ईर्ष्यक--वि० [सं० ईर्ष्य्+ण्वुल्--अक किसी से ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु।
पुं० वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुंसक जिसकी कामवासना तब तक उत्तेजित नहीं होती, जब तक वह किसी को संभोग करते हुए न देखे।
ईर्ष्या--स्त्री० [सं०√ईर्ष्य्+अ--टाप्] [वि० ईर्ष्यक, ईर्ष्यालु] किसी को अपने से अधिक उन्नत, संपन्न या सुखी देखकर मन में होनेवाला वह कष्ट या जलन जिसके साथ उस व्यक्ति को वैभव, सुख आदि से वंचित करके स्वयं उसका स्थान लेने की अभिलाषा लगी रहती है। डाह। (एन्वी)

ईर्ष्यालु--वि० [सं०√ईर्ष्य्+आलुच्] मन में किसी के प्रति ईर्ष्या रखने-वाला। ईर्ष्या या डाह करनेवाला।

ईल--पुं० [देश०] एक प्रकार का बनैला जंतु।
स्त्री० [अं०] एक प्रकार की मछली। बाँग।

ईली--स्त्री० [सं०√ईड्+कि+ङीष्] एक प्रकार की छोटी तलवार या कटारी

ईश--पुं० [सं०√ईश् (ऐश्वर्य)+क] १. प्रभु। मालिक। स्वामी। २. ईश्वर। ३. राजा। ४. पति। स्वामी। ५. रुद्र। ६. ग्यारह की संख्या (ग्यारह रुद्र होते हैं।) ७. आर्द्रा नक्षत्र। ८. पारा। ९. ईशोपनिषद्।

ईशता--स्त्री० [सं० ईश+तल्-टाप्] १. ईश होने की अवस्था या भाव। २. प्रभुत्व। स्वामित्व।

ईशन*--पुं०=ईशान।

ईशा--स्त्री० [सं०√ईश्+अ-टाप्] १. ऐश्वर्य। २. ऐश्वर्यशालिनी स्त्री। ३. दुर्गा।

ईशान--पुं० [सं०√ईश्+चानश्] [स्त्री० ईशानी] १. अधिपति। स्वामी। २. ईश्वर। ३. महादेव। शिव। ४. ग्यारह रुद्रों में से एक। ५. ग्यारह की संख्या। ६. शिव की आठ मूर्त्तियों में से एक। ७. पूरब और उत्तर के बीच का कोना। ८. आर्द्रा नक्षत्र। ९. ज्योति। १०. शमी वृक्ष।
वि० १. शासन करनेवाला। २. ऐश्वर्ययुक्त। ३. धनी।

ईशानी--स्त्री० [सं० ईशान+ङीप्] १. दुर्गा। २. शाल्मली वृक्ष। सेमल का पेड़।

ईशिता--स्त्री० [सं० ईशिन्+तल्—टाप्] १. महत्ता। श्रेष्ठता। २. आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिसे प्राप्त करने पर साधक सब पर शासन करने के योग्य हो सकता है।

ईशित्व--पुं० [सं० ईशिन्+त्व] =ईशिता।

ईश्वर--पुं० [सं० ईश्+वरच्] १. परम पुरुष या परमात्मा के रूप में पूजी जानेवाली वह सर्वप्रधान सत्ता जो सारे ब्रह्माण्ड, विश्व या सृष्टि मात्र को बनाने-बिगाड़ने और उसका नियंत्रण तथा शासन करनेवाली मानी गई है। परमात्मा। भगवान।
विशेष--हमारे यहाँ दर्शनों में इसे निराकार, निर्गुण, सर्व-व्यापी और सब प्रकार के कर्मों, क्लेशों आदि से निर्लिप्त, पृथक् और रहित माना गया है। पर उपासना, कर्म-कांड आदि के क्षेत्रों में इसके सगुण और साकार रूपों की भी कल्पना की गई है।
२. आत्मा। ३. शिव। ४. पारा। ५. पीतल।

ईश्वर-प्रणिधान--पुं० [सं० ष० त०] योगशास्त्र में, पाँच प्रणिधानों में से एक जिसमें मनुष्य ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा रखता हुआ अपने आप को सब प्रकार से उसके चरणों में अर्पित कर देता है।

ईश्वर-वाद--पुं० [सं० ष० त०] ईश्वर की सत्ता और कर्तृत्व शक्ति पर पूरा विश्वास रखने का सिद्धान्त। (डीइज्म)

ईश्वरवादी (दिन्)--वि० [सं० ईश्वरवाद+इनि] ईश्वरवाद का अनुयायी या समर्थक। (डीइस्ट)

ईश्वरा--स्त्री० [सं० ईश्वर+टाप्] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. शक्ति।

ईश्वराधीन--वि० [सं० ईश्वर-अधीन, ष० त०] ईश्वर के अधिकार में रहने या उसकी इच्छा के अनुसार होनेवाला। जैसे—भाग्य और सफलता तो ईश्वराधीन है।

ईश्वरी--स्त्री० [सं० ईश्वर+ङीष्] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. शक्ति। ४. लिंगिनी, वंध्या, कर्कटी, क्षुद्रजटा, नाकुली आदि पौधे।
वि०=ईश्वरीय।

ईश्वरीय--वि० [सं० ईश्वर+छ-ईय] १. ईश्वर-संबंधी। ईश्वर का। २. ईश्वर की ओर से होनेवाला।

ईश्वरोपासना--स्त्री० [सं० ईश्वर-उपासना, ष० त०] ईश्वर या पर-मात्मा की उपासना, ध्यान, भजन आदि।

ईषत्--क्रि० वि० [सं०√ईष्+अति] अल्प रूप में। कुछ-कुछ। बहुत थोड़ा।
वि० कुछ।

ईषत्-स्पृष्ट--वि० [कर्म० स०] जिसका किसी से बहुत ही थोड़ा स्पर्श हुआ हो। बहुत कम छुआ हुआ।
पुं० व्याकरण में, वर्णों के उच्चारण का एक आभ्यंतर प्रयत्न जिसमें तालु, दाँत या मूर्द्धा को जीभ बहुत ही थोड़ा स्पर्श करती अथवा होठों को दाँत बहुत ही कम छूते हैं। (य,र,ल और व ऐसे ही वर्ण है जिनके उच्चारण में उक्त प्रयत्न होता है।)

ईषद्--वि०, क्रि० वि०=ईषत्।

ईषना*--स्त्री०=एषणा।

ईषा--स्त्री० [सं०√ईष् (गति)+क-टाप्] वह लंबी लकड़ी जिसमें गाड़ी या हल जोतते समय जुआ बाँधा जाता है। हरसा। हरिस।

ईषिका--स्त्री० [सं० ईषा+कन्-टाप्, इत्व] १. हाथी की आँख का गोलक।
२. चित्र में रंग भरने की कलम। कूँची। ३. बाण। ४. सींक।

ईषु*--पुं० [सं० इषु] तीर। बाण।

ईष्म--पुं० [सं०√ईष् (सरकना)+मक्] १. वसंतऋतु। २. कामदेव।

ईस*--पुं० दे० 'ईश'।
वि०=ऐश्वर्यशाली।

ईसन*--पुं०=ईशान।

ईसबगोल--पुं० दे० 'इसबगोल'।

ईसर*--पुं० धन-सम्पत्ति। ऐश्वर्य।
†पुं० =ईश्वर।

ईसरगोल--पुं०=इसबगोल।

ईसरी†--वि०=ईश्वरीय।

ईसवी--वि० [फा०] ईसा से संबंध रखनेवाला। ईसा का। मसीही। जैसे—ईसवी सन्=ईसा मसीह के मरणकाल से चला हुआ संवत्।

ईसा--पुं० [यहू० जीसस का अ० रूप] यहूद देश के एक प्रसिद्ध पैगंबर जो एक नये धर्म के प्रवर्त्तक थे और जिन्हें अंत में सूली दी गई थी। कहते हैं कि इन्होंने अनेक अलौकिक शक्तियाँ पाई थीं, इसीलिए इन्हें ईसा मसीह कहते हैं।
*पुं०=ईश। उदा०—एहि विधि भए सोच बस ईसा।—तुलसी।

ईसाई--वि० [अ०] ईसा-संबंधी। ईसा का।
पुं० १. ईसा नामक पैगंबर का चलाया हुआ धर्म। २. उक्त धर्म का अनुयायी।

ईसान*—पुं०=ईशान।

ईसानी—स्त्री०=ईशानी (दुर्गा)।

ईहग—पुं० [सं० ईहा=इच्छा+ग=गमन करनेवाला] कवि। (डिं०)

ईहा—स्त्री०[सं० ईह् (इच्छा करना)+अ—टाप्] १. इच्छा। अभिलाषा। २. उद्योग। चेष्टा। प्रयत्न। ३. लोभ। (डिं०)

ईहामृग—पुं० [सं० ईहा√मृग् (ढूँढ़ना)+अण्] चार अंकोंवाला एक प्रकार का रूपक जिसके नायक और नायिका देवता और देवी होती हैं और जिसमें मुख्यतः नायिका की वीरता के दृश्य होते हैं।

ईहित—भू० कृ० [सं०√ईह्+क्त] १. जिसकी इच्छा की गई हो। वांछित। २. जिसकी प्राप्ति के लिए चेष्टा की गई हो।

उ

उ—नागरी वर्णमाला का पाँचवाँ स्वर जो ह्रस्व है और जिसका दीर्घ रूप 'ऊ' है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह ह्रस्व, ओष्ठ्य, घोष तथा संवृत स्वर है। पूर्वी हिंदी में कुछ शब्दों के अंत में लगकर यह 'भी' का अर्थ देता है। जैसे—तरनिउ मुनि घरनी होई जाई।—तुलसी।

पुं० [√अत् (सतत गमन)+डु] १. ब्रह्मा। २. शिव। ३. नर। मनुष्य।

उँखार†—स्त्री० १. दे० 'ऊख'। २. दे० 'उखारी'।

उँखारी†—स्त्री०=उखारी।

उँगनी—स्त्री० [हिं० आंगना] गाड़ियों के पहियों में तेल देने या उन्हें आँगने की क्रिया या भाव।

उँगल—स्त्री०=उँगली।

उँगली—स्त्री० [सं० अंगुलि] हाथ या पैर के पंजों में से निकले हुए पाँच लंबे किंतु पतले अवयवों में से हर एक। (इन्हें क्रमशः अंगुष्ठ या अँगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठिका या कानी उँगली कहते हैं।) मुहा०—(किसी की ओर) **उँगली उठाना**=(किसी के) कोई अनुचित काम करने पर उसकी ओर संकेत करते हुए उसकी चर्चा करना। **उँगली चटकाना**=उँगली को इस तरह खींचना, दवाना या मोड़ना कि उसमें से चट-चट शब्द निकले। **उँगलियाँ चमकाना, नचाना या मटकाना**=वात-चीत या लड़ाई के समय स्त्रियों की तरह हाथ और उँगलियाँ हिलाना या मटकाना। **उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना**=थोड़ा-सा अधिकार या सहारा मिलने पर सारी वस्तु या सत्ता पर अधिकार जमाना। थोड़ा-सा सहारा पाकर सब की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना। **(किसी को) उँगलियों पर नचाना**=(क) किसी से जैसा चाहे वैसा काम करा लेना। (ख) जान-बूझकर किसी को तंग या परेशान करना। **(किसी कृति पर) उँगली रखना**=किसी कृति में कोई दोष वतलाना या उसकी ओर संकेत करना। उदा०—क्या कोई सहृदय कालिदास के कवि-कौशल पर उँगली रख सकता है? **कानों में उँगलियाँ देना**=किसी परम अनुचित या निंदनीय वात की चर्चा होने पर उसके प्रति परम उदासीनता प्रकट करना। **पाँचों उगलियाँ घी में होना**=सब प्रकार से यथेष्ट लाभ होने का अवसर आना। जैसे—अब तो आपकी पाँचों उँगलियाँ घी में हैं।

पद—**कानी उँगली**=सबसे छोटी और अंतवाली उँगली। कनिष्ठिका।

उंचन—स्त्री० दे० 'उनचन'।

उंचना—स्त्री० दे० 'उनचना'।

उँचान*—स्त्री०=ऊँचान।

उंचास*—वि०=उनचास।

उंछ—स्त्री० [सं० √उन्छ् (दाना विनना)+घञ्] फसल कट जाने पर खेत में गिरे हुए दाने चुनने का काम। सीला वीनना।

उंछ-वृत्ति—स्त्री० [ष० त०] प्राचीन भारत में, त्यागियों की वह वृत्ति जिसमें वे फसल कट जाने पर खेतों में गिरे हुए दाने चुनकर जीविका निर्वाह करते थे।

उंछ-शील—वि० [व० स०] उंछ वृत्ति के द्वारा जीवन-निर्वाह करने-वाला।

उँजरिया*—स्त्री० [हिं० उजाला का पूर्वी रूप] १. उजाला। प्रकाश। २. चाँदनी रात।

उँजियार—पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश।

वि० [स्त्री० उँजियारी] १. उजला। सफेद। २. चमकता हुआ। प्रकाशमान।

उँजेरा, उँजेला—पुं०= उजाला।

उँज्यारा—वि० [स्त्री० ऊँज्यारी] =उजाला।

पुं०=उजाला।

उँझना†—अ०=उलझना।

उँडेरना—स०=उँड़ेलना।

उँडेलना—स० [?] १. कोई पदार्थ, विशेषतः तरल पदार्थ एक वरतन में से दूसरे वरतन में गिराना या डालना। ढालना। २. पात्र या वरतन में रखी हुई चीज इस प्रकार उलटना कि वह जमीन पर इधर-उधर बिखर जाय।

उंदरी—स्त्री० [सं० ऊर्ण (=वाल)+दर=(नाश करनेवाला)] एक रोग जिसमें सिर के वाल झड़ जाते हैं।

उंदरू—पुं० [सं० कुन्दरू] एक प्रकार की काँटेदार झाड़ी। ऐल। हिंस।

उंदुर—पुं० [सं०√उन्द् (भीगना)+उर] चूहा।

उंदुरकर्णी—स्त्री० [ष० त०, ङीप्] मूसाकानी नामकी लता।

उंद्र*—पुं० [सं० उंदुर] चूहा। उदा०—उंद्र कहों विलइया घेरा।—गोरखनाथ।

उंवरी†—स्त्री०= उडुंवर (गूलर)।

उँह—अव्य० [अनु०] अस्वीकार, असहमति, उदासीनता, घृणा आदि का सूचक शब्द। जैसे—(क) उँह ऐसा मत करो। (ख) उँह! जाने भी दो।

उअना*—अ० [सं० उदय, हिं० उगना] उदित होना। उगना। उदा०—उयो सरद राका-ससी, करति क्यों न चित चेतु।—विहारी।

उअर*—पुं०=उर (हृदय)।

उआना*—स० १. =उगाना। २. =उठाना।

उऋण—वि० [सं० उत्-ऋण] जिसने अपना ऋण चुका दिया हो। जो ऋण से मुक्त हो चुका हो।

उक*—स्त्री० [सं० उक्ति] उक्ति। कथन। उदा०—वन जाव भले शुक की उक से।—निराला।

उकचन—पुं० [सं० मुचकुंद] मुचकुंद का फूल।

उकचना*—अ० [सं० उत्कर्ण, पा० उक्कस=उखाड़ना] १. =उखड़ना। २. =उचड़ना। ३. =उचकना।

स० १=उखाड़ना। २. =उचाड़ना। ३. =उठाना।

उकटना—स० =उघटना।

उकटा—वि०=उघटा।

उकटा पुराण—पुं०=उघटा पुराण।

उकठना*—अ० [हिं० काठ] १. सूखकर लकड़ी की तरह कड़ा होना या गेंठना। २. उखड़ना।

स०=उघटना।

उकठा—वि० [सं० अव+काष्ठ] १. जो सूखकर लकड़ी की तरह ऐंठ गया हो। २. शुष्क। सूखा। उदा०—मिलनि विलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फले-फूले—तुलसी।

वि०, पुं०=उघटा।

उकड़ूँ—पुं० [सं० उत्कुतोरु] तलवों और चूतड़ों के बल बैठने की वह मुद्रा जिसमें घुटने छाती से लगे रहते हैं।

उकढ़ना*—अ०=कढ़ना (बाहर निकलना)।

उकत*—स्त्री०=उक्ति (कथन)।

उकताना—अ० [सं० आकुल, पुं० हिं० अकुताना] बैठे-बैठे या कोई काम करते-करते जी घबरा जाना। ऊबना।

उकती—स्त्री०=उक्ति।

उकलना—अ० [सं० उत्+कलन=खुलना, प्रा० उक्कल, गु० उकलवू, उकालो, मरा० उकल (णों)] कपड़े आदि की तह या लपेट खुलना।

उकलवाना—स० [हिं० उकेलना का प्रे०] उकेलने का काम दूसरे से कराना।

उकलाई—स्त्री० [सं० उद्गिरण, हिं उगलना] १. उगलने की क्रिया या भाव। २. उल्टी। कै।

स्त्री० [हिं० उकलना] उकलने या उकेलने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

उकलाना—अ० [हिं० उकलाई] १. उगलना। उलटी करना। कै करना।

†अ० [सं० आकुल] आकुल होना। अकुलाना। उदा०—...... जिवड़ों अति उकलावै।—मीराँ।

उकलेसरी—पुं० [अंकलेश्वर (स्थान का नाम)] हाथ का बना एक प्रकार का कागज।

उकवत—पुं० [सं० उत्कोथ] एक प्रकार का चर्म रोग जिसमें छोटे-छोटे लाल दाने निकल आते हैं और बहुत खुजली तथा पीड़ा होती है।

उकसना—अ० [सं० उत्कर्ष] १. नीचे से ऊपर को आना। उभरना। निकलना। २. अंकुरित होना। उगना। ३. ऊपर होने के लिए उचकना। उदा०—पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।—तुलसी।

अ० [क्रि० उकसाना का अ० रूप] दूसरों द्वारा प्रेरित होना।

उकसनि—स्त्री० [हिं० उकसना] उकसने की अवस्था या भाव।

उकसवाना—स० [हिं० उकसना] उकसने या उकासने का काम किसी और से कराना।

उकसाई—स्त्री० [हिं० उकसाना] उकसाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

उकसाना—स० [हिं० 'उकसना' का प्रे० रूप] [भाव० उकसाहट] १. किसी को कोई काम करने के लिए उत्साहित, उत्तेजित या प्रेरित करना। उभाड़ना। २. ऊपर या आगे की ओर बढ़ाना। जैसे—दीए की बत्ती उकसाना। ३. किसी को कहीं से उठाना या हटाना। (क्व०)

उकसाहट—स्त्री० [हिं० उकसाना+आहट (प्रत्य०)] १. उकसाने की क्रिया या भाव। २. उत्तेजना।

उकसौंहाँ—वि० [हिं० उकसना+औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० उकसौंही] उकसने, उभड़ने या बाहर निकलने की प्रवृत्ति रखनेवाला। उभड़ता हुआ।

उकाब—पुं० [अ०] गिद्ध की जाति का एक बड़ा पक्षी। गरुड़।

उकार—पुं० [सं० उ+कार] १. 'उ' स्वर। २. शिव।

उकारांत—वि० [सं० उकार-अंत, ब० स०] (शब्द) जिसके अंत में 'उ' स्वर हो। जैसे-शम्भु, भानु आदि।

उकालना*—स० [सं० उत्कालन] उबालना।

†स० उकेलना।

उकास—स्त्री० [हिं० उकासना] उकासने कि क्रिया या भाव।

*पुं०=अवकाश।

उकासना*—स० [सं० उत्कर्षण] १. खींच या दबाकर बाहर निकालना। २. ऊपर की ओर ढकेलना या फेंकना। ३. उत्तेजित करना। ४. खोलना।

उकासी*—स्त्री० [हिं० उकसना] उकासने की क्रिया या भाव।

स्त्री० [सं० अवकाश] १. छुट्टी। २. अवकाश या छुट्टी के समय मनाया जानेवाला उत्सव।

उकिलना†—अ०=उगलना।

उकीरना†—स० [सं० उत्कीर्णन] १. खोदकर उखाड़ना या निकालना। उदा०—इंदु के उदोत तें उकीरी ही सी काढ़ी, सब सारस सरस, शोभासार तें निकारी सी।—केशव। २. उभाड़ना। ३. दे० 'उकेरना'।

उकील†—पुं०=वकील।

उकुति*—=उक्ति।

उकुति जुगुति*—पद=उक्ति-युक्ति।

उकुरू—पुं०=उकड़ूँ।

उकुसना*—अ०=उकसना।

स० [?] नष्ट करना।

उकेरना—स० [सं० उत्कीर्ण या उकीर्य] पत्थर, लकड़ी, लोहे आदि कड़ी चीजों पर छेनी आदि से नक्काशी करना या बेल-बूटे बनाना। (एनग्रेव)

उकेरी—स्त्री० [हिं० उकेरना] १. उकेरने की कला या विद्या। २. उकेरने या खोदकर बेल-बूटे बनाने का काम। नक्काशी। (एनग्रेविंग)

उकेलना—स० [हिं० उकलना] १. लिपटी हुई चीज को छुड़ाना। २. उधेड़ना। ३. तह खोलना।

उकौथ (ा)—पुं० =उकवत (रोग)।

उकौना†—पुं० [हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री के मन में होनेवाली अनेक प्रकार की इच्छाएँ। दोहद।

क्रि० प्र०—उठना।

उक्क—अव्य० [हिं० उकड़ूँ ?] १. आगे। २. मुँह के बल।

*वि०=उत्कंठित।

उक्त—वि० [सं०√वच् (बोलना)+क्त] १. कहा या बतलाया हुआ। २. जिसका वर्णन ऊपर या पहले हुआ हो। जो ऊपर या पहले कहा गया हो। (एफोरसेड)

उक्त-निमित्त—वि० [ब० स०] [स्त्री० उक्त-निमित्ता] जिसका निमित्त

या कारण स्पष्ट शब्दों में कहा गया हो। जैसे—उक्त-निमित्ता विशेषोक्ति।

उक्त-प्रत्युक्त—पुं० [द्व० स०] १. लास्य के दस अंगों में से एक। २. कोई कही हुई बात और उसका दिया हुआ उत्तर। बात-चीत। कथोपकथन।

उक्ताक्षेप—पुं० [उक्त-आक्षेप तृ० त०] साहित्य में आक्षेप अलंकार का एक भेद; जिसमें किसी से कोई बात इस ढंग से कही जाती है कि उससे नहिक, निषेध या निवारण का भाव प्रकट होता है। जैसे—आप वहाँ जाइये न, मैं क्या मना करता हूँ (अर्थात् आप वहाँ मत जायँ)।

उक्ति—स्त्री० [सं०√वच्+क्तिन्] १. किसी की कही हुई कोई बात। कथन। वचन। २. किसी की कही हुई कोई ऐसी अनोखी या महत्त्व की बात जिसका कहीं उल्लेख या चर्चा की जाय। (अटरेन्स)

उक्ति-युक्ति—स्त्री० [द्व० स०] किसी समस्या के निराकरण के लिए कही हुई कोई बात और बतलाई हुई तरकीब या उक्ति।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

उक्ती*—स्त्री० =उक्ति।

उक्थ—पुं० [सं०√वच्+थक्] १. उक्ति। कथन। २. सूक्ति। स्तोत्र। ३. एक प्रकार का यज्ञ। ४. वह दिन जब यज्ञ में उक्थ अर्थात् स्तोत्र पाठ होता है। ५. प्राण। ६. ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

उक्थी (थिन्)—वि० [सं० उक्थ+इनि] स्तोत्रों का पाठ करनेवाला।

उक्षण—पुं० [सं० √उक्ष् (सींचना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उक्षित] जल छिड़कने की क्रिया या भाव।

उखटना†—अ० [हिं० उखड़ना ?] [सं० उत्कर्षण] १. लड़खड़ाकर गिरना या लड़खड़ाना। २. कुतरना। खोंटना।

उखड़ना—स० [सं० उत्खनन, प्रा० उक्खणन] १. ऐसी चीजों का अपने मूल आधार या स्थान से हटकर अलग होना जिनकी जड़ या नीचेवाला भाग जमीन के अंदर कुछ दूर तक गड़ा, जमा या फैला हो। जैसे—(क) आँधी से पेड़-पौधों का उखड़ना। (ख) जमीन में गड़ा हुआ खंभा उखड़ना। २. ऐसी चीजों का अपने आधार या स्थान से हटकर अलग होना जिनका नीचेवाला तल या पार्श्व कहीं अच्छी तरह जमा या बैठा हुआ हो। जमा, टिका, ठहरा या लगा न रहना। जैसे—(क) अँगूठी या हार में का नगीना उखड़ना। (ख) दीवार पर का पलस्तर या रंग उखड़ना। ३. दृढ़ता से खड़ी, जमी या लगी हुई चीज का अपने नियत स्थान से कट, टूट या हटकर अलग या इधर-उधर होना। जैसे—(क) कंधे या कोहनी की हड्डी उखड़ना (ख) कुरसी या चौकी का पाया उखड़ना। (ग) युद्ध-क्षेत्र से सेना के पैर उखड़ना। ४. (आवश्यकता, बाधा आदि के कारण) मिलने-जुलने, रहने-बैठने आदि के स्थान से हटकर लोगों का इधर-उधर या तितर-बितर होना। जैसे—(क) साधु-मंडली का डेरा-डंडा उखड़ना। (ख) आँधी-पानी या उपद्रव के कारण खेल, जलसा या मेला उखड़ना। (ग) पुलिस के भय से जुआरियों या शराबियों का अड्डा उखड़ना। ५. भिन्न-भिन्न अंगों, पक्षों, भागों आदि को जोड़ या मिलाकर रखनेवाले तत्त्वों का टूट-फूट कर अलग होना। जैसे—(क) गिलास या थाली का टाँका उखड़ना (ख) कुरते या जूते की सीयन उखड़ना। (ग) परेते पर से गुड्डी या पतंग उखड़ना। ६. किसी प्रकार के सुदृढ़ आधार या स्वस्थ स्थिति से अस्त-व्यस्त, चंचल या विचलित होना। पहलेवाली अच्छी दशा या स्थिति में बाधा या व्यतिक्रम होना। जैसे—(क) किसी जगह से मन उखड़ना। (ख) बाजार (या समाज) से बनी हुई बात (या साख) उखड़ना। (ग) दूकान पर से ग्राहक उखड़ना। ७. बँधा हुआ क्रम, तार या सिलसिला इस प्रकार भंग होना कि कटुता या विरसता उत्पन्न हो। जैसे—(क) गाने में गवैये का दम या साँस उखड़ना। (ख) चलने या दौड़ने में घोड़े की चाल उखड़ना। ८. आपस की बात-चीत, लेन-देन या व्यवहार में अप्रिय और अवांछित रूप से उग्रता या कठोरता का सूचक परिवर्त्तन या विकार होना। सम स्थिति से हटकर विषम स्थिति में आना या होना। जैसे—(क) अब तो आप जरा-जरा सी बात पर उखड़ने लगे हैं। (ख) उनसे मेल-जोल बनाये रखो; कहीं से उखड़ने मत दो।

मुहा०—**उखड़ी उखड़ी बातें करना**=सौजन्य या सौहार्द छोड़कर उदासीन या खिन्न भाव से बातें करना।

उखड़वाना—स० [उखड़ना का प्रे० रूप] किसी को कुछ या कोई चीज उखाड़ने में प्रवृत्त करना। उखाड़ने का काम किसी से कराना।

उखभोज†—पुं० [हिं० ऊख+सं० भोज]=ईखराज।

उखम—पु० [सं० ऊष्मा] उष्णता। गरमी। उदा०—बैसाख ए सखि उखम लागे चंदन लेपत सरीर हो।—ग्राम्यगीत।

उखमज†—वि०=ऊष्मज।

पुं० [सं० उष्मज] उपद्रव, बखेड़ा आदि खड़ा करने के लिए मन में होनेवाला दुष्टतापूर्ण विचार। जैसे—तुम्हें भी बैठे-बैठे उखमज सूझा करता है।

उखर†—पुं० [हिं० ऊख] ऊख बोने के बाद हल पूजने की रीति जिसे हर-पुजी भी कहते हैं।

उखरना†*—अ०=उखड़ना।

उखराज†—पुं०=ईखराज।

उखरैया†—वि० [हिं० उखाड़ना] उखाड़नेवाला। उदा०—भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के—तुलसी।

उखली—स्त्री०=ऊखल।

उखा*— =उषा।

उखाड़—स्त्री० [हिं० उखड़ना] १. उखाड़ने की क्रिया या भाव। २. कुश्ती में, किसी का दाँव या पेंच व्यर्थ करनेवाला कोई और दाँव या पेंच।

उखाड़ना—स० [सं० उत्खनन, प्रा० उक्खणन] १. ऐसी चीज खींच या निकालकर अलग करना जिसकी जड़ या नीचे का भाग जमीन के अंदर गड़ा, जमा या धँसा हो। जैसे—पेड़-पौधे या कील-काँटे उखाड़ना। २. कहीं जमी, ठहरी या लगी हुई चीज खींचकर उसके आधार या तल से अलग करना। जैसे—पुस्तक की जिल्द उखाड़ना; अंग के जोड़ पर से किसी की हड्डी उखाड़ना आदि। ३. किसी स्थान पर टिके या ठहरे हुए व्यक्ति को वहाँ से भागने या हटने के लिए विवश करना। जैसे—दुश्मन के पाँव या पैर उखाड़ना, दरबार में से किसी दरबारी या मुसाहब को उखाड़ना।

मुहा०—**(किसी को) जड़ से उखाड़ना**=इस प्रकार दूर या नष्ट करना कि फिर अपने स्थान पर आकर ठहर या पनप न सके।

उखाड़-पछाड़—स्त्री० [हिं० उखाड़ना+पछाड़ना] १. कहीं किसी को उखाड़ने और कहीं किसी को पछाड़ने की क्रिया या भाव। २. कभी

कहीं से कुछ इधर का उधर और कभी कहीं से उधर का इधर (अर्थात् अस्तव्यस्त या उलट-पलट) करने की क्रिया या भाव।

उखाड़ू--वि० [हिं० उखाड़ना] प्रायः उखाड़ने का काम करता रहनेवाला।

उखाणा†--पुं० [सं० उपाख्यान] कहावत। (राज०)

उखारना†*--स०=उखाड़ना।

उखारी†--स्त्री० [हिं० ऊख] वह खेत जिसमें ऊख बोया हुआ हो। उदा०-- बीच उखारा रस-सरा, रस काहे ना होत।--कबीर।

उखालिया--पुं० [सं० उप+काल] व्रत आरंभ करने से पहले रात के पिछले पहर में किया जानेवाला अल्पाहार। सरगही।

उखेड़--स्त्री०=उखाड़।

उखेड़ना--स०=उखाड़ना।

उखेरना*--स० [हिं० उखेड़ना]=उखाड़ना।
†स०=उकेरना।

उखेरा†--पुं० = ऊख (ईख)।

उखेलना*--स० [सं० उल्लेखन] १. अंकित करना। लिखना। २. उकेरना (दे०)।

उख्य--वि० [सं० उखा+यत्] उबाला हुआ।
पुं० हाँड़ी में उबाला हुआ मांस, जिसकी यज्ञ में आहुति दी जाती थी।

उगटना*--अ०=उघटना।

उगत--वि०=उक्त।
स्त्री०=उक्ति।

उगदना--अ० [सं० उद्+गद=कहना] कहना। बोलना। (दलाल)

उगना--अ०[सं० उद्गमन, प्रा० उग्गमन, गु० उगवूँ, मरा० उगणें, सिं० उगणुं] १. वानस्पतिक क्षेत्र में, (क) जमीन के अंदर दबी हुई जड़ या पड़े हुए बीज में अंकुर, पत्ते, शाखाएँ आदि निकलना। अंकुरित होना। जैसे--क्यारी में घास, खेत में गेहूँ या जमीन में पेड़ उगना। (ख) पेड़-पौधों के तनों, शाखाओं आदि में से निकलकर ऊपर आना या उठना। जैसे--पौधे में पत्ती या पेड़ में फूल उगना। २. प्राकृतिक कारणों से किसी तल के अंदर से निकलकर ऊपरी या बाहरी स्तर पर आना। जैसे--ठोढ़ी पर तिल उगना; गाल पर बाल या मसा उगना। ३. ग्रह, नक्षत्र आदि का क्षितिज से ऊपर आकर दिखाई देना। उदित होना। जैसे--चंद्रमा या सूर्य उगना।४. अस्तित्व में आकर अपने आरंभिक रूप में दिखाई देना। जैसे--रात में चाँदनी या दिन में धूप उगना। ५. किसी चीज का अपने आस-पास की चीजों में रहते हुए भी अपेक्षया अधिक आकर्षक, मोहक या सुंदर प्रतीत होना। सुशोभित होना। खिलना। उदा०--पँच-रँग रँग बेंदी खरी उठै ऊगि मुख-ज्योति।--बिहारी।

उगमन--पुं० [सं० उद्गमन] पूर्व दिशा, जिधर से सूर्य उगता है।

उगरना*--अ० [सं० उद्गरण] १. अंदर भरी हुई चीज का बाहर आना या निकाला जाना। जैसे--कुआँ उगरना=कुएँ का जल बाहर निकाला जाना। २. घर से बाहर होना। निकलना। उदा०--गवन करै कहँ उगरै कोई।--जायसी।
स०=उगलना।

उगलना--स० [सं० उद्गिलन, प्रा० उग्गिलन, मरा० उगलणें] १. पेट में पहुँची या मुँह में डाली हुई चीज मुँह के रास्ते फिर से बाहर निकालना। जैसे--(क) अनपच होने पर खाया हुआ अन्न उगलना। (ख) कड़ुवी चीज मुँह में रखते ही उगल देना। २. चुरा, छिपा या दबाकर रखी हुई चीज (विवश होने पर) बाहर निकालना या औरों के सामने रखना। जैसे--मार पड़ते ही चोर ने सारा माल उगल दिया। ३. मन में अच्छी तरह छिपा या दबाकर रखी हुई बात दूसरों पर प्रकट करना। जैसे--उसे कुछ रुपयों का लालच दो, तो वह सारा भेद उगल देगा।

उगलवाना--स० [हिं० उगलना का प्रे० रूप] किसी को कुछ उगलने में प्रवृत्त करना।

उगलाना--स०=उगलवाना।

उगवन*--अ०=उगना।
स०=उगाना।

उगसाना--स०=उकसाना।

उगसारना*--स० [सं० अग्र+सारण?] १. आगे या सामने रखना या लाना। २. किसी पर प्रकट या विदित करना। उदा०--सुनै राजा दुख उगसारा।
स०=उकसाना।

उगहन--पुं० [सं० उत्+ग्रह] उगने या उदित होने की क्रिया या भाव। उदा०--दीजै दरसन दान, उगहन होय जो पुन्य बल।--नंददास।

उगहना†--स०=उगाहना।
अ०=उगना।

उगहनी--स्त्री०=उगाही।

उगाना--स० [उगना का स० रूप] १.किसी बीज या पौधे, लता आदि को उगने में प्रवृत्त करना। ऐसा काम करना जिससे कोई चीज उगने लगे। २. उत्पन्न या पैदा करना। जैसे--यह दवा गंजी खोपड़ी पर भी बाल उगा देगी।

उगार*--पुं० [हिं० उगारना] १. उगारने की क्रिया या भाव। २. धीरे धीरे निचुड़कर इकट्ठा होनेवाला जल। ३. कपड़ा रँगने के बाद उसका निचोड़ा हुआ रंगीन पानी।
पुं०=उद्गार।

उगारना†--स० [सं० उद्गलन] १. कुएँ में ऊपर से पड़ी हुई मिट्टी या पुराना खराब पानी निकालकर उसकी सफाई करना। २. उद्धार करना। उबारना।
*स० दे० 'उकासना।'

उगाल--पुं० [सं० उद्गार, पा० उग्गाल] १. उगालने की क्रिया या भाव। २. वह वस्तु जो उगली या मुँह से बाहर निकाली गई हो। जैसे--थूक, पान की पीक आदि। ३. पुराने कपड़े। (ठगों की बोली)

उगालदान--पुं० [हिं० उगाल+फा० दान (प्रत्य०)] काँसे, पीतल, मिट्टी आदि का एक प्रकार का पात्र या बरतन जिसमें उगाल (खखार, थूक, पीक आदि) गिराये या थूके जाते हैं। पीकदान।

उगालना--स० १. =उगलना। २. =उगलवाना।

उगाला--पुं० [हिं० उगाल] १. फसल में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा। २. प्रायः या सदा पानी से तर रहनेवाली जमीन। पनमार।

उगाहना--स० [सं० उद्ग्रहण प्रा० उग्गहन] १. किसी से प्राप्य धन या लेन प्राप्त करना। जैसे--कर या मालगुजारी उगाहना। २. सार्वजनिक कार्य के लिए सहायता के रूप में लोगों से थोड़ा-थोड़ा धन प्राप्त

करना या माँगकर लेना। जैसे—चंदा उगाहना। ३. कहीं से प्रयत्न-पूर्वक कुछ प्राप्त करना। उदा०—कोउ वेद वेदांत मथत रस सांत उगाहत।—रत्नाकर।

उगाही—स्त्री० [हिं० उगाहना] १. उगाहने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो उगाहा जाय। कर, चंदे, दान आदि के रूप में इकट्ठा या प्राप्त किया हुआ धन। ३. भूमि का लगान। ४. एक तरह का लेन-देन या व्यवहार जिसमें महाजन ऋणी से अपना प्राप्य धन थोड़ा-थोड़ा करके या नियत समय पर वसूल करता है।

उग्गार—पु० १. =उगाल। २. =उगार।

उग्गाहा—पुं० [सं० उद्गाथा, प्रा० उग्गाहा] आर्या छंद का एक भेद जिसके सम चरणों में अट्ठारह और विषम चरणो में बारह मात्राएँ होती है।

उग्र—वि० [सं० उच् (एकत्रित करना)+रक्, ग आदेश] [भाव० उग्रता, स्त्री० उग्रा] १. जो अपने आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि की भीषणता या विकरालता के कारण देखनेवालों के मन में आंतक, आशंका या भय का संचार करता हो। जैसे—एक ओर काली, नृसिंह, वराह आदि की उग्र मूर्तियाँ रखी थी। २. जो क्रोध, वैर-विरोध आदि के प्रसंगों में क्रूरता या निर्दयता का व्यवहार करनेवाला हो। बल-प्रयोग करके कष्ट या हानि पहुँचा सकनेवाला। जैसे—परशुराम का उग्र रूप देखकर सब लोग थर्रा गये। ३. जो अपनी तीव्र प्रकृति या कर्कश स्वभाव के कारण सहज में शांत न हो सकता हो और इसी लिए जिसके साथ निर्वाह या व्यवहार करना बहुत कठिन हो। जैसे—ठाकुर साहब ऐसे उग्र थे कि घर के बच्चे भी उनके पास जाने से डरते थे। ४. (कार्य या विचार) जिसमें शांति या सौम्यता के बदले आवेश, कठोरता, नृशंसता आदि बातें अधिक हों अथवा जो व्यावहारिक क्षेत्र में उत्कट या विकट रूप में सक्रिय रहता हो। जैसे—(क) अराजकों की उग्र विचारधारा। (ख) आततायियों की उग्र कार्य-प्रणाली। (ग) विरोधियों का उग्र प्रदर्शन। ५. जो असाधारण रूप से घन, तीव्र या प्रबल होने के कारण अधिक कष्ट देनेवाला हो। काया या शरीर पर जिसका विशेष कष्टदायक परिणाम या प्रभाव होता हो। जैसे—(क) जंगली जातियों के उपचार और चिकित्साएँ प्रायः उग्र होती हैं। (ख) पार्वती की उग्र तपस्या देखकर सब देवता घबरा गये। ६. जो अपनी प्रबलता, वेग आदि के कारण घातक या हानिकारक सिद्ध हो सकता हो। अति तीव्र और दुःखद। जैसे—उग्र मनस्ताप, उग्र महामारी आदि। ७. जो अपनी मात्रा की अधिकता के कारण सहज में सहा न जा सके। जैसे—उग्र गंध।

पुं० १. महादेव। शिव। २. विष्णु। ३. सूर्य। ४. क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न एक प्राचीन संकर जाति जिसका स्वभाव मनु के अनुसार बहुत उग्र और क्रूर था। ५. ज्योतिष में पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी ये पांच नक्षत्र जो स्वभावतः उग्र माने गये है। ६. पुराणानुसार एक दानव का नाम। ७. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ८. केरल देश का पुराना नाम। ९. सहिजन का वृक्ष। १०. बछनाग या वत्सनाभ नामक विष।

उग्र-गंध—पु० [ब० स०] ऐसी वस्तु जिसकी गंध बहुत अधिक उग्र या तेज हो। जैसे—लहसुन, हींग आदि।

उग्रगंधा—स्त्री० [सं० उग्रगंध+टाप्] १. अजवायन। २. अजमोदा। ३. वच। ४. नकछिकनी।

उग्रता—स्त्री० [सं० उग्र+तल्—टाप्] १. 'उग्र' होने की अवस्था या भाव। तेजी। प्रचंडता। २. मन की वह अवस्था जिसमें क्रोध आदि के कारण दया, स्नेह आदि कोमल भावनाएँ बिलकुल दब जाती हैं। (साहित्य में यह एक संचारी भाव माना गया है)

उग्र-धन्वा (न्वन्)—पुं० [ब० स०] १. इंद्र। २. शिव।

उग्रशेखरा—स्त्री० [सं० उग्र—शेखर, कर्म० स०+अच्—टाप्] उग्र अर्थात् शिव के मस्तक पर रहनेवाली, गंगा।

उग्रसेन—पुं० [सं० ब० स०] १. मथुरा के राजा कंस के पिता का नाम। २. महाराज परीक्षित के एक पुत्र का नाम।

उग्रह—पुं० [सं० उद्ग्रह] १. ग्रह या बंधन से मुक्त होने की क्रिया या भाव। २. ग्रहण से चंद्रमा या सूर्य के मुक्त होने की अवस्था या भाव।

उग्रहना—स० [सं० उग्रह] १. छोड़ना। त्यागना। २. उगलना। ३. दे० 'उगाहना'।

उग्रा—स्त्री० [सं० उग्र+टाप्] १. दुर्गा। महाकाली। २. अजवायन। ३. वच। ४. नकछिकनी। ५. धनिया। ६. उग्र स्वभाववाली या कर्कशा स्त्री। ७. निषाद स्वर की पहली श्रुति।

उघटना—स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाटन] १. किसी का कोई भेद या रहस्य खोलना। प्रकट करना। उदा०—धीर वीर सुनि समुझि परस्पर बल उपाय उघटत निज हिय के।—तुलसी। २. आगे पड़ा हुआ परदा या आवरण हटाना। खोलकर सामने रखना या लाना। ३. दबी, बीती या भूली हुई पुरानी बातों की नये सिरे से चर्चा करना। ४. उक्ति या कथन के रूप में उपस्थित करना। कहना। उदा०—उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पर राग तान बन्धान।—तुलसी। ५. अपने किये हुए उपकारों या दूसरों के अपराधों, दोषों आदि की खुलकर चर्चा करना। ६. किसी के पुराने दोषों, पापों आदि की चर्चा करते हुए उन्हें बुरा-भला कहना। निंदा करते हुए गालियाँ देना। उदा०—उघटति ही तुम मात पिता लौं नहिं जानी तुम हमको।—सूर।

विशेष—अंतिम दोनों अर्थो में इस शब्द का प्रयोग किसी को ताना देते हुए नीचा दिखाने के लिए होता है।

अ० संगीत में, किसी के, गाने-बजाने, नाचने आदि के समय बराबर हर ताल पर कुछ आघात या शब्द करना। ताल देना। उदा०—कोउ गावत कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत, कोउ ताल बजावत।—सूर।

उघटा—वि० [हिं० उघटना] १. दबी या भूली हुई बातें कहकर भेद या रहस्य खोलनेवाला। २. अपने उपकारों या भलाइयों और दूसरे के अपकारों या बुराइयों की चर्चा करनेवाला अथवा ऐसी चर्चा करके ताना देते हुए दूसरे को नीचा दिखानेवाला।

पुं० उघटने की क्रिया या भाव।

उघटा पुराण—पुं० [हिं० उघटा+सं० पुराण] आपस में एक दोनों के पुराने दोषों और अपने किये हुए पुराने उपकारों का बार-बार अथवा विस्तारपूर्वक किया जानेवाला उल्लेख या कथन। (दूसरे को ताना देते हुए नीचा दिखाने के लिए)

उघड़ना—अ०=उघरना।

उघन्नी—स्त्री०=उघरनी।

उघरना—अ० [सं० उद्घाटन] १. आवरण हट जाने पर, छिपी या दबी हुई वस्तु का प्रकट होना या सामने आना। प्रत्यक्ष, व्यक्त या स्पष्ट

होना। उदा०—छीर-नीर बिवरन समय बक उघरत तेहि काल।—तुलसी। २. आवरण उतारकर नंगा होना।

मुहा०—उघरकर नाचना=लोक-लज्जा छोड़कर मनमाना, निंदनीय आचरण करना।

३. भेद या रहस्य खुलना। भंडा फूटना। उदा०—उघरहिं अंत न होहि निवाहू।—तुलसी।

†स० दे० 'उघारना'।

उघरनी—स्त्री० [हिं० उघरना या उघारना] १. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज खोली जाय। २. कुंजी। चाभी। ताली।

उघरारा—वि० [हिं० उघरना] [स्त्री० उघरारी] १. जिसपर कोई आवरण न हो। खुला हुआ। २. जो बंद न हो। ३. नंगा। नग्न।

पुं० खुला हुआ स्थान। मैदान। उदा०—पावस परखि रहे उघरारैं। सिसिर समय बसि नीर मँझारें।—पद्माकर।

उघाड़ना—स०=उघारना।

उघाड़ा—वि०=उघारा।

उघार—पुं० [हिं० उघारना] उघारने की क्रिया या भाव।

उघारना—स० [सं० उद्घाटन] १. आगे पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना। अनावृत और फलतः प्रकट, व्यक्त या स्पष्ट करना। खोलना। उदा०—तब सिव तीसर नयन उघारा।—तुलसी। २. पहने हुए वस्त्र हटाकर नंगा करना। ३. (अंग) जिसका कार्य बंद हो उसका कार्य या व्यापार आरंभ करना। जैसे—किसी के आगे जीभ उघारना=जबान या मुँह खोलकर कुछ कहना या माँगना। नैन उघारना=आँखें खोलकर देखना। (उदाहरण देखें 'उघेलना' में) ४. छिपी, दबी या धँसी हुई चीज ऊपर उठाना। उभारना।

उघारा*—वि० [हिं० उघारना] [स्त्री० उघारी] १. जिसपर कोई आवरण या परदा न हो। खुला हुआ। २. जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। विवस्त्र। नंगा। उदा०—आप तो कदम चढ़ि बैठे, हम जल माहिं उघारी।—गीत।

उघेड़ना†—स० [हिं० उघारना का स्था० रूप] १. खोलना। २. चिपकी, लगी या सटी हुई कोई चीज कहीं से हटाना। ३. ऊपर उठाना। उभारना। उदा०—जाय फँसी उकसी न उघारी।—देव।

उघेलना*—स० [हिं० उघारना का स्था० रूप] १. आगे पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना। उघारना। उदा०—सरद चंद मुख जानु उघेली।—जायसी। २. आगे पड़ी हुई चीज हटाकर रास्ता साफ करना। उदा०—अबहुँ उघेलु कान के रूई।—जायसी। ३. जिस अंग का कार्य बंद हो, उसका कार्य आरंभ करना। उदा०—कत तीतर बन जीभ उघेला।—जायसी।

उचंत—वि०, पुं०=उचित।

उचकन—पुं० [सं० उच्च-करण] किसी वस्तु को ऊँचा करने के लिए उसके नीचे दिया या रखा जानेवाला कोई आधार या चीज।

उचकना—अ० [सं० उच्च=ऊँचा+करण=करना] १. एड़ी उठाकर थोड़ा उछलकर या पंजों के बल खड़े होकर कोई ऊँची चीज देखने या पकड़ने का प्रयत्न करना। जैसे—भीड़ में से कुछ लोग उचक-उचक कर देखने लगे। २. उछलना। उदा०—यों कहिकै उचकी परजंक ते पूरि रही दृग वारि की बूंदै।—देव।

स० उछल या झपटकर कोई चीज उठाना या छीनना। जैसे—तुम तो उचक्कों की तरह हर चीज उचक ले जाते हो।

उचका*—अव्य०=औचक।

उचकाना—स० [हिं० उचकना का स० रूप] १. कोई चीज ऊपर की ओर उठाना। ऊँचा करना। उदा०—बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाप भिनि।—रत्नाकर। २. दे० 'उछालना'।

उचक्का—पुं० [हिं० उचकना] [स्त्री० उचक्की] वह जो उचककर दूसरों की चीजें उठा-उठाकर भाग जाता हो। दूसरों का माल उठाकर भाग जानेवाला व्यक्ति।

उचटना—अ० [सं० उच्चाटन] १. किसी ऐसे आधार या स्तर पर से किसी वस्तु का अलग होना जिस पर वह चिपकी, लगी या सटी हो। जमी हुई वस्तु का उखड़ना। २. लाक्षणिक अर्थ में किसी कार्य, व्यक्ति या स्थान से जी ऊब जाना। मन घबरा जाना। विरक्त होना।

उचटाना—स० [हिं० उचटना का स०] १. ऐसा काम करना जिससे कोई लगी हुई चीज कहीं से उचटे। उखाड़ना। २. ऐसा उपाय या प्रयत्न करना जिससे किसी का मन कहीं से किसी की ओर हटे। उदासीन या विरक्त करना। उदा०—चुगली करी जाइ उन आगे, हमतें वे उचटाए।—सूर।

उचड़ना—अ० १.=उचटना। २. =उखड़ना।

उचना—अ० [सं० उच्च] १. ऊँचा होना। ऊपर उठना। २. दे० 'उचकना'।

स० ऊँचा करना। ऊपर उठाना। उदा०—अंगुरिनि उचि भरु भीति दै उलमि चितै चख लोल।—बिहारी।

उचनि*—स्त्री० [सं० उच्च] १. ऊँचे या ऊपर उठे होने की अवस्था या भाव। २. उठान। उभार।

उचरंग†—पुं० [हिं० उचरना+अंग] उड़नेवाला कीड़ा। फतिगा।

उचरना*—स० [सं० उच्चारन] १. उच्चारण करना। मुँह से शब्द निकालना। २. किसी से कुछ कहना। बोलना। उदा०—तब श्रीपति बानी उचरी।—सूर।

अ० १. उच्चरित होना। मुँह से बोला जाना। २. लिखे हुए अक्षरों या लिपि का पढ़ा जाना।

†अ०=उचटना।

उचराई—स्त्री० [हिं० उचरना] १. उच्चारण करने की क्रिया, भाव या स्थिति। २. उच्चारण करने का पारिश्रमिक।

उचलना†—अ० १.=उचकना। २. उचटना।

उचाट—पुं० [सं० उच्चाटन] ऐसी स्थिति जिसमें मन किसी बात से ऊब या उदासीन हो गया हो। मन का ऊब जाना अथवा न लगना।

वि० [सं० उच्चाटन] १. जो उचट गया हो। २. उदासीन या विरक्त (मन)। जैसे—मन उचाट होना।

उचाटना—स० [हिं० उचटना] १. किसी का मन कहीं से या किसी की ओर से विरक्त करना। उदा०—लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ।—तुलसी। २. ध्यान भंग करना। ३. दे० 'उचाड़ना'।

उचाटी*—स्त्री० [सं० उच्चाट] मन उचटने की क्रिया या भाव। ऐसी स्थिति जिसमें मन किसी ओर से उदासीन या खिन्न हो गया

करना या माँगकर लेना। जैसे—चंदा उगाहना। ३. कहीं से प्रयत्न-पूर्वक कुछ प्राप्त करना। उदा०—कोउ वेद वेदांत मथत रस सांत उगाहत।—रत्नाकर।

उगाही—स्त्री० [हिं० उगाहना] १. उगाहने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो उगाहा जाय। कर, चंदे, दान आदि के रूप में इकट्ठा या प्राप्त किया हुआ धन। ३. भूमि का लगान। ४. एक तरह का लेन-देन या व्यवहार जिसमें महाजन ऋणी से अपना प्राप्य धन थोड़ा-थोड़ा करके या नियत समय पर वसूल करता है।

उग्गार—पुं० १. =उगाल। २.=उगार।

उग्गाहा—पुं० [सं० उद्गाथा, प्रा० उग्गाहा] आर्या छंद का एक भेद जिसके सम चरणों में अट्ठारह और विषम चरणों में बारह मात्राएँ होती हैं।

उग्र—वि० [सं० उच् (एकत्रित करना)+रक्, ग आदेश] [भाव० उग्रता, स्त्री० उग्रा] १. जो अपने आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि की भीषणता या विकरालता के कारण देखनेवालों के मन में आंतक, आशंका या भय का संचार करता हो। जैसे—एक ओर काली, नृसिंह, वराह आदि की उग्र मूर्तियाँ रखी थीं। २. जो क्रोध, वैर-विरोध आदि के प्रसंगों में क्रूरता या निर्दयता का व्यवहार करनेवाला हो। बल-प्रयोग करके कष्ट या हानि पहुँचा सकनेवाला। जैसे—परशुराम का उग्र रूप देखकर सब लोग थर्रा गये। ३. जो अपनी तीव्र प्रकृति या कर्कश स्वभाव के कारण सहज में शांत न हो सकता हो और इसी लिए जिसके साथ निर्वाह या व्यवहार करना बहुत कठिन हो। जैसे—ठाकुर साहब ऐसे उग्र थे कि घर के बच्चे भी उनके पास जाने से डरते थे। ४. (कार्य या विचार) जिसमें शांति या सौम्यता के बदले आवेश, कठोरता, नृशंसता आदि बातें अधिक हों अथवा जो व्यावहारिक क्षेत्र में उत्कट या विकट रूप में सक्रिय रहता हो। जैसे—(क) अराजकों की उग्र विचारधारा। (ख) आततताइयों की उग्र कार्य-प्रणाली। (ग) विरोधियों का उग्र प्रदर्शन। ५. जो असाधारण रूप से घन, तीव्र या प्रबल होने के कारण अधिक कष्ट देनेवाला हो। काया या शरीर पर जिसका विशेष कष्टदायक परिणाम या प्रभाव होता हो। जैसे—(क) जंगली जातियों के उपचार और चिकित्साएँ प्रायः उग्र होती हैं। (ख) पार्वती की उग्र तपस्या देखकर सब देवता घबरा गये। ६. जो अपनी प्रबलता, वेग आदि के कारण घातक या हानिकारक सिद्ध हो सकता हो। अति तीव्र और दुःखद। जैसे—उग्र मनस्ताप, उग्र महामारी आदि। ७. जो अपनी मात्रा की अधिकता के कारण सहज में सहा न जा सके। जैसे—उग्र गंध।

पुं० १. महादेव। शिव। २. विष्णु। ३. सूर्य। ४. क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न एक प्राचीन संकर जाति जिसका स्वभाव मनु के अनुसार बहुत उग्र और क्रूर था। ५. ज्योतिष में पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी ये पांच नक्षत्र जो स्वभावतः उग्र माने गये है। ६. पुराणानुसार एक दानव का नाम। ७. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ८. केरल देश का पुराना नाम। ९. सहिजन का वृक्ष। १०. बछनाग या वत्सनाभ नामक विष।

उग्र-गंध—पुं०[ब० स०] ऐसी वस्तु जिसकी गंध बहुत अधिक उग्र या तेज हो। जैसे—लहसुन, हींग आदि।

उग्रगंधा—स्त्री० [सं० उग्रगंध+टाप्] १. अजवायन। २. अजमोदा। ३. बच। ४. नकछिकनी।

उग्रता—स्त्री० [सं० उग्र+तल्—टाप्] १. 'उग्र' होने की अवस्था या भाव। तेजी। प्रचंडता। २. मन की वह अवस्था जिसमें क्रोध आदि के कारण दया, स्नेह आदि कोमल भावनाएँ बिलकुल दब जाती हैं। (साहित्य में यह एक संचारी भाव माना गया है)

उग्र-धन्वा (न्वन्)—पुं० [ब० स०] १. इंद्र। २. शिव।

उग्रशेखरा—स्त्री० [सं० उग्र—शेखर, कर्म० स०+अच्—टाप्] उग्र अर्थात् शिव के मस्तक पर रहनेवाली, गंगा।

उग्रसेन—पुं० [सं० ब० स०] १. मथुरा के राजा कंस के पिता का नाम। २. महाराज परीक्षित के एक पुत्र का नाम।

उग्रह—पुं० [सं० उद्ग्रह] १. ग्रह या बंधन से मुक्त होने की क्रिया या भाव। २. ग्रहण से चंद्रमा या सूर्य के मुक्त होने की अवस्था या भाव।

उग्रहना—स० [सं० उग्रह] १. छोड़ना। त्यागना। २. उगलना। ३. दे० 'उगाहना'।

उग्रा—स्त्री० [सं० उग्र+टाप्] १. दुर्गा। महाकाली। २. अजवायन। ३. बच। ४. नकछिकनी। ५. धनिया। ६. उग्र स्वभाववाली या कर्कशा स्त्री। ७. निषाद स्वर की पहली श्रुति।

उघटना—स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाटन] १. किसी का कोई भेद या रहस्य खोलना। प्रकट करना। उदा०—धीर बीर सुनि समुझि परस्पर बल उपाय उघटत निज हिय के।—तुलसी। २. आगे पड़ा हुआ परदा आ आवरण हटाना। खोलकर सामने रखना या लाना। ३. दबी, बीती या भूली हुई पुरानी बातों की नये सिरे से चर्चा करना। ४. उक्ति या कथन के रूप में उपस्थित करना। कहना। उदा०—उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पर राग तान बन्धान।—तुलसी। ५. अपने किये हुए उपकारों या दूसरों के अपराधों, दोषों आदि की खुलकर चर्चा करना। ६. किसी के पुराने दोषों, पापों आदि की चर्चा करते हुए उन्हें बुरा-भला कहना। निंदा करते हुए गालियाँ देना। उदा०—उघटति ही तुम मात पिता लौं नहि जानौ तुम हमको।—सूर।

विशेष—अंतिम दोनों अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किसी को ताना देते हुए नीचा दिखाने के लिए होता है।

अ० संगीत में, किसी के, गाने-बजाने, नाचने आदि के समय बराबर हर ताल पर कुछ आघात या शब्द करना। ताल देना। उदा०—कोउ गावत कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत, कोउ ताल बजावत।—सूर।

उघटा—वि० [हिं० उघटना] १. दबी या भूली हुई बातें कहकर भेद या रहस्य खोलनेवाला। २. अपने उपकारों या भलाइयों और दूसरे के अपकारों या बुराइयों की चर्चा करनेवाला अथवा ऐसी चर्चा करके ताना देते हुए दूसरे को नीचा दिखानेवाला।

पुं० उघटने की क्रिया या भाव।

उघटा पुराण—पुं० [हिं० उघटा+सं० पुराण] आपस में एक दोनों के पुराने दोषों और अपने किये हुए पुराने उपकारों का बार-बार अथवा विस्तारपूर्वक किया जानेवाला उल्लेख या कथन। (दूसरे को ताना देते हुए नीचा दिखाने के लिए)

उघड़ना—अ०=उघरना।

उघन्नी†—स्त्री०=उघरनी।

उघरना—अ० [सं० उद्घाटन] १. आवरण हट जाने पर, छिपी या दबी हुई वस्तु का प्रकट होना या सामने आना। प्रत्यक्ष, व्यक्त या स्पष्ट

होना। उदा०—छीर-नीर बिवरन समय बक उघरत तेहि काल।—तुलसी। २. आवरण उतारकर नंगा होना।

मुहा०—उघरकर नाचना=लोक-लज्जा छोड़कर मनमाना, निंदनीय आचरण करना।

३. भेद या रहस्य खुलना। भंडा फूटना। उदा०—उघरहि अंत न होहि निबाहू।—तुलसी।

†स० दे० 'उघारना'।

उघरनी—स्त्री० [हिं० उघरना या उघारना] १. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज खोली जाय। २. कुंजी। चाभी। ताली।

उघरारा—वि० [हिं० उघरना] [स्त्री० उघरारी] १. जिसपर कोई आवरण न हो। खुला हुआ। २. जो बंद न हो। ३. नंगा। नग्न। पुं० खुला हुआ स्थान। मैदान। उदा०—पावस परखि रहे उघरारैं। सिसिर समय बसि नीर मँझारें।—पद्माकर।

उघाड़ना—स०=उघारना।

उघाड़ा—वि०=उघारा।

उघार—पुं० [हिं० उघारना] उघारने की क्रिया या भाव।

उघारना—स० [सं० उद्घाटन] १. आगे पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना। अनावृत और फलतः प्रकट, व्यक्त या स्पष्ट करना। खोलना। उदा०—तव सिव तीसर नयन उघारा।—तुलसी। २. पहने हुए वस्त्र हटाकर नंगा करना। ३. (अंग) जिसका कार्य बंद हो उसका कार्य या व्यापार आरंभ करना। जैसे—किसी के आगे जीभ उघारना=जवान या मुँह खोलकर कुछ कहना या माँगना। नैन उघारना=आँखें खोलकर देखना। (उदाहरण देखें 'उघेलना' में) ४. छिपी, दबी या धँसी हुई चीज ऊपर उठाना। उभारना।

उघारा*—वि० [हिं० उघारना] [स्त्री० उघारी] १. जिसपर कोई आवरण या परदा न हो। खुला हुआ। २. जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। विवस्त्र। नंगा। उदा०—आप तो कदम चढ़ि बैठे, हम जल माँहि उघारी।—गीत।

उघेड़ना†—स० [हिं० उघारना का स्था० रूप] १. खोलना। २. चिपकी, लगी या सटी हुई कोई चीज कहीं से हटाना। ३. ऊपर उठाना। उभारना। उदा०—जाय फँसी उकसी न उघारी।—देव।

उघेलना*—स० [हिं० उघारना का स्था० रूप] १. आगे पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना। उघारना। उदा०—सरद चंद मुख जानु उघेली।—जायसी। २. आगे पड़ी हुई चीज हटाकर रास्ता साफ करना। उदा०—अबहूँ उघेलु कान के रूई।—जायसी। ३. जिस अंग का कार्य बंद हो, उसका कार्य आरंभ करना। उदा०—कत तीतर बन जीभ उघेला।—जायसी।

उचंत—वि०, पुं०=उचित।

उचकन—पुं० [सं० उच्च-करण] किसी वस्तु को ऊँचा करने के लिए उसके नीचे दिया या रखा जानेवाला कोई आधार या चीज।

उचकना—अ० [सं० उच्च=ऊँचा+करण=करना] १. एड़ी उठाकर थोड़ा उछलकर या पंजों के बल खड़े होकर कोई ऊँची चीज देखने या पकड़ने का प्रयत्न करना। जैसे—भीड़ में से कुछ लोग उचक-उचक कर देखने लगे। २. उछलना। उदा०—यों कहिकै उचकी परजंक ते पूरि रही दृग वारि की बूँदैं।—देव।

स० उछल या झपटकर कोई चीज उठाना या छीनना। जैसे—तुम तो उचक्कों की तरह हर चीज उचक ले जाते हो।

उचका*—अव्य०=औचक।

उचकाना—स० [हिं० उचकना का स० रूप] १. कोई चीज ऊपर की ओर उठाना। ऊँचा करना। उदा०—वच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाप भिनि।—रत्नाकर। २. दे० 'उछालना'।

उचक्का—पुं० [हिं० उचकना] [स्त्री० उचक्की] वह जो उचककर दूसरों की चीजें उठा-उठाकर भाग जाता हो। दूसरों का माल उठाकर भाग जानेवाला व्यक्ति।

उचटना—अ० [सं० उच्चाटन] १. किसी ऐसे आधार या स्तर पर से किसी वस्तु का अलग होना जिस पर वह चिपकी, लगी या सटी हो। जमी हुई वस्तु का उखड़ना। २. लाक्षणिक अर्थ में किसी कार्य, व्यक्ति या स्थान से जी ऊब जाना। मन घबरा जाना। विरक्त होना।

उचटाना—स० [हिं० उचटना का स०] १. ऐसा काम करना जिससे कोई लगी हुई चीज कहीं से उचटे। उखाड़ना। २. ऐसा उपाय या प्रयत्न करना जिससे किसी का मन कहीं से किसी की ओर हटे। उदासीन या विरक्त करना। उदा०—चुगली करी जाइ उन आगे, हमतें वे उचटाए।—सूर।

उचड़ना—अ० १.=उचटना। २. =उखड़ना।

उचना—अ० [सं० उच्च] १. ऊँचा होना। ऊपर उठना। २. दे० 'उचकना'।

स० ऊँचा करना। ऊपर उठाना। उदा०—अंगुरिनि उचि भरु भीति कै उलमि चितै चख लोल।—बिहारी।

उचनि*—स्त्री० [सं० उच्च] १. ऊँचे या ऊपर उठे होने की अवस्था या भाव। २. उठान। उभार।

उचरंग†—पुं० [हिं० उचरना+अंग] उड़नेवाला कीड़ा। फतिंगा।

उचरना*—स० [सं० उच्चारन] १. उच्चारण करना। मुँह से शब्द निकालना। २. किसी से कुछ कहना। बोलना। उदा०—तव श्रीपति बानी उचरी।—सूर।

अ० १. उच्चरित होना। मुँह से बोला जाना। २. लिखे हुए अक्षरों या लिपि का पढ़ा जाना।

†अ०=उचटना।

उचराई—स्त्री० [हिं० उचरना] १. उच्चारण करने की क्रिया, भाव या स्थिति। २. उच्चारण करने का पारिश्रमिक।

उचलना†—अ० १.=उचकना। २. उचटना।

उचाट—पुं० [सं० उच्चाटन] ऐसी स्थिति जिसमें मन किसी बात से ऊब या उदासीन हो गया हो। मन का ऊब जाना अथवा न लगना।

वि० [सं० उच्चाटन] १. जो उचट गया हो। २. उदासीन या विरक्त (मन)। जैसे—मन उचाट होना।

उचाटना—स० [हिं० उचटना] १. किसी का मन कहीं से या किसी की ओर से विरक्त करना। उदा०—लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ।—तुलसी। २. ध्यान भंग करना। ३. दे० 'उचाड़ना'।

उचाटी*—स्त्री० [सं० उच्चाट] मन उचटने की क्रिया या भाव। ऐसी स्थिति जिसमें मन किसी ओर से उदासीन या खिन्न हो गया

हो। उचाट होने की अवस्था या भाव। उदा०—भईं सब भवन काज तें भई उचाटी।—सूर।

उचाटू†—वि० [हिं० उचाट] उचाटनेवाला।

उचाड़ना—स० [हिं० उचड़ना] किसी से चिपकी, लगी या सटी हुई वस्तु को उससे अलग करना या छुड़ाना। उखाड़ना।

उचाढ़ी†—स्त्री०=उचाटी।

उचाना—†स० [सं० उच्च-करण] १. ऊपर की ओर बढ़ाना। ऊँचा करना। २. उठाना।

उचायत†—वि०, पुं०=उचित।

उचारना*—स० [सं० उच्चारण] १. उच्चारण करना। २. कहना या बोलना। उदा०—मधुर मनोहर वचन उचारे।—तुलसी।

†स०=उचाड़ना।

उचालना†—स० १. =उचाड़ना। २. =उछालना।

उंचित—पुं० [हिं० उचना=उठाना (ऊपर से लेना)] १. लेन-देन की वह परिपाटी जिसमें कहीं से कुछ धन थोड़े समय के लिए इस रूप में लिया जाता है कि उसका पूरा हिसाब वह धन व्यय हो जाने पर बाद में दिया जायगा। (सस्पेन्स) जैसे—अभी १००) उंचित में दे दीजिए, हिसाब कल लिखा दूँगा। २. वह धन या रकम जो इस प्रकार दी या ली जाय।

वि० (धन) जो उक्त प्रकार से दिया या लिया जाय।

उंचित खाता—पुं० [हिं० उंचित+खाता] पंजी या वही में वह खाता या विभाग जिसमें अस्थायी रूप से ऐसी रकमें लिखी जाती हैं जिनका ठीक या पूरा हिसाब बाद मे होने को हो। (सस्पेंस एकाउंट)

उचित—वि० [सं० उच् (समवाय)+क्त] [भाव० औचित्य] १. जो किसी अवसर या परिस्थिति के अनुकूल या उपयुक्त हो। मुनासिब। वाजिब। जैसे—अपराधियों को उचित दंड मिलना चाहिए। २. जो व्यक्ति, स्थिति आदि के विचार से वैसा ही हो, जैसा साधारणतः होना चाहिए। ठीक। जैसे—आपने उनके साथ जो व्यवहार किया, वह उचित ही था। ३. जो आदर्श, न्याय आदि के विचार से वैसा ही हो, जैसा होना चाहिए। जैसे—उचित आलोचना, उचित दृष्टिकोण, उचित मार्ग आदि। ४. मात्रा या मान के विचार से उतना ही, जितना प्रसम रूप मे होना चाहिए। जैसे—औषध की उचित मात्रा, यात्रा का उचित व्यय।

उचिस्ट*—वि०=उच्छिष्ट।

उचेड़ना†—स०=उचाड़ना।

उचौंहाँ*—वि० [हिं० ऊँचा+औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० उचौंही] ऊपर की ओर उठा, उभरा या तना हुआ।

उच्चंड—वि० [सं० उद्√चण्ड् (कोप)+अच्] बहुत अधिक उग्र या चंड। प्रचंड।

उच्च—वि० [सं० उद्√चि (चयन करना)+ड] १. जिसका विस्तार ऊपर की ओर बहुत दूर तक हो। जैसे—उच्च शिखर।

मुहा०—**उच्च के चंद्रमा होना**=सौभाग्य और उन्नति के लिए उपयुक्त समय होना।

२. जो किसी विशिष्ट मानक, मान या स्तर से आगे बढ़ा हुआ हो। जैसे—उच्च रक्त-चाप, उच्च विद्यालय, उच्च शिक्षा आदि। ३. जो अधिकार, पद आदि के विचार से औरों से ऊपर या उनसे बड़ा हो। जैसे—उच्च अधिकारी। ४. विभाग, श्रेणी आदि के विचार से औरों से आगे बढ़ा हुआ, ऊँचा और बड़ा। जैसे—उच्च आसन, उच्च कुल आदि। ५. आचार-विचार, नीति आदि की दृष्टि से महान्। श्रेष्ठ। जैसे—उच्च आदर्श, उच्च विचार आदि।

पुं० संगीत में, तार नामक सप्तक जो शेष दोनों सप्तकों से ऊँचा होता है।

उच्चक—वि० [सं० उच्च+क] १. बहुत अधिक या सबसे अधिक ऊँचा। २. ऊँचाई के विचार से उस निश्चित सीमा तक पहुँचनेवाला जिससे आगे बढ़ना या ऊपर चढ़ना निषिद्ध या वर्जित हो। (सीलिंग) जैसे—सरकार ने गेहूँ का उच्चक मूल्य १६) मन रखा है।

उच्चतम—वि० [सं० उच्च+तमप्] जो अपेक्षाकृत सबसे ऊँचा हो। जिससे बढ़कर ऊँचा कोई न हो; अथवा हो ही न सकता हो।

पुं० संगीत में, तार से भी ऊँचा सप्तक जो केवल बाजों में हो सकता है, गले की पहुँच के बाहर होता है।

उच्चता—स्त्री० [सं० उच्च+तल्—टाप्] १. उच्च होने की अवस्था या भाव। २. उत्तमता। श्रेष्ठता।

उच्च-ताप—पुं० [कर्म० स०] विज्ञान में, ३५०° से अधिक का ताप।

उच्च-न्यायालय—पुं० [कर्म० स०] राज्य का वह प्रधान न्यायालय जिसमें कुछ विशेष प्रकार के मुकदमे चलाये जाते हैं तथा राज्य भर की छोटी अदालतों के निर्णयों का पुनर्विचार होता है। (हाई कोर्ट)

उच्चय—पुं० [सं० उद्√चि (चयन करना)+अच्] १. चयन या इकट्ठा करने की क्रिया या भाव। २. समूह। ढेर। ३. अभ्युदय। ४. त्रिकोण का पार्श्व भाग।

उच्च रक्त-चाप—पुं० [सं० रक्त-चाप, ष० त०, उच्च-रक्तचाप, कर्म० स०] रक्त चाप का वह रूप जिसमें शरीर के रक्त का वेग बहुत अधिक बढ़ जाता है। (हाई ब्लडप्रेशर)

उच्चरण—पुं० [सं० उद्√चर् (गति)+ल्युट्—अन] [वि० उच्चरणीय, उच्चरित] ओष्ठ, कंठ, जिह्वा, तालु आदि के प्रयत्न से शब्द निकालने की क्रिया या भाव। गले से आवाज निकालना।

उच्चरना*—स० [सं० उच्चारण] गले और मुँह से कहना या बोलना। उच्चारण करना। उदा०—यह दिन-रैन नाम उच्चरैं।—तुलसी।

उच्चरित—भू० कृ० [सं० उद्√चर्+क्त] १. जिसका उच्चारण किया गया हो। २. कहा हुआ।

उच्च-वर्ग—पुं० [कर्म० स०] समाज का अधिकतम धनिक तथा सुखी वर्ग। (अपर क्लास) शेष दो वर्ग मध्यम और निम्न कहलाते हैं।

उच्चाकांक्षा—स्त्री० [सं० उच्च (I)-आकांक्षा, कर्म० स०] औरों से बहुत आगे बढ़ने अथवा कोई महत्त्वपूर्ण काम करने की आकांक्षा। (एम्बिशन)

उच्चाकांक्षी (क्षिन्)—वि० [सं० उच्च-आ√कांक्ष् (चाहना) +णिनि] जिसके मन में बहुत बड़ी या उच्च आकांक्षा हो। (एम्बिशस)

उच्चाट—पुं० [सं० उद्√चट् (फूटना या फाड़ना)+घञ्] १. उचटने या उचाटने की क्रिया या भाव। २. चित्त का ऊब जाना और फलतः कहीं न लगना। उदासीनता। विरक्ति। उदा०—भई वृत्ति उच्चाट भभरि आई भरि छाती।—रत्नाकर।

उच्चाटन—पुं० [सं० उद्√चट्+णिच्+ल्युट्—अन] [वि० उच्चा-

टनीय, भू० कृ० उच्चाटित] १. कहीं चिपकी, लगी या सटी हुई चीज खींचकर वहाँ से अलग करना या हटाना। उचाड़ना। २. उदासीनता या विरक्ति होना। मन उचटना। ३. एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिसमें मंत्र-यंत्र आदि के द्वारा किसी का मन किसी भी स्थान से या किसी व्यक्ति की ओर से हटाने का प्रयत्न किया जाता है।

उच्चाटित—भू० कृ० [सं० उद्√चट्+णिच्+क्त] १. उजाड़ा हुआ। उनाड़ा हुआ। २. जिसके ऊपर उच्चाटन का प्रयोग किया गया हो।

उच्चारण—पुं० [सं० उद्√चर् (गति)+णिच्+ल्युट्—अन] १. मुँह से इस प्रकार शब्द निकालना कि औरों को सुनाई दे। २. मनुष्यों का गले और मुँह के भिन्न अंगों के संयोग से अक्षरों, व्यंजनों आदि के रूप में सार्थक शब्द निकालना। (आर्टिक्युलेशन)

विशेष—व्यावहारिक क्षेत्र में प्रायः 'उच्चारण' का प्रयोग केवल मनुष्यों के संबंध में और 'उच्चरण' का प्रयोग मनुष्यों के सिवा पशु-पक्षियों आदि के संबंध में भी होता है।

३. अक्षरों, वर्णों आदि के संयोग से बने हुए सार्थक शब्द कहने या बोलने का निश्चित और शुद्ध ढंग या प्रकार। (प्रोनन्सिएशन) जैसे—अभी तुम्हारा अँगरेजी (या संस्कृत) शब्दों का उच्चारण ठीक नहीं हो रहा है।

उच्चारणीय—वि० [सं० उद्√चर्+णिच्+अनीयर्] (शब्द) जिसका उच्चारण हो सकता हो या होना उचित हो।

उच्चारना*—स० [सं० उच्चारण] मुँह से शब्द निकालना। उच्चारण करना।

उच्चारित—भू० कृ० [सं० उद्√चर्+णिच्+क्त] (शब्द) जिसका उच्चारण किया गया हो।

उच्चार्य—वि० [सं० उद्√चर्-णिच्+यत्] (शब्द) जिसका उच्चारण किया जा सके।

उच्चार्यमाण—वि० [सं० उद्√चर्+णिच्+शानच्] जिसका उच्चारण किया जाय अथवा किया जा सके।

उच्चित्र—वि० [सं० उद्-चित्र, ब० स०] जिसमें या जिसपर बेल-बूटे या दूसरी आकृतियाँ बनी या बनाई गई हों। (फीगर्ड) जैसे—उच्चित्र वस्त्र।

उच्चैः—अव्य० [सं० उद्√चि (चयन करना)+डैस्] ऊँची आवाज में। ऊँचे स्वर से।

उच्चैःश्रवा (वस्)—पुं० [सं० ब० स०] इंद्र का सफेद घोड़ा, जो सात मुँहों और ऊँचे या खड़े कानोंवाला कहा गया है।

वि० ऊँचा सुननेवाला। बहरा।

उच्छन्न—वि० [सं० उद्√छद् (ढाँकना)+क्त] काट, खोद या तोड़-फोड़ कर नष्ट किया हुआ।

उच्छरना*—अ०=उछलना।

उच्छल—वि० [सं० उद्√शल् (गति)+अच्] १. ऊपर की ओर उछलने या उड़नेवाला। उदा०—ज्वार मग्न कर उच्छल प्राणों के प्रवाह को आवर्तों के गंड शून्य इसमें क्या संशय।—सुमित्रानंदन पंत। २. लहराता या हिलता हुआ।

उच्छलन—पुं० [सं० उद्√शल् +ल्युट्—अन] [भू० कृ० उच्छलित] उछलना। तरंगित होना।

पुं० [सं०] [वि० उच्छलित्] जोर से ऊपर की ओर उठने अथवा उछलने की क्रिया या भाव। उछाल।

उच्छलना*—अ०=उछलना।

उच्छलिध्र*—पुं०=उच्छिलींध्र।

उच्छव*—पुं०=उत्सव।

उच्छादन—पुं० [सं० उद्√छद्+णिच्+ल्युट्—अन] १. आच्छादन। २. शरीर पर सुगंधित द्रव्य मलना या लगाना।

उच्छाव*—पुं०=उत्साह।

उच्छास*—पुं०=उच्छ्वास।

उच्छाह*—पुं०=उत्सव।

उच्छित्ति—स्त्री० [सं० उद्√छिद् (काटना)+क्तिन्] नाश। विनाश।

उच्छिन्न—वि० [सं० उद्√छिद्+क्त] काट, खोद या तोड़-फोड़कर नष्ट किया हुआ।

उच्छिलींध्र—पुं० [सं० उद्-शिलींध्र, प्रा० स०] कुकुरमुत्ता नाम की वनस्पति।

उच्छिष्ट—वि० [सं० उद्√शिष् (बचना)+क्त] १. (खाद्य पदार्थ) जो किसी के भोजन करने के बाद उसके आगे बच गया हो। २. जो किसी ने खाकर जूठा कर दिया हो। ३. (कोई पदार्थ) जो किसी ने उपयोग या व्यवहार के उपरांत रद्दी या व्यर्थ समझकर छोड़ दिया हो। ४. अपवित्र। अशुद्ध।

पुं० १. जूठी बची हुई चीज। जूठन। २. मधु। शहद।

उच्छिष्ट भोजी (जिन्)—वि० [सं० उच्छिष्ट√भुज् (खाना) +णिनि] जो दूसरों का जूठा छोड़ा हुआ अन्न खाता हो। जूठन खानेवाला।

उच्छू—पुं० [सं० उत्थान, पं० उत्थू] कोई चीज गले में फँसने अथवा नाक में पानी चढ़ जाने से आनेवाली एक प्रकार की खाँसी।

उच्छृंखल—वि० [सं० उद्—शृंखला, ब० स०] [भाव० उच्छृंखलता] १. जो क्रमिक, व्यवस्थित या शृंखलित न हो। २. जिसका अपने ऊपर नियंत्रण या शासन न हो। ३. मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश। ४. किसी का दबाव न माननेवाला। उद्दंड।

उच्छेत्ता (त्तृ)—वि० [सं० उद्√छिद् (काटना)+तृच्] उच्छेद करनेवाला।

उच्छेद—पुं० [सं० उद्√छिद्+घञ्] १. जड़ से उखाड़ने अथवा काटकर अलग करने की क्रिया या भाव। २. नष्ट या समाप्त करना। ३. मत, सिद्धांत आदि का पूर्ण रूप से किया हुआ खंडन।

उच्छेदन—पुं० [सं० उद्√छिद्+ल्युट्—अन] १. जड़ से अच्छी तरह उखाड़ने अथवा काटकर अलग करने की क्रिया या भाव। २. खंडन। ३. नाश।

उच्छेद-वाद—पुं० [ष० त०] यह दार्शनिक सिद्धांत कि आत्मा वास्तव में कुछ भी नहीं। 'शाश्वतवाद' का विपर्याय।

उच्छेदवादी (दिन्)—वि० [सं० उच्छेद√वद्+णिनि] उच्छेदवाद संबंधी।

पुं० वह जिसकी आस्था उच्छेदवाद में हो।

उच्छेदी (दिन्)—वि० [सं० उद्√छिद्+णिनि] उच्छेदन करनेवाला।

उच्छ्वसन—पुं० [सं० उद्+श्वस् (साँस लेना)+ल्युट्—अन] गहरा, ठंढा या लंबा साँस लेना।

उच्छ्वसित—वि० [सं० उद्√श्वस्+क्त] १. जो उच्छ्वास के रूप में बाहर आया हो। २. खिला हुआ। विकसित।

उच्छ्वास—पुं०,[सं० उद्√श्वस्+घञ्] [वि० उच्छ्वसित, उच्छ्वासी]

१. ऊपर की ओर छोड़ा या निकाला हुआ श्वास या साँस। २. सहसा कुछ गहराई से निकलकर ऊपर आनेवाला वह श्वास या साँस जो साधारण से कुछ अधिक खिंचा हुआ और लंबा होता है, आस-पास के लोगों को थोड़ा-बहुत सुनाई पड़ता है और प्रायः इस बात का सूचक होता है कि श्वास लेनेवाले के मन में कोई विशेष कष्ट या वेदना है अथवा उसके मन पर पड़ा हुआ भार कुछ हलका हुआ है। गहरा या लंबा साँस। आह भरना। उसास। ३. वह नली जिससे फूँककर हवा छोड़ी जाती है। ४. किसी चीज के सड़ने पर उसमें उठनेवाला खमीर। ५. मरण। मृत्यु। ६. ग्रंथ का कोई अध्याय, प्रकरण या विभाग।

उच्छ्वासित--भू० कृ० [सं० उच्छ्वास+इतच्] १. उच्छ्वास के रूप में बाहर आया या निकला हुआ। २. विकसित। प्रफुल्लित।

उच्छ्वासी (सिन्)--वि० [सं० उद्√श्वस्+णिनि] १. उच्छ्वास या ऊँची साँस लेनेवाला। आह भरनेवाला। २. प्रफुल्लित या विकसित होनेवाला।

उछंग--पुं० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग] क्रोड़। गोद। कोरा।

मुहा०--उछंग (में) लेना=आलिंगन करना। गोद लेना।

उछकना*--अ० [हिं० उझकना=चौंकना] १. चकित होना। चौंकना। २. होश में आना। ३. दे० 'उचकना'।

उछक्का--वि० [हिं० उछकना=उछलना] जगह-जगह उछलता फिरनेवाला।

स्त्री० कुलटा या दुश्चरित्रा स्त्री।

उछटना--अ०=उचटना।

उछटाना--स० [हिं० उचटना] १. उखाड़ना या उचाड़ना। २. कहीं से किसी का चित्त उचाट करना।

उछरना*†--अ०=उछलना।

उछल-कूद--स्त्री० [हिं० उछलना+कूदना] १. बार-बार उछलने या कूदने की क्रिया या भाव। २. बालकों की या बालकों जैसी क्रीड़ा। ३. अध्यवसाय, आवेग, उत्सुकता, व्यग्रता आदि का सूचक ऐसा दिखौआ प्रयत्न जो अंत में प्रायः निरर्थक सिद्ध हो। जैसे--उछल-कूद तो तुमने बहुत की, पर फल कुछ न निकला।

उछलना--अ० [सं० उच्छलन, पं० उच्छलना, गु० उचलगूं, सिं० उछलणुं] १. किसी ऊँचे स्थान पर पहुँचने के लिए पैरों के आधार पर अपने स्थान से सहसा और वेगपूर्वक ऊपर की ओर उठना या बढ़ना। जैसे--सिपाही का उछलकर घोड़े पर चढ़ना, बंदर का उछलकर छत पर पहुँचना। २. झटका या धक्का लगने पर कुछ वेगपूर्वक ऊपर उठना। जैसे--तेज हवा में नदी का पानी उछलना; लेकर चलने के समय बाल्टी या लोटे का दूध उछलना; पुल या पेड़ से टकराने के कारण गाड़ी का उछलकर गड्ढे में जा गिरना। ३. सहसा चकित या विशेष प्रसन्न होने की दशा में अथवा आवेग आदि के कारण शरीर या उसके कुछ अंगों का आधार पर से हिलकर कुछ ऊपर उठना। जैसे--(क) कमरे में साँप देखकर या मित्र के आने का समाचार सुनकर वह उछल पड़ा। (ख) पिता या माता को देखते ही बच्चे उछलने लगते हैं। ४. बार-बार या रह-रहकर ऊपर या सामने आना। जैसे--तुम लाख छिपाओ पर तुम्हारी करतूत उछलती रहेगी। ५. चिह्न या लक्षण दृष्टिगत या प्रत्यक्ष होना। सामने आना। उदा०--लागे नख उछरै रँगधारी। --जायसी।

उछलाना--स० [हिं० उछलना का प्रे० रूप] किसी को उछलने में प्रवृत्त करना।

†स० दे० 'उछालना'।

उछव*--पुं०=उत्सव। उदा०--आगमि सिसुपाल मंडिजै ऊछव। --प्रिथ्वीराज।

उछाँटना--स० १. दे० 'उचाटना'। २. दे० 'छाटना'।

उछार*--स्त्री० =उछाल।

उछारना†*--स०=उछालना।

उछाल--स्त्री० [हिं० उछलना] १. उछलने या उछालने की क्रिया या भाव। २. उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने की क्रिया या भाव।

मुहा०--**उछाल भरना या मारना**=(क) जोर से ऊपर उठकर दूर जाना। (ख) ऊपर से नीचे की ओर कूदना।

३. उतना अंतर या दूरी जितनी एक बार में उछलकर पार की जाय। ४. वह ऊँचाई या सीमा जहाँ तक कोई चीज उछलकर पहुँचती हो। जैसे--ज्यों ज्यों हवा तेज होती है, त्यों त्यों नदी के पानी की उछाल बढ़ती है। ५. ऊँचाई। उदा०--इक लख जोजन भानु तें है ससि-लोक उछार। --विश्रामसागर। ६. संगीत में, स्थायी या पहला पद गा चुकने पर फिर से वही पद अथवा उसका कुछ अंश अपेक्षया ऊँचे स्वर में गाना। ७. उलटी। कै। वमन।

उछाल छक्का--स्त्री० [हिं० उछाल+छक्का-पंजा में का छक्का] व्यभिचारिणी। कुलटा।

उछालना--स० [सं० उच्छालन] १. वेगपूर्वक ऊपर की ओर फेंकना। किसी को ऊपर उछलने में प्रवृत्त करना। जैसे--गेंद या फूल उछालना। २. ऐसा अनुचित या निंदनीय कार्य करना जिससे लोक में अपकीर्ति या उपहास हो। जैसे--(क) बाप-दादा का नाम उछालना=बड़ों के नाम पर कलंक लगाना। (ख) किसी की पगड़ी उछालना=किसी को अपमानित करके हास्यास्पद बनाना।

उछाला--पुं० [हिं० उछाल] १. उछलने या उछालने की क्रिया या भाव। २. खौलती हुई चीज में आनेवाला उबाल। ३. उलटी। कै। वमन।

उछाव--पुं०=उछाह।

उछाह--पुं० [सं० उत्साह, प्रा० उस्साह सिं, उसा, मरा० उच्छाव] १. मन में होनेवाला उत्साह। उमंग। जोश। उदा०--अति असंक मन सदा उछाहू। --तुलसी। २. किसी काम के लिए होनेवाली गहरी लालसा या प्रबल उत्कंठा।

पुं० [सं० उत्सव] १. आनंद या उत्सव के समय होनेवाली धूम-धाम। उदा०--संग संग सब भए उछाहा। --तुलसी। २. जैनों में रथ-यात्रा का उत्सव।

उछाही†*--वि० [हिं० उछाह] उछाह या आनंद मनानेवाला।

वि०=उत्साही।

उछिन्न*--वि०=उच्छिन्न।

उछिष्ट*--वि०=उच्छिष्ट।

उछीनना*—स० [सं० उच्छिन्न] १. जड़ से उखाड़ना। उन्मूलन करना। २. नष्ट-भ्रष्ट करना।

उछीर*—पुं० [?] १. ऊपर से खुला हुआ स्थान। २. बीच की खाली जगह। अवकाश। ३. दरार। रंध्र।

उछेद*—पुं०=उच्छेद।

उछ्छव—पुं०=उत्सव

उजका†—पुं० [हिं० उझकना] पशु-पक्षियों को खेत में चरने या चुगने से रोकने तथा उन्हें भयभीत करने के लिए लगाया जानेवाला घास-फूस, चिथड़ों आदि से बना पुतला। बिजूखा। धोखा।

उजट*—पुं० [सं० उटज] कुटी। झोपड़ा।

उजड़ना—अ० [सं० उज्झ=छोड़ना या त्यागना+ना (प्रत्य०)] १. बसे हुए स्थान में की आबादी न रहने या हट जाने के कारण उस स्थान का टूट-फूटकर निकम्मा हो जाना। उजाड़ हो जाना। २. परित्यक्त होने अथवा तोड़े-फोड़े जाने के कारण नष्ट-भ्रष्ट और श्री-हीन हो जाना। जैसे—खेत या गाँव उजड़ना। ३. आघात, आपत्ति आदि के कारण बुरी तरह से नष्ट होना। जैसे—चोरी होने (या लड़का मरने) से घर उजड़ना।

उजड़वाना—स० [हिं० उजाड़ना का प्रे० रूप] उजाड़ने का काम किसी दूसरे से कराना। किसी को कुछ उजाड़ने में प्रवृत्त करना।

उजड्ड—वि० [सं० उद्=बहुत+जड़=मूर्ख] १. जो शिष्ट समाज के आचारों, व्यवहारों आदि से बिलकुल अनभिज्ञ हो। गँवार। २. अक्खड़। उद्दंड।

उजड्डपन—पुं० [हिं० उजड्ड+पन (प्रत्य०)] उजड्ड होने की अवस्था या भाव।

उजबक—पुं० [तु०] तातारियों की एक जाति।
वि० परम मूर्ख। मूढ़।

उजर*—वि०=१. =उजाड़। २. =उज्ज्वल।
†पुं० उज्र।

उजरत—पुं० [अ०] १. पारिश्रमिक। २. मजदूरी।

उजरना*—[अ०] १. =उजड़ना। उदा०—बसत भवन उजरउ नहिं डरऊँ।—तुलसी। २. =उज्ज्वल या प्रकाशमान होना।

उजरा*—वि०=उजला।

उजराई*—स्त्री० [हिं० उज्जर]=उजलापन (उज्ज्वलता)।

उजराना*—स० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल, निर्मल या स्वच्छ कराना। उजला करना।
अ० उजला या स्वच्छ होना।
स०=उजड़वाना।

उजलत—स्त्री० [अ०] उतावली। जल्दबाजी।

उजलवाना—स० [उजालना का प्रे० रूप] दूसरे से कोई चीज उज्ज्वल या स्वच्छ करवाना।

उजला—वि० [सं० उज्ज्वलक, पा०, प्रा० उज्जलज; का० वोझुलु; पं० उज्जला, उजला, गु० उजलू, सिं० उजलु] [स्त्री० उजली] १. चमकता हुआ। २. प्रकाश से युक्त। दीप्त। जैसे—उजला घर। ३. जो निर्मल, साफ या स्वच्छ हो। जैसे—उजले कपड़े।
पुं० धोबी। (स्त्रियाँ)

उजलापन—पुं० [हिं० उजला+पन प्रत्य०] उजले (उज्ज्वल या स्वच्छ) होने की अवस्था या भाव। उज्ज्वलता।

उजवास—पुं० [सं० उद्यास=प्रयत्न] चेष्टा। प्रयत्न।

उजहदार—वि० [फा० वज:दार?] १. मिला हुआ। युक्त। उदा०—पंच तत ते उजहदार मन पवन दोऊ हस्ती घोड़ा गिनांन ते ऊपै भंडार।—गोरखनाथ। २. सुशोभित।

उजागर—वि० [सं० उत्+जागृ उज्जागर; गु०, मरा० उजगरा] १. उज्ज्वल और प्रकाशमान। चमकता हुआ। उदा०—सिय लघु भगिनि लखन कहँ रूप उजागरि।—तुलसी। २. जिसका यश चारों ओर फैला हो। ३. विशेष रूप से प्रसिद्ध। उदा०—पंडित मूढ़ मलीन उजागर।—तुलसी।
मुहा०—बाप-दादा का नाम उजागर करना=(क) कुल की कीर्ति या यश बढ़ाना। (ख) कुल में कलंक लगाना। (व्यंग्य)

उजाड़—पुं० [सं० उज्झ=छोड़ना या त्यागना+आड़ (प्रत्य०)] १. उजड़ने या उजाड़ने की क्रिया या भाव। २. ऐसा स्थान जहाँ के निवासी दैवी विपत्तियों (जैसे—दुर्भिक्ष, बाढ़, भूकंप आदि) के कारण नष्ट हो चुके हों अथवा वह स्थान छोड़कर कहीं चले गये हों। ३. ऐसा निर्जन स्थान जहाँ झाड़-झंखाड़ के सिवा और कुछ न हो।
वि० १. उजड़ा हुआ। जिसमें आबादी या बस्ती न हो।
पद—उजाड़-जंगल।
२. गिरा-पड़ा। टूटा-फूटा। ध्वस्त।

उजाड़ना—स० [हिं० उजाड़+ना (प्रत्य०)] १. अच्छी तरह तोड़-फोड़कर चौपट या नष्ट-भ्रष्ट करना। जैसे—खेत या बाग उजाड़ना। उदा०—रखवारे हति विपिन उजारे।—तुलसी। २. बहुत अधिक आघात या प्रहार करके किसी की सत्ता ऐसी अस्त-व्यस्त या विकृत करना कि वह फिर काम में आने के योग्य न रह जाय। जैसे—(क) गाँव, घर या नगर उजाड़ना। ३. बुरी तरह से नष्ट या बरबाद करना। जैसे—ऐयाशी या जूए में रुपए उजाड़ना।

उजाड़ू—वि० [हिं० उजाड़ना] १. उजाड़नेवाला। २. बुरी तरह से नष्ट या बरबाद करनेवाला।

उजायर—वि०=उजागर।

उजान—पुं० [सं० उद्=ऊपर+यान=जाना] १. धारा, नदी आदि की वह दिशा जिधर से बहाव आ रहा हो। २. चढ़ाई। चढ़ाव।
क्रि० वि० जिधर से बहाव आ रहा हो उस ओर या दिशा में।

उजार*—वि० १.=उजाड़। २=उजाला।

उजारना*—स० [हिं० उजाला] १. उजाला करना। प्रकाश करना। २. उजला या साफ करना।
स०=उजाड़ना। उदा०—भुवन मोर जिन्ह बसत उजारा।—तुलसी।

उजारा*—पुं०=उजाला।
वि०=उजला।

उजारी—स्त्री० [?] कटी हुई फसल में से किसी देवता या ब्राह्मण के निमित्त निकालकर रखा हुआ अन्न। अगऊँ।
स्त्री०=उजाली (चाँदनी)।

उजालना—स० [सं० उज्ज्वल] १. दीप्त या प्रज्वलित करना। जैसे—दीया उजालना। २. उज्ज्वल या स्वच्छ करना। जैसे—आँगन या घर

उजालना। ३. किसी वस्तु को इस प्रकार रगड़-पोंछ कर साफ करना कि उसमें चमक आ जाय। जैसे—गहने, बरतन या हथियार उजालना।

उजाला—पुं० [सं० उज्ज्वल] १. चाँदनी। प्रकाश। रोशनी। २. प्रातःकाल होनेवाला प्रकाश। जैसे—उठो, उजाला हो गया है।
पद—उजाले का तारा=शुक्र-ग्रह।
३. सूर्य के उदित या अस्त होने के समय का मंद या हलका प्रकाश। जैसे—अभी तो उजाला है, घर चले जाओ। ४. वह जिससे कुल, जाति, परिवार आदि की कीर्त्ति, यश या शोभा बढ़े।
वि० [स्त्री० उजाली] १. उज्ज्वल। प्रकाशमान्। २. साफ। स्वच्छ।

उजाली—स्त्री० [हिं० उजाला] चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी।

उजास—पुं० [उजाला+स (प्रत्य०)] १. उजाला। प्रकाश। २. चमक। द्युति।

उजासना*—स० [हिं० उजास] १. प्रकाशित या प्रज्वलित करना। २. उज्ज्वल या स्वच्छ करना।

उजियर*—वि०=उजला।

उजियरिया†—स्त्री० [सं० उज्ज्वल] १. चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। २. चाँदनी रात। शुक्ल पक्ष की रात।

उजियाना—स० [सं० उज्जीवन?] १. उत्पन्न या पैदा करना। २. प्रकट करना। सामने लाना।

उजियार—पुं० [हिं० उजाला] चाँदनी। प्रकाश। उदा०—तुलसी भीतर बाहिरै जौं चाहेसि उजियार।—तुलसी।
वि०=उजला।

उजियारना*—स०=उजालना।

उजियारा*—पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। रोशनी।
वि० [स्त्री० उजियारी] १. प्रकाश से युक्त। उजला। २. कांतिमान। चमकीला।

उजियारी*—स्त्री० [हिं० उजियारा] १. चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। २. चाँदनी रात।

उजियाला—पुं०=उजाला।

उजीता—वि० [सं० उद्योत, प्रा० उज्जोत] प्रकाशमान। चमकीला।
पुं० प्रकाश। रोशनी।

उजीर†—पुं०=वजीर (मंत्री)।

उजुर—पु०=उज्र।

उजू†—स्त्री० दे० 'वजू'।

उजूबा—पु० [अ० अजूबा] बैंगनी रंग का एक प्रकार का चमकीला पत्थर।
वि०=अजूबा।

उजेनी*—स्त्री०=उज्जयिनी (नगरी)।

उजेर*—पुं०=उजाला।
वि०=उजला।

उजेरना†—स०=उजालना।

उजेरा*—पु० [?] ऐसा बैल जो अभी जोता न गया हो।
वि०, पु०=उजाला।

उजेला—वि०, पुं०=उजाला।

उजोरा—वि०, पुं० [स्त्री० उजोरी]=उजाला।

उज्जट†—वि०, पुं०=उजाड़।
वि०=उजड्ड।

उज्जयिनी—स्त्री० [सं०उत्-जय प्रा० स०,+इनि—ङीप्?] मध्य भारत की प्रसिद्ध प्राचीन नगरी जो सिप्रा नदी के तट पर है और जो किसी समय मालव देश की राजधानी थी। आधुनिक उज्जैन का पुराना नाम।

उज्जर—वि०=उजला।

उज्जल—पु० [सं० उद्=ऊपर+जल=पानी] नदी आदि मे बहाव के विपरीत की दिशा या पक्ष। नदी में चढ़ाव की ओर का मार्ग। उजान।
वि०=उज्ज्वल।

उज्जारना—स०=उजारना।

उज्जिहान—पु० [सं० उद्√हा (त्याग)+शानच्] वाल्मीकि के अनुसार एक प्राचीन देश।

उज्जीवन—पुं० [सं० उद्√जीव् (जीना)+ल्यट् अन] [वि० उज्जीवित] १. फिर से या दोबारा प्राप्त होनेवाला नया जीवन। २. नष्ट होने पर फिर से अस्तित्व में आने या पनपने की अवस्था या भाव।

उज्जीवित—भू० कृ० [सं० उद्√जीव्+क्त] जिसे फिर से नया जीवन प्राप्त हुआ हो। उदा०—त्यागोज्जीवित वह ऊर्ध्व ध्यान धारा स्तव।—निराला।

उज्जीवी (विन्)—वि० [सं० उद्√जीव्+णिनि] जिसे फिर से नया जीवन मिला हो अथवा मिल सकता हो।

उज्जैन—पु० [सं० उज्जयिनी] मालवा की प्राचीन राजधानी। प्राचीन उज्जयिनी नगरी का आधुनिक नाम। (दे० 'उज्जयिनी')

उज्ज्वल—वि० [सं० उद्√ज्वल् (दीप्ति)+अच्] [भाव० उज्ज्वलता] १. जो जलकर प्रकाश दे रहा हो। २. चमकीला। प्रकाशमान्। प्रदीप्त। ३. कांतिमान और सुंदर। ४. निर्मल। स्वच्छ। ५. सफेद।
पुं० १. स्वर्ण। सोना। २. प्रेम। मुहब्बत।

उज्ज्वलता—स्त्री० [सं० उज्ज्वल+तल्—टाप्] उज्ज्वल होने की अवस्था या भाव।

उज्ज्वलन—पु० [सं० उद्√ज्वल्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उज्ज्वलित] १. प्रज्वलित करने की क्रिया या भाव। जलाना। २. कीर्ति या प्रकाश से युक्त करना। ३. अच्छी तरह साफ करके चमकाना। ४. अग्नि। आग। ५. स्वर्ण (सोना)।

उज्ज्वला—स्त्री० [सं० उद्√ज्वल्+अ—टाप्] १. आभा। प्रभा। २. निर्मल होने की अवस्था या भाव। ३. एक प्रकार का छंद या वृत्त।

उज्झटित—वि० [सं० उद्√झट् (संहति)+क्त] १. उधेड़बुन, उलझन या दुविधा में पड़ा हुआ। २. उलझा हुआ। ३. बहुत ही घबराया हुआ या विकल।

उज्झड़—वि०=उजड्ड।

उज्झन—पुं० [सं०√उज्झ् (त्यागना)+ल्युट्—अन] छोड़ने, त्यागने अथवा हटाने की क्रिया या भाव। परित्याग।

उज्झित—भू० कृ० [सं०√उज्झ्+क्त] १. छोड़ा या त्यागा हुआ। जैसे—भुक्तोज्झित=खाने के बाद जूठा छोड़ा हुआ। २. दूर किया या हटाया हुआ।

उज्यारा*—वि०, पुं०=उजाला।

उज्यारी†—स्त्री०=उजाली।

उज्यास*--पुं०=उजास।

उज्र--पुं० [अ०] किसी कथन या कार्य के संबंध में की जानेवाली आपत्ति।

उज्रदार--वि०[फा०] [भाव० उज्रदारी] किसी कार्य या बात से असहमत होने पर उसके संबंध में उज्र या आपत्ति करनेवाला।

उज्रदारी--स्त्री० [फा०] किसी काम या बात के संबंध में, मुख्यतः न्यायालय में की जानेवाली आपत्ति।

उझकना--अ० [हिं० उचकना] १.झाँकने, ताकने या देखने के लिए ऊँचा होना या सिर बाहर निकालना। उचकना। उदा०--उझकि झरोखे झाँकै नंदिनी जनक की।--गीत। २.ऊपर उठना। उभरना। ३.चौंकना।

उझपना--अ० [हिं० झपना का विपर्याय] पलकों का ऊपर उठे रहना। (झपना का विपर्याय) उदा०--बरुई में फिरै न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती हैं।--भारतेंदु।

स० कुछ देखने के लिए आँख खोलना।

उझरना*--अ० [सं० उत्+सरण] १.हटना। २.ऊपर की ओर खिसकना।

स०=उँड़ेलना।

उझल†--स्त्री० [हिं० उझलना] १.उझलने या उँड़ेलने की क्रिया या भाव। २.वर्षा। वृष्टि। ३.अचानक किसी चीज के बहुत अधिक मात्रा में आ पड़ने का भाव।

उझलना*--अ० [सं० उज्झरण] वेग से किसी चीज का किसी दूसरी चीज में आ गिरना या आ पड़ना। उदा०--वह सेनि दरेरन देति चली मनु सावन की सरिता उझली।--सूदन।

स०=उँड़ेलना।

उझाँकना*--अ०=झाँकना।

उझालना†--स०=उझलना (उँड़ेलना)।

उझिल†--स्त्री० [हिं० उझलना] १.उझेलने या उँड़ेलने की क्रिया या भाव। २.उझल या उँड़ेलकर लगाया हुआ ढेर। उदा०--रूपकी उझिल आछे नैनन पै नई नई।--घनानंद।

उझिलना†--स०=उझलना (उँड़ेलना)।

उझिला--स्त्री० [हिं० उझिलना] १.उबटन के लिए उबाली हुई सरसों। २.पिसे हुए पोस्त के दानों के साथ महुए को उबालकर बनाया हुआ एक प्रकार का पेय। ३.खेत की ऊँची भूमि से खोदी हुई मिट्टी जो उसके गड्ढों में भरी जाती है।

उझीना†--पुं० [देश०] आग सुलगाने के लिए लगाया हुआ उपलों का ढेर। अहरा।

उटंग--वि०=उटंगा।

उटंगन--पुं० [सं० उट=घास+अन्न] एक प्रकार की वनस्पति जिसका साग बनता है और जो औषध के काम में आती है।

उटंगा--वि० [सं० उत्तंग या हिं० उ=ऊपर+टाँग] [स्त्री० उटंगी] (वस्त्र) जो इतना छोटा हो कि पहनने पर टाँगों के ऊपरी भाग तक ही रहे, नीचे तक न आने पावे। जैसे--उटंगी धोती, उटंगा पाजामा आदि।

उटकना*--स० [सं० अट्=घूमना, बार बार+कल०=गिनती करना] अटकल से पता लगाना। अनुमान करना।

अ०=अटकना।

उटक्कर*--अव्य० [अनु०] अंधाधुंध।

उटज--पुं० [सं०√उ (शब्द करना)+ट, उट√जन् (उत्पन्न होना)+ड] पर्ण-कुटी। झोपड़ी।

उटारी--स्त्री० [हिं० उठना] लकड़ी का वह टुकड़ा जिसके ऊपर चारा रखकर काटा जाता है। निहटा। नेसुहा।

उट्टा--पुं०=ओटनी (कपास ओटने की चरखी)।

उठ्ठना*--अ०=उठना।

उट्ठी--स्त्री० [देश०] बच्चों के खेल, प्रतियोगितादि में अव्यय के रूप में प्रयुक्त होनेवाला एक शब्द जिसका आशय होता है--हमने पूरी तरह से हार मान ली; अब हमें दया करके छोड़ दो।

मुहा०--उट्ठी बोलना=दीन भाव से पूरी हार मान लेना।

उठँगन†--पुं० [सं० उत्थ+अंग] किसी चीज को गिरने या लुढ़कने से बचाने के लिए लगाई जानेवाली दूसरी छोटी चीज। टेक। सहारा।

उठँगना†--अ० [सं० उत्थ+अंग] १.किसी आधार या टेक का सहारा लेकर बैठना। २.लेटना।

उठँगाना†--स० [हिं० उँठगना का स० रूप] १.किसी चीज को गिरने या लुढ़कने से बचाने के लिए उसके नीचे टेक या सहारा लगाना। २.(किवाड़) बंद करना।

उठतक--पुं० [हिं० उठना] १.घोड़े की पीठ पर काठी के नीचे रखी जानेवाली गद्दी। २.आड़। टेक।

उठना--अ० [सं० उत्+स्था, उत्थ, उत्था प्रा० उट्ठ+ना प्रत्य०; पं० उठ्ठना, मरा० उठणें, गुज० उठवुं] १.नीचे के तल या स्तर से ऊपर के तल या स्तर की ओर चलना या बढ़ना। ऊँचाई की ओर या ऊपर जाना अथवा बढ़ना। जैसे--हवा में धुआँ या धूल उठना, समुद्र में लहरें उठना, ताप-मापक यंत्र का पारा उठना आदि।

विशेष--इस अर्थ में यह शब्द कुछ विशिष्ट क्रियाओं के साथ संयोज्य क्रिया के रूप में लगकर ये अर्थ देता है--(क) आकस्मिक रूप से या सहसा होनेवाला वेग। जैसे--चिल्ला उठना=सहसा जोर से चिल्लाना। (ख) पूरी तरह से या स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष होना या सामने आना। जैसे--यह सुनते ही उनका चेहरा खिल उठा।

२.गिरे, झुके, बैठे या लेटे होने की स्थिति से खड़े होने या चलने की स्थिति में आना। कहीं चलने या जाने के विचार से पैरों के बल सीधे खड़े होना। जैसे--(क) वह गिरते ही फिर उठा। (ख) सब लोग उनका स्वागत करने के लिए उठे। (ग) वह अभी सोकर उठा है। (घ) बारात अभी घंटे भर में उठेगी।

मुहा०--(किसी के साथ) उठना-बैठना=मेल-जोल और संग-साथ रखना। जैसे--जिनके साथ रोज का उठना-बैठना हो, उनसे झगड़ना नहीं चाहिए।

पद--उठते-बैठते=नित्य के व्यवहार में, प्रायः हर समय। जैसे--वह उठते-बैठते भगवान का नाम जपते रहते हैं।

३.कुछ करने के लिए उद्यत, प्रस्तुत या सन्नद्ध होना। जैसे--(क) किसी को मारने उठना; (ख) चंदा करने उठना। उदा०--उठहु राम, भंजहु भव-चापू। तुलसी।

मुहा०--उठ खड़े होना=कहीं से चलने या कोई काम करने के लिए तैयार होना।

४. बेहोश पड़े या मरे हुए व्यक्ति का फिर से होश में आकर या जीवित होकर खड़े होना। उदा०--तुरत उठे लछिमन हरखाई।--तुलसी। ५. अवनत या गिरी हुई दशा से उन्नत या अच्छी दशा में आना। उन्नति करना। जैसे--अफ्रीका और एशिया के अनेक पिछड़े हुए देश अब जल्दी-जल्दी उठने लगे हैं। ६. आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों आदि का क्षितिज से ऊपर आना। उदित होना। निकलना। जैसे--संध्या होने पर चंद्रमा या सवेरा होने पर सूर्य उठना। ७. निर्माण या रचना की दशा में क्रमशः ऊँचा होना या ऊपर की ओर बढ़ना। जैसे--दीवार या मकान उठना। ८. उभार, विकास या वृद्धि के क्रम में आगे की ओर बढ़ना। जैसे--उठता हुआ पौधा, उठती हुई जवानी। ९. भाव, विचार आदि का मन या मस्तिष्क में आना। उद्भूत होना। जैसे--(क) अभी मेरे मन में एक और बात उठ रही है। (ख) उनके मन में नित्य नये विचार उठते रहते थे। १०. ध्यान या स्मृति में आना। याद आना। जैसे--वह श्लोक, मुझे याद तो था; पर इस समय उठ नहीं रहा है। ११. चर्चा या प्रसंग छिड़ना। जैसे--तुम्हारे यहाँ तो नित्य एक नई बात उठती है। १२. अचानक अस्तित्व में आकर अनुभूत, दृश्य या प्रत्यक्ष होना। जैसे--(क) आकाश में आँधी या बादल उठना। (ख) देश या नगर में उपद्रव उठना। (ग) पेट या सिर में दरद उठना। (घ) बदन में खुजली उठना। १३. अच्छी तरह या स्पष्ट रूप से दृश्य होना। दिखाई पड़ने के योग्य होना। जैसे--*कागज पर छापे के अक्षर उठना।* १४. ध्वनि, शब्द, स्वर आदि का कुछ जोर से अनुरणित या उच्चरित होना। जैसे--चारों ओर से आवाज या शोर उठना। १५. किसी वस्तु का ऐसी स्थिति में आना या होना कि पारिश्रमिक, मूल्य, लाभ आदि के रूप में उससे कुछ धन प्राप्त हो सके। जैसे--(क) किराये पर दूकान या मकान उठना। (ख) बेची जानेवाली चीज के दाम उठना। १६. किसी वस्तु का ऐसी स्थिति में होना कि उसका वहन हो सके। १६. बोझ या भार के रूप में वहित या सह्य होना--जैसे--इतना बोझ हमसे न उठेगा। १६. मादा पशुओं आदि का उमंग में आकर संभोग के लिए प्रवृत्त या गर्भधारण के लिए आतुर होना। जैसे--गाय, घोड़ी या भैंस का उठना। १८. तर या भींगी हुई चीज के कुछ सड़ने के कारण उसमें विशिष्ट प्रकार का रासायनिक परिवर्त्तन होना। खमीर या सड़ाव आना। जैसे--मद्य बनाने में महुए का पाँस उठना या गरमी के दिनों में रात भर पड़े रहने के कारण गूँधा हुआ आटा उठना। १९. उपयोग में आने के कारण कम होना। खर्च या व्यय होना। जैसे--जरा सी बात में सैकड़ों रुपए उठ गये। २०. ऐसे कार्यों का बंद या स्थगित होना जो कुछ समय तक लगातार बैठकर किये जाते हों। अधिवेशन, बैठक आदि का नियमित या नियत रूप से समाप्त होना। जैसे--*अब तो कचहरी (या सभा) के उठने का* समय हो रहा है। २१. अंत या समाप्ति हो जाना। न रह जाना। जैसे--(क) उनका कारबार (या दफ्तर) उठ गया। (ख) अब पुरानी प्रथाएँ उठती जाती हैं।

मुहा०--(किसी व्यक्ति का) इस लोक या संसार से उठना=(परलोक में जाने के लिए) यह लोक छोड़कर चले जाना। मर जाना। स्वर्गवासी होना।

उठल्लू--वि० [हिं० उठना+लू (प्रत्य०)] १. जिसे एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रखा जा सके। जैसे--उठल्लू चूल्हा। २. जो एक जगह जमकर या स्थायी रूप से न रहता हो। कभी कहीं और कभी कहीं रहनेवाला। ३. आवारा।

पद--उठल्लू का चूल्हा या उठल्लू चूल्हा=व्यर्थ इधर-उधर फिरने वाला।

उठवाना--स० [हिं० उठाना का प्रे० रूप] दूसरों से कोई चीज उठाने का काम कराना। किसी को कुछ उठाने में प्रवृत्त करना।

उठवैया--वि० [हिं० उठाना] १. उठानेवाला। २. उठवानेवाला।

उठाईगीर†--पुं० [हिं० उठाना+फा० गीर] वह जो दूसरों का माल उनकी आँख बचाकर उठा ले जाता हो।

उठान--स्त्री० [सं० उत्थान, पा० उट्ठान] १. उठने की क्रिया, ढंग या भाव। २. किसी काम या बात के आरंभ या शुरू होने की अवस्था या भाव। जैसे--इस कविता (या गीत) की उठान तो बहुत सुंदर है। ३. शारीरिक दृष्टि से वह अवस्था या स्थिति जो विकास या वृद्धि की ओर उन्मुख हो। जैसे--इस पेड़ (या लड़के) की उठान अच्छी है। ४. खपत। खर्च।

उठाना--स० [हिं० उठना का स० रूप] १. किसी को उठने में प्रवृत्त करना। ऐसा काम करना जिससे कुछ या कोई उठे। २. नीचे के तल या स्तर से ऊपर के तल या स्तर की ओर ले जाना। ऊँचाई की ओर बढ़ाना या ले जाना। ऊपर करना। जैसे--(क) मत देने के लिए हाथ उठाना; *(ख) कुछ देखने के लिए आँखें (या सिर) उठाना।* ३. पड़े, बैठे, लेटे या सोये हुए व्यक्ति को खड़े होने या जागने में प्रवृत्त करना। जैसे--बच्चों को सवेरे उठा दिया करो। उदा०--कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा।--तुलसी। ४. गिरी या पड़ी हुई वस्तु को ऊपर, *यथा-स्थान या सीधा* करना। जैसे--जमीन पर से गिरी हुई कलम या पुस्तक उठाना। ५. निर्माण या रचना के क्रम में आगे या ऊपर की ओर बढ़ाना। जैसे--दीवार या मकान उठाना। ६. कहीं बैठ या रह कर कोई काम करनेवाले व्यक्ति को वहाँ से अलग या दूर करना। जैसे--(क) पटरी पर बैठनेवाले दूकानदारों को वहाँ से उठाना। (ख) किसी दूकान या पाठशाला से अपना लड़का उठाना। ७. किसी आधिकारिक, उचित या नियत स्थान से कोई चीज लेने के लिए हाथ में करना। जैसे--आलमारी में से पुस्तक उठाना।

मुहा०--उठा ले जाना=(क) इस प्रकार किसी की कोई चीज लेकर चलते बनना कि किसी को पता न चले। जैसे--न जाने कौन यहाँ की घड़ी उठा ले गया है। (ख) बलपूर्वक कोई वस्तु या व्यक्ति ले जाना। हरण करना। जैसे--रावण वन में से सीता को उठा ले गया।

८. कहीं पहुँचाने, ले जाने आदि के उद्देश्य से कोई चीज कंधे, पीठ, सिर *आदि पर रखना या हाथ में लेना।* जैसे--(क) बच्चे को गोद में उठाना। (ख) सिर पर गट्ठर या बोझ उठाना। ९. किसी प्रकार का उत्तरदायित्व या भार अपने ऊपर लेना। भार के रूप में ग्रहण, वहन या सहन करना। जैसे--आपकी सहायता के भरोसे ही मैंने यह काम उठाया है। १०. कोई कार्य तत्परता या दृढ़ता से करने के लिए उसका कारण या साधन अपने हाथ में लेना। जैसे--(क) लड़ने के लिए हथियार उठाना। (ख) लिखने के लिए कलम उठाना। ११. गिरी

हुई अवस्था या बुरी दशा से उन्नत अवस्था या अच्छी दशा में लाना। जैसे—भारतीय आर्यों ने किसी समय आस-पास की अनेक जातियों को उठाया था। १२. उपयोग, व्यवहार आदि के लिए किसी को देना या सौंपना। जैसे—मकान किराये पर उठाना। १३. शपथ खाने के लिए किसी वस्तु को छूना अथवा उसे हाथ में लेना। जैसे—कुरान या गंगाजल उठाना। १४. ध्वनि, शब्द आदि ऊँचे स्वर में उच्चरित करना। जैसे—किसी बात के विरुद्ध आवाज उठाना। १५. कोई नई चर्चा, बात, प्रसंग आदि आरंभ करना या चलाना। जैसे—नया प्रसंग उठाना। १६. उपलब्ध या प्राप्त करना। जैसे—लाभ उठाना, सुख उठाना। १७. दंड या भोग के रूप में सहन करना। झेलना। भोगना। जैसे—कष्ट या विपत्ति उठाना। १८. तर या भींगी हुई चीज के संबंध में ऐसी क्रिया करना अथवा उसे ऐसी स्थिति में रखना कि उसमें रासायनिक परिवर्त्तन के कारण विशिष्ट प्रकार की सड़न आवे। जैसे—आटे या पाँस में खमीर उठाना। १९. असावधानी, उदारता आदि से खर्च या व्यय करके समाप्त करना। जैसे—(क) जरा-सी बात में दस रुपये उठा दिये। (ख) चार दिन में सारा चावल उठा दिया। २०. अनुकूल, आवश्यक या उचित आचरण, कार्य अथवा व्यवहार न करना। अग्राह्य या अमान्य करना। जैसे (क) बड़ों की बात इस तरह उठानी नहीं चाहिए। (ख) हमारी हर बात तो तुम यों ही उठा दिया करते हो।

मुहा०—**कुछ उठा न रखना**=अपनी ओर से कोई उपाय या प्रयत्न बाकी न छोड़ना। यथासाध्य पूरा उद्योग करना। जैसे—उन्होंने हमें दबाने में कुछ उठा नहीं रखा था।

२१. चलते हुए कार्य, व्यवहार, व्यापार आदि का अंत या समाप्ति करना। बंद करना। जैसे—(क) बाजार से अपनी दूकान उठाना। (ख) समाज से कोई प्रथा या रीति उठाना। (ग) अदालत से अपना मुकदमा उठाना। २२. किसी दैवी शक्ति का किसी व्यक्ति के जीवन का अंत करके उसे इस लोक से ले जाना। जैसे—(क) भगवन्, हमें जल्दी से उठाओ। (ख) इस दुर्घटना से पहले ही परमात्मा ने उन्हें उठा लिया।

उठावनी—स्त्री० [हिं० उठना या उठाना] १. उठने या उठाने की क्रिया या भाव। २. कुछ स्थानों में मृतक के दाह-कर्म के दूसरे, तीसरे या चौथे दिन श्मशान में जाकर उसकी अस्थियाँ चुनने की क्रिया या प्रथा। ३. कुछ जातियों में, मृतक के दाह-कर्म के तीसरे या चौथे दिन उसके घर पर विरादरी के लोगों के इकट्ठे होने और कुछ लेन-देन करने की प्रथा या रसम। ४. दे० 'उठौनी'।

उठौआ—वि० [हिं० उठाना] १. जो सहज में एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रखा या ले जाया जा सकता हो। जो उठाने में हलका और फलतः इधर-उधर ले जाने के योग्य हो। (बहुत भारी या एक स्थान पर स्थित से भिन्न) जैसे—उठौआ चूल्हा, उठौआ मशीन आदि। २. जो नित्य या प्रायः उठाया जाता हो। जैसे—उठौआ पाखाना। (नल के संयोग से बहनेवाले पाखाने से भिन्न)

उठौनी—स्त्री० [हिं० उठना या उठाना; उठावनी का पू० रूप] १. उठने या उठाने अथवा उठाकर रखने की क्रिया, भाव या मजदूरी। २. देवता या धार्मिक कृत्य के लिए कुछ धन या पदार्थ उठाकर अलग रखने की क्रिया या भाव। ३. कोई लेन-देन या व्यवहार पक्का करने अथवा कोई काम कराने के लिए अग्रिम के रूप में दिया जानेवाला धन। अगाऊ। पेशगी। ४. (उठकर) कोई कार्य आरंभ करने की क्रिया या भाव। उदा०—सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही।—जायसी। ५. धान के खेत की आरंभिक हलकी जोताई। ६. जुलाहों की वह लकड़ी जिसमें वे पाई करने के लिए लुगदी लपेटते हैं। ७. दे० 'उठावनी'।

उठौवा—वि०=उठौआ।

उठ्ठी—स्त्री०=उट्ठी।

उड़ंकू—वि० [हिं० उड़ना+अंकू (प्रत्य०)] १. उड़नेवाला। २. दे० 'उड़ाका'।

उड़ंत—पुं० [हिं० उड़ना] १. उड़ने की क्रिया या भाव। २. कुश्ती का एक पेंच।

उड़ंबरी—स्त्री० [सं० उडुम्बर] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसमें बजाने के लिए तार लगे होते थे।

उड़खरा†—वि० [हिं० उड़ना] जो उड़ता हो या उड़ाया जा सकता हो। उदा०—नहि बाल ब्रिद्ध किस्सोर तुअ, धुअ समान पै उड़खरी।—चदंवरदाई।

उड़चक—पुं०=उचक्का।

उड़तक—पुं०=उठतक।

उड़दा†—पुं०=उरद (अन्न)।

उड़दी—स्त्री०=उरद (अन्न)।

उड़न—पुं० [हिं० उड़ना] उड़ने की क्रिया या भाव।
वि० उड़नेवाला। (यौ० के आरंभ में) जैसे—उड़न-खटोला।

उड़न-किला—पुं० [हिं० उड़ना+किला] एक प्रकार का बहुत बड़ा सामयिक वायुयान जो किले के समान दृढ़ तथा सुरक्षित माना जाता है। (फ्लाईंग फोर्ट्रेस)

उड़न-खटोला—पुं० [हिं० उड़ना+खटोला.] १. कहानियों आदि में, एक प्रकार का कल्पित वायुयान या विमान, जो प्रायः खटोले या चौकी के आकार का कहा गया है। २. वायु-यान।

उड़न-गढ़ी—स्त्री० दे० 'उड़न-किला'।

उड़न छू—वि० [हिं० उड़ना] जो देखते-देखते अथवा क्षण भर में अदृश्य या गायब हो जाय।

उड़न झाईं—स्त्री० [हिं० उड़ना+झाईं] किसी को धोखा देने के लिए कहीं हुई बात। चकमा। धोखा।

उड़न-थाल—पुं० [हिं० उड़ना+थाल] बहुत बड़े थाल के आकार का एक प्रकार का ज्योतिर्मय उपकरण या पदार्थ जो कभी कभी आकाश में उड़ता हुआ दिखाई देता है। (फ्लाईंग डिश, फ्लाईंग सॉसर)

विशेष—इधर इस प्रकार के पदार्थ आकाश में उड़ते हुए देखकर इनके संबंध में लोग तरह तरह की कल्पनाएँ करने लगे थे। पर अब वैज्ञानिकों का कहना है कि ये हमारे सौर जगत् के किसी दूसरे ग्रह से हमारी पृथ्वी का हाल जानने और हम लोगों से संपर्क स्थापित करने के लिए आते हैं। फिर भी अभी तक इनकी अधिकतर बातें अज्ञात और रहस्यमय ही हैं।

उड़न-फल—पुं० [हिं० उड़ना+फल] कथा-कहानियों में, एक कल्पित

फल जिसके संबंध में यह माना जाता है कि इसे खानेवाला आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

उड़ना--अ० [सं० उड्डयन] १. पंखों या परों की सहायता से आधार छोड़कर ऊपर उठना और आकाश या वायु में इधर-उधर आना-जाना। जैसे—चिड़ियों या फतिंगों का हवा में उड़ना। २. अलौकिक या आध्यात्मिक शक्ति, मंत्र-बल आदि की सहायता से आकाश में उठकर इधर-उधर आना-जाना। जैसे—योगियों अथवा उड़नखटोलों, विमानों आदि का आकाश मे उड़ना। ३. भौतिक, यांत्रिक, वैज्ञानिक आदि क्रियाओं से कुछ विशिष्ट प्रकार की रचनाओं, यानों आदि का आकाश में उठकर इधर-उधर आना-जाना। जैसे—(क) उड़न-थाल, गुब्बारा या हवाई जहाज उड़ना; (ख) गुड्डी या पतंग उड़ना आदि। ४. कही पहुँचने के लिए उछलकर या कुछ ऊपर उठते हुए तेजी से आगे बढ़ना। जैसे—(क) तालाव की मछलियाँ उड़-उड़कर कलोल कर रही थीं। (ख) कई तरह के साँप उड़कर काटते है। (ग) एड़ लगाते ही घोड़ा उड़ चला। ५. हवा के झोंके में पड़कर चीजों का तेजी से आगे बढ़ना अथवा इधर-उधर छितराना, बिखरना या दूर निकल जाना। जैसे—(क) जहाज या नाव का पाल उड़ना। (ख) हवा में कपड़े, कागज आदि उड़ना। (ग) आँधी मे मकान की छत उड़ना। ६. किसी स्थित वस्तु का कोई अंश रह-रहकर लहराते हुए हवा मे ऊपर उठना या हिलना। लहराना। जैसे—(क) किले या जहाज पर लगा हुआ झंडा उड़ना; (ख) धोती या साड़ी का पल्ला उड़ना। उदा०—उड़इ लहर पर्वत की नाईं।—जायसी। ७. इतनी तेजी से चलना या अचानक पहुँचना कि आकाश में उड़कर आता हुआ सा जान पड़े। जैसे—मालूम होता है कि तुम तो उड़कर यहाँ आ पहुँचे हो। उदा०—कोई बोहित जस पवन उड़ाहीं।—जायसी।

मुहा०--**उड़ चलना**=(क) इतनी तेजी से चलना कि उड़ता हुआ-सा जान पड़े। (ख) कोई कला या विद्या सीखते ही उसमे अच्छी गति या योग्यता प्राप्त कर लेना। जैसे—चार ही दिन में वह जादू के खेल दिखाने में उड़ चला। **उड़ता बनना या होना**=बहुत जल्दी से कहीं से चल देना या हट जाना। जैसे—काम होते ही वह उड़ता बना।

८. ऊपर से आता हुआ आघात या प्रहार बहुत तेजी से बैठना या लगना। जैसे—किसी पर थप्पड़ या बेंत उडना। ९. कट-फट कर अलग हो जाना या झटके से दूर जा गिरना। जैसे—(क) इस पुस्तक के कई पन्ने उड़ गये है। (ख) तलवार के एक ही वार से उसका सिर उड़ गया। १०. इस प्रकार अज्ञात या अदृश्य हो जाना कि जल्दी पता न चले। गायब या लुप्त हो जाना। जैसे—(क) लड़का अभी तक बाजार से नही लौटा; न जाने कहाँ उड़ गया। (ख) अभी तो घड़ी यही रखी थी; देखते-देखते न जाने कहाँ उड गई। ११. प्राकृतिक, रासायनिक आदि कारणों से किसी चीज का धीरे-धीरे घटते हुए कम हो जाना या न रह जाना। जैसे—कपड़े, दीवार या मेज का रंग उड़ना, डिबिया में से कपूर या शीशी में से दवा उड़ना। १२. लोक या वातावरण इधर-उधर प्रसारित होना या फैलना। जैसे—अफवाह या खबर उड़ना; गुलाल या सुगंध उड़ना। १३. अनियंत्रित या असंयत रूप से अथवा उचित से बहुत अधिक और मनमाना उपभोग, उपयोग या व्यवहार होना। जैसे—बाग-बगीचे या यार-दोस्तों में मौज उड़ना; दुर्व्यसनों में धन-दौलत उड़ना; महफिल में शराब-कबाब उड़ना आदि। १४. अपनी स्वाभाविक स्थिति से बहुत अधिक अस्त-व्यस्त या विक्षुब्ध होकर ठीक तरह से अपना काम करने के योग्य न रह जाना। बहुत असमर्थ, चंचल या विचलित होना। जैसे—होश-हवास उड़ना। उदा०—......बंसी के सुनै तै तेरो चित्त उड़ि जायगो।—कोई कवि। १५. किसी को चकमा देने या धोखे में रखने के लिए इधर-उधर की बातों से वास्तविकता छिपाने का प्रयत्न करना। जैसे—आज तो तुम हमसे भी उड़ने लगे। १६. अभिमानपूर्ण आचरण या व्यवहार करके ऐंठ या ठसक दिखलाना। इठलाना। इतराना। जैसे—आज-कल तो उनका मिजाज ही नहीं मिलता; जब देखो, तब उड़े फिरते है। १७. ऐसा रूप धारण करना जो साधारण से बहुत अधिक आकर्षक, प्रिय या रुचिकर हो।

मुहा०--**(किसी वस्तु का) उड़ चलना**=बहुत ही मनोहर, रुचिकर या सुखद प्रतीत होना। जैसे—जरा-सा केसर पड़ जायगा तो खीर उड़ चलेगी।

†वि० १. उड़नेवाला। २. बहुत तेजी से आगे बढ़ने या चलनेवाला। जैसे—उड़ना साँप। ३. रह-रहकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने, फैलने या होनेवाला। जैसे—उड़ना जहरबाद, उड़ना फोड़ा आदि।

उड़प--पुं० [हिं० उड़ना] नृत्य का एक भेद।

*पुं० दे० 'उडुप'।

उड़री--स्त्री० [?] एक प्रकार की उड़द।

उड़व--पुं०=ओड़व।

उड़वाना--स० [हिं० उड़ाना का प्रे०] किसी को उड़ने या चीज उड़ाने में प्रवृत्त करना।

उड़सना†--अ० [?] अंत या समाप्ति होना।

स०=उलटना।

उड़ाँक†--वि०, पुं० [हिं० उड़ना]=उड़ाका।

उड़ाँत--वि० [हिं० उड़ना] १. उड़नेवाला। २. मनमाना आचरण करनेवाला। ३. बहुत अधिक चालाक या धूर्त।

उड़ा--पु० [हिं० ओटना] रेशम की लच्छी खोलने का एक प्रकार का परेता।

उड़ाइक*--वि०=उड़ायक।

उड़ाई--स्त्री० [हिं० उड़ाना] उड़ने या उड़ाने की क्रिया, भाव या पारिश्रमिक।

उड़ाऊ--वि० [हिं० उड़ना] १. उड़ानेवाला। २. (धन) उड़ाने या खर्च करनेवाला।

उड़ाक--वि० [हिं० उड़ाना] १. उड़ानेवाला। २. दे० 'उड़ाका'।

उड़ाका--वि० [हिं० उड़ना+आका (प्रत्य०)] १. जो अपने पंखों या परों की सहायता से हवा में उड़ सकता हो। २. विमान-चालक। ३. लाक्षणिक अर्थ में, (ऐसी चीज) जो उड़कर (अर्थात् अति तीव्र गति से) कही पहुँच सकती हो। जैसे—पुलिस का उड़ाका दल।

उड़ाकू--वि०=उड़ाका।

उड़ान--स्त्री० [सं० उड्डयन] १. हवा में उड़ने की क्रिया, ढंग या भाव। २. उड़ने या उड़ाई जानेवाली वस्तु की गति अथवा उस गति का मार्ग। ३. एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर पहुँचने का भाव।

जैसे—हमारी इस उड़ान में केवल एक घंटा लगा। ४. उतनी दूरी जो एक बार में उक्त प्रकार से पार की जाय। ५. उक्ति, कल्पना, क्रिया-कलाप आदि का वह रूप जो साधारण बुद्धि या व्यक्ति की पहुँच के बहुत-कुछ बाहर या उससे बहुत ऊँचा या बढ़कर हो।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

६. मालखंभ में एक प्रकार की कसरत या क्रिया। ७. कलाई। पहुँचा।

उड़ाना—स० [हिं० उड़ना का स० और प्रेरणार्थक रूप] १. जो उड़ना जानता हो, उसे उड़ने में प्रवृत्त करना। जैसे—(क) खेत में बैठी हुई चिड़ियों को उड़ाना। (ख) शरीर पर बैठा हुआ मच्छर या मक्खी उड़ाना। (ग) खेल, तमाशे या शौक के लिए कबूतर उड़ाना आदि। २. जो चीज हवा में उठकर इधर-उधर आ-जा सकती हो, उसे हवा में उठाकर गति देना। ऐसी क्रिया करना जिससे कोई चीज हवा में उड़ने या चलने लगे। जैसे—गुड्डी उड़ाना, हवाई जहाज उड़ाना आदि। उदा०—चहत उड़ावन फूंकि पहारू।—तुलसी। ३. कोई चीज इतनी तेजी से चलाना कि वह हवा में उड़ती हुई-सी जान पड़े। जैसे—वह घोड़ा (या मोटर) उड़ाता चला जा रहा था। ४. ऐसा आघात या प्रहार करना कि कोई चीज या उसका कोई अंश कटकर अलग हो जाय या दूर जा पड़े। जैसे—(क) हथेली पर नीबू रखकर उसे तलवार से उड़ाना। (ख) तलवार से किसी का सिर या बारूद से पहाड़ की चट्टान उड़ाना। ५. ऐसा आघात या प्रहार करना जो ऊपर से उड़कर नीचे आता हुआ जान पड़े। कसकर या ज़ोर से जमाना या लगाना। जैसे—(क) राह-चलतों ने भी उन बेचारों पर दो-चार हाथ उड़ा दिये। (ख) जहाँ पुलिस ने दो-चार बेंत उड़ाये, तहाँ वह सब बातें बतला देगा। ६. ऐसा आघात या प्रहार करना कि कोई चीज पूरी तरह से छिन्न-भिन्न या नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। चौपट या बरबाद करना। जैसे—तोपों की मार से गाँव या नगर उड़ाना, बारूद से पुल उड़ाना आदि। ७. न रहने देना। मिटा देना। जैसे—(क) सूची में से नाम उड़ाना। (ख) कपड़े पर से स्याही का धब्बा उड़ाना आदि। ८. (किसी वस्तु या व्यक्ति को) कहीं से इस प्रकार हटा ले जाना कि किसी को पता न चले। जैसे—(क) किसी दूकान से किताब, घड़ी या धोती उड़ाना। (ख) कहीं से कोई औरत उड़ाना आदि। ९. लाक्षणिक रूप में, केवल दूर से देखकर (चालाकी या चोरी से) किसी की कोई कला-कौशल, विद्या, शिल्प आदि इस प्रकार समझ और सीख लेना कि सहज में उसका अनुकरण या आवृत्ति की जा सके। जैसे—तुम्हारी यह विद्या तो कहीं से उड़ाई हुई जान पड़ती है। १०. बहुत निर्दय या निर्भय होकर किसी चीज या बात का मनमाना उपयोग, व्यय आदि करना। जैसे—दो ही बरसों में उसने लाखों की संपत्ति उड़ा दी। ११. केवल सुख-भोग के विचार से किसी चीज या बात का अनुचित रूप से और आवश्यकता से अधिक उपयोग या व्यवहार करना। जैसे—मिठाई या हलुआ पूरी उड़ाना; किसी के साथ मजा या मौजें उड़ाना आदि। १२. वार्त्ता, समाचार आदि ऐसे ढंग से और इस उद्देश्य से लोक में प्रचलित करना कि वह दूर-दूर तक फैल जाय। जैसे—किसी के भाग जाने या मरने की झूठी खबर उड़ाना। १३. उधर-इधर की या उलटी-सीधी बातें बनाकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करना कि लोग धोखे में रहें और असल बात की तह तक न पहुँच सकें। बातें बनाकर चकमा या भुलावा देना। जैसे—(क) फिर तुम लगे हमें बातों में उड़ाने। (ख) तुम्हारे जैसे उड़ानेवाले बहुत देखे हैं।

†अ०=उड़ना। उदा०—लरिकाई जँह जँह फिरहिं तँह-तँह संग उड़ाउँ।—तुलसी।

उड़ायक*—वि० [उड़ान+क (प्रत्य०)] १. हवा में कोई चीज उड़ानेवाला। २. उड़ने या उड़ाने की कला में प्रवीण या कुशल। ३. गुड्डी या पतंग उड़ानेवाला। ४. दे० 'उड़ाका'।

उड़ाव*—पुं०=उड़ान।

उड़ावनी†—स्त्री०=ओसाई (अन्न की)।

उड़ास*—स्त्री०=[सं० उद्वास] १. झील, तालाब, नदी आदि के किनारे बना हुआ घर या प्रासाद। २. रहने की जगह। निवास-स्थान।

उड़ासना—स० [सं० उद्वासन] १. बिछा हुआ बिछौना उलटकर समेटना। २. तहस-नहस या नष्ट-भ्रष्ट करना। उजाड़ना। ३. शांतिपूर्वक बैठने या रहने में विघ्न डालना।

उड़िया—वि० [सं० ओड्र] उड़ीसा में बनने या होनेवाला। उड़ीसा का।

पुं० उड़ीसा देश का निवासी।

स्त्री० उड़ीसा प्रदेश की भाषा जो बँगला से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

उड़ियाना—पुं० [?] २२ मात्राओं का एक छंद।

उड़िल—पुं० [सं० ऊर्ण+हिं० इल (प्रत्य०)] भेंड़, जिसके बाल काटे न गये हों। (भूड़िल का विपर्याय)।

उड़ी—स्त्री० [हिं० उड़ना] १. उड़ने की क्रिया या भाव। उड़ान। २. एक प्रकार की कलाबाजी जो मालखंभ में होती है।

उडीयण—पुं० [सं० उडु-गण] तारों का समूह। तारागण। उदा०—उडीयण नीरज अंब हरि।—प्रिथीराज।

उड़ीसा—पुं० [सं० ओड्र+देश] भारत का एक राज्य जो बंगाल के दक्षिण और आंध्र के उत्तर में पड़ता है।

उडुंबर—पुं० =उदुंबर।

उडु—पुं० [सं० उ√डी (उड़ना)+डु] १. आकाश का कोई तारा या नक्षत्र। २. चिड़िया। पक्षी। ३. जल। पानी।

उडुचर—पु० [सं० उडु√चर् (गति)+ट] १. तारा या नक्षत्र। २. पक्षी।

उडुप—पु० [सं० उडु√पा (रक्षा करना)+क] १. नदी पार उतरने के लिए बाँसों में घड़े बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा। घड़नई। २. नाव। नौका। ३. चंद्रमा (विशेषतः अर्द्ध चंद्रमा, जिसका आकार नाव जैसा होता है।) ४. भिलावाँ। ५. बड़ा गरुड़।

पुं० [हिं० उड़ना] एक प्रकार का नृत्य।

उडु-पति—पुं० [सं० ष० त०] १. तारिकाओं का पति या स्वामी। चंद्रमा। २. सोम (लता या उसका रस)।

उडुराई*—पुं०=उडुराज (चंद्रमा)।

उडुराज—पुं०=उडुपति (चंद्रमा)।

उड़ुस—पुं० [हिं० उड़ासना या सं० उद्दंश] खटमल नामक कीड़ा।

उड़ेरना*—स०=उँडेलना।

उड़ैंच—पुं० [हिं० उड़ना+ऐंच (प्रत्य०)] १. कपट या दुराव से युक्त व्यवहार। २. मन में रहनेवाला द्वेष।

उड़ैना*—पुं० [हिं० उड़ना] [स्त्री० अल्पा० उड़ैनी] खद्योत। जगन। वि० उड़नेवाला।

उड़ौहाँ—वि० [हिं० उड़ना+आहीं (प्रत्य०)] उड़ने की प्रवृत्ति रखने या प्रायः उड़ता रहने वाला।

उड्ड*—पुं०=उडु।

उड्डयन—पुं० [सं० उद्√डी+ल्युट्–अन] [वि० उड्डीन] आकाश में उड़ने की क्रिया या भाव।

उड्डीन—वि० [सं० उद्√डी+क्त] आकाश में उड़नेवाला।
पुं०=उड्डयन।

उड्डीयमान—वि० [सं० उद्√डी+शानच्] आकाश में उड़ता हुआ।

उड्डीश—पुं० [सं० उद्√डी+क्विप्, उड्डी–ईश, ष० त०] १. शिव। २. शिव-तंत्र।

उढ़ा†—पुं० दे० 'विजूखा'।

उढ़कन—पुं० [हिं० उढ़कना] १. वह चीज जो किसी दूसरी चीज को गिरने या लुढ़कने से रोकने के लिए उसके साथ लगाई जाय। टेक। २. ऐसी चीज जो रास्ते में पड़कर ठोकर लगाती हो।

उढ़कना—अ० [देश०] १. पीठ की तरफ टेक या सहारा लगाकर बैठना। २. मार्ग में चलते समय ठोकर खाना।

उढ़काना—स० [हिं० उढ़कना] किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के सहारे खड़ा करना।

उढ़रना—अ० [सं० ऊढ़ा (=विवाहित) से] विवाहिता स्त्री का पर-पुरुष के साथ भागना।

उढ़री†—स्त्री० [हिं० उढ़रना] भगाकर लाई हुई स्त्री। रखेली।

उढ़ाना†—स० दे० 'ओढ़ाना'।
स०=ओढ़ना।

उढ़ारना—स० [अ० उढ़रना का स० रूप] दूसरे की स्त्री को निकाल या भगा लाना।
स० [सं० उद्धारण] उद्धार करना।

उढ़ावनी†—ओढ़नी।

उढ़ुकना—अ०=उढ़कना।

उढ़ौनी*—स्त्री०=ओढ़नी।

उणा†—सर्व०=उन (उस का बहु०)।

उणारथ†—पुं० [हिं० ऊन=कमी] १. कमी। त्रुटि। २. अपेक्षा। (राज०) ३. कामना। लालसा। उदा०—म्हाराँ मन री उणारथ भागी रे।—मीराँ।

उत्—उप० [सं०√उ (शब्द करना)+क्विप्] एक संस्कृत उपसर्ग जो शब्दों में लगकर ये अर्थ देता है—(क) ऊपर की ओर उठना या जाना। जैसे—उत्कर्ष। (ख) अधिकता या प्रबलता। जैसे—उत्कट, उत्तप्त। (ग) भिन्न या विपरीत। जैसे—उत्पथ, उत्सूत्र। संधि के नियमों के अनुसार कहीं कहीं इसका रूप उद् भी हो जाता है। जैसे—उद्‌बुद्ध, उद्‌गमन आदि।

उतंक—पुं० [सं० उत्तङ्क] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वि०*—[सं० उत्तुंग] ऊँचा।

उतंत—वि० [सं० उत्तत] भरा-पूरा। समृद्ध। उदा०—भइ उतंत पदमावति बारी।—जायसी।
*वि० दे० 'उत्पन्न'।

उतंथ—पुं० =उतथ्य।

उत*—क्रि० वि० [हिं० उ+त्त (स्थानवाचक)] उस दिशा में। उस ओर। उधर।

उतकरख*—पुं०=उत्कर्ष।

उतथ्य—पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो बृहस्पति के बड़े भाई और गौतम के पिता थे।

उतन—अव्य० [हिं० उ+तनु] उस दिशा में। उस ओर। उधर।

उतना—वि० [हिं० उत=उधर या पर पक्ष में+ना प्रत्य०] १. एक सार्वनामिक विशेषण जो 'इतना' का पर-पक्ष रूप है; और जो उस मात्रा, मान या संख्या का सूचक होता है, जिसका उल्लेख, चर्चा या निर्धारण पहले हो चुका हो अथवा जिसका संबंध किसी दूरी या पर-पक्ष से हो। उस मात्रा या मान का। जैसे—(क) वहाँ हमें इतना रास्ता पार करने में सारा दिन लग गया था (ख) इतना अंश हमारा है और उतना उसका। २. 'जितना' का नित्य संबंधी और पूरक रूप। जैसे—जितना कहा जाय, उतना किया करो। ३. 'इतना' की तरह क्रिया-विशेषण रूप में प्रयुक्त होने पर, उस परिमाण या मात्रा में। जैसे—उस समय तुम्हारा उतना डरना (या दबना) ठीक नहीं हुआ।

उतन्न—पुं० [अ० वतन] १. जन्म-भूमि। २. निवासस्थान। उदा०—तीहां देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न।—बाँकीदास।

उतन्ना†—पुं० [हिं० उतन=ऊपर+ना प्रत्य०] कान के ऊपरी भाग में पहना जानेवाला बाला की तरह का एक गहना।

उतपति†—स्त्री० १.=उत्पत्ति। २.=सृष्टि।

उतपनना—अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न या पैदा होना।

उतपन्न†—वि०=उत्पन्न।

उत्पाटना—स० [सं० उत्पाटन] १. उखाड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट करना।

उतपात*†—पुं०=उत्पात।

उतपातना†—स०=उतपादना।

उतपादना*—स० [सं० उत्पादन] उत्पन्न या उत्पादन करना।

उतपानना†—स० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न करना। उपजाना।

उतपाना*—स० [सं० उत्पादन] १. उत्पादन करना। २. उत्पन्न करना।

उतबंग-(संग)†—पुं० [सं० उत्तमांग] मस्तक। सिर। (डिं०)।

उतरंग—पुं० [सं० उत्तरंग] वह लकड़ी या पत्थर की पटरी जो दरवाजे में चौखट के ऊपर बेड़े बल में लगी रहती है।

उतर*—पुं०=उत्तर।

उतर-अयन*—पुं०=उत्तरायण।

उतरन†—स्त्री० [हिं० उतरना] वह (कपड़ा या गहना) जो किसी ने कुछ दिनों तक पहनने के बाद पुराना समझकर उतार या छोड़ दिया हो।
पुं० दे० 'उतरंग'।

उतरना—अ० [सं० अवतरण, प्रा० उत्तरण] १. ऊपर से नीचे की ओर आना या जाना। जसे—(क) गले के नीचे भोजन उतरना। (ख) स्तन में या स्तन से दूध उतरना। (ग) अंड-कोश में पानी उतरना।
मुहा०—(कोई बात किसी के) **गले के नीचे उतरना**=ध्यान, मन या समझ में आना। जैसे—उसे लाख समझाओ, पर कोई बात उसके गले के नीचे उतरती ही नहीं।
२. किसी वस्तु या व्यक्ति का ऊपर के या ऊँचे स्थान से क्रमशः प्रयत्न-पूर्वक नीचे की ओर आना। निम्नगामी होना। अवतरण करना।

जैसे—आकाश से पक्षी या वायुयान उतरना; घर की छत पर से नीचे उतरना। ३. यान, वाहन या सवारी पर से आरोही का नीचे आना। जैसे—घोड़े, नाव, पालकी या रेल पर से लोगों का उतरना। ४. किसी उच्च स्तर या स्थिति से अपने नीचेवाले प्राधिक, सामान्य या स्वाभाविक स्तर, स्थिति आदि की ओर आना। कम या न्यून होना। घटना। जैसे—ज्वर या ताप उतरना; नदी या बाढ़ का पानी उतरना; गाँजे या भाँग का नशा उतरना। ५. किसी पद या स्थान से खिच, खिसक या गिरकर अथवा किसी प्रकार अलग होकर नीचे आना। जैसे—(क) तलवार से कटकर गरदन या कैंची से कटकर सिर के बाल उतरना। (ख) बकरे (या भैंसे) की खाल उतरना। (ग) खींचा-तानी या लड़ाई-झगड़े में कंधे या कलाई की हड्डी उतरना। (घ) अपने दुराचार या दुर्व्यवहार के कारण किसी के चित्त से उतरना। ६. किसी अंकित, नियत या स्थिर स्तर से नीचे आना। जैसे—(क) विद्यालय में लड़के का दरजा उतरना। (ख) ताप-मापक यंत्र का पारा उतरना। (ग) बाजार में चीजों का भाव उतरना। (घ) गाने में गवैये का स्वर उतरना।

मुहा०—(किसी से) उतरकर होना=योग्यता, श्रेष्ठता आदि के विचार से घटिया या हलका होना।

७. आकाश या स्वर्ग से अवतार, देवदूत आदि के रूप में इस लोक में आना। जैसे—समय-समय पर अनेक अलौकिक महापुरुष इस लोक में उतरते रहते हैं। ८. कहीं से आकर किसी स्थान पर टिकना, ठहरना या रुकना। डेरा डालना। जैसे—(क) धर्मशाला या बगीचे में बारात उतरना। (ख) किसी के घर मेहमान बनकर उतरना। ९. तत्परता या दृढ़तापूर्वक कोई काम करने के लिए उपयुक्त क्षेत्र में आना। जैसे—(क) पिछले महायुद्ध में प्रायः सभी बड़े राष्ट्र युद्ध-क्षेत्र में उतर आये थे। (ख) अब वे कहानियाँ लिखना छोड़कर आलोचना (या कविता) के क्षेत्र में उतरे हैं। १०. किसी पदार्थ के उपयोगी, वांछित या सार भाग का किसी क्रिया से खींचकर बाहर आना। जैसे—भभके से किसी चीज का अरक उतरना, उबालने से पानी में किसी चीज का तेल, रंग या स्वाद उतरना। ११. शरीर पर धारण की या पहनी हुई वस्तु का वहाँ से हटाये जाने पर अलग होना। जैसे—कपड़ा, जूता या मोजा उतरना। १२. अपनी पूर्व स्थिति से नष्ट-भ्रष्ट, पतित या विलुप्त होना। जैसे—कोई बात चित्त से उतरना (याद न रहना), सबके सामने आबरू या इज्जत उतरना।

मुहा०—(किसी व्यक्ति का) किसी के चित्त से उतरना=अपने दुराचार, दुर्व्यवहार आदि के कारण किसी की दृष्टि में उपेक्ष्य और हीन सिद्ध होना। किसी की दृष्टि में आदरणीय न रह जाना। जैसे—जब से वे जूआ खेलने (या झूठ बोलने) लगे, तबसे वे हमारे चित्त से उतर गये।

१३. अंत या समाप्ति की ओर आना या होना। जैसे—(क) उन दिनों उनकी अवस्था उतर रही थी। (ख) अब हस्त नक्षत्र (या सावन का महीना) उतर रहा है।

मुहा०—उतर जाना=(क) किसी बड़े काल-विभाग या पक्ष का पूरा या समाप्त हो जाना। जैसे—अब यह पक्ष (या वर्ष) भी उतर जायगा। (ख) संतान के पक्ष में, मर जाना। मृत्यु हो जाना। (स्त्रियाँ) जैसे—इसके बच्चे हो-होकर उतर जाते हैं।

१४. घटाव या ह्रास की ओर आना या होना। जैसे—(क) धीरे-धीरे उनका ऋण उतर रहा है। (ख) अब इस कपड़े (या तस्वीर) का रंग उतरने लगा है। १५. किसी प्रकार के आवेश का मंद पड़कर शांत या समाप्त होना। जैसे—क्रोध या गुस्सा उतरना; झक या सनक उतरना। १६. फलों, फूलों आदि का अच्छी तरह से पक या फूल चुकने के बाद सड़न की ओर प्रवृत्त होना। जैसे—कल तक यह आम (या खरबूजा) उतर जायगा। १७. किसी प्रकार कुम्हला या मुरझा जाना अथवा श्रीहीन होना। प्रभा से रहित होना। जैसे—फटकारे जाने या भेद खुलने पर किसी का चेहरा या मुँह उतरना। १८. बाजों के संबंध में, जितना कसा, चढ़ा या तना रहना चाहिए, उससे कसाव या तनाव कम होना (और फलतः उनसे अपेक्षित या वांछित स्वर न निकलना)। जैसे—तबला या सारंगी जब उतर जाय, तब उसे तुरंत (कस या तानकर) मिला लेना चाहिए। (उसमें उपयुक्त कसाव या तनाव ले आना चाहिए)। १९. क्रमशः तैयार होने या बननेवाली चीजों का तैयार या बनकर काम मे आने या बाजार में जाने के योग्य होना। जैसे—(क) पेड़-पौधों से फल-फूल उतरना; करघे पर से थान या धोतियाँ उतरना; भट्ठी पर से चाशनी या पाग उतरना। २०. अनुकृति, प्रतिकृति, प्रतिच्छाया, प्रतिलिपि, लेख आदि के रूप में अंकित या प्रस्तुत होना। नकल बनना या होना। जैसे—(क) किसी आदमी की तसवीर या किसी जगह का नक्शा उतरना। (ख) खाते या बही में लेखा या हिसाब उतरना। (ग) कविता या कहानी में कोई भाव या विचार उतरना। २१. अनुकूल, उपयुक्त, ठीक या पूरा होना। जैसे—(क) यह कड़ा तौल में पूरा पाँच तोले उतरा है। (ख) यह काम तुमसे पूरा न उतरेगा। २२. प्राप्य धन प्राप्त होना। उगाहा जाना या वसूल होना। जैसे—आज-कल चंदा (या लहना) उतरना बहुत कठिन हो गया है। २३. शतरंज के खेल में, प्यादे या सिपाही का आगे बढ़ते-बढ़ते विपक्षी के किसी ऐसे घर में पहुँचना जहाँ वह उस घर के मरे हुए मोहरे की जगह फिर से नया मोहरा बन जाता है। जैसे—हमारा यह प्यादा अब उतरकर वजीर (या हाथी) बनेगा।

अ० [सं० उत्तरण] नाव आदि की सहायता से किसी जलाशय (तालाब, नदी, नाले आदि) के उस पार पहुँचना। जैसे—धीरज धरहि सो उतरहिं पारा।—तुलसी।

उतरवाना—स० [हिं० उतरना का प्रे० रूप] किसी को कुछ उतारने में प्रवृत्त करना।

उतरहा—वि० [हिं० उत्तर+हा (प्रत्य०)] उत्तर दिशा का। उत्तरी।

उतराँही*—स्त्री० [हिं० उत्तर (दिशा)] उत्तर दिशा से आनेवाली हवा।

उतराई—स्त्री० [हिं० उतरना] १. उतरने या उतारने की क्रिया या भाव। २. किसी चीज या व्यक्ति को नदी आदि के पार उतारने या पहुँचाने के लिए लगनेवाला कर या पारिश्रमिक। उदा०—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं।—तुलसी। ३. रास्ते में पड़नेवाला उतार या ढाल।

उतराना—अ० [सं० उत्तरण] १. पानी में पड़ी हुई चीज का उसके ऊपर तैरना। २. पानी में डूबी हुई चीज का फिर से पानी के ऊपर आना। ३. विपत्ति या संकट से उद्धार पाना।

पद—डूबना-उतराना=चिंता, संकट आदि की स्थिति में कभी निराश होना और कभी उद्धार का मार्ग देखना।

स० १. डूबे हुए को पानी के ऊपर लाना और रखना। तैराना। २. संकट आदि से मुक्त करना। उद्धार करना। उदा०—ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ।—सूर। ३. दे० 'उतरवाना'।

उतरायल—वि० [हिं० उतरना या उतराना] अच्छी तरह पहन चुकने के बाद उतारा हुआ (कपड़ा, गहना आदि)।

पुं०=उतरन।

उतरारी*—वि० [सं० उत्तर+हिं०=वारी] उत्तरी दिशा का। उत्तर का।

उतराव—पुं० [हिं० उतरना] रास्ते में पड़नेवाला उतार। ढाल।

उतरावना—स० १. दे० 'उतारना'। २. दे० 'उतरवाना'।

उतराहां†—वि० [सं० उत्तर+हा (प्रत्य०)] उत्तर दिशा का। उत्तर का।

उतरिन—वि०=उऋणी।

उतरु*—पुं०=उत्तर (जवाब)। उदा०—जाइ उतरु अब देहउँ काहा।—तुलसी।

उतरौंहां*—वि० [सं० उत्तर+हा (प्रत्य०)] उत्तर दिशा का। उत्तरी।

क्रि० वि० उत्तर दिशा की ओर।

उतलाना*—अ० [हिं० आतुर] १. आतुर होना। २. उतावली करना।

उतल्ला—†—वि०=उतायल।

पुं०=उपल्ला।

उतसाह—पुं०=उत्साह।

उतहसकंठा*—स्त्री०=उत्कंठा।

उताइल*—अव्य० [हिं० उतावला का पुराना रूप] १. उतावलेपन से। २. जल्दी या शीघ्रता से। उदा०—चला उताइल त्रास न थोरी।—तुलसी।

स्त्री० उतावली। जल्दबाजी।

वि०=उतावला।

उताइली*—स्त्री०=उतावली।

उतान—वि० [सं० उत्तान] पीठ के बल लेटा हुआ। चित। उदा०—जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।—तुलसी।

उतामला—वि०=उतावला। उदा०—देखताँ पथिक उतामला दीठा।—प्रिथीराज।

उतायल*—वि०=उतावला।

उताइली—स्त्री०=उतावली।

उतार—पुं० [हिं० उतरना, उतारना] १. उतरने (नीचे की ओर आने) या उतारने (नीचे की ओर लाने) की क्रिया, भाव या स्थिति। २. किसी चीज या बात के नीचे की ओर चलने या होने की प्रवृत्ति। ढाल। नति। जैसे—अब आगे चलकर इस पहाड़ी का उतार पड़ेगा। ३. परिमाण, मात्रा, मान आदि में उत्तरोत्तर या क्रमशः होनेवाली कमी, घटाव या ह्रास। जैसे—ज्वर, नदी, बाजार-भाव या स्वर का उतार। ४. किसी चीज या बात का वह पिछला अंग या अंश जो प्रायः अंत या समाप्ति की ओर पड़ता हो। जैसे—गरमी या सरदी का उतार। ५. ऐसी चीज जो कोई उग्र आवेग या वेग कम करने में उपयोगी अथवा सहायक हो। मारक। (एन्टि-डोट) जैसे—(क) भाँग का उतार खटाई है। (ख) उनके गुस्से (या शेखी) का उतार हमारे पास है। ६. नदी के किनारे की वह जगह जहाँ यात्री नाव से उतरते है। ७. दे० 'उतारा'। ८. दे० 'उतरन'।

वि० अवम। नीच। पतित। उदा०—अपत, उतार अपकार को उपकार जग...।—तुलसी।

उतार-चढ़ाव—पुं० [हिं० उतरना+चढ़ना] १. नीचे उतरने और ऊपर चढ़ने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. ऐसा तल या स्थिति जिसमें कहीं कहीं उतार हो और कहीं कहीं चढ़ाव। तल में होनेवाली विषमता। ३. किसी वस्तु के मान, मूल्य, स्तर आदि का बराबर घटते-बढ़ते रहना। (फ्लक्चुएशन)

उतारन—पुं० [हिं० उतारना] १. फटा-पुराना कपड़ा जो कुछ दिनों तक पहनने के बाद उतारकर छोड़ दिया गया हो। २. उच्छिष्ट और निकृष्ट वस्तु। ३. वह चीज जो टोने-टोटके के रूप में किसी पर से उतारकर या निछावर करके अलग की गई हो।

उतारना—स० [सं० उत्तारण] १. हिंदी 'उतरना' का सकर्मक रूप। किसी को उतरने में प्रवृत्त करना। ऐसा काम करना जिससे कुछ या कोई नीचे उतरे। जैसे—कूएँ या सुरंग में आदमी उतारना। २. नाव आदि की सहायता से नदी के पार पहुँचाना। उदा०—तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं।—तुलसी। ३. प्रयत्नपूर्वक कोई चीज ऊँचे स्थान से नीचे स्थान पर लाना या ले जाना। नीचे करना या रखना। जैसे—गाड़ी पर से सवारी या सामान उतारना, सिर पर से बोझ उतारना।

मुहा०—(किसी के) गले में कोई बात उतारना=इस प्रकार अच्छी तरह समझाना-बुझाना कि कोई बात किसी के मन में जम या बैठ जाय। ४. परिमाण या मान कम करके या और किसी प्रकार उच्च स्तर या स्थिति से नीचेवाले स्तर या स्थिति में लाना। जैसे—चढ़ा हुआ नशा या बुखार उतारना; किसी चीज की दर या भाव उतारना। ५. किसी पद या स्थान से काट, खोल, तोड़ या निकालकर अलग करना या नीचे लाना। जैसे—तलवार से किसी का सिर उतारना; कमरे में लगी हुई घड़ी उतारना; पेड़-पौधों पर से फल-फूल उतारना। ६. किसी अंकित या नियत पद या विभाग से उसके नीचेवाले पद या विभाग में लाना। जैसे—कर्मचारी या विद्यार्थी का दरजा उतारना। ७. आकाश या स्वर्ग से अवतार आदि के रूप में प्रयत्नपूर्वक इस लोक में लाना। जैसे—इस लोक के प्राणियों के कष्ट दूर करने के लिए देवता लोग रामको पृथ्वी पर उतार लाये। ८. किसी को किसी स्थान पर लाकर टिकाना या ठहराना। जैसे—महासभा के अवसर पर चार अतिथियों को तो हम अपने यहाँ उतार लेंगे। ९. कोई काम करने के लिए किसी को किसी क्षेत्र में पहुँचाना या लाना। किसी को विशिष्ट कार्य की ओर प्रवृत्त करना। जैसे—महात्मा गाँधी ने हजारों नये लोगों को राजनीतिक क्षेत्र मे उतारा था। १०. किसी पदार्थ का आवश्यक या उपयोगी अंग या सार भाग किसी क्रिया से निकालकर नीचे या बाहर लाना। जैसे—किसी वनस्पति का अरक या रंग उतारना। ११. शरीर पर धारण की हुई चीज अलग करके नीचे या कहीं रखना। जैसे—कुरता, टोपी या धोती उतारना।

मुहा०—किसी की पगड़ी उतारना=(क) किसी को अप्रतिष्ठित या अपमानित करना। (ख) किसी से बहुत अधिक धन ऐंठना या वसूल करना।

१२. ध्यान, विचार आदि के पक्ष में, अपनी पूर्व स्थिति में वर्त्तमान या स्थित न रहने देना। जैसे—अब पिछली बातें मन से उतार दो। १३. कमी, घटाव या ह्रास की ओर ले जाना। जैसे—अब तो वे जल्दी-जल्दी अपना ऋण उतार रहे हैं। १४. किसी प्रकार का आवेग या वेग मंद अथवा शांत करना। जैसे—मीठी-मीठी बातों से किसी का गुस्सा उतारना; किसी के सिर पर चढ़ा हुआ भूत उतारना। १५. शोभा, श्री आदि से रहित या हीन करना। जैसे—आपने मेरी बात पर हँसकर उनका चेहरा (या चेहरे का रंग) उतार दिया। १६. बाजों आदि के पक्ष में, उनका तनाव या कसाव कम करना। जैसे—बजा चुकने के बाद बीन या सितार उतार देनी चाहिए। १७. करण, यंत्र आदि के द्वारा बननेवाली चीजों को तैयार करके पूरा करना। जैसे—खराद पर से थालियाँ या लोटे उतारना। १८. अनुकृति, प्रतिकृति, प्रतिलिपि आदि के रूप में अंकित या प्रस्तुत करना। बनाना। जैसे—किसी की तसवीर उतारना; निबंध या लेख की नकल उतारना।

मुहा०—**किसी व्यक्ति की नकल उतारना**=उपहास, परिहास आदि के लिए किसी की अंग-भंगी, बोल-चाल, रंग-ढंग आदि का अनुकरण या अभिनय करके दिखलाना।

१९. कर्म-कांड, टोने-टोटके आदि के क्षेत्र में, किसी प्रकार के उपचार के रूप में कोई चीज किसी के सामने या उसके ऊपर से चारों ओर घुमाना-फिराना। जैसे—देवी-देवता की आरती उतारना; किसी पर से राई-नोन उतारना। २०. कोई काम ठीक तरह से पूरा करना या उचित रूप से अंत या समाप्ति की ओर ले जाना। जैसे—(क) तुम यह छोटा-सा काम भी पूरा न कर सके। (ख) वह कचौरी, पूरी मजे में उतार लेता है (तल या पकाकर तैयार कर लेता है)। २१. घूम-घूमकर चारों ओर से प्राप्य धन इकट्ठा करना। वसूल करना। उगाहना। जैसे—चंदा या बेहरी उतारना। २२. शतरंज के खेल में अपना प्यादा आगे बढ़ाते हुए ऐसे घर में पहुँचाना जहाँ वह उस घर का मोहरा बन जाय। जैसे—तुमने तो अपना प्यादा उतारकर घोड़ा बना लिया।

उतारा—पुं० [हिं० उतरना] १. नदी आदि से पार उतरने की क्रिया या भाव। २. किसी स्थान पर उतरने (टिकने या ठहरने) की क्रिया या भाव। डेरा या पड़ाव डालना। ३. वह स्थान जहाँ पर कोई (विशेषतः यात्री) अस्थायी रूप से उतरे, टिके या ठहरे। डेरा। पड़ाव।

पद—**उतारे का झोपड़ा**=यात्रियों के टिकने का स्थान। विश्रामालय।

पुं० [हिं० उतारना] १. नदी आदि पार कराने की क्रिया या भाव। २. यात्री, सामान आदि नदी से पार उतराने का पारिश्रमिक। ३. नदी के किनारे का वह स्थान जहाँ नाव से यात्री या सामान उतारे जाते हैं। ४. वह रुपया-पैसा आदि जो किसी मांगलिक अवसर पर किसी के चारों ओर घुमाकर नाऊ आदि को दिया जाता है। ५. भूत-प्रेत, रोग आदि की बाधा के निवारण के लिए टोने-टोटके के रूप में किसी व्यक्ति के चारों ओर कुछ सामग्री उतार या घुमाकर अलग रखना। ६. उक्त प्रकार से उतारकर रखी जानेवाली सामग्री। ७. फटे-पुराने या उतारे हुए कपड़े जो गरीबों, नौकरों आदि को पहनने के लिए दिये जाते हैं। उतारन।

उतारू—वि० [हिं० उतरना] किसी काम या बात के लिए विशेषतः किसी अनुचित या निंदनीय काम या बात के लिए उद्यत या तत्पर। जैसे—गालियों या चोरी-चमारी पर उतारू होना।

पुं० मुसाफिर। यात्री। (लश०)

उताल*—स्त्री० [सं० उद्+त्वर] जल्दी।

*वि० [सं० उत्ताल] १. तीव्र। तेज। २. फुरतीला। ३. उतावला। जल्दबाज।

क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

उतालक†—क्रि० वि० [हिं० उताला] जल्दी से। चटपट। तुरंत। उदा०—बथुआ राँधि लियौ जु उतालक।—सूर।

उताला*—वि०=उतावला।

उताली*—स्त्री०=उतावली।

क्रि० वि० जल्दी से।

उतावल*—क्रि० वि० [सं० उद्+त्वर] जल्दी-जल्दी। शीघ्रता से।

वि० दे० 'उतावला'।

उतावला—वि० [सं० आतुर या उत्ताल?] [स्त्री० उतावली] १. जो किसी काम के लिए बहुत आतुर हो। २. जो हर काम में जल्दी मचाता हो। उत्सुकतापूर्वक जल्दी मचानेवाला। ३. जो बिना समझे-बूझे तथा आवेश में आकर कोई काम करने के लिए तत्पर हो जाय।

उतावली—स्त्री० [सं० उद्+त्वर] १. उतावले होने की अवस्था या भाव। २. किसी काम के लिए मचाई जानेवाली जल्दी। ३. व्यग्रता।

उताहल—वि०=उतावला।

*क्रि० वि० जल्दी से।

उताहिल*—वि०=उतावला।

क्रि० वि० जल्दी से।

उतिम*—वि०=उत्तम।

उती—अव्य० [हिं० उत] उधर। उस ओर। उदा०—तब उती नाहीं कोई।—गोरखनाथ।

उतृण—वि०=उऋण।

उतै*†—अव्य० [हिं० उत] उधर। उस ओर। वहाँ।

उतैला*†—वि०=उतावला।

पुं० [देश०] उड़द। उर्द।

उत्कंठ—वि० [सं० उत्-कंठा, ब० स०] १. जिसने गरदन ऊपर उठाई हो। २. जिसे उत्कंठा हो। उत्कंठित।

क्रि० वि० १. गरदन ऊपर उठाए हुए। २. उत्कंठापूर्वक।

उत्कंठा—स्त्री० [सं० उद्√कण्ठ् (अत्यंत चाह)+अ–टाप्] [वि० उत्कंठित] १. कोई काम करने या कुछ पाने की प्रबल इच्छा। उत्कट या तीव्र अभिलाषा। चाव। (लांगिंग) २. किसी कार्य के होने में विलंब न सहकर उसे चटपट करने की अभिलाषा। (साहित्य)

उत्कंठातुर—वि० [सं० उत्कंठा-आतुर, तृ० त०] जो कोई प्रबल या तीव्र अभिलाषा पूरी करने के लिए उत्कंठा के कारण आतुर हो। उदा०—मैं चिर उत्कंठातुर।—पंत।

उत्कंठित—वि० [सं० उत्कंठा+इतच्] जिसके मन में कोई तीव्र या प्रबल अभिलाषा हो। उत्कंठा या चाव से भरा हुआ।

उत्कंठिता—स्त्री० [सं० उत्कंठित+टाप्] साहित्य में वह नायिका जो

संकेतस्थल में अपने प्रेमी के न पहुँचने पर उत्कंठापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करती हो।

उत्कंप—पु० [सं० उद्√कम्प् (काँपना)+घञ्] कंपन। कँपकँपी।

उत्कच—वि० [सं० उत्-कच, ब० स०] जिसके बाल उठे हुए या खड़े हों। पुं० हिरण्याक्ष का एक पुत्र।

उत्कट—वि० [सं० उद्√कट् (गति)+अच्] [भाव० उत्कटता] १. जो मान, मात्रा आदि के विचार से बहुत ऊँचा या बढ़ा-चढ़ा हो। (इन्टेन्स) जैसे—उत्कट प्रेम, उत्कट विद्वान्। २. जो अपने गुण, प्रभाव, फल आदि के विचार से बहुत उग्र या तीव्र हो। जैसे—उत्कट स्वभाव। पु० १. मूंज। २. गन्ना। ईख। ३. दालचीनी। ४. तज। ५. तेजपात।

उत्कर—पु० [सं० उद्√कृ (फेंकना)+अप्] ढेर। राशि।

उत्कर्ण—वि० [सं० उत्-कर्ण, ब० स०] १. जिसके कान ऊँचे उठे हों। २. जो किसी की बात सुनने के लिए उत्सुक होने के कारण कान उठाये हुए हो।

उत्कर्ष—पु० [सं० उद्√कृष् (खींचना)+घञ्] १. ऊपर की ओर उठने, खिंचने या जाने की क्रिया या भाव। २. पद, मान, संपत्ति आदि में होनेवाली वृद्धि, संपन्नता या समृद्धि। ३. भाव, मूल्य आदि में होनेवाली अधिकता या वृद्धि।

उत्कर्षक—वि० [सं० उद्√कृष्+ण्वुल्—अक] १. ऊपर की ओर उठाने या बढानेवाला। २. उन्नति या समृद्धि करनेवाला। उत्कर्ष करनेवाला।

उत्कर्षता—स्त्री० [सं० उत्कर्ष+तल्—टाप्] १. उत्तमता। श्रेष्ठता। २. अधिकता। ३. समृद्धि।

उत्कर्षी (र्षिन्)—वि० [सं० उद्√कृष्+णिनि] =उत्कर्षक।

उत्कल—पु० [सं०] १. भारतीय संघ के उड़ीसा राज्य का पुराना नाम। २. चिड़ीमार। बहेलिया। ३. बोझ ढोनेवाला मजदूर।

उत्कलन—पु० [सं० उद्√कल् (गति, प्रेरणा, संख्या, शब्द)+ल्युट्—अन] १. बंधन से मुक्त होना। छूटना। २. फूलों आदि का खिलना या विकसित होना। ३. लहराना।

उत्कलिका—स्त्री० [सं० उद्√कल्+वुन्—अक—टाप्] १. उत्कंठा। २. फूल की कली। ३. लहर। तरंग। ४. साहित्य मे ऐसा गद्य जिसमें बड़े-बड़े सामासिक पद हो।

उत्कलित—वि० [सं० उद्√कल्+क्त] १. जो बँधा हुआ न हो। खुला हुआ। मुक्त। २. खिला हुआ। विकसित। ३. लहराता हुआ।

उत्कली—वि० स्त्री० दे० 'उडिया'।

उत्का*—स्त्री० [सं० उत्क+टाप्] =उत्कंठिता (नायिका)।

उत्कारिका—स्त्री० [सं० उद्√कृ+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] फोड़े आदि पकाने के लिए उन पर लगाया जानेवाला लेप। पुलटिस।

उत्कीर्ण—वि० [सं० उद्√कॄ+क्त] १. छितरा, फैला या बिखरा हुआ। २. छिदा या भिदा हुआ। ३. खोदकर अंकित किया हुआ।

उत्कीर्त्तन—पु० [सं० उद्√कृत् (जोर से शब्द करना)+ल्युट्—अन] १. जोर से बोलना। चिल्लाना। २. घोषणा करना। ३. प्रशंसा या स्तुति करना।

उत्कुण—पुं० [सं० उद्√कुण् (हिंसा करना)+अच्] १. खटमल। २. बालों में पड़नेवाला छोटा कीड़ा। जूँ।

उत्कूज—पुं० [सं० उद्√कूज् (अव्यक्त शब्द)+घञ्] १. कोमल मधुर ध्वनि। २. कोयल की कुहुक।

उत्कूट—पुं० [सं० उद्√कूट् (ढकना)+अच्] बहुत बड़ा छाता।

उत्कृष्ट—वि० [सं० उद्√कृष् (खींचना)+क्त] [भाव० उत्कृष्टता] १. अच्छे गुणों से युक्त और फलतः आकर्षक या सुंदर। २. जो औरों से बढ़ा-चढ़ा हो। उत्तम। श्रेष्ठ।

उत्कृष्टता—स्त्री० [सं० उत्कृष्ट+तल्—टाप्] उत्कृष्ट होने की अवस्था या भाव।

उत्केंद्र—वि० [सं० उत्-केन्द्र, ब० स०] [भाव० उत्केंद्रता] १. अपने केंद्र से हटा हुआ। २. जो केंद्र या ठीक मध्य में स्थित न हो। ३. जो ठीक या पूरा गोला न हो। ४. अनियमित। बे-ठिकाने। (एक्सेन्ट्रिक) पु० केंद्र से भिन्न स्थान।

उत्केंद्रता—स्त्री० [सं० उत्केंद्र+तल्—टाप्] उत्केंद्र होने की अवस्था या भाव। (एक्सेन्ट्रिसिटी)

उत्केंद्रित—वि०=उत्केंद्र।

उत्कोच—पुं० सं० उद्√कुच् (संकोच)+क] १. घूस। रिश्वत। (ब्राइब) २. भ्रष्टाचार।

उत्कोचक—वि० [सं० उद्√कुच्+ण्वुल्—अक] १. किसी को घूस देनेवाला। २. घूस लेनेवाला। ३. भ्रष्टाचारी।

उत्क्रम—पुं० [सं० उद्√क्रम् (गति)+घञ्] १. ऊपर की ओर उठना या जाना। २. उन्नति या समृद्धि होना। ३. अनजान में या बिना किसी इष्ट उद्देश्य के ठीक मार्ग से इधर-उधर होना। (डिग्रेशन)

विशेष—यह 'विकल्प' से इस बात में भिन्न है कि इसमें उचित मार्ग का त्याग किसी बुरे उद्देश्य से नहीं होता।

उत्क्रमण—पुं० [सं० उद्√क्रम्+ल्युट्—अन] १. ऊपर की ओर जाने की क्रिया या भाव। २. आज्ञा या कार्य-क्षेत्र का उल्लंघन करना। ३. आक्रमण। चढ़ाई। ४. मृत्यु। मौत।

उत्क्रांत—वि० [सं० उद्√क्रम्+क्त] [भाव० उत्क्रांति] १. ऊपर की ओर चढ़नेवाला। २. जिसका उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ हो।

उत्क्रांति—स्त्री० [सं० उद्√क्रम्+क्तिन्] १. धीरे-धीरे उन्नति या पूर्णता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति। दे० 'आरोह'। २. अतिक्रमण। उल्लंघन। ३. मृत्यु। मौत।

उत्क्रोश—पुं० [सं० उद्√क्रुश् (चिल्लाना)+घञ्] १. शोर-गुल। हल्ला-गुल्ला। २. कुररी नामक पक्षी।

उत्क्लेदन—पुं० [सं० उद्√क्लिद् (भींगना)+ल्युट्—अन] गीला, तर या नम करने या होने की क्रिया या भाव।

उत्क्लेश—पुं० [सं० उद्√क्लिश् (कष्ट पाना)+घञ्] वैद्यक में, कुछ खाने के बाद आमाशय की अम्लता के कारण कलेजे के पास मालूम होनेवाली जलन। (रोग) (हार्ट-बर्न)

उत्क्षिप्त—भू० कृ० [सं० उद्√क्षिप् (फेंकना)+क्त] १. ऊपर की ओर उछाला या फेंका हुआ २. दूर किया या हटाया हुआ। ३. कै या वमन के रूप में बाहर निकाला हुआ। ४. नष्ट किया हुआ। ध्वस्त।

उत्क्षेप—पुं० [सं० उद्√क्षिप्+घञ्] [वि० उत्क्षिप्त, कर्त्ता उत्क्षेपक] १. ऊपर की ओर उछालने या फेंकने की क्रिया या भाव। २. बाहर

निकालना । ३. दूर हटाना । ४. परित्याग करना। छोड़ना। ५. कै। वमन।

उत्क्षेपक--पुं० [सं० उद्√क्षिप्+ण्वुल्--अक] १. ऊपर उछालने या फेंकनेवाला। २. दूर करने या हटानेवाला। ३. चोरी करनेवाला। चोर।

उत्क्षेपण--पुं० [सं० उद्√क्षिप्+ल्युट्--अन] १. ऊपर की ओर फेंकने की क्रिया या भाव। उछालना । २. उल्टी। कै । वमन । ३. चोरी। ४. मूसल। ५. पांव। ६. ढकना । ढक्कन।

उत्खनन--पुं० [सं० उद्√खन् (खोदना)+ल्युट्--अन] [भू० कृ० उत्खचित] गड़ी या जमी हुई चीज को खोदना। खोदकर बाहर निकालना या फेंकना ।

उत्खात--भू० कृ० [सं० उद्√खन्+क्त] १. खोदा हुआ। २. खोदकर बाहर निकाला हुआ। ३. जड़ों से उखाड़ा हुआ (पेड़, पौधा आदि)। ४. नष्ट-भ्रष्ट किया हुआ। ५. अपने स्थान से दूर किया या हटाया हुआ।

उत्खाता (तृ)--वि० [सं० √उद्√खन्+तृच्] १. उखाड़नेवाला। २. खोदनेवाला। ३. समूल नष्ट करनेवाला।

उत्खाती (तिन्)--वि० [सं० उद्√खन्+णिनि] १. जो समतल न हो। ऊबड़-खावड़ । २. =उत्खाता।

उत्खान--पुं० [सं० उद्√खन्+घञ्] =उत्खनन ।

उत्खेद--पुं० [सं० उद्√खिद् (दीनता, घात)+घञ्] १. काटना। छेदना। २. खोदना।

उत्तंकित†--वि०=आतंकित।

उत्तंग*--वि०=उत्तुंग।

उत्तंभन--पुं० [सं० उद्√स्तम्भ् (रोकना)+घञ्] [उद्√स्तम्भ्+ल्युट] १. टेक या सहारा देने की क्रिया या भाव। २. टेक। सहारा। ३. रोक।

उत्तंस*--पुं० [सं० उद्√तंस् (अलंकृत करना) +अच् या घञ्] दे० 'अवतंस'।

उत्तट--वि० [सं० उत्--तट, अत्या० स०] किनारे या तट के ऊपर निकलकर बहनेवाला ।

उत्तप्त--भू० कृ०[सं० उद्√तप् (तपना)+क्त] १.खूब तपा या तपाया हुआ। २. जलता हुआ। ३. लाक्षणिक अर्थ में सताया हुआ। संतप्त। ४. कुपित।

उत्तब्ध--भू० कृ० [सं० उद्√स्तम्भ् (रोकना)+क्त] १.ऊपर उठाया हुआ । उन्नमित। २. उत्तेजित किया हुआ । भड़काया हुआ ।

उत्तभित--वि०=उत्तब्ध ।

उत्तमंग--पुं०=उत्तमांग ।

उत्तम--वि० [सं० उद्+तमप्] [स्त्री० उत्तमा] १. जो गुण, विशेषता आदि में सबसे बहुत बढ़कर हो। सबसे अच्छा। २. सबसे बड़ा। प्रधान।

पुं० १. विष्णु। २. ध्रुव का सौतेला भाई।

उत्तम-गंधा--स्त्री० [ब० स०] चमेली।

उत्तमतया--क्रि० वि० [सं० उत्तमता शब्द की तृतीया विभक्ति के रूप का अनुकरण] उत्तम रूप से। अच्छी तरह। भली भाँति।

उत्तमता--स्त्री० [सं० उत्तम+तल्--टाप्] उत्तम होने की अवस्था या भाव ।

उत्तमताई*--स्त्री०=उत्तमता ।

उत्तमत्व--पुं० [सं० उत्तम+त्व] =उत्तमता ।

उत्तमन--पुं० [सं० उद्√तम् (खेद)+ल्युट्--अन] १. साहस छोड़ना। २. अधीरता। अधैर्य।

उत्तम-पुरुष--पुं० [सं० कर्म० स०] १. व्याकरण में, वह पद जो प्रथम पुरुष अर्थात् बोलनेवाले का वाचक हो। वक्ता का वाचक सर्व-नाम। जैसे--मैं, हम। २. ईश्वर जो सब पुरुषों में उत्तम कहा गया है।

उत्तमर्ण--पुं० [सं० उत्तम--ऋण, ब० स०] वह जो दूसरों को ऋण देता हो; अथवा जिसने किसी को ऋण दिया हो। महाजन।

उत्तमर्णिक--पुं० [सं० उत्तम--ऋण, कर्म०-स०,+ठन्--इक]= उत्तमर्ण।

उत्तम-साहस--पुं० [सं० कर्म० स०] प्राचीन काल में अपराधी को दिया जानेवाला बहुत अधिक कठोर आर्थिक या शारीरिक दंड। जैसे--अंग-भंग, निर्वासन, प्राण-दंड आदि।

उत्तमांग--पुं० [सं० उत्तम-अंग, कर्म० स०] शरीर का उत्तम या सर्व श्रेष्ठ अंग, मस्तक। सिर।

उत्तमांभस--पुं० [सं० उत्तम-अंभस्, कर्म० स०] सांख्य में, हिंसा के त्याग से प्राप्त होनेवाली तुष्टि।

उत्तमा-- स्त्री० [सं० उत्तम+टाप्] १. श्रेष्ठ स्त्री। २. शूक रोग का एक भेद। ३. दुद्धी या दूधी नाम की जड़ी।

वि० भली। नेक।

उत्तमादूती--स्त्री० [सं० व्यस्तपद] साहित्य में, वह दूती जो रूठे हुए नायक या नायिका को समझा-बुझाकर या दूसरे उत्तम उपायों से उसके प्रिय के पास ले आती हो।

उत्तमानायिका--स्त्री० [सं० व्यस्तपद] साहित्य में, शुद्ध आचरण-वाली वह स्वकीया नायिका जो पति के प्रतिकूल या विरुद्ध होने पर भी उसके अनुकूल बनी रहे।

उत्तमार्द्ध--पुं० [सं० उत्तम--अर्द्ध, कर्म० स०] १. किसी वस्तु का वह आधा अंश या भाग जो शेष अंग की तुलना में श्रेष्ठ हो। २. अंतिम आधा अंश या भाग। उत्तरार्ध।

उत्तमाह--पुं० [सं० उत्तम-अहन्, कर्म० स०] १. अच्छा या शुभ दिन। २. अंतिम या आखिरी दिन ।

उत्तमीय--वि० [सं० उत्तम+छ--ईय] १. सबसे अच्छा और ऊपर का। सर्वश्रेष्ठ। २. प्रधान। मुख्य। ३. सबसे ऊँचा।

उत्तमोत्तम--वि० [सं० उत्तम-उत्तम. पं०, त०] १. सबसे अच्छा। सर्वोत्तम। २. एक से एक बढ़कर, सभी अच्छे। जैसे--अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ वहाँ रखे थे।

उत्तमोत्तमक--पुं० [सं० उत्तमोत्तम+कन्] लास्य नृत्य के दस प्रकारों में से एक।

उत्तमौजा (जस्)--वि० [सं० उत्तम-ओजस्; ब० स०] जो तेज और बल के विचार से दूसरों से बढ़कर हो।

पुं० १. मनु के एक पुत्र का नाम। २. एक राजा जिसने महाभारत के युद्ध में पांडवों का साथ दिया था।

उत्तरंग--वि० [सं० उद्-तरंग, ब० स०] १. लहराता हुआ। तरंगित। २. आनंदमग्न। ३. काँपता हुआ।
पुं० [सं० कर्म० स०] वह काठ जो चौखट के ऊपर लगाया जाता है।

उत्तर--पुं० [सं० उद्√तृ (तैरना)+अप् अथवा उद्+तरप्] १. वह दिशा जो पूर्व की ओर मुँह करके खड़े होने पर मनुष्य की बाईं ओर पड़ती है। उदीची। २. किसी देश का उत्तरी भाग। ३. किसी के प्रश्न या शंका करने पर उसके समाधान या संतोष के लिए कही जानेवाली बात। ४. जाँच या परीक्षा के लिए पूछे हुए प्रश्नों के संबंध में कही हुई उक्त प्रकार की बात। ५. गणित आदि में, किसी प्रश्न का निकाला हुआ अंतिम परिणाम। फल। ६. अभियोग या आरोप लगने पर अपने आचरण या व्यवहार का औचित्य सिद्ध करते हुए कुछ कहना। ७. किसी के कार्य या व्यवहार के बदले में ठीक उसी प्रकार का किया जानेवाला कार्य या व्यवहार। ८. साहित्य में एक अलंकार जिसमें (क) किसी प्रश्न के उत्तर में कोई गूढ़ आशय या संकेत किया जाता है अथवा (ख) कुछ प्रश्न इस रूप में रखे जाते है कि उनके उत्तर भी उन्ही शब्दों में छिपे रहते हैं। ९. राजा विराट के पुत्र का नाम।
वि० १. उत्तरी। बाद का। पिछला। २. ऊपर का। ३. श्रेष्ठ।
अव्य० बाद मे। पीछे।

उत्तर-कल्प--पुं० [सं० कर्म० स०] भू-विज्ञान के अनुसार वह दूसरा कल्प जिसमें मुख्यतः पर्वतों तथा खनिज पदार्थों की सृष्टि हुई थी। अनुमानतः यह कल्प आज से लगभग सवा खरब वर्ष पहले हुआ था।

उत्तर कोशला--स्त्री० [सं० उत्तरकोशल+अच्-टाप्] अयोध्या नगरी।

उत्तर-क्रिया--स्त्री० [मध्य० स०] मृत्यु के उपरांत मृतक के उद्देश्य से होनेवाले धार्मिक कृत्य। अंत्येष्टि।

उत्तर-गुण--पु० [कर्म० स०] मूल गुणों की रक्षा करनेवाले गौण या दूसरे गुण। (जैन)

उत्तरच्छद--पु० [कर्म० स०] १. आच्छादन। आवरण। २. बिछौने पर बिछाई जानेवाली चादर।

उत्तरण--पु० [सं० उद्√तृ+ल्युट्-अन] तैर कर या नाव आदि के द्वारा जलाशय पार करना।

उत्तर-तंत्र--पु० [कर्म० स०] किसी वैद्यक ग्रंथ का पिछला या परिशिष्ट भाग।

उत्तर-दाता(तृ)--पुं० [ष० त०]=उत्तरदायी।
वि० उत्तर या जवाब देनेवाला।

उत्तरदायित्व--पु० [सं० उत्तरदायिन्+त्व] किसी काम या बात के लिए उत्तरदायी होने की अवस्था या भाव। जवाबदेही। जिम्मेदारी।

उत्तरदायी (यिन्)--वि० [सं० उत्तर√दा (देना)+णिनि] १. जिस पर कोई काम करने का भार हो। जैसे—इस काम के उत्तरदायी आप ही माने जायगे। २. जो नैतिक अथवा विधिक दृष्टि से अपने किसी आचरण अथवा दूसरों द्वारा सौंपे हुए कार्य के संबंध में कुछ पूछे जाने पर उत्तर देने के लिए बाध्य हो। जैसे—उत्तरदायी शासन। (रेसपानसिवुल; उक्त दोनों अर्थो में)

उत्तर-पक्ष--पुं० [कर्म० स०] विवाद आदि में वह पक्ष जो पहले किये जानेवाले निरूपण या प्रस्थान का खंडन या समाधान करता हो। अभियोग, तर्क, प्रश्न आदि का उत्तर देनेवाला पक्ष। 'पूर्व पक्ष' का विपर्याय।

उत्तर-पट--पुं० [कर्म० स०] १. ओढ़ने की चादर। उत्तरीय। २. बिछाने की चादर।

उत्तर-पथ--पुं० [ष० त०] पाटलिपुत्र से वाराणसी, कौशाम्बी, साकेत, मथुरा, तक्षशिला आदि से होता हुआ वाह्लीक तक गया हुआ एक प्राचीन मार्ग।

उत्तर-पद--पुं० [कर्म० स०] समस्त या यौगिक शब्द का अंतिम या पिछला शब्द। जैसे—धर्मानुसार या धर्म-साधन में का अनुसार या साधन शब्द।

उत्तर-प्रत्युत्तर--पुं० [द्व० स०] किसी से किसी बात का उत्तर मिलने पर फिर उसके उत्तर में कुछ कहना-सुनना। वाद-विवाद। बहस।

उत्तर-प्रदेश--पुं० [सं०] भारतीय संघ राज्य का वह प्रदेश जिसके उत्तर में हिमालय, पश्चिम में पंजाब, पूर्व में बिहार और दक्षिण में मध्य प्रदेश हैं। (पुराने संयुक्त प्रदेश का नया नाम)

उत्तर-भोगी (गिन्)--वि० [सं० उत्तर√भुज् (भोगना)+णिनि] किसी के द्वारा छोड़ी हुई अथवा किसी की बची हुई वस्तु या संपत्ति का भोग करनेवाला।

उत्तर-मंद्रा--पुं० [ब० स०, टाप्] संगीत में एक मूर्च्छना का नाम।

उत्तर-मीमांसा--स्त्री० [प० त०] वेदांत दर्शन।

उत्तर-वयस्--पुं० [कर्म० स०] जीवन का अंतिम समय जिसमे मनुष्य की सारी शक्तियाँ क्षीण होने लगती हैं। बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

उत्तरवर्तन--पुं० [स० त०] दे० 'अनुवृत्ति'।

उत्तरवादी (दिन्)--वि०=प्रतिवादी।

उत्तर-साक्षी (क्षिन्)--पुं० [प० त०] दूसरों से सुनी-सुनाई बातों के आधार पर साक्षी देनेवाला व्यक्ति।

उत्तरा--स्त्री० [सं० उत्तर+टाप्] राजा विराट की कन्या जिसका विवाह अभिमन्यु से हुआ था।

उत्तरा-खंड--पुं० [प० त० ?] भारत का वह उत्तरी भू-भाग जो हिमालय की तलहटी में और उसके आस-पास पड़ता है।

उत्तराधिकार--पुं० [उत्तर-अधिकार, प० त०] १. ऐसा अधिकार जिसके अनुसार किसी के न रह जाने अथवा अपना अधिकार छोड़ देने पर किसी दूसरे को उसकी धन-संपत्ति आदि प्राप्त होती है। २. किसी के पद या स्थान से हटने पर उसके बाद आनेवाले व्यक्ति को मिलनेवाला उसका अधिकार, गुण, विशेषता आदि। वरासत। (इनहेरिटेन्स)

उत्तराधिकार-कर--पुं० [ष० त०] शासन की ओर से, उत्तराधिकारी को मिलनेवाली संपत्ति पर लगनेवाला कर।

उत्तराधिकार-प्रमाणक--पुं० [ष० त०] न्यायालय से मिलनेवाला वह प्रमाणक जिसमें विधिक रूप से किसी के उत्तराधिकारी माने जाने का उल्लेख होता है। (सक्सेशन सर्टिफिकेट)

उत्तराधिकारी (रिन्)--पुं० [सं० उत्तराधिकार+इनि] १. वह व्यक्ति जो किसी की संपत्ति प्राप्त करने का विधितः अधिकारी हो। (इनहेरिटर) २. अधिकारी के किसी पद या स्थान से हटने पर उस पद या स्थान पर आनेवाला दूसरा अधिकारी। (सक्सेसर)

उत्तरापेक्षी (क्षिन्)--वि० [सं० उत्तर-अप√ईक्ष् (चाहना)+णिनि] जो

अपने किसी कथन पत्र, प्रश्न, प्रार्थना आदि के उत्तर की अपेक्षा करता हो। अपनी बातों का उत्तर या जवाब चाहनेवाला।

उत्तराफाल्गुनी—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] आकाशस्थ सत्ताईस नक्षत्रों में से बारहवाँ नक्षत्र ।

उत्तराभाद्रपद—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] आकाशस्थ सत्ताईस नक्षत्रों में से छब्बीसवाँ नक्षत्र।

उत्तराभास—पुं० [सं० उत्तर-आभास, ष० त०] १. ऐसा उत्तर जो ठीक और समाधान कारक तो न हो; फिर भी देखने में ठीक-सा जान पड़ता हो। ऐसा उत्तर जिसमें वास्तविकता या सत्यता न हो, उसका आभास मात्र हो। २. झूठा या मिथ्या उत्तर।

उत्तराभासी (सिन्)—वि० [सं० उत्तराभास+इनि] (प्रश्न) जिसमें उसके उत्तर का भी कुछ आभास हो। जैसे—'आप तो भोजन कर ही चुके हैं न?' में यह आभास है कि आप भोजन कर चुके हैं।

उत्तरायण—पुं० [सं० उत्तर-अयन, ष० त०] १. मकर रेखा से उत्तर और कर्क रेखा की ओर होनेवाली सूर्य की गति। २. छः मास की वह अवधि या समय जिसमें सूर्य की गति उत्तर अर्थात् कर्क रेखा की ओर रहती है।

उत्तरायणी—स्त्री० [सं० उत्तरायण+ङीप्] संगीत में एक मूर्च्छना।

उत्तरारणी—स्त्री० [सं० उत्तर-अरणी, कर्म०, स०] अग्निमंथन की दो लकड़ियों में से ऊपर रहनेवाली लकड़ी।

उत्तरार्द्ध—पुं० [सं० उत्तर-अर्द्ध, कर्म० स०] किसी वस्तु के दो खंडों या भागों में से उत्तर अर्थात् अंत की ओर या बाद में पड़नेवाला खंड या भाग। पिछला आधा भाग।

उत्तराषाढ़ा—स्त्री० [सं० उत्तरा-आषाढ़ा, व्यस्त पद] सत्ताईस नक्षत्रों में से इक्कीसवाँ नक्षत्र।

उत्तरासंग—पुं० [सं० उत्तर-आ√सञ्ज् (मिलना)+घञ्] उत्तरीय। उपरना।

उत्तरी—वि० [सं० उत्तरीय] १. उत्तर दिशा में होनेवाला। उत्तर दिशा से संबंधित। उत्तर का।

स्त्री० संगीत में कर्नाटकी पद्धति की एक रागिणी।

उत्तरी ध्रुव—पुं० [हिं०+सं०] पृथ्वी के गोले का उत्तरी सिरा। सुमेरु। (नार्थ पोल)

उत्तरीय—पुं० [सं० उत्तर+छ–ईय] १. कंधे पर रखने का वस्त्र। चादर। दुपट्टा। २. एक प्रकार का सन।

वि० १. उत्तर दिशा का। उत्तर में होनेवाला। २. ऊपर का। ऊपरवाला। ३. जो दूसरों की तुलना में अच्छा या श्रेष्ठ हो।

उत्तरोत्तर—क्रि० वि० [सं० उत्तर-उत्तर पं० त०] १. क्रमशः। एक के बाद एक। २. लगातार।

उत्तल—वि० [सं० उत्-तल, ब० स०] [भाव० उत्तलता] जिसके तल के बीच का भाग कुछ ऊपर उठा हो। उन्नतोदर। (कॉन्वेक्स)

उत्तलित—भू० कृ० [सं० उद्√तल् (स्थापित करना)+क्त] १. जो उत्तल के रूप में लाया हुआ हो। २. ऊपर उठाया या फेंका हुआ।

उत्ता—वि०=उतना।

उत्तान—वि० [सं० उत्-तान, ब० स०] १. फैला या फैलाया हुआ। २. पीठ के बल लेटा या चित पड़ा हुआ। ३. जिसका मुँह ऊपर की ओर हो। ऊर्ध्व मुख। ४. जो उलटा न होकर सीधा हो। ५. आवरण से रहित; अर्थात् बिलकुल खुला हुआ और स्पष्ट। नग्न। जैसे—उत्तान शृंगार।

उत्तानक—पुं० [सं० उद्√तन् (फैलना)+ण्वुल्–अक] उच्चटा नाम की घास।

उत्तान-पाद—पुं० [ब० स०] भक्त ध्रुव के पिता का नाम।

उत्तान-हृदय—वि० [ब० स०] १. जिसके हृदय में छल-कपट न हो। सरल हृदय। २. उदार और सज्जन।

उत्तानित—भू० कृ० [सं० उद्√तन्+णिच्+क्त] १. ऊपर उठाया या फैलाया हुआ। २. जिसका मुख ऊपर की ओर हो।

उत्ताप—पुं० [सं० उद्√तप् (तपना)+घञ्] १. साधारण से बहुत अधिक बढ़ा हुआ ताप। २. मन में होनेवाला बहुत अधिक कष्ट या दुःख।

उत्तापन—पुं० [सं० उद्√तप्+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उत्तापित, उत्तप्त] १. बहुत अधिक गरम करने या तपाने की क्रिया या भाव। २. बहुत अधिक मानसिक कष्ट या पीड़ा पहुँचाना।

उत्तापमापी (पिन्)—पुं० [सं० उत्ताप√मा या√मि (नापना)+णिनि, पुक्+णिनि] एक यंत्र जिससे बहुत अधिक ऊँचे दरजे के ऐसे ताप नापे जाते हैं जो साधारण ताप-मापकों से नहीं नापे जा सकते। (पीरोमीटर)

उत्तापित—भू० कृ० [सं० उद्√तप्+णिच्+क्त] १. बहुत गर्म किया या तपाया हुआ। उत्तप्त। २. जिसे बहुत दुःख पहुँचाया गया हो।

उत्तापी (पिन्)—वि० [सं० उद्√तप्+णिच्+णिनि] १. उत्तापन करने या बहुत ताप पहुँचानेवाला। २. बहुत अधिक कष्ट देनेवाला।

उत्तार—वि० [सं० उद्√तॄ+णिच्+घञ्] जो गुणों में दूसरों से बढ़-चढ़ा हो। उत्कृष्ट। २. दे० 'उत्तारक'।

उत्तारक—वि० [सं० उद्√तॄ+णिच्+ण्वुल-अक] उद्धार करने या उबारनेवाला।

पुं० शिव।

उत्तारण—पुं० [सं० उद्√तॄ+णिच्+ल्युट्–अन] १. तैर या तैराकर पार ले जाना। २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना या पहुँचाना। ३. विपत्ति, संकट आदि से छुड़ाना। उद्धार करना।

उत्तारना—स० [सं० उत्तारण] १. पार उतारना या ले जाना। २. दूर करना। हटाना। उदा०—नाहर गाऊ नरय्यंद, चित्त चिंता उत्तारिय। —चंदवरदाई। ३. दे० 'उतारना'।

उत्तारी (रिन्)—वि० [सं० उद्√तॄ+णिच्+णिनि] पार करने या उतारनेवाला।

उत्तार्य—वि० [सं० उद्√तॄ+णिच्+यत्] जो पार उतारा जाने को हो अथवा पार उतारे जाने के योग्य हो।

उत्ताल—वि० [सं० उद्√तल्+घञ्] बहुत अधिक ऊँचा। जैसे—उत्ताल तरंग।

पुं० वन-मानुष।

उत्तीर्ण—वि० [सं० उद्√तॄ+क्त] १. जो नदी, नाले आदि के उस पार चला गया हो। पार गया हुआ। पारित। २. जो किसी जाँच या परीक्षा में पूरा या सफल सिद्ध हो चुका हो। ३. मुक्त।

उत्तुंग—वि० [सं० उत्-तुंग, प्रा० स०] १. बहुत अधिक ऊँचा। जैसे—हिमालय का उत्तुंग शिखर। २. यथेष्ट उन्नत।

उत्तू—पुं० [फा०] १. कपड़े पर चुनट डालने या बेल-बूटे काढ़ने का एक औजार या उपकरण। २. उक्त करण से कपड़े पर बनाये हुए बेल-बूटे या डाली हुई चुनट।

मुहा०—**(किसी व्यक्ति को) उत्तू करना या बनाना**=इतना मारना कि बदन में दाग पड़ जायँ। जैसे—मारते मारते उत्तू कर दूँगा।

उत्तूगर—पुं० [फ़ा०] वह कारीगर जो कपड़े पर उत्तू से कढ़ाई का काम करता अथवा चुनट डालता हो।

उत्तेजक—वि० [सं० उद्√तिज (तीक्ष्ण करना)+णिच्+ण्वुल्—अक] १. उत्तेजना उत्पन्न करनेवाला। २. किसी को कोई काम करने के लिए उकसाने या भड़कानेवाला। ३. मनोवेगों को तीव्र या तेज करनेवाला। जैसे—सभी मादक पदार्थ उत्तेजक होते हैं।

उत्तेजन—पुं० [सं० उद्√तिज्+णिच्+ल्युट्—अन] [कर्त्ता उत्तेजक, भू० कृ० उत्तेजित] १. तेज से युक्त करना अथवा तेज की प्रखरता बढ़ाना। २. उकसाना। भड़काना। ३. दे० 'उत्तेजना'।

उत्तेजना—स्त्री० [सं० उद्√तिज्+णिच्+युच्—अन—टाप्] १. किसी के तेज को उत्कृष्ट करना या उग्र रूप देना। २. शरीर के किसी अंग या इंद्रिय में होनेवाली कोई असाधारण क्रियाशीलता। जैसे—जननेंद्रिय की उत्तेजना। ३. ऐसी स्थिति जिसमें मन चंचल होकर बिना समझे-बूझे कोई काम करने में उग्रता तथा शीघ्रतापूर्वक प्रवृत या रत होता है। (एक्साइटमेंट) जैसे—(क) उन्होंने केवल उत्तेजना-वश उस समय त्याग-पत्र दे दिया था। (ख) उनके भाषण से सभा में उत्तेजना फैल गई। ४. कोई ऐसा काम या बात जो किसी का मन चंचल करके उसे उग्रता और शीघ्रतापूर्वक कोई काम करने में प्रवृत्त करे। किसी को आवेश में लाने के लिए किया हुआ कार्य या कही हुई कोई बात। बढ़ावा। (इन्साइटमेन्ट) जैसे—आपने ही उत्तेजना देकर उन्हें इस काम में आगे बढ़ाया था।

उत्तेजित—भू० कृ० [सं० उद्√तिज्+णिच्+क्त] १. जो किसी प्रकार की विशेषतः मानसिक उत्तेजना से युक्त हो। जिसमें उत्तेजना आई हो। (एक्साइटेड) जैसे—उत्तेजित होकर कोई काम नहीं करना चाहिए। २. जो किसी प्रकार की उत्तेजना से युक्त करके आगे बढ़ाया गया हो। उकसाया या भड़काया हुआ। (इन्साइटेड) जैसे—तुम्हीं ने तो उसे मारने के लिए उत्तेजित किया था।

उत्तोलक—वि० [सं० उद्√तुल (तौलना)+णिच्+ण्वुल्—अक] उत्तोलन करने या ऊपर उठानेवाला।

पुं० एक प्रकार का ऊँचा यंत्र जिसकी सहायता से भारी चीजें एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रखी जाती हैं। (क्रेन)

उत्तोलन—पुं० [सं० उद्√तुल्+णिच्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उत्तोलित] १. ऊपर की ओर उठाने या ले जाने की क्रिया या भाव। ऊँचा करना। जैसे—ध्वजोत्तोलन। २. तौलना।

उत्तोलन-यंत्र—पुं० [प० त०] दे० 'उत्तोलक'। (क्रेन)

उत्थपना*—स० [सं० उत्थापन] १. ऊपर उठाना। ऊँचा करना। २. आरंभ या शुरू करना। ३. अच्छी या उन्नत दशा में लाना।

उत्थान—पुं० [सं० उद्√स्था (ठहरना)+ल्युट्—अन] १. ऊपर की ओर उठना। ऊँचा होना। उठान। (विशेष दे० 'उठना'।) २. किसी निम्न या हीन स्थिति से निकलकर उच्च या उन्नत अवस्था में पहुँचने की अवस्था या भाव। उन्नत या समृद्ध स्थिति। जैसे—जाति या देश का उत्थान। ३. किसी काम या बात का आरंभ या आरंभिक अंग। उठान। जैसे—इस काव्य (या ग्रंथ) का उत्थान तो बहुत सुंदर है।

उत्थान-एकादशी—स्त्री० [प० त०] कार्तिक शुक्ला एकादशी। देवोत्थान।

उत्थानक—वि० [सं० उत्थान+णिच्+ण्वुल्—अक] १. निम्न या साधारण स्तर से ऊपर की ओर ले जानेवाला। उत्थान करनेवाला। २. किसी को उन्नत या समृद्ध बनानेवाला।

पुं० एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से लोग बहुत ऊँची-ऊँची इमारतों या भवनों में (बिना सीढ़ियाँ चढ़े-उतरे) ऊपर-नीचे आते-जाते है। (लिफ्ट)

उत्थापक—वि० [सं० उद्√स्था+णिच्,पुक्+ण्वुल्—अक] १. उत्थान करने या ऊपर उठानेवाला। २. जगानेवाला। ३. प्रेरित करनेवाला।

उत्थापन—पुं० [सं० उद्√स्था+णिच्, पुक्+ल्युट्—अन] १. ऊपर की ओर उठाना। २. सोये हुए को जगाना। ३. उत्तेजित या उत्साहित करना।

उत्थापित—भू० कृ० [सं० उद्√स्था+णिच्,पुक्+क्त] १. ऊपर उठाया हुआ। २. जगाया हुआ। ३. उत्तेजित किया हुआ।

उत्थायी (यिन्)—वि० [सं० उद्√स्था+णिनि] १. ऊपर की ओर उठने, उभरने, निकलने या बढ़नेवाला। २. उठाने, उभारने या उत्थान करनेवाला।

उत्थित—भू० कृ० [सं० उद्√स्था+क्त] १. जिसका उत्थान हुआ हो या किया गया हो। उठा हुआ। २. जागा हुआ। ३. समृद्ध।

उत्थिति—स्त्री० [सं० उद्√स्था+क्तिन्] उत्थान।

उत्पट—पुं० [सं० उद्√पट् (गति)+अच्] १. बबूल आदि पेड़ों से निकलनेवाली गोंद। २. दुपट्टा।

उत्पतन—पुं० [सं० उद्√पत्+ल्युट्—अन] १. उड़ने की क्रिया या भाव। २. ऊपर की ओर उठना। ३. उछालना। ४. उत्पन्न करना। जन्म देना।

उत्पत्ति—स्त्री० [सं० उद्√पत्+क्तिन्] १. अस्तित्व में आने या उत्पन्न होने की अवस्था, क्रिया या भाव। आविर्भाव। उद्भव। जैसे—सृष्टि की उत्पत्ति। २. जन्म लेकर इस पृथ्वी पर आने की क्रिया या भाव। जैसे—पुत्र की उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। ३. किसी प्रकार का रूप धारण करके प्रत्यक्ष होने की अवस्था या भाव। जैसे—प्रेम या वैर की उत्पत्ति। ४. किसी उपाय या क्रिया से प्रस्तुत किया हुआ तत्त्व या पदार्थ। बन या बनाकर तैयार की हुई चीज। उपज। जैसे—कृषि की उत्पत्ति। ५. अर्थशास्त्र में, किसी चीज का आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि बदलकर उसे अपेक्षया अधिक उपयोगी रूप में लाने की क्रिया या भाव। उत्पादन।

उत्पथ—पुं० [सं० उत्—पथ, प्रा० स०] अनुचित या दूषित पथ। बुरा रास्ता। कुमार्ग।

वि० कुमार्गी।

उत्पन्न—वि० [सं० उद्√पद् (गति)+क्त] १. जिसकी उत्पत्ति हुई हो। २. जिसने जन्म लिया हो। ३. जिसे अस्तित्व में लाया या पैदा किया गया हो। ४. निर्मित किया या बनाया हुआ। ५. उपजा

या उपजाया हुआ। ६. उद्भूत या घटित होनेवाला। जैसे—विचार या संदेह उत्पन्न होना।

उत्पन्ना—स्त्री० [सं० उत्पन्न+टाप्] अगहन वदी एकादशी।

उत्पल—पुं० [सं० उद्√पल् (गति)+अच्] १. कमल, विशेषतः नीलकमल। २. कुमुदनी।

वि० बहुत ही दुबला-पतला या क्षीण-काय।

उत्पलिनी—स्त्री० [सं० उत्पल+इनि–ङीप्] १. कमल का पौधा। २. कमल के फूलों का समूह। ३. एक प्रकार का छंद या वृत्त।

उत्पवन—पुं० [सं० उद्√पू (पवित्र करना)+ल्युट्–अन] १. शुद्ध या स्वच्छ करने की क्रिया या भाव। २. वह उपकरण जिससे कोई चीज साफ की जाय। ३. तरल पदार्थ छिड़कना।

उत्पाटक—वि० [सं० उद्√पट्+णिच्+ण्वुल्–अक] उत्पाटन करने या उखाड़नेवाला।

उत्पाटन—पुं० [सं०उद्√पट्+णिच्+ल्युट्–अन] १. जड़ से खोदकर कोई चीज उखाड़ने की क्रिया या भाव। उन्मूलन। २. जमे, टिके या ठहरे हुए को पीड़ित करके उसके स्थान से हटाना।

उत्पाटित—भू० कृ० [उद्√पट्+णिच्+क्त] १. जड़ से उखाड़ा हुआ। उन्मूलित। २. अपने स्थान से पीड़ित करके हटाया हुआ।

उत्पात—पुं० [सं० उद्+पत् (गिरना)+घञ्] १. अचानक ऊपर की ओर उठना, कूदना या बढ़ना। २. अचानक होनेवाली कोई ऐसी प्राकृतिक घटना जो कष्टप्रद या हानिकारक सिद्ध हो या हो सकती हो। जैसे—अग्नि-कांड, उल्कापात, बाढ़, भूकंप आदि। ३. दे० 'उपद्रव'।

उत्पाती (तिन्)—वि० [सं० उद्√पत्+णिनि] १. उत्पात या उपद्रव करनेवाला। २. पाजीपन या शरारत करनेवाला। उपद्रवी।

उत्पाद—वि० [सं० उद्√पद् (गति)+घञ्] जिसके पैर ऊपर उठे हों।

पुं० १. वह वस्तु जिसका उत्पादन हुआ हो। निर्मित वस्तु। २. इतिवृत के मूल की दृष्टि से नाटक की कथा-वस्तु के तीन भेदों में एक। ऐसी कथावस्तु जिसकी सब घटनाएँ कवि या नाटककार की निजी कल्पनाओं से उत्पन्न या उद्भूत हुई हों। जैसे—मालती-माधव, मृच्छकटिक आदि। (शेष दो भेद 'प्रख्यात' और 'भिन्न' कहे जाते हैं)

उत्पादक—वि० [सं० उद्√पद्+णिच्+ण्वुल्–अक] १. उत्पादन करनेवाला। २. जिससे कुछ उत्पादन हों।

पुं० १. मूल कारण। २. [ब० स०, कप्] शरभ नामक एक कल्पित जंतु।

उत्पादन—पुं० [सं० उद्√पद्+णिच्+ल्युट्–अन] १. उत्पन्न या पैदा करना। २. उपजने में प्रवृत करना या सहायक होना। ३. ऐसा कार्य या प्रयत्न करना जिससे कोई उपजे या बने। ४. उक्त प्रकार से उत्पन्न करके या उपजाकर तैयार की या बनाई हुई चीज। (प्रोडक्शन) जैसे—(क) कल-कारखानों में होनेवाला कपड़ों का उत्पादन। (ख) खेतों आदि में होनेवाला अन्न का उत्पादन।

उत्पादन-शुल्क—पुं० [ष० त०] वह शुल्क जो कल-कारखानों में किसी वस्तु का उत्पादन करने पर राज-कोष में देना पड़ता है। (एक्साइज ड्यूटी)

उत्पादित—भू० कृ० [सं० उद्√पद्+णिच्+क्त] जिसका उत्पादन हुआ हो। उत्पन्न किया या उपजाया हुआ।

उत्पादी (दिन्)—वि० [सं० उद्√पद्+णिच्+णिनि] उत्पादन करने या उपजानेवाला।

उत्पाद्य—वि० [सं० उद्√पद्+णिच्+यत्] (पदार्थ) जिसका उत्पादन किया जाने को हो अथवा जिसका उत्पादन करना आवश्यक और उचित हो।

उत्पाली—स्त्री० [सं० उद्√पल्+घञ्–ङीप्] आरोग्य। स्वास्थ्य।

उत्पीड़क—वि० [सं० उद्√पीड् (कष्ट देना)+ण्वुल्–अक] उत्पीड़न करने या कष्ट पहुँचानेवाला।

उत्पीड़न—पुं० [सं० उद्√पीड्+ल्युट्–अन] [भू० कृ० उत्पीड़ित] १. दबाना। २. कष्ट या पीड़ा पहुँचाना। सताना। ३. अत्याचार या जुल्म करना। सताना।

उत्पीड़ित—भू० कृ० [सं० उद्√पीड्+क्त] १. दबाया हुआ। २. जिसे कष्ट या पीड़ा पहुँचाई गई हो। ३. सताया हुआ।

उत्प्रभ—वि० [सं० उत्–प्रभा, ब० स०] बहुत ही चमकीला।

पुं० जलती या दहकती हुई आग।

उत्प्रवास—पुं० [सं० उत्–प्रवास, प्रा० स०] स्वदेशत्याग। अपना देश छोड़कर अन्य देश में जाना या जाकर रहना।

उत्प्रेक्षक—वि० [सं० उद्–प्र√ईक्ष् (देखना)+ण्वुल्–अक] उत्प्रेक्षा करनेवाला। वितर्क करनेवाला।

उत्प्रेक्षण—पुं० [सं० उद्–प्र√ईक्ष् (देखना)+ल्युट्–अन] १. सावधान होकर ऊपर की ओर देखना। २. ध्यानपूर्वक देखना-भालना या सोचना। ३. एक वस्तु की दूसरे वस्तु से तुलना करना।

उत्प्रेक्षणीय—वि० [सं० उद्–प्र√ईक्ष्+अनीयर्] जिसका उत्प्रेक्षण होने को हो अथवा जो उत्प्रेक्षण के योग्य हो।

उत्प्रेक्षा—स्त्री० [सं० उद्–प्र√ईक्ष्+अ–टाप्] [वि० उत्प्रेक्ष्य, उत्प्रेक्षणीय] १. उत्प्रेक्षण। २. एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान के भेद का ज्ञान होने पर भी इस बात का उल्लेख होता है कि उपमेय मानो उपमान के समान जान पड़ता है। जैसे—अति कटु वचन कहत कैकेई। मानहु लोन जरे पर देई।—तुलसी।

विशेष—इव, जनु, जानो, मनु, मानो आदि शब्द इस अलंकार के सूचक होते हैं। इसके तीन भेद हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उत्प्रेक्षोपमा—स्त्री० [उत्प्रेक्षा-उपमा, ष० त०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु के किसी गुण या विशेषता के दूसरी अनेक वस्तुओं में होने का उल्लेख होता है।

उत्प्रेक्ष्य—वि० [सं० उद्-प्र√ईक्ष्+ण्यत्] १. जिसकी उत्प्रेक्षा हो या होने को हो। २. को उत्प्रेक्षा द्वारा अभिव्यक्त किया जाने को हो या किया जा सकता हो।

उत्प्रेरक—वि० [सं० उद्–प्र√ईर् (गति)+ण्वुल्–अक] उत्प्रेरणा करनेवाला।

उत्प्रेरणा—पुं० [सं० उद्-प्र√ईर्+णिच्+युच्–अन, टाप्] १. प्रेरणा करने की क्रिया या भाव। २. रसायन शास्त्र में, किसी ऐसे पदार्थ का (जो स्वयं अविकृत हो) किसी दूसरे पदार्थ पर अपनी रासायनिक प्रतिक्रिया करना।

उत्फुल्ल—वि० [सं० उद्√फल्+क्त, लत्व, उत्व] [भाव० उत्फुल्लता]

१. खिला हुआ। जैसे—उत्फुल्ल कमल। २. खुला हुआ। जैसे—उत्फुल्ल नेत्र। ३. प्रसन्न। जैसे—उत्फुल्ल आनन।

उत्यम—वि०=उत्तम।

उत्याग—पुं० [सं० उद्√त्यज्+घञ्] १. त्यागना। २. फेंकना। ३. उछालना। ४. संन्यास।

उत्संग—पुं० [सं० उद्√सञ्ज् (मिलना)+घञ्] १. अंक। क्रोड़। गोद। २. बीच का हिस्सा। मध्य भाग। ३. ऊपरी भाग। ४. चोटी। शिखर। ५. तल। सतह।
वि० १. निर्लिप्त। २. विरक्त।

उत्संगित—भू० कृ० [सं० उत्संग+इतच्] १. अंक या गोद में लिया हुआ। २. गले लगाया हुआ। आलिंगित।

उत्स—पुं० [सं०√उन्द् (भिगोना)+स] [वि० उत्स्य] १. बहते हुए पानी की धारा या स्रोत। झरना। २. जलमय स्थान।

उत्सन्न—वि० [सं० उद्√सद् (फटना, नष्ट होना आदि) + क्त] [स्त्री० उत्सन्ना] १. ऊपर की ओर उठाया हुआ। ऊँचा। 'अवसन्न' का विपर्याय। २. बढ़ा हुआ। ३. पूरा किया हुआ। ४. उखाड़ा हुआ। उच्छिन्न।

उत्सर्ग—पुं० [सं० उद्√सृज् (त्याग)+घञ्] १. खुला छोड़ने या बंधन से मुक्त करने की क्रिया या भाव। २. किसी उद्देश्य या कारण से कोई वस्तु अपने अधिकार या नियंत्रण से अलग करना या निकालना और अर्पित करना। जैसे—(क) साहित्य-सेवा के लिए जीवन का उत्सर्ग। (ख) किसी पितर के उद्देश्य से किया जानेवाला वृषोत्सर्ग। ३. किसी के लिए किया जानेवाला त्याग। ४. दान। ५. साधारण या सामान्य नियम (अपवाद से भिन्न)। ६. एक वैदिक कर्म। ७. अंत। समाप्ति।

उत्सर्गतः—क्रि० वि० [सं० उत्सर्ग+तस्] सामान्य रूप से। साधारणतः।

उत्सर्गी (र्गिन्)—वि० [सं० उत्सर्ग+इनि] दूसरे के लिए उत्सर्ग या त्याग करनेवाला।

उत्सर्जन—पुं० [सं० उद्√सृज्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उत्सर्जित, उत्सृष्ट] १. उत्सर्ग करने की क्रिया या भाव। त्याग। २. बलिदान। ३. दान। ४. किसी कर्मचारी के किसी पद या स्थान से हटाने की क्रिया या भाव। (डिसचार्ज)

उत्सर्जित—भू० कृ० [सं० उत्सृष्ट] १. त्यागा या छोड़ा हुआ। २. किसी के लिए दान रूप मे या त्यागपूर्वक छोड़ा हुआ। ३. [उद्√सृज्+णिच्+क्त] जिसे किसी पद या स्थान से हटाया गया हो।

उत्सर्प, उत्सर्पण—पुं० [सं० उद्√सृप् (गति)+घञ्] [उद्√सृप्+ल्युट्–अन] १. ऊपर की ओर चढ़ने, जाने या बढ़ने की क्रिया या भाव। २. उठना। ३. उल्लंघन करना। ४. फूलना। ५. फैलना।

उत्सर्पिणी—पुं० [सं० उद्√सृप्+णिनि-ङीप्] जैनों के अनुसार काल की वह गति जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श की क्रमिक तथा निरंतर वृद्धि होती है।

उत्सर्पी (र्पिन्)—वि० [सं० उद्√सृप्+णिनि] १. ऊपर की ओर जाने या बढनेवाला। २. बहुत अच्छा या बढ़िया। श्रेष्ठ।

उत्सव—पुं० [सं० उद्√सु (गति)+अच्] १. ऐसा सामाजिक कार्यक्रम जिसमें लोग किसी विशिष्ट अवसर पर अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य से उत्साहपूर्वक आनन्द मनाते हों। जैसे—वसंतोत्सव, विवाहोत्सव आदि। २. त्योहार। पर्व।

उत्सव-गीत—पुं० [ष० त०] लोक गीतों के अंतर्गत ऐसे गीत जो पुत्र-जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि उत्सवों के समय गाये जाते हैं।

उत्साद—पुं० [सं० उद्√सद्+घञ्] क्षय। विनाश।

उत्सादक—वि० [सं० उद्√सद्+णिच्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० उत्सादिका] १. छोड़ने या त्यागनेवाला। २. नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला। ३. विनाशक।

उत्सादन—पुं० [सं० उद्√सद्+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उत्सादित] १. छोड़ना। त्यागना। २. काट-छाँट या तोड़-फोड़कर नष्ट करना। ३. अच्छी तरह खेत जोतना। ४. बाधक होना। बाधा डालना। ५. पहले की कोई आज्ञा या निश्चय रद करना।

उत्सादित—भू० कृ० [सं० उद्√सद्+णिच्+क्त] १. जिसका उत्सादन किया गया हो या हुआ हो। २. (पद) जो तोड़ दिया गया हो। (एवालिश्ड) ३. (आज्ञा) जो रद कर दी गई हो। (सेट एसाइड)

उत्सार—पुं० [सं० उद्√सृ (गति)+णिच्+अण्] दूर करना। हटाना। बाहर निकालना।

उत्सारक—वि० [सं० उद्√सृ+णिच्+ण्वुल्-अक] उत्सारण करनेवाला।
पुं० चौकीदार। पहरेदार।

उत्सारण—पुं० [सं० उद्√सृ+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उत्सारित] १. गति में लाना। चलाना। २. दूर करना। हटाना। ३. दर या भाव कम करना। ४. अतिथि या अभ्यागत का स्वागत करना।

उत्साह—पुं० [सं० उद्√सह् (सहन करना)+घञ्] मन की वह वृत्ति या स्थिति जिसके परिणाम-स्वरूप मनुष्य प्रसन्न होकर और तत्परतापूर्वक कोई काम पूरा करने या कोई उद्देश्य सिद्ध करने के लिए अग्रसर या प्रवृत्त होता है। साहित्य में इसे एक स्थायी भाव माना गया है।

उत्साहक—वि० [सं० उद्√सह्+ण्वुल्—अक] १. उत्साह देने या उत्साहित करनेवाला। २. अध्यवसायी और कर्मठ।

उत्साहन—पुं० [सं० उद्√सह्+णिच्+ल्युट्-अन] १. किसी को उत्साह देना। उत्साहित करना। २. दृढ़ता-पूर्वक किया जानेवाला उद्यम। अध्यवसाय।

उत्साहना*—अ० [हिं० उत्साह+ना (प्रत्य०)] उत्साह से भरना। उत्साहित होना। उदा०—बसत तहाँ प्रमुदित प्रसन्न उन्नति उत्साहि।—रत्ना०।
स० उत्साहित करना। उत्साह बढ़ाना।

उत्साही (हिन्)—वि० [सं० उत्साह+इनि] १. आनंद तथा तत्परतापूर्वक किसी काम में लगनेवाला। २. जिसके मन में हर काम के लिए और हर समय उत्साह रहता हो। जैसे—उत्साही कार्यकर्ता।

उत्सुक—वि० [सं० उद्√सु (गति)+क्विप्+कन्] [भाव० उत्सुकता, औत्सुक्य] जिसके मन में कोई तीव्र या प्रबल अभिलाषा हो; या जो किसी काम या बात के लिए कुछ अधीर सा हो। (ईगर)

उत्सुकता—स्त्री० [सं० उत्सुक+तल्+टाप्] उत्सुक होने की अवस्था या भाव। मन की वह स्थिति जिसमें कुछ करने या पाने की अधीरता, पूर्ण प्रबल अभिलाषा होती है और विलंब सहना कठिन होता है। साहित्य में यह एक संचारी भाव माना गया है। (ईगरनेस)

उत्सृष्ट—भू० कृ० [सं० उद्√सृज् (छोड़ना)+क्त] १. जो उत्सर्ग के रूप में किया या लाया गया हो। जिसका उत्सर्ग हुआ हो। २. छोड़ा या त्यागा हुआ।

उत्सृष्ट-वृत्ति—पुं० [सं० तृ० त०] दूसरों के छोड़े या त्यागे हुए अन्न से जीविका निर्वाह करने की वृत्ति।

उत्सृष्टि—स्त्री० [सं० उद्√सृज्+क्तिन्] १. उत्सर्ग। २. उत्सर्जन।

उत्सेक—पुं० [सं० उद्√सिच् (सींचना)+घञ्] [कर्त्ता उत्सेकी] १. ऊपर की ओर उठना या बढ़ना। २. वृद्धि। ३. अभिमान। घमंड।

उत्सेचन—पुं० [सं० उद्√सिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उत्सिक्त] १. छिड़कने या सींचने की क्रिया या भाव। २. उफान। उबाल।

उत्सेध—पुं० [सं० उद्√सिध् (गति)+घञ्] १. ऊँचाई। २. बढ़ती। वृद्धि। ३. घनता या मोटाई। ४. शरीर का शोथ। सूजन। ५. देह। शरीर। ६. वध। हत्या। ७. आज-कल किसी वस्तु की कोई ऐसी आपेक्षिक ऊँचाई जो किसी विशिष्ट कोण, तल आदि के विचार से हो। (एलिवेशन) जैसे—(क) क्षैतिज कोण के विचार से तोप का उत्सेध। (ख) कुरसी या भू-तल के विचार से भवन का उत्सेध।

उत्सेध-जीवी (विन्)—पुं० [सं० उत्सेध (वध)√जीव् (जीना)+णिनि] वह जो हत्या और लूट-पाट करके अपना निर्वाह करता हो।

उत्स्य—वि० [सं० उत्स+यत्] १. उत्स-संबंधी। २. उत्स या सोते में होनेवाला या उससे निकला हुआ।

उथपना—स० [सं० उत्थापन] १. उठाना। २. उखाड़ना।
अ० १. उठना। २. उखड़ना।

उथरा*—वि० [भाव० उथराई]=उथला।

उथलना—अ० [सं० उत्-स्थल] १. अपने स्थान या स्थिति से इधर-उधर होना या हटना। २. डाँवाडोल होना। डगमगाना।
स० किसी को स्थान या स्थिति विशेष से हटाकर अस्त-व्यस्त करना।

उथल-पुथल—स्त्री० [हिं० उथलना] ऐसी हलचल जो सब चीजों या बातों को उलट-पुलट कर अस्त-व्यस्त या तितर-बितर कर दे।
वि० जिसमें बहुत बड़ा उलट-फेर हुआ हो। अस्त-व्यस्त किया हुआ।

उथला—वि० [सं० उत्+स्थल] [स्त्री० उथली] १. (पात्र) जिसकी गहराई कम हो। २. (जलाशय) जो कम गहरा हो। छिछला। ३. (स्थल) जिसकी ऊँचाई अधिक न हो। कम ऊँचा। ४. (व्यक्ति) जिसके स्वभाव में गंभीरता न हो। ओछा।

उथापना*—स० [सं० उत्थापन] १. ऊपर उठाना या खड़ा करना। २. उखाड़ना। ३. दे० 'थापना'।

उद्—उप० [सं०√उ (शब्द)+क्विप्+तुक्] एक संस्कृत उपसर्ग जो संधि के नियमों के अनुसार कुछ अवस्थाओं में उत् भी हो जाता है; और जो क्रियाओं, विशेषणों तथा संज्ञाओं के आरंभ में लगकर उनमें ये आर्थी विशेषताएँ उत्पन्न करता है—१. उच्च या ऊँचा, जैसे उत्कंठ, उद्ग्रीव। २. ऊपर की ओर होनेवाली क्रिया; जैसे—उत्क्षेपण, उत्सारण, उद्गमन। ३. अधिकता या प्रबलता; जैसे—उत्कर्ष, उत्साह, उद्वेग। ४. उत्तम या श्रेष्ठ, जैसे—उदार, उद्भट। ५. अलग किया, छोड़ा या बाहर निकाला हुआ; जैसे—उत्सर्ग, उद्गार, उद्वासन। ६. मुक्त या रहित; जैसे—उद्दंड, उद्दाम। ७. प्रकट या प्रकाशित किया हुआ; जैसे—उत्क्रोश, उद्घोषणा, उद्योतन। ८. विशिष्ट रूप से दिखलाया, बतलाया या माना हुआ; जैसे—उद्दिष्ट, उद्देश्य। ९. लाँघना या लाँघकर पार करना; जैसे—उत्तीर्ण, उद्वेल। १०. दुष्ट या बुरा; जैसे—उन्मार्ग आदि। कहीं-कहीं यह प्रसंग के अनुसार आश्चर्य, दुर्बलता, पार्थक्य, लाभ, विभाग, सामीप्य आदि का भी सूचक हो जाता है।

विशेष—व्याकरण में, संधि के नियमों के अनुसार उत् या उद् का रूप प्रसंगतः उच् (जैसे—उच्चारण, उच्छिन्न) उज् (जैसे—उज्जीवन, उज्ज्वल) उड् (जैसे—उड्डीन) या उन् (जैसे—उन्मुख, उन्मेष) भी हो जाता है।

पुं० १. ब्रह्म। २. मोक्ष। ३. सूर्य। ४. जल। पानी।

उदंगल—वि० [सं० उद्दण्ड] [स्त्री० उदंगली] १. उद्दंड। उद्धत। २. प्रबल। प्रचंड।

उदंचन—पुं० [सं० उद्√अञ्च् (गति)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उदंचित] १. ऊपर की ओर खींचने, फेंकने, ले जाने आदि की क्रिया या भाव। २. कुएँ आदि से जल निकालना। ३. वह पात्र जिससे कुएँ में से जल निकाला जाता हो। जैसे—घड़ा, बाल्टी आदि।

उदंड*—वि०=उद्दंड।

उदंत—पुं० [सं० उद्—अंत] किसी अंत या सीमा तक पहुँचने की क्रिया या भाव।
वि० [ब० स०] १. सीमा तक पहुँचनेवाला। २. योग्य। श्रेष्ठ।
वि० [सं० अ—दंत] बिना दाँत का। जैसे—उदंत बछड़ा या बैल।

उदंतक—पुं० [सं० उदंत+कन्] वार्ता। वृत्तांत।

उदंसना—स० [सं० उत्सादन] उखाड़ना। उदा०—रत रति कंस उदंसि सिव किस संचित नियकाल।—चंदवरदाई।
अ० उखड़ना।

उदउ—पुं०=उदय।

उदक—पुं० [सं०√उन्द् (भिगोना)+क्वुन्-अक] जल। पानी।

उदक-क्रिया—स्त्री० [सं० मध्य० स०] १. मृतक के उद्देश्य से दी जानेवाली तिलांजलि। २. पितरों का तर्पण।

उदक-दाता (तृ)—वि० [ष० त०] पितरों को जल देने या उनका तर्पण करनेवाला (अर्थात् उत्तराधिकारी)।

उदक-दान—पुं० [ष० त०] =तर्पण।

उदकना*—अ० [सं० उद्=ऊपर+क=उदक] उछलना-कूदना।

उदक-परीक्षा—पुं० [मध्य० स०] शपथ का एक प्राचीन प्रकार जिसमें शपथ करनेवाले को अपनी बात की सत्यता प्रमाणित करने के लिए जल में कुछ समय के लिए डुबकी लगानी पड़ती थी।

उदक-प्रमेह—पुं० [सं० मध्य० स०] प्रमेह (रोग) का एक भेद जिसमें बहुत अधिक पेशाब होता है और उस पेशाब के साथ कुछ वीर्य भी निकलता है।

उदक-मेह—पुं० =उदकप्रमेह।

उदकहार—पुं० [सं० उदक√हृ+अण्] वह जो दूसरों के लिए पानी भरने का काम करता हो। पनभरा।

उदकांत—पुं० [सं० उदक-अंत, ब०स०] जलाशय या नदी का किनारा। तट।

उदकिल—वि० [सं० उदक+इलच्] १. जल से युक्त। २. जल-संबंधी। जलीय।

उदकोदर—पुं० [सं० उदक–उदर मध्य० स०] जलोदर (रोग)।

उदक्त—वि० [सं० उद्√अञ्च् (गति)+क्त] १. ऊपर उठा या उठाया हुआ। २. उक्त। कथित।

उदक्य—वि० [सं० उदक+य] १. उदक या जल में होनेवाला। २. जल से युक्त। जलीय। ३. ऐसा अपवित्र या अशुद्ध जो जल से धोने पर ही पवित्र या शुद्ध हो सके।
पुं० जल में होनेवाला अन्न। जैसे—धान।

उदगद्रि—पुं० [सं० उदक् (ञ्च्)–अद्रि मध्य० स०] उत्तर दिशा का पर्वत, अर्थात् हिमालय।

उदगयन—पुं० [सं० उदक् (ञ्च्)–अयन, स० त०] दे० 'उत्तरायण'।

उदगरना†—अ० [सं० उद्गारण] १. उद्गार के रूप में या उद्गार के फलस्वरूप वाहर निकालना। २. प्रकट होना। सामने आना। ३. उभड़ना या भड़कना।
स० १. उद्गार के रूप में वाहर निकालना। २. प्रकट करना। ३. उभाड़ना या भड़काना।

उदगर्गल—पुं० [सं० उद (ञ्च्) क्–अर्गल, ष० त०] ज्योतिष का वह अंग जिससे यह जाना जाता है कि अमुक स्थान में इतने हाथ पर जल है।

उदगार*—पुं०=उद्गार।

उदगारना*—स० [सं० उद्गार] १. मुँह से वाहर निकालना। उगलना। २. उभाड़ना। भड़काना।

उदगारी*—वि० [हिं० उदगारना] १. उगलनेवाला। २. वाहर निकालने या फेंकनेवाला।

उदग्ग*—वि०=उदग्र।

उदग्र—वि० [सं० उद्-अग्र, व० स०] १. जो सीधा ऊपर की ओर गया हो। ऊर्ध्व। (वर्टिकल्) २. ऊँचा। उन्नत। ३. वढ़ा हुआ। ४. उभड़ा या उमड़ा हुआ। ५. उग्र। तेज।

उदग्र-शिर—वि० [व० स०] जिसका मस्तक ऊपर हो। उन्नत भालवाला। उदा०—वे डूब गये-सव डूब गये दुर्दम, उदग्रशिर अद्रिशिखर।—पंत।

उदघटना*—अ० [सं० उद्घट्टन=संचालन] १. प्रकट होना या वाहर निकलना। २. उदित होना।

उदघाटन*—पुं०=उद्घाटन।

उदघाटना*—स० [स० उद्घाटन] १. उद्घाटन करना। २. प्रकट या प्रत्यक्ष करना।

उदजन—पुं० [सं० उद्-जन] एक प्रकार का अदृश्य, गंधहीन और वर्णहीन वाष्प जिसकी गणना तत्त्वों में होती है। (हाइड्रोजन)

उदय*—पुं० [स० उद्गीथ] सूर्य।

उदधि—पुं० [सं० उदक√धा (धारण करना)+कि, उद आदेश] १. सागर। २. घड़ा। ३. वादल। मेघ। ४. रहस्य-संप्रदाय में, (क) अंतःकरण या हृदय और (ख) देह या शरीर।

उदधि-मेखला—स्त्री० [व० स०] समुद्र जिसकी मेखला है; अर्थात् पृथिवी।

उदधि-वस्त्रा—स्त्री० [व० स०] पृथिवी।

उदधि-सुत—पुं० [ष० त०] वे सव जो समुद्र से उत्पन्न माने गये हैं। जैसे—अमृत, कमल, चंद्रमा, शंख आदि।

उदधि-सुता—स्त्री० [ष० त०] १. समुद्र की पुत्री, लक्ष्मी। २. सीपी।

उदधीय—वि० [सं० उदधि+छ–ईय] समुद्र-संवंधी। समुद्र का।

उदन्य—वि० [सं० उदक+य, उदन् आदेश] १. जल से युक्त। जलीय। २. प्यासा।

उदपान*—पुं० [सं० उदक√पा (पीना)+ल्युट्–अन, उद आदेश] कमंडलु जिसमें साधु लोग पीने का जल रखते हैं। २. कुआँ। ३. कुएँ के पास का गढ़ा। ४. वह स्थान जहाँ जल हो।

उदवर्तन*—पुं०=उद्वर्त्तन।

उदवर्त*—वि० [हिं० उद्वासन=स्थान से हटाना] १. जिसके रहने का स्थान नष्ट कर दिया गया हो। २. उजड़ा या उजाड़ा हुआ। ३. किसी एक स्थान पर टिक कर न रहनेवाला।

उदवासना—स० [सं० उद्वासन] १. कहीं वसे हुए आदमी को उसकी जगह से भगा या हटा देना। उदा०—नंद के कुमार सुकुमार को वसाइ यामैं, ऊधौ अवहाइ कै विआस, उदवासै हम।—रत्ना०। २. नष्ट-भ्रष्ट करना। उजाड़ना।

उदवेग†—पुं०=उद्वेग।

उदभट*—वि०=उद्भट।

उदभव*—पुं०=उद्भव।

उदभौत*—वि०=अद्भुत। उदा०-सूर परस्पर कहु गोपिका यह उपजी उदभौति।—सूर।
वि०=उद्भूत।

उदभौति*—स्त्री०=उद्भूति।

उदमद*—वि० दे० 'उन्मत्त'।

उदमदना*—अ० [सं० उद्+मद] उन्मत्त होना।

उदमाता*—वि० [सं० उन्मत्त] [स्त्री० उदमाती] मतवाला। मत्त। मस्त।

उदमाद*—पुं०=उन्माद।

उदमादना—स० [सं० उन्मत्त] उन्मत्त करना।
अ० उन्मत्त होना।

उदमादी*—वि०=उन्मादी।

उदमान—वि०=उन्मत्त।

उदमानना*—अ०, स० दे० 'उदमादना'।

उदय—पुं० [सं० उद्√इ (गति)+अच्] [वि० उदीयमान, भू० कृ० उदित] १. ऊपर की ओर उठने, उभरने या वढ़ने की क्रिया या भाव। २. ग्रह, नक्षत्रों आदि का क्षितिज से ऊपर उठकर आकाश में आना और दृश्य होना। ३. प्रकट या प्रत्यक्ष होना। सामने आना। ४. किसी नई शक्ति आदि का उद्भव होना, या नई शक्ति से युक्त होकर प्रवल रूप में सामने आना। जैसे—चीन या भारत का उदय। ५. पद आदि में होनेवाली उन्नति। समृद्धि। (राइज; उक्त सभी अर्थों में) ६. उत्पत्ति का स्थान। उद्गम। ७. आय। ८. लाभ। ९. व्याज। १०. ज्योति। ११. दे० 'उदयाचल'।

उदयगढ़—पुं० [सं० उदय+हिं० गढ़] उदयाचल।

उदय-गिरि—पुं० [ष० त०] उदयाचल (दे०)।

उदयना*—अ० [हिं० उदय] उदय होना। उदा०—पाइ लगन बुद्ध केतु तौ उदयौ हूझे अस्त।—हरिश्चंद्र।
उदय सैल*—पुं० =उदयाचल।
उदयाचल—पुं० [सं० उदय-अचल, प० त०] पुराणानुसार पूर्व दिशा में स्थित एक कल्पित पर्वत जिसके पीछे से नित्य सूर्य का उदित होना या निकलना माना गया है।
उदयातिथि—स्त्री० [सं० उदय+अच्–टाप्, उदया, तिथि व्यस्त पद] वह तिथि जिसमें सूर्योदय हो। (ज्यो०)।
उदयाद्रि—पुं० [सं० उदय–अद्रि, प० त०]=उदयाचल।
उदयास्त—पुं० [सं० उदय-अस्त, द्व० स०] १. उदय और अस्त। २. उत्थान और पतन।
उदयी (यिन्)—वि० [सं० उदय+इनि] १. जिसका उदय हो रहा हो। ऊपर की ओर उठता या बढ़ता हुआ। २. उन्नतिशील।
उदरंभर*—वि०=उदरंभरि।
उदरंभरि—वि० [सं० उदर√भृ (भरण करना)+इन्, मुम्] [भाव० उदरंभरी] १. जो केवल अपना पेट भरता हो। २. पेटू। ३. स्वार्थी। उदा०—केवल दुख देकर उदरंभरि जन जाते।—निराला।
उदर—पुं० [सं० उद्√दृ (विदारण)+अच्] [वि० औदरिक] १. शरीर का वह भाग जो हृदय और पेड़ू के बीच में स्थित है तथा जिसमें खाई हुई वस्तुएँ पहुँचती हैं। पेट। (एब्डॉमेन) २. भीतर का ऐसा भाग जिसमें कोई चीज रहती हो या रह सके।
उदरक—वि० [सं० उदर से] उदर-संबंधी।
उदर-गुल्म—पुं० [प० त०] वायु के प्रकोप से पेट फूलने का एक रोग।
उदर-ग्रंथि—स्त्री० [ष० त०] तिल्ली या प्लीहा का एक रोग।
उदर-ज्वाला—स्त्री० [प० त०] १. जठराग्नि। २. भूख।
उदर-त्राण—पुं० [प० त०] वह कवच या त्राण जिसे सैनिक पेट के ऊपर बाँधते है।
उदरथि—पुं० [सं० उद्√ऋ (गति)+अथिन्] १. सूर्य। २. समुद्र।
उदर-दास—पुं० [प० त०] १. सेवक। २. पेटू। ३. स्वार्थी।
उदरना*†—अ० [हिं० उदारना] १. फटना। २. छिन्न-भिन्न होना।
* अ० =उतरना।
उदर-परायण—वि० [स० त०] १. पेटू। २. स्वार्थी।
उदर-पिशाच—वि० [च० त०] आवश्यकता से बहुत अधिक खानेवाला।
उदर-रेख*—स्त्री०=उदर-रेखा।
उदर-रेखा—स्त्री० [प० त०] पेट पर पड़नेवाली रेखा। त्रिवली।
उदर-वृद्धि—स्त्री० [प० त०] पेट का बढ़ या फूल जाना जो एक रोग माना जाता है। जलोदर।
उदराग्नि—स्त्री० [उदर-अग्नि, प० त०] =जठराग्नि।
उदरामय—पुं० [उदर-आमय, प० त०] पेट में होनेवाला कोई रोग।
उदरावरण—पुं० [उदर-आवरण, प० त०] [वि० उदरावरणीय] वह झिल्ली जो उदर को चारों ओर से घेरे रहती है। (पेरिटोनियम)
उदरावर्त—पुं० [उदर-आवर्त, प० त०] नाभि।
उदरिक—वि० [सं० उदर+ठन्-इक] १. जिसका पेट फूला या बढ़ा हो। २. मोटा। स्थूल-काय।

उदरिणी—स्त्री० [सं० उदर+इनि–ङीप्] गर्भवती स्त्री।
उदरिल—वि० [सं० उदर+इलच्]=उदरिक।
उदरी (रिन्)—वि० [सं० उदर+इनि] बड़ी तोंदवाला।
उदर्क—पुं० [सं० उद्√ऋच् (स्तुति)+घञ्] १. अंत। समाप्ति। २. क्रिया आदि का परिणाम या फल। ३. भविष्यत् काल। ४. मीनार। ५. धतूरे का पेड़।
उदर्द—पुं० [सं० उद्√अर्द् (पीड़ा)+अच्] जुड़-पित्ती नामक रोग।
उदर्य—वि० [सं० उदर+यत्] उदर या पेट में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।
पुं० पेट के भीतरी अंग।
उदवना*—अ० [सं० उदयन] १. उदित होना। २. उगना या निकलना। ३. प्रकट या प्रत्यक्ष होना। उदा०—दिन-दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देन।—तुलसी।
उदवाह*—पुं०=उद्वाह।
उदवेग*†—पुं०=उद्वेग।
उदसना—अ० [सं० उदसन=नष्ट करना] १. उजड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट होना। ३. उदास होना।
स० १. उजाड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट करना। ३. उदास करना या बनाना।
उदात्त—वि० [सं० उद्-आ√दा (देना)+क्त] १. ऊँचा बना हुआ। २. ऊँचे स्वर में कहा हुआ। ३. उदार। दाता। ४. दयावान। ५. उत्तम। श्रेष्ठ। ६. साफ। स्पष्ट। ७. सशक्त। समर्थ।
पुं० १. वैदिक स्वरों के उच्चारण का एक प्रकार या भेद। २. संगीत में, बहुत ऊँचा स्वर। ३. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें वैभव आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। ४. एक प्रकार का पुराना बाजा।
उदान—पुं० [सं० उद्–आ√अन् (जीना)+घञ्] १. ऊपर की ओर साँस खींचना। २. शरीर की पाँच प्राणभूत वायुओं में से एक वायु जिसका स्थान कंठ से भ्रूमध्य तक माना जाता है। छींक, डकार आदि इसी से उद्भूत माने जाते हैं।
उदाम*—वि०=उद्दाम।
उदायन*—पुं०=उद्यान (बगीचा)।
पुं० [?] किसी चीज का तल या सतह बराबर करना। (लेवलिंग)
उदार—वि० [सं० उद्+आ√रा (देना)+क] १. जो लोगों को हर चीज खुले दिल से और यथेष्ट देता हो। दानी। २. जो स्वभाव से नम्र और सुशील हो और पक्षपात या संकीर्णता का विचार छोड़कर सबके साथ खुले दिल से आत्मीयता का व्यवहार करता हो। ३. (कार्य, क्षेत्र या विषय) जिसमें औरों के लिए भी अवकाश या गुंजाइश रहती हो या निकल सकती हो। (लिबरल)
पुं० योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश अपने पूर्ण रूप में वर्त्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण करता है।
पुं० [देश०] गूलू नामक वृक्ष। (अवध)
उदार-चरित—वि० [ब० स०] सबके साथ खुले हृदय से आत्मीयता और सज्जनता का व्यवहार करनेवाला।

उदार-चेता(तस्)—वि० [ब० स०] जिसके चित्त या विचारों में उदारता हो।

उदारता—स्त्री० [सं० उदार+तल्+टाप्] उदार होने की अवस्था, गुण या भाव।

उदारता-वाद—पु० [ष० त०] [वि० उदारतावादी] आधुनिक आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में वह वाद या सिद्धांत जो यह मानता है कि सब लोगों को समान रूपसे सुभीते और स्वतंत्र रहने के अधिकार मिलने चाहिए। (लिबरलिज्म)

उदारतावादी (दिन्)—वि० [सं० उदारता√वद् (बोलना)+णिनि] उदारता-संबंधी।

पु० वह जो उदारतावाद का अनुयायी और समर्थक हो।

उदार-दर्शन—वि० [ब० स०] देखने में भला या सुंदर।

उदारना*—स० [स० उद्दारण] छिन्न-भिन्न करना या तोड़ना-फोड़ना।

स० [सं० विदीरण] नोचना या फाड़ना।

उदाराशय—वि० [उदार-आशय, ब० स०] अच्छे और उदार विचारों-वाला।

उदावत्सर—पुं० [स० उद्-आ-वत्सर प्रा० स०] संवत्सर।

उदावर्त—पुं० [स० उद्–आ√वृत् (बरतना)+घञ्] एक रोग जिसमें मल-मूत्र आदि के रुक जाने के कारण काँच बाहर निकल आती है। गुद-ग्रह।

उदावर्ता—स्त्री० [सं० उदावर्त+टाप्] एक रोग जिसमें मासिक धर्म रुक जाने के कारण (स्त्रियों की) योनि में से फेनिल रुधिर निकलता है।

उदास—वि० [सं० उद्√आस् (बैठना)+अच्] १. जो किसी प्रकार की अपेक्षा या अभाव के कारण अथवा भावी अनिष्ट की आशंका से खिन्न और चिंतित हो और इसी लिए जिसका मन किसी काम या बात में न लगता हो। जैसे—नौकरी छूट जाने के कारण वह उदास रहता है। २. जिसका मन किसी काम, चीज या बात की ओर से हट गया हो। उदासीन। विरक्त। उदा०—तुम चाहहु पति सहज उदासा।—तुलसी। ३. जिसके मनमें किसी बात के प्रति अनुराग या प्रवृत्ति न रह गई हो। तटस्थ। निरपेक्ष। उदा०—एक उदास भाय सुनि रहही।।—तुलसी। ४. (पदार्थ या स्थान) जिसमें पहले का-सा आकर्षण, प्रफुल्लता या रस न रह गया हो। जिसकी अच्छी बातें फीकी और हलकी पड़ गई हों। जैसे—(क) महीने-दो महीने मे ही इस साड़ी का रंग उदास हो जायगा। (ख) लड़कों के चले जाने से घर उदास हो गया है।

*पु०=उदासी। उदा०-काहुहि सुख पै काहुहि उदास।—कबीर।

*पु० [सं० उद्वासन] किसी को कहीं से हटाने या भगाने के लिए किया जानेवाला कार्य या प्रयोग। उदा०—सुरूप को देश उदास की कीलनि कीलित कै कि कुरूप नसायो।—केशव।

उदासना*—स० [स० उद्वासन] १. तितर-बितर या नष्ट-भ्रष्ट करना। उजाड़ना। २. (बिस्तर) समेटना या बटोरना।

अ० [हिं० उदास] उदास होना।

उदासल*—वि०=उदास।

उदासिल*—वि०=उदास।

उदासी—स्त्री० [हिं० उदास+ई प्रत्य०] उदास होने की अवस्था या भाव। उदासपन।

पुं० [सं० उदासिन्] १. सांसारिक बातों से उदासीन, त्यागी और विरक्त व्यक्ति। संन्यासी या साधु। २. गुरु नानक के पुत्र श्री चंद्र का चलाया हुआ एक साधु-संप्रदाय। ३. उक्त संप्रदाय का अनुयायी, विरक्त या साधु।

उदासीन—वि० [सं० उद्√आस्+शानच्] [भाव० उदासीनता] १. अलग या दूर बैठने या रहनेवाला। २. जिसके मन मे किसी प्रकार की आसक्ति, कामना आदि न हो। ३. जो सांसारिक मोह-माया आदि से निर्लिप्त या रहित हो। विरक्त। ४. जो परस्पर विरोधी पक्षो से किसी पक्ष का समर्थक या सहायक न हो। तटस्थ और निष्पक्ष। ५. जो किसी विषय (या व्यक्ति) की बातों मे कुछ भी अनुरक्त न हो। विरक्त भाव से अलग रहनेवाला। (इन्डिफरेन्ट)

उदासीनता—स्त्री० [सं० उदासीन+तल्–टाप्] १. उदासीन होने की अवस्था, गुण या भाव। २. मन की ऐसी वृत्ति जो किसी को किसी काम या बात में अनुरक्त नही होने देती और उससे अलग रखती है। (एपैथी)

उदासी बाजा—पुं० [हिं० उदासी+फा० बाजा] एक प्रकार का भोंपा (बाजा)।

उदाहट—स्त्री०=ऊदापन।

उदाहरण—पु० [सं० उद्–आ√हृ (हरण करना) + ल्युट्-अन] १. नियम, सिद्धांत आदि को अच्छी तरह बोधगम्य तथा स्पष्ट करने के लिए उपस्थित किए हुए तथ्य। ऐसी बात या तथ्य जिससे किसी कथन, सिद्धांत आदि की सत्यता प्रकट तथा सिद्ध होती हो। (एग्जाम्पुल) २. ऐसा आचरण, कृति या क्रिया जो दूसरों को अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित करे। ३. न्याय में, वाक्य के पाँच अवयवों मे से एक जिसके द्वारा साध्य का साधर्म्य या वैधर्म्य सिद्ध होता है।

उदाहार—पुं० [सं० उद्–आ√हृ+घञ्] =उदाहरण।

उदाहृत—भू० कृ० [सं० उद्–आ√हृ+क्त] १. कहा या घोषित किया हुआ। २. उदाहरण के रूप में उपस्थित किया हुआ।

उदाहृति—स्त्री० [सं० उद्–आ√हृ+क्तिन्] १. उदाहरण। २. नाट्य-शास्त्र में, किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक है। (नाट्यशास्त्र)

उदिआन†—पु० =उद्यान (बगीचा)।

उदिक—वि० [सं० उद से] १. जल-संबंधी। २. उस जल से संबंध रखनेवाला जो नल आदि के द्वारा कहीं पहुँचता हो। (हाइड्रालिक)

पुं० [सं० उदक] वीर्य। शुक्र। उदा०—उदिक रापंत ते पुरिखा-गता।—गोरखनाथ।

उदित—भू० कृ० [सं० उद्√इ (गति)+क्त] [स्त्री० उदिता] जिसका (या जो) उदय हुआ हो।

उदित-यौवना—स्त्री० [ब० स०] साहित्य में, ऐसी नवयुवती नायिका जिसमें अभी कुछ-कुछ लड़कपन भी बचा हो। (मुग्धा के सात भेदों में से एक)

उदिताचल—पुं०=उदयाचल।

उदिति—स्त्री० [सं० उद्√इ+क्तिन्] १. उदय। २. भाषण।

उदियाना*—अ० [सं० उद्विग्न] उद्विग्न होना।

स० उद्विग्न करना।

उदीची—स्त्री० [सं० उद्√अञ्च् (गति)+क्विन्–ङीप्] उत्तर दिशा।
उदीचीन—वि० [सं० उदीची+ख–ईन] उत्तर दिशा का। उत्तरी।
उदीच्य—वि० [सं० उदीची+यत्] उत्तर दिशा का। उत्तरी।
पुं० १. प्राचीन भारत में, सरस्वती के उत्तर-पश्चिम गंधार और वाह्लीक देशों का संयुक्त नाम। २. यज्ञ आदि कार्य के पीछे होनेवाले दान-दक्षिणादि कृत्य। ३. वैताली छंद का एक भेद।
उदीप—वि० [सं० उद्-आप, ब० स०, अच्, ईत्व] (प्रदेश) जो बाढ़ आदि के कारण जल से भर गया हो।
पुं० नदी की बाढ़।
उदीपन*—पुं०=उद्दीपन।
उदीपित*—वि०=उद्दीप्त।
उदीयमान—वि० [सं० उद्√इ+यक्+शानच्, मुक्] [स्त्री० उदीयमाना] १. जिसका उदय हो रहा हो। २. उठता या उभड़ता हुआ। ३. आरंभ में ही जिसमें होनहार होने के लक्षण दृष्टिगोचर होते हों। होनहार। (प्रॉमिसिंग)
उदीरण—पुं० [सं० उद्√ईर् (गति, कंपन)+ल्युट्–अन] १. कथन। २. उच्चारण। ३. उद्दीपन। ४. उत्पत्ति। ५. जँभाई।
उदीरणा—स्त्री० [सं० उद्√ईर्+णिच्+युच्– अन–टाप्] प्रेरणा।
उदीर्ण—वि० [सं० उद्√ऋ (गति)+क्त] १. उदित। २. उत्पन्न। ३. प्रबल। ४. अभिमानी।
पुं० विष्णु।
उदुंबर—पुं० [सं०=उदुम्बर, उकोद] [वि० औदुंबर] १. गूलर का वृक्ष और उसका फल। २. चौखट। ३. दहलीज। ४. नपुंसक। नामर्द। ५. एक प्रकार का कोढ़ (रोग)। ६. ताँबा। ७. अस्सी रत्ती की एक पुरानी तौल। ८. एक प्राचीन जाति जो रावी और व्यास के बीच में त्रिगर्त्त के दक्षिण में राज्य करती थी।
उदुंबर-पर्णी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] दंती नामक वृक्ष। दाँती।
उदुआ†—पुं० [?] एक तरह का मोटा जड़हन धान।
उदूल—पुं० [अ०] आज्ञा का उल्लंघन या अवज्ञा।
उदेग*—पुं०=उद्वेग।
उदेल†—पुं० [अ० ऊद] लोहबान।
उदेश—पुं० [सं० उद्देश्य] खोज। तलाश। (मैथिली)
उदेस:†—पुं० [सं० उद्देश्य] १. चिह्न। पता। उदा०—सैयाँ के उदेसवा बता दे, बटोही केने जाऊँ?—लोक गीत। २. दे० 'उद्देश्य'।
पु० [सं० उत्+देश] परदेस। विदेश।
उदै*—पुं०=उदय।
उदो*—पुं० =उदय।
उदोत*—पुं०=उद्योत।
वि० १. शुभ्र। २. प्रकाशित। ३. उज्ज्वल। प्रकाशमान।
* वि० [सं० उद्भूत] उत्पन्न।
उदोतकर*—वि० [सं० उद्योतकर] १. प्रकाशक। २. चमकानेवाला।
उदोती*—वि० [सं० उद्योत] १. प्रकाश से युक्त। चमकीला। २. प्रकाश या प्रकाशित करनेवाला।
उदौ*—पुं०=उदय।
उद्गंधि—वि० [सं० ब० स०, इत्व] तीव्र या तीक्ष्ण गंधवाला।
उद्गत—वि० [सं० उद्√गम् (जाना)+क्त] १. निकला हुआ। उत्पन्न। २. प्रकट। ३. फैला हुआ। ४. वमन किया हुआ। ५. प्राप्त। लब्ध।
उद्गतार्थ—पुं० [सं० उद्गत-अर्थ, कर्म० स०] ऐसी चीज जिसका दाम कुछ समय तक पड़े रहने से ही बढ़ गया हो। (अर्थशास्त्र)
उद्गम—पुं० [सं० उद्√गम्+अप्] १. आविर्भाव होना। २. आविर्भाव या उत्पत्ति का स्थान। ३. नदी के निकलने का स्थान।
उद्गमन—पुं० [सं० उद्√गम्+ल्युट्-अन] आविर्भाव या उद्भव।
उद्गाढ़—वि० [सं० उद्√गाह् (मथना)+क्त] १. गहरा। २. तीव्र। प्रचंड। ३. बहुत अधिक।
पुं० आतिशय्य।
उद्गाता—पुं० [सं० उद्√गै (शब्द)+तृच्] यज्ञ में सामवेदीय कृत्य करनेवाला ऋत्विज्।
उद्गाथा—स्त्री० [सं० उद्-गाथा, प्रा० स०] आर्या छंद का एक भेद। उग्गाहा। गीत, जिसके विषम पादों में १२ और सम पादों मे १८ मात्राएँ होती हैं।
उद्गार—पुं० [सं० उद्√गॄ (लीलना, शब्द)+घञ्] [वि० उद्गारी, भू० कृ० उद्गारित] तरल पदार्थ का वेगपूर्वक ऊपर उठकर बाहर निकलना। उफान। २. इस प्रकार वेग से बाहर निकला हुआ तरल पदार्थ। ३. वमन किया हुआ पदार्थ। ४. मुँह से निकला हुआ कफ। थूक। ५. खट्टा डकार। ६. आधिक्य। बाढ़। उदा०—जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वंसक।—नंददास। ७. अधीरता, आवेश आदि की अवस्था में मुँह से निकली हुई ऐसी बातें जो कुछ समय से मन में दबी रही हों।
उद्गारी (रिन्)—वि० [सं० उद्√गॄ (निगलना) +णिनि] १. उद्गार की क्रिया करनेवाला। २. ऊपर की ओर या बाहर निकलने या निकालनेवाला। ३. डकार लेनेवाला। ४. कै या वमन करनेवाला।
पुं० ज्योतिष में, बृहस्पति के बारहवें युग का दूसरा वर्ष। कहते हैं कि इसमें राज क्षय, उत्पात आदि होते हैं।
उद्गिरण—पुं० [सं० उद्√गॄ+ल्युट्-अन] १. उगलने, थूकने या बाहर फेंकने की क्रिया या भाव। २. वमन। कै। ३. लार। ४. डकार।
उद्गीति—स्त्री० [सं० उद्√गै (गाना)+क्तिन्] आर्या छंद का भेद जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह-बारह, दूसरे में पंद्रह और चौथे में अट्ठारह मात्राएँ होती हैं।
उद्गीथ—पुं० [सं० उद्√गै+थक्] १. एक प्रकार का सामगान। २. सामवेद। ३. ओंकार।
उद्गीर्ण—भू० कृ० [सं० उद्√गॄ+क्त] १. उगला, थूका या मुँह से बाहर निकाला हुआ। २. बाहर निकाला या फेंका हुआ। ३. गिरा या टपका हुआ। ४. उद्गार के रूप में कहा हुआ। ५. प्रतिबिंबित।
उद्गेय—वि० [सं० उद्√ गै+यत्] १. जो गाये जाने को हो। २. जो गाये जाने के योग्य हो।
उद्ग्रंथ—वि० [सं० ब० सं०] जिसका गाँठ या बंधन खोल दिया गया हो। २. खुला हुआ। मुक्त।
पुं० १. अध्याय। २. धारा।
उद्ग्रहण—पुं० [सं० उद्√ग्रह् (लेना)+ल्युट्-अन] [वि० उद्ग्रहणीय, भू० कृ० उद्गृहीत] ऋण, कर आदि वसूल करने की क्रिया या भाव।

उद्ग्रहणीय—वि० [सं० उद्√ग्रह्+अनीयर्] जिसका उद्ग्रहण होने को हो या किया जाने को हो।

उद्ग्राह—पुं० [सं० उद्√ग्रह्+घञ्] [भू० कृ० उद्ग्राहित] १. ऊपर उठाना या लाना। २. उत्तर आदि के संबंध में की जानेवाली आपत्ति या तर्क। ३. डकार। ४. दे० 'उगाही'।

उद्ग्रीव, उद्ग्रीवी (विन्)—वि० [सं० ब० स०] [उद्ग्रीवा, प्रा० स०, +इनि] जिसकी गर्दन ऊपर उठी हो। जो गला ऊपर उठाये या किये हो।

क्रि० वि० [सं०] गर्दन ऊपर उठाये हुए।

उद्घट्टक—पुं० [सं० उद्√घट्ट् (चलाना)+घञ्+कन्] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

उद्घट्टन—पुं० [सं० उद्√घट्ट्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्घट्टित] १. उन्मोचन। खोलना। २. रगड़। ३. खंड। टुकड़ा।

उद्घाटक—वि० [सं० उद्√घट्+णिच्+ण्वुल्-अक] उद्घाटन करने वाला।

पुं० [सं०] १. कुंजी। चाबी। २. कुएँ से पानी खींचने की चरखी।

उद्घाटन—पुं० [सं० उद्√घट्+णिच्+ल्युट्-अन] १. आवरण या परदा हटाना। खोलना। २. एक आधुनिक परिपाटी या रस्म जो कोई नया कार्य आरंभ करने के समय औपचारिक उत्सव या कृत्य के रूप में होती है। जैसे—(क) नहर या बाँध का उद्घाटन। (ख) सभा, सम्मेलन आदि का उद्घाटन।

उद्घाटित—वि० [सं० उद्√घट्+णिच्+क्त] १. जिस पर से आवरण हटाया गया हो। अनावृत। २. जिसका उद्घाटन हुआ हो।

उद्घातक—वि० [सं० उद्√हन्+णिच्+ण्वुल्-अक] धक्का मारनेवाला। पुं० नाटक में, प्रस्तावना का वह प्रकार जिसमें सूत्रधार और नटी की कोई बात, सुनकर कोई पात्र उसका कुछ दूसरा ही अर्थ समझकर नेपथ्य से उसका उत्तर देता अथवा रंगमंच पर आकर अभिनय आरंभ करता है।

उद्घाती (तिन्)—वि० [सं० उद्√हन्+णिच्+णिनि] १. उद्घात करनेवाला। २. ठोकर मारने या लगानेवाला। ३. आरंभ करनेवाला।

उद्घोष—पुं० [सं० उद्√घुष् (शब्द करना) + घञ्] १. चिल्लाकर या जोर से कुछ कहना। गर्जना। २. चिल्लाने या जोर से बोलने से होनेवाला शब्द। ३. घोषणा। मुनादी।

उद्घोषणा—स्त्री० [उद्√घुष्+णिच्+युच्-अन-टाप्] [भू० कृ० उद्घोषित] १. जोर से चिल्लाते हुए तथा सबको सुनाते हुए कोई बात कहना। २. राज्य या शासन की ओर से उसके सर्व प्रधान अधिकारी द्वारा की हुई कोई मुख्यतः ऐसी घोषणा जो किसी देश या प्रदेश को अपने राज्य में मिलाने के संबंध में हो। (प्रोक्लेमेशन)

उद्घोषित—भू० कृ० [सं० उद्√घुष्+णिच्+क्त] १. जो उद्घोषणा के रूप में हुआ हो। २. जिसके संबंध में कोई उद्घोषणा हुई हो।

उद्दंड—वि० [सं० उद्-दंड, अत्या० स०] [भाव० उद्दंडता] १. जो किसी को मारने के लिए डंडा ऊपर उठाये हुए हो। २. जो किसी से डरता न हो और अनुचित तथा मनमाना आचरण करता हो। ३. जिसे कोई दंड न दे सकता हो।

पुं० दंडधर। द्वारपाल।

उद्दंश—पुं० [सं० उद्√दंश् (डसना)+अच्] १. खटमल। २. जूँ। ३. मच्छर।

उद्दत*—वि०=उद्यत।

उद्दम—पुं० [सं० उद्√दम् (दमन करना)+अप्] किसी को दबाना या वश में करना।

पुं०=उद्यम।

उद्दर्शन—पुं० [सं० उद्√दृश् (देखना)+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्दर्शित] १. दर्शन कराना। २. स्पष्ट या व्यक्त करना।

उद्दांत—वि० [सं० उद्√दम् (दमन करना)+क्त] १. जो बहुत दबा हो। अतिदमित। २. उत्साही। ३. विनम्र।

उद्दान—पुं० [सं० उद्√दा (देना) या√दो (खंडन करना)+ल्युट्-अन] १. जकड़ने या बाँधने की क्रिया या भाव। २. उद्यम। ३. बड़वानल। ४. चूल्हा। ५. लग्न। ६. उद्यम। प्रयत्न। ७. कटि। कमर। ८. बीच का भाग। मध्य।

उद्दाम—वि० [सं० उद्-दामन्, निरा० स०] [भाव० उद्दामता] १. जो किसी प्रकार के बंधन में न हो। २. स्वतंत्र। स्वच्छंद। ३. उद्दंड या निरंकुश। ४. गंभीर। ५. विस्तृत।

पुं० १. वरुण। २. दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में १ नगण और १३ रगण होते हैं।

उद्दार*—वि०=उदार।

उद्दारय*—वि०=उदार।

उद्दालक—पुं० [सं० उद्√दल् (विदीर्ण करना)+णिच्+अच्, उद्दाल+कन्] १. एक प्राचीन ऋषि। २. एक प्रकार का व्रत जो ऐसे व्यक्ति को करना पड़ता है जिसे १६ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी गायत्री की दीक्षा न मिली हो। ३. वनकोदव नाम का कदन्न।

उद्दित*—वि० १.=उदित। २.=उद्यत। ३.=उद्धत। ४.=उद्दीप्त।

उद्दिम*—पुं०=उद्यम।

उद्दिष्ट*—वि० [सं० उद्√दिश् (बताना)+क्त] १. जिसकी ओर निर्देश या संकेत किया गया हो। कहा या बतलाया हुआ। २. जिसे उद्देश्य बना या मानकर कोई काम किया जाय। उद्देश्य के रूप में स्थिर किया हुआ।

पुं० १. छंदशास्त्र में, प्रत्यय के अंतर्गत वह प्रक्रिया जिससे यह जाना जाता है कि मात्रा प्रस्तार के विचार से कोई पद्य किस छंद का कौन-सा प्रकार या भेद है। २. स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु का किया जानेवाला भोग। (पराशर)

उद्दीप—पुं० [सं० उद्√दीप् (प्रकाश)+घञ्] =उद्दीपन।

वि०=उद्दीपक।

उद्दीपक—वि० [सं० उद्√दीप् (जलाना)+णिच्+ण्वुल्-अक] १. जलाने या प्रज्वलित करनेवाला। २. उभाड़ने या भड़कानेवाला, विशेषतः मनोभावों को जाग्रत तथा उत्तेजित करनेवाला। ३. जठराग्नि को तीव्र या दीप्त करनेवाला।

उद्दीपन—पुं० [सं० उद्√दीप्+णिच्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्दीप्त; वि० उद्दीप्य] १. जलाने या प्रज्वलित करने की क्रिया या भाव। २. उत्तेजित करने या उभाड़ने, विशेषतः मनोभावों को जाग्रत तथा उत्तेजित करने की क्रिया या भाव। ३. उत्तेजित या दीप्त करने-

वाली वस्तु। ४. साहित्य में वह वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति जो मन में प्रस्तुत किसी रस या स्थायी भाव को उद्दीप्त तथा उत्तेजित करे। जैसे—शृंगार रस में सुंदर ऋतु, चाँदनी रात आदि उद्दीपन हैं।

उद्दीपित—भू० कृ० [सं० उद्√दीप्+णिच्+क्त] =उद्दीप्त।

उद्दीप्त—भू० कृ० [सं० उद्√दीप्+क्त] १. प्रज्वलित किया हुआ। २. चमकता हुआ। ३. उभाड़ा या उत्तेजित किया हुआ। ४. (भाव या रस) जिसका उद्दीपन हुआ हो।

उद्दीप्ति—स्त्री० [सं० उद्√दीप्+क्तिन्] उद्दीप्त होने की अवस्था या भाव।

उद्देग*—पुं०=उद्वेग।

उद्देश—पुं० [सं० उद्√दिश्+घञ्] १. किसी चीज की ओर निर्देश या संकेत करना। २. कोई काम करते समय किसी चीज या बात पर ध्यान रखना। ३. कारण। ४. न्याय में, प्रतिज्ञा नामक तत्त्व। ५. कारण। हेतु। ६. दे० 'उद्देश्य'।

उद्देशक—वि० [सं० उद्√दिश्+ण्वुल्-अक] किसी की ओर उद्देश (निर्देश या संकेत) करनेवाला।

पुं० गणित में, प्रश्न।

उद्देशन—पुं० [सं० उद्√दिश्+ल्युट्-अन] किसी की ओर निर्देश या संकेत करने की क्रिया या भाव।

उद्देश्य—पुं० [सं० उद्√दिश्+ण्यत्] १. वह मानसिक तत्त्व (भाव या विचार) जिसका ध्यान रखते हुए या जिससे प्रेरित होकर कुछ कहा या किया जाय। किसी काम में प्रवृत्त करनेवाला मनोभाव। (मोटिव) जैसे—देखना यह चाहिए कि वहाँ जाने (या अमुक अपराध करने) में आपका मुख्य उद्देश्य क्या था। २. वह बात, वस्तु या विषय जिसका ध्यान रखकर कुछ कहा या किया जाय। अभिप्रेत कार्य, पदार्थ या विषय। इष्ट। ध्येय। (आब्जेक्ट) ३. व्याकरण में, वह जिसके विचार से या जिसे ध्यान में रखकर कुछ कहा या विधान किया जाय। किसी वाक्य का कर्त्तृ पद जो उसके विधेय से भिन्न होता है। (आब्जेक्ट) जैसे—'वह बहुत साहसी है।' में 'वह' उद्देश्य है; क्योंकि वाक्य में उसी के साहसी होने की चर्चा या विधान है। ४. दे० 'प्रयोजन'।

उद्देष्टा (ष्टृ)—वि० [सं० उद्√दिश्+तृच्] किसी वस्तु को ध्यान में रख कर काम करनेवाला। किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील।

उद्दोत*—पुं०=उद्योत।

वि० १. =उद्दीप्त। २. =उदित।

उद्दोतिताई*—स्त्री०=उद्दीप्ति। उदा०—तड़ित घन नील उद्दोतिताई।—अलबेली अलि।

उद्ध*— अव्य० [सं० ऊर्द्ध, पा० उद्ध] ऊपर।

* वि०=ऊर्द्ध्व।

उद्धत—वि० [सं० उद्√हन्+क्त] [भाव० उद्धतता] जो अपने उग्र, क्रोधी या रूखे स्वभाव के कारण मनमाना हेय आचरण या व्यवहार करता हो। अक्खड़।

पुं० साहित्य में ४० मात्राओं का एक छंद।

उद्धतता—स्त्री० [सं० उद्धत+तल्—टाप्] उद्धत होने की अवस्था या भाव। उद्धतपन। औद्धत्य।

उद्धत-दंडक—पुं० [सं०] विजया नामक मात्रिक छंद का वह प्रकार या भेद जिसमें प्रत्येक चरण का अंत एक गुरु और एक लघु से होता है।

उद्धतपन—पुं० [सं० उद्धत+हिं० पन (प्रत्य०)] उद्धत होने की अवस्था या भाव। उद्धतता।

उद्धति—स्त्री० [सं० उद्√हन्+क्तिन्] =उद्धतता।

उद्धना*—अ० [सं० उद्धरण] १. उद्धार होना। २. ऊपर उठना या उड़ना।

स० १. उद्धार करना। २. ऊपर उठाना या उड़ाना।

उद्धरण—पुं० [सं० उद्√हृ (हरण करना)+ल्युट्-अन] [वि० उद्धरणीय, उद्धृत] १. ऊपर उठाना। उद्धार करना। २. कष्ट, झंझट, संकट आदि से किसी को निकालना या मुक्ति दिलाना। छुटकारा। ३. किसी ग्रंथ, लेख आदि से उदाहरण, प्रमाण, साक्षी आदि के रूप में लिया हुआ अंश। (कोटेशन) ४. अभ्यास के लिए पढ़े हुए पाठ को बार-बार दोहराना। उद्धरणी।

उद्धरणी—स्त्री० [सं० उद्धरण+हिं० ई (प्रत्य०)] १. पढ़ा हुआ पाठ अच्छी तरह याद करने के लिए फिर-फिर दोहराना या पढ़ना। २. कहीं आई या लिखी हुई कोई बात, घटना का विवरण आदि फिर से कह सुनाना। (रिसाइटल) ३. दे० 'उद्धरण'।

उद्धरना*—स० [सं० उद्धरण] उद्धार करना। उबारना।

अ० उद्धार होना। उबरना।

उद्धर्ता (र्तृ)—वि० [सं० उद्√हृ+तृच्] १. उद्धरणी करनेवाला। २. उद्धार करनेवाला। ३. उदाहरण, साक्षी आदि के रूप में कहीं से कोई उद्धरण लेनेवाला।

उद्धर्ष—पुं० [सं० उद्√हृष् (आनंदित होना)+घञ्] आनंद। प्रसन्नता।

उद्धर्षण—पुं० [सं० उद्√हृष्+ल्युट्-अन] १. आनंदित या प्रसन्न करने की क्रिया या भाव। २. रोमांच। ३. उत्तेजना।

उद्धव—पुं० [सं० उद्√धू (कंपन)+अप्] १. उत्सव। २. यज्ञ की अग्नि। ३. कृष्ण के एक सखा और रिश्ते में मामा, जिन्हें उन्होंने द्वारका से व्रज की गोपियों को सांत्वना देने के लिए भेजा था। इनका दूसरा नाम देवश्रवा भी था।

उद्धव्य—पुं० [सं० उद्√हु (दान, आदान)+यत्] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

उद्धस्त—वि० [सं० उद्-हस्त, प्रा० ब०] जो ऊपर की ओर हाथ उठाये या फैलाये हुए हो।

उद्धार—पुं० [सं० उद्√धृ (धारण)+घञ्] १. नीचे से उठाकर ऊपर ले जाना। २. निम्न या हीन स्थिति से उठाकर उच्च या उन्नत स्थिति में लाना। ३. किसी को कष्ट, विपत्ति, संकट आदि से उबारना या निकालना। मुक्त करना। ४. ऋण, देन आदि से मिलनेवाला छुटकारा। ५. संपत्ति का वह भाग जो बँटवारे से पहले किसी विशेष रीति से बाँटने के लिए अलग कर दिया जाय। ६. लड़ाई में लूट का छठा भाग जो राजा का अंश माना जाता था। ७. दे० 'उधार'।

उद्धारक—वि० [सं० उद्√धृ+ण्वुल्-अक] १. किसी का उद्धार करनेवाला। २. उधार लेनेवाला।

उद्धारण—पुं० [सं० उद्√धृ+णिच्+ल्युट्-अन] १. ऊपर उठाना। उत्थापन। २. उबारना। बचाना। ३. बँटवारा। ४. कोई पद, वाक्य

या शब्द कहीं से जान-बूझकर या किसी उद्देश्य से निकाल या अलग कर देना (डिलीशन)

उद्धारणिक--पुं० [सं० उद्धारण+ठन्--इक] वह व्यक्ति जिसने किसी से रुपया उधार लिया हो। ऋण या कर्ज लेनेवाला। (बॉरोवर)

उद्धारना*--स० [सं० उद्धार] विपत्ति या संकट से अथवा निम्न या हीन स्थिति से निकालकर अच्छी स्थिति में लाना।

उद्धार-विक्रय--पुं० [सं० तृ० त०] उधार बेचना। (क्रेडिट सेल)

उद्धित--भू० कृ० [सं० उद्√धा (धारण करना)+क्त] १. ऊपर उठाया हुआ। २. अच्छी तरह बैठाया या रखा हुआ। स्थापित।

उद्धृत--भू० कृ० [सं० उद्√धृ (धारण)+क्त] १. ऊपर उठाया हुआ। २. (किसी का कथन या लेख आदि) जो कहीं से लाकर उदाहरण, प्रमाण या साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया हो।

उद्धृति--स्त्री० [सं० उद्√धृ+क्तिन्] १. उद्धृत करने या होने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. उद्धरण।

उद्ध्वंस--पुं० [सं० उद्√ध्वंस् (नाश)+घञ्] १. ध्वंस। नाश। २. महामारी। मरी।

उद्ध्वस्त--भू० कृ० [सं० उद्√ध्वंस्+क्त] गिरा-पड़ा। तोड़-फोड़कर नष्ट किया हुआ। ध्वस्त।

उद्बल--वि० [सं० उद्-बल, ब० स०] बलवान्। सशक्त।

उद्बाष्प--वि० [सं० उद्-बाष्प, ब० स०] १. बाष्प से भरा हुआ या युक्त। २. (आँखें) जिनमें आँसू भरे हों। अश्रुपूर्ण।

उद्बाहु--वि० [सं० उद्-बाहु, ब० स०] जो बाहु या बाँहें ऊपर उठाये हुए हो।

उद्बुद्ध--वि० [सं० उद्√बुध् (जनाना)+क्त] १. जिसकी बुद्धि जाग्रत हुई हो। ज्ञानी। प्रबुद्ध। २. खिला या फूला हुआ। प्रफुल्लित। विकसित। ३. जो अपने आपको अच्छी तरह दृश्य या प्रत्यक्ष कर रहा हो। उदा०--उद्बुद्ध क्षितिज की श्याम घटा।--प्रसाद।

उद्बुद्धा--स्त्री० [सं० उद्बुद्ध+टाप्]=उद्बोधिता (नायिका)।

उद्बोध--पुं० [सं० उद्√बुध्+घञ्] १. जागना। जागरण। २. बोध होना। ज्ञान प्राप्त होना। ३. फिर से याद आना। अनुस्मरण।

उद्बोधक--वि० [सं० उद्√बुध्+णिच्+ण्वुल्-अक] १. ज्ञान या बोध करानेवाला। २. जगानेवाला। ३. उद्दीप्त या उत्तेजित करनेवाला।

पुं० सूर्य।

उद्बोधन--पुं० [सं० उद्√बुध्+णिच्+ल्युट्-अन] [वि० उद्बोधक, उद्बोधनीय, उद्बोधित] १. जागने या जगाने की क्रिया या भाव। २. ज्ञान, या बोध कराने या होने की क्रिया या भाव। ३. उत्तेजित करना।

उद्बोधिता--स्त्री० [सं० उद्√बुध्+णिच्+क्त-टाप्] साहित्य में वह नायिका जो अपने उपपति के प्रेम से प्रभावित होकर उससे प्रेम करती हो।

उद्भट--वि० [सं० उद्√भट् (पोषण)+अप्] [भाव० उद्भटता] १. बहुत बड़ा। श्रेष्ठ। २. प्रचंड। प्रबल।

पुं० १. सूप। २. कछुआ।

उद्भव--पुं० [सं० उद्√भू (होना)+अप्] [वि० उद्भूत] १. किसी प्रकार उत्पन्न होकर अस्तित्व में आना। नये सिरे से उठकर प्रत्यक्ष होना या सामने आना। २. किसी पूर्वज के वंश में उत्पन्न होने अथवा किसी मूल से निकलने का तथ्य या भाव। (डिसेन्ट) ३. उत्पत्ति स्थान। ४. विष्णु।

वि० [स्त्री० उद्भवा] जो किसी से उत्पन्न हुआ हो (यौ० के अंत में) जैसे--प्रेमोद्भव=प्रेम से उत्पन्न।

उद्भार--पुं० [सं० उदक्√भृ (धारण करना)+अण्, उद् आदेश] बादल। मेघ।

उद्भाव--पुं० [सं० उद्√भू+घञ्] १. =उद्भव। २. =उद्भावना।

उद्भावक--वि० [सं० उद्√भू+णिच्+ण्वुल्-अक] १. उद्भव या उत्पत्ति करनेवाला। २. मनसे कोई बात या विचार निकालनेवाला। उद्भावना करनेवाला।

उद्भावन--पुं० [सं० उद्√भू+णिच्+ल्युट्-अन] =उद्भावना।

उद्भावना--स्त्री० [सं० उद्√भू+णिच्+युच्-अन-टाप्] १. उत्पन्न होना या अस्तित्व में आना। २. मन में उत्पन्न होनेवाली कोई अद्भुत या अनोखी और नई बात या सूझ। ३. कल्पना से निकली हुई कोई नई बात या विचार।

उद्भावयिता (तृ)--वि० [सं० उद्√भू+णिच्-तृच्] =उद्भावक।

उद्भास--पुं० [सं० उद्√भास् (दीप्ति)+घञ्] १. बहुत ही आकर्षक तथा चमकते हुए रूप में प्रकट होना या सामने आना। २. आभा। प्रकाश। ३. उद्भावना।

उद्भासन--पुं० [सं० उद्√भास्+ल्युट्--अन] [भू० कृ० उद्भासित] प्रकाशित होना। चमकना। २. आभा या प्रकाश से युक्त करना। चमकाना।

उद्भासित--भू० कृ० [सं० उद्√भास्+क्त] १. जो सुंदर रूप में प्रकट हुआ हो। सुशोभित। २. चमकता हुआ। प्रकाशित। ३. उत्तेजित।

उद्भिज--पुं०=उद्भिज्ज।

उद्भिज्ज--वि० [सं० उद्√भिद् (विदारण)+क्विप्,√जन् (उत्पन्न होना)+ड] (पेड़, पौधे, लताएँ आदि) जो जमीन फोड़कर उगती या निकलती हों।

पुं० जमीन में उगनेवाले पेड़, पौधे, लताएँ आदि।

उद्भिज्ज-शास्त्र--पुं० [ष० त०] वनस्पति-शास्त्र।

उद्भिद--पुं० [सं० उद्√भिद्+क] =उद्भिज्ज।

उद्भिन्न--वि० [सं० उद्√भिद्+क्त] १. विभक्त किया हुआ। २. तोड़ा-फोड़ा हुआ। खंडित। ३. उत्पन्न या उद्भूत।

उद्भूत--भू० कृ० [सं० उद्√भू (होना)+क्त] १. जिसका उद्भव हुआ हो। जिसकी उत्पत्ति या जन्म हुआ हो। २. बाहर निकला या सामने आया हुआ। जो प्रत्यक्ष या प्रकट हुआ हो।

उद्भूति--स्त्री० [सं० उद्√भू+क्तिन्] [वि० उद्भूत] १. उद्भूत होने की अवस्था, क्रिया या भाव। आविर्भाव। उत्पत्ति। २. उद्भूत होकर सामने आनेवाली चीज। ३. उन्नति। ४. विभूति।

उद्भेद--पुं० [सं० उद्√भिद्+घञ्] १. =उद्भेदन। २. एक काव्यालंकार जिसमें कौशल से छिपाई हुई बात का किसी हेतु से प्रकाशित या लक्षित होना वर्णित होता है।

उद्भेदन--पुं० [सं० उद्√भिद्+ल्युट्-अन] १. किसी वस्तु को फोड़कर या छेदकर उससे दूसरी वस्तु का निकलना। २. तोड़-फोड़।

उद्भ्रम--पुं० [सं० उद्√भ्रम् (घूमना)+घञ्] १. चक्कर काटना। घूमना। २. पर्यटन। भ्रमण। ३. उद्वेग। ४. पश्चात्ताप। ५. ऐसा भ्रम जिसमें बुद्धि काम न करे। विभ्रम।

उद्भ्रमण--पुं० [सं० उद्√भ्रम्+ल्युट्-अन] चक्कर काटना या लगाना। भ्रमण करना। घूमना।

उद्भ्रांत--वि० [सं० उद्√भ्रम्+क्त] १. घूमता या चक्कर खाता हुआ। २. भ्रम में पड़ा हुआ। ३. चकित। भौचक्का। ४. उन्मत्त। पागल। ५. जो दुखी तथा विह्वल हो।
पुं० तलवार का एक हाथ जिसमें चारों ओर तलवार घुमाते हुए विपक्षी का वार रोकते और उसे विफल करते हैं।

उद्यत--वि० [सं० उद्√यम् (निवृत्ति, नियंत्रण)+क्त] १. उठाया या ताना हुआ। २. जो कोई काम करने के लिए तत्पर तथा दृढ़प्रतिज्ञ हो। कोई काम करने के लिए तैयार। मुस्तैद।

उद्यति--स्त्री० [सं० उद्√यम्+क्तिन्] १. उद्यत होने की क्रिया या भाव। २. उद्यम। ३. उठाना। उत्थापन।

उद्यम--पुं० [सं० उद्√यम्+घञ्] [कर्त्ता उद्यमी] १. कोई ऐसा शारीरिक कार्य या व्यापार जो जीविका उपार्जन करने अथवा कोई उद्देश्य सिद्ध करने के लिए किया जाता है। उद्योग। (स्ट्राइविंग) २. परिश्रम। मेहनत।

उद्यमी (मिन्)--पुं० [सं० उद्यम+इनि] उद्यम या उद्योग करनेवाला व्यक्ति।

उद्यान--पुं० [सं० उद्√या (जाना)+ल्युट्-अन] १. बाग। बगीचा। २. जंगल। वन। उदा०—नृपति पाइ यह आत्मज्ञान, राज छाँड़ि कै गयौ उद्यान।—सूर।

उद्यानक--पुं० [सं० उद्यान+कन्] छोटा उद्यान। वाटिका। बगीची।

उद्यान-करण--पुं० [प० त०] बाग-बगीचों में पौधे आदि लगाना और उनकी देख-रेख करना।

उद्यान-कर्म (न्)--पुं० [प० त०] बगीचे में पेड़-पौधे लगाने तथा उसकी देख-भाल करने की कला या विधान। (हार्टिकल्चर)

उद्यान-गृह--पुं० [मध्य० स०] किसी बड़े बगीचे में बना हुआ छोटा सुंदर मकान। (गार्डन हाउस)

उद्यान-गोष्ठी--स्त्री० [मध्य० स०] उद्यान में होनेवाली वह गोष्ठी या मित्रों का समागम जिसमें जलपान आदि हो। (गार्डन पार्टी)

उद्यान-भोज--पुं० [सं० मध्य० स०] उद्यान या बगीचे में होनेवाला भोज।

उद्यापन--पुं० [सं० उद्√या+ णिच्, पुक्+ल्युट्-अन] १. विधिपूर्वक कोई काम पूरा करना। २. समाप्ति पर किया जानेवाला कुछ विशिष्ट धार्मिक कृत्य। जैसे—हवन, गोदान आदि।

उद्यापित--वि० [सं० उद्√या+णिच्, पुक्+क्त] विधि-पूर्वक पूरा किया हुआ।

उद्युक्त--वि० [सं० उद्√युज् (मिलना)+क्त] [स्त्री० उद्युक्ता] १. तत्पर। तैयार। २. किसी काम में लगा हुआ।

उद्योग--पुं० [सं० उद्√युज्+घञ्] [कर्त्ता उद्योगी, वि० उद्युक्त, औद्योगिक] १. किसी काम में अच्छी तरह लगना। २. प्रयत्न। कोशिश। ३. परिश्रम। मेहनत। ४. कोई उद्देश्य या कार्यसिद्ध करने के लिए परिश्रमपूर्वक उसमें लगना। (एन्डेवर) ५. दे० 'उद्यम'।

उद्योग-धंधे--पुं० बहु० [सं० उद्योग+हिं० धंधा] व्यापार आदि के लिए कच्चे माल से लोक-व्यवहार के लिए पक्के माल या सामान बनाना या ऐसे सामान बनानेवाले कारखाने। (इन्डस्ट्री)

उद्योग-पति--पुं० [प० त०] कच्चे माल से पक्का माल तैयार करनेवाले किसी बड़े कारखाने का स्वामी। (इंडस्ट्रियलिस्ट)

उद्योग-शाला--पुं० [प० त०] =उद्योगालय।

उद्योगालय--पुं० [सं० उद्योग-आलय, प० त०] वह स्थान जहाँ बिक्री के लिए बनाकर चीजें तैयार की जाती हों। कारखाना। (फैक्टरी)

उद्योगी (गिन्)--वि० [सं० उद्योग+इनि] [स्त्री० उद्योगिनी] १. उद्योग या प्रयत्न करनेवाला। २. किसी काम के लिए ठीक प्रकार से परिश्रम और प्रयत्न करनेवाला। अध्यवसायी।

उद्योगीकरण--पुं० [सं० उद्योग+च्वि√कृ (करना) +ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्योगीकृत] किसी देश में उद्योग-धंधों का विस्तार करने और नये-नये कल-कारखाने स्थापित करने का काम। (इन्डस्ट्रियलाइजेशन)

उद्योत--पुं० [सं० उद्द्योत] १. प्रकाश। २. चमक।

उद्योतन--पुं० [सं० उद्द्योतन] १. चमकने या चमकाने का कार्य। प्रकाशन। २. प्रकट करना। सामने लाना। ३. भाषा विज्ञान में वह तत्त्व जो किसी शब्द या प्रत्यय में कोई नया अर्थ या भाव लगाकर उसकी द्योतकता बढ़ाता है।

उद्र--पुं० [सं०√उन्द् (भिगोना)+रक्] ऊद-बिलाव।

उद्राव--पुं० [सं० उद्√रु (शब्द) +घञ्] ऊँचा या घोर शब्द।

उद्रिक्त--वि० [सं० उद्√रिच् (अलग करना, मिलाना)+क्त] १. उद्रेक से युक्त किया हुआ। २. प्रमुख। विशिष्ट। ३. बहुत अधिक।

उद्रेक--पुं० [सं० उद्√रिच्+घञ्] [वि० उद्रिक्त] १. बहुत अधिक होने की अवस्था या भाव। अधिकता। प्रचुरता। २. प्रमुखता। ३. आरंभ। ४. रजोगुण। ५. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु के किसी गुण या दोष के आगे कई गुणों या दोषों के मंद पड़ने का वर्णन होता है।

उद्वत्सर--पुं० [सं० उद्-वत्सर, प्रा० स०] वत्सर। वर्ष।

उद्वपन--पुं० [सं० उद्√वप् (बोना, काटना)+ल्युट्-अन] १. बाहर निकालना या फेंकना। २. हिलाकर गिराना।

उद्वर्त्त--वि० [सं० उद्√वृत् (बरतना) + घञ्] १. बरतने के उपरांत जो अधिक या शेष बच रहे। २. जितना आवश्यक हो उससे अधिक। व्यय, लागत आदि की अपेक्षा मान, मूल्य आदि के विचार से अधिक (आय, मूल्यन आदि)। जैसे--उद्वर्त्त आय-व्ययिक=ऐसा आय-व्ययिक जिसमें व्यय की अपेक्षा आय अधिक दिखाई गई हो। (सरप्लस बजट) ३. अतिरिक्त। ४. फालतू।
पुं० मूल्य, मान आदि के विचार से जितना आवश्यक हो या साधारणतः जितना होना चाहिए, उसकी तुलना में होनेवाली अधिकता। 'अववर्त्त' का विपर्याय। बढ़ती। बचती। (सरप्लस, सभी अर्थों या रूपों में)

उद्वर्तक--वि० [सं० उद्√वृत्+ण्वुल्—अक] १. उठानेवाला। २. उबटन लगानेवाला। ३. वर्द्धक।

उद्वर्तन--पुं० [सं० उद्√वृत् + ल्युट्-अन] १. ऊपर उठाना। २. उबटन, लेप आदि लगाना। ३. उबटन, लेप आदि के रूप में लगाई जानेवाली चीज। ४. वर्द्धन। वृद्धि।

उद्वर्तित--भू० कृ० [सं० उद्√वृत्+णिच्+क्त] १. ऊँचा किया या उठाया हुआ। २. जिससे उवटन या लेप लगाया गया हो।

उद्वर्धन--पुं० [सं० उद्√वृध् (बढ़ना)+ल्युट्-अन] १. वर्द्धन। वृद्धि। २. किसी चीज में से निकलकर फैलना या बढ़ना।

उद्वह--पुं० [सं० उद्√वह् (ढोना, पहुँचाना)+अच्] १.पुत्र। २.सात वायुओं के अंतर्गत वह वायु जो तीसरे स्कंध पर स्थित मानी गई है। ३. उदान वायु। ४. विवाह।

उद्वहन--पुं० [सं० उद्√वह्+ल्युट्-अन] ऊपर की ओर उठाना, खींचना या ले जाना।

उद्वांत--पुं० [सं० उद्√वम् (उगलना)+क्त] कै। वमन।
वि० १.वमन किया हुआ। २.उगला हुआ।

उद्वापन--पुं० [सं० उद्√वा (गति)+णिच्, पुक्+ल्युट्-अन] आग बुझाना।

उद्वाष्पन--पुं०[सं०उद्-वाष्प, प्रा०स०,+णिच्+ल्युट्-अन]=वाष्पीकरण।

उद्वास--पुं० [सं० उद्√वस् (वसना)+णिच्+घञ्] १. बंधन से मुक्त करना। स्वतंत्र करना। २. निर्वासन। ३. वध।

उद्वासन--पुं० [सं० उद्√वस्+णिच्+ल्युट्-अन] १. कहीं से हटाना या दूर करना। २. किसी का निवास स्थान नष्ट करके उसे वहाँ से भगाना। (डिस्प्लेसमेंट) ३. उजाड़ना। ४.मार डालना। वध करना। ५.यज्ञ के पहले आसन विछाने और यज्ञ-पात्र आदि स्वच्छ करके उन्हें यथास्थान रखना। ६.प्रतिमा या मूर्त्ति स्थापित करने से पहले उसे रात भर ओषधि मिले हुए जल मे रखना।

उद्वासित--वि० [सं० उद्√वस्+णिच्+क्त] १.(व्यक्ति) जिसका निवास स्थान नष्ट कर दिया गया हो। २. (व्यक्ति) जिसे अपने निवास-स्थान से मार-पीट या उजाड़कर भगा दिया गया हो। (डिस्प्लेस्ड)

उद्वाह--पुं० [सं० उद्√वह् (ले जाना)+घञ्] १.ऊपर की ओर ले जाना। २.दूसरे स्थान पर या दूर ले जाना। जैसे--दुलहिन को उसके माता-पिता के घर से ले जाना। ३.विवाह। ४.वायु के सात प्रकारों में से चौथा प्रकार।

उद्वाहन--पुं० [सं० उद्√वह्+णिच्+ल्युट्] [भू० कृ० उद्वाहित] १. ऊपर की ओर उठाने या ले जाने का कार्य। २.दूर करना या हटाना। ३. एक बार जोते हुए खेत को फिर से जोतना। चास लगाना। ४. विवाह।

उद्वाहिक--वि० [सं० उद्वाह+ठन्-इक] उद्वाह-संबंधी।

उद्वाही (हिन्)--वि० [सं० उद्√वह्+णिनि] १.ऊपर की ओर ले जानेवाला। २.दूसरे स्थान पर या दूर ले जानेवाला। ३.विवाह करने के लिए उत्सुक (व्यक्ति)।

उद्विग्न--वि० [सं० उद्√विज् (भय, विचलित होना)+क्त] [भाव० उद्विग्नता] जो किसी आशंका, दुःख आदि के कारण उद्वेग से युक्त या बहुत आकुल हो। चिंतित और विचलित। घबड़ाया हुआ।

उद्विग्नता--स्त्री० [सं० उद्विग्न+तल्-टाप्] उद्विग्न होने की अवस्था या भाव।

उद्वेग--पुं० [सं० उद्√विज् (भय)+घञ्] १.तीव्र वेग। तेज गति। २. चित्त की किसी वृत्ति की तीव्रता। आवेश। जोश। ३. विरहजन्य चिंता और दुःख जो साहित्य में एक संचारी भाव माना गया है। ४. किसी विकट या चिंताजनक घटना के कारण लोगों को होनेवाला वह भय जिसके फलस्वरूप लोग अपनी रक्षा के उपाय सोचने लगते हैं। (पैनिक)

उद्वेगी (गिन्)--वि० [सं० उद्वेग+इनि] उद्विग्न।

उद्वेजक--वि० [सं० उद्√विज्+णिच्+ण्वुल्-अक] उद्वेग उत्पन्न करने या उद्विग्न करनेवाला।

उद्वेजन--पुं० [सं० उद्√विज्+णिच्+ल्युट्-अन] किसी के मन में कुछ या कोई उद्वेग उत्पन्न करना।

उद्वेलन--पुं० [सं० उद्√वेल् (चलाना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्वेलित] १. (नदी आदि के) बहुत अधिक भर जाने के कारण जल का छलककर इधर-उधर बहना। २.सीमा का अतिक्रमण या उल्लंघन करना।

उद्वेल्लित--वि० [सं० उद्√वेल्ल् (चलाना)+क्त] १. उछलता हुआ। २.छलकता या ऊपर से बहता हुआ।

उद्वेष्टन--पुं० [सं० उद्√वेष्ट् (घेरना, लपेटना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उद्वेष्टित] १.घेरा। बाड़ा। २.घेरने की क्रिया या भाव। ३. नितंब में होनेवाली पीड़ा।

उधकना†--अ० १.=उधड़ना। २.=उधरना।

उधड़ना--अ० [सं० उद्धरण=उधड़ना] १.तितर-बितर होना। बिखरना। २.ऊपर की परत या चिपकी हुई चीज का अलग होना। ३.सीयन आदि खुलना या टूटना।

उधम*--पुं०=ऊधम।

उधर--अव्य० [सं० उत्तर अथवा पुं० हिं० ऊ (वह)+धर (प्रत्य०)] १.उस तरफ जिधर वक्ता ने संकेत किया हो। वक्ता के विपक्ष में या सामने की ओर, कुछ दूरी पर। २.पर पक्ष की ओर या उसके आस-पास। 'इधर' का विपर्याय।

उधरना*--अ० [सं० उद्धरण] १.संकट आदि से उद्धार पाना या मुक्त होना। उदा०--अनायास उधरी तेहि काला।--तुलसी।
स० [सं० उद्धरण] १.उद्धार करना। उबारना। २. पाठ की उद्धरणी करना।
स०=उधड़ना।

उधराणी*--स्त्री० [सं० उद्धार, हिं० उधार] उधार दिया हुआ धन वसूल करना। उगाही। वसूली। (राज०)

उधराना--अ० [सं० उद्धरण] १.हवा के झोंके में पड़कर इधर-उधर छितराना या बिखरना। जैसे--रूई उधराना। २.बहुत उद्दंड होकर उपद्रव या ऊधम मचाना। ३.नष्ट-भ्रष्ट हो जाना। न रह जाना। उदा०--कहै रत्नाकर पै सुधि उधिरानी सबै, धूरि परि धीर जोग-जुगति-सँघाती पर।--रत्नाकर।
स० १.किसी को उधरने में प्रवृत्त करना। २.दे० 'उधेड़ना'।

उधलना--अ० [हिं० उढ़रना] स्त्री का किसी अन्य पुरुष के साथ भाग जाना।

उधसना--स० [सं० उद्वसन, हिं० उधरना] बिखरना। फैलना। उदा०--उधसल केस कुसुम छिरिआएल।--विद्यापति।

उधार--पुं० [सं० उद्धार] १.कोई चीज इस प्रकार खरीदना या बेचना कि उसका दाम कुछ समय बाद दिया या लिया जाय। २.वह धन या रकम जो उक्त प्रकार से खरीदने या बेचने के कारण किसी के जिम्मे

निकलती हो या बाकी पड़ी हो। जैसे—हमारे तो हजारों रुपये उधार में ही डूब गये।

पद—उधार खाता=(क) पंजी या वही का वह अंग या विभाग जिसमें उधार दी या ली हुई रकमें लिखी जाती हैं। (ख) विना तुरंत मूल्य चुकाये चीजें खरीदने या वेचने की परिपाटी।

वि० जो किसी से कुछ समय तक अपने उपयोग में लाने के लिए और कुछ दिन बाद लौटा देने के वादे पर माँगकर लिया गया हो। जैसे—(क) इस समय किसी से दस रुपये उधार लेकर काम चला लो। (ख) अभी तो सौ रुपये के उधार आये है।

विशेष—लोक-व्यवहार में 'उधार' का प्रयोग मुख्यतः धन के संबंध में ही प्रशस्त माना जाता है; वस्तुओं के संबंध में अधिकतर 'मँगनी' का ही प्रयोग होता है।

मुहा०—(किसी काम या वात के लिए) उधार खाये बैठना=(क) कोई काम या बात करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होना। कुछ करने के लिए तुले रहना। जैसे—तुम तो उन्हें हरदम चिढ़ाने के लिए उधार खाये बैठे हो। (ख) किसी काम या बात के लिए ताक लगाये रहना। बहुत ही उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करना। जैसे—वे तो चाचा के मरने के नाम पर उधार खाये बैठे है (अर्थात् इस प्रतीक्षा में है कि कब चाचा मरें और कब उनकी संपत्ति हाथ आवे)।

*पुं०=उद्धार।

उधारक*—वि०=उद्धारक।

उधारन*—वि० [सं० उद्धार] उद्धार करनेवाला। उद्धारक (यौ० शब्दों के अंत में, जैसे—विपति-उधारन।)

उधारना*—स० [सं० उद्धरण] किसी को विपत्ति या संकट से निकालना या मुक्त करना। उद्धार करना। उदा०—कौने देव बराय विरद-हित हठि हठि अधम उधारे।—तुलसी।

उधारी*—वि० [सं० उद्धारिन्] उद्धार करनेवाला।

स्त्री०=उधार।

वि० उधार माँगनेवाला।

उधियाना—अ० [हिं० ऊधम] बहुत उत्पात करना या ऊधम मचाना।

अ०=उधड़ना।

स०=उधेड़ना।

उधेड़ना—स० [सं० उद्धरण=उन्मूलन, उखाड़ना] १. लगी हुई पर्तें अलग करना। उखाड़ना।

मुहा०—उधेड़कर रख देना=(क) कच्चा चिट्ठा खोल देना। रहस्य-भेदन करना। (ख) बहुत मारना-पीटना।

२. सिलाई के टाँके खोलना। ३. छितराना। बिखेरना।

उधेड़बुन—स्त्री० [हिं० उधेड़ना+बुनना] ऐसी मानसिक स्थिति जिसमें किसी काम या बात के लिए तरह-तरह के उपाय सोचे और फिर किसी कारण से व्यर्थ समझकर छोड़े और फिर उनके स्थान पर नये उपाय सोचे जाते हैं। बार-बार किया जानेवाला सोच-विचार।

उधेरना—स०=उधेड़ना।

उनंगा—वि० [हिं० ऊन (कम)+अंग] [स्त्री० उनंगी] नीचे की ओर झुका हुआ। नत।

उनंत*—वि० [सं० उन्नत] १. आगे बढ़ा हुआ। उन्नत। २. ऊपर उठा हुआ। उदा०—भई उनंत प्रेम कै साखा।—जायसी।

उन—सर्व० १. हिं० 'उस' का (क) संख्यावाचक बहुवचन रूप। (ख) आदरार्थक बहुवचन रूप। २. प्रिय या प्रेमपात्र के लिए प्रयुक्त होनेवाला सांकेतिक सर्वनाम। उदा०—नैनन नींद गई है, उन बिन तलफत मैं दईमारी।—मदारीदास।

उनचन—स्त्री० [सं० उदंचन=ऊपर उठाना या खींचना] खाट या चारपाई में पैताने की ओर बाँधी जानेवाली वह रस्सी जिसकी सहायता से वह ढीली होने पर कसी जाती है।

उनचना—स० [हिं० उनचन] खाट या चारपाई के पैतानेवाली रस्सी के फंदे इस प्रकार खींचना कि उसकी ढीली बुनावट कस जाय।

उनचास—वि० [सं० एकोनपंचाशत, पा० एकोनपंचास, उनपंचास] जो गिनती में चालीस और नौ हो। पचास से एक कम।

पुं० चालीस और नौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४९।

उनतिस(तीस)—वि० [सं० एकोनत्रिंशत, पा० एकुनतीसा, उनतीसा] जो गिनती में बीस और नौ हो। तीस से एक कम।

पुं० बीस और नौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२९।

उनदा†—वि०=उनींदा।

उनदौहाँ*—वि०=उनींदा।

उनना†—स०=बुनना।

*अ०=उनवना।

उनमद*—वि०=उन्मत्त।

उनमना*—वि०=अनमना।

उनमनी*—स्त्री०=उन्मनी (योग की क्रिया)।

उनमाथना*—स० [सं० उन्मथन] मथना।

उनमाथी—वि० [हिं० उनमाथना से] मथनेवाला।

उनमाद*—पुं०=उन्माद।

उनमादना†—अ० [हिं० उनमाद] उन्माद से युक्त होना। उन्मत्त होना।

स० किसी को उन्मत्त करना।

उनमान*—पुं० [सं० उद्-मान] १. नाप-तौल आदि का मान। परिमाण। २. गहराई, गुरुत्व आदि का पता। थाह। ३. शक्ति। सामर्थ्य। ४. उपमा। तुलना।

*पुं०=अनुमान।

उनमानना*—स० [हिं० उनमान] अनुमान करना। अटकल लगाना।

उनमाना—अ० [सं० उन्मादन] १. उन्मत्त या पागल होना। २. प्रेम आदि से विह्वल होना। उदा०—ऋषिवर तहँ छंदवास, गावत कल-कंठ हास, कीर्त्तन उनमाय काम क्रोध कंपिनी।—तुलसी।

स० १. उन्मत्त या पागल करना। २. विभोर या विह्वल करना।

उनमानि*—स्त्री० [हिं० उनमान] उपमा। तुलना। उदा०—कमल-दल नैनन की उनमानि।—रहीम।

उनमीलन*—पुं०=उन्मीलन।

उनमुना—वि० [हिं० अनमना] [स्त्री० उनमुनी] १. अन्य-मनस्क। अनमना। २. मौन। चुप।

उनमुनी*—स्त्री०=उन्मनी।

उनमूलना*—स० [सं० उन्मूलन] १ किसी वस्तु को जड़ से खोदना। उन्मूलन करना। २. पूर्ण रूप से नष्ट कर डालना।

उनमेख*—पुं० [सं० उन्मेष] १. थोड़ा-सा खिलना या खुलना। २. मंद या हलका प्रकाश। उदा०—भ्रमर द्वै रविकिरन ल्याए, करन जनु उनमेखु।—तुलसी।

उनमेखना*—स० [सं० उन्मेष] १. आँखे खोलना। २. देखना। ३. (फूल आदि) खिलाना।

उनमेद—पु० [सं० उद=जल+मेद=चरवी] जलाशयों में, वर्षा काल के आरंभ में उठनेवाली एक प्रकार की विपाक्त फेन, जिसे खा लेने से मछलियाँ मर जाती है। माँजा।

उनमोचन*—पु०=उन्मोचन।

उनयना*—अ० [सं० उनमन] १. झुकना। लटकना। २. चारों ओर से घिर आना। छाना। उदा०—गहि मंदर वंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।—तुलसी।

उनरना*—अ० [सं० उन्नरण=ऊपर जाना] १. ऊपर उठना या वढ़ना। उदा०—उनरत जोवनु देखि नृपति मन भावइ हो।—तुलसी। २. चारों ओर से उमड़ना, घिरना या छाना। ३. उछलते या कूदते हुए आगे वढ़ना।

उनवना—अ० [सं० उन्नमन] १. झुकना। २. चारों ओर से या ऊपर से आ घिरना। उदा०—कजरारे दृग की घटा जब उनवैं जिहिं ओरा।—रसनिधि। ३. अकस्मात् प्रकट होना या सामने आना।

स० १. झुकाना। २. घेरना। ३. प्रकट करना। सामने लाना।

उनवर*—वि० [स० ऊन=कम] १. कम। न्यून। २. तुच्छ। हीन।

उनवान†—पु०=अनुमान।

उनसठ—वि० [सं० एकोनषष्टि, प्रा० एकुन्नसट्ठि, उनसट्ठि] जो गिनती में पचास और नौ हो। साठ से एक कम।

पुं० पचास और नौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५९।

उनहत्तर—वि० [सं० एकोनसप्तति, प्रा० एकोनसत्तरि, उनसत्तरि, उनहत्तरि] जो गिनती में साठ और नौ हो। सत्तर से एक कम।

पु० साठ और नौ की सख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६९।

उनहानि*—स्त्री०=उन्हानि।

उनहार*—वि० [सं० अनुसार, प्रा० अनुहार] सदृश। समान।

स्त्री० १. समानता। सादृश्य। २. किसी के अनुरूप वनी हुई कोई दूसरी वस्तु। प्रतिकृति।

उनहास—वि०, स्त्री०=उनहार।

उनाना†—स० [सं० उन्नयन] १. नीचे की ओर लाना। झुकाना। २. किसी की ओर अनुरक्त या प्रवृत्त करना। लगाना। ३. ध्यान देना। मन लगाना। ४. आज्ञा का पालन करना।

अ० आज्ञा मानना।

*स०=वुनवाना।

उनारना—स० [सं० उन्नयन] १. ऊपर की ओर उठाना। २. आगे वढ़ाना। ३. दे० 'उनाना'।

उनारी†—स्त्री० [हिं० उन्हला ?] रवी की फसल या वोआई। (वुंदेल०)

उनासी†—वि०, पुं०=उन्नासी।

उनाह—पु० [सं० ऊष्मा ?] भाप।

उनि*—सर्व०=उन्होने।

उनिदौंहीं†—वि०=उनीदा।

उनींद—स्त्री० [सं० उन्निद्रा] वहुत अधिक निद्रा आने या नीद से भरे होने की अवस्था। उदा०—लरिका स्रमित उनीद वस सयन करावहु जाइ।—तुलसी।

उनींदा—वि० [सं० उन्निद्र] [स्त्री० उनीदी] १. (आँखे) जिसमे नींद भरी हो। २. (व्यक्ति) जिसे नींद आ रही हो। ऊँघता हुआ। उदा०—आजु उनीदे आए मुरारी।—तुलसी। ३. नीद के कारण अलसाया हुआ।

उनैना*—अ० दे० 'उनवना'।

उन्नइस†—वि०=उन्नीस।

उन्नत—वि० [सं० उद्√नम् (झुकना)+क्त] १. जो ऊपर की ओर झुका या नत हुआ हो। २. ऊपर की ओर उठा हुआ। ऊँचा। ३. पद, मर्यादा, स्थिति आदि के विचार से जो पहले से अथवा अपने वर्ग के अन्य सदस्यो से वहुत आगे वढ़ा हुआ हो। श्रेष्ठ। ४. दीर्घ, महान या विशाल।

पु० अजगर।

उन्नतांश—पु० [सं० उन्नत-अंश, कर्म० स०] १. किसी आधार, स्तर या रेखा से अथवा किसी की तुलना में ऊपर की ओर का विस्तार। ऊँचाई। (आल्टिट्यूड) २. फलित ज्यौतिष में, दूज के चंद्रमा का वह कोना या शृंग जो दूसरे कोने या शृंग से कुछ ऊपर उठा हुआ हो।

उन्नति—स्त्री० [सं० उद्√नम्+क्तिन्] १. उन्नत होने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. उच्चता। ३. किसी कार्य या क्षेत्र मे अच्छी तरह और वरावर आगे वढ़ते रहने या विकसित होते रहने की अवस्था, क्रिया या भाव। (प्रोग्रेस) जैसे—यह लड़का पढ़ाई मे अच्छी उन्नति कर रहा है।

उन्नति-शील—वि० [व० स०] (व्यक्ति या व्यापार) जिसमें उन्नति करते रहने की योग्यता हो अथवा जो वरावर उन्नति कर रहा हो।

उन्नतोदर—पु० [स० उन्नत-उदर, कर्म० स०] वृत्त-खंड आदि का ऊपर उठा हुआ कोई अंश या तल।

वि० दे० 'उत्तल'।

उन्नद्ध—वि० [स० उद्√नह् (वंधन)+क्त] १. कसकर वाँधा हुआ। २. वढ़ाया हुआ। ३. उठाया हुआ। ४. अभिमानी और उद्धत।

उन्नमन—पु० [स० उद्√नम्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उन्नमित] १. ऊपर उठाना या ले जाना। २. उन्नत होना। उन्नति करना। ३. वनाकर तैयार या खड़ा करना।

उन्नम्र—वि० [सं० उद्√नम्+रन्] १. जो सीधा खड़ा हो। २. वहुत ऊँचा।

उन्नयन—पुं० [सं० उद्√नी (ले जाना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उन्नति, कर्त्ता उन्नायक] १. ऊपर की ओर उठाना या ले जाना। २. ऐसा काम करना जिससे कोई आगे वढ़े या उन्नति करे। किसी की उन्नति का कारण वनना। ३. किसी को ऊँची कक्षा या वर्ग में अथवा ऊँचे पद पर पहुँचाना या भेजना। (प्रोमोशन) ४. ऊपर की ओर उठते हुए रूप मे वनाना या रचना। जैसे—सीमन्तोन्नयन। ५. निष्कर्प। सारांश।

वि० [सं० उद्+नयन] जिसकी आँखे ऊपर की ओर उठी हों।

उन्नयन-यंत्र—पु० [प० त०] दे० 'उत्थानक'।

करनेवाला। २. (खाने-पीने की चीज) जिससे नशा होता हो।
पु० धतूरा।

उन्मादन--पु० [सं० उद्√मद्+णिच्+ल्युट्–अन] १. उन्मत्त करने की क्रिया या भाव। उन्माद उत्पन्न करना। २. कामदेव के पाँच बाणों में से एक।

उन्मादी (दिन्)--वि० [सं० उन्माद्+इनि] [स्त्री० उन्मादिनी] १. जो उन्माद रोग से ग्रस्त हो। २. उन्माद-संबंधी।

उन्मान--पुं० [सं० उद्√मा (मापना)+ल्युट्–अन] १. ऊँचाई नापने का एक नाप या माप। २. द्रोण नामक पुरानी तौल। ३. मूल्य या महत्त्व समझना।

उन्मार्ग--पु० [सं० उद्-मार्ग, प्रा० स०] १. अनुचित या बुरा मार्ग। खराब रास्ता। २. अनुचित और निंदनीय आचरण। खराब चाल-चलन।

उन्मार्गी (गिन्)--वि० [सं० उन्मार्ग+इनि] १. बुरे रास्ते पर चलनेवाला। कुमार्गी। २. जिसका आचरण बुरा हो।

उन्मार्जन--पु० [सं० उद्√मार्ज् (शुद्धि, मिटाना)+णिच्+ल्युट्–अन] [भू० कृ० उन्मार्जित] १. कोई चीज रगड़कर उस पर का कोई चिह्न मिटाना। २. मल या रगड़कर साफ करना।

उन्मित--भू० कृ० [सं० उद्√मा+क्त] १. नापा या मापा हुआ। २. तौला हुआ।

उन्मिति--स्त्री० [सं० उद्√मा+क्तिन्] १. नाप। माप। २. तौल।

उन्मिष--वि० [सं० उद्√मिष् (सींचना)+क] १. खुला हुआ। २. खिला हुआ।
*पुं०=उन्मेष।

उन्मीलन--पुं० [सं० उद्√मील् (पलक मारना)+ल्युट्–अन] [वि० उन्मीलनीय, भू० कृ० उन्मीलित, कर्त्ता उन्मीलक] १. (पलकें ऊपर उठाकर) आँखें खोलना। २. (फूल) खिलना। विकसित होना। ३. प्रकट होना। सामने आना। उदा०—विश्व का उन्मीलन अभिराम।—प्रसाद। ४. चित्र-कला में खुलाई नाम की क्रिया।
अ० विशेष दे० 'खुलाई'।

उन्मीलना*--स० [सं० उन्मीलन] १. खोलना। २. विकसित करना। खिलाना।
अ० १. खुलना। २. खिलना।

उन्मीलित--भू० कृ० [सं० उद्√मील्+क्त] १. (नेत्र) जो खुला हुआ हो। २. (फूल) जो खिला हुआ हो।
पुं० साहित्य में, एक अलकार जिसमें समान गुण धर्मवाले दो पदार्थों के आपस में मिलकर एक हो जाने पर भी किसी विशेष कारण से दोनों का अंतर प्रकट होने का उल्लेख होता है। जैसे—चाँदनी रात में जानेवाली अभिसारिका नायिका के संबंध में यह कहना कि वह तो चाँदनी के साथ मिलकर एक हो गई थी, और उसके शरीर से निकलनेवाली सुगंध के आधार पर ही उसकी सखी उसके पीछे पीछे चली जा रही थी।

उन्मुक्त--भू० कृ० [स० उद्√मुच् (खुलना, छोड़ना)+क्त] १. जिसे बंधन से छुटकारा मिला हो। मुक्त किया हुआ। २. खुला हुआ।

उन्मुक्ति--स्त्री० [सं० उद्√मुच्+क्तिन्] १. उन्मुक्त करने या होने की अवस्था या भाव। छुटकारा। मुक्ति। २. किसी प्रकार के अभियोग, बंधन आदि से छोड़ा जाना। (डिस्चार्ज)

उन्मुख--वि० [सं० उद्-मुख, ब० स०] [स्त्री० उन्मुखा, भाव० उन्मुखता] १. जो ऊपर की ओर मुँह उठाए हुए हो। २. जो किसी को या किसी की ओर देख रहा हो। ३. जो उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा हो। ४. उद्यत। प्रस्तुत।

उन्मुग्ध--वि० [सं० उद्-मुग्ध, प्रा० स०] १. जो किसी पर बहुत अधिक आसक्त हो। २. बहुत अधिक मूर्ख। जड़। ३. व्याकुल। घबराया हुआ।

उन्मुद्र--वि० [सं० उद्-मुद्रा, ब० स०] १. जिस पर मोहर न लगी हो। २. खिला या खुला हुआ।

उन्मुनि--स्त्री०=उन्मनी।

उन्मूलक--वि० [सं० उद्√मूल् (रोपना)+णिच्+ण्वुल्–अक] उन्मूलन करने या जड़ से उखाड़ फेंकनेवाला।

उन्मूलन--पुं० [सं० उद्√मूल्+णिच्+ल्युट्–अन] [वि० उन्मूलनीय, भू० कृ० उन्मूलित] १. मूल या जड़ से उखाड़कर फेंकने की क्रिया या भाव। समूल नष्ट करना। २. किसी चीज को इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करना या हानि पहुँचाना कि वह फिर से उठ, पनप या विकसित न हो सके। (एक्सटर्मिनेशन) ३. किसी का अस्तित्व मिटाना। (एबालिशन)

उन्मूलित--भू० कृ० [सं० उद्√मूल्+णिच्+क्त] १. जड़ से उखाड़ा हुआ। २. पूरी तरह से नष्ट किया हुआ। ३. जिसका अस्तित्व न रहने दिया गया हो। (एबॉलिश्ड)

उन्मेष--पुं० [सं० उद्√मिष्+घञ्] [वि० उन्मिषित] १. (आँख का) खुलना। २. (फूल का) खिलना। ३. प्रकट होना। ४. थोड़ा, मंद या हलका प्रकाश।

उन्मेषी (षिन्)--वि० [सं० उद्√मिष्+णिच्+णिनि] १. खोलनेवाला। जैसे—नेत्र-उन्मेषी। २. खिलानेवाला।

उन्मोचन--पुं० [उद्√मुच्+णिच्+ल्युट्–अन] [कर्त्ता उन्मोचक] १. बंधन आदि से मुक्त करना। खोलना। २. कष्ट, संकट आदि से छुड़ाना।

उन्ह--सर्व० हिं० 'उस' का वह अवधी बहुवचन रूप जो उसे विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है। उदा०—साँचेहु उन्ह कै मोह न माया।—तुलसी।

उन्हानि*--स्त्री०=उन्हारि।

उन्हारि*--स्त्री० [सं० अनसार, हिं० अनुहार] १ बराबरी। समता। २. आकृति, रूप-रंग आदि में किसी के साथ होनेवाली समानता। ३. किसी के ठीक समान बनी हुई कोई दूसरी चीज या रूप।

उन्हारी--स्त्री० [हिं० उन्हाला] रबी की फसल (बुन्देल०)।

उन्हाला†--पुं० [सं० उष्ण-काल] ग्रीष्म ऋतु। गरमी के दिन।

उपंग--पुं० [सं० उपांग] १ नसतरंग नाम का बाजा। २ उद्धव के पिता का नाम।

उपंगी--वि० [सं० उपांग] जो उपंग या नसतरंग बजाता हो।

उपंत*--वि० [सं० उत्पन्न, पा० उप्पन्न] उत्पन्न। पैदा।

उप--उप० [सं०√वप्+क ?] एक संस्कृत उपसर्ग जो क्रियाओं और संज्ञाओं के पहले लगकर उनके अर्थों में अनेक प्रकार की विशेषताएँ उत्पन्न करता है। यथा—१. किसी की ओर या दिशा में। जैसे—उप-क्रमण, उपगमन। २. काल, रूप, मान, संख्या आदि के विचार से

किसी के अनुरूप, लगभग या सदृश्य होने पर भी उससे कुछ घटकर, छोटा, निम्न कोटि का या हलका। जैसे—उप-देवता, उप-धातु, उप-मन्त्री, उप-विष, उपेंद्र (इंद्र का छोटा भाई)। ३. किसी के पास रहने या होनेवाला अथवा स्थित। जैसे—उप-कूप, उप-कूल, उप-तीर्थ। ४. कोई काम करने का विशिष्ट आयास, प्रकार या सामर्थ्य। जैसे—उपकार, उपदेश, उपार्जन। ५. किसी प्रकार की अधिकता या तीव्रता। जैसे—उप-तापन। ६. पूर्वता या प्राथमिकता। जैसे—उपज्ञा। ७. विस्तार या व्याप्ति। जैसे—उपकीर्ण। ८. अलंकरण या सजावट। जैसे—उपस्करण। ९. ऊपर की ओर होनेवाला। जैसे—उप-लेपन। आदि-आदि।

विशेष—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार कभी-कभी यह आदेश, इच्छा, प्रयत्न, रोग, विनाश आदि के भावों से भी युक्त होता है।

उपइया†—पुं०=उपाय।

उप-कंठ—वि० [सं० अत्या० स०] जो समीप हो।
पुं० १. सामीप्य। २. गाँव की सीमा के पास का स्थान। ३. घोड़े की सरपट चाल।

उप-कथन—पुं० [सं० अत्या० स०] १. किसी के कथन के उत्तर के रूप में अथवा अपने पूर्व कथन की पुष्टि के लिए कही जानेवाली बात। जैसे—कथनोपकथन। २. किसी कार्य, घटना, व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में आलोचना या मत के रूप में कही या लिखी जानेवाली बात। टिप्पणी। (रिमार्क)

उप-कथा—स्त्री० [सं० अत्या० स०] छोटी कथा या कहानी (विशेषतः किसी बड़ी कथा या कहानी के अन्तर्गत रहनेवाली)।

उप-कनिष्ठिका—स्त्री० [सं० अत्या० स०]सबसे छोटी उँगली या कनिष्ठिका के पास की उँगली। अनामिका।

उप-कन्या—स्त्री० [सं० अत्या० स०] कन्या की सखी या सहेली जो कन्या के समान ही मानी गई है।

उप-कर—पुं० [सं० अत्या० स०] कुछ विशिष्ट स्थितियों में या कुछ विशिष्ट वस्तुओं पर लगनेवाला एक प्रकार का छोटा कर। (सेस)

उपकरण—पुं० [सं० उप√कृ (करना)+ल्युट्—अन] १. वे वस्तुएँ जिनकी सहायता से कोई काम होता या चीज बनती हो। सामग्री। सामान। (मैटीरियल) २. वे चीजें या बातें जो किसी के अंगों, उपांगों आदि के रूप में आवश्यक हों। जैसे—प्राचीन भारत में छत्र, चँवर, आदि राजाओं के उपकरण माने जाते थे। ३. कुछ बड़े और कई अंगों, उपांगों से युक्त वे औजार या यन्त्र जिनकी सहायता से कोई काम किया या चीजें बनाई जाती हैं। (इम्प्लीमेण्ट) जैसे—करघा, परेता आदि जुलाहों के और हल, पाटा आदि खेती के उपकरण हैं। ४. दे० 'उपकार'।

उपकरना*—स० [सं० उपकार] किसी के साथ उपकार या भलाई करना।

उपकर्णिका—स्त्री० [सं०उप√कर्ण् (भेदन करना) +ण्वुल्—टाप्, इत्व] जनश्रुति।

उपकर्ता (र्तृ)—पुं० [सं० उप√कृ (करना)+तृच्] १. दूसरों का उपकार या भलाई करनेवाला। २. अच्छे या उपकार के काम करनेवाला।

उपकर्षण—पुं० [सं० उप√कृष् (खींचना)+ल्युट्—अन] अपनी ओर खींचना।

उपकल्प—पुं० [सं० अत्या० स०] १. धन-सम्पत्ति। २. सामग्री। सामान। ३. दे० 'अनुकल्प'।

उपकल्पन—पुं० [सं० उप√क्लृप् (रचना करना)+ल्युट्—अन] कोई काम करने की तैयारी करना। (प्रिपरेशन)

उपकल्पना—स्त्री० [सं० उप√क्लृप्+णिच्+युच्—अन—टाप्]दे० 'परिकल्पना'।

उपकल्पित—भू० कृ० [सं० उप√क्लृप्+क्त]=परिकल्पित।

उपकार—पुं० [सं० उप√कृ (करना)+घञ्] १. जीवों या प्राणियों के हित के लिए, उन्हें कष्ट, पीड़ा, संकट आदि से बचाने के लिए अथवा उनके सुख-सुभीते में वृद्धि करने के लिए किया जानेवाला कोई अच्छा या शुभ कार्य। ऐसा कार्य जिससे दूसरों की भलाई हो। जैसे—दरिद्रों को धन देना, रोगियों की चिकित्सा करना आदि। २. कोई अच्छा और लाभदायक कार्य या फल। जैसे—इस दवा से बहुत उपकार हुआ है। ३. सेवा और सहायता।

उपकारक—वि० [सं० उप√कृ+ण्वुल्—अक] [स्त्री० उपकारिका] १. दूसरों का उपकार, भलाई या हित करनेवाला। २. (वस्तु) जिससे उपकार या भलाई होती हो।

उपकारिका—स्त्री० [सं० उपकारक+टाप्, इत्व] १. राजभवन। २. खेमा। तम्बू।

उपकारिता—स्त्री० [सं० उपकारिन्+तल्—टाप्] उपकारी होने की अवस्था या भाव।

उपकारी (रिन्)—वि० [सं० उप√कृ+णिनि] [स्त्री० उपकारिणी] १. दूसरों का उपकार, भलाई या हित करनेवाला। २. फायदा पहुँचानेवाला। लाभदायक। जैसे—रोग के लिए उपकारी औषध।

उपकार्य—वि० [सं० उप√कृ+ण्यत्] जिसका उपकार किया जाने को हो अथवा किया जा सकता हो। उपकार का अधिकारी या पात्र।

उपकीर्ण—भू० कृ० [सं० उप√कॄ+(बिखेरना)+क्त] १. छितराया या बिखेरा हुआ। २. ढका हुआ।

उपकुर्वाण—पुं० [सं० उप√कृ+शानच्] वह ब्रह्मचारी जो स्वाध्याय पूरा करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रहा हो।

उप-कुल—पुं० [सं० अत्या० स०] किसी कुल के अन्तर्गत उसका कोई छोटा विभाग। (सब-फैमिली)

उपकुल्या—स्त्री० [सं० उप√कुल् (बंधन)+यत्, नि०] १. छोटी नहर। २. खाई। ३. पिप्पली।

उपकुश—पुं०[सं० उप√कुश् (मिलना)+अच्] एक रोग जिससे मसूड़े फूल जाते हैं और दाँत हिलने लगते हैं।

उप-कूल—पुं० [सं० अव्य० स०] १. नदी आदि के कूल या तट के पास का स्थान। २. किनारा। तट।

उपकृत—वि० [सं० उप√कृ (करना)+क्त] १. जिसका उपकार, भलाई या सहायता की गई हो। २. अपने प्रति किया हुआ उपकार माननेवाला। कृतज्ञ।

उपकृति—स्त्री० [सं० उप√कृ+क्तिन्] १. उपकार। भलाई। २. सहायता।

उपकृती (तिन्)—वि० [सं० उपकृत+इनि]=उपकारक।

उपक्रम—पुं० [सं० उप√क्रम् (गति)+घञ्] १. चलकर किसी के पास

पहुँचना। २. कोई कार्य आरम्भ करने से पहले किया जानेवाला आयोजन। (प्रिपरेशन)। ३. भूमिका।

उपक्रमण--पुं० [सं० उप√क्रम्+ल्युट्–अन] १. चलकर पास आना। आगमन। २. किसी कार्य का अनुष्ठान। आरम्भ। ३. आयोजन। तैयारी। ४. ग्रन्थ आदि की भूमिका। ५. इलाज। चिकित्सा।

उपक्रमणिका--स्त्री० [सं० उपक्रमण+ङीप्+कन्–टाप्, ह्रस्व] १.= अनुक्रमणिका। २. वह वैदिक ग्रन्थ जिसमें वेदों के मन्त्रों और सूक्तों के ऋषियों, छंदों आदि का उल्लेख है।

उपक्रमिता (तृ)--वि० [सं० उप √क्रम्+तृच्] उपक्रमण करनेवाला।

उपक्रांत--वि० [सं० उप√क्रम्+क्त] १.(कार्य) जो आरंभ किया जा चुका हो। २. (विषय) जिसकी पहले चर्चा हो चुकी हो। ३. (व्यक्ति) जिसकी चिकित्सा हो चुकी हो।

उपक्रिया--स्त्री० [सं० उप√कृ+श, इयङ–टाप्] उपकार। भलाई।

उपक्रोश--पुं० [स० उप√कुश्+घञ्] [वि० उपकुष्ट] १. गाली। दुर्वचन। २. अपवाद। निन्दा। ३. तिरस्कार।

उपक्रोष्टा (ष्टृ)--वि० [सं० उप√कुश् (शब्द करना)+तृच्] उपक्रोश करनेवाला।

पुं० गधा। गर्दभ।

उपक्षय--पुं० [सं० उप√क्षि (नाश)+अच्] क्रमशः थोड़ा थोड़ा या धीरे-धीरे होनेवाला क्षय। ह्रास।

उपक्षेप--पुं० [सं० उप√क्षिप् (प्रेरण)+घञ्] १. अभिनय के आरंभ में नाटक के वृत्तान्त का संक्षिप्त कथन। २. किसी काम का ठेका पाने के लिए उसके व्यय के विवरण सहित दिया जानेवाला आवेदन-पत्र। (टेण्डर) ३. दे० 'आक्षेप'।

उपखंड--पु० [सं० अत्या० स०] १. किसी खंड का कोई छोटा खंड या टुकड़ा। २. किसी धारा या उपधारा के अंश या खंड का कोई छोटा विभाग। (सब-क्लॉज़)

उपखान*--पुं०=उपाख्यान।

उपगंता--पु० [सं० उप√गम् (जाना)+तृच्] १. चलकर पास पहुँचनेवाला। २. मान्य या स्वीकृत करनेवाला। ३. जानकार। ज्ञाता।

उपगत--वि० [सं० उप√गम्+क्त] १. जो किसी के पास (प्रायः सहायता या शरण पाने के लिए) पहुँचा हो। २.जाना हुआ। ज्ञात। ३. अंगीकृत, गृहीत या स्वीकृत। ४. व्यय आदि के रूप में अपने ऊपर आया या लगा हुआ। (इन्कर्ड)

उपगति--स्त्री० [सं० उप√गम्+क्तिन्] १. किसी के पास जाने या पहुँचने की क्रिया या भाव। २. प्राप्ति। ३. स्वीकृति। ४. ज्ञान।

उपगम--पु० [सं० उप√गम्+अप्] १. किसी के पास या समीप जाना। कहीं पहुँचना। २. भेंट करना। ३. प्राप्त या स्वीकृत करना। ४. वचन। वादा। ५. ज्ञान। जानकारी।

उपगमन--पुं० [सं० उप√गम्+ल्युट्–अन] १. पास जाने या पहुँचने की क्रिया या भाव। २. अंगीकार। स्वीकार। ३. प्राप्ति। लाभ। ४. ज्ञान।

उपगामी (मिन्)--वि० [सं० उप√गम्+णिनि] उपगमन करनेवाला।

उपगारं--पुं०=उपकार।

उप-गिरि--पुं० [सं० अव्य० स०] बड़े पहाड़ के आस-पास का वह बाहरी भाग जहाँ से उसकी चढ़ाई आरंभ होती है।

उप-गीति--स्त्री० [सं० अत्या० स०] आर्या छन्द का एक भेद जिसके सम चरणों में १५-१५ और विषम चरणों में १२-१२ मात्राएँ होती है।

उपगूहन--पुं० [सं० उप√गुह् (छिपाना)+ल्युट्–अन] १. छिपाना। २. गले लगाना। आलिंगन। ३. अनोखी घटना घटित होना।

उपग्रह--पुं० [सं० उप√ग्रह् (पकड़ना)+अप्] १. घरा या पकड़ा जाना। २. कैदी। बंदी। ३. कारावास। कैदखाना। ४. [अत्या० स०] वह छोटा ग्रह जो किसी बड़े ग्रह की परिक्रमा करता हो। जैसे--चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है। ५. आज-कल कोई ऐसा यान्त्रिक गोला या पिंड जो चन्द्रमा, पृथ्वी, सूर्य अथवा और किसी ग्रह की परिक्रमा करने के लिए आकाश में छोड़ा जाता है। (सैटेलाइट; उक्त दो अर्थों के लिए)

उपग्रहण--पुं० [सं० उप√ग्रह्+ल्युट्–अन] १. धरना या पकड़ना। २. अच्छी तरह हथेली या हाथ में लेना। ३. संस्कारपूर्वक वेदों का अध्ययन करना।

उपग्रह-संधि--स्त्री० [सं० मध्य० स०] ऐसी संधि जो अपना सब कुछ देकर अपनी प्राणरक्षा के लिए की जाय। (कौ०)

उपघात--पुं० [सं० उप√हन् (हिंसा)+घञ्] [कर्ता उपघातक, वि० उपघाती] १. आघात। धक्का। २. हानि पहुँचाना। ३. इन्द्रियों का अपने कार्य करने के योग्य न रह जाना। अशक्तता। ४. रोग। व्याधि। ५. उपद्रव। ६. स्मृति के अनुसार पाँच पातकों का समूह।

उपघातक--वि० [सं० उप√हन्+ण्वुल्–अक] १. उपघात या घात करनेवाला। २. पीड़क। ३. नाशक।

उपघाती (तिन्)--वि० [सं० उप√हन्+णिनि] १. उपघात करनेवाला। २. दूसरों को हानि पहुँचानेवाला। ३. पीड़क।

उपघ्न--पुं० [सं० उप√हन्+क] १. सहारा। २. शरण-स्थान।

उप-चक्षु (स्)--पुं० [सं० अत्या० स०] लाक्षणिक अर्थ में ऐनक या चश्मा।

उपचना*--अ० [सं० उपचय] १. उन्नत होना। बढ़ना। २. अन्दर पूरी तरह से भर जाने के कारण बाहर निकलना। फूट पड़ना। उमड़ना। उदा०--जीवन वियोगिन को मेघ अँचयो सो किधौं उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने में।--रत्ना०।

उपचय--पुं० [सं० उप√चि (चयन करना)+अच्] १. एकत्र या संचित करना। चयन। २. ढेर। राशि। ३. उत्सेध। ऊँचाई। ४. उन्नति। बढ़ती। समृद्धि। ५. जन्म-कुंडली में लग्न से तीसरा, छठा, दसवाँ या ग्यारहवाँ स्थान।

उपचर--पुं० [सं० उप√चर् (गति)+अच्] = उपचार।

उपचरण--पुं० [उप√चर् (गति)+ल्युट्–अन] १. किसी के पास जाना या पहुँचना। २. पूजा। सेवा। ३. उपचार करना। ४. आये हुए व्यक्ति का अच्छी तरह आदर-सत्कार करना।

उपचरना*--स०=उपचारना।

उपचरित--भू० कृ० [सं० उप√चर्+क्त] १. जिसका उपचार किया गया हो। २. जिसकी पूजा या सेवा की गई हो। ३. लक्षणों से जाना हुआ।

उप-चर्म (न्)--पुं० [सं० अत्या० स०] त्वचा का ऊपरी या बाहरी भाग।

उपचर्या--स्त्री० [सं० उप√चर्+क्यप्--टाप्]=उपचार।

उपचायी (यिन्)--वि० [सं० उप√चाय् (वृद्धि)+णिनि] १. उपचय करनेवाला। २. उन्नति या वृद्धि करनेवाला।

उपचार--पुं० [सं० उप√चर्+घञ्] [वि० औपचारिक] १. किसी के पास रहकर, सेवा आदि के द्वारा उसे सन्तुष्ट और सुखी करना। २. उत्तम आचरण और व्यवहार। ३. रोगी के पास रहकर उसे अच्छे करने के लिए किये जानेवाले कार्य। जैसे--चिकित्सा, सेवा-शुश्रूषा आदि। ४. लोक-व्यवहार में ऐसा आचरण या काम जो आवश्यक, उचित और प्रशस्त होने पर भी केवल दिखाने अथवा नियम, परिपाटी आदि का पालन करने के लिए किया जाय। (फॉरमैलिटी) ५. रसायन, वैद्यक आदि के क्षेत्रों में, वह क्रिया या प्रक्रिया जो कोई चीज़ ठीक या शुद्ध करके उसे काम में लाने के योग्य बनाने के समय की जाती है। (ट्रीटमेण्ट) जैसे--ओषधियों, धातुओं आदि का उपचार। ६. धार्मिक क्षेत्र में (क) पूजन के अंग और विधान। जैसे--आवाहन, मधुपर्क, नैवेद्य, परिक्रमा, वन्दना आदि। (ख) छुआछूत का विचार। ७. तान्त्रिक क्षेत्र में, किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जानेवाला कोई अनुष्ठान या कृत्य। अभिचार। जैसे--उच्चाटन, मारण, मोहन आदि। ८. खुशामद। चाटुता। ९. घूस। रिश्वत। १०. व्याकरण में, एक प्रकार की सन्धि जिसमें बिसर्ग के स्थान पर श या स हो जाता है। जैसे--निःचल से निश्चल या निःसार से निस्सार। ११. दे० 'उपचरण' (आदर-सत्कार)।

उपचारक--वि० [सं० उप√चर्+ण्वुल्--अक] [स्त्री० उपचारिका] १. उपचार करनेवाला। २. चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा करनेवाला। ३. विधान करने या बतलानेवाला।

उपचार-च्छल--पुं० [सं० तृ० त०] तर्क या न्याय में, किसी की कही हुई बात का अभिप्रेत, ठीक या प्रासंगिक अर्थ छोड़कर केवल तंग करने के लिए अपनी ओर से किसी नये या भिन्न अर्थ की कल्पना करके उस बात में दोष दिखलाना। जैसे--यदि कोई कहे--'ये नवद्वीप से आये हैं।' तो यह कहना--'वाह ! ये जिस द्वीप से आये हैं, वह नया कैसे है ?'

उपचारना*--स० [सं० उपचार] १. रोगी का उपचार या सेवा-शुश्रूषा करना। २. अनुष्ठान या विधान करना। ३. औपचारिक रूप से कोई काम करना। ४. आदर-सम्मान या पूजन करना। उदा०--भरत हमहिं उपचार न थोरा।--तुलसी।

उपचारात्--क्रि० वि० [सं० विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय] १. नियम, परिपाटी आदि के पालन के रूप में। २. केवल दिखावे या रसम अदा करने के रूप में। (फॉर्मली)

उपचारी (रिन्)--वि० [सं० उप√चर्+णिनि)] १. उपचार अर्थात् चिकित्सा तथा सेवा-शुश्रूषा करनेवाला। २. (काम) जो औपचारिक रूप से किया जाय।

उपचार्य--वि० [सं० उप√चर्+ण्यत्] (रोग या रोगी) जिसका उपचार होने को हो या किया जा सके।

पुं० चिकित्सा।

उपचित--भू० कृ० [सं० उप√चि+क्त] १. इकट्ठा किया हुआ। संचित। संगृहीत। २. अच्छी तरह से खिला, फूला या बढ़ा हुआ। विकसित।

उपचिति--स्त्री० [सं० उप√चि+क्तिन्] १. उपचित होने की अवस्था या भाव। २. ढेर। राशि। ३. संचय। ४. बढ़ती। वृद्धि।

उपचित्र--पुं० [सं० अत्या० स०] एक वर्णार्द्ध समवृत्त जिसके विषम चरणों में तीन सगण, एक लघु और एक गुरु तथा सम चरणों में तीन भगण और दो गुरु होते है।

उपचित्रा--स्त्री० [सं० उपचित्र+टाप्] १. दन्ती वृक्ष। २. मूसाकानी का पौधा। ३. चित्रा नक्षत्र के पास के नक्षत्र हस्त और स्वाती। ४. १६ मात्राओं का एक छन्द।

उप-चेतन--पुं० [प्रा० स०] आधुनिक मनोविज्ञान में वह अवस्था जिसमें अनुभवों, व्यवहारों आदि की पूरी और स्पष्ट चेतना या ज्ञान नहीं होता, केवल अस्पष्ट या धूमिल चेतना या ज्ञान होता है। (सब-कॉन्शस)

उप-चेतना--स्त्री० [सं० अत्या० स०] ऊपरी चेतना के भीतरी भाग या अन्तःकरण में स्थित चेतना। अंतःसंज्ञा।

उपचेय--वि० [सं० उप√चि+यत्] जो उपचय (चयन) के योग्य हो अथवा जिसका उपचय या चयन किया जाने को हो।

उपच्छद--पुं० [सं० उप√छद् (ढकना)+णिच्+घ, ह्रस्व] १. परदा। २. चादर। ३. ढक्कन।

उपच्छन्न--वि० [सं० उप√छद्+क्त] ढका या छिपाया हुआ।

उपच्छाया--स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी वस्तु की मूल छाया के अतिरिक्त इधर-उधर पड़नेवाली उसकी कुछ आभा या हलकी काली झलक, जैसी ग्रहण के समय चंद्रमा या पृथ्वी की मुख्य छाया के अतिरिक्त दिखाई देती है। (पेनम्ब्रा)

उपज--स्त्री० [हिं० उपजना] १. वह जो उपजा या बनकर तैयार हुआ हो। २. पैदावार। (प्रोडक्शन) जैसे--कारखाने या खेत की उपज। ३. मन की कोई नई उदभावना या सूझ। ४. संगीत में गाई जानेवाली चीज की सुंदरता बढ़ाने के लिए उसमें बँधी हुई तानों के सिवा कुछ नई तानें, स्वर आदि अपनी ओर से मिलाना। ५. सोचने या विचारने की शक्ति।

उपजगती--स्त्री० [सं० अत्या० स०] एक प्रकार का छन्द या वृत्त।

उपजत†--स्त्री०=उपज।

उपजनन--पुं० [सं० उप√जन्+ल्युट्--अन] १. उत्पादन। २. प्रजनन।

उपजना--अ० [सं० उपजन् प्रा० उपज्जइ] १. उत्पन्न होना। जन्म लेना। उदा०--बूड़ा वंस कबीर का कि उपजा पूत कमाल।--कबीर। २. अंकुर निकलना या फूटना। उगना। ३. कोई नई बात सूझना।

उपजाऊ--वि० [हिं० उपज+आऊ (प्रत्य०)] १. (भूमि) जिसमें अधिक मात्रा में उत्पन्न करने की शक्ति हो। उर्वर। (फर्टाइल) २. कृषि के लिए उपयुक्त।

उपजाऊ-पन--पुं० [हिं० उपजाऊ+पन (प्रत्य०)] भूमि की वह शक्ति जिससे उसमें फसल आदि उत्पन्न होती है। उर्वरता। (प्रॉडक्टिविटी)

उपजात--वि० [सं० उप√जन् (उत्पत्ति)+क्त] जो उत्पन्न हुआ हो। पु० दे० 'उपसर्ग'।

उपजाति--स्त्री० [सं० उप√जन्+क्तिन्] इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा तथा इन्द्रवंशा और वंशस्थ के मेल से बने हुए वृत्तों का वर्ग।

उपजाना--स० [हिं० 'उपजना' का स० रूप] १. उत्पन्न या पैदा करना। २. उगाना। ३. कोई नई बात ढूँढ़ निकालना। जैसे--बातें उपजाना। ४. किसी के मस्तिष्क में कोई विचारधारा प्रवाहित करना। सुझाना।

उपजीवक--वि० [सं० उप√जीव् (जीना)+ण्वुल्-अक]=उपजीवी।

उपजीवन--पुं० [सं० उप√जीव्+ल्युट्-अन] १. जीविका। रोजी। २. ऐसा जीवन जो दूसरों के सहारे चलता हो।

उप-जीविका--स्त्री० [सं० अत्या० स०] आय के मुख्य साधन के अतिरिक्त और कोई गौण साधन।

उपजीवी (विन्)--वि० [सं० उप√जीव्+णिनि] [स्त्री० उपजीविनी] दूसरे के सहारे जीवन वितानेवाला। दूसरे पर निर्भर रहनेवाला।

उपजीव्य--वि० [सं० उप√जीव्+ण्यत्] जिसके आधार पर उपजीवन चलता हो या चल सकता हो।

उपज्ञा--स्त्री० [सं० उप√ज्ञा (जानना)+अङ्-टाप्] १. प्राचीन भारत में, वह वुद्धिपरक प्रयत्न जो दिग्गज विद्वान् अपने मौलिक चिंतन से नये-नये शास्त्रों की उद्‌भावना के लिए करते थे। २. चिंतन द्वारा किसी चीज या वात का पता लगाना। ३. कार्य करने का कोई ऐसा नया ढंग निकालना अथवा कोई नया औजार या यन्त्र वनाना जिसका पता पहले किसी को न रहा हो। नई चीज या साधन निकालना। (इन्वेंशन)

उपज्ञात--पुं० [सं० उप√ज्ञा+क्त] प्राचीन भारत में किसी विशिष्ट आचार्य की उपज्ञा से आविर्भूत होनेवाला कोई नया ग्रन्थ, विषय या साहित्य।

भू० कृ० जिसका आविर्भाव उपज्ञा के द्वारा हुआ हो। (इन्वेंटिड)

उपज्ञाता (तृ)--पुं० [सं० उप√ज्ञा (जानना)+तृच्] वह जिसने उपज्ञा के द्वारा कोई नई वात या चीज़ ढूँढ़ निकाली हो। (इन्वेंटर)

उपटन--पुं० [हिं० उपटना] शरीर पर उत्पन्न होनेवाला आघात आदि का चिह्न निशान या साँट।

पुं०=दे० 'उवटन'।

उपटना--अ० [सं० उत्+पत्; उत+पट्; प्रा० उप्पट, उप्पड; गु० उपडवूं; सिं० उपटणु, मरा० उपट (णे)] १. शरीर पर आघात का चिह्न, दाग या निशान पड़ना। २. उखड़ना। ३. उभरना।

उपटा*--पुं० [सं० उत्पतन=ऊपर आना] १. पानी की वाढ़। २. ठोकर।

उपटाना*--स० [सं० उत्पाटन] १. उखाड़ना। २. उखड़वाना। स० [हिं० उवटन] उवटन लगवाना।

उपटारना*--स० [सं० उत्पाटन] १. किसी का मन कहीं से हटाना। उच्चाटन करना। २. उठाना।

उपड़ना--अ० [सं० उत्पटन] १. उखड़ना। २. दे० 'उपटना'। ३. इस प्रकार प्रत्यक्ष या स्पष्ट होना कि दिखाई दे या समझ में आ सके। जैसे--चिट्ठी उपड़ना=चिट्ठी का पढ़ा जाना।

उपढौकन--पुं० [सं० उप√ढौक् (भेंट देना)+ल्युट्] १. उपहार। भेंट। २. रिश्वत।

उपतापन--पुं० [सं० उप√तप्+णिच्+ल्युट्-अन] [वि० उपतापी] १. अच्छी तरह से गरम करना या तपाना। २. कष्ट पहुँचाना।

उपत्यका--स्त्री० [सं० उप+त्यकन्-टाप्] पर्वत के पास की नीची भूमि या प्रदेश। तराई।

उपदंश--पुं० [सं० उप√दंश् (डँसना)+घञ्] १. दुष्ट मैथुन से उत्पन्न होनेवाला इन्द्रिय सम्वन्धी एक रोग। २. आतशक या गरमी नाम का रोग।

उपदंशी (शिन्)--वि० [सं० उपदंश+इनि] जिसे उपदंश (रोग) हुआ हो।

उपदरी--वि०=उपद्रवी।

उपदर्शक--पुं० [सं० उप√दृश् (देखना)+ण्वुल्-अक] १. पथ या मार्ग दिखलानेवाला। २. द्वारपाल। ३. साक्षी।

उपदर्शन--पुं० [सं० उप√दृश्+ल्युट्-अन] १. दिखलाने या प्रदर्शित करने की क्रिया या भाव। २. अच्छी तरह वतलाना या समझाना। ३. टीका या व्याख्या करना।

उपदा--स्त्री० [सं० उप√दा (देना)+अङ्-टाप्] १. किसी वड़े अधिकारी को दी जानेवाली भेंट। २. रिश्वत।

उप-दान--पुं० [सं० अत्या० स०] १. भेंट। २. किसी कर्मचारी को अवकाश ग्रहण करने के समय उसकी लंवी सेवा के वदले में दिया जानेवाला धन। (ग्रेचुइटी)

उपदि--क्रि० वि० [?] १. अपनी इच्छा से। २. मनमाने ढंग से। उदा०--किधौं उपदि वरयो है यह सोभा अभिरत हौं।--केशव।

उप-दित्सा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] वसीयतनामे के अन्त में परिशिष्ट के रूप में लिखा हुआ वह संक्षिप्त लेख जिसमें किसी वात या विषय का स्पष्टीकरण हो।

उप-दिशा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] दो दिशाओं के वीच की दिशा। कोण। विदिशा।

उपदिष्ट--वि० [सं० उप√दिश् (वताना)+क्त] १. (व्यक्ति) जिसे उपदेश दिया गया हो। सिखलाया हुआ। २. (वात या विषय) जो उपदेश के रूप में कहा या वतलाया गया हो।

उप-देव--पुं० [सं० अत्या० स०] गौण या छोटा देवता। जैसे--गन्धर्व, भूत, यक्ष आदि।

उप-देवता--पुं०=उपदेव।

उपदेश--पुं० [सं० उप√दिश्+घञ्] १. किसी को अच्छी दिशा में ले जाने के लिए अच्छी वात वतलाना। २. वड़ों या विद्वानों का लोगों को धर्म तथा नीति सम्वन्धी अच्छी-अच्छी वातें वतलाना। लोगों को अच्छे आचरण तथा व्यवहार सिखाने के लिए कही जानेवाली वात या वातें। ३. निर्देश। ४. आज्ञा। ५. वह तत्त्व की वात जो गुरु किसी को अपना शिष्य वनाने के समय वतलाता है। गुरु-मन्त्र।

उपदेशक--पुं० [सं० उप√दिश्+ण्वुल्-अक] [स्त्री० उपदेशिका] १. वह व्यक्ति जो दूसरों को उपदेश देता हो। २. शिक्षक। ३. आज-कल, वह व्यक्ति जो किसी विशिष्ट धर्म या मत का प्रचार करने के लिए, जगह-जगह घूमकर व्याख्यान आदि देता है। जैसे--आर्य समाज या सनातन धर्म का उपदेशक।

उपदेशन--पुं० [सं० उप√दिश्+ल्युट्-अन] उपदेश देने की क्रिया या भाव।

उपदेशना--स्त्री० [सं० उप√दिश्+णिच्+युच्-अन-टाप्] उपदेश के रूप में कही जानेवाली वात। उपदेश।

उपदेश्य--वि० [सं० उप√दिश्+ण्यत्] १. (व्यक्ति) जो उपदेश पाने का अधिकारी या पात्र हो। २. (विषय) जो उपदेश के योग्य हो।

उपदेष्टा (ष्टृ)--पुं० [सं० उप√दिश्+तृच्] वह जो उपदेश देता हो। उपदेशक।

उपदेस*--पुं०=उपदेश।

उपदेसना*-- स० [सं० उपदेश+(प्रत्य०)] उपदेश करना या देना। लोगों को अच्छी-अच्छी बातें बतलाना।

उपदोह--पुं० [सं० उप√दुह् (पूर्ण करना)+घञ्] १. गाय की छीमी या स्तन। २. वह पात्र जिसमें दूध दुहा जाय।

उपद्रव--पुं० [सं० उप√द्रु (गति)+अप्] १. कोई कष्टप्रद या दुःखद घटना। दुर्घटना। २. उत्पात, ऊधम या हलचल मचाना। जैसे--बन्दरों या बच्चों का उपद्रव। ३. दंगा। फसाद। ४. किसी मुख्य रोग के बीच में होनेवाला दूसरा विकार।

उपद्रवी (विन्)--वि० [सं० उपद्रव+इनि] १. उपद्रव या उत्पात करने या मचानेवाला। २. नटखट। ३. फसादी। शरारती।

उपद्रष्टा (ष्टृ)--पुं० [सं० उप√दृश्+तृच्] १. वह जो दृश्य आदि देख रहा हो। २. निरीक्षण करनेवाला। ३. गवाह। साक्षी।

उपद्रुत--भू० कृ० [सं० उप√द्रु+क्त] जो किसी प्रकार के उपद्रव से पीड़ित हो। सताया हुआ।

उप-द्वार--पुं० [सं० अत्या० स०] द्वार या दरवाजे के पास का कोई छोटा द्वार।

उप-द्वीप--पुं० [सं० अत्या० स०] छोटा द्वीप या टापू।

उपधरना*--अ० [सं० उपधारण=अपनी ओर खींचना] १. ग्रहण या स्वीकार करना। २. शरण में लेना।

उप-धर्म--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी धर्म के अन्तर्गत या उसके साथ लगा हुआ कोई दूसरा गौण या छोटा धर्म।

उपधा--स्त्री० [सं० उप√धा (धारण करना)+अङ--टाप्] [वि० औपधिक] १. किसी की निष्ठा, सत्यता आदि की परीक्षा लेना, विशेषतः राजा का अपने पुरोहित, मन्त्री आदि की परीक्षा लेना। २. व्याकरण में किसी शब्द के अन्तिम अक्षर के पहले का अक्षर। ३. कपट। छल। ४. आज-कल, आपराधिक रूप से वास्तविकता या सत्य को छिपाते हुए दूसरों की धन-सम्पत्ति, विधिक अधिकार आदि प्राप्त करने के लिए झूठी बातें बनाना, बतलाना या प्रचारित करना। जालसाजी। (फ्रॉड)

विशेष--यह कपट और छल का एक उत्कट और विशिष्ट प्रकार तथा विधिक दृष्टि से दण्डनीय अपराध है।

उप-धातु--स्त्री० [सं० अत्या० स०] १. ऐसी धातु जो मुख्य धातुओं से घटकर या निम्नकोटि की मानी गई है। ये संख्या में सात कही गई हैं। यथा--स्वर्णमाक्षिक, तारमाक्षिक, तूतिया, काँसा, पित्तल, सिंदूर और शिलाजतु। २. शरीर में रक्त आदि धातुओं से बने हुए दूध, चरबी, पसीना आदि छः पदार्थ।

उपधान--पुं० [सं० उप√धा+ल्युट्--अन] १. ऊपर रखना या ठहराना। २. वह वस्तु जिस पर कोई चीज़ रखी जाय। ३. तकिया, विशेषतः पक्षियों के परों से भरा हुआ तकिया। ४. यज्ञ की वेदी की ईंटें रखते समय पढ़ा जानेवाला मन्त्र। ५. प्रेम। प्रणय। ६. विशेषता।

उपधानी--स्त्री० [सं० उपधान+ङीप्] १. पैर रखने की छोटी चौकी। २. तकिया। ३. गद्दा।

उपधायी (यिन्)--वि० [सं० उप√धा+णिनि] १. आश्रय या सहारा लेनेवाला। २. तकिया लगानेवाला।

उपधारण--पुं० [सं० उप√धृ (धारण करना)+णिच्+ल्युट्--अन] १. नीचे रखना या उतारना। २. ऊपर रखी हुई वस्तु को लग्गी आदि से खींचना।

उप-धारा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] नियम, विधान आदि में किसी धारा का कोई छोटा विभाग या अंग। (सब सेक्शन)

उपधावन--वि० [सं० उप√धाव् (गति)+ल्यु--अन)] १. पीछे-पीछे चलनेवाला। २. अनुगामी। अनुयायी।

पुं [उप√धाव्+ल्युट्--अन] १. तेजी से किसी का पीछा करना। २. चिन्तन या विचार करना।

उपधि--पुं० [सं० उप√धा+कि] १. छल-कपट। जालसाजी। २. (मुकदमे में) सच्ची बात छिपाकर इधर-उधर की बातें कहना। ३. धमकी। ४. गाड़ी का पहिया। ५. आधार। नींव (बौद्ध)।

उपधिक--वि० [सं० उपधा+ठन्-इक] छलकपट या जालसाजी करनेवाला। धोखेबाज।

उपधूपित--वि० [सं० उप√धूप् (दीप्ति, ताप)+क्त] १. धूप आदि से सुगन्धित किया हुआ। २. मरणासन्न। ३. दुःखी। पीड़ित।

उपधूमित--वि० [सं० उपधूम, प्रा० स०, +इतच्] जिस पर धूआँ लगाया गया हो।

पुं० फलित ज्योतिष में, एक अशुभ योग जिसमें यात्रा आदि वर्जित है।

उपधृति--स्त्री० [सं० उप√धृ (धारण करना)+क्तिन्] प्रकाश की किरणें।

उपध्मान--पुं० [सं० उप√ध्मा (शब्द)+ल्युट्--अन] १. फूँकने की क्रिया या भाव। २. होंठ।

उपध्मानीय--वि० [सं० उप√ध्मा+अनीयर्] उपध्मान-सम्बन्धी।

पुं० व्याकरण में, वह विसर्ग जिसका उच्चारण 'प' और 'फ' वर्णों से पहले होता है।

उपध्वस्त--भू० कृ० [सं० उप√ध्वंस् (नाश)+क्त] १. ध्वस्त। २. पतित।

उप-नंद--पुं० [सं० अत्या० स०] १. नंद के छोटे भाई का नाम। २. मदिरा के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव का एक पुत्र।

उप-नक्षत्र--पुं० [सं० अत्या० स०] छोटा या गौण नक्षत्र।

उप-नख--पुं० [सं० अत्या० स०] नख या नाखून में होनेवाला गलका नामक रोग।

उप-नगर--पुं० [सं० अत्या० स०] नगर के आस-पास बसा हुआ बाहरी भाग। (सबर्ब)

उपनत--भू० कृ० [सं० उप√नम् (झुकना)+क्त] १. झुका हुआ। २. शरण में आया हुआ।

उपनति--स्त्री० [सं० उप√नम्+क्तिन्] १. झुकने की क्रिया या भाव। २. नमस्कार।

उप-नदी--स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी बड़ी नदी में मिलनेवाली कोई छोटी या सहायक नदी।

उपनद्ध--वि० [सं० उप√नह् (बन्धन)+क्त] १. कसकर बँधा हुआ। २. नाधा या नधा हुआ।

उपनना*--अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न या पैदा होना। उपजना।

स० [सं० उपनयन] १. उदाहरण देना। २. उपमा देना या तुलना

करना। उदा०—कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन कलकपोल छविन उपनियाँ।

उपनय—पुं० [सं० उप√नी (ले जाना)+अच्] १. किसी की ओर या किसी के पास ले जाना। २. अपनी ओर लाना या अपने पास बुलाना। ३. बालक को गुरु के पास ले जाना। ४. उपनयन संस्कार। जनेऊ। यज्ञोपवीत। ५. न्याय में, वाक्य के चौथे अवयव का नाम। इसमें उदाहरण देकर उस उदाहरण के धर्म को फिर उपसंहार रूप से साध्य में घटाया जाता है। ६. अपने पक्ष का समर्थन करने या इसी प्रकार और किसी काम के लिए किसी उक्ति, सिद्धान्त, विधि आदि का उल्लेख या कथन करना। उद्धरण। (साइटेशन)

उपनयन—पुं० [सं० उप√नी+ल्युट्–अन] [वि० उपनीत] वह संस्कार जिसमें बच्चों को यज्ञोपवीत पहनाकर ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रविष्ट कराया जाता है।

उपना†—अ० [सं० उत्पन्न] १. उत्पन्न होना। पैदा होना। २. जन्म धारण करना।

उपनागरिका—स्त्री० [सं० अत्या० स०] साहित्य में, गद्य या पद्य लिखने की एक शैली जिसमें ट ठ ड ढ वर्णों को छोड़कर केवल मधुर वर्ण आते हैं। इसमें छोटे-छोटे और बहुत थोड़े समास होते हैं। काव्य में यह वृत्यनुप्रास का एक भेद माना गया है। यथा—रघुनंद आनँद कंद कौशलचन्द्र दशरथ नन्दनम्।—तुलसी।

उपनाना*—स० [हिं० उपनना] उपजाना। पैदा करना। उदा०—अल्ला एक नूर उपनाया, ताकी कैसी निन्दा।—कबीर।

उप-नाम (न्)—पुं० [सं० अत्या० स०] १. किसी व्यक्ति का उसके वास्तविक नाम से भिन्न कोई दूसरा ऐसा प्रसिद्ध नाम जो उसके माता-पिता आदि ने लाड़-प्यार से रखा होता है। जैसे—शीतलाप्रसाद उपनाम राजा भइया। २. कवियों, लेखकों आदि का स्वयं रखा हुआ अपना दूसरा नाम जिससे वे साहित्यिक जगत् में प्रसिद्ध होते हैं। छाप। जैसे—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का उपनाम 'हरिऔध' तथा श्री जगन्नाथदास का उपनाम 'रत्नाकर' था।

उप-नायक—पुं० [सं० अत्या० स०] [स्त्री० उपनायिका] नाटकों या कथा-कहानियों में नायक का साथी जो उसके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होता है।

उपनायन*—पुं०=उपनयन।

उपनाह—पुं० [सं० उप√नह्+घञ्] १. वीणा या सितार की वह खूँटी जिससे तार बाँधे जाते हैं। २. फोड़े या घाव पर लगाने का लेप। मलहम। ३. प्रलेप। ४. आँख का बिलनी नामक रोग। ५. गाँठ।

उपनिक्षेप—पुं० [सं० उप–नि√क्षिप् (प्रेरणा)+घञ्] किसी के पास बाँधकर तथा मुहरबन्द करके रखी जानेवाली धरोहर।

उपनिधाता (तृ)—वि० [सं० उप–नि√धा (धारण, रखना)+तृच्] किसी के पास अपनी चीज धरोहर रखनेवाला।

उपनिधान—पुं० [सं० उप–नि√धा+ल्युट्–अन] किसी के पास अपनी चीज धरोहर रखना।

उपनिधायक—वि० [सं० उप–नि√धा+ण्वुल्–अक]=उपनिधाता।

उपनिधि—स्त्री० [सं० उप–नि√धा+कि] १. अमानत। धरोहर। २. मुहरबंद अमानत। किसी के पास रखी जानेवाली विशेषत: मुहरबन्द धरोहर।

उपनिपात—पुं० [सं० उप–नि√पत् (गिरना)+घञ्] १. अचानक पास आना। एकाएक आ पहुँचना। २. अचानक होनेवाला आक्रमण। ३. अग्नि, वर्षा, चोर आदि के कारण होनेवाली धन-हानि।

उप-निबंधक—पुं० [सं० अत्या० स०] वह अधिकारी जो निबंधक के सहायक रूप में उसके अधीन रहकर काम करता है। (सब-रजिस्ट्रार)

उप-नियम—पुं० [सं० अत्या० स०] वह छोटा नियम जो किसी बड़े नियम के अन्तर्गत होता है। (सब-रूल)

उप-निर्वाचन—पुं० [सं० अत्या० स०] लोकतंत्री संस्थाओं में, किसी निर्वाचित सदस्य का स्थान अवधि से पहले रिक्त होने पर उस स्थान की पूर्ति के लिए फिर से होनेवाला चुनाव। (बाइ-इलेक्शन)

उपनिविष्ट—भू० कृ० [सं० उप–नि√विश् (घुसना, बैठना)+क्त] १. दूसरे स्थान से आकर बसा हुआ। २. खाते आदि में लिखा या दर्ज किया हुआ।

पुं० अनुभवी और शिक्षित सेना। (कौटिल्य)

उपनिवेश—पुं० [सं० उप–नि√विश्+घञ्] १. जीविका के लिए एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर जा बसना। २. कुछ व्यक्तियों का वह समुदाय जो दूसरे देश में जाकर स्थायी रूप से बस गया हो। ३. वह देश जहाँ किसी दूसरे राष्ट्र के लोग जाकर बस गये हों और इसीलिए उस राष्ट्र ने जिस पर अपना राजनीतिक अधिकार जमा लिया हो। ४. कीटाणुओं आदि का किसी अंग, शरीर या स्थान पर होनेवाला जमाव। (कालोनी, उक्त सभी अर्थों में)

उपनिवेशन—पुं० [सं० उप–नि√विश्+ल्युट्–अन] उपनिवेश के रूप में कोई स्थान बसाना। उपनिवेश स्थापित करना।

उपनिवेशित—भू० कृ० [सं० उप–नि√विश्+णिच्+क्त] १. उपनिवेश के रूप में बसा या बसाया हुआ। २. दूसरे स्थान से लाकर कहीं रखा या स्थापित किया हुआ।

उपनिवेशी (शिन्)—वि० [सं० उपनिवेश+इनि] १. उपनिवेश सम्बन्धी। औपनिवेशिक। २. उपनिवेश में जाकर बसनेवाला।

उपनिषद्—स्त्री० [सं० उप–नि√सद् (गति आदि)+क्विप् अथवा उप–नि√सद्+णिच्+क्विप्] १. किसी के पास बैठना। २. ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाकर बैठना। ३. वेदों के उपरान्त लिखे गये वे ग्रन्थ जिनमें भारतीय आर्यों के गूढ़ आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचार भरे हैं। ४. वेदव्रत ब्रह्मचारी के ४० संस्कारों में से एक जो केशान्त संस्कार के पूर्व होता था। ५. धर्म। ६. निर्जन स्थान।

उपनिष्क्रमण—पुं० [सं० उप–निस्√क्रम् (गति)+ल्युट्–अन] १. नवजात शिशु को पहली बार बाहर निकालना। निष्क्रमण संस्कार। २. राजमार्ग। ३. बाहर जाना।

उपनिहित—भू० कृ० [सं० उप–नि√धा+क्त] जो किसी के पास अमानत के रूप में रखा हुआ हो।

उपनीत—भू० कृ० [सं० उप√नी+क्त] १. जो किसी के पास लाया, पहुँचा या लाया गया हो। २. उपार्जित या प्राप्त किया हुआ। उदा०—यह धरा तेरी न थी उपनीत।—दिनकर। ३. दान या भेंट रूप में दिया हुआ। ४. जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो। ५. (उल्लेख या

चर्चा) जो अपने पक्ष के समर्थन अथवा इसी प्रकार के और किसी कार्य के लिए की गई हो। (साइटेड)

उपनेत*--वि०=उत्पन्न।

उपनेता (तृ)--पुं० [सं० उप√नी+ तृच्] १. दूसरों को कहीं ले जाने या पहुँचानेवाला २. उपनयन करानेवाला आचार्य।

उपन्ना*--पुं०=उपरना।

उपन्यस्त--भू० कृ० [सं० उप-नि√अस् (क्षेपण)+क्त] १. पास रखा या लाया हुआ। २. अमानत या धरोहर के रूप में किसी के पास रखा हुआ। ३. उल्लिखित या कथित। ४. उपन्यास के रूप में लाया या लिखा हुआ।

उपन्यास--पुं० [सं० उप-नि√अस्+घञ्] १. वाक्य का उपक्रम। बंधान। २. अमानत। धरोहर। ३. प्रमाण। ४. वह बड़ी और लम्बी आख्यायिका जिसमें किसी व्यक्ति के काल्पनिक या वास्तविक जीवन-चरित्र का चित्र अंकित या उपस्थित किया जाता है। (नॉवेल)

उपन्यासकार--पुं० [सं० उपन्यास√कृ (करना)+अण्] वह साहित्यकार जो उपन्यास लिखता हो। (नावेलिस्ट)

उपन्यास-संधि--स्त्री० [मध्य० स०] मंगलकारी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए की जानेवाली संधि। (राजनीति)

उप-पति--पुं० [सं० अत्या० स०] १. साहित्य में श्रृंगार रस का आलंबन वह नायक जो आचारहीन होता और अनेक स्त्रियों से प्रेम करता हो। २. अवैध पति।

उपपत्ति--स्त्री० [सं० उप√पद् (गति)+क्तिन्] १. घटित या प्रत्यक्ष होना। सामने आना। २. कारण। हेतु। ३. किसी को विश्वस्त करने के लिए उपस्थित किये हुए तथ्य, तर्क, प्रमाण अथवा किसी गवाह या विशेषज्ञ का साक्ष्य। (प्रूफ) ४. तर्क। युक्ति। ५. मेल बैठना या मिलना। संगति।

उपपत्ति-सम--पुं० [तृ० त०] न्याय में, वह स्थिति जब वादी किसी आधार पर कोई बात सिद्ध करता है, तब प्रतिवादी उसी प्रकार के किसी दूसरे आधार पर उसी बात का खण्डन करता है। एक कारण से सिद्ध की हुई बात वैसे ही दूसरे कारण से असिद्ध ठहराना। जैसे—यदि वादी उत्पत्ति-धर्म से युक्त होने के आधार पर शब्द को अनित्य बतलावे, तब प्रतिवादी का स्पर्श-धर्म से युक्त न होने के आधार पर शब्द को नित्य ठहराना।

उप-पत्नी--स्त्री० [सं० अत्या० स०] वह स्त्री जिसे प्रायः पत्नी के समान (बिना उससे विवाह किये) बनाकर रखा गया हो। रखेली।

उपपद--पुं० [सं० मध्य० स०] १. किसी स्थिति में लाना या पहुँचाना। २. पहले आया या कहा हुआ शब्द। ३. समास का आरम्भिक पद। ४. उपाधि। खिताब।

उपपद-समास--पुं० [प० त०] कृदंत के साथ नाम (संज्ञा) का होनेवाला समास। जैसे—कुम्भकार, घर फूंक।

उपपन्न--वि० [सं० उप√पद्+क्त] १. पास आया हुआ। २. हाथ में आया या मिला हुआ। प्राप्त। ३. शरण में आया हुआ। शरणागत। ४. किसी के साथ लगा हुआ। युक्त। ५. उपयुक्त। ६. आवश्यक और उचित। ७. जिसे संपन्न करना अनिवार्य हो। (एक्सपीडिएण्ट)

उपपात--पुं० [सं० उप√पत् (गिरना)+घञ्] १. अप्रत्याशित घटना। २. दुर्घटना। ३. विपत्ति। ४. क्षय। नाश।

उप-पातक--पुं० [सं० अत्या० स०] गौण या छोटा पातक अथवा पाप। जैसे—स्मृतियों में मारण, मोहन आदि अभिचारों की गणना उपपातकों में की गई है।

उपपादक--वि० [सं० उप√पद् (गति) +णिच्+ण्वुल्-अक] उपपादन करनेवाला। (डिमान्स्ट्रेटर)

उपपादन--पुं० [सं० उप√पद्+णिच्+ल्युट्-अन] १. कार्य पूरा या संपन्न करना। २. युक्ति या प्रमाण द्वारा समझाते हुए कोई बात ठीक सिद्ध करना। (डिमान्स्ट्रेशन)

उपपादनीय--वि० [सं० उप√पद्+णिच्+अनीयर्] जो सिद्ध किये जाने को हो अथवा सिद्ध किये जाने के योग्य हो।

उपपादित--भू० कृ० [सं० उप√पद्+णिच्+क्त] जिसका उपपादन हुआ हो। सिद्ध किया हुआ।

उपपाद्य--वि० [सं० उप√पद्+णिच्+यत्] जिसका उपपादन किया जाने को हो या किया जा सकता हो।

उप-पाप--पुं० [सं० अत्या० स०] गौण या छोटा पाप।

उप-पार्श्व--पुं० [सं० अत्या० स०] १. स्कंध। कंधा। २. कोख। बगल। ३. छोटी पसलियाँ। ४. सामनेवाला पक्ष या पार्श्व।

उपपीडन--पुं० [सं० उप√पीड़् (दबाना)+ल्युट्-अन] १. दबाना। २. दबाव। ३. क्षति या चोट पहुँचाना। ४. विध्वंस-कार्य।

उप-पुर--पुं० [सं० अत्या० स०] [वि० उपपौरिक]=उपनगर।

उप-पुराण--पुं० [सं० अत्या० स०] अठारह मुख्य पुराणों के अतिरिक्त अन्य छोटे पुराण जो अठारह हैं। यथा—आदित्य पुराण, नरसिंह पुराण, माहेश्वर पुराण, वरुण पुराण, वशिष्ठ पुराण, शिव पुराण आदि।

उपप्रदान--पुं० [सं० उप-प्र√दा (देना)+ल्युट्-अन] १. देना या हस्तान्तरित करना। २. घूस। रिश्वत। ३. उपहार। भेंट।

उप-प्रमेय--पुं० [सं० अत्या० स०] प्रमेय या साध्य के साथ लगी हुई कोई ऐसी बात जो प्रमेय की सिद्धि के साथ-साथ आप ही सिद्ध हो जाती हो। (कॉरोलरी)

उप-प्रश्न--पुं० [सं० अत्या० स०] वह गौण प्रश्न जो किसी बड़े प्रश्न के साथ लगा हो या उसके बाद हो।

उपप्रेक्षण--पुं० [सं० उप-प्र√ईक्ष् (देखना) +ल्युट्-अन] उपेक्षा करना।

उपप्लव--पुं० [सं० उप√प्लु (गति)+अप्] १. नदी आदि की बाढ़। २. प्राकृतिक उत्पात या उपद्रव। जैसे—आँधी, भूकम्प आदि। ३. विद्रोह। विप्लव। ४. लड़ाई-झगड़ा। ५. बाधा। विघ्न।

उपप्लवी (विन्)--वि० [सं० उप√प्लु+णिनि] १. बाढ़ आदि में डुबाने या बाढ़ लानेवाला। २. उत्पात, उपद्रव या हलचल मचानेवाला। ३. विद्रोही। विप्लवी।

उपप्लुत--भू० कृ० [सं० उप√प्लु+क्त] १. कष्ट या संकट में पड़ा हुआ। २. सताया हुआ। पीड़ित। ३. जिस पर आक्रमण हुआ हो। आक्रान्त।

उपबंध--पुं० [सं० उप√बन्ध् (बाँधना)+घञ्] किसी प्रलेख या विधि का कोई ऐसा उपांग या धारा जिसमें किसी बात की सम्भावना को ध्यान में रखकर कोई अवकाश निकाला या प्रबन्ध किया गया हो। (प्राविजन)

उपवंधित*—भू० कृ० [सं० उपवंध+इतच्] जो किसी प्रकार के उपवंध से युक्त किया गया हो। (प्रोवाइडेड)

उपवरहन*—पुं० [सं० उपवर्हण] तकिया।

उपवर्ह—पुं० [सं० उप√वर्ह् (फैलना)+घञ्] तकिया।

उपवर्हण—पुं० [सं० उप√वर्ह्+ल्युट्—अन] =उपवर्ह।

उप-बाहु—पुं० [सं० अत्या० स०] कलाई से कुहनी तक का भाग। पहुँचा।

उपवृंहण—पुं० [सं० उप√वृंह् (वृद्धि)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उपवृंहित] वृद्धि करना। बढ़ाना।

उपभंग—पुं० [उप√भञ्ज् (तोड़ना)+घञ्, कुत्व] १. भाग जाना। पलायन। २. छन्द का एक भाग।

उप-भाषा—स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी भाषा का वह अंग या विभाग जो किसी छोटे क्षेत्र या जनपद में रहनेवाले लोग वोलते हों। देशभाषा। वोली। (डायलेक्ट) जैसे—अवधी, भोजपुरी आदि हिंदी की उपभाषाएँ हैं।

उपभुक्त—वि० [सं० उप√भुज् (व्यवहार, खाना)+क्त] १. जिसका उपभोग हुआ हो। काम में लाया हुआ। २. उच्छिष्ट। जूठा।

उपभुक्ति—स्त्री० [सं० उप√भुज्+क्तिन्]=उपभोग।

उप-भूषण—पुं० [सं० अत्या० स०] १. घटिया आभूषण। २. घण्टा, चँवर आदि उपकरण।

उपभृत—वि० [सं० उप√भृ (धारण, पोषण)+क्त] पास आया या लाया हुआ।

उप-भेद—पुं० [सं० अत्या० स०] किसी भेद (प्रकार या वर्ग) के अन्तर्गत कोई गौण या छोटा भेद।

उपभोक्तव्य—वि० [सं० उप√भुज्+तव्यत्]=उपभोग्य।

उपभोक्ता (क्तृ)—वि० [सं० उप√भुज्+तृच्] काम में लाने या व्यवहार करनेवाला।

पुं० वह जो किसी विशिष्ट वस्तु या वस्तुओं का उपभोग करता या उन्हें काम में लाता हो। (कन्ज्यूमर)

उपभोग—पुं० [सं० उप√भुज्+घञ्] १. आनन्द या सुख प्राप्त करने के लिए किसी वस्तु का भोग करना या उसे व्यवहार में लाना। जैसे—धन या संपत्ति का उपभोग। २. अर्थशास्त्र में, किसी वस्तु को इस प्रकार व्यवहार में लाना कि उसकी उपयोगिता नष्ट या समाप्त हो जाय अथवा वह धीरे-धीरे क्षीण होती चले। (कंजम्पशन)

उपभोगी (गिन्)—वि० [सं० उप√भुज्+णिनि] उपभोग करनेवाला। उपभोक्ता।

उपभोग्य—वि० [सं० उप√भुज्+ण्यत्] जिसका उपभोग होने को हो अथवा हो सकता हो।

उपभोज्य—वि० [सं० प्रा० स०] (पदार्थ) जिसका उपभोग किया जा सके या हो सके।

उप-मंडल—पुं० [सं० अत्या० स०] १. किसी मण्डल का कोई उपविभाग या खण्ड। २. जिले का कोई उप-विभाग। तहसील।

उपमंत्रण—पुं० [सं० उप√मंत्र् (बुलाना)+ल्युट्—अन] १. आमंत्रण। न्योता। २. अनुरोध या आग्रह करना।

उप-मंत्री (त्रिन्)—पुं० [सं० अत्या० स०] वह छोटा मन्त्री जो किसी प्रधान या बड़े मन्त्री (या कार्याधिकारी) के अधीन रहकर उसकी सहायता करता हो।

उप-मन्यु—वि० [सं० अत्या० स०] १. बुद्धिमान्। मेधावी। २. उत्साही। उद्यमी।

पुं० एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि जो आयोदधौम्य के शिष्य थे।

उपमर्दन—पुं० [उप√मृद् (मलना)+ल्युट्—अन] १. बुरी तरह से कुचलना, मसलना या रगड़ना। २. उपेक्षा या तिरस्कार करना। ३. नष्ट करना। ४. जोर से हिलाना। झकझोरना।

उपमा—स्त्री० [सं० उप√मा (मापना)+अङ+टाप्] १. समान गुणों के आधार पर एक वस्तु को दूसरी वस्तु के तुल्य या समान ठहराना या वतलाना। २. एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान दोनों विभिन्न होते हुए भी उनमें किसी प्रकार की एकता या समानता दिखाई जाती है। जैसे—'उसका मुख कमल के समान है' में मुख और कमल दो भिन्न वस्तुएँ होने पर भी मुख की कमल से समानता वतलाई गई है।

उपमाता (तृ)—पुं० [सं० उप√मा+तृच्] वह जो किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के तुल्य या समान वतलावे। उपमा देनेवाला।

उप-माता—स्त्री० [सं० अत्या० स०] १. सौतेली माँ। २. दाई। धाय।

उपमान—पुं० [सं० उप√मा+ल्युट्—अन] १. वह वस्तु या व्यक्ति जिसके साथ किसी की वरावरी की जाय या समानता वतलाई जाय। जैसे—'मुख कमल के समान है' में 'कमल' उपमान है। २. उक्त प्रकार के सादृश्य के आधार पर माना जानेवाला प्रमाण जो न्याय में चार प्रकार के प्रमाणों में से एक है। ३. तेईस मात्राओं का एक छन्द जिसमें तेरहवीं मात्रा पर विराम होता है।

उपमाना*—स० [?] एक वस्तु की दूसरी वस्तु से उपमा देना।

उप-मालिनी—स्त्री० [सं० अत्या० स०] एक प्रकार का छन्द या वृत्त।

उपमित—भू० कृ० [सं० उप√मा+क्त] [स्त्री० उपमिता] जिसकी किसी दूसरी वस्तु से उपमा दी गई हो।

पुं० उपमावाचक कर्मधारय समास का एक भेद जिसमें उपमावाचक शब्द लुप्त रहता है।

उपमेय—वि० [सं० उप√मा+यत्] १. जिसकी किसी से उपमा दी जाय। २. उपमा दिये जाने के योग्य।

पुं० साहित्य में वह वस्तु या व्यक्ति जिसकी उपमा उपमान से दी जाय।

उपमेयोपमा—स्त्री० [उपमेय-उपमा कर्म० स०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें उपमेय और उपमान आपस में एक दूसरे के उपमान और उपमेय कहे जाते हैं। उदा०—औधपुरी अमरावति सी अमरावती औधपुरी सी विराजै।

उपयंता (तृ)—वि० [सं० उप√यम् (उपरम)+तृच्] उपयम (विवाह) करनेवाला।

उप-यंत्र—पुं० [सं० अत्या० स०] शरीर में चुभा हुआ काँटा आदि निकालने की चिमटी।

उपयना—अ० [हिं० उपजना का अ० रूप] उत्पन्न या पैदा होना। उदा०—

सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है।—तुलसी।

स० उत्पन्न करना। उपजाना।

उपयम—पुं० [सं० उप√यम्+अप्] १. विवाह। २. संयम।

उपयमन—पुं० [सं० उप√यम्+ल्युट्—अन]=उपयम।

उपयाचना—स्त्री० [उप√याच् (माँगना)+णिच्+युच्—अन, टाप्] मनौती। मन्नत।

उपयान—पुं० [सं० उप√या (जाना)+ल्युट्—अन] किसी के पास जाना या पहुँचना।

उपयाम—पुं० [सं० उप√यम्+घञ्] विवाह।

उपयायी (यिन्)—वि० [सं० उप√या+णिनि] पास जानेवाला।

उपयुक्त—वि० [सं० उप√युज् (योग)+क्त] १. जो उपयोग या काम में लाया गया हो या लाया जा चुका हो। २. जो किसी विशिष्ट स्थिति में किसी के साथ पूरी तरह से ठीक बैठता या मेल खाता हो। जैसा होना चाहिए वैसा। (फिट) जैसे—उपयुक्त आहार-विहार, उपयुक्त पद या स्थान। ३. जो किसी विशिष्ट अपेक्षा या आवश्यकता की पूर्ति के लिए हर तरह से योग्य या समर्थ हो। विधिक, सामाजिक आदि दृष्टियों से उचित और तर्क-संगत। (प्रॉपर) जैसे—यह विषय उपयुक्त अधिकारी (या उपयुक्त न्यायालय) के सामने जाना चाहिए।

उपयुक्तता—स्त्री० [सं० उपयुक्त+तल्—टाप्] उपयुक्त होने की अवस्था या भाव।

उपयोग—पुं० [सं० उप√युज्+घञ्] १. किसी वस्तु का होनेवाला प्रयोग या व्यवहार। किसी चीज का काम में लाया जाना। जैसे—खाने-पीने की चीजों का उपयोग, अधिकार या शक्ति का उपयोग। २. आवश्यकता की पूर्ति या प्रयोजन की सिद्धि। (यूज, उक्त दोनों अर्थों में) जैसे—हमारे लिए आपकी इन बातों का कुछ भी उपयोग नहीं है। ३. साहित्य में, मानमोचन के दो उपचारों में से एक (विपर्यय से भिन्न) जिसमें मीठी बातें कहकर, हाथ-पैर जोड़कर, प्रिय वस्तु भेंट करके या ऐसे ही दूसरे सौम्य उपचारों से रूठे हुए को मनाते हैं।

उपयोग-वाद—पुं० [ष० त०]=उपयोगितावाद।

उपयोगिता—स्त्री०[सं० उपयोगिन्+तल्—टाप्]१. उपयोगी या लाभकारी होने की अवस्था या भाव। २. किसी वस्तु का वह गुण या तत्त्व जिससे उस वस्तु के उपभोक्ता का कोई प्रयोजन सिद्ध होता हो या उसे किसी प्रकार की तृप्ति होती हो। (यूटिलिटी; उक्त दोनों अर्थों में) जैसे—(क) बालकों को हर चीज की उपयोगिता बतलानी चाहिए। (ख) अब इन नियमों या विधानों की उपयोगिता नष्ट हो चुकी है।

उपयोगिता-वाद—पुं० [ष० त०] एक आधुनिक पाश्चात्य मत या सिद्धान्त, जिसमें नैतिक, सांस्कृतिक आदि गुणों या विशेषताओं का ध्यान छोड़कर प्रत्येक बात या वस्तु का अर्थ, महत्त्व या मान इस दृष्टि से आँका जाता है कि मानव समाज के कल्याण के लिए उसका कितना, कैसा और क्या उपयोग है अथवा हो सकता है। (यूटिलिटेरियनिज्म)

उपयोगितावादी (दिन्)—पुं० [सं० उपयोगितावाद+इनि] वह जो उपयोगितावाद के सिद्धान्तों का अनुयायी, प्रतिपादक या समर्थक हो। (यूटिलिटेरिअन)

उपयोगी (गिन्)—वि० [सं० उप√युज्+घिनुण्] १. जो उपयोग में लाये जाने के योग्य हो। २. जिसमें ऐसे गुण या तत्त्व हों जिनसे किसी प्रकार का प्रयोजन सिद्ध होता हो या लाभ होता हो।

उपयोजन—पुं० [सं० उप√युज्+ल्युट्—अन] १. उपयोग या काम में लाना। २. दूसरे की वस्तु या धन को अनुचित रूप से लेकर अपने प्रयोग में लाना। (ऐप्रोप्रियेशन)

उपरंजक—वि० [सं० उप√रञ्ज् (राग)+ण्वुल्—अक] १. रँगनेवाला। २. प्रभावित करनेवाला।

पुं० सांख्य में, वह वस्तु जिसका आभास या छाया पास की वस्तु पर पड़े। उपाधि। जैसे—लाल कपड़े के कारण पास रखे हुए स्फटिक का लाल दिखाई पड़ना।

उपरंजन—पुं० [सं० उप√रञ्ज्+ल्युट्—अन] [वि० उपरंजनीय, उपरंज्य, भू० कृ० उपरंजित] १. रंग से युक्त करना। रँगना। २. प्रभाव डालना। प्रभावित करना।

उपर—अव्य०=ऊपर। उदा०—लंका सिखर उपर आगारा।—तुलसी।

उपरक्त—वि० [सं० उप√रञ्ज्+क्त] १. (ग्रह) जो उपराग से ग्रस्त हो। जिसे ग्रहण लगा हो। २. जिस पर आभास या छाया पड़ी हो। ३. जिस पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ा हो या रंगत चढ़ी हो।

उपरक्षण—पुं० [सं० उप√रक्ष् (रक्षा करना)+ल्युट्—अन] १. रक्षा करने का कार्य। २. चौकी। पहरा।

उपरत—वि० [सं० उप√रम् (रमण करना)+क्त] १. जो रत न हो। २. जो किसी काम में लगा न हो। ३. विरक्त। उदासीन। ४. मरा हुआ। मृत।

उपरति—स्त्री० [सं० उप√रम्+क्तिन्] १. उपरत या विरक्त होने की अवस्था या भाव। उदासीनता। २. मृत्यु। मौत।

उप-रत्न—पुं० [सं० अत्या० स०] कम दाम या मूल्य के घटिया रत्न। ये गिनती में नौ माने गये हैं। यथा—वैक्रान्त मणि, सीप, रक्तस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुड़ि मणि (जहरमोहरा), शंख और स्फटिक मणि।

उपरना—पुं० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] शरीर के ऊपरी भाग में ओढ़ी जानेवाली चादर या दुपट्टा। उदा०—पिअर उपरना, काखा-सोती।—तुलसी।

अ०=उपड़ना।

उपरफट—वि०=उपरफट्टू।

उपरफट्टू—वि० [सं० उपरि+स्फुट] १. यों ही इधर-उधर या ऊपर से आया हुआ। २. इधर-उधर का और बिलकुल व्यर्थ। फालतू। उदा०—मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा करत उपर-फट बातें।

उपरम—पुं० [सं० उप√रम्+घञ्] किसी चीज या बात से चित्त हटना। विरति। वैराग्य।

उपरमण—पुं० [सं० उप√रम्+ल्युट्—अन]=उपराम।

उपरला—वि० [हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०)] जो ऊपर की ओर हो। ऊपरवाला। ऊपरी।

उपरवार—स्त्री० [हिं० ऊपर+वारा (प्रत्य०)] बाँगर जमीन।

वि० ऊपर की ओर पड़नेवाला। उदा०—रामजस अपने उपरवार खेत का जी उखाड़कर होला जला रहा है।—प्रसाद।

उप-रस—पुं० [सं० अत्या० स०] वैद्यक में गंधक, ईंगुर, अभ्रक, तूतिया,

चुम्बक पत्थर आदि पदार्थ जो रस अर्थात् पारे के समान गुणकारी माने गये है।

उपरहित--पुं०=पुरोहित।

उपरहिती--स्त्री०=पुरोहिती।

उपराँठा--पुं०=पराँठा।

उपरांत--अव्य० [सं०] किसी के अन्त में। पीछे या वाद में।

उपराग--पुं० [सं० उप√रञ्ज्+घञ्] १. रंग। २. भोग-विलास या विषयों में होनेवाला अनुराग। ३. आस-पास की वस्तु पर पड़नेवाला आभास या छाया। ४. चंद्रमा, सूर्य आदि का छाया ग्रस्त होना। ग्रहण। ५. व्यसन। ६. निद्रा। उदा०—भयउ परव विनु रवि उपरागा।—तुलसी।

उपरा-चढ़ी--स्त्री०=चढ़ा-ऊपरी।

उप-राज--पुं० [सं० अत्या० स०] प्राचीन भारत में, राजा या राज्य की ओर से किसी अधीनस्थ प्रदेश का शासन करने के लिए नियुक्त प्रतिनिधि।
*स्त्री०=उपज।

उपराजना*--स० [सं० उपार्जन] १. उत्पन्न या पैदा करना। उदा०—अग-जग मय जग मम उपराजा।—तुलसी। २. रचना। वनाना। ३. उपार्जन करना। कमाना।

उपराना†--अ० [सं० उपरि] १. नीचे से ऊपर आना। २. प्रकट या प्रत्यक्ष होना।
स० १. ऊपर करना या लाना। २. प्रकट या प्रत्यक्ष करना।

उपराम--पुं० [सं० उप√रम्+घञ्] १. विषयों के भोग आदि से होनेवाली विरक्ति। विराग। २. छुटकारा। निवृत्ति। ३. आराम। विश्राम।

उपराला--पुं० [हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०)] पक्षग्रहण। सहायता।
वि० १. ऊपर का। ऊपरी। २. ऊँचा। ३. वाहरी।

उपरावटा--वि० [सं० उपरि+आवर्त्त] १. ऊपर की ओर उठा हुआ। २. अभिमान आदि के कारण अकड़ा या तना हुआ।

उपराहना*--स० [हिं० ऊपर+करना] १. औरों से ऊपर या वढ़कर मानना। २. प्रशंसा करना। सराहना। उदा०—आम जो फरि कै नवैं-तराही। फल अमृत भा सव उपराही।—जायसी।

उपराही*--क्रि० वि०=ऊपर।
वि० उत्तम। श्रेष्ठ।

उपरि--अव्य० [सं० ऊर्ध्व+रिल्, उपादेश] १. ऊपर। उदा०—सैलोपरि सर सुदर सोहा।—तुलसी। २. उपरांत। वाद।

उपरिचर--वि० [सं० उपरि√चर् (गति)+ट] ऊपर चलनेवाला।
पुं० चिड़िया। पक्षी।

उपरि-चित--वि० [स० त०] १. ऊपर रखा हुआ। २. सजा हुआ। सज्जित।

उपरिष्ट--पुं० [सं०] पराँठा नामक पकवान।

उपरी-उपरा--स्त्री०=चढ़ा-ऊपरी। उदा०—रन मारि मक उपरी-उपरा भले वीर रघुप्पति रावन के।—तुलसी।

उपरुद्ध--वि० [सं० उप√रुध् (रोकना)+क्त] १. रोका हुआ। २. घेरा हुआ। ३. वंधन में डाला या पड़ा हुआ। वद्ध।

उप-रूप--पुं० [सं० अत्या० स०] वैद्यक में रोग का वहुत हल्का या नगण्य लक्षण।

उप-रूपक--पुं० [सं० अत्या० स०] साहित्य में एक प्रकार का छोटा रूपक या नाटक जिसके १८ भेद या प्रकार कहे गये है।

उपरैना*--पुं० [स्त्री० उपरैनी]=उपरना (दुपट्टा)।

उपरोक्त--वि०=उपर्युक्त।

उपरोध--पुं० [सं० उप√रुध् (रोकना)+घञ्] १. ऐसी वात जिससे होता हुआ कार्य रुक जाय। वाधा। २. आच्छादन। ढकना।

उपरोधक--वि० [सं० उप√रुध्+ण्वुल्-अक] रोकनेवाला। वाधा डालनेवाला।
पुं० कोठरी के अंदर की कोठरी।

उपरोधन--पुं० [सं० उप√रुध्+ल्युट्-अन] १. रोकना या वाधा डालना। २. रुकावट। वाधा। ३. घेरा।

उपरोधी (धिन्)--पुं० [सं० उप√रुध्+णिनि] वाधा डालनेवाला। रोकनेवाला।

उपरोहित†--पुं०=पुरोहित।

उपरोहिती--स्त्री०=पुरोहिती।

उपरौंछा*--क्रि० वि० [हिं० ऊपर+औंछा (प्रत्य०)] ऊपर की ओर।
वि० ऊपर की ओर का। ऊपरी।

उपरौटा--पुं० दे० 'उपल्ला'।

उपरौठा*--वि०=उपरौटा (उपल्ला)।
पुं०=पराँवठा।

उपरौना*--पुं०=उपरना।

उपर्युक्त--वि० [सं० उपरि-उक्त, स० त०] १. ऊपर या पहले कहा हुआ। २. जिसका उल्लेख या चर्चा ऊपर या पहले हो चुकी हो। (एफोरसेड)

उपलंभक--वि० [सं० उप√लभ् (पाना)+णिच्+ण्वुल्-अक, नुम्] १. ज्ञान या अनुभव करानेवाला। २. प्राप्ति या लाभ करानेवाला।

उपलंभन--पुं० [सं० उप√लभ्+ल्युट्-अन, नुम्] १. ज्ञान। २. अनुभव। ३. प्राप्ति। लाभ।

उपल--पुं० [सं० उप√ला (लेना)+क] १. पत्थर। २. ओला। ३. वादल। मेघ। ४. जवाहर। रत्न। ५. वालू। रेत। ६. चीनी।

उपलक्ष--पुं० [सं० उप√लक्ष् (देखना)+घञ्]=उपलक्ष्य।

उपलक्षक--वि० [सं० उप√लक्ष्+ण्वुल्-अक] १. निरीक्षण करनेवाला। २. अनुमान करनेवाला।
पुं० साहित्य में, किसी वाक्य के अंतर्गत वह शब्द जो उपादान लक्षणा से अपने वाक्य के सिवा अपने वर्ग की अन्य वातों या वस्तुओं का भी उपलक्ष्य या वोध कराता हो। जैसे—'देखो, विल्ली दूध न पी जाय।' में 'विल्ली' शब्द से कुत्ते, नेवले आदि की ओर भी संकेत होता है; अतः 'विल्ली' यहाँ उपलक्षक है।

उपलक्षण--पुं० [सं० उप√लक्ष्+ल्युट्-अन] १. ध्यान से देखना। २. किसी लक्षण के प्रकार या वर्ग का कोई गौण या छोटा लक्षण। ३. कोई ऐसी गौण वात जो किसी ऐसे तत्त्व की सूचक हो जिसका स्पष्ट उल्लेख या निर्देश हो चुका हो। ४. दे० 'उपलक्षक'।

उपलक्षित--भू० कृ० [सं० उप√लक्ष्+क्त] १. अच्छी तरह देखा-भाला हुआ। २. उपलक्ष्य के रूप में या संकेत से वतलाया हुआ। ३. अनुमान किया हुआ।

उपलक्ष्य--पुं० [सं० उप√लक्ष्+ण्यत्] १.वह बात जिसे ध्यान मे रखकर कुछ कहा या किया जाय।

पद--उपलक्ष्य में=कोई काम या बड़ी बात होने पर उसका ध्यान रखते हुए। किसी बात के उद्देश्य से और उसके संबंध में। जैसे--विवाह के उपलक्ष्य में होनेवाला प्रीति-भोज।

२.किसी बात का चिह्न, लक्षण या संकेत।

उपलब्ध--भू० कृ० [सं० उप√लभ्+क्त] १.प्राप्त या हस्तगत किया हुआ। मिला हुआ। २.अनुमान, निष्कर्ष आदि के आधार पर जाना या समझा हुआ।

उपलब्धि--स्त्री० [सं० उप√लभ्+क्तिन्] १.उपलब्ध या प्राप्त होने की अवस्था, क्रिया या भाव। प्राप्ति। २.ज्ञान। ३.बुद्धि। ४.(प्राप्त की हुई) सफलता या सिद्धि।

उपलभ्य--वि० [सं० उप√लभ् (पाना)+यत्] १.जो उपलब्ध या प्राप्त हो सकता हो। जो मिल सके। २.आदर या प्रशंसा के योग्य।

उपला--पुं० [सं० उत्पन्न] [स्त्री० उपली] गाय, भैंस आदि के गोबर का सूखा हुआ कंडा जो जलाने के काम आता है।

उपलाना--स०=उपराना।

उपलिंग--पुं० [उप√लिंग् (गति)+घञ्] १.अरिष्ट। २.उपद्रव।

उपलेप--पुं० [सं० उप√लिप् (लीपना)+घञ्] १.गीली वस्तु (विशेषतः गोबर आदि) से पोतना या लीपना। २.ऐसी वस्तु जिससे पोता या लीपा जाय।

उपलेपन--पुं० [सं० उप√लिप्+ल्युट्--अन] १.पोतना। लीपना। २.लेप आदि के रूप में लगाना।

उपलेपी (पिन्)--वि० [सं० उप√लिप्+णिनि] १.पोतने या लीपनेवाला। २.किये-कराये काम पर पानी फेरनेवाला।

उप-लौह--पुं० [सं० अत्या० स०] एक प्रकार की गौण धातु।

उपल्ला--पुं० [हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०) अथवा पल्ला] किसी वस्तु विशेषतः पहनने के दोहरे कपड़े की ऊपरी तह या परत। भितल्ला का विपर्याय। जैसे--रजाई का उपल्ला।

उप-वंग--पुं० [सं० अत्या० स०] प्राचीन वंग (आधुनिक बंगाल) के पास का एक प्राचीन जनपद।

उपवक्ता (क्तृ)--पुं० [सं० उप√वच् (बोलना)+तृच्] यज्ञ का पर्यवेक्षण करनेवाला। ऋत्विज्।

वि० प्रेरणा करनेवाला। प्रेरक।

उप-वट--पुं० [सं० अत्या० स०] चिरौंजी का पेड़।

उप-वन--पुं० [सं० अत्या० स०] १.छोटा वन या जंगल। २.ऐसा उद्यान जिसमें कई खुले मैदान हों। ३.बगीचा। बाग।

उपजना--अ० १.=उपजना। उदा०--मोद भरी गोद लिए लालति सुमित्रा देखि देव कहै सबको सुकृत उपवियो है।--तुलसी। २.=उड़ना। उदा०--देखत चुरै कपूर ज्यौं उपै जाय जनि लाल।--बिहारी।

उपवर्णन--पुं० [सं० उप√वर्ण् (वर्णन करना)+घञ्] विस्तृत या ब्यौरेवार वर्णन।

उपवर्ण्य--वि० [सं० उप√वर्ण्+ण्यत्] जिसका वर्णन किया जाने को हो या किया जा सके।

पुं० वह जिससे उपमा दी गई हो। उपमान।

उपवर्त--पुं० [सं० उप√वृत् (बरतना)+घञ्] एक बहुत बड़ी संख्या।

उपवर्तन--पुं० [सं० उप√वृत्+ल्युट्--अन] १.निकट लाना। २.जनपद। ३.राज्य। ४.दलदल।

उपवसथ--पु० [सं० उप√वस् (बसना)+अथ] १.बसा हुआ स्थान। बस्ती। २.यज्ञ आरंभ करने से पहले का दिन जिसमे व्रत आदि का विधान है। ३.उक्त दिन होनेवाले धार्मिक कृत्य।

उपवसन--पु० [सं० उप√वस् (रोकना, बसना)+ल्युट्--अन] १.पास बसना या रहना। २.उपवास करना।

उपवस्ति--स्त्री० [सं० उप√वस् (रोकना)+क्तिन्] जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक बातें। जैसे--खाना-पीना, सोना आदि।

उप-वाक्य--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी बड़े वाक्य का वह अंग या भाग जिसमें कोई समापिका क्रिया हो। (क्लाज)

उपवाद--पुं० [सं० उप√वद् (बोलना)+घञ्] लोक में फैलनेवाला अपवाद या निंदा।

उपवास--पुं० [सं० उप√वस् (स्तंभन)+घञ्] दिन भर या दिन-रात भोजन न करना। भूखे रहना। फाका।

विशेष--उपवास प्रायः धार्मिक दृष्टि से, अन्न के अभाव से, रोगी होने की दशा में अथवा किसी प्रकार के प्रायश्चित्त आदि के रूप मे किया जाता है।

उपवासक--वि० [सं० उप√वस्+ण्वुल्--अक] उपवास करनेवाला।

उपवासी (सिन्)--वि० [सं० उप√वस्+णिनि] जो उपवास कर रहा हो। न खाने और भूखा रहनेवाला।

उप-विद्या--स्त्री० [सं० अत्या०स०] १.गौण, छोटी या साधारण विद्या। २.लौकिक ज्ञान या विद्या।

उप-विधि--स्त्री० [सं० अत्या० स०] १.गौण या अपेक्षया कम महत्त्व वाली विधि। २.किसी विधि के साथ लगी हुई उसी तरह की कोई छोटी विधि। (बाई लॉ)

उप-विभाग--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी विभाग के अंतर्गत उसका कोई गौण या छोटा विभाग।

उप-विष--पुं० [सं० अत्या० स०] ऐसा हलका विष जो तुरंत या विशेष घातक न हो। जैसे--अफीम, धतूरा आदि।

उप-विषा--स्त्री० [सं० ब० स०, टाप्] अतीस।

उपविष्ट--भू० कृ० [सं० उप√विश् (बैठना)+क्त] बैठा हुआ।

उपविष्टक--पुं० [सं० उपविष्ट+कन्] ऐसा भ्रूण जो नियत समय के बाद भी ठहरा या बना रहे। (वैद्यक)

उपवीत--पुं० [सं० उप-वि√इ (गति)+क्त] १. जनेऊ। २.उपनयन संस्कार।

उपवीती (तिन्)--वि० [सं० उपवीत+इनि] १.जिसका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका हो। २.जिसने जनेऊ पहना हो।

उपवीणा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] वीणा का निचला भाग, जिसमें तूंबा रहता है।

उपबृंहण--पुं० [सं० उप√बृंह् (वृद्धि)+ल्युट्--अन] तकिया।

उप-वेद--पुं० [सं० अत्या० स०] वेदों से ग्रहण की हुई लोकोपकारी विद्याएँ। इनमें चार मुख्य हैं--यजुर्वेद से ग्रहण किया गया धनुर्वेद,

चुम्बक पत्थर आदि पदार्थ जो रस अर्थात् पारे के समान गुणकारी माने गये हैं।

उपरहित--पुं०=पुरोहित।

उपरहिती--स्त्री०=पुरोहिती।

उपराँठा--पुं०=पराँठा।

उपरांत--अव्य० [सं०] किसी के अन्त में। पीछे या बाद में।

उपराग--पुं० [सं० उप√रञ्ज्+घञ्] १. रंग। २.भोग-विलास या विषयों में होनेवाला अनुराग। ३.आस-पास की वस्तु पर पड़नेवाला आभास या छाया। ४. चंद्रमा, सूर्य आदि का छाया ग्रस्त होना। ग्रहण। ५. व्यसन। ६. निद्रा। उदा०—भयउ परब बिनु रवि उपरागा।—तुलसी।

उपरा-चढ़ी--स्त्री०=चढ़ा-ऊपरी।

उप-राज--पुं० [सं० अव्या० स०] प्राचीन भारत में, राजा या राज्य की ओर से किसी अधीनस्थ प्रदेश का शासन करने के लिए नियुक्त प्रतिनिधि।

*स्त्री०=उपज।

उपराजना*--स० [सं० उपार्जन] १.उत्पन्न या पैदा करना। उदा०—अग-जग मय जग मम उपराजा।—तुलसी। २. रचना। बनाना। ३. उपार्जन करना। कमाना।

उपराना†--अ० [सं० उपरि] १.नीचे से ऊपर आना। २.प्रकट या प्रत्यक्ष होना।

स० १.ऊपर करना या लाना। २.प्रकट या प्रत्यक्ष करना।

उपराम--पुं० [सं० उप√रम्+घञ्] १.विषयों के भोग आदि से होनेवाली विरक्ति। विराग। २. छुटकारा। निवृत्ति। ३. आराम। विश्राम।

उपराला--पुं० [हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०)] पक्षग्रहण। सहायता।

वि० १.ऊपर का। ऊपरी। २.ऊँचा। ३.बाहरी।

उपरावटा--वि० [सं० उपरि+आवर्त्त] १.ऊपर की ओर उठा हुआ। २.अभिमान आदि के कारण अकड़ा या तना हुआ।

उपराहना*--स० [हिं० ऊपर+करना] १.औरों से ऊपर या बढ़कर मानना। २.प्रशंसा करना। सराहना। उदा०—आम जो फरि कै नवैं तराही। फल अमृत भा सब उपराही।—जायसी।

उपराही*--क्रि० वि०=ऊपर।

वि० उत्तम। श्रेष्ठ।

उपरि--अव्य० [सं० ऊर्ध्व+रिल्, उपादेश] १.ऊपर। उदा०—सैलोपरि सर सुंदर सोहा।—तुलसी। २. उपरांत। बाद।

उपरिचर--वि० [सं० उपरि√चर् (गति)+ट] ऊपर चलनेवाला।

पुं० चिड़िया। पक्षी।

उपरि-चित--वि० [स०त०] १.ऊपर रखा हुआ। २.सजा हुआ। सज्जित।

उपरिष्ट--पुं० [सं०] पराँठा नामक पकवान।

उपरी-उपरा--स्त्री०=चढ़ा-ऊपरी। उदा०—रन मारि मक उपरी-उपरा भले बीर रघुप्पति रावन के।—तुलसी।

उपरुद्ध--वि० [सं० उप√रुध् (रोकना)+क्त] १.रोका हुआ। २. घेरा हुआ। ३.बंधन में डाला या पड़ा हुआ। बद्ध।

उप-रूप--पुं० [सं० अव्या० स०] वैद्यक में रोग का बहुत हल्का या नगण्य लक्षण।

उप-रूपक--पुं० [सं० अव्या० स०] साहित्य में एक प्रकार का छोटा रूपक या नाटक जिसके १८ भेद या प्रकार कहे गये हैं।

उपरैना†--पुं० [स्त्री० उपरैनी]=उपरना (दुपट्टा)।

उपरोक्त--वि०=उपर्युक्त।

उपरोध--पुं० [सं० उप√रुध् (रोकना)+घञ्] १.ऐसी बात जिससे होता हुआ कार्य रुक जाय। बाधा। २.आच्छादन। ढकना।

उपरोधक--वि० [सं० उप√रुध्+ण्वुल्—अक] रोकनेवाला। बाधा डालनेवाला।

पुं० कोठरी के अंदर की कोठरी।

उपरोधन--पुं० [सं० उप√रुध्+ल्युट्—अन] १.रोकना या बाधा डालना। २.रुकावट। बाधा। ३.घेरा।

उपरोधी (धिन्)--पुं० [सं० उप√रुध्+णिनि] बाधा डालनेवाला। रोकनेवाला।

उपरोहित†--पुं०=पुरोहित।

उपरोहिती--स्त्री०=पुरोहिती।

उपरौंछा*--क्रि० वि० [हिं० ऊपर+औंछा (प्रत्य०)] ऊपर की ओर।

वि० ऊपर की ओर का। ऊपरी।

उपरौटा--पुं० दे० 'उपल्ला'।

उपरौठा*--वि०=उपरौटा (उपल्ला)।

पुं०=पराँवठा।

उपरौना*--पुं०=उपरना।

उपर्युक्त--वि० [सं० उपरि-उक्त, स० त०] १.ऊपर या पहले कहा हुआ। २.जिसका उल्लेख या चर्चा ऊपर या पहले हो चुकी हो। (एफोरसेड)

उपलंभक--वि० [सं० उप√लभ् (पाना)+णिच्+ण्वुल्—अक, नुम्] १.ज्ञान या अनुभव करानेवाला। २.प्राप्ति या लाभ करानेवाला।

उपलंभन--पुं० [सं० उप√लभ्+ल्युट्—अन, नुम्] १. ज्ञान। २.अनुभव। ३.प्राप्ति। लाभ।

उपल--पुं० [सं० उप√ला (लेना)+क] १.पत्थर। २. ओला। ३.बादल। मेघ। ४.जवाहर। रत्न। ५.बालू। रेत। ६.चीनी।

उपलक्ष--पुं० [सं० उप√लक्ष् (देखना)+घञ्]=उपलक्ष्य।

उपलक्षक--वि० [सं० उप√लक्ष्+ण्वुल्—अक] १.निरीक्षण करनेवाला। २.अनुमान करनेवाला।

पुं० साहित्य में, किसी वाक्य के अंतर्गत वह शब्द जो उपादान लक्षणा से अपने वाक्य के सिवा अपने वर्ग की अन्य बातों या वस्तुओं का भी उपलक्ष्य या बोध कराता हो। जैसे—'देखो, बिल्ली दूध न पी जाय।' में 'बिल्ली' शब्द से कुत्ते, नेवले आदि की ओर भी संकेत होता है; अतः 'बिल्ली' यहाँ उपलक्षक है।

उपलक्षण--पुं० [सं० उप√लक्ष्+ल्युट्—अन] १.ध्यान से देखना। २.किसी लक्षण के प्रकार या वर्ग का कोई गौण या छोटा लक्षण। ३. कोई ऐसी गौण बात जो किसी ऐसे तत्त्व की सूचक हो जिसका स्पष्ट उल्लेख या निर्देश हो चुका हो। ४.दे० 'उपलक्षक'।

उपलक्षित--भू० कृ० [सं० उप√लक्ष्+क्त] १. अच्छी तरह देखा-भाला हुआ। २.उपलक्ष्य के रूप में या संकेत से बतलाया हुआ। ३. अनुमान किया हुआ।

उपलक्ष्य--पुं० [सं० उप√लक्ष्+ण्यत्] १.वह बात जिसे ध्यान में रखकर कुछ कहा या किया जाय।

पद--उपलक्ष्य में=कोई काम या बड़ी बात होने पर उसका ध्यान रखते हुए। किसी बात के उद्देश्य से और उसके संबंध में। जैसे—विवाह के उपलक्ष्य में होनेवाला प्रीति-भोज।

२.किसी बात का चिह्न, लक्षण या संकेत।

उपलब्ध--भू० कृ० [सं० उप√लभ्+क्त] १.प्राप्त या हस्तगत किया हुआ। मिला हुआ। २.अनुमान, निष्कर्ष आदि के आधार पर जाना या समझा हुआ।

उपलब्धि--स्त्री० [सं० उप√लभ्+क्तिन्] १.उपलब्ध या प्राप्त होने की अवस्था, क्रिया या भाव। प्राप्ति। २.ज्ञान। ३.बुद्धि। ४.(प्राप्त की हुई) सफलता या सिद्धि।

उपलभ्य--वि० [सं० उप√लभ् (पाना)+यत्] १.जो उपलब्ध या प्राप्त हो सकता हो। जो मिल सके। २.आदर या प्रशंसा के योग्य।

उपला--पुं० [सं० उत्पन्न] [स्त्री० उपली] गाय, भैंस आदि के गोबर का सूखा हुआ कंडा जो जलाने के काम आता है।

उपलाना--स०=उपराना।

उपलिंग--पुं० [उप√लिंग् (गति)+घञ्] १.अरिष्ट। २.उपद्रव।

उपलेप--पुं० [सं० उप√लिप् (लीपना)+घञ्] १.गीली वस्तु (विशेषतः गोबर आदि) से पोतना या लीपना। २.ऐसी वस्तु जिससे पोता या लीपा जाय।

उपलेपन--पुं० [सं० उप√लिप्+ल्युट्—अन] १.पोतना। लीपना। २.लेप आदि के रूप में लगाना।

उपलेपी (पिन्)--वि० [सं० उप√लिप्+णिनि] १.पोतने या लीपनेवाला। २.किये-कराये काम पर पानी फेरनेवाला।

उप-लौह--पुं० [सं० अत्या० स०] एक प्रकार की गौण धातु।

उपल्ला--पुं० [हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०) अथवा पल्ला] किसी वस्तु विशेषतः पहनने के दोहरे कपड़े की ऊपरी तह या परत। भितल्ला का विपर्याय। जैसे—रजाई का उपल्ला।

उप-वंग--पुं० [सं० अत्या० स०] प्राचीन वंग (आधुनिक बंगाल) के पास का एक प्राचीन जनपद।

उपवक्ता (क्तृ)--पुं० [सं० उप√वच् (बोलना)+तृच्] यज्ञ का पर्यवेक्षण करनेवाला। ऋत्विज्।

वि० प्रेरणा करनेवाला। प्रेरक।

उप-वट--पुं० [सं० अत्या० स०] चिरौंजी का पेड़।

उप-वन--पुं० [सं० अत्या० स०] १.छोटा वन या जंगल। २.ऐसा उद्यान जिसमें कई खुले मैदान हों। ३.बगीचा। बाग।

उपयना--अ० १.=उपजना। उदा०—मोद भरी गोद लिए लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।—तुलसी। २.=उड़ना। उदा०—देखत चुरै कपूर ज्यौं उपै जाय जनि लाल।—बिहारी।

उपवर्णन--पुं० [सं० उप√वर्ण् (वर्णन करना)+घञ्] विस्तृत या ब्योरेवार वर्णन।

उपवर्ण्य--वि० [सं० उप√वर्ण्+ण्यत्] जिसका वर्णन किया जाने को हो या किया जा सके।

पुं० वह जिससे उपमा दी गई हो। उपमान।

उपवर्त--पुं० [सं० उप√वृत् (बरतना)+घञ्] एक बहुत बड़ी संख्या।

उपवर्तन--पुं० [सं० उप√वृत्+ल्युट्—अन] १.निकट लाना। २.जनपद। ३.राज्य। ४.दलदल।

उपवसथ--पुं० [सं० उप√वस् (बसना)+अथ] १.बसा हुआ स्थान। बस्ती। २.यज्ञ आरंभ करने से पहले का दिन जिसमें व्रत आदि का विधान है। ३.उक्त दिन होनेवाले धार्मिक कृत्य।

उपवसन--पुं० [सं० उप√वस् (रोकना, बसना)+ल्युट्—अन] १.पास बसना या रहना। २.उपवास करना।

उपवस्ति--स्त्री० [सं० उप√वस् (रोकना)+क्तिन्] जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक बातें। जैसे—खाना-पीना, सोना आदि।

उप-वाक्य--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी बड़े वाक्य का वह अंग या भाग जिसमें कोई समापिका क्रिया हो। (क्लाज)

उपवाद--पुं० [सं० उप√वद् (बोलना)+घञ्] लोक में फैलनेवाला अपवाद या निंदा।

उपवास--पुं० [सं० उप√वस् (स्तंभन)+घञ्] दिन भर या दिन-रात भोजन न करना। भूखे रहना। फाका।

विशेष--उपवास प्रायः धार्मिक दृष्टि से, अन्न के अभाव से, रोगी होने की दशा में अथवा किसी प्रकार के प्रायश्चित्त आदि के रूप में किया जाता है।

उपवासक--वि० [सं० उप√वस्+ण्वुल्—अक] उपवास करनेवाला।

उपवासी (सिन्)--वि० [सं० उप√वस्+णिनि] जो उपवास कर रहा हो। न खाने और भूखा रहनेवाला।

उप-विद्या--स्त्री० [सं० अत्या०स०] १.गौण, छोटी या साधारण विद्या। २.लौकिक ज्ञान या विद्या।

उप-विधि--स्त्री० [सं० अत्या० स०] १.गौण या अपेक्षया कम महत्त्व वाली विधि। २.किसी विधि के साथ लगी हुई उसी तरह की कोई छोटी विधि। (बाई लॉ)

उप-विभाग--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी विभाग के अंतर्गत उसका कोई गौण या छोटा विभाग।

उप-विष--पुं० [सं० अत्या० स०] ऐसा हलका विष जो तुरंत या विशेष घातक न हो। जैसे—अफीम, धतूरा आदि।

उप-विषा--स्त्री० [सं० ब० स०, टाप्] अतीस।

उपविष्ट--भू० कृ० [सं० उप√विश् (बैठना)+क्त] बैठा हुआ।

उपविष्टक--पुं० [सं० उपविष्ट+कन्] ऐसा भ्रूण जो नियत समय के बाद भी ठहरा या बना रहे। (वैद्यक)

उपवीत--पुं० [सं० उप-वि√इ (गति)+क्त] १. जनेऊ। २.उपनयन संस्कार।

उपवीती (तिन्)--वि० [सं० उपवीत+इनि] १.जिसका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका हो। २.जिसने जनेऊ पहना हो।

उपवीणा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] वीणा का निचला भाग, जिसमें तूँबा रहता है।

उपवृंहण--पुं० [सं० उप√वृंह् (वृद्धि)+ल्युट्—अन] तकिया।

उप-वेद--पुं० [सं० अत्या० स०] वेदों से ग्रहण की हुई लोकोपकारी विद्याएँ। इनमें चार मुख्य हैं—यजुर्वेद से ग्रहण किया गया धनुर्वेद,

सामवेद से लिया हुआ गंधर्ववेद, ऋग्वेद से निकाला हुआ आयुर्वेद और अथर्ववेद से ली हुई स्थापत्यकला।

उपवेधक--पुं० [सं० उप√विध् (वेधना)+ण्वुल्-अक] यात्रियों या राह चलतों को तंग करके उनका धन छीननेवाला। बटमार।

उपवेश--पुं० [सं० उप√विश् (बैठना)+घञ्] १.बैठने की क्रिया या भाव। २.किसी कार्य मे लगना। ३.सभा, समिति आदि की बैठक होना। ४.मल-त्याग।

उपवेशन--पुं० [स० उप√विश्+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उपविष्ट] बैठना।

उपवेशित--भू० कृ० [सं० उप√विश्+णिच्+क्त] बैठा हुआ।

उपवेशी (शिन्)--वि० [सं० उप√विश्+णिनि] १.बैठनेवाला। २.जो काम में लगा हो।

उपवेष्टन--पुं० [स० उप√वेष्ट् (लपेटना)+ल्युट्-अन] [भू० कृ० उपवेष्टित] चारो ओर से लपेटना।

उपशम--पुं० [स० उप√शम् (शाति)+घञ्] १.शांत होना। २.इंद्रियो या मनोविकारो को वश में करना। ३.उपद्रव आदि की शांति के लिए किया जानेवाला उपाय या प्रयत्न।

उपशमन--पुं० [सं० उप√शम्+ल्युट्-अन] १.शांत करना। २.दवाना। घटाना। ३.निवारण।

उपशमित--भू० कृ० [सं० उप√शम्+णिच्+क्त] १. शांत किया हुआ। २.दवाया हुआ।

उपशय--वि० [सं० उप√शी (सोना)+अच्] १. पास लेटने या सोनेवाला। २.शांतिदायक।

पुं० १.पास सोना। २.खान-पान, औषध आदि के कारण रोग पर पड़नेवाला प्रभाव और उसके आधार पर होनेवाला रोग का निदान।

उपशल्य--पुं० [स० प्रा० स०] १.नगर या गाँव की सीमा। २.पहाड़ के पास की भूमि। ३.भाला।

उपशांति--स्त्री० [सं० उप√शम्+क्तिन्] उपशम।

उप-शाखा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] १.छोटी शाखा। २.किसी बड़ी शाखा की कोई छोटी शाखा।

उपशामक--वि० [स० उप√शम्+णिच्+ण्वुल्-अक] उपशमन (निवारण या शात) करनेवाला।

उपशाय--पुं० [सं० उप√शी (सोना)+घञ्] एक के बाद एक या बारी-बारी (पहरे आदि के विचार से चौकीदारो का) से सोना।

उपशायक--वि० [सं० उप√शी+ण्वुल्-अक]=चौकीदार।

उपशायी (यिन्)--वि० [सं० उप√शी+णिनि]=उपशायक।

उप-शाल--पुं० [सं० अत्या० स०] १.घर या गाँव के सामने की खुली जगह या मैदान। २.चौपाल।

उप-शिक्षक--पुं० [स० अत्या० स०] सहायक शिक्षक।

उप-शिष्य--पुं० [स० अत्या० स०] शिष्य का शिष्य। चेले का चेला।

उप-शीर्षक--पुं० [सं० अत्या० स०] १.किसी बड़े शीर्षक के अंतर्गत होनेवाला कोई गौण या छोटा शीर्षक। २.एक रोग जिसमें सिर में छोटी-छोटी फुसियाँ निकल आती हैं। चाई-चूई।

उपशोभन--पुं० [सं० उप√शोभ् (मोहना)+ल्युट्-अन] सजाना।

उपश्रुत--भू० कृ० [सं० उप√श्रु (सुनना)+क्त] १.सुना हुआ। २.स्वीकृत किया हुआ। ३.जाना हुआ।

उपश्रुति--स्त्री० [सं० उप√श्रु+क्तिन्] १.सुनना। २.भविष्यवाणी। ३.स्वीकृति।

उपश्लिष्ट--वि० [सं० उप√श्लिष् (मिलना)+क्त] १.पास रखा हुआ। २.लगा या सटा हुआ। ३.संपर्क में आया या लाया हुआ।

उपश्लेष--पुं० [सं० उप√श्लिष्+घञ्] १.पास आकर लगना या सटना। २.आलिंगन।

उपसंगत--वि० [सं० उप-सम्√गम् (जाना)+क्त] १.संयुक्त। २.संलग्न।

उप-संपदा--स्त्री० [सं० अत्या० स०] बौद्ध धर्म में, घर-गृहस्थी छोड़कर भिक्षु बनना।

उप-संपादक--पुं० [सं० अत्या० स०] सहायक संपादक।

उप-संस्कार--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी संस्कार के अंतर्गत होनेवाला कोई गौण या छोटा संस्कार।

उपसंहार--पुं० [सं० उप-सम्√हृ (हरण)+घञ्] १.परिहार। २.अंत। समाप्ति। ३.किसी प्रकरण, विषय आदि का वह अंतिम अंश जिसमें उक्त प्रकरण या विषय की मुख्य मुख्य बातें फिर से अति संक्षेप में बतलाई जाती हैं। ४.सारांश।

उपसा--स्त्री० [सं० उप+हिं० वास=महक] दुर्गन्ध। बदबू।

उपसक्त--वि० [सं० उप√सञ्ज्+क्त] १.आसक्त। २.संलग्न।

उपसना--अ० [सं० उप+हिं० वास=महक] ऐसी स्थिति में होना कि बदबू निकले। गल या सड़कर दुर्गंध देना।

स० गला या सड़ाकर बदबू उत्पन्न करना।

अ० [सं० उपवसन] दूर होना। हटना। उदा०—दहुं कवि लास कि कहँ उपसई।—जायसी।

उपसन्न--वि० [सं० उप√सद् (गति)+क्त] १.सहायता या सेवा के लिए आया हुआ। २.पास रखा या लाया हुआ। ३.प्राप्त। ४ दिया हुआ। प्रदत्त।

उप-सभापति--पुं० [सं० अत्या० स०] किसी संस्था का वह अधिकारी जिसका पद सभापति के उपरांत या उससे छोटा होता है तथा जो सभापति की अनुपस्थिति में उसके सब काम करता है। (वाइस प्रेसिडेंट)

उपसम*--पुं०=उपशम।

उप-समिति--स्त्री० [सं० अत्या० स०] किसी बड़ी सभा या समिति द्वारा किसी विषय की जाँच करने अथवा उस पर सम्मति देने के लिए नियुक्त की हुई छोटी समिति।

उपसरण--पुं० [सं० उप√सृ (गति)+ल्युट्-अन] १.किसी की ओर आना, जाना या पहुँचना। २.रक्त का तेजी से हृदय की ओर बहना। ३.शरण।

उपसर्ग--पुं० [सं० उप√सृज् (त्याग)+घञ्] १.वह अव्यय या शब्द जो कुछ शब्दों के आरंभ में लगकर उनके अर्थो का विस्तार करता अथवा उनमें कोई विशेषता उत्पन्न करता है। जैसे—अ, अनु, अप, वि आदि उपसर्ग हैं। २.बुरा लक्षण या अपशकुन। ३.किसी प्रकार का उत्पात, उपद्रव या विघ्न। ४.वह पदार्थ जो कोई पदार्थ बनाते समय बीच में

संयोगवश बन जाता या निकल आता है। (बाई प्राडक्ट) जैसे—गुड़ बनाते समय जो शीरा निकलता है, वह गुड़ का उपसर्ग है।

उपसर्जन—पुं० [सं० उप√सृज्+ल्युट्—अन] १.गढ़, ढाल या बनाकर तैयार करना। २.दैवी उत्पात या उपद्रव। ३.अप्रधान या गौण वस्तु। ४.त्याग।

उपसर्पण—पुं० [सं० उप√सृप् (गति)+ल्युट्—अन] किसी की ओर या आगे बढ़ना।

उपसवना—अ० [सं० उपसरना] कहीं से भाग या हटकर चले जाना। उदा०—लै उपसवा जलंधर जोगी।—जायसी।

उप-सागर—पुं० [सं० अत्या० स०] बड़े सागर का कोई छोटा अंग या भाग। समुद्र की खाड़ी।

उपसादन—पुं० [सं० उप√सद्+णिच्+ल्युट्—अन] १.सेवा में उपस्थित होना। २.सम्मान करना। ३.किसी काम का भार लेना।

उपसाना—स० [हिं० उपसना] गलाना या सड़ाना।

उप-सुंद—पुं० [सं० ब० स०] सुंद नामक दैत्य का छोटा भाई।

उपसृष्ट—भू० कृ० [सं० उप√सृज्+क्त] १.पकड़ा हुआ। २.प्रेत आदि द्वारा पकड़ा हुआ।

उपसेक—पुं० [सं० उप√सिच् (सींचना)+घञ्] १.छिड़कना। २. तर करना। सींचना ३.बचाव। रक्षा।

उपसेचन—पुं० [सं० उप√सिच्+ल्युट्—अन] १. पानी से तर करना या भिगोना। २.सींचना। ३.रसेदार व्यंजन। जैसे—तरकारी, दाल आदि।

उपसेवन—पुं० [सं० उप√सेव् (सेवा करना)+ल्युट्—अन] १. सेवा करना। २.सेवन करना। ३.आलिंगन करना। गले लगाना।

उपस्कर—पुं० [सं० उप√कृ (करना)+अप्, सुट्] १.चोट या हानि पहुँचाना। २.हिंसा करना। ३.जीवन-निर्वाह में सहायक होनेवाली चीजें या बातें। ४.सजावट या सजाने की सामग्री। उपस्कार। ५.कोई ऐसा यंत्र जिसमें अनेक छोटे-छोटे तथा पेचीले कल पुरजे हों। संयंत्र। (एपरेटस)

उपस्करण—पुं० [सं० उप√कृ+ल्युट्—अन, सुट्] १. हानि या चोट पहुँचाना। २.सँवारना। सजाना। ३.विकार। ४.निंदा। ५.समूह।

उपस्कार—पुं० [सं० उप√कृ+घञ्, सुट्] १.रिक्त स्थान की पूर्ति करनेवाली चीज। २.सँवारना। सजाना। ३. घर-गृहस्थी आदि मे सजावट की सामग्री। (फर्निचर) ४.आभूषण। गहना।

उपस्कृत—भू० कृ० [सं० उप√कृ+क्त, सुट्] १.बनाया या प्रस्तुत किया हुआ। २.इकट्ठा किया हुआ। ३.बदला हुआ। ४.लांछित। ५.हत। ६.सँवारा या सजाया हुआ। ७.अलंकृत।

उपस्तरण—पुं० [सं० उप√स्तृ (फैलाना)+ल्युट्—अन] १.फैलाना। बिछाना। २.बिछावन। बिछौना। ३.चादर।

उप-स्त्री—स्त्री० [सं० अत्या० स०] बिना विवाह किये रखी हुई स्त्री। रखेली।

उपस्थ—वि० [सं० उप√स्था (ठहरना) +क] बैठा हुआ।
पुं० १.शरीर का मध्य भाग। २.पेड़ू। ३.पुरुष या स्त्री की जननेंद्रिय। लिंग या भग। ४. मल-त्याग का मार्ग। गुदा। ५.चूतड़। ६. गोद।

उप-स्थल—पुं० [सं० अत्या० स०] [स्त्री० उपस्थली] १.चूतड़। २. पेड़ू। ३.कूल्हा।

उपस्थली—स्त्री० [सं० उपस्थल+ङीप्] कटि। कमर।

उपस्थाता (तृ)—वि० [सं० उप√स्था+तृच्] १.उपस्थित रहनेवाला। २.समीप रहनेवाला। ३.उपासक।
पुं० नौकर। भृत्य। सेवक।

उपस्थान—पुं० [सं० उप√स्था+ल्युट्—अन] १. किसी के समीप जाना या पहुँचना। १. उपस्थित होना। ३. अभ्यर्थना, पूजा आदि के लिए पास आना। ४. पूजा आदि का स्थान। ५. समाज।

उपस्थापक—पुं० [सं० उप√स्था+णिच्, पुक्+ण्वुल्—अक] १. प्रस्ताव आदि के रूप में किसी सभा या समिति के समक्ष विचार करने के लिए कोई प्रस्ताव या विषय उपस्थित करनेवाला। २. पेशकार।

उपस्थापन—पुं० [सं० उप√स्था+णिच्, पुक्+ल्युट्—अन] १. उपस्थित करना। २. सभा, समिति आदि के समक्ष कोई विषय प्रस्ताव के रूप मे विचारार्थ उपस्थित करना।

उपस्थापित—भू० कृ० [सं० उप√स्था+णिच्, पुक्+क्त] जिसका उपस्थापन हुआ हो। उपस्थित किया हुआ।

उपस्थित—वि० [सं० उप√स्था+क्त] १. पास या समीप बैठा हुआ। २. जो दूसरों के समक्ष या उनकी उपस्थिति में आया हो। ३. सामने आया हुआ। प्रस्तुत। ४. ध्यान या मन में आया हुआ। ५. स्मृति में वर्तमान। याद। जैसे—इन्हें तो सारी गीता उपस्थित है।

उपस्थिता—स्त्री० [सं० उपस्थित+टाप्] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण, दो जगण और अन्त में एक गुरु होता है।

उपस्थिति—स्त्री० [सं० उप√स्था+क्तिन्] १. उपस्थित होने की अवस्था, क्रिया या भाव। मौजूदगी। २. हाजिरी।

उपस्थिति-अधिकारी (रिन्)—पु० [ष० त०] किसी संस्था, विशेषतः शिक्षा देनेवाली संस्था का वह अधिकारी जो शिक्षार्थियों की उपस्थिति सम्बन्धी देख-भाल करता और उपस्थिति बढ़ाने का प्रयत्न करता है। (एटेण्डेण्टआफिसर)

उपस्थिति-पंजी—स्त्री० [ष० त०] वह पंजी जिसमें किसी कार्यालय, संस्था आदि में नित्य और नियमित रूप से उपस्थित होनेवाले लोगों की उपस्थिति का लेखा रहता है। (एटेण्डेन्स रजिस्टर)

उपस्थिति-पत्र—पुं० [सं० ष० त०] किसी को किसी अधिकारी के सामने किसी निश्चित समय पर उपस्थित होने के लिए भेजा हुआ आधिकारिक पत्र या सूचना। आकारक। (साइटेशन)

उपस्पर्श—पुं०=आचमन।

उप-स्मृति—स्त्री० [सं० अत्या० स०] हिन्दुओं में, स्मृतियों के वर्ग में माने जानेवाले कुछ गौण विधायक ग्रन्थ। जैसे—कपिंजल, कात्यायन, जाबालि, विश्वामित्र या स्कंद की उप-स्मृति।

उप-स्वत्व—पुं० [सं० अत्या० स०] १. जमीन या किसी जायदाद की पैदावार या आमदनी लेने का अधिकार या स्वत्व। २. लगान। ३. आय।

उपस्वेद—पुं० [सं० उप√स्विद् (पसीना निकलना)+घञ्] १. आर्द्रता। नमी। २. भाप। वाष्प। ३. पसीना। स्वेद।

उपहत—वि० [सं० उप√हन् (हिंसा)+क्त] १. नष्ट किया हुआ। २. खराब किया या बिगाड़ा हुआ। ३. (सुरासव) जो कुछ विशिष्ट रासायनिक पदार्थों के योग से इतना विषाक्त कर दिया गया हो कि लोग उसे पी न सके। (मैथिलेटेड) ४. कष्ट या संकट में पड़ा हुआ। ५. अपवित्र या अशुद्ध किया हुआ। ६. दुःखी।

उपहत-चित्त—वि० [सं० ब० स०] १. विवेक से रहित या शून्य। २. पागल।

उपहति—स्त्री० [सं० उप√हन्+क्तिन्] १. उपहत होने की अवस्था या भाव। २. विनाश। ३. हानि। ४. अत्याचार।

उपहरण—पुं० [सं० उप√हृ (हरण करना)+ल्युट्—अन] १. पास या समीप लाना या पहुँचाना। २. हरण करना। छीनना या लूटना। ३. उपहार। भेंट।

उपहव—पु० [सं० उप√ह्वे (बुलाना)+अप्] =आवाहन।

उपहसित—पु० [सं० उप√हस् (हँसना)+क्त] साहित्य में हास्य का वह प्रकार जिसमें आदमी सिर हिलाते हुए, आँखें टेढ़ी करके, नाक फुला कर तथा कन्धे सिकोड़ कर हँसता है। (हास के छः भेदों में से एक है।)

उपहार—पु० [सं० उप√हृ (हरण करना)+घञ्] १. प्रसन्न होकर तथा सद्भावपूर्वक किसी मित्र, सम्बन्धी आदि को कोई वस्तु देना। २. किसी विशिष्ट अवसर पर किसी को (स्मृति चिह्न के रूप में) दी जानेवाली कोई वस्तु। भेंट। (गिफ्ट) जैसे—कन्या के विवाह में उपहार देना। ३. शैवों की उपासना के छः नियम (हसित, गीत, नृत्य, डुडुक्कार, नमस्कार और जप)।

उपहार-संधि—स्त्री० [मध्य० स०] किसी विरोधी या शत्रु को कुछ उपहार देकर उसके साथ की जानेवाली संधि।

उपहारी (रिन्)—वि० [सं० उपहार+इनि] उपहार देनेवाला। भेंट करनेवाला।

उपहास—पु० [सं० उप√हस्+घञ्] १. हँसी। दिल्लगी। २. यों ही हँसते हुए किसी की खिल्ली या दिल्लगी उड़ाना। हँसते-हँसते किसी को तुच्छ या हीन ठहराना।

उपहासक—वि०, पु० [सं० उप√हस्+ण्वुल्—अक] दूसरों का उपहास करनेवाला।

उपहासास्पद—वि० [सं० उपहास-आस्पद, ष० त०] जो उपहास किए जाने के योग्य हो। जिसका उपहास किया जा सके।

उपहासी (सिन्)—वि० [सं० उप√हस्+णिनि] उपहास करनेवाला। *स्त्री०=उपहास।

उपहास्य—वि० [सं० उप√हस् +ण्यत्] १. जिसका उपहास हो सकता हो या किया जा सकता हो। २. (इतना तुच्छ) जिसे देखकर हँसी आती हो।

उपहित—वि० [सं० उप√धा (धारण)+क्त—धा=हि] १. ऊपर रखा हुआ। स्थापित। २. धारण किया हुआ। ३. पास रखा या लाया हुआ। ४. मिला या मिलाया हुआ। सम्मिलित। ५. किसी प्रकार की उपाधि से युक्त।

उपही*—पु० [सं० उपरि] १. बाहरी। २. परदेशी। विदेशी। ३. अपरिचित। ऊपरी। बाहरी। उदा०—प्रानहुँ ते प्यारे प्रीतम उपही। —तुलसी। ४. ऐसा आदमी जिसका प्रस्तुत विषय से कोई सम्बन्ध न हो।

उपहूति—स्त्री० [सं० उप√ह्वे+क्तिन्] चुनौती। प्रचारणा।

उपहृत—भू० कृ० [सं० उप√हृ (हरण करना)+क्त] १. पास लाया हुआ। २. अर्पण या भेंट किया हुआ। उपहार के रूप में दिया हुआ।

उपांग—पुं० [सं० उप—अंग, अत्या० स०] १. किस वस्तु के किसी अंग या भाग का गौण या छोटा अंग। २. ऐसा छोटा अंग जिससे किसी बड़े अंग की पूर्ति होती हो। जैसे—धर्मशास्त्र, पुराण आदि वेदों के उपांग हैं। ३. टीका। तिलक। ४. एक प्रकार का पुराना बाजा।

उपांजन—पुं० [सं० उप√अञ्ज् (आँजना, चिकनाना)+ल्युट्—अन] १. पोतना। लीपना। २. सफ़ेदी करना।

उपांत—पु० [सं० उप—अंत, अत्या० स०] १. वह जो अंतिम से ठीक पहले हो। २. अंतिम स्थान या अंत के आस-पास का भू-भाग या स्थान। ३. नदी का तट या किनारा। ४. सीमा। हद। ५. कपड़े का आँचल। ६. आज-कल, लिखने के समय कागज की दाहिनी या बाईं ओर छोड़ा जानेवाला थोड़ा-सा खाली स्थान जिसमें आवश्यकता होने पर बाद में कुछ और बातें बढ़ाई या लिखी जा सकती है। हाशिया। (मार्जिन)

उपांत-साक्षी (क्षिन्)—पुं० [सं० ष० त०] वह साक्षी जिसने किसी लेख के उपांत पर हस्ताक्षर किया हो। (मार्जिन विटनेस)

उपांतस्थ—वि०[सं० उपांत√स्था (ठहरना)+क] १. उपांत पर होनेवाला। २. कागज के हाशिये पर लिखा हुआ। उपांतिक।

उपांतिक—वि० [सं० उप—अंतिक, प्रा० स०] १. पास या समीप का। २. उपांत में रहने या होनेवाला। (मार्जिनल)

उपांतिका—स्त्री० [सं० उपान्त] विधायिका सभाओं, संसदों आदि के अधिवेशन के कमरे के आस-पास का वह कमरा जिसमें जन-साधारण भी आ सकते हैं। (लाबी)

उपांतिम—वि० [उप—अंतिम, प्रा० स०]=उपांतिक।

उपांत्य—वि० [सं० उप—अंत्य, प्रा० स०] १. अंत के पास का। २. अंतिम से पहले का।

उपाउ*—पुं०=उपाय।

उपाकरण—पुं० [सं० उप—आ√कृ (करना)+ल्युट्—अन]=उपक्रम।

उपाकर्म (न्)—पुं० [सं० उप—आ√कृ+मनिन्] १. श्रावणी पूर्णिमा को संस्कारपूर्वक वेदपाठ का आरम्भ करना। २. यज्ञोपवीत संस्कार। ३. =उपक्रम।

उपाकृत—वि० [सं० उप—आ√कृ+क्त] १. पास लाया हुआ। २. आरम्भ किया हुआ। ३. विपत्तिजनक। ४. (पशु) जिसे बलि चढ़ाया गया हो।

उपाख्या—स्त्री० [सं० उप—आ√ख्या (कहना)+अ—टाप्] १. कुछ जानने के लिए स्वयं देखना। २. शब्दों के द्वारा कुछ वर्णन करना। ३. विवरण बतलाना। ४. दूसरों की प्रतिभा में रस लेने या उसका फल ग्रहण करने की शक्ति।

उपाख्यान—पुं० [सं० उप—आ√ख्या+ल्युट्—अन] १. विस्तारपूर्वक कही हुई कोई पुरानी कथा। २. किसी कथा के अन्तर्गत आनेवाली कोई छोटी कथा। उपकथा। ३. वर्णन। वृत्तान्त।

उपागत--भू० कृ० [सं० उप--आ√गम् (जाना)+क्त] १. आया या पहुँचा हुआ। २. जो घटित हुआ हो। ३. जिस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा हो।

उपागम--पुं० [सं० उप--आ√गम्+अप्] १. कहीं आना या पहुँचना। २. घटित होना। ३. किसी प्रकार के प्रतिबन्ध में होना।

उपाग्रहण--पुं० [सं० उप--आ√ग्रह् (ग्रहण करना)+ल्युट्--अ] =उपाकर्म।

उपाचार--पुं० [सं० उप--आचार,अत्या० स०] बहुत दिनों से चली आई हुई कोई गौण परिपाटी या प्रथा, जिसकी गणना आचार के अन्तर्गत होती हो। (यूसेज)

उपाटना†--स० [सं० उत्पाटन] जड़ से नोचना। उखाड़ना।

उपाठ†--वि० [सं० पुष्ट, हिं० पाठ] १. पक्का। पुष्ट। २. पका हुआ।

उपाठना†--स० [हिं० उपाठ] १. दृढ़ या पक्का करना। २. पकाना।

उपाड़†--पुं० [हिं० उपड़ना= उभरना] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर की खाल कुछ अलग होने लगती है।

उपाड़ना--स० [सं० उत्पाटन] जड़ से उखाड़ना।

स० [सं० उत्+पठन ?] १. उच्चारण करना। २. पढ़ना। ३. अर्थ या भाव निकालना या समझना।

स०=उभारना।

उपाती†--स्त्री०=उत्पत्ति।

उपात्यय--पुं० [सं० उप--अति√इ (गति)+अच्] किसी प्रथा या रीति-रिवाज का होनेवाला उल्लंघन अथवा उसके विरुद्ध किया जानेवाला आचरण।

उपादान--पुं० [सं० उप--आ√दा (देना)+ल्युट्--अन] [वि० उपादेय] १. अपने लिए कुछ प्राप्त करना। २. किसी की कोई वस्तु अपने उपयोग में लाना। ३. देखना, पढ़ना या सीखना। ज्ञान प्राप्त करना। ४. ज्ञान। बोध। ५. इन्द्रियों का अपने भोग-विषयों की ओर से हट जाना। ६. न्याय में, ऐसा तत्त्व जो कोई और रूप धारण करके किसी वस्तु के बनने का कारण होता है। जैसे--मिट्टी वह उपादान है, जिससे घड़ा बनता है। ७. सांख्य में, चार प्रकार की आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक जिसमें मनुष्य एक ही बात से पूर्ण फल की आशा करके अन्य प्रयत्न छोड़ देता है। ८. दे० 'उपादान लक्षणा'।

उपादान-कारण--पुं० [कर्म० स०] दे० 'उपादान' ५.।

उपादान-लक्षणा--स्त्री० [सं० मध्य० स०] साहित्य में लक्षणा का वह प्रकार या भेद जिसमें मुख्य अर्थ ज्यों का त्यों बना रहने पर भी साथ में कोई और अर्थ अथवा किसी और का कर्तृत्व भी ग्रहण कर लेता अथवा सूचित करने लगता है। जैसे--वहाँ जमकर लाठियाँ चली। में 'लाठियों' ने चलानेवालों का कर्तृत्व ग्रहण कर लिया है।

उपादि†--स्त्री०=उपाधि।

उपादेय--वि० [सं० उप--आ√दा+यत्] १. जो ग्रहण किया या लिया जा सकता हो। ग्रहण किये या लिये जाने के योग्य। २. अच्छा और काम में आने योग्य। उपयोगी।

उपाधा--स्त्री०=उपाधि।

उपाधि--स्त्री० [सं० उप--आ√धा (धारण)+कि] १. वह जो किसी दूसरे के स्थान पर काम आ सके या रखा जा सके। २. दूसरे का ऐसा वेश जो किसी को धोखा देने के लिए धारण किया गया हो। छद्म-वेश। ३. वह तत्त्व जिसके कारण कोई चीज़ और की और अथवा किसी विशेष रूप में दिखाई दे। जैसे--घड़े के भीतर होने की दशा में आकाश का परिमित दिखाई देना। ४. उत्पात। उपद्रव। ५. कर्त्तव्य का विचार। ६. महत्त्व, योग्यता, सम्मान आदि का सूचक वह पद या शब्द जो किसी नाम के साथ लगाया जाता है। पदवी। खिताब। (टाइटिल) जैसे--आज-कल लोगों को पद्म-विभूषण, भारत रत्न आदि की उपाधियाँ मिलने लगी है।

उपाधि-धारी (रिन्)--पुं० [सं० उपाधि√धृ (धारण करना)+णिनि] वह व्यक्ति जिसे किसी प्रकार की उपाधि मिली हो।

उपाधी--वि० [सं० उपाधि से] उत्पात करनेवाला। उपद्रवी।

*स्त्री०=उपाधि।

उपाध्यक्ष--पुं० [सं० उप--अध्यक्ष, अत्या० स०] किसी संस्था, समिति में अध्यक्ष के सहायक रूप में परन्तु उसके अधीन काम करनेवाला पदाधिकारी। (वाइस चेयरमैन)

उपाध्या†--पु०= उपाध्याय।

उपाध्याय--पुं० [सं० उप--अधि√इ (अध्ययन)+घञ्] १. वेद-वेदांगों का अध्ययन करानेवाला पण्डित। २. अध्यापक। शिक्षक। ३. कई वर्गों के ब्राह्मणों में एक भेद या उपजाति।

उपाध्याया--स्त्री० [सं० उपाध्याय+टाप्] अध्यापिका।

उपाध्यायानी--स्त्री० [सं० उपाध्याय+ङीप्, आनुक्] उपाध्याय की स्त्री। गुरुपत्नी।

उपाध्यायी--स्त्री० [सं० उपाध्याय+ङीप्] १. उपाध्याय की स्त्री। गुरुपत्नी। २. पढ़ानेवाली स्त्री। अध्यापिका। शिक्षिका।

उपान--स्त्री० [हिं० ऊपर+आन (प्रत्य०)] इमारत की कुरसी। २. खम्भे के नीचे आकार रूप में रहनेवाली चौकी।

उपानह--पुं० [सं० उपानत्] १. जूता। २. खड़ाऊँ।

उपाना†--स० [सं० उत्पादन, प्रा० उप्पन्न] उत्पन्न करना। पैदा करना। उदा०--(क) अखिल विस्व यह मोर उपाया।--तुलसी। (ख) भोग भुगुति बहु भाँति उपाई।--जायसी।

स० [सं० उपाय] उपाय या युक्ति निकालना।

उपाय--पुं० [सं० उप√अय् (गति)+घञ्] १. ऐसा प्रयत्न जिससे सार्विक रूप से अथवा साधारणतः कोई काम सिद्ध हो, अथवा वांछित फल की प्राप्ति हो। २. तरकीब। युक्ति। ३. युद्ध की व्यूह-रचना। ४. शासन-प्रबन्ध। व्यवस्था। ५. चिकित्सा। इलाज।

उपायन--पुं० [सं० उप√इ वा√अय्+ल्युट्--अन] १. प्राचीन काल में, किसी राजा द्वारा किसी महाराजा को दी जानेवाली भेंट। २. मित्रों आदि को परदेस या विदेश से लाकर भेंट की हुई कोई विलक्षण या सुन्दर वस्तु। सौगात।

उपायिक--वि० [सं० उपाय+ठन्--इक] उपाय करके उन्नति करने या बढ़ानेवाला।

उपायी (यिन्)--वि० [सं० उप√अय्+णिनि] उपाय करने या सोचनेवाला।

उपायुक्त—पुं० [सं० उप—आयुक्त, अत्या० स०]=प्रतिआयुक्त। (डिप्टी कमिश्नर)

उपारंभ—पुं० [सं० उप—आ√रभ्+घञ्, नुम्] आरंभ।

उपारना†—स०=उपाड़ना (उखाड़ना)।

उपार्जक—वि० [सं० उप√अर्ज् (प्रयत्न)+ण्वुल्—अक] उपार्जन करने या कमानेवाला।

उपार्जन—पुं० [सं० उप√अर्ज्+ल्युट्—अन] १. प्राप्त या हस्तगत करने की क्रिया या भाव। २. उद्योग या प्रयत्नपूर्वक लाभ करना। कमाना।

उपार्जनीय—वि० [सं० उप√अर्ज+अनीयर्] जो उपार्जन किये जाने के योग्य हो।

उपार्जित—भू० कृ० [सं० उप√अर्ज्+क्त] प्राप्त किया, कमाया या हस्तगत किया हुआ। जैसे–धन या यश उपार्जित करना।

उपार्थ—वि० [सं० उप—अर्थ, ब० स०] थोड़े महत्त्व या मूल्य का।

उपालंभ—पुं० [सं० उप—आ√लभ्+घञ्, नुम्] [वि० उपालब्ध] किसी के अनुचित या अशिष्ट व्यवहार के कारण उससे की जानेवाली शिकायत। उलहना।

उपालंभन—पुं० [सं० उप—आ√लभ्+ल्युट्—अन, नुम्] उपालंभ देना। उलहना देना।

उपाव*†—पुं०=उपाय।

उपावर्तन—पुं० [सं० उप—आ√वृत् (वरतना)+ल्युट्—अन] [भू० कृ० उपावृत्त] १. फिर से आना। २. वापस आना। लौटना। ३. पास आना। ४. चक्कर देना। ५. विरत होना। छोड़ना।

उपाश्रय—पुं० [सं० उप—आ√श्रि (सेवा)+अच्] १. वस्तु, जिसके सहारे खड़ा हुआ जाय या रुका जाय। आश्रय। सहारा। २. छोटा या हलका आश्रय या सहारा।

उपासंग—पुं० [सं० उप—आ√सञ्ज् (मिलना)+घञ्] १. निकटता। सामीप्य। २. तूणीर। तरकश।

उपास*—पुं०=उपवास।

उपासक—पुं० [सं० उप√आस् (बैठाना)+ण्वुल्—अक] [स्त्री० उपासिका] १. वह जो उपासना या पूजन करता हो। २. भक्त।
वि० [हिं० उपवास से] उपवास करनेवाला।

उपासन—पुं० [सं० उप√आस्+ल्युट्–अन] १. किसी के पास बैठना या आसन ग्रहण करना। २. उपासना करना।

उपासना—स्त्री० [सं० उप√आस्+युच्—अन—टाप्] १. किसी के पास बैठना। २. ईश्वर, देवता आदि की मूर्ति के पास बैठकर किया जानेवाला आध्यात्मिक चिन्तन और पूजन। ईश्वर या देवता को प्रसन्न करने के लिए किया जानेवाला आराधन। ३. लाक्षणिक अर्थ में, किसी वस्तु में होनेवाली अत्यधिक आसक्ति अथवा उसी में बराबर लगे रहने की भावना। जैसे—(क) धन या शक्ति की उपासना। (ख) मद्य, मांस आदि की उपासना।
*स० उपासना (आराधना, ध्यान और पूजन) करना।
†अ० [सं० उपवास] उपवास करना। निराहार रहना।

उपासनीय—वि० [सं० उप√आस्+अनीयर्] १. जिसकी उपासना करना आवश्यक या उचित हो। २. पूजनीय। पूज्य।

उपासा—स्त्री० [सं० उप√आस्+अ—टाप्]=उपासना।
वि० [सं० उपवास] [स्त्री० उपासी] १. जिसने उपवास किया हो। २. जो भोजन न मिलने के कारण भूखा रहता हो।

उपासित—भू० कृ० [सं० उप√आस्+क्त] जिसकी उपासना की गई हो।
पुं० वह जो उपासना करता हो। उपासक।

उपासी (सिन्)—पुं० [उप√आस्+णिनि]=उपासक।

उपास्तमन—पुं० [सं० उप—अस्तमन, प्रा० स०] १. सूर्य का अस्त होना। २. दे० 'अस्तमन'।

उपास्ति—स्त्री० [सं० उप√आस्+क्तिन्]=उपासना।

उपास्त्र—पुं० [सं० उप—अस्त्र, अत्या० स०] छोटा, साधारण या हलका अस्त्र।

उपास्य—वि० [सं० उप√आस्+ण्यत्] १. जिसकी उपासना की जाती हो। २. जो उपासना किये जाने के योग्य हो। जिसकी उपासना करना आवश्यक या उचित हो।

उपास्य-देव—पुं० [सं० कर्म० स०] वह देवता जिसकी उपासना कोई करता हो। इष्ट देव।

उपाहार—पुं० [सं० उप—आहार, अत्या०स०] १. थोड़ा और हलका भोजन। २. जल-पान।

उपाहित—भू० कृ० [सं० उप—आ√धा (धारण करना)+क्त, हि आदेश] १. किसी स्थान में रखा हुआ। २. पहना हुआ। ३. सटा या लगा हुआ। ४. निश्चित किया हुआ।
पुं० अग्निभय।

उपेंद्र—पुं० [सं० उप—इन्द्र, अत्या० स०] १. इन्द्र के छोटे भाई का नाम। २. श्रीकृष्ण।

उपेंद्रवज्रा—स्त्री० [सं० उप—इन्द्रवज्रा, अत्या० स०] ग्यारह वर्णों का एक छन्द, जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और अंत में दो गुरु होते हैं। जैसे—चला गया जीवित लोक सारा, बनी अजीवा-सम शून्य जीवा। पुनः वहाँ कौरव पांडवों की, पड़ी सुनाई रण घोषणायें।—अंगराज।

उपेक्षक—पुं० [सं० उप√ईक्ष् (देखना)+ण्वुल्—अक] वह जो किसी की उपेक्षा करता हो।

उपेक्षण—पुं० [सं० उप√ईक्ष्+ल्युट्—अन] उपेक्षा करते हुए अलग या दूर रहना।

उपेक्षणीय—वि० [सं० उप√ईक्ष्+अनीयर्] जो उपेक्षा किये जाने के योग्य हो। उपेक्षा का पात्र।

उपेक्षा—स्त्री० [सं० उप√ईक्ष्+अ+टाप्] १. देखना। २. देखते हुए भी ध्यान न देना। ३. किसी को अयोग्य या तुच्छ समझकर अथवा उसे नीचा दिखाने के लिए उसकी ओर ध्यान न देना। उचित ध्यान न देना। आदर या सम्मान न करना। ४. अवहेलना। ५. योग की एक भावना।

उपेक्षा-विहारी (रिन्)—पुं० [सं० उपेक्षा-वि√हृ+णिनि] १. वह जो किसी के साथ उपेक्षापूर्वक व्यवहार करता हो। २. ऐसा साधक जो आध्यात्मिक शक्ति से सर्वोच्च स्थिति तक पहुँच गया हो।

उपेक्षासन--पुं० [सं० उपेक्षा--आसन, तृ० त०] प्राचीन भारतीय राज-नीति में, शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना।

उपेक्षित--भू० कृ० [सं० उप√ईक्ष्+क्त] जिसकी उपेक्षा की गई हो। जिसका आदर-सम्मान न किया गया हो अथवा जिसकी ओर उचित ध्यान न दिया गया हो। तिरस्कृत।

उपेक्ष्य--वि० [सं० उप√ईक्ष्+ण्यत्] १. जिसकी उपेक्षा करना उचित हो। २. जिसकी उपेक्षा की जाती हो या की गई हो।

उपेखना*--स०=उपेक्षा करना।

उपेय--वि० [सं० उप√इ (गति)+यत्] जिसका कोई उपाय हो सकता हो या किया जा सकता हो।

उपैना*--वि० [सं० उ+पल्लव] १. खुला हुआ। अनावृत। २. नंगा।
अ० [?] १. गायब या लुप्त हो जाना। उदा०--देखत वुरै कपूर ज्यौं उपैनाइ जिनलाल।--विहारी। २. न रह जाना।

उपोद्घात--पुं० [सं० उप--उद्√हन् (हिंसा, गति)+घञ्, कुत्व] १. पुस्तक के आरम्भ का वक्तव्य। प्रस्तावना। भूमिका। २. वह व्यवस्था या कृत्य जो कोई कार्य प्रारम्भ करने से पहले किया जाता है। ३. नव्य न्याय में ६ संगतियों में से एक। सामान्य कथन से भिन्न, निर्दिष्ट या विशिष्ट वस्तु के विषय में होनेवाला कथन।

उपोषण--पुं० [सं० उप√उष्+ल्युट्--अन] उपवास करना।

उपोषित--वि० [सं० उप√उष्+क्त] जिसने उपवास किया हो।
पुं०=उपवास।

उपोसथ--पुं० [सं० उपवसथ, प्रा० उपोसथ] उपवास। (जैन और बौद्ध)।

उप्त--भू० कृ० [सं० √वप् (बोना)+क्त] बोया हुआ।

उप्पन्न--वि०=उत्पन्न।

उप्पम*--स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास। (दक्षिण भारत)।
*वि०=अनुपम।

उफ--अव्य० [अ०] अपनी या किसी दूसरे की मानसिक या शारीरिक पीड़ा देखकर अथवा कोई भयानक दृश्य देखकर मुँह से निकलनेवाला एक शब्द।

उफड़ना*--अ०=उबलना।

उफनना*--अ० [सं० उत्+फेन]=उबलना।

उफनाना--स०=उबालना।
†अ०=उबलना।

उफान--पुं० [सं० उत्+फेन] उफनने या उबलने की क्रिया या भाव। उबाल।

उफाल--स्त्री०=फाल (डग)।

उबकना--अ० [हिं० उबाक] उबाक आना या होना। मुँह से उबाक निकलना। जी मिचलाना या कै करने को जी चाहना।
स० १. बाहर निकालना। २. दूर करना या हटाना।
स०=वकना।

उबका--पुं० [सं० उद्वाहक, पा० उव्वाहक] डोरी या रस्सी का वह फन्दा जिसमें लोटे, गगरे आदि का मुँह बाँधकर कुएँ आदि से जल निकालने के लिए लटकाया जाता है।

उबकाई†*--स्त्री० [हिं० ओकाई] १. उलटी। कै। २. मिचली। मितली।

उबछना†--स० [सं० उत्प्रेक्षण, प्रा० उप्पोक्खन, उप्पोच्छन] १. कपड़ा पछाड़ कर धोना। २. सिंचाई के लिए पानी खींचना।

उबट*--पुं० [सं० उद्वाट] अट-पट मार्ग। विकट रास्ता।
वि० =ऊबड़-खाबड़।

उबटन--पुं० [सं० उद्वर्तन, प्रा० उव्वउणं, पा० उव्वहन, पूर्वी हिं० अब-टन] १. शरीर की त्वचा को कोमल और स्वच्छ करने के लिए उस पर लगाया जानेवाला सरसों, चिरौंजी, तिल आदि का लेप। २. विवाह की एक रीति जिसमें विवाह के पूर्व वर-वधू के शरीर पर उबटन का लेप किया जाता है।

उबटना--अ० [सं० उद्वर्तन, पा० उव्वटन] उबटन मलना या लगाना।
पुं०=उबटन।

उबना--स० [सं० उत्=ऊपर, वज् गम्=जाना?] १. उगना। २. फलना-फूलना। ३. उन्नति करना। बढ़ना।
अ०=ऊबना।

उबरना--अ० [सं० उद्वारण, पा० उव्वारन] १. उद्धार पाना। मुक्त होना। छूटना। २. वाकी वच रहना। ३. घात, फन्दे, संकट आदि से वचना या रक्षित रहना। उदा०--सो वनि पंडित ज्ञान सिखवत कूवरी हूँ नहिं ऊवरी जासो।--भारतेन्दु।

उबराना--स०=उवारना।

उबलना--अ० [सं० उद्=ऊपर+वलन=जाना] १. आग पर रखे हुए तरल पदार्थ का फेन के साथ ऊपर उठना। उबाल खाना। २. किनारे तक भर जाने के कारण आधार या पात्र से बाहर निकलना। ३. अन्दर भरे होने के कारण वेगपूर्वक वाहर निकलना। उभड़ना। ४. अन्दर के ताप के कारण शरीर के किसी अंग का फूल या सूजकर ऊपर उठना। उभरना। जैसे--आँखें उबलना। ५. बहुत अधिक अभिमान, क्रोध आदि के कारण अनुचित आचरण करना।
मुहा०--(किसी पर) उबल पड़ना=सहसा क्रोध में आकर खूब उलटी-सीधी या खरी-खोटी सुनाना।

उबसन--पुं० [सं० उद्वसन] नारियल आदि की जटा जिससे रगड़कर बरतन आदि माँजे जाते हैं। गुझना।

उबसना--स० [सं० उद्वसन] बरतन माँजना।
अ० [सं० उप+वास=गंध] १. बासी हो जाने के कारण खराब होना। जैसे--कचौरी या पूरी उबसना। २. अधीर या चंचल होना। ३. थककर शिथिल होना।

उबसाना--स० [हिं० उबसना] ऐसा काम करना जिससे कोई चीज उबसे।
†अ०=उबसना।

उबहनी--स्त्री० [सं० उद्वहनी, पा० उव्वहनी] कुएँ से पानी निकालने की डोरी या रस्सी।

उबहना*--स० [सं० उद्वहन, पा० उव्वहन=ऊपर उठना] १. हथियार उठाना या निकालना। २. उलीचकर पानी बाहर निकालना या फेंकना। ३. खेत जोतना।
अ० ऊपर उठना। उभरना।
वि० [सं० उपानह] जिसने जूता या पादुका न पहनी हो। जो नंगे पैर चल रहा हो।

उबहनी*--स्त्री०=उबहन (डोरी या रस्सी)।

उबांत*†--स्त्री० [सं० उद्वांत] उलटी। वमन। कै।

उबाक--पुं० [अनु०] १. कै करने या मतली आने की प्रवृत्ति। जी मिचलाना। २. मतली आने के फलस्वरूप मुँह से निकलनेवाला तरल पदार्थ। कै। वमन।

उबाना--पुं० [हिं० उवहना=नंगा, वा० उ०=नहीं+वानां] कपड़ा बुनने में राछ के वाहर रह जानेवाला सूत।
स० [सं० उत्पादन] १. उगाना। २. वढ़ाना।
वि० [सं० उपानह] जिसके पैर नंगे हों। जो जूता न पहने हो।

उबार--पुं० [सं० उद्वारण] १. उबरने या उवारने की क्रिया या भाव। उद्धार। छुटकारा। वचाव।
पुं० दे० 'ओहार'।

उबारना--स० [सं० उद्वारण] कष्ट या विपत्ति से उद्धार करना। संकट से छुड़ाना या मुक्त करना।

उबारा--पुं० [सं० उद्=जल+वारण=रोक] वह जल-कुण्ड जो कुओं आदि के निकट चौपायों के जल पीने के लिए बना रहता है। अहरी।

उबाल--पुं० [हिं० उबलना] १. उबलने की क्रिया या भाव। २. आग पर रखे हुए तरल पदार्थ का फेन छोड़ते हुए ऊपर उठना। उफान। ३. अस्थायी या क्षणिक आवेश, उद्वेग या क्षोभ।

उबालना--स० [सं० उद्वालन, पा० उव्वालन] १. तरल पदार्थ को आग पर रख कर इतना गरम करना कि उसमें से फेन तथा वुलवुले उठने लगें। २. किसी कड़ी चीज को पानी में रखकर इस प्रकार खौलाना कि वह नरम हो जाय। जैसे--आलू या दाल उवालना।

उबासी--स्त्री० [सं० उश्वास] जँभाई।

उबाहना*--स०=उवहना।

उबिठना--अ० [सं० अव+इष्ट, पा० ओइट्ठ] किसी चीज या बात से जी ऊबना। प्रवृत्ति या रुचि न रह जाना। उदा०--यह जानत हौं हृदय आपने सपनेउ न अघाइ उबीठे।--तुलसी।

उबीधना*--अ० [सं० उद्विद्ध] १. उलझना। फँसना। २. गड़ना। धँसना।
स० १. उलझाना। फँसाना। २. गड़ाना। धँसाना।

उबीधा--वि० [सं० उद्विद्ध] १. उलझाने या फँसानेवाला। २. उलझनों या झंझटों से भरा हुआ। ३. कँटीला।

उबेना*†--वि०=उवहना।

उबेरना†--स० १.=उभारना। २.=उवारना।

उभइ--वि०=उभय।

उभटना†--अ० [हिं० उभरना] १. ऊपर उठना। उभरना। २. अहंकार या गर्व करना। शेखी करना।

उभड़ना--अ०=उभरना।

उभना*--अ०=उठना (खड़े होना)।
अ०=ऊबना।

उभय--वि० [सं० उभ+अयच्] जिन दो का उल्लेख हो रहा हो, वे दोनों। जैसे--उभय पक्षों ने मिलकर यह निश्चय किया है।

उभय-चर--वि० [सं० उभय√चर् (चलना)+ट] जल और स्थल दोनों में रहनेवाला (जीव, जंतु)।

उभयतः--क्रि० वि० [सं० उभय+तसिल्] दोनों ओर से। दोनों पक्षों से।

उभयतो-मुख--वि० [सं० व० स०] [स्त्री० उभयतो-मुखी] १. जिसके दोनों ओर मुँह हों। २. दोनों ओर अथवा दो विभिन्न दिशाओं में गति, नति या प्रवृत्ति रखनेवाला।

उभय-मुखी--वि० १. =उभयतो-मुख। २. =गर्भवती।

उभय-लिंग (ी)--वि० [सं० व० स०] १. जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के चिह्न या लक्षण हों। २. (व्याकरण में, ऐसा शब्द) जो दोनों लिंगों में समान रूप से प्रयुक्त होता हो।

उभयवादी (दिन्)--वि० [सं० उभय√वद् (बोलना)+णिनि] १. दोनों ओर से वोलने या दोनों तरह की वातें कहनेवाला। २. (वाजा) जिससे स्वर भी निकलता हो और ताल भी।

उभय-विध--वि० [सं० व० स०] दोनों प्रकारों या विधियों से सम्वन्ध रखनेवाला। दोनों प्रकार का।

उभय-व्यंजन--वि० [सं० व० स०] जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के चिह्न या लक्षण वर्त्तमान हों। उभय-लिंगी।

उभय-संकट--पुं० [सं० व० स०] ऐसी स्थिति जिसमें दोनों ओर संकट की संभावना हो। धर्म-संकट।

उभय-संभव--पुं० [ष० त०] ऐसी स्थिति जिसमें दोनों तरह की वातें हो सकती हों।
वि०=उभय-संकट।

उभयात्मक--वि० [सं० उभय-आत्मन्, व० स०, कप्] १. दोनों के योग से वना हुआ। जिसका सम्वन्ध दोनों से हो। २. दोनों प्रकारों या रूपों से युक्त।

उभयान्वयी (यिन्)--वि० [सं० उभय--अन्वय, स० त०, +इनि] जिसका अन्वय दोनों ओर या दोनों से हो सके। (व्या०) जैसे--काव्य में उभयान्वयी पद या शब्द।

उभयार्थ--वि० [सं० उभय-अर्थ, व० स०] १. जिसके दो या दोनों अर्थ निकलते हों। द्व्यर्थक। २. अस्पष्ट (कथन या वात)।

उभयालंकार--पुं० [सं० उभय-अलंकार कर्म० स०] ऐसा अलंकार जिसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का योग हो।

उभरना--अ० [सं० उद्भरण, प्रा० उब्भरण] १. नीचे के तल से उठ या निकलकर ऊपर आना। जैसे--अंकुर उभरना। २. किसी आधार या समतल स्तर से कुछ-कुछ या धीरे-धीरे थोड़ा ऊपर उठना या वढ़ना। जैसे--गिल्टी, फोड़ा या स्तन उभरना। ३. ऊपर उठकर या किसी प्रकार उत्पन्न होकर अनुभूत या प्रत्यक्ष होना। उठना। जैसे--दरद उभरना, वात उभरना। ४. इस प्रकार आगे आना या वढ़ना कि लोगों की दृष्टि में कुछ खटकने लगे। जैसे--आजकल कुछ नये गुंडे (या रईस) उभरे है। ५. उत्पात, उपद्रव, विद्रोह आदि के क्षेत्रों में प्रकट या प्रत्यक्ष होना। जैसे--किसी पर-तन्त्र देश या प्रजा का उभरना।

उभरौंहाँ--वि० [हिं० उभार+औंहाँ (प्रत्य०)] जो ऊपर की ओर उठ या उभर रहा हो। २. उभरने की प्रवृत्ति रखनेवाला।

उभाड़--पुं०=उभार।

उभाड़ना--स०=उभारना।

उभाना*--अ०=अभुआना।

उभार--पुं० [हिं० उभरना] १. उभरने की क्रिया या भाव। २. वह

अंश जो कुछ उभर कर ऊपर की ओर उठा या निकला हो। ३. ऊँचाई। ४. वृद्धि।

उभारदार—वि० [हिं० उभार+फ़ा० दार] १. उभरा या उठा हुआ। २. जो अपने अस्तित्व का अनुभव करा रहा हो। जैसे—यह नगीना (या वेल-बूटा) कुछ और उभारदार होना चाहिए था।

उभारना—स० [हिं० उभड़न] १. किसी को उभरने में प्रवृत्त करना। २. कुछ करने के लिए उत्तेजित या उत्साहित करना। जैसे—भाई के विरुद्ध भाई को उभारना।

†स०=उवारना।

उभिटना—अ० [हिं० उबीठना] १. ठिठकना। २. हिचकना। ३. भटकना।

उभियाना—स० [हिं० उभना=खड़ा होना] १. खड़ा करना। २. ऊपर उठाना।

अ० १. =उभना। २. =उभरना। ३. =ऊबना।

उभै*—वि०=उभय (दोनों)।

उभ्भौ—वि०=उभय।

उमंग—स्त्री० [सं० उद्=ऊपर+मंग=चलना] १. आनंद, उत्साह आदि की ऐसी लहर जो मन में सहसा उत्पन्न होकर किसी को कोई काम करने में प्रवृत्त करे। झोंक। २. मन में होनेवाला आनंद और उत्साह।

उमंगना*—अ० [हिं० उमग] उमंग से भरना या युक्त होना। उमंग में आना।

अ०=उमड़ना।

उमंड—पुं० [सं०उमंग] १. उमड़ने की क्रिया या भाव। २. आवेश। जोश। ३. तीव्रता। वेग।

उमंडना—अ०=उमड़ना।

उमकना*—अ० १.=उमगना। २.=उखड़ना।

उमग*—स्त्री०=उमंग।

उमगन*—स्त्री०=उमंग।

उमगना—अ० [हिं० उमंग+ना] १. उमंग में आना। २. भरकर ऊपर उठना। उमड़ना। ३. आवेश, उत्साह आदि से भरकर अथवा किसी प्रकार के आधिक्य के कारण आगे बढ़ना या किसी ओर प्रवृत्त होना।

उमगान—स्त्री० [हिं० उमगना] उमगने की क्रिया या भाव। उमंग। उदा०—मुखनि मंद मुसकानि कृपा उमगानि बतावति।—रत्नाकर।

उमगाना—सं० [हिं० उमगना का स०] किसी को उमंग से युक्त करना। उमंग में लाना।

उमचना*—अ० [सं० उन्मञ्च=ऊपर उठना] १. चकित होना। चौंकना। २. चौकन्ना होना।

अ० १=हुमचना। २=चौकना।

उमड़—स्त्री० [सं० उन्मण्डन्] उमड़ने की क्रिया या भाव।

उमड़ना—अ० [सं० उभ=भरना या हिं० उमगना?] १. जलाशय विशेषतः नदी में पूरी तरह से भर जाने पर जल का बाहर निकलकर चारों ओर फैलना। २. वेग से उठकर किसी ओर प्रवृत्त होना या चारों ओर फैलना। जैसे—(क) घटा या बादल उमड़ना। (ख) तमाशा देखने के लिए भीड़ उमड़ना।

पद—उमड़ना-घुमड़ना=उमड़कर इधर-उधर चक्कर लगाना और छितराना।

३. किसी कोमल मनोवेग के कारण मन में करुणा, दया आदि उत्पन्न होना। जी भर आना। जैसे—उसे विलाप करते देखकर मेरा मन भी उमड़ आया।

उमड़ाना—स० [हिं० उमड़ना] किसी को उमड़ने मे प्रवृत्त करना।

†अ०=उमड़ना।

उमदगी—स्त्री०=उम्दगी।

उमदना*—अ० [सं० उन्मद] उन्मत्त होना। मस्ती पर आना।

अ०=उमड़ना।

उमदा—वि०=उम्दा।

उमदाना*—अ० [सं० उन्मद] १. उमंग में आना। २. मस्त होना।

स० किसी को उमंग में लाना।

उमर—स्त्री० [अ० उम्र] १. अवस्था। वय। २. सारा जीवन-काल। आयु। जैसे—उमर भर उन्होंने कोई काम नही किया।

उमरण†—पुं० हिं० सुमरण (स्मरण) के अनुकरण पर बना हुआ एक निरर्थक शब्द। उदा०—तेरो हि उमरण तेरोहि सुमरण, तेरोहि ध्यान धरूँ।—मीरां।

उमरती—स्त्री० [सं० अमृत] एक प्रकार का पुराना बाजा।

उमरा—पु० [अ० अमीर का बहुवचन] अमीर या सरदार लोग।

उमराव†—पु० १.=उमरा। २.=अमीर (रईस या सरदार)।

उमरी—स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसे जलाकर सज्जी बनाते हैं। मचोल।

उमस—स्त्री० [सं० ऊष्म] वर्षा ऋतु की ऐसी गरमी जो हवा बंद हो जाने पर लगती है।

उमहना—अ० [उन्मंथन, प्रा० उम्महन] १. भर कर ऊपर आना। उमड़ना। २. घिरना। छाना। ३. उमंग में आना। उदा०—को प्रति उत्तर देय सखि सुनि लोल विलोचन यों उमहे री।—केशव।

उमहाना—स० [क्रि० उमहना का स० रूप] उमहने में प्रवृत्त करना। उदा०—कया गंगा लागी मोहि तोरी उहि रस-सिंधु उमहायो।—सूर।

उमा—स्त्री० [सं० उ-मा, प० त० या उ√मो (मान करना)+क—टाप्] १. शिव जी की पत्नी, पार्वती। गौरी। २. दुर्गा। ३. कीर्त्ति। ४. कांति। ५. ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मविद्या। ६. शांति। ७. चंद्रकांत मणि। ८. रात्रि। रात। ९. हलदी। १०. अलसी का पौधा। ११. मदिरा नामक छंद का एक नाम।

उमाकना*—स० [?] १. उखाड़ या खोदकर फेंकना। उखाड़ना। २. नष्ट करना।

उमाकांत—पुं० [प० त०] उमा अर्थात् पार्वती के पति, शिव। शंकर।

उमाकी—वि० [हिं० उमाकना] [स्त्री० उमाकिनी] उखाड़ या खोदकर फेंक देनेवाला।

उमा-गुरु—पुं० [प० त०] हिमाचल।

उमाचना*—स० [सं० उन्मञ्चन=ऊपर उठाना] १. ऊपर उठाना। २. उभारना। ३. निकालना। ४. हुमचना।

उमा-जनक—पु० [प० त० स०] हिमाचल।

उमाद*—पुं०=उन्माद।

उबाँत*†—स्त्री० [सं० उद्वांत] उलटी। वमन। कै।
उबाक—पुं० [अनु०] १. कै करने या मतली आने की प्रवृत्ति। जी मिचलाना। २. मतली आने के फलस्वरूप मुँह से निकलनेवाला तरल पदार्थ। कै। वमन।
उबाना—पुं० [हिं० उबहना=नंगा, या० उ०=नहीं+वाना] कपड़ा बुनने में राछ के बाहर रह जानेवाला सूत।
स० [सं० उत्पादन] १. उगाना। २. बढ़ाना।
वि० [सं० उपानह] जिसके पैर नंगे हों। जो जूता न पहने हो।
उबार—पुं० [सं० उद्वारण] १. उबरने या उबारने की क्रिया या भाव। उद्धार। छुटकारा। बचाव।
पुं० दे० 'ओहार'।
उबारना—स० [सं० उद्वारण] कष्ट या विपत्ति से उद्धार करना। संकट से छुड़ाना या मुक्त करना।
उबारा—पुं० [सं० उद्=जल+वारण=रोक] वह जल-कुण्ड जो कुओं आदि के निकट चौपायों के जल पीने के लिए बना रहता है। अहरी।
उबाल—पुं० [हिं० उबलना] १. उबलने की क्रिया या भाव। २. आग पर रखे हुए तरल पदार्थ का फेन छोड़ते हुए ऊपर उठना। उफान। ३. अस्थायी या क्षणिक आवेश, उद्वेग या क्षोभ।
उबालना—स० [सं० उद्वालन, पा० उब्बालन] १. तरल पदार्थ को आग पर रख कर इतना गरम करना कि उसमें से फेन तथा बुलबुले उठने लगें। २. किसी कड़ी चीज को पानी में रखकर इस प्रकार खौलाना कि वह नरम हो जाय। जैसे—आलू या दाल उबालना।
उबासी—स्त्री० [सं० उश्वास] जँभाई।
उबाहना*—स०=उबहना।
उबिठना—अ० [सं० अव+इष्ट, पा० ओड्ट्ठ] किसी चीज या बात से जी ऊबना। प्रवृत्ति या रुचि न रह जाना।उदा०—यह जानत हौं हृदय आपने सपनेउ न अघाइ उबीठे।—तुलसी।
उबीधना*—अ० [सं० उद्विद्ध] १. उलझना। फँसना। २. गड़ना। धँसना।
स० १. उलझाना। फँसाना। २. गड़ाना। धँसाना।
उबीधा—वि० [सं० उद्विद्ध] १. उलझाने या फँसानेवाला। २. उलझनों या झंझटों से भरा हुआ। ३. कँटीला।
उबेना*†—वि०=उबहना।
उबेरना†—स० १.=उभारना। २.=उबारना।
उभइ—वि०=उभय।
उभटना†—अ० [हिं० उभरना] १. ऊपर उठना। उभरना। २. अहंकार या गर्व करना। शेखी करना।
उभड़ना—अ०=उभरना।
उभना*—अ०=उठना (खड़े होना)।
अ०=ऊबना।
उभय—वि० [सं० उभ+अयच्] जिन दो का उल्लेख हो रहा हो, वे दोनों। जैसे—उभय पक्षों ने मिलकर यह निश्चय किया है।
उभय-चर—वि० [सं० उभय√चर् (चलना)+ट] जल और स्थल दोनों में रहनेवाला (जीव, जंतु)।
उभयतः—क्रि० वि० [सं० उभय+तसिल्] दोनों ओर से। दोनों पक्षों से।
उभयतो-मुख—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० उभयतो-मुखी] १. जिसके दोनों ओर मुँह हों। २. दोनों ओर अथवा दो विभिन्न दिशाओं में गति, नति या प्रवृत्ति रखनेवाला।
उभय-मुखी—वि० १. =उभयतो-मुख। २. =गर्भवती।
उभय-लिंग (ी)—वि० [सं० ब० स०] १. जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के चिह्न या लक्षण हों। २. (व्याकरण में, ऐसा शब्द) जो दोनों लिंगों में समान रूप से प्रयुक्त होता हो।
उभयवादी (दिन्)—वि० [सं० उभय√वद् (बोलना)+णिनि] १. दोनों ओर से बोलने या दोनों तरह की बातें कहनेवाला। २. (बाजा) जिससे स्वर भी निकलता हो और ताल भी।
उभय-विध—वि० [सं० ब० स०] दोनों प्रकारों या विधियों से सम्बन्ध रखनेवाला। दोनों प्रकार का।
उभय-व्यंजन—वि० [सं० ब० स०] जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के चिह्न या लक्षण वर्त्तमान हों। उभय-लिंगी।
उभय-संकट—पुं० [सं० ब० स०] ऐसी स्थिति जिसमें दोनों ओर संकट की संभावना हो। धर्म-संकट।
उभय-संभव—पुं० [प० त०] ऐसी स्थिति जिसमें दोनों तरह की बातें हो सकती हों।
वि०=उभय-संकट।
उभयात्मक—वि० [सं० उभय-आत्मन्, ब० स०, कप्] १. दोनों के योग से बना हुआ। जिसका सम्बन्ध दोनों से हो। २. दोनों प्रकारों या रूपों से युक्त।
उभयान्वयी (यिन्)—वि० [सं० उभय—अन्वय, स० त०, +इनि] जिसका अन्वय दोनों ओर या दोनों से हो सके। (व्या०) जैसे—काव्य में उभयान्वयी पद या शब्द।
उभयार्थ—वि० [सं० उभय-अर्थ, ब० स०] १. जिसके दो या दोनों अर्थ निकलते हों। द्वयर्थक। २. अस्पष्ट (कथन या बात)।
उभयालंकार—पुं० [सं० उभय-अलंकार कर्म० स०] ऐसा अलंकार जिसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का योग हो।
उभरना—अ० [सं० उद्भरण, प्रा० उब्भरण] १. नीचे के तल से उठ या निकलकर ऊपर आना। जैसे—अंकुर उभरना। २. किसी आधार या समतल स्तर से कुछ-कुछ या धीरे-धीरे थोड़ा ऊपर उठना या बढ़ना। जैसे—गिल्टी, फोड़ा या स्तन उभरना। ३. ऊपर उठकर या किसी प्रकार उत्पन्न होकर अनुभूत या प्रत्यक्ष होना। उठना। जैसे—दरद उभरना, बात उभरना। ४. इस प्रकार आगे आना या बढ़ना कि लोगों की दृष्टि में कुछ खटकने लगे। जैसे—आजकल कुछ नये गुंडे (या रईस) उभरे हैं। ५. उत्पात, उपद्रव, विद्रोह आदि के क्षेत्रों में प्रकट या प्रत्यक्ष होना। जैसे—किसी पर-तन्त्र देश या प्रजा का उभरना।
उभरौंहाँ—वि० [हिं० उभार+औहाँ (प्रत्य०)] जो ऊपर की ओर उठ या उभर रहा हो। २. उभरने की प्रवृत्ति रखनेवाला।
उभाड़—पुं०=उभार।
उभाड़ना—स०=उभारना।
उभाना*—अ०=अभुआना।
उभार—पुं० [हिं० उभरना] १. उभरने की क्रिया या भाव। २. वह

अंग जो कुछ उभर कर ऊपर की ओर उठा या निकला हो। ३. ऊँचाई। ४. वृद्धि।

उभारदार--वि० [हिं० उभार+फ़ा० दार] १. उभरा या उठा हुआ। २. जो अपने अस्तित्व का अनुभव करा रहा हो। जैसे--यह नगीना (या बेल-बूटा) कुछ और उभारदार होना चाहिए था।

उभारना--स० [हिं० उभड़न] १. किसी को उभरने में प्रवृत्त करना। २. कुछ करने के लिए उत्तेजित या उत्साहित करना। जैसे--भाई के विरुद्ध भाई को उभारना।

†स०=उवारना।

उभिटना--अ० [हिं० उबीठना] १. ठिठकना। २. हिचकना। ३. भटकना।

उभियाना--स० [हिं० उभना=खड़ा होना] १. खड़ा करना। २. ऊपर उठाना।

अ० १. =उभना। २. =उभरना। ३. =ऊबना।

उभै*--वि०=उभय (दोनों)।

उभ्भौ--वि०=उभय।

उमंग--स्त्री० [सं० उद्=ऊपर+मंग=चलना] १. आनंद, उत्साह आदि की ऐसी लहर जो मन में सहसा उत्पन्न होकर किसी को कोई काम करने में प्रवृत्त करे। झोंक। २. मन में होनेवाला आनंद और उत्साह।

उमंगना*--अ० [हिं० उमंग] उमंग से भरना या युक्त होना। उमंग में आना।

अ०=उमड़ना।

उमंड--पुं० [सं०उमंग] १. उमड़ने की क्रिया या भाव। २. आवेग। जोश। ३. तीव्रता। वेग।

उमंडना--अ०=उमड़ना।

उमकना*--अ० १.=उमगना। २.=उखड़ना।

उमग*--स्त्री०=उमंग।

उमगन*--स्त्री०=उमंग।

उमगना--अ० [हिं० उमंग+ना] १. उमंग में आना। २. भरकर ऊपर उठना। उमड़ना। ३. आवेश, उत्साह आदि से भरकर अथवा किसी प्रकार के आधिक्य के कारण आगे बढ़ना या किसी ओर प्रवृत्त होना।

उमगान--स्त्री० [हिं० उमगना] उमगने की क्रिया या भाव। उमंग। उदा०--मुखनि मंद मुसकानि कृपा उमगानि बतावति।--रत्नाकर।

उमगाना--सं० [हिं० उमगना का स०] किसी को उमंग से युक्त करना। उमंग में लाना।

उमचना*--अ० [सं० उन्मञ्च=ऊपर उठना] १. चकित होना। चौंकना। २. चौकन्ना होना।

अ० १=हुमचना। २=चौंकना।

उमड़--स्त्री० [सं० उन्मण्डन्] उमड़ने की क्रिया या भाव।

उमड़ना--अ० [सं० उभ=भरना या हिं० उमगना?] १. जलाशय विशेषतः नदी में पूरी तरह से भर जाने पर जल का बाहर निकलकर चारों ओर फैलना। २. वेग से उठकर किसी ओर प्रवृत्त होना या चारों ओर फैलना। जैसे--(क) घटा या बादल उमड़ना। (ख) तमाशा देखने के लिए भीड़ उमड़ना।

पद--उमड़ना-घुमड़ना=उमड़कर इधर-उधर चक्कर लगाना और छितराना।

३. किसी कोमल मनोवेग के कारण मन में करुणा, दया आदि उत्पन्न होना। जी भर आना। जैसे--उसे विलाप करते देखकर मेरा मन भी उमड़ आया।

उमड़ाना--स० [हिं० उमड़ना] किसी को उमड़ने में प्रवृत्त करना।

†अ०=उमड़ना।

उमदगी--स्त्री०=उम्दगी।

उमदना*--अ० [सं० उन्मद] उन्मत्त होना। मस्ती पर आना।

अ०=उमड़ना।

उमदा--वि०=उम्दा।

उमदाना*--अ० [सं० उन्मद] १. उमंग में आना। २. मस्त होना।

स० किसी को उमंग में लाना।

उमर--स्त्री० [अ० उम्र] १. अवस्था। वय। २. सारा जीवन-काल। आयु। जैसे--उमर भर उन्होंने कोई काम नहीं किया।

उमरण†--पुं० हिं० सुमरण (स्मरण) के अनुकरण पर बना हुआ एक निरर्थक शब्द। उदा०--तेरो हि उमरण तेरोहि सुमरण, तेरोहि ध्यान धरूँ।--मीराँ।

उमरती--स्त्री० [सं० अमृत] एक प्रकार का पुराना बाजा।

उमरा--पुं० [अ० अमीर का बहुवचन] अमीर या सरदार लोग।

उमराव†--पुं० १.=उमरा। २.=अमीर (रईस या सरदार)।

उमरी--स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसे जलाकर सज्जी बनाते हैं। मचोल।

उमस--स्त्री० [सं० ऊष्म] वर्षा ऋतु की ऐसी गरमी जो हवा बंद हो जाने पर लगती है।

उमहना--अ० [उन्मंथन, प्रा० उम्महन] १. भर कर ऊपर आना। उमड़ना। २. घिरना। छाना। ३. उमंग में आना। उदा०--को प्रति उत्तर देय सखि सुनि लोल विलोचन यों उमहे री।--केशव।

उमहाना--स० [क्रि० उमहना का स० रूप] उमहने में प्रवृत्त करना। उदा०--कया गंगा लागी मोहिं तोरी उहि रस-सिंधु उमहायो।--सूर।

उमा--स्त्री० [सं० उ-मा, ष० त० या उ√मो (मान करना)+क-टाप्] १. शिव जी की पत्नी, पार्वती। गौरी। २. दुर्गा। ३. कीर्ति। ४. कांति। ५. ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मविद्या। ६. शांति। ७. चंद्रकांत मणि। ८. रात्रि। रात। ९. हलदी। १०. अलसी का पौधा। ११. मदिरा नामक छंद का एक नाम।

उमाकना*--स० [?] १. उखाड़ या खोदकर फेंकना। उखाड़ना। २. नष्ट करना।

उमाकांत--पुं० [ष० त०] उमा अर्थात् पार्वती के पति, शिव। शंकर।

उमाकी--वि० [हिं० उमाकना] [स्त्री० उमाकिनी] उखाड़ या खोदकर फेंक देनेवाला।

उमा-गुरु--पुं० [ष० त०] हिमाचल।

उमाचना*--स० [सं० उन्मञ्चन=ऊपर उठाना] १. ऊपर उठाना। २. उभारना। ३. निकालना। ४. हुमचना।

उमा-जनक--पुं० [ष० त० स०] हिमाचल।

उमाद*--पुं०=उन्माद।

उमा-धव--पुं० [प० त० स०] शिव।
उमा-नाथ--पुं० [प० त० स०] शिव।
उमा-पति--पुं० [प० त० स०] शिव।
उमावा--पुं०=उमाह (उमंग)।
उमा-सुत--पुं० [प० त० स०] १.कार्त्तिकेय। २.गणेश।
उमाह--पुं० [सं० उद्+हिं० मह, उमगाना, उत्साहित करना] १.उत्साह। २.उमंग।
उमाहना--अ० [?] भर कर ऊपर आना।
स०=उमहाना।
*अ०=उमहना।
उमाहल*--वि० [हिं० उमाह+ल(प्रत्य०)] १.उमंग से भरा हुआ। २.उत्साहपूर्ण।
उमेठना--स्त्री० [सं० उद्वेष्टन] १.उमेठने की क्रिया या भाव। २.उमेठने से पड़ी हुई ऐंठन या बल।
उमेठना--स० [सं० उद्वेष्टन] किसी वस्तु को इस प्रकार घुमाते हुए मरोड़ना कि उसमें बल पड़ जाय। ऐंठना। जैसे--किसी के कान उमेठना। अ० ऐंठ या रूठ कर बैठना। उदा०--मानिक निपुन बनाय निलय मैं धन् उपमेय उमेठी।--सूर।
उमेठवाँ--वि० [हिं० उमेठना] १.जो उमेठकर घुमाया या चलाया जाता हो। २.जिसमें किसी प्रकार का बल पड़ा हो। जिसमें ऐंठन, घुमाव या चक्कर हो।
उमेठी--स्त्री० [हिं० उमेठना] १.उमेठने की क्रिया या भाव। २.दंड देने के लिए किसी का कान पकड़कर उसे जोर से उमेठने की क्रिया। जैसे--एक उमेठी देंगे, अभी सीधे हो जाओगे।
उमेड़ना*--स०=उमेठना।
उमेदवार--पुं०=उम्मेदवार।
उमेदवारी--स्त्री०=उम्मेदवारी।
उमेलना*--स० [सं० उन्मीलन] १.खोलना। २.प्रकट या स्पष्ट करना। ३.वर्णन करना, कहना या बतलाना।
उमेह--स्त्री० [हिं० उमाह] उमंग। उदा०--हँसि-हँसि कहै बात अधिक उमेह की।--हरिश्चंद्र।
उम्दगी--स्त्री० [फा०] उम्दा (अच्छा या बढ़िया) होने की अवस्था या भाव। अच्छाई। खूबी।
उम्दा--वि० [अ० उम्दः] जो देखने में अथवा गुण, विशेषता आदि के विचार से अच्छा और बढ़िया हो। उत्तम। श्रेष्ठ।
उम्मट--पु० [?] एक प्राचीन देश का नाम।
उम्मत--स्त्री० [अ०] १.सामाजिक वर्ग या समूह। २.किसी पैगंबर या मत के अनुयायियों का समाज या समूह।
उम्मना--अ०=उमड़ना।
उम्मस--स्त्री०=उमस।
उम्मी--स्त्री० [सं० उम्बी] गेहूँ आदि की हरी बाल।
उम्मीद--स्त्री०=उम्मेद।
उम्मेद--स्त्री० [फा० उम्मीद] १.मन का यह भाव कि अमुक काम हो जायगा। आशा। २.आसरा। भरोसा। ३.(स्त्रियों की बोलचाल में) गर्भवती होने की अवस्था जिसमें संतान होने की आशा होती है।
उम्मेदवार--पुं० [फा०] १.जिसे किसी प्रकार की आशा या उम्मेद हो। २.किसी पद पर चुने जाने या नियुक्त होने के लिए खड़ा होनेवाला या अपने आपको उपस्थित करनेवाला व्यक्ति। ३.काम सीखने या नौकरी पाने की आशा से कहीं बिना वेतन लिये या थोड़े वेतन पर काम करनेवाला व्यक्ति।
उम्मेदवारी--स्त्री० [फा०] १.उम्मेदवार होने की अवस्था या भाव। २.आशा। आसरा। ३.गर्भवती होने की अवस्था जिसमें संतान होने की आशा होती है। (स्त्रियाँ)।
उम्र--स्त्री० [अ०] १.काल-मान के विचार से जीवन का उतना समय, जितना बीत चुका हो। अवस्था। जैसे--उनके बड़े लड़के की उम्र दस बरस है। २.सारा जीवन-काल। आयु। जैसे--इस पेड़ की उम्र सौ बरस की होती है।
उयवानी--अ० [सं० जृंभण] जँभाई लेना। उदा०--उतनी कहत कुँवरि उयवानी।--नंददास।
उरंग--पुं० [सं० उरस्√गम् (जाना)+ड, नि० सिद्ध] १.साँप। २.नागकेसर।
उरंगम--पुं० [सं० उरस्√गम् (जाना)+खच्-मुम्, सलोप] साँप।
उरःक्षय--पुं० [प० त० या व० स०] फेफड़ों में होनेवाला क्षय नामक रोग।
उर(स्)--पुं० [सं०√ऋ (गति)+असुन्] १. छाती। वक्षःस्थल। २.मन। हृदय।
मुहा०--**उर आनना, धरना या लाना**=(क) हृदय में बसाना या रखना। बहुत प्रिय समझना। (ख) किसी बात के विषय में मन में निश्चय करना।
उरई--स्त्री० [सं० उशीर] उशीर। खस।
उरकना*--अ०=रुकना।
उरग--पुं० [सं० उरस्√गम् (जाना)+ड, सलोप] [स्त्री० उरगी, उरगिनी] साँप।
उरगना*--स० [सं० ऊररीकरण] १.ग्रहण या स्वीकार करना। २.सहना। उदा०--जौ दुख देइ तो लै उरगो यह बात सुनो।--केशव।
उरग-भूषण--पुं० [व० स०] शिव।
उरग-राज--पुं० [प० त०] १.वासुकी। २.शेषनाग।
उरग-लता--स्त्री० [मध्य० स०] नागवल्ली।
उरग-शत्रु--पुं० [प० त०] १.गरुड़। २.मोर।
उरग-स्थान--पुं० [प० त०] पाताल।
उरगाद--पुं० [सं० उरग√अद् (खाना)+अण्] १.गरुड़। २.मोर।
उरगाय*--वि०, पुं०=उरुगाय।
उरगारि--पुं० [सं० उरग-अरि, ष० त०] १.गरुड़। २.मोर।
उरगाशन--पुं० [सं० उरग-अशन, व० स०] १.गरुड़। २.मोर।
उरगिनी*--स्त्री०=उरगी।
उरगी--स्त्री० [सं० उरग+ङीष्] सर्पिणी। साँपिन।
उर-घर*-- पुं० [सं० उर+हिं० घर] १.वक्षःस्थल। छाती। २.मन। हृदय।
उरज, उरजात*--पुं०=उरोज (स्तन)।
उरझना*--अ०=उलझना।

उरझाना—स०=उलझाना।

उरझेर*—पुं० [?] हवा का झोंका। उदा०—पानी को सो घेर किधौं पौन उरझेर किधौं।—सुंदर।

उरझेरी*—स्त्री० [सं० अवरुंधन=उलझन] १.उलझन। दुविधा। २. व्याकुलता। ३. दे० 'उरझेर'।

उरण—पुं० [सं०√ऋ (गमन)+क्युच्–अन] १.भेड़ा या मेढ़ा। २.सौर जगत् का एक ग्रह जो शनि और वरुण के बीच में पड़ता है और जिसका पता सन् १७८१ में लगा था। वारुणी। (यूरेनस)

उरणक—पुं० [सं० उरण+कन्] १.भेड़ा। २.बादल। मेघ।

उरणी—स्त्री० [सं० उरण+ङीप्] भेड़।

उरद—पुं० [सं० ऋद्ध, पा० उद्ध] [स्त्री० अल्पा० उरदी] १.एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी फलियों के दानों की दाल बनती है। २.उक्त पौधे की फलियाँ या उनमें से निकलनेवाले दाने, जिनकी दाल बनती है। माष।

उरदावन†—स्त्री०=उनचन।

उरदिया खड़ी—स्त्री० दे० 'खड़िया'।

उरदी—स्त्री० 'उरद' का स्त्री० अल्पा० रूप।

उरध*—वि०, अव्य०=ऊर्ध्व।

उरधारना—स० [हिं० उधड़ना] १.छितराना। बिखेरना। २.उधेड़ना।

उरन*—पुं०=उरण (भेड़ा)।
वि०†=उऋण।

उरना†—अ०=उड़ना।

उरप-तरप—पुं० [?] नृत्य का एक अंग या अंग-संचालन का एक प्रकार।

उरबसी—स्त्री० [हिं० उर+बसना] १.वह जो हृदय में बसी हो, अर्थात् प्रेमिका। २.एक प्रकार का गले का गहना।
स्त्री०=उर्वशी (अप्सरा)।

उरबी*—स्त्री०=उर्वी (पृथ्वी)।

उर-मंडन—पुं० [सं० उरोमंडन] वह जो हृदय की शोभा बढ़ाता हो अर्थात् परम प्रिय।

उरमना*—अ० [सं० अवलम्बन, प्रा० ओलंबन] लटकना।

उरमाना*—स० [हिं० उरमना] लटकाना।

उरमाल†—पुं०=रूमाल।

उरमी—स्त्री०=ऊर्मी।

उररना—स० [अनु०] जोर से बुलाना। पुकारना।
अ० १.घुसना या धँसना। २.चाव से आगे बढ़ना।

उरल—स्त्री० [देश०] पश्चिमी पंजाब की एक प्रकार की भेड़।
वि० [सं० उर+कलच्] १.विशाल। २.विस्तीर्ण। ३.शांत।

उरला—वि० [सं० अपर, अवर+हिं० ला (प्रत्य०) १.इस ओर या तरफ का। इधर का। 'परला' का विपर्याय। २.पीछे का। पिछला।
वि० [सं० विरल] अनोखा। अद्भुत।

उरविजा—पुं०=उर्विज (मंगलग्रह)।

उरश—पुं० [सं०] सिंधु और झेलम के बीच का वह प्रदेश जो पश्चिमी गंधार और अभिसार के बीच में था।

उरश्छद—पुं० [सं० उरस्√छद् (छा लेना)+णिच्–घ स्=श्]=उरस्त्राण।

उरस—वि० [सं० निरस] जिसमें रस न हो। बिना रस का।
पुं० [सं० उरस्] १.छाती। वक्षःस्थल। २.हृदय।

उरसना—स० [हिं० उड़सना] १.ऊपर-नीचे या उथल-पुथल करना। २. ढाँकना। उदा०—उसरत पट पटि उरसि संयजुत वंक निहारत।—लोकगीत।

उरसिज—पुं० [सं० उरसि√जन् (उत्पन्न होना)+ड] उरोज। स्तन।

उरसि-रुह—पुं० [सं० उरसि√रुह् (उत्पन्न होना)+क] स्तन।

उरस्क—पुं० [सं० उरस्+कन्] १.छाती। वक्ष.स्थल। २.हृदय।

उरस्त्राण—पुं० [सं० उरस्√त्रै (रक्षा करना)+ल्युट्–अन] युद्ध में छाती की रक्षा करने के लिए उस पर बाँधने का कवच।

उरस्य—वि० [सं० उरस्+य] उर-संबंधी।
पुं० १.औरस पुत्र। २.सेना का अगला भाग।

उरस्वान (स्वत्)—वि० [सं० उरस्+मतुप्] जिसका उर या वक्षःस्थल चौड़ा हो।

उरहना*—पुं०=उलहना।
स०=उरेहना।

उरा—स्त्री० [सं० उर–टाप् (उर्वी)] पृथिवी।

उराउ—पुं०=उराव।

उराट†—पुं० [सं० उरस्] छाती। (डिं०)

उराना†—अ०=ओराना (समाप्त होना)।
स० दे० 'उड़ाना'।

उराय—पुं०=उराव।

उरारा†—वि० [सं० उरु] विस्तृत।
वि०=उरला।

उराव*—पुं० [सं० उरस्+आव (प्रत्य०)] १.उमंग। २.चाव। चाह। ३.साहस। हिम्मत।

उराहना—पुं०=उलाहना।
†स० उलाहना देना।

उरिण—वि०=उऋण।

उरिन†—वि०=उऋण।

उरु—वि० [सं०√ऊर्णु (आच्छादन करना)+कु, णुलोप, ह्रस्व] १. लंबा-चौड़ा। विस्तीर्ण। २.बड़ा। विशाल।
पुं० जंघा। जाँघ।

उरु-क्रम—वि० [सं० उरु√क्रम् (डग भरना)+अच् या ब० स०] १.लंबे-लंबे डग भरनेवाला। २.पराक्रमी।
पुं० १.वामन (अवतार) का एक नाम। २.सूर्य। ३.शिव।

उरग*—पुं० [स्त्री० उरगिनी]=उरग (साँप)।

उरुगाय—वि० [सं० उरु√गै (गान करना)+घञ्] १. गाये जाने के योग्य। गेय। २.जिसका गुण-गान हुआ हो। प्रशंसित। ३.लंबा-चौड़ा। प्रशस्त।
पुं० १.विष्णु। २.सूर्य। ३.इंद्र। ४.सोम। ५.प्रशस्त स्थान।

उरुज*—पुं०=उरोज (स्तन)।

उरुजना*—अ०=उलझना।

उरु-जन्मा (न्मन्)—वि० [सं० ब० स०] अच्छे वंश में उत्पन्न। कुलीन।

उरुवा—पुं० [सं०] उल्लू की जाति का एक प्रकार का पक्षी। रुरुआ।

उरु-विक्रम--वि० [सं० ब० स०] पराक्रमी।
उरूज--पुं० [अ०] १.उन्नति। २.बढ़ती। वृद्धि।
उरूसी--पु० [?] एक प्रकार का वृक्ष जिससे गोंद और रंग निकलता है। एक जापानी वृक्ष जिसके तने से एक प्रकार का गोंद निकाला जाता है। उससे रंग और वारनिश बनाई जाती है।
उरे†*--अव्य० [सं० अवर] १.इस ओर। इधर। २. निकट। पास। उदा०--छगन-मगन वारे कंधैया, उरे धौं आइ रे।--नंददास।
उरेखना*--स० दे० 'अवरेखना'।
स० [सं० आलेखन] १.चित्र बनाना या अंकित करना। २.दे० 'अवरेखना'।
उरेझा†--पु०=उलझन।
उरेब--वि० [फा० औरेब] १.टेढ़ा। २.तिरछा। ३.छलपूर्ण।
†पुं० छल-कपट। धूर्त्तता।
उरेह--पु० [सं० उल्लेख] १.उरेहने की क्रिया या भाव। चित्रकारी। २.उरेह कर बनाई हुई चीज। चित्र।
उरेहना--स० [सं० उल्लेखन] १.चित्र अंकित करना, बनाना या लिखना। २.रँगना। जैसे--नयन उरेहना।
उरेंड़*--स्त्री० [हिं० उरेंड़ना] १.उरेंड़ने की क्रिया या भाव। २.बहुत अधिक मात्रा में आ पड़ना। ३.प्रवाह। बहाव।
उरेंड़ना--स० [हिं० उँडेलना] १.उँडेलना। २.गिराना।
उरोगम--पु० [सं० उरस्√गम् (जाना)+अच्] सर्प। साँप।
उरोग्रह--पुं० [सं० उरस्-ग्रह, ब० स०] एक प्रकार का रोग जिसमें छाती और पसलियों में दरद होता है। (प्ल्यूरिसी)
उरोज--पु० [स० उरस्√जन्+ड] स्त्री की छाती। कुच। स्तन।
उरोरुह--पु० [सं० उरस्√रुह् (उत्पन्न होना)+क] उरोज (स्तन)।
उर्जित--वि० [सं० ऊर्जित] १. बलवान। २. प्रसिद्ध। विख्यात। ३. अहंकारी। ४. परित्यक्त।
उर्ण--पुं० [सं० ऊर्ण] दे० 'ऊर्ण'। (उर्ण के यौ० के लिए दे० 'ऊर्ण' के यौ०)
उर्दू--स्त्री० [तु०] १.छावनी का बाजार। २.हिंदी भाषा का वह रूप जिसमें अरबी-फारसी के शब्द अधिक होते है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है।
उर्ध्व†--वि०=ऊर्ध्व।
उर्फ--पुं० [अ०] उपनाम (दे०)।
उर्मि*--स्त्री०=ऊर्मि (लहर)।
उर्वर--वि० [सं० उरु√ऋ (गति)+अच्] [स्त्री० उर्वरा] १.(भूमि) जिसमें ऐसे तत्त्व निहित हों जो पौधों, फसलों आदि के जीवन और विकास के लिए अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण हों। उपजाऊ। (फर्टाइल) २. लाक्षणिक अर्थ में (तत्त्व) जिसकी उत्पादन-शक्ति बहुत अधिक हो। जैसे--उर्वर मस्तिष्क।
उर्वरक--पु० [सं० उर्वर+कन्] रासायनिक प्रक्रियाओं से प्रस्तुत की हुई ऐसी खाद जो खेतों में उन्हे उपजाऊ या उर्वर बनाने के लिए डाली जाती है। (फर्टिलाइजर)
उर्वरता--स्त्री० [स० उर्वर+तल्-टाप्] १.उर्वर होने की अवस्था या भाव। उपजाऊपन। २.उत्पादन शक्ति बहुत अधिक होने का भाव।
उर्वरा--स्त्री० [सं० उर्वर+टाप्] १. उपजाऊ या उर्वर भूमि। २.पृथ्वी। ३.एक अप्सरा का नाम।
वि०=उर्वर।
उर्वशी--स्त्री० [सं० उरु√अश् (व्याप्त करना+क-ङीप्] १.पुराणानुसार इंद्रलोक की एक अप्सरा, जिसका विवाह राजा पुरूरवा से हुआ था। २.महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ।
उर्वारु--पुं० [सं० उरु√ऋ (गमन)+उण्, वृद्धि, रपर, वण्] १. खरबूजा। २.ककड़ी।
उर्विज--पुं० [सं० उर्वीज] मंगल-ग्रह।
उर्विजा*--स्त्री०=उर्वीजा।
उर्वी--वि० [सं०√ऊर्णु (आच्छादन करना)+कु, नलोप, ह्रस्व, ङीप्] १.विस्तृत। २.सपाट।
स्त्री० १.विस्तृत क्षेत्र या तल। २.भूमि।
उर्वीजा--वि० स्त्री० [सं० उर्वी√जन् (उत्पन्न करना)+ड-टाप्] जो पृथ्वी से उपजा हो। जिसका जन्म पृथ्वी में से हुआ हो।
स्त्री०=सीता।
उर्वी-धर--पुं० [प० त० स०] १.वह जिसने पृथ्वी को धारण किया हो, अर्थात् शेषनाग। २.पर्वत। पहाड़।
उर्वी-पति--पुं० [प० त० स०] पृथ्वी का स्वामी अर्थात् राजा।
उर्वी-रुह--पुं० [सं० उर्वी√रुह् (उगना)+क) पेड़-पौधे।
उर्वीश--पुं० [उर्वी-ईश, ष० त०]=उर्वी-पति।
उर्स--पुं० [अ०] १. मुसलमानों में किसी की मरण-तिथि पर बाँटा जानेवाला भोजन। २.किसी की मरण-तिथि पर किये जानेवाले श्रद्धा-पूर्ण कार्य या कृत्य।
उलंग--वि० [सं० उन्नग्न] नंगा।
उलंगना*--स०=उलंघना।
उलंघन*--पुं०=उल्लंघन।
उलंघना--स० [सं० उल्लंघन] १.किसी चीज को लाँघते हुए इधर से उधर जाना। २.किसी की आज्ञा या आदेश अथवा किसी परंपरा के विरुद्ध आचरण करना। उल्लंघन करना।
उलका*--स्त्री०=उल्का।
उलगट†--स्त्री० [हिं० उलगना] कूद-फाँद।
उलगना†--अ० [सं० उल्लंघन] कूदना। फाँदना।
उलगाना†--स० [हिं० उलगना] किसी को कूदने या फाँदने में प्रवृत्त करना। कुदाना।
उलचना--स०=उलीचना।
उलच (छ) ना--स०=उलीचना।
अ०=उछलना।
उलछा--पुं० [हिं० उलचना] खेतों में हाथ से छितरा या बिखेरकर बीज डालने की एक रीति। छिटका बोना। पवेरा।
उलछारना*--स०=उछालना।
उलझन--स्त्री० [हिं० उलझना] १.उलझने की क्रिया या भाव। २. किसी कार्य में सामने आनेवाली ऐसी पेचीली या झंझट की स्थिति जिसमें किसी प्रकार का निराकरण या निश्चय करना बहुत कठिन हो।

झगड़े-झंझट की स्थिति। ३. डोरी आदि में एक साथ जगह-जगह पड़नेवाली बहुत-सी पेचीली गाँठें।

उलझना—अ० [सं० अवसन्वन, पा० ओरुज्झन, पु० हिं० अरुझना] १. किसी चीज का ऐसी परिस्थिति में पड़ना जहाँ चारों ओर अटकाने, फँसाने या रोक रखनेवाले तत्त्व या बातें हों। जैसे—काँटों में कपड़ा उलझना। उदा०—पाँख भरा तन उरझा कित मारे बिनु बाँच।—जायसी।

मुहा०—उलझ-पुलझ कर रह जाना=ऐसी पेचीली स्थिति में पड़े रहना कि कोई अच्छा परिणाम या फल न निकल सके। उदा०—उलझि पुलझि के मरि गए चारिउ बेदन माँहि।—कबीर।

२. किसी चीज के अंगों का आपस में या दूसरी चीज के अंगों के साथ इस प्रकार फँसकर लिपटना कि सब गुथ या मिलकर बहुत-कुछ एक हो जायँ और सहज में एक दूसरे से अलग न हो सकें। टेढ़े-मेढ़े होकर या बल खाते हुए जगह-जगह अटकना या फँसना। जैसे—पतंग की डोर उलझना। उदा०—*मोहन नवल सिंगार विटप-सों उरझी आनँद-बेल।*—सूर। ३. घुमाव-फिराव की ऐसी पेचीली या विकट स्थिति में पड़ना कि जल्दी छुटकारा, निकास या बचाव न हो सके। उदा०—ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौं चहै, त्यौं त्यौं उरझत जात।—बिहारी। ४. झंझट या झगड़े-बखेड़े के काम में इस प्रकार फँसना कि जल्दी छुटकारा न हो सके। ५. ऐसी स्थिति में पड़ना जहाँ चारों ओर रोक रखनेवाली आकर्षक या मोहक बातें हों। उदा०—अँखियाँ श्यामसुंदर सों उरझीं, को सुरझावे हो गोइयाँ।—गीत। ६. किसी से जान-बूझ कर इस प्रकार की बातें या व्यवहार करना अथवा उसके कामों में बाधक होना कि झगड़ा या बखेड़ा खड़ा हो और पर-पक्ष उससे निकलने या बचने न पावे। जैसे—हर किसी से उलझने की तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं है।

उलझा†—पुं०=उलझन। उदा०—बीर वियोग के ये उलझा निकसैं जिन रे जियरा हियरा तें।—ठाकुर।

उलझाना—स० [हिं० उलझना का स० रूप] १. ऐसा काम करना जिससे कोई (वस्तु या व्यक्ति) कहीं उलझे। किसी को उलझने में प्रवृत्त करना। २. दो या कई चीजों को एक दूसरी में अटकाना या फँसाना। ३. किसी को किसी काम, बात-चीत आदि में इस प्रकार फँसाये रखना कि दूसरी ओर उसका ध्यान न जाने पावे। ४. दूसरों को आपस में लड़ाना।

उलझाव—पुं० [हिं० उलझना] १. उलझने की क्रिया या भाव। २. उलझन या उससे युक्त स्थिति। ३. झगड़ा। बखेड़ा।

उलझेड़ा—पुं०=उलझन या उलझाव।

उलझौंहाँ—वि० [हिं० उलझना] १. उलझने या उलझाने की प्रवृत्ति रखनेवाला। २. किसी प्रकार अपने साथ उलझाकर रखनेवाला। ३. लड़ाई-झगड़ा करने या कराने की प्रवृत्ति रखनेवाला। झगड़ालू।

उलटकंबल—पुं० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी।

उलटकटेरी†—स्त्री० [हिं० उप्ट्रकंट] ऊँट-कटारा। (पौधा)

उलटना—अ० [सं० उद्+हिं० लु=लुढ़कना] १. 'सीधा' की विपरीत दिशा या स्थिति में जाना या होना। उलटा होना। २. नियत, साधारण या सीधे मार्ग से पीछे की ओर आना, मुड़ना या हटना। पीछे घूमना या पलटना। जैसे—रास्ता चलते समय उलटकर किसी की ओर देखना।

मुहा०—(किसी का किसी पर) उलट पड़ना=(क) अचानक क्रुद्ध होकर किसी प्रकार का आक्रमण या आघात करना। जैसे—इस जरा-सी बात से बिगड़कर सारी सेना नगर पर उलट पड़ी। (ख) अचानक बिगड़ खड़े होना या भली-बुरी बातें कहने लगना। जैसे—आखिर मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम अकारण मुझ पर ही उलट पड़े?

३. ऐसी स्थिति में आना या होना कि नीचे का भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे हो जाय; अथवा सीधे खड़े न रहकर दाहिने या बाएँ बल गिरना। जैसे—गाड़ी या दवात उलटना।

मुहा०—कलेजा उलटना=दे० 'कलेजा' के अन्तर्गत।

४. अच्छी दशा से बुरी दशा में आना या होना। जैसे—इस वर्षा से सारी फसल उलट गई। ५. जैसे साधारणतः रहना या होना चाहिए उसके ठीक विपरीत या विरुद्ध हो जाना। जैसे (क) इस प्रकार तो वाक्य का सारा अर्थ ही उलट जाता है। (ख) पहले तो वह ठीक तरह से बातें करता था; पर तुम्हें देखते ही न जाने क्यों बिलकुल उलट गया। ६. *अस्त-व्यस्त या नष्ट-भ्रष्ट होना। जैसे—अब तो दुनिया की सब* बातें ही उलट रही हैं।

मुहा०—(किसी व्यक्ति का) उलट जाना=भारी आघात, उग्र प्रभाव आदि के कारण, अचेत या बेसुध होकर गिर पड़ना। जैसे—(क) गाँजे का दम लगाते ही वह उलट गया। (ख) मंदी के एक ही धक्के में वह उलट गया। (परीक्षा, प्रयत्न आदि में) उलट जाना=अनुत्तीर्ण या विफल होना। (मादा चौपाये का) उलट जाना=भरे जाने के बाद अर्थात् पहले गर्भ धारण कर लेने पर भी तुरंत गर्भस्राव हो जाना।

७. बहुत अधिक मात्रा, मान या संख्या में आकर उपस्थित या एकत्र होना अथवा पहुँचना। (प्रायः संयोज्य क्रिया 'पड़ना' के साथ प्रयुक्त) जैसे—(क) किसी के घर धन-सपत्ति उलट-पड़ना। (ख) कुछ देखने के लिए कहीं जन-समूह उलट पड़ना।

स० १. जो 'सीधा' हो उसे विपरीत दशा, दिशा या रूप में लाना। उलटा करना। जैसे—(क) पड़ा हुआ परदा या बिछी हुई चाँदनी उलटना। (ख) किसी से लड़ने के लिए आस्तीन उलटना (चढ़ाना) २. नियत या सीधे मार्ग से हटाकर इधर-उधर या पीछे की ओर करना, मोड़ना या लाना। जैसे—चलता हुआ चक्कर या घड़ी की सूई उलटना। ३. ऐसी स्थिति में लाना कि नीचे का भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे हो जाय; अथवा दाहिने या बाएँ किसी बल गिर पड़े। जैसे—लाइन पर पत्थर रखकर गाड़ी उलटना। ४. पात्र आदि खाली करने के लिए उसका मुँह इस प्रकार नीचे करना कि उसमें भरी हुई चीज नीचे गिर पड़े। जैसे—(क) पानी गिराने के लिए गिलास या घड़ा उलटना। (ख) रुपये आदि एकदम से निकालने के लिए थैली उलटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आधार या पात्र के संबंध में भी होता है और उसमें भरी या रखी हुई चीज के संबंध में भी। जैसे—(क) स्याही की दवात उलटना; और दवात की स्याही उलटना।

५. एक तल या पार्श्व नीचे करके दूसरा तल या पार्श्व ऊपर लाना। जैसे—पुस्तक के पृष्ठ या बही के पन्ने उलटना। ६. आघात, प्रभाव आदि के द्वारा अचेत या बेसुध करना; अथवा किसी प्रकार गिराना या पटकना। जैसे—थप्पड़ मारकर (या शराब पिलाकर) किसी को उलटना। ७. (आज्ञा या बात) न मानना। अवज्ञा-पूर्वक किसी की बात की उपेक्षा

करना। जैसे—तुम तो हमारी हर बात इसी तरह उलटा करते हो। ८.जैसी बात या व्यवहार हो, उसका उसी रूप में या वैसा ही उत्तर देना या प्रतिकार करना। (प्रायः अनिष्ट या मंद प्रसंगों में प्रयुक्त)। उदा०—आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।—कबीर। ९.खेत या जमीन की मिट्टी खोदकर नीचे से ऊपर करना। १०. (माला जपने के समय उसके मनके) बार-बार आगे बढ़ाते हुए ऊपर-नीचे करते रहना।

मुहा०—(किसी का) नाम उलटना=बार-बार किसी का नाम लेते रहना। रटना।

११.उलटी, कै या वमन करना। जैसे—जो कुछ खाया-पीया था, वह सब उलट दिया।

उलट-पलट—स्त्री० [हिं० उलटना+पलटना] चीजें बार-बार उलटने-पलटने की क्रिया या भाव।

उलटना-पलटना—स० [हिं० उलट-पलट] १.(किसी वस्तु का) नीचे-वाला भाग ऊपर अथवा ऊपरवाला भाग नीचे करना। नीचे-ऊपर या ऊपर-नीचे करना। २.अस्त-व्यस्त करना। इधर का उधर करना। ३.कुछ जानने, देखने या समझने के लिए चीजें या उनके अंग कभी ऊपर और कभी नीचे करना। जैसे—कागज-पत्र, चिट्ठियाँ या पुस्तकें (अथवा उनके पृष्ठ) उलटना-पलटना।

उलट-पुलट—स्त्री०=उलट-पलट।

उलट-फेर—पुं० [हिं० उलटना+फेर] ऐसा परिवर्तन जिसमें अधिकतर चीजें, बातें या उनके क्रम बदल जायँ। हेर-फेर।

उलटबाँसी—स्त्री० [हिं० उलटा+सं० वाचा ?] साहित्य में ऐसी उक्ति या कथन (विशेषतः पद्यात्मक) जिसमें असंगति, विचित्र, विभावना, विषम, विशेषोक्ति आदि अलंकारों से युक्त कोई ऐसी विलक्षण बात कही जाती है जो प्राकृतिक नियम या लोक-व्यवहार के विपरीत होने पर भी किसी गूढ़ आशय या तत्त्व से युक्त होती है। जैसे—(क) पहिले पूत पाछे भइ माई। चेला के गुरु लागै पाई।—कबीर। (ख) समंदर लागी आगी माइ। नदियाँ जरि कोइला भई।—कबीर।

उलटा—वि० [हिं० उलटना] १.जिसका ऊपर का भाग या मुँह नीचे हो गया हो और नीचे का भाग या पेंदा ऊपर आ गया हो। औंधा। जैसे—उलटा गिलास; उलटी कटोरी या थाली।

मुहा०—उलटे मुँह गिरना=(क) सिर के बल नीचे गिरना। (ख) लाक्षणिक रूप में, भारी आघात, भूल आदि के कारण ऐसी स्थिति में पड़ना या पहुँचना कि सहज में छुटकारा न हो सके। उलटे होकर टँगना=अधिक से अधिक या सारी शक्ति लगाना। सभी प्रकार के उपाय करना। जैसे—चाहे तुम उलटे होकर टँग जाओ, पर यह काम तुम्हारे किये न होगा।

पद—उलटी खोपड़ी=ऐसी बुद्धि या मस्तिष्क जिसमें हर बात अपने विपरीत रूप में दिखाई देती हो। उलटा तवा=बहुत ही काला-कलूटा (व्यक्ति या उसका वर्ण)।

२.नियत या परंपरागत क्रम, गति, प्रवाह आदि के विचार से जो ठीक, नियमित या स्वाभाविक न होकर उसके विपरीत हो। जिसकी क्रिया या गति पीछे की ओर, विपरीत दिशा में या असंगत और अस्वाभाविक हो। जैसे—आजकल उलटा जमाना है, इसी से हमारी अच्छी बात भी तुम्हें बुरी लगती है।

मुहा०—उलटा घड़ा बाँधना=अपना काम निकालने के लिए ऐसा उपाय या युक्ति करना कि विपक्षी धोखे में रह जाय और कुछ भी समझ न सके। उलटी साँस चलना=मरने के समय रुककर और क्रमशः ऊपर की ओर का साँस चलना। उलटी आँतें गले पड़ना=लाभ के बदले में उलटे और अधिक हानि होना या हानि की संभावना होना। उलटी गंगा बहना=परंपरा से चली आई हुई प्रथा या रीति के विपरीत आचरण या कार्य होना। (किसी को) उलटे छुरे से मूँड़ना=किसी को खूब मूर्ख बनाकर उससे धन ऐंठना या अपना काम निकालना। (किसी को) उलटी पट्टी पढ़ाना=किसी को कोई विपरीत या हानिकार बात ऐसे ढंग से या ऐसे रूप में बतलाना या समझाना कि वह उसीको ठीक या लाभदायक मान या समझ ले। (किसी के नाम की या नाम पर) उलटी माला फेरना=तांत्रिक उपचार के ढंग पर निरंतर किसी के अपकार या अहित की कामना करना। बुरा मनाना। उलटे पैर फिरना या लौटना=कहीं पहुँचते ही वहाँ से तुरंत लौट आना। चटपट वापस आना। जैसे—उन्हें यह पत्र देकर उलटे पैर लौट आना।

पद—उलटा-पलटा, उलटा-सीधा (देखें)।

३.जो काल, संख्या आदि के क्रमिक विचार से आगे का पीछे या पीछे का आगे हो। इधर का उधर और उधर का इधर। जैसे—(क) इस इतिहास में कई तिथियाँ उलटी दी हैं। (ख) इस पुस्तक में कई पृष्ठ उलटे लगे हैं। ४.'दाहिना' का विपरीत। बायाँ। जैसे—यह लड़का उलटे हाथ से सब काम करता है।

अव्य० 'उलटे' के स्थान पर प्रायः भूल से प्रयुक्त होनेवाला शब्द। दे० 'उलटे'।

पुं० पीठी, बेसन आदि से बननेवाला एक प्रकार का पकवान जिसे चिलड़ा या चीला भी कहते हैं।

उलटाना—स० [हिं० उलटना] १.=उलटना। २.=उलटवाना।

उलटा-पलटा—वि० [प्रा० उल्लट-पल्लट] १.जिसका नीचे का कुछ ऊपर अथवा ऊपर का कुछ अंश नीचे किया गया हो। २.जिसमें किसी प्रकार का क्रम न हो। क्रम-विहीन। बेसिर-पैर का। ३.इधर-उधर का। अंड-बंड। ४.दे० 'उलटा-सीधा'।

उलटा-पलटी—स्त्री० [हिं० उलटना+पलटना] १.बार-बार उलटने-पलटने की क्रिया या भाव। २.बार-बार होनेवाली अदल-बदल। फेर-फार। हेर-फेर।

उलटा-पुलटा—वि०=उलटा-पलटा।

उलटाव—पुं० [हिं० उलटना] १.उलटने या उलटे जाने की क्रिया या भाव। २.पीछे की ओर पलटने या लौटने की क्रिया या स्थिति। जैसे—नदी का उलटाव।

उलटा-सीधा—वि० [हिं० उलटा+सीधा] [स्त्री० उलटी-सीधी] १.क्रम, बनावट आदि के विचार से जिसका कुछ अंश तो सीधा या ठीक हो और कुछ अंश उलटा या बे-ठिकाने हो। २.कुछ अच्छा और कुछ बुरा।

मुहा०—(किसी को) उलटी-सीधी समझाना=अपना उद्देश्य या स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसी बातें बतलाना या समझाना जो अंशतः उचित और अंशतः अनुचित हों। (किसी को) उलटी-सीधी सुनाना=क्रोध या रोषपूर्वक अनुचित बातें कहना।

उलटी——स्त्री० [हिं० उलटा का स्त्री०] १.कै। वमन। २.मालखंभ की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी बीच में उलट जाता है। ३.कलैया। कलाबाजी।

उलटी बगली——स्त्री० [हिं० उलटी+बगली] व्यायाम में मुगदल को पीठ पर से छाती की ओर इस प्रकार घुमाना कि मुट्ठी हर हालत में ऊपर रहे।

उलटी रुमाली——स्त्री० [फा० रुमाल] मुगदल भाँजने का एक प्रकार, जिसमें रुमाली के समान मुगदल की मुठिया उलटी पकड़कर मुगदल आगे की ओर ले जाते हैं।

उलटी सरसों——स्त्री० [हिं० उलटी+सरसों] ऐसी सरसों जिसकी कलियों का मुँह नीचे होता है।

विशेष——यह टोने-टोटके और यंत्र-मंत्र के काम आती है।

उलटे——अव्य० [हिं० उलटा] १. विपरीत दिशा या स्थिति में। जैसे——उलटे चलना। २.क्रम, नियम, न्याय, प्रथा आदि के विपरीत या विरुद्ध। ३. जैसा होना चाहिए, उसके प्रतिकूल या विपरीत। जैसे नहीं होना चाहिए, उस तरह से। जैसे——(क) उलटे-चोर कोतवाल को डाँटे। (ख) अपनी भूल तो मानते नहीं, उलटे मुझे ही दोष देते हो।

उलठना*——अ०, स०=उलटना।

उलथना*——अ० [सं० उद्+स्थल=जमना या दृढ़ होना, उत्थलन] १. ऊपर-नीचे होना। उथल-पुथल होना। २.उछलना। ३.उमड़ना।

स० ऊपर नीचे करना। उलटना-पलटना।

उलथा——पुं० [हिं० उलथना] १.नृत्य में, ताल के साथ उछलना। २. कलाबाजी। कलैया। ३.करवट।

पुं० दे० 'उल्था'।

उलद*——स्त्री० [हिं० उलदना] १.उलदने या उँडेलने की क्रिया या भाव। २.वर्षा की झड़ी।

उलदना*——स० [सं० उल्लोठन] १.उँडेलना। ढालना। २.उलीचना। ३.बरसाना।

अ० अच्छी तरह से या खूब बरसना।

उलप्य——पुं० [सं०] रुद्र।

उलफत——स्त्री० [अ० उल्फ़त] प्रेम। प्रीति।

उलमना*——अ० [अवलम्बन, पा० ओलम्बन] १. टेक या सहारा लेना। उठँगना। २.झुकना। ३.लटकना।

उलमा——पुं० [अ० उलमा, आलिम का बहुवचन रूप] पंडित तथा विद्वान् लोग।

उलरना*——अ० [सं० उद्+लर्व=डोलना या उल्ललन] १.उलार होना। (दे० 'उलार') २.कूदना। ३.किसी पर झपटना या टूट पड़ना। ४. बादलों का घिर आना।

उललना*——अ० [हिं० उँड़ेलना] १.ढरकना या ढलना। २.उलट-पलट होना।

स० उलट-पलट करना।

उलवी——स्त्री० [?] एक प्रकार की मछली।

उलसना*——अ० [सं० उल्लसन] १.शोभित होना। २.उल्लास या हर्ष से युक्त होना। उल्लसित या प्रसन्न होना।

उलहना†——अ० [सं० उल्लंभन] १.उमड़ना। २.उत्पन्न होना। ३. बाहर या सामने आना। ४. प्रस्फुटित होना। खिलना। उदा०——उलहे नये अँकुरवा, बिनु बल बीर।——रहीम। ५.उमंग में आना। हुलसना।

पुं० उलाहना।

उलही——स्त्री०=उलाहना।

उलाँक——पुं० [हिं० लाँघना] १.चिट्ठी-पत्री आने-जाने का प्रबंध। डाक। २.एक प्रकार की छतदार या पटी हुई नाव। पटैला।

उलाँकी——पुं० [हिं० उलाँक] डाक का हरकारा।

उलाँघना†——स० [सं० उल्लंघन] १.ऊपर से होकर पार करना। लाँघना। २.(आज्ञा या आदेश) अवज्ञापूर्वक अमान्य करना। न मानना। ३.घुड़-सवारी का अभ्यास करने के लिए घोड़े पर पहले-पहल चढ़ना। (चाबुक सवार)

उला*——स्त्री० [सं० ऊर्ण] भेड़ का बच्चा। मेमना। (डिं०)

उलाटना*——अ०, स०=उलटना।

उलार——वि० [हिं० उलारना] जो असंतुलित भार के कारण पीछे या किसी ओर झुका हो। जैसे——एक्का (या नाव) उलार है।

पुं० इस प्रकार पीछे की ओर होनेवाला झुकाव।

उलारना†——स० [हिं० उलरना] १. किसी वस्तु पर रखा हुआ बोझ इस प्रकार असंतुलित करना कि वह पीछे की ओर झुक जाय। २.ऊपर की ओर फेंकना। उछालना। ३.ऊपर-नीचे करना।

उलारा——पुं० [हिं० उलरना] चौताल के अंत में गाया जानेवाला पद।

उलालना——स० [सं० उत्+लालन] १. पालन-पोषण या लालन-पालन करना। पालना-पोसना।

उलाहना——पुं० [सं० उपालंभन, प्रा० उवालहन] अपकार या हानि होने पर उसके प्रतिकार या वारण के उद्देश्य से खेद या दुःख-पूर्वक ऐसे व्यक्ति से उसकी चर्चा करना जो उसके लिए उत्तरदायी हो अथवा उसका प्रतिकार कर या करा सकता हो। जैसे——(क) लड़के की दुष्टता के लिए उसके माता-पिता को उलाहना मिलता है। (ख) उस दिन मैं उनके यहाँ नहीं जा सका था; उसका आज उन्होंने मुझे उलाहना दिया।

उलिंद——पुं० [सं०√वल् (बल आदि देना)+किन्द, व=उ संप्रसा] १. शिव। २.एक प्राचीन देश का नाम।

उलिचना——अ० [हिं० उलीचना] (पानी का) उलीचा या बाहर फेंका जाना। उलीचा जाना।

स०=उलीचना।

उलीचना——स० [सं० उल्लुंचन] १.किसी बड़े आधार या पात्र में जल भर जाने पर उसे खाली करने के लिए उसमें का जल बरतन या हाथ से बाहर निकालना या फेंकना। जैसे——नाव में का पानी उलीचना। २.कोई तरल पदार्थ उक्त प्रकार से बाहर फेंकना।

उलूक——पुं० [सं०√वल् (एकत्रित होना)+ऊक] १.उल्लू नामक पक्षी। २.इंद्र। ३.उत्तर का एक पुराना पहाड़ी प्रदेश। ४.कणाद ऋषि का एक नाम।

पद——उलूक दर्शन=कणाद का वैशेषिक दर्शन।

पुं० [सं० उल्का] आग की लपट। ज्वाला।

उलूखल——पुं० [सं० ऊर्ध्व-ख, पृषो० उलूख√ला (लेना)+क] १. ऊखल। ओखली। २. खरल। खल। ३. गुग्गुल।

उलूत--पुं० [सं०√उल् (हनन करना)+ऊतच्] एक प्रकार का अजगर (बड़ा साँप)।
उलूपी--स्त्री० [सं०] एक नाग-कन्या जो अर्जुन पर मुग्ध होकर उन्हें पाताल में ले गई थी। इसके गर्भ से अर्जुन को इरावत नामक पुत्र हुआ था।
उलेटना०--स०=उलटना।
उलेटा०--वि०=उलटा।
उलेड़ना*--स० १. =उँडेलना। २. =उलेढ़ना।
उलेढ़ना--स० [हिं० उलटना ?] सिलाई में, कपड़े के छोर या सिरे को थोड़ा उलट या मोड़कर तथा अन्दर की ओर करके ऊपर से सीना।
उलेढ़ी--स्त्री० [हिं० उलेढ़ना] १. उलेढ़ने की क्रिया या भाव। २. उलेढ़कर की हुई सिलाई।
उलेल*--स्त्री० [हिं० कुलेल] १. उमंग। उल्लास। २. आवेश। जोश। ३. पानी की बाढ़।
वि० १. अल्हड़। २. चमकीला। ३. लहराता हुआ।
उलैंडना०--स० दे० 'उलेड़ना'।
स० १. =उलेढ़ना। २. =उँडेलना।
उल्का--स्त्री० [सं०√उष् (दाह करना)+क, ष्=ल्, निपा०--टाप्] १. प्रकाश। २. रोशनी। तेज। ३. जलती हुई लकड़ी। लुआठी। ४. मशाल। ५. दीपक। दीया। ६. आकाशस्थ पिंडों से कटकर गिरनेवाले वे चमकीले छोटे खंड जो कभी-कभी रात को आकाश में इधर से उधर जाते या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई देते हैं। (मीटिओर)
उल्का-चक्र--पुं० [ष० त०] १. दैवी उत्पात या उपद्रव। २. बाधा। विघ्न। ३. हलचल। ४. ज्योतिष में ग्रहों की एक विशिष्ट स्थिति।
उल्का-पथ--पुं० [ष० त०] आकाश में वह बिंदु या स्थान जहाँ से उल्काएँ गिरती हुई अर्थात् तारे टूटकर गिरते हुए दिखाई देते हों। (रेडिएण्ट आफ मीटियोर्स)
उल्का-पात--पुं० [ष० त०] आकाश से उल्काओं का गिरना या टूटना। तारा टूटना।
उल्कापाती--वि० [हिं० उल्कापात] १. उत्पात, उपद्रव या दंगा-फसाद करनेवाला। २. नटखट। शरारती।
उल्का-पाषाण--पुं० दे० 'उल्काश्म'।
उल्का-मुख--पुं० [ब० स०] १. शिव के एक गण का नाम। २. मुँह से प्रकाश या आग फेंकनेवाला एक प्रकार का प्रेत। अगिया बैताल। ३. गीदड़।
उल्काश्म (न्)--पुं० [सं० उल्का--अश्मन्, कर्म० स०] पत्थर, लोहे आदि का वह ढोंका या पिंड जो आकाश से उल्का के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। (मीटिओराइट)
उल्था--पुं० [हिं० उलथना] एक भाषा से दूसरी भाषा में किया हुआ अनुवाद। भाषांतर।
उल्मुक--पुं० [सं०√उष् (दाह करना)+मुक, ष्=ल] १. अग्नि। आग। २. अंगारा। ३. जलती हुई लकड़ी। लुकाठा।
उल्लंघन--पुं० [सं० उद्√लंघ् (लाँघना)+ल्युट्--अन] १. किसी के ऊपर से होते हुए उधर या उस पार जाना। २. आज्ञा, नियम, प्रथा, रीति आदि का पालन न करते हुए उसका अतिक्रमण करना। न मानना। जैसे--आज्ञा का उल्लंघन। ३. अपने अधिकार या क्षेत्र से बाहर जाना अथवा दूसरे के क्षेत्र में अनुचित रूप से पहुँचना। जैसे--सीमा का उल्लंघन।
उल्लंघना*--स०=उलँघना या उलाँघना।
उल्लंघनीय--वि० [सं० उद्√लंघ्+अनीयर्] जो उल्लंघन किये जाने के योग्य हो अथवा जिसका उल्लंघन करना उचित हो।
उल्लंघित--भू० कृ० [सं० उद्√लंघ्+क्त] १. (पदार्थ) जो लाँघा गया हो। २. (आज्ञा या आदेश) जिसका जान-बूझकर पालन न किया गया हो। ३. (अधिकार या कार्यक्षेत्र) जिसमें अनुचित रूप से प्रवेश किया गया हो।
उल्ललित--वि० [सं० उद्√लल् (इच्छा)+क्त] १. आंदोलित या क्षुब्ध। २. उठा या बढ़ा हुआ।
उल्लस--वि० [सं० उद्√लस् (चमकना)+अच्] १. चमकदार। २. प्रसन्न। ३. प्रकट।
उल्लसन--पुं० [सं० उद्√लस्+ल्युट्--अन] १. उल्लास या हर्ष से युक्त होना। बहुत प्रसन्न होना। २. चमकना। ३. सुशोभित होना। ४. आनंद या हर्ष के कारण होनेवाला रोमांच।
उल्लसित--वि० [सं० उद्√लस्+क्त] १. जो उल्लास से युक्त हो। प्रसन्न। २. चमकता हुआ। ३. म्यान से निकाला हुआ (खड्ग)। ४. हिलता हुआ।
उल्लाप--पुं० [सं० उद्√लप् (कहना)+घञ्] १. बहलाना। २. न कहने योग्य बात। कुवाच्य। ३. आर्त्त-नाद। चीख-पुकार। ४. दे० 'काकूक्ति'।
उल्लापक--वि० [सं० उद्√लप्+णिच्+ण्वुल्--अक] १. उल्लाप करनेवाला। २. खुशामदी। चाटुकार।
उल्लापन--पुं० [सं० उद्√लप्+णिच्+ल्युट्--अन] १. उल्लाप करने की क्रिया या भाव। २. खुशामद।
उल्लापी (पिन्)--वि० [सं० उद्√लप्+णिच्+णिनि] =उल्लापक।
उल्लाप्य--पुं० [सं० उद्√लप्+णिच्+यत्] १. एक प्रकार का उपरूपक जो एक ही अंक का होता है। २. एक प्रकार का गीत।
वि० जिसका उल्लापन (खुशामद) किया जाय या किया जा सके।
उल्लाल--पुं० [सं० उद्√लल् (इच्छा)+घञ्] एक मात्रिक अर्द्ध समवृत्त जिसके पहले तथा तीसरे चरण या पद में १५-१५ और दूसरे तथा चौथे चरण या पद में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।
उल्लाला--पुं० [सं० उल्लाल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण या पद में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।
उल्लास--पुं० [सं० उद्√लस्+घञ्] १. प्रकाश। चमक। २. साधारण बातों से होनेवाला अस्थायी या क्षणिक तथा हल्का आनंद। ३. आनंद। प्रसन्नता। ४. ग्रंथ का अध्याय या प्रकरण। ५. साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी एक वस्तु या व्यक्ति के गुणों या दोषों के कारण दूसरे में गुण या दोष उत्पन्न होने का वर्णन होता है।
उल्लासक--वि० [सं० उद्√लस्+णिच्+ण्वुल्--अक] [स्त्री० उल्लासिका] उल्लास या प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला।
उल्लासना*--स० [सं० उल्लासन] १. प्रकाशित करना। २. उल्लास से युक्त करना।
अ०=उलसना (उल्लास से युक्त होना)।

उल्लासित--वि० [सं० उद्√लस् (मिलाना आदि)+णिच्--क्त, वा उल्लास+इतच्] १. जो उल्लास से युक्त हुआ हो या किया गया हो। २. प्रसन्न। हर्षित। ३. चमकाया हुआ। ४. अंकुरित या स्फुटित।

उल्लासी (सिन्)--वि० [सं० उल्लासिन्, उत्√लस् (मिलाना आदि)+णिनि, दीर्घ, नलोप] (व्यक्ति) उल्लास से भरा हुआ। उल्लास से युक्त।

उल्लिखित--वि० [सं० उद्√लिख् (लिखना)+क्त] १. जिसका उल्लेख ऊपर या पहले हुआ हो। २. (पुस्तक; लेख आदि में) जिसका कथन या वर्णन पहले हो चुका हो। (मेन्शण्ड) ३. उकेरा हुआ। उत्कीर्ण।

उल्लू--पुं० [सं० उलूक] १. प्रायः उजाड़ जगहों में रहनेवाला एक प्रसिद्ध पक्षी जिसे दिन में कुछ भी दिखाई नहीं देता; और जो बहुत ही अशुभ तथा निर्बुद्धि माना जाता है।

मुहा०--(किसी स्थान पर) उल्लू बोलना=पूरी तरह से उजाड़ हो जाना।

२. बहुत ही निर्बुद्धि और मूर्ख व्यक्ति।

पद--उल्लू का पट्ठा=निरा मूर्ख। पूरा नासमझ या बेवकूफ।

उल्लेख--पुं० [सं० उद्√लिख् (लिखना)+घञ्] १. लिखने की क्रिया या भाव। लिखाई। २. लेख आदि के रूप में होनेवाली चर्चा। जिक्र। वर्णन। ३. चित्र आदि अंकित करना। अंकन या चित्रण। ४. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें एक ही वस्तु का कई विभिन्न रूपों में दिखाई देने का वर्णन होता है।

उल्लेखक--वि० [सं० उद्√लिख् (लिखना)+ण्वुल्, (वु)--अक] उल्लेख करनेवाला।

उल्लेखन--पुं० [सं० उद्√लिख् (लिखना)+ल्युट्--अन] १. लिखने या वर्णन करने की क्रिया या भाव। २. अंकन या चित्रण करना।

उल्लेखनीय--वि० [सं० उद्√लिख् (लिखना)+अनीयर्] १. लिखे जाने के योग्य। २. जिसका उल्लेख करना आवश्यक या उचित हो।

उल्लेखित--भू० कृ०=उल्लिखित।

उल्लेख्य--वि० [सं० उद्√लिख्+ण्यत्] जिसका उल्लेख किया जाने को हो या किया जा सकता हो। उल्लेखनीय।

उल्लोल--पुं० [सं० उद्√लोल् (घोलना आदि)+णिच्+अच्] लहर। हिलोर।

उल्व--पुं० [सं० √वल् (एकत्रित होना)+वक्, व=उ] १. वह झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ गर्भाशय से निकलता है। २. गर्भाशय।

उल्वण--पुं० [सं० उद्√वण् (शब्दार्थ)+अच्, पृषो० द=ल]=उल्व (आँवल)।

उवना*--अ०=उअना (उगना)।

उवनि*--स्त्री० [हिं० उवना] १. उदित होने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. आविर्भाव।

उशना (नस्)--पुं० [सं०√वश् (कान्ति)+कनस् व=उ] शुक्राचार्य।

उशवा--पुं० [अ० उश्वः] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसकी जड़ रक्त-शोधक मानी जाती है। २. उक्त जड़ से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का अरक या औषध।

उशी--स्त्री० [सं० √वश् (इच्छा करना)+ई, व=उ] इच्छा। चाह।

उशी-नर--पुं० [सं० ब० स०] १. गांधार देश का पुराना नाम। (आजकल का झंग और चनाव तथा रावी के बीच का भू-भाग।) २. उक्त देश का निवासी। ३. राजा शिवि के पिता का नाम।

उशीर--पुं० [सं० √वश्+ईरन्, व=उ] गाँड़र या कतरे की जड़। खस।

उशीरक--पुं० [सं० उशीर+कन्] उशीर। खस।

उषः (षस्)--स्त्री० [सं० उष् (नाश करना आदि)+असि] दे० 'उषा'।

उषः काल--पुं० [ष० त०]=उषा-काल।

उषःपान--पुं० [ष० त०] हठयोग की एक क्रिया जिसमें बहुत तड़के उठकर नाक के रास्ते जल पीकर मुँह से निकाला जाता है। अमृत-पान।

उषप--पुं० [सं० √उष् (दाह करना)+कपन्] १. अग्नि। २. सूर्य।

उषमा--स्त्री०=ऊष्मा।

उषर्बुध--पुं० [सं० उषस्√बुध् (जानना)+क] १. अग्नि। २. चित्रक नामक वृक्ष। चीता।

उषस्--स्त्री०=उषा।

उषसी--स्त्री० [सं० उष√सो (नाश करना)+क--ङीप्] १. संध्या। २. संध्या-समय का मद्धिम प्रकाश।

उषा--स्त्री० [सं०√उष्+क--टाप्] १. सूर्य के उदित होने से कुछ पहले का मन्द प्रकाश। दिन निकलने से पहले का चाँदना। २. अरुणोदय की लाली। ३. सूर्योदय से पहले का समय। तड़का। प्रभात। ४. बाणासुर की कन्या जिसका विवाह अनिरुद्ध से हुआ था। ५. गाय। गौ।

उषाकर--पुं० [सं० उषा√कृ (करना)+अच्] चंद्रमा।

उषा-काल--पुं० [ष० त०] भोर की वेला। प्रभात। दिन निकलने से कुछ पहले का समय। सूर्य के उदित होने से पहले का समय। तड़का।

उषा-पति--पुं० [ष० त०] अनिरुद्ध।

उषित--वि० [सं० उष् (दाह आदि)+क्त,] १. देर का पका हुआ। बासी। २. जला हुआ। ३. फुरतीला। ४. बसा हुआ।

पुं० बस्ती। आबादी।

उषी--स्त्री० [सं० उष्णता से] लपट। उदा०--ते ऊसास अगिनि का उपी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।--नंददास। ज्वाला।

उषेश--पुं० [उषा-ईश, ष० त०]=उषापति (अनिरुद्ध)।

उष्ट्र--पुं० [सं०√उष् (नाश करना)+ष्ट्रन्--कित्] [स्त्री० उष्ट्री] १. ऊँट। २. भैंसा। ३. ककुद या डिल्लेवाला साँड़।

उष्ण--वि० [सं० √उष् (दाह करना)+नक्] १. तपा हुआ। गरम। २. गरमी या ताप उत्पन्न करनेवाला। ३. (पदार्थ) जिसे खाने से शरीर में गरमी या हलकी जलन हो। ४. तीक्ष्ण। तीखा। ५. मनोविकार, राग आदि से युक्त। ६. चतुर। चालाक। ७. फुरतीला। तेज।

पुं० १. गरमी का मौसम। ग्रीष्म-ऋतु। २. गरमी। ३. धूप। ४. प्याज। ५. एक नरक का नाम।

उष्णक--पुं० [सं० उष्ण+कन्] १. गरमी का मौसम। ग्रीष्म ऋतु। २. ज्वर। बुखार। ३. सूर्य।

वि० १. तपा हुआ। २. गरम। ३. गरमी या ताप उत्पन्न करनेवाला। गरमी या ताप पहुँचानेवाला। ४. फुरतीला। तेज।

उष्ण-कटिबंध--पुं० [ब० स०] पृथ्वी का वह क्षेत्र या भू-भाग जो कर्क और मकर रेखाओं के बीच में पड़ता है तथा जिसमें बहुत अधिक गरमी पड़ती है। (टॉरिड जोन)

उष्ण-कर--पुं० [ब० स०] सूर्य।
उष्णता--स्त्री० [सं० उष्ण+तल्--टाप्] १. उष्ण होने की अवस्था, गुण या भाव। २. गरमी। ताप।
उष्णत्व--पुं० [सं० उष्ण+त्व]=उष्णता।
उष्ण-वीर्य--वि० [ब० स०] (पदार्थ) जो गुण या प्रभाव के विचार से गरम हो। (वैद्यक)
उष्णांक--पुं० [उष्ण-अंक, मध्य० स०] तापमान जानने या निश्चित करने की एक आधुनिक इकाई। (कैलरी)
उष्णा--स्त्री० [सं० उष्ण+टाप्] १. गरमी। २. पित्त। ३. क्षय।
उष्णालु--वि० [सं० उष्ण+आलुच्] १. जो गरमी न सह सकता हो, उत्ताप सहन करने में असमर्थ। २. गरमी या ताप से व्याकुल।
उष्णासह--पुं० [सं० उष्ण--आ√सह् (सहन करना)+अच्] जाड़े का मौसम। शीतकाल।
उष्णिक्--पु० [सं० उत्√स्निह् (चिकना होना)+क्विप्] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात वर्ण होते हैं।
उष्णिमा (मन्)--स्त्री० [सं० उष्ण+इमनिच्] उष्ण होने की अवस्था, गुण या भाव। गरमी। ताप।
उष्णीष--स्त्री० [सं० उष्ण√ईष् (नाश करना)+क] १. पगड़ी। साफा। २. मुकुट। ताज।
उष्णीषी (षिन्)--वि० [सं० उष्णीष+इनि, दीर्घ, नलोप] जिसने पगड़ी बाँधी या मुकुट धारण किया हो।
पुं० शिव का एक नाम।
उष्णोष्ण--वि० [सं० उष्ण-उष्ण, कर्म० स०] बहुत गरम।
उष्म--पुं० [सं० √उष् (दाह करना)+मक्] १. गरमी। ताप। २. गरमी की ऋतु। ३. धूप। ४. क्रोध।
उष्मज--पु० [सं० उष्म√जन् (उत्पन्न करना)+ड] वे छोटे कीड़े जो पसीने, मैल आदि से पैदा होते हैं। जैसे--खटमल, मच्छर आदि।
उष्मप--पु० [सं० उष्म√पा (पीना)+क] पितर।
उष्म-स्वेद--पुं० [कर्म० स०] दे० 'उष्मा स्वेद'।
उष्मा--स्त्री० [सं०√उष्+मनिन्] १. गरमी। ताप। २. धूप। ३. क्रोध। ४. बहुत तनातनी का वातावरण।
उष्मा-स्वेद--पुं० [सं० उष्मस्वेद] वह प्रक्रिया जिसमें किसी वस्तु पर इस प्रकार ताप या भाप पहुँचाई जाती है कि वह गीला या तर हो जाय। (वेपर बाथ)
उस--सर्व० उभ० [हिं० वह] हिंदी सर्वनाम 'वह' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है, जैसे--उसने, उसकी, उससे, उसमें आदि।
उसकन--पु० [सं० उत्कर्षण=खींचना, रगड़ना] वह छाल या घास-पात जिससे बरतन माँजते है। उबसन।
उसकना†--अ०=उकसना।
उसकाना†--स०=उकसाना।
उसकारना†--स०=उकसाना।
उसठ--वि० [?] नीरस। फीका। उदा०--उसठ न कर सठ बढ़ाओल पेम।--विद्यापति।
उसनना--स० [सं० उष्ण]=उबालना।
उसनीस*--पुं०=उष्णीश।
उसमा†--पुं० [अ० वसमा] उबटन।
†स्त्री०=उष्मा।
उसमान--पुं० [अ०] मुहम्मद के चार सखाओं में से एक।
उसमानिया--पुं० [अ०] उसमान से चला हुआ तुर्क राजवंश।
वि० उसमान संबंधी।
उसरना†--अ० [सं० उद्+सरण=जाना] १. हटना। दूर होना। टलना। २. व्यतीत होना। बीतना। ३. छिन्न-भिन्न होना। उदा०--आएँ औधि-औसर उसासहि उसीर जैहै।--घनानंद। ४. ऊपर उठना। जैसे--घर उसरना। ५. डूबते हुए का फिर से ऊपर आना। उतराना।
अ० [सं० विस्मरण] विस्मृत होना। भूलना।
उसलना*--अ०=उसरना।
उससना*--अ० [सं० उच्छ्वसन] गहरा या ठंढा साँस लेना।
अ० [सं० उत्सरण] खिसकना। टलना।
उसाँस*--पुं०=उसास।
उसाना†--स०=ओसाना (अनाज बरसाना)।
उसारना*--स० [सं० उद्+सरण=जाना] १. ऊपर उठाना या लाना। २. बनाकर खड़ा या तैयार करना। जैसे--घर उसारना। ३. टालना। हटाना। ४. उखाड़ना। ५. बाहर निकालना या निकालकर सामने लाना।
उसारा†--पुं० दे० 'ओसारा'।
उसालना*--स० [सं० उत्+शालन] १. उखाड़ना। २. दूर करना। हटाना। ३. भगाना। ४. टालना।
उसास--स्त्री० [सं० उत्-श्वास] १. गहरा या लंबा साँस। दीर्घनिश्वास। २. श्वास। साँस। ३. मानसिक कष्ट, पश्चात्ताप आदि के कारण लिया जानेवाला ठंढा साँस। ४. अवकाश। ५. विश्राम। उदा०--है हौ कोउ वीर जो उसास मोंहि दयो है।--सुधाकर द्विवेदी।
उसासी†*--स्त्री० [हिं० उसास] दम लेने की फुरसत। अवकाश। छुट्टी।
उसिनना--स०=उबालना।
उसीर--पुं०=उशीर (खस)।
उसीला†--पुं०=वसीला (द्वार)।
उसीस--पुं० [सं० उत्-शीर्ष] १. तकिया। २. सिरहाना। (पैताना का विपर्याय)।
उसीसा†--पुं०=उसीस।
उसूल--पुं० [अ०] सिद्धान्त।
†वि०=वसूल।
उसूली--वि० [अ०] १. उसूल (सिद्धांत) से संबंध रखनेवाला। सैद्धांतिक। २. उसूल (सिद्धांत) का पालन करनेवाला।
उसेना†--स० [सं० उष्ण] उबालना।
उसेय--पुं० [देश०] असम प्रदेश में होनेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा बाँस।
उसेसा†--पुं० [सं० उच्छीर्षक] [स्त्री० अल्पा० उसेसी] तकिया।
उस्कन--पुं०=उसकन।
उस्तरा--पुं० [फा०] बाल मूँड़ने का छुरा।

उस्तवा--पुं० [अ० इस्तिवा] समतल होने की अवस्था या भाव। समतलता।

उस्ताद--पुं० [फा०] [भाव० उस्तादी] १. (क) वह जो किसी विषय में बहुत अधिक दक्ष या निपुण हो। प्रवीण। (ख) चतुर। चालाक। २. (क) वह जो विद्यार्थियों को कुछ बतलाता या सिखलाता हो। गुरु। शिक्षक। (ख) वेश्याओं को नृत्य, संगीत आदि की शिक्षा देनेवाला।

उस्तादी--स्त्री० [फा०] १. उस्ताद होने की अवस्था या भाव। २. शिक्षक की वृत्ति। ३. दक्षता। निपुणता। ४. चालाकी। धूर्त्तता।

उस्तानी--स्त्री० [फा० 'उस्ताद' का स्त्री०] १. उस्ताद या गुरु की पत्नी। २. अध्यापिका। शिक्षिका।

उस्वास*--स्त्री०=उसाँस।

उहदा†--पुं०=ओहदा।

उहटना†--अ० १. दे० 'उघड़ना'। २. दे० 'हटना'।
स०=उघाड़ना।

उहवाँ†--क्रि० वि०=वहाँ।

उहाँ--क्रि० वि०=वहाँ।

उहार†--पुं० दे० 'ओहार'।

उहास--पुं० [सं० उद्भास] प्रकाश। रोशनी। उदा०--आणंद सुजु उदौ उहास हास अति।--प्रिथीराज।

उहि†--सर्व०=वह।

उही†--सर्व०=वही।

उहूल*--स्त्री० [सं० उल्लोल] तरंग। लहर। (डिं०)

उहै*--सर्व०=वही (वह ही)।

ऊ

ऊ देवनागरी वर्णमाला का छठा स्वर वर्ण जो भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से ओष्ठ्य, संवृत, दीर्घ पश्च स्वर है।
पुं० [सं०√अव् (रक्षा आदि)+क्विप्] १. शिव। २. चंद्रमा।
अव्य० १. भी। (अवधी) जैसे--तेऊ, सेऊ आदि। २. वाला। जैसे--खाऊ, बेचू, लेऊ आदि।
†सर्व०=वह।

ऊँख†--पुं०=ऊख (ईख)।

ऊँग--स्त्री०=ऊँघ।

ऊँगना†--पुं० [देश०] १. चौपायों की एक बीमारी जिसमें उनका शरीर ठंढा हो जाता है और कान बहने लगते हैं।
स० दे० 'औंगना'।

ऊँगा--पुं० [सं० अपामार्ग] [स्त्री० ऊँगी] चिचड़ा।

ऊँघ--स्त्री० [सं० अवाङ=नीचे मुँह] ऊँघने की क्रिया या भाव। उँघाई। अर्द्ध-निद्रा। झपकी। (डोज)

ऊँघन--स्त्री०=ऊँघ (उँघाई)।

ऊँघना--अ० [सं० अवाङ=नीचे मुँह] बैठे-बैठे झपकी आने पर आँखें बंद होना और सिर का बार-बार झुकना। नींद की आरंभिक अवस्था में झूमना। (डोजिंग)

ऊँच--पुं० [सं० उच्च] वह जो उत्तम जाति या कुल का हो। कुलीन। उदा०--दानव देव ऊँच अरु नीचू।--तुलसी।
वि०=ऊँचा। उदा०--ऊँच निवास, नीच करतूती।--तुलसी।
यौ० ऊँच-नीच= (क) छोटी जाति का और बड़ी जाति का। (ख) भला-बुरा या हानि-लाभ। जैसे--किसी बातका ऊँच-नीच समझाना।

ऊँचा--वि० [सं०, प्रा०, पा० उच्च; गु० ऊँचो; पं० उच्चा; मरा० उचा; सिं० ऊचो; सिंह० उसू] [भाव० ऊँचाई, स्त्री० ऊँची] १. किसी आधार या तल के विचार से, जो ऊपर की ओर दूर तक चला गया हो। ऊर्ध्व दिशा में गया हुआ। यथेष्ट ऊपर उठा हुआ। 'नीचा' का विपर्याय। जैसे--ऊँची दीवार, ऊँचा पेड़, ऊँचा मकान। २. तल या भूमि से बहुत-कुछ ऊपर या ऊपरी भाग में स्थित। जैसे--(क) यह चित्र बहुत ऊँचा टँगा है। (ख) इस वृक्ष की शाखाएँ इतनी ऊँची हैं कि उन तक हाथ नहीं पहुँचता। ३. आस-पास के तल से ऊपर उठा हुआ। जैसे--ऊँची जमीन, ऊँचा टीला। ४. मान या माप के विचार से, कुछ नियत या विशिष्ट विस्तार का। लंबा। जैसे--चार हाथ ऊँचा पौधा; दस हाथ ऊँचा बाँस। ५. किसी नियत या निश्चित बिंदु से ऊपर उठा हुआ। जैसे--गोली (या तीर) का निशाना कुछ ऊँचा लगा था, जिससे शेर (या हिरन) बचकर भाग गया। ६. किसी विशिष्ट मात्रा या मान से अथवा किसी मानक स्तर से आगे बढ़ा हुआ। जैसे--(क) उनका खर्च बहुत ऊँचा है। (ख) अब तो सब चीजों का भाव ऊँचा होता जाता है। ७. अधिकार, पद, मर्यादा आदि के विचार से, औरों से आगे बढ़ा हुआ या ऊपर माना जानेवाला। जैसे--ऊँची अदालत, ऊँची जाति, ऊँचा पद। ८. गंभीरता, नैतिकता, मनन-शीलता आदि के विचार से, औरों से आगे बढ़ा हुआ। उत्तम। श्रेष्ठ। जैसे--ऊँचा आदर्श, ऊँचे विचार। ९. उदारता, परोपकारिता, सहृदयता आदि से युक्त और श्रेष्ठ पक्ष में रहनेवाला। जैसे--ऊँचे आदमियों का हाथ भी सदा ऊँचा (अर्थात् दान-शीलता में प्रवृत्त) रहता है। १०. (ध्वनि या शब्द) जो साधारण से अधिक ऊपर उठा हुआ या तेज हो। जोर का। तीव्र। जैसे--ऊँची आवाज, ऊँचा स्वर।
मुहा०--ऊँचा सुनना=कुछ बहरे होने के कारण ऐसा ही शब्द सुन सकना जो ऊँचा, जोर का या तीव्र हो। जैसे--आज-कल वह कुछ ऊँचा सुनने लगा है।
पद--ऊँचा-नीचा, ऊँचे-नीचे। (दे०)

ऊँचाई--स्त्री० [हिं० ऊँचा+ई (प्रत्य०)] १. ऊँचे या उच्च होने की अवस्था या भाव। उच्चता। (हाइट) २. गौरव। बड़ाई।

ऊँचा-नीचा--वि० [हिं० ऊँचा+नीचा] [स्त्री० ऊँची-नीची] १. (स्थान) जो बीच-बीच में कहीं कुछ ऊँचा और कहीं कुछ नीचा हो। ऊबड़-खाबड़। असम।
मुहा०--ऊँचे-नीचे पैर पड़ना=कुमार्ग आदि में प्रवृत्त होना; विशेषतः लैंगिक दृष्टि से पतन होना। जैसे--लड़के पर ध्यान रखो; कहीं ऊँचे-नीचे पैर न पड़ जाय।
२. (कार्य या व्यवहार) जिसमें कहीं कोई भलाई हो और कहीं कोई बुराई। भले-बुरे, हानि-लाभ आदि से युक्त। जैसे--(क) उन्हें सब ऊँचा-नीचा समझा देना चाहिए। (ख) सब ऊँचा-नीचा सोच लो, तब पैर आगे बढ़ाओ। ३. (उक्ति या कथन) जो कहीं कुछ अच्छा या उचित भी हो और कहीं कुछ बुरा या अनुचित भी हो। खरा और खोटा दोनों। जैसे--उन्हें जरा ऊँची-नीची (बातें) सुनाओ, तब वे मानेंगे।

ऊँचे†*--क्रि० वि० [हिं० ऊँचा] १.ऊपर की ओर। ऊँचाई पर। २.कहने, बोलने आदि के संबंध में, जोर से।

ऊँछना--स० [उञ्छन=बीनना] बाल झाड़ना। बालों में कंघी करना।

ऊँट--पुं० [सं० उष्ट्र, पा० उट्ट] [स्त्री० ऊँटनी] एक प्रसिद्ध रेगिस्तानी पशु जिसपर सवारी की जाती तथा बोझ लादा जाता है। यह रेतीले मैदानों में बिना कुछ खाये-पीये कई दिन निरंतर चलता रहता है। कहा०--**ऊँट किस करवट बैठता है**=इस बात की प्रतीक्षा में रहना कि किसी बात या समस्या का अंत किस प्रकार या कैसा होता है। मुहा०--**ऊँट के गले में बिल्ली बाँधना**=किसी बहुत बड़ी समस्या को बहुत ही साधारण ठहराते हुए उसके साथ कोई ऐसी बहुत ही छोटी या साधारण समस्या लगा देना जिसके बिना उस बड़ी समस्या का निराकरण ही न हो सकता हो।

२.रहस्य संप्रदाय में, मन।

मुहा०--**ऊँट के मुँह में जीरा**=किसी बहुत बड़े डील-डौलवाले आदमी को उसके आकार या खुराक के विचार से बहुत थोड़ी चीज खाने को देना।

ऊँटकटारा--पुं० [सं० उष्ट्र कण्ट] एक प्रकार की कँटीली झाड़ी या पौधा।

ऊँटवान--पुं० [हिं० ऊँट+वान (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जो ऊँट चलाता हो।

ऊँड़ा†--पुं० [सं० कुंड] १.वह बरतन जिसमें रुपये-पैसे रखकर जमीन के अंदर गाड़ते हैं। २.इस प्रकार धन गाड़ने या छिपाने के लिए बनाया हुआ गड्ढा। चहबच्चा। ३.तहखाना।

वि० गंभीर। गहरा। (राज०)

ऊँदर†--पुं०=इंदुर (चूहा)।

ऊँधा--पुं० [हिं औंधा] जलाशय का वह ढालुआँ किनारा जहाँ से पशु नहाने और पानी पीने आते-जाते हैं।

†वि०=औंधा।

ऊँहूँ--अव्य० [देश०] किसी के या किसी बात के उत्तर में कहा जानेवाला अस्वीकृति सूचक शब्द जो प्रायः नाक से बोला जाता है। कदापि नहीं।

ऊना†--अ०=उअना (उगना)।

ऊआबाई--वि० [हिं० आव बाव या सं० वायु= हवा] १.इधर-उधर का। २.व्यर्थ या निरर्थक।

स्त्री० इधर-उधर की या बे-सिर-पैर की बात।

ऊक--स्त्री० [सं० उल्का] १.उल्का। २.जलती हुई लकड़ी। ३.दाह। ताप। आँच।

स्त्री०=चूक।

ऊकटना--स०=उकठना। (राज०)

ऊकना†--अ०=चूकना।

स० १.जान-बूझकर या भूल से छोड़ देना। २.उपेक्षा करना।

स० [हिं० ऊक=ताप] १. दग्ध करना। जलाना। २. कष्ट या ताप पहुँचाना।

अ० १.जलना। २.ताप उत्पन्न करना। तपाना।

ऊकसना--अ०=उकसना।

स०=उकसाना। (राज०)

ऊकार--पुं० [सं० ऊ+कार] 'ऊ' अक्षर या उसकी ध्वनि।

ऊख--पुं० [सं० इक्षु, प्रा० इच्छु; गु० ऊस; बं० आकु; उ० आखु; सिंह० उक, ईक; मरा० ऊँस] घास या सरकंडे की जाति का एक प्रसिद्ध पौधा जिसके कांड के रस से गुड़ और चीनी बनाई जाती है।

वि० [सं० उष्ण या उष्म] तपा हुआ। गरम। उदा०--उष्ण काल अरु देह खिन मगपंथी तन ऊख।--तुलसी।

पुं० ग्रीष्म ऋतु। गरमी के दिन।

स्त्री० उषा या उषःकाल। उदा०--ऊख समै वर दुजनि कह बंटिअप्प कर दिन्न।--चंदवरदाई।

ऊखड़--पुं० [सं० ऊषट] पहाड़ के नीचे की सूखी जमीन। भाभर।

ऊखम*--पुं०=उष्म।

ऊखल--पुं० [सं० उलूखल] धान आदि कूटने के लिए बनाया हुआ काठ या पत्थर का गहरा पात्र। ओखली।

मुहा०--**ऊखल में सिर देना**=जान-बूझकर किसी जोखिम या झंझट के काम में पड़ना।

†पुं० [सं० ऊष्म] गरमी।

पुं० [सं० उखबेल] एक प्रकार का तृण।

ऊखा--स्त्री० [सं० ऊष्मा] १.आग। २.गरमी। ताप। उदा०--और दिनन ते आजु दहो हम ऊखा ल्याई।

ऊखाणा--पुं० [सं० उपाख्यान] कहावत। (राज०)

ऊखिल--वि० [सं० उखर्वल] १.तिनका। तृण। २.खटकनेवाली चीज। काँटा। उदा०--ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं।--घनआनंद।

ऊगट--वि० [सं० उद्वर्त्त] ऊँचा-नीचा। ऊबड़-खाबड़। उदा०--साखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनंत।--ढो० मा०।

ऊगना†--अ०=उगना।

ऊगरना--स०=उगलना। उदा०--बाहर थाजइ ऊगरइ भीगा माँझ बरेह।--ढो० मा०।

अ० बाहर निकलना।

ऊगरा--वि० [?] उबाला हुआ। जैसे--ऊगरा चावल=उबाला हुआ चावल या भात।

ऊचाला--पुं० [सं० उत्-चल] प्रयाण। प्रस्थान। उदा०--पिंगल ऊचालऊ कियऊ नल नरवरचइ देसि।--ढोला मारू।

ऊछजना--अ० [सं० उत्-सज्जा] (अस्त्र आदि) ऊपर उठाकर अपने बचाव के लिए तैयार होना। उदा०--बड़फरि ऊछजतै बिरधि।--प्रिथीराज।

ऊछाह--पुं०=उछाह (उत्साह)।

ऊज*--पुं० [सं० उद्धन्=ऊपर फेंकना] १.उपद्रव। २.अंधेर।

ऊजड़--वि०=उजाड़। जैसे--ऊजड़ ग्राम।

ऊजना*--अ० [हिं० पूजना का अनु०] पूर्ण या परिपूर्ण होना।

स० पूर्ण या परिपूर्ण करना।

ऊजम--पुं०=उद्यम।

ऊजर*--वि०=उजला।

वि०=उजाड़।

ऊजरा*--वि०=उजला।

ऊटक-नाटक--पुं० [सं० उत्कट-नाटक] १.दिखावटी पर महत्त्वहीन कार्य। २.इधर-उधर का व्यर्थ का या साधारण काम।

वि० निरर्थक। व्यर्थ।

ऊटना*--अ० [हिं० औटना=खलबलाना] १. उमंग में आना। २. मन में किसी प्रकार की योजना बनाना। मंसूबा बांधना। उदा०--जूटैंलगे जान गन, ऊटैं लगे ज्ञान जन, छूटैं लगे बाज धन, लूटैं लगे प्रान तन।--गोपाल। ३. तर्क-वितर्क या सोच-विचार करना।

ऊट-पटांग--वि० [हिं० अटपट+अंग या ऊँट पर टाँग?] १. जो आकार, रचना आदि के विचार से बहुत ही बेढंगा बना हो। २. (कार्य या बात) जो बिना किसी क्रम या तत्त्व के हो। ३. निरर्थक। व्यर्थ का।

ऊढ़ना*--स० [सं० ऊढ़] १. विवाह करना। व्याहना। २. किसी स्त्री को रखेली बनाकर घर में रखना। उदा०--बूढ़ खाइ तो होइ नवजोबन सौ मेहरी लै ऊढ़।--जायसी।

ऊड़ा--पुं० [सं० ऊन] १. कमी। त्रुटि। २. टोटा। घाटा। ३. अकाल या महँगी के दिन। ४. नाश। ५. निशाना। लक्ष्य।

ऊड़ी--स्त्री० [हिं० उड़ना] १. पनडुब्बी नाम की चिड़िया। २. लक्ष्य। निशाना। ३. एक प्रकार की चरखी। ४. टेकुआ। (जुलाहे)

ऊढ़--वि० [सं०√वह् (ढोना, पहुँचाना)+क्त] जिसका विवाह हुआ हो।

ऊढ़ना*--अ० [सं० ऊह=सोच-विचार] १. सोच-विचार करना। २. अनुमान या तर्क करना।

अ० [सं० ऊढ़] विवाह होना।

ऊढ़ा--स्त्री० [सं०√वह्+क्त+टाप्] १. विवाहिता स्त्री। २. साहित्य में वह नायिका जो अपने पति को तथा सांसारिक लोक-लज्जा त्याग कर पर-पुरुष से प्रेम करती हो।

ऊत--वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत्त] १. बिना पुत्र का। निपूता। निःसंतान। २. उजड्ड। मूढ़। ३. उद्धत।

ऊतक--पुं० [सं० ऊति से] [वि० औतिक] १. ऐसी चीज जिसमें ताने-बाने-वाली बुनावट हो। २. जीव विज्ञान में जीव-जंतुओं, वनस्पतियों आदि में वह बहुत सूक्ष्म अंग या अंश जो एक ही प्रकार की केशिकाओं से बना और उन्हीं से ओत-प्रोत होता है। (टिश्यू)

ऊतर*--पुं० [सं० उत्तर] १. उत्तर। जवाब। २. ऐसी झूठी या बनावटी बात जो अपना बचाव करने के लिए उत्तर के रूप में कही जा सके। बहाना। हीलाहवाला। उदा०--ऊतर कौन हू कै पदमाकर दै फिरै कुंजगलीन में फेरी।--पद्माकर।

ऊतला*--वि० [हिं० उतावला] १. तेज। वेगवान। २. चंचल।

ऊताताई--वि० [हिं० ऊत] नासमझ। मूर्ख।

ऊति--स्त्री० [सं०√अव् (रक्षण)+क्तिन्] १. सीने का काम,। सिलाई। २. बुनावट। ३. रक्षा। हिफाजत। ४. कृपा। अनुग्रह। ५. सहायता। ६. खेलवाड़। तमाशा। ७. पुराणों में कर्म की वासना। ८. चुआने या टपकाने की क्रिया या भाव।

ऊतिम†--वि०=उत्तम।

ऊथपना--स०=उथपना।

ऊद--पुं० [अ०] १. अगर नामक वृक्ष या उसकी लकड़ी। २. एक प्रकार का बाजा।

पुं०=ऊदबिलाव (जंतु)।

ऊदबत्ती--स्त्री० [अ० ऊद+हिं० बत्ती] ऊद या अगर की बनी हुई सुगंधित बत्ती।

ऊदबिलाव--पुं० [सं० उद्र+हिं० बिलाव= बिड़ाल] नेवले की तरह का परंतु उससे कुछ बड़ा एक जंतु जो स्थल के सिवा प्रायः जल में भी रहता है। वि० मूर्ख। बुद्धू।

ऊदल--पुं० [?] १. हिमालय में होनेवाला एक प्रकार का पेड़। २. महोबे के राजा परमाल का एक सामंत जो आल्हा का अनुज था।

ऊदा--वि० [अ० ऊद या फा० कबूद] [स्त्री० ऊदी] ललाई लिये हुए काला या बैंगनी रंग का।

पुं० १. उक्त प्रकार का रंग। २. उक्त रंग का घोड़ा।

ऊधम--पुं० [सं० उद्धम= ध्वनित] (बच्चों का या बच्चों जैसा) हो-हल्ला मचाना या उछलना-कूदना। धमा-चौकड़ी।

ऊधमी--वि० [हिं० ऊधम] ऊधम मचानेवाला।

ऊधरना--अ० [सं० उद्धरण] उद्धार पाना। बचना। उदा०--ऊधरी पताल हूँ।--प्रिथीराज।

स० उद्धार करना।

ऊधरा†--वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊँचा। उच्च। (राज०)

ऊधव*--पुं०=उद्धव (कृष्ण के सखा)।

ऊधो--पुं० [सं० उद्धव] = उद्धव (कृष्ण के सखा)।

ऊन--पुं० [सं० ऊर्ण, प्रा० ऊणु; गु० उर्णा, सि० ऊणु; सिंह० उन; मरा० उण, पं० उन्न] भेड़ों, बकरियों आदि के शरीर पर होनेवाले रोएँ जो बहुत ही चमकीले, बारीक, मजबूत और गुरचे या ऐंठे हुए होते हैं तथा जिन्हें बटकर कंबल, चादरें, पहनने के गरम कपड़े आदि बनाये जाते हैं।

विशेष--आज-कल कई तरह के रेशों से कृत्रिम या नकली ऊन भी बनने लगा है।

वि० [सं० ऊन् (कम करना)+अच्] १. कम। थोड़ा। उदा०--शमित करने को स्वमद अति ऊन।--दिनकर।

स्त्री० १. कमी। त्रुटि। २. किसी चीज या बात के अभाव या कमी के कारण कष्ट या खेद।

मुहा०--(किसी बात की) ऊन मानना=कमी, त्रुटि आदि का अनुभव करते हुए मन में दुःखी होना। दिल छोटा करना। उदा०--सुनु कपि जिय मानसि मत ऊना।--तुलसी।

पुं० [?] स्त्रियों के व्यवहार के लिए बनाई हुई एक प्रकार की छोटी तलवार।

ऊनक--वि० [सं० उन+कन्] १. अपर्याप्त। कम। थोड़ा। २. हीन। छोटा। ३. सदोष।

ऊनता--स्त्री० [ऊन+तल्-टाप्] १. ऊन या कम होने की अवस्था या भाव। कमी। न्यूनता। २. अभाव।

ऊनना--अ० [हिं० ऊन] १. कम पड़ना या होना। घटना। २. छोटा या संकीर्ण होना।

स० १. कम करना। घटाना। २. तुच्छ या संकीर्ण करना।

ऊना--वि० [हिं० ऊन=कम] १. कम। थोड़ा। २. अधूरा। अपूर्ण। ३. तुच्छ। हीन।

पुं० [?] स्त्रियों के व्यहार के लिए बनाई हुई एक प्रकार की छोटी तलवार।

ऊनित--भू० कृ० [सं०√ऊन्+क्त] जिसे कम किया गया हो। घटाया हुआ।

ऊनी--वि० [हिं० ऊन] ऊन का या ऊन से बना हुआ। जैसे--ऊनी कंबल या चादर।

स्त्री० [हिं० ऊन=कमी] १.कमी। न्यूनता। २.त्रुटि। दोष। ३.मन में होनेवाला खेद या ग्लानि। ४.उदासीनता। उदासी।

ऊन्हालउ--पुं०=उन्हाला। उदा०--ऊन्हालउ ऊतारियउ, प्रगट्यउ पावस मास।--ढोला मारू।

ऊप--पुं० [सं० वप्] अनाज का वह अतिरिक्त अंश जो किसानों को ऋण के रूप में बोने के लिए लिये हुए बीजों के संबंध में चुकाना पड़ता है। बीजों का अन्न के रूप में दिया जानेवाला व्याज।

†स्त्री०=ओप (चमक)।

ऊपना*--अ० [हिं० उपजना] उत्पन्न होना। उपजना। उदा०--त दुख यह सुख उपनै, रैन माँझ दिन होय।--जायसी।

ऊपन्न--वि०=उत्पन्न।

ऊपर--अव्य० [सं० उपरि] [वि० ऊपरी] एक संबंधसूचक शब्द जो प्रायः क्रिया-विशेषण की तरह और कभी-कभी विशेषण और फलतः संज्ञा की तरह प्रयुक्त होता और नीचे लिखे अर्थ देता है--१.किसी तल, विंदु या विस्तार की तुलना में ऊँचाई की ओर, आकाश की ओर, ऊर्ध्व दिशा में। 'तले' या 'नीचे' का विपर्याय। जैसे--(क) नीचे पृथ्वी और ऊपर स्वर्ग है। (ख) सूर्य ऊपर आ चला है। २.उत्सेध के विचार से ऊँचे तल या पार्श्व पर। ऊँचे स्थान मे या ऊँचाई पर। जैसे--(क) चलो ऊपर चलकर बातें करें। (ख) ऊपरवाली दोनों पुस्तकें उठा लाओ। ३.किसी विस्तार के विचार से, इस प्रकार इधर-उधर या चारों ओर (फैला हुआ) कि कोई चीज या इसका कुछ अंश ढक जाय। जैसे--कमीज के ऊपर कोट पहन लो या ऊपर चादर डाल लो। ४.टिके या ठहरे रहने के विचार से, किसी के आधार या सहारे पर। जैसे--(क) गिलास के ऊपर तश्तरी रख दो। (ख) ये चीजें चौकी के नीचे से निकालकर उसके ऊपर रख दो। ५.किसी पदार्थ या विस्तार के किनारे पर या पास ही सटकर। जैसे--(क) तालाब के ठीक ऊपर मंदिर है। (ख) वे गंगा के ठीक ऊपर नया मकान बनवा रहे है। ६.(पुस्तक, लेख आदि मे) किसी प्रकार के क्रम के विचार से जो पहले आया या हुआ हो अथवा जो पहले से वर्त्तमान हो। आदि या आरंभिक भाग में। जैसे--(क) पहले ऊपर की सब रकमों का जोड़ लगा लो। (ख) हम ऊपर कह आये हैं कि राजनीति हमारा मुख्य विषय नही है। ७.ऊँची या उच्च कोटि के वर्ग या श्रेणी में। जैसे--छोटा भाई तो परीक्षा में पारित होकर ऊपर चला गया और बड़ा जहाँ का तहाँ रह गया है। ८.पद, मर्यादा आदि के विचार से, आधिकारिक और उच्च या श्रेष्ठ स्थिति में। जैसे--(क) दस सिपाहियों के ऊपर एक जमादार रहता है। (ख) ऊपर की अदालत ने यह आज्ञा रद्द कर दी है। ९.कार्य के निर्वाह या भार के वहन के विचार से उत्तरदायित्व के रूप में। जैसे--तुमने इतने काम अपने ऊपर ले रखे हैं, जिनकी गिनती नही। १०.उपयोगिता, गुण, विशेषता आदि के विचार से औरो से बढ़कर। उत्तम। श्रेष्ठ। जैसे--आपकी सम्मति सबसे ऊपर है। ११.अंकित, नियत या निर्धारित मात्रा या मान से अधिक। ज्यादा। जैसे--जरा सी बात में सौ रुपए से ऊपर लग गये।

पद--ऊपर का=नियत, नियमित, साधारण आदि से भिन्न। जैसे--(क) ऊपर के काम करने के लिए एक आदमी और रख लो। (ख) उनका सारा खर्च तो ऊपर की आमदनी से चल जाता है; और वेतन यों ही बच रहता है। (ग) देखो, ऊपर के लोग इस कमरे में न आने पावें। ऊपर ऊपर=(क) प्रस्तुत के साथ बिना किसी संपर्क या संबंध के। अलग और बाहर। जैसे--वे ऊपर ऊपर आये और चले गये; हमसे मिले भी नही। (ख) बिना किसी को जतलाये। चुप-चाप। चुपके से। जैसे--तुम ऊपर-ऊपर सारी कार्रवाई कर लेते हो; हमसे पूछते भी नहीं। ऊपर से--अतिरिक्त। अलग। सिवा। जैसे--ज्वर तो था ही; ऊपर से पेट में दरद भी होने लगा।

१२.अंदर की तुलना में, प्रत्यक्ष, बाहर या सामने। जैसे--इस दवा से अंदर का रोग ऊपर आ जायगा।

पद--ऊपर ऊपर से=बिना गहराई में या तह तक पहुँचे। जैसे--अभी तो हमने ऊपर ऊपर से सब बातें देखी या समझी हैं। ऊपर का=जो प्रत्यक्ष या सामने हो। जैसे--इनकी ऊपर की आँखें तो फूटी ही हैं; अंदर की भी फूटी हैं। ऊपर से=औपचारिक रूप में या दिखलाने भर के लिए। जैसे--ऊपर से तो उनका व्यवहार अच्छा ही है; अंदर की राम जाने। ऊपर से देखने पर=साधारणतः पहले-पहल देखने पर जो रूप दिखाई देता हो, उसके आधार पर या विचार से। (प्राइमाफेसी) पद--ऊपर-तले=ऊपर-नीचे (दे०)।

विशेष--'ऊपर' और 'पर' में बहुत अधिक परंतु बहुत सूक्ष्म अंतर है। प्रस्तुत प्रसंग में 'पर' का मुख्य अर्थ होता है--ऐसे रूप में कि किसी के ऊपरी तल के साथ दूसरी चीज का नीचेवाला तल सटा रहे; परंतु 'ऊपर' में तल के सटे होने का भाव न तो अनिवार्य ही है, न मुख्य ही। इसमें मुख्य भाव उत्सेध या ऊँचाई पर आश्रित रहने या स्थित होने का है। 'बंदर' पेड़ पर बैठा है। और बंदर पेड़ के ऊपर जा पहुँचा। में जो अंतर है, वह स्पष्ट ही है। परंतु नीचे के उदाहरणों से यह अंतर और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। (क) टोपी सिर पर पहनी जाती है और पगड़ी उस (टोपी) के ऊपर बाँधी जाती है। (ख) रेल की पटरी या लाइन पुल पर बिछी रहती है; परंतु (दोहरे पुलों में) पुल के ऊपर (अर्थात् पटरीवाले विस्तार के ऊपरी भाग में, कुछ ऊँचाई पर) वह सड़क होती है, जिसपर पैदल यात्री, बैल-गाड़ियाँ आदि चलती हैं। (ग) नावें पानी पर चलती या तैरती हैं; परन्तु मछलियाँ उछलकर पानी के ऊपर आती हैं। कुछ अवस्थाओं में, जहाँ 'अंदर' की अपेक्षा, तुलना या विपरीतता का प्रसंग होता है, वहाँ 'पर' के स्थान पर भी 'ऊपर' का प्रयोग होता है। जैसे--(क) तुम इतना भी नही जानते कि गाड़ी पुल के ऊपर चलती है, नीचे नही चलती? (ख) अधिकतर नावे (या जहाज) तो पानी के ऊपर ही चलते हैं; परंतु पनडुब्बी नावें पानी के ऊपर भी चलती हैं और अंदर (या नीचे) भी।

ऊपर-तले--वि० [हिं० ऊपर+तले] १.(दो या दो से अधिक पदार्थ) जो क्रम के विचार से एक दूसरे के ऊपर पड़े या रखे हों। २.काल-क्रम के विचार से एक के तुरंत बाद दूसरा होनेवाला।

पद--ऊपर-तले के=(ऐसे भाई बहन) जो एक दूसरे के ठीक पहले या ठीक बाद उत्पन्न हुए हों।

अव्य० १. एक के ऊपर एक। २. एक के बाद एक (काल-क्रम के विचार से)। जैसे--ऊपर-तले कई घटनाएँ एक साथ घटी थी।

ऊपर-नीचे--वि०, अव्य० [हिं० ऊपर+नीचे] ऊपर-तले।

ऊपरवाला—पुं० [हिं० ऊपर+वाला] १.ईश्वर। २.सूर्य। ३.चंद्रमा। ४.बादल। ५.इंद्र।
वि० १. जो ऊपर रहता या होता हो। २. अपरिचित या बाहरी।

ऊपरी—वि० [हिं० ऊपर] १.क्रम, स्थिति आदि के विचार से ऊपर की ओर होने या रहनेवाला। ऊपर का। जैसे—(क) घर का ऊपरी खंड या भाग। (ख) बादाम का ऊपरी छिलका। २.जो किसी निश्चित क्षेत्र, वर्ग आदि से अलग या बाहर का हो। जैसे—ऊपरी आदमी। ३. नियत या नियमित से भिन्न। अतिरिक्त। जैसे—ऊपरी आमदनी। ४.जिसका प्रस्तुत से कोई संबंध न हो। जैसे—ऊपरी बातें। ५.जिसका आविर्भाव किसी ऊपरी (अर्थात् अलौकिक) कारणों, उपद्रवों आदि से हो। जैसे—ऊपरी फसाद (=भूत-प्रेत आदि की बाधा)। ६.(आचरण या व्यवहार) जो केवल ऊपर से अर्थात् दिखाने भर के लिए किया जाय, वास्तविक या हार्दिक न हो। औपचारिक या दिखावटी। जैसे—ऊपरी आदर-सत्कार। ७.(कार्य) जिसका कोई ठोस आधार या भीतरी तत्त्व न हो। जैसे—ऊपरी तड़क-भड़क।

ऊफणना—अ०=उफनना। उदा०—अति अँदु कोपि क्रूँवर ऊफणियौ।—प्रिथीराज।

ऊब—स्त्री० [हिं० ऊबना] १.ऊबने की क्रिया या भाव। २.बेचैनी। विकलता।
†स्त्री०=ऊभ।

ऊबट—पुं० [सं० उद्=बुरा+वर्त्म, प्रा० वह=मार्ग] कठिन मार्ग। बीहड़ रास्ता।
वि० ऊबड़-खाबड़। टेढ़ा-मेढ़ा।

ऊबड़-खाबड़—वि० [अनु०] (मार्ग या स्थल) जो कहीं पर ऊँचा और कहीं पर नीचा हो। अटपट या असमतल।

ऊबना—अ० [सं० उद्वेजन, पा० उब्बिजन] किसी वस्तु के यथेष्ट भोग से तृप्ति हो जाने के उपरांत उसके प्रति मन में विरक्ति उत्पन्न होना। जी भर जाने के उपरांत किसी वस्तु-विशेष में रुचि न रह जाना।

ऊबर*—वि० [हिं० उबरना=बचना] १.अधिक। ज्यादा। २.अतिरिक्त।

ऊभ*—वि० [हिं० ऊभना=खड़ा होना] ऊँचा उठा हुआ।
स्त्री० १.मन में उत्पन्न होनेवाली उमंग।
स्त्री० १.=ऊब। २.=ऊमस।

ऊभ-चूभ—स्त्री० [हिं० ऊभ (उमंग)+अनु० चूभ] १.(जल में) डूबने-उतराने की क्रिया। २.(मन में) कभी आशा और कभी निराशा होने की अवस्था या भाव।

ऊभना—अ० [सं० उद्भव=ऊपर उठना] १.ऊपर की ओर उठना। २.खड़ा होना।
अ०=ऊबना।

ऊभा—वि० [हिं० ऊभना] [स्त्री० ऊभी] १.उठा हुआ। २.खड़ा। उदा०—आवासि उतारि जोड़ि कर ऊभा।—प्रिथीराज।

ऊभासाँसी—स्त्री० [हिं० ऊभना+साँस] १.दम घुटने या ठीक तरह से साँस न आने की अवस्था या भाव। दम घुटना। २.घबराहट। बेचैनी। विकलता।

ऊमंतना—अ०=उमड़ना।

ऊमक—स्त्री० [हिं० उमगना] १.उमंग। २.झोंक। वेग।

ऊमटना—अ०=उमड़ना।

ऊमना—अ० १.=उमगना। २.=उमड़ना।

ऊमर (ा)†—पुं० [सं० उदुम्बर] गूलर।

ऊमस—स्त्री०=उमस।

ऊमहना—अ०=उमहना।

ऊमी—स्त्री० [सं० उम्बी] गेहूँ, जौ आदि की हरी बाल।

ऊरज† —वि०=ऊर्ज।
पुं०=ऊर्जा।

ऊरध* —वि०=ऊर्ध्व।

ऊरव्य—पुं० [सं० ऊरु+यत्] [स्त्री० ऊरव्या]=ऊरुज (वैश्य)।

ऊरा—वि० [हिं० पूरा का अनु०] अधूरा। अपूर्ण। उदा०—सांग का पूरा ग्यान का ऊरा।—गोरखनाथ।

ऊरी—स्त्री० [देश०] जुलाहों का एक औजार।

ऊरु—पुं० [सं० ऊर्णु (आच्छादन)+कु] जाँघ। रान।

ऊरुज—वि० [सं० ऊरु√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जिसका जन्म जाँघ में से हुआ हो।
पुं० वैश्य जाति जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मा की जाँघ से मानी गई है।

ऊरु-जन्मा (न्मन्)—पुं० [सं० ब० स०] वैश्य।
पुं० [सं०] घुटना।

ऊरुस्तंभ—पुं० [सं० ऊरु√स्तंभ् (रोकना)+अण्] एक प्रकार का वात रोग जिसमें घुटने और जाँघें जकड़ जाती हैं।

ऊरू† —स्त्री० [देश०] अलई या ऐल नामक कँटीली लता।

ऊरूद्भव—वि०, पुं० [सं० ऊरु–उद्भव, ब० स०] दे० 'ऊरुज'।

ऊर्ज—वि० [सं०√ऊर्ज् (बल, जीवन)+अच्] १.बली। शक्तिमान। २.बल या शक्तिवर्धक। बल देनेवाला।
पुं० १.बल। शक्ति। २.वीर्य। ३. जीवन। ४. श्वास। साँस। ५.उत्साह। ६.प्रयत्न। ७.जल। पानी। ८.अन्न का सार-भूत रस। ९.एक काव्यालंकार जिसमें शक्ति या सहायकों के कम होने पर भी आत्माभिमान और उत्साह ज्यों का त्यों बना रहने का उल्लेख होता है। १०.आज-कल, विद्युत् की गति-दायक शक्ति की सार्वराष्ट्रीय नाप जो इकाई के रूप में मानी गई है। (वोल्ट)

ऊर्ज-मान—पुं० [ष० त०] बिजली की गति-दायक शक्ति जो ऊर्ज के मान से जानी या नापी जाती है। (वोल्टेज)

ऊर्जस्—पुं० [सं०√ऊर्ज्+असुन्] १.शक्ति। २.उत्साह। ३. आहार। भोजन।

ऊर्जस्वल—वि० [सं० ऊर्जस्+वलच्] १.ऊर्ज से युक्त। बलवान। २. तेजस्वी। ३.श्रेष्ठ।

ऊर्जस्वान् (स्वत्)—वि० [सं० ऊर्जस्+मतुप्] १.ऊर्जा से युक्त। २. रसीला।

ऊर्जस्वित—वि० [सं० ऊर्जस्+इतच्] ऊर्जा से युक्त या संपन्न।

ऊर्जस्वी (स्विन्)—वि० [सं० ऊर्जस्+विनि] १.जिसमें यथेष्ठ ऊर्ज या ऊर्जा हो; फलतः तेजस्वी और बलवान। २.प्रतापी।

ऊर्जा—स्त्री० [सं०√ऊर्ज्+अ–टाप्] १.शक्ति। बल। २.किसी वस्तु की वह शक्ति जो काम करने के समय उसमें लगती या व्यय होती है।

(एनर्जी) ३.आहार। ४.प्रजापति दक्ष की कन्या जिसका विवाह वशिष्ठ से हुआ था।

ऊर्जित--वि० [सं०√ऊर्ज्+क्त] १.ऊर्जा से युक्त; फलतः ओजस्वी, तेजस्वी या बलवान। २.श्रेष्ठ। ३.गंभीर। ४.समृद्ध।

ऊर्जी (र्जिन्)--वि० [सं० ऊर्ज्+इनि] (स्थान) जहाँ खाने-पीने की वस्तुओं की अधिकता हो।

ऊर्ण--पुं० [सं० ऊर्णा+अच्] १.ऊन। २.ऊनी कपड़ा।

ऊर्ण-नाभ--पुं० [सं० ऊर्ण+नाभि+ब० स०,+अच्] मकड़ा।

ऊर्णा--स्त्री० [सं०√ऊर्णु+ड-टाप्] १.ऊन। २.भौंहों के बीच की भौंरी।

ऊर्णायु--पुं० [सं० ऊर्णा+युस्] १.ऊनी कंबल या चादर। २.मेढ़ा। ३.मकड़ा।

ऊर्ध--वि०, अव्य०=ऊर्ध्व।

ऊर्ध्व--अव्य० [सं० उत्√हा (गति)+ड, पृषो०ऊर् आदेश] ऊपर की ओर। ऊपर।

वि० १.ऊपर की ओर सीधा गया हुआ। उदग्र। (वर्टिकल) २. ऊँचा। ३.खड़ा।

स्त्री० १. दस दिशाओं में से एक जो सिर के ठीक ऊपर की ओर पड़ती है। २.संगीत में एक प्रकार का ताल।

ऊर्ध्वग--वि० [सं०ऊर्ध्व√गम्(जाना)+ड] १.ऊपर की ओर जानेवाला। २.जो सीधा ऊपर की ओर गया हो। उदा०--ऊर्ध्वग श्रृंगों के समीर को, आओ साँसों से उर में भर।--पंत।

ऊर्ध्व-गति--स्त्री० [कर्म० स०] १.ऊपर की ओर की चाल या गति। २.मुक्ति। मोक्ष

वि० जिसकी गति ऊपर की ओर हो।

ऊर्ध्वगामी (मिन्)--वि० [सं० ऊर्ध्व√गम्+णिनि] १.ऊपर या ऊपर की ओर जानेवाला। २.जो ऊपर की ओर गया हुआ हो। ३. मुक्त होकर ऊपर या स्वर्ग की ओर जानेवाला।

ऊर्ध्व-चरण--वि० [ब० स०] जिसके पैर ऊपर की ओर उठे हों।

पुं० शरभ नामका कल्पित और पौराणिक सिंह, जिसके चार पैर नीचे और चार पैर ऊपर को उठे हुए माने गये है।

ऊर्ध्व-दृष्टि--वि० [ब० स०] १.जिसकी दृष्टि या निगाह ऊपर की ओर हो। २.जो बहुत ऊपर उठना चाहता हो। उच्चाकांक्षी।

स्त्री० योग की एक क्रिया जिसमें दृष्टि ऊपर ले जाकर त्रिकुटी पर जमाई जाती है।

ऊर्ध्व-देव--पुं० [कर्म० स०] विष्णु।

ऊर्ध्व-देह--स्त्री० [कर्म० स०] वह देह या शरीर जो मनुष्य को मरने के बाद ऊपर की ओर जाने के समय प्राप्त होता है। सूक्ष्म या लिंग शरीर।

ऊर्ध्व-द्वार--पुं० [कर्म० स०] ब्रह्मांड का छिद्र। ब्रह्मरंध्र।

ऊर्ध्व-नयन--वि० [ब० स०] जिसकी आँखें ऊपर की ओर हों।

पुं० ऊर्ध्व चरण या शरभ नामक पौराणिक सिंह।

ऊर्ध्व-पाद--पुं०=ऊर्ध्व चरण।

ऊर्ध्व-पुंड्र--पुं० [कर्म० स०] वैष्णव या रामानंद संप्रदायवालों का तिलक जो माथे पर खड़े बल में लगाया जाता है।

ऊर्ध्व-बाहु--वि० [ब० स०] जिसकी भुजाएँ ऊपर की ओर उठी हों।

पुं० एक प्रकार के तपस्वी जो सदा अपनी एक बाँह ऊपर उठाये रहते हैं।

ऊर्ध्व-मंडल--पुं० [कर्म० स०] वायुमंडल का वह भाग जो अधोमंडल से ऊपर है और पृथ्वीतल से २० मील की ऊँचाई तक माना जाता है। इसमें ताप-मान प्रायः एक सा रहता है।

ऊर्ध्वमंथी (थिन्)--पुं० [सं० ऊर्ध्व√मन्थ् (मथना)+णिनि] =ऊर्ध्वरेता।

ऊर्ध्व-मुख--वि० [ब० स०] जिसका मुँह ऊपर की ओर हो।

पुं० अग्नि। आग।

ऊर्ध्व-मूल--पुं० [ब० स०] यह जगत् या संसार जिसकी जड़ या मूल ऊपर की ओर मानी गई है।

ऊर्ध्व-रेखा--स्त्री० [कर्म० स०] १.सामुद्रिक में हाथ की एक सीधी लंबी रेखा जो ऐश्वर्य और सौभाग्य की सूचक मानी गई है। २.उक्त प्रकार की एक रेखा जो विष्णु के अवतारों के चरण-चिह्नों में से एक मानी गई है।

ऊर्ध्व-रेता (तस्)--वि० [ब० स०] योग की क्रियाओं द्वारा अपने वीर्य की रक्षा करनेवाला और अपना वीर्य ब्रह्मरंध्र की ओर ले जानेवाला (अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचारी)।

पुं० १.महादेव। शिव। २.भीष्म पितामह। ३.हनुमान्। ४.सनक और सनंदन महर्षि। ५.संन्यासी।

ऊर्ध्वलिंगी--पुं० [सं० ऊर्ध्व-लिंग, कर्म० स०,+इनि] १.शिव। २. ब्रह्मचारी।

ऊर्ध्व-लोक--पुं० [कर्म० स०] १.आकाश। २.स्वर्ग।

ऊर्ध्व-वात--पुं० [कर्म० स०] १.मुँह के रास्ते निकलनेवाली वात। २. अधिक डकार आने का रोग।

ऊर्ध्व-वायु--स्त्री० [कर्म० स०] डकार।

ऊर्ध्व-विंदु--पुं० [कर्म० स०] १.सिर के ऊपर का सब से ऊँचा विंदु या स्थान। शीर्ष विंदु। (ख-स्वस्तिक) २.अनुस्वार।

ऊर्ध्वशायी (यिन्)--वि० [सं० ऊर्ध्व√शी (सोना)+णिनि] ऊपर की ओर मुँह करके सोनेवाला।

पुं० शिव।

ऊर्ध्व-श्वास--पुं० [कर्म० स०] १.ऊपर की ओर आने या चढ़नेवाला श्वास। २.मरने के समय, श्वास की वह गति जो अधिकतर ऊपर की ओर होती है।

ऊर्ध्वांग--पुं० [ऊर्ध्व-अंग, कर्म० स०] १.किसी चीज का ऊपरी अंग या भाग। २.शरीर का ऊपरी अंग या भाग, अर्थात् सिर।

ऊर्ध्वा--स्त्री० [सं० ऊर्ध्व+टाप्] एक प्रकार की पुरानी नाव जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी।

ऊर्ध्वाकर्षण--पुं० [सं० ऊर्ध्व-आकर्षण, कर्म० स०] ऊपर की ओर होनेवाला आकर्षण या खिंचाव।

ऊर्ध्वायन--पुं० [सं० ऊर्ध्व-अयन, कर्म० स०] १.ऊपर की ओर जाना या उड़ना। २.ऊपर की ओर अर्थात् परलोक या स्वर्ग जाने का मार्ग।

ऊर्ध्वारोह--पुं० [सं० ऊर्ध्व-आरोह, कर्म० स०] १.ऊपर की ओर चढ़ना या जाना। २.मर कर स्वर्ग जाना। ३.मृत्यु।

ऊर्ध्वारोहण--पुं० [सं० ऊर्ध्व-आरोहण, कर्म० स०]=ऊर्ध्वारोह।

ऊर्मि--स्त्री० [सं०√ऋ+मि, (गति) ऊर् आदेश] १.हलकी या छोटी

लहर। तरंग। २.प्रवाह। वहाव। ३.वेग। ४.प्रकाश। ५.पंक्ति। ६.कपड़े पर पड़नेवाली शिकन। सिलवट। ७.खेद। ८.इच्छा। ९. न्याय में, गरमी, सरदी, भूख, प्यास, मोह और लोभ ये छः क्लेश। १०. उक्त के आधार पर छः की संख्या।

ऊर्मिका—स्त्री० [सं० ऊर्मि√कै (शब्द करना)+क–टाप्] १.लहर। २.कपड़े की शिकन। ३.अँगूठी। ४.भौंरे की गूँज।

ऊर्मिमान् (मत्)—वि० [सं० ऊर्मि+मतुप्] १.तरंगित। २.घुंघराला (वाल)। ३.टेढ़ा-मेढ़ा। कुंचित।

ऊर्मि-माला—स्त्री० [प० त०] १.लहरों की शृंखला या समूह। २.एक प्रकार का छंद।

ऊर्मिमाली (लिन्)—पुं०[सं० ऊर्मिमाला+इनि] समुद्र।

ऊर्मिल—वि० [सं० ऊर्मि+लच्] १.लहरों से युक्त। २.(जलाशय) जिसमें छोटी-छोटी तरंगें या लहरें उठती हों।

ऊर्मिला—स्त्री० [सं० ऊर्मिल+टाप्] लक्ष्मण की पत्नी का नाम।

ऊर्मी—स्त्री०=ऊर्मि।

ऊर्वशी—स्त्री०=उर्वशी।

ऊलंग—स्त्री० [देश०] एक तरह की चाय।
वि०=उलंग (नंगा)।

ऊल—स्त्री० [हिं० ऊलना] ऊलने या उल्लसित होने की क्रिया या भाव। उल्लास। उमंग।
पद—ऊल-फूल। (देखें)

ऊलक—पुं० [देश०] एक प्रकार का वन-मानुष जो असम की पहाड़ियों में होता है।

ऊल-जलूल—वि०[देश०] १.(काम या वात) जिसका कोई ठीक-ठिकाना या सिर-पैर न हो। अंड-वंड। २.(व्यक्ति) जिसमें बुद्धि, शिष्टता, सभ्यता आदि का पूरा अभाव हो। वेवकूफ और वेहूदा।

ऊलना*—अ० [हिं० उछलना] १.प्रसन्न या उल्लसित होना। २.उछलना। ३. मर्यादा का उल्लंघन करना। ४. मनमाना आचरण करना। ५. आतुर होना।

ऊल-फूल—स्त्री० [हिं० ऊलना-फूलना] उल्लास और प्रफुल्लता या प्रसन्नता।

ऊलर—स्त्री० [?] कश्मीर की प्रसिद्ध एक वहुत वड़ी झील।

ऊलहना—अ०=उलहना।
पुं०=उलाहना।

ऊवड़ना—अ०=उमड़ना। उदा०—ऊजलियाँ धाराँ ऊवड़ियी।—प्रिथीराज।

ऊषक—पुं० [सं० ऊष+कन्] १.तड़का। प्रभात। भोर। २.नमक। ३. काली मिर्च।

ऊषर—पुं० [सं० ऊष+र अथवा ऊष√रा (देना)+क]=ऊसर।

ऊषरज—पुं० [सं० ऊषर√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १.नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक। २.एक प्रकार का चुंवक।

ऊषा—स्त्री० [सं०√ऊष्+क–टाप्] १. दिन चढ़ने से पहले का वह समय जब अँधेरा रहने पर भी पूर्व में उदित होनेवाले सूर्य की लाली दिखाई देती है। तड़का। प्रभात। २. पौ फटने के समय दिखाई देनेवाली उक्त लाली। अरुणोदय की अरुणिमा। ३. वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही थी।

ऊषा-कर—पुं० [प० त०] चंद्रमा।

ऊषा-काल—पुं० [प० त०] १.तड़का। प्रभात। २.प्रातःकाल। सवेरा।

ऊषा-पति—पुं० [प० त०] श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध, जो वाणासुर की कन्या उपा के पति थे।

ऊष्म—पुं० [सं०√ऊष्+मक्] १.गरमी। २.गरमी के दिन। ग्रीष्म ऋतु। ३.भाप।
वि० गरम।

ऊष्म-वर्ण—पुं० [कर्म० स०] व्याकरण में, उच्चारण के विचार से, श, प, स और ह ये अक्षर या वर्ण।

ऊष्मा (ष्मन्)—स्त्री० [सं०√ऊष्+मनिन्] १. गरमी का मौसम। ग्रीष्म ऋतु। गरमी। २.गरम होने की अवस्था, गुण या भाव। ताप। ३.भाप। वाष्प।

ऊष्मायण—पुं० [सं० ऊष्म+फक्–आयन] ग्रीष्म ऋतु।

ऊसन—पुं० [देश०] तरमिरा नाम का पौधा।

ऊसर—पुं० [सं० ऊपर] ऐसी भूमि जिसकी मिट्टी में रेह की मात्रा वहुत अधिक होती है। और इसी लिए जिसमें पेड़-पौधे नहीं उगते।
वि० (क्षेत्र या भूमि) जिसमें कुछ उत्पन्न न होता हो।

ऊह—अव्य० [अनु०] कष्ट या पीड़ा-सूचक अव्यय। ओह।
पुं० [सं०√ऊह् (तर्क करना)+घञ्]=ऊहा।

ऊहन—पुं० [सं०√ऊह+ल्युट्–अन] १.ऊह या तर्क-वितर्क करना। २. परिवर्त्तन करना। वदलना। ३.संस्कार या सुधार करना।

ऊहनीय—वि० [सं०√ऊह्+अनीयर्] (विपय) जो तर्क-वितर्क या वुद्धि के द्वारा जाना या समझा जा सके।

ऊहा—स्त्री० [सं०√ऊह+अ–टाप्] १.अनुमान, कल्पना, तर्क-वितर्क, व्युत्पत्ति आदि द्वारा किसी वात का अर्थ या आशय जानना या समझना। २.वुद्धि। समझ। ३.तर्क। ४.किंवदंती। जन-प्रवाद।

ऊहापोह—पुं० [सं० ऊह–अपोह, द्व० स०] किसी विपय में कुछ निश्चय न होने की दशा में मन में होनेवाला तर्क-वितर्क या सोच-विचार।

ऊही (हिन्)—वि० [सं० ऊह+इनि] ऊहा करनेवाला।

ऊह्य—वि० [सं०√ऊह्+ण्यत्] (वात या विपय) जिसके संवंध में ऊह (तर्क-वितर्क या सोच-विचार) हो सके। ऊहनीय।

ऋ

ऋ—देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर-वर्ण, जिसका उच्चारण मूर्द्धा से होता है। संस्कृत में इसके ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीनों प्रकार के उच्चारण होते हैं। पर हिंदी में इसका प्रस्तुत ह्रस्व रूप ही चलता है; शेष रूप नहीं चलते। आजकल हिंदी में इसका उच्चारण 'रि' के समान ही होता है।
स्त्री० [सं०√ऋ (गमनादि) +क्विप्] १. देवताओं की माता, अदिति। २.निंदा।

ऋकार—पुं० [सं० ऋ+कार] 'ऋ' स्वर और उसकी ध्वनि।

ऋक्—स्त्री० [सं० ऋच् (स्तुति करना+)क्विप्] १.वेद की ऋचा। २.स्तुति।
पुं०=ऋग्वेद।

ऋक्-तंत्र--पुं० [प० त०] सामवेद का परिशिष्ट भाग।

ऋक्थ--पुं० [सं०√ऋच् (स्तुति करना)+थक्] १.धन-संपत्ति। पूँजी। २.वह धन-संपत्ति या पूँजी जिसे कोई छोड़कर मरा हो। ३. सोना। स्वर्ण।

ऋक्थग्राह--पुं० [सं० ऋक्थ√ग्रह् (ग्रहण करना)+अण्] दे० 'ऋक्थ-भागी'।

ऋक्थभागी (गिन्)--पुं० [सं० ऋक्थ-भाग, प० त०,+इनि] किसी के द्वारा छोड़ी हुई संपत्ति का भागीदार। उत्तराधिकारी।

ऋक्-संहिता--स्त्री० [सं० प० त०] ऋग्वेद के मंत्रों का वर्ग या संग्रह।

ऋक्ष--पुं० [सं०√ऋष् (गति)+स] १.भालू। रीछ। २.तारा। नक्षत्र। ३.वह नक्षत्र जिसमें किसी का जन्म हुआ हो। ४.श्योनाक वृक्ष। सोनापाढ़ा। ५.सप्त ऋषि। ६.दे० 'ऋक्षवान' (पर्वत)।

ऋक्ष-नाथ--पुं० [प० त०] १.तारिकाओं के राजा, चंद्रमा। २.रीछों के राजा जाववान्।

ऋक्ष-नेमि--पुं० [प० त०] विष्णु।

ऋक्ष-पति--पुं०=ऋक्षनाथ।

ऋक्ष-राज--पुं० [प० त०] जांववान्।

ऋक्षवान् (वत्)--पुं० [सं० ऋक्ष+मतुप् म=व] रैवतक पर्वत का वह अंग जो नर्मदा के किनारे-किनारे गुजरात तक चला गया है।

ऋक्षा--स्त्री० [सं० ऋक्ष+अच्-टाप्] उत्तर दिशा।

ऋक्षीक--वि० [सं० ऋक्ष+ईकन्] भालू की तरह मांस खानेवाला।

ऋक्षीका--स्त्री० [सं० ऋक्षीक+टाप्] एक देवी।

ऋक्षेश--पुं० [सं० ऋक्ष-ईश, प० त०] १.चंद्रमा। २.जांववान्।

ऋग्-वेद--पुं० [सं० कर्म०स०] चार वेदों में से एक जो सब से प्राचीन और पद्यमय है।

ऋग्वेदी (दिन्)--वि० [सं० ऋग्वेद+इनि] ऋग्वेद का जानने या पढ़ने-वाला अथवा उसका अनुयायी।

ऋचा--स्त्री० [सं० ऋच्+टाप्] १. पद्य में रचा हुआ वेद-मंत्र। २. स्तोत्र।

ऋचीक--पुं० [सं०√ऋच् (स्तुति करना)+ईकन्] १.एक भृगुवंशीय ऋषि जो जमदग्नि के पिता थे। २.एक प्राचीन देश का नाम।

ऋचीष--पुं० [सं०√ऋच्+ईषन्] १.एक नरक का नाम। २.कड़ाही।

ऋच्छ--पुं० [सं० ऋक्ष] भालू। रीछ।

ऋच्छरा--स्त्री० [सं०√ऋच्छ् (गमनादि)+अर-टाप्] १.वेड़ी। हथ-कड़ी। २.कुलटा या वद-चलन स्त्री।

ऋजिमा (मन्)--स्त्री० [सं० ऋजु+इमनिच्] सरलता।

ऋजीक--वि० [सं०√ऋज् (प्राप्त करना आदि)+ईकन्] १.मिला हुआ। मिश्रित। २.दूर किया या हटाया हुआ। ३.भ्रष्ट।

पुं० १.इंद्र। २.साधन। ३.धूआँ।

ऋजीष--पुं० [सं०√अर्ज् (प्रयत्न)+ईषन्, ऋज् आदेश] १.लोहे का तसला। २.सोमलता छानने के वाद वची हुई सीठी। ३.किसी प्रकार की सीठी।

ऋजु--वि० [सं०√ऋज् (गति)+कु] [स्त्री० ऋज्वी] १.जो आकार के विचार से विलकुल सीधा हो, कहीं से टेढ़ा या मुड़ा हुआ न हो। २. लाक्षणिक अर्थ में, (व्यक्ति) जिसमें छल-कपट न हो। ईमानदार और सच्चा। सरल हृदय। (ऑनेस्ट) ३. अनुकूल। ४.लाभकारी।

ऋजुकरण--पुं० [सं०] १.ऋजु या सीधा करने की क्रिया या भाव। २.शुद्ध या साफ करना। (रेक्टिफिकेशन; उक्त दोनों अर्थों में)

ऋजु-काय--वि० [व० स०] जिसका शरीर 'सीधा' हो।

पुं० कश्यप मुनि।

ऋजुग--वि० [सं० ऋजु√गम् (जाना)+ड] १.सीधा चलने या जानेवाला। २.सच्चा और सरल व्यवहार करनेवाला।

पुं० तीर। वाण।

ऋजुता--स्त्री० [सं० ऋजु+तल्-टाप्] १.ऋजु होने की अवस्था या भाव। सरलता। सीधापन। २.छल-कपट आदि से दूर रहने की प्रवृत्ति। ईमानदारी, सचाई और सज्जनता। (ऑनेस्टी)

ऋजु-रोहित--पुं० [कर्म० स०] इंद्र का धनुष जो सीधा और लाल रंग का कहा गया है।

ऋजु-सूत्र--पुं० [सं० कर्म० स०] जैन दर्शन में भविष्य और भूत को छोड़ कर केवल वर्त्तमान को मानना तथा 'नय' और प्रमाणों द्वारा सिद्ध अर्थ और वातें ही ग्रहण करना।

ऋण--पुं० [सं० √ऋ (गमन)+क्त] [वि० ऋणी] १.वह धन जो किसी से कुछ समय के लिए उधार-स्वरूप लिया गया हो। व्याज पर लिया हुआ धन आदि। कर्ज। (डेट)

मुहा०--**ऋण उतरना**=ऋण या कर्ज पूरा चुकता हो जाना। **ऋण चढ़ना**=ऋणी या देनदार वनना। सिर पर कर्ज हो जाना। **ऋण पटना**=ऋण उतरना।

२.वह कार्य या कृत्य जो किसी उपकार या लाभ के वदले में किसी के प्रति आवश्यक या कर्त्तव्य-रूप से किया जाने को हो। वह जिसका दाय या दायित्व किसी पर हो। जैसे—देव-ऋण, पितृ-ऋण आदि। ३.साधारण वोल-चाल में, किसी का किया हुआ उपकार या एहसान। ४.गणित में, घटाने या वाकी निकालने का चिह्न (–)। 'धन' का विपर्याय।

वि० खाते, गणित आदि में जो ऋण के पक्ष का हो।

विशेष दे० 'नहिक'।

ऋण-कर्ता (र्तृ)--वि० [प० त०] ऋण लेनेवाला।

ऋण-ग्रस्त--वि० [तृ० त०] जिसपर ऋण या कर्ज हो। ऋण के भार से दवा हुआ।

ऋणग्रस्तता--स्त्री० [सं० ऋणग्रस्त+तल्-टाप्] ऋण-ग्रस्त होने की अवस्था या भाव। (इन्डेटेडनेस)

ऋण-त्रय--पुं० [प० त०] देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृऋण इन तीनों ऋणों का वर्ग या समूह।

ऋण-दाता (तृ)--वि० [प० त०] ऋण देनेवाला।

ऋण-दान--पुं० [प० त०] लिया हुआ ऋण चुकाना।

ऋणदायी (यिन्)--वि० [सं०ऋण√दा (देना)+णिनि-युक्]=ऋणदाता।

ऋण-दास--पुं० [मध्य० स०] ऐसा दास जो उस व्यक्ति की दासता करता हो जिसने उसका सारा ऋण चुका कर उसे खरीदा हो।

ऋण-पक्ष--पुं० [प० त०] गणित, वही-खाते, लेखे आदि में वह पक्ष, विभाग या स्तंभ जिसमें किसी को दी हुई वस्तु, उसका मूल्य, तिथि, विवरण आदि लिखा जाता है। (क्रेडिट-साइड)

ऋण-पत्र--पुं० [प० त०] वह पत्र जिसपर ऋण देने और लेने की शर्तें लिखी गई हों। (डिबेंचर)
ऋण-मुक्त--वि० [पं० त०] [भाव० ऋण-मुक्ति, ऋण-मोक्ष] जिसने ऋण चुका दिया हो। उऋण।
ऋण-मोक्षित--पुं० [पं० त०]=ऋण-दास।
ऋण-लेख्य--पुं० [प० त०] ऋण-पत्र। तमस्सुक। दस्तावेज।
ऋण-शुद्धि--स्त्री० [प० त०]=ऋण-शोधन।
ऋण-शोधन--पुं० [प० त०] लिया हुआ ऋण चुकाना।
ऋण-स्थगन--पुं० [प० त०] विधिक क्षेत्र में, उच्च न्यायालय या राज्य की वह आज्ञा जिसके अनुसार बैंकों को यह अधिकार दिया जाता है कि वे लोगों का देन चुकाना कुछ समय के लिए स्थगित कर दें। (मॉरि-टोरियम)
ऋणांतक--पुं० [सं० ऋण-अंतक, ष० त०] मंगल ग्रह, जो ऋण चुकाने में सहायक माना गया है।
ऋणात्मक--वि० [सं० ऋण-आत्मन्, ब० स०]=नहिक।
ऋणादान--पुं० [सं० ऋण-आदान, प० त०] दिया हुआ ऋण वापस मिलना।
ऋणार्ण--पुं० [सं०ऋण-ऋण, मध्य० स०, वृद्धि] एक ऋण से मुक्त होने के लिए लिया जानेवाला दूसरा ऋण।
ऋणिक--पुं० [सं० ऋण+ष्ठन्-इक] ऋणी।
ऋणिया--वि०=ऋणी।
ऋणी (णिन्)--वि० [सं० ऋण+इनि] १.जिसने किसी से ऋण लिया हो। कर्जदार। देनदार। अधमर्ण। २.जिस पर किसी का उपकार या एहसान हो। अनुगृहीत। उपकृत।
ऋतंभर--वि० [सं० ऋत√भृ (भरण करना)+खच्,मुम्] सत्य का धारण और पालन करनेवाला।
पुं० परमेश्वर।
ऋतंभरा--स्त्री० [सं० ऋतंभर+टाप्] सदा एकरस रहनेवाली सात्त्विक बुद्धि।
ऋत--पुं० [सं०√ऋ (गति आदि)+क्त] १.उंछवृत्ति। २.मुक्ति। मोक्ष। ३.यज्ञ। ४.कर्मों का फल। ५.सत्य। ६.जल। पानी।
वि० १.उज्ज्वल या दीप्त। २.पूजित। ३.ठीक और सच्चा।
ऋत-धामा (मन्)--वि० [ब० स०] सत्य में निवास करनेवाला।
पुं० विष्णु।
ऋत-ध्वज--पुं० [ब० स०] शिव।
ऋतवादी (दिन्)--वि०[सं०ऋत√वद् (बोलना)+णिनि]=सत्यवादी।
ऋतव्य--वि० [सं० ऋतु+यत्] ऋतु-संबंधी। मौसमी।
ऋत-व्रत--वि०[ब० स०] सत्य बोलना जिसका व्रत हो। सत्यवादी।
पुं० सत्य बोलने का व्रत।
ऋति--स्त्री० [सं०√ऋ (गति)+क्तिन्] १.गति। २.मार्ग। रास्ता। ३.कल्याण। मंगल। ४.अपवाद। निंदा। ५.स्पर्धा।
ऋतु--पुं० [सं०√ऋ+तु] १.प्राचीन भारत में, वैदिक कृत्य करने के लिए उपयुक्त और शुभ समय। २.गरमी, सरदी, वर्षा आदि के विचार से, किसी देश या भूभाग की समय-समय पर बदलती रहनेवाली वातावरणिक स्थिति और उस स्थिति के अनुसार होनेवाला काल-विभाग।

विशेष--प्राचीन भारत में, पहले तीन और फिर आगे चलकर पाँच, छः, बारह और चौबीस तक ऋतुएँ मानी जाती थीं। फिर बाद में दो-दो महीनों की छः ऋतुएँ स्थिर हुई थीं जो अब तक कुछ क्षेत्रों में मानी जाती हैं। यथा--वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमंत और शिशिर। परंतु आज-कल मुख्य रूप से गरमी, बरसात और जाड़ा यही तीन ऋतुएँ मानी जाती हैं।
३.किसी पेड़ या पौधे के फलने-फूलने के विचार से उसका उपयुक्त और निश्चित समय। जैसे--अब तो आम की ऋतु जाने को है। ४. रजोदर्शन के उपरांत का वह समय जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य होती है। ५.स्त्रियों के मासिक धर्म या रजःस्राव के चार दिन।
पद--ऋतुमती (देखें)।
ऋतु-कर--पुं० [प० त०] शिव।
ऋतु-काल--पुं० [प० त०] स्त्रियों में, रजोदर्शन के उपरांत १६ दिनों का वह समय जिसमें वे गर्भधारण के योग्य मानी गई हैं।
ऋतु-गमन--पुं० [स० त०] [वि० ऋतुगामी] ऋतुमती स्त्री के साथ किया जानेवाला संभोग।
ऋतु-चर्या--स्त्री० [प० त०] भिन्न-भिन्न ऋतुओं में उनके अनुसार और उपयुक्त आहार-विहार आदि की व्यवस्था।
ऋतु-दान--पुं० [स० त०] १.ऋतु-काल बीतने पर संतान की इच्छा से किया जानेवाला संभोग। २.गर्भाधान।
ऋतु-नाथ--पुं० [प० त०] वसंत।
ऋतु-पति--पुं० [प० त०] वसंत।
ऋतु-प्राप्त--वि० [ब० स०] १.(स्त्री) जिसे रजोदर्शन हो चुका हो। २.(वृक्ष) जो फल देने के योग्य हो गया हो।
ऋतु-प्राप्ति--स्त्री० [प० त०] स्त्री का रजोदर्शन।
ऋतु-फल--पुं० [प० त०] विशिष्ट ऋतु में होनेवाले फल। जैसे--आम और खरबूजे जेठ-असाढ़ के ऋतु-फल है।
ऋतु-भाग--पुं० [कर्म० स०] किसी पदार्थ का छठा भाग या हिस्सा (ऋतुओं के छः विभागों के आधार पर)।
ऋतुमती--स्त्री०[सं० ऋतु+मतुप्-ङीप्] १.स्त्री, जिसे मासिक धर्म हुआ हो। रजस्वला। २.वह स्त्री जिसके रजोदर्शन के उपरांत १६ दिन न बीते हों और फलतः जो गर्भ-धारण के योग्य हो।
ऋतु-मुख--पुं० [प० त०] किसी ऋतु के आरंभ होने का पहला दिन।
ऋतु-राज--पुं० [प० त०] ऋतुओं में सब से अधिक आनंददायक ऋतु। वसंत ऋतु।
ऋतुवती*--स्त्री०=ऋतुमती।
ऋतु-विज्ञान--पुं० [प० त०] वह विज्ञान, जिसमें वायुमंडल में होनेवाले परिवर्त्तनों के आधार पर आँधी, वर्षा आदि के संबंध में भविष्यवाणी की जाती है।
ऋतु-विपर्यय--पुं० [प० त०] एक ऋतु में उसके अनुकूल बातें न होकर अन्य ऋतु की बातें या लक्षण दिखाई देना। जैसे--गरमी के दिनों में सरदी या सरदी के दिनों में गरमी पड़ना।
ऋतु-वेला--स्त्री० [प० त०] रजोदर्शन अथवा उसके बाद १६ दिनों तक गर्भाधान के लिए उपयुक्त समय।
ऋतु-समय--पुं० [प० त०]=ऋतु-वेला।

ऋतु-स्नाता--वि० [स० त०] (स्त्री०) जो रजोदर्शन के चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हुई हो।

ऋतु-स्नान--पुं० [स० त०] ऋतुमती स्त्रियों में, रजःस्राव की समाप्ति पर अर्थात् चौथे दिन किया जानेवाला स्नान।

ऋत्विज्--पुं० [सं० ऋतु√यज् (देव-पूजन करना)+क्विन्] [स्त्री० आर्त्विजी] वह जिसका यज्ञ-कार्य के लिए वरण किया जाय। इनकी संख्या १६ होती है, जिनमें अध्वर्य्यु, उद्‌गाता, ब्रह्मा आदि मुख्य हैं।

ऋद्ध--वि० [सं०√ऋध् (बढ़ना)+क्त] संपन्न। समृद्ध।

ऋद्धि--स्त्री० [सं०√ऋध्+क्तिन्] १.धन-धान्य आदि की अधिकता या प्रचुरता। संपन्नता। समृद्धि। २.गणेश की एक परिचारिका जो उक्त प्रकार की संपन्नता की देवी मानी गई है। ३.लक्ष्मी। ४.पार्वती। ५.पत्नी। भार्या। ६.सफलता। सिद्धि। ७.आर्या छंद का एक भेद जिसमें २६ गुरु और ५ लघु होते हैं। ८.एक लता जिसका कंद दवा के काम आता है।

ऋद्धिकाम--वि० [सं० ऋद्धि√कम् (चाहना)+अण्] उन्नति या समृद्धि चाहनेवाला।

ऋद्धि-सिद्धि--स्त्री० [द्व० स०] १.गणेश जी के साथ रहनेवाली उनकी दो दासियाँ या परिचारिकाएँ जिनके नाम ऋद्धि और सिद्धि है। २.सब प्रकार की समृद्धि और वैभव।

ऋनिया--वि०= ऋणी।

ऋनी--वि०=ऋणी।

ऋभु--पुं० [सं० ऋ√भू (होना)+डु] १.एक गणदेवता। २.देवता।

ऋभुक्ष--पुं० [सं० ऋभु√+क्षि (बसना)+ड] १.इंद्र। २.स्वर्ग। ३.वज्र।

ऋषभ--पु० [सं०√ऋष् (गति)+अभच्] १.बैल। २.संगीत के सात स्वरों में से दूसरा। ३.एक प्रकार की जड़ी जो बल और वीर्य बढ़ानेवाली मानी गई है। ४.दक्षिण दिशा का एक पर्वत। ५.नर। ६.विष्णु का एक अवतार।

वि० उत्तम। श्रेष्ठ।

ऋषभ-कूट--पु० [कर्म० स०] दक्षिण भारत का एक पर्वत।

ऋषभ-देव--पु० [कर्म० स०] १.विष्णु के २४ अवतारों में से एक जो भागवत के अनुसार राजा नाभि के पुत्र थे। २.जैन धर्म के आदि तीर्थंकर।

ऋषभ-ध्वज--पु० [ब० स०] शंकर। शिव।

ऋषभी--स्त्री० [स० ऋषभ+ङीप्] वह स्त्री जिसका रंग-ढंग पुरुषों का-सा हो। मर्दानी औरत।

ऋषि--पुं० [स०√ऋष्(गति)+इन्] १.वेद-मंत्रों का प्रकाश करने-वाले महापुरुष या मत्र-द्रष्टा जो देवताओं, असुरों और मनुष्यों से भिन्न माने गये है। जैसे—अगस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ आदि। २.आध्यात्मिक और भौतिक तत्त्वो का साक्षात्कार करनेवाला ज्ञानी, दूरदर्शी तथा त्यागी महापुरुप। ३.प्रकाश की किरण। ४.सात मुख्य ऋषियों के आधार पर ७ की संख्या का वाचक शब्द। (साहित्य)

ऋषि-ऋण--पु० [प० त०] हिंदू धर्म में तीन प्रकार के ऋणों में से एक जिससे मुक्त होने के लिए वेद आदि पढ़ने का विधान है।

ऋषिक--पुं० [सं० ऋषि+कन्] १. निम्न कोटि का ऋषि। २. एक प्राचीन जनपद। ३.उक्त जनपद का निवासी।

ऋषि-कल्प--वि० [प० त०] ऋषि के समान पूज्य, विचारशील और सदाचारी। ऋषि-तुल्य। जैसे—ऋषि-कल्प दादा भाई नौरोजी।

ऋषि-कुमार--पुं० [प० त०] ऋषि का पुत्र या लड़का।

ऋषि-कुल--पुं० [प० त०] वह आश्रम या विद्यालय जहाँ ब्रह्मचारियों को ऐसे ढंग से पढ़ाया-लिखाया और रखा जाता है कि वे आगे चलकर ऋषि-तुल्य हो सकें। गुरु-कुल।

ऋषि-कुल्या--स्त्री० [प० त०] एक प्राचीन नदी। (महाभारत)

ऋषि-गिरि--पुं० [मध्य० स०] मगध का एक पर्वत।

ऋषि-चांद्रायण--पुं० [प० त० या मध्य० स०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत।

ऋषि-तर्पण--पुं० [प० त०] ऋषियों की तृप्ति के लिए उनके नामों पर किया जानेवाला जलदान या तर्पण।

ऋषि-पंचमी--स्त्री० [प० त०] भादों के शुक्ल पक्ष की पंचमी।

ऋषि-पत्तन--पुं० [प० त०] प्राचीन वाराणसी के पास का एक प्राचीन उपवन। (आधुनिक सारनाथ, जहाँ से गौतम बुद्ध ने धर्म-चक्र का प्रवर्त्तन किया था।)

ऋषि-यज्ञ--पुं० [मध्य० स०] ऋषियों के ऋण से मुक्त होने के लिए किया जानेवाला यज्ञ; अर्थात् वेदों आदि का अध्ययन।

ऋषि-लोक--पु० [प० त०] एक लोक जो सत्यलोक के पास माना गया है।

ऋषि-हृदय--वि० [ब० स०] ऋषियों के समान शुद्ध और सरल हृदय। परम सज्जन और सदाचारी।

ऋषीक--पुं० [सं० ऋषि+ईकक्] १.ऋषि का पुत्र। २.एक प्राचीन पवित्र देश। ३.उक्त देश के निवासी।

ऋषु--वि० [सं०√ऋष् (गमनादि)+कु] १.बड़ा। २.बलवान। ३.चतुर।

पुं० १.सूर्य की किरण। २. जलती हुई आग। ३. मशाल। ४. ऋषि।

ऋष्टि--स्त्री० [सं०√ऋष् (मारना)+क्तिन्] १.खड्ग। तलवार। २.अस्त्र। हथियार। ३.चमक। दीप्ति।

ऋष्य--पु० [सं०√ऋष् (हिंसा)+यत् नि०] १.काले रंग का एक प्रकार का मृग। २.एक तरह का कोढ़।

ऋष्य-केतन--पुं० [ब० स०]=अनिरुद्ध।

ऋष्य-केतु--पुं० [ब० स०]=अनिरुद्ध।

ऋष्य-मूक--पुं० [ब० स० ?] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत।

ऋष्य-शृंग--पु० [ब० स०] विभांडक ऋषि के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि—जिनका विवाह राजा लोमपाद की कन्या शांता से हुआ था।

ए

देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर वर्ण जो भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से अर्द्ध-संवृत, दीर्घ, कंठ्य-तालव्य स्वर है। इसका दीर्घ रूप 'ऐ' है। गद्य में यह 'हे' या 'ऐ' की तरह संबोधन के रूप में और कविता में 'यह' या 'ये' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

सर्व०=यह।

पुं० [√इ (गति)+विच्] विष्णु।

एँगुर--पुं०=ईंगुर।

एँचना--स०=खींचना।

ऐंचपेंच--पुं० [फा० पेच] १.घुमाव-फिराव। हेर-फेर। २.उलझन। ३.टेढ़ी-तिरछी चाल या युक्ति। ४.दे० 'दाँव-पेंच'।

ऐंड़ा बेंड़ा--वि०= ऐंड़ा-बैंड़ा।

ऐंड़ी--स्त्री० [सं० एरंड] १.अंडी या रेंड़ के पत्ते खानेवाला एक प्रकार का रेशम का कीड़ा। २.इस कीड़े का रेशम।
स्त्री०=एड़ी (पैर की)।

ऐंड़ुआ--पुं० [हि० ऐंड़ना] [स्त्री० अल्पा० ऐंड़ुई] गेंडुरी (दे०)।

एइ†--सर्व०=यह।

एई†--सर्व०= यही।

एकंग--वि० [सं० एकांग] जिसके साथ और कोई न हो। अकेला।
वि०, पुं०=एकांग।

एकंगा--वि० [हि० एकंग] [स्त्री० एकंगी] १.जिसका संबंध केवल एक अंग या पक्ष से हो। २.(बात या विचार) जिसमें केवल एक अंग या पक्ष का ध्यान रखा गया हो। सब अंगों या पक्षों का ध्यान न किया गया हो।

एकंगी--स्त्री० [सं० एक+अंगी] पटा-बनेठी खेलनेवालों की एक प्रकार की छड़ी जिसके सिरे पर लट्टू लगा रहता है।

एकँड़िया--वि० [सं० एक+अंड] १.(जीव) जो एक बार में एक ही अंडा देता हो। २.(पशु) जिसका एक ही अंडकोश हो। ३.(पदार्थ) जिसमें एक ही अंटी या गाँठ हो। जैसे--एकँड़िया लहसुन।

एकंत--वि०=एकांत।

एक--पुं० [सं०√इ (गति)+कन्; पा०, प्रा० एवकु; फा० यक्; उड़ि०, गु०, बँ० तथा मरा० एक; सिं० एकु, हिकु, हकु; पं० इक्क, हिक्क; का० अक; सिंह० एक्] सबसे पहला और सबसे छोटा (परंतु पूरा और भिन्न-रहित) संख्यासूचक अंक। जैसे--एक में एक और मिलने पर दो होते हैं।
वि० १.जो क्रम या गिनती के विचार से पहले स्थान पर पड़ता हो।
विशेष--उक्त अर्थ में यह संख्यावाचक समहों अथवा किसी संख्या के भिन्न के आरंभ में प्रयुक्त होता है। जैसे--एक कोड़ी, एक दर्जन अथवा एक तिहाई, एक चौथाई आदि।
मुहा०--**एक आँक**=दृढ़ता या निश्चयपूर्वक, इसी एक रूप में। उदा०--एक हि आँक मोर हित एहू।--तुलसी। **एक आँख न भाना**=तनिक भी अच्छा न लगना। जैसे--वह तो हमें एक एक आँख भी नहीं भाता। **एक आँख से देखना**=एक दृष्टि या भाव से देखना। सब के साथ एक-सा व्यवहार करना। जैसे--भाई साहब हम सब को एक आँख से देखते हैं। **एक और एक ग्यारह होना**=संघटित या सम्मलित होने पर शक्ति या सामर्थ्य बढ़ना। **एक के दो करना**=(क) काटकर एक के दो टुकड़े करना। (ख) एक को बढ़ाकर दो करना। (ग) दूने दाम पर बेचना या दूना लाभ उठाना। **एक टाँग फिरना**=कोई काम करने के लिए बराबर चलते-फिरते रहना। **(किसी की) एक न चलना**=(क) कोई उपाय, बात या तर्क सफल न होना। (ख) कोई बात मानी न जाना। **एक स्वर से**= सब लोगों का मिलकर एक साथ (कुछ कहना या बोलना)। **(किसी के साथ) एक होना**=(क) किसी से सहमत होना। (ख) घनिष्ठ संबंध स्थापित होना। (ग) तद्रूप होना।
पद--**एक-एक**=प्रत्येक। हर एक। **एक-एक करके**=क्रम-क्रम से हर एक। जैसे--एक एक करके सब लड़के अंदर आ जाओ। **एक-टक**=बिना पलक झपकाये। बराबर टक लगाकर या दृष्टि जमाकर। जैसे--इस शीशे की तरफ एक-टक देखो। **एक-तो**=पहली बात यह है कि। **एक दूसरे का, को, पर, में, से**=परस्पर। **एक पेट के**=एक ही माता से उत्पन्न। सहोदर। जैसे--ये तीनों भाई एक पेट के हैं। **एक बात**=(क) बिलकुल ठीक और सच्ची बात। (ख) दृढ़तापूर्वक कही हुई बात। **एक-सा**=(क) एक ही रूप में या एक ही प्रकार से। जैसे--नदी का पानी दिन-रात एक-सा बहता रहता है। (ख) एक ही तरह या प्रकार का। जैसे--आपका और उनका विचार एक-सा है। **एक-से**=तुल्य। बराबर। समान। जैसे--दोनों भाई देखने में एक-से हैं।
२.अनुपम। बे-जोड़। जैसे--वह अपने काम में एक है। ३.अनिश्चय-वाचक विशेषण, जैसे--(क) पुस्तकें एक ओर रख दो। (ख) एक दिन सबको मरना है।
विशेष--ऐसे अवसरों पर यह प्रायः 'एक न एक' के स्थान पर अथवा उसके संक्षिप्त रूप में प्रयुक्त होता है।
४.कोई उद्दिष्ट परंतु अनिश्चित (वस्तु या व्यक्ति)। जैसे--अभी एक आदमी आवेगा, उसे यह पुस्तक दे देना। ५.'एक-से' का संक्षिप्त रूप। एक-समान। जैसे--इस विषय में हम सब लोग एक (अर्थात् एक मत या विचार के) हैं।

एक-आध--वि० [हि० एक+आधा] गिनती में बहुत कम या थोड़े। कोई कोई। जैसे--(क) हिंदी में एकाध लेखक ही ऐसा लिखते है। (ख) कभी-कभी मुँह से एक-आध ऐसी बात भी निकल जाती है जो ठीक न हो।

एकक--वि० [सं० एक+कन्] १.अकेला। २.एक से संबंध रखनेवाला। ३.जो एक से ही बना हो, अथवा जिसमें एक ही हो। (सोल)
पुं० दे० 'इकाई'।

एकक-निगम--पुं० [सं० कर्म० स०] वह निगम जिसका संबंध केवल एक ही व्यक्ति से हो। (सोल कॉरपोरेशन) जैसे--राजा एकक निगम है।

एक कलम--क्रि० वि० [फा० यक कलम] १. पूरी तरह से। २. एक दम से। एक बारगी।

एकक-शारीरिक--पुं०=एकक निगम।

एककालिक--वि० [सं०एककाल, कर्म० स०+ठञ्-इक] १.एक काल या समय में अथवा एक ही बार घटित होनेवाला। जैसे--एक-कालिक दान। २.(संबंध के विचार से) किसी और घटना या घटनाओं के साथ एक ही काल या समय में घटित होनेवाला। समकालीन।

एककालीन--वि०[सं०एक-काल,कर्म०स०,+खञ्-ईन]दे०'एक-कालिक'।

एक-कुंडल--पुं० [ब० स०] १.कुबेर। २.शेषनाग। ३.बलराम।

एक-कृष्ट--वि० [कर्म० स०] (खेत) जो एक ही बार जोता गया हो।

एककोशी (शिन्)--वि०[सं० एक-कोश, कर्म० स०,+इनि] १.एक ही कोश से बना हुआ। २.(जीव या प्राणी) जिसमें केवल एक ही कोश हो।

एक-गाछी--स्त्री० [हि० एक+गाछ=पेड़] वह नाव जो एक ही पेड़ के तने को खोखला करके बनाई गई हो।

एक-चक्र--पुं० [ब० स०] १.सूर्य का रथ जिसमें एक ही पहिया माना गया है। २.सूर्य।
वि० १.चक्रवर्ती (राजा)। २.एक पहियेवाला।

एकचक्रा--स्त्री०[सं० एकचक्र+टाप्]वर्तमान आरे के पास की एक प्राचीन नगरी, जहाँ बकासुर रहता था।

ऋतु-स्नाता--वि० [स० त०] (स्त्री०) जो रजोदर्शन के चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हुई हो।

ऋतु-स्नान--पुं० [स० त०] ऋतुमती स्त्रियों में, रजःस्राव की समाप्ति पर अर्थात् चौथे दिन किया जानेवाला स्नान।

ऋत्विज्--पुं० [सं० ऋतु√यज् (देव-पूजन करना)+क्विन्] [स्त्री० आर्त्विजी] वह जिसका यज्ञ-कार्य के लिए वरण किया जाय। इनकी संख्या १६ होती है, जिनमें अध्वर्य्यु, उद्गाता, ब्रह्मा आदि मुख्य हैं।

ऋद्ध--वि० [सं०√ऋध् (बढ़ना)+क्त] संपन्न। समृद्ध।

ऋद्धि--स्त्री० [सं०√ऋध्+क्तिन्] १.धन-धान्य आदि की अधिकता या प्रचुरता। संपन्नता। समृद्धि। २.गणेश की एक परिचारिका जो उक्त प्रकार की सपन्नता की देवी मानी गई है। ३.लक्ष्मी। ४.पार्वती। ५.पत्नी। भार्या। ६.सफलता। सिद्धि। ७.आर्या छंद का एक भेद जिसमें २६ गुरु और ५ लघु होते हैं। ८.एक लता जिसका कंद दवा के काम आता है।

ऋद्धिकाम--वि० [सं० ऋद्धि√कम् (चाहना)+अण्] उन्नति या समृद्धि चाहनेवाला।

ऋद्धि-सिद्धि--स्त्री० [द्व० स०] १.गणेश जी के साथ रहनेवाली उनकी दो दासियाँ या परिचारिकाएँ जिनके नाम ऋद्धि और सिद्धि हैं। २.सब प्रकार की समृद्धि और वैभव।

ऋनिया--वि०= ऋणी।

ऋनी--वि०=ऋणी।

ऋभु--पुं० [सं० ऋ√भू (होना)+डु] १.एक गणदेवता। २.देवता।

ऋभुक्ष--पु० [सं० ऋभु√+क्षि (वसना)+ड] १.इंद्र। २.स्वर्ग। ३.वज्र।

ऋषभ--पु० [सं०√ऋष् (गति)+अभच्] १.बैल। २.संगीत के सात स्वरों में से दूसरा। ३.एक प्रकार की जड़ी जो बल और वीर्य बढ़ानेवाली मानी गई है। ४.दक्षिण दिशा का एक पर्वत। ५.नर। ६.विष्णु का एक अवतार।

वि० उत्तम। श्रेष्ठ।

ऋषभ-कूट--पु० [कर्म० स०] दक्षिण भारत का एक पर्वत।

ऋषभ-देव--पु० [कर्म० स०] १.विष्णु के २४ अवतारों में से एक जो भागवत के अनुसार राजा नाभि के पुत्र थे। २.जैन धर्म के आदि तीर्थंकर।

ऋषभ-ध्वज--पु० [ब० स०] शंकर। शिव।

ऋषभी--स्त्री० [स० ऋषभ+ङीप्] वह स्त्री जिसका रंग-ढंग पुरुषों का-सा हो। मर्दानी औरत।

ऋषि--पु० [स०√ऋष्(गति)+इन्] १.वेद-मंत्रों का प्रकाश करने-वाले महापुरुष या मंत्र-द्रष्टा जो देवताओं, असुरों और मनुष्यो से भिन्न माने गये हैं। जैसे--अगस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ आदि। २.आध्यात्मिक और भौतिक तत्त्वों का साक्षात्कार करनेवाला ज्ञानी, दूरदर्शी तथा त्यागी महापुरुष। ३.प्रकाश की किरण। ४.सात मुख्य ऋषियों के आधार पर ७ की सख्या का वाचक शब्द। (साहित्य)

ऋषि-ऋण--पु० [प० त०] हिंदू धर्म में तीन प्रकार के ऋणों मे से एक जिससे मुक्त होने के लिए वेद आदि पढ़ने का विधान है।

ऋषिक--पु० [सं० ऋषि+कन्] १. निम्न कोटि का ऋषि। २. एक प्राचीन जनपद। ३.उक्त जनपद का निवासी।

ऋषि-कल्प--वि० [प० त०] ऋषि के समान पूज्य, विचारशील और सदाचारी। ऋषि-तुल्य। जैसे--ऋषि-कल्प दादा भाई नौरोजी।

ऋषि-कुमार--पुं० [प० त०] ऋषि का पुत्र या लड़का।

ऋषि-कुल--पुं० [प० त०] वह आश्रम या विद्यालय जहाँ ब्रह्मचारियों को ऐसे ढंग से पढ़ाया-लिखाया और रखा जाता है कि वे आगे चलकर ऋषि-तुल्य हो सकें। गुरु-कुल।

ऋषि-कुल्या--स्त्री० [प० त०] एक प्राचीन नदी। (महाभारत)

ऋषि-गिरि--पुं० [मध्य० स०] मगध का एक पर्वत।

ऋषि-चांद्रायण--पुं० [प० त० या मध्य० स०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत।

ऋषि-तर्पण--पुं० [प० त०] ऋषियों की तृप्ति के लिए उनके नामों पर किया जानेवाला जलदान या तर्पण।

ऋषि-पंचमी--स्त्री० [प० त०] भादों के शुक्ल पक्ष की पंचमी।

ऋषि-पत्तन--पुं० [प० त०] प्राचीन वाराणसी के पास का एक प्राचीन उपवन। (आधुनिक सारनाथ, जहाँ से गौतम बुद्ध ने धर्म-चक्र का प्रवर्त्तन किया था।)

ऋषि-यज्ञ--पुं० [मध्य० स०] ऋषियों के ऋण से मुक्त होने के लिए किया जानेवाला यज्ञ; अर्थात् वेदों आदि का अध्ययन।

ऋषि-लोक--पु० [प० त०] एक लोक जो सत्यलोक के पास माना गया है।

ऋषि-हृदय--वि० [ब० स०] ऋषियों के समान शुद्ध और सरल हृदय। परम सज्जन और सदाचारी।

ऋषीक--पुं० [सं० ऋषि+ईकक्] १.ऋषि का पुत्र। २.एक प्राचीन पवित्र देश। ३.उक्त देश के निवासी।

ऋष्ठु--वि० [सं०√ऋष् (गमनादि)+कु] १.बड़ा। २.बलवान। ३.चतुर।

पुं० १.सूर्य की किरण। २. जलती हुई आग। ३. मशाल। ४. ऋषि।

ऋष्टि--स्त्री० [सं०√ऋष् (मारना)+क्तिन्] १.खड्ग। तलवार। २.अस्त्र। हथियार। ३.चमक। दीप्ति।

ऋष्य--पु० [सं०√ऋष् (हिंसा)+यत् नि०] १.काले रंग का एक प्रकार का मृग। २.एक तरह का कोढ़।

ऋष्य-केतन--पुं० [ब० स०]=अनिरुद्ध।

ऋष्य-केतु--पुं० [ब० स०]=अनिरुद्ध।

ऋष्य-मूक--पुं० [ब० स० ?] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत।

ऋष्य-शृंग--पु० [ब० स०] विभांडक ऋषि के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि--जिनका विवाह राजा लोमपाद की कन्या शांता से हुआ था।

ए

देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर वर्ण जो भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से अर्द्ध-संवृत, दीर्घ, कंठ्य-तालव्य स्वर है। इसका दीर्घ रूप 'ऐ' है। गद्य में यह 'हे' या 'ऐ' की तरह संबोधन के रूप में और कविता में 'यह' या 'ये' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

सर्व०=यह।

पु० [√इ (गति)+विच्] विष्णु।

एँगुर--पुं०=ईंगुर।

एँचना--स०=खींचना।

ऐंचपेंच--पुं० [फा० पेच] १. घुमाव-फिराव। हेर-फेर। २. उलझन। ३. टेढ़ी-तिरछी चाल या युक्ति। ४. दे० 'दाँव-पेंच'।

ऐंड़ा बेंड़ा--वि०= ऐंड़ा-बैंड़ा।

ऐंड़ी--स्त्री० [सं० एरंड] १. अंडी या रेंड़ के पत्ते खानेवाला एक प्रकार का रेशम का कीड़ा। २. इस कीड़े का रेशम।
स्त्री०=एड़ी (पैर की)।

ऐंड़ुआ--पुं० [हिं० ऐंड़ना] [स्त्री० अल्पा० ऐंडुई] गेंडुरी (दे०)।

एइ†--सर्व०=यह।

एई†--सर्व०= यही।

एकंग--वि० [सं० एकांग] जिसके साथ और कोई न हो। अकेला।
वि०, पुं०=एकांग।

एकंगा--वि० [हिं० एकंग] [स्त्री० एकंगी] १. जिसका संबंध केवल एक अंग या पक्ष से हो। २. (बात या विचार) जिसमें केवल एक अंग या पक्ष का ध्यान रखा गया हो। सब अंगों या पक्षों का ध्यान न किया गया हो।

एकंगी--स्त्री० [सं० एक+अंगी] पटा-बनेठी खेलनेवालों की एक प्रकार की छड़ी जिसके सिरे पर लट्टू लगा रहता है।

एकँड़िया--वि० [सं० एक+अंड] १. (जीव) जो एक बार में एक ही अंडा देता हो। २. (पशु) जिसका एक ही अंडकोश हो। ३. (पदार्थ) जिसमें एक ही अंटी या गाँठ हो। जैसे--एकँड़िया लहसुन।

एकंत--वि०=एकांत।

एक--पुं० [सं०√इ (गति)+कन्; पा०, प्रा० एक्कु; फा० यक्; उड़ि०, गु०, बँ० तथा मरा० एक; सिं० एकु, हिकु, हकु; पं० इक्क, हिक्क; का० अक; सिंह० एक्] सबसे पहला और सबसे छोटा (परंतु पूरा और भिन्न-रहित) संख्यासूचक अंक। जैसे--एक में एक और मिलने पर दो होते हैं।
वि० १. जो क्रम या गिनती के विचार से पहले स्थान पर पड़ता हो।
विशेष--उक्त अर्थ में यह संख्यावाचक समहों अथवा किसी संख्या के भिन्न के आरंभ में प्रयुक्त होता है। जैसे--एक कोड़ी, एक दर्जन अथवा एक तिहाई, एक चौथाई आदि।
मुहा०--एक आँक=दृढ़ता या निश्चयपूर्वक, इसी एक रूप में। उदा०--एक हि आँक मोर हित एहू।--तुलसी। **एक आँख न भाना**=तनिक भी अच्छा न लगना। जैसे--वह तो हमें एक एक आँख भी नहीं भाता। **एक आँख से देखना**=एक दृष्टि या भाव से देखना। सब के साथ एक-सा व्यवहार करना। जैसे--भाई साहब हम सब को एक आँख से देखते हैं। **एक और एक ग्यारह होना**=संघटित या सम्मलित होने पर शक्ति या सामर्थ्य बढ़ना। **एक के दो करना**=(क) काटकर एक के दो टुकड़े करना। (ख) एक को बढ़ाकर दो करना। (ग) दूने दाम पर बेचना या दूना लाभ उठाना। **एक टाँग फिरना**=कोई काम करने के लिए बराबर चलते-फिरते रहना। **(किसी की) एक न चलना**=(क) कोई उपाय, बात या तर्क सफल न होना। (ख) कोई बात मानी न जाना। **एक स्वर से**= सब लोगों का मिलकर एक साथ (कुछ कहना या बोलना)। **(किसी के साथ) एक होना**=(क) किसी से सहमत होना। (ख) घनिष्ठ संबंध स्थापित होना। (ग) तद्रूप होना।
पद--एक-एक=प्रत्येक। हर एक। **एक-एक करके**=क्रम-क्रम से हर एक। जैसे--एक एक करके सब लड़के अंदर आ जाओ। **एक-टक**=बिना पलक झपकाये। बराबर टक लगाकर या दृष्टि जमाकर। जैसे--इस शीशे की तरफ एक-टक देखो। **एक-तो**=पहली बात यह है कि। **एक दूसरे का, को, पर, में, से**=परस्पर। **एक पेट के**=एक ही माता से उत्पन्न। सहोदर। जैसे--ये तीनों भाई एक पेट के है। **एक बात**=(क) बिलकुल ठीक और सच्ची बात। (ख) दृढ़तापूर्वक कही हुई बात। **एक-सा**=(क) एक ही रूप में या एक ही प्रकार से। जैसे--नदी का पानी दिन-रात एक-सा बहता रहता है। (ख) एक ही तरह या प्रकार का। जैसे--आपका और उनका विचार एक-सा है। **एक-से**=तुल्य। बराबर। समान। जैसे--दोनों भाई देखने में एक-से हैं।
२. अनुपम। बे-जोड़। जैसे--वह अपने काम में एक है। ३. अनिश्चय-वाचक विशेषण, जैसे--(क) पुस्तकें एक ओर रख दो। (ख) एक दिन सबको मरना है।
विशेष--ऐसे अवसरों पर यह प्रायः 'एक न एक' के स्थान पर अथवा उसके संक्षिप्त रूप में प्रयुक्त होता है।
४. कोई उद्दिष्ट परंतु अनिश्चित (वस्तु या व्यक्ति)। जैसे--अभी एक आदमी आवेगा, उसे यह पुस्तक दे देना। ५. 'एक-से' का संक्षिप्त रूप। एक-समान। जैसे--इस विषय में हम सब लोग एकँ (अर्थात् एक मत या विचार के) हैं।

एक-आध--वि० [हिं० एक+आधा] गिनती में बहुत कम या थोड़े। कोई कोई। जैसे--(क) हिंदी में एकाध लेखक ही ऐसा लिखते हैं। (ख) कभी-कभी मुँह से एक-आध ऐसी बात भी निकल जाती है जो ठीक न हो।

एकक--वि० [सं० एक+कन्] १. अकेला। २. एक से संबंध रखनेवाला। ३. जो एक से ही बना हो, अथवा जिसमें एक ही हो। (सोल)
पुं० दे० 'इकाई'।

एकक-निगम--पुं० [सं० कर्म० स०] वह निगम जिसका संबंध केवल एक ही व्यक्ति से हो। (सोल कॉरपोरेशन) जैसे--राजा एकक निगम है।

एक कलम--क्रि० वि० [फा० यक कलम] १. पूरी तरह से। २. एक दम से। एक बारगी।

एकक-शारीरिक--पुं०=एकक निगम।

एककालिक--वि० [सं०एककाल, कर्म० स०+ठञ्-इक] १. एक काल या समय में अथवा एक ही बार घटित होनेवाला। जैसे--एक-कालिक दान। २. (संबंध के विचार से) किसी और घटना या घटनाओं के साथ एक ही काल या समय में घटित होनेवाला। समकालीन।

एककालीन--वि० [सं०एक-काल,कर्म०स०,+खञ्-ईन] दे० 'एक-कालिक'।

एक-कुंडल--पुं० [ब० स०] १. कुबेर। २. शेषनाग। ३. बलराम।

एक-कृष्ट--वि० [कर्म० स०] (खेत) जो एक ही बार जोता गया हो।

एककोशी (शिन्)--वि० [सं० एक-कोश, कर्म० स०,+इनि] १. एक ही कोश से बना हुआ। २. (जीव या प्राणी) जिसमें केवल एक ही कोश हो।

एक-गाछी--स्त्री० [हिं० एक+गाछ=पेड़] वह नाव जो एक ही पेड़ के तने को खोखला करके बनाई गई हो।

एक-चक्र--पुं० [ब० स०] १. सूर्य का रथ जिसमें एक ही पहिया माना गया है। २. सूर्य।
वि० १. चक्रवर्ती (राजा)। २. एक पहियेवाला।

एकचक्रा--स्त्री० [सं० एकचक्र+टाप्] वर्तमान आरे के पास की एक प्राचीन नगरी, जहाँ बकासुर रहता था।

एकचक्री--स्त्री० [सं० एकचक्र+ङीप्] ऐसी गाड़ी जिसमें केवल एक चक्र या पहिया हो।

एकचर--वि० [सं० एक√चर् (गति)+अच्] १. अकेले घूमने-फिरने या विचरनेवाला। २. (ऐसा पशु, पक्षी या प्राणी) जो अपने वर्ग के अथवा अन्य पशु-पक्षियों आदि के साथ झुंड बनाकर न रहता हो, बल्कि अकेला ही विचरता हो। जैसे—गेंडा, साँप आदि।

एक-चश्म--पुं० [हिं० एक+फा० चश्म] १. चित्रकला मे मनुष्य की आकृति दिखाने का वह प्रकार जिसमें उसके चेहरे का एक ही पार्श्व और एक ही आँख अंकित होती है। २. उक्त चित्र। (प्रोफाइल, उक्त दोनों अर्थो में)

एकचारिणी--स्त्री० [सं० एकचारिन्+ङीप्] ऐसी स्त्री जिसका संबंध एक ही पुरुष से हो; अर्थात् पतिव्रता।

एकचारी (रिन्)--वि० [सं० एक√चर्+णिनि]=एक-चर।

एक-चित--वि०=एक-दिल।

एकचोवा--पुं० [हिं० एक+फा० चोव] एक प्रकार का छोटा खेमा जो एक ही खंभे पर खड़ा होता है।

एकच्छत्र--वि० [व० स०] (राज्य) जो एक ही राजा के अधीन हो। जिसमें किसी और का कोई या किसी प्रकार का अधिकार न हो।
पुं० राज्य-तंत्र में, वह शासन-प्रणाली जिसमें किसी देश का पूर्ण शासन एक ही राजा या अधिनायक को प्राप्त होता है।

एकज--पुं० [सं० एक√जन् (उत्पन्न होना)+ड] [स्त्री० एकजा] १. सगा भाई। २. शूद्र जो द्विज नही होता। ३. राजा।
वि० एक मात्र। एक ही।

एकजद्दी--वि० [फ़ा०] एक ही पूर्वज से जन्मे हुए (वंशज) सपिंड वा सगोत्र।

एक-जन्मा (न्मन्)--पुं० [व० स०] १. शूद्र। २. राजा।

एक-जाई--वि० [फा० यकजाई] १. (परिवार के लोग) जो सव मिल-कर एक ही स्थान में या साथ-साथ रहते हों। २. (संपत्ति) जिसका अभी वँटवारा न हुआ हो और जिसपर उसके सव मालिकों का समान अधिकार हो।

एक-जात--वि० [पं० त०] एक माता-पिता से उत्पन्न। सहोदर।

एक-जाति--वि० [व० स०] एक ही जाति या वंश का।
पुं० शूद्र।

एक जान--वि० [हिं० एक+फा० जान] जो किसी दूसरे के साथ मिलकर पूरी तरह से एक हो गया हो। जैसे—कई दवाएँ एक में मिलाकर उन्हें एक-जान करना।

एक-जीव--वि० [व० स०] (ऐसे दो या कई) जिनमें रूप, अस्तित्व आदि का कोई भेद न हो। अभिन्न। एकरूप।

एकटँगा--वि० [हिं० एक+टाँग] १. जिसकी एक ही टाँग हो। २. लँगड़ा।

एकटकी†--स्त्री० [हिं० एकटक] टक लगाकर देखने की क्रिया या भाव। टकटकी।

एकट्ठा--वि०= इकट्ठा।

एकठा--पुं० [हिं० एक+काठ=एककठा] ऐसी नाव जो काठ या लकड़ी के एक ही टुकड़े से बनी हो।

एकड़--पुं० [अ०] जमीन की एक पाश्चात्य नाप जो ४८४० वर्ग गज (हमारे यहाँ के हिसाव से १$\frac{3}{5}$ वीघे के वरावर) की होती है।

एकडाल--वि० [हिं० एक+डाल] १. एक मेल के। एक ही तरह के। २. एक ही टुकड़े का बना हुआ।
पुं० ऐसी कटार या छुरा जिसका फल और वेंट दोनों लोहे के एक टुकड़े को गढ़कर बनाये गये हों।

एकण--वि०=एक। (राज०)।

एक-तंत्र--वि० [व० स०] (राज्य) जिसका शासन अधिकार किसी एक-व्यक्ति के हाथ में हो।
पुं० ऐसी शासन-प्रणाली जिसमें किसी देश का शासन एक ही व्यक्ति (अधिनायक या राजा) के हाथ में हो, और लोगों को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार न हो।

एकतः--अव्य० [सं० एक+तसिल्] १. एक ओर से। २. एक ही प्रकार से। ३. एक जगह। एक स्थान पर।

एकत*--अव्य०=एकत्र।

एकतरफा--वि० [फ़ा०] १. किसी एक तरफ या पक्ष का। एक ही पक्ष से संबंध रखनेवाला। २. जिसमें किसी एक ही ओर या पक्ष का ध्यान रखा या विचार किया गया हो। दूसरे पक्ष का विचार न हुआ हो। जैसे—एक-तरफा डिगरी, एकतरफा फैसला।
पद—एकतरफा डिगरी=ऐसी डिगरी जो प्रतिवादी के न्यायालय में उपस्थित न होने की दशा में वादी को प्राप्त हुई हो।
३. जिसमें पक्षपात हुआ हो। ४. एक-रुखा (देखें)।

एकतरा--पुं० [सं० एकोत्तर] एक दिन के अन्तर पर आनेवाला ज्वर। अँतरा ज्वर। पारी का वुखार।

एकता--स्त्री० [सं० एक+तल्—टाप्] १. एक होने की अवस्था या भाव। २. उद्देश्य, विचार आदि में सव लोगों का मिलकर एक होना। (यूनिटी) ३. वरावरी। समानता।
वि० [फा० यकता] अद्वितीय। वेजोड़।

एकताई*--स्त्री०=एकता।

एक-ताक--वि० [हिं० एक+ताक ?] एक ही तरह के। एक जैसे। उदा०—प्रेम सहित मैया दै पठयो, सवै वनाए हैं एक-ताक।—सूर।

एकतान--वि० [सं० एक√तन् (फैलना)+अण्] १. तन्मय। एकाग्र-चित्त। २. जो सव मिलकर एक या एक ही तरह के हो गये हों।

एक-तार--वि० [हिं० एक+तार=क्रम] एक ही रूप-रंग के। एक-से।
क्रि० वि० निरंतर। लगातार। उदा०—आकिंचन, इंद्रियदमन, रमन राम एक-तार।—तुलसी।

एकतारा--पुं० [हिं० एक+तारा] सितार की तरह का एक वाजा जिसमें एक ही तार लगा होता है।

एक-ताल--वि० [व० स०] जिसमें ताल-सुर का पूरा मेल हो।

एक-ताला--पुं० [मं० एकताल] संगीत में वारह मात्राओं का एक ताल जिसमें केवल तीन आघात होते हैं।

एकतालीस--वि०=इकतालीस।

एकतीर्थी (र्थिन्)--वि० [सं० एक-तीर्थ, कर्म० स०,+इनि] १. एक ही तीर्थ में स्नान करनेवाला। २. सदा एक ही आश्रम या पथ में रहनेवाला।
पुं० वह जो एक ही आश्रम में रहा हो और जिसने एक ही गुरु से शिक्षा पाई हो।

एकतीस--वि०=इकतीस।

एकत्य--वि० [सं० एकस्थ]=एकत्र (इकट्ठा)।

एकत्र--क्रि० वि० [सं० एक+त्रल्] एक स्थान पर या एक जगह (इकट्ठा किया हुआ)। जैसे--पुस्तकें एकत्र करना।

एकत्रा--पुं० [सं० एकत्र] कुल जोड़। मीजान। जैसे--इन रकमों का एकत्रा लगा डालो।

एकत्रित--भू० कृ० [सं० एकत्र+इतच्] एक स्थान पर इकट्ठा या जमा किया हुआ।

एकत्त्री--वि०=एकत्र (इकट्ठा)।

एकत्व--पुं० [सं० एक+त्व] एक होने की अवस्था या भाव। एकता।

एकदंडी (डिन्)--पुं० [सं० एक-दंड, कर्म० स०+इनि] संन्यासियों का एक भेद जिनकी उपाधि हंस है।

एक-दंत--पुं० [व० स०] गणेश।

वि० एक दाँतवाला।

एकदंता--वि० [सं० एकदंत] [स्त्री० एकदंती] एक दाँतवाला। जिसके एक दाँत हो। जैसे--एक-दंता हाथी।

एक-दंष्ट्र--पुं० [व० स०] गणेश।

एकदम--अव्य० [हिं०] १. तत्काल। तुरंत। जैसे--एकदम वहाँ से लौट आना। २. एक-बारगी। जैसे--एकदम नाव उलट गई। ३. बिल कुल। जैसे--संस्था का सारा रुपया वे एकदम हजम कर गये हैं।

एकदरा--वि० [हिं० एक+फा० दर] (कमरा या दालान) जो एक ही दर का हो।

एकदस्ती--स्त्री० [फा०] कुश्ती का एक पेंच।

एकदा--अव्य० [सं० एक+दा] १. किसी समय। कभी। २. किसी बीते हुए अनिश्चित समय में।

एकदिल--वि० [हिं०] १. (व्यक्ति) जिनके विचार या स्वभाव एक दूसरे से बिलकुल मिलते हों। २. (पदार्थ) जो एक दूसरे में मिलकर बिलकुल एक हो गये हों।

एकदिली--स्त्री० [हिं० एकदिल] एक दिल होने की अवस्था या भाव।

एक-दृक् (श्)--वि० [सं० व० स०] १. काना। २. सम-दर्शी।

पुं० १. शिव। २. ब्रह्मज्ञानी। ३. कौआ।

एक-दृष्टि--वि०, पुं० [व० स०]=एक दृक्।

एकदेशी (शिन्)--वि० [सं०एक-देश, कर्म० स०,+इनि] १. जिसका संबंध किसी एक देश से हो। एक देश में होनेवाला। २. (नियम या सिद्धान्त) जो किसी एक क्षत्र या पक्ष के लिए ही ठीक हो, सब देशों के लिए नहीं।

एकदेशीय--वि० [सं० एक-देश+छ--ईय]=एकदेशी।

पुं० षष्ठी तत्पुरुष समास का एक भेद।

एक-देह--पुं० [व० स०] १. बुध-ग्रह। २. गोत्र। ३. कुल। वंश। ४. पति और पत्नी। दंपति।

वि० एक शरीरवाला।

एक-धर्मा (र्मन्)--वि० [व० स०]. समान गुण, धर्म या स्वभाववाला। धर्म या गुण के विचार से किसी के समान होनेवाला।

एक-धर्मी (र्मिन्)--वि० [सं०एक-धर्म कर्म० स०,+इनि]= एक धर्म।

एक-नयन--वि० [व० स०] १. एक आँखवाला। एकाक्ष। २. काना।

पुं० १. शिव। २. कुबेर। ३. शुक्र ग्रह। ४. कौआ।

एक-निष्ठ--वि० [व० स]० [स्त्री० एक-निष्ठा] १. एक ही के प्रति निष्ठा, श्रद्धा या अनुराग रखनेवाला। अनन्योपासक। २. एकाग्रचित्त होकर कोई काम करनेवाला। जैसे--हिंदी की एक-निष्ठ सेवा।

एक-नेत्र--पुं० [व० स०] शिव।

एकन्नी--स्त्री० = इकन्नी (एक आने मूल्य का सिक्का)।

एक-पक्षीय--वि० [सं०एक-पक्ष, कर्म० स०,+छ--ईय] १. किसी एक पक्ष, दल या अंग से सम्बन्ध रखनेवाला (युनिलेटरल)। २. एक-तरफा (दे०)।

एकपटा--वि० [हिं० एक+पाट=चौड़ाई] [स्त्री० एक-पटी] (कपड़ा) जो एक ही पाट का बना हो अर्थात् जिसमें जोड़ न हो।

एक-पत्नी--स्त्री० [एक-पति, व० स०, ङीप्, नुक्] पतिव्रता स्त्री।

एक-पत्नी-व्रत--पुं० [व० स०] वह पुरुष जिसने अपनी पत्नी के अतिरिक्त और किसी स्त्री से प्रेम-संबंध स्थापित न किया हो।

एक-पद--वि० [व० स०] १. एक पैरवाला। २. लँगड़ा।

पुं० १. कैलाश। २. वैकुण्ठ। ३. एक प्राचीन देश (बृहत्सं०)। ४. काम-शास्त्र में रति या संभोग का एक आसन या रति-बंध।

एकपदी (दिन्)--वि० [एक-पद, कर्म० स०, +इनि] एक पद या चरण-वाला (पद्य या छंद)।

स्त्री० [व० स० ङीप्, पाद=पदादेश] पगडंडी।

एक-पर्णा--स्त्री० [व० स०, टाप्] दुर्गा।

एक-पर्णी--स्त्री० [व० स०, ङीप्] दुर्गा।

एक-पलिया--वि० [हिं० एक+पल्ला] जिसमें एकही पल्ला हो, दूसरा पल्ला न हो या न होता हो।

एक-पात्--पुं० [सं० एक-पाद, व० स०] १. विष्णु। २. सूर्य। ३. शिव।

एक-पात--वि० [व० स०] अकस्मात् या अचानक होनेवाला।

पुं० मंत्र का पहला शब्द या प्रतीक।

एक-पाद--वि० [व० स०] लँगड़ा। एक टँगा।

पुं० १. शिव। २. विष्णु।

एकपास*--अव्य० [हिं० एक+पास] पास-पास। समीप या साथ।

एक-पिंग--पुं० [व० स०] कुबेर।

एकपेचा--वि० [फ़ा०] जिसमें एक ही पेच या ऐंठन पड़ी हो।

पुं० एक प्रकार की पगड़ी (पश्चिम)।

एक-प्राण--वि० [व० स०] जो आपस में मिलकर बिलकुल एक हो गये हों।

एकफसला--वि० [फा० एकफर्दा, हिं० एक+फसल] (खेत या भूमि) जिसमें वर्ष भर में एक ही फसल उपजती हो।

एक-ब-एक--अव्य० [फा० यक-ब-यक] अकस्मात्। अचानक। सहसा।

एकबद्धी--स्त्री० [हिं० एक+बाँधना] नाव का ऐसा लंगर जिसमें केवल दो अँकुड़े हों।

वि० जिसमें एक ही बाव या रस्सी हो।

एक बारक*--अव्य० दे० 'एकबारगी'।

एकबारगी--अव्य० [फा०] १. एक ही समय में। एक ही साथ। २. अकस्मात्। अचानक। ३. निरा। बिलकुल।

एकबाल--पुं०= इक़बाल।

एक-भाव--वि० [ब० स०] १. एकनिष्ठ। २. जिनमें परस्पर समान-भाव (गुण, धर्म आदि) हों।

एक-भुक्त--वि० [ब० स०] जो दिन में एक ही बार भोजन करता हो। पुं० एक बार भोजन करने का व्रत।

एक-भूम--वि० [ब० स०] एक ही खंड या मंजिलवाला (घर या मकान)।

एक-मंजिला--वि० [हिं०] (मकान) जिसमें एक ही खंड या मंजिल हो, ऊपर दूसरा खंड न हो। एक-तल्ला।

एक-मत--वि० [ब० स०] (लोग) जो किसी विषय में एक या एक-सा मत रखते हों। एक ही तरह की राय रखनेवाले।

एक-मात्रिक--वि० [सं० एक-मात्रा+ठक्--इक] जिसमें एक ही मात्रा हो। एक मात्रावाला।

एक-मुँहा--वि० [हिं० एक+मुँह] जिसका एक ही मुँह हो। एक ही मुँह-वाला।

एक-मुख--वि० [ब० स०] १. एक ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त। २. एक ही दरवाजेवाला (मकान)।

एकमुखी (खिन्)--वि० [एक-मुख, कर्म० स०, +इनि] एक मुँहवाला। पद--एकमुखी रुद्राक्ष=ऐसा रुद्राक्ष जिसमें फाँकवाली एक ही लकीर हो।

एकमुश्त--अव्य० [फा०] (धन) जो एक ही साथ या एक ही बार किसी को दिया जाय। जैसे--सारा देन एक-मुश्त चुकाना।

एक मेक--वि० [हिं० एक] जो किसी में मिलकर उसके साथ बिलकुल एक हो गया हो।

एक-रंग--वि० [हिं० एक+रंग] १. जिसमें सब जगह एक ही रंग या वर्ण हो। एक ही रंग का। जैसे--यह कबूतर एक-रंग सफेद है। २. प्रकार, रूप आदि के विचार से, जिसमें आदि से अंत तक या ऊपर से नीचे तक कहीं कोई अंतर या भेद न हो। एक-सा। जैसे--हमारे साथ तो उनका व्यवहार सदा एक-रंग रहा है।

एक रंगा--वि० [हिं०] जो एक ही रंग का हो। एक रंगवाला। पुं० लालरंग का एक प्रकार का कपड़ा। तूल।

एक-रदन--पुं० [ब० स०] गणेश।

एक-रस--वि० [ब० स०] १. जो आदि से अंत तक एक-सा हो। बिलकुल एक ही तरह का। २. जो किसी के साथ घुल-मिलकर एक हो गया हो।

एकरसता--वि० [सं० एकरस+तल्--टाप्] एक-रस होने की अवस्था या भाव।

एक-रात्र--पुं० [ब० स०] एक ही रात में पूरा होनेवाला एक यज्ञ।

एकरार--पुं०=इकरार।

एक-रुखा--वि० [हिं० एक+फा० रुख] १. जिसका मुँह एक ही ओर हो। एक रुखवाला। एकतरफा। २. (कपड़ा, कागज आदि) जिस पर एक ही ओर बेल-बूटे आदि बने हों, और जो दूसरी ओर बिलकुल सादा हो।

एक-रूप--वि० [ब० स०] १. जिसका रूप या प्रकार सब अवस्थाओं में एक-सा रहे। समान रूपवाला। २. सदा एक-सा बना रहनेवाला। ३. विकारों आदि से रहित।

एकरूपता--स्त्री० [सं० एकरूप+तल्--टाप्] १. एक-रूप होने की अवस्था या भाव। २. सायुज्य मुक्ति। (दे०)

एकरूपी (पिन्)--वि० [सं० एक-रूप, कर्म० स०, +इनि] [स्त्री० एक-रूपिणी; भाव० एकरूपता]=एक-रूप।

एकलंगा--पुं० [हिं० एक+अलंग =पार्श्व डंड] कुश्ती का एक पेच।

एकलंगा डंड--पुं० [हिं० एक+अलंग= पार्श्व+डंड] डंड नामक कसरत का वह प्रकार जिसमें एक ही हाथ पर शरीर का सारा भार देकर झुकते और उठते हैं।

एकल*--वि० [सं० एक√ला (आदान)+क] १. जो एक ही से बना हो। २. अकेला। ३. अद्वितीय। अनुपम।

एकलया--वि० [हिं० एकल]=अकेला। क्रि० वि० एकदम से। अचानक। सहसा। उदा०--अरयं ढंकिन सरसा, उघ्घारै व नथ्थि एकलया।--चंद वरदाई।

एकलव्य--पुं० [सं०] एक निषाद जिसने द्रोणाचार्य की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर तथा उसे ही गुरु मानकर उसके सामने शस्त्राभ्यास किया था।

एकला*--वि० [सं० एकल] [स्त्री० एकली] अकेला।

एक-लिंग--वि० [ब० स०] १. (शब्द) जो सदा एक ही लिंग में प्रयुक्त होता हो। २. एकलिंगी। पुं० १. एक प्रसिद्ध शिव-लिंग जो मेवाड़ के महाराणाओं और गह-लौत राजपूतों के कुल-देवता हैं। २. कुबेर।

एकलिंगी--वि० [सं०] १. (जीव या प्राणी) जो नर या मादा में से किसी एक लिंग से युक्त हो। २. (फूल या वनस्पति) जिसमें एक ही लिंग प्रमुख रूप से काम करता हो; और दूसरा लिंग न हो अथवा अक्रिय और दबा हुआ हो। (यूनीसेक्सुअल)

एकलेसा--पुं० [?] एक प्रकार का पौधा और उसका फूल।

एकलौता--वि०=इकलौता।

एकवचन--वि० [सं० एक√वच् (कहना)+ल्युट्--अन] व्याकरण में (ऐसा शब्द या पद) जो किसी एक व्यक्ति या वस्तु का वाचक हो। (सिंगुलर)

एकवचनांत--वि० [एकवचन-अंत, ब० स०] (शब्द) जिसमें एकवचन की विभक्ति लगी हो।

एक-वर्ण--वि० [ब० स०]=एक-रंग।

एकवर्षी (षिन्)--वि० [सं० एक-वर्ष, कर्म० स०, +इनि] (पौधा) जो एक ही वर्ष तक रहता हो; और इस बीच में एक ही बार फलता-फूलता हो।

एक-वस्त्रा--वि०, स्त्री० [ब० स०, टाप्] (स्त्री) जो एक ही कपड़ा पहने हो; अर्थात् रजस्वला (जिसके लिए रजःकाल में एक ही कपड़ा पहनने का विधान है।)

एकवाँज--स्त्री० [सं० एक-वंध्या] वह स्त्री जिसे एक बच्चा होने के बाद और कोई बच्चा न हुआ हो। काक-वंध्या।

एक-वाक्य--वि० [ब० स०] (लोग) जिनका एक ही मत हो। एक-मत।

एकवाक्यता--[सं० एकवाक्य+तल्--टाप्] किसी विषय में संबद्ध लोगों का एक-मत रहना या होना। ऐकमत्य।

एकविंश--वि० [सं० एकविंशति+डट्] गिनती में इक्कीस के स्थान पर पड़नेवाला। इक्कीसवाँ।

एक-विंशति--वि०, स्त्री० [मध्य० स०]=इक्कीस।

एक-विध--वि० [ब० स०] एक ही विधि या प्रकार से रहने या होनेवाला।

एक-विलोचन--पुं० [ब० स०] १. कुबेर। २. कौआ। ३. पश्चिमोत्तर दिशा का एक देश। (बृहत्संहिता)।

एक-विवाह--पुं० [ब० स०] वह सामाजिक प्रथा या व्यवस्था जिसमें पुरुष या स्त्री को एक समय में एक ही स्त्री या पुरुष के साथ विवाह करने का अधिकार हो। (मॉनोगेमी)

एक-वृंद--पुं० [कर्म० स०] रक्त के विचार से गले में होनेवाला कफ-संबंधी एक रोग।

एक-वेणी--स्त्री० [कर्म० स०] १. सीधे-सादे ढंग से बँधा जूड़ा या चोटी। २. उक्त प्रकार का जूड़ा बाँधनेवाली स्त्री (अर्थात् विधवा या वियोगिनी)।

एक-शफ--वि० [ब० स०] (पशु) जिसका प्रत्येक खुर पूरा हो। बीच से फटा न हो। जैसे--गधा या घोड़ा।

एक-शासन--पुं० [ष० त०] ऐसा शासन जिसकी सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में हो।

एक-शेष--पुं० [ब० स०] द्वन्द्व समास का एक भेद, जिसमे दो पदो में से एक ही पद शेष या बाकी रह जाता है।

एक-श्रुत---वि० [स० त०] एक बार का सुना हुआ।

एकश्रुत-धर--वि० [ष० त०] जो एक ही बार सुनकर कोई बात (पद्य या वाक्य) पूरी तरह से याद कर ले।

एक-श्रुति--स्त्री० [ब० स०] वेद-पाठ का वह प्रकार जिसमे उदात्त-अनुदात्त आदि का विचार नही किया जाता।

एक-षष्ठि--वि० [मध्य० स०]=इकसठ।

एकसठ--वि०=इकसठ।

एक-सत्ताक--वि० [ब० स०, कप्] (राज्य या शासन) जिसमें सारी सत्ता एक ही अधिकारी के हाथ में हो। एक-तंत्री।

एक-सत्तावाद--पुं० [सं० एका-सत्ता, कर्म० स०, एकसत्ता-वाद, ष० त०] वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें सत्ता ही प्रधान वस्तु मानी गई है।

एक सदनी--वि० [सं० एक-सदन+हिं० ई प्रत्य०] (ऐसी शासन-प्रणाली) जिसमें केवल एक विधायक सभा हो। (यूनिकेमरल)

एक-समान--वि० [सं० सुप्सुपा स०] [भाव० एक समानता] एक ही तरह या प्रकार का। एक-सा। (यूनिफार्म)

एकसर*--वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] १. जिसके साथ और कोई न हो। अकेला। २. जिसमें एक ही परत या पल्ला हो।

क्रि० वि० १. एक सिरे से दूसरे सिरे तक। २. निरा। बिलकुल। ३. निरंतर। लगातार।

एकसाँ--वि० [फा०] १. किसी के तुल्य, बराबर या समान। २. सम-तल।

एक-साक्षिक--वि० [ब० स०, कप्] जिसका एक ही साक्षी (गवाह) हो; अधिक न हों।

एकसाला--वि० [फा०] जिसकी अवधि या व्याप्ति एक ही साल या वर्ष तक हो। एक वर्षी। जैसे--एक-साला पट्टा, एक-साला पेड़।

एक-सिद्धि--स्त्री० [मध्य० स०] ऐसी सिद्धि जो किसी एक ही उपाय या साधन से होती या हो सकती हो।

एकसुरा--वि० [हिं० एक+सुर=स्वर] जो बराबर एक-सा स्वर उत्पन्न करता हो; और इसीलिए जिससे मन ऊब जाय। (मॉनोटोनस)

एकसुरापन--पुं० [हिं० एक सुरा+पन] एक सुरे होने की अवस्था या भाव। (मॉनोटोनी)

एक-सूत्र--वि० [ब० स०] [भाव० एक-सूत्रता] १. जिसमें एक ही सूत्र हो। २. एक-रूप। ३. एक-साथ बँधा या लगा हुआ।

पुं० डमरू।

एकस्थ--वि० [सं० एक √स्था (ठहरना)+क] एक पर स्थित या केन्द्रित।

एक-स्व--पुं० [ष० त०] निबंधन का एक प्रकार, जिसमें किसी की निकाली या बनाई हुई नई युक्ति या वस्तु की रचना, प्रकार आदि पर उसके निर्माता को एकान्त अधिकार प्राप्त हो जाता है। (पेटेन्ट)

एकस्व-पत्र--पुं० [ष० त०] वह राजकीय अधिकार-पत्र जिसके द्वारा किसी को किसी प्रकार का एकस्व या एकाधिकार प्राप्त होता है। (लेटर्स पेटेण्ट)

एकहत्तर--वि०=इकहत्तर।

एकहत्था--वि० [हिं० एक+हाथ] १. जिसका एक ही हाथ हो, दूसरा हाथ न हो। एक हाथवाला। २. एक ही व्यक्ति या संस्था के हाथ में रहनेवाला। जिसपर किसी का एकाधिकार हो। जैसे--एक-हत्था रोजगार या व्यापार।

एकहत्थी--स्त्री० [हिं० एक+हाथ] मालखंभ की एक कसरत।

एकहरा--वि० [सं०] [स्त्री० एकहरी]= इकहरा।

एकहाज्ञ--पुं० [सं०] नृत्य का एक प्रकार।

एकांक--वि० [स० एक-अंक, ब० स०]=एकांकी।

एकांकी--वि० [सं० एकांक] (दृश्यकाव्य या नाटक) जो एक ही अंक में पूरा हो। जिसमे एक ही अंक हो।

पुं० १. दस प्रकार के रूपको में से एक। २. आजकल वह छोटा नाटक जिसमें कई दृश्यों का एक ही अंक हो। (वन-एक्ट-प्ले)

एकांग--वि० [एक-अंग, ब० स०] १. एक अंगवाला। २. जिसका कोई एक अंग नष्ट हो गया हो तथा दूसरा एक ही अंग बच रहा हो। विकलांग।

पु० १. विष्णु। २. बुध ग्रह। ३. चंदन। ४. सिर।

एकांग-घात--पु० [ब० स०] अंगघात रोग का एक प्रकार जिसमें दाहिने या बाएँ हाथ या पैर में से कोई एक अंग सुन्न और अक्रिय हो जाता है। (मॉनो-प्लेगिया)

एकांग-वध--पुं० [ष० त०] प्राचीन भारत में अपराधी को दिया जानेवाला वह दंड जिसमें उसका कोई एक अंग काट लिया जाता था।

एकांग-वात--पुं० [ब० स०] पक्षाघात। लकवा।

एकांगी--वि० [स० एकांग] १. जिसका एक ही अंग हो। एक अंगवाला। २. जिसका संबंध एक ही अंग या पक्ष से हो। एक-तरफा। एक-पक्षीय। ३. एक ही बात पर अड़ा रहनेवाला। जिद्दी। हठी।

स्त्री० एक ओषधि जो वात या रुधिर-संबंधी विकारों को दूर करनेवाली कही गई है।

एकांत--वि० [एक-अन्त, ब० स०] १. (स्थान) जो निर्जन या सूना हो। २. पूरी तरह से किसी एक ही पक्ष में रहनेवाला या किसी नियम,

निष्ठा आदि का पालन करनेवाला। एक को छोड़ और किसी ओर ध्यान न देनेवाला। जैसे—दुर्गा या शिव का एकांत भक्त।

पुं० ऐसा स्थान जहाँ कोई न हो। निर्जन स्थान।

पद-एकांत-कैवल्य——=१. एकांत-वास। २. जीवन्मुक्ति।

एकांतता——स्त्री० [सं० एकांत+तल्—टाप्] एकांत होने की अवस्था या भाव।

एकांतर——वि० [सं० एक-अंतर, व० स०] क्रमात् हर वार वीच में अगले एक को छोड़कर उसके वाद वाले स्थान पर आने या पड़नेवाला। जैसे—१, ३, ५, ७, ९ आदि या २, ४, ६, ८, १० आदि एकांतर संख्याएँ हैं।

एकांतरिक——वि० [सं० एकांतर, एक-अंतर, कर्म० स०, +ठक्—इक]=एकांतर।

एकांत-वास——पु० [स० त०] [वि० एकांतवासी] एकांत अर्थात् निर्जन स्थान में रहने की क्रिया या भाव। ऐसे स्थान में रहना जहाँ और कोई मनुष्य न वसता या न रहता हो।

विशेष——यह अपनी इच्छा से भी होता है, और दंड-स्वरूप या राजाज्ञा आदि के कारण भी।

एकांतवासी (सिन्)——वि० [सं० एकांत√वस् (वसना)+णिनि] [स्त्री० एकांतवासिनी] १. एकांत में रहनेवाला। २. एकांतवास करनेवाला।

एकांत-स्वरूप——वि० [सं० व० स०] १. जो किसी के साथ कुछ भी मिलता न हो। २. असंग। निर्लिप्त।

एकांतिक——वि०=ऐकांतिक।

एकांती (तिन्)——पु० [सं० एकांत+इनि] ऐसा भक्त, जो सवसे अलग होकर तथा निर्जन स्थान में वैठकर एकाग्र चित्त से अपने देवी या देवता का भजन करता हो।

एका——स्त्री० [सं० एक+टाप्] दुर्गा।

पुं० [हिं० एक] सव लोगों का मिलकर (किसी विषय में) एक-मत होना। एकता। (यूनिटी)।

एकाई——स्त्री०=इकाई।

एकाएक——क्रि० वि० [फा० यकायक] अकस्मात्। अचानक। सहसा।

एकाएकी†*——क्रि० वि०=एकाएक।

*वि०=एकाकी (अकेला)।

एकाकार——पुं० [सं० एक-आकार, व० स०] किसी में मिलकर इस प्रकार एक हो जाना कि आकार या स्वरूप के विचार से दोनों में कोई भेद न रह जाय।

वि० १. एक से आकार-प्रकार का। २. जो किसी में मिलकर उसी के आकार या रूप का हो गया हो। ३. कइयों के योग से जिसने एक-रूप धारण कर लिया हो।

एकाकी (किन्)——वि० [सं० एक+आकिन्] [स्त्री० एकाकिनी] जिसके साथ और कोई न हो। अकेला।

एकाक्ष——वि० [सं० एक-अक्षि, व० स०, षच्] [स्त्री० एकाक्षी] १. जिसकी एक ही आँख हो। एक आँखवाला। २. जिसकी एक ही आँख वच रही हो, दूसरी न रह गई हो। काना। ३. एक ही अक्ष पर रहने या घूमनेवाला। (यूनी-एक्सिअल)

पुं० १. शुक्राचार्य। २. कौआ।

एकाक्ष-पिंगल——पुं० [व० स०] कुवेर।

एकाक्षर——वि० [सं० एक-अक्षर, व० स०] जिसमें एक ही अक्षर हो। एक अक्षरवाला।

पुं० एक अक्षर का मंत्र 'ॐ'।

एकाक्षरी (रिन्)——वि० [सं० एकाक्षर, एक-अक्षर, कर्म० स०,+इनि] १. जिसमें एक ही अक्षर हो। एक अक्षरवाला। जैसे—एकाक्षरी मंत्र। २. जिसमें एक एक अक्षर अलग-अलग हो। प्रत्येक अक्षर के विचार से अलग-अलग रहने या होनेवाला। जैसे—एकाक्षरी कोश।

एकाक्षरी कोश——पु० [सं० व्यस्त पद] वह कोश जिसमें प्रत्येक अक्षर के अलग-अलग अर्थ दिये हों।

एकाक्ष-रुद्राक्ष——पुं० [कर्म० स०] ऐसा रुद्राक्ष जिसमें एक ही आँख या विंदी हो। एकमुखी रुद्राक्ष। (यह वहुत कम मिलता और इसी लिए शुभ माना जाता है।)

एकाक्षी——वि०=एकाक्ष।

एकाग्र——वि० [सं० एक-अग्र, व० स०] १. किसी एक ही वस्तु या विषय पर दत्तचित्त होकर पूरा ध्यान लगानेवाला। जैसे—एकाग्र दृष्टि। २. किसी में मिला या समाया हुआ।

पुं० [सं०] चित्त की पाँच अवस्थाओं या वृत्तियों में से एक, जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही वात या विषय में लगा रहता है। (योग०)।

एकाग्र-चित्त——वि० [व० स०] (व्यक्ति) जिसका चित्त या ध्यान किसी एक वात में लगा हो। जो पूरी लगन से किसी एक ही काम या वात में लीन हो।

एकाग्रता——स्त्री० [सं० एकाग्र+तल्—टाप्] एकाग्र होने की अवस्था या भाव।

एकाग्र-दृष्टि——वि० [सं० व० स०] जिसकी दृष्टि किसी एक ही चीज या वात पर लगी हो। जो टक लगाये हुए देख रहा हो।

एकाग्र-भूमि——स्त्री० [कर्म० स०] चित्त की वह अवस्था, जिसमें वह किसी एक वात पर जम या लगकर तद्रूप हो जाता है। (योग)

एकात्म (न्)——वि० [सं० एक-आत्मन्, व० स०] जो आत्मा की दृष्टि या विचार से किसी के साथ मिलकर विलकुल एक हो गया हो। एक-प्राण। अभिन्न।

एकात्मता——स्त्री० [सं० एकात्मन्+तल्—टाप्] १. एकात्म होने की अवस्था या भाव। एकता। २. दो वस्तुओं का आपस मे इस प्रकार मिलना कि एक वस्तु दूसरी को आत्मसात् कर ले। ३. गुण, रूप आदि के विचार से किसी के इतना समान होना कि दोनों एक दूसरे सी जान पड़ें। (आइडेण्टिटी)

एकात्म-वाद——पुं० [ष० त०] यह वाद या सिद्धान्त कि आत्मा या जीव और व्रह्म वस्तुतः एक ही हैं। अद्वैतवाद।

एकादश——वि०, पुं० [सं० एक-दशन्, मध्य० सं०] ग्यारह। गिनती मे दस से एक ऊपर।

एकादशाह——पुं० [सं० एकादश-अहन्, द्विगुस०] किसी के मरने के ग्यारहवें दिन किया जानेवाला कर्मकांड का कृत्य।

एकादशी——स्त्री० [सं० एकादश+ङीप्] प्रत्येक चांद्रमास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, जिस दिन उपवास या व्रत का विधान है।

एकाध—वि० [हिं० एक+आध] जो गिनती में बहुत ही कम हो; अर्थात् एक या दो से अधिक न हो।

एकाधिकार—पुं० [सं० एक-अधिकार, ष० त०] किसी क्षेत्र या बात में अथवा किसी वस्तु के व्यवसाय या व्यापार पर होनेवाला किसी व्यक्ति या संस्था का ऐसा पूरा-पूरा अधिकार या नियंत्रण जिसमें और कोई साझीदार न हो। (मानोपोली)

एकाधिप—पुं० [सं० एक-अधिप, कर्म० स०] १. सारे देश पर एकच्छत्र राज्य करनेवाला। राजा। २. अकेला या एकमात्र स्वामी।

एकाधिपत्य—पुं० [सं० एक–आधिपत्य ष० त०] १. किसी कार्य या देश आदि पर होनेवाला किसी एक व्यक्ति का पूर्ण अधिकार या आधिपत्य। २. दे० 'एकाधिकार'।

एकायन—वि० [सं० एक–अयन, ब० स०] एकाग्र।
पुं० १. ऐसा एक ही मार्ग जिसे छोड़कर और कोई मार्ग न हो। २. नीति-शास्त्र।

एकार—पुं० [सं० ए+कार] 'ए' अक्षर और उसकी ध्वनि।
क्रि० वि० [सं० एक+हिं० वार] एक साथ। एकदम से। उदा०—आणँद उमै हुआ एकार।—प्रिथीराज।

एकार्गल—पुं० [सं० एक-अर्गल, कर्म० स०, ब० स० वा] ज्योतिष में, खर्जूरवेध नामक योग।

एकार्थ—वि० [सं० एक–अर्थ, ब० स०] १. एक ही अर्थवाला। २. (दो या कई शब्द) जिनके अर्थ एक-से हों।

एकार्थक—वि० [सं० एक-अर्थ, ब० स०, कप्] (शब्द या पद) जिनके अर्थ एक से ही या समान हों। समानार्थक। (इक्विवेलेन्ट) जैसे—आदित्य और सूर्य एकार्थक है।

एकावली—स्त्री० [सं० एका-आवली, कर्म० स०] १. एक ही लड़ की मोतियों की लंबी माला या हार। २. साहित्य में एक अलंकार जिसमें उत्तरोत्तर एक के बाद एक बात की स्थापन या निषेध करते हुए बातों की लड़ी बाँध दी जाती है। जैसे—कूर्म पर वराह, वराह पर शेषनाग, शेषनाग पर पृथ्वी, पृथ्वी पर हिमालय, हिमालय पर शिव और शिव की जटा पर गंगा विराजती है। ३. पंकजवाटिका नामक छंद का एक नाम।

एकाह—वि० [सं० एक–अहन्, कर्म० स०, टच्] एक ही दिन में पूरा होनेवाला (कार्य)। जैसे—रामायण का एकाह पाठ, एकाह यज्ञ आदि।

एकाहार—पुं० [सं० एक–आहार, कर्म० स०] १. कोई एक चीज ही खाकर रहने की प्रतिज्ञा या व्रत। २. दिन-रात में एक ही बार भोजन करने का नियम या व्रत।

एकाहारी (रिन्)—पुं० [सं० एकाहार+इनि] १. वह जो एकाहार के व्रत का पालन करता हो। २. वह जो दिन-रात में एक ही बार भोजन करता हो।

एकाहिक—वि० [सं० एकाह+ठन्–इक] =एकाह।

एकीकरण—पुं० [सं० एक+च्वि√कृ (करना)+ल्युट्–अन] [भू० कृ० एकीकृत] १. दो या दो से अधिक वस्तुओं, संस्थाओं आदि को मिलाकर एक करने की क्रिया या भाव। (एमलगमेशन) २. दो या दो से अधिक व्यक्तियों, दलों आदि में एकता या मतैक्य स्थापित करना। (युनिफिकेशन)

एकीकृत—भू० कृ० [सं० एक+च्वि√कृ+क्त] किसी और या औरों के साथ मिलाकर एक किया हुआ।

एकीभाव—पुं० [सं० एक+च्वि√भू (होना)+घञ्] [वि० एकीभूत] १. दो या कई वस्तुओं, विचारों आदि का मिलकर एक होना। २. दो या कई बातों अथवा वस्तुओं का एक ही प्रकार या रूप का होना।

एकीभूत—भू० कृ० [सं० एक+च्वि√भू+क्त] १. जो किसी के साथ मिलकर एक हो गया हो। २. इकट्ठा या एकत्र किया हुआ।

एकीय-राष्ट्र—पुं० [सं० एक+छ–ईय, एकीय-राष्ट्र कर्म० स०] वह राष्ट्र जिसके सब प्रदेश या राज्य एक ही केन्द्र से शासित होते हों। एक ही शासन के अधीन होनेवाला राष्ट्र। (यूनिटेरय स्टेट)

एकेंद्रिय—पुं० [सं० एक-इंद्रिय, मध्य० स०] उचित और अनुचित सभी प्रकार की बातों या विषयों से इंद्रियों को हटाकर उन्हें अपने मन की ओर प्रवृत्त करना। [ब० स०] (सां० शा०)। २. ऐसा जीव या प्राणी जिसकी एक ही इंद्रिय (अर्थात् त्वचा) होती है। जैसे—केंचुआ, जोंक आदि।

एकेश्वरवाद—पुं० [सं० एक-ईश्वर, कर्म० स०, एकेश्वर-वाद, ष० त०] यह सिद्धांत कि इस जगत का कर्त्ता-धर्त्ता और सबका उपास्य एक ही ईश्वर है। (इसमें देवी-देवताओं आदि का अस्तित्व नहीं माना जाता।)

एकेश्वरवादी (दिन्)—वि० [सं० एकेश्वरवाद+इनि] एकेश्वरवाद संबंधी।
पुं० वह जो एकेश्वरवाद के सिद्धान्त मानता हो और उनका अनुयायी हो।

एकोतरसो—वि० [सं० एकोत्तरशत] एक सौ एक।

एकोतरा—पुं० [सं० एकोत्तर] एक रुपया सैकड़े का ब्याज या सूद।
वि०=एक-तरा (ज्वर)।

एकोद्दिष्ट (श्राद्ध)—पुं० [सं० एक-उद्दिष्ट, ब० स०] प्रतिवर्ष किया जानेवाला एक प्रकार का श्राद्ध।

एकौंझा—वि०=अकेला।

एक्का—वि० [हिं० एक] १. गणना आदि के विचार से जो एक हो या एक से संबद्ध हो। २. जिसके साथ और कोई न हो। अकेला।
पद—एक्का-दुक्का=जो या तो अकेला हो या जिसके साथ कोई एक और हो। अकेला-दुकेला।
पुं० १. दो पहियोंवाली एक प्रकार की छोटी सवारी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा जोता जाता है। २. ताश का वह पत्ता जिसमें एक ही बूटी होती है। ३. ऐसा पशु जो अकेला ही रहता या विचरता हो, झुंड में न रहता हो। ४. वह वीर या सैनिक जो अकेला ही कई विरोधियों के साथ लड़ता हो। ५. बाँह पर पहनने का एक गहना जिसमें एक ही नग जड़ा होता है। ६. ऐसा दीपाधार जिसमें एक ही बत्ती जलती हो। ७. ब्रह्म जो अकेला ही सारी सृष्टि का कर्त्ता माना गया है।

एक्कावान—पुं० [हिं० एक्का+वान् (प्रत्य०)] [भाव० एक्कावानी] वह जो एक्का चलाता या हाँकता हो।

एक्कावानी—स्त्री० [हिं० एक्कावान] एक्का हाँकने का काम या पारिश्रमिक।

एक्की—स्त्री० [हिं० एक] एक बैल से चलनेवाली छोटी गाड़ी। २. इक्का (ताश का पत्ता)।

एक्यानवे--वि०=इक्यानवे।

एक्यावन--वि०= इक्यावन।

एख़नी--स्त्री०=यखनी।

एजेंट--पु० [अं०] वह आदमी जो किसी की ओर से उसका प्रतिनिधि बनकर काम करता हो। अभिकर्त्ता (देखें)।

एजेंसी--स्त्री० [अं०] अभिकर्त्ता का पद, भाव या स्थान। अभिकरण (देखें)।

एड़--स्त्री० [सं० एड्रूक=हड्डी या हड्डी की तरह कड़ा] १.पैर के नीचे का पिछला उभरा हुआ भाग। एड़ी। २. घोड़े पर सवारी करने के समय पैर के उक्त भाग से उसके पेट पर किया जानेवाला आघात।

मुहा०--एड़ करना=(क) एड़ लगाना (दे०)। (ख) कहीं से शीघ्रतापूर्वक चल देना। एड़ देना या लगाना=(क) घोड़े को आगे बढ़ाने या तेज चलाने के लिए उसके पेट पर एड़ से आघात करना। (ख) किसी को आगे बढ़ने के लिए उत्कट रूप से प्रवृत्त या प्रेरित करना।

एड़ी--स्त्री० [सं० एड्रूक= हड्डी] पैर में, सबसे नीचे और पीछेवाला कुछ उभरा या फूला हुआ भाग।

मुहा०--एड़ियाँ घिसना या रगड़ना=(क) बहुत अधिक दौड़-धूप करना। (ख) बहुत दिनो तक बीमार पड़े रहना।

पद--एड़ी से चोटी तक=(क) आदि से अंत तक (ख) सिर से पैर तक।

एढ़ा*--वि० [सं० आढ्य] बलवान। बली। (डिं०)

एण--पु० [स०√इ (गति)+ण] [स्त्री०(एणी] वह हिरन जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है। कस्तूरी मृग।

एण-तिलक--पु० [ब० स०] चंद्रमा।

एणभृत्--पु० [स० एण√भृ (भरण करना)+क्विप्, तुक् आगम] चंद्रमा।

एण-लांछन--पु० [ब० स०] चंद्रमा।

एत--पु० [स० आदित्य] सूर्य। उदा०--एत-वंस वर बरन जुग सेतु जगत सब जान।--तुलसी।

सर्व०=एता (इतना)।

अव्य० [स० अतः] इस प्रकार। इस तरह।

एतक़ाद--पु० [अ०] विश्वास। भरोसा।

एतत्--सर्व० [स० एतद्] यह।

एतद्--सर्व० [स०√इ (गति)+अदि, तुक् आगम] यह।

एतदर्थ--अव्य०[स० एतद्-अर्थ, प० त०] १.इसके लिए। इसके हेतु। २.इस कारण। इसलिए।

वि०= तदर्थ।

एतदवधि--अव्य० [सं० एतद्-अवधि, ब० स०] इस अवधि या सीमा तक। यहाँ तक।

एतद्देशीय--वि० [स० एतद्-देश, कर्म० स०,+छ-ईय] इस देश से संबंध रखनेवाला। इस देश मे होनेवाला।

एतद्द्वारा--पद [स० एतद्-द्वारा, प० त०] १.इसके द्वारा। २.इस (पत्र, लेख्य आदि) के द्वारा। (हियर बाई)

एतना†--सर्व०,वि०= इतना।

एतबार--पु० [अ०] विश्वास। प्रतीति।

मुहा०--(किसी का) एतबार उठना या जाना=(क) पहले से बना आया भरोसा या विश्वास न रह जाना। (ख) जमी हुई साख नष्ट होना।

एतराज--पुं० [अ०] आपत्ति।

एतवार--पुं० [सं० आदित्यवार] शनिवार के बाद और सोमवार के पहले का दिन। रविवार।

एतवारी--वि० [हि० एतवार] १.एतवार-संबंधी। २.एतवार को होने या किया जानेवाला।

स्त्री० वह पैसे जो पुराने समय में गुरु, मौलवी, शिक्षक आदि को रविवार के दिन भेंट स्वरूप दिये जाते थे।

एता†--वि०=इतना।

एतादृश--वि० [सं० एतद्+√दृश् (देखना)+कञ्]·[स्त्री० एतादृशी] इसके समान। इस जैसा। ऐसा।

क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसे।

एतावत्--वि० [स० एतद्+वतुप्] इतना।

एतिक†--वि०=इतना।

एन†--पुं० १.=एण (मृग)। २.=अयन (घर)।

एनस्--पुं० [सं०√इ (गति)+असुन, नुट् आगम] १.पाप। २.अपराध।

एनी--पुं० [देश०] दक्षिण भारत का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

एम--वि० [सं० एवं] इस प्रकार का। ऐसा। (डिं०) उदा०--फागल दीधो एमकहि।--प्रिथीराज।

एमन--पुं० [सं० यवन; फा० यमन] संपूर्ण जाति का एक राग जो कल्याण और केदारा के योग से बना है।

वि०=ऐसा।

एम्हर--क्रि० वि०=इधर। उदा०--शिव एम्हर सुनि जाऊ।--मै० लो० गीत।

एरंग--पुं० [सं० आ√ईर् (गति)+अंगच्] एक प्रकार की मछली का नाम।

एरंड--पुं० [सं० आ√ईर्+अंडच्] रेड़। रेंड़ी।

एरंड खरबूजा--पुं०=पपीता।

एरंड-बीज--पुं० [प० त०] रेंड़ी के दाने या बीज।

एरंडा--स्त्री० [सं० एरंड+टाप्] पिप्पली।

एरंडी--स्त्री० [सं० एरंड+ङीप्] एक प्रकार की झाड़ी जिसकी छाल, पत्ती, लकड़ी आदि चमड़ा सिझाने के काम आती है।

एरफेर†--पुं०= हेर-फेर।

एरा--प्रत्य० [पु० हिं० केर=का] एक प्रत्यय जो कुछ विशेषणों और संज्ञाओं में लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है--(क) मात्रा या मान की अधिकता। जैसे--घन से घनेरा, बहुत से बहुतेरा। (ख) किसी प्रकार के कार्य, व्यवहार आदि का कर्त्ता। जैसे--लाख से लखेरा, साँप से सँपेरा।

एराक--पु०=इराक।

एराकी--वि० [फा०]=इराकी।

एराफ--पुं० [अ० एराफ= स्वर्ग और नरक के बीच का लोक] जहाज का पेंदा। (लश०)

एरे--अव्य० [अनु०] अरे! हे! (संबोधन)

एलंग--पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

एल--पुं० [अ०] गज की तरह की एक पाश्चात्य नाप जो ४५ इंच की

होती है। इससे मखमल, कपड़े साटन आदि बढ़िया विलायती रेशमी नापे जाते थे।

एलक†--पुं० [सं०√इल् (फेंकना)+ण्वुल्--अक, एलक= भेड़, भेड़ के चमड़े का बना हुआ] आटा चालने की एक प्रकार की चलनी।

एलकेशी--स्त्री० [एला+केश] एक प्रकार का बैंगन जो बंगाल में होता है।

एलची--पुं० [तु०] १.प्राचीन काल में, वह दूत जो एक राजा का संदेश दूसरे राजा तक पहुँचाता था। दूत। २.राजदूत।

एलचीगरी--पुं० [फा०] एलची का काम या पद। दूतकर्म।

एलवालु--पुं० [सं० एल√वल् (छिपाना)+उण्] कपित्थ की सुगंधित छाल।

एला--स्त्री० [सं०√इल् (फेंकना)+अच्--टाप्, मला० एलाम्] १. इलायची। २.वन-रीठा। ३.शुद्ध राग का एक भेद।

पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता, जिसकी पत्तियों की चटनी बनती है।

प्रत्य० एक प्रत्यय जो कुछ संज्ञाओं में लग कर निम्नलिखित अर्थ देता है--(क) छोटा बच्चा। जैसे--कौआ से कवेला। (ख) कोई छोटा रूप। जैसे--आधा से अधेला।

एलान--पुं० [सं० एला√नी (ढोना)+ड ?] नारंगी।

पुं०=ऐलान (घोषणा)।

एली*--स्त्री० [सं० एलीका] इलायची। उदा०--इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।--नंददास।

एलीका--स्त्री० [सं० आ√इल्+ईकन्--टाप्] छोटी इलायची।

एलुआ--पुं० [सं० एलुक] एक प्रकार का पौधा जिसके कई अंग दवा के काम आते हैं। मुसब्बर।

एलुक--पुं० [सं०√इल्+उक] १.एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। २. एलुआ।

एलुवा--पुं०=एलुआ।

एल्क--पुं० [अं०] यूरप और एशिया में पाया जानेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा बारहसिंघा।

एल्यूमिनम--पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध मटमैली धातु जिससे बरतन और यंत्रों के पुरजे आदि बनते हैं।

एवं--क्रि० वि० [सं० एवम्] ऐसा ही। इसी प्रकार।

अव्य० ऐसे ही। और भी।

पद--एवमस्तु (देखें)।

एवंभूत--वि० [सं० एवम्√भू (होना)+क्त] इस प्रकार का। ऐसा।

एवंविध--वि० [सं० एवम्-विधा, ब० स०] इस प्रकार का। ऐसा।

क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसे।

एव--अव्य० [सं०√इ (गति)+वन्] १. ही। २.भी।

एवज--पुं० [अ०] १.प्रतिफल। २.प्रतिकार। ३.परिवर्त्तन। ४.दूसरे की जगह अस्थायी रूप से काम करनेवाला। स्थानापन्न।

एवजी--पुं० [फा० एवज] किसी के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करनेवाला व्यक्ति। स्थानापन्न कार्यकर्त्ता।

एवम्--अव्य० [सं०√इ (जाना)+वमु] इस प्रकार। ऐसे।

एवमस्तु--पद [सं० एवम् अस्तु, व्यस्त पद] १.इस प्रकार। २. इसी प्रकार। ३.ऐसा ही हो। (आशीर्वाद और शुभ कामना-सूचक)

एशिया--पुं० [इब्रा० असु=पूर्व दिशा] पूर्वी गोलार्द्ध का एक प्रसिद्ध महाद्वीप जिसके अंतर्गत भारत, चीन, जापान आदि देश हैं।

एशियाई--वि० [यू० एशिया] एशिया का। एशिया-संबंधी।

पुं० एशिया का निवासी।

एषणा--स्त्री० [सं० इष् (इच्छा करना)+युच्--अन टाप्] १. अभिलाषा। इच्छा। चाह। २.याचना।

एषणी (णिन्)--वि० [सं० एषणा+इनि, दीर्घ, नलोप] इच्छा करने या चाहनेवाला।

एषणीय--वि० [सं०√इष् (इच्छा करना)+अनीयर्] जिसके संबंध में या जिसकी एषणा की जा सके या की जाय।

एषा--स्त्री० [सं०√इष् (इच्छा करना)+अ--टाप्] इच्छा। चाह।

एषी (षिन्)--वि० [सं०√इष् (इच्छा करना)+णिनि] चाहनेवाला।

एष्य--वि० [सं०√इष् (इच्छा करना)+ण्यत्] जिसकी इच्छा की जा सके या की जाय।

एह*--सर्व० [सं० एषः] यह। उदा०--सुनु अजहुँ सिखावन एह।--तुलसी।

एहड़ा--वि० [हिं० ऐसा] ऐसा। (पश्चिम) उदा०--माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप।--प्रिथीराज।

एहतमाम--पुं० [अ०] प्रबंध। व्यवस्था।

एहतियात--स्त्री० [अ०] १.चौकसी। सावधानी। २.परहेज। बचाव।

एहतियाती--वि० [अ०] एहतियात संबंधी। एहतियात के रूप में या सावधानी के विचार से किया जानेवाला। जैसे--एहतियाती कार्रवाई।

एहवा--वि० [हिं० एह=यह] [स्त्री० एहवी] इस प्रकार का। ऐसा। उदा०--एक उजाथर कलहि एहवा।--प्रिथीराज।

क्रि० वि०--इस प्रकार। ऐसे। (डिं०)

एहसान--पुं० [अ०] १.उपकार। २.कृतज्ञता।

एहसान फरामोश--वि० [अ०+फा०] किसी का किया हुआ एहसान या उपकार भूल जाने अथवा न माननेवाला। कृतघ्न।

एहसानमंद--वि० [अ०] एहसान या उपकार माननेवाला। कृतज्ञ।

एहिं--सर्व० [हिं० एह=यह] इसने। उदा०--पालव बैठि पेड़ एहिं काटा।--तुलसी।

एहि*--सर्व० [हिं० एह=यह] पूर्वी हिंदी मे 'एह' (यह) का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। उदा०--सदा राम एहि प्रान समाना।--तुलसी।

एहीं--सर्व० [हिं० एह=यह] इसी। उदा०--लोचन लाहु लेहु छिन एही।--तुलसी।

एही--सर्व० [हिं० एह= यह] इस ही। इसी। उदा०--रीझि बूझी सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार......।--तुलसी।

एहू--सर्व० [हिं० एह=यह] १.यही। २.यह भी।

एहो--अव्य० [हिं० हे+हो] हे। ऐ। (संबोधन)

ऐ

ऐ--नागरी वर्ण-माला का नवाँ स्वर वर्ण। भाषा विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से यह अर्द्ध संवृत दीर्घ पञ्च स्वर है।

अव्यय के रूप मे इसका व्यवहार संबोधन के लिए 'हे' के अर्थ मे होता है। जैसे--ऐ लड़के। कविता में यह 'इतना' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

जैसे—ऐ परि=इतने पर भी। अवधी में यह शब्दों के अंत में लगकर 'को' विभक्ति का अर्थ देता है। जैसे—बावै नासै दासी।

एँ--अव्य० [अनु०] १.कोई वात अच्छी तरह से न सुनने पर उसे फिर से सुनने की उत्सुकता का सूचक एक अव्यय। जैसे—एँ! क्या कहा? २.एक आश्चर्य सूचक अव्यय। जैसे—एँ! वह भी चला गया?

ऐंगुद--वि० [सं० इंगुदी+अण्] इंगुदी संबंधी।
पुं० इंगुदी की गिरी।

ऐंच--स्त्री० [हिं० ऐंचना] ऐंचने या खींचने की क्रिया या भाव।

ऐंचना--स० [हिं० खींचना] १.जोर से या वलपूर्वक कोई चीज अपनी ओर खीचना या लाना। २.लाक्षणिक अर्थ में, किसी का ऋण या जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना। ३.भूसी अलग करने के लिए अनाज फटकना।

ऐंचा-ताना--वि० [हिं० ऐंचना+तानना] (व्यक्ति) जिसकी आँख की पुतली का रुख तो एक ओर होता हो, परन्तु जो देखता किसी दूसरी ओर हो। भेंगा।

ऐंचातानी--स्त्री०=खींच-तान (दे०)।

ऐंची--स्त्री० [हिं० ऐंचना] चंडू या मदक पीने की नली। वंवू।

ऐंचीला--वि० [हिं० ऐंच+इला० (प्रत्य०)] जो खींचा या ताना जा सकता हो। लचीला।

ऐंछना*--स० [सं० उञ्छन=चुनना] १.झाड़ना। साफ करना। २.(वालों में) कंघी करना। ३.पोंछना।

ऐंठ--स्त्री० [हिं० ऐंठना] १.ऐंठने की क्रिया या भाव। खिचाव। २.वल। मरोड़। ३.प्रकृति या स्वभाव, व्यवहार आदि में, दिखाई देनेवाला दुराग्रह या हठ। अकड़। ठसक। ४.अपनी वात पर अड़े रहने की प्रवृत्ति। ५.घमंड। शेखी। ६.दे० 'ऐंठन'।

ऐंठन--स्त्री० [हिं० ऐंठना] १.ऐंठने की अवस्था या भाव। २.ऐंठने के कारण पड़ा हुआ वल। मरोड़। ३.वात आदि के प्रकोप के कारण शरीर के किसी अंग में रह-रहकर पड़नेवाला वल या होनेवाला मरोड़ जिसमें वह अंग पीड़ादायक रूप में ऐंठता या ऐंठता हुआ जान पड़ता है। (स्पाज्म) जैसे—पेट, पैर या हाथ में होनेवाली ऐंठन।

ऐंठना--अ० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन] १.किसी वस्तु में वल पड़ने के कारण उसका किसी ओर मुड़ना या संकुचित होना। २.संकुचित होना। खिचना। तनना। ३.अकड़, दुराग्रह या शेखी दिखलाना। इतराना।

मुहा०--ऐंठी वेंठी करना=(क) अकड़ दिखलाना। (ख) वहाना करना। ४.वात-विकार आदि के कारण शरीर के किसी अंग में रह-रहकर पीड़ा-कारक रूप में वल पड़ना या मरोड़ होना। जैसे—पेट या हाथ-पैर ऐंठना।

मुहा०--(किसी का) ऐंठ जाना या ऐंठकर रह जाना=वहुत ही विवशता की दशा में और चटपट मर जाना। जैसे—एक कै आते ही वह ऐंठ गया।

स० १.किसी चीज में वल डालना। कोई चीज वलपूर्वक दवाते हुए घुमाना। मरोडना। (ट्विस्ट) जैसे—कान ऐंठना। २.धूर्त्तता या धोखे से किसी से कोई चीज लेना या धन वसूल करना। झँसना। जैसे—वह इसी तरह सवसे रुपए ऐंठकर ले जाता है।

ऐंठवाना--स० [हिं० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठने का काम दूसरे से कराना। किसी को कुछ ऐंठने में प्रवृत्त करना।

ऐंठा--पुं० [हिं० ऐंठना] १.एक उपकरण जिससे रस्सी-रस्से आदि वटते हैं। २.घोंघा।
वि० प्रायः ऐंठ या शेखी दिखानेवाला।

ऐंठाना--स० [ऐंठना का प्रे० रूप]=ऐंठवाना।
अ०=ऐंठना।

ऐंठू--वि० [हिं० ऐंठना] १.वहुत ऐंठ (घमंड) दिखानेवाला। २.दूसरों का माल ऐंठनेवाला।

ऐंड़--पुं० [हिं० ऐंठ] १.ऐंडने की क्रिया या भाव। २.घमंड। शेखी। ३.पानी का भवँर।
वि० निकम्मा या व्यर्थ।

ऐंड़दार--वि० [हिं० ऐंड़+फा० दार] १.ऐंठ या अकड़ दिखलानेवाला। २.छैला। वाँका। ३.घुमावदार। ४.तिरछा।

ऐंड़ना--अ० [हिं० ऐंठना] १.ऐंठना। वल खाना। २.ऐंठ दिखलाना। इतराना। ३.अँगड़ाई लेना।
स० उमेठना या घुमाना। वल देना।

ऐंड़ वेंड़*--वि०=अंड-वंड।

ऐंड़ा--वि० [हिं० ऐंड़ना] [स्त्री० ऐंड़ी] १.अकड़ा या ऐंठा हुआ।
मुहा०-- अंग ऐंड़ा करना=ऐंठ दिखलाना।
२.टेढ़ा या तिरछा। ३.घमंड करनेवाला।
पुं० [?] १.वटखरा। २.सेंध।

ऐंड़ाना--अ० [हिं० ऐंड़ना] १.अकड़ दिखलाना। इतराना। २.अँगड़ाई लेना। अँगड़ाना।

ऐंड़ा-वेंड़ा--वि० [सं० अकांड-विकांड] १.वेढंगे या विकृत आकारवाला। २.टेढ़ा-तिरछा। ३.अंड-वंड। ऊट-पटाँग।

ऐंदव--वि० [सं० इन्दु+अण्] इंदु या चंद्रमा-संवधी।
पुं० मृगशिरा नक्षत्र (जिसके देवता चंद्रमा माने जाते हैं)।

ऐंदवी--स्त्री० [सं० ऐंदव-ङीप्] सोमराजी लता।

ऐंद्र--वि० [सं० इंद्र+अण्] इंद्र-संवंधी। इंद्र का।
पुं० १.इंद्र का पुत्र। २.ज्येष्ठा नक्षत्र।

ऐंद्रजाल--पुं० [सं० इंद्रजाल+अण्]=इंद्रजाल।

ऐंद्रजालिक--वि० [सं० इंद्रजाल+ठक्-इक] इंद्रजाल के खेल करनेवाला। जादूगर।

ऐंद्रशिर--पुं० [सं० इंद्रशिर+अण्] एक प्रकार का हाथी।

ऐंद्रि--पुं० [सं० इंद्र+इञ्] १.इंद्र का पुत्र। २.जयंत।

ऐंद्रिय--वि० [सं० इंद्रिय+अण्] १.जिसका संवंध इंद्रियों से हो। २.जो इंद्रियों का विषय हो। जो इंद्रियों के द्वारा जाना या ग्रहण किया जा सके।

ऐंद्रियक--वि० [सं० इंद्रिय+वुञ्-अक] १.इंद्रिय-संवंधी। २.जिसका ज्ञान इंद्रियों से हो।

ऐंद्रियता--स्त्री० [सं० ऐंद्रिय+तल्-टाप्] १.ऐंद्रिय होने की अवस्था या भाव। २.इंद्रियों के द्वारा किया जानेवाला भोग। ३.इंद्रियों से प्राप्त होनेवाला सुख। ४.इंद्रियों की वासना की पूर्त्ति।

ऐंद्री--स्त्री० [सं० इंद्र+अण्-ङीप्] १.इंद्र की पत्नी। इंद्राणी। शची। २.दुर्गा। ३.इंद्र वारुणी लता। ४.एला। इलायची।

ऐंधन--वि० [सं० इंधन+अण्] १.ईंधन संबंधी। २.ईंधन से उत्पन्न (अग्नि)।
पुं० सूर्य।

ऐ--पुं० [सं० आ√इ (गति)+विच्] .शिव।
अव्य० [सं० अयि] पुकारने या बुलाने का एक संबोधन-सूचक अव्यय। जैसे--ऐ दोस्त।

ऐक*--पुं० [?] गहराई की थाह। उदा०--सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा।--तुलसी।

ऐकपत्य--पुं० [सं० एकपति+ष्यञ्] १.एक पति होने की अवस्था या भाव। पूरा स्वामित्व। २.एक तंत्री शासन।

ऐकभाव्य--पुं० [सं० एकभाव+ष्यञ्] १.एक-भाव होने की अवस्था या भाव। २.विचार, स्वभाव आदि की एकता।

ऐकमत्य--पुं० [सं० एकमत+ष्यञ्] किसी विचार या विषय के संबंध में सब लोगों का एक मत या एक राय होना। मत या विचारों की एकता।

ऐकांतिक--वि० [सं० एकांत+ठञ्–इक] १.एकांत में होने या उससे संबंध रखनेवाला। २.विशेष रूप से किसी एक ही विषय, व्यक्ति आदि से संबंध रखनेवाला। (एक्सक्लूसिव) ३. अलग और निराला। (क्व०) ४.दे० 'एकदेशीय'।

ऐकांतिक-धर्म--पुं० [सं० कर्म० स०] प्राचीन भारत का एक धार्मिक समुदाय जो मोक्ष प्राप्ति के लिए ईश्वर को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न तथा संतुष्ट करना आवश्यक समझता था। वासुदेव धर्म इसी का विकसित रूप था।

ऐकाग्र--वि० [सं० एकाग्र+अण्]=एकाग्र।

ऐकात्म्य--पुं० [सं० एकात्मन्+ष्यञ्]=एकात्मता।

ऐकाधिकरण्य--पुं० [सं० एकाधिकरण+ष्यञ्] एक ही विषय से संबद्ध होने की अवस्था या भाव।

ऐकार--पुं० [सं० एकार+अण्] १.'ऐ' स्वर या उसकी ध्वनि। २.'ऐ' की सूचक मात्रा।

ऐकार्थ्य--पुं० [सं० एकार्थ+ष्यञ्] १.एक ही अर्थ होने की अवस्था या भाव। २.उद्देश्य, प्रयोजन आदि एक या एक समान होने की अवस्था या भाव।

ऐकाहिक--वि० [सं० एकाह+ठक्–इक] १.एक दिन में होनेवाला। २.जिसका जीवन केवल एक दिन का हो। एक ही दिन तक जीवित रहनेवाला।

ऐक्षव--वि० [सं० इक्षु+अण्] १.ईख या ईख के रस से बना हुआ। २. ईख संबंधी।
पुं० १.ईख से बनी हुई चीज। जैसे--गुड़, चीनी, मिसरी आदि। २.ईख के रस से बनी हुई शराब।

ऐक्ष्वाक--वि० [सं० इक्ष्वाकु+अण्] इक्ष्वाकु संबंधी।
पुं० १.इक्ष्वाकु का वंशज। २.इक्ष्वाकुओं द्वारा शासित एक प्राचीन देश।

ऐक्ष्वाकु--पुं०=इक्ष्वाकु।

ऐक्य--पुं० [सं० एक+ष्यञ्] एक होने की अवस्था या भाव। एकता।

ऐगुन†--पुं०=अवगुण।

ऐच्छिक--वि० [सं० इच्छा+ठक्–इक] १.(कार्य) जिसका करना अपनी इच्छा पर निर्भर हो। स्वेच्छा से किया जानेवाला। २.वैकल्पिक। ३.मनमाना।

ऐंठा--वि० [सं० उच्छिष्ट] १.खाकर छोड़ा हुआ। जूठा। २.जिसका उपभोग किया जा चुका हो। उदा०--ऐंठी आतम सम अधम।--प्रिथीराज।

ऐंठित*--वि०=ऐंठा।

ऐड--वि० [सं० एड वा इडा+अण्] १.भेड़ संबंधी। २. स्फूर्त्तिदायक।
पुं० पुरुखा।

ऐडक--वि० [सं० एडक+अण्] भेड़-संबंधी।
पुं० भेड़ की एक जाति।

ऐडविल--पुं० [सं० इडविला+अण्] कुबेर।

ऐण*--पुं० [सं० अयन] घर। उदा०--भोला की डर भागियी, अंत न पहुड़ै ऐण।--कविराजा सूर्यमल।

ऐणिक--पुं० [सं० एण+ठक्–इक] १.हिरन संबंधी। २.हिरन से उत्पन्न होनेवाला। जैसे--ऊन, खाल आदि।
पुं० हिरन का शिकार करनेवाला शिकारी।

ऐत*--वि०=इतना।

ऐतरेय--पुं० [सं० इतरा+ढक्–एय] १.ऋग्वेद का एक ब्राह्मण ग्रंथ। २.एक आरण्यक ग्रंथ ७ जिसमें वानप्रस्थों के लिए नियम आदि लिखे हुए हैं।

ऐतरेयी (यिन्)--वि० [सं० ऐतरेय+इनि] ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करनेवाला।

ऐतिहासिक--वि०[सं० इतिहास+ठक्–इक]१.इतिहास-संबंधी।जैसे--ऐतिहासिक दृष्टिकोण। २.(घटना या व्यक्ति) जिसका वर्णन इतिहास में हुआ हो। (हिस्टारिकल)
पुं०=इतिहासज्ञ।

ऐतिह्य--वि० [सं० इतिह+ञ्य] १.जो परंपरा से चला आ रहा है। २.जिसे बहुत दिनों से सुनते चले आ रहे हों। अनुश्रुत।

ऐतिह्य-प्रमाण--पुं० [सं० कर्म० स०] ऐसा प्रमाण जो इसी आधार पर प्रामाणिक माना जाता हो कि वह लोक में बहुत दिनों से अनुश्रुति के रूप में इसी प्रकार चला आ रहा है।

ऐन--वि० [अ०] १.जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही। बिलकुल ठीक। सटीक। जैसे--आप ऐन मौके पर आये। २.पूरा पूरा और यथेष्ट। जैसे--यह आपकी ऐन मेहरबानी है।
*स्त्री० [अ० मि० सं० अयन] आँख। नेत्र।
*पुं०=अयन।

ऐनक--स्त्री० [अ० ऐन=आँख] चश्मा (आँखों पर लगाने का)।

ऐनस--पुं० [सं० एनस्+अण्] पाप।

ऐना†--पुं०=आइना (दर्पण)।

ऐनि--पुं० [सं० इन+इञ्] सूर्य के पुत्र का नाम।

ऐन्य--वि० [सं० इन+ण्य] सूर्य-संबंधी। सूर्य का।

ऐपन--पुं० [सं० लेपन] चावल और हल्दी को एक साथ पीसकर बनाया हुआ गीला लेप जो देव-पूजा के समय मांगलिक द्रव्य के रूप में घड़े आदि पर थापा या लगाया जाता है।

ऐब--पुं० [अ०] [वि० ऐबी] १.दोष।

मुहा०--ऐब निकालना=(क) यह कहना कि इसमें अमुक दोप है। (ख) दोप दूर करना। ऐब लगाना=कलंक लगाना। लांछित करना। २.अवगुण। बुराई। ३.निंदनीय और बुरा काम।

ऐबारा†--पु० [हिं० बार (द्वार)=दरवाजा] १.भेड़-बकरियों के रखने का बाड़ा। २.जंगल में पशुओं को घेर कर रखने के लिए बनाया हुआ बाड़ा।

ऐबी--वि० [अ०] १.जिसमें किसी प्रकार का ऐब अर्थात् अवगुण या दोप हो। २.जिसमे कई ऐब हों। ऐबों से युक्त। ३.विकलांग, विशेपतः काना। ४.नटखट। दुष्ट।

ऐभ--वि० [स० इभ+अण्] इभ अर्थात् हाथी-संबंधी।

ऐया†--स्त्री० [स० आर्या, प्रा० अज्जा] १.बड़ी-बूढ़ी स्त्री के लिए संबोधन। २.दादी। ३.माँ।

प्रत्य० [देश०] एक प्रत्यय जो कुछ क्रियाओं के अंत में लग कर उनके कर्त्ता का भाव प्रकट करता है। जैसे—कहना से कहवैया, नाचना से नचवैया आदि।

ऐयार--पु० [अ०] [स्त्री० ऐयारा, भाव० ऐयारी] १.सब कामों और बातों मे बहुत ही कुशल तथा चतुर व्यक्ति। २.तिलस्मी कथा-कहानियो में उक्त गुणों से युक्त ऐसा व्यक्ति जो अनेक प्रकार के वेश बदलकर बड़े-बड़े दुष्कर कार्य पूरे कर सकता हो।

ऐयारी--स्त्री० [अ०] १.ऐयार होने की अवस्था या भाव। चालाकी। २.ऐयार का कार्य अथवा उसका पेशा।

वि० ऐयारों या उनके कामों से संबंध रखनेवाला। जैसे—ऐयारी उपन्यास।

ऐयाश--पु० [अ०] १.ऐसा व्यक्ति जो प्रायः ऐश-मौज या सुख-भोग में लिप्त रहता हो। २.बहुत बड़ा विपयी या वेश्यागामी।

ऐयाशी--स्त्री० [अ०] १.ऐयाश होने की अवस्था या भाव। २.सदा भोग-विलास मे लिप्त रहना। बहुत अधिक विपयासक्ति।

ऐराक--पु०=इराक।

ऐराकी--वि०=इराकी।

ऐरा-ग़ैरा--वि०[अ० ग़ैर] १.जिससे किसी प्रकार का परिचय, मेल-जोल या संबंध न हो। २ इधर-उधर का और तुच्छ या निकृष्ट।

ऐरापति*--पु०=ऐरावत (हाथी)।

ऐराव--पु० [अ०] १.शतरंज के खेल में वह स्थिति जब बादशाह को किश्त से बचाने के लिए उसके आगे कोई मोहरा रखा जाता है। अरदब। २.इस प्रकार रखा जानेवाला मोहरा।

ऐरालू--पु० [सं० इरा=जल+आलु] एक प्रकार की पहाड़ी ककड़ी।

ऐरावण--पु० [सं० इरा-वन, ब० स०,+अण्] ऐरावत।

ऐरावत--पु० [सं० इरा+मतुप्, इरावत्+अण्] [स्त्री० ऐरावती] १.बिजली से चमकता हुआ बादल। २.इंद्र-धनुप। ३.इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा मे स्थित माना गया है। ४.वज्र। ५.नारंगी। ६.संपूर्ण जाति का एक राग।

ऐरावती--स्त्री० [सं० ऐरावत+ङीप्] १. ऐरावत की हथिनी। २. बिजली। ३.रावी नदी का पुराना नाम। ४.ब्रह्म देश या बरमा की एक प्रसिद्ध नदी। ५. वटपत्री नाम का पौधा। ६. चंद्रवीथी का एक भाग जिसमें श्लेपा, पुष्प और पुनर्वसु नक्षत्र पड़ते है।

ऐरेय--पुं० [सं० इरा+ठक्-एय] एक प्रकार की पुरानी मदिरा।

ऐल--पुं० [सं० इला+अण्] इला का पुत्र, पुरुरवा।

पुं० [?] १.अहिला (बाढ़)। २. अधिकता। प्रचुरता। ३. कोलाहल। हो-हल्ला। ४. आंदोलन। खलबली। उदा०—अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति-ऐल।—आनंदघन।

५.अलई नाम की कँटीली लता।

ऐलक--स्त्री०=एलक (चलनी)।

ऐलवालुक--पु० [सं० एलवालुक+अण्] एक गंध द्रव्य।

ऐलविल--पुं० [सं० इलविला+अण्] १.कुवेर। २.मंगल ग्रह।

ऐलान--पु० [अ०] घोपणा।

ऐश--पुं० [अ०] १.आराम। चैन। २.भोग-विलास।

ऐशान--वि० [सं० ईशान+अण्] १.शिव-संबंधी। २.ईशान कोण-संबंधी।

ऐशानी--वि० [सं० ऐशान+ङीप्] ईशान कोण संबंधी।

ऐशिक--वि० [सं० ईश+ठक्-इक] १.ईश-संबंधी। २.शिव-संबंधी।

ऐश्य--पुं० [सं० ईश+ष्यञ्] १.ईशता। ईशत्व। २.प्रभुत्व। ३.शक्ति। सामर्थ्य।

ऐश्वर--वि० [सं० ईश्वर+अण्] १.ईश्वरीय। २.राजकीय। ३.शक्ति-शाली। ४.शिव-संबंधी।

ऐश्वर्य--पुं० [सं० ईश्वर+ष्यञ्] १.ईश्वर होने की अवस्था या भाव। ईश्वरता। २.आधिपत्य। प्रभुत्व। ३.धन-संपत्ति। वैभव। ४.अणिमा, महिमा आदि आठों सिद्धियों द्वारा प्राप्त होनेवाली अलौकिक या ईश्वरीय शक्ति।

ऐश्वर्यवान्--वि० [सं० ऐश्वर्य+मतुप्] [स्त्री० ऐश्वर्यवती] वैभवशाली। संपन्न।

ऐषीक--पु० [सं० इषीक+अण्] त्वष्टा देवता का मंत्र पढ़कर चलाया जानेवाला एक प्राचीन शस्त्र।

ऐष्टक--वि० [सं० इष्टक+अण्] १.इष्ट या ईंटों से संबंध रखनेवाला। २.ईंटो का बना हुआ (घर या मकान)।

ऐष्टिक--वि० [सं० इष्टि+ठक्-इक] इष्टि-यज्ञ से संबंध रखनेवाला।

ऐस*--वि०= ऐसा।

ऐसन--वि०= ऐसा (अवधी)।

ऐसा--वि० [सं० सदृश] [स्त्री० ऐसी] इस प्रकार का।

पद--ऐसा-वैसा=(क) साधारण। (ख) तुच्छ या हीन। ऐसी की तैसी=जैसी की तैसी (दे०)।

ऐसे--क्रि० वि० [हिं० ऐसा] इस ढंग, प्रकार या रूप से।

पद--ऐसे में=(क) ऐसी अवस्था में। (ख) ऐसे समय में।

ऐसो*--वि०=ऐसा (ब्रज)।

ऐहलौकिक--वि० [सं० इहलोक+ठक्-इक]=ऐहिक।

ऐहिक--वि० [सं० इह+ठक्-इक] इस लोक में होनेवाला या उससे संबंध रखनेवाला।

ओ

ओ--हिंदी वर्णमाला का दसवाँ स्वर वर्ण। भाषा-विज्ञान और व्याकरण

की दृष्टि से यह अर्द्ध संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। पूर्वी हिंदी में यह 'वह' का वाचक है। जैसे—ओकर=उसका।
पुं० [सं०] ब्रह्मा।
ओं—पुं० [सं०] परब्रह्म का वाचक शब्द। प्रणव मंत्र।
ओंइछना†—स० [सं० अंचन=पूजा करना] निछावर करना। वारना।
ओंकना*—अ० [अनु०] १. खिचना। २. दूर होना। हटना। उदा०—कांदि उठी कमला मन सोचति मोसों कहा हरि को मन ओंको।—सुदामा। अ० दे० 'ओकना'।
ओंकार—पु० [सं० ओं+कार] १. 'ओं' शब्द जो परब्रह्म का वाचक है। २. सोहन चिड़िया नामक पक्षी। ३. उक्त पक्षी का पर जो शोभा के लिए टोपी, पगड़ी आदि में लगाया जाता है।
ओंकार-नाथ—पुं० [कर्म० स०] शिव के बारह लिंगों से में एक।
ओंगन†—पुं० [हिं० ओंगना] गाड़ी की धुरी में दिया जानेवाला तेल।
ओंगना—स० [सं० अञ्जन] गाड़ी की धुरी में तेल देना।
ओंगा—पुं० [सं० अपामार्ग] चिचड़ा। लटजीरा।
ओंठ—पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] मुँह के ऊपर और नीचे के दोनों बाहरी मांसल परत या भाग। होंठ।
मुहा०—**ओंठ काटना या चबाना**=अत्यधिक क्रुद्ध होने पर अपने आपको प्रतिकार करने से बलपूर्वक रोकना। **ओंठ चाटना**= कोई स्वादिष्ट वस्तु खाने के समय ओंठों पर जीभ फेरते हुए उसका और अधिक स्वाद लेना। **ओंठ फड़कना**= क्रोध प्रकट करने या कुछ कहने के लिए आतुरता के लक्षण के रूप में ओंठों का रह-रहकर हिलना। **ओंठों में कहना**=बहुत मंद स्वर में कुछ कहना। बहुत धीरे-धीरे कहना या बोलना। **ओंठों में मुस्कराना**=बहुत धीरे-धीरे हँसना। **ओंठ हिलना**=बहुत देर तक मौन रहने के बाद मुँह से कोई बात निकलना। **ओंठ हिलाना**=बहुत कठिनता से कुछ कहना या बोलना। **कोई बात ओंठों पर होना**=विस्मृत बात फिर से स्मरण होने पर मुँह से निकलने को होना।
ओंड़ा*—वि० [स० कुंडी] गहरा।
पुं० १. गड्ढा। २. सेंध।
ओंहट†—क्रि० वि० [हिं० ओट का पू० रूप] १. ओट या आड़ में। २. दूर।
ओआ†—पुं० [हिं० चोआ=गड्ढा ?] हाथी फँसाने के लिए बनाया हुआ गड्ढा।
ओई—पु० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।
†वि०=वही।
ओऊ—वि० [हिं० ओ=वह+ऊ+भी] वह भी। उदा०—जद्यपि मीन पतंग हीन-मति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ।—तुलसी।
ओक—पु० [सं०√उच् (समूह)+क, नि० सिद्धि] १. निवास स्थान। रहने की जगह। २. घर। मकान। ३. आश्रय। ठिकाना। उदा०—ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ. . .।—तुलसी। ४. ढेर। राशि। ५. ग्रहों, नक्षत्रों आदि का समूह।
स्त्री० [अनु०] कै। मिचली।
पुं० [हिं० बूक] अंजलि। अंजुली।
ओकण—पु० [सं०] १. खटमल। २. जूं।
ओकना—[अनु०] १. ओ ओ करते हुए कै या वमन करना। २. भैंस आदि की तरह चिल्लाना।
ओक-पति—पु० [प० त०] १. सूर्य। २. चंद्रमा।
ओकाई—स्त्री० [हिं० ओकना] १. ओकने या ओकाने की क्रिया भाव। २. कै करने को जी चाहना। जी मिचलाना। मितली होना। ३. कै। वमन।
ओकार—पुं० [सं० ओ+कार] १. 'ओ' स्वर वर्ण या उसकी ध्वनि। २. 'ओ' की सूचक मात्रा।
ओकारांत—वि० [सं० ओकार-अंत, ब० स०] (शब्द) जिसके अंत में 'ओ' की मात्रा हो।
ओकी†—स्त्री०=ओकाई।
ओखद†—पु०=औषध।
ओखरी†—स्त्री०=ऊखल।
ओखल†—पुं०=ऊखल।
पुं० [सं० ऊषर] परती भूमि।
ओखली—स्त्री० दे० 'ऊखल'।
ओखा—वि० [हिं० चोखा का अनु०] १. जो चोखा या तेज न हो। साधारण या हलका। जैसे—ओखा वार। २. जिसकी धार तेज न हो। जैसे—ओखा चाकू। ३. रूखा-सूखा। ४. कठिन। विकट। ५. जो खरा या शुद्ध न हो। मिलावटवाला। ६. (वस्त्र) जिसकी बुनावट ठस न हो। झीना। ७. जो पास-पास या सटा न हो। विरल।
पु० [स० ओख= वारण ?] बहाना। मिस।
ओखाण (न)*—पु०=उपाख्यान।
ओखापन—पु० [हिं० ओखा] ओखे होने की अवस्था या भाव।
ओग*—पुं० [हिं० उगहना] कर, चन्दे आदि के रूप मे उगाहा हुआ धन। उगाही।
ओगरना†—अ० [सं० अवगरण] १. पानी आदि का जमीन में से धीरे-धीरे निकलना। रसना। २. किसी पात्र से जल आदि टपकना।
स० दे० 'ओगारना'।
ओगल—पु० [सं० ऊषर] १. ऊसर या परती भूमि। २. एक प्रकार का कुआँ।
ओगारना†—स० [हिं० ओगरना का स० रूप] १. टपकाना। २. जल या कोई तरल वस्तु उलीचकर बाहर निकालना या फेंकना। ३. कुएँ को साफ करने के लिए गंदा पानी बाहर निकालना।
ओघ—पु० [सं०√उच् (समूह)+घञ्, पृषो० सिद्धि] १. ढेर। राशि। समूह। २. घनता। घनत्व। ३. पानी की धार या बहाव। ४. सांख्य के अनुसार एक प्रकार की तुष्टि। काल-तुष्टि।
ओछ†—वि०=ओछा।
ओछना—स०=ओंइछना।
ओछा—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० उच्छ] [स्त्री० ओछी] १. तुच्छ। हीन। २. जिसमें गंभीरता या प्रौढता न हो। जिसमें छिछलापन हो। जैसे—ओछा व्यक्ति, ओछी बात-चीत। ३. जिसमें शालीनता या शिष्टता का अभाव हो। जैसे—ओछा आचरण या व्यवहार। ४. साधारण या हलका। जैसे—ओछा वार।
ओछाई—स्त्री०=ओछापन।
ओछापन—पुं० [हिं० ओछा+पन (प्रत्य०)] ओछे होने की अवस्था या

भाव।

ओज (स्)--पुं० [सं०√उब्ज् (सीधा होना)+असुन्, बलोप] [वि० ओजस्वी, ओजित] १. वह सक्रिय शारीरिक शक्ति जिसके आधार पर प्राणी जीवित रहते है तथा परिश्रम, साहस आदि के काम करते है। (विगर)

विशेष--वैद्यक के अनुसार, यह शरीर में बननेवाले रसों का भाग है। २. साहित्य मे, कविता, भाषण, लेख आदि का वह गुण जिससे सुननेवाले के चित्त मे आवेश, साहस आदि का संचार होता है। ३. उजाला। प्रकाश।

ओजना†--स० [सं० अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झन, हिं० ओझल] १. (भार) अपने ऊपर लेना। अंगीकरण या धारण करना। २. (आघात या वार) अपने ऊपर लेना। सहना।

ओजस्विता--स्त्री० [सं०√ओजस्विन्+तल्--टाप्] ओजस्वी होने की अवस्था, गुण या भाव।

ओजस्वी (स्विन्)--वि० [सं० ओजस्+विनि] [स्त्री० ओजस्विनी] १. (व्यक्ति) जिसमे ओज हो। शक्तिशाली। २. (तत्त्व) जिसमें ओज हो। प्रभावशाली। जैसे--ओजस्वी भाषण। ३. तेजपूर्ण। जैसे--ओजस्वी आचरण।

ओजित--वि० [सं०√ओज्+क्त] १. ओज से युक्त किया हुआ। २. ओज-युक्त।

ओझ--पु० [स० उदर, पु० हिं० ओझ] १. पेट की थैली। २. आँत। पु० [सं० उपाध्याय, हिं० ओझा] उपाध्याय, पंडित या विद्वान्। उदा०--तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि, सुनु ओझ।--तुलसी।

ओझइती†--स्त्री० [हिं० ओझा] ओझा का कार्य, पद या व्यवसाय।

ओझर--पु० [सं० उदर, पु० हिं० ओदर, ओझर] [स्त्री० अल्प० ओझरी] १. पेट की थैली। पेट। २. आँत। अँतड़ी।

ओझरी†--स्त्री०=ओझर। उदा०--ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे...।--तुलसी।

ओझल--वि० [प्रा० ओरुज्झन] १. जो आँखों से दूर या परे अर्थात् अदृश्य हो गया हो। २. छिपा या लुका हुआ।

*पुं० आड़। ओट।

ओझा--पु० [सं० उपाध्याय, प्रा० उवज्झाअ] [स्त्री० ओझाइन] १. सरयूपारी, मैथिल, गुजराती आदि ब्राह्मणों की एक जाति या वर्ग का अल्ल। २. भूत-प्रेत आदि झाड़नेवाला व्यक्ति। सयाना।

ओझाई--स्त्री० [हिं० ओझा] १. ओझा का काम, पद या वृत्ति। २. भूत-प्रेत आदि झाड़ने का काम या वृत्ति।

ओझैती*--स्त्री०=ओझाई।

ओट--स्त्री० [स० ओढ= पास लाया हुआ] १. ऐसी आड़ या रोक जिसके पीछे कोई छिप सके। ऐसी वस्तु जिसके पीछे छिपने से सामनेवाला व्यक्ति देख न सके।

पद--ओट में= दूसरो से छिपकर।

मुहा०--ओट में शिकार खेलना=आड़ में रहकर आघात या वार करना।

२. रक्षा या शरण का स्थान। पनाह। उदा०--नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल...।--तुलसी।

ओटना--स० [सं० आवर्त्तन, पा० आवट्टन] १. कपास या रूई को इस प्रकार ओटनी में से निकालना कि उसके बिनौले अलग हो जायँ। २. अपनी ही बात बराबर कहते या दोहराते चलना।

†अ० [हिं० ओट= आड़] आड़ या ओट में होना। छिपना।

स० = ओड़ना।

ओटनी--स्त्री० [हिं० ओटना] लकड़ी या लोहे का वह उपकरण या चरखी जिससे कपास में के बिनौले अलग किये जाते हे।

ओट-पाई†--स्त्री०=औटपाव।

ओट-पाय†--पुं०= औटपाव।

ओटा--पुं० [हिं० ओट] १. ओट या आड़ करने के लिए खड़ी की हुई दीवार। २. आड़। ओट। उदा०--घर घर सावन खेलै अहेरा पायर ओटा लेइ।--कबीर। ३. चक्की के पास का वह स्थान जहाँ बैठकर चक्की पीसी जाती है। ४. दरवाजे के दोनों ओर बैठने के लिए छोटे चबूतरे। ५. सुनारों का एक औजार।

ओटी--स्त्री० =ओटनी (चरखी)।

ओठँगना--अ०=ओठंगना।

ओठंगना--अ० [सं० अवस्तम्भ] टेक लगाकर बैठना या खड़े होना। उठंगना।

ओठ†--पुं०= ओंठ।

ओड़--पुं० [सं० ओड्र] वह जो गधों, बैलों आदि पर बोझ लादकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने का काम करता हो।

†पुं०=ओट (आड़)।

ओड़क†--पुं० [सं० ओड+कन्]=ओडव।

ओड़चा--पुं०=ओलचा।

ओड़न--पुं० [हिं० ओड़ना=माल ढोना] १. गधों, बैलों आदि पर माल ढोने का काम या व्यवसाय। २. इस प्रकार ढोकर पहुँचाया जानेवाला माल या सामान। उदा०--ओड़न मेरा राम नाम, मैं रामहि का बनिजारा हो।--कबीर।

पुं० [हिं० ओड़ना=रोकना या सहना] १. ओड़ने की क्रिया या भाव। २. आघात या वार ओड़ने या रोकनेवाली चीज। जैसे--ढाल, फरी आदि।

ओड़ना--स० [हिं० ओट?] १. आघात या प्रहार रोकने या सहने के लिए बीच में कोई आड़ या ओट खड़ी करना या कोई चीज आगे बढ़ाना। उदा०--(क) एक कुसल अति ओड़न खाँड़े।--तुलसी। (ख) ओड़िअहि हाथ असिनहु के घाए।--तुलसी। २. कुछ माँगने या लेने के लिए झोली, कपड़े का पल्ला या हाथ आगे बढ़ाना या फैलाना। उदा०--तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए।--तुलसी। ३. दे० 'ओढ़ना'।

स० [हिं० ओड़] गधे, बैल आदि पर माल लादकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना।

ओड़व--पुं० [सं०] ऐसा राग जिसमें केवल पाँच स्वर लगते हों, कोई दो स्वर न लगते हों। (संगीत)

ओड़व-षाड़व--पुं० [सं०] ऐसा राग जिसके आरोह में पाँच और अवरोह में छः स्वर लगते हैं। (संगीत)

ओड़व-संपूर्ण--पुं० [सं०] ऐसा राग जिसके आरोह में पाँच और अवरोह में सातों स्वर लगते हों। (संगीत)

ओड़ा--पुं० [?] १. गड्ढा। २. सेंध। ३. बड़ा टोकरा। खाँचा।
पुं० [हिं० ओत] कमी। न्यूनता।
मुहा०--(किसी चीज का) ओड़ा पड़ना=दुर्लभ या दुष्प्राप्य होना।

ओडिका--स्त्री० [सं० ओडी+क--टाप्, ह्रस्व] ऐसा धान जो बिना बोये आपसे आप उत्पन्न होता हो।

ओडी--स्त्री० [सं०√उ (शब्द करना)+ड--ङीप्]=ओडिका।

ओड्र--पुं० [सं० आ√उन्द् (भिगोना)+रक्, द=ड] १. उड़ीसा प्रदेश का प्राचीन नाम। २. उक्त प्रदेश का निवासी। ३. अड़हुल का पेड़ और उसका फूल।

ओढ़--वि० [सं० आ√वह् (ढोना)+क] जो पास लाया गया हो।

ओढ़न†--पुं० [हिं० ओढ़ना] ओढ़ने की चादर। ओढना। उदा०--लोभइ ओढ़न लोभइ डासन।--तुलसी।

ओढ़ना--स० [सं० उपवेष्टन, प्रा० ओवेड्ढन] १. अंग या अंगों को अच्छी तरह से ढकने के लिए शरीर पर कोई वस्त्र रखना या लपेटना।
मुहा०--(किसी का) ओढ़ना उतारना=अपमानित करना। ओढ़ना ओढ़ाना=विधवा स्त्री को पत्नी बनाना। विधवा के साथ विवाह करना।
२. धारण करना। पहनना। उदा०--तुलसी पट उतरे ओढ़िहौ...।--तुलसी।
पुं० तन ढकने के लिए ऊपर से डाला जानेवाला वस्त्र।
पद--ओढ़ना-बिछौना=ऐसा काम या बात जिसमें कोई मनुष्य प्रायः लगा रहे अथवा जिसके बिना उसका निर्वाह न हो सके।
३. किसी प्रकार का उत्तरदायित्व, देन, भार आदि अपने ऊपर या जिम्मे लेना। जैसे--(क) किसी का ऋण अपने ऊपर ओढ़ना। (ख) कोई बात अपने ऊपर ओढ़ना।

ओढ़नी--स्त्री० [हिं० ओढ़ना] स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र। जनानी चादर या दुपट्टा।
मुहा०--(किसी से) ओढ़नी बदलना=दो स्त्रियों का आपस में एक दूसरे की ओढ़नी लेकर बहनापा स्थापित करना। (स्त्रियाँ)

ओढ़र†*--पुं० [हिं० ओड़ या ओट?] बहाना। मिस।

ओढ़वाना--स० [हिं० 'ओढ़ाना' का प्रे० रूप] ओढ़ाने का काम किसी से कराना।

ओढ़ाना--स० [हिं० ओढ़ना] १. किसी के ऊपर वस्त्र डालना या रखना। २. किसी के चारों ओर वस्त्र आदि लपेटना। ३. ढांकना।

ओढ़ौनी†--स्त्री० [हिं० ओढ़ना] १. ओढ़ने या ओढ़ाने की क्रिया या भाव। २. स्त्रियों की चादर। ओढ़नी।

ओत--पुं० [सं० आ√वे (बुनना)+क्त] कपड़े की बुनावट में वे सूत जो लंबाई के बल लगे रहते हैं। ताना।
वि० तारों, सूतों आदि से गुथा या बुना हुआ।
पद--ओत-प्रोत (देखें)।
†स्त्री० [हिं० अ=नहीं+होत=होने की अवस्था] १. न होने की अवस्था या भाव। अभाव। २. कमी। न्यूनता।
†स्त्री० [सं० अवाप्ति?] १. प्राप्ति। लाभ। २. आराम। चैन। सुख। उदा०--होत न विसोक, ओत पावै न मनाक सो...।--तुलसी।

ओत-प्रोत--वि० [द्व० स०] १. उसी तरह आपस में खूब गुथा या मिला-जुला जिस तरह कपड़े में ताने और बाने के सूत मिले रहते हैं। २. खूब भरा हुआ। लबालब।
पुं० १. कपड़े में का ताना और बाना। २. ऐसा वैवाहिक संबंध जिसमें एक पक्ष का एक लड़का और एक लड़की दूसरे पक्ष की एक लड़की और एक लड़के से ब्याही जाती है। जिस घर में कन्या देना, उसी घर से एक कन्या लेना। बदले का विवाह।

ओता†--वि० [हिं० उतना] [स्त्री० ओती] उतना।
*वि० [हिं० ओत] १. जो किसी की तुलना में कम या न्यून हो। २. अनुपयुक्त। ३. असमर्थ। उदा०--नासिक मोती जगमग जोती। कहती तौ मति होती ओती।--नंददास।

ओत्ता†--वि०=उतना।

ओदंतपुरी--स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी जहाँ बौद्धों का प्रसिद्ध विद्या-केंद्र था।

ओद†--पुं० [सं० उद=जल] नमी। गीलापन।
वि० [सं० आर्द्र] गीला। तर।

ओदक--पुं० [सं० औदक] जल में रहनेवाला जन्तु या प्राणी।

ओदन--पुं० [सं०√उन्द्+युच्--अन, नलोप] १. पका हुआ चावल। २. बादल। मेघ।

ओदनी--स्त्री० [देश०] बरियारा या बीजबंध नाम का पौधा।

ओदर--पुं०=उदर।

ओदरना†--अ०=उदरना (विदीर्ण होना)।
स०=उदारना (विदीर्ण करना)।
अ० [?] उदास होना। (पश्चिम)

ओदा--वि० [सं० आर्द्र] १. गीला। २. तर। नम।

ओदारना†--स० [सं० अवदारण वा उद्दारण] १. विदीर्ण करना। फाड़ना। २. छिन्न-भिन्न या नष्ट-भ्रष्ट करना।

ओध--पुं० [सं० ऊधस्] थन।

ओधना--स० [सं० वेधन] वेधना। छेद करना।
अ० वेधा जाना। छिदना।
स० [सं० आबद्ध] १. किसी काम में लगना। उदा०--निज निज काज पाइ सिख ओधे।--तुलसी। २. कोई काम करने के लिए उतारू या तत्पर होना। जैसे--युद्ध ओधना।
स० [सं० अवधि] अवधि नियत करना।

ओधा†--पुं० [सं० अवधान?] १. अधिकारी। २. मालिक। स्वामी।

ओनंत*--वि० [सं० अनुन्नत] १. जो उन्नत न हो। २. झुका हुआ। नत। उदा०--भई ओनंत फूलि भरि साखा।--जायसी।

ओनचन†--स्त्री०=उनचन।

ओनचना†--स०=उनचना।

ओनवना†--अ०=उनवना।
अ०=उमड़ना।

ओनहना†--अ०=उनवना।

ओना†--पुं० [सं० उद्गमन, प्रा० उगवन] तालाब में से पानी निकलने का मार्ग। निकास।

ओनाड़*--वि० [सं० अनार्य?] जोरावर। बलवान (डिं०)

ओनाना†--अ० [सं० उन्नयन] किसी ओर उठना या लगना। किसी

ओर प्रवृत्त होना।
स० किसी ओर लगाना या प्रवृत्त करना।
स०=उनाना (बुनवाना)।
ओनामासी—स्त्री० [सं० ओं नमः सिद्धम्] १. बालकों को कराये जाने-वाले अक्षर-ज्ञान का आरम्भ। अक्षरारंभ। २. आरंभ। शुरू।
ओप—स्त्री० [हिं० ओपना] १. आभा। चमक। दीप्ति। २. मुख (विशेषतया स्त्रियों के मुख) की शोभा या सुन्दरता।
ओपची—पुं० [हिं० ओप+ची (प्रत्य०)] जिसके शरीर पर कवच, झिलिम आदि चमकता हो। कवचधारी। योद्धा।
ओपति—स्त्री०=उत्पत्ति।
ओपना—स० [सं० आवपन] ओप से युक्त करना। चमकाना। दीप्त करना।
अ०=चमकना।
अ० युक्त होना। उदा०—हरि रस-ओपी गोपी ये सबै तियनि ते न्यारी।—नंददास।
ओपनि*—स्त्री०= ओप।
ओपनी—स्त्री० [हिं० ओप] १. पत्थर का वह टुकड़ा जिससे रगड़कर कटार, तलवार आदि चमकाई जाती है। २. अकीक या यशव पत्थर का वह टुकड़ा जिससे रगड़कर चित्र आदि पर का सोना या चाँदी चमकाते हैं। वट्टी। मोहरा। (वर्निशर)
ओपित—भू० कृ० [हिं० ओप] ओप से युक्त किया हुआ। चमकाया हुआ।
ओपी—वि० [हिं० ओप] जिसमें ओप हो। चमकता हुआ।
ओफ—अव्य० [अनु०] मानसिक व्यथा या शारीरिक पीड़ा सूचित करने-वाला एक अव्यय।
ओबरी†—स्त्री० [सं० विवर] १. छोटा घर। २. कोठरी।
ओम्—पुं० [स०√अव् (रक्षण आदि)+मन्, नि० सिद्धि] भारतीय आर्यों का प्रणव मंत्र। ओंकार।
ओरंग*—पुं०=औरंग।
ओरंगोटंग—पुं० [मला० ओरंग= मनुष्य+ऊटन=वन] एक प्रकार का वनमानुष जो जावा, सुमात्रा, बोरनियो आदि द्वीपों में होता है।
ओर—स्त्री० [सं० अवार=किनारा] १. किसी वस्तु, स्थान अथवा किसी कल्पित बिन्दु आदि के दाहिने या बाये, ऊपर या नीचे का कोई निर्दिष्ट क्षेत्र या विस्तार। दिशा। तरफ। जैसे—इस ओर गंगा और उस ओर यमुना है। २. दो विभिन्न दलों, पक्षों, विचारधाराओं आदि में से कोई एक पक्ष। जैसे—आपको किसी की ओर तो होना ही पड़ेगा।
मुहा०—ओर निवाहना=अपने पक्ष या शरण में आये हुए व्यक्ति का पूरा-पूरा साथ देना और हर तरह से उसकी रक्षा तथा सहायता करना।
पुं० १. छोर। सिरा। २. अंत। समाप्ति।
ओरती*—स्त्री०=ओलती।
ओरना—अ०, स०=ओराना।
ओरमना†—अ० [सं० अवलंबन] झूलना। लटकना।
ओरमा—स्त्री० [हिं० ओरमना] कपड़े की आँवट या सिरे पर होनेवाली एक प्रकार की मिलाई।
ओरमाना—स०=लटकाना।
ओरवना†—अ० [हिं० ओरमना]=ओराना।
ओरहना†—पुं०=उलाहना। (पूरब)।
ओरहरा†—पुं०=होरहा।
ओराँव—पुं० [?] एक प्राचीन जाति जो चंपारन, पलामू, राँची आदि के आस-पास रहती थी।
स्त्री० उक्त जन-जाति की बोली या विभाषा।
ओरा*—पुं०= ओला। उदा०—गरहिं गात जिमि आतप ओरे।—तुलसी।
ओराना—अ० [हिं० ओर=अंत+आना (प्रत्य०)] १. ओर या सिरे पर आना। २. समाप्ति के लगभग होना। ३. व्यय होते-होते समाप्त होना। खतम हो जाना। ४. पशुओं का गर्भकाल समाप्ति पर होना और प्रसव काल समीप आना।
स० १. ओर या सिरे पर लाना। २. समाप्त करना।
ओराहना†—पुं०=उलाहना।
ओरिया—स्त्री० [हिं० ओर=सिरा] वह लकड़ी जो ताना तनते समय खूँटी के पास गाड़ी जाती है।
†स्त्री०=ओलती।
ओरी†—स्त्री० [हिं० ओर =सिरा] छप्पर का वह किनारा या सिरा जहाँ से वर्षा का जल नीचे गिरता है।
†स्त्री०=ओर (तरफ)। उदा०—बंस बखान करै दोउ ओरी।—तुलसी।
ओरौता†—वि० [हिं० ओर+औता (प्रत्य०)] १. जिसका अंत या समाप्ति होने को हो। २. जो प्रायः अंत या समाप्ति के समय होता हो। अंतिम सिरे पर होनेवाला।
ओरौती†—स्त्री०=ओलती (ओरी)।
ओर्रा†—पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा बाँस जिसकी ऊँचाई १२० फुट तक होती है।
ओलंदेज—पुं० [अं० हालैण्ड] [वि० ओलंदेजी] हालैण्ड देश का नागरिक या निवासी। हालैण्ड-वासी।
ओलंदेजी—वि० [ओलंदेज] हालैण्ड देश में होने या उससे संबंध रखनेवाला।
स्त्री० हालैण्ड की भाषा।
ओलंब (ा)†—पुं० [सं० उपालंभ] उलाहना।
ओलंभा—पुं०=ओलंबा (उलाहना)।
ओल—पुं० [सं० आ√उन्द्+क नलोप पृषो०] सूरन। जिमीकंद।
वि० गीला। तर।
पुं० [सं० ओढ़=पास लाया हुआ] १. गोद। २. आड़। ओट। ३. शरण। उदा०—सूरदास ताको डर काको हरि गिरधर के ओले।—सूर। ४. किसी वस्तु या प्राणी का किसी दूसरे व्यक्ति के पास जमानत के रूप में तब तक के लिए रखा रहना जब तक उस दूसरे व्यक्ति को कुछ रुपया न मिले अथवा उसकी कोई शर्त्त पूरी न की जाय। (होस्टेज)। ५. उक्त प्रकार से जमानत में रहनेवाला व्यक्ति या वस्तु। उदा०—चितै चितै हरि चारु विलोकनि मानौं माँगत है मन ओल।—सूर। ६. विरह या वियोग की दशा में आनेवाली याद या होनेवाली स्मृति। उदा०—परम सनेही राम की निति ओलूँरी आवै।—मीराँ। ७. बहाना। मिस।

ओलक—पुं० [हिं० ओल] आड़। ओट। उदा०—फिर कैसे वह साँवरों आँखिन ओलक होय।—विक्रम सतसई।

ओलगना—अ०=अलगना (अलग दूर या होना)।

ओलगिया—पुं० [हिं० अलग] वह जो दूसरों से अलग होकर या दूर हट कर रहे।

ओलचा—पुं० [हिं० उलचना] वह दौरी या वरतन जिससे खेत में का पानी उलीच कर बाहर फेंकते या बाहर का पानी खेत में भरते हैं। हाथा।

ओलची—स्त्री० [सं० आलु] आलू-बालू नाम का फल।

ओलती—स्त्री० [हिं० ओलमना] ढलुवाँ छप्पर का वह किनारा या सिरा जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। ओरी।

ओलना—स० [हिं० ओल=आड़] आड़, ओट या परदा करना। २. आड़ बना या लगाकर आक्रमण, आघात आदि रोकना। ३. उत्तरदायित्व आदि के रूप में अपने ऊपर लेना। ४. वहन या सहन करना।

स० [हिं० हूलना] घुसेड़ना। पैठाना।

ओलमना—अ० [सं० अवलंबन] लटकना।

ओलरना—अ०=उलरना।

ओलराना—स०=उलारना।

ओलहना—पुं०=उलाहना।

ओला—पुं० [सं० उपल] १. शीत काल में, वर्षा के जल के साथ-साथ कभी-कभी गिरनेवाले वरफ के छोटे-छोटे टुकड़े। २. मिसिरी का बना हुआ लड्डू। ३. एक प्रकार का बबूल।

वि० बहुत ठंढा।

पुं० [हिं० ओल] १. आड़। ओट। २. परदा। ३. भेद या रहस्य की बात।

प्रत्य० [सं० पोलक, प्रा० ओलअ=बच्चा या छोटा रूप] एक प्रत्यय जो कुछ शब्दों के अंत में लगकर किसी वस्तु के आरंभिक या छोटे रूप का सूचक होता है। जैसे—साँप से सँपोला और खाट से खटोला आदि। कभी-कभी इसके योग से भाववाचक संज्ञाएँ भी बनती हैं। जैसे—झोंका से झँकोला। कुछ अवस्थाओं में यह तुच्छार्थक भी होता है। जैसे—बात से बतोला।

ओलारना—स०=उलराना।

ओलिक†—पुं० [हिं० ओल=ओट] आड़। ओट। उदा०—विलोकत ही किये ओलिक तोही।—केशव।

ओलियाना—स० [हिं० हूलना ?] १. गोद में भरना या लेना। २. किसी पात्र के अन्दर कोई चीज प्रविष्ट करना। भरना। ३. कोई चीज गिराते हुए उसका ढेर लगाना। ४. घुसाना। पैठाना।

ओली—स्त्री० [हिं० ओल] १. क्रोड़। गोद। २. झोली। ३. आँचल। पल्ला।

मुहा०—ओली ओड़ना= (क) कुछ माँगने के लिए किसी के आगे आँचल या पल्ला पसारना। (ख) दीनता या विनय-पूर्वक माँगना।

४. खेत के एक विस्वे में होनेवाली फसल का परता लगाकर पूरे बीघे की कुल फसल के अंदाज करने का एक प्रकार।

ओलौना†—पुं० [सं० तुलना] उदाहरण। मिसाल।

ओषण—पुं० [सं०√उष् (दाह करना)+ल्युट्—अन] १. उग्र या तीखा स्वाद। २. तीतापन।

ओषधि—स्त्री० [सं० ओष√धा (धारण करना)+कि] १. चिकित्सा या दवा के काम में आनेवाली जड़ी-बूटी या वनस्पति। २. ऐसे पौधे या वनस्पतियाँ जो एकही बार फल या फूल कर रह जाते हों। जैसे—गेहूँ, जव आदि।

ओषधि-धर—पुं० [ष० त०]=ओषधीश।

ओषधी—स्त्री० [सं० ओषधि+ङीष्]=ओषधि।

ओषधीश—पुं० [सं० ओषधि-ईश, ष० त०] १. चंद्रमा। २. कपूर।

ओष्ठ—पुं० [सं० √उष् (दाह)+थन्] [वि० ओष्ठ्य] ओंठ। होंठ।

ओष्ठी—स्त्री० [सं० ओष्ठ+क्विप्+अच्—ङीष्] कुंदरू या बिंबाफल नामक लता या उसका फल, जिससे ओंठों की उपमा दी जाती है।

ओष्ठ्य—वि० [सं० ओष्ठ+यत्] १. ओंठ का। ओंठ सम्बन्धी। २. (अक्षर या वर्ण) जिसके उच्चारण में ओठों की भी सहायता लेनी पड़ती है। जैसे—प, फ, व आदि।

ओष्ण—वि० [सं० आ-उष्ण, प्रा० स०] जो थोड़ा गरम हो। कुनकुना। गुनगुना।

ओस—स्त्री० [सं० अवश्याय, पा० उस्साव] वातावरण में फैले हुए वाष्प का वह रूप जो जमकर जल के कणों या छोटी-छोटी बूँदों के रूप में परिवर्तित होकर पृथ्वी पर गिरता है।

विशेष—प्रायः सवेरे के समय ये जलकण फूल-पत्तों पर पड़े हुए दिखाई देते हैं।

मुहा०—(किसी चीज या बात पर) ओस पड़ना= अवस्था, शक्ति, शोभा आदि का पहले से क्षीण या हीन होना। कुम्हलाना। मुरझाना।

पद—ओस का मोती=ऐसी बात या वस्तु जिसका अस्तित्व बहुत ही क्षणिक हो।

ओसर†—पुं० [सं० अवसर] १. अवसर। मौका। २. समय। वक्त। ३. पारी। वारी। उदा०—झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुही गौड़ मलार।—तुलसी।

†स्त्री० [सं० उपसर्या] ऐसी भैंस जो अभी तक गाभिन न हुई हो।

ओसरना†—अ०=बरसना। (राज०)

अ०=उसरना (ऊपर उठना)।

ओसरा†—पुं० [सं० अवसर] १. पारी। वारी। २. दूध दुहने का समय। ३. किसी विशिष्ट कार्य के लिए नियमित और नियत समय।

ओसरी†—स्त्री० [सं० अवसर] पारी। बारी।

ओसांक—पुं० [सं०] वातावरण की वह अवस्था अथवा उसके तापमान का वह बिंदु जिस पर आकाश में ओस जमती और नीचे गिरती है। (ड्यू प्वाइंट)

ओसाई†—स्त्री० [हिं० ओसाना] १. अनाज ओसाने की क्रिया या भाव। २. अनाज ओसाने का पारिश्रमिक।

ओसान†—पुं०=ओसाई।

*पुं०=अवसान।

ओसाना—स० [सं० आवर्षण, पा० आवस्सन] भूसा मिले हुए अनाज को कुछ ऊँचाई से जमीन पर इस प्रकार गिराना कि भूसा हवा के झोंके से उड़कर अलग हो जाय और अनाज के दाने अलग इकट्ठे हो जायँ।

मुहा०—अपनी (बातें) ओसाना=अपनी ही बातें कहते चलना।

ओसार—पुं० [सं० अवसर= फैलाव] फैलाव। विस्तार।
वि०= चौड़ा।
पुं०=ओसारा।

ओसारना*—स०=१. =उसारना। = २. ओसाना।

ओसारा†—पुं० [सं० उपशाल] [स्त्री० अल्प० ओसारी] कच्चे देहाती मकानों के आगे बना हुआ दालान या बरामदा।

ओसीसा†—पुं०=उसीसा (तकिया)।

ओह—अव्य० [सं० अहह या अनु०] आश्चर्य, कष्ट, दुःख, पश्चात्ताप, संताप आदि का सूचक एक अव्यय। जैसे—ओह! इतना अनर्थ!

ओहट†—स्त्री०= ओट।

ओहदा—पुं० [अ० उलदः] किसी विभाग के किसी कर्मचारी या कार्यकर्त्ता का पद; विशेषतः कुछ ऊँचा पद।

ओहदेदार—पुं० [फा०] वह जो किसी ओहदे या पद पर नियुक्त हो। पदाधिकारी।

ओहना†—स० [सं० अवधारण] डंठलों को हिलाते हुए उनके दाने नीचे गिराना। खरही करना।

ओहर†—क्रि० वि०=उधर (पूरब)।

ओहरना†—अ० [सं० अवहरण] बढ़ती या उमड़ती हुई चीज का उतार पर होना या घटना। कमी या घटाव पर होना।

ओहरी†—स्त्री० [हिं० हारना=थकना] थकावट।

ओहा†—पुं० [सं० ऊधस्] गाय का थन।

ओहार—पुं० [सं० अवधार] वह कपड़ा जिससे पालकी, रथ आदि ढके जाते हैं। उदा०—सिविका सुभग ओहार उघारी।—तुलसी।

ओहि, ओही†—सर्व० [हिं० ओ०=वह] १. उसको। उसे। २. उससे। उदा०—सादर पुनि पुनि पूछत ओही।—तुलसी।

ओहू†—सर्व० [ओ=वह+हू=भी] वह भी। उदा०—पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू।—तुलसी।

ओहो—अव्य० [सं० अहो या अनु०] आश्चर्य या प्रसन्नता का सूचक एक अव्यय।

औ

औ—संस्कृत वर्णमाला का चौदहवाँ और हिंदी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर वर्ण जो अ+ओ के संयोग से बना है। इसका उच्चारण कंठ और ओष्ठ के योग से होता है। अवधी, व्रज आदि बोलियों में संज्ञाओं, विशेषणों आदि के अंत में प्रत्यय के रूप में लगकर यह 'भी' का अर्थ देता है। जैसे—'सन सूक्यौ बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि' में बनौ और ऊखौ के अंत में आया हुआ 'औ'।
पुं० [सं० आ+√अव् (रक्षा करना)+क्विप्, ऊठ् आगम] अनंत। शेष।
स्त्री० पृथ्वी।
अव्य०=और।
वि०—यह। (डिं०) उदा०—औ पुर हरि बोलिया इम।—प्रिथीराज।

औंगना—स० [सं० अंजन] गाड़ी आदि के पहिये की धुरी में तेल देना।

औंगा†—वि० [सं० अवाक या गूंग] [स्त्री०, भाव० औंगी] १.गूँगा। २.चुप्पा। मौन।
पुं [हिं० औंगना] औंगने की क्रिया या भाव।

औंगी†—स्त्री० [हिं० औंगा] १.गूँगापन। २.चुप्पी (मौन)।
स्त्री० [सं० अवाङ्?] १.जंगली जानवर फँसाने के लिए जमीन में खोदा जानेवाला गड्ढा। २.वह नुकीली लकड़ी जो जानवरों को हाँकने के लिए उनके शरीर में गड़ाते या चुभाते हैं। ३.हँसिया, जिससे घास काटी जाती है।

औंघना†—अ०= ऊँघना।

औंघाई†—स्त्री०=ऊँघ।

औंछना†—स०=ओंइछना।

औंजना†—अ० [सं० आवेजन=व्याकुल होना] १.विकल या व्याकुल होना। घबराना। २.ऊबना।
स० १.उलटना। २.उड़ेलना।

औंटन—पुं० [सं० आवर्त्तन; प्रा० आवट्टन] लकड़ी का ठीहा जिस पर चौपायों का चारा अथवा गन्ने की गँड़ेरी आदि काटी जाती है।
स्त्री० [हिं० औंटना] औटने की क्रिया या भाव।

औंटना†—अ०=औटना।

औंटाना†—स०=औटाना।

औंठ—स्त्री० [सं० ओष्ठ; प्रा० ओट्ठ] १.परती पड़ा हुआ खेत। २. दे० 'आँवठ'।

औंड़†—पुं० [सं० कुंड=गड्ढा] गड्ढा या मिट्टी खोदनेवाला मजदूर। बेलदार।

औंडना†—अ०=उभड़ना।

औंड़ा बौंड़ा—वि०=अंड-बंड।

औंदना†—अ० [सं० उन्माद] १.उन्मत्त या मदांध होना। २.बेसुध होना। सुध-बुध भूलना। ३.विकल या व्याकुल होना। बे-चैन होना।
†स०=औंदाना।

औंदाना*—स० [हिं० औंदना का स० रूप] १.किसी को उन्मत्त या मदांध करना। २.चिंतित और व्याकुल करना।
†अ०=औंदना।

औंधना—अ० [सं० अवः या अवधा] औंधा या उलटा होना। उलट जाना।
स० औंधा या उलटा करना।

औंधा—वि० [सं० अवमूर्द्ध] [स्त्री० औंधी] १.जिसका मुँह या सिर नीचे की ओर हो गया हो।
मुहा०—औंधे मुँह गिरना=बहुत ही बुरी तरह से गिरना या बहुत बड़ी भूल करना।
२.जिसका ऊपरी भाग नीचे और नीचेवाला भाग ऊपर हो गया हो। ३.नीचे की ओर झुका हुआ। ४.जो अपनी सामान्य स्थिति मे न होकर उससे ठीक विपरीत स्थिति में हो। उलटा।
पद—औंधी खोपड़ी=ऐसा व्यक्ति जिसमें सामान्य बुद्धि का अभाव हो। वज्र मूर्ख।
†पुं० उलटा या चिलड़ा नामक पकवान।

औंधाना—स० [हिं० औंधा] १.औंधा या उलटा करना। २.ऊपरी भाग या मुँह नीचे करना। उलटना। ३. नीचा करना। झुकाना।

औंरा†—पुं०=आँवला।

औंसना—अ० [हिं० उमस] उमस होना।

औंहर†--स्त्री० [सं० अवरोध; प्रा० ओरोह] बाधा। रुकावट।
औआ-बौआ--वि० [अनु०] बे सिर-पैर का। अंड-बंड।
औकन--स्त्री० [देश०] ढेर। समूह।
औक़ात--पुं० बहु० [अ० वक्त का बहु०] १.समय। वक्त। वर्त्तमान समय की परिस्थितियाँ; लाक्षणिक रूप में, शक्ति। २. सामर्थ्य। बिसात।
औख†--स्त्री० [सं० ऊषर] ऐसी ऊसर या परती भूमि जिसे फिर से खेती के योग्य बनाया गया हो।
औखद†--पुं०=औषध।
औखा--पुं० [हिं० गोखा] १.गाय का चमड़ा। २.चमड़े का बना हुआ चरसा या मोठ।
†वि० [हिं० सौखा (सुखकर) का अनु० और विपर्यय] कठिन। मुश्किल। (पश्चिम)
औगत*--स्त्री० [सं० अव+गति] अवगति। दुर्दशा। दुर्गति।
वि०=अवगत (विदित)।
औगाहना*--अ०= अवगाहना। (नहाना)
औगी†--स्त्री०=औंगी।
स्त्री० [?] १.रस्सी बटकर बनाया हुआ कोड़ा जिसे जमीन पर पटकने या फटकारने से आवाज होती है। (पशुओं को डराने के लिए इससे आवाज की जाती है।) २.बैल हाँकने की छड़ी।
औगुन†--पुं०= अवगुण।
औगुन*†--वि० १.=अवगुणी। २.=निर्गुण।
औघ--पुं० [सं० ओघ+अण्] पानी की प्लावन।
औघट*--वि०=अवघट।
औघड़--वि० [सं० अवघट] १.अनगढ़ और भद्दा। अंड-बंड। २.अनोखा। विलक्षण।
वि०=औझड़।
पुं०=अघोर पंथ का अनुयायी।
औघर--वि०=औघड़।
औघी†--स्त्री० [?] वह स्थान जहाँ नये घोड़ों को निकालने (चलना सिखाने) के लिए चक्कर दिया जाता है।
औघूरना--अ० [सं० अव+घूर्णन] चक्कर खाना। घूमना। उदा०--घर लागै औघूरि कहे मन कहा बँधावे।--सूर।
औचक--पुं० [हिं० अचानक] १.कोई बात अचानक घटित होने की अवस्था या भाव। २.असमंजस की या विकट स्थिति।
क्रि० वि० १.अकस्मात्। अचानक। २. एकदम से। एकबारगी।
औचट--पुं० [हिं० औचक] ऐसी विकट स्थिति जिससे सहज में छुटकारा न मिल सके। जैसे--वह औचट में पड़कर ही पुस्तकें लावेगा।
क्रि वि० १.अकस्मात्। अचानक। २.अनजान में। भूल से। ३.यों ही संयोग से। ४.चकित होकर। उदा०--लग्यौ फिरत सुरभि सुत-संग औचट गुनि गृह बन कौ।--सूर।
औचित*--वि० [सं० अव= नहीं+चिंता] जिसे किसी प्रकार की चिंता न हो। निश्चित।
औचिती--स्त्री० [सं० उचित+ष्यञ्+ङीप् यलोप।] औचित्य।
औचित्य--पुं० [सं० उचित+ष्यञ्] उचित होने की अवस्था या भाव।
औछ--स्त्री० [देश०] दारुहल्दी की जड़।
औछाना--अ०, स०= छाना।
औज--पुं०=ओज।
औजड़--वि०=औझड़।
औजस--पुं० [सं० ओजस्+अण्] सोना। स्वर्ण।
औजसिक--वि० [सं० ओजस्+ठक्-इक] जिसमें ओज हो। ओज से युक्त।
औजस्य--पुं० [सं० ओजस्+ष्यञ्] ओज से युक्त होने की अवस्था या भाव।
औजार--पुं० [अ०] हाथ से काम करते समय प्रयोग में लाई जानेवाली लकड़ी, लोहे आदि की बनी हुई कोई ऐसी वस्तु जिससे कोई काम शीघ्रता तथा सरलता से अथवा सहज में संपन्न होता है। राछ। हथियार। (टूल) जैसे--आरी, छेनी, रेती, हथौड़ा आदि।
औज्ज्वल्य--पुं० [सं० उज्ज्वल+ष्यञ्] उज्ज्वल होने की अवस्था या भाव। उज्ज्वलता।
औझक--क्रि० वि०=औचक।
औझड़--क्रि० वि० [सं० अव+हिं० झड़ी] लगातार। निरंतर।
वि० १. किसी बात की चिंता या परवाह न करके मनमाने ढंग से झक या पागलपन से काम या बातें करनेवाला। २.मन-मौजी। ३. झक्की।
औझर--क्रि० वि०, वि०=औझड़।
औटन--स्त्री० [हिं० औटना; प्रा० आवट्टन] १.औटने की क्रिया या भाव। २.गरमी। ताप। ३.उबाल। ४.तमाकू के पत्ते काटने की छुरी।
औटना--अ० [सं० आवर्त्तन] १.किसी तरल पदार्थ का इस प्रकार गरम किया जाना या होना कि वह उबल या खौलकर गाढ़ा होने लगे। २. चक्कर खाना।
स०= औटाना।
औटनी--स्त्री० [हिं० औटना] एक प्रकार की कलछी जिससे उबलता हुआ तरल पदार्थ चलाया या हिलाया जाता है।
औटपाय*--पुं० [सं० अप्टवाद, पु० हिं० अठपाव] नटखटी। पाजीपन। शरारत।
औटा†--प्रत्य० [सं० आवर्त्त] [स्त्री० औटी] एक प्रत्यय जो कुछ शब्दों के अंत में लगकर उनके आधान या पात्र का अर्थ सूचित करता है। जैसे--काजल से कजरौटा, लाख से लखौटा। कभी कभी यह अल्पार्थक का भाव भी सूचित करता है; अथवा किसी पशु के बच्चे होने का भी वाचक होता है। जैसे--बिल्ली से बिलौटा।
औटाना--स० [हिं० औटना] किसी तरल पदार्थ को इस प्रकार गरम करना कि वह उबल या खौलकर गाढ़ा होने लगे।
औटी--स्त्री० [हिं० औटना] १.वह पुष्टई जो गाय को ब्याने पर दी जाती है। २.औटाकर पकाया हुआ किसी चीज का रस।
औठपाय†--=औटपाय।
औड--वि० [सं०√उन्द् (भिगोना)+क, द=ड, उड+अण्] आर्द्र। गीला।
औडन--वि० [सं० औड़] जो सूखा न हो। गीला। तर।
औडव--वि० [सं० ओडव+अण्] उडु या तारों से संबंध रखनेवाला।

पुं०=ओड़वा।

औडुंवर--पुं०=औदुंवर।

औड़्--पुं० [सं० ओड्र+अण्] उड़ीसा देश का निवासी।

औढर--वि० [सं० अव+हिं० ढार या ढलना] अकारण ही अथवा मनमाने ढंग से किसी ओर ढल या ढुलक पड़नेवाला। मन-मौजी।

पद--**औढरदानी**--मनमाने ढंग से उदारतापूर्वक वहुत अधिक दान देनेवाला।

औणक--पुं० [सं० ?] एक प्रकार का वैदिक गीत।

औतरना†--अ०=अवतरना।

औता*--प्रत्य० [सं० आवर्त्त ?] एक प्रत्यय जो कुछ शब्दों के अंत में लगकर कई प्रकार के अर्थ देता है। जैसे--काठ से कठौता, इकला से इकलौता, समझना से समझौता आदि।

वि० [?] [स्त्री० औती] तीव्र। तेज। उदा०--कहती तौ मति होती औती।--नंददास।

वि०=ओता (उतना)।

औतार†--पुं०=अवतार।

औतिक--वि० [सं० ऊति+ठक्--इक] जिसका संवंध ऊतक (तंतुओं) से हो। ऊतक-संवंधी।

औतिकी--स्त्री० [सं० ऊतक से] विज्ञान की वह शाखा जिसमें जीव-जंतुओं और वनस्पतियों के अंगों का संघटन करनेवाले वहुत ही सूक्ष्म ऊतकों या तंतुओं का विवेचन होता है। (हिस्टालोजी)

औत्कंठ्य--पुं० [सं० उत्कंठा+ष्यञ्] उत्कंठा।

औत्कर्ष्य--पुं० [सं० उत्कर्ष+ष्यञ्] उत्कर्ष होने की अवस्था या भाव। उत्कर्षता।

औत्तमर्णिक--वि० [सं० उत्तमर्ण+ठञ्--इक] (धन) जो उत्तमर्ण से व्याज या सूद पर लिया गया हो। (शुक्र०)

औत्तमि--पुं० [सं० उत्तम+इञ्] चौदह मनुओं में से तीसरे मनु का नाम।

औत्तर--वि० [सं० उत्तर+अण्] उत्तर में रहने या होनेवाला। उत्तरी।

औत्तरेय--पुं० [सं० उत्तरा+ढक्--एय] उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न राजा परीक्षित।

औत्तानपाद--पुं० [सं० उत्तानपाद+अण्] १. उत्तानपाद के पुत्र, ध्रुव। २. ध्रुवतारा।

औत्तापिक--वि० [सं० उत्ताप+ठक्--इक] १. उत्ताप-संवंधी। २. उत्ताप से उत्पन्न।

औत्पत्तिक--वि० [सं० उत्पत्ति+ठक्--इक] उत्पत्ति-संवंधी।

औत्पातिक--वि० [सं० उत्पात+ठक्--इक] उत्पात-संवंधी।

औत्स--वि० [सं० उत्स+अण्] उत्स या झरने से संवंध रखनेवाला।

औत्सर्गिक--वि० [सं० उत्सर्ग+ठञ्--इक] १. उत्सर्ग-संवंधी। २. सहज और स्वाभाविक। ३. (नियम) जो साधारणतः सव जगह माना जाता या लगता हो। (व्याकरण)

औत्सुक्य--पुं० [सं० उत्सुक+ष्यञ्] उत्सुक होने की अवस्था या भाव। उत्सुकता।

औथरा†--वि०=उथला (छिछला)।

औदक--वि० [सं० उदक+अण्] उदक या जल से संवंध रखनेवाला। जलीय।

पुं० ऐसा स्थान जहाँ जल अधिक या यथेष्ट हो।

औदकना*--अ०=चौंकना।

औदयिक--वि० [सं० उदय+ठञ्--इक] उदय से संवंध रखनेवाला।

पुं० पूर्व संचित कर्मों के फलस्वरूप मन में उदित होनेवाला भाव। (जैन)।

औदर--वि० [सं० उदर+अण्]=औदरिक।

औदरिक--वि० [सं० उदर+ठक्--इक] उदर या पेट से संवंध रखने या उसमें होनेवाला। जैसे--औदरिक विकार। २. वहुत खानेवाला। पेटू।

औदर्य--वि० [सं० उदर+यत्, उदर्य+अण्] उदर-संवंधी।

औदसा†*--स्त्री० [सं० अवदशा] वुरी या हीन दशा। दुर्दशा।

औदान†--पुं० [सं० अवदान]=घाल (घलुआ)।

औदार्य--पुं० [सं० उदार+ष्यञ्] उदारता। (साहित्य में यह नायक का एक सात्विक गुण माना गया है।)

औदास्य--पुं० [सं० उदास+ष्यञ्] उदास होने की अवस्था या भाव। सं० उदासीनता।

औदीच्य--पुं० [सं० उदीची+ष्यञ्] गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

औदुंवर--वि० [सं० उदुंवर+अञ्] १. उदुंवर वा गूलर का वना हुआ। २. ताँवे का वना हुआ।

पुं० १. एक यज्ञ-पात्र जो गूलर की लकड़ी का वनता था। २. चौदह यमों में से एक। ३. एक प्रकार के त्यागी या विरक्त जो उसी ओर निकल जाते थे, जिधर सवेरे पहले-पहल उनकी दृष्टि पड़ती थी और उधर मिलने वाले कंद, फल आदि से निर्वाह करते थे।

औद्दालक--वि० [सं० उद्दाल+अण्, औद्दाल+कन्] उद्दालक ऋषि के वंश का।

पुं० १. वाँवी में रहनेवाले कीड़े-मकोड़ों (दीमक, विलनी आदि) का लेप या मधु। २. एक प्राचीन तीर्थ।

औद्धत्य--पुं० [सं० उद्धत+ष्यञ्] उद्धत होने की अवस्था या भाव। अविनीत, अशालीन, उद्दंड और धृष्ट होना। उद्धतता।

औद्भिज्ज--वि० [सं० उद्भिद्√जन् (उत्पन्न होना)+ड, उद्भिज्ज+अण्] धरती से उत्पन्न या प्राप्त।

पुं० खारी नमक।

औद्भिद--पुं० [सं० उद्भिद्+अण्] १. झरने का जल। २. सेंधा नमक। पहाड़ी नमक।

औद्योगिक--वि० [सं० उद्योग+ठञ्--इक] १. जिसका संवंध किसी उद्योग से हो। उद्योग-संवंधी। २. वस्तुएँ तैयार करने के काम से संवंध रखने-वाला। (इण्डस्ट्रियल--दोनों अर्थों में) ३. (सामग्री) जो उद्योगों में खपती या लगती हो।

औद्योगिककरण--पुं०=उद्योगीकरण।

औद्वाहिक--वि० [सं० उद्वाह+ठञ्--इक] १. विवाह से संवंध रखने-वाला। २. विवाह में या विवाह के समय ससुराल या मित्रों से प्राप्त होनेवाला (धन या भेंट)।

पुं० विवाह में ससुराल से मिला हुआ धन जो भाइयों, भतीजों आदि में वँट नही सकता।

औध†--पुं०=अवध।

स्त्री०=अवधि।

औंध मोहरा—पुं० [सं० ऊर्द्ध+हिं० मोहड़ा] वह हाथी जो सिर ऊपर उठाकर चलता हो।

औधान—पुं० [सं० आधान+अवधान] १.धारण करना। २.धारण किया हुआ गर्भ। उदा०—जस औधान पूर होइ तासू। दिन दिन हिएँ होइ परगासू।—जायसी।

औधारना*—स० [?] इधर-उधर हिलाना-डुलाना। जैसे—चँवर औधारना।

स०=अवधारना।

औधि*—स्त्री०=अवधि।

औधूत—पुं०= अवधूत।

औन*—पुं० [सं० अवनि] १. पृथ्वी। २.जगह। स्थान। ३.घर। मकान। उदा०—मंडप ही में फिरत मँडरात, न जात कहूँ तजि नेह को औनो।—पद्माकर।

औनना—अ० [हिं० ऊन] कम होना।

स० कम करना।

†स० [?] लीपना-पोतना या लगाना।

औना-पौना—वि० [हिं० ऊन (कम)+पौना= ¾ भाग] तीन-चौथाई या उससे भी कुछ कम। आधा-तीहा।

मुहा०—(कोई चीज) **औने-पौने करना**=आधे, तिहाई या तीन-चौथाई (अर्थात् उचित से बहुत कम) मूल्य पर बेच डालना। जो दाम मिल जाय उसी पर बेच देना।

औनि†—स्त्री०= अवनि।

औनिप—स्त्री० [सं० अवनिप] राजा।

औन्नत्य—पुं० [सं० उन्नत+ष्यञ्] १.उन्नत होने की अवस्था या भाव। उन्नति। २.उत्थान। ३.ऊँचाई।

औपक्रमिक—वि० [सं० उपक्रम+ठक्—इक] १.उपक्रम-संबंधी। २. उपक्रम के रूप में होनेवाला।

औपचारिक—वि० [सं० उपचार+ठञ्—इक] १.उपचार-संबंधी। २. उपचार के रूप में होनेवाला। ३.(ऐसा आचरण या व्यवहार) जो वास्तविक या हार्दिक न हो, परन्तु केवल दिखाने भर को किया गया हो अथवा किसी नियम या रीति आदि के पालन स्वरूप किया गया हो। जैसे—किसी बात पर मिट्टी डालना केवल औपचारिक कथन है।

औपचारिकता—स्त्री० [सं० औपचारिक+तल्—टाप्] १.औपचारिक होने की अवस्था, गुण या भाव। २.बँधे हुए सामाजिक नियमों, विधियों का ऐसा आचरण या पालन जो दिखाने भर हो। दुनियादारी। (फार्मेलिज्म)

औपटा†—वि० [स्त्री० औपटी]= अटपटा।

औपदेशिक—वि० [सं० उपदेश+ठञ्—इक] उपदेश-संबंधी।

पुं० १.वह जो दूसरों को उपदेश, शिक्षा आदि देकर अपनी जीविका चलाता हो। २. उक्त प्रकार की जीविका से प्राप्त किया हुआ धन।

औपद्रविक—वि० [सं० उपद्रव+ठक्—इक] १.उपद्रवों से संबंध रखनेवाला। २.रोग के उपद्रवों या लक्षणों से संबंध रखनेवाला।

औपधिक—पुं० [सं० उपधा+ठञ्-इक] भय दिखाकर धन लेनेवाला पुरुष।

वि० १.उपधा-संबंधी। २.उपधा के रूप में होनेवाला। ३.धोखा देकर किया जानेवाला (कार्य)। (फ्रॉडयूलेण्ट) जैसे—किसी लेख का औपधिक प्रयोग।

औपधर्म्य—पुं० [सं० उपधर्म+ष्यञ्] १.ऐसी बात या सिद्धांत जो धर्म-विरुद्ध या मिथ्या हो। २.तुच्छ या हीन सिद्धांत।

औपनिधिक—वि० [सं० उपनिधि+ठक्—इक] उपनिधि या धरोहर से संबंध रखनेवाला।

औपनिवेशिक—वि० [सं० उपनिवेश+ठक्—इक] उपनिवेश में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। उपनिवेश का। (कोलोनिअल)

पुं० उपनिवेश का निवासी।

औपनिवेशिक-स्वराज्य—पुं० [कर्म० स०] वह स्वराज्य जो साम्राज्य के अधीनस्थ उपनिवेशों को प्राप्त होता है। जैसे—ब्रिटिश साम्राज्य में आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि उपनिवेशों को औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हैं।

औपनिषद—वि० [सं० उपनिषद्+अण्] उपनिषद्-संबंधी। उपनिषद् में आया हुआ।

पुं० १.परब्रह्म। २.उपनिषद् का अनुयायी।

औपनिषदिक—वि० [सं० उपनिषद्+ठक्—इक] १.उपनिषद्-संबंधी। २.उपनिषदों के समान (पवित्र या मान्य)।

औपनी—स्त्री०=ओपनी।

औपन्यासिक—वि० [सं० उपन्यास+ठञ्—इक] १.उपन्यास-संबंधी। २.उपन्यास में वर्णन करने के योग्य। ३.उपन्यास के ढंग का। अद्भुत।

पुं० उपन्यास-लेखक।

औपपत्तिक—वि० [सं० उपपत्ति+ठक्—इक] १.उपपत्ति संबंधी। २. तर्क या युक्ति द्वारा सिद्ध होनेवाला।

पुं० लिंग शरीर।

औपपातिक—पुं० [सं० उपपात+ठक्—इक] उपपातक करनेवाला।

वि० उपपातक संबंधी।

औपम्य—पुं० [सं० उपमा+ष्यञ्] उपमा का धर्म या भाव। तुल्यता। बराबरी। समता।

औपयौगिक—वि० [सं० उपयोग+ठञ्—इक] उपयोग-संबंधी।

औपराजिक—वि० [सं० उपराज+ठञ्—इक] उपराज या राज प्रतिनिधि संबंधी।

औपल—वि० [सं० उपल+अण्] १.उपल-संबंधी। २.पत्थर का बना हुआ।

औपवास्य—वि० [उपवास+ष्यञ्] उपवास-संबंधी। उपवास का।

पुं०=उपवास।

औपवाह्य—वि० [सं० उपवाह्य+अण्] जिसका अथवा जिसके द्वारा उपवहन हो सके।

पुं० राजा का हाथी अथवा रथ।

औपशमिक—वि० [सं० उपशम+ठक्—इक] १. उपशम संबंधी। २. उपशम या शांति करने या देनेवाला। शांतिकारक। शांतिदायक।

औपश्लेषिक—वि० [सं० उपश्लेष+ठक्—इक] उपश्लेष (विशेष लगाव) या घनिष्ठ संबंध रखनेवाला या उसके आधार पर होनेवाला।

पुं० अधिकरण कारक के तीन प्रकार के आधारों में एक जिनमें किसी

वस्तु के अंश से ही दूसरी वस्तु का लगाव होता है। जैसे—'चौकी पर पुस्तक है।' में पुस्तक सारी चौकी पर नहीं, उसके एक अंश पर ही स्थित है। इसी प्रकार का आधार औपश्लेषिक कहलाता है।

औपसर्गिक--वि० [सं० उपसर्ग+ठक्-इक] १. उपसर्ग-संबंधी। २. उपसर्ग के रूप में होनेवाला। ३. (रोग) जो उपसर्ग या छूत से फैलता हो। संक्रामक। (इन्फेक्शस) जैसे—औपसर्गिक ज्वर।

औपस्थिक--वि० [सं० उपस्थ+ठञ्-इक] उपस्थ संबंधी।
पुं० वह जो उपस्थ के आधार पर (अर्थात् व्यभिचार करके) अपनी जीविका चलावे।

औपस्थ्य--पुं० [सं० उपस्थ+ष्यञ्] स्त्री और पुरुष का संभोग या सहवास।

औपहारिक--वि० [सं० उपहार+ठक्-इक] जो उपहार के रूप में दिया जाय या हो। उपहार संबंधी।
पुं०=उपहार।

औपाधिक--वि० [सं० उपाधि+ठञ्-इक] १. उपाधि संबंधी या उपाधि से युक्त। २. अनावश्यक और ऊपरी या बाहरी बातों से युक्त।
वि० दे० 'औपधिक'।

औपायनिक--वि० [सं० उपायन+ठक्-इक] उपायन संबंधी या उपायन के रूप में होनेवाला (पदार्थ)।

औपासन--वि० [सं० उपासना+अण्] १. अग्नि संबंधी। २. उपासना या पूजा संबंधी। ३. पवित्र।
पुं० १. उपासना, पूजा आदि के लिए जलाई जानेवाली अग्नि। २. उक्त अग्नि के योग से उपासना, पूजा आदि के रूप में किये जानेवाले कृत्य।

औपेंद्र--वि० [सं० उपेंद्र+अण्] उपेंद्र-संबंधी। उपेंद्र का।

औम--वि० [सं० उमा+अण्] सन का बना हुआ।
†स्त्री० दे० 'अवम तिथि'।

औमक--वि० [सं० उमा+वुञ्-अक]=औम।

औमतिथि--स्त्री० दे० 'अवम तिथि'।

औरंग--पु० [फा०] १. राज-सिंहासन। २. बुद्धिमत्ता। समझदारी। ३. औरंगजेब (बादशाह) के नाम का संक्षिप्त रूप (मध्ययुगीन कविताओं मे प्रयुक्त)।

औरंगजेब--पु० [फा०] १. राज-सिंहासन पर बैठकर शासन करनेवाला व्यक्ति। २. मुगल वंश का प्रसिद्ध सम्राट् जो शाहजहाँ का पुत्र था। (सन् १६५८-१७०७)

औरंगजेबी--पुं० [फा०] एक प्रकार का भीषण बड़ा फोड़ा जो जल्दी अच्छा नही होता।
विशेष--कहते हैं कि जब औरंगजेब ने अपनी सेना लेकर बहुत दिनों तक गोलकुण्डा पर घेरा डाला था, तब उसके बहुत से सैनिकों को इस तरह का फोड़ा होने लगा था, इसीलिए इसका यह नाम पड़ा।

औरंगशाह--पुं०=औरंगजेब।

और--अव्य० [स० अपर, प्रा० अवर] शब्दों, पदों, वाक्यांशों आदि को जोड़नेवाला एक संयोजक अव्यय जो कुछ अवस्थाओं में क्रिया विशेषण तथा विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होकर नीचे लिखे अर्थ देता है—१. जिसका या जिनका उल्लेख हो चुका हो, उसके या उनके साथ। तथा। जैसे—(क) कृष्ण, मोहन और राम तीनों चले गये। (ख) गौवें, घोड़े और हिरन सभी खुरोंवाले पशु हैं। २. कथित या प्रस्तुत के अतिरिक्त या सिवा कुछ नया और विलक्षण। जैसे—लो, और सुनो (अर्थात् अब तक जो सुन चुके हो, उसके अतिरिक्त कुछ नई परंतु विलक्षण बात सुनो।) उदा०—औरउ कथा अनेक प्रसंगा।—तुलसी।
मुहा०--**और का और होना**=(क) बहुत अधिक उलट-फेर होना। भारी परिवर्त्तन होना। जैसे—देखते-देखते देश और का और हो गया।
पद--**और का और**=जैसा होना चाहिए या जैसा पहले था, उससे बिलकुल अलग या भिन्न। **और क्या**=इसके सिवा और कुछ नही, यही तो। जैसे—किसी के यह पूछने पर कि आप स्वयं वहाँ गये थे? प्रायः कहा जाता है—और क्या। **और तो और**=औरों की बात तो जाने दो। औरों की बात दूर रही। जैसे—और तो और, आप भी ऐसा कहने लगे। **और तो क्या**=दूसरी बड़ी बड़ी बातों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। और सब तो जाने दो। जैसे—**और तो क्या** भला एक गिलास पानी तो पिला देते। **और नहीं तो क्या**=*और क्या*। (देखें ऊपर)।
क्रि० वि० अधिक मात्रा या मान में; अथवा अधिक बल लगाकर। जैसे—और चिल्लाओ, और मारो; और रोओ; आदि। उदा०—*और आगि लागी न बुझावै सिंधु सावनो।*—तुलसी।
वि० १. अधिक। ज्यादा। जैसे—कुछ और दाम बढ़े तो सौदा हो जाय। उदा०—और आस विस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।—तुलसी। २. प्रस्तुत से भिन्न। अन्य। दूसरा। जैसे—यह और बात है कि वे जरा कम समझ (या हठी) हैं। उदा०—बनि है बात उपाइ न और।—तुलसी।
पद--**और ही कुछ**=साधारण से भिन्न; परतु अनोखा, नया या निराला। जैसे—यह तो और ही कुछ निकला।

औरग--वि० [सं० उरग+अण्] उरग या साँप-संबंधी।
पुं० आश्लेषा।

औरत--स्त्री० [अ०] १. महिला। स्त्री। २. जोरू। पत्नी।

औरस--वि० [सं० उरस्+अण्] [स्त्री० औरसी] १. उर या हृदय संबंधी। २. उर या हृदय से उत्पन्न होनेवाला। ३. जिसका जन्म स्वयं किसी के हृदय अर्थात् व्यक्तित्व से हुआ हो। जैसे—औरस पुत्र।
पुं० विवाहिता स्त्री से उत्पन्न पुत्र।
विशेष--स्मृतियों में १२ प्रकार के जो पुत्र कहे गये हैं उनमें औरस सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

औरसना--अ० [स० अव=बुरा+रस] अप्रसन्न या रुष्ट होना।

औरसी--स्त्री० [स० औरस+ङीप्] कन्या, जो विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुई हो।

औरस्य--वि० [सं० उरस्+यत्, उरस्य+अण्] १. (व्याकरण में ध्वनि) जिसका उच्चारण हृदय से होता हो। २. औरस।

औरा--प्रत्य० [सं० वटक, हिं० बड़ा] एक प्रत्यय जो कुछ संज्ञाओं में लगकर किसी विशिष्ट वस्तु से या किसी विशिष्ट रूप में बने हुए पकवानों का वाचक होता है। जैसे—तिल ते तिलौरा, फूलना से० फुलौरा आदि।

औरासी*--वि० [सं० अव+राशि] [स्त्री० औरासी] १. जो निकृष्ट या बुरी राशि में हो या उससे संबंध रखता हो। २. बे-ठिकाने का।

वेढंगा। वे-ढव। उदा०—विसर्यो सूर विरह दुख अपनी सुवत चाल औरासी।—सूर।

औरेव—पुं० [सं० अव+रेव=गति] १. वक्र गति। तिरछी चाल। २. ओढ़ने या पहनने के कपड़े की तिरछी काट। ३. असमंजस, झंझट या संकट की अवस्था। उलझन।

मुहा०—औरेव सुधारना=उलझन या संकट दूर करना। उदा०—राम कथा अवरेव (औरेव) सुधारी।—तुलसी।

४. चाल या पेंच की बात। ५. थोड़ी, साधारण या हलकी खराबी या हानि। जैसे—(क) इस नगीने में कुछ औरेव है। (ख) गिरने से तसवीर में औरेव आ गया है।

और्णिक—वि०[सं० ऊर्णा+ठञ्-इक] उर्ण या ऊन से संबंध रखने या उससे वननेवाला। ऊनी।

और्ध्वदे (दै) हिक—वि०[सं० ऊर्ध्वदेह+ठञ्-इक] उस देह (या आत्मा) से संबंध रखनेवाला जिसकी गति (मृत्यु के उपरान्त) उर्ध्व दिशा में या ऊपर की ओर होती है। पारलौकिक शरीर से संबंध रखनेवाला।

और्व—पुं० [सं० उर्वी+अण्] १. वड़वानल। २. पुराणों के अनुसार वह दक्षिणी भाग जिसमें सब नरक हैं और जहाँ दैत्यों का निवास है। ३. पाँच प्रवर ऋषियों में से एक। ४. नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक।

और्वशेय—पुं० [सं० उर्व+ढक्—एय] १. उर्वशी के पुत्र। २. अगस्त्य मुनि। ३. वशिष्ठ।

औलंभा—पुं०=उपालंभ।

औल—पुं० [देश०] जंगली प्रदेशों में होने वाला एक प्रकार का ज्वार।

औलना†—अ० [अनु०] १. तप्त होना। जलना। २. =औंसना। स० १. गरम करना। २. तपाना। ३. कष्ट देना।

औला—प्रत्य०[सं० पोलक, प्रा० ओलआ=वच्चा या छोटा रूप] एक प्रत्यय जो कुछ शब्दों के अन्त में लगकर उनके आरंभिक या छोटे रूप का वाचक होता है। जैसे—विनौला (वन या कपास का आरम्भिक रूप), अगौला (गन्ने का आरम्भिक भाग या ऊपरी रूप) आदि।

औलाद—स्त्री० [अ०] वंशज। संतति। संतान।

औला-दौला—वि० [देश०] जिसे किसी वात की चिन्ता या ध्यान न हो। ला-परवाह।

औलिया—पुं० [अ० वली का वहु०] मुसलमानी धर्म के अनुसार बहुत वड़े भक्त या पहुँचे हुए फकीर। (वहुवचनात्मक होने पर भी प्रायः एक वचन में प्रयुक्त)

औली†—स्त्री० [सं० आवली] वह अन्न जो नई फसल में से पहली बार काटा गया हो। नवान्न।

औलूक्य—पुं० [सं० उलूक+ष्यञ्] उलूक (अर्थात् कणादि) ऋषि का वैशेषिक दर्शन।

औलूक्य-दर्शन—पुं०[प० त०] वैशेषिक दर्शन।

औलूखल—वि० [सं० उलूखल+अण्] १. उलूखल या ऊखल संबंधी। २. (अन्न) जो ऊखल में कूटा गया हो। जैसे चिड़वा आदि।

औलेखाँ—पुं० दे० 'औले भाई'।

औलेभाई—पद [औले-अनु०+ फा० खाँ] ठगों का एक पारिभाषिक पद जिसका प्रयोग वे पारस्परिक संबोधन के समय करते थे।

औवल—वि० [अ०] १. गणना, परीक्षा, प्रतियोगिता आदि के प्रसंगों में पहला। प्रथम। २. प्रधान। मुख्य। ३. उत्तर। श्रेष्ठ।
पुं० आरंभ। शुरू।

औशि*—क्रि० वि० =अवश्य।

औशीर—वि० [सं० उशीर+अण्] उशीर या खस-संबंधी। उशीर का। खस का।
पुं० १. खस आदि की बुनी हुई चटाई। २. चँवर। चामर।

औषध—पुं० [सं० ओषधि+अण्] रोगी को नीरोग करने अथवा रोग का इलाज या उसकी रोक-थाम करने के लिए विधिपूर्वक वनाया हुआ ओषधियों का मिश्रण। दवा। (मेडिसिन)

औषधालय—पुं० [सं० औषध-आलय, प० त०] वह स्थान जहाँ दवाएँ वनती या विकती हों अथवा रोगियों को दी जाती हों। दवाखाना।

औषर—पुं० [सं० उपर+अण्] १. खारी नमक। २. चुंवक पत्थर।

औषस—वि० [सं० उषस्+अण्] उषा-संबंधी।

औषसी—स्त्री० [सं० औषस+ङीप् ?] उषःकाल। तड़का। प्रभात।

औष्ट्र—वि० [सं० उष्ट्र+अण्] ऊँट-संबंधी। ऊँट का। जैसे—औष्ट्र रथ।
पुं० ऊँटनी का दूध।

औष्ट्र-रथ—पुं० [कर्म० स०] वह गाड़ी या रथ जिसे ऊँट खींचते हों। ऊँट गाड़ी।

औष्ट्रिक—वि० [सं० उष्ट्र+ठक्-इक] १. ऊँट संबंधी। २. ऊँट के वालों से वना हुआ।

औष्ठ—वि० [सं० ओष्ठ+अण्] १. ओष्ठ-संबंधी। ओंठ का। २. ओंठ के आकार या रूप का।

औष्ठ्य—वि० [सं० ओष्ठ्य+अण्] १. ओंठ संबंधी। २. (वर्ण) जिसका उच्चारण ओष्ठ के योग से होता हो।

औष्ण—पुं० [सं० उष्ण+अण्] उष्णता।

औसत—पुं० [अ०] कई वातों, संख्याओं आदि के आधार पर स्थिर किया हुआ वरावर का परता।
विशेष—दे० 'माध्य०'।

औसना†—अ० [हिं० ऊमस+ना] १. विकल करनेवाली ऊमस होना। २. देर तक रखी हुई खाने की चीजों में सड़न उत्पन्न होना। ३. पत्तों, भूसे आदि में दवाये हुए फलों का पकना।

औसर*—पुं०=अवसर।

औसान—पुं० [सं० अवसान] १. अंत। समाप्ति। २. परिणाम।
पुं० [फा०] सुध-बुध। होश-हवास।

औसाना—स० [हिं० औसना] फलों आदि को भूसे आदि में रखकर पकाना।

औसि*—क्रि० वि०=अवश्य।

औसी—स्त्री० दे० 'औली'

औसेर*—स्त्री०=अवसेर

औहत—स्त्री० [सं० अपघात या अव+हत] १. अपमृत्यु आकस्मिक मृत्यु। २. दुर्गति। दुर्दशा।

औहाती†—स्त्री०=अहिवाती।

वस्तु के अंश से ही दूसरी वस्तु का लगाव होता है। जैसे—'चौकी पर पुस्तक है।' में पुस्तक सारी चौकी पर नहीं, उसके एक अंश पर ही स्थित है। इसी प्रकार का आधार औपश्लेपिक कहलाता है।

औपसर्गिक--वि० [सं० उपसर्ग+ठक्-इक] १. उपसर्ग-संबंधी। २. उपसर्ग के रूप में होनेवाला। ३. (रोग) जो उपसर्ग या छूत से फैलता हो। संक्रामक। (इन्फेक्शस) जैसे—औपसर्गिक ज्वर।

औपस्थिक--वि० [सं० उपस्थ+ठञ्-इक] उपस्थ संबंधी।
पुं० वह जो उपस्थ के आधार पर (अर्थात् व्यभिचार करके) अपनी जीविका चलावे।

औपस्थ्य--पुं० [सं० उपस्थ+ष्यञ्] स्त्री और पुरुष का संभोग या सहवास।

औपहारिक--वि० [सं० उपहार+ठक्-इक] जो उपहार के रूप में दिया जाय या हो। उपहार संबंधी।
पुं०=उपहार।

औपाधिक--वि० [सं० उपाधि+ठञ्-इक] १. उपाधि संबंधी या उपाधि से युक्त। २. अनावश्यक और ऊपरी या बाहरी बातों से युक्त।
वि० दे० 'औपधिक'।

औपायनिक--वि० [सं० उपायन+ठक्-इक] उपायन संबंधी या उपायन के रूप में होनेवाला (पदार्थ)।

औपासन--वि० [सं० उपासना+अण्] १. अग्नि संबंधी। २. उपासना या पूजा संबंधी। ३. पवित्र।
पुं० १. उपासना, पूजा आदि के लिए जलाई जानेवाली अग्नि। २. उक्त अग्नि के योग से उपासना, पूजा आदि के रूप में किये जानेवाले कृत्य।

औपेंद्र--वि० [सं० उपेंद्र+अण्] उपेंद्र-संबंधी। उपेंद्र का।

औम--वि० [सं० उमा+अण्] सन का बना हुआ।
†स्त्री० दे० 'अवम तिथि'।

औमक--वि० [सं० उमा+वुञ्-अक]=औम।

औमतिथि--स्त्री० दे० 'अवम तिथि'।

औरंग--पुं० [फा०] १. राज-सिंहासन। २. बुद्धिमत्ता। समझदारी। ३. औरंगजेब (बादशाह) के नाम का संक्षिप्त रूप (मध्ययुगीन कविताओं में प्रयुक्त)।

औरंगज़ेब--पुं० [फा०] १. राज-सिंहासन पर बैठकर शासन करनेवाला व्यक्ति। २. मुगल वंश का प्रसिद्ध सम्राट् जो शाहजहाँ का पुत्र था। (सन् १६५८-१७०७)

औरंगजेबी--पुं० [फा०] एक प्रकार का भीषण बड़ा फोड़ा जो जल्दी अच्छा नही होता।
विशेष--कहते है कि जब औरंगजेब ने अपनी सेना लेकर बहुत दिनों तक गोलकुण्डा पर घेरा डाला था, तब उसके बहुत से सैनिकों को इस तरह का फोड़ा होने लगा था, इसीलिए इसका यह नाम पड़ा।

औरंगशाह--पुं०=औरंगजेब।

और--अव्य० [स० अपर, प्रा० अवर] शब्दों, पदों, वाक्यांशों आदि को जोड़नेवाला एक संयोजक अव्यय जो कुछ अवस्थाओं में क्रिया विशेषण तथा विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होकर नीचे लिखे अर्थ देता है—१. जिसका या जिनका उल्लेख हो चुका हो, उसके या उनके साथ। तथा। जैसे—(क) कृष्ण, मोहन और राम तीनों चले गये। (ख) गौवें, घोड़े और हिरन सभी खुरोंवाले पशु हैं। २. कथित या प्रस्तुत के अतिरिक्त या सिवा कुछ नया और विलक्षण। जैसे—लो, और सुनो (अर्थात् अब तक जो सुन चुके हो, उसके अतिरिक्त कुछ नई परंतु विलक्षण बात सुनो।) उदा०—औरउ कथा अनेक प्रसंगा।—तुलसी।
मुहा०--**और का और होना**=(क) बहुत अधिक उलट-फेर होना। भारी परिवर्त्तन होना। जैसे—देखते-देखते देश और का और हो गया।
पद--**और का और**=जैसा होना चाहिए या जैसा पहले था, उससे बिलकुल अलग या भिन्न। **और क्या**=इसके सिवा और कुछ नही, यही तो। जैसे—किसी के यह पूछने पर कि आप स्वयं वहाँ गये थे? प्रायः कहा जाता है—और क्या। **और तो और**=औरों की बात तो जाने दो। औरों की बात दूर रही। जैसे—और तो और, आप भी ऐसा कहने लगे। **और तो क्या**=दूसरी बड़ी बड़ी बातों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। और सब तो जाने दो। जैसे—**और तो क्या** भला एक गिलास पानी तो पिला देते। **और नहीं तो क्या**=और क्या। (देखें ऊपर)।
क्रि० वि० अधिक मात्रा या मान में; अथवा अधिक बल लगाकर। जैसे—और चिल्लाओ, और मारो; और रोओ; आदि। उदा०—और आगि लागी न बुझावै सिंधु सावनो।—तुलसी।
वि० १. अधिक। ज्यादा। जैसे—कुछ और दाम बढ़े तो सौदा हो जाय। उदा०—और आस विस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।—तुलसी। २. प्रस्तुत से भिन्न। अन्य। दूसरा। जैसे—यह और बात है कि वे जरा कम समझ (या हठी) हैं। उदा०—बनि है बात उपाइ न और।—तुलसी।
पद--**और ही कुछ**=साधारण से भिन्न; परतु अनोखा, नया या निराला। जैसे—यह तो और ही कुछ निकला।

औरग--वि० [सं० उरग+अण्] उरग या साँप-संबंधी।
पुं० आश्लेषा।

औरत--स्त्री० [अ०] १. महिला। स्त्री। २. जोरू। पत्नी।

औरस--वि० [सं० उरस्+अण्] [स्त्री० औरसी] १. उर या हृदय संबंधी। २. उर या हृदय से उत्पन्न होनेवाला। ३. जिसका जन्म स्वयं किसी के हृदय अर्थात् व्यक्तित्व से हुआ हो। जैसे—औरस पुत्र।
पुं० विवाहिता स्त्री से उत्पन्न पुत्र।
विशेष--स्मृतियों में १२ प्रकार के जो पुत्र कहे गये हैं उनमें औरस सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

औरसना--अ० [स० अव=बुरा+रस] अप्रसन्न या रुष्ट होना।

औरसी--स्त्री० [स० औरस+ङीप्] कन्या, जो विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुई हो।

औरस्य--वि० [सं० उरस्+यत्, उरस्य+अण्] १. (व्याकरण में ध्वनि) जिसका उच्चारण हृदय से होता हो। २. औरस।

औरा--प्रत्य० [सं० वटक, हिं० बड़ा] एक प्रत्यय जो कुछ संज्ञाओं में लगकर किसी विशिष्ट वस्तु से या किसी विशिष्ट रूप में बने हुए पकवानों का वाचक होता है। जैसे—तिल से तिलौरा, फूलना से० फुलौरा आदि।

औरासी*--वि० [सं० अव+राशि] [स्त्री० औरासी] १. जो निकृष्ट या बुरी राशि में हो या उससे संबंध रखता हो। २. बे-ठिकाने का।

बेढंगा। बे-ढब। उदा०—बिसर्‌यो सूर बिरह दुख अपनी सुबत चाल औरासी।—सूर।

औरेब—पुं० [सं० अव+रेव=गति] १. वक्र गति। तिरछी चाल। २. ओढ़ने या पहनने के कपड़े की तिरछी काट। ३. असमंजस, झंझट या संकट की अवस्था। उलझन।

मुहा०—**औरेब सुधारना**=उलझन या संकट दूर करना। उदा०—राम कथा अवरेब (औरेब) सुधारी।—तुलसी।

४. चाल या पेंच की बात। ५. थोड़ी, साधारण या हलकी खराबी या हानि। जैसे—(क) इस नगीने में कुछ औरेब है। (ख) गिरने से तसवीर में औरेब आ गया है।

औणिक—वि० [सं० ऊर्णा+ठञ्-इक] उर्ण या ऊन से संबंध रखने या उससे बननेवाला। ऊनी।

और्ध्वदे (दै) हिक—वि० [सं० ऊर्ध्वदेह+ठञ्-इक] उस देह (या आत्मा) से संबंध रखनेवाला जिसकी गति (मृत्यु के उपरान्त) उर्ध्व दिशा में या ऊपर की ओर होती है। पारलौकिक शरीर से संबंध रखनेवाला।

और्व—पुं० [सं० उर्वी+अण्] १. वड़वानल। २. पुराणों के अनुसार वह दक्षिणी भाग जिसमें सब नरक हैं और जहाँ दैत्यों का निवास है। ३. पाँच प्रवर ऋषियों में से एक। ४. नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक।

और्वशेय—पुं० [सं० उर्व+ढक्—एय] १. उर्वशी के पुत्र। २. अगस्त्य मुनि। ३. वशिष्ठ।

औलंभा—पुं०=उपालंभ।

औल—पुं० [देश०] जंगली प्रदेशों में होने वाला एक प्रकार का ज्वार।

औलना†—अ० [अनु०] १. तप्त होना। जलना। २. =औंसना। स० १. गरम करना। २. तपाना। ३. कष्ट देना।

औला—प्रत्य० [सं० पोलक, प्रा० ओलआ=बच्चा या छोटा रूप] एक प्रत्यय जो कुछ शब्दों के अन्त में लगकर उनके आरंभिक या छोटे रूप का वाचक होता है। जैसे—बिनौला (बन या कपास का आरम्भिक रूप), अगौला (गन्ने का आरम्भिक भाग या ऊपरी रूप) आदि।

औलाद—स्त्री० [अ०] वंशज। संतति। संतान।

औला-दौला—वि० [देश०] जिसे किसी बात की चिन्ता या ध्यान न हो। ला-परवाह।

औलिया—पुं० [अ० वली का बहु०] मुसलमानी धर्म के अनुसार बहुत बड़े भक्त या पहुँचे हुए फकीर। (बहुवचनात्मक होने पर भी प्रायः एक वचन में प्रयुक्त)

औली†—स्त्री० [सं० आवली] वह अन्न जो नई फसल में से पहली बार काटा गया हो। नवान्न।

औलूक्य—पुं० [सं० उलूक+ष्यञ्] उलूक (अर्थात् कणादि) ऋषि का वैशेषिक दर्शन।

औलूक्य-दर्शन—पुं० [ष० त०] वैशेषिक दर्शन।

औलूखल—वि० [सं० उलूखल+अण्] १. उलूखल या ऊखल संबंधी। २. (अन्न) जो ऊखल में कूटा गया हो। जैसे चिड़वा आदि।

औलेखाँ—पुं० दे० 'औले भाई'।

औलेभाई—पद [औले-अनु०+ फा० खाँ] ठगों का एक पारिभाषिक पद जिसका प्रयोग वे पारस्परिक संबोधन के समय करते थे।

औवल—वि० [अ०] १. गणना, परीक्षा, प्रतियोगिता आदि के प्रसंगों में पहला। प्रथम। २. प्रधान। मुख्य। ३. उत्तर। श्रेष्ठ।

पुं० आरंभ। शुरू।

औशि*—क्रि० वि० =अवश्य।

औशीर—वि० [सं० उशीर+अण्] उशीर या खस-संबंधी। उशीर का। खस का।

पुं० १. खस आदि की बुनी हुई चटाई। २. चँवर। चामर।

औषध—पुं० [सं० ओषधि+अण्] रोगी को नीरोग करने अथवा रोग का इलाज या उसकी रोक-थाम करने के लिए विधिपूर्वक बनाया हुआ ओषधियों का मिश्रण। दवा। (मेडिसिन)

औषधालय—पुं० [सं० औषध-आलय, ष० त०] वह स्थान जहाँ दवाएँ बनती या बिकती हों अथवा रोगियों को दी जाती हों। दवाखाना।

औषर—पुं० [सं० उषर+अण्] १. खारी नमक। २. चुंबक पत्थर।

औषस—वि० [सं० उषस्+अण्] उषा-संबंधी।

औषसी—स्त्री० [सं० औषस+ङीप्?] उषःकाल। तड़का। प्रभात।

औष्ट्र—वि० [सं० उष्ट्र+अण्] ऊँट-संबंधी। ऊँट का। जैसे—औष्ट्र रथ।

पुं० ऊँटनी का दूध।

औष्ट्र-रथ—पुं० [कर्म० स०] वह गाड़ी या रथ जिसे ऊँट खींचते हों। ऊँट गाड़ी।

औष्ट्रिक—वि० [सं० उष्ट्र+ठक्-इक] १. ऊँट संबंधी। २. ऊँट के बालों से बना हुआ।

औष्ठ—वि० [सं० ओष्ठ+अण्] १. ओष्ठ-संबंधी। ओंठ का। २. ओंठ के आकार या रूप का।

औष्ठ्य—वि० [सं० ओष्ठ्य+अण्] १. ओंठ संबंधी। २. (वर्ण) जिसका उच्चारण ओष्ठ के योग से होता हो।

औष्ण—पुं० [सं० उष्ण+अण्] उष्णता।

औसत—पुं० [अ०] कई बातों, संख्याओं आदि के आधार पर स्थिर किया हुआ बराबर का परता।

विशेष—दे० 'माध्य०'।

औसना†—अ० [हिं० ऊमस+ना] १. विकल करनेवाली ऊमस होना। २. देर तक रखी हुई खाने की चीजों में सड़न उत्पन्न होना। ३. पत्तों, भूसे आदि में दबाये हुए फलों का पकना।

औसर*—पुं०=अवसर।

औसान—पुं० [सं० अवसान] १. अंत। समाप्ति। २. परिणाम।

पुं० [फा०] सुध-बुध। होश-हवास।

औसाना—स० [हिं० औसना] फलों आदि को भूसे आदि में रखकर पकाना।

औसि*—क्रि० वि०=अवश्य।

औसी—स्त्री० दे० 'औली'

औसेर*—स्त्री०=अवसेर

औहत—स्त्री० [सं० अपघात या अव+हत] १. अपमृत्यु आकस्मिक मृत्यु। २. दुर्गति। दुर्दशा।

औहाती†—स्त्री०=अहिवाती।

क

क—हिंदी वर्णमाला का पहला व्यंजन, जो भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से कंठ्य, स्पर्शी, अल्पप्राण तथा अघोष माना गया है। तद्धित उपसर्ग के रूप में यह (क) कुछ संस्कृत क्रियाओं के अंत में लगकर उनके कर्त्ता कारक का सूचक होता है; जैसे—प्रबंध से प्रबंधक, व्यवस्थापन से व्यवस्थापक आदि। (ख) कुछ संस्कृत संज्ञाओं के अंत में लगकर यह उनके छोटे या बुरे रूप का वाचक होता है; जैसे—कूप से कूपक (छोटा कुआँ) अश्व से अश्वक (बुरा घोड़ा। (ग) कहीं-कहीं यह 'से युक्त' या 'वाला' का भी बोधक होता है; जैसे—रूपक (रूप से युक्त या रूपवाला)

विशेष—कुछ हिंदी शब्दों में प्रत्यय के रूप में लगकर यह (क) किसी भाव, स्थान, स्थिति आदि का सूचक होता है; जैसे—बैठना से बैठक (बैठने की क्रिया, भाव या स्थान)। और (ख) किसी वस्तु के हलके रूप का भी सूचक होता है; जैसे—ठंढ से ठंढक।

पुं० [सं० √कच् (दीप्ति) √अथवा कै (शब्द) +ड] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. दक्ष प्रजापति। ४. सूर्य। ५. अग्नि। ६. कामदेव। ७. वायु। ८. प्रकाश। ९. यम। १०. आत्मा। ११. मन। १२. शरीर। १३. शब्द। १४. जल। १५. राजा। १६. धन-संपत्ति। १७. मोर। १८. मेघ। १९. समय।

कं—पुं० [सं० √कम् (चाहना) +विच्] १. जल। पानी। २. सुख। ३. सिर। ४. आग। ५. सोना। स्वर्ण। ६. कामदेव।

कँउधा—पुं० [हिं० कौंधना] १. वह जो कौंधे या चमके। बिजली। २. कौंध (बिजली की चमक)।

कंक—पुं० [सं० √कंक् (गति) +अच्] १. सफेद रंग की चील। २. बगला। ३. क्षत्रिय। ४. छद्मवेशी ब्राह्मण। बना हुआ ब्राह्मण। ५. युधिष्ठिर का उस समय का नाम, जब वे अज्ञातवास के समय ब्राह्मण बनकर राजा विराट् के यहाँ रहते थे। ६. एक प्राचीन देश। ७. एक प्रकार के केतु या पुच्छल तारे, जिनकी संख्या ३२ कही गई है। ८. यमराज। ९. मृत्यु।

*पुं० [सं० कंकट] १. कवच। उदा०—जुमझिझ कंक मज्जि कोन सार अंग षडयं।—चंदवरदाई। २. युद्ध। समर। उदा०—करि कंक सक आसुर विडर, कहर वत्तता दिन कलिय।—चदवरदाई।

कंकट—पुं० [सं० √कंक्+अटन्] १. कवच २. अंकुश। ३. सीमा हद।

कंकड़—पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर, गु० मरा० कंकर, सिं० कँकिरो; पं० कक्कर, ने० बँ० काँकर] [स्त्री० अल्पा० कंकड़ी, वि० कँकड़ीला, कँकरीला] १. पत्थर और मिट्टी के योग से बने हुए एक प्रकार के रोड़े जो सड़क बनाने और चूना, बरी आदि तैयार करने के काम में आते हैं। २. पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, जो छतें, सड़कें आदि बनाने के काम में आते हैं। ३. किसी कड़ी चीज का कोई बहुत छोटा टुकड़ा। ४. नीलम, पन्ने, हीरे आदि रत्नों का वह अनगढ़ टुकड़ा, जो अभी घिस कर सुडौल न किया गया हो। ५. वह सूखा या भुना हुआ तमाकू का पत्ता, जो चिलम पर सुलगा कर धूम-पान के काम में आता है।

पद—कंकड़-पत्थर=कूड़ा-करकट।

कंकड़ीला—वि० [हिं० कंकड़] १. (मार्ग या रास्ता) जिसमें कंकड़ पड़े या बिछे हुए हों। २. कंकड़ों से भरा हुआ। ३. कंकड़ों से बना हुआ।

कंकण—पुं० [सं० कम् √कण् (शब्द करना)+अच्] १. चाँदी, सोने आदि का बना हुआ एक गोलाकार आभूषण, जिसे स्त्रियाँ कलाई पर पहनती हैं। कंगन। २. लोहे का कड़ा, जो हाथ या पैर में पहना जाता है। ३. विवाह के समय वर-वधू के हाथों में रक्षार्थ बाँधा जाने-वाला एक धागा, जिसमें लोहे के छल्ले के साथ सरसों आदि की पोटली पीले कपड़े में बँधी रहती है। ४. संगीत में एक प्रकार का षाड़व राग। ५. संगीत में एक प्रकार का ताल।

कंकणास्त्र—पुं० [सं० कंकण–अस्त्र, उपमि० स०] एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र।

कंकणी—स्त्री० [सं० कंक √अण् (शब्द) +अच्—ङीप्] चील नामक पक्षी। (राज०)

†स्त्री० =किंकिणी।

कंकत—पुं० [सं० √कंक् +अतच्] १. बाल झाड़ने का कंघा। २. एक प्रकार का विषाक्त जंतु।

कंकत्रोट—पुं० [सं० कंक √त्रुट् (टूटना) +णिच् +अच्] एक प्रकार की मछली। कौआ मछली।

कंकन—पुं० [सं० कं +कं] आकाश।

पुं० =कंकण।

कंक-पत्र—पुं० [ब० स०] १. कंक नामक पक्षी या सफेद चील का पर, जो प्राचीन काल में बाणों में लगाया जाता था। २. ऐसा तीर या बाण, जिसमें उक्त पर लगा हो।

कंक-पत्री—पुं० [सं० कंकपत्र +ङीष्] बाण। तीर।

कंक-मुख—वि० [ब० स०] जिसका मुँह बगले की तरह हो।

पुं० एक प्रकार की चिमटी।

कंकरीट—स्त्री० [अं० कांक्रीट] १ कंकड़, बालू, सीमेंट आदि से बना हुआ मसाला, जो इमारत के काम आता है। २. छोटी कंकड़ियाँ।

कंकरीला†—वि० =कँकड़ीला।

कँकरेत†—वि०=कँकड़ीला।

स्त्री०=कंकरीट।

कंकाल—पुं० [सं०कम् √कल् (प्रेरित करना) +णिच् +अच्] सारे शरीर की हड्डियों का ढाँचा। ठठरी।

कंकालमाली (लिन्)—वि० [सं० कंकाल–माला ष० त०, +इनि] हड्डियों की माला या मुंडमाल पहननेवाला।

पुं० १. शिव। २. भैरव।

कंकालास्त्र—पुं० [कंकाल–अस्त्र, ष० त०] प्राचीन काल का एक अस्त्र, जो हड्डी से बनता था।

कंकालिनी—स्त्री० [सं० कंकाल +इनि—ङीप्] १. दुर्गा। २. दुष्ट और झगड़ालू स्त्री। कर्कशा।

कंकाली—पुं० [सं० कंकाल +इनि] एक प्रकार के भिक्षुक।

स्त्री० [कंकाल +ङीष्] =कंकालिनी

कंकु—पुं० [सं० √कंक् +उन्] कंगनी नाम का अन्न।

कंकुष्ठ—पुं० [सं० कंकु √स्था (ठहरना) +क] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी।

कंकेर—पुं० [देश०] एक प्रकार का पान, जिसमें कुछ कड़ुआपन होता है।
कंकेलि—पुं० [कम्-केलि, ब० स०] अशोक का पेड़।
कंकोल—पुं० [सं० √कंक् +ओलच्] १. शीतलचीनी की जाति का एक पेड़। २. उक्त वृक्ष का फल।
कंकोली—स्त्री० [सं० कंकोल +ङीप्] =कक्कोल।
कंख—पुं० [सं० कम् √खल् (संचय) +उ] १. फल भोग। २. भोग।
कंखना*—अ० [सं० कांक्षा] किसी बात की इच्छा या कामना होना। अ० =काँखना।
कँखवारी—स्त्री० [हि० काँख] =कँखौरी।
कँखौरी—स्त्री० [हि० काँख] १. काँख। २. काँख या बगल में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।
कंग— पुं० [सं० कंकट] जिरह बख्तर।
कंगन—पुं० [सं० प्रा०, गु०, मरा० कंकण, सि. कंगणु; पं० कंगण; बँ० उ० कांकन, कांगन; का० काकम, कंगुन] १. चाँदी, सोने आदि का बना हुआ गोलाकार आभूषण, जो स्त्रियाँ कलाई पर पहनती हैं। २. सिखों के पहनने का लोहे का कड़ा या चक्र।
कँगना†—पुं० [सं० कंगु] एक प्रकार की पहाड़ी घास।
पुं० =कंगन।
कँगनी—स्त्री० [हि० कँगना] १. हाथ में पहनने का छोटा कंगन। २. दीवारों के ऊपरी भाग में (छत के पास) शोभा के लिए उभार कर निकाली हुई पट्टी या लकीर। (कार्निस) ३. किसी चीज में बनाई हुई, उक्त प्रकार की कोई आकृति या रचना। नुकीले कँगूरों या दाँतोंवाला गोल चक्कर। जैसे—नैचे की कँगनी, परात की कँगनी आदि।
स्त्री० [सं० कंगु] एक प्रकार का कदन्न, जिसके दाने गोल और बहुत छोटे होते हैं।
कंगल*—पुं० १ =कंगाल। २. =कंग।
कंगला—वि० पुं० =कंगाल।
कँगही†—स्त्री० =कंघी।
कँगहेरा*—पुं० =कँघेरा।
कंगारू—पुं० [आस्ट्रे०] आस्ट्रेलिया में होनेवाला एक प्रकार का जंतु जो अपने बच्चों को अपने पेट की थैली में रख लेता है।
कंगाल—पुं० [सं० कंकाल] १. वह व्यक्ति, जिसके पास कुछ भी धन न हो या न रह गया हो। अत्यंत निर्धन। बहुत गरीब। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा व्यक्ति जो कुछ दे या बतला न सकता हो।
कंगाली—स्त्री० [हि० कंगाल] कंगाल या निर्धन होने की अवस्था या भाव।
कंगु—पुं० [सं० क √अंग् (गति) +णिच् +कु] कँगनी नाम का कदन्न।
कँगुनी†—स्त्री० =कँगनी।
कँगुरिया†—स्त्री० =कानी उँगली।
कँगुरी†—स्त्री० =कानी उँगली।
कँगूर—पुं० =कँगूरा।
कँगूरा—पुं० [फा० कुंगरः] १. चोटी। शिखर। २. पुरानी इमारतों की चहारदीवारी में बने हुए वे छोटे-छोटे बुर्ज, जिनमें खड़े होकर सिपाही आक्रमणकारियों से लड़ते थे। ३. ऐसी छपाई, बुनाई या नक्काशी, जिसमें उक्त प्रकार की आकृति बनी हो।
कँगूरेदार—वि० [फा० कुँगरादार] जिसमें कँगूरे या शिखर बने हों।
कंघा—पुं० [हि० कंघी से] बड़ी कंघी।
कंघी—स्त्री० [सं० कंकती, प्रा० कंकई] १. सींग आदि का बना हुआ लंबे-लंबे दाँतोंवाला एक उपकरण, जिससे सिर के बाल झाड़े तथा सँवारे जाते हैं।
मुहा०—कंघी-चोटी करना =स्त्रियों का, कंघी से बाल झाड़कर उनकी चोटी आदि गूँथना। (बनाव-सिंगार करने का सूचक)
२. उक्त आकार का जुलाहों का एक प्रसिद्ध औजार, जिसके रंध्रों में से ताने के सूत आर-पार निकाले हुए होते हैं और जिसके कारण वे आपस में उलझने नहीं पाते। ३. एक प्रकार का जंगली पौधा, जिसकी पत्तियाँ दवा के काम आती हैं।
कँघेरा—पुं० [हि० कंघा +एरा (प्रत्य०)] वह व्यक्ति, जो कंघी बनाता हो। कंघी बनानेवाला कारीगर।
कंचन—पुं० [सं० काञ्चन] १. सोना। स्वर्ण।
मुहा०—(कहीं या किसी के यहाँ) कंचन बरसना=बहुत अधिक आय और धन-संपत्ति होना।
२. धन-संपत्ति। दौलत। ३. धतूरा। ४. लाल कचनार। [स्त्री० कंचनी] ५. एक प्रकार की पहाड़ी जाति, जिसकी स्त्रियाँ प्रायः वेश्यावृत्ति करती हैं।
वि० १. सोने के रंग का। २. सुंदर और स्वच्छ। ३. बिलकुल नीरोग और स्वस्थ।
†वि० =अकिंचन।
कंचनिया—स्त्री० [हि० कंचन] एक प्रकार का कचनार।
वि० १. कंचन या सोने से बना हुआ। २. कंचन या सोने के रंग का। पीला।
कंचनी—स्त्री० [सं० कंचन] १. कंचन जाति की स्त्री, जो प्रायः वेश्यावृत्ति करती है। २. रंडी। वेश्या। उदा०—कंचन नैनन कंचनी स्याम कंचुकी अंग।—रहीम। ३. अप्सरा।
कंचिका—स्त्री० [सं० √ कञ्च् (चमकना) +ण्वुल्—अक—टाप्] १. एक प्रकार की फुंसी या फुड़िया। २. बाँस की छोटी टहनी।
कंचु*—पुं० =काँच (शीशा)।
कंचुआ†—पुं० [सं० कंचुक] अंगिया। चोली।
कंचुक—पुं० [सं० √काञ्च् (बंधनादि) +उकन्] १. जामे या अचकन की तरह का एक पुराना पहनावा, जो घुटनों तक लंबा होता था। २. स्त्रियों की अँगिया या चोली। ३. कपड़ा। वस्त्र। ४. कवच। बकतर। ५. साँप की केंचुली।
कंचुकित—वि० [सं० कंचुक +इतच्] १. जिसके ऊपर कंचुक हो। कंचुक से युक्त। २. कपड़े आदि से ढका हुआ। ३. जो जिरह या बकतर पहने हो।
कंचुकी (किन्)—पुं० [सं० कंचुक +इनि] १. प्राचीन काल के राजाओं की दासियों का अध्यक्ष या प्रधान अधिकारी और अंतःपुर का रक्षक। २. द्वारपाल। ३. साँप। ४. ऐसा अन्न, जिसके ऊपर छिलका रहता हो। जैसे—चना, जौ आदि।

स्त्री० [सं० कंचुक] १. अँगिया। चोली। २. साँप की केंचुली।

कंचुरि—स्त्री० =केंचुली। (साँप की)।

कंचुलिका—स्त्री० [सं० कञ्चुली+कन्–टाप्–ह्रस्व]=कंचुली (चोली)।

कंचुली—स्त्री० [सं० √कञ्च् +उलच्—ङीप्] १. अंगिया। चोली। २. साँप की केंचुली।

कँचुवा†—पुं० =कँचुआ।

कँचेरा—पुं० [हिं० काँच +एरा (प्रत्य०] वह जो काँच की चीजें बनाता हो।

कँचेली—स्त्री० [सं० देश०] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष।

कंछा—पुं० [हिं० कंछी] पौधे का कल्ला। कोंपल।

कंछी—स्त्री० [सं० कंचिका] पौधे का कोंपल। कल्ला।

कंज—पुं० [सं० कम्√जन् (उत्पन्न होना) +ड] १. कमल। २. ब्रह्मा। ३. अमृत। ४. सिर के बाल। केश।
†पुं० दे० 'कंजा' (कँटीली झाड़ी)।

कंजई—वि० [हिं० कंजा] १. कंजे की फली के रंग का। कुछ नीलापन लिये काला। २. दे० 'ककरेजी' (रंग)।
पुं० वह घोड़ा, जिसकी आँखें कंजे के रंग की हों।

कंजक—पुं० [सं० कंज √कै (मालूम होना) +क] [स्त्री० कंजकी] एक प्रकार का पक्षी।

कंजका—स्त्री० [सं० कन्यका] कुँवारी लड़की।

कंजज—पुं० [सं० कंज √जन् +ड] ब्रह्मा।

कंजड़—पुं० =कंजर

कंजन—पुं० [सं० कम्√जन्+णिच्+अण्] १. ब्रह्मा, जिनकी उत्पत्ति कमल से मानी गई है। २. कामदेव। ३. एक प्रकार का पक्षी।

कंज-नाभ—पुं० [ब० स०] विष्णु।

कंजर—पुं० [स० कम्√जृ (जीर्ण होना) +विच् +अच्] १. सूर्य। २. हाथी। ३. उदर। ४. ब्रह्मा। ५. मोर। ६. संन्यासी।
पुं० [हिं० कंचन ?] [स्त्री० कंजरिन्, कंजरी] एक प्रसिद्ध यायावर अनार्य और असभ्य जाति, जिसकी गणना अपराधशील जातियों में होती है। कहीं-कहीं इस जाति की स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति भी करती हैं।

कंजरी—स्त्री० [हिं० कंजर] १. कंजर जाति की स्त्री। २. रंडी। वेश्या। (पश्चिम)

कंजल—पुं० [सं० √कंज् (समर्थ होना) +कलच्] एक प्रकार का पक्षी।

कंजा—पुं० [सं० करंज] एक कँटीली झाड़ी, जिसकी फली औषध के काम आती है।
वि० [स्त्री० कंजी] १. कंजे की फली के रंग का। गहरा खाकी। २. जिसकी आँखें उक्त रंग की हों।

कंजाभ—वि० [स० कंज–आभा, ब० स०] कमल के समान आभा या कांतिवाला।
पुं० कमल जैसी आभा या कांति।

कंजार—पुं० [स० कम्√जृ +णिच् +अण्] दे० 'कंजर'।

कंजारण्य—पुं० [स० कंज–अरण्य प० त०] कमलों का वन।

कंजावलि—स्त्री० [कंज–आवलि, ब० स०] एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण, दो जगण और अंत में एक लघु होता है।

कंजास†—पुं० [?] कूड़ा-कर्कट।

कंजिका—स्त्री० [सं० √कंज् +ण्वुल्–अक, टाप्, इत्व] एक प्रकार का पौधा।

कँजियाना—अ० [हिं० कंजा] १. कंजई रंग का बनना या होना, कुछ नीलापन लिये काला पड़ना। २. दहकते हुए उपले या कोयलों का बुझना या बुझने को होना। झँवाना।

कँजुवा†—पुं०=कँड़वा।

कंजूस—पुं० [स० कण +हिं० चूस] [भाव० कंजूसी] ऐसा व्यक्ति, जो पास में धन होने पर भी अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसका उपभोग न करता हो अथवा जो कष्ट सहकर और हीन अवस्था में रहकर भी धन का संग्रह करता चलता हो। कृपण। सूम।

कंजूसी—स्त्री० [हिं० कंजूस] कंजूस होने की अवस्था, गुण या भाव।

कंट—वि० [सं० √कंट् (गति) +अच्] कँटीला।
पुं० काँटा।

कंटक—पुं० [सं० √कंट्+ण्वुल्–अक] १. पेड़-पौधों आदि की डालियों में उगनेवाला ऐसा ठोस नुकीला, किंतु बारीक अंकुर, जो शरीर में चुभ सकता हो। काँटा। २. ऐसी वस्तु, जिसका सिरा नुकीला हो। ३. ऐसी वस्तु, जो लोगों के मार्ग में बाधा या रुकावट उत्पन्न करती हो। ४. कोई ऐसा कार्य या बात, जो दूसरों के सुख-सभीते, स्वास्थ्य आदि में बाधक हो। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाली बात। (नूएजेन्स) ५. मछली फँसाने की एक प्रकार की टेढ़ी अँकुसी। ६. शरीर में होनेवाला रोमांच।

कंटक-शोधन—पुं० [प० त०] १. शरीर आदि में चुभे या धँसे हुए काँटे बाहर निकालना। २. किसी प्रकार की बाधा, विघ्न, रुकावट आदि या कोई कष्टदायक तत्त्व दूर करना।

कंटकाकीर्ण—वि० [सं० कंटक–आकीर्ण, तृ० त०] १. (मार्ग या रास्ता) जो काँटों से भरा हुआ हो। २. जिसमें बहुत-सी कष्ट-प्रद बाधाएँ हों। जैसे—राष्ट्रों की उन्नति (या स्वतंत्रता) का मार्ग बहुत कंटकाकीर्ण होता है। (थार्नी)

कंटकार—पुं० [सं० कंटक√ऋ (गति)+अण्] १. शाल्मलि। सेमल। २. एक प्रकार का कीकर या बबूल। ३. कटेरी। भटकटैया। ४. एक प्रकार की मछली, जिसकी रीढ़ के काँटे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। (प्लोटोसस)

कंटकारिका—स्त्री० [सं० कंटक√ऋ+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] = कंटकार।

कंटकाल—पुं० [सं० कंटक√अल् (पर्याप्त)+अच्] १. कटहल। २. काँटों से घिरा या बना हुआ घर।

कंटकित—वि० [सं० कंटक+इतच्] १. काँटों से युक्त। काँटेदार। कँटीला। २. जिसके शरीर के बाल खड़े-खड़े हों। जैसे—साही। ३. जिसे रोमांच हुआ हो।

कंटकिनी—स्त्री० [सं० कंटक+इनि—ङीप्] भटकटैया।

कंटकी (किन्)—वि० [सं० कंटक+इनि] १. काँटेदार। २. कँटीला।
स्त्री० [कंटक+ङीप्] १. एक प्रकार की छोटी मछली। कँटवा। २. खैर का पेड़। ३. मैनफल। ४. बाँस। ५. बैर का पेड़। ६. गोखरू। ७. कोई काँटेदार पेड़।

कंट-फल—पुं० [मध्य० स०] १. गोखरू। २. कटहल। ३. धतूरा। ४. करंज का पेड़।

कँट वाँस—पुं० [हिं० काँटा+वाँस] एक प्रकार का पतला तथा ठोस वाँस जिसकी लाठियाँ बनाई जाती हैं।

कंटर—पुं० [अं० डिकैंटर] शीशे की बनी हुई एक प्रकार की सुराही जिसमें शराब अथवा कई प्रकार के पेय सुगंधित द्रव्य रखे जाते हैं। पुं०=कनस्टर।

कंटा—पुं० [सं० कांड] वह पतली तथा छोटी लकड़ी जिसके एक सिरे पर चपड़ा या लाख लगा रहता है और जिससे चुड़िहारे चूड़ियाँ रँगते हैं।

कंटाइन—स्त्री० [सं० कात्यायिनी] १. चुड़ैल। २. कर्कश या लड़ाकी स्त्री।

वि० [?] बिलकुल ठीक या पक्का।

कंटाप—पुं० [हिं० कनटोप] किसी वस्तु का अगला या सामनेवाला भारी भाग या सिरा।

कँटाय†—स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का कँटीला पेड़।

कँटार†—वि०=कँटीला।

कंटाल—पुं० [सं० कंट√अल् (पर्याप्ति)+अच्] एक प्रकार की वनस्पति। रामवाँस।

कंटिका—स्त्री० [सं०√कंट्+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] सूई के आकार की छोटी पतली तथा नोकदार तीली, जिससे कागज आदि नत्थी किये जाते हैं। आलपीन। (पिन)

कँटिया—स्त्री० [हिं० काँटी] १. लोहे आदि से बना हुआ गोल तथा नुकीला छोटा काँटा, जो दीवार, लकड़ी आदि में गाड़ा या धँसाया जाता है। छोटा काँटा। कील। २. मछली फँसाने की नुकीली अँकुसी। ३. बहुत-सी अँकुसियों के गुच्छे के रूप में बना हुआ वह उपकरण, जिसकी सहायता से कुएँ में गिरे हुए लोटे, बालटियाँ, हंडे आदि निकालते हैं। ४. इमली की ऐसी छोटी फली, जिसमें बीज न पड़े हों।

कँटियाना—अ० [हिं० काँटा] १. काँटों से युक्त होना। २. रोमांचित होना। उदा०—मन-मोहन छवि पर कटी कहै कँट्यानी देह।

स० १. (दीवार लकड़ी आदि में) काँटे लगाना। काँटों से युक्त करना। २. रोमांचित करना।

कँटीला—वि० [हिं० काँटा+ईला (प्रत्य०)] १. जो काँटों से युक्त हो। जैसे—कँटीला पौधा। २. जिसमें काँटे जड़े या लगे हुए हों। जैसे—कँटीला तार।

कँटेरी—स्त्री० [सं० कंटकी] भटकटैया।

कँटैला—पुं०=कठकेला।

कंटोप—पुं०=कनटोप।

कंठ—पुं० [सं०√कण् (शब्द करना)+ठ] १. गरदन। गला। २. गले का वह भीतरी भाग जिसके अंदर वे नलियाँ होती है जिनसे भोजन पेट में जाता है और आवाज या स्वर निकलता है। ३. गले मे निकली हुई आवाज या स्वर।

मुहा०—कंठ फूटना=(क) वर्णों के स्पष्ट उच्चारण का आरंभ होना। बोलने लगना। (ख) मुँह से शब्द निकलना।

४. तोते आदि पक्षियों के गले पर लाल, नीली आदि कई रंगों की वृत्ताकार लकीर। हँसली। ५. किनारा। तट। ६. मैनफल।

वि० (कविता, बात आदि) जो जवानी याद हो। कंठस्थ। जैसे—उन्हें सारी गीता कंठ है।

कंठ-कुब्ज—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का सन्निपात। (वैद्यक)

कंठ-कूणिका—स्त्री० [उपमि० स०] वीणा।

कंठ-गत—वि० [द्वि० त०] गले तक या गले में आया हुआ। जैसे—किसी के प्राण कंठगत होना।

कंठ-तालव्य—वि० =कंठ्य-तालव्य

कंठ-मणि—पुं० [मध्य० स०] १. कंठहार। २. घोड़े के गले के पास होनेवाली एक भौंरी।

कंठ-माला—स्त्री० [मध्य० स०] गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग, जिससे जगह-जगह गिल्टियाँ निकल आती हैं। (स्क्रॉफ्यूला)

कंठ-शूल—पुं० [स० त०] घोड़े के गले की एक भौंरी।

कंठ-श्री—स्त्री० [मध्य० स०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना। २. कंठी। माला।

कंठ सिरी*—स्त्री०=कंठ-श्री।

कंठस्थ—वि० [सं० कंठ√स्था (ठहरना)+क] १. गले में आकर अटका, ठहरा या रुका हुआ। २. जबानी याद किया हुआ। जैसे—पाठ कंठस्थ होना।

कँठहरिया†—स्त्री०=कंठी।

कँठहरी†—स्त्री० =कंठी।

कंठ-हार—पुं० [प० त०] १. गले में पहनने का हार। २. ऐसी वस्तु जो किसी से सदा चिपकी या लगी रहे तथा जिससे जल्दी पीछा न छूटे।

कंठा—पुं० [हिं० कंठ] १. बड़ी कंठी, जिसमें बड़े-बड़े मनके होते हैं। २. काले, लाल आदि रंग की वह रेखा, जो कई प्रकार के पक्षियों के गले में बनी रहती है। ३. अँगरखे या कुरते का वह गोलाकार भाग, जो गले पर पड़ता है।

कंठाग्र—वि० [कंठ-अग्र, प० त०] (कविता, पद्य आदि) जो जबानी याद किया गया हो। कंठस्थ।

कंठाल—पुं० [सं०√कंठ् (स्मरण करना)+आलच्] १. नाव। २. कुदाल। ३. युद्ध।

कंठी—स्त्री० [कंठा का अल्प० रूप] १. छोटी गुरियों की माला। छोटा कंठा। २. तुलसी आदि के बहुत छोटे दानों की वह माला, जो वैष्णव लोग किसी मत में दीक्षित होने के समय पहनते हैं; और जिसके उपरांत वे विशिष्ट आचार-विचारपूर्वक रहते हैं।

मुहा०—कंठी तोड़ना=वैष्णवत्व का त्याग करके फिर से मछली-मांस आदि खाने लगना। (किसी को) कंठी देना या बाँधना=चेला बना कर वैष्णव धर्म में दीक्षित करना। कंठी ले लेना=वैष्णव धर्म में दीक्षित होकर आचार-विचारपूर्वक रहना।

३. कुछ पक्षियों के गले की वह गोल धारी, जो देखने में कंठी या माला की तरह होती है। हँसली। जैसे—तोते या मोर की कंठी।

वि० [सं० कंठ+इनि] कंठ या ग्रीवा से संबंध रखने या उसमें होनेवाला।

कंठी-रव—पुं० [ब० स०] १. सिंह। शेर। २. कबूतर। ३. मतवाला हाथी।

स्त्री० [सं० कंचुक] १. अँगिया। चोली। २. साँप की केंचुली।

कंचुरि—स्त्री० =केंचुली। (साँप की)।

कंचुलिका—स्त्री० [सं० कञ्चुली+कन्–टाप्–ह्रस्व]=कंचुली (चोली)।

कंचुली—स्त्री० [सं० √कञ्च् +उलच्—ङीप्] १. अंगिया। चोली। २. साँप की केंचुली।

कँचुवा†—पुं० =कँचुआ।

कँचेरा—पुं० [हिं० काँच +एरा (प्रत्य०] वह जो काँच की चीजें बनाता हो।

कँचेली—स्त्री० [सं० देश०] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष।

कंछा—पुं० [हिं० कंछी] पौधे का कल्ला। कोंपल।

कंछी—स्त्री० [सं० कंचिका] पौधे का कोंपल। कल्ला।

कंज—पुं० [सं० कम्√जन् (उत्पन्न होना) +ड] १. कमल। २. ब्रह्मा। ३. अमृत। ४. सिर के वाल। केश।

†पुं० दे० 'कंजा' (कँटीली झाड़ी)।

कंजई—वि० [हिं० कंजा] १. कंजे की फली के रंग का। कुछ नीलापन लिये काला। २. दे० 'ककरेजी' (रंग)।

पुं० वह घोड़ा, जिसकी आँखें कंजे के रंग की हों।

कंजक—पुं० [सं० कंज √कै (मालूम होना) +क] [स्त्री० कंजकी] एक प्रकार का पक्षी।

कंजका—स्त्री० [सं० कन्यका] कुँवारी लड़की।

कंजज—पुं० [सं० कंज √जन् +ड] ब्रह्मा।

कंजड़—पुं० =कंजर

कंजन—पुं० [सं० कम्√जन्+णिच्+अण्] १. ब्रह्मा, जिनकी उत्पत्ति कमल से मानी गई है। २. कामदेव। ३. एक प्रकार का पक्षी।

कंज-नाभ—पुं० [ब० स०] विष्णु।

कंजर—पुं० [स० कम्√जृ (जीर्ण होना) +णिच् +अच्] १. सूर्य। २. हाथी। ३. उदर। ४. ब्रह्मा। ५. मोर। ६. संन्यासी।

पुं० [हिं० कंचन?] [स्त्री० कंजरिन्, कंजरी] एक प्रसिद्ध यायावर अनार्य और असभ्य जाति, जिसकी गणना अपराधशील जातियों में होती है। कहीं-कहीं इस जाति की स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति भी करती हैं।

कंजरी—स्त्री० [हिं० कंजर] १. कंजर जाति की स्त्री। २. रंडी। वेश्या। (पश्चिम)

कंजल—पुं० [सं० √कंज् (समर्थ होना) +कलच्] एक प्रकार का पक्षी।

कंजा—पुं० [सं० करंज] एक कँटीली झाड़ी, जिसकी फली औषध के काम आती है।

वि० [स्त्री० कंजी] १. कंजे की फली के रंग का। गहरा खाकी। २. जिसकी आँखें उक्त रंग की हों।

कंजाभ—वि० [स० कंज–आभा, ब० स०] कमल के समान आभा या कांतिवाला।

पुं० कमल जैसी आभा या कांति।

कंजार—पुं० [स० कम्√जृ +णिच् +अण्] दे० 'कंजर'।

कंजारण्य—पुं० [स० कंज–अरण्य ष० त०] कमलों का वन।

कंजावलि—स्त्री० [कंज–आवलि, ब० स०] एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण मे भगण, नगण, दो जगण और अंत में एक लघु होता है।

कंजास†—पुं० [?] कूड़ा-कर्कट।

कंजिका—स्त्री० [सं० √कंज् +ण्वुल्–अक, टाप्, इत्व] एक प्रकार का पौधा।

कँजियाना—अ० [हिं० कंजा] १. कंजई रंग का बनना या होना, कुछ नीलापन लिये काला पड़ना। २. दहकते हुए उपले या कोयलों का बुझना या बुझने को होना। झँवाना।

कँजुवा†—पुं०=कँड़वा।

कंजूस—पुं० [सं० कण +हिं० चूस] [भाव० कंजूसी] ऐसा व्यक्ति, जो पास में धन होने पर भी अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसका उपभोग न करता हो अथवा जो कष्ट सहकर और हीन अवस्था में रहकर भी धन का संग्रह करता चलता हो। कृपण। सूम।

कंजूसी—स्त्री० [हिं० कंजूस] कंजूस होने की अवस्था, गुण या भाव।

कंट—वि० [सं० √कंट् (गति) +अच्] कँटीला।

पुं० काँटा।

कंटक—पुं० [सं० √कंट्+ण्वुल्–अक] १. पेड़-पौधों आदि की डालियों में उगनेवाला ऐसा ठोस नुकीला, किंतु बारीक अंकुर, जो शरीर में चुभ सकता हो। काँटा। २. ऐसी वस्तु, जिसका सिरा नुकीला हो। ३. ऐसी वस्तु, जो लोगों के मार्ग में बाधा या रुकावट उत्पन्न करती हो। ४. कोई ऐसा कार्य या बात, जो दूसरों के सुख-सभीते, स्वास्थ्य आदि में बाधक हो। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाली बात। (नूएजेन्स) ५. मछली फँसाने की एक प्रकार की टेढ़ी अँकुसी। ६. शरीर में होनेवाला रोमांच।

कंटक-शोधन—पुं० [ष० त०] १. शरीर आदि में चुभे या धँसे हुए काँटे बाहर निकालना। २. किसी प्रकार की बाधा, विघ्न, रुकावट आदि या कोई कष्टदायक तत्त्व दूर करना।

कंटकाकीर्ण—वि० [सं० कंटक–आकीर्ण, तृ० त०] १. (मार्ग या रास्ता) जो काँटों से भरा हुआ हो। २. जिसमें बहुत-सी कष्ट-प्रद बाधाएँ हों। जैसे—राष्ट्रों की उन्नति (या स्वतंत्रता) का मार्ग बहुत कंटकाकीर्ण होता है। (थार्नी)

कंटकार—पुं० [सं० कंटक√ऋ (गति)+अण्] १. शाल्मलि। सेमल। २. एक प्रकार का कीकर या बबूल। ३. कटेरी। भटकटैया। ४. एक प्रकार की मछली, जिसकी रीढ़ के काँटे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। (प्लोटोसस)

कंटकारिका—स्त्री० [सं० कंटक√ऋ+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] = कंटकार।

कंटकाल—पुं० [सं० कंटक√अल् (पर्याप्त)+अच्] १. कटहल। २. काँटों से घिरा या बना हुआ घर।

कंटकित—वि० [सं० कंटक+इतच्] १. काँटों से युक्त। काँटेदार। कँटीला। २. जिसके शरीर के बाल खड़े-खड़े हों। जैसे—साही। ३. जिसे रोमांच हुआ हो।

कंटकिनी—स्त्री० [सं० कंटक+इनि—ङीप्] भटकटैया।

कंटकी (किन्)—वि० [सं० कंटक+इनि] १. काँटेदार। २. कँटीला।

स्त्री० [कंटक+ङीप्] १. एक प्रकार की छोटी मछली। कँटवा। २. खैर का पेड़। ३. मैनफल। ४. बाँस। ५. बेर का पेड़। ६. गोखरू। ७. कोई काँटेदार पेड़।

कंट-फल—पुं० [मध्य० स०] १. गोखरू। २. कटहल। ३. धतूरा। ४. करंज का पेड़।

कँट वाँस—पुं० [हिं० काँटा+वाँस] एक प्रकार का पतला तथा ठोस वाँस जिसकी लाठियाँ बनाई जाती है।

कंटर—पुं० [अं० डिकैंटर] शीशे की बनी हुई एक प्रकार की सुराही जिसमें शराब अथवा कई प्रकार के पेय सुगंधित द्रव्य रखे जाते हैं। पुं०=कनस्टर।

कंटा—पुं० [सं० कांड] वह पतली तथा छोटी लकड़ी जिसके एक सिरे पर चपड़ा या लाख लगा रहता है और जिससे चुड़िहारे चूड़ियाँ रँगते हैं।

कंटाइन—स्त्री० [सं० कात्यायिनी] १. चुड़ैल। २. कर्कश या लड़ाकी स्त्री।

वि० [?] बिलकुल ठीक या पक्का।

कंटाप—पुं० [हिं० कनटोप] किसी वस्तु का अगला या सामनेवाला भारी भाग या सिरा।

कँटाय†—स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का कँटीला पेड़।

कँटार†—वि०=कँटीला।

कंटाल—पुं०[सं० कंट√अल् (पर्याप्ति)+अच्] एक प्रकार की वनस्पति। रामबाँस।

कंटिका—स्त्री० [सं०√कंट्+ण्वुल्—अक—टाप्, इत्व] सूई के आकार की छोटी पतली तथा नोकदार तीली, जिससे कागज आदि नत्थी किये जाते हैं। आलपीन। (पिन)

कँटिया—स्त्री० [हिं० काँटी] १. लोहे आदि से बना हुआ गोला तथा नुकीला छोटा काँटा, जो दीवार, लकड़ी आदि में गाड़ा या धँसाया जाता है। छोटा काँटा। कील। २. मछली फँसाने की नुकीली अँकुसी। ३. बहुत-सी अँकुसियों के गुच्छे के रूप में बना हुआ वह उपकरण, जिसकी सहायता से कुएँ में गिरे हुए लोटे, बालटियाँ, हंडे आदि निकालते हैं। ४. इमली की ऐसी छोटी फली, जिसमें बीज न पड़े हों।

कँटियाना—अ० [हिं० काँटा] १. काँटों से युक्त होना। २. रोमांचित होना। उदा०—मन-मोहन छवि पर कटी कहै कँट्यानी देह।

स० १. (दीवार लकड़ी आदि में) काँटे लगाना। काँटों से युक्त करना। २. रोमांचित करना।

कँटीला—वि०[हिं० काँटा+ईला (प्रत्य०)] १. जो काँटों से युक्त हो। जैसे—कँटीला पौधा। २. जिसमें काँटे जड़े या लगे हुए हों। जैसे—कँटीला तार।

कँटेरी—स्त्री० [सं० कंटकी] भटकटैया।

कँटैला—पुं०=कठकेला।

कंटोप—पुं०=कनटोप।

कंठ—पुं० [सं०√कण् (शब्द करना)+ठ] १. गरदन। गला। २. गले का वह भीतरी भाग जिसके अंदर वे नलियाँ होती है जिनसे भोजन पेट में जाता है और आवाज या स्वर निकलता है। ३. गले से निकली हुई आवाज या स्वर।

मुहा०—कंठ फूटना=(क) वर्णों के स्पष्ट उच्चारण का आरंभ होना। बोलने लगना। (ख) मुँह से शब्द निकलना।

४. तोते आदि पक्षियों के गले पर लाल, नीली आदि कई रंगों की वृत्ताकार लकीर। हँसली। ५. किनारा। तट। ६. मैनफल।

वि० (कविता, बात आदि) जो जबानी याद हो। कंठस्थ। जैसे—उन्हें सारी गीता कंठ है।

कंठ-कुब्ज—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का सन्निपात। (वैद्यक)

कंठ-कूणिका—स्त्री० [उपमि० स०] वीणा।

कंठ-गत—वि० [द्वि० त०] गले तक या गले में आया हुआ। जैसे—किसी के प्राण कंठगत होना।

कंठ-तालव्य—वि० =कंठ्य-तालव्य

कंठ-मणि—पुं० [मध्य० स०] १. कंठहार। २. घोड़े के गले के पास होनेवाली एक भौंरी।

कंठ-माला—स्त्री० [मध्य० स०] गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग, जिससे जगह-जगह गिल्टियाँ निकल आती है। (स्क्रॉफ्यूला)

कंठ-शूल—पुं० [स० त०] घोड़े के गले की एक भौंरी।

कंठ-श्री—स्त्री० [मध्य० स०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना। २. कंठी। माला।

कंठ सिरी*—स्त्री०=कंठ-श्री।

कंठस्थ—वि० [सं० कंठ√स्था (ठहरना)+क] १. गले में आकर अटका, ठहरा या रुका हुआ। २. जबानी याद किया हुआ। जैसे—पाठ कंठस्थ होना।

कँठहरिया†—स्त्री०=कंठी।

कँठहरी†—स्त्री० =कंठी।

कंठ-हार—पुं० [ष० त०] १. गले में पहनने का हार। २. ऐसी वस्तु जो किसी से सदा चिपकी या लगी रहे तथा जिससे जल्दी पीछा न छूटे।

कंठा—पुं० [हिं० कंठ] १. बड़ी कंठी, जिसमें बड़े-बड़े मनके होते हैं। २. काले, लाल आदि रंग की वह रेखा, जो कई प्रकार के पक्षियों के गले में बनी रहती है। ३. अँगरखे या कुरते का वह गोलाकार भाग, जो गले पर पड़ता है।

कंठाग्र—वि० [कंठ-अग्र, ष० त०] (कविता, पद्य आदि) जो जबानी याद किया गया हो। कंठस्थ।

कंठाल—पुं० [सं०√कंठ् (स्मरण करना)+आलन्] १. नाव। २. कुदाल। ३. युद्ध।

कंठी—स्त्री० [कंठा का अल्प० रूप] १. छोटी गुरियों की माला। छोटा कंठा। २. तुलसी आदि के बहुत छोटे दानों की वह माला, जो वैष्णव लोग किसी मत में दीक्षित होने के समय पहनते हैं; और जिसके उपरांत वे विशिष्ट आचार-विचारपूर्वक रहते हैं।

मुहा०—कंठी तोड़ना=वैष्णवत्व का त्याग करके फिर से मछली-मांस आदि खाने लगना। (किसी को) कंठी देना या बाँधना=चेला बना कर वैष्णव धर्म में दीक्षित करना। कंठी ले लेना=वैष्णव धर्म में दीक्षित होकर आचार-विचारपूर्वक रहना।

३. कुछ पक्षियों के गले की वह गोल धारी, जो देखने में कंठी या माला की तरह होती है। हँसली। जैसे—तोते या मोर की कंठी।

वि० [सं० कंठ+इनि] कंठ या ग्रीवा से संबंध रखने या उसमें होनेवाला।

कंठी-रव—पुं० [ब० स०] १. सिंह। शेर। २. कबूतर। ३. मतवाला हाथी।

कंठ्य—वि० [सं० कंठ+यत्] कंठ-संबंधी। गले का।
पुं० वह वर्ण, जिसका उच्चारण कंठ से होता हो। जैसे—अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग।

कंठ्य-तालव्य—वि० [द्व० स०] (वर्ण) जिसका उच्चारण कंठ तथा तालु दोनों के योग से होता हो। (गठरोपैलेटल) जैसे—'ए' और 'ऐ' वर्ण।

कंठ्यौष्ठ्य—वि० [कंठ्य-ओष्ठ्य, द्व० स०] (व्याकरण के अनुसार वह वर्ण) जिसका उच्चारण कंठ और ओंठ से एक साथ किया जाय।

कंड*—पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार। जैसे—गँडहारा।

कँडन—पुं० [सं० √कंड् (तोड़ना)+ल्युट्—अन] १. कूटना। २. मारना-पीटना। ३. छाँटना।

कंडनी—स्त्री० [सं० कंडन+ङीप्] ऊखल और मूसल जिनसे धान आदि कूटते हैं।

कँड़रा†—पुं० [सं० कंदल] मूली, सरसों आदि का मोटा डंठल।

कंडरा—स्त्री० [सं०√कंड्+अरन्—टाप्] १. वह मोटी नस, जिसमें से रक्त चलता है। २. डोरी की तरह का मांस-तंतुओं का वह बंधन जो मांस-पेशियों को हड्डियों के साथ जोड़े या मिलाये रखता है। (टेण्डन, सिन्यू)

कँड़हारा—पुं० [सं० कर्णधार] नाविक। माँझी। उदा०—जा कहँ अइस होहिं कँड़हारा।—जायसी।

कंडा—पुं० [सं० स्कंदन=मलत्याग] १. गाय, भैंस आदि का सूखा या सुखाया हुआ गोबर। २. पाथा हुआ गोबर। उपला।
मुहा०—कंडा हो जाना=(क) बहुत ही सूख जाना। (ख) क्षीण या दुर्बल हो जाना। (ग) मर जाना।
३. सूखा मल।

कंडारी—पुं० [सं० कर्णवारिन्] जहाज का मांझी। (लश०)

कंडाल—पुं० [सं० कंडोल] १. पानी रखने का, लोहे-पीतल आदि का बड़ा, गोलाकार तथा गहरा बरतन। २. कैंची की तरह का जुलाहों का एक औजार, जिससे वे ताने पर पाई करते हैं।
पुं० [फा० करनाय] तुरही की तरह का एक बाजा।

कंडिका—स्त्री० [सं०√कंड्+ण्वुल्—अक—टाप्] १. वेद की ऋचाओं का समूह। २. वैदिक ग्रंथों का कोई छोटा खंड या परिच्छेद।

कंड़िहार*—पुं० [सं० कर्णवार] केवट। मल्लाह।

कंडी—स्त्री० [हिं० कंडा] १. जलाने का छोटा कंडा। उपली। २. पेट से निकलनेवाला बहुत सूखा मल। सुद्दा।

कंडील—स्त्री० [अ० कंदील] एक प्रकार का आधान, जिसमें दीपक जलाया जाता है। दीपाधार।

कंडीलिया—स्त्री० [अ० कंदील या पुर्त० गंडील] समुद्र में चट्टानों के पास जहाजों को सावधान करने के लिए बना हुआ ऊँचा घरहरा, जिसके ऊपर रोशनी की जाती है। प्रकाश-गृह। (लाइट हाउस)

कंडु—पुं० [सं०√कंड्+उ] खाज।

कंडुक—पुं० [सं० कंडु√कै+क] १. भिलावाँ। २. तमाल।

कँडुवा—पुं० [हिं० कांदों या सं० कंडु] बालवाले अन्नों का एक रोग। कंजुआ। झीटी।
†पुं० १.=कँडुआ। २. =कंडु (खुजली)।

कंडू—पुं० [√कंडू (खुजलाना)+क्विप्]=कंडु।

कंडूयन—पुं० [सं०√कंडू+यक्+ल्युट्—अन] [वि० कंडूयनक] खुजली।

कंडूल—वि० [सं०√कंडू+लच्] खाज या खुजली पैदा करनेवाला।
पुं० ओल। जमींकंद।

कँडेरा—पुं० [सं० कांड=शर] एक प्राचीन जाति, जो तीर-कमान बनाती थी; पर अब रुई धुनने का काम करती है।

कंडोल(क)—पुं० [सं० √कंड्+ओल] १. बाँस आदि का बना हुआ टोकरा २. भंडार-गृह।

कंडोल-वीणा—स्त्री० [उपमि० स०] चांडाल की वीणा। किंगरी।

कंडोर—†पुं०=कंडौरा।

कंडौरा—पुं० [हिं० कंडा+औरा (प्रत्य०)] १. वह स्थान, जहाँ कंडे या उपले थापे जाते हैं। २. वह स्थान, जहाँ सूखे हुए उपले या कंडे रखे जाते हों। ३. कंडों या उपलों का ढेर।

कंत—पुं० [सं० कांत] १. पत्नी या स्त्री की दृष्टि से उसका पति या स्वामी। २. रहस्य संप्रदाय में (क) काया या शरीर (ख) जीव (ग) परमात्मा।

कंता—पुं०=कंत।

कंतार†—पुं०=कांतार।

कंति—स्त्री० [सं० कांता] कांता (स्त्री)।

कंथ†—पुं०=कंत।
वि०=कांत।

कंथना†—स० [हिं० कंथा] कंथा या कथरी पहनना। उदा०—जेहि कारन गियँ कांथरि कंथा।—जायसी।

कंथा—स्त्री० [सं०√कम् (चाहना)+थन्—टाप्] [स्त्री० कंथारी] फटे-पुराने कपड़ों को सीकर बनाया हुआ ओढ़ना। गुदड़ी।
स्त्री० [शक भाषा का कंथ=नगर] नगर या बस्ती का वाचक एक शब्द, जो कुछ नामों के साथ उत्तर-पद के रूप में लगता था। ईरान के ताशकंद, यारकंद, समरकंद आदि में का 'कंद' इसी का विकृत रूप है।

कंथारी—स्त्री० [सं० कंथा√ऋ (गति)+अण्—ङीप्] =कंथा (गुदड़ी)

कंथी—पुं० [सं० कंथा से] १. गुदड़ी ओढ़ने या पहननेवाला साधु। २. भिखमंगा।
स्त्री० [सं० कथा] छोटी कथा।

कंद—पुं० [सं०√कंद् (विकल करना) +णिच्+अच्] १. पौधों का वह गूदेदार और बिना रेशे का तना, जो जमीन पर फैला हुआ या उसके अन्दर छिपा रहता है और प्रायः खाने के काम आता है। (राइजोम) जैसे—गाजर, मूली, सूरन आदि। २. मेघ। बादल। ३. एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण और एक लघु होता है। ४. छप्पय छंद का एक भेद। ५. एक प्रकार का योनि-रोग।
पुं० [फा०] एक प्रकार की जमाई हुई चीनी।
पुं० दे० 'कंथा' (स्थानवाचक उत्तर-पद)।

कंदक—पुं० [सं० कंद+कन्] पालकी।

कंदन—पुं० [सं०√कंद्+ल्युट्—अन] क्षय। नाश।

कंद-मूल—पुं० [ब० स०] एक पौधा, जिसकी जड़ उबालकर तरकारी बनाई जाती है।

कंदर—पुं० [सं० कम्√दृ (विदारण)+अप्] १. कंदरा (दे०)। २. अंकुश।

कंदरा—स्त्री० [सं० कंदर+टाप्] जमीन के अंदर या पहाड़ में खोदा हुआ अथवा प्राकृतिक रूप से बना हुआ बहुत बड़ा गड्ढा। गुफा। खोह।

कंदराना†—अ० [हिं० कंदरी] कीचड़ की तरह गंदा और मैला होना। †स० गंदा या मैला करना।

कँदरी†—स्त्री० [सं० कर्दम] १. कीचड़। २. इमारत के काम के लिए रगड़ाकर कूटा हुआ चूना।

कंदर्प—पुं० [सं० कम्√दृप् (मत्त होना)+अच्] १. कामदेव। २. संगीत में रुद्रताल का एक प्रकार या भेद।

कंदर्प-कूप—पुं० [ष० त०] योनि।

कंदर्प-दहन—पुं० [ष० त०] शिव।

कंदर्प-मथन—पुं० =कंदर्प-दहन।

कंदल—पुं० [सं० √कंद्+कलच्] १. नया अँखुआ। २. कपाल। सिर। ३. सोना।, स्वर्ण। ४. वाद-विवाद।

कंदला—पुं० [सं० कंदल=सोना] १. चाँदी, सोने आदि का पतला तार। २. चाँदी की गुल्ली या छड़, जिससे तारकश तार बनाते हैं। ३. एक प्रकार का कचनार।
*स्त्री०=कंदरा।

कंदला-कश—पुं० [हिं० कंदला+फा० कश] तार खींचनेवाला। तारकश।

कंदलाकशी—स्त्री० [हिं० कंदलाकश] तार खींचने का काम। तारकशी।

कंदली—स्त्री० [सं० कंदल+ङीप्] १. एक पौधा, जिसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं। २. एक प्रकार का हिरन। ३. कमलगट्टा। ४. केला। ५. पताका।

कंद-सार—पुं० [ब० स०] १. इंद्र का उपवन। २. हिरन की एक जाति।

कंदा—पुं० १. दे० 'कंद'। २. दे० 'शकरकंद'।

कंदाकर—पुं० [सं० कंद-आकर, ष० त०] बादलों की घटा। मेघमाला।

कंदी (दिन्)—पुं० [सं० कंद+इनि] सूरन।

कंदीत—पुं० [प्रा०] एक प्रकार के देवगण जो वाणव्यंतर के अंतर्गत माने गये हैं। (जैन०)

कंदील—स्त्री० [अ०] १. एक प्रकार का पुराना आधान, जिसमें दीपक जलाया जाता था। २. लालटेन। ३. जहाज में वह स्थान जहाँ लोग पाखाना फिरते हैं; और जिसके पास पानी का भंडार रहता है।

कंदु—पुं० [सं०√स्कंद् (गति)+उ, सलोप] १. भाड़। २. गेंद।

कंदुआ—पुं० [हिं० कांदो] एक रोग जिससे गेहूँ, जौ, धान आदि की बालों पर काली भुकड़ी जम जाती है।

कंदुक—पुं० [सं० कम्√दा (देना)+डु+कन्] १. गेंद। २. गोल तकिया। ३. सुपारी। ४. कंद नामक वर्णवृत्त।

कँदूरी—स्त्री० [सं० कन्दूरी] कुँदरू। बिंबाफल।
स्त्री० [फा०] मुसलमानों में वह भोजन, जिसे सामने रखकर फातिहा पढ़ा जाता है और जो बाद में बाँटा जाता है।

कंदेघ—पुं० [देश०] पुन्नाग या सुलताना चंपा की तरह का एक वृक्ष, जिसके तने से नावों के मस्तूल बनते हैं।

कँदेलिया—स्त्री० [?] एक प्रकार की भैंस, जो कम दूध देती है।

कँदैला—वि० [हिं० काँदा=कीचड़+ ला (प्रत्य०] १. कीचड़ से भरा हुआ। २. गंदा। मलिन।

कंदोत—पुं० [सं० कंद-उत, स० त०] सफेद कमल।

कंदोरा—पुं० [हिं० गांड+डोरा] कमर में पहनने की करधनी या तागा।

कंद्रप*—पुं०=कंदर्प (कामदेव)।

कंध—पुं० [सं० स्कंध] १. डाली। शाखा। २. कंधा। ३. आश्रय। सहारा। उदा०—बंध नाहिं और कंध न कोई।—जायसी।

कंधनी—स्त्री०=करधनी।

कंधर—पुं० [सं० कम्√धृ (धारण करना)+अच्] १. गरदन। २. बादल। मेघ। ३. मोथा। मुस्तक।

कंधरा—स्त्री० [सं० कंधर+टाप्] गरदन।

कंधा—पुं० [सं० स्कन्ध, पा० प्रा० खन्ध, गु० खाँद, खांधो, पं० कच्छा, उ० बँ० काँध; सिंह० कंद; सिं० कांधों; मरा० खाँदा] १. मनुष्य के शरीर की बाँह का वह ऊपरी भाग या जोड़, जो गले के नीचे धड़ से जुड़ा रहता है।
मुहा०—कंधा डालना=भार न उठा सकने के कारण हारकर बैठ या रुक जाना। (किसी को) कंधा देना=शव को कंधे पर उठाकर अंत्येष्टि के लिए ले जाना। (किसी काम में) कंधा देना=भार आदि उठाने के काम में सहारा देना या सहायक होना। कंधे से कंधा छिलना=बहुत अधिक भीड़ होना।
२. बैल की गर्दन का वह भाग, जिस पर जूआ रखा जाता है।
मुहा०—(बैलों आदि का) कंधा लगना=जूए की रगड़ से कंधे पर घाव हो जाना।

कंधार—पुं० [सं० गांधार] अफगानिस्तान के एक प्रदेश और उसकी राजधानी का नाम।
†पुं० [सं० कर्णधार] केवट। मल्लाह।
वि० पार उतारने या लगानेवाला।

कंधारी—वि० [हिं० कंधार] जिसका संबंध कंधार देश से हो। कंधार देश का। जैसे कंधारी अनार।
पुं० १. कंधार देश का निवासी। २. कंधार देश का घोड़ा।
स्त्री० कंधार देश की बोली।

कँधावर—स्त्री० [हिं० कंधा+आवर प्रत्य०] १. जूए का वह भाग, जो गाड़ी, हल आदि में जोते जानेवाले बैलों के कंधे पर रखा जाता है। २. कंधे पर रखी जानेवाली चादर।
मुहा०—कँधावर डालना=चादर या दुपट्टा जनेऊ की तरह कंधे पर डालना।
३. किसी चीज में का वह तस्मा या रस्सी, जिसकी सहायता से वह चीज कंधे पर लटकाई जाती है।

कँधेला—पुं० [हिं० कंधा] धोती या साड़ी का वह भाग, जो कंधे पर पड़ता या रहता है।
मुहा०—कँधेला डालना=साड़ी का पल्ला सिर पर न रखकर कंधे पर रखना या लटकाना।

कँधेली—स्त्री० [हिं० कंधा] १. घोड़े का वह गोलाकार साज, जो उसे एक्के, गाड़ी आदि में जोतने के समय उसके कंधों पर रखकर गले में

डाला जाता है। २. घोड़े, वैल आदि की पीठ पर उसे छिलने आदि से वचाने के लिए रखी जानेवाली गद्दी।

कँधैया†—स्त्री० [हिं० कंधा से] १. कंधा। २. वच्चों आदि को कंधे पर वैठाकर कहीं ले चलने की क्रिया, स्थिति या भाव। ३. वच्चों का एक खेल, जिसमें दो लड़के अपनी वाँहों पर किसी दूसरे लड़के को वैठाकर ले चलते हैं।

पुं०=कन्हैया (श्रीकृष्ण)।

कंप—पुं० [सं० √कंप् (काँपना) +घञ्] १. भय, शीत आदि के कारण शरीर के अंगों के वार-वार या रह-रहकर हिलने की क्रिया या भाव। २. साहित्य में क्रोध, भय, हर्ष आदि के कारण शरीर में होनेवाला कंपन या थर्राहट, जिसकी गिनती सात्त्विक अनुभावों के अंतर्गत होती है। ३. प्राकृतिक या भू-गर्भस्थ कारणों से पृथ्वी के किसी भाग का थोड़ी देर के लिए रह-रहकर काँपना या हिलना। थर्राहट। (क्वेक) जैसे—भूकंप, समुद्र-कंप आदि।

पुं० [अं० कैंप] १. सैनिकों आदि का अस्थायी निवास स्थान। छावनी। २. यात्रियों के ठहरने का स्थान। पड़ाव। डेरा।

कँपकँपी—स्त्री० [हिं० काँपना] भय, शीत आदि के कारण शरीर में होनेवाला कंपन या थर्राहट, जिसमें एक प्रकार की स्वरता होती है। कंपन।

कंपति—पुं० [सं०√कंप्+अति] समुद्र।

कंपन—पुं० [सं०√कंप् +ल्युट्—अन] काँपने या थरथराने की क्रिया या भाव। २. किसी वस्तु आदि का कुछ समय के लिए निरंतर हिलते-डुलते या काँपते रहना। जैसे—प्रकाश या ध्वनि में होनेवाला कंपन। ३. एक प्राचीन अस्त्र।

कँपना—अ०=काँपना।

कँपनी—स्त्री०=कँपकँपी।

कंपनी—स्त्री० [अं०] १. कुछ व्यक्तियों के द्वारा मिल-जुलकर स्थापित की हुई कोई व्यापारिक मंडली या संस्था। जैसे—ईस्ट इंडिया कंपनी। २. भारत का वह शासन, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा होता था। ३. भारत का अँगरेजी काल का शासन। उदा०—सर कंपनी का कट के विके आध आने में। ४. दे० 'मंडली'।

कंपमान—वि० [सं०√कंप्+शानच्] =कंपायमान।

कंप-मापक—पुं० [सं० प० त०] =भूकंप-मापक।

कंप-विज्ञान—पुं० [सं० प० त०]=भूकंप-विज्ञान।

कंपा—पुं० [हिं० काँपा] १. वाँस की वे छोटी तीलियाँ, जिनमें लासा लगाकर वहेलिया चिड़ियाँ फँसाते हैं। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा चंगुल, जाल या फंदा, जिसमें किसी को फँसाया जाय।

मुहा०—कंपा मारना=किसी को फँसाने के लिए जाल फैलाना।

कँपाना—स० [हिं० काँपना का प्रेर०] किसी को काँपने में प्रवृत्त करना। डराना। दहलाना।

कंपायमान—वि० [सं० कंपमान] १. जो काँप रहा हो। २. हिलता-डुलता या थरथराता हुआ।

कंपास—स्त्री० [अं० कम्पास] १. घड़ी के आकार-प्रकार का एक यंत्र, जो दिशाओं का ज्ञान कराता है। दिक्सूचक यंत्र। कुतुवनुमा। २. वृत्त वनाने का परकार।

कंपित—वि० [सं०√कंप् +क्त] १. काँपता हुआ। २. डरा हुआ। भयभीत। ३. कँपाया हुआ।

कंपिल—पुं० [सं०√कंप्+इलच्] १. रोचनी। सफेद नौसादर। १. फर्रुखावाद जिले का एक पुराना नगर, जो पहले दक्षिण पांचाल की राजधानी था; कहते हैं कि द्रौपदी का स्वयंवर यहीं हुआ था।

कंपिल्ल—पुं० [सं०√कंप्+इल्ल] एक ओषधि, जिसे कमीला भी कहते हैं।

कंपू—पुं०=कंप (छावनी)।

कंवेस*—पुं० [?] राजा पृथ्वीराज का एक उप-नाम या उपाधि।

कंव—स्त्री० [सं० कंवा] हाथ में रखने की छड़ी या छोटा डंडा।

कंवख़्त—वि० [फा०] अभागा। भाग्यहीन।

कंवख़्ती—स्त्री० [फा०] १. भाग्य-हीनता। अभाग्य। २. दुर्भाग्य। ३. कष्ट, दुर्दशा या नाश का समय। शामत। जैसे—जब गीदड़ की कंवख़्ती आती है, तब वह शहर की तरफ दौड़ता है।

पद—कंवख़्ती का मारा—जिसे दुर्भाग्य ने प्रेरित करके किसी काम के लिए आगे वढ़ाया हो।

कंवर†—पुं०=कंवल।

कंवल—पुं० [सं०√कंव् (गति)+कलच्; पा० प्रा० कम्वल; पू० हिं० कमली, कामरी; पं० उ०, वँ० कम्वल; गु० कांवलो; मरा० कांवलें, कामलें] १. ऊन से वुनी हुई एक प्रकार की वहुत मोटी चादर, जो प्रायः ओढ़ने-विछाने के काम आती है। २. एक प्रकार का वरसाती कीड़ा। कमला। ३. =गल-कंवल। (पशुओं का)

कंवु—पुं० [सं०√कम् (चाहना)+उ, वुक् आगम] १. शंख। २. शंख की वनी हुई चूड़ी। ३. घोंघा। ४. सीपी। ५. हाथी।

कंवु-कंठी—स्त्री० [कंवु-कंठ, व० स०, ङीप्] ऐसी स्त्री, जिसकी गरदन शंख के आकार-जैसी सुंदर और सुडौल हो।

कंवुक—पुं० [सं० कंवु+कन्]=कंवु।

कंवु-ग्रीव—वि० [व० स०] शंख-जैसे सुंदर और सुडौल गलेवाला। मुराहीदार गरदनवाला।

कंवोज—पुं० [सं०√कंव्+ओज] [वि० कांवोज] आवुनिक सोवियत रूस के अंतर्गत उस प्रदेश का पुराना नाम, जिसमें आज-कल पामीर और वदख्शाँ हैं।

कंभारी—स्त्री० [सं० कं√भृ (वारण)+अण्—ङीप्, उप० स०] गँभारि का पेड़।

कंभु—पुं० [सं० कम्√भृ (भरण करना)+डु] खास।

कंमर†—स्त्री०=कमर।

कंमुद†—पुं०=कुमुद।

कंमोद†—पुं०=कुमुद।

कँवर†—पुं० [स्त्री० कँवरी]=कुँवर (कुमार)।

कँवरी—स्त्री० [?] पचास पानों की गड्डी (तमोली)।

स्त्री०=कवरी (वालों की चोटी)।

कँवरु—पुं०=कमल (रोग)।

कँवल—पुं०=कमल।

†पुं०=कौर (ग्रास)।

कँवाड़†—पुं०=किवाड़ (?)।

कँवासा—पुं० [हिं० नवासा (नाती) का अनु०] लड़की के लड़के; अर्थात् नाती का लड़का। पड़-नाती।

कंखना—स० [सं० कांक्षा] १. इच्छा करना। चाहना। २. देखना।

कंस—पुं० [सं०√कम् (इच्छा)+स] १. काँसा नामक धातु। २. काँसे का बना हुआ कोई छोटा पात्र। ३. सुराही। ४. मँजीरा। ५. मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र जो श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया था। ६. प्राचीन भारत की आढ़क नाम की तौल या माप।

कंसक—पुं० [सं० कंस+कन्] १. काँसे का बना हुआ बरतन। २. दे० कंसिक।

कंस-ताल—पुं० [कर्म० स०] झाँझ।

कंसवती—स्त्री० [सं० कंस+मतुप्+ङीप्] उग्रसेन की कन्या का नाम।

कंस-शत्रु—पुं० [प० त०] श्रीकृष्ण।

कँसहँड़ी—स्त्री० [हिं० काँसा+हाँड़ी] देग या बटलोही के आकार का एक बरतन।

कंसाराति—पुं० [सं० कंस-अराति, प० त०] श्रीकृष्ण।

कंसारि—पुं० [सं० कंस-अरि, प० त०] श्रीकृष्ण।

कंसिक—वि० [सं० कंस+टिठन्—इक] काँसे का बना हुआ।

कंसीय—वि०[सं० कंस+छ—ईय] १. काँस-संबंधी। काँसे का। २. काँसे के पात्र से संबंध रखनेवाला।

कंसुआ—पुं० [हिं० काँस] काँसे के रंग का (भूरा) एक कीड़ा, जो ईख, ज्वार, बाजरे आदि की फसल को हानि पहुँचाता है।

कंसुभ—वि० [सं० कुसुंभ] कुसुंभ के फूल के रंग का। कुसुंभी।

कंसुला—पुं० [हिं० काँसा] [स्त्री० अल्प० कंसुली] काँसे का एक चौखूंटा टुकड़ा, जिसके पहलों में गोल-गोल गड्ढे होते हैं; जिससे सुनार घुँघरू बनाते हैं। किटकिरा। पाँसा।

कँसुवा—पुं०=कंसुआ।

कइ*—अव्य०=क्या। (राज०)

कइक*—वि०[हिं० कई+एक] अनेक। कई।

कइत* पुं०=कैथ (कसैला फल)।

क्रि० वि०=कित (किस ओर। कहाँ)।

कइन, कइनी—स्त्री०[सं० कंचिका] बाँस की टहनी या शाखा।

कइर—पुं०=करील(कँटीली झाड़ी)।

कइसन—वि०=कैसा।

क्रि० वि०=कैसे।

कई—वि०[सं० कति, प्रा० कइ] एक या दो से अधिक; किन्तु अनिश्चित छोटी संख्या का सूचक विशेषण। कुछ।

*स० अवधी में 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप(किया)का स्त्री०। उदा०—बहुत हीं ढीठयी कई। —तुलसी।

†अव्य०[सं० कदापि] कभी। किसी समय। उदा०—कीध न इवड़ी ढील कई।—प्रिथीराज।

कउँध—स्त्री०=कौंध (बिजली की चमक)।

कउँधना—अ०=कौंधना।

कउ*—विभ०=को। (पुं० हिं०)

वि०=कोई।

कउआ—पुं०=कौआ।

कउतक (तुक)*—पुं०=कौतुक।

कउरा†—वि०=कड़ुआ।

पुं०=कौरा।

ककई†—स्त्री०=कंघी।

† स्त्री०=कैकयी।

ककड़ासींगी—स्त्री०=काकड़ासींगी।

ककड़ी—स्त्री०[सं० कर्कटी; पा० कक्कटी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक प्रसिद्ध बेल या लता, जिसमें पतले, लंबे फल लगते हैं। २. बेल के फल।

मुहा०—(किसी को) ककड़ी-खीरा समझना=बहुत तुच्छ या हेय समझना।

ककना†—पुं० [स्त्री० ककनी]=कंगन।

ककनूँ—पुं० दे० 'कुकनुस'।

ककमारी†—स्त्री०=काकमारी।

ककराली—स्त्री०[सं० कक्ष, पा० कक्ख, हिं० काँख+वाली (प्रत्य०)] काँख में होनेवाला फोड़ा। कँखौरी।

ककरी—स्त्री०=ककड़ी।

ककरेजा—पुं०[स्त्री० ककरेजी]=काकरेजा।

ककरौल—पुं०[सं० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा। खेखसा (तरकारी)।

ककसा†—स्त्री०[सं० कर्कशा; प्रा० कक्कसा] एक प्रकार की मछली।

ककहरा—पुं०[हिं० क अक्षर से] १. 'क' से 'ह' तक के अक्षरों या वर्णों का समूह। २. वह कविता जिसके चरण या पद क्रमशः 'क' से 'ह' तक के सभी अक्षरों या वर्णों से आरम्भ होते चलते हों। ३. किसी विषय या विद्या का आरम्भिक ज्ञान या रूप।

ककहा—पुं०[स्त्री० ककही]=कंघा।

कका†—पुं०=काका।

ककाटिका—स्त्री०[सं० कृकाटिका पृषो० सिद्धि] सिर का पिछला भाग।

ककुद्—पुं०[सं० क√कु (शब्द) + क्विप्, तुक्] १. चोटी। शिखर। २. बैल के कंधों पर का डिल्ला। ३. राजचिह्न।

वि० १. उत्तम। श्रेष्ठ। २. प्रधान। मुख्य।

ककुद्मान् (मत्)—पुं० [सं० ककुद्+मतुप्] १. बैल। २. ऋषभ नामक ओषधि। ३. एक प्राचीन पर्वत।

ककुना†—पुं०[स्त्री० ककुनी]१. =कंगन। २. =कँगनी।

ककुभ—पुं० [सं० क √स्कुभ् (विस्तार करना)+ क, पृषो० सिद्धि] १. शिखर। २. दिशा। ३. अर्जुन वृक्ष। ४. वीणा के ऊपर का मुड़ा हुआ अंश या भाग। ५. संगीत में एक प्रकार का राग। ६. तीन चरणों का एक छंद जिसके पहले चरण में ८, दूसरे में १२ और तीसरे में १८ वर्ण होते हैं।

ककुभ बिलावल—पुं० [हिं० ककुभ+बिलावल] षाड़वसंपूर्ण जाति का एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया जाता है।

ककुभा—स्त्री०[सं० ककुभ+टाप्] १. दिशा। २. दक्ष की एक कन्या, जो धर्म को ब्याही थी। ३. एक रागिनी जो मालकोश राग की पत्नी कही गई है।

ककेड़ा—पुं० [सं० कर्कटक, प्रा० कक्कटक] १. दे० 'ककोड़ा'। २. दे० 'चिचड़ा'।

ककेरुक—पुं०[सं० √ कक् (गमनादि) + क्विप्, कक्-एर, कर्म० स०, ककेर+ उक] आमाशय या पेट में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

ककैया—स्त्री०[हिं० ककही] एक प्रकार की पुरानी ईंट, जिसका आकार कंघी जैसा होता था।

ककोड़ा—पुं०[सं० कर्कोटक, पा० कक्कोडक] एक प्रकार की लता और उसके फल। ककरौल। खेखसा।

ककोरना†—स०[हिं० कोड़ना] १. कुरेदना। खुरचना। २. घुमाना। मोड़ना। ३. सिकोड़ना।

*अ० १. कुरेदा या खुरचा जाना। २. विक्षुब्ध होना। कचोटना। उदा०—....तुम विन देखैं मेरो हिय ककोरत।—सूर।

ककोरा—पुं०=ककोड़ा (लता)।

कक्क—पुं०=काका (चाचा)।

कक्कड़—पुं०[सं० कर्कर] सुखाई हुई सुरती का भुरभुरा चूर, चिलम पर रखकर जिसका धुआँ पिया जाता है।

कक्का—पुं०[सं० केकभ] काश्मीर राज्य का एक प्रदेश, जिसके निवासी कक्कर कहलाते हैं।

स्त्री० [सं० √कक्क् (हास)+ अच्+टाप्] दुंदुभी। नगाड़ा।

*पुं० [स्त्री० कक्की] = काका (चाचा)।

पुं० [हिं० क वर्ण] सिख जिनके यहाँ कंघा, कर्द, केस, कड़ा और कच्छ इन पंच ककारों का प्रचलन है।

कक्की—स्त्री०[देश०] कठ सेमल नाम का वृक्ष।

कक्कोल—पुं०[सं० √ कक् (गति) +क्विप्, √कुल् (जमना) + ण, कक्-कोल कर्म० स०] कनखुजूरा।

कक्खट—वि० [सं०√ कक्ख् (हास)+ अटन्] १. ठोस। कठोर।

कक्खटी—स्त्री०[सं०√ कक्ख्+ अटन्, गौरा० ङीष्] खड़िया।

कक्ष—पुं०[सं०√ कष् (हिंसा) + स] १. किसी वस्तु के अगल-वगल का भाग। पार्श्व भाग। २. किसी इमारत या भवन का कोई भीतरी कमरा, खंड या भाग। ३. अंतःपुर ४. काँख। वगल। ५. वगल में होने वाला फोड़ा। कखौरी। ६. काँस। ७. जंगल का भीतरी भाग। ८. सूखी घास। ९. दीवारों के बीच का कोना। पाखा। १०. नाव का एक वह विशिष्ट भाग जो कमरे के रूप में होता है। ११. पाप। दोप। १२. चादर, दुपट्टे आदि का आँचल। १३. कमरवन्द। १४. तराजू का पलड़ा। १५. कछार। १६. काछ। लाँग। १७. दे० 'कक्षा'।

कक्षा—स्त्री० [सं० कक्ष+टाप्] १. परिधि। घेरा। २. आकाश में ग्रहों के भ्रमण करने का गोलाकार मार्ग। (आँरविट) ३. विद्यार्थियों का वह वर्ग या श्रेणी जिसमें उन्हें एक साथ तथा एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाती है। दर्जा। (क्लास) ४. घर की दीवार। ५. कछौटा। ६. काँख। वगल। ७. काँख में होनेवाला फोड़ा। कखौरी। ८. तुलना। वरावरी। ९. दहलीज। १०. हाथी वाँधने का रस्सा। ११. एक पुरानी तौल जो लगभग एक रत्ती के होती थी।

कक्षीवान्—(वत्)—पुं० [सं० कक्ष्या+मतुप्, नि० सिद्धि] एक वैदिक ऋषि का नाम।

कक्षोत्था—स्त्री० [सं० कक्ष-उद्√स्था+क+टाप्] नागरमोथा।

कक्ष्या—स्त्री० [सं० कक्ष+यत्+टाप्] १. आँगन। २. हाथी वाँधने का रस्सा। ३. हाथी का हौदा। ४ चमड़े या ताँत की डोरी या तस्मा। ५. नाड़ी। ६. प्रासाद। महल। ७. ड्योढ़ी। दहलीज। ८. घुँघची। ९. वरावरी। समानता। १०. उद्योग। प्रयत्न।

कखवाली—स्त्री=कँखौरी (फोड़ा)।

कखौरी†—स्त्री० [हिं० काँख] १. काँख या वगल में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा। २. काँख। वगल।

कगदही—स्त्री० [हिं० कागज (द)+ही (प्रत्य०)] छोटा वस्ता जिसमें कागज-पत्र आदि वाँध कर रखे जाते हैं।

कगर—पुं० [सं० क=जल और अग्र] [स्त्री० अल्पा० कगरी] १. नदी, तालाव आदि का ऊँचा किनारा। २. खेत की ऊँची मेंड़। ३. किसी वस्तु का कुछ ऊँचा उठा हुआ किनारा या सिरा। ४. सीमा। हद। जैसे—मैं तो आत्मवध की कगर पर पहुँच चुकी हूँ।—वृन्दावन-लाल। ५. किसी ओर कुछ हटकर या अलग स्थान। ६. टीला। ढूह।

क्रि० वि० १ किनारे या सिरे पर। २. निकट। पास, समीप। ३. किसी ओर अलग और कुछ दूर हटकर।

कगरे†—क्रि० वि० [हिं० कगर] १. किनारे पर या किनारे के पास। २. किनारे-किनारे। ३. अलग होकर या पीछे हटकर।

कगार—पुं० [हिं० कगर] १. कोई ऊँचा और ढालुआँ भू-भाग। टीला। २. नदी का ऊँचा ढालुआँ किनारा।

कगिरी—पुं० [देश०] एक वृक्ष जिसमें से निकलने या रसनेवाले तरल पदार्थ से रवर वनता है (दे० 'रवर')।

कग्ग—पुं० [?] गाड़ी। उदा०—सकट व्यूह सजि सुभर, कग्ग चामुंड अग्ग करि।—चंदवरदाई।

*पुं०=काग (कौआ)।

कग्गद—पुं०=कागद (कागज)।

कग्गर—पुं० १. =कगर। २. =कगार।

कघुती—स्त्री० [हिं० कागद (कागज)] एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्तियों और डंठलों से कागज वनाया जाता था। अरैली।

कचंगल—पुं० [सं०√कच् (दीप्ति)+अंगलच्] १. पुराणानुसार एक समुद्र का नाम। २. वह वाजार जहाँ मुक्त व्यापार होता हो।

कच—पुं० [सं०√कच् (शोभित होना)+अच्] १. वाल, विशेषतः सिर के वाल। केश। २. झुंड। समूह। ३. वादल। मेघ। ४. सूखा घाव या फोड़ा। ५. वृहस्पति का पुत्र जिसके प्रति देवयानी के प्रेम की कथा प्रसिद्ध है। ६. सुगंध-वाला।

पुं० [अनु०] १. धँसने या चुभने का शब्द। जैसे—कच से चाकू या सूई चुभाना। २. कुश्ती का एक दाँव या पेंच।

मुहा०—कच वाँधना=किसी की वगल से हाथ ले जाकर उसके कंधे पर चढ़ाना और उसकी गरदन दवाना।

वि० १. हिं० 'कच्चा' का व्यवहार समास में होता है। संक्षिप्त रूप जिसका प्रयोग समस्त पद वनाने में पूर्व पद की भाँति होता है। जैसे—कच-दिला, कच-लोहा आदि। २. हिं० 'काँच' का संक्षिप्त रूप जिसका प्रयोग उक्त प्रकार से समस्त पदों में होता है। जैसे—कच-लोन।

कचका†—स्त्री० [हिं० 'कच'] १. अंग या शरीर में लगनेवाली ऐसी

चोट जिससे चमड़े या माँस को कुछ क्षति पहुँचे। २. हड्डी आदि का अपने स्थान से जरा-सा हट-बढ़ जाना।

कचकच—स्त्री० [अनु०] व्यर्थ का झगड़ा या बकवाद। जैसे—हमें हर समय की कचकच अच्छी नहीं लगती।

कचकचाना—अ० [अनु० कचकच] १. कचकच शब्द करना। २. धँसाने या चुभाने का शब्द करना।
 अ०=किचकिचाना।

कचकड़ (ा)—पुं० [हिं० कच्छ=कछुआ+सं० कांड=हड्डी] १. कछुए का ऊपरी कड़ा और मोटा आवरण। खोपड़ी। २. ह्वेल आदि बड़ी-बड़ी मछलियों की हड्डी जिससे खिलौने आदि बनते हैं।

कचकना—अ० [हिं० कचक+ना (प्रत्य०)] १. किसी अंग या वस्तु का दब जाना या कुचला जाना।
 २. दरार पड़ना। ३. टूटना-फूटना।
 स०=कुचलना।

कचकाना†—स० [हिं० कचकना] १. किसी अंग या वस्तु को इस प्रकार कुचलना, दबाना या मसलना कि वह टूट-फूट या विकृत हो जाय। २. धसाँना या भोंकना।

कचकेला—पुं०=कठकेला।

कचकोल—पुं० [फा० कशकोल] दरियाई नारियल का बना हुआ कमंडल या पात्र जिसमें साधु आदि भिक्षा लेते हैं।

कचड़ा—पुं० दे० 'कचरा'।

कचदिला—वि० [हिं० 'कच्चा'+फा० दिल] कच्चे दिलवाला (जिसमें धैर्य, साहस आदि का अभाव हो)।

कचनार—पुं० [सं० कांचन] १. एक प्रसिद्ध पेड़ जिसमें फलियाँ तथा फूल लगते हैं। २. उक्त पेड़ में लगनेवाली फलियाँ और फूल।

कचपच—स्त्री०=कच-कच या किच-किच। (बहुत अधिक कहा-सुनी) वि०=गिचपिच। (अस्पष्ट या अव्यवस्थित रूप में भरा हुआ)

कचपचिया†—स्त्री०=कचपची।

कचपची—स्त्री० [हिं० कचपच] १. कृत्तिका नक्षत्र। उदा०—जौ बासर की निसि कहै, तौ कचपची दिखाव।—रहीम। २. एक प्रकार के चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं।

कचबची—स्त्री०=कचपची।

कचरई अमौआ—पुं० [हिं० कचरी+अमौआ] आम की कचरी-जैसा रंग, जो कुछ हरापन लिये बादामी होता है।
 वि० उक्त प्रकार के रंग का।

कचर-कचर—स्त्री० [अनु०] १. वह ध्वनि या शब्द जो कच्चे फलों आदि के खाने से होता है। २. व्यर्थ का झगड़ा या बकवाद। कच-कच।
 क्रि० वि० उक्त प्रकार की ध्वनि या शब्द से युक्त।

कचरकूट—पुं० [हिं० कचरना+कूटना] १. अच्छी तरह कूटना, पीटना या मारना। २. खूब जी भरकर या मनमाने ढंग से किया जानेवाला भोजन।

कचरघान—पुं० [हिं० कचरना+घान] १. अनेक प्रकार की छोटी-छोटी वस्तुओं का ढेर। २. बहुत-से छोटे-छोटे लड़कों-बच्चों का समूह। ३. जम या भिड़कर होनेवाली लड़ाई। घमासान।

कचरना†—स० [सं० कच्चरण] १. पैरों से मसलना या रगड़ना। कुचलना। रौंदना। २. बहुत अधिक भोजन करना।

कचर पचर—स्त्री० [अनु०]=कचपच।
 वि०=गिचपिच। अस्पष्ट।

कचरा—पुं० [सं० कच्चर=मैला अथवा हिं० कच्चा] १. ऐसी वस्तु जो अभी पकी न हो; बल्कि अपने आरंभिक रूप में हो। २. कच्चा खरबूजा या फूट। ३. कच्ची ककड़ी। ४. सेमल का डोडा। ५. उड़द या चने की पीठी। ६. किसी वस्तु का निकृष्ट या रद्दी अंश। कूड़ा-करकट। ७. अनाज आदि चुनने पर उसमें का निकला हुआ निकम्मा अंश। ८. एक प्रकार की समुद्री सेवार।

कचरी—स्त्री० [हिं० कचरा] १. ककड़ी की जाति की एक लता जिसके फलों की तरकारी बनती है। २. तरकारियों (जैसे—आलू, शलगम आदि) और फलों (जसे—ककड़ी, तरबूज आदि) के काटकर सुखाये हुए पतले छोटे टुकड़े जो प्रायः तलकर खाये जाते हैं।

कचलहू—पुं० [हिं० कच्चा+लहू (रक्त)] घाव में से रस-रसकर निकलता रहनेवाला रक्त या लहू।

कचला†—पुं० [सं० कच्चर=मलिन] १. गीली मिट्टी। गिलावा।
 २. कीचड़।

कचलोन—पुं० [हिं० काँच+लोन] एक प्रकार का नमक जो काँच की भट्ठियों में से निकलने वाले क्षार से बनता है।

कचलोहा—पुं० [हिं० कच्चा+लोहा] [स्त्री० कचलोही] १. कच्चा लोहा। २. ऐसा आघात या वार जो हलका पड़ा हो।

कचलोहू—पुं०=कच-लहू।

कचवचिया—स्त्री०=कचपची।

कचवाँसी—स्त्री० [हिं० कच्चा=बहुत छोटा+अंश] जमीन नापने का एक मान जो एक बिस्वांसी का बीसवाँ भाग होता है।

कचवाट†—स्त्री०=कचाहट।

कचहरी—स्त्री० [सं० कृत्यगृह; पा० किच्चम; प्रा० कच्चत्र; बँ० काचारी; सिंह० कचरी; तेल० कचेली; गुज० मरा० कचेरी] १. वह स्थान जहाँ राजा या कोई बड़ा अधिकारी बैठकर व्यवस्था, शासन आदि के कार्य करता हो। २. दरबार। राज-सभा। ३. आज-कल वह स्थान जहाँ न्यायाधिकारी बैठकर वाद-विवादों का निर्णय या विचार करता है। अदालत। न्यायालय। (कोर्ट) ४. कोई बड़ा कार्यालय या दफ्तर। (ऑफिस)।

कचाई—स्त्री० [हिं० कच्चा+ई (प्रत्य०)] १. कच्चे होने की अवस्था या भाव। कच्चापन। २. कमी। त्रुटि। ३. अपक्वता या अपूर्णता।

कचाटुर—पुं० [सं० कच √अट् (घूमना)+उरच्] वन-मुरगी।

कचाना—अ० [हिं० कच्चा] डर कर या हिम्मत हार कर पीछे हटना। कच्चा पड़ना।
 स० ऐसा काम करना या बात कहना जिससे कोई धैर्य या साहस छोड़ दे।

कचायँध—स्त्री० [हिं० कच्चा+गंध] किसी वस्तु की वह गंध या महक, जिससे उसके कच्चे होने का पता चलता हो। कच्ची अवस्था में रहने पर निकलने वाली गंध। (खाद्य-पदार्थों, फलों आदि के संबंध में)।

कचार—पुं०=कछार।

कचारना†—स० [अनु०] पछाड़ या पटक कर पानी से कपड़े धोना, या उन्हें साफ करना।

कचालू—पुं० [हिं० आलू का अनु०] १. एक प्रकार का बंडा। २. उक्त बंडे की बनी हुई तरकारी। ३. एक प्रकार का व्यंजन, जो आलू, बंडे आदि कंदों या अमरूद आदि फलों के टुकड़ों में नमक-मिर्च और खटाई मिलाकर बनाया जाता है।

कचावट—पुं० [हिं० कच्चा+आवट (प्रत्य०)] १. कच्चापन। कचाई। २. कच्चे आम की जमाई हुई खटाई।

कचाहट—स्त्री० [हिं० कच्चा] कच्चे होने की अवस्था या भाव। कच्चापन। कचाई।

कचिया† —स्त्री०=हँसिया (दाँती)।

कचिया नमक—पुं०=कच-लोन।

कचियाना—अ० [हिं० कच्चा] १. कच्चा पड़ना या होना। कचाना। २. डरकर साहस छोड़ना। हिम्मत हारना। ३. लज्जित होना। स० १. कच्चा करना। २. किसी को साहस या हिम्मत से रहित करना। ३. लज्जित करना।

कचीची†—स्त्री० [अनु०] क्रोध आदि के समय दाँत पीसने की स्थिति।
मुहा०—कचीची बँधना या बैठना=(रोग आदि के कारण) जबड़े पर जबड़ा या दाँत पर दाँत बैठना। कचीची बटना=क्रोध दिखलाने के लिए जबड़े पर जबड़ा या दाँत पर दाँत रखकर उन्हें दबाना।
स्त्री०=कचपची।

कचु—स्त्री० [सं०√कच् (चमकना)+उ] बंडा नामक कंद।

कचुल्ला—पुं०=कटोरा।

कचूमर—पुं० [हिं० कच-कच (कुचलना या चुभाना) से अनु०] १. किसी वस्तु का वह रूप, जो उसे खूब कूटने या कुचलने पर प्राप्त होता है।
मुहा०—(किसी का) कचूमर निकालना=किसी को इतना पीटना या मारना कि वह अधमरे के समान हो जाय।
२. कच्चे आम के गूदे को कुचल या कूटकर बनाया हुआ अचार।
मुहा०—(किसी चीज का) कचूमर निकालना=किसी वस्तु को ऐसी बुरी तरह से काम में लाना कि उसकी पूरी दुर्दशा हो जाय।

कचूर—पुं० [सं० कर्चूर] हल्दी की जाति का एक पौधा, जिसकी जड़ दवा के काम आती है।
वि० उक्त जड़ की तरह गहरा लाल या हरा।
†पुं०=कचोरा (कटोरा)।

कचेरा—पुं०=कँचेरा (काँच की चीजें बनानेवाला)।

कचेल—पुं० [सं०√कच् (बाँधना)+एलच्] १. वह डोरी, जिसमें किसी पुस्तक के पृष्ठ बँधे हों। २. कागज का वह आवरण, जिसमें पुस्तकें आदि बाँधी जायँ। जिल्द।

कचेहरी—स्त्री०=कचहरी।

कचोकना—स० [अनु०] किसी को कोई नुकीली चीज गड़ाना या चुभाना।

कचोका—पुं० [हिं० कचोकना] कोई नुकीली चीज गड़ाने या चुभाने की क्रिया या भाव।

कचोट—स्त्री० [हिं० कचोटना] १. कचोटने की क्रिया या भाव। २. किसी के दुर्व्यवहार के कारण मन में बार-बार या रह-रहकर होनेवाली वेदना।

कचोटना—अ० [अनु०] १. किसी दुःखद बात से बार-बार या रह-रह-कर मन में पीड़ा या वेदना होना। २. गड़ना।
स० चिकोटी काटना।

कचोना—स० [अनु०] नुकीली चीज चुभाना या धँसाना।

कचोरा—पुं० [स्त्री० अल्पा० कचोरी]=कटोरा।

कचोरी-स्त्री०=कचौरी।

कचौड़ी—स्त्री०=कचौरी।

कचौरी—स्त्री० [तमिल कच=दाल+पूरिका, प्रा० कचउरिया] १. ऐसी पूरी, जिसके अन्दर उरद आदि की पीठी भरी हो। २. ऐसी चीज, जिसके अन्दर कोई दूसरी चीज दबी पड़ी हो। जैसे—कचौरीदार कड़ा=ऐसा कड़ा, जिसके अंदर चाँदी और सोना हो।

कच्चर—वि० [सं० कु√चर् (गति)+अच्, कु=कत्] गंदा या मैला-कुचैला।

कच्चा—वि० [सं० कच्चर=बुरा; प्रा० कच्छरो; सिं० कचिरो; गुज० काचर, कचरो; मरा० कचरा; बँ० कांचा] [स्त्री० कच्ची] १. फलों, फसलों आदि के संबंध में, जो अभी अच्छी तरह बढ़कर काटने, तोड़ने या काम में लाने के योग्य न हुआ हो। जो अभी पका न हो। अपक्व। जैसे—कच्चा आम, कच्चे दाने (अनाज के) आदि। २. खाद्य पदार्थ, जो अभी आग पर पकाया न गया हो अथवा जिसके ठीक तरह से पकने में अभी कुछ कसर हो और फलतः जो अभी खाने के योग्य न हुआ हो। अरंधित। जैसे—कच्चे चावल, कच्ची रोटी आदि।
मुहा०—किसी को कच्चा खा या चबा जाना=बहुत अधिक क्रोध या रोष में आकर ऐसी भाव-भंगी दिखलाना कि मानों अभी खा ही जायँगे।
३. जो अभी आग पर या आग में रखकर अच्छी तरह पकाया या पक्का न किया गया हो। यों ही धूप आदि में सुखाया हुआ। जैसे—कच्ची ईंट, कच्चा घड़ा आदि। ४. जिसमें अपेक्षित या उचित दृढ़ता, पक्वता अथवा पुष्टता का अभाव हो। जैसे—कच्ची दीवार, कच्चा धागा या सूत आदि। ५. जिसका अभी तक पूरा या यथेष्ट अभिवर्धन या विकास न हुआ हो। जो अभी पूर्णता या प्रौढ़ता तक न पहुँचा हो। जैसे—कच्ची उमर। कच्ची समझ।
मुहा०—कच्चा गिरना या जाना=आरंभिक अवस्था में ही गर्भपात या गर्भ-स्राव होना।
६. जो कुछ ही समय तक काम में आ सकता या बना रह सकता हो। जो टिकाऊ या स्थायी न हो। जैसे—कच्चा गोटा, कच्चा रंग। ७. जिसकी रचना अभी अस्थायी रूप से हुई हो और जो बाद में दृढ़ या पूर्ण किया जाने को हो। जैसे—कच्चा चिट्ठा, कच्ची सिलाई आदि। ८. जिसे पूर्णता तक पहुँचाने के लिए अभी कुछ या कई प्रक्रियाओं की अपेक्षा हो। जो अभी अपनी आरंभिक या प्राकृतिक दशा अथवा रूप में हो। जैसे—कच्चा चमड़ा, कच्चा रेशम, कच्चा लोहा। ९. जो किसी तरह से ठीक, पूरा या प्रामाणिक न माना जा सकता हो। जैसे—कच्चा काम, कच्चा हाथ, कच्चा हिसाब। १०. कला, विद्या आदि के संबंध में, जिसने किसी बात या विषय का अभी तक अच्छा

अध्ययन या अभ्यास न किया हो अथवा जिसकी जानकारी अधूरी हो। जैसे—यह लड़का अभी हिसाब में कच्चा है। ११. जो प्रामाणिक या शिष्ट-सम्मत न हो। जैसे—ऐसी कच्ची बात मुँह से मत निकाला करो।

मुहा०—(किसी को) **कच्ची-पक्की सुनाना**=ऐसी बातें कहना जो शिष्ट-सम्मत न हों। खरी-खोटी कहना। (कोई बात) **कच्ची पड़ना**=अप्रामाणिक, अविश्वसनीय या मिथ्या ठहरना।

१२. जिसमें धैर्य, बल, साहस आदि का अभाव हो। जैसे—कच्चा दिल। १३. तौल आदि के संबंध में, जो सब जगह ठीक या मानक न माना जाय, बल्कि उससे कुछ कम या हलका हो और जिसका प्रचलन थोड़े क्षेत्र में होता हो। जैसे—कच्चा मन, कच्चा सेर।

विशेष—अधिकतर अवस्थाओं में यह शब्द 'पक्का' का विपर्याय होता है; और 'पक्का' की ही तरह भिन्न-भिन्न पदों और प्रसंगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ या आशय प्रकट करता है, जो उन पदों के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं।

पुं० १. ताँबे का एक प्रकार का पुराना छोटा सिक्का जो प्रायः पैसों की जगह चलता था। २. किसी काम, चीज या बात का खड़ा किया हुआ आरंभिक रूप। खाका। ढाँचा। ३. लेख या लेख्य का वह आरंभिक रूप जिसमें अभी काट-छाँट, परिवर्तन, परिवर्द्धन या संशोधन होने को हो। प्रालेख। मसौदा। ४. कपड़े आदि सीने के समय उनमें दूर-दूर की जानेवाली कमजोर और हलकी सिलाई जो बाद में काटकर निकाल दी जाती है। ५. भारतीय महाजनी ढंग से ब्याज या सूद लगाने के हिसाब में, वह अंक या संख्या जो प्रतिदिन और प्रति रुपये के हिसाब से स्थिर हो या हाथ लगे।

पुं० [कच्च से अनु०] ऊपर और नीचे के जबड़ों का जोड़ जो कनपटी के पास होता है।

मुहा०—**कच्चा बैठना**=बेहोशी के समय या रोग के रूप में दाँतों पर दाँत इस प्रकार जमकर बैठना कि मुँह न खुल सके।

कच्चा असामी—पुं० [हिं० कच्चा+फा० असामी] १. वह असामी जिसे कुछ या थोड़े समय के लिए खेत जोतने-बोने के लिए दिया गया हो। २. ऐसा व्यक्ति जो लेन-देन में खरा न हो। ३. अपनी बात पर दृढ़ न रहनेवाला व्यक्ति।

कच्चा कागज—पुं० [हिं० कच्चा+अ० कागज] १. एक प्रकार का देशी कागज जो घोंटा हुआ नहीं होता २. लेख्य, जिसका निबंधन (रजिस्टरी) न हुआ हो। ३. प्रालेख। मसौदा।

कच्चा कोढ़—पुं० [हिं०] १. खुजली। २. आतशक या गरमी नामक रोग।

कच्चा घड़ा—पुं० [हिं०] वह घड़ा, जो आँवें में पकाया न गया हो, केवल धूप में सुखाया गया हो।

मुहा०—**कच्चे घड़े में पानी भरना**=ऐसा काम करना, जो स्थायी न हो। (कच्चे घड़े में पानी भरने पर वह गल जाता है, जिससे घड़ा भी नष्ट होता है और पानी भी।)

कच्चा-चिट्ठा—पुं० [हिं०] १. वह विवरण या वृत्तांत, जिसमें किसी व्यक्ति की गुप्त या छिपी हुई दुर्बलताएँ बतलाई गई हों; अथवा सब बातें ज्यों-की-त्यों कही गई हों। २. आय-व्यय, हानि-लाभ आदि के विवरण का वह प्रारंभिक रूप, जो अभी जाँचकर ठीक किया जाने को हो।

कच्चापन—पुं० [हिं० कच्चा+पन (प्रत्य०)] कच्चे होने की अवस्था, गुण या भाव। कचाई।

कच्चा माल—पुं० [हिं०+अ०] कारखानों में काम आने वाले वे खनिज या वानस्पतिक पदार्थ, जो अपने आरंभिक या प्राकृतिक रूप में हों और जिन्हें मशीनों द्वारा ठीक करके या बनाकर उनसे दूसरी वस्तुएँ बनाई जाती हों। (रा मेटीरियल)

कच्ची—स्त्री०=कच्ची रसोई।

कच्ची कुर्की—स्त्री० [हिं० कच्चा+तु० कुर्की] वह कुर्की, जो प्रायः महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशंका से जारी कराते हैं कि कहीं मुकदमे के फैसला होने तक प्रतिवादी अपना माल-असबाब इधर-उधर न कर दे। (दे० 'कुर्की')

कच्ची गोटी—स्त्री० [हिं०] चौसर के खेल में वह गोटी, जो अभी आगे बढ़ रही हो और जिसके पुगने में अभी देर हो।

मुहा०—**कच्ची गोटी खेलना**=ऐसा काम करना, जो समझदारी का न हो और जिसमें आगे चलकर धोखा खाना पड़े।

कच्ची गोली—स्त्री०=कच्ची गोटी।

कच्ची चीनी—स्त्री० [हिं०] राब को सुखाकर तैयार की हुई चीनी, जो कुछ हरे रंग की होती है। खाँड़। शक्कर।

कच्ची जाकड़—स्त्री० [हिं०] वह बही, जिसमें जाकड़ दिये जाने वाले का ब्यौरा लिखा जाता है।

कच्ची नकल—स्त्री० [हिं०] किसी कार्यालय के लेख्य आदि की ऐसी नकल, जो अनधिकारिक या निजी रूप से ली गई हो और जिस पर उस कार्यालय की मोहर या उसके अध्यक्ष के हस्ताक्षर न हों और इसीलिए जो प्रामाणिक न मानी जाती हो।

कच्ची निकासी—स्त्री० [हिं० कच्ची+निकासी] किसी कारखाने, संस्था आदि की वह कुल आय, जिसमें से व्यय आदि निकाला न गया हो। (ग्रॉस एसेट्स)

कच्ची बही—स्त्री० [हिं०] वह बही, जिसमें लिखा हुआ हिसाब यों ही याद रखने के लिए टाँका गया हो और नियमित रूप से लिखा न होने के कारण पूर्णतया ठीक या प्रामाणिक न हो।

कच्ची मिती—स्त्री [हिं०] किसी को ऋण देने तथा चुकता पाने की मितियाँ, जिनका ब्याज या सूद जोड़ा नहीं जाता।

कच्ची रसोई—स्त्री० [हिं०] ऐसा भोजन या व्यंजन, जो घी या दूध आदि में न पकाया गया हो; बल्कि पानी में पकाया गया हो, इसीलिए जिसके संबंध में छूआछूत मानी जाती हो। (सनातनी हिंदू)

कच्ची रोकड़—स्त्री [हिं०] वह बही, जिसमें प्रतिदिन का आय-व्यय स्मृति के लिए टाँक या लिख दिया जाता है।

कच्ची शक्कर—स्त्री०=कच्ची चीनी।

कच्ची सिलाई—स्त्री० [हिं०] १. वे अस्थायी टाँके, जो पक्का बखिया करने से पहले कपड़े के जोड़ को अस्थायी रूप से लगाये रखने के लिए भरे जाते हैं। लंगर। २. पुस्तकों की वह सिलाई, जो सब फर्मों को एक साथ ऊपर-नीचे रखकर की जाती है। (जुजबन्दी सिलाई से भिन्न)

कच्चू—स्त्री० [सं० कंचु] १. अरबी या घुइयाँ नामक कंद। २. बंडा नामक कंद।

कच्चे-पक्के दिन—पद [हिं०] चार या पाँच महीने का गर्भकाल।
कच्चे-बच्चे—पुं० [हिं०] १. कम अवस्था के बच्चे। छोटे-छोटे बच्चे। २. छोटे-छोटे बाल-बच्चे।
कच्छ—पुं० [सं०√कच् (बाँधना)+छ अथवा क√छ् (दीप्ति)+ड] १. अनूप देश। २. कछार। ३. पश्चिमी भारत में गुजरात का एक प्रसिद्ध अंतरीप। ४. उक्त देश का निवासी।
वि० कच्छ देश का।
स्त्री० कच्छ देश की भाषा।
†पुं० [सं० कक्ष] १. धोती की लाँग। २. कुश्ती का एक पेंच। ३. छप्पय छंद का एक भेद। ४. दे० 'कक्ष'।
†पुं० [सं० कच्छप] १. कछुआ। २. तुन का पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत जल्दी जलती है। उदा०—राम-प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी।
कच्छप—पुं० [सं० कच्छ√पा (पीना)+क] १. कछुआ। २. विष्णु के २४ अवतारों में से एक जो कछुए के रूप में हुआ था। ३. कुबेर की नौ निधियों में से एक। ४. मद्य बनाने का एक प्रकार का भबका। ५. एक रोग जिसमें तालु में एक प्रकार की गाँठ निकल आती है। ६. दोहे का एक प्रकार या भेद जिसमें ८ गुरु और ३२ लघु होते हैं।
कच्छपिका—स्त्री० [सं० कच्छप+कन्—टाप्, इत्व] १. पित्त बिगड़ने से होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर के किसी अंग में छोटे-छोटे चकत्ते निकल आते हैं। इसमें बहुत जलन होती है। २. प्रमेह के कारण होनेवाली एक प्रकार की फुड़िया।
कच्छपी—स्त्री० [सं० कच्छप+ङीप्] १. कच्छप जाति के जंतु की मादा। २. सरस्वती की वीणा का नाम।
कच्छ-शेष—पुं० [सं० ब० स०] एक प्रकार के दिगंबर जैन।
कच्छा—पुं० [सं० कच्छ] १. एक प्रकार की बहुत बड़ी नाव। २. कई या बहुत-सी नावों को एक साथ बाँधकर तैयार किया हुआ बेड़ा। [सं० कच्छ] एक प्रकार का जाँघिया।
कच्छी—वि० [हिं० कच्छ] कच्छ देश में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।
पुं० १. कच्छ देश का निवासी। २. कच्छ प्रदेश का घोड़ा।
स्त्री० कच्छ देश की भाषा।
कच्छु—स्त्री [सं०√कष् (हिंसा)+ऊ, छ आदेश, पृषो० ह्रस्व] खुजली का रोग।
*पुं०=कछुआ।
कच्छू*—पुं०=कछुआ।
कछ*—पुं० [सं० कच्छप] १. कछुआ नामक जन्तु। २. भगवान का कच्छप या कूर्म नामक अवतार। उदा०—मछ कछ होय जलै नहिं डोला।—कबीर।
†पुं० दे० 'काछा'।
कछना—पुं० १. दे० 'कछनी'। २. दे० 'काछ'।
स०=काछना।
कछनी—स्त्री० [हिं० काछना] १. घुटने तक अथवा घुटने के ऊपर चढ़ाकर बाँधी जानेवाली धोती अथवा कोई वस्त्र। २. उक्त प्रकार से धोती या वस्त्र बाँधने का ढंग। ३. छोटी धोती।
कछरा†—पुं० [स्त्री० अल्पा० कछरी] दे० 'कमोरा'।
कछराली—स्त्री०=कखराली (कखौरी)।
कछव*—पुं० [सं० कर्दम] कीचड़।
†पुं०=कछुआ।
कछवारा—पुं० [हिं० काछी+वाड़ा] १. वह स्थान, जहाँ काछी तरकारियाँ बोते हैं। २. काछियों के रहने का स्थान।
कछवाहा—पुं० [सं० कच्छ] राजपूतों की एक प्रसिद्ध जाति।
कछान—पुं० [हिं० काछना] काछा काछने की क्रिया, ढंग या भाव।
कछाना—स० [हिं० काछा] किसी को कछनी काछने में प्रवृत्त करना।
पुं०=काछा।
कछार—पुं० [सं० कच्छ] [स्त्री० अल्पा० कछारी] १. नदी अथवा समुद्र के किनारों की तर और नीची भूमि। (एल्यूवियल लैंड) २. आसाम राज्य का एक प्रदेश।
कछियाना—पुं० [हिं० काछी+आना प्रत्य०] काछियों के रहने का स्थान।
स०=काछना।
कछु†—वि०=कुछ। (व्रज०)
कछुआ—पुं० [सं० कश्यप; कच्छप; प्रा० कच्छभ; मु० कच्छवो; कासवो; सिं० कछउं; कछूं; बँ० काछिम; मरा० कासव, कांसव] एक प्रसिद्ध जन्तु, जो जल और स्थल दोनों में समान रूप से रहता है, पर जल में अधिक सुखी रहता है। इसकी पीठ पर ढाल के आकार की कड़ी खोपड़ी होती है।
कछुक*—वि० [हिं० कछु (=कुछ)+एक प्रत्य०] कुछ। थोड़ा। उदा०—कछुक बनाइ भूप सन भाषे।—तुलसी।
कछुवा†—पुं०=कछुआ (जंतु)।
कछुवै*—अव्य०=कुछ भी।
कछू†—वि०=कुछ।
कछौटा—पुं० [हिं० काछा+औटा प्रत्य०] [स्त्री० अल्पा० कछौटी] १. कमर में पहनने का काछा। कछनी। उदा०—हँसति धँसति जलधार कसति कोउ कलित कछौटा—रत्ना०। २. धोती पहनने का वह ढंग, जिसमें दोनों लाँगें घुटनों तक चढ़ाकर और कसकर पीछे की ओर खोंसी जाती है।
†पुं० [सं० कक्ष] काँख। बगल।
कछौहा†—पुं०=कछार।
कज—वि० [फ़ा०] टेढ़ा। वक्र।
पुं० १. टेढ़ापन। वक्रता। २. ऐब। दोष। ३. कमी। त्रुटि।
†पुं०=कार्य (काम)।
कजकोल—पुं० [फा० कशकोल] भिक्षुओं का कपाल या खप्पर, जिसमें वे भिक्षा लेते हैं। भिक्षापात्र।
कजनी—स्त्री० [?] वह उपकरण, जिससे खुरचकर ताँबे आदि के बरतन साफ किये जाते हैं। खरदनी।
कजपूती†—स्त्री०=कयपूती (एक प्रकार का पेड़)।
कजरवा†—पुं०=काजल।
कजरा†—वि० [हिं० काजल] १. काजल के रंग का। काला। २. काजल से युक्त। कजरारा।
पुं० काले रंग की आँखोंवाला बैल।

†पुं०=काजल। उदा०—गोरी नैनों में तेरे कजरा फला।—गीत।

कजराई*—स्त्री० [हिं० काजल] काले या काजल के रंग के होने की अवस्था, गुण या भाव। कालापन।

कजरारा—वि० [हिं० काजर+आरा प्रत्य०] १. जिसमें काजल लगा हो अथवा जो काजल से युक्त हो। (मुख्यतः नेत्र) २. जो काला या काजल के रंग-जैसा हो। जैसे—कजरारे बादल।

कजरियाना—स० [हिं० काजर=काजल] १. बच्चों को नजर लगने से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल की बिंदी लगाना। २. आँखों में काजल लगाना। ३. काला करना। ४. चित्रकला में अंधकार या अँधेरी रात दिखलाने के लिए चित्र पर काला रंग लगाना।

कजरी†—स्त्री० १. =कजली। २. =कदली।

पुं० एक प्रकार का धान और उसका चावल, जो काले रंग का होता है।

कजरौटा—पुं०=कजलौटा।

कजलबाश—पुं० [तु०] मुगलों की एक जाति, जो बहुत लड़ाकू होती है।

कजला—पुं० [हिं० काजल] १. काले रंग का एक प्रकार का पक्षी। २. वह बैल, जिसकी आँखों पर काला घेरा हो। ३. खरबूजे की एक जाति।

वि०=कजरा।

†पुं०=काजल।

कजलाना—अ० [हिं० काजल] १. काजल से युक्त होना। २. काजल के रंग का; अर्थात् काला पड़ना या होना। ३. आग या कोयलों का बुझने पर होना। झँवाना।

स० १. काजल से युक्त करना। काजल लगाना। २. काला करना।

कजली—स्त्री० [हिं० काजल] १. वह कालिख, जो दिया जलने पर उसके ऊपर जमती है; और जिससे काजल बनता है। २. ऐसी गौ, जिसकी आँखें काजल के रंग की अर्थात् काली हों। ३. ऐसी भेड़, जिसकी आँख के चारों ओर काले बालों का घेरा हो। ४. उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले एक प्रकार के लोकगीत, जिनकी बीसियों धुनें होती हैं। ५. भादों वदी तीज को होनेवाला स्त्रियों का एक त्योहार, जिसमें वे प्रायः रात-भर उक्त प्रकार के गीत गाती और नाचती हैं।

मुहा०—कजली खेलना=स्त्रियों का घेरा या झुरमुट बनाकर झूमते हुए कजलियाँ गाना।

६. जौ के वे नये हरे अंकुर, जो उक्त त्योहार पर स्त्रियाँ अपनी सखियों और संबंधियों में बाँटती हैं। ७. वैद्यक में एक औषध, जिसे गंधक और पारे के योग से बनाते हैं; और जिसका उपयोग भस्म या रस प्रस्तुत करने में होता है। ८. एक प्रकार का गन्ना। ९. एक प्रकार की मछली। १०. वनस्पतियों आदि का एक रोग, जिससे उनकी पत्तियों, फूलों आदि पर काली धूल-सी जम जाती है।

कजली तीज—स्त्री० [हिं० कजली+तीज] भादों वदी तीज, जिस दिन स्त्रियाँ रात-भर कजली गाती और नाचती हैं।

कजली बन—पुं० [सं० कदलीवन] १. केले का जंगल। २. आसाम का एक जंगल, जो अच्छे हाथियों के लिए प्रसिद्ध है।

कजलौटा—पुं० [सं० कज्जल-पात्र या हिं० काजल+औटा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कजलौटी] १. काजल रखने का एक प्रकार का डंडीदार लोहे का पात्र। २. गोदना गोदने की स्याही रखने का पात्र।

कजहो†—स्त्री० दे० 'कायजा'।

कजा*—स्त्री० [सं० कांजी] काँजी। माँड़।

स्त्री० [अ०] मौत। मृत्यु।

कजाक*—पुं० [तु० कज्जाक] [वि०, भाव० कजाकी] डाकू। लुटेरा।

कजाकी—स्त्री० [फा०] १. कजाक या लुटेरे का काम। २. लूटमार और बहुत बड़ी जबरदस्ती का काम। ३. छल-कपट। धोखाबाजी।

कजावा—पुं० ऊँट की पीठ पर रखी जानेवाली काठी, जिस पर लोग बैठते या सामान रखते हैं।

कजि—क्रि० वि० [हिं० काज] कार्य के लिए। वास्ते। उदा०-कमल तणा मकरंद कजि।—प्रिथीराज।

कजिया—पुं० [अ०] १. झगड़ा। लड़ाई। २. झंझट। बखेड़ा।

कजी—स्त्री० [फा०] १. टेढ़े होने की अवस्था या भाव। टेढ़ापन। २-ऐब। दोष। ३. कसर। त्रुटि।

कज्ज*—पुं०=कार्य।

कज्जल—पुं० [सं० कु-जल, ब० स०, कद् आदेश] १. आँखों में लगाने का काजल या अंजन। २. सुरमा। ३. दीपक आदि की कालिख। कजली। ४. बादल। मेघ। ५. चौदह मात्राओं का एक छंद, जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है।

कज्जल-ध्वज—पुं० [ब० स०] दीपक।

कज्जलरोचक—पुं० [सं० कज्जल√रुच् (दीप्ति)+णिच्+अच्+कन्] दीअट। दीपाधार।

कज्जलित—भू० कृ० [सं० कज्जल+इतच्] १. कज्जल या काजल से युक्त किया हुआ। जिसमें काजल लगा हो। २. काला।

कज्जली—स्त्री० [सं० कज्जल+क्विप्+अच्—ङीप्] १. एक प्रकार की मछली। २. एक प्रकार का द्रव्य, जो गंधक तथा पारे के योग से बनाया जाता है। ३. स्याही।

कज्जाक—पुं० [तु०] डाकू। लुटेरा।

कज्जाकी—स्त्री० दे० 'कजाकी'।

कटंकट—पुं० [सं० कट√कट् (आवरण)+खच्, मुम्] १. आग। २. सोना। ३. गणेश। ४. शिव। ५. चित्रक वृक्ष।

कटंब—पुं० [सं०√कट्+अम्बच्] १. एक प्रकार का बाजा। २. बाण।

कट—पुं० [सं०√कट् (वर्षण करना)+अच्] १. हाथी की कनपटी या गंडस्थल। २. नरकट, सरकंडे आदि वनस्पतियों के लंबे-लंबे कांड या डंठल जिनकी चटाइयाँ आदि बनाई जाती हैं। ३. उक्त कांडों या डंठलों की बनी हुई चटाइयाँ। ४. लाश। शव। ५. अरथी। ६. श्मशान। ७. ऋतु। ८. उपयुक्त अवसर। ९. एक प्रकार का काला रंग, जो कसीस, बहेड़े, हर्रे आदि के योग से बनाया जाता है।

वि० [सं०√कट् (गति)+अच्] १. बहुत अधिक। अतिशय। २. उग्र। उत्कट।

वि० १. काटनेवाला। (यौ० के अंत में) जैसे—गिरहकट। २. हिं० काटना का संक्षिप्त रूप, जिसका प्रयोग कुछ समस्त पदों के आरंभ में होता है। जैसे—कट-खना। (दे०)

पुं० [अं० कट मि० हिं० काट] काटने का ढंग या भाव। जैसे—कमीज या कुरते का कट।

कटक—पुं० [सं०√कट्+वुन्—अक] १. झुंड। समूह। २. फौज। सेना। ३. सैनिक छावनी। शिविर। ४. पैर में पहनने का कड़ा।

कच्चे-पक्के दिन—पद [हिं०] चार या पाँच महीने का गर्भकाल।
कच्चे-बच्चे—पुं० [हिं०] १. कम अवस्था के बच्चे। छोटे-छोटे बच्चे। २. छोटे-छोटे बाल-बच्चे।
कच्छ—पुं० [सं०√कच् (बाँधना)+छ अथवा क√छ् (दीप्ति)+ड] १. अनूप देश। २. कछार। ३. पश्चिमी भारत में गुजरात का एक प्रसिद्ध अंतरीप। ४. उक्त देश का निवासी।
वि० कच्छ देश का।
स्त्री० कच्छ देश की भाषा।
†पुं० [सं० कक्ष] १. धोती की लाँग। २. कुश्ती का एक पेंच। ३. छप्पय छंद का एक भेद। ४. दे० 'कक्ष'।
†पुं० [सं० कच्छप] १. कछुआ। २. तुन का पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत जल्दी जलती है। उदा०—राम-प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी।
कच्छप—पुं० [सं० कच्छ√पा (पीना)+क] १. कछुआ। २. विष्णु के २४ अवतारों में से एक जो कछुए के रूप में हुआ था। ३. कुबेर की नौ निधियों में से एक। ४. मद्य बनाने का एक प्रकार का भबका। ५. एक रोग जिसमें तालु में एक प्रकार की गाँठ निकल आती है। ६. दोहे का एक प्रकार या भेद जिसमें ८ गुरु और ३२ लघु होते हैं।
कच्छपिका—स्त्री० [सं० कच्छप+कन्—टाप्, इत्व] १. पित्त बिगड़ने से होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर के किसी अंग में छोटे-छोटे चकत्ते निकल आते है। इसमें बहुत जलन होती है। २. प्रमेह के कारण होनेवाली एक प्रकार की फुड़िया।
कच्छपी—स्त्री० [सं० कच्छप+ङीप्] १. कच्छप जाति के जंतु की मादा। २. सरस्वती की वीणा का नाम।
कच्छ-शेष—पु० [स० ब० स०] एक प्रकार के दिगंबर जैन।
कच्छा—पुं० [सं० कच्छ] १. एक प्रकार की बहुत बड़ी नाव। २. कई या बहुत-सी नावों को एक साथ बाँधकर तैयार किया हुआ बेड़ा। [सं० कच्छ] एक प्रकार का जाँघिया।
कच्छी—वि० [हिं० कच्छ] कच्छ देश में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।
पुं० १. कच्छ देश का निवासी। २. कच्छ प्रदेश का घोड़ा।
स्त्री० कच्छ देश की भाषा।
कच्छु—स्त्री [सं०√कष् (हिंसा)+ऊ, छ आदेश, पृषो० ह्रस्व] खुजली का रोग।
*पुं०=कछुआ।
कच्छू*—पुं०=कछुआ।
कछ*—पुं० [सं० कच्छप] १. कछुआ नामक जन्तु। २. भगवान का कच्छप या कूर्म नामक अवतार। उदा०—मछ कछ होय जलै नहिं डोला।—कबीर।
†पुं० दे० 'काछा'।
कछना—पुं० १. दे० 'कछनी'। २. दे० 'काछ'।
स०=काछना।
कछनी—स्त्री० [हिं० काछना] १. घुटने तक अथवा घुटने के ऊपर चढ़ाकर बाँधी जानेवाली धोती अथवा कोई वस्त्र। २. उक्त प्रकार से धोती या वस्त्र बाँधने का ढंग। ३. छोटी धोती।
कछरा†—पुं० [स्त्री० अल्पा० कछरी] दे० 'कमोरा'।
कछराली—स्त्री०=कखराली (कखौरी)।
कछव*—पुं० [सं० कर्दम] कीचड़।
†पुं०=कछुआ।
कछवारा—पुं० [हिं० काछी+वाड़ा] १. वह स्थान, जहाँ काछी तरकारियाँ बोते है। २. काछियों के रहने का स्थान।
कछवाहा—पुं० [सं० कच्छ] राजपूतों की एक प्रसिद्ध जाति।
कछान—पुं० [हिं० काछना] काछा काछने की क्रिया, ढंग या भाव।
कछाना—स० [हिं० काछा] किसी को कछनी काछने में प्रवृत्त करना।
पुं०=काछा।
कछार—पुं० [सं० कच्छ] [स्त्री० अल्पा० कछारी] १. नदी अथवा समुद्र के किनारों की तर और नीची भूमि। (एल्यूवियल लैंड) २. आसाम राज्य का एक प्रदेश।
कछियाना—पुं० [हिं० काछी+आना प्रत्य०] काछियों के रहने का स्थान।
स०=काछना।
कछु†—वि०=कुछ। (व्रज०)
कछुआ—पुं० [सं० कश्यप; कच्छप; प्रा० कच्छभ; मु० कच्छवो; कासवो; सिं० कछवं; कछूं; बँ० काछिम; मरा० कासव, कांसव] एक प्रसिद्ध जन्तु, जो जल और स्थल दोनों में समान रूप से रहता है, पर जल में अधिक सुखी रहता है। इसकी पीठ पर ढाल के आकार की कड़ी खोपड़ी होती है।
कछुक*—वि० [हिं० कछु (=कुछ)+एक प्रत्य०] कुछ। थोड़ा। उदा०—कछुक बनाइ भूप सन भाषे।—तुलसी।
कछुवा†—पुं०=कछुआ (जंतु)।
कछुवै*—अव्य०=कुछ भी।
कछू†—वि०=कुछ।
कछौटा—पुं० [हिं० काछा+औटा प्रत्य०] [स्त्री० अल्पा० कछौटी] १. कमर में पहनने का काछा। कछनी। उदा०—हँसति धँसति जलधार कसति कोउ कलित कछौटा—रत्ना०। २. धोती पहनने का वह ढंग, जिसमें दोनों लाँगें घुटनों तक चढ़ाकर और कसकर पीछे की ओर खोंसी जाती हे।
†पुं० [सं० कक्ष] काँख। बगल।
कछौहा†—पुं०=कछार।
कज—वि० [फ़ा०] टेढ़ा। वक्र।
पुं० १. टेढ़ापन। वक्रता। २. ऐब। दोष। ३. कमी। त्रुटि।
†पुं०=कार्य (काम)।
कजकोल—पुं० [फा० कशकोल] भिक्षुओं का कपाल या खप्पर, जिसमें वे भिक्षा लेते हैं। भिक्षापात्र।
कजनी—स्त्री० [?] वह उपकरण, जिससे खुरचकर ताँबे आदि के बरतन साफ किये जाते है। खरदनी।
कजपूती†—स्त्री०=कयपूती (एक प्रकार का पेड़)।
कजरवा†—पुं०=काजल।
कजरा†—वि० [हिं० काजल] १. काजल के रंग का। काला। २. काजल से युक्त। कजरारा।
पु० काले रंग की आँखोंवाला बैल।

†पुं०=काजल। उदा०—गोरी नैनों में तेरे कजरा फला।—गीत।

कजराई*—स्त्री० [हिं० काजल] काले या काजल के रंग के होने की अवस्था, गुण या भाव। कालापन।

कजरारा—वि० [हिं० काजर+आरा प्रत्य०] १. जिसमें काजल लगा हो अथवा जो काजल से युक्त हो। (मुख्यतः नेत्र) २. जो काला या काजल के रंग-जैसा हो। जैसे—कजरारे बादल।

कजरियाना—स० [हिं० काजर=काजल] १. बच्चों को नजर लगने से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल की बिंदी लगाना। २. आँखों में काजल लगाना। ३. काला करना। ४. चित्रकला में अंधकार या अंधेरी रात दिखलाने के लिए चित्र पर काला रंग लगाना।

कजरी†—स्त्री० १. =कजली। २. =कदली।

पुं० एक प्रकार का धान और उसका चावल, जो काले रंग का होता है।

कजरौटा—पुं०=कजलौटा।

कजलबाश—पुं० [तु०] मुगलों की एक जाति, जो बहुत लड़ाकू होती है।

कजला—पुं० [हिं० काजल] १. काले रंग का एक प्रकार का पक्षी। २. वह बैल, जिसकी आँखों पर काला घेरा हो। ३. खरबूजे की एक जाति।

वि०=कजरा।

†पुं०=काजल।

कजलाना—अ० [हिं० काजल] १. काजल से युक्त होना। २. काजल के रंग का; अर्थात् काला पड़ना या होना। ३. आग या कोयलों का बुझने पर होना। झँवाना।

स० १. काजल से युक्त करना। काजल लगाना। २. काला करना।

कजली—स्त्री० [हिं० काजल] १. वह कालिख, जो दिया जलने पर उसके ऊपर जमती है; और जिससे काजल बनता है। २. ऐसी गौ, जिसकी आँखें काजल के रंग की अर्थात् काली हों। ३. ऐसी भेड़, जिसकी आँख के चारों ओर काले बालों का घेरा हो। ४. उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले एक प्रकार के लोकगीत, जिनकी बीसियों धुनें होती हैं। ५. भादों बदी तीज को होनेवाला स्त्रियों का एक त्योहार, जिसमें वे प्रायः रात-भर उक्त प्रकार के गीत गाती और नाचती हैं।

मुहा०—कजली खेलना=स्त्रियों का घेरा या झुरमुट बनाकर झूमते हुए कजलियाँ गाना।

६. जौ के वे नये हरे अंकुर, जो उक्त त्योहार पर स्त्रियाँ अपनी सखियों और संबंधियों में बाँटती हैं। ७. वैद्यक में एक औषध, जिसे गंधक और पारे के योग से बनाते हैं; और जिसका उपयोग भस्म या रस प्रस्तुत करने में होता है। ८. एक प्रकार का गन्ना। ९. एक प्रकार की मछली। १०. वनस्पतियों आदि का एक रोग, जिससे उनकी पत्तियों, फूलों आदि पर काली धूल-सी जम जाती है।

कजली तीज—स्त्री० [हिं० कजली+तीज] भादों बदी तीज, जिस दिन स्त्रियाँ रात-भर कजली गाती और नाचती हैं।

कजली बन—पुं० [सं० कदलीवन] १. केले का जंगल। २. आसाम का एक जंगल, जो अच्छे हाथियों के लिए प्रसिद्ध है।

कजलौटा—पुं० [सं० कज्जल-पात्र या हिं० काजल+औटा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कजलौटी] १. काजल रखने का एक प्रकार का डंडीदार लोहे का पात्र। २. गोदना गोदने की स्याही रखने का पात्र।

कजहो†—स्त्री० दे० 'कायजा'।

कजा*—स्त्री० [सं० कांजी] काँजी। माँड़।

स्त्री० [अ०] मौत। मृत्यु।

कजाक*—पुं० [तु० कज्जाक] [वि०, भाव० कजाकी] डाकू। लुटेरा।

कजाकी—स्त्री० [फा०] १. कजाक या लुटेरे का काम। २. लूटमार और बहुत बड़ी जबरदस्ती का काम। ३. छल-कपट। धोखाबाजी।

कजावा—पुं० ऊँट की पीठ पर रखी जानेवाली काठी, जिस पर लोग बैठते या सामान रखते हैं।

कजि—क्रि० वि० [हिं० काज] कार्य के लिए। वास्ते। उदा०-कमल तणा मकरंद कजि।—प्रिथीराज।

कजिया—पुं० [अ०] १. झगड़ा। लड़ाई। २. झंझट। बखेड़ा।

कजी—स्त्री० [फा०] १. टेढ़े होने की अवस्था या भाव। टेढ़ापन। २. ऐब। दोष। ३. कसर। त्रुटि।

कज्ज*—पुं०=कार्य।

कज्जल—पुं० [सं० कु-जल, ब० स०, कद् आदेश] १. आँखों में लगाने का काजल या अंजन। २. सुरमा। ३. दीपक आदि की कालिख। कजली। ४. बादल। मेघ। ५. चौदह मात्राओं का एक छंद, जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है।

कज्जल-ध्वज—पु० [ब० स०] दीपक।

कज्जलरोचक—पुं० [सं० कज्जल√रुच् (दीप्ति)+णिच्+अच्+कन्] दीअट। दीपाधार।

कज्जलित—भू० कृ० [सं० कज्जल+इतच्] १. कज्जल या काजल से युक्त किया हुआ। जिसमें काजल लगा हो। २. काला।

कज्जली—स्त्री० [सं० कज्जल+क्विप्+अच्—ङीप्] १. एक प्रकार की मछली। २. एक प्रकार का द्रव्य, जो गंधक तथा पारे के योग से बनाया जाता है। ३. स्याही।

कज्जाक—पुं० [तु०] डाकू। लुटेरा।

कज्जाकी—स्त्री० दे० 'कजाकी'।

कटंकट—पुं० [सं० कट√कट् (आवरण)+खच्, मुम्] १. आग। २. सोना। ३. गणेश। ४. शिव। ५. चित्रक वृक्ष।

कटंब—पुं० [सं०√कट्+अम्बच्] १. एक प्रकार का बाजा। २. बाण।

कट—पुं० [सं०√कट् (वर्षण करना)+अच्] १. हाथी की कनपटी या गंडस्थल। २. नरकट, सरकंडे आदि वनस्पतियों के लंबे-लंबे कांड या डंठल जिनकी चटाइयाँ आदि बनाई जाती हैं। ३. उक्त कांडों या डंठलों की बनी हुई चटाइयाँ। ४. लाश। शव। ५. अरथी। ६. श्मशान। ७. ऋतु। ८. उपयुक्त अवसर। ९. एक प्रकार का काला रंग, जो कसीस, बहेड़े, हर्रे आदि के योग से बनाया जाता है।

वि० [सं०√कट् (गति)+अच्] १. बहुत अधिक। अतिशय। २. उग्र। उत्कट।

वि० १. काटनेवाला। (यौ० के अंत में) जैसे—गिरहकट। २. हिं० काटना का संक्षिप्त रूप, जिसका प्रयोग कुछ समस्त पदों के आरंभ में होता है। जैसे—कट-खना। (दे०)

पुं० [अं० कट मि० हिं० काट] काटने का ढंग या भाव। जैसे—कमीज या कुरते का कट।

कटक—पुं० [सं०√कट्+वुन्—अक] १. झुंड। समूह। २. फौज। सेना। ३. सैनिक छावनी। शिविर। ४. पैर में पहनने का कड़ा।

५. पर्वत का मध्य भाग। ६. चूतड़। नितंब। ७. समुद्री नमक। ८. चटाई। ९. गाड़ी का पहिया। चक्र। १०. कंकड़। ११. जंजीर। शृंखला। १२. हाथी के दाँतों पर जड़ा जानेवाला छल्ला या बंद। सामी। १३. पैर में पहनने का कड़ा। (डिं०)
पुं० उड़ीसा प्रदेश का एक मुख्य नगर।

कटकई—स्त्री० [सं० कटक+हिं० ई (प्रत्य०)] १. फौज। सेना। २. सेना या दल-बल के साथ चलने की तैयारी।

कटककारी (रिन्)—पुं० [सं० कटक√कृ (करना)+णिनि] सेनानायक। सेनापति। उदा०—विबुध को सौध अति रुचिर मंदिर निकट सत्वगुन प्रमुख त्रय कटककारी।—तुलसी।

कट-कट—स्त्री० [अनु०] १. भय, शीत आदि के कारण ऊपर तथा नीचे के दाँतों के आपस में टकराने से उत्पन्न होनेवाला शब्द। २. लाक्षणिक अर्थ में, दो पक्षों में होनेवाली कहा-सुनी, तू-तू मैं-मैं या लड़ाई-झगड़ा। ३. अन-बन। बिगाड़।

कटकटाना—अ० [हिं० कट-कट से] क्रुद्ध होने पर ऊपर तथा नीचे के दाँतों का बजना।
स० क्रोध में आकर दाँत पीसना।

कटकटिया—स्त्री० [अनु०] एक प्रकार की बुलबुल (पक्षी)।
वि० [हिं० कट-कट से] १. कट-कट (शब्द) करनेवाला। २. लड़ाई-झगड़ा करने वाला।

कटकना—†पुं०=कटकीना (चाल, युक्ति)।

कटक-बंध—पुं० [सं० कटक+हिं० बंध=बाँधनेवाला] १. सेनापति। २. व्यूह-रचना। उदा०-कटक बंध नह घणाकिव।—प्रिथीराज।

कट-कवाला—पुं० [हिं० कटना+अ० कबाला] किसी के पास कोई चीज बंधक या रेहन रखकर इस शर्त पर ऋण लेना कि या तो नियत समय के अन्दर ऋण चुकता करके वह चीज छुड़ा लेंगे, नहीं तो वह चीज उसकी हो जायगी जिसके पास वह बंधक रखी गई है। मियादी बै।

कट-करंज—पुं० [सं० करंज] कंजा नामक पौधा।
वि० दे० 'कंजा'।

कटकाई*—स्त्री०=कटकई (सेना)।

कटकीना—पुं० [हिं० काट+कीना ?] चालाकी से भरी हुई छोटी या साधारण युक्ति। जैसे—किसी कटकीने से अपना काम निकालो।

कट-कुटी—स्त्री० [मध्य० स०] कुटी। झोपड़ी।

कट-कोल—पुं० [ब० स०] उगालदान। पीकदान।

कट-खना—वि० [हिं० काटना+खाना] १. काट खानेवाला। प्रायः काट लेनेवाला (जंतु या पशु)। जैसे—कटखना कुत्ता, कटखना तोता आदि। २. लाक्षणिक अर्थ में (ऐसा व्यक्ति) जो बात-बात पर काटने को दौड़ता (अर्थात् बुरी तरह से लड़ने को तैयार होता) हो।

कटघरा—पुं० [हिं काठ+घर] १. काठ का बना हुआ घर। २. न्यायालयों आदि में काठ या लकड़ियों का बना हुआ वह घेरा या जँगला जिसमें अभियुक्त, गवाह आदि खड़े होकर अपना बयान देते हैं। ३. पिंजड़ा।

कटजीरा—पुं० [सं० कणजीरक] एक प्रकार का काले रंग का जीरा।

कटड़ा—पुं० [सं० कटार] भैंस का पँड़वा। कट्टा।
†पुं०=कटरा (चौकोर बाजार)।

कटत—स्त्री० [हिं० कटना] १. कटने की क्रिया या भाव। २. किसी चीज की बाजार में होनेवाली बिक्री या खपत।

कटताल—पुं०=कठ-ताल।

कटती—स्त्री० १. =कटत। २. =कटौती।

कटनंस†—पुं० [हिं० काटना+नाश] काटकर नष्ट करने की क्रिया।

कटन—स्त्री० [हिं० कटना] १. कटने या काटे जाने की क्रिया या भाव। २. प्रेम। उदा०—फिरत जो अटकत कटनि बिन, रसिक सुरसन खियाल।—बिहारी। ३. दे० 'काट'।

कटना—अ० [सं० कर्त्तन; प्रा० कट्टन] १. किसी वस्तु का किसी दूसरी धारवाली चीज या हथियार से दो या कई भागों में विभक्त किया जाना। जैसे—चाकू से तरकारी काटना, तलवार से सिर काटना। २. किसी जीवित प्राणी का किसी धारवाली वस्तु से इस प्रकार विभक्त किया जाना कि वह मर जाय। जैसे—(क) रेल से यात्री का कटना। (ख) युद्ध में सैनिकों का कटना। (ग) बूचड़खाने में बकरे-बकरियों का कटना। ३. किसी वस्तु के कई अंशों या किसी अंग का किसी ढंग या रीति से अलग किया जाना। जैसे—जेब कटना, फसल कटना। ४. दो या कई भागों में विभक्त होना। जैसे—ताश की गड्डी कटना। ५. बहुत पीसा जाना। जैसे—सिल पर भाँग या मसाला कटना। ६. (समय) गुजरना, बीतना या समाप्त होना। जैसे—दिन या रात कटना। ७. रेखा या लकीर खिंचने के कारण किसी लेख का रद्द या व्यर्थ होना। अपने पूर्व रूप या स्थिति में न रह जाना। जैसे—पाठशाला से लड़के का या सूची में से पुस्तक का नाम कटना। ८. लंबी रेखा या रेखाओं के रूप में विभक्त होकर किसी काम के लिए तैयार होना या बनना। जैसे—कपड़े में से कमीज या कुरता कटना; खेत में क्यारियाँ कटना। ९. रेखा के रूप में बनी हुई किसी चीज में से शाखा के रूप में निकलकर किसी ओर जाना। जैसे—गंगा में से नहर कटना, बड़ी सड़क में से कोई छोटी सड़क कटना। १०. रास्ते में किसी का साथ छोड़कर अलग या दूर हो जाना। खिसक जाना। चलता बनना। जैसे—जब देखो, तब तुम यों ही कट जाते हो। ११. उपयोग में आने के कारण धीरे-धीरे व्यय होना। जैसे—बात-की-बात में सौ रुपए कट गये। १२. न रह जाना। नष्ट हो जाना। मिट जाना। उदा०—तुव हित होई कटै भवबंधन।—तुलसी। १३. ताश के खेल में, किसी बड़े पत्ते के सामने आने पर छोटे पत्तों का निरर्थक या व्यर्थ होना। १४. मन-ही-मन दुःखी होना। जैसे—हम लोगों को बात-चीत करते देखकर वह कटता है। १५. अपमान, विफलता आदि के कारण मन-ही-मन लज्जित होना। झेंपना। जैसे—पते की बात सुनकर वह कट गया। १६. आसक्त या मोहित होने के कारण सुध-बुध भूल जाना; अथवा विरह में क्षीण होना। उदा०—मन-मोहन छवि पर कटी, कहै कटयानी देह।—बिहारी। १७. (गणित में) किसी बड़ी संख्या का छोटी संख्या से इस प्रकार भाग लगना या विभक्त होना कि शेष कुछ भी न बचे। जैसे—४ का २ से या २५ का ५ से कटना।

कटनास†—पुं० [देश०] नीलकंठ नामक पक्षी।
पुं०=कटनंस।

कटनि*—स्त्री०=कटन।

कटनी—स्त्री० [हिं० कटना] १. काटे जाने की क्रिया या भाव। जैसे—फसल की कटनी।

मुहा०—कटनी मारना=जोतने से पहले खेत में से घास-फूस या झाड़-झंखाड़ काटना। २. काटने का पारिश्रमिक या मजदूरी। ३. कोई चीज काटने का छोटा औजार। ४. सीधा रास्ता छोड़कर कभी इधर और कभी उधर जाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—मारना।

कटपीस—पुं० [अं०] कपड़े के नये थानों में से अलग किये हुए छोटे-छोटे टुकड़े जो किसी कारण से कट-फट कर अलग हो गये हों; और इसी लिए सस्ते बिकते हों।

कटपूतना—स्त्री० [सं० कट√पू (शुद्ध करना)+क्विप्, कटपू√तन् (फैलाना)+अच्—टाप्] एक प्रकार की पूतना या प्रेत-आत्मा।

कटफरेस—पुं० [सं० फट+फ्रेश] ऐसा ताजा या नया माल जो किसी कारण से थोड़ा-बहुत कट-फट गया हो या कुछ खराब या दागी हो गया हो और इसीलिए सस्ता बिकता हो।

कटभी—स्त्री० [सं० कट√भा (चमकना)+ड—ङीप्] १. छोटी ज्योतिष्मती लता। २. अपराजिता। ३. कँटीला शिरीष।

पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का फलदार वृक्ष। करभी।

कटमालिनी—स्त्री० [सं० कट-माला, ष० त०,+इनि—ङीप्] अंगूर से बनाई हुई शराब।

कटर—स्त्री० [सं० कट=घास-फूस] एक प्रकार की घास।

† वि०=कट्टर।

वि० [अं०] काटनेवाला।

पुं० १. वह जिससे कुछ काटें। २. छोटा चाकू। ३. एक प्रकार की छोटी नाव। पनसुइया।

कटरना—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कटरा—पुं० [हिं० कठ-घरा] छोटा चौकोर बाजार।

पुं०=कटड़ा (भैंस का नर बच्चा)।

कटरिया—पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

† स्त्री० [हिं० कटार] छोटी कटारी।

कटरी—स्त्री० [देश०] १. धान की फसल का एक रोग। २. नदी के किनारे एक ऐसी दलदल जिसमें नरकट उत्पन्न होता हो।

कटरेती—स्त्री०=कठ-रेती

कटरू—वि० [हिं० काटना] काटनेवाला।

पुं० कसाई। बूचड़।

पौधा, जिसमें रंग-बिरंगे फूल लगते हैं।

कटहर*—पुं०=कटहल।

कटहरा†—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली।

पुं०=कटघरा।

कटहरी—स्त्री० [हिं० कटहल] छोटा कटहल।

वि० १. कटहल-संबंधी। २. जिसमें कटहल की-सी गंध हो। जैसे—कटहरी चंपा।

कटहरी चंपा—पुं० [हिं० कटहल+चंपा (फूल)] एक प्रकार का चंपा जिसकी गंध कटहल की गंध से मिलती-जुलती और बहुत तीव्र परन्तु मीठी होती है।

कटहल—पुं० [सं० कंटकिफल] १. एक प्रसिद्ध पेड़ जिसमें बहुत बड़े-बड़े ऐसे लंबोतरे फल लगते है, जिनका छिलका कड़ा तथा काँटेदार होता है। २. उक्त फल, जिसका अचार और तरकारी बनाई जाती है। (जैकफ्रूट)

कटहला—पुं० [हिं० कटहल] १. वह आभूषण जिसमें कटहल के छिलके जैसी दानेदार कटाई या खुदाई की गई हो। २. उक्त प्रकार की कटाई या खुदाई।

कटहा†—वि० [हिं० काटना+हा (प्रत्य०)] १. (जंतु या जीव) जिसे लोगों को काटने की आदत पड़ गई हो। जैसे—कटहा कुत्ता, कटहा घोड़ा। २. (व्यक्ति) जो बात-बात में क्रुद्ध होकर इस प्रकार लड़ने लगता हो कि मानो काट खायगा।

†पुं० [सं० कट्ट=कंकाल (या शव)?] अंत्येष्टिक्रिया के समय का दान लेनेवाला ब्राह्मण। महापात्र। महाब्राह्मण।

कटा—उभय० [हिं० काटना] १. काटने की क्रिया या भाव। उदा०—. . . . . ठाढ़ी अटा पै कटा करती हो।—ठाकुर। २. मार-काट। ३. वध। हत्या। ४. बहुत-से लोगों की एक साथ होनेवाली हत्या। गाविक हत्या। (मैसैकर)

कटाइक*—वि० [हिं० काटना] १. काट करने या काटनेवाला। २. काट खानेवाला। कटहा।

कटाई—स्त्री० [हिं० काटना] १. कोई चीज कटने या काटने की क्रिया, भाव या मजदूरी। २. पकी हुई या तैयार फसल को काटने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

५. पर्वत का मध्य भाग। ६. चूतड़। नितंब। ७. समुद्री नमक। ८. चटाई। ९. गाड़ी का पहिया। चक्र। १०. कंकड़। ११. जंजीर। शृंखला। १२. हाथी के दाँतों पर जड़ा जानेवाला छल्ला या बंद। सामी। १३. पैर में पहनने का कड़ा। (डिं०)

पुं० उड़ीसा प्रदेश का एक मुख्य नगर।

कटकई—स्त्री० [सं० कटक+हिं० ई (प्रत्य०)] १. फौज। सेना। २. सेना या दल-बल के साथ चलने की तैयारी।

कटककारी (रिन्)—पुं० [सं० कटक√कृ (करना)+णिनि] सेनानायक। सेनापति। उदा०—विबुध को सौध अति रुचिर मंदिर निकट सत्वगुन प्रमुख त्रय कटककारी।—तुलसी।

कट-कट—स्त्री० [अनु०] १. भय, शीत आदि के कारण ऊपर तथा नीचे के दाँतों के आपस में टकराने से उत्पन्न होनेवाला शब्द। २. लाक्षणिक अर्थ में, दो पक्षों में होनेवाली कहा-सुनी, तू-तू मैं-मैं या लड़ाई-झगड़ा। ३. अन-बन। विगाड़।

कटकटाना—अ० [हिं० कट-कट से] क्रुद्ध होने पर ऊपर तथा नीचे के दाँतों का बजना।

स० क्रोध में आकर दाँत पीसना।

कटकटिया—स्त्री० [अनु०] एक प्रकार की बुलबुल (पक्षी)।

वि० [हिं० कट-कट से] १. कट-कट (शब्द) करनेवाला। २. लड़ाई-झगड़ा करने वाला।

कटकना—†पुं०=कटकीना (चाल, युक्ति)।

कटक-बंध—पुं० [सं० कटक+हिं० बंध=बाँधनेवाला] १. सेनापति। २. व्यूह-रचना। उदा०-कटक बंध नह घणाकिय।—प्रिथीराज।

कट-कवाला—पुं० [हिं० कटना+अ० कवाला] किसी के पास कोई चीज बंधक या रेहन रखकर इस शर्त पर ऋण लेना कि या तो नियत समय के अन्दर ऋण चुकता करके वह चीज छुड़ा लेंगे, नही तो वह चीज उसकी हो जायगी जिसके पास वह बंधक रखी गई है। मियादी बै।

कट-करंज—पुं० [सं० करंज] कंजा नामक पौधा।

वि० दे० 'कंजा'।

कटकाई*—स्त्री०=कटकई (सेना)।

कटकीना—पुं० [हिं० काट+कीना?] चालाकी से भरी हुई छोटी या साधारण युक्ति। जैसे—किसी कटकीने से अपना काम निकालो।

कट-कुटी—स्त्री० [मध्य० स०] कुटी। झोपड़ी।

कट-कोल—पुं० [ब० स०] उगालदान। पीकदान।

कट-खना—वि० [हिं० काटना+खाना] १. काट खानेवाला। प्रायः काट लेनेवाला (जंतु या पशु)। जैसे—कटखना कुत्ता, कटखना तोता आदि। २. लाक्षणिक अर्थ में (ऐसा व्यक्ति) जो बात-बात पर काटने को दौड़ता (अर्थात् बुरी तरह से लड़ने को तैयार होता) हो।

कटघरा—पुं० [हिं काठ+घर] १. काठ का बना हुआ घर। २. न्यायालयों आदि में काठ या लकड़ियों का बना हुआ वह घेरा या जँगला जिसमें अभियुक्त, गवाह आदि खड़े होकर अपना बयान देते हैं। ३. पिंजड़ा।

कटजीरा—पुं० [सं० कणजीरक] एक प्रकार का काले रंग का जीरा।

कटड़ा—पुं० [सं० कटार] भैंस का पँड़वा। कट्टा।

†पुं०=कटरा (चौकोर बाजार)।

कटत—स्त्री० [हिं० कटना] १. कटने की क्रिया या भाव। २. किसी चीज की बाजार में होनेवाली बिक्री या खपत।

कटताल—पुं०=कठ-ताल।

कटती—स्त्री० १. =कटत। २. =कटौती।

कटनंस†—पुं० [हिं० काटना+नाश] काटकर नष्ट करने की क्रिया।

कटन—स्त्री० [हिं० कटना] १. कटने या काटे जाने की क्रिया या भाव। २. प्रेम। उदा०—फिरत जो अटकत कटनि बिन, रसिक सुरसन खियाल।—बिहारी। ३. दे० 'काट'।

कटना—अ० [सं० कर्त्तन; प्रा० कट्टन] १. किसी वस्तु का किसी दूसरी धारवाली चीज या हथियार से दो या कई भागों में विभक्त किया जाना। जैसे—चाकू से तरकारी काटना, तलवार से सिर काटना। २. किसी जीवित प्राणी का किसी धारवाली वस्तु से इस प्रकार विभक्त किया जाना कि वह मर जाय। जैसे—(क) रेल से यात्री का कटना। (ख) युद्ध में सैनिकों का कटना। (ग) बूचड़खाने में बकरे-बकरियों का कटना। ३. किसी वस्तु के कई अंशों या किसी अंश का किसी ढंग या रीति से अलग किया जाना। जैसे—जेब कटना, फसल कटना। ४. दो या कई भागों में विभक्त होना। जैसे—ताश की गड्डी कटना। ५. बहुत पीसा जाना। जैसे—सिल पर भाँग या मसाला कटना। ६. (समय) गुजरना, बीतना या समाप्त होना। जैसे—दिन या रात कटना। ७. रेखा या लकीर खिंचने के कारण किसी लेख का रद्द या व्यर्थ होना। अपने पूर्व रूप या स्थिति में न रह जाना। जैसे—पाठशाला से लड़के का या सूची में से पुस्तक का नाम कटना। ८. लंबी रेखा या रेखाओं के रूप में विभक्त होकर किसी काम के लिए तैयार होना या बनना। जैसे—कपड़े में से कमीज या कुरता कटना; खेत में क्यारियाँ कटना। ९. रेखा के रूप में बनी हुई किसी चीज में से शाखा के रूप में निकलकर किसी ओर जाना। जैसे—गंगा में से नहर कटना, बड़ी सड़क में से कोई छोटी सड़क कटना। १०. रास्ते में किसी का साथ छोड़कर अलग या दूर हो जाना। खिसक जाना। चलता बनना। जैसे—जब देखो, तब तुम यों ही कट जाते हो। ११. उपयोग में आने के कारण धीरे-धीरे व्यय होना। जैसे—बात-की-बात में सौ रुपए कट गये। १२. न रह जाना। नष्ट हो जाना। मिट जाना। उदा०—तुव हित होई कटै भवबंधन।—तुलसी। १३. ताश के खेल में, किसी बड़े पत्ते के सामने आने पर छोटे पत्तों का निरर्थक या व्यर्थ होना। १४. मन-ही-मन दुःखी होना। जैसे—हम लोगों को बात-चीत करते देखकर वह कटता है। १५. अपमान, विफलता आदि के कारण मन-ही-मन लज्जित होना। झेंपना। जैसे—पते की बात सुनकर वह कट गया। १६. आसक्त या मोहित होने के कारण सुध-बुध भूल जाना; अथवा विरह में क्षीण होना। उदा०—मन-मोहन छवि पर कटी, कहै कटयानी देह।—बिहारी। १७. (गणित में) किसी बड़ी संख्या का छोटी संख्या से इस प्रकार भाग लगना या विभक्त होना कि शेष कुछ भी न बचे। जैसे—४ का २ से या २५ का ५ से कटना।

कटनास†—पुं० [देश०] नीलकंठ नामक पक्षी।

पुं०=कटनंस।

कटनि*—स्त्री०=कटन।

कटा-छनी—स्त्री० [हिं० कटना या काटना+छनना या छानना] १. कुछ लोगों में आपस में होनेवाली मार-काट। २. आपस में होनेवाला गहरा विवाद अथवा कटुतापूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर।

कटान—स्त्री० [हिं० काटना] १. काटने की क्रिया या भाव। कटाई। २. काटने का ढंग या प्रकार। कटाव।

कटाना—स० [हिं० काटना का प्रे० रूप] १. काटने का काम किसी से कराना। २. ऐसा काम करना जिससे कोई कुछ काटने में प्रवृत्त हो या काटने के लिए विवश हो।

कटार (ा)—स्त्री० [सं० कट्टार] प्रायः एक वित्ता लंबा एक प्रकार का दुधारा शस्त्र या हथियार जो छोटी तलवार की तरह होता है।
†पुं०=कटास (जंतु)।

कटारा—पुं० [हिं० कटार] १. वड़ी कटार। २. इमली की फली। ३. ऊँट-कटारा नामक पौधा।

कटारिया—पुं० [हिं० कटार] मध्य युग में एक प्रकार का रेशमी कपड़ा, जिसमें कटार जैसी धारियाँ वनी होती थीं।

कटाली—स्त्री०=भटकटैया।

कटाव—पुं० [हिं० काटना] १. किसी वस्तु के कटने या काटे जाने की अवस्था, ढंग, भाव या रूप। जैसे—नदी या पहाड़ का कटाव। (इरोजन) २. कसीदे, पच्चीकारी आदि में फूल-पत्तियाँ आदि वनाने के लिए की जानेवाली कटाई। ३. वेल-बूटे आदि वनाने का काम।

कटावदार—वि० [हिं० कटाव+दार (प्रत्य०)] १. जिसके किनारे आरी के दाँतों की तरह जगह-जगह कटे हुए हों। जैसे—कटावदार झालर या पत्ती। २. (वस्तु) जिस पर वेल-वूटे काटे या खोदे गये हों।

कटावन—पुं० [हिं० काटना] १. काटने की क्रिया या भाव। २. किसी वस्तु का कटा हुआ छोटा टुकड़ा। कतरन।

कटाच्छना*—स० [सं० कटाक्ष] कटाक्ष करना।

कटास—पुं० [हिं० काटना] एक प्रकार का वनविलाव।
स्त्री० काटने की प्रवृत्ति या रुचि।
†स्त्री०=कटार।

कटासी—स्त्री० [सं० कट√आस्+णिनि] मुर्दों के गाड़ने की जगह। कवरिस्तान।

कटाह—पुं० [सं० कट–आ√हन् (हिंसा) +ड] १. वड़ी कड़ाही। कड़ाहा। २. कछुए के ऊपर का कठोर आवरण। खपड़ा। ३. कूआँ। ४. नरक। ५. कुटी। झोंपड़ी। ६. ऐसा भैंसा जिसके सींग निकलने लगे हों। ६. टीला।

कटि—स्त्री० [सं०√कट् (ढकना)+इन्] १. मनुष्य के शरीर का वह मध्य भाग जो पेट और चूतड़ों के वीच में होता है। कमर। २. किसी वस्तु का मध्य भाग। ३. चूतड़। नितंव। ४. देव-मंदिर का दरवाजा। ५. हाथी का गंडस्थल। ६. पीपल।
*वि० [हिं० कटीला] काट करनेवाला। उदा०—वड़े नयन कटि भृकुटि भाल विसाल।—तुलसी।

कटिका—स्त्री० [सं० कटि+कन्—टाप्] नितंव। चूतड़।

कटि-जेव—स्त्री० [सं० कटि+फा० जेव=शोभा] करधनी।

कटि-बंध—पुं० [ष० त०] १. कमरवंद। पटका। २. भूगोल में, गरमी-सरदी के विचार से किये हुए पृथ्वी के पाँच भागों में से हर एक। (ट्रापिक) जैसे—उष्ण कटिवन्ध, शीत कटिवन्ध आदि।

कटि-बद्ध—वि० [व० स०] १. जिसने कोई काम करने को कमर कस ली हो। उद्यत। २. तत्पर।

कटिया—स्त्री० [हिं० काटना] १. नगीनों को काट-छाँटकर सुडौल करनेवाला। २. छोटे-छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चौपायों का चारा। ३. भैंस का मादा वच्चा।
स्त्री०=कँटिया (काँटा का स्त्री० अल्पा०)।

कटियाना*—अ० [हिं० काँटा] पुलकित या रोमांचित होना।
स० पुलकित या रोमांचित करना।

कटियाली†—स्त्री० [सं० कंटकारि] भटकटैया।

कटि-रोहक—पुं० [ष० त०] हाथी चलानेवाला। फीलवान।

कटि-सूत्र—पुं० [मध्य० स०] सूत की वह डोरी, जो कमर में पहनी या वाँधी जाती है। सूत की करधनी।

कटी—स्त्री० [सं० कटि+ङीष्] पिप्पली।
स्त्री०=कटि (कमर)।

कटीरा—पुं०=कतीरा (गोंद)।

कटील—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास।

कटीला—वि० [हिं० काट+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० कटीली] १. कटा करने या काटनेवाला। जैसे—कटीली आँखें। २. धारदार। तेज। ३. खटकने, गड़ने या चुभनेवाला। जैसे—कटीला व्यंग्य। ४. अच्छी काट, तराश, वनावट या सज-धजवाला। जैसे—कटीला जवान।
पुं०=कतीरा (गोंद)।

कटु—वि० [सं०√कट्+उ] १. जिसके स्वाद में कड़ुआपन या तीक्ष्णता हो। चिरायते, नीम आदि की तरह के स्वादवाला। चरपरा। २. जिसकी सुगंध या सुवास झालदार या तीक्ष्ण हो। ३. बुरा लगनेवाला। अप्रिय। जसे—कटु वचन, कटु व्यवहार। ४. कष्टदायक। जैसे—कटु सत्य। ५. काव्य में, रस के विरुद्ध वर्णों की योजना। जैसे—शृंगार रस में ट, ठ, ड आदि वर्ण।
पुं० वैद्यक में छः प्रकार के रसों में से एक जो चिरायते, नीम आदि की तरह के स्वाद का होता है।

कटुआँ—पुं० [हिं. काटना] १. धान की फसल में लगनेवाला काले रंग का छोटा कीड़ा। २. महाजनी लेन-देन में, व्याज जोड़ने का वह ढंग या प्रकार जिसमें हर रकम का अलग-अलग और पूरे दिनों का हिसाव लगाया जाता है। मितीकाटा।

कटुआ—वि० [हिं० काटना] १. काटकर टुकड़े-टुकड़े किया हुआ। विभक्त किया हुआ। २. जो कटकर वना हो। ३. जिसका कुछ अंश काटकर निकाल लिया गया हो। जैसे—कटुआ दही (जिसके ऊपर की मलाई काटकर निकाल ली गई हो।) ४. काटनेवाला।

कटुका—वि०=कटु।

कटु-छंदक—पुं० [सं० व० स०] उत्कट या तीक्ष्ण गंध या स्वादवाला कंद। जैसे—अदरक, मूली, लहसुन आदि।

कटुता—स्त्री० [सं० कटु+तल्—टाप्] १. कटु होने की अवस्था या भाव। कटुत्व। कड़आपन। २. विरोध, वैमनस्य, वैर आदि के कारण

दो पक्षों में एक दूसरे के प्रति होने वाली दुर्भावना। जैसे—उन लोगों के व्यवहार से कटुता आ गई है।

कटुत्व—पुं० [सं० कटु+त्व]=कटुता।

कटु-पर्णी—स्त्री० [व० स०, ङीप्] भड़भाँड़। सत्यानाशी।

कटु-फल—पुं० [व० स०] कायफल।

कटुभाषी (षिन्)— वि० [सं० कटु√भाष् (बोलना)+णिनि] अप्रिय कष्टदायक बातें कहनेवाला।

कटुर—पुं० [सं०√ कट्+उरन्] छाछ। मट्ठा।

कटु-रव—पुं० [व० स०] मेंढक।

कटूक्ति—स्त्री० [सं०कटु+उक्ति, कर्म० स०] कड़ुई या अप्रिय बात। ऐसी उक्ति या बात जो किसी को कष्ट देती हो। अप्रिय कटु या कड़वी बात।

कटूमर—स्त्री० [सं० कटु—?] जंगली गूलर या उसका पेड़।

कटूरना—अ० [हिं० कटु+घूरना ?] उपेक्षा और क्रोधपूर्वक किसी की ओर देखना।

कटेरी†—स्त्री०=भटकटैया।

कटेली—स्त्री० [देश०] कपास की एक जाति या प्रकार।

कटैया†—पुं० [हिं० काटना] काटने या काट करनेवाला।

स्त्री० काटने की क्रिया या भाव। जैसे—नक-कटैया।

स्त्री०=भटकटैया।

कटैला—पुं० [?] एक प्रकार का घटिया रत्न।

कटोर—पुं० [सं०√कट्+ओलच्, ल=र] मिट्टी का बरतन।

कटोरदान—पुं० [हिं० कटोरा+फा० दान प्रत्य०] ऐसा कटोरा जिस पर ढक्कन भी लगा हो।

कटोरा—पुं० [सं० कटोर] [स्त्री० अल्पा० कटोरी] नीची दीवार, खुले मुँह और चौड़े पेंदे का एक प्रसिद्ध बरतन।

मुहा०—कटोरा चलाना=एक प्रकार की तांत्रिक प्रक्रिया जिसमें मंत्र-बल से कटोरा इस प्रकार खिसकाया जाता है कि वह चारों ओर बैठे हुए व्यक्तियों में उस व्यक्ति के पास पहुँचकर रुक जाता है जिसने कोई चीज चुराई हो।

कटोरिया—स्त्री०=कटोरी।

कटोरी—स्त्री० [कटोरा का अल्पा०] १. छोटा कटोरा। २. उक्त आकार का कपड़े का वह टुकड़ा जो स्त्रियों की कुरतियों, चोलियों आदि में उस स्थान पर लगाया जाता है जहाँ पहनने के समय उनके स्तन रहते हैं। ३. वनस्पति विज्ञान में, उक्त कटोरी के आकार का पत्तियों का वह घेरा जिसमें फूलों के दल या पत्तियाँ निकलती हैं। ४. कटोरी के आकार का धातु का वह अंश जो कटार, तलवार आदि की मूठ में उसके ऊपर बना रहता है। ५. कटोरी के आकार-प्रकार की कोई छोटी वस्तु। जैसे—कपड़े पर टाँके जानेवाले सितारों की कटोरियाँ।

कटोल—वि० [सं०√ कट्+ओलच्] कड़आ। कटु।

पुं० चांडाल।

कटौती—स्त्री० [हिं० काटना+औती (प्रत्य०)] १. किसी चीज के कटने या काटे जाने की क्रिया या भाव। २. आजकल मुख्य रूप से, किसी को दिये जानेवाले धन (देन, वेतन आदि) में से किसी उद्देश्य या कारण से उसका कुछ अंश कम करने या काट लेने की क्रिया या भाव। (कट) ३. उक्त प्रकार से काटा हुआ या कम किया हुआ धन।

पद—कटौती का प्रस्ताव=आज-कल विधान सभाओं आदि में, किसी विभाग के कार्यों के संबंध में असंतोष प्रकट करने के लिए उसके खर्च की माँग में से कुछ अंश काट लेने या कुछ रकम घटा देने का प्रस्ताव। (कट मोशन)

कटौसी†—स्त्री०=कटवाँसी (एक प्रकार का बाँस)।

कट्टर—वि० [हिं० काटना] १. काट खानेवाला। कटहा। २. (व्यक्ति) जो अपने मत, विचार, सिद्धान्त आदि पर अंधविश्वास और उद्दंडतापूर्वक दृढ़ रहता हो अथवा उसका समर्थन करता हो और अपने विरोधियों से लड़ने के लिए तैयार रहता हो। (बिगॉट) ३. दृढ़प्रतिज्ञ। हठ-धर्मी।

कट्टहा—पुं० [सं० कट=शव+हिं० हा (प्रत्य०)] अंत्येष्टि क्रिया के समय का दान लेनेवाला ब्राह्मण। महापात्र। महाब्राह्मण।

कट्टा—वि० [हिं० काठ] १. मोटा-ताजा। हट्टा-कट्टा २. बलवान्। बलिष्ठ।

पुं० १. सिर के बालों में पड़ने या होनेवाला एक कीड़ा। जूँ। २. जबड़ा।

मुहा०—(कोई चीज किसी के) कट्टे लगना=बुरी तरह हाथ से निकल कर किसी दूसरे के हाथ में पहुँच जाना अथवा नष्ट या व्यर्थ हो जाना। जैसे—यह घड़ी तो तुम्हारे कट्टे लग गई। (अर्थात् तुम्हें मिल गई या तुम्हारे कारण नष्ट हो गई।)

पुं० [?] [स्त्री० कट्टी] भैंस का बच्चा। (पश्चिम)

कट्टार—पुं० [सं० कट्ट √ऋ (गति) + अण्] कटार।

कट्टी—वि० [सं० कष्टित] जिसे कष्ट पहुँचा हो। पीड़ित।

कट्ठना—स०=१. काटना। २. काढ़ना।

अ०=कटना।

कट्ठा—पुं० [हिं० काठ] १. खेत या जमीन नापने का एक पुराना नाप या मान जो पाँच हाथ और चार अंगुल लंबा और इतना ही चौड़ा होता है। २. अनाज तौलने का एक मान जो पाँच सेर का होता है। ३. काठ का वह बरतन जिसमें उक्त मान के अनुसार पाँच सेर अनाज आता है। ४. धातु गलाने की भट्ठी। दबका। ५. एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है। ६. एक प्रकार का गेहूँ जो मध्यम श्रेणी और लाल रंग का होता है।

कट्फल—पुं० [सं० √ कट्+क्विप्, कट्-फल (ब० स०)] कायफल।

कट्याना*—अ० [सं० कंटक; हिं० कटियाना] कंटकित या रोमांचित होना।

कठंगर—वि० [हिं० काठ+अंग] १. जिसके अंग काठ के बने हों। २. काठ की तरह दृढ़ अंगोंवाला। बहुत ही हृष्ट-पुष्ट या मोटा-ताजा।

कठंजरा—पुं० [सं० काष्ठ-पंजर] १. लकड़ियों का बना हुआ ढाँचा। २. कठघरा। उदा०—अठारह भार कोट कठंजरा लाइलें। —गोरखनाथ।

कठ—पुं० [सं० √कठ् (कष्ट से जीवन बिताना) +अच्] १. एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो वैशंपायन के शिष्य थे। कृष्ण यजुर्वेद की एक

शाखा जिसका प्रवर्त्तन उक्त ऋषि ने किया था। ३. एक प्रसिद्ध उपनिषद् जो कुछ लोगों के मत से अथर्ववेद से और कुछ लोगों के मत से कृष्ण यजुर्वेद से संबद्ध है। ४. काठ का एक प्रकार का पुराना वाजा।

वि० [हिं० काठ का संक्षिप्त रूप] एक विशेषण जो कुछ समस्त पदों में पूर्व पद के रूप में लगकर ये अर्थ देता है—१. काठ का वना हुआ। जैसे—कठ-घरा, कठ-पुतली। २. काठ से संबंध रखनेवाला। जैसे—कठ-रेती। ३. काठ की तरह कठोर या कड़ा। (अन्नों, फलों आदि के संबंध में उनके निकृष्ट या अखाद्य होने का सूचक।) जैसे—कठ-केला, कठ-जामुन। ४. काठ की तरह शुष्क और फलतः निर्मम या निष्ठुर और हृदयहीन। जैसे (—कठ-कलेजा (कठोर हृदयवाला), कठ-वाप (सौतेला पिता जो प्रायः संतान के प्रति निष्ठुर होता है), कठमुल्ला (विना कुछ समझे-बूझे धार्मिक नियमों या वंधनों का पालन करने वाला)। ५. काठ की तरह जड़ और फलतः किसी वात की चिंता या परवाह न करनेवाला। जैसे —कठ-मस्त।

†पुं० [सं० कठ्=कष्ट] १. कष्ट। तकलीफ। दुःख। २. परिश्रम। मेहनत।

कठ कीली—स्त्री० [हिं० काठ+कीली] १. काठ की वनी हुई कील या खूँटी। २. पच्चर।

कठ केला—पुं० [हिं० काठ+केला] एक प्रकार का जंगली केला जिसका फल काठ की तरह कड़ा होता है।

कठ कोला—पुं०=कठ-फोड़ा (पक्षी)।

कठ गुलाव—पु० [हिं० काठ+गुलाव] एक प्रकार का जंगली गुलाव।

कठ-घरा—पुं० [हिं० काठ+घेरा] १. काठ का वना हुआ जँगलेदार घेरा। २. वह वड़ा पिंजरा जिसमें शेर, चीते आदि वन्द किये जाते हैं।

कठ-घोड़ा—पुं० [हिं० काठ+घोड़ा] १. काठ का वना हुआ घोड़ा। २. खेल-तमाशे आदि के लिए वनाया हुआ काठ का ऐसा घोड़ा जिस पर अभिनेता लोग सवारी करते हैं। लिल्ली घोड़ी।

कठ-जामुन—पुं० [हिं० काठ+जामुन] १. जामुन वृक्ष की एक जाति जिसके फल खट्टे तथा काठ की तरह कड़े होते हैं। २. उक्त वृक्ष का फल।

कठड़ा—पु० [हिं० काठ] काठ का चौड़े मुँह तथा ऊँची दीवारवाला वड़ा वरतन। कठौता।

†पुं०=कठघरा।

कठताल—पुं०=करताल।

कठपुतली—स्त्री० [हिं० काठ+पुतली] १. काठ की वनी हुई पुतली जिसे डोरे या तार की सहायता से नचाया जाता है। २. लाक्षणिक अर्थ में, ऐसा व्यक्ति जो दूसरे के इशारे पर नाचता हो। वह जिसे अपनी सूझ-बूझ न हो और जो दूसरों के कहने के अनुसार चलता हो।

कठ-फोड़वा†—पु०=कठ-फोड़ा (पक्षी)।

कठ-फोड़ा—पु० [हिं० काठ+फोड़ना] एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसकी चोंच नुकीली तथा लंवी होती है। यह प्रायः अपनी चोंच से वृक्षों के तने खोदा करता है तथा उनमें से निकलनेवाले कीड़े-मकोड़े खाता है।

कठ-फोर—पुं०=कठ-फोड़ा।

कठ-वंधन—पु० [हिं० काठ+वंधन] हाथी के पैरों में वाँधी जानेवाली वेड़ी जो काठ की वनी होती है। अँदुआ।

कठ-वाँस—पुं० [हिं० काठ+वाँस] एक प्रकार का वाँस जो प्रायः ठोस होता है और जिस पर वहुत पास-पास गाँठें होती हैं।

कठ-वाप—पुं० [हिं० काठ+वाप] काठ की तरह कठोर हृदयवाला अर्थात् सौतेला वाप, जिसे अपनी पत्नी के उन वच्चों से कोई प्रेम नहीं होता जो उस स्त्री के पहले पति से उत्पन्न हुए हों।

कठ-वेर—पुं० [हिं० काठ+वेर] घूँट नामक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है।

कठ-वेल—पुं० [हिं० काठ+वेल] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल वेल के आकार के परन्तु उससे कुछ छोटे तथा वहुत कड़े होते हैं। २. उक्त वृक्ष के फल।

कठमर्द—पुं० [सं० कठ√मृद् (चूर्ण करना)+अण्] शिव।

कठ-मलिया*—पुं० [हिं० काठ+माला] उन वैष्णवों या साधुओं के लिए उपेक्षासूचक पद जो केवल दिखाने के लिए काठ के वने हुए मनकों की माला पहनते हैं। दिखावटी या नकली साधु।

कठ-मस्त—पुं० [हिं० कठ+मस्त] [भाव० कठमस्ती] १. ऐसा व्यक्ति जो काठ की तरह जड़ या आस-पास की सव वातों से उदासीन या वेखवर रहता हो। वह जिसे किसी वात की चिंता या ध्यान न हो। २. व्यभिचारी।

कठ-मुल्ला—पुं० [हिं० काठ+मुल्ला] १. वह मुल्ला, जो काठ के मनकों की माला फेरता हो। २. लाक्षणिक अर्थ में अनपढ़, मूर्ख या नकली धर्म-गुरु या मौलवी।

कठर—वि० [सं०√कठ्+अरन्] कठोर। कड़ा। सख्त।

कठरा†—पुं०=कठघरा।

पुं० [स्त्री० कठरी]=कठड़ा।

कठ-रेती—स्त्री० [हिं० काठ+रेती] काठ या लकड़ी रेतने की रेती।

कठला—पुं० [सं० कंठ+हिं० ला (प्रत्य०)] गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण जिसमें सोने-चाँदी के मनके गुँथे होते हैं।

कठलोना—पुं० [स्त्री० कठलोनी]=कठड़ा।

कठवत—स्त्री०=कठौत।

कठ-वल्ली—स्त्री० [सं० मध्य० स०] कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा की एक उपनिषद्।

कठारा—*पुं० [सं० कंठ=किनारा+हिं० आरा (प्रत्य०)] ताल, नदी आदि का किनारा।

कठारी—स्त्री० [हिं० काठ+आरी (प्रत्य०)] १. काठ का वरतन। २. कमंडल।

कठिन—वि० [सं०√कठ्+इनच्] [भाव० कठिनता] १. (कार्य) जो सरलता या सुगमता से न किया जा सके। जिसे पूरा करने में अधिक परिश्रम, शक्ति तथा समय अपेक्षित हो। मुश्किल। २. (वात, वाक्य, शब्द आदि) जो वोधगम्य न हो। जो सहज में समझ में न आता हो। (डिफिकल्ट) ३. कठोर। कड़ा। सख्त। ४. कठोर-हृदय। उदा०—मातु चिराव कठिन की नाईं।—तुलसी।

*स्त्री०=कठिनता।

कठिनई†—स्त्री० [हिं० कठिन] १. कठिनता। २. विकट परिस्थिति। मुहा०—कठिनई ठानना=कठिन या विकट परिस्थिति उत्पन्न करना। झंझट या वखेड़ा खड़ा करना। उदा०—नैननि निपट कठिनई ठानी। —सूर।

कठिनता—स्त्री० [सं० कठिन+तल्—टाप्] १. कठिन होने की अवस्था, गुण या भाव। २. काम में होने वाली अड़चन या बाधा। ३. ऐसी दशा या परिस्थिति, जिसमें विकट प्रसंग सामने आते हों और जिससे पार पाने के लिए विशेष कौशल, धैर्य, परिश्रम अपेक्षित हो। (डिफिकल्टी)

कठिनत्व—पुं० [सं० कठिन+त्व]=कठिनता।

कठिनाई—स्त्री०=कठिनता।

कठिनी—स्त्री० [सं० कठिन+ङीप्] १. खड़िया मिट्टी। २. हाथ की सबसे छोटी उँगली।

कठिया†—वि०=काठा।

स्त्री० [हिं० काठ] एक प्रकार की भाँग।

कठियाना—अ०=कठुआना।

कठिहारा†—पुं० [हिं० काठ+हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० कठिहारिन] लकड़हारा।

कठीर—पुं० [सं० कंठीरव] सिंह। (डिं०)

कठुआना—अ० [हिं० काठ] १. सूखकर काठ की तरह कठोर या कड़ा होना। जैसे—फलों का कठुआना, सरदी से हाथ-पैर कठुआना। २. सूखकर लकड़ी होना। क्षीण होना।

स० काठ की तरह कठोर या कड़ा करना।

कठुला—पुं०=कठला।

कठुवाना†—अ०=कठुआना।

कठूमर—पुं० [हिं० काठ+ऊमर] जंगली गूलर।

कठेठ (।)—वि० [हिं० काठ+एठ (प्रत्य०)] [स्त्री० कठेठी] १. कठोर, सख्त। २. अप्रिय। कटु। ३. कठोर अंगोंवाला अर्थात् बलवान, हृष्ट-पुष्ट।

कठेठी—स्त्री० १. =कठोरता। २. =कठिनता।

कठेल—पुं० [हिं० काठ+एल (प्रत्य०)] १. धुनियों की कमान जिसमें ऊन या रूई धुनते समय धुनकी को बाँधकर लटकाते हैं। २. कसेरों का एक औजार।

कठैला—पुं०=कठौता।

कठोटा† —पुं०=कठौत।

कठोदर—पुं० [हिं० काठ+उदर] एक रोग जिसमें पेट कड़ा होकर फूलने या बढ़ने लगता है।

कठोर—वि० [सं०√कठ्+ओरन्] [भाव० कठोरता, स्त्री० कठोरा] १. (पदार्थ) जिसका तल इतना कड़ा हो कि सहज में दबाया या धँसाया न जा सके। जो दबाने से दबे नहीं। 'कोमल' या 'मुलायम' का विपर्याय। सख्त। २. (कार्य) जिसे पूरा करने में विशेष आयास, मनोयोग आदि की आवश्यकता हो। जो सहज में निवाहा न जा सके। कठिन। कड़ा। जैसे—कठोर परिश्रम। ३. (बात या व्यवहार) जो उग्र तथा कष्टदायक होने के कारण अप्रिय या असह्य हो। जैसे कठोर दंड, कठोर वचन। ४. जिसका अनुसरण, निर्वाह या पालन सहज में न हो सके। जैसे—कठोर नियम, कठोर व्रत। ५. (व्यक्ति अथवा उसका कार्य या मन) जिसमें उदारता, दया, प्रेम आदि कोमल तथा मानवोचित गुणों या विशेषताओं का अभाव हो। जैसे—कठोर व्यवहार, कठोर हृदय।

कठोरता—स्त्री० [सं० कठोर+तल्—टाप्] १. कठोर होने की अवस्था गुण या भाव। कड़ापन। २. कार्य, व्यवहार आदि में होनेवाली कड़ाई। सख्ती।

कठोरताई—स्त्री०=कठोरता।

कठोरपन—पुं०=कठोरता।

कठोरीकरण—पुं० [सं० कठोर+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्—अन] किसी कोमल वस्तु को कठोर करने या बनाने की क्रिया या भाव। कठोर करना या बनाना।

कठोल—वि० [सं०√कठ्+ओलच्]=कठोर।

कठौत—स्त्री० [हिं० काठ+औता (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कठौती] चौड़े मुँह का काठ का बना हुआ बड़ा कटोरा या बरतन। कठरा।

कठौता—पुं०=कठौत।

कढ़ना—अ० [सं० कर्षण] बाहर आना। निकलना। उदा०—कढ्ढी ब्रे घटा करे कालाहणि।—प्रिथीराज।

स० निकालना। (राज०)

कढ़िया—स्त्री० [सं० काष्ठा] १. घेरा। २. सीमा। (राज०)

कड़ंगा—वि० [हिं० कड़ा+अंग] १. जिसके अंग कड़े अर्थात् मजबूत हों। हट्टा-कट्टा। २. अक्खड़। उद्दंड।

कड़—पुं० [देश०] १. कुसुम या बर्रे नाम का पौधा। २. उक्त पौधे के बीज, जिनका तेल निकाला जाता है।

स्त्री० [सं० कटि] कमर। (डिं०)

कड़क—स्त्री० [कड़-कड़ से अनु०] १. कड़-कड़ शब्द उत्पन्न करने की क्रिया या भाव। २. उक्त प्रकार से उत्पन्न होनेवाला शब्द। ३. वह पीड़ा जो रुक-रुक कर हो। कसक। ४. तड़प। ५. गाज। वज्र। ६. घोड़े की सरपट चाल। ७. एक प्रकार का मूत्र रोग जिसमें रुक-रुककर और जलन के साथ पेशाब होता है।

पुं० [सं०√कड्+अच्+कन्] समुद्री नमक।

कड़कड़—पुं० [अनु०] १. दो वस्तुओं के जोर से टकराने पर होनेवाला शब्द। २. किसी वस्तु के टूटने-फूटने, जलने आदि पर होनेवाला शब्द।

कड़कड़ाता—वि० [हिं० कड़-कड़ से अनु०] १. कड़-कड़ शब्द करता हुआ या कड़-कड़ शब्द करनेवाला। जैसे—कड़कड़ाता बादल। २. बहुत कड़ा या तेज। कड़ाके का। जैसे—कड़कड़ाता जाड़ा।

कड़कड़ाना—स० [अनु०] किसी वस्तु का कड़-कड़ शब्द उत्पन्न करना। जैसे—बादलों का कड़कड़ाना। २. किसी वस्तु को इस प्रकार दबाना या तोड़ना कि वह कड़कड़ शब्द करने लगे। जैसे—किसी की हड्डी-पसली कड़कड़ाना। ३. किसी वस्तु को इस प्रकार गरम करना या भूनना कि उसमें कड़-कड़ शब्द होने लगे। जैसे—घी कड़कड़ाना।

†अ० कड़-कड़ शब्द होना।

कड़कड़ाहट—स्त्री० [हिं० कड़कड़+आहट (प्रत्य०)] १. कड़कड़ाने की क्रिया या भाव। २. कड़-कड़ शब्द।

कड़कना—अ० [हिं० कड़-कड़ से अनु०] १. कड़-कड़ शब्द होना। २. किसी वस्तु का चिटकना या फटना। ३. क्रोधपूर्वक तथा गरजकर किसी से कुछ कहना। ४—रेशमी कपड़े का तह पर से फटना।

कड़कनाल—स्त्री० [हिं० कड़क+नाल] एक प्रकार की चौड़े मुँहवाली पुरानी तोप जो दागे जाने पर घोर शब्द करती थी।

कड़क बाँका—पुं० [हिं० कड़क+बाँका] १. वह योद्धा या सैनिक जो युद्ध में विपक्षी को ऊँचे स्वर में ललकारता हो। २. छैला।

कड़क बिजली—स्त्री० [हिं० कड़क+बिजली] १. कान में पहनने का एक प्रकार का आभूषण। २. एक प्रकार की बंदूक। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें बिजली की-सी कड़क तथा चमक होती है। ४. एक प्रकार का उपकरण जिससे किसी रोग की चिकित्सा के लिए शरीर में बिजली पहुँचाई जाती है।

कड़का—पुं० [हिं० कड़क] किसी वस्तु के टकराने, टूटने, फटने आदि से होनेवाला जोर का शब्द।

कड़खा—पुं० [सं० कर्ष] १. सैंतीस मात्राओं का एक छंद। २. सैनिकों को उत्साहित करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में गाया जानेवाला गीत जो प्रायः उक्त छंद में होता था। ३. विजय-गान।

कड़खैत—पुं० [हिं० कड़खा+एत (प्रत्य०)] युद्ध-क्षेत्र में कड़खा गानेवाला चारण या भाट।

कड़छा—पुं० [स्त्री० कड़छी]=कलछा।

कड़बड़ा—वि० [सं० कर्वर=कवटा] चितकबरा (दे०)।

कड़बा—पुं० [?] लोहे का वह गोल घेरा जिससे हलके फाल के ऊपर इसलिए लगाते हैं कि जोताई बहुत गहरी न हो।

कड़बी—स्त्री० [?] ज्वार के डंठल जो गौओं-भैंसों को चारे के रूप में खिलाये जाते हैं।

कड़ला—पुं० [हिं० कड़ा+ला (प्रत्य०)] बच्चों के पहनने का छोटा कड़ा।

कड़वा†—वि० [स्त्री० कड़वी]=कड़ुआ।

कड़वी—स्त्री०=कड़बी।

कड़हन—पुं० [हिं० कठधान] एक प्रकार का मोटा धान और उसका चावल।

कड़ा—वि० [सं० कड्ड] [स्त्री० कड़ी; भाव० कड़ाई] १. (पदार्थ) जिसके कणों, तंतुओं, संयोजक अवयवों आदि की बनावट या संघात इतना घना, ठोस या दृढ़ हो कि उसे काटा, तोड़ा, दबाया या लचाया न जा सके और इसीलिए जिसमें कुछ गड़ाना या धँसाना बहुत कठिन हो। कठोर। सख्त। 'कोमल' या 'मुलायम' का विपर्याय। जैसे—कड़ी जमीन, कड़ा तख्ता, कड़ा लोहा। २. (पदार्थ) जिसमें आर्द्रता या जलीय अंश सूखकर इतना कम हो या इतना कम बच रहा हो कि उसे सहज में मनमाना रूप न दिया जा सके। जैसे—कड़ा (गूँधा हुआ) आटा, कड़ा चमड़ा। ३. (अन्न या फल) जो अभी अच्छी तरह गला, घुला या पका न हो। जैसे—कड़ा आम, कड़ा केला, पकाये हुए चावल का कड़ा दाना। ४. (पदार्थ) जो अपने स्थान पर इस प्रकार गड़, जम या धँसकर बैठा हो कि सहज में इधर-उधर हटाया-बढ़ाया न जा सके। चारों ओर से अच्छी तरह कसा हुआ। 'ढीला' का विपर्याय। जैसे—किसी यंत्र का कोई कड़ा पुरजा या पेंच, किसी प्रकार की कड़ी गाँठ या बंधन। ५. (पदार्थ) जिसमें उग्र परिणाम या तीव्र प्रभाव उत्पन्न करने का गुण या शक्ति हो। तेज। जैसे—कड़ी दवा, कड़ी शराब। ६. (तत्त्व) जिसमें उग्रता, तीव्रता या विकटता नियमित या साधारण से अधिक हो और इसीलिए जो अप्रिय, असह्य या कष्टप्रद जान पड़े। जैसे—कड़ी आँच या धूप, कड़ी गरमी, कड़ा जाड़ा। ७. जिसमें कोमलता, मधुरता सरसता आदि के बदले कठोरता, कर्कशता, रूक्षता आदि बातें अधिक हों। जैसे—कड़ा व्यवहार, कड़ा स्वभाव। ८. जिसमें कठोरता, दृढ़ता या सतर्कता का अधिक ध्यान रखा जाता हो। जैसे— कड़ी निगाह, कड़ा पहरा। ९. जो अपनी उचित, नियत या निर्धारित मात्रा, मान या सीमा से आगे बढ़ा हुआ हो। असाधारण। जैसे—कड़ी उमर, कड़ा तगादा, कड़ी मेहनत, कड़ा सूद। १०. जिसका अनुसरण या पालन कठोरता या दृढ़तापूर्वक होता हो या होना आवश्यक तथा उचित हो। जिसका उल्लंघन अनुचित, दंडनीय या निंदनीय हो। जैसे—कड़ी आज्ञा, कड़ा नियम। ११. (व्यक्ति) जो नियम, परिपाटी, प्रथा,व्यवस्था आदि के पालन में उपेक्षा या शिथिलता न करता हो अथवा न सह सकता हो। जैसे—कड़ा मालिक, कड़ा हाकिम। १२. (व्यक्ति) जो सहज में भावुकता या कोमल मनोवृत्तियों से प्रभावित न होता हो अथवा जो विकट परिस्थितियों में भी बिना विचलित हुए धैर्य, साहस आदि से काम लेता हो। जैसे—कड़े दिल का आदमी। १३. (व्यक्ति) शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट। तगड़ा। १४. (कार्य) जिसमें विशेष आयास, परिश्रम, मनोयोग आदि की आवश्यकता हो और इसीलिए जो सहज में हर किसी से न हो सकता हो। दुस्साध्य। मुश्किल। जैसे कड़ा काम, कड़ी नौकरी। १४. (कार्य या व्यवहार) जिससे उग्रता, क्रोध, तिरस्कार या रोष सूचित होता हो। जैसे—कड़ा जवाब, कड़ी बात।

पुं० [सं० कटक] [स्त्री० कड़ी] १. बड़े और मोटे छल्ले की तरह का एक प्रसिद्ध वृत्ताकार गहना जो हाथों की कलाइयों या पैरों में पिंडलियों के नीचे पहना जाता है। वलय। २. उक्त प्रकार का वह बड़ा छल्ला जो कुछ चीजों में उन्हें उठाने या पकड़ने के लिए या छतों आदि में कोई चीज लटकाने के लिए लगा रहता है। जैसे—कंडाल या कड़ाही का कड़ा। ३. छत पाटने का वह ढंग या प्रकार जिसमें वह बिना कड़ियाँ या शहतीर लगाये केवल गारे, चूने आदि से बनाई जाती है। जैसे—इस मकान के सब कमरों में कड़े की पाटन है। ४. एक प्रकार का कबूतर।

कड़ाई—स्त्री० [हिं० कड़ा+आई (प्रत्य०)] १. कड़े होने की अवस्था, गुण या भाव। कड़ापन। २. कठोरता, सख्ती। जैसे—नौकरों के साथ की जानेवाली कड़ाई।

कड़ाकड़—क्रि० वि० [हिं० कड़-कड़ से अनु०] लगातार कड़-कड़ शब्द करते हुए। जैसे कुत्ते का कड़ाकड़ हड्डी चबाना।

कड़ाका—पुं० [हिं० कड़ से अनु०] १. बहुत जोर से होनेवाला कड़ शब्द जो प्रायः किसी चीज के गिरने, टूटने आदि से होता है। जैसे—बिजली का कड़ाका।

पद—**कड़ाके का**=बहुत जोर का। प्रचंड। जैसे—कड़ाके की गरमी या सरदी।

२. उपवास। फाका।

कड़ाबीन—स्त्री० [तु० करावीन] एक प्रकार की छोटी बंदूक जो प्रायः कमर में बाँधी या लटकाई जाती है। झोंका।

कड़ाह—पुं० [सं० कटाह] १. कड़ी कड़ाही। कड़ाहा। २. (कड़ाही में बना होने के कारण) हलुआ। (सिक्ख)

कड़ाहा—पुं० [सं० कटाह, प्रा० कड़ाह] [स्त्री०अल्पा० कड़ाही] पीतल लोहे आदि का बना हुआ गोल पेंदे, खुले मुँह तथा ऊँची दीवारों का

एक प्रसिद्ध, पात्र जिसमें खाने-पीने की चीजें तली या पकाई जाती हैं।

कड़ाही—स्त्री० [हिं० कड़ाहा] छोटे आकार का छिछला कड़ाहा।

मुहा०—**कड़ाही चढ़ना**=किसी विशेष अवसर पर इष्टमित्रों को खिलाने-पिलाने के लिए पूरी, तरकारी, मिठाई आदि बनाना। **कड़ाही में हाथ डालना**=(क) अग्निपरीक्षा देना। (ख) जान-बूझ कर संकट मोल लेना।

कड़ि†—स्त्री० १. =कली। २.=कड़ी।

कड़ियल—वि० [हिं० कड़ा] १. बहुत कड़े दिलवाला। साहसी। २. हट्टा-कट्टा। हृष्ट-पुष्ट। जैसे—कड़ियल जवान।

पुं० [?] छोटे कड़े या हाँडी का वह नीचेवाला टुकड़ा जिसमें आँच रखकर दवाई जाती है।

कड़िया—स्त्री० [सं० कांड] अनाजों का वह सूखा डंठल जिसके बीज झाड़ लिये गये हों।

कड़िहा†—वि०=कढ़िहार।

कड़ी—स्त्री० [हिं० कड़ा (आभूषण)] १. जंजीर, लड़ी आदि के उन गोल छल्लों में से हर एक जिनके आपस में एक दूसरे में गुथे, जड़े या पिरोये रहने से वह जंजीर या लड़ी बनती है। २. उक्त छल्लों के आपस में गुथे, जड़े या पिरोये जाने से बना हुआ रूप। जंजीर। शृंखला। ३. धातु का कोई छोटा वलय, जिसमें चीजें टाँगी, फँसाई या लटकाई जाती है। ४. घोड़े की लगाम जिसमें आगे की ओर गोल कड़ी या छल्ला लगा रहता है। उदा०—हरि घोड़ा, ब्रह्मा कड़ी वासुकि पीठि पलान।—कबीर। ५. लाक्षणिक अर्थ में, लगातार या क्रम से चलती रहने वाली घटनाओं, बातों आदि में से हर एक। जैसे—(क) बीच में मत बोलिए नहीं तो बातों की कड़ी टूट जायगी। (ख) यह भी इस घटना-क्रम की एक कड़ी है। ६. गीत आदि का कोई एक चरण।

स्त्री० [सं० कांड; हिं० कांड़ी] १. छतों आदि की पाटन में लगने वाली छोटी धरन।

मुहा०—**कड़ी बोलना**=धरन का अकारण आप-से-आप चट-चट शब्द करना। (गृहस्थ के लिए अशुभ लक्षण या शकुन)

२. बकरी, भेड़ आदि की छाती की हड्डी।

स्त्री० [हिं० कड़ा=कठिन] कष्ट। संकट। जैसे—कड़ी उठाना, कड़ी झेलना, कड़ी सहना।

कड़ीदार—वि० [हिं० कड़ी+फा० दार (प्रत्य०)] १. जिसमें कड़ी बुनी या लगी हो। छल्लेदार। २. जिसमें कड़ियों की तरह की आकृतियाँ या बेल-बूटे बने हों। जैसे—कड़ीदार कसीदा।

कड़ी धरती—स्त्री० [हिं०] १. ऐसा प्रदेश जहाँ के लोग हट्टे-कट्टे होते हों। २. ऐसा प्रदेश या स्थान जहाँ अनेक प्रकार के कष्टों या संकटों का सामना करना पड़ता हो।

कड़ी सजा—स्त्री० [हिं०+फा०] १. किसी प्रकार का कठोर दंड। जैसे—नौकर या लड़के को कड़ी सजा देना। २. न्यायालय द्वारा दिया हुआ किसी अपराधी को ऐसा दंड जिसमें उसे कारावास में कठोर परिश्रम भी करना पड़ता है। सपरिश्रम कारावास। (रिगरस इम्प्रिजन्मेंट)

कड़ुआ—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुअ] [भाव० कड़ुआपन, कड़ुआहट; स्त्री० कड़ुई] १. जो स्वाद में अधिक झालदार तथा तीक्ष्ण होने के कारण अप्रिय हो। जो खाने या पीने में असह्य हो। 'मीठा' का विपर्याय। जैसे कड़ई दवा। २. लाक्षणिक अर्थ में, (ऐसी बात) जो अप्रिय तथा कटु हो। जैसे—कड़ुई बात।

मुहा०—**(धन) कड़ुआ करना**=अनिच्छापूर्वक रुपए खर्च करना या लगाना। जैसे—अब सौ रुपए कड़ुए करो तो काम चले। **(किसी से) कड़ुआ पड़ना या होना**=(क) असंतुष्ट होने पर क्रुद्ध होना। (ख) बुरा बनना।

पद—**कड़ुए कसैले दिन**=(क) अकाल, दुर्भिक्ष या रोग के दिन। दुर्दिन। (ख) स्त्रियों के लिए गर्भवती रहने का समय।

३. उग्र या कड़े स्वभाववाला। क्रोधी।

पद—**कड़ुआ मुँह**=वह व्यक्ति जो मुँह से अप्रिय और कड़ी बात निकालता हो। उदा०—रहिमन कड़ुए मुखन को करियै यही उपाय।—रहीम।

कड़ुआ तेल—पुं० [हिं० कड़ुआ+तेल] सरसों का तेल जो बहुत झालदार होता है।

कड़ुआना—अ० [हिं० कड़ुआ] १. किसी चीज का कड़ुआ होना। २. क्रुद्ध या नाराज होना। बिगड़ना। ३. किसी वस्तु की झाल आँखों में लगने पर अथवा अधिक समय तक जागते रहने पर आँखों में चुनचुनाहट या जलन होना। जैसे—प्याज या मिर्च पीसी जाने पर या रात भर न सोने से आँखें कड़ुआना।

कड़ुआहट—स्त्री० [हिं० कड़ुआ+हट (प्रत्य०)] कड़ुआ होने की अवस्था, गुण या भाव। कड़ुआपन।

कड़ुई खिचड़ी—स्त्री०=कड़ुई रोटी।

कड़ुई रोटी—पद—स्त्री० [हिं०] जिस घर में किसी की मृत्यु हुई हो, उस घर के लोगों के लिए इष्ट-मित्रों या संबंधियों के यहाँ से आया हुआ भोजन (घर में भोजन न बनने की दशा में)।

कड़ूंगा—वि० [हिं० कड़ा+अंग]=कड़ंगा।

कड़ू†—वि०=कड़ुआ।

कड़ूला†—पुं० [हिं० कड़ा+अला (प्रत्य०)] १. बच्चों के हाथ में पहनने का छोटा कड़ा। २. हाथ में पहनने का साधारण कड़ा। उदा०—बाजूबंद कड़ूला सोहै।—मीराँ।

कड़ेरा†—पु० दे० 'खरादी'।

कड़े लोट (न)—पुं० [हिं० कड़ा+लोटना] मालखंभ की एक कसरत।

कड़ोड़ा†—पु०=करोड़ी।

कड्ढा (ढ़)†—वि० [हिं० काढ़ना] १. काढ़ने या निकालने वाला। २. ऋण या कर्ज लेनेवाला।

कढ़त—स्त्री० [हिं० कढ़ना] १. कढ़ने या काढ़ने की क्रिया या भाव। २. बाहर निकलने या निकालने की क्रिया या भाव। निकासी। (विशेषतः बिक्री की चीजों या माल के संबंध में)

कढ़ना—अ० [सं० कर्षण; पा० कड्ढन] १. बाहर आना या निकलना। उदा०—इधर गोकुल से जनता कढ़ी।—हरिऔध।

मुहा०—**कढ़ जाना**=स्त्री का किसी प्रेमी के साथ निकल या भाग जाना। २. उदय होना। ३. (प्रतिद्वंद्विता में) आगे निकल जाना।

†स०=काढ़ना (बाहर निकालना)।

अ० [सं० क्वथन] दूध आदि तरल पदार्थों का आग पर औटकर गाढ़ा होना।

कड़क बिजली—स्त्री० [हिं० कड़क+बिजली] १. कान में पहनने का एक प्रकार का आभूषण। २. एक प्रकार की बंदूक। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें बिजली की-सी कड़क तथा चमक होती है। ४. एक प्रकार का उपकरण जिससे किसी रोग की चिकित्सा के लिए शरीर में बिजली पहुँचाई जाती है।

कड़का—पुं० [हिं० कड़क] किसी वस्तु के टकराने, टूटने, फटने आदि से होनेवाला जोर का शब्द।

कड़खा—पुं० [सं० कर्ष] १. सैंतीस मात्राओं का एक छंद। २. सैनिकों को उत्साहित करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में गाया जानेवाला गीत जो प्रायः उक्त छंद में होता था। ३. विजय-गान।

कड़खैत—पुं० [हिं० कड़खा+एत (प्रत्य०)] युद्ध-क्षेत्र में कड़खा गानेवाला चारण या भाट।

कड़छा—पुं० [स्त्री० कड़छी]=कलछा।

कड़वड़ा—वि० [सं० कर्वर=कवटा] चितकवरा (दे०)।

कड़बा—पुं० [?] लोहे का वह गोल घेरा जिससे हलके फाल के ऊपर इसलिए लगाते हैं कि जोताई वहुत गहरी न हो।

कड़बी—स्त्री० [?] ज्वार के डंठल जो गौओं-भैंसों को चारे के रूप में खिलाये जाते हैं।

कडला—पुं० [हिं० कड़ा+ला (प्रत्य०)] बच्चों के पहनने का छोटा कड़ा।

कड़वा†—वि० [स्त्री० कड़वी]=कड़आ।

कड़वी—स्त्री०=कड़वी।

कड़हन—पुं० [हिं० कठधान] एक प्रकार का मोटा धान और उसका चावल।

कड़ा—वि० [सं० कड्ड] [स्त्री० कड़ी; भाव० कड़ाई] १. (पदार्थ) जिसके कणों, तंतुओं, संयोजक अवयवों आदि की बनावट या संघात इतना घना, ठोस या दृढ़ हो कि उसे काटा, तोड़ा, दवाया या लचाया न जा सके और इसीलिए जिसमें कुछ गड़ाना या धँसाना बहुत कठिन हो। कठोर। सख्त। 'कोमल' या 'मुलायम' का विपर्याय। जैसे—कड़ी जमीन, कड़ा तख्ता, कड़ा लोहा। २. (पदार्थ) जिसमें आर्द्रता या जलीय अंश सूखकर इतना कम हो या इतना कम वच रहा हो कि उसे सहज में मनमाना रूप न दिया जा सके। जैसे—कड़ा (गूंधा हुआ) आटा, कड़ा चमड़ा। ३. (अन्न या फल) जो अभी अच्छी तरह गला, घुला या पका न हो। जैसे—कड़ा आम, कड़ा केला, पकाये हुए चावल का कड़ा दाना। ४. (पदार्थ) जो अपने स्थान पर इस प्रकार गड़, जम या धँसकर बैठा हो कि सहज में इधर-उधर हटाया-वढ़ाया न जा सके। चारों ओर से अच्छी तरह कसा हुआ। 'ढीला' का विपर्याय। जैसे—किसी यंत्र का कोई कड़ा पुरजा या पेंच, किसी प्रकार की कड़ी गाँठ या वंधन। ५. (पदार्थ) जिसमें उग्र परिणाम या तीव्र प्रभाव उत्पन्न करने का गुण या शक्ति हो। तेज। जैसे—कड़ी दवा, कड़ी शराव। ६. (तत्त्व) जिसमें उग्रता, तीव्रता या विकटता नियमित या साधारण से अधिक हो और इसीलिए जो अप्रिय, असह्य या कष्टप्रद जान पड़े। जैसे—कड़ी आँच या धूप, कड़ी गरमी, कड़ा जाड़ा। ७. जिसमें कोमलता, मधुरता सरसता आदि के वदले कठोरता, कर्कशता, रूक्षता आदि वातें अधिक हों। जैसे—कड़ा व्यवहार, कड़ा स्वभाव। ८. जिसमें कठोरता, दृढ़ता या सतर्कता का अधिक ध्यान रखा जाता हो। जैसे— कड़ी निगाह, कड़ा पहरा। ९. जो अपनी उचित, नियत या निर्धारित मात्रा, मान या सीमा से आगे वढ़ा हुआ हो। असाधारण। जैसे—कड़ी उमर, कड़ा तगादा, कड़ी मेहनत, कड़ा सूद। १०. जिसका अनुसरण या पालन कठोरता या दृढ़तापूर्वक होता हो या होना आवश्यक तथा उचित हो। जिसका उल्लंघन अनुचित, दंडनीय या निंदनीय हो। जैसे—कड़ी आज्ञा, कड़ा नियम। ११. (व्यक्ति) जो नियम, परिपाटी, प्रथा, व्यवस्था आदि के पालन में उपेक्षा या शिथिलता न करता हो अथवा न सह सकता हो। जैसे—कड़ा मालिक, कड़ा हाकिम। १२. (व्यक्ति) जो सहज में भावुकता या कोमल मनोवृत्तियों से प्रभावित न होता हो अथवा जो विकट परिस्थितियों में भी विना विचलित हुए धैर्य, साहस आदि से काम लेता हो। जैसे—कड़े दिल का आदमी। १३. (व्यक्ति) शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट। तगड़ा। १४. (कार्य) जिसमें विशेष आयास, परिश्रम, मनोयोग आदि की आवश्यकता हो और इसीलिए जो सहज में हर किसी से न हो सकता हो। दुस्साध्य। मुश्किल। जैसे कड़ा काम, कड़ी नौकरी। १४. (कार्य या व्यवहार) जिससे उग्रता, क्रोध, तिरस्कार या रोष सूचित होता हो। जैसे—कड़ा जवाव, कड़ी वात।

पुं० [सं० कटक] [स्त्री० कड़ी] १. बड़े और मोटे छल्ले की तरह का एक प्रसिद्ध वृत्ताकार गहना जो हाथों की कलाइयों या पैरों में पिंडलियों के नीचे पहना जाता है। वलय। २. उक्त प्रकार का वह बड़ा छल्ला जो कुछ चीजों में उन्हें उठाने या पकड़ने के लिए या छतों आदि में कोई चीज लटकाने के लिए लगा रहता है। जैसे—कंडाल या कड़ाही का कड़ा। ३. छत पाटने का वह ढंग या प्रकार जिसमें वह विना कड़ियों या शहतीर लगाये केवल गारे, चूने आदि से वनाई जाती है। जैसे—इस मकान के सब कमरों में कड़े की पाटन है। ४. एक प्रकार का कबूतर।

कड़ाई—स्त्री० [हिं० कड़ा+आई (प्रत्य०)] १. कड़े होने की अवस्था, गुण या भाव। कड़ापन। २. कठोरता, सख्ती। जैसे—नौकरों के साथ की जानेवाली कड़ाई।

कड़ाकड़—क्रि० वि० [हिं० कड़-कड़ से अनु०] लगातार कड़-कड़ शब्द करते हुए। जैसे कुत्ते का कड़ाकड़ हड्डी चवाना।

कड़ाका—पुं० [हिं० कड़ से अनु०] १. बहुत जोर से होनेवाला कड़ शब्द जो प्रायः किसी चीज के गिरने, टूटने आदि से होता है। जैसे—बिजली का कड़ाका।

पद—कड़ाके का=बहुत जोर का। प्रचंड। जैसे—कड़ाके की गरमी या सरदी।

२. उपवास। फाका।

कड़ाबीन—स्त्री० [तु० करावीन] एक प्रकार की छोटी बंदूक जो प्रायः कमर में बाँधी या लटकाई जाती है। झोंका।

कड़ाह—पुं० [सं० कटाह] १. कड़ी कड़ाही। कड़ाहा। २. (कड़ाही में वना होने के कारण) हलुआ। (सिक्ख)

कड़ाहा—पुं० [सं० कटाह, प्रा० कड़ाह] [स्त्री०अल्पा० कड़ाही] पीतल लोहे आदि का बना हुआ गोल पेंदे, खुले मुँह तथा ऊँची दीवारों का

एक प्रसिद्ध, पात्र जिसमें खाने-पीने की चीजें तली या पकाई जाती हैं।

कड़ाही—स्त्री० [हिं० कड़ाहा] छोटे आकार का छिछला कड़ाहा।

मुहा०—**कड़ाही चढ़ना**=किसी विशेष अवसर पर इष्टमित्रों को खिलाने-पिलाने के लिए पूरी, तरकारी, मिठाई आदि बनाना। **कड़ाही में हाथ डालना**=(क) अग्निपरीक्षा देना। (ख) जान-बूझ कर संकट मोल लेना।

कड़ि†—स्त्री० १. =कली । २.=कड़ी ।

कड़ियल—वि० [हिं० कड़ा] १. बहुत कड़े दिलवाला। साहसी। २. हट्टा-कट्टा। हृष्ट-पुष्ट। जैसे—कड़ियल जवान।

पुं० [?] छोटे कड़े या हाँडी का वह नीचेवाला टुकड़ा जिसमें आँच रखकर दवाई जाती है।

कड़िया—स्त्री० [सं० कांड] अनाजों का वह सूखा डंठल जिसके बीज झाड़ लिये गये हों।

कड़िहा†—वि०=कढ़िहार।

कड़ी—स्त्री० [हिं० कड़ा (आभूषण)] १. जंजीर, लड़ी आदि के उन गोल छल्लों में से हर एक जिनके आपस में एक दूसरे में गुथे, जड़े या पिरोये रहने से वह जंजीर या लड़ी बनती है। २. उक्त छल्लों के आपस में गुथे, जड़े या पिरोये जाने से बना हुआ रूप। जंजीर। शृंखला। ३. धातु का कोई छोटा वलय, जिसमें चीजें टाँगी, फँसाई या लटकाई जाती हैं। ४. घोड़े की लगाम जिसमें आगे की ओर गोल कड़ी या छल्ला लगा रहता है। उदा०—हरि घोड़ा, ब्रह्मा कड़ी बासुकि पीठि पलान।—कबीर। ५. लाक्षणिक अर्थ में, लगातार या क्रम से चलती रहने वाली घटनाओं, बातों आदि में से हर एक। जैसे—(क) बीच में मत बोलिए नहीं तो बातों की कड़ी टूट जायगी। (ख) यह भी इस घटना-क्रम की एक कड़ी है। ६. गीत आदि का कोई एक चरण।

स्त्री० [सं० कांड; हिं० कांड़ी] १. छतों आदि की पाटन में लगने वाली छोटी धरन।

मुहा०—**कड़ी बोलना**=धरन का अकारण आप-से-आप चट-चट शब्द करना। (गृहस्थ के लिए अशुभ लक्षण या शकुन)

२. बकरी, भेड़ आदि की छाती की हड्डी।

स्त्री० [हिं० कड़ा=कठिन] कष्ट। संकट। जैसे—कड़ी उठाना, कड़ी झेलना, कड़ी सहना।

कड़ीदार—वि० [हिं० कड़ी+फा० दार (प्रत्य०)] १. जिसमें कड़ी बुनी या लगी हो। छल्लेदार। २. जिसमें कड़ियों की तरह की आकृतियाँ या बेल-बूटे बने हों। जैसे—कड़ीदार कसीदा।

कड़ी धरती—स्त्री० [हिं०] १. ऐसा प्रदेश जहाँ के लोग हट्टे-कट्टे होते हों। २. ऐसा प्रदेश या स्थान जहाँ अनेक प्रकार के कष्टों या संकटों का सामना करना पड़ता हो।

कड़ी सजा—स्त्री० [हिं०+फा०] १. किसी प्रकार का कठोर दंड। जैसे—नौकर या लड़के को कड़ी सजा देना। २. न्यायालय द्वारा दिया हुआ किसी अपराधी को ऐसा दंड जिसमें उसे कारावास में कठोर परिश्रम भी करना पड़ता है। सपरिश्रम कारावास। (रिगरस इम्प्रिजन्मेंट)

कड़ुआ—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुअ] [भाव० कड़ुआपन, कड़ुआहट; स्त्री० कड़ुई] १. जो स्वाद में अधिक झालदार तथा तीक्ष्ण होने के कारण अप्रिय हो। जो खाने या पीने में असह्य हो। 'मीठा' का विपर्याय। जैसे कड़ई दवा। २. लाक्षणिक अर्थ में, (ऐसी बात) जो अप्रिय तथा कटु हो। जैसे—कड़ुई बात।

मुहा०—**(धन) कड़ुआ करना**=अनिच्छापूर्वक रुपए खर्च करना या लगाना। जैसे—अब सौ रुपए कड़ुए करो तो काम चले। **(किसी से) कड़ुआ पड़ना या होना**=(क) असंतुष्ट होने पर क्रुद्ध होना। (ख) बुरा बनना।

पद—**कड़ुए कसैले दिन**=(क) अकाल, दुर्भिक्ष या रोग के दिन। दुर्दिन। (ख) स्त्रियों के लिए गर्भवती रहने का समय।

३. उग्र या कड़े स्वभाववाला। क्रोधी।

पद—**कड़ुआ मुँह**=वह व्यक्ति जो मुँह से अप्रिय और कड़ी बात निकालता हो। उदा०—रहिमन कड़ुए मुखन को करियै यही उपाय।—रहीम।

कड़ुआ तेल—पुं० [हिं० कड़ुआ+तेल] सरसों का तेल जो बहुत झालदार होता है।

कड़ुआना—अ० [हिं० कड़ुआ] १. किसी चीज का कड़ुआ होना। २. क्रुद्ध या नाराज होना। बिगड़ना। ३. किसी वस्तु की झाल आँखों में लगने पर अथवा अधिक समय तक जागते रहने पर आँखों में चुनचुनाहट या जलन होना। जैसे—प्याज या मिर्च पीसी जाने पर या रात भर न सोने से आँखे कड़ुआना।

कड़आहट—स्त्री० [हिं० कड़आ+हट (प्रत्य०)] कड़ुआ होने की अवस्था, गुण या भाव। कड़ुआपन।

कड़ई खिचड़ी—स्त्री०=कड़ुई रोटी।

कड़ुई रोटी—पद—स्त्री० [हिं०] जिस घर में किसी की मृत्यु हुई हो, उस घर के लोगों के लिए इष्ट-मित्रों या संबंधियों के यहाँ से आया हुआ भोजन (घर में भोजन न बनने की दशा में)।

कड़ूंगा—वि० [हिं० कड़ा+अंग]=कड़ंगा।

कड़ू†—वि०=कड़ुआ।

कड़ूला†—पुं० [हिं० कड़ा+अला (प्रत्य०)] १. बच्चों के हाथ में पहनने का छोटा कड़ा। २. हाथ में पहनने का साधारण कड़ा। उदा०—बाजूबंद कड़ूला सोहै।—मीरों।

कड़ेरा†—पुं० दे० 'खरादी'।

कड़े लोट (न)—पुं० [हिं० कड़ा+लोटना] मालखंभ की एक कसरत।

कड़ोड़ा†—पुं०=करोड़ी।

कढ़्ढ़ा (ढ़)†—वि० [हिं० काढ़ना] १. काढ़ने या निकालने वाला। २. ऋण या कर्ज लेनेवाला।

कढ़त—स्त्री० [हिं० कढ़ना] १. कढ़ने या काढ़ने की क्रिया या भाव। २. बाहर निकलने या निकालने की क्रिया या भाव। निकासी। (विशेषतः बिक्री की चीजों या माल के संबंध में)

कढ़ना—अ० [सं० कर्षण; प्रा० कड्ढन] १. बाहर आना या निकलना। उदा०—इधर गोकुल से जनता कढ़ी।—हरिऔध।

मुहा०—**कढ़ जाना**=स्त्री का किसी प्रेमी के साथ निकल या भाग जाना। २. उदय होना। ३. (प्रतिद्वंद्विता में) आगे निकल जाना।

†स०=काढ़ना (बाहर निकालना)।

अ० [सं० क्वथन] दूध आदि तरल पदार्थों का आग पर औटकर गाढ़ा होना।

कढ़नी—स्त्री० [सं० कर्पणी; प्रा० कड्ढनी] १. वह रस्सी जिससे दूध, दही आदि मथकर उसमें से मक्खन निकालने के लिए मथानी घुमाई जाती है। नेती। २. जमीन की वह अंतिम जोताई जिसके बाद उसमें अनाज बोया जाता है।

कढ़रा (ला) ना*—स० [हि० काढ़ना+लाना] घसीट कर या बलपूर्वक किसी को बाहर निकालना।

कढ़वाना—स० [हि० काढ़ना का प्रेर०] काढ़ने का काम किसी से कराना, किसी को कुछ काढ़ने में प्रवृत्त करना (दे० 'काढ़ना')। जैसे—कसीदा कढ़वाना, दूध कढ़वाना, किसी के घर से कोई स्त्री कढ़वाना आदि।

कढ़ाई—स्त्री० [हि० कढ़ना या काढ़ना] कढ़ने या काढ़ने की क्रिया, ढंग भाव या मजदूरी। (दे० 'कढ़ना' और 'काढ़ना')

† स्त्री०=कड़ाही।

कढ़ाना—स० [हि० काढ़ना का प्रेर०] १. किसी को कुछ काढ़ने में प्रवृत्त करना। कढ़वाना। २. गाने-बजाने वालों की बोल-चाल में (क) किसी को प्रोत्साहित करके गाने-बजाने आदि में प्रवृत्त करना। (ख) कोई गाना आरंभ कराना। ३. नाचने, गाने और पेशा कमाने वाली स्त्रियों की बोलचाल में किसी नई स्त्री को गाने-बजाने या पेशा कमाने के काम मे प्रवत्त करके आगे बढ़ाना या सामने लाना।

कढ़ाव—पु० [हि० काढ़ना] १. कढ़ने या काढ़े जाने की क्रिया, प्रकार या भाव। २. ऐसा काम जिसमें सूई-तागे आदि से काढ़कर बेल-बूटे आदि बनाये गये हों। ३. कपड़े पर कढ़े या बने हुए बेल-बूटों का उभार।

† पु०=कड़ाह।

कढ़ावना*—स०=कढ़वाना या कढ़ाना।

कढ़िराना*—स०=कढ़राना (घसीटकर या धक्का देकर निकालना या निकलवाना)। उदा०—सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़िराइ।—सूर।

कढ़िहार †—वि० [हि० काढ़ना=निकालना+हार (वाला) प्रत्य०] १. निकालनेवाला। २. विपत्ति आदि से उद्धार करने वाला। ३. उधार या ऋण काढ़ने अर्थात् लेनेवाला।

कढ़ी—स्त्री० [हि० कढ़ना=उबालना] एक प्रकार का प्रसिद्ध तरल व्यंजन या सालन जो घुले हुए बेसन को उबालकर बनाया जाता है।

मुहा०—बासी कढ़ी में उबाल आना=शक्ति, सामर्थ्य आदि के अभाव में भी आवेश या उत्साह उत्पन्न होना।

पद—कढ़ी का सा उबाल=ऐसा आवेश, उत्साह या क्रोध जो बहुत सहज में ठंडा पड़ जाय या जाता रहे।

कढ़ुआ—वि० [हि० काढ़ना] १. काढ़ा या निकाला हुआ। २. औटाकर गाढ़ा किया हुआ। ३. जिस पर बेलबूटे आदि बनाये गये हों। ४. कहीं से काढ़ या निकालकर लाया हुआ। ५. किसी उद्देश्य से काढ़ या निकालकर अलग रखा हुआ।

पुं० १. ऋण। कर्ज। २. [स्त्री० कढ़ुई] वह पात्र जिससे बड़े तथा गहरे पात्रों मे से चीजे निकाली जाती हैं।

कढ़ुई †—स्त्री० [हि० काढ़ना] मिट्टी का छोटा पुरवा जिससे बड़े बरतन में से कोई चीज निकाली जाती हो।

वि० कही से उड़ा या निकालकर लाई हुई (स्त्री०)।

कढ़ेरना—पु० [हि० काढ़ना] वह उपकरण जिससे नक्काशी करने वाले धातु आदि के बरतनों पर गोल लकीरें आदि बनाते हैं।

कढ़ैया—वि० [हि० काढ़ना] १. काढनेवाला। २. विपत्ति आदि से निकालने या बचानेवाला।

† स्त्री०=कड़ाही।

कढ़ोरना*—स० [सं० कर्पण या हि० काढना] १. बलपूर्वक बाहर निकालना। २. घसीटना।

कण—पुं० [सं०√कण् (गति)+अच्] १. किसी कड़ी या ठोस वस्तु का कोई बहुत छोटा अंश या दाना। जैसे—बालू के कण। (पार्टिकल्) २. किसी जैव या सेंद्रिय पदार्थ अथवा उसके अंग का कोई बहुत छोटा टुकड़ा। जैसे—रक्तकण। ३. अनाज का दाना या उसका टुकड़ा। ४. किसी चीज के ऊपर उभरा या निकला हुआ छोटा या महीन अंश। दाना। ५. दे० 'कैलास'।

कणकच †—पुं० [?] १. करंज। कंजा। २. केवाँच। कौंछ।

कणगच—पुं०=कणकच।

कणजीरक—पुं० [सं० कण-जीर, कर्म० स०, ×कन्] एक प्रकार का सफेद जीरा।

कणप—पुं० [सं० कण√पा (पीना)+क] बरछा। भाला।

कणयर—पुं०=कनेर।

कणा—स्त्री० [सं० कण+टाप्] १. छोटा कण या बहुत छोटा टुकड़ा। २. पीपल।

कणाटीर—पुं० [सं० कण√अट् (गति)+ईरन्] खंजन पक्षी।

कणाद—पुं० [सं० कण√अद् (खाना)+अण्] वैशेपिक दर्शन के रचयिता प्रसिद्ध मुनि जिन्हें उलूक भी कहते थे। २. सुनार।

कणिक—पुं० [सं० कण+ठन्—इक] [स्त्री० अल्पा० कणिका] १. अनाज का दाना या उसका टुकड़ा। २. गेहूँ, चावल आदि की वालें। ३. गेहूँ के आटे से बना हुआ पकवान या भोजन। ४. जल-कण। पानी की बूंद। ५. शत्रु। दुश्मन।

कणियर—पुं० कनेर।

कणिष्ठ—वि०=कनिष्ठ।

कणी—स्त्री० =कनी।

कणीकरण—पुं० [सं० कण+च्वि, ईत्व√कृ (करना)+ल्युट्-अन] दे० 'कैलासन'।

कणीसक†—स्त्री० [सं० कणिक] गेहूँ, चावल, जौ आदि की वालें।

कणेर—पुं० [सं० √कण्+एर]=कनेर (पेड़ और फूल)।

कण्व—पुं० [सं०√कण्+क्वन्] १. एक वैदिक ऋषि जो शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे। २. कश्यप गोत्र मे उत्पन्न एक प्रसिद्ध ऋषि जिन्होंने अपने आश्रम में शकुंतला को पुत्री की तरह पाला था।

कत—पुं० [सं० क√तन् (विस्तार)+ड] १. निर्मली। २. रीठा।

पुं० [अ० कत] किसी चीज की विशेपत. सरकंडे आदि की कलम का वह अगला भाग जो लिखने के लिए कुछ तिरछा काटा जाता है।

† वि० [सं० कियत्] १. कितना। २. बहुत अधिक।

† अव्य० [सं० कुतः] १. किस जगह। कहाँ। २. किस लिए। क्यों।

कतई—क्रि० वि० [अ०] १. निपट। निरा। बिलकुल। २. कदापि। हरगिज।

वि० पूरा-पूरा और साफ या अंतिम। जैसे—कतई इन्कार, कतई हुकुम।

कतक—पुं० [सं० क√तक् (हँसना)+घ] १. निर्मली। २. रीठा।
†वि०=केतक (कितना)।

कतकी†—वि० [सं० कार्त्तिक (मास)] कार्त्तिक-संबंधी। कार्त्तिक का। जैसे—कतकी पूर्णिमा।
स्त्री० कार्त्तिक में पकनेवाली फसल। उदा०—कतकी की फसल तक निर्वाह कैसे करूँगा?—वृंदावनलाल वर्मा।

कतना—अ० [हिं० कातना] (रेशम, सूत आदि का) काता जाना।
स०= कातना।
†वि०=कितना।

कतनी—स्त्री० [हिं० कातना] १. कातने की क्रिया, भाव या मजदूरी, कताई। २. सूत कातने की तकली।

कतन्ना†—स० १. =कातना। २. =कतरना।

कतन्नी—स्त्री० १. दे० 'कतरनी'। २. दे० 'चरखी'।

कतरछांट—स्त्री०=कतर-ब्योंत।

कतरन—स्त्री० [हिं० कतरना] १. कतरने की क्रिया, ढंग या भाव। २. किसी वस्तु के वे छोटे-छोटे टुकड़े जो किसी कारण-विशेष से उस वस्तु से काटकर अलग किये गये हों। जैसे—(क) कपड़े या कागज की कतरन। (ख) गरी की कतरन।

कतरना—स० [सं० कर्त्तन या कृंतन] १. कपड़े, कागज या लोहे आदि की चद्दरों को कैंची से काटकर दो या कई टुकड़ों में विभक्त करना। २. लाक्षणिक अर्थ में, बीच में से काटना। जैसे—बात कतरना। ३. किसी प्रकार काट या निकालकर अलग करना। जैसे—पाँच रुपए आपने भी उसमें से कतर लिये। ४. दे० 'कुतरना'।
†पुं० [स्त्री० अल्पा० कतरनी] बड़ी कतरनी या कैंची।

कतरनाल—स्त्री० [हिं० कतरना+नाल=चरखी] एक प्रकार की दोहरी गड़ारीवाली चरखी।

कतरनी—स्त्री० [हिं० कतरना या सं० कर्त्तनी] दो फलोंवाला एक प्रसिद्ध उपकरण जिससे कपड़े, कागज आदि काटे जाते हैं। कैंची।
मुहा०—कतरनी की तरह (या कतरनी-सी) जबान चलना=बहुत जल्दी-जल्दी और अनावश्यक रूप से और कुछ उद्दंडतापूर्वक मुँह से बातें निकालना।
२. लुहारों, सुनारों आदि का कैंची की तरह का वह औजार, जिससे वे धातु की चादरें या पत्तर काटते हैं। ३. कोई चीज काटने वाला औजार। जैसे—जुलाहों, तमोलियों, मोचियों आदि की कतरनी।
†स्त्री० [?] दक्षिण भारत की नदियों में पायी जानेवाली एक प्रकार की मछली।

कतर-ब्योंत—स्त्री० [हिं० करतना+ब्योंत] १. कतर या काटकर अपनी आवश्यकता या ब्योंत के अनुसार कोई चीज उपयुक्त बनाने की क्रिया या भाव। काट-छाँट। २. उलट-फेर। हेर-फेर। ३. किसी बात के संबंध में किया जानेवाला सोच-विचार।
४. युक्ति।

कतरवाँ—वि० [हिं० कतरना +वाँ(प्रत्य०)] १. जो कतर या काट-कर निकाला या बनाया गया हो। २. घुमाव-फिराव वाला। टेढ़ा-तिरछा।

कतरवाई—स्त्री० [हिं० कतरवाना+आई (प्रत्य०)] १. कतरवाने की क्रिया या भाव। (क्व०) २. कतरवा कर तैयार कराने का पारिश्रमिक या मजदूरी। जैसे—इस कमीज या कोट की कतरवाई पाँच रुपए हैं।

कतरवाना—स० [हिं० कतरना] दूसरे को कोई चीज कतरने में प्रवृत्त करना। कतरने का काम दूसरे से करवाना।

कतरा—पुं० [अ० कतरः] जल या तरल पदार्थ की बूँद। टीप।
पुं० [हिं० कतरना] कट या टूटकर निकला हुआ अथवा कतर या काटकर निकाला हुआ छोटा टुकड़ा। जैसे—पत्थर का कतरा। २. एक प्रकार की बड़ी नाव।

कतराई—स्त्री० [हिं० कतरना] १. कतरवाई (दे०) २. कतराकर *जाने की क्रिया या भाव।*

कतराना—अ० [हिं० 'कतरना' का प्रे० रूप] [भाव० कतराई] १. कतरने का काम किसी से कराना। कतरवाना। २. किसी की निगाह बचाते हुए दूर से या चुपके से किसी ओर निकल जाना।

कतरी—स्त्री० [सं० कर्त्तरी=चक्र] १. कोल्हू का पाट, जिस पर बैठ कर बैल हांके जाते हैं। कातर। २. हाथ में पहनने का एक प्रकार का गहना। ३. एक प्रकार का औजार जिससे दीवारों में कारनीस बनायी जाती है। ४. दे० 'कतली'।
स्त्री० [?] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०)

क़तल—पुं० [अ० क़त्ल] तलवार आदि से किसी व्यक्ति को काट डालने की क्रिया या भाव। वध। हत्या।
पद—कतले-आम=सार्वजनिक रूप से लोगों का किया जानेवाला वध। सार्वजनिक हत्या।

क़तलबाज—पुं० [अ० क़त्ल+फा० बाज] जल्लाद। वधिक।
वि० कतल करने या किसी प्रकार जान मारनेवाला।

कतला—पुं० [सं० *कर्त्तन या* हिं० *कतरा*] [*स्त्री० अल्पा० कतली*] किसी चीज का कटा हुआ चौकोर बड़ा टुकड़ा। जैसे—बरफी का कतला।

कतलाम—पुं०=कतलेआम।

कतली—स्त्री० [हिं० कतला] १. चीनी का शीरा पका कर उसमें गरी की कतरनें, तरबूज के बिए, बादाम आदि डालकर जमाई हुई बरफी। २. उक्त का कटा हुआ चौकोर छोटा टुकड़ा। ३. दे० 'कतरी'।

कतवाना—स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] कातने का काम किसी दूसरे से कराना। कातने में किसी को प्रवृत्त करना।

कतवार—पुं० [सं० कच्चर, प्रा० कच्चवार] १. घर की सफाई करने पर निकलने वाला कूड़ा-करकट। २. लाक्षणिक अर्थ में, अनुपयोगी तथा व्यर्थ की बटोरी हुई वस्तुएँ।
*वि० [हिं० कातना] कातनेवाला।

कतवारखाना—पुं० [हिं० कतवार+फा० खाना] कूड़ा-करकट फेंकने का सार्वजनिक स्थान।

कतहूँ (हूँ)—अव्य० [हिं० कत+हूँ] कहीं।

क्रि० वि० [हिं० कत+हूँ] १. किसी स्थान पर। किसी जगह। कहीं। २. कहीं-न-कहीं।

कता—स्त्री० [अ० क़तअ] १. किसी चीज के बनने-बनाने का ढंग। तर्ज। बनावट। २. पहनने के कपड़ों की कतर-ब्योंत या काट-छाँट। ३. अरबी फारसी या उर्दू में कोई छोटा पद्य या उसका चरण। ४. चित्रकला में वह कृति, जिसमें बेल-बूटे से घिरा हुआ कोई पद्य लिखा हो। ५. दे० 'किता'।

कताई—स्त्री० [हिं० कातना] १. कातने की क्रिया, ढंग या भाव। (स्पिनिंग) २. कातने का पारिश्रमिक या मजदूरी। ३. कोई काम व्यर्थ ही अधिक समय लगाकर धीरे-धीरे या कई बार करते रहना।

कतान—पुं० [?] १. एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा, जो पहले अलसी की छाल से बनता था। २. एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जिसके दुपट्टे और साड़ियाँ बनती हैं।

कताना—स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] कातने का काम किसी से कराना। कतवाना।

कतार—स्त्री० [अ०] १. पंक्ति। माला। २. झुंड। समूह।

कतारा—पुं० [सं० कांतार, प्रा० कंतार] [स्त्री० अल्पा० कतारी] १. एक प्रकार का लाल ऊख जो बहुत लम्बा होता है। २. इमली की फली।

कतारी*—स्त्री०=कतार (पंक्ति)।
†स्त्री० [अ० क़तऽ] ढंग। तरीका। प्रकार।

कति†—वि० [सं० किम्+डति] १. किस मानका। कितना। २. (गिनती में) कितने। ३. न जाने कितने। बहुत अधिक।
†सर्व०=कौन।
*स्त्री० [सं० कृति ?] क्रीड़ा। खेल। उदा०—बालकति करि हंस चौ बालक।—प्रिथीराज।
अव्य०=कित (किधर)।

कतिक*—वि० [सं० कति+क (प्रत्य०)] १. कई एक। कितने ही। २. न जाने कितने। (संख्या या मान में अज्ञात)। ३. =कितना।

कतिधा—वि० [सं० कति+धा] अनेक प्रकार का।
क्रि० वि० अनेक प्रकार से।

कतिपय—वि० [सं० कति+अयच्, पुक्आगम] १. कितने ही। कई एक। २. जो गिनती में कम हों। थोड़े-से। कुछ। जैसे—कतिपय विद्वानों का यह मत है।

कतीरा (रा)—पुं० [देश०] गूल नामक वृक्ष का गोंद जो प्रायः औषध के रूप में काम आता है। (ट्रैगेकान्थ)

कतेक†—वि० [सं० कति+हिं० एक] १. गिनती में कई। अनेक। उदा०—कतेक जतन विहि आवि समारल।—विद्यापति। २. थोड़े से। कुछ।

कतेब*—स्त्री० [फा० किताब] १. पुस्तक। किताब। २. धर्म-ग्रंथ।

कतौनी—स्त्री० [हिं० कातना] १. कातने की क्रिया, ढंग, भाव या मजदूरी। २. अनावश्यक रूप से और बार-बार कुछ करते या कहते रहने की क्रिया या भाव। ३. तुच्छ और व्यर्थ का काम।

कत्तई—क्रि० वि० दे० 'कतई'।

कत्तर†—पुं० [?] वह डोरी जिससे स्त्रियाँ अपने केश बाँधती या गूँथती हैं। चोटी।

कत्तरी—स्त्री० [सं० कर्तरी] कैंची।

कत्तल—पुं० [हिं० कतरा, या अ० कतरः=टुकड़ा] १. काटकर अलग किया हुआ छोटा टुकड़ा। कतरा। २. ईंट, पत्थर आदि का छोटा टुकड़ा।

कत्ता—पुं० [सं० कर्तृ का बृहदर्थक रूप ?] १. बाँस काटनेवालों का बाँका नाम का औजार। २. एक प्रकार का बड़ा चाकू या छोटी तलवार। ३. चौपड़ खेलने का पासा।

कत्तारी—पुं० [सं० कांतार ?] मझोले आकार का एक प्रकार का सदाबहार पेड़।

कत्तावा—पुं०=कत्तारी।

कत्ती—स्त्री० [सं० कर्तरी] १. एक प्रकार की छोटी तलवार जिसका फल बिलकुल सीधा होता है। २. कटारी। ३. काटने या कतरने का कोई औजार। जैसे—कतरनी, चाकू आदि।
स्त्री० [?] पगड़ी बाँधने का वह ढंग या प्रकार जिसमें उसका कपड़ा पतली बत्ती की तरह बट या लपेटकर काम में लाया जाता है।

कत्थ—पुं० [हिं० कत्था] १. कत्था। खैर। २. एक विशेष प्रकार की स्याही या काला रंग। (रँगरेज)

कत्थई—वि० [हिं० कत्था] कत्थे या खैर के रंग का। खैरा (रंग)।

कत्थक—पुं० =कथक (जाति)।

कत्थना—स्त्री० [सं० √कत्थ्+णिच्+युच्—अन, टाप्] डींग।
*स० [सं० कथनं] कथन करना। कहना।

कत्था—पुं० [सं० क्वाथ] १. पान पर लगाकर अथवा पान के साथ खाया जानेवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध घन पदार्थ जो कीकर की जाति के वृक्षों की लकड़ियों को उबालकर तैयार किया जाता है। खैर। २. वे वृक्ष जिनकी लकड़ियों से उक्त पदार्थ निकलता है। (कैटेच्यू)

कत्ल—पुं० दे० 'कतल'।

कथं—क्रि० वि० [सं० किम्+थमु] किस प्रकार। कैसे।

कथंचित्—क्रि० वि० [सं० कथम्+चित्] शायद।

कथंभूत—वि० [सं० सुप्सुपा स०] किस प्रकार का। कैसा।

कथ†—पुं० [हिं० कत्था]=कत्था।
स्त्री०=कथा (बात)। उदा०—कही स्रवणि सँभली कथ।—प्रिथीराज।

कथक—०पुं [सं० √कथ (कहना)+णिच्+ण्वुल्—अक] १. वह जो कथा अर्थात् किस्से या कहानियाँ सुनाने का काम करता हो (कथावाचक या पौराणिक से भिन्न)। २. प्राचीन रंग-मंच में वह नट या पात्र जो आरम्भ में नाटक की पूरी कथा सुनाया करता था। ३. एक आधुनिक जाति जो प्रायः वेश्याओं आदि को गाना, नाचना आदि सिखाने का काम करती है। कत्थक। ४. एक विशेष प्रकार का नृत्य, जिसकी कला का विकास मुख्यतः उक्त जाति का किया हुआ है।

कथ-कीकर—पुं० [हिं० कत्था (खैर)+कीकर] एक प्रकार का कीकर या बबूल जिसकी छाल से कत्था या खैर निकाला जाता है।

कथक्कड़—पुं० [सं० कथा+कड़ (प्रत्य०)] प्रायः बहुत अधिक या लम्बी-चौड़ी कथाएँ कहने या सुनानेवाला व्यक्ति।

कथन—पुं० [सं० कथ+ल्युट्-अन] [वि० कथित] १. कोई बात मुँह से उच्चारित करने या कहने की क्रिया या भाव। कहना। बोलना। २. वह जो कुछ कहा गया हो। कही हुई बात। उक्ति। ३. किसी के सम्बन्ध में कही हुई ऐसी बात जो अभी प्रमाणित न हुई हो। (एलीगेशन) ४. किसी विषय में किसी का दिया हुआ वक्तव्य। बयान। (स्टेटमेंट) ५. उपन्यास का एक भेद या प्रकार, जिसमें उसका नायक या कोई पात्र आदि से अन्त तक कोई कथा कहता चलता है।

कथना—स० [सं० कथन] १. कोई बात कहना। कथन करना। २. किसी की खुलकर विस्तारपूर्वक निन्दात्मक बातें कहना। बुराई करना। जैसे—किसी के दोष कथना।

कथनी—स्त्री० [सं० कथन+हि० ई(प्रत्य०)] १. मुँह से कही हुई बात। उक्ति। कथन। जैसे—उनकी कथनी और करनी में बहुत अन्तर है। २. कोई बात बार-बार कहने की प्रक्रिया या भाव।

कथनीय—वि० [सं०√कथ+अनीयर्] १. कहे जाने के योग्य। जो कथन के रूप में आ सके या लाया जा सके। २. निंदनीय। बुरा। (क्व०)

कथमपि—क्रि० वि० [सं० कथम्-अपि, द्व० स०] १. किसी प्रकार। जैसे-तैसे। २. बहुत कठिनता से। ३. हिंदी में कभी-कभी भूल से 'कदापि' के अर्थ में भी प्रयुक्त।

कथरी—पुं० [सं० कथा+हि० री (प्रत्य०)] फटे-पुराने तथा छोटे-छोटे चिथड़ों को जोड़ तथा सीकर बनाया हुआ ऐसा वस्त्र, जिसे गरीब या भिखमंगे ओढ़ते और बिछाते हों। गुदड़ी।

कथांतर—पुं० [सं० कथा-अंतर मयू० स०] १. ऐसी स्थिति जिसमें उद्दिष्ट या प्रस्तुत कथा को छोड़कर कोई दूसरी कथा कही जाय। २. अप्रासंगिक या गौण कथा।

कथा—स्त्री० [सं० कथ+अङ-टाप्] १. वह जो कहा जाय। कही जानेवाली या कही हुई बात। २. वह पौराणिक आख्यान जिसका कुछ अंश वास्तविक या सत्य हो और कुछ अंश कल्पित, तथा जो धर्मोपदेश के रूप में लोगों को विस्तृत व्याख्या करके सुनाया जाय।

मुहा०—कथा बैठाना=ऐसी व्यवस्था करना कि कोई कथावाचक या पौराणिक नियत रूप से कुछ समय तक बैठकर लोगों को पौराणिक कथाएँ सुनाया करे। ३. प्राचीन साहित्य में, उपन्यास का वह प्रकार या भेद, जिसमें उसका कर्त्ता आदि से अन्त तक कोई घटना सुनाता चलता है। ४. किसी घटना की चर्चा। जिक्र। ५. समाचार। हाल। ६. कहा-सुनी। वाद-विवाद।

मुहा०—(किसी की) कथा चुकाना=किसी का वध या हत्या करके उसके कारण होनेवाले उपद्रवों का अंत करना।

कथानक—पुं० [सं०√कथ+आनक] १. छोटी कथा या कहानी। २. किसी रचना (जैसे—उपन्यास, कथा नाटक आदि) की आदि से अंत तक की सब बातों का सामूहिक रूप।

वि० दे० 'कथावस्तु'।

कथानिका—स्त्री० [सं० कथानक+टाप्, इत्व] संस्कृत में, उपन्यासों का एक भेद।

कथा-पीठ—पुं० [उपमि० स०] १. कथा की प्रस्तावना। २. वह आसन या स्थान जहाँ बैठकर कथावाचक या व्यास कथा सुनाते हों।

कथा-प्रबंध—पुं० [प० त०] १. किसी कथा की वे मुख्य बातें, जिनसे उस कथा का स्वरूप प्रस्तुत होता है। २. कथा की सब बातें अच्छे ढंग और ठीक क्रम से रखने का भाव या स्थिति।

कथामुख—पुं० [कथा-आमुख, प० त०] कथा या किसी साहित्यिक रचना की प्रस्तावना।

कथा-वस्तु—स्त्री० [प० त०] १. उपन्यास, कहानी, नाटक आदि की वे सभी मुख्य बातें, जिनसे उनका स्वरूप प्रस्तुत होता है। (प्लॉट) २. विस्तृत अर्थ में, वे सभी मुख्य बातें, जो किसी साहित्यिक रचना में आयी हों या उसका विषय बनी हों।

कथा-वार्त्ता—स्त्री० [द्व० स०] १. पौराणिक और धार्मिक कथाएं और उनकी चर्चा। २. बातचीत।

कथिक—पुं०=कथक।

कथित—वि० [सं० कथ+क्त] १. जिसका कथन या वर्णन हुआ हो। जो कहा गया हो। कहा हुआ। २. (बात या व्यक्ति) जिसके संबंध में कोई ऐसी बात कही गई हो या कही जाती हो, जिसकी प्रामाणिकता या सत्यता अभी विवादास्पद या संदिग्ध हो। जो कहा तो गया हो, पर ठीक न सिद्ध हुआ हो। (एलेज्ड)

पुं० मृदंग के बारह प्रबंधों में से एक।

कथी—स्त्री०=कथनी।

कथीर—पुं० [सं० कस्तीर, पा० कत्थीर] राँगा नामक धातु।

कथीला—पुं० =कथीर।

कथोद्घात—पुं० [कथा-उद्घात, प० त०] १. कथा का आरंभ। प्रस्तावना। २. नाटक आरभ करने का वह प्रकार, जिसमें सूत्रधार के मुंह से निकली हुई कोई बात सुनते ही, उसी के आधार पर कोई पात्र रंग-मंच पर आकर अभिनय आरंभ कर देता है।

कथोपकथन—पुं० [कथा-उपकथन स० त०] १. दो या दो से अधिक व्यक्तियों में होनेवाली बात-चीत। वार्तालाप। २. किसी उपन्यास, कथा, कहानी आदि के पात्रों में आपस में होनेवाली बात-चीत।

कथ्य—वि० [सं०√कथ+यत्] १. जो कहा जा सके। कहे जाने के योग्य। २. जो कहना उचित हो।

कद्—वि० [सं० समास में कु का आदेश रूप] १. खराब या बुरा। जैसे—कदंश। २. घटिया। रद्दी। जैसे—कदन्न।

कदंब—पुं० [सं०√कद् (रोदन, आह्वान)+अम्बच्] १. कदम नामक वृक्ष। २. उक्त वृक्ष के छोटे तथा गोल फल। ३. झुंड। समूह। ४. ढेर। राशि।

कदंब नट—पुं० [ब० स० ?] एक प्रकार का राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। (संगीत)।

कदंबपुष्पी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] गोरखमुंडी।

कदंश—पुं० [सं० कु-अंश, कुगति स०, क़द् आदेश] खराब, बुरा या रद्दी अंश।

कदा—अव्य० [सं० कदा] किस समय। कब। उदा०—कदकद मंगलू बोवैं धान। सूखा डाला हे भगवान।—कहा०।

पुं० [सं० क=जल√दा (देना)+क] बादल। मेघ।

स्त्री० [फा० कद्] १. मन में रखा जानेवाला द्वेष। २. वैर-विरोध। शत्रुता। ३. ईर्ष्या। डाह।

पुं० [अ० कद्] किसी वस्तु की ऊँचाई या लंबाई का विस्तार। जैसे—नाटे कद का आदमी, ऊँचे कद का पेड़।

कदक—पुं० [सं० कद√कै (भासित होना)+क] १. धूप, वर्षा आदि से बचने के लिए लगाया हुआ चँदोआ। २. डेरा।

कदक्षर—पुं० [सं० कु-अक्षर, कुगति स०, कद् आदेश] १. बुरा या अशुभ अक्षर। २. गंदी या दूषित लिखावट।

कदधव*—पुं० [सं० कदध्वा] अनुचित या बुरा मार्ग।

कदन—पुं० [सं० √कद्+णिच्+ल्युट्—अन] १. मृत्यु। मौत २. विनाश। ३. युद्ध। ४. लड़ाई झगड़ा। ५. वध। हत्या। ६. मार-काट। हिंसा। ७. कष्ट। दुःख।

वि० [√कद्+णिच्+ल्यु—अन] मार डालने या नष्ट करनेवाला। (यौ० के अंत में) जैसे—मदन-कदन।

कदन्न—पुं० [सं० कु-अन्न, कुगति स०, कद् आदेश] घटिया या तुच्छ प्रकार का अन्न जो रोगकारक होता है। जैसे—कोदो, खेसारी, मसूर आदि।

कदपत्य—पुं० [सं० कु—अपत्य, कुगति स०, कद् आदेश] अयोग्य या बुरी संतान।

कदव†—पुं०=कदंब।

कदम—पुं० [अ० कदम] १. पाँव। पैर।

मुहा०—**कदम उठाना**=(क) चलने के लिए पैर उठाकर आगे बढ़ाना। (ख) लाक्षणिक रूप में, कोई कार्य करने के लिए उसका कोई आरंभिक अंग पूरा करना या उसका प्रयत्न करना। **(किसी के) कदम चूमना**=किसी को बहुत प्रतिष्ठित या मान्य समझकर उसके प्रति आदर या श्रद्धा प्रकट करना। **कदम छूना**=आदर या श्रद्धापूर्वक किसी के आगे नतमस्तक होना। प्रणाम करना। **कदम बढ़ाना**=चलने के समय चाल तेज करना। **(किसी जगह) कदम रखना**=(क) किसी स्थान पर पहुँचना या उसमें प्रवेश करना। (ख) पदार्पण करना। (आदरार्थक) २. उतनी दूरी जितनी चलने के समय एक बार पैर उठाकर आगे रखने में पार की जाती है। चलने में दो पैरों के बीच का अवकाश या स्थान। डग। (स्टेप) ३. चलने नाचने आदि में हर बार पैर उठाने की क्रिया या भाव। ४. घोड़े की एक विशिष्ट प्रकार की चाल, जिसमें ठीक क्रम से हर बार पैर उठता है। (दौड़ने से भिन्न)

पुं० [सं० कदंब] १. कदंब नामक वृक्ष। २. इस वृक्ष का छोटा गोल फल। (दे० कदंब)।

कदमचा—पुं० [फा० कदमचा] पाखाने आदि में दोनों ओर बने हुए वे स्थान, जिन पर पैर रखकर बैठते हैं।

कदमबाज—वि० [अ०+फा०] (वह घोड़ा) जो कदम मिलाकर अर्थात् ठीक चाल चलता हो (दौड़ता न हो)।

कदमा—स्त्री० [हिं० कदम] कदंब के फूल के आकार की एक प्रकार की मिठाई।

कदर—पुं० [सं० क√दृ (विदारण)+अच्] १. लकड़ी चीरने का आरा। २. हाथी चलाने का अंकुश। ३. कंकड़ी आदि चुभने के कारण पैर में पड़नेवाली गाँठ। गोखरू। ४. सफेद खैर का पेड़।

स्त्री० [अ० कद्र०] १. मात्रा। मान। २. आदर। प्रतिष्ठा। संमान। ३. महत्त्व।

कदरई*—स्त्री०=कायरता।

कदरज—पुं० [सं० कदर्य्य] एक प्रसिद्ध पापी।

वि०=कदर्य्य।

कदरदान—वि० [अ०+फा०] १. किसी का महत्त्व समझकर उसकी प्रतिष्ठा या संमान करनेवाला। २. जो किसी के गुणों का ठीक और पूरा महत्त्व आँक सके।

कदरदानी—स्त्री० [अ०+फा०] कदरदान होने की अवस्था या भाव।

कदरमस*—स्त्री० [सं० कदन+हिं० मस (प्रत्य०) १. मारपीट। २. लड़ाई। झगड़ा।

कदरा*—वि० [हिं० कादर] १. कायर। डरपोक। २. डरा हुआ। भयभीत। उदा०—तुम बिन पिय अति कदरा।—भारतेंदु।

कदराई—स्त्री०=कायरता।

कदराना—अ० [हिं० कादर] १. कायरता दिखलाना। साहस या हिम्मत छोड़ना। २. डरना।

स० किसी में कायरता या डर का भाव भरना। किसी को कायर होने में प्रवृत्त करना।

कदरी—स्त्री० [देश०] मैना की तरह का एक पक्षी।

कदर्थ—पुं० [सं० कु-अर्थ, कुगति स०, कद् आदेश] निकम्मी या रद्दी चीजें। कूड़ा-करकट।

वि० १. अनुचित या बुरे अर्थवाला। २. निकम्मा या रद्दी। ३. कुत्सित। बुरा।

कदर्थना—स्त्री० [सं० कु-अर्थना, कुगति स० कद् आदेश] १. बुरी या हीन दशा। २. दुर्गति। दुर्दशा।

कदर्थित—भू० कृ० [सं० कु-अर्थित कुगति स०, कद् आदेश] १. जिसकी निंदा या बुराई की गई हो। २. जिसकी दुर्दशा हुई हो।

कदर्य—वि० [सं० कु-अर्य, कुगति स०, कद् आदेश] १. कंजूस। कृपण। २. कायर। डरपोक। ३. बुरा। हीन। उदा०—हृदय सोचता कैसे उनका मिटे कदर्य पराभव। —पंत

कदर्यता—स्त्री० [सं० कदर्य+तल्—टाप्] १. कदर्य होने की अवस्था या भाव। २. कंजूसी। कृपणता। ३. कायरता। ४. हीनता।

कदली—स्त्री० [सं० √कद्+कलच्—ङीप्] १. केला नामका पौधा या उसका फल। २. पूर्वी भारत में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। ३. वह बड़ा झंडा, जो हाथी पर चलता है। ४. एक प्रकार का हिरन।

कदह—पुं० [अ०] कटोरा। प्याला।

कदा—क्रि० वि० [सं० किम्+दा, कादेश] किस समय। कब।

कदाकार—वि० [स० कु-आकार, ब० स०, कद् आदेश] जिसका आकार या रूप बुरा या बेढब हो। बे-डौल।

कदाख्य—वि० [सं० कु-आख्या, ब० स०, कद् आदेश] कुख्यात। बदनाम।

कदाच*—क्रि० वि०=कदाचित्।

कदाचन—क्रि० वि० [सं० कदा-चन, द्व० स०] १. किसी समय। कभी। २. कदाचित्। शायद।

कनकनी—स्त्री०=कनकनाहट

कनक-पत्र—पुं० [मध्य० स०] कान में पहनने का एक गहना।

कनक-पुरी—स्त्री० [मध्य० स०] रावण के समय की लंका जो सोने की मानी गई है।

कनक-फल—पुं० [ष० त०] १. धतूरे का फल। २. जमाल गोटा।

कनक-शैल—पुं० [मध्य० स०] सुमेरु पर्वत।

कनक-सूत्र—पुं० [ष० त०] सोने का तार।

कनकांबर—वि० [सं० कनक-अंबर, ब० स०] [स्त्री० कनकांबरी] जो सुनहले या जरी के कपड़े पहने हो।

कनका—पुं० [सं० कणिक] किसी चीज का विशेषतः अन्न के दाने का छोटा टुकड़ा।

कनकाचल—पुं० [सं० कनक-अचल, ष० त०] सुमेरु पर्वत।

कनकानी—पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति।

कनकी—स्त्री० [सं० कणिक] १. चावलों के छोटे-छोटे कण या टुकड़े २. किसी चीज का बहुत छोटा कण या टुकड़ा।

कनकूत—पुं० [सं० कण+हिं० कूतना] आँकने या कूतने को क्रिया या भाव। जैसे—खेत की उपज की कनकूत।

कनकैया—पुं०=कनकौआ।

कनकौआ—पुं० [हिं० कन्ना+कौवा] १. कागज की बहुत बड़ी गुड्डी। पतग। २. एक प्रकार का बरसाती साग।

कनखजूरा—पुं० [हिं० कान+खर्जु=एक कीड़ा] प्रायः एक बित्ता लंबा एक प्रसिद्ध जहरीला कीड़ा जिसके सैकड़ों पैर होते है और जो जमीन पर रेंग कर चलता है। गोजर।

कनखा†—पुं० [सं० काण्ड=शाखा] १. कोंपल। २. छोटी टहनी या शाखा।

कनखियाना—स० [हिं० कनखी] १. कनखियों से देखना। २. कनखी या तिरछी नजर से संकेत करना।

कनखी—स्त्री० [हिं० कान+आँख] १. देखने का वह ढंग मुद्रा या स्थिति जिसमे पुतली को कान की ओर अर्थात् कोने या सिरे पर ले जाकर देखा जाता है। २. उक्त प्रकार से देखते हुए किया जानेवाला संकेत।

क्रि० प्र०—मारना। लगाना।

कनखुरा—पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

कनखैया—स्त्री०=कनखी।

कनखोदनी—स्त्री० [हिं० कान+खोदना] लंबे तार की तरह का वह उपकरण जिससे कान का मैल निकाला जाता है।

कनगुरिया—स्त्री० [हिं० कानी+उँगली] हाथ या पैर की सब से छोटी अर्थात् कानी उँगली। छिगुली।

कनछेदन—पुं० [हिं० कान+छेदना] हिंदुओं का एक संस्कार जिस में छोटे बालक के कान छेदे या बेधे जाते है। कर्णवेध।

कनटक—पुं० [हिं० कण+टकटक] कंजूस। कृपण। उदा०—बाप कनटक, पूत हातिम।—कहा०।

†पुं०=कंटक।

कनटोप—पुं० [हिं० कान+टोप या तोपना] एक प्रकार की टोपी जिससे सिर के अतिरिक्त दोनों कान भी ढक जाते हैं।

कनतूतुर—पुं० [देश०] मेंढक की तरह का एक प्रकार का जहरीला जंतु।

कनधार*—पुं०=कर्णधार।

कनपटी—स्त्री० [हिं० कान+सं० पट] प्राणियों की आँख और कान के बीच का स्थान।

कनपेड़ा—पुं० [हिं० कान+पेड़ा] एक रोग जिसमें कान के नीचे के भाग में सूजन हो जाती है तथा गिल्टियाँ पड़ जाती हैं। (यह चेचक या माता का एक भेद माना गया है।)

कनफटा—पुं० [हिं० कान+फटना] गोरखपंथी साधु जिनके कान फटे होते हैं। (कानों में बिल्लौर के बाले पहनने के लिए कान फाड़े जाते हैं।)

कनफुँकवा×—पुं०=कनफुँका।

कनफुँका—पुं० [हिं० कान+फूँकना] १. ऐसे व्यक्ति के लिए उपेक्षा-सूचक शब्द, जो लोगों के कान में मंत्र फूँक कर उन्हें दीक्षा देने का व्यवसाय करता हो। २. ऐसा व्यक्ति, जिसने उक्त प्रकार के गुरु से दीक्षा ली हो।

कन-फुसकी†—स्त्री०=कानाफूसी।

कनफूल†—पुं० [हिं० कान+फूल] कान में पहनने का एक आभूषण जिसका आकार फूल का-सा होता है।

कनफोड़ा—पुं० [सं० कर्णस्फोट] एक लता जो दवा के काम में आती है।

कनबिधा—पुं० [हिं० कान+बेधना] १. जिसका कान छिदा या बिधा हुआ हो। २. कान छेदने या बेधनेवाला।

कनभेंड़ी—स्त्री० [देश०] एक प्रकार के सन का पौधा।

कनमनाना—अ० [अनु०] १. सोने की अवस्था में कुछ हिलना-डुलना। २. किसी की आहट पाकर कुछ हिलना-डुलना। ३. किसी के विरुद्ध बहुत दबकर या धीरे से कोई चेष्टा या प्रयत्न करना।

कनमैलिया—पुं० [हिं० कान+मैल+इया (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जिसका पेशा लोगों के कानों का मैल निकालना हो।

कनया†—पुं०=कनक।

कनयर*—पुं०=कनेर।

कनयून—पुं० [?] एक प्रकार का सफेद काश्मीरी चावल।

कनरई—स्त्री० [?] गुलू नामका पेड़ जिससे कतीरा गोंद निकलता है।

कनरश्याम—पुं० [हिं० कान्हड़ा+श्याम] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते है।

कनरस—पुं० [हिं० कान+रस] मन लगाकर अच्छी-अच्छी बातें, गीत आदि सुनने की प्रवृत्ति या रुचि।

कनरसिया—पुं० [हिं० कान+रसिया] वह जिसे गाना-बजाना आदि सुनने का बहुत शौक हो। उदा०—ये कन-रसिये मूढ सराहत स्वरहिं तदपि हैं।—रत्ना०।

कनवई†—स्त्री० [सं० कण] १. छोटा टुकड़ा। कण। २. सेर का सोलहवाँ भाग। छटाँक।

कनवज्ज—पुं०=कन्नौज।

कनवाँसा—पुं० [सं० कन्या+वंश या फा० नवासा का अनु०] नाती या नवासे का पुत्र। पड़-नाती।

कनवा†—पुं०=कनवई।

†वि०=काना।

कनवास—पुं० [अं० कैनवस] एक प्रकार का बढ़िया मोटा कपड़ा, जिस पर प्रायः तैल-चित्र आदि अंकित किए जाते हैं।

कनवी—स्त्री० [सं० कण, हिं० कन] एक प्रकार की कपास जिसमें से बहुत छोटे-छोटे बिनौले निकलते हैं।

कनसलाई—स्त्री० [हिं० कान+सलाई] १. कनखजूरे की तरह का एक छोटा कीड़ा। २. कुश्ती का एक दाँव या पेच।

कनसार—पुं० [हिं० काना+आर (प्रत्य०)] धातु के पत्तरों पर बेल-बूटे, लेख आदि खोदनेवाला व्यक्ति।

कनसाल—पुं० [हिं० कोन+सालना] चारपाई के पायों के ऐसे छेद, जो छेदते समय कुछ तिरछे हो गये हों और इसीलिए जिनसे चारपाई कुछ टेढ़ी या तिरछी हो जाय।

कनसीरी†—स्त्री० [?] एक प्रकार का वृक्ष।

कनसुई—स्त्री० [हिं० कान+सुनना] १. चोरी से या छिपकर किसी की बातों की आहट या टोह लेने के लिए कान लगाकर सुनने की क्रिया या भाव। २. आहट।
क्रि० प्र०—लेना।

कनस्तर—पुं० [अं० कनिस्टर] टीन का बना हुआ एक प्रकार का छोटा चौकोर आधान या पात्र जिसमें घी, तेल आदि रखते हैं। पीपा।

कनहार—पुं०=कर्णधार। (मल्लाह)।

कना†—पुं० [सं० कण] [स्त्री० अल्पा० कनी] १. अन्न का दाना। २. किसी चीज का छोटा टुकड़ा। कण। ३. ऊख में होनेवाला एक प्रकार का रोग।
†पुं०=नरकंडा।

कनाअत—पुं० [अ०] संतोष।

कनाई—स्त्री० [सं० कांड] १. वृक्ष या पौधे की पतली डाल या शाखा। छोटी टहनी। २. कल्ला। कोंपल।
स्त्री० [?] रस्सी के सिरे का वह फंदा जिसमें पशुओं का गला फँसाया जाता है।
†स्त्री० दे० 'कन्नी'।

कनाउड़ा*—वि०=कनौड़ा।

कनाखन*—स्त्री०=कनखी (आँख का इशारा)। उदा०—सखि तन कुँवरि कनाखन चहै।—नंददास।

कनागत—पुं० [सं० कन्यागत (सूर्य)] क्वार के महीने का कृष्णपक्ष, जिसमें पितरों का श्राद्ध किया जाता है। पितृपक्ष।

कनात—स्त्री० [तु०] [वि० कनाती] कोई स्थान घेरने के लिए उसके चारों ओर लगाया जानेवाला मोटा कपड़ा, जो दीवार का काम देता है। (प्राचीन भारत में इसे तिरस्करिणी कहते थे।)
†स्त्री०=कनाअत।

कनाना†—अ० [हिं० कना=ऊख का एक रोग] ऊख की फसल में कना नामक रोग लगना।

कनार—पुं० [देश०] ठंढ या सरदी लगने से घोड़ों को होनेवाला एक रोग।

कनारा—पुं० [कन्नड़ देश] दक्षिण भारत का एक प्रदेश जो आधुनिक केरल राज्य के अंतर्गत है। कन्नड़।

कनारी—स्त्री० [हिं० किनारा] १. पालकी ढोनेवाले कहारों की बोली में, रास्ते में पड़ा हुआ काँटा। २. दे० 'किनारी'।
वि० स्त्री०=कन्नड़ी।

कनाल†—पुं० [देश०] घुमावँ के आठवें भाग अथवा बीघे के चौथाई भाग के बराबर जमीन की एक नाप। (पंजाब)।

कनावड़ा—वि०=कनौड़ा।

कनासी—स्त्री० [सं० कण-आशी] १. नारियल की खोपड़ी को रगड़ कर साफ करने की रेती। २. वह रेती जिससे आरे के दाँते रेतकर तेज किए जाते हैं।

कनिआरी—स्त्री० [सं० कर्णिकार] कनक चंपा का पेड़ और उसका फूल।

कनिक—स्त्री० [सं० कणिक] १. गेहूँ। २. गेहूँ का आटा।

कनिका—पुं०=कनका।

कनिगर*—पुं० [हिं० कानि+फा० गर] मर्यादा या लोक-लज्जा का ध्यान रखने वाला।

कनियाँ—स्त्री० [सं० कन्या] बहू। (पूरब)
†स्त्री० [सं० स्कंध] १. बच्चों को इस प्रकार गोद में लेना कि उनका सिर उठानेवाले के कंधे से सट जाय। २. क्रोड़। गोद।

कनियाना—अ० [हिं० कोना] १. आँख बचाकर किसी ओर निकल जाना। कतराना। २. गुड्डी या पतंग का किसी ओर झुकना। कन्नी खाना।
स० बच्चे को गोद में लेकर उसका सिर अपने कंधे से लगाना।

कनियार—पुं०=[सं० कर्णिकार] कनकचंपा का वृक्ष और उसका फूल।

कनिष्ठ—वि० [सं० युवन् या अल्प+इष्ठन्, कनादेश] १. जो अवस्था, वय आदि के विचार से औरों की तुलना में छोटा हो। जो बाद में या सबके पीछे उत्पन्न हुआ हो। (यंगर) 'ज्येष्ठ' का विपर्याय। २. जो पद, मर्यादा, योग्यता आदि के विचार से दूसरों से घटकर हो। (जूनियर) 'वरिष्ठ' का विपर्याय। ३. जो विद्वान् या श्रेष्ठ न हो। 'वृद्ध' का विपर्याय। ४. सब से छोटा या हलका। तुच्छ। हीन।

कनिष्ठक—पुं० [सं० कनिष्ठ√कै (भासित होना)+क] एक प्रकार का तृण।
वि०=कनिष्ठ।

कनिष्ठा—स्त्री० [सं० कनिष्ठ+टाप्] १. कई पत्नियों में से वह जो सब से छोटी हो अथवा सब के बाद में ब्याही गई हो। २. साहित्य में वह पत्नी या स्त्री जिस पर नायक या पति का प्रेम अपेक्षया कम हो। ३. सब से छोटी उँगली। कानी उँगली।

कनिष्ठिका—स्त्री० [सं० कनिष्ठ+कन्—टाप्, इत्व]=कनिष्ठा।

कनी—स्त्री० [सं० कण] १. किसी चीज का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। जैसे—चावल की कनी। २. हीरे या किसी और रत्न का बहुत ही छोटा टुकड़ा।
मुहा०—कनी खाना या चाटना=हीरे का बहुत छोटा टुकड़ा खा लेना, जिससे कभी-कभी शरीर की आँतें कट जाती हैं और फलतः खानेवाले की मृत्यु हो जाती है। ३. पकाये हुए चावल का वह अंश जो गलने से रह गया हो। ४. पसीने की बूंद।

कनीज—स्त्री० [फा०] दासी। लौंडी।

कनीन—वि० [सं०√कन् +ईनन्] १. युवा। २. वयस्क।

कनीनक—पुं० [सं० कनीन+कन्] [स्त्री० कनीनिका] युवक।

कनीनिका—स्त्री० [सं०कनीन+कन्—टाप्, इत्व] १. आँख की पुतली के बीच में का छोटा काला दाग। तारा। २. कन्या। ३. कानी उँगली।

कनीनी—स्त्री० =[सं० कनीन+ ङीप्]=कनीनिका।

कनीयस्—वि० [सं० युवन् वा अल्प+ईयसुन्, कन् आदेश] [स्त्री० कनीयसी]=कनिष्ठ।

कनीर†—पुं०=कनेर।

कनु†—पुं०=कण।

कनुका—पुं०=कनूका।

कनूका—पुं० [सं० कणक] [स्त्री० अल्पा० कनूकी] १. किसी चीज का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। २. अनाज का दाना। उदा०—कहो कौन पै कढ़त कनूकी जिन हठि भुसी पछोरी।—सूर।

कने—क्रि० वि०[सं० कोण या करणे ?] १. ओर। तरफ। २. निकट। पास। समीप।

कनेखी†—स्त्री०=कनखी।

कनेठा†—वि० [हिं० कान+ऐंठना] १. जिसकी एक आँख एक ओर और दूसरी आँख दूसरी ओर खिची हुई हो। ऐंचा-ताना। २. काना।
पुं० किसी चीज का बाहर निकला हुआ अंग। कान।

कनेठी—स्त्री० [हिं० कान+ऐंठना] १. हलका दंड देने के लिए किसी का कान उमेठने या मरोड़ने की क्रिया या भाव। २. कान मरोड़ने की सजा।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लगाना।

कनेती—स्त्री० [देश०] रुपया। (दलाल)।

कनेर—पुं० [सं० कणर] १. नुकीली तथा लंबी पत्तियोंवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष। २. उक्त वृक्ष में लगनेवाले लंबोतरे फूल जो पीले लाल, सफेद आदि कई रंगों के होते हैं।

कनेरिया—वि० [हिं० कनेर] जिसका रंग कनेर के फूल के सदृश कुछ कालापन लिये पीला या लाल हो।
पुं० उक्त प्रकार का रंग।

कनेरी—स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] एक प्रकार की छोटी पीली चिड़िया जिसका स्वर बहुत मधुर होता है।

कनेव†—पुं० [हिं० कान] ऐसी स्थिति जिसमें कोई चीज कुछ इस प्रकार टेढ़ी हो जाय कि किसी ओर उसका कोना कान की तरह बाहर निकल आवे। जैसे—चारपाई या चौकी का कनेव।

कनैं—पुं० [सं० कनक, प्रा० कणय, कनय, कनैं] सोना। स्वर्ण। उदा०—बिजुरी कनैं कोट चहुँपासाँ।—जायसी।

कनोई—स्त्री० [हिं० कान] कान का मैल। खूँट।

कनोखा—वि० [हिं० कनखी] [स्त्री० कनोखी] (नेत्र) जो देखने के समय सीधा न रहे, बल्कि एक कोने की ओर बढ़कर कुछ तिरछा हो जाता हो।

कनोखी—स्त्री०=कनखी। उदा०—तनिक कनोखी अँखियों से। मैथिलीशरण गुप्त।

कनोतर—वि० [हिं० कोन=नौ+सं० उत्तर] जो गिनती में उन्नीस हो। (दलाल)

कनौजिया—वि० [हिं० कन्नौज+इया (प्रत्य०)] कन्नौज में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। जैसे—कनौजिया भाषा।
पुं० १. कन्नौज का निवासी। २. कान्यकुब्ज ब्राह्मण।

कनौठा—पुं० [हिं० कोना+औठा (प्रत्य०)] १. कोना। कोण। २. किनारा। पार्श्व। बगल।
पुं० [सं० कनिष्ठ] १. भाई-बंद। आत्मीय। २. पट्टीदार। हिस्सेदार।

कनौड़—स्त्री० [हिं० कनौड़ा] १. कनौड़े या खंडित होने की अवस्था या भाव। २. कलंक। ३. लज्जा। संकोच। ४. तुच्छता। हीनता।

कनौड़ा—वि० [हिं० काना+औड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० कनौड़ी] १. जिसकी एक आँख खराब या फूटी हो। काना। २. जिसका कोई अंग खंडित या टूटा-फूटा हो। ३. जो अपने किसी दोष या बुराई के कारण लोक में निंदनीय समझा जाता हो या बदनाम हो। ४. जो किसी विकट स्थिति में पड़ने के कारण पछता रहा हो या लज्जित हो। ५. किसी के उपकार या एहसान से दबा हुआ। दबैल। ६. तुच्छ। हीन। ७. असमर्थ।
पुं० वह दास या नौकर जो खरीदा गया हो।

कनौती—स्त्री० [हिं० कान+औती (प्रत्य०)] १. पशुओं के कान या उनके कानों की नोक। २. कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में (पशुओं का) कान उठाये रखने या खड़े करने का ढंग।
मुहा०—कनौती उठाना=चौकन्ने होकर कान खड़े करना। कनौती बदलना=बैठने का ढंग या मुद्रा बदलना।
३. कान में पहनने की छोटी बाली।

कन्नड़—पुं० [?] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध प्रदेश।
वि० उक्त प्रदेश में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।
पु० उक्त प्रदेश का निवासी।
स्त्री०— उक्त प्रदेश की भाषा।

कन्ना†—पुं० [सं० कर्ण प्रा० कण्ग] [स्त्री० कन्नी] १. किसी वस्तु का कान की तरह निकला हुआ कोई कोना। जैसे—पतंग का कन्ना। २. पतंग उड़ाने के लिए उसके बीच में बाँधा जानेवाला डोरा। ३. किनारा। सिरा। जैसे—जूते का कन्ना।
पु० [सं० कर्णक=वनस्पति का एक रोग] वनस्पति का एक रोग जिससे उसकी लकड़ी तथा फलों आदि में कीड़े पड़ जाते है।
पु० [स० कर्णक] चावलों आदि का छोटा टुकड़ा या दाना।

कन्नी—स्त्री० [हिं० कन्ना] १. किनारा। सिरा।
मुहा०—कन्नी काटना=किसी से हटकर, उसकी ओर ध्यान न देते हुए, धीरे से या चुपचाप निकल जाना।
२. पतंग का किनारा।
मुहा०—कन्नी खाना या मारना=पतंग का एक किनारे की ओर झुकना।
३. पतंग के किनारे पर बाँधी जानेवाली कपड़े की धज्जी।
स्त्री० [सं० स्कंध] १. पेड़ों का नया कल्ला। कोंपल। २. तमाकू के पौधे में से निकलनेवाले छोटे तथा नये पत्ते। ३. पटैले या हेंगे की वह खूँटी जिसमें रस्सी बाँधी जाती है।
† स्त्री०=करणी।

कन्नौज—पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० कण्णउज्ज] उत्तर प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम का एक नगर और उसके आस-पास का प्रदेश।

कन्नौजी—वि० [हिं० कन्नौज] कन्नौज में रहने, होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।

स्त्री० कन्नौज प्रदेश की बोली।

कन्यका—स्त्री० [सं० कन्या+कन्—टाप्, ह्रस्व]=कन्या।

कन्यस—पुं० [सं०√कन्+यक्, कन्य√सो (निश्चित करना)+क] [स्त्री० कन्यसी] सब से छोटा भाई।

कन्या—स्त्री० [सं० कन्य+टाप्] १. अविवाहिता लड़की। क्वाँरी लड़की। २. पुत्री। बेटी। ३. बारह राशियों में से छठी राशि जिसमें उत्तरा फाल्गुनी के अंतिम तीन चरण, पूरा हस्त और चित्रा के प्रथम दो चरण हैं। (विर्गो) ४. घीकुआँर। ५. बड़ी इलायची। ६. वाराही-कंद। गेठी। ७. एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार गुरु होते हैं। ८. दे० 'कन्या-कुमारी।'

कन्या-कुब्ज—पुं० [ब०स०] कान्यकुब्ज देश।

कन्या कुमारी—स्त्री० [सं० कन्या + कुमारी] भारत के दक्षिण में रामेश्वर के निकट का एक अंतरीप। रास-कुमारी।

कन्या-गत—वि० [द्वि० त०] कन्या राशि में गया हुआ (सूर्य)।

पुं०=कनागत (पितृपक्ष)।

कन्या-जात—वि० [पं० त०] (वह बालक) जिसका जन्म क्वाँरी कन्या के गर्भ से हुआ हो।

कन्या-दान—पुं० [प० त०] विवाह में वर को कन्या देने की रीति। माता-पिता द्वारा कन्या का वर को दिया जाना।

मुहा०—कन्या-दान लेना=कन्या-दान का शास्त्रोक्त फल प्राप्त करने के लिए वर को कन्यादान करने की क्रिया या रीति।

कन्या-धन—पुं० [प० त०] वह धन जो स्त्री को अविवाहित होने अर्थात् कन्या रहने की अवस्था में मिला हो। (स्त्री-धन का एक प्रकार)।

कन्यापाल—पुं० [सं०कन्या√पाल् (पालना)+णिच्+अच्, उप०स०] १. कुमारी लड़कियों को बेचने का व्यवसाय करनेवाला पुरुष। २. बंगालियों की एक जाति जो अब पाल कहलाती है।

कन्या-पुर—पुं० [प० त०] अंतःपुर। जनानखाना।

कन्यारासी—वि० [सं० कन्याराशीय] १. जिसके जन्म के समय चंद्रमा कन्याराशि में हो। २. सत्यानाशी। ३. तुच्छ। निकम्मा।

कन्यालीक—पुं० [कन्या-अलीक, मध्य० स०] कन्या के विवाह के संबंध में बोला जानेवाला झूठ। (जैन)

कन्यावानी—स्त्री० [सं० कन्या+हिं०वानी (प्रत्य०)] सूर्य के कन्या-राशि में रहने के समय होनेवाली वर्षा जो अच्छी समझी जाती है।

कन्या-शुल्क—पुं० [मध्य० स०] वह धन जो कन्या के पिता को उसकी कन्या लेने के समय बदले में दिया जाता है।

कन्ह—पुं० [सं० कृष्ण] १. श्रीकृष्ण। २. पृथ्वीराजकालीन एक प्रसिद्ध सरदार।

कन्हड़ी—स्त्री० [सं० कर्णाटी] १. कर्णाट देश की स्त्री। २. कर्णाट देश की भाषा।

कन्हाई—पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण।

कन्हावर†—पुं०=कँधावर।

कन्हैं†—अव्य०=कने (के पास)।

कन्हैया—पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] १. श्रीकृष्ण। २. प्रिय व्यक्ति। ३. बहुत सुन्दर व्यक्ति। ४. एक प्रकार का पहाड़ी पेड़।

कप—पुं० [सं० क=जल√पा (रक्षण)+क] १. वरुण देवता। २. असुरों या दैत्यों की एक जाति।

कपकपी—स्त्री०=कँप कँपी।

कपट—पुं० [सं० क√पट् (आच्छादन)+अच्] १. मन में होनेवाला वह दुराव या छिपाव जिसके कारण किसी को उचित, ठीक या पूरी बात नहीं बतलाई जाती। २. वह दूषित मनोवृत्ति जिसमें किसी को धोखा देने या हानि पहुँचाने का विचार छिपा रहता है। ३. मिथ्या और छलपूर्ण आचरण या व्यवहार। (डिसेप्शन; उक्त सभी अर्थों में)

विशेष—विविक दृष्टि से यह उपधा से इस बात में भिन्न है कि यह विशुद्ध नैतिक या मानसिक दोष है और केवल निजी या व्यक्तिगत व्यवहारों तक परिमित रहता है।

वि० छल से युक्त। छलपूर्ण। जैसे—कपट लेख्य, कपट वेश। उदा०—कपट नेह मन हरत हमारे।—सूर।

कपट-कन*—पुं० [सं० कपट-कण] १. चिड़ियाँ फँसाने के लिए बिखेरा हुआ अन्न। २. किसी को फँसाने के लिए बिछाया हुआ जाल। (लाक्षणिक)

कपटना—स० [सं० कपट] छल या धोखे से किसी चीज में से कुछ अंश निकाल लेना।

स० [सं० कल्पन] काट या निकाल कर अलग करना।

कपट-पुरुष*—पुं० [सं० प० त०] बाँस, हँड़िया आदि का बनाया हुआ वह पुतला जो खेतों में इसलिए लगाया जाता है कि पशु-पक्षी उसे आदमी समझकर उससे डरें और दूर रहें। धोखा।

कपट-प्रबंध—पुं० [मध्य० स०] वह कार्य या योजना जो कपटपूर्वक किसी को धोखा देने के लिए की गई हो।

कपट-लेख्य—पुं० [मध्य० स०] जाली लेख्य। नकली दस्तावेज।

कपट-वेश—पुं० [मध्य० स०] दूसरों को छलने या धोखा देने के लिए धारण किया हुआ नकली रूप। छद्मवेश।

कपटा—पुं० [सं० कपट] १. धान की फसल को नुकसान पहुँचाने वाला एक कीड़ा। २. तमाकू के पत्तों में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

†वि० जिसके मन में कपट हो। कपटी।

कपटिक—वि० [सं० कपट+ठन्—इक] कपटी।

कपटी (टिन्)—वि० [सं० कपट+इनि] [स्त्री० कपटिन] १. जिसके मन में कपट हो। २. कपट-पूर्वक दूसरों को धोखा देनेवाला। ३. बुरे विचारवाला।

स्त्री० [सं०√कप् (चलना)+अटन्+ङीप्] एक अंजुली की मात्रा।

वि० पुं० दे० 'कपटा'।

कपड़—पुं० हिं० कपड़ा का संक्षिप्त रूप जो समस्त पदों में पूर्व पद के रूप में लगता है। जैसे—कपड़-गंध, कपड़-छान आदि।

कपड़-कोट—पुं० [हिं० कपड़+कोट (किला)] खेमा। तंबू।

कपड़-खसोट—पुं० [हिं० कपड़ा+खसोटना] [भाव० कपड़-खसोटी] दूसरों के कपड़े तक उतार या छीन लेनेवाला अर्थात् बहुत अधिक धूर्त्त और लोभी।

कपड़-गंध—स्त्री० [हिं० कपड़ा+गंध] कपड़ा जलने से निकलनेवाली दुर्गंध।

कपड़-छन†—पुं०=कपड़-छान।

कपड़-छान—पुं० [हिं० कपड़ा+छानना] १. महीन कपड़े में से किसी पिसे हुए चूर्ण को छानने की क्रिया या भाव। २. वह वस्तु जो उक्त प्रकार से छानी गई हो।

कपड़-मिट्टी—स्त्री० [हिं० कपड़ा+मिट्टी] वैद्यक में धातु या ओषधि फूँकने के संपुट पर गीली मिट्टी के लेप के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपड़ौटी।

कपड़-विदार—पुं० [हिं० कपड़ा+सं० विदारण] १. दरजी। २. रफूगर। (डिं०) ३. दे० 'कपड़-खसोट'।

कपड़ा—पुं० [सं० कर्पण ; प्रा० कप्पड़ ; दे० प्रा० कंपड़े ; सिं० कपग ; मरा०, गु०, बँ०, उ० कापड ; पं० कप्पड़ा] १. ऊन, रूई, रेशम आदि के तागों अथवा वृक्षों की छालों के तंतुओं से बुना हुआ पदार्थ जो ओढ़ने, बिछाने, पहनने आदि के काम आता है। (क्लाथ) २. पहनावा। पोशाक।

मुहा०—(किसी के) **कपड़े उतार लेना**=किसी का सब कुछ छीन या लूट लेना। **कपड़े छीनना**=पल्ला छुड़ाना। पीछा छुड़ाना। (अपने) **कपड़े रँगना**=गेरुए वस्त्र पहनकर त्यागी या साधु बनना। (स्त्रियों का) **कपड़ों से होना**=मासिक धर्म में होना। एकवस्त्रा होना। रजस्वला होना।

कपड़ौटी†—स्त्री०=कपड़-मिट्टी।

कपनी†—स्त्री०=कँपकँपी।

कपरा*—पुं०=कपड़ा।

*पुं०=कपार (कपाल)।

कपरिया—पुं० [सं० कपाली] एक छोटी जाति।

कपरौटी†—स्त्री०=कपड़-मिट्टी।

कपर्द—पुं० [सं० पर्,√पर्व् (पूर्ण करना)+क्विप्, वलोप, क—पर्√दै (शुद्ध करना)+क] १. शिव का जटाजूट २. कौड़ी।

कपर्दक—पुं० [सं० कपर्द+कन्] कौड़ी।

कपर्दिका—स्त्री० [सं० कपर्द+कन्+टाप्, इत्व] कौड़ी।

कपर्दिनी—स्त्री० [सं० कपर्द+इनि+ङीप्] १. पार्वती। २. दुर्गा।

कपर्दी (र्दिन्)—पुं० [सं० कपर्द+इनि] १. जटाजूटधारी शिव। २. ग्यारह रुद्रों में से एक।

कपसा†—स्त्री० दे० 'काविस'।

कपसेठा—पुं० [हिं० कपास+एठा] कपास के सूखे हुए डंठल या पौधे जो जलाने के काम आते है।

कपाट—पुं० [सं० क√पट् (गति)+णिच्+अण्] १. दरवाजे में लगे हुए पल्ले। किवाड़। २. दरवाजा। द्वार। ३. किसी नली, खाने आदि के ऊपर ढकने के रूप में लगा हुआ कोई ऐसा पटल या फलक जो एक ओर से दाव पड़ने पर उस नली या खाने में से निकलने वाली चीज (जैसे—पानी, भाप, हवा आदि) पर नियंत्रण रखता और उसका प्रवाह रोक रखता है। (वॉल्व) ४. हठयोग में (क) सुषुम्ना नाड़ी (ख) ब्रह्मरंध्र और (ग) मोक्ष का द्वार।

कपाट-बन्ध—पुं० [उपमि० स०] एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें किसी छंद के अक्षर इस प्रकार सजाकर लिखे जाते है कि उनसे बंद द्वार की आकृति बन जाती है।

कपाट-मंगल—पुं० [हिं०] मंदिर का द्वार बन्द करना या होना। (वल्लभकुल)।

कपार†—पुं० [सं० कपाल] १. खोपड़ी। २. सिर।

कपाल—पुं० [सं० क√पाल् (रक्षण)+अण्] १. सारे सिर के ऊपरी भाग में और अगल-बगल रहनेवाली वह अर्द्ध गोलाकार हड्डी जिसके अन्दर मस्तिष्क के सब अवयव रहते हैं। खोपड़ी। (स्कल)

पद—कपाल-क्रिया (देखें)।

२. मस्तक। ललाट। ३. अदृष्ट। भाग्य।

४. घड़े आदि के नीचे या ऊपर का टूटा हुआ अर्द्ध-गोलाकार भाग। खपड़ा। ५. भिक्षुकों का मिट्टी का बना हुआ भिक्षा-पात्र। खप्पर। ६. यज्ञों में देवताओं के लिए पुरोडाश पकाने का पात्र। ७. कछुए का खोपड़ा। ८. एक प्रकार का कोढ़। ९. एक प्रकार का पुराना अस्त्र। १०. ढाल।

कपालक†—पुं०=कापालिक।

कपाल-केतु—पुं० [उपमि० स०] बृहत्संहिता के अनुसार एक धूम्रकेतु जिसका उदय अशुभ माना गया है।

कपाल-क्रिया—स्त्री० [ष०त०] हिंदुओं में शव जलाने के समय का एक संस्कार जिसमें शव का अधिकांश जल चुकने पर उसकी खोपड़ी बाँस लकड़ी आदि से तोड़ते या फोड़ते हैं।

विशेष—आधुनिक दृष्टि से इसका उद्देश्य सम्भवतः यह होता है कि आत्मा को शरीर से संबद्ध रखनेवाला बंधन या सूत्र टूट जाय।

कपाल-माली (लिन्)—पुं० [सं० कपाल-माला, ष०त०,+इनि] खोपड़ियों की माला पहननेवाले शिव।

कपाल-संधि—स्त्री० [मध्य० स०] १. खोपड़ी की हड्डियों का जोड़। २. ऐसी संधि जो दोनों पक्षों के अधिकार बराबर मानकर की गई हो।

कपालि—पुं० [सं० क√पाल्+इनि] शिव।

कपालिक†—पुं० दे० 'कापालिक'।

कपालिका—स्त्री० [सं० कपाल+कन्+टाप्, इत्व] १. खोपड़ी। २. घड़े के नीचे या ऊपर का टूटा हुआ भाग। ३. दाँतों में होनेवाला एक रोग।

स्त्री० [सं० कापालिक=शिव] काली। रणचंडी।

कपालिनी—स्त्री० [सं० कपाल+इनि+ङीप्] दुर्गा। शिवा।

कपाली (लिन्)—पुं० [सं० कपाल+इनि] १. शिव। महादेव। २. भैरव। ३. ठीकरा लेकर भीख माँगनेवाला भिक्षुक। ४. एक प्राचीन वर्णसंकर जाति। कपरिया।

कपास—स्त्री० [सं० कार्पास, कर्पास ; प्रा० कप्पास ; पं० कपाह ; गु० कापुस ; सिंह० कपु ; बँ० कपास ; मरा० कापूस] १. एक प्रसिद्ध पौधा जिसके ढोंढ़ (फल) में से रूई निकलती है। २. इस पौधे के फलों के तंतु जिनसे सूत काता जाता है।

मुहा०—**दही के धोखे कपास खाना**=कुछ को कुछ समझकर धोखे में उसका उपभोग करना।

कपोती—वि० [हिं० कपोत] कपोत के रंग का। खाकी।

कपोल—पुं० [सं०√कंप्+ओलच्, नलोप] १. मुख का वह मांसल भाग जो मुँह के दोनों ओर आँख, कान, चिवुक तथा मुँह के बीच में स्थित होता है। गाल। २. नृत्य या नाट्य में कपोल की चेष्टा या भाव-भंगी जो सात प्रकार की कही गई है। यथा—लज्जा, भय, क्रोध, हर्ष, क्षोभ, उत्साह और गर्व के समय की तथा प्राकृतिक या स्वाभाविक।

कपोल-कल्पना—स्त्री० [प० त०] ऐसी बात जो केवल मन से गढ़ी गई हो और जिसका कोई वास्तविक आधार न हो। मन-गढ़ंत।

कपोल-कल्पित—वि० [तृ० त०] (ऐसी बात) जो बिना किसी आधार के अपने मन से बना ली गई हो। कल्पना पर आधारित तथा मनगढ़ंत।

कपोल-दुआ—पुं० दे० 'गल-तकिया'।

कप्तान—पुं० [अं० कैप्टेन] १. सेनानायक। २. खेल में प्रत्येक दल का नायक। नेता। ३. जहाज का प्रधान अधिकारी।

कप्पन—वि० [सं० कल्पन] १. काटनेवाले। २. नष्ट करनेवाले। उदा०—कालंक राइ कप्पन विरद, महन रंभ चाहंत घर।—चन्दवरदाई।

†पुं०=कफन।

कप्पर†—पुं०=कपड़ा।

कप्परिय†—पुं० [सं० कार्पटिक] कपड़ा बेचनेवाला। बजाज। (राज०)

कप्फा—पुं० [फा० कफ=झाग, गाज] १. अफीम का पसेव जिससे मदक बनता हैं। २. वह कपड़ा जिस पर (मदक बनाने के लिए) अफीम फैलाते हैं।

कफ—पुं० [सं० क√फल् (फलना)+ड] १. लेई की तरह गाढ़ा और लसीला वह तरल पदार्थ जो खाँसने पर मुँह के रास्ते बाहर निकलता है। बलगम। २. वैद्यक के अनुसार शरीर के अन्दर की एक धातु जो आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधियों में रहती है। इनके नाम क्रमशः ये है—क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मा।

पु० [अं०] कमीज या कुरते में की वह अगली तथा दोहरी सिली हुई पट्टी जिसमें बटन लगाये जाते हैं अथवा बटन लगाने के लिए छेद किये जाते है।

पुं० [फा०] १. झाग। फेन। २. लोहे का वह अर्द्ध चंद्राकार टुकड़ा जिससे ठोंककर चकमक से आग झाड़ते वा निकालते हैं। नाल।

कफ-क्षय—पुं० [प० त०] वह कफ जो क्षय या यक्ष्मा के रोगी खाँसने पर थूकते है।

कफगीर—पु० [फा०] एक प्रकार की कलछी (प्रायः लकड़ी की) जिससे किसी उबलती हुई चीज का झाग या फन निकालते हैं।

कफ-गुल्म—पुं० [प० त०] पेट में होनेवाला एक रोग।

कफघ्न—वि० [स० कफ√हन् (मारना)+टक्] (ओषधि या पदार्थ) जिससे कफ का नाश हो। कफ-नाशक।

कफ-ज्वर—पु०[मध्य० स०] कफ के विकार से होनेवाला ज्वर या बुखार।

कफन—पु० [अ०] सिला हुआ अथवा बिना सिला हुआ वह कपड़ा जिसमे शव को लपेटकर दफनाया या जलाया जाता है।

मुहा०—**कफन को कौड़ी न होना वा न रहना**=अत्यन्त दरिद्र होना। **कफन को कौड़ी न रखना**=जो कुछ कमाना वह सब खर्च कर देना। **कफन फाड़कर उठना**=(क) मुर्दे का जी उठना। (ख) सहसा उठ पड़ना। (व्यंग्य) **कफन फाड़ कर चिल्लाना**=सहसा तथा बहुत जोर से चिल्लाना या बोलना। **कफन सिर से बाँधना या लपेटना**=मरने के लिए तैयार होना।

कफन-खसोट—वि० [दे० 'कफन'+खसोट] १. (ऐसा व्यक्ति) जो शव के कपड़े तक उतार ले। २. लाक्षणिक अर्थ में बहुत ही कंजूस। लुटेरा या लोभी।

कफन-खसोटी—स्त्री० [अ० कफन+खसोटना] १. श्मशान पर मुर्दों का कफन फाड़कर लिया जानेवाला कर। २. बहुत ही बुरी तरह से धन इकट्ठा करने की वृत्ति।

कफन-चोर—पुं० [हिं० कफन+चोर] कब्र खोदकर कफन चुरानेवाला व्यक्ति। बहुत तुच्छ और दुष्ट चोर।

कफनाना—स० [अ० कफन+आना (प्रत्य०)] शव के चारों ओर कफन लपेटना।

कफनी— स्त्री० [हिं० कफन] १. वह कपड़ा जो शव के गले में लपेटा या बाँधा जाता है। २. साधुओं के पहनने का एक कपड़ा जो बिना सिला हुआ होता है।

कफल—वि० [सं० कफ+लच्] कफ से युक्त। कफवाला।

कफस—पुं० [अ०] १. पिंजरा। दरबा। २. बंदीगृह। कैदखाना। ३. बहुत तंग और सँकरी जगह। ४. शरीर या उसका पिंजर। (आध्यात्मिक पक्ष में)

कफालत—पुं० [अ०] १. जिम्मेदारी। २. जमानत।

पद—**कफालतनामा**=जमानतनामा।

कफाशय—पुं० [कफ-आशय, प० त०] शरीर के वे स्थान (जैसे—आमाशय, कंठ आदि) जिनमें कफ रहता है। (दे० 'कफ')

कफी (फिन्)—वि० [सं० कफ+इनि] १. (व्यक्ति) जिसे कफ का रोग हो। २. जो कफ से युक्त हो।

पुं० हाथी।

कफीना—पुं० [अं० कफ] जहाज के फर्श पर लगे हुए लकड़ी के तख्ते।

कफ़ील—पुं० [अ०] वह जो किसी की कफालत या जमानत करे। जमानतदार। जामिन।

कफोणि—स्त्री० [सं० क√फण् (स्फुरण होना)+इन्, पृषो० सिद्धि] कोहनी।

कफोदर—पुं० [कफ-उदर, ब० स०] पेट का एक रोग जो कफ बढ़ने से होता है।

कबंध—पुं० [सं० क√बंध् (बंधन)+अण्] १. ऐसा खाली धड़ जिसके ऊपर का सिर कट गया हो। रुंड। २. राहु नामक ग्रह जिसका सिर कटकर अलग हो चुका था। ३. पुराणानुसार एक प्रसिद्ध राक्षस जिसका सिर उसके धड़ के ऊपर नहीं, बल्कि उसके पेट के अन्दर था और जिसे रामचन्द्र ने दंडकवन में मारा था। ४. प्राचीन भारत में ऐसा योद्धा जो सिर कट जाने पर भी खाली धड़ से ही कुछ समय तक तलवार चलाता या लड़ता रहता था। ५. उदर। पेट। ६. बादल। मेघ। ७. जल। पानी। ८. एक प्रकार के केतु जो गिनती में ८ कहे गये हैं। ९. एक प्राचीन मुनि का नाम।

कबंधज—पुं० [सं० कबंध√जन् (उत्पन्न होना)+ड] वह व्यक्ति

जिसका जन्म ऐसे कुल में हुआ हो जिसके किसी पूर्वज ने सिर कट जाने पर भी धड़ से ही युद्ध किया हो। कबंध के वंशज। जैसे—जोधपुर के राठौर कबंधज हैं।

कबंधी (धिन्)—पुं० [सं० कबंध+इनि] १. मरुत्। २. कात्यायन ऋषि।

कब—अव्य० [सं० कदा] किस समय? किस वक्त? (प्रश्नात्मक)

पद—कब का, कब के, कब से=बहुत देर से। जैसे—हम कब के (या कब से) तुम्हारे आसरे बैठे हैं। कब-कब=बहुत कम। प्राय: नहीं। जैसे—हम कब-कब आपके यहाँ आते हैं? कब ऐसा हो, कब ऐसा करें=ज्योंही ऐसा हो त्योंही ऐसा करें। जैसे—कब वह मरे कब तुम मालिक बनो।

विशेष—काकु अलंकार के रूप में प्रयुक्त होने पर 'कब' का अर्थ 'कभी नहीं' या 'कदापि नहीं' हो जाता है। जैसे—बीत गये सूखे में सावन भी भादों भी, बादल तो आयेंगे, नदियाँ कब उमड़ेंगी।

कबक—पुं० [फा०] चकोर।

कबड्डी—स्त्री० [देश०] एक प्रसिद्ध भारतीय खेल जिसमें किसी स्थान को दो बराबर हिस्सों में बाँटकर दो दल अपना-अपना क्षेत्र बना लेते हैं। फिर क्रमशः एक क्षेत्र का खिलाड़ी दूसरे क्षेत्र में एक ही साँस में जाता है और विपक्षी दल के किसी खिलाड़ी को छूकर अपने क्षेत्र में लौट आने का प्रयत्न करता है।

कबर—अव्य० [कब+रे] १. किस समय। कब। २. दुबारा कब। उदा०—तुमसे हमकूं कबर मिलोगे।—मीराँ।

स्त्री० दे० 'कब्र'।

कबरा—वि०=चित-कबरा।

कबरिस्तान—पुं० [फा० कब्रिस्तान] वह स्थान जहाँ मृत शरीर या शव गाड़े जाते हैं।

कबरी—स्त्री०=कवरी (चोटी)।

कबल—अव्य० [अ० कब्ल] पहले। पूर्व। पेश्तर।

कबहुँ†—क्रि० वि०=कभी।

कबहुँक†—क्रि० वि० १. कभी। २. कभी-कभी।

कबा—पुं० [अ०] चोगे की तरह का एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा।

कबाई†—पुं०=कब।

स्त्री०=कब्र। (राज०)

कबाड—पुं० [सं० कर्पट, प्रा० कप्पट=चिथड़ा] १. टूटी-फूटी या व्यर्थ की वस्तुओं का ढेर। २. अंड-बंड काम या व्यवसाय।

कबाड़खाना—पुं० [हिं०+फा०] १. वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार की बहुत-सी टूटी-फूटी तथा व्यर्थ की वस्तुएँ रखी गई हों। २. ऐसा स्थान जहाँ बहुत-सी चीजें अव्यवस्थित रूप से बिखरी पड़ी हों।

कबाड़ा—पुं० [हिं० कबाड़] १. कूड़ा-कर्कट। २. झंझट। बखेड़ा। ३. अनुपयोगी या व्यर्थ का काम। उदा०—नहिं जानऊँ कछु अउर कबारू (कबाड़ा)।—तुलसी।

कबाड़िया—पुं० [हिं० कबाड़] १. वह जिसका व्यवसाय टूटी-फूटी या पुरानी वस्तुएँ खरीदना तथा बेचना हो। २. तुच्छ या निकृष्ट कार्य अथवा व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति।

वि० १. झगड़ालू। २. क्षुद्र। नीच।

कबाड़ी—पुं०=कबाड़िया।

कबाब—पुं० [अ०] सीकों पर भूनकर पकाया हुआ मांस।

मुहा०—कबाब करना=बहुत कष्ट या दुःख देना। संतप्त करना। जलाना। कबाब होना=क्रोध से जल-भुन जाना। जैसे—मेरी बात सुनते ही वह कबाब हो गये।

कबाब-चीनी—स्त्री० [अ० कबाबा+हिं० चीनी] एक प्रकार की झाड़ी और उसके गोल छोटे दाने जो दवा के काम आते हैं।

कबाबी—वि० [अ० कबाब] १. कबाब बनाने तथा बेचनेवाला। २. कबाब खानेवाला। मांसभक्षी। जैसे—शराबी, कबाबी।

कबाय†—=कबा (पहनावा)

कबायली—पुं० [अ०] १. काबुल का रहनेवाला व्यक्ति। (काबुली)। २. पश्चिमी पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम में कुछ फिरकों के व्यक्ति ३. किसी कबीले का आदमी। (दे. 'कबीला')

कबार—पुं० १=कबाड़। २. दे० 'कारोबार'।

पुं० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी या छोटा पेड़।

कबारना†—स०=उखाड़ना।

कबारा—पुं०=कबाड़ा।

कबाल—स्त्री० [देश०] खजूर का रेशा जिससे रस्से आदि बनते हैं।

क़बाला—पुं० [अ०] वह लेख्य जिसके द्वारा किसी की धन संपत्ति आदि का अधिकार दूसरे को मिलता हो। जैसे—बैनामा।

कबाहट†—स्त्री० दे० 'कबाहत'।

कबाहत—स्त्री० [अ०] १. बुराई। खराबी। २. कठिनता। मुश्किल। ३. अड़चन। बाधा। ४. झंझट। बखेड़ा।

कबि†—पुं०=कवि।

कबिका—स्त्री०=कविका (लगाम)।

कबित†—पुं०=कवित्त।

कबिलनवी*—स्त्री०=किबलानुमा (दिग्दर्शक यंत्र)।

कबिलास—पुं० [सं० क=स्वर्ग+विलास=ऐश्वर्य] १. स्वर्ग। उदा०—सात सहस हस्ती सिंहली। जिमि कबिलास एरापति बली।—जायसी। २. राजमहल के सब से ऊपरी भाग का वह विशिष्ट स्थान जहाँ राजा-रानी रहते थे। उदा०—सात खंड ऊपर कबिलासू।—जायसी।

कबीठ †—पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कविट्ठ] कैथ (पेड़ और फल)।

कबीर—वि० [अ०] १. महान्। श्रेष्ठ। २. वयोवृद्ध।

पुं० १. वैष्णव आचार्य रामानंद के एक प्रसिद्ध शिष्य जो ज्ञानमार्गी और संत कवि थे। इन्हीं के नाम से कबीर-पंथ नामक सम्प्रदाय चला। २. होली के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का अश्लील गाना।

कबीर-पंथी—वि० [हिं० कबीर+पंथ] १. महात्मा कबीर के सिद्धांतों को माननेवाला। २. कबीर-पंथ का सदस्य।

कबील—पुं० [अ०] १. मनुष्य। २. समुदाय।

कबीला—पुं० [अ० कबीलः] १. झुंड। समूह। २. किसी एक कुल के सब लोग। जन। ३. पश्चिमी पाकिस्तान में रहनेवाली जातियाँ जो उक्त प्रकार के कुलों या जनों में बँटी हुई है। ४. कुटुंब। परिवार। स्त्री०=पत्नी। स्त्री।

कबुलवाना—स० [हिं० कबूलना का प्रे० रूप] १. किसी को कोई बात

कबूल या स्वीकार करने में प्रवृत्त करना। २. दबाव डालकर किसी से कोई बात कहलवाना।

कबुलाना—स०=कबुलवाना।

कबूतर—पु० [फा० सं० कपोत:] [स्त्री० कबूतरी] मझोले आकार का एक प्रसिद्ध पक्षी जो कई जातियों और रंगों का होता है।

मुहा०—**कबूतर की तरह लोटना**=बहुत व्याकुल होना। तड़पना।

कबूतरखाना—पुं० [फा०] एक प्रकार की खानेदार अलमारी जिसमें बहुत-से पालतू कबूतर रखे जाते हों। बड़ा दरबा।

कबूतर-झाड़—पुं० [हिं० कबूतर+झाड़] पितपापड़े की तरह की एक झाड़ी।

कबूतरबाज—वि० [फा०] कबूतर पालने का शौकीन। कबूतर पालने तथा उड़ानेवाला।

कबूतरबाजी—स्त्री० [फा०] कबूतर पालने तथा उड़ाने की लत या शौक।

कबूतरी—स्त्री० [फा० कबूतर] १. कबूतर की मादा। २. नाचनेवाली स्त्री। नर्तकी। ३. सुंदर स्त्री। (बाजारू)

कबूद—वि० [फा०] नीला। कासनी।

पुं० ऐसा वंसलोचन जो नीले रंग का हो। नीलकंठी।

कबूदी—वि० [फा०] नीलेरंग का। आसमानी।

कबूल—पुं० [अ०] कबूलने अर्थात् मानने या स्वीकार करने की क्रिया या भाव।

कबूलना—स० [अ० कबूल+ना (प्रत्य०)] स्वीकार करना। कहीं, देखी या सुनी हुई बात को मानना। यह कहना कि हाँ ऐसा हुआ था। स्वीकार करना।

कबूलियत—स्त्री० [अ० कुबुलियत] वह स्वीकृति-पत्र जो खेत का पट्टा लेनेवाला व्यक्ति लिखकर उस व्यक्ति को देता है जिससे वह खेत का पट्टा लिखाता है।

कबूली—स्त्री० [फा०] चने की दाल और चावल के योग से बनाई खिचड़ी।

कबै†—क्रि० वि०=कभी। (व्रज)

कबौ†—क्रि० वि०=कभी। (पूरब)

कब्ज—पुं० [अ०] १. पकड़कर अधिकार में करने की क्रिया या भाव।

मुहा०—**रूह कब्ज होना**=होश गुम होना। **रूह कब्ज करना**=पकड़कर खींचना। ले जाना।

२. पेट का वह विकार जिसके कारण पाखाना साफ नहीं होता। कोष्ठवद्धता। ३. मुसलमानी शासनकाल का एक सरकारी नियम, जिसके अनुसार कोई फौजी अफसर फौज के लिए किसी ज़मींदार से लगान वसूल करता था। ४. वह राजाज्ञा जिसके अनुसार फौजी अफसर को उक्त प्रकार से रुपया वसूल करने का अधिकार मिलता था।

कब्जा—पुं० [अ० कब्ज] १. किसी वस्तु पर होनेवाला ऐसा अधिकार जिसके अनुसार उस वस्तु का उपभोग किया जाता है। (पजेशन) जैसे—खेत या मकान पर होनेवाला कब्जा। २. औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ या मुट्ठी में पकड़ा जाता है। मूठ। जैसे—कटार या तलवार का कब्जा।

मुहा०—**कब्जे पर हाथ डालना या रखना**=कटार, तलवार आदि खींचने के लिए मूठ पर हाथ रखना।

३. लोहे पीतल आदि का बना हुआ एक प्रसिद्ध उपकरण जिससे चौखट के साथ पल्ले को कसा जाता है तथा जिसके कारण पल्ला घूमता है। कोंढा। ४. उक्त प्रकार का काम देनेवाला कोई उपकरण। ५. भुजदंड। मुश्क। ६. कुश्ती का एक पेच।

कब्जादार—पुं० [फा०] १. वह अधिकारी जिसका किसी चीज पर कब्जा हो। २. दखीलकार असामी। (अवध)।

वि० (वस्तु) जिसमें कोई पल्ला खोलने और बंद करने के लिए कब्जा (कोंढा) लगा हो।

कब्जियत—स्त्री० [अ०] पेट में होनेवाला वह विकार जिसके कारण ठीक तरह से मल नहीं उतरता। कोष्ठवद्धता।

कब्जुल वसूल—पुं० [फा०] वह कागज जिस पर वसूल की हुई रकम लिखकर दी जाती है। भरपाई की रसीद।

कब्र—स्त्री० [अ०] १. शव को गाड़ने या दफनाने के लिए खोदा जाने वाला गड्ढा।

मुहा०—**कब्र का मुँह झाँकना या झाँक आना**=मरते-मरते बचना।

२. उक्त गड्ढे के ऊपर स्मृति के लिए बनाया हुआ चबूतरा।

मुहा०—**कब्र में पैर या पाँव लटकाना**=(क) बहुत बुड्ढे होना। (ख) मरण समय निकट आना। **कब्र से उठ कर आना**=मरते-मरते बचना। नया जीवन पाना।

कब्रिस्तान—पुं० [फा०] शव गाड़ने या दफनाने के लिए नियत स्थान।

कब्ल—अव्य० [अ०] १. पहले। पेश्तर। २. आगे। पूर्व।

कभी—अव्य० [हिं० कब+ही] १. किसी क्षण। किसी समय। (अज्ञात या अनिश्चित काल के संबंध में)

पद—**कभी का**=बहुत देर से। **कभी-कभी**=(क) रह-रह कर कुछ काल के अंतर पर। (ख) बहुत कम। जब-तब। **कभी-कभार**=कभी-कभी। **कभी-न-कभी**=किसी-न-किसी समय। किसी अनिश्चित अवसर पर। **कभी-कबात**=कभी-कभी।

२. किसी अवसर पर। जैसे—अब कभी ऐसा नहीं कहूँगा।

कभू*—अव्य०=कभी।

कमंगर—पुं० [फा० कमानगर] १. कमान अर्थात् धनुष बनानेवाला कारीगर। २. खिसकी या टूटी हुई हड्डियाँ बैठानेवाला चिकित्सक। ३. चितेरा। चित्रकार।

†वि० किसी कला में प्रवीण। निपुण।

कमंगरी—स्त्री० [फा० कमानगर] १. कमान (धनुष) बनाने की कला या विद्या। २. खिसकी या टूटी हुई हड्डी बैठाने का काम। ३. चित्रकारी। ४. कार्य-कुशलता। निपुणता। ५. कारीगरी।

कमंचा—पुं० [फा० कमानचः] बढ़इयों का (कमान की तरह का) एक उपकरण जिसकी रस्सी में बरमा लपेटकर उसे घुमाते हैं।

कमंडल—पुं० [सं० कमंडलु] १. दरियाई नारियल का बना हुआ एक प्रकार का जल-पात्र। २. उक्त आकार-प्रकार का ताँबे, पीतल आदि का बना हुआ पात्र।

कमंडली—वि० [हिं० कमंडल+ई (प्रत्य०)] १. (साधु) जो हाथ में कमंडल रखता हो। २. पाखंडी। आडंबरी।

पुं० ब्रह्मा।

कमंडलु—पुं० [सं० क—मंड, ष० त०, कमंड√ला (लेना)+डु]=कमंडल।

कमंद—स्त्री० [फा० खमंद] १. एक प्रकार का फंदा जिसकी सहायता से जंगली पशु आदि फँसाए जाते है। २. वह रस्सा जिसके सहारे चोर, डाकू आदि ऊँचे मकानों पर चढ़ते हैं। फंदा।
*पुं०=कवंध।

कम—वि० [फा०] १. मान, मात्रा, विस्तार आदि के विचार से जो किसी से घटकर या थोड़ा हो। 'अधिक' का विपर्याय।
मुहा०—**कम करना**=(क) थोड़ा करना। घटाना। (ख) गणित में बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाकर बाकी निकालना।
२. जो उतना न हो जितना साधारणतया होता हो या होना चाहिए। जितना अपेक्षित या आवश्यक हो, उससे घटकर या थोड़ा।
पद—**कम-से-कम**=जितना कम हो सकता हो।
३. बुरा। (यौ० के आरंभ में) जैसे—कम्बख्त।
अव्य० इतने थोड़े अवसरों पर कि प्रायः नहीं के बराबर। बहुधा नहीं। जैसे—ऐसा बहुत कम होता है।

कम-अक्ल—वि० [फा० कम+अक्ल] १. कम बुद्धिवाला। २. बुद्धिहीन।

कम असल—वि० [फा० कम+अ० अस्ल] १. नीच कुल में उत्पन्न। २. दोगला। वर्णसंकर।

कमकर—पुं० [सं० कर्मकार या हिं० काम+करना] १. काम, विशेषतः सेवा-संबंधी छोटे-मोटे काम करनेवाला। (लेबरर) जैसे—कहार, हलवाहे आदि। २. दे० 'कर्मकार'।

कमकस—वि० [हिं० काम+कसर] १. काम में कसर करनेवाला। ठीक प्रकार से काम न करनेवाला। २. आलसी। सुस्त।

कमखर्च—वि० [फा०] [भाव० कम-खर्ची] कम या थोड़ा खर्च करने वाला। किफायत से काम चलानेवाला। मितव्ययी।

कमखाब—पुं० [फा० कमख्वाब] एक प्रकार का मोटा रंगीन, बूटी-दार रेशमी कपड़ा।

कमखुराक—वि० [फा०+अ०] कम खानेवाला। मिताहारी।

कमखोरा—पुं० [फा० कम+अ० खोर] चौपायों के मुँह में होनेवाला एक रोग जिसमे वे खा नहीं सकते।

कमचा—पु० [हिं० कमची] बड़ी कमची।
पुं०=कमंचा।

कमची—स्त्री० [सं० कंचिका] १. बाँस आदि की पतली लचीली टहनियाँ अथवा उनकी काटी हुई पट्टियाँ जिनसे टोकरियाँ पंखे आदि बनाये जाते हैं। २. पतली लचीली छड़ी। ३. टीन, कच्चे लोहे आदि की वह दिखावटी तलवार जो अभ्यास, खेल-तमाशे आदि मे काम आती है।
मुहा०—**कमची तानना**=(क) डराना धमकाना। (ख) बंदर-घुड़की देना।

कमच्छा—स्त्री० = कामाख्या

कमजोर—वि० [फा०] १. जिसमें जोर या बल कम हो। अधिक काम करने या चलने-फिरने में असमर्थ। २. जो किसी कला या कार्य में प्रथम-स्तर से घटकर या नीचे हो। जैसे—लिखने-पढ़ने में कमजोर लड़का। ३. लाक्षणिक अर्थ में जिसमें आत्मबल न हो या कम हो।

कमजोरी—स्त्री० [फा०] कमजोर होने की अवस्था या भाव।

कमटा—पुं० [देश०] एक प्रकार का काँटेदार छोटा पौधा।

कमठ—पुं० [सं०√कम्+अठन्] [स्त्री० कमठी] १. कछुआ। २. बाँस। ३. साधुओं का तूँबा। ४. चमड़े में मढ़ा हुआ एक प्रकार का पुराना बाजा।

कमठा—पुं० [सं० कमठ+टाप्] १. कछुआ। २. बड़ी छड़ी या लाठी।

कमठी—स्त्री० [सं० कमठ=बाँस] बाँस की काटी हुई वे पतली लचीली धज्जियाँ या पट्टियाँ जिनसे टोकरियाँ, पंखे आदि बनाये जाते हैं।
पुं० [सं० कमठ+ङीप्] कछुई।
स्त्री०=कमची।

कमती—† वि०=कम।
स्त्री०=कमी।

कमध‡—पुं०=कवंध (बिना सिर का धड़)।

कमधुज—पुं० [हिं० कबंधज] १. वह योद्धा जो सिर कट जाने पर भी अपने धड़ से लड़ता रहा हो। २. उक्त योद्धा के वंशज।

कमन—वि० [स०√कम्+णिङ—युच्] कमनीय। सुंदर। उदा०—जाही कमन रूप सब चाहैं।—जायसी।
पुं०=कामदेव।

कमनचा—पु०=कमंचा।

कमनसीब—वि० [फा०+अ०] जिसका नसीब या भाग्य अच्छा न हो। बद-किस्मत।

कमना—अ० [फा० कम] (किसी वस्तु का) आवश्यकता से कम पड़ना या कम होना। थोड़ा होना।

कमनी †—वि०=कमनीय

कमनीय—वि० [सं०√कम् (कामना करना)+अनीयर्] १. जिसकी या जिसके लिए कामना की जाय या की जा सके। चाहने योग्य। २. सुंदर।

कमनैत—पुं० [फा० कमान+हिं० ऐत (प्रत्य०)] कमान या धनुष चलाने में निपुण व्यक्ति।

कमनैती—स्त्री० [फा० कमान+हिं० ऐती (प्रत्य०)] कमान या धनुष चलाने की कला या विद्या।

कमबख्त—वि० [फा०] १. अभागा। भाग्यहीन। २. बुरे भाग्यवाला। (अभिशाप या गाली के रूप में प्रयुक्त)

कम-बख्ती—स्त्री० [फा०] १. भाग्यहीनता। अभाग्य। २. दुर्भाग्य।

कमरंग—पुं०=कमरख (फल)।

कमर—स्त्री० [फा०] १. मनुष्यों के शरीर का वह पतला मध्य भाग जो पेट और चूतड़ के बीच में होता है।
मुहा०—**कमर कसना**=(क) कोई काम करने के लिए उद्यत या प्रस्तुत होना। (ख) उतारू या कटिबद्ध होना। **कमर खोलना**=(क) थक जाने पर विश्राम करना। (ख) निराश या हताश होने पर किसी काम से विरत होना। **कमर टूटना**=किसी प्रकार के मानसिक आघात आदि के कारण शक्ति या साहस न रह जाना। **कमर तोड़ना**=किसी को ऐसा आघात या हानि पहुँचाना कि उसमें शक्ति या साहस न रह जाय। **कमर बाँधना**=कमर कसना (दे०)। **कमर बैठ जाना**=कमर टूटना (दे०)। **कमर सीधी करना**=निरंतर बहुत परिश्रम करते रहने के बाद विश्राम करने के लिए लेटना।
२. पशु-पक्षियों आदि के शरीर का मध्य भाग। जैसे—शेर या हिरन की कमर।

कबूल या स्वीकार करने में प्रवृत्त करना। २. दवाव डालकर किसी से कोई बात कहलवाना।

कबुलाना—स०=कबुलवाना।

कबूतर—पु० [फा० सं० कपोतः] [स्त्री० कबूतरी] मझोले आकार का एक प्रसिद्ध पक्षी जो कई जातियों और रंगों का होता है।

मुहा०—**कबूतर की तरह लोटना**=बहुत व्याकुल होना। तड़पना।

कबूतरखाना—पुं० [फा०] एक प्रकार की खानेदार अलमारी जिसमें बहुत-से पालतू कबूतर रखे जाते हों। बड़ा दरबा।

कबूतर-झाड़—पुं० [हिं० कबूतर+झाड़] पितपापड़े की तरह की एक झाड़ी।

कबूतरबाज—वि० [फा०] कबूतर पालने का शौकीन। कबूतर पालने तथा उड़ानेवाला।

कबूतरबाजी—स्त्री० [फा०] कबूतर पालने तथा उड़ाने की लत या शौक।

कबूतरी—स्त्री० [फा० कबूतर] १. कबूतर की मादा। २. नाचनेवाली स्त्री। नर्त्तकी। ३. सुंदर स्त्री। (बाजारू)

कबूद—वि० [फा०] नीला। कासनी।

पुं० ऐसा बंसलोचन जो नीले रंग का हो। नीलकंठी।

कबूदी—वि० [फा०] नीलेरंग का। आसमानी।

कबूल—पुं० [अ०] कबूलने अर्थात् मानने या स्वीकार करने की क्रिया या भाव।

कबूलना—स० [अ० कबूल+ना (प्रत्य०)] स्वीकार करना। कहीं, देखी या सुनी हुई बात को मानना। यह कहना कि हाँ ऐसा हुआ था। स्वीकार करना।

कबूलियत—स्त्री० [अ० कुबुलियत] वह स्वीकृति-पत्र जो खेत का पट्टा लेनेवाला व्यक्ति लिखकर उस व्यक्ति को देता है जिससे वह खेत का पट्टा लिखाता है।

कबूली—स्त्री० [फा०] चने की दाल और चावल के योग से बनाई खिचड़ी।

कबै†—क्रि० वि०=कभी। (ब्रज)

कबौं†—क्रि० वि०=कभी। (पूरब)

कब्ज—पुं० [अ०] १. पकड़कर अधिकार में करने की क्रिया या भाव।

मुहा०—**रूह कब्ज होना**=होश गुम होना। **रूह कब्ज करना**=पकड़कर खीचना। ले जाना।

२. पेट का वह विकार जिसके कारण पाखाना साफ नही होता। कोष्ठबद्धता। ३. मुसलमानी शासनकाल का एक सरकारी नियम, जिसके अनुसार कोई फौजी अफसर फौज के लिए किसी ज़मींदार से लगान वसूल करता था। ४. वह राजाज्ञा जिसके अनुसार फौजी अफसर को उक्त प्रकार से रुपया वसूल करने का अधिकार मिलता था।

कब्जा—पु० [अ० कब्ज] १. किसी वस्तु पर होनेवाला ऐसा अधिकार जिसके अनुसार उस वस्तु का उपभोग किया जाता है। (पजेशन) जैसे—खेत या मकान पर होनेवाला कब्जा। २. औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ या मुट्ठी में पकड़ा जाता है। मूठ। जैसे—कटार या तलवार का कब्जा।

मुहा०—**कब्जे पर हाथ डालना या रखना**=कटार, तलवार आदि खींचने के लिए मूठ पर हाथ रखना।

३. लोहे पीतल आदि का बना हुआ एक प्रसिद्ध उपकरण जिससे चौखट के साथ पल्ले को कसा जाता है तथा जिसके कारण पल्ला घूमता है। कोंढा। ४. उक्त प्रकार का काम देनेवाला कोई उपकरण। ५. भुजदंड। मुश्क। ६. कुश्ती का एक पेच।

कब्जादार—पुं० [फा०] १. वह अधिकारी जिसका किसी चीज पर कब्जा हो। २. दखीलकार असामी। (अवध)।

वि० (वस्तु) जिसमें कोई पल्ला खोलने और बंद करने के लिए कब्जा (कोंढा) लगा हो।

कब्जियत—स्त्री० [अ०] पेट में होनेवाला वह विकार जिसके कारण ठीक तरह से मल नहीं उतरता। कोष्ठबद्धता।

कब्जुल वसूल—पुं० [फा०] वह कागज जिस पर वसूल की हुई रकम लिखकर दी जाती है। भरपाई की रसीद।

कब्र—स्त्री० [अ०] १. शव को गाड़ने या दफनाने के लिए खोदा जाने वाला गड्ढा।

मुहा०—**कब्र का मुँह झाँकना या झाँक आना**=मरते-मरते बचना।

२. उक्त गड्ढे के ऊपर स्मृति के लिए बनाया हुआ चबूतरा।

मुहा०—**कब्र में पैर या पाँव लटकाना**=(क) बहुत बुड्ढे होना। (ख) मरण समय निकट आना। **कब्र से उठ कर आना**=मरते मरते बचना। नया जीवन पाना।

कब्रिस्तान—पुं० [फा०] शव गाड़ने या दफनाने के लिए नियत स्थान।

कब्ल—अव्य० [अ०] १. पहले। पेश्तर। २. आगे। पूर्व।

कभी—अव्य० [हिं० कब+ही] १. किसी क्षण। किसी समय। (अज्ञात या अनिश्चित काल के संबंध में)

पद—**कभी का**=बहुत देर से। **कभी-कभी**=(क) रह-रह कर कुछ काल के अंतर पर। (ख) बहुत कम। जब-तब। **कभी-कभार**=कभी-कभी। **कभी-न-कभी**=किसी-न-किसी समय। किसी अनिश्चित अवसर पर। **कभी-कबात**=कभी-कभी।

२. किसी अवसर पर। जैसे—अब कभी ऐसा नहीं करूँगा।

कभू*—अव्य०=कभी।

कमंगर—पुं० [फा० कमानगर] १. कमान अर्थात् धनुष बनानेवाला कारीगर। २. खिसकी या टूटी हुई हड्डियाँ बैठानेवाला चिकित्सक। ३. चितेरा। चित्रकार।

†वि० किसी कला में प्रवीण। निपुण।

कमंगरी—स्त्री० [फा० कमानगर] १. कमान (धनुष) बनाने की कला या विद्या। २. खिसकी या टूटी हुई हड्डी बैठाने का काम। ३. चित्र-कारी। ४. कार्य-कुशलता। निपुणता। ५. कारीगरी।

कमंचा—पुं० [फा० कमानचः] बढ़इयों का (कमान की तरह का) एक उपकरण जिसकी रस्सी में बरमा लपेटकर उसे घुमाते हैं।

कमंडल—पुं० [सं० कमंडलु] १. दरियाई नारियल का बना हुआ एक प्रकार का जल-पात्र। २. उक्त आकार-प्रकार का ताँबे, पीतल आदि का बना हुआ पात्र।

कमंडली—वि० [हिं० कमंडल+ई (प्रत्य०)] १. (साधु) जो हाथ में कमंडल रखता हो। २. पाखंडी। आडंबरी।

पुं० ब्रह्मा।

कमंडलु—पुं० [सं० क—मंड, ष० त०, कमंड√ला (लेना)+डु]=कमंडल।

कमंद—स्त्री० [फा० खमंद] १. एक प्रकार का फंदा जिसकी सहायता से जंगली पशु आदि फँसाए जाते हैं। २. वह रस्सा जिसके सहारे चोर, डाकू आदि ऊँचे मकानों पर चढ़ते हैं। फंदा।
*पुं०=कबंध।

कम—वि० [फा०] १. मान, मात्रा, विस्तार आदि के विचार से जो किसी से घटकर या थोड़ा हो। 'अधिक' का विपर्याय।
मुहा०—**कम करना**=(क) थोड़ा करना। घटाना। (ख) गणित में बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाकर बाकी निकालना।
२. जो उतना न हो जितना साधारणतया होता हो या होना चाहिए। जितना अपेक्षित या आवश्यक हो, उससे घटकर या थोड़ा।
पद—**कम-से-कम**=जितना कम हो सकता हो।
३. बुरा। (यौ० के आरंभ में) जैसे—कम्बख्त।
अव्य० इतने थोड़े अवसरों पर कि प्रायः नहीं के बराबर। बहुधा नहीं। जैसे—ऐसा बहुत कम होता है।

कम-अक्ल—वि० [फा० कम+अक्ल] १. कम बुद्धिवाला। २. बुद्धिहीन।

कम असल—वि० [फा० कम+अ० अस्ल] १. नीच कुल में उत्पन्न। २. दोगला। वर्णसंकर।

कमकर—पुं० [सं० कर्मकार या हिं० काम+करना] १. काम, विशेषतः सेवा-संबंधी छोटे-मोटे काम करनेवाला। (लेबरर) जैसे—कहार, हलवाहे आदि। २. दे० 'कर्मकार'।

कमकस—वि० [हिं० काम+कसर] १. काम में कसर करनेवाला। ठीक प्रकार से काम न करनेवाला। २. आलसी। सुस्त।

कमखर्च—वि० [फा०] [भाव० कम-खर्ची] कम या थोड़ा खर्च करने वाला। किफायत से काम चलानेवाला। मितव्ययी।

कमखाब—पुं० [फा० कमख्वाब] एक प्रकार का मोटा रंगीन, बूटीदार रेशमी कपड़ा।

कमखुराक—वि० [फा०+अ०] कम खानेवाला। मिताहारी।

कमखोरा—पुं० [फा० कम+अ० खोर] चौपायों के मुँह में होनेवाला एक रोग जिसमें वे खा नहीं सकते।

कमचा—पुं० [हिं० कमची] बड़ी कमची।
पुं०=कमंचा।

कमची—स्त्री० [सं० कंचिका] १. बाँस आदि की पतली लचीली टहनियाँ अथवा उनकी काटी हुई पट्टियाँ जिनसे टोकरियाँ पंखे आदि बनाये जाते हैं। २. पतली लचीली छड़ी। ३. टीन, कच्चे लोहे आदि की वह दिखावटी तलवार जो अभ्यास, खेल-तमाशे आदि में काम आती है।
मुहा०—**कमची तानना**=(क) डराना धमकाना। (ख) बंदर-घुड़की देना।

कमच्छा—स्त्री० = कामाख्या

कमजोर—वि० [फा०] १. जिसमें जोर या बल कम हो। अधिक काम करने या चलने-फिरने में असमर्थ। २. जो किसी कला या कार्य में प्रथम-स्तर से घटकर या नीचे हो। जैसे—लिखने-पढ़ने में कमजोर लड़का। ३. लाक्षणिक अर्थ में जिसमें आत्मबल न हो या कम हो।

कमजोरी—स्त्री० [फा०] कमजोर होने की अवस्था या भाव।

कमटा—पुं० [देश०] एक प्रकार का काँटेदार छोटा पौधा।

कमठ—पुं० [सं०√कम्+अठन्] [स्त्री० कमठी] १. कछुआ। २. बाँस। ३. साधुओं का तूँबा। ४. चमड़े में मढ़ा हुआ एक प्रकार का पुराना बाजा।

कमठा—पुं० [सं० कमठ+टाप्] १. कछुआ। २. बड़ी छड़ी या लाठी।

कमठी—स्त्री० [सं० कमठ=बाँस] बाँस की काटी हुई वे पतली लचीली धज्जियाँ या पट्टियाँ जिनसे टोकरियाँ, पंखे आदि बनाये जाते हैं।
पुं० [सं० कमठ+ङीप्] कछुई।
स्त्री०=कमची।

कमती—† वि०=कम।
स्त्री०=कमी।

कमध‡—पुं०=कबंध (बिना सिर का धड़)।

कमधुज—पुं० [हिं० कबंधज] १. वह योद्धा जो सिर कट जाने पर भी अपने धड़ से लड़ता रहा हो। २. उक्त योद्धा के वंशज।

कमन—वि० [सं०√कम्+णिङ—युच्] कमनीय। सुंदर। उदा०—जाही कमन रूप सब चाहै।—जायसी।
पुं०=कामदेव।

कमनचा—पुं०=कमंचा।

कमनसीब—वि० [फा०+अ०] जिसका नसीब या भाग्य अच्छा न हो। बद-किस्मत।

कमना—अ० [फा० कम] (किसी वस्तु का) आवश्यकता से कम पड़ना या कम होना। थोड़ा होना।

कमनी †—वि०=कमनीय

कमनीय—वि० [सं०√कम् (कामना करना)+अनीयर्] १. जिसकी या जिसके लिए कामना की जाय या की जा सके। चाहने योग्य। २. सुंदर।

कमनैत—पुं० [फा० कमान+हिं० ऐत (प्रत्य०)] कमान या धनुष चलाने में निपुण व्यक्ति।

कमनैती—स्त्री० [फा० कमान+हिं० ऐती (प्रत्य०)] कमान या धनुष चलाने की कला या विद्या।

कमबख्त—वि० [फा०] १. अभागा। भाग्यहीन। २. बुरे भाग्यवाला। (अभिशाप या गाली के रूप में प्रयुक्त)

कम-बख्ती—स्त्री० [फा०] १. भाग्यहीनता। अभाग्य। २. दुर्भाग्य।

कमरंग—पुं०=कमरख (फल)।

कमर—स्त्री० [फा०] १. मनुष्यों के शरीर का वह पतला मध्य भाग जो पेट और चूतड़ के बीच में होता है।
मुहा०—**कमर कसना**=(क) कोई काम करने के लिए उद्यत या प्रस्तुत होना। (ख) उतारू या कटिबद्ध होना। **कमर खोलना**=(क) थक जाने पर विश्राम करना। (ख) निराश या हताश होने पर किसी काम से विरत होना। **कमर टूटना**=किसी प्रकार के मानसिक आघात आदि के कारण शक्ति या साहस न रह जाना। **कमर तोड़ना**=किसी को ऐसा आघात या हानि पहुँचाना कि उसमें शक्ति या साहस न रह जाय। **कमर बाँधना**=कमर कसना (दे०)। **कमर बैठ जाना**=कमर टूटना (दे०)। **कमर सीधी करना**=निरंतर बहुत परिश्रम करते रहने के बाद विश्राम करने के लिए लेटना।
२. पशु-पक्षियों आदि के शरीर का मध्य भाग। जैसे—शेर या हिरन की कमर।

मुहा०—कमर करना=(क) घोड़ों आदि का अपनी कमर इस प्रकार उछालना या हिलाना कि सवार हिल जाय या गिरने लगे। (ख) कबूतरों आदि का कलाबाजी करना।
३. किसी वस्तु के बीच का पतला मध्य भाग। जैसे—झारी की कमर।
वि० [सं०√कम्+अरच्] १. इच्छुक। २. कामुक।

कमरकस—पुं० [हिं० कमर+फा० कश] पलास का गोंद जो पुरुषों के लिए पुंसत्व वर्द्धक और पौष्टिक माना गया है।

कमर कोटा—पुं० दे० 'कमर वल्ला'।

कमरख—पुं० [सं० कर्मरंग, पा० कम्मरंग] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसमें फाँकोंवाले पीले लंबोतरे फल लगते हैं। २. उक्त वृक्ष के फल जो बहुत खट्टे होते हैं।

कमरखी—वि० [हिं० कमरख] १. कमरख-संबंधी। २. कमरख के रंग का अर्थात् पीला। ३. (ऐसी वस्तु या रचना) जिसमें कमरख के फल की तरह फाँकें बनी हों। उभरी हुई फाँकोंवाला। जैसे—कमरखी हाँडी।
पुं० १. कमरख के रंग की तरह का पीला रंग। २. वस्तु आदि में कमरख की उभरी हुई फाँकों की तरह की बनावट या रचना।

कमरचंडी—स्त्री० [फा० कमर+सं० चंडी] तलवार। (डिं०)।

कमर तेगा—पुं० [फा० कमर+हिं० तेग] कुश्ती का एक दाँव या पेंच।

कमर तोड़—पुं० [फा० कमर+हिं० तोड़ना] १. कुश्ती का एक पेंच। २. एक प्रकार की ओषधि जो स्त्रियों के लिए पौष्टिक मानी गई है।

कमर दोआल—स्त्री० [फा० कमर+दोआल] चमड़े का वह तसमा जिससे घोड़े की पीठ पर जीन आदि कसी जाती है।

कमर पट्टी—स्त्री० [फा० कमर+हिं० पट्टी] १. वह पट्टी जो पहनने के कपड़ों के उस भाग में लगाई जाती है जो कमर पर पड़ता है। २. दे० 'कमरबंद'।

कमरपेटा—पुं० [फा० कमर+हिं० पेटा] १. मालखंभ की एक प्रकार की कसरत। २. कुश्ती का एक दाँव या पेच।

कमरबंद—पुं० [फा०] १. लंबा कपड़ा जिससे कमर बाँधते हैं। पटुका। २. कमर में बाँधने का तसमा या फीता। पेटी। ३. इजारबंद। नाड़ा। ४. किसी चीज के बीच में बाँधी जानेवाली डोरी या रस्सी। ५. वह रस्सा जिससे एक जहाज दूसरे जहाज के साथ बाँधा जाता है। (लश०)

कमरबंध—पुं० [फा० कमर+हिं० बाँधना] १. कमरबंद। २. कुश्ती का एक पेंच।

कमरबल्ला—पुं० [फा० कमर+बल्ला] १. खपड़े की छाजन में वह लकड़ी जो मध्य भाग में रहती है। कमरबस्ता। कमरबड़ेरा। २. ऊँची और बड़ी दीवारों में टेक या सहारा देने के लिए उस के साथ सटाकर बनाई छोटी ढालुआँ दीवार। पुश्ता।

कमरबस्ता—वि० [फा०] जो कमर कस या बाँध कर कोई काम करने के लिए तैयार हो। कटि-बद्ध।
†पुं० दे० 'कमर बल्ला'।

कमरा—पुं० [लै० कैमेरा] १. किसी इमारत या भवन का वह अंश या विभाग जो चारों ओर से दीवारों आदि से घिरा हो तथा ऊपर से छाया हो। बड़ी कोठरी।
पुं० दे० 'कैमरा'।
†पुं०=कंवल।

कमरिया—पुं० [फा० कमर] एक प्रकार का नाटा पर बलिष्ठ हाथी।
†स्त्री०=कमली (छोटा कंबल]
†स्त्री०=कमर।

कमरी—पुं० [हिं० कमर] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनकी पीठ काँपने लगती है और वे बोझ नहीं सह सकते।
†स्त्री०=कमली (छोटा कंबल)।
†स्त्री० [हिं० कमर] १. कमर या बीचवाले भाग में बाँधी जानेवाली रस्सी या और कोई चीज। २. छोटी कुरती।

कमरेंगा—पुं० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

कमल—पुं० [सं०√कम्+णिङ्+कलच्] १. जलाशयों में होनेवाला एक प्रसिद्ध पौधा तथा उसके फूल जो चौड़ी पंखुड़ियोंवाले तथा अति मनोहर और सुगंधित होते हैं।
मुहा०—(किसी का) कमल खिलना=प्रसन्न होना।
२. उक्त फूल के आकार का एक मांस-पिंड जो पेट में दाहिनी ओर होता है। क्लोम। ३. हठयोग के अनुसार शरीर के अंदर के कुछ विशिष्ट स्थान जो चक्र कहलाते हैं। (दे० 'चक्र') ४. आँख का डेला। ५. एक प्रकार का पित्त रोग जिसमें सारा शरीर विशेषतः आँखें पीली पड़ जाती हैं। पीलिया। पीलू। (जान्डाइस) ६. योनि के अंदर की एक गाँठ जिसका आकार कमल के फूल का-सा होता है।
मुहा०—कमल उलट जाना=बच्चेदानी का मुँह उलट जाना।
७. मूत्राशय। ८. संगीत में ध्रुवताल का एक प्रकार या भेद। ९. एक राग जो दीपक राग का पुत्र कहा गया है। १०. छः मात्राओं का एक छंद। ११. छप्पय का एक प्रकार या भेद। १२. जल। पानी। १३. ताँबा। १४. शीशे का बना हुआ एक प्रकार का फूलदार आधान जिसमें मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं। १५. ऐसा रत्न-खंड जिसमें कमल के फूल की तरह पहल कटे हों।

कमल-अंडा—पुं०=कमलगट्टा।

कमल-कंद—पुं० [ष० त०] कमल की जड़ जिसकी तरकारी बनाई जाती है। भसींड।

कमलक—पुं० [सं० कमल+कन्] छोटा कमल।

कमल-ककड़ी—स्त्री० [सं० कमल+हिं० ककड़ी] कमल का डंठल या नाल। भसींड।

कमल-गट्टा—पुं० [सं० कमल+हिं० गट्टा] कमल के बीज जिनके अंदर मीठी गरी या गूदा होता है।

कमल-गर्भ—पुं० [ष० त०] कमल का छत्ता जिसमें बहुत-से बीज होते हैं।

कमलज—पुं० [सं० कमल√जन्+ड] ब्रह्मा।

कमल-नयन—वि० [ब० स०] जिसके नयन कमल की पंखड़ियों के समान लंबे तथा सुंदर हों। बहुत ही सुंदर नेत्रोंवाला।
पुं० विष्णु।

कमल-नाभ—पुं० [ब० स०] विष्णु।

कमल-नाल—स्त्री० [ष० त०] कमल का डंठल या नाल जिसकी तरकारी बनती है। भसींड।

कमल-बंध—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसमें किसी छंद

के अक्षर इस प्रकार सजाये जा सकते हैं कि कमल की-सी आकृति बन जाय।

कमल-बंधु—पुं० [ष० त०] सूर्य।

कमल-बाई—स्त्री० [हिं० कमल+बाई (वायु)] कमल या पीलिया नामक रोग।

कमल-भव—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।

कमल-भू—पुं० [सं० कमल√भू (होना)+क्विप्] ब्रह्मा।

कमल-योनि—पुं० [ब० स०] ब्रह्मा।

कमल-वन—पुं० [ष० त०] वह स्थान जहाँ बहुत-से ऐसे जलाशय हों जिनमें कमल खिले हों।

कमल-वायु—स्त्री० [कर्म० स० ?] कमल या पीलिया नामक रोग।

कमला—स्त्री० [सं० कमल+टाप्] १. लक्ष्मी। २. एक प्रकार का वर्ण-वृत्त जिसे रति-पद भी कहते हैं।

पुं० १. बड़ी नारंगी। संतरा। २. पौधों आदि में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा। ३. दे० 'ढोला' (कीड़ा)।

†पुं० [सं० क्रमेलक] ऊँट। (राज०)

कमलाकर—पुं० [कमल-आकर, ष० त०] कमलों से भरा हुआ जलाशय।

कमला-कांत—पुं० [ष० त०] विष्णु।

कमलाकार—वि० [कमल-आकार, ब० स०] जिसका आकार कमल की तरह हो।

पुं० छप्पय नामक छंद का एक भेद या प्रकार।

कमलाक्ष—वि० [कमल-अक्षि, ब० स०] [स्त्री० कमलाक्षी] कमल के समान आँखोंवाला। कमल नयन।

पुं० कमल-गट्टा।

कमलाग्रजा—स्त्री० [कमला-अग्रजा, ष० त०] लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा।

कमला-पति—पुं० [ष० त०] लक्ष्मी के पति अर्थात् विष्णु।

कमलालया—स्त्री० [कमल-आलय, ब० स०, टाप्] लक्ष्मी जिसका आसन कमल है।

कमलावती—स्त्री० [सं० कमल+मतुप्, ङीप्] पद्मावती छंद का दूसरा नाम।

कमलासन—पुं० [कमल-आसन, ब० स०] १. ब्रह्मा। २. दे० 'पद्मासन' (योग का एक आसन)।

कमलिनी—स्त्री० [सं० कमलिन्+ङीप्] १. छोटा कमल। २. वह जलाशय या ताल जिसमें कमल फूले हों।

कमलिनी-कांत—पुं० [ष० त०] सूर्य।

कमली (लिन्)—पुं० [सं० कमल+इनि] ब्रह्मा।

स्त्री० दे० 'कुमुदिनी'।

स्त्री० [हिं० कंबल] छोटा और हलका कंबल, विशेषतः साधुओं आदि के ओढ़ने का कंबल।

कमलेक्षण—पुं० [सं० कमल-ईक्षण, ब० स०] विष्णु।

कमलेच्छन—पुं० [सं० कमलेक्षण] विष्णु। उदा०—'चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के'।—सेनापति।

कमलेश—पुं० [कमल-ईश, ष० त०] १. कमलों के स्वामी, सूर्य। २. कमला या लक्ष्मी के स्वामी, विष्णु।

कमवाना—स० [हिं० कमाना का प्रे० रूप] कमाने का काम किसी दूसरे से कराना। (दे० 'कमाना')

कमसिन—वि० [फा०] [भाव० कमसिनी] अल्प वयस्क। छोटी उमर का।

कमसिनी—स्त्री० [फा०] कम-सिन या अल्प-वयस्क होने की अवस्था या भाव।

कमहा†—पुं० [हिं० काम+हा (प्रत्य०)] १. बहुत काम करनेवाला। कर्मठ। २. दे० 'कमेरा'।

कमाइच†—स्त्री०=कमाची।

कमाई—स्त्री० [हिं० कमाना] १. कमाने की क्रिया या भाव। २. वह जो कुछ कमाया जाय। उपार्जित किया हुआ धन या संपत्ति। ३. कोई अर्जित तत्त्व या वस्तु। जैसे—पिछले जनम की कमाई।

कमाऊ—वि० [हिं० कमाना] धन उपार्जन करनेवाला। रुपया कमाने या पैदा करनेवाला।

कमागर†—पुं० =कमंगर। (कमान बनानेवाला।)

कमाच—पुं० [देश०] १. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। २. दे० 'कौंछ'

कमाची†—स्त्री १=कमची। २. =कमानी।

कमान—स्त्री० [फा०] १. धनुष।

मुहा०—(किसीकी) कमान चढ़ना=(क) यथेष्ट उन्नति, प्रभुत्व आदि का समय होना। (ख) त्यौरी में बल पड़ना। आँखें चढ़ाना। (क्रोध-सूचक) २. इंद्र-धनुष। ३. मेहराब। ४. बंदूक। ५. तोप। ६. मालखंभ की एक कसरत। ७. कालीन बुनने वालों का एक औजार। ८. ज्योतिषियों का एक यंत्र जिससे तारों की बीच की पारस्परिक दूरी नापी जाती है।

स्त्री० [अं० कमांड] १. आदेश। हुकुम। २. सैनिक सेवाओं से संबंध रखनेवाली आज्ञा या आदेश। ३. सैनिक कर्त्तव्य और सेना। जैसे—सैनिकों का कमान पर जाना।

मुहा०—कमान बोलना=सैनिकों को नौकरी या लड़ाई पर जाने की आज्ञा देना।

कमानगर†—पुं० [भाव० कमानगरी]=कमंगर।

कमानचा—पुं० [फा०] १. छोटी कमान। २. सारंगी आदि बजाने की कमानी। ३. रूई धुनने की धुनकी। ४. मेहराब।

कमानदार—पुं० [अं० कमांड+फा० दार] सैनिक अधिकारी। फौजी अफसर।

वि०=मेहराबदार।

कमाना—स० [सं० क्रम; प्रा० कम्मवण; दे० प्रा० कम्मवइ; गु० कमावूं; सिं० कमनु; मरा० कमविणें] १. कुछ काम (उद्यम या व्यापार-व्यवसाय) करके उसके द्वारा इस प्रकार आर्थिक लाभ करना कि उससे खाने-पीने आदि का खर्च चले। उपार्जन करना। २. धार्मिक क्षेत्र में, अच्छे-बुरे आचरणों आदि के द्वारा शुभ या अशुभ फल देने वाले कर्म संचित करना। जैसे पाप या पुण्य कमाना। ३. उद्यम, परिश्रम आदि करके किसी चीज को अधिक उपयोगी अथवा ठीक तरह और पूरा काम देने के योग्य बनाना। जैसे—खेत, चमड़ा या लकड़ी कमाना।

विशेष—प्रायः इस शब्द का प्रयोग तुच्छ सेवा-संबंधी कार्यों के लिए

होता है। जैसे—कसब कमाना=वेश्यावृत्ति के द्वारा धन उपार्जित करना।

दाढ़ी कमाना=मूँड़ना। पाखाना कमाना=पाखाने का मल उठाकर कहीं दूर फेंकने के लिए ले जाना आदि।

४. (स्त्री का) वेश्यावृत्ति करके धन उपार्जित करना।

†स० [फा० कम] कम करना। घटाना। जैसे—किसी चीज का दाम कमाना=कम करना।

कमानियर—पुं० [अं० कमांडर] सैनिक अधिकारी। फौजी अफसर।

कमानिया—पुं० [फा० कमान] कमान या धनुष चलानेवाला व्यक्ति। वि० १. कमान (मेहराव) से युक्त। २. कमानी से युक्त। कमानी-दार।

कमानी—स्त्री० [फा० कमान] १. ऐसा तार, पत्तर अथवा इसी प्रकार की कोई और तन्यक या लचीली वस्तु जो दाव पड़ने पर दव जाती हो और दाव हटने पर फिर अपने स्थान पर आ जाती हो। (स्प्रिंग) २. वह वस्तु जिसका रूप कमान की तरह हो अथवा जो किसी तरफ से झुकी हुई या टेढ़ी हो। जैसे—(क) सारंगी की कमानी, वढ़ई की कमानी। (ख) चश्मे की कमानी, छाते की कमानी। ३. कमर वाँधी जाने वाली एक प्रकार की पेटी जिसे आँत उतरने के रोगी इसलिए वाँधते हैं कि आँत उतरने न पावे।

कमानीदार—वि० [फा०] जिसमें कमानी लगी हो। जैसे—कमानीदार एक्का।

कमाल—पुं० [अ०] १. कोई अद्भुत, अनोखा या साहसपूर्ण काम किसी वहुत ही कौशल से सपन्न करने का भाव। २. उक्त प्रकार से पूरा किया हुआ काम। ३. कवीर के वेटे का नाम।

वि० वहुत ज्यादा। अतिशय।

कमाला—पु० [अ० कमाल] पहलवानों की वह कुश्ती जो केवल कमाल या कौशल दिखाने के लिए होती है।

कमालियत—स्त्री० [अ०] १. परिपूर्णता। २. कौशल, शिल्प आदि में होने वाली दक्षता या निपुणता।

कमासुत—वि० [हिं० कमाना+सुत (प्रत्य०)] यथेष्ट धन कमानेवाला। कमाऊ। जैसे—कमासुत पुत्र।

कमिश्नर—पु० [अं०] आयुक्त (दे०)।

कमिश्नरी—स्त्री० [अं०] प्रमंडल (दे०)।

कमी—स्त्री० [फा०] १. कम होने की अवस्था, गुण या भाव। २. त्रुटि। ३. अभाव। जैसे—इस नगरी में एक सुयोग्य डाक्टर की कमी। ४. घाटा। हानि। ५. कम किये जाने अथवा घटाने की क्रिया या भाव। ह्रास।

पद—कमी-वेशी—ऐसी मात्रा या संख्या जो कम भी हो सकती हो या अधिक भी।

कमीज—स्त्री० [अ० क़मीस, फा०शेमीज़] कुरते की तरह का एक प्रकार का विदेशी पुरुषेय पहनावा जिसमें कली तथा चौवगले नहीं होते परन्तु गले मे कालर होता है। । (शर्ट)

कमीन—स्त्री० [फा०] घात अथवा हमला करने के लिए छिपकर वैठना। पुं० [फा० कमीना] छोटी जाति का आदमी।

वि०=कमीना।

कमीनगाह—स्त्री० [फा०] वह स्थान जहाँ घात लगाने या वार करने के लिए लोग छिपकर वैठते हैं। जैसे—डाकुओं या शिकारियों की कमीनगाह।

कमीना—वि० [फा० कमीनः] १. वहुत ही तुच्छ या हीन विचारोंवाला। २. दूसरों से अनुचित तथा निंदनीय व्यवहार करनेवाला। ३. नीचे। क्षुद्र।

कमीनापन—पुं० [फा० कमीना+पन (प्रत्य०)] कमीना होने की अवस्था या भाव।

कमीला—पुं० [सं० कंपिल्ल] १. एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फल गुच्छों में लगते है। २. उक्त पेड़ के फल।

कमीशन—पुं० [अं० कमिशन] १. दे० 'आयोग'। २. 'छूट'। ३. दे० 'दलाली'।

कमीस†—स्त्री०=कमीज।

कमुकंदर*—पुं० [सं० कार्मुकं=शिव का धनुप+हिं० दर] श्री राम जिन्होंने शिव का धनुप तोड़ा था।

कमून—पुं० [अ०] जीरा।

कमूनी—वि० [अ० कमून] १. जिसमें जीरा पड़ा या मिला हो। २. जीरे का वना हुआ। जैसे—जवारिश कमूनी।

कमेटी—स्त्री० [अं० कॅमिटि]=समिति।

कमेरा—पुं० [हि. काम+एरा (प्रत्य०)] १. छोटे-मोटे काम करने-वाला व्यक्ति। कर्मकार। मजदूर। २. तुच्छ सेवाएँ करनेवाला नौकर।

कमेला—पुं० [हि० कमाना+एला प्रत्य०] वह स्थान जहाँ पशु काटे जाते हों। वूचड़खाना।

मुहा०—कमेला करना=वध या हनन करना।

पुं० दे० 'कमीला'।

कमेहरा—पुं० [हिं० काम] १. मिट्टी का वना हुआ वह साँचा जिसमे कसकुट आदि की चूड़ियाँ ढाली जाती हैं। २. दे० 'कमेरा'।

कमोड़ा—पुं० [हिं० काम]=काम (दलाल)।

कमोद—*पुं० ? =कुमुद। उदा०—कोइ कमोद परसहि कर पाया। जायसी। २. =कामोद (राग)।

कमोदिक—पुं० [सं० कामोदिक=एक राग] १. कामोद राग गानेवाला गवैया। २. गवैया। गायक।

कमोदिन—स्त्री०=कुमुदिनी।

कमोरा—पुं० [सं० कुंभ+हिं० ओरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कमो-रिया, कमोरी] घड़े के आकार का एक प्रकार का मिट्टी का वरतन जिसमें दूध-दही, पानी आदि रखते हैं।

कमोरिया†—पुं० [सं० कर्मार] एक प्रकार का छोटा, पतला और हलका वाँस।

†स्त्री=छोटा कमोरा।

कम्मल—पुं०=कम्वल।

कम्मा—पुं० [देश०] ताड़पत्र पर लिखा हुआ लेख या लेख्य।

कम्युनिज्म—पुं० [अं०]=साम्यवाद।

कम्युनिस्ट—वि०, पुं० [अं०]=साम्यवादी।

कयपूती—स्त्री० [मला० क्यु=पेड़+पुती=सफेद] एक सदावहार पेड़ जो सुमात्रा, जावा आदि पूर्वी द्वीप-समूह से भारत में आया है।

कया†—स्त्री०=काया।
अव्य०=क्या।

कयाम—पुं० [अ० कियाम] १. किसी स्थान पर ठहरने, रुकने या विश्राम करने की क्रिया या भाव। २. वह स्थान जहाँ ठहरा, रुका या विश्राम किया जाय। ३. स्थिरता। ४. निश्चय।

कयामत—स्त्री० [अ० क़ियामत] १. ईसाइयों तथा मुसलमानों के धर्मों के अनुसार सृष्टि का वह अन्तिम दिन जिसमें सब मुरदे कब्रों से उठ खड़े होंगे तथा ईश्वर उनका न्याय करेगा। २. प्रलय। ३. लाक्षणिक अर्थ में, आफत। विपत्ति।
मुहा०—कयामत ढाना या बरपा करना=गजब ढाना। बहुत बड़ी आफत खड़ी करना।
पद—कयामत का=(क) हद दरजे का। (ख) बहुत अधिक।

कयास—पुं० [अ०] १. अनुमान। २. कल्पना।
मुहा०—कयास में आना=कुछ-कुछ समझ में आना। कयास लगाना, लड़ाना या दौड़ाना=अटकल लगाना। अनुमान या कल्पना करना।

कयासी—वि० [अ०] १. कयास या अनुमान के आधार पर स्थिर किया हुआ। २. कल्पित। काल्पनिक।

करंक—पुं० [सं० क-रंक, प० त०] १. मस्तक। २. मिट्टी का करवा। ३. कमंडलु। ४. नारियल की खोपड़ी। ४. अस्थि-पंजर। ठठरी।

करंग—पुं०=करंक।

करँगा—पुं० [हिं० कारा (ला) + अंग] [स्त्री० अल्पा० करँगी] एक प्रकार का मोटा धान जिसकी भूसी कुछ काले रंग की होती है।
वि० काले अंगों वाला। काला।

करंज—पुं० [सं० क √रञ्ज् (शोभा देना)+णिच्+अण्] १. एक प्रकार की झाड़ी जिसकी फली औषध के काम आती है। कंजा। २. एक छोटा जंगली पेड़। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी।
पुं० [सं० कलिंग मि० फा० कुलंग] मुरगा।

करंजखाना—पुं० [हिं० करंज+खाना (घर)] वह स्थान जहाँ बहुत से मुरगे और मुर्गियाँ पाली जाती हों।

करंजा—†—पुं०=करंज।
वि०=करंजुआ।

करंजुआ—पुं० [सं० करंज] दे० 'करंज' वा 'कंजा'।
वि० [सं० करंज] करंज के रंग का। खाकी रंगवाला।
पुं० खाकी रंग।
पुं० [देश०] १. एक प्रकार की वनस्पति जो ऊख, बाँस या शर जाति के दूसरे पौधों में निकलती है। घमोई। २. जौ के पौधे का एक रोग।

करंटा—पुं०=किरंटा।

करंड—पुं० [सं० √कृ (करना)+अण्डन्] १. वह छत्ता जिसमें मधु-मक्खियाँ रहती हैं। शहद का छत्ता। २. तलवार। ३. कारंडव नाम का हंस। ४. बाँस आदि की वह टोकरी या पिटारी जिसमें साँप रखे जाते हैं। ५. एक प्रकार की चमेली। हजारा चमेली।
पुं० [सं० कुरविंद] कुहल पत्थर, जिस पर अस्त्र रगड़कर तेज किये जाते हैं।

करंडक—पुं० [सं० करंड+कन्] [स्त्री० अल्पा० करंडिका] बाँस आदि की बनी हुई छोटी टोकरी या पिटारी जिसमें साँप रखे जाते हैं।

करंडी—स्त्री० [हिं० अंडी] कच्चे रेशम की बनी हुई चादर।

करंतीना—पुं० [अं० क्वारंटाइन] वह अलग स्थान जिसमें किसी संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति कुछ समय तक सबसे अलग या दूर रखे जाते हैं।

करंब—पुं० [सं०√कृ+अम्बच्] १. मिश्रण। २. एक प्रकार की मांड।

करंबित—वि० [सं० करंब+इतच्] १. मिला हुआ। मिश्रित। २. बना या गढ़ा हुआ। ३. सजाकर गूथा, पिरोया या बाँधा हुआ।

करंभ—पुं० [सं० क√रभ् (सींचना)+घञ्, मुम्] १. वह भोजन जो दही में मिलाकर अथवा दही के साथ खाया जाय। २. एक प्रकार का मांड।

कर—पुं० [सं०√कृ (बिखेरना)+अप्] १. मनुष्य के शरीर का हाथ।
मुहा०—कर गहना=(क) किसी के पालन-पोषण अथवा किसी को सहारा देने के लिए उसका हाथ पकड़ना। (ख) उक्त उद्देश्य से किसी के साथ विवाह करना।
२. सूर्य, चंद्र आदि के प्रकाश की किरणें। ३. हाथी की सूँड़। ४. ओला। ५. राज्य द्वारा अपने काम के लिए प्रजा से उगाहा हुआ धन। यह धन व्यक्तियों की आय, संपत्ति, व्यापार, क्रय-विक्रय आदि के अनुपात से वसूल किया जाता है। (टैक्स) जैसे—आयकर, संपत्तिकर, बिक्रीकर आदि।
वि० [स्त्री० करी] करने, देने या बनानेवाला। (समस्त पदों के अन्त में) जैसे—दिनकर, भयकर, सुखकर आदि।
पुं० [सं० कर=वध करना] [स्त्री० करी] वध या हत्या करनेवाला व्यक्ति। वधिक।
*प्रत्य० [?] अवधी में संबंध कारक का चिह्न। का। जैसे—तिनकर।
क्रि० वि० [हिं०] पूर्वकालिक क्रिया के अन्त में पूर्व क्रिया की समाप्ति का सूचक। जैसे खा कर, उठ कर।

करइत †—पुं०=करैत।

करई—स्त्री० [हिं० करवा] छोटा करवा।
स्त्री० [सं० करक] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो गेहूँ के पौधे काट-काटकर गिराया करती है।

कर-कंटक—पुं० [स०त०] उँगलियों के नाखून। नख।

करक—पुं० [सं०√कृ (विक्षेप)+वुन्—अक] १. दरियाई नारियल का बना हुआ कमंडलु। २. कचनार का वृक्ष और उसकी फली। ३. पलास। ४. मौलसिरी। ५. करील का पेड़। ६. अनार। ७. ठठरी। ८. हड्डी।
स्त्री० १. दे० 'कड़क'। २. दे० 'कसक। ३. दे० 'साँट'।

करकच—पुं० [देश०] समुद्र के पानी को सुखाकर तैयार किया हुआ नमक। समुद्री नमक।

करकट—पुं० [हिं० कूड़ा का अनु०] १. कूड़ा। २. टूटी-फूटी और रद्दी चीजें।

करकटिया—स्त्री० [सं० कर्करेटु]=करकरा (चिड़िया)।

करकना †—अ०=कड़कना।
वि०=करकरा (खुरखुरा)।

करकर—पुं०=करकच।
वि० दे० 'करकरा'।

करकरा—पुं० [सं० कर्करेटु] सारस की जाति की काले रंग की चिड़िया।
वि० [सं० कर्कर] १. जो बहुत छोटे-छोटे कणों के रूप में हो। २. जिसके रवे छूने में गड़ते हों। खुरखुरा।
वि०=करारा।

करकराहट—स्त्री० [हिं० करकरा+आहट] १. करकरे या करारे होने की अवस्था, गुण या भाव। २. कोई करारी चीज खाने से होनेवाला शब्द। ३. आँख में किरकिरी पड़ने की-सी पीड़ा।

करकरी—स्त्री०=किरकिरी।

कर-कलश—पुं० [सं० उपमि० स०] अँजुली।

करकस†—वि० [स्त्री० करकसा]=कर्कश।

करका—पुं० [सं० करक+टाप्] ओला। पत्थर।

करका-घन—पुं० [सं० मध्य० स०] ओले बरसाने वाले मेघ। उदा०—'आह! घिरेगी हृदय लहलहे खेतों पर करका-घन सी'।—प्रसाद।

करका-चतुर्थी—स्त्री० [सं० मध्य० स०]=करवा चौथ।

करका-पात—पुं० [सं० प० त०] आकाश से ओले या पत्थर बरसना।

करखना†—अ० [सं० कर्षण] १. अपनी ओर खींचना। २. आवेश या जोश में आना। उदा०—जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।—भूषण।

करखा—पुं० [सं० कर्ष] १. उत्तेजना। २. बढ़ावा। ३. लाग-डाँट। ४. आवेश। जोश।
†पुं० १. दे० 'कालिख'। २. दे० 'कड़खा' (युद्धगान)।

करखाना*—अ० [हिं० कालिख] १. कालिख से युक्त होना। २. काला पड़ना। उदा०—पर्यो अंग अंघ-जर्यौ कहँ कोउ करखायौ।—रत्ना०। स० कालिख लगाना या काला करना।
†पुं०=कारखाना।

करग—पु० [स० कर-अग्र] हाथ का अगला भाग। हथेली। उदा०—कामणि करग मुवाण कामरा।—प्रिथीराज।

करगता—स्त्री० [सं० कटि-गता] कमर में पहनी जानेवाली करधनी।

करगह†—पुं०=करघा।

करगहना—पु० [सं० कर+हिं० गहना] खिड़की या दरवाजे के चौखटे के ऊपरी भाग में रहने वाली वह चौड़ी लकड़ी या पत्थर जिसके ऊपर दीवार बनती है।

करगही—स्त्री० [हिं० कारा, काला+अंग] १. एक प्रकार का जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है।
स्त्री० [हिं० करघा] एक प्रकार का कर जो पहले जुलाहों पर उनके करघों की संख्या के हिसाब से लगता था।

करगी—स्त्री० [सं० कर-ग्रहण] एक प्रकार की खुरचनी जिससे कोई जमी हुई या दानेदार वस्तु खुरची जाती है।
स्त्री० [देश०] १. पानी की बाढ़। २. ओला। पत्थर।

कर-ग्रह—पु० [प० त०] १. राज्य का लोगों पर कर लगाना। २. किसी का हाथ पकड़ना। ३. पाणिग्रहण। विवाह।

करघा—पुं० [फा० कारगाह, पुं० हिं० करगह] हाथ से कपड़ा बुनने का एक प्रसिद्ध यंत्र। खड्डी। (हैंडलूम)

करचंग—पुं० [हिं० कर+चंग] करताल की तरह का ताल देने का एक बाजा।

करछा—पुं० [हिं० करौंछा=काला] एक प्रकार की चिड़िया।
पुं०=कलछा (बड़ी कलछी)।

करछाल†—स्त्री०=उछाल (छलाँग)।

करछिया—स्त्री० [हिं० करौंछ=काला] बगले की जाति की एक सफेद चिड़िया जिसकी चोंच और पैर काले होते हैं।

करछी—स्त्री०=कलछी।

करछुल (ा)—पुं०=कलछुल (बड़ी कलछी)।

करछुली†—स्त्री०=कलछी।

करछेयाँ†—वि० [हिं० काला+छाया] जिसका रंग कुछ कालापन लिये हुए हो।

करज—वि० [सं० कर√जन् (प्रादुर्भाव)+ड] कर से उत्पन्न होनेवाला।
पुं० १. नाखून। २. उँगली। ३. नख नामक सुगंधित द्रव्य। ४. करंज। कंजा।
पुं० [अ० कर्ज] ऋण।

करजोड़ी—स्त्री० [सं० कर+हिं० जोड़ना] हत्याजोड़ी नाम का वनस्पति।

करट—पुं० [सं०√कृ+अटन्] १. हाथी की कनपटी। २. केसर का फूल। ३. कौआ। ४. नास्तिक। ५. नीच धंधा करनेवाला आदमी। ६. मृत व्यक्ति के दसवें (कहीं ग्यारहवें या बारहवें) दिन किया जाने वाला पहला श्राद्ध।

करटक—पुं० [सं० करट+कन्] कौआ।

करटा—स्त्री० [सं० करट+टाप्] ऐसी गाय जिसे दुहना बहुत कठिन हो।

करटी (टिन्)—पुं० [सं० करट+इनि] हाथी।

करड़-करड़—स्त्री०=कड़कड़।

करड़ा†—वि०=कड़ा।

करण—पुं० [सं०√कृ (करना)+ल्युट्—अन] १. किसी कार्य को क्रियात्मक रूप देना। काम का रूप देकर पूरा करना। जैसे—केन्द्रीय-करण, राष्ट्रीयकरण। २. वह जो कुछ किया जाय। काम। ३. वह माध्यम या साधन जिससे कोई वस्तु उत्पन्न या निर्मित की जाय अथवा कोई काम पूरा किया जाय। काम करने के साधन। (इन्स्ट्रूमेण्ट) जैसे—औजार, हथियार आदि। ४. व्याकरण में एक कारक। ('दे० 'करण कारक')। ५. विधिक क्षेत्र में, वह लेख्य जो किसी कार्य, प्रक्रिया, संविदा आदि का सूचक हो और जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व उत्पन्न, अंतरहित, अभिलिखित, निर्वापित, परिमित या विस्तारित होता हो। सावन-पत्र। (इन्स्ट्रूमेण्ट) जैसे—दान-पत्र, राजीनामा आदि करण हैं। ६. गणित में, सह संख्या जिसका पूरे अंकों में वर्गमूल न निकलता हो। ७. इंद्रिय। ८. देह। ९. अंतःकरण। १०. स्थान। ११. हेतु। १२. नृत्य में, हाथ हिलाकर भाव बताने की क्रिया। इसके ये चार भेद हैं—आवेष्टित, उद्वेष्टित, व्यावर्त्तित और परिवर्त्तित। १३. गणित ज्योतिष की एक क्रिया। १४. एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति वैश्य पिता और शूद्रा माता से कही गई है। कहते हैं कि इस जाति के लोग लिखने-पढ़ने का काम करते थे। तिरहुत में अब भी करण लोग पाये जाते हैं। १५. कायस्थों का एक अवांतर भेद। १६. असम, बरमा और स्याम की एक जंगली जाति।

करण-कारक—पुं० [सं० मयू० स०] व्याकरण में एक कारक जो वाक्य में आई हुई ऐसी संज्ञा के रूप तथा स्थिति का बोधक होता है जिससे वाक्य में बतलाई हुई क्रिया पूरी या संपन्न होती हो। इसके आगे 'से' विभक्ति लगती है। (इन्स्ट्रुमेण्टल केस) जैसे—'हम पैर से चलते और हाथ से खाते हैं' में 'पैर' और 'हाथ' करण कारक में हैं, क्योंकि चलने और खाने की क्रियाएँ उनके द्वारा होती हैं।

करणाधिप—पुं० [सं० करण-अधिप, ष०त०] १. करण (अर्थात् इंद्रियों) का स्वामी, आत्मा। २. करण (अर्थात् कार्यकर्त्ताओं) का अधिकारी या स्वामी। कार्याधिकारी, अफसर।

करणि—पुं० [सं० कर्णिकार] कनकचंपा का फूल।
स्त्री० [सं० करण] १. काम। २. करतूत। करनी।

करणी—स्त्री० [सं० करण+ङीप्] १. करण नामक संकर जाति की स्त्री। २. गणित में, वह संख्या जिसका पूरा-पूरा वर्गमूल न निकल सके।

करणीय—वि० [सं०√कृ+अनीयर्] [स्त्री० करणीया] १. जो किये जाने या करने के योग्य हो। जो किया जाने को हो। २. जो कर्त्तव्य-स्वरूप हो। जिसे करना आवश्यक हो।

करतब—पुं० [सं० कर्त्तव्य या हिं० करना] १. किया हुआ काम। २. कोई ऐसा अनोखा, कौशलपूर्ण, बड़ा या श्रमसाध्य काम जो सहज में सब लोगों से न हो सकता हो। करामात। जैसे—कारीगर, जादूगर या पहलवान के करतब। ३. दूषित या निंदनीय काम। करतूत। करनी। (व्यंग्य) जैसे—हमें क्या मालूम कि यह आपका करतब है। उदा०—अब तो कठिन कान्ह के करतब, तुम ही हँसति कहा कहि लीबी।—तुलसी।

करतबिया—वि०=करतबी।

करतबी—वि० [हिं० करतब] १. काम करनेवाला। २. अच्छा और बड़ा काम (करतब) कर दिखलाने वाला।

करतरी*†—स्त्री०=कर्त्तरी।

कर-तल—पुं० [ष०त०] [स्त्री० कर-तली] १. हाथ की हथेली।
पद—करतल ध्वनि=दोनों हाथों की हथेलियों को एक दूसरे पर मारने से होनेवाला शब्द। ताली।
२. चार मात्राओं के गण डगण का रूप जिसमें पहली दो मात्राएँ लघु और तब अन्त में एक गुरु होता है। जैसे—हरिजू। ३. छप्पय छंद का एक भेद।

करतली—स्त्री० [सं० करतल] १. करतल। हथेली। २. हथेलियों के पारस्परिक आघात से होनेवाला शब्द। ताली।
३. बैलगाड़ी में हाँकनेवाले के बैठने की जगह।
स्त्री० [सं० कर्त्तरी] कैंची।

करतव्य—पुं०=कर्त्तव्य।

करता—वि० [सं० कर्त्ता] काम करनेवाला। कर्त्ता।
पद—करता-धरता=घर-गृहस्थी, संस्था आदि में वह सर्व-प्रधान या मुख्य व्यक्ति जो उसके सब कार्यों का स्वामी के रूप में संचालन करता हो।
पुं० [?] उतनी दूरी जहाँ तक चलाया या फेंका हुआ शस्त्र जाता हो। पल्ला। जैसे—गोली या तीर का करता।

करतार—पुं० [सं० कर्त्तार] इस संसार का सृजन करनेवाला ईश्वर। सृष्टिकर्त्ता।
पुं० दे० 'करताल'।
पुं० दे० 'कटार'। उदा०—जैसे अति तीछन करतार।—नन्ददास।

करतारी—*स्त्री० [हिं० करतार] ईश्वर के अद्भुत काम या लीला।
स्त्री० [सं० कर-ताल] १. हाथ से बजाई जानेवाली ताली। थपोड़ी। २. कर-ताल। उदा०—राम कथा सुन्दर करतारी।—तुलसी।

करतारू—पुं०=कर्त्तार।

कर-ताल—पुं० [सं० ष० त०] १. दोनों हथेलियों के टकराने से उत्पन्न होनेवाला शब्द। ताली। २. [ब० स०] लकड़ी, काँसे आदि का बना हुआ ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसका एक-एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं। झाँझ, मजीरा।

करतालिका—स्त्री० [सं० करताली+कन्—टाप्, ह्रस्व] ताली।

करताली—स्त्री० [सं० करताल+ङीप्]=कर-ताल।

करती—स्त्री० [सं० कृति] मरे हुए बछड़े या बछिया की खाल उतार कर, उसमें भूसा आदि भरकर बछड़े के आकार का बनाया हुआ वह रूप जो प्रायः ग्वाले दूध दूहने के लिए प्रस्तुत करते हैं।

करतूत—स्त्री० [हिं० करना+ऊत (प्रत्य०)] १. किया हुआ काम। (क्व०) २. बोल-चाल में, कोई बुरा या निंदनीय काम। (व्यंग्य) जैसे—यह उन्हीं की करतूत हो सकती है।

करतूति—स्त्री०=करतूत।

करतूती—वि० [हिं० करतूत] करतूत करनेवाला।
स्त्री०=करतूत। उदा०—ऊँच निवास, नीच करतूती।—तुलसी।

करतोया—स्त्री० [कर-तोय, मध्य० स०,+अच्—टाप्] असम देश की एक नदी।

करद—वि० [सं० कर√दा (देना)+क] १. राज्य या शासन को कर देनेवाला। कर अदा करनेवाला। २. सहायता या सहारा देनेवाला।
पुं० १. अपने से किसी बड़े राजा या राज्य की अधीनता स्वीकृत करके उसे कर देनेवाला राजा या राज्य। २. मालगुजारी देनेवाला किसान।
स्त्री० [फा० कारदा] एक प्रकार का बड़ा चाकू या छुरी। उदा०—पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निज तन करद।—पृथ्वीराज।

करदम—पुं०=कर्दम।

करदल—पुं० [देश०] एक वृक्ष जिसकी छाल चिकनी और कुछ पीली होती है।

करदा—पुं० [हिं० गर्द] १. बिक्री की वस्तुओं में मिला हुआ कूड़ा-करकट। २. वे वस्तुएँ जिनमें कूड़ा-करकट मिला हो। ३. मूल्य में होने वाली वह कमी जो उक्त वस्तुएँ बेचने के समय विक्रेता को करनी पड़ती है। ४. तौल से अधिक दी जानेवाली किसी वस्तु की वह मात्रा जो ग्राहक के संतोष के लिए दी जाती है। ५. किसी कूटी या पीसी हुई वस्तु के बचे हुए कुछ मोटे रवे। ६. बट्टा। ७. छूट। ८. अदला-बदली।

करदौना—पुं०=दौना (तेज गंधवाला एक पौधा)।

करधन—स्त्री० १. =करधनी। २. =कमर ('करधन' के इस दूसरे अर्थ के मुहा० के लिए दे० 'कमर' के मुहा०)।

करधनी—स्त्री० [सं० कटि-आधानी] १. सोने-चाँदी आदि का बना हुआ कमर में पहनने का एक प्रसिद्ध आभूषण जिसमें कई लड़ियाँ या पूरी पट्टी होती है। २. कई लड़ों का सूत जो कमर में पहना जाता है

पुं० [हिं० काला+धान] एक प्रकार का मोटा धान।

करधर—पुं० [सं० कर=वर्षोपल-धर=धारण करनेवाला, ष० त०] १. बादल। २. [देश०] महुए के फल की रोटी। महुअरी।

करन—पुं० [देश०] एक ओषधि जो स्वाद में कुछ खटमिट्ठी होती है। जरिश्क।

पुं० [सं० करण] १. करने की क्रिया या भाव। २. करने योग्य काम। कर्त्तव्य। उदा०—धर्म अधर्म अधर्म धर्म करि अकरन करन करै।—सूर। ३. दे० 'करण'।

वि० (यौ० के अन्त में) करनेवाला। जैसे—मंगलकरन।

पुं०=कर्ण।

करनधार—पुं०=कर्णधार।

करनफूल—पुं० [सं० कर्ण+हिं० फूल] फूल के आकार-प्रकार का एक आभूषण जो स्त्रियाँ कान में पहनती हैं। कान में पहनने का फूल।

करनबेध—पुं०=कर्ण-वेध (कन-छेदन नामक संस्कार)।

करना—स० [सं० करोति, प्रा० करेइ] १. किसी कार्य या क्रिया को आगे बढ़ाना या चलाना। किसी कार्य का संपादन। जैसे—(क) नया काम या रोजगार करना। (ख) कसरत या व्यायाम करना। (ग) श्राद्ध करना।

मुहा०—कर जाना या कर गुजरना=कोई विलक्षण या साहसपूर्ण काम करना या कर बैठना।

२. किसी बात या वस्तु का अर्जन। जैसे—नाम, पुण्य या यश करना। ३. कर्त्तव्य का पालन करना। निबाहना। जैसे—कचहरी करना, नौकरी करना। ४. किराये या भाड़े पर ठहराना। जैसे—(क) टाँगा या रिक्शा करना। (ख) सवारी करना। ५. भोजन आदि बनाना या पकाना। जैसे—पूरी-तरकारी या रसोई करना। ६. सँवारना या सजाना। जैसे—(क) कंघी करना। (ख) शृंगार करना। ७. किसी कार्य या बात के संबंध में होनेवाली आवश्यक क्रिया का संपादन। जैसे—सिर करना=कंघी-चोटी करना। कोई वस्तु एक आधार या पात्र में से दूसरे में रखना। ले जाना। जैसे—(क) चीजें इधर-उधर करना। (ख) गगरे का पानी बाल्टी में करना। ९. एक समय बिताकर दूसरा समय लाना। जैसे—(क) जाग कर सवेरा करना। (ख) घर लौटने में रात करना। १० पति या पत्नी के रूप में अपने साथ रखना। जैसे—एक छोड़कर दूसरा (या दूसरी) करना। ११. किसी वस्तु पर कुछ पोतना, लगाना या लीपना। जैसे—दरवाजे पर रंग करना। १२. किसी प्रकार के कार्य, व्यापार आदि की पूर्ति या संपादन।—जैसे—(गौ का) गोबर करना=हगना; या (लड़के का) पेशाब करना (त्याग या विसर्जन)।

*पुं० [हिं० करनी का पुं०] १. करनी। कृत्य। २. रचनाशक्ति।

पुं० [सं० करुण] बिजौरे की तरह का एक बड़ा और लंबोतरा नीबू।

पुं० [सं० कर्ण] १. सुदर्शन के वर्ग का एक प्रकार का पौधा जिसकी अनेक जातियाँ और फूलों के अनेक रंग होते हैं।

२. उक्त पौधे का फूल।

पुं०=करनाय (बाजा)।

करनाई—स्त्री० [अ० करनाय] तुरही।

करनाट—पुं०=कर्णाट।

करनाटक—पुं० [सं० कर्णाटक]=कर्णाटक।

करनाटकी—पुं० [सं० कर्णाटकी] १. करनाटक प्रदेश का निवासी। २. कसरत दिखानेवाला नट। कलाबाज। ३. जादूगर। इंद्रजाली।

स्त्री० १. करनाटक की भाषा। २. कलाबाजी। ३. इंद्रजाल। जादूगरी।

वि० करनाटक (देश) का।

करनाय—पुं० [अ० करनाय] १. तुरही या सिंघा नाम का बाजा। २. भोंपा। ३. एक प्रकार का ढोल।

करनाल—स्त्री० [हिं० कर=हाथ+नाल=तोप] हाथ से चलाई जाने-वाली तोप।

करनी—स्त्री० [हिं० करना] १. वह जो कुछ किया गया हो। कर्म। कार्य। कार्य करने की कला, विद्या या शक्ति। उदा०—उन्ह सौं मैं पाई जब करनी।—जायसी। ३. बोल-चाल में, अनुचित या हीन आचरण या व्यवहार। ४. अन्त्येष्टि क्रिया। ५. राजगीरों का एक प्रसिद्ध उपकरण जिससे वे गारा या मसाला उठाकर दीवारों आदि पर थोपते, पोतते या लगाते हैं।

करनैल—पुं० [अं० कर्नल] एक प्रकार का सैनिक पदाधिकारी।

करपर†—वि० [सं० कृपण] कंजूस।

पुं०=खप्पर।

करपरी—स्त्री० [देश०] १. पीठी की पकौड़ी। २. पीठी की बरी।

करपलई—स्त्री०=करपल्लवी (विद्या)।

कर-पल्लव—पुं० [ष०त०] उँगली।

करपल्लवी—स्त्री० [सं० करपल्लव+ङीप्] उँगलियों के संकेत से भाव प्रकट या प्रदर्शित करने की कला या विद्या।

करपल्लौ*—पुं०=करपल्लवी।

करपा—पुं० [देश०] अनाज के ऐसे पौधे जिनमें बाल लगी हो। लेहना।

करपान—पुं० [देश०] एक चर्मरोग, जिससे देह या शरीर पर लाल-लाल दाने निकल आते हैं।

†पुं०=कृपाण।

करपाल—पुं० [सं० कर√पाल् (बचाना)+णिच्+अण्] कृपाण। (दे०)

करपिचकी—स्त्री० [सं० कर=हाथ+हिं० पिचकी (पिचकारी)] १. दोनों हथेलियों के बीच में पानी भरकर जोर से दबाते हुए छोड़ी जानेवाली पिचकारी। २. दोनों हथेलियों की उक्त प्रकार की मुद्रा।

कर-पीड़न—पुं० [ब०स०] पाणिग्रहण। विवाह।

कर-पुट—पुं० [ष०त०] अँगुली (दे०)।

कर-पृष्ठ—पुं० [ष०त०] हथेली का पिछला भाग।

करफूल—पुं० [हिं० कर+फूल] दौना, जिसकी गंध उत्कट या तेज होती है।

करवच†—पुं० [देश०] पशुओं की पीठ पर रखा जानेवाला वह थैला जिसमें सामान भरा जाता है। खुरजी।

करवर—वि० [सं० कर्बुर] १. चित-कबरा। २. रंग-बिरंगा।

स्त्री० [सं० कलरव] १. हो-हल्ला। शोर-गुल। २. लड़ाई-झगड़ा। ३. झंझट। बखेड़ा। ४. कष्ट। संकट। उदा०—ईस अनेक करवरें टारीं।—तुलसी।

करवरना*—अ० [सं० कलरव] १. पक्षियों आदि का कलरव करना। २. हो-हल्ला करना।

करवराना—अ०, स०=खड़वड़ाना।

करवला—स्त्री० [अ०] १. अरव का वह स्थान जहाँ हुसेन मारे तथा दफनाये गये थे। २. वह स्थान जहाँ ताजिये दफन किये जाँय। ३. ऐसा उजाड़ स्थान जहाँ पानी तक न मिले।

करवस—पुं० [देश०] दरियाई घोड़े की खाल से वनाया हुआ चाबुक।

करवी†—स्त्री०=कड़वी।

करवुर—वि० पुं०=करवर।

करवूस—पुं० [?] घोड़े की जीन या चारजामे में टँगी हुई रस्सी या तसमा जिसमें हथियार आदि लटकाये जाते हैं।

करवोटी—पुं० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया।

करभ—पुं० [सं० कर√भा (दीप्ति)+क] १. कलाई से कानी उँगली तक हाथ का वाहरी हिस्सा। २. ऊँट का वच्चा। ३. हाथी का वच्चा। ४. ऊँट। ५. नख नामक सुगंधित द्रव्य। ६. कमर। ७. दोहे का एक भेद।

करभक—पुं० [सं० करभ+कन्] ऊँट।

करभा†—पुं०=करभ।

पुं० [देश०] जंगली जातियों का एक प्रकार का गाना।

करभी (भिन्)—पुं० [सं० करभ+इनि] हाथी।

स्त्री० [सं० करभ+ङीप्] ऊँटनी।

करभीर—पुं० [सं० करभिन्√ईर्+(प्रेरणा देना)+अण्] सिंह। शेर।

कर-भूषण—पुं० [प०त०] हाथ में पहनने का गहना।

करभोरु—पुं० [सं० करभ-ऊरु, उपमि० स०] हाथी की सूँड़ की तरह सुडौल (अर्थात् सुन्दर) जाँघ।

वि० [व० स०] हाथी की सूँड़ जैसी सुडौल जाँघवाली (स्त्री)। सुन्दर जाँघवाली।

करम—पुं० [सं० कर्म] १. कर्म (दे०)।

पद—कर्मभोग—वह कष्ट या दुःख जो अपने किये हुए कर्मों के कारण हो।

मुहा०—करम भोगना=अपने किये का फल भोगना।

२. कर्म का फल। भाग्य।

कर्म रेख—भाग्य में लिखी हुई वात।

मुहा०—करम फूटना=भाग्य मंद होना। **करम ठोंकना**=अपने भाग्य को दोषी ठहराना।

पुं० [अ०] १. कृपा। २. उदारता। ३. क्षमा। ४. एक प्रकार का गोंद या गुग्गुल जो अफ्रीका से आता है। इसे 'वंदा करम' भी कहते हैं।

पुं० [देश०] एक प्रकार का वड़ा वृक्ष।

*पुं०=क्रम।

करमई—स्त्री० [देश०] कचनार की जाति का एक झाड़ीदार वृक्ष।

करमकल्ला—पुं० [अ० करम+हिं० कल्ला] गोभी की तरह का एक फूल जिसमें केवल पत्तों का वड़ा संपुट होता है और जिसकी तरकारी वनती है। पात-गोभी। वंदगोभी।

करम-चंद—पुं० [सं० कर्म] किस्मत। भाग्य। (भाग्य को व्यक्ति मानते हुए, उसके व्यक्तित्व की सूचक संज्ञा)

करमट्ठा*—वि० [सं० कर=हाथ+मट्ठा=मंद] कृपण। कंजूस।

करमठ†—वि०=कर्मठ (वहुत काम करनेवाला)।

करमरिया—स्त्री० [पुर्त० कलमरिया] समुद्र में हवा के गिर जाने से लहरों का शांत हो जाना।

करमर्दक—पुं० [सं०कर√मृद् (चूर्ण करना)+अण्, करमर्द+कन्] १. करौंदा। २. आँवला।

करमा—पुं०=कैमा।

करमात—*पुं० [सं० कर्म] भाग्य। किस्मत।

कर-माला—स्त्री० [उपमि० स०] १. हाथ में लेकर जप करने की माला। २. उँगलियों के पोर जिन पर (माला के अभाव में) लोग जप की गिनती करते हैं।

†पुं० [देश०] अमलतास।

करमाली (लिन्)—पुं० [सं० करमाला+इनि] सूर्य।

करमिया†—वि०=करमी।

करमी*—वि० [सं० कर्मी] १. कर्म करनेवाला। २. कर्मठ।

करमुखा†—वि० दे० 'कलमुँहा'।

पुं० दे० 'लंगूर'।

करमैल†—पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता।

करमोद—पुं० [सं० मोद-कर] एक प्रकार का धान।

करर—पुं० [देश०] १. एक प्रकार का जहरीला कीड़ा। २. रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद। ३. एक प्रकार का जंगली कुसुम (या वर्रे)।

कररना, कररराना*—अ० [अनु०] १. किसी वस्तु का कर-कर शब्द करते हुए टूटना। २. कर्कश शब्द करना।

करराी—पुं० [सं० कर्वुर] वनतुलसी।

स्त्री० [सं० कुररी] वटेर की तरह की एक चिड़िया।

कररुह—पुं० [सं० कर√रुह् (पैदा होना)+क] नाखून।

करला*—पुं०=कल्ला।

करली*—स्त्री० [सं० करील] कोमल पत्ता। कल्ला। कोंपल।

करवट—स्त्री० [सं० करवर्त्त, प्रा० करवट्ट] १. वैठने, लेटने आदि में शरीर का वह पार्श्व या वल जिस पर शरीर का सारा भार पड़ता है। जैसे—देखें, ऊँट किस करवट वैठता है। २. सोने के समय उस हाथ का पार्श्व या वल जिसके सहारे वह उस दशा में रहता है जवकि वह चित या पट नहीं रहता।

विशेष—करवट सदा या तो दाहिनी होती है या वाईं, उलटे या सीधे सोने में इसका प्रयोग नहीं होता।

मुहा०—करवट तक न लेना=किसी की आवश्यकता की पूर्ति, कर्त्तव्य के पालन आदि के लिए कुछ भी प्रयत्न न करना। जैसे—हम महीनों एक काम के लिए उनके यहाँ दौड़े; पर उन्होंने कभी करवट तक न ली। **करवट वदलना**=(क) लेटे या सोये रहने की दशा में दाहिने वल से वाएँ या प्रतिक्रमात् घूमना। एक पार्श्व या वल से दूसरे पार्श्व या वल होना। (ख) लाक्षणिक अर्थ में, एक दल या पक्ष छोड़ कर दूसरे दल या पक्ष में जाना या होना। (ग) जिस स्थिति में हो, उससे हटकर दूसरी स्थिति में होना। पलटा खाना। जैसे—इतने दिनों वाद उनके भाग्य ने करवट वदली है। **(किसी चीज का) करवट लेना**=सीधे खड़े या स्थित न रह कर किसी ओर गिरना, झुकना या ...

जहाज या नाव का करवट लेना। (सोने के समय) करवटें बदलना=चिन्ता, विकलता आदि के कारण, नींद न आने पर बार बार पहलू या पार्श्व बदलना। करवटों में रात काटना=चिंता, व्याकुलता आदि के कारण जाग कर रात बिताना।

पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] बड़ी लकड़ियाँ चीरने का एक प्रकार का बड़ा आरा।

मुहा०—करवट लेना=उक्त प्रकार के आरे के नीचे लेटकर सिर कटाना या प्राण देना।

पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसका गोंद जहरीला होता है। जसूंद।

करवत—पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] दे० 'करवट' (बड़ा आरा)।

करवर—स्त्री० [हिं० करवट=आरा] १. कठिनाई। २. विपत्ति। संकट।

करवरना*—अ० [सं० कलरव] १. पक्षियों का कलरव करना। चहकना। २. शोर मचाना। हल्ला करना।

करवा—पुं० [सं० करक] १. धातु या मिट्टी का बना हुआ लोटे के आकार का एक छोटा पात्र, जिसमें टोंटी लगी होती है। २. जहाज में लगाने की लोहे की कोनिया या घोड़िया (लश०)।

पुं० [सं० कर्क=केकड़ा] एक प्रकार की मछली।

करवा गौर—स्त्री०=करवा चौथ।

करवा चौथ—स्त्री० [सं० करका चतुर्थी] कातिक कृष्ण चतुर्थी।

विशेष—इस दिन सधवा स्त्रियाँ सौभाग्य की रक्षा के लिए व्रत रखती है।

करवानक—पुं० [सं० कलविंक] गौरैया या चटक नामक पक्षी।

करवाना—स०=कराना। (करना क्रिया का प्रेर०)

करवार (ल)—स्त्री० [सं० कर√वृ (वरण करना)+अण्] [स्त्री० करवाली] १. तलवार। २. नाखून।

करवीर—पुं० [सं० कर√वीर् (विक्रम)+अण्] १. कनेर का पेड़ या फूल। २. तलवार। ३. श्मशान। ४. दृषद्वती नदी के किनारे की एक प्राचीन नगरी।

करवैया†—वि० [हिं० करना+वैया (प्रत्य०)] (काम) करने-धरने वाला।

करश्मा—पुं० [फा० करिश्मः] कोई बहुत बड़ा और विलक्षण काम। अद्भुत कृत्य। करामात।

करष—पुं० [सं० कर्ष] १. खिचाव। २. मन में होनेवाला द्वेष या विरोध। मनमोटाव। ३. आवेश। ४. जोश। ५. क्रोध।

करषक†—पुं०=कृषक।

वि०=कर्षक।

करषना*—अ० [सं० कर्षण] १. अपनी ओर खींचना या खींच कर निकालना। २. शोषण करना। सोखना। ३. बुलाना। ४. समेटना।

कर-संपुट—पुं० [ष० त०] १. हथेली की अंजलि। २. विनती के समय किसी के आगे हाथ जोड़ने की मुद्रा। उदा०—सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर-संपुट किये।—तुलसी।

करसना*—स०=करषना।

करसान—पुं०=किसान (खेतिहर)।

करसायर (ल)—पुं० [सं० कृष्णसार] काला हिरन।

करसी—स्त्री० [सं० करीष] १. उपला। कंडा। २. उपले की आग। ३. उपले की राख।

करहंच†—पुं०=करहंस।

करहंत†—पुं०=करहंस।

करहंस—पुं० [सं० उपमि० स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण और एक लघु होता है।

करह—पुं०=कली (फूल की)।

करहनी—पुं० [देश०] अगहन में होनेवाला एक प्रकार का धान।

करहा—पुं० [देश०] सफेद सिरिस का पेड़।

करहाटक—पुं० [सं० कर√हट् (चमकना)+णिच्+अण्+कन्] १. कमल की नाल। भसींड़। २. कमल का छत्ता। ३. मैनफल।

करांकुल—पुं० [सं० कलांकुर] जलाशयों के किनारे रहनेवाला कूंज नामक पक्षी।

करांत—पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] [स्त्री० अल्पा० करांती] आरा, जिससे लकड़ी चीरते हैं।

करांती—पुं० [हिं० करांत] वह जो आरे से लकड़ियाँ चीरता हो। आराकश।

स्त्री० छोटा आरा।

करा† वि० [स्त्री० करी]=कड़ा।

स्त्री०=कला।

स्त्री० [?] सौरी नामक मछली।

कराई—स्त्री० [हिं० करना] १. कोई काम करने या कराने की क्रिया या भाव। २. काम करने या कराने का पारिश्रमिक।

स्त्री० [हिं० केराव=मटर] १. अरहर, चने, मटर आदि की दाल दलने पर निकले हुए छिलके। भूसी। २. अनाज आदि फटकने पर निकलनेवाली भूसी।

स्त्री० [हिं० कारा=काला] काले होने की अवस्था या भाव। कालापन। कालिमा।

कराघात—पुं० [सं० कर-आघात, तृ० त०] १. हाथ से किया हुआ आघात। २. प्रहार। वार।

कराड़†—पुं० [सं० क्रेतारः=क्रय करनेवाला] १. क्रय-विक्रय करनेवाला व्यक्ति। २. वैश्यों की एक जाति।

करात—पुं० [अं० कैरेट] चार ग्रेन की एक पाश्चात्य तौल।

कराना—स० [हिं० करना का प्रे० रूप] ऐसा उपाय करना जिससे कोई व्यक्ति कोई काम करे। किसी को कुछ करने में प्रवृत्त करना।

करावा—पुं० [अ० करावः] १. घड़े के आकार का शीशे का एक बड़ा पात्र जिसमें अरक आदि तरल पदार्थ रखे जाते हैं। २. उक्त का वह रूप जिसकी सहायता से अरक उतारे या खींचे जाते हैं।

कराबीन—स्त्री० [तु०] पुरानी चाल की एक प्रकार की छोटी बंदूक जो कमर में बाँध या लटकाकर रखी जाती थी।

करामात—स्त्री० [अ० करामत का बहु०] लोगों को आश्चर्यचकित करनेवाला कोई ऐसा अद्भुत या असाधारण काम जो देखने में लोकोत्तर-सा जान पड़े।

करामाती—वि० [हिं० करामात] १. करामात-संबंधी। २. जिसमें

करामात हो। ३. (व्यक्ति) जो करामात कर दिखलाता हो।
पुं० १. सिद्ध पुरुष। २. ऐंद्रजालिक। जादूगर।

करायजा†—पुं०=कुटज (वनस्पति)।

करायल†—वि० [हिं कारा=काला] जिसका रंग कुछ काला हो।
पुं० १. मँगरैला। २. वह तेल जिसमें राल घोली हुई हो।

करार—पुं० [अ० क़रार] १. स्थिरता। २. धैर्य या शांति जिससे मन स्थिर होता है।
पुं०=इकरार।
†वि०=करारा।
पुं० [सं० करट] कौआ। उदा०—रटहिं कुभाँति कुखेत करारा। —तुलसी।
†पुं०=कगार।

करारना*—अ० [अनु०, सं० करट] कर-कर अर्थात् कठोर शब्द निकलना या होना।
स० कर-कर शब्द करना।

करारा—वि० [हिं० कड़ा] [भाव० करारापन] १. कठोर। कड़ा। २. (वस्तु) जो खाने में स्वादिष्ट हो तथा कुरकुर बोले। ३. (प्राणी) जो स्वास्थ्य के विचार से चंगा या हृष्ट-पुष्ट हो। ४. (कार्य या व्यापार) जो बहुत उग्र, उत्कट या तेज हो। जैसे—करारा जवाब, करारी मार।
†पुं०=करार (कौआ)।
†पुं०=कगार। उदा०—लखन दीख पय उतर करारा।—तुलसी।

करारोप—पुं० [सं० कर-आरोप, ष० त०] दे० 'अवाप्ति'।

करारोप्य—वि० [सं० कर-आरोप्य, ष० त०] दे० 'अवाप्य'।

कराल—वि० [सं० कर√अल् (पर्याप्ति होना)+अच्] १. बड़े-बड़े दाँतोंवाला। २. डरावनी आकृतिवाला। भीषण रूपवाला। ३. बहुत ऊँचा।
पुं० १. राल मिला हुआ तेल। करायल। गर्जन। २. दाँतों का एक रोग।

कराला—स्त्री० [सं० कराल+टाप्] १. चंडी या दुर्गा का एक नाम। २. अनंत मूल। सारिवा।

करालिका—स्त्री० [सं० कराल+कन्-टाप्, इत्व] चंडी या दुर्गा।

कराली—स्त्री० [सं० कराल+ङीप्] १. अग्नि की ७ जिह्वाओं में से एक। २. चंडी या दुर्गा।
वि० स्त्री० भीषण रूपवाली। जैसे—काली कराली।

कराव(ा)—पुं० [हिं० करना] विधवा स्त्री से किया जानेवाला विवाह। उदा०—बियाह न कराव, झूठ मूठ का चाव। —कहा०।

करावल—पुं० [तु०] घुड़सवार पहरेदार। संतरी। २. सेना के वे सिपाही जो विपक्षी या शत्रु का भेद लेने के लिए भेजे जाते हैं।

कराह—स्त्री० [हिं० कराहना] १. कराहने की क्रिया या भाव। २. कराहने से उत्पन्न होनेवाला शब्द।
†पुं०=कड़ाह (कटाह)।

कराहत—स्त्री० [अ०] बीभत्स बात या वस्तु को देखकर मन में होने वाली घृणा।

कराहना—अ० [अनु०] असह्य पीड़ा या वेदना के समय मनुष्य का आह-आह आदि शब्द करना। आह, ऊह आदि करना।

कराहा†—पुं०=कड़ाह।

करिंद—पुं० [सं० करींद्र] बहुत बड़ा और बढ़िया हाथी।

करि†—विभ०=को। उदा०—सत्रु न काहू करि गनै। —तुलसी।

करिअ—पुं०=करिआ।

करिआ—पुं०=[सं० कर्णिक प्रा० कड्डिअ] नाव की पतवार।
वि० १. =काला। २. =करवैया।

करिका—स्त्री० [सं० कर+ठन्—इक्, टाप्] नाखून की खरोंच से शरीर में होनेवाला क्षत या घाव।

करिखई†—स्त्री०=कालिख।

करिखा†—पुं०=कालिख।

करिगह†—पुं०=करघा।

करिण—पुं० [सं० करिन्] [स्त्री० करिणी] हाथी।

करिणी—स्त्री [सं० कर+इनि, ङीप्] १. हाथी। हथिनी। २. वह कन्या जिसका जन्म वैश्य पिता और शूद्रा माता से हुआ हो।

करिनिका—स्त्री० [सं० कर्णिका] करन फूल। उदा०—मवि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर। —नंददास।

करिनी—स्त्री०=करिणी।

करिवदन—पुं० [सं० करिवदन] गणेशजी।

करिया—पुं० [सं० कर्ण] १. पतवार। २. केवट। मल्लाह। ३. कर्णधार। उदा०—सागर जगत जहाज को करिया केशवदास।—केशव।
वि० [हिं० काला] काले रंगका। काला। उदा०—करिया मुँह करि जाहि अभागे। —तुलसी।
पुं० ऊख में लगनेवाला एक रोग जिससे वह काला पड़ जाता है।

करियाई†—स्त्री० १. =कालापन। २. =कालिख।

करियारी†—स्त्री० [सं० कलिकारी] कलियारी (जहरीला पौधा)।
† स्त्री०=लगाम (घोड़े की)।

करिल† —स्त्री० [हिं० कोंपल]नया कल्ला। कोंपल।
† वि०=काला।

करि-वदन—पुं० [सं० ब० स०] गणेश।

करिवार—पुं० [सं० करवाल] तलवार।

करिहाँ† —स्त्री० [सं० कटि भाग] कमर।

करिहाँव† —स्त्री० [सं० कटिभाग] १. कमर। २. कोल्हू का बीच वाला गराड़ीदार भाग।

करिहारी† —स्त्री०=कलियारी। (पौधा)

करींद्र—पुं० [सं० करिन्-इन्द्र, ष० त०] १. ऐरावत। २. बहुत बड़ा और बढ़िया हाथी।

करी (रिन्)—पुं० [सं० कर+इनि] [स्त्री० करिणी] हाथी।
स्त्री० [हिं०] चौपाई या चौपैया नामक छंद।
† स्त्री०=कड़ी।
†स्त्री०=कली। उदा०—कँवल करीं तू पद्मिनि गै निसि भयहु बिहान। —जायसी।
वि० स्त्री० [सं०√कृ (करना)+अच्—ङीप्] १. करनेवाली

(यौ० शब्दों के अन्त मे)। जैसे—प्रलयंकरी। २. प्राप्त या उत्पन्न करनेवाली। जैसे—अर्थकरी विद्या।

करीना—पुं० [अ० करीनः] १. काम करने का ढंग। तरीका। २. रीति-व्यवहार। ३. क्रम। तरतीव।
पुं० [?] पत्थर गढ़ने की टाँकी।
†पुं०=किराना (मसाला)।

करीप—पुं० [सं० करिप] महावत।

करीव—क्रि० वि० [अ०] १. निकट। पास। २. प्रायः। लगभग। जैसे—करीव दस सेर।
पद—करीव-करीव=प्रायः। लगभग।

करीवी—वि० [अ०] निकट या पास का (संवंध या संबंधी)।

करीम—वि० [अ०] करम या दया करनेवाला। दयालु।
पुं० ईश्वर का एक नाम।

करीर—पुं० [सं०√कृ (फेकना)+ईरन्] वाँस का अँखुआ या कल्ला।
†पुं०=करील (वृक्ष)।

करील—पुं० [सं० करीर] एक प्रकार की प्रसिद्ध काँटेदार झाड़ी जिसमें पत्ते नही होने।

करीश—पुं० [सं० प० त०] वहुत वड़ा हाथी। गजराज। गजेन्द्र।

करीप—पुं० [स०√कृ+ईपन्] विना पाथा हुआ उपला। कंडा।

करीपिणी—स्त्री० [स० करीप+इनि, ङीप्] लक्ष्मी।

करीस† —पुं० [स० करीश] वहुत वड़ा हाथी।

करुआ—पुं० [देश०] दालचीनी की जाति का एक वृक्ष।
पुं० [स्त्री० अल्पा० करुई] मिट्टी का छोटा टोंटीदार वरतन।
†वि० [स्त्री० करुई]=कड़ुआ।

करुआई† —स्त्री०=कड़ुआपन। उदा०—धूमहु तजहि सहज करुआई। —तुलसी।

करुखी† —स्त्री० [हि० कु+फा० रुख] रोप आदि की सूचक कड़ी या तिरछी नजर।
†स्त्री०=कनखी।

करुण—वि० [स०√कृ (करना)+ उनन्] १. करुणा से युक्त। करुणा से भरा हुआ। जैसे—करुण हृदय। २. जिसे देखकर करुणा आती हो। दु.खद। जैसे—करुण दृश्य।
पुं० १. साहित्य मे नौ रसों में से एक जिसके अधिष्ठाता देवता वरुण कहे गये है।
विशेष—मन मे इस रस का संचार उस विकट दुःख के कारण होता है जो वियोग, शोक आदि से उत्पन्न होता है। इसका आलंवन वियोग, उद्दीपन वियुक्त व्यक्ति की किसी वस्तु का दर्शन या उसकी चर्चा और अनुभाव रोना-कलपना आदि कहे गये हैं।
२. एक वुद्ध का नाम। ३. परमेश्वर। ४ एक प्राचीन तीर्थ। ५. करना नीवू या उसका पेड़।

करुणा—स्त्री० [सं० करुण+टाप्] किसी असमर्थ, असहाय, दु.खी अथवा संकट में पड़े हुए व्यक्ति को देखकर मन मे होनेवाली उसके दु.ख की ऐसी अनुभूति जो उसका कप्ट या दुःख दूर करने की प्रेरणा करती हो। (कम्पैशन)

करुणाकर—वि० [सं० करुणा-आकर प० त०] दूसरों के दुःख से दुःखी होनेवाला अर्थात् अत्यन्त दयालु।

करुणा-दृष्टि—स्त्री० [प० त०] ऐसी दृप्टि जिससे करुणा प्रकट होती हो।

करुणा-निधान (निधि)—वि० [प० त०] जिसका हृदय करुणा से भरा हो। दूसरों पर सदा करुणा करनेवाला।

करुणामय—वि० [सं० करुणा+मयट्] करुणा से युक्त या भरा हुआ।

करुणार्द्र—वि० [सं० करुणा-आर्द्र, तृ० त०] जिसका मन करुणा से आर्द्र या द्रवित हो रहा हो या हो जाता हो।

करुणी (णिन्)—वि० [सं० करुणा+इनि] करुणा या दया का अधिकारी या पात्र। जिस पर करुणा की जानी चाहिए।

करुना†—स्त्री०=करुणा।

करुवेल—स्त्री० [सं० कारुवेल] इद्रायण की वेल या लता।

करुर†—वि०=कड़ुआ।

करुल—पुं० [देश०] जलाशयों के पास रहनेवाली एक प्रकार की वड़ी चिड़िया।

करुवा†—वि०=कड़ुआ।
†पुं०=करुआ।

करुवार—पुं० [हि० कलवारी] एक प्रकार का डाँड़ जिससे नाव खेते हैं।
पुं० [देश०] लोहे का वना हुआ एक प्रकार का अँकुड़ा जिससे पत्थर या लकड़ियाँ जोड़ी या जकड़ी जाती है।

करू†—वि०=कड़ुआ।

करूर†—वि० क्रूर।

करूला†—पुं०=कड़ूला (हाथ में पहनने का कड़ा)।
पुं० [?] एक प्रकार का घटिया सोना।
†पुं०=कुल्ला (मुँह में पानी भरकर वाहर फेकने की क्रिया)।

करूप—पुं० [सं० कृ+ऊपन्] गंगा के किनारे का वह प्राचीन वन जिसमें राम को ताड़का मिली थी।

करेजा†—पुं०=कलेजा।

करेजी—स्त्री०=कलेजी।

करेणु—पुं० [सं०√कृ+एणु] १. हाथी। २. कर्णिकार वृक्ष। कनेर।

करेणुका—स्त्री० [सं० करेणु+कन्—टाप्] हथिनी।

करेनुका*—स्त्री०=करेणुका।

करेव—स्त्री० [अं० क्रेप] एक प्रकार का वढिया चिकना पतला रेशमी कपड़ा।

करेमू—पुं० [सं० कलंवु] पानी में होनेवाला एक प्रकार का साग।

करेर†—वि० [स्त्री० करेरी]=कड़ा (कठोर)।

करेरा †—वि० [स्त्री० करेरी]=कड़ा (कठोर)।

करेरुआ †—पुं० [देश०] एक प्रकार की काँटेदार लता।

करेल—पुं० [हि० करना ?] एक प्रकार का वड़ा मुगदर जो दोनों हाथों से घुमाया जाता है।

करेला—पुं० [सं० कारवेल्ल] १. एक प्रसिद्ध लता जिसके लवोतरे फलों की तरकारी वनाई जाती है। २. उक्त लता के लवोतरे फल। ३. माला या हुमेल की लंवी गुरिया। ४. एक प्रकार की आतिशबाजी।

करेली—स्त्री० [हिं० करेला] १. छोटा करेला। २. एक जंगली लता।

करेया—पुं० [हिं० करना] कुछ जातियों में विधवा स्त्री से किया जानेवाला विवाह।

करैत—पुं० [हिं० कारा (काला)] काला साँप।

करैल—स्त्री० [हिं० कारा (काला)] १. जलाशयों के किनारे की काली मिट्टी। २. जलाशयों का तट या वह भूमि जहाँ काली मिट्टी हो।

पुं० [सं० करीर] १. बाँस का नरम कल्ला। २. डोम कौआ।

करैला†—पुं० [स्त्री० करैली]=करेला।

करोंट†—स्त्री०=करवट।

करोट—पुं० [सं० क√रुट् (द्युति)+अच्] खोपड़े की हड्डी। खोपड़ा।

स्त्री० [स्त्री० करोटी]=करवट।

करोटन—पुं० [अं० क्रोटन] पौधों का एक विशिष्ट वर्ग जिसकी पत्तियाँ सुन्दर होती हैं।

विशेष—उक्त वर्ग के पौधे बगीचों में सुंदरता के लिए लगाये जाते हैं।

करोटी—स्त्री० [सं० करोट+ङीप्] खोपड़ी।

स्त्री०=करवट।

करोड़—पुं० [सं० कोटि] १. सौ लाख की संख्या। २. उक्त संख्या का सूचक अंक।

वि० १. जो गिनती में सौ लाख हो। २. बहुत अधिक। असंख्य।

करोड़ खुख—वि० [हिं० करोड़+सुख] झूठ-मूठ लाखों-करोड़ों रुपयों की बातें करनेवाला।

करोड़पति—पुं० [हिं० करोड़+सं० पति] व्यक्ति जिसके पास कई करोड़ की संपत्ति हो।

करोड़ी—पुं० [हिं० करोड़] १. रोकड़िया। तहवीलदार। २. (मध्य-काल में) वह अधिकारी जो लगान आदि उगाहने का काम करता था। ३. करोड़पति।

करोत—पुं०=करौत।

करोती—स्त्री०=करौती।

करोदना†—स०=१. कुरेदना। २. खुरचना।

करोना—स० [सं० क्षुरण=खरोचना] १. कुरेदना। २. खुरचना।

करोनी—स्त्री० [हिं० करोना] १. करोने या खुरचने की क्रिया या भाव। २. खुरपी या झरनी की तरह का उपकरण जिससे कोई चीज (विशेषतः कड़ाही, तवे आदि पर जमी हुई चीज) खुरचकर निकाली जाती है। ३. उक्त प्रकार से खुरची जानेवाली वस्तु। खुरचन।

करोर*—वि०, पुं०=करोड़।

करोला—पुं० [?] भालू। रीछ। (डिं०)

पुं०=करवा (मिट्टी का छोटा पात्र)।

करौंछा†—वि० [हिं० कारा (काला)+औंछा (प्रत्य०)] काले रंग का। काला।

करौंजी—स्त्री०=कलौंजी।

करौंट—स्त्री०=करवट।

करौंदा—पुं० [सं० करमर्द; पा० करमद; पुं० हिं० करवँद] १. एक प्रकार का कँटीदार पौधा जिसमें छोटे गोल फल लगते हैं। जिनका आधा भाग लाल और आधा सफेद होता है। २. उक्त फल जो स्वाद में खट्टे होते हैं। ३. कान के पास होनेवाली करौंदे के आकार की गिलटी।

करौंदिया—वि० [हिं० करौंदा] करौंदे के रंग जैसा। कुछ कालापन लिये हलका लाल।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

करौत—पुं० [सं० करपत्र] [स्त्री० अल्पा० करौती] लकड़ी चीरने का आरा।

†वि० [हिं० करना=पति या पत्नी के रूप में रखना] १. (स्त्री) जिसे किसी पुरुष ने बिना ब्याह किये यों ही घर में रख लिया हो। २. (पुरुष) जिसे किसी स्त्री ने बिना विवाह किये यों ही पति के रूप में अपने साथ रख लिया हो।

करौता—पुं० [स्त्री० अल्पा० करौती]=करौत।

स्त्री० [हिं० काला] करैल मिट्टी। करैली।

करौती—स्त्री० [हिं० करवा] १. शीशे की प्याली। २. शीशा गलाने की भट्ठी।

स्त्री० [हिं० करौता] छोटी आरी।

करौना—पुं० [हिं० करोना=खुरचना] नक्काशी के काम में खुरचने या खोदने की लोहे की कलम।

†पुं०=करौंदा।

करौल—पुं० [अ० करावल] १. बंदूक से शिकार खेलनेवाला शिकारी। २. वे जंगली लोग जो शिकार के लिए पशुओं को हाँककर शिकारी के सामने लाते हैं।

करौली—स्त्री० [सं० करवाली] एक प्रकार की बड़ी छुरी जो शरीर में भोंकने के काम आती है।

कर्कंधु—पुं० [सं० कर्क√धा (धारण करना)+कु, नि० मुम्] १. बेर का फल। २. सूखा कुआँ।

कर्क—पुं० [सं०√कृ+क] १. केकड़ा। २. बारह राशियों में से चौथी राशि जिसमें पुनर्वसु का अंतिम चरण और पुष्य तथा आश्लेषा नक्षत्र होते हैं। (कैंसर) ३. काकड़ासिंगी। ४. अग्नि। आग। ५. दर्पण। शीशा। ६. घड़ा। ७. पश्चिमी ईरान के कर्किआ प्रदेश का पुराना नाम।

कर्कट—पुं० [सं०√कर्क् (हास)+अटन्] [स्त्री० कर्कटी] १. प्रसिद्ध जल-जंतु जिसके आठ पैर होते हैं। केकड़ा। २. कर्क राशि। ३. एक प्रकार का सारस जिसे करकरा भी कहते हैं। ४. कमल-नाल। भसींड। ५. लौकी। ६. कर्कटार्बुद (दे०)। ७. नृत्य में, एक प्रकार का हस्तक। ८. गणित में वृत्त की त्रिज्या।

कर्कट-शृंगी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] काकड़ासिंगी।

कर्कटार्बुद—पुं० [कर्कट-अर्बुद, कर्म० स०] एक प्रकार का गाँठदार फोड़ा जो बहुत ही कष्टदायक और प्रायः घातक होता है। (कैंसर)

विशेष—प्रायः कर्कट के पैरों की तरह इसकी शाखाएँ केन्द्र से गाँठें चारों ओर फैलने लगती हैं।

कर्कटी—स्त्री० [सं० कर्क√अट् (गति)+अच्—ङीप्] १. मादा केकड़ा। ककड़ी। २. ककड़ी नामक फल। ३. सेमल का फल। ४. ककोड़ा नामक लता। ५. तरोई। ६. काकड़ासिंगी। ७. छोटा घड़ा या हँड़िया। ८. साँप।

कर्कटु—पुं० [सं० √कर्क्+अटु] एक प्रकार का सारस।

कर्कर—पुं० [सं० कर्क√रा (देना+क] १. कंकड़। २. कुंजर नाम का पत्थर। ३. एक प्रकार का नीलम। ४. दर्पण। शीशा।
वि० १. कड़ा और खुरदुरा। २. करारा। ३. बहुत थोड़े दवाव से टूटनेवाला।
पुं० दे० 'कुरंड'।

कर्करी—स्त्री० [सं० कर्कर+ङीष्] १. झारी। २. ककड़ी।

कर्करेटु—पुं० [सं० कर्क√रेट् (भाषण)+उन्] एक प्रकार का सारस।

कर्कश—वि० [सं० कर्क+श] [स्त्री० कर्कशा] १. कड़ा। कठोर। २. खुरदरा। ३. (स्वर या ध्वनि) जो बहुत ही अप्रिय, कटु तथा तीव्र हो। ४. (व्यक्ति) जो अप्रिय या कटु बातें कहता हो तथा हर बात में उग्रतापूर्वक लड़ने-झगड़ने लग जाता हो। ५. क्रूर (व्यक्ति)।
पुं० १. कमीला नामक पेड़। २. ईख। ऊख। ३. खड्ग। ४. तलवार।

कर्कशता—स्त्री० [सं० कर्कश+तल्—टाप्] कर्कश होने की अवस्था, गुण या भाव।

कर्कशा—स्त्री० [सं० कर्कश+टाप्] वृश्चिकाली का पौधा। वि० स्त्री० (ऐसी स्त्री) जिसका स्वभाव बहुत ही उग्र हो और जो प्रायः सब से और हर बात में लड़ाई-झगड़ा करती रहती हो। दुष्ट स्वभाववाली और लड़ाकी।

कर्कोतन—पुं० [सं० कर्क√तन् (फैलना)+अच्, अलुक् स०] जमुर्रद नामक रत्न।

कर्कोट—पुं० [सं०√कर्क्+ओट] १. बेल का पेड़। २. ककोड़ा। खेखसा। ३. कश्मीर का एक प्राचीन राज-वंश।

कर्कोटी—स्त्री० [सं० कर्कोट+ङीष्] १. वनतरोई। २. ककोड़ा। खेखसा। ३. देवदाली। बंदाल।

कर्चरिका—स्त्री० [सं० क√चर् (गति)+क, पृषो० सिद्धि] कचौरी नामक पकवान।

कर्ची—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

कर्च्चूर—पुं० [सं० कर्ज्√ऊर, पृषो० सिद्धि] १. सोना। सुवर्ण। २. कचूर।

कर्ज—पुं० [अ०] उधार लिया हुआ धन। ऋण।
मुहा०—**कर्ज उतारना**=ऋण चुकाना। **(किसी का) कर्ज खाना**=किसी के अधीन, उपकृत या ऋणी होना। (व्यंग्य) जैसे जी हाँ, मैंने तो आप का कर्ज ही खाया है जो आप का हुकुम मानूं। **(कोई काम करने के लिए) कर्ज खाये बैठे रहना**=सदा और सब प्रकार से उद्यत या प्रस्तुत रहना। जैसे—वह तो तुम्हारी बुराई करने के लिए कर्ज खाये बैठे हैं।

कर्जदार—वि० [फा०] जिसने किसी से कुछ धन उधार लिया हो। ऋणी।

कर्ण—पुं० [सं०√कर्ण् (भेदन)+अच्, या √कृ (बिखेरना)+नन्] १. प्राणियों के शरीर का वह अवयव या इंद्रिय जिसके द्वारा वे सुनते हैं। कान। २. उक्त इंद्रिय के ऊपर का या बाहरी चौड़ा भाग। कान। ३. नाव की पतवार। ४. कुंती का बड़ा पुत्र जो उसके कुमारी रहने की दशा में सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ था। ५. गणित में, वह रेखा जो किसी चतुर्भुज के आमने-सामने के कोणों को मिलाती हो। ६. छप्पय का एक भेद। ७. पिंगल में चार मात्राओं वाले गणों की एक संज्ञा।

कर्णक—पुं० [सं०√कर्ण्+ण्वुल्—अक] १. किसी चीज में कान की तरह बाहर निकला हुआ अंग। २. वृक्ष की डालियाँ और पत्ते। ३. एक प्रकार की लता। ४. एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी बहरा हो जाता है। (वैद्यक)

कर्ण-कटु—वि० [स० त०] १. जो कानों को अप्रिय, उग्र या कटु प्रतीत होता हो। २. कानों में खटकनेवाला।

कर्ण-कुहर—पुं० [मध्य० स०] कान के बीच का वह छेद जिससे शब्द अन्दर पहुँचता है।

कर्ण-घंट—पुं० [ब० स०] शिव के एक प्रकार के उपासक जो इसलिए अपने कानों में घंटी या घंटा बाँधे रहते थे कि उसके रव में विष्णु का नाम दब जाय और उनके कानों में न पहुँचने पावे। घंटाकर्ण।

कर्णधार—पुं०[सं० कर्ण√धृ(धारण)+णिच्+अण्] १. वह मल्लाह जिसके हाथ में नाव की पतवार रहती है। २. केवट। मल्लाह। ३. पतवार। ४. वह व्यक्ति जिसके हाथ में किसी बड़े काम की सारी व्यवस्था हो।

कर्ण-नाद—स्त्री० [मध्य० स०] १. कान में सुनाई पड़ती हुई गूँज। २. एक प्रकार का रोग जिसमें कान में हर दम कुछ गूंज सुनाई पड़ती है।

कर्ण-परम्परा—स्त्री० [ष० त०] सुनी-सुनाई हुई बात के बहुत-से लोगों में फैलने की परंपरा।

कर्णपाली—स्त्री० [सं० कर्ण√पाल्(रक्षा करना)+अण्—ङीप्] १. कान का नीचे की ओर लटकनेवाला बाहरी कोमल भाग। कान की लौ। २. कान में पहनने का एक आभूषण। बाली।

कर्ण-पिशाची—स्त्री० [ष० त०] एक तांत्रिक देवी जिसे सिद्ध कर लेने पर मनुष्य सब बातें सुन तथा जान लेता है।

कर्ण-पुर—पुं० [ष० त०] आधुनिक भागलपुर का पुराना नाम (अंग-देश की प्राचीन राजधानी)। चंपा नगरी।

कर्णपूर—पुं० [सं० कर्ण√पूर् (पूर्ण करना)+अण्] १. सिरिस का पेड़। २. अशोक वृक्ष। ३. नीला कमल। ४. करनफूल।

कर्ण-मूल—पुं० [ष० त०] १. कान की जड़ या नीचे वाला भाग। २. उक्त स्थान में होनेवाला कनपेड़ा नामक रोग।

कर्ण-मृदंग—पुं० [मध्य० स०] कान के अन्दर की चमड़े की वह झिल्ली जिस पर आघात होने से शब्द सुनाई पड़ता है। (ईयर ड्रम)

कर्ण-वर्जित—वि० [तृ० त०] जिसे कान न हों। कर्णहीन।
पुं० सर्प। साँप।

कर्ण-वेध—पुं० [ष० त०] हिंदुओं में एक संस्कार जिसमें छोटे बालकों (विशेषतः लड़कियों के) के कान छेदे जाते हैं। कन-छेदन।

कर्ण-स्राव—पुं० [ष० त०] १. कान बहने का रोग। २. कान में से निकलने या बहनेवाला मवाद।

कर्ण-हीन—वि० [तृ० त०] जिसे कान न हों। बिना कानों का।
पुं० साँप।

कर्णाट—पुं० [सं० कर्ण√अट्(गति)+अच्] १. दक्षिण भारत का कर-नाटक नामक प्रदेश। २. संपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग का पुत्र कहा गया है।

कर्णाटक—पुं० [सं०कर्णाट+कन्]=कर्णाट।

कर्णाटी—स्त्री० [सं० कर्णाट+ङीप्] १. कर्णाट देश की स्त्री। २. कर्णाट देश की भाषा। ३. हंसपदी लता। संपूर्ण जाति की एक शुद्ध रागिनी जो मालव या किसी मत से दीपक राग की पत्नी है। ५. शब्दालंकार अनुप्रास की एक वृत्ति जिसमें केवल कवर्ग के अक्षर आते हैं।

कर्णादर्श—पुं० [कर्ण-आदर्श, ष० त०] कान में पहनने का फूल। करनफूल।

कर्णारि—पुं० [कर्ण-अरि, ष० त०] कर्ण के शत्रु, अर्जुन।

कर्णिक—वि० [सं० कर्ण+ठन्—इक] १. (प्राणी) जिसे कान हों। कानोंवाला। २. (व्यक्ति) जिसके हाथ में कर्ण या पतवार हो।
पुं० कर्णधार। माँझी।

कर्णिका—स्त्री० [सं० कर्ण+कन्—टाप्, इत्व] १. कान में पहनने की वाली। २. कमल का छत्ता। ३. सफेद गुलाब। सेवती। ४. अरनी का पेड़। ५. मेढासींगी। ६. लिखने की कलम। लेखनी। ७. हाथ में की बीच की उँगली। ८. पौधों, वृक्षों आदि का वह डंठल जिसमें फल-फूल लगते हैं। ९. हाथी की सूंड की नोक। १०. एक प्रकार का योनि-रोग।

कर्णिकाचल—पुं० [सं० कर्णिका-अचल, मध्य० स०] सुमेरु पर्वत।

कर्णिकार—पुं० [सं० कर्णि√कृ(करना)+अण्] १. कनकचंपा का पेड़ और फूल। २. एक प्रकार का अमलतास।

कर्णी—स्त्री० [सं० कर्ण+ङीप्] १. एक प्रकार का वाण जिसका अगला भाग (नोक) कान के आकार का होता था।

कर्णी (र्णिन्)—वि० [सं० कर्ण+इनि] १. कानवाला। जिसे कान हों। २. वड़े कानोंवाला।
पुं० १. पुराणानुसार सात वर्ष पर्वतों में से एक। २. कर्णधार, माँझी।

कर्णोपकर्णिका—स्त्री० [सं०—कर्ण-उपकर्ण, सुप्सुपा स०+ठन्—इक्, टाप्]=कर्ण-परंपरा। (देखें)

कर्त्तन—पुं० [सं०√कृत् (छेदन)+ल्युट्—अन] १. कतरने या काटने की क्रिया या भाव। २. (सूत) कातने की क्रिया या भाव।

कर्त्तनी—स्त्री० [सं० कर्त्तन+ङीप्] कतरने या काटने का उपकरण। कतरनी। कैंची।

कर्त्तब—पुं० १.=करतब। २.=कर्त्तव्य।

कर्त्तरि प्रयोग—पुं० [सं० व्यस्त पद] व्याकरण में क्रिया का ऐसे रूप में होनेवाला प्रयोग जिसमें वह कर्त्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार बदलती है। (एक्टिव वायस) जैसे—लड़का आता है; लड़की आती है।

कर्त्तरी—स्त्री० [सं०√कृत् (छेदन)+घञ्, कर्त्त√रा(देना)+क, ङीप्] १. कैंची। कतरनी। २. कटार। ३. ताल देने का एक प्रकार का पुराना वाजा। ४. फलित ज्यौतिष में एक प्रकार का योग।

कर्त्तव्य—पुं० [सं०√कृ(करना)+तव्यत्] १. ऐसा काम जो किया जाने को हो या किये जाने के योग्य हो। २. ऐसा काम जिसे पूरा करना अपने लिए परम आवश्यक और धर्म के रूप में हो। ३. ऐसा कृत्य जिसे संपादित करने के लिए लोग विधान या शासन द्वारा वँधे हों। (ड्यूटी, उक्त सभी अर्थों में)

कर्त्तव्यता—स्त्री० [सं० कर्त्तव्य+तल्—टाप्] १. कर्त्तव्य का भाव या स्थिति। २. कर्म-कांड करानेवाले ब्राह्मण को दी जानेवाली दक्षिणा।

कर्त्तव्य-विमूढ़—वि० [स० त०] (व्यक्ति) जिसे अपने कर्त्तव्य का कुछ भी ज्ञान न हो। जो यह न समझे कि क्या करना चाहिए।

कर्त्ता (र्तृ)—वि० [सं०√कृ (करना) तृच्] १. करने, वनाने या रचनेवाला। जैसे—सृष्टि कर्त्ता। २. किसी प्रकार का कार्य या क्रिया करनेवाला। जैसे—दान-कर्त्ता, यज्ञ-कर्त्ता।
पुं० १. धर्मशास्त्र और विधिक क्षेत्रों में, वह व्यक्ति जो घर या परिवार में सवसे वड़ा हो और स्वामी के रूप में सव काम करता हो। २. व्याकरण के ६ कारकों में से पहला कारक जो कोई काम करनेवाला व्यक्ति का वोधक होता है। (नामिनेटिव केस) जैसे—'कृष्ण ने दान दिया।' में 'कृष्ण' कर्त्ताकारक में हैं क्योंकि दान देने का काम उसी ने किया।

कर्त्ताधर्त्ता—पुं० [सं० व्यस्त पद] १. ऐसा व्यक्ति जो किसी विषय के सभी काम प्रधान या मुख्य रूप से करता हो। २. वह व्यक्ति जिसे किसी विषय में पूरे अधिकार प्राप्त हों या सौंपे गये हों।

कर्त्तार—पुं०=करतार।

कर्तृ—वि० पुं०=कर्त्ता।

कर्तृक—भू० कृ० [सं० व० स० में आने पर कर्तृ+कप्] (किसी के द्वारा) निर्मित, पूर्ण या संपादित किया हुआ। जैसे—दैव-कर्तृक=ईश्वर का किया हुआ।

कर्तृत्व—पुं० [सं० कर्तृ+त्व] १. कर्त्ता होने की अवस्था, गुण, धर्म या भाव।
पद—कर्तृत्व शक्ति=करने, वनाने, संपादित करने आदि की शक्ति।
२. क्रिया। ३. कर्त्ता का धर्म। ४. दर्शनशास्त्र में कार्य के उपादान के विषय में ज्ञान प्राप्त करने या कोई काम करने की इच्छा; और उसके लिए होनेवाला प्रयत्न या प्रवृत्ति।

कर्तृ-प्रधान-वाक्य—पुं० [कर्तृ-प्रधान, व० स०, कर्तृ-प्रधान-वाक्य, कर्म० स०] व्याकरण में, वह वाक्य जिसमें कर्त्ता का स्थान प्रधान हो। जैसे—रामलाल पानी पीता है।

कर्तृ-वाचक—वि० [प० त०] व्याकरण में कर्त्ता का वोध करानेवाला (पद या शब्द)।

कर्तृवाची (चिन्)—वि० [सं० कर्तृ √वच् (वोलना)+णिनि] (पद या शब्द) जिससे कर्त्ता का वोध हो। (व्या०)

कर्तृवाच्य—पुं० [व० स०] व्याकरण में क्रिया के विचार से वाच्य के तीन रूपों में से एक जो इस वात का सूचक होता है कि जो कुछ कहा गया है, वह कर्त्ता की प्रधानता के विचार से है। (ऐक्टिव वॉयस) जैसे—राम ने पुस्तक पढ़ी।

कर्द—पुं० [सं० √कर्द् (कुत्सित शब्द)+अच्] कर्दम। कीचड़।
स्त्री० [फा० करद] चाकू। छुरी।

कर्दम—पुं० [सं०√कर्द्+अम] १. कीचड़। कीच। २. गोश्त। मांस। ३. पाप। ४. छाया। ५. स्वायंभुव मन्वंतर के एक प्रजापति।

कर्दमित—वि० [सं० कर्दम+इतच्] कीचड़ से लथपथ। गँदला।

कर्दमिनी—स्त्री० [सं० कर्दम+इनि—ङीप्] कीचड़ से भरी या दलदली जमीन।

कर्दमी—स्त्री० [सं० कर्दम+ङीप्] चैत्र मास की पूर्णिमा।

फर्नल—पुं० [अं०] एक प्रकार का सैनिक अधिकारी अथवा उसका पद।

कर्नेता—पुं० [देश०] रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद।

कर्पट—पुं० [सं०√कृ (विक्षेप)+विच्, कर्-पट कर्म० स०] १. पुराना चिथड़ा। गूदड़। २. पुराणानुसार एक पर्वत।

कर्पटिक—पुं० [सं० कर्पट+ठन्—इक] भीख माँगनेवाला व्यक्ति जो प्रायः चिथड़े या फटे कपड़े पहने रहता है।

कर्पटी (टिन्)—पुं० [सं० कर्पट+इनि]=कर्पटिक।

कर्पण—पुं० [सं०√कृप् (सामर्थ्य)+ल्युट्—अन] एक प्रकार का प्राचीन शस्त्र।

कर्पर—पुं० [सं०√कृप्+अरन्] १. कपाल। खोपड़ी। २. खप्पर। ३. कछुए की खोपड़ी। ४. कड़ाही। ५. गूलर। ६. एक प्रकार का पुराना अस्त्र।

कर्परी—स्त्री० [सं० कर्पर+ङीप्] खपरिया (तूतिया)।

कर्पास—पुं० [सं०√कृ(करना)+पास] कपास।

कर्पूर—पुं० [सं०+कृप्(सामर्थ्य)+ऊर] कपूर।

कर्पूर-गौरी—स्त्री० [उपमि० स०] संगीत में एक प्रकार की संकर रागिनी।

कर्पूरनालिका—स्त्री०= [कर्पूर-नाल, ब० स०, +कन्—टाप्, इत्व] प्राचीन काल का एक प्रकार का पकवान।

कर्पूरमणि—पुं० [मध्य० स०] एक प्रकार का सफेद खनिज पदार्थ जो औषध के काम में आता है।

कर्बर—वि०, पुं०=कर्बुर।

कर्बुदार—पुं० [सं० कर्बु√दॄ (विदीर्ण करना)+णिच्+अच्] १. लिसोड़ा। २. सफेद कचनार। ३. आबनूस का पेड़। तेंदू।

कर्बुर—वि० [सं०√कर्ब् (गर्व करना)+उरच्] जिस पर या जिसमें कई तरह के रंग एक साथ हों। चित-कबरा। रंग-बिरंगा।

पुं० १. सोना। २. धतूरा। ३. पाप। ४. राक्षस। ५. जल। पानी। ६. कचूर। ७. जड़हन धान।

कर्बुरा—स्त्री० [सं० कर्बुर+टाप्] १. वनतुलसी। बबरी। २. कृष्ण तुलसी।

कर्बुरी—स्त्री० [सं० कर्बुर+ङीप्] दुर्गा।

कर्मद—पुं० [सं०] एक सूत्रकार ऋषि।

कर्म(न्)—पुं० [सं० √कृ (करना)+मनिन्] १. वह जो कुछ किया जाय। किया जानेवाला काम या बात। काम। कार्य। जैसे—दुष्कर्म, सत्कर्म। २. हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार प्राणियों के द्वारा पूर्व जन्मों में किये हुए ऐसे कार्य जिनके फल वह इस समय भोग रहा हो अथवा आगे चलकर भोगने को हो। भोग्य। ३. वे कार्य जिन्हें पूरा करना धार्मिक दृष्टि से कर्त्तव्य समझा जाता हो। जैसे—यजन-याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह स्मार्त्त कर्म हैं। ४. हठयोग में धौति, वस्ति, नेति, न्योली आदि क्रियाएँ। ५. ऐसे सब कार्य जो किसी को स्वतः तथा स्वाभाविक रूप से सदा करने पड़ते हैं। जैसे—इंद्रियों का कर्म अपने विषयों का ग्रहण तथा भोग करना है। ६. धार्मिक क्षेत्र में ऐसे कार्य जिन्हें करने का शास्त्रीय विधान हो। जैसे—चूड़ाकर्म। यौ०—कर्मकांड (दे०) ७. मृतक की आत्मा को शांति प्राप्त कराने या उसे सद्गति दिलाने के उद्देश्य से किये जानेवाले कार्य या संस्कार। जैसे— अंत्येष्टि कर्म।

विशेष—हमारे यहाँ के शास्त्रों में कर्म का विचार अनेक दृष्टियों से हुआ है। मीमांसा में इसके दो भेद किये गये हैं—गुण-कर्म और प्रधान कर्म। योगसूत्र में इसके विहित, निषिद्ध और मिश्र ये तीन रूप कहे गये हैं। वैशेषिक में यह ६ पदार्थों में से एक माना गया है। जैन दर्शन में इसकी उत्पत्ति जीव और पुद्‌गल के आदि संबंध से मानी गई है।

८. कोई प्रशंसनीय या स्तुत्य काम। ९. व्यंग्य के रूप में, कोई अनुचित या हास्यास्पद काम। करतूत। जैसे—अभी न जाने आपने और कितने ऐसे कर्म किये होंगे। १०. व्याकरण में किसी वाक्य का वह पद जिस पर (या जिसके वाच्य पर) कर्त्ता की क्रिया का प्रभाव पड़ता या फल होता है। (ऑब्जेक्टिव) जैसे—'मैंने उसे पुस्तक दी।' में का 'पुस्तक' कर्म है; क्योंकि मेरे द्वारा देने की जो क्रिया हुई है उसका प्रभाव या फल पुस्तक पर हुआ है।

वि० अच्छी तरह और पूरा पूरा काम करनेवाला। (यौगिक पदों के आरंभ में पूर्व-पद के रूप में) जैसे—कर्म-कार्मुक=अच्छी तरह या पूरा काम देनेवाला अर्थात् बढ़िया धनुष।

कर्मकर—पुं० [सं० कर्मन्√कृ+ट] १. कर्म या कार्य करनेवाला प्राणी। २. मजदूर। श्रमिक। कमकर। ३. प्राचीन भारत में सेवकों की एक जाति या वर्ग।

कर्म-कांड—पुं० [सं० मध्य० स०] १. पूजा, यज्ञ, संस्कारों आदि से संबंध रखनेवाले धार्मिक कर्म या कृत्य। २. वे शास्त्र जिनमें उक्त कर्मों के संपादन की रीतियों या विधानों का विवेचन है। ३. उक्त विधानों के अनुसार होनेवाला पूजन आदि कृत्य।

कर्मकांडी(डिन्)—पुं० [सं० कर्मकांड+इनि] १. ब्राह्मण, जो कर्मकांड का पंडित हो। २. पूजन, यज्ञ आदि कर्म करनेवाला ब्राह्मण। ३. वह जो कर्मकांड के अनुसार पूजन आदि कराता हो।

कर्मकार—पुं० [सं० कर्मन्√कृ+अण्, उप० स०] १. एक प्राचीन वर्णसंकर जाति। २. आज-कल कई तरह के कारीगरों का सामाजिक नाम। ३. वह जिससे जबरदस्ती और बिना कुछ पारिश्रमिक दिये काम कराया जाय। बेगार। ४. नौकर। सेवक। ५. बैल।

कर्म-कारक—वि० [प० त०] कर्म करनेवाला।

पुं० १. कर्मकार। २. व्याकरण में किसी पद या शब्द की वह स्थिति जो उसे कर्म (देखें 'कर्म' १०) होने की दशा में प्राप्त होती है। (आब्जेक्टिव केस)।

कर्म-क्षय—पुं० [प० त०] भूतकाल में किये हुए कर्मों का वह क्षय या नाश जो उनके विपरीत कर्म करने से होता है। जैसे—दान से पापों का कर्मक्षय ; व्यभिचार से तपस्या का कर्म-क्षय।

कर्म-क्षेत्र—पुं० [प० त०] १. कार्य करने का स्थान। २. कार्य-क्षेत्र (दे०)। ३. भारतवर्ष, जो हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार कर्म करने का मुख्य क्षेत्र माना गया है।

कर्म-गुण—पुं० [प० त०] अच्छी तरह काम करने की क्षमता या योग्यता।

कर्म-गृहीत—वि० [तृ० त० या मध्य० स०] जो कोई अनुचित या दंडनीय काम करता हुआ पकड़ा जाय। (रेड-हैंडेड)

कर्म-घात—पुं०=कर्मक्षय।

कर्म-चांडाल—पुं० [तृ० त०] ऐसा व्यक्ति जो नीच कर्म करने के कारण चांडालों के समान माना जाय। जैसे—कृतघ्न, चुगलखोर, पर-निंदक आदि। (स्मृति)

कर्मचारी (रिन्)—पुं० [सं० कर्म√चर् (गति)+णिनि] वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति या संस्था के द्वारा किसी कार्य के संपादन के लिए पारिश्रमिक या वेतन पर नियुक्त किया गया हो।

पद—**कर्मचारी-संघ**=उक्त व्यक्तियों का ऐसा संघटन या संस्था जो उनके हितों की रक्षा के लिए बनी हो।

कर्मज—वि० [सं० कर्म√जन् (पैदा होना)+ड] १. कर्म से उत्पन्न। २. पूर्व-जन्म के कर्मों के फल के रूप में होनेवाला।

पुं० १. कलियुग। २. बड़ का पेड़। ३. पूर्व जन्म के पापों के फल-स्वरूप होनेवाला रोग।

कर्मठ—वि० [सं० कर्मन्+अठच्] १. जो बराबर और अच्छी तरह सब या बहुत काम करता रहता हो। २. जिसने बहुत-से अच्छे तथा बड़े बड़े काम किये हों। ३. कर्म-निष्ठ। ४. जो धर्म-शास्त्रों आदि में बतलाये हुए सब काम ठीक और पूरी तरह से करता हो। कर्म-निष्ठ। पुं०=कर्म-कांडी।

कर्मणा—क्रि० वि० [सं० कर्मन् का करणकारक का रूप] १. कर्म के विचार से। कर्मों के आधार पर। जैसे—जाति-भेद मूलतः कर्मणा था। २. कर्मों के द्वारा। क्रियात्मक रूप में। जैसे—कर्मणा पाप, पुण्य या सेवा करना।

कर्मण्य—वि० [सं० कर्मन्+यत्] १. अच्छी तरह या पूरा काम करने में कुशल या दक्ष (व्यक्ति)। २. धर्म या शास्त्र के अनुसार जो किये जाने के योग्य हो (कार्य)। ३. कर्म या कार्य-संबंधी।

कर्मण्यता—स्त्री० [सं० कर्मण्य+तल्—टाप्] कर्मण्य होने की अवस्था, गुण या भाव।

कर्मण्या—स्त्री० [सं० कर्मण्य+टाप्] १. किये हुए काम के बदले में मिलने-वाला धन। जैसे—पारिश्रमिक, मजदूरी, वेतन आदि। २. किराया। भाड़ा।

कर्म-देव—पुं० [तृ० त०] उपनिषदों के अनुसार वैदिक कर्म करनेवाले तैंतीस देवताओं का एक वर्ग।

कर्मधारय-समास—स्त्री० [सं० कर्म० स०] व्याकरण में तत्पुरुष समास का एक भेद।

विशेष—इस प्रकार के तत्पुरुष समास का विग्रह करने पर उसके दोनों पदों में कर्त्ताकारक की विभक्ति लगनी चाहिए।

कर्मना*—क्रि० वि०=कर्मणा।

कर्म-निष्ठ—वि० [ब० स०] १. अपने काम या कर्त्तव्यपालन में शुद्ध हृदय से और बराबर लगा रहनेवाला। २. अपने कार्य को धर्म-स्वरूप समझकर पूरा करनेवाला। कर्म में आस्था रखनेवाला। ३. धर्म-शास्त्रों में बतलाये हुए धार्मिक कर्म और कर्त्तव्य अच्छी तरह और बराबर करता रहनेवाला।

कर्म-पंचमी—स्त्री० [प० त०] एक प्रकार की संकर रागिनी जो देशकार, ललित, बसंत और हिंदोल के योग से बनी हुई कही गई है।

कर्म-पाक—पुं० [प० त०] पहले के किये हुए कर्मों का फल।

कर्म-प्रधान—वि० [ब० स०] १. जिसमें कर्म की प्रधानता हो। २. भौतिक पदार्थों, उनके कार्यों अथवा उनसे होनेवाली अनुभूतियों से संबंध रखनेवाला। (ऑब्जेक्टिव)

कर्मप्रधान-क्रिया—स्त्री० [कर्म० स०] ऐसी क्रिया जिसमें कर्म ही मुख्य होकर कर्त्ता के समान आता हो और जिसमें लिंग तथा वचन में उसी के अनुसार विकार होता हो।

कर्म-प्रधान-वाक्य—पुं० [कर्म० स०] ऐसा वाक्य जिसमें कर्म ही मुख्य रूप से कर्त्ता की तरह आया हो।

कर्म-फल—पुं० [प० त०] १. किये हुए कामों का फल। २. भूत काल में अथवा पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार मिलनेवाले फल।

कर्म-बंध—पुं० [तृ० त०] जन्म और मरण का बंधन जो किये हुए कर्मों के फल-स्वरूप होता है।

कर्म-भूमि—स्त्री० [सं० प० त०] १. वह क्षेत्र या स्थान जहाँ धार्मिक कर्म या कृत्य होते हों। २. कर्म-क्षेत्र (भारतवर्ष)।

कर्म-भोग—पुं० [प० त०] पहले के किये हुए कर्मों का फल-भोग।

कर्म-मास—पुं० [प० त०] तीस दिनों का सावन महीना। सावन मास (देखें)।

कर्म-युग—पुं० [√सं० कृ (हिंसा)+मनिन्—कर्म, कर्म-युग, मध्य० स०] कलियुग।

कर्म-योग—पुं० [स० त०] दार्शनिक क्षेत्र में, वह मत या सिद्धांत जिसके अनुसार मनुष्य सब प्रकार के शास्त्र-विहित तथा शुभ कर्मों का आचरण बिलकुल निर्लिप्त होकर करता है; और इस बात का विचार नहीं करता कि यह काम पूरा उतरेगा या नहीं अथवा इसका शुभ फल मुझे मिलेगा या नहीं। फलाफल का विचार किये बिना अपने कर्त्तव्य के पालन में बराबर लगे रहने का नियम या व्रत। (श्रीमद्भगवद् गीता में इस मत का विशेष रूप से प्रतिपादन हुआ है।)

कर्मयोगी (गिन्)—पुं० [सं० कर्मयोग+इनि] १. व्यक्ति, जो कर्मयोग का अनुयायी हो और उसका ठीक तरह से पालन करता हो। २. शुद्ध हृदय से और मन लगाकर बड़े-बड़े काम करनेवाला व्यक्ति।

कर्म-रंग—पुं० [ब० स०] १. कमरख का वृक्ष और उसका फल।

कर्म-रेख—स्त्री० =कर्म-रेखा।

कर्म-रेखा—स्त्री० [प० त०] भाग्य में लिखी हुई रेखाएँ जिनका फल भोगना पड़ता है।

कर्म-वध—पुं० [तृ० त०] चिकित्सा में की जानेवाली ऐसी असावधानी या भूल जिससे रोगी को हानि पहुँचे।

कर्म-वाच्य—स्त्री० [ब० स०] व्याकरण में क्रिया के विचार से वाक्य के तीन रूपों में से एक जो इस बात का सूचक होता है कि जो कुछ कहा गया है वह कर्म के विचार से है (न कि कर्त्ता के विचार से)। (पैसिव वॉयस) जैसे—पुस्तक को राम ने पढ़ा।

कर्म-वाद—पुं० [प० त०] १. मीमांसा-दर्शन, जिसमें कर्म ही प्रधान माना गया है। २. दे० 'कर्म-योगी'।

कर्मवादी (दिन्)—पुं० [सं० कर्मवाद+इनि] १. मीमांसा दर्शन का अनुयायी या ज्ञाता। २. कर्मकांड करनेवाला ब्राह्मण। ३. भाग्यवादी।

कर्मवान् (वत्)—वि० [सं० कर्म+मतुप्] १. जिसने बहुत-से अच्छे तथा स्तुत्य काम किये हों। २.=कर्मनिष्ठ।

कर्म-विपाक—पुं० [प० त०] पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार मिलनेवाला फल।

कर्म-वीर—वि० [स० त०] जिसने प्रशंसनीय तथा स्तुत्य काम किये हों। जो काम करने में बहादुर हो।

कर्म-शाला—स्त्री० [प० त०] वह स्थान जहाँ कारीगर या शिल्पी बैठकर काम करते हों। (वर्क-शाप)

कर्म-शील—पुं० [ब० स०] १. वह जो बराबर अच्छे कामों में लगा रहे। २. धर्मशास्त्रों में वह जो फल की अभिलाषा छोड़ स्वभावतः काम करे। कर्मवान्।

कर्म-शूर—वि०=कर्मवीर।

कर्म-शौच—पुं० [स० त०] विनय। नम्रता।

कर्म-संग—पुं० [स० त०] कर्मों और उनके फलों के प्रति होनेवाली आसक्ति।

कर्म-संन्यास—पुं० [प० त०] [वि० कर्मसंन्यासी] १. सब प्रकार के कर्मों का त्याग। २. वह व्रत या सिद्धांत जिसमें सब प्रकार के नित्य, नैमित्तिक आदि कर्म तो किये जाते है पर उनके फलों की कामना नहीं की जाती।

कर्म-संन्यासी (सिन्)—पुं० [सं० कर्मसंन्यास+इनि] कर्म-संन्यास के सिद्धांतों के अनुसार चलने और जीवन वितानेवाला व्यक्ति।

कर्म-साक्षी (क्षिन्)—वि० [प० त०] (ऐसा गवाह या साक्षी) जिस के सामने कोई काम हुआ हो।
पुं० धर्मशास्त्रों में अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य आदि ऐसे देवता जो प्राणियों के सब कर्म साक्षी बनकर देखते रहते हैं।

कर्म-स्थान—पुं० [प० त०] १. कर्मशाला। २. कर्मभूमि। ३. फलित ज्योतिष में कुंडली में लग्न से दसवाँ स्थान जो मनुष्य के पद, मर्यादा, राजसम्मान आदि का सूचक होता है।

कर्म-हीन—वि० [तृ० त०] १. जो कोई अच्छा काम न करता हो या न कर सकता हो। २. जिसका कर्म (भाग्य) अच्छा न हो। अभागा। भाग्यहीन।

कर्मांत—पुं० [सं० कर्म-अंत, प० त०] १. काम का अंत या समाप्ति। २. [ब० स०] जोती हुई भूमि। ३. कर्मशाला। कारखाना।

कर्मांतिक—पुं० [सं० कर्म-अंतिक, ब० स०] कर्मचारी।

कर्मा—वि० [सं० कर्मन् से] करनेवाला (यौ० शब्दों के अंत में)। जैसे—पापकर्मा, पुण्यकर्मा।

कर्मादान—पुं० [सं० कर्म-अदान, प० त०] वे कर्म या व्यापार जो जैन साधुओं के लिए वर्जित है। ये १५ हैं—इंगला कर्म, वन कर्म, साकट वा साड़ी कर्म, भाडी कर्म, स्फोटिक कर्म—कोडी कर्म, दंतकुवाणिज्य, लाक्षाकुवाणिज्य, रसकुवाणिज्य, केशकुवाणिज्य, विषकुवाणिज्य, यंत्र-पीड़न, निर्लांछन, दावाग्नि—दान-कर्म, शोषण-कर्म और असतीपोषण।

कर्मार—पुं० [सं० कर्म√ऋ (गति)+अण्] १. मेमार, लुहार, सुनार आदि कारीगर। २. एक प्रकार का पतला हलका बाँस। कमोरिया बाँस।

कर्मिष्ठ—वि० [सं० कर्मिन्+इष्ठन्] १. अच्छी तरह सब काम करने-वाला। २. कर्मनिष्ठ।

कर्मी (र्मिन्)—वि० [सं० कर्म+इनि] [स्त्री० कर्मिणी] १. कर्म करनेवाला। २. क्रियक। सक्रिय। ३. धार्मिक क्षेत्र में फल की आकांक्षा से यज्ञ आदि कर्म करनेवाला।
पुं० वह जो छोटे-मोटे काम या सेवाएं करके जीविका चलाता हो। जैसे—कारीगर, मजदूर आदि।

कर्मीर—पुं० [सं० कर्म+ईरन्] १. किर्मीर। नारंगी रंग। २. कहीं एक तरह का और कहीं दूसरी तरह का रंग।

कर्मीला†—वि० [सं० कर्म+हिं० प्रत्य० ईला] [स्त्री० कर्मीली] अच्छा, बड़ा या बहुत काम करनेवाला। कर्मशील और परिश्रमी।

कर्मेंद्रिय—स्त्री० [सं० कर्म-इंद्रिय, मध्य० स०] शरीर के वे अंग या अवयव (ज्ञानेंद्रियों से भिन्न) जो कर्म या कार्य करते हैं और गिनती में पाँच है। यथा—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ।

कर्मोपघाती (तिन्)—वि० [सं०कर्म-उपघातिन्, प० त०] दूसरों के काम में बाधा पहुँचानेवाला। काम बिगाड़नेवाला।

कर्रा†—पुं० [सं० कराल=फैलाना] जुलाहों का सूत फैलाकर तानने का काम।
†वि०=कड़ा।

कर्राना†—अ० [हिं० कर्रा] कड़ा होना। कठोर होना। सख्त होना।
अ० [हिं० करकर] करकर शब्द होना।
स० करकर शब्द करना।

कर्री—स्त्री० [देश०] बड़े पत्तोंवाला एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते चारे के काम आते हैं।

कर्वट—पुं० [सं०√कर्व् (दर्प)+अट] १. पहाड़ की ढाल। २. गाँव। ३. गाँवों में लगनेवाले बाजार। पैठ। ४. मंडी।
†स्त्री०=करवट।

कर्वर—वि० [सं०√कृ (विक्षेप, वध)+वरच्] चितकबरा।
पुं० [स्त्री० कर्वरी] १. पाप। २. राक्षस। ३ बाघ। व्याघ्र।

कर्वरी—स्त्री० [सं० कर्वर+ङीप्] १. दुर्गा। २ रात। ३. बाघ की मादा। बाघिन। ४. राक्षसी।

कर्शन—पुं० [सं०√कृश् (क्षीण होना)+णिच्+ल्युट्-अन] कृश अर्थात् क्षीण, दुर्बल या शक्तिहीन करना।

कर्शित—वि० [सं०√कृश्+णिच् +क्त] १. जो कृश या क्षीण कर दिया गया हो। २. अशक्त। सामर्थ्यहीन।

कर्ष—पुं० [सं०√कृष् (खींचना) +अच् वा घञ्] अपनी ओर खींचना या घसीटना। २ आपस में होनेवाला दुर्भाव या तनातनी। मन-मुटाव। ३. क्रोध। रोष। ४. खेत की जोताई। ५ रेखा या लकीर खींचना। ६ बहेड़ा। ७. एक प्रकार का पुराना सिक्का जिसे 'द्रूण' भी कहते थे। ८. एक पुरानी तौल जो १६ माशे की होती थी।

कर्षक—वि० [सं०√कृष् (खींचना) +ण्वुल्—अक्] १. खींचने या घसीटनेवाला। २. हल जोतनेवाला।

कर्ष-कर्म (न्)—पुं० [सं० प० त०] चित्रकला में घोटाई नाम की क्रिया। विशेष दे० घोटाई।

कर्षण—पुं० [सं०√कृष्+ल्युट्—अन] [वि० कर्षित, कर्षी, कर्षक, कर्षणीय, कर्ष्य] १. किसी वस्तु को अपनी ओर या अपने पास खींच या घसीटकर लाने की क्रिया या भाव। २. खरोंचकर लकीर बनाना। ३. खेत में हल जोतना। ४. खेती-बारी का काम।

कर्षणि—स्त्री० [सं०√कृष्+अनि] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा।

कर्षना*—स० [सं० कर्षण] खींचना।

कर्ष-फल—पुं० [ब० स०] १. बहेड़ा। २. आँवला।

कर्षित—भू० कृ० [सं०√कृष्+णिच्+क्त] [स्त्री० कर्षिता] १. अपनी ओर खींच या घसीटकर लाया हुआ। २. खींचा या खिंचा हुआ। ३. जोता हुआ (खेत)।

कर्षी(पिन्)—वि० [सं० √कृप्+णिनि] [स्त्री० कर्षिणी] १. कर्षण करने या खींचनेवाला। २. (खेत) जोतनेवाला।

कर्षुक—वि० [सं०√कृप्+उकञ् बा०] खींचनेवाला।
पुं० दे० 'चुंबक'।

कर्षुकीय—वि० [सं० कर्पुक+छ—ईय] कर्पुक या चुंबक से संबंध रखनेवाला। चुंबकीय (देखें)।

कर्षू—पुं० [सं०√कृप्+ऊ] १. कंडे की आग। २. खेती-बारी। ३. जीविका।
स्त्री० १. छोटा ताल। २. नदी। ३. नहर। ४. यज्ञकुंड।

कर्हि—क्रि० वि० [सं० किम्+हिल्, कादेश] कब? किस समय?

कर्हि-चित्—क्रि० वि० [सं० द्व० स०] १. किसी समय। कभी। २. कदाचित्। शायद कभी।

कलंक—पुं० [सं०√कल् (गति)+क्विप्, कल्-अंक, कर्म० स०] [वि० कलंकित, कलंकी] १. दाग। धब्बा। २. कोई ऐसा अनुचित कर्म या कार्य जिससे ख्याति, प्रतिष्ठा या मर्यादा पर बट्टा लगता हो। अपयश या कुख्याति करानेवाला कार्य या उसका लक्षण।

कलंकप—पुं० [सं० कर√कप्+खच् (बा०) मुम्, र को ल] १. शेर। सिंह। २. एक प्रकार का पुराना बाजा।

कलंकांक—पुं० [सं० कलंक-अंक, ब० स०] १. वह जिसके अंक या शरीर में कोई कलंक (दाग या धब्बा) हो। २. चंद्रमा में दिखाई पड़नेवाला दाग या धब्बा।

कलंकित—वि० [सं० कलंक+इतच्] १. जिस पर कोई कलंक लगा हो या लगाया गया हो। कलंक से युक्त। २. कोई अनुचित या निंदनीय काम करने पर जिसकी लोक या समाज में कुख्याति या बदनामी हुई हो। जिस पर कलंक लगा हो। ३. (लोहा अथवा और कोई धातु) जिस पर जंग लगा हो अथवा मैल जमा हुआ हो।

कलंकी(किन्)—वि० [सं० कलंक+इनि] [स्त्री० कलंकिनी] कोई अपराध या दुष्कर्म करने के कारण जिस पर कलंक लगा हो और इसीलिए जो दूषित या निंदनीय समझा जाता हो।
†पुं०=कल्कि (अवतार)।

कलंकुर—पुं० [सं० क√लंक् (गति)+णिच्+उरच्] पानी का भँवर।

कलंगड़ा†—पुं० [सं० कलिंग] १. तरबूज। २. दे० 'कलिंगड़ा'(राग)।

कलंगा—पुं० [हिं० कलगी] १. ठठेरों की वह छेनी जिससे वे नक्काशी करते हैं। २. छीपियों का वह ठप्पा जिससे वे कलगे के आकार का बूटा छापते हैं। ३. दे० 'कलगा'।

कलंगी—स्त्री०=कलगी।

कलंगो—स्त्री० [हिं० कली+अंग] जंगली भाँग का वह भेद जिसमें फूल नहीं होते, केवल बीज होते है। (जिसमें फूल भी लगते हैं, उसे फुलंगो कहते हैं।)।

कलंज—पुं० [सं० क√लंज् (भाषण)+अण्] १. तमाकू का पौधा। २. हिरन। ३. पक्षी का मांस। ४. एक पुरानी तौल जो १० पल की होती थी।

कलंदर—पुं० [अ० क़लंदर] १. एक प्रकार के मुसलमान फकीर। २. मुसलमान मदारी जो बंदरों, भालुओं आदि के तमाशे दिखाते फिरते हैं। ३. दे० 'कलंदरा'।

कलंदरा—पुं० [अ० कलन्दरः] १. एक प्रकार का कपड़ा जो सूत, रेशम और टसर के मेल से बनता है। २. खेमे में लगी हुई वह खूँटी जिस पर कपड़े आदि टाँगे जाते हैं। ३. वह खूँटा जिससे खेमे की रस्सियाँ खींच कर बाँधी जाती हैं।
पुं० [अं०=कैलेंडर] १. जंतरी। पंचांग। २. अभियोगों की वह सूची जो अभियुक्त का विचार करने से पहले प्रस्तुत की जाती है। (चार्जशीट)।

कलंदरी—वि० [हिं० कलंदरा+ई (प्रत्य०)] कलंदर-संबंधी। कलंदरों का।
पुं० वह खेमा जिसमें कलंदरे या खूँटियाँ लगी हों।

कलंधर—पुं० [सं० कलाधर] चन्द्रमा।

कलंब—पुं० [सं०√कल् (क्षेप)+अम्बच्] १. कदंब। २. शर। सरपत। ३. साग का डंठल।

कलंबक—पुं० [सं०√कड् (मद)+अम्बच्,+कन्, ड=ल] एक तरह का कदंब।

कलंबिका—स्त्री० [सं० कलंब+ङीप्, कलंबी√कै (शब्द)+क—टाप्, ह्रस्व] गले के पीछे की नाड़ी। मन्या।

कल—पुं० [सं०√कल् (शब्द)+घञ्, अवृद्धि (नि०)] १. अव्यक्त और अस्पष्ट परन्तु मधुर ध्वनि। जैसे—नदियों का कल-नाद, पक्षियों का कल-रव, रमणी का कल-कंठ। २. वीर्य। ३. चार मात्राओं का काल। ४. पितरों का एक वर्ग। ५. शिव। ६. साल का वृक्ष।
वि० १. मनोहर। सुन्दर। सुहावना। प्रिय। मधुर। २. कोमल।
पुं० [सं० कल्यम्, कल्ये,√कल्; पा० प्रा० कल्लम्, कल्हि; का० काल; बँ० काल; उ० काला; पं० कल्ल; सिं० कल्ह; गु० कलि] १. आज के दिन से ठीक पहले का बीता हुआ दिन। जैसे—कल हम वहाँ गये थे।
पद—कल का=बहुत थोड़े दिनों या समय का। जैसे—कल का लड़का हमें सिखाने चला है।
२. आज के दिन के ठीक बाद आनेवाला दूसरा दिन। जैसे—कल वहाँ जाकर पुस्तक ले आना।
मुहा०—आज-कल करना=कोई काम या बात टालने के लिए यह कहते रहना कि आज कर देंगे, कल कर देंगे। केवल वादे करके टालते चलना। जैसे—आज-कल करते-करते तो आपने महीनों बिता दिये।
३. आज के बाद या भविष्य में आनेवाला कोई अनिश्चित दिन या समय। जैसे—(क) आज का काम कल पर टालना ठीक नहीं। (ख) जो करना हो वह तुरन्त कर डालो, कल न जाने क्या हो।
पद—कल को=आनेवाले किसी अनिश्चित समय में। जैसे—(क) आनेवाली पीढ़ियाँ कल को कह सकती हैं कि हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए कुछ न किया। (ख) आज तो आप ऐसा कहते हैं, पर कल को आप बदल गये तो?
क्रि० वि० कल के दिन। कल के रोज। जैसे—(क) कल वह आया था। (ख) कल चले जाना।
स्त्री० [सं० कल्य, प्रा० कल्ल] १. नीरोग या रोग-रहित होने की अवस्था या भाव। अच्छा स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। २. आराम, चैन और सुख से रहने की दशा। जैसे—जब से वह बात सुनी है तब से कल

कर्म-शाला—स्त्री० [ष० त०] वह स्थान जहाँ कारीगर या शिल्पी बैठकर काम करते हों। (वर्क-शाप)

कर्म-शील—पुं० [ब० स०] १. वह जो बराबर अच्छे कामों में लगा रहे। २. धर्मशास्त्रों में वह जो फल की अभिलाषा छोड़ स्वभावतः काम करे। कर्मवान्।

कर्म-शूर—वि०=कर्मवीर।

कर्म-शौच—पुं० [स० त०] विनय। नम्रता।

कर्म-संग—पुं० [स० त०] कर्मों और उनके फलों के प्रति होनेवाली आसक्ति।

कर्म-संन्यास—पुं० [ष० त०] [वि० कर्मसंन्यासी] १. सब प्रकार के कर्मों का त्याग। २. वह व्रत या सिद्धांत जिसमें सब प्रकार के नित्य, नैमित्तिक आदि कर्म तो किये जाते हैं पर उनके फलों की कामना नहीं की जाती।

कर्म-संन्यासी (सिन्)—पुं० [सं० कर्मसंन्यास+इनि] कर्म-संन्यास के सिद्धांतों के अनुसार चलने और जीवन बितानेवाला व्यक्ति।

कर्म-साक्षी (क्षिन्)—वि० [ष० त०] (ऐसा गवाह या साक्षी) जिसके सामने कोई काम हुआ हो।

पुं० धर्मशास्त्रों में अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य आदि ऐसे देवता जो प्राणियों के सब कर्म साक्षी बनकर देखते रहते हैं।

कर्म-स्थान—पुं० [ष० त०] १. कर्मशाला। २. कर्मभूमि। ३. फलित ज्योतिष में कुंडली में लग्न से दसवाँ स्थान जो मनुष्य के पद, मर्यादा, राजसम्मान आदि का सूचक होता है।

कर्म-हीन—वि० [तृ० त०] १. जो कोई अच्छा काम न करता हो या न कर सकता हो। २. जिसका कर्म (भाग्य) अच्छा न हो। अभागा। भाग्यहीन।

कर्मांत—पुं० [सं० कर्म-अंत, ष० त०] १. काम का अंत या समाप्ति। २. [ब० स०] जोती हुई भूमि। ३. कर्मशाला। कारखाना।

कर्मांतिक—पुं० [सं० कर्म-अंतिक, ब० स०] कर्मचारी।

कर्मा—वि० [सं० कर्मन् से] करनेवाला (यौ० शब्दों के अंत में)। जैसे—पापकर्मा, पुण्यकर्मा।

कर्मादान—पुं० [सं० कर्म-अदान, ष० त०] वे कर्म या व्यापार जो जैन साधुओं के लिए वर्जित हैं। ये १५ हैं—इंगला कर्म, वन कर्म, साकट वा साड़ी कर्म, भाडी कर्म, स्फोटिक कर्म—कोडी कर्म, दंतकुवाणिज्य, लाक्षाकुवाणिज्य, रसकुवाणिज्य, केशकुवाणिज्य, विषकुवाणिज्य, यंत्र-पीड़न, निर्लांछन, दावाग्नि—दान-कर्म, शोषण-कर्म और असतीपोषण।

कर्मार—पुं० [सं० कर्म√ऋ (गति)+अण्] १. मेमार, लुहार, सुनार आदि कारीगर। २. एक प्रकार का पतला हलका बाँस। कमोरिया बाँस।

कर्मिष्ठ—वि० [सं० कर्मिन्+इष्ठन्] १. अच्छी तरह सब काम करनेवाला। २. कर्मनिष्ठ।

कर्मी (मिन्)—वि० [सं० कर्म+इनि] [स्त्री० कर्मिणी] १. कर्म करनेवाला। २. क्रियक। सक्रिय। ३. धार्मिक क्षेत्र में फल की आकांक्षा से यज्ञ आदि कर्म करनेवाला।

पुं० वह जो छोटे-मोटे काम या सेवाएँ करके जीविका चलाता हो। जैसे—कारीगर, मजदूर आदि।

कर्मीर—पुं० [सं० कर्म+ईरन्] १. किर्मीर। नारंगी रंग। २. कहीं एक तरह का और कहीं दूसरी तरह का रंग।

कर्मीला†—वि० [सं० कर्म+हिं० प्रत्य० ईला] [स्त्री० कर्मीली] अच्छा, बड़ा या बहुत काम करनेवाला। कर्मशील और परिश्रमी।

कर्मेंद्रिय—स्त्री० [सं० कर्म-इंद्रिय, मध्य० स०] शरीर के वे अंग या अवयव (ज्ञानेंद्रियों से भिन्न) जो कर्म या कार्य करते हैं और गिनती में पाँच है। यथा—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ।

कर्मोपघाती (तिन्)—वि० [सं० कर्म-उपघातिन्, ष० त०] दूसरों के काम में बाधा पहुँचानेवाला। काम बिगाड़नेवाला।

कर्रा†—पुं० [सं० कराल=फैलाना] जुलाहों का सूत फैलाकर तानने का काम।

†वि०=कड़ा।

कर्राना†—अ० [हिं० कर्रा] कड़ा होना। कठोर होना। सख्त होना।

अ० [हिं० करकर] करकर शब्द होना।

स० करकर शब्द करना।

कर्री—स्त्री० [देश०] बड़े पत्तोंवाला एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते चारे के काम आते हैं।

कर्वट—पुं० [सं०√कर्व् (दर्प)+अट] १. पहाड़ की ढाल। २. गाँव। ३. गाँवों में लगनेवाले बाजार। पैठ। ४. मंडी।

†स्त्री०=करवट।

कर्वर—वि० [सं०√कृ (विक्षेप, वध)+वरच्] चितकबरा।

पुं० [स्त्री० कर्वरी] १. पाप। २. राक्षस। ३ बाघ। व्याघ्र।

कर्वरी—स्त्री० [सं० कर्वर+ङीप्] १. दुर्गा। २ रात। ३. बाघ की मादा। बाघिन। ४. राक्षसी।

कर्शन—पुं० [सं०√कृश् (क्षीण होना)+णिच्+ल्युट्-अन] कृश अर्थात् क्षीण, दुर्बल या शक्तिहीन करना।

कर्शित—वि० [सं०√कृश्+णिच्+क्त] १. जो कृश या क्षीण कर दिया गया हो। २. अशक्त। सामर्थ्यहीन।

कर्ष—पुं० [सं०√कृष् (खींचना) +अच् वा घञ्] अपनी ओर खींचना या घसीटना। २ आपस में होनेवाला दुर्भाव या तनातनी। मन-मुटाव। ३. क्रोध। रोष। ४. खेत की जोताई। ५ रेखा या लकीर खींचना। ६ बहेड़ा। ७. एक प्रकार का पुराना सिक्का जिसे 'द्रुण' भी कहते थे। ८. एक पुरानी तौल जो १६ माशे की होती थी।

कर्षक—वि० [सं०√कृष् (खींचना) +ण्वुल्—अक्] १. खींचने या घसीटनेवाला। २. हल जोतनेवाला।

कर्ष-कर्म (न्)—पुं० [सं० ष० त०] चित्रकला में घोटाई नाम की क्रिया। विशेष दे० घोटाई।

कर्षण—पुं० [सं०√कृष्+ल्युट्—अन] [वि० कर्षित, कर्षी, कर्षक, कर्षणीय, कर्ष्य] १. किसी वस्तु को अपनी ओर या अपने पास खींच या घसीटकर लाने की क्रिया या भाव। २. खरोंचकर लकीर बनाना। ३. खेत में हल जोतना। ४. खेती-बारी का काम।

कर्षणि—स्त्री० [सं०√कृष्+अनि] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा।

कर्षना*—स० [सं० कर्षण] खींचना।

कर्ष-फल—पुं० [ब० स०] १. बहेड़ा। २. आँवला।

कर्षित—भू० कृ० [सं०√कृष्+णिच्+क्त] [स्त्री० कर्षिता] १. अपनी ओर खींच या घसीटकर लाया हुआ। २. खींचा या खिंचा हुआ। ३. जोता हुआ (खेत)।

कर्षी(षिन्)—वि० [सं० √कृष्+णिनि] [स्त्री० कर्षिणी] १. कर्षण करने या खींचनेवाला। २. (खेत) जोतनेवाला।

कर्षुक—वि० [सं०√कृष्+उकञ् वा०] खींचनेवाला।
पुं० दे० 'चुंबक'।

कर्षुकीय—वि० [सं० कर्षुक+छ—ईय] कर्षुक या चुंबक से संबंध रखनेवाला। चुंबकीय (देखें)।

कर्षू—पुं० [सं०√कृष्+ऊ] १. कंडे की आग। २. खेती-बारी। ३. जीविका।
स्त्री० १. छोटा ताल। २. नदी। ३. नहर। ४. यज्ञकुंड।

कर्हि—क्रि० वि० [सं० किम्+र्हिल्, कादेश] कब ? किस समय ?

कर्हि-चित्—क्रि० वि० [सं० द्व० स०] १. किसी समय। कभी। २. कदाचित्। शायद कभी।

कलंक—पुं० [सं०√कल् (गति)+क्विप्, कल्-अंक, कर्म० स०] [वि० कलंकित, कलंकी] १. दाग। धब्बा। २. कोई ऐसा अनुचित कर्म या कार्य जिससे ख्याति, प्रतिष्ठा या मर्यादा पर बट्टा लगता हो। अपयश या कुख्याति करानेवाला कार्य या उसका लक्षण।

कलंकष—पुं० [सं० कर√कष्+खच् (वा०) मुम्, र को ल] १. शेर। सिंह। २. एक प्रकार का पुराना बाजा।

कलंकांक—पुं० [सं० कलंक-अंक, ब० स०] १. वह जिसके अंक या शरीर में कोई कलंक (दाग या धब्बा) हो। २. चंद्रमा में दिखाई पड़नेवाला दाग या धब्बा।

कलंकित—वि० [सं० कलंक+इतच्] १. जिस पर कोई कलंक लगा हो या लगाया गया हो। कलंक से युक्त। २. कोई अनुचित या निंदनीय काम करने पर जिसकी लोक या समाज में कुख्याति या बदनामी हुई हो। जिस पर कलंक लगा हो। ३. (लोहा अथवा और कोई धातु) जिस पर जंग लगा हो अथवा मैल जमा हुआ हो।

कलंकी(किन्)—वि० [सं० कलंक+इनि] [स्त्री० कलंकिनी] कोई अपराध या दुष्कर्म करने के कारण जिस पर कलंक लगा हो और इसीलिए जो दूषित या निंदनीय समझा जाता हो।
†पुं०=कल्कि (अवतार)।

कलंकुर—पुं० [सं० क√लंक् (गति)+णिच्+उरच्] पानी का भँवर।

कलंगड़ा†—पुं० [सं० कलिंग] १. तरबूज। २. दे० 'कलिंगड़ा' (राग)।

कलंगा—पुं० [हिं० कलगी] १. ठठेरों की वह छेनी जिससे वे नक्काशी करते हैं। २. छीपियों का वह ठप्पा जिससे वे कलगे के आकार का बूटा छापते है। ३. दे० 'कलगा'।

कलंगी—स्त्री०=कलगी।

कलंगो—स्त्री० [हिं० कली+अंग] जंगली भाँग का वह भेद जिसमें फूल नहीं होते, केवल बीज होते है। (जिसमें फूल भी लगते हैं, उसे फुलंगो कहते हैं।)।

कलंज—पुं० [सं० क√लंज् (भाषण)+अण्] १. तमाकू का पौधा। २. हिरन। ३. पक्षी का मांस। ४. एक पुरानी तौल जो १० पल की होती थी।

कलंदर—पुं० [अ० क़लंदर] १. एक प्रकार के मुसलमान फकीर। २. मुसलमान मदारी जो बंदरों, भालुओं आदि के तमाशे दिखाते फिरते हैं। ३. दे० 'कलंदरा'।

कलंदरा—पुं० [अ० कलन्दरः] १. एक प्रकार का कपड़ा जो सूत, रेशम और टसर के मेल से बनता है। २. खेमे में लगी हुई वह खूँटी जिस पर कपड़े आदि टाँगे जाते हैं। ३. वह खूँटा जिससे खेमे की रस्सियाँ खींच कर बाँधी जाती है।
पुं० [अं०=कैलेंडर] १. जंतरी। पंचांग। २. अभियोगों की वह सूची जो अभियुक्त का विचार करने से पहले प्रस्तुत की जाती है। (चार्जशीट)।

कलंदरी—वि० [हिं० कलंदरा+ई (प्रत्य०)] कलंदर-संबंधी। कलंदरों का।
पुं० वह खेमा जिसमें कलंदरे या खूँटियाँ लगी हों।

कलंधर—पुं० [सं० कलाधर] चन्द्रमा।

कलंब—पुं० [सं०√कल् (क्षेप)+अम्बच्] १. कदंब। २. शर। सरपत। ३. साग का डंठल।

कलंबक—पुं० [सं०√कड् (मद)+अम्बच्,+कन्, ड=ल] एक तरह का कदंब।

कलंबिका—स्त्री० [सं० कलंब+ङीप्, कलंबी√कै (शब्द)+क—टाप्, ह्रस्व] गले के पीछे की नाड़ी। मन्या।

कल—पुं० [सं०√कल् (शब्द)+घञ्, अवृद्धि (नि०)] १. अव्यक्त और अस्पष्ट परन्तु मधुर ध्वनि। जैसे—नदियों का कल-नाद, पक्षियों का कल-रव, रमणी का कल-कंठ। २. वीर्य। ३. चार मात्राओं का काल। ४. पितरों का एक वर्ग। ५. शिव। ६. साल का वृक्ष।
वि० १. मनोहर। सुन्दर। सुहावना। प्रिय। मधुर। २. कोमल।
पुं० [सं० कल्यम्, कल्ये,√कल्; पा० प्रा० कल्लम्, कल्हि; का० काल; बँ० काल; उ० काला; पं० कल्ल; सिं० कल्ह; गु० कलि] १. आज के दिन से ठीक पहले का बीता हुआ दिन। जैसे—कल हम वहाँ गये थे।
पद—कल का=बहुत थोड़े दिनों या समय का। जैसे—कल का लड़का हमें सिखाने चला है।
२. आज के दिन के ठीक बाद आनेवाला दूसरा दिन। जैसे—कल वहाँ जाकर पुस्तक ले आना।
मुहा०—आज-कल करना=कोई काम या बात टालने के लिए यह कहते रहना कि आज कर देंगे, कल कर देंगे। केवल वादे करके टालते चलना। जैसे—आज-कल करते-करते तो आपने महीनों बिता दिये।
३. आज के बाद या भविष्य में आनेवाला कोई अनिश्चित दिन या समय। जैसे—(क) आज का काम कल पर टालना ठीक नहीं। (ख) जो करना हो वह तुरन्त कर डालो, कल न जाने क्या हो।
पद—कल को=आनेवाले किसी अनिश्चित समय में। जैसे—(क) आनेवाली पीढ़ियाँ कल को कह सकती हैं कि हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए कुछ न किया। (ख) आज तो आप ऐसा कहते हैं, पर कल को आप बदल गये तो ?
क्रि० वि० कल के दिन। कल के रोज। जैसे—(क) कल वह आया था। (ख) कल चले जाना।
स्त्री० [सं० कल्प, प्रा० कल्ल] १. नीरोग या रोग-रहित होने की अवस्था या भाव। अच्छा स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती। २. आराम, चैन और सुख से रहने की दशा। जैसे—जब से वह बात सुनी है तब से कल

पड़ रही है।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।

पद—कल से=(क) शांत भाव से और सुखपूर्वक। जैसे—कल से बैठना सीखो। (ख) धीरे से और युक्तिपूर्वक अथवा सहज भाव से। जैसे—कल से बातें करके अपना काम निकालना।

३. तुष्टि, धैर्य और संतोष की स्थिति। ४. ढंग। तरकीब। युक्ति। जैसे—तुम्हें तो कल, बल और छल सभी आते हैं।

स्त्री० [सं० प्रा० कला; गु०, सि०, पं० कल; मरा० कल] १. अंग। अवयव। जैसे—ऊँट की कोई कल सीधी नहीं होती। २. पहलू। पार्श्व। बल। जैसे—देखें ऊँट किस कल बैठता है।

मुहा०—कल-बेकल होना=किसी प्रकार की अव्यवस्था होना। क्रम बिगड़ना।

३. अनेक प्रकार के पहियों, पुरजों, पेचों आदि के योग से बना हुआ कोई ऐसा उपकरण जिससे कोई *शिल्पीय कार्य जल्दी*, सहज में या सुगमता से होता हो या कोई चीज बनाकर तैयार होती हो। (मशीन) जैसे—ऊख पेरने, कपड़े सीने या दियासलाई बनाने की कल।

पद—कल का पुतला=सब प्रकार से किसी दूसरे के अधीन या वश में रहकर काम करनेवाला व्यक्ति।

४. उक्त उपकरण या यन्त्र का कोई ऐसा विशिष्ट अंग, पुरजा या पेच जिसे घुमाने, चलाने, दबाने आदि से वह चलने लगता हो या कोई विशिष्ट क्रिया करने लगता हो। जैसे—बंदूक का घोड़ा ही उसे चलानेवाली कल है।

मुहा०—(किसी की) कल उमेठना, घुमाना या फेरना=ऐसी युक्ति करना जिससे कोई व्यक्ति कुछ करने या न करने में प्रवृत्त हो। **(किसी की) कल के हाथ में होना**=किसी का किसी दूसरे के अधीन या वश में होना। जैसे—उनकी कल तो तुम्हारे हाथ में है।

पद—कल-पुरजा, कल-पुरजे।

५. वह नल जिसमें घर-गृहस्थी के कामों के लिए दूर से पानी आता है। (वाटर पाइप) ६. उक्त का वह अगला भाग जिसमे पानी निकालने और बन्द करने के लिए टोंटी लगी होती है। (वाटर टैप)

वि० हिं० 'काला' शब्द का संक्षिप्त रूप जिसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने में पूर्व-पद के रूप में होता है। जैसे—कलजिब्भा, कलदुमा, कलमुँहा, कल-सिरा आदि।

†पुं० [सं०कर] १. किरण। २. चमक। दीप्ति। (राज०) उदा०—बल प्रचंड बल मड ज्वाल विकराल काल कल।—चंदवरदाई।

†स्त्री० [सं० कलह] लड़ाई-झगड़ा या वाद-विवाद। (राज०)

कलइया† —स्त्री०=कलैया।

कलई—स्त्री० [अ०] १. सफेद रंग का प्रसिद्ध खनिज पदार्थ। राँगा। २. पीतल आदि के बरतनों को उजला बनाने तथा चमकाने के लिए उक्त खनिज पदार्थ का प्रस्तुत किया हुआ चूर्ण। ३. उक्त चूर्ण से बरतनों आदि पर किया जानेवाला पतला या हलका लेप। ४. चित्र-कला में ऐसा चूर्ण या बुकनी जिसे चिपकाने या लगाने से वह चाँदी की तरह चमकता है। ५. छतों, दीवारों आदि पर होनेवाली चूने की पुताई। सफेदी। ६. लाक्षणिक अर्थ में तथ्यों या वास्तविकता को छिपाने के लिए उन पर चढ़ाया हुआ आकर्षक किंतु मिथ्या आवरण। किसी एक रूप को छिपाने या ढकने के लिए धारण किया हुआ दूसरा दिखावटी भड़कीला रूप।

मुहा०—कलई उघड़ना या खुलना=किसी के आंतरिक तथा वास्तविक स्वरूप या रहस्य का दूसरों को पता लगना। **कलई न लगना**=चाल या युक्ति का सफल न होना।

७. ऊपरी तथा दिखावटी तड़क-भड़क।

कलईगर—पुं० [फा०] १. पीतल आदि के बरतनों पर कलई करनेवाला कारीगर। २. लाक्षणिक अर्थ में वह व्यक्ति जो वास्तविक तथ्यों को छिपाने के लिए बहुत सुन्दर तथा आकर्षक बाहरी रूप बनाता हो।

कलईदार—वि० [फा०] कलई किया हुआ (पात्र या बरतन)।

कलऊ†—पुं०=कलियुग।

कल-कंठ—वि० [ब० स०] [स्त्री० कलकंठी] १. जिसके गले की बनावट बहुत सुन्दर हो। २. जिसका स्वर बहुत ही मधुर या मनोहर हो।

पुं० १. *कोयल।* २. *हंस।* ३. *कबूतर।*

कलक—पुं० [अ० कल्क] १. घबराहट। बेचैनी। २. खेद। दुःख।

पुं० [सं०] झरने के जल के गिरने या नदियों के बहने से होनेवाला शब्द कल-नाद।

पुं०=कल्क।

कलकना*—स० [हिं० कलकल=शब्द] १. कलकल या मधुर शब्द करना। २. बहुत जोर से चिल्लाना। चीत्कार करना।

अ० शब्द होना।

कल-कल—पुं० [सं० कल—द्वित्व=कल-कल] १. नदियों, स्रोतों आदि के बहने आदि से होनेवाली अव्यक्त, कोमल तथा मधुर ध्वनि।

स्त्री० [अनु०] बोलचाल में आपस में प्रायः या बराबर होता रहनेवाला झगड़ा। जैसे—रोज की कल-कल घर को खा जाती है।

पुं० [सं०] साल का गोंद। राल।

स्त्री० [हिं० कल्लाना] शरीर के किसी अंग में होनेवाली हलकी खुजली, चुनचुनाहट या सुरसुरी।

कलकलाना—स० [अनु०] कल-कल शब्द करना।

अ० १. कल-कल शब्द होना। २. शरीर के किसी अंग में हलकी खुजली, चुनचुनी या सुरसुरी होना। जैसे—हाथ या पैर कलकलाना। ३. लाक्षणिक रूप में किसी प्रकार की प्रवृत्ति होना। जैसे—चपत लगाने के लिए हाथ कलकलाना, मार खाने के लिए पीठ कलकलाना।

कलकानि—स्त्री० [अ० कलक=रंज] १. मन में होनेवाली घबराहट। चिंता। बेचैनी। २. दुःख।

स्त्री० [हिं० कलकल] कलह। झगड़ा।

कल-कूजक—वि० [ष० त०] [स्त्री० कलकूजिका] १. मधुर ध्वनि करनेवाला। २. मृदुभाषी।

कल-कूट—पुं० दे० 'काल-कूट'।

कल कूणिक—वि० [कल कूणिका]=कलकूजक।

कलक्टर—पुं० [अ० कलेक्टर] राज्य द्वारा नियुक्त किसी जिले या मंडल का प्रधान शासक।

वि० एकत्र करनेवाला। जैसे—टिकट कलक्टर, बिल कलक्टर।

कलक्टरी—स्त्री० [हिं० कलक्टर] १. कलक्टर का कार्य या पद। २. कलक्टर का कार्यालय।

वि० कलक्टरसंबंधी। कलक्टर का। जैसे—कलक्टरी कचहरी।

कलगा—पुं० [तु० कलगी] मरसे की तरह का एक पौधा। मुर्गकेश। जटाधारी।

पुं० बड़ी कलगी (देखें)।

कलगी—स्त्री० [तु०] १. कुछ पक्षियों के सिर के ऊपर निकला हुआ परों, बालों आदि का गुच्छा या ऐसी ही और कोई बनावट जो बहुत ही सुन्दर लगती है। चोटी। जैसे—मुरगे या बाज की कलगी। २. कई प्रकार के पक्षियों के बहुत ही कोमल और सुन्दर पर जो पहले राजे-महाराजे अपनी टोपियों और पगड़ियों आदि में आगे की ओर शोभा के लिए लगाते थे। ३. किसी चीज में आगे या ऊपर की ओर निकला हुआ उक्त प्रकार का कोई सुन्दर अंग या अंश। ४. चोटी। शिखर। ५. लाक्षणिक अर्थ में किसी विशेष बात की सूचक कोई वस्तु। ६. लावनी की रचना का एक विशिष्ट ढंग या प्रकार।

कल-घोष—वि० [ब० स०] प्रिय तथा मधुर शब्द करनेवाला।

पुं० कोयल।

कलचिड़ा—पुं० [हिं० काला=सुन्दर+चिड़िया] [स्त्री० कलचिड़ी] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जिसका पेट काला और चोंच लाल होती है। इसकी बोली बहुत मधुर होती है।

कलचुरि (री)—पुं० दक्षिण भारत का एक प्राचीन राजवंश जिसके शासन में कर्णाट, चेदि, दाहल, मंडल आदि प्रदेश थे।

कलछा—पुं० [सं० कर+रक्षा, हिं० करछा] [स्त्री० अल्प० कलछी] बड़ी कलछी। (दे० 'कलछी')

कलछी—स्त्री० [सं० कर+रक्षी] पीतल, लोहे आदि का बना हुआ बड़े चम्मच के आकार का लंबी डंडीवाला एक प्रसिद्ध उपकरण जिससे बटलोई आदि में पकनेवाले व्यंजन चलाये जाते और पक जाने पर निकाले जाते हैं।

कलछुल†—स्त्री०=कलछी।

कलछुला—पुं० [हिं० कलछा] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत बड़ा कलछा जिससे भड़भूजे चने आदि भूनते हैं।

कलछुली†—स्त्री०=कलछी।

कलज—पुं० [सं० कल√जन् (उत्पन्न होना)+ड] मुर्गा।

कलजिब्भा—वि० [हिं० काला+जिह्वा या जीभ] १. (पशु) जिसकी जीभ काली हो।

विशेष—प्रायः ऐसा पशु अशुभ, ऐबी तथा दोषी समझा जाता है। जैसे—कलजिब्भा हाथी।

२. (व्यक्ति) जिसके मुँह से निकली हुई अमांगलिक या अशुभ बात प्रायः ठीक उतरती या निकलती हो।

कलजीहा—वि०=कलजिब्भा।

कलजुग†—पुं०=कलियुग।

कलझँवाँ—वि० [हिं० काला+झाँवाँ] १. झाँवें की तरह ऐसे काले रंग वाला जो झुलसा हुआ-सा जान पड़े। २. गहरे काले रंग का।

कलट्टर†—पुं०=कलक्टर।

कलठोरा—वि० [हिं० काला+ठोर=चोंच] काली चोंच वाला।

पुं० सफेद रंग का वह कबूतर जिसकी चोंच काली हो।

कलत†—स्त्री० [सं० कलत्र] पत्नी।

कलत्र—पुं० [सं०√गड् (सींचना)+अत्रन्, ग=क, ड=ल] [वि० कलत्रवान, कलत्री] १. स्त्री। पत्नी। भार्या। २. चूतड़। नितंब। ३. किला। दुर्ग।

कलथरा—पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकड़ी। (दे० 'चक')

कलदार—वि० [हिं० कल+दार] जिसमें किसी प्रकार की कल या पेंच लगा हो।

पुं० टकसाल में कल या यंत्र की सहायता से बना हुआ रुपया।

कलदुमा—वि० [हिं० काला+फा० दुम] जिसकी दुम या पूँछ काली हो। जैसे—कल-दुमा कबूतर या बैल।

कल-धूत—पुं० [तृ० त०] १. चाँदी। २. सोना।

कल-धौत—वि० [तृ० त०] सुनहला। सोने का।

पुं० १. सोना। स्वर्ण। २. चाँदी। रजत। ३. मधुर या मनोहर ध्वनि।

कल-ध्वनि—स्त्री० [ब०स०] कोमल, प्रिय या मधुर ध्वनि। सुरीली आवाज।

पुं० १. कबूतर। २. मोर।

कलन—पुं० [सं०√कल् (गति, शब्द, संख्या)+ल्युट्—अन] १. ग्रहण या धारण करना। २. अच्छी तरह जानना या समझना। ३. कोई चीज तैयार करना या बनाना। ४. अच्छी तरह लगा या सजाकर जमाना, बैठाना या रखना। ५. गणना करना। हिसाब लगाना। ६. आचरण। ७. लगाव। संबंध। ८. कौर। ग्रास। ९. ऐब। दोष। १०. दाग। धब्बा। ११. बेंत। १२. गर्भ में शुक्र और शोणित संयोग से पहले-पहल बननेवाला वह रूप जिससे आगे चलकर कलल बनता है।

कलना—स्त्री० [सं०√कल्+णिच्+युच्—अन, टाप्] १. ग्रहण करने या लेने की क्रिया या भाव। २. ज्ञान। ३. रचना। बनावट। विशेषतः सुन्दर बनावट या रचना। उदा०—देव-सृष्टि की सुख-विभावरी तारों की कलना थी।—प्रसाद।

स० [सं० कलन] १. कलन करना। गिनती करना। गिनना। २. हिसाब लगाना।

कल-नाद—वि० [ब० स०] मंद और मधुर स्वरवाला।

पुं० १. मधुर ध्वनि। २. हंस।

कलपंत—पुं०=कल्पांत।

कलप—पुं० [सं० कलाप] झुंड। समूह। उदा०—करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे।—चंदबरदाई।

पुं० [सं० कल्प=रचना] १. कलफ। माँड़ी। २. खिजाब। ३. दे० 'कल्प'।

कलपत्तर—पुं० [सं० कल्पतरु] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष जिसकी सफेद लकड़ी बहुत मजबूत होती है।

कलपना—स० [सं० कल्पन] १. केवल अनुमान के आधार पर और अपने मन से किसी बात का स्वरूप बनाना या स्थिर करना। कल्पना करना। उदा०—कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई।—तुलसी। २. किसी का ध्यान करना। उदा०—ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि कलपत दोउ कर जोरि।—सूर। ३. रचना करना। गढ़ना। बनाना। ४. कतर या काटकर अलग करना। उदा०—कलपि माथ जेहि दीन्ह सरीरू।—जायसी। ५. पेड़-पौधों की कलम काटकर उसे नई जगह लगाना। उदा०—सोरह सिंगार कै नवेलिन सहेलिन हूँ कीन्हीं केलि मंदिर

में कलपति केरे है।—पद्माकर।

अ० वहुत अधिक कष्ट या दुःख में पड़ने पर रह-रह कर संतप्त होना और अपने मनस्ताप की चर्चा करते हुए विलखना। बरावर मन तड़पते रहने पर विलाप करना। जैसे—किसी के अत्याचार से पीड़ित होकर अथवा किसी के वियोग या शोक में कलपना। उदा०—नेकु तिहारे निहारे विना कलपै जिय पल पल वीरज लेखो।—पद्माकर।

पद—रोना-कलपना (देखें 'रोना' के अन्तर्गत)।

स्त्री० वहुत दुःखी होने पर उक्त प्रकार से कलपने, तड़पने या विकल होने की क्रिया या भाव।

मुहा०—(किसी को) कलपना लेना=ऐसा अनुचित काम करना जिससे कोई कलपे तथा कलप कर कोसे। किसी को कलपा कर उसका अभिशाप लेना।

कलपनी—स्त्री० [सं० कल्पनी] कतरनी। कैंची। (डिं०)

कलप-विरिछ—पुं०=कल्प-वृक्ष।

कलप-वेलि—स्त्री०=कल्पवल्ली (कल्प-वृक्ष)।

कलपांत—पुं०=कल्पांत।

कलपाना—स० [हिं० कलपना का प्रेर०] १. किसी को कलपने में प्रवृत्त करना। २. ऐसा अनुचित या निर्दयतापूर्ण काम करना, जिससे कोई बहुत दुःखी होकर कलपने लगे।

कलपून—पुं० [देश०] एक प्रकार का सदावहार वृक्ष जिसकी लकड़ी लाल रंग की होती और इमारत के कामों के लिए अच्छी समझी जाती है।

कलपोटिया—स्त्री० [हिं० काला+पोटा] एक प्रकार की चिड़िया जिसका पपोटा (अर्थात् आँख के ऊपर की पलक) काले रंग का होता है।

कलप्पना—अ० स०=कलपना।

कलप्पा—पुं० [मला० कलपा=नारियल] किसी-किसी नारियल के वीच में से निकलनेवाली नीलापन लिये हुए सफेद रंग की एक कड़ी वस्तु जिसे 'नारियल का मोती' भी कहते है।

कलफ—पुं० [अ० मि० सं० कल्प] चावल, अरारोट आदि को पकाकर वनाई हुई पतली लेई जिसे धुले कपड़ों पर लगाकर उनकी तह कड़ी की जाती है। माँड़ी।

कलफदार—वि० [हिं० कलफ+फा० दार] (वस्त्र) जिस पर कलफ या माँड़ी लगी हो।

कलफा—स्त्री० [देश०] मलावार की दारचीनी की छाल जो चीन की दारचीनी मे उसे सस्ता करने के लिए मिलाई जाती है।

†पुं०=कल्ला (कोंपल)

कलव—पुं० [देश०] टेसू के फूलों को उवालकर वनाया जानेवाला एक प्रकार का रग।

पुं० [अ० कल्व] हृदय। (क्व०)

कलवल—पुं० [स० कला+वल] १. काम निकालने के लिए किये जाने-वाले दाँव-पेच या युक्तियाँ। जैसे—उसे वहुत-से कल-वल आते हैं। २. वनाव-सिंगार। ३. अस्पष्ट उच्चारण या शब्द। ४. हो-हल्ला। शोर।

कलवीर—पुं०=अकलवीर। (एक पौवा)

कलबूत—पुं० [फा० कालबुद] मिट्टी, लकड़ी, लोहे आदि का वना हुआ वह ढाँचा या साँचा जिस पर चढ़ा या रखकर जूते, टोपियाँ, पगड़ियाँ आदि तैयार की जाती है।

कलभ—पुं० [सं० कर√भा (दीप्ति)+क, र=ल या√कल्+अभच्] [स्त्री० कलभी] १. हाथी या हाथी का वच्चा। २. ऊँट या ऊँट का वच्चा। ३. किसी पशु का वच्चा। ४. धतूरा।

कलभक—पुं० [सं० कलभ+कन्] हाथी का वच्चा।

कलम—स्त्री० [सं०√कल्+कमच् अथवा√कल्+णिच्+अम। अ० कलम] १. छड़ के छोटे टुकड़े के रूप में वना हुआ वह प्रसिद्ध उपकरण या साधन जिसके द्वारा स्याही की सहायता से कागज आदि पर अक्षर, शब्द, वाक्य आदि लिखे और लकीरें, वेल-बूटे आदि बनाये जाते है।

विशेष—(क) यह शब्द संस्कृत में पुंल्लिग होने पर भी अरवी कलम के कारण उर्दू के प्रभाव से हिन्दी में स्त्रीलिंग ही माना जाता है। (ख) पहले लोहे की नुकीली कलमें होती थीं, जिनसे ताड़-पत्र आदि पर अक्षर वनाये जाते थे। आगे चलकर किलक, सरकंडे तथा कुछ वड़े पक्षियों के परों की कलमें वनने लगी थी, जिनका अगला भाग छीलकर नुकीला कर दिया जाता था और उनके वीच का अंश काटकर दो भागों में विभक्त कर दिया जाता था, जिससे स्याही सहज में कागज पर उतरने लगती थी। फिर पाश्चात्य देशों में इसी आकार की पीतल, लोहे की छोटी जीभियाँ वनने लगी थीं, जो कलमों के अगले भाग में फँसा दी जाती थीं। अव अधिकतर ऐसी कलमों का प्रचलन है जिनमें स्याही का खजाना भीतरी भाग मे वना रहता है, जिसमें से स्याही आप-से-आप उतरती है।

मुहा०—कलम चलना=लिखने का काम होना। लिखा जाना। कलम चलाना=लिखने का कार्य आरम्भ करना। लिखने लगना। कलम तोड़ना=लिखने की ऐसी योग्यता या शक्ति दिखाना कि लोग दंग रह जाँय। (उर्दू के शायरों की वोल-चाल से गृहीत) (किसी लेख पर) कलम फेरना=किसी प्रकार की लिखावट या लेख पर रेखा या रेखाएँ खींचकर उन्हें निरर्थक, रद्द या व्यर्थ करना। जैसे—आपने तो उनके सारे लेख पर कलम फेर दी। (अर्थात्) उसे व्यर्थ कर दिया।

२. उक्त के आवार पर लिखने का यथेष्ट कौशल, ढंग, योग्यता या शक्ति या उसका परिचायक तत्त्व। लिखने का कौशल या उसकी सूचक विशिष्टता। जैसे—आपकी कलम भला कहीं छिप सकती है। ३. परों, वालों आदि की वनी हुई वह कूँची जिससे चित्रकार चित्र बनाते हैं। ४. उक्त के आधार पर चित्रकारी का विशिष्ट क्षेत्र, प्रकार या शैली। जैसे—पहाड़ी (या राजस्थानी) कलम के चित्र। ५. किसी पेशेवाले का वह औजार या उपकरण जिससे वे वेल-वूटे आदि उकेरते या नकाशते है। जैसे—(क) कमेरों, संग-तराशों या सुनारों की कलम। (ख) शीशा काटनेवालों की हीरे की कलम। ६. शीशे के वे छोटे पहलदार और लंवोतरे टुकड़े जो शीशे के झाड़-फानूसों के नीचे शोभा के लिए लटकाये जाते हैं। ७. पेड़-पौधों की वे टहनियाँ जो काटकर दूसरी जगह इसीलिए गाड़ी या लगाई जाती है कि उनसे उसी प्रकार के नये पेड़-पौधे उगें। ८. उक्त प्रकार से काटकर लगाई हुई टहनी से उगा हुआ पेड़ या पौधा।

मुहा०—कलम करना=किसी चीज का कोई अंग काटकर उससे अलग करना। जैसे—अगर सर को तो यों सरको, कलम कर दो मेरे सर

को।—कोई शायर। कलम कराना=कटवा डालना। उदा०—कलम रुकै तो कर कलम कराइए।—कोई कवि।

९. नौसादर, शोरे आदि के जमे हुए छोटे, नुकीले, लंबोतरे टुकड़े या रवे। रवा। केलास। (क्रिस्टल) १०. दाढ़ी (हजामत) बनाने में कनपटियों पर बालों की वह लम्बी रेखा जो कान के मध्य भाग के पास से काटकर अलग कर दी जाती है और जिसके नीचे गालों पर के बाल मूँड़कर साफ कर दिये जाते हैं। ११. एक प्रकार की बाँसुरी या वंशी। १२. फुलझड़ी नाम की आतिशबाजी जो देखने में लिखने की कलम की तरह होती है।

कलमकार—पुं० [फा०] १. कलम की सहायता से किसी प्रकार की कला, शिल्प आदि की रचना करनेवाला कारीगर या शिल्पी। २. एक प्रकार का वापता (कपड़ा)।

कलमकारी—स्त्री० [फा०] कलम की सहायता से की जानेवाली कारीगरी। जैसे—कागज या बरतन पर बनाये हुए बेल-बूटे आदि।

कलमख—पुं०=कलमष।

कलमतराश—पुं० [फा०] वह चाकू या छुरी जिससे मुख्यतः कलमें तराशकर लिखने के योग्य बनाई जाती हैं।

कलमदान—पुं० [फा०] लकड़ी, लोहे, शीशे आदि का बना हुआ वह आधान जिसमें कलमें तथा दावातें रखी जाती हैं।

कलमना—स० [हिं० कलम] कलम करना। काटना। तराशना।

कलमबंद—वि० [अ०+फा०] लिखा हुआ। लिखित।

पुं० चित्र आदि अंकित करने की कलम या कूँची बनानेवाला कारीगर।

कलमलना—अ० [अनु०] १. इधर-उधर से दबने के कारण अंगों का आगे-पीछे हिलना-डोलना। २. बेचैन होना। ३. विचलित होना। घबराना।

कलमलाना—अ०=कलमलना।

कलमस*—पुं०=कलमष।

कलमा—पुं० [अ०] १. वाक्य। २. मुँह से निकली हुई कोई बात। वचन। ३. इस्लाम धर्म में मुहम्मद साहब का एक प्रसिद्ध वाक्य (ला इलह इल्लिल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह=उस एक ईश्वर के सिवा और कोई ईश्वर या देवता नहीं है; और मुहम्मद साहब उस ईश्वर के रसूल, पैगम्बर या दूत हैं) जो इस्लाम धर्म का मूलमंत्र माना गया है और जिसका शुद्ध हृदय से उच्चारण कर लेने पर यह माना जाता है कि यह आदमी मुसलमान हो गया।

मुहा०—कलमा पढ़ना=उक्त वाक्य का विधिपूर्वक उच्चारण करके इस्लाम धर्म का अनुयायी बनना।

कलमास†—वि० [सं० कल्माष] चितकबरा।

कलमी—वि० [फा०] १. (लेख) जो कलम से लिखा गया हो। हस्तलिखित। (छापे आदि से भिन्न) २. (चित्र) जो कलम या कूची से अंकित किया गया हो। (फोटो, मुद्रण आदि से भिन्न) ३. (पौधा या वृक्ष) जो कहीं से कलम के रूप में काटकर लाया और लगाया गया हो तथा उसमें लगनेवाले फल या फूल। जैसे—कलमी आम, कलमी गुलाब। ४. (रासायनिक पदार्थ) जो कलम या रवे के रूप में जमा या जमाया हुआ हो। जैसे—कलमी शोरा।

स्त्री० [सं० कलम्बी] करेमू नाम का साग।

कलमी शोरा—पुं० [हिं० कलमी+शोरा] साफ किया हुआ शोरा जो कलमों या रवों के रूप में होता है।

कलमुँहा—वि० [हिं० काला+मुँह] १. जिनका मुँह काला हो। काले मुँहवाला। जैसे—कलमुँहा बन्दर=लंगूर। २. जिसके मुँह पर कालिख लगी हो; अर्थात् जिसे कलंक या लांछन लगा हो। ३. अशुभ या अमांगलिक बातें कहनेवाला।

कल-रव—पुं० [कर्म० स०] १. पक्षियों के चहकने के कोमल और मधुर शब्द। २. किसी प्रकार की मधुर तथा रसीली ध्वनि। ३. [ब० स०] कोयल। ४. कबूतर।

कलरिन—स्त्री० [कल्लर से] कल्लर जाति की स्त्री जो प्रायः जोंक लगाने का काम करती है।

कलल—पुं० [सं०√कल्+कलच्] गर्भाशय में रज और वीर्य के संयोग से बननेवाली पतली झिल्ली।

†स्त्री०=कलकल।

कललज†—पुं० [सं० कलल√जन् (पैदा होना)+ड] १. गर्भ में बच्चे का वह रूप जो कलल के विकसित होने पर बनता है। २. राल।

कलवरिया—स्त्री० [हिं० कलवार] कलवार की दूकान जहाँ शराब बिकती है।

कलवार—पुं० [सं० कल्यपाल, प्रा० कल्लवाल] [स्त्री० कलवारिन] एक जाति जिसका धंधा शराब बनाना और बेचना है।

कलविंक—पुं० [सं० कल√वंक (रोना)+अच्, पृषो० इत्व] १. गौरैया या चटक नामक पक्षी। चिड़ा। २. तरबूज।

कलश—पुं० [सं० कल√शु (गति)+ड (बा०)] [स्त्री० अल्प० कलशी] १. घड़ा। गगरा। २. मंदिरों आदि के शिखर पर लगा हुआ वह कँगूरा जो कलश या घड़े के आकार का होता है। ३. ऊपर उठी हुई चीज का सब से ऊपरी भाग। चोटी। सिरा। ४. एक पुरानी तौल जो ८ सेर के लगभग होती थी। द्रोण। ५. नृत्य में एक प्रकार की भंगिमा। ६. हठयोग में आत्मा या हृदय रूपी कमल। ७. एक छंद जो चौपाई और त्रिभंगी अथवा त्रिभंगी और नित्या के मेल से बनता है।

वि० सब में श्रेष्ठ। शिरोमणि। उदा०—शुभ सूरज कुल-कलश नृपति दशरथ भये।—केशव।

कलशी—स्त्री० [सं० कलश+ङीप्] १. छोटी कलसी। गगरी। २. छोटा कलश (देखें)। ३. एक प्रकार का पुराना बाजा।

कलस—पुं० [सं० क√लस् (शोभित होना)+अच्] =कलश।

कलसा—पुं० [सं० कलश] [स्त्री० अल्पा० कलसी] पानी रखने का बड़ा घड़ा।

कलसिरा—वि० [हिं० कलह+शील?] [स्त्री० कलसिरी] झगड़ालू। लड़ाका।

कलसिरी—स्त्री० [हिं० काला+सिर] एक प्रकार की चिड़िया जिसका सिर काले रंग का होता है।

कलसी—स्त्री० [सं० कलस+ङीप्] १. छोटा कलसा या घड़ा। २. वास्तु, शिल्प आदि में छोटे-छोटे कँगूरों आदि की बनावट। कलैश।

कलसी-सुत—पुं० [मध्य० स०] अगस्त्य ऋषि, जिनके संबंध में यह माना जाता है कि इनका जन्म घड़े में से हुआ था।

कलहंतरिता—स्त्री०=कलहांतरिता।

कल-हंस—पुं० [मध्य० स०] १. हंस। २. राजहंस। ३. ईश्वर। परमात्मा। ४. अच्छा या श्रेष्ठ राजा। ५. एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, एक जगण, दो सगण और एक गुरु क्रमशः होते है। ६. राजपूतों की एक जाति। ७. एक प्रकार का संकर राग।

कलह—पुं० [सं० कल√हन् (मारना)+ड] [वि० कलहकार; कलहकारी, कलही] १. घर के लोगों में अथवा दो घरों में होनेवाला नित्य का झगड़ा या विवाद। २. युद्ध। ३. तलवार का म्यान।

कलहकार—वि० [सं० कलह√कृ (करना)+अण्] =कलहकारी।

कलहकारी (रिन्)—वि० [सं० कलह√कृ+णिनि] [स्त्री० कलहकारिणी] जो स्वभावतः दूसरों से लड़ता-झगड़ता रहता हो। झगड़ालू।

कलहनी—स्त्री० [हिं० कलहिनी] प्रायः कलह करनेवाली या झगड़ालू स्त्री।

कलह-प्रिय—वि० [व०स०] जिसे कलह या लड़ाई झगड़ा करना ही अच्छा लगता हो। झगड़ालू।

पुं० नारद मुनि का एक नाम।

कलहांतरिता—स्त्री० [कलह-अंतरिता, तृ० त०] साहित्य में वह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से कलह या झगड़ा करने के उपरांत पछताती हो।

कलहार (ा)†—वि० [स्त्री० कलहारी]=कलही।

कल-हास—पुं० [मध्य० स०] चार प्रकार के हासों में से एक जिसमें कोमल और मधुर ध्वनि होती है।

कलहिनी—वि० [सं०कलहिन्+ङीप्] (स्त्री) जो घर में प्रायः कलह या झगड़ा करती हो। लड़ाकी।

स्त्री०=शनि की पत्नी का नाम।

कलही (हिन्)—वि० [सं० कलह+इनि] [स्त्री० कलहिनी] प्रायः कलह या लड़ाई-झगड़ा करता रहनेवाला। झगड़ालू।

कलाँ—वि० [फा०] १. आकार, विस्तार आदि में बड़ा। दीर्घाकार। २. वय में बड़ा।

कलांकुर—पुं० [?] १. कराकुल पक्षी। २. चौर्य-शास्त्र के रचयिता एक प्राचीन आचार्य।

कलाँच—पु० [तु० कल्लाश] दरिद्र। निर्धन।

कलांतर—पुं० [सं० अन्या-कला=अंग, सुप्सुपा स०] सूद। ब्याज।

कला—स्त्री० [सं०√कल्+अच्, टाप्] १. किसी चीज का बहुत छोटा अथवा सबसे छोटा अंश या संयोजक भाग। २. चन्द्रमा के प्रकाश और बिंब के घटते-बढ़ते रहने के विचार से उसका सोलहवाँ अंग या भाग।

विशेष—हमारे यहाँ चन्द्रमा की सोलह कलाएँ मानी गई है जिनके अलग अलग नाम हैं और जिनके क्रमशः बढ़ते रहने से पूर्णिमा और घटते चलने से अमावस्या होती है।

३. उक्त के आधार पर १६ की संख्या या वाचक शब्द। ४.सूर्य के परिभ्रमण मार्ग और उसमें पड़नेवाली राशियों के विचार से उसका बारहवाँ अंश या भाग जो प्रायः एक महीने में पूरा होता है। ५. राशि चक्र के प्रत्येक अंश का साठवाँ भाग। (डिग्री) ६. काल या समय का एक बहुत छोटा मान या विभाग जो किसी के मत से एक मिनट से कुछ कम का, किसी के मत से डेढ़ मिनट से कुछ अधिक का और किसी के मत से दो मिनट से भी अधिक का माना गया है। ७. मूल-धन का ब्याज या सूद जो (चन्द्रमा की कला की तरह) बराबर बढ़ता चलता है। ८. छंदशास्त्र में गणना के विचार से प्रत्येक अक्षर या मात्रा। जैसे—द्विकल या त्रिकल पद। ९. वैद्यक में शरीर के अन्तर्गत सात धातुओं में किसी या हर धातु की संज्ञा। (देखें 'धातु') जैसे—मांस, मेद, रक्त आदि कलाएँ (या धातुएँ)। १०. गर्भ का वह रूप जो कलन (देखें) कहलाता है। ११. शरीर के अन्दर की वह झिल्ली जो भिन्न-भिन्न अंगों के बीच में रहकर उन्हें एक दूसरे से पृथक् रखती है। (मेम्ब्रेन) १२. आज-कल अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर अच्छी तरह, नियम तथा व्यवस्थापूर्वक और संबद्ध सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए कोई काम ठीक तरह से करने या कोई कृति प्रस्तुत करने का कौशल या चतुरता। ऐसा कर्तृत्व जिसमें उद्भावना के सहारे कोई कार्य प्रशंसनीय तथा आकर्षक या मनोहर रूप में संपन्न या संपादित किया जाय। हुनर। (आर्ट)

विशेष—व्यापक दृष्टि से देखने पर मनुष्य के प्रत्येक कार्य में कला अपेक्षित होती है। इसीलिए हमारे यहाँ शैव तंत्र में ६४ कलाओं का निरूपण किया गया है। जैसे—गाना, नाचना, बाजे बजाना, अभिनय करना, कविता करना, चित्र बनाना, फूलों आदि से सुन्दर आकृतियाँ बनाना, अंग, वस्त्र आदि रँगना और उनके रँगने के लिए उपकरण बनाना, ऋतुओं आदि के अनुसार सजावट करना, कपड़े, गहने और सुगंधित द्रव्य बनाना, जादू या हाथ की सफाई के अथवा शारीरिक व्यायाम के खेल दिखाना, सीना-पिरोना, कपड़ों पर बेल-बूटे बनाना, धातु, पत्थर, लोहे आदि की चीजें बनाना, तर्क-वितर्क और बात-चीत करना, चारपाई, पलंग आदि बुनना, चाँदी, सोना, रत्न आदि परखना, पशु-पक्षियों आदि की चिकित्सा और पालन-पोषण करना और उन्हें तरह-तरह के काम सिखाना, अनेक प्रकार की बोलियाँ और भाषाएँ समझना तथा बोलना, प्राकृतिक घटनाओं आदि के आधार पर और उनके संबंध में भविष्यवाणी करना, आदि-आदि सभी प्रकार के कौशल-जन्य तथा सुरुचिपूर्ण काम और बातें कला के क्षेत्र में आती है। इसी आधार पर आज-कल काव्य-कला, चित्र-कला, लेखन-कला, वास्तु-कला आदि सैकड़ों पद प्रचलित हो गये है।

१३. अध्ययन और अनुशीलन का वह अंग या क्षेत्र जो मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह तथा उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य तथा समर्थ बनाता है। (आर्ट्स) १४. नटों या बाजीगरों के अथवा और लोगों के सभी प्रकार के अनोखे करतब या कार्य।

मुहा०—**कला करना**=नटों आदि का अनेक प्रकार के करतब और कौशल दिखाना। उदा०—ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कै।

१५. सभा-समितियों आदि में होनेवाले कार्यो का पूरा या यथा-तथ्य विवरण। (मिनट) १६. शिव का नाम। १७. अक्षर या वर्ण। १८. लगाव। संबंध। १९. जीभ। जिह्वा। २०. नाव। नौका। २१.स्त्री का रज। २२. महत्त्व या श्रेष्ठता का सूचक तेज। विभूति। २३. छटा। शोभा। २४. ज्योति। प्रभा। २५. एक प्रकार का नृत्य। २६. मनुष्य की पाँचों कर्मेन्द्रियों, पांचों ज्ञानेंद्रियों, प्राण और बुद्धि या मन का समूह। (भिन्न-भिन्न आचार्यो या शास्त्रों के मत से इन सोलहों संयोजक अंशों या तत्त्वों के नामों, रूपों आदि में कुछ अंतर भी है।)

कलाई—स्त्री० [सं० कलाची] १. हथेली और कोहनी के बीच का उतना

भाग जहाँ कड़े, चूड़ियाँ आदि पहनी जाती हैं। गट्टा। मणिबंध। २. सिले हुए कपड़े का उतना भाग जितना कलाई पर पड़ता है।

स्त्री० [सं० कलापी] १. सूत आदि का लच्छा। २. घास आदि का पूला। *३. नई फसल के तैयार होने पर कुल-देवताओं की की जाने वाली पूजा। ४. दे० 'कलावा'।

स्त्री० [सं० कुलत्थ] उरद।

कलाकंद—पुं० [फा०] खोये की एक प्रकार की बड़ी बरफी।

कलाकर—पुं० [सं० कला-आकर, ष० त० ?] अशोक की तरह का एक पेड़। देवदारी।

कलाकार—पुं० [सं० कला √कृ+अण्] [भाव० कलाकारिता, कलाकारी] १. वह जो किसी कला का ज्ञाता हो। २. कोई कलापूर्ण कृति बनानेवाला। (आर्टिस्ट) ३. अभिनेता। नट।

कलाकारिता—स्त्री० [सं० कलाकार+इनि+तल्-टाप्] कलाकार का काम या भाव।

कलाकारी—स्त्री०=कलाकारिता।

कलाकुल—पुं० [सं० कला आ√कुल् (इकट्ठा होना)+अच् ?] हलाहल विष।

कला-कुशल—वि० [स० त०] किसी कला में बहुत ही चतुर या होशियार (व्यक्ति)।

कला-कृति—स्त्री० [मध्य० स०] कलापूर्ण कृति या रचना।

कला-केलि—पुं० [ब० स०] कामदेव।

कला-कौशल—पुं० [ष० त०] १. किसी कला में कुशल होने की अवस्था या भाव। २. कारीगरी। ३. दस्तकारी। शिल्प।

कला-क्षय—पुं० [ष० त०] १. कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाओं का धीरे-धीरे घटना। २. क्रमशः या धीरे-धीरे होनेवाला क्षय या ह्रास।

कला-क्षेत्र—पुं० [ष० त०] कामरूप देश का एक प्राचीन तीर्थ।

कला-चिकित्सा—स्त्री० [तृ० त०] एक नवीन चिकित्सा-प्रणाली जिसमें रोगियों के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य के सुधार के लिए उन्हे किसी कला-संबंधी काम में लगाया जाता है (आर्टथेरैपी)।

कलाची—स्त्री० [सं० कला√अच् (गति)+अण्, ङीप् (गौरा०)] १. हाथ की कलाई। २. कलछी।

कलाजंग—पुं० [हिं० कला+जंग] कुश्ती में एक प्रकार का पेंच या दाँव।

कलाजाजी—स्त्री० [सं० कला√जन्+उ-कलाज, कलाज+आ√जन्+ड, ङीप् (गौरा०)] मँगरैला।

कलाटीन—पुं० [स० कलाट+ख=ईन्] खंजन की तरह का एक पक्षी।

कलातीत—वि० [सं० कला-अतीत, द्वि०त०] जो सब प्रकार की कलाओं से ऊपर या परे हो।

पुं० ईश्वर का एक नाम।

कलात्मक—वि० [कला-आत्मन्, ब० स०, कप्] १. कला-संबंधी। कला से युक्त। २. (ऐसी कृति या रचना) जो बहुत ही सुन्दर हो तथा कलापूर्ण ढंग से बनाई गई हो। (आर्टिस्टिक)।

कलादक—पुं० [सं० कला-आ√दा (देना)+क, कलाद+कन्] सुनार।

कलादा*—पुं० [सं० कलाप, हिं० कलावा] हाथी के कंधे और गले के बीच का वह स्थान जिस पर महावत बैठता है।

कलाधर—पुं० [सं० कला√धृ (धारण करना)+अच्] १. वह जो अनेक कलाओं या विद्याओं का ज्ञाता हो अथवा किसी कला में विशेष रूप से प्रवीण हो। २. चन्द्रमा। ३. शिव। ४. दंडक छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में एक गुरु और एक लघु के क्रम से १५ गुरु और १५ लघु वर्ण होते हैं और तब अन्त में एक गुरु होता है।

कला-नाथ—पुं० [ष० त०] १. किसी कला या कई कलाओं का ज्ञाता। २. चन्द्रमा।

कला-निधि—पुं० [ष० त०] १. अनेक कलाओं का पूर्ण ज्ञाता या पंडित। २. चन्द्रमा।

कला-न्यास—पुं० [ष० त०] तंत्र में शिष्य के शरीर पर किया जाने वाला एक प्रकार का न्यास।

कला-पंजी—स्त्री० [ष० त०] सभा-समितियों आदि की बैठकों के कार्य-विवरण लिखने की पंजी या रजिस्टर (मिनिट बुक)।

कलाप—पुं० [सं० कला√आप् (पाना)+अण्] १. एक ही प्रकार की बहुत-सी चीजों या बातों का समूह। जैसे—कार्य-कलाप। केश-कलाप। २. किसी चीज को या बहुत-सी चीजों को एक में बाँधनेवाली चीज। ३. घास-फूस आदि का गट्ठा या पूला। ४. कमरबंद। पेटी। ५. करधनी। ६. कलाई पर बाँधा जानेवाला सूत का लच्छा। कलावा। ७. किसी प्रकार का कार्य या व्यापार। ८. आभूषण। गहना। जेवर। ९. शोभा या सौंदर्य बढ़ानेवाली कोई चीज या बात। १०. वेद की एक शाखा। ११. कातंत्र व्याकरण का एक नाम। १२. एक प्रकार का पुराना अस्त्र। १३. चन्द्रमा। १४. मोर की पूँछ। १५. तरकश। तूण। १६. एक प्रकार का संकर राग। (संगीत)।

कलापक—पुं० [सं० कलाप+कन्] १. हाथी के गले या पैर में बाँधा जानेवाला रस्सा। २. ऐसे चार श्लोकों का वर्ग या समूह जिनका अन्वय एक साथ होता हो। ३. प्राचीन भारत में ऐसा ऋण जो यह कहकर लिया जाता था कि यह कलाप अर्थात् मोर के नाचने के समय अर्थात् वर्षा ऋतु में चुकाया जायगा। ४. दे० 'कलाप'।

कलापट्टी—स्त्री० [पुर्त० कलफेटर] जहाजों की पटरियों की दरजों या संधियों में सन आदि भरने का काम। (लश०)

कलापिनी—स्त्री० [सं० कलाप+इनि, ङीप्] १. रात्रि। २. मोर की मादा। मोरनी। ३. नागरमोथा।

कलापी(पिन्)—वि० [सं० कलाप+इनि] १. जिसके पास तूणीर या तरकश हो। २. गिरोह या झुंड में रहनेवाला (जीव या प्राणी)।

पुं० १. मोर। २. कोयल। ३. बरगद का पेड़।

कलाबत्तू—पुं० [तु० कलाबतून] [वि० कलाबतूनी] १. रेशम पर चढ़ाया या लपेटा जानेवाला पतला, महीन, सुनहला तार। २. रेशम पर सुनहले तार लपेटकर बनाया हुआ डोरा या फीता।

कलाबाज—वि० [हिं० कला+फा० बाज] कलापूर्ण ढंग से अद्भुत शारीरिक खेल खिलानेवाला व्यक्ति।

कलाबाजी—स्त्री० [हिं० कला+फा० बाजी] १. कलाबाज की कोई क्रिया या खेल। २. सिर नीचे तथा पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया या खेल।

क्रि० प्र०—खाना।

कलाबीन—पुं० [देश०] असम देश का एक बहुत ऊँचा वृक्ष जिसके पत्ता

चाल मुँगरा या मुँगरा चाल कहलाते हैं। (इसके फूलों का तेल चर्म रोगों का नाशक माना गया है।)

कलाभृत्—पुं० [सं० कला √भृ (धारण करना)+क्विप्] चन्द्रमा।

कलाम—पुं० [अ०] १. वाक्य। २. उक्ति। कथन। ३. बात-चीत। वार्त्तालाप। ४. किसी काम या बात के लिए दिया जानेवाला वचन। वादा। ५. आपत्ति। एतराज।

कलाम-मजीद—पुं० [अ०] कुरान शरीफ। (मुसलमानों का धर्मग्रंथ)

कलामोचा—पुं० [देश०] बंगाल में होनेवाला एक प्रकार का धान।

कलाय—पुं० [सं० कला√अय् (गति)+अण्] मटर।

कलाय-खंज—पुं० [ब० स०] एक रोग जिसमें जोड़ों की नसें ढीली पड़ जाती हैं और जिसके फलस्वरूप अंग सदा हिलते-डुलते रहते हैं।

कलायन—पुं० [कला-अयन, ब० स०] नर्तक।

कलार—पुं०=कलाल (कलवार)।

कलारी—स्त्री० [हिं० कलवार] १. कलवार जाति की स्त्री। २. वह स्थान जहाँ शराब बनाई या बेची जाती है। कलवरिया।

कलाल—पुं० [सं० कल्यपाल] [स्त्री० कलालिन] शराब बनाने और बेचनेवाली एक प्रसिद्ध जाति। कलवार।

कलालखाना—पुं० [हिं०+फा०] वह स्थान जहाँ शराब बनाई तथा बेची जाती है। मद्यशाला।

कलावंत—पुं० [सं० कलावान्] १. वह व्यक्ति जो किसी कला का अच्छा ज्ञाता या विशेषज्ञ हो। २. वह व्यक्ति जो कोई काम बहुत ही कला-पूर्ण ढंग से करता हो। ३. मध्य युग के बहुत बड़े तथा प्रसिद्ध गवैये अथवा उनके वंशज। ४. कलाबाज।

कलाव—पुं०=कलावा।

कलावती—स्त्री० [सं० कला+मतुप्, ङीप्, वत्व] १. तुंबुरु नामक गंधर्व की वीणा का नाम। २. तंत्र में एक प्रकार की दीक्षा। ३. गंगा का एक नाम।

स्त्री० [हिं० कल (पानी की)] पानी की कल या उसमें से आनेवाली जलराशि। (परिहास) जैसे—कलावती में होनेवाला स्नान।

कलावा—पुं० [सं० कलापक, प्रा० कलावअ] [स्त्री० अल्पा० कलाई] १. सूत का लपेटा हुआ लच्छा। २. लाल, पीले आदि रंगों से रँगा हुआ सूत का डोरा या लच्छा जो मांगलिक अवसरों पर हाथ की कलाई में तथा घड़े आदि कुछ वस्तुओं पर बाँधा जाता है। ३. वह रस्सी जो हाथी के गले में पड़ी रहती है और जिसमें पैर फँसा कर महावत उसे हाँकते हैं।

कलावान (वत्)—वि० [सं० कला+मतुप्] [स्त्री० कलावती] किसी अथवा कई कलाओं का अच्छा ज्ञाता (व्यक्ति)।

कलाविक—पुं० [सं० कल-आ-वि√कै (शब्द)+क] मुर्गा।

कला-शाला—स्त्री० [ष० त०] वह भवन जिसमें प्रदर्शन के लिए कला-संबंधी अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुएँ और मुख्यतः चित्रकला की कृतियाँ रखी रहती हों (आर्टगैलरी)।

कलास—पुं० [सं० कल√आस् (उपवेशन)+घञ्] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल।

कलासी—पुं० [सं० कला] १. दो वस्तुओं को सटाने अथवा सटाकर जोड़ने से बननेवाली रेखा जो उस जोड़ की सूचक होती है। २. जोड़-तोड़ या साट-गाँठ बैठाने की युक्ति। जैसे—यहाँ तुम्हारी कोई कलासी नहीं लगेगी।

क़लाहक—पुं०=काहल (बड़ा ढोल)।

कलिंग—पुं० [सं० कलि√गम् (जाना)+ड] १. आधुनिक आंध्र-प्रदेश के उस भाग का प्राचीन नाम जो समुद्र के किनारे-किनारे कटक से मद्रास तक फैला है। २. उक्त प्रदेश का निवासी। ३. सिरिस का पेड़। ४. पाकर वृक्ष। ५. तरबूज़े। ६. कुटज। कुरैया। ७. कलिंगड़ा नामक राग।

वि० कलिंग देश का।

कलिंगड़ा—पुं० [सं० कलिंग] रात के चौथे पहर में गाया जानेवाला संपूर्ण जाति का एक राग।

कलिंगा—पुं० [सं० कलिंग] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी छाल रेचक होती है। तेवरी।

कलिंज—पुं० [सं० क√लंज् (तिरस्कार करना)+अण्, नि० सिद्धि] नरकट (वनस्पति)।

कलिंजर—पुं०=कालिंजर।

कलिंद—पुं० [सं० कलि√दा (देना)+खच्, मुम्] १. सूर्य। २. हिमालय की वह चोटी जिससे यमुना नदी निकलती है। ३. तरबूज। ४. बहेड़ा।

कलिंदजा—स्त्री० [सं० कलिंद√जन् (पैदा होना)+ड-टाप्] कलिंद पर्वत की पुत्री अर्थात् उससे निकली हुई यमुना नदी।

कलिंद-तनया—स्त्री० [सं० ष० त०]=कलिंदजा

कलिंदी *—स्त्री०=कालिंदी (यमुना नदी)।

कलि—पुं० [सं०√कल् (गिनना)+इन्] १. पुराणानुसार चार युगों में से अंतिम युग जो इस समय चल रहा है। और जो नैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से परम निकृष्ट कहा गया है। (दे० 'कलियुग') २. कलह, क्लेश, दुराचार, पाप आदि की सूचक संज्ञा। ३. पुराणानुसार क्रोध का एक पुत्र जो अहिंसा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसके भय तथा मृत्यु नाम के दो पुत्र थे। ४. एक पौराणिक गंधर्व जाति जिसे जूआ खेलने का बहुत शौक था। ५. शिव का एक नाम। ६. पिंगल में टगण का एक भेद जिसमें क्रम से दो गुरु और तब दो लघु (ऽऽ।।) होते है। ७. तरकश। तूणीर। ८. पासे का वह पहल या पार्श्व जिस पर एक ही बिंदी होती है। ९. बहेड़े का फल या बीज।

वि० काला। श्याम।

*क्रि० वि० [हिं० कल=सुख] १. आराम या चैन से। सुखपूर्वक। उदा०—सुअै तहाँ दिन दस कलि काटी।—जायसी। २. निश्चय-पूर्वक। उदा०—कै कलि कस्यप कूख जानि उपज्यौ किरनाकर। —चंदवरदाई।

कलिअल—पुं० [सं० कल-कल] १. पक्षियों के चहकने का शब्द। २. कल-रव। मधुरध्वनि। उदा०—कूझड़ियाँ कलिअल कियउ। —ढोलामारू।

कलिक—पुं० [सं० कल+ठन्-इक] क्रौंच (पक्षी)।

कलि-कर्म—पुं० [ष० त०] १. निंदनीय या बुरा काम। २. युद्ध। संग्राम।

कलिका—स्त्री० [सं० कलि+कन्, टाप्] १. फूल का आरंभिक बिना

खिला हुआ अंकुरा। कली। २. एक प्रकार का पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था। ३. वीणा का सब से नीचेवाला भाग। ४. संस्कृत में एक विशिष्ट प्रकार की पद-रचना, जो ताल और लय से युक्त होती है। ५. कलौंजी या मँगरैला नामक दाने या बीज। ६. बहुत छोटा अंश या भाग। ७. समय का वह बहुत छोटा भाग, जिसे कला या मुहूर्त कहते है।

कलिकान*—वि० [?] हैरान। परेशान।
स्त्री०=कलिकानी।

कलिकानी†—स्त्री० [?] परेशानी। हैरानी।

कलिकापूर्व—पुं० [कलिका-अपूर्व, मध्य० स०] कोई ऐसी बात जिसके आदि और अन्त अथवा अस्तित्व, मूल आदि का कुछ भी ज्ञान या निश्चय न हो। जैसे—जन्म, मृत्यु, स्वर्ग आदि।

कलि-कारक—वि० [प० त०] १. झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। २. झगड़ा लगाने या वैर-विरोध करानेवाला।
पुं० नारद मुनि का एक नाम।

कलिकारी—स्त्री० [सं० कलि+कृ(करना)+अण्—ङीप्] कलियारी विष।

कलिकाल—पुं० [मयू० स०] कलियुग।

कलिजुग—पुं०=कलियुग।

कलित—वि० [सं०√कल्+क्त] १. धीरे से अथवा अस्पष्ट रूप से कहा हुआ। २. जिसका कलन (ज्ञान या परिचय) हो चुका हो। जाना हुआ। ज्ञात। विदित। ३. ग्रहण या प्राप्त किया हुआ। ४. सजाया हुआ। सज्जित। ५. मनोहर। सुंदर।

कलि-तरु—पुं० [मध्य० स०] १. पाप रूपी वृक्ष। २. बबूल का पेड़।

कलि-द्रुम—पुं० [मध्य० स०] बहेड़े का पेड़।

कलि-नाथ—पुं० [प० त०] संगीत के एक आचार्य का नाम।

कलि-पुर—पुं० [प० त०] १. एक प्राचीन स्थान जहाँ पद्मराग या मानिक की प्रसिद्ध खान थी। २. उक्त स्थान का पद्मराग या मानिक।

कलि-प्रिय—वि० [ब० स०] १. झगड़ालू। २. दुष्ट या नीच प्रकृति का।
पुं० १. नारद मुनि। २. बन्दर। ३. बहेड़े का पेड़।

कलि-मल—पुं० [प० त०] १. कलुष। २. पाप।

कलिमल-सरि—स्त्री० [प० त०] कर्मनाशा नदी।

कलिया—पुं० [अ० कलियः] १. पशुओं का वह कच्चा मांस जो पकाकर खाया जाता हो। २. खाने के लिए पकाया हुआ मांस।

कलियाना—अ० [हिं० कली] १. (पौधे या वृक्षों मे) नई कलियाँ लगना। २. (पक्षियों का) नये परों से युक्त होना।

कलियारी—स्त्री० [सं० कलिहारी] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ की गाँठ बहुत जहरीली होती है।

कलि-युग—पुं० [मयू० स०] पुराणानुसार चार युगों में से चौथा युग जो आज-कल चल रहा है।
विशेष—कहा जाता है कि इसका आरम्भ ईसा के स्वर्गारोहण से ३१०२ वर्ष पूर्व हुआ था; और यह सब मिलकर ४३२००० वर्षो तक रहेगा। यह भी कहा गया है कि इस युग में धर्म का एक ही चरण रह जायगा और इस में अधर्म तथा पाप की बहुत प्रबलता रहेगी।

कलियुगाद्या—पुं० [कलियुग-आद्या, प० त०] माघ की पूर्णिमा जिससे कलियुग का आरंभ माना गया है।

कलियुगी (गिन्)—वि० [सं० कलियुग+इनि] १. कलियुग में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। २. जिसमें कलियुग के गुण या विशेषताएँ (झूठ, पाप, बेईमानी आदि बातें) मुख्य या स्पष्ट रूप से हों।

कलिल—वि० [सं०√कल्+इलच्] १. मिला-जुला। मिश्रित। २. घना। ३. गहन। दुर्गम।
पुं० १. ढेर। राशि। २. झुंड। समूह।

कलि-वर्ज्य—वि० [स० त०] धर्म-शास्त्रों के अनुसार (काम या बात) जिसका अनुष्ठान या आचरण कलियुग में निषिद्ध या वर्जित हो। जैसे—अश्वमेध, गोमेध, मांस का पिंडदान, देवर से नियोग आदि बातें कलि-वर्ज्य है।

कलिहारी—स्त्री० [स० कलि√हृ (हरण करना)+अण्—ङीप्] कलियारी (पौधा)।
वि० [सं० कलह+हारी (ा) प्रत्य०] बहुत अधिक झगड़ा करनेवाली (स्त्री)।

कलींदा—पुं० [सं० कलिंग] तरबूज।

कली—स्त्री० [सं० कलि+ङीप्] १. फूल का वह आरंभिक तथा अविकसित रूप जिसमें पंखड़ियाँ अभी खिली या खुली न हों।
मुहा०—दिल की कली खिलना=अभिलाषा या लालसा पूरी होने पर बहुत अधिक प्रसन्न होना।
२. वैष्णवों का एक प्रकार का तिलक जो देखने में फूल की कली की तरह का होता है। ३. लाक्षणिक अर्थ मे ऐसी किशोरी जिसका यौवन अभी पूर्ण रूप से विकसित न हुआ हो।
पद—कच्ची कली।
४. चिड़ियों के नये निकले हुए छोटे पर। ५. कपड़े का कटा हुआ वह लंबोतरा तिकोना टुकड़ा, जो सीये जानेवाले कपड़ों को अधिक खुला तथा विस्तृत बनाने के लिए उसके जोड़ों के साथ टाँका जाता है। जैसे—अँगिया या कुरते की कली। ६. हुक्के का वह नीचेवाला भाग जिसमें पानी रहता है और जिसके ऊपर गड़गड़ा लगा रहता है।
स्त्री० [अ० कलई] १. कुछ विशिष्ट प्रकार के पत्थरों के टुकड़ों के फूंके जाने पर बननेवाले चूने के ढोके। २. दे० 'कलई'।

कलौट*—वि० [हिं० काला] काला-कलूटा (व्यक्ति)।

कलीत*—वि०=कलित।

कलीरा†—पुं० [सं० कली+हिं० रा (प्रत्य०)] कौड़ियों, गरी के गोलों, छुहारों आदि को पिरोकर बनाई हुई माला जो त्योहार, विवाह आदि के समय भेंट दी जाती है।

कलील—वि० [अ० क़लील] [भाव० किल्लत] मान या मात्रा में बहुत कम। अल्प। थोड़ा।

कलीसा—पुं० [यू० इक्लीसिया] मसीही लोगों का उपासना-गृह। गिरजा।

कलीसाई—वि० [हिं० कलीसा] मसीही-संबंधी। मसीही।
पुं० ईसा मसीह के मत के अनुयायी। ईसाई। मसीही।

कलीसिया—पुं० [यू० इकलीसिया] मसीही लोगों की धर्ममंडली या धार्मिक समुदाय।

चाल मुँगरा या मुँगरा चाल कहलाते हैं। (इसके फूलों का तेल चर्म रोगों का नाशक माना गया है।)

कलाभृत्—पुं० [सं० कला√भृ (धारण करना)+क्विप्] चन्द्रमा।

कलाम—पुं० [अ०] १. वाक्य। २. उक्ति। कथन। ३. बात-चीत। वार्तालाप। ४. किसी काम या बात के लिए दिया जानेवाला वचन। वादा। ५. आपत्ति। एतराज।

कलाम-मजीद—पुं० [अ०] कुरान शरीफ। (मुसलमानों का धर्मग्रंथ)

कलामोचा—पुं० [देश०] बंगाल में होनेवाला एक प्रकार का धान।

कलाय—पुं० [सं० कला√अय् (गति)+अण्] मटर।

कलाय-खंज—पुं० [ब० स०] एक रोग जिसमें जोड़ों की नसें ढीली पड़ जाती है और जिसके फलस्वरूप अंग सदा हिलते-डुलते रहते हैं।

कलायन—पुं० [कला-अयन, ब० स०] नर्तक।

कलार—पुं०=कलाल (कलवार)।

कलारी—स्त्री० [हिं० कलवार] १. कलवार जाति की स्त्री। २. वह स्थान जहाँ शराब बनाई या बेची जाती है। कलवरिया।

कलाल—पुं० [सं० कल्यपाल] [स्त्री० कलालिन] शराब बनाने और बेचनेवाली एक प्रसिद्ध जाति। कलवार।

कलालखाना—पुं० [हिं०+फा०] वह स्थान जहाँ शराब बनाई तथा बेची जाती है। मद्यशाला।

कलावंत—पुं० [सं० कलावान्] १. वह व्यक्ति जो किसी कला का अच्छा ज्ञाता या विशेषज्ञ हो। २. वह व्यक्ति जो कोई काम बहुत ही कला-पूर्ण ढंग से करता हो। ३. मध्य युग के बहुत बड़े तथा प्रसिद्ध गवैये अथवा उनके वंशज। ४. कलाबाज।

कलाव—पुं०=कलावा।

कलावती—स्त्री० [सं० कला+मतुप्, ङीप्, वत्व] १. तुंबुरु नामक गंधर्व की वीणा का नाम। २. तंत्र में एक प्रकार की दीक्षा। ३. गंगा का एक नाम।

स्त्री० [हिं० कल (पानी की)] पानी की कल या उसमें से आनेवाली जलराशि। (परिहास) जैसे—कलावती में होनेवाला स्नान।

कलावा—पुं० [सं० कलापक, प्रा० कलावअ] [स्त्री० अल्पा० कलाई] १. सूत का लपेटा हुआ लच्छा। २. लाल, पीले आदि रंगों से रँगा हुआ सूत का डोरा या लच्छा जो मांगलिक अवसरों पर हाथ की कलाई में तथा घड़े आदि कुछ वस्तुओं पर बाँधा जाता है। ३. वह रस्सी जो हाथी के गले में पड़ी रहती है और जिसमें पैर फँसाकर महावत उसे हाँकते हैं।

कलावान (वत्)—वि० [सं० कला+मतुप्] [स्त्री० कलावती] किसी अथवा कई कलाओं का अच्छा ज्ञाता (व्यक्ति)।

कलाविक—पुं० [सं० कल-आ-वि√कै (शब्द)+क] मुर्गा।

कला-शाला—स्त्री० [ष० त०] वह भवन जिसमें प्रदर्शन के लिए कला-संबंधी अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुएँ और मुख्यत: चित्रकला की कृतियाँ रखी रहती हों (आर्टगैलरी)।

कलास—पुं० [सं० कल√आस् (उपवेशन)+घञ्] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल।

कलासी—पुं० [सं० कला] १. दो वस्तुओं को सटाने अथवा सटाकर जोड़ने से बननेवाली रेखा जो उस जोड़ की सूचक होती है। २. जोड़-तोड़ या साट-गाँठ बैठाने की युक्ति। जैसे—यहाँ तुम्हारी कोई कलासी नहीं लगेगी।

कलाहक—पुं०=काहल (बड़ा ढोल)।

कलिंग—पुं० [सं० कलि√गम् (जाना)+ड] १. आधुनिक आंध्र-प्रदेश के उस भाग का प्राचीन नाम जो समुद्र के किनारे-किनारे कटक से मद्रास तक फैला है। २. उक्त प्रदेश का निवासी। ३. सिरिस का पेड़। ४. पाकर वृक्ष। ५. तरबूजे। ६. कुटज। कुरैया। ७. कलिंगड़ा नामक राग।

वि० कलिंग देश का।

कलिंगड़ा—पुं० [सं० कलिंग] रात के चौथे पहर में गाया जानेवाला संपूर्ण जाति का एक राग।

कलिंगा—पुं० [सं० कलिंग] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी छाल रेचक होती है। तेवरी।

कलिंज—पुं० [सं० क√लंज् (तिरस्कार करना)+अण्, नि० सिद्धि] नरकट (वनस्पति)।

कलिंजर—पुं०=कालिंजर।

कलिंद—पुं० [सं० कलि√दा (देना)+खच्, मुम्] १. सूर्य। २. हिमालय की वह चोटी जिससे यमुना नदी निकलती है। ३. तरबूज। ४. बहेड़ा।

कलिंदजा—स्त्री० [सं० कलिंद√जन् (पैदा होना)+ड—टाप्] कलिंद पर्वत की पुत्री अर्थात् उससे निकली हुई यमुना नदी।

कलिंद-तनया—स्त्री० [सं० ष० त०]=कलिंदजा

कलिंदी *—स्त्री०=कालिंदी (यमुना नदी)।

कलि—पुं० [सं०√कल् (गिनना)+इन्] १. पुराणानुसार चार युगों में से अंतिम युग जो इस समय चल रहा है। और जो नैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से परम निकृष्ट कहा गया है। (दे० 'कलियुग') २. कलह, क्लेश, दुराचार, पाप आदि की सूचक संज्ञा। ३. पुराणानुसार क्रोध का एक पुत्र जो अहिंसा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसके भय तथा मृत्यु नाम के दो पुत्र थे। ४. एक पौराणिक गंधर्व जाति जिसे जूआ खेलने का बहुत शौक था। ५. शिव का एक नाम। ६. पिंगल में टगण का एक भेद जिसमें क्रम से दो गुरु और तब दो लघु (ऽऽ।।) होते हैं। ७. तरकश। तूणीर। ८. पासे का वह पहल या पार्श्व जिस पर एक ही बिंदी होती है। ९. बहेड़े का फल या बीज।

वि० काला। श्याम।

*क्रि० वि० [हिं० कल=सुख] १. आराम या चैन से। सुखपूर्वक। उदा०—सुअै तहाँ दिन दस कलि काटी।—जायसी। २. निश्चय-पूर्वक। उदा०—कै कलि कस्यप कूख जानि उपज्यौ किरनाकर।—चंदवरदाई।

कलिअल—पुं० [सं० कल-कल] १. पक्षियों के चहकने का शब्द। २. कल-रव। मधुरध्वनि। उदा०—कूंझड़ियाँ कलिअल कियउ।—ढोलामारू।

कलिक—पुं० [सं० कल+ठन्—इक] क्रौंच (पक्षी)।

कलि-कर्म—पुं० [ष० त०] १. निंदनीय या बुरा काम। २. युद्ध। संग्राम।

कलिका—स्त्री० [सं० कलि+कन्, टाप्] १. फूल का आरंभिक बिना

खिला हुआ अंकुरा। कली। २. एक प्रकार का पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था। ३. वीणा का सब से नीचेवाला भाग। ४. संस्कृत में एक विशिष्ट प्रकार की पद-रचना, जो ताल और लय से युक्त होती है। ५. कलौंजी या मँगरैला नामक दाने या बीज। ६. बहुत छोटा अंश या भाग। ७. समय का वह बहुत छोटा भाग, जिसे कला या मुहूर्त कहते हैं।

कलिकान*—वि० [?] हैरान। परेशान।
स्त्री०=कलिकानी।

कलिकानी†—स्त्री० [?] परेशानी। हैरानी।

कलिकापूर्व—पुं० [कलिका-अपूर्व, मध्य० स०] कोई ऐसी बात जिसके आदि और अन्त अथवा अस्तित्व, मूल आदि का कुछ भी ज्ञान या निश्चय न हो। जैसे—जन्म, मृत्यु, स्वर्ग आदि।

कलि-कारक—वि० [ष० त०] १. झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। २. झगड़ा लगाने या वैर-विरोध करानेवाला।
पुं० नारद मुनि का एक नाम।

कलिकारी—स्त्री० [सं० कलि+कृ(करना)+अण्—ङीप्] कलियारी विष।

कलिकाल—पुं० [मयू० स०] कलियुग।

कलिजुग—पुं०=कलियुग।

कलित—वि० [सं०√कल्+क्त] १. धीरे से अथवा अस्पष्ट रूप से कहा हुआ। २. जिसका कलन (ज्ञान या परिचय) हो चुका हो। जाना हुआ। ज्ञात। विदित। ३. ग्रहण या प्राप्त किया हुआ। ४. सजाया हुआ। सज्जित। ५. मनोहर। सुंदर।

कलि-तरु—पुं० [मध्य० स०] १. पाप रूपी वृक्ष। २. बबूल का पेड़।

कलि-द्रुम—पुं० [मध्य० स०] बहेड़े का पेड़।

कलि-नाथ—पुं० [ष० त०] संगीत के एक आचार्य का नाम।

कलि-पुर—पुं० [ष० त०] १. एक प्राचीन स्थान जहाँ पद्मराग या मानिक की प्रसिद्ध खान थी। २. उक्त स्थान का पद्मराग या मानिक।

कलि-प्रिय—वि० [ब० स०] १. झगड़ालू। २. दुष्ट या नीच प्रकृति का।
पुं० १. नारद मुनि। २. बन्दर। ३. बहेड़े का पेड़।

कलि-मल—पुं० [ष० त०] १. कलुष। २. पाप।

कलिमल-सरि—स्त्री० [ष० त०] कर्मनाशा नदी।

कलिया—पुं० [अ० कलियः] १. पशुओं का वह कच्चा मांस जो पकाकर खाया जाता हो। २. खाने के लिए पकाया हुआ मांस।

कलियाना—अ० [हिं० कली] १. (पौधे या वृक्षों में) नई कलियाँ लगना। २. (पक्षियों का) नये परों से युक्त होना।

कलियारी—स्त्री० [सं० कलिहारी] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ की गाँठ बहुत जहरीली होती है।

कलि-युग—पुं० [मयू० स०] पुराणानुसार चार युगों में से चौथा युग जो आज-कल चल रहा है।
विशेष—कहा जाता है कि इसका आरम्भ ईसा के स्वर्गारोहण से ३१०२ वर्ष पूर्व हुआ था; और यह सब मिलकर ४३२००० वर्षो तक रहेगा। यह भी कहा गया है कि इस युग में धर्म का एक ही चरण रह जायगा और इस में अधर्म तथा पाप की बहुत प्रबलता रहेगी।

कलियुगाद्या—पुं० [कलियुग-आद्या, ष० त०] माघ की पूर्णिमा जिससे कलियुग का आरंभ माना गया है।

कलियुगी (गिन्)—वि० [सं० कलियुग+इनि] १. कलियुग में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। २. जिसमें कलियुग के गुण या विशेषताएँ (झूठ, पाप, बेईमानी आदि बातें) मुख्य या स्पष्ट रूप से हों।

कलिल—वि० [सं०√कल्+इलच्] १. मिला-जुला। मिश्रित। २. घना। ३. गहन। दुर्गम।
पुं० १. ढेर। राशि। २. झुंड। समूह।

कलि-वर्ज्य—वि० [स० त०] धर्म-शास्त्रों के अनुसार (काम या बात) जिसका अनुष्ठान या आचरण कलियुग में निषिद्ध या वर्जित हो। जैसे—अश्वमेध, गोमेध, मांस का पिंडदान, देवर से नियोग आदि बातें कलि-वर्ज्य हैं।

कलिहारी—स्त्री० [सं० कलि√हृ (हरण करना)+अण्—ङीप्] कलियारी (पौधा)।
वि० [सं० कलह+हारी(ी)प्रत्य०] बहुत अधिक झगड़ा करनेवाली (स्त्री)।

कलींदा—पुं० [सं० कलिंग] तरबूज।

कली—स्त्री० [सं० कलि+ङीप्] १. फूल का वह आरंभिक तथा अविकसित रूप जिसमें पंखड़ियाँ अभी खिली या खुली न हों।
मुहा०—दिल की कली खिलना=अभिलाषा या लालसा पूरी होने पर बहुत अधिक प्रसन्न होना।
२. वैष्णवों का एक प्रकार का तिलक जो देखने में फूल की कली की तरह का होता है। ३. लाक्षणिक अर्थ में ऐसी किशोरी जिसका यौवन अभी पूर्ण रूप से विकसित न हुआ हो।
पद—कच्ची कली।
४. चिड़ियों के नये निकले हुए छोटे पर। ५. कपड़े का कटा हुआ वह लंबोतरा तिकोना टुकड़ा, जो सीये जानेवाले कपड़ों को अधिक खुला तथा विस्तृत बनाने के लिए उसके जोड़ों के साथ टाँका जाता है। जैसे—अँगिया या कुरते की कली। ६. हुक्के का वह नीचेवाला भाग जिसमें पानी रहता है और जिसके ऊपर गड़गड़ा लगा रहता है।
स्त्री० [अ० कलई] १. कुछ विशिष्ट प्रकार के पत्थरों के टुकड़ों के फूँके जाने पर बननेवाले चूने के ढोंके। २. दे० 'कलई'।

कलीट*—वि० [हिं० काला] काला-कलूटा (व्यक्ति)।

कलीत*—वि०=कलित।

कलीरा†—पुं० [सं० कली+हिं० रा(प्रत्य०)] कौड़ियों, गरी के गोलों, छुहारों आदि को पिरोकर बनाई हुई माला जो त्योहार, विवाह आदि के समय भेंट दी जाती है।

कलील—वि० [अ० क़लील] [भाव० किल्लत] मान या मात्रा में बहुत कम। अल्प। थोड़ा।

कलीसा—पुं० [यू० इक्लीसिया] मसीही लोगों का उपासना-गृह। गिरजा।

कलीसाई—वि० [हिं० कलीसा] मसीही-संबंधी। मसीही।
पुं० ईसा मसीह के मत के अनुयायी। ईसाई। मसीही।

कलीसिया—पुं० [यू० इकलीसिया] मसीही लोगों की धर्ममंडली या धार्मिक समुदाय।

कलुआवीर—पुं० [हिं० कलुआ=काला+वीर] ओझाओं या झाड़-फूंक करनेवालों की एक कल्पित प्रेतात्मा।
कलुख*—पुं०=कलुष।
कलुखाई—स्त्री०=कलुष।
कलुखी†—वि०=कलुषी।
स्त्री०=कलुष।
कलुष—पुं० [सं०√कल्+उपच्] [वि० कलुषित, कलुषी] १. काले अर्थात् दूषित या मलिन होने की अवस्था या भाव। मलिनता। मैल। जैसे—मन का कलुष। २. अपवित्रता। ३. कोई बुरी बात या दूषित भाव। ऐब। दोष। ४. पातक। पाप। ५. क्रोध। गुस्सा। ६. भैंसा। ७. कलंक। बदनामी।
वि० [स्त्री० कलुषा, कलुषी] १. गँदला। मैला। २. गर्हित। निंदनीय। बुरा। ३. दोषी। ४. पापी।
कलुष-चेता (तस्)—पुं० [सं० ब० स०] १. जिसके मन में कलुष या पाप हो। २. जिसकी प्रवृत्ति बराबर बुरे कामों की ओर रहती हो।
कलुष-योनि—पुं० [ब० स०] वर्णसंकर। दोगला।
कलुषाई—स्त्री० [सं० कलुष+हिं० आई प्रत्य०] १. बुद्धि की मलिनता। २. अपवित्रता। अशुद्धता।
कलुषित—वि० [सं० कलुष+इतच्] १. जो कलुष से युक्त हो। गंदा और मैला। २. अपवित्रता। ३. खराब। निंदित। बुरा। ४. दुःखी। ५. क्षुब्ध। ६. काला। कृष्ण।
कलुषी—(षिन्) वि० [सं० कलुष+इनि] १. (व्यक्ति) जो मानसिक या शारीरिक दृष्टि से अपवित्र या मलिन हो। २. दोषी। ३. पापी।
कलूटा—वि० [हिं० काला+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० कलूटी] जिसका वर्ण घोर काला हो।
पद—**काला-कलूटा**=बहुत अधिक या बिलकुल काला।
कलूना—पुं० [देश०] पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का धान।
कलूला—पुं०=कुल्ला (मुँह से निकाला हुआ पानी)।
कलेऊ—पुं०=कलेवा।
कलेजई—पुं० [हिं० कलेजा] कसीस, मजीठ, हर्रे आदि के योग से बनाया जानेवाला एक प्रकार का रंग। चुनौटिया।
वि० उक्त रंग का। उक्त रंग-संबंधी।
कलेजा—पुं० [सं० यकृत से विपर्यय के कारण क्र्त्य, प्रा० क्रज्ज] १. जंतुओं और मनुष्यों के धड़ के अन्दर का एक विशिष्ट अंग जो प्रायः पान के आकार का होता और भाथी की तरह [illegible] उभरता और दबता रहता है। और जिसकी इस क्रिय[illegible] [illegible]ीर में रक्त का संचार होता है।

विकार (जैसे—प्रसन्नता, भय आदि) अथवा मानसिक आघात आदि के कारण उक्त अंग का जल्दी-जल्दी और जोर से चलने लगना। **कलेजा उड़ना**=आशंका, भय या विकलता के कारण होश ठिकाने न रहना। सुध-बुध भूल जाना। **कलेजा उलटना**=पीड़ा, रोग आदि के कारण ऐसा जान पड़ना कि अब उक्त अंग का काम बंद हो जायगा अर्थात् मृत्यु हो जायगी। **कलेजा काँपना**=बहुत भयभीत होने के कारण जी दहलना। **कलेजा काढ़कर रख देना**=अपने आपको सब प्रकार से किसी के लिए निछावर कर देना। **कलेजा खाना**=किसी को इतना तंग या दिक करना कि वह परेशान हो जाय। **कलेजा छेदना या बींधना**=बहुत कठोर या चुभती हुई बातें कहकर मर्मवेधी आघात करना। **कलेजा छलनी होना**=बहुत अधिक कष्ट के कारण ऐसी स्थिति होना कि मानों कलेजे में जगह-जगह बहुत-से छेद हो गये हों। जैसे—किसी की गालियों या शापों से या बार-बार के मानसिक आघात से कलेजा छलनी हो गया है। **कलेजा जलना**= बहुत अधिक कष्ट या दुःख के कारण विशेष संताप होना। **कलेजा टूटना या टुकड़े-टुकड़े होना**=(क) बहुत अधिक मानसिक कष्ट या संताप होना। (ख) उत्साह या साहस न रह जाना। **कलेजा ठंडा या तर होना**=अभिलाषा या इच्छा पूरी होने के कारण तृप्ति, शांति या संतोष होना। **कलेजा थामकर बैठ या रह जाना**=प्रबल मानसिक आघात के कारण कुछ करने-धरने में असमर्थ हो जाना। **कलेजा दहलना**=बहुत भयभीत होने के कारण अस्थिर तथा विकल होना। **कलेजा धकधक करना**=कलेजा धड़कना। **कलेजा धक से हो जाना**=सहसा कोई अनिष्ट बात सुनने से कुछ समय के लिए हृदय की गति रुक जाना। **कलेजा धड़कना**=आशंका, भय, रोग आदि के कारण कलेजे में धड़कन होना। **कलेजा निकलना**=कष्ट, वेदना आदि के कारण ऐसा जान पड़ना कि शरीर के अन्दर कलेजा रह ही नहीं गया। **(किसी के आगे) कलेजा निकाल कर रखना या रख देना**=(दे०) कलेजा काढ़कर रख देना। **(किसी का) कलेजा निकालना**=(क) किसी की परम प्रिय वस्तु या सर्वस्व-हरण करना। (ख) बहुत अधिक कष्ट पहुँचाना। व्यथित करना। **कलेजा पक जाना**=कष्ट या दुःख सहते-सहते बहुत ही अधीर या असमर्थ और विकल हो जाना। **कलेजा पसीजना**=किसी को दुःखी देखकर दयार्द्र होना। हृदय द्रवित होना। **कलेजा फटना**=बहुत अधिक मार्मिक कष्ट या वेदना होना। **कलेजा बैठ जाना**=मानसिक आघात आदि के कारण अक्रिय और असमर्थ-सा हो जाना। **कलेजा बैठा जाना**=ऐसा जान पड़ना कि अब प्राण न बचेंगे। **(अपना) कलेजा मलना**=मानसिक आघात या प्रहार होने पर, अपने मन को धीरज बँधाने के लिए उस पर हाथ फेरना। **(किसी का) कलेजा मलना**=किसी को बहुत अधिक कष्ट पहुँचाना या दुःखी करना। **कलेजा मसोस कर रह जाना**=बहुत कुछ चाहते हुए भी असमर्थ या विवश होने के कारण कुछ कर न सकना। परम असमर्थता का अनुभव करना। **कलेजा मुँह को आना**=बहुत अधिक विकलता के कारण ऐसा जान पड़ना कि अब हम न बचेंगे। बहुत अधिक चिंतित और दुःखी होना। **कलेजा सुलगना**=मानसिक कष्ट या क्लेश के कारण मन का निरंतर खिन्न और दुःखी रहना। **कलेजा हिलना**=कलेजा दहलना। **कलेजे पर साँप लोटना**=किसी अप्रिय या असह्य घटना

के कारण बहुत अधिक मानसिक कष्ट होना। **कलेजे पर हाथ धर-(या रख) कर देखना**=अंतरात्मा या विवेक का ध्यान रखते हुए न्याय या सत्य की ओर ध्यान देना। **कलेजे में आग लगना**=बहुत अधिक हार्दिक कष्ट या दुःख होना। **(किसी के) कलेजे में पैठना या घुसना**=किसी के मन की थाह लेने के लिए उससे मेल-जोल बढ़ाना।

पद—पत्थर का कलेजा=(क) ऐसा हृदय जो किसी का दुःख देखकर पसीजता न हो। (व्यक्ति) जिसमें दया, ममता या सहानुभूति न हो। (ख) ऐसा हृदय जो कष्ट सहने में यथेष्ट समर्थ हो। **कलेजे का टुकड़ा**=परम प्रिय वस्तु या व्यक्ति।

२. उक्त अंग का ऊपरी या बाहरी भाग। छाती। वक्षस्थल।

मुहा०—कलेजे से लगाना=गले लगाना। आलिंगन करना। **(किसी को) कलेजे से लगाकर रखना**=बहुत ही प्रेम, यत्न या स्नेह से बराबर अपने पास या साथ रखना।

३. जीवट। साहस। हिम्मत।

मुहा०—कलेजा बढ़ जाना=साहस या हिम्मत बढ़ जाना।

कलेजी—स्त्री० [हिं० कलेजा] १. पशु-पक्षियों के कलेजे का मांस, जो खाने में स्वादिष्ट माना जाता है। २. उक्त मांस की बनी हुई तरकारी या सालन।

कलेवर—पुं० [सं० अलुक् स०] १. मनुष्य के शरीर का सारा ऊपरी या बाहरी भाग (आत्मा, प्राण आदि से भिन्न)। चोला। देह। शरीर।

मुहा०—कलेवर चढ़ाना=गणेश, महावीर आदि देवताओं की मूर्ति पर घी में मिले सेंदुर का इस प्रकार लेप करना कि उनके सारे शरीर पर एक नया स्तर चढ़ जाय। **कलेवर बदलना**=(क) एक शरीर त्याग कर दूसरा शरीर धारण करना। चोला बदलना। (ख) पुराना रूप छोड़ कर बिलकुल नया रूप धारण करना। (ग) उपचार, चिकित्सा आदि से रोगी शरीर का पूर्ण रूप से नीरोग होना। (घ) हर बारहवें वर्ष अथवा आषाढ़ में मल-मास होने पर जगन्नाथजी की पुरानी मूर्ति का हटाया जाना और उसके स्थान पर नई मूर्ति का स्थापित होना।

२. ऊपरी या बाहरी ढाँचा।

कलेवा—पुं० [सं० कल्यवर्त, प्रा० कल्लवह] १. सवेरे किया जाने वाला जलपान या हलका भोजन।

मुहा०—कलेवा करना=बहुत ही तुच्छ या साधारण समझ कर खा या निगल जाना।

२. वह भोजन जो यात्री कहीं जाने के समय रास्ते के लिए अपने साथ रख लेते हैं। ३. विवाह के बाद की एक रसम जिसमें वर अपने साथियों के साथ ससुराल में जल-पान या भोजन करने जाता है। खिचड़ी।

कलेस—पुं०=क्लेश।

कलेसुर—पुं०=कलसिरा।

कलै—पुं० [सं० कल] १. अवसर। २. इच्छा। उदा०—बरपै हरषि आपनै कलै।—नंददास।

क्रि० वि० १. कल या चैन से। २. अपनी इच्छा से। स्वेच्छापूर्वक।

कलया—स्त्री० [सं० कला] झोंके से सिर नीचे और पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया या भाव। कलाबाजी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

कलोर—स्त्री० [सं० कल्या?] ऐसी जवान बछिया (गौ) जो अभी गाभिन न हुई हो।

कलोल—स्त्री० [सं० कल्लोल] आमोद-प्रमोद या क्रीड़ा के लिए की जाने वाली थोड़ी-बहुत उछल-कूद।

कलोलना*—अ० [हिं० कलोल] कलोल या क्रीड़ा करना।

कलौंछ—स्त्री० =कलौंस।

कलौंजी—स्त्री० [सं० काला-जाजी] १. एक प्रकार का पौधा, जिसके बीज 'मंगरैला' कहलाते और मसाले के काम में आते हैं। २. मँगरैला नामका मसाला। ३. समूचे करेले, परवल, बैंगन आदि का वह रूप जो उनके अन्दर मिर्च-मसाले भर कर और उन्हें घी या तेल में तलने या भूनने पर प्राप्त होता है।

कलौंस—स्त्री० [हिं० काला+औंस (प्रत्य०)] १. हलका कालापन। हलकी कालिमा। २. कलंक।

वि० जिसका रंग कुछ हलका काला हो।

कल्क—पुं० [सं०√कल् (गति)+क] १. किसी चीज का बारीक चूरा। चूर्ण। बुकनी। २. पीठी। ३. अवलेह। चटनी। ४. गूदा। ५. पाखंड। ६. दुष्टता। शठता। ७. मल। ८. मैल। ९. गुह। विष्ठा। १०. पाप। ११. बहेड़ा।

कल्क-फल—पुं० [ब० स०] अनार।

कल्की (ल्किन्)—पुं० [सं० कल्क+इनि] कलियुग के अन्त में कुमारी कन्या के गर्भ से जन्म लेनेवाला विष्णु का भावी दसवाँ अवतार। (पुराण)

कल्प—पुं० [सं०√कृप् (कल्पना)+णिच्+अच् वा घञ्] १. मांगलिक और शुभ कृत्य, नियम तथा विधि-विधान। (विशेषतः वेदों में बतलाये हुए) २. वेदों के छः अंगों में से एक, जिसमें बलिदान, यज्ञ आदि से संबंध रखनेवाली विधियाँ बतलाई गई हैं। ३. हिंदू पंचांग के अनुसार काल या समय का एक बहुत बड़ा विभाग जो एक हजार महा-युगों अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ मानव वर्षों का कहा गया है।

विशेष—हमारे यहाँ प्रत्येक कल्प ब्रह्मा का एक दिन माना जाता है, और ऐसे ३६० दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। कहते हैं कि अब तक ब्रह्मा के ऐसे ५० वर्ष बीत चुके हैं; और आज कल ५१ वें वर्ष के पहले महीने का पहला दिन चल रहा है, जिसका नाम श्वेत वाराह कल्प है। ऐसे प्रत्येक कल्प में एक हजार महायुग होते हैं; और प्रत्येक महायुग के चार अलग-अलग विभाग ही युग कहलाते हैं। प्रत्येक कल्प के अन्त में, जिसे कल्पांत कहते हैं, भौतिक सृष्टि का अंत या प्रलय होता है।

४. आधुनिक पुरा-शास्त्र और भू-शास्त्र के क्षेत्रों में, करोड़ों अरबों वर्षों का वह विशिष्ट काल-विभाग, जो कई युगों में विभक्त रहता है और जिसमें पृथ्वी की कुछ स्वतन्त्र प्रकार की विकासात्मक स्थितियाँ होती हैं। (एरा) जैसे—आदि कल्प, उत्तर कल्प, मध्य कल्प, नव कल्प (देखें)।

विशेष—ये नामकरण हमारे यहाँ के पुराने कल्पों और युगों के आधार पर ही हुए हैं। पर आधुनिक वैज्ञानिक एक तो इनकी उस प्रकार की पुनरावृत्ति नहीं मानते, जिस प्रकार की हिंदू पंचांग में मानी गई है; दूसरे वे अपने कल्पों और युगों के लक्षण पृथ्वी के विशुद्ध विकासात्मक रूपों या विभागों की दृष्टि से स्थिर करते हैं।

कलुआवीर—पुं० [हिं० कलुआ=काला+वीर] ओझाओं या झाड़-फूंक करनेवालों की एक कल्पित प्रेतात्मा।

कलुख*—पुं०=कलुष।

कलुखाई—स्त्री०=कलुष।

कलुखी†—वि०=कलुषी।

स्त्री०=कलुष।

कलुष—पुं० [सं०√कल्+उषच्] [वि० कलुषित, कलुषी] १. काले अर्थात् दूषित या मलिन होने की अवस्था या भाव। मलिनता। मैल। जैसे—मन का कलुष। २. अपवित्रता। ३. कोई बुरी बात या दूषित भाव। ऐब। दोष। ४. पातक। पाप। ५. क्रोध। गुस्सा। ६. भैंसा। ७. कलंक। बदनामी।

वि० [स्त्री० कलुषा, कलुषी] १. गँदला। मैला। २. गर्हित। निंदनीय। बुरा। ३. दोषी। ४. पापी।

कलुष-चेता (तस्)—पुं० [सं० ब० स०] १. जिसके मन में कलुष या पाप हो। २. जिसकी प्रवृत्ति बराबर बुरे कामों की ओर रहती हो।

कलुष-योनि—पुं० [ब० स०] वर्णसंकर। दोगला।

कलुषाई—स्त्री० [सं० कलुष+हिं० आई प्रत्य०] १. बुद्धि की मलिनता। २. अपवित्रता। अशुद्धता।

कलुषित—वि० [सं० कलुष+इतच्] १. जो कलुष से युक्त हो। गंदा और मैला। २. अपवित्रता। ३. खराब। निंदित। बुरा। ४. दुःखी। ५. क्षुब्ध। ६. काला। कृष्ण।

कलुषी—(षिन्) वि० [सं० कलुष+इनि] १. (व्यक्ति) जो मानसिक या शारीरिक दृष्टि से अपवित्र या मलिन हो। २. दोषी। ३. पापी।

कलूटा—वि० [हिं० काला+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० कलूटी] जिसका वर्ण घोर काला हो।

पद—**काला-कलूटा**=बहुत अधिक या बिलकुल काला।

कलूना—पुं० [देश०] पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का धान।

कलूला—पुं०=कुल्ला (मुँह से निकाला हुआ पानी)।

कलेऊ—पुं०=कलेवा।

कलेजई—पुं० [हिं० कलेजा] कसीस, मजीठ, हर्रे आदि के योग से बनाया जानेवाला एक प्रकार का रंग। चुनौटिया।

वि० उक्त रंग का। उक्त रंग-संबंधी।

कलेजा—पुं० [सं० यकृत से विपर्यय के कारण कृत्य, प्रा० कृज्ज] १. जंतुओं और मनुष्यों के धड़ के अन्दर का एक विशिष्ट अंग जो प्रायः पान के आकार का होता और भाथी की तरह सदा उभरता और दबता रहता है। और जिसकी इस क्रिया के फलस्वरूप सारे शरीर में रक्त का संचार होता है। हृदय। (हार्ट)

विशेष—शरीर के इसी अंग में मन का निवास माना जाता है; इसलिए कुछ अवस्थाओं में और प्रायः मुहावरों में इसका अर्थ (क) मन या हृदय (ख) उदारता, प्रेम आदि तथा (ग) जीव तथा साहस भी होता है। जैसे—(क) जी चाहता है कि तुम्हें कलेजे में रख लूँ। (ख) जरा जी कड़ा करके यह काम कर डालो।

मुहा०—**कलेजा उछलना**=किसी आकस्मिक और प्रबल मनोविकार (जैसे—प्रसन्नता, भय आदि) अथवा मानसिक आघात आदि के कारण उक्त अंग का जल्दी-जल्दी और जोर से चलने लगना। **कलेजा उड़ना**=आशंका, भय या विकलता के कारण होश ठिकाने न रहना। सुध-बुध भूल जाना। **कलेजा उलटना**=पीड़ा, रोग आदि के कारण ऐसा जान पड़ना कि अब उक्त अंग का काम बंद हो जायगा अर्थात् मृत्यु हो जायगी। **कलेजा काँपना**=बहुत भयभीत होने के कारण जी दहलना। **कलेजा काढ़कर रख देना**=अपने आपको सब प्रकार से किसी के लिए निछावर कर देना। **कलेजा खाना**=किसी को इतना तंग या दिक करना कि वह परेशान हो जाय। **कलेजा छेदना या बींधना**=बहुत कठोर या चुभती हुई बातें कहकर मर्मवेधी आघात करना। **कलेजा छलनी होना**=बहुत अधिक कष्ट के कारण ऐसी स्थिति होना कि मानों कलेजे में जगह-जगह बहुत-से छेद हो गये हों। जैसे—किसी की गालियों या शापों से या बार-बार के मानसिक आघात से कलेजा छलनी हो गया है। **कलेजा जलना**=बहुत अधिक कष्ट या दुःख के कारण विशेष संताप होना। **कलेजा टूटना या टुकड़े-टुकड़े होना**=(क) बहुत अधिक मानसिक कष्ट या संताप होना। (ख) उत्साह या साहस न रह जाना। **कलेजा ठंडा या तर होना**=अभिलाषा या इच्छा पूरी होने के कारण तृप्ति, शांति या संतोष होना। **कलेजा थामकर बैठ या रह जाना**=प्रबल मानसिक आघात के कारण कुछ करने-धरने में असमर्थ हो जाना। **कलेजा दहलना**=बहुत भयभीत होने के कारण अस्थिर तथा विकल होना। **कलेजा धकधक करना**=कलेजा धड़कना। **कलेजा धक से हो जाना**=सहसा कोई अनिष्ट बात सुनने से कुछ समय के लिए हृदय की गति रुक जाना। **कलेजा धड़कना**=आशंका, भय, रोग आदि के कारण कलेजे में धड़कन होना। **कलेजा निकलना**=कष्ट, वेदना आदि के कारण ऐसा जान पड़ना कि शरीर के अन्दर कलेजा रह ही नहीं गया। **(किसी के आगे) कलेजा निकाल कर रखना या रख देना**=(दे०) कलेजा काढ़कर रख देना। **(किसी का) कलेजा निकालना**=(क) किसी की परम प्रिय वस्तु या सर्वस्व-हरण करना। (ख) बहुत अधिक कष्ट पहुँचाना। व्यथित करना। **कलेजा पक जाना**=कष्ट या दुःख सहते-सहते बहुत ही अधीर या असमर्थ और विकल हो जाना। **कलेजा पसीजना**=किसी को दुःखी देखकर दयार्द्र होना। हृदय द्रवित होना। **कलेजा फटना**=बहुत अधिक मार्मिक कष्ट या वेदना होना। **कलेजा बैठ जाना**=मानसिक आघात आदि के कारण अक्रिय और असमर्थ-सा हो जाना। **कलेजा बैठा जाना**=ऐसा जान पड़ना कि अब प्राण न बचेंगे। **(अपना) कलेजा मलना**=मानसिक आघात या प्रहार होने पर, अपने मन को धीरज बँधाने के लिए उस पर हाथ फेरना। **(किसी का) कलेजा मलना**=किसी को बहुत अधिक कष्ट पहुँचाना या दुःखी करना। **कलेजा मसोस कर रह जाना**=बहुत कुछ चाहते हुए भी असमर्थ या विवश होने के कारण कुछ कर न सकना। परम असमर्थता का अनुभव करना। **कलेजा मुँह को आना**=बहुत अधिक विकलता के कारण ऐसा जान पड़ना कि अब हम न बचेंगे। बहुत अधिक चिंतित और दुःखी होना। **कलेजा सुलगना**=मानसिक कष्ट या क्लेश के कारण मन का निरंतर खिन्न और दुःखी रहना। **कलेजा हिलना**=कलेजा दहलना। **कलेजे पर साँप लोटना**=किसी अप्रिय या असह्य घटना

कल्यवर्त्त—पुं० [सं० कल्य√वृत् (वरतना)+णिच्+अप्] सवेरे किया जानेवाला जलपान। कलेवा।

कल्या—स्त्री० [सं०√कल्+णिच्+यक्—टाप्] १. मदिरा। शराव। २. हरीतकी या हर्रे का पौधा। ३. बधाई। ४. वह बछिया जो बरदाने के योग्य हो गई हो। कलोर। ५. वड़ी या मुख्य नहर। कुल्या। (मेन कनाल)

कल्याण—पुं० [सं० कल्य√अण् (शब्द करना)+घञ्] १. सब प्रकार से होनेवाली भलाई तथा समृद्धि। २. शुभ-कर्म। ३. सोना। ४. संगीत में, संपूर्ण जाति का एक राग जो किसी के मत से श्रीराग का और किसी के मत से मेघराग का पुत्र है तथा जिसके गाने का समय रात का पहला पहर है।

कल्याणक—वि० [सं० कल्याण+कन्]=कल्याणकर।

कल्याणकर—वि० [सं० कल्याण√कृ+ट] कल्याण करनेवाला।

कल्याण-कामोद—पुं० [द्व०स०] कल्याण और कामोद के मेल से बना हुआ एक संकर राग। (संगीत)

कल्याणकारी(रिन्)—वि० [सं० कल्याण√कृ+णिनि] [स्त्री० कल्याण-कारिणी] कल्याण या मंगल करनेवाला। शुभ।

कल्याण-नट—[द्व०स०] कल्याण और नट के मेल से बना हुआ एक संकर राग। (संगीत)

कल्याण-भार्य—पुं० [ब० स०] ऐसा व्यक्ति जिसकी कई पत्नियाँ मर चुकी हों; अथवा जिसका विवाह होने पर कुछ ही दिनों में पत्नी मर जाती हो।

कल्याणी—वि० [सं० कल्याण+ङीप्] १. कल्याण या मंगल करनेवाली। २. भाग्यशालिनी। ३. रूपवती। सुन्दरी।

स्त्री० १. कामधेनु। २. गाय। गौ। ३. एक देवी का नाम। ४. माषपर्णी।

कल्यान†—पुं०=कल्याण।

कल्यापाल—पुं०=कल्यपाल।

कल्योना†—पुं०=कलेवा (जलपान)।

कल्ल—वि० [सं०√कल्ल् (शब्द)+अच्] बहरा।

पुं० १. बहरापन। २. शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण।

कल्लर—पुं० [?] [स्त्री० कल्लरिन, कलरिन] १. एक जाति जिसके पुरुष और स्त्रियाँ छोटे-छोटे व्यापारों के सिवा शरीर में जोंक लगाने का भी काम करती हैं। २. ऊसर जमीन। ३. नोनी मिट्टी। लोना। ४. रेह। ५. भिखारी (क्व०)।

कल्लह†—पुं०=कल्ला (जबड़ा)।

स्त्री०=कलह।

कल्लाँच—वि० [तु० कल्लाच] १. गुंडा। बदमाश। लुच्चा। २. परम दरिद्र। कंगाल।

कल्ला—पुं० [सं० करीर] १. पेड़-पौधों आदि में निकलनेवाले पत्ते, फल या फूल का आरंभिक रूप। अंकुर।

पुं० [सं० कुल्य] वह छोटा कूआँ या गड्ढा जिसके पानी से पान का भीटा सींचा जाता है।

१. पुं० [फा० कल्लः] गाल का भीतरी भाग। जबड़ा।

मुहा०—**कल्ला चलाना**=(क) भोजन होना। मुँह चलना। (ख) मुँह से बहुत बातें निकलना। जबान चलना। **किसी का कल्ला दबाना**=बहुत बोलने से रोकना। **कल्ला फुलाना**=मुँह की ऐसी आकृति बनाना जिससे अप्रसन्नता या रोष सूचित हो। मुँह फुलाना। **कल्ला मारना**=(क) बहुत बढ़-चढ़कर या उद्दंडतापूर्वक बातें करना। (ख) डींग हाँकना। शेखी बघारना।

२. दाढ़। ३. जबड़े से गले तक का अंश। जैसे—कल्ले तो मुस्करा ही रहे हैं।—वृंदावनलाल वर्मा। ४. पशु के उक्त स्थान का मांस। (कसाई) ५. लंप का ऊपरी वह जालीदार भाग जिसमें बत्ती जलती है (बर्नर)।

पुं०=कलह

कल्लातोड़—वि० [हिं० कल्ला+तोड़ना] १. (व्यक्ति) जिसमें प्रबल आघात करने की शक्ति हो। २. (उत्तर या बात) जिसके आगे किसी का मुँह बन्द हो जाय। ३. पूरी तरह से दबा लेनेवाला। प्रबल। विकट।

कल्लादराज—वि० [फ़ा०] [भाव० कल्लादराजी, कल्लेदराजी] उद्दंडता-पूर्वक और बहुत बढ़-बढ़कर बातें करनेवाला। मुँहजोर। वाचाल।

कल्लादराजी—स्त्री० [फ़ा०] उद्दंडतापूर्वक और बहुत बढ़-बढ़कर बातें करना। मुँहजोरी। वाचालता।

कल्लाना—अ० [सं० कड् या कल्=संज्ञाशून्य होना] १. आघात, पीड़ा आदि के कारण शरीर के किसी अंग में जलन और सनसनी होना। जैसे—थप्पड़ लगने से गाल कल्लाना। २. (मन में) रह-रहकर दुःख या व्यथा होना। जैसे—जी कल्लाना।

कल्लि—स्त्री०=कली (फूल की)।

कल्लू†—वि० [हिं० काला] (व्यक्ति) जिसका रंग बहुत अधिक काला हो। (उपेक्षा तथा व्यंग्य का सूचक)

कल्लेदराज—वि०=कल्लादराज।

कल्लेदराजी—स्त्री०=कल्लादराजी।

कल्लोल—पुं० [सं०√कल्ल् (शब्द करना)+ओलच्] १. जल की तरंग। लहर। हिलोर। २. मन की लहर। मौज। ३. विपक्षी। शत्रु।

कल्लोलना—अ०=कलोलना। उदा०—सहज वैर बिसराइ आइ कल-कुल कल्लोलत।—रत्ना०।

कल्लोलिनी—स्त्री० [सं० कल्लोल+इनि, ङीप्] नदी, जिसमें तरंगें उठती हों।

कल्ह†—पुं०=कल।

कल्हक—स्त्री० [देश०] कबूतर के आकार की लाल रंग की एक प्रकार की चिड़िया।

कल्हण—पुं० [अपभ्रंश] संस्कृत के एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि और पंडित जो राजतरंगिणी नामक ग्रंथ के रचयिता थे।

कल्हर†—पुं०=कल्लर।

कल्हरना*—अ० [हिं० कल्हारना का अ० रूप] कड़ाही में कल्हारा जाना। कड़ाही में या तवे पर तला जाना।

कल्हार—स्त्री० [हिं० कल्हारना] कल्हारने की क्रिया, ढंग या भाव।

पुं० [सं० कह्लार] १. एक प्रकार का पौधा और उसके फूल। २. कमल।

कल्हारना†—स० [हिं०] कड़ाही में डालकर या तवे पर रखकर कोई चीज तलना, छानना या भूनना।

५. प्रलय। ६. ग्रंथों आदि का कोई प्रकरण या विभाग। ७. मनुष्य का शरीर। ८. वैद्यक में ऐसा उपचार या चिकित्सा जो सारे शरीर अथवा उसके किसी अंग को बिलकुल नये सिरे से ठीक या पूरी तरह से नीरोग तथा स्वस्थ करने के लिए की जाती है। जैसे—कायाकल्प, नेत्रकल्प आदि। ९. एक प्रकार का नृत्य। १०. दे० 'कल्पवृक्ष'।

वि० जो यथेष्ट, पूर्ण या वास्तविक न होने पर भी बहुत कुछ किसी दूसरे की बराबरी का या समान हो। तुल्य, समान (यौ० के अन्त में)। जैसे—ऋषिकल्प, देवकल्प।

कल्पक—वि० [सं० कल्प से] १. कल्प-संबंधी। २. वेदों में बतलाये हुए नियमों, विधि-विधानों आदि के अनुसार होनेवाला।

वि० [सं० कल्पन से] १. कल्पना-संबंधी। २. कल्पना करनेवाला।

पुं० [√कृप्+णिच्+ण्वुल्–अक] १. नाई। हज्जाम। २. कचूर।

कल्पकार—वि० [सं० कल्प√कृ (करना)+अण्] १. विधि-विधानों आदि की रचना करनेवाला। २. कल्प-शास्त्र का रचनेवाला। गृह्य श्रौत सूत्र का रचयिता। जैसे—कल्पकार ऋषि का मत है।

कल्प-तरु—पुं० [कर्म० स०] कल्पवृक्ष।

कल्प-द्रुम—पुं० [कर्म० स०] कल्पवृक्ष।

कल्पन—पुं० [सं०√कृप्+णिच्+ल्युट्–अन] १. किसी वस्तु को बनाने. रचने अथवा उसे कोई दूसरा रूप देने की क्रिया या भाव। २. किसी अमूर्त्त भावना या विचार को कल्पना के आधार पर मूर्त्त रूप देना। कल्पना करना। ३. धारदार औजारों से कतरना तथा काटना। ४. वह चीज जो सजावट के लिए किसी दूसरी चीज पर बैठाई या लगाई जाय।

कल्पनक—वि० [सं० कल्पना से] १. कल्पना से युक्त (कार्य)। २. (व्यक्ति) जिसकी कल्पना-शक्ति बहुत प्रबल हो अथवा जो सदा कल्पना करता रहता हो।

कल्पना—स्त्री० [सं० कृप्+णिच्+युच्—अन, टाप्] १. किसी वस्तु को बनाना या रचना। विशेष दे० 'कल्पन'। २. वह क्रियात्मक मानसिक शक्ति, जिसके द्वारा मनुष्य अनोखी और नई बातों या वस्तुओं की प्रतिमाएँ या रूप-रेखाएँ अपने मानस-पटल पर बनाकर उनकी अभिव्यक्ति काव्यों, चित्रों, प्रतिमाओं आदि के रूप में अथवा और किसी प्रकार के मूर्त्त रूप में करता है। (इमैजिनेशन) ३. उक्त प्रकार से प्रस्तुत की हुई कृति या रूप-रेखा। ४. गणित में कुछ समय के लिए किसी मात्रा या राशि को वास्तविक या सत्य मान लेना। (सपोजीशन) ५ मनगढ़ंत बात।

पद—कोरी कल्पना=ऐसी कल्पित बात, जिसका कोई आधार न हो।

अ० स०=कल्पना।

कल्पनी—स्त्री० [सं० कल्पन+ङीप्] कतरनी। कैंची

कल्पनीय—वि० [सं०√कृप्+णिच्+अनीयर्] जिसकी कल्पना की जा सकती हो। कल्पना में आने के योग्य। (इमैजिनेबुल)

कल्प-पादप—पुं० [कर्म० स०] कल्पवृक्ष।

कल्प-भव—पुं० [ब० स०] जैन-शास्त्रानुसार जैनों में एक प्रकार के देवगण जो संख्या में बारह हैं।

कल्प-लता (लतिका)—स्त्री० [ष० त०] १. कल्पवृक्ष। २. हठयोग में उन्मनी मुद्रा; अर्थात् मन को परमात्मा में लगाने की अवस्था।

कल्प-वास—पुं० [मध्य० स०] माघ महीने में गंगा-तट पर संयमपूर्वक निवास करना।

कल्प-विटप—पुं० [कर्म० स०] कल्पवृक्ष।

कल्प-वृक्ष—पुं० [कर्म० स०] १. पुराणानुसार स्वर्ग का एक वृक्ष जिसकी छाया में पहुँचते ही सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा व्यक्ति जो दूसरों की बहुत उदारतापूर्वक सहायता करता हो। बहुत बड़ा दानी। ३. एक प्रकार का वृक्ष जो बहुत अधिक ऊँचा, घेरदार और दीर्घजीवी होता है।

कल्पशाखी (खिन्)—पुं० [कर्म० स०] कल्पवृक्ष।

कल्प-सूत्र—पुं० [मध्य० स०] वह सूत्र ग्रंथ, जिस में यज्ञादि कार्यो तथा गृह्य कर्मो का विधान हो।

कल्प-हिंसा—स्त्री० [मध्य० स०] वह हिंसा जो अन्न पकाने, पीसने आदि के समय होती है। (जैन)

विशेष—यह हिंदुओं के पंचसूना के ही समान है।

कल्पांत—पुं० [कल्प–अन्त, ष० त०] सृष्टि के जीवन में प्रत्येक कल्प का अंत जिसमें प्रलय होता है और सभी जीवधारियों का अंत हो जाता है।

कल्पित—वि० [सं०√कृप्√णिच्+क्त] १. जिसकी कल्पना की गई हो। कल्पना के आधार पर प्रस्तुत किया हुआ। २. कुछ समय के लिए अथवा यों ही काम चलाने के लिए वास्तविक या सत्य माना हुआ। ३. मन गढ़ंत। ४. नकली। बनावटी।

कल्पितोपमा—स्त्री० [कल्पित-उपमा कर्म० स०] उपमालंकार का एक भेद, जिसमें कवि उपमेय के लिए कोई उपयुक्त उपमान न मिलने पर किसी कल्पित उपमान से उसकी उपमा दे देता है। इसे 'अभूतोपमा' भी कहते हैं।

कल्ब—पुं० [अ०] १. हृदय। दिल। २. किसी वस्तु का मध्य भाग। विशेषतः सेना का मध्य भाग। ३. बुद्धि। ४. खोटी चाँदी या सोना।

कल्मष—पुं० [सं० कर्मन्√षो (नष्ट करना)+क, र=ल] १. ऐसा कार्य जिससे किसी पवित्र या शुभ कार्य का महत्त्व नष्ट हो जाय। अघ। पाप। २. मल। मैल। ३. दोष। बुराई। ४. पीब। मवाद। ५. एक नरक का नाम।

कल्माष—वि० [सं०√कल्+क्विप्,√मष् (हिंसा) + णिच्+अच्] रंग-बिरंगा विशेषतः सफेद और काले रंग के चिह्नों या धब्बोंवाला। जो कुछ सफेद और कुछ काला हो। चितकबरा।

पुं० १. उक्त रंग। २. अग्नि का वह रूप। ३. राक्षस।

कल्माषी—स्त्री० [सं० कल्माष+ङीप्] यमुना नदी का एक नाम।

कल्य—वि० [सं०√कल् (गीत)+यत्] १. जिसे किसी प्रकार का रोग न हो। नीरोग। स्वस्थ। हट्टा-कट्टा। २. चतुर। होशियार। ३. कुशल। दक्ष। ४. मंगलकारक। शुभ। ५. गूँगा और बहरा।

पुं० १. स्वास्थ्य। २. प्रातःकाल। सवेरा। ३. आनेवाला दिन। ४. बीता हुआ दिन। कल। ५. मदिरा। शराब। ६. मंगल-कामना।

कल्यपाल—पुं० [सं० कल्य√पाल् (पालना)+णिच्+अण्] [स्त्री० कल्यपाली] मदिरा या शराब चुआने तथा बेचनेवाला व्यक्ति।

रूप से आगे बढ़ने, पीछे हटने, लड़ने-भिड़ने आदि के ढंग सिखाने के लिए कराया जाता है।

कवार—पुं० [सं० क√वृ (वरण करना)+अण्] १. कमल। २. एक प्रकार का जल-पक्षी।

कवारिय—पुं०=कवाड़ी। (फुटकर चीजों का दूकानदार)। उदा०—करवत्त तत्त विहरति तुरत, जनुकि कवारिय पट्टपट।—चन्दवरदाई।

कवाह—पुं० [सं० क√वह् (वहना) +णिच्+अण्] पानी वहने की वड़ी नाली। (चैनेल)

कवि—पुं० [सं०√कव् (स्तुति)+इन्] १. वह जो कविता या काव्य की रचना करता हो (पोएट)। २. ऋषि। ३. ब्रह्मा। ४. सूर्य। ५. शुक्राचार्य। ६. उल्लू।

कविक—पुं० [सं० कवि+कन्] १. लगाम। २. एक प्रकार का फलदार वृक्ष। ३. उक्त वृक्ष का छोटा रसीला फल जिसे कहीं-कहीं जामरूल भी कहते हैं।

कविका—स्त्री० [सं० कविक+टाप्] १. लगाम। २. केवड़ा। ३. कवई नाम की मछली।

कविता—स्त्री० [सं० कवि+तल, टाप्] कवि की वह लय-प्रधान साहित्यिक कृति या रचना, जो छंदों में होती है। काव्य। शायरी। (पोएट्री)

कविताई*—स्त्री०=कविता।

कवित्त—पुं० [सं० कवित्व] १. कविता। २. घनाक्षरी छंद का एक नाम। (दे० 'घनाक्षरी')

कवित्व—पुं० [सं० कवि+त्व] १. काव्य का गुण, भाव या विशिष्ट रूप। २. काव्य-रचना की क्रिया, गुण या शक्ति।

कविनासा*—स्त्री०=कर्मनाशा (नदी)।

कवि-पुत्र—पुं० [ष० त०] १. भृगु के एक पुत्र का नाम। २. शुक्राचार्य।

कवि-प्रसिद्धि—स्त्री० [ष० त०] भारतीय कवियों में परंपरा से चली आई हुई कुछ ऐसी प्रसिद्ध वातें जो वस्तुतः ठीक न होने पर भी ठीक मान ली गई हैं। जैसे—चकवा चकई का दिन में साथ-साथ और रात में अलग-अलग रहना ; केले से कपूर निकलना ; वाँस, साँप, हाथी आदि में भी मोती होना आदि-आदि।

कविराज—पुं० [ष० त०] १. कवियों का राजा अर्थात् श्रेष्ठ कवि। २. चारण या भाट। ३. अच्छा और शिक्षित वैद्य (वंगाल)।

कविराय†—पुं०=कविराज।

कविलास*—पुं०=कविलास।

कवि-शेखर—पुं० [ष०त०] संगीत में ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

कवि-समय—पुं० [ष० त०] कवियों में परम्परा से चली आई हुई वर्णन-संबंधी कुछ विशिष्ट परिपाटियाँ या मान्यताएँ जिनमें देश, काल आदि के विरुद्ध वातों का वर्णन भी अनुचित या दूषित नहीं माना जाता। जैसे—स्त्री के पदाघात से अशोक के फूलने का वर्णन आदि। (दे० वृक्ष-दोहद)

कवींद्र—पुं० [कवि-इंद्र, ष० त०] कवियों का राजा अर्थात् वहुत वड़ा अथवा सब कवियों में श्रेष्ठ कवि।

कवीठ—पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कविट्ठ] कैथ नामक वृक्ष और उसका फल।

कवेरा—वि० [?] [स्त्री० कवेरिन] १. देहाती। २. गँवार।

कवेल—पुं० [सं० क√विल् (फैलना)+अण्] कमल।

कवेला—पुं० [अ० किवला] दिग्दर्शक यंत्र की वह कील जिस पर सुई घूमती है। (लश०)

पुं० [हिं० कौआ+एला (प्रत्य०)] कौए का वच्चा।

कवोष्ण—पुं० [सं० कु-उष्ण, गति स०, कु=कव् आदेश] कुनकुना।

कव्य—पुं० [सं०√कु (शब्द)+यत्] १. वह अन्न जो पितरों के उद्देश्य से किसी को दिया जाय। २. वह द्रव्य जिससे पितरों के लिए पिंड बनाया जाय।

कव्यवाह—पुं० [सं० कव्य√वह् (ढोना)+अण्] पितृ यज्ञ के समय की अग्नि जिसमें पिंड से आहुति दी जाती है।

कश—पुं० [सं०√कश् (शब्द)+अच्] [स्त्री० कशा] चावुक।

पुं० [फा०] १. खींचने की क्रिया या भाव। २. धूम्रपान में मुँह के अन्दर एक वार धुआँ खींचने की क्रिया या भाव। फूंक। दम। जैसे— तंवाकू के दो कश लगा लो।

वि० खींचनेवाला। (यौ० के अन्त में।) जैसे—धुआँकश।

कशकोल†—पुं०=कजकोल।

कश-मकश—स्त्री० [फा०] १. दोनों ओर से अपनी-अपनी तरफ खींचे जाने की क्रिया या भाव। खींचातानी। २. असमंजस या दुविधा की स्थिति। आगा-पीछा। सोच-विचार। ३. भीड़ में होनेवाला धक्कम-धक्का।

कशा—स्त्री० [सं० कश+टाप्] १. रस्सी। २. कोड़ा। चावुक।

कशाघात—पुं० [सं० कश-आघात, तृ० त०] १. कोड़े या चावुक से किया जानेवाला आघात। २. ऐसी तीव्र प्रेरणा जो कोई काम करने के लिए विवश कर दे।

कशिपु—पुं० [सं०√कश्+कु, नि० सिद्धि] १. विछौना। २. तकिया। ३. आसन। ४. पहनावा। पोशाक। ५. अनाज। अन्न। ६. पकाया हुआ चावल। भात।

पुं०=हिरण्यकशिपु।

कशिश—पुं० [फा०] १. खींचे जाने की क्रिया, ढंग या भाव। २. खिंचाव। ३. आकर्षण शक्ति। ४. तनाव।

कशीदा—पुं० [फा० कशीदः] सूई-धागे से कपड़े पर वेल-बूटे आदि बनाने का काम।

क्रि० प्र०—काढ़ना।

कशेरुक—पुं० [सं० क√शृ (हिंसा)+उ, एरु आदेश+कन्] कसेरु का पौधा और उसका फल।

कशेरुका—स्त्री० [सं० कशेरुक+टाप्] पीठ के बीच में हड्डियों की गाँठों की माला या शृंखला। रीढ़।

कश्चित्—वि० [सं० कः+चित्] कोई।

सर्व० १. कोई। २. किसी।

कश्ती—स्त्री० [फा०] १. नाव। नौका। २. दे० 'किश्ती'।

कश्मल—पुं० [सं०√कश्+कल, मुट्] १. वेहोशी। मूर्च्छा। २. पाप। ३. अंवरवारी।

वि० १. गंदा। मैला। २. दूषित। बुरा।

कश्मीर—पुं० [सं०√कश्+ईरन्, मुट्] भारतीय संघ का एक राज्य

†अ०=कराहना।

अ० [सं० कल्ल=शोर] चिल्लाना।

कवई—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो सूखी जमीन पर पलटे खाती हुई एक जलाशय से दूसरे जलाशय में चली जाती है। कुंभा।

कवक—पुं० [सं०√कु (शब्द)+अच्+कन्] १. भोजन का कौर। ग्रास। २. कुकुरमुत्ता। ३. फूलों आदि का गुच्छा।

कवच—पुं० [सं० क√वञ्च् (ठगना)+अच्] [भू० कृ० कवचित, वि० कवची] १. ऐसा आवरण जो बाहरी आघात से रक्षा करने के लिए हो। २. लोहे की कड़ियों और लड़ियों का बना हुआ वह आवरण जो योद्धा लोग लड़ाई के समय आघातों से अपना शरीर रक्षित रखने के लिए पहनते थे। बकतर। वर्म। सँजोया (आर्मर)। ३. लड़ाई के जहाजों, गाड़ियों आदि पर रक्षा के लिए लगी हुई लोहे की मोटी चादरें। ४. फलों, वनस्पतियों आदि की ऊपरी छाल या छिलका। ५. तंत्र में वे मंत्र जो आपत्तियों में अपनी अथवा अपने अंगों की रक्षा के उद्देश्य से पढ़े जाते है। ६. भोजपत्र आदि पर लिखा हुआ उक्त प्रकार का कोई मंत्र जो गंडे, जंतर, तावीज आदि के रूप में कमर गले, बाँह आदि में पहना जाता है। ७. युद्ध-क्षेत्र में बजनेवाला डंका या नगाड़ा। पटह। ८. पाकर का वृक्ष।

वि० (समस्त पदों के अन्त में) जिसमें किसी उग्र प्रभाव से स्वयं रक्षित रहने अथवा आवृत्त पदार्थ को रक्षित रखने का गुण या शक्ति हो (प्रूफ)। जैसे—अग्नि-कवच, जल-कवच आदि।

कवच-धारी (रिन्)—वि० [सं० कवच√धृ (धारण करना)+णिनि] [स्त्री० कवचधारिणी] जिसने कवच धारण किया या पहना हो। कवची। जैसे—कवचधारी योद्धा या सैनिक।

कवच-पत्र—पुं० [ष० त०] भोजपत्र जिस पर कवच (मंत्र आदि) लिखे जाते है।

कवचित—भू० कृ० [सं० कवच+इतच्] १. जिस पर रक्षा के लिए कवच चढ़ाया या लगाया गया हो। २. आज-कल (ऐसा यान या सैनिक) जो ऐसे उपकरणों से सज्जित हो कि उस पर बाहरी आघातों का सहज में प्रभाव न पड़े (आर्मर्ड)। जैसे—कवचित यान।

कवचित-यान—पुं० [सं० कर्म० स०] युद्ध में काम आनेवाली वह गाड़ी जो तोपों, तोपचियों आदि से सुसज्जित होती है और जिस पर इसलिए लोहे की मोटी चादरें जड़ी होती है कि बाहरी गोलों-गोलियों की मार का उन पर सहज में प्रभाव न पड़े (आर्मर्ड कार)।

कवची (चिन्)—वि० [सं० कवच+इनि] [स्त्री० कवचिनी] १. जिस पर किसी प्रकार का कवच चढ़ा या लगा हो। कवच से युक्त। २. दे० 'कवचधारी'।

पुं० शिव।

कवटी—स्त्री० [सं०√कु+अटन्, ङीष्] दरवाजे का पल्ला। कपाट। किवाड़ा।

कवन†—सर्व०=कौन।

कवयिता (तृ)—पुं० [सं० कवि+क्विप्+तृच्] [स्त्री० कवयित्री] कवि।

कवयित्री—स्त्री० [सं० कवयितृ+ङीप्] वह स्त्री जो कविताओं की रचना करती हो। स्त्री कवि।

कवर—वि० [सं०√कु+अरन्] १. मिला हुआ। मिश्रित। २. चित-कबरा। रंगबिरंगा।

पुं० १. बालों का गुच्छा। जूड़ा। २. फूल का गुच्छा। गुलदस्ता। स्तवक।

*पुं० कौर। ग्रास। उदा०—सहस सवाद सो पावै, एक कवर जो खाइ। —जायसी।

पुं० [अं०] १. वह आवरण जिससे कोई चीज ढकी अथवा जिसमें कोई चीज लपेटी जाय। २. पुस्तक का आवरण पृष्ठ। ३. लिफाफा।

कवरना—स०=कौरना (भूनना या सेंकना)।

कवर-पुच्छ—पुं० [ब० स०] [स्त्री० कवर-पुच्छी] मयूर। मोर।

कवरी—स्त्री० [सं० कवर+ङीष्] १. बालों को गूँथकर बनाई हुई चोटी या जूड़ा। उदा०—भींग रहा है रजनी का वह सुन्दर कोमल कवरी भार।—प्रसाद। २. वन-तुलसी।

कवर्ग—पुं० [सं० मध्य० स०] [वि० कवर्गीय] क से ङ तक के पाँच अक्षरों या वर्णों का वर्ग या समूह, जिनका उच्चारण कंठ से होता है।

कवल—पुं० [सं० क√वल् (चलना)+अच्] [वि० कवलित] १. खाने के समय अन्न की उतनी मात्रा जितनी एक बार उँगलियों से उठाकर मुँह में रखी जाती है। कौर। ग्रास। २. जल की उतनी मात्रा जितनी कुल्ला करने के लिए मुँह में ली जाती है। ३. एक प्रकार की मछली जिसे 'कौआ' कहते हैं। ४. कर्ष नाम की पुरानी तौल।

†पुं० [?] १. एक प्रकार का फोड़ा। २. एक प्रकार की चिड़िया। ३. बाराह। शूकर। उदा०—कवल वदन रवि तेजकर, लक्खन संचि बतीस। —चंदबरदाई।

कवलग्रह—पुं० [सं० कवल√ग्रह् (ग्रहण)+अच्] १. कुल्ला करने के लिए मुँह में लिया जानेवाला पानी का एक घूँट। २. १६ माशे की कर्ष नाम की पुरानी तौल।

कवलन—पुं० [सं० क√वल्+ल्युट्—अन] [भू० कृ० कवलित] खाने, चबाने, निगलने या हड़पने के लिए कोई चीज मुँह में रखना।

कवलिका—स्त्री० [सं० कवल+कन्, टाप्, इत्व] १. कपड़े का वह टुकड़ा जो घाव या फोड़े पर लगाया जाता है। पट्टी। २. कपड़े की वह गद्दी जो घाव या फोड़े के ऊपर रखकर बाँधी जाती है। (पैड)

कवलित—भू० कृ० [सं० कवल+णिच्+क्त] १. जो खाने, चबाने या निगलने के लिए मुँह में रख लिया गया हो। २. खाया या निगला हुआ।

कवष—पुं० [सं०√कु (शब्द)+अपच्] १. ढाल। २. एक प्राचीन ऋषि।

कवाट—पुं० [सं० क√वट् (आवरण)+अण्] १. दरवाजे का पल्ला। कपाट। किवाड़। २. दरवाजा।

कवाम—पुं० [अ० किवाम=मूल] १. पका कर गाढ़ा किया हुआ रस। अवलेह। २. चाशनी। शीरा। ३. खाने के तमाकू या सुरती का बनाया हुआ अवलेह।

कवायद—पुं० [अ० कायदः का बहु०] १. किसी काम या बात के कायदे या नियम। २. व्याकरण, जिसमें भाषा-रचना के नियम होते हैं। स्त्री० सिपाहियों, सैनिकों आदि का वह अभ्यास जो उन्हें व्यवस्थित

क्रि० वि० १. =कैसे ? २. =क्यों ? उदा०—सो कासी सेइअ न कस ?—तुलसी।

पुं० [फा०] १. मनुष्य। व्यक्ति। २. सहायक और मित्र। पक्का साथी।

पद—बे-कस (देखें)।

कसई†—स्त्री०=कसी (पौवा)।

कसक—स्त्री० [सं० कष्=आघात, चोट] १. मन में होनेवाला वह मानसिक कष्ट या वेदना जो किसी बीती या पुरानी दुःखद घटना या बात के स्मरण होने पर बहुत समय तक रह-रहकर होती रहती है। टीस। साल। २. हलका किंतु मीठा दर्द। ३. दूसरों के कष्ट या पीड़ा के कारण होनेवाली सहानुभूतिपूर्ण अनुभूति। उदा०—छुरी चलावत हैं गरे, जे बे-कसक कसाव।—रसनिधि। ४. मन में दबा हुआ ऐसा द्वेष या वैर जो रह-रहकर व्यथित करता हो और प्रायः बदला चुकाने के लिए प्रेरित करता रहता हो।

मुहा०—**कसक निकालना या मिटाना**=बदला चुकाकर तृप्त या शांत होना।

५. उक्त प्रकार की कोई अभिलाषा, कामना या वासना।

कसकन—स्त्री०=कसक।

कसकना—अ० [हिं० कसक] १. किसी पुरानी दुःखद बात का स्मरण होने पर रह-रहकर मन में कष्ट या व्यथा होना। कसक होना उदा०—काँटे लौं कसकत हिये, गड़ी कँटीली भौंह।—बिहारी। २. दूसरों के कष्ट का सहानुभूतिपूर्ण अनुभव या ज्ञान होना। उदा०—नंद-कुमारहिं देखि दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर।

कसकुट—पुं० [हिं० काँस+कुट=टुकड़ा] ताँबे और जस्ते के मेल से बनी हुई एक प्रसिद्ध मिश्रित धातु जिसके बरतन आदि बनते हैं। काँसा।

कसगर—पुं० [फा० कासागर] एक मुसलमान जाति जो मिट्टी के बरतन आदि बनाती है।

कसट†—पुं०=कष्ट।

कसदार—वि० [हिं० कस=ताकत, शक्ति] १. बलवान। शक्तिशाली। २. जो अच्छी तरह कसकर जाँचा जा चुका हो; फलतः (क) उत्तम या श्रेष्ठ। (ख) अनुभवी या चतुर। (ग) जँचा हुआ। उदा०—इन पर लक्ष्मीबाई के उन कसदार दो सौ सवारों का सपाटा पड़ा।—वृंदावनलाल वर्मा।

कसन—स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने की क्रिया, ढंग या भाव। २. कसे होने की अवस्था या स्थिति। कसावट। ३. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज कसकर बाँधी गई हो। ४. घोड़े का तंग नामक साज। ५. कष्ट। क्लेश। पीड़ा।

कसनई—स्त्री० [सं० कृष्ण] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसके डैने काले और चोंच लाल होती है।

कसना—स० [सं० कर्षण; प्रा० कस्सण] १. बंधन आदि इस प्रकार कसकर खींचना कि वह और भी दृढ़ या पक्का हो जाय। जकड़ने या बाँधने के लिए बंधन कड़ा करना। जैसे—चलने के लिए कमर कसना। २. कोई चीज कहीं रखकर उसे दृढ़ता से बाँधना। जैसे—घोड़े पर जीन या साज कसना।

पद—**कसकर**=(क) अच्छी तरह और खूब जोर से दबाते हुए। जैसे—गठरी या बिस्तर कसकर बाँधना। उदा०—कस-कस बाँधूं सौत, ढीले बाँधूं बालमा।—स्त्रियों का गीत। (ख) पूरा जोर या शक्ति लगाकर। जैसे—कसकर थप्पड़ या बेंत लगाना। (ग) पक्का और पूरा, बल्कि इससे भी कुछ अधिक। जैसे—वह गाँव यहाँ से कसकर चार कोस है। ३. किसी को इस प्रकार जकड़कर और दृढ़तापूर्वक बंधन या वश में लाना अथवा किसी स्थान पर स्थित करना कि वह तनिक भी इधर-उधर न होने पावे। जकड़कर बाँधना, बैठाना या लगाना। जैसे—(क) किसी कल या यंत्र के पुरजे और पेच कसना। (ख) घोड़े पर सवारी करना। ४. आवश्यक उपकरणों आदि से युक्त करके अपने काम के लिए तैयार करना। जैसे—शेर पर चलाने के लिए बंदूक कसना।

पद—**कसा-कसाया**=सब तरह से तैयार और दुरुस्त। पूर्णरूप से प्रस्तुत।

५. किसी आधान या पात्र में कोई चीज ठूँस या दबाकर उसे अच्छी तरह या पूरा भरना। जैसे—गाड़ी में मुसाफिर कसना, बोरे में बरतन कसना। ६. तलवार या उसके लोहे की उत्तमता परखने के लिए उसे जगह-जगह दबाना या लचाना।

अ० १. बंधन का इस प्रकार कड़ा होना या खिचना कि वह अधिक जकड़ जाय या पक्का हो जाय। जैसे—रस्सी अधिक कस गई है, जरा ढीली कर दो।

मुहा०—**कसकर रहना**=अपने आप को वश में रखकर आचरण या व्यवहार करना। उदा०—रहि न सक्यौ, कसु कर रह्यौ, बस करि लीन्हों मार।—बिहारी।

२. उक्त क्रिया के फलस्वरूप बँधे हुए अंग, पदार्थ आदि का चारों ओर से बहुत दबना या जकड़ा जाना। जैसे—कमर बहुत कस गई है; पेटी जरा ढीली कर दो। ३. पहनने के कपड़ों आदि का इतना छोटा या तंग होना कि उससे कोई अंग दबे या अच्छी तरह इधर-उधर न हो सके। जैसे—इस कुरते का गला जरा कसता है। ४. आधान या पात्र का इतना अधिक भरा होना कि उसमें कुछ भी अवकाश या रिक्त स्थान न रह जाय। जैसे—(क) सारा कमरा आदमियों से कस गया था। (ख) मटका अचार से कसा हुआ है। ५. सब तरह से तैयार या दुरुस्त किया हुआ। पूर्ण रूप से प्रस्तुत। उदा०—डोली-डंडा कसा धरा, मैं नहीं जाती री, मेरी माँ।—स्त्रियों का गीत।

पद—**कसा-कसाया**=सब तरह से तैयार या प्रस्तुत।

पुं० [स्त्री० अल्पा० कसनी] १. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज कस या दबाकर बाँधी जाय। कसने का उपकरण या साधन। जैसे—पट्टा, रस्सी आदि। २. विस्तृत अर्थ में किसी चीज का गिलाफ या बेठन।

स० [सं० कषण] १. जोर से घिसना या रगड़ना। जैसे—पत्थर पर चंदन कसना। २. छोटे-छोटे टुकड़े करने के लिए किसी चीज पर रगड़ना। जैसे—कद्दूकस पर कद्दू कसना। ३. सोना परखने के लिए उसका कुछ अंश कसौटी पर रगड़ना। जैसे—सोना जाने कसे, आदमी जाने बसे।—कहा०। ४. भले-बुरे की परख करने के लिए किसी प्रकार की कठिन या विकट परीक्षा लेना। उदा०—सूर प्रभु हँसत अति प्रीति उर में बसत, इन्द्र को कसत हरि जगत

जो पंजाब के उत्तर हिमालय की तराई में स्थित है तथा जो अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए जगत्-विख्यात है।

कश्मीरज—पुं० [सं० कश्मीर√जन् (पैदा होना)+ड] केसर।

कश्मीरी—वि० [सं० कश्मीर+हिं० ई (प्रत्य०)] १. कश्मीर-संबंधी। कश्मीर का। २. कश्मीर देश में बना हुआ।

पुं० [स्त्री० कश्मीरिन] कश्मीर देश का निवासी।

स्त्री० १. कश्मीर देश की बोली या भाषा। २. एक प्रकार की बढ़िया चटनी जो सिरका डालकर बनाई जाती है।

कश्य—पुं० [सं० कशा+य] १. अश्व। २. घोड़े का पुट्ठा। ३. मद्य।

कश्यप—पुं० [सं० कश्य√पा (पीना)+क] १. एक प्रजापति का नाम। २. सप्तर्षि मंडल के एक तारे का नाम। ३. एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जिनके मंत्र ऋग्वेद में हैं। ४. कछुआ। ५. एक प्रकार की मछली। ६. एक प्रकार का हिरन।

वि० १. काले दाँतोंवाला। २. मद्यप। शराबी।

कश्यप-नंदन—पुं० [ष०त०] १. कश्यप ऋषि का पुत्र। २. विष्णु के गरुड़ का नाम।

कष—पुं० [सं०√कष् (वध)+अच्] १. जाँचने के लिए कसने की क्रिया या भाव। २. कसौटी का पत्थर। ३. सान रखने का पत्थर। कुरुंड।

कषा—स्त्री०=कशा (कोड़ा)।

कषाकु—पुं [सं०√कष्+आकु] १. अग्नि। २. सूर्य।

कषाय—वि० [सं०√कष्+आय] १. कसैले स्वादवाला। आँवले, फिटकिरी आदि के स्वादवाला कसैला। २. रँगा हुआ, विशेषतः गेरू के रंग में रँगा हुआ। गैरिक। जैसे—कषाय वस्त्र। ३. खुशबूदार। सुगंधित।

पुं० १. कोई ऐसी चीज जिसका स्वाद कसैला हो। २. सब प्रकार के दूषित मनोविकार। (जैन) ३. कलियुग। ४. गोंद। ५. काढ़ा। क्वाथ। ६. सोनापाढ़ा (वृक्ष)।

कषायित—भू० कृ०[सं० कषाय+इतच्] १. जिस में कषाय आ गया हो या लाया गया हो। कसैला किया हुआ। २.गेरू के रंग में रँगा हुआ। गैरिक। ३. जो दूषित मनोविकारों से युक्त होने के कारण बिगड़ा हुआ हो।

कषित—वि० [सं०√कष्+णिच्+क्त] १. खिचा या खींचा हुआ। २. जिसे कष्ट पहुँचा हो। ३. जिसकी क्षति या हानि हुई हो।

कषे (से) रुका—स्त्री०=कशेरुका।

कष्ट—पुं० [सं०√कष्(हिंसन)+क्त] १. मन में होनेवाला वह अप्रिय तथा दुःखद अनुभव जो किसी प्रकार के अभाव के कारण होता है। जैसे—(क) उन्हें आँखों का कष्ट है। (ख) आजकल कष्ट में दिन बीत रहे हैं। २. दुःख। पीड़ा। ३. आपत्ति। मुसीबत। ४. पाप। दुष्टता। ५. श्रम।

वि० १. हानिकर। २. बुरा। ३. कठिन। ४. दुःखी। ५. जो संबंध में पत्नी या माता के पक्ष का हो। जैसे—कष्ट-भागिनेय, कष्ट-मातुल (देखें)।

कष्टकर—वि० [सं० कष्ट√कृ (करना)+ट] १. कष्ट देने या पहुँचानेवाला। २. जिसे करने में कठिनाई या कष्ट होता हो।

कष्ट-कल्पना—स्त्री० [मध्य० स०] कोई पक्ष सिद्ध करने के लिए की जानेवाली ऐसी कल्पना या दी जानेवाली ऐसी युक्ति जो बहुत दूर की हो तथा बहुत खींच-तानकर ही घटाई या ठीक सिद्ध की जा सकती हो। जबरदस्ती खड़ी की हुई दलील।

कष्ट-कारक—वि० [ष०त०]=कष्टकर।

कष्ट-भागिनेय—पुं० [मध्य० स०] पत्नी की बहन (साली) का लड़का।

कष्ट-मातुल—पुं० [मध्य० स०] सौतेली माँ का भाई।

कष्ट-साध्य—वि० [तृ० त०] जिसके साधन में अधिक श्रम करना तथा कष्ट सहना पड़ता हो। बहुत कठिनता से पूरा होनेवाला। (काम)

कष्टार्तव—पुं० [कष्ट-आर्तव मध्य० स०] स्त्री का ऐसा रज-स्राव जो बहुत कष्ट से होता हो।

कष्टार्थ—पुं० [कष्ट-अर्थ, मध्य० स०] १. ऐसा शब्द, जिसका अर्थ खींच-तानकर निकाला गया हो या निकाला जाता हो। २. उक्त प्रकार से निकाला हुआ अर्थ।

***कष्टी (ष्टिन्)**—वि० [सं० कष्ट+इनि] १. जो कष्ट में पड़ा हो।* दुःखी। पीड़ित। २. (स्त्री) जिसे प्रसव की वेदना हो रही हो।

कष्य*—पुं०=कक्ष।

कस—पुं० [सं० कष्, कष्; प्रा० कस; सिं० कश; पं० कस्स; गु०, मरा०, सिंह० कस] १. कसने (अर्थात् जाँचने के लिए रगड़कर देखने) की क्रिया, प्रकार या भाव। २. कस या रगड़कर (अर्थात् खूब अच्छी तरह) की जानेवाली जाँच या परख। कठिन या विकट परीक्षा। ३. उक्त प्रकार की क्रियाएँ करने का उपकरण या साधन। ४. कसौटी नामक काला पत्थर जिस पर कस या रगड़कर सोना परखते हैं। ५. कस या रगड़कर की जानेवाली जाँच या परीक्षा का परिणाम या फल। जैसे—तपाकर सोने का कस देखना। ६. तलवार की लचक जो उसकी उत्तमता की परख करने के लिए देखी जाती है।

स्त्री० [हिं० कसना] १. बाँधने के लिए बन्धन या रस्सी कसने या खींचने की क्रिया या भाव। २. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज कसकर बाँधी जाय। जैसे—एक्के या घोड़ा-गाड़ी की कस। उदा०—कस छूटी छुद्र-घंटिका.....।—प्रिथीराज। ३. कसने या बाँधने के लिए लगाया जानेवाला जोर या बल। ताकत। शक्ति। उदा०—रहि न सक्यौ, कस करि रह्यौ, बस करि लीन्हौं मार।—बिहारी।

पद—**कस कर**=*शक्ति लगाकर।* जोर से।

४. किसी को दाबकर अपने वश में रखने की अवस्था या भाव। अख्तियार। काबू। दबाव। जैसे—यह काम (या व्यक्ति) हमारे कस का नहीं है।

पद—**कस का**=जिस पर अधिकार या वश चलता हो।

मुहा०—**किसी को कस में करना या रखना**=अधिकार, दबाव या वश में करना या रखना।

५. अवरोध। रुकावट। रोक।

पुं० [हिं० कसाव=कसैलापन] १. ऐसा कसैलापन जो कहीं से उतर या खिचकर किसी चीज में आया हो। जैसे—खाने-पीने की चीजों में ताँबे या पीतल का कस उतर आता है। २. स्वाभाविक कसैलापन। जैसे—आँवले के मुरब्बे में भी कुछ-न-कुछ कस रहता ही है। ३. उतरा या निकला हुआ अर्क या सार। जैसे—अब कुछ भी कस नहीं रह गया।

वि०=कैसा?

मुहा०—कसर खाना या सहना=घाटे में रहना। घाटा सहना। कसर निकालना=एक जगह का घाटा दूसरी जगह से पूरा करना। ५. मन में छिपाकर रखा हुआ साधारण द्वेष या वैर।

मुहा०—(किसी से) कसर निकालना=किसी की कुछ हानि करके अपने पुराने द्वेष, वैर या शत्रुता का बदला चुकाना। (आपस में) कसर पड़ना=पारस्परिक सद्व्यवहार में मन-मुटाव के कारण अन्तर आना।

पुं० [देश०] कुसुम या बर्रे का पौधा।

कसरत—स्त्री० [अ० कसीर का भाव० रूप] १. किसी चीज या बात के (कसीर अर्थात्) बहुत अधिक होने की अवस्था या भाव। प्रचुरता। जैसे—यहाँ मच्छरों की बहुत कसरत है। २. कुछ निश्चित प्रकार और रूप की ऐसी आंगिक या शारीरिक क्रियाएँ जो स्वास्थ्य की रक्षा और सुधार अथवा शारीरिक बल या शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से की जाती हैं। व्यायाम। (एक्सरसाइज) जैसे—(क) डंड, बैठक, मुद्गर भाँजना, नियमित रूप से सवेरे-सन्ध्या टहलना या दौड़ना आदि। (ख) आँखों की कसरत, पैरों या हाथों की कसरत। ३. लाक्षणिक रूप में कोई ऐसा आयास या परिश्रम जिसमें शरीर के किसी अंग पर बहुत जोर पड़ता हो या उसे असाधारण रूप से या बहुत अधिक काम करना पड़ता हो। जैसे—दिमागी कसरत।

कसरती—वि० [अ० कसरत] १. कसरत या व्यायाम करनेवाला। जैसे—कसरती पहलवान। २. जो कसरत या व्यायाम के फलस्वरूप पुष्ट हुआ हो। जैसे—कसरती शरीर।

कसरवानी—पुं० [सं० कांस्यवणिक] बनियों की एक जाति।

कसरहट्टा—पुं० [हिं० कसेरा+हट्ट वा हाट] वह स्थान जहाँ कसेरों की दूकानें हों और ताँबे-पीतल आदि के बरतन बिकते हों।

कसली—स्त्री० [सं० कष्=खोदना] एक प्रकार का छोटा फावड़ा।

कसवाई—स्त्री० [हिं० कसना] १. कसवाने की क्रिया या भाव। २. कसवाने का पारिश्रमिक।

कसवाना—स० [हिं० कसना का प्रे०] कोई चीज कसने में किसी को प्रवृत्त करना। कसने का काम किसी से कराना।

कसवार—पुं० [सं० कोशकार] ऊख की एक जाति या वर्ग।

कसहँड़—पुं० [हिं० काँस+हंडा] काँसे के बरतनों के टूटे-फूटे अंश।

कसहँड़ा—पुं० [हिं० काँसा] [स्त्री० कसहँड़ी] काँसे आदि का बना हुआ चौड़े मुँहवाला एक प्रकार का बरतन।

कसाई—पुं० [अ० कस्साब] [स्त्री० कसाइन] १. वह जो पशुओं आदि की हत्या करके उनका माँस बेचने का व्यवसाय करता हो। बूचड़। (बुचर)

मुहा०—कसाई के खूँटे से बँधना=ऐसी जगह पहुँचना जहाँ पर निर्दयता या निष्ठुरता का व्यवहार होना अवश्यंभावी हो। बहुत ही कठोर-हृदय व्यक्ति से पाला पड़ना। जैसे—यदि तुमने उनके यहाँ लड़की का ब्याह किया तो लड़की कसाई के खूँटे से बँध जायगी।

पद—कसाई का पिल्ला=बहुत मोटा-ताजा या हृष्ट-पुष्ट। (उपेक्षा और व्यंग्य)।

२. परम निष्ठुर और निर्दय व्यक्ति।

स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने की क्रिया या भाव। २. कसने का पारिश्रमिक।

कसाईखाना—पुं० [हिं० कसाई+फा० खानः] वह स्थान जहाँ मांस-विक्रय के उद्देश्य से पशुओं का वध होता है।

कसाकस—क्रि० वि० [हिं० कसना] अच्छी तरह कसकर।

वि० अच्छी तरह कसा या भरा हुआ। जैसे—कसाकस भीड़ होना।

कसाकसी—स्त्री० [हिं० कसना] १. खूब अच्छी तरह कसे होने की अवस्था या भाव। जैसे—आज मंदिर में कसाकसी की भीड़ थी। २. आपस में होनेवाली बहुत अधिक तनातनी या द्वेष।

कसाना—अ० [हिं० काँसा या कसाव] कसाव या कसैले स्वाद से युक्त होना। जैसे—काँसे या पीतल के बरतन में रखी हुई तरकारी का कसाना।

स०=कसवाना।

कसाफ़त—स्त्री० [अ०] १. गाढ़ापन। २. स्थूलता। ३. गंदगी। मैलापन। ४. मैल।

कसार—पुं० [सं० कृसर] चीनी मिलाकर घी में भूना हुआ आटा। पंजीरी।

कसाला—पुं० [सं० कष=पीड़ा, दुःख] १. कष्ट। तकलीफ। २. परिश्रम। मेहनत। ३. वह खटाई जिसमें सुनार गहने रखकर साफ करते हैं।

कसाव—पुं० [सं० कषाय] कसैलापन।

पुं० [हिं० कसना] १. कसे जाने की क्रिया, भाव या स्थिति। २. खिचाव। तनाव।

कसावट—स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने, कसाने या कसे हुए होने की अवस्था या भाव। २. अच्छी गठन, बनावट और कार्य करने की योग्यता या शक्ति। कस-बल। जैसे—इसके शरीर की कसावट का ही मोल है।

कसायड़ा†—पुं०=कसाई।

कसावर—पुं० [?] एक प्रकार का देहाती बाजा।

कसिया—स्त्री० [देश०] भूरे रंग की एक प्रकार की चिड़िया।

कसियाना†—अ० [हिं० कस=कसाव] काँसे, ताँबे आदि के बरतन में रखी हुई किसी वस्तु का कसैला होना। कसाना।

कसी—पुं० [सं० कशाकु] गवेधुक नाम का पौधा।

†स्त्री० १. =कस्सी। २. =कुसी।

कसीटना*—स० [सं० कष्] १. कसना। २. रोकना। उदा०—प्राण ही कूँ वारि धारणा कसीटियतु है।—सुन्दर।

कसीदा—पुं० [फा० कशीदः] १. कपड़े पर सूई-डोरे से पशु-पक्षियों के चित्र, बेल-बूटे आदि काढ़ने या बनाने का काम। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा महीन काम जिसे पूरा करने में आँखों पर बहुत जोर पड़ता हो।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना।

पुं० [अ० क़सीदः] उर्दू, फ़ारसी आदि की एक प्रकार की कविता, जिसमें प्रायः किसी की स्तुति या निन्दा होती है। (इसमें क्रम से १७ पंक्तियों का होना आवश्यक माना गया है।)

कसीर—वि० [अ०] मान, मात्रा, संख्या आदि के विचार से बहुत अधिक। प्रचुर।

कसीस—पुं० [सं० कासीस] एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो लोहे का विकारी रूप होता है। (विट्रिआल)

†स्त्री० [फा० कशिश, मि० सं० कर्ष] १. आकर्षण। खिचाव। २. तनाव। ३. कठोरता और निर्दयता का व्यवहार। उदा०—

घाता। —सूर। ५. खोआ बनाने के लिए दूध को औटाकर गाढ़ा करते हुए उसे कड़ाही में बराबर रगड़ते हुए चलाना। ६. घी, तेल आदि में कोई चीज अच्छी तरह तलना या भूनना। ७. किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी को कष्ट या क्लेश पहुँचाना। पीड़ित करना। जैसे—तपस्या से शरीर कसना। उदा०—भरत भवनि बसि तप तन कसहीं।—तुलसी। ८. अपने लाभ या हित के लिए ऐसा उपाय या कार्य करना, जिससे दूसरा कोई दबे या घाटे में रहे अथवा उसे कष्ट हो। जैसे—(क) उन्हें जरा और कसो तो बाकी रुपए भी मिल जायँगे। (ख) जो सस्ता सौदा बेचेगा, वह तौल में जरूर कसेगा। (ग) इतना दाम कसना ठीक नहीं। ९. शरीर को कष्ट सहने के योग्य बनाना। उदा०—करहिं जोग-जप-तप तन कसहीं।—तुलसी।

पुं० [?] एक प्रकार का जहरीला मकड़ा।

कसनि—स्त्री०=कसन।

कसनी—स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने की क्रिया या भाव। (दे० 'कसना') उदा०—कसनी दै कंचन किया ताप लिया ततकार। —कबीर। २. वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज कसी, जकड़ी या बाँधी जाय। कसने का उपकरण। जैसे—डोरी, पट्टा, रस्सी आदि। ३. वह कपड़ा जिसमें कोई चीज बाँधी या लपेटी जाय। बेठन। ४. स्त्रियों की अँगिया या चोली जो बंदों से कस कर बाँधी जाती है। ५. कसौटी, जिस पर कस कर सोना परखते हैं। ६. अच्छी तरह या कस कर की जानेवाली जाँच। विकट परीक्षा। ७. एक प्रकार की हथौड़ी।

स्त्री० [सं० कर्षणी] कसेरों की एक प्रकार की हथौड़ी।

कसपत—पुं० [देश०] काले रंग का कूटू। काला फाफर।

कसब—पुं० [अ०] १. परिश्रम। मेहनत। २. कारीगरी। कौशल। ३. पेशा। व्यवसाय। ४. दुश्चरित्रा स्त्रियों का व्यभिचार के द्वारा धन कमाना।

क्रि० प्र०—कमाना।

कस-बल—पुं० [हिं० कस+बल] १. किसी चीज की गठन, बनावट और कार्य करने की शक्ति। जैसे—तलवार का कस-बल देखना। २. किसी विषय की अच्छी कर्मण्यता या योग्यता। ३. (व्यक्ति का) साहस। हिम्मत।

कसबा—पुं० [अ० कस्बः] [वि० कसबाती] ऐसी बस्ती जो गाँव से कुछ बड़ी और शहर से छोटी हो।

कसबाती—वि० [अ० कसबा] १. कसबे में रहने या होनेवाला। (गँवार और नागरिक के बीच का) २. कसबे का निवासी।

कसबिन—स्त्री०=कसबी (वेश्या)।

कसबी—स्त्री० [अ० कसब] १. कसब अर्थात् व्यभिचार करके जीविका निर्वाह करनेवाली स्त्री। २. रंडी। वेश्या।

स्त्री० [हिं० कसना] वह पट्टा या फीता जिससे ऊँट की पीठ पर कजावा कसा जाता है।

कसबीखाना—पुं० [फा०] कसबी या कसबियों के रहने और व्यभिचार कराने का स्थान। वेश्यालय।

कसम—स्त्री० [अ०] ईश्वर को साक्षी मानकर कही जानेवाली बात। शपथ। सौगंध।

मुहा०—कसम उतारना=ऐसा उपचार या कार्य करना, जिससे कसम के उत्तरदायित्व से मुक्ति हो जाय। कसम पूरी न करने के कारण होनेवाले दोष का परिहार करना। **कसम खाना**=शपथ या सौगंध करना। शपथपूर्वक कहना या प्रतिज्ञा करना। **कसम तोड़ना**=(क) शपथपूर्वक कोई बात कहकर पूरी न करना। (ख) =कसम उतारना। **कसम देना या दिलाना**= किसी को शपथ देकर उसके द्वारा उसे बाँधना या बाध्य करना। **कसम लेना**=कसम या शपथपूर्वक किसी से कोई बात कहलाना। किसी काम या बात की शपथ कराना या लेना।

पद—कसम खाने को= नाममात्र को। बहुत थोड़ा या यों ही। जैसे कसम खाने को आप भी वहाँ हो आये। (अर्थात् गये और तुरन्त चले आये।)

कसमस—स्त्री०=कसमसाहट।

स्त्री० [अनु०] १. कसमसाने की क्रिया या भाव। २. थोड़ा-बहुत इधर-उधर हिलने की क्रिया या भाव। ३. बहुत सामान्य रूप से की जानेवाली कोई चेष्टा।

कसमसाना—अ० [अनु०] १. बहुत थोड़ा या नाममात्र को इधर-उधर हिलना-डुलना। जैसे—यह घंटों से यों ही पड़ा है, कसमसाया तक नहीं। २. बहुत ही थोड़ी या हलकी-सी चेष्टा या प्रयत्न करना। ३. कुछ करने के लिए थोड़ा-बहुत उत्सुक या सक्रिय होना।

कसमसाहट—स्त्री० [हिं० कसमसाना] कसमसाने की क्रिया या भाव। कसमस।

कसमसी—स्त्री०=कसमस।

कसमा-कसमी—स्त्री० [हिं० कसम] १. परस्पर शपथपूर्वक की हुई प्रतिज्ञा। २. दूसरे को कोई काम करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ देखकर स्वयं भी वैसा ही या उससे उलटा काम करने के लिए आपस में खाई जानेवाली कसमें।

कसमिया—क्रि० वि० [अ० कस्मियः] कसम खाकर। शपथपूर्वक।

कसर—स्त्री० [अ०] १. किसी चीज या बात का ऐसा अभाव या कमी जिसकी पूर्ति आवश्यक जान पड़ती हो। जैसे—(क) अभी इसमें एक आँच की कसर है। (ख) जो इतने में कसर करे तो यह ले अपनी माला। हमसे भूखे भजन न होगा।—कहा०।

मुहा०—कसर करना, छोड़ना या रखना=कुछ अंश, काम या बात बाकी रहने देना। त्रुटि करना। **कसर न करना, न छोड़ना या न रखना**= सब तरह से पूरा कर देना। कोई बात बाकी न रहने देना।

२. किसी काम में अभाव, न्यूनता आदि के कारण होनेवाली त्रुटि या दोष। नुक्स। विकार। जैसे—कोष्ठबद्धता के कारण पेट में कसर पड़ना। ३. ऐसी कमी या न्यूनता जो किसी चीज के छीजने, सूखने आदि के कारण अथवा उसमें का निरर्थक अंश निकालकर उसे उपयोगी बनाने अथवा ठीक करने में होती है। जैसे—चुनने, फटकारने आदि के कारण अनाजों में कसर पड़ती है। ४. लेन-देन व्यापार आदि में होनेवाली थोड़ी या सामान्य हानि। टोटा। जैसे—(क) गेहूँ का पूरा बोरा ले लो ; मन भर लेने में आठ आने की कसर पड़ेगी (ख) उन्हें रुपए उधार देने में हमें व्याज की कसर पड़ेगी।

क्रि० वि०=कहाँ।

कहँतरी—स्त्री० [?] मिट्टी का बरतन।

कह*—वि० [सं० कः] क्या। उदा०—मैं कह करौं सुतहिं नहीं बरजति।—सूर।

पुं० [सं० कथ] १. आवाज। शब्द। २. कोलाहल। शोर। (राज०)

क़हक़हा—पुं० [अ०, अनु०] एक साँस में बहुत जोर से होनेवाली ऐसी हँसी जिसमें बहुत शब्द भी होता है। ठहाका।

क़हक़हा-दीवार—पुं० [फा०] १. चीन (देश) में बनी हुई एक प्रसिद्ध दीवार जो १५०० मील लंबी, २०-२५ फुट ऊँची और इतनी ही चौड़ी है। २. उक्त के आधार पर ऐसी विकट बाधा या कठिन रोक जिसे पार करना दुस्साध्य हो।

कहकहाहट—स्त्री० [अ० कहकह=अट्टहास] जोर की हँसी। कहकहा। उदा०—हुइ रहियौ कहकहाहट।—प्रिथीराज।

कहगिल—स्त्री० [फा० काह=घास+गिल=मिट्टी] मिट्टी की दीवारों आदि पर लगाने का वह गारा जिसमें घास-फूस या भूसा मिला होता है।

कहत—पुं० [अ०] अकाल। दुर्भिक्ष।

कहतसाली—स्त्री० [अ० कहत+साल] दुर्भिक्ष का समय। अकाल के दिन।

कहन—स्त्री० [सं० कथन] १. कथन। उक्ति। २. वचन। ३. कहावत। ४. लोक में प्रचलित कोई पद या पद्य का चरण।

कहना—स० [सं० कथ ; प्रा० कह, कध, कत्थ, कहिज्ज ; गु० कहवूं ; पं० कैना ; सिं० कहनुं ; मरा० कथणें] १. मुँह से सार्थक पद, वाक्य या शब्द का उच्चारण करना। बोलना। जैसे—कुछ कहो तो सही। २. अपना उद्देश्य, भाव, विचार आदि शब्दों में व्यक्त करना। जैसे—(क) मुझे जो कुछ कहना था वह मैंने कह दिया। (ख) अब अपनी कहानी कहेंगे।

मुहा०—**कहना बदना**=(क) किसी बात का निश्चय करना। (ख) प्रतिज्ञा करना। **कहना-सुनना**=बातचीत या वार्तालाप करना।

पद—**कहने की बात**= महत्त्वपूर्ण बात। **कहने को**=(क) नाममात्र को। यों ही। जैसे—कहने को ही यह नियम चल रहा है। (ख) यों ही काम चलाने या बात टालने के लिए। जैसे—उन्होंने कहने को कह दिया कि हम ऐसा नहीं करेंगे। **कहने-सुनने को**=कहने को।

३. घोषणा करना। जैसे—राष्ट्रपति ने रात को रेडियो पर कहा है कि स्थिति सुधरते ही यह आदेश लौटा लिया जायगा। ४. चेष्टा, संकेत आदि से अपना आंतरिक भाव जतलाना। जैसे—ये आँखें कुछ कह रही हैं। ५. समाचार या सूचना देना। जैसे—उसका नौकर अभी-अभी यह कह गया है। ६. नाम रखना। पुकारना। जैसे—उन्हें लोग राय साहब कहने लगे हैं। ७. बतलाना या समझाना-बुझाना। जैसे—कई बार उससे कहा गया है पर उसकी समझ में नहीं आता।

पद—**कहना-सुनना**—(क) समझाना-बुझाना। (ख) प्रार्थना करना।

८. बातों में बहलाना या भुलाना। बहकाना। जैसे—इसके संगी-साथी जो कुछ कहते हैं वही यह करता है।

मुहा०—**(किसी के) कहने या कहने-सुनने में आना**=किसी की अर्थहीन या झूठी बातों को ठीक मानकर उनके अनुसार चलना। **(किसी के) कहने पर चलना**=आदेश, उपदेश आदि के अनुसार काम करना।

९. अनुचित या अनुपयुक्त बात कहना। भली-बुरी बातें कहना। जैसे—जो एक कहेगा, वह चार सुनेगा।

पुं० १ कथन। बात। २. आज्ञा। आदेश। ३. अनुरोध। प्रार्थना।

कहनाउत*—स्त्री०=कहनावत।

कहनाम†—पुं० [हिं० कहना] १. किसी की कही हुई बात। उक्ति। कथन। २. कहावत।

कहनावत—स्त्री० [हिं० कहना+आवत (प्रत्य०)] १. किसी की कही हुई बात। उक्ति। कथन। उदा०—सुनहु सखी राधा कहनावति।—सूर। २. दे० 'कहावत'।

कहनि†—स्त्री०=कहनी।

कहनी†—स्त्री० [सं० कथनी, प्रा० कहनी] १. उक्ति। कथन। बात। २. कथा। कहानी।

कहनूत†—*स्त्री०=कहनावत।*

कह-मुकरी—स्त्री० दे० 'मुकरी'।

कहर—पुं० [अ० कह्र] १. आपत्ति। विपत्ति। संकट। २. विकट क्रोध। प्रकोप।

मुहा०—**कहर करना**=बहुत ही भयानक, भीषण या विकट काम करना। **(किसी पर) कहर करना**=बहुत बड़ा अत्याचार या अनर्थ करना। किसी को बहुत बड़ी विपत्ति या संकट में डालना। **कहर टूटना**=बहुत बड़ी विपत्ति या संकट आना। **(किसी पर) कहर ढाना या तोड़ना**= किसी को अपने भीषण प्रकोप का पात्र या भाजन बनाना। क्रुद्ध होकर ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत बड़े संकट में फँसे।

पद—**कहर का**=(क) बहुत अधिक भयानक, भीषण या विकट। (ख) बहुत ही अद्भुत या अनोखा। परम विलक्षण। (ग) बहुत बढ़ा-चढ़ा। महान।

३. खलबली। हलचल।

मुहा०— **कहर मचना**=बहुत बड़ा उत्पात या उपद्रव होना।

वि० [अ० क़ह्हार] १. अगम। अपार। २. घोर। भयंकर। ३. बहुत प्रबल या विकट।

कहरना†—अ०=कराहना

कहरवा—पुं० [हिं० कहार] १. पाँच मात्राओं का एक ताल। २. दादरे की तरह का एक प्रकार का गीत जो उक्त ताल पर गाया जाता है। ३. उक्त ताल पर होनेवाला नाच।

विशेष—संभवतः कहरवा नामक गीत पहले कहारों आदि में ही प्रचलित था।

कहरी—वि० [अ० कहर+ई (प्रत्य०)] १. कहर संबंधी। २. कहर या आफत ढानेवाला (व्यक्ति)। ३. बहुत उग्र या तीव्र (गुण, प्रभाव, स्वभाव आदि)।

कहरुबा—पुं० [फा०] १. गोंद की तरह का एक पदार्थ जिसे कपड़े आदि पर रगड़कर घास या तिनके के पास रखने से उस कपड़े में चुंबक की-सी शक्ति आ जाती है। तृण-मणि। २. एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष, जिसका गोंद राल या धूप कहलाता है।

कहल†—पुं० [देश०] १. बरसात में हवा बंद होने के कारण उत्पन्न

सजीवन ह्वौ, करौ हम पै कसीसैं।—आनन्दघन।

कसीसना—स० [फा० कशिश, हिं० कसीस] १. खींचना। २. चढ़ाना या तानना। उदा०—साँस हिएँ न समाय सकोचनि, हाय इते पर वान कसीसत।—घनानन्द।

कसूँभ—पुं०=कुसुम।

कसूँभी—वि० [हिं० कुसुम] १. कुसम (पौधे या फूल) के रंग का। २. कुसुंभ के फूलों के रंग से रँगा हुआ।

कसून—पुं० [देश०] ऐसा घोड़ा जिसकी आँखें कंजी (खाकी) हों। सुलेमानी घोड़ा।

कसूमर (ल)—पुं०=कुसुम।

वि०=कसूँभी।

कसूर—पुं० [अ०] १. अपराध। २. दोष। ३. किसी प्रकार की विशेषतः अनजान में होनेवाली त्रुटि या भूल।

कसूरमंद—वि०=कसूरवार।

कसूरवार—वि० [फा०] जिसने कोई कसूर (अपराध, दोष या भूल) किया हो। अपराधी। दोषी।

कसेई—स्त्री०=कसी (पौधा)।

कसेरहट्टा—पुं०=कसरहट्टा।

कसेरा—पुं० [हिं० काँसा+एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कसेरिन] वह जो पीतल के बरतन आदि बनाता और बेचता हो।

कसेरू—पुं० [सं० कशेरु] एक प्रकार के मोथे की जड़ जो गाँठों के रूप में होती है और मीठी तथा स्वादिष्ट होने के कारण फल के रूप में खाई जाती है।

कसैया†—वि० [हिं० कसना] १. कसने या जकड़ कर बाँधनेवाला। २. कसौटी आदि पर कसने अथवा और किसी प्रकार से जाँच या कठिन परीक्षा करनेवाला।

कसैला—वि० [हिं० कसाव+ऐला (प्रत्य०)] [स्त्री० कसैली] स्वाद में ऐसा जिसके खाने से जीभ में हलकी ऐंठन, चुनचुनी या कुछ तनाव होता हो। जिसका स्वाद आँवले, फिटकिरी, सुपारी आदि के स्वाद का-सा हो।

कसैलापन—पुं० [हिं० कसैला+पन (प्रत्य०)] कसैले होने की अवस्था या भाव।

कसैली—स्त्री० [हिं० कसैला] सुपारी।

कसोरा—पुं० [अ० सुकरः] [हिं० काँसा+ओरा प्रत्य०] १. काँसे का बना हुआ चौड़े मुँहवाला छोटा कटोरा या प्याला। २. उक्त के आकार-प्रकार का मिट्टी का एक प्रसिद्ध छोटा बरतन।

कसौंजा—पुं० [सं० कासमर्द, पा० कासमद्द] एक प्रकार का बरसाती पौधा। कासमर्द।

कसौंजी†—स्त्री०=कसौंजा।

कसौंदा—पुं०=कसौंजा।

कसौंदी—स्त्री०=कसौजा।

कसौटी—स्त्री० [सं० कषपट्टी, प्रा० कसवट्टी] १. काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिस पर रगड़कर सोने की उत्तमता परखी जाती है। (टच-स्टोन) २. कोई ऐसा मानक आधार जिससे किसी वस्तु का ठीक-ठीक महत्त्व या मूल्य आँका जाता हो। (क्राइटेरियन) जैसे—सत्य का आचरण चरित्र की पहली कसौटी है।

कस्त*—पुं०=कस्द।

कस्तरी—स्त्री० [फा० कासा] चौड़े मुँहवाला मिट्टी का एक प्रकार का बरतन जिसमें दूध आदि पदार्थ उबाला जाता है।

कस्तीर—पुं० [सं० क√तॄ+अच्, नि० सुट्] टीन।

कस्तूर—पुं० [सं० कस्तूरी] १. कस्तूरी मृग। २. कई प्रकार के जंतुओं की नाभि या दूसरे अंगों से निकलनेवाले सुगंधित पदार्थ जो प्रायः कस्तूरी की तरह के होते हैं।

कस्तूरा—पुं० [सं० कस्तूरी] १. कस्तूरी मृग। (देखें) २. लोमड़ी की तरह का एक प्रकार का जंतु। ३. कश्मीर से असम तक पाया जानेवाला भूरे रंग का एक सुरीला पक्षी जो प्रायः झुंड में रहता है। ४. वह सीपी जिसमें से मोती निकलता है। ५. एक प्रकार की सुगंधित और बलकारक ओषधि जो पोर्ट ब्लेयर की चट्टानों से खुरचकर निकाली जाती है। ६. जहाज में जड़े हुए तख्तों का जोड़ या संधि।

कस्तूरिका—स्त्री० [सं० कस्तूरी+कन्—टाप्, ह्रस्व] कस्तूरी।

कस्तूरिया—पुं० [हिं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

वि० १. कस्तूरी-संबंधी। कस्तूरी का। २. जिसमें कस्तूरी मिली हो। ३. कस्तूरी के रंग का। मुश्की।

कस्तूरी—स्त्री० [सं०√कस् (गति)+ऊर, तुट्, ङीप्] एक बहुत प्रसिद्ध और उत्कृष्ट सुगंधवाला पदार्थ जो नर कस्तूरी मृग (देखें) की नाभि के पास की थैली में पाया जाता है; और जिसका उपयोग अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य तथा औषध बनाने में होता है। मुश्क। (मस्क)

कस्तूरीमृग—पुं० [सं० मध्य० स०] १. हिरन की जाति का एक प्रकार का छोटा बिना सींगोंवाला जंतु जिसका रंग गहरा और चटकीला भूरा होता है और जिसके शरीर पर मट-मैले रंग की चित्तियाँ होती हैं। यह नेपाल, पश्चिमी असम और भूटान तथा मध्य एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है। इस जाति के नर जन्तुओं में नाभि के पास एक छोटी गोल थैली होती है जिसके अन्दर कस्तूरी (देखें) भरी रहती है। (मस्क डीअर) २. गंध मार्जार। मुश्क विलाव।

कस्द—पुं० [अ०] १. इरादा। विचार। २. दृढ़ या पक्का निश्चय। संकल्प।

कस्दन्—अव्य० [अ०] इच्छा या विचार करके। जानबूझकर।

कस्ब—पुं०=कसब।

कस्मिया—क्रि० वि० [अ० कस्मियः] कसम खाकर। शपथपूर्वक।

कस्सर—स्त्री० [हिं० कसना मि० अ० कासर] लंगर खींचने या उठाने का काम (लश०)।

कस्सा—पुं० [?] १. बबूल की छाल जिससे चमड़ा सिझाते हैं। २. उक्त छाल से बननेवाली एक प्रकार की शराब।

वि० [हिं० कसना] कम। थोड़ा। (पश्चिम) जैसे—कस्सा तौलना।

कस्साब—पुं० [अ०] कसाई।

कस्सी—स्त्री० [सं० कशा=रस्सी] १. जमीन नापने की रस्सी, जो दो कदम या ४९¾ इंच के बराबर होती है। २. जमीन का उक्त नाप।

स्त्री० [सं० कषण] एक प्रकार का छोटा फावड़ा जिससे माली जमीन खोदते हैं। कुसी।

कहँ*—प्रत्य० [सं० कक्ष, पा० कच्छ] के लिए। वास्ते।

स्त्री० [?] कलईगरों का एक औजार जिससे वे राँगा रखकर धातु के बरतन आदि जोड़ते हैं।

कहीं—अव्य० [हिं० कहाँ] १. ऐसी जगह जिसका कुछ ज्ञान या निश्चय न हो। किसी अनजानी जगह, किसी अज्ञात स्थान पर। जैसे—थोड़ी देर हुई वे कहीं चले गये हैं।

पद—कहीं और=किसी दूसरे स्थान पर। जैसे—यह ओषधि यहाँ तो नहीं किन्तु कहीं और अवश्य मिलेगी।

२. ऐसा स्थान जिसका स्पष्ट रूप से निरूपण या निर्धारण न किया गया हो। जैसे—यह पुस्तक भी कहीं रख दो।

पद—कहीं का=न जाने किस जगह का। (उपेक्षा, तिरस्कार आदि का सूचक)। जैसे—पाजी, कहीं का! **कहीं का कहीं**=एक जगह से हट कर दूसरी जगह, बिलकुल अलग या बहुत दूर। जैसे—दो ही वर्षों में नदी कहीं की कहीं चली गई। **कहीं-कहीं**=कुछ अवसरों पर या स्थानों में। जैसे—कहीं-कहीं यह भी पाठ मिलता है। **कहीं-न-कहीं**=किसी-न-किसी स्थान पर। जैसे—तुझे ढूंढ़ ही लेंगे कहीं-न-कहीं।—गीत।

मुहा०—कहीं का न रहना=(क) किसी भी काम या पद के योग्य न रह जाना। (ख) सब तरफ से गया बीता या नगण्य हो जाना। जैसे—आपके फेर में पड़कर हम कहीं के न रहे।

३. किसी अज्ञात परन्तु संभावित अवस्था या दशा में। जैसे—(क) कहीं यह दवा तुमने खा ली होती तो अनर्थ हो जाता। (ख) जल्दी चलो; कहीं गाड़ी निकल न जाय। ४. बहुत अधिक बढ़कर। जैसे—यह उससे कहीं बढ़कर है। ५. (काकु से) कदापि नहीं। कभी नहीं। जैसे—ऐसा कहीं हो सकता है।

कही—स्त्री० [हिं० कहना] १. उक्ति। कथन। उदा०—कहत न परत कही।—सूर। २. उपदेश, विधि आदि के रूप में कही हुई बात। उदा०—एक न लगत कही काहू की, कहति कहति सब हारी।—नारायण स्वामी।

कहुँ*—क्रि० वि०=१. किसी जगह। कहीं। २. के लिए। वास्ते। उदा०—अंत काल कहुँ भारी।—कबीर।

†विभ०=को।

कहुँवाँ†—क्रि० वि०=कहीं। (व्रज०)

कहुआ†—पुं० [सं० कीह] १. अर्जुन नामक वृक्ष।

पुं० [सं० क्वाथ] घी, चीनी, मिर्च और सोंठ को पकाकर बनाया हुआ अवलेह जो जुकाम या सरदी होने पर खाया जाता है।

कहुला†—वि०=काला।

कहूँ*—क्रि० वि०=कहीं।

कह्यारी†—स्त्री० [हिं० कहना] कहने या बात करने का ढंग। उदा०—आछी आछी बात कहैं आछियै कह्यारी सों।—केशव।

कह्र—पुं० दे० 'कहर'।

कह्लार—पुं० [सं० क√ह्लाद् (प्रसन्न होना) +अच् (पृषो०) द्=र्] सफेद कमल।

काँइयाँ—वि० [हिं० चाइयाँ का अनु०] बहुत अधिक चालाक या धूर्त्त। (व्यक्ति)

काँई†—अव्य० [सं० किम्] किसलिए। क्यों।

सर्व० किसको। किसे। (राज०)

काँक†—पुं० [सं० कंकु] कँगनी नाम का अन्न।

पुं० [सं० कंक] सफेद चील।

काँकड़ा†—पुं० [हिं० कंकड़] १. कपास का बीज। बिनौला। २. कंकड़।

काँकर†—पुं० [स्त्री० अल्प० काँकरी]=कंकड़।

काँकरी†—स्त्री० [हिं० काँकर का अल्प०] छोटा कंकड़।

मुहा०—काँकरी चुनना=घोर चिंता, वियोग आदि के समय पागलों की तरह चुपचाप सिर झुकाकर बैठे रहना या समय बिताने के लिए जमीन पर पड़ी हुई कंकड़ियाँ उठा-उठाकर इधर-उधर करना।

काँकरेचा†—स्त्री० [?] गौओं, बैलों की एक जाति या नसल।

काँ-काँ—पुं० [अनु०] १. कौए के बोलने का शब्द। २. लाक्षणिक अर्थ में शोरगुल।

काँकुनी†—स्त्री०=कँगनी।

कांक्षा—स्त्री० [वि० कांक्षनीय, कांक्षी, भू० कृ० कांक्षित]=आकांक्षा।

कांक्षित—वि० [सं०√कांक्ष् (चाहना)+क्त] जिसकी कांक्षा या इच्छा की गई हो।

कांक्षी (क्षिन्)—वि० [सं०√कांक्ष्+णिनि] कांक्षा या इच्छा करनेवाला। आकांक्षी।

काँख—स्त्री० [सं० कक्ष] बड़ और बाँह के बीच का वह भाग जो कंधे के नीचे पड़ता और गड्ढे के रूप में होता है।

काँखना—अ० [अनु०] १. मल-त्याग के समय आँतों या पेट को इस प्रकार कुछ जोर से दबाना कि मुँह से आह या ऊँह शब्द निकले। २. कठिन या विशेष परिश्रम का काम करते समय उक्त प्रकार की चेष्टा या शब्द करना। (व्यंग्य)

काँखासोती—स्त्री० [हिं० काँख+सं० श्रोत्र, प्रा० सोत] जनेऊ की तरह कंधे पर दुपट्टा डालने का ढंग।

काँखी*—वि०=कांक्षी (आकांक्षी)

काँगड़ा—पुं० [सं० केकय] पश्चिमी हिमालय का एक पहाड़ी प्रदेश जिसमें एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है।

पुं० [सं० कंक] मटमैले रंग का एक पक्षी जिसकी चोटी काले रंग की होती है।

काँगड़ी—स्त्री० [हिं० कांगड़ा] एक प्रकार की छोटी दस्तेदार कश्मीरी अँगीठी।

विशेष—प्रायः ठंढ से बचने के लिए पहाड़ों पर रहनेवाले लोग काम करते समय अपने कलेजे और पेट को गरम रखने के लिए इसे गले में लटकाए रहते हैं।

काँगनी—स्त्री०=कँगनी।

काँगरू†—पुं०=कँगारू।

काँगही†—स्त्री०=कंघी।

काँगुरा†—पुं० कँगूरा।

कांग्रेस—स्त्री० [अं०] १. वह महासभा जिसमें भिन्न-भिन्न स्थानों के प्रतिनिधि एकत्र होकर सार्वजनिक विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं। २. एक प्रसिद्ध अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था जिसके प्रयत्न से भारत को अँगरेजी शासन से स्वतंत्रता मिली है।

कांग्रेसी—वि० [हिं० कांग्रेस] कांग्रेस में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।

होनेवाली गरमी। उमस। २. कष्ट। ३. संताप।

कहलना—अ० [हिं० कहल] १. उमस के कारण बेचैन या विकल होना। २. आकुल होना। अकुलाना। ३. आलस्य, संकोच आदि के कारण किसी काम से दूर रहना या बचना।

कहलवाना—स०=कहलाना।

कहलाना—स० [कहना का प्रे० रूप] १. कहने का काम किसी दूसरे से कराना। किसी को कुछ कहने में प्रवृत्त करना। जैसे—मैंने तो आपके सामने उससे सब बातें कहला ली हैं। २. किसी के द्वारा किसी के पास सँदेसा भेजना। जैसे—किसी को भेज कर उन्हें कहला दो कि कल आवें।

अ० किसी का किसी नाम से पुकारा जाना या प्रसिद्ध होना। कहा जाना। जैसे—यह कपड़ा गबरून कहलाता है।

अ० [हिं० कहल] उमस, गरमी आदि से व्यथित या व्याकुल होना। उदा०—कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ।—बिहारी।

कहवाँ†—वि०=कहाँ।

कहवा—पुं० [अ०] १. एक प्रकार का क्षुप जिसके सफेद फूलों में से निकले हुए दानों या बीजों से एक प्रकार का पेय बनता है। २. उक्त वृक्ष के दाने या बीज। ३. उक्त दानों या बीजों को भूनकर उनसे बनाया हुआ (चाय की तरह का) पेय पदार्थ। (कॉफी, उक्त सभी अर्थों के लिए)

कहवाखाना—पुं० [अ०+फा०] वह स्थान जहाँ पेय के रूप में कहवा बिकता है। (कॉफी हाउस)

कहवाना†—स० कहलाना।

कहवैया†—वि० [हिं० कहना+वैया प्रत्य०] जो किसी से कुछ कहे। कहनेवाला।

कहाँ—अव्य० [वैदिक सं० कुह:; म० सं० कुत्र; पा० कुत्थ; पं० कित्थे; बँ० कोथाय; मरा० कुठें; सिं० कित्थी] १. एक प्रश्नवाचक अव्यय जिसका प्रयोग मुख्यतः स्थान के संबंध में जिज्ञासा या प्रश्न के प्रसंग में होता है। किस स्थान पर? किस जगह? जैसे—अब यहाँ से आप कहाँ जायँगे? २. किसी अवधि, सीमा या स्थिति के संबंध में प्रश्नवाचक अव्यय। जैसे—(क) अब कहाँ तक उनकी प्रतीक्षा की जाय। (ख) लिखिएगा वह काम कहाँ तक पहुँचा है। ३. उपेक्षा, तिरस्कार आदि के प्रसंगों में किसी अज्ञात या अनिश्चित स्थान का वाचक अव्यय। जैसे—(क) अजी बैठे रहो; तुम वहाँ कहाँ जाओगे। (ख) यह बला तुमने कहाँ से अपने पीछे लगा ली।

पद—**कहाँ....कहाँ.....**=पारस्परिक बहुत अधिक अन्तर या भेद का सूचक पद। जैसे—कहाँ बिहारी सतसई कहाँ यह तुक-बंदी। **कहाँ का**=(क) किसी उपेक्ष्य या नगण्य स्थान का। जैसे—तुमने यह कहाँ का झगड़ा अपने पीछे लगा लिया। (ख) काकु से, कहीं का नहीं। जैसे—वह कहाँ का पंडित है जो तुम्हें व्याकरण पढ़ावेगा। (ग) कुछ भी नहीं। बिलकुल नहीं। जैसे—जब लड़के को ताश का शौक लग गया तब कहाँ का पढ़ना और कहाँ का लिखना! **कहाँ का कहाँ**=प्रस्तुत प्रसंग या स्थान से बहुत दूर। जैसे—आप भी कहाँ की बात कहाँ ले गये! **कहाँ का....कहाँ का**=ऐसे अज्ञात या अनिश्चित स्थान, जिन में परस्पर बहुत अधिक अन्तर या भेद हो। जैसे—यह तो संयोग से भेंट हो गई; नहीं तो कहाँ के आप और कहाँ के हम! **कहाँ की बात**=यह बिलकुल अनहोनी या निराधार बात है। **कहाँ तक**=किस अवधि, परिमाण या सीमा तक, अर्थात् इससे आगे बढ़ना ठीक या संभव नहीं। जैसे—अब कहाँ तक कहा जाय, यही समझ लीजिए कि वह हद से ज्यादा झूठा है।

पुं० [अनु०] बहुत छोटे बच्चों के रोने का शब्द।

कहा—पुं० [हिं० कहना] १. कही हुई बात। उक्ति। कथन।

पद—**कहा-सुनी।**

२. आज्ञा। आदेश। जैसे—बड़ों का कहा माना करो।

†स्त्री०=कथा।

सर्व०=क्या। (ब्रज) जैसे—मोसों तोसों अब कहा काम।—गीत।

क्रि० वि० किस प्रकार का। कैसा।

कहाउ†—पुं०=कहा (उक्ति)।

कहाउति—स्त्री०=कहावत।

कहाकही—स्त्री०=कहा-सुनी।

कहाका†—पुं०=कहकहा।

कहाना—स०=कहलाना।

कहानी—स्त्री० [सं० कथनिका; प्रा० कहाणिआ; सिं० मरा० कहाणी] १. मौखिक या लिखित, कल्पित या वास्तविक तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव-प्रधान या विषय-प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु-स्थिति से परिचित कराना होता है। (स्टोरी) २. कोई झूठी या मनगढ़ंत बात।

मुहा०—**कहानी जोड़ना**=आवश्यकता से अधिक और प्रायः अरुचि-कर या निरर्थक वृत्तांत।

पद—**राम-कहानी**=लंबा-चौड़ा वृत्तांत।

३. =कथा।

कहार—पुं० [सं० कं=जल+हार या स्कंधभार] [स्त्री० कहारिन, कहारी] लोगों के यहाँ पानी भरकर तथा उनकी छोटी-छोटी सेवाएँ करके जीविका चलानेवाली एक जाति। इस जाति के लोग डोली आदि भी ढोते हैं।

कहारा†—पुं० [सं० स्कंधभार] बड़ा टोकरा। दौरा।

कहाल—पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा।

कहावत—स्त्री० [हिं० कहा=कही हुई बात+वत प्रत्य०] १. ऐसा बँधा हुआ लोक-प्रचलित कथन या वाक्य, जिसमें किसी तथ्य या अनुभूत सत्य का चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रतिपादन या प्रस्थापन किया गया हो। जैसे—(क) नाच न आवै आँगन टेढ़ा। (ख) चिराग तले अँधेरा। २. किसी को भेजा हुआ विशेषतः मृत्यु-संबंधी संदेश।

कहा-सुना—पुं० [हिं० कहना+सुनना] अनजान में या भूल से कही हुई कोई अप्रिय या अनुचित बात या हो जानेवाला कोई अनुचित या असंगत व्यवहार। जैसे—हमारा कहा-सुना माफ करें।

कहा-सुनी—स्त्री० [हिं० कहना+सुनना] आपस में कही और सुनी जानेवाली अनुचित, अप्रिय या अशिष्ट बातें। झगड़े या विवाद का आरंभिक या हलका रूप।

कहिअ*—क्रि० वि० [हिं० काहे, सं० कथम्] किसलिए। क्यों। उदा०—ऐसे पितर तुम्हारे कहि अहि आपन कहिअ न लेहीं।

कहिया†—क्रि० वि० [सं० कर्हि] किस दिन। किस रोज।

स्त्री० [?] कलईगरों का एक औजार जिससे वे राँगा रखकर धातु के बरतन आदि जोड़ते हैं।

कहीं—अव्य० [हिं० कहाँ] १. ऐसी जगह जिसका कुछ ज्ञान या निश्चय न हो। किसी अनजानी जगह, किसी अज्ञात स्थान पर। जैसे—थोड़ी देर हुई वे कहीं चले गये हैं।

पद—कहीं और=किसी दूसरे स्थान पर। जैसे—यह ओषधि यहाँ तो नहीं किन्तु कहीं और अवश्य मिलेगी।

२. ऐसा स्थान जिसका स्पष्ट रूप से निरूपण या निर्धारण न किया गया हो। जैसे—यह पुस्तक भी कहीं रख दो।

पद—कहीं का=न जाने किस जगह का। (उपेक्षा, तिरस्कार आदि का सूचक)। जैसे—पाजी, कहीं का! **कहीं का कहीं**=एक जगह से हट कर दूसरी जगह, बिलकुल अलग या बहुत दूर। जैसे—दो ही वर्षों में नदी कहीं की कहीं चली गई। **कहीं-कहीं**=कुछ अवसरों पर या स्थानों में। जैसे—कहीं-कहीं यह भी पाठ मिलता है। **कहीं-न-कहीं**=किसी-न-किसी स्थान पर। जैसे—तुझे ढूँढ़ ही लेंगे कहीं-न-कहीं।—गीत।

मुहा०—कहीं का न रहना=(क) किसी भी काम या पद के योग्य न रह जाना। (ख) सब तरफ से गया बीता या नगण्य हो जाना। जैसे—आपके फेर में पड़कर हम कहीं के न रहे।

३. किसी अज्ञात परन्तु संभावित अवस्था या दशा में। जैसे—(क) कहीं यह दवा तुमने खा ली होती तो अनर्थ हो जाता। (ख) जल्दी चलो; कहीं गाड़ी निकल न जाय। ४. बहुत अधिक बढ़कर। जैसे—यह उससे कहीं बढ़कर है। ५. (काकु से) कदापि नहीं। कभी नहीं। जैसे—ऐसा कहीं हो सकता है।

कही—स्त्री० [हिं० कहना] १. उक्ति। कथन। उदा०—कहत न परत कही।—सूर। २. उपदेश, विधि आदि के रूप में कही हुई बात। उदा०—एक न लगत कही काहू की, कहति कहति सब हारी।—नारायण स्वामी।

कहुँ*—क्रि० वि०=१. किसी जगह। कहीं। २. के लिए। वास्ते। उदा०—अंत काल कहुँ भारी।—कबीर।
†विभ०=को।

कहुँवाँ—क्रि० वि०=कहीं। (ब्रज०)

कहुआ†—पुं० [सं० कीह] १. अर्जुन नामक वृक्ष।
पुं० [सं० क्वाथ] घी, चीनी, मिर्च और सोंठ को पकाकर बनाया हुआ अवलेह जो जुकाम या सरदी होने पर खाया जाता है।

कहुला†—वि०=काला।

कहूँ*—क्रि० वि०=कहीं।

कह्यारी†—स्त्री० [हिं० कहना] कहने या बात करने का ढंग। उदा०—आछी आछी बात कहैं आछियै कह्यारी सों।—केशव।

कह्ह—पुं० दे० 'कहर'।

कह्लार—पुं० [सं० क√ह्लाद् (प्रसन्न होना)+अच् (पृषो०) द्=र्] सफेद कमल।

काँइयाँ—वि० [हिं० चाइयाँ का अनु०] बहुत अधिक चालाक या धूर्त्त। (व्यक्ति)

काँई—अव्य० [सं० किम्] किसलिए। क्यों।
सर्व ० किसको। किसे। (राज०)

काँक†—पुं० [सं० कंकु] कँगनी नाम का अन्न।
पुं० [सं० कंक] सफेद चील।

काँकड़ा†—पुं० [हिं० कंकड़] १. कपास का बीज। बिनौला। २. कंकड़।

काँकर†—पुं० [स्त्री० अल्प० काँकरी]=कंकड़।

काँकरी†—स्त्री० [हिं० काँकर का अल्प०] छोटा कंकड़।

मुहा०—काँकरी चुनना=घोर चिंता, वियोग आदि के समय पागलों की तरह चुपचाप सिर झुकाकर बैठे रहना या समय बिताने के लिए जमीन पर पड़ी हुई कंकड़ियाँ उठा-उठाकर इधर-उधर करना।

काँकरेच†—स्त्री० [?] गौओं, बैलों की एक जाति या नसल।

काँ-काँ—पुं० [अनु०] १. कौए के बोलने का शब्द। २. लाक्षणिक अर्थ में शोरगुल।

काँकुनी†—स्त्री०=कँगनी।

कांक्षा—स्त्री० [वि० कांक्षनीय, कांक्षी, भू० कृ० कांक्षित]=आकांक्षा।

कांक्षित—वि० [सं०√कांक्ष् (चाहना)+क्त] जिसकी कांक्षा या इच्छा की गई हो।

कांक्षी (क्षिन्)—वि० [सं०√कांक्ष्+णिनि] कांक्षा या इच्छा करनेवाला। आकांक्षी।

काँख—स्त्री० [सं० कक्ष] धड़ और बाँह के बीच का वह भाग जो कंधे के नीचे पड़ता और गड्ढे के रूप में होता है।

काँखना—अ० [अनु०] १. मल-त्याग के समय आँतों या पेट को इस प्रकार कुछ जोर से दबाना कि मुँह से आह या ऊँह शब्द निकले। २. कठिन या विशेष परिश्रम का काम करते समय उक्त प्रकार की चेष्टा या शब्द करना। (व्यंग्य)

काँखासोती—स्त्री० [हिं० काँख+सं० श्रोत्र, प्रा० सोत] जनेऊ की तरह कंधे पर दुपट्टा डालने का ढंग।

काँखी*—वि०=कांक्षी (आकांक्षी)

काँगड़ा—पुं० [सं० केकय] पश्चिमी हिमालय का एक पहाड़ी प्रदेश जिसमें एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है।
पुं० [सं० कंक] मटमैले रंग का एक पक्षी जिसकी चोटी काले रंग की होती है।

काँगड़ी—स्त्री० [हिं० कांगड़ा] एक प्रकार की छोटी दस्तेदार कश्मीरी अँगीठी।

विशेष—प्रायः ठंड से बचने के लिए पहाड़ों पर रहनेवाले लोग काम करते समय अपने कलेजे और पेट को गरम रखने के लिए इसे गले में लटकाए रहते हैं।

काँगनी—स्त्री०=कँगनी।

काँगरू†—पुं०=कँगारू।

काँगही†—स्त्री०=कंघी।

काँगुरा†—पुं० कँगूरा।

कांग्रेस—स्त्री० [अं०] १. वह महासभा जिसमें भिन्न-भिन्न स्थानों के प्रतिनिधि एकत्र होकर सार्वजनिक विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं। २. एक प्रसिद्ध अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था जिसके प्रयत्न से भारत को अँगरेजी शासन से स्वतंत्रता मिली है।

कांग्रेसी—वि० [हिं० कांग्रेस] कांग्रेस में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।

पुं० कांग्रेस का कार्यकर्त्ता अथवा उसका सदस्य।

काँच—स्त्री० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] १. धोती का वह सिरा जो दोनों जाँघों के बीच में से ले जाकर कमर में खोंसा जाता है। लाँग।

मुहा०—काँच खोलना–(क) साहस छोड़कर किसी काम से पीछे हटना; फलतः अपनी कायरता प्रकट करना। (ख) प्रसंग या संयोग करना।

२. गुदेंद्रिय के भीतर का भाग। गुदाचक्र। गुदावर्त्त।

मुहा०—काँच निकलना=आघात, दुर्बलता, परिश्रम आदि के कारण गुदा-चक्र का बाहर निकल आना जो एक प्रकार का रोग है।

पुं० [सं० काच] एक प्रसिद्ध चमकीला, पारदर्शक और स्वच्छ पदार्थ जो बालू (रेह), सोडा, चूने आदि के योग से बनाया जाता है और जिससे चूड़ियाँ, दर्पण, बोतलें आदि बनते हैं। शीशा। (ग्लास)

स्त्री० [हिं० कच्चा] कच्ची धातु।

कांचन—पुं० [सं०√कांच् (दीप्ति)+ल्युट्—अन] [वि० कांचनीय] १. सोना। स्वर्ण। २. धन-संपत्ति। ३. ऐश्वर्य। ४. कचनार। ५. चंपा। ६. नागकेसर। ७. गूलर। ८. धतूरा।

वि० १. उत्तम। श्रेष्ठ। २. परम सुन्दर।

कांचनक—पुं० [सं० कांचन+कन्] १. हरताल। २. चंपा। (पौधा और फूल)

कांचन-गिरि—पुं० [ष० त०] सुमेरु पर्वत।

कांचनचंगा—पुं० [सं० कांचनशृंग] नैपाल और शिकम के बीच में स्थित हिमालय की एक चोटी।

कांचन-पुरुष—पुं० [ष० त०] सोने की वह मूर्ति जो मृतक के श्राद्ध के समय शय्या पर रखकर दान की जाती है।

कांचनार—पुं० [सं० कांचन√ऋ (गति)+अण्] कचनार।

कांचनी—स्त्री० [सं० कांचन+ङीप्] १. हल्दी। २. गोरोचन।

वि०=कांचनीय।

कांचनीय—वि० [सं० कांचन+छ—ईय] १. सोने से या सोने का बना हुआ। कंचन या कांचन का। २. जिसमें सोने की-सी आभा हो।

काँचरी (ली)†—स्त्री० केंचुली।

काँचा—वि० [सं० कांच] जो काँच के समान जल्दी टूट जानेवाला हो।

†वि० दे० 'कच्चा'।

कांचिक—पुं० [सं०√कांच्+इन्+कन्] काँजी।

कांची—स्त्री० [सं०√कांच्+इन्+ङीप्] १. स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की करधनी जिसमें छोटी-छोटी घंटियाँ लगी होती हैं। २. प्राचीन भारत की सात पवित्र नगरियों में से एक। कांजीवरम्। ३. घुँघची। ४. कपड़ों पर टाँकने का गोटा-पट्टा।

काँचुअ—स्त्री० [सं० कंचुकी] अँगिया। चोली।

काँचुरी (ली)—स्त्री० =केंचुली। उदा०—ज्यों काँचुरी भुअंगय तजही।—सूर।

काँचू†—पुं० [सं० कंचुल] केंचुली।

स्त्री०†=कंचुकी (चोली)।

वि० [हिं० काँच] १. (पदार्थ) जो काँच की तरह भंगुर हो। २. (व्यक्ति) जिसे काँच का रोग हो। ३. विकट अवसरों पर काँच खोल देनेवाला अर्थात् कायर या डरपोक।

वि० कच्चा।

काँछना—स०=काछना।

काँछा—स्त्री० [सं० कांक्षा] [वि० काँछी]=आकांक्षा।

पुं०=काछा।

कांजिक—पुं० [सं० कु-अंजिका, ब० स०, कु=क आदेश] १. काँजी। २. चावल का ऐसा माँड़ जिससे खमीर उठने लगा हो। पचुई।

काँजी—स्त्री० [तामिल काड्शी=माँड से, सं० क√अंज् (आँजना)+अण्+ङीप्] १. ऊख के रस (सिरका) में नमक, राई आदि डालकर तैयार किया जानेवाला एक प्रसिद्ध पेय पदार्थ जो स्वाद में खट्टा होता है। २. मट्ठे या दही का पानी। छाछ। ३. बिगड़ा या फटा हुआ दूध।

काँजी हाउस†—पुं० [अं० काइन-हाउस] वह सरकारी या अर्द्ध सरकारी पशु-शाला जहाँ लोगों के छूटे या बहके हुए पशु पकड़ कर रखे जाते हैं।

काँट†—पुं०=काँटा।

काँटन†—स्त्री० [हिं० काटना] मार-काट। उदा०—पुनि सलार काँटन मति माहाँ।—जायसी।

काँटा—पुं० [सं० कटक] [वि० कँटीला] १. कुछ विशिष्ट प्रकार के पेड़-पौधों की डालियों, तनों, पत्तों आदि पर उगनेवाला वह कड़ा, नुकीला और लंबा अंश जो अधिकतर सीधा और कभी-कभी कुछ टेढ़ा या मुड़ा हुआ भी होता है और जिसमें मुख्यतः काठवाला तत्त्व प्रधान होता है। कंटक। (थार्न) जैसे—गुलाब, नागफनी, बबूल, बेर या बेल का काँटा या काँटे।

विशेष—शरीर के किसी अंग में काँटा चुभ जाने पर उसमें तब तक जलन और पीड़ा होती है जब तक वह निकल नहीं जाता।

मुहा०—(मार्ग, हृदय आदि में का) काँटा निकलना=कष्ट देनेवाली अड़न या बाधा (अथवा विरोधी या शत्रु) का अलग या दूर होना या किसी प्रकार नष्ट हो जाना। **काँटा-सा (या काँटे-सा) खटकना**=उसी प्रकार कष्टदायक होना जिस प्रकार शरीर में गड़ा या चुभा हुआ काँटा होता है। जैसे—(क) उनका उस दिन का वह व्यवहार आज-तक मुझे काँटे-सा खटक रहा है। (ख) यह दुष्ट लड़का सब की आँखों में काँटे-सा खटकता है। **(किसी वस्तु का) सूखकर काँटा होना**=बहुत कड़ा और नुकीला होकर ऐसा होना कि गड़ने लगे अथवा ठीक तरह से काम न दे सके। **(किसी व्यक्ति का) सूखकर काँटा होना**=चिंता, दुर्बलता, रोग आदि के कारण सूखकर बहुत दुबला-पतला हो जाना। **(किसी के लिए या रास्ते में) काँटे बिछाना या बोना**=किसी के कार्य या मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ या विघ्न खड़े करना अर्थात् बहुत अधिक शत्रुता का व्यवहार करना। उदा०—जो तोकों काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल।—कबीर।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग दूसरों के अतिरिक्त स्वयं अपने लिए भी होता है। जैसे—हम ने आप ही अपने रास्ते में काँटे बिछाये (या बोये) हैं।

काँटों पर लोटना=प्रायः ईर्ष्या, द्वेष, संताप आदि के प्रसंगों में ऐसी मानसिक कष्टपूर्ण स्थिति में रहना या होना कि मानो बैठने, रहने या सोने की जगह पर बहुत-से काँटे बिछे हों; अर्थात् बहुत अधिक मानसिक

कष्ट भोगना। जैसे—मैं तो यहाँ काँटों पर लोटती हूँ और सौत वहाँ फूलों से तुलती है।—स्त्रियाँ। **काँटों में घसीटना**=(क) दूसरे के पक्ष में किसी को बहुत अधिक मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचाना। (ख) स्वयं अपने पक्ष में विशेष आदर, प्रशंसा, सम्मान आदि होने पर अपनी नम्रता जतलाते हुए यह सूचित करना कि आप मुझे बहुत अधिक लज्जित कर रहे हैं। जैसे—आप तो मेरी इतनी बड़ाई करके मुझे काँटों में घसीटते हैं।

पद—काँटे पर की ओस=बहुत ही थोड़े समय तक टिकने या ठहरने वाला (अर्थात् क्षणभंगुर) वैभव, सुख या सुभीता। **रास्ते का काँटा**=किसी काम या बात में कष्टदायक रूप में सामने आनेवाली बाधा या व्यक्ति। जैसे—उस चुगलखोर के यहाँ से चले जाने से तुम्हारे रास्ते का काँटा निकल गया।

२. उक्त के आधार पर जीभ अथवा शरीर के किसी और अंग पर निकलनेवाला छोटा नुकीला अंकुर जो प्रायः फुंसी की तरह कष्टदायक होता और चुभता है। जैसे—प्यास, रोग आदि के कारण गले या जीभ में काँटे पड़ना। (अर्थात् इन अंगों का सूखकर कड़ा और खुरदुरा हो जाना।)

विशेष—प्रायः पशु-पक्षियों के गले में या जीभ पर रोग के रूप में इस प्रकार के काँटे निकल आते हैं; और यदि उपचार या चिकित्सा करके वे निकाले या नष्ट न किये जायँ तो उनके कारण पशु-पक्षी मर भी जाते हैं।

मुहा०—(पशु या पक्षी को) काँटा लगना=उक्त प्रकार का रोग होना।

३. [स्त्री० अल्पा० कँटिया, काँटी] वानस्पतिक काँटे के आकार या रूप के आधार पर किसी धातु विशेषतः लोहे का वह पतला लम्बा टुकड़ा जिसका एक सिरा नुकीला और दूसरा चपटा होता है और जिसका उपयोग किसी कड़ी चीज को वैसी ही दूसरी चीज पर ठोंककर जड़ने या बैठाने के लिए होता है। कील। (नेल) ४. उक्त के आकार-प्रकार की कोई कड़ी, नुकीली और लंबी चीज। जैसे—साही नामक जंतु के शरीर पर के काँटे, घड़ी में लगे हुए घंटा, मिनट आदि बतलाने वाले काँटे, तराजू की डंडी के ऊपर बीचोंबीच लगा हुआ काँटा जो तौल की अधिकता और न्यूनता सूचित करता है। ५. उक्त के आधार पर किसी प्रकार का तराजू, विशेषतः चाँदी, सोना, हीरे आदि जवाहिरात तौलने का छोटा तराजू। (स्केल) उदा०—मैं तौल लिया करती हूँ नजरों में हर इक को। काँटा सी हूँ, आँखें हैं तराजू से जियादह।—कोई शायर।

मुहा०—किसी चीज का काँटे में तुलना या तुलकर बिकना=बहुत अधिक दुष्प्राप्य या महँगा होना। जैसे—अब तो हर चीज काँटे में तुलकर बिकने लगी है।

पद—काँटे की तौल=हर तरह से बिलकुल ठीक, पक्का या पूरा। न तो आवश्यकता, औचित्य आदि से कुछ भी कम और न कुछ भी अधिक। जैसे—आपकी हर बात काँटे की तौल होती है।

६. अँकुड़े या अँकुसी की तरह की कोई ऐसी कड़ी और नुकीली चीज जिसका अगला सिरा कुछ झुका या मुड़ा हुआ हो। जैसे—कर्माज या कोट के बटन लगाने के काँटे, स्त्रियों के कान या नाक में पहनने के काँटे, मछली फँसाने का काँटा, कुएँ में गिरा हुआ डोल या लोटा निकालने का काँटा, पटहारों का गहने गूँथने का काँटा आदि।

मुहा०—काँटा डालना या लगाना=(क) जलाशय में से मछली फँसाने या कुएँ में से लोटा निकालने के लिए उसमें काँटा डालना। (ख) लाक्षणिक रूप में किसी को अपने जाल या फंदे में फँसाने के लिए कोई युक्ति करना।

७. पंजे के आकार का खेतिहरों का काठ का एक औजार जिससे वे घास-भूसा इधर-उधर हटाते हैं। ८. उक्त प्रकार या रूप का धातु का एक छोटा उपकरण जिससे उठा-उठाकर पाश्चात्य देशों के लोग भोजन के समय चीजें खाते हैं। जैसे—इतना पढ़-लिखकर तुमने भी बस छुरी-काँटे से खाना ही सीखा है। ९. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें एक लम्बी लकड़ी के सिरे पर दोनों ओर दो डालें लगी रहती हैं। १०. गणित में वह क्रिया जिससे यह जाना जाता है कि जो गणना की गई है वह ठीक है या नहीं। ११. उक्त के आधार पर गुणन-फल की शुद्धि की परीक्षा के लिए की जानेवाली वह क्रिया जिसके लिए पहले एक खड़ी लकीर बनाकर फिर उसे बेड़ी लकीर से काटते हैं। १२. कोई ऐसी प्रतियोगिता जो ईर्ष्या, द्वेष या वैर भाव से की जाय अथवा जिसका उद्देश्य प्रतियोगी को हराने के सिवा और कुछ न हो। जैसे—पहलवानों की काँटे की कुश्ती। अर्थात् ऐसी कुश्ती जिसमें वे सारी शक्ति लगाकर एक दूसरे को हराने का प्रयत्न करते हों। १३. किसी प्रकार के काँटे से अथवा किसी प्रकार की प्रतियोगिता में लगा या सहा हुआ कोई आघात या वार। १४. कैदियों को पहनाई जानेवाली हथकड़ी, बेड़ी और डंडा।

मुहा०—काँटा खाना=(क) किसी प्रकार की प्रतियोगिता में बुरी तरह से परास्त होना। (ख) कैद की सजा भुगतना। जैसे—अभी तो हाल में वह काँटा खाकर आया है।

काँटा-चूहा—पुं० [हिं० काँटा+चूहा] एक छोटा जानवर जिसकी पीठ छोटे-छोटे काँटों से भरी होती है।

काँटा बाँस—पुं० [हिं० काँटा+बाँस] एक प्रकार का कँटीला बाँस। मगर बाँस। नाल बाँस।

काँटी—स्त्री० [हिं० काँटा का स्त्री० अल्प०] १. किसी प्रकार का छोटा काँटा। २. छोटी कँटिया। अँकुड़ी। ३. साँप पकड़ने की वह लकड़ी जिसमें अँकुड़ी लगी होती है। ४. बेड़ी और हथकड़ी।

मुहा०—काँटी खाना=कैद या जेल की सजा भुगतना।

५. वह रुई जो धुनने पर भी बिनौलों के साथ लगी रह जाती है। ६. लड़कों का एक प्रकार का खेल जिसमें वे डोरे में कंकड़ आदि बाँधकर लड़ाते हैं। लंगर।

काँठली—स्त्री० [सं० कंठ—अवलि] १. गले में पहनने का कंठा। २. कंठे के आकार का मेवों का समूह। उदा०—काली करि काँठलि ऊजल कोरण।—प्रिथीराज।

काँठा*—पुं० [सं० कंठ] १. गला। २. गले का एक आभूषण। ३. तोते के गले में बनी हुई लाल नीली मंडलाकार रेखा। ४. किनारा। तट। ५. पार्श्व। बगल।

कांड—पुं० [सं० कण् (दीप्ति)+ड, दीर्घ] १. किसी वस्तु का कोई खंड या भाग। २. वनस्पतियों के तने का दो गाँठों के बीच का भाग। पोर। ३. वृक्षों का तना। ४. वनस्पतियों या वृक्षों की डालियाँ। ५. किसी कार्य या कृति का कोई भाग। ६. किसी ग्रन्थ या पुस्तक का

कोई अध्याय या प्रकरण। ७. सरकंडा। ८. गुच्छा। ९. समूह। वृंद। १०. हाथ या टाँग की लंबी हड्डी। ११. धनुप के बीच का मोटा भाग। १२. वाण। तीर। १३. छड़ी। डंडा। १४. जल। १५. निर्जन स्थल। १६. अवसर। १७. प्रपंच। १८. बहुत बड़ी दुर्घटना। कोई अप्रिय या अशुभ घटना। जैसे—हत्या-कांड।
वि० कुत्सित। बुरा।

कांड-तिक्त—पुं० [स० त०] चिरायता।

कांड-त्रय—पुं० [प० त०] वेद के तीन विभाग जिनको कर्मकांड, उपासना-कांड और ज्ञानकांड कहते हैं।

कांडधार—पुं० [सं० कांड√धृ (धारण)+णिच्+अच्] १. पाणिनि के अनुसार एक प्राचीन प्रदेश। २. उक्त प्रदेश का निवासी।

काँड़ना*—स० [सं० कंडन (= रौंदकर अनाज की भूसी अलग करना)] १. पैरों से कुचलना। रौंदना। २. धान कूटकर उसमें का चावल और भूसी अलग करना। (धान) कूटना। ३. खूब पीटना या मारना।

कांड-पृष्ठ—पुं० [व० स०] १. बहुत बड़ा या भारी धनुप। २. कर्ण के धनुप का नाम। ३. योद्धा। सैनिक। ४. वह ब्राह्मण जो तीर तथा दूसरे अस्त्र-शस्त्र बनाकर जीविका उपार्जन करता हो। ५. वह जो अपना कुल छोड़कर किसी दूसरे के कुल में जा मिले।

कांड-भग्न—पुं० [स० त०] वैद्यक में आघात आदि से हड्डी का टूटना। (फ्रैकचर)

कांडर्षि—पुं० [कांड-ऋषि, प० त०] वेद के किसी कांड या विभाग (कर्म, ज्ञान और उपासना) का विवेचन करनेवाला ऋषि।

कांडवान्(वत्)—पुं० [सं० कांड+मतुप्] तीर चलाने या छोड़नेवाला योद्धा।

काँडा—पुं० [सं० कांड] [स्त्री० अल्पा० काँड़ी] १. लकड़ी का लंबा लट्ठा। २. छोटा सूखा डंठल।
पुं० [सं० कर्णक] १. लकड़ियों, वनस्पतियों आदि में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा। २. दाँतों में लगनेवाला कीड़ा।
†वि०=काना।

कांडिका—स्त्री० [सं० कांड+ठन्—इक, टाप्] १. पुस्तक का कोई खंड या विभाग। २. एक प्रकार का अन्न। ३. एक तरह का कुम्हड़ा।

काँडी—स्त्री० [सं० कांड] १. कुछ विशिष्ट प्रकार के वृक्षों का वह लंबा पतला तना जो बाँस या हल्के शहतीर की तरह छाजन आदि के काम में आता है।
पद—**काँड़ी-कफन**=शव की अर्थी बनाने की सामग्री।
२. जहाजों, नावों आदि के लंगर में का लोहे का लंबा डंडा। ३. मछलियों का झुंड या झोल। छाँवर। ४. किसी चीज का कोई छोटा लंबा टुकड़ा। डंडी। डाँडी। उदा०—औ सोनहा सोने की डाँडी। सारदूर रूपे की काँड़ी।—जायसी।
†स्त्री० [पं० कंडन] भूमि में बनाया हुआ वह गड्ढा जिसमें रखकर धान कूटा जाता है।

कांत—वि० [सं०√कन् (दीप्ति) वा कम् (इच्छा)+क्त] १. कोमल और मनोहर। २. प्रिय और रुचिकर। ३. सुन्दर।
पुं० १. वह जो किसी से अनुराग रखता या प्रेम करता हो। प्रेमी। २. पति। स्वामी। जैसे—लक्ष्मीकांत। ३. विष्णु। ४. शिव। ५. कार्त्तिकेय। ६. चंद्रमा। ७. वसन्त ऋतु। ८. कुंकुम ९. हिजल का पेड़। १०. कांतिसार लोहा।

कांत-पक्षी—(क्षिन्) पुं० [प० त०] मयूर। मोर।

कांत-पाषाण—पुं० [कर्म० स०] चुंबक पत्थर।

कांत-लौह—पुं० [कर्म० स०] कांतिसार लोहा।

कांता—स्त्री० [सं० कांत+टाप्] १. प्रिय या सुन्दरी स्त्री। २. प्रेमिका ३. पत्नी। भार्या।

कांतार—पुं० [सं० कांत√ऋ (गति)+अण्] १. बहुत घना और भयानक जंगल या वन। २. बहुत ही उजाड़ और भयावना स्थान। ३. दुर्गम या विकट मार्ग। ४. केतारा ऊख। ५. बाँस। ६. छिद्र। छेद। ७. दरार। संधि।

कांतारक—पुं० [सं० कांतार+कन्] केतारा (ईख)।

कांतासक्ति—स्त्री० [कांत-आसक्ति, स० त०] अपने को पत्नी या प्रेयसी तथा परमात्मा को पति या प्रेमी मानकर की जानेवाली भक्ति।

कांति—स्त्री० [सं०√कम् (चमकना)+क्तिन्] १. मनुष्य (विशेषतः स्त्री) के स्वरूप की छवि, शोभा या सौंदर्य। दैहिक या वैयक्तिक श्रृंगार या सजावट और उसके कारण बननेवाला मोहक रूप। २. प्रेम से युक्त तथा वर्धित शारीरिक सौंदर्य। ३. आभा। प्रकाश। ४. शोभा। सौंदर्य। ५. चन्द्रमा की १६ कलाओं में से एक जो उसकी पत्नी भी मानी गई है। ६. आर्या छंद का एक भेद जिसमें १६ लघु और २५ गुरु मात्राएँ होती हैं।

कांतिकर—वि० [सं० कांति√कृ (करना)+ट] कांति (शोभा या सौंदर्य) बढ़ानेवाला। सुशोभित करनेवाला।

कांतिभृत्—पुं० [सं० कांति√भृ (धारण करना)+क्विप्] चन्द्रमा।

कांतिमान् (मत्)—वि० [सं० कांति+मतुप्] १. कांति से युक्त। २. चमकीला।

कांतिसुर—पुं० [सं० सुरकांति] सोना। स्वर्ण।

काँती*—स्त्री० [सं० कर्त्तरी] १. कैंची। २. छुरी। ३. बिच्छू का डंक।
स्त्री०=कांति।

काँथरि*—स्त्री०=कथरी।

काँदन†—पुं० [सं० कंडन] मारकाट। उदा०—पुनि सलार काँदन मतिमाँहा।—जायसी।
पुं० [सं० क्रंदन] रोना-पीटना।

काँदना†—अ० [सं० क्रंदन] रोना, विशेषतः चिल्लाकर या जोर से रोना।
स० [सं० कंडन] १. रौंदना। २. पानी मिलाकर गूँधना। उदा०—पहिलहि काहि न काँदहु आटा।—जायसी।

काँदला—पुं० [हिं० काँदा] १. कीचड़। २. मैल।
वि० गँदला। मैला।
†पुं०=कँदला।

काँदव†—पुं०=काँदो।

कांदव—पुं० [सं० कंदु+अण्] चूल्हे या कड़ाही में भूनी हुई चीज।

कांदविक—पुं० [सं० कांदव+ठक्—इक] १. खाद्य पदार्थ बनाने और बेचनेवाला व्यक्ति। २. हलवाई।

काँदा—पुं० [सं० कंद] १. एक प्रकार का गुल्म जिसमें प्याज की-सी गाँठ पड़ती है। २. प्याज।

पुं०=काँदो (कीचड़)।
काँदू—पुं०=काँदो।
काँदो—पुं० [सं० कर्दम, पा० कद्दम] कीचड़। पंक।
पुं० [सं० कांदविक] बनियों की एक जाति।
काँध†—पुं० १. =कंधा। २. =कान्ह (श्रीकृष्ण)।
काँधना*—स० [हिं० काँध] १. कंधों पर या अपने ऊपर लेना, रखना, उठाना। उदा०—मैं होइ भेंड़ मारु सिर काँधा।—जायसी। २. ठानना। मचाना। उदा०—जौ पहिलें मन मान न काँधिअ।—जायसी। ३. अंगीकार या ग्रहण करना। सहन करना। सहना।
काँधर*—पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] कृष्ण।
काँधा†—पुं०=कान्हा (श्रीकृष्ण)।
†पुं०=कंधा।
काँधी—स्त्री० [हिं० काँधा] कंधा।
मुहा०—काँधी मारना=(क) घोड़े का अपनी गरदन को इतने जोर से झटका देना कि सवार का आसन हिल जाय। (ख) टाल-मटोल करना।
काँन*—पुं० १. =कान्ह (श्रीकृष्ण)। २=कान (सुनने की इंद्रिय)।
काँप—पुं० [सं० कल्प; प्रा० कप्प; पा० कप्पो; गु० बँ० काँप; सिं० कापु; मरा० काप] १. बाँस आदि को काटकर बनाई जानेवाली पतली तथा लचीली तीली। २. गुड्डी या पतंग में लगाई जानेवाली बाँस की अर्द्ध गोलाकार तीली। ३. सूअर का खाँग। ४. हाथी का दाँत। ५. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जिससे प्रायः सारा कान ढक जाता है।
काँपना—स० [सं० कंपन] १. शीत आदि के कारण शरीर का रह-रहकर बराबर थोड़ा हिलते रहना। थरथराना। २. क्रोध, भय आदि के कारण शरीर का उक्त प्रकार से हिलना। थर्राना। ३. बहुत अधिक भयभीत होना। जैसे—हम तो उनके सामने जाते काँपते हैं।
काँपा—पुं० १=काँप। २.=कंपा।
कांपिल—पुं० [सं० कंपिल+अण्] एक प्राचीन प्रदेश जो किसी समय पांचाल का दक्षिणी भाग था। (आज-कल फर्रुखाबाद के आस-पास)
कांपिल्य—पुं० [सं० कम्पिला+ण्य] दे० 'कांपिल'।
काँब—स्त्री० [सं० कल्प, हिं० काँप] छड़ी। (राज०)
कांबोज—वि० [सं० कंबोज+अण्] १. कंबोज देश (अर्थात् गांधार के आस-पास) का। कंबोज देश-संबंधी।
पुं० कंबोज देश का निवासी।
काँमर†—स्त्री० १. =काँवर (बँहगी)। २. = कंबल।
काँय-काँय—स्त्री० [अनु०] १. कौए के बोलने का शब्द। २. अप्रिय तथा कर्कश ध्वनि। जैसे—काँय-काँय मत करो।
काँव-काँव—पुं० [अनु०]=काँयँ-काँयँ।
काँवर†—स्त्री० [हिं० काँवाँरथी से] एक विशेष प्रकार की बहँगी जिसमें बाँस के टुकड़े के दोनों सिरों पर दो पिटारियाँ बँधी रहती हैं और जिसमें सामान रखकर काँवाँरथी तीर्थ-यात्रा करने निकलते हैं।
काँवरा†—वि० [पं० कमला=पागल] [स्त्री० काँवरी] १. घबराया हुआ। भौचक्का। हक्काबक्का। २. विकल। व्याकुल।
काँवरिया—पुं० [हिं० काँवरि] वे कहार या मजदूर जो काँवर बहँगी पर पानी या दूसरे सामान लाद कर ले चलते हैं।
† स्त्री०=काँवर।
काँवरू—पुं० [सं० कामरूप] कामरूप (देश)।
पुं०=कमल (रोग)।
वि०=काँवरा।
काँवाँरथी—पुं० [सं० कामार्थी] वह तीर्थ-यात्री जो अपनी कोई कामना पूरी कराने के उद्देश्य से कंधे पर काँवर उठाकर तीर्थ-यात्रा के लिए चलता हो।
काँस—पुं० [सं० काश] १. परती अथवा ऊँची और ढलुई जमीन में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास जो शरद् ऋतु में फूलती है। उदा०—फूले कास सकल महि छाई।—तुलसी।
मुहा०—काँस में तैरना=मृग तृष्णा के फेर में पड़कर इधर-उधर भटकना।
२. विकट या संकटपूर्ण स्थिति।
मुहा०—काँस में पड़ना या फँसना=विपत्ति या संकट में पड़ना या फँसना।
काँसा—पुं० [सं० कांस्य] [वि० काँसी] एक मिश्र धातु जो ताँबे, जस्ते आदि के योग से बनती है। कसकुट।
यौ०—कँसभरा=काँसे का गहना बनाने और बेचनेवाला।
† वि० [सं० कनिष्ठ] [स्त्री० काँसी] सबसे छोटा। कनिष्ठ। जैसे—काँसा भाई। काँसी स्त्री।
पुं० [फा० कासः] भीख माँगने का खप्पर या ठीकरा। उदा०—जब हाथ में लिया काँसा। तब भीख का क्या साँसा।— कहा०।
काँसागर—पुं० [हिं० काँसा+फा० गर (प्रत्य०)] काँसे आदि के गहने, बरतन आदि बनानेवाला (व्यक्ति)।
काँसार†—पुं०=काँसागर।
काँसी—स्त्री० [सं० काश] धान के पौधे में होनेवाला एक रोग।
स्त्री०=काँसा।
काँसुला—पुं० [हिं० काँसा] १. काँसे का वह चौकोर मोटा टुकड़ा जिस पर चारों ओर गड्ढे आदि बने होते हैं और जिसकी सहायता से सुनार अर्द्ध-गोलाकार या गोलाकार चीजें बनाते हैं। २. काँसे या गिलट का बना हुआ गहना।
कांस्य—पुं० [सं० कांस+यञ्] काँसा। कसकुट। (धातु)
वि० १. काँसे का बना हुआ। २. काँसे से संबंध रखनेवाला। काँसे का।
कांस्यक—पुं० [सं० कांस्य+कन्] पीतल।
कांस्यकार—पुं० [सं० कांस्य√कृ (करना)+अण्] कसेरा। ठठेरा।
कांस्य-ताल—पुं० [मध्य० स०] ताल या मँजीरा नामक बाजा।
कांस्य-दोहनी—स्त्री० [मध्य० स०] कांस्य का बना हुआ दूध दूहने का पात्र।
कांस्य-मल—पुं० [ष०त०] ताँबे-पीतल आदि धातुओं में लगनेवाला जंग या मोरचा।
कांस्य-युग—पुं० [ष० त०] पुरातत्त्व में प्रागैतिहासिक काल का वह विभाग जो प्रस्तर-युग के बाद और लौह-युग के पहले माना जाता है और जिसमें औजार, हथियार आदि काँसे के ही बनते थे। ताम्रयुग। (ब्रांज एज)

का—प्रत्य० [हिं० विभक्तिप्रत्य०] [स्त्री० की] पष्ठी विभक्ति का चिह्न जो संबंध का सूचक होता है। जैसे—राम का घोड़ा।
अव्य०=क्या? (प्रश्नवाचक)
सर्व० व्रजभाषा में 'कौन' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। जैसे—काकों, कासों।

काइ—अव्य० [सं० कः] १. क्या। २. चाहे। (राज०)

काइथ†—पुं०=कायस्थ।

काइयाँ—वि० [हिं० चाइयाँ का अनु०] बहुत बड़ा चालाक या धूर्त।

काई—स्त्री० [सं० कावार] १. एक प्रकार की प्रसिद्ध बहुत छोटी वनस्पति जो जल में उगकर उसके कंकड़ों, पत्थरों आदि पर जम जाती है और जिस पर पैर पड़ने से आदमी और जानवर प्रायः फिसल जाते हैं।
मुहा०—काई की तरह फट जाना=बिलकुल छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर हो जाना।
२. कोई ऐसा मैल जो कहीं अच्छी तरह जम या बैठ गया हो। जैसे—पहले इन बरतनों पर की काई छुड़ालो तब तीर्थ-यात्रा करने निकलना। ३. दरिद्रता आदि के कारण उत्पन्न दुर् अवस्था। जैसे—कुछ काम-धंधा करना सीखो जिससे घर की काई छूटे। ४. मन में एकत्र कलुष, दुर्भाव, पाप आदि मल। मलीनता। जैसे—पहले अपने मन की काई छुड़ा लो, तब तीर्थ-यात्रा करने निकलो।

काउ*—अव्य०=काऊ (कभी)।

काउरू—स्त्री०=काँवर।

काऊ*—अव्य० [सं० कदा] कभी।
सर्व० १. =कोई। २. = कुछ। (व्रज०)
†पुं०=काहू।

काकंदि—स्त्री० [सं०] आधुनिक कोकंद देश का पुराना नाम।

काक—पुं० [सं० कै (शब्द करना)+कन्] १. कौआ नामक प्रसिद्ध पक्षी। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा व्यक्ति जो बहुत अधिक चालाक या धूर्त हो। ३. माथे पर तिलक लगाकर बनाई हुई विशेष आकृति।
†पुं०=काग (वृक्ष और उसकी छाल)।

काक-गोलक—पुं० [ष० त०] कौए की आँख की पुतली।
विशेष—ऐसा प्रवाद है कि कौए की एक ही पुतली होती है जिसे वह आवश्यकतानुसार दोनों आँखों या गोलकों में पहुँचा सकता है।

काक-जंघा—स्त्री० [ब० स०] १. एक प्रकार की वनस्पति। चकसेनी। मसी। २. मुगवन नाम की लता। ३. गुंजा। घुंघची।

काकड़ा—पुं० [सं० कर्कट; प्रा० कक्कड़] १. बारहसिंघे की जाति का गाढ़े कत्थई रंग का एक जंगली पशु जो लगभग २०-२२ इंच ऊँचा तथा ३ फुट लंबा होता है। २. एक प्रकार का पहाड़ी पेड़।

काकड़ासींगी—स्त्री० [सं० कर्कटशृंगी] एक प्रकार की पर-जीवी वनस्पति जो काकड़ा नामक वृक्ष पर चढ़कर फैलती और बढ़ती है और जिसका ओषधि में उपयोग होता है।

काकतालीय—वि० [सं० काकताल+छ—ईय] ठीक उसी प्रकार अचानक और आप-से-आप संयोगवश तथा सहसा हो जानेवाला जिस प्रकार किसी कौए के बैठते ही ताड़ का कोई फल गिर पड़ता है।

काकतालीय-न्याय—पुं० [कर्म० स०] एक प्रकार का सिद्धांत-सूचक न्याय या कहावत जिसका प्रयोग ऐसे अवसरों पर होता है जब को एक बड़ी घटना संयोगवश किसी बहुत बड़ी घटना के साथ या एक ही समय में हो जाती है और दोनों घटनाओं में कार्य-कारण संबंध का भ्रम होने की संभावना रहती है।

काकतुंडी—स्त्री० [सं० काक√तुण्ड् (नष्ट करना)+अण्—ङीप्। कौआटोंटी (पौधा)।

काक-दंत—पुं० [ष० त०] वैसी ही अनहोनी या असंभव बात जैसी कौए के दाँत होने की चर्चा।

काक-ध्वज—पुं० [ब० स०] बाड़वानल। बाड़वाग्नि।

काक-नासा (नासिका)—स्त्री० [ब० स०] काक-जंघा नामक वनस्पति।

काक-पक्ष—पुं० [ब० स०] बालों के वे पट्टे जो पुराने जमाने में दोनों ओर कानों के ऊपर रक्खे जाते थे।

काक-पद—पुं० [ब० स०] १. लिखने में एक प्रकार का चिह्न जो लेख में पंक्ति के नीचे यह सूचित करने के लिए लगाया जाता है कि यहाँ वह पद या शब्द छूट गया है जो उसके ऊपर लिखा गया है। इसका रूप यह है—∧। २. हीरे का एक प्रकार का दोष।

काकपदी (दिन्)—वि० [सं० काक-पद, ष० त०, + इनि] काकपद के आकार या रूप का। इस आकार का—∧

काकपुष्ट—पुं० [तृ० त०] कोयल।

काक-फल—पुं० [ब० स०] नीम का पेड़ जिसके फल (नीम कौड़ी) कौए खाते हैं।

काक-बंध्या—स्त्री० [उपमि० स०] ऐसी स्त्री जो एक संतान प्रसव करने के बाद बाँझ हो गई हो। एक बाँझ।

काकव—पुं०= काकपक्ष।

काक-बलि—स्त्री० [मध्य० स०] श्राद्ध के समय भोजन का वह अंश जो कौओं को दिया जाता है। कागौर।

काकभुशुंडि—पुं० एक राम-भक्त ब्राह्मण जो लोमश ऋषि के शाप से कौआ हो गए थे।

काकमाची—स्त्री० [सं० काक√ मञ्च् (धारण करना) +अण्, ङीष् (पृषो०) नलोप] मकोय नामक पौधा और उसके फल।

काक-माता (तृ)—स्त्री० [ष० त०] = काकमाची।

काकमारी—स्त्री०= ककमारी (लता)।

काक-रव—पुं० [ष० त०] १. कौए का शब्द। २. [ब० स०] लाक्षणिक अर्थ में ऐसा व्यक्ति जो व्यर्थ में अथवा जरा-सी बात होने पर होहल्ला मचाने लगे। ३. कायर या डरपोक व्यक्ति।

काकरी—स्त्री०= ककड़ी।

काकरूक—पुं० [सं कु√ कृ (करना) + ऊक, कु= क] १. उल्लू। २. पत्नी का आज्ञाकारी और भक्त। जोरू का गुलाम।

काकरेज—पुं० [फा०] एक कार का गहरा काला रंग जिसमें ऊदे या नीले रंग की भी कुछ छाया होती हो।
वि० उक्त प्रकार के रंग का। काकरेजी।

काकरेजा—पुं० [फा०] काकरेज रंग का कपड़ा।

काकरेजी—वि० [फा०] ऐसा गहरा काला जिसमें ऊदे या नीलेपन की भी कुछ झलक हो।
पुं० उक्त प्रकार का रंग।

काकल—पुं० [कु-कल, व० स०, कु= क] [वि० काकली] १. गले के अंदर की घंटी। २. कौआ।

काकली—स्त्री० [सं० कु-कलि, प्रा० स०, कु= क, काकलि+ङीप्] १. ऐसा कल या नाद जो मंद तथा मधुर हो। कोमल तथा प्रिय ध्वनि या स्वर। २. संगीत में ऐसा मन्द तथा मधुर स्वर जो यह जानने के लिए उत्पन्न किया जाता है कि कोई जाग रहा है या सो रहा है। ३. घुँघची। ४. साठी धान। ५. काकली द्राक्षा (देखें)।

काकली-द्राक्षा—स्त्री० [सं० मध्य० स०] १. एक प्रकार का छोटा अंगूर या दाख जिसे सुखा कर किशमिश बनाते हैं। २. किशमिश।

काकली-निषाद—पुं० [सं० मध्य० स०] संगीत में निषाद स्वर का एक विकृत रूप।

काकली-रव—पुं० [ब० स०] [स्त्री० काकली-रवा] कोयल।

काकलोद—स्त्री० [सं आकुलता ?] मन में होनेवाली किसी प्रकार की आकुलता या विकलता।

काकांगा—स्त्री० [सं० काक-अंग, ब० स०, टाप्] काकजंघा।

काका—पुं० [फा० काका= बड़ा भाई] [स्त्री० काकी] १. पिता का छोटा भाई। चाचा। † २. छोटा बच्चा। (पश्चिम)
स्त्री० [सं०काक+ अच्, टाप्] १. काकजंघा। ममी। २. काकोली ३. घुँघची। ४. कठ-गूलर। कठमर। ५. मकोय।

काका कौआ—पुं०= काकातुआ।

काकाक्षिगोलक—पुं० [काक-अक्षिगोलक, प० त०]= काकगोलक (दे०)।

काकाक्षिगोलक-न्याय—पुं० [सं० कर्म० स०] उस स्थिति का सूचक नियम या सिद्धान्त जिसमें कोई तत्त्व या बात दोनों ओर या पक्षों में समान रूप से ठीक बैठती हो। (अर्थात् उसी प्रकार बैठती हो जिस प्रकार लोकमान्यता के अनुसार कौए की एक पुतली उसके दोनों गोलकों में फिरती है।)

काकातुआ—पुं० [मला० ककाटू] तोते की जाति का एक बड़ा पक्षी जो प्रायः अपनी सुन्दरता के लिए पाला जाता है।

काकारि—पुं० [काक-अरि, ब० स०] उल्लू।

काकिणी—स्त्री० [सं० √ कक् (लौल्य) + णिनि, ङीप्, णत्व]
१. प्राचीन भारत में मुद्रा का एक मान जो पण का चौथाई भाग अर्थात् २० कौड़ियों का होता था। २. एक प्राचीन तौल जो एक माशे की चौथाई होती थी। ३. कौड़ी। ४. गुंजा। घुँघची।

काकिनी—स्त्री०= काकिणी।

काकिल—पुं० [स० कु√कॄ(विक्षेप)+क, ऋ=इर्, र=ल, कु=क] मधुर ध्वनि या स्वर। काकली।

काकी—स्त्री० [सं० काक+ङीप्] काक अर्थात् कौए की मादा।
स्त्री० [हिं० काक] १. काका या चाचा की पत्नी। चाची। २. छोटी बच्ची या लड़की। (पश्चिम)

काकु—पुं० [सं०√कक्+उण्] १. वह विचित्र या परिवर्तित ध्वनि जो आश्चर्य, कष्ट, क्रोध, भय आदि के कारण मुँह से निकलती है। ऐसी बात जो अप्रत्यक्ष रूप से किसी का मन दुखाती हो। २. वक्रोक्ति अलंकार का एक भेद, जिसमें किसी की काकु उक्ति में कही हुई बात का दूसरे द्वारा अन्य अर्थ कल्पित किया जाता है। जैसे—नव रसाल वन विहरण सीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥
—तुलसीदास

काकुत्स्थ—पुं० [सं० ककुत्स्थ+अण्] ककुत्स्थ राजा के वंश में उत्पन्न व्यक्ति। २. श्रीरामचन्द्रजी।

काकुद—पुं० [सं० काकु √ दा (देना) +क] तालु।

काकुनी—स्त्री०= कंगनी (अन्न)।

काकुल—पुं० [फा०] कनपटी पर लटकते हुए ऐसे लंबे बाल जो सुंदर जान पड़े। जुल्फ।
मुहा०—काकुल छोड़ना=बालों की जुल्फें इधर-उधर निकालना या लटकाना। काकुल झाड़ना= बालों में कंघी करना।

काकु-वक्रोक्ति—स्त्री० [कर्म० स०] दे० काकु २.।

काकोदर—पुं० [काक-उदर ब० स०] [स्त्री० काकोदरी] साँप।

काकोल—पुं० [सं० कु√ कुल् (पीड़ित करना) + घञ्, कु= का] एक प्रकार का विष।

काकोली—स्त्री० [सं० काकोल+ ङीप्] एक प्रकार की वनस्पति जिसका कंद औषध के काम आता है।

काकोलूकीय-न्याय—पुं० [सं० काक-उलूक, द्व० स०, काकोलूक+छ-ईय, काकोलूकीय-न्याय, कर्म० स०] ऐसी स्थिति जो इस बात की सूचक हो कि यहाँ दोनों पक्षों में वैसा ही वैर है जैसे स्वभावतः कौवे और उल्लू में होता है।

काक्षी—स्त्री० [सं० कक्ष+ अण्+ङीप्] एक गंध द्रव्य। एक तरह की सुगंधित मिट्टी।

काग—पुं० [सं० काक] १. कौआ। वायस। २. श्राद्ध आदि में कौओं को दिया जानेवाला उनका अंश। जैसे—कागैं काग, न भिखारी भीख।—कंजूस के संबंध में कहा०।
पुं० [अं० कार्क] १. बलूत की जाति का एक बड़ा पेड़ जिसकी मुलायम लचीली और हल्की छाल से बोतलों, शीशियों आदि के मुँह बंद करने के लिए डाट बनते हैं। २. उक्त वृक्ष की छाल से बने हुए वे गोलाकार डाट जो बोतलों, शीशियों आदि के मुँह बंद करने के काम आते हैं।

कागज—पुं०[अ०] [वि० कागजी] १. कपड़े के चिथड़ों, कई प्रकार की घासों, बाँसों आदि को गलाकर उनके गूदे से बनाया जाने वाला एक प्रसिद्ध पदार्थ जिस पर कलम, पेंसिल आदि से लिखा जाता है।
मुहा०—कागज काला करना= (क) कागज पर कुछ लिखना। (ख) यों ही या व्यर्थ में लिखना। कागज रँगना= बहुत-से कागजों को व्यर्थ का विस्तार करते हुए लिख-लिखकर भरना। कागज के (या कागजी) घोड़े दौड़ाना= केवल पत्र आदि लिखकर कहीं या किसी के पास भेजना।
पद—कागज की नाव= ऐसी वस्तु जिसका अस्तित्व बहुत ही अस्थायी या क्षणिक हो।
२. ऐसा आवश्यक पत्र, लेख्य आदि जिनका कुछ विधिक महत्त्व हो। जैसे—वकील को कागज दिखाना।
पद—कागज-पत्र= दस्तावेज।

†३. समाचार-पत्र (बंगाल)।

कागजात—पुं० [अ० कागज़ का बहु०] बहुत-से कागज-पत्र।

कागजी—वि० [अ० कागज] १. कागज का बना हुआ। २. कागज पर लिखकर किया जानेवाला। जैसे—कागजी कार्रवाई। ३. कागज पर लिखा हुआ। जैसे—कागजी सबूत। ४. कुछ विशिष्ट फलों के संबंध में जिनका छिलका पतला, मुलायम या हलका हो। जैसे—कागजी नीबू, कागजी बादाम। पुं० कागज-विक्रेता।

कागजी नीबू—पुं० [हिं०] पतले तथा मुलायम छिलकेवाला एक प्रकार का बढ़िया नीबू।

कागजी बादाम—पुं० [फा०] एक प्रकार का बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षया पतला तथा मुलायम होता है। (कड़े और मोटे छिलकेवाला बादाम 'काठा' कहलाता है)।

कागद†—पुं०=कागज।

कागभुसुंड, कागभुसुंडि=काकभुसुंडि।

कागमारी—स्त्री० [?] एक प्रकार की नाव।

कागर*—पुं० [अ० कागज] १. लिखने का कागज। उदा०—सात सरग जौं कागर करई।—जायसी। २. पक्षियों के पंख या पर जो कागज की तरह पतले और हलके होते हैं।

कागरी*—वि० [हिं० कागर=कागज] १. कागज की तरह पतला और हलका। २. तुच्छ। हीन।

कागल—पुं०=कागज। उदा०—लिखि राखे कागल नख लेखरिया।—प्रिथीराज।

कागला†—पुं० [सं० कालक] १. गले की घंटी। २. कौआ। (राज०)

कागा—पुं० [सं० काक] काक (कौए) का संबोधन कारक में होनेवाला रूप। जैसे—कागा, नैन निकाल दूँ, पिया पास ले जाव।

कागावासी—स्त्री० [हिं० काग+वासी] सवेरे-सवेरे पी जानेवाली भाँग।

पुं० काले रंग का एक प्रकार का मोती।

कागारोल—पुं० [हिं० काग=कौवा+रोर=शोर] कौओं की तरह मचाया जानेवाला हो-हल्ला। बहुत अधिक और बेढंगा हुल्लड़ या शोरगुल।

कागिया—स्त्री० [देश०] तिब्बत में होनेवाली एक प्रकार की भेड़।

पुं० [हिं० काग=कौआ?] बाजरे की फसल में लगनेवाला एक प्रकार का काला कीड़ा।

कागौर—पुं० [सं० काकवलि] पितरों के श्राद्ध आदि में कव्य का वह भाग जो कौए के लिए निकाला जाता है।

काच—पुं० [सं० √कच् (बंधन)+घञ्] १. शीशा। २. काला नमक। ३. मोम। ४. खारी मिट्टी। ५. आँख का एक रोग।

काचक—पुं० [सं० काच+कन्] १. काँच। शीशा। २. पत्थर। ३. खार।

काच-मणि—पुं० [उपमि० स० या मयू० स०] बिल्लौर। स्फटिक।

काच-मल—पुं० [प० त०] काला नमक या सोडा।

काचरी (ली)—स्त्री० १. =केंचुली। २. =कचरी।

काच-लवण—पुं० [मध्य० स०] काला नमक।

काचा*—वि०=कच्चा।

काची†—स्त्री० [हिं० कच्चा] १. मिट्टी की हाँड़ी जिसमें दूध उबाला तथा रखा जाता है। २. तीखुर, सिंघाड़े आदि का हलुआ।

काचो*—वि०=कच्चा।

काछ—स्त्री० [सं० कक्ष:] १. पेड़ू और जाँघ तथा उसके नीचे का स्थान। २. धोती का वह भाग जो कमर में खोंसा जाता है। लाँग। ३. अभिनय के समय नटों का वेश धारण करना।

मुहा०—**काछ काछना**=भेस बनाना।

†पुं०=कोख।

काछन*—स्त्री० [हिं० काछना] काछने की क्रिया या भाव।

स्त्री०=काछनी।

काछना—स० [हिं० काछ] १. धोती आदि के एक या दोनों पल्लों या लाँगों को दोनों टाँगों के बीच में से पीछे की ओर निकाल कर कमर में कस कर खोंसना। २. भेस बदलना या भेस धारण करना। ३. सजा कर तैयार करना। उदा०—ऊपर नाच अखारा काछा—जायसी।

स० [सं० कपण] उँगली या हथेली से कोई तरल पदार्थ समेट कर इकट्ठा करना या उठाना। जैसे—कटोरी में से घी या तेल काछना।

काछनी—स्त्री० [हिं० काछना] १ धोती पहनने का वह ढंग जिसमें दोनों ओर की लाँगें पीछे की ओर खोंसी जाती हैं। २. उक्त प्रकार से पहनी हुई धोती। ३. घाघरे की तरह का एक प्रकार का पहनावा जो प्रायः घुटनों तक का होता है।

काछा—पुं० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] १. पेड़ू के नीचे और रानों के बीच का स्थान।

मुहा०—**(चलने में) काछा लगाना**=दोनों रानों का आपस में रगड़ खाना।

२. धोती का वह अंश जो उक्त स्थान पर से ले जाकर पीछे की ओर खोंसा जाता है। लाँग।

मुहा०—**काछा कसना**=कोई काम करने के लिए कमर कसकर तैयार होना। **काछा खोलना**=(क) साहस या हिम्मत छोड़ना। कायरता दिखाना। (ख) संभोग करना। **काछा लगना**=धोती के उक्त अंग की रगड़ के कारण रान में या उसके आस-पास घाव या फुंसियाँ होना। ३. अभिनय के समय का नटों का वेश। ४. बदला या बनाया हुआ भेस।

मुहा०—**काछा कछना**=भेस बनाना। स्वाँग रचना। उदा०—(क) सब काछ कसे सब नाच नचे उस रसिया छैल रिझाने को।—नजीर। (ख) जैसा काछा काछिए वैसा नाच नाचिए।—कहा०।

काछी—पुं० [सं० कच्छ=जलप्राय देश] तरकारी बोने और बेचनेवालों की एक जाति।

†वि०=कच्छी (कच्छ देश का)।

†वि० [हिं० काछ=कक्ष] काछ या कोखवाला।

काछू*—पुं०=कछुआ। उदा०—चेला मच्छ, गुरु जिमि काछू।—जायसी।

काछे*—क्रि० वि० [सं कक्ष, प्रा० कच्छ] निकट। पास। नजदीक।

काज—पुं० [सं० कार्य, प्रा० कज्ज] १. वह जो कुछ किया जाय। काम। कार्य।

मुहा०—किसी के काज घटना=काम आना। उदा०—सब विधि घटब काज मैं तोरे।—तुलसी। काज सँवारना=किसी बिगड़े हुए या अधूरे काम को ठीक प्रकार से संपादित करना।

२. कोई मंगल या शुभ कार्य। ३. व्यवसाय। व्यापार। ४. प्रयोजन। हेतु।

पुं० [पुर्त्त० कासा] सिले हुए कपड़ों में बनाये जानेवाले वे छेद जिनमें बटन आदि फँसाये या लगाये जाते हैं।

काजर†—पुं०=काजल।

काजररानी—पुं० [देश०] अगहन में होनेवाला एक प्रकार का धान। उदा०—रामभोग औ काजररानी।— जायसी।

काजरी*—स्त्री०=कजरी।

काजल—पुं० [सं०, पा० प्रा० कज्जलम्; उ०, पं० कज्जल; गु०, मरा० काजल; ने० गाजल; बँ० काजल] आँखों में लगाने का काले रंग का वह प्रसिद्ध पदार्थ जो तेल, घी आदि के जलने से होनेवाले धूएँ को जमाकर तैयार किया जाता है।

विशेष—यह प्रायः आखों का सौंदर्य बढ़ाने अथवा आँख का कोई साधारण रोग दूर करने के लिए लगाया जाता है।

क्रि० प्र०— डालना।— लगाना।

मुहा०—आँखों में काजल घुलाना=अच्छी तरह और बहुत काजल लगाना। काजल पारना=दीपक के धूँए की कालिख को काजल के रूप में जमाकर इकट्ठा करना। काजल सारना=आँखों में काजल लगाना।

पद—काजल का तिल=काजल की वह छोटी बिंदी जो स्त्रियाँ शोभा के लिए गाल, चिबुक आदि पर लगाती हैं। काजल की ओवरी या कोठरी=ऐसा दूषित या बुरा स्थान जहाँ जाने पर कलंक लगना अवश्यंभावी हो। उदा०— काजल की कोठरी में कैसहू सयानो जाय, काजर की रेख एक लागिहै पै लागिहै।

काजी—पुं० [अ०] वह व्यक्ति या अधिकारी जो मुसलमानी धर्म के अनुसार धर्म-अधर्म संबंधी विवादों का निर्णय करता हो।

काजू—पुं० [कोंक० काज्जु] १. एक वृक्ष जिसके फलों की गिनती सूखे मेवों में होती है। २. उक्त वृक्ष का फल जो बादाम की तरह परन्तु सफेद रंग का होता है।

काजू भोजू—वि० [हिं० काज+भोग] ऐसी कमजोर या साधारण चीज जिससे बहुत ही कम समय तक और साधारण काम लिया जा सके। 'टिकाऊ' का विपर्याय।

काजें*—अव्य० [सं० कार्य्य] लिए। वास्ते। (व्रज०)

काट—स्त्री० [हिं० काटना] १. कैंची, छुरी, तलवार आदि से काटने की क्रिया या भाव। जैसे—यह तलवार अच्छी काट करती है।

पद—काट-कूट, काट-छाँट, मार-काट (दे०)

२. सीये जानेवाले कपड़े को काटने का विशिष्ट ढंग या प्रकार। कटाव। जैसे—नई काट की कमीज या कुरता। ३. किसी जीव के काटने अथवा किसी वस्तु के लगने से होनेवाला घाव, छरछराहट या जलन। जैसे—बंदर या मच्छर की काट। ४. ऐसी क्रिया या योजना जो किसी के आघात, युक्ति आदि को रोकने या खण्डन करने के लिए की जाय। जैसे—कुश्ती में किसी दाँव या पेंच की काट। ५. ऐसी क्रिया या योजना जो किसी पर आघात या वार करने के लिए की जाय। ६. कपटपूर्ण आचरण, युक्ति या व्यवहार। चालबाजी। ७. किसी वस्तु को आवश्यक या उपयुक्त रूप देने अथवा किसी स्थिति को अपने अनुकूल बनाने के लिए की जानेवाली क्रिया या युक्ति कतर-ब्योंत। ८. वह अंश जो किसी चीज में से कट-छँटकर और किसी प्रकार निकलकर अलग हो गया हो। तरछट। जैसे— एक बोतल तेल में से तनी काट निकली है। ९. गणित में कलम या लकीर से कोई अंक, पद, लेख आदि काटने की क्रिया या भाव। १०. अंक, लेख आदि को रद करने के लिए खींची जानेवाली लकीर।

काट-कपट—पुं० [हिं० काट+ कपट] किसी को काटकर अलग-अलग करने अथवा किसी प्रकार की हानि पहुँचाने के लिए की जानेवाली कपटपूर्ण युक्ति।

काटकी—स्त्री० [हिं० काट+की] काठ की बनी हुई वह छड़ी जिसे मदारी हाथ में लेकर बंदर, भालू आदि नचाते हैं।

काट-कूट—स्त्री० [हिं० काट-कूट अनु०] १. किसी चीज विशेषतः लेख आदि में जगह जगह काटे-छाँटे और घटाये-बढ़ाये हुए होने की अवस्था, क्रिया या भाव। जैसे—इस कापी में बहुत जगह काट-कूट हुई है। २. दे०—काट-छाँट।

काट-छाँट—स्त्री० [हिं० काटना+ छाँटना] १. काटने और काटकर छाँटने या निकालने की क्रिया, भाव या ढंग। जैसे—(क) पुस्तक, मसौदे या लेख में होनेवाली काट-छाँट। (ख) हिसाब की काट-छाँट। २. ऐसी चीज की बनावट या रचना का ढंग अथवा प्रकार जिसमें प्रायः फालतू अंग काट या छाँटकर अलग किये जाते हों अथवा आवश्यक तथा उपयोगी अंश बचा लिये जाते हों। जैसे—कमीज, कुरते या मूर्ति की काट-छाँट। ३. किसी प्रकार से की जानेवाली कमी-बेशी या घटाव-बढ़ाव।

काटन†—स्त्री०= कतरन।

काटना—स० [सं० कर्त्तन, प्रा० कट्टन] [भाव० कटाई, कटाव] **धारदार औजारों, शस्त्रों आदि के प्रसंग में—**१. किसी चीज पर इस प्रकार आघात करना कि वह दो या अधिक टुकड़ों अथवा भागों में बँटकर अलग हो जाय। जैसे—कुल्हाड़ी से पेड़ या उसकी डालें काटना; तलवार से किसी का सिर या हाथ काटना; छेनी से चाँदी या सोने की सिल काटना आदि। उदा०— (क) काटइ निज कर सकल सरीरा।—तुलसी। (ख) छन महँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिशाच।— तुलसी। २. किसी कड़ी या भारी चीज को कोई नया रूप देने के लिए उस पर निरंतर उक्त प्रकार के आघात करना। जैसे— गुफा, मंदिर या मैदान बनाने के लिए चट्टान या पहाड़ काटना। ३. एक अथवा दोनों ओर से इस प्रकार दबाना, रगड़ना या रेतना कि किसी चीज के बीच का तल या स्तर कई टुकड़ों या भागों में बँटकर अलग हो जाय। जैसे—(क) कैंची से कपड़ा या कागज काटना। (ख) हँसिया से घास या फसल काटना।

पद—काटो तो खून नहीं= किसी भीषण, लज्जाजनक या विकट परिस्थिति में पड़ने अथवा ऐसी ही कोई बात सुनने पर किसी व्यक्ति का ऐसी दशा में हो जाना कि मानो उसके शरीर में रक्त (अर्थात् जीवन का मूल तत्त्व या लक्षण) रह ही नहीं गया। किसी अनिष्ट घटना या बात के कारण निश्चेष्ट, सुन्न या स्तब्ध हो जाना।

४ किसी आधार या तल में इस प्रकार गड्ढे या रेखाएँ बनाना कि उनमें से किसी चीज के आने-जाने या निकलने के लिए मार्ग बन जाय अथवा ऐसे ही और कामों के लिए विभाग बन जायँ। जैसे— किसी प्रदेश में नहर या सड़क काटना ; खेत या बगीचे में क्यारियाँ काटना। ५. इधर-उधर से कतर या छाँटकर किसी उद्दिष्ट या उपयोगी रूप में लाना। जैसे—थान में से कुरता या कमीज काटना ; झाड़ियों में से मोर, शेर आदि की आकृतियाँ काटना। (कट, उक्त सभी अर्थों के लिए) **जीव-जंतुओं या प्राणियों के प्रसंग में—** ६. किसी चीज पर इस प्रकार जोर से दाँत गड़ाना कि उसमें का कुछ अंश कटकर अलग हो जाय या मुँह में आ जाय। कुतरना। जैसे—बच्चों का दाँतों से फल या रोटी काटना ; चूहों का कपड़े या कागज काटना। ७. किसी के शरीर पर उक्त क्रिया इस प्रकार करना कि उसमें क्षत या घाव हो जाय। जैसे— आदमी को कुत्ते या बंदर का काटना।

मुहा०— (किसी को)काटने दौड़ना = बहुत क्रोध में भर कर या खिजला कर इस प्रकार आवेशपूर्ण कटु बातें कहना कि देखनेवाले समझें कि यह जानवरों की तरह काटने पर उतारू हो गया है। जैसे—उसका स्वभाव इतना चिड़चिड़ा हो गया है कि वह बात-बात में काटने दौड़ता है।

८. किसी के शरीर में इस प्रकार डंक या दाँत गड़ाना या धँसाना कि उसमें जहर भर जाय अथवा जलन या पीड़ा होने लगे। जैसे— खटमल, बर्रे, मच्छर या साँप का काटना। ९. कुछ विशिष्ट प्रकार के कीड़ों-मकोड़ों का कोई चीज कुतरकर खा जाना। जैसे— कीड़े-मकोड़ों का ऊनी या रेशमी कपड़े अथवा पुस्तकों की जिल्द काटना। (बाइट, अंतिम चारों अर्थों के लिए) **फुटकर प्रसंगों और लाक्षणिक रूपों में—** १०. आगे बढ़ने या मार्ग निकालने के लिए बल या वेग के द्वारा सामनेवाली चीज या तत्त्व इधर-उधर करना या हटाना। जैसे—नदी-नालों का अपने रास्ते में के पहाड़ काटना; नाव का आगे बढ़ने के लिए पानी काटना ; हवाई जहाज का उड़ने के समय हवा काटना। ११. दबाव, रगड़ या ऐसी ही और किसी क्रिया से ऐसा जोर पहुँचाना कि कुछ अंश अपने मूल आधार से अलग हो जाय। जैसे—गुड्डी या पतंग लड़ाने में किसी की डोर या नख काटना ; घोड़े का बाल बाँधकर शरीर में का मसा काटना। १२. जोर लगाकर इस प्रकार घिसना, पीसना या रगड़ना कि किसी चीज के बहुत ही छोटे-छोटे या बारीक अंश या टुकड़े हो जायँ। जैसे—सिल पर (बट्टे से) भाँग या मसाला काटना। १३. नाम, पद, लेख आदि पर ऐसा चिह्न या रेखा बनाना कि उस क्षेत्र या प्रसंग में उसका कोई अस्तित्व या महत्त्व न रह जाय अथवा उसका होना न होने के बराबर हो जाय। जैसे— विद्यालय से लड़के का अथवा सूची में से पुस्तक का नाम काटना। १४. किसी क्रिया या प्रकार से कोई अंग या अंश अलग करना या निकाल लेना। जैसे— रेलगाड़ी में से डब्बा काटना। अनुपस्थिति के कारण नौकर का वेतन काटना। १५. अनुचित अथवा आपत्तिजनक रूप से कहीं से कुछ उड़ा, निकाल या हटा लेना। जैसे—चोरों का रेल के डब्बे में से माल काटना; लुच्चों और शोहदों का रईसों के साथ लगकर माल काटना।

मुहा०—(किसी का)गला काटना=चालाकी या छल-कपट से किसी का धन या संपत्ति लेकर उसे दरिद्र या दीन बनाना। जैसे—हजारों गरीबों का गला काटकर ही तो लोग लखपती और करोड़पती बनते हैं।

१६. किसी कठोर, तीक्ष्ण या तीव्र पदार्थ का शरीर में लगकर या उससे रगड़ खाकर उसमें चुन-चुनाहट, छरछराहट या कष्टदायक संवेदन उत्पन्न करना। जैसे–(क)तंग जूता पैर में काटता है। (ख) सूरन की तरकारी गला काटती है (अर्थात्) उसमें चुनचुनाहट उत्पन्न करती है। (ग)जाड़े में ठंडा पानी या ठंडी हवा काटती है। १७. किसी काम, चीज या बात का अप्रिय या अरुचिकर होने के कारण बहुत ही कष्ट-दायक प्रतीत होना। जैसे—परिश्रम का काम तो तुम्हें काटता है।

मुहा०—किसी चीज का काटे खाना=बहुत ही अप्रिय और कष्टदायक जान पड़ना। जैसे—बच्चों के न रहने से घर काटे खाता है।

१८. कहीं जमी, बैठी या लगी हुई चीज को किसी प्रकार वहाँ से निकाल या हटाकर अलग या दूर करना। जैसे—साबुन लगाकर कपड़े का मैल काटना। १९. गुण, प्रभाव, शक्ति आदि से अथवा किसी क्रिया या प्रकार से किसी चीज या बात का अन्त या समाप्ति करना। बिल-कुल न रहने देना। जैसे—तीर्थ-यात्रा या देव-दर्शन करके अपने पाप काटना। २०. चलकर रास्ता पार करना। जैसे—पहले आधा रास्ता तो काट लो, तब बैठ कर सुस्ताना।

मुहा०—चक्कर काटना=(क) किसी घेरे या परिधि में बार-बार घूमना। (ख) बार-बार कहीं जाना और वहाँ से आना। जैसे—महीनों से उनके यहाँ चक्कर काट रहे हैं, पर वे कुछ सुनते ही नहीं।

२१. कष्टपूर्वक या जैसे-तैसे दिन (अथवा समय) बिताना। जैसे—(क) इधर-उधर की बातों में सारा दिन काटना। (ख) गरीबी में समय काटना। (ग) कारागार या जेल में सारी उमर काटना। २२. एक रेखा के ऊपर से किसी भिन्न दिशा से दूसरी रेखा स प्रकार ले जाना कि दोनों के मिलन-बिंदु के चारों ओर कोण बन जायँ। जैसे—(ज्यामिति में) एक रेखा से दूसरी रेखा काटना। २३. किसी रास्ते पर से या सामने से (रेखा बनाते हुए) निकल जाना। (अमांगलिक या अशुभ सूचक) जैसे—यात्रा के समय किसी काने आदमी या बिल्ली का आकर रास्ता काटना।

मुहा०—किसी का रास्ता काटना=किसी की गति या मार्ग में बाधक होना। रुकावट डालना। **(किसी की) बात काटना**=जब कोई कुछ कह रहा हो, तब बीच में बोलकर उसकी बात में बाधक होना। जैसे—जब कोई बोल रहा हो तब बीच में उसकी बात काटकर बोलने लगना अच्छा नहीं होता।

२४. किसी के कथन, मत, विचार या सिद्धांत को अप्रामाणिक या असत्य सिद्ध करके उसका खंडन करना। अमान्य ठहराना या बतलाना। जैसे—आपकी नई खोज ने तो अब तक के सभी मत काट दिये हैं। २५. गणित में किसी छोटी संख्या से किसी ऐसी बड़ी संख्या को भाग देना कि शेष कुछ न बचे। जैसे—२५ को ५ से या ४० को ८ से काटना।

काट-फाँस—स्त्री० [हिं० काटना+फाँसना या फँसाना] १. किसी को काटकर अलग करने और किसी को फँसाकर अपने वश में लाने की क्रिया या भाव। २. कपट-पूर्ण युक्तियाँ। कतर-ब्योंत। चाल-बाजी। ३. लोगों को आपस में लड़ाने आदि के लिए चली जानेवाली चालें या की जानेवाली युक्तियाँ।

काटर*—वि० [सं० कठोर] १. कड़ा। कठोर। २. कट्टर।

वि० [हिं० काटना] काटनेवाला। काटू।

काटुक—पुं० [सं० कटुक+अण्] १. अम्लता। खटास। २. कटुता। कड़ुआपन।

काटू—वि० [हिं० काटना] १. (पशु) काट खानेवाला। २. (व्यक्ति) जो हर बात में काटने को दौड़े। चिड़चिड़ा। ३. डरावना। भयानक।

पुं० [अं० कैश्यूनट] हिजली बदाम नाम का वृक्ष।

काठ—पुं० [सं० काष्ठ; प्रा० कट्ठ; गु०, पं०, बं०, काठ; सिं० काठु; सिंह० कट; का० कूट; मरा० काठी] १. वह पदार्थ जिससे वृक्षों, झाड़ियों आदि के तने, शाखाएँ आदि बनी होती है। लकड़ी।

यौ०—काठ-कबाड़। (देखें)

पद—**काठ का उल्लू**=बहुत बड़ा या निरा बेवकूफ। वज्र मूर्ख। **काठ का घोड़ा**=(क) अरथी या टिकठी जिस पर रखकर शव को अंत्येष्टि के लिये ले जाते हैं। (ख) बैसाखी जिसके सहारे लंगड़े-लूले चलते हैं। **काठ की हाँड़ी**=ऐसी वस्तु जिससे एकाध बार से अधिक काम न लिया जा सके। (छल-कपट आदि के प्रसंग में) जैसे—क्या हुआ जो वे झूठ बोलकर एक बार मुझ से रुपए ले गये। काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती। उदा०—जैसे हाँड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार।

विशेष—यदि कोई काठ की हाँड़ी बनाकर उसमें कोई चीज पकाना चाहे तो वह अधिक-से-अधिक एक ही बार और वह भी जैसे-तैसे अपना काम चला सकता है। इसी तथ्य के आधार पर यह पद बना है।

२. चूल्हे आदि में जलाने की लकड़ी। ईंधन। ३. मध्य-युग में लकड़ी का एक प्रकार का उपकरण, जिसमें बहुत बड़ी और भारी लकड़ी में दो छेद करके उसमें अपराधी या दंडित व्यक्ति के पैर इस प्रकार फँसा दिये जाते थे कि वह उठ-बैठ या भाग न सके। कलंदरा।

मुहा०—**(किसी को) काठ मारना**=किसी को दंड देने के लिए उसके पैरों में उक्त उपकरण लगाना या फँसाना। **काठ में (किसी के) पाँव ठोंकना या देना**=अपराधी या दंडनीय व्यक्ति के पैर उक्त प्रकार के उपकरण में फँसाकर उसे एक स्थान पर बैठा देना। (एक प्रकार का दंड)। **काठ में (अपने) पाँव डालना या देना**=जान-बूझकर किसी बहुत बड़ी विपत्ति या संकट में पड़ना।

४. लाक्षणिक अर्थ में ऐसी वस्तु जो सूख कर काठ के समान कठोर या निश्चेष्ट हो गई हो।

मुहा०—**(किसी को) काठ मार जाना**=आश्चर्य, कष्ट, शोक आदि की दशा में स्तब्ध हो जाना। जैसे—यह बात सुनते ही मुझे तो काठ मार गया। **(वस्तु का) काठ होना**=सूखकर इतना कड़ा हो जाना कि काम में आने के योग्य न रह जाय। **(व्यक्ति का) काठ होना**=(क) बेहोशी, मौत आदि के कारण जड़वत, निश्चेष्ट या संज्ञा-शून्य होना। चेतना-रहित होना। (ख) बहुत अधिक आश्चर्य, भय आदि के कारण स्तंभित होना। (ग) काठ की तरह सूख जाना। दुर्बल होना।

५. कठ-पुतली। उदा०—कतहुँ पखंडी काठ नचावा।—जायसी।

काठ-कटौअल—स्त्री० [हिं० काठ+काटना] आँख-मिचौनी की तरह का लड़कों का एक खेल, जिसमें उन्हें दौड़-दौड़ कर किसी काठ को छूना पड़ता है।

काठ-कबाड़—पुं० [हिं० काठ+कवाड़] काठ की बनी परन्तु (क) टूटी-फूटी वस्तुएँ। (ख) टूटा-फूटा तथा निरर्थक सामान।

काठ-कोड़ा—पुं० [हिं० काठ+कोड़ा] मध्य-युग का एक प्रकार का दंड, जिसमें किसी के पाँव में काठ डालकर ऊपर से उसे कोड़ों से मारते थे।

क्रि० प्र०—चलना।

काठ-कोयला—पुं० [हिं० काठ+कोयला] वृक्षों की लकड़ियाँ जलाकर तैयार किया जानेवाला कोयला। (चार-कोल)।

काठड़ा†—पुं० [स्त्री० काठड़ी]=कठड़ा (कठौता)।

काठनीम—पुं० [हिं० काठ+नीम] एक प्रकार का वृक्ष, जिसे गंधेल भी कहते हैं।

काठबेर†—पुं० दे० 'घूंट' (वृक्ष)।

काठबेल—स्त्री० [हिं० काठ+बेल] इंद्रायन की जाति की एक बेल।

काठा—वि० [हिं० काठ] १. काठ का बना हुआ। २. (फल) जिसका ऊपरी छिलका बहुत कड़ा और मोटा हो; अथवा जिसका गूदा काठ के समान कड़ा हो। जैसे—काठा बादाम, काठा केला।

काठिन्य—पुं० [सं० कठिन+ष्यञ्]=कठिनता।

काठियावाड़—पुं० [हिं० काँठ=समुद्रतट+वाड़=द्वार] पश्चिमी भारत का एक प्रदेश जो आधुनिक द्विभाषी बम्बई राज्य के अन्तर्गत है।

काठियावाड़ी—पुं० [हिं० काठियावाड़] १. काठियावाड़ का निवासी। २. काठियावाड़ का घोड़ा।

स्त्री० काठियावाड़ की बोली या भाषा।

वि० काठियावाड़ का। काठियावाड़-संबंधी।

काठी—स्त्री० [हिं० काठ] १. ऊँटों, घोड़ों आदि की पीठ पर कसने की जीन जिसमें नीचे की ओर काठ लगा रहता है। यह आगे और पीछे की ओर कुछ उठी होती है। २. शरीर की गठन या बनावट। ३. कटार, तलवार आदि की म्यान। ४. छड़ी। लकड़ी। (राज०)

वि० [काठियावाड़] काठियावाड़ का (घोड़ा)।

काठू—पुं० [हिं० काठ] कूटू की तरह का एक पौधा।

काठों—पुं० [हिं० काठ] पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का मोटा धान।

काड़ी—स्त्री० [सं० काण्ड] १. अरहर का सूखा डंठल या पौधा। रहटा। २. दे० 'कांड़ी'।

काढ़ना—स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] १. आधार, पात्र आदि में से कोई चीज बाहर निकालना। जैसे—कूएँ में से पानी काढ़ना। २. आवरण हटाकर दिखाना। सामने लाना। ३. घी, तेल आदि में कोई चीज तलना। ४. सूई-धागे से कपड़े पर बेल-बूटे निकालना या बनाना। ५. लकड़ी, पत्थर आदि पर बेल-बूटे बनाना। उरेहना। ६. उधार लेना। जैसे—ऋण काढ़ना।

स० [सं० क्वाथन] किसी तरल पदार्थ को उबाल या औटाकर गाढ़ा करना। जैसे—काढ़ा या दूध काढ़ना।

काढ़ा—पुं० [हिं० काढ़ना=औटाना] वनस्पतियों, विशेषतः ओषधियों को उबालकर निकाला हुआ रस। क्वाथ। जोशांदा। (डिकोक्शन)

काण—वि० [सं०√कण् (बन्द करना)+घञ्] काना। एकाक्ष।

†पुं०=कान।

†स्त्री०=कानि।

काणेय—पुं० [सं० काणा+ढक्—एय] कानी स्त्री का बेटा।

काणेर—पुं० [सं० काणा+ढ्रक्—एर]=काणेय।

काणेली—स्त्री० [सं०] अपवित्र स्त्री।

काण्व—वि० [सं० कण्व+अण्] कण्व ऋषि से संबंध रखनेवाला। कण्व का।

पुं० कण्व ऋषि के अनुयायी या वंशज।

कातंत्र—पुं० [सं० कु-तंत्र, ब०स०, कु=कादेश] सर्ववर्मा का बनाया हुआ एक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ। कलाप व्याकरण।

कात—पुं० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] १. भेड़ों के बाल काटने की कैंची। २. मुरगे के पैर में निकलनेवाला काँटा।

कातक†—पुं०=कार्तिक।

कातना—स० [सं० कृत; पा० कत्त; पं० कत्तना; गु० कातवूं; मरा० कातणें] [भाव० कताई] चरखे या तकली की सहायता से अथवा यों ही हाथ से ऊन, रूई, रेशम आदि के रेशों से बटकर धागा या सूत बनाना (स्पिनिंग)

मुहा०—महीन कातना=बहुत गढ़-गढ़कर और बारीकी से (अर्थात् अपना विशेष कौशल या योग्यता दिखलाते हुए) बातें करना। (व्यंग्य और हास्य)

कातर—वि० [सं० क-आ√तॄ (तरना)+अच्] [भाव० कातरता] १. भय से काँपता हुआ। भयभीत। २. डरपोक। भीरु। ३. जो कष्ट या दुःख में पड़ने पर निराश या हतोत्साह होने के कारण अधीर हो रहा हो। जैसे—कातर भाव से प्राणरक्षा की प्रार्थना करना।

पुं० [सं० कर्तृ=कातने या घूमनेवाला] १. कोल्हू में वह तख्ता जिस पर आदमी बैठकर आगे जुते हुए बैलों को हाँकता है और जो जाठ के साथ-साथ चारों ओर घूमता है। २. घड़ों आदि को बाँधकर बनाया हुआ बेड़ा। घड़नैल।

पुं० [सं० कर्त्तरी] बंदर या भालू का जबड़ा (कलंदर)।

स्त्री० [?] एक प्रकार की मछली।

कातरता—स्त्री० [सं० कातर+तल्, टाप्] १. कातर होने की अवस्था या भाव। २. कष्ट या दुःख के समय होनेवाली विकलता। बेचैनी। ३. अधीरता।

कातरोक्ति—स्त्री० [सं० कातर-उक्ति, प० त०] दुःख या संकट में पड़कर और अधीर या निराश होकर दीनतापूर्वक कही जानेवाली बात या की जानेवाली प्रार्थना।

कातर्य—पुं० [सं० कातर+ष्यञ्]=कातरता।

काता—पुं० [हिं० कातना] १. काता हुआ सूत। डोरा। तागा। २. एक प्रकार की मिठाई जो देखने में बहुत महीन कते हुए सूत के लच्छों की तरह होती है। बुढ़िया का काता।

पुं० [सं० कर्त्तन] बाँस काटने या छीलने का एक प्रकार का औजार।

कातिक—पुं० [सं० कार्त्तिक] कार्त्तिक मास।

पुं० [?] एक प्रकार का बड़ा तोता।

कातिकी†—वि०=कार्तिकी।

कातिग—पुं०=कार्तिक।

कातिब—पुं० [अ०] १. लेखों आदि की प्रतिलिपि करनेवाला व्यक्ति। २. वह जिसने कोई दस्तावेज या लेख्य लिखा हो अथवा जो लेख्य आदि लिखने का व्यवसाय करता हो।

कातिल—वि० [अ०] १. कत्ल या हत्या करनेवाला। हत्यारा। २. प्राण लेने या प्राण संकट में डालनेवाला। बहुत अधिक घातक।

काती—स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती] १. कैंची। जैसे—लोहारों या सोनारों की काती। २. चाकू। छुरी। उदा०—तजि ब्रजलोक पिता अरु जननी कंठ लाय गरु काती।—सूर। ३. एक प्रकार की छोटी तलवार।

कातीय—वि० [सं० कात्यायन+छ—ईय, फक् प्रत्यय का लुक्] कात्यायन-संबंधी।

कात्य—वि० [सं० कत+यञ्] कत ऋषि-संबंधी।

पुं० १. कत ऋषि के गोत्र का व्यक्ति। २. दे० 'कात्यायन'।

कात्यायन—पुं० [सं० कत+यञ्+फक्—आयन] [स्त्री० कात्यायनी] १. व्याकरण के एक प्रसिद्ध आचार्य, जिन्होंने वार्तिक लिखकर पाणिनि के सूत्रों की अभिपूर्त्ति की थी। २. एक ऋषि, जो सामाजिक और धार्मिक विधियों के आचार्य माने गये हैं।

कात्यायनी—स्त्री० [सं० कात्यायन+ङीप्] १. कत गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २. कात्यायन ऋषि की पत्नी। ३. वह विधवा जो कषाय वस्त्र पहनती हो। ४. दुर्गा की एक मूर्ति या रूप।

कात्यायनीय—वि० [सं० कात्यायन+छ—ईय] कात्यायन द्वारा रचित (ग्रन्थ)।

काथ†—पुं० १. =कत्था (खैर)। २. [स्त्री० काथरी] =कंथा (गुदड़ी)।

कादंब—वि० [सं० कदंब+अण्] १. कदंब-संबंधी। कदंब या कदम (वृक्ष या फल) का। २. कदंब या समूह-संबंधी। सामूहिक।

पुं० १. कदंब का पेड़ या फल। कदम। २. प्राचीन काल की एक प्रकार की मदिरा जो कदंब या कदम से बनती थी। ३. ईख। ऊख। ४. तीर। बाण। ५. एक प्रकार का हंस। कलहंस। ६. दक्षिण भारत का एक प्राचीन राजवंश।

कादंबर—पुं० [सं० कादंब√ला (आदान)+क, र=ल] १. एक प्रकार की मदिरा जो कदंब के फूलों से बनाई जाती थी। २. हाथी का मद। गजमद। ३. दही के ऊपर की मलाई। ४. ईख के रस का गुड़।

कादंबरी—स्त्री० [सं० कु-अंबर, ब० स०, कु=क, कदंबर=बलराम+अण्, ङीप्] १. कोकिल। कोयल। २. मैना पक्षी। ३. मदिरा। शराब। ४. वाणी। ५. वाणी की देवी। सरस्वती। ६. बाण भट्ट की लिखी हुई एक प्रसिद्ध कथा या कहानी जो उसकी नायिका के नाम पर बनी थी।

कादंबिनी—स्त्री० [सं० कादंब+इनि, ङीप्] १. बादलों का समूह। मेघमाला। २. मेघ राग की एक रागिनी।

कादर—वि० [सं० कातर] १. कायर। डरपोक। २. अधीर। ३. बेचैन। विकल। उदा०—कादर करत मोहिं बादर नये नये।

कादव†—पुं०=काँदो (कीचड़)।

कादा—पुं० [?] लकड़ी की पटरी जो जहाज के शहतीरों और कड़ियों के नीचे उन्हें जकड़े रखने के लिए जड़ी रहती है। (लश०)

कादिम*—पुं०=कर्दम।

कादिर—वि० [अ०] १. कुदरत या शक्ति रखनेवाला। शक्तिशाली

और समर्थ। २. भाग्यवान्।

पुं० ईश्वर का एक नाम।

कादिरी—स्त्री० [अ०] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की कुरती या चोली।

कादो—पुं० [सं० कर्दम; प्रा० कद्दम] १. कीचड़। २. गारा। उदा०—करि ईंट नीलमणि कादो कुंदण।—प्रिथीराज।

काद्रवेय—पुं० [सं०कद्रु+ढक्—एय] अनंत, तक्षक, वासुकी, शेष आदि सर्प जो कद्रु से उत्पन्न कहे गये हैं और जिनका निवास पाताल में माना गया है।

कान—पुं० [सं० कण; पा०, प्रा० कण्ण; पं० कन्न; उ०, गु०, मरा०, कान; कन्न० कनु; सिं० कण] १. प्राणियों की वह इंद्रिय जिसके द्वारा वे शब्द सुनते हैं। श्रवण की इंद्रिय। श्रुति। श्रोत्र।

विशेष—यह इंद्रिय सिर में प्रायः आँखों के दोनों ओर होती हैं। जो प्राणी अंडे देते है उनके कान प्रायः अन्दर धँसे हुए होते हैं; और जो प्रत्यक्ष सन्तान का प्रसव करते है उनके कान बाहर निकले हुए होते हैं।

मुहा०—कान उठाना, ऊँचे करना या खड़े करना=पशुओं आदि के संबंध में शत्रु की आहट मिलने या संकट की संभावना होने पर कान ऊपर उठाना जो उनके सचेत होने का सूचक है। **कान उड़ जाना या उड़े जाना**=कान फटना (दे०)। **(किसी के) कान उमेठना**=दंड देने के हेतु किसी का कान मरोड़ना या मसलना। **(अपने) कान उमेठना**=भविष्य में कोई काम न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना। **(किसी बात पर) कान करना**=ध्यानपूर्वक कोई बात सुनना और उसके अनुसार आचरण करना। **कान कतरना**=कान काटना (दे०)। **(किसी के) कान काटना**=चालाकी या धूर्तता में किसी से बहुत बढ़कर होना। जैसे—ये तो बड़े-बड़े धूर्तों के कान काटते हैं। **कान का मैल निकलवाना**=अच्छी तरह बात सुन सकने के योग्य बनना। (व्यंग्य) जैसे—जरा कान का मैल निकलवा लो, तब तुम्हें सुनाई पड़ेगा। **(अपने) कान खड़े करना**=चौकन्ना या सचेत होना। **(दूसरे के) कान खड़े करना**=चौकन्ना या सचेत करना। **कान खाना या खा जाना**=बहुत शोरगुल या हो-हल्ला करके तंग या परेशान करना। **(किसी के) कान खोलना**=किसी को चौकन्ना या सजग करना। **(किसी बात पर) कान देना या धरना**=ध्यान से किसी की बात सुनना और उसके अनुसार आचरण करना। **(किसी का) कान धरना**=१. दे० 'कान उमेठना'। २. दे० 'कान पकड़ना'। **कान न दिया जाना**=इतना जोर का करुण या विकट शब्द होना कि सहा न जा सके। **कान पकड़ना**=कान उमेठना (दे०)। **किसी को कहीं से कान पकड़ कर निकाल देना**=अनादरपूर्वक या बेइज्जत करके किसी को कहीं से निकाल या हटा देना। **(अपने) कान पकड़ना**=किसी प्रकार का कष्ट या दंड भोगने पर भविष्य में वैसा काम न करने अथवा सचेत रहने की प्रतिज्ञा करना। **(किसी के) कान पकड़ना**=किसी को दोषी पाकर उसे भविष्य के लिए सचेत करना और कड़े दंड की धमकी देना। **कान पर जूँ तक न रेंगना**=कोई घटना या बात हो जाने पर (उदासीनता, उपेक्षा आदि के कारण) उसका कुछ भी ज्ञान या परिचय न होना। **कान पावना**=दे० '(किसी बात पर) कान देना'। **कान पूंछ दबाकर चले जाना**=चुपचाप और बिना विरोध किये, सिर झुकाकर कहीं से चले या हट जाना। **(किसी के) कान फूँकना**=(क) किसी को अपना चेला बनाने के लिए उसे दीक्षा देना। गुरु-मंत्र देना। (ख) दे० '(किसी के) कान भरना।' **कान या कान का परदा फटना**=घोर शब्द होने के कारण कानों को बहुत कष्ट होना। **कान बजना**=कान में साँय-साँय शब्द सुनाई पड़ना जो एक प्रकार का रोग है। **(किसी के) कान भरना**=किसी के विरुद्ध किसी से ऐसी बातें चोरी से कहना कि वे बातें उसके मन में बैठ जायँ। **कान मलना**=दे० 'कान उमेठना'। **(किसी के) कान में कौड़ी डालना**=किसी को अपना दास या गुलाम बनाना। (प्राचीन काल में दासता का चिह्न) **(किसी के) कान में (कोई बात) डाल देना**=कोई बात कह, बतला या सुना देना। जैसे—उनके कान में भी यह बात डाल दो (अर्थात् उनसे भी कह दो)। **कान में तेल या रूई डालकर बैठना**=कोई बात सुनते रहने पर भी उपेक्षापूर्वक उसकी ओर ध्यान न देना। **(किसी के) कान में पारा या सीसा भरना**=दंड-स्वरूप किसी को बहरा करने के लिए उसके कानों में पारा या गरम सीसा डालना। (प्राचीन काल) **(किसी का किसी के) कान लगना**=किसी के साथ सदा लगे रहकर चुपके-चुपके उससे तरह-तरह की झूठी-सच्ची बातें कहते रहना। **(किसी ओर) कान लगाना**=कोई बात सुनने के लिए किसी ओर ध्यान देना या प्रवृत्त होना। **कान तक न हिलना**=चुपचाप सब कुछ सहते हुए तनिक भी प्रतिकार या विरोध न करना। चूँ तक न करना। **कान हो जाना**=कान खड़े हो जाना। चौकन्ने या सचेत हो जाना। **कानोकान खबर न होना**=जरा भी खबर न होना। कुछ भी पता न लगना। जैसे—घर में चार-चार आदमियों की हत्या हो गई; पर किसी को कानोकान खबर न हुई। **कानों पर हाथ धरना या रखना**=कानों पर हाथ रखकर किसी बात से अपनी पूरी अनभिज्ञता प्रकट करना। यह सूचित करना कि हम इस संबंध में कुछ भी नहीं जानते अथवा इससे हमारा कुछ भी संबंध नहीं है।

पद—कान का कच्चा=ऐसा व्यक्ति जो बहुत सहज में या सुनते ही किसी बात पर विश्वास कर ले।

२. सुनने की शक्ति। श्रवण-शक्ति। जैसे—तुम्हें तो कान ही नहीं हैं तुम सुनोगे क्या। ३. कान के ऊपर पहना जानेवाला एक गहना जिससे कान ढँक जाते है। झाँप। ४. किसी चीज में कान की तरह ऊपर उठा या बाहर निकला हुआ उसका कोई अंग या अंश जो प्रायः उस चीज के असम या टेढ़े होने का सूचक होता है। कनेव। जैसे—चारपाई या चौकी का कान; तराजू का कान (अर्थात् पासंग)। ५. पुरानी चाल की तोपों, बन्दूकों आदि में कुछ ऊपर उठा हुआ और प्याली के आकार का वह गड्ढा जिसमें रंजक रखी जाती थी। प्याली। रंजकदानी।

पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार जिसका आकार प्रायः कान का-सा होता है।

†स्त्री०=कानि (देखें)।

कानक—वि० [सं० कनक+अण्] १. कनक-संबंधी। कनक का। २. कनक अर्थात् सोने का बना हुआ। ३. सुनहला।

पुं० जमाल गोटा।

कानकुब्ज—पुं०=कान्यकुब्ज।

कानड़ा†—वि०=काना।
पुं०=कान्हड़ा (राग)।

कानन—पुं० [सं०√कन् (दीप्ति)+णिच्+ल्युट्—अन] १. बहुत बड़ा जंगल या वन। २. घर। मकान। ३. निवासस्थान।

कानफरेंस—स्त्री० [अं०] सम्मेलन (दे०)।

कानस्टेबुल—पुं० [अं०] आरक्षी या पुलिस-विभाग का सिपाही।

काना—वि० [सं० काण] [स्त्री० कानी] १. (प्राणी) जिसकी कोई आँख खराब या विकृत हो चुकी हो या किसी प्रकार फूट चुकी हो। एकाक्ष। २. (पदार्थ) जो किसी उपयोगी अंग के टूट-फूट जाने के कारण निकम्मा और भद्दा हो गया हो। त्रुटि या दोष से युक्त। जैसे—कानी कौड़ी। ३. (तरकारी या फल) जिसमें ऊपर से छेद कर कीड़े अंदर घुसे हों अथवा अंदर के बाहर निकले हों। जैसे—काना बैंगन, काना सेब।
पद— **काना-कुतरा** (दे०)।
वि० [सं० कर्ण] जिसका कोई कोना या सिरा कान की तरह बाहर निकला हो। जैसे—कानी चारपाई।
पुं० [सं० कर्ण] १. लिखने में आकार की मात्रा (ा) जो अक्षरों के आगे लगाई जाती है। जैसे—लिखते समय काना-मात्रा ठीक से लगाया करो। २. पासे का वह अंग या पार्श्व जिस पर एक ही बिंदी होती है। ३. पासे का वह दाँव जो उस दशा में आता है जब पासे का वह भाग ऊपर होता है जिस पर एक ही बिंदी होती है। जैसे—हमारे तीन काने हैं; और तुम्हारा पौ बारह है।
†अव्य०=कहाँ। (बुंदेल०)

काना-कानी—स्त्री०=कानाफूसी।

काना-कुतरा—वि० [हिं० काना+कुतरना] जो खंडित या विकलांग होने के कारण कुरूप या भद्दा हो। जैसे—काना-कुतरा फल, काना-कुतरा लड़का।

काना-गोसी*—स्त्री०=कानाफूसी।

कानाफुसकी†—स्त्री०=कानाफूसी।

कानाफूसी—स्त्री० [हिं० कान+अनु० 'फुस' 'फुस'] १. किसी के कान में बहुत धीरे से इस प्रकार कुछ कहना कि दूसरों को केवल फुस्-फुस् शब्द होता हुआ जान पड़े। २. उक्त प्रकार से होनेवाली बातचीत, जो दूसरों से छिपा कर और बहुत धीरे-धीरे की जाय।

काना-बाती—स्त्री० [हिं० कान+बात] १. किसी के कान में चुपके से और धीरे से कही जानेवाली कोई बात। (दे० 'कानाफूसी') २. बच्चों को हँसाने के लिए एक प्रकार का विनोद, जिसमें उन्हें कान में बात कहने के बहाने से अपने पास बुलाकर उनके कान में जोर से 'कुर्र' या ऐसा ही और कोई शब्द करते हैं, जिससे उनके कान झन्ना जाते हैं और वे हँसकर दूर हट जाते हैं।

कानि—स्त्री० [?] १. कुल, समाज आदि की मर्यादा या लोक-लज्जा का ऐसा ध्यान जो सहसा किसी बुरे काम में न पड़ने दे। लोक-लज्जा।
मुहा०—कानि पड़ना=कुल, समाज आदि की मर्यादा के अनुसार आचरण करना।
२. बड़ों का अदब, लिहाज या संकोच। उदा०—सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि।—तुलसी।

कानिष्ठिक—वि० [सं० कनिष्ठिका+अण्] वय, विस्तार आदि में सब से छोटा।
पुं० सब से छोटी उँगली। कनिष्ठिका।

कानी उँगली—स्त्री० [सं० कनीनी] सब से छोटी उँगली। कनिष्ठिका।

कानी कौड़ी—स्त्री० [हिं० कानी+कौड़ी] १. ऐसी कौड़ी जिसे माला में पिरोने के लिए बीच में छेदा गया हो। २. लाक्षणिक अर्थ में बिलकुल नगण्य या परम हीन वस्तु। जैसे—हम अब तुम्हें कानी कौड़ी भी न देंगे।

कानीन—पुं० [सं० कन्या+अण्, कनीन आदेश] १. वह व्यक्ति जो कुमारी कन्या के गर्भ से (अर्थात् उसके विवाह के पहले) उत्पन्न हुआ हो। २. राजा कर्ण। (महाभारत)

कानी हाउस—पुं०=काँजी हाउस।

कानून—पुं० [यू० केनान से अ०, मि०, अं० कैनन] [वि० कानूनी] १. किसी काम, बात या व्यवस्था के संबंध में बना हुआ निश्चित नियम। जैसे—कुदरत का कानून। २. दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में किसी काल, देश या विषय के सार्विक तथ्यों और सिद्धांतों के आधार पर बने हुए ऐसे निश्चित नियम जो विशिष्ट परिस्थितियों में सदा ठीक घटते हों। ३. देश अथवा राज्य में व्यवस्था, शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए शासन या प्रभु-सत्ताधारी संस्था के द्वारा बनाया हुआ ऐसा नियम-समूह जिसका पालन वहाँ के सभी निवासियों के लिए अनिवार्य और आवश्यक होता है और जिसकी उपेक्षा या उल्लंघन करनेवाला दंड का भागी होता है। आईन। विधि।
मुहा०—कानून छाँटना=झूठ-मूठ के, निस्सार और व्यर्थ के ऐसे तर्क उपस्थित करना, जिनका संबंध नियम, विधान आदि के क्षेत्रों से हो।
४. उक्त प्रकार के बने हुए समस्त नियमों, विधानों आदि का सामूहिक रूप। ५. उक्त प्रकार के नियमों, विधानों आदि का कोई ऐसा अंग या शाखा, जो किसी विशिष्ट कार्य-क्षेत्र या व्यवहार के संबंध में हो। जैसे—दीवानी कानून, फौजदारी कानून, शहादत (गवाही) का कानून आदि। ६. किसी वर्ग या समाज में प्रचलित सर्व-मान्य नियम और रूढ़ियाँ। (लॉ, उक्त सभी अर्थों के लिए) ७. एक प्रकार का पाश्चात्य बाजा जिसमें बजाने के लिए पटरियों पर तार लगे होते हैं।

कानूनगो—पुं० [फा०] माल या राजस्व विभाग का वह क्षेत्रीय अधिकारी, जिसके अधीन पटवारी या लेखपाल काम करते हैं।

कानूनदाँ—पुं० [फा०] प्रायः सब प्रकार के कानून जाननेवाला व्यक्ति। कानून का ज्ञाता। विधिज्ञ।

कानूनन्—क्रि० वि० [अ०] विधान या नियम के अनुसार। कानून के मुताबिक।

कानूनिया—वि० [अ० कानून] व्यर्थ के कारण बना-बनाकर अथवा कानून और नियम बतला कर झगड़ा या हुज्जत करनेवाला।

कानूनी—वि० [अ० कानून] १. कानून संबंधी। कानून का। विधिक। जैसे—कानूनी बहस, कानूनी सलाह। २. व्यर्थ के कारण निकालकर झगड़ा या हुज्जत करनेवाला (व्यक्ति)।

कान्यकुब्ज—पुं० [सं० कन्या-कुब्जा, ब० स०, कन्यकुब्ज+अण्] १. आधुनिक कन्नौज के आस-पास के प्रदेश का पुराना नाम।

२. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश के निवासी ब्राह्मणों का वर्ग।

कान्ह*—पुं० [सं० कृष्ण ; प्रा० कण्ह] श्री कृष्ण।

कान्हड़ा*—पुं० [सं० कर्णाट] संपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग का पुत्र माना गया है।

कान्हड़ी—स्त्री० [सं० कर्णाटी] एक रागिनी जो दीपक राग की पत्नी कही गई है।

कान्हम—पुं० [सं० कृष्ण ; प्रा० कण्ह=काला] भड़ौंच प्रदेश की काली मटियार जमीन जो कपास की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है।

कान्हमी—स्त्री० [हिं० कान्हम] भड़ौंच प्रदेश की कान्हम भूमि में उपजनेवाली कपास।

कान्हर*—पुं० [सं० कर्ण] कोल्हू के कातर पर लगी हुई वह बेंड़ी लकड़ी जो कोल्हू की कमर से लगकर चारों ओर घूमती है।
†पुं० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण।

कान्हरा—पुं०=कान्हड़ा।

कापटिक—वि० [सं० कपट+ठक्—इक] जिसके मन में कपट हो। कपटी।

कापटच—पुं० [सं० कपट+ष्यञ्] १. कपटी होने की अवस्था या भाव। २. कपट।

कापड़ी—पुं० [सं० कर्पर्दिन्, प्रा० कपड्डी] [स्त्री० कापड़िन] एक प्रकार के यात्री जो गंगोत्तरी से काँवर पर जल लेकर सब तीर्थों में चढ़ाने के लिए चलते हैं। उदा०—कापड़ी संन्यासी तीरथ भ्रमाया न पाया नृर्वांण पद का भेव।—गोरखनाथ।

कापथ—पुं० [सं० कु-पथिन्, कुप्रा० स०, अच्, कु=का आदेश] बुरा मार्ग या रास्ता। कुपथ।

कापर*—कपड़ा।

कापाल—पुं० [सं० कपाल+अण्] १. एक प्राचीन अस्त्र। २. प्राचीन भारतीय राजनीति में ऐसी पारस्परिक संधि जिसमें दोनों पक्षों के अधिकार समान माने गये हों।

कापालिक—वि० [सं० कपाल+ठक्—इक] कपाल-संबंधी।
पुं० १. भैरव या शक्ति के उपासक एक प्रकार के तांत्रिक जो अपने हाथ में कपाल या मनुष्य की खोपड़ी लिये रहते हैं। २. बंगाल में रहनेवाली एक पुरानी वर्ण-संकर जाति। ३. वैद्यक में एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर का चमड़ा कड़ा, काला और रूखा होकर फटने लगता है।

कापालिका—स्त्री० [सं० कापालिक+टाप्] एक प्रकार का पुराना बाजा जो मुँह से बजाया जाता था।

कापाली—पुं० [सं० कपाली] [स्त्री० कापालिनी] १. शिव। २. एक वर्ण-संकर जाति।

कापिक—वि० [सं० कपि+ठक्—इक] १. कपि या बंदर-संबंधी। २. बंदरों का-सा। बंदरों की तरह का।

कापिल—वि० [सं० कपिल+अण्] १. कपिल-संबंधी। कपिल का। २. कपिल काव्य या उनके दर्शन का अनुयायी। ३. भूरा।
पुं० १. कपिल मुनि कृत सांख्य-दर्शन। २. भूरा रंग।

कापिश—पुं० [सं० कपिशा+अण्] प्राचीन भारत में माधवी के फूल से बनाई जानेवाली एक प्रकार की मदिरा।

कापिशी—स्त्री० [सं० कापिश+ङीप्] एक प्राचीन देश जहाँ कापिश नाम की मदिरा अच्छी बनती थी। (पाणिनि)

कापिशेय—पुं० [सं० कपिशा+ढक्—एय] पिशाच। भूत-प्रेत।

कापी—स्त्री० [अं०] १. किसी लेख आदि की हुई नकल। प्रतिरूप। २. चित्र, पुस्तक आदि की प्रतिलिपि। ३. चित्र, पुस्तक आदि की प्रति। ४. वह कोरी या सादी पुस्तिका जिस पर कुछ लिखा जाता हो। ५. छपने आदि के लिए दिया जानेवाला हस्तलेख।
स्त्री० [अं० कैप] गराड़ी (लश०)।

कापीनवीस—पुं० [अं० कापी+फा० नवीस=लिखनेवाला] १. कापी अर्थात् लेखों की नकल या प्रतिलिपि लिखनेवाला लेखक। २. वह लेखक जो लीथो के छापे के लिए सुन्दर अक्षरों में लेख लिखता है।

कापुरुष—पुं० [सं० कु-पुरुष, कुप्रा० स०, कु=का] १. तुच्छ या हीन व्यक्ति। २. कायर या भीरु पुरुष।

कापेय—वि० [सं० कपि+ढक्—एय] [स्त्री० कापेया] कपि या बंदर-संबंधी। कापिक।
पुं० शौनक ऋषि का एक नाम।

कापोत—वि० [सं० कपोत+अण्] १. कबूतर-संबंधी। २. कबूतर के रंग जैसा।

काप्य—पुं० [सं० कपि+यञ्] १. कपि नामक ऋषि का प्रवर्त्तित गोत्र। २. उक्त ऋषि के गोत्र का व्यक्ति। ३. आंगिरस् ऋषि।

काफ—पुं० [अ०] १. उर्दू वर्णमाला का एक व्यंजन। २. पश्चिमी एशिया का एक प्रसिद्ध पर्वत (काकेशस)।

काफल—पुं० [सं० कु-फल, ब० स०, का आदेश] कायफल।

काफिया—पुं० [अ० काफियः] १. कविता या पद्य में अंतिम चरणों में मिलाया जानेवाला अनुप्रास। अंत्यानुप्रास। तुक। सज।
मुहा०—काफिया तंग करना=(क) इतना तंग या दुःखी करना कि उद्धार का मार्ग न दिखाई दे। छक्के छुड़ाना। (ख) बहुत परेशान या हैरान करना। नाकों दम करना।
२. दो शब्दों का ऐसा रूप-साम्य जिसमें अंतिम मात्राएँ और वर्ण एक ही होते हैं। जैसे—कोड़ा, घोड़ा और तोड़ा ; या गोटी, चोटी और रोटी का काफिया मिलता है।
मुहा०—काफिया मिलाना=(क) शब्दों का अनुप्रास या तुक मिलाना। (ख) किसी चीज या बात के सामने कोई ऐसी चीज या बात ला रखना जो महत्त्व, योग्यता, रूप आदि के विचार से ठीक वैसी ही हो। **(किसी के साथ) काफिया मिलाना**=किसी के साथ दोस्ती या मेल-जोल करके उसे ठीक अपने समान बनाना अथवा स्वयं उसके समान बन जाना।

काफियाबंदी—स्त्री० [अ० काफियः+फा० बंदी] १. तुक या काफिया जोड़ना। अनुप्रास मिलाना। २. बहुत ही साधारण कोटि की कविता करना। तुकबंदी करना।

काफिर—वि० [अ०] १. ईश्वर का अस्तित्व न माननेवाला। नास्तिक। २. जो दया, धर्म आदि का कुछ भी ध्यान न रखता हो। अत्याचार, अनर्थ या उपद्रव करनेवाला, वाली। जैसे—काफिर जवानी।
पुं० १. मुसलमानों की दृष्टि में ऐसा व्यक्ति जो इस्लाम का-

अनुयायी न हो। २. काफिरिस्तान नामक देश में रहनेवाली जाति। ३. उक्त जाति का व्यक्ति।

काफिरिस्तान—पुं० [अ०] अफगानिस्तान का एक प्रदेश जिसमें काफिर जाति बसती है।

काफिरी—वि० [अ०] काफिरों का-सा। काफिर संबंधी।

स्त्री० १. काफिर होने की अवस्था या भाव। काफिरपन। २. काफिर जाति या काफिरिस्तान देश की बोली या भाषा।

काफिला—पुं० [अ०] यात्रा, व्यापार आदि के उद्देश्य से पैदल चलनेवाले यात्रियों का समूह।

काफी—वि० [अ०] जितना अपेक्षित या आवश्यक हो, ठीक उतना। पूरा। यथेष्ट।

पुं० संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें गांधार कोमल होता है। यह रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।

स्त्री० [अं०] कहवा।

काफूर—पुं० [सं० कर्पूर, हिं० कपूर] [वि० काफूरी] कपूर।

मुहा०—काफूर होना या हो जाना=(क) इस प्रकार चल देना कि जल्दी किसी को पता भी न चले। (ख) चटपट गायब हो जाना।

काफूरी—वि०, पुं०=कपूरी।

काब—स्त्री० [तु०] छोटी थाली। रिकाबी।

काबर—स्त्री० [हिं० कबरा] एक प्रकार की भूमि जिसकी मिट्टी में रेत भी मिली रहती है। दोमट। खाभर।

वि०=चित-कबरा।

काबला—पुं० [अं० केबिल=रस्सा] वह बड़ा पेच जिसके ऊपर ढेबरी या बालटू कसा जाता है (लश०)।

काबा—पुं० [अ० कअबः] मक्के (सऊदी अरब में, मक्का नामक नगर) की वह प्रसिद्ध मसजिद जहाँ सारे संसार के मुसलमान दर्शन और परिक्रमा करने के लिए जाते हैं। (इसी स्थान की यात्रा करना हज करना कहलाता है।)

काबिं—स्त्री०=कविता।

पुं०=काव्य।

काबिज—वि० [अ०] १. जिसने किसी वस्तु पर कब्जा या अधिकार कर लिया हो। अधिकार जमानेवाला। २. किसी की जमीन या मकान में रहकर उसका उपभोग करनेवाला। (ऑकुपेंट) ३. पेट के मल का अवरोध या कब्जियत करनेवाला। (औषध या खाद्य पदार्थ)

काबिल—वि० [अ०] [भाव० काबिलियत] १. योग्य। २. (व्यक्ति) जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता या विशेषज्ञ हो। विद्वान्। पढ़ा-लिखा तथा सुयोग्य (व्यक्ति)।

काबिलीयत—स्त्री० [अ०] १. योग्यता। २. लियाकत। ३. पांडित्य। विद्वत्ता।

काबिस—पुं० [सं० कपिश] १. लाल रंग की एक प्रकार की मिट्टी। २. उक्त मिट्टी से बना हुआ रंग जिससे कुम्हार मिट्टी के बरतन रँगते हैं।

काबुक—स्त्री० [फा०] पक्षियों, विशेषतः कबूतरों के रहने का खाना या दरबा।

काबुल—पुं० [सं० कुभा] [वि० काबुली] १. अफगानिस्तान की एक नदी जो अटक के पास सिंधु नद में गिरती है। २. उक्त नदी पर स्थित एक नगर जो अफगानिस्तान की राजधानी है।

काबुली—वि० [हिं० काबुल] १. काबुल का। काबुल-संबंधी। जैसे—काबुली पहनावा। काबुली बोली। २. काबुल में उत्पन्न होने या वहाँ से आनेवाला। जैसे—काबुली मेवे।

पुं० काबुल अथवा अफगानिस्तान का निवासी।

स्त्री० काबुल अथवा अफगानिस्तान की बोली या भाषा।

काबुली बबूल—पुं० [हिं० काबुली+बबूल] बबूल के वृक्षों की एक जाति।

काबुली मस्तगी—स्त्री० [फा०] एक वृक्ष का गोंद जो गुण, रूप आदि में रूमी मस्तगी के समान होता है।

काबू—पुं० [तु०] १. अधिकार। वश। जैसे—यह बात हमारे काबू की नहीं है। उदा०—जब तक करूँ बाबू बाबू। तब तक करूँ अपने काबू।—कहा०। २. जोर। बल। जैसे—उन पर हमारा कोई काबू नहीं है। ३. काम निकालने का अच्छा और अनुकूल अवसर। दाँव।

मुहा०—(किसी के) काबू पर चढ़ना=ऐसी विवशता की स्थिति में होना कि कुछ भी जोर या वश न चल सके। जैसे—जिस दिन तुम उनके काबू पर चढ़ोगे, उस दिन वे तुम से पूरा बदला चुका लेंगे।

काम—पुं० [सं०√कम् (चाहना)+णिङ्+घञ्] [वि० कामुक, कामी, काम्य] १. किसी इष्ट बात की सिद्धि या वासना की पूर्ति के संबंध में मन में होनेवाली इच्छा या चाह। अभिलाषा, कामना, मनोरथ। २. अपने-अपने विषयों के भोग की ओर होनेवाली इंद्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति जो धार्मिक क्षेत्र में चातुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक मानी गई है।

विशेष—हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार ऐसे पदार्थ कहे गये हैं जिनकी सिद्धि मनुष्य के जीवन में होना आवश्यक भी है और स्वाभाविक भी। ऐसे प्रसंगों में काम की प्राप्ति या सिद्धि का यह आशय होता है कि इंद्रियों की इष्ट, संगत और स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ चरितार्थ और पूरी होती रहें।

३. संभोग या स्त्री-प्रसंग की कामना। मैथुन या सहवास की इच्छा या प्रवृत्ति। ४. पुरुष और स्त्री के पारस्परिक संभोग या संयोग की इच्छा या कामना का देवता जिसे कामदेव भी कहते हैं।

विशेष—रूप के विचार से यह कुमारोचित सुन्दरता का आदर्श और प्रतीक माना गया है; और इसकी पत्नी रति स्त्रियों की सुन्दरता की प्रतीक कही गई है। भिन्न-भिन्न आचार्यों या ग्रन्थों के मत से यह धर्म, ब्रह्मा अथवा संकल्प का पुत्र है। कहते हैं कि जब इसने शिवजी के मन पर अपना प्रभाव डालना चाहा था तब उन्होंने इसे भस्म कर डाला था। पर बाद में रति के विलाप करने पर वर दिया था कि अब यह शरीर-रहित होकर सदा जीवित रहेगा। तभी से इसे 'अनंग' भी कहते हैं। ५. महादेव। शिव। ६. बलदेव का एक नाम। ७. प्रद्युम्न का एक नाम जो परम सुन्दर होने के कारण कामदेव के अवतार कहे गये हैं। ८. वीर्य। शुक्र। ९. चार चरणों का एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो दीर्घ मात्राएँ होती हैं। १०. रचना के विचार से एक विशिष्ट प्रकार का देव-मंदिर। (वास्तु)

पुं० [सं० कर्म; प्रा०, पा०, पं० कम्म; गु०, ०, मरा० काम; सिंह० कमु] १. वह जो कुछ किया जाय, किया गया हो अथवा किया

जाने को हो। क्रिया के परिणाम के रूप में होनेवाला किसी प्रकार का कार्य, कृत्य या व्यापार। जैसे—मनुष्य हरदम किसी-न-किसी काम में लगा रहता है। २. किसी विशिष्ट उद्देश्य से अथवा किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जानेवाला कोई कार्य या कृत्य। जैसे—दफ्तर का काम करके आने पर घर का काम करना पड़ता है।

मुहा०—काम अटकना=बाधा के कारण काम का बीच में कुछ समय के लिए रुकना। जैसे—अब तो रुपए के बिना काम अटक रहा है। **(किसी वस्तु का) काम करना**=अपनी उपयोगिता, गुण या प्रभाव दिखलाना। जैसे—यह दवा तीन घंटे में अपना काम करेगी। **काम चलना**=(क) किसी कार्य का आरम्भ होना। (ख) किसी कार्य का बराबर संपादित होता रहना। जैसे—इमारत का काम बराबर चल रहा है। **(किसी चीज से) काम चलाना या निकालना**= आवश्यक वस्तुओं के अभाव में किसी दूसरी चीज से जैसे-तैसे कार्य का निर्वाह करना। जैसे—कपड़ा न मिलने पर कागज से ही काम चलाना या निकालना। **काम निकलना**=(क) आवश्यकता पूरी होना। (ख) उद्देश्य या प्रयोजन सिद्ध होना। **काम बनना**= उद्दिष्ट रूप में या ठीक तरह से कार्य पूरा या सिद्ध होना। जैसे—(क) यदि वे किसी तरह राजी हो जायँ तो काम बन जाय। (ख) चलो, तुमने तो अपना काम बना ही लिया। **(किसी आदमी या चीज से) काम लेना**=उपयोग में लाकर अपना उद्देश्य या कार्य सिद्ध करना। जैसे—जब तक कोई अच्छा नौकर नहीं मिलता तब तक इसी लड़के से काम लो। **(किसी का) काम हो जाना**=इतना अधिक परिश्रम या भार पड़ना कि मानो प्राणों पर संकट आ गया हो। जैसे—आज तो दिन भर लिखते-लिखते (या दौड़ते-दौड़ते) हमारा काम हो गया।

३. कोई ऐसा कार्य जिसकी पूर्ति या संपादन से कोई कृति प्रस्तुत होती हो। जैसे— इमारत का काम, कोश का काम। ४. व्यापार, सेवा आदि का कोई ऐसा कार्य जो जीविका-निर्वाह के लिए किया जाता हो। जैसे— (क) आज-कल उनके हाथ में कोई काम नहीं है। (ख) उनके पास जाने पर तुम्हें कोई काम मिल जायगा। ५. कोई ऐसा कार्य जिसके लिए बहुत अधिक कौशल, परिश्रम या योग्यता की आवश्यकता होती हो।

पद—(कुछ करना) काम रखता है=(इस काम में) बहुत अधिक कौशल, परिश्रम या योग्यता अपेक्षित है। जैसे—ऐसा ग्रन्थ लिखना काम रखता है।

६. कोई ऐसी कृति या रचना जिसमें कर्त्ता ने उत्कृष्ट कौशल दिखलाया या विशेष परिश्रम किया हो। जैसे—कसीदे या जरदोजी का काम, पच्चीकारी या मीनाकारी का काम। ७. किसी कृति या रचना में दिखाई पड़नेवाला कर्त्ता का कौशल, परिश्रम या योग्यता (उसके उपादान से भिन्न)। जैसे— जरा इन बेल-बूटों में कारीगर का काम तो देखो। ८. किसी कृति या रचना में लगा हुआ प्रधान या मुख्य उपादान अथवा सामग्री। जैसे—(क) उस मकान में ऊपर से नीचे तक पत्थर (या लकड़ी) का ही काम है। (ख) ऐसा कपड़ा लाओ जिसमें जरी (या रेशम) का काम हो। ९. उपयोग। प्रयोग। व्यवहार।

मुहा०—(किसी चीज, बात या व्यक्ति का) काम आना= उपयोगी या व्यवहार के योग्य सिद्ध होना। जैसे—आखिर आपकी दोस्ती और किस दिन काम आवेगी।

विशेष—हिंदी का यह मुहावरा उर्दू के उस (काम आना) मुहावरे से भिन्न है जिसका अर्थ होता है—लड़ाई-झगड़े में मारा जाना। इस अंतिम मुहावरे के विवेचन और उदाहरण के लिए देखें नीचे फा० काम का अर्थ-वर्ग।

काम में आना= उपयोग या व्यवहार में आना, प्रयुक्त या व्यवहृत होना। जैसे—इतने दिनों से सँभालकर रखी हुई पुस्तक आज काम में आई है। **काम लेना**=(क) उपयोग या व्यवहार में लाना। जैसे—आप इस पुस्तक से भी कुछ काम ले सकते हैं। (ख) काम में लगाना। जैसे—आज इस नये आदमी से भी काम लेकर देखो। **काम निकालना**=किसी युक्ति से अपना उद्देश्य या मनोरथ सिद्ध करना। जैसे—तुमने तो बातों-बातों में ही अपना काम निकाल लिया। **काम बनना**=उद्देश्य या प्रयोजन सिद्ध होना। जैसे—चलो, तुम्हारा काम तो अब बन ही गया।

पद—काम का=जिसका अच्छा या यथेष्ट उपयोग हो सकता हो। जैसे—यह आदमी तो बहुत काम का निकला।

१०. ऐसा पारस्परिक संबंध या संपर्क जिससे कोई उद्देश्य पूरा होता हो। मतलब। वास्ता। सरोकार। जैसे—तुम्हें इन सब झगड़ों से क्या काम। उदा०—जाओ जाओ, मोसों तोसों अब कहा काम।—गीत।

मुहा०—अपने काम से काम रखना= अपने काम या प्रयोजन के सिवा और किसी बात से मतलब या संबंध न रखना। जैसे—वह जो चाहें सो करें, तुम अपने काम से काम रखो। **(किसी से) काम पड़ना**= इस प्रकार का संपर्क या संबंध होना कि बल, बुद्धि आदि की परीक्षा हो और उसके फल-स्वरूप कुछ कटु अनुभव हो। पाला या साबिका पड़ना। जैसे—अभी तुम्हें किसी उस्ताद से काम नहीं पड़ा है, नहीं तो इस तरह बढ़-बढ़कर बातें न करते। उदा०—चंदन पड़ा चमार घर नित उठ कूटै चाम। चंदन रोवै, सिर धुनै, पड़ा नीच से काम।

पुं० [सं० काम से फा०] १. इच्छा। कामना। २. इरादा। विचार। ३. अभिप्राय, उद्देश्य।

मुहा०—(किसी व्यक्ति का) काम आना= मार-काट या लड़ाई-झगड़े में मारा जाना। हत होना। जैसे—पहले महायुद्ध में साठ लाख आदमी काम आये थे। **(किसी व्यक्ति का) काम तमाम करना**= कौशल अथवा बल से किसी का अस्तित्व मिटाना। किसी के जीवन का अंत करना। जैसे—बेगम ने लौंडी से जहर दिलवाकर अपनी नई सौत का काम तमाम करा दिया। (ख) लाठी के एक ही वार ने उसका काम तमाम कर दिया।

विशेष—ये मुहावरे उर्दू से हिंदी में आये हैं इसीलिए ये सं० काम के अर्थ-वर्ग में नहीं बल्कि फा० काम के अर्थ-वर्ग में रखे गये हैं। इनका आशय यही होता है कि किसी उद्देश्य या प्रयोजन की सिद्धि में किसी के अस्तित्व या जीवन का उपयोग हुआ था अथवा किया गया था; अर्थात् उसकी बलि चढ़ी थी।

काम-कला—स्त्री० [ष० त०] १. मैथुन। रति। २. कामदेव की पत्नी, रति। ३. तंत्रोपचार में शिव और शक्ति की प्रतीक सफेद और लाल बिन्दियों या बिंदुओं का संयोग।

कामकाज—पुं० [हिं० काम+काज=कार्य] कई प्रकार के काम। काम-धंधा।

कामकाजी—पुं० [हिं० काम+काज] वह जो प्रायः काम-धंधे में लगा रहता हो या जिसके हाथ में अनेक काम रहते हों।

काम-कूट—वि० [ब० स०] १. कामुक। २. व्यभिचारी।
पुं० [ष० त०] १. कामुकता। २. वेश्यावृत्ति।

कामकृत्—वि० [कामकृत्] १. अपनी इच्छा के अनुसार काम करनेवाला। २. [च० त०] काम-वासना या विषय-भोग से संबंध रखने या उसके कारण होनेवाला। जैसे— कामकृत ऋण, कामकृत रोग।

कामग—वि० [सं० काम√गम् (जाना)+ ड] [स्त्री० कामगा] १. अपनी कामना या इच्छा के अनुसार काम करनेवाला। २. मनमाना आचरण करनेवाला। स्वेच्छाचारी। ३. कामुक। ४. व्यभिचारी।
पुं० कामदेव।

कामगार—पुं० १. मजदूर। २. कामदार (कार्याधिकारी)।

कामचर—पु० [सं० काम √ चर् (गति) +ट] १. अपनी इच्छा के अनुसार हर जगह पहुँच सकनेवाला। २. स्वेच्छापूर्वक विचरने या घूमने-फिरने वाला।

काम-चलाऊ—वि० [हिं० काम+चलाना] १. (ऐसी वस्तु) जो टिकाऊ न होने पर भी कुछ समय तक के लिए काम में आ सके। २. जैसे-तैसे कुछ काम चला देनेवाला।

कामचार—पुं० [सं० काम√ चर्+घञ्] [वि० कामचारी] १. स्वेच्छाचार। २. कामुकता। ३. स्वार्थता।

कामचारी (रिन्)—वि० [सं० काम√चर्+णिनि] १. अपनी इच्छा-नुसार विचरण करनेवाला। २. जब जहाँ चाहे तब वहाँ पहुँच सकने वाला। जैसे—देवगण कामचारी होते हैं। ३. काम-वासना की तृप्ति के लिए मनमाना आचरण करनेवाला। कामुक। लंपट।

काम-चोर—वि० [हिं० काम+चोर] जो अपने कर्त्तव्य या कार्य से जी चुराता हो। जैसे—काम-चोर नौकर।

कामज—वि० [सं० काम√ जन्+ ड] काम या वासना से उत्पन्न। जैसे— कामज व्यसन।
पु० क्रोध।

कामजित्—वि० [सं० काम√जि (जीतना)+ क्विप्] काम को जीतने या उस पर विजय प्राप्त करनेवाला।
पुं० १. महादेव। शिव। २. कार्त्तिकेय। ३. जैनों में जिनदेव।

काम-ज्वर—पुं० [मध्य० स०] वह ज्वर जो काम-वासना की पूर्ति न होने अथवा अधिक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करने की दशा में होता है। (वैद्यक)

कामड़िया—पुं० [सं० कम्बल] संत रामदेव के अनुयायी साधु।

कामणि*—स्त्री० [सं० कामिनी] सुंदर स्त्री।

कामतः—क्रि० वि० [सं० काम+तस्] इच्छा, उद्देश्य या कामना से। जान-बूझ कर या स्वेच्छा से।

कामत—स्त्री० [अ० क़ामत] ऊँचाई के विचार से आकार। कद।

काम-तरु—पुं० [मध्य० स०] १. कल्प-वृक्ष (दे०)। २. बंदाल या बाँदा जो दूसरे वृक्षों पर चढ़कर पलता है।

कामता*—पुं० [सं० कामद] चित्रकूट के पास का एक गाँव।
स्त्री० [सं०] 'काम' का भाव। कामत्व।
पुं०=कामदगिरि।

काम-तिथि—स्त्री० [मध्य० स०] त्रयोदशी, जो कामदेव की पूजा की तिथि कही गयी है।

कामद—वि० [सं० काम√दा (देना)+ क] कामना पूरी करनेवाला। इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला। जैसे—कामद मणि, कामद यज्ञ। उदा०—कामद भे गिरि रामप्रसादा।—तुलसी।
पुं० १. ईश्वर। २. सूर्य। ३. कार्त्तिकेय।

कामदगाई*—स्त्री०=कामधेनु।

कामद-गिरि—पुं० [कर्म० स०] चित्रकूट में एक पर्वत जो सभी कामनाएँ पूरी करनेवाला कहा गया है।

कामद-मणि—पुं० [कर्म० स०] चिंतामणि नामक पौराणिक रत्न।

काम-दव—पुं० [कर्म० स०] कामाग्नि (काम-वासना)।

काम-दहन—पुं० [ष० त०] १. शिवजी के द्वारा कामदेव के जलाये जाने की घटना। २. शिव।

कामदा—स्त्री० [सं० काम√दा (देना) +क+टाप्] १. कामना पूर्ण करनेवाली एक देवी का नाम। २. कामधेनु। ३. चैत्र-शुक्ला एकादशी। ४. एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, यगण, जगण तथा गुरु होता है।

काम-दान—पुं० [मध्य० स०] १. किसी की इच्छा या रुचि के अनुकूल भेंट दी जानेवाली वस्तु। २. वेश्याओं का ऐसा नाच-रंग जिसमें लोग सब काम छोड़कर लीन हो रहे हों।

कामदानी—स्त्री० [हिं० काम+दान (प्रत्य०)] १. कपड़े आदि पर बादलों के तारों, सलमें, सितारे आदि से बनाया जानेवाला बेल-बूटों का काम। २. वह कपड़ा जिस पर उक्त प्रकार का काम बनाया गया हो।

कामदार—वि० [हिं० काम+फा० दार (प्रत्य०)] जिस पर कलाबत्तू, सलमे, सितारे, कसीदे आदि का काम बना हो। जैसे—कामदार टोपी। पुं० प्रधान कर्मचारी या कारिन्दा।

कामदुघा—स्त्री० [सं० काम√दुह् (दुहना)+क—टाप्] कामधेनु।

काम-दूती—स्त्री० [ष० त०] १. परवल की बेल। २. नागदंती नाम की घास।

काम-देव—पुं० [मयू० स०] पुराणों के अनुसार एक देवता जो काम-वासना के अधिष्ठाता माने गये हैं। इनकी पत्नी रति थी। शिव ने इन्हें अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया था। वसंत इनका साथी, कोयल वाहन और अस्त्र फूलों का धनुष-बाण कहा गया है। अनंग, मदन, मन्मथ। २. उक्त की प्रेरणा से जाग्रत होनेवाली काम-वासना। ३. वीर्य।

काम-धाम—पुं० [सं० कर्म-धर्म से] १. तरह-तरह के काम। काम-काज। २. रोजगार। व्यवसाय।

कामधुक्—वि० [सं० काम√दुह्+क्विप्] इच्छानुसार या मनमाना फल देनेवाला।
स्त्री०=कामधेनु।

काम-धेनु—स्त्री० [मध्य० स०] १. पुराणानुसार एक प्रसिद्ध गौ जो समुद्र-मंथन के समय समुद्र में से निकलनेवाले चौदह रत्नों में से एकथी।

+ णिनि+तल्, टाप्] सत्य संकल्पता जो योगियों की आठ सिद्धियों या ऐश्वर्यों में से है।

कामावसायिता—स्त्री०[सं० काम-अव√सो (अंत करना) +णिच् +णिनि+तल, टाप्] = कामावशायिता।

कामिक—वि०[सं० काम+ठन्—इक]= कामित।

कामिका—स्त्री० [सं० कामिक+टाप्] श्रावण कृष्ण एकादशी।

कामित—वि० [सं० कम् (चाहना) + णिच्+क्त] जिसकी कामना की गई हो। अभिलषित।

† स्त्री०=कामना।

कामिनियाँ—पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़, जिसकी राल से एक प्रकार का लोवान बनता है।

कामिनी—स्त्री०[सं० काम+इनि, ङीप्] १. ऐसी स्त्री जिसके मन में कामवासना हो। कामवती। २. सुंदरी स्त्री, जिसकी कामना की जाय या की जा सके। ३. कृपालु या स्नेहमयी स्त्री। ४. मालकोस राग की एक रागिनी। ४. मदिरा। शराब। ६. पेड़ों पर होनेवाला परगाछा। बाँदा। ७. दारुहल्दी। ८. एक प्रकार का वृक्ष, जिसकी लकड़ी से मेज, कुरसियाँ आदि बनती है।

कामिनी-कांत—पुं० [ष० त०] एक प्रकार का वर्णवृत्त।

कामिनी-मोहन—पुं० [ष० त०] स्रग्विणी छंद का दूसरा नाम।

कामिल—वि० [अ०] १. पूरा। पूर्ण। २. कुल। सब। ३. समूचा। सारा। ४. जिसने किसी कार्य या विषय में पूर्ण योग्यता प्राप्त की हो। पूर्ण ज्ञाता।

कामी (मिन्)—वि० [सं० काम+इनि] [स्त्री० कामिनी] १. जिसके मन में कोई कामना हो। उदा०—जहाँ मनुज पहले स्वतन्त्रता से हो रहा साम्य का कामी।—दिनकर। २. काम-वासना में रत रहनेवाला। विषयी।

पु० १. विष्णु का एक नाम। २. चंद्रमा। ३. चकवा या चक्रवाक पक्षी। ४. कबूतर। ५. गौरैया या चिड़ा नामक पक्षी। ६. सारस।

कामुक—वि० [सं०√कम्+उकञ्] [स्त्री० कामुका] १. कामना या इच्छा करनेवाला। चाहनेवाला। २. जिसके मन में प्रायः कामवासना रहती हो। कामी। विषयी।

पु० १. अशोकवृक्ष। २. माधवीलता। ३. गौरैया या चिड़ा पक्षी।

कामुका—स्त्री० [सं० कामुक+टाप्] एक प्रकार का मातृका दोष, जो बालकों को रोग के रूप में उनके जन्म के बारहवें दिन, बारहवें महीने या बारहवे वर्ष होता है। (वैद्यक)

कामुकी—स्त्री० [सं० कामुक+ङीप्] १. कामवती स्त्री। २. व्यभिचारिणी।

कामेश्वरी—स्त्री० [काम-ईश्वरी, ष० त०] १. कामाख्या की पाँच मूर्त्तियों या रूपों में से एक। २. तंत्र में एक भैरवी का नाम।

कामोद—पु० [कु-आमोद, ब० स०, कु=क आदेश] रात के पहले पहर में गाया जानेवाला संपूर्ण जाति का एक राग, जो मालकोस का पुत्र माना गया है।

कामोदक—पु० [काम-उदक, मध्य० स०] किसी मृत प्राणी, विशेषतः किसी मित्र या दूर के संबंधी को दी जानेवाली जलांजलि।

कामोद-कल्याण—पुं० [ब०स०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कामोद और कल्याण के योग से बनता है तथा जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कामोद-तिलक—पुं० [ब०स०] रात के पहले पहर में गाया जानेवाला बाड़व जाति का एक संकर राग, जो कामोद और तिलक के योग से बनता है।

कामोद-नट—पुं० [ब० स०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग, जो कामोद और नट के योग से बनता है।

कामोद-सामन्त—पुं०[ब० स०] रात के तीसरे पहर में गाया जानेवाला बाड़व जाति का एक संकर राग, जो कामोद और सामंत के योग से बनता है।

कामोदा—स्त्री० [सं० कामोद+टाप्] दे० 'कामोदी'।

कामोदी—स्त्री० [सं० कामोद+ङीष्] रात के दूसरे पहर में गाई जाने वाली संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो कामोद की स्त्री मानी गई है।

कामोद्दीपक—वि० [काम-उद्दीपक, ष० त०] (वस्तु या स्थिति) जो मनुष्य के मन में काम-वासना जगावे या तीव्र करे।

कामोद्दीपन—पुं० [काम-उद्दीपन, ष० त०] १. काम-वासना को उद्दीप्त या तीव्र करना। २. काम-वासना का उद्दीप्त या तीव्र होना।

कामोन्माद—पुं० [सं० काम-उन्माद, मध्य० स०] युवकों और युवतियों को होनेवाला वह उन्माद (रोग) जो काम-वासना की पूर्ति न होने के कारण होता है।

काम्य—वि० [सं०√कम्+णिङ+यत्] १. जिसकी कामना की गई हो अथवा की जा सके। जो कामना किये जाने के योग्य हो। २. जो किसी की इच्छा या रुचि के अनुकूल या अनुसार हो। ३. प्रिय, सुन्दर और सुखद। ४. जिससे अथवा जिसके द्वारा कामना की सिद्धि होती हो अथवा हो सकती हो। जैसे—काम्य धर्म। ५. जो अपनी इच्छा से होता या हो सकता हो। जैसे—काम्य मरण।

काम्य-कर्म (न्)—पुं० [कर्म० स०] किसी उद्देश्य या कामना की सिद्धि के लिए किया जानेवाला कोई अनुष्ठान या कार्य।

काम्य-दान—पुं० [कर्म० स०] १. किसी प्रकार की कामना की सिद्धि के उद्देश्य से किया जानेवाला दान। २. ऐसी वस्तुओं का दान, जिनकी दूसरों को बहुत अधिक कामना हो।

काम्य-मरण—पुं० [कर्म० स०] १. अपनी इच्छा से अर्थात् जब जी चाहे तब मरना। २. मुक्ति।

काम्या—स्त्री० [सं०√कम्+णिङ्+क्यप्, टाप्] १. कामना। २. प्रयोजन। ३. उद्देश्य।

काम्येष्टि—स्त्री० [सं० काम्या-इष्टि, कर्म० स०] वह यज्ञ जो किसी कामना की पूर्ति के लिए किया जाता हो। जैसे—पुत्रेष्टि।

काय—पुं० [सं०√चि (इकट्ठा करना)+घञ्, नि० सिद्धि] १. काया (दे०)। २. बौद्ध भिक्षुओं का संघ। ३. [क+अण्, इत्व, वृद्धि] प्रजापति के उद्देश्य से दी जानेवाली हवि। ४. प्राजापत्य विवाह। ५. कनिष्ठा उँगली के नीचे का स्थान जिसे प्राजापति तीर्थ भी कहते हैं। ६. उद्देश्य या लक्ष्य। ७. पूंजी। मूलधन।

अव्य० प्रश्नवाचक अव्यय। क्या? (बुंदेल०) जैसे—काय जू! (संबोधन)

कायक—वि० [सं० काय+वुन्—अक]=कायिक।

कायक्क*—वि०=कायिक।

काय-चिकित्सा—स्त्री० [प्र० त०] आयुर्वेद में चिकित्सा के आठ प्रकारों या विभागों में से तीसरा, जिसमें शरीर के अंगों और उनमें होनेवाले रोगों (जैसे—उन्माद, ज्वर आदि) का विवेचन और उनकी चिकित्सा का विधान है।

कायजा—पुं० [अ० क़ायज़ा] १. घोड़े के साज का वह अंश, जो उसकी दुम में फँसाया जाता है। २. घोड़े की लगाम में बँधी हुई वह डोरी, जो खरहरा करते समय घुमा कर उसकी दुम में फँसाई जाती है। ३. डोरी आदि का कोई ऐसा फंदा जो कहीं फँसाया जाता हो।

कायथ†—पुं०=कायस्थ (जाति)।

कायदा—पुं० [अ० कायदः] १. कोई काम करने का अच्छा और व्यवस्थित या शिष्ट-सम्मत ढंग, प्रकार, प्रणाली या रीति। सलीका। जैसे—हर काम कायदे से होना चाहिए। २. चीजें आदि रखने का अच्छा और व्यवस्थित क्रम या ढंग। करीना। जैसे—सब चीजें कायदे से कमरे में रखी थीं। ३. किसी बात या विषय में परम्परा से चली आई हुई चाल या प्रथा। जैसे—दुनिया (या भले आदमियों) का यही कायदा है। ४. आचरण, व्यवहार आदि के लिए निश्चित किये हुए नियम या विधान। विधि। जैसे—(क) सरकारी कर्मचारियों के लिए अब नये कायदे बने है। (ख) जानवरों का यही कायदा है। उदा०—आपके जैसा मिजाज और कायदा उन्होंने नहीं पाया है। —वृंदावनलाल वर्मा। ५. पढ़ने-लिखने के क्षेत्र में किसी विषय की आरंभिक या पहली पुस्तक। (उर्दू) जैसे—अँगरेजी, उर्दू या हिन्दी का कायदा (या कायदे की पुस्तक)।

कायफर†—पुं०=कायफल।

कायफल—पुं० [सं० कट्फल] एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिस की सुगंधित छाल दवा और मसालों के काम में आती है।

काय-बंध—पुं० [सं० ष०त०] कमरबन्द। पटका।

कायम—वि० [अ०] १. किसी नियत स्थान पर टिका या ठहरा हुआ। स्थिर। २. निर्मित, प्रचलित या स्थापित किया हुआ। जैसे—बच्चों के लिए स्कूल कायम करना। ३. निर्धारित या निश्चित करना। जैसे—राय या हद कायम करना। ४. दृढ़। पक्का। जैसे—अब हम भी अपने इरादे पर कायम हैं। ५. जो अपने प्रस्तुत या वर्त्तमान रूप या स्थिति में ज्यों-का-त्यों रहे या रहने दिया जाय। जैसे—शतरंज की बाजी आज यहीं कायम रहे, कल फिर आगे खेल होगा।

मुहा०—(शतरंज की बाजी) कायम उठाना=शतरंज की बाजी को इस प्रकार समाप्त करना, जिसमें किसी पक्ष की हार जीत न हो।

कायम मिजाज—वि० [अ०] (व्यक्ति) जिसके स्वभाव में अव्यवस्था, चंचलता आदि का अभाव हो। स्थिर-चित्त।

कायम मुकाम—वि० [अ०] १. जो किसी के स्थान पर अस्थायी रूप से अथवा प्रतिनिधि बनकर काम करता हो। स्थानापन्न। २. कायम। स्थिर। (बोलचाल)

कायर—वि० [सं० कातर] १. जिसमें उत्साह, बल या साहस का अभाव हो। २. किसी बड़े काम या बात से डर जानेवाला। डरपोक। ३. जो असमर्थ न होने पर भी घबराकर या और किसी कारण से किसी काम से पीछे हटे या मुँह मोड़ ले। ४. डरपोक।

कायरता—स्त्री० [सं० कातरता] कायर होने की अवस्था या भाव।

कायल—वि० [अ०] १. किसी के तर्क या विचार को ठीक समझकर मान लेने वाला। २. बात का उत्तर न दे सकने के कारण चुप हो जानेवाला।

मुहा०—(किसी को) कायल करना=अपने तर्क से या समझा-बुझा कर अपने अनुकूल करना।

कायली—स्त्री० [अ० कायल] (तर्क में) कायल होने की अवस्था या भाव। जैसे—कायली-माकूली की बात करो।

पद—कायली-माकूली=किसी की तर्कसिद्ध बात मान लेना।

† स्त्री० [सं० कायरता] १. ग्लानि। २. लज्जा। शरम।

स्त्री० [सं क्ष्वेलिका, पा० खुवेलिका] दही मथने की मथानी। (डिं०)

काय-व्यूह—पुं० [उपमित स०] १. युद्ध आदि में व्यक्तियों को खड़ा करके बनाया हुआ मोरचा या रचा हुआ व्यूह। २. [ष० त०] वैद्यक में शरीर के अन्दर कफ, पित्त और अस्थि, मज्जा, मांस, शुक्र, स्नायुओं आदि का क्रम या विभाग अथवा उनका विवेचन। ३. योगियों की एक क्रिया, जिसमें वे अपने कर्मों के भोग के लिए प्रत्येक अंग और इंद्रियों का अलग ध्यान या विचार करते है।

कायस्थ—वि० [सं० काय√स्था (ठहरना)+क] काय या शरीर में रहनेवाला।

पुं० १. जीवात्मा। २. परमात्मा। ३. एक प्रसिद्ध जाति, जो अपने आपको चित्रगुप्त की संतान कहती है। इस जाति के लोग प्रायः लिखने-पढ़ने आदि का काम करते हैं। ४. उक्त जाति का व्यक्ति।

कायस्था—स्त्री० [सं० कायस्थ+टाप्] १. हरीतकी। हड़। २. आँवला। ३. काकोली।

काया—स्त्री० [सं० काय] [वि० कायिक] १. जीव, जंतु, मनुष्य आदि का भौतिक या स्थूल ढाँचा। हाड़-मांस का बना हुआ शरीर। देह। २. वृक्ष का तना। ३. किसी वस्तु का बाहरी रूप या ढाँचा। जैसे—वीणा की काया।

मुहा०—काया पलट देना=किसी टूटी-फूटी वस्तु को फिर से नया रूप देना। पूरी तरह से बदल कर रूपांतरित करना। ४. संघ। समुदाय। ५. कानून के अनुसार बनी हुई कोई संस्था (बॉडी; उक्त सभी अर्थों में)

कायाकल्प—पुं० [सं० कायाकल्प] १. कोई ऐसी क्रिया या व्यवस्था जिससे काया की पूरी तरह से शुद्धि हो जाय और वह अपना काम ठीक तरह से करने लगे। २. वैद्यक में उक्त उद्देश्य से की जानेवाली कुछ विशिष्ट प्रकार की चिकित्सा, जिससे वृद्ध शरीर में भी फिर से नया यौवन या नई शक्ति आ जाती है।

कायापलट—पुं० [हिं० काया+पलटना] १. आकार-प्रकार में होनेवाला बहुत बड़ा परिवर्त्तन या रूपांतरण। २. एक रूप या शरीर छोड़कर दूसरा रूप या शरीर धारण करना।

कायिक—वि० [सं० काय+ठक्—इक] १. काया या शरीर में होने या उससे संबंध रखनेवाला। जैसे—कायिक अनुभाव या भाव, कायिक रोग। २. काया या शरीर के द्वारा किया जाने अथवा होनेवाला। जैसे—कायिक पाप या पुण्य। ३. काय या संघ से संबंध रखनेवाला। (बौद्ध)

कायिक-अनुभाव—पुं० [कर्म० स०] १. दे० 'अनुभाव'। २. दे० 'हाव'।

कायिका—स्त्री० [सं० कायिक+टाप्] काय अर्थात् मूल-धन पर मिलने वाला व्याज। सूद।

कायिका-वृद्धि—स्त्री० [ष०त०] प्राचीन भारत में वह व्यवस्था, जिसमें किसी से लिये हुए ऋण का व्याज चुकाने के लिए ऋणी व्यक्ति उसके वदले में महाजन के कुछ काम या तो स्वयं कर देता था या अपने पशुओं आदि से करा देता था (स्मृति)।

कायोढज—पुं० [सं० काय-ऊढ, तृ० त०, कायोढ√जन् (पैदा करना)+ड] प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न पुत्र।

कायोत्सर्ग—पुं० [काय-उत्सर्ग, व० स०] जैन शिल्प में अर्हत की वह खड़ी मूर्ति जो वीतराग अवस्था में हो।

कारंड—पुं० [सं०√रम् (क्रीडा)+ड, कु-रंड, कुप्रा० स०]=करंडव।

कारंडव—पुं० [सं० कारण्ड√वा (गति)+क] वत्तख या हंस की जाति का एक पक्षी।

कारंधमी (मिन्)—पुं० [सं० कार√ध्मा (वजाना)+इनि, पृषो० सिद्धि] रसायन की क्रिया के द्वारा लोहे या किसी धातु को सोना वनानेवाला। कीमियागर।

कार—पुं० [सं०√कृ (करना)+घञ्] १. कोई काम करने की क्रिया या भाव। जैसे—अंगीकार, उपकार, चमत्कार। २. पति। स्वामी। ३. पूजा की वलि। ४. वरफ से ढका हुआ पहाड़। ५. प्रयत्न। ६. किसी कार्य या व्रत का अनुष्ठान। ७. वल। शक्ति। ८. संकल्प। ९. वध। हत्या। १०. वर्णमाला के अक्षरों या वर्णों अथवा ध्वनियों का सूचक शब्द। जैसे—अकार, उकार, मकार। ११. किसी प्रकार की ध्वनि का सूचक शब्द। जैसे—चीत्कार, फूत्कार।

वि० करने, वनाने या रचनेवाला। जैसे—ग्रन्थकार, चर्मकार, स्वर्णकार।

विशेष—इसी अर्थ में यह फारसी में भी ठीक इसी रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे—जिनाकार, रजाकार।

पुं० [सं० कार्य से फा०] १. काम। कार्य। जैसे—कारगुजारी, कारवार, कार्रवाई आदि। २. कठिन और परिश्रम-साध्य काम।

वि० [सं० कार से फा०] करनेवाला। कर्त्ता। जैसे—काश्तकार, पेशकार।

वि० [हिं० काला] काला। कृष्ण। उदा०—रावन पाय जो जिउ धरा दुवौ जगत महँ कार।—जायसी।

पुं० अंधकार। अँधेरा।

स्त्री० [अं०] किसी प्रकार की गाड़ी; विशेषतः मोटर गाड़ी।

कारक—वि० [सं०√कृ+ण्वुल्—अक] [स्त्री० कारिका] १. एक शब्द जो यौगिक शब्दों के अन्त में लगकर ये अर्थ देता है—(क) करने वाला। जैसे—गुणकारक, हानिकारक। (ख) उत्पन्न करने या प्राप्त करानेवाला। जैसे—सुखकारक। २. आज-कल किसी के स्थान पर या किसी के प्रतिनिधि के रूप में काम करनेवाला। (ऐक्टिंग)

पुं० व्याकरण में संज्ञा और सर्वनाम शब्दों की वह स्थिति जो वाक्य में क्रिया के साथ उनका संवंध सूचित करती है। (केस) इसके ६ भेद कहे गये हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण। (देखें ये शब्द)

कारक-दीपक—पुं० [सं० मध्य० स०] साहित्य में दीपक अलंकार का एक भेद, जिसमें अनेक क्रियाओं के एक ही कारक होनेका उल्लेख होता है। जैसे—वता अरी! अव क्या करूँ रचूँ रात से रार। भय खाऊँ, आँसू पियूँ, मन मारूँ झख मार।—मैथिली शरण

कारक-हेतु—पुं० [कर्म० स०] न्याय में वह कारण या हेतु, जिससे कोई कार्य हुआ हो या होता हो।

कारकुन—पुं० [फा०] १. किसी के प्रतिनिधि के रूप में काम करनेवाला। २. किसी की ओर से प्रवंध या व्यवस्था करनेवाला। कारिंदा।

कारखाना—पुं० [फा०] १. वह स्थान, जहाँ कोई चीज वनाई या तैयार की जाती हो। २. वह इमारत या भवन, जिसमें यंत्रों आदि की सहायता से किसी वस्तु का अधिक परिमाण में उत्पादन किया जाता हो। (फैक्टरी)। जैसे—कपड़े या दियासलाई का कारखाना। ३. वरावर चलता या होता रहनेवाला काम। जैसे—दुनिया का यही कारखाना है।

कारखी†—स्त्री०=कालिख। उदा०—जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी।—तुलसी।

कारगर—वि० [फा०] ठीक तरह से काम करके अपना गुण, प्रभाव या फल दिखानेवाला। जैसे—दवा का कारगर होना।

कारगह—पुं०=करघा।

कारगाह—पुं० [फा०] १. कारीगरों, मजदूरों आदि के वैठकर काम करने की जगह। कारखाना। २. वह स्थान जहाँ जुलाहे वैठकर कपड़े वुनने आदि का काम करते हैं।

कारगुजार—वि० [फा०] [स्त्री० कारगुजारी] हर काम अच्छी तरह से पूरा कर दिखलानेवाला।

कारगुजारी—स्त्री० [फा०] १. वह स्थिति जिसमें कोई कठिन काम वहुत अच्छी तरह पूरा किया गया हो। कर्मठता। कर्मण्यता। २. उक्त प्रकार से किया हुआ कोई कठिन या वड़ा काम।

कारचोव—पुं० [फा०] [वि०, संज्ञा कारचोवी] १. लकड़ी का वह चौकठा, जिस पर कपड़ा फैलाकर कसीदे, जरदोजी आदि का काम किया जाता है। अड्डा। २. उक्त प्रकार के चौखटे पर तैयार होनेवाला काम। ३. उक्त प्रकार का काम करनेवाला कारीगर। जरदोज।

कारचोवी—वि० [फा०] १. (कपड़ा) जिस पर कारचोव का काम हुआ हो। २. जिस पर सलमे-सितारे के वेल-वूटे वने हों। ३. कारचोव-संवंधी।

स्त्री० कारचोव का काम। सलमे-सितारे आदि से वनाये हुए वेल-वूटे।

कारज—पुं० [सं० कार्य] काम। कार्य।

कारजी—वि० [हिं० कारज] १. किसी काम में लगा रहनेवाला। २. किसी का कार्य करनेवाला। उदा०—ऐसे हैं ये स्वामि-कारजी तिनकौं मानत स्याम।—सूर।

कारटा—पुं० [सं० करट] कौआ। काग।

कारटून—पुं० [अं०] व्यंग्य-चित्र (दे०)।

कारड†—पुं०=कार्ड।

कारण—पुं० [सं०√कृ+णिच्+ल्युट्—अन] १. कोई ऐसी घटना, परिस्थिति या वात जो कोई परिणाम, प्रभाव या फल उत्पन्न करे। वजह। सवव। (कॉज) जैसे—(क) धूएँ का कारण आग है। (ख) गरमी के

कारण पौधे सूख गये हैं। २. वह उद्देश्य, तथ्य या बात, जिसे ध्यान में रख कर अथवा जिसके विचार से कोई काम किया जाय। हेतु। जैसे—आप अपने वहाँ जाने का कारण बतलायें। ३. आदि। मूल। जैसे—ईश्वर या ब्रह्म ही इस सृष्टि का कारण है। ४. साधन। ५. काम। कार्य। ६. किसी को कष्ट पहुँचाने के उद्देश्य से किया जानेवाला तांत्रिक उपचार। जैसे—लड़के पर किसी ने कुछ कारण कर दिया है। ७. पूजन आदि के उपरांत किया जानेवाला मद्यपान। (तंत्र) ८. प्रयाण। ९. एक प्रकार का गीत। १०. शिव। ११. विष्णु।

कारण-माला—स्त्री० [प० त०] १. कारणों या हेतुओं की श्रृंखला। २. साहित्य में एक अलंकार जिसमें पदार्थों का वर्णन कारण और कार्य की परम्परा के रूप में होता है। क्रमशः पहले का कथन बाद के कथन का कारण बनता जाता है अथवा उत्तरोत्तर के कथन पूर्व-पूर्व कथित पदार्थों के कारण होते हैं। जैसे—बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम। राम-कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम।—तुलसी।

कारण-शरीर—पुं० [कर्म० स०] वेदांत के अनुसार चित्त, अहंकार और जीवात्मा के योग से बना हुआ सूक्ष्म शरीर, जो स्थूल शरीर के अन्दर रहता है। यह इंद्रियों की विषय-वासना आदि से निर्लिप्त रहता या रहित होता है।

कारणा—स्त्री० [सं० कृ (हिंसा)+णिच्+युच्—अन+टाप्] १. कष्ट। पीड़ा। २. यम-यातना। ३. उत्तेजना।

कारणिक—पुं० [सं० कारण+ठक्—इक] १. वह जो किसी विषय की परीक्षा या विचार करता हो। २. विधिक क्षेत्र में प्रार्थना-पत्र आदि लिखनेवाला लिपिक।

वि० १. कारण-संबंधी। २. कारण के रूप में घटने या होनेवाला।

कारणिकता—स्त्री० [सं० कारणिक+तल्—टाप्] १. कारण या कारणिक होने की अवस्था या भाव। २. कार्य के साथ कारण का रहनेवाला संबंध। (कॉज़ैलिटी)

कारणोपाधि—पुं० [सं० कारण-उपाधि, ब० स०] ईश्वर। (वेदांत)

कारतूस—पुं० [पुर्त० कारटूश] बंदूक, रिवाल्वर आदि में रखकर चलाई जानेवाली धातु, दफ्ती आदि की बनी हुई खोली जिसमे धातु की गोली और बारूद भरा होता है। (कारट्रिज)

कारन*—अव्य० [सं० कारण] लिए। वास्ते। उदा०—कामरूप केहि कारन आवा।—तुलसी।

*पुं०=कारण।

वि० करनेवाला। (यौ० के अन्त में) जैसे—हितकारन।

*पुं० [सं० कारुण्य] करुण स्वर।

कारनामा—पुं० [फा० कारनामः] १. किया हुआ कोई अच्छा और बड़ा काम। २. किसी के किये हुए बड़े-बड़े कामों का उल्लेख या लिखित विवरण।

कारनिस—स्त्री० [अं०] दीवार के ऊपरी भाग में सुन्दरता के लिए बाहर की ओर निकाला हुआ थोड़ा-सा अंश। कँगनी। कगर।

कारनी*—पुं० [सं० कारण] वह जो कुछ करे या करावे। किसी काम का कर्त्ता।

वि० १. कारण के रूप में होने या प्रेरणा करनेवाला। प्रेरक। २. भेद करनेवाला। भेदक। ३. बुद्धि पलटनेवाला।

कार-परदाज—पुं० [फा०] [भाव० कारपरदाजी] १. किसी की ओर से उसका प्रतिनिधि बनकर काम करनेवाला। कारिंदा। २. प्रबंध-कर्त्ता।

कारपरदाजी—स्त्री० [फा०] १. कारपरदाज होने की अवस्था, पद या भाव। २. कार्य-पटुता।

कारबन—पुं० [अं०] रसायन शास्त्र में एक अधात्वीय तत्त्व जो भौतिक सृष्टि के मूल तत्त्वों में से एक है और जो कारबोनिक एसिड गैस, कोयले, हीरे आदि में पाया जाता है।

कारबार—पुं० [फा०] १. काम-काज। २. व्यवसाय। रोजगार।

कारबारी—वि० [फा०] कार-बार संबंधी। जैसे—कार-बारी बातचीत।

पु० १. कार-बार या व्यवसाय करनेवाला। व्यवसायी। २. कारिंदा।

कारभ—वि० [सं० करभ+अण्] करभ अर्थात् ऊँट-संबंधी। करभ का।

कारमन*—पुं०=कार्मण।

कारयिता (तृ)—पुं० [सं० कृ+णिच्+तृच्] [स्त्री० कारयित्री] १. कर्त्ता। २. बनाने, रचने या सृष्टि करनेवाला।

काररवाई—स्त्री० [फा०] १. किसी कार्य के संपादन करने के समय होनेवाली आवश्यक क्रियाएँ। जैसे—अदालती काररवाई, जलसे की काररवाई। २. किसी सभा, संस्था आदि के कार्यों का अभिलेख या विवरण। जैसे—पिछली बैठक की काररवाई पढ़कर सुनाई जाय। ३. अनुमति या गुप्त रूप से चली हुई चाल या किया हुआ प्रयत्न। जैसे—यह सब उन्हीं की काररवाई है।

कारवाँ—पुं० [फा०] पैदल यात्रियों का समूह। काफिला (दे०)।

कारवेल्ल—पुं० [सं०] करेला।

कारसाज—वि० [फा०] [संज्ञा कारसाजी] १. सब काम ठीक प्रकार से पूरा करनेवाला। अच्छे ढंग या युक्ति से काम करनेवाला। २. बिगड़ा हुआ काम बनाने या सँवारनेवाला।

कारसाजी—स्त्री० [फा०] १. कारसाज होने या काम पूरा उतारने की क्रिया या भाव। २. किसी को हानि पहुँचाने के लिए गुप्त रूप से किया हुआ चालबाजी का कोई काम या युक्ति।

कारस्तानी—स्त्री० दे० 'कारिस्तानी।'

कारा—स्त्री० [सं०√कृ (विक्षेप) +अङ्, गुण, दीर्घ (नि०)] १. बंधन। २. वह स्थान जहाँ शासन द्वारा दंडित अपराधियों को बंदी बनाकर रखा जाता है। कारागार। कारागृह। (जेल)

स्त्री० दूती।

†वि० काला।

वि० [हिं० आकार] आकार या रूपवाला। जैसे—नाना वाहन नाना कारा।—तुलसी।

कारागार—पुं० [कारा-आगार, कर्म० स०] जेलखाना। बंदीगृह।

कारागारिक—वि० [सं० कारागार+ठक्—इक] कारागार-संबंधी।

पुं० वह व्यक्ति जो कारागार-संबंधी सब व्यवस्थाएँ करता हो। कारागार का प्रधान अधिकारी। (जेलर)

कारा-गृह—पुं० [कर्म० स०] कारागार। जेलखाना।

कारा-दंड—पुं० [प० त०] वह दंड जो किसी को कारागार में बन्द रखने के रूप में दिया जाय। कैद की सजा।

कारा-पथ—पुं० [ष० स०] एक प्राचीन देश जो वाल्मीकि के अनुसार लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चित्रकेतु के अधिकार में था।

कारापाल—पुं० [सं० कारा√पाल् (पालन करना)+णिच्+अण्] कारागार का प्रधान अधिकारी। जेलर।

काराबंदी—पुं० [सं० कारावद्ध] वह अपराधी जिसे कारागार में बन्द किया गया हो। कैदी।

कारा-रुद्ध—वि० [स० त०] जो कारागार में बन्द किया गया हो। (इंप्रिजंड)

कारा-रोधन—पुं० [स० त०] १. कारागार में बन्द करने या होने की क्रिया या भाव। २. कैद की सजा।

कारा-वास—पुं० [स० त०] कारा या कारागार में रहने की अवस्था, दंड या भाव। (इंप्रिजनमेंट)

कारिंदा—पुं० [फा० कारिंदः] [भाव० कारिंदगरी] १. कर्मचारी। २. वह व्यक्ति जो किसी के प्रतिनिधि के रूप में उसका काम करता या देखता-भालता हो।

कारिक—पुं० [देश०] करघे की वह लकड़ी जो ताने को सँभाले रहती है। खरकूत।

कारिका—स्त्री० [सं०√कृ(करना)+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] १. नाचनेवाली स्त्री। नर्तकी। २. व्यवसाय। व्यापार। ३. संस्कृत साहित्य में वह श्लोक जिसमें बहुत-सी बातों, नियमों आदि को सूत्र रूप में कहा गया हो। ४. एक प्रकार का संकीर्ण राग।

कारिख†—स्त्री०=१. कालिख। २. काजल।

कारिणी—वि० स्त्री० [सं० कारिन्+ङीप्] करनेवाली। जैसे—प्रबंध-कारिणी समिति।

कारित—वि० [सं० कृ+णिच्+क्त] किसी के द्वारा कराया हुआ।

कारिता—पुं० [सं० कारित+टाप्] ब्याज की वह दर जो उचित या विधिक दर से अधिक हो।

कारिस्तानी—स्त्री० [फा० कारस्तानी] १. कार्रवाई। २. परोक्ष रूप से या छिपकर की हुई कोई चालबाजी या युक्ति। ३. अनुचित काम।

कारी (रिन्)—वि० [सं०√कृ+णिनि] [स्त्री० कारिणी] (शब्दों के अन्त में) १. करनेवाला। जैसे—विनाशकारी। २. अनुसरण या पालन करनेवाला। जैसे—आज्ञाकारी।
स्त्री० कोई काम करने की क्रिया या भाव। जैसे—चित्रकारी।
वि० [फा०] १. अपना प्रभाव या फल दिखलानेवाला। गुणकारी। २. घातक या मर्मभेदी।

कारीगर—पुं० [फा०] [संज्ञा कारीगरी] वह जो छोटे-मोटे उपकरणों की सहायता से कोई कलापूर्ण कृति तैयार करता हो। शिल्पकार। जैसे—बढ़ई, लोहार, सोनार आदि।

कारीगरी—स्त्री० [फा०] १. कारीगर होने की अवस्था या भाव। २. कारीगर का वह गुण, सूझ या शक्ति, जिससे किसी कृति में जान आती हो।

कारीष—पुं० [सं० करीष+अण्] गोबर का ढेर।
वि० १. गोबर-संबंधी। २. गोबर से बनने या होनेवाला।

कारु—पुं० [सं० √ कृ+उण्] १. कारीगर। शिल्पी। २. जुलाहा। बुनकर।

कारुक—पुं० [कारु+कन्] दे० 'कारु'।

कारुज—पुं० [सं० कारु √ जन् (उत्पन्न होना) + ड] १. कारीगर की बनाई कोई कृति या वस्तु। २. शरीर के तिल आदि। ३. [क-आ√रुज् (भंग)+क] हाथी का बच्चा। ४. गेरू। ५. वल्मीक। ६. फेन।

कारुणिक—वि० [सं करुणा+ठक्—इक] १. करुणा से युक्त। २. जिसे देखकर मन में करुणा उत्पन्न होती हो। जैसे—कारुणिक दृश्य। ३. (व्यक्ति) जिसमें करुणा हो। दयार्द्र।

कारुण्य—पुं० [सं० करुण+ष्यञ्] करुण होने की अवस्था या भाव। करुणा।

कारुनीक*—वि०=कारुणिक।

कारुपथ—पुं०=कारापथ।

कारूँ—पुं० [अ०] १. मुसलमानी कथाओं के अनुसार हजरत मूसा का चचेरा भाई, जो बहुत संपत्तिशाली होते हुए भी परम कृपण था।
पद—कारूँ का खजाना= अनंत संपत्ति।
२. ऐसा व्यक्ति जो धनी होते हुए भी बहुत कृपण हो।

कारूती—स्त्री० [अ०] एक प्रकार का मलहम जो हकीम लोग बनाते हैं।

कारूनी—स्त्री० [?] घोड़ों की एक जाति।

कारूरा—पुं० [अ० कारूरः] १. फुँकनी शीशी, जिसमें रोगी का मूत्र चिकित्सक को दिखाने के लिए रखा जाता है। २. रोगी का मूत्र या पेशाब, जो उक्त शीशी में भरकर चिकित्सक को दिखाया जाता है। ३. पेशाब। मूत्र। ४. शत्रु पर फेंकी जानेवाली बारूद की कुप्पी।

कारूष—वि० [स० करूष+अण्] करूष देश-संबंधी। करूष देश का।
पुं० करूष देश का निवासी।

कारोंछ—स्त्री०= कलौंछ।

कारो*—वि०= काला।

कारोबार—पुं०=कारबार (व्यवसाय)।

कार्कश्य—पुं० [सं० कर्कश+ष्यञ्] = कर्कशता।

कार्ज—पुं०=कार्य।

कार्ड—पुं० [अं०] मोटे कागज या दफ्ती का कोई टुकड़ा; विशेषतः चौकोर टुकड़ा। जैसे—ताश या निमन्त्रण का कार्ड, पोस्टकार्ड आदि।

कार्ण—वि० [सं० कर्ण+अण्] कर्ण या कान संबंधी।
पुं० कान में पहना जानेवाला आभूषण।

कार्तयुग—वि० [सं० कृतयुग+अण्] कृतयुग से संबंध रखनेवाला।
पुं० [कृत+अण्, कार्त-युग, कर्म० स०] सत्ययुग।

कार्तवीर्य—पुं० [सं० कृतवीर्य+अण्] माहिष्मती के राजा कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन, जिसे परशुराम ने मारा था।

कार्तिक—पुं० [सं० कृत्तिका+अण्] १. चांद्र संवत् का आठवाँ और सौर संवत् का सातवाँ महीना जो क्वार के बाद और अगहन के पहले पड़ता है। २. वह संवत्सर जिसमें बृहस्पति कृत्तिका तथा रोहिणी नक्षत्र में हों।

कार्तिकी—स्त्री० [सं० कार्तिक+ङीप्] कार्तिक मास की पूर्णिमा।

कार्तिकेय—पुं० [सं० कृत्तिका+ढक्—एय] कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न होनेवाले शिव तथा पार्वती के पुत्र स्कंद, जो युद्ध के देवता माने जाते हैं।

कार्दम—वि० [सं० कर्दम+अण्] १. कर्दम या कीचड़-संबंधी। कर्दम का। २. कर्दम या कीचड़ से युक्त। ३. गंदा। मैला।

कार्पट—पुं० [सं० कर्पट+अण्] १. वह जिसने फटे-पुराने वस्त्र पहने हों। २. भिखमंगा। ३. याचना करनेवाला व्यक्ति। याची।

कार्पटिक—पुं० [सं० कर्पट+ठक्—इक] १. यात्री। २. यात्रियों का समूह। ३. गंगा आदि नदियों का जल लाकर जीविका चलानेवाला व्यक्ति। ४. अनुभवी व्यक्ति।

कार्पण्य—पुं० [सं० कृपण+ष्यञ्]=कृपणता।

कार्पास—वि० [सं० कर्पास+अण्] १. कपास या रूई का बना हुआ। २. कपास-संबंधी।

पुं० सूती कपड़ा।

कार्पासिक—वि० [सं० कर्पास+ठक्—इक] =कार्पास।

कार्म—वि० [सं० कर्मन्+ण] १. कर्म-संबंधी। कर्म का। २. कर्म के रूप में संपन्न होनेवाला। जैसे—कार्म भार=उतना भार जितना कार्य रूप में ढोया जाय या ढोया जा सके। ३. कर्म करनेवाला। कर्मशील। ४. उद्योगी। मेहनती।

वि० [सं० कृमि से] कृमि-संबंधी। कीड़ों का।

कार्मण—पुं० [सं० कर्मन्+अण्] ऐसे कर्म जिनमे मंत्र-तंत्र आदि से मारण, मोहन, वशीकरण आदि प्रयोग किये जाते है

वि० कार्य-कुशल। दक्ष।

कार्मणोन्माद—पुं० [सं० कार्मण-उन्माद, ष० त०] वैद्यक में एक प्रकार का उन्माद।

कार्मण्य—पुं० [सं० कर्मन्+ष्यञ्] = कर्मण्यता।

कार्मना—पुं० [सं० कार्मण] मंत्र-तंत्र के मारण, मोहन आदि प्रयोग। कृत्या।

कार्मिक—पुं० [सं० कर्मन्+ठक्—इक] वह वस्त्र जिसकी बुनावट में ही शंख, चक्र, स्वस्तिक आदि के चिह्न बनाये गये हों। २. कर्म या कार्य करनेवाला व्यक्ति।

वि० जो कर्म या कार्य में लगा हो।

कार्मिक-संघ—पुं० [ष० त०] काम करनेवालों अर्थात् कर्मचारियों, मजदूरों आदि का संघ।

कार्मुक—वि० [सं० कर्मन्+उकञ्] बाँस या लकड़ी का बना हुआ।

पुं० १. धनुष। २. इन्द्रधनुष। ३. रुई धुनने की धुनकी। ४. धनुराशि। ५. परिधि का कोई भाग। चाप। योगसाधना में एक प्रकार का आसन। ७. एक प्रकार का शहद। ८. बाँस।

कार्य—पुं० [सं० √कृ+ण्यत्] १. वह जो कुछ किया गया हो या किया जाय (वर्क)। २. किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जानेवाला प्रयत्न। ३. जीविका, व्यवसाय, सेवा आदि के विचार से किया जानेवाला काम। (विशेष दे० 'काम') ४. कर्त्तव्य। ५. परिणाम या फल। ६. नाटक का प्रधान प्रयोजन या साध्य। ७. नाटक की पाँच अर्थ प्रकृतियो में से अंतिम अर्थ प्रकृति, जिसकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं और जो मुख्य कथावस्तु तथा नाटक की लक्ष्य-सिद्धि का विकास क्रमशः प्रकट करती हैं। ८. पाश्चात्य नाट्यसिद्धान्तों के अनुसार किसी नाटक की घटनाओं की शृंखला। ९. धन के लेन-देन का झगड़ा या विवाद। दीवानी मुकदमा। १०. ज्योतिष में जन्म लग्न से दसवाँ स्थान।

कार्य-कर्त्ता(र्तृ)—पुं० [ष० त०] १. काम करनेवाला व्यक्ति। २. कर्मचारी। ३. किसी संस्था, सभा आदि का प्रबन्ध-अधिकारी। ४. किसी कार्य में विशेष रूप में अग्रसर होकर काम करनेवाला व्यक्ति। जैसे—सामाजिक कार्य-कर्त्ता।

कार्य-कारण-भाव—पुं० [कार्य-कारण, द्व० स०, कार्य-कारण-भाव, ष० त०] वह भाव या संबंध जो कारण का कार्य से और कार्य का कारण से होता है।

कार्यकारी (रिन्)—वि० [सं० कार्य√कृ+णिनि] १. विशेष रूप से कोई काम करनेवाला। २. किसी के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करनेवाला अधिकारी। ३. दे० 'कार्यकर्त्ता'।

कार्य-कुशल—वि० [स० त०] (व्यक्ति) जो कोई कार्य सुचारु रूप से तथा अपेक्षया कम समय में और कौशलपूर्वक पूरा करता हो।

कार्य-क्रम—पुं० [ष० त०] १. किसी उत्सव, समारोह आदि की कार्यवाहियों की पहले से तैयार की हुई क्रमिक सूची। २. उक्त प्रकार की सूची के अनुसार होनेवाला कोई कार्य। ३. मनोरंजन या मनोविनोद के लिए होनेवाला कोई कार्य। (प्रोग्राम, उक्त सभी अर्थों मे)

कार्य-क्षम—वि० [स० त०] जो कोई कार्य करने अथवा उत्तरदायित्व निभाने के लिए उपयुक्त, योग्य तथा समर्थ हो।

कार्यक्षमता—स्त्री० [स० कार्यक्षम+तल्—टाप्] कार्यक्षम होने की अवस्था, गुण या भाव।

कार्य-चिंतक—पुं० [ष० त०] प्राचीन भारत में वह अधिकारी जो स्थानीय प्रबंध करता था। (स्मृति)

कार्यतः—क्रि० वि० [सं० कार्य+तस्] क्रियात्मक ढंग से। कार्य रूप मे।

कार्य-दर्शन—पुं० [ष० त०] अपने अथवा औरों के किए हुए कामों को इस दृष्टि से देखना कि वे ठीक हुए है या नही।

कार्य-दर्शी (शिन्)—पुं० [स० कार्य √दृश् (देखना)+णिनि] वह व्यक्ति जो दूसरों के कार्यों का अवलोकन, निरीक्षण या मूल्यांकन करता हो। दूसरों का काम अच्छी तरह देखनेवाला।

कार्य-दिवस—पुं० [ष० त०] १. काम करने का दिन ; अर्थात् ऐसा दिन जो छुट्टी का न हो। २. उक्त दिन का उतना भाग (या समय) जिसमें (या जितने समय तक) किसी कर्मचारी या सेवक को नियोक्ता का काम करना पड़ता है और जिसकी गिनती एक पूरे दिन मे होती है। (वर्किंग डे)।

कार्य-पंचक—पुं० [ष० त०] ईश्वर के ये पाँच काम—अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, स्थिति और उद्भव।

कार्य-परिषद्—स्त्री० [ष० त०] वह परिषद् जो किसी कार्य की व्यवस्था, संचालन आदि करती हो।

कार्य-पालिका—स्त्री० [ष० त०] शासन का वह विभाग जो संसद् द्वारा पारित विधियों को कार्यरूप में बलवत् करता तथा उनका निष्पादन करता हो। (एक्जिक्यूटिव)

कार्य-प्रणाली—स्त्री० [ष० त०] कोई कार्य करने का मान्य, स्वीकृत अथवा रूढ़िगत ढंग या प्रणाली।

कार्य-भार—पुं० [ष० त०] किसी कार्य या पद का उत्तरदायित्व। किसी कार्य के निर्वाह तथा संचालन की पूरी जिम्मेदारी (चार्ज)।

कार्य-भारी (रिन्)—पुं० [सं० कार्यभार+इनि] वह व्यक्ति जिसने

ऊपर किसी कार्य, पद आदि के निर्वाह तथा संचालन की पूरी जिम्मेदारी या भार लिया हो। (इनचार्ज)

कार्यवाही (हिन्)—वि० [सं० कार्य√ वह् (वहन करना)+ णिच्+णिनि] कार्य या पद का भार वहन करनेवाला।
स्त्री०=कार्रवाई।

कार्य-विवरण—पुं०[ष० त०] सभा, समिति आदि में जो कार्य हो चुके हों, उनका लेखा या विवरण। (प्रोसीडिंग्स)

कार्य-सम—पुं० [स० त०] तर्क में ऐसी मिथ्या आपत्ति या कुतर्क, जिसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऐसा ही प्रभाव या फल असम या विषम परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है। (*न्याय-दर्शन में इसे* चौबीस जातियों के अंतर्गत माना गया है।)

कार्य-समिति—स्त्री० [ष० त०] १. किसी कार्य-विशेष के निर्वाह या संचालन के लिए बनी हुई समिति। २. किसी संस्था या सभा की प्रबन्धकारिणी समिति। (वर्किंग कमेटी)

कार्य-सूची—स्त्री० [ष० त०] किसी कार्य के निर्वाह के लिए उसके सब अंगों-उपांगों की क्रम से बनाई हुई सूची, जिसके अनुसार काम किया जाता हो। (एजेंडा)

कार्य-स्यगन-प्रस्ताव—पुं० [ष० त०] किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिए विधान सभा आदि में रखा जानेवाला वह प्रस्ताव, जिसमें सदस्यों से प्रार्थना की जाती है कि अन्य कार्य छोड़कर पहले इसी आवश्यक विषय पर विचार किया जाय (एडजर्नमेंट मोशन)।

कार्य-हेतु—पुं०[ष०त०] १.वह मूल उद्देश्य जिससे प्रेरित होकर कोई काम किया जाय। २. वह कारण या हेतु जिससे कोई कार्य या व्यवहार (मुकदमा) न्यायालय के सामने विचार के लिए रखा जाय। (कॉज आफ ऐक्शन)

कार्याकार्य—पुं०[सं० कार्य-अकार्य, द्व० स०] अच्छे और बुरे सभी तरह के कार्य—कर्तव्य और अकर्तव्य सभी प्रकार के कर्म।

कार्याधिकारी (रिन्)—पुं०[सं० कार्य-अधिकारी, ष० त०] वह अधिकारी जो किसी विशेष कार्य का निर्वाह और संचालन करता हो।

कार्याधिप—पुं० [सं० कार्य-अधिप, ष० त०] १. कार्य निरीक्षक। २. प्रश्न का निर्णायक ग्रह (ज्यो०)।

कार्याध्यक्ष—पुं० [सं० कार्य-अध्यक्ष, ष० त०] किसी कार्य या विभाग का प्रधान अधिकारी।

कार्यान्वित—वि० [सं० कार्य-अन्वित, तृ० त०] कार्य रूप में अर्थात् व्यवहार में लाया हुआ। किया हुआ।

कार्यार्थी (र्थिन्)—वि० [सं० कार्य√अर्थ+णिनि] १ कार्य की सिद्धि चाहनेवाला। २. प्रार्थना या विनती करनेवाला। ३. नियुक्ति के लिए आवेदन करनेवाला। ४. मुकदमे की पैरवी करनेवाला।

कार्यालय—पुं० [सं० कार्य-आलय, ष० त०] वह भवन या स्थान, जहाँ व्यावसायिक, शासनिक, साहित्यिक आदि कार्य होते हों तथा जहाँ उक्त कार्यों के निर्वाह के लिए कुछ लोग नियमित रूप से काम करते हों। दफ्तर। (ऑफिस)

कार्यावली—स्त्री० [सं० कार्य-अवली, ष० त०] उन कार्यों की सूची जो किसी सभा-समिति में किसी एक दिन अथवा किसी एक अधिवेशन या बैठक में विचारार्थ रखे जाने को हों। कार्य-सूची। (एजेंडा)

कार्यी (यिन्)—वि० [सं० कार्य+इनि] कार्यार्थी।

कार्येक्षण—पुं० [सं० कार्य-ईक्षण, ष० त०] दूसरों के किये हुए कामों का निरीक्षण।

कार्रवाई—स्त्री०= काररवाई।

कार्ष—पुं० [सं०कृषि+ण] कृषक। खेतिहर।

कार्षक—पुं० [सं० कार्ष+कन् या √कृष्+क्वुन्—अक, वृद्धि]=कार्ष।

कार्षापण—पुं० [सं० कार्ष-आपण, ष० त० या ब० स०] एक प्रकार का पुराना सिक्का, जो पहले ताँबे का बनता था; पर आगे चल कर चाँदी और सोने का भी बनने लगा था।

कार्षिक—पुं० [सं० कर्ष+ठञ्—इक]= कार्षापण।

कार्ष्ण—वि० [सं० कृष्ण+अण्] १. कृष्ण-संबंधी। कृष्ण का। २. *कृष्ण द्वैपायन-संबंधी। ३. कृष्ण मृग-संबंधी।*

कार्ष्णायन—पुं० [सं० कृष्ण+फक्—आयन] १. व्यासवंशीय ब्राह्मण। २. *वसिष्ठ गोत्र का ब्राह्मण।*

कार्ष्णि—पुं० [सं०कृष्ण+इञ्] १. कृष्ण का पुत्र, प्रद्युम्न। २. कामदेव।

कार्ष्ण्य—पुं० [सं० कृष्ण+ष्यञ्] कृष्णता। कालापन।

कालंजर—पुं० [सं० काल √जॄ (जीर्ण होना)+णिच्+अच्, मुम्] कालिंजर।

काल—पुं०[सं० √कल् (गिनना)+णिच्+अच्+ अण्। (कृष्ण वर्ण या तद्विशिष्ट के अर्थ में) कु √ ला (लेना)+क, कु=का] १. दो क्रियाओं, घटनाओं आदि के बीच का अवकाश जिसकी गणना वर्ष, मास, दिन, रात, घड़ी, पल आदि के रूप में की जाती है। समय। (टाइम)

मुहा०—काल-गूदड़ी सीना= समय बिताना। उदा०—तुम्हरे रुख फेरे *करुणानिधि काल गुदरियाँ सीएँ।*—सूर।

पद—काल पाकर=कुछ समय बीतने पर। कुछ दिनों बाद।

२. काल की कोई निश्चित अवधि, मान या बिन्दु। जैसे—उदयकाल, जन्म-काल, शासन-काल। ३. काल या समय की कोई ऐसी अवधि, जो किसी घटना की सूचक या उसके लगभग हो। जैसे—प्रातःकाल, सायंकाल। ४. किसी काम या बात के लिए उपयुक्त अवसर या निश्चित समय। ५. वह अवधि जिसके बीतने के समय किसी बात का अन्त या समाप्ति होती है; अथवा कोई नई घटना घटित होती है। जैसे—काल सब को खा जाता है। ६. उक्त के आधार पर किसी के अन्त या विनाश का समय। ७. प्राणियों के संबंध में उनका अंत या मृत्यु। मौत। जैसे—उसका काल आ गया था इसी से उसकी मृत्यु हो गई ८. मृत्यु के देवता, यमराज।

मुहा०—(किसी का) काल के गाल में जाना=मर जाना। मौत आना। **(किसी के) सिर पर काल नाचना**=मृत्यु या विनाश की निकटता।

९. शिव *या* महाकाल। १०. काला नाग जिसके काटने से मृत्यु अवश्यंभावी होती है। ११. व्याकरण में क्रियाओं के रूपों से सूचित होनेवाला वह तत्त्व जिससे पता चलता है कि अमुक घटना या बात किस समय से संबंध रखती है; अर्थात् हो चुकी है, हो रही है या अभी होने को है।

विशेष—इसी आधार पर इसके भूत, वर्तमान और भविष्य ये तीन विभाग किये गये हैं।

१२. ज्योतिष में एक योग जो यात्रा आदि कार्यों के लिए अशुभ

गया है। १३. शनिदेवता। १४. लोहा।

वि० [सं०] १. काला। कृष्ण। २. घोर। विकट। उदा०—है मैंने भी रो-रोकर, काटी वियोग की काल रात्रि।—भगवतीचरण वर्मा। ३. बहुत बड़ा। जैसे—काल जुआरी।

†पुं०=अकाल (दुर्भिक्ष)।

†क्रि वि०= कल (आनेवाला अथवा बीता हुआ दिन)।

काल-कंठ—पुं० [ब० स०] १. शिव। महादेव। २. मोर। मयूर। ३. नीलकंठ पक्षी। ४. खंजन।

कालक—पुं० [सं० √कल् (प्रेरणा)+णिच्+ण्वुल्—अक] १. तैंतीस प्रकार के केतुओं में से एक। २. आँख की पुतली। ३. पानी का साँप। डेड़हा। ४. पूर्वी भारत का एक प्राचीन देश। ५. यकृत। जिगर। ६. बीजगणित में दूसरी अव्यक्त राशि।

वि० काले रंग का। काला।

काल-कवलित—वि० [तृ० त०] जो काल का ग्रास बना हो; अर्थात् मृत। मरा हुआ।

काल-कवि—पुं० [कर्म० स०] अग्नि।

कालका—स्त्री० [सं० काल+क, टाप्] दक्ष प्रजापति की एक कन्या जिसका विवाह कश्यप से हुआ था और जिससे नरक तथा कालक नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

कालकूट—पुं० [सं० काल-कूट, उपमित स० अथवा काल√कूट् (उपताप)+अण्] १. समुद्र मन्थन के समय निकला हुआ परम भीषण विष जिसे शिवजी ने पान किया था। २. भीषण विष। बहुत तेज जहर। ३. एक प्रकार का बहुत भीषण वानस्पतिक विष। काल। बछनाग। ४. सींगिया की जाति का एक पौधा जिसकी जड़ विषाक्त होती है। ५. उत्तर भारत के एक पर्वत का नाम। ६. इस पर्वत के आस-पास का प्रदेश, जिसमें आजकल के देहरादून और कालसी नामक स्थान हैं।

काल-केतु—पुं० [उपमित स०] पुराणानुसार एक राक्षस का नाम।

कालकोठरी—स्त्री० [हिं० काल+कोठरी] १. जेलखाने की वह बहुत छोटी और अँधेरी कोठरी जिसमें भीषण अपराध करनेवाले कैदी रखे जाते हैं। (सालिटरी सेल) २. बहुत ही अँधेरी और तंग जगह।

काल-क्रम—पुं० [सं० प० त०] कार्यों, घटनाओं, तथ्यों आदि का वह क्रम जो उनके क्रमात् घटित होने के विचार से लगाया जाता है। (क्रोनालॉजी)

कालक्रमिक—वि० [सं० कालक्रम+ठक्—इक] (कार्यों, घटनाओं आदि की सूची) जो कालक्रम के विचार से प्रस्तुत हो। २. काल-क्रम-संबंधी।

काल-क्षेप—पुं० [प० त०] काल या समय बिताना। दिन काटना या गुजारना।

काल-खंड—पुं० [प० त०] १. काल का कोई विभाग। अवधि। २. परमेश्वर। उदा०—मानो कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना।—केशव।

काल-गंगा—स्त्री० [कर्म० स०] १. यमुना नदी, जिसके जल का रंग काला है। कालिन्दी। २. लंका की एक नदी का नाम।

काल-गंडैत—पुं० [हिं० काला-गंडा] वह विषधर साँप जिसके शरीर पर काले गंडे या चित्तियाँ बनी होती हैं।

काल-चक्र—पुं० [प० त०] समय का बराबर पलटते या बदलते रहना जो एक चक्र या पहिये के घूमने के समान माना गया है। २. काल का उतना अंश जितना एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में लगता है। (जैन) ३. एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र।

कालचक्रयान—पुं० [सं०] एक बौद्ध संप्रदाय जिसे कुछ विद्वान् वज्रयान का एक भेद मानते हैं।

कालज्ञ—पुं० [सं० काल√ज्ञा (जानना)+क] १. वह व्यक्ति जिसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का ज्ञान हो। २. ज्योतिषी। ३. वह जो समय की गति, स्थिति आदि ठीक तरह से पहचानता हो। ४. मुर्गा।

काल-ज्ञान—पुं० [प० त०] समय की गति, स्थिति आदि की जानकारी और पहचान। समय-कुसमय की पहचान।

काल-ज्वर—पुं० [उपमित स०] एक प्रकार का घातक ज्वर, जो मरु-मक्षिकाओं के काटने से होता है और जिसमें प्लीहा तथा यकृत की वृद्धि, रक्ताल्पता, जलोदर, रक्त-स्राव आदि होते हैं। काला आजार।

काल-तुष्टि—स्त्री० [स० त०] सांख्य के अनुसार मनुष्य को उपयुक्त या नियत समय आने पर मिलने या होनेवाली संतुष्टि।

काल-दंड—पुं० [प० त०] यमराज का दंड।

काल-दर्श—पुं० [सं० कालादर्श] काल-गणना की वह प्रणाली जिसके अनुसार वर्ष, मास आदि का परिमाण या विस्तार निश्चित होता है। (कैलेंडर) जैसे—अरबी, भारतीय या रोमन कालदर्श।

काल-दोष—पुं० [प० त०] घटनाओं, तथ्यों आदि को ठीक काल-क्रम से न रखे जाने का दोष। काल-क्रम में कुछ भूल होना (एनाक्रानिज्म)।

काल-धर्म—पुं० [प० त०] १. मृत्यु। २. अवसान। विनाश। ३. समय के अनुसार घटनाओं के घटित होने का प्राकृतिक या स्वाभाविक गुण या धर्म। जैसे—बरसात के दिनों में वर्षा होना।

काल-नाथ—पुं० [प० त०] १. महादेव। शिव। २. काल भैरव।

काल-निर्यास—पुं० [कर्म० स०] गुग्गुल।

काल-निशा—स्त्री० [कर्म० स०] १. अंधेरी और भयावनी रात। २. कार्त्तिकी अमावस्या की रात्रि। दिवाली की रात।

काल-नेमि—पुं० [उपमित स० ?] १. एक राक्षस जो रावण का मामा था और जिसने हनुमानजी को उस समय छलना चाहा था जब वे संजीवनी लाने जा रहे थे। २. एक पौराणिक दानव, जिसने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और जो अन्त में विष्णु के हाथों मारा गया था। (कहते हैं कि यह अपना शरीर चार भागों में बाँटकर हर शरीर से अलग-अलग काम करता था।)

कालपट्टी—स्त्री० [पुर्त० कोलाफटी] जहाज की दरार या संधि भरने के लिए उसमें सन आदि ठूसने का काम।

कालपर्णी—स्त्री० [काल-पर्ण ब० स०, ङीप्] काली तुलसी।

काल-पाश—पुं० [प० त०] १. समय का बन्धन। २. समय का वह नियंत्रण या बन्धन, जिसके अनुसार भूत-प्रेत कुछ समय तक किसी का कोई अनिष्ट नहीं कर सकते। ३. यमराज का पाश, बंधन या फंदा। यमपाश।

काल-पुरुष—पुं० [उपमित स०] १. समय का कल्पित मानवी रूप। २. ईश्वर का विराट् रूप। ३. मृत्यु के देवता। काल देवता। ४. लोहे की वह मूर्ति जो संकट टालने के लिए दान की जाती है। ५. आकाश का एक नक्षत्र-मंडल।

काल-प्रमेह—पुं० [कर्म० स०] प्रमेह का एक भेद, जिसमें रोगी को काला पेशाब होता है।

काल-फल—पुं० [उपमित स०] इंद्रायन या इनारू, जिसे खाने से प्राणी मर जाता है।

कालबंजर—पुं० [सं० काल+हिं० बंजर] ऐसी परती जमीन जो बहुत दिनों से जोती बोई न गई हो; और फिर सहज में जोती बोई न जा सकती हो।

कालबूत—पुं० दे० 'कलबूत'।

काल-भैरव—पुं० [ब० स०] १. शिव। २. शिव के मुख्य गणों में से एक गण।

कालम—पुं० [अं०] स्तंभ (दे०)।

कालमुख—पुं० [सं०] एक प्राचीन शैव सम्प्रदाय जिसके अनुयायी शिव के नीलकंठ, कृष्णवर्ण और मुण्डमालधारी रूप की उपासना करते थे।

काल-मेघ—पुं० [कर्म० स०] एक पौधा जिसकी छाल और जड़ दवा के काम आती है।

काल-मेह—पुं० [ब० स०] एक उग्र तथा घातक विषम ज्वर जिसमें रोगी को प्रस्वेद, पैत्तिक वमन, अतिसार, आमाशय के ऊपरी भाग में पीड़ा आदि होती है। (ब्लैक वॉटर फीवर)।

काल-यवन—पुं० [उपमित स०] पुराणानुसार एक यवन राजा जो कृष्ण और यादवों का घोर शत्रु था, और जिसे कृष्ण ने छल से मुचकुंद के द्वारा जीते-जी भस्म करवा दिया था।

काल-यापन—पुं० [प० त०] १. समय का काटना या बिताना। २. जानबूझ कर किसी काम में देर लगाना या विलम्ब करना।

काल-युक्त—पुं० [तृ० त०] साठ संवत्सरों में से बावनवाँ संवत्सर (हिन्दू पंचांग)।

कालर—पुं० [अं०] १. पहनने के कपड़ों में वह पट्टीदार अंश जो गले के चारों ओर रहता है। २. पशुओं आदि के गले में बाँधने का पट्टा।

पुं दे० 'कल्लर'।

वि० दे० 'काला'। उदा०—चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर लूण।—मीराँ।

काल-रात्रि—स्त्री० [कर्म० स०] १. प्रलय की रात, जिसमें सारी सृष्टि नष्ट हो जाती है और जिसे ब्रह्मा की रात्रि भी कहते हैं। २. बहुत अंधेरी और भयावनी रात। ३. मृत्यु की रात। ४. दीवाली की रात। ५. दुर्गा की एक मूर्ति या रूप।

काल-वाचक—वि० [ष० त०] समय सूचित करनेवाला। समय का प्रबोधक। जैसे—कालवाचक *क्रिया-विशेषण अथवा विशेषण*।

कालवाची (चिन्)—वि० [सं० काल√वच् (बोलना)+णिनि]=काल-वाचक।

काल-विपाक—पुं० [प० त०] १. किसी काम या बात की अवधि या समय पूरा होना अथवा उसके घटित होने का नियत समय आना। २. काल या नियति का वह विधान जो अपरिहार्य और अवश्यंभावी होता तथा अपने समय पर नियत काम करके रहता है। होनहार। होनी।

काल-वृद्धि—स्त्री० [तृ० त०] समय बीतने पर व्याज या सूद का बहुत अधिक या इतना बढ़ जाना कि वह मूलधन के बराबर या उससे भी अधिक हो जाय।

काल-वेला—स्त्री० [प० त०] १. शनिग्रह का भोग-काल, जो प्रायः घातक सिद्ध होता है। २. ज्यौतिष में वह योग या समय जिसमें कोई धार्मिक या शुभ काम करना निषिद्ध होता है।

काल-सर्प—पुं० [कर्म० स०] १. ऐसा साँप जिसके काटने से प्राणी अवश्य और तुरन्त मर जाय। २. लाक्षणिक रूप में ऐसा व्यक्ति जो दूसरों की बड़ी-से-बड़ी हानि कर सकता हो।

कालसिर—पुं० [हिं० काल+सिर] जहाज के मस्तूल का ऊपरी सिर।

काल-सूत्र—पुं० [उपमित स०] अट्ठाइस मुख्य नरकों में से एक।

काल-सेन—पुं० [ब०स०?] पुराणानुसार वह डोम जिसने राजा हरिश्चन्द्र को मोल लिया था।

कालांग—वि० [काल-अंग, ब० स०] काले रंग का। काला।

पुं० खड्ग। तलवार।

कालांजन—पुं० [काल-अंजन, कर्म० स०] एक प्रकार का सुरमा।

कालांतर—पुं० [काल-अन्तर, मयू० स०] १. अंतराल। २. उल्लिखित समय से भिन्न या बाद का समय।

वि० कुछ समय के बाद अपना प्रभाव दिखलानेवाला। जैसे—कालांतर विष।

कालांतर-विष—पुं० [ब० स०] ऐसा जन्तु या प्राणी, जिसके काटने पर विष कुछ दिन बाद अपना प्रभाव दिखाता हो। जैसे—पागल कुत्ता, चूहा आदि।

कालांतरित—वि० [सं० काल-अंतरित, तृ० त०] १. जिसका काल या समय टल गया हो। २. जिसे बने बहुत समय हो गया हो। पुराना। जैसे—कालांतरित पुराण।

काला—वि० [सं० काल, कालक; पा० बँ० कालो; प्रा० कालअ; उ० कला; पं० काला; सिं० कारो; गु० कालू; मरा० काला] [स्त्री० काली] १. जो काजल, कोयले या धूएँ के रंग का हो। कृष्ण। श्याम। जैसे—काला कपड़ा, काला आदमी।

पद—काले सिर का=जिसके बाल अभी न पके हों। हृष्ट-पुष्ट या नौजवान आदमी।

२. जिसमें प्रकाश न हो। प्रकाश-रहित। प्रकाश-शून्य। जैसे—काली कोठरी, काली गुफा। ३. (व्यक्ति) जिसके मन में कपट या छल हो। जैसे—काला हृदय। ४. अस्वच्छ। मलिन। ५. अनुचित या बुरा। निंदनीय। जैसे—काली करतूत। ६. जिसका संबंध किसी अनुचित या निषिद्ध बात से हो। जैसे—काली सूची (दे०)। ७. जिस पर किसी प्रकार का कलंक या लांछन लगा हो। जैसे—यह काला मुँह लेकर अब कहाँ जाओगे। ८. बहुत ही अनर्थकारी, भीषण या विकट। जैसे—काला चोर।

पद—काले-कोसों—बहुत दूर। जैसे—उनका घर तो काले कोसों है।

पुं० [सं० कालसर्प] १. काला साँप, जो बहुत जहरीला होता है। काल-सर्प। २. साधारणतः कोई साँप।

विशेष—प्रायः लोग साँप का नाम लेना अशुभ समझते हैं; इसी से प्रायः उसे काला कहते हैं। जैसे—उसे काले ने डस लिया है।

काला-आजार—पुं०=काल-ज्वर।

काला आदमी—पुं० [हिं०] १. गरम देश का रहनेवाला व्यक्ति, जिसका रंग काला या गेहुँआ होता है।

विशेष—यह पद गोरी जाति, विशेषतः अँगरेज लोग भारतीयों, सामियों आदि के लिए उपेक्षा और घृणा सूचित करने के लिए प्रयुक्त करते थे।

२. कुत्सित और लांछित व्यक्ति।

कालाकंद—पुं० [हिं० काला+सं० कंद ?] एक प्रकार का धान, जिसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रक्खा जा सकता है।

पुं०=कलाकंद।

क़ालाकलूटा—वि० [हिं० काला+कलूटा] बहुत अधिक काला और कुरूप।

कालाक्षर—पुं० [सं० काल-अक्षर, कर्म० स०] [वि० कालाक्षरिक काला-क्षरी] ऐसे गूढ़ अथवा विकट अक्षर या लेख, जिसे कोई सहज में न पढ़ सकता हो।

कालाक्षरिक—वि० [सं० कालाक्षर+ठक्—इक]=कालाक्षरी।

कालाक्षरी (रिन्)—वि० [सं० कालाक्षर+इनि] (व्यक्ति) जो बहुत ही अस्पष्ट, गुप्त, गूढ़ या रहस्यपूर्ण लेख आदि पढ़कर उनका अर्थ समझ लेता हो। जैसे—कालाक्षरी पंडित।

कालागुरु—पुं० [सं० काल-अगुरु, कर्म० स०] काला अगर।

कालाग्नि—पुं० [काल-अग्नि, कर्म० स०] १. सृष्टि का नाश करनेवाली अग्नि। प्रलयकाल की अग्नि। २. इस अग्नि के अधिष्ठाता देवता। रुद्र। ३. पंचमुखी रुद्राक्ष।

विशेष—अग्नि शब्द सं० में पुं० होने पर भी हिन्दी में स्त्री० माना जाता है। इसलिए पहले अर्थ में कालाग्नि का प्रयोग भी हिन्दी में प्रायः स्त्रीलिंग रूप में ही होता है।

कालाग्रह—पुं०=कारावास (जेल)

कालाचोर—पुं० [हिं० काला+चोर] १. बहुत बड़ा और नामी चोर। २. बहुत बुरा आदमी। जैसे—हम चाहें तो अपनी चीज काले चोर को दे दें।

कालाजीरा—पुं० [हिं० काला+जीरा] १. एक प्रकार का जीरा, जिसका रंग काला होता है, और जो सफेद जीरे से अधिक सुगंधित होता है। स्याह जीरा। मीठा जीरा। पर्वत-जीरा। २ एक प्रकार का बढ़िया धान और उसका चावल।

कालातिक्रमण—पुं० [काल-अतिक्रमण, प० त०] १. समय का बीतना। २. नियत समय का बीतना। ३. देर। विलम्ब।

कालातिपात—पुं० [काल-अतिपात, प०त०] १. समय का उचित या नियत से अधिक बीतना। २. दे० 'कालातिक्रमण'।

कालातिरेक—पुं० [काल-अतिरेक, प० त०] कालातिपात।

कालातिल—पुं० [हिं० काला+तिल] १. वह तिल, जिसके दाने काले होते हैं (सफेद तिल से भिन्न)।

मुहा०—**काला तिल चबाना**=किसी के अधीन, दबैल या वशवर्ती होना। २. शरीर के किसी अंग में होनेवाला वह छोटा काला दाग, जो देखने में तिल के समान जान पड़ता है।

विशेष—सामुद्रिक में भिन्न-भिन्न अंगों के विचार से यह शुभ और अशुभ माना जाता है। साधारणतः स्त्रियों के कुछ विशिष्ट अंगों पर यह उनका सौंदर्य बढ़ाता है।

कालातीत—वि० [सं० काल-अतीत, द्वि० त०] १. जो काल से परे हो। २. जिसका नियत या निर्धारित समय बीत गया हो और इसीलिए जिसका महत्त्व या वैधता न रह गई हो (टाइम बार्ड)।

पुं० न्याय में पाँच प्रकार के हेत्वाभासों में से एक जिसमें अर्थ किसी देश, काल के विचार से ठीक न हो और इसी कारण हेतु असत् ठहरता हो। (यह एक प्रकार का बाध है, जो साध्य की अप्रामाणिकता या अभाव सूचित करता है।)

कालात्मा (त्मन्)—पुं० [काल-आत्मन्, ब० स०] परमात्मा।

कालादाना—पुं० [हिं० काला+दाना] १. एक लता, जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। २. उक्त लता के बीज जो बहुत ही रेचक होते हैं।

कालादेव—पुं० [हिं० काला+फा० देव] १. बहुत ही काले रंग का एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति। २. काले रंग का बहुत हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति।

कालाधतूरा—पुं० [हिं० काला+धतूरा] १. एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा, जिसके फल और बीज काले होते हैं। २. उक्त धतूरे के फल या बीज।

कालाध्यक्ष—पुं० [काल-अध्यक्ष, प० त०] सूर्य जिनके उदय और अस्त से काल या समय का ज्ञान होता है।

काला नमक—पुं० [हिं० काला+नमक] हर्रे, हड़, बहेड़े, सज्जी आदि के योग से बनाया जानेवाला एक प्रकार का नमक, जो रंग में काला तथा पाचक होता है।

कालानल—पुं० [काल-अनल, कर्म० स०]=कालाग्नि।

काला नाग—पुं० [हिं० काला+नाग] १. काले रंग का नाग या साँप, जो बहुत जहरीला होता है। २. ऐसा कुटिल या धूर्त व्यक्ति जो औरों की बहुत बड़ी हानि कर सकता हो। खोटा या दुष्ट आदमी।

कालानुक्रम—पुं० [सं० काल-अनुक्रम प० त०] [वि० कालानुक्रमिक] =काल-क्रम।

काला पहाड़—पुं० [हिं० काला+पहाड़] १. बहुत भारी और विकट वस्तु। २. बहुत दुस्साध्य काम। ३. बहुत असह्य कष्ट या वेदना।

कालापान—पुं० [हिं० काला+पान] ताश के पत्तों में हुक्म नामक रंग।

कालापानी—पुं० [हिं० काला+पानी] १. बंगाल की खाड़ी का वह अंश, जहाँ का पानी काला होता है। २. अंडमन नामक द्वीप, जहाँ ब्रिटिश शासन के वे कैदी रखे जाते थे जिन्हें आजीवन देश निकाले का दंड दिया जाता था और जिन्हें जहाज पर उक्त कालापानी पार करना पड़ता था। ३. देश-निकाले या द्वीपान्तर वास का दंड। ४ मदिरा। शराब।

काला भुजंग—वि० [हिं० काला+भुजंग] घोर कृष्णवर्ण का। बहुत काला।

पुं०=कालानाग।

काला मोहरा—पुं० [हिं० काला+मोहरा] सींगिया की जाति का एक पौधा, जिसकी जड़ विषैली होती है।

कालायनी—स्त्री० [सं० काल+फक्—आयन, ङीप्] दुर्गा।

कालावधि—स्त्री० [काल-अवधि, प० त०] कोई काम करने या होने के लिए नियत, निर्धारित या निश्चित किया हुआ समय। अवधि। (पीरियड)।

कालाशुद्धि—स्त्री० [काल-अशुद्धि, प०त०] ऐसा काल, समय या स्थिति

जो किसी प्रकार अशुद्ध या दूषित होने के कारण शुभ कामों के लिए वर्जित हो।

कालाशौच—पुं० [काल-अशौच, मध्य० स०] पिता, माता, गुरुजनों आदि के मरने पर होनेवाला अशौच जो श्राद्ध आदि हो चुकने के बाद भी प्रायः एक वर्ष तक चलता है।

कालास्त्र—पुं० [काल-अस्त्र, कर्म० स०] ऐसा अस्त्र, जिसके प्रहार से शत्रु का घात या विनाश निश्चित हो। काल के मुख में पहुँचानेवाला अस्त्र।

कालाहणि—वि० [सं० काल-अहन्] १. प्रलयकालीन। २. भयानक। भीषण। उदा०—कठ्ठी वे घटा करे कालाहणि।—प्रिथीराज।

कालिंग—वि० [सं० कलिंग-अण्] १. कलिंग देश में उत्पन्न होनेवाला। २. कलिंग-संबंधी।

पुं० १. कलिंग देश का निवासी। २. कलिंग देश का राजा। ३. हाथी। ४. साँप। ५. तरबूज।

कालिंगड़ा—पुं० [सं० कलिंग] संपूर्ण जाति का एक राग, जिसके गाने का समय रात का अंतिम पहर माना गया है। कलिंगड़ा।

कालिंजर—पुं० [सं० कालंजर] बाँदा जिले के पास का एक प्रदेश और उससे संलग्न एक पर्वत-श्रेणी।

कालिंद—वि० [सं० कलिंद या कालिंदी+अण्] कलिंद या कालिंदी-संबंधी।

पुं० [कालि=जलराशि√या (देना)+क, पृषो० मुम्] तरबूज।

कालिंदक—पुं० [सं० कालिंद+कन्] तरबूज।

कालिंदी—पुं० [सं० कलिंद+अण्—ङीप्] १. यमुना नदी, जो कलिंद पर्वत से निकली है। २. लाल निसोथ। ३. उड़ीसा का एक वैष्णव सम्प्रदाय। ४. संगीत में ओड़व जाति की एक रागिनी।

कालिंद्री*—स्त्री०=कालिंदी।

कालि*—क्रि० वि०[सं० कल्य] १. आज से पहले वाले दिन। २. आज के बाद आनेवाला दिन। कल (देखें)।

कालिक—वि० [सं० काल+ठञ्—इक] १. किसी विशिष्ट काल से संबंध रखनेवाला। जैसे—पूर्वकालिक, मध्यकालिक। २. उचित, उपयुक्त या नियत समय पर होनेवाला। ३. रह-रह कर कुछ निश्चित समय पर होनेवाला। (पीरिऑडिक)

पुं० १. नाक्षत्र मास। २. काला चंदन। ३. क्रौंच पक्षी। ४. कलेजा (डिं०)। ५. ऐसी पत्रिका या समाचार-पत्र, जिसका प्रकाशन नियमित रूप से होता है तथा जिसमें प्रतिदिन के अथवा उस काल से संबंधित समाचार या सूचनाएँ रहती हों। (पीरिआडिकल, जर्नल)।

कालिका—स्त्री० [सं० काल+ठन—इक, टाप्] १. कालापन। २. कालारंग। ३. स्याही, विशेषतः काली स्याही। ४. कालिमा। ५. बादलों की घटा। मेघ-माला। ६. काली मिट्टी। ७. काले रंग की हर्रे। ८. जटामासी। ९. शरीर पर के रोओं की पंक्ति। रोमावली। १०. आँख की पुतली। ११. आँख में का काला तिल। १२. दुर्गा की एक मूर्ति, जो रण-क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। १३. चार वर्ष की वह बालिका, जिसकी किसी उत्सव पर उक्त देवी के रूप में पूजा की जाती है। १४. दक्ष की कन्या का नाम। १५. मादा बिच्छू। १६. बिच्छुआ नामक घास। १७. कौए की मादा। १८. काकोली। १९. श्यामा नामक पक्षी। २०. कान की एक विशेष नस। २१. मादा शृगाल। सियारिन। गीदड़ी।

कालिका-पुराण—पुं० [मध्य० स०] हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध उपपुराण जिसमें कालिका देवी के माहात्म्य का वर्णन है।

कालि-काला—क्रि० वि० [हिं० कालि+काल] कदाचित्। कभी। किसी समय।

कालिका-वृद्धि—स्त्री० [ष० त०] वह ब्याज, जो नियमित रूप से तथा कुछ निश्चित काल बीतने पर दिया या लिया जाय।

कालिकेय—पुं० [सं० कालिका+ढक्-एय] दक्ष की कन्या। कालिका से उत्पन्न असुरों की एक जाति।

कालिख—स्त्री० [सं० कालिका] १. किसी चीज पर जमनेवाला धुएँ का अथवा और किसी प्रकार का काला मैल। २. लाक्षणिक रूप में ऐसी बात या वस्तु, जिससे किसी पर बहुत ही लज्जाजनक रूप में कलंक या धब्बा लगता हो। जैसे—किसी के मुँह पर कालिख लगना।

कालिज—पुं० [अं०]=कालेज।

पुं० [?] एक प्रकार का चकोर।

कालिब—पुं० [अ०] १. किसी वस्तु का ढांचा। २. टीन या लकड़ी का वह गोल ढांचा जिस पर चढ़ाकर टोपियाँ दुरुस्त की जाती हैं। ३. देह। शरीर। ४. दे० 'कलबूत'।

कालिमा (मन्)—स्त्री० [सं० काल+इमनिच्] १. काले होने की अवस्था, गुण या भाव। कालापन। २. अंधकार। अँधेरा। ३. कालिख। ४. कलंक। लांछन।

कालिय—पुं० [सं क-आ√ ली (छिपना)+क] एक बहुत बड़ा और भीषण साँप जो यमुना में रहता था और जिसका दमन कृष्ण ने किया था।

काली—स्त्री० [सं० काल+ङीप्] १. चंडी या दुर्गा का एक रूप। कालिका। २. दस महाविद्याओं में से एक। ३. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। ४. हिमालय की एक नदी। ५. अँधेरी रात।

पुं०=कालिय (नाग)।

काली अंछी—स्त्री०[देश०] एक कँटीली झाड़ी, जिसमें पत्तियाँ १२-१३ अंगुल लंबी तथा दाँतेदार होती हैं।

कालीची—स्त्री० [सं० काली √चि (चयन)+ड, ङीप्] वह भवन जिसमें बैठकर यमराज प्राणियों के पाप-पुण्य आदि का विचार करते हैं। यमराज का न्यायालय।

काली जबान—स्त्री० [हिं० काली+ फा० जबान] ऐसी जबान जिससे निकली हुई अमांगलिक या अशुभ बात प्रायः पूरी उतरती हो।

काली जीरी—स्त्री० [सं० कणजीर] १. एक प्रकार का पौधा जिसकी फलियों के दाने या बीज ओषधि के रूप में काम में आते है। बनजीरा। २. उक्त पौधे की फलियों के दाने। कारीजीर।

कालीदह—पुं० [सं० कालिय+हिं० दह] वृन्दावन में यमुना का एक दह या कुंड, जिसमें कालिय नाग रहा करता था।

कालीन—वि० [सं० काल+ख–ईन] किसी काल-विशेष में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला। जैसे—मध्यकालीन, समकालीन।

पुं० [अ०] ऊन, सूत आदि का बना हुआ एक प्रकार का मोटा बिछावन जिस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने रहते हैं। गलीचा। (प्राचीन भारत में इसे पलिका कहते थे)।

काली बेल—स्त्री० [हिं० कालीबेल] १. एक प्रकार की लता जिसमें छोटे-

छोटे हरे फूल लगते हैं। २. उक्त लता के फूल।

काली मिट्टी—स्त्री० [हिं० काली+मिट्टी] एक प्रकार की चिकनी काली मिट्टी, जो लीपने-पोतने और सिर मलने के काम में आती है।

काली मिर्च—स्त्री० [हिं० काली+मिर्च] एक प्रसिद्ध पौधे के छोटे गोल दाने, जो स्वाद में मिर्च की तरह कड़ुए होने के कारण मसाले के काम में आते हैं। गोलमिर्च।

कालीय—वि० [सं० काल+छ—ईय] १. काल-संबंधी। २. काल का। ३. दे० 'कालीन'।

पुं० काला चंदन।

पुं०=कालिय।

कालीयक—पुं० [सं० कालीय+कन्] १. पीला चंदन। २. केसर। ३. दारु हल्दी। ४. काली अगर।

काली शीतला—स्त्री० [हिं० काली+सं० शीतला] एक प्रकार की शीतला (चेचक) जिसमें शरीर पर मोटे-मोटे काले दाने निकलते हैं।

काली सूची—स्त्री० [सं० व्यस्त पद] १.ऐसे लोगों की सूची जिन्होंने कुछ अवैधानिक, नियम-विरुद्ध या निंदनीय कार्य किये हों। २. ऐसे लोगों की सूची जो किसी दृष्टि या विचार से परित्यक्त माने गये हों। ३. अपराधी या दंडित व्यक्तियों की सूची (ब्लैक लिस्ट)।

काली हर्रे—स्त्री० [हिं० काली+हर्र] जंगी हर्रे। छोटी हर्रे।

कालुष्य—पुं० [सं० कलुष+ष्यञ्] कलुष या काले होने की अवस्था या भाव।

कालू—स्त्री० [?] सीप के अंदर रहनेवाला कीड़ा। लोना कीड़ा।

वि०=काला।

कालेज—पुं०[अं०] वह विद्यालय जहाँ कुछ या कई विषयों की पढ़ाई अंग्रेजी ढंग से बी० ए० या एम० ए० तक होती हो। महा-विद्यालय।

कालेय—वि० [सं० कलि+ढक्—एय] कलियुग में होने अथवा उससे संबंध रखनेवाला।

पुं० [कला+ढक्—एय] १. यकृत्। २. काले चंदन की लकड़ी। ३. केसर।

कालेयक—पुं० [सं० कालेय+क] १. काला चंदन। २. चंदन की लकड़ी। ३. पीलिया की तरह का एक रोग। ४. कुत्ता।

कालेश—पुं० [काल-ईश, प० त०] १. सूर्य। २. शिव।

कालौंच—स्त्री०=कलौंछ।

कालोनी—स्त्री० [अं०] उपनिवेश (दे०)।

कालौंछ—स्त्री०=कलौंछ (या कलौंस)।

काल्प—वि० [सं० कल्प+ अण्] कल्प-संबंधी।

पुं० कचूर।

काल्पनिक—वि० [सं० कल्पना+ठञ्—इक] १. कल्पना-संबंधी। २. (बात या विषय) जो केवल कल्पना से निकला या बना हो; अर्थात् जिसका कोई वास्तविक आधार न हो। कल्पित। फरजी। मनगढ़ंत। (इमैजिनरी)। ३. कल्पना करनेवाला (व्यक्ति)।

काल्य—वि० [सं० काल +यत्] १. ठीक समय पर होनेवाला। सामयिक। २. [कल्य+अण्] प्रातःकाल संबंधी। ३. शुभ।

काल्ह—क्रि० वि०, पुं०=कल।

काल्हि—क्रि० वि०= कल।

काव*—सर्व०=कोई।

कावर—पुं० [सं० काम ; प्रा० काव० ;गु० मरा० कावड] नाविकों की एक प्रकार की छोटी बरछी जिससे वे बड़ी-बड़ी मछलियों का शिकार करते हैं।

कावरी—पुं० [?] रस्सी का फंदा जिसमें कोई चीज बाँधी जाय। (लश०)

कावा—पुं० [फा०] घोड़े को एक वृत्त में चक्कर देने की क्रिया या भाव।

मुहा०—कावा काटना=(क) घोड़े का (चलने या दौड़ने का अभ्यास करने के लिए) एक वृत्त में चक्कर लगाना। (ख) किसी अनुचित उद्देश्य की सिद्धि के लिए बराबर किसी स्थान पर या उसके आस-पास आते-जाते रहना। **कावे देना**=घोड़े को चलने या दौड़ने का अभ्यास कराने के लिए एक वृत्त में चक्कर खिलाना।

कावेर—पुं० [क= सूर्य-आ=ईषत्-वेर=अंग, ब० स०] केसर।

कावेरी—स्त्री०[सं० क=जल-वेर, ब० स०, कवेर+अण्, ङीष्] १. दक्षिण भारत की एक प्रसिद्ध नदी। २. रंडी। वेश्या। ३. हल्दी। ४ संपूर्ण जाति की एक रागिनी।

काव्य—पुं०[सं० कवि +ष्यञ्] १. कविता (दे०)। २. व्यापक अर्थ में किसी कवि की वह पद्यात्मक साहित्यिक रचना जिसमें ओजस्वी कोमल और मधुर रूप में ऐसी अनुभूतियाँ, कल्पनाएँ और भावनाएँ व्यक्त की गई हों जो मन को मनोवेगों और रसों से परिपूर्ण करके मुग्ध करनेवाली हों (पोएम)।

विशेष—(क) काव्य हमारे यहाँ दो प्रकार का माना गया है—गद्यकाव्य और पद्यकाव्य; परन्तु साधारणतः लोक में पद्यकाव्य ही काव्य कहलाता है। (ख) वर्णित विषय तथा आकार के विषय से पद्यकाव्य दो प्रकार का कहा गया है—खण्डकाव्य और महाकाव्य। (ग) प्रभाव या फल के विचार से अथवा रस का उपभोग करनेवाली इन्द्रियों के विचार से भी इसके दो भेद माने गये है—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य।

३. ऐसा ग्रन्थ या पुस्तक, जिसमें उक्त प्रकार की रचना हो। ४. रोला छंद का एक भेद, जिसके प्रत्येक चरण की ग्यारहवीं मात्रा लघु रहती है। इसकी छठीं, आठवीं अथवा दसवीं मात्रा पर यति होना चाहिए। ५. [कवि +ण्य] शुक्राचार्य। ६. तामस मन्वन्तर के एक ऋषि।

काव्य-लिंग—पुं० [प० त०] साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी बात को सिद्ध करने के लिए प्रमाण स्वरूप कोई कारण बतलाया जाता है। उदा०—पुत्र मेरे परवश हो, मंत्र में पड़े हैं जब कृष्ण और कृष्णा के, तब तो नियति अवलम्ब अब मेरी है।—लक्ष्मीनारायण मिश्र।

काव्य-हास—पुं० [ब० स०]=प्रहसन।

काव्या—स्त्री० [सं०√कव्(वर्णन करना) +ण्यत्, टाप्] १. अक्ल। बुद्धि। २. पूतना।

काव्यार्थापत्ति—स्त्री० [काव्य-अर्थापत्ति, प० त०] साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी दुष्कर अर्थ की सिद्धि के वर्णन से साधारण अर्थ की सिद्धि स्वतः होने का कथन होता है। उदा०—तुम माता हो कि अन्य हो, पूजनीया मेरी हो सदैव, जाति नारी की मातृभाव से ही पूजता मैं रहा।—लक्ष्मीनारायण मिश्र।

काश—पुं० [सं०√काश् (दीप्ति) +अच्] १. काँस (दे०) नामक घास। २. खाँसी। ३. एक प्रकार का चूहा। ४. एक प्राचीन मुनि।
स्त्री० [तु०] फलों आदि का कटा हुआ लंबा टुकड़ा।
अव्य० [फा०] यदि ईश्वर ऐसा करे या करता। जैसे—काश, आप वहाँ न गये होते।

काशि—पुं० [सं०√ काश्+इन्] १. मुट्ठी। २. सूर्य। ३. ज्योति।
स्त्री० १. प्रकाश। २. काशी। ३. एक प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी वाराणसी थी।

काशिक—वि० [सं० काशि +ठञ्—इक] [स्त्री० काशिका] १. प्रकाश करनेवाला। २. प्रकाश से युक्त। प्रकाशमान्। प्रदीप्त।

काशिका—स्त्री० [सं०√काश्+णिच्+ण्वुल्—अक, टाप्] १. काशी नगरी या पुरी। २. पाणिनीय व्याकरण की एक प्रसिद्ध टीका या वृत्ति।

काशि-राज—पुं० [ष० त०] १. काशी का राजा। २. राजा दिवोदास जो काशी के पहले राजा कहे गए हैं। ३. धन्वन्तरि।

काशी—स्त्री० [सं० काशि+ङीप्] उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नगरी, जो भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र है और जिसे आजकल बनारस या वाराणसी कहते हैं।

काशी-करवट—पुं० [सं० काशी-करपत्र, प्रा० करवत] काशीस्थ एक तीर्थ-स्थान, जहाँ प्राचीन काल में लोग आरे के नीचे कटकर अपना प्राण देना बहुत पुण्य समझते थे। उदा०—सूरदास प्रभु जो न मिलेंगे लैहों करवट काशी।—सूर।
मुहा०—काशी करवट लेना=काशी में पहुँचकर वहाँ के प्रसिद्ध आरे से अपना गला इस उद्देश्य से कटाना कि अगले जन्म में हमारी कामना पूर्ण हो।

काशीफल—पुं० [सं०] कुम्हड़ा। कद्दू।

काश्त—स्त्री० [फा०] १. खेती-बारी का काम। कृषि। २. किसी दूसरे की जमीन कुछ समय तक जोतने बोने के कारण किसान को उसपर प्राप्त होनेवाला अधिकार।
मुहा०—(किसी जमीन पर) काश्त लगना= वह अवधि पूरी होना जिसके बाद किसी किसान को दूसरे की भूमि पर स्थायी रूप से उसे जोतने-बोने का अधिकार प्राप्त होता है।

काश्तकार—पुं० [फा०] १. खेती-बारी करनेवाला व्यक्ति। किसान। खेतिहर। २. वह व्यक्ति जिसने जमींदार को लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व प्राप्त किया हो (टेनेंट)।

काश्तकारी—वि० [फा० काश्तकार से] १. काश्तकार-संबंधी। काश्तकार का। जैसे—काश्तकारी हक। २. खेती-बारी-संबंधी।
स्त्री० १. काश्तकार होने की अवस्था या भाव। २. काश्तकार का काम। खेती-बारी। ३. वह भूमि जिस पर काश्तकार का अधिकार हो। ४. काश्तकार का उक्त अधिकार।

काश्मरी—स्त्री० [सं०√ काश् (चमकना)+वनिप्, ङीप्, र आदेश, पृषो० मत्व] गंभारी नामक वृक्ष।

काश्मीर—पुं० [सं० कश्मीर+अण्] १. एक देश जो भारतीय संघ के अन्तर्गत पश्चिम-उत्तर सीमा पर स्थित है और जो अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है। कश्मीर। २. पुष्करमूल। ३. केसर। ४. सुहागा।
वि० कश्मीर का। कश्मीर-संबंधी।

काश्मीरा—पुं० [सं० काश्मीर से] १. एक प्रकार का ऊनी कपड़ा। २. एक प्रकार का अंगूर।

काश्मीरी (रिन्)—वि० [सं० काश्मीर+इनि] १. कश्मीर में उपजने, होने या बननेवाला। २. जिसका संबंध कश्मीर राज्य से हो। कश्मीर का।
पुं० कश्मीर देश का निवासी।
स्त्री० [कश्मीर+अच्-ङीप्] कश्मीर देश की भाषा।

काश्यप—वि० [सं० कश्यप+अण्] १. कश्यप प्रजापति के वंश या गोत्र का। २. कश्यप-संबंधी।
पुं० १. कश्यप ऋषि का गोत्र। २. वह जो उक्त गोत्र का हो। ३. एक बुद्ध का नाम जो गौतम बुद्ध से पहले हुए थे।

काश्यपी—स्त्री० [सं० काश्यप+ङीप्] १. पृथ्वी। भूमि। २. प्रजा।

काश्यपेय—पुं० [सं० कश्यप+ढक्–एय] १. सूर्य। २. अदिति के वंशज। ३. गरुड़।

काष—पुं० [सं० √ कष् (कसना)+घञ्] सान का पत्थर।

काषाय—वि० [सं० कषाय+अण्] १. आम, कटहल, बहेड़े आदि कसैली वस्तुओं के रंग से रँगा हुआ। २. गेरू के रंग में रँगा हुआ। गेरुआ। जैसे—काषाय वस्त्र।

काष्ठ—पुं० [सं०√काश्+ क्थन्] १. वृक्ष की लकड़ी। काठ। २. ईंधन।

काष्ठ-कदली—स्त्री० [उपमित स०] कठकेला (दे०)।

काष्ठ-कीट—पुं० [मध्य० स०] वह कीड़े जो काठ में लगते हों। जैसे—घुन, दीमक आदि।

काष्ठ-तक्षक—पुं० [ष० त०] १. लकड़हारा। २. बढ़ई।

काष्ठ-लेखक—पुं० [ष० त०] घुन नाम का कीड़ा जो लकड़ी में छोटे-छोटे छेद कर देता है।

काष्ठा—स्त्री० [सं०काष्ठ+टाप्] १. पथ। मार्ग। २. सीमा। ३. ऊँचाई आदि की बहुत बढ़ी हुई मात्रा या सीमा। ४. उत्कर्ष। ५. ओर। दिशा। ६. चन्द्रमा की कला। ७. काल या समय का एक मानदंड जो १८ पल का होता है। ८. कश्यप ऋषि की स्त्री जो दक्ष की कन्या थी।

काष्ठिक—वि० [सं० काष्ठ+ठन्–इक] काष्ठ-संबंधी।
पुं० लकड़हारा।

काष्ठिका—स्त्री० [सं० काष्ठ+ङीप्+कन्, टाप्, ह्रस्व] १. काठ या लकड़ी का छोटा टुकड़ा। २. चैली।

काष्ठीय—वि० [सं० काष्ठ+छ–ईय] १. काठ या लकड़ी का बना हुआ (वुडन)। २. जिसका संबंध काष्ठ से हो। ३ जैसे—काष्ठीय व्यापार।

कास—पुं० [सं०√कास् (खाँसना) +घञ्] १. खाँसी। २. शोभांजन। सहिजन।
पुं०=काँस।

कास-कंद—पुं० [मध्य० स०] कसेरू।

कासनी—स्त्री० [फा०] १. हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा एक पौधा जो देखने में बहुत हरा-भरा होता है। २. उक्त पौधे के बीज जो दवा के काम आते हैं।

वि० =उक्त पौधे के फूल के रंग का गहरा नीला।

पुं० १. उक्त फूल का रंग। गहरा नीला रंग। २. नीले रंग का कबूतर।

कास-मर्द—पुं० [सं० कास√मृद् (चूर्ण करना)+अण्, उप० स०] कसौंजा या कसोदा (पौधा)।

कासर—पुं० [सं० क-आ √सृ (गति) + अच्] [स्त्री० कासरी] भैंसा। महिष।

कासा—पुं० [फा० कास:] १. प्याला। कटोरा। २. भिक्षापात्र।

कासार—पुं० [सं० कास् (चमकना)+आरन् या क-आसार, ब० स०] १. छोटा तालाब। तलैया। ताल। २. दंडक वृत्त का एक भेद जो २० रगण का होता है।

†पुं०=कसार।

कासालु—पुं०[सं√कास्+आलुच्] एक प्रकार का कंद या आलू।

वि०=कसैला।

कासिद—वि०[अ०] १. इरादा या विचार करनेवाला। २. सीधे रास्ते जानेवाला। ३. संदेशा ले जानेवाला। ४. अप्रचलित। ५. खोटा।

कासी*—स्त्री०=काशी।

कासीस—पुं० [सं कासी √सो (समाप्त करना)+क] हीरा-कसीस।

कासु—वि०[सं० कस्य हिं० का= कौन] १. किसका। २. किसको। किसे।

काह†—क्रि० वि० [सं० कः को] क्या?

पुं० [फा०] सूखी घास।

काहल—पुं० [सं० कु-हल, ब० स०, कु=कादेश] [स्त्री० काहली] १. मुरगा। २. नर बिल्ली। बिल्ला। बिलार। ३. अव्यक्त या अस्पष्ट शब्द। ४. जोर का शब्द। हुंकार। ५. एक प्रकार का बड़ा ढोल।

†वि०=काहिल।

काहलि—पुं० [सं० क-आ √हल् (देना)+इन्] शिव।

काहलियाँ—वि० [सं० कातर या फा० काहिल] १. कायर। डरपोक। २. अधीर। उदा०—डर ओले प्री राखियउ, मूंवा काहलियाँह।—ढो० मा०।

काहली—स्त्री० [सं० काहलि+ङीप्] युवती।

काहा—क्रि० वि० [सं० कथं<प्रा० कत्थ<काहा] किस तरह या प्रकार का। कैसा। उदा०—मानसरोदक देखिअ काहा।—जायसी। सर्व० किसको। किसे। उदा०—पुनि रूपवंत बखानौ काहा।—जायसी।

वि० =कैसा।

काहि—सर्व० [हिं० काँह] १. किसको। किसे। २. किससे।

काहिल—वि० [फा०] १. धीरे-धीरे या सुस्ती से काम करनेवाला। सुस्त। २. मंद बुद्धिवाला।

काहिली—स्त्री० [फा०] काहिल होने की अवस्था या भाव। सुस्ती।

काही—वि० [फा० काह= सूखी घास] घास के रंग का। कालापन लिये हुए हरा।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

†स्त्री०=काई।

काहु—सर्व०=काहू।

काहू—सर्व० [सं० कः अथवा हिं० का+ हू (प्रत्य०)] १. किसी। उदा०—जो काहू की देखहिं बिपती। २. किसी को।

पुं०[फा०] गोभी की तरह का एक पौधा, जिसके बीज दवा के काम आते है।

काहे—क्रि० वि० [सं० कथं; प्रा० कहँ] किसलिए। क्यों।

पद—काहे को (क) किस अधिकार से। (ख) किस कारण या उद्देश्य से। उदा०—काहे को मेरे घर आये हो।—गीत।

किं—अव्य० दे० 'किम्'।

किंकर—पुं० [सं० किं √कृ (करना) + ट] [स्त्री० किंकरी] १. गुलाम। दास। २. नौकर। सेवक। ३. राक्षसों की एक प्राचीन जाति या वर्ग। ४. आज-कल, अस्पतालों आदि में एक प्रकार के कर्मचारी जो रोगियों की छोटी-छोटी सेवाओं के लिए नियत रहते हैं (वार्ड ब्वाय)।

वि०=किंकर्त्तव्य-विमूढ़।

किंकर्त्तव्य-विमूढ़—वि० [सं० त०] (व्यक्ति) जो कुछ ऐसी परिस्थितियों में फँसा हो जहाँ उसे यह पता न चल रहा हो कि अब क्या करना चाहिए। जिसकी समझ में न आवे कि अब क्या कर्त्तव्य है।

किंकिणी—स्त्री० [सं० किं√कण् (शब्द)+ इन्, ङीप्, पृषो० इत्व] १. छोटी घंटी। २. करधनी। जेवर। ३. एक प्रकार का खट्टा अंगूर या दाख। ४ कंटाय का वृक्ष।

किंकिनी—स्त्री०=किंकिणी।

किंकिर—पुं० [सं० किं√कॄ (विक्षेप) + क] १. कोकिल। कोयल। २. भौंरा। ३. घोड़ा। ४. कामदेव। ५. लालरंग। ६. हाथी का मस्तक।

किंकिरा—स्त्री० [सं० किंकिर+टाप्] रक्त। खून।

किंकिरात—पुं० [सं० किंकिर √अत् (गमन) + अण्, उप० स०] १. अशोक का पेड़। २. कटसरैया। ३. कामदेव। ४ तोता।

किंक्क—वि० [हिं० कित=कई + इक या एक] कितने ही। अनेक। उदा०—किंक्क सरण रह पाई, किंक्क खल खंडणि खंडै।—चंदवरदाई।

किंगरई—पुं० लाजवन्ती की जाति का एक कँटीला पौधा।

किंगरी—स्त्री० [सं० किन्नरी] १. सारंगी की तरह का एक छोटा बाजा, जिसे बजाकर जोगी भीख माँगते हैं। २. रहस्य-संप्रदाय में काया या शरीर।

किंगार —पुं०=कगार।

किंगिरी—स्त्री०=किंगरी।

किंगोरा—पुं० [देश०] दारु हल्दी की जाति की एक कँटीली झाड़ी।

किंच—अव्य० [सं० किम्-च्, द्व० स०] किंतु। लेकिन।

किंचन—पुं० [सं० किं √चन् (शब्द करना) +अच्] पलास।

अव्य०=किंचित्।

किंचित्—वि० [सं० किम्-चित्, द्व० स०] अल्प। कुछ। थोड़ा।

यौ०—किंचिन्मात्र =बहुत ही थोड़ा।

क्रि० वि० अल्प या कम मात्रा में। कुछ ही। बहुत थोड़ा।

किंजलक—पुं०=किंजल्क।

किंजल्क—पुं० [सं० किम्√जल (तेज होना) + क] १. कमल का पराग। २. कमल का केसर। ३. नागकेसर।
वि० कमल के केसर के रंग का। हलका पीला।

किंतु—अव्य० [किम्-तु, द्व० स०] १. एक अव्यय जो मिश्र या संयुक्त वाक्यों में प्रयुक्त होकर यह सूचित करता है कि अब जो बात कही जायगी वह पहले कही हुई बात से सकारण भिन्न या बेमेल है। जैसे—जी तो नहीं चाहता किंतु तुम्हारे कहने से चले चलते हैं। २. लेकिन। वरन्।

किंनर—पुं० [कुगति स०]= किन्नर।

किंपुरुष—पुं० [किम्-पुरुष, कर्म० स०] १. मनुष्यों की एक बहुत प्राचीन जाति या वर्ग। २. उक्त जाति के रहने का स्थान जो पुराणानुसार हिमालय और हेमकूट पर्वत के बीच में था। ३. किन्नर।
वि० दोगला। वर्ण-संकर।

किंभूत—वि० [सं० किम्-भूत, कर्म० स०] १. किस ढंग या प्रकार का। कैसा। २. अद्भुत। ३. भद्दा।

किंमति—स्त्री० =कीमत।

किंवदंती—स्त्री० [सं किम् √ वद् (बोलना) +झिच्—अन्त, ङीप्] १. ऐसी बात जिसे लोग परंपरा से सुनते चले आये हों; और जिसके संबंध में यह पता न चले कि वस्तुतः यह किसी की कही या निकाली हुई है। २. अफवाह। जनश्रुति। प्रवाद।

किंवा—अव्य० [किम्-वा, द्व० स०] या। अथवा।

किंशुक—पुं० [किम्-शुक, उपमित स०] पलाश का पौवा या उसका फूल जिसका रंग गहरा लाल होता है।

किंसुख—पुं० =किंशुक।

कि—अव्य० [सं०किम्] १. एक स्वरूप वाचक अव्यय जिससे किसी आश्रित वाक्य का आरंभ सूचित होता है। जैसे—(क) राम ने कहा कि श्याम आज हमारे घर आया था। (ख) बात यह है कि लोगों का स्वभाव एक-सा नहीं होता। २. अथवा। या। जैसे—तुम कपड़े लोगे कि रुपए?
† क्रि० वि० किस प्रकार। कैसे। (प्रायः अवधी कविताओं में)

किआह—वि० [?] १. ताड़ के पके फल के रंग का। २. दे० 'हाँसुल'।

किउ*—अव्य०=क्यों।

किकियाना—क्रि० अ० [अनु०] १. कीं कीं या कें कें शब्द करना। २. चिल्लाना। ३. रोना।

किक्यान—पुं० [हिं० केकान] १. केकान देश। २. केकान देश का घोड़ा।

किचकिच—स्त्री० [अनु०] १. साधारण या तुच्छ बातों पर लोगों में प्रायः होती रहनेवाली तू-तू मैं-मैं। २. व्यर्थ की बातें। बकवाद।

किचकिचाना—अ० [अनु०] १. क्रोध में आकर या खिजलाकर दाँत पीसना। २. कोई काम करने के समय सारी शक्ति लगाने के लिए दाँत-पर-दाँत रखना। जैसे—(क) किचकिचाकर पत्थर उठाना या ढकेलना। (ख) किचकिचाकर दाँत काटना।

किचकिचाहट—पुं० [हिं० किचकिचाना] १. किचकिचाने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. खिजलाहट।

किचकिची—स्त्री० =किचकिचाहट।

किचड़ाना—अ० [हिं० कीचड़+आना] कीचड़ से युक्त होना। जैसे—आँख किचड़ाना।
स० कीचड़ से युक्त करना। जैसे—यह दवा आँख किचड़ा देगी।

किचर-पिचर—वि० =गिचपिच।

किछु*—वि०=कुछ।

किछौ*—क्रि० वि० [सं० किंचित्] कुछ भी। उदा०—तस जग किछौ न पावौं।—जायसी।

किटकिटाना—अ० [अनु०] दाँत का बजाना।
स० १. क्रोध से दाँत पीसना। २. किटकिट या व्यर्थ की कहा-सुनी अथवा झगड़ा करना।

किटकिना—पुं० [सं० कृतक] १. वह दस्तावेज, जिसके द्वारा ठेकेदार अपने ठेके की चीज का ठीका अपनी ओर से दूसरे असामियों को देता है। २. सुनारों का एक ठप्पा।
†पुं०=कटकीना।

किटकिनादार—पुं० [हिं० किटकिना+दार] वह व्यक्ति जो किसी वस्तु को ठेकेदार से ठेके पर ले।

किटिभ—पुं० [सं० किटि√भा(दीप्ति)+क] जूं। (सिर के बालों का कीड़ा)

किट्ट—पुं० [सं०√किट्(गति)+क्त] १. धातु का मैल। कीट। २. तरल पदार्थ के नीचे जमनेवाला मैल। गाद। ३. किसी चीज के ऊपर जमा हुआ मैल। ४. पुरानी चाल का एक प्रकार का ऊनी कपड़ा। ५. पुरानी चाल की एक प्रकार की पेंसिल, जिससे काजल, गोबर, लोहे के चूर्ण आदि की बनी हुई स्याही से चित्र अंकित किये जाते थे।

किड़कना—अ० [अनु०] खिसक या हट जाना।

किण†—सर्व०=१. किसने? २. किन्होंने?

कित†—क्रि० वि० [सं० कुत्र] १. किस ओर। किधर। २. कहाँ। ३. ओर। तरफ।

कितक—क्रि० वि० [हिं० कितना+एक] कितना।
वि० कितने ही। अनेक। कई।

कितना—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० कितनी] एक सार्वनामिक विशेषण जो संज्ञाओं के पहले लगकर ये अर्थ देता है—(क) प्रश्नवाचक रूप में, किस परिणाम या मात्रा का (अथवा में)। जैसे—इस काम में कितना समय लगेगा? (ख) मानवाचक रूप में, जितना हो सकता हो, उतना अर्थात् बहुत या यथेष्ट। जैसे—उसे कितना समझाया, पर वह मानता ही नहीं।
पद—कितना भी या ही=जितना हो सकता हो। बहुत अधिक। जैसे—वह कितना भी दे पर संतोष नहीं होता।—भारतेंदु। **कितने ही**=अनेक। कई। जैसे—पृथ्वी के कितने ही अंश धीरे-धीरे ऊपर उठ रहे हैं।

कितमक*—स्त्री०=किस्मत (भाग्य)। उदा०—कितमक लीप्या सोभो गवी।—नरपति नाल्ह।

कितव—पुं० [सं० कित√वा (गति)+क] १. जुआरी। २. छलिया। धूर्त्त। ३. उन्मत्त। पागल। बावला। ४. दुष्ट। पाजी। ५. धतूरा। ६. गोरोचन। ७. सिंधु के उस पार रहनेवाली एक प्राचीन जाति।

किता—पुं० [अ० कतअ] १. काटने की क्रिया,ढंग या भाव। २. सिलाई के लिए कपड़े मे की जानेवाली काट-छाँट। ३. बनावट आदि का ढंग। जैसे—टोपी अच्छे किते की है। ४. जमीन, मकान, लेख्य आदि की सूचक संख्या। अदद। जैसे—चार किता मकान; दो किता दस्तावेज। ५. प्रदेश। भू-भाग।

किताब—स्त्री० [अ०] [वि० किताबी] १. कागज के पन्नों में लिखी हुई (मुद्रित या हस्तलिखित) कोई साहित्यिक कृति, जिसकी जिल्द बँधी हो। पुस्तक। ग्रंथ। २. धर्म-ग्रंथ। जैसे—ईसाइयों या मुसलमानों की किताब। ३. वही-खाता। जैसे—हिसाब-किताब ठीक करना।

किताबत—स्त्री० [अ०] लिखने की क्रिया या भाव। लिखने का काम।
पद—खत-किताबत (दे०)

किताबी—वि० [अ० किताब] १. किताब या पुस्तक-संबंधी। पुस्तकीय। जैसे—किताबी ज्ञान। २. किताब के आकार या रूप रंग का। जसे—किताबी डिबिया। ३. किताब की तरह कुछ लंबोतरा। जैसे—किताबी चेहरा।

किताबी कीड़ा—पुं० [अ०+हिं०] वह व्यक्ति जो सदा कुछ-न-कुछ पढ़ता रहता हो।

कितिक—वि० [सं० कियत] कितना।
क्रि० वि० कितना ही। बहुत अधिक। उदा०—तऊ न मानत कितिक निहोरी।—सूर।

कितेक—वि० [सं० कियदेक] १. कितना या कितने। २. अनेक। बहुत।

कितेब*—स्त्री० [अ० किताब] १. किताब। पुस्तक। ग्रंथ। २. धर्म-ग्रंथ।

कितेव*—पुं०=कैतव।

कितै*—क्रि० वि० १.=कहाँ। २.=किधर (किस ओर)।

कितो(ो)—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० किती] कितना या कितने। उदा०—किती न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिख दीन?
क्रि० वि०=कितना।

कित्ता—वि०, क्रि० वि०=कितना।

कित्ति—स्त्री०=कीर्ति। उदा०—फूलि कित्ति चौहान की जुगनिजुग्ग निवास।—चंदवरदाई।

कित्तीय—स्त्री०=कीर्ति।

किदारा—पुं०=केदारा (राग)।

किधर—क्रि० वि० [सं० कुत्र] किस दिशा में। किस ओर। किस तरफ
पद—**किधर आया, किधर गया**=इसका कुछ निश्चय या पता नहीं कि कब और क्या किस ओर से आया और कब क्या किस ओर गया। (अज्ञान अथवा उपेक्षा का सूचक)।

किधौं—अव्य० [सं० किम्, हिं० कि+कहुँ] अथवा। या तो। न जाने। उदा०—अब है यह पर्णकुटी किधौ, और किधौं यह लक्ष्मन होय नहीं।

किनंकना—अव्य० [?] हिनहिनाना (घोड़ों का)।

किन—सर्व० [सं० किण; मरा० किण-किणे] हिंदी 'किस' का बहुवचन।
पद—**किनहूँ**=किसी ने भी।

*क्रि० वि० [सं० किम् न से] १. क्यों नहीं। उदा०—उठि किन उत्तर देत?—सूर। २. चाहे।

किनका—पुं० [सं० कणिक] [स्त्री० अल्प० कनकी] किसी चीज का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। जैसे—अनाज का किनका। चांदी का किनका।

किननाट—स्त्री० [अनु०] आवाज। शब्द। उदा०—वपु नखत खुप्परिय किनन किननाट कुरंगिय।—चंदवरदाई।

किनर-मिनर—स्त्री० =आनाकानी। उदा०—इसलिए वे देने में किनर-मिनर कर रहे थे।—वृंदावनलाल वर्मा।

किनवानी—स्त्री० [?] छोटी-छोटी बूंदों की झड़ी। फुहार।

किनहा—वि० [सं० कणिक, प्रा० कराणच्य+हा] अन्न या फल. जिसमें कीड़े लगे या पड़े हों। काना।

किनाती—स्त्री० [?] एक प्रकार की चिड़िया जो नालों के किनारे रहती है।

किनार†—पुं०=किनारा।

किनारा—पुं० [फा० किनारः] [स्त्री० अल्पा० किनारी] १. किसी चीज की चौड़ाई या लंबाई के बल का वह सारा विस्तार जहाँ उस चीज का अंत होता है। किसी ओर का अंतिम सादा सिरा। जैसे—खेत, चौकी या तख्ते का किनारा। २. अधिक लंबी और कम चौड़ी वस्तु के वे दोनों सिरे, जहाँ उसकी चौड़ाई का अंत होता है। लंबाई के बल का सारा विस्तार या सिरा। जैसे—चादर या धोती का किनारा, नदी का किनारा। ३. किसी वस्तु के समूचे विस्तार का वह भाग जहाँ किसी दिशा में उसके विस्तार का अंत होता है। जैसे—पैसे या रुपए का किनारा; समुद्र का किनारा।
मुहा०—**किनारे पहुँचना**=अंत या समाप्ति के पास पहुँचना। **किनारे लगाना**=पूर्णता या समाप्ति तक पहुँचाना। जैसे—इतने दिनों बाद आपने ही यह काम किनारे लगाया है। **(किसी व्यक्ति को) किनारे लगाना**=कष्ट या संकट से किसी का उद्धार या मुक्ति करना।
४. बगल। पार्श्व।
मुहा०—**किनारा खींचना**=संबंध तोड़कर अलग या दूर होना। **किनारे न जाना**=कुछ भी संपर्क या संबंध न रखना। **किनारे बैठना या होना**=बिना कोई संबंध रखे अलग या दूर रहना।
५. कपड़ों आदि में चौड़ाई या लंबाई का वह अंतिम विस्तार जिस पर शोभा या सजावट के लिए कुछ अलग प्रकार या रंग की बनावट अथवा बेल-बूटे आदि होते हैं। हाशिया। (बार्डर)

किनारी—स्त्री० [हिं० किनारा] वस्त्रों आदि के किनारे पर लगाई जानेवाली रुपहले या सुनहले गोटे की पट्टी।

किनारे—क्रि० वि० [हिं० किनारा] १. सीमा पर। २ तट पर।
पद—**किनारे-किनारे**=किसी किनारे से सटकर या उसके पास होते हुए।
३. अलग।
मुहा०—**किनारे रहना**=अलग या दूर रहना।

किन्नर—पुं० [सं० किम्-नर, कर्म० स०] [स्त्री० किन्नरी] १. पुराणानुसार देवलोक या स्वर्ग के एक प्रकार के गायक उपदेवता

जिनका मुख घोड़े के समान कहा गया है। २. आज-कल गाने-बजाने का पेशा करनेवाली एक जाति।

किन्नरी—स्त्री० [सं० किन्नर+ङीष्] किन्नर जाति की स्त्री।

स्त्री० [सं० किन्नरी=वीणा] १. एक प्रकार का छोटा तंबूरा। २. छोटी सारंगी।

किन्ह†—सर्व०=किन।

किन्हीं†—सर्व० [हिं० किन] 'किसी' का बहुवचन रूप।

किन्हों—सर्व० [हिं० किन] 'किन' का वह रूप जो उसे कर्त्ता होने की दशा में प्राप्त होता है। जैसे—आपसे किन्होंने कहा था?

किफायत—स्त्री० [फा०] १. काफी या यथेष्ट होने की अवस्था, गुण या भाव। २. किसी चीज के उपभोग, व्यय आदि में की जानेवाली आवश्यक और उचित कमी। जैसे—किफायत से खर्च करना। ३. उक्त प्रकार से उपभोग या व्यय करने के फल-स्वरूप होनेवाली बचत जैसे—हमारी राय से चलते तो सौ रुपए की किफायत हो जाती। ४. किसी काम या बात में की जानेवाली कमी। जैसे—तुम तो हर काम में किफायत करना चाहते हो।

क्रि० वि० कम मूल्य पर। थोड़े व्यय से। जैसे—दिल्ली में कपड़ा यहाँ से किफायत में मिलता है।

किफायती—वि० [अ० किफायत] १. किफायत अर्थात् कम खर्च करनेवाला। सँभलकर खर्च करनेवाला। २. कम दाम में मिलनेवाला। सस्ता। जैसे—किफायती कपड़ा। किफायती जूता।

किबलई—स्त्री० [अ० किबला] पश्चिम दिशा। (लश०)

किबलनुमा—पुं० [अ०]=किबलानुमा।

किबला—पुं० [अ० किबल:] १. पश्चिम दिशा। २. मुसलमानों का पवित्र तीर्थ, मक्का। ३. पूज्य और वयस्क व्यक्ति।

किबलानुमा—पुं० [अ० किबल:+फा० नुमा=दर्शक] दिशाओं का ज्ञान कराने वाला यंत्र। कुतुबनुमा। दिग्दर्शक यंत्र।

किम्—अव्य० [सं०√कु (शब्द करना)+डिमु] एक अव्यय जो कुछ शब्दों के आरंभ में लगकर खराब या बुरा होने का अर्थ देता है। जैसे— किम्‌दास (=बुरा नौकर), किम् पुरुष (=हीन मनुष्य)

सर्व० १. कौन। २. कैसा।

क्रि० वि० क्यों? किसलिए?

किमपि—क्रि० वि० [सं० किम्-अपि, द्व० स०] १. कुछ भी। २. किसी सीमा तक।

किमरिक—पुं० [अं० कैंब्रिक] नैनसुख की तरह का एक प्रकार का चिकना सफेद कपड़ा।

किमाकार—वि० [सं० किम्-आकार, ब० स०] १. जिसका कोई निश्चित आकार या रूप न हो। २. रूप बदलता रहनेवाला। ३. भद्दा। भोंडा।

किमाछ—स्त्री०=कौंछ।

किमाम—पुं० [अ० किवाम] १. किसी वस्तु का गाढ़ा किया हुआ रस। अवलेह। जैसे—अफीम या सुरती का किमाम। २. खमीर।

किमारखाना—पुं० [अ० किमार+फा० खाना] जुआ खेलने का स्थान।

किमारबाज—वि० [अ० किमार+फा० बाज] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

किमारबाजी—स्त्री० [फा०] १. जुआ खेलने की क्रिया या भाव। २. जुए का खेल।

किमाश—पुं० [अ०] १. तर्ज। ढंग। २. गंजीफे के पत्ते का एक रंग जिसे ताज भी कहते हैं।

किमि*—क्रि० वि० [सं० किम्] किस प्रकार? कैसे?

किम्मत*—स्त्री० [अ० कीमत या हिकमत?] १. चतुराई। होशियारी। २. वीरता। बहादुरी।

†स्त्री०=कीमत।

कियत्—वि० [सं० किम्+वतुप् व=घ—इय, किम्=कि] जो गुण, मर्यादा, सीमा आदि के विचार से बहुत बड़ा हो।

कियारी†—स्त्री०=क्यारी (देखें)।

कियाह—पुं० [सं० कियान्-हय, पृषो० सिद्धि] १. लाल रंग का घोड़ा। २. किरमिजी रंग, जो थूहड़ पर रहनेवाले एक प्रकार के लाल कीड़ों को उबालकर बनाया जाता है। (कारमाइन)

किरंटा—पुं० [अं० क्रिश्चियन] किरानी। मसीही। (उपेक्षा सूचक)

किरका—पुं० [सं० कर्कट=ककड़ी] कंकड़, पत्थर आदि का बहुत छोटा टुकड़ा। किरकिरी।

किरकिटी—स्त्री०=किरकिरी (छोटा कण)।

किरकिन—पुं० [देश०] घोड़े या गधे का चमड़ा।

वि० उक्त चमड़े का बना हुआ।

किरकिरा—वि० [सं० कर्कट] [स्त्री० किरकिरी] (वस्तु) जिसमें महीन और कड़े कंकड़, बालू के कण या रवे मिले हों।

विशेष—किरकिरी वस्तु दाँतों से चबाई जाने पर जोर से किरकिर शब्द करती है और उसे खाना कठिन तथा हानिकर होता है।

मुहा०—**मजा किरकिरा हो जाना**=रंग में भंग हो जाना। आनंद में विघ्न पड़ना।

पुं० लोहारों का बरमा, जिससे वे लोहे में छेद करते हैं।

किरकिराना—अ० [हिं० किरकिरा] १. किरकिरे खाद्य पदार्थ का मुँह में किरकिर शब्द करना। २. किरकिरी पड़ने की-सी पीड़ा करना। ३. दे० 'किटकिटाना'।

किरकिराहट—स्त्री० [हिं० किरकिराना+आहट (प्रत्य०)] १. किरकिरा होने की अवस्था, गुण या भाव। २. आँख, मुँह आदि में किरकिरी पड़ने के कारण होनेवाली खटक या पीड़ा।

किरकिरी—स्त्री० [सं० कर्कर] १. किसी चीज विशेषतः कंकड़, धूल आदि का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। २. अपमान। हतक। हेठी।

किरकिल—पुं० [सं० कृकलास] गिरगिट।

पुं०=कृकल (शरीरस्थ वायु)।

किरकिला—पुं० [सं० कृकर] जलाशयों में से मछलियाँ पकड़कर खानेवाली एक छोटी चिड़िया। (किंगफिशर)

किरकी† —स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का आभूषण या गहना।

किरखी† —स्त्री०=कृषि (खेती)।

किरच—स्त्री० [सं० कृति=कैंची] १. एक प्रकार की छोटी पतली बरछी। २. किसी कड़ी चीज (जैसे—काँच, चीनी मिट्टी, हीरे आदि) का बहुत छोटा नुकीला टुकड़ा। उदा०—कोमल कूकि कै कोकिल कूर करेजनि कौ किरचैं करती क्यों।—देव।

पद—किरच का गोला=वह गोला जिसके फटने पर अंदर भरे हुए, लोहे-शीशे आदि के छोटे-छोटे टुकड़े चारों ओर फैलकर शत्रुओं को घायल कर देते हैं। (सैनिक)

किरचिया—पुं० [देश०] बगले की तरह का एक पक्षी ।

किरची—पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बढ़िया रेशम। २. रेशम के डोरों का लच्छा ।
† स्त्री०=छोटी किरच ।

किरण—पुं० [सं०√कृ (बिखरना)+क्यु—अन] १. प्रकाश की रेखा। रश्मि ।
मुहा०—किरण फूटना=दिन चढ़ना । सूर्योदय होना ।
२. बादले की झालर या तार ।

किरण-केतु—पुं० [ब० स०] सूर्य ।

किरण-चित्र—पुं० [मध्य० स०] किरणों की सहायता से आँखों की पुतलियों पर बननेवाला वह चिह्न जो किसी चमकीले रंगीन पदार्थ पर से सहसा दृष्टि हटा लेने पर भी कुछ समय तक बना रहता है ।

किरणमाली (लिन्)—पुं० [किरण-माला, ष० त०,+इनि] सूर्य।

किरत*—भू० कृ०=कृत ।

किरतम—पुं० [सं० कृत या कृत्तिम] सांसारिक माया का झगड़ा, प्रपंच या बंधन ।

किरतार—पुं०=करतार ।

किरन—स्त्री०=किरण ।

किरना†—अ० [सं० कीर्णन] १. किसी चीज में से उसके छोटे-छोटे अंश या कण धीरे-धीरे गिरना। जैसे—छत में से ऊपर का बालू या मिट्टी किरना । २. धार का कुंद या भोथरा होना। जैसे—चाकू की धार किरना। ३. झेंपते हुए अलग या दूर रहना। जैसे—वह मुझ से किरता है । ४. उछलना । (राज०)

किरनारा—वि० [हिं०किरन+आरा] जिसमें से किरणे निकल रही हों। किरणोंवाला । उदा०—कर्निकार कल कुसुम कांति कोमल किरनारे।—रत्ना० ।

किरपन* —पुं०=कृपण (कंजूस) ।

किरपा—स्त्री०=कृपा ।

किरपान*—स्त्री०=कृपाण ।

किरम—पुं० [सं० कृमि] १. कीट। कीड़ा। २. किरमिज नामक कीड़ा ।

किरमई—स्त्री० [सं० कृमि] एक प्रकार की लाख।

किरमाल* —पुं०=करवाल । (खड्ग या तलवार)

किरमाला—पुं० [सं० कृतमाल]=अमलतास।

किरमिच—पुं० [अं० केनवस] एक प्रकार का मोटा बढ़िया कपड़ा, जिससे जूते, परदे, बैग आदि बनाए जाते है।

किरमिज—पुं० [सं० कृमि+ज] [वि० किरमिजी] १. एक प्रकार का मटमैला लाल रंग । किरिमदाने का चूर्ण। हिरमजी । दे० 'किरिमदाना' । २. किरमिजी या मटमैले रंग का घोड़ा ।

किरमिजी—वि० [सं० कृमिन] किरमिज के रंग का। मटमैला। लाल।

किरयात—पुं० [सं० किरात] चिरायता ।

किरराना—अ० [अनु०] १. क्रोध, रोष आदि से दाँत पीसना। २. किर्रकिर्र शब्द करना ।

किरवार (1)* —पुं० [सं० करवाल] खड्ग। तलवार ।
* पुं० [सं० कृतमाल] अमलतास ।

किरसुन* —वि०, पुं०=कृष्ण ।

किरात—पुं० [सं० किर√अत् (गमन)+अच्] १. चीनी-तिब्बती वंश के वे लोग जो भारत में आर्यो के आने से पहले हिमालय के पूर्वीय भागों तथा उसके आस-पास के प्रदेशों में आकर बसे थे। २. उक्त प्रदेश का पुराना नाम । ३. जंगली और असभ्य आदमी । ४. बौना। ५. चिरायता। ६. साईस ।
स्त्री० [अ० केरात] १. जवाहिरात की एक तौल जो लगभग ४ जौ के बराबर होती थी। २. एक बहुत छोटा पुराना सिक्का ।

किरात-पति—पुं० [ष० त०] शिव ।

किराताशी—पुं० [सं० किरात√अश् (खाना)+णिनि] गरुड़।

किराति—स्त्री० [सं० किर√अत्+इन्] १. दुर्गा । २. गंगा ।

किरातिनी—स्त्री० [सं० किरात+इनि, ङीप्] १. किरात जाति की स्त्री । २. जटामाँसी नामक पौधा ।

किराती—स्त्री० [सं० किरात+ङीप्] १. किरात जाति की स्त्री । २. दुर्गा। ३. पार्वती। ४. स्वर्ग की गंगा। ५. कुट्टिनी । ६. रानियों के सिर पर चँवर डोलानेवाली स्त्री।

किरान* —क्रि० वि० [अ० किरान] निकट । पास ।

किराना—पुं० [सं० क्रयाणक=क्रय करने के योग्य वस्तु] जीरा, नमक, मिर्च, लौंग, हल्दी आदि मसाले जो बनिये के यहाँ बिकते हैं।
स० [हिं० किराना] हिंदी किरना क्रिया का प्रेरणार्थक और सकर्मक रूप । किसी चीज को किरने में प्रवृत्त करना। जैसे—सूप में अनाज रखकर उसमें से छोटे-छोटे दाना किराना (अर्थात् हिलाते हुए नीचे गिराना) ।

किरानी—पुं० [अं० क्रिश्चियन] १. ईसाई । मसीही। २. वह व्यक्ति जिसके माँ-बाप में से कोई एक भारतीय और दूसरा युरोपियन हो। किरंटा । ३. कार्यालय में काम करनेवाला लिपिक ।
वि० किरानी लोगों का । जैसे—ऐसी सुंदर वेशभूषा छोड़कर ये सब क्या किरानी पोशाक करेंगी । —वृंदावनलाल वर्मा ।

किराया—पुं० [अ० किरायः] १. किसी व्यक्ति की संपत्ति का भोग करने के बदले में उसे दिया जानेवाला धन। २. वह मजदूरी या पारिश्रमिक जो किसी की सेवाओं के उपभोग के बदले में दिया जाता है । भाड़ा। (रेण्ट) जैसे—मकान या सवारी का किराया ।
पद—किराये का टट्टू=दे० 'भाड़े का टट्टू'।

किरायेदार—पु० [फा० किरायादार] व्यक्ति, जिसने किसी की दूकान या मकान अपने भोग के लिए किराये पर ली हो। भड़ैत ।

किरार—पुं० [सं० किरात?] एक छोटी जाति।
† पुं०=करार ।

किराव† —पुं०=केराव (मटर) ।

किरावल—पु० [तु० करावल] १. वह शिकारी जो बंदूक से शिकार खेलता हो। २. वह व्यक्ति जो दूसरों को शिकार खेलाता हो।

३. सेना के आगे-आगे चलनेवाले वे सिपाही जो शत्रु-सेना के आगमन की थाह लेते रहते हैं।

किरासन—पुं० [अं० केरोसीन] मिट्टी का तेल। (खनिज)

किरि—पुं० [सं०√कृ(विक्षेप)+इ] १. सूअर। २. वादल।
अव्य० [हिं० करना में का कर] मानो। जैसे। उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि का सूचक शब्द। (राज०) उदा०—किरि कठवीज पूतली निजकारी।—प्रिथीराज।

किरिच—स्त्री० =किरच।

किराना—स० [सं० कीर्णन] ऐसी क्रिया करना, जिससे किसी चीज में के छोटे-छोटे कण अथवा अंश निकलकर नीचे गिरें। जैसे—सूप में गेहूँ रख कर उसमें से अलसी, कंकड़ी आदि किराना।
पुं० [?] खाद्य पदार्थों में डाले जानेवाले (जीरा, मिर्च, लौंग, हलदी आदि) मसाले। (थोक और फुटकर विक्री के विचार से) जैसे—किराना वाजार, किराने के व्यापारी।

किरिन†—स्त्री० किरण।

किरिपा†—स्त्री०=कृपा।

किरिम—पुं०=कृमि।

किरिमदाना—पुं० [सं० कृमि+हिं० दाना] १. किरमिज नामक कीड़ा। २. उक्त कीड़ों से वननेवाला किरमिजी रंग।

किरिया†—स्त्री० [सं० क्रिया] १. क्रिया। २. मृतक का क्रिया-कर्म। ३. कसम। सौगंध।

किरिरना†—अ०=किचकिचाना (क्रोध में दाँत पीसना)।

किरिरा†—पुं०=क्रीड़ा। (खेल) उदा०—किरिरा किहें पाव घनि मोखू।—जायसी।

किरीट—पुं० [सं० कॄ+ईटन्, कित्] १. प्राचीन भारत में माथे पर वाँधा जानेवाला कोई ऐसा आभूषण जो राजा या विजयी होने का सूचक होता था। २. मुकुट। ३. एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में आठ-आठ भगण होते है।

किरीटधारी (रिन्)—पुं० [सं० किरीट√धृ(धारण करना)+णिनि] राजा।

किरीटमाली(लिन्)—पुं० [सं० किरीट-माला ष० त०,+णिनि] अर्जुन।

किरीटी (टिन्)—पुं० [सं० किरीट+इनि] १. इंद्र। २. अर्जुन। ३. राजा।
वि० जिसके सिर पर किरीट हो।

किरीरा*—स्त्री० दे० 'क्रीड़ा'। उदा०—हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा।—जायसी।
पुं०=किरण। उदा०—सूर परस सों भएउ किरीरा।—जायसी।
वि०=करारा?

किरोध†—पुं०=क्रोध।

किरोर†—वि० पुं०=करोड़।

किरोलना—स० [सं० कर्त्तन] १. कुरेदना। २. खुरचना।

किरौना†—पुं० [हिं० कीरा+औना(प्रत्य०)] १. छोटा कीड़ा। २. सांप।

किर्च†—स्त्री०=किरच।

किर्तनिया*—पुं०=कीर्त्तनियाँ।

किर्म—पुं० [फा० मि० सं० कृमि] कीड़ा।

किर्मीर—पुं० [सं०√कॄ+ईरन्, मुट् (नि०)] १. एक राक्षस जिसे भीमसेन ने मारा था। २. चितकवरा रंग। ३. नारंगी का वृक्ष।
वि० चितकवरा।

किर्मीर-जित्—पुं० [सं० किर्मीर√जि (जीतना)+क्विप्] भीमसेन।

किर्मीर-निसूदन—पुं० दे० 'किर्मीरजित्'।

किर्मीर-सूदन—पुं० दे० 'किर्मीरजित्'।

किर्री—स्त्री० [सं० कीर्ण] एक प्रकार की छेनी जिससे धातुओं पर पत्तियाँ और डालियाँ नकाशी जाती हैं।

किल*—क्रि० वि० [सं० √किल्+क] १. निश्चित रूप से। निश्चय ही। उदा०—कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केशव। २. सचमुच। ३. अवश्य।

किलक—स्त्री० [हिं० किलकना] १. निकलने की क्रिया या भाव। २. आनंदसूचक शब्द। हर्षध्वनि। किलकार।
स्त्री० [फा० किलक] एक प्रकार का वढ़िया नरकट जिससे लिखने के लिए कलमें वनाई जाती हैं।

किलकना—अ० [अनु०] १. वंदरों का प्रसन्न होने पर जोर-जोर से की-की शब्द करना। १. किलकारी मारना।

किलकार—स्त्री० [हिं० किलकना] १. वंदरों का की-की शब्द। २. वहुत प्रसन्न होकर चिल्लाने की क्रिया।

किलकारना—अ० [हिं० किलकार से] १. की-की शब्द करना। २. जोर से आवाज करना। चिल्लाना।

किलकारी—स्त्री०=किलकार।

किलकिंचित—पुं० [सं० किल-किम्-चित, तृ०त०] साहित्य में संयोग शृंगार के अन्तर्गत ११ हावों में से एक जिसमें नायिका की एक ही भाव-भंगी से कई भाव एक साथ सूचित होते हैं।

किलकिल—स्त्री० [अनु०] १. कलह। तकरार। २. व्यर्थ की कहा-सुनी या वकवाद।
† स्त्री०=किलकार।

किलकिला—स्त्री० [सं०√किल्+क, द्वित्व, टाप्] किलकार।
पुं० १. समुद्र की लहरों के टकराने से होनेवाला शब्द। २. प्राचीन कवियों के अनुसार एक समुद्र का नाम।
पुं० [सं० कृकल] कौड़िल्ला की जाति का एक छोटा पक्षी जो जलाशयों में से मछलियाँ पकड़कर खाता है। (किंगफिशर)

किलकिलाना—अ० [अनु०] [भाव० किलकिलाहट] =किलकारना।

किलकी—स्त्री० [फा० किलक=नरकट या कलम] वढ़इयों का एक औजार जिससे वे काष्ठ पर निशान लगाते है।
स्त्री० [हिं० किलकना] १. किलकने की क्रिया या भाव। २. वेचैनी। विकलता। उदा०—धुनि सुनि कोकिल की विरहिन को किलकी।—सेनापति।

किलकैया—पुं० [देश०] चौपायों के खुरों में होनेवाला एक रोग।
† पुं० [हिं० किलकना] किलकनेवाला।

किलचिया†—पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वगला।

किलना—अ० [हिं० कील] १. कीलों से जकड़ा जाना। कीला जाना। २. वश में किया जाना। ३. गति का रोका जाना। ४. प्रभाव का

रोका या वन्द किया जाना। उदा०—विरह सर्प फिर तो स्वयं किला। — मैथिलीशरण।

किलनी—स्त्री० [सं० कीट, हिं० कीड़] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं के शरीर में चिपटा रहता है और उनका रक्त पीता है। किल्ली। (टिक)

किलबिलाना—अ०=कुलबुलाना।

किलमिख (ष)*—पुं०=कलमष।

किलमी—पुं० [?] १. जहाज का पिछला खंड या भाग। २. उक्त खंड के मस्तूल का पाल।

किलमोश—पुं० [देश०] दारुहल्दी नामक पौधा।

किललाना*—अ०=चिल्लाना।

किलवांक—पुं० [देश०] काबुल देश के घोड़ों की एक जाति।

किलवा†—पुं० [देश०] बड़ी कुदाल या फावड़ा। (रुहेलखंड)

किलवाई—स्त्री० [देश०] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का छोटा फावड़ा। फरुई।

किलवाना—स० [हिं० कीलना] कीलने का काम किसी से कराना। (दे० 'कीलना')

किलवारी†—स्त्री० [सं० कर्ण] वह डाँडा जिससे छोटी नावों में पतवार का काम लिया जाता है।

किलविष—पुं०=किल्विष।

किलविषी*—वि० [सं० किल्विष] १. अपराधी। २. पापी। ३. रोगी।

किलसना†—अ० [सं० क्लेश] १. क्लेश से युक्त होना। कष्ट पाना या भोगना। २. मन में दुःखी होना। कुढ़ना। उदा०—साव कहे रे बालका, मत किलसै जी खोय।

किलहँटा—पुं० [पा० गिलाट या हिं० कलह ?] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की काली चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरोही।

किला—पुं० [अ० किलऽ] १. वह बहुत बड़ी इमारत जो ऊँची दीवारों, गहरी खाइयों आदि से घिरी होती हैं और जिसमें प्राचीन काल तथा मध्य युग में सेनाएँ सुरक्षित रहकर रक्षात्मक युद्ध लड़ा करती थीं। गढ़। दुर्ग। (फोर्ट)

मुहा०—**किला टूटना**=बहुत बड़ी अड़चन या कठिनता का दूर होना। दुःसाध्य या विकट कार्य पूरा होना। **किला फतेह करना**=कोई बहुत कठिन या दुस्साध्य काम पूरा करना। **किला बाँधना**=(क) शतरंज के खेल में बादशाह को कुछ मुहरों के बीच में इस प्रकार रखना कि उसे शह न लग सके। (ख) चारों ओर से अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध करना।

२. कोई बहुत बड़ी, मजबूत तथा सुरक्षित इमारत।

किलाना—स०=किलवाना।

किलाबंदी—स्त्री० [फा०] १. शत्रु के आक्रमण के समय किले की सुरक्षा के लिए की जानेवाली व्यवस्था। सुरक्षात्मक कार्रवाई। २. व्यूह-रचना। मोरचाबन्दी। ३. शतरंज के खेल में बादशाह को मोहरों से घेर कर इस प्रकार सुरक्षित रखना कि विपक्षी जल्दी मात न कर सके।

किलाव†—पुं०=कलाप।

किलावा†—पुं० [फा० कलाव ; मि० सं० कलाप] १. तकली पर लिपटा हुआ सूत का लच्छा। २. हाथी के गले में पड़ी हुई वह रस्सी जिसे महावत पैरों में फँसाकर हाथी को चलाता है। ३. हाथी के कंधे, जिन पर महावत बैठता है। ४. सुनारों का एक प्रकार का औजार।

किलिक—स्त्री० [फा० किलक] नरकट की जाति का एक पौधा, जिसकी डंठी से देशी चाल की कलम बनती है।

पुं०=किल्क।

किलेदार—पुं० [अ०+फा०] किले का प्रधान अधिकारी।

किलेदारी—स्त्री० [अ०+फा०] किलेदार का कार्य या पद।

किलेबन्दी—स्त्री०=किलाबन्दी।

किलोमीटर—पुं० [अं०] दूरी की एक माप, जो प्रायः ३२८० फुट या एक मील के पंच-अष्टमांश के बराबर होती है।

किलोर (ल)—पुं०=कलोल।

किलौनी†—स्त्री०=किलनी।

किल्लत—स्त्री० [अ०] १. किसी वस्तु के कम मात्रा में मिलने या होने की अवस्था या भाव। कमी। अल्पता। २. कठिनता या कठिनाई से मिलने का भाव। दुर्लभता। ३. तंगी। ४. संकोच।

किल्ला—पुं० [सं० कील, कीलक] [स्त्री० किल्ली] १. जमीन में गाड़ा हुआ लकड़ी, लोहे आदि का खूँटा जिसमें गाय, बैल आदि के गले में पहनाई हुई रस्सी बाँधी जाती है। कीला।

मुहा०—**किल्ला गाड़ कर बैठना**=(क) अटल होकर बैठना। (ख) हठ ठानना।

२. लकड़ी की वह मेख जो जाँते के बीचोबीच गड़ी रहती है और जिसके चारों ओर जाँता घूमता है। कील। ३. दे० 'कीला'।

किल्लाना*—अ०=किलकारना।

किल्ली—स्त्री० [हिं० कील] १. छोटा किल्ला या मेख। २. दीवारों में गाड़ी हुई लकड़ी आदि की खूँटी जिस पर कपड़े, छिक्के आदि टाँगे जाते हैं। ३. मेख। ४. सिटकिनी। ५. किसी कल या पेंच का वह पुरजा या मुठिया जिसे घुमाने से वह चले।

मुहा०—**किल्ली ऐंठना, घुमाना या दबाना**=(क) दाँव या पेंच चलाना। युक्ति लगाना। (ख) किसी को काम करने के लिए उत्तेजित या प्रवृत्त करना।

किल्विष—पुं० [सं०√किल्+टिषच्, वुक् आगम] १. पाप। २. अपराध। दोष। ३. धोखा। ४. रोग। ५. विपत्ति।

किल्विषी (षिन्)—वि० [सं० किल्विष+इनि] १. पापी। २. अपराधी। ३. छली। ४. रोगी। ५. विपत्ति का मारा।

किवाँच—पुं०=कौंछ।

किवाट†—पुं०=कपाट।

किवाड़ (ा)—पुं० [सं० कपाटम् ; प्रा० मरा० कवाड़ ; गु० कमाड; बं० उ० कवाट] [स्त्री० अल्पा० किवाड़ी] लकड़ी, टिन या लोहे का बना हुआ दरवाजे का पल्ला, जो चौखट के साथ कब्जे आदि के द्वारा जकड़ा होता है। पट। कपाट।

मुहा०—**किवाड़ देना, भिड़ाना या लगाना**=दरवाजा बन्द करना।

किवाम—पुं०=किमाम (अवलेह)।

किवार (ा)—पुं०=किवाड़।

किशनतालू—पुं० [सं० कृष्ण तालु] काले तालूवाला हाथी। (महावत)

किशमिश—स्त्री० [फा०] [वि० किशमिशी] सुखाया हुआ छोटा बेदाना, अंगूर या दाख जिसकी गिनती मेवों में होती है।

किशमिशी—वि० [फा०] १. जिसमें किशमिश पड़ी हो। किशमिश से संबंधित। २. किशमिश से बननेवाला। जैसे—किशमिशी शराब। ३. किशमिश के रंग या स्वाद का।
पुं० एक प्रकार का अमौआ रंग जो किशमिश के रंग की तरह का होता है।

किशलय—पुं०=किसलय।

किशोर—पुं० [सं०√कश् (शब्द)+ओरन् (नि०)] [स्त्री० किशोरी] १. ऐसा बालक जिसकी अवस्था अभी पंद्रह वर्ष से कम हो। २. विधिक दृष्टि से ऐसा बालक जो अभी बालिग या वयस्क न हुआ हो। ३. पशु का छोटा बच्चा। ४. सूर्य।
वि० बाल्यावस्था और युवावस्था के बीच का। (एडोलेसेंट)

किशोरक—पुं० [सं० किशोर+कन्] छोटा बालक। बच्चा।

किशोरी—स्त्री० [सं० किशोर+ङीप्] १. बालिका। २. कुआँरी लड़की। ३. सुन्दर युवती।

किश्त—स्त्री० [फा०] १. कृषि-कर्म। खेती-बारी। २. शतरंज के खेल में बादशाह का किसी मोहरे के घात में पड़ना।
†स्त्री०=किस्त।

किश्तवार—पुं० [फ़ा० किश्त=खेत+वार (प्रत्य०)] वह खाता या बही, जिसमें खेतों के क्षेत्रफल आदि का विवरण रहता है।

किश्ती—स्त्री० [फा० कश्ती] १. नाव। नौका। २. एक प्रकार की छिछली और लम्बी तश्तरी। ३. शतरंज का एक मोहरा, जिसे हाथी भी कहते हैं।

किश्तीनुमा—वि० [फा०] किश्ती की तरह लंबोतरा। जिसके दोनों किनारे टेढ़े वा धन्वाकार हों। जैसे—किश्तीनुमा टोपी।

किष्किंध—पुं० [सं० किं किं√धा (धारण)+क, सुट्, षत्व, मलोप] १. मैसूर के आसपास के प्रदेश का पुराना नाम। २. एक पर्वत जो उक्त प्रदेश में है।

किष्किंधा, किष्किंध्या—स्त्री० [सं० किष्किन्ध+टाप्] [किष्किन्ध+यत्—टाप्] १. किष्किन्ध प्रदेश की राजधानी। २. किष्किन्ध पर्वत श्रेणी।

किस—सर्व० वि० [सं० किम् से] कौन और क्या का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है। जैसे—किसका, किसने आदि।
† क्रि० वि० [हिं० कैसे] किस प्रकार। (क्व०)

किसन*—वि०, पुं०=कृष्ण।

किसनई†—स्त्री० [हिं० किसान+ई (प्रत्य०)] किसान का काम। खेती-बारी।

किसब—पुं०=कसब।

किसबत—पुं० [अ०] वह छोटी थैली जिसमें नाई अपने उस्तरे, कैंची आदि रखते हैं।

किसमत—स्त्री०=किस्मत (भाग्य)।

किसमिस—स्त्री०=किशमिश।

किसमी*—पुं० [अ० कसबी] श्रमजीवी। मजदूर। (राज०)

किसल, किसलय—पुं० [सं० किम्√सल् (गति)+कयन्, पृषो० सिद्धि] पेड़-पौधों आदि में से निकलनेवाले छोटे नये पत्ते। कोमल पत्ता। कल्ला।

किसान—पुं० [सं० कृषाण; पं० मरा० किसाण] [भाव० किसानी] १. वह जो खेती-बारी का काम करता हो। खेतों को जोतने, उनमें बीज बोने, होनेवाली फसल काटने आदि का काम करनेवाला व्यक्ति। २. रहस्य-संप्रदाय में शरीर की इंद्रियाँ, जो पाप-पुण्य करके बुरे-भले फल प्राप्त करती हैं।

किसानी—वि० १. कृषि-संबंधी। २. किसान-संबंधी।

किसिम—स्त्री०=किस्म।

किसी—सर्व० [हिं० किस+ही] 'कोई' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है। जैसे—किसी आदमी को वहाँ भेज दो।
वि० 'कोई' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है। जैसे—यह तो किसी काम का नहीं है।
पद—किसी-न-किसी=यदि एक नहीं तो दूसरा। कोई एक। जैसे—किसी-न-किसी ने तो किताब उठाई ही है।

किसु†—सर्व० १. =किस। २. =किसका। ३. =किसको। किसे।

किसुन†—पुं०=कृष्ण।

किसोरक—पुं०=किशोरक। (छोटा बच्चा या बालक) उदा०—ससिहिं चकोर किसोरक जैसे।—तुलसी।

किसौ*—सर्व० [सं० कीदृशः; प्रा० किसउ]=किस। उदा०—वयण डेडरां किसौ बस।—प्रिथीराज।

किस्त—स्त्री० [अ० किस्त] १. ऋण के भुगतान करने की वह प्रणाली जिसके अनुसार ऋणी को कुछ निश्चित अवधियों में ऋण को बराबर कई खंडों में चुकाना पड़ता है। २. ऋण या देय का उतना अंश जितना किसी एक अवधि में चुकाया या दिया जाय या चुकाया जाने को हो। ३. किसी वस्तु की प्राप्य कुल मात्रा का वह अंश जो किसी एक अवधि या समय में दिया या लिया जाय। (इन्स्टालमेन्ट)

किस्तबंदी—स्त्री० [फा०] किस्त के रूप में, अर्थात् कई बार में थोड़ा-थोड़ा करके देन आदि चुकाने या वसूल करने की प्रणाली।

किस्तवार—क्रि० वि० [फा०] १. किस्तों के रूप में। किस्त-किस्त करके। २. हर किस्त पर अलग-अलग।

किस्ती—वि० [अ०] किस्त-संबंधी। किस्त का।
स्त्री० दे० 'किस्त'।

किस्वत—स्त्री० [अ०] १. पहनने के वस्त्र। २. कपड़े की बनी हुई वह थैली जिसमें दरजी, हज्जाम आदि अपने औजार रखते हैं।

किस्म—स्त्री० [अ०] १. एक ही आकार-प्रकार के जीवों, वस्तुओं आदि का वह वर्ग या अंश जो कुछ या कई गुणों अथवा दृष्टियों से एक कोटि या श्रेणी का माना जाता हो। प्रकार। जैसे—इन दोनों देशों के रीति-रिवाज एक ही किस्म के हैं। २. ढंग। तरीका।

किस्मत—स्त्री० [अ०] १. 'तकसीम' होने या बाँटे जाने की क्रिया या भाव। बँटवारा। विभाजन। २. प्रारब्ध। भाग्य।
मुहा०—किस्मत आजमाना=कोई प्रयत्न करके यह देखना कि इससे हमें यथेष्ट लाभ होता है या नहीं। **किस्मत खुलना**=सुख-सौभाग्य आदि का समय या स्थिति आना। **किस्मत चमकना**=सुख-सौभाग्य आदि की स्थिति आना। **किस्मत जागना**=कष्ट के दिन बीत जाने

पर अच्छे और सुख-सौभाग्य के दिन आना। **किस्मत फूटना**=भाग्य का इतना मन्द हो जाना कि सब प्रकार के सुखों या सौभाग्य का अन्त हो जाय। **किस्मत लड़ना**=(क) ऐसी स्थिति में होना जिसमें भाग्यवान् और अभागे होने की परीक्षा हो। (ख) सुख और सौभाग्य का समय आना।

पद—किस्मत का धनी=बहुत बड़ा भाग्यवान्। **किस्मत का फेर**=ऐसी स्थिति जिसमें भाग्य मंद पड़ जाय और सुख-सौभाग्य उतार पर हो। **किस्मत का बदा या लिखा**=वह जो कुछ अपने प्रारब्ध या भाग्य में हो। **किस्मत का हेठा**=अभागा, भाग्यहीन।

३. किसी राज्य का वह भाग जिसमें कई जिले हों और जो एक कमिश्नर के अधीन हों। कमिश्नरी।

किस्मतवर—वि० [फा०] भाग्यवान्। भाग्यशाली।

किस्सा—पुं० [अ०] १. कोई कल्पित घटना या मनगढ़ंत बात, जो विवरणात्मक रूप में कही, बतलाई या लिखी जाय। कहानी।

पद—किस्सा-कहानी=झूठी और कल्पित कथाएँ या बातें।

२. किसी घटना या बात का पूरा विवरण। वृत्तांत।

पद—किस्सा कोताह=सारांश यह कि। थोड़े में यह कि।

३. समाचार। हाल। ४. घटनाओं की परम्परा। जैसे—तुमने तो एक ही बात में सारा किस्सा खतम कर दिया।

मुहा०—किस्सा पाक होना=(बात या व्यक्ति का) अंत या समाप्ति होना।

५. झगड़ा—बखेड़ा।

किह—सर्व० १. =किस (पू० हिं०)। उदा०—दादू ऐसा परम गुरु पाया किह संजोग।—दादू दयाल। २. =कौन।

अव्य०=कहाँ।

किहनी†—स्त्री०=कहानी (कथा)। उदा०—साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।—तुलसी।

किहि*—सर्व० [सं० किम् से] १. किसी को। उदा०—किहि करगि कुमकुमों कुंकुम किहि करि।—प्रिथीराज। २. किसको। ३. किसने।

किहिन—सर्व०, वि०=किस। उदा०—किहिन वंस पृथिराज, उपजि जंपहि वड पंडिय।—चंदबरदाई।

की—विभ० [हिं०] संबंधकारक का चिह्न 'का' का स्त्री० रूप।

†अव्य० १. अथवा। कि। या तो। २. क्या। उदा०—बाँको गढ़ भड़ बाँकड़ा हलो किया की होय।—बाँकीदास।

स० हिं० भूतकालिक क्रिया 'किया' का स्त्री० रूप।

कीक—पुं० [अनु०] १. चीत्कार। चिल्लाहट। २. शोर-गुल।

कीकट—पुं० [सं० की√कट् (गति)+अच्] [स्त्री० कीकटी] १. मगधप्रदेश का प्राचीन वैदिक नाम। २. [कीकट+अच्] उक्त देश में बसनेवाली प्राचीन अनार्य जाति। ३. घोड़ा।

वि० १. गरीब। निर्धन। २. कृपण। कंजूस। ३. लालची। लोभी।

कीकना—अ० [अनु०] १. रोते हुए बच्चों का की-की शब्द करना। २. चीत्कार करना। चिल्लाना।

कीकर—पुं० [सं० किंकराल]=बबूल (वृक्ष)।

कीकरी—स्त्री० [हिं० कीकर] १. एक प्रकार का कीकर या बबूल जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। २. कपड़ों में सजावट के लिए की जानेवाली एक प्रकार की सिलाई, जिसमें कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर लहरियादार कँगूरे बनाये जाते हैं।

कीकश—पुं० [सं० की√कश् (गति)+अच्] चांडाल।

कीकस—वि० [सं० की√कस् (गति)+अच्] १. कठिन। २. कठोर।

पुं० १. हड्डी। २. एक प्रकार का कीड़ा।

कीका—पुं०=कीकान।

कीकान†—पुं० [सं० केकाण (देश)] १. भारत के पश्चिमोत्तर भाग का एक प्रदेश जो किसी समय घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। २. उक्त प्रदेश का घोड़ा। ३. घोड़ा।

कीच—पुं०=कीचड़।

कीचक—पुं० [सं० की√चक् (तृप्ति) +अच्] १. खोखला या पोला बाँस। २. राजा विराट का साला जो उसका सेनापति भी था।

कीचड़—पुं० [हिं० कीच+ड़ (प्रत्य०)] १. किसी स्थल पर पानी, मिट्टी आदि के जमा होने पर बननेवाला गाढ़ा घोल। कर्दम। पंक।

मुहा०—(किसी पर) कीचड़ उछालना=किसी को अपमानित करने के लिए उसके सम्बन्ध में इधर-उधर की झूठी-सच्ची निंदात्मक बातें कहना।

२. किसी तरल वस्तु में का गाढ़ा मल। जैसे—(क) आँख का कीचड़। (ख) तेल का कीचड़। ३. विपत्ति या संकट की स्थिति।

मुहा०—कीचड़ में फँसना=विपत्ति या संकट में पड़ना।

कीचा†—पुं०=कीच (कीचड़)।

कीट—पुं० [सं०√कीट् (बन्धन)+अच्] जमीन पर रेंगनेवाले बिना हाथ-पैर के छोटे-छोटे जंतु। कीड़े।

पद—कीट-पतंग=रेंगने और उड़नेवाले कीड़े।

पुं० [सं० प्रा० किट्ट; उ० किटकिट; मरा० सिं० कीट; गु० कीटू] किसी चीज पर जमा हुआ मैल।

कीटक—पुं० [सं० कीट+कन्] १. कीड़ा। २. मगध की एक प्राचीन जन-जाति।

कीटज—वि० [सं० कीट√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. कीड़ों से निकला या बना हुआ। २. कीड़ों द्वारा बनाया हुआ।

पुं० रेशमी कपड़ा।

कीट-नाशक—वि० [ष०त०] कीड़ों, कीटाणुओं आदि को नष्ट करनेवाला (पदार्थ)।

कीट-भृंग-न्याय—पुं० [सं० कीट-भृंग, मय० स०, कीटभृंग-न्याय, ष० त०] दो या अधिक वस्तुओं का उसी प्रकार मिलकर एक रूप हो जाना जिस प्रकार भौंरा किसी कीड़े को पकड़कर (लोक-प्रवाद के अनुसार) उसे बिलकुल अपनी तरह का बना लेता है।

कीट-भोजी (जिन्)—पुं० [सं० कीट√भुज् (खाना)+णिनि, उप० स०] ऐसे जीव-जन्तु या पौधे जो कीड़ों-मकोड़ों का भक्षण करते हों। (इन्सेक्टिवोरस)

कीट-मणि—पुं० [उपमि० स०] खद्योत। जुगनूँ।

कीट-विज्ञान—पुं० [मध्य० स०] वह विज्ञान जिसमें कीड़ों-मकोड़ों की नसलों आदि के संबंध में अध्ययन किया जाता है। (एन्टामालोजी)

कीटाण—पुं० [सं० कीट-अणु, स० त०] ऐसे सूक्ष्म कीड़े जो कई प्रकार के रोगों के मूल कारण माने जाते हैं। (जर्म्स)

कीटिका—स्त्री० [सं० कीट+कन्, टाप् इत्व] १. छोटा कीड़ा। २. तुच्छ या हीन प्राणी।

कीड़ना*—अ० [सं० क्रीडन] कीड़ा करना। खेलना।

कीड़ा—पुं० [सं० कीट; प्रा० कीड़] [स्त्री० कीड़ी] १. ऐसे छोटे-छोटे जन्तु जो जमीन पर रेंगते और पंख होने पर आकाश में उड़ते हैं। ये प्रायः वनस्पतियों, कपड़ों आदि को खा जाते हैं।

मुहा०—(किसी चीज में) **कीड़े पड़ना**=किसी पदार्थ अथवा शरीर के किसी अंग का सड़-गल कर इतनी बुरी दशा में होना कि उसमें कीड़े उत्पन्न होने लगें।

२. साँप। ३. लाक्षणिक अर्थ में किसी वस्तु का बिलकुल आरंभिक और बहुत ही छोटा रूप।

कीड़ी—स्त्री० [हिं० कीड़ा] १. छोटा कीड़ा। २. च्यूँटी।

कीता†—भू० कृ० [सं० कृत] किया हुआ।

स० हिं० 'करना' क्रिया का पुराना भतकालिक रूप। किया। (पश्चिमी हिंदी)

कीती*—स्त्री० १. कृति। उदा०—जासु सकल मंगलमय कीती।—तुलसी। २. कीर्ति।

कीदहुँ†—अव्य०=किधौं।

कीनखाब—पुं०=कमखाब (कपड़ा)।

कीनना†—स० [सं० क्रीणन] क्रय करना। खरीदना।

कीना—पुं० [फा० कीनः] मन में किसी के प्रति होनेवाला दुर्भाव। द्वेष। दुश्मनी।

कीनाश—पुं० [सं०√क्लिश् (कष्ट देना)+कन्, ईत्व, 'ल' का लोप, 'ना' का आगम] १. यमराज की एक उपाधि। २. एक प्रकार का बन्दर। ३. किसान। खेतिहर। ४. कसाई। वधिक।

कीनास—पुं०=कीनाश।

कीनिया†—वि० [फा० कीना] १. जिसके मन में किसी के प्रति कीना या द्वेष हो। २. कपटी। धोखेबाज। छली।

कीप—स्त्री० [अ० कीफ] १. वह गावदुमा चोंगी जिसकी सहायता से किसी तंग मुँहवाले बरतन में कोई तरल पदार्थ ढाला या भरा जाता है। २. इंजन या कल-कारखाने की चिमनी, जो उक्त आकार की होती है।

कीमत—पुं० [अ०] [वि० कीमती] १. किसी वस्तु को क्रय करने के लिए दिया जानेवाला धन। दाम। मूल्य। २. महत्त्व।

कीमती—वि० [अ०] १. अधिक कीमत या मूल्य का। मूल्यवान्। २. महत्त्वपूर्ण। जैसे—कीमती दस्तावेज।

कीमा—पुं० [अ० कीमः] १. खाने या पकाने के लिए मांस के काट-काट कर बहुत छोटे किये हुए टुकड़े। २. उक्त कटे हुए मांस को पकाकर बनाया हुआ व्यंजन।

कीमिया—स्त्री० [अ०] १. मध्ययुग में पश्चिमी एशिया और पूर्वी यूरोप में प्रचलित वह रासायनिक प्रक्रिया जो लोहे, ताँबे आदि सस्ती धातुओं को सोने के रूप में परिवर्तित करनेवाले तत्त्व या पदार्थ की खोज के लिए की जाती थी। २. रसायन। ३. कोई ऐसी युक्ति जिससे कोई बड़ा उद्देश्य बहुत सहज में सिद्ध हो जाय। राम बाण।

कीमियागर—पुं० [अ०+फा०] १. कीमिया या रसायन तैयार करनेवाला व्यक्ति। २. ताँबे, लोहे आदि को सोने में परिवर्तित करनेवाला व्यक्ति।

कीमियागरी—स्त्री० [अ०+फा०] १. कीमिया बनाने की कला या विद्या। २. रसायनशास्त्र।

कीमुख्त—पुं० [अ०] गधे या घोड़े का चमड़ा, जो सिझाने पर कुछ हरे रंग का और दानेदार होता है।

कीर—पुं० [सं० की√ईर् (गति)+णिच्+अच्] १. तोता। शुक। २. बहेलिया। व्याध। ३. कश्मीर देश का एक नाम। ४. कश्मीर का निवासी।

कीरतन—पुं०=कीर्त्तन।

कीरतनिया—पुं० [हिं० कीरतन=कीर्त्तन] वह जो प्रायः भजन आदि गाकर हरि-कीर्त्तन करता रहता हो; अथवा कीर्त्तन करने का व्यवसाय करता हो। कीर्त्तनकार।

कीरति*—स्त्री०=कीर्ति।

कीरति-कुमारी*—स्त्री०=राधा।

कीरा—पुं० [स्त्री० कीरी]=कीड़ा।

कीरात—पुं० [अ०] चार जौ की एक तौल, जो प्रायः हीरे, जवाहरात और सोना तौलने के काम आती है। किरात। (कैरट)

कीरी† —स्त्री० कीर (व्याध) जाति की स्त्री।

† स्त्री०=कीड़ी (छोटा कीड़ा)।

कीर्ण—वि० [सं०√कृ (विक्षेप)+क्त] १. फैला या बिखेरा हुआ। २. ढका हुआ। ३. धरा या पकड़ा हुआ। ४. ठहरा हुआ। स्थित। ५. चोट खाया हुआ। आहत।

कीर्त्तन—पुं० [सं०√कृत्+ल्युट्—अन, इत्व, दीर्घ] १. किसी के गुण, यश आदि का बार-बार या बराबर किया जानेवाला कथन या बखान। यशोवर्णन। गुण-कथन। २. ईश्वर या देवता के नाम और यश का बार-बार विशेषतः गाते-बजाते हुए किया जानेवाला कथन।

कीर्त्तनकार—पुं० [सं० कीर्त्तन√कृ (करना)+अण्] वह जो गा-बजाकर ईश्वर या देवताओं का कीर्त्तन करता हो। कीरतनिया।

कीर्त्तनिया—पुं०=कीरतनिया (कीर्त्तनकार)।

कीर्त्ति—स्त्री० [सं०√कृत्+इन् वा क्तिन्, इत्व, दीर्घ] १. पुण्य। २. किसी की वह ख्याति, बड़ाई या यश जो उसे बहुत अच्छे और बड़े-बड़े काम करने पर प्राप्त होता है; और जो प्रायः अधिक समय तक बना रहता है। ३. वह अच्छा या बड़ा काम जिससे किसी के बाद उसका नाम हो। ४. दक्ष की एक कन्या, जो धर्म को ब्याही थी। ५. एक मातृका का नाम। ६. राधा की माता का नाम। ७. शब्द। ८. चमक, दीप्ति। ९. विस्तार। १०. प्रसाद। ११. आर्या छन्द का एक भेद। १२. एक दस अक्षरों का वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में तीन सगण और एक गुरु होता है। १३. संगीत में एक प्रकार का ताल।

कीर्तित—भू० कृ० [सं०√कृत्+क्त, इत्व, दीर्घ] १. जो कहा गया हो या जिसका वर्णन हुआ हो। कथित। वर्णित। २. जिसका या जिसके संबंध में कीर्त्तन हुआ हो। ३. प्रशंसित और प्रसिद्ध।

कीर्तिदा—स्त्री०=यशोदा (कृष्ण की माता)।

कीर्तिमंत—वि०=कीर्तिमान्।

कीर्तिमान् (मत्)—वि० [सं० कीर्ति+मतुप्] १. जिसकी बहुत अधिक कीर्त्ति या यश हो। यशस्वी। २. जिसकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली हो। प्रसिद्ध। मशहूर।

कीर्तिवंत—वि०=कीर्त्तिमान्।

कीर्त्तिवान्—वि०=कीर्त्तिमान्।

कीर्त्तिशाली (लिन्)—वि० [सं० कीर्त्ति√शल् (गति)+णिनि] जिसकी विशेष कीर्त्ति हो। कीर्त्तिमान्।

कीर्त्ति-शेष—वि० [ब० स०] इस संसार में अब जिसकी कीर्त्ति ही शेष रह गई हो और कुछ न रह गया हो। जो कीर्त्ति छोड़कर नष्ट या समाप्त हो चुका हो।

कीर्त्ति-स्तंभ—पुं० [मध्य० स०] १. वह स्तंभ या वास्तु-रचना जो किसी की कीर्त्ति का स्मरण कराने और उसे स्थायी रखने के लिए बनाई गई हो। २. वह कृति जिससे किसी की कीर्त्ति बहुत दिनों तक बनी रहे। (मॉन्यूमेन्ट)

कील—स्त्री० [सं०√कील् (ठोंकना, बाँधना आदि)+घञ्] १. लकड़ी, लोहे आदि का कोई ऐसा गोलाकार, लंबोतरा नुकीला टुकड़ा जो गाड़ने, फँसाने आदि के लिए बनाया गया हो। मेख।

पद—कील-कांटा=किसी कार्य के संपादन के लिए आवश्यक उपकरण या उपयोगी सामग्री। जैसे—अब चट-पट कील-काँटे से लैस होकर चल पड़ो।

२. कोई गोलाकार, लंबोतरी नुकीली चीज। जैसे—(क) कान या नाक में पहनने की कील या फूल; (ख) फुंसी या फोड़े के मुँह पर अड़ी हुई पीब की कील; (ग) मुहासे की मांस-कील; (घ) चक्की या जाँते के बीच में लगी हुई कील या खूँटी; (ङ) कुम्हार के चाक में की कील आदि। ३. वैद्यक में, वह मूढ़-गर्भ जो योनि के मुँह पर आकर अटक गया हो। ४. कामशास्त्र में, स्त्री-प्रसंग का एक प्रकार का आसन। कीलासन। ५. आग की लपट। अग्नि-शिखा। ६. माला। ७. खंभा। ८. एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र। ९. शिव का एक नाम। १०. हाथ की कोहनी या उससे किया जानेवाला आघात।

स्त्री० [देश०] असम देश में होनेवाली एक प्रकार की देव-कपास। खुंगी।

कीलक—वि० [सं०√कील्+ण्वुल्—अक] १. कीलन करनेवाला। २. कीलनेवाला।

पुं० १. बड़ी कील या काँटा। २. गौएँ आदि बाँधने का खूँटा। ३. ऐसा यंत्र या साधन, जो किसी का प्रभाव या शक्ति रोककर उसे व्यर्थ कर दे। ४. ज्योतिष में ६० संवत्सरों में से बयालीसवाँ संवत्सर। ५. मंच का मध्य भाग। ६. एक तांत्रिक देवता। ७. दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के समय पढ़ा जानेवाला एक स्तव या स्तोत्र। ८. एक प्रकार के केतु या पुच्छल तारे।

कीलन—पुं० [सं०√कील्+ल्युट्—अन] १. कील लगाकर बाँधने या रोकने की क्रिया या भाव। २. किसी क्रिया, गति या शक्ति को पूरी तरह से निष्फल या व्यर्थ करना। ३. वह उपचार जिससे किसी मंत्र की शक्ति रोककर व्यर्थ कर दी जाती है।

कीलना—स० [सं० कीलन] १. किसी चीज में कील अथवा कील जैसी कोई नुकीली वस्तु गड़ाना या ठोंकना। २. दो वस्तुओं को जोड़ने के लिए उसमें कील आदि ठोंकना। ३. कील आदि ठोंककर किसी चीज का मुँह बन्द करना। जैसे—तोप में कुंदा कीलना, बोतल में काग कीलना। ४. किसी की आगे बढ़ती हुई गति या शक्ति को बीच में रोकना। जैसे—मंत्र-बल से साँप को कीलना। उदा०—जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुन-गन कीले।—तुलसी। ५. बहुत-सी चीजों को एक में बाँधना, मिलाना या लगाना। उदा०—आधा बाजा, आधा गीला। सब को लेकर एक में कीला।—'दफ्तर' की पहेली।

कील-मुद्रा—स्त्री० [सं० मध्य० स०]=कीलाक्षर (लिपि)।

कीला—पुं० [सं० कील] [स्त्री० अल्पा० कीली] १. बड़ी और मोटी कील। जैसे—चक्की या चाक में का कीला। २. अर्गल। ब्योंड़ा।

कीलाक्षर—पुं० [सं० कील-अक्षर मध्य० स०] एक प्रकार की बहुत पुरानी लिपि, जिसके अक्षर देखने में कील या काँटे के आकार-प्रकार के होते थे और जो किसी समय अक्कड़, असुरिया, ईरान, बैबिलोन आदि देशों में प्रचलित थी। (क्यूनिफार्म)

कीलाल—पुं० [सं० कील√अल् (गति)+अण्] १. पुराणानुसार देवताओं का एक पेय पदार्थ, जो अमृत की तरह का कहा गया है। २. अमृत। ३. जल। पानी। ४. मधु। शहद। ५. खून। रक्त। ६. जानवर। पशु।

वि० बन्धन काटने या दूर करनेवाला।

कीलालप—पुं० [सं० कीलाल √ पा (पीना)+अण्] १. राक्षस। २. भ्रमर। भौंरा।

कीलिका—स्त्री० [सं० कील+कन्, टाप्, इत्व] १. वैद्यक में मनुष्य के शरीर की कुछ विशिष्ट हड्डियाँ जो ऋषभ और नाराच से भिन्न प्रकार के स्नायुओं में बँधी हुई कही गई हैं। २. एक प्रकार का तीर या बाण।

कीलित—भू० कृ० [सं०√कील्+क्त] १. जिसमें कीलें जड़ी या लगी हों। २. जिसका प्रभाव या शक्ति किसी युक्ति से बाँध या रोक दी गई हो। जैसे—मंत्र-बल से कीलित सर्प।

कीलिया—पुं० [हिं० कील] वह जो पुर या मोट चलाने के समय बैलों को हाँकता हो। पैरहा।

कीली—स्त्री० [सं० कील] १. छोटा कीला या खूँटा। २. किसी चक्र के बीचवाले छेद में लगी हुई वह कील या डंडा जिसके सहारे या चारों ओर वह चक्र घूमता है। ३. किसी प्रकार की वह केंद्रीय शक्ति, जिसके बल पर उसके ऊपर बनी या लगी हुई चीज गोलाकार घूमती हो। धुरी। (एक्सिस) जैसे—पृथ्वी दिन-रात में एक बार अपनी कीली पर घूमती है। ४. छोटी अर्गला या ब्योंड़ा। ५. किसी चीज को बाँध या रोक रखनेवाली कोई चीज। उदा०—गुठि बँदि गाढ़ न निकसै कीली।—जायसी।

कीश—पुं० [सं० की√ईश् (समर्थ होना)+क] १. बंदर। २. चिड़िया। पक्षी। ३. सूर्य।

वि० नंगा। नग्न।

कीश-केतु—पुं० [ब० स०] अर्जुन (पांडव)।

कीश-ध्वज—पुं०=कीश-केतु।

कीश-नाथ—पुं० [प० त०] १. हनुमान। २. सुग्रीव।

कोस—पुं० [फा० कीसः] वह थैली जिसमें गर्भ-स्थित होता है।

कोसा—पुं० [फा० कीसः] १. थैली। २. खरीता। ३. जेब।

कुँअर—पुं० [सं० कुमार] [स्त्री० कुँअरि] १. पुत्र। बेटा। जैसे—राजकुँअर। २. बालक। लड़का। ३. राजा का लड़का। राजकुमार। जैसे—कुँअर श्यामसिंह।

कुँअर-विलास—पुं० [हिं०+सं०] एक प्रकार का बढ़िया धान और उसका चावल।

कुँअरि†—स्त्री० १. कुमारी। २. राजकुमारी।

कुँअरेटा†—पुं० [हिं० कुँअर+एटा] [स्त्री० कुँअरेटी] बड़े आदमी का बच्चा या लड़का। कुमार।

कुँआ†—पुं०=कूआँ।

कुँआर†—पुं०=क्वार (महीना)।

कुँआर-मग†—पुं० [सं० कुमार+हिं० मग=मार्ग] आकाश-गंगा। (राज०) उदा०—माँग समाहि कुँआर मग।—प्रिथीराज।

विशेष—राजस्थान में यह प्रवाद है कि आकाश में उक्त स्थान पर कुँआरे लड़के नमक ढोते हैं, इसी से यह नाम पड़ा है।

कुँआरा—वि० [सं० कुमार] [स्त्री० कुँआरी] १. (युवक) जिसका अभी विवाह न हुआ हो। अ-विवाहित। २. (व्यक्ति) जिसने विवाह न किया हो।

*पुं०=क्वार (महीना)।

कुँइयाँ—स्त्री० [हिं० कूआँ] छोटा कूआँ।

कुँई—स्त्री० [सं० कुमुदिनी, प्रा० कुडइँ] कुमुदिनी।

†स्त्री०=छोटा कूआँ।

कुंकुम—पुं० [सं०√कुक् (आदान)+उमक्, मुम् (नि०)] १. केसर। २. रोली। ३. कुमकुमा।

कुंकुमा—पुं० १=कुमकुमा। २.=कुंकुम।

कुँकुहँ*—पुं०=कुंकुम।

कुँकुह-बानी—वि० [हिं० कुंकुम+बानी=वर्णी] कुंकुम के रंग का। केसरिया। उदा०—भै जेंवनार फिरा खँडवानी। फिरा अरगजा कुंकुहबानी।—जायसी।

कुंचन—पुं० [सं०√कुंच् (सिकुड़ना)+ल्युट्—अन] १. संकुचित होने या सिकुड़ने की क्रिया या भाव। २. बालों आदि का घुंघराला होना। ३. आँख का एक रोग, जिसमें पलकें कुछ सिकुड़ने लगती हैं।

कुंचिका—स्त्री० [सं०√कुंच्+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] १. घुंघची। गुंजा। २. कुंजी। ताली। ३. बाँस की छोटी टहनी। ४. एक प्रकार की मछली।

कुंचित—वि० [सं०√कुंच्+क्त] १. सिकुड़ा हुआ। २. टेढ़ा या घूमा हुआ। ३. घुंघराला।

कुंची—स्त्री० [सं० कुंचिका] ताला खोलने की ताली। कुंजी। चाभी।

कुंज—पुं० [सं० कु√जन् (उत्पन्न होना)+ड, पृषो० सिद्धि] १. झाड़ियों, लताओं आदि से घिरा हुआ, प्रायः गोलाकार स्थान। २. हाथी का दाँत। पुं० [फा०, मि० सं० कुंज] १. कोना। २. छाजन में कोने पर पड़नेवाली लकड़ी। कोनिया। ३. चादरों, दुशालों आदि के चारों कोनों पर बनाये जानेवाले बूटे।

कुंजक*—पुं० [सं० कंचुकी] कंचुकी। डेवढ़ी पर का वह चोबदार जो अंतःपुर में आता-जाता हो। ख्वाजःसरा।

पुं०=कंचुकी (अंतःपुर का पहरेदार)।

कुंज-कुटीर—पुं० [उपमि० स०] किसी कुंज के अन्दर रहने का स्थान। लता-गृह।

कुंज-गली—स्त्री० [सं०+हिं०] १. बगीचों आदि में वह पगडंडी या तंग रास्ता जो झाड़ियों, लताओं आदि से छाया हुआ हो। २. बहुत पतली या सँकरी गली, जिसमें जल्दी धूप न आती हो।

कुंजड़—पुं०=कुंदुर (गोंद)।

कुँजड़ा—पुं० [सं० कुंज+हिं० ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुँजड़ी, कुँजड़िन] १. तरकारी, फल आदि बोने या बेचनेवाले लोगों की एक जाति।

पद—कुँजड़े-कसाई=छोटी जातियों के लोग।

२. तरकारी, फल, साग आदि बेचनेवाला दूकानदार।

पद—कुँजड़े का गल्ला=किसी पदार्थ, विशेषतः धन आदि की ऐसी राशि, जिसके आय-व्यय या लेन-देन का कोई हिसाब न रहता हो।

कुँजड़ियाना—पुं० [हिं० कुँजड़ा] वह स्थान जहाँ कुँजड़े बैठकर तरकारी बेचते हैं। उदा०—मीटिंग क्या होगी, कुंजड़ियाना बन जायगा।—वृंदावनलाल वर्मा।

कुंज-पक्षी (क्षिन्)—पुं० [मध्य० स०] नीलकंठ की तरह का एक प्रकार का पक्षी, जिसका घोंसला प्रायः कुंज के रूप में होता है। यह प्रायः झुंड बनाकर गाता-नाचता है।

कुंजर—पुं० [सं० कुंज+र] [स्त्री० कुंजरा, कुंजरी] १. हाथी। २. आठ दिग्गजों के कारण आठ की संख्या का वाचक शब्द। ३. हस्त नक्षत्र। ४. कच। बाल। ५. पीपल। ६. एक प्राचीन देश। ७. अंजना के पिता और हनुमान् के नाना का नाम। ८. छप्पय के छंद का इक्कीसवाँ भेद जिसमें ५० गुरु और ५२ लघु अर्थात् कुल १०२ वर्ण और १५२ मात्राएँ अथवा ५० गुरु और ४८ लघु अर्थात् कुल ९८ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ९. पाँच मात्राओंवाले छंदों के प्रस्तार में पहला प्रस्तार।

वि० उत्तम। श्रेष्ठ। जैसे—नर-कुंजर।

कुंजर-कण—स्त्री० [मध्य० स०] गज-पीपल (ओषधि)।

कुंजर-दरी—स्त्री० [ब० स०] मलय के पास के एक प्रदेश का पुराना नाम।

कुंजर-पिप्पली—स्त्री० [मध्य० स०] गज-पीपल (ओषधि)।

कुंजरा—स्त्री० [सं० कुंजर+टाप्] हथिनी।

कुंजराराति—पुं० [सं० कुंजर-अराति, ष० त०] हाथी का शत्रु, सिंह। शेर।

कुंजरारोह—पुं० [सं० कुंजर-आरोह, ष० त०] महावत। हाथीवान।

कुंजराशन—पुं० [सं० कुंजर-अशन, ष० त०] हाथी का भोज्य या खाद्य, पीपल।

कुंजरी—स्त्री० [सं० कुंजर+ङीष्] हथिनी।

कुंजल—पुं० [सं० कु-जल, ब० स०, पृषो० सिद्धि] काँजी।

पुं०=कुंजर (हाथी)।

कुंज-बिहारी (रिन्)—पुं० [सं० कुंज-वि√हृ (हरना)+णिनि, उप०

स०] १. कुंजों में विहार करनेवाला पुरुष। २. श्रीकृष्ण का एक नाम।

कुंजा†—पुं० [अ० कूज:] मिट्टी का पुरवा। चुक्कड़।

कुंजिका—स्त्री० [सं०√कुंज् (गति)+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] काला जीरा।

कुंजित*—वि०=कूजित।

कुंजी—स्त्री० [सं० कुञ्चिका; गु० कुंची, पं० सि० कुंजी, कुञ्ज; बँ० कूजी; उ० कुंझी] १. वह उपकरण जिससे ताला खोला तथा बंद किया जाता है। ताली। २. ताली जैसी कोई वस्तु। जैसे—घड़ी या मोटर की कुंजी। ३. ऐसा सरल साधन, जिससे कोई उद्देश्य सहज में सिद्ध होता हो।

मुहा०—(किसी की) कुंजी हाथ में होना=परिचालित करने का सूत्र हाथ में होना।

४. ऐसी सहायक पुस्तक जिसमें किसी दूसरी कठिन पुस्तक के अर्थ, भाव आदि स्पष्ट किये गये हों। (की, उक्त सभी अर्थों के लिए)

कुंठ—वि० [सं०√कुंठ् (मंद होना)+अच्]=कुंठित।

कुंठक—वि० [सं०√कुंठ्+ण्वुल्—अक] कुंठित बुद्धिवाला अर्थात् मूर्ख।

कुंठा—स्त्री० [सं० √कुंठ्+णिच्+अङ—टाप्] १. मनुष्य की अतृप्त तथा सुप्त भावना। २. ऐसी लज्जा या संकोच जो आगे बढ़ने में बाधक हो।

कुंठित—वि० [सं०√कुंठ्+क्त] १. (वस्तु) जिसकी धार या नोक तीक्ष्ण या तेज न हो। कुंद। २. (व्यक्ति) जिसकी बुद्धि मंद हो। जड़। ३. अवरुद्ध। गतिहीन। जैसे—कुंठित विचार-धारा। ४. (व्यक्ति) जो लज्जा, संकोच आदि के कारण आगे बढ़ने से रुक रहा हो।

कुंड—पुं० [सं०√कुण् (शब्द करना)+ड] १. छोटा तालाब। २. नदियों आदि में थोड़े-से घेरे में अधिक गहरा स्थान। ३. किसी स्थान पर किसी प्रकार का कुछ गहरा स्थान। उदा०—गढ़ तर सुरँग कुंड अवगाहा।—जायसी। ४. चौड़े मुँह का गहरा बर्तन। कुंडा। ५. प्राचीन काल का अनाज नापने का एक बड़ा पात्र। ६. होम करने के लिए खोदा हुआ गड्ढा या मिट्टी का बना हुआ वैसा पात्र। हवन कुंड। ७. बटलोई। ८. कमंडलु। ९. सधवा स्त्री का ऐसा पुत्र जो उसके जार या पर-पुरुष से उत्पन्न हुआ हो। जारज पुत्र। १०. शिव का एक नाम। ११. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १२. खप्पर। १३. ज्योतिष में चंद्र-मंडल का एक प्रकार का रूप।

पुं० [?] १. पूला। गट्ठा। २. लोहे का टोप। ३. हौदा।

कुंड-कीट—पुं० [उपमि० स०] १. ब्राह्मणी का जारज पुत्र। २. वह जिसने विना विवाह किये किसी स्त्री को घर में रख लिया हो। ३. चार्वाक-दर्शन का अनुयायी या नास्तिक।

कुंड-कील—पुं० [उपमि० स०] नीच आदमी।

कुंडकोदर—वि० [सं० कुंडक, कुंड+कन्, कुंडक-उदर, ब० स०] घड़े जैसे पेटवाला।

पुं० शिव का एक गण।

कुंड-गोलक—पुं० [द्व० स०] काँजी।

कुंडपायिनामयन—पुं० [सं० कुंडपायिनाम्—अयन, अलुक् स०] एक यज्ञ जिसके लिए यजमान २१ रात्रि तक दीक्षित रहता था।

कुंडपायी (यिन्)—पुं० [सं० कुंड√पा (पीना)+णिनि] १. ऐसा यजमान जो सोलह ऋत्विजों से सोमसत्र कराकर कुंडाकार चमसे से सोमपान कर चुका हो। २. उक्त के वंशज या शिष्य।

कुँड-पुजी—स्त्री० [हिं० कुँड+पुजी=पूजना]=कुँड़-मुदनी।

कुँड-मुँदनी—स्त्री० [हिं० कुँड़+मुदनी=मूँदना] रबी की बोआई समाप्त होने पर किसानों का मनाया जानेवाला उत्सव।

कुँड़रा—पुं० [सं० कुंडल] [स्त्री०, अल्पा० कुँडरी] १. किसी वस्तु की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर मंडलाकार खींची हुई रेखा। २. उक्त प्रकार की वह रेखा जिसके अंदर खड़े होकर लोग शपथ करते हैं। ३. कई फेरे देकर मंडलाकार लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा जिसे सिर पर रखकर बोझ या घड़ा आदि उठाते हैं। इँडुवा। गेंडुरी। ४. कुंडा। घड़ा।

कुंडल—पुं० [सं० कुंड√ला (आदान)+क] १. कान में पहना जानेवाला मंडलाकार प्रसिद्ध गहना, जो बड़े बाले की तरह होता है। २. चंद्रमा या सूर्य के चारों ओर दिखाई देनेवाला बादलों का गोल घेरा। ३. लकड़ी, लोहे आदि का कोई गोल घेरा या बंद, जो किसी चीज के चारों ओर अथवा मुँह पर सुरक्षा आदि के लिए लगाया जाता है। बंद। जैसे कोल्हू, चरसे आदि का कुंडल। ४. किसी प्रकार की मंडलाकार आकृति या रचना। जैसे—साँप का कुंडल बनाकर बैठना। ५. दो मात्राओं और एक अक्षर का मात्रिक गण। (छंदशास्त्र) जैसे—मा। ६. एक सम मात्रिक छंद, जिसके प्रत्येक चरण में २२ मात्राएँ होती है और अंत में २ गुरु होते हैं।

कुंडलपुर—पुं०=कुंडिनपुर।

कुंडलाकार—वि० [सं० कुंडल-आकार, ब० स०] जिसका आकार कुंडल या गेंडुरी की तरह गोल हो। मंडलाकार। वर्तुल।

कुंडलिका—स्त्री० [सं० कुंडली+कन्, टाप्, ह्रस्व] १. गोल रेखा। २. जलेबी नाम की मिठाई। ३. कुंडलिया छंद।

कुंडलित—वि० [सं० कुंडल+इतच्] जो कुंडल की तरह गोलाकार रूप में स्थित हो।

कुंडलिनी—स्त्री० [सं० कुंडल+इनि—ङीप्] १. हठ योग में नाभि के पास मूलाधार के नीचे प्रायः सुषुप्त अवस्था में रहनेवाली वह शक्ति जिसे साधना में जाग्रत किया जाता है और जिसके ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाने पर योगी मुक्त और अमर जीवन प्राप्त करता है। २. इमरती या जलेबी नाम की मिठाई। ३. गुडुच। गिलोय। ४. सोमलता।

कुंडलिया—स्त्री० [सं० कुंडलिका] छः चरणों का एक मात्रिक छंद, जिसके पहले दो चरण दोहे के और अन्तिम चार रोले के होते हैं। इसके पहले चरण का पहला शब्द छठे चरण के अंत में भी होता है।

कुंडली—स्त्री० [सं० कुंडल+ङीप्] १. किसी प्रकार की गोल आकृति, रचना या रेखा। जैसे—साँप का कुंडली मारकर बैठना। २. फलित ज्योतिष में वह गोलाकार चक्र अथवा चौकोर लिखावट जिसमें यह दिखलाया जाता है कि किसी के जन्म के समय कौन-कौन से ग्रह किस-किस लग्न या स्थान में थे और जिसके आधार पर उसके सारे जीवन के शुभाशुभ फल बतलाये जाते हैं। जन्म-पत्री का मुख्य और मूल भाग। ३. कुंडलिनी। ४. गेंडुरी। ५. डफली नाम का बाजा। ६. इमरती

कीस—पुं० [फा० कीसः] वह थैली जिसमें गर्भ-स्थित होता है।
कीसा—पुं० [फा० कीसः] १. थैली। २. खरीता। ३. जेब।
कुँअर—पुं० [सं० कुमार] [स्त्री० कुँअरि] १. पुत्र। बेटा। जैसे—राजकुँअर। २. बालक। लड़का। ३. राजा का लड़का। राजकुमार। जैसे—कुँअर श्यामसिंह।
कुँअर-विलास—पुं० [हिं०+सं०] एक प्रकार का बढ़िया धान और उसका चावल।
कुँअरि†—स्त्री० १. कुमारी। २. राजकुमारी।
कुँअरेटा†—पुं० [हिं० कुँअर+एटा] [स्त्री० कुँअरेटी] बड़े आदमी का बच्चा या लड़का। कुमार।
कुँआ†—पुं०=कूआँ।
कुँआर†—पुं०=क्वार (महीना)।
कुँआर-मग†—पुं० [सं० कुमार+हिं० मग=मार्ग] आकाश-गंगा। (राज०) उदा०—माँग समाहि कुँआर मग।—प्रिथीराज।
विशेष—राजस्थान में यह प्रवाद है कि आकाश में उक्त स्थान पर कुँआरे लड़के नमक ढोते हैं, इसी से यह नाम पड़ा है।
कुँआरा—वि० [सं० कुमार] [स्त्री० कुँआरी] १. (युवक) जिसका अभी विवाह न हुआ हो। अ-विवाहित। २. (व्यक्ति) जिसने विवाह न किया हो।
*पुं०=क्वार (महीना)।
कुँइयाँ—स्त्री० [हिं० कूआँ] छोटा कूआँ।
कुँई—स्त्री० [सं० कुमुदिनी, प्रा० कुडइं] कुमुदिनी।
†स्त्री०=छोटा कूआँ।
कुंकुम—पुं० [सं०√कुक् (आदान)+उमक्, मुम् (नि०)] १. केसर। २. रोली। ३. कुमकुमा।
कुंकुमा—पुं० १=कुमकुमा। २.=कुंकुम।
कुँकुहँ*—पुं०=कुंकुम।
कुंकुह-बानी—वि० [हिं० कुंकुम+बानी=वर्णी] कुंकुम के रंग का। केसरिया। उदा०—भै जेंवनार फिरा खँडवानी। फिरा अरगजा कुंकुहबानी।—जायसी।
कुंचन—पुं० [सं०√कुंच् (सिकुड़ना)+ल्युट्—अन] १. संकुचित होने या सिकुड़ने की क्रिया या भाव। २. बालों आदि का घुंघराला होना। ३. आँख का एक रोग, जिसमें पलकें कुछ सिकुड़ने लगती हैं।
कुंचिका—स्त्री० [सं०√कुंच्+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] १. घुंघची। गुंजा। २. कुंजी। ताली। ३. बाँस की छोटी टहनी। ४. एक प्रकार की मछली।
कुंचित—वि० [सं०√कुंच्+क्त] १. सिकुड़ा हुआ। २. टेढ़ा या घूमा हुआ। ३. घुंघराला।
कुंची—स्त्री० [सं० कुंचिका] ताला खोलने की ताली। कुंजी। चाभी।
कुंज—पुं० [सं० कु√जन् (उत्पन्न होना)+ड, पृषो० सिद्धि] १. झाड़ियों, लताओं आदि से घिरा हुआ, प्रायः गोलाकार स्थान। २. हाथी का दाँत।
पुं० [फा०, मि० सं० कुंज] १. कोना। २. छाजन में कोने पर पड़नेवाली लकड़ी। कोनिया। ३. चादरों, दुशालों आदि के चारों कोनों पर बनाये जानेवाले बूटे।
कुंजक*—पुं० [सं० कंचुकी] कंचुकी। डेवढ़ी पर का वह चोबदार जो अंतःपुर में आता-जाता हो। ख्वाजःसरा।
पुं०=कंचुकी (अंतःपुर का पहरेदार)।
कुंज-कुटीर—पुं० [उपमि० स०] किसी कुंज के अन्दर रहने का स्थान। लता-गृह।
कुंज-गली—स्त्री० [सं०+हिं०] १. बगीचों आदि में वह पगडंडी या तंग रास्ता जो झाड़ियों, लताओं आदि से छाया हुआ हो। २. बहुत पतली या सँकरी गली, जिसमें जल्दी धूप न आती हो।
कुंजड़—पुं०=कुंदुर (गोंद)।
कुँजड़ा—पुं० [सं० कुंज+हिं० ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुँजड़ी, कुँजड़िन] १. तरकारी, फल आदि बोने या बेचनेवाले लोगों की एक जाति।
पद—कुँजड़े-कसाई=छोटी जातियों के लोग।
२. तरकारी, फल, साग आदि बेचनेवाला दूकानदार।
पद—कुँजड़े का गल्ला=किसी पदार्थ, विशेषतः धन आदि की ऐसी राशि, जिसके आय-व्यय या लेन-देन का कोई हिसाब न रहता हो।
कुँजड़ियाना—पुं० [हिं० कुँजड़ा] वह स्थान जहाँ कुँजड़े बैठकर तरकारी बेचते हैं। उदा०—मीटिंग क्या होगी, कुंजड़ियाना बन जायगा।—वृंदावनलाल वर्मा।
कुंज-पक्षी (क्षिन्)—पुं० [मध्य० स०] नीलकंठ की तरह का एक प्रकार का पक्षी, जिसका घोंसला प्रायः कुंज के रूप में होता है। यह प्रायः झुंड बनाकर गाता-नाचता है।
कुंजर—पुं० [सं० कुंज+र] [स्त्री० कुंजरा, कुंजरी] १. हाथी। २. आठ दिग्गजों के कारण आठ की संख्या का वाचक शब्द। ३. हस्त नक्षत्र। ४. कच। बाल। ५. पीपल। ६. एक प्राचीन देश। ७. अंजना के पिता और हनुमान् के नाना का नाम। ८. छप्पय के छंद का इक्कीसवाँ भेद जिसमें ५० गुरु और ५२ लघु अर्थात् कुल १०२ वर्ण और १५२ मात्राएँ अथवा ५० गुरु और ४८ लघु अर्थात् कुल ९८ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ९. पाँच मात्राओंवाले छंदों के प्रस्तार में पहला प्रस्तार।
वि० उत्तम। श्रेष्ठ। जैसे—नर-कुंजर।
कुंजर-कण—स्त्री० [मध्य० स०] गज-पीपल (ओषधि)।
कुंजर-दरी—स्त्री० [ष० स०] मलय के पास के एक प्रदेश का पुराना नाम।
कुंजर-पिप्पली—स्त्री० [मध्य० स०] गज-पीपल (ओषधि)।
कुंजरा—स्त्री० [सं० कुंजर+टाप्] हथिनी।
कुंजराराति—पुं० [सं० कुंजर-अराति, ष० त०] हाथी का शत्रु, सिंह। शेर।
कुंजरारोह—पुं० [सं० कुंजर-आरोह, ष० त०] महावत। हाथीवान।
कुंजराशन—पुं० [सं० कुंजर-अशन, ष० त०] हाथी का भोज्य या खाद्य, पीपल।
कुंजरी—स्त्री० [सं० कुंजर+ङीप्] हथिनी।
कुंजल—पुं० [सं० कु-जल, ब० स०, पृषो० सिद्धि] काँजी।
पुं०=कुंजर (हाथी)।
कुंज-विहारी (रिन्)—पुं० [सं० कुंज-वि√हृ (हरना)+णिनि, उप०

स०]· १. कुंजों में विहार करनेवाला पुरुष। २. श्रीकृष्ण का एक नाम।

कुंजा†—पुं० [अ० कूजः] मिट्टी का पुरवा। चुक्कड़।

कुंजिका—स्त्री० [सं०√कुंज् (गति)+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] काला जीरा।

कुंजित* —वि०=कूजित।

कुंजी—स्त्री० [सं० कुञ्चिका; गु० कुंची, पं० सि० कुंजी, कुञ्ज; बँ० कूजी; उ० कुंञ्ची] १. वह उपकरण जिससे ताला खोला तथा बंद किया जाता है। ताली। २. ताली जैसी कोई वस्तु। जैसे—घड़ी या मोटर की कुंजी। ३. ऐसा सरल साधन, जिससे कोई उद्देश्य सहज में सिद्ध होता हो।

मुहा०—(किसी की) कुंजी हाथ में होना=परिचालित करने का सूत्र हाथ में होना।

४. ऐसी सहायक पुस्तक जिसमें किसी दूसरी कठिन पुस्तक के अर्थ, भाव आदि स्पष्ट किये गये हों। (की, उक्त सभी अर्थों के लिए)

कुंठ—वि० [सं०√कुंठ् (मंद होना)+अच्]=कुंठित।

कुंठक—वि० [सं०√कुंठ्+ण्वुल्—अक] कुंठित बुद्धिवाला अर्थात् मूर्ख।

कुंठा—स्त्री० [सं० √कुंठ्+णिच्+अङ—टाप्] १. मनुष्य की अतृप्त तथा सुप्त भावना। २. ऐसी लज्जा या संकोच जो आगे बढ़ने में बाधक हो।

कुंठित—वि० [सं०√कुंठ्+क्त] १. (वस्तु) जिसकी धार या नोक तीक्ष्ण या तेज न हो। कुंद। २. (व्यक्ति) जिसकी बुद्धि मंद हो। जड़। ३. अवरुद्ध। गतिहीन। जैसे—कुंठित विचार-धारा। ४. (व्यक्ति) जो लज्जा, संकोच आदि के कारण आगे बढ़ने से रुक रहा हो।

कुंड—पुं० [सं०√कुण् (शब्द करना)+ड] १. छोटा तालाब। २. नदियों आदि में थोड़े-से घेरे में अधिक गहरा स्थान। ३. किसी स्थान पर किसी प्रकार का कुछ गहरा स्थान। उदा०—गढ़ तर सुरँग कुंड अवगाहा।—जायसी। ४. चौड़े मुँह का गहरा बर्तन। कुंडा। ५. प्राचीन काल का अनाज नापने का एक बड़ा पात्र। ६. होम करने के लिए खोदा हुआ गड्ढा या मिट्टी का बना हुआ वैसा पात्र। हवन कुंड। ७. बटलोई। ८. कमंडलु। ९. सधवा स्त्री का ऐसा पुत्र जो उसके जार या पर-पुरुष से उत्पन्न हुआ हो। जारज पुत्र। १०. शिव का एक नाम। ११. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १२. खप्पर। १३. ज्योतिष में चंद्र-मंडल का एक प्रकार का रूप।

पुं० [?] १. पूला। गट्ठा। २. लोहे का टोप। ३. हौदा।

कुंड-कीट—पुं० [उपमि० स०] १. ब्राह्मणी का जारज पुत्र। २. वह जिसने बिना विवाह किये किसी स्त्री को घर में रख लिया हो। ३. चार्वाक-दर्शन का अनुयायी या नास्तिक।

कुंड-कील—पुं० [उपमि० स०] नीच आदमी।

कुंडकोदर—वि० [सं० कुंडक, कुंड+कन्, कुंडक-उदर, ब० स०] घड़े जैसे पेटवाला।

पुं० शिव का एक गण।

कुंड-गोलक—पुं० [ब० स०] काँजी।

कुंडपायिनामयन—पुं० [सं० कुंडपायिनाम्—अयन, अलुक् स०] एक यज्ञ जिसके लिए यजमान २१ रात्रि तक दीक्षित रहता था।

कुंडपायी (यिन्)—पुं० [सं० कुंड√पा (पीना)+णिनि] १. ऐसा यजमान जो सोलह ऋत्विजों से सोमसत्र कराकर कुंडाकार चमसे से सोमपान कर चुका हो। २. उक्त के वंशज या शिष्य।

कुँड-पुजी—स्त्री० [हिं० कुँड+पुजी=पूजना]=कुँड़-मुदनी।

कुँड-मुँदनी—स्त्री० [हिं० कुँड़+मुदनी=मूँदना] रबी की बोआई समाप्त होने पर किसानों का मनाया जानेवाला उत्सव।

कुँड़रा—पुं० [सं० कुंडल] [स्त्री०, अल्पा० कुँडरी] १. किसी वस्तु की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर मंडलाकार खींची हुई रेखा। २. उक्त प्रकार की वह रेखा जिसके अंदर खड़े होकर लोग शपथ करते हैं। ३. कई फेरे देकर मंडलाकार लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा जिसे सिर पर रखकर बोझ या घड़ा आदि उठाते हैं। इँडुवा। गेंडुरी। ४. कुंडा। घड़ा।

कुंडल—पुं० [सं० कुंड√ला (आदान)+क] १. कान में पहना जानेवाला मंडलाकार प्रसिद्ध गहना, जो बड़े बाले की तरह होता है। २. चंद्रमा या सूर्य के चारों ओर दिखाई देनेवाला बादलों का गोल घेरा। ३. लकड़ी, लोहे आदि का कोई गोल घेरा या बंद, जो किसी चीज के चारों ओर अथवा मुँह पर सुरक्षा आदि के लिए लगाया जाता है। बंद। जैसे कोल्हू, चरसे आदि का कुंडल। ४. किसी प्रकार की मंडलाकार आकृति या रचना। जैसे—साँप का कुंडल बनाकर बैठना। ५. दो मात्राओं और एक अक्षर का मात्रिक गण। (छंदशास्त्र) जैसे—मा। ६. एक सम मात्रिक छंद, जिसके प्रत्येक चरण में २२ मात्राएँ होती है और अंत में २ गुरु होते हैं।

कुंडलपुर—पुं०=कुंडिनपुर।

कुंडलाकार—वि० [सं० कुंडल-आकार, ब० स०] जिसका आकार कुंडल या गेंडुरी की तरह गोल हो। मंडलाकार। वर्त्तुल।

कुंडलिका—स्त्री० [सं० कुंडली+कन्, टाप्, ह्रस्व] १. गोल रेखा। २. जलेबी नाम की मिठाई। ३. कुंडलिया छंद।

कुंडलित—वि० [सं० कुंडल+इतच्] जो कुंडल की तरह गोलाकार रूप में स्थित हो।

कुंडलिनी—स्त्री० [सं० कुंडल+इनि—ङीप्] १. हठ योग में नाभि के पास मूलाधार के नीचे प्रायः सुषुप्त अवस्था में रहनेवाली वह शक्ति जिसे साधना में जाग्रत किया जाता है और जिसके ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाने पर योगी मुक्त और अमर जीवन प्राप्त करता है। २. इमरती या जलेबी नाम की मिठाई। ३. गुडुच। गिलोय। ४. सोमलता।

कुंडलिया—स्त्री० [सं० कुंडलिका] छः चरणों का एक मात्रिक छंद, जिसके पहले दो चरण दोहे के और अन्तिम चार रोले के होते हैं। इसके पहले चरण का पहला शब्द छठे चरण के अंत में भी होता है।

कुंडली—स्त्री० [सं० कुंडल+ङीप्] १. किसी प्रकार की गोल आकृति, रचना या रेखा। जैसे—साँप का कुंडली मारकर बैठना। २. फलित ज्योतिष में वह गोलाकार चक्र अथवा चौकोर लिखावट जिसमें यह दिखलाया जाता है कि किसी के जन्म के समय कौन-कौन से ग्रह किस-किस लग्न या स्थान में थे और जिसके आधार पर उसके सारे जीवन के शुभाशुभ फल बतलाये जाते हैं। जन्म-पत्री का मुख्य और मूल भाग। ३. कुंडलिनी। ४. गेंडुरी। ५. डफली नाम का बाजा। ६. इमरती

या जलेबी नाम की मिठाई। ७. गुडुच। गिलोय। ८. केवाँच। कौंछ। ९. कचनार।

पुं० [सं० कुंडल+इनि] १. साँप। २. वरुण। ३. विष्णु। ४. मोर। ५. चितकवरा हिरन। ६. कुंडल।

वि० १. जो कानों में कुंडल पहने हो। २. किसी प्रकार का कुंडल धारण करनेवाला।

कुंडा—पुं० [सं० कुंड] १. चौड़े मुँह का मिट्टी का बना हुआ बड़ा मटका। २. उक्त में भरकर देवी-देवताओं को चढ़ाया जानेवाला प्रसाद अथवा संबंधियों के यहाँ भेजी जानेवाली मिठाई।

पुं० [सं० कुंडल] १. किवाड़ की चौखट में लगा हुआ कोंढ़ा, जिसमें साँकल फँसाते हैं। २. कुश्ती का एक दाँव, जिसमें दाँव लगानेवाले के शरीर की मुद्रा कुंडलाकार हो जाती है।

पुं० [?] जहाज के अगले मस्तूल का चौथा खंड। तिरकट। तावर डोल।

कुंडाला—पुं० [सं० कुंड] मिट्टी की वह कूँड़ी या पथरी जिसमें कलावत्तू बनानेवाले टिकुरियों पर कलावत्तू लपेटकर रखते हैं।

कुंडाशी (शिन्)—पुं० [सं० कुंड√अश् (भोजन करना)+णिनि] १. कुंडा (जारज पुत्र) का अन्न खानेवाला व्यक्ति। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

कुंडि—स्त्री० [सं० कुंड] लोहे का टोप। कूँड। उदा०—संड-मुंड सब टूटहिं, सिउँ बकतर औ कुंडि।—जायसी।

कुंडिक—पुं० [सं०] धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

कुंडिका—स्त्री० [सं० कुंड+कन्—टाप्, इत्व] १. पत्थर का बना हुआ बर्तन। कूँडी। पथरी। २. छोटा कुंड या तालाव। ३. कमंडल। ४. ताँबे का बना हुआ हवनपात्र। ५. एक उपनिषद् का नाम।

कुंडिनपुर—पुं० [सं० कुंडिन,√कुंड्+इनच्, कुंडिन-पुर, ष० त०] विदर्भ (वरार) का एक प्राचीन नगर।

कुँडिया—स्त्री० [सं० कुंड] शोरे के कारखाने का चौखूँटा गड्ढा। † स्त्री०=कूँडी।

कुंडी—स्त्री० [सं०√कुंड्+इत्—ङीप्] १. बड़े कटोरे के आकार का एक प्रकार का पात्र। कूँड़ा। २. दरवाजा बंद करने की जंजीर। **मुहा०—कुंडी खटखटाना**=कुंडी से खट-खट शब्द करते हुए दरवाजा खोलने का संकेत करना।

३. जंजीर या शृंखला की कोई कड़ी। ४. किसी प्रकार की मंडलाकार रचना। छल्ला। जैसे—घड़ी या लंगर में लगी हुई कुंडी। ५. मुर्रा भैंस, जिसके सींग छल्ले की तरह घूमे हुए होते हैं।

कुंडू—पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी, जिसका कंठ और मुँह सफेद तथा पूँछ पीली होती है।

कुंडोदर—पुं० [सं० कुंड-उदर, ब० स०] शिव का एक गण।

कुँढ़वा†—पुं० [सं० कुंड] मिट्टी की कुल्हिया। पुरवा।

कुंत—पुं० [सं० कु√उन्द् (भिगोना)+त (वा०)] १. भाला। वरछा। २. कौड़िल्ला। गवेधुक (पक्षी)। ३. जूँ नाम का कीड़ा। ४. किसी प्रकार का उग्र, क्रूर या प्रचंड मनोभाव।

कुंतल—पुं० [सं० कुंत√ला (लेना)+क] १. सिर के वाल। केश। २. जौ। ३. हल। ४. प्याला। ५. एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। ६. सूत्रधार। ७. संगीत में संपूर्ण जाति का एक राग। ८. कोंकण और वरार के बीच का एक प्राचीन जनपद। ९. राम की सेना का एक बंदर। १०. आज-कल के हैदराबाद के दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश का पुराना नाम।

वि० [स्त्री० कुंतला] जिसके सिर के वाल बड़े-बड़े हों।

कुंतल-वर्द्धन—पुं० [सं० वर्धन√वृध् (बढ़ना)+णिच्+ल्यु—अन, कुंतल-वर्धन, ष० त०] भृंगराज या भंगरैया नामक वनस्पति, जिसका तेल सिर के वाल बढ़ाता है।

कुंतलवाही (हिन्)—पुं० [सं० कुंतल√वह् (ढोना)+णिनि] [स्त्री० कुंतलवाहिनी] वह जो राजाओं की सवारी के साथ भाला या वरछा लेकर चलता हो। भाला-बरदार। वरछैत। उदा०—कुंतलवाही निपुन साहसी सजग सजीले।—रत्ना०।

कुंतला—स्त्री० [सं० कुंतल+अच्—टाप्] लंबे केशोंवाली स्त्री।

कुंतलिका—स्त्री० [सं० कुंतल+ठन्—इक, टाप्, इत्व] १. एक प्रकार की वनस्पति। २. मक्खन आदि काटने या निकालने का चम्मच।

कुंतली—स्त्री० [सं० कुंत=भाला] १. चाकू। २. मधुमक्खी की एक जाति।

कुंता† =कुंती।

कुंति—पुं० [सं०√कम् (चाहना)+झिच्—अन्त्, नि० सिद्धि] मध्य प्रदेश का एक प्राचीन प्रदेश जो अवंति के पास था।

कुंति-भोज—पुं० [मध्य० स०] महाभारतकालीन एक राजा, जिन्होंने पृथा को गोद लिया था।

कुंती—स्त्री० [सं० कुंति+ङीप्] कुरु-नरेश पाण्डु की ज्येष्ठ पत्नी; युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और कर्ण की माता।

स्त्री० [सं० कुंत] १. वरछी। भाला। २. =कुंतली।

स्त्री० [देश०] मध्य बंगाल, वरमा आदि देशों में होनेवाला कुंडा जाति का एक पेड़।

कुंथु—पुं० [सं०√कुंथ् (श्लेष)+उन्] वर्तमान अवसर्पिणी का सत्रहवाँ अर्हत। (जैन)

कुंद—पुं० [सं० कु√दा (देना)+क, नि० मुम्] १. जूही की तरह का एक पौधा। २. इस पौधे के सफेद फूल, जिनसे दाँतों की उपमा दी जाती है। ३. कनेर का पेड़। ४. कमल। ५. विष्णु। ६. कुंदुर नामक गोंद। ७. एक प्राचीन पर्वत। ८. नौ निधियों में से एक। ९. उक्त के आधार पर नौ की संख्या। १०. खराद। उदा०—कुंदै फेरि जानि गिउ काढ़ी।—जायसी।

वि० [फा०] १. गुठला। कुंठित। २. मंद।

कुंद-जेहन—वि० [फा० कुन्द+अ० जहन] जिसकी वुद्धि मंद या मोटी हो।

पुं० मंद वुद्धिवाला व्यक्ति।

कुंदण—पुं०=कुंदन।

कुंदणपुरि—पुं०=कुंडिनपुर।

कुंदन—पुं० [सं० कुंद=श्वेतपुष्प] १. बहुत अच्छे और साफ सोने का पतला पत्तर, जो प्रायः अवलेह के रूप में होता है और जिसकी सहायता से गहनों में नगीने जड़े जाते हैं। २. शुद्ध और स्वच्छ सोना।

वि० उक्त प्रकार के सोने की तरह शुद्ध, सुंदर और स्वच्छ।

कुंदनपुर—पुं०=कुंडिनपुर।

कुंदन-साज—पुं० [हिं० कुंदन+फा० साज] १. सोने से कुंदन का पत्तर बनानेवाला। २. कुंदन की सहायता से नगीने जड़नेवाला। जड़िया।

कुँदना—पुं० [सं० कंडु] बाजरे के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जिसमें बाल में दाने न पड़कर राख-सी उड़ने लगती है। कंडो।

कुंदम—पुं० [सं० कुंद√मा (मान)+क] बिल्ली या बिल्ला।

कुंदर—पुं० [सं० कु√दृ (विदारण)+अच्, नि० मुम्] १. ओषधि के काम आनेवाली एक प्रकार की घास। कंडूर। खरच्छद। (निघंटु) २. विष्णु का एक नाम।

कुँदरू—पुं० १. एक प्रकार की लता जिसमें परवल की तरह छोटे फल लगते है। २. उक्त लता का फल, जिसकी तरकारी बनती है। बिम्बा-फल।

कुंद-लता—पुं० [सं० उपमि० स०] सुख नामक वर्ण वृत्त का दूसरा नाम।

कुंदला—पुं० [?] एक तरह का तंबू या खेमा।

कुंदा—पुं० [सं० स्कंद से फा० कुंद:] १. वृक्षों आदि के तने या मोटी डालों का बड़ा और मोटा टुकड़ा, जो अभी चीरकर काम में लाने योग्य न बनाया गया हो। २. उक्त प्रकार की लकड़ियों का वह जोड़ा जिसमें अपराधियों के पैर फँसाकर उन्हें एक जगह बैठा रखते थे।

विशेष—इसी प्रकार के दंड को पैर में 'काठ मारना' कहते थे।

३. उक्त प्रकार की लकड़ी का वह मोंगरा जिससे कपड़ों पर कुंदी की जाती है। ४. उक्त प्रकार की लकड़ी का वह टुकड़ा जिस पर रख कर बढ़ई लकड़ियाँ गढ़ते है। ठीहा। निहठा। ५. लकड़ी का वह टुकड़ा जो बंदूक के पिछले भाग में लगा रहता है। ६. औजारों आदि का दस्ता या मूठ। बेंट। ७. लकड़ी का वह टुकड़ा जिससे खोआ बनाने के समय दूध चलाया और कड़ाही के तल से रगड़ा जाता है। ८. उक्त के आधार पर दूध से तैयार किया हुआ खोआ। मावा।

मुहा०—**कुंदा फसना या भनना**=दूध गाढ़ा करके उससे खोआ तैयार करना।

९. कुश्ती लड़ने के समय प्रतिपक्षी को नीचे गिराकर उसकी गरदन पर कलाई और कोहनी के बीचवाले भाग से (जिसका रूप बहुत कुछ लकड़ी के कुंदे के समान होता है) रगड़ते हुए किया जानेवाला आघात। घस्सा। घिस्सा। रद्दा।

विशेष—यह भी कसरत या व्यायाम का एक अंग होता है। इससे एक ओर तो ऊपरवाले पहलवान के हाथ मजबूत होते हैं; और दूसरी ओर नीचे गिरे हुए पहलवान की गरदन मोटी होती है।

पुं० [सं० स्कंध =कंधा] १. गरदन के दोनों ओर के भाग या विस्तार। कंधा।

मुहा०—(पक्षियों का) **कुंदे जोड़, तौल या बाँधकर नीचे उतरना**=दोनों ओर के पर समेटकर नीचे आना या उतरना।

२. गुड्डी या पतंग के वे दोनों कोने जो कमानी की सहायता से सीधे रखे जाते हैं। ३. पायजामे की कली, जिससे दोनों पाँवों के ऊपरी भाग बीच से जुड़े रहते हैं।

पुं०=कुंटा।

कुंदी—स्त्री० [हिं० कुंदा] १. धुले या रंगे हुए कपड़ों को लकड़ी की मोंगरी से कूटने की वह क्रिया जो उनकी तह जमाने और उनमें चमक तथा चिकनाई लाने के लिए की जाती है। २. उक्त के आधार पर किसी को अच्छी तरह मारने-पीटने की क्रिया।

कुंदीगर—पुं० [हिं० कुंदी+फा० गर] कपड़ों आदि की कुंदी करनेवाला कारीगर।

कुंदु—पुं० [सं० कु√दृ (विदारण)+ड्, बा० मुम्] चूहा।

कुंदुर—पुं० [सं० कु√दृ+ उरन्, मुम्] एक प्रकार का सुगंधित पीला गोंद, जो सलई के पेड़ों से निकलता है। शल्लकी-निर्यास।

कुँदेरना—स० [सं० कुदलन=खोदना] खुरचना या छीलना। कुनेरना।

कुँदेरा—पुं०=कुनेरा।

कुंबी—स्त्री० [सं० कुंभी] १. कायफल। २. जल-कुंभी। ३. एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

कुंभ—पुं० [सं० कु√उंभ्, (पूर्णकरना)+अच्] १. धातु, मिट्टी आदि का बना हुआ पानी रखने का घड़ा। कलश।

विशेष—हमारे यहाँ जल से भरा हुआ घड़ा बहुत शुभ माना जाता है और इसी दृष्टि से इसका महत्त्व है।

२. प्राचीन भारत में अन्न आदि की एक तौल या माप अर्थात् एक घड़ा भर अन्न। ३. मंदिरों आदि के शिखर पर होनेवाली (धातु, पत्थर आदि की) वह रचना, जिसकी आकृति औंधे घड़े के समान होती है। ४. हाथी के मस्तक के दोनों ओर के भाग, जो देखने में घड़े के आकार के होते हैं। ५. ज्योतिष में दसवीं राशि, जिसमें कुछ तारों के योग से कुंभ या घड़े की सी आकृति बनती है। ६. प्रति बारहवें वर्ष लगने वाला एक प्रसिद्ध पर्व जो सूर्य और बृहस्पति के कुछ विशेष राशियों में प्रविष्ट होने के समय पड़ता है और जिसमें उज्जैन, नासिक, प्रयाग, हरद्वार आदि तीर्थों में स्नान करनेवाले यात्रियों की बहुत भीड़ होती है। ७. प्राणायाम की कुंभक नामक क्रिया, जिसमें हृदय को कुंभ मानकर बाहर की हवा खींचकर उसमें भरी जाती है। ८. वर्तमान अवसर्पिणी के उन्नीसवें अर्हत् का नाम। (जैन) ९. गौतम बुद्ध के पूर्वजन्म का एक नाम। १०. प्रह्लाद के पुत्र, एक दैत्य का नाम। ११. कुम्भकर्ण के एक पुत्र का नाम। १२. संगीत में एक राग, जो श्रीराग का आठवाँ पुत्र कहा गया है। १३. वह व्यक्ति जिसने वेश्या रखी हो। १४. एक प्रकार का जंगली वृक्ष, जिसे कुंभी भी कहते है। १५. रहस्य संप्रदाय में, हृदय रूपी कमल।

कुंभक—पुं० [सं० कुंभ√कै (भासना)+क] प्राणायाम की वह क्रिया जिसमें साँस से हवा खींचकर उसे अन्दर रोक रखते है।

कुंभ-कर्ण—पुं० [ब० स०] एक प्रसिद्ध राक्षस, जो रावण का भाई और बहुत बड़ा बलवान था।

कुंभकार—पुं० [सं० कुंभ√कृ (करना)+अण्] १. मिट्टी का बर्तन तैयार करनेवाली एक जाति। कुम्हार। २. कुक्कुट। मुरगा।

कुंभकारिका—स्त्री० [सं० कुंभकारी+कन्—टाप्, ह्रस्व]=कुंभकारी।

कुंभकारी—स्त्री० [सं० कुंभकार+ङीप्] १. कुंभकार की स्त्री। २. मैनसिल। ३. कुलथी।

कुंभज—वि० [सं० कुंभ√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जिसकी उत्पत्ति घड़े से हुई हो।

पुं० १. महर्षि अगस्त्य २. वसिष्ठ। ३. द्रोणाचार्य। (तीनों की उत्पत्ति घड़े से कही गई है।)

कुंभ-जात—वि०, पुं० [पं० त०]=कुंभज।
कुंभड़ा† पुं०=कुम्हड़ा।
कुंभ-दासी—स्त्री० [ष० त०] १. कुटनी। दूती। २. जल-कुंभी।
कुंभनदास—पुं० व्रजभाषा के अष्टछाप के कवियों में एक प्रसिद्ध कवि तथा महात्मा।
कुंभ-मंडूक—पुं० [स० त०] संसार के विस्तार से अपरिचित व्यक्ति। वह जो अपने ही परिमित क्षेत्र को सारा जगत् समझता हो।
कुंभ-योनि—पुं० [ब० स०] १. दे० 'कुंभज'। २. गूमा नामक वृक्ष।
कुंभरी—स्त्री० [सं० कुंभ√रा (देना) +क, ङीप्] दुर्गा का एक रूप।
कुंभरेता (तस्)—पुं० [ब० स०] अग्नि का रूप।
कुंभला—स्त्री० [सं० कुंभ√ला (आदान) +क, टाप्] गोरखमुंडी।
कुंभ-संधि—पुं० [स० त०] हाथी के मस्तक के बीचोबीच का गड्ढा, जिसके दोनों ओर के भाग कुंभ की तरह उठे हुए होते हैं।
कुंभ-संभव—पुं० [ब०स०] दे० 'कुंभज'।
कुंभ-हनु—पुं० [ब० स०] रावण के दल का एक राक्षस।
कुंभांड—पुं० [सं० कुंभ-अंड, ब० स०] वाणासुर का एक मंत्री।
कुंभा—स्त्री० [सं० कुंभ +टाप्] वेश्या। रंडी।
कुंभार—पुं०=कुम्हार।
कुंभिक—पुं० [सं० कुंभ+ठन्—इक] नपुंसक पुरुष।
कुंभिका—स्त्री० [सं० कुंभिक+टाप्] १. जलाशयों में होनेवाली एक प्रकार की घास या वनस्पति, जो बहुत अधिक बढ़ती तथा फैलती है। जलकुंभी। २. वेश्या। ३. कायफल। ४. आँखों की कोरों पर होनेवाली एक प्रकार की छोटी-छोटी फुंसियाँ।
कुंभिनी—स्त्री० [सं० कुंभ +इनि, ङीप्] १. पृथ्वी। २. जमाल-गोटा।
कुंभिल—पुं० [सं०√कुंभ्+ लच् (शक०)] १. वह चोर जो किसी के घर में सेंध लगाकर घुसता हो। २. अवयस्क माता अथवा कच्चे गर्भ से उत्पन्न होनेवाला बच्चा। ३. साला। ४. एक प्रकार की मछली।
कुँभिलाना*—अ०=कुम्हलाना।
कुंभी (भिन्)—वि० [सं० कुंभ +इनि] १. जिसके पास कुंभ अर्थात् मिट्टी का घड़ा हो। २. जिसका आकार-प्रकार कुंभ की तरह हो।
पुं० १. हाथी। २. घड़ियाल। ३. गुग्गुल का पेड़ और उसका गोंद। ४. एक प्रकार का जहरीला कीड़ा। ५. बच्चों को कष्ट देनेवाला एक राक्षस। ६. एक प्रकार की मछली। ७. कुंभीपाक नामक नरक।
स्त्री० [सं० कुंभ +ङीष्] १. छोटा कुंभ या घड़ा। २. कायफल, गनियारी, दंती, पांडर, सलई आदि के पेड़, जिनकी लकड़ी इमारती कामों में आती है और जिनसे सजावट की चीजें बनाई जाती हैं। ३. तरबूज। ४. वंसी।
कुंभीक—पुं० [सं० कुंभी√कै+क] १. एक तरह के नपुंसक। २. जल-कुंभी। ३. पुन्नाग का पेड़।
कुंभीका—स्त्री० [सं० कुंभीक+टाप्] १. जलकुंभी (दे०)। २. आँख में होनेवाली एक प्रकार की फुंसी। बिलनी। ३. लिंग में होनेवाला एक रोग।
कुंभी-धान्य (क)—पुं० [सं० ब० स०, कप्] वह व्यक्ति जिसने कुंभ में इतना अन्न भरकर रख लिया हो जो उसके तथा उसके परिवार के छः दिन के उपभोग के लिए यथेष्ट हो।
कुंभीनस—पुं० [सं० ब० स०] [स्त्री० कुंभीनसा] १. कुंभ-जैसी नासिकावाला एक प्रकार का जहरीला साँप। २. एक प्रकार का जहरीला कीड़ा। ३. रावण।
कुंभीनसि—पुं० [सं० ब० स०, इत्व (पृषो०)] शंबर असुर का एक नाम।
कुंभीनसी—स्त्री० [सं० कुंभीनस+ङीष्] सुमाली राक्षस की एक कन्या, जो कैतुमती से उत्पन्न हुई थी और जिसके गर्भ से लवण नामक असुर उत्पन्न हुआ था।
कुंभीपाक—पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक प्रसिद्ध नरक, जिसमें पशु-पक्षियों को मारनेवाले लोग खौलते हुए तेल के कड़ाहों में डाले जाते हैं। २. एक प्रकार का सन्निपात रोग, जिसमें नाक से काला खून जाता है।
कुंभी-पुर—पुं० [सं० कुंभिपुर] पांडवों की राजधानी हस्तिनापुर का एक नाम।
कुंभीमुख—पुं० [सं० ब० स०] एक तरह का घाव या फोड़ा। (चरक)
कुंभीर—पुं० [सं० कुंभिन्√ईर् (गति) +अण्] १. घड़ियाल की जाति का नक्र या नाक नामक एक जल-जन्तु। २. एक प्रकार का छोटा कीड़ा।
कुंभीरक—पुं० [सं० कुंभीर +कन्] चोर।
कुंभीरासन—पुं० [सं० कुंभीर-आसन उपमि० स०] योग में एक आसन जिसमें जमीन पर चित लेटकर और एक पैर दूसरे पैर पर चढ़ाकर दोनों हाथ माथे पर रखते हैं।
कुंभील—पुं० [सं० कुंभ√ईर् +अण्, र-ल] १.=कुंभीर। २.=कुंभीरक।
कुंभेर—स्त्री० [सं० कुंभ√ईर्+अच्] गँभारि का पेड़।
कुंभोदर—पुं० [सं० कुंभ-उदर ब० स०] शिव का एक गण जिसने सिंह बनकर नन्दिनी पर आक्रमण किया था। (रघुवंश)
कुंभोलूक—पुं० [सं० कुंभ-उलूक उपमि० स०] एक प्रकार का बहुत बड़ा उल्लू।
कुँवर—पुं० [सं० कुमार; प्रा० कुँवार; गु० कुमर, कुवर, कुवेर; सिं० कुंयारो; पं० राज० कँवर; सिं० कुमरुवा; मरा० कुँवर] [स्त्री० कुँवरि] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. राजा का लड़का। राजकुमार। ३. कुँवारा लड़का। (क्व०)
कुंवर बेरास†—पुं० =कुँवर-विलास।
कुँवर-विलास—पुं० [हिं० कुँवर+सं० विलास] एक प्रकार का धान और उसका चावल।
कुँवरि—स्त्री० [हिं० कुँवर का स्त्री० रूप] १. पुत्री। बेटी। २. राज-कुमारी।
कुँवरी—स्त्री०=कुँवरि।
कुँवरेटा—पुं० [कुँवर+एटा (प्रत्य०)] १. छोटा कुँवर या लड़का। २. छोटा राजकुमार।
कुँवाँ—पुं०=कूआँ।
कुँवारा—वि० [सं० कुमार; प्रा० कुँवार] [स्त्री० कुँवारी] जिसका अभी तक विवाह न हुआ हो। अ-विवाहित। कुँआरा।
कुंह-कुंहाँ —पुं० =कुंकुम।
कु—उप० [सं०√कु (शब्द) +डु] एक उपसर्ग जो संज्ञाओं के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है:—(क) कुत्सित और निंदनीय। जैसे—

कुकर्म। (ख) अनुचित और बुरा। जैसे—कुपात्र, कुमार्ग। (ग) निकृष्ट। जैसे—कु-धातु, कु-धान्य, । (घ) अशुभ या अनिष्ट-कारक। जैसे—कुदिन, कुवेला।

स्त्री० पृथ्वी।

कुआँ†—पुं० =कूआँ।

कुआड़ी—स्त्री० [सं० कु+आडी] संगीत की एक लय, जिसमें बराबर और ड्योढ़ी (आड़ी) दोनों लय होती हैं।

कुआर—पुं० दे० 'आश्विन'।

कुआरा—वि० [हिं० कुआर] [स्त्री० कुआरी] १. कुआर अर्थात् आश्विन मास से संबंध रखने या उसमें होनेवाला। जैसे—कुआरी धान।

†वि० =कुँवारा।

†वि० कुँवारी अवस्था में किया जानेवाला (ववाहिक संबंध)।

कुआरी†—स्त्री० [हिं० कुआर] आश्विन मास में पकनेवाला एक प्रकार का मोटा धान।

कुइंदर†—पुं० [हिं० कुआँ+दर =जगह] कुएँ के दबने या बैठने से बना हुआ गड्ढा।

कुइक—सर्व० [हिं० कोई+एक] कोई। उदा०-परिभख्खन रख्खिसन, कु क चीसन मुख सासन।—चंदबरदाई।

कुइयाँ—स्त्री० [हिं० कूआँ] छोटा कूआँ।

कुइला†—पुं० =कोयला।

कुई†—स्त्री० =कुमुदिनी।

†स्त्री० =कुइयाँ।

कुकटी—स्त्री० [सं० कुक्कुटी =सेमल] एक प्रकार की कपास, जिसकी रूई कुछ ललाई लिये होती है।

कुकठ—वि० [सं० कु-कथ्य] न कहने योग्य। अनुचित। उदा०—कुकठ कुमाण सौं जिण कहई रास।—नरपति नाल्ह।

कुकड़ना—अ० [हिं० कुक्कुट=मुर्गा] मुरगे की तरह दब या सिकुड़ जाना।

कुकड़-बेल—स्त्री० [सं० कु-कटु वल्ली] बंदाल (वनस्पति)।

कुकड़ी—स्त्री० [सं० कुक्कुटी] १. तकुए पर से उतारा हुआ कच्चे सूत का लच्छा। अंटी। २. मदार का डोडा या फल।

स्त्री० [सं० कुक्कुट] मुरगी।

†स्त्री० =खुखड़ी।

कुकड़ूँकूँ—स्त्री० [अनु०] मुरगा का बोल।

कुकनुस—पुं० [यू० कुकनू से फा०] एक कल्पित पक्षी, जिसके संबंध में यह कहा जाता है कि इसके गाने पर इसके मुँह से आग निकलती है, जो स्वयं इसे ही भस्म कर देती है।

कुकनू—पुं० =कुकनुस।

कुकभ—पुं० [सं० कुक√भा+क] एक प्रकार की शराब।

कुकर—पुं० [अं०] एक प्रकार का बड़ा पात्र, जिसमें कई डब्बे होते हैं और जिसमें भाप की सहायता से दाल, चावल, तरकारी आदि चीजें अलग-अलग रखकर एक ही समय में पकाई जाती है।

†पुं० [स्त्री० कुकरी] =कुकुर (कुत्ता)।

†पुं० [स्त्री० कुकरी] =कुक्कुट (मुरगा)। जैसे—जल कुकरी।

कुकरी—स्त्री० [?] १. घाव के ऊपर जमनेवाली झिल्ली। झिल्ली। २. द । पीड़ा।

†स्त्री० =खुखड़ी।

कुकरौंदा—पुं० =कुकरौंधा।

कुकरौंधा—पुं० [सं० कुक्कुरद्रु।] एक छोटा जंगली पौधा, जिसकी पत्तियाँ पालक की पत्तियों-जैसी पर कुछ बड़ी होती हैं और जो दवा के काम आता है। कुकुरमुत्ता।

कुकर्म(न्)—पुं० [सं०कुगति स०] कुत्सित और निंदनीय कर्म। बुरा कर्म।

कुकर्मी—वि० [सं० कुकर्म+इनि] कुकर्म; अर्थात् कुत्सित तथा निंदनीय काम करनेवाला।

कु-कास—पुं० [सं०कुगति स०] लगातार होनेवाली एक प्रकार की खाँसी, जिसके साथ कुछ विलक्षण 'खों-खों या हू-हू' शब्द भी होता है। (हूपिंग कफ)

कुकुंदर—पुं० [सं० कक्कु√दृ (विदारण)+णिच्+अच् (पृषो०)] १. कुकरौंधा। २. चूतड़ पर का गड्ढा।

कुकुत्संग—पुं० [सं० कुकुद्√सद् (बैठना)+अच्, मुम् (पृषो०)] गौतम बुद्ध से पहले होनेवाले एक बुद्ध।

कुकुद—पुं० [सं० कुकु√दा+क] विधिवत् तथा उपयुक्त साज-सज्जा से युक्त कर कन्यादान करनेवाला व्यक्ति।

कुकुभ—पुं० [सं० क√स्कुंभ् (रोकना)+क(पृषो०)] १. संगीत में एक राग। २. एक मात्रिक छंद, जिसके प्रत्येक चरण में ३० मात्राएँ होती हैं।

कुकुभा—स्त्री० [सं० कुकुभ+टाप्] कुकुभ राग की एक रागिनी।

कुकुर—पुं० [सं०] १. यदुवंशियों की एक शाखा। २. राजपूताने के अन्तर्गत एक प्राचीन प्रदेश, जहाँ उक्त जाति के क्षत्रिय रहते थे। ३. कुत्ता। ४. गठिवन या शालपर्णी नामक वृक्ष।

कुकुर आलू—पुं० [हिं० कुकुर+आलू] एक प्रकार की जंगली लता।

कुकुर-खाँसी—स्त्री० [हिं० कुक्कुर+खाँसी] एक प्रकार की सूखी खाँसी, जिसमें रोगी प्रायः खों-खों शब्द करता रहता है और जिसमें कफ नहीं निकलता। ढाँसी।

कुकुर-खांसी—स्त्री०=कुकुरखाँसी।

कुकुरदंत—पुं० [सं० कुक्कुर-दंत] [वि० कुकुरदंता] वह दाँत जो किसी-किसी को किसी दाँत के नीचे आड़ा निकल आता है और जिससे होंठ कुछ उठ जाता है।

कुकुरदंता—वि० [हिं० कुकुरदंत] जिसके मुँह में कुकुरदंत हो। कुकुर दंतवाला (व्यक्ति)।

कुकुरभंगरा—पुं० [हिं० कुक्कुर+भँगरा] काली भँगरैया। (वनस्पति)

कुकुर माछी—स्त्री० [हिं० कुक्कुर+माछी] एक तरह की मक्खी, जो घोड़ों, बैलों आदि के शरीर में लगकर उन्हें काटती हैं।

कुकुरमुत्ता—पुं० [हिं० कुक्कुर+मूतना] एक छोटा जंगली पौधा, जिसमें से दुर्गन्ध निकलती है।

कुकुरा†—स्त्री०=कुकड़ी।

कुकुरौंछी†—स्त्री०=कुकुर-माछी।

कुकुही*—स्त्री० [देश०] बाजरे की फसल में होनेवाला एक रोग, जिसके कारण उसकी बालें काली पड़ जाती हैं।

कुकूण—पुं० [सं० कुकूणक] आँखों का एक रोग, जिसमें पलकों के नीचे दाने निकल आते हैं।

कुकूल—पुं० [सं० ष० त० या कुगति स०] १. भूसी की आग। २. भूसी। ३. चिनगारी। ४. कवच। ५. वह गड्ढा जिसमें लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े भरे हों।

कुकूलाग्नि—पुं० [सं० कुकूल-अग्नि ष० त०] भूसी की आग। तुषानल।

कुक्कुट—पुं० [सं०√कुक्+क्विप्, कुक्√कुट्+क] १. मुरगा। २. जटाधारी या मुर्गकेश नाम का पौधा। ३. आग की चिनगारी। ४. आग की लपट।

कुक्कुटक—पुं० [सं० कुक्कुट+कन्] १. कुकुही। वनमुर्गी। २. प्राचीन भारत की एक वर्ण-संकर जाति, जो शूद्र पिता और निषादी माता से उत्पन्न कही गई है।

कुक्कुट-नाडी—स्त्री० [सं० मध्य० स०] टेढ़ी नली के आकार का एक यंत्र जिससे एक पात्र या स्थान का पानी दूसरे पात्र या स्थान में पहुँचाया जाता है।

कुक्कुट-पाद—पुं० [सं० ब० स०] एक प्राचीन पर्वत, जिसे अब कुर्किहार कहते हैं।

कुक्कुट-मस्तक—पुं० [सं० ब०स०] चव्य या चाव नामक ओषधि।

कुक्कुट-व्रत—पुं० [सं० मध्य० स०] भादों शुक्ल सप्तमी को होनेवाला एक व्रत।

कुक्कुट-शिख—पुं० [सं० ब०स०] कुसुम का वृक्ष या फूल।

कुक्कुटांडक—पुं० [सं० कुक्कुट-अंड, ष० त०,+कन्] एक प्रकार का मीठा कसैला धान। दुद्धी।

कुक्कुटाभ—पुं० [सं० कुक्कुट-आभा ब० स०] एक प्रकार का साँप।

कुक्कुटासन—पुं० [सं० कुक्कुट-आसन उपमि० स०] योग का एक आसन।

कुक्कुटी—स्त्री० [सं० कुक्कुट+ङीप्] १. मुरगी। २. पाखंड। ३. एक प्रकार का कीड़ा। ४. सेमल का वृक्ष।

कुक्कुभ—पुं० [सं० कुक्√कु+भक्] १. वनमुर्गा। २. मुर्गा। ३. वार्निश।

कुक्कुर—पुं० [सं० कुक्√कुर् (शब्दे)+क] [स्त्री० कुक्कुरी] १. कुत्ता। २. एक प्राचीन ऋषि का नाम। यदुवंशी क्षत्रियों की कुकुर नाम की शाखा।
 वि०=गाँठदार।

कुक्ष—पुं० [सं०√कुष् (निष्कर्ष)+क्स] १. पेट। उदर। २. पेट के बगल का भाग। कोख।

कुक्षिंभरि—वि० [सं० कुक्षि√भृ (भरना)+खि, मुम्] १. पेटू। २. स्वार्थी।

कुक्षि—स्त्री० [सं०√कुष्+क्सि] १. उदर। पेट। २. पेट के बगल का भाग। कोख। ३. किसी चीज के बीचवाला भाग। ४. पेट से उत्पन्न होनेवाले वंशज। औलाद। संतान। ५. गुफा। ६. राजा बलि का एक नाम। ७. इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। ८. राजा प्रियव्रत का एक नाम। ९. एक प्राचीन देश का नाम।

कुक्षि-भेद—पुं० [सं० ब० स०] ग्रहण के सात प्रकार के मोक्षों में से एक। (बृहत्संहिता)

कुखेत—पुं० [सं० कुक्षेत्र, प्रा० कुखेत्त] दूषित या बुरा स्थान। खराब जगह।

कुख्यात—वि० [सं० कुगति स०] बदनाम।

कुख्याति—स्त्री० [सं० कुगति स०] बदनामी।

कुगति—स्त्री० [सं० कुगति स०] बुरी गति। दुर्दशा।

कु-गहनि—स्त्री० [सं० कु-ग्रहण] अनुचित आग्रह। व्यर्थ का और बुरा हठ। जिद।

कुगात—पुं० [हिं० कु+गात=शरीर] निन्दनीय या बुरा शरीर।
 † स्त्री०=कुगति।

कुघड़—वि० [हिं० कु+घड़ना=गढ़ना] १. जिसकी गढ़न या घड़न अच्छी न हो। २. कुरूप। भद्दा। जैसे—जनता के सांस्कृतिक जीवन को कुघड़, अस्वस्थ और पतनोन्मुख बनाया जाता है।

कुघा*—स्त्री० [हिं० घा=ओर] ओर। तरफ।

कुघाइ†—पुं०=कुघाव।

कुघाट—पुं० [हिं० कु+घाट] १. बुरा घाट या स्थान। २. बुरी दशा। उदा०—साँप अँगूठा मेल ज्यूँ, कदियक हुसी कुघाट।—बाँकीदास।

कुघात—पुं० [हिं० कु+घात] १. अनुचित या बुरा अवसर। २. अनुचित रूप से चली हुई चाल या किया हुआ घात। ३. बहुत ही विकट अवसर पर या विकट रूप में किया जानेवाला घात या प्रहार।

कुघाय†—पुं०=कुघाव।

कुघाव—पुं० [हिं०कु+घाव] बहुत बुरी तरह से या मर्मस्थल पर आघात करके उत्पन्न किया हुआ घाव या जखम।

कुचंदन—पुं० [सं० कुगति स०] १. लाल चंदन। देवीचंदन। २. पटरंग। बक्कम (वृक्ष)। ३. कुंकुम।

कुच—पुं० [सं०√कुच् (संपर्क)+क] स्त्रियों की छाती। स्तन।
 वि० १. सिकुड़ा हुआ। संकुचित। २. कंजूस। कृपण।

कुचकार—पुं० [देश०] उत्तरी कश्मीर में होनेवाली एक प्रकार की भेंड़। कुलंजा।

कुचकुचवा†—पुं० [अनु०] उल्लू।

कुचकुचा—वि० [अनु०] [स्त्री० कुचकुची] खाने में गीला-कच्चा लगनेवाला। पिचपिचा।

कुचकुचाना—स० [अनु० कुचकुच] किसी को नुकीली चीज से बार-बार कोंचना। बार-बार कोई चीज चुभाना या धँसाना।

कुच-कोर—पुं० दे० 'कुचाग्र'।

कुचक्र—पुं० [सं० कुगति स०] किसी व्यक्ति अथवा कई व्यक्तियों द्वारा बनाई हुई ऐसी योजना जिसका उद्देश्य किसी की छलपूर्ण या रहस्य-मय ढंग से हानि करना होता है। (प्लाट)
 क्रि० प्र०—रचना।

कुचक्री (क्रिन्)—पुं० [सं० कुचक्र+इनि] कुचक्र रचनेवाला।

कुचना*—अ० [सं० कुंचन] सिकुड़ना।
 अ० [हिं० कोंचना] किसी वस्तु का कोंचा जाना।

कुच-मर्दन—पुं० [सं० ष० त०] १. स्त्रियों के कुच या स्तन हाथ में लेकर दबाना। २. एक प्रकार का सन या पटुआ, जो रस्से बनाने के काम आता है।

कुचर—वि० [सं० कु√चर् (गति)+अच्] १. बुरी जगहों पर घूमनेवाला। २. व्यर्थ इधर-उधर मारा-मारा फिरनेवाला। आवारा। ३. दुष्कर्म, निंदा आदि करनेवाला।

कुचरा†—पुं०=कूचा (झाड़ू)।

कुचलना—स० [हिं० कूँचना] १. किसी वस्तु या पदार्थ को इस प्रकार

पीसना, मलना या रगड़ना कि वह बिलकुल महीन हो जाय। जैसे—आलू कुचलना। २. बार-बार आघात करते हुए इस प्रकार दबाना कि सब अंग बेकाम हो जायँ। जैसे—साँप का सिर कुचलना। ३. पैरों से उक्त प्रकार की क्रिया करना। रौंदना। ४. इस प्रकार अच्छी तरह दबाना या दमन करना कि जल्दी सिर न उठा सके। जैसे—प्रजा या शत्रु को कुचलना।

कुचला—पुं० [सं० कच्चीर] १. एक प्रकार का वृक्ष जिसके बीज विषैले होते हैं। २. इस वृक्ष के बीज जो दवा के काम आते हैं।
पुं० [हिं० कुचलना] कुचलकर बनाई हुई भोज्य वस्तु।

कुचली—स्त्री० [हिं० कुचलना] दाढ़ों और राजदंत के बीच के दाँत जिनसे खाने की चीजें कुचली जाती हैं। सीता दाँत।

कुचांशुक—पुं० [सं० कुच-अंशुक ष० त०] कुचों पर बाँधने की पट्टी। 'स्तनोत्तरीय' (देखें)।

कुचाग्र—पुं० [सं० कुच-अग्र ष० त०] स्त्रियों के स्तन का अगला भाग। ढेंपी।

कुचाल—स्त्री० [सं० कु+हिं० चाल] १. बुरा और निंदनीय आचरण या चाल-चलन। २. दुष्टता। पाजीपन। ३. दुष्टतापूर्वक चली हुई चाल या की हुई युक्ति।

कुचालक—वि० [सं० कुगति स०] १. बुरा चालक। २. (वस्तु) जिसमें विद्युत्, ताप आदि का परिचालन उचित रूप में या सुगमता से न हो सके। कुसंवाहक। (बैड कंडक्टर)

कुचालिया—पुं०=कुचाली।

कुचाली—पुं० [हिं० कुचाल] १. व्यक्ति, जिसका आचरण या चाल-चलन बुरा हो। कुमार्गी। २. दुष्ट या पाजी व्यक्ति।
वि० कुचाल करनेवाला।

कुचाह—स्त्री० [सं० कु+हिं० चाह] कुत्सित अभिलाषा। बुरी इच्छा या चाह।

कुचिक—पुं० [सं०√कुच्+इकन्] ईशान कोण का एक प्राचीन देश। (संभवतः आधुनिक कूचविहार)

कुचित—वि० [सं०√कुच्+कितच्] १. सिकुड़ा हुआ। संकुचित। २. अल्प। थोड़ा।

कुचिया†—स्त्री० [सं० कुंचिका या गुंजिका] छोटी टिकिया।

कुचिया दाँत—पुं०=कुचली (दाँत)।

कुचिलना†—स०=कुचलना।

कुचिला—पुं०=कुचला।

कुची†—स्त्री०=कुंजी।

कुचील*—वि० [सं० कुचेल] १. मैले कपड़ोंवाला। २. मैला-कुचैला। मलिन।

कुचीला—वि०=कुचैला।

कुचेल—पुं० [सं० कुगति स०] १. गंदा और मैला कपड़ा। २. पाठा या पाढ़ा नामक वृक्ष।
वि० १. जो मैले-कुचैले कपड़े पहने हो। २. गंदा। मलिन।

कुचेष्ट—वि० [सं० ब० स०] १. बुरी चेष्टावाला। २. कुरूप। भद्दा। ३. बुरी चेष्टा या प्रयत्न करनेवाला।

कुचेष्टा—स्त्री० [सं० कुगति स०] [वि० कुचेष्ट] १. बुरी चेष्टा या प्रयत्न। २. बुरी चेष्टा या आकृति।

कुचैन*—स्त्री० [सं० कु+हिं० चैन] १. चैन या सुख का अभाव। विकलता। बेचैनी। २. कष्ट। दुःख।
वि० बेचैन। विकल।

कुचैला—वि० [सं० कुचेल] [स्त्री० कुचैली] १. जो गंदे और मैले कपड़े पहने हो। २. गंदा। मलिन। मैला।

कुचोद्य—पुं० [सं० कुगति स०] व्यर्थ की कहा-सुनी या तर्क-वितर्क। वितंडा।

कुच्चा †—पुं० [स्त्री० अल्पा० कुच्ची]=कुप्पा (चमड़े आदि का)।

कुच्छित*—वि०=कुत्सित।

कुछ—सर्व० [सं० किंचित्; पा० कोचि; प्रा० किंची; उ० किची; बँ० किछु; व्रज० कछु] एक सर्वनाम जिसमें रूप-विकार नहीं होता और जिसका प्रयोग प्रसंग के अनुसार विशेषण, क्रिया-विशेषण और अव्यय के रूप में भी नीचे लिखे अर्थों में होता है:—
सर्वनाम रूप में—१. कोई अज्ञात, अनिश्चित या अनिर्दिष्ट चीज (या बात)। जैसे—(क) तुम भी उन्हें कुछ दे आना। (ख) वहाँ जाने पर कुछ तो हो ही जायगा। (ग) इनसे भी कुछ पूछ देखो। २. मान, संख्या आदि के विचार से, अनिश्चित या अनिर्दिष्ट अंश या भाग। जैसे—(क) कुछ तुम ले लो, कुछ हमें दे दो। (ख) उस पुस्तक में कुछ बातें तुम्हारे काम की भी निकल आवेंगी। ३. किसी काम, चीज या बात का ऐसा सामूहिक रूप जो सब प्रकार से संतोषजनक हो। जैसे—(क) परमात्मा ने हमें सब कुछ दिया है। (ख) लड़कीवालों ने दहेज में बहुत कुछ दिया। ४. कोई अनुचित, कड़ी या खटकनेवाली बात। जैसे—यहाँ किसी की मजाल है जो तुम्हें कुछ कहे। ५. कोई हानिकारक चीज या बात। जैसे—(क) वह कुछ (किसी प्रकार का विष) खाकर सो रहा। (ख) लड़के को अँधेरे में मत भेजा करो; कहीं कुछ (भूत-प्रेत आदि की बाधा या कोई घातक बात) हो न जाय। (ग) इसे तो किसी ने कुछ (जादू-टोना आदि) कर दिया।
विशेषण रूप में—१. अनिश्चित या अनिर्दिष्ट (पदार्थ, परिमाण, संख्या आदि)। जैसे—(क) कुछ लोग आ चुके हैं। (ख) कुछ पुस्तकें हमारे लिए भी छोड़ देना। (ग) कभी किसी की कुछ भलाई भी किया करो। २. गिनती, परिमाण आदि में अधिक नहीं। अल्प। कम। थोड़ा या थोड़े। जैसे—(क) कुछ बन्दर तो वहाँ भी पाये जाते हैं। (ख) इनमें चाँदी-सोने के भी कुछ बरतन हैं। (ग) इनके लिए भी कुछ जगह निकालनी पड़ेगी। ३. प्रतिष्ठा, महत्त्व, योग्यता आदि के विचार से किसी गिनती में आने योग्य। साधारण की तुलना में अच्छा या आगे बढ़ा हुआ। जैसे—(क) यदि शिक्षा आदि की ठीक व्यवस्था हो, तो यह लड़का भी थोड़े दिनों में कुछ हो जायगा। (ख) यदि उन्होंने इस काम के सौ रुपए दिये तो कुछ नहीं किया।
क्रिया-विशेषण रूप में—१. अज्ञात, अनिश्चित या अनिर्दिष्ट परिमाण, मात्रा या रूप में। जैसे—(क) अभी तुम्हारा क्रोध कुछ शांत हुआ या नहीं? (ख) किसी ने तुम्हें जरूर कुछ बहकाया है। २. अल्प या सामान्य रूप में। जैसे—(क) यह कुरता तुम्हें कुछ छोटा होगा। (ख) तुम्हारी बात हमें कुछ ठीक नहीं जँचती।
अव्यय रूप में—१. नियत, नियमित या वास्तविक रूप में। जैसे—

यह कुछ तमाशा तो है नहीं। २. किसी दशा, प्रकार या रूप में। जैसे—हम लोग कुछ लड़ने तो बैठे नहीं हैं। ३. उपेक्षा, तिरस्कार, विस्मय आदि के प्रसंग में किसी प्रकार, मान या रूप में। जैसे—वहाँ का हाल कुछ न पूछो।

पद—**कुछ एक**=गिनती या संख्या में कम या थोड़े। जैसे—वहाँ भी कुछ एक लोग चले गये थे। **कुछ ऐसा**=साधारण से भिन्न और विलक्षण। जैसे—उन्होंने कुछ ऐसा ढोंग रचा कि सब लोग घबरा गये। **कुछ का कुछ**=जैसा था, उससे बिलकुल भिन्न या विपरीत। जैसे—(क) भूकंप के एक ही धक्के ने वहाँ कुछ का कुछ कर दिया। (ख) पाठशाला का प्रबंध हाथ में लेते ही उन्होंने उसे कुछ का कुछ कर दिखाया। (ग) तुमने हमारी बात का मतलब कुछ का कुछ समझ लिया। **कुछ-कुछ**= मात्रा या मान में, थोड़ा। जैसे—अब रोग कुछ-कुछ घट रहा है। **कुछ न कुछ**=ऐसा जिसका ठीक तरह से *अवधारण या निश्चय न हो सके। जैसे—वहाँ भी तुम्हें कुछ न कुछ* मिल ही जायगा।

मुहा०—**(अपने आपको) कुछ लगाना या समझना**=अभिमानपूर्वक यह समझना कि हम भी गण्य या मान्य हैं अथवा कुछ कर सकते हैं।

कुजंत्र*—पुं० [सं० कुयंत्र] १. खराब या बुरा यंत्र। २. दुष्ट उद्देश्य से किया जानेवाला जादू-मंतर या टोना-टोटका।

कुजंभ—वि० [सं० ब० स०] लम्बे और भयंकर दाँतोंवाला।
पुं० प्रह्लाद के पुत्र एक असुर का नाम।

कुजंभल—पुं० [सं० कु-जम्भल, प० त०] सेंध लगाकर चोरी करनेवाला व्यक्ति।

कुजंभिल—पुं०=कुजंभल।

कुज—पुं० [सं० कु√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. मंगल ग्रह जो पृथिवी का पुत्र अर्थात् उससे उत्पन्न कहा गया है। २. पेड़। वृक्ष। ३. नरकासुर का एक नाम।
वि० लाल (मंगल का रंग लाल होने के कारण)।

कुजा—स्त्री० [सं० कुज+टाप्] १. जनक-पुत्री सीता। २. कात्यायनी।
अव्य० [फा०] किस जगह? कहाँ?

कुजात—स्त्री०=कुजाति।

कुजाति—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. नीच या बुरे कर्म करनेवाली जाति। २. समाज में छोटी या हीन समझी जानेवाली जाति।
पुं० १. छोटी जाति का आदमी। २. अधम या पतित व्यक्ति। ३. जाति से निकाला हुआ व्यक्ति।

कुजाम—वि० [हिं० कु+जमना=जन्म लेना] १. जिसका जन्म बुरे कर्मों के फलस्वरूप हुआ हो। २. जारज। दोगला।
पुं० [सं० कु+याम] बुरा अवसर या समय।

कुजाष्टम—पु० [सं० कुज-अष्टम, ब० स०] जन्मकुंडली के आठवें घर में मंगल स्थित होने का एक योग। (ज्योतिष)

कुजिया†—स्त्री० [फा० कूजा=प्याला] मिट्टी का छोटा कूजा या पात्र। घरिया।

कुजून†—स्त्री० [सं० कु+हिं० जून (समय)] १. अनुपयुक्त या बुरा समय। २. देर। विलम्ब।

कुजोग—पुं० [सं० कुयोग] १. अनुपयुक्त या बुरा योग। बुरा मेल। २. अनुपयुक्त या बुरा समय। ३. अनुपयुक्त या बुरा संयोग।

कुजोगी*—वि० [सं० कुयोगी] १. अच्छे योग या संपर्क से रहित। २. योग या संयम का ठीक तरह से पालन न करनेवाला।

कुज्जा—पुं० दे० 'कूजा'।

कुज्झटि—स्त्री० [सं०√कुज् (अपहरण करना)+क्विप्,√झट् (समूह)+इन्, कर्म० स०]=कुज्झटी।

कुज्झटिका—स्त्री० [सं० कुज्झटि+कन्—टाप्]=कुज्झटी।

कुज्झटी—स्त्री० [सं० कुज्झटि+ङीप्] कोहरा।

कुटंगक—पुं० [सं० कुट-अंगक, प० त०, शक० पररूप] लताओं से ढकने पर बननेवाला मंडप।

कुटंत—स्त्री० [हिं० कूटना+त (प्रत्य०)] १. कूटने या कूटे जाने की क्रिया या भाव। कुटाई। २. बहुत मारे-पीटे जाने की क्रिया या भाव।

कुट—पुं० [सं०√कुट् (कौटिल्य)+क] [स्त्री० कुटी] १. घर। गृह। २. दुर्ग या गढ़। ३. पत्थर तोड़ने का हथौड़ा। ४. कलश। ५. पहाड़। ६. वृक्ष।
पुं० [सं० कूट=कूटना] १. कूटकर बनाया हुआ खंड। जैसे—तिलकुटा। २. पत्थर के टुकड़े।
*पुं० दे० 'कालकूट'।
स्त्री० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ठ] कश्मीर की ढालू पहाड़ियों पर होनेवाली एक प्रकार की मोटी झाड़ी।

कुटक—पुं० [सं० कुट+कन्] वह डंडा जिससे मथानी की रस्सी लपेटी जाती है।

कुटका—पुं० [हिं० कूट=कूटना] [स्त्री० अल्पा० कुटकी] १. किसी वस्तु का छोटा टुकड़ा। २. कसीदे में काढ़ा जानेवाला एक प्रकार का तिकोना बूटा। सिंघाड़ा।

कुट-कारक—पुं० [प० त०] [स्त्री० कुट-कारिका] नौकर। सेवक।

कुटकी—स्त्री० [सं० कटुका] १. पश्चिमी और पूरबी घाटों में पाया जानेवाला एक पौधा, जिसका उपयोग औषध के रूप में होता है। २. शिमले और कश्मीर के पहाड़ों में पाई जानेवाली एक प्रकार की जड़ी। ३. कँगनी या चेना नामक कदन्न। ४. एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसके शरीर का रंग ऋतु-भेद से बदलता रहता है। ५. एक प्रकार का छोटा कीड़ा या फतिंगा, जो प्राणियों के शरीर पर बैठकर काटता है।
स्त्री० [हिं० कुटका=छोटा टुकड़ा] किसी चीज का छोटा टुकड़ा। उदा०—गैणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी।—मीराँ।

कुटज—पुं० [सं० कुट√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. एक प्रकार का जंगली पौधा और उसका फूल। कुरैया। उदा०—लसत कुटज घन चंपक पलास बन।—सेनापति। २. इन्द्रयव का पेड़ जो प्रायः पहाड़ों पर होता है। ३. महर्षि अगस्त्य। ४. द्रोणाचार्य। ५. कमल।

कुटनई†—स्त्री०=कुटनपन।

कुटन-पन—पुं० [सं० कुट्टन] १. स्त्रियों को बहकाकर पर-पुरुषों के पास ले जाने का काम। कुटने या कुटनी का पेशा। २. दो व्यक्तियों, दलों आदि के बीच में फूट डालने या झगड़ा लगाने का काम।

कुटन-पेशा—पुं० दे० 'कुटनपन'।

कुटना—पुं० [हिं० कुटनी] १. ऐसा व्यक्ति जो स्त्रियों को भगाकर

पर-पुरुषों के पास ले जाता हो। दलाल। २. दो व्यक्तियों या दलों में फूट डालने या झगड़ा करानेवाला व्यक्ति।
अ० [हिं० 'कूटना' का अ० रूप] कूटा जाना।
पुं० [हिं० कूटना] वह उपकरण जिससे कोई चीज कूटी जाय।
कुटनाई—स्त्री० दे० 'कुटनपन'।
कुटनाना—स० [हिं० कुटना] १. कुटने या कुटनी का स्त्रियों को भुलावा देकर कुमार्ग पर ले जाना। २. कुटने या कुटनी की तरह गुप्त रूप से प्रलोभन देकर बहकाना।
कुटनापन—पुं०=कुटनपन।
कुटनापा—पुं० दे० 'कुटनपन'।
कुटनी—स्त्री० [सं० कुट्टिनी] १. वह स्त्री जिसका पेशा स्त्रियों को बहका कर पर-पुरुषों से मिलाना और इस प्रकार रुपया कमाकर जीविका निर्वाह करना होता है। (प्रोक्योरेस) २. दो पक्षों में झगड़ा करानेवाली स्त्री।
कुटनीपन—पुं०=कुटनपन।
कुटन्नक—पुं० [सं० कुटन्नट का रूपान्तर] केवटी मोथा। कसेरू।
कुटन्नट—पुं० [सं० कुटन्√नट् (नर्तन)+अच्] १. स्योनाक छोंका। २. केवटी मोथा। कैवर्त्त मुस्तक।
कुटम †—पुं०=कुटुंब।
कुटमैती †—स्त्री० [सं० कुटुम्ब] १. कुटुंबवालों की तरह का संबंध। आपसदारी का संबंध। २. नातेदारी। रिश्तेदारी।
कुटम्मस—स्त्री० [हिं० कूटना] किसी को खूब मारने-पीटने की क्रिया या भाव।
कुटर—पुं० [सं०√कुट् (कुटिलता)+करन्] वह डंडा जिससे मथानी की रस्सी लिपटी रहती है।
कुटर-कुटर—पुं० [अनु०] १. दाँतों से कोई वस्तु चबाई जाने पर होनेवाला शब्द। २. दाँतों के टकराने से होनेवाला शब्द। जैसे—चूहे की कुटर-कुटर।
कुटल—पुं० [सं०√कुट्+कलच्] घर की छाजन।
*वि०=कुटिल।
कुटली†—स्त्री० [हिं० कूटना] एक उपकरण जिससे खेतों में निराई की जाती है।
कुटवाना—स० [हिं०कूटना का प्रे०] १. (कोई वस्तु) कूटने का काम दूसरे से कराना। २. (किसी व्यक्ति को) किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा पिटवाना।
कुटवार—पुं० [हिं० कूटना] मिट्टी कूटने अथवा इसी प्रकार का कठोर काम करनेवाला व्यक्ति।
कुटवाल †—पुं०=कोतवाल।
कुटवाली †—स्त्री०=कोतवाली।
कुटाई—स्त्री० [हिं० कूटना] १. कोई वस्तु कूटने या कूटे जाने की क्रिया, भाव या मजदूरी। २. अच्छी तरह मारने-पीटने या मारे-पीटे जाने की क्रिया या भाव।
कुटार—पुं० [?] नटखट टट्टू।
कुटास †—स्त्री० दे० 'कुटम्मस'।
कुटिया—स्त्री० [सं० कुटी] १. साधु-संतों आदि के रहने की झोंपड़ी। २. झोंपड़ी। कुटी। ३. छोटा मकान। घर।
कुटिल—वि० [सं०√कुट्+इलच्] [स्त्री० कुटिला] १. टेढ़े आकार का। वक्र। २. मन में कपट, छल, द्वेष आदि रखने और छिपकर बदला चुकानेवाला। जो स्वभाव से सरल न हो। दुष्ट। उदा०—मो सम कौन कुटिल खल कामी।—सूर।
पुं० १. एक वर्णवृत्त जिसके चरण में क्रमशः स, भ, न, य, ग, ग होते हैं। २. तगर का पौधा या फूल।
कुटिलक—वि० [सं० कुटिल+कन्] टेढ़ा-मेढ़ा या मुड़ा हुआ।
कुटिल-कीट—पुं० [सं० कर्म० स०] साँप।
कुटिलता—स्त्री० [सं० कुटिल+तल्—टाप्] १. टेढ़ापन। वक्रता। २. स्वभाव से कुटिल होने की अवस्था या भाव। 'सरलता' का विपर्याय। ३. दुष्टता। धोखेबाजी।
कुटिलपन †—पुं०=कुटिलता।
कुटिला—स्त्री० [सं० कुटिल+टाप्] १. सरस्वती नदी। २. मध्य युग की एक पुरानी भारतीय लिपि। ३. असबर्ग नाम की ओषधि और गंध-द्रव्य। ४. आयान घोष की बहन और राधिका की ननद का नाम।
कुटिलाई †—स्त्री०=कुटिलता।
कुटिलिका—स्त्री० [सं० कुटिल+कन्, टाप्, इत्व] १. बिना कोई आहट किये और चुपचाप पैर दबाकर आने की क्रिया या भाव। २. लोहा गलाने की भट्ठी।
कुटिहा† —वि० [हिं० कूट+हा] व्यंग्यपूर्ण और कूट बातें कहनेवाला।
कुटी—स्त्री० [सं०√कुट्+इन्, ङीप्] १. एकान्त या सूने स्थान में मिट्टी का बना और घास-फूस से छाया हुआ छोटा घर। झोंपड़ी। पर्ण-शाला। २. ऋषियों, साधुओं आदि के रहने का उक्त प्रकार का स्थान। ३. घुमाव। मोड़। ४. फूलों का गुच्छा। ५. एक प्रकार की मदिरा या शराब। ६. मुरा नामक गन्धद्रव्य। ७. सफेद कुड़ा या कुटज।
कुटी-उद्योग—पुं० [मध्य० स०] ऐसे छोटे-मोटे काम जिन्हें लोग घर ही में करके जीविका-निर्वाह के लिए धन कमा सकते हैं (काटेज इन्डस्ट्री)। जैसे—खिलौने, दरी, साबुन आदि बनाने का काम।
कुटीका—स्त्री० दे० 'कुटी'।
कुटीचक—पुं० [सं० कुटी√चक् (तृप्ति)+अच्] संन्यासी, जो जनेऊ और शिखा का त्याग नहीं करते। प्रायः ये लोग अपने घर का त्याग नहीं करते बल्कि उसी में अपना आश्रम बनाकर रहते हैं।
कुटीचर—वि० [सं० कुचर] कुटिल प्रकृति या स्वभाववाला। दुष्ट और धोखेबाज।
पुं० चालबाज और दुष्ट व्यक्ति।
कुटी-प्रवेश—पुं० [स० त०] कल्प-चिकित्सा के लिए विशेष रूप से बनाई हुई कुटी में रोगी का जाकर रहना। (आयुर्वेद)
कुटीर—पुं० [सं० कुटी+र] दे० 'कुटी'।
कुटीरक—पुं० [सं० कुटीर+कन्] कुटी।
कुटीरोद्योग—पुं० [सं० कुटीर-उद्योग, मध्य० स०] दे० 'कुटी-उद्योग'।
कुटी-शिल्प—पुं० [मध्य० स०] दे० 'कुटी-उद्योग।'
कुटुंब—पुं० [सं०√कुटुम्ब् (धारण और पोषण)+अच्] एक ही कुल या परिवार के वे सब लोग जो एक ही घर में मिलकर रहते हों।

कुटुंवक—पुं० [सं० कुटुम्ब+कन्] १. कुटुंब। परिवार। २. एक प्रकार की घास।

कुटुंव-कलह—पुं० [तृ० त०] दे० 'गृह-कलह'।

कुटुंविनी—स्त्री० [सं० कुटुंविन्+ङीप्] १. कुटुंव या परिवार की प्रधान स्त्री। २. वाल-वच्चेदार स्त्री। ३. कफ-पित्त-नाशक और रक्त-शोधक एक जड़ी या छोटा झाड़। (आयुर्वेद)

कुटुंबी (विन्)—पुं० [सं० कुटुम्ब+इनि] [स्त्री० कुटुम्बिनी] १. कुटुंब या परिवारवाला। कुनवेवाला। २. एक कुटुंव के सव लोग। ३. वह जिसके साथ कुटुंव या परिवार का संवंव हो। नातेदार। रिश्तेदार।

कुटुनी—स्त्री०=कुटनी।

कुटुम†—पुं०=कुटुंव।

कुटुम-कवीला—पुं० [हिं० कुटुम+अ० कवील:] स्त्री-बच्चे, भाई-भतीजे आदि परिवार के लोग।

कुटुवा—वि० [हिं० कूटना] कूटनेवाला।

पुं० वह जो नर-पशुओं के अंड-कोश कूटकर उन्हें वघिया करने का काम करता हो।

कुटेक—स्त्री० [सं० कु+हिं० टेक] किसी काम के लिए किया जानेवाला अनुचित आग्रह या हठ।

कुटेव—स्त्री० [सं० कु+हिं० टेव] वुरी आदत या वान।

कुटौनी—स्त्री० [हिं० कूटना] १. धान आदि अनाज कूटने का काम। **पद—कुटौनी-पिसौनी**=धान आदि कूटने, चक्की पीसने आदि घर के छोटे परन्तु वहुत परिश्रम के काम।

२. इस काम का पारिश्रमिक या मजदूरी।

कुट्टक—पुं० [सं०√कुट्ट् (कूटना)+ण्वुल्—अक] वह जो कोई चीज कूटने या पीसने का काम करता हो।

कुट्टन—पुं० [सं०√कुट्ट्+ल्युट्—अन] १. कूटना। २. काटना। ३. पीसना। ४. नृत्य, संगीत आदि में वह मुद्रा जिसमें वृद्धावस्था, शीत आदि के कारण दाँत वजाकर दिखाया जाता है।

कुट्टनी—स्त्री० [सं० कुट्टन+ङीष्]=कुटनी।

कुट्टनीयता—स्त्री० [सं०√कुट्ट्+अनीयर्+तल्—टाप्] दे० 'कुटनपन।'

कुट्टमित—पुं० [सं०√कुट्ट्+घञ्+इमप्+इतच्] साहित्य में संयोग शृंगार के अंतर्गत एक हाव जिसमें प्रिय के स्पर्श से मन में सुखी होने पर भी ऊपर से दिखावटी विकलता या विरक्ति प्रकट की जाती हो।

कुट्टा—पुं० [सं० कुट्टन=काटना] १. वह कवूतर या और कोई पक्षी जिसके पर काट दिये गये हों। २. पर या पैर वाँवकर जाल के नीचे वैठाया हुआ वह पक्षी जिसे देखकर दूसरे पक्षी उसके पास आते और जाल में फँसते हैं। मुल्लह।

कुट्टाक—वि० [सं०√कुट्ट्+षाकन्] दे० 'कुट्टक'।

कुट्टार—पुं० [स०√कुट्ट्+आरन्] १. पर्वत। पहाड़। २. रति। संभोग। ३. अलगाव। पार्थक्य। ४. कंवल।

कुट्टित—भू० कृ० [सं०√कुट्ट्+क्त] १. कटा हुआ। २. कूटा या पीसा हुआ।

कुट्टिम—पुं० [सं०√कुट्ट्+घञ्+इमप्] १. कंकड़-पत्थर आदि से कूटकर वनाया हुआ पक्का फर्श। गच। २. अनार नामक वृक्ष और उसका फल।

कुट्टी—स्त्री० [हिं० कूटना] १. पशुओं के लिए चारा काटने की क्रिया। २. उक्त प्रकार से काटा हुआ चारा। करवी। ३. कूटकर सड़ाया हुआ वह कागज जिससे खिलौने, दौरियाँ आदि वनाई जाती हैं।

पुं०=कुट्टा (परकटा कवूतर)।

स्त्री० [दाँतों से काटने के 'कुट' शब्द के अनुकरण पर] एक शब्द जिसका प्रयोग वालक खिलवाड़ में उस समय करते हैं जव वे किसी से कुढ़ या चिढ़कर उससे संवंध तोड़ने का भाव सूचित करना चाहते हैं। जैसे—जाओ, हमसे तुमसे कुट्टी अव हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे।

कुट्टीर—पुं० [सं०√कुट्ट्+ईरन्] पहाड़ी।

कुट्टीरक—पुं० [सं० कुट्टीर√कै(प्रतीत होना)+क] कुटिया।

कुठ—पुं० [सं०√कुठ् (छेदन)+क] वृक्ष।

कुठर—पुं० [सं०√कुठ्+करन्] दे० 'कुटर'।

कुठला—पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ठ+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कुठली] अनाज रखने के लिए मिट्टी का वना हुआ ऊँचा तथा वड़ा पात्र।

कुठाँउ—स्त्री०=कुठाँव।

कुठाँय—स्त्री०=कुठाँव।

कुठाँव—स्त्री० [सं० कु+हिं० ठाँव] १. वुरा स्थान। खराव जगह। २. घातक या भयप्रद स्थान। ३. शरीर का कोमल या सुकुमार अंग। मर्मस्थल।

कुठाकु†—पुं० [देश०] कठफोड़वा पक्षी।

कुठाटंक—पुं० [सं० कुठारटंक, पृषो० सिद्धि] [स्त्री० अल्पा० कुठाटंका] कुल्हाड़ी।

कुठाट—पुं० [सं० कु+हिं० ठाट] १. अनावश्यक या अनुचित तड़क-भड़क। २. वुरा प्रवंध। ३. वुरा सामान।

कुठायँ—स्त्री०=कुठाँव।

कुठार—पुं० [सं० √कुठ्+आरन्] [स्त्री० कुठारी] १. कुल्हाड़ा। २. फरसा।

पुं० दे० 'कुठला'।

कुठारक—पुं० [सं० कुठार+कन्] छोटी कुल्हाड़ी।

कुठार-पाणि—पुं० [सं० व० स०] परशुराम, जो हाथ में कुठार रखते थे।

कुठाराघात—पुं० [सं० कुठार-आघात, ष० त०] १. कुल्हाड़ी लगने से होनेवाला आघात। २. लाक्षणिक रूप में ऐसा आघात जिससे किसी वस्तु या व्यक्ति की जड़ कट जाय या वहुत वड़ी हानि हो। ३. सर्वनाश।

कुठारिक—पुं० [सं० कुठार+ठन्—इक] लकड़ी काटने का काम करनेवाला व्यक्ति। लकड़हारा।

कुठारिका—स्त्री० [सं० कुठारी+कन्—टाप्, ह्रस्व] कुल्हाड़ी।

कुठारी—स्त्री० [सं० कुठार+ङीप्]=कुल्हाड़ी।

कुठाली—स्त्री० [सं० कु-स्थाली] सुनारों की वह घरिया (मिट्टी का छोटा पात्र) जिसमें वे सोना, चाँदी आदि गलाते हैं।

कुठाहर—पुं० दे० 'कुठाँव'।

कुठि—पुं० [सं०√कुठ्+इन्] १. पेड़। वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़।

कुठिया†—स्त्री० [सं० कोष्ठ; प्रा० कोट्ठ] अनाज रखने का मिट्टी का गहरा छोटा वरतन। छोटा कुठला। उदा०—उन्हीं की छाप कुठिया पर लगा दो।—वृंदावनलाल वर्मा।

कुठिला†—स्त्री०=कुठला।

कुठी—स्त्री० [देश०] कुसुम या बर्रे नामक पौधे की एक जाति। कटाली।

कुठेर—पुं० [सं०√कुंठ्+एरक्, नलोप (बा०)] १. अग्नि। २. तुलसी।

कुठेरक—पुं० [सं० कुठेर√कै (प्रतीत होना)+क] सफेद तुलसी।

कुठौर—पुं० [सं० कु+हिं० ठौर] १. बुरा स्थान। कुठाँव। २. अनुपयुक्त अवसर। बेमौका।

कुडंग—पुं० [सं०√कुड्+अङ्गच्] निकुंज।

कुड़—पुं० [सं० कुष्ठ; पा० कुट्ठ] कुट या कूट नामक ओषधि।
पुं० [सं० कूट] ढेर। राशि।
पुं० [सं० कुंड] १. कुंड। २. हल में का जाँघा। अगवाँसी।
पुं०=कुक्कुट। उदा०—सेही सियाल लंगूर बहु, कुड कदंम भरि तर रहिय।—चन्दवरदाई।

कुड़क†—स्त्री० [फा० कुरक] ऐसी मुरगी जो अंडे न देती हो या अंडे देना बन्द कर दे।
वि० खाली। रहित।
मुहा०—कुड़क बोलना=निरर्थक या व्यर्थ हो जाना।
† वि०=कुरक या कुर्क।

कुड़कना—अ० [हिं० कुड़क] मुरगी का अंडे देना बंद करना।
अ०=कुड़बुड़ाना।

कुड़कुड़—पुं० [अनु०] पशु-पक्षियों को खेतों आदि से भगाने का एक निरर्थक शब्द।

कुड़कुड़ाना—अ० [अनु०] मन-ही-मन खीझकर अस्पष्ट रूपसे बड़बड़ाना। कुड़बुड़ाना।
स० कुड़-कुड़ शब्द करके पक्षियों आदि को खेतों से भगाना।

कुड़कुड़ी—स्त्री० [अनु०] १. भूख आदि के कारण पेट में होनेवाली गुड़गुड़ाहट या विकलता। २. कोई बात जानने के लिए मन में होनेवाली उत्सुकता-पूर्ण विकलता।

कुड़प—पुं०=कुड़व।

कुड़पना—स० [हिं० कुंड=हल की लकीर] कँगनी के खेत को उस समय जोतना जब फसल थोड़ी उग आये।

कुड़बुड़ाना—अ० [अनु०] खिन्न या रुष्ट होने पर मन-ही-मन कुढ़ते हुए कुछ अस्पष्ट शब्द करना। बड़बड़ाना।

कुड़रिया—स्त्री०=कुड़री।

कुड़री—स्त्री० [सं० कुंडली] १. ईडुरी। २. तीन ओर से जल से घिरी हुई जमीन। ३. दे० 'कुंडली'।

कुड़ल—स्त्री० [सं० कुंचन] १. शरीर के किसी भाग में नस पर नस चढ़ जाने के कारण होनेवाला तनाव और पीड़ा। २. नस पर चढ़े होने की स्थिति।

कुड़व—पुं० [सं०√कुंड् (मापना)+कवन्, नलोप] १. अन्न मापने का एक पुराना मान जिसमें पाव भर के लगभग अन्न आता था। २. उक्त मान का पात्र।

कुड़ा—पुं० [सं० कुटज] इंद्रजौ का वृक्ष। कुरैया।
पुं०=कुढ़ा।

कुड़ाली—स्त्री० [सं० कुठारी] कुल्हाड़ी। (लश०)

कुडि—पुं० [सं०√कुड्+इन्] शरीर।

कुडिला—स्त्री० [सं०√कुड्+इलच्, टाप्] पानी पीने या रखने का बरतन। जल-पात्र।

कुडी—स्त्री० [सं०√कुड्+क, ङीप्] झोंपड़ी। कुटी।

कुड़ी† —स्त्री० [पं०] दे० 'लड़की'।

कुड़ुक—वि०, स्त्री०=कुड़क।

कुड़ेर—स्त्री० [हिं० कुड़ेरना] कुरिया में से राव निकालने के लिए बनाई हुई नाली।

कुड़ेरना—स० [देश०] राब के बोरों को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना कि उनमें की जूसी बहकर निकल जाय।

कुडौल—वि० दे० 'बेडौल'।

कुड्मल—पुं० [सं०√कुड्+कलच्, मुट्] १. कली। २. फूल। ३. एक नरक का नाम।

कुड्य—पुं० [सं०√कुड्+यत्] १. दीवार। २. उत्सुकता।

कुड्यच्छेदी (दिन्)—पुं० [सं० कुड्य√छिद् (काटना)+णिनि] सेंध लगानेवाला चोर।

कुड्य-पुच्छा—स्त्री० [ब० स०] छिपकली।

कुड्य-मत्सी—स्त्री० [उपमि० स०] छिपकली।

कुड्य-मत्स्य—पुं० [उपमि० स०] छिपकली।

कुढंग—पुं० [सं० कु+हिं० ढंग] १. अनुचित या बुरा ढंग। २. बुरी चाल। अनरीत।
वि० बुरे ढंग या प्रकार का।

कुढंगा—वि० [हिं० कुढंग] [स्त्री० कुढंगी] १. जिसकी बनावट का ढंग ठीक न हो। बेढंगा। २. कुरूप। भद्दा। ३. जो ठीक ढंग से काम न करता हो। बे-ढंगा। ४. जिसका आचरण या व्यवहार ठीक न हो।

कुढंगी—वि० [हिं० कुढंग] कुमार्गी। आचरण-हीन।

कुढ़न—स्त्री० [हिं० कुढ़ना] कष्ट, विपत्ति आदि के कारण मन में होनेवाला सन्ताप। कुढ़ने की क्रिया या भाव। मन-ही-मन होनेवाला दुःख या सन्ताप जिससे मनुष्य विकल तथा चिंतित बना रहे।

कुढ़ना—अ० [सं० क्रुद्ध; प्रा० कुड्ढ] [भाव० कुढ़न] १. किसी प्रकार का कष्ट पड़ने पर मन-ही-मन दुःखी और विकल होना। जैसे—पुत्र-शोक में माता का कुढ़-कुढ़ कर मरना। २. किसी बात या व्यक्ति की ओर से मन ही मन दुःखी और विरक्त होना। जैसे—लड़के की नालायकी से कुढ़ना।

कुढब—वि० [सं० कु+हिं० ढब] १. बुरे ढंग या ढब का। बेढब। २. कठिन। विकट।

कुढ़ा—पुं० [अ० करहा] सूजाक के रोग में पेशाब की नली में हो जानेवाली गाँठ, जिससे पेशाब रुकता और बहुत पीड़ा होती है।

कुढ़ाना—स० [हिं० कुढ़ना] किसी को कुढ़ने में प्रवृत्त करना। दुःखी और विकल करना।

कुण—पुं० [सं०√कुण् (शब्द करना)+क] १. चील। २. जमी हुई मैल। किट्ट।
†सर्व०=कौन। (राज०)

कुणक—पुं० [सं० कुण+कन्] पशु का छोटा बच्चा।

कुणप—पुं० [सं०√क्वण् (शब्द)+कपन्, संप्रसारण] १. मृत शरीर। लाश। शव। २. बरछा। भाला। ३. राँगा। ४. इंगुदी या हिंगोट का वृक्ष।

कुणपा—स्त्री० [सं० कुणप+टाप्] छोटा भाला। बरछी।

कुणपाशी (शिन्)—पुं० [सं० कुणप√अश् (खाना)+णिनि] १. वह जीव या जन्तु जो मृत शरीर खाता हो। जैसे—गिद्ध, गीदड़ आदि। २. एक प्रकार के प्रेत, जिनके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे मृत शरीर खाते हैं।

कुणि—पुं० [सं०√कुण्+इन्] १. तुन का पेड़। २. वह जिसके हाथ टूटे हों या बेकाम हो गये हों।

कुतः (स्)—अव्य० [सं० किम्+तसिल्, कु आदेश] १. किस जगह? कहाँ? २. किस प्रकार? कैसे?

कुतक—पुं०=कुतका।

कुतका—पुं० [हिं० गतका] १. मोटा डंडा। सोंटा। २. पुरी के साथ खेलने का गदका। ३. भाँग घोंटने का डंडा। भँग-घोंटना। ४. दाहिने हाथ का अँगूठा (परिहास और व्यंग्य)। जैसे—किसी को कुतका दिखाना।

कुतना—अ० [हिं० कूतना का अ०] कूतने की क्रिया होना। कूता जाना।

कुतप—पुं० [सं० कु√तप् (तपना)+अच्] १. दिन का आठवाँ मुहूर्त। मध्याह्न। २. वे वस्तुएँ, जिनकी (मध्याह्न के समय) श्राद्ध में आवश्यकता होती है। ३. सूर्य। ४. अग्नि। ५. एक प्रकार का पुराना बाजा। ६. बकरी के बालों का बना हुआ कंबल। ७. द्विज। ब्राह्मण। ८. अतिथि। मेहमान। ९. बहन का लड़का। भांजा।

कुतब—पुं०=कुतुब।

कुतरन—पुं० [हिं० कुतरना] कुतरा हुआ अंश या टुकड़ा।

*पुं० दे० 'कतरन'।

कुतरना—स० [सं० कर्तन=कतरना] १. दाँतों की सहायता से किसी चीज का थोड़ा-सा अंश काटकर अलग करना। जैसे—चूहों का कपड़े या कागज कुतरना। २. बीच में पड़कर किसी चीज का कुछ अंश अपने लिए निकाल लेना। जैसे—बीस रुपये में से पाँच तो आपने ही बीच में कुतर लिये।

कु-तर्क—पुं० [सं० कुगति स०] अनुचित, असंगत या बुरा तर्क।

कुतर्की (र्किन्)—पुं० [सं० कुतर्क+इनि] अनुचित, असंगत या व्यर्थ के तर्क करनेवाला। कठ-हुज्जती।

कुतला†—पुं० [हिं० कतरना] हँसिया।

कुतवार—पुं० [हिं० कूतना+वार (प्रत्य०)] अन्न आदि की बँटाई के समय उपज की कूत करनेवाला व्यक्ति।

पुं०=कोतवाल।

कुतवारी*—स्त्री० [सं० कोटपाली] कुतवार का काम, पद या पारिश्रमिक।

†स्त्री०=कोतवाली।

कुतवाल†—पुं०=कोतवाल।

कुतवाली—स्त्री०=कोतवाली।

कुतार†—पुं० [सं० कु+हिं० तार] १. कार्य सिद्ध न होने की स्थिति। २. सुमति का अभाव। अंडस। असुविधा।

कुताही—स्त्री०=कोताही।

कुतिया—स्त्री० [हिं० कुत्ती] १. कुत्ते की मादा। कूकरी। कुत्ती। २. लाक्षणिक अर्थ में बदचलन स्त्री।

कुतुक—पुं० [सं०√कुत्+उकङ् (बा०)] =कौतुक।

कुतुप—पुं० [सं० कुतप, पृषो० सिद्धि] १. दिनमान का आठवाँ मुहूर्त। कुतप। २. चमड़े का कुप्पा या कुप्पी।

कुतुब—पुं० [अ० कुत्ब] ध्रुव तारा।

कुतुबखाना—पुं० [अ० कुतुब=किताब का बहु०+फा० खानः] पुस्तकालय।

कुतुबनुमा—पुं० [अ०] दिशा-सूचक यंत्र, जिसकी सूई की नोक सदा उत्तर की ओर रहती है। दिग्दर्शक यंत्र।

कुतुब-फरोश—पुं० [अ० कुतुब=किताबें+फा० फरोश] पुस्तक-विक्रेता।

कुतुबशाही—स्त्री० [अ० कुत्ब+फा० शाह] पन्द्रहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के पाँच बहमनी राज्यों में से एक, जिसकी राजधानी गोलकुंडा थी।

कुतुरक्षा—पुं० [देश०] हरे रंग का एक पक्षी जिसकी चोंच, पीठ और पैर लाल होते हैं।

कुतुली—स्त्री० [देश०] इमली की कोमल फली जिसके बीज मुलायम होते हैं।

कुतू—स्त्री० [सं० कु√तन्+कू (बा०)] चमड़े की कुप्पी जिसमें तेल आदि तरल पदार्थ रखे जाते हैं।

कुतूणक—पुं०=कुथुआ।

कुतूहल—पुं० [सं० कुतू√हल्+अच्] [वि० कुतूहली] १. किसी नई और विलक्षण चीज या रहस्यमयी बात को जानने, सीखने आदि के लिए मन में होनेवाली प्रबल इच्छा। किसी अद्भुत या विलक्षण विषय में होनेवाली जिज्ञासा। (क्यूरियासिटी) २. आश्चर्य। ३. कौतुक-क्रीड़ा।

कुतूहली (लिन्)—वि० [सं० कूतूहल+इनि] १. (व्यक्ति) जिसकी अनोखी और नई बातें देखने, सुनने आदि में स्वभावतः विशेष रुचि होती है। (क्यूरियस) २. जिसका मन खेलवाड़ों में रमता हो। खिलवाड़ी।

कुतुका†—स्त्री० [सं० कुतुक] १. कोई बात जानने की उत्सुकता। २. कौतुक।

कुत्ता—पुं० [सं० कुक्कुर; प्रा० कुत्तु, कुत्ती; द्र० कुक्, कूगु; गु० कुत्रो; मरा० कुत्रा] [स्त्री० कुतिया, कुत्ती] १. गीदड़, भेड़िये आदि की जाति का एक प्रसिद्ध हिंसक पालतू जानवर। २. लाक्षणिक अर्थ में तुच्छ, दुष्ट, लुच्चा या लोभी व्यक्ति।

पद—कुत्ते की दुम=ऐसा व्यक्ति जो समझाने-बुझाने अथवा दंड दिये जाने पर भी अपनी बुरी आदतें न छोड़ता हो।

मुहा०—कुत्ते घसीटना=गर्हित या तुच्छ काम करना।

३. लपटौआँ नाम की घास। ४. बंदूक का घोड़ा। ५. लकड़ी का वह टुकड़ा जिसके नीचे गिरा देने पर दरवाजा नहीं खुल सकता। सिटकिनी। ६. किसी यंत्र में का वह पुरजा जो किसी चक्कर को पीछे की ओर घूमने से रोकता है। ७. रहस्य संप्रदाय में काल या मृत्यु।

कुत्ती—स्त्री० [हिं० कुत्ता] कुत्ते की मादा। कुतिया।

कुत्ते-खसी—स्त्री० [हिं० कुत्ता+खसी?] १. कुत्तों की तरह स्वार्थ-

पूर्ण वृत्ति से नोचने-खसोटने की क्रिया। २. बहुत ही गर्हित और तुच्छ काम।

कुत्र—क्रि० वि० [सं० किम्+त्रल्] किस स्थान पर? किस जगह? कहाँ?

कुत्स—पुं० [सं०√कुत्स्+अच्] एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि।

कुत्सन—पुं० [सं०√कुत्स्+ल्युट्—अन] [वि० कुत्सित] निंदा या भर्त्सना करना।

कुत्सा—स्त्री० [सं०√कुत्स्+अ, टाप्] निंदा। बुराई।

कुत्सित—वि० [सं०√कुत्स्+क्त] १. जिसकी निंदा या भर्त्सना की गई हो। निंदित। २. जो निंदा या भर्त्सना किये जाने का पात्र हो। अधम। नीच।

पुं० १. कुष्ठ नाम की ओषधि। २. कुड़ा। कोरैया।

कुत्स्य—वि० [सं०√कुत्स्+ण्यत्] जिसकी निंदा या भर्त्सना की जानी चाहिए। निंदा का पात्र।

कुथ—पुं० [सं० √कुंथ् (निष्कर्ष)+क, नलोप] १. कंथा (गुदड़ी)। २. कुश नामक घास। ३. हाथी की झूल। ३. पालकी या रथ के ऊपर आड़ करने के लिए डाला जानेवाला कपड़ा। ओहार।

कुथना—अ० [हिं० कूथना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुथरी†—स्त्री०=कथरी (गुदड़ी)।

कुथरु—पुं० [सं० कुतूण] आँख का एक रोग। कुथुआ (दे०)।

कुथा—स्त्री० [सं० कुथ+टाप्] कन्था।

कुथुआ—पुं० [सं० कुतूणक] एक रोग जिसके कारण पलकों में छोटे-छोटे दाने पड़ जाते हैं और आँखें दुखने लगती हैं।

कुदई†—स्त्री०=कोदों।

कुदकना—अ० [हिं० कूदना] प्रसन्न होने पर छोटे-छोटे डग भरते हुए बार-बार उछलते चलना। उदा०—मेमनों से मेघों के बाल कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।—पंत।

कुदक्का† —पुं० [हिं० कूदना] उछल-कूद।

मुहा०—कुदक्का मारना=(क) लंबी छलांग मारना। (ख) व्यर्थ इधर-उधर कूदते फिरना।

कुदरत—स्त्री० [अ०] १. शक्ति। सामर्थ्य। २. ईश्वरीय शक्ति। ३. प्रकृति।

पद—कुदरत का खेल=प्रकृति अथवा ईश्वर की अद्भुत लीला। ४. रचना।

कुदरती—वि० [अ०] १. ईश्वर या प्रकृति संबंधी। ईश्वरीय या प्राकृतिक। २. स्वाभाविक।

कुदरा†—पुं० [सं० कुद्दाल] कुदाल। उ०—कुदरा सुरपा बेल...। —सूदन।

कुदर्शन—वि० [सं० कुगति स०] १. जो देखने में भला न जान पड़े। कुरूप। भद्दा। २. जिसे देखना अशुभ माना जाता हो।

कुदलाना* —स० [हिं० कूदना]=कुदाना।

कुदाँई—वि० [हिं० कुदाँव] १. अनुचित ढंग से अथवा अनुपयुक्त अवसर पर स्वार्थ साधनेवाला। २. विश्वासघाती।

कुदाँव—पुं० [सं० कु+हिं० दाँव] १. जान बूझकर चली जानेवाली ऐसी अनुचित चाल जिससे किसी की बहुत बड़ी हानि हो सकती हो। २. विश्वासघात। ३. अनुपयुक्त अवसर या स्थान। ४. मर्म स्थान।

कुदाई* —वि०=कुदाँई।

कु-दान—पुं० [सं० कुगति स०] १. अशुभ कार्य अथवा अशुभ अवसर पर दिया जानेवाला दान। २. कुपात्र को दिया जानेवाला दान।

कुदान—स्त्री० [हिं०कूदना] १. ऊँचे स्थान पर से नीचे स्थान पर कूद कर आने या प्रतिक्रमात् उछलकर जाने की क्रिया या भाव। २. उतनी दूरी जितनी एक बार में कूदकर पार की जाय। ३. वह स्थान जहाँ से अथवा जहाँ पर कूदा जाय। (क्व०)

कुदाना—स० [हिं० कूदना] १. किसी को कूदने में प्रवृत्त करना। जैसे—घोड़ा कुदाना। २. किसी निर्जीव वस्तु को उछलने में प्रवृत्त करना। जैसे—गेंद कुदाना।

कुदाम*—पुं० [सं० कु+हिं० दाम] खोटा या जाली सिक्का।

कुदाय†—पुं०=कुदाँव।

कुदार†—स्त्री०=कुदाल।

कुदारी—स्त्री०=कुदाली।

कुदाल—पुं० [सं० कुद्दाल, कुद्दार; प्रा० कुद्दल; पा० कुद्दालो; गु० कोदालो; सिं० कोद्दी; पं० कुदाल; बं० कोदाल; मरा० कुदल; द्रा० कोडालि] [स्त्री० अल्पा० कुदाली] जमीन या मिट्टी खोदने का एक प्रसिद्ध उपकरण जिसमें लकड़ी का बेंट लगा होता है।

कुदाली—स्त्री०=कुदाल।

कुदास—पुं० [?] जहाज की पतवार का खंभा। (लश०)

कुदिन—पुं० [सं० कुगति स०] १. ऐसा दिन या समय जिसमें कोई व्यक्ति कठिनाई या संकट में पड़ा हो। बुरे दिन। २. ऐसा दिन जिसमें कोई अशुभ घटना घटे। ३. दिन का वह परिमाण जो एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक होता है। सावन दिन।

कुदिष्टि—स्त्री०=कुदृष्टि।

कुदूरत—स्त्री० [अ०] १. द्वेष। २. मलिनता। मैल।

कुदृष्टि—स्त्री० [सं०कुगति स०] १. अनधिकारपूर्वक तथा बुरे उद्देश्य से किसी की ओर देखने की क्रिया। २. ऐसी दृष्टि जिसका परिणाम या फल बुरा हो। बुरी नजर।

कुदेव—पुं० [सं० कु=भूमि-देव=देवता ष० त०] ब्राह्मण।

पुं० [सं०कु=बुरा+देव कुगति स०] १. राक्षस। २. जैनियों के अनुसार अन्य धर्मों के देवता।

कुदौनी† —स्त्री० [हिं० कूदना] १. कूदने की क्रिया, भाव या पारिश्रमिक।

कुद्दार (ल)—पुं०=कुदाल।

कुद्ध* —वि०=क्रुद्ध।

कुद्रंक—पुं० [सं० पृषो०] घंटाघर।

कुद्रव—पुं० [सं० कु√द्रु (गति)+अप्] कोदों।

पुं० [देश०] तलवार चलाने के ३२ हाथों में से एक।

कुध्र—पुं० [सं० कुध्र] १. पर्वत। पहाड़। २. शेषनाग।

कुधातु—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. बुरी धातु। २. मिश्रित धातु। ३. लोहा।

कुधी—वि० [सं० ब० स०] दुष्ट या बुरी बुद्धिवाला।

कुनकुन—वि०=कुनकुना।

कुनकुना—वि० [सं० कदुष्ण; प्रा० कउण्ह] (तरल पदार्थ) जो अधिक गरम न हो। थोड़ा या हलका गरम।

कुनख—पुं० [सं० ब० स०] एक रोग जिसमें नख खराब हो जाते और पककर गिर जाते हैं।
†स्त्री०=अनख।

कुनखी (खिन्)—वि० [सं० कुनख+इनि] १. जो कुनख रोग से पीड़ित हो। २. मलिन या बुरे नखोंवाला।
†वि०=अनखी।

कुनना—स० [सं० क्षुणन या घुणन=घुमाना] १. चमकीला या चिकना बनाने के लिए किसी वस्तु को खरादना। जैसे—बरतन कुनना। २. खरोचना। छीलना।

कुनप—पुं०=कुणप।

कुनबा—पुं० [सं० कुटुंब; प्रा० कुडुंब] एक साथ रहनेवाले एक ही परिवार के सब लोग।
मुहा०—**कुनबा जोड़ना**=कोई असंगत और विलक्षण रचना प्रस्तुत करना। उदा०—कहीं की ईट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा।—कहावत।

कुनबायती†—वि० [हिं० कुनबा] बड़े परिवारवाला।

कुनबी—पुं० [सं० कुटुंब, हिं० कुनबा] एक हिन्दू जाति जो प्रायः खेती-बारी करती है।

कुनलई—स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा कँटीला झाड़।

कुनवा—पुं० [हिं० कुनना] [स्त्री० कुनवी] खराद पर चढ़ाकर लकड़ी, लोहे आदि को कुनने या सुडौल करनेवाला व्यक्ति।

कुनह—स्त्री० [फा० कीनः] [वि० कुनही] किसी के प्रति मन में होनेवाली वह शत्रुतापूर्ण भावना जो बहुत दिनों से मन में दबी चली आ रही हो। पुराना द्वेष या वैर।

कुनही—वि० [हिं० कुनह] जिसके मन में किसी के प्रति कुनह हो।

कुनाई—स्त्री० [हिं० कुनाना=खरादना, खुरचना] १. लकड़ी, लोहे आदि को खराद, खुरच या छीलकर सुडौल बनाने की क्रिया, भाव या मजदूरी। २. लकड़ी, लोहे आदि के वे छोटे या महीन कण जो खरादने, खुरचने, छीलने आदि से निकलते हैं। बुरादा। ३. कोयले आदि का महीन चूरा।

कुनाभि—पुं० [सं० कुगति स०] १. नौ प्रकार की निधियों में से एक। २. बवंडर।

कुनाम (न्)—पुं० [सं० कुगति स०] अपयश। बदनामी।

कुनाल—पुं० [सं० ब० स०] एक प्रकार की पहाड़ी चिड़िया।

कुनालिका—स्त्री० [सं० कुनाल+ठन्—इक, टाप्, इत्व] कोयल।

कुनित*—वि०=क्वणित।

कुनिया†—पुं० [हिं० कुनना] कुनवा (दे०)।
†वि० [हिं० कूतना] कूतनेवाला।
†स्त्री०=कोनिया।

कुनेरा—पुं० [हिं० कुनना] वह जो लकड़ी, लोहे आदि की कुनाई करता हो। खराद का काम करनेवाला व्यक्ति।

कुनैन—स्त्री० [अं० क्विनिन] सिनकोना नामक पेड़ की छाल के रस से बनाई जाने वाली एक पाश्चात्य औषध जो मलेरिया के कीटाणुओं का नाश करती है।

कुन्नना—अ० [फा० कीनः] क्रोध या रोष करना। उदा०—मनु मृगराज म्रिगीनि, जानि कुन्नीय दिख्खिवलि।—चंदवरदाई।

कुपंथ—पुं० [सं० कुपथ] १. कु-पथ। बुरा मार्ग। २. दुराचरण। निषिद्ध आचरण। ३. बुरा मत।

कुपंथी—वि० [हिं० कुपंथ+ई(प्रत्य०)] बुरे मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी।

कुप—पुं० [देश०] घास, भूसा, पुआल आदि का ढेर जो खलिहान में लगाया जाता है।

कुपक—पुं० एक प्रकार का सुरीला पक्षी जो प्रायः पाला जाता है।

कुपढ़—वि० [सं० कु+हिं० पढ़ना] १. अनपढ़। अ-शिक्षित। २. बेवकूफ। मूर्ख।

कुपत्य†—पुं० =कुपथ्य।

कुपत्थी†—वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। असंयमी।

कुपथ—पुं० [सं० कुगति स०] १. कुमार्ग। कु-पंथ। २. निषिद्ध आचरण। बुरी चाल।

कुपथ्य—पुं० [सं० कुगति स०] १. स्वास्थ्य को हानि पहुँचानेवाला आहार-विहार। २. रोगी होने की दशा में किया जानेवाला उक्त प्रकार का आहार-विहार। बद-परहेजी।

कुपा†—पुं० [स्त्री० कुपी] दे० 'कुप्पा'।

कुपाठ—पुं० [सं० कुगति स०] बुरी सलाह। किसी को अनुचित या बुरे काम के लिए दिया जानेवाला परामर्श या पढ़ाई जानेवाली पट्टी। कुमंत्रणा।

कुपाठी (ठिन्)—वि० [सं० कुपाठ+इनि] १. दूसरों को कुपाठ पढ़ानेवाला। २. जिसे दुष्ट उद्देश्य या बुरा काम के लिए सिखा-पढ़ाकर तैयार किया गया हो।

कुपात्र—पुं० [सं० कुगति स०] धार्मिक दृष्टि से वह व्यक्ति जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध हो।
वि० १. बुरा या अयोग्य पात्र। २. अयोग्य। नालायक।

कुपायण—वि० [हिं० कोप ?] १. क्रोध से युक्त। २. बकवादी। उदा०—कहा कुपायण मुख कहै हमहीं दुरगत जाइ।—जटमल।

कुपार—पुं० [सं० अकूपार] समुद्र।

कुपित—वि० [सं० √कुप् (क्रोध करना)+क्त] १. कोप करनेवाला। जिसे गुस्सा चढ़ा हो। २. अप्रसन्न। नाराज।

कुपीन*—पुं० =कौपीन।

कुपुत्र—पुं० [सं० कुगति स०] अयोग्य या अनाज्ञाकारी पुत्र। कपूत।

कुपूत—वि० [कु+पूत] जो पूत अर्थात् पवित्र न हो। उदा०—भो अकरुन करुनाकरो यहि कपूत कलिकाल।
पुं०=कुपुत्र।

कु-पोषण—पुं० [सं० कुगति स०] शरीर के लिए ऐसा पोषण (देखेंगे) जो अनुपयुक्त और हानिकारक हो। (माल-न्यूट्रिशन)

कुप्पक†—पुं० [सं० कोप] घोड़ों का एक रोग जिसमें ज्वर आता और नाक से पानी बहता है।

कुप्पना—अ० [सं० कोप] कोप या क्रोध करना। गुस्सा होना।

उदा०—सुनि कुप्पिय प्रथिराज जान पुंछोय अप्पमलि।—चंदवरदाई।
कुप्पल—पुं० [देश०] एक प्रकार की सब्जी।
कुप्पा—पुं० [सं० कूपक; प्रा० कूपय; गु० कुप्पो; कन्न० कोप्पै; बं० कुपी; मरा० कुप्पी] [स्त्री० अल्पा० कुप्पी] १. घी, तेल आदि रखने के लिए बना हुआ चमड़े का एक प्रकार का गोल या चौकोर बड़ा पात्र। २. लाक्षणिक अर्थ में मोटा-ताजा व्यक्ति।
मुहा०—(किसी का) फूलकर कुप्पा होना=(क) बहुत अधिक मोटा हो जाना। (ख) प्रसन्नता से फूले न समाना। (मुँह) कुप्पा होना=क्रोध या नाराजगी के कारण मुँह फूल जाना। (कोई चीज) कुप्पा होना=सूज जाना। सूजना।
कुप्पासाज—पुं० [हिं० कुप्पा+फा० साज] कुप्पे बनानेवाला कारीगर।
कुप्पी—स्त्री० [हिं० कुप्पा] छोटा कुप्पा।
कु-प्रबंध—पुं० [कुगति स०] खराब या बुरा प्रबंध।
कु-प्रयोग—पुं० [कुगति स०] किसी वस्तु का अनुचित रूप या बुरी तरह से होनेवाला प्रयोग।
कु-फल—पुं० [सं० कुगति सं०] किसी कार्य या बात का मिलने या होनेवाला बुरा फल।
कुफुत—पुं० [फा० कोफ़्त] १. मन-ही-मन होनेवाली विकट चिंता। २. अफसोस। रंज।
कुफुर*—पुं० [अ० कुफ़्] मुसलमानी मत से भिन्न या दूसरा मत।
विशेष—दे० 'कुफ्र'।
कुफेन—स्त्री० [सं० ब० स०] काबुल नदी का प्राचीन नाम।
कुफ्र—पुं० [अ० कुफ़्] १. इस्लाम धर्म या मत के अनुसार उससे भिन्न अन्य धर्म या मत। २. ऐसा आचरण, बात या सिद्धान्त जो इस्लाम-धर्म के प्रतिकूल या विरुद्ध हो। ३. दुराग्रह। हठ। ४. कृतघ्नता।
कुफ़्ल—पुं० [अ० कुफ़्ल] ताला।
कुफ़्ली—स्त्री० दे० 'कुलफी'।
कुबंड*—पुं० [सं० कोदंड] धनुष।
वि० [हिं० कूबड़?] टूटे या विकृत अंगोंवाला। विकलांग।
कुबा—पुं०=कूबड़।
कुबग—पु० [?] गिलहरी की तरह का एक प्रकार का छोटा जंतु जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं।
कुबज*—वि०=कुब्ज (टेढ़ा)।
कुबजा—स्त्री०=कुब्जा।
वि० १. =कुब्ज (टेढ़ा)। २. =कुबड़ा।
कुबड़ा—पुं० [सं० कुब्ज] [स्त्री० कुबड़ी] ऐसा व्यक्ति जिसकी पीठ आगे की ओर झुकी हुई हो।
वि० झुका हुआ। टेढ़ा। वक्र। उदा०—चंद दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढ़ि।—रहीम।
कुबड़ापन—पुं० [हिं० कुबड़ा+पन (प्रत्य०)] कुबड़े होने की अवस्था या भाव।
कुबड़ी—स्त्री० [हिं० कुबड़ा] १. ऐसी स्त्री जिसकी कमर आगे की ओर झुकी हो। २. ऐसी छड़ी जिसका ऊपरी भाग कुछ झुका हुआ हो।
वि० टेढ़ी। वक्र।

कुबत—स्त्री० [सं० कु+हिं० बात] १. अनुचित, निंदनीय या बुरी बात। २. निंदा। ३. बुरा आचरण या चाल-चलन।
कुबरी—स्त्री० १. =कुबड़ी। २. =कुब्जा।
कुबलयापीड़—पु०=कुवलयापीड़।
कु-बलि—स्त्री० [स० कुगति स०] १. निंदनीय, हीन या बुरी बलि। २. बुरी तरह से चढ़ाई हुई बलि। उदा०—कुबरी करी, कुबलि कैकेयी।—तुलसी।
कुबली—स्त्री० [सं० कुवलय=भूमंडल (लाक्षणिक अर्थ में गोल)] गेंद की तरह गोल लपेटी हुई चीज। पिंडी। गोला।
कुबहा—वि० [हिं० कूबड़] १. (व्यक्ति) जिसकी पीठ पर कूबड़ हो। २. (पदार्थ) टेढ़ा। वक्र।
कुबाक*—पु० [सं० कुवाक्य] १. कुवचन। गाली। २. शाप। ३. अशुभ या बुरी बात
कुबानि—स्त्री० [सं० कु+हिं० बान] अनुचित या बुरी आदत। बुरी लत या टेव।
कुबानी—स्त्री० [सं० कु+बानी (वाणिज्य)] बुरा वाणिज्य। दूषित या बुरा व्यवसाय।
स्त्री० [सं० कु+वाणी] मुँह से निकली हुई अनुचित, अशुभ या बुरी बात।
कुबासन—स्त्री०=कुवासन।
कुबिचार*—वि०=कुविचार।
कुबिचारी*—वि०=कुविचारी।
कुबिजा*—स्त्री०=कुब्जा।
कुबुद—पुं० [फा० कबूद=चितकबरा] एक प्रकार का बगला।
कु-बुद्धि—वि० [सं० ब० स०] निकृष्ट बुद्धिवाला। दुर्बुद्धि।
स्त्री० [कुगति स०] १. बुरी या हानिकारक बुद्धि। २. मूर्खता।
कुबेर—पुं० =कुवेर।
कुबेला—स्त्री० [सं० कुवेला] १. अनुपयुक्त या बुरा समय। २. दुर्दिन।
कुबोल—पु० [सं० कु+हिं० बोल] किसी को या किसी के संबंध में कही जानेवाली अनुचित, अशुभ या बुरी बात। बुरा बचन।
कुबोलना—पुं० [हिं० कुबोल] [स्त्री० कुबोलिनी] अनुचित, अशुभ या बुरी बातें कहने या बोलनेवाला। कुभाषी।
कुब्ज—वि० [सं०कु√उब्ज् (सीधा करना)+अच्] [स्त्री० कुब्जा] १. जिसकी पीठ झुक गई हो या टेढ़ी हो। कुबड़ा। २. टेढ़ा। वक्र।
पुं० एक रोग जिसमें पीठ कुछ टेढ़ी होकर आगे की ओर झुक जाती है।
कुब्ज-कंठ—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी के गले में पानी नही उतरता।
कुब्जक—पुं० [सं० कु √उब्ज्+ण्वुल्—अक] मालती।
वि० =कुबड़ा।
कुब्जा—स्त्री० [सं० कुब्ज+टाप्] १. कुबड़ी स्त्री। २. कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।
कुब्जिका—स्त्री० [सं० कुब्जक+टाप्, इत्व] १. आठ वर्ष की लड़की। २. दुर्गा का एक नाम।
कुब्बा—पुं० [हिं० कुबड़ा] [स्त्री० कुब्बी] कूबड़। डिल्ला।
वि० १. टेढ़ा। २. कुबड़ा।

कु-भा—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. अप्रिय या बुरी आभा अथवा दीप्ति। २. ग्रहण के समय पड़नेवाली पृथ्वी की छाया। ३. काबुल नदी का पुराना नाम।
कु-भाव—पुं० [सं० कुगति स०] अनुचित, दूषित या बुरा भाव। उदा०—भाव कुभाव अनख आलसहू।—तुलसी।
कुभृत्—पुं० [सं० कु√भृ (धारण करना) + क्विप्] १. पर्वत। २. शेषनाग का एक नाम। ३. सात की संख्या।
कुमंठी*—स्त्री० =कमठी।
कुमंत्रणा—स्त्री०[सं० कुगति स०] अनुचित अथवा बुरी मंत्रणा या सलाह।
कुमंत्रित—वि० [सं० कुगति स०] (व्यक्ति) जिसे बुरी मंत्रणा दी गई हो। (इल-एडवाइज्ड)
कुमइत†—पुं०=कुम्मैत।
कुमक—स्त्री०[तु०] १. सैनिक कार्यो के लिए अथवा सैनिकों आदि के रूप में मिलनेवाली सहायता। २. किसी प्रकार की मदद या सहायता।
कुमकी—वि० [तु० कुमक] कुमक का।
स्त्री० वह प्रशिक्षित हथनी जिसकी सहायता से हाथी पकड़े जाते हों।
कुमकुम—पुं०[सं० कुंकुम] १. केसर। २. रोली। ३. नीबू के रस में भिगोई हुई हल्दी, जिसके छापे मांगलिक अवसरों पर लगाये जाते थे। ४. दे० 'कुमकुमा'।
कुमकुमा—पुं० [तु० क़ुमक़ुमा] १.लाख का बना हुआ एक प्रकार का पोला गोला जिसमें अबीर, गुलाल आदि भरकर होली के दिनों में लोग एक दूसरे पर फेंकते हैं। २.उक्त आकार के काँच के पोले रंगीन गोले जो छतों में शोभा के लिए लटकाये जाते हैं। ३. छोटे या तंग मुँहवाला एक प्रकार का लोटा। ४. नक्काशी के काम के लिए सुनारों की एक प्रकार की टाँकी।
कुमकुमी—वि० [हिं० कुमकुमा] कुमकुमे के आकार का। गोल और पोला।
कुमरिया—पुं० [?] हाथियों की एक जाति।
कुमरी—स्त्री०[अ०] पंडुक की जाति का एक पक्षी। वनमुर्गी।
कुमलाना—अ० =कुम्हलाना।
कुमसुम—पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम आती है।
कुमाइच—स्त्री० [हिं० कुमाच] सारंगी बजाने की कमानी।
कुमाच—पुं० [अ० कुमाश] १.एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उदा०—काम जु आवै कामरी का लै करै कुमाच।—तुलसी। २. गंजीफे मे पत्तों का एक रंग। ३. मोटी और बेडौल रोटी।
कुमार—पुं० [सं०√कुमार् (खेलना)+अच्] १. छोटा बालक, जिसकी अवस्था पाँच वर्ष तक की हो। २. युवक। ३. पुत्र। बेटा। ४. राजपुत्र। राजकुमार। ५. सनंदन, सनक, सनत्, सुजात आदि ऋषि जिनके विषय में यह माना जाता है कि ये सदा बालक ही बने रहते हैं। ६. अग्नि। ७. अग्नि के एक पुत्र का नाम। ८. एक प्रजापति का नाम। ९. भारतवर्ष का एक पुराना नाम। १०. सिंधु नद का एक नाम। ११. कार्तिकेय। १२. जैनों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के बारहवें जिन। १३. साईस। १४. तोता। सुग्गा। १५. खरा सोना। १६. मंगल ग्रह। १७. एक ग्रह जो बच्चों के लिए भारी होता है।
वि० [स्त्री० कुमारी] जिसका विवाह न हुआ हो। क्वारा।
कुमारग†—पुं०=कुमार्ग।
कुमार-तंत्र—पुं० [मध्य० स०] आयुर्वेद का वह विभाग जिसमें बच्चों को होनेवाले रोगों का विवेचन है और उनकी चिकित्सा के उपाय बतलाये गये हैं। बालतंत्र।
कुमारबाज—पुं० [अ० किमार=जूआ+फा० बाज (प्रत्य०)] जूआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआरी।
कुमारबाजी—स्त्री० [अ० किमार=जूआ+फा० बाजी (प्रत्य०)] जूआ खेलने की क्रिया या भाव। जुआरीपन।
कुमार-भृत्या—स्त्री० [ष० त०] १. वह विद्या जिसमें यह बतलाया जाता है कि गर्भिणी को सुखपूर्वक कैसे प्रसव कराया जाय। (मिडवाइफरी) २. गर्भिणी अथवा नवजात शिशुओं के रोगों की चिकित्सा।
कुमारयु—पुं० [सं० कुमार√या (गति)+कु (नि०)] राजकुमार। राज-पुत्र।
कुमार-ललिता—स्त्री० [ब० स०] १. सात अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रमशः एक जगण, एक सगण और अन्त में एक गुरु होता है। २. बच्चों की क्रीड़ा या खेल।
कुमार-लसिता—स्त्री० [ब० स०] आठ अक्षरों का एक वर्णवृत्त।
कुमार-वाहन—पुं० [ष० त०] मयूर। मोर।
कुमार-व्रत—पुं० [ष० त०] ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन।
कुमारसू—स्त्री० [सं० कुमार√सू (उत्पत्ति)+क्विप्] पार्वती।
कुमारामात्य—पुं० [सं० कुमार-अमात्य कर्म० स०] प्राचीन भारत में राज-परिवार का वह अधिकारी जो किसी मंत्री या दंड-नायक के अधीन या सहायक रूप में काम करता था।
कुमारिक—वि० [सं० कुमार+ठन्—इक] (व्यक्ति) जिसके यहाँ बहुत-से बच्चे हों।
कुमारिका—स्त्री० [सं० कुमारी+कन्, टाप्, ह्रस्व] १. कुँआरी कन्या। कुमारी। २. पुत्री।
कुमारिल भट्ट—पुं० शावर भाष्य के रचयिता तथा अन्य श्रौत सूत्रों के प्रसिद्ध टीकाकार, जिनके बौद्ध गुरु के किये गये अपमान के प्रायश्चित्त-स्वरूप तुषानल में जल मरने की कथा प्रसिद्ध है।
कुमारी—स्त्री० [सं० कुमार+ङीप्] १. बारह वर्ष तक की अवस्था की वह कन्या जिसका अभी विवाह न हुआ हो। २. पार्वती। ३. दुर्गा। ४. सीता। ५. भारत के दक्षिणी भाग का वह अंतरीप जहाँ पार्वती ने बैठकर शिव के लिए तपस्या की थी। ६. शाकद्वीप की एक नदी। ७. पृथ्वी का मध्य भाग। ८. रहस्य-संप्रदाय में ऐसी माया या संपत्ति जिसका भोग न किया जाता हो। ९. नव-मल्लिका। १०. बाँझ ककोड़ी। ११. चमेली। १२. सेवती। १३. बड़ी इलायची। १४. घीकुआर। घृत कुमारी।
वि० (बालिका) जिसका अभी तक विवाह न हुआ हो। कुँआरी।
कुमारी-पूजन—पुं० [ष० त०] कुमारी कन्या को देवी के रूप में मानकर उसकी की जानेवाली पूजा (प्रायः नवरात्र आदि में)।
कुमार्ग—पुं० [सं० कुगति स०] [वि० कुमार्गी] १. अनुचित या बुरा मार्ग।

ऐसा मार्ग जिस पर चलना लोक में बुरा समझा जाता हो। २. अधर्म। ३. पाप।
कुमार्गगामी (मिन्)—वि० [सं० कुमार्ग√गम्+णिनि] १. कुमार्ग पर चलनेवाला। २. आचरण-भ्रष्ट। ३. अधर्मी। ४. पापी।
कुमार्गी (गिन्)—वि० [सं० कुमार्ग+इनि] [स्त्री० कुमार्गिनी] १. कुमार्ग पर चलनेवाला। २. आचरण-भ्रष्ट। ३. अधर्मी। पापी।
कुमालक—पुं० [सं० कुमार+कन्, र=ल] १. एक प्राचीन देश जो आधुनिक मालवे के आस-पास था। २. उक्त देश का निवासी।
कुमाला—पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष।
कुमीच—वि० [हिं० कु+मीच=मृत्यु] बहुत दुर्दशा भोगकर या बुरी तरह से मरनेवाला। उदा०—कहा जानै कैंवां मुवौ ऐसौ कुमति कुमीच।—सूर।
स्त्री० बहुत ही दुर्दशा भोगकर या बुरी तरह से होनेवाली मृत्यु।
कुमुक—स्त्री०=कुमक।
कु-मुख—पुं० [सं० ब० स०] १. रावण के दल का दुर्मुख नाम का योद्धा। २. सूअर।
वि० बुरे मुखवाला। कुरूप।
कुमुद्—पुं०, वि० [सं० कु√मुद् (प्रसन्न होना)+क्विप्]=कुमुद।
कुमुद—पुं० [सं० कु√मुद्+क] १. कुईं। कोका। २. लाल कमल। ३. चाँदी। ४. विष्णु। ५. विष्णु के एक पार्षद का नाम। ६. एक नाग का नाम। ७. एक दिग्गज का नाम। ८. राम की सेना के एक बन्दर का नाम। ९. संगीत में एक प्रकार का ताल। १०. एक द्वीप का नाम। ११. एक केतु तारा।
वि० १. कंजूस। २. लोभी।
कुमुदनी—स्त्री०=कुमुदिनी।
कुमुद-बंधु—पुं० [ष० त०] चंद्रमा।
कुमुदिक—वि० [सं० कुमुद+ठन्—इक] १. कुमुद-संबंधी। २. कुमुदों से पूर्ण या युक्त।
कुमुदिका—स्त्री० [सं० कुमुद+ठच्—इक, टाप्] कट्फल।
कुमुदिनी—स्त्री० [सं० कुमुद+इनि—ङीप्] १. एक प्रकार का पौधा जिसमें कमल की तरह के सफेद, पर छोटे फूल लगते है। २. उक्त पौधे के फूल जो रात के समय खिलते है। कुईं। कोईं। ३. वह स्थान जहाँ बहुत-से कुमुद हों।
कुमुदिनी-पति—पुं० [ष० त०] चंद्रमा।
कुमुद्वती—स्त्री० [सं० कुमुद्+ड्मतुप्, म=व] १. षड्ज स्वर की दूसरी श्रुति। २. कुश की पत्नी जो नागराज कुमुद की बहन थी।
कुमेड़िया—पुं०=कुमरिया (हाथी)।
कुमेदान—पुं० [अ० कुम्मः+फा० दान] मुसलमानी शासन-काल में एक सैनिक पदाधिकारी। जैसे—शाही में अब्बा कुमेदान थे।
कु-मेरु—पुं० [सं० उपमि० स०] पृथ्वी का दक्षिणी सिरा। दक्षिणी ध्रुव। (साउथ पोल)
कुमेड़†—पुं० [हिं० कु+मेंड़=मेंड़] १. बुरा रास्ता। कुमार्ग। २. कपट। छल। धोखा।
कुमेड़िया†—वि०=कुमार्गी।
कुमैत—वि०, पुं०=कुम्मैत।
कुमोद*—पुं०=कुमुद।
कुमोदक—पुं० [सं० कु√मुद् (हर्ष) +णिच् +ण्वुल्—अक] विष्णु।
कुमोदनी*—स्त्री०=कुमुदिनी।
कुम्मैत—पुं० [तु० कुमेत] १. घोड़े का एक रंग जो कुछ कालापन लिये लाल होता है। लाखी। २. उक्त रंग का घोड़ा। कुरंग। हांसल। हिनाई।
वि० जिसका रंग कुछ कालापन लिये लाल हो।
कुम्मैद*—पुं०, वि०=कुम्मैत।
कुम्हड़ा—पुं० [सं० कूष्माण्ड, पा० कुम्हंड, प्रा० कुमंड] १. बड़े रोएँदार तथा गोल पत्तोंवाली एक प्रसिद्ध बेल जिसके फल बड़े और गोल होते हैं। २. उक्त बेल का फल जिसकी तरकारी बनती है। काशीफल।
पद—**कुम्हड़े की बतिया**=अशक्त या दुर्बल मनुष्य।
कुम्हड़ौरी—स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा+औरी] सफेद कुम्हड़े के कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़ों को पीठी में लपेटकर तैयार की हुई बड़ियाँ जिनकी तरकारी बनती है।
कुम्हरौटी—स्त्री० [हिं० कुम्हार+औटी (प्रत्य०)] वह काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। जटाव।
कुम्हलाना—अ० [सं० कु+म्लान] १. वनस्पतियों आदि का अधिक ताप या शीत न सह सकने के कारण कुछ-कुछ सूखने पर होना। २. किसी वस्तु की ताजगी या हरापन जाता रहना। ३. चिन्ता, दुःख आदि के कारण किसी के चेहरे का रंग फीका पड़ना।
कुम्हार—पुं० [सं० कुंभ-कार; प्रा० कुम्भआर; कुम्भार; गु० मरा० कुंभार; सिं० कुंभरू; पं० कुम्ह्यार; बं० कुमार; सिंह० कुंबुकरु] [स्त्री० कुम्हारी, कुम्हारिन] १. एक जाति जो मिट्टी के बर्तन बनाती और उन्हीं के द्वारा अपनी जीविका चलाती है। २. उक्त जाति का व्यक्ति।
कुम्हारी—स्त्री० [हिं० कुम्हार] १. कुम्हार की स्त्री। २. कुम्हार का काम, पद या भाव। कुंभकारी। (पॉटरी)
वि० कुम्हार का। कुम्हार-संबंधी।
कुम्ही—स्त्री० [सं० कुंभी] जलकुंभी नाम की लता।
कुम्हेरी†—स्त्री०=कुम्हारी।
कु-यश (स्)—पुं० [सं० कुगति स०] अपयश। बदनामी।
कुयोधन—पुं० [सं० ब० स०] दुर्योधन का दूसरा नाम।
कुयोनि—स्त्री० [सं० कुगति स०] क्षुद्र जंतुओं की योनि। तिर्यग् योनि।
कुरंकर—पुं० [सं० कुरम्√कृ (करना)+ट] सारस।
कुरंकुर—पुं०=कुरंकर।
कुरंग—पुं० [सं० कु√रंग् (गति)+अच्] [स्त्री० कुरंगी] १. तामड़े या बादामी रंग का हिरन। ३. बरवै नामक छंद का एक नाम।
पुं० [सं० कु+हिं० रंग] १. बुरा रंग। २. बुरा लक्षण।
वि० बुरे रंग का। बदरंग।
वि०, पुं०=कुम्मैत।
कुरंगक—पुं० [सं० कुरंग+कन्] मृग।
कुरंगम—पुं० [सं० कुर√गम् (जाना)+खच्, मुम्]=कुरंग।
कुरंग-लांछन—पुं० [ब० स०] चंद्रमा।

कुरंग-सार—पुं० [ष० त०] कुरंग अर्थात् हिरन की नाभि में से निकलने-वाला सुगंधित द्रव्य। कस्तूरी।

कुरंगिन—स्त्री० [सं० कुरंग] मादा हिरन। हिरनी।

कुरंगिय† —पुं० १. =कुरंग। २. =कुलंग।

कु-रंगी—वि० [हिं० कुरंग] १. बुरे या भद्दे रंगवाला। २. बुरे रंग-ढंग या लक्षणोंवाला।

कुरंट—पुं० [सं०√कुर् (शब्द करना)+अंटक्] पीली कटसरैया।

कुरंटिका—स्त्री० [सं० कुरंट+कन्—टाप्, इत्व]=कुरंट।

कुरंड—पुं० [सं० कुरुविंद=माणिक] १. एक प्रकार का खनिज पदार्थ जिसके चूर्ण को लाख आदि में मिलाकर हथियार तेज करने की सान बनाई जाती है। २. उक्त खनिज पदार्थ तथा लाख आदि की सहायता से बनाई जानेवाली सान। (ह्वेट-स्टोन)

पुं० [सं०√कुर्+अंडक्] १. साकुरुंड वृक्ष जो गुजरात में पाया जाता है। २. अखरोट का पेड़। अक्षोट वृक्ष। ३. अंड-वृद्धि का रोग।

कुरंडक—पुं० [सं० कुरंड+कन्] पीली कटसरैया।

कुरंवा—पुं० [देश०] भेड़ों की एक जाति।

कुरंभ†—पुं० [?] कछुआ। उदा०—ढैंक कुरंभ कुरंच, हंस सारस सुभ भासिय।—चंदवरदाई।

कुर*—पुं०=कुल।

कुरआन—पुं०=कुरान।

कुरकनी—स्त्री० [देश०] गधे, घोड़े आदि पशुओं की खाल का अगला भाग।

कुरका—स्त्री० [सं० कुर√कै (शब्द करना)+क—टाप्] १. चीड़ या सलई की लकड़ी। २. ताम्रपर्णी नदी के किनारे की एक प्राचीन नगरी।

कुरकी†—स्त्री०=कुर्की।

कुरकुंड—पुं० [देश०] कनखुरा या रीहा नामक घास।

कुरकुट*—पुं०=कुक्कुट (मुरगा)।

कुरकुटा—पुं० [देश०] बहुत ही घटिया अन्न या उसका बना हुआ भोजन। उदा०—गंधक कहाँ कुरकुटा खावा।—जायसी।

कुरकुर—पुं० [अनु०] १. कुरकुरी वस्तु के टूटने पर होनेवाला शब्द। २. करारी या खस्ता चीज खाने पर होनेवाला शब्द।

कुरकुरा†—वि० [अनु०] १. (पदार्थ) जो कुरकुर शब्द करता हुआ टूटे। मुरमुरा। २. (खाद्य पदार्थ) जिसे खाने में कुरकुर शब्द हो। जैसे—कुरकुरे चने।

कुरकुराहट—स्त्री० [हिं० कुरकुर] कुरकुर शब्द करने या होने का भाव।

कुरकुरी—स्त्री० [अनु०] १. पतली, मुलायम तथा लचीली हड्डी। २. घोड़ों को होनेवाला एक रोग जिसके कारण उसका पाखाना और पेशाव बन्द हो जाता है।

कुरखेत*—पुं०=कुरुक्षेत्र।

पुं० [हिं० कुर+खेत] ऐसा खेत जिसमें बीज अभी न बोया गया हो अथवा अभी बोया जाने को हो।

कुरगरा—पुं० [देश०] राज-मजदूरों की एक प्रकार की छोटी थापी।

कुरचा†—पुं० [सं० क्रौंच] कराँकुल (पक्षी)।

कुरचिल्ल—पुं० [सं० कुर√चिल्ल् (शिथिल होना)+अच्] केकड़ा।

कुरज*—पुं० [सं० क्रौंच] कराँकुल (पक्षी)।

कुरट—पुं० [सं०√कुर्+अटन्] १. चमड़े का व्यापार करनेवाला व्यक्ति। २. चमड़े की वस्तुएँ बनानेवाला कारीगर। ३. मोची।

कुरड़ा—पुं० [देश०] [स्त्री० कुरड़ी] १. घोड़े की एक जाति जो अरबी तथा तुर्की घोड़ों के योग से उत्पन्न मानी जाती है। २. संकर जाति या नस्ल का घोड़ा।

कुरता—पुं० [तु०] [स्त्री० अल्पा० कुरती] कमीज के आकार का परन्तु ढीला-ढाला सिला हुआ एक प्रसिद्ध परिधान जिससे पूरा धड़ तथा दोनों बाहें ढक जाती हैं।

कुरती—स्त्री० [हिं० कुरता] १. स्त्रियों के पहनने का छोटा कुरता जिसमें प्रायः आगे की ओर बटन लगे रहते हैं। २. अँगिया या चोली के नीचे स्तन ढकने के लिए पहना जानेवाला एक परिधान।

कुरथी*—स्त्री०=कुलथी।

कुरन†—पुं०=कुरंड।

कुरना*—अ० [हिं० कूरा=राशि] वस्तुओं को एक जगह एकत्र करना तथा उनका ढेर लगाना।

†अ०=कुलरना (कलरव करना)।

कुरवनही—स्त्री० [हिं० कोर+बनाना] रुखानी के आकार का बढ़इयों का एक औजार जिससे वे लकड़ियों में कोर, नास आदि बनाते हैं।

कुरवान—वि० [अ०] १. जो किसी अच्छे उद्देश्य की सिद्धि के लिए बलि चढ़ाया गया हो। २. निछावर।

मुहा०— **कुरवान जाना**=(किसी पर) निछावर होना।

कुरवानी—स्त्री० [अ०] १. किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए अथवा अपनी किसी मनःकामना की पूर्ति के लिए किसी इष्टदेव के सम्मुख किसी जीव या प्राणी को बलि चढ़ाने की क्रिया या भाव। २. किसी महान् या स्तुत्य उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जानेवाला पूरा या बहुत बड़ा त्याग। ३. आत्म-बलिदान। आत्म-त्याग।

कुरमा†—पुं०=कुनबा।

कुरर—पुं० [सं०√कु (शब्द करना)+क्ररच्] [स्त्री० कुररी] १. गिद्ध की तरह का एक पक्षी। २. कराँकुल या क्रौंच नामक पक्षी। ३. टिट्टिभ। टिटिहरी।

कुररा—पुं० [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] १. कराँकुल। क्रौंच। २. टिटिहरी।

कुररी—पुं० [सं० कुरर+ङीप्] १. आर्या छंद का एक भेद जिसमें चार गुरु और उनचास लघु होते हैं।

स्त्री० [सं० कुरर] सिलेटी रंग की तथा लंबी चोंचवाली एक प्रसिद्ध चिड़िया।

कुरल—पुं० [सं०√कु (शब्द करना)+क्रन्, र=ल] १. कराँकुल। क्रौंच (पक्षी)। २. घुँघराले बाल।

वि० घुँघराला (बाल)।

कुरलना*—अ० [सं० कलरव या कुरव, हिं० कुर्र] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना। कलरव करना।

कुरला—पुं०=कुल्ला।

पुं० [सं०] लाल फलों की कटसरैया।

कुरलाना—अ० [सं० करुणा] करुण स्वर में बोलना। आर्त्त-नाद करना।

स० किसी को कुरलने में प्रवृत्त करना।
† अ०=कुरलना।
कु-रव—पुं० [सं० कुगति स०] १. बुरा शब्द। २. कर्कश स्वर। ३. [ब० स०] गीदड़। सियार।
वि० कर्कश या खराब ध्वनि या स्वरवाला।
पुं०=कुरवक।
कुरवक—पुं० [सं० कुरव+कन्]=कुरव।
पुं० १. एक प्रसिद्ध पौधा जिसमें लाल फूल लगते हैं। लाल कुरैया। २. उक्त पौधे के फूल। ३. सफेद मदार और उसके फूल।
कुरवा†—पुं० [सं० कुड़व] अनाज मापने का लकड़ी का बना हुआ एक बरतन।
† पुं०=कुरवक।
कुरवारना†—स० [सं० कर्त्तन] १. खरोंचना। २. खोदना।
कुरविंद—पुं०=कुरुविंद।
कुरपना—अ० [सं० करुप] चिढ़ना। रुष्ट होना।
कुरसथ—पुं० [देश०] एक तरह की मटमैली खाँड़।
कुरसा—पुं० [देश०] १. जल्दी बढ़कर फैलनेवाला एक प्रकार का सुहावना वृक्ष। २. जंगली गोभी का पौधा।
पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की बड़ी मछली।
कुरसी—स्त्री० [अ०] १. चार पायोंवाली एक प्रकार की ऊँची चौकी जिस पर एक व्यक्ति बैठता है तथा जिसमें पीठ के सहारे के लिए पटरी लगी रहती है। (चेअर)
यौ०—आराम कुरसी=एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिस पर आदमी लेट सकता है।
मुहा०—कुरसी तोड़ना=भार बनकर कुरसी पर बेकार बैठे रहना।
२. वह स्थान जिस पर कोई अधिकारी बैठता हो। अधिकारी का पद। जैसे—आज तो कोई मंत्री की कुरसी पर बैठ सकता है।
मुहा०—(किसी को) कुरसी देना=आदरपूर्वक बैठाना।
३. इमारत या भवन का उतना निर्मित अंश जो जमीन में चबूतरे की तरह रहता है और जिसके ऊपर इमारत बनती है। (प्लिन्थ) ४. जहाज के मस्तूल के ऊपर की वे आड़ी तिरछी लकड़ियाँ जिन पर खड़े होकर मल्लाह पाल की रस्सियाँ तानते हैं। ५. नाव के किनारे-किनारे लगे हुए तख्ते जिन पर आदमी बैठते हैं। पादारक। ६. पीढ़ी। पुश्त।
पद—कुरसीनामा (देखें)।
७. हुमेल के बीच की चौकोर चौकी। उरबसी। तावीज।
कुरसीनामा—पुं० [अ०] वंशवृक्ष जिसमें किसी वंश की पीढ़ियों के लोग अलग-अलग अपने पद के अनुसार दिखाये या लिखे जाते हैं।
कुरा—पुं० [अ० कुरह] घाव, रोग आदि के कारण शरीर के किसी अंग में पड़नेवाली गाँठ।
स्त्री० [सं० कुरव] कटसरैया।
कुराई*—स्त्री० [सं० कु+हिं० राह] १. बुरा रास्ता। कु-पथ। २. ऊबड़-खाबड़ मार्ग।
पुं०=कुमार्गी।
स्त्री० [देश०] अपराधियों के पाँवों में डालने का काठ।
कुरान—पुं० [अ०] मुसलमानों का प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ जिसमें हजरत मुहम्मद की वाणियाँ संकलित हैं।
मुहा०—कुरान उठाना=कुरान हाथ में लेकर उसकी शपथ खाना।
कुरारी—स्त्री० [हिं० कुररी] टिटिहरी। उदा०—बाएँ कुरारी दाहिन कूचा।—जायसी।
कुराल—पुं० [देश०] पहाड़ी प्रदेशों में होनेवाला एक वृक्ष।
कुराह—स्त्री० [सं० कु+फा० राह] [वि० कुराही] १. कु-पथ। कुमार्ग। २. ऊबड़-खाबड़, दूर का या विकट मार्ग।
कुराहर*—पुं० [सं० कोलाहल] कोलाहल। शोर-शराबा।
वि० [हिं० कुराह] बुरे रास्ते पर चलनेवाला।
कुराही—वि० [हिं० कुराह+ई (प्रत्य०)] १. कुराह अर्थात् अनुचित या बुरे मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। २. दुराचारी। बदचलन।
कुरिंद*—पुं० [?] दरिद्र। (डिं०)
कुरिआरना—स० [हिं० कुरेदना] कोई चीज निकालने के लिए कुछ काटना या खोदना। उदा०—सुख कुरिआर फरहरी खाना।—जायसी।
कुरिया—स्त्री० [सं० कुटी, कुटीका] १. फूस की झोंपड़ी। कुटिया। मड़ई। २. छोटा गाँव।
स्त्री० [हिं० कुरेना=ढेर लगाना] ढेर। राशि।
कुरियाना†—स० १. =कुरेदना। २. =कुरेना (ढेर लगाना)।
कुरियाल—स्त्री० [सं० कल्लोल] चिड़ियों आदि का पंख खुजलाना।
मुहा०—कुरियाल में आना=आनन्द में मग्न होना। मौज में आना। कुरियाल में गुलेला लगना=रंग में भंग होना।
कुरिल†—पुं०=कुरट।
कुरिहार—पुं० [सं० कोलाहल] शोर-गुल। उदा०—को नहिं करै कोल कुरिहारा।—जायसी।
कुरी—पुं० [सं० कु√रा (दान)+क, ङीप्] १. चेना नामक कदन्न। २. अरहर की फलियाँ।
पुं० [सं० कुल] १. खानदान। वंश। २. मकान। घर।
स्त्री० [हिं० कुरैना=ढेर लगाना] ढेर। राशि।
कुरीति—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. अनुचित या बुरी प्रथा या रीति। ऐसी रीति जो समाज में अच्छी न समझी जाती हो। कुप्रथा। २. दुराचरण। कुचाल। अनरीति।
कुरीर—पुं० [सं०√कृ (करना)+कीरन्, उत्व] संभोग। मैथुन।
कुरुंट (क)—पुं० [सं० कु√रुण्ट् (चुराना)+अण् (कुरुंट+क)] लाल कटसरैया।
कुरुंड—पुं० [सं० कु√रुण्ड् (चुराना)+अण्] लाल कटसरैया।
† पुं०=कुरंड।
कुरुंब—पुं० [सं०√कु+उम्बच्, उत्व] नारंगी का पेड़ और उसका फल।
कुरुंबा—स्त्री० [सं० कुरुंब+टाप्] द्रोणपुष्पी।
कुरुंबिका—स्त्री० [सं० कुरुंब+कन्+टाप्, इत्व]=कुरुंबा।
कुरु—पुं० [सं०√कृ+कु, उत्व] १. आर्यों का एक प्राचीन कुल। २. एक प्राचीन प्रदेश जिसके अन्तर्गत कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये तीन इलाके थे। ३. एक प्रसिद्ध राजा जिसके वंश में पाण्डु और धृतराष्ट्र हुए थे। ४. उक्त वंश में उत्पन्न पुरुष।
*पुं०=कर्त्ता।

*वि०=क्रूर।

कुरुआ—पुं० [सं० कुडव] अन्न मापने का एक पात्र जिसमें लगभग दस छटाँक अन्न आता है।

कुरुआर—स्त्री० [हिं० कुरियाल] चिड़ियों आदि का मौज में पंख खुजलाना। उदा०—कोउ नहिं करै केलि कुरुआरा।—जायसी।

कुरुई—स्त्री० [सं० कुडव] बाँस या मूँज की छोटी डलिया। मौनी।

कुरु-क्षेत्र—पुं० [मध्य० स०] १. दिल्ली और अम्बाले के बीच के उस प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था। २. उक्त प्रदेश में स्थित एक तीर्थ जहाँ सूर्य-ग्रहण के समय स्नान करने के लिए लोग जाते हैं।

कुरुख—वि० [सं० कु+फा० रुख] १. जिसने किसी के प्रति उदारता, दया, प्रेम आदि का भाव छोड़ दिया हो। २. कुपित। नाराज।

कुरुखेत*—पुं०=कुरुक्षेत्र।

कुरुजांगल—पुं० [द्व० स०] एक प्राचीन प्रदेश जो पांचाल देश के पश्चिम में था।

कुरुम*—पुं० [सं० कूर्म्म] कूर्म। कच्छप। उदा०—नवनत कुरुम पीठि कलमली।—जायसी।

कुरुल—पुं० [सं०] सिर के बालों की लट।

पुं०=कुरंड।

कुरुला—स्त्री० [सं० कुरुल+टाप्] एक प्रकार की गमक (संगीत)।

कुरुविंद—पुं० [सं० कुरु√विद् (लाभ)+श, मुम्] १. मोथा। २. नीलम और मानिक की तरह का एक रत्न जिसका चूर्ण पालिश के काम आता है। ३. दर्पण। शीशा। ४. उरद। ५. ईंगुर।

कुरूप—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० कुरूपा] जिसका रूप या आकार अच्छा या सुडौल न हो। बदसूरत। बेडौल। भद्दा।

कुरूपता—स्त्री० [सं० कुरूप+तल्—टाप्] कुरूप होने की अवस्था या भाव।

कुरेद—स्त्री० [हिं० कुरेदना] १. कुरेदने की क्रिया या भाव। २. मन में होनेवाली खलबली या उत्कट जिज्ञासा। (परिहास)

कुरेदना—स० [सं० कर्त्तन] १. खुरचना या खरोचना। २. नीचे से कुछ निकालने के लिए ऊपर का कुछ अंश निकालना या हटाना। ३. लाक्षणिक रूप में किसी बात की टोह लेने या रहस्य जानने के लिए किसी अन्य प्रासंगिक बात की उधेड़बुन करना।

कुरेदनी—स्त्री० [हिं० कुरेदना] छड़ की तरह का एक लंबा औजार जो भट्ठे की आग आदि कुरेदने के काम आता है।

कुरेभा—स्त्री० [सं० करभ=बच्चा] ऐसी गाय जो वर्ष में दो बार बच्चा देती हो।

कुरेर*—स्त्री०=कुलेल।

कुरेलना*—पुं०=कुरेदना।

कुरेलनी*—स्त्री०=कुरेदनी।

कुरैत—पुं० [हिं० कूरा=भाग या ढेर] [स्त्री० कुरैतिन] साझीदार। हिस्सेदार।

कुरैना†—स० [हिं० कूरा] १. कूरा अर्थात् ढेर लगाना। २. दौरों, बोरों आदि में भरी हुई चीज एक स्थान पर गिराकर उसका ढेर लगाना।

† अ० ऊपर से ढेर के रूप में किसी चीज का नीचे आकर ढेर के रूप में गिरना या पड़ना। उदा०—जसुदा के कोरे एक वारक कुरै परी।—देव।

पुं० ढेर। राशि।

कुरैया—स्त्री० [सं० कुटज] १. सुन्दर फूलों तथा लंबी लहरदार पत्तियोंवाला एक जंगली पौधा। कुटज। गिरिमल्लिका। २. उक्त पौधे के फूल। ३. उक्त पौधे के बीज जिन्हें इंद्र-जौ कहते हैं और जो दवा के काम आते हैं।

कुरौना*—अ०, स०, पुं०=कुरैना।

कुरौनी†—स्त्री० [हिं० कूरा] ढेर। राशि।

कुर्क—वि० [तु० क़ुर्क़] [भाव० कुर्की] न्यायालय के आदेशानुसार दंड-स्वरूप या देन आदि चुकाने के लिए राज्य या शासन द्वारा किसी अपराधी या देनदार का ज़ब्त किया हुआ (माल या सम्पत्ति)।

कुर्क-अमीन—पुं० [तु० क़ुर्क़+फा० अमीन] वह शासनिक कर्मचारी जो न्यायालय के आदेशानुसार अपराधियों, देनदारों आदि का माल कुर्क करता हो।

कुर्कनामा—पुं० [तु० क़ुर्क़+फा० नामा] न्यायालय द्वारा जारी किया हुआ वह अधिपत्र जिसमें शासन को किसी अपराधी या देनदार की संपत्ति कुर्क करने का अधिकार दिया जाता है।

कुर्की—स्त्री० [तु० क़ुर्क़+ई (प्रत्य०)] किसी का माल या धन-संपत्ति कुर्क करने की क्रिया या भाव।

विशेष—दे० 'आसंजन'।

मुहा०—कुर्की उठाना=कुर्क या जब्त किया हुआ माल छोड़ देना। कुर्की बैठाना=कुर्क करना।

कुर्कुट—पुं० [सं० कुर्√कुट् (कौटिल्य)+क] १. मुरगा। कुक्कुट। २. कूड़ा।

कुर्कुर—पुं० [सं० कुर्√कुर् (शब्द)+क] कुत्ता।

कुर्चिका—स्त्री० [सं०=कूर्चिका, पृषो० ह्रस्व] १. कंद में से निकलनेवाला दूधिया तरल पदार्थ। २. कूची।

कुर्ता†—पुं०=कुरता।

कुर्ती†—स्त्री०=कुरती।

कुर्दमी—स्त्री० [देश०] जहाज का रास्ता। आलात। (लश०)

कुर्पर—पुं० [सं०√कुर्+क्विप्, कुर्√पृ (पूर्ति)+अच्] १. कोहनी। २. घुटना।

कुर्पास—पुं० [सं० कुर्पर√अस् (होना)+घञ्, पृषो० सिद्धि] १. कुरती के आकार-प्रकार का लोहे आदि का बना हुआ कवच जिसे योद्धा छाती पर बाँधते थे। २. स्त्रियों के पहनने की अँगिया। चोली।

कुर्पासक—पुं० [सं० कुर्पास+कन्]=कुर्पास।

कुर्ब—पुं० [अ०] समीपता। सामीप्य।

कुर्ब व जवार—पुं० [अ०] पास-पड़ोस। निकट के गाँव या वस्ती।

कुर्बान—पुं०=कुरबान।

कुर्बानी—स्त्री०=कुरबानी।

कुर्मी—पुं०=कुरमी।

कुर्मुक—पुं० [सं० क्रमुक] सुपारी। (डिं०)

कुर्रना—अ० [सं० कलरव] १. पक्षियों का कलरव करना। २. मधुर स्वर में बोलना।

कुर्री—स्त्री० [देश०] पटरा या हेंगा (खेत में चलाने का)।
स्त्री०=कुरकुरी।
कुर्स—पुं० [अ०] १. गोल टिकिया। जैसे—औषध आदि की। २. अरब देश का चाँदी का एक गोल सिक्का।
पुं० [देश०]एक प्रकार की घास जिसे बटकर रस्सी बनाई जाती है।
कुर्सी—स्त्री०=कुरसी।
कुर्सीनामा—पुं०=कुरसीनामा (वंशवृक्ष)।
कुलंग—पुं० [फा०] १. मटमैले रंग का एक प्रकार का पक्षी। २. मुरगा। ३. सिर पर वार करने का एक पुराना हथियार जिसमें लोहे के डंडे में दूसरा टेढ़ा और नुकीला डंडा लगा रहता था। ४. बहुत लंबा या लंबी टाँगोंवाला व्यक्ति। (परिहास और व्यंग्य)
कुलंज—पुं०=कुलंजन।
कुलंजन—पुं० [सं० कु√रञ्ज् (राग)+णिच्+ल्युट्—अन] १. मुलेठी की जाति का एक पौधा जिसकी जड़ दवा के काम आती है। २. पान के पौधे की जड़ जो दवा के काम आती है।
कुलंधर—पुं० [सं० कुल√धृ (धारण करना)+खच्, मुम्] कुल या वंश का क्रम चलानेवाला। कुल का मूल पुरुष।
कुलंभर—पुं० [सं० कुल√भृ (भरण करना) +खच्, मुम्] सेंध लगानेवाला चोर।
कुल—पुं० [सं०√कुल् (बन्ध)+क या कु√ला (लेना)+क] १. झुंड। समूह। २. एक ही मूल पुरुष से उत्पन्न सब वंशज अथवा उनकी पीढ़ियों का वर्ग या समूह। खानदान। घराना। वंश। परिवार। (फैमिली)
मुहा०—(किसी का) कुल बखानना=किसी के कुल के लोगों को कोसना, गाली देना, उनकी निंदा करना अथवा उनके दोषों का उल्लेख करना।
३. एक ही मूल तत्त्व या पदार्थ के भिन्न-भिन्न वर्गों या शाखाओं का समूह। (फैमिली) ४. घर। मकान। ५. हठयोग में कुंडलिनी शक्ति। ६. वाम मार्ग। कौल धर्म। ७. तंत्र के अनुसार आकाश, काल, जल, तेज, प्रकृति, वायु आदि पदार्थ। ८. संगीत में एक प्रकार का ताल। ९. कुलीनों का राज्य। कुलीन तंत्र। (की०)
वि० [अ०] १. मान, मात्रा, संख्या आदि के विचार से जितने हों, उतने सब। जैसे—कुल बीस आदमी थे। २. पूरा। सारा। जैसे—यह कुल खुराफात उन्हीं की है।
कुल-कंटक—पुं० [ष० त०] ऐसा व्यक्ति जिसके बुरे आचरण से कुल के लोग दुःखी तथा संतप्त रहते हों।
कुलक—पुं० [सं० कुल+कन्] १. एक साथ या एक ही स्थान पर होने, बनने, प्रकाशित होनेवाली अथवा एक साथ काम आनेवाली वस्तुओं का समूह। (सेट) जैसे—(क) एक ही ग्रंथमाला के सब ग्रन्थों का कुलक। (ख) पहनने के सब कपड़ों का कुलक। २. संस्कृत में गद्य लिखने का एक ढंग या प्रकार। ३. दीया। दीपक। ४. हरा साँप। ५. परवल या उसकी लता। ६. कुचला नामक विष। ७. मकर तेंदुआ नामक वृक्ष।
कुलकना†—अ०=किलकना।
कुल-कर्त्ता (र्तृ)—पुं० [ष० त०] किसी कुल का आदि पुरुष। मूल पुरुष।
कुल-कलंक—पुं० [ष० त०] वह व्यक्ति जो अपने बुरे आचरण से अपने कुल की मर्यादा नष्ट करता या उसमें कलंक लगाता हो। अपने वंश की कीर्ति में धब्बा लगानेवाला व्यक्ति।
कुलकानि—स्त्री० [सं० कुल+हिं० कान=मर्यादा] कुल की प्रतिष्ठा, मर्यादा और लज्जा।
कुल-कुंडलिनी—स्त्री० [ष० त०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति जिसका एक अंश यह भौतिक संसार माना गया है।
कुलकुल—पुं० [अनु०] बोतल या सुराही में भरे हुए तरल पदार्थ को उँडेलने से होनेवाला शब्द।
कुलकुलाना—अ० [अनु०] १. कुल-कुल शब्द होना। २. विकल और व्यथित होना।
स० १. कुलकुल शब्द उत्पन्न करना। २. विकल और व्यथित करना।
कुलकुली—स्त्री० [अनु०] १. =खुजली। २. =बेचैनी।
कुलक्षण—वि० [सं० ब० स०] [स्त्री० कुलक्षणी] १. बुरे लक्षणोंवाला। २. अशुभ।
पुं० [कुगति स०] दूषित या बुरा लक्षण।
कुलक्षणी (णिन्)—वि० [सं० कुलक्षण+इनि] बुरे लक्षणोंवाला।
स्त्री० बुरे लक्षणोंवाली स्त्री।
कुलखना—वि० [स्त्री० कुलखनी]=कुलक्षण।
कुलगारी—स्त्री० [सं० कुल+हिं० गाली] १. किसी के सारे कुल को दी जानेवाली गाली। २. ऐसी निंदा या बदनामी की बात जिससे सारे कुल को कलंक लगता हो।
कुल-गुरु—पुं० [ष० त०] १. वह जिसके कुल या वंश के लोग बराबर किसी दूसरे कुल या वंश के लोगों के गुरु होते आए हों। २. गुरुकुल का अध्यक्ष।
कुलचंडी—स्त्री० [ष० त०] एक देवी।
कुलचा—पुं० [फा० कलीचा] १. गुँधे हुए आटे में खमीर उठाकर बनाई जानेवाली एक प्रकार की मोटी रोटी। २. औरों से छिपाकर इकट्ठा किया हुआ धन। ३. तंबू या खेमे के डंडे के ऊपर का गोल लट्टू।
कुलच्छन†—वि०, पुं०=कुलक्षण।
कुलच्छनी†—वि० स्त्री०=कुलक्षणी।
कुलज—पुं० [सं० कुल√जन् (पैदा होना)+ड] [स्त्री० कुलजा] १. अच्छे या उत्तम वंश में उत्पन्न व्यक्ति। २. परवल।
कुलजा—स्त्री० [देश०] जंगली भेड़ों की एक जाति।
कुलजात—वि० [स० त०] १. किसी कुल या वंश में उत्पन्न होनेवाला। २. अच्छे कुल में उत्पन्न। कुलीन।
कुलट—वि० [सं०कुल√अट्+अच्] [स्त्री० कुलटा] बदचलन। व्यभिचारी।
पुं० व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र। जारज संतान।
कुलटा—स्त्री० [सं० कुलट+टाप्] १. अनेक पर-पुरुषों से संबंध रखनेवाली स्त्री। दुराचारिणी। व्यभिचारिणी। २. साहित्य में वह नायिका जिसका संबंध अनेक पुरुषों से हो।
कुल-तंतु—पुं० [ष० त०] घर के सब लोगों का पालन-पोषण करनेवाला मुख्य व्यक्ति।
कुल-तंत्र—पुं० [ष० त०] ऐसा राज्य या शासन-प्रणाली जिसमें सब काम

क्रियात्मक या वास्तविक रूप में कुछ विशिष्ट लोग ही गुट बाँधकर और मिलकर चलाते हों। (आलिगार्की)

कुलतारन—वि० [सं० कुल+हिं० तारन] [स्त्री० कुलतारनी] कुल को तारने या उसका उद्धार करनेवाला।

पुं० वह व्यक्ति जिससे कुल पवित्र होता हो। कुल का यश बढ़ानेवाला व्यक्ति।

कुलती—स्त्री०=कुलथी।

कुलत्थ—पुं० [सं० कुल√स्था (ठहरना)+क, पृषो० सिद्धि]=कुलथी।

कुलत्थिका—स्त्री० [सं० कुलत्थ+कन्—टाप्, इत्व]=कुलथी।

कुलथ—पुं०=कुलथी।

कुलथी—स्त्री० [सं० कुलत्थ] उरद की जाति का एक मोटा अन्न।

कुल-देव—पुं० [ष० त०]=कुलदेवता।

कुल-देवता—पुं० [ष० त०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा तथा वंदना किसी कुल के लोग परंपरा से करते चले आ रहे हों।

कुल-धर—पुं० [ष० त०] पुत्र। बेटा।

कुल-धर्म—पुं० [ष० त०] ऐसा आचरण जिसे कुल के सब लोग सदा से करते चले आ रहे हों। कुल की रीति।

कुल-धारक—पुं० [ष० त०] पुत्र । बेटा।

कुलन—स्त्री० [हिं० कल्लाना] १. दर्द। पीड़ा। २. टीस।

कुल-नक्षत्र—पुं० [मध्य० स०] तंत्र के अनुसार ये नक्षत्र—भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, श्रवण और उत्तर भाद्रपद।

कुलना—अ०=कल्लाना (शरीर के किसी अंग का)।

कुल-नाम (न्)—पुं० [ष० त०] वह संज्ञा जो कुल के सब पुरुषों के नामों के साथ लगती है। जाति या वंश-गत नाम। अल्ला जैसे—उपाध्याय, त्रिवेदी आदि।

कुल-नायिका—स्त्री० [ष० त०] वाम मार्ग में ऐसी स्त्रियाँ जिनकी पूजा चक्र में बैठाकर की जाती है।

कुलनार—पुं० [देश०] सुरमई रंग का एक प्रकार का खनिज पदार्थ।

कुल-पढ़ैया—स्त्री० [फा० कुल=सब +हिं० पढ़ैया] कुछ विशिष्ट अवसरों पर पढ़ी जानेवाली वह नमाज जिसमें किसी नगर या बस्ती के सब मुसलमान एक साथ सम्मिलित होते हों।

कुल-पति—पुं० [ष० त०] १. घर का स्वामी। २. प्राचीन भारत में गुरुकुल का वह प्रधान अधिकारी जो विद्यार्थियों को शिक्षा देता था और उनके भोजन-वस्त्र आदि की भी व्यवस्था करता था। ३. आज-कल किसी विश्वविद्यालय का प्रधान। (चांसलर)

कुल-पर्वत—पुं० [मध्य० स०] पुराणानुसार महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र इन सात पर्वतों का वर्ग।

कुल-पूज्य—वि० [तृ० त० या स० त०] १. जिसकी पूजा या आराधना किसी कुल के सब लोग करते हों। २. कुल में परंपरा से जिसकी पूजा होती चली आई हो।

कुलफ—पुं० [अ० कुफ्ल] ताला।

कुलफत—स्त्री० [अ० कुल्फत] १. कष्ट देनेवाली मानसिक चिंता। २. विकलता।

कुलफा—पुं० [फा० खुर्फा, अ० कुल्फः] एक साग, जिसके पत्ते छोटे,चौड़े और नुकीले होते हैं।

पुं० [हिं० कुलफी] विशेष प्रकार से जमाया हुआ दूध जिसमें कई प्रकार की पौष्टिक तथा सुगंधित चीजें मिली होती हैं।

कुलफी—स्त्री० [हिं० कुलफ] १. धातु का वह टुकड़ा जो किसी चीज में घूमने अथवा उसे घुमाने के लिए पेंच से कसा जाता है। २. टीन, मिट्टी आदि का बना हुआ वह चोंगा जिसमें दूध आदि भरकर बर्फ की सहायता से जमाते हैं। ३. उक्त प्रकार से जमाया हुआ दूध या कोई खाद्य तरल पदार्थ। ४. हुक्के में की वह गोल या टेढ़ी नली जिसके ऊपर नरकुल लगा कर नैचा बाँधा जाता है।

कुलबाँसा—पुं० [हिं० कुल+बाँस] करघे में का वह बाँस जिसमें कंघी लगी रहती है। (जुलाहे)

कुलबुल—पुं० [अनु०] [भाव० कुलबुलाहट] १. बोतल, सुराही आदि सँकरे मुँह तथा चौड़े पेंदेवाले पात्रों में भरे हुए तरल पदार्थ को उँडेलने पर होनेवाला शब्द। २. छोटे-छोटे कीड़ों के हिलने-डुलने की क्रिया या उससे होनेवाला शब्द। ३. किसी चीज के हिलने-डुलने की क्रिया तथा उस क्रिया से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

कुलबुलाना—अ० [अनु० कुलबुल] १. बहुत-से छोटे-छोटे कीड़ों, पक्षियों आदि का एक साथ रेंगना, हिलना-डोलना तथा शब्द करना। २. कुछ कहने के लिए अत्यधिक व्यग्र होना।

कुलबुलाहट—स्त्री० [हिं० कुलबुल] कुलबुल करने या कुलबुलाने की क्रिया या भाव।

कुलबोरन—वि० [हिं० कुल+बोरना] अपने कुकृत्य या दुराचरण से कुल को कलंकित तथा उसकी मर्यादा नष्ट करनेवाला (व्यक्ति)।

कुल-राज्य—पुं०=कुल-तंत्र।

कुलवंत—वि० [सं० कुलवत्] [स्त्री० कुलवंती] अच्छे कुल का। कुलीन।

कुल-वधू—स्त्री० [मध्य० स०] उत्तम कुल की तथा मर्यादा से रहनेवाली स्त्री। ऐसी वधू जो कुल के आचार का ठीक तरह से पालन करती है।

कुलवान्—वि० [सं० कुल+मतुप्, म=व] [स्त्री० कुलवती] अच्छे कुल या वंश का (व्यक्ति)। कुलीन।

कुलशतावरग्राम—पुं० [सं० कुल-शत, ष० त०, कुलशत-अवर, पं० त०, कुलशतावर-ग्राम, ष० त०] ऐसा गाँव जिसमें एक सौ से अधिक लोग रहते हों।

कुल-संकुल— पुं० [तृ० त०] पुराणानुसार एक नरक।

कुल-संघ—पुं० [ष० त०] कुल-तंत्र शासन-प्रणाली में शासन चलानेवालों का संघ या समूह।

कुलसन—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

कुलह—स्त्री० [फा० कुलाह] १. एक प्रकार की गोल टोपी जिसके बीच का भाग कुछ ऊपर उठा रहता है। प्रायः इसके ऊपर पगड़ी बाँधी जाती है। २. शिकारी चिड़ियों की आँखों पर बाँधी जानेवाली पट्टी। अँधियारी।

पुं० [सं० कुलवर] वंशधर। उदा०—तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग।—चंदवरदाई।

कुलहवरा†—पुं० [फा० कुलाह+वाला] बच्चों के पहनने की एक प्रकार की छोटी टोपी या कंटोप जिसके पिछले भाग में चुना हुआ लंबा काढ़ा पीठ पर लटकता रहता है।

कुलहा* —पुं०=कुलह।

कुलही†—स्त्री०=कुलहवरा।

कुलांगना—स्त्री० [सं० कुल—अंगना, मध्य० स०] भले घर की साध्वी स्त्री। कुलवधू।

कुलांगार—पुं० [सं० कुल-अंगार उपमि० स०] अपने ही कुल का नाश करनेवाला व्यक्ति।

कुलांच—स्त्री० [तु० कुलाच] १. दोनों हाथों के बीच की दूरी। २. चौकड़ी। छलांग।

कुलांचना—अ० [हिं० कुलांच] छलांगें लगाना। चौकड़ी भरना।

कुला†—पुं०=कुलह।

कुलाकुल—पुं० [सं० कुल-अकुल, द्व० स०] तंत्र के अनुसार कुछ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ।

कुलाचल—पुं० [सं० कुल-अचल, मध्य० स०] =कुलपर्वत।

कुलाचार—पुं० [सं०कुल-आचार, प० त०] १.वह आचार या रीति-व्यवहार जिसे किसी कुल के लोग परंपरानुसार करते चले आ रहे हों। २. वाममार्गियों का धर्म। कौल धर्म।

कुलाचार्य—पुं० [सं० कुल-आचार्य, प० त०] १.कुल-गुरु। २. पुरोहित।

कुलावा—पुं० [अ० कुलाबः] १. लोहे का वह छल्ला जिसके द्वारा पल्ले को चौखट में कसा या जकड़ा जाता है। पायजा। २. नाली। मोरी। ३. मछली फँसाने का काँटा।

कुलाय—पुं० [सं० कुल√अय् (गति)+घञ्] १. शरीर। २. घोंसला।

कुलायिका—स्त्री० [सं० कुलाय+ठन्—इक, टाप्] वह स्थान जहाँ पक्षी रखे या पाले जाते हों। चिड़ियाघर।

कुलाल—पुं० [सं० कुल√अल् (गति)+अण्] [स्त्री० कुलाली] १. वह जो मिट्टी के बरतन बनाता हो। कुम्हार। २. बनमुरगा। ३. उल्लू।

कुलालिका—स्त्री० [सं० कुलाली+कन्, टाप्, ह्रस्व] दे० 'कुलाली'।

कुलाली—स्त्री० [सं० कुलाल+ङीप्] कुम्हारिन। कुम्हार की स्त्री। स्त्री० [देश०] दूरबीन। (डिं०)'

कुलाह—पुं० [सं० कुल—आ√हन् (मारना)+ड] १. वह घोड़ा जिसका रंग भूरा और घुटने तथा पैर काले हों। २. वाराह। उदा०—कलि अवतार कुलाह, अंसपति पारन कंसह।—चंदवरदाई। ३. कमल। पुं०=कुलह।

कुलाहक—पुं० [सं० कुलाह+कन्] १. गिरगिट। २. एक प्रकार का शाक।

कुलाहल†—पुं०=कोलाहल।

कुलिंग—पुं० [सं० कु√लिंग् (गति)+अच्] चिड़िया। पक्षी।

कुलिंगक—पुं० [सं० कुलिंग +कन्] चिड़ा। चटक।

कुलिंजन†—पुं०=कुलंजन।

कुलिंद—पुं० [सं० कुलि√दा+कन्, पृषो०] १. उत्तर-पश्चिमी भारत का एक प्राचीन प्रदेश। कुनिंद। २. उक्त प्रदेश का राजा। ३. उक्त प्रदेश का निवासी।

कुलि†—वि०=कुल।

कुलिक—पुं० [सं० कुल+ठन् —इक] १. किसी कुल का प्रधान व्यक्ति। २. वह कलाकार या शिल्पकार जिसका जन्म अच्छे कुल में हुआ हो। ३. घुँघची का पेड़। ४. वह नाग जिसका रंग हलके भूरे रंग का होता है तथा जिसके मस्तक पर अर्धचंद्र बना होता है। इसकी गिनती आठ महानागों में होती है। ५. तालमखाना। ६. ज्योतिष के अनुसार दिन का वह भाग जिसमें कोई शुभ काम अथवा यात्रा आदि करना वर्जित होता है। ७. केंकड़ा। ८. एक प्रकार का विष।

कुलिया—स्त्री० [सं० कुल्या] नहर में से निकाला हुआ छोटा नाला। स्त्री० [हिं० कुल्हिया] छोटी और अँधेरी कोठरी।

कुलिर—पुं० [सं०√कुल्+इरन्]=कुलीर।

कुलिश—पुं० [सं० कुलि√शो (सोना)+ट] १. आकाश से गिरनेवाली बिजली। गाज। वज्र। २. कुठार। ३. हीरा। ४. राम, कृष्ण आदि अवतारों के चरणों में होनेवाला एक प्रकार का चिह्न जिसका आकार वज्र (अस्त्र) जैसा होता है। ५. एक प्रकार की मछली।

कुलिश-धर—पुं० [प० त०] देवराज इंद्र जो हाथ में कुलिश या वज्र रखते हैं।

कुलिश-नायक—पुं० [प० त०] एक प्रकार का रतिबंध।

कुलिश-पाणि—पुं० [ब० स०]=कुलिशधर।

कुलिशासन—पुं० [कुलिश-आसन, ब० स०] गौतमबुद्ध।

कुलिशी—स्त्री० [सं० कुलिश+ङीप्] वेदानुसार एक नदी जो आकाश के बीच में से होकर बहती है।

कुलिस*—पुं०=कुलिश।

कुलींजन—पुं०=कुलंजन।

कुली—पुं० [तु०] सिर पर बोझ (विशेषतः यात्रियों का सामान) ढोनेवाला अकुशल मजदूर।

कुली-कबाड़ी—पुं० [हिं० कुली+कबाड़ी] मेहनत-मजदूरी विशेषतः सिर पर बोझ ढोनेवाले अकुशल मजदूर।

कुलीन—वि० [सं० कुल+ख—ईन] [भाव० कुलीनता] १. (व्यक्ति) जिसका जन्म उच्च या उत्तम कुल में हुआ हो। २. (पशु) जो अच्छी नसल का हो। ३. पवित्र। शुद्ध। पुं० उच्च वर्ग के बंगाली ब्राह्मणों का एक वर्ग।

कुलीन-तंत्र—पुं० [सं० मध्य० स०] वह शासन-प्रणाली जिसमें किसी देश का शासन उच्च कुल के लोग चलाते हों। कुल-तंत्र।

कुलीर—पुं० [सं०√कुल् (बाँधना)+ईरन्] केंकड़ा।

कुलीश—पुं० [सं०=कुलिश पृषो० दीर्घ]=कुलिश।

कुलुक—पुं० [सं०√कुल्+उलच्, ल—क] जीभ पर जमी हुई मैल।

कुलुक्क गुंजा—स्त्री० [सं० कु—लुक्का, स० त०, कुलुक्का-गुंजा, कर्म० स०] जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा। लुकाठी।

कुलुफ—पुं० [अ० कुफ़्ल] १. दरवाजे बंद करने के लिए लगाया जानेवाला ताला। २. धातु का अँकुड़ीदार टुकड़ा जिसमें कोई चीज फँसाई जाती हो।

कुलुल† —पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली।

कुलू—पुं० [सं० कुलूत] काँगड़े के समीप का एक प्रसिद्ध पहाड़ी प्रदेश। पुं० दे० 'गुलू'।

कुलूत—पुं० [सं०]=कुलू।
पुं० आधुनिक कुलू प्रदेश का प्राचीन नाम।
कुलेल—स्त्री०=कलोल (क्रीड़ा)।
कुलेलना†—अ० [हिं० कुलेल] कुलेल या क्रीड़ा करना।
कुल्टू†—पुं० दे० 'कुटू' या 'कोटू'।
कुल्थी—स्त्री०=कुलथी।
कुल्फ—पुं०=कुलुफ।
कुल्फी—स्त्री०=कुलफी।
कुल्माष—पुं० [सं०√कुल्+क्विप्, कुल्-माष, ब० स०] १. एक प्रकार का मोटा अन्न। कुलथी। २. उरद। ३. वह अन्न जिसके दो दल या भाग होते हों। दाल। जैसे—चना। ४. खिचड़ी। ५. कांजी। ६. एक प्रकार का रोग। ७. सूर्य का एक पारिपार्श्वक।
कुल्य—पुं० [सं० कुल+यत्] उत्तम कुल में जन्मा हुआ व्यक्ति। कुलीन।
कुल्या—स्त्री० [सं० कुल्य+टाप्] १ कुलीन स्त्री। २. छोटी नहर। ३. नाली। पनाला। ४. जीवंती नामक ओषधि।
कुल्ल†—वि०=कुल।
कुल्ला—पुं० [सं० कवल] [स्त्री० कुल्ली] १. मुँह तथा दाँत साफ करने के लिए मुँह में पानी भरकर बाहर फेंकने की क्रिया या भाव। २. चुल्लू भर पानी जो कुल्ला करने के लिए एक बार मुँह में लिया जाय। ३. वह घोड़ा जिसकी पीठ की रीढ़ पर काले रंग की धारी हो।
पुं० [फा० काकुल; सं० कुंतल] [स्त्री० कुल्ली] बाल। जुल्फ। पट्टा।
†पुं०=कुलह।
कुल्ली—स्त्री० [हिं० कुल्ला]=कुल्ला।
स्त्री० [फा० काकुल] जुल्फ।
कुल्लुक—पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिसे बाँसिनी भी कहते हैं।
कुल्लूक—पुं० [सं०] दिवाकर भट्ट के पुत्र जिन्होंने मनुसंहिता की टीका की है।
कुल्वक—पुं०=कुलुक।
कुल्हड़—पुं० [सं० कुलहर] [स्त्री० कुल्हिया] मिट्टी का पका हुआ छोटा पात्र। चुक्कड़। पुरवा।
कुल्हाड़ा—पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० अल्पा० कुल्हाड़ी] पेड़ काटने तथा लकड़ी चीरने का एक प्रसिद्ध औजार। (ऐक्स)
कुल्हाड़ी—स्त्री० [हिं० कुल्हाड़ा का अल्पा०] १. छोटा कुल्हाड़ा। कुठार। टाँगी। २. बसूला। (लश०)
कुल्हारा†—पुं०=कुल्हाड़ा।
कुल्हिया—स्त्री० [हिं० कुल्हड़] १. मिट्टी का छोटा कुल्हड़। २. बहुत छोटी या तंग कोठरी (परिहास)।
कुल्हू—पुं०=कुलू (देश)।
कुवंग—पुं० [सं० कु-वंग, उपमि० स०] सीसा नामक धातु।
कुव—पुं० [सं० कु√वा (गति)+क] १ कमल। २. फूल।
कुवज—पुं० [सं० कुव√जन् (पैदा होना)+ड] ब्रह्मा जो कमल से उत्पन्न माने गये है।
कुवम—पुं० [सं० कु√वम् (बरसाना)+अच्] सूर्य।
कु-वर्ष—पुं० [सं०कुगति स०] बहुत अधिक या घोर वर्षा। अतिवृष्टि।
कुवल—पुं० [सं० कु√वल् (गति)+अच्] १. जल। पानी। २. कुईं। ३. मोती। ४. साँप का उदर।
कु-वलय—पुं० [सं० उपमि० स०] [स्त्री० कुवलयिनी] १. नील कुईं। २. नील कमल। ३. भूमंडल। ४. असुरों का एक वर्ग।
कुवलयापीड़—पुं० [कुवलय-आपीड, ब० स०] कंस का वह हाथी जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था।
कुवलयाश्व—पुं० [कुवलय-अश्व, ब० स०] राजा धुंधुमार।
कुवलयिनी—स्त्री० [सं० कुवलय+इनि—ङीप्] नीली कुईं का पौधा। नीली कुईं के पौधों या फूलों का समूह।
कुवाँ*—पुं०=कूआँ।
कुवाँर†—पुं० [सं० कु०+पाटल] जंगली गुलाब का पौधा और उसका फूल।
कुवाक्य—पुं० [सं० कुगति स०] कुत्सित या बुरी बात। दुर्वचन।
कुवाच्य—वि० [सं० कुगति स०] (बात) जो मुँह से कहना उचित न हो। न कहने योग्य (बात)।
पुं० १. गाली। २. दुर्वचन।
कुवाट—पुं०=कपाट। (राज०)
कुवाण—पुं०=कृपाण।
पुं० [?] धनुष। (डिं०)
कुवार—पुं०=कुआर (मास)।
कुवारी—वि० [स्त्री० हिं० कुवार] =कुआरी।
कुवासना—स्त्री० [कुगति स०] अनुचित या बुरी इच्छा या वासना।
कुवाहुल—पुं० [सं० कु√वह् (ढोना)+उलच् (बा०)] ऊँट।
कुविंद—पुं० [सं० √कुप् (खींच कर निकालना)+किन्दच्, प=व] जुलाहा।
कुविचार—पुं० [सं० कुगति स०] मन में होनेवाला कुत्सित, निंदनीय या बुरा विचार।
कुविचारी (रिन्)—वि० [सं० कुविचार+इनि] १. बुरी बातें सोचनेवाला। २. भली भाँति तथा ठीक विचार न करनेवाला।
कुविजा—वि० [सं० कुब्ज] टेढ़ा-मेढ़ा। उदा०—कुविजा खप्पर हथ्थं रिद्ध सिद्धाय वचनयं मज्झं।—चंदवरदाई।
*स्त्री०=कुब्जा।
कुवेणी—स्त्री० [सं० कु√वेण् (रखना)+इन्—ङीप्] १. वेणी (चोटी) जो ठीक प्रकार से गूँथी न गई हो। २. मछलियाँ रखने की टोकरी।
कुवेर—पुं० [√कुंव् (आच्छादित करना) +एरक्, नलोप] १. पुराणानुसार, यक्षों और किन्नरों के राजा जो रावण के सौतेले भाई थे और इंद्र की निधियों के भंडारी माने जाते हैं। यही विश्व की समस्त संपत्ति के स्वामी माने जाते हैं। २. तुन का पेड़।
कुवेराचल—पुं० [कुवेर—अचल, मध्य० स०] कैलास पर्वत।
कुवेराद्रि—पुं० [कुवेर—अद्रि, मध्य० स०] कैलास पर्वत।
कुवेल—पुं० [सं० कुव=पुष्प+ई=शोभा√ला (आदान)+क] कमल।
कुवेला—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. अनुचित या अनुपयुक्त समय। २. बुरा समय। दुर्दिन।
कु-व्यवहार—पुं० [सं० कुगति स०] किसी के प्रति किया जानेवाला अनुचित या निंदनीय व्यवहार।
कुशंडिका—स्त्री० [सं० कुशम्√डी (प्राप्त होना)+क्विप्, विभक्ति का अलुक्,+कन्—टाप्, ह्रस्व]=कुशकंडिका।

कुश—पुं० [सं० कु√शी (सोना)+ड] [स्त्री० कुशा, कुशी] १. एक प्रकार की प्रसिद्ध घास जो पवित्र मानी जाती है और जिसका उपयोग धार्मिक कृत्यों, यज्ञों आदि में होता है। २. जल। पानी। ३. एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। ४. भगवान राम के एक पुत्र का नाम। ५. पुराणानुसार एक द्वीप। ६. बलाकाश्व का पुत्र। ७. हल की फाल। कुसी।

वि० १. कुत्सित। २. पागल।

कुश-कंडिका—स्त्री० [तृ० त०] यज्ञ के समय अग्नि की वेदी या कुंड के चारों ओर कुश रखने की एक प्रक्रिया।

कुश-केतु—पुं० [ब० स०] १. ब्रह्मा। २. कुशध्वज (राजा)।

कुश-द्वीप—पुं० [मध्य०स०] १. सात द्वीपों में से एक जो घृत समुद्र से घिरा हुआ माना गया है। (पुराण) २. मध्यकालीन साहित्य में, प्राचीन हब्स देश (हब्शियों का देश) जिसे आजकल एबिसीनिया कहते हैं।

कुश-ध्वज—पुं० [ब० स०] १. राजा ह्रस्वरोम का पुत्र और सरीध्वज जनक का छोटा भाई। २. बृहस्पति के पुत्र एक ऋषि।

कुशन—पुं० [अं०] मोटा गद्दा।

कुश-नाभ—पुं० [ब० स०] राजा कुश का पुत्र और रामचन्द्र का पौत्र।

कुशप—पुं० [सं०√कुश् (दीप्ति)+कपन् (बा०)] पानी पीने का बरतन।

कुश-पत्रक—पुं० [ब० स०] फोड़ा चीरने का एक धारदार अस्त्र।

कुश-प्लवन—पुं० [ब० स०] महाभारत में उल्लिखित एक तीर्थ।

कुश-मुद्रिका—स्त्री० [मध्य० स०] कुश नामक घास की बनी एक प्रकार की अँगूठी जो धार्मिक कार्यों के समय पहनी जाती है। पवित्री।

कुशय—पुं० [सं० कु√शी (सोना)+अच्] १. जलाशय। जलकुंड। २. पानी पीने का बरतन।

कुशल—वि० [सं० कुश+लच्] [भाव० कुशलता, कौशल; स्त्री० कुशला] १. (व्यक्ति) जो सब तरह के काम या बातें बहुत अच्छी तरह से करना जानता हो। भली भाँति कार्य संपादित करनेवाला। चतुर। होशियार। (स्किलफुल) २. (व्यक्ति) जिसने कोई काम अच्छी तरह करने की शिक्षा पाई हो। प्रशिक्षित तथा योग्य चतुर। (स्किल्ड) ३. पुण्यशील।

पुं० [सं०] १. नीरोग तथा स्वस्थ होने की अवस्था या भाव। खैरियत। राजी-खुशी। जैसे—आप कुशल से तो हैं? २. शिव। ३. कुशद्वीप का निवासी।

कुशल-क्षेम—पुं० [कर्म० स०] कुशल, संपन्न तथा स्वस्थ होने की अवस्था या स्थिति। खैरियत। राजी-खुशी।

कुशलता—स्त्री० [सं० कुशल+तल्, टाप्] १. कुशल होने की अवस्था या भाव। २. चतुराई। होशियारी। ३. सकुशल या अच्छी तरह होने की अवस्था या भाव।

कुशल-प्रश्न—पुं० [ष० त०] किसी से यह पूछना कि आप कुशलपूर्वक या अच्छी तरह हैं न ?

कुशलाई—स्त्री० दे० 'कुशलता'।

कुशलात—स्त्री० [सं० कुशलता] किसी के कुशलपूर्वक या अच्छी तरह होने का समाचार।

कुशली (लिन्)—वि० [सं० कुशल+इनि] [स्त्री० कुशलिनी] १. जो कुशल हो। दक्ष। चतुर। २. नीरोग। स्वस्थ।

कुशली—स्त्री० [?] १. अखुटा नामक वृक्ष। २. अमलोनी नामक वनस्पति।

कुश-वन—पुं० [मध्य० स०] व्रजभूमि का एक वन।

कुशवाहा—पुं० [सं० कुशवाह] क्षत्रियों का एक भेद या वर्ग।

कुश-स्तरण—पुं० [ष० त०] यज्ञकुंड के चारों ओर कुश बिछाने की क्रिया या भाव।

कुश-स्थली—स्त्री० [ष० त०] १. द्वारकापुरी। २. विंध्यप्रदेश में स्थित एक प्राचीन नगरी। कुशावती।

कुश-हस्त—वि० [ब० स०] जो श्राद्ध, तर्पण या दानादि के लिए हाथ में कुश लेकर उद्यत हो।

कुशांगुली(री)य—स्त्री० [कुश-अंगुली (री) य, मध्य० स०] १. शुद्धता के विचार से अनामिका में पहनी जानेवाली तांबे की मुँदरी। २. पवित्री। पैंती।

कुशांब—पुं० [सं०] राजा कुश के पुत्र जिन्होंने कौशांबी नगरी बसाई थी।

कुशांबु—पुं० [सं० कुश-अंबु, मध्य स०] १. कुश के अगले भाग से टपकता हुआ जल जो पवित्र माना जाता है। २.=कुशांब।

कुशा—स्त्री० [सं०कुश+टाप्] १. कुश नामक घास। (दे०)। २. रस्सी। ३. एक प्रकार का मीठा नीबू।

वि० [फा०] १. खोलने या फैलानेवाला। जैसे—दिलकुशा। २. सुलझानेवाला। जैसे—मुश्किल कुशा।

कुशाकर—पुं० [सं० कुश—आ√कृ (बिखेरना)+अप्] यज्ञ की अग्नि।

कुशाक्ष—पुं० [कुश-अक्षि, ब० स०] बंदर।

कुशाग्र—पुं० [कुश-अग्र, ष० त०] कुशा का अगला नुकीला भाग।

वि० [सं०] कुश की नोक जैसा तीखा। अति तीक्ष्ण। नुकीला।

कुशाग्र-बुद्धि—वि० [ब० स०] तीक्ष्ण बुद्धिवाला। जो बहुत जल्दी सब बातें समझ लेता हो।

कुशादगी—स्त्री० [फा०] कुशादा या विस्तृत होने की अवस्था या भाव। विस्तार।

कुशादा—वि० [फा०] [संज्ञा कुशादगी] १. चारों ओर से खुला हुआ या लंबा-चौड़ा। विस्तृत। २. फैला हुआ।

कुशारणि—पुं० [कुश-अरणि, ब० स०] दुर्वासा ऋषि।

कुशावती—स्त्री० [सं० कुश+मतुप्—ङीप् म=व, दीर्घ] रामचन्द्र के पुत्र कुश की राजधानी।

कुशावर्त—पुं० [कुश-आवर्त, ब० स०] १. हरिद्वार में एक तीर्थ स्थान। २. एक ऋषि का नाम।

कुशाश्व—पुं० [कुश-अश्व, ब० स०] इक्ष्वाकु वंश का एक राजा।

कुशासन—पुं०[कुश-आसन, मध्य० स०] कुश नामक घास का आसन। कुश की चटाई।

कु-शासन—पुं० [सं० कुगति स०] ऐसा शासन जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली हो। बुरा शासन।

कुशिक—पुं०[सं० कुश+ठन्—इक] १. एक प्राचीन आर्यवंश। २. उक्त वंश का व्यक्ति। ३. एक राजा जो गाधि के पिता और विश्वामित्र के दादा थे। ४. हल का अगला नुकीला भाग। फाल। कुसी। ५. बहेड़ा। ६. साखू या शाल नामक वृक्ष। ७. तेल की तलछट।

कुशी (शिन्)—वि० [सं० कुश+इनि] कुशवाला। जिसके हाथ में कुश हो।
पुं० वाल्मीकि ऋषि एक का नाम।

कुशीद—पुं०=कुसीद।

कुशीनगर—पुं० [सं०] भगवान बुद्ध का निर्वाण-स्थान जो आज-कल कसया कहलाता है।

कुशीनार—पुं०=कुशीनगर।

कुशीलव—पुं० [सं० कु-शील, कुगति स०,+व] १. कवि। २. चारण। भाट। ३. अभिनेता। नट। ४. गवैया। ५. वाल्मीकि ऋषि।

कुशुंभ—पुं० [सं० कु√शुंभ् (शोभित होना)+अच्] १. संन्यासियों का जलपात्र या कमंडल। २. घड़ा।

कुशूल—पुं० [सं०√कुस् (घेरना)+ऊलच् पृषो० स=श] १. अनाज रखने का कोठार। बखार। २. कड़ाही। ३. भूसी की आग। ४. एक राक्षस का नाम।
पुं० [सं० कु+शूल] १. बुरा शूल या काँटा। २. भयंकर दर्द या पीड़ा जो बहुत कष्टदायक हो।

कुशूल-धान्यक—पुं० [व० स०] वह गृहस्थ जिसके पास तीन वर्ष तक खाने भर को अन्न हो।

कुशेश—पुं०=कुशेशय।

कुशेशय—पुं० [सं० कुशे√शी (सोना)+अच्, अलुक्] १. कमल। २. कनक चंपा। ३. सारस। ४. एक पर्वत जो कुश द्वीप में स्थित माना गया है।

कुशोदक—पुं० [कुश-उदक, मध्य० स०] ऐसा जल जिसमें कुश घास की पत्तियाँ छोड़ी गई हों। (ऐसा जल पवित्र माना जाता। है)

कुशोदका—स्त्री० [कुश-उदक, व० स०, टाप्] कुशद्वीप की एक देवी का नाम।

कुश्तमकुश्ता*—पुं० [हिं० कुश्ती] लड़ने के समय आपस में गुथकर एक दूसरे को पटकने के लिए होनेवाले प्रयत्न।

कुश्ता—वि० [फा० कुश्तः] फूँका हुआ।
पुं० रासायनिक क्रियाओं द्वारा धातुओं, रसों आदि को फूँककर तैयार की हुई भस्म जो पौष्टिक तथा स्वास्थ्य-वर्धक मानी जाती है।

कुश्ती—स्त्री० [फा०] एक प्रसिद्ध भारतीय खेल या व्यायाम जिसमें दो व्यक्ति अपने शारीरिक बल तथा दाँव-पेंच से एक दूसरे को गिराकर चित करने का प्रयत्न करते हैं।
मुहा०—**कुश्ती खाना**=कुश्ती में हार जाना। **कुश्ती बदना**=दो पहलवानों में परस्पर यह निश्चय होना कि हम लोग कुश्ती लड़ेंगे। **कुश्ती माँगना**=(किसी को) अपने साथ कुश्ती लड़ने के लिए कहना या ललकारना। **कुश्ती मारना**=कुश्ती में विरोधी को चित गिरा देना और उसे जीतना। **कुश्ती लड़ाना**=किसी को कुश्ती लड़ने के ढंग तथा दाँव-पेंच सिखलाना।
पद—कुश्तमकुश्ता। (देखें)

कुश्तीबाज—वि० [फा०] (व्यक्ति) जिसे कुश्ती लड़ने का शौक हो। पहलवान।

कुषल—वि० [सं०√कुष् (निष्कर्ष)+कलच्] कुशल (दे०)।

कुषाकु—पुं० [सं.√कुष्+काकु] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. बंदर।

कुषीतक—पुं० [सं०] १. एक ऋषि। २. एक प्रकार का पक्षी।

कुषीद—वि० [सं०√कुस् (घेरना)+इदम् पृषो० सिद्धि] उदासीन।

कुषुंभ—पुं० [सं०√कुषुभ् (क्षेप)+अच्, पृषो० सिद्धि] कीड़े-मकोड़ों की वह थैली जिसमें उनका जहर भरा रहता है।

कुष्ठ—पुं० [सं० कुष्+क्थन्] १. एक संक्रामक रोग जिसमें शरीर की त्वचा, तंतु, नसें आदि गलने तथा सड़ने लगती हैं और इस प्रकार अंग बेकाम हो जाते हैं। कोढ़। (लेप्रेसी) २. कुट या कुड़ा नाम की ओषधि।

कुष्ठ-केतु—पुं० [व० स०] भुइँ खेखसा नाम की लता। मार्कंडिका।

कुष्ठ-गंधि—स्त्री० [व० स०] एलुआ (ओषधि)।

कुष्ठघ्न—पुं० [सं० कुष्ठ√हन् (नष्ट करना)+टक्] हितावली नाम की ओषधि।

कुष्ठघ्नी—स्त्री० [सं० कुष्ठघ्न+ङीप्] कठूमर।

कुष्ठ-सूदन—पुं० [सं० कुष्ठ√सूद् (नष्ट करना)+णिच्+ल्यु—अन] अमलतास।

कुष्ठहृत्—पुं० [सं० कुष्ठ√हृ (हरण करना)+क्विप्] १. खैर का पेड़। २. विट् खदिर।
वि० कुष्ठ नाशक।

कुष्ठारि—पुं० [कुष्ठ-अरि, ष० त०] १. आक या मदार का पत्ता। २. गंधक। ३. परवल। ४. दे० 'कुष्ठहृत्।'
वि० कुष्ठनाशक।

कुष्ठालय—पुं० [सं० कुष्ठ-आलय, ष० त०] वह भवन या चिकित्सालय जिसमें कोढ़ियों को रखकर उनकी चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा की जाती है।

कुष्ठी (ष्ठिन्)—पुं० [सं० कुष्ठ+इनि] [स्त्री० कुष्ठिनी] वह व्यक्ति जो कुष्ठ-रोग से पीड़ित हो। कोढ़ी।

कुष्मल—पुं० [सं०√कुष्+क्मलन्] १. पत्ता। २. काटना या छेदना।

कुष्मांड—पुं० [सं० कु-उष्मन्-अंड, व० स०] १. कुम्हड़ा। २. गर्भ-स्थल। जरायु। ३. एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर कहे गये हैं।

कुष्मांडी—स्त्री० [सं० कुष्मांड+ङीप्] १. पार्वती। २. यज्ञ की क्रिया। ३. ककोस।

कु-संग—पुं० [सं० कुगति स०] बुरे या हीन लोगों का संग या साथ। बुरी सोहबत।

कुसंगति—स्त्री० [सं० कुगति स०] दे० 'कुसंग'।

कु-संस्कार—पुं० [सं० कुगति स०] ऐसे दूषित संस्कार जिनके कारण मनुष्य बुरी बातें सोचता तथा बुरे काम करता है।

कुस*—पुं०=कुश।

कुसगुन—पुं० [सं० कु+हिं० सगुन] बुरा सगुन। असगुन।

कुसना—स० [सं० कुश] खेतों में उगी हुई घास आदि उखाड़ना। निराना।

कु-समय—पुं० [सं० कुगति स०] १. ऐसा समय जिसमें कोई अपनी जीविका का निर्वाह ठीक प्रकार से न कर पा रहा हो। कष्ट या दुःख के दिन। बुरा समय। २. वह समय जो कोई काम करने के लिए उपयुक्त न हो। ३. नियत से आगे या पीछे का समय।

कुसमिसाना—अ०=कसमसाना।

कुसर—पुं० [देश०] पानी बेल या मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के काम आती है।
†वि०=कुशल।

कुसल*—वि०, पुं०=कुशल।

कुसलई*†—स्त्री० १.=कुशलता। २. =कुशलात।

कुसलछेम—पुं०=कुशल-क्षेम।

कुसलाई*†—स्त्री० १.=कुशलता। २. =कुशलात।

कुसलात†*—स्त्री० १. =कुशलता। २. कुशलात।

कुसली—स्त्री० [हिं० कसैली] १. आम की गुठली। २ आम की गुठली के आकार का एक पकवान। गोझा।
वि०=कुशली।

कुसवा—पुं० [सं० कुश] धान की फसल में होनेवाला खैरा नामक रोग।

कुसवारी—पुं० [सं० कोशकार] १. रेशम का जंगली कीड़ा। २. रेशम का कोया।

कुसवाहा—[?]कोइरी (हिंदू जाति)। काछी।
पुं०=कुशवाहा।

कुससथली—स्त्री०=कुश-स्थली।

कुसांव—पुं०=कुशांव।

कुसाइत—स्त्री० [सं० कु+अ० सायत] १. ऐसी साइत या मुहूर्त्त जो उत्तम न हो। बुरी साइत। २. अनुपयुक्त अवसर या समय।

कुसाखी*—पुं० [सं० कु+शाखिन्=वृक्ष] खराब या बुरा पेड़।
पुं० [सं० कु+साक्षी] खराब या बुरा गवाह।

कुसारी—स्त्री० दे० 'कुसवारी।'

कुसिया†—स्त्री०=कुसी।

कुसियार—पुं० [सं० कोशकार] १. सफेद रंग का एक प्रकार का बढ़िया गन्ना। थून। २. ईख। गन्ना।

कुसियारी—पुं०=कुसवारी।

कुसी—स्त्री० [सं० कुशी] १. हल का अगला नुकीला भाग। फाल।
†स्त्री०=खुशी (प्रसन्नता)। उदा०—निस दिन होत कुसी।—मीराँ।
†वि०=खुश (प्रसन्न)।

कुसीद—पुं० [सं०√कुस् (श्लेष)+ईद, न गुणः (नि०)] [स्त्री० कुसीदा, वि० कुसीदिक] १. सूद पर रुपया देना। महाजनी। २. मूलधन का ब्याज या सूद। ३. ब्याज या सूद पर दिया जानेवाला धन। ४. लाल चन्दन।
वि० १. सूदखोर। २. सुस्त।

कुसीदजीवी (विन्)—पुं० [सं० कुसीद√जीव् (जीना)+णिनि] महाजनी करनेवाला। सूदखोर महाजन।

कुसीद-वृद्धि—स्त्री० [मध्य० स०] ब्याज।

कुसीदिक—वि० [सं० कुसीद+ठन्—इक] कुसीद या ब्याज-संबंधी।
पुं०=कुसीद।

कुसीनार—पुं०=कुशीनगर।

कुसुंब—पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्बक] १. भारत, बरमा, चीन आदि में पाया जानेवाला एक प्रकार का वृक्ष। २. दे० 'कुसुम'।

कुसुंबिया—स्त्री० दे० 'कुसुंब'।
वि० [हिं० कुसुंब] १. कुसुंब-संबंधी। २. कुसुंब के रंग का।

कुसुंभ—पुं० [सं०√कुस्+उम्भ, गुणाभाव (नि०)] १. कुसुम या बर्रे नाम का पौधा। २. केसर। कुमकुम।

कुसुंभा—पुं० [सं० कुसुंभ] १. कुसुम का रंग। २. अफीम और भाँग के योग से बननेवाला एक मादक पेय।
स्त्री० [सं० कुसुंभ+टाप्] आषाढ़ शुक्ल पक्ष की छठ।

कुसुंभी—वि० [सं० कुसुंभ] कुसुम के रंग का। लाल।

कुसुम—पुं० [सं०√कुस्+उम, गुणाभाव (नि०)] [वि० कुसुमित] १. पुष्प। फूल। २. स्त्रियों का रजस्राव। ३. लाल रंग। ४. ऐसा गद्य जिसमें छोटे-छोटे वाक्य हों। ५. वर्तमान अवसर्पिणी के छठे अर्हत् के गणधर। ६. एक राग जो मेघराग का पुत्र कहा गया है। ७. आँखों का एक रोग। ८. छंदशास्त्र में ठगण का छठा भेद जिसमें क्रमशः लघु, गुरु, लघु और लघु (।ऽ।।) होते हैं।
पुं० [सं० कुसुंभ] एक प्रसिद्ध पौधा जो रबी की फसल के साथ बीजों या फूलों के लिए बोया जाता है। बर्रे। कुसुंब।

कुसुम-कार्मुक—पुं० [ब० स०] कामदेव, जिनका धनुष फूलों का है।

कुसुम-चाप—पुं०=कुसुम-कार्मुक।

कुसुम-पंचक—पुं० [ष० त०] कामदेव के पाँच बाण।

कुसुम-पल्ली—स्त्री० [ष० त०] १. रजस्वला स्त्री। २. दे० 'कुसुमपुर'।

कुसुम-पुर—पुं० [मध्य० स०] आधुनिक पटना नगर का प्राचीन नाम।

कुसुम-बाण—पुं० [ब० स०] कामदेव।

कुसुम-रेणु—पुं० [ष० त०] पराग।

कुसुमवान†—पुं० [सं० कुसुम-बाण] कामदेव।

कुसुम-विचित्रा—स्त्री० [उपमित स०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, यगण, नगण और यगण होता है।

कुसुम-शर—पुं० [ब० स०] कामदेव।

कुसुम-स्तवक—पुं० [ष० त०] दंडक छंद का वह भेद जिसमें प्रत्येक चरण में नौ या नौ से अधिक सगण होते हैं।

कुसुमांजन—पुं० [कुसुम-अंजन, मध्य० स०] जस्ते को फूँककर तैयार की हुई भस्म।

कुसुमांजलि—स्त्री० [कुसुम-अंजलि, मध्य० स०] फूलों से भरी हुई अंजली। पुष्पांजलि।

कुसुमाकर—पुं० [कुसुम-आकर, ष० त०] १. वसंत ऋतु। २. फुलवारी। बगीचा। ३. छप्पय का एक भेद।

कुसुमाधिप, कुसुमाधिराज—पुं० [कुसुम-अधिप, कुसुम अधिराज ष० त०] चंपा का पेड़।

कुसुमायुध—पुं० [कुसुम-आयुध, ब० स०] कामदेव।

कुसुमाल—पुं० [कुसुम-आ√ला (लेना)+क] चोर।

कुसुमावलि—स्त्री० [कुसुम-आवलि, ष० त०] फूलों का गुच्छा या समूह।

कुसुमासव—पुं० [कुसुम-आसव, ष० त०] १. फूलों का रस। मकरंद। २. मधु। शहद।

कुसुमित—वि० [सं० कुसुम+इतच्] १. (पौधा) जिसमें फूल लगे हों। २. खिला हुआ। (क्व०) ३. (स्त्री) जिसका रजस्राव हो रहा हो।

कुसुमित-लता-वेल्लिता—स्त्री० [कुसुमित-लता, कर्म० स०, कुसुमितलता-वेल्लिता, उपमित स०] एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, तगण, नगण, यगण, यगण और यगण होता है।

कुसुमी—वि० [सं० कुसुम] १. कुसुम-संबंधी। कुसुम का। २. कुसुम

के फूलों के रंग का। पीलापन लिये हुए लाल रंग का। जैसे—कुसुमी साड़ी।
कुसुमेषु—पुं० [कुसुम-इषु ब० स०] कामदेव।
कुसुली†—स्त्री०=कुसली।
कुसूत—पुं० [सं० कु-सूत्र, प्रा० सुत्त] १. खराब या बुरा सूत। २. कु-प्रबंध।
कुसूर—पुं० [अ० कुसूर] १. भूल। २. अपराध। ३. दोष।
कुसूरवार—पुं० [अ०+फा०] १. अपराधी। २. दोषी।
कुसूल—पुं०=कुशूल।
कु-सृति—स्त्री० [सं० कुगति स०] १. इंद्रजाल। जादू के खेल। २. दुराचार। बद-चलनी। ३. पाजीपन। दुष्टता।
कुसेस—पुं० दे० 'कुसेसय।'
कुसेसय*—पुं० [सं० कुशेशय] कमल।
कुस्तंबरु—पुं० [सं० कुस्तंबरु] धनिया का बीज।
कुस्ती—स्त्री०=कुश्ती।
कु-स्तुंबरु—पुं० [सं० कु-तुम्बरु, कुगति स० स का आगम] धनिया।
कुस्तुभ—पुं० [सं० कु√स्तुम्भ् (धारण)+क] विष्णु।
कुस्सा—पुं० [देश०] कुदाल।
कुहँकुहँ—पुं० दे० 'कुमकुम'।
कुहँचा—पुं० [हिं० कोहनी या पहुँचा] कलाई। पहुँचा।
कुह—पुं० [सं०√कुह् (आश्चर्यित करना)+णिच्+अच्] कुबेर।
पुं० [अनु०] पक्षियों के कुहकने का शब्द।
कुहक—पुं० [सं०√कुह्+क्वुन्—अक] १. माया। धोखा। २. जाल। ३. इंद्रजाल। ४. जादू की तरह अद्भुत जान पड़नेवाली कोई बात। ५. मेंढक।
स्त्री० १. कुहकने की क्रिया या भाव। २. मुरगे की बाँग। ३. कोयल की कूक।
वि० [स्त्री० कुहकिनी] १. मायावी। जैसे—लो कुहकिनी अपना कुहुक (कुहक) यह जागा।—मैथिलीशरण गुप्त। २. चालाक। धूर्त्त।
कुहकना—अ० [सं० कुहक वा कुहू] १. कोयल का कुहू-कुहू शब्द करना। पिहकना। २. पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना।
कुहकनी—वि० [हिं० कुहकना] कुहकनेवाला।
स्त्री० कोयल।
कुहकुह—पुं०=कुंकुम (केसर)।
कुहकुहाना—अ०=कुहकना।
कुहक्क—पुं० [?] ताल के आठ भेदों में से एक। जिसमें दो द्रुत और दो लघु मात्राएँ होती हैं।
स्त्री०=कुहक।
कुहन—वि० [सं० कु√हन् (हिंसा, गति)+अप्] १. ईर्ष्यालु। २. घमंडी। ३. पाखंडी।
पुं० १. चूहा। २. साँप। ३. मिट्टी या शीशे का छोटा पात्र।
कुहना†—स० [सं० कु-हनन=मारना] वध या हनन करना। जान से मार डालना।
स०=कुहकना।
पुं० [हिं० कुहकना] कोयल के मधुर बोल।
कुहनी*—स्त्री०=कोहनी।
कुहप—पुं० [सं० कुहू=अमावास्या+प] रजनीचर। राक्षस।
कुहबर†—पुं०=कोहबर।
कुहर—पुं०[सं० कुह=विस्मय√रा (देना)+क] १. एक सर्प का नाम। २. छिद्र। छेद। ३. बिल। सूराख। ४. गुफा। ५. कंठनील।
पुं० [देश०] एक प्रकार का शिकार (शिकारी पक्षी)।
कुहरा†—पुं०=कोहरा।
कुहराम—पुं० [अ० कहर+आम] १. संकट आदि के समय जन-समाज में होनेवाली भाग-दौड़ या हलचल। २. बहुत-से लोगों का मिलकर रोना-कलपना।
कुहरित—पुं० [सं० कुहर+णिच्+क्त] १. कोयल की कूक। २. मैथुन के समय मुँह से निकलनेवाले सुख-पूर्ण निरर्थक शब्द।
कुहरी†—स्त्री०=कोहरा।
कुहलि—पुं० [सं० कु√हल् (विलेखन)+इन्] पान।
कुहसार—पुं० [फा०] १. पर्वतीय प्रदेश। २. पर्वत।
कुहाँर†—पुं०=कुम्हार।
कुहा—स्त्री० [सं०√कुह्+क, टाप्] कटुकी (ओषधि)।
कुहाड़ा†—पुं० [स्त्री० अल्पा० कुहाड़ी]=कुल्हाड़ा।
कुहाना†—अ० [सं० क्रोधन, पा० कोहन] १. क्रुद्ध होना। २. रूठना।
स० किसी को अप्रसन्न या क्रुद्ध करना।
कुहारा†—पुं० [स्त्री० अल्पा० कुहारी]=कुल्हाड़ी।
कुहासा*—पुं० दे० 'कोहरा'।
कुहिर*—पुं०=कोहरा।
कुहिरा*—पुं०=कोहरा।
कुही—स्त्री० [सं० कुधि=एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया, जिसका आकार-प्रकार बाज का-सा होता है।
पुं० [फा० कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति।
वि० [हिं० कोह=क्रोध] क्रोधी। उदा०—कलहा, कुही, मूष रोगी अरु काहूँ नेकुँ न भावै।—सूर।
†वि० [सं० कुहू] १. अंधकारपूर्ण। २. कृष्ण पक्ष का।
कुहुँचा—पुं० दे० 'पहुँचा' (कलाई)।
कुहु—स्त्री० [सं०√कुह् (विस्मित करना)+कु]=कुहू।
पुं० [फा० कोही] पहाड़ी घोड़ा।
कुहुक—पुं०, स्त्री०, वि०=कुहक।
कुहुकना†—अ०=कुहकना।
कुहुकवान—पुं० [हिं० कुहुक+वाण] बाँस की कई पट्टियों को जोड़कर बनाया जानेवाला एक प्रकार का बाण, जिसके चलते समय कुहक-जैसा शब्द निकलता है। उदा०—दिल्लीपति आखेट चढ़ि, कुहुकवान हयनारि।—चंदबरदाई।
कुहुकिनी†—स्त्री०=कुहकनी।
कुहूँ*—स्त्री०=कुहू।
कुहू—स्त्री० [सं० कुहु+ऊङ्] १. अमावास्या की अधिष्ठात्री देवी या शक्ति। २. अमावास्या की रात। ३. कोयल की बोली। ४. प्लक्ष द्वीप की एक नदी।

स्त्री० [हिं० कुहकना] १. कोयल की बोली। २. मोर की बोली।

कुहू-कंठ—पुं० [व०स०] कोयल।

कुहूकवान—पुं०=कुहुकवान।

कुहू-मुख—पुं० [व० स०] कोयल।

कुहू-रव—पुं० [व० स०] कोयल।

कुहेलिका†—स्त्री० [सं० कु√हेड् (वेष्टन)+इन्+कन्, टाप्, लत्व] कुहरा।

कुहेली—स्त्री० [सं० कु√हेड्+इन्, ङीप्, लत्व] कुहरा।

कुहौ—†स्त्री० [सं० कुहू] १. कोयल की कूक। २. मोर की बोली।

कुहौकुहं†—स्त्री०=कुहक (कोयल की)।

कूंआ†—पुं०=कूआँ।

कूं कूं—पुं० [सं० कुंकुंम] केसर उदा०—कमनीय करे कूं कूं चौ निजकरि।—प्रिथीराज।

कूंख—स्त्री०=कोख।

कूंखना—अ०=काँखना।

कूंग—पुं० [हिं० कुनना] कसेरों की एक प्रकार की खराद जिस पर वे बरतन खरादते और उन पर जिला अर्थात् पालिश करते हैं।

कूंगा—पुं० [देश०] चमड़ा सिझाने के लिए बनाया हुआ बबूल की छाल का काढ़ा।

कूंच—स्त्री० [हिं० कूंचा] १. खस अथवा नारियल के रेशों का बना बुरुश जिससे जुलाहे ताने का सूत साफ करते हैं। २. लोहारों की बड़ी सँड़सी।

स्त्री० [सं० कूचिका=नली] घोड़ानस (दे०)।

पुं०=कूच।

कूंचना†—स० [हिं० कूंचा]=कुचलना।

कूंचा—पुं० [हिं० कुचलना] १. टूटे हुए जहाज के टुकड़े। २. भड़भूंजे का कलछा।

†पुं०=कूचा।

कूंची—स्त्री०=कूची।

कूंज—स्त्री० [सं० क्रौंच, पा० कोंच] १. जलाशयों के किनारे रहनेवाला बगले के आकार का एक प्रसिद्ध पक्षी। करांकुल।

कूंजड़ा—पुं० [स्त्री० कूंजड़ी]=कुंजड़ा।

कूंजना—अ०=कूजना।

कूंजरा—पुं० [स्त्री० कूंजरी]=कूंजड़ा।

कूंझ—स्त्री०=कूंज।

कूंट—पुं० [?] पैर का बंधन। उदा०—करह झेकि दोनू चढचा, कूंट न सँभालेह।—ढोला मारू।

कूंड—स्त्री० [सं० कुंड] १. युद्ध के समय सिर पर पहनी जानेवाली लोहे की टोपी। खोद। २. मिट्टी, लोहे आदि का वह बड़ा और गहरा बरतन जिसके द्वारा कूएँ में से सिंचाई के लिए पानी निकाला जाता है। ३. उक्त के आकार का वह पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर तबले के साथ का 'बायाँ' बनाया जाता है। ४. हल जोतने से खेत में बनी हुई गहरी लकीर।

कूंडा†—पुं० [सं० कूंड] [स्त्री० कूंडी] १. पानी रखने का काठ या मिट्टी का बड़ा और गहरा पात्र। २. कटोरे आदि के आकार का कोई पात्र। जैसे—कठौता। ३. गमला। ४. रोशनी करने की एक प्रकार की शीशे की बड़ी हाँड़ी।

कूंडी—स्त्री० [हिं० कूड़ा] १. पत्थर की बनी हुई कटोरी। पथरी। पत्थर की प्याली। २. छोटी नाँद। ३. कोल्हू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाट रहती है।

†स्त्री० [सं० कुंडली] एँड़ुरी जिसे सिर पर रखकर स्त्रियाँ घड़ा उठाती हैं।

कूंथना†—स० [सं० कुंथन=दुःख उठाना] १. कराहना। २. कबूतरों का 'गुटरगूं' शब्द करना।

कूंदना—स० दे० 'कुनना'।

कूंपली—स्त्री० [हिं० कुप्प] कुप्पी के आकार का लकड़ी का वह पात्र जिसमें स्त्रियाँ काजल, टिकुली आदि सुहाग का सामान रखती हैं। (राज०)

कू—स्त्री० [सं०√कू (शब्द)+क्विप्] पिशाची।

कूआँ—पुं० [सं० कूप; कूप; गु० कुवो; सिं० खुहु; का० खुह्; पं० खूह; ने० कुआ; बं० उ० कूआ; मरा० कुवा] १. पानी निकालने के लिए जमीन में खोदा हुआ गहरा तथा गोल गड्ढा।

मुहा०—**कूआँ खोदना**=जीविका-निर्वाह के लिए परिश्रम और प्रयत्न करना। जैसे—यहाँ तो नित्य कूआँ खोदना और नित्य पानी पीना है। **कूआँ चलाना**=खेत सींचने के लिए कूएँ से पानी निकालना। **कूआँ झाँकना**=किसी खोज या प्रयत्न में चारों ओर मारे-मारे फिरना। दौड़-धूप करना। **कूएँ की मिट्टी कूएँ में लगना**=(क) जहाँ की आमदनी हो, वहीं खर्च होना। (ख) जहाँ की चीज हो वहीं के काम आना। **कूएँ पर से प्यासे लौट आना**=ऐसे स्थान पर से निराश लौटना जहाँ कोई काम बहुत सहज में हो सकता हो। **कूंए में बाँस डालना**=किसी चीज की थाह लगाने या किसी को ढूँढ़ने के लिए अथक परिश्रम करना। **कूएँ में बोलना या कूएँ में से बोलना**=इतने धीरे से बोलना कि सुनाई न पड़े। **कूएँ में भाँग पड़ना**=ऐसी स्थिति होना जिसमें सब लोग नशे की हालत में पागलों की तरह अनुचित आचरण या व्यवहार करने लगें।

२. बहुत ही गहरी और अँधेरी जगह। ३. ऐसा स्थान या स्थिति, जिसमें बहुत अधिक संकट की संभावना हो।

मुहा०—(किसी के लिए) **कूआँ खोदना**=किसी को फँसाने अथवा उसकी भारी हानि करने का प्रयत्न करना। **कूएँ में गिरना**=विपत्ति या संकट में पड़ना। **कूएँ में गिराना या डालना**=(क) नष्ट करना। (ख) विपत्ति या संकट में फँसाना।

४. रहस्य संप्रदाय में हृदय-रूपी कमल।

कूई—स्त्री० [हिं० कुव+ई प्रत्य०] १. जल में होनेवाला एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके छोटे सुन्दर फल कमल की तरह के होते हैं। २. उक्त पौधे के फूल, जो चाँदनी रात में खिलते हैं।

कूक—स्त्री० [हिं० कूकना (अ०)] १. कोयल या मोर की लंबी सुरीली ध्वनि। २. लंबी सुरीली ध्वनि।

स्त्री० [हिं० कूकना (स०)] घड़ी, बाजे आदि को कूकने अर्थात् उनमें कुंजी देने की क्रिया या भाव।

कूकड़†—पुं०=कुक्कुट (मुरगा)।

कूकना—अ० [सं० कूजन] १. कोयल, मोर आदि का कू-कू शब्द करना। २. कोयल या मोर की-सी बोली बोलना। ३. सुरीली ध्वनि निकालना।

स० [अनु०] घड़ी, कमानीदार बाजे आदि चलाने के लिए उनकी चाबी या कुंजी घुमाकर उनमें दम भरना। कुंजी या चाबी देना।

कूकर†—पुं० [सं० कुक्कुर] [स्त्री० कूकरी] कुत्ता। श्वान।

कूकरकौर—पुं० [हिं० कूकर+कौर] १. कुत्ते के निमित्त छोड़ा हुआ उच्छिष्ट भोजन या ग्रास। २. तुच्छ या हीन वस्तु।

कूकरचंदी—स्त्री० [हिं० कूकर+सं० चंड] एक प्रकार की जंगली जड़ी जिसके व्यवहार से कुत्ते के काटने पर होनेवाला घाव ठीक हो जाता है।

कूकर-निंदिया†—स्त्री०=कूकरनींद।

कूकरनींद—स्त्री० [हिं० कूकर+नींद] ऐसी नींद जो हलकी-सी आहट होने पर भी उचट जाय।

कूकरभँगरा—पुं० [हिं० कूकर+हिं० भंगरा] १. काला भँगरा। २. कुकरौंवा।

कूकरमुत्ता†—पुं०=कुकुरमुत्ता।

कूकरलेंड—पुं० [हिं० कूकर+लेंड] कुत्तों और कुतियों का मैथुन।

कूका—पुं० [हिं० कूकना=जोर से चिल्लाना] १. सिक्खों का एक सम्प्रदाय जो सन् १८६७ में रामसिंह नाम के एक बढ़ई ने चलाया था; और जिसने आगे चलकर राजनीतिक रूप धारण किया था। नामधारी या निहंग संप्रदाय। २. उक्त संप्रदाय का अनुयायी व्यक्ति।

कूकी—स्त्री० [देश०] फसल को हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

कूख—स्त्री०=कोख।

कूच—पुं० [तु०] यात्रा आरंभ अथवा कहीं प्रस्थान करने की क्रिया या भाव। रवानगी।

मुहा०—(इस दुनिया से) **कूच कर जाना**=मर जाना। **कूच का डंका या नक्कारा बजाना**=राजा, सेना आदि का कहीं से प्रस्थान करना। **कूच बोलना**=अधीनस्थ सैनिकों आदि को कहीं से प्रस्थान करने का आदेश देना।

पुं० [देश०] पतझड़ के बाद महुए के पेड़ की टहनियों से निकलनेवाला कलियों का गुच्छा।

पुं० [सं०] अविवाहिता जवान स्त्री के स्तन। कुच।

†पुं०=कूँच (घोड़ा-नस)।

कूचा—पुं० [फा० कूचः] कम चौड़ा या छोटा रास्ता। सँकरा मार्ग। बड़ी गली।

†पुं० दे० 'कूँचा'।

कूचागर्दी—स्त्री० [फा०] गलियों में इधर-उधर व्यर्थ घूमते-फिरते रहने की क्रिया या भाव।

कूचिका—स्त्री० [सं० कूच+कन्, टाप्, इत्व] १. कूँची। २. कुंजी। ताली।

कूची—स्त्री० [सं० कूचिका] १. छोटा कूचा या झाड़। २. मूँज आदि का बनाया हुआ एक प्रकार का ब्रुश, जिससे दीवारों पर सफेदी की जाती है। ३. चित्रकार की वह कलम जिससे वह चित्रों में रंग आदि भरता है। तूलिका।

मुहा०—**कूची देना**=चित्रों आदि में रंग भरना।

स्त्री० [फा० कूजा] १. वह कुल्हिया, जिसमें मिस्री जमाई जाती है। २. मिट्टी का वह बरतन, जिसमें कोल्हू से निकला हुआ रस इकट्ठा होता है।

†स्त्री०=कुंजी (ताला खोलने की)।

कूचुक—पुं० [फा० काउचुक] कुछ विशिष्ट वृक्षों का वह दूधिया निर्यास जो सूखकर लचीला और रबर की तरह जल-कवच हो जाता है। (काउचुक)

कूज—स्त्री० [हिं० कूजना] ध्वनि। शब्द।

*=कूजा।

कूजन—स्त्री० [सं०√कूज् (अव्यक्त शब्द)+ल्युट्—अन] [वि० कूजित] पक्षियों के कोमल और मधुर स्वर में बोलने की क्रिया या भाव।

कूजना—अ० [सं० कूजन] पक्षियों का कोमल और मधुर स्वर में बोलना।

कूजा—पुं० [फा० कूजः] १. मिट्टी का अर्धवर्तुलाकार छोटा बरतन। कुल्हड़। २. उक्त पात्र में जमाई हुई मिस्री।

पुं० [सं० कुब्जक] १. गुलाब के पौधों की एक जाति। २. उक्त जाति के गुलाब का फूल जिसका रंग गहरा लाल होता है।

कूजित—भू० कृ० [सं०√कूज्+क्त] १. जो बोला या कहा गया हो। ध्वनित। २. मधुर स्वर में कहा हुआ। ३. ध्वनिपूर्ण (स्थान)।

कूट—पुं० [सं०√कूट् (आच्छादित करना, जलाना आदि)+अच्] १. पहाड़ की ऊँची चोटी। जैसे—चित्रकूट। २. आगे की ओर निकला हुआ नुकीला सिरा। नोक। ३. सींग। ४. ढेर। राशि। जैसे—अन्नकूट। ५. हल की वह लकड़ी, जिसमें फाल लगा होता है। ६. लोहे का बड़ा हथौड़ा। ७. हिरन आदि फँसाने का जाल। ८. म्यान में रखा हुआ हथियार। ९. छल। धोखा। १०. बैर। ११. झूठ। १२. अगस्त्य ऋषि। १३. घड़ा। १४. नगर का द्वार। १५. साहित्य में ऐसा पद या रचना, जिसमें श्लिष्ट अथवा संबंध-सूचक सांकेतिक शब्दों का प्राधान्य हो और इसी लिए जिसका ठीक अर्थ जल्दी सब लोगों की समझ में न आता हो। जैसे—सूर के कूट। १६. कोई ऐसी रहस्यमय बात जिसका आशय या मतलब जल्दी समझ में न आता हो। उदा०—प्रश्न चित्रों का फैला कूट।—'निराला'। १७. वह हास्य या व्यंग्य, जिसमें कोई गूढ़ अर्थ या आशय छिपा हो। १८. निहाई। १९. टूटे हुए सींगोंवाला बैल।

वि० [सं०] १. झूठा। मिथ्यावादी। २. छली। धोखा देनेवाला। ३. कृत्रिम। जाली। बनावटी। जैसे—कूट-मुद्रा। ४. प्रधान। मुख्य।

स्त्री० [हिं० कूटना] १. कोई चीज कूटने की क्रिया या भाव। २. कूटने की मजदूरी।

†पुं० दे० 'कुट' (ओषधि)।

कूटक—वि० [सं० कूट+कन्] किसी को छलने या धोखा देने के लिए कहा, किया या बनाया हुआ। जैसे—कूटक आख्यान।

कूट-कर्म (न्)—पुं० [प० त०] ऐसा काम जो दूसरे को छलने या धोखा देने के लिए किया गया हो।

कूट-कर्मा (र्मन्)—पुं० [ब० स०] कूट-कर्म करने अर्थात् दूसरों को छलने या धोखा देनेवाला व्यक्ति।

कूट-क्षेत्र—पुं० [ष० त०] सामरिक दृष्टि से विशेष महत्त्व का कोई क्षेत्र। (स्ट्रैटेजिक एरिया)

कूट-तर्क—पुं० [कर्म० स०] १. सीधी बात घुमाकर कहने की क्रिया। २. इस प्रकार कही हुई बात। वाग्जाल।

कूटता—स्त्री० [सं० कूट+तल्-टाप्] १. कूट होने की अवस्था या भाव। २. कपट। छल। ३. झूठ। ४. कठिनाई। दिक्कत।

कूट-तुला—स्त्री० [कर्म० स०] ऐसा तराजू, जिसमें जान-बूझकर पासँग रखा गया हो; और इसी लिए जिसमें चीज उचित से कम तुलती हो।

कूटत्व—पुं० [सं० कूट+त्व]=कूटता।

कूटन—स्त्री० [हि० कूटना] १. कूटने की क्रिया। २. कोई चीज कूटने पर बननेवाला उसका रूप।

कूटना—स० [सं० कुट्टन] १. किसी चीज पर इस प्रकार भारी चीज से बार-बार आघात करना कि उसके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो जायँ। जैसे—मसाला कूटना। २. धान को ऊखल में रखकर मूसल आदि से इस प्रकार बार-बार आघात करना कि उसकी भूसी अलग हो जाय। मुहा०—(कोई चीज) कूट-कूट कर भरना=दबा-दबा कर किसी पात्र में कोई वस्तु अधिक-से-अधिक मात्रा में भरना। (किसी व्यक्ति में) कूट-कूटकर भरा होना=(किसी व्यक्ति में) कोई गुण या दोष बहुत अधिक मात्रा में होना। जैसे—चतुराई तो उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है।

३. जोर-जोर से बराबर मारते रहना। खूब ठोंकना या पीटना। ४. टाँकी आदि से आघात करते हुए चक्की, सिल आदि का तल इसलिए खुरदुरा करना कि उससे चीजें अच्छी तरह पिस सकें। ५. बैल या भैंसे का अंडकोश आघात से चूर-चूर करके उसे बधिया करना। ६. ऊँट का पैर मोड़कर उसे ऊपरी भाग से बाँधना।

कूट-नीति—स्त्री० [कर्म० स०] व्यक्तियों अथवा राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में दाँव-पेच की ऐसी नीति या चाल जो सहज में प्रकट या स्पष्ट न हो सके। छिपी हुई चाल। (डिप्लोमेसी)

कूट-पण—पुं० [कर्म०स०] ऐसा लेख्य या सिक्का जो असली या वास्तविक न हो, बल्कि जाल रचकर बनाया गया हो।

कूट-पाठ—पुं० [ब० स०] मृदंग के चार वर्णों में से एक वर्ण।

कूट-पालक—पुं० [सं० कूट√पाल् (रक्षण)+णिच्+ण्वुल्—अक] पित्तज्वर।

कूट-पाश—पुं० [कर्म० स०] पक्षियों को फँसाने का जाल।

कूट-पूर्व—पुं० [मध्य० स०] हाथियों का त्रिदोषज ज्वर।

कूट-प्रश्न—पुं० [कर्म० स०] १. ऐसा प्रश्न जिसका उत्तर सहज में न दिया जा सके। २. पहेली।

कूट-बंध—पुं० [कर्म० स०] पक्षी आदि फँसाने का जाल।

कूट-मान—पुं० [कर्म० स०] १. ऐसी तौल या मान जो पूरा या मानक न हो। ठीक नाप से कुछ बड़ा या छोटा नाप। २. उचित से हलका या भारी बटखरा।

कूट-मुद्र—पुं० [ब० स०] वह जो जाली मुद्राएँ, लेख्य, सिक्के आदि बनाता हो।

कूट-मुद्रा—स्त्री० [कर्म० स०] खोटा या जाली मुद्रा, लेख्य या सिक्का।

कूट-मोहन—पुं० [सं० कूट√मुह् (मुग्ध होना)+णिच्+ल्यु—अन] कार्त्तिकेय।

कूट-युद्ध—स्त्री० [कर्म० स०] ऐसा युद्ध या लड़ाई जिसमें धोखा देनेवाली चालें चली जायँ। 'धर्म-युद्ध' का विपर्याय।

कूट-योजना—स्त्री० [कर्म० स०] षड्यंत्र।

कूट-रूप—पुं० [कर्म० स०] जाली सिक्का।

कूट-लेख—पुं० [कर्म० स०] जाली दस्तावेज या लेख्य।

कूट-लेखक—पुं० [कर्म० स०] जाली दस्तावेज बनानेवाला व्यक्ति।

कूट-शाल्मलि—पुं० [कर्म० स०] जंगली शाल्मलि (सेमर) का वृक्ष।

कूट-शासन—पुं० [कर्म० स०] जाली राजकीय आज्ञापत्र।

कूट-साक्षी (क्षिन्)—पुं० [कर्म० स०] झूठा गवाह।

कूट-साक्ष्य—पुं० [कर्म० स०] झूठी गवाही।

कूटस्थ—वि० [सं० कूट√स्था (ठहरना)+क] १. जो कूट अर्थात् सबसे ऊँचे या श्रेष्ठ स्थान पर स्थित हो। २. अटल। अचल। ३. अविनाशी। ४. छिपा हुआ। ५. विकार-रहित। निर्विकार।
पुं० [सं०] १. व्याघ्रनख नामक सुगंधित पदार्थ। २. जीव। ३. परमात्मा। ४. वेदान्त में चेतन का वह रूप जो अविद्या से आच्छन्न रहता है।

कूट-स्थल—पुं० [ष० त०] सामरिक दृष्टि से अधिक महत्त्व का कोई विशिष्ट केन्द्र या स्थान। (स्ट्रैटेजिक प्वाइन्ट)

कूट-स्वर्ण—पुं० [कर्म० स०] १. खोटा या जाली सोना। २. ऐसे सोने का सिक्का।

कूटा†—पुं० [हि० कूटना] १. वह व्यक्ति जो चीजें कूटने का काम करता हो। २. वह उपकरण जिससे चीजें कूटी जाती हों। कुटना।

कूटाक्ष—पुं० [सं० कूट-अक्ष, कर्म० स०] जूआ खेलने का ऐसा बनाया हुआ पासा जिससे अधिकतर कोई या कुछ विशिष्ट दाँव ही आते हों। (छलपूर्वक किसी को जीतने का साधन)

कूटाख्यान—पुं० [सं० कूट-आख्यान, कर्म० स०] १. कल्पित कथा। २. ऐसी कथा जिसमें कुछ ऐसे वाक्य हों जिनका कुछ अर्थ ही न लगता हो।

कूटागार—पुं० [सं० कूट-आगार, कर्म० स०] १. बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मानुषी बुद्धों के लिए बना हो। २. छत के ऊपर की कोठरी। चौबारा। ३. तहखाना।

कूटायुध—पुं० [सं० कूट-आयुध, कर्म० स०] ऐसा आयुध या हथियार जो किसी दूसरी चीज के अन्दर छिपा हुआ हो। जैसे—गुप्ती, जो ऊपर से देखने पर छड़ी जान पड़ती है पर जिसके अन्दर बरछी रहती है।

कूटार्थ—वि० [सं० कूट-अर्थ, कर्म० स०] (लेख या वाक्य) जिसका अर्थ सहज में न जाना जा सके।
पुं० लेख्य या वाक्य का उक्त प्रकार का अर्थ।

कूटावपात—पुं० [सं० कूट-अवपात, कर्म० स०] जंगली जानवरों को फँसाने के लिए बनाया हुआ गड्ढा, जो ऊपर से घास-पात से ढका रहता है।

कूटि*—स्त्री० [सं० कूट] कूट और व्यंग्यपूर्ण कथन या बात। उदा०—करहिं कूटि नारदहिं सुनाई।—तुलसी।

कूटी*—स्त्री०=कुटी (पर्णशाला)।

कूटी†—पुं० [सं० कूट+हिं० ई(प्रत्य०)] १. जाली या नकली वस्तुएँ बनानेवाला। जालिया। २. फरेबी। ३. कुटना।
स्त्री०*=कुटनी।

कूटू—पुं० [देश०] एक पौधा, जिसके बीजों का आटा फलाहार के रूप में खाया जाता है। कोटू।

कूड—वि० [सं० कूट] १. असत्य। मिथ्या। झूठ। २. छलयुक्त। उदा०—करहउ कूड़इ मनि थकइ पगाँराखीयउ जांणा।—ढोला मारू।

कूड़ा—पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड=ढेर] १. कोई चीज (जैसे—कमरा, घर, सड़क आदि) झाड़ने-पोंछने, बुहारने पर निकलनेवाली गंदी और रद्दी चीजें। कतवार। बुहारन। २. निकम्मी, व्यर्थ की या रद्दी चीजें।
पद०—कूड़ा-करकट=गली, सड़ी, व्यर्थ की अथवा रद्दी चीजें।

कूड़ा-कोठ—पुं० [हिं० कूड़ा+कोठा] वह स्थान या पात्र जिसमें कूड़ा फेंका जाता है। (डस्ट-बिन)

कूड़ाखाना—पुं० [हिं० कूड़ा+फा० खाना] कूड़ा फेंकने का स्थान।

कूढ़—वि० [सं० कु+ऊह=कूह, पा० कूघ] जिसकी समझ में जल्दी कोई बात आती ही न हो। बहुत बड़ा ना-समझ या मूर्ख।
पुं० [सं० कुण्टि, प्रा० कुड्डि] १. हल का वह भाग जिसके एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोंपी लगी रहती है। जांघा। नगरा। हलपत। २. नली के द्वारा खेत में बीज बोने का प्रकार।

कूढ़मग्ज—वि० [हिं० कूढ़+फा० मग्ज] बहुत बड़ा नासमझ या मूर्ख।

कूण—सर्व०=कौन। (राज०)

कूणिका—स्त्री० [सं०√कूण् (बोलना)+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व] वीणा, सितार, सारंगी आदि वाद्यों की वह खूँटी जिसमें तार बँधे रहते हैं।

कूणित—भू० कृ० [सं०√कूण्+क्त] १. जो बंद हुआ हो। २. सकुचा या सिकुड़ा हुआ।

कूणितेक्षण—पुं० [सं० कूणित-ईक्षण, ब० स०] बाज नामक पक्षी।

कूत—पुं० [सं० आकूत=आशय] १.किसी वस्तु का मान, मूल्य, महत्त्व आदि आँकने का काम। २. कुछ कल्पना करने के लिए मन-ही-मन कुछ सोचने की क्रिया या भाव।

कूतना—स० [हिं० कूत] किसी वस्तु का मान, मूल्य या महत्त्व अटकल या अनुमान से आँकना। अन्दाज लगाना। जैसे—खेत की पैदावार कूतना।

कूथना†—अ० [सं० कुंथन] १. कराहना। २. काँखना।
† स०=कूटना।

कूद—स्त्री०[हिं० कूदना]कूदने की क्रिया या भाव। जैसे—उछल-कूद।

कूदना—अ० [सं० स्कुंदन, प्रा० कुंदन] १. किसी ऊँचे स्थान से नीचे स्थान की ओर एकबारगी तथा बिना किसी सहारे के उतरना। जैसे—चबूतरे या छत पर से कूदना। २. किसी वस्तु के एक छोर से छलाँग भरकर उसे लाँघते हुए दूसरे छोर पर पहुँचना। जैसे—कूदकर नाला पार करना। ३. किसी काम या बात के बीच में झट से आ पहुँचना या दखल देना। ४. लाक्षणिक अर्थ में, बिना अधिकार या अनुमति लिये दूसरों के कामों या बातों में दखल देना। ५. अचानक कहीं आ पहुँचना। ६. ठीक प्रकार से काम न करके बीच-बीच में बहुत-सी बातें छोड़ते हुए आगे बढ़ना।

कूदा†—पुं० [हिं० कूदना] खेत या जमीन नापने का एक परिमाण।

कून—स्त्री० [फा०] मलद्वार। गुदा।
† पुं० १. दे० 'कुंद'। २. दे० 'कूण'।

कूनना—स० दे० 'कुनना'।

कूना*—पुं० [सं० कुणप] १. मृत शरीर। शव। लाश। २. देह। शरीर। ३. बरछा। भाला।

कूनी—स्त्री० [हिं० कूँड़ी] कोल्हू के बीच का गड्ढा जिसमें ऊख के टुकड़े डालकर पेरे जाते हैं। कूँड़ी।

कूप—पुं० [सं०√कू (शब्द)+पक्, दीर्घ] १. कूआँ। २. छेद। सूराख। जैसे—रोम-कूप। ३. गहरा गड्ढा। ४. रहस्य-संप्रदाय में हृदय-रूपी कमल।
*पुं०=कुप्पा।

कूपक—पुं० [सं० कूप+कन्] १. छोटा कूआँ। २. आजकल कूएँ के आकार-प्रकार का वह बड़ा गड्ढा, जो खानों में आने-जाने और उसमें से खनिज पदार्थ निकालने के लिए बनाया जाता है। (शैफ्ट) ३. चमड़े की बनी तेल या घी रखने की कुप्पी। ४. नाव बाँधने का खूँटा। ५. जहाज या नाव का मस्तूल। ६. चिता।

कूप-कच्छप—पुं० [पात्रे समितादिवत् समा० (स० त०)]=कूप-मंडूक।

कूपकार—पुं० [कूप√कृ (करना)+अण्] कूआँ खोदने या बनानेवाला।

कूप-चक्र—पुं० [प०त०]=कूप-यंत्र।

कूपन—पुं० [अं०] १. बही आदि में टँका या लगा हुआ कागज का वह टुकड़ा जो काटकर या निकालकर इसलिए संकेत रूप में किसी को दिया जाता है कि उसके द्वारा वह किसी प्रकार का प्राप्य या सुभीता प्राप्त कर सके। जैसे—राशन पाने का कूपन। २. मनीआर्डर फार्म का वह निचला भाग, जिसमें पानेवाले के लिए कोई समाचार या सूचना लिखी जाती है।

कूप-मंडूक—पुं० [पात्रे समितादिवत् समा०] १. कूएँ में रहनेवाला मेंढक। २. लाक्षणिक अर्थ में ऐसा व्यक्ति जिसका ज्ञान-क्षेत्र बहुत ही परिमित हो; अथवा जिसने अपना क्षेत्र छोड़कर बाहर का संसार न देखा हो।

कूप-यंत्र—पुं० [प० त०] चरखी अथवा ऐसा ही और कोई यंत्र, जिसकी सहायता से कूएँ से पानी निकालते हैं।

कूपार—पुं० [सं० कु√पृ (भरना)+अण्, पूर्वदीर्घ] समुद्र।

कूपी—स्त्री० [सं० कूप+ङीप्] १. छोटा कुआँ। २. नाभि का गढ़ा। ३. कुप्पी।

कूफी—स्त्री० [अ० कूफ़:=एक प्राचीन नगर] प्राचीन अरबी लिपि का एक प्रकार या भेद।

कूब†—पुं०=कूबड़।

कूबड़—पुं० [सं० कूबर] १. पीठ के टेढ़ेपन के कारण होनेवाला उस पर का उभार, जो एक प्रकार का रोग है। २. किसी चीज का उभारदार टेढ़ापन या गोलाई। हम्प। जैसे—ऊँट का कूबड़।

कूबड़ा†—पुं०=कुबड़ा।

कूबर—पुं० [सं०√कू (शब्द) व (ब) रच्] १. कूबड़। २. बाँस,

जो रथ या गाड़ी में जुआ बाँधे जाने के लिए लगता है। युगंधर। ३. रथ या गाड़ी का वह भाग जिस पर रथी या गाड़ीवान बैठता है।
वि०=कुबड़ा।

कूवर (र) †—पुं०=कुबड़ा।

कूवरी—स्त्री०=कुबरी।

कूवा—पुं०=कूवड़।
वि०=कूवड़ा।

कूम—पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़, जिसकी लकड़ी इमारत के काम आती है।

कूमटा—पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कपास। २. दे० 'कूम'।

कूर—वि० [सं० क्रूर] [भाव० कूरता, कूरपन] १. जिसमें दया न हो। निर्दय। २. दुष्ट। नीच। ३. मूर्ख। ४. पापी। ५. डरावना। भयंकर।
*पुं० १. दे० 'कूड़ा'। २. दे० 'कूड़'।

कूरता—स्त्री० [हिं० कूर+ता (प्रत्य०)] १. क्रूरता। २. कठोरता।

कूरा—पुं० [सं० कूट] [स्त्री० कूरी] १. ढेर। राशि। उदा०—जारि भए√भसम की कूरा।—कबीर। २. अंश। भाग। *पुं० दे० 'कूड़ा'।

कूरी—स्त्री० [हिं० कूरा का स्त्री० अल्पा० रूप] १. छोटा ढेर। २. छोटा टीला।

कूर्च—पुं० [सं०√कुर् (शब्द)+चट्, दीर्घ] १. कूँची। २. मोर का पंख। ३. नाक का ऊपरी भाग। ४. सिर।

कूर्चक—पुं० [सं० कूर्च+कन्] १. कूँची, विशेषतः चित्रकार की। २. दाँत साफ करने की कूँची।

कूर्चिका—स्त्री० [सं० कूर्चक+टाप्, इत्व] १. कूँची। २. कुंजी। ३. कली। ४. सूई।

कूर्दन—पुं० [सं०√कूर्द् (खेलना)+ल्युट्—अन] खेलना-कूदना।

कूर्पर—पुं० [सं०√कुर्+क्विप्, कुर्√पॄ (पूर्ण करना)+अच्, दीर्घ] १. कोहनी। २. घुटना।

कूर्म—पुं० [सं० कु-ऊर्मि, ब० स०, पृषो० सिद्धि] १. कच्छप। कछुआ। २. भगवान् विष्णु का वह अवतार जिसमें उन्होंने कछुए का रूप धारण किया था। विष्णु का कूर्मावतार। ३. वह वायु जिसके बल से पलकें खुलती और बन्द होती हैं।

कूर्म-क्षेत्र—पुं० [मध्य० स०] एक तीर्थ स्थान।

कूर्म-पृष्ठ—पुं० [ष० त०] कछुए की पीठ।

कूर्मासन—पुं० [सं० कूर्म-आसन, मध्य० स०] हठयोग में एक प्रकार का आसन, जिसमें शरीर की आकृति कछुए की-सी बना ली जाती है।

कूर्मी—स्त्री० [सं० कूर्म+ङीप्] कछुई।

कूलंकषा—स्त्री० [सं० कल√कष् (काटना)+खच्, मुम्, टाप्] नदी।

कूल—पुं० [सं०√कूल् (आवृत करना)+अच्] १. तालाब, नदी, समुद्र आदि जलाशयों का किनारा। तट। २. नहर। ३. तालाब। ४. किसी वस्तु का सिरा। ५. किसी कार्य या बात की सीमा।
यौ०—कूल-किनारा=किसी बात की ऐसी स्थिति, जिसमें उसका निराकरण हो जाय। निबटारा।
अव्य० निकट। समीप।
पुं० [देश०] कपड़ा। वस्त्र।

कूलवती—स्त्री० [सं० कूल+मतुप्, वत्व, ङीप्] नदी।

कूला—पुं० [देश०] छोटी नहर। नाला।

कूलिका—स्त्री० [सं० कूल+कन्, टाप्, इत्व] वीणा, सितार आदि का निचला भाग।

कूलिनी—स्त्री० [सं० कूल+इनि—ङीप्] नदी।

कूल्टू—पुं० दे० 'कूटू'।

कूल्हा—पुं० [?] कमर या पेड़ू के दोनों ओर का कुछ उभरा हुआ भाग।

कूल्ही—स्त्री० [देश०] पीतल।

कूवटा†—पुं० [सं० कूप] १. कूआँ। २. दे० 'कूप'।

कूवत—स्त्री० [अ०] १. शारीरिक बल। शक्ति। २. किसी प्रकार की शक्ति। सामर्थ्य।

कूवा†—पुं०=कूआँ।

कूष्मांड—पुं० [सं० कु-ऊष्मा,-अण्ड, ब० स०] १. कुम्हड़ा। २. पेठा।

कूह—स्त्री० [अनु०] १. हाथी के चिंघाड़ने से होनेवाला शब्द। २. चीख। चिल्लाहट।
*पुं० कोलाहल। शोर।

कूहना†—स० [सं० कु+हन्] १. मारना-पीटना। २. बुरी तरह से हत्या करना। उदा०—कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है।—तुलसी।

कूहा—पुं० दे० 'कोहरा'।

कृंतन—पुं० [सं०√कृत् (काटना)+ल्युट्—अन, नुम्] काटने की क्रिया या भाव। कर्त्तन।

कृंतनी—स्त्री० [सं० कृन्तन+ङीप्] कैंची।

कृकर—पुं० [सं० कृ√कृ (करना)+ट] १. मस्तक की वह वायु जिसके वेग के कारण छींक आती है। २. शिव।

कृच्छ्र—पुं० [सं०√कृत्+रक्, छकार आदेश] १. कष्ट। दुःख। २. पाप। ३. मूत्र-कृच्छ्र रोग। ४. एक प्रकार का व्रत, जिसमें पंचगव्य खाकर दूसरे दिन उपवास किया जाता है।
वि० कष्ट-साध्य।

कृत—भू० कृ० [सं०√कृ (करना)+क्त] १. पूरा या संपन्न किया हुआ। २. संपादित। ३. बनाया हुआ। निर्मित। रचित। ४. (लेख्य) जो किसी बड़े अधिकारी के सामने उपस्थित करके हस्ताक्षरित करा लिया गया हो। (प्राचीन काल में ऐसा ही लेख्य प्रामाणिक माना जाता था)
पुं० [सं०] १. सतयुग। २. पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। ३. एक प्रकार का पासा। ४. चार की संख्या।

कृतक—वि० [सं०√कृत्+क्वुन्—अक] १. किया हुआ। कृत। २. (वस्तु) जो छलपूर्वक किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करने के लिए बनाई गई हो। जाली। ३. कृत्रिम। ४. अनित्य। ५. दत्तक (पुत्र)।

कृत-कर्मा(र्मन्)—वि० [ब० स०] दे० 'कृतकार्य'।

कृतकाज*—वि०=कृतकार्य।

कृतकाम—वि० [ब० स०] जिसकी इच्छा या कामना पूर्ण हो गई हो।

कृतकारज*—वि०=कृतकार्य।

कृत-कार्य—वि० [ब० स०] १. जिसका किया हुआ कार्य पूरा, संपन्न या सिद्ध हो चुका हो। २. ठीक प्रकार से अपना काम करनेवाला। ३. चतुर।

कृत-काल-दास—पुं० [कृत-काल, कर्म० स०, कृतकाल-दास, च० त०] कुछ काल या समय के लिए बना हुआ दास।

कृत-कृत्य—वि० [ब० स०] १. जिसने अपना कार्य पूरा कर लिया हो। २. जिसे अपने काम में पूरी सहायता मिली हो। ३. संतुष्ट तथा प्रसन्न।

कृतग्य*—वि०=कृतज्ञ।

कृतघन*—वि०=कृतघ्न।

कृतघ्न—वि० [सं० कृत√हन् (हिंसा)+टक्] [संज्ञा—कृतघ्नता] जो दूसरे के किये हुए उपकारों से अनभिज्ञ बनता हो। किसी के द्वारा अपने साथ की हुई भलाई भूल जानेवाला। एहसान या उपकार न माननेवाला। 'कृतचेता' या 'कृतज्ञ' का विपर्याय।

कृतघ्नता—स्त्री० [सं० कृतघ्न+तल्, टाप्] कृतघ्न होने की अवस्था या भाव।

कृतघ्नताई*—स्त्री०=कृतघ्नता।

कृतघ्नी*—वि०=कृतघ्न।

कृत-चेता (तस्)—वि० [सं०ब० स०] किया हुआ उपकार माननेवाला। कृतज्ञ। 'कृतघ्न' का विपर्याय।

कृतज्ञ—वि० [सं० कृत√ज्ञा (जानना)+क] [संज्ञा—कृतज्ञता] किसी के किये हुए अनुग्रह या उपकार को आदरपूर्वक स्मरण रखनेवाला। एहसान माननेवाला।

कृतज्ञता—स्त्री० [सं० कृतज्ञ+तल्, टाप्] कृतज्ञ होने की अवस्था या भाव।

कृत-दंड—पुं० [ब० स०] यमराज।

कृत-निंदक—वि० [प० त०] उपकार करनेवाले की भी निंदा या बुराई करनेवाला।

कृत-फल—पुं० [ब० स०] १. शीतलचीनी। २. कोलशिंबी।

कृत-माल—पुं० [ब० स०] अमलतास।

कृत-माला—स्त्री० [ब० स०] दक्षिण भारत की एक नदी।

कृत-मुख—पुं० [ब० स०] पंडित। विद्वान्।

कृत-युग—पुं० [कर्म० स०] सतयुग।

कृत-वर्मा (र्मन्)—पुं० [ब० स०] १. राजा कृतवीर्य का भाई। २. वर्त्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता (जैन)।

कृत-विद्य—वि० [ब० स०] १. जिसने अच्छी तरह अध्ययन करके किसी विद्या का पूरा ज्ञान प्राप्त किया हो। जो किसी विद्या का पूरा पंडित हो। (स्कॉलर) २. जो कोई काम करने में विशेष रूप से अभ्यस्त हो।

कृत-वीर्य—पुं० [ब० स०] कृतवर्मा का भाई, जो राजा कनक का पुत्र था।

कृत-वेदी (दिन्)—वि० [सं० कृत√विद् (जानना)+णिनि] कृतज्ञ।

कृत-श्लेषण-संधि—स्त्री० [कृत-श्लेषण, कर्म० स०, कृतश्लेषण-संधि, मध्य० स०] मित्रों को बीच में डालकर की हुई ऐसी संधि जिससे युद्ध की संभावना न रह जाय। (कौ०)

कृत-संकल्प—वि० [ब० स०] जिसने कोई काम करने का पक्का निश्चय या संकल्प कर लिया हो।

कृत-सापत्नी—स्त्री० [ब० स०] ऐसी स्त्री जिसके पति ने उसके जीते जी दूसरा विवाह कर लिया हो।

कृत-हस्त—वि० [ब० स०] हाथ से काम करने में निपुण। कुशल। दक्ष।

कृतांक—भू० कृ० [सं० कृत-अंक, ब० स०] जिस पर कोई अंक या चिह्न लगाया गया हो। अंकित या चिह्नित किया हुआ।

कृतांजलि—वि० [कृत-अंजलि, ब० स०] जो हाथ जोड़े या बाँधे हुए हो।

कृतांत—वि० [कृत-अंत, ब० स०] १. पूर्ण या समाप्त करनेवाला। २. अंत या नाश करनेवाला।

पुं० १. यमराज। २. मृत्यु। ३. पाप। ४. देवता।

कृतांता—स्त्री० [सं० कृतांत+टाप्] रेणुका नामक सुगंधित द्रव्य।

कृताकृत—भू० कृ० [कृत-अकृत, द्व० स०] आधा-तीहा किया हुआ। कुछ किया और कुछ छोड़ा हुआ। अधूरा।

पुं० अधूरा काम।

कृतात्मा (त्मन्)—पुं० [कृत-आत्मन्, ब० स०] १. शुद्ध आत्मावाला मनुष्य। महात्मा। २. पुण्य तथा स्तुत्य काम करनेवाला व्यक्ति।

कृतात्यय—पुं० [कृत-अत्यय ष०त०] भोग द्वारा कर्मों का होनेवाला नाश। (सांख्य)

कृतान्न—पुं० [कृत-अन्न, कर्म० स०] १. पकाया या पचाया हुआ अन्न।

कृतापराध—वि० [कृत-अपराध, ब० स०] जिसने कोई अपराध किया हो। अपराधी।

कृताभिषेक—वि० [कृत-अभिषेक, ब० स०] जिसका अभिषेक हो चुका हो।

पुं० राजा।

कृतार्घ—पुं० [कृत-अर्घ, ब० स०] गत अवसर्पिणी के १९वें अर्हत् का नाम। (जैन)

कृतार्थ—वि० [कृत-अर्थ, ब० स०] [भाव० कृतार्थता] १. जिसका उद्देश्य सिद्ध हुआ हो। २. जो अपने उद्देश्य की सिद्धि के कारण प्रसन्न या संतुष्ट हो। ३. संतुष्ट। ४. कुशल। ५. मुक्त।

कृतालक—पुं० [कृत-अलक, ब० स०] शिव का एक गण।

कृतालय—वि० [कृत-आलय, ब० स०] जो अपने घर में बसा हुआ हो या रहता हो।

पुं० मेंढक।

कृतावधि—वि० [कृत-अवधि, ब० स०] जिसकी अवधि, सीमा या हद नियत या निश्चित हो।

कृतास्त्र—वि० [कृत-अस्त्र, ब० स०] जो अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण हो। अस्त्र विद्या का जानकार।

कृताह्वान—वि० [कृत-आह्वान, ब० स०] जो कोई काम करने के लिए पुकारा, बुलाया या ललकारा गया हो।

कृति—स्त्री० [सं०√कृ+क्तिन्] १. वह जो कुछ किया गया हो। किया हुआ काम। कार्य। २. चित्र, ग्रंथ, वास्तु आदि के रूप में बनाई हुई वस्तु। ३. कोई अच्छा, बड़ा या प्रशंसनीय काम। ४. इंद्रजाल। जादू। ५. बीस अक्षरोंवाले छंदों की संज्ञा।

पुं० विष्णु का एक नाम।

कृति-कर—पुं० [ब० स०] रावण।

कृतिका—स्त्री०=कृत्तिका।

कृतिवास*—पुं०=कृत्तिवास।

कृति-स्वाम्य—पुं० [ष० त०] दे० 'स्वामित्व'।

कृती (तिन्) पुं—० [सं० कृत+इनि] १. ऐसा व्यक्ति जिसने बहुत बड़ा प्रशंसनीय अथवा स्तुत्य काम किया हो। २. वह जिसने पूर्व जन्म में अच्छे कर्म किये हों, फलतः भाग्यवान्।

वि० १. कुशल। दक्ष। २. पुण्यात्मा।

कृतु*—वि०=कृत।

पुं०=क्रतु।

कृतोदक—वि० [कृत-उदक, ब० स०] १. जो नहा चुका हो। स्नात। २. जिस पर जल पड़ चुका हो।

कृतोद्वाह—वि० [कृत-उद्वाह, ब० स०] जिसने विवाह कर लिया हो। विवाहित।

कृत्त—वि० [सं० √कृत् (काटना)+क्त] १. कटा हुआ। विभक्त। २. अभिलषित।

कृत्ति—स्त्री० [सं०√कृत्+क्तिन्] १. मृगचर्म। २. चर्म। खाल। ३. भोजपत्र। ४. कृत्तिका नक्षत्र।

कृत्तिकांजि—पुं० [सं० कृत्तिका-अञ्जि, ब० स०] अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के मस्तक पर लगाया जानेवाला तिलक, जो शकटाकार होता था।

कृत्तिका—स्त्री० [सं०√कृत्+तिकन्, टाप्] १. २७ नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र। २. छकड़ा।

कृत्तिवास—पुं० [सं० कृत्ति√वस् (आच्छादन)+अण्, उप० स०] महादेव।

कृत्तिवासा(सस्)—पुं० [सं० ब० स०] शिव।

कृत्य—पुं० [सं०√कृ (करना)+क्यप्, तुगागम] १. वह जो कुछ किया जाय। काम। २. वेद-विहित अथवा धार्मिक दृष्टि से किये जानेवाले कार्य। ३. वे कार्य जो किसी पदाधिकारी को विशेष रूप से विधिवत् करने पड़ते हैं। (फंक्शन)

कृत्यका—स्त्री० [सं० कृत्य+कन्, टाप्] चुड़ैल। डाकिनी।

कृत्यवाह—पुं० [सं० कृत्य√वह् (चलाना)+अण्] ऐसा व्यक्ति, जिसके जिम्मे या जिस पर कोई काम करने का भार हो। किसी पद पर रहकर उसके सब कार्य चलानेवाला। (फंक्शनरी)

कृत्यविद्—वि० [सं० कृत्य√विद् (जानना)+क्विप्, उप० स०] जिसे अपने कर्त्तव्यों या कृत्यों का ज्ञान हो।

कृत्या—स्त्री० [सं० कृत्य+टाप्] १. एक राक्षसी, जिसे तांत्रिक अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने के लिए भेजते हैं। २. दुष्ट स्त्री। ३. अभिचार। ४. सर्वनाश करनेवाली कोई चीज या बात। उदा०—रिपि राखेव इक जटा उपारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।—सूर।

कृत्याकृत्य—वि० [सं० कृत्य-अकृत्य, द्व० स०] कृत्य और अकृत्य। करने और न करने योग्य कार्य।

कृत्या-दूषण—पुं० [सं० ष० त०] १. कृत्या (किसी के किये हुए अभिचार अथवा राक्षसी) के प्रतीकार के लिए किया जानेवाला एक प्रकार का तांत्रिक कृत्य। २. कृत्या का दोष निवारण करनेवाली एक प्रकार की ओषधि। ३. कृत्या का दोष निवारण करनेवाले एक ऋषि।

कृत्रिम—वि० [सं०√कृ+क्त्रि, मप्] १. जो प्राकृतिक न हो, बल्कि जिसे मनुष्य ने स्वयं किसी प्राकृतिक वस्तु के अनुकरण पर बनाया हो। जैसे—कृत्रिम दाँत, कृत्रिम सोना। २ दिखावटी। बनावटी। जैसे—कृत्रिम हँसी।

कृत्रिम-धूप—पुं० [कर्म० स०] अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का धूप। दशांगादि धूप।

कृत्स—पुं० [सं०√कृत् (छेदन)+स] १. जल। २. समुदाय। ३. पाप।

कृत्स्न—वि० [सं०√कृत्+क्स्न] पूरा। सपूर्ण।

कृदंत—पुं० [सं० कृत्-अंत, ब० स०] वह शब्द जो धातु में कृत् प्रत्यय लगाने से बनता है।

कृप—पुं० [सं०√कृप् (कल्पना करना)+अच्] १. वैदिक काल के एक राजर्षि। २. दे० 'कृपाचार्य'।

कृपण—पुं० [सं० कृप्+क्युन्—अन] १. ऐसा व्यक्ति जो पैसा-पैसा जोड़ता चलता हो, परन्तु खर्च न करता हो। कंजूस। २ लालची। लोभी।

कृपणता—स्त्री० [सं० कृपण+तल्—टाप्] कृपण होने की अवस्था या भाव।

कृपणी—वि० [सं० कृपण] दीन।

कृपन*—पुं०=कृपण।

कृपनाई*—स्त्री०=कृपणता।

कृपया—अव्य० [सं० कृपा की तृ० विभक्ति का रूप] कृपा या मेहरबानी कर के। कृपापूर्वक।

कृपा—स्त्री० [√कृप्+अङ, टाप्] १. उदारतापूर्वक अथवा स्वभावतः दूसरों की भलाई करने की वृत्ति। २ उदारता या सज्जनतापूर्वक किया हुआ ऐसा कार्य जिससे किसी की भलाई होती हो। (काइन्डनेस)

कृपाचार्य—पुं० [सं० कृप-आचार्य, कर्म० स०] गौतम ऋषि के पौत्र।

कृपाण—पुं० [सं०√कृप् (सामर्थ्य)+आनच्] [स्त्री० अल्पा० कृपाणी।] १. छोटी तलवार जैसी प्रायः सिक्ख लोग अपने पास रखते हैं। कटार। २. ३२ वर्णों का एक वर्णवृत्त जो मुक्तक दण्डक का एक भेद है तथा जिसमें प्रत्येक चरण में आठ-आठ वर्णों पर यति होती है।

कृपाणक—पुं० [सं० कृपाण+कन्] दे० 'कृपाण'।

कृपाणिका—स्त्री० [सं० कृपाणक+टाप्, इत्व] छोटी तलवार। कटारी।

कृपाणी—स्त्री० [सं० कृपाण+ङीप्] छोटी तलवार।

कृपा-पात्र—पुं० [ष० त०] ऐसा व्यक्ति जिस पर कोई विशेष रूप से कृपा करता हो। कृपा-भाजन।

कृपायतन—पुं० [कृपा-आयतन, ष० त०] सब पर बहुत कृपा करनेवाला। अत्यंत कृपालु।

कृपाल†*—वि० = कृपालु।

कृपालता†*—स्त्री०=कृपालुता।

कृपालु—वि० [सं० कृपा√ला (आदान)+डु] जो सब पर कृपा करता हो। कृपा करना जिसका स्वभाव हो।

कृपालुता—स्त्री० [सं० कृपालु+तल्, टाप्] कृपा का भाव। कृपालु होने की अवस्था या भाव।

कृपिण*—वि०=कृपण।

कृपिणता*†—स्त्री०=कृपणता।

कृपिन* † —वि०=कृपण।

कृपिनता*†—स्त्री०=कृपणता।

कृपिनाई*†—स्त्री०=कृपणता।

कृपी—स्त्री० [सं० कृप+ङीष्] कृपाचार्य की बहन, जिसका विवाह द्रोणाचार्य से हुआ था और जिसके गर्भ से अश्वत्थामा उत्पन्न हुए थे।

कृमि—पुं० [सं०√क्रम् (चलना)+इन्, संप्रसारण] [वि० कृमिल] १. छोटा कीड़ा। जैसे—च्यूँटी, जूँ आदि। २. लाख या लाह जो कीड़ों से बनती है। ३. किरमिज नाम का कीड़ा।

कृमिक—पुं० [सं० कृमि+कन्] छोटा कीड़ा।

कृमि-कोश—पुं० [प० त०] वे छोटे-छोटे प्राकृतिक आवरण, जिनमें रेशम के कीड़े रहते हैं। कुसयारी। कोया।

कृमिज—वि० [सं० कृमि√जन् (उत्पन्न होना)+ड] जो कृमि या कीड़ों से उत्पन्न हुआ या निकला हो।

पुं० १. रेशम। २. अगर। ३. किरमिजी (रंग)।

कृमिण—वि० [सं० कृमि+न, णत्व] (वस्तु) जिसमें कीड़े पड़े या लगे हों। कृमियों या कीड़ों से युक्त।

कृमितान—पुं० [?] एक प्रकार का पुराना रेशमी कपड़ा।

कृमि-भोजन—पुं० [प० त०] एक नरक।

कृमिभोजी (जिन्)—वि० [सं० कृमि√भुज् (खाना)+णिनि] कीड़ों का भक्षण करनेवाला।

कृमि-राग—पुं० [?] किरमिज या किरमिजी नाम का रंग (कारमाइन)।

कृमि-रोग—पुं० [मध्य० स०] पेट का रोग, जिसके कारण आमाशय और पक्वाशय में कीड़े या केंचुए पड़ जाते हैं।

कृमिल—वि० [सं० कृमि√ला (आदान)+क] कीड़ों से युक्त। कृमिण।

कृमिला—स्त्री० [सं० कृमिल+टाप्] वह स्त्री जिसके आगे बहुत-से बच्चे हों।

कृमिलाश्व—पुं० [सं० कृमिल-अश्व ब० स० ?] आजमीढ़-वंश का एक राजा। (हरिवंश पुराण)

कृमि-विज्ञान—पुं० [प० त०] दे० 'कीट-विज्ञान'।

कृमिविज्ञानी (नित्)—वि० पुं० [सं० कृमिविज्ञान + इनि] दे० कीट-विज्ञान'।

कृमि-शैल—पुं० [प० त०] दीमकों की बाँबी। बिमौट। वल्मीक।

कृमीलक—पुं० [सं० कृमि√ईर् (गति)+ण्वुल्—अक, र=ल] जंगली मूँग।

कृश—वि० [सं०√कृश् (पतला करना)+क्त, नि० सिद्धि] १. जिसका शरीर सूखा हुआ हो। दुबला-पतला। क्षीणकाय। २. दुर्बल। कमजोर। ३. अकिंचन। दरिद्र। ४. अल्प। थोड़ा।

पुं० एक प्रकार का पक्षी।

कृशता—स्त्री० [सं० कृश+तल्, टाप्] १. कृश अर्थात् दुबले-पतले होने की अवस्था या भाव। दुबलापन। २. कमजोरी। दुर्बलता। ३. अल्पता। न्यूनता।

कृशताई*—स्त्री०=कृशता।

कृशत्व—पुं० [सं० कृश+त्व]कृशता (दे०)।

कृश-नास—पुं० [ब० स०] शिव।

कृशर—पुं० [सं० कृश√रा (दान)+क] [स्त्री० कृशरा] १. तिल और चावल के योग से बनी हुई खिचड़ी। २. खिचड़ी। ३. लोबिया मटर। ४. खेसारी।

कृशरान्न—पुं० [सं० कृशर-अन्न, कर्म० स०] खिचड़ी।

कृशान*—पुं० दे० 'कृशानु'।

कृशानु—पुं० [सं०√कृश्+आनुक्] १. अग्नि। आग। २. चीता।

कृशानुरेता (तस्)—पुं० [ब० स०] शिव। महादेव।

कृशाश्व—पुं० [सं० कृश-अश्व, ब० स०] १. तृणबिंदु वंश के एक राजर्षि (भाग० पुराण)। २. दक्ष के एक जामाता का नाम।

कृशाश्वी (श्विन्)—पुं० [सं० कृशाश्व+इनि] १. कृशाश्व के नाट्यशास्त्र का अध्येता। २. अभिनेता। नट।

कृशित—वि० [सं० कृश] १ क्षीण काय। दुबला-पतला। २. कमजोर। दुर्बल।

कृशोदर—वि० [सं० कृश-उदर ब०स०] [स्त्री० कृशोदरा, कृशोदरी] १. जिसका पेट या बीच का भाग पतला हो। २. पतली कमरवाला।

कृशोदरी—वि० [सं० कृशोदर+ङीप्] पतली कमरवाली (स्त्री)।

कृषक—पुं० [सं०√कृष् (जोतना)+क्वुन्—अक] १. खेतों को जोतने-बोने तथा उनमें अन्न उपजानेवाला व्यक्ति। किसान। खेतिहर। (फार्मर) २. हल का फाल।

कृषाण—पुं. [सं०√कृष्+आनक् (बा०)] किसान। कृषक (दे०)।

कृषि—स्त्री० [सं० कृष्+इन्] [वि. कृष्य] १. खेतों को जोतने-बोने और उनमें अन्न आदि उपजाने का काम। कृषक का काम। खेती-बारी। २. जमीन की बोआई। ३. फसल।

कृषिक—पुं० [सं०√कृष्+किकन्] किसान। कृषक।

कृषि-कर्म (न्)—पुं० [प० त०] खेत को जोतने-बोने और उनमें अन्न आदि उपजाने का काम। खेती-बारी।

कृषिकार—पुं० [सं० कृषि√कृ (करना)+अण्, उप० स०] किसान। कृषक।

कृषि-जीवी (विन्)—वि० [सं० कृषि√जीव् (जीना)+णिनि] (व्यक्ति) जो अपनी जीविका खेती-बारी करके चलाता हो।

कृषित—भू० कृ० [सं० कृष्ट] १. (खेत) जो जोता-बोया गया हो। २. खेती करके उपजाया हुआ। जो स्वयं या आप-से-आप न उगा हो, बल्कि जोत-बोकर उपजाया गया हो। (कल्टिवेटेड, उक्त दोनों अर्थों में।)

कृषि-यंत्र—पुं० [सं० प० त०] एक प्रकार की गाड़ी जिसमें इंजन लगा रहता है और जो खेतों को जोतता तथा फसलें आदि काटता है। (ट्रैक्टर)

कृषि-वर्ष—पुं० [प० त०] वर्ष का वह मान जो कृषि-संबंधी कार्यों और फसल के विचार से स्थिर होता है। (एग्रिकलचरल ईयर)

कृषी†*—स्त्री०=कृषि।

कृषीवल—पुं० [सं० कृषि+वलच्, दीर्घ] किसान। कृषक।

कृष्कर—पुं० [सं० कृष्√कृ+टक् पृषो० सिद्धि] शिव।

कृष्ट—वि० [सं०√कृष्+क्त] १. खिंचा या खींचा हुआ। २. जोता-बोया हुआ।

कृष्टपच्य—वि० [सं० कृष्ट√पच् (पाक)+क्यप्] खेत में पका हुआ (अन्न आदि)।

कृष्टपाक्य—वि० [सं० कृष्ट√पच्+ण्यत्]=कृष्टपच्य ।
कृष्ट-फल—पुं० [प० त०] खेत की पैदावार । फसल ।
कृष्ट-भूमि—स्त्री० [कर्म० स०] जोती तथा बोई हुई जमीन । कृषित भूमि ।
कृष्टि—स्त्री० [सं०√कृष्+क्तिन्] १. खींचने की क्रिया या भाव । २. आकृष्ट करना । ३. खेत आदि जोतने-बोने का काम ।
पुं० विद्वान् व्यक्ति ।
कृष्टोप्त—वि० [सं० कृष्ट-उप्त, स० त०] जोता और बोया हुआ (खेत) ।
कृष्ण—वि० [सं०√कृष् (खीचना)+नक्] [स्त्री० कृष्णा] १. काले या साँवले रंग का । काला । (ब्लैक) २. नीला । ३. बुरा तथा निंदनीय ।
पुं० १. यदुवंशी वसुदेव और भोजवंशी देवकी के पुत्र जो भगवान् के आठवें अवतार माने गये है । श्रीकृष्ण । २ परब्रह्म । ३ वेदव्यास । ४ अर्जुन । ५ ऋग्वेद के द्रष्टा एक ऋषि । ६. महीने का अंधेरा पक्ष । ७. काला मृग । ८. कोकिल । ९. कौआ । १०. कलियुग । ११. काला या नीला रंग । १२. काला अगरु । १३. पाप या अशुभ कर्म । १४. जूए में मिला हुआ धन । १५. एक असुर, जो इंद्र के हाथों मारा गया था । १६. शाल्मलि द्वीप मे रहनेवाले शूद्र । १७. काले नौ वसुदेवों में से एक । (जैन शास्त्र) १८. लोहा । १९. सुरमा । २०. पीपल । २१. कालीमिर्च । २२. करौदा । २३. कदम्ब । २४. एक तगण और एक लघु, चार अक्षरों का एक वर्णवृत्त । २५ छप्पय का एक भेद । २६. चंद्रमा का कलंक, दाग या धब्बा ।
कृष्णक—पुं० [सं० कृष्ण+कन्] १. काले हिरन की खाल । काला मृगचर्म । २. काले रंग की सरसों ।
कृष्ण-कर्म (न्)—पुं० [कर्म० स०] १. बुरा तथा निंदनीय कर्म । काली करतूत । २. ऐसे दुष्कर्म जो शास्त्रों में वर्जित है । ३. विना किसी प्रकार की कामना के किया जानेवाला कर्म ।
कृष्ण-केलि—स्त्री० [उपमि० स० ?] गुल अब्बास का पेड़ और उसका फूल ।
कृष्णकोहल—पुं० [सं० कृष्णकोह√ला (आदान)+क] जुआरी ।
कृष्ण-गंगा—स्त्री० [सं० कर्म० स०] दक्षिण भारत की कृष्णा नदी ।
कृष्णगंधा—स्त्री० [व० स०] सहिजन ।
कृष्ण-गति—पुं० [व० स०] अग्नि ।
कृष्णगर्भ—पुं० [व० स०] कायफल नामक पौधा ।
कृष्ण-गिरि—पुं० [कर्म० स०] दक्षिण का नीलगिरि नामक पर्वत ।
कृष्ण-गोधा—स्त्री० [सं० कर्म० स०] एक प्रकार का जहरीला या घातक कीड़ा ।
कृष्ण-चंद्र—पुं० [उपमि० स०] भगवान् कृष्ण । (दे० कृष्ण ?)
कृष्णचूड़ा—स्त्री० [व० स०] १. एक प्रकार का कँटीला वृक्ष, जिसमें लाल रंग के फूल लगते है । २. गुंजा । घुंघची ।
कृष्णचूड़िका—स्त्री० [सं० व० स०,+कप्, टाप् इत्व]=कृष्णचूड़ा ।
कृष्ण-चूर्ण—पुं० [कर्म० स०] लोहे में लगनेवाला जंग । मोरचा ।
कृष्ण-चैतन्य—पुं० [कर्म० स०]=चैतन्य (महाप्रभु)
कृष्ण-च्छवि—स्त्री० [व० स०] काले हरिन की खाल ।
पुं० काले रंग का बादल ।
कृष्ण-जटा—स्त्री० [व० स०] जटामासी (ओषधि) ।
कृष्ण-जीरक—पुं० [कर्म० स०] काला जीरा ।
कृष्णताम्र—पुं० [कर्म० स०] चंदन की एक जाति या प्रकार ।
कृष्णतार—पुं० [सं० कृष्णता√ऋ (गति)+अण्, उप० स०] एक प्रकार का हिरन ।
कृष्ण-देह—वि० [व० स०] जिसकी देह काले रंग की हो ।
पुं० भ्रमर । भौंरा ।
कृष्ण-द्वैपायन—पुं० [कर्म० स०] महर्षि पराशर के पुत्र वेदव्यास जिन्होंने महाभारत और पुराणों की रचना की थी ।
कृष्ण-धन—पुं० [कर्म० स०] १. अनुचित या बुरे ढग से प्राप्त किया हुआ धन । २. ऐसा धन जो किसी को फले नही ।
कृष्ण-पक्ष—पुं० [कर्म० स०] १. पूर्णिमा और अमावस के बीच के १५ दिन । महीने का अँधेरा पाख । २. अर्जुन ।
कृष्णपदी—पुं० [व० स० ङीप्] काले पैरोंवाली एक चिड़िया ।
कृष्ण-पर्णी—स्त्री० [व० स०, ङीप्] काले पत्तोंवाली तुलसी ।
कृष्ण-पाक—पुं० [व० स०] करौंदा ।
कृष्ण-पिंगला—स्त्री० [कर्म० स०] दुर्गा ।
वि० गहरे भूरे रंग का ।
कृष्ण-पुच्छ—पुं० [व० स०] रोहू मछली ।
कृष्ण-पुष्प—[व० स०] काला धतूरा ।
कृष्ण-फल—पुं० [व० स०] करौंदा ।
वि० जिसमें काले रंग के फल लगते हों ।
कृष्ण-फला—स्त्री० [सं० कृष्णफल+टाप्] १. मिर्च की लता । २. जामुन का पेड़ ।
कृष्ण-बीज—पुं० [व० स०] तरबूज ।
वि० जिसके बीज काले रंग के हों ।
कृष्ण-भक्त—वि० [प० त०] भगवान कृष्ण की भक्ति करनेवाला । भगवान् कृष्ण का उपासक ।
कृष्ण-भुजंग—पुं० [कर्म० स०] करैत साँप, जो बहुत जहरीला होता है ।
कृष्ण-भू—स्त्री० [व० स०] १. वह स्थान, जहाँ की मिट्टी काली हो । २. वृन्दावन की धरती ।
कृष्ण-भेदा—स्त्री० [व० स०, टाप्] कुटकी ।
कृष्ण-भोग—पुं० [प० त०] १. एक प्रकार का बढ़िया चावल । २. एक प्रकार का बढ़िया आम ।
कृष्ण-मंडल—पुं० [कर्म० स०] आँख मे का काला भाग अर्थात् पुतली ।
कृष्ण-मणि—पुं० [कर्म० स०] नीलम ।
कृष्ण-मल्लिका—स्त्री० [कर्म० स०] काले पत्तोंवाली तुलसी । कृष्णपर्णी ।
कृष्ण-मुख—पुं० [व० स०] लंगूर ।
वि० जिसका मुँह काला हो ।
कृष्ण-मृग—पुं० [कर्म० स०] काले धब्बोंवाला हिरन ।
कृष्ण-यजुष्—पुं० [सं० कर्म० स०] यजुर्वेद के दो भागों में से दूसरा ।
कृष्ण-याम—पुं० [व० स०] अग्नि ।
कृष्ण-रक्त—पुं० [कर्म० स०] गहरा लाल रंग ।
वि० गहरे लाल रंगवाला ।
कृष्णराज—पुं० [व० स०] भुजंगा पक्षी ।

कृष्ण-रुहा—स्त्री० [सं० कृष्ण√रुह (उत्पन्न होना)+क, टाप्] जतुका लता।

कृष्ण-लवण—पुं० [कर्म० स०] काला नमक।

कृष्णला—स्त्री० [सं० कृष्ण√ला (लेना)+क, टाप्] १. घुँघची। २. शीशम का वृक्ष। ३. रत्ती (परिमाण या तौल)।

कृष्ण-लोह—पुं० [कर्म० स०] १. चुंबक। २. लोहा।

कृष्ण-वल्लिका—स्त्री० [कर्म० स०] जतुका लता।

कृष्ण-वेणी—स्त्री० [कर्म० स०] कृष्णा नदी।

कृष्ण-सख (ा)—पुं० [ब० स०] अर्जुन।

कृष्ण-सखी—स्त्री० [प० त०] १. द्रौपदी। २. काला जीरा।

कृष्ण-सार—पुं० [कर्म० स०] १. काले रंग का हिरन। २. शीशम का पेड़। ३. खैर का वृक्ष। ४. सेंहुड़।

कृष्ण-सारथि—पुं० [ब० स०] अर्जुन।

कृष्ण-सूची—स्त्री० [कर्म० स०]=काली-सूची।

कृष्ण-स्कंध—पुं० [ब० स०] एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष जिसे तमाल भी कहते हैं।

कृष्णा—स्त्री० [सं० कृष्ण+टाप्] १. द्रौपदी का एक नाम। २. काली (देवी)। ३. दक्षिण भारत की एक नदी। ४. काली दाख। ५. काले पत्तोंवाली तुलसी। ६. काला जीरा। ७. पपरी नामक गंधद्रव्य। ८. कुटकी। ९. राई। १०. एक प्रकार की जहरीली जोंक। ११. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। १२. एक योगिनी। १३. आँख की पुतली।

कृष्णाचल—पुं० [सं० कृष्ण-अचल, कर्म० स०] १. द्वारका के पास का रैवतक पर्वत। २. दक्षिण भारत का नीलगिरि पर्वत।

कृष्णाजिन—पुं० [सं० कृष्ण-अजिन, प० त०] १. काले हिरन की खाल। २. एक ऋषि का नाम।

कृष्णाभिसारिका—स्त्री० [कृष्ण-अभिसारिका, मध्य० स०] साहित्य में, वह अभिसारिका नायिका जो अँधेरी रात में प्रेमी से संकेत स्थान पर मिलने जा रही हो।

कृष्णायस—पुं० [कृष्ण-आयस, कर्म० स०] लोहा।

कृष्णावास—पुं० [सं० कृष्ण-आवास, प० त०] पीपल का पेड़।

कृष्णाष्टमी—स्त्री० [सं० कृष्ण-अष्टमी, प० त०] भादों के अँधियारे पक्ष की अष्टमी, जो भगवान कृष्ण का जन्म दिन है।

कृष्णिका—स्त्री० [सं० कृष्ण+ठन्—इक, टाप्] १. राई। २. श्यामा पक्षी।

कृष्णिमा (मन्)—स्त्री० [सं० कृष्ण+इमनिच्, टाप्] कालिमा।

कृष्णी—स्त्री० [सं० कृष्ण+ङीप्] अँधेरी रात।

कृष्णोदर—पुं० [सं० कृष्ण-उदर, ब० स०] काले पेटवाला एक प्रकार का साँप।

कृस्न*—वि०, पुं०=कृष्ण।

कृष्य—वि० [सं० कृष् (जोतना)+क्यप्] जोतने-बोने या खेती किये जाने के योग्य (भूमि)।

कृसर—पुं०, =कृशर।

कृसानु*—पुं०=कृशानु।

कृसित*—वि०=कृशित।

कें कें—स्त्री० [अनु०] १. पक्षियों का आर्त्तनाद। २. कष्ट सूचक ध्वनि। ३. व्यर्थ की बातचीत। बकवाद।

केंचुआ—पुं० [सं० किंचिलिक प्रा० केंचुओ] १. सूत की तरह पतला और लंबा एक बरसाती कीड़ा। २. सफेद रंग के वे छोटे कीड़े जो आँतों में पहुँचकर अंडे और बच्चे देते हैं तथा मल के साथ बाहर निकलते हैं। (राउंडवर्म)

केंचुआ छंद—पुं० [हिं० केंचुआ+सं० छंद] वह छंद जिसके चरणों की मात्राएँ बराबर या सम न हों। रबर छंद। (परिहास और व्यंग्य)

केंचुल—स्त्री०=केंचुली।

केंचुली—स्त्री० [सं० कंचुक] [वि० केंचुली] सर्प आदि के शरीर पर की वह झिल्लीदार खोली जो प्रतिवर्ष आप-से-आप उतर जाती है।

मुहा०—केंचुली बदलना=पुराना रूप छोड़कर नया रूप धारण करना। (परिहास और व्यंग्य) **(साँप का) केंचुली में आना या भरना**=केंचुली छोड़ने पर होना।

केंचुवा—पुं०=केंचुआ।

केंडा†—पुं०=कँडा।

केंत—पुं० [देश०] एक प्रकार का बेंत, जिससे छड़ियाँ बनती हैं।

केंदु—पुं० [सं० कुगति स०] तेंदू का पेड़।

केंदुवाल—पुं० [सं० ब० स०] डाँड़, जिससे नाव खेते हैं।

केंदू—पुं० [सं० केन्दु] तेंदू (वृक्ष)।

केंद्र—पुं० [सं० क√इन्द् (सम्पन्न होना)+र] १. किसी गोले या वृत्त के बीच का वह बिंदु जिससे उस गोले या वृत्त की परिधि का प्रत्येक बिंदु बराबर दूरी पर पड़ता हो। नाभि। २. किसी वस्तु के बीच का स्थान। मध्य भाग। ३. किसी उपकरण या यंत्र का वह बिंदु जिसके चारों ओर कोई चीज घूमती हो। ४. वह मूल या मुख्य स्थान जहाँ से चारों ओर दूर-दूर तक फैले हुए कार्यों की व्यवस्था तथा संचालन होता है। ५. वह स्थान जहाँ कोई चीज विशेष रूप से और बहुत अधिक मात्रा में उपजती, पनपती, बनती या निर्मित होती हो। (सेन्टर; उक्त सभी अर्थों के लिए) ६. किसी निश्चित अंश से ९०, १८०, २७० और ३६० अंशों के अंतर का स्थान। ७. जन्मकुंडली में ग्रहों का पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। (ज्योतिष)

केंद्रग—वि० [सं० केंद्र√गम् (जाना)+ड]=केंद्रगामी।

केंद्रगामी (मिन्)—वि० [सं० केन्द्र√गम्+णिनि] जो केंद्र की ओर जा या बढ़ रहा हो।

केंद्रण—पुं० [सं० केंद्र+णिच्+ल्युट्—अन] =केंद्रीकरण।

केंद्रस्थ—वि० [सं० केंद्र√स्था (ठहरना)+क] जो केंद्र में स्थित हो।

केंद्रापग—वि० [सं० केंद्र-अप√गम्+ड]=केंद्रापसारी।

केंद्रापसारी (रिन्)—वि० [सं० केंद्र-अप√सृ (गति)+णिनि] किसी शक्ति की प्रेरणा से अपने केंद्र से अलग, दूर या भिन्न दिशा में जाने की प्रवृत्ति रखनेवाला। (सेन्ट्रिफ्यूगल)

केंद्राभिग—वि० [सं० केंद्र-अभि√गम्+ड]=केंद्राभिमुखी।

केंद्राभिमुख—वि० [सं० केंद्र-अभिमुख, प० त०]=केंद्राभिमुखी।

केंद्राभिमुखी (खिन्)—वि० [सं० केंद्र-अभिमुखी, प० त०] जो किसी शक्ति की प्रेरणा से अपने केंद्र की ओर जाता या बढ़ता हो। (सेन्ट्रिपेटल)

केंद्राभिसारी (रिन्)—वि० [सं० केंद्र-अभि√सृ+णिनि]=केंद्रापसारी।

केंद्रिक—वि० [सं० केंद्र+ठन्—इक] केंद्र में बनने, रहने या होनेवाला। (सेन्ट्रिक)

केंद्रित—भू० कृ० [सं० केन्द्र+इतच्] केंद्र में लाया या स्थित किया हुआ। (सेन्ट्रलाइज्ड)

केंद्री (द्रिन्)—वि० [सं० केंद्र+इनि] १. केंद्र का। केंद्र संबंधी। २. केंद्र में रहने या होनेवाला।

केंद्रीकरण—पुं० [सं० केंद्र+च्वि√कृ (करना)+ल्युट्—अन] १. आस-पास की चीजों, बातों आदि को केंद्र में लाने की क्रिया या भाव। केंद्रित करना। २. अधिकार या सत्ता एक व्यक्ति या संस्था के अधीन करना। (सेन्ट्रलाइजेशन)

केंद्रीभूत—भू० कृ० [सं० केंद्र+च्वि√भू (होना)+क्त] जो किसी एक केंद्र में आकर एकत्र हुआ हो या लाकर एकत्र किया गया हो।

केंद्रीय—वि० [सं० केंद्र+छ—ईय] १. केंद्र-संबंधी। २. केंद्र या मध्यभाग का। ३. किसी राज्य या राष्ट्र के केंद्र-स्थान या राजधानी से संबंध रखनेवाला। (सेन्ट्रल) जैसे—केंद्रीय शासन। ४. प्रधान या मुख्य।

केंद्रीयकरण—पुं०=केंद्रीकरण।

केंद्रीय-शासन—पुं० [कर्म० स०] किसी राज्य या राष्ट्र की वह सर्वप्रधान शासन-सत्ता या सरकार जिसका प्रमुख स्थान उसकी राजधानी में होता है और जो वहाँ के सारे देश का शासन या व्यवस्था करती है। (सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट)

केंद्रीय सरकार—स्त्री० दे० 'केंद्रीय शासन।'

केंवा—पुं० [देश०] जलाशयों के किनारे रहनेवाला एक पक्षी। उदा०—केंवा, सोन, ढेक, बगलेदी। रहे अपूरि मीन जलभेदी।—जायसी।

के—प्रत्य० [हिं० का] संबंध कारक 'का' विभक्ति का बहुवचन रूप। जैसे—आम के पेड़।

†सर्व० [सं० का] १. कौन। उदा०—कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई।—तुलसी। २. किसने।

केइँ†—सर्व० [हिं० के] किसने। उदा०—अनहित तोर प्रिया कइँ कीन्हा।—तुलसी।

केइ†—सर्व० [हिं० के] कौन। (अव०)

केउँआ—पुं० [सं० केमुक] १. कच्चू। २. चुकंदर। ३. शलगम।

केउ†—सर्व० [हिं० के+उ (प्रत्य०)=भी] कोई। उदा०—मोहिं केउ सपनेहुँ सुखद न लागा।—तुलसी।

केउटा—पुं० [सं० कर्कोट]=करैत (साँप)।

केउटी—वि०=केवटी।

केउर* —पुं०=केयूर।

केओ—सर्व०=कोई। (मैथिली)

केक—सर्व० [सं० 'किम्' के ब० व० 'के' का देश० रूप] कई एक। अनेक। उदा०—जड़ैं उड़ि अग्नि झरैं असि जोर, टरैं भट केक टरैं जिम ढोर।—कविराजा सूर्यमल। २. कितने ही। उदा०—कै पाखान गढि केक मग, भ्रम तमाल पुछ्छत फिरिय।—चन्दवरदाई।

स्त्री० [अं०] एक प्रकार का युरोपीय पकवान।

केकड़ा—पुं० [सं० कर्कटकः] एक प्रसिद्ध जल-जंतु जिसके आठ पैर और दो पंजे होते हैं। (क्रैब)

मुहा०—केकड़े की चाल चलना=टेढ़ी-मेढ़ी चाल चलना।

केकय—पुं० [सं०] १. कश्मीर और उसके आसपास के प्रदेश का प्राचीन नाम। २. उक्त प्रदेश के निवासी। ३. उक्त प्रदेश के एक प्रसिद्ध राजा, जिनकी लड़की कैकेयी अयोध्या के राजा दशरथ को ब्याही थी, और जिनके गर्भ से भरत का जन्म हुआ था।

केकयी—स्त्री०=कैकेयी।

केकर—पुं० [सं० के√कृ (करना)+अच्, अलुक् स०] १. ऐंचा। भेंगा। २. चार अक्षरों का एक तांत्रिक मंत्र।

†सर्व० किसका। (भोज०)

केकरा†—पुं०=केकड़ा।

†सर्व=किसे। (भोज०)

केकसी—स्त्री०=कैकसी।

केका—स्त्री० [सं० के√कै (शब्द)+ड, अलुक् स०] मयूर की कूक बोली। उदा०—केका के सुने तैं प्रान एका के रहत हैं।—सेनापति।

केकान—पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम। (संभवतः आजकल के फारस का खाकान) २. उक्त देश का घोड़ा।

केकिनी—स्त्री० [सं० केकिन्+ङीप्] केकी की मादा। मोरनी।

केकी (किन्)—पुं० [सं० केका+इनि] [स्त्री० केकिनी] मोर। मयूर।

केचित्— अव्य० [सं० के+चित्] १. कोई। २. कोई-कोई।

केचुआ—पुं०=केंचुआ।

केजा— पुं० दे० 'केना'।

केडवारी†—स्त्री० [हिं० केन=साग भाजी+वारी] १. वह स्थान जहाँ तरकारियाँ, साग आदि बोये जाते हैं। २. वह स्थान जहाँ नये पौधे उगाये, रोपे या लगाये जाते हैं। नौरंगा। (नर्सरी)

केड़ा—पुं० [सं० करीर=बाँस का कल्ला] १. अंकुर। कोंपल। कल्ला। २. नया पौधा। ३. कटी हुई फसल आदि का गट्ठा। ४. नवयुवक।

केणिक—पुं० [सं० केणिका] तंबू। खेमा। (डिं०)।

केत—पुं० [सं०√कित् (निवास)+घञ्] १. घर। भवन। २. जगह। स्थान। ३. ध्वजा। ४. बुद्धि। ५. संकल्प। ६. परामर्श। सलाह। ७. अन्न।

पुं०=केतक (केवड़ा)।

केतक—पुं० [सं०√कित् +ण्वुल्—अक] केवड़ा।

† वि० [सं० कति-एक] १. कई एक। अनेक। २. कितने ही।

केतकर †—पुं०=केतक (केवड़ा)।

केतकी—स्त्री० [सं० केतक+ङीप्] १. एक प्रकार का छोटा पौधा, जिसकी लंबी पत्तियाँ, नुकीली और चिकनी होती है। केवड़ा। २. एक प्रकार की रागिनी।

† पुं० [हिं० कार्त्तिक] एक प्रकार का धान जो कार्तिक में पकता है। उदा०—रूप भाजुरी केतकी विकौरी।—जायसी।

केतन—पुं० [सं०√कित्+ल्युट्—अन] १. आह्वान। २. निमंत्रण। ३. ध्वजा। ४. चिह्न। ५. घर। ६. जगह। स्थान।

केतपू—पुं० [सं० केत√पू (पवित्र करना)+क्विप्] अन्न साफ करनेवाला मजदूर।

केतला—वि०=कितना। (राज०) उदा०—कुण जायी सँगि हुआ केतला।—प्रिथीराज।

केतली—स्त्री० [अं० केटिल] एक प्रकार का टोंटीदार वरतन जिसमें पानी गरम करते हैं।
केता*—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० केती] किस मात्रा का। कितना।
केतारा—पुं० [देश०] एक तरह का ऊख।
केतिक*†—क्रि० वि० [सं० कति-एक] १. किस मात्रा में। कितना। २. कितना ही। बहुत।
केतित—वि० [सं०√कित् (बुलाना)+णिच्+क्त] १. बुलाया हुआ। आहूत। २. वसा हुआ।
केती*—वि० दे० 'केता'।
केतु—पुं० [सं०√चाय् (देखना)+तु, कि आदेश] १. ज्ञान। २. दीप्ति। चमक। ३. ध्वजा। ४. निशान। ५. पुराणानुसार राहु नामक राक्षस का कवंध जो भारतीय ज्योतिष में नौ ग्रहों में माना गया है। ६. कभी कभी आकाश में उदित होनेवाला एक तारा जिसके प्रकाश की एक पूँछ सी दिखाई देती है। पुच्छल तारा। (कामेट)
केतुकी†—स्त्री०=केतकी (धान)।
केतु-कुंडली—स्त्री० [प० त०] वारह कोष्ठों का एक चक्र जिससे वर्ष के स्वामी का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। (ज्योतिष)
केतुजा—स्त्री० [सं० केतु√जन् (उत्पन्न होना)+ड, टाप्] सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का नामक राक्षसी।
केतु-तारा—पुं० [कर्म० स०]=पुच्छल तारा (दे० 'केतु ६.')।
केतु-पताका—स्त्री० [सं० प० त०] नौ कोष्ठों का एक चक्र, जिससे वर्पेश का ज्ञान प्राप्त करते हैं। (ज्योतिष)
केतुमती—स्त्री० [सं० केतु+मतुप्, ङीप्] १. एक प्रकार का वर्णार्द्ध समवृत्त जिसके विषम चरणों में सगण, जगण, सगण और एक गुरु होता है। २. रावण की नानी का नाम।
केतुमान् (मत्)—वि० [सं० केतु+मतुप्] [स्त्री० केतुमती] १. तेजस्वी। २. बुद्धिमान्। ३. जिसके हाथ में पताका हो।
केतु-यष्टि—स्त्री० [प० त०] ध्वजदंड।
केतु-रत्न—पुं० [मध्य० स०] लहसुनिया नामक रत्न।
केतु-वसन—पुं० [प० त०] पताका। ध्वजा।
केतु-वृक्ष—पुं० [मध्य० स०] मेरु पर्वत के चारों ओर होनेवाला एक प्रकार का वृक्ष। (पुराण)
केतो*— वि० [सं० कति] कितना।
केदली †—पुं० [सं० कदली] १. केले का पेड़। २. केला।
केदार—पुं० [सं० व० स०] १. खेतों, वगीचों आदि की क्यारी। २. वृक्षों के नीचे का थाला। थाँवला। ३. हिमालय की प्रसिद्ध एक चोटी जो एक तीर्थ स्थान है। ४. शिवलिंग। ५. मेघराग का चौथा पुत्र। ६. ओड़व-षाड़व जाति का एक राग जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।
केदारक—पुं० [सं० केदार+कन्] साठी धान।
केदार-खंड—पुं० [प० त०] १. स्कंद पुराण का एक भाग, जिसमें केदारनाथ का माहात्म्य कहा गया है। २. पानी रोकने के लिए बाँधा हुआ बाँध।
केदार-गंगा—स्त्री० [मध्य० स०] गढ़वाल प्रदेश की एक नदी जो गंगा में मिलती है।
केदार-नट—पुं० [मध्य० स० ?] षाड़व जाति का एक संकर राग जो नट और केदार के योग से वनता और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।
केदारनाथ—पुं० [प० त०] हिमालय के केदारशिखर पर स्थित एक प्रसिद्ध शिवलिंग।
केदारा—पुं०=केदार (राग)।
केदारी—स्त्री० [सं० केदार+ङीप्] दीपक राग की पाँचवीं रागिनी।
केन—सर्व० [किम् शब्द का विभक्त्यन्त रूप] १. किसी। २. कोई।
पद—येन-केन=किसी-न-किसी प्रकार। जैसे-तैसे।
केनना†—स० दे० 'कीनना'।
केना†—पुं० [सं० क्रीणि=मोल लेना] १. खरीदने की क्रिया या भाव। खरीद। २. वह जो कुछ खरीदा जाय। सौदा। ३. देहात में फेरी-वालों से तरकारी आदि खरीदने के लिए बदले में दिया जानेवाला अन्न। केजा। ४. साग, तरकारियाँ आदि।
केनिपात—पुं० [सं० के—नि√पत् (गिरना)+णिच्+अच्] नाव खेने का डाँड़। बहना।
केनिपातक—पुं० [सं० केनिपात+कन्]=केनिपात।
केबिन—पुं० [अं०] १. किसी अधिकारी विशेषतः जहाज के अधिकारी का कमरा। २. जहाज में यात्रियों के बैठने के लिए बना हुआ घिरा स्थान।
केम†—पुं० दे० 'कदंब'।
क्रि० वि० [सं० किम्] कैसे! किस प्रकार!
वि० कैसा? क्यों? किस प्रकार का? (गुज०)
केमद्रुम—पुं० [यू० केनोड्रोमस] चंद्रमा का एक योग।
केमुक—पुं० [सं० के√अम् (रोग)+उक, अलुक् स०] वंडा नामक कंद।
केयूर—पुं० [सं० के √या (जाना) +ऊर अलुक् स०] बाँह पर पहना जानेवाला एक प्रकार का प्राचीन आभूपण। बाजूबंद।
केयूर-वल—पुं० [व० स०] एक बौद्ध देवता।
केयूरी (रिन्)—वि० [सं० केयूर+इनि] जिसने केयूर अर्थात् बाजूबंद पहना हो।
केर†—विभ० [सं० कृत] [स्त्री० केरी] अवधी भाषा की एक संबंध सूचक विभक्ति 'का'। उदा०—नहि निसिचर-कुल केर उवारा।—तुलसी।
केरक—पुं० [सं०] महाभारत में उल्लिखित एक देश।
केरल—पुं० [सं०] १. भारतीय गणराज्य के चौदह राज्यों में से एक जो दक्षिण भारत की कावेरी नदी के उत्तर में और पश्चिम घाट तक फैला हुआ है। २. उक्त प्रदेश का निवासी।
केरली—स्त्री० [सं० केरल+अच्+ङीप्] केरल राज्य की स्त्री।
वि० केरल देश का। जैसे—केरली नारियल।
केरा—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वत्तक।
पुं०=केला।
विभ० [स्त्री० केरी] दे० 'केर' (का)। उदा०—परम मित्र तापस नृप केरा।—तुलसी।
केराना†—स० [सं० किरण वा हि० गिराना] सूप में अन्न पछोरकर बड़े और छोटे दाने अलग करना।
†पुं०=किराना।

केरानी—पुं०=किरानी ।

केराया†—पुं०=किराया ।

केराव†—पुं० [सं० कलाम] मटर ।

केरावल—पुं०=किरावल ।

केरी†—विभ० [सं० कृत, हिं० केरा का स्त्री०] अवधी भाषा की संबंधसूचक एक विभक्ति । उदा०—भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ।—तुलसी ।

*स्त्री०=केलि ।

स्त्री० [देश०] आम का कच्चा तथा छोटा फल ।

केरोसिन—पुं० [अं०] मिट्टी का तेल ।

केल—पुं० [सं० केलिक, प्रा० केलिय] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष ।

केलक—पुं० [सं०√केल् (क्रीड़ा करना)+ण्वुल्—अक] १. तलवार की धार पर चलने या नाचनेवाला व्यक्ति । २. नर्तक ।

केला—पुं० [सं० कदल, प्रा० कयल] १. गरम प्रदेशों में होनेवाला एक प्रसिद्ध पौधा जिसके पत्ते बहुत लंबे और बड़े होते हैं । २. उक्त पेड़ का फल जो लंबा, गूदेदार तथा मीठा होता है ।

केलास—पुं० [सं० केला=विलास√सद् (बैठना)+ड] १. स्फटिक । २. किसी रासायनिक घोल या तत्त्व का वह छोटे-छोटे टुकड़ोंवाला कोणाकार रूप जो उसके सूखने या घन होने पर बनता है । रवा । (क्रिस्टल)

केलासन—पुं० [सं० केलास से] रासायनिक घोल या तत्त्व का सूख या घन होकर छोटे-छोटे केलासों या रवों का रूप धारण करना । (क्रिस्टलाइजेशन)

केलासीय—वि० [सं० केलास+छ—ईय] १. केलासों की तरह सफेद तथा पारदर्शक । २. केलास-संबंधी ।

केलि—स्त्री० [सं०√केल्+इन्] १. कोई ऐसी क्रिया जिससे मनोरंजन होता हो । क्रीड़ा । खेल । २. हँसी-मजाक । ३. मैथुन । रति । ४. पृथ्वी ।

†स्त्री० [सं० कदली] केला (वृक्ष और फल) ।

केलिक—पुं० [सं० केलि+ठन्—इक] अशोक का पेड़ ।

वि० [सं० केलि] १. केलि या क्रीड़ा-संबंधी । २. केलि या क्रीड़ा करनेवाला ।

केलि-कला—स्त्री० [मध्य० स०] १. सरस्वती की वीणा । २. मैथुन रति ।

केलिकिल—पुं० [सं० केलि√किल् (क्रीड़ा)+क] १. नाटक का विदूषक । २. शिव का एक अनुचर ।

स्त्री० रति ।

केलि-मैथुन—पुं० [मध्य० स०] मन में संभोग का विचार रखकर अथवा कामुक दृष्टि से स्त्रियों के साथ तरह-तरह के खेल खेलना ।

केली†—स्त्री०=केलि ।

स्त्री० [हिं० केला] १. छोटे फलों वाले केले के पौधों की एक जाति । २. उक्त पौधे के फल, जिनकी तरकारी बनती है ।

केलूराव—पुं०=केल (वृक्ष) ।

केलो—पुं०=केल (वृक्ष) ।

केव—पुं०=केल (वृक्ष) ।

केवई—स्त्री० [हिं० केवा] कुमुदिनी । कुईं ।

केवका—पुं० [सं० क्वक=ग्रास] एक प्रकार का मसाला ।

केवकी—स्त्री०=केवटी ।

केवट—पुं० [सं० कैवर्त्त, प्रा० केवट्ट] १. एक प्राचीन जाति जो क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से उत्पन्न कही गई है । इस जाति के लोग नाव खेने का काम करते थे । २. उक्त जाति का व्यक्ति । ३. मल्लाह ।

केवटना—स० [सं० कैवर्त] १. नाव खेना । २. पार उतारना । उदा०—एहवां मद श्री गोरष केवट या वदंत मछींद्र ना पूता ।—गोरखनाथ ।

केवटी—स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा ।

केवटीदाल—स्त्री० [हिं० केवट=एक संकर जाति+दाल] कई तरह की दालें जो एक में मिलाकर पकाई गई हों ।

केवटीमोथा—पुं० [सं० कैवर्तमुस्ता] एक प्रकार का सुगंधित मोथा ।

केवड़ई—वि० [हिं० केवड़ा+ई (प्रत्य०)] १. (पदार्थ) जिसमें केवड़ा पड़ा हो । २. जिसमें केवड़े की-सी महक हो । ३. केवड़े के रंग का ।

पुं० एक प्रकार का हलका पीला रंग ।

केवड़ा—पुं० [सं० केविका] १. एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके पत्ते बहुत लम्बे, पतले और घने होते हैं और फूल बहुत ही सुगंधित होते हैं । २. उक्त पौधे का फूल, जो कँटीला, लंबा और बहुत सुगंधित होता है । ३. उक्त पौधे के फूलों से उतारा हुआ अरक ।

केवड़ी—वि०, पुं० दे० 'केवड़ई' ।

केवरा—पुं०=केवड़ा ।

केवल—वि० [सं०√केव् (सेवन)+कल] १. जिसका या जितने का उल्लेख किया जाय वही या उतना ही । जैसे—(क) वहाँ केवल साहित्यिक आये थे । (ख) वह केवल धोती पहने था । २. जिसमें उल्लिखित या कथित के सिवा और किसी का मेल या सहयोग न हो । निरा । जैसे—यह तो केवल पानी है । ३. वास्तविक और विशुद्ध । जैसे—केवल ज्ञान

अव्य० मात्र । सिर्फ । जैसे—यहाँ केवल सवेरे दूध मिलता है ।

पुं० [सं० केवली] १. ऐसा विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान जिसमें कुछ भी भ्रम या भ्रांति न हो । २. प्राणायाम का वह प्रकार या भेद ('सहित' से भिन्न) जिसमें पूरक और रोचक क्रियाएँ बिलकुल की ही नहीं जातीं । ३. सम्यक् ज्ञान । (जैन) ४. वास्तुकला में, स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा ।

केवलव्यतिरेकी(किन्)—पुं० [सं० केवल-व्यतिरेक, कर्म० स०, इनि] एक प्रकार का अनुमान जिसे 'शेषवत्' (देखें) भी कहते हैं ।

केवलात्मा(त्मन्)—पुं० [सं० केवल-आत्मन् कर्म० स०] १. निर्लिप्त तथा विशुद्ध आत्मा । २. ज्ञानी पुरुष । ३. ईश्वर, जो पाप-पुण्य आदि सब से रहित हो ।

केवलान्वयी (यिन्)—पुं० [सं० केवल-अन्वय, कर्म० स०+इनि] एक प्रकार का अनुमान जिसे 'पूर्ववत्' (देखें) भी कहते हैं ।

केवली (लिन्)—पुं० [सं० केवल+इनि] १. मुक्ति का अधिकारी साधु । २. वह साधु जिसने मुक्ति प्राप्त कर ली हो । ३. तीर्थंकर । (जैन)

केवाँच—स्त्री०=कौंछ ।

केवा—पुं० [सं० कुव=कमल] १. कमल का पौधा और उसका फूल ।

२. केवड़ा ।

†पुं० [सं० किवा] आनाकानी । टाल-मटोल ।

केवाड़(ा)—पुं०=किवाड़ा ।

केवाण†—पुं०=कृपाण । (डिं०)

केविका—स्त्री० [सं०√केव् (गति)+ण्वुल्—अक, टाप्] सरगंवा नामक फूल और उसका पौधा ।

केवी—वि० [सं० केऽपि] कोई दूसरा । अन्य । कोई । उदा०—कामिणि कहि काम कल कहि केवी ।—प्रिथीराज ।

स्त्री० [हिं० केवा] कमलिनी ।

पुं० [?] शत्रु । दुश्मन । उदा०—खाग त्याग करि दयितां केवी दंत कुदाल ।—जटमल ।

केश—पुं० [सं०√क्लिश् (पीड़ित होना)+अच्, ल का लोप] १. शरीर के किसी अंग के विशेषतः सिर पर के वाल । २. शेर और घोड़े की गरदनों पर होनेवाले वाल । अयाल । ३. रश्मि । किरण । ४. विश्व । ५. विष्णु । ६. सूर्य । ७. वरुण । ८. दे० 'केशी' (दैत्य) ।

केशक—वि० [सं० केश+कन्] वालों को ठीक प्रकार से सँवारने की विद्या जाननेवाला ।

पुं० वहुत छोटा और पतला वाल । रोआँ ।

केश-कर्म (न्)—पुं० [प० त०] १. वालों को सँवारने, सजाने तथा चोटी, जूड़ा आदि गूँथने या वाँधने आदि की कला या काम । २. मुंडन संस्कार ।

केश-कल्प—पुं० [प० त०] १. सर के वालों को खिजाव, मेंहदी आदि से रँगना । २. केश रँगने की वस्तुएँ (हेयर-डाई)

केश-कीट—पुं० [प० त०] वालों में पड़नेवाला जूँ नाम का कीड़ा ।

केशट—पुं० [सं० केश√अट् (गति)+अच्] १. विष्णु । २. कामदेव के पाँच वाणों में से एक । ३. वकरा । ४. खटमल ।

केश-पर्णी—स्त्री० [व० स०] अपामार्ग । चिचड़ा ।

केश-पाश—पुं० [प० त०] १. सिर पर के वालों की लट । २. सिर के वालों का जूड़ा ।

केश-बन्ध—पुं० [प० त०] १. सिर के वालों या लटों को वाँधने की पट्टी । २. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक जिसमें वालों का जूड़ा वाँधने का ढंग दिखाया जाता है ।

केश-भूषा—स्त्री० [प०त०] दे० 'केश-विन्यास' ।

केश-मथनी—स्त्री० [सं०√मथ् (मथना+ल्युट्—अन, ङीप्, केश-मथनी, प० त०] शमी नामक वृक्ष ।

केश-रंजन—पुं०—[प० त०] १. वालों को रंगने का काम । २. भृंगराज । भँगरैया ।

केशर—पुं० =केसर ।

केश-राज—पुं० [सं० केश√राज् (शोभित होना)+घञ्] १. भुजंगा पक्षी । २. भँगरैया ।

केशराम्ल—पुं० [सं० केशर–अम्ल, स० त०] १. अनार । २. विजौरा नीवू ।

केशरी (रिन्)—पुं० [सं० केशर+इनि]=केशरी

केश-रूपा—स्त्री० [व० स०] पेड़ पर का वाँदा । वंदाल ।

केशलुंच—पुं० [सं० केश √लुञ्च् (हटाना)+अण्] एक प्रकार के जैन साधु जो अपने सिर के वाल नोचकर अलग करते हैं ।

वि० अपने वाल नोचनेवाला ।

केशव—वि० [सं० केश√वा (गति)+ड] जिसके लंवे तथा सुंदर वाल हों ।

पुं० १. विष्णु । २. ब्रह्मा । ३. श्रीकृष्ण । ४. पुन्नाग का पेड़ ।

केश-वपनीय—पुं० [व० स०] एक प्रकार का अतिरात्र यज्ञ ।

केश-वर्धिनी—पुं० [प० त०] सहदेवी नाम की वूटी । सहदेइया ।

केशव-वसन—स्त्री० [प० त०] पीतांवर ।

केशवायुध—पुं० [सं० केशव–आयुध प० त०] १. भगवान विष्णु का आयुध । २. आम ।

केशवालय—पुं० [सं० केशव—आलय, प० त०] पीपल का पेड़ । वासुदेव वृक्ष ।

केश-विन्यास—पुं० [प० त०] सिर के वालों को ठीक तरह से सँवार या सजाकर जूड़े आदि के रूप में वाँधना । (हेयर स्टाइल)

केश-हंत्री—स्त्री० [प० त०] शमी का पेड़ ।

केशांत—पुं० [सं० केश–अंत, व० स०] १. वाल का सिरा । २. मुंडन संस्कार ।

केशाकेशि—स्त्री० [सं० केश–केश, व० स०] दो आदमियों का एक दूसरे के वाल पकड़कर खींचना । झोंटा-झोंटौवल ।

केशारुहा—स्त्री० [सं० केश–आ√रुह् (पैदा होना)+क, टाप्] सहदेवी वूटी । सहदेइया ।

केशि—पुं० [सं० केशिन्] केशी (असुर) ।

केशिक—वि० [सं० केश+ठन्—इक] १. केशोंवाला । २. (व्यक्ति) जिसके लंवे तथा सुंदर वाल हों ।

केशिका—स्त्री० [सं० केशिन्√कै (शब्द)+क—टाप्] १. शतावरी । २. किसी चीज के ऊपर के वहुत छोटे-छोटे रोएँ । (कपिलरी) जैसे—शरीर में रक्त-वाहिनी नसों पर केशिकाएँ होती हैं ।

केशिनी—स्त्री० [सं० केश+इनि, ङीप्] लंवे तथा सुन्दर वालोंवाली स्त्री । २. राजा सगर की एक रानी । ३. पार्वती की एक सखी । ४. एक प्राचीन नगरी । ५. जटामाँसी । ६. चोर पुष्पी (एक ओषधि) ।

केशी (शिन्)—वि० [सं० केश+इनि] [स्त्री० केशिनी] १. लंवे और सुन्दर वालोंवाला । २. किरणों या प्रकाश से युक्त ।

पुं० १. एक असुर जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था । २. घोड़ा । ३. सिंह । ४. एक यादव ।

स्त्री० [सं० केश+ङीप्] १. नील का पौधा । २. भूतकेश नामक ओषधि । ३. केवाँच । कौंछ । ४. एक वृक्ष, जिसके पत्ते खजूर के पत्तों जैसे होते हैं ।

केश्य—पुं० [सं० केश+यत्] काला अगर ।

केस—पुं० [सं० केश] १. सिर के वाल ।

मुहा०—केस न टार सकना=वाल न वाँका कर सकना । कुछ भी हानि न पहुँचा सकना । उदा०—सूर केस नहिं टारि सकै केउ, दाँत पीसि जौ जग मरै ।—सूर ।

२. शरीर पर के वाल या रोएँ ।

पुं० [?] आँख का एक रोग जिसमें आँख के कोने में लाल मांस निकल आता है और जो धीरे धीरे सारी आँख को ढक लेता है ।

पुं० [अं०] १. कोई चीज रखने का छोटा घर। खाना। २. दुर्घटना। ३. अवस्था। स्थिति। ४. मुकदमा।

केसई—स्त्री०=कसई।

केसर—पुं० [सं० के√सृ (गति)+अच्] १. फूलों के बीच में होनेवाले बालों की तरह के पतले सींके। २. ठंडे देशों में होनेवाला एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जिसके उक्त प्रकार के सींके अपनी उत्कृष्ट सुगंधि के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। कुंकुम। जाफराना (सैफ्रन) ३. नागकेसर। ४. मौलसरी। ५. हींग का पेड़। ६. पुन्नाग। ७. स्वर्ण। ८. एक प्रकार का विष। ९. घोड़े, सिंह आदि जानवरों की गरदन पर के बाल। अयाल।

केसराचल—पुं० [सं० केसर-अचल, मध्य० स०] मेरु पर्वत।

केसराम्ल—पुं० [सं० केसर-अम्ल ब० स०] बिजौरा नीबू।

केसरि—पुं० [सं० केसरी] दे० 'केसरी'।

केसरिका—स्त्री० [सं० के√सृ+वुन्—अक, टाप् अलुक् स०] सहदेई नामक बूटी।

केसरिया—वि० [सं० केसर+हिं० इया (प्रत्य०)] १. जिसमें केसर पड़ा हो। जैसे—केसरिया बरफी या भात। २. केसर के हलके रंग में रँगा हुआ। जैसे—केसरिया बाना।

पुं० केसर की तरह पीला रंग।

केसरिया बाना—पुं० [हिं०] केसरिया रंग के वस्त्र जो मध्ययुग में राजपूत लोग पहनकर युद्ध में जाते थे।

केसरी (रिन्)—पुं० [सं० केसर+इनि] १. सिंह। शेर। २. घोड़ा। ३. नाग केसर। ४. हनुमान्‌जी के पिता का नाम।

वि०, पुं०=केसरिया।

केशरी-किशोर—पुं० [ष० त०] हनुमान्।

केसारी—स्त्री० दे० 'खेसारी'।

केसु—पुं० [सं० किंशुक] पलाश। टेसू। उदा०—कनक संभु जनि केसु पूजला।—विद्यापति।

केसू†—पुं० [सं० किंशुक] टेसू। ढाक। पलाश।

केहरि, केहरी—पुं० दे० 'केसरी'।

केहा—पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] १. मोर। २. एक प्रकार का जंगली पक्षी।

केहि*—सर्व० [सं० कि]१. किसे। किसको। २. किस।

केहुँ—(हूँ)क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी प्रकार। किसी भाँति।

केहुनी†—स्त्री०=कोहनी।

केहूँ*—अव्य० [हिं० केहि] १. किसी प्रकार। २. कहीं।

केहू*—सर्व० [हिं० के] कोई।

केहू*—सर्व० [हिं० केहि] किसी को। उदा०—काहुहि लात चपेटन्हि केहू।—तुलसी।

कैं*—विभ० दे० 'के'।

अव्य०=या।

कैंकर्य—पुं० [सं० किंकर+ष्यञ्] किंकर होने की अवस्था या भाव। किंकरता।

कैंचा—पुं० [हिं० कैंची] बड़ी और लंबी कैंची।

वि० [हिं० काना+ऐंचा=कनैंचा] जिसकी एक आँख की पुतली किसी एक ओर खिंची हुई हो। ऐंचा। भेंगा।

पुं० ऐसा बैल जिसका एक सींग खड़ा या सीधा और दूसरा झुका हुआ या टेढ़ा हो।

कैंची—स्त्री० [तु०] १. दो फलोंवाला एक प्रसिद्ध उपकरण, जिसकी दोहरी धारों की दाब से बीच में रखी हुई चीज कट जाती है। (सीजर) जैसे—कपड़ा या कागज काटने की कैंची।

मुहा०—**कैंची करना**=काटना—छाँटना। **कैंची की तरह जबान चलना**=मुँह से जल्दी-जल्दी, बहुत अधिक और उद्दंडतापूर्ण बातें निकलना। **कैंची लगाना**=कतरना या काटना।

२. उक्त की बनावट के आधार पर आड़ी या तिरछी रखी जानेवाली ऐसी तीलियाँ, बरनें, लकड़ियाँ आदि जो किसी प्रकार की रचना को सँभालने के लिए उसके नीचे खड़ी की या लगाई जाती हैं। जैसे—छत या छाजन की कैंची; पुल की कैंची।

मुहा०—**कैंची लगाना**=दो या अधिक तीलियों, लकड़ियों आदि को उक्त ढंग से एक दूसरे के साथ जड़ना, रखना या लगाना।

३. उक्त के आधार पर, किसी चीज या सवारी पर बैठने का वह ढंग जिसमें दोनों टाँगे नीचे लटकाकर उनके सिरे एक दूसरी की विपरीत दिशा में फैलाये जाते हैं। जैसे—घोड़े पर बैठकर कैंची बाँधना (अर्थात् दोनों जाँघों और टाँगों से उसका पेट अच्छी तरह दबा रखना)। ४. उक्त के आधार पर कुश्ती का एक पेंच जिसमें अपनी टाँगों से प्रतिपक्षी की कमर, टाँगें या पेट फँसाकर उसे नीचे दबाये रखते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

५. मालखंभ की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी मालखंभ को उक्त प्रकार या रूप से पैरों से जकड़कर पकड़ता है।

स्त्री० [हिं० कैंचा=काना+ऐंचा या कनैंचा] किसी की आँख बचाकर या और किसी प्रकार उसके सामने से हटकर इधर-उधर होने की क्रिया या भाव।

मुहा०—**कैंची काटना**=(क) किसी की आँख बचाकर इधर-उधर हो जाना। कतराना। (ख) किसी से कुछ कहकर मुकर जाना। पीछे हटना।

कैंडल—पुं० [देश०] बनतीतर पक्षी।

स्त्री० [अं०] मोमबत्ती।

कैंडा—पुं० [सं० कांड] १. कोई काम अच्छी तरह तथा कौशलपूर्वक करने का उपयुक्त ढंग या प्रकार। ढब। जैसे—हर काम करने का एक कैंडा होता है। उदा०—वह आँतों तले से बात को निकालने का कैंडा जानता था।—वृंदावनलाल वर्मा। २. किसी चीज के आकार-प्रकार या बनावट का ऐसा ढंग जिसमें उक्त प्रकार के कौशल से काम लिया गया हो। जैसे—यह लोटा तो कुछ और ही कैंडे का है। ३. वह उपकरण जिससे किसी प्रकार का निर्माण या रचना करने से पहले उसका रूप, विस्तार आदि निश्चित या स्थिर किया जाता है। जैसे—चारि वेद कडा कियो निरंकार कियो राहु।—कबीर। ४. नापने का पात्र। पैमाना। ५. किसी दीर्घकाल व्यापी विशिष्ट कार्य या परम्परा के विचार से, उसके पूर्व-कालीन और उत्तर-कालीन विभागों में से हर विभाग। जैसे—इतना अवश्य था कि पिछले कैंडे की लिखावट उतनी अजनबी नहीं थी जितनी पहले कैंडे वालों की।—रामचंद्र शुक्ल।

६. चित्र-कला में चित्रित आकृतियों, दृश्यों वस्तुओं आदि के अंगों और उपांगों का तुलनात्मक पारस्परिक अनुपात।

कँता—पुं० [हिं० कित, पूर्वी हिं० कइत=ओर] वास्तु में पत्थर की वह पटिया जो फटी हुई दीवार को गिरने से रोकने के लिए उनके बीच में आड़ी लगाई जाती है। लंगर।

कँप—पुं० [अं०] १. सेना के ठहरने का स्थान। छावनी। २. पड़ाव।

कँवा†—पुं०=कैमा।

कै—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] किस मात्रा या मान का। कितना। जैसे—(क) वहाँ कै आदमी गये हैं? (ख) तुम्हें कै रुपए चाहिए?

† विभ० [सं० कृतः] १. संबंधकारक विभक्ति का, की या के। उदा०—धोबी कै सो कुकुर न घर को न घाट को।—तुलसी। २. के लिए। वास्ते।

† सर्व० १. कौन। २. किसने। उदा०—कहु जड़ जनक धनुख कै तोरा।—तुलसी।

† अव्य० [सं० कि] १. अथवा। या। वा। जैसे—कैवों=या तो। २. कि। उदा०—.....काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।—तुलसी।

स्त्री० [अ० कै] उलटी। वमन। जैसे—दवा खाते ही कै हो गई।

† पुं० [?] एक प्रकार का जड़हन धान।

कैकस—पुं० [सं० कीकस+अण्] राक्षस।

कैकसी—स्त्री० [सं० कैकस+ङीन्] रावण की माता का नाम।

कैकेय—पुं० [सं० केकय+अण् इय् आदेश] [स्त्री० कैकेयी] केकय गोत्र का व्यक्ति।

कैकेयी—स्त्री० [सं० कैकेय+ङीप्] १. कैकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २. राजा दशरथ की एक रानी, जो केकय-नरेश की पुत्री और भरत की माता थी।

कैंगर—पुं० [सं० कीकट=कीकर] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

कैट—वि० [सं० कीट+अण्] कीट अर्थात् कीड़े-मकोड़े में होने या उनसे संबंध रखनेवाला। कीट-संबंधी।

कैटभ—पुं० [सं० कीट√भा (प्रतीत होना)+ड+अण्] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई, जो विष्णु के हाथों मारा गया था।

कैटभा—स्त्री० [सं० कैटभ+टाप्] दुर्गा का एक नाम।

कैटभारि—पुं० [सं० कैटभ-अरि, ष० त०] विष्णु।

कैटर्य्य—पुं० [सं०√किट् (त्रास)+घञ्, केट√रा (देना)+क+ष्यञ्] १. कायफल। २. नीम। ३. मदनवृक्ष। ४. महानिंब।

कैडर्य्य—पुं० [सं० कैटर्य्य पृषो० सिद्धि] १. कायफल। २. करंज। ३. पूतिकरंज।

कैत†—स्त्री० [हिं० कित] ओर। तरफ। दिशा।

कैतक—पुं [सं० केतकी+अण्] केतक का फूल।

वि० केतक-संबंधी।

कैतव—पुं० [सं० कितव+अण्] १. किसी को छलने या धोखा देने के लिए किया जानेवाला काम। २. जूए के खेल में लगाया जानेवाला दाँव। ३. जूआ। ४. वैदूर्यमणि। लहसुनिया। ५. धतूरा।

वि० १. छलने या धोखा देनेवाला। २. जूआ खेलने या दाँव लगानेवाला।

कैतवक—पुं० [सं० कैतव+कन्] जूए के खेल में की जानेवाली बेईमानी।

कैतवापह्नुति—स्त्री० [सं० कैतव-अपह्नुति, तृ० त०] साहित्य में एक अलंकार, जो अपह्नुति का एक भेद माना जाता है तथा जिसमें उपमेय के मिस उपमान का कुछ बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। जैसे—वह यथा आये, उनके बहाने साक्षात् ईश्वर ही वहाँ आ गया।

कैतुक—वि० [सं० केतु+कञ्] १. केतु-संबंधी। केतु का। २. केतु से युक्त।

कैतून—स्त्री० [अ०] वस्त्रों के किनारे टाँकी जानेवाली एक प्रकार की सुनहरी किनारी या पतली लैस।

कैथ—पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] १. छोटे तथा खट्टे फलोंवाला एक कँटीला पेड़। २. उक्त पेड़ का फल जो बेल से कुछ छोटा तथा मोटे छिलकेवाला होता है।

कैया—पुं०=कैथ।

कैथिन—स्त्री० [हिं० कायथ] कायथ (कायस्थ) जाति की स्त्री।

कैथी—स्त्री० [हिं० कैथ] छोटी जाति का कैथ।

स्त्री० [हिं० कायस्थ] बिहार राज्य में प्रचलित एक पुरानी लिपि जिसमें अक्षर नागरी लिपि जैसे ही हैं, परंतु उन पर शीर्ष रेखा नहीं होती।

कैद—स्त्री० [अ०] १. बंधन। २. बंधन में रहने की अवस्था या भाव। ३. अपराधी को दंड देने के लिए बंद स्थान में रखना। कारावास।

मुहा०—**कैद काटना या भोगना**=कारावास में दिन बिताना।

कैदक—स्त्री० [अ०] कागज की वह दफ्ती या पट्टी जिसमें कागज-पत्र आदि बाँधकर रखे जाते हैं।

कैदखाना—पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ दंडित अपराधियों को कुछ नियत समय तक बंद करके रखा जाता है। जेलघर। (जेल, प्रिजन)

कैदतनहाई—स्त्री० [अ० कैद+फा० तनहाई] वह कैद जिसमें कैदी को किसी एक कोठरी में अकेले रहना पड़ता है। अन्य कैदियों से अलग रहने की सजा।

कैदसख्त—स्त्री० [अ० कैद+फा० सख्त] अपराधी को कारावास के दिनों में कठोर परिश्रम का काम करते रहने की सजा।

कैदमहज—स्त्री० [अ०] वह कैद जिसमें अपराधी को जेल-जीवन में परिश्रम न करना पड़ता हो, केवल बन्द रहना पड़ता हो। सादी कैद।

कैदसोवारी—स्त्री० [हिं० कद+सोवारी] तबला बजाने में एक प्रकार की गत।

कैदार—वि० [सं० केदार+अण्] १. केदार प्रदेश में होनेवाला। २. केदार-संबंधी।

पुं० १. पद्मकाष्ठ। पद्माख। २. शालिधान्य।

कैदी—पुं० [अ०] १. वह जिसे कैद अर्थात् बंधन में रखा गया हो। २. वह अपराधी जिसे न्यायालय ने कैद में रहने की सजा दी हो।

कैदु*—अव्य० [हिं० कै=या+दु (धौं)] हो सकता है कि। कदाचित्। कहीं। उदा०—हम कातर डराति अपने सिर कहुँ कलंक ह्वै कैदु।—सूर।

कैधों—अव्य० [हिं० कै+धौं] अथवा। या। वा।

कैना†—स्त्री० [सं० कंचिका] बाँस या और किसी वृक्ष की लम्बी टहनी।

कैना—पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा, जिसकी पत्तियों का साग और पकौड़े बनते हैं।

कैनित—स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ जिसकी खाद बनती है।

कैन्नर—वि० [सं० किन्नर+अण्] किन्नरों का। किन्नर-संबंधी।

कैप—स्त्री० [अं०] टोपी।

कैप्टन—पुं०=कप्तान।

कैफ—पुं० [अ०] वह वस्तु जिसके सेवन से नशा या बेहोशी आती हो। मादक द्रव्य।

कैफियत—स्त्री० [अ०] १. वर्णन। हाल।

मुहा०—**कैफियत तलब करना**=भूल आदि होने पर उसके कर्त्ता से उसके कारण आदि का विवरण माँगना।

२. कोई विलक्षण और सुखद घटना।

कैफी—वि० [अ०] १. जिसने कैफ अर्थात् मादक द्रव्य का सेवन किया हो। २. मतवाला।

पुं० शराब पीनेवाला व्यक्ति। शराबी।

कैबर—स्त्री० [देश०] तीर का फल। गाँसी।

कैबाँ (बा)—अव्य० [हिं० कै=कई+बार] कई या कितनी ही बार। उदा०—कहा जानै कैबाँ मुवौ, रे ऐसैं कुमनि कुमीच।—सूर।

कैवार*—पुं०=किवाड़। उदा०—श्रवण कैवार दे कै तोहि मूँदि मारौं एकै वार।—देव।

कैम—वि०=कायम।

पुं०=कैमा।

कैमा—पुं० [सं० कदंब] एक प्रकार का कदंब जिसके पत्ते कचनार की तरह के होते हैं। करमा।

कैमुतिक न्याय—पुं० [सं० किमुत+ठक्—इक, कैमुतिक-न्याय कर्म० स०] एक न्याय जो इस बात का सूचक होता है कि जब इतना बड़ा काम पूरा हो गया, तब इस छोटे-से काम के पूरे होने में क्या संदेह है?

कैयक*—वि० [हिं० कई+एक] कई। अनेक।

कैया—पुं० [देश०] १. कसेरों, लोहारों आदि का वह उपकरण जिससे वे टूटी हुई चीजें जोड़ने के लिए उनमें राँगा लगाते हैं। २. घी-तेल आदि नापने का एक छोटा पात्र। (मध्यभारत)

कैयो†—वि०=कई (अनेक)।

कैर—पुं०=करील।

कैरट—पुं० [अं०, मि० अ० किरात] १-३.१७ जौ की एक विदेशी तौल। २. सोने की बनी हुई चीजों में विशुद्ध सोने का अंश, मात्रा या मान। (२४ कैरट का सोना विशुद्ध माना जाता है। यदि कोई चीज २० कैरट की कही जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि इसमें २० हिस्सा सोना है और ४ हिस्सा दूसरी धातु का मेल है।)

कैरव—पुं० [सं० के√रु (शब्द)+अच्, केरव+अण्] [स्त्री० कैरवी] १. कुमुद। कोईं। २. सफेद कमल। ३. शत्रु। ४. धोखेबाज। ५. जुआरी।

कैरव-बंधु—पुं० [ष० त०] कैरवों (कुमुदों) का बंधु अर्थात् चंद्रमा।

कैरवाली—स्त्री० [सं० कैरव-आली, ष० त०] १. कैरवों का समूह। २. वह स्थान जहाँ बहुत-से कुमुद खिले हों।

कैरविणी—स्त्री० [सं० कैरव+इनि, ङीप्] कुमुदिनी।

कैरवी (विन्)—स्त्री० [सं० कैरव+इनि] १. चाँदनी रात। २. चंद्रमा। ३. मेथी।

कैरा—पुं० [सं० कैरव=कुमुद] [स्त्री० कैरी] १. ऐसी सफेदी जिसमें कुछ ललाई की झलक हो। २. भूरा रंग। ३. ऐसा बैल, जिसके सफेद रोयों के नीचे से चमड़े की ललाई झलकती हो। सोकन। सोकना।

वि० १. भूरे रंग का। भूरा। २. भूरे रंग की आँखोंवाला। कंजा।

कैराटक—पुं० [सं० किर√अट् (गति)+अण्, किराट+कन्+अण्] वानस्पतिक वृक्ष का एक भेद, जिसके अंतर्गत अफीम, कनेर आदि आते हैं।

कैरात—वि० [सं० किरात+अण्] १. किरातों में होने अथवा उनसे संबंध रखनेवाला। २. किरात देश का।

पुं० १. किरात देश का राजकुमार। २. मोटा-ताजा आदमी। ३. चिरायता। ४. शंबर चंदन। ५. एक प्रकार का पक्षी विशेष। ६. शुद्ध राग का एक भेद। (संगीत)

†पुं०=कैरट।

कैरातक—वि० [सं० कैरात+कन्]=कैरात।

कैरातिक—वि० [सं० किरात+ठक्—इक]=कैरात।

कैराल—पुं० [सं० किर√अल् (पर्याप्त होना)+अण्, किराल+अण्] वायविडंग (ओषधि)।

कैरी—वि० स्त्री० [हिं० कैरा] १. भूरे रंग की। २. जिसकी आँखें भूरी हों।

स्त्री० १. आम में बौर के बाद लगनेवाले फल के टिकोरे। २. नकली या बनावटी फूल।

कैलंडर—पुं० [अं०] दे० 'दिनपत्र' और 'पंचांग'।

कैल†—स्त्री०=केलि।

पुं०=कल्ला।

कैलास—पुं० [सं० के-लास, ब० स०,+अण्] १. हिमालय की उत्तरी सीमा में स्थित एक चोटी जो सदा बरफ से ढकी रहती है और शिव का निवास-स्थान मानी जाने के कारण एक प्रसिद्ध तीर्थ है। २. स्वर्ग। ३. ऐसा षट्कोण देवमंदिर जिसमें कई शिखर हों। ४. वास्तु-शास्त्र में, तीन खंडोंवाला बड़ा मकान या महल। ५. राजमहल। ६. शरीर में के आज्ञा-चक्र का एक नाम।

कैलास-नाथ—पुं० [ष० त०] शिव।

कैलास-निकेतन—पुं० [ब० स०] शिव।

कैलास-वास—पुं० [सं० स० त०] मृत्यु।

कैलासी—पुं० [कैलास+हिं० ई (प्रत्य०)] १. कैलास पर रहनेवाले भगवान शिव। २. कुबेर का निवास-स्थान।

वि० कैलास-संबंधी।

कैलेंडर—पुं० दे० 'दिनपत्र' और 'पंचांग'।

कैलैया†—पुं० [सं० कोकिलाक्ष] तालमखाना।

कैवर्त—पुं० [सं० के√वृत् (बरतना)+अच्, अलुक् स०, +अण्] १. मल्लाहों की एक जाति, जो भार्गव पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न मानी जाती है। २. उक्त जाति का व्यक्ति।

कैवर्त्तक—पुं० [सं० कैवर्त+कन्]=कैवर्त।

कैवर्त-मुस्तक—पुं० [सं० मध्य० स०] [illegible] मोथा।

कैवर्तिका—स्त्री० [सं० कैवर्त+ङीप्+कन्—टाप्, ह्रस्व] एक प्रकार की लता।

कैवल—पुं० [सं० केवल+अण्] वायविडंग।

कैवल्य—पुं० [सं० केवल+ष्यञ्] १. केवल अर्थात् निर्लिप्त या विशुद्ध होने की अवस्था या भाव। २. शास्त्रों में विद्या और अविद्या तथा उनके सब कार्यों से अलग होकर ब्रह्म में लीन होना, जो जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दो प्रकार का माना गया है। निःश्रेयस्। ३. मुक्ति। मोक्ष। ४. एक उपनिषद् का नाम।

कैवल्य-ज्ञान—पुं० [प० त०] ब्रह्म-विद्या का वह ज्ञान जो संशय-रहित और स्थायी हो।

कवा*—अव्य० [हिं० कई+वार] कई बार। उदा०—कैवा आवत इहि गली, रहौं चलाइ चलैं न।—विहारी।

कैशिक—वि० [सं० केश+ठञ्—इक] १. जो केशों अर्थात् बालों या रोओं से युक्त हो। (कैपिलरी) २. जो बालों या रोओं जैसा हो अथवा उनकी तरह नरम हो।

पुं० १. केश-समूह। २. श्रृंगार। ३. नृत्य का एक भेद जिसमें हाव-भावों से किसी की नकल उतारी जाती है।

कैशिक-निषाद—पुं० [कर्म० स०] संगीत में निषाद स्वर का एक विकृत रूप, जो तीव्र निषाद से आरंभ होता है और जिसमें तीन श्रेणियाँ होती हैं।

कैशिक-पंचम—पुं० [कर्म० स०] संगीत में पंचम स्वर का एक विकृत रूप, जो संदीपनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिकी—स्त्री० [सं० कैशिक+ङीप्] नाटक की मुख्य चार वृत्तियों में से एक वृत्ति, जिसमें नृत्य-गीत, भोग-विलास आदि के वर्णन होते हैं।

कैशोर—वि० [सं० किशोर+अञ्] किशोर-संबंधी।

पुं० बालक की दस वर्ष की अवस्था से लेकर १५ वर्ष तक की अवस्था या अवधि।

कैस—पुं० [अ०] अरब का एक प्रसिद्ध प्रेमी, जो बाल्यावस्था में ही लैला नाम की एक कन्या के प्रेम में पागल हो गया था; और इसीलिए जो 'मजनूं' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कैसर—पुं० [लै० सीजर] १. सम्राट्। वादशाह। २. आस्ट्रिया, जर्मनी आदि देशों के महाराजाओं की उपाधि।

कैसा—वि० [सं० कीदृश, प्रा० केरस] [स्त्री० कैसी, क्रि० वि० कैसे] १. किस ढव या प्रकार का। किस तरह का। २. किस आकार या रंग-रूप का। ३. बहुत बढ़िया। जैसे—वाह! कैसी दलील दी है। ४. प्रश्न में निषेधार्थक, किसी प्रकार का नहीं। जैसे—जब काम ही पूरा नहीं किया तब पूरा वेतन कैसा?

कैसिक*— अ० [हिं० कैसा] किस तरह? कैसे?

कैसे— अव्य० [हिं० कैसा] १. किस ढंग या प्रकार से। जैसे—ये कपड़े तुम कैसे ले आये? २. किस अभिप्राय या उद्देश्य से? किस लिए? क्यों? जैसे—कैसे आना हुआ?

कैसो*†— वि० =कैसा।

कैहूँ—*अव्य० [हिं० क =कैसे+हूँ (प्रत्य०)] किसी तरह। किसी प्रकार।

कोंइछा†—पुं० [देश०] दे० 'खोइँछा'।

कोंईं—स्त्री० =कुमुदनी।

कोंकण—पुं० [सं०] १. दक्षिण भारत का एक छोटा प्रदेश, जो आधुनिक द्विभाषी वम्बई राज्य के अन्तर्गत है। २. उक्त देश का निवासी। ३. एक प्रकार का हथियार।

कोंकणस्थ—वि० [सं० कोंकण√स्था (रहना) +क] कोंकण का।

पुं० महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों का एक वर्ग।

कोंकणा—स्त्री० [सं० कोंकण +अच्—टाप्] परशुराम की माता रेणुका।

कोंकणी— स्त्री० [सं० कोंकण +अच् +ङीप्] कोंकण प्रदेश की भाषा, जो मराठी की एक वोली या विभाषा मानी जाती है।

वि० कोंकण (प्रदेश) संबंधी।

पुं० कोंकण (प्रदेश) का व्यक्ति।

कोंचना—स० [सं० कुच =लिखना, खरोचना] १. नुकीली चीज चुभाना। २. (किसी वस्तु में) उक्त क्रिया से वहुत-से छेद करना। जैसे—आँवला, आलू या परवल कोंचना।

कोंचफली—स्त्री०=कौंछ।

कोंचा—पुं० [हिं० कोंचना] १. कोंचने की क्रिया या भाव। २. वह नुकीली चीज, जिससे कोंचा जाय। ३. वहेलिए की वह लम्बी छड़ी जिस पर चिड़िया फँसाने के लिए लासा लगाया जाता है। ४. भड़भूँजे का वालू निकालने का कलछा।

कोंछ—स्त्री०=खोंच।

पुं०=कौंछ।

कोंछना—स० [हिं० काछा] १. धोती के पल्ले में कोई चीज बाँधकर कमर में खोंसना। २. धोती या साड़ी का कुछ भाग चुनकर पेड़ू पर खोंसना।

कोंछियाना—स०=कोंछना।

कोंछी†—स्त्री० [हिं० काछा] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ पेट के आगे खोंसती हैं। तिन्नी। नीवी। फुफुती।

कोंड़ई—पुं० [देश०] वंगाल और दक्षिणी भारत में होनेवाला एक प्रकार का कँटीला झाड़।

कोंड़रा—स्त्री० [सं० कुंडल] लोहे का वह कड़ा, जो मोट के मुँह पर लगा रहता है। गोंडरा।

कोंडरी—स्त्री० [सं० कुंडली] हुडुक वाजे की वह लकड़ी जिस पर चमड़ा मढ़ा रहता है।

कोंड़हा—वि०, पुं० [हिं० कोंढ़ा] जिसमें कोंढ़ा या कुंडा लगा हो।

कोंढ़ा—पुं० [सं० कुंडल] [स्त्री० कोंढ़ी] धातु का वह छल्ला या कड़ा जिसमें कोई चीज अटकाई या लटकाई जाती है।

पुं०=कुम्हड़ा।

कोंढ़ी—स्त्री० [सं० कोष्ठ] ऐसी कली, जिसका मुँह बँधा हो। कली।

कोंथ†—पुं० [देश०] मिट्टी के वर्तनों आदि का वह पूर्व रूप जो मिट्टी को चाक पर रखने के वाद वनता है। (कुम्हार)

कोंधनी†—स्त्री०=करधनी (गहना)।

कोंप* —स्त्री० दे० 'कोंपल'।

कोंपन*—स्त्री० दे० 'कोंपल'।

कोंपना†—अ० [हिं० कोंपल] पौधों, वृक्षों आदि में नये अंकुर फूटना। कोंपल निकलना।

कोंपर†—पुं० [हिं० कोंपल] १. डाल का पका या अवपका आम। २. 'कोंपल'।
पुं० [?] परात। उदा०—कोइ लोटा कोंपर लै आई। साहि सभा सब हाथ धोवाई।—जायसी।

कोंपल†—स्त्री० [सं० कोमल+पल्लव] पेड़, पौधों आदि में से निकलनेवाली नई मुलायम पत्तियाँ। कल्ला।

कोंरा†—वि० [हिं० कोमल] [स्त्री० कोंरी] कोमल। मुलायम।

कोंवर*†—वि०=कोमल।

कोंवल*—वि०=कोमल। उदा०—कोंवल कुटिल केस नग कारे। —जायसी।

कोंस†—पुं० [सं० कोश] लंबी फली। छीमी।

कोंहड़ा—पुं०=कुम्हड़ा।

कोंहड़ौरी—स्त्री० [हिं० कोंहड़ा+वरी] कुम्हड़े (या पेठे) को पीसकर बनाई हुई वरी।

कोंहरा†—पुं० [देश०] [स्त्री० कोंहरी] उबाले हुए चने या मटर की घुँघनी।
†पुं०=कुम्हार। उदा०—मोंहि का हँससि कि कोंहरहि।—जायसी।

कोंहार†—पुं०=कुम्हार।

को—विभ०[?] १. कर्म और संप्रदान कारकों की विभक्ति का चिह्न। जैसे— (क) उसको बुलाओ। (ख) मुझको दो। २. कुछ अवस्थाओं में, के लिए। वास्ते। जैसे— नहाने को चलो। उदा०—हेतु कृसानु भानु हिमकर को।—तुलसी। ३. अवधी और ब्रज में, संबंधकारक का चिह्न—का, की या के। उदा०—तेज प्रताप बढ़त कुँवरन को, जदपि सँकोची बानि हैं।—तुलसी।
†सर्व० [सं० कः] कौन। उदा०— को बड़ छोट कहत अपराधू। —तुलसी।

कोऽपि—सर्व० [सं० कः और अपि व्यस्त पद] कोई।

कोआ—पुं० [सं० कोश] १. रेशम के कीड़ों का आवरण। कुसियारी। २. टसर नामक रेशम का कीड़ा। ३. धुने हुए ऊन की पोनी। ४. महुए का फल। ५. कटहल के पके हुए बीजकोश। ६. आँख की पुतली के चारों ओर का सफेद भाग। आँख का डेला। ७. आँख का कोना।

कोआर—पुं० [देश०] कोरा नामक वृक्ष।

कोइँदा†—पुं० [हिं० कोआ] [स्त्री० कोइँदी] १. महुए का पका हुआ फल। गोलैंदा। २. उक्त फल का बीज।

कोइक—वि० [देश० कोई+एक] कुछ।
सर्व०=कोई।

कोइड़ार†—पुं० [हिं० कोरी (जाति)] १. साग-तरकारी आदि के खेत। २. कोरी जाति के लोगों की बस्ती।

कोइना†—पुं०=कोइँदा।

कोइरी—पुं० [हिं० कोयर=सागपात] तरकारी बोनेवाली कोइरी नामक जाति। काछी।

कोइल†—स्त्री० [कुंडली] १. वह गोल छेददार लकड़ी, जो मक्खन निकालने के समय दूध के मटके के मुँह पर रखी जाती है। २. करघे में वह लकड़ी जो ढरकी के बगल में लगी रहती है। (जुलाहा)
स्त्री०=कोयल।

कोइलरि—स्त्री०=कोयल।

कोइलाँस*—पुं०=कोइली।

कोइला—पुं०=कोयला।

कोइलारी—स्त्री० [हिं० कोलना] १. पशुओं के गले में डाली जानेवाली रस्सी का फंदा। २. लकड़ी का वह गोल कड़ा, जिसे हरहाये चौपायों के गँराव में इसलिए फँसा देते हैं कि झटका देने या खींचने से उनका गला दबे ।

कोइलि—स्त्री० १=कोयल। २.=कोइली।

कोइलिया*—स्त्री०=कोयल।

कोइली—स्त्री० [हिं० कोयल] १. वह कच्चा आम जिसमें पत्तों आदि की रगड़ के कारण काला दाग पड़ गया हो। २. आम की गुठली।

कोई—सर्व० [सं० कोऽपि] १. दो या दो से अधिक वस्तुओं, व्यक्तियों आदि में से ऐसी वस्तु या व्यक्ति, जिसका निश्चित उल्लेख या परिज्ञान न हो। कइयों में से चाहे जो। जैसे—(क) तुममें से कोई चला जाय। (ख) कोई आये तो मेरे पास भेज देना।
पद—कोई न कोई=एक नहीं तो दूसरा। यह नहीं तो वह सही। जैसे— कोई आ ही जायगा।
२. बहुतों में से हरएक, परन्तु अनिर्दिष्ट और अनिश्चित। जैसे—कोई नौकर भेज दो।
वि० १. ऐसा हर एक, जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। जैसे—कोई आदमी आकर यह चिट्ठी दे गया था। २. बहुतों में से चाहे जो एक। जैसे—कोई बात हुई हो तो बतलाओ। ३. ध्यान देने योग्य और विशिष्ट। जैसे—भला यह भी कोई बात है। ४. कुछ या थोड़ा।
पद—कोई दम का मेहमान=थोड़े ही काल तक और जीनेवाला। जो शीघ्र मरने को हो।
क्रि० वि०—करीब-करीब। लगभग। जैसे—। कोई सौ आदमी आये थे।
स्त्री० [सं० कोश] आँख का कोआ या डेला। उदा०—लखि लोने लोइनन कै कोइन होइन आजु।—बिहारी।

कोउ†*—सर्व०=कोई।

कोउक†*—सर्व० [हिं० कोऊ+एक] १. कोई एक। २. कुछ लोग।

कोऊ†*—सर्व०=कोई।

कोकंब*—पुं०=कोकम (वृक्ष)।

कोक—पुं० [सं०√कुक् (आदान)+अच्] [स्त्री० कोकी] १. चकवा पक्षी। सुरखाब। २. मेंढक। ३. दे० 'कोकदेव'।
पुं० [फा०] कपड़े पर की कच्ची सिलाई।

कोकई—पुं० [तु० कोक] कौड़ी की तरह का ऐसा पीला रंग, जिसमें कुछ गुलाबी या नीली झलक भी हो। (सीपिया)
वि० उक्त प्रकार के रंग का।

कोक-कला—स्त्री० [सं० ष० त०] १. रति, केलि और संभोग की कला या विद्या। २. दे० 'कोकशास्त्र'।

कोकटी—वि० [मैथिल] १. मुलायम सूत की, किन्तु बिना किनारीदार और जानु तक ही चौड़ी धोती, जिसे पहले मिथिला में शिष्ट लोग पहनते थे। उदा०—कोकटी धोती पटुआ साग।—मैथिली लोकगीत। २. एक प्रकार का रंग, जो कुछ लाली लिये हलका पीला होता है। ३. उक्त रंग का कपड़ा।

कोक-देव—पुं० [सं० कोक√दिव् (क्रीड़ा करना)+अच्, उप० स०] कामशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य जो 'कोकशास्त्र' नामक ग्रन्थ के रचयिता थे।

कोकन—पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़।

कोकनद—पुं० [सं० कोक√नद् (अव्यक्त शब्द)+अच्] १. लाल कमल। २. लाल कुमुद।

कोकना—स० [फा० कोक=कच्ची सिलाई] कच्ची सिलाई करना। कच्चा करना। लंगर डालना।

कोकनी—पुं० [सं० कोक=चकवा] एक प्रकार का तीतर।

पुं० [सं० कोंकण] संतरे के पेड़ (तथा फल) की एक जाति। स्त्री० दे० 'कोकई'।

वि० [तु० कोका ?] छोटा। नन्हा।

कोकम—पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष, जिसके सभी अंग खट्टे होते हैं और इसी लिए कुछ अंग अचार, चटनी आदि में पड़ते हैं।

कोकला—स्त्री० [सं० कोकिला] कोयल।

कोकव—पुं० [सं० कोक√वा (गति)+क] एक राग जो पूरवी बिलावल, केदारा, मारू और देवगिरी के योग से बनता है।

कोकवा—पुं० [?] पूरवी भारत में होनेवाला एक प्रकार का बाँस।

कोक-शास्त्र—पुं० [मध्य०स०] आचार्य कोकदेव का लिखा हुआ कामशास्त्र नामक ग्रन्थ।

कोकहर—पुं० [सं० कोक √हृ (हरण) +अच्] चंद्रमा।

कोका—पुं० [अं०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष, जिसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कहवे की तरह बलकारक मानी जाती हैं।

पुं० और स्त्री०[तु०] एक ही धाय का दूध पीनेवाले अलग-अलग बच्चे। दूध-भाई या दूध-बहन।

पुं० [सं० कोक] [स्त्री० कोकी] चकवा।

पुं० [हिं० कूक] आह्वान। निमंत्रण। उदा०— महाकाल को दीन्हौ कोको।—भड्डरी।

स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी।

कोकाबेरी—(बेली)—स्त्री० [हिं० कोका+बेली] नीली कुमुदिनी।

कोकामुख—पुं० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ।

कोकाह— पुं०[सं० कोक-आ√हन् (हिंसा) +ड] १. सफेद रंग के घोड़ों की एक जाति। २. उक्त जाति का घोड़ा।

कोकिल—पुं० [सं० √ कुक् (आदान) +इलच्] १. कोयल। २. रहस्य सम्प्रदाय में (क) उत्तम मनोवृत्ति, (ख) मधुर भाषण या मीठा बोल। ३. नीलम की एक छाया। ४. एक प्रकार का जहरीला चूहा। ५. जलता हुआ अंगारा। ६. एक प्रकार का साँप। ७. छप्पयका १९ वाँ भेद, जिसमें ५२ गु , ४८ लघु (१००वर्ण) और १५२ मात्राएँ होती हैं।

कोकिल-कंठ—वि० [ब० स०] जिसका स्वर कोयल की तरह मधुर तथा सुरीला हो।

कोकिल-नयन—पुं० [ब० स०] = कोकिलाक्ष।

कोकिल-रव—पुं० [ब० स०] संगीत में एक प्रकार का ताल।

कोकिला—स्त्री० [सं० कोकिल+टाप्] कोयल। पिक।

कोकिलाक्ष—पुं० [सं० कोकिल-अक्षि, ब० स०] तालमखाना।

कोकिला-प्रिय—पुं० [प० त०] संगीत में एक ताल, जिसमें क्रमशः एक प्लुत, एक लघु, एक प्लुत और तब एक प्लुत होती हैं।

कोकिला-रव—पुं० [ब० स०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

कोकिलावास—पुं० [सं० कोकिला-आवास, प० त०] १. कोयल का घोंसला। २. आम का पेड़।

कोकिलासन—पुं० [सं० कोकिल-आसन, उपमि० स०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन।

कोकिलेष्टा—स्त्री० [सं० कोकिल-इष्टा, प० त०] बड़ा जामुन। फरेंदा।

कोकिलोत्सव—पुं० [सं० कोकिल-उत्सव, ब० स०] आम का वृक्ष।

कोकी—स्त्री० [सं० कोक +ङीप्] मादा चकवा।

कोकीन—स्त्री ०=कोकेन।

कोकीनची—पुं० =कोकेनबाज।

कोकुआ—पुं० [सं० कोकाग्र] समष्ठिल नामक पौधा।

कोकेन—स्त्री० [अं०] कोका नामक वृक्ष की पत्तियों से तैयार की हुई एक प्रकार की ओषधि, जो गंध-हीन और सफेद रंग की होती है और जिसके प्रयोग से शरीर के अंग सुन्न हो जाते हैं। लोग इसका प्रयोग पान के साथ नशे के रूप में करते हैं।

कोकेनबाज—वि० [हिं० कोकीन] वह जिसे कोकेन खाने का चसका हो। नशे के लिए कोकेन खानेवाला।

कोको—स्त्री० [अनु०] कौओं को बुलाने का शब्द।

स्त्री० एक कल्पित पक्षी, जिसके नाम का प्रयोग बच्चों को डराने, बहलाने आदि के लिए होता है।

अं० ताड़ की तरह एक प्रकार के फल का चूरा, जिससे चाय के ऐसा पेय बनाकर पिया जाता है।

कोकोजम—पुं० [अं०] साफ किया हुआ नारियल का तेल जो घी की तरह काम में लाया जाता है। वनस्पति घी।

कोख—स्त्री० [सं० कुक्षि, पा० कुच्छी; प्रा० कुच्छि; कुक्खी; गु० कुख; सि० कुखि ; पं० कुक्ख ; मरा० कूस] १. पसलियों के नीचे पेट के दोनों तरफ का स्थान। २. उदर। पेट।

मुहा०—**कोखें लगना या सटना** =अधिक भूख लगने के कारण पेट का पीठ से चिपका हुआ दिखाई पड़ना।

३. गर्भाशय।

मुहा०— **कोख उजड़ना** =संतान का मर जाना। बच्चा मर जाना (स्त्रियाँ)। **कोख खुलना**=बहुत दिन की प्रतीक्षा के बाद संतान होना। बाँझपन मिटना। **कोख बंद होना**=(स्त्री का) बाँझ होना। संतान न होना। **कोख माँग से ठंढी या भरी-पूरी रहना** =सन्तान और पति का सुख देखते रहना (आशीर्वाद)। **कोख मारी जाना** =दे० 'कोख बंद होना'।

पद—कोख की आँच=संतान का कष्ट या वियोग। **कोख की बीमारी या रोग**= संतति न होने या होकर मर जाने का रोग।

कोखजली—वि० [हिं० कोख+जलना] (स्त्री) जिसकी संतान जीवित न रहती हो। (पुं० स्त्रियों को दिया जानेवाला एक प्रकार का अभिशाप या गाली।)

कोखबंद—वि० [हिं० कोख+बंद] (स्त्री) जिसे संतान न होती हो। बाँझ। वंध्या।

कोगी—पुं० [देश०] लोमड़ी के आकार का एक छोटा जानवर, जो प्रायः झुंड में रहता और फसल खा जाता है। इसके झुंड प्रायः चीते, शेर आदि तक को मारकर खा जाते हैं।

कोच—पुं० [अं०] १. एक प्रकार की गद्देदार बड़ी और लंबी कुरसी जिस पर दो-तीन आदमी बैठ सकते हैं। २. चार पहियोंवाली एक प्रकार की घोड़ागाड़ी।

पुं० [सं०] एक संकर जाति।

स्त्री० [हिं० कोचना] कोंचने की क्रिया या भाव।

कोचकी— पुं० [?] एक रंग जो लाली लिये भूरा होता है।

वि० उक्त प्रकार के रंग का।

कोचना—स० [सं० कुच्] १. नुकीली चीज बार-बार किसी वस्तु में धँसाना। २. बार-बार किसी को तंग करना।

पुं० बड़ी कोचनी (औजार)। दे० 'कोचनी'।

कोचनी—स्त्री० [हिं० कोचना] १. लोहे का एक प्रकार का दाँतेदार औजार जिससे तरकारियाँ, फल आदि कोंचे जाते हैं। २. लोहे का छोटा सूआ जिससे तलवार की म्यान पर का चमड़ा सीया जाता है। ३. वह छड़ी जिससे बैल हाँके जाते हैं।

कोचबकस-पुं० [अं० कोच+बाक्स] घोड़ा-गाड़ी में का वह ऊँचा स्थान जिस पर कोचवान बैठकर हाँकता है।

कोचरा— पुं० [देश०] दोनों ओर से नुकीली तथा अंगुल-भर लंबी पत्तियोंवाली एक लता।

कोचरी—पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

कोचवान—पुं० [अं० कोचमैन] घोड़ा-गाड़ी, टाँगा आदि हाँकनेवाला व्यक्ति।

कोचा—पुं० [हिं० कोचना] १. छुरी, तलवार आदि की नोक कोंचने या चुभाने से होनेवाला घाव। २. चुभती या लगती हुई बहुत तीखी बात।

कोचिडा—पुं० [देश०] जंगली प्याज। कोड़ा।

कोचिला† —पुं०= कुचला।

कोची—पुं० [?] बबूल की जाति का एक जंगली पेड़। बनरीठा।

कोचीन— पुं० [देश०] दक्षिण भारत के केरल राज्य का एक प्रदेश।

कोछ †—स्त्री० [सं० कक्ष] क्रोड़। गोद।

कोजागर—पुं० [सं० को जागर्ति, पृषो० सिद्धि] आश्विन की पूर्णिमा। शरद पूनो।

विशेष—इस रात को हिंदू लोग यह समझकर जागते रहते हैं कि इसी रात को लक्ष्मीजी अवतरित होती हैं और जो मनुष्य जागता रहता है उसे वे धन-संपन्न कर देती हैं।

कोट—पुं० [सं० √कुट् (टेढ़ा होना)+घञ्; प्रा० कोट्ट] १. सेना के रहने के लिए बना हुआ बहुत बड़ा पक्का भवन। दुर्ग। २. राजमहल। ३. परकोटा। प्राचीर। ४. रहस्य-संप्रदाय में शरीर।

पुं० [अं०] अंग्रेजी ढंग का एक प्रसिद्ध पहनावा।

पुं० [सं० कोटि] १. झुंड। समूह। २. लंबाई। विस्तार। उदा०— सुमिरत पट को कोट बढ्यौ तब, दुख-सागर उबर्यौ।—सूर।

कोटक—वि० [सं० √कुट्+ण्वुल्—अक] १. कोट-संबंधी। २. कोट, भवन या झोपड़े बनानेवाला।

पुं० एक जाति जो प्रायः बढ़ई का काम करती है।

वि०= कोटिक।

कोटगंधल—पुं० [देश०] मजबूत और चिकनी लकड़ीवाला एक छोटा पेड़।

कोट-चक्र—पुं० [ष० त०] एक प्रकार का चक्र जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परिणाम जानने के लिए किया जाता था। (तंत्रशास्त्र)

कोट-तीर्थ—पुं० [सं० मध्य० स०] चित्रकूट तथा गंधमादन पर्वत पर की पुण्य स्थलियाँ। उदा०—फिर कोटतीर्थ देवांगनादि।—निराला।

कोटपाल—पुं० [सं० कोट√पाल् (रक्षा करना)+णिच्+अच्] दुर्ग की रक्षा करनेवाला सैनिक अधिकारी। किलेदार।

कोटपीस—स्त्री० [अं० कोर्टपीस] ताश का एक प्रसिद्ध खेल जिसमें चार आदमी दो पक्ष बनाकर खेलते हैं।

कोटभरिया† —स्त्री० [सं० कोष्ठ+हिं० भरना] नाव के किनारों पर ऊपर की ओर जड़ी हुई लकड़ी।

कोटर—पुं० [सं० कोट√रा (दान)+क] १. पेड़ का वह खोखला अंश या भाग जिसमें पक्षी, साँप आदि रहते हैं। २. किले की रक्षा के लिए लगाया हुआ उसके आसपास का वन।

कोटरा—स्त्री० [सं० कोटर+टाप्] बाणासुर की माता का नाम।

कोटरी—स्त्री० [सं० कोट√री (गति)+क्विप्] दुर्गा। चंडिका।

कोटवा—पुं० [सं० कोट] छोटा दुर्ग। छोटा कोट। उदा०—रुंधयो साहि हिंदूनि नृप, कोटव्वा लंगर गुनह।—चंदवरदाई।

कोटवार—पुं० १. =कोटपाल। २. =कोतवाल।

कोटा—पुं० [अं०] वह आनुपातिक अंश या भाग जो किसी या प्रत्येक सदस्य को नियत रूप में मिलने को हो। यथांश।

कोटि—स्त्री० [सं० √कुट्+इञ्] १. धनुष का सिरा। २. अर्द्ध-चंद्र का सिरा। ३. अस्त्र की नोक या धार। ४. एक ही प्रकार की वस्तुओं या लोगों की वह श्रेणी या वर्ग जो क्रमिक उत्कृष्टता के विचार से बनाया गया हो। (ग्रेड) ५. किसी वाद-विवाद का पूर्व पक्ष। ६. किसी विचारणीय या विवादग्रस्त बात के पक्ष और विपक्ष में कही जानेवाली हर तरह की बात या विचार। जैसे—इन सभी कोटियों में एक तत्त्व समान रूप से पाया जाता है। ७. उत्कृष्टता। ८. किसी ९० अंश के चाप के दो भागों में से एक। ९. किसी त्रिभुज या चतुर्भुज के आधार और कर्ण से भिन्न रेखा। १०. राशि-चक्र का तीसरा अंश या खंड। ११. असवर्ग नामक ओषधि।

वि०=करोड़ (संख्या)।

कोटिक—वि० [सं० कोटि+क] १. कई करोड़। करोड़ों। २. बहुत अधिक। असंख्य।

कोटि-क्रम—पुं० [प० त०] १. विकास-क्रम की दृष्टि से किसी वस्तु या विषय की बनाई या लगाई हुई कोटियाँ या वर्ग। २. तर्क में विचार प्रकट करने का ढंग या प्रकार।

कोटि-च्युत—वि० [पं० त०] १. (व्यक्ति) जो किसी ऊँची कोटि (या पद) से हटाकर निम्नकोटि में भेज दिया गया हो। २. जिसकी किसी कोटि से अवनति हुई हो। (डिग्रेडेड)

कोटि-च्युति—स्त्री० [पं० त०] कोटिच्युत होने की अवस्था, क्रिया या भाव। ऊँची कोटि से नीचे की कोटि में आना या भेजा जाना। (डिग्रेडेशन)

कोटि-ज्या—स्त्री० [मध्य० स०] ग्रहों की स्पष्टता के लिए बनाये जाने-वाले एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशिष्ट अंश।

कोटि-तीर्थ—पुं० [ब० स०] चित्रकूट का गंधमादन पर्वत पर का एक तीर्थ।

कोटि-परीक्षा—स्त्री० [मध्य०स०] किसी विभाग के कर्मचारियों की ली जानेवाली वह परीक्षा जिसमें उत्तीर्ण होने पर वे ऊँची कोटि में रखे जाते हैं। (ग्रेड इग्जामिनेशन)

कोटिफली (लिन्)—पुं० [सं० कोटि-फल, प० त०+इनि] गोदावरी के संगम के निकट का एक प्रसिद्ध तीर्थ।

कोटि-बंध—पुं० [स० त०] बहुत-सी वस्तुओं, व्यक्तियों या कार्यकर्त्ताओं को उनके महत्त्व, विकास-क्रम, वेतन आदि के अनुसार अलग-अलग कोटियों में बाँधना या स्थान देना। कोटियाँ स्थिर करना। (ग्रेडेशन)

कोटि-बद्ध—वि० [स० त०] १. किसी विशिष्ट कोटि में रखा हुआ। २. जो छोटी-बड़ी कोटियों में विभक्त हो। (ग्रेडेड)

कोटिशः (शस्)—क्रि० वि० [सं० कोटि+शस्] अनेक प्रकार से। वि० असंख्य। बहुत अधिक।

कोटी—स्त्री० [सं०√कुट्+इन्, ङीप्]=कोटि।

स्त्री० [अं० कोट] स्त्रियों के पहनने की चोली जिसकी आकृति कोट जैसी होती है।

कोटीर—पुं० [सं० कोटि√ईर् (गति)+अण्] १. किरीट। २. जटा।

कोटीश्वर—पुं० [सं० कोटि-ईश्वर, प० त०] करोड़पति।

कोटू—पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध पौधा जिसके बीजों का आटा फलाहार में गिना जाता है। कूटू।

कोट्ट—पुं०=कोट।

कोट्टवी—स्त्री० [सं० कोट्ट√वा (गति)+क, ङीप्] १. दुर्गा। २. बाणासुर की माता। ३. नंगी स्त्री।

कोट्टार—पुं० [सं०√ कुट्ट+आरक् पृषो० सिद्धि] १. किला। कोट। २. कूआँ या तालाब। ३. तालाब की सीढ़ियाँ। ४. लंपट।

कोट्यधीश—पुं० [सं० कोटि-अधीश, प० त०] करोड़पति। बहुत बड़ा धनी।

कोठ—पुं० [सं० कुंठ् (प्रतिघात)+अच्, नलोप नि०] १. कोढ़ का एक प्रकार जिसमें शरीर पर बड़े तथा गोल चकत्ते पड़ जाते हैं। २. बाँसों की बड़ी कोठी।

†वि० [सं०√कुंठ] १. (दाँत) जिससे कोई चीज चबाई न जा सके। कुंठित। २. इतना खट्टा (पदार्थ) जो चबाया न जा सके। ३. (दाँत) जो अधिक खट्टी वस्तु न चबा सकते हों।

कोठड़ी†—स्त्री० =कोठरी।

कोठर—पुं० [सं० √कुंठ्+अर पृषो० सिद्धि] अंकोल का पेड़।

कोठर-पुष्पी—स्त्री० [सं० ब० स०, ङीप्] विधारा नाम की लता।

कोठरा—पुं० [हिं० कोठा] [स्त्री० अल्पा० कोठरी] १. बड़ी कोठरी। २. रहस्य-संप्रदाय में, देह या शरीर।

कोठरिया†—स्त्री० [हिं० कोठरी] छोटी कोठरी।

कोठरी—स्त्री० [हिं० कोठा (अल्पा० प्रत्य०)] चारों ओर से घिरा तथा छाया हुआ छोटा कमरा जिसमें प्रायः अँधेरा होता है।

कोठा—पुं० [सं० कोष्ठ, कोष्ठक, पा० कोठो, प्रा० कोट्ठअ; उ० मरा० कोठा; पुं० कोठ्ठा; सिंह० कोटुव, कोठ] १. मकान का ऊपरी खंड या मंजिल। २. ऊपरी मंजिल पर बना हुआ बड़ा कमरा। ३. रंडियों या वेश्याओं का घर।

यौ० कोठेवाली=वेश्या।

४. बड़ी कोठी। ५. लाक्षणिक अर्थ में, पेट।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=अपच होना। **कोठा भरना**=पेट भरना। खूब खाना। **कोठा साफ होना**=दस्त होना।

६. कोठार। भंडार। ७. गर्भाशय।

कोठाकुचाल—पुं० [हिं० कोठा+कुचाल] हाथियों की एक बीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है।

कोठादार—पुं० [हिं० कोठा+फा० दार] १. भंडारी। २. दे० 'कोठी-दार'।

कोठार—पुं० [हिं० कोठा] अन्न, धन आदि रखने का स्थान। भंडार।

कोठारी—पुं० [हिं० कोठार+ई (प्रत्य०)] कोठार या भंडार का अधिकारी। भंडारी।

कोठी—स्त्री० [सं० कोष्ठिका; प्रा० कोट्ठिआ-या; पं० कोठ्ठी; उ० गु० मरा० सिं० कोठी] १. बहुत बड़ा, ऊँचा, पक्का तथा खुला हुआ मकान। २. वह मकान जिसमें कोई बहुत बड़ा कारोबार या लेन-देन होता हो। (फर्म)

मुहा०—कोठी बैठना=कारोबार बंद होना।

३. अनाज रखने का कोठार। ४. किसी चीज का भंडार। उदा०—सोक कलंक कोठि जनि होहू।—तुलसी। ५. कूएँ, पुल आदि की रचना में वास्तु का वह अंश जो पानी के नीचे बहुत गहराई तक धँसाया जाता है। ६. बंदूक में का वह स्थान जिसमें बारूद रखी जाती है। ७. गर्भाशय। ८. बाँसों का वह समूह जो किसी स्थान पर घेरा बाँधकर उगता है।

स्त्री० [हिं० कोठा] कोल्हू के बीच का वह घेरा जिसमें डालकर ऊख के टुकड़े पेरे जाते हैं।

कोठीवाल—पुं० [हिं० कोठी+वाला (प्रत्य०)] बहुत बड़ा कारोबार करनेवाला व्यापारी, जिसकी कोठी चलती हो।

कोठीवाली—स्त्री०=१. कोठीवाल या बहुत बड़े व्यापारी होने की अवस्था या भाव। २. उत्तर भारत के महाजनों में प्रचलित एक प्रकार की लिपि।

कोड़*—पुं० [सं० कौतुक] १. आश्चर्य। उदा०—कीन्हेसि सुख और कोड़ अनंदू।—जायसी। २. कुतूहल।

कोड़ना—स० [सं० कुंड्=खंडित एक] खेत की मिट्टी खोदकर ऊपर-नीचे करना। गोडना।

कोड़वाना—स० [हिं० कोड़ना का प्रे०] किसी को खेत या जमीन गोड़ने में प्रवृत्त करना। गोड़ने का काम दूसरे से कराना।

कोड़ा—पुं० [सं० कवर] १. चमड़े या सूत को बटकर बनाया हुआ एक मोटा चाबुक या सोंटा जिससे जंगली जानवरों, कैदियों आदि को मारते-पीटते हैं। २. लाक्षणिक अर्थ में उत्तेजक या मर्मस्पर्शी बात।
पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पतला बाँस। (दक्षिण भारत) २. कुश्ती का एक पेंच।

कोड़ाई—स्त्री० [हिं० कोड़ना] १. खेत कोड़ने (गोड़ने) की क्रिया, भाव या मजदूरी।

कोड़ाना—स० [हिं० कोड़ना का प्रे०] किसी को खेत कोड़ने में प्रवृत्त करना।

कोड़ार—[सं० कुंडल] १. कोल्हू के चारों ओर जड़ा हुआ लोहे का गोलबंद। कुंडरा। २. वह खेत जिसमें कोइरी लोग शाक-भाजी उपजाते हैं।

कोड़ि—स्त्री०=कोड़ी।

कोड़िक—पुं० [सं० क्रोड़=सूअर] एक जाति जो सूअर पालती है।

कोड़ी—स्त्री० [अं० स्कोर या सं० कोटि] १. बीस वस्तुओं का वर्ग या समूह। बीसी। जैसे—एक कोड़ी कपड़े। २. तालाब का वह पक्का निकास जिससे उसका फालतू पानी बाहर निकल जाता है।

कोढ़—[सं० कुष्ट; पा० कुट्ठम; प्रा० कोठ; कोढ; गु० कोढ़ोड, कोड; सिं० कोरिहो; पं० कोढ़; ने० कोर; बँ० कुढ; उ० कुडि; मरा० कोढ कोड] पित्त बिगड़ने और खून के खराब होने से होनेवाला एक त्वचा-संबंधी संक्रामक रोग जिसमें शरीर के किसी अंग पर चकत्ते पड़ने लगते हैं और वह अंग गलने लगता है। (लेप्रसी)
मुहा०—कोढ़ चूना या टपकना=अंगों का गल कर गिरना।
पद—कोढ़ में की खाज=बहुत अधिक दुःख के समय आनेवाला दूसरा कष्ट या विपत्ति।

कोढ़ा—पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोड्ढ] खेत में का वह स्थान जहाँ गोबर आदि एकत्र करने के लिए पशुओं को बाँधते हैं।

कोढ़िन(ी)—स्त्री० [हिं० कोढ़ी] १. वह स्त्री जिसे कोढ़ हुआ हो। २. रहस्य संप्रदाय में माया जो मन को शुद्ध नहीं होने देती।

कोढ़िया—पुं० [हिं० कोढ़] तंबाकू के पत्तों का एक रोग जिससे उन पर दाग पड़ जाते हैं।

कोढ़िला—पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके मुलायम और हलके डंठलों से दूल्हे को पहनाने के मौर बनाये जाते हैं।

कोढ़ी—पुं० [हिं० कोढ़] [स्त्री० कोढ़िन] १. वह जो कोढ़ रोग से पीड़ित हो। वह जिसे कोढ़ हुआ हो। २. वह जो बहुत बड़ा आलसी और निकम्मा हो। (व्यंग्य)

कोण—पुं० [सं० √कुण्(शब्द)+घञ्] १. वह आकृति जो भिन्न दिशाओं से आई हुई दो सीधी रेखाओं के एक बिन्दु पर मिलने से बनती है। कोना। २. उक्त दोनों रेखाओं के बीच का स्थान जिसकी नाप-जोख अंशों में होती है। ३. वह घन या ठोस पिंड जिसका आधार (नीचेवाला भाग) ठीक वृत्ताकार और शीर्ष (चोटी) नोक के रूप में हो और आधार तथा शीर्ष के बीच में पड़नेवाला प्रत्येक बिन्दु उक्त दोनों को मिलानेवाली किसी सरल रेखा पर पड़ता हो। (कोन; उक्त तीनों अर्थों के लिए) ४. दो दिशाओं के बीच की दिशा। ५. सारंगी की कमानी। ६. अस्त्रों की धार। ७ डंडा। लाठी। ८. वह लकड़ी जिससे ढोल पीटा जाता है।
पुं० [यू० कोनस] १. शनिग्रह। २. मंगल ग्रह।

कोणनर—पुं० दे० 'कोणशंकु'।

कोणप—पुं०=कौणप।

कोण-वृत्त—पुं० [मध्य० स०] उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर जानेवाला देशांतर वृत्त।

कोण-शंकु—पुं० [सं० मध्य० स०] सूर्य की वह स्थिति जिसमें वह न तो कोण-वृत्त में होता है और न उन्मंडल में ही। (ज्योतिष)

कोणस्पृग्-वृत्त—पुं० [सं० कोण√स्पृश् (छूना)+क्विन्, कर्म० स०] ऐसा वृत्त जो किसी क्षेत्र के सब कोणों को स्पर्श करता हो।

कोणाकोणि—क्रि० वि० [सं० कोण-कोण, ब० स०] एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक।

कोणाघात—पुं० [सं० कोण-आघात, ब० स०] एक साथ दस हजार ढोलों और एक लाख हुडुकों के बजने का शब्द।

कोणार्क—पुं० [सं० कोण-अर्क, मध्य० स०] उड़ीसा में स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ सूर्य का बहुत ही भव्य तथा विशाल मंदिर है।

कोणिक—वि० [सं० कोण+ठन्—इक] १. कोण से युक्त। जिसमें कोण हो। २. कोण-संबंधी। (एंग्युलर)

कोणीय—वि० [सं० कोण+छ—ईय]=कोणिक।

कोत†—स्त्री०=कोद।

कोतर†—पुं०=कोटर (वृक्ष का खोखला भाग)।

कोतरी—स्त्री० [देश०] एक तरह की मछली।

कोतल—पुं० [फा०] १. बिना सवार का सजा-सजाया घोड़ा। जलूसी घोड़ा। २. राजा की सवारी के लिए सजाया हुआ घोड़ा।
वि० [फा०] खाली।

कोतल-गारद—पुं० [अं० क्वार्टर गार्ड] छावनी में वह स्थान जहाँ दंडित सिपाही निगरानी में रखे जाते हैं।

कोतवाल—पुं० [सं० कोटपाल] १. पुलिस का वह प्रधान कर्मचारी जिसके अधीन कई थाने और बहुत-से सिपाही होते हैं। २. अखाड़े, पंचायत या बिरादरी का वह आदमी जिसका काम सब लोगों तक निमंत्रण, सूचनाएँ आदि पहुँचाना होता है।

कोतवाली—स्त्री० [हिं० कोतवाल+ई (प्रत्य०)] १. कोतवाल का कार्यालय। २. कोतवाल का पद या कार्य।
* रखवाली। हिफाजत।

कोतह—वि० [फा०] १. छोटा। २. कम।

कोतह गर्दन—वि० [फा०] जिसकी गरदन छोटी हो। (ऐसा व्यक्ति प्रायः दूषित और दुष्ट माना जाता है।)

कोता†—वि० [फा० कोतह] [स्त्री० कोती] १. छोटा। २. कम। थोड़ा।

कोताह—वि० [फा०] १. छोटा। २. कम। थोड़ा।

कोताही—स्त्री० [फा०] १. अल्पता। कमी। २. त्रुटि। न्यूनता। कोर-कसर। जैसे—अपनी तरफ से कोताही न करना।

कोति* —स्त्री० [सं० कुत्र=किधर] ओर। दिशा।

कोतिग* —वि० [सं० कोटिक] कई करोड़। करोड़ों।

कोय—पुं० [सं०√कुथ् (क्लेश)+घञ्] १. आँखों के आने तथा सूजने का एक रोग। कुथुआ। २. भगंदर।

कोयमीर—पुं० [?] हरा धनिया।

कोयरी† —स्त्री० १. दे० 'कथरी'। २. दे० 'थैली'।

कोयला—पुं० [हिं० कोठिला ?] [स्त्री० अल्पा० कोयली] १. बड़ा थैला। २. पेट।

मुहा०—**कोयला भरना**=पेट भरना।

कोयली—स्त्री० [हिं० कोथला] १. छोटा थैला। थैली। २. दे० 'हिमयानी'।

कोयी—स्त्री० [देश०] तलवार की म्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला। म्यान की साम।

को-दंड—पुं० [सं० √कु (शब्द)+विच्, को-दंड, ब० स०] १. धनुष। २. धन-राशि। ३. भौंह। ४. एक प्राचीन देश।

कोद* —स्त्री० [सं० कोण] १. कोण। कोना। २. ओर। तरफ। दिशा। उदा०—एक कोद रघुनाथ उदार। भरत कोद विचार।—केशव।

कोदइत‡—पुं० [हिं० कोदो+ऐत (प्रत्य०)] कोदो दलनेवाला।

कोदई†—स्त्री० [सं० कोद्रव] कोदो।

कोदरा—पुं०=कोद।

कोदरैता†—पुं० [हिं० कोदो+दरना] मिट्टी की बनी हुई वह चक्की जिसमें कोदो दला जाता है।

कोदव—पुं० [सं० कोद्रव] कोदो।

कोदवला—स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो की तरह की एक प्रकार की घास।

कोदह—पुं० [सं० कोण] १. कोण। कोना। २. ओर। तरफ। दिशा।

कोदैली—स्त्री० [देश०] मोर की मादा।

कोदों, कोदो—पुं० [सं० कोद्रव] एक प्रकार का मोटा अन्न जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं तथा जिन्हें उबालकर गरीब लोग भात की तरह खाते हैं।

मुहा०—**कोदो देकर पढ़ना या सीखना**=अधूरी या गलत शिक्षा पाना। **कोदो दलना**=निकृष्ट परंतु बहुत मेहनत का काम करना। **(किसी की) छाती पर कोदो दलना**=किसी को दिखलाकर ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या या जलन हो।

कोद्रव—पुं० [सं०√कु+विच्, को-द्रव, कर्म० स०] कोदो।

कोध—स्त्री०=कोद।

कोन—पुं० [स० कोण] कोना।

मुहा०—**कोन देना**=कोने पर से कोई चीज विशेषतः खेत जोतने के समय हल घुमाना। **कोन मारना**=खेत जोतने में छूटे हुए कोनों को जोड़ना।

† वि० [देश०] आठ और एक। नौ। (दलाल की भाषा)।

कोनलाय—वि० [देश०] दस और नौ। उन्नीस। (दलाल की भाषा)।

कोनसिला—पुं० [हिं० कोना+सिरा] कोनिया की छाजन में बँडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हुई मोटी लकड़ी।

कोना—पुं० [सं० कोण] १. भिन्न दिशाओं से आई हुई दो सरल रेखाओं, वस्तुओं आदि के एक स्थान पर मिलने से बननेवाली आकृति। २. उक्त रेखाओं, वस्तुओं आदि के बीच का स्थान। अन्तराल।

मुहा०—**कोना झाँकना**=कोई काम या बात पड़ने पर भय या लज्जा से जी चुराते हुए इधर-उधर देखना।

३. नुकीला किनारा। ४. एकांत स्थान। ५. चौथाई भाग। (दलाल की भाषा)

मुहा०—**कोने में होना**=चौथाई के हिस्सेदार बनना।

पद—**कोने से**=चार आने फी रुपये के हिसाब से (मिलनेवाली दलाली)।

कोनालक—पुं० [सं० कोन√अल् (पर्याप्ति)+ण्वुल्—अक] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोनिया—स्त्री० [हिं० कोना] १. किसी वस्तु विशेषतः दीवारों, छतों आदि में का कोना या किनारा। २. वह उपकरण जो चित्रकला और वस्तु आदि में समकोण निर्धारित करने के काम में आता है। (सेट स्क्वेयर) ३. दीवार के कोनों के बीच चीजें रखने के लिए बैठाई हुई पटिया। पटनी। ४. चूड़ीदार दो-मुहाँ नल का टुकड़ा जो दो विभिन्न दिशाओं की ओर जानेवाले नलों को जोड़ता है।

कोने-दंड—पुं० [हिं० कोना+दंड] दंड की तरह की एक प्रकार की कसरत जो घर के कोने में दोनों ओर की दीवारों पर हाथ रखकर की जाती है।

कोप—पुं० [सं० कुप् (क्रोध करना)+घञ्] १. प्रायः किसी का दुराचार या दुष्कर्म देखकर मन में होनेवाला वह क्रोध जिसमें मनुष्य अपनापन भूलकर किसी को शाप या कठोर दंड देने पर उतारू होता है। २. क्रोध। गुस्सा। ३. दोष या मल का बिगड़ना। (वैद्यक)

कोपक—वि० [सं०√कुप्+ण्वुल्—अक] १. कोप करनेवाला। २. कोप उत्पन्न करनेवाला।

कोपड़†—पुं० [देश०] पाटा। हेंगा।

कोपन—पुं० [सं०√कुप्+युच्—अन] कुपित करना या होना।

कोपनक—पुं० [सं० कोपन√कै (शब्द)+क] चोवा नामक गंध द्रव्य।

कोपना*—क्रि० अ० [सं० कोप] कोप या क्रोध करना। कुपित होना।

कोप-भवन—पुं० [प० त०] वह कमरा या स्थान जहाँ कोई मनुष्य कोप करके या रूठकर जा बैठे।

कोपयिष्णु—वि० [सं० √कुप्+णिच्+इष्णुच् (बा०)] कोप करनेवाला।

कोपर†—पुं० [सं० कपाल] वह बड़ा थाल जिसमें एक ओर पकड़ने के लिए कुंडा लगा रहता है।

पुं० [हिं० कोंपल] डाल का पका हुआ आम।

कोपल—पुं० [सं० कुड्मल; प्रा० कुम्पल; गु० कोंपल; मरा० कोंभ, कोंब] वृक्ष की नई तथा कोमल पत्ती।

कोप-लता—स्त्री० [सं० मध्य० स०] कनफोड़ा नाम की बेल।

कोपली—वि० [हिं० कोपाल] कोपल के रंग का। कुछ कालापन लिये हुए लाल।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

कोपिलांस†—पुं० [हिं० कोपल] आम की गुठली।

कोपी (पिन्)—वि० [सं०√कुप्+णिनि] १. कोप करनेवाला। २. [सं० कोऽपि] कोई भी।

पुं० १. जल के किनारे रहनेवाला एक पक्षी। २. संकीर्ण राग का एक भेद।

कोपीन—पुं० =कौपीन।

कोफ्त—पुं० [फा०] १. लोहे पर की जानेवाली सोने या चाँदी की पच्चीकारी। जरनिशाँ। २. मन-ही-मन होनेवाला दुःख। कुढ़न।

कोफ्तगर—पुं० [सं०] लोहे की चीजों पर सोने-चांदी की पच्चीकारी करनेवाला।

कोफ्तगरी—स्त्री० [फा०] पीतल, लोहे आदि के पात्रों पर सोने या चाँदी की पच्चीकारी करने का काम।

कोफ्ता—पुं० [फा० कोफ्तः] मांस के कुटे हुए अथवा दाल, सब्जी आदि के पिसे हुए अंश को घी, तेल आदि में तलकर बनाया जानेवाला छोटा गोल पकवान जिसकी रसेदार तरकारी भी बनाई जाती है।

कोबड़ी—पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

कोबा—पुं० [फा० कोबः] १. मोंगरी। २. दुरमुट। ३. चमड़ा कूटने का एक उपकरण।

कोविद—पुं०=कोविद।

कोविदार—पुं०=कोविदार।

कोबी† —स्त्री०=गोभी।

स्त्री० [फा०] कूटने की क्रिया या भाव।

कोमता—पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक सदाबहार वृक्ष जो प्रायः रेगिस्तान में होता है।

कोमर† —पुं० [देश०] खेत का अधिक बढ़ा या किसी ओर निकला हुआ लम्बा कोना।

कोमल—वि० [सं०√कु+कलच्, मुट्] १. जिसके देखने, सुनने अथवा स्पर्श होने से प्रिय अनुभूति तथा सुखद संवेदन होता हो। जैसे (क) कोमल किसलय, (ख) कोमल ध्वनि, (ग) कोमल अंग। २. जिसकी ऊपरी सतह मुलायम और लचीली हो। ३. जो सहज में काटा, तोड़ा या मोड़ा जा सके। ४. (मनोवृत्ति या हृदय) जिसमें उदारता, दया, प्रेम आदि सरल भाव पूरी तरह से हों। (सॉफ्ट; उक्त सभी अर्थों के लिए) ५. (संगीत में स्वर) जो अपने साधारणमान से कुछ नीचा या हल्का हो। 'तीव्र' का विपर्याय। ६.अपरिपक्व। कच्चा।

कोमलता—स्त्री० [सं० कोमल+तल्—टाप्] कोमल होने की अवस्था या भाव।

कोमलांग—वि० [सं० कोमल-अंग, ब० स०] [स्त्री० कोमलांगी] कोमल और फलतः सुन्दर तथा सुखद अंगोंवाला।

कोमला—स्त्री० [सं० कोमल+टाप्] १. साहित्य में एक वृत्ति या शैली जिसमें प्रसाद-गुण की प्रधानता होती है। इसे 'पांचाली' भी कहते हैं। २. खिरनी (पेड़ और फल)।

कोमलाई*—स्त्री०=कोमलता।

कोमलाभ—वि० [सं० कोमल-आभा, ब० स०] कोमल आभावाला। उदा०—अलस, उनींदा-सा जग, कोमलाभ, दृग-सुभग।—पंत।

कोमासिका—स्त्री [सं० कु-उमा, कुगति स०, कोमा-आसिका, उपमि० स०] बढ़ते हुए फल के आरंभिक रूप। बतिया।

कोय*†—सर्व०=कोई।

कोयता—पुं० [सं० कर्त्ता, प्रा० कत्ता=छुरा] ताड़ी चुआनेवालों का एक औजार, जिससे वे पेड़ में छेव लगाते हैं।

कोयर†—पुं० [सं० कोपल] १. साग-पात। २. पशुओं के खाने का हरा चारा।

कोयल—स्त्री० [सं० कोकिल] १. काले रंग की एक प्रसिद्ध बड़ी चिड़िया, जो वसन्त ऋतु में कूकती है। २. एक प्रकार की लता, जिसकी पत्तियाँ गुलाब की पत्तियों-जैसी होती हैं।

कोयला—पुं० [सं० कोकिल; गु० कोयलो, कोलसो; सिं० कोइलो; पुं० कोला; मरा० कोड़सा] १. लकड़ी के जल चुकने के बाद बचा हुआ काले रंग का ठोस अंश, जो आग जलाने के काम आता है। २. उक्त आकार-प्रकार का एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ, जो वृक्षों आदि के बहुत दिनों तक जमीन में गड़े रहने से बनता है। पत्थर का कोयला।

कोयली—पुं० [हिं० कोयल] कोयल के रंग की तरह का गहरा काला रंग। (जैट ब्लैक)

वि०=उक्त प्रकार के रंग का।

कोयष्टि—पुं० [सं० क-यष्टि, ब० स०, पृषो० सिद्धि] जलकुक्कुभ नामक पक्षी।

कोया—पुं० [सं० कोण] १. आँख का डेला। २. आंख का कोना।

पुं० [सं० कोश] कटहल के अन्दर की गूदेदार गुठली जिसमें बीज रहता है। कटहल का बीज-कोश।

कोरंगा—पुं० [देश०] गोबर और मिट्टी पोत कर बनाई हुई एक प्रकार की दौरी।

कोरंगी—स्त्री० [सं०√कु (शब्द करना)+अंगच्—ङीष्] १. छोटी इलायची। २. पिप्पली।

कोरंजा—पुं० [हिं० कोरा+अनाज] नौकरों, मजदूरों आदि को भोजन के लिए दिया जानेवाला कच्चा अन्न।

कोरंड—पुं० [सं० कुल् (अच्छी तरह स्थित होना)+अच्, ल=र, कोर-अंड मध्य० स०] अंडवृद्धि का रोग।

कोर—पुं० [सं० क्रोड़] गोद। उदा०—जसुदा कै कोरे एक बारक कुरै परी।—देव।

स्त्री० [सं० कोण] १. नुकीला किनारा।

मुहा०—कोर दबना=(क) किसी प्रकार के दबाव या वश में होना। (ख) किसी के सामने दुर्बल या हीन ठहरना।

२. धार।

मुहा०—कोर मारना=बढ़े हुए या धारदार किनारे को कम या बराबर करना (बढ़ई और संगतराश)।

पद—कोर-कसर (दे०)।

३. कोना। गोशा। ४. द्वेष। वैर। ५. ऐब। दोष।

† स्त्री० [देश०] १. खेत की जोताई। २. चैती फसल की पहली सिंचाई।

कोरई†—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो हिमालय की ऊँची पहाड़ियों में होती है।

कोरक—पुं० [सं०√कुल्+ण्वुल्—अक, ल=र] १. कली। २. फूल या कली के आधार के रूप में हरी पत्तियाँ। फूल की कटोरी। ३. कमल की नाल। ४. एक प्रकार की मछली।

कोर-क़सर—स्त्री० [हिं० कोर+ फा० कसर] साधारण कमी या त्रुटि। छोटा ऐब या दोष।

कोरड़ा† —पुं०=कोड़ा। (राज०)।

कोरण—पुं० [हिं० कोर] १. किनारा। हाशिया। २. सफेद बादलों का समूह (राज०)।

कोरदूष—पुं० [सं० कोर√दूष् (दूषित करना)+णिच्+अण्] कोदो।

कोरना† —स० [हिं० कोर+ना] १. कोर या किनारा निकालना या बनाना। २. गढ़-छील कर ठीक करना। ३. खरोंचना।

† स०=कोड़ना।

कोरनिश—स्त्री० [तु० कुरनूश से फा०] झुककर अभिवादन या सलाम करना।

कोरनी† —स्त्री० [हिं० कोर] १. किसी चीज में कोर या किनारा निकालने का काम। २. उक्त काम करने का औजार।

कोरम—पुं० [अं०] किसी सभा, समिति के उतने सदस्यों की संख्या या उपस्थिति जो बैठक का काम आरंभ करने तथा चलाने के लिए विधितः आवश्यक हो।

कोरमा—पुं० [तु० कोर्मः] घी में भूना या पकाया हुआ बिना रसे का मांस।

कोरवा† —पुं० [देश०] पान की खेती का दूसरा वर्ष।

पुं० [हिं० कोरा] गोद। उदा०—.....जब होरिला कोरवा रहे, तो हियरा हुलसात।—मुबाकर।

कोरसाकेन—पुं० [देश०] एक बड़ा और सुहावना पेड़।

कोरहन† —पुं० [?] एक प्रकार का धान और उसका चावल।

कोरहर† —वि०=कोरा।

कोरहा† —वि० [हिं० कोर+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] जिसका किनारा या नोक बनी हुई हो।

† वि० [हिं० कोरा] (छोटा बच्चा) जो प्रायः गोद में चढ़ा रहता हो।

कोरा—वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] १ (वस्तु) जो अभी तक उपयोग या व्यवहार में न लाई गई हो। बिलकुल ताजा और नया। जैसे—कोरा घड़ा।

पद—कोरी धार या बाढ़=हथियार की वह धार, जिस पर तत्काल सान चढ़ी हो और जिसका अभी तक उपयोग न हुआ हो।

२ (कपड़ा अथवा मिट्टी का बरतन) जो अभी जल से धोया न गया हो। जैसे—कोरा थान, कोरी धोती।

पद—कोरा पिंडा=अविवाहित पुरुष का ऐसा शरीर जिसे किसी स्त्री या पुरुष ने बुरी वासना से स्पर्श न किया हो।

३. जिस पर अभी कुछ लिखा न गया हो। सादा। जैसे—कोरा कागज, कोरी बही। ४. जिसमें किसी और प्रकार के तत्त्व का लेश या सम्पर्क तक न हो। जैसे—कोरा उत्तर या जवाब (अर्थात् ऐसा स्पष्ट उत्तर या जवाब जिससे भविष्य के लिए कुछ भी आशा न रह जाय)। ५. (व्यक्ति) जो सब प्रकार के गुणों, शिक्षाओं, संस्कारों आदि से रहित हो। जैसे—इतने बड़े-बड़े विद्वानों के साथ रहकर भी तुम सब तरह से कोरे ही रहे। उदा०—सरनागत वत्सल सत यों ही कोरो नाम धरायो।—सत्यनारायण। ६. जिसे अभी तक या कहीं से कुछ भी प्राप्त न हुआ हो। जैसे—तुम भी वहाँ से कोरे लौट आये। ७. सब प्रकार के संपर्कों, संबंधों आदि से रहित। निर्लिप्त।

पुं० १. बिना किनारे की एक प्रकार की रेशमी धोती। २. एक प्रकार का सलमा। ३. ईख की पहली सिंचाई।

पुं० [सं० करक] १. जलाशयों के पास रहनेवाली एक प्रकार की चिड़िया। २. एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष।

† पुं० [सं० क्रोड़] गोद।

† पुं० दे० 'कोना'।

कोराई†—स्त्री०=कोरापन।

कोरान—पुं०=क़ुरान।

कोरापन—पुं० [हिं० कोरा+पन (प्रत्य०)] कोरे होने की अवस्था या भाव।

कोराहर†—पुं०=कोलाहल। उदा०—काग कोराहर करहिं सोहावा। —जायसी।

कोरि—वि०=कोटि।

कोरिक*—वि० [सं० कोटिक] १. कई करोड़। २. बहुत अधिक।

कोरित—भू० कृ० [सं० कोर+इतच्] १. जिसमें अंकुर या कली निकली हो। २. कूटा या चूर किया हुआ।

कोरिया* पुं०—[?] एक प्रकार की जंगली जाति।

कोरी—पुं० [सं० कोल=सूअर] [स्त्री० कोरिन] कपड़ा बुननेवाली एक हिंदू जाति।

† स्त्री०=कोड़ी।

कोरैया—पुं० दे० 'इन्द्र-जव'।

कोरो—पुं० [हिं० कोर] १. खपरैल आदि की छाजन में लगाई जानेवाली लंबी लकड़ी। कांड़ी। २. पान के भीटे के ऊपर की छाजन। ३. रेंड़ का सूखा पेड़।

कोर्ट—पुं० [अं०] कचहरी। न्यायालय (दे०)।

पुं० [अं० कोर्टयार्ड] टेनिस आदि पाश्चात्य खेल खेलने का मैदान।

कोलंबक—पुं० [सं०√कुल्+अम्बच्+कन्] १. वीणा का तूँबा और दंड।

कोल—पुं० [सं०√कुल्+अच्] १. सूअर। २. भगवान का वाराह नामक अवतार। ३. गोद। क्रोड़। ४. शरीर का उतना अंग जो आलिंगन करते समय दोनों हाथों के बीच में पड़े। ५. बेर। ६. काली मिर्च। ७. चीता या चिचक नामक ओषधि। ८. शनिग्रह। ९. एक प्रकार की जंगली जाति।

कोल-कंद—पुं० [ब० स०] पुटालू नाम का एक कश्मीरी कंद।

कोलक—पुं० [सं०√कुल्+ण्वुल्—अक] १. अखरोट का पेड़। २. काली मिर्च। ३. शीतल चीनी।

† पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबा औजार।

कोल-गिरि—पुं० [मध्य० स०] दक्षिण भारत का कोलाचल पर्वत।

कोलतार—पुं० [अं०] अलकतरा (दे०)।

कोल-दल—पुं० [ब० स०] नख नामक गंध-द्रव्य।

कोलना—स० [सं० क्रोडन] लकड़ी-पत्थर आदि को बीच से खोदकर पोला करना।

† अ० [?] १. विह्वल या बेचैन होना। घबराना। २. विचलित होने के कारण काम के योग्य न रहना। जैसे—मति कोलना।

कोलपार—पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक पेड़।

कोल-पुच्छ—पुं० [ब० स०] सफेद चील। कंक या काँक।

कोल-शिंबी—स्त्री० [ब० स०] सेम की फली।

कोलसा—पुं० दे० 'इंगनी'।

कोला—स्त्री० [सं०√कुल्+ण—टाप्] १. छोटी पीपल। पिप्पली। २. बेर का पेड़। ३. चव्य।

पुं० [देश०] गीदड़।

पुं० [अं०] अफ्रीका में होनेवाला एक प्रकार का पेड़, जिसके फल अखरोट जैसे और बलकारक होते हैं।

कोलाहट—पुं० [सं० कोल-आ√हट् (चमकना)+अच्] नृत्यकला में प्रवीण वह पुरुष जो इच्छानुसार अंगों को तोड़-मोड़ सकता और तलवार की धार पर नाच सकता, मुँह से मोती पिरो सकता और इसी तरह के अनेक कलापूर्ण काम कर सकता हो।

कोलाहल—पुं० [सं० कोल-आ√हल् (जोतना)+अच्]? बहुत-से लोगों के बोलने अथवा चीखने-चिल्लाने से होनेवाला घोर शब्द। शोर। २. एक प्रकार का संकर राग।

कोलिआर—पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़दार वृक्ष। घना काँटेदार।

कोलिक—पुं० [देश्यकूल (वस्त्र) से सं०] वह जो कपड़े बुनता हो। जुलाहा।

कोलियरी—स्त्री० [अं०] पत्थर के कोयले की खान।

कोलिया†—स्त्री० [सं० कोल=रास्ता] १. पतली गली। २. दो खेतों के बीच में पड़नेवाला छोटा खेत।

कोलियाना†—अ० [हिं० कोलिया] १. तंग गली में या उससे जाना। अ०=कोरियाना।

पुं० [हिं० कोरी या कोली (जाति)+आना (प्रत्य०)] कोली जाति के लोगों का मुहल्ला या बस्ती।

कोली—स्त्री० [सं० क्रोड़] गोद।

पुं० [सं० कोलिक] [स्त्री० कोलिन] हिंदू जुलाहा या बुनकर। कोरी।

कोलैंदा—पुं० [सं० कोल=बेर+अंड] महुए का पका हुआ फल। गोलैंदा।

कोल्या—स्त्री० [सं० कोल+यत्—टाप्] पिप्पली। छोटी पीपल।

कोल्हाड़—पुं० [हिं० कोल्हू+आर (प्रत्य०)] वह स्थान, जहाँ ईख पेरी जाती है और भट्ठे पर रस पकाकर गुड़ बनता है।

कोल्हुआ—पुं० [हिं० कूल्हा] कुश्ती का एक पेंच।

पुं०=कूल्हा।

पुं०=कोल्हू।

कोल्हुआड़—पुं०=कोल्हाड़।

कोल्हू—पुं० [हिं० कूल्हा?] बीजों आदि को पेरकर उनका तेल और ईख, गन्ने आदि पेरकर रस निकालने का एक यंत्र।

मुहा०—(किसी को) **कोल्हू में डालकर पेरना**=बहुत अधिक शारीरिक कष्ट या पीड़ा देना। **कोल्हू काटकर मोंगरी बनाना**=बहुत बड़ी हानि करके बहुत ही तुच्छ या साधारण लाभ का काम करना।

पद—**कोल्हू का बैल**=(क) बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। (ख) बुद्धू। मूर्ख।

कोल्हेना—पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल। (पंजाब)

कोवत†—स्त्री०=कूवत। (राज०)

कोवारी—पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोविद—वि० [सं०√कु (शब्द)+विच्, को√विद् (जानना) क] [स्त्री० कोविदा] अनुभवी, कुशल तथा पंडित।

पुं० बहुत बड़ा विद्वान्।

कोविदार—पुं० [सं० कु-वि√दृ (विदीर्ण करना)+अण्] कचनार का पेड़ और उसका फूल।

कोश—पुं० [सं०√कुश् (मिलना)+घञ्] १. वह आधार या पात्र, जिसमें तरल पदार्थ रखा जाय अथवा पिया जाय। २. सामग्री या सामान रखने का पात्र। जैसे—खाना, संदूक आदि। ३. आवरण। खोती। म्यान। ४. किसी वस्तु का भीतरी अंश। ५. मकान का भीतरी वह कमरा, जिसमें अन्न आदि अथवा रुपए-पैसे रखे जाते हों। खजाना। ६. इस प्रकार इकट्ठा किया हुआ धन। ७. वह ग्रंथ, जिसमें किसी विशेष क्रम से शब्द दिये हों और उनके आगे अर्थ दिये हों। ८. अंडकोश। ९. योनि। १०. घाव पर बाँधने की पट्टी। ११. ज्योतिष में वह योग, जिस समय किसी घर में शनि, बृहस्पति तथा एक और कोई ग्रह हो। १२. रेशम का कोया। १३. कटहल का कोया। १४. कमल-गट्टा।

कोशक—पुं० [सं०√कुश्+णिच्+ण्वुल्—अक] १. अंडा। २. अंडकोश।

कोश-कला—स्त्री० [सं० ष० त०] वह कला या विद्या, जिसमें शब्द-कोशों की रचना के सिद्धान्तों का विवेचन होता है। (लेक्सिकॉलोजी)

कोशकार—पुं० [सं० कोश√कृ (करना)+अण्] १. शब्दकोश के लिए शब्दों का संग्रह तथा उनका संपादन करनेवाला। (लेक्सिकोग्राफर) २. कटार, तलवार आदि की म्यानें बनानेवाला। ३. धन रखने के लिए पात्र या संदूक बनानेवाला। ४. रेशम का कीड़ा, जो अपने रहने के लिए अपने ऊपर का आवरण या कोश बनाता है। ५. एक प्रकार की ईख। ६. ब्रह्मपुत्र के उस पार का एक प्राचीन देश।

कोश-कीट—पुं० [मध्य० स०] रेशम का कीड़ा।

कोशकीट-पालन—पुं० [ष० त०] रेशम के कीड़े पालने का काम या उद्योग। (सेरीकल्चर)

कोशचक्षु (स्)—पुं० [ब० स०] सारस पक्षी।

कोशज—पुं० [सं० कोश√जन् (उत्पन्न होना)+ड] १. रेशम। २. मोती। ३. घोंघे, शंख, सीप आदि में रहनेवाले जीव।

वि० कोश में से उत्पन्न होने या निकलनेवाला।

कोश-नायक—पुं० [ष० त०] खजांची।

कोश-पति—पुं० [ष० त०] कोशाध्यक्ष।

कोश-पान—पुं० [तृ० त०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षा, जिससे किसी के अपराधी होने या न होने की पहचान की जाती थी।

कोशपाल—पुं० [सं० कोश√पाल् (रक्षा करना)+णिच्+अच्] १. खजाने का रक्षक। २. कोशाध्यक्ष।

ल—पुं० [व० स०] १. अंडकोश। २. जायफल। ३. ककड़ी, ,, कुम्हड़ा, तरबूज आदि की लताएँ तथा उनके फल।

रचना—स्त्री० [प० त०] शब्द-कोश आदि बनाने या तैयार करने ा काम। (लेक्सिकोग्राफी)

ल—पुं० [सं०√कुश्+कलच्, गुण (वा०)] १. भारत के एक ाचीन प्रदेश का नाम, जो सरयू नदी के दोनों ओर आधुनिक अयो-ध्या के आसपास बसा था। २. कोशल देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति। ३. अयोध्या। ४. संगीत में एक प्रकार का राग।

शला—स्त्री० [सं० कोशल+टाप्] कोशल राज्य की राजधानी, अयोध्या।

कोशलिक—पुं० [सं० कुशल+ठन्—इक] घूस । रिशवत।

कोशली—वि० [सं० कोशलीय] कोशल-संबंधी। कोशल का।
पुं० कोशल प्रदेश का निवासी।
स्त्री० कोशल-देश की भाषा, अवधी का दूसरा नाम। विशेष दे० 'अवधी'।

कोश-विभाग—पुं० [ष० त०] किसी प्रतिष्ठित संस्थान का वह विभाग जहाँ कोश-रचना का कार्य होता है। जैसे—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग या नागरी प्रचारिणी सभा काशी का कोश-विभाग।

कोश-वृद्धि—स्त्री० [प० त०] अंडकोश के बढ़ने तथा फूलने का रोग।

कोश-संधि—स्त्री० [मध्य० स०] शत्रु को धन देकर उससे की जानेवाली संधि।

कोशस्थ—पुं० [सं० कोश √स्था (रहना) +क] पाँच प्रकार के जीवों में से एक प्रकार के जीव, जिसके अन्तर्गत शंख, घोंघे आदि ऐसे जीव हैं जो कोश में रहते हैं। (सुश्रुत)

कोशांग—पुं० [सं० कोश-अंग, ब० स०] एक प्रकार का सरकंडा।

कोशांड—पुं० [सं० कोश-अंड, कर्म० स०] अंडकोश।

कोशांबी—स्त्री० =कौशाम्बी।

कोशागार—पुं० [सं० कोश-आगार, ष० त०] १. वह कमरा या स्थान जहाँ धन-दौलत रखी जाती हो। खजाना। २. किसी प्रकार की वस्तुओं का भंडार।

कोशातक—पुं० [सं० कोश √अत् (गति) क्वुन्—अक] यजुर्वेद की कठ-शाखा का एक नाम।

कोशातकी (किन्)—पुं० [सं० कोशातक+इनि] १. व्यापारी। २. व्यापार। ३. वाडवाग्नि।
स्त्री०=तरोई।

कोशा (षा) धिप—पुं० [सं० कोश(ष)-अधिप, ष० त०] खजांची।

कोशाधीश—पुं० [सं० कोश-अधीश, ष० त०] खजांची।

कोशाध्यक्ष—पुं० [सं० कोश-अध्यक्ष, ष० त०] १. कोश या खजाने का प्रधान अधिकारी। खजांची। २. आजकल किसी संस्था का वह अधिकारी, जिसके पास संस्था की सब आय सुरक्षा के लिए रखी जाती हो। (ट्रेजरर)

कोशाभिसंहरण—पुं० [सं० कोश-अभिसंहरण, मध्य० स०] १. कोश की कमी पूरी करने के लिए प्रजा से विभिन्न प्रकार के कर उगाहने का काम। २. कर के रूप में धान्य आदि का तीसरा या चौथा भाग लेना।

कोशाम्र—पुं० [सं० कोश-आम्र, उपमि० स०] कोसम वृक्ष और उसका फल।

कोशिका—स्त्री० [सं० कोशी+कन्—टाप्, ह्रस्व] १. कटोरा। प्याला २. गिलास।

कोशिश—स्त्री० [फा०] कोई काम करने के लिए विशेष रूप से किया जानेवाला प्रयत्न।

कोशी—स्त्री० [सं०√कुश+अच्—ङीष्] १. कली। २. अनाज का टूँड़। ३. चप्पल या स्लीपर।
वि० कोशयुक्त।
पुं० आम का पेड़।

कोष—पुं० [सं०+कुष् (खींचना, निकालना) + घञ्]=कोश।

कोषकार—पुं० [सं० कोष√कृ (करना)+अण्] =कोशकार।

कोष-फल—पुं० [ब० स०] कोशफल।

कोष-वृद्धि—स्त्री०[ष० त०] कोशवृद्धि।

कोषाणु—पुं० [सं०] बहुत ही सूक्ष्म कणों या छोटे-छोटे कोषों के रूप में वह मूल तत्त्व, जिससे जीव-जन्तुओं के शरीर और खनिज पदार्थ आदि बने होते हैं। (सेल)

कोषाध्यक्ष—पुं० [सं० कोष-अध्यक्ष, ष० त०]=कोशाध्यक्ष।

कोषी—स्त्री०=कोशी।

कोष्ठ—पुं० [सं√कुष्+थन्] १. चारों ओर से घिरा हुआ स्थान। कोठा। २. शरीर के अन्दर का वह भाग, जिसमें कोई विशिष्ट क्रिया-शक्ति हो। जैसे—आमाशय, पक्वाशय आदि। ३. वह स्थान जहाँ अन्न रखा जाय। भंडार। ४. कोश। खजाना। ५. चहारदीवारी। ६. पेट का मध्य भाग। उदर। ७. एक विशेष प्रकार की खुली अलमारी, जिसमें कागज-पत्र अलग-अलग रखने के लिए कबूतर के दरबे की तरह के बहुत-से छोटे-छोटे खाने बने रहते हैं। ८. शरीर के अन्दर के छः चक्रों में से एक जो नाभि के पास है। ९. दे० 'कोष्ठक'।

कोष्ठक—पुं० [सं० कोष्ठ+कन्] १. दीवार आदि से घिरा हुआ स्थान। कोष्ठ। कोठा। २. भंडार। ३. (), [] और {} चिह्नों में से कोई एक जिसमें अंक, शब्द, पद आदि विशेष स्पष्टीकरण के लिए संकेत रूप में अथवा ऐसे ही किसी और उद्देश्य से रखे जाते हैं। (ब्रैकेट) ४. दे० 'सारिणी'।

कोष्ठपाल—पुं० [सं० कोष्ठ√पाल् (रक्षा करना) +णिच्+अच्] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला अधिकारी।

कोष्ठ-बद्ध—वि० [स० त०] १. कोष्ठ में बन्द। २. पेट में रुका हुआ (मल)।

कोष्ठ-बद्धक—वि० [सं० कोष्ठबंधक] मल को पेट में रोक रखनेवाला। मलावरोधक। कब्जियत करनेवाला। (कांस्टिपेटिव)

कोष्ठबद्धता—स्त्री० [सं० कोष्ठबद्ध+तल्—टाप्] पेट में मल जमा हो-कर रुके रहने का रोग, जिसमें पाखाना नहीं होता, अथवा बहुत कम तथा कठिनाई से होता है। मलावरोधक। (कांस्टिपेशन)

कोष्ठ-शुद्धि—स्त्री० [ष० त०] पेट में रुका मल बाहर निकल जाने पर पेट का साफ होना।

कोष्ठागार—पुं० [सं० कोष्ठ-आगार, उपमि० स०] १ भंडार २. कोषागार।

कोष्ठागारिक—पुं० [सं० कोष्ठागार+ठन्—इक] १. भंडारी। २. कोपाध्यक्ष। खजांची।

कोष्ठाग्नि—स्त्री० [सं० कोष्ठ-अग्नि मध्य० स०] पेट में रहनेवाली वह अग्नि या शक्ति जिससे भोजन पचता है। जठराग्नि।

कोष्ठी—स्त्री० [सं० कोष्ठ+ङीप्] जन्मपत्री (दे०)।

कोष्ण—वि० [सं० कु-उष्ण कुगति स० कादेश] हलका गरम। कदुष्ण। कुनकुना।

कोस—पुं० [सं० क्रोश] लगभग दो मील के बराबर की एक माप।

पद—कोसों या काले कोसों=बहुत दूर।

मुहा०—(किसी से) कोसों दूर रहना=किसी से बिलकुल अलग या दूर रहना।

पुं० [सं० कोष] १. तलवार की म्यान। २. चारों ओर से ढकनेवाला आवरण। ३. दे० 'कोश'।

कोसना—स० [सं० क्रोशन] जी दुखाये या सताये जाने पर किसी की अशुभ कामना करना। किसी को अपशब्द कहकर उसका बुरा मनाना।

मुहा०—पानी पीकर कोसना= बहुत अधिक कोसना। **कोसना काटना**=शाप और गालियाँ देना।

कोसभ—पुं०=कोसम।

कोसम—पुं० [सं० कोशाम्र] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

कोसल—पुं० [सं० √कुस्+कलच्, गुण नि०] = कोशल।

कोसलधनी (राज)—पुं०=कोशलपति।

कोसला—स्त्री० [सं० कोसल+टाप्] कोसल की राजधानी, अयोध्या।

कोसली—स्त्री० [सं० कोसल+ङीप्] पाड़व जाति की एक रागिनी, जिसमें ऋषभ वर्जित है।

कोसा—पुं० [हिं० कोश] मध्य प्रदेश में तैयार होनेवाला एक प्रकार का रेशम।

पुं० [देश०] वह गाढ़ा रस, जो चिकनी सुपारी बनाने के समय सुपारियों के उबालने पर निकलता है और जिससे घटिया दरजे की सुपारियाँ रँगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं।

पुं० १=कसोरा। २=कोश।

कोसाकाटी—स्त्री० [हिं० कोसना+काटना] किसी को कोसने, काटने की क्रिया या भाव। शाप के रूप में दी जाने वाली गालियाँ।

कोसिया—स्त्री० [हिं० कोसा] १. मिट्टी का छोटा कसोरा। २. तमोलियों की चूना रखने की कूड़ी।

कोसिला†—स्त्री०=कौशल्या।

स्त्री०=अयोध्या (नगरी)।

कोसिली†—स्त्री० [देश०] पिराक या गुझिया नामक पक्वान।

कोसी—स्त्री० [सं० कौशिकी] बिहार प्रदेश की एक प्रसिद्ध नदी, जो नेपाल के पहाड़ों से निकलकर चंपारन के समीप गंगा में मिलती है।

स्त्री० [सं० कोशिका] अनाज के वे दाने जो बाल या फली में लगे रह जाते हैं। गूड़ी। चँचरी।

कोहँड़ा—पुं०=कुम्हड़ा।

कोहँड़ौरी—स्त्री०=कुम्हड़ौरी।

कोह†—पुं० [सं० क्रुद्ध कुड्ड ; क्रुष्ट ; गु० कूट ; पा० कोवो ; प्रा० कोहो; उ० कोहा।] क्रोध। गुस्सा।

पुं० [फा०] पर्वत। पहाड़।

पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष।

कोह आदम—पुं० [फा०] लंका के एक पहाड़ की वह चोटी, जिस पर चरण-चिह्न बने हैं और जिससे बौद्ध, मुसलमान तथा हिन्दू अपने-अपने विश्वास के अनुसार पवित्र तीर्थ मानते हैं।

कोहकन—वि० [फा०] १. पर्वत खोदनेवाला। २. लाक्षणिक रूप में बहुत बड़ा अथवा कठोर परिश्रम का काम करनेवाला।

कोहकाफ—पुं० [फा० कोह=पहाड़+अ० काफ] युरोप और एशिया के बीच का काकेशस पर्वत।

कोहनी—स्त्री० [सं० कफोणि] १. बाँह के बीच का वह जोड़ जहाँ से हाथ और कलाई मुड़कर ऊपर उठती है। २. हुक्के की निगाली में लगाई जाने वाली धातु की टेढ़ी नली। ३. यंत्रों आदि में समकोण बनाने-वाले दो नलों के मुँह आपस में मिलाने वाला टुकड़ा। (एल्बो)

कोहनी-उड़ान—स्त्री० [हिं० कोहनी+उड़ान] कुश्ती का एक पेंच, जिसमें कोहनी के झटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथ पकड़कर रद्दा लगाया जाता है।

कोहनूर—पुं० [फा० कोह+अ० नूर] १. भारत का एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध पुराना हीरा, जो अब इंगलैण्ड के शाही ताज में लग गया है और कटता-कटता बहुत कुछ छोटा रह गया है। २. एक प्रकार का बढ़िया आम।

कोहबर—पुं० [सं० कोष्ठवर] वह स्थान, जहाँ शुभ अवसरों पर कुल-देवता बैठाए या स्थापित किये जाते हैं। विवाह के समय यहाँ कई प्रकार की लौकिक रीतियाँ होती हैं।

कोहर—पुं० [सं० कुहर] कूआँ। कूप।

कोहरा—पुं० [सं० कुही या कुहेड़ी] वायु-मंडल में मिले हुए जल के वे सूक्ष्म-कण जो पृथ्वी तल से कुछ ऊपर उठकर भाप के रूप में जम जाते और धूएँ के रूप में दिखाई देते हैं। (फॉग)

कोहराम—पुं० [अ० कहरआ से फा०] १, कोई अनर्थकारी, दुःखद या शोक-जनक घटना देख या बात सुनकर होनेवाला रोना-पीटना या विलाप। २. बहुत अधिक हल्ला-गुल्ला।

कोहरी†—स्त्री० [देश०] उबाले या तले हुए चने आदि की घूँघरी।

कोहल—पुं० [सं०√कुह् (विस्मित करना)+कलच्, गुण] १. नाट्य-शास्त्र के प्रणेता एक मुनि, जिन्होंने सोमेश्वर से संगीत सीखा था। २. जौ की शराब। ३. एक प्रकार का पुराना बाजा।

कोहाँर†—पुं०=कुम्हार।

कोहा†—पुं० [सं० कोश=पात्र] ईख का रस, काँजी आदि रखने का बड़ा पात्र। नाँद।

कोहान—पुं० [फा०] ऊँट की पीठ पर का डिल्ला। कूबड़।

कोहाना*—अ० [हिं० कोह=क्रोध] १. क्रोध करना। नाराज होना। बिगड़ना। २. मान करना। रूठना। उदा०—तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई।—तुलसी।

कोहिल—पुं० [देश०] [स्त्री० कोही] नर शाही बाज।

कोहिस्तान—पुं० [फा०] पर्वतीय प्रदेश। पहाड़ी इलाका।

कोहिस्तानी—वि० [फा०] पर्वतीय। पहाड़ी।

कोही—वि० [हिं० कोह=क्रोध] क्रोध करने वाला। क्रोधी। गुस्सेवर।

वि० [फा०] पर्वतीय। पहाड़ी।

स्त्री० [देश०] एक प्रकार के वाज पक्षी की मादा।

कौं †—अव्य० [सं० कः] के लिए। वास्ते। उदा०—हरि सौं ठाकुर और न जन कौं।—सूर।

† विभ०=को। (व्रज)

कौंक—पुं० [सं०]=कोंकण।

कौंकण—पुं०=कोंकण।

कौंकिर †—स्त्री० [सं० कर्कर, हिं० कंकर] काँच, हीरे आदि का नुकीला छोटा टुकड़ा। कनी।

कौंकुम—[सं० कुंकुम+अण्] लाल रंग के और तीन पूंछ या चोटी वाले पुच्छल तारे जो मंगल के पुत्र माने जाते हैं।

कौंच—स्त्री० [सं० कच्छु]=कौंछ।

पुं०=कोच।

कौंचा †—पुं० [?] गन्ने का ऊपरी भाग जिसमें गाँठें अधिक होती हैं और जो स्वाद में अपेक्षया फीका होता है।

कौंची †—स्त्री०=कमची।

कौंछ—स्त्री० [सं० कच्छु] सेम की जाति की एक लता जिसकी फलियों के वीज जहरीले और शरीर से छू जाने पर जलन पैदा करनेवाले होते हैं। केवाँच। कौंच।

कौंजड़ा (रा) †—पुं० [स्त्री० कौंजड़ी (री)] दे० 'कुंजड़ा'।

कौंठ्य—पुं [सं० कुंठ+ष्यञ्] १. कुंठ या कुंठित होने की अवस्था या भाव २. शस्त्रों आदि का भोथरापन।

कौंडल—वि० [सं० कुंडल+अण्] कुंडल-संवंधी।

कौंडलिक—वि० [सं० कुंडल+ठक्–इक] कुंडलवारी।

कौंडिन्य—पुं० [सं० कुंडिन+ष्यञ्] [स्त्री० कौंडिनी] कुंडिन मुनि का वंशज या उनके गोत्र का व्यक्ति।

कौंतल—वि० [सं० कुंतल+अण्] कुंतल देश-संवंधी। कुंतल देश का।

कौंतिक—पुं० [सं० कुंत+ठक्–इक] कंत अर्थात् वरछा या भाला चलानेवाला।

कौंती—स्त्री० [सं० कुंति+अण्—ङीप्] रेणुका नामक गंधद्रव्य।

कौंतेय—पुं० [सं० कुंती+ढक्–एय] १. कुंती के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि। २. अर्जुन वृक्ष।

कौंध—स्त्री० [हिं० कौंधना] १. कौंधने की क्रिया या भाव। २. वहुत ही थोड़े समय तक रहनेवाली ऐसी चमक, जिससे आँखें चौंधिया जायँ। जैसे—विजली की कौंध। ३. विजली।

कौंधना—अ० [सं० कनन=चमकना+अंध या सं० कवंध] कुछ क्षणों के लिए (विजली का) चमकना।

कौंधनी†—स्त्री०=करधनी।

कौंधा—स्त्री० [हिं० कौंधना]=कौंध।

कौंप†—स्त्री०=कोंपल।

कौंभ—वि० [सं० कुंभ+अण्] कुंभ-संवंधी। कुंभ का।

कौंभ-सर्पि (स्)—पुं० [सं० कर्म स०] वैद्यक में, सौ वर्षों का पुराना घी जो वहुत गुणकारी माना गया है।

कौंर—पुं० [देश०] वनखौर नामक वृक्ष।

कौंरा—वि०, पुं०=काँवरा।

कौंरी—स्त्री०=काँवरी।

कौंल—पुं०=कमल।

कौंला—पुं० [पं० कौल=कटोरी] कटोरा। उदा०—कवि विआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निअर निअर भा दूरी।—जायसी।

† वि० [स्त्री० कौंली]=१. कोमल। २. कुरकुरा। जैसे—कौंली हड्डी।

† पुं०=कमला (नीवू)।

कौंवरा† —वि०=कोमल।

कौंसल—स्त्री०=कौंसिल।

कौंसिल—स्त्री० [अं० काउन्सिल] १. कुछ विशिष्ट लोगों का वह समूह, जो किसी विषय पर आधिकारिक रूप से विचार करता हो। २. परामर्श देनेवाली सभा या समिति।

कौंहर—पुं० [देश०] इंद्रायन की जाति का एक प्रकार का फल।

कौंहरी—स्त्री०=कौंहर।

कौ† —अव्य०=कव। (व्रज) जैसे—कौलौं=कव तक।

विभ०=को।

कौआ— पुं० [सं० काक; प्रा० काअ] १. काले रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी, जो काँ-काँ शब्द करता है।

पद—कौआ-गुहार या कौआ रोर=(क) व्यर्थ की वकवक। (ख) वहुत शोर।

मुहा०—कौआ उड़ाना=कहीं वैठे हुए कौए को उड़ाकर किसी प्रिय के आने या न आने का शकुन देखना। **कौए उड़ाना**=व्यर्थ के या अनावश्यक कार्य करना।

२. वहुत चालाक तथा धूर्त व्यक्ति। चालवाज। ३. छाजन की वह लकड़ी, जो वँडेरी के सहारे के लिए लगाई जाती है। ४. गले के अन्दर का लटकता हुआ मांस का छोटा टुकड़ा। घंटी। ललरी। अलिजिह्वा।

मुहा०—कौआ उठाना=वढ़ी या अधिक वढ़ी या लटकी हुई घंटी को दवाकर ऊपर चढ़ाना।

५. कनकुटकी नामक पेड़, जिसकी राल दवा और रँगाई के काम आती है। ६. सरकंडे का वना एक प्रकार का खिलौना। ७. एक प्रकार की मछली। ८. रहस्य-संप्रदाय में, मन।

कौआ-ठोंठी—स्त्री० [हिं० कौआ+ठोंठ=चोंच] एक लता, जिसका फल कौए की चोंच के आकार का होता है।

कौआना† —अ० [हिं० कौआ] १. कौओं की तरह काँव-काँव करना। व्यर्थ शोर या हल्ला करना। २. सोते समय नींद में वड़वड़ाना। ३. चकित या भौचक्का होना।

कौआ-परी—स्त्री० [हिं०] कुरूप या काली स्त्री।

कौआरा†— पुं० [हिं० कौआ+सं० रव=शब्द] १. कौओं का काँव-काँव शब्द। २. शोर-गुल।

कौआल—पुं० [अ० कव्वाल] कौवाली गानेवाला व्यक्ति।

कौआली—पुं०=कौवाली (गीत)।

कौकुच्यातिचार—पुं० [सं० काकूक्त्यतिचार] वह वाक्य जिसके कहने, पढ़ने या वोलने से अपने तथा औरों के मन में काम, क्रोध आदि भाव उत्पन्न होते हों। (जैन)

कौकुत*—पुं०=कौतुक। (क्व०) उदा०—देखि एक कौकुत हौं रहा। —जायसी।

कौक्कृत्य—पुं० [सं० कुकृत्य+अण्] कुकर्म। बुरा कर्म।

कौक्कुटिक—पुं० [सं० कुक्कुट+ठक्–इक] १. मुरगे पालनेवाला व्यक्ति। २. ढोंगी।

कौक्षेयक—पुं० [सं० कुक्षि+ढकञ्–एय] तलवार।

कौच—स्त्री० [अं०] एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिस पर तीन आदमियों के बैठने के लिए स्थान होता है।

पुं०=कवच। उदा०—हाकी सुणतां हूलसै, मरणी कौच न माय। —कविराजा सूर्यमल।

कौचुमार—स्त्री० [सं० कुचुमार+अण्] कुरूप को सुन्दर बनाने की कला या विद्या।

कौटकिक—पुं० [सं० कूट+कन्+ठञ्—इक] १. बहेलिया। २. मांस बेचनेवाला व्यक्ति।

कौटभी—स्त्री० [सं० कैटभी] दुर्गा।

कौटल्य—पुं० [सं० कुट√ला (लेना)+क, कुटल+यञ्] कौटिल्य।

कौटवी—स्त्री० [सं० कोट्टवी] नंगी स्त्री।

कौटिक—पुं० [सं० कूट+ठक्—इक]=कौटकिक।

कौटिलिक—पुं० [सं० कुटिलिका+अण्] १. बहेलिया। २. लुहार।

कौटिलीय—वि० [सं० कौटिल्य+छ–ईय] १. कौटिल्य कृत। २. कौटिल्य-संबंधी।

कौटिल्य—पुं० [सं० कुटिल+ष्यञ्] १. कुटिलता। २. टेढ़ापन। वक्रता। ३. कपट। छल। ४. बेईमानी। ५. गुप्तकाल के एक प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ और अर्थशास्त्र के रचयिता आचार्य चाणक्य का एक नाम।

कौटीर—वि० [सं० कुटीर+अण्] कुटीर-संबंधी। कुटीर का।

कौटीर्या—स्त्री० [सं० कुटीर+ष्यञ् (स्वार्थ में)+टाप्] दुर्गा।

कौटुंब—वि० [सं० कुटुंब+अण्] १. कुटुंब-संबंधी । कुटुंब का। २. कुटुंब के भरण-पोषण के लिए आवश्यक।

पुं०=कुटुंब।

कौटुंबिक—वि० [सं० कुटुंब+ठक्–इक] १. कुटुंब-संबंधी । पारिवारिक। २. जिसका कुटुंब या परिवार हो।

कौड़ा—पुं० [सं० कपर्दक, प्रा० कवड्डअ] बड़ी कौड़ी।

मुहा०— कौड़े करना =कोई चीज बेचकर नगद दाम वसूल करना।

पुं० [सं० कुंड] वह गड्ढा, जिसमें तापने के लिए आग जलाते हैं। अलाव।

पुं० [सं० कंदल] एक प्रकार का जंगली प्याज। कोचिंडा।

पुं० [देश०] बूई नामक पौवा, जिसे जलाकर सज्जीखार निकालते हैं।

वि०=कड़ुआ (पश्चिम)।

कौड़िया—पुं० [हिं० कौड़िल्ल] कौड़िल्ला पक्षी। उदा०—नैन कौड़िया हिम समुद, गुरू सो तेहि महँ जोति।—जायसी।

वि० [हिं० कौड़ी] १. कौड़ी की तरह या रंग का। २. कौड़ी-संबंधी।

कौड़ियाला—वि० [हिं० कौड़ी] कौड़ी के रंग का। गुलाबीपन लिये हुए हलका नीला।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

पुं० १. एक प्रकार का जहरीला सांप, जिसके शरीर पर कौड़ी के आकार की चित्तियाँ या दाग होते हैं। २. ऐसा धनवान्, जो बहुत बड़ा कंजूस हो। (परिहास और व्यंग) ३. ऊसर में होनेवाला एक प्रकार का पौधा।

कौड़ियाली—वि०, स्त्री०=कौड़ियाला।

कौड़ियाहा†—वि० [हिं० कौड़ी] [स्त्री० कौड़ियाही] १. केवल कौड़ियों के लोभ से सब कुछ करनेवाला। २. परम तुच्छ और नीच।

कौड़ियाही—स्त्री० [हिं० कौड़ी] ईंट, मिट्टी आदि ढोनेवाले मजदूरों की मजदूरी चुकाने का वह प्रकार जिसमें उन्हें प्रति खेप कुछ कौड़ियाँ मजदूरी के रूप में दी जाती थी।

कौड़िल्ला—पुं० [हिं० कौड़ी] १. किलकिला नामक पक्षी जो मछलियाँ पकड़कर खाता है। २. कसी या गवेधुक नाम का पौधा।

कौड़िहाई†—स्त्री०=कौड़ियाही।

कौड़ी—स्त्री० [सं० कपर्दिका, प्रा० कवड्डिआ] १. घोंघे की तरह का एक समुद्री कीड़ा, जो अस्थिकोश में रहता है। २. उक्त कीड़े का अस्थिकोश जो सबसे कम मूल्य के सिक्के के रूप में चलता था।

मुहा०—कौड़ी का हो जाना =(क) मान-मर्यादा जाते रहना। (ख) परम निर्धन या हीन हो जाना। **कौड़ी के तीन होना**=बहुत ही तुच्छ या हीन होना। **कौड़ी के मोल बिकना**=बहुत सस्ता बिकना। **कौड़ी को न पूछना**=फालतू या बेकार समझकर मुफ्त में भी न लेना। **कौड़ी-कौड़ी अदा करना, चुकाना या भरना**= लिया हुआ ऋण पूरा-पूरा वापस लौटाना। एक कौड़ी भी बाकी न रखना। **कौड़ी-कौड़ी जोड़ना** =बहुत कष्ट और परिश्रम से धन इकट्ठा करना। **कौड़ी फेरा करना या लगाना**=जल्दी-जल्दी और बार-बार आते-जाते रहना।

पद—कौड़ी का =जिसका कुछ भी मूल्य न हो। परम तुच्छ। जैसे—यह कपड़ा कौड़ी काम का नहीं है। **कौड़ी-कौड़ी को मुहताज**=परम दरिद्र या निर्धन।

३. द्रव्य, धन, रुपया, पैसा। ४. कर, जो प्राचीन काल में कौड़ियों के रूप में लिया जाता था। ५. काँख, जंघा आदि में उभरनेवाली गिल्टी। ६. आँख का डेला। ७. छाती के नीचे बीचोबीच की वह छोटी हड्डी जिस पर सब से नीचे की दोनों पसलियाँ मिलती हैं।

मुहा०— कौड़ी जलना =भूख या क्रोध से शरीर जलना।

८. कटार की नोक। ९. जहाज का मस्तूल।

कौड़ी गुड़गुड़—पुं० [हिं० कौड़ी+गुड़ गुड़] लड़कों का एक प्रकार का खेल।

कौड़ी जगनमगन—पुं०=कौड़ी गुड़गुड़।

कौड़ी जूड़ा—पुं० [हिं० कौड़ी+जूड़ा] सिर पर पहनने का एक आभू ण। (स्त्रियाँ)

कौड़ेना—पुं० [देश०] [अल्प० कौड़ेनी] बरतनों पर नकाशी करने के लिए लोहे का एक औजार।

पुं०=कौड़ियाला (वनस्पति)।

कौणप—पुं० [सं० कुणप+अण्] [स्त्री० कौणपी] १. मृत शरीर खानेवाला, राक्षस। २. वासुकी के वंश का एक सर्प।

वि० बहुत बड़ा अधर्मी या पापी।

कौणप-दंड—पुं० [ब० स०] भीष्म।

कौतिक*—पुं०=कौतुक।

कौतिग—पुं०=कौतुक। उदा०—घर का गुसाईं कौतिग चाहै, काहे न बँवौ जौरा।—गोरखनाथ।

कौतुक—पुं० [सं० कुतुक+अण्] [वि० कौतुकी] १. ऐसी अद्‌भुत या विलक्षण बात, जिसे देखकर आश्चर्य भी हो और जिसे जानने के लिए उत्सुकता भी हो। २. अचंभा। आश्चर्य। ३. मन-बहलाव दिल्लगी। विनोद। ४. उक्त से प्राप्त होनेवाला आनन्द या प्रसन्नता। ५. खेल-तमाशा और उससे मिलनेवाला मजा। ६. विवाह से पहले हाथ में पहना जानेवाला मांगलिक सूत्र। कंगन।

कौतुकित—भू० कृ० [सं० कौतुक+इतच्] जिसे कौतुक हुआ हो।

कौतुकिया—पुं० [हिं० कौतुक+इया (प्रत्य०)] १. अनेक प्रकार के कौतुक, खेल-तमाशे या हँसी-मजाक करनेवाला। २. वह, जिसका काम विवाह-संबंध स्थिर करना हो। जैसे—नाई, ब्राह्मण आदि।

कौतुकी (किन्)—वि० [सं० कौतुक+इनि] १. कौतुक करनेवाला। विनोदशील। २. खेल-तमाशे दिखानेवाला। ३. विवाह-संबंध स्थिर करनेवाला।

कौतूह—पुं०=कुतूहल।

कौतूहल—पुं० [सं० कुतूहल+अण्]=कुतूहल।

कौत्स—पुं० [सं० कुत्स+अण्] १. कुत्स ऋषि के पुत्र, जो जैमिनि के आचार्य थे। २. कुत्स ऋषि द्वारा रचित सामगान।

वि० कुत्स-संबंधी। कुत्स का।

कौथ†—स्त्री० [हिं०कौन+सं०तिथि] १. कौन-सी तिथि? कौन तारीख? (प्रश्नवाचक) जैसे—आज कौथ है? २. क्या संबंध। क्या वास्ता।

कौथा†—वि० [हिं० कौन+सं० स्था (स्थान)] १. गणना में किस स्थान पर पड़नेवाला। (प्रश्नवाचक)। जैसे—परीक्षा में तुम्हारा कौथा स्थान आया? २. कौन-सा?

कौथि†—स्त्री०=कौथ।

कौथुम—पुं० [सं० कुथुम+अण्] सामवेद की कौथुमी शाखा का अध्येता।

कौथुमी—स्त्री० [सं० कौथुम+ङीप्] सामवेद की एक शाखा, जो कुथुम ऋषि के नाम पर है।

कौदन—वि० [फा०] जिसकी समझ में जल्दी कोई बात न आती हो। मंद बुद्धिवाला। मूढ़।

कौदालीक—पुं० [सं० कुदार+ईकन्, र=ल] १. एक वर्णसंकर जाति, जिसकी उत्पत्ति धीवर पिता और धोबिन माता से कही गई है। २. उक्त जाति का व्यक्ति।

कौद्रविक—पुं० [सं० कोद्रव+ठञ्—इक] काला नमक।

कौधनी†—स्त्री०=करधनी।

कौन—सर्व० [सं० कः पुनः; प्रा० कवण; गु० कोण] १. एक प्रश्नवाचक सर्वनाम, जो किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—(क) अभी यहाँ कौन आया था? (ख) आज कौन पुस्तक लाऊँ? २. कोई व्यक्ति। जैसे—पता नहीं अभी कौन इधर आया था?

वि० किस तरह या प्रकार का?

कौनप—पुं०=कौणप।

कौनि *—सर्व०, हिं० 'कौन' का स्त्री० रूप। उदा०—तुलसिदास मोको बड़ो सोचु है तू जनम कौनि बिधि भरि है।—तुलसी।

कौनें†—सर्व० १.=किसने। २. कौन। ३. =किस। ४. =किससे?

कौनौं†—सर्व०=कोई।

कौप—वि० [सं० कूप+अण्] कूप-संबंधी। कूएँ का।

पुं० कूएँ का पानी।

कौपीन—पुं० [सं० कूप+खञ्—ईन] १. लँगोटी, जिसे ब्रह्मचारी और संन्यासी पहनते हैं। २. शरीर के वे भाग जो ऐसी लँगोटी से ढके जाते हैं। ३. पाप। ४. अनुचित या निन्दनीय कार्य।

कौपोदकी—स्त्री०=कौमोदकी।

कौप्य—वि० [सं० कूप+यञ्] कूप-संबंधी। कूएँ का।

पुं० कूएँ का पानी।

कौबेर—वि० [सं० कुबेर+अण्] कुबेर-संबंधी। कुबेर का।

कौबेरी—स्त्री० [सं० कौबेर+ङीप्] १. कुबेर की शक्ति। २. उत्तर दिशा।

कौब्ज्य—पुं० [सं० कुब्ज+ष्यञ्] कुब्ज या कुबड़ होने की अवस्था या भाव। कुबड़ापन।

कौम—स्त्री० [अ०] १. जाति। २. नसल। वंश। ३. समाज। राष्ट्र।

कौमकुम—पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक केतु तारा जो मंगल-ग्रह का साठवाँ पुत्र कहा गया है। २. रक्त। लहू। खून।

कौम-परस्त—वि० [अ०] १. कौम या जाति का सेवक। २. राष्ट्रवादी।

कौमार—पुं० [सं० कुमार+अञ्] [सं० कौमारी] १. जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था। कुमार। बालक। २. एक प्रकार की सृष्टि जो सनत्कुमार की रची हुई कही गई है।

कौमारक—वि०, पुं०=कौमारिक।

कौमार-बंधकी—स्त्री० [ष० त०] वेश्या।

कौमार-भृत्य—पुं० [ष० त०] बालकों के पालन-पोषण और चिकित्सा-संबंधी आयुर्वेद-शास्त्र।

कौमार-व्रत—पुं० [ष० त०] सदा कुमार रहने अर्थात् विवाह न करने का व्रत या प्रतिज्ञा।

कौमारिक—पुं० [सं० कुमार+ठक्—इक] संपूर्ण जाति का एक राग, जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

वि० कुमार-संबंधी। कुमार का।

कौमारिकेय—पुं० [सं० कुमारिका+ढक्—एय] किसी कुमारी (अर्थात् अविवाहिता) स्त्री के गर्भ से उत्पन्न व्यक्ति या सन्तान। कानीन।

कौमारी—स्त्री० [सं० कौमार+ङीप्] १. पहली विवाहिता स्त्री, जिससे कुमार-अवस्था में विवाह हुआ हो। २. पार्वती। ३. कार्तिकेय की सात मातृकाओं में से एक। ४. वाराही कंद। गेंठी।

कौमियत—स्त्री० [अ०] जातीयता।

कौमी—वि० [अ०] १. किसी कौम या जाति-संबंधी। जातीय। २. राष्ट्र-संबंधी। राष्ट्रीय।

पद—**कौमी नारा**=राष्ट्रीय जय-घोष।

कौमुद—पुं० [सं० कौ√मुद् (प्रसन्न होना)+क, अलुक् स०] कार्तिक मास। कातिक।

कौमुदिक—वि० [सं० कुमुद+ठक्—इक] कुमुद-संबंधी।

कौमुदिका—स्त्री० [सं० कौमुदी+कन्—टाप्, ह्रस्व]=कौमुदी।

कौमुदी—स्त्री० [सं० कुमुद+अण्—ङीप्] १. चंद्रमा की चाँदनी। ज्योत्सना। २. कार्तिक मास की पूर्णिमा। ३. आजकल की दीवाली। दीपावली। ४. कुमुदिनी। कोईं। ५. दक्षिण भारत की एक नदी। ६. किसी ग्रन्थ के गूढ़ तत्त्वों या विचारों पर प्रकाश डालनेवाली उसकी टीका या व्याख्या। ७. दे० 'कौमुदी-महोत्सव'।

कौमुदी-चार—पुं० [ब० स०] कार्तिकी पूर्णिमा। शरत् पूर्णिमा।

कौमुदी-पति—पुं० [ष० त०] चंद्रमा।

कौमुदी-महोत्सव—पुं० [ष० त०] प्राचीन भारत में कौमुदी (अर्थात् कार्तिक मास की पूर्णिमा) के दिन होनेवाला एक त्योहार या महोत्सव।

कौमोदकी—स्त्री० [सं० कु-मोदक, ष० त०, कुमोदक+अण्—ङीप्] विष्णु की गदा का नाम।

कौमोदी—स्त्री० [सं० कु√मुद् (हर्ष)+णिच्+अच्, कुमोद+अण् ङीप्]=कौमोदकी।

कौर—पुं० [सं० कवल] १. हाथ की उँगलियों में लिया हुआ उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय। ग्रास। निवाला।

मुहा०—**(किसी के) मुँह का कौर छीनना**=ऐसा हिस्सा छीनना, जो उसे अभी मिल रहा हो।

२. उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिए डाला जाता है।

पुं० [?] एक प्रकार का पहाड़ी झाड़ या पौधा।

† स्त्री० [सं० कुमारी] कुमारी का वाचक और अपभ्रंश शब्द, जो पंजाब, राजस्थान आदि में स्त्रियों के नाम में लगता है। जैसे—अमृतकौर, वेदकौर।

कौरना†—स० [हिं० कौड़ा] थोड़ा गरम करना या भूनना। सेकना।

कौरव—वि० [सं० कु +अण्] [स्त्री० कौरवी] कुरु-संबंधी।

पुं० राजा कुरु के वंशज या सन्तान।

कौरव-पति—पुं० [ष० त०] दुर्योधन।

कौरवेय—पुं० [सं० कुरु+ढक्—एय] कुरु का वंशज।

कौरव्य—पुं० [सं० कुरु+ण्य] १. प्राचीन भारत का एक नगर। २. राजा कुरु के वंशज। कौरव।

कौरा—पुं० [सं० कोल, क्रोड़] [स्त्री० कौरी] दरवाजे के इधर-उधर के वे भाग जिनसे खुले हुए किवाड़ों का पिछला भाग सटा रहता है।

मुहा०—**कौरे लगना**=(क) कोई बात चुपचाप सुनने या किसी की आहट के लिए द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना। (ख) किसी की घात में छिप कर रहना। (ग) रूठकर या मुँह फुलाकर दूर या अलग होना।

पुं० [हिं० कौर=ग्रास] कुत्तों, अंत्यजों आदि को दिया जानेवाला भोजन का अंश।

† पुं०=कौड़ा।

कौरी—स्त्री० [सं० क्रोड़] १. अँकवार। गोद।

मुहा०—**कौरी भरना या भरकर मिलना**=आलिंगन करना। गले लगाना।

२. अनाज की बालों आदि का वह पूला जो मजदूरों आदि को दिया जाता है। ३. एक प्रकार की मिठाई। उदा०—पेठा, पाक, जलेबी, कौरी।—सूर।

† स्त्री०=कौड़ी।

कौर्म—वि० [सं० कूर्म+अण्] १. कूर्म-संबंधी। २. विष्णु के कूर्मावतार-संबंधी।

पुं० पुराणानुसार एक कल्प।

कौलंज—पुं० [यू० कूलंज] पसलियों के नीचे होनेवाला दर्द। वायु-शूल।

कौल—वि० [सं० कुल+अण्] १. कुल-संबंधी। २. अच्छे या उत्तम कुल या वंश का। उदा०—कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा।—तुलसी। ३. वाममार्ग से संबंध रखनेवाला।

पुं० १. कुलीन व्यक्ति। २. वाममार्गी।

* पुं० [सं० कमल] १. कमल। उदा०—कामकलित हिय कौल है, लाज ललित दृग कौल।—मतिराम। २. कटोरा। बड़ी कटोरी (पश्चिम)।

* पुं०=कौर (ग्रास)।

पुं० [अ०] १. उक्ति। कथन। २. किसी बात के लिए दिया जानेवाला वचन।

मुहा०—**कौल तोड़ना**=दिये हुए वचन से पीछे हटना। **कौल लेना**=प्रतिज्ञा कराना। वचन लेना।

३. सूफियों के एक प्रकार के गीत।

पुं० [तु० करावल] सैनिक छावनी का मध्य भाग।

कौलई—वि० [हिं० कौला=संतरा] कौले अर्थात् संतरे के रंग का। नारंगी।

पुं० उक्त प्रकार का रंग।

कौलटिनेय—पुं० [सं० कुलटा+ढक्—एय, इनङ् आदेश]=कौलटेय।

कौलटेय—पुं० [सं० कुलटा+ढक्—एय] १. भिखारिणी स्त्री की संतान। २. कुलटा स्त्री की संतान।

कौलटेर—पुं० [सं० कुलटा+ढ्रक्—एय]=कौलटेय।

कौलदुमा—वि० [हिं० कौल=कमल+दुमा=दुमदार] एक प्रकार का कबूतर।

कौलव—पुं० [सं०] ज्योतिष के ग्यारह करणों में से तीसरा, जिसमें जन्म लेनेवाला गुणी और विद्वान् परन्तु कृतघ्न होता है।

कौलाँ†—पुं०=कौल (कटोरा)।

कौला—पुं० [सं० कमला] १. कमला नीबू। २. एक प्रकार का संतरा।

पुं० [सं० कोल=क्रोड़, गोद] दीवार की चौड़ाई का वह भाग जिसके साथ खुले हुए दरवाजे के पल्ले का पिछला भाग सटा रहता है। कौरा। पाखा।

मुहा०—**कौले सींचना**=मंगल कामना के लिए पूजा, यात्रा आदि के शुभ अवसरों पर दरवाजे के सामने और इधर-उधर पानी छिड़कना।

विशेष—इस शब्द के अन्यान्य अर्थों के लिए दे० 'कौरा' और उसके मुहा०।

कौलाचार—पुं० [सं० कौल-आचार, कर्म० स०] वाममार्ग।

कौलाल—पुं० [सं० कुलाल+अण्] कुम्हार।

कौलालक—वि० [सं० कुलाल+वुञ्—अक] कुम्हार-संबंधी।

कौलिक—वि० [सं० कुल+ठक्—इक] कुल

कौलिया—पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बबूल।

कौलीन—वि० [सं० कुल+खञ्—ईन]=कुलीन।

पुं० १. कुलीनता। २. कलंक। बदनामी। ३. मनोविनोद के लिए कराई जानेवाली पशु-पक्षियों की लड़ाई। ४. जननेंद्रिय। ५. वाममार्गी।

कौलीन्य—पुं० [सं० कुलीन+ष्यञ्]=कुलीनता।

कौलीय—पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक प्राचीन जाति। कोली। (बौद्ध-ग्रन्थ)

कौलीरा—स्त्री० [सं० कुलीर+अण्—टाप्] काकड़ासिंगी (पौधा)।

कौलेयक—वि० [सं० कुल+ढकञ्—एय] कुल-संबंधी।

पुं० कुत्ता।

कौलौ*—पुं०=कौलव।

कौल्य—वि० [सं० कुल+ष्यञ्] १. कुलीन। २. शाक्त मत का अनुयायी।

कौवल—पुं० [सं० कुवल+अण्] बेर।

कौवा—पुं०=कौआ।

कौवाठोंठी—स्त्री०=कौआठोंठी।

कौवापरी—स्त्री०=कौआपरी।

कौवारी—स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. कचूर की जाति का एक वृक्ष जिसमें गुच्छों में लाल फल लगते हैं।

* स्त्री०=कौवाली।

कौवाल—पुं० [अ० कवाल=एक प्रकार की बाँसुरी] वह जो कौवाली गाने में प्रवीण हो अथवा कौवाली गाने का पेशा करता हो।

कौवाली—स्त्री० [अ० कवाल=एक प्रकार की बाँसुरी] १. मुसलमानों में एक प्रकार के धार्मिक गीत जो प्रायः कई आदमी मिलकर गाते हैं। २. उक्त गीत की कुछ विशिष्ट धुनें। ३. इन धुनों में गाये जानेवाले गीत। ४. उक्त प्रकार के गीत गाने का पेशा।

कौविद—पुं० [सं० कुविंद+अण्] [स्त्री० कौविंदी] जुलाहा। बुनकर।

कौश—पुं० [सं० कुश+अण्] [वि० कौशेय। स्त्री० कौशी] १. कुश-द्वीप। २. एक गोत्र। ३. [कोश+अण्] ४. रेशमी वस्त्र।

कौशल—पुं० [सं० कुशल+अण्] १. कुशल होने की अवस्था या भाव। २. ठीक ढंग से काम करने की योग्यता या समर्थता। ३. युक्तिपूर्वक अपना काम निकालने का ढंग। छल-बल से काम साधने का गुण। ४. कोशल प्रदेश का निवासी।

वि० कोशल देश का।

कौशल-बाध—पुं० [सं० ष० त०] कार्यालयों की या राजकीय सेवा में उन्नति के मार्ग में वह बंधन जो अपना काम कुशलतापूर्वक करके पार करना पड़ता है। (एफिशिएन्सी बार)

कौशलिक—पुं० [सं० कुशल+ठक्—इक] घूस। रिश्वत।

कौशलिका—स्त्री० [सं० कौशलिक+टाप्]=कौशली।

कौशली—स्त्री० [सं० कौशल+ङीप्] १. मित्रों से किया जानेवाला कुशल-प्रश्न। २. उपहार। भेंट।

वि० [सं०] अनेक प्रकार के कौशल जानने और करनेवाला।

कौशलेय—पुं० [सं० कौशल्या+ढक्—एय] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशल्य—पुं० [सं० कुशल+ष्यञ्]=कौशल।

कौशल्या—स्त्री० [सं० कोशल+ष्यञ्—टाप्] १. कोशल के महाराज दशरथ की पत्नी तथा भगवान् राम की माता। २. पुरुराज की स्त्री तथा जनमेजय की माता। ३. धृतराष्ट्र की माता। ४. पंचमुखी आरती।

कौशल्यायनि—पुं० [सं० कौशल्या+फिञ्—आयन] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशांबी—स्त्री० [सं० कुशांब+अण्—ङीप्] कुश के पुत्र कौशांब की बसाई हुई नगरी जो वत्सदेश की राजधानी थी।

कौशिक—वि० [सं० कुशिक+अण्] १. कुशिक वंश का। २. उल्लू से संबंधित। ३. (अस्त्र) जो कोश या म्यान में रखा हो।

पुं० १. इन्द्र। २. राजा कुशिक के पुत्र गाधि, जिनका जन्म इंद्र के अंश से हुआ था। ३. विश्वामित्र। ४. अथर्ववेद का एक सूक्त। ५. मगध-नरेश जरासंध का एक सेनापति। ६. कोशकार। ७. उल्लू। ८. नेवला। ९. अश्वकर्ण नामक शालवृक्ष। १०. रेशमी वस्त्र। ११. एक उपपुराण का नाम। १२. छः रागों में से एक राग। १३. शृंगार रस। १४. मज्जा। १५. गुग्गुल। १६. साँप पकड़नेवाला, मदारी।

कौशिक-प्रिय—पुं० [ष० त०] भगवान् राम का नाम।

कौशिक-फल—पुं० [मध्य० स०] नारियल का पेड़ और फल।

कौशिका—स्त्री० [सं० कोश+कन्+अण्—टाप्, इत्व] १. जल पीने का पात्र। जैसे—कटोरा, गिलास आदि। २. गुग्गुल।

कौशिकायुध—पुं० [सं० कौशिक-आयुध, ष० त०] १. इंद्र का वज्र। २. इंद्र धनुष।

कौशिकाराति—पुं० [सं० कौशिक-अराति, ष० त०] कौआ।

कौशिकी—स्त्री० [सं० कुशिक+अण्—ङीप्] १. चंडिका देवी। २. राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। ३. संगीत में एक प्रकार की रागिनी। ४. कोसी नदी। ५. साहित्य में एक वृत्ति, जिसमें नृत्य-गीत तथा भोग-विलास आदि के वर्णन होते हैं। यह क ण, हास्य, शृंगार आदि रसों के लिए उपयुक्त कही गई है।

कौशिकी-कान्हड़ा—पुं० [हिं० कौशिकी+कान्हड़ा] कौशिकी और कान्हड़ा के योग से बना हुआ एक संकर राग।

कौशिल्य—पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि।

कौशिल्या—स्त्री०=कौशल्या।

कौशीधान्य—पुं० [सं० व्यस्त पद] पौधे में फूल के बाद लगनेवाले कोश से पैदा होनेवाले अन्न। जैसे—तिल, अलसी आदि।

कौशी भैरव—पुं० [सं० व्यस्त पद] एक प्रकार का संकर राग जो दिन के पहले पहर में गाया जाता है।

कौशीलव—पुं० [सं० कुशीलव+अण्] नट का कार्य अथवा पद।

कौशेय—वि० [सं० कोश+ढक्—एय] १. कोश-संबंधी। २. रेशमी।

पुं० १. रेशम। २. रेशमी कपड़ा।

कौश्मांडी—स्त्री० [सं० कूश्मांड+अण्—ङीप्] एक विशिष्ट वैदिक ऋचा जो पवित्र करनेवाली कही गई है।

कौषारव—पुं० [सं० कुषारु+अण्] कुषारु मुनि के पुत्र, मैत्रेय।

कौषिक—पुं० [सं० कौशिक, पृषो० सिद्धि]=कौशिक।

कौषिकी—स्त्री० [सं० कौशिकी, पृषो० सिद्धि] १. एक देवी जिनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी। २. =कौशिकी।

कौपीतक—पुं० [सं० कुपीतक+अण्] १. ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक ऋषि। २. ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण।

कौपीतकी—स्त्री० [सं० कौपीतक+ङीप्] १. अगस्त्य मुनि की स्त्री का नाम। २. ऋग्वेद की एक शाखा। ३. ऋग्वेद के अंतर्गत एक उपनिषद्।

कौषेय—वि० [सं० कौशेय, पृषो० सिद्धि] १. रेशम से संबंध रखनेवाला। २. रेशम का बना हुआ। रेशमी।

पुं० रेशम से बुना हुआ वस्त्र। रेशमी कपड़ा।

कौष्ठेयक—पुं० [सं० कोष्ठ+ढकञ्—एय] कोठ (अर्थात् कोश और भंडार) की वृद्धि के लिए समय-समय पर लिया जानेवाला कर।

कौसल्या—स्त्री० =कौशल्या।

कौसिया—पुं० [सं० कौशिक] संगीत में एक प्रकार का राग।

कौसिला†—स्त्री०=कौशल्या।

कौसीद—वि० [सं० कुसीद+अण्] कुसीद-संबंधी।

पुं० वह जो सूद-ब्याज की आय से अपना निर्वाह करता हो। सूदखोर।

कौसीस—पुं० [सं० कपिशीर्षक] कँगूरा। उदा०—कंचन कोट जरे कौसीसा।—जायसी।

कौसुंभ—पुं० [सं० कुसुंभ+अण्] १. एक प्रकार का जंगली फूल। २. एक प्रकार का साग।

कौसुम—वि० [सं० कुसुम+अण्] १. कुसुम-संबंधी। २. जिसमें कुसुम या फूल लगे हुए हों। ३. फूलों का बना हुआ अथवा फूलों से बननेवाला।

पुं० १. कुसुमांजन। २. पराग।

कौसुरुविंद—पुं० [सं०] दस रात्रियों में पूर्ण होनेवाला एक यज्ञ।

कौसेय—पुं०=कौशेय।

कौस्तुभ—पुं० [सं० कु√स्तुभ् (व्याप्ति)+अप्, कुस्तुभ+अण्] १. एक प्रसिद्ध मणि जो समुद्र-मन्थन के समय उसमें से निकली थी। २. एक प्रकार की तांत्रिक मुद्रा। ३. वैद्यक में एक प्रकार का तेल।

कौस्तुभ-लक्षण—पुं० [ब० स०] विष्णु।

कौस्तुभ-वक्षाः (क्षस्)—पुं० [ब० स०] विष्णु।

कौह—पुं० [सं० ककुभ] अर्जुन वृक्ष।

कौहर†—पुं० [देश०] इंद्रायन।

कौहा—पुं० [?] छाजन में बँड़ेरी के सहारे के लिए लगाई जानेवाली लकड़ी।

क्या—सर्व० [सं० किम्, प्रा० कोअस, बँ० की, मरा० काय] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जो प्रसंग के अनुसार कई प्रकार से और प्रायः नीचे लिखे अर्थों में प्रयुक्त होता है—१. यह जानने, पूछने या समझने के लिए कि कोई अभिप्रेत, उद्दिष्ट या ज्ञेय बात या वस्तु किस प्रकार, रूप या वर्ग की है, उसकी मात्रा, मान, मूल्य या स्वरूप कितना या कैसा है, आदि। जैसे—(क) रूमाल में क्या लपेट रखा है? (ख) इस पुस्तक का क्या दाम है? (ग) तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर क्या हुआ? २. तथ्य, स्थिति आदि जानने के लिए, प्रायः वाक्य के आरंभ में। जैसे—(क) क्या तुम भी वहाँ जाओगे? (ख) क्या सवेरा हो गया? ३. अभिप्रेत अथवा उद्दिष्ट परंतु अव्यक्त तत्त्व, बात या वस्तु की ओर संकेत करने के लिए। जैसे—मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम्हारे मन में क्या है? ४. आश्चर्य-जनक या विलक्षण प्रसंगों में किसी प्रकार का अतिरेक, आधिक्य, श्रेष्ठता आदि सूचित करने के लिए, क्रि० वि० या अव्यय रूप में। जैसे—(क) वाह! आज तुमने क्या बात कही है कि तबीयत खुश हो गई। (ख) तुम कलकत्ते क्या हो आये, मानों स्वर्ग हो आये! (ग) क्या वह भी चला गया? ५. उपेक्षा-सूचक प्रसंगों में, बहुत ही तुच्छ या हीन। कुछ भी नहीं। जैसे—(क) क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा। (ख) वह हमारे सामने क्या चीज है? (ग) भला अब हम वहाँ क्या जायँ। ६. कुछ भी नहीं। बिलकुल नहीं। जैसे—अब वह क्या बचेगा।

विशेष—(क) यद्यपि यह शब्द सर्वनाम है; फिर भी इसके आगे विभक्ति नहीं लगती। (ख) संज्ञाओं के पहले लगकर यह प्रायः विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होता है।

मुहा०—क्या से क्या होना या हो जाना=जैसा पहले था, उससे बिलकुल भिन्न या विपरीत होना या हो जाना। जैसे—साल-भर में ही लड़का क्या-से-क्या हो गया।

पद— ऐसा क्या=भला यह भी कोई बात है। ऐसा नहीं होना चाहिए। जैसे—ऐसा क्या? कुछ देर तो बैठें। **क्या कुछ** =दे० नीचे 'क्या-क्या'। **क्या-क्या** =(क) बहुत अधिक या सब कुछ। जैसे—उन्होंने क्या-क्या नहीं कहा और क्या-क्या नहीं किया! (अर्थात् प्रायः सभी कुछ कहा और किया) (ख) कैसे-कैसे, परंतु विलक्षण। जैसे—तुम भी क्या-क्या बातें निकालते हो! **क्या...क्या**=दोनों एक-से या बराबर हैं। जैसे—जब काम करना ही है तब क्या दिन और क्या रात! **क्या जानें** =हम नहीं जानते। हमें पता नहीं। जैसे—क्या जानें वह कहाँ चला गया। **क्या नाम**=बात-चीत के संग में, कुछ याद करने, सोचने आदि के अवसरों पर, प्रायः निरर्थक रूप से प्रयुक्त होनेवाला पद। जैसे—हाँ, तो फिर क्या नाम, सब लोग साथ ही चले चलें।

क्यार†—पुं० [सं० केदार] पेड़ का थाला। थाँवला।

वि० संबंधकारक विभक्ति 'केर' का बैसवाड़ी रूप। का। उदा०—मनुआँ देउ महोबै क्यार।

क्यारी—स्त्री० [सं० केदार] १. खेतों, बगीचों आदि में थोड़ी-थोड़ी दूर पर मेड़ों से बनाये हुए वे विभाग जिनमें बीज बोये या पौधे लगाये जाते हैं। २. उक्त प्रकार का वह विभाग जिसमें नमक बनाने के लिए समुद्र का पानी भरते हैं। (बेड)।

क्याली*—स्त्री०=क्यारी।

क्यों—अव्य० [सं० किम्] १. किस अभिप्राय, उद्देश्य या प्रयोजन से। जैसे—तुम वहाँ क्यों जाया करते हो? २. किस अधिकार से। जैसे—तुमने यह फल क्यों तोड़ा? ३. किस कारण से। किस लिए। जैसे—गर्मियों की छुट्टियों में तुम पहाड़ पर क्यों नहीं चले जाते? ४. किस तरह। किस प्रकार। कैसे।

उदा०—इक रसना सोउ लोचन हानि, कही पार क्यों पाउँ।—हितवृंदावनदास।

पद—क्योंकर=किस प्रकार? कैसे? क्योंकि=कारण यह है कि। इसलिए कि। क्यों नहीं=अवश्य ऐसा होना चाहिए अथवा है। क्यों न हो=(क) ठीक है, ऐसा ही होना चाहिए। (ख) वाह! क्या बात है। बहुत अच्छे!

क्योड़ा†—पुं०=केवड़ा।

क्योलारी—स्त्री०=कोइलारी।

क्यों†—अव्य०=क्यों।

क्रंत—पुं० [सं० कान्त] कंत। पति। उदा०—घर घरत नारि क्रंतन क्रमन, कूटि-कूटि दारुन छतिय।—चंदवरदाई।

क्रंति—स्त्री०=कांति (चमक)। उदा०—कहा क्रंति प्राक्रम कहा, सत्ति पयंपहु तंत।—चंदवरदाई।

क्रंदन—पुं० [सं०√क्रंद् (रोना)+ल्युट्—अन] १. विलाप करना। रोना। २. लड़ने-भिड़ने के लिए ललकारना।

क्रंदित—भू० कृ० [सं०√क्रंद्+क्त] ललकारा हुआ। आहूत।

क्रक†—पुं०=कर्क।

क्रकच—पुं० [सं० क्र√कच् (शब्द)+अच्] १. ज्योतिष में वह योग, जिसमें वार और तिथि की संख्या का जोड़ १३ होता है। २. करील का पेड़। ३. ऐसा वृक्ष जो बहुत घना हो। ४. लकड़ी चीरने का आरा। ५. एक प्रकार का पुराना बाजा। ६. गणित में एक नियम, जिसके अनुसार लकड़ी के तख्ते चीरने की मजदूरी निकाली जाती है। ७. एक नरक का नाम।

क्रकच-पत्र—पुं० [ब० स०] सागौन।

क्रकच-पाद—पुं० [ब० स०] गिरगिट।

क्रकच-पृष्ठी—स्त्री० [ब० स०, ङीष्] एक प्रकार की मछली।

क्रकचा—स्त्री० [सं० क्रकच+अच्—टाप्] केतकी।

क्रकर—पुं० [सं० क्र√कृ (करना)+अच्] १. करील का पेड़। २. किलकिला पक्षी। ३. केकड़ा। ४. लकड़ी चीरने का आरा। ५. दरिद्र। निर्धन।

क्रकुच्छंद—पुं० [सं०] भद्र नामक कल्प के पाँच बुद्धों में से पहले बुद्ध।

क्रत—पुं० [सं० क्रतु] यज्ञ।

भू० कृ०=कृत (किया हुआ)।

पुं० [सं० कृत्य] कार्य। काम। उदा०—पंच घरी घर मद्धि, रहै प्रव्वह क्रत भाजन।—चंदवरदाई।

क्रतक—पुं० [सं०] वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

क्रतु—पुं० [सं०√कृ+कतु] १. यज्ञ। २. अश्वमेध यज्ञ। ३. विष्णु। ४. ब्रह्मा के मानस-पुत्र एक प्रजापति। ५. जीव। ६. इंद्रिय। ७. संकल्प या निश्चय। ८. मनोरथ। अभिलाषा। ९. योग्यता। १०. प्रेरणा। ११. प्रज्ञा या विवेक। १२. आषाढ़ महीना। १३. प्लक्ष द्वीप की एक नदी। १४. एक विश्वे देव। १५. कृष्ण के एक पुत्र।

क्रतु-द्रुह—पुं० [सं० क्रतु√द्रुह् (द्वेष करना)+क, उप० स०] असुर।

क्रतु-ध्वंसी (सिन्)—पुं० [सं० क्रतु+√ध्वंस् (नष्ट करना)+णिच्+णिनि, उप० स०] शिव, जिन्होंने दक्ष प्रजापति का यज्ञ-ध्वंस कर दिया था।

क्रतु-पति—पुं० [ष० त०] १. यज्ञ करनेवाला, यजमान। २. विष्णु।

क्रतु-पशु—पुं० [ष० त०] घोड़ा।

क्रतु-पुरुष—पुं०=यज्ञपुरुष।

क्रतुभुक्(ज्)—पुं० [सं० क्रतु√भुज् (खाना)+क्विप्, उप० स०] १. यज्ञ में देवताओं को अर्पण किया जानेवाला पदार्थ। २. देवता।

क्रतुमय—पुं० [सं० क्रतु+मयट्] यज्ञों का प्रेमी और प्रायः या सदा यज्ञ करता रहनेवाला व्यक्ति। उदा०—मनु वह क्रतुमय पुरुष, वही मुख संध्या की लालिमा पिये।—कामायनी।

क्रतु-यष्टि—स्त्री० [उपमित स०] एक प्रकार की चिड़िया।

क्रतु-राज—पुं० [ष० त०] १. ऐसा यज्ञ जो सब यज्ञों में श्रेष्ठ माना जाय। २. राजसूय यज्ञ। ३. अश्वमेध यज्ञ।

क्रतुविक्रयी(यिन्)—पुं० [सं० क्रतु-वि०√क्री (बेचना)+णिनि] यज्ञ करने से प्राप्त होनेवाले पुण्य या फल बेचनेवाला व्यक्ति।

क्रतु-स्थला—स्त्री० [ब० स०, टाप्] यजुर्वेद में उल्लिखित एक अप्सरा।

क्रत्यन्त—पुं० [सं० कृतान्त] यमराज। उदा०— तामस के पिक्खिय प्रबल, क्रोध कलह क्रत्यन्त।—चंदवरदाई।

क्रत्वर्थ—पुं० [सं० क्रतु-अर्थ, नित्यसमास] शास्त्र के नियमों के अनुसार अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखनेवाला यज्ञों का अर्थवाद और विधान।

क्रथ—पुं० १. स्कन्द का एक गण। २. एक असुर। ३. विदर्भ के यादव नरेश का पुत्र और कौशिक का भाई।

क्रथकैशिक—पुं० [सं०] १. धृतराष्ट्र का एक पुत्र। २. एक प्राचीन जनपद। ३. क्रथ और कैशिक के वंशज।

क्रथन—पुं० [सं० √क्रथ् (वध)+ल्युट्—अन] १. काटना। २. वध करना। ३. एक प्रकार की देवयोनि। ४. धृतराष्ट्र का एक पुत्र। ५. एक दानव।

क्रथनक—पुं० [सं० क्रथन+कन्] १. सफेद अगर। २. ऊँट।

क्रद्दम—पुं० [सं० कर्दम] १. कीचड़। २. संकट।

क्रन्न—पुं० [सं० कर्ण] कान। उदा०—दोऊ क्रन्न हस्ती चुवै द्वि भारी।—चंदवरदाई।

पुं० [सं० किरण] किरण। उदा०—एक क्रन्न उदयंत, एक पहरंत सवाइय।—चंदवरदाई।

सर्व०—कौन। उदा०—कहै व्यास संभरी, क्रन्न इह वत्त प्रमानं।—चंदवरदाई।

क्रप—पुं० [सं०] १. दयालु व्यक्ति। २. कौरव-कुमारों के आचार्य कृप।

क्रम—पुं० [सं०√क्रम् (गति)+घञ्] १. डग। पग। २. डग भरने की क्रिया। चलना। ३. पशुओं आदि की वह स्थिति जो छलाँग भरने अथवा शत्रु पर आक्रमण करने से पहले बनती है। ४. कोई नियत या निश्चित पद्धति या योजना। तरतीब। सिलसिला। (आर्डर)।

पद—क्रम-क्रम से=(क) बारी-बारी से। (ख) धीरे-धीरे।

५. उचित रूप से तथा ठीक प्रकार से काम करने का ढंग। ६. वेद-पाठ की एक विशिष्ट प्रणाली। ७. नियम और विधान के अनुसार

एक के बाद ठीक तरह से 'दिक कर्म करने की व्यवस्था। ८. साहित्य में एक अलंकार, जिसमें पहले कुछ वस्तुओं आदि का एक क्रम या सिलसिले से उल्लेख होता है और आगे ठीक इसी क्रम या सिलसिले से उन वस्तुओं से संबंध रखनेवाले कार्यों या बातों का उल्लेख होता है। यथा-संख्य। (रिलेटिव आर्डर) ९. वामन भगवान् का एक नाम। १०. कल्प। ११. शक्ति।

*पुं० दे० 'कर्म'। जैसे—मन-क्रम-वचन।

क्रमक—वि० [सं०√क्रम्+वुन्—अक] क्रम=वेदपाठ का अध्ययन करने वाला।

पुं० [क्रम+कन्] १. एक ही प्रकार या वर्ग की चीजों का कुछ दूर तक चलनेवाला क्रम। माला। (सिरीज) २. किसी वस्तु या व्यक्ति के आने-जाने का निश्चित या स्थिर मार्ग। जैसे—नदी का क्रमक, वायुयान का क्रमक। (कोर्स)

क्रम-जटा—स्त्री० [उपमित स०] वेदपाठ की शैली।

क्रमण—पुं० [सं० √क्रम्+ल्युट्—अन] १. पैर बढ़ाने या चलने की क्रिया या भाव। २. एक स्थान या स्थिति से दूसरे स्थान या स्थिति में जाना। ३. अतिक्रमण या उल्लंघन करना। ४. पारे के अठारह संस्कारों में से एक।(वैद्यक)

क्रमतः (स्)—अ० [सं० क्रम+तस्] १. क्रम-क्रम से थोड़ा-थोड़ा करके। धीरे-धीरे। (ग्रैजुअली) २. जो क्रम लगा हो उसी के अनुसार। किसी क्रम विशेष से। (सवसेसिवली)

क्रम-दंडक—पुं० [उपमित स०] वेदों के पाठ की शैली या ढंग।

क्रमना—अ० [सं० क्रम] १. क्रम लगाना। २. क्रम से चलना। उदा०—क्रमिया अति ऊछाह करेउ।—प्रिथीराज।

क्रमनासा—स्त्री०=कर्मनाशा।

क्रम-पद—पुं० [उपमित स०] वेद-पाठ का एक प्रकार या ढंग।

क्रम-परिवर्तन—पुं० [स० त०] क्रम में आगे से पीछे या पीछे से आगे होना। विपर्य्यय। (ट्रांसपोजीशन)

क्रम-पाठ—पुं० [प० त०] संहिता और पाद दोनों को मिला कर किया जाने वाला वेद-पाठ।

क्रम-पूरक—पुं० [प० त०] मौलसिरी का पेड़।

क्रम-बद्ध—वि० [स० त०] १. जो किसी क्रम या सिलसिले से न लगा हुआ हो। २. जिसका क्रम लगाया जा चुका हो।

क्रम-भंग—पुं० [प० त०] किसी लगे हुए क्रम या बँधे हुए सिलसिले में होने वाला उलट-फेर। व्यक्तिक्रम। (डीरेंजमेन्ट)

क्रमशः (स्)—अव्य० [सं० क्रम+शस्] १. नियत क्रम के अनुसार। सिलसिलेवार। २. एक-एक करके। बारी-बारी से। ३. थोड़ा-थोड़ा करके। क्रमतः।

क्रम-संख्या—स्त्री० [मध्य० स०] एक क्रम से लिखे जानेवाले नामों, बातों आदि के आरंभ में लिखी जानेवाली संख्या जो उन सब के क्रम की सूचक होती है। (सीरियल नंबर)

क्रम-संन्यास—पुं० [मध्य० स०] यथाक्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों में रह चुकने के बाद ग्रहण किया जानेवाला संन्यास। (अचानक किसी आश्रम से ग्रहण किये जानेवाले संन्यास से भिन्न।)

क्रम-सूचक—वि० [प० त०] १. जिससे कोई क्रम, परंपरा या श्रृंखला सूचित होती हो। २. (अंक या संख्या वाचक शब्द) जो क्रम के विचार से स्थान का सूचक हो। (आर्डिनल) जैसे—दूसरा, पाँचवाँ, सातवाँ आदि।

क्रमांक—पुं० [सं० क्रम-अंक, मध्य० स०] = क्रम-संख्या।

क्रमागत—वि० [सं० क्रम-आगत, तृ० त०] १. ठीक क्रम या बारी से आया हुआ। २. परंपरागत। ३. जो क्रम-क्रम से होता आ रहा हो और आगे भी इसी प्रकार कुछ समय तक होने को हो। (कन्टिन्यूड)।

क्रमानुकूल—क्रि० वि० [सं० क्रम-अनुकूल, प० त०] १. जो किसी क्रम के अनुकूल या सिलसिले के मुताबिक हो। सिलसिले-वार। २. दे० 'क्रमात्'।

क्रमानुसार—क्रि० वि० [सं० क्रम-अनुसार, प० त०] क्रम-क्रम से। क्रमात्।

क्रमान्वय—क्रि० वि० [सं० क्रम-अन्वय, प० त०] एक-एक करके। सिलसिले से।

क्रमि—पुं० [सं०√क्रम्+इन्] १. कीड़ा। कृमि। २. पेट में कीड़े पड़ने का रोग।

क्रमिक—वि० [सं० क्रम+ठन्—इक] १. किसी क्रम से चलने या होनेवाला। क्रम-युक्त। जैसे—वंशानुक्रमिक। २. निश्चित क्रम के अनुसार लगातार एक-एक करके होनेवाला। एक के बाद एक आने या होनेवाला। ३. किसी एक के फलस्वरूप तुरंत उसके बाद होनेवाला। (कॉन्सिक्यूटिव) ४. धीरे-धीरे या क्रम-क्रम से होनेवाला (ग्रैजुअल) ५. जिसमें उतार-चढ़ाव, छोटाई-बड़ाई आदि का क्रम बना या लगा हो (ग्रेजुएटेड) जैसे—वेतन का क्रमिक मान।

क्रमु (क)—पु० [सं० √क्रम्+उण्+कन्] १. सुपारी का वृक्ष। २. शहतूत का पेड़। ३. नागरमोथा।

क्रमुकी—स्त्री० [सं० क्रमुक+ङीप्] सुपारी।

क्रमेल (क)—पुं० [सं० क्रम√ एल् (गति)+अच्+कन्] १. ऊँट। २. शुतुर।

क्रमोद्वेग—पुं० [क्रम-उद्वेग, ब० स०] बैल।

क्रम्य—पु० [सं० कर्म] कर्म। उदा०—अब मुझ क्रम्य सुफलियं, दिक्खे सुफल रूप तपसीयं।—चंदबरदाई।

क्रम्यना—स० [सं० क्रमण] १. लाँघना। उल्लंघन करना। २. आक्रमण करना। ३. चलना।

क्रय—पुं० [सं० √क्री (खरीदना)+अच्] मोल लेने या खरीदने की क्रिया या भाव।

क्रयण—पुं० [सं० √क्री+ल्युट्—अन] खरीदने का काम। खरीद।

क्रय-पंजी—स्त्री० [प० त०] वही या रोजनामचा, जिसमें प्रतिदिन की खरीद का ब्योरा हो। (परचेजेज जर्नल)।

क्रय-प्रपंजी—स्त्री० [प० त०] वह वही, जिसमें क्रय-पंजी से समय-समय पर खरीदी गई वस्तुओं का अलग-अलग विवरण तैयार किया जाता है। (परचेजेज लेजर)

क्रय-लेख्य—पुं० [प० त०] खरीदने-बेचने के प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला लेख्य। बैनामा। (सेल डीड)।

क्रय-लेख्यपत्र—पुं० [प० त०] पदार्थ के क्रय-विक्रय का सूचक लेख्य। बैनामा।

क्रय-विक्रय—पुं० [द्व० स०] खरीदने और बेचने का कार्य या व्यापार।

क्रयविक्रयानुशय—पुं० [सं० क्रयविक्रय-अनुशय, स० त०] वह मुकदमा या विवाद जो चीजों के खरीदे या बेचे जाने की बातों से संबंध रखता हो।

क्रय-विक्रयिक—पुं० [सं० क्रयविक्रय+ठन्—इक] चीजें खरीदकर बेचने वाला। रोजगारी। व्यापारी।

क्रयारोह—पुं० [क्रय-आरोह, ब० स०] वह स्थान जहाँ क्रय की हुई वस्तुएँ बेचने के लिए रखी जाती हैं। बाजार। हाट।

क्रयिक—वि० [सं० क्रय+ठन्—इक] खरीदनेवाला।

पुं० व्यवसायी। व्यापारी।

क्रयिभ—पुं० [सं०] वस्तु के क्रय-विक्रय पर लगनेवाला कर (कौ०)।

क्रयी (यिन्)—पुं० [सं० क्रय+इनि] १. क्रय करने या खरीदनेवाला व्यक्ति। खरीददार। ग्राहक। २. व्यापारी।

क्रय्य—वि० [सं० क्री+यत्, नि० सिद्धि] (पदार्थ) जो खरीदा जाने को हो अथवा खरीदे जाने के योग्य हो।

क्रवान* —पुं०=कृपाण।

क्रव्य—पुं० [सं० √क्लव् (भय)+ण्यत्, र=ल] १. रद्दी या सड़ा हुआ मांस। २. मांस। गोश्त।

क्रव्याद—वि० [सं० क्रव्य√अद् (खाना)+अण्] सड़ा हुआ मांस अथवा शव खानेवाला।

पुं० चिता की आग।

क्रशित—वि०=कृश।

क्रांत—वि० [सं० √क्रम् (गति) +क्त] १. जिसके ऊपर से होकर अथवा जिसे लाँघ कर कोई गया है। लाँघा या पार किया हुआ। २. जिससे आगे कोई दूसरा बढ़ गया हो। ३. जिसे किसी ने अभिभूत या वश में कर लिया हो। दबाया या दबोचा हुआ।

पुं० १. पैर। २. घोड़ा।

क्रांतदर्शी (र्शिन्)—पुं० [सं० क्रांत√दृश् (देखना)+णिनि] १. त्रिकाल दर्शी। २. ईश्वर। परमेश्वर।

क्रांति—स्त्री० [सं० √क्रम्+क्तिन्] १. किसी को लाँघकर अथवा किसी को अभिभूत करके उससे आगे बढ़ने या उस पर विजय प्राप्त करने की क्रिया या भाव। २. राजनीति में वह स्थिति जिसमें विद्रोहियों ने सफलतापूर्वक शासन की बागडोर अपने हाथों में लेली हो। राज्य-क्रांति। ३. कोई ऐसा बहुत बड़ा परिवर्तन जिससे किसी चीज का स्वरूप बिलकुल बदल जाय। जैसे—औद्योगिक क्रांति। (रिवोल्यूशन—उक्त दो अर्थों में)। ४. पृथ्वी के चारों ओर सूर्य के घूमने का मार्ग। ५. नक्षत्रों की पारस्परिक दूरी।

क्रांति-कक्ष—पुं०=क्रांति-वृत्त।

क्रांति-क्षेत्र—पुं० [प० त०] गणित में वह क्षेत्र जो ग्रहों की क्रांति निकालने के लिए बनाया जाता है।

क्रांतिज्या—स्त्री०=दे० 'ज्या'।

क्रांति-पात—पुं० [प० त०] वे विन्दु जिन पर क्रांति-वलय और खगोलीय विषुवत की रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं।

क्रांति-भाग—पुं० [प० त०] खगोलीय नाड़ी-मंडल से क्रांति-मंडल के किसी विन्दु की दूरी।

क्रांति-मंडल—पुं० [प० त०]=क्रांति-वृत्त।

क्रांति-वलय—पुं०=क्रांति-वृत्त।

क्रांतिवादी (दिन्)—पुं० [सं० क्रांति√वद् (बोलना)+णिनि] वह जो किसी अथवा किसी सम्यक् व्यवस्था में बहुत बड़ा परिवर्तन करना चाहता हो।

क्रांति-वृत्त—स्त्री० [प० त०] वह क्रमक या मार्ग जिस पर चलता हुआ सूर्य भ्रमण करता है।

क्रांति-साम्य—पुं० [प० त०] ग्रहों की क्रांति में होनेवाला साम्य (ज्योति)।

क्राकचिक—पुं० [सं० क्रकच+ठक्—इक] लकड़ी चीरनेवाला मजदूर।

क्राथ—पुं० [सं √क्रथ् (मारना) +घञ्] १. वध। हत्या। २. एक राजा जो राहुग्रह के अवतार माने जाते हैं। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रायकायिक—पुं०=क्रयिक।

क्रिकट—पुं० [अं०] दे० 'गेंद बल्ला' (खेल)।

क्रिचयन—पुं० [सं० कृच्छ्चांद्रायण] चांद्रायण व्रत।

क्रिमि—पुं० [सं० √क्रम्+इन्, इत्व] कृमि।

क्रिमिघ्नी—स्त्री० [सं० क्रिमि√हन् (मारना)+टक्, ङीप्] सोमराजी।

क्रिमिज—पुं०, वि० [सं० क्रिमि√जन् (उत्पन्न करना)+ड]=कृमिज।

क्रिमिजा—स्त्री० [सं० क्रिमिज+टाप्] लाह। लाख।

क्रिमिनल—वि० १=आपराधिक। २=अपराधशील।

क्रिमि-भक्ष—पुं० [प०त०] एक नरक का नाम।

क्रिमि-शैल—पुं० [सं० मध्य० स०]=वल्मीक।

क्रिय—वि० [सं० समास में] कुछ करता हुआ या करनेवाला। क्रिया-शील। जैसे—निष्क्रिय, सक्रिय आदि।

पुं०=मेष राशि।

क्रियमाण—वि० [सं० √कृ (करना)+शानच्] १. जो किया जा रहा हो। २. सक्रिय।

पुं० कर्म के चार प्रकारों में से एक। वे कर्म जो प्रस्तुत काल में किये जा रहे हों।

क्रिया—स्त्री० [सं० कृ+श, रिङ आदेश] १. कोई कार्य चलते या होते रहने की अवस्था या भाव। २. कोई ऐसा विशिष्ट कार्य जो किया जा रहा हो या किया जाता हो। जैसे—अन्त्येष्टि क्रिया। ३. कोई काम करने का ढंग, तरीका या विधि। जैसे—पारे की शोधन क्रिया। (एक्शन, उक्त सभी अर्थों में) ४. वे सब कार्य जो नित्य या नैमित्तिक रूप से किए जाते हों। जैसे—नित्य क्रिया=शौच, स्नान, पूजन आदि। ५. उपचार, चिकित्सा, प्रायश्चित्त, शिक्षा आदि के रूप अथवा इनके संबंध में नियम और विधि के अनुसार होनेवाले कार्य। जैसे—शस्त्र-क्रिया, व्यवहार-क्रिया (मुकदमे की कार्रवाई आदि)। ६. व्याकरण में वे शब्द जो किसी कार्य, घटना आदि के होने या किये जाने के वाचक होते हैं (वर्ब) जैसे—आना, खाना, जलना, पीना, बोलना, हँसना आदि।

क्रिया-कलाप—पुं० [प० त०] १. शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट संस्कार और कर्म। २. किसी व्यक्ति के द्वारा किसी क्षेत्र या समय में होने वाले कार्य। जैसे—उस ऐंद्रजालिक के क्रियाकलाप देखकर सब लोग दंग रह गए।

क्रिया-कांड—पुं० [ष० त०] वेदों के वे विभाग अथवा वे शास्त्र जिनमें कर्म-कांड के विधान बतलाये गये हैं।

क्रियाकार—पुं० [सं० क्रिया√कृ+अण्] क्रिया या काम करनेवाला।

क्रिया-चतुर—पुं० [सं० त०] साहित्य में शृंगार-रस का आलंबन वह नायक जो अनेक प्रकार के कौशल या छल करके अपना कार्य सिद्ध करने में दक्ष हो।

क्रियातिपत्ति—पुं० [सं० क्रिया-अतिपत्ति, ष० त०] साहित्य में एक काव्यालंकार जिसमें प्रकृत से भिन्न कल्पना करके किसी विषय का वर्णन किया जाता है।

क्रियात्मक—वि० [सं० क्रिया-आत्मन्, ब० स०, कप्] १. क्रिया या कार्य के रूप में आया या किया हुआ। २. जिसका क्रिया या कार्य के रूप में उपयोग या व्यवहार हो सकता हो। (प्रैक्टिकल)

क्रियाद्वेषी (षिन्)—पुं० [सं० क्रिया√द्विष् (द्वेष करना)+णिनि] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी जो प्रमाण, साक्षी आदि को बिलकुल न मानता हो।

क्रिया-निष्ठ—वि० [ब० स०] १. शास्त्रों में बतलाये हुए धर्म-कार्य आदि ठीक तरह से और नियमित रूप से करनेवाला। २. अपने कर्त्तव्य या काम में ठीक तरह लगा रहने और उसका पूरा निर्वाह करनेवाला।

क्रियापंथ—पुं०=कर्मकांड।

क्रिया-पटु—वि० [स० त०] कार्यकुशल।

क्रिया-पथ—पुं० [ष० त०] उपचार-विधि।

क्रिया-पद—पुं० [मध्य० स०] १. व्याकरण में, क्रिया का वाचक पद या शब्द। २. शब्दों का ऐसा पद या समूह जो क्रिया के रूप में प्रयुक्त हुआ हो।

क्रियापवर्ग—पुं० [सं० क्रिया-अपवर्ग, ष० त०] कार्य का अन्त। समाप्ति।

क्रिया-पाद—पुं० [उपमित स०] १. धर्म-शास्त्र में व्यवहार या मुकदमे के चार पादों (अंगों) में से एक जिसमें प्रतिवादी की ओर से वादी के अभियोग का उत्तर मिल चुकने पर वादी अपने प्रमाण, साक्षी आदि उपस्थित करता है। २. शैव-दर्शन में दीक्षा-विधि का अंगों और उपांगों सहित प्रदर्शन।

क्रिया-फल—पुं० [ष० त०] १. यज्ञ आदि कर्मों से प्राप्त होनेवाला फल जो पुण्य, स्वर्ग-प्राप्ति आदि के रूप में होता है। २. वेदांत में कर्म के चार फल या परिणाम। यथा—उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति।

क्रिया-ब्रह्म—पुं० [कर्म० स०] द्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म का वह रूप जो सब प्रकार की क्रियाएँ करनेवाला माना जाता है।

क्रियाभ्युपगम—पुं० [सं० क्रिया-अभ्युपगम, ष० त०] खेत के मालिक तथा किसान में होनेवाला वह समझौता जिसके अनुसार किसान को फसल का आधा भाग खेत के स्वामी को देना होता है। अधिया। (मनुस्मृति)

क्रिया-मातृका-दोष—पुं० [ष० त०] बालकों का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म से दसवें दिन, मास या वर्ष ज्वर, कंप और अधिक मलमूत्र होता है।

क्रिया-योग—पुं० [तृ० त०] १. कार्य या क्रिया के साथ होनेवाला संबंध। २. पुराणों के अनुसार देव-पूजा और मंदिर-निर्माण आदि धार्मिक-कार्य। ३. योग के तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान तीन क्रियात्मक रूप। (योग-सूत्र) ४. व्याकरण में शब्दों का क्रिया के साथ होनेवाला योग या संबंध।

क्रियार्थ—पुं० [सं० क्रिया-अर्थ, ब० स०] यज्ञ आदि क्रियाओं और आचरण आदि कर्त्तव्यों के संबंध में प्रमाण या विधि के रूप में माने जानेवाले वाक्य।

क्रियार्थक-संज्ञा—स्त्री० [क्रिया-अर्थक ब० स०, क्रियार्थक-संज्ञा कर्म० स०] व्याकरण में वह संज्ञा जो किसी क्रिया या कार्य का भी अर्थ देती हो। जैसे—कहना, खाना, सोना आदि। (वर्बल नाउन)

क्रिया-लक्षण-योग—पुं० [ष० त०] जप, ध्यान आदि के द्वारा अपनी आत्मा का ईश्वर के साथ संबंध स्थापित करना।

क्रिया-लोप—पुं० [ष० त०] शास्त्र-विहित नित्य-नैमित्तिक कर्मों का अभाव अर्थात् न किया जाना।

क्रियावसन्न—पुं० [क्रिया-अवसन्न, तृ० त०] साक्षी या प्रमाण के अभाव में हार जानेवाला वादी।

क्रिया-वाचक—वि० [ष० त०] क्रिया का अर्थ देनेवाला (पद या शब्द)।

क्रियावाची (चिन्)—वि० [सं० क्रिया√वच् (बोलना)+णिनि]= क्रियावाचक।

क्रियावादी (दिन्)—पुं० [सं० क्रिया√वद् (बोलना)+णिनि] न्यायालय में अभियोग लेकर आनेवाला व्यक्ति। अभियोग (मुकदमा) चलानेवाला व्यक्ति।

क्रियावान्—वि० [सं० क्रिया+मतुप्, वत्व] १. सक्रिय। २. कर्मनिष्ठ।

क्रियाविदग्धा—स्त्री० [स० त०] साहित्य में वह नायिका जो कुछ विशिष्ट क्रियाओं या कार्यों के द्वारा नायक पर अपना अभिप्राय या भाव प्रकट करे।

क्रिया-विशेषण—पुं० [ष० त०] व्याकरण में ऐसा शब्द जिससे किसी क्रिया अथवा विशेषण के संबंध में कोई विशिष्ट बात सूचित होती हो अथवा उसके काल, प्रकार, रूप, स्थान आदि का बोध होता हो। जैसे—'बहुत बड़ा' में का 'बहुत'; 'कब चलना है?' में का 'कब' अथवा 'वे अचानक आ पहुँचे' में का 'अचानक' क्रिया विशेषण है।

क्रिया-शक्ति—स्त्री० [ष० त०] १. कोई कार्य कर सकने की शक्ति या समर्थता। २. [कर्म० स०] वेदांत में, ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रह्मांड की सृष्टि का होना माना जाता है।

क्रिया-शील—वि० [ब० स०] १. क्रिया या कार्यों में लगा रहने वाला। २. दे० 'कर्म-निष्ठ'।

क्रिया-संक्रांति—स्त्री० [ष० त०] शिक्षण। विद्यादान।

क्रिया-स्नान—पुं० [मध्य० स०] धर्मशास्त्र की विधि से किया जानेवाला ऐसा स्नान जिससे तीर्थ-स्नान का फल मिलता है।

क्रियेंद्रिय—स्त्री० [क्रिया-इंद्रिय, मध्य० स०] कर्मेन्द्रिय (दे०)।

क्रिस†—वि० [स्त्री० क्रसा]=कृश। उदा०—क्रिसा अंग मापित करल।—प्रिथीराज।

क्रिसल†—पुं०=कृष्ण। (राज०) उदा०—क्रिसल त्रिभंगी तन्न, धरयौ किस्सोरति रूपं।—चंदवरदाई।

क्रिस्तान—पुं० [अं० क्रिश्चियन] ईसा के मत का अनुयायी। ईसाई।

क्रिस्तानी—वि० [हिं० क्रिस्तान+ई (प्रत्य०)] १. क्रिस्तान-संबंधी। २. ईसाई धर्म से संबंध रखनेवाला।

क्रीट†—पुं०=किरीट।

क्रीड—पुं०=क्रीड़ा।

क्रीडक—वि० [सं०√क्रीड् (खेलना)+ण्वुल्—अक] १. क्रीड़ा करनेवाला। २. खेलाड़ी।

क्रीडन—पुं० [सं० √क्रीड्+ल्युट्—अन] क्रीड़ा करने या खेलने का काम।

क्रीडनक—पुं० [सं० क्रीडन+कन्] १. खिलौना। २. खेल-तमाशा। ३. खेलवाड़। उदा०—किंतु क्रीडनक का लोगों के लिए पक्षी का-सा जीवन।—निराला।

क्रीडनीयक—पुं० [सं०√क्रीड्+अनीयर्+कन्]=क्रीडनक।

क्रीड़ना*—अ० [सं० क्रीडन] १. क्रीड़ा करना। २. खेलना।

क्रीडा—स्त्री० [सं० √क्रीड्+अ—टाप्] १. मन बहलाने या समय बिताने के लिए किया जानेवाला कोई मनोरंजक काम। आमोद-प्रमोद। (प्ले) २. ताल का एक मुख्य भेद। ३. एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु रहता है।
वि० केवल क्रीड़ा के विचार से किया, बनाया या रखा हुआ। (यौ० के आरंभ में)। जैसे—क्रीड़ा-कोप, क्रीड़ा-पर्वत, क्रीड़ा-मृग आदि।

क्रीडा-कानन—पुं० [ष० त०] वह उद्यान जहाँ लोग क्रीड़ा, मनो-विनोद आदि के लिए जाते हों।

क्रीडा-कोप—पुं० [ष० त०] केवल किसी को चिढ़ाने के लिए किया जानेवाला दिखावटी गुस्सा।

क्रीडा-कौतुक—पुं० [ष० त०] खेल-कूद। आमोद-प्रमोद।

क्रीडा-गृह—पुं० [ष० त०] १. वह स्थान जहाँ लोग केवल क्रीड़ा करने जाते हों। २. केलि-मंदिर।

क्रीडा-चक्र—पुं० [ष० त०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में छः यगण होते हैं। महामोदकारी।

क्रीड़ानक—पुं० [सं० क्रीडा से] क्रीड़ा-स्थल। उदा०—क्रीड़ानक यह विश्व महत् जिसकी इच्छा का।—पंत।

क्रीडानारी—स्त्री० [ष० त०] वेश्या।

क्रीडा-पर्वत—पुं० [ष० त०] वाटिका आदि में बनाया जानेवाला नकली पहाड़।

क्रीडा-मृग—पुं० [ष० त०] केवल क्रीड़ा के लिए या शौक से पाला हुआ पशु।

क्रीडा-यान—पुं०=क्रीडा-रथ।

क्रीडा-रत्न—पुं० [ष० त०] रति-क्रिया।

क्रीडा-रथ—पुं० [ष० त०] उत्सव आदि के समय, फूलों से सजाया हुआ रथ।

क्रीडा-वन—पुं०=क्रीडा-कानन।

क्रीडा-शैल—पुं०=क्रीडा-पर्वत।

क्रीडा-स्थल—पुं० [ष० त०] १. वह स्थान जहाँ किसी ने क्रीड़ाएँ की हों। जैसे—मथुरा भगवान् कृष्णचन्द्र का क्रीड़ा-स्थल है। २. वह स्थान जहाँ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ या खेल होते हों। खेलने की जगह या मैदान। (प्ले-ग्राउन्ड)

क्रीडित—वि० [सं०√क्रीड्+क्त] १. क्रीड़ा के रूप में किया हुआ। खेला हुआ। २. क्रीड़ा में बिताया हुआ। उदा०—क्रीड़ितवय विद्याव्ययनांतर है संस्थित।—निराला।

क्रीत—भू० कृ० [सं०√क्री (खरीदना)+क्त] क्रय किया हुआ। खरीदा या मोल लिया हुआ।
पुं० १. पंद्रह प्रकार के दासों में से वह जो मोल लेकर दास बनाया गया हो। २. दे० 'क्रीतक'।
*स्त्री०=कीर्त्ति।

क्रीतक—पुं० [सं० क्रीत+कन्] मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से वह जो किसी से मोल लेकर अपना बनाया गया हो।

क्रीतानुशय—पुं० [सं० क्रीत-अनुशय, स० त०] कोई वस्तु खरीद चुकने पर उसे लौटाने के लिए होनेवाला विवाद। (धर्मशास्त्र)

क्रीर* —स्त्री०=क्रीड़ा।

क्रीलना—अ०=क्रीड़ा करना। उदा०—हम पितु पुरिखा पुव्व, नृपति कल्हन वन क्रीलत।—चंदवरदाई।

क्रीला—स्त्री०=क्रीड़ा।

क्रुद्ध—वि० [सं०√क्रुध् (क्रोध करना)+क्त] १. जिसे क्रोध हुआ हो या जो क्रोध कर रहा हो। २. जिसके मन में किसी के प्रति क्रोध हो।

क्रुमुक—पुं० [सं० क्रमुक, पृषो० सिद्धि] सुपारी।

क्रुश्वा (श्वन्)—पुं० [सं०√क्रुश् (रोना)+क्वनिप्] शृगाल। गीदड़।

क्रुष्ट—वि० [सं०√क्रुश्+क्त] १. बुलाया हुआ। आहूत। २. जिसे झिड़का गया हो।

क्रूर—वि० [सं०√कृत् (काटना)+रक्, क्रू आदेश] [स्त्री० क्रूरा] १.दूसरे को कष्ट पहुँचाकर संतुष्ट या सुखी होनेवाला। २. निर्मम तथा हिंसक कार्य करनेवाला। ३. दया-हीन। निर्दय। निष्ठुर। ४. नीच बुरा। ५. तीखा। तीक्ष्ण। ६. कड़ा। कठिन। ७. गरम। उष्ण। ८. घोर। (डि०)
पुं० [सं०] १. पका हुआ चावल। भात। २. लाल फूल का कनेर। ३. भूतांकुश। गाव-जर्वां। ४. बाज पक्षी। ५. सफेद चील। कंका। ६. ज्योतिष में, विषम राशियाँ। ७. दे० 'क्रूर ग्रह'।

क्रूर-कर्मा (र्मन्)—पुं० [ब० स०] १. वह व्यक्ति, जो क्रूरतापूर्ण बुरे काम करता हो। २. तितलौकी। ३. अर्कपुष्पी। सूरजमुखी।

क्रूर-कोष्ठ—वि० [ब० स०] (रोगी) जिसका पेट तेज दस्तावर दवाओं से भी साफ न होता हो। कड़े कोठे या पेटवाला।

क्रूर-गंध—पुं० [ब० स०] गंधक।

क्रूर-ग्रह—पुं० [कर्म० स०] राहु, केतु, शनि, मंगल और रवि ये पाँचों ग्रह जिन्हें पाप-ग्रह भी कहते हैं।

क्रूर-चरित—वि० [ब० स०] क्रूर या निर्दयतापूर्ण कार्य करनेवाला।

क्रूर-चेष्टित—वि०=क्रूर चरित।

क्रूरता—स्त्री० [सं० क्रूर+तल्—टाप्] १. क्रूर होने की अवस्था या भाव। २. कठोर तथा बुरे काम करने की क्षमता या वृत्ति। ३. दुष्टता।

क्रूर-दंती—स्त्री० [सं० ब० स०] दुर्गा का एक नाम।

क्रूर-दिन—पुं० [कर्म० स०] फलित ज्योतिष में शनि, मंगल आदि कुछ विशिष्ट दिन जो क्रूर माने जाते हैं।

क्रूर-दृक् (ग्, श्)—वि० [ब० स०] १. जिसकी दृष्टि से क्रूरता झलकती या टपकती हो। २. खल। दुष्ट।

पुं० १. मंगल ग्रह। २. शनि ग्रह।
क्रूर-धूर्त—पुं० [कर्म० स०] काला धतूरा।
क्रूर-रव—पुं० [ब० स०] शृगाल। गीदड़।
क्रूर-रवी (विन्)—पुं० [सं०कर्म० स०] द्रोणकाक। डोम कौआ।
क्रूरा—स्त्री० [सं० क्रूर+टाप्] लाल फूलवाली पुनर्नवा। गदहपुन्ना। २. कौड़ी। ३. क्रूर स्वभाववाली स्त्री।
क्रूराकृति—वि० [सं० क्रूर-आकृति, ब० स०] डरावनी या भयानक आकृतिवाला।
पुं० रावण।
क्रूरात्मा (त्मन्)—वि० [सं० क्रूर-आत्मन्, ब० स०] दुष्ट प्रकृति या दुःस्वभाववाला।
क्रूस—पुं० [अं० क्रॉस] धन चिन्ह (+) की तरह का ईसाइयों का धर्म-चिन्ह।
क्रेणी—स्त्री० [सं०√क्री=नि]=क्रय।
क्रेता (तृ)—पुं० [सं०√क्री+तृच्] वह जो दूसरों से वस्तुएँ मोल लेता हो। खरीदनेवाला।
क्रेतृ-संघर्ष—पुं० [सं० प० त०] माल खरीदनेवालों की चढ़ा-ऊपरी या होड़। (कौ०)
क्रेय—वि० [सं०√क्री+यत्] क्रय किये जाने या खरीदे जाने के योग्य।
क्रैडिन—पुं० [सं० क्रीडिन्+अण्] साकमेध यज्ञ में मरुत देवता के उद्देश से दिया जानेवाला हवि।
क्रोड—स्त्री० [सं०√क्रोड् (घना होना)+घञ्] १. वह अवकाश जो किसी को आलिंगन करने के समय दोनों बाहों के बीच में पड़ता है। २. पेट के आगे और जाँघों के ऊपर का भाग जिस पर बच्चे बैठाये जाते हैं। गोद। ३. किसी वस्तु के बीच का भाग। ४. पेड़ के तने में होनेवाला खोखला भाग। ५. शनिग्रह। ६. सूअर। शूकर। ७. वाराही कंद। गेंठी।
क्रोड-कन्या—स्त्री० [प० त०] वाराही कंद।
क्रोड-चूड़ा—स्त्री० [ब० स०] बड़ी गोरखमुंडी। महाश्रावणिका।
क्रोड-पत्र—पुं० [मध्य० स०] किसी सामयिक पत्र के साथ छापकर बाँटा जानेवाला पत्र। अतिरिक्त-पत्र। (सप्लीमेंट)
क्रोड-पर्णी—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] भटकटैया। कटेरी।
क्रोड-पाद—पुं० [ब० स०] कछुआ।
क्रोड-पाली—स्त्री० [सं० क्रोड√पाल् (रक्षा करना)+णिच्+अच्—ङीप्] वक्षःस्थल। छाती।
क्रोड-मुख—पुं० [ब० स०] गैंडा।
क्रोडांक—पुं० [सं० क्रोड-अंक, ब० स०] कच्छप। कछुआ।
क्रोडांघ्रि—पुं० [सं० क्रोड-अंघ्रि, ब० स०]=क्रोडांक।
क्रोडीकरण—पुं० [सं० क्रोड+च्वि√कृ (करना)+ल्युट्—अन, ईत्व] १. आलिंगन करना। गले लगाना। २. गोद में बैठाना या लेना।
क्रोडी-मुख—पुं० [सं० ब० स०] गैंड़ा।
क्रोडेष्टा—स्त्री० [सं० क्रोड-इष्टा, प० त०] मोथा। मुस्तक।
क्रोध—पुं० [सं०√क्रुध् (कुपित होना)+घञ्] [वि० क्रुद्ध] १. कोई अनुचित, अन्यायपूर्ण अथवा हानिकारक काम या बात होने पर मन में उत्पन्न होनेवाला वह उग्र तथा तीक्ष्ण मनोविकार जिसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य उस अनुचित या हानिकारक काम या बात करनेवाले को कुछ कठोर दंड देना चाहता है। कोप। गुस्सा। (ऐंगर) २. साहित्य में उक्त मनोविकार का वह रूप जो रौद्र-रस का स्थायी भाव माना गया है। ३. साठ संवत्सरों में से उनसठवें संवत्सर का नाम।
क्रोधज—वि० [सं० क्रोध√जन् (उत्पन्न होना)+ड] क्रोध से उत्पन्न होनेवाला।
पुं० मोह जिसकी उत्पत्ति क्रोध से मानी गई है।
क्रोधना—वि० [सं० √क्रुध्+युच्—अन—टाप्] क्रोधी स्वभाववाली।
*अ० क्रुद्ध होकर किसी पर बिगड़ना।
क्रोध-भवन—पुं०=कोप भवन।
क्रोध-मूर्च्छित—वि० [तृ० त०] जो क्रोध में आकर आपे से बाहर हो गया हो।
क्रोधवंत—वि० [सं० क्रोधवत्] १. क्रोध करनेवाला। २. क्रोध या गुस्से से भरा हुआ।
क्रोध-वश—क्रि० वि० [प० त०] क्रोध में होने के कारण।
पुं० १. एक राक्षस का नाम। २. काद्रवेय नामक साँपों में से एक साँप का नाम।
क्रोध-वशा—स्त्री० [प० त०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या।
क्रोधहा (हन्)—पुं० [सं० क्रोध √हन् (मारना)+क्विप्] विष्णु।
क्रोधा—स्त्री० [सं० क्रोध+अच्—टाप्] दक्ष प्रजापति की एक कन्या।
क्रोधित*—वि० [हिं० क्रोध से] जो क्रोध से भरा हो। क्रुद्ध।
क्रोधी (धिन्)—वि० [सं० क्रोध+इनि] [स्त्री० क्रोधिनी] जिसे बहुत जल्दी अथवा बिना विशेष बात के गुस्सा आ जाता हो। प्रायः क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।
पुं० क्रोध नामक संवत्सर।
स्त्री० संगीत में गांधार की दो श्रुतियों में से अंतिम।
क्रोश—पुं० [सं० √क्रुश्+घञ्] कोस (दूरी की नाप)।
क्रोश-ताल—पुं० [ब० स०] ढक्का नाम का बाजा।
क्रोशन—पुं० [सं०√क्रुश्+ल्युट्—अन] १. चिल्लाने की क्रिया या भाव। २. चिल्लाहट।
क्रोशिया—पुं० [अं० क्रॉचेट] लोहे आदि की वह तीली या सलाई जिसकी सहायता से गंजी, मोजे, रुमाल आदि केवल हाथों से (करघे पर नहीं) बुने जाते है।
क्रोष्टा (ष्टृ)—पुं० [सं०√क्रुश्+तृच्] [स्त्री० क्रोष्टी] गीदड़। शृगाल।
क्रोष्टुक—पुं० [सं०√क्रुश्+तुन्+कन्] गीदड़। शृगाल।
क्रोष्टु-फल—पुं० [सं० ब० स०] इंगुदी।
क्रोष्टु-शीर्ष—पुं० [सं० प० त०]=क्रोष्टु-शीर्षक।
क्रोष्टु-शीर्षक—पुं० [सं० प० त०, +कन्] वात के प्रकोप से घुटनों में पीड़ा और सूजन होने का रोग।
क्रोष्ट्री—स्त्री० [सं० क्रोष्टु+ङीप्, क्रोष्टृ आदेश] १. गीदड़ी। शृगाली। २. काली विदारी।
क्रौंच—पुं० [सं० क्रुंच+अण्] १. हलके भूरे रंग की एक प्रसि बड़ी चिड़िया जो ठंढे प्रदेशों में पानी के किनारे रहती है। कराँकुल। २. असम प्रदेश का एक पहाड़ जो हिमालय की ही एक शाखा है।

३. सात द्वीपों में से एक। (पुराण) ४. मय दानव के पुत्र का नाम। ५. एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र। ६. अर्हतों की एक ध्वजा। ७. एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भ, म, स, भ, न, न, न, न, गण और एक गुरु होता है।

क्रौंचदारण—पुं० [सं० क्रौंच√दृ (विदारण)+णिच्+ल्यु—अन]=क्रौंचरिपु।

क्रौंचपदी—स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ।

क्रौंच-रंध्र—पुं० [ष० त०] हिमालय पर्वत की एक घाटी।

क्रौंच-रिपु—पुं० [ष० त०] १. परशुराम। २. कार्तिकेय।

क्रौंचादन—पुं० [सं० क्रौंच-अदन, ष० त०] मृणाल।

क्रौंचादनी—स्त्री० [सं० क्रौंचादन+ङीप्] पद्मबीज। कमलगट्टा।

क्रौंचाराति—पुं० [सं० क्रौंच-अराति, ष० त०]=क्रौंचरिपु।

क्रौंचारुण—पुं० [सं० क्रौंच-अरुण, उपमि० स०] युद्ध में एक प्रकार की व्यूह-रचना।

क्रौंची—स्त्री० [सं० क्रौंच+ङीप्] कश्यप ऋषि की एक कन्या।

क्रौड—वि० [सं० क्रोड+अण्] १. क्रोड़-संबंधी। क्रोड का। २. शूकर-संबंधी। ३. वाराह अवतार से संबंध रखनेवाला।

क्रौर्य—पुं० [सं० क्रूर+ष्यञ्] क्रूरता।

क्रौशशतिक—वि० [सं० क्रोशशत+ठन्—इक] जो सौ कोस चला हो अथवा चल सकता हो।

पुं० ऐसा गुरु या शिक्षक जिसके पास सौ कोस की दूरी से चलकर जाना उचित हो।

क्लब—पुं० [अं०] १. किसी वर्ग-विशेष के लोगों का संघटन या समुदाय जिसकी स्थापना किसी विशेष दृष्टि-कोण (जैसे—मनोरंजन, शोध आदि) से की गई हो। २. वह कमरा या भवन जिसमें स्थायी रूप से उक्त संघटन या समुदाय के सदस्य एकत्र होते हैं।

क्लम—पुं० [सं० √क्लम् (थक जाना)+घञ्]=क्लांति।

क्लमथ—पुं० [सं०√क्लम्+अथच्]=क्लांति।

क्लर्क—पुं० [अं०] किसी कार्यालय अथवा दूकान का वह कर्मचारी जो वहाँ का हिसाब-किताब रखता या चिट्ठी-पत्री लिखता हो। लिपिक।

क्लर्की—स्त्री० [अं० क्लर्क] क्लर्क का काम अथवा पद।

क्लांत—वि० [सं० √क्लम्+क्त] थका हुआ। शिथिल। श्रांत।

क्लांति—स्त्री० [सं० √क्लम् + क्तिन्] १. क्लांत होने की अवस्था या भाव। शिथिलता। थकावट। २. आयास। परिश्रम।

क्लाउन—पुं० [अं०] मसखरा या विदूषक।

क्लारनेट—पुं० [अं०] बाँसुरी की तरह का एक प्रकार का बड़ा बाजा।

क्लास—पुं० [अं०] १.=श्रेणी। २. =वर्ग। ३.=दरजा।

क्लिगल—पुं० [डि०] जिरहबख्तर। कवच।

क्लिन्न—वि० [सं० क्लिद् (गीला होना)+क्त] आर्द्र। नम।

क्लिन्न-वर्त्म (न्)—पुं० [ब० स०] आँखों से पानी गिरने और पलकों में खुजली होने का एक रोग।

क्लिन्न-हृद्—वि० [ब० स०] कोमल हृदय। दयालु।

क्लिप—स्त्री० [अं०] एक प्रकार का छोटा उपकरण जो सटाये हुए कपड़ों बालों आदि को पकड़े रहता है। पंजा।

क्लिशित—भू० कृ० [सं० √क्लिश् (कष्ट होना)+क्त] जिसे बहुत क्लेश हुआ हो।

क्लिष्ट—वि० [सं०√क्लिश्+क्त] १. क्लेशयुक्त। कष्ट में पड़ा हुआ। २. (वाक्य या शब्द) जिसका अर्थ सहसा लोगों की समझ में न आता हो अथवा जिसका अर्थ लगाने में कुछ खींच-तान करनी पड़ती हो। कठिन। दुरूह। ३. (बात) जो पूर्वापर विरुद्ध या बेमेल हो। ४. नष्ट-भ्रष्ट। ५. मुरझाया हुआ।

क्लिष्ट-कल्पना—स्त्री० [कर्म० स०] ऐसी कल्पना या मन की उपज जो स्वतः सिद्ध या स्पष्ट न हो, बल्कि बहुत खींच-तान या कठिनता से ठीक सिद्ध की जा सके।

क्लिष्ट-कल्पित—वि० [कर्म० स०] (मत या विचार) जो क्लिष्ट कल्पना से निकला हो। (फारफेच्ड)

क्लिष्ट-घात—पुं० [कर्म० स०] किसी को बहुत अधिक कष्ट पहुँचाकर उसके प्राण लेना।

क्लिष्टता—स्त्री० [सं० क्लिष्ट+तल्—टाप्] क्लिष्ट होने की अवस्था, गुण या भाव।

क्लिष्टत्व—पुं० [सं० क्लिष्ट+त्व] १. क्लिष्टता। २. साहित्यिक रचना का वह दोष जिसके कारण लोगों को उसका अर्थ समझने में बहुत कठिनता होती है।

क्लिष्टवर्त्म—पुं०=क्लिन्नवर्त्म।

क्लिष्टा—स्त्री० [सं० क्लिष्ट+अच्—टाप्] आत्मा को कष्ट देनेवाली चित्तवृत्तियाँ। (पतंजलि)

क्लिष्टि—स्त्री० [सं० √क्लिश् +क्तिन्] १. क्लेश। २. नौकरी।

क्लीत—पुं० [सं० √क्लीव् (मस्त होना)+क्त, नि० व का लोप] गंदी चीजों में उत्पन्न होनेवाले एक प्रकार के जहरीले कीड़े। (सुश्रुत)

क्लीतक—पुं० [सं०√क्लीव्, क्विप् नि० वलोप, क्ली √तक् (हँसना)+अच्] जेठी मधु। मुलेठी।

क्लीव—वि० [सं० √क्लीव्+क] १. (पुरुष) जिसमें स्त्री के साथ संभोग करने की शक्ति न हो। नपुंसक। नामर्द। २. कायर। डरपोक।

क्लीवता—स्त्री० [सं० क्लीव+तल्—टाप्] १. क्लीव या नपुंसक होने की अवस्था या भाव। २. कायरता।

क्लीवत्व—पुं० [सं० क्लीव+त्व]=क्लीवता।

क्लृप्त—पुं० [सं० √कृप् (निश्चित करना)+क्त, ऋ=लृ] नियत लगान, महसूल या कर।

क्लेद—पुं० [सं० √क्लिद्+घञ्] १. आर्द्रता। गीलापन। नमी। २. पसीना। ३. कष्ट। पीड़ा। उदा०—रहा न उसको क्लेद, मरण भी बना स्वर्ग का द्वार।—पंत।

क्लेदक—वि० [सं० √क्लिद्+णिच्+ण्वुल्—अक] पसीना लानेवाला।

पुं० १. शरीर के अन्दर की दस प्रकार की अग्नियों में से एक। २. शरीर के अन्दर का वह कफ-रूपी तत्त्व जिससे पसीना आता है।

क्लेदन—पुं० [सं०√क्लिद्+णिच्+ल्युट्—अन] १. आर्द्र या नम करना। २. शरीर में किसी युक्ति से पसीना लाना। (वैद्यक)

क्लेदु—पुं० [सं० √क्लिद्+उन्] १. चन्द्रमा। २. सन्निपात रोग।

क्लेश—पुं० [सं० क्लिश्+घञ्] १. वह कष्टपूर्ण मानसिक स्थिति जिसमें

मनुष्य चिन्ताओं के कारण विकल तथा संतप्त रहता है। २. घर-गृहस्थी या आपस में होनेवाली कलह।

क्लेशक—वि० [सं० √क्लिश्+णिच्+ण्वुल्—अक] क्लेश देनेवाला।

क्लेश-कर—वि० [सं० प० त०] (काम या बात) जिससे क्लेश उत्पन्न होता हो।

क्लेशित—वि० [सं० क्लेश+इतच्] जिसे क्लेश हुआ हो या हो रहा हो। बहुत ही दुःखी।

क्लेशी (शिन्)—वि० [सं० √क्लिश्+णिनि] क्लेश उत्पन्न करनेवाला। क्लेशकर।

क्लेष्टा (ष्टृ)—पुं० [सं०√क्लिश्+तृच्] क्लेश देनेवाला।

क्लेस *—पुं०=क्लेश।

क्लैतकिक—पुं० [सं० क्लीतक+ठञ्—इक] प्राचीन काल की वह मदिरा जो मुलेठी से बनाई जाती थी।

क्लैव्य—पुं० [सं० क्लीव+ष्यञ्] क्लीव होने की अवस्था या भाव। नपुंसकता। हिजड़ापन।

क्लोम (न्)—पुं०[सं०√क्लु(गति)+मनिन्] दाहिनी ओर का फेफड़ा। फुप्फुस।

क्लोरोफार्म—पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध पाश्चात्य ओषधि जिसे सूँघ लेने से मनुष्य अचेत या बेहोश हो जाता है। (इसका उपयोग प्रायः शस्त्र-चिकित्सा आदि के समय होता है)

क्वंगु—पुं० [सं० कु √ अंग् (गति)+उण्]=कंगु (अन्न)।

क्व—अव्य० [सं० किम्+ अत्, कु आदेश] कहाँ।

क्वचित्—अव्य० [द्व० स०] कदाचित् ही कोई। शायद ही कोई। बहुत कम।

वि० कहीं-कहीं या कभी-कभी परन्तु बहुत कम मिलने या होनेवाला। (रेअर) जैसे—क्वचित् प्रयोग।

क्वण—पुं०–[सं० √क्वण् (शब्द)+अप्] वीणा का शब्द। उदा०—सरस्वती से स्वयं आपका सुन वीणा-क्वण।—पंत। २. घुँघरुओं के बजने का शब्द। ३. झंकार।

क्वणन—पुं० [सं०√क्वण्+ल्युट्—अन] १. बाजा बजने से होनेवाला शब्द। २. मिट्टी का छोटा बरतन।

क्वणित—भू० कृ० [सं०√क्वण्+क्त] १. जो बजा या बजाया गया हो। २. ध्वनित। गूँजता हुआ।

पुं० ध्वनि या शब्द।

क्वथ—पुं० [सं० √क्वथ् (काढा बनाना)+अच्]=क्वाथ।

क्वथन—पुं० [सं० √क्वथ्+ल्युट्—अन] तरल पदार्थ आग पर चढ़ाकर औटाने या काढ़ने का काम।

क्वथन-बिंदु—पुं०=क्वथनांक।

क्वथनांक—पुं० [सं० क्वथन-अंक, प० त०] ताप की वह बढ़ी हुई अवस्था, जिसमें तरल पदार्थ उबलने या खौलने लगते हैं। क्वथन-बिंदु। (ब्वाय-लिंग प्वाइण्ट)

क्वथित—भू० कृ० [सं० √क्वथ्+क्त] औटा या औटाया हुआ।

क्वथिता—स्त्री० [सं० क्वथित+टाप्] १. घी में भूनी हुई हल्दी को दूध में पकाकर बनाया हुआ रसा। (वैद्यक) २. शहद में बननेवाला एक प्रकार का आसव।

क्वाँचर†—पुं० [सं० कुचर] काम करने के समय बैठ-बैठ जानेवाला बैल। वि० कमजोर। दुर्बल।

क्वाँर†—पुं०=कुआर (महीना)।

क्वाँरा—वि० [सं० कुमार; पा० कुमारो] [स्त्री० क्वाँरी] [भाव० क्वारापन] जिसका विवाह न हुआ अथवा जिसने विवाह न किया हो। कुआँरा। कुमार।

क्वाचित्क—वि० [सं० क्वचित्+कञ्] क्वचित् होने या मिलनेवाला, विरल।

क्वाण—पुं० [सं० √क्वण्+घञ्]=क्वणन।

क्वाथ—पुं० [सं० √क्वथ्+घञ्] १. ओषधियों को पानी में उबालकर उनका निकाला हुआ गाढ़ा रस। काढ़ा। जोशाँदा। २. व्यसन। ३. कष्ट। क्लेश।

क्वाथोद्भव—पुं० [सं० क्वाथ-उद्भव, ब० स०] रसौत।

क्वान*—पुं०=क्वणन।

क्वार—पुं०=आश्विन मास।

*पुं०, वि०=कुमार।

क्वारछल—पुं० [सं० कुमार, हिं० क्वारा+छल] क्वारापन।

मुहा०—(बालिका या युवती का) **क्वारछल उतरना**=प्रथम समागम करके कौमार्य भंग करना।

क्वारपत—पुं०=क्वारछल।

क्वारपन—पुं० [हिं० क्वारा+पन(प्रत्य०)] क्वाँरे या अविवाहित होने की अवस्था या भाव।

क्वारा—वि० [सं० कुमार] [स्त्री० क्वारी] (व्यक्ति) जिसका विवाह न हुआ हो अथवा जिसने विवाह न किया हो। अविवाहित।

क्वारापन—पुं० [हिं० क्वारा+पन] क्वारे होने की अवस्था या भाव।

क्वासि—पद [सं० क्व—असि, दीर्घ संधि] तू किस स्थान पर या कहाँ है?

क्विनाइन—पुं०=कुनैन (ओषधि)।

क्वैला—पुं०=कोयला।

क्वैलारी—स्त्री०=कोइलरी।

क्षंतव्य—वि० [सं० क्षम् (सहना)+तव्यत्] (बात या व्यक्ति) जो क्षमा किये जाने के योग्य हो। क्षम्य।

क्षंता (तृ)—वि० [सं० क्षम्+तृच्] क्षमा करनेवाला। क्षमाशील।

क्ष—पुं० [सं०√क्षि (क्षय)+ड] १. खेत। २. किसान। ३ बिजली। ४. नृसिंह अवतार।

क्षण—पुं० [सं०√क्षण् (नष्ट करना)+अच्] १. काल का एक बहुत छोटा परिमाण जो प्रायः ४।५ सेकंड या तीस कला का होता है। २. एक बार पलक झपकने भर का समय। निमेष। ३. अवसर। मौका। ४. खाली समय। अवकाश।

क्षणतु—पुं० [सं० क्षण्+अतु] घाव। जख्म।

क्षणद—पुं० [सं० क्षण√दा (दान)+क] १. जल। पानी। २. ज्योतिषी। ३. वह जिसे रात के समय दिखाई न देता हो।

क्षणदा—स्त्री० [सं० क्षणद+टाप्] १. रात्रि। रात। २. हल्दी।

क्षणदाकर—पुं० [सं० क्षणदा √कृ (करना)+ट] चन्द्रमा।

क्षण-द्युति—स्त्री० [सं० ब० स०] विद्युत। बिजली।

क्षणन—पुं० [सं०√क्षण्+ल्युट्—अन] १. मार डालना। २. घायल करना।
क्षण-निःश्वास—पुं० [ब० स०] सूँस नामक जल-जंतु।
क्षण-प्रभा—स्त्री० [ब० स०] बिजली। विद्युत्।
क्षण-भंग—पुं० [स० त०] १. बौद्धों का क्षणिकवाद सिद्धान्त। २. [ब० स०] संसार।
वि०=क्षणभंगुर।
क्षण-भंगुर—वि० [पं० त०] १. एक अथवा कुछ ही क्षणों में नष्ट हो जानेवाला। २. नष्ट होनेवाला। अस्थायी।
क्षण-मूल्य—वि० [मध्य० स०] माल लेते ही तुरंत दिया जानेवाला मूल्य। नगद दाम।
क्षणरामी (मिन्)—पुं० [सं० क्षण+√रम् (रमना)+णिनि] कबूतर।
क्षणिक—वि० [सं० क्षण+ठन्—इक] १. क्षण संबंधी। २. क्षणभर ठहरने या होनेवाला। ३. अस्थायी या अनित्य।
पुं०=क्षणिकवाद।
क्षणिकता—स्त्री० [सं० क्षणिक+तल्—टाप्] क्षणिक होने की अवस्था या भाव।
क्षणिक-वाद—पुं० [प० त०] बौद्धों का यह सिद्धान्त कि प्रत्येक वस्तु अथवा उसका कण या तत्त्व प्रतिक्षण नष्ट होकर फिर से नया बनता रहता है। सब चीजों को क्षणिक मानने का सिद्धान्त।
क्षणिका—स्त्री० [सं० क्षणिक+टाप्] बिजली। विद्युत्।
क्षणिनी—स्त्री० [सं० क्षण+इनि+ङीप्] रात। रात्रि।
क्षणी (णिन्)—वि० [सं० क्षण+इनि] क्षण भर ठहरने या होने वाला।
क्षत—वि० [सं० √क्षण्+क्त] १. जिसे क्षति या हानि पहुँची हो। २. (व्यक्ति) जिसका आघात या चोट लगने से कोई अंग टूट या बिगड़ गया हो। घायल। ३. (वस्तु) जिसका कोई भाग टूट चुका हो। खंडित।
पुं० आघात आदि से उत्पन्न होनेवाला घाव। जखम।
क्षतघ्न—पुं० [सं० क्षत√हन् (हिंसा)+टक्] कुकरौंधा।
क्षतघ्नी—स्त्री० [सं० क्षतघ्न+ङीप्] लाख। लाह।
क्षतज—वि० [सं० क्षत√जन् (उत्पत्ति)+ड] १. क्षत या आघात से उत्पन्न होने वाला। जैसे क्षतज ज्वर। २. लाल। सुर्ख।
पु० १. खून। रक्त। २. पीब। मवाद। ३. वैद्यक में सात प्रकार की प्यासों में से एक जो घाव में से बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण लगती है।
क्षत-योनि—वि० [ब० स०] (बालिका या स्त्री) जिसका कौमार्य खंडित हो चुका हो।
क्षत-रोहण—पु० [प० त०] जखम या घाव का भरना।
क्षत-विक्षत—वि० [कर्म० स०] १. (व्यक्ति) जिसे बहुत चोट लगी हो। बहुत घायल और लहूलुहान। २. (पदार्थ) अनेक आघातों अथवा भारी आघात के कारण जिसके सब अंग विकृत हो गये हों।
क्षत-वृत्ति—वि० [ब० स०] जिसकी वृत्ति या जीविका का साधन नष्ट हो चुका हो।
क्षत-व्रण—पु० [मध्य० स०] आघात या चोट लगने से होनेवाला घाव।
क्षत-व्रत—वि० [ब० स] जिसका व्रत खंडित हो चुका हो।
क्षतहर—पुं० [सं० क्षत√हृ (हरण)+ट] अगर का पेड़।
क्षता—वि० [सं० क्षत+टाप्] (कन्या) जिसका कौमार्य खंडित हो चुका हो।
क्षतारि—वि० [सं० क्षत-अरि, ब० स०] विजयी।
क्षताशौच—पुं० [सं० क्षत-अशौच, मध्य० स०] घायल या जख्मी होने के कारण लगनेवाला एक प्रकार का अशौच।
क्षति—स्त्री० [सं० √क्षण्+क्तिन्] १. आघात या चोट लगने से होने वाला घाव। २. कोई चीज खो जाने, खराब या क्षीण हो जाने अथवा किसी के द्वारा नष्ट किये जाने पर होनेवाली हानि। ३. व्यापार में होनेवाली हानि। घाटा। ४. कीर्ति या यश में लगनेवाला धब्बा। कलंक।
क्षति-ग्रस्त—वि० [तृ० त०] जिसकी किसी प्रकार की क्षति या हानि हुई हो।
क्षति-पूर्ति—स्त्री० [प० त०] १. हानि या घाटे का पूरा होना। २. वह धन जो किसी की हानि पूरी करने के बदले में उसे दिया जाय।
क्षतोदर—पुं० [सं० क्षत-उदर, ब० स०] एक रोग जिसमें आंतों में क्षत या घाव हो जाने पर जल भरने लगता है।
क्षत्ता(त्तृ)—पुं० [सं०√क्षद् (संभरण)+तृच्] १. द्वारपाल। दरबान। २. मछली। ३. नियोग करनेवाला पुरुष। ४. दासी पुत्र। ५. एक प्राचीन वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्र पिता और क्षत्रिय माता से कही गई है।
क्षत्र—पुं० [सं० √क्षण्+क्विप् क्षत्√त्रै (रक्षाकरना) +क] १. बल, शक्ति या सत्ता। २. शासित क्षेत्र। ३. योद्धा। ४. क्षत्रिय जाति या उसका व्यक्ति। ५. शरीर। ६. धन। ७. जल। पानी। ८. तगर का वृक्ष।
क्षत्र-कर्म (न्)—पुं० [प० त०] ऐसे कर्म जिन्हें क्षत्रिय करते हों अथवा जो क्षत्रियों को करने चाहिए।
क्षत्र-धर्म—पुं० [प० त०] १. क्षत्रियों के काम या धर्म। यथा—अध्ययन दान, प्रजापालन आदि। २. शौर्य। बहादुरी।
क्षत्र-धर्मा (र्मन्)—वि० [ब० स०] क्षत्रियों के धर्म का पालन करने-वाला।
पुं० योद्धा। वीर।
क्षत्र-धृति—पुं० [प० त०] १. सावन की पूर्णिमा को होनेवाला एक यज्ञ। २. राजसूय यज्ञ का एक भाग।
क्षत्रप—पुं० [सं० क्षत्र√पा (रक्षण)+क] १. क्षत्रपति। राजा। २. शक अथवा पारस के प्राचीन साम्राज्य में मांडलिक राजाओं की उपाधि या पद। ३. राजा की ओर से किसी देश या प्रान्त का शासन करने-वाला प्रधान अधिकारी।
क्षत्र-पति—पुं० [प० त०] किसी क्षत्र या राज्य का स्वामी। राजा।
क्षत्र-बंधु—पुं० [प० त०] १. क्षत्रिय जाति का व्यक्ति। २. ऐसा व्यक्ति जो जन्म से तो क्षत्रिय हो, परन्तु क्षत्रियों के से कर्म न करता हो।
क्षत्र-योग—पुं० [प० त०] ज्योतिष में एक योग। जो मनुष्य को प्रायः राजा या उसके समान बनाता है।
क्षत्र-विद्या—स्त्री० [प० त०] क्षत्रियों की विद्या अर्थात् युद्ध करने की कला या विद्या।
क्षत्र-वृक्ष—पुं० [मध्य० स०] मुचकुन्द नामक वृक्ष।

क्षत्र-वृद्ध—पुं० [स० त०] तेरहवें मनु के पुत्र का नाम।
क्षत्र-वृद्धि—पुं० [व० स]=क्षत्रवृद्ध।
क्षत्र-वेद—पुं० [प० त०] धनुर्वेद।
क्षत्र-सव—पुं० [प० त०] १. केवल क्षत्रियों के करने योग्य यज्ञ। २. प्राचीन भारत का एक उत्सव जिसमें वलि चढ़ाई जाती थी।
क्षत्रांतक—पुं० [सं० क्षत्र-अतंक प० त०] परशुराम जिन्होंने क्षत्रियों का अन्त या नाश किया था।
क्षत्राणी—स्त्री० [सं० क्षत्र+आनुक्, ङीप्] १. क्षत्रिय जाति की स्त्री। २. वहादुर या वीर स्त्री।
क्षत्रिनी—स्त्री० [सं०] मजीठ।
स्त्री०=क्षत्राणी।
क्षत्रिय—पुं०[सं० क्षत्र+घ—इय] [स्त्री० क्षत्रिया, क्षत्राणी] १. हिन्दुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण। इस वर्ण के लोगों का काम देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना माना गया है। २. उक्त जाति का पुरुष। ३. राजा। ४. वल। शक्ति।
क्षत्रियका—स्त्री० [सं० क्षत्रिया√कन्+टाप्, ह्रस्व]=क्षत्रिया।
क्षत्रियहण—पुं० [सं० क्षत्रिय√हन् (हिंसा)+अच्, णत्व] परशुराम।
क्षत्रिया—स्त्री० [सं० क्षत्रिय+टाप्] क्षत्रिय जाति की स्त्री।
क्षत्रियाणी—स्त्री० [स० क्षत्रिय+आनुक्, ङीप्] क्षत्रिय की पत्नी।
क्षत्रियिका—स्त्री० [सं० क्षत्रिया+कन् टाप्, ह्रस्व]=क्षत्रिया।
क्षत्रियी—स्त्री० [सं० क्षत्रिय+ङीप्]=क्षत्रियाणी।
क्षत्री—पुं०=क्षत्रिय।
क्षदन—पुं० [सं० √क्षद् (भक्षण)+ल्युट्–अन] दाँत।
क्षपण—पुं० [सं०√क्षप् (फेंकना)+ल्युट्–अन] १. नष्ट करना। २. [क्षप्+णिच्+ल्यु–अन] जैन या वौद्ध भिक्षु।
क्षपणक—पुं० [सं० क्षपण+कन्] एक प्रकार के जैन भिक्षु या साधु जो प्रायः नंगे रहते है।
वि० १. नंगा। २. निर्लज्ज।
क्षपणी—स्त्री० [सं० क्षपण+ङीप्] १. नाव खेने का डाँडा। २. चिड़ियाँ, मछलियाँ आदि फँसाने का जाल।
क्षपण्यु—पुं० [सं०√क्षप्+अन्यु (वा०)] अपराव।
क्षपांत—पुं० [सं० क्षपा-अन्त, प० त०] प्रभात। भोर।
क्षपांध्य—पुं० [सं० क्षपा-आंध्य, स० त०] रतौंधी।
क्षपा—स्त्री० [सं०√क्षप्+अच्—टाप्] १. रात। २. २४ घंटों का एक मान। ३. हल्दी।
क्षपाकर—वि० [सं० क्षपा√कृ (करना)+ट] रात करने वाला।
पुं० १. चन्द्रमा। २. कपूर।
क्षपा-घन—पुं० [प० त०] काला वादल।
क्षपाचर—पुं० [सं० क्षपा√चर् (गति)+ट] वह जो रात्रि में विचरण करता हो। जैसे—उल्लू, राक्षस आदि।
क्षपाट—पुं० [सं० क्षपा√अट् (गति)+अच्)] राक्षस।
क्षपा-नाथ—पुं० [प० त०] १. रात्रि के स्वामी अर्थात् चन्द्रमा। २. कपूर।
क्षपा-पति—पुं० [प० त०]=क्षपानाथ।
क्षपित—वि० [सं०√क्षप् (क्षय)+णिच्+क्त] १. नष्ट किया हुआ। २. कुचला या दवाया हुआ।
क्षम—वि० [सं०√क्षम् (सहना)+अच्] १. वरदाश्त करनेवाला। सहनशील। सहिष्णु। २. चुप रहनेवाला। ३. समर्थ। सशक्त। ४. क्षमा करने वाला।
क्षमणीय—वि० [सं०√क्षम्+अनीयर्] १. (अपराध या दोष) जो क्षमा किया जा सके। क्षम्य। २. चुपचाप तथा धैर्यपूर्वक सहने योग्य।
क्षमता—स्त्री० [सं० क्षम+तल्, टाप्] १. ऐसी मानसिक या शारीरिक शक्ति जिसके सहारे मनुष्य कोई काम करने में समर्थ होता है। सामर्थ्य। (पावर) २. उक्त की तरह का कोई काम करने का गुण या विशेषता। (एविलिटी) ३. ग्रहण या धारण कर सकने की पात्रता। (कैपेसिटी)
क्षमना—स० [हिं० क्षमा] क्षमा करना। माफ़ करना।
क्षमनीय—वि०=क्षमणीय।
क्षमवाना*—स० [क्षमना का प्रेर०] १. अपने आपको क्षमा करना। २. किसी को क्षमा करने में प्रवृत्त करना। किसी को क्षमा दिलवाना।
क्षमा—स्त्री० [सं०√क्षम्+अङ–टाप्] १. मन की वह भावना या वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाया हुआ कष्ट चुपचाप सहनकर लेता है, और कष्ट पहुँचानेवाले के प्रति मन में कोई विकार नहीं आने देता। २. किसी दोषी या अपराधी को विना किसी प्रतिकार के छोड़ देने का भाव। माफी। ३. भूल का अपराध या होने पर अपनी भूल या अपराध स्वीकार करते हुए यह प्रार्थना करना कि हम अव फिर ऐसा काम नहीं करेंगे, इस वार हमें दयापूर्वक छोड़ दीजिए। ४. खैर का पेड़। ५. धरती। पृथ्वी। ६. दक्ष की एक पुत्री। ७. नदी। ८. एक की गिनती। ९. एक प्रकार का छन्द। १०. दुर्गा का एक नाम। ११. राधिका की एक सखी।
क्षमाई—स्त्री० [हिं० क्षमा+ई] क्षमा करने की क्रिया या भाव।
क्षमा-ज—पुं० [सं० क्षमा√जन् (प्रादुर्भाव)+ड] मंगल ग्रह जो पृथ्वी से उत्पन्न माना गया है।
क्षमा-दंश—पुं० [प० त०] सहिजन का पेड़।
क्षमाना*—स० [हिं० क्षमना का प्रेर०] क्षमा या माफ करना। २=क्षमना (क्षमा करना)।
क्षमापन*—पुं० [हिं० क्षमा+पन] क्षमा करने का काम या भाव। माफी।
क्षमाभुक् (ज्)—पुं० [सं० क्षमा√भुज् (भोग करना) क्विप्] राजा।
क्षमाभृत्—पुं० [सं० क्षमा √भृ (धारण)+क्विप्] पहाड़।
क्षमा-मंडल—पुं० [प० त०] भूमंडल।
क्षमालु—वि० [सं०√क्षम्+आलुच्] सव को क्षमा करनेवाला। क्षमाशील।
क्षमावना*—स० [हिं० क्षमना का प्रे०] क्षमा कराना। माफ़ कराना।
क्षमावान् (वत्)—वि० [सं० क्षमा+मतुप्, म=व] क्षमा करनेवाला।
पुं० वह व्यक्ति जिसमें अपराधी या दोषी को दंडित करने की क्षमता तो हो, फिर भी जो उसे दयापूर्वक छोड़ दे।
क्षमा-शील—वि० [व० स०] जो प्रायः या सदा सव को क्षमा करता रहता हो।
क्षमाष्ट—पुं० [सं० क्षमा-अष्ट व० स०] चौदह प्रकार के तालों में से एक। (संगीत)

क्षमित—वि० [सं०√क्षम्+क्त] जिसे क्षमा मिल चुकी हो। जो क्षमा किया गया हो।

क्षमितव्य—वि० [सं०√क्षम्+तव्यत्] क्षमा करने योग्य। (दोष या व्यक्ति) जिसे क्षमा कर देना उचित हो। क्षमा का पात्र।

क्षमिता (तृ)—वि० [सं०√क्षम्+तृच्]=क्षमावान्।

क्षमी (मिन्)—वि० [सं०√क्षम्+घिनुण्] १. क्षमा करनेवाला। क्षमाशील। २.= क्षम (समर्थ)।

क्षम्य—वि० [सं०√क्षम्+ण्यत्] १. (अपराध या व्यक्ति) जो क्षमा किये जाने के योग्य हो। २. (व्यक्ति) जिसने कोई अवैध काम न किया हो और इसीलिए जिसे विधिवत् दंडित न किया जा सकता हो। (धर्मशास्त्र)। ३. (बात या व्यवहार) जो दंडनीय न हो।

क्षयंकर—वि० [सं० क्षय√कृ (करना) + खच्, मुम्] क्षय या नाश करनेवाला। क्षयकारी।

क्षय—पुं० [सं०√क्षि (नाश)+अच्] [भाव० क्षयित्व] १. किसी की क्रमशः तथा प्रकृतिशः होनेवाली अवनति तथा ह्रास। छीजन। २. अपचय। नाश। ३. यक्ष्मा नामक रोग। ४. अन्त। समाप्ति। ५. कल्प का अन्त। प्रलय। ६. प्रेम का स्थान। ७. संवत्सरों में अंतिम संवत्सर का नाम। ८. ऋण की राशि या बड़ी रकम। ९. राजा के अष्टवर्ग (कृषि, वस्ती, दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान कर ग्रहण और सेना) की अवनति या ह्रास। (नीतिशास्त्र) १०. ऐसा चांद्र मास जिसमें सूर्य की दो संक्रातियाँ होती है। यह १४१ वें वर्ष में पड़ता है। (ज्योतिष)। ११. निवास स्थान। १२. घर। १३. दे० 'तिथि-क्षय'।

क्षय-कर—वि० [ष० त०]=क्षयंकर।

क्षय-काल—पुं० [ष० त०] प्रलय का समय।

क्षय-कास—पुं० [मध्य० स०] क्षय या यक्ष्मा रोग में होनेवाली खाँसी।

क्षय-ग्रंथि—स्त्री० [मध्य० स०] क्षय रोग में (आँतों में) पड़नेवाली गाँठ जो बहुत कष्टदायक होती है।

क्षयण—पुं० [सं०√क्षि+ल्युट्—अन] १. क्षय होने की अवस्था, क्रिया या भाव। २. शांत जलाशय। ३. खाड़ी या बन्दर। ४. निवास स्थान।

क्षय-तरु—पुं० [ष० त०] स्थाली नामक वृक्ष।

क्षय-तिथि—स्त्री० [मध्य० स०] वह तिथि जिसका क्षय हुआ हो। लुप्त तिथि। (हिन्दू पंचांग)

क्षयथु—पुं० [सं०√क्षि+अथुच्] खाँसी। कास।

क्षयनाशिनी—स्त्री० [सं० क्षय√नश् (नष्ट होना) णिच्+णिनि—ङीप्] जीवंती या डोडी का वृक्ष।

क्षय-पक्ष—पुं० [मध्य० स०] चांद्र मास का वह पक्ष जिसमें चन्द्रमा नित्य कुछ क्षीण होता है। कृष्णपक्ष। अँधेरा पक्ष।

क्षय-मास—पुं० [मध्य० स०] १४१ वें वर्ष में पड़ने वाला चांद्र मास जिसमें दो संक्रातियां होती हैं और जिसके तीन मास पहले और तीन मास बाद एक-एक अधिमास भी पड़ता है।

क्षय-रोग—पुं० [ष० त०] यक्ष्मा नामक रोग जिसमें शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता चलता है।

क्षयवान् (वत्)—वि० [सं० क्षय+मतुप्, वत्व] [स्त्री० क्षयवती] जिसका क्षय होने को हो या हो रहा हो। नाशवान्।

क्षय-वायु—स्त्री० [ष० त०] प्रलय काल में बहने वाली वायु।

क्षय-संपद्—स्त्री० [मध्य० स०] संपत्ति का नाश सर्वनाश।

क्षयाह—पुं० [सं० क्षय-अहन् मध्य स०] वह चांद्र दिन जो चांद्र तथा सौर पंचांगों में मेल बैठाने के लिए छोड़ दिया जाता है। (ज्योतिष)

क्षयिक—वि० [सं० क्षय+ठन्—इक] १. जिसका क्षय हो रहा हो अथवा होने को हो। २. यक्ष्मा से पीड़ित।

क्षयित—भू० कृ० [सं० क्षय+इतच्] १. जिसका क्षय हुआ हो। २. क्षय रोग से पीड़ित।

क्षयित्व—पुं० [सं० क्षयिन्+त्व] क्षय होने की अवस्था या भाव।

क्षयिष्णु—वि० [सं०√क्षि+इष्णुच्] जिसका क्षय होने को हो या हो रहा हो। नष्ट होनेवाला।

क्षयी (यिन्)—[सं० क्षय+इनि] १. जिसका क्षय या नाश होने को हो। २. क्षय या यक्ष्मा नामक रोग से पीड़ित।
पुं० १. चंद्रमा। २. क्षय या यक्ष्मा नामक रोग।

क्षय्य—वि० [सं०√क्षि+यत् नि० सिद्धि] क्षय होने के योग्य। जिसका क्षय हो सके।

क्षर—वि० [सं०√क्षर् (संचलन)+अच्] १. जिसका क्षरण होता हो या होने को हो। २. नाशवान्। नश्वर।
पुं० १. जल। पानी। २. मेघ। बादल ३. शरीर। देह। ४. जीवात्मा। ५. अज्ञान। ६. कार्यकारण रूप वस्तु या द्रव्य, जिसका क्षण-क्षण अवस्थांतर हुआ करता है।

क्षरण—पुं० [सं०√क्षर्+ल्युट्—अन] १. तरल पदार्थ का किसी पात्र में से बूँद-बूँद करके गिरना या रसना। चूना। २. झड़ना। ३. क्षीण होना। ४. छूटना।

क्षरित—भू०कृ० [सं० क्षर्+क्त] जिसका क्षरण हुआ हो।

क्षरी (रिन्)—पुं० [सं० क्षर+इनि] वर्षाकाल। बरसात।

क्षव—पुं० [सं०√क्षु (छींकना)+अप्] १. छींक। २. खाँसी।

क्षवक—पुं० [सं० क्षव+कन्] १. अपामार्ग। चिचड़ा। २. सरसों। राई। ३. लाख। लाह।

क्षवकृत्—पुं० [सं० क्षव√कृ (करना) +क्विप्] नकछिकनी नामक पौधा।

क्षवथु—पुं० [सं० √क्षु+अथुच्] बहुत अधिक छींक आने का एक रोग।

क्षव-पत्रा, **क्षव-पत्री**—स्त्री० [ब० स०] द्रोणपुष्पी। गूमा।

क्षविका—स्त्री० [सं० क्षव+ठन्—इक्, टाप्] एक प्रकार का बनभंटा। कटाई।

क्षांत—वि० [सं० क्षम्+क्त] [स्त्री० क्षांता] १. क्षमा करने वाला। क्षमाशील। २. सहनशील।
पुं० १. एक ऋषि। २. एक व्याध जिसे अपने गुरु गर्ग मुनि की गौएँ मार डालने के कारण शाप मिला था।

क्षांता—स्त्री० [सं० क्षांत+टाप्] पृथ्वी।

क्षांति—स्त्री० [सं० क्षम्+क्तिन्] १. क्षमा। २. सहिष्णुता। सहनशीलता।

क्षा—स्त्री० [सं०√क्षि (क्षय)+ड-टाप्] पृथिवी।

क्षात्र—वि० [सं० क्षत्र+अण्] क्षत्रिय-संबंधी । क्षत्रियों का।
पुं०=क्षत्रियत्व।

क्षात्रि—पुं० [सं० क्षत्र+इञ्] क्षत्रिय पुरुष तथा किसी अन्य वर्ण की स्त्री से उत्पन्न होनेवाली संतान।

क्षाम—वि० [सं०√क्षै (नाश)+क्त, त=म] १. क्षीण। दुबला-पतला। २. बलहीन। ३. अल्प। थोड़ा।
पुं० १. विष्णु का एक नाम। २. क्षय।

क्षामा—स्त्री० [सं० क्षाम+टाप्] पृथ्वी।

क्षाम्य—वि० [सं०√क्षम्+णिच्+यत्]= क्षम्य।

क्षार—पुं० [सं०√क्षर् (टपकना)+ण] १. दाहक, जारक आदि खनिज पदार्थों के योग से तथा रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तैयार की हुई राख का नमक जो ओषधि के रूप में काम आता है। इस नमक के घोल से तेजाब का प्रभाव नष्ट किया जाता है। खार। (एलकली) २. उक्त से बनी हुई कोई ओषधि अथवा उसका कोई रूप-विकार। ३. नमक। ४. जवाखार। ५. शोरा। ६. सुहागा। ७. काला नमक। ८. कांच। ९. भस्म। १०. रस या सत। ११. गुड़। १२. जल। १३. ठग। धूर्त्त। १४. दुष्ट। पाजी।
वि० १. जो रसता हो। क्षरणशील। २. खारा।

क्षारक—पुं० [सं०√क्षर्+ण्वुल्-अक] १. क्षार करने या जलाने वाला। दाहक। २. सेंद्रिय ऊतकों या तंतुओं को जलाने या नष्ट करने वाला। (कास्टिक) ३. सज्जी। ४. कलिका। ५. बाँबी। ६. चिड़ियाँ फँसाने का जाल। ७. चिड़ियों का पिंजड़ा। ८. मछलियाँ पकड़ने की खाँची या दौरी।

क्षारक-रजत—पुं० [कर्म० स०] चाँदी में से निकला हुआ एक विशेष तत्त्व जो चमड़ा जला देता है । (कास्टिक सिल्वर)

क्षार-कर्दम—पुं० [ब० स०] एक नरक।

क्षार-गुड—पुं० [मध्य० स०] पांडु, प्लीहा आदि रोगियों को दी जाने-वाली एक ओषधि।

क्षार-गुण—पुं० [कर्म० स०] खारापन।

क्षारण—पुं० [सं०√क्षर्+णिच्+ल्युट्-अन] १. पारे का पन्द्रहवाँ संस्कार (दसेश्वर)। २. व्यभिचार आदि का अभियोग या कलंक लगाना। ३. तेजाब को प्रभावहीन करना। ४. दवारा करना या बनाना। ५. टपकाना।

क्षार-त्रय—पुं० [सं० ष० त०] सज्जी, शोरे और सुहागे का समूह।

क्षार-दशक—पुं० [ष० त०] सहिजन, मली, पलास आदि दस क्षारों का वर्ग।

क्षार-द्रु—पुं० [मध्य० स०] मोरवा नाम का वृक्ष।

क्षार-नदी—स्त्री० [मध्य० स०] नरक में खारे पानी की एक नदी। (पुराण)

क्षार-पत्र—पुं० [ब० स०] बथुआ नामक साग।

क्षार-पत्रा—स्त्री० [सं० क्षारपत्र+टाप्] चिल्ली नामक साग।

क्षार-पाक—पुं० [ष० त०] वैद्यक में मोरवा पौधे से बना हुआ एक पाक जिसका प्रयोग फोड़ों का मवाद बहाने में होता है।

क्षार-पाल—पुं० [सं० क्षार√पाल् (बचाना)+णिच्+अच्] एक प्राचीन ऋषि।

क्षार-भूमि—स्त्री० [मध्य० स०] ऊसर।

क्षार-मिति—स्त्री० [ष० त०] वह रासायनिक प्रक्रिया जिससे यह जाना जाता है कि किसी पदार्थ में क्षार का अंश कितना है । (एलकैलि-मेट्री)

क्षार-मृत्तिका—स्त्री० [मध्य स०] रेह मिट्टी।

क्षार-मेह—पुं० [मध्य० स०] प्रमेह रोग का एक प्रकार या भेद।

क्षार-लवण—पुं० [कर्म० स०] खारा नमक।

क्षार-वर्ग—पुं० [ष० त०] सज्जीखार, सोहागे और शोरे का वर्ग या समूह।

क्षार-श्रेष्ठ—पुं० [स० त०] १. वज्रक्षार। खारी मिट्टी। रेह। २. मोरवा नामक वृक्ष। ३. पलाश। ढाक।

क्षार-षट्क—पुं० [ष० त०] धव, अपामार्ग, कोरैया, लांगली, तिल और मोरवा, क्षारतत्त्ववाली इन छह ओषधियों का समूह।

क्षाराक्ष—पुं०[सं० क्षार-अक्षि, मध्य० स०] काँच की बनी हुई नकली आँख। वि० [ब० स०] जो उक्त प्रकार की आँख लगाये हुए हो।

क्षारागद—पुं० [सं० क्षार-अगद, मध्य० स०] एक प्रकार की ओषधि विशेष । (वैद्यक)।

क्षाराष्टक—पुं० [सं० क्षार-अष्टक, ष० त०] आठ विशिष्ट प्रकार के क्षारों का समूह।

क्षारिका—स्त्री० [सं०√ क्षर्+ण्वुल्-अक, टाप्, इत्व] भूख।

क्षारित—भू० कृ०[सं०√क्षर्+णिच्+क्त] १. जिसका क्षरण हुआ हो। २. जो क्षार के रूप में किया या लाया गया हो। ३. जिसे अपवाद या कलंक लगाया गया हो।

क्षारीय—वि० [सं० क्षार+छ-ईय] [भाव० क्षारीयता] क्षार से संबंध रखने या उससे युक्त रहनेवाला । (एलकलाइन)।

क्षारीयता—स्त्री० [सं० क्षारीय+तल्-टाप्] क्षारीय होने की अवस्था, गुण या भाव। (एलकलाइटी)।

क्षारोद—पुं० [सं० क्षार-उदक्, ब० स०, उदक्=उद ब० स०] १. खारा समुद्र। लवण समुद्र। २. ऐसा पदार्थ जिसमें क्षार का अंश हो। (अलकलायड)

क्षालन—पुं० [सं०√क्षल् (शोधन)+णिच्+ल्युट्-अन] १. पानी से कपड़े, बरतन आदि धोने की क्रिया या भाव। धुलाई। २. साफ़ करने का काम।

क्षालित—भू० कृ० [सं०√क्षल्+णिच्+क्त] १. धोया हुआ। २. साफ़ किया हुआ।

क्षित—वि० [सं०√क्षि (क्षय)+क्त]=क्षीण।

क्षिति—स्त्री० [सं० √क्षि+क्तिन्] १. रहने का स्थान। निवास-स्थान। २. पृथ्वी। ३. कविता में एक की संख्या का वाचक शब्द। ४. क्षय। नाश। ५. पंचम स्वर की एक श्रुति। ६. धूलि।
वि० दे० 'भूमिज'।

क्षिति-जंतु—पुं० [ष० त०] केंचुवा।

क्षितिज—पुं० [सं० क्षिति√जन् (प्रादुर्भाव)+ड] १. मंगल ग्रह। २. नरकासुर। ३. पेड़। वृक्ष। ४. केंचुवा। ५. पृथ्वीतल के चारों

ओर की वह कल्पित रेखा या स्थान जहाँ पर पृथ्वी और आकाश एक दूसरे से मिलते हुए-से जान पड़ते हैं। (होराइजन)।

क्षिति-तनय—पुं० [प० त०] मंगल ग्रह।

क्षिति-तल—पुं० [प० त०] पृथ्वी का तल धरातल।

क्षिति-देव—पुं० [स० त०] ब्राह्मण।

क्षिति-पति—पुं० [प० त०] राजा।

क्षितीश (श्वर)—पुं० [क्षिति-ईश, ईश्वर प० त०] राजा।

क्षित्यदिति—स्त्री० [क्षिति-अदिति, मध्य० स०] देवकी (कृष्ण की माता)।

क्षित्यधिप—पुं० [क्षिति-अधिप, प० त०] पृथ्वी के स्वामी, राजा।

क्षिद्र—वि० [सं०√क्षिद् (विदारण)+रक्] तोड़ने-फोड़ने या नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। फाड़नेवाला।

पुं० १. सूर्य। २. रोग। ३. सींग।

क्षिप—वि० [सं०√क्षिप् (फेंकना)+क] फेंकने वाला।

पुं० (कोई चीज) फेंकने की क्रिया या भाव।

क्षिपक—वि० [सं० क्षेपक+कन्] फेंकनेवाला।

पुं० १. तीरंदाज। २. योद्धा।

क्षिपण—पुं० [सं० √क्षिप्+क्युन्-अन] १. कोई चीज गिराने या फेंकने की क्रिया या भाव। २. मारना। ३. आक्षेप करना। ४. अभियोग लगाना।

क्षिपणी—स्त्री० [सं० √क्षिप्+अनि, ङीप् (वा०)] १. ऐसा अस्त्र जो हाथ से अथवा किसी उपकरण से फेंक कर चलाया जाय। क्षेप्यास्त्र। (मिस्सिल वेपन) २. डाँड़।

क्षिपणु—पुं० [सं०√क्षिप्+अनुङ्] १. फेंक कर चलाया जानेवाला अस्त्र। २. वायु। ३. व्याध।

क्षिपा—स्त्री० [सं०√क्षिप्+अङ्, टाप्] १. फेंकना २. रात।

क्षिप्त—वि० [सं०√क्षिप्+क्त] १. फेंका हुआ (अस्त्र)। २. (पदार्थ) जो इधर-उधर फेंका या बिखेरा गया हो। विकीर्ण। ३. भेजा हुआ। ४. अपमानित। ५. पतित। ६. उचटा हुआ। चंचल। ७. वात-रोग-ग्रस्त। ८. पागल। विक्षिप्त।

पुं० चित्त की पाँच वृत्तियों में से एक जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहता है। (दे० 'चित्तभूमि')।

क्षिप्ता—स्त्री० [सं०√क्षिप्+क्त, टाप्] रात्रि।

क्षिप्ति—स्त्री० [सं०√क्षिप्+क्तिन्] फेंकने की क्रिया या भाव।

क्षिप्र—अव्य० [सं०√क्षिप् (प्रेरणा)+रक्] १. शीघ्र। जल्दी। २. तत्काल। तुरंत।

वि० १. तेजी से चलता हुआ। २. अस्थिर। चंचल।

पुं० १. शरीर में अँगूठे और तर्जनी या दूसरी उँगली के बीच का स्थान जो वैद्यक में मर्मस्थल माना गया है। २. एक मुहूर्त्त का पन्द्रहवाँ भाग।

क्षिप्रपाकी—पुं० [सं० क्षिप्र√पच् (पाक)+घिनुण्, (वा०)] गर्दभांड नामक वृक्ष। पारस पीपल।

क्षिप्र-मूत्र—पुं० [सं० व० स०] जल्दी-जल्दी और बार-बार पेशाब होने का रोग। बहुमूत्र।

क्षिप्र-श्येन—पुं० [कर्म० स०] एक प्रकार का बाज पक्षी।

क्षिप्र-हस्त—वि० [ब० स०] जिसका हाथ बहुत तेज चलता हो। बहुत जल्दी काम करनेवाला। कुशल।

पुं० १. अग्नि। २. एक राक्षस।

क्षिप्र-होम—पुं० [मध्य० स०] जल्दी-जल्दी किया जाने वाला होम (जिसमें बहुत-सी बातें छोड़ दी जाती हैं)।

क्षिया—स्त्री० [सं०√क्षि (क्षय) +अङ्, टाप्]=क्षय।

क्षीण—वि० [सं० √क्षि+क्त, त=न, दीर्घ] [भाव० क्षीणता; क्षैण्य] १. जिसका क्षय हुआ हो। २. घटा हुआ या घटनेवाला। ३. जो रचना, स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से बहुत ही दुबला-पतला या दुर्बल हो। ४. सूक्ष्म।

क्षीण-कर—वि० [प० त०] क्षीण करनेवाला।

क्षीणक-रोग—पुं० [सं० क्षीणकररोग] कोई ऐसा रोग जिसमें रोगी का शरीर क्षीण होता जाता हो (वैस्टिंग डिजीज)

क्षीण-काय—वि० [ब० स०] (प्राणी) जो पतला-दुबला तथा दुर्बल हो।

क्षीण-चंद्र—पुं० [कर्म० स०] कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की अष्टमी तक का चन्द्रमा, जिसमें उसकी कलाएँ क्षीण रहती हैं।

क्षीणता—स्त्री० [सं० क्षीण+तल्-टाप्] क्षीण होने की अवस्था या भाव।

क्षीण-पाप—वि० [ब० स०] वह जिसके पाप क्षीण या नष्ट हो चुके हों।

क्षीण-प्रकृति—वि० [ब० स०] क्षुद्र या तुच्छ प्रकृतिवाला।

क्षीण-मध्य—वि० [ब० स०] १. जिसका बीच का भाग पतला हो। २. पतली कमरवाला।

क्षीणार्थ—वि० [सं० क्षीण-अर्थ, ब० स०] जिसकी संपत्ति नष्ट हो चुकी हो। निर्धन। गरीब।

क्षीव—वि० [सं०√क्षीव् (मद)+क्त, नि० सिद्धि] [स्त्री० क्षीवा] १. जिसने मदिरा पी हो। २. जो नशे में चूर हो।

क्षीयमाण— वि० [सं०√क्षि+यक्+शानच्] १. जिसका क्षय हो रहा हो। २. नाशवान्। नश्वर।

क्षीर—पुं० [सं०√घस् (खाना) + ईरन् घ=क, अलोप, पत्व] १. दूध। २. पौधों, वृक्षों आदि में से निकलनेवाला दूध-जैसा तरल सफेद पदार्थ। ३. कोई तरल पदार्थ। जैसे—जल। ४. खीर। ५. सरल वृक्ष का गोंद।

क्षीर-कंठ (क)—वि० [ब० स०] दूध पीनेवाला। दुधमुँहाँ।

क्षीर-कंद—पुं० [सं० ब० स०] क्षीरविदारी।

क्षीर-कांडक—पुं० [ब० स०] १. थूहर। २. मदार।

क्षीर-काकोली—स्त्री० [उपमि० स०] एक प्रकार की जड़ी जो वीर्य-वर्धक मानी जाती है।

क्षीर-खर्जूर—पुं० [उपमि० स०] पिंडखजूर।

क्षीर-घृत—पुं० [मध्य० स०] दूध को मथकर निकाला हुआ मक्खन या उससे बनाया हुआ घी।

क्षीरज—वि० [सं० क्षीर√जन् (प्रादुर्भाव)+ड] दूध से उत्पन्न होने या बननेवाला।

पुं० १. दही। २. कमल। ३. चन्द्रमा। ४. शंख।

क्षीरजा—स्त्री० [सं० क्षीरज+टाप्] लक्ष्मी।

क्षीर-तुंबी—स्त्री० [मध्य० स०] लौकी।
क्षीर-तैल—पुं० [मध्य० स०] वैद्यक में एक प्रकार का ओषधिक तेल।
क्षीर-दल—पुं० [ब० स०] आक। मदार।
क्षीर-द्रुम—पुं० [मध्य० स०] दे० 'क्षीरवृक्ष'।
क्षीरधि—पुं० [सं० क्षीर√धा (धारण)+कि] समुद्र।
क्षीर-धेनु—स्त्री० [मध्य० स०] १. वह गाय जो दूध देती हो। २. दान के लिए घड़े आदि को स्थापित कर बनाई हुई एक प्रकार की कल्पित गौ। (पुराण)।
क्षीर-निधि—पुं० [प० त०] समुद्र।
क्षीर-नीर—पुं० [द्व० स०] १. दूध और पानी। २. दूध और पानी का संमिश्रण। ३. आलिंगन।
क्षीर-पर्णी—स्त्री० [ब० स०,ङीष्] आक। मदार।
क्षीर-पलांडु—पुं० [उपमि० स०] सफेद प्याज।
क्षीर-पाक—वि० [ब० स०] दूध में पका अथवा पकाया हुआ।
पुं० वैद्यक में दूध में पकाई हुई कोई ओषधि।
क्षीर-पुष्पी—स्त्री० [सं० ब० स०, ङीष्] शंखपुष्पी।
क्षीर-फूली—पुं० [सं०+हिं०] एक प्रकार का बढ़िया आम।
क्षीर-भृत—वि० [तृ० त०] जो केवल दूध पी कर निर्वाह करता हो।
पुं० ऐसा नौकर जो अपनी मजदूरी दूध के रूप में लेता हो।
क्षीर-विदारी—स्त्री० [उपमि० स०] विदारी की तरह की एक ओषधि जिसमें दूध निकलता है।
क्षीर-वृक्ष—पुं० [मध्य० स०] ऐसे वृक्ष जिनमें से दूध-जैसा तरल पदार्थ निकलता हो। जैसे—खिरनी, गूलर, पीपल, बरगद, महुआ आदि।
क्षीर-व्रत—पुं० [मध्य० स०] ऐसा व्रत जिसमें केवल दूध पीया जाता हो।
क्षीर-शर—पुं० [प० त०] दूध, दही आदि पर जमने वाली मलाई।
क्षीर-शाक—पुं० [ष० त०] १. फटा हुआ दूध। छेना। २. मक्खन।
क्षीरस—पुं० [सं० क्षीर√सो (अन्त करना)+क] दही, दूध आदि की मलाई।
क्षीर-सागर—पुं० [प० त०] सात समु ों में से एक समुद्र, जो दूध से भरा हुआ माना गया है (पुराण)।
क्षीर-सार—पुं० [सं० प० त०] मक्खन।
क्षीर-स्फटिक—पुं० [उपमि० स०] एक प्रकार का स्फटिक।
क्षीर-हिण्डीर—पुं० [प० त०] दूध का फेन।
क्षीरा—स्त्री० [सं० क्षीर+अच्, टाप्] काकोली नाम की जड़ी।
क्षीराद—पुं० [सं० क्षीर√अद् (खाना)+अण्] दूध पीनेवाला अर्थात् दुधमुँहा बच्चा।
क्षीराब्धि—पुं० [सं० क्षीर-अब्धि, प० त०] क्षीर-सागर।
क्षीरिक—पुं० [सं० क्षीर+ठन्–इक] एक तरह का साँप।
क्षीरिका—स्त्री० [सं० क्षीरिक+टा ्] १. पिंडखजूर। २. वंशलोचन।
क्षीरिणी—वि० [सं० क्षीर+इनि—ङीप्] दूध देनेवाली।
स्त्री० १. क्षीर-काकोली। २. खिरनी। ३. दुद्धी नाम की लता। ४. वराहक्रान्ता।
क्षीरोद—पुं० [सं० क्षीर-उदक्, ब० स०, उदक्=उद] क्षीर-सागर।
क्षीरोदक—पुं० [सं० क्षीरोद√कै (प्रतीत होना)+क] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।
क्षीरोद-तनय—पुं० [प० त०] चंद्रमा।
क्षीरोद-तनया—स्त्री० [प० त०] लक्ष्मी।
क्षीरोदधि—पुं० [सं० क्षीर-उदधि, प० त०] क्षीरसागर।
क्षीरोदन—पुं० [सं० क्षीर-ओदन, मध्य० स०] १. दूध में पका या पकाया हुआ चावल। २. खीर (दे०)।
क्षीव—वि० [सं०√क्षीव् (मत्त होना)√अच्] १. जो नशे में चूर हो। २. उन्मत्त। पागल। ३. उत्तेजित।
क्षुणी—स्त्री० [सं०√ क्षु (छींकना)+नि—ङीप्] पृथ्वी।
क्षुण्ण—वि० [सं०√क्षुद् (पीसना) + क्त] १. कुचला या रौंदा हुआ। २. जिसके अंग या अवयव खंडित अथवा छिन्न-भिन्न हो चुके हों। ३. अभ्यस्त। ४. अच्छी तरह से विचारा या सोचा हुआ।
क्षुण्णक—पुं० [सं० क्षुण्ण+कन्] एक प्रकार का ढोल जो अंत्येष्टि के समय बजाया जाता था।
क्षुत्—स्त्री० [सं०√क्षुध् (भूखा होना) + क्विप्] भूख। क्षुधा।
पुं० [सं०√+क्विप्] छींक।
क्षुति—स्त्री० [सं०√क्षु+क्तिन्] छींक।
क्षुद—पुं० [सं० √क्षुद्+क] १. आटा। २. मैदा।
क्षुद्र—वि० [सं०√क्षुद्+रक्] १. (व्यक्ति) जो निम्न श्रेणी अथवा निम्न या हीन विचारों का हो। अधम। नीच। पापी। २. क्रूर। ३. कंजूस। ४. निर्धन। ५. (वस्तु) जिसका महत्त्व या मान कुछ भी न हो। ६. छोटा। ७. थोड़ा। कम।
पुं० १. शूद्र। २. चावल का कण।
क्षुद्रक—पुं० [सं० क्षुद्र+क ्] पंजाब के अन्तर्गत एक प्राचीन देश।
वि०=क्षुद्र।
क्षुद्र-ग्रह—पुं० [कर्म० स०] ज्योतिष में उन छोटे-छोटे और अनामी ग्रहों में से कोई (और हर एक) जो मंगल और बृहस्पति ग्रह के बीच में पड़ते और वहीं से सूर्य की परिक्रमा करते है। (एस्टिरॉयट)
क्षुद्र-घंटिका—स्त्री० [कर्म स०] १. पुराने जमाने में पहनी जानेवाली घुँघरूदार करधनी। २. घुँघरू।
क्षुद्र-चंदन—पुं० [कर्म० स०] लाल चन्दन।
क्षुद्र-जंतु—पुं० [कर्म० स०] बहुत ही छोटा या सूक्ष्म जंतु। कीड़े-मकोड़ आदि।
क्षुद्रता—स्त्री० [सं० क्षुद्र+तल्–टाप्] १. क्षु होने की अवस्था या भाव। २. ओछापन। ३. तुच्छता। ४. नीचता।
क्षुद्र-तुलसी—स्त्री० [कर्म० स०] एक प्रकार की छोटी तुलसी।
क्षुद्र-धान्य—पुं० [कर्म० स०] कंगनी, कोदों आदि कुधान्य।
क्षुद्र-पति—पुं० [कर्म० स०] कुबेर।
क्षुद्र-पत्रा—स्त्री० [ब० स०] नोनी का साग । अमलोनी।
क्षुद्र-पत्री—स्त्री० [ब० स०] बच।
क्षुद्र-प्रकृति—वि० [ब० स०] १. दूषित या नीच प्रकृतिवाला। २. ओछा।
क्षुद्र-फला—स्त्री० [ब० स०] १. जामुन। २. इंद्रायण।
क्षुद्र-बुद्धि—वि० [ब० स०] १. छोटी या तुच्छ बुद्धिवाला।

क्षुद्रम—पुं० [सं० क्षुद्र√मा (मापना)+क] छः माशे की एक छोटी तौल। छदाम।

क्षुद्र-मुस्ता—स्त्री० [कर्म० स०] कसेरू।

क्षुद्र-रोग—पुं० [कर्म० स०] छोटे रोग। जैसे—झाईं, फुंसी, मुहाँसा आदि छोटे-मोटे रोग। (वैद्यक)

क्षुद्रल—वि० [सं० क्षुद्र+लच्] बहुत ही छोटा या तुच्छ। परम हीन।

क्षुद्र-श्वास—पुं० [कर्म० स०] बहुत ही छोटे-छोटे साँस लेने का रोग, जो प्रायः भोजन की अधिकता, परिश्रम की कमी, दिन में सोने आदि के कारण होता है। (सुश्रुत)

क्षुद्रहा—पुं० [सं० क्षुद्र√हन् (मारना)+क्विप्] शिव का एक नाम।

क्षुद्रांजन—पुं० [सं० क्षुद्र-अंजन, कर्म० स०] आँवले आदि के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का अंजन। (सुश्रुत)

क्षुद्रांत्र—पुं० [सं० क्षुद्र-अंत्र, कर्म० स०] हृदय के पास की एक छोटी नाड़ी।

क्षुद्रा—स्त्री० [सं० क्षुद्र+टाप्] १. बहुत ही निम्न तथा हीन विचारों वाली स्त्री। २. कुलटा। ३. वेश्या। ४. लोनी साग। ५. जटामासी। ६. भटकैया। ७. सरघा नामक मधुमक्खी। ८. हिचकी। ९. एक प्रकार की छोटी नाव। १०. कौड़ियाला। कौड़िल्ला।

क्षुद्रात्मा (त्मन्)—पुं० [सं० क्षुद्र-आत्मन्, ब० स०] क्षुद्र या हीन विचारोंवाला व्यक्ति।

क्षुद्रावली—स्त्री० [सं० क्षुद्र-आवली, कर्म० स०]=क्षुद्र-घटिका।

क्षुद्राशय—वि० [सं० क्षुद्र-आशय, ब० स०] तुच्छ या नीच प्रकृतिवाला। कमीना। नीच।

क्षुद्रिका—स्त्री० [सं० क्षुद्र+कन्–टाप्, इत्व] छोटी घंटी।

क्षुध्—स्त्री० [सं०√क्षुध् (भूखा होना)+क्विप्]=क्षुधा।

क्षुधा—स्त्री० [सं० क्षुध्+टाप्] [वि० क्षुधित, क्षुधालु] १. कुछ न खाने अथवा भूखे रहने के कारण होनेवाला वह कष्टप्रद संवेदन, जिसमें भोजन करने की उत्कट इच्छा होती है। भूख। २. किसी चीज या बात की विशेष अपेक्षा या आवश्यकता। ३. अतृप्ति।

क्षुधातुर—वि० [सं० क्षुधा-आतुर, तृ० त०] जो क्षुधा से व्याकुल हो। बहुत अधिक भूखा।

क्षुधा-नाश—पुं० [ष० त०] आमाशय में सूजन होने या उसके पेशियों के दुर्बल होने आदि के कारण भूख बिलकुल न लगना, जो रोग माना जाता है। (एनोरेक्सिया)।

क्षुधालु—वि० [सं०√क्षुध्+आलुच्] जिसे सदैव भूख लगी रहती हो। भुक्खड़।

क्षुधावंत—वि० [सं० क्षुधावान्] क्षुधा से पीड़ित। भूखा।

क्षुधावती—स्त्री० [सं० क्षुधा+मतुप्, वत्व, ङीप्] विशेष प्रकार से तैयार की हुई एक ओषधि, जिसके खाने से भूख बढ़ती है।

क्षुधित—वि० [सं० क्षुधा+इतच्] जिसे भूख लगी हो। भूखा।

क्षुप—पुं० [सं०√क्षु+पक्] [स्त्री० क्षु] १. छोटी तथा घनी डालियों वाले वृक्षों का एक प्रकार या वर्ग। झाड़ी। (श्रब)। २. सत्य-भामा के गर्भ से उत्पन्न श्री कृष्ण के पुत्र का नाम। ३. राजा इक्ष्वाकु के पिता।

क्षुपक—पुं० [सं० क्षुप+कन्] छोटा क्षुप। झाड़ी।

क्षुब्ध—वि० [सं०√क्षुभ् (चंचल होना)+क्त] १. जिसे या जिसमें क्षोभ हुआ हो। २. विकल। व्याकुल। ३. चंचल। चपल। ४. क्रुद्ध।

क्षुभा—स्त्री० [सं०√क्षुभ्+क–टाप्] सूर्य के पारिषद् एक दे

क्षुभित—वि०=क्षुब्ध।

क्षुमा—स्त्री० [सं०√क्षु+मक्–टाप्] [वि० क्षौम] १. बाण २. ऐसे पौधों का एक वर्ग जिनकी डालियाँ पतली, लम्बी तथा छालवाली होती हैं। ३. अलसी। ४. सनई। ५. नील का

क्षुर—पुं० [सं०√क्षुर् (काटना)+क] १. प्राचीनकाल में अगली नोक पर लगाई जानेवाली धारदार छुरी या हुक (२. बाल मूड़ने का प्रसिद्ध उपकरण छुरा। ३. पशुओं का ४. गोखरू।

क्षुरक—पुं० [सं० क्षुर+कन्] छोटा क्षुर या छुरा (बाल मूँडने

क्षुर-धान—पुं० [ष० त०] वह थैली या डिबिया, जिसमें नाई छुरा हैं। किस्वत।

क्षुर-धार—पुं० [ब० स०] १. एक नरक का नाम। २. एक बाण।

वि० तीक्ष्ण या तेज धारवाला। चोखा।

क्षुर-पत्र—पुं० [ब० स०] [स्त्री० क्षुरपत्रा, क्षुरपत्री] १. छुरे की तेज धारवाला पत्ता। २. शर नामक तृण। ३. क्षुरधार बाण।

क्षुर-पत्रा—स्त्री० [ब० स०, टाप्] पालक (साग)।

क्षुर-पत्रिका—स्त्री० [ब० स०, कप्—टाप्, इत्व] पालकी । (साग)।

क्षुर-पत्री—स्त्री० [ब० स०, ङीप्] वच।

क्षुरप्र—वि० [सं० क्षुर√पृ (हिंसा)+क] जिस की धार छुरे के स तेज हो।

पुं० १. तेज धारवाली कोई वस्तु। जैसे छुरा, छुरी आदि। २. खुर

क्षुरा-भांड—पुं० [ष० त०] दे० 'क्षुरधान'।

क्षुरिका—स्त्री० [सं० क्षुर+ङीप्+कन्–टाप्, ह्रस्व] १. छुरी। च २. पालक नामक साग। ३. एक यजुर्वेदीय उपनिषद्।

क्षुरी (रिन्)—पुं० [सं० क्षुर+इनि] [स्त्री० क्षुरिणी] १. नाई। हज्ज २. खुरवाला पशु।

क्षुल्ल—वि० [सं० क्षुद्√ला (लेना)+क] १. कम या थोड़ी मात्रा क। २. छोटा। जैसे—क्षुल्ल तात=पिता का छोटा भाई अर्थात् चाचा।

क्षुल्लक—पुं० [सं० क्षुल्ल+कन्] १. क्षुद्र। २. अधम।

क्षुव—पुं० [सं० क्षव] १. छींक। २. राई। ३. लाही।

क्षेत्र—पुं० [सं०√क्षि+ष्ट्रन्] १. भूमि का वह खंड जो बोया ज है। खेत। २. भूमि का कोई खंड या विभाग। प्रदेश। ३. स त भूमि। ४. युद्ध-भूमि। ५. वह स्थान जहाँ से खनिज पदार्थ निका जाते हों। ६. रेखाओं या सीमाओं आदि से घिरा हुआ स्थान ७. प्राकृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक आदि विचारों से कोई ऐसा भाग, जिस में कोई विशेषता हो, अथवा लाई या मानी गई हो। (जोन) ८. कोई ऐसा स्थान या मंडल जिसमें कोई विशेष कार्य या बात होत हो। जैसे—साहित्य के इस क्षेत्र के वे पूर्ण ज्ञाता हैं। ९. स्त्री, जिसमें वीर्य की स्थापना करके सन्तान उत्पन्न की जाती है। १०. पाँचों ज्ञानें द्रियाँ, पाँचों कर्मेंद्रियाँ, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संस्कार, चेतनता

और धृति आदि से युक्त शरीर (गीता)। ११. तीर्थस्थान। १२. ढेर। राशि।

क्षेत्र-गणित—पुं० [ष० त०] गणित की वह शाखा, जिसमें खेतों के मापने और उनका क्षेत्रफल निकालने की विधियाँ बताई जाती हैं।

क्षेत्रज—वि० [सं० क्षेत्र√जन् (उत्पत्ति)+ड] खेत में उत्पन्न होनेवाला। पुं० धर्मशास्त्र के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक, जो किसी मृत या असमर्थ पुरुष की स्त्री ने दूसरे पुरुष के संयोग से उत्पन्न किया हो।

क्षेत्रजा—स्त्री० [सं० क्षेत्रज+टाप्] १. सफेद कंटकारी। २. एक प्रकार की ककड़ी। ३. गोमूत्र तृण। ४. शिल्पी नामक काम।

क्षेत्रज्ञ—पुं० [सं० क्षेत्र√ज्ञा (जानना)+क] १. क्षेत्र या शरीर का अधिष्ठाता जीवात्मा। २. परमात्मा। ३. किसान। ४. साक्षी। वि० किसी विषय का जानकार। ज्ञाता।

क्षेत्र-पति—पुं० [ष० त०] १. खेत का मालिक। २. खेतिहर। ३. जीवात्मा। ४. परमात्मा।

क्षेत्र-पाल—पुं० [सं० क्षेत्र√पाल् (रक्षा करना)+णिच्+अण्] १. खेत की रक्षा करनेवाला व्यक्ति। २. पश्चिमी दिशा के भैरव द्वारपाल। ३. प्रबन्धकर्त्ता। व्यवस्थापक।

क्षेत्र-फल—पुं० [ष० त०] किसी क्षेत्र की लंबाई और चौड़ाई को गुणन करने से निकलनेवाला वर्गात्मक परिमाण। रकबा। (एरिया)

क्षेत्रविद्—पुं० [सं० क्षेत्र√विद् (जानना)+क्विप्] १. जीवात्मा। २. वह व्यक्ति जिसे विभिन्न भू-भागों का ज्ञान हो।

क्षेत्राजीव—पुं० [सं० क्षेत्र-आ√जीव् (जीना)+अच्] किसान। कृषक।

क्षेत्राधिप—पुं० [सं० क्षेत्र-अधिप, ष० त०] १. खेत का स्वामी। २. ज्योतिष में किसी राशि का स्वामी या देवता।

क्षेत्रिक—पुं० [सं० क्षेत्र+ठन्–इक] वह व्यक्ति जिसके पास खेत हो। वि०=क्षेत्रिय।

क्षेत्रिय—वि० [सं० क्षेत्र+घ–इय] १. क्षेत्र या खेत-संबंधी। २. खेत में होने अथवा उपजनेवाला। ३. जिसका संबंध किसी विशिष्ट भूभाग या कार्यक्षेत्र से हो।
पुं० १. चरागाह। २. असाध्य रोग।

क्षेत्री (त्रिन्)—पुं० [सं० क्षेत्र+इनि] १. खेत का स्वामी। २. स्वामी। ३. पति।

क्षेद—पुं० [सं० खेद] १. दुःख। २. शोक।

क्षेप—पुं० [सं०√क्षिप् (फेंकना)+घञ्] १. फेंकने की क्रिया। फेंकना। २. पीछे करना या बिताना। जैसे—काल-क्षेप। ३. वह जो कुछ फेंका जाय, विशेषतः एक बार में फेंका जाय। ४. आघात। ५. अतिक्रमण। ६. देर। विलंब। ७. निंदा।

क्षेपक—वि० [सं०√क्षिप्+ण्वुल्–अक] १. फेंकनेवाला। २. नष्ट या बरबाद करनेवाला। ३. निंदनीय।
पुं० १. मल्लाह। २. [क्षप+कन्] वह अंश, जो बाद में किसी वस्तु, विशेषतः पुस्तक आदि में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा बढ़ाया या मिलाया गया हो। जैसे—इस रामायण में कई क्षेपक हैं।

क्षेपण—पुं० [सं०√क्षिप्+ल्युट्–अन] १. कोई चीज फेंकने की क्रिया या भाव। २. गिराना। ३. मिलाना। ४. बिताना। गुजारना। जैसे—समय का क्षेपण।

क्षेपणिक—पुं० [सं० क्षेपणि+ठन्–इक] मल्लाह। नाविक।

क्षेपणी—स्त्री० [सं० क्षेपण+ङीप्] १. वह अस्त्र जो फेंककर चलाया जाय। २. डाँड़।

क्षेपणीय—वि० [सं०√क्षिप्+अनीयर्] फेंकने योग्य।

क्षेप्ता—(प्तृ) वि० [सं०√क्षिप्+तृच्] फेंकनेवाला।

क्षेमंकर—वि० [सं० क्षेम√कृ (करना)+खच्, मुम्] मंगलकारी।

क्षेमंकरी—स्त्री० [सं० क्षेमंकर+ङीप्] १. एक प्रकार की सफेद चील। २. एक देवी का नाम।

क्षेम—पुं० [सं०√क्षि+मन्] १. किसी प्रकार की विपत्ति, संकट, हानि आदि से किसी की रक्षा करने का काम। (सेफ्टी) २. कुशल-मंगल। ३. सुख। ४. मुक्ति। ५. शांति के गर्भ से उत्पन्न धर्म का एक पुत्र। ६. फलित ज्योतिष में जन्म के नक्षत्र से चौथा नक्षत्र। ७. चोवा नामक गंध-द्रव्य।

क्षेमक—पुं० [सं० क्षेम+कन्] १. प्लक्ष द्वीप के एक वर्ष का नाम। २. शिव का एक गण। ३. एक नाग। ४. एक राक्षस।

क्षेमकरी—स्त्री० [सं० क्षेमकर+ङीप्] दुर्गा का एक रूप।

क्षेम-कल्याण—पुं० [सं० द्व० स०] एक संकर राग, जो कल्याण और हम्मीर के संयोग से बनता है। (संगीत)

क्षेम-फला—स्त्री० [ब० स०, टाप्] गूलर।

क्षेमवती—स्त्री० [सं० क्षेम+मतुप्, ङीप्] एक प्राचीन नगरी। (सम्भवतः गोरखपुर के पास का क्षेमराजपुर)

क्षेमा—स्त्री० [सं० क्षेम+टाप्] १. कात्यायिनी का एक नाम। २. एक अप्सरा का नाम।

क्षेमासन—पुं० [सं० क्षेम-आसन, मध्य० स०] एक प्रकार का आसन जिसमें दाहिने हाथ पर दाहिना पैर रखकर बैठते हैं। (तंत्र)

क्षेमी (मिन्)—वि० [सं० क्षेम+इनि] १. मंगलकारी। २. (व्यक्ति) जो दूसरे का शुभ चाहे।

क्षेमेंद्र—पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध कश्मीरी कवि, कथाकार और आचार्य।

क्षेम्य—वि० [सं० क्षेम+यत्] १. कल्याणकारक। २. शांतिदायक। ३. स्वास्थ्यकर।

क्षेम्या—स्त्री० [सं० क्षेम्य+टाप्] दुर्गा का एक रूप।

क्षैण्य—पुं० [सं० क्षीण+ष्यञ्] क्षीणता।

क्षैप्र—पुं० [सं० क्षिप्र+अण्] क्षिता।

क्षैय—वि० [सं० क्षय्य] १. जिसका क्षय होने को हो। २. जिसका क्षय किया जाने को हो।

क्षैमिक—वि० [सं० क्षेम+ठञ्–इक] क्षेम-संबंधी।

क्षैरेय—वि० [सं० क्षीर+ढञ्–एय] दूध से बना अथवा बनाया हुआ।

क्षोड—पुं० [सं०√क्षोड् (बाँधना)+घञ्] वह खूँटा, जिससे हाथी बाँधा जाता है। आलान।

क्षोण—पुं० [सं०√क्षि+ल्युट्–अन, पृषो० सिद्धि] १. वह जो हिल न सके अथवा चल फिर न सके। २. एक स्थान पर टिका रहनेवाला। ३. एक प्रकार की वीणा।

क्षोणि—स्त्री० [सं०√क्षै(नष्टकरना)+डोनि] १. पृथ्वी, जो सब का कल्याण करती है। २. एक की संख्या का सूचक शब्द।

क्षोणिप—पुं० [सं० क्षोणि√पा (पालन करना)+क] राजा।

क्षोणी—स्त्री० [सं० क्षोणि+ङीप्] पृथ्वी।

क्षोणी-पति—पुं० [प० त०] राजा।

क्षोद—पुं० [सं०√क्षुद् (चूर्ण करना)+घञ्] १. चूर्ण। बुकनी। २. चूर्ण बनाने अथवा कोई चीज पीसने का काम। ३. जल। पानी।

क्षोदित—भू० कृ० [सं०√क्षुद्+णिच्+क्त] पीसा या चूर किया हुआ। पुं० पिसी हुई वस्तु। चूर्ण।

क्षोभ—पुं० [सं०√क्षुभ् (चंचल होना)+घञ्] १. शान्ति, स्थिरता आदि में पड़नेवाली बाधा। जैसे—जल में होनेवाला क्षोभ। खलबली। २. कोई आपत्तिजनक बात या व्यवहार होने पर मन में होनेवाली दुःखजन्य विकलता। ३. असंतोष। ४. भय। ५. कंप। कँपकँपी। उदा०—तेज बढ़े निज राज को, अरि उर उपजे छोभ।— केशव। ६. क्रोध।

क्षोभक—पुं० [सं०] कामाख्या के पास का एक पर्वत।

क्षोभकृत्—पुं० [सं०क्षोभ√कृ (करना)+क्विप्] साठ संवत्सरों में से छत्तीसवाँ संवत्सर। (ज्योतिष)

क्षोभण—पुं० [सं०√क्षुभ्+णिच्+ल्यु–अन] १. वह जो क्षोभ उत्पन्न करे। २. कामदेव का एक बाण। ३. विष्णु। ४. शिव।

क्षोभिणी-स्त्री० [सं०√क्षुभ्+णिच्+णिनि–ङीप्] निषाद स्वर की अंतिम श्रुति। (संगीत)

क्षोभित—वि० [सं० क्षोभ+इतच्] जिसे क्षोभ हुआ हो। क्षुब्ध।

क्षोभी (भिन्)—वि० [सं० क्षोभ+इनि] क्षुब्ध होनेवाला।

क्षोम—पुं० [सं०√क्षु+मन्] १. दुमंजिले पर का कमरा। २. अटारी। ३. रेशम। ४. रेशमी कपड़ा।

क्षोहण—पुं०=अक्षौहिणी। उदा०—पंच क्षोहण जकइ मिलइ नरिंद। —नरपति नाल्ह।

क्षौणि, क्षौणी—स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी।

क्षौद्र—पुं० [सं० क्षुद्र+अण्] १. क्षुद्रता। २. जल। ३. [क्षुद्रा+अञ्] छोटी मक्खी का मधु।

क्षौद्रक—पुं० [सं० क्षौद्र+कन्] १. मधु। शहद। २. एक प्राचीन प्रदेश का नाम।

क्षौद्रज—पुं० [सं० क्षौद्र√जन् (उत्पत्ति)+ड] क्षुद्रा मधुमक्खी का मोम।

क्षौद्र-प्रमेह—पुं० [मध्य० स०] मधुमेह।

क्षौद्रेय—पुं० [सं० क्षौद्र+ढञ्–एय] मोम।

क्षौम—पुं० [सं० क्षोम+अण्] १. प्राचीन काल में अलसी, सन आदि के रेशों से बननेवाला एक प्रकार का मोटा कपड़ा। २. कोई कपड़ा, विशेषतः रेशमी कपड़ा।

क्षौमक—पुं० [सं० क्षौम√कै (प्रतीत होना)+क] चोआ नामक गंध-द्रव्य।

क्षौमिक—स्त्री० [सं० क्षोम+ठञ्–इक] १. अलसी, सन के रेशों को बटकर बनाई हुई करधनी। २. कथरी। गुदड़ी।

क्षौमी—स्त्री० [सं० क्षुमा+अण्–ङीप्] १. टाट की गुदड़ी। कथरी। २. अलसी, सन आदि की बनी हुई कथरी।

क्षौर—पुं० [सं० क्षुर+अण्] १. छुरे से बाल मूँड़ने का काम। २. सिर के बाल काटने का काम। हजामत।

क्षौर-मंदिर—पुं० [प० त०] हजामत बनवाने की दूकान। (बार्बर्स सैलून)

क्षौरालय— पुं० [क्षौर-आलय, प० त०]= क्षौर-मंदिर।

क्षौरिक—पुं० [सं० क्षौर+ठन्–इक] नाई। हज्जाम।

क्ष्मा—स्त्री० [सं०√क्षम् (सहना)+अच्–टाप्, [illegible]] १. पृथ्वी। धरती। २. एक की संख्या का सूचक शब्द।

क्ष्वेड़—पुं० [सं०√क्ष्विड् (प्यार करना)+घञ्] १. अव्यक्त या अस्पष्ट ध्वनि। २. ध्वनि। शब्द। ३. जहर। विष। ४. कान का एक रोग।

क्ष्वेडा—स्त्री० [सं० क्ष्विड्+घञ् वा अच्, टाप्] १. सिंहनाद। २. युद्ध का नाद। ३. बाँस।